॥ ओ३म् ॥

महर्षि दयानन्द सरस्वती का
जीवनचरित्र

[अमर शहीद पं० लेखराम द्वारा संकलित प्रामाणिक उर्दू संस्करण
(१८९७ में प्रकाशित) का आर्यभाषा (हिन्दी) में अनुवाद]

अनुवादक

स्व० कविराज रघुनन्दनसिंह 'निर्मल'

सम्पादक

डॉ० भवानीलाल भारतीय

सेवानिवृत्त प्रोफेसर तथा अध्यक्ष

दयानन्द शोध पीठ, पंजाब विश्वविद्यालय

प्रकाशक

आर्ष साहित्य-प्रचार ट्रस्ट

४५५, खारी बावली, दिल्ली-११०००६

वेदोद्धारक महर्षि दयानन्द सरस्वती

रक्तसाक्षी पण्डित लेखराम

समर्पण

ऋषि दयानन्द के अनन्य भक्त, आर्ष प्रज्ञा के पुनः प्रचार के लिए समर्पित जीवन, परम निष्ठावान्–

स्व० लाला दीपचन्द जी आर्य

की पावन स्मृति में

समर्पित।

(उन्हीं के परमपुरुषार्थ से पं० लेखराम द्वारा संकलित तथा पं० आत्माराम अमृतसरी द्वारा सम्पादित ऋषि दयानन्द के इस विशद एवं प्रामाणिक उर्दू जीवनचरित का हिन्दी अनुवाद हो सका।)

भवानीलाल भारतीय

सम्पादक

सम्पादकीय वक्तव्य

उन्नीसवीं शताब्दी के भारत के धार्मिक तथा सांस्कृतिक नवजागरण के उन्नायक तथा पुरोधा दयानन्द सरस्वती के विचारों और कार्यों का प्रभाव उनके जीवनकाल में ही लक्षित होने लगा था । यह प्रभाव केवल भारत तक ही सीमित नहीं था, अपितु दयानन्द की कीर्ति-कौमुदी स्वदेश की सीमा को लांघ कर यूरोप तथा अमेरिका तक छिटक चुकी थी । फलतः देश विदेश के अनेक लोग न केवल उनके विचारों को ही जानना चाहते थे, अपितु उनकी यह भी इच्छा थी कि वे इस महापुरुष की जीवन-यात्रा के विभिन्न पड़ावों की भी जानकारी प्राप्त करें ।

स्वामी दयानन्द स्वयं चतुर्थाश्रमी संन्यासी थे । संन्यास की मर्यादा उन्हें इस बात की अनुमति नहीं देती थी कि वे अपने माता-पिता, जन्मस्थानादि के बारे में लोगों को बताएं । फिर भी उनके जीवन में दो प्रसंग ऐसे आये जब उन्हें स्वजीवन के कुछ वृत्तान्त लोगों के समक्ष व्यक्त करने पड़े । प्रथम बार उन्होंने अपने जीवन से सम्बन्धित कुछ तथ्यों को उस समय बताया जब महामति महादेव गोविन्द रानडे के आग्रह पर वे १८७५ में पुणे में एक व्याख्यानमाला प्रस्तुत कर रहे थे । इस भाषणमाला के अन्तिम दिन अगस्त १८७५ को उन्होंने अपने जीवन के बारे में कुछ बातों से श्रोताओं को अवगत कराया । कालान्तर में जब स्वामी जी का थियोसोफिकल सोसाइटी के संस्थापकों (कर्नल एच०एस० आल्काट तथा मैडम एच०पी० ब्लैवेट्स्की) से सम्पर्क हुआ और उन्होंने अपनी संस्था के मुख पत्र दि थियोसोफिस्ट में प्रकाशित करने के लिए स्वामी जी से आत्मवृत्तान्त लिखने का अनुरोध किया तो स्वामी जी ने उनके आग्रह को स्वीकार कर आत्मकथा लिखना आरम्भ किया । इस आत्मकथन की तीन किस्तें उक्त पत्र में प्रकाशित हुईं । इसके पश्चात् यह क्रम बन्द हो गया । स्वामी दयानन्द का यह स्वकथित इतिवृत्त उनके जीवन की प्रारम्भकालीन घटनाओं को जानने में सर्वाधिक प्रामाणिक माना गया है ।

यों उनके जीवनकाल में ही दयानन्द के जीवनचरित लेखन का एक प्रयास फर्रुखाबाद निवासी एक महाराष्ट्रीय सज्जन ने किया । पं० गोपाल राव हरि शर्मा पुणतांकर ने दयानन्द दिग्विजयार्क शीर्षक से तीन खण्डों में स्वामी जी का स्फुट जीवन-वृत्तान्त, उनके कतिपय शास्त्रार्थों का विवरण तथा उनके ग्रन्थों के कुछ अंश प्रकाशित किये । इस ग्रन्थ का तृतीय खण्ड तो स्वामी जी की मृत्यु के पश्चात् १८८५ ई० में प्रकाशित हुआ । इसमें उनके जीवन के अन्तिम दिनों, रुग्णता, चिकित्सा तथा महाप्रयाण का मार्मिक वर्णन उपलब्ध होता है । दयानन्द दिग्विजयार्क को व्यवस्थित जीवनचरित तो नहीं कहा जा सकता किन्तु इतना अवश्य है कि इसमें जो सामग्री दी गई वह समयान्तर में लिखे गये जीवनचरितों के लिए उपयोगी सिद्ध हुई ।

स्वामी जी के ग्रन्थों, यन्त्रालय आदि का स्वत्व रखने वाली परोपकारिणी सभा का एक महत्त्वपूर्ण अधिवेशन दिसम्बर १८८५ में सम्पन्न हुआ । इसमें एक प्रस्ताव स्वीकार कर सभा के उपमन्त्री पं० मोहनलाल

त्रुटिपूर्ण आये हैं । पं० लेखराम ने स्वामी जी के जीवन की घटनाओं का यथाशक्य कालनिर्धारण किया था जो तत्तत्समय प्राप्त सूचनाओं पर आधारित था । कालान्तर में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में फारसी-अरबी के प्राध्यापक पं० महेशप्रसाद मौलवी, आलिम फाज़िल ने दयानन्द के विभिन्न स्थानों पर गमनागमन की प्रामाणिक तालिका बनाई और टंकारा (१८२४) से अजमेर (१८८३) तक के स्वामी जी के जीवन-चक्र को तिथि, मास तथा वर्ष के क्रम से निर्धारित किया । मैंने टिप्पणियों में मौलवी जी की इस तालिका को यत्र तत्र उद्धृत किया है ।

कई वर्ष पूर्व मैंने आर्ष साहित्य-प्रचार ट्रस्ट के वर्तमान सुयोग्य एवं विद्वान् मन्त्री पं० धर्मपाल जी से निवेदन किया था कि वे मुझे पं० लेखराम रचित इस जीवनचरित को संशोधित तथा परिमार्जित करने की अनुज्ञा प्रदान करें । तथैव मैंने सावधानीपूर्वक इस विशालकाय ग्रन्थ में प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने वाली अशुद्धियों को शुद्ध किया । व्यक्ति नामों तथा स्थानों के नामों को ठीक किया तथा तिथिक्रम में आपाततः दिखाई पड़ने वाली असंगतियों को दूर किया । यत्र तत्र विशेष स्पष्टीकरण के लिए सैकड़ों पाद टिप्पणियां देना भी आवश्यक समझा गया । उर्दू लिपि की एक कठिनाई यह है कि इसमें संस्कृत के क्लिष्ट शब्दों को याथातथ्य उतार देना कठिन होता है । जहां इस प्रकार के अशुद्ध नाम दिखाई दिये उन्हें ठीक किया । ग्रन्थान्त में दो विशिष्ट परिशिष्ट दिये गये हैं । प्रथम में स्वामी जी के जीवन की घटनाओं को बतलाने वाले व्यक्तियों की स्थानक्रम से तालिका प्रस्तुत की गई है । एक अन्य परिशिष्ट में कथानायक के जीवन की घटनाओं तथा अन्य प्रसंगों को जिन समसामयिक पत्रों में उल्लिखित किया गया, उन्हें भी तिथिक्रम से दर्शाया गया है । आशा है युगपुरुष दयानन्द के इस आद्य जीवनचरित को पाठक तल्लीन होकर पढ़ेंगे जिससे कि उस महाप्राण व्यक्तित्व का समग्र एवं विराट् रूप उनके मानस चक्षुओं के समक्ष उपस्थित हो सके ।

शरत्-पूर्णिमा २०५७ वि०
रत्नाकर, नन्दन वन, जोधपुर

—(डॉ०) भवानीलाल भारतीय

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के जीवनचरित की

विस्तृत विषय-सूची

तीय परिच्छेद

तृतीय परिच्छेद

'तीर्थ' शब्द की व्याख्या 399

अध्याय 4

(प्रथम परिच्छेद)

अध्याय 5

प्रथम परिच्छेद

द्वितीय परिच्छेद

तृतीय परिच्छेद

चतुर्थ परिच्छेद

अध्याय 6

प्रथम परिच्छेद

द्वितीय परिच्छेद

तृतीय परिच्छेद

अध्याय 7

प्रथम परिच्छेद

द्वितीय परिच्छेद

अध्याय 8

तृतीय भाग

अध्याय 1

जन्मकुल व माता-पिता। बचपन से उपासक दशा में। देववाणी का आदेश। संन्यास ग्रहण व व्याकरण का अध्ययन। काशी में न्याय, मीमांसा व वेदान्त का अध्ययन। अलवर में अध्यापन। मथुरा में आगमन। कृष्णशास्त्री का झमेला। सेठ का अन्याय। प्रमाण की खोज के लिए अष्टाध्यायी का पाठ सुनना। महाभाष्य, निरुक्त व निघण्टु भी मिले। विरजानन्द जी का रुख बदला। सच्चे शिष्य दयानन्द का आगमन। निर्भय, सत्यवक्ता विरजानन्द। काशी में विद्वत्ता की धाक। अनेक दिग्गज पण्डित पराजित। अनन्ताचार्य से तीन मास तक शास्त्रार्थ। मृत्यु का पूर्वाभास और मृत्यु।

अध्याय 2

प्रथम परिच्छेद

द्वितीय परिच्छेद

अध्याय 3

अध्याय 4

(संकलयिता - राजवीर शास्त्री)

सब ओर से ध्यान हटाकर विद्याध्ययन में व्यस्त—फिर माता जी ने मुझे कुछ मिठाई खाने को दे दी और कहा कि तू पिता जी के पास मत जाइयो और न उनसे कुछ कहियो अन्यथा मार खायेगा। भोजन खा कर मैं एक बजे के पश्चात् सो गया और दूसरे दिन आठ बजे उठा। पिता जी ने प्रातःकाल आकर रात्रि के भोजन का वृत्तांत सुना तो अत्यन्त क्रोधित होकर कहा तुमने बहुत बुरा काम किया। तब मैंने पिता जी से कहा कि वह मूर्ति कथा का महादेव नहीं था, मैं उसकी पूजा क्यों करूं? मेरे मन में (इस रात की घटना से) वास्तव में (मूर्ति पर) श्रद्धा नहीं रही थी। मैंने चाचा जी से कहा कि अध्ययन के कारण मुझ से उपवास और पूजा नहीं होती सो उन्होंने और माता जी ने मेरे पिता जी को समझा बुझा कर शान्त कर दिया कि अच्छी बात है पढ़ने दो। तब मैंने अपने अध्ययन में बहुत उन्नति की। निघण्टु, पूर्वमीमांसा आदि शास्त्रों के पढ़ने की इच्छा करके एक पंडित जी से उन्हें आरम्भ किया और पढ़ता रहा और साथ ही कर्मकाण्ड विषय की दूसरी पुस्तकें भी। अब सारा समय विद्याध्ययन में ही व्यतीत होता था।

भाई-बहिन—मुझ से छोटी एक बहन फिर उससे छोटा भाई[४] फिर एक और भाई हुए अर्थात् दो भाई फिर एक बहन[५] और हुए थे। तब तक मेरी १६ वर्ष की अवस्था हुई थी (इससे प्रकट है कि स्वामी जी सब से बड़े थे और उनके ज्ञानानुसार कुल तीन भाई और दो बहनें थीं।)

पहली मृत्यु (बहिन की) देखकर वैराग्य का उदय, सब रोते रहे; मृत्यु से बचने की सोचने में मेरी आंखें सूखी ही रहीं (संवत् १८९६ वि०)—मेरी सोलह वर्ष की अवस्था के पश्चात्, जो मेरी १४ वर्ष की बहन थी उसके विशूचिका हुई। जिसका वृत्तान्त इस प्रकार है कि एक रात जब कि हम एक मित्र के घर नृत्य[६] (सम्भवत: कत्थकों का नाच होगा अथवा भांड़ों का, क्योंकि काठियावाड़ में पंजाब और भारतवर्ष के समान वेश्याओं के नाच की प्रथा नहीं है) के जलसे में गये हुए थे तब अकस्मात् आकर भृत्य ने सूचना दी कि उसको विशूचिका हो गई है। हम सब तत्काल वहां से आये; वैद्य बुलाये गये; औषधि की, परन्तु कुछ लाभ न हुआ। चार घंटे में उसका शरीर छूट गया। मैं उसके बिछौने के पास दीवार का आश्रय लेकर खड़ा रहा। जन्म से लेकर इस समय तक मैंने पहली बार मनुष्य को मरते देखा था। इससे मेरे हृदय को परले दरजे का धक्का लगा और मुझे बहुत डर लगा। मारे भय के सोचने लगा कि सारे मनुष्य इसी प्रकार मरेंगे और ऐसे ही मैं भी मर जाऊंगा। सोच विचार में पड़ गया कि जितने जीव संसार में हैं उनमें से एक भी न बचेगा। इससे कुछ ऐसा उपाय करना चाहिये कि जिससे जन्म-मरण रूपी दु:ख से यह जीव छूटे और मुक्त हो अर्थात् उस समय मेरे चित्त में वैराग्य की जड़ जम गई।

सब लोग रोते थे परन्तु मेरी छाती में डर घुसने के कारण एक आंसू भी आंख से न गिरा। पिता जी ने मुझे पाषाणहृदय कहा। मेरी माता[७], जो मुझे बहुत प्यार करती थी, उसने भी ऐसा ही कहा।

मुझे सोने के लिए कहा गया परन्तु मुझे शान्ति से निद्रा न आई। भला ऐसी अशान्ति में निद्रा कहां? बार-बार चौंक पड़ता था और मन में नाना प्रकार की तरंगें उठती थीं। हमारे देश की प्रथा के अनुसार मेरी बहन के रोने के पांच-चार अवसर बीत गये परन्तु मैं तो रोया नहीं। इस कारण बहुत लोग मुझे धिक्कारने लगे।

जिस समय सारा परिवार (घराना) रो रहा था, मैं मूर्ति की भांति चुपचाप अलग खड़ा था। उस समय मुझ को बहुत से मनुष्यों के जीवन, जो संसार में अनित्य हैं, नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प अतीव शोक के साथ उत्पन्न हुए और जान पड़ा कि संसार में कोई भी ऐसा नहीं जो निर्दयी मृत्यु के पंजे से बच जाये। निश्चय एक दिन उस मृत्यु का सामना करना पड़ेगा। उस समय मृत्यु के दु:ख निवारणार्थ औषधि कहां ढूंढता फिरूंगा और मुक्ति प्राप्त करने के निमित्त किस पर भरोसा करूंगा? कौन सा उपाय इसके लिए उचित है। सारांश यह है कि उसी समय पूर्ण विचार कर लिया कि जिस प्रकार हो सके मुक्ति प्राप्त करूं जिसके द्वारा मृत्यु समय के समस्त दु:खों से बचूं।

अन्त को यह हुआ कि इस संसार से मेरा जी एकाएक हट गया और उत्तम विचार करने में संनद्ध हो गया। परन्तु यह विचार अपने मन में रखा; किसी से कहा नहीं और यथापूर्व अध्ययनादि में लगा रहा।

चाचा की मृत्यु से वैराग्य की चोट और गहरी, विवाह टलवाने के प्रयत्न। (१८९९ वि०) जब मेरी अवस्था १९ वर्ष की हुई तब जो मुझसे अति प्रेम करने वाले धर्मात्मा विद्वान् मेरे चाचा थे उनको विशूचिका ने आ घेरा। मरते समय उन्होंने मुझे पास बुलाया। लोग उनकी नाड़ी देखने लगे, मैं भी पास ही बैठा हुआ था। मेरी ओर देखते ही उनकी आंखों से आंसू बहने लगे, मुझे भी उस समय बहुत रोना आया। यहां तक हुआ कि मेरी आंखें फूल गईं। इतना रोना मुझे पहले कभी न आया था। उस समय मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं भी चाचा जी के सदृश एक दिन मरने वाला हूं।

इसके पश्चात् मुझे ऐसा वैराग्य हुआ कि संसार कुछ भी नहीं किन्तु यह बात माता-पिता जी से तो नहीं कही किन्तु अपने मित्रों और विद्वान् पंडितों से पूछने लगा कि अमर होने का कोई उपाय मुझे बताओ। उन्होंने योगाभ्यास करने के लिए कहा। तब मेरे जी में आया कि अब घर छोड़कर कहीं चला जाऊं। तब मैंने अपने मित्रों से कहा कि मेरा मन गृहाश्रम में नहीं लगता क्योंकि मुझे निश्चय हो गया है कि इस असार संसार में कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं जिसके लिए जीने की इच्छा की जाये या किसी पर मन लगाया जाये। यह बात मेरे मित्रों ने मेरे माता-पिता से कह दी। उन्होंने विचार किया कि इसका विवाह शीघ्र कर देना ठीक है। जब मुझे माता-पिता का यह विचार तथा निश्चय विदित हुआ कि मेरी २० वर्ष की अवस्था होते ही विवाह संस्कार सम्पन्न हो जायेगा तो मैंने अपने मित्रों से सिफारिश करवा कर यहां तक प्रयत्न किया कि मेरे पिता ने उस वर्ष मेरा विवाह स्थगित कर दिया।

(संवत् १९०० वि०)—बीसवें वर्ष के पूरे होते ही मैंने पिता जी से यह कहना आरम्भ कर दिया कि मुझे काशी भेज दीजिए, जहां मैं व्याकरण, ज्योतिष और वैद्यक ग्रन्थ पढ़ आऊं। तब माता-पिता और कुटुम्ब के लोगों ने उत्तर में कहा कि हम काशी तो कभी न भेजेंगे। जो कुछ पढ़ना है यहीं पढ़ो और जितना पढ़ चुके हो वह क्या थोड़ा है। थोड़े दिन विवाह होने को शेष हैं अर्थात् तेरा अगले वर्ष विवाह होगा क्योंकि लड़की वाला नहीं मानता और हमको अधिक पढ़ा कर क्या करना है। साथ ही माता जी ने भी यह कहा कि मैं भली-भांति जानती हूं कि विशेष पढ़े-लिखे लोग विवाह करना अनुचित समझते हैं और काशी चले जाने से विवाह में विघ्न होगा। परन्तु जब मैंने अपने पिता से दो तीन बार आग्रह किया कि आप मुझको अवश्य काशी भेज देवें और जब तक मैं वहां से पूर्ण पंडित और अच्छा विद्वान् होकर न आऊं तब तक विवाह होना ठीक नहीं तो इस मेरे बार-बार के अनुरोध पर माता भी विपरीत हो गई कि हम कहीं नहीं भेजते और अब शीघ्र विवाह करेंगे। तब मैंने चाहा कि अब सामने रहना अच्छा नहीं, चुप हो गया क्योंकि देखा कि विशेष आग्रह से काम बिगड़ता है और कार्य सिद्ध नहीं होता। चूंकि घर में मेरा जी नहीं लगता था यह देख पिता जी ने जमींदारी का काम करने के लिए मुझे कहा परन्तु मैंने उसे स्वीकार न किया।

कुछ दिन पीछे मैंने कहा कि आप ने काशी जाने से रोका, इसमें मेरा कुछ आग्रह नहीं परन्तु यहां से तीन कोस पर अमुक ग्राम में जो बड़े वृद्ध और अपनी जाति के भारी विद्वान् रहते हैं और वहां हमारे घर की जमींदारी भी है, उनके पास जाकर पढ़ा करूं, इतना तो मान लीजिये। इस बात को मां-बाप ने स्वीकार कर लिया और मैं प्रशंसित पंडित के पास कुछ समय तक अच्छी प्रकार पढ़ता रहा।

परन्तु दैव संयोग से एक बार बातचीत के समय उस पंडित के सामने मुझे इस बात को स्वीकार करना पड़ा कि मुझको विवाह से ऐसी प्रबल घृणा है कि जो मेरे मन से किसी प्रकार दूर नहीं हो सकती। जब पिता जी को यह सूचना मिली

उन्होंने वहां से मुझे उसी क्षण बुला लिया और विवाह की तैयारी आरम्भ कर दी । मैं घर आकर क्या देखता हूं कि अनेक प्रकार के विवाह के सामान तैयार हो रहे हैं । इधर मेरी अवस्था भी २१ वर्ष की पूरी हो गई थी ।

मेरे मन में तो घर छोड़ कर निकल जाने की थी परन्तु ऐसी सम्मति कोई न देता था । जो देता था वह लग्न करने की सम्मति देता था । उस समय मैंने निश्चित जाना कि अब विवाह किये बिना लोग कदाचित् नहीं छोड़ेंगे और न अब मुझ को भविष्य में विद्याप्राप्ति की आज्ञा मिलेगी और न माता-पिता मुझ को अविवाहित रखना स्वीकार करेंगे । तब मैंने अपने मन में सोच-विचार कर यह निश्चय ठाना कि अब वह काम करना चाहिये जिससे जन्म भर को इस विवाह के बखेड़े से बचूं । यह निश्चय मैंने किसी पर प्रकट न किया । एक मास में विवाह की तैयारी भी हो गई । प्रत्येक प्रकार की तैयारी देखकर मैं एक दिन सायंकाल सं० १९०३ में बिना किसी दूसरे को सूचित किये गुपचुप घर से इस निश्चय से कि फिर कभी लौट कर न आऊंगा, चल निकला । (संवत् १९०३ में उनकी अवस्था का बाईसवां वर्ष प्रारम्भ हो गया था । अतः उनका जन्म सम्भवतः संवत् १८८१ की समाप्ति पर हुआ था अर्थात् उसका एक आध मास अथवा कुछ दिन शेष होंगे । यह निश्चित होता है कि माघ मास अथवा फाल्गुन मास में उनका जन्म हुआ था) ।[८]

विवाह की तैयारी और घर से पलायन—पहली रात्रि तो मैंने अपने ग्राम से आठ मील के अन्तर पर एक ग्राम के आस-पास व्यतीत की । दूसरे दिन एक पहर रहे रात्रि को उठकर २० कोस अर्थात् ३० मील पर सायंकाल से पहले पहुंच गया और एक ग्राम में हनुमान के मन्दिर में जा रहा । मार्ग में इस चाल से गया कि प्रसिद्ध मार्ग और ऐसे ग्राम बचाता गया जिनमें कोई पहचान न सके । यह सावधानी मेरे बड़े काम आई क्योंकि घर से निकलकर तीसरे दिन मैंने एक राजपुरुष से यह सुना कि अमुक का लड़का घर छोड़कर चला गया है उसको खोजने के लिए सवार तथा पैदल मनुष्य यहां तक आये थे । यह सुन कर मैं आगे चल पड़ा ।

ठग वैरागी द्वारा ठगे गये—वहां एक और दुर्घटना घटित हुई अर्थात् जो मेरे पास थोड़े से रुपये और अंगूठी आदि आभूषण थे वे एक भिक्षुओं की टोली ने ठग लिये और कहा कि तुमको पक्का वैराग्य तब होगा कि जब अपने पास की सब वस्तुएं पुण्य कर दोगे । उनके कहने से मैंने सब दे दिया । इसका वृत्तांत इस प्रकार है कि मार्ग में एक वैरागी ने एक मूर्ति जमा रखी थी । हाथ में सोने की अंगूठियां डाल कर वैराग्य की सिद्धि कैसे हो सकती है, इस प्रकार (कहकर) मुझे चिढ़ा कर मेरी ओर से वे तीनों अंगूठियां उसने मूर्ति के समर्पण करा लीं ।

नैष्ठिक ब्रह्मचारी शुद्ध चैतन्य बने, दूसरे नकली वैरागी से बचे—तत्पश्चात् लाला भक्त के स्थान में जो सायले ग्राम[९] में हैं (यह ग्राम अहमदाबाद-मोरवी रेलवे के स्टेशन मोली से चार कोस और आर्यसमाज कस्बा रानपुर से ११ कोस है) वहां बहुत साधुओं को सुनकर चला गया । उस स्थान पर एक ब्रह्मचारी मिला, उसने कहा कि तुम नैष्ठिक ब्रह्मचारी हो जाओ और उसने मुझे ब्रह्मचर्य की दीक्षा दी और 'शुद्ध चैतन्य' ब्रह्मचारी मेरा नाम रखा और मेरे पहले वस्त्र उतरवा कर अपने समान मुझे काषायवस्त्र कराकर गेरुआ कुर्ता पहना दिया और हाथ में एक तूंबा दे दिया और मैं उनके थोक (समूह) में मिल गया और वहां योगसाधना करने लगा । रात को जब एक वृक्ष के नीचे बैठा था ऊपर पक्षियों ने घू-घू करना आरम्भ किया । सुनकर मुझे भूत का भय लगा और मैं पीछे मठ में आ गया । इस नये वेष में वहां से चलकर 'कोट कांगड़ा' नामक एक छोटे से कस्बे में (जहां छोटा-सा राज्य भी है), जो अहमदाबाद, गुजरात के समीप है, आया । वहां बहुत से वैरागी थे और कहीं की रानी भी उनके फन्दे में फंसी हुई थी, उन्होंने मेरे वेष को देखकर ठट्ठा करना प्रारम्भ किया और मुझे अपने में फांसने लगे परन्तु मैं उनके फन्दे से छूटकर भागा । रेशमी किनारे की धोतियां उन्हीं वैरागियों के कहने से वहां फेंक दी और तीन रुपये पास थे उन्हें खर्च करके साधारण धोतियां लीं और वहां ब्रह्मचारी के नाम से प्रसिद्ध रहा । मैं वहां तीन मास रहा था ।

सिद्धपुर के मेले में, अपनी भूल से पिता की कैद में—कोट कांगड़े में मैंने सुना कि सिद्धपुर में कार्तिक का मेला होता है वहां कोई तो योगी अपने को मिलेगा और अमर होने का मार्ग बता देगा इस आशा से मैंने सिद्धपुर की बाट पकड़ी। मार्ग में मुझे थोड़ी दूर पर पास के एक ग्राम का रहने वाला वैरागी मिला जो हमारे कुल से भली-भांति परिचित था। उसको देख कर जैसे कि मेरा हृदय उमड़ कर नेत्र भर आये वैसी ही उसकी दशा देखने में आई। जब उसने मेरा सम्पूर्ण वृत्तान्त पास के धनादि का ठगा जाना और साहेला (सायेला) ग्राम के ब्रह्मचारी के पास मुंडना सुना और गेरुआ कुर्ता देखा तो प्रथम कुछ हंसा, पीछे उसने मुझ को अतीव खेद के साथ घर से निकल आने पर धिक्कारा और पूछा कि क्या घर छोड़ दिया? मैंने उसकी पहली भेंट के कारण स्पष्ट कह दिया कि हां, घर छोड़ दिया और कार्तिक के मेले पर सिद्धपुर (सिद्धपुर स्वयं रेलवे स्टेशन है और वहां सरस्वती नदी के तट पर कार्तिक का मेला होता है और औदीच्य ब्राह्मणों के लड़कों का मुंडन भी वहां होता है) जाऊंगा यह कह कर मैं वहां से चल दिया और सिद्धपुर में आकर नीलकंठ महादेव के स्थान में ठहरा कि जहां पर दण्डी स्वामी और बहुत ब्रह्मचारी पहले से ठहरे थे, उनका सत्संग और जो कोई महात्मा विद्वान् पंडित मेले में मिला उससे मेल-मिलाप किया, वार्ता की और दर्शनों से लाभ उठाया। इस अन्तर में उस पड़ौसी वैरागी ने जो कोटकांगड़े में मुझको मिला था जाकर मेरे पिता के पास एक पत्र भेजा कि तुम्हारा लड़का कषायवस्त्र धारण किये ब्रह्मचारी बना हुआ यहां मुझ को मिलकर कार्तिकी मेले में सिद्धपुर को गया है।

ऐसा सुनकर तत्काल मेरा पिता चार सिपाहियों सहित सिद्धपुर को आया। मेले में मेरा पता लगाना आरम्भ किया। एक दिन उस शिवालय में जहां मैं उतरा था प्रातःकाल एकाएक मेरे बाप और चार सिपाही मेरे सम्मुख आ खड़े हुए। उस समय वह ऐसे क्रोध में भरे हुए थे कि मेरी आंख उनकी ओर नहीं होती थी। जो उनके जी में आया सो कहा और मुझे धिक्कारा कि तूने सदैव को हमारे कुल को दूषित किया और तू हमारे कुल को कलंक लगाने वाला उत्पन्न हुआ।

मेरे मन में आतंक बैठ गया कि कदाचित् मेरी कुछ दुर्दशा करेंगे। इस डर से मैंने उठकर उनके पांव पकड़ लिये। मेरा पिता मुझ पर बहुत क्रुद्ध हुआ।

पिता से डर कर असत्य भाषण, परन्तु ध्यान फिर भी भागने में रहा—मैंने प्रार्थना की कि मैं धूर्त लोगों के बहकावे में आकर इस ओर निकल आया और अत्यन्त दुःख पाया। आप शान्त हों, मेरे अपराधों को क्षमा कीजिये। यहां से मैं घर आने को ही था, अच्छा हुआ कि आप आ गये हैं। आपके साथ ही चलने में प्रसन्न हूं। इस परभी उनका कोपाग्नि शान्त न हुआ और झपट कर मेरे कुर्ते की धज्जियां उड़ा दीं और तूंबा छीन कर बड़े जोर से धरती पर दे मारा और सैकड़ों प्रकार से मुझे दुर्वचन कहे और दूसरे नवीन श्वेत वस्त्र धारण कराकर जहां ठहरे थे वहां मुझ को ले गये और वहां भी बहुत कठिन-कठिन बातें कहकर बोले कि तू अपनी माता की हत्या किया चाहता है। मैंने कहा कि अब मैं चलूंगा तो भी मेरे साथ सिपाही कर दिये और उन्हें कह दिया कि कहीं क्षण भर भी इस निर्मोही को पृथक् मत छोड़ो और इस पर रात्रि को भी पहरा रखो परन्तु मैं भागने का उपाय सोचता था और अपने निश्चय में वैसा ही दृढ़ था जैसे कि वे अपने यत्न में संलग्न थे। मुझ को यही चिन्ता थी और इसी घात में था कि कोई अवसर भागने का हाथ लगे।

भागने का अवसर मिल गया, स्वजनों से अन्तिम भेंट—दैवयोग से तीसरी रात्रि के तीन बजे पीछे पहरे वाला बैठा-बैठा सो गया। मैं उसी समय वहां से लघुशंका के बहाने से भागकर आध कोस पर एक बगीचे के मन्दिर के शिखर में एक वटवृक्ष के सहारे से चढ़कर जल का लोटा साथ लेकर छुपकर बैठ गया और इस प्रतीक्षा में रहा कि देखिये अब दैव क्या-क्या चरित्र दिखाता है और सुनता रहा कि सिपाही लोग जहां-तहां मुझको पूछते फिरते हैं और बड़ी सावधानी से उस मन्दिर के भीतर-बाहर ढूंढ रहे हैं और वहां के मालियों से मुझ को पूछते फिरते हैं और बड़ी सावधानी से उस मन्दिर

के भीतर-बाहर ढूंढ रहे हैं ओर वहां के मालियों से मुझ को पूछा और खोजते-खोजते असफल तथा निराश ही हो गये कि इस ओर की खोज वृथा है, विवश होकर वहां से लौट गये । परन्तु मैं उसी प्रकार अपने श्वास को रोके हुए दिन भर उपवास करता हुआ वहीं बैठा रहा इस विचार से कि किसी नवीन आपत्ति में न फंस जाऊं । जब अन्धकार हुआ तब रात के सात बजे उस मन्दिर से नीचे उतर कर सड़क छोड़ किसी से पूछ वहां से दो कोस एक ग्राम था; वहां जाकर ठहरा और प्रातःकाल वहां से चला । इसी को अपने ग्राम के या घर के मनुष्यों की अन्तिम भेंट कहा जाये तो अनुपयुक्त नहीं होगा । इसके पश्चात् एक बार प्रयाग में मेरे ग्राम के कुछ लोग मुझ को मिले थे परन्तु मैंने पहचान नहीं दी । उसके पश्चात् आज तक किसी से भेंट नहीं हुई ।

(कार्तिक में सिद्धपुर आये और तीन मास कोटकांगड़ा में रहे और एक मास के लगभग वहां लाला भक्त के ग्राम साहिला (सायला) में रहे । पांच-सात दिन का मार्ग है इस हिसाब से विदित होता है कि स्वामी जी जेठ संवत् १९०३ वि० के अन्त में तदनुसार मई, सन् १८४६ में घर से निकले थे ।)

वेदान्ती संन्यासियों की संगति में जीव-ब्रह्म की एकता का निश्चय—अहमदाबाद से होता हुआ बड़ौदा नगर में आकर ठहरा और चेतनमठ में ब्रह्मचारियों और संन्यासियों से वेदान्त विषय पर बहुत बातें कीं । मुझ को ऐसा निश्चय उन ब्रह्मानंद आदिक ब्रह्मचारियों और संन्यासियों ने करा दिया कि ब्रह्म हम से कुछ पृथक नहीं । मैं ब्रह्म हूं अर्थात् जीव और ब्रह्म एक हैं । यद्यपि प्रथम ही वेदान्तशास्त्र के पढ़ते समय मुझ को कुछ इसका विचार हो गया था परन्तु अब तो मैं इसको अच्छी प्रकार समझ गया ।

नर्मदा तट तथा आबू पर्वत पर अनेक सच्चे योगियों से योग की शिक्षा

चाणोद कन्याली में प्रथम बार सच्चे दीक्षित विद्वानों से अध्ययन—बड़ौदा में एक बनारस की रहने वाली बाई से मैंने सुना कि नर्मदा तट पर बड़े-बड़े विद्वानों की एक सभा होने वाली है । यह सुनकर मैं तुरन्त उस स्थान को गया । पहुंचने पर एक सच्चिदानन्द परमहंस से भेंट हुई और उनसे अनेक प्रकार की शास्त्रविषयक बातें हुईं अर्थात् उनसे भिन्न-भिन्न विद्या सम्बन्धी विषयों में बातचीत हुई । फिर उन्हीं से ज्ञात हुआ कि आजकल चाणोद कन्याली (जो नर्मदा नदी के तट पर स्थित है) में बड़े उत्तम विद्वान् ब्रह्मचारियों और संन्यासियों की एक मंडली रहती है । यह सुनकर उस स्थान को गया जहां मेरी मानो प्रथम बार ही सच्चे दीक्षित विद्वानों और चिदाश्रम आदि स्वामी-संन्यासियों और कई एक ब्रह्मचारियों, पंडितों से भेंट हुई और अनेक विषयों पर परस्पर संलाप हुआ । पश्चात् मैं परमानन्द नामक परमहंस के पास पढ़ने लगा अर्थात् उनका शिष्य बन गया और उनके साथ रहकर कछ महीनों में वेदान्तसार, आर्यहरिमीड़ेतोटक, आर्यहरिहरतोटक, वेदान्तपरिभाषा आदि और (दर्शन शास्त्र) फिलासफी की पुस्तकें अच्छी प्रकार पढ़ीं ।

संन्यास लेने का प्रमुख कारण, पूर्णानन्द के शिष्य 'दयानन्द' बने—चूंकि मैं इस समय तक ब्रह्मचारी था इसलिए मुझ को अपना खाना अपने हाथ से पकाना पड़ता था, जिसके कारण मेरे अध्ययन में बड़ी बाधा पड़ती थी । इसी कारण इस बखेड़े से छूटने के लिए मैंने निश्चय किया कि यथाशक्ति प्रयत्न करके संन्यासाश्रम की चतुर्थ श्रेणी में प्रविष्ट हो जाऊं । इसके अतिरिक्त मुझको यह भय भी था कि यदि मैं ब्रह्मचर्याश्रम में बना रहा तो किसी दिन अपने कुल की प्रसिद्धि के कारण घर वालों के हाथ पकड़ा जाऊंगा क्योंकि मेरा अभी तक वही नाम प्रसिद्ध है जो घर में था किन्तु जो संन्यासाश्रम ले लूंगा तो यावत्-अवस्था (जीवन भर के लिए) निश्चिन्त हो जाऊंगा ।

एक दक्षिणी पंडित के द्वारा (जो मेरा बड़ा मित्र था) चिदाश्रम स्वामी से कहलाया कि आप उस ब्रह्मचारी को संन्यास की दीक्षा दे दीजिए, परन्तु उस महाराष्ट्र संन्यासी ने जो परम-दीक्षित थे मुझको संन्यास देने से स्पष्ट इन्कार कर दिया ।

इसलिए कि यह अभी नवयुवक है और कहा कि हम संन्यास नहीं देते, तथापि मेरा उत्साह भंग नहीं हुआ । लगभग डेढ़ मास तक नर्मदा तट पर रहा; इसके अनन्तर मेरी आयु के चौबीसवें वर्ष दो महीने के पीछे दक्षिण से एक दंडी स्वामी और एक ब्रह्मचारी आकर चाणोद ग्राम से कुछ कम कोस अथवा दो मील की दूरी पर जंगल-स्थित एक घर में ठहरे । उनकी प्रशंसा सुन कर परम मित्र पूर्वोक्त दक्षिणी पंडित मेरे साथ गये । वहां उन महात्माओं से ब्रह्मविद्या के कई विषयों में बातचीत हुई तो जान पड़ा कि ये दोनों इस विद्या में अत्यन्त प्रवीण हैं । संन्यासी जी का नाम पूर्णानन्द सरस्वती था । उनसे मैंने इच्छा पूर्ण करने के लिए सिफारिश करने को अपने मित्र की ओर संकेत किया और उन्होंने अच्छी प्रकार कहा कि महाराज ! यह विद्यार्थी सुशील और ब्रह्मविद्या पढ़ने की अत्यन्त कामना रखता है परन्तु रोटी पानी के बखेड़ों के मारे इच्छानुसार विद्योपार्जन नहीं कर सकता, आप कृपा करके इसकी लालसा के अनुसार चौथे प्रकार का संन्यास दे दीजिये । यह सुनकर और मेरी नवयौवनावस्था देखकर उनका भी जी हटा परन्तु जब मेरे मित्र ने बहुत कुछ कहा सुना तब बोले ऐसा ही है तो किसी गुजराती संन्यासी से कहिये क्योंकि हम तो महाराष्ट्री हैं । तब उस मित्र ने कहा कि दक्षिणी स्वामी गौड़ों को भी संन्यास देते हैं जो पंच द्रविड़ों से बाहर हैं । यह ब्रह्मचारी तो गुर्जर अर्थात् गुजराती है जो पंच द्रविड़ों में है । इसमें क्या चिन्ता है । तब उन्होंने मान लिया और अति प्रसन्न हुए और मुझ को तीसरे दिन श्राद्धादि कराकर चौबीस वर्ष की अवस्था में संन्यास दे दण्ड ग्रहण कराया और मेरा नाम दयानन्द सरस्वती रखा । उन की आज्ञा लेकर मैंने दण्डस्थापन कर दिया क्योंकि उसके सम्बन्ध में बहुत कुछ कर्त्तव्य होता था जिससे पढ़ने में असुविधा होती थी । (स्वामी जी उनके पास कुछ दिन ब्रह्मविद्या की पुस्तकें पढ़ते भी रहे । ये महात्मा संन्यासी व ब्रह्मचारी शंकराचार्य के श्रृङ्गी मठ नामक स्थल से, जो दक्षिण में है, चलकर द्वारका को जाने की इच्छा से आये थे) । बस, संन्यास देने के कुछ काल पश्चात् स्वामी जी द्वारका की ओर चले गये और मैं कुछ समय तक चाणोद कन्याली में ठहरा रहा ।

विभिन्न स्थानों पर गुरुओं द्वारा योगसाधन की क्रियात्मक शिक्षा (संवत् १९०६ वि०) जब यह सुना कि व्यासाश्रम में योगानन्द नामक एक स्वामी रहते हैं, वे योगविद्या में अति निपुण हैं तो शीघ्र वहां पहुंचा और उनके पास योगविद्या पढ़ने लगा और उसके आरम्भ के सब ग्रन्थ अच्छी प्रकार पढ़कर और क्रिया सीख कर चित्तौड़[१०] नगर को गया क्योंकि एक कृष्णशास्त्री चितपावन दक्षिणी ब्राह्मण उसके आस-पास में रहते थे । उनके पास जाकर कुछ व्याकरण का अभ्यास करके फिर चाणोद कन्याली में आकर ठहरा और राजगुरु से वेदों को सीखा और वहां कुछ समय तक निवास किया । वहां कुछ दिन पीछे ज्वालानन्द पुरी और शिवानन्द गिरि नामक दो योगियों से भेंट हुई । उनके साथ योग का साधन किया और हम तीनों मिलकर सदैव योगशास्त्र की चर्चा करते रहे । फिर वे दोनों योगी अहमदाबाद को चले गये और मुझ को आज्ञा दे गये कि एक मास के पीछे तुम हमारे पास आना । हम तुमको उस स्थान पर योगसाधन के पूरे-पूरे तत्त्व और उसकी सब विधियां अच्छी प्रकार समझा देंगे । हम वहां नदी के ऊपर दुग्धेश्वर महादेव में ठहरेंगे । फिर एक मास पश्चात् उनकी आज्ञा के अनुसार अहमदाबाद के पास दुग्धेश्वर महादेव के मन्दिर में उनसे जाकर मिला जहां उन्होंने योग विद्या के अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्वों और उसके प्राप्त करने की विधि बताने की प्रतिज्ञा की थी । वहां उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की और अपने वचनानुसार मुझ को निहाल कर दिया अर्थात् उन्हीं महात्मा योगियों के प्रभाव से मुझ को पूर्ण योगविद्या और उसकी साधनक्रिया अच्छी प्रकार विदित हो गई । इसलिए मैं उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूं । वास्तव में उन्होंने यह मुझ पर बड़ा ही उपकार किया जिसके कारण मैं उनका अत्यन्त ही आभारी हूं । इसके पश्चात् मुझ को विदित हुआ और सुना कि राजपूताने में आबू पर्वत की चोटियों पर बड़े-बड़े उत्तम योगिजन निवास करते हैं । इसलिए उनकी प्रशंसा सुन उस ओर चल दिया । वहां जाकर उनकी खोज करता हुआ अर्बुदा भवानी[११] नामक चोटी पर और अन्य स्थानों पर योगिराजों से जा मिला । ये उन महात्माओं से अधिक ज्ञानी तथा विद्वान् थे । उनसे और भी विशेष योगसाधन के सूक्ष्म तत्त्वों को प्राप्त किया ।

अध्याय २

गंगा नदी के तट पर सात वर्ष का जीवन

(फाल्गुन शुदि १, सं० १९२३ से सं० १९३० तदनुसार १२ मार्च, १८६७ से सन् १८७३ ई० तक)[1]

(क) हरिद्वार से रामनगर तक

(फाल्गुन शुदि, १९२३ से आश्विन सं० १९२६ तक)

हरिद्वार, ऋषीकेश, कनखल, लंढौरा, शुक्रताल, मीरापुर, परीक्षितगढ़, गढ मुक्तेश्वर, चाशनी (चासी) , रामघाट, सोरों, बदरिया, पटियाली, कम्पिल, कायमगंज, फर्रूखाबाद, अनूपशहर, ताहिरपुर, कर्णवास, अहार, छलेसर, अतरौली बेलोन, नरोली (नरदौली) , गढिया, अलीगढ़, कासगंज, अम्बागढ़, शाहबाजपुर, ककोड़ा, कायमगंज, श्रृंङ्गीरामपुर, जलालाबाद, कन्नौज, भटटूर (बिठूर) मदारपुर, कानपुर, शिवराजपुर, प्रयाग, रामनगर।

कुम्भ के अवसर पर स्वामी जी : विभिन्न प्रत्यक्षदर्शियों के वक्तव्य

हरिद्वार में पाखण्ड-खण्डन का सूत्रपात—स्वामी जी विद्या मे पूर्ण होकर मतमतान्तरों पर विचार करते हुए कुम्भ की संक्रान्ति से एक मास पूर्व लगभग १२ मार्च, सन् १८६७ को हरिद्वार पधारे । एक विश्वेश्वरानन्द और दूसरे शंकरानन्द स्वामी और ईश्वरीप्रसाद गौड़ ब्राह्मण, दिल्ली निवासी तथा पांच छः अन्य ब्राह्मण साथ थे । सप्तस्रोत पर बाड़ा बांध कर और उसमें आठ-दस छप्पर डलवा कर वहां डेरा किया[१] और वहां एक पताका गाड़ दी नाम 'पाखंड खण्डिनी' रखा ।

हर की पौड़ियों पर स्नान के माहात्म्य का निषेध—पंडित माधवराम गौड़ मूल निवासी जयपुर वर्तमान निवासी फतहगढ़ ने वर्णन किया कि हम रामघाट से चौबीस के कुम्भ पर हरिद्वार को, मेले से एक मास पूर्व गये थे । स्वामी जी उस समय तक वहां पहुंच चुके थे और उपनिषदों की कथा किया करते थे । एक दिन हमने हरिद्वार की पौड़ियों पर जाने का निश्चय किया तो कहने लगे कि मत जाओ, यहीं स्नान करो, वहां जाकर क्या करोगे ? कोई माहात्म्य नहीं है । हरिद्वार में प्रायः विद्वान् लोग उनके पास आते और घड़ी आध घड़ी के संभाषण के पश्चात् चले जाते थे । उस मेले में एक दिन एक ब्रह्मचारी, जो सम्भवतः पंजाब की ओर के थे स्वामी जी से दो घंटे तक संस्कृत में धर्मचर्चा करते रहे । स्वामी जी ने हरिद्वार में भडुवा 'भागवत खंडन' की सहस्रों प्रतियां बांटी थीं और मुझे भी दस बारह बांटने के लिए दी थीं जिनमे से दो मेरे पास विद्यमान हैं और उनमें से एक आपको देता हूं । (देखो परिशिष्ट सं० १) और ऐसा ही सतनामसिंह निर्मले साधु ने वर्णन किया ।

आत्माराम शुक्ल, पुत्र रामसहाय, रिवाड़ी निवासी, ने वर्णन किया कि मुझे भी स्वामी जी ने सैकड़ों पर्चे भागवतखंडन के सारे मेले में बांटने के लिए दिये थे जिनको मैं कई दिन बांटता रहा और २७२ प्रतियां जो बांटने से मेरे पास रह गई थीं वे अब तक विद्यमान हैं ।[2]

---

1. इस अवधि में स्वामी जी निम्नलिखित विविध स्थानों पर धर्मचर्चा, उपदेश, सन्ध्योपासना, शिक्षा, शास्त्रार्थ आदि करते रहे तथा मनुस्मृति भी पढ़ाते रहे । पं० लेखरामजी ने इस अवधि के वृत्तान्त विविध सज्जनों के मुखाग्र से सुनकर उन्हीं की भाषा में अंकित किये हैं । इस समय स्वामी जी कुछ स्थानों पर एक से अधिक बार भी गये थे । —सम्पा०

2. लगभग एक सौ प्रतियां उसने मुझे दीं । —संकलनकर्त्ता

उपहारों का गरीबों में वितरण—पंडित दयाराम सनाढ्य आगरा निवासी ने, जो हरिद्वार में **स्वामी** जी के सत्संग में सम्मिलित होते रहे बताया कि वहां साधारण तथा विशेष विद्वानों से धर्मचर्चा होती रही । जो गृहस्थी लोग स्वामी जी के दर्शनार्थ जाते वे भिन्न-भिन्न वस्तुएं भेंट चढ़ाते थे और सायंकाल तक बहुत कुछ एकत्रित हो जाया करता था । प्रतिदिन सायंकाल को सब एकत्रित पदार्थ स्वामी जी निर्धन लोगों में बांट दिया करते थे, अपने लिए कुछ न रखते थे ।

वर्णव्यवस्था की मिथ्या धारणा का निषेध—पंडित बलदेवप्रसाद शुक्ल, फर्रूखाबाद निवासी, कहते हैं कि जब वह पाखंडखंडिनी झंडी गाड़ कर वेदविरुद्ध मतों का खंडन करने लगे तो उस समय उनके पास बहुत सी पुस्तकें थीं और कई संन्यासी साथ थे । इस कुम्भ पर स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती और समस्त प्रख्यात पंडित तथा साधु आये हुए थे । बड़े-बड़े राजा, महाराजा और विशेष कर जम्मू तथा काश्मीर नरेश महाराजा रणवीरसिंह भी पधारे थे । बनारस के प्रसिद्ध विद्वान् स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती यजुर्वेद के मन्त्र **'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः । ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥' (यजुर्वेद० अ० ३१, मं. ११)** का यह अर्थ करते थे कि ब्राह्मण परमेश्वर के मुख से और क्षत्रिय उसके बाहु से और वैश्य जंघाओं से और शूद्र पांव से उत्पन्न हुए हैं । स्वामी जी ने इस अर्थ का खंडन किया और कहा कि यदि इसका यही अर्थ है तो फिर मुख से खंगार भी तो उत्पन्न होता है । इसलिए मुख से उत्पन्न नहीं, प्रत्युत ब्राह्मण वर्णों में मुख्य हैं और क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र क्रमशः बाहु, जंघा और पांव के सदृश हैं । इस पर लोगों ने कहना आरम्भ किया कि यह नास्तिक है-वेदों का खंडन करता है । स्वामी जी ने भरसक लोगों को समझाने का यत्न किया । जो बुद्धिमान् लोग थे वे तो समझ गये । शेष तो झगड़े को ही अच्छा समझते थे-वे कैसे समझते ! इतने में गुसांइयों और विशुद्धानन्द का परस्पर झगड़ा हो गया । गुसांइयों ने विशुद्धानन्द पर नालिश की और वह स्वामी जी से सहायता के लिये आये । स्वामी जी ने उत्तर दिया कि हम न तुम्हारे और न विशुद्धानन्द के, प्रत्युत सत्य के पक्षपाती हैं । जो वेद में लिखा है उसके अनुयायी हैं । उस समय वहां कैलाशपर्वत भी उपस्थित थे । विशुद्धानन्द ने महाराजा साहब जम्मू व काश्मीर से कहा और महाराजा साहब के प्रयत्न से साहब कलक्टर बहादुर ने वह नालिश खारिज कर दी ।

अवधूत अवस्था में रहते थे—सन्त अमीरसिंह जी निर्मला ने जो संस्कृत के अच्छे पंडित हैं वर्णन किया कि जब हम स्वामी जी से हरिद्वार में मिले उस समय वह नग्न अवधूतावस्था में थे । हमने उनसे 'चित्सुखी' ग्रन्थ की एक पंक्ति अनुमान के विषय में पूछी क्योंकि उसके विषय में हमें सन्देह था । स्वामी जी ने उसका स्पष्ट अर्थ करके कहा कि यह आर्ष ग्रन्थ नहीं है और हम इसको प्रमाण नहीं मानते परन्तु आपकी प्रसन्नता के लिए हम इसका शुद्ध अर्थ करते हैं ।

उन्हें केवल वेद ही मान्य थे—स्वामी महानन्द सरस्वती, जो उस समय दादूपंथ में थे—इस कुम्भ पर स्वामी जी से मिले । उनकी संस्कृत की अच्छी योग्यता है । वह कहते हैं कि स्वामी जी ने उस समय रुद्राक्ष की माला[२], जिसमें एक-एक बिल्लौर या स्फटिक का दाना पड़ा हुआ था, पहनी हुई थी; परन्तु धार्मिक रूप में नहीं । हमने वेदों के दर्शन, वहां स्वामी जी के पास किये; उससे पहले वेद नहीं देखे थे । हम बहुत प्रसन्न हुए कि आप वेद का अर्थ जानते हैं । उस समय स्वामी जी वेदों के अतिरिक्त किसी को (स्वतः प्रमाण) न मानते थे ।

मूर्तिपूजा, तीर्थों व अवतारों आदि का खंडन—स्वामी देवेन्द्र सरस्वती, जो स्वामी शंकरानन्द के शिष्य हैं, वे भी उपस्थित थे । उनका कथन है कि स्वामी जी मूर्तिपूजा, भागवत तथा नवीन सम्प्रदायों का वहां बड़ी प्रबलता से खंडन करते रहे । वेदान्त को कदाचित् मानते थे परन्तु तीर्थों, अवतारों, मूर्तियों और व्रतों का प्रबल युक्तियों से खंडन करते थे ।

पंडित बस्तीराम प्रसिद्ध विद्वान् कनखल पाठशाला, ने कहा कि मैं स्वामी जी से संवत् १९२४ में मिला था । 'व्याकरण' पर बातचीत होती रही । वह पूर्ण विद्वान् थे और वेद तथा शास्त्र का उनको अच्छा ज्ञान था । मूर्तिपूजा के खंडनादि तथा कुछ और बातों में मेरी उनसे सहमति नहीं ।

आर्यजाति के गुरुओं संन्यासी आदि की दुर्दशा देखकर द्रवित हो उठे । दिव्य दृष्टि से देखा— प्रतिमापूजन को ही सारी दुर्गति का आधार पाया—स्वामी रत्नगिरि जी ने स्थान अजमेर में कहा था कि जब स्वामी जी के दर्शन चौबीस के कुम्भ[3] में हरिद्वार पर हुए तो उनके साथ एक अच्छा डेरा था जो अकस्मात् वन में आग लग जाने से जल गया था । उस समय साधु उमीदगिरि जी की मंडली का डेरा भी जल गया था । स्वामी जी का डेरा सप्तस्रोत पर था जो हरिद्वार से तीन कोस पर ऋषिकेश के मार्ग में है । जो लोग हरिद्वार से ऋषिकेश को जाते थे—गृहस्थी, संन्यासी, निर्मले, वैरागी आदि सब, उनके दर्शन को आया करते थे । विशेष-विशेष गद्दीधारी यद्यपि स्वयं नहीं गये परन्तु अपने विद्वान् शिष्यों को भेजकर शंका-समाधान करते रहे । पंडित श्यामसिंह ठाकुरों के डेरे वाले और आत्मस्वरूप अमृतसर वाले और समस्त प्रसिद्ध पंडित चर्चा और वार्तालाप के लिए जाया करते थे ।

साधारणतया मेले में साधुओं की अत्यन्त बुरी अवस्था थी । संन्यासी जिनका काम जगत का सुधार करना था वह गिरि, पुरी, भारती, अरण्य, पर्वत, आश्रम, सरस्वती, सागर, तीर्थ, गुसांई—इन दस[4] भागों में विभक्त होकर परस्पर गृहयुद्ध में फंसे हुए थे । गुसांई विवाह करके भगवे बाने को लाज लगा रहे थे क्योंकि कलियुगी लोकोक्ति के अनुसार भोग और योग को मिला रहे थे । वे नाम के त्यागी थे परन्तु वास्तव में गृहस्थियों के बाबा बन रहे थे । मद्यपान, मांसभक्षण, व्यभिचार जो वाममार्ग, चोलीमार्ग और बीजमार्ग के साधन हैं, उन्हें वे 'अहं ब्रह्मास्मि' की तरंग में माता का दुग्ध समझ रहे थे । सत्य का मार्ग भुलाकर स्वयं ब्रह्म बने हुए थे । निर्मले नाम ही के निर्मले थे अन्यथा सत्यधर्म की निर्मलता और उज्ज्वलता से कोसों दूर थे और दूर क्यों न होते, क्या कहीं स्वार्थ में भी पवित्रता हो सकती है ? उदासी—उदास तो नहीं प्रत्युत साक्षात् आशा की मूर्ति थे । हाथी, घोड़े, रुपहली और स्वर्णमयी झूलें, मखमली तकिये और जरबफ्त (एक प्रकार का बहुमूल्य कपड़ा) के गदेले, सोने के कंगन और चांदी के उगालदान—सारांश यह कि सब कुछ पास था । उन्हें देख कर कौन है जो उन्हें उदासी कहे और अपनी मूढ़ता को स्वीकार न करे ।

वैरागी—यूं मुंह से कहने को सब वैराग्य विद्यमान, त्याग विद्यमान, लोगों का धन फूंकने को आग की अंगीठी भी पास में, परन्तु काला अक्षर भैंस बराबर । खाने और पड़े रहने या वैरागिनों में जीवन व्यतीत करने के अतिरिक्त सार्थक वैराग्य का वहां पता नहीं था । गीता का (मूल) पाठमात्र भी हजारों में से एक को ही याद होगा और अर्थ करोड़ों में से दस बारह जानते होंगे और इस पर भी यह दशा कि ऐसा व्यक्ति ढूंढे से भी अप्राप्य जो तम्बाकू, चरस, भंग अथवा गांजे का सेवन न करता हो । योगी गोरखनाथ के नाम को दूषित करने वाले, कानों में सुनहरी कुंडल डाले कोई किसी गद्दी का महन्त और कोई किसी का । धर्म-कर्म से अपरिचित, योग के पूरे शत्रु, मद्य मांस के सेवन में चतुर, लोगों के सरल प्रकृति बच्चों के कान फाड़ने में सजग । राजा महाराजा आंख के अंधे, गांठ के पूरे, इसी प्रकार के संड-मुसंडों के चेले और अनुयायी, तन, मन, धन, गुसांई और गुरु जी के अर्पण करने वाले, चाटुकार और भीरु दरबारियों के संसर्ग में दिन रात रहकर धर्म और संसार से बेसुध, अफीम के गोले चढ़ाने में निपुण साधुओं का अविद्यान्धकार में फंसना और गृहस्थियों का विनाश, राजाओं की मूर्खों से संगति और विद्वानों के प्रति उपेक्षा; विद्वानो का मौनधारण और सत्य का प्रकाश न करना और इस पर एक सत्यप्रिय तथा सत्यवादी की निन्दा, यह सब देखकर स्वामी जी का चित्त अत्यन्त उत्तेजित हुआ, हृदय भर आया । समस्त भारत निवासियों के प्रतिनिधियों के रूप में जो प्रत्येक प्रकार के मनुष्य वहां उपस्थित थे उनको और समस्त मेले को उनके मर्मज्ञ स्वभाव और मनुष्य को पहचानने वाली आंखों ने दिव्य और सूक्ष्म दृष्टि से देखा और प्रत्येक को मूर्तिपूजा तथा सृष्टिपूजा से डूबा हुआ देखकर अत्यन्त दुःखित हुए । ऋषि-मुनियों की संतान, व्यास और कपिल के वंशजों को प्रतिमा पूजन करते देखकर उनके मन में तीव्र वैराग्य उत्पन्न हुआ ।

परोपकार के लिए पूर्णाहुति

देश का सुधार ही एकमात्र लक्ष्य—पंडितों का वैदिकधर्म की ओर से प्रमाद और उपेक्षा, ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों को ईसाई और मुसलमान होते देखकर और सुनकर उनका दयालु हृदय स्थिर न रह सका और उन्होंने यह न चाहा कि मैं भी इन सब के साथ मिलकर इन्हीं का अनुकरण करता चला जाऊं। बार-बार देखा और कई बार देखा, विचार किया और सोचा, एक दिन नहीं, प्रत्युत कई दिन। पर्वी के दस बारह दिन पश्चात् तक सोचते रहे। अन्त को उनके सत्यप्रिय स्वभाव ने अत्यन्त दु:खभरे शब्दों में यह सम्मति दी कि तू औरों की भांति प्रमाद मत कर। रोग को जानकर उसकी चिकित्सा में प्रमाद करना भयानक पाप है। तुझे परमेश्वर ने आंखें दी हैं, तू सत्यधर्म के महत्त्व को जान चुका है, उठ ! खड़ा हो और सोते हुओं को जगा, साहस से काम ले क्योंकि जो औरों की सहायता करता है ईश्वर उसके सहायक होते हैं। 'परोपकाराय सतां विभूतय:।' यह विचार दृढ़ होते ही व्याख्यान देते-देते एकाएक दिल भर आया। व्याख्यान की समाप्ति पर 'सर्वं वै पूर्णं स्वाहा' कहके अपना सब कुछ त्याग दिया। पुस्तक, बर्तन, पीताम्बरी धोतियां, रेशमी वस्त्र, दुशाले और ऊनी कपड़े, रुपया पैसा आदि जो कुछ था-वह सब, जो जिसके योग्य देखा उसे बांट दिया।

उस समय स्वामी कैलाशपर्वत ने उनसे कहा कि तुम ऐसा क्यों करते हो ? उत्तर दिया कि हम स्पष्ट कहना चाहते हैं और निर्भय हुए बिना स्पष्ट कहना सम्भव नहीं है। जब तक हम अपनी आवश्यकताओं को कम न करेंगे अपनी अभिलाषा को पूरा नहीं कर सकेंगे।

पण्डित दयाराम ने कहा कि जब मेला हो गया तो मेले के दस-ग्यारह दिन पश्चात् सब प्रकार के सांसारिक झंझटों को त्याग कर, पूर्ण वैराग्यवान् हो, नग्न, एक लंगोट रखकर, एक पुस्तक महाभाष्य, ३५ रुपये रोकड़ा और एक थान मलमल, हमको देकर कहा कि स्वामी विरजानन्द जी के पास मथुरा में पहुंचा दो और स्वयं यह प्रण करके कि जब तक हमारी अभिलाषा पूर्ण न हो, संस्कृतभाषण करते रहेंगे और गंगातट पर विचरेंगे-शेष सब कुछ बांटकर गंगातट पर चल पड़े। हमने ये वस्तुएं मथुरा में दंडी जी महाराज को पहुंचा दीं और हरिद्वार का सारा वृत्तांत उनको सुनाया। वह सुनकर मौन हो गये।

जोशी रूपराम कहते हैं कि स्वामी जी ने हरिद्वार पहुंच कर एक चिट्ठी ठाकुर रणजीतसिंह, रईस अचरौल के नाम भेजी; जिस पर सरदार ने मुझे आज्ञा दी कि तुम वहां जाओ और दो अशर्फी भेंट के लिए दी। परन्तु जब मैं पहुंचा तो उससे पहले ही स्वामी जी सब वस्तुएं लोगों में बांट चुके थे। केवल एक माला और दुर्गा[५] की पुस्तक शेष थी। मुझे दस रुपये देने लगे, मैंने रुपये तो नहीं लिए परन्तु माला और पुस्तक ले ली।

स्वामी रत्नगिरि कहते हैं कि जब स्वामी जी ने सब कुछ त्याग कर गंगा के तट पर विचरने का प्रण किया तो उस समय सब महात्मा साधु लोग यही कहते थे कि जो बात दयानन्द कहते हैं अर्थात् मूर्तिपूजा और पुराणों का झूठा होना और सम्प्रदायों का मिथ्यापन—यह है तो सत्य परन्तु खुल खेलना अर्थात् संसार की रीति के विरुद्ध चलना अच्छा नहीं।

ऋषिकेश से गढ़मुक्तेश्वर तक—प्रथम ऋषिकेश की ओर गये और पांच-छ: दिन में लौटकर दक्षिण की ओर चल पड़े। हरिद्वार से चल कर **कनखल** होते हुए गंगा तीर पर स्थित 'लंढौरा' पहुंचे। तीन दिन से कुछ न खाया था, अब जब बहुत भूख लगी तो एक खेत वाले से कहा उसने तीन बैंगन दिये-वही खाकर मन को तृप्त किया।

वहां से **'शुक्रताल'** गये जहां लोग कहते हैं कि शुकदेव ने कथा सुनाई थी। फिर परीक्षितगढ़ और फिर **गढ़मुक्तेश्वर** आये। वहां पन्द्रह दिन रहे, बालू में दिन रात पड़े रहते थे। वहां के पंडितों से शास्त्रार्थ हुआ। रुड़की से बीस कोस इधर मीरांपुर में भी किसी से दो दिन शास्त्रार्थ हुआ था।

कर्णवास में आगमन : सभाजयी की धूम मच गई

फिर सीधे गंगा के किनारे चलते-चलते वैशाख शुक्ला, संवत् १९२४ तदनुसार मई मास, सन् १८६७ में कर्णवास पहुंचे । **ठाकुर शेरसिंह जी कर्णवास**[६] निवासी लिखते हैं कि इस बार केवल एक दिन ठहर कर चले गये और उसी संवत् के आषाढ़ शुदि ५ (६ जौलाई) को **पंडित टीकाराम शास्त्री** ने रामघाट में दर्शन किया और वार्तालाप हुआ । उन्होंने वहां से आकर ठाकुर गोपालसिंह जी से कहा कि एक दिगंबर संन्यासी गंगा किनारे बनखंडी[७] पर मिले और हरिद्वार के कुम्भ में सभा जीत कर आये हैं, संस्कृत वाणी बोलते और बड़े विद्वान् हैं । मूर्तिपूजा, अवतार, कंठी, माला, तिलक, भागवत, सम्प्रदाय आदि को मिथ्या और पाखण्ड बतलाते हैं । ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य की एक ही गायत्री कहते हैं—हम उनको यहां बुला लाये हैं । यह सुनकर ठाकुर धर्मसिंह (जो पंडित टीकाराम जी से व्याकरण पढे थे और अच्छे व्याकरणी थे) और ठाकुर गोपालसिंह की परस्पर सम्मति से पंडित टीकाराम जी को बुलाने भेजा गया परन्तु श्री स्वामी जी महाराज उसी दिन कर्णवास पक्के घाट पर गंगा किनारे आ गये और पंडित भगवानदास, भागवती-पण्डित ने भोजनादि से सेवा सत्कार किया । हम लोगों को पंडित टीकाराम जी ने दूसरे दिन रामघाट से लौट कर स्वामी जी के यहां पधारने की सूचना दी । हम लोग पक्के घाट पर स्वामी जी के पास पहुंचे—देखा कि नागा बाबा की मढ़ी, जो खाली पड़ी थी, उसके आगे बसेन्दू वृक्ष की छाया में गंगा-रज लगाये अकेले लंगोटी बांधे महाराज विराजमान हैं । पंडित टीकाराम जी को हमारे साथ देख कर स्वामी जी प्रसन्न हुए और व्याकरण को जानने वाले ठाकुर धर्मसिंह ने संस्कृत में स्वामी जी महाराज को अपना नाम और जाति कहकर अभिवादन किया । स्वामी जी ने प्रत्युत्तर दिया और अति प्रसन्न होकर हम लोगों से प्रेमपूर्वक वार्तालाप किया । उस दिन दर्शन करके कुछ समय पीछे हम लोग चले आये । अब गांव में चर्चा फैली कि बड़े भारी महात्मा और संस्कृत के पंडित आये हैं । पहले कभी न देखे गये न सुने गये । इसी आन्दोलन में स्वामी जी महाराज को श्रावण मास बीतकर आधा भादों आ गया और पंडित टीकाराम स्वामी जी से मनुस्मृति और उपनिषदादि पढ़ते और विचारते रहे । इसी अन्तर में पंडित भगवानदास भागवती से एक दिन स्वामी जी महाराज ने कंठी-तिलक धारण करने का साधारण प्रकार से निषेध किया । वह सुनकर चुपके ही चले आये और ग्राम में आकर स्वामी जी के विरुद्ध उद्योग करना चाहा । आश्विन के महीने में बाहर के आये हुए पंडितों से भगवानदास ने स्वामी जी के निषेध का सम्पूर्ण वृत्तान्त विरोधी बनाकर कह सुनाया । तब तो ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में स्वामी जी की बड़े आश्चर्य के साथ चर्चा फैली और दानपुर के पंडित निद्धालाल जी तथा अहमदगढ़ के पंडित कमलनयन जी शरत् पूर्णिमा को स्नान करने आये, स्वामी जी के दर्शन किये और कुछ शास्त्रविचार भी हुआ ।

विजय का सूत्रपात

अम्बादत्त वैद्य से शास्त्रार्थ, प्रायश्चित तथा ब्राह्मणों और क्षत्रियों का सामूहिक यज्ञोपवीत संस्कार—उन दोनों पंडितों ने नन्दकिशोर उपाध्याय कर्णवास वाले से कहा कि पंडित अम्बादत्त वैद्य अनूपशहर निवासी को बुलाकर उनसे शास्त्रार्थ कराया जाये, तब तो भले ही अर्थ सिद्ध हो, नहीं तो किसी अन्य (दूसरे व्यक्ति) से कुछ नहीं होगा । यह सुनकर उन्होंने पंडित अम्बादत्त जी को बुलाया और स्वामी जी से संस्कृत में शास्त्रार्थ हुआ । पंडित अम्बादत्त जी ने स्वामी जी महाराज के कथन को स्वीकार कर कहा कि श्री पंडित हीरावल्लभ जी पर्वती जो ऋग्वेदपाठी और व्याकरणी हैं, वे इन बातों को मान लें तो निश्चय हो जाये परन्तु पंडित अम्बादत्त जी की व्यवस्था देते ही और ढंग हो गया । हम ठाकुर लोग स्वामी जी से प्रार्थी हुए कि जो कर्म बतलाया जाये उसे करने को (हम) उद्यत हैं । स्वामी जी महाराज ने हम लोगों में जिनकी आयु अधिक थी, उनको प्रायश्चित करने को कहा और सब का यज्ञोपवीत संस्कार कराने की आज्ञा दी । स्वामी जी की आज्ञानुसार अनूपशहर, दानपुर, कर्णवास, अहमदगढ़, रामघाट, जहांगीराबाद से अनुमानतः चालीस के लगभग विद्वान् ब्राह्मण गायत्री का जाप करने के लिए बुलाये गये और जप आधे शुक्लपक्ष तक पूरा हुआ । तदुपरान्त वहीं स्वामी जी की कुटिया पर कुंड

बनाया गया और अनूपशहर के दर्शनी [दर्शनों के विद्वान् ?] व पर्वती[८] कर्मकांडी वेदपाठी ब्राह्मणों को ब्रह्मा, होता, ऋत्विक आदि बनाकर यज्ञ प्रारम्भ हुआ और सबको उसी यज्ञ में यज्ञोपवीत संस्कार के पश्चात् गायत्री मंत्र का उपदेश दिया गया। उस यज्ञ में [यज्ञोपवीत लेने वाले] केवल मिट्ठनलाल विद्यार्थी, पंडित टीकाराम शास्त्री जी का भाई, ब्राह्मण थे; शेष सब लोग क्षत्रिय थे, अर्थात् श्रीमान् ठाकुर गोपालसिंह व उनके भाई कृष्णसिंह जी व रघुनन्दनसिंह जी और उनके पुत्र खूबसिंह जी व भूमसिंह[९] जी और ठाकुर खोडरसिंह जी, ठाकुर दीवान जी, तोताराम व इन्द्रसिंह, कैथलसिंह जी, हरिमाया, मुन्शी गोपालसिंहजी शानी और मैं अर्थात् ठाकुर शेरसिंह, संस्कृत हुए (हमारा संस्कार हुआ)। यज्ञ की समाप्ति पर यज्ञशेष बांटा गया और हम सबने अपनी सामर्थ्यानुसार जपकर्ता तथा यज्ञकर्ता को दक्षिणा अर्पण की। उसी यज्ञ में हमारे कुलगुरु कुमर जी नामक पंडित और उनके छोटे भाई पंडित हीरालाल जी (तिलक कंठी तोड़) पहुंचकर हमारे साथ दीक्षित हुए थे और इस यज्ञ को, उस समय, क्षत्रियों को बहुत दिनों से छूटे हुए संस्कार को फिर से कराने वाला तथा श्री स्वामी जी महाराज की विजय को सूर्योदय की भांति प्रकाशित करने वाला, कहना उचित है। उस समय के आनन्द और आह्लाद का वर्णन नहीं किया जा सकता। इस कर्म से एक अपूर्व अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी अर्थात् यज्ञ से धर्मात्माओं के मृत हृदयों में धर्म की अभिनव अग्नि जल उठी और क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य चारों ओर से आ-आकर संस्कार कराने लगे और स्वामी जी महाराज भी निर्भय और निःशंक होकर आठों गप्पों[1] का खंडन करने लगे।

हीरावल्लभ शास्त्री से छः दिन धर्म-चर्चा, शास्त्री जी द्वारा सत्यग्रहण, मूर्तित्याग और वेदप्रतिष्ठा—पौष के महीने में पंडित हीरावल्लभ पर्वती शास्त्री, स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने अनूपशहर से आये। उस दिन लगभग दो हजार मनुष्यों की भीड़ थी। पंडित हीरावल्लभ जी सभा के मध्य में एक छोटे से सुन्दर सिंहासन पर बालमुकुन्द, गोमतीचक्र, शालिग्राम आदि की मूर्तियां रखकर यह प्रतिज्ञा करके बैठे कि स्वामी जी महाराज के हाथ से (भोग लगवा कर) उठूंगा परन्तु वह दिन दोनों के धारा-प्रवाह संस्कृत बोलने में समाप्त हुआ और इसी प्रकार छः दिन पर्यन्त धर्मचर्चा होती रही। कई-कई श्रोता प्रतिदिन नये-नये आते जाते रहे। अन्त में हम सब सभास्थ लोगों के सामने श्रीमत् पण्डित द्रव्योपस्थापक (मूर्तिपूजक) शास्त्री हीरावल्लभ पर्वती ने खड़े होकर श्रीमान् विद्वान् योगिराज श्री १०८ स्वामी दयानन्द जी महाराज की संस्कृत में स्तुति कर प्रणाम किया और बड़े उच्च स्वर से हम सब सभास्थों को सुनाकर कहा कि स्वामी जी महाराज जो कुछ कहते हैं वह सब सत्य और प्रामाणिक है। इसके पश्चात् वह सिंहासन, जिस पर अटरा-बटरा आदि रखी थीं-उठाकर सब मूर्तियां गंगा में डाल दीं और फिर उसी सिंहासन पर वेद भगवान् को प्रतिष्ठित किया। यह देख स्वामी जी महाराज ने शास्त्री जी के सत्य ग्रहण करने और मिथ्या के त्यागने की बड़ी प्रशंसा की। फिर क्या था पोल खुल गई, चोरी पकड़ी गई, मिथ्याग्रही निराश और हतोत्साह होकर अपने-अपने घरों को चले गये।

माघ मास के अन्त में प्रस्थान, कानपुर चले गये—और स्वामी जी महाराज भी माघमास के अन्त में अर्थात् सन् १८६८ को वहां से चलकर भ्रमण करते हुए **रामघाट, सोरों, पटियाली, कंपिल, फर्रूखाबाद, कानपुर** तक चले गये।

२० मई सन् १८६८ में फिर कर्णवास में—ज्येष्ठ बदि १३ संवत् १९२५ तदनुसार २० मई, सन् १८६८ को कर्णवास में उसी कुटिया पर फिर आ विराजमान हुए। और ज्येष्ठ शुदि १० तदनुसार ३१ मई, सन् १८६८ को यहां गंगास्नान का मेला था।

---

1. इन आठ गप्पों का स्वामी जी खंडन करते रहे अर्थात् इन आठ बुराइयों का नाम उन्होंने आठ गप्पें रक्खा था। प्रथम यह कि अठारह पुराण जो व्यासजी के नाम से जाली बनाये हुए हैं वे अशुद्ध और अप्रमाण हैं। दूसरी मूर्ति-पूजा; तीसरी (बुराई) सम्प्रदाय; (अर्थात्) शैव, गणपति, रामानुज आदि सब अनुचित और कृत्रिम हैं। चौथी बुराई तन्त्रग्रन्थ; वाममार्ग आदि। पांचवीं मादक द्रव्यों का सेवन। छठी बुराई व्यभिचार। सातवीं बुराई चोरी। आठवीं असत्य-भाषण; धोखा देना, कृतघ्नता-ये आठ गप्प अर्थात् बुराइयां हैं; इन्हें छोडना चाहिए।

कर्णवास में राव कर्णसिंह की उद्दंडता

पहली भेंट में राव कर्णसिंह की धमकी, कई लोगों द्वारा वर्णन : तिलक, गंगापूजन, मूर्तिपूजा का खण्डन करते थे; रंगाचार्य से शास्त्रार्थ का आह्वान—उस मेले पर इस ओर के किसान लोग बहुत इकट्ठे होते हैं और बरौली के रईस राव कर्णसिंह बड़गूजर (ठाकुर) क्षत्रिय सदा गंगास्नान को आते थे। उस वर्ष भी आये और स्वामी जी से मिले। यह क्षत्रिय थोड़े ही दिन पहले लालच के वश में रंगाचार्य के शिष्य होकर दग्ध (चक्रांकित) हो चुके थे और गंगा की बड़ी भक्ति से आराधना करते थे। उनके और उनके साथियों के खड़े तिलक और रामपटा का चक्रांकित तिलक देखकर स्वामी जी महाराज हंसे और बड़े आदर-सत्कार से बैठने को कहा परन्तु रईस साहब स्वामी जी के उद्देश्य को पहले ही से सुन चुके थे (क्योंकि वह इसी कस्बे कर्णवास में ब्याहे हुए हैं)। मुख को कुछ थोड़ा सा बिगाड़ कर बोले कि कहां बैठें ? स्वामी जी ने आज्ञा दी कि जहां इच्छा हो। इस पर रईस ने कहा कि जहां तुम बैठे हो उस स्थान पर बैठेंगे। स्वामी जी महाराज शीतलपाटी के एक सिरे की ओर हट कर कहने लगे-कि आइये बैठिये। बैठते ही रईस ने क्रोध-भरे वाक्यों में कहा कि 'बाबा जी ! तुम्हारा यह गंगा आदि को न मानना अच्छा नहीं। यदि हमारे सामने कुछ खंडन-मंडन की बातें कीं तो बुरा परिणाम होगा।' स्वामी जी महाराज ने उनके कटु वाक्यों को सहन कर और किंचित् भी चिन्ता न करते हुए, सिंहवत् श्रृगाल से कुछ भी भयभीत न होकर, बड़ी गम्भीरता, शान्ति और मधुर वाक्यों से धर्म का उपदेश करते हुए चक्रांकित मत का भी भली प्रकार खंडन किया और कहा कि तुम अपने रंगाचार्य को शास्त्रार्थ के निमित्त उद्यत करो। हम उनके सम्प्रदाय का खंडन करने को तैयार हैं। यह सुन रईस ने कुपित हो, मूर्खता में आ कुछ दो-एक कटु वाक्य कहे। इन पर ठाकुर किशनसिंह जी ने बड़ी शूरता से उसी समय रईस से कहा कि "बस ! अब आगे कुछ बका तो ये आपकी जिह्वा भारी मारपीट करा देगी। भले मनुष्यों को सभा में योग्य बोलना चाहिये। आप धर्मोपदेश कर रहे महात्मा को कटु वाक्य न कहिये। यदि सुनना नहीं चाहते तो चले जाइये।" यह तीव्र वचन सुनकर रईस बरौली चुपके से अपने डेरे को चले गये और सभास्थ लोगों ने रईस की बड़ी निन्दा की परन्तु स्वामी जी महाराज ने इतना कह कर बस किया—

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः। तस्माद् धर्मो न हातव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्॥[10] और फिर वैसा उपदेश करने लगे।

(इसी वृत्तान्त को) —पंडित भूमित्र जी कहते हैं कि जब राव कर्णसिंह रईस बरौली यहां गंगास्नान के अवसर पर स्वामी जी के दर्शन को आये तो स्वामी जी ने देखकर संस्कृत में कहा कि तुम ने क्षत्रिय होकर यह चंडाल की सी आकृति क्यों कर ली ? उसने न समझा और कहा कि मैं समझा नहीं हूं। स्वामी जी ने गुरु टीकाराम को कहा कि तुम समझा दो। वह डरने लगे क्योंकि उसके साथ दस बारह शस्त्रधारी मनुष्य थे। स्वामी जी ने झिड़क कर कहा कि तुम भय मत करो, जैसे मैंने कहा है वैसा ही समझा दो। इसलिए टीकाराम ने उसको भाषा में समझा दिया कि स्वामी जी महाराज यह कहते हैं कि आपने क्षत्रियों का धर्म छोड़कर यह भिखारियों का चिह्न मस्तक पर क्यों धारण किया हुआ है ? परन्तु वह समझ गया और एकाएक लाल पीला होकर स्वामी जी को गाली देने लगा। स्वामी जी उसकी गाली को सुनकर हंसकर कहने लगे कि यदि तुम शस्त्रार्थ करना चाहते हो तो जयपुर, धौलपुर के राजाओं के साथ जा लड़ो और यदि शास्त्रार्थ करना चाहते हो तो अपने गुरु रंगाचार्य को वृन्दावन से बुला लो और शास्त्रार्थ कराओ और ताम्रपत्र पर अपने गुरु की और मेरी यह प्रतिज्ञा लिखवाओ कि यदि तुम्हारा वह मत झूठा है तो रंगाचार्य सात जन्म नरक में रहे और यदि मेरा वेदोक्त मत झूठा हो तो मैं सात जन्म तक नरक निवास करूं। अन्यथा यह तुम्हारी मूर्खता है कि जो तुम बे-समझे-बूझे बालकों के समान व्यवहार करते हो। इस पर वह और भी अधिक मारपीट को उद्यत हुआ और (उसने) तलवार की मूठ पर हाथ रखा। उसके साथ बलदेव प्रसाद पहलवान था उसने कहा कि नहीं, मैं इसको ठीक करता हूं। वह आगे बढ़ा और स्वामी जी पर हाथ डालना चाहा परन्तु

स्वामी जी ने ज्यों ही उसके हाथ को पकड़कर धक्का (झटका) दिया, वह पीछे जा पड़ा । उस समय स्वामी जी ने कहा कि 'रे धूर्त !' इस पर ठाकुर किशनसिंह जी लट्ठ लेकर खड़े हो गये और कहा कि यदि तुम महात्मा को तनिक भी छेड़ोगे तो मारे लट्ठों के तुम्हारा अभिमान चूर्ण कर देंगे । इसलिए वे दुम दबाकर वहां से चल दिये । उस समय स्वामी जी के पास पचास के लगभग मनुष्य बैठे हुए थे ।

पंडित कृष्णवल्लभ, पुजारी मन्दिर कर्णवास ने इस वृत्तान्त का इस प्रकार वर्णन किया—'राव साहब स्वामी जी के पास गये । बातचीत के बीच में कहा कि 'तुम महाराज रंगाचार्य के सामने कीड़े के तुल्य हो और फिर कहा कि तुझसे उसके आगे जूतियां उठाते हैं' स्वामी जी ने कहा कि 'रंगाचार्यस्य का गणना मम समीपे एक आगत: सहस्त्रो आगता लक्षा आगता:, शास्त्रार्थं कुरु ।' उसने फिर उसकी अनुचित प्रशंसा की और स्वामी जी को कटुवाक्य ही नहीं कहे प्रत्युत बुरी गालियां दीं । उस समय वीरासन पर बैठे हुए थे: एक हाथ तलवार की मूठ पर था और दूसरा हाथ कभी मूठ पर और कभी उनकी ओर संकेत करता था । एक पांव पर अपना भार रखे बैठा हुआ गाली देता था और क्रोध से लाल हो रहा था परन्तु स्वामी जी पद्मासन पर बैठे हुए हंसते जाते थे और यही कहते जाते थे 'रंडाचार्यस्य' इत्यादि ।

मास्टर गोपाल सिंह वर्मा क्षत्रिय, कर्णवास निवासी, ने इस प्रकार वर्णन किया 'कि जब राव साहब स्वामी जी के दर्शनों को गये तो स्वामी जी ने पूछा कि तुमने शरीर क्यों दग्ध कराया हुआ है और क्यों चक्रांकित हुए ? तुम क्षत्रिय हो तुमको ऐसा करना उचित नहीं है ।' इतनी बात स्वामी जी से सुनकर वह बिगड़ा और कहा कि 'यह हमारा परम मत है, इसको तुम किस प्रकार बुरा कहते हो और हम अभी रंगाचार्य स्वामी को वृन्दावन में पत्र भेजते हैं; शास्त्रार्थ से जो ठीक हो वही मत सच्चा है । तुमने हमारे मत को बुरा कहा हम तुमको इसका मजा चखायेंगे ।' स्वामी जी ने इसके उत्तर में कहा कि 'यदि तू हमसे लड़ना चाहता है तो अपने सिपाहियों में से एक-एक को खड़ा कर दे और जो शास्त्रार्थ करना चाहे तो रंगाचार्य को यहां पर बुलाले और एक पत्र इस प्रतिज्ञा का लिखकर (तू जो गंगा जी को मानता है) तू गंगा जी में दे कि जो हारे वह अपने धर्म को छोड़े । तलवार पर भी उसने हाथ रखा था, मैं उस समय उपस्थित न था-यह सब सुना है ।'

ठाकुर गोपालसिंह रईस कर्णवास, मखीना व **हकीम रामप्रसाद** जो राभे जी के नाम से प्रसिद्ध था, बरौली निवासी ने इस घटना का इस प्रकार वर्णन किया—दशहरे के बीस दिन पहले राव कर्णसिंह यहां कर्णवास में आये और आकर जब स्वामी जी की ख्याति सुनी तो निश्चय मिलने का किया । लोगों ने यह कहा कि यहां एक संन्यासी आया है जो गंगा को नहीं मानता, तीर्थों को नहीं मानता, तिलक का निषेध करता है (प्रसिद्ध हुआ कि एक तिलकचाटा स्वामी आये हैं) । उसने कहा कि हम जायेंगे और वह बीस पच्चीस सेवकों सहित सशस्त्र होकर स्वामी जी के पास गया । जाकर दण्डवत् करके बैठा; वार्तालाप हुआ । उसने कहा कि आप गंगा जी को नहीं मानते । स्वामी जी ने कहा कि जितनी गंगा जी है उतना मानते हैं । उसने कहा कि कितनी है ? स्वामी जी के कहा कि हम लोगों (संन्यासियों) को तो गंगाजी कमण्डल ही है क्योंकि इसके अतिरिक्त हमारे पास कोई पात्र नहीं है । इस पर उसने कुछ श्लोक गंगा जी की स्तुति के पढ़े । स्वामी जी ने कहा कि यह बात तुम्हारी गप्प है, यहां केवल पीने का पानी है—इससे मोक्ष नहीं हो सकता; मोक्ष तो कर्मों से होता है; ऐसा तुमको पोपों ने बहका लिया है । चूंकि उसने लम्बे-लम्बे तिलक लगाये हुए थे, इसलिए स्वामी जी ने पूछा तुम क्षत्रिय हो, यह वैरागियों के से लम्बे-लम्बे तिलक क्यों लगाते हो ? उसने कहा कि हमारे स्वामी जी के सामने आपसे बात भी न होगी, उनसे शास्त्रार्थ करो । स्वामी जी ने कहा कि उनको शास्त्रार्थ के लिए बुलाओ और यदि उनमें आने की सामर्थ्य न हो तो उनको लिखो हम वहां चलें । इस पर वह बहुत क्रुद्ध हुआ और गाली गलौच भी की । इससे पहले उसने यह भी कहा था कि हमारे यहां रामलीला होती है, तुम हमारे यहां चलो । स्वामी जी ने कहा कि तुम कैसे क्षत्रिय हो जब कि तुम्हारे सामने वे तुम्हारे पुरुषाओं को नचाते हैं । यदि तुम्हारी बहन-बेटी को कोई नचाये तो कैसा बुरा मानो ! इस पर झगड़ा हो गया और बलदेवदास वैरागी

तलवार लेकर उठ खड़ा हुआ। फिर वे चले गये और वहां बरौली में जाकर लीला की परन्तु वर्षा और ओलों के कारण वहां भी इस बार लीला न कर सके।

आततायी का शारीरिक बल से मुकाबला

रास के खंडन से चिढ़कर स्वामी जी का सिर काटने को तैयार हो गया-पंडित गोपालचन्द्र पिचोड़ी[११], सनाढ्य ब्राह्मण, सैकण्ड क्लर्क सुपरिण्टैण्डैण्ट इंजीनियर आफिस मेरठ, ने इस घटना का इस प्रकार वर्णन किया कि 'जिन दिनों स्वामी जी केवल एक कौपीन पहनते और बिल्कुल नग्न रहते और गंगा तट पर फिरते रहते थे, उन्हीं दिनो मैंने स्थान कर्णवास में दूसरी बार स्वामी जी को देखा। उस समय वह संस्कृत बोलते थे परन्तु मैं संस्कृत न जानता था। वहां हमने यह तमाशा देखा कि रात को राव कर्णसिंह रईस बरौली ने रास कराया, वह चक्रांकित थे। पंडित रात को स्वामी जी के पास (यह कहने) गये कि रास में चलिये। स्वामी जी ने उसका खंडन किया और उसको निन्दनीय कर्म बतलाया और न पधारे। दूसरे दिन सायंकाल के पश्चात् राव साहब अपने सेवकों और पंडितों सहित उनसे इस विषय में शास्त्रार्थ करने को आये। स्वामी जी ने युक्ति और शास्त्रार्थ से उसका खंडन किया और मनु का एक वाक्य बोला कि 'पुरुष के वेश में स्त्री को और स्त्री के वेश में पुरुष को देखने का इतना दोष है कि यदि देखे तो चान्द्रायण व्रत करे और इसके अतिरिक्त और युक्ति भी दी कि जब तुम उसको ईश्वर मानते हो तो फिर कैसे उसका लौंडों का स्वांग भर कर गाने बजाने से अपना चित्त प्रसन्न करते हो। जब तुम उसका स्वांग करते हो तो यदि कोई तुम्हारे मां-बाप का भी स्वांग भर कर ऐसा करे तो निश्चित है कि तत्काल (तुम्हें) क्रोध आ जाये।' यह कहते ही सभा में उपस्थित सब लोग हंस पड़े और राव साहब इस बात पर बहुत लज्जित हुए और कहने लगे कि तुम हमारे इष्टदेव की निन्दा करते हो और उसको बुरा कहते हो। यह कह कर तलवार निकाल स्वामी जी का सिर काटने पर उद्यत हो, उठ खड़े हुए। उस समय स्वामी जी ने कहा कि यदि सत्य कहते हुए सिर ही कटता है तो तुमको अधिकार है कि काट डालो। परन्तु उस समय सत्य का ऐसा दबदबा छा गया, उसका हाथ न चला और खड़ा का खड़ा रह गया। उस समय से चक्रांकित लोग स्वामी जी के विरोधी हो गये। यह शब्द भी स्वामी जी ने अवश्य कहे थे कि 'क्षत्रिय या तो शस्त्र निकाले नहीं और यदि निकाले तो जिस संकल्प से निकाले उस संकल्प को पूर्ण करे और जो न कर सके तो उसके क्षत्रियत्व में सन्देह है।' परन्तु वह कुछ न कर सका और अन्त में उसी प्रकार घबराया हुआ अपने साथियों सहित अपने डेरे को चला गया और स्वामी जी अपने आसन से तनिक भी न हिले।

हम अपने ब्राह्मणत्व से क्यों पतित हों—उसके चले जाने के पश्चात् बहुत से लोगों की यह इच्छा हुई कि स्वामी जी इस बात की पुलिस में रिपोर्ट करें और शस्त्र निकालने की जांच हो परन्तु स्वामी जी ने उत्तर दिया कि 'वह अपने क्षत्रियत्व को पूरा न कर सका तो क्या यह आवश्यक है कि हम भी अपने ब्राह्मणत्व से पतित हो जावें? हमारा सन्तोष करना ही परम धर्म है और इससे अतिरिक्त, हमको कुछ उससे हानि भी नहीं पहुंची है। उसके लिए इतना लज्जित होना पर्याप्त दंड है; यदि बुद्धिमान् होगा तो फिर ऐसा कर्म न करेगा।' कार्तिक का मेला था, सैकड़ों मनुष्य वहां उपस्थित थे, सम्भवत: अक्तूबर या नवम्बर का महीना था।

आततायी का बल से मुकाबला—राजा उदितनारायण जी, रईस मथुरा, ने इस घटना को इस प्रकार वर्णन किया कि 'मैंने राव कर्णसिंह साहब और स्वामी जी के झगड़े का वृत्तान्त सुना हुआ है कि राव कर्णसिंह एक बार स्वामी जी के पास गये। राव साहब संस्कृत बोलते थे परन्तु बोल नहीं सकते थे, अशुद्ध बोलते थे। जिस पर स्वामी जी टोकते थे कि अशुद्ध मत बोलो, जिस चीज को तुम नहीं जानते हो उस पर अधिकार क्यों जताते हो? परन्तु वह निरर्थक झगड़ा और

बेहूदा बातें करता था । जब कोई धार्मिक चर्चा चली तो निरुत्तर होकर और क्रोध में भरकर उसने तलवार निकाली और स्वामी जी को मारने को उद्यत हुआ परन्तु स्वामी जी ने एक बहुत बड़ा पत्थर उठाकर उसकी ओर फेंका, वह पत्थर के प्रहार से बच गया । स्वामी जी ने गरजकर उसके हाथ से तलवार छीन ली और एक हाथ से पृथ्वी को टेक देकर और उसका हाथ पकड़ कर कहा कि क्या तू यह चाहता है कि यह तलवार तेरे ही घुसेड़ दूं । इस पर उसके होश उड़ गये और स्वामी जी ने तलवार फेंक कर उसको छोड़ दिया । तब स्वामी जी वन को, और वह घर को चला गया और कह गया कि 'मैं तुमसे (अर्थात् स्वामी जी से) समझूंगा ।'

ठाकुर शेरसिंह जी कहते हैं कि तत्पश्चात् स्वामी जी यहां कार्तिक पर्यन्त ठहरे और इस अन्तर में स्वामी विशुद्धानन्द और कृष्णानन्द आदि कई संन्यासियों से वेदान्त-विचार और योगाभ्यास के प्रकार पर वार्तालाप होता रहा ।

राव कर्णसिंह फिर आया—क्वार शुक्ला शरद् पूर्णिमा को रईस कर्णसिंह फिर गंगास्नान को गये । गंगा के तट पर स्वामी जी की कुटी से थोड़ी दूर पश्चिम की ओर बारहदरी पर ठहरे । स्वामी जी को भी यहीं विराजमान सुनकर रात्रि के समय उसने अपने दो सशस्त्र सेवक स्वामी जी को मार डालने के लिए उनकी कुटिया पर भेजे परन्तु दैवयोग से कुछ दिन पहले इस कारण से कि जब स्वामी जी रात को सोते थे अपने ओढने के लिए वस्त्र नहीं रखते थे-ठाकुरों ने परस्पर सम्मति करके ठाकुर कैथलसिंह को वहां नियत कर दिया था कि जब स्वामी जी रात को सो जाया करें तो उन पर कम्बल डाल दिया करे, क्योंकि स्वामी जी लोगों के चले जाने के पश्चात् जब सोते तो प्रथम तो लोग कम्बल उढ़ा देते परन्तु रात को जब उतर जाता तो स्वामी जी स्वयं न लेते थे ।

पंडित भूमित्र जी ने कहा कि उन दिनों मौज बाबा संन्यासी योगेश्वर यहां थे जो पूर्णतया नग्न रहते थे । वृद्धावस्था के कारण उनको आंखों से कम दिखाई देता था । उनकी सेवा में एक वैरागी जमनादास रहता था । उसने एक रात देखा कि स्वमी दयानन्द जी के ऊपर से कम्बल गिरा हुआ है । उसने लोगों से यह बात कही । जिस पर यहां के ठाकुरों ने ठाकुर कैथलसिंह को वहां नियत कर दिया कि रात को जब कम्बल उतर जाया करे तो उढ़ा दिया करे ।

जब कर्णसिंह ने एक दिन वैरागियों से कहा कि तुम लोग उसका सिर काट डालो, मैं धन व्यय करके तुम्हें बचा लूंगा और यदि तुम में से एक आध मर जावेगा तो तुम्हारी कौन-सी लुगाई रोती है परन्तु इस पर भी किसी वैरागी को ऐसा करने का साहस न हुआ ।

अभ्यस्त अपराधी भी योगी से डर गये

राव कर्णसिंह का नीच इरादा, कई व्यक्तियों की साक्षी—एक रात को राव कर्णसिंह ने दो बजे के समय तीन मनुष्यों को अपनी तलवार देकर भेजा कि तुम जाकर स्वामी जी का सिर काट लाओ । यह लोग गये परन्तु कुटी में भीतर जाने का साहस न पड़ा । स्वामी जी उस समय सोते थे और कैथलसिंह भी सोता था । स्वामी जी खड़का सुनकर बैठ गये । वह लोग लौट कर पहुंचे कि हमारा साहस नहीं पड़ता । जहां राव साहब उतरे हुए थे वह स्थान स्वामी जी से लगभग १२५ पग दूर था । राव साहब ने फिर उनसे कहा कि तुम जाओ और उसे मारो और बहुत धमकाया । यह शब्द सम्भवत: स्वामी जी ने सुने । स्वामी जी ध्यानावस्थित होकर चौकी पर बैठ गये । वे लोग फिर आये । इस बार भी धीरज खो बैठे और साहस न कर सके तथा वापस लौट गये । इस पर राव साहब ने गालियां देकर उनको फिर भेजा । वह तीसरी बार आये और हाथ में तलवार लिये कुटी के भीतर जाने को नीचे से चढ़े और यह कहते हुए कि कौन है इस कुटी में ? स्वामी जी ने

चौकी से उठकर कुटी के द्वार पर खड़े होकर उच्च स्वर से 'हूं' की ध्वनि की । इस ध्वनि को और फिर स्वामी जी के स्वर को सुनकर वे ऐसे घबराये कि उल्टे होकर गिर पड़े और तलवार छूट गई । अन्त में बड़ी कठिनता से संभल कर भाग गये । इस अवसर पर ठाकुर कैथलसिंह भी जाग पड़ा और उसने इस कौतुक को देखा । वह भय के मारे उसी समय ग्राम में भागकर आया । स्वामी जी उसे रोकते रहे कि तू कहीं मत जा परन्तु वह न माना । तत्काल आकर ठाकुरों को सूचना दी । उस समय रात्रि लगभग चार घड़ी शेष रह गई थी । ठाकुर गोपालसिंह जी के भ्राता ठाकुर कृष्णसिह जी को जगाकर सब घटना सुनाई । ठाकुर जी तत्काल लट्ठ लेकर चल पड़े, अपनी प्रातःकाल के अग्निहोत्र की सामग्री भी लेते गये और दो तीन पुरुषों को भी साथ ले गये । उनके पीछे ठाकुर रघुनन्दनसिंह जी दौड़े । सारांश यह कि बस्ती के बहुत से क्षत्रिय लोग गये और पीछे ठाकुर गोपालसिंह जी भी पहुंच गये और मैं भी गया । उसके जाते ही सबसे प्रथम ठाकुर किशनसिंह ने राव कर्णसिंह को उच्चस्वर से गालियां देनी आरम्भ की और कहा कि यदि बहुत वीर और वास्तव में क्षत्रिय की संतान हो तो अब हमारे सामने हथियार बांध कर आओ, देखो तुम्हारी बन्दूक और तलवार एक थप्पड़ में छीनते हैं या नहीं । और भी बहुत कठोर शब्द कहे । उन सिपाहियों के गिरने के चिह्न भी वहां पाये गये । जब ये लोग पहुंचे तो स्वामी जी ने ठाकुर किशनसिंह से कहा कि कुछ सन्तोष करो; यह तो स्वयमेव भीरु है । तुम क्रोध मत करो, ये हमारा कुछ नहीं कर सकते । परन्तु ठाकुर किशनसिह का क्रोध शान्त नहीं हुआ और प्रतिज्ञा की कि यदि वे आज यहां रहे तो हम उनको बिना पीटे नहीं छोड़ेंगे । जब उन्होंने यह दृढ़ प्रतिज्ञा की तो राव कर्णसिंह के श्वसुर ठाकुर मोहनसिंह जी ने, जो कर्णवास के निवासी हैं-अपने दामाद राव कर्णसिंह से जाकर कहा कि यदि तुम्हारे अच्छे दिन हैं तो तुम यहां से इसी समय चले जाओ अन्यथा आज यहां के क्षत्रिय लोग तुम्हारे सब हथियार छीन लेंगे और तुमको भी भली-भांति पीटेंगे । यह सत्य समझो कि आज अवश्य तुम्हारी मानहानि होगी । यह सुनकर राव साहब तत्काल ही यहां से चल दिये और घर जाते ही रुग्ण हो गये और उन्मत्तों की भांति कपड़े फाड़ने लगे । प्रयाग में एक मुकद्दमा पचास हजार रुपये का हारे और अपने मत (धर्म) के विरुद्ध मांस तथा मदिरा का सेवन आरम्भ कर दिया । सारांश यह कि उनकी बहुत दुर्दशा हुई ।

इसी बात को **ठाकुर गोपालसिंह जी** रईस ने इस प्रकार वर्णन किया 'कि शरत् पूर्णिमा (जो १४ आसौज की होती है) को राव कर्णसिंह आतिशबाजी का सामान, वेश्या, रासधारिये, गवैय्ये तथा दशहरे से सम्बन्धित सरकारी पहरा साथ लेकर गंगातट पर आये । उस समय गंगा बहुत बढ़ रही थी । उसने सिपाहियों को तलवार देकर स्वामी जी को मारने के लिये भेजा । स्वामी जी स्वयं कहते थे कि जब वह लोग आये तो उन्होंने आकर आधी रात के पश्चात् कहा 'कुट्यां कोऽस्ति' अर्थात् कुटी में कौन है ? मैंने उठकर जोर से 'हूं' कहा और एक पांव पृथिवी पर मारा जिससे वह 'पलायनं कृतम्' अर्थात् भाग गये । कैथलसिंह ने स्वामी जी से कहा कि अब यहां से चलकर किसी गुफा में रहें जिस पर स्वामी जी तो वहीं रहे परन्तु कैथलसिंह वहां से भागा और उसने कर्णवास में आकर ठाकुरों की हवेली में ठाकुर किशनसिंह के पांव मले । जब वह जागे तो सारी घटना उनको सुनाई । वह उठे और लाठी लेकर तोताराम और आनन्दीसिंह कान्यकुब्ज ब्राह्मण को साथ लेकर वहां पहुंचे । पूछा कि महाराज क्या आज्ञा है ? स्वामी जी ने कहा कि कुछ आज्ञा नहीं । उसने कहा कि नहीं, जो आप कहें सो करें । स्वामी जी ने कहा कि वह तुम्हारा सम्बन्धी है, हम यह नहीं चाहते कि तुम जमींदार व्यर्थ आपस में लड़ो । प्रातःकाल हम सब पहुंच गये । इतने में कुन्दनसिंह, मदनलाल, खड़कसिंह तथा एक ब्राह्मण—ये चारों मनुष्य उनके कूप पर कुल्ला करने आये । अभी तक हम लोग वही चर्चा कर रहे थे कि उनमें से खड़कसिंह ने फिर कर्णसिंह को बुरा कहा और किशनसिंह जी ने कहा कि राव साहब को उचित नहीं था कि एक संन्यासी के ऊपर तलवार लेकर आवें । यदि वह मर्द के बच्चे हैं तो अब हमारे सामने आवें । यदि कुछ पौरुष है तो राव से कहो कि हमारे सामने आवे ।

यह बात उसी समय राजघाट की ओर फैल गई । दूसरे दिन राजघाट से बीस-पच्चीस सशस्त्र पंजाबी वहां आये और स्वामी जी से निवेदन किया कि हमारी नौकरी चली जावे परन्तु आप हमको आज्ञा दें कि हम सब दुष्टों को भगा दें । स्वामी जी ने बहुत रोका और वह सब आकर व्याख्यान में बैठ गये । इतने में नन्दकिशोर ब्राह्मण कर्णवास निवासी आये और बोले कि महाराज ! राव साहब तो ऐसे मूर्ख नहीं हैं जो ऐसा काम करें । स्वामी जी ने कहा कि प्रतीत होता है कि वह तुमको द्रव्य देते हैं इसलिए तुम झूठ बोलते हो । उसने बातें करते हुए हाथ आगे किया तो स्वामी जी ने उसका हाथ पकड़ लिया । वह कहता था कि जैसे वज्र पड़ता है ऐसा उनका हाथ प्रतीत हुआ । जो मनुष्य स्वामी जी के पास आता और उनसे यह वृत्तांत पूछता तो स्वामी जी उसे संस्कृत में सुनाते थे ।

राव कर्णसिंह से प्रेरित स्वामी जी को मारने वाले व्यक्तियों की स्वीकारोक्ति—राव कर्णसिंह के वे सब मनुष्य जीवित विद्यमान हैं जो रात्रि को गये थे । वे कहते हैं कि यद्यपि हम सशस्त्र थे और हमने प्रायः ऐसे बड़े काम किये हुए थे परन्तु उनका आतंक हम पर छा गया, हम तलवार न चला सके । राव साहब के श्वसुर ने जब सब ठाकुरों को राव कर्णसिह के विरुद्ध देखा तो उससे जाकर कहा कि आज ठाकुर लोग दुखी हो गये हैं, यदि भला चाहते हो तो चले जाओ अन्यथा जो दशा तुम रात को स्वामी जी की करना चाहते थे, वही दशा तुम्हारी होगी । पूर्णमासी की रात को यह झगड़ा हुआ, पड़वा के दिन वह यहां से चले गये । इसके चार-पांच दिन पश्चात् स्वामी जी महाराज काशी की ओर चले गये ।

निर्भय दयानन्द !-पंडित बलदेव जी गौड़ ब्राह्मण डिबाई निवासी ने कहा 'कि जब कैथलसिंह ठाकुर ने स्वामी जी से कहा कि आप यहां से चलकर किसी और स्थान पर जा रहिए तब स्वामी जी ने कहा कि **'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः'** मुझको कोई नहीं मार सकता और साधु लोग कहां गढ़ों अथवा घरों में घुसते हैं । हमारा कोई मनुष्य रक्षक नहीं प्रत्युत देव रक्षक है । अरे ! घबरा मत, उसी का शस्त्र लेकर उसी का हनन कर डालूंगा ।'

एक बार हरिद्वार से गढ़मुक्तेश्वर तक और तत्पश्चात् कर्णवास और रामघाट तक स्वामी जी सीधे चले आये । फिर लौटकर गंगातट के साथ-साथ आये । इस विषय में **पण्डित ज्वालाप्रसाद गौड़** पिलखनी निवासी जिला बुलन्दशहर वर्णन करते हैं कि पहले पहल मुझे स्वामी जी के दर्शन कर्णवास में वैशाख मास, संवत् १९२४ में हुए । वहां गंगा के तट पर स्नान करके नग्न बैठे हुए थे । लंगोटी सूख रही थी । ऊधो जी तालिबनगर जिला अलीगढ़ निवासी और मैं हम दोनों विद्यार्थी वहां पहुंचे, उन दिनों हम भागवत पढ़ते थे । हमने देखा कि एक परमहंस बैठे हैं । प्रथम हम उनके शरीर पर रेती और गंगारज प्रेम से लगाने लगे । उन्होंने संस्कृत में पूछा कि तुम क्या पढ़ते हो ? हमने कहा कि भागवत । उन्होंने कहा कि तुमने व्याकरण में क्या पढ़ा है ? हमने कहा कि कौमुदी । स्वामी जी ने कहा कि तुमको अष्टाध्यायी पढ़नी उचित है और दसों उपनिषद्, वेदान्त और मनुस्मृति जिससे धर्म का उपदेश हो वही पढ़ना और उसी के अनुसार चलना । इस पर हमने पूछा कि वैरागी लोग जो शंख-चक्र आदि देते हैं और उपद्रव करते हैं उससे क्या होता है और यह ठीक है अथवा नहीं ? उन्होंने कहा कि वैरागी जितने हैं सब धर्म से बेधर्म हैं क्योंकि शंख-चक्र का लगाना अनुचित है, उचित नहीं । इतनी बात उनकी सुनकर मैंने शफीनगर के समीप स्थित ग्राम खंडवी परगना व अहार के एक पंडित नन्दराम नरौड़ी निवासी का वृत्तांत सुनाया जो समासरी अर्थात् चक्रांकित है और खण्डवी के जाटों को शंख-चक्र देकर वैष्णव बनाने के लिए मथुरा भेजना चाहता है और यह भी सुनाया कि नन्दराम मुझको भी कहता है कि तुम भी समासरी होकर इनके अधिष्ठाता हो जाओ । इसलिए आप वहां चलें ताकि लोगों के धर्म की रक्षा हो । उन्होंने कहा कि तुम जाओ, यदि हमारे आने की आवश्यकता हुई तो हम भी आवेंगे ।

चक्रांकितों का कुचक्र निष्क्रिय कर दिया

कोई चक्रांकित नहीं हुआ—इसके पश्चात् एक बार स्वामी जी गंगा के किनारे-किनारे यहां **चासी**[१२] में आये। तब **छीतरसिंह जाट ने कहा** कि वह महात्मा दयानन्द जी मुझे पहले यहां चासी में मिल चुके हैं, जो वह कह दें तो हमें स्वीकार है। अन्त में हम और पण्डित नन्दराम व पण्डित भूदत्त मौवा खेड़ी निवासी और छीतरसिंह व अतरामसिंह अन्य बीस मनुष्यों सहित वहां गये। स्वामी जी उस समय छोटी धार पर बैठे थे। स्वामी जी को देखकर और उनका नाम सुनकर पंडित नन्दराम परली धार की ओर भाग गया और जब वहां उसको बुलाने के लिए गया तो वह वहां से भागकर अहार में देवीदास चक्रांकित के मंदिर में जा ठहरा। उसका यह आचरण देखकर उन सबको निश्चय हुआ कि वह धर्म सच्चा नहीं। जो स्वामी जी कहते हैं, वही ठीक है। स्वामी जी के इस प्रयत्न से कोई भी चक्रांकित धर्म में प्रवृत्त न हुआ—सब बच गये। स्वामी जी ने पूछा, 'क्या मनुस्मृति, महाभारत तुम्हारे पास है?' मैने कहा कि न मनुस्मृति पढ़ा हूं और न मेरे पास है और महाभारत भी नहीं है। उस समय स्वामी जी दस पन्द्रह दिन यहां रहकर **ताहिरपुर** में जा ठहरे और वहां से फिर **कर्णवास** की ओर चले गये और **फर्रूखाबाद** तक गये। जब लौट कर कार्तिक के मेले में आये तो यहां **चासी** में आकर मुझसे ६ ।।।) पर मनुस्मृति मंगवायी और पढ़ानी आरम्भ कर दी।

जैसा भी भोजन मिलता, जो पहले मिल जाता वही खा लेते थे—उस समय वहां एक वैरागी रहता था। उसने स्वामी जी को देखकर सोचा कि यह हमारी निन्दा करता है; अच्छा है कि यहां न टिके। स्वामी जी का उस समय नियम था कि जो रोटी पहले लावे, उसकी खा लेते थे। वह वैरागी (हठ के मारे) एक दो टुकड़े जलाकर उनको दे देता था और सदा कुपित रहता था। परन्तु लोगों के डर के मारे मुख से कुछ न कहता था। इस पर स्वामी जी उसके नित्य के क्रोध को देखकर वहां से चले गये। लगभग आठ दिन ठहरे।

अनूपशहर में धर्मोपदेश

हम केवल तीन दिन उनके पास पढ़ते रहे। फिर ताहिरपुर में जाकर पढ़ाया और वहां कुछ दिन ठहरे। वहां से **अनूपशहर** गये। वहां से **कर्णवास** गये और वहां महीनों रहे। उनके पास चूंकि मेला लगा रहता था इसलिए मैं उनके पास से गाजियाबाद में पंडित कृष्णदत्त के पास चला आया। स्वामी जी से मैंने केवल डेढ़-दो अध्याय पढ़े थे। जब मैं साथ था तो उनकी संस्कृत की भाषा करके लोगों को बताया करता था। जब मैं पढ़कर गया तो फागुन के महीने में वहां कुछ मनुष्यों के यज्ञोपवीत संस्कार की सम्मति हुई, मैंने भी गायत्री का उनकी ओर से जप किया। फिर वहां से चलकर **सोरों, बदरिया** में रहे। वहां वह अंगदराम शास्त्री के पास रहे। मैं उस समय साथ नहीं गया। वहां से वह **फर्रूखाबाद** गये। मैं वहां उनसे मिलकर अपने घर को चला आया। स्वामी जी फिर लौटकर **अनूपशहर, रामघाट, कर्णवास** में आये। पंडित अंगदराम को जब मनुस्मृति पढ़ा कर आये तब कुछ-कुछ उसके श्लोकों का खंडन करने लगे। हमने कहा कि जब हमको पढ़ाते थे तब तो सब मानते थे। **स्वामी जी ने कहा कि बुद्धिमान् विद्यार्थी के पढ़ाने से शास्त्र का वृत्तांत विदित होता है।** हमने कहा, विदित हुआ कि आपने मनु पढ़ा नहीं, केवल अपनी बुद्धि से पढ़ाते हैं तो बोले कि नहीं, बुद्धिमान् विद्यार्थी के पढ़ाने से विद्या का वृत्तांत विदित होता है। हमने कहा कि आप पूरा यथार्थ निश्चय कर लें, फिर हमें सारा वृत्तांत बता देना। स्वामी जी ने हीरावल्लभ, अंगदराम और ज्वालाप्रसाद को मनुस्मृति पढ़ाई, फिर पढ़ाने का अवकाश न मिला और न विशेष रूप से भेंट हुई। उनका निश्चय उस समय यह था—१—मूर्तिपूजा नहीं मानते थे। २—भागवत का खंडन करते थे। ३—मृतक श्राद्ध नहीं मानते थे। ४—वेदविरुद्ध मतों का खंडन करते थे। लंगोट कौपीन रखते थे, शरीर का शेष भाग नग्न रहता था, भिक्षा जो आ जाती, कर लेते, कोई पात्र या कमंडल साथ न था। जो कोई पंडित या प्रश्नकर्ता आता, युक्ति द्वारा उसका यहां

तक समाधान करते थे कि वह अन्त में 'सत्य वचन' कहकर उठता था। कोई व्यक्ति हमारे सामने ऐसा न आया जो बिना संतोष प्राप्त किये गया हो। उनका उपदेश साधारणतया यह था—प्रातःकाल की और सायंकाल की संध्या करो; सत्य बोलो अर्थात् मनुस्मृति के 'सत्यं ब्रूयात्' वाले श्लोक[१३] का उपदेश करते थे। भागवत पर उन्होंने १७ आक्षेप किये थे। हमने कहा कि महाराज! और पुराणों में कौन सी उत्तम बात है तो उन्होंने कहा **'एतदेव समीचीनम्'** अर्थात् ऐसा ही स्वीकार है अर्थात् वे भी इसी प्रकार हैं जैसे भागवत। इस ओर जाटों का यज्ञोपवीत नहीं कराया। पंडित नन्दराम चक्रांकित ने फिर कभी मुख न दिखाया और न फिर उस ग्राम में आया।

ला० रामप्रसाद वैश्य अग्रवाल अहार निवासी ने **वर्णन किया** कि 'मैंने स्वामी जी को यहां गंगा के तट पर श्री० वल्लभ जी की कुटी में चटाई पर बैठे देखा था। गंगा पार से आये थे, क्वार या कार्तिक का महीना था, एक कौपीन धारण किये हुए नग्न रहते थे। दो दिन यहां रहे थे, फिर यहां से जाकर ढाई कोस चासी की कुटी में ठहरे। वहां पर प्रायः ग्राम के लोग कार्तिक नहाने जाया करते थे। उनके जाने से धर्म चर्चा होने लगी। जब वे लोग कार्तिक नहा कर आये तो उनके मुख से विदित हुआ कि वही स्वामी दयानन्द थे। खंदोई, शफीनगर, खनौदा के जाटों के विषय में हमने सुना था कि स्वामी जी ने उनका यज्ञोपवीत कराया था। इसकी उन दिनों बहुत चर्चा हुई थी कि जाटों को वह क्षत्रिय बतलाते हैं। लोगों ने कहा कि बुरा करते हैं, जाट क्षत्रिय नहीं हैं (परन्तु इसका समर्थन किसी जाट के मुख से नहीं हुआ और न कोई ऐसा मिला जिसको स्वामी जी ने यज्ञोपवीत दिया हो)। चासी की कुटी में संभवतः वह चार-पांच मास रहे थे अर्थात् क्वार या कार्तिक से फागुन चैत तक। ज्वालाप्रसाद ब्राह्मण पिलखनी निवासी उनके पास पढ़ने जाया करता था। वह वल्लभ की कुटी गंगा के समीप थी, कुछ गिर गई थी और कुछ शेष थी। उसका जो पुजारी था वह भी चिरकाल से मर गया था।

(संवाददाता—दुःख की बात है कि जिस घर पर वह आकर ठहरे थे, वह आज १५ दिसम्बर सन् १८८९ की प्रातः को मैंने देखा। न तो घर अवशिष्ट है और न उसका कुछ चिह्न शेष है, केवल एक टीला सा दिखाई देता है; यह घर ग्राम से पूर्व की ओर गंगातट पर स्थित है परन्तु किसी के बताये बिना चिह्न मिलना अत्यन्त कठिन है और सम्भवतः कई वर्ष तक यह भी न रहेगा।)

मियाराम जाट नम्बरदार शफीनगर ने वर्णन किया—हमने स्वामी जी को चासी, ताहिरपुर, अनूपशहर में देखा था। स्वामी जी हमसे यह कह गये थे कि जीवित का श्राद्ध सदा करते रहो और ज्वालादत्त को पद्धति बनवा कर दे गये कि इस रीति से कराते रहो। पाषाणपूजा के झगड़ों का निषेध करते थे। (वेद के जानने वाले) को ब्राह्मण मानते रहो, गुरु (शिक्षा देने वाले) को मानते रहो, बुरा काम मत करो, झूठ मत बोलो इत्यादि बातों का उपदेश करते थे।

जन्मपत्र बेकार है, कर्मपत्र ही ठीक है—चासी में एक खदाना के रहने वाले व्यक्ति ने स्वामी जी को हाथ दिखलाया। स्वामी जी बोले कि इसमें हाड़ है, चाम है, रुधिर है और कुछ नहीं। हमने जन्म-पत्र दिखलाया—कहने लगे 'जन्मपत्रं किमर्थं कर्मपत्रं श्रेष्ठतम्।' फिर बोले कि यदि बिध मिल जावे तो मानो अन्यथा 'गप्पाष्टकम्' जानो अर्थात् केवल गप्प समझो। तत्पश्चात् हम प्रणाम करके घर को चले आये।

लाला भोलानाथ भक्त वैश्य महेश्वरी अहार निवासी ने वर्णन किया 'जिस समय स्वामी जी अनूपशहर में सती के पास उतरे हुए थे, मैं यहां से अनूपशहर को सौदा लेने गया; वहां उनके दर्शन हुए। लगभग तीस पण्डित और पचास के लगभग और लोग बैठे हुए थे। कोई व्यक्ति उनकी बात को तोड़ न सकता था। एक हमारा मित्र कहीं परदेश चला गया था, उसका पता नहीं मिलता था। मैंने उनसे आकर प्रश्न किया। स्वामी जी ने हाथ से संकेत किया। पंडितों ने मुझे समझाया कि कहते हैं कि रामेश्वर की ओर गया है। उनकी बातों को पंडित लोग और सब उपस्थित व्यक्ति 'सत्यवचन' करके मानते

थे । कोई सामना न कर सकता था और जो कोई वेदानुकूल कहता उसे स्वीकार करते और जो वेदविरुद्ध पुराण की कहता उसको 'गप्पाष्टकं, मनुष्याणां कोलाहल:' अर्थात् यह गप्प है और मनुष्यों का मचाया हुआ कोलाहल है, ऐसा कहते थे । छ: घड़ी मैं उनके पास बैठा रहा फिर चला आया ।'

शीशे के सामने चमकता अत्यन्त सुडौल शरीर—हकीम मौला बख्श अनूपशहर निवासी ने वर्णन किया—'सन् १८६७ की बात है कि स्वामी जी अनूपशहर में आये । प्रथम लालाबाबू की कोठी में देखा था, मैं उस समय वहां अध्यापक था । मैंने रविशंकर अध्यापक नागरी के द्वारा कुछ पूछने की प्रार्थना की । स्वामी जी ने कहा कि कोई दूसरा व्यक्ति तुमको समझा देवे तब हम उत्तर देंगे, हम भाषा नहीं बोलेंगे । उस समय केवल एक लंगोटी रखते थे । मैंने पूछा कि आपके पास और कोई वस्त्र नहीं है और शीतकाल है, किस प्रकार व्यतीत करते होंगे । उन्होंने हाथ से संकेत करके कहा कि कुछ नहीं है । वहां लगभग एक सप्ताह ठहर कर फिर नर्मदेश्वर में सती के मन्दिर[१४] में आ ठहरे (ये दोनों स्थान गंगातट पर हैं) । वहां के गुजराती पंडित उनके पास प्रतिदिन जाया करते थे और स्वामी जी की शिक्षा तथा प्रेरणा से बहुतों ने उसी समय से मूर्तिपूजन छोड़ दिया था । पंडित अंबादत्त के शास्त्रार्थ के समय मैं उपस्थित न था परन्तु सुना था कि अंबादत्त को सफलता न हुई, स्वामी जी ही सफल रहे । यहां दस पन्द्रह दिन रहे थे । रामलीला के विषय में निषेध करते थे । मृत्तिका अर्थात् गंगारज शरीर पर मल लिया करते थे । नीरोगिता की वह अवस्था थी कि शीशे के समान चमकते थे । अंग अत्यंत सुडौल थे और शरीर अत्यन्त शक्तिशाली था ।'

ला० केशरीलाल कायस्थ, सेवक ठाकुर लक्ष्मण सिंह, रईस कर्णवास, अनूपशहर निवासी ने वर्णन किया कि 'स्वामी जी अनूपशहर में श्रावण मास से लेकर कार्तिक की पूर्णमासी तक रहे । वहां रामलीला का खंडन किया जिसके कारण यद्यपि उस वर्ष तो हुई परन्तु तत्पश्चात् पूर्णतया बन्द हो गई । उनके उपदेश ने बहुत से लोगों के हृदयों को प्रभावित किया । जब लालाबाबू की कोठी में ठहरे हुए थे तब एक बार गंगा नदी के पार से राजा जयकिशनदास जी आये । मैंने उनको सूचना दी कि स्वामी जी ठहरे हुए हैं और आप से मिलना चाहते हैं । राजा साहब ने कहा कि आज तो नहीं, फिर आऊंगा और चौथे दिन उन्होंने एक पत्र मेरे भाई हजारीलाल बासिल बाकीनवीस लालाबाबू के नाम भेजा कि कोठी में हमारे लिए स्थान रखना और एक कहार का प्रबन्ध रखना । वह आये और स्वामी जी से मिले । दोनों परस्पर प्रेम से मिले । वह एक रात ठहरे थे । सायंकाल को आये थे । रात को सैय्यद अहमद खां के विषय में बात चली कि वह पैगम्बर (सन्देशवाहक) बन गया है और यह भी कहा कि मैंने आपकी कलकत्ते में भी खोज की थी । प्रात:काल वह कोयल चले गये । उस समय तहसीलदार सैय्यद मोहम्मद से जो एक अच्छे मौलवी और विद्वान् थे, स्वामी जी की बातचीत हुई । जो स्वामी जी ने कहा, वह सब उसने स्वीकार किया । स्वामी जी ने उससे कहा था कि मूर्तिपूजा और पुराणों और उन पुस्तकों का जो वेद के विरुद्ध हैं—मैं खंडन करता हूं । उसने स्वामी जी की सब बातों का समर्थन किया अपितु पूर्णतया अनुकूल हो गया । फिर स्वामी जी वहां से राजघाट चले गये । उस समय नग्न थे, केवल एक लंगोट रखते थे । सुना गया कि वस्त्र कलकत्ते में जाकर पहने थे ।'

स्वामी जी के सुझाव पर विरजानन्द जी से अष्टाध्यायी पढ़ी—पंडित बिहारीदत्त शर्मा जी सनाढ्य, ग्राम दानपुर जिला बुलन्दशहर निवासी, कहते हैं—'जब आरम्भ में स्वामी जी कर्णवास आये उस समय मैं लघुकौमुदी अंबादत्त जी पहाड़ी के पास पढ़ता था । उस समय लोगों ने कहा कि एक क्रिस्तान ऐसा है जो मूर्तिपूजा ओर कौमुदी आदिक ग्रन्थों का खंडन करता है और नहीं मानता । उनको देखने के विचार से हम चार व्यक्ति एक मैं, दूसरे गुरुदत्त, तीसरे मिट्ठूलाल, चौथे पं० हीरावल्लभ स्वामी जी के पास गये । यहां आकर शास्त्रार्थ स्वामी जी और हीरावल्लभ का हुआ । प्रतिज्ञा यह थी कि यदि हम पराजित हो जायेंगे तो प्रतिमापूजन छोड़ देंगे और यदि तुम हार जाओ तो प्रतिमापूजन करना । हमारे गुरु अंबादत्त

ने कह दिया था कि जो हीरावल्लभ कर दे वही हमको स्वीकार है । प्रात:काल से दोपहर के बारह बजे तक शास्त्रार्थ होता रहा । अन्त को इस सूत्र 'सर्वादीनि सर्वनामानि'[१५] पर हीरावल्लभ परास्त हुआ और उसका पक्ष गिर गया । स्वामी जी ने महाभाष्य के प्रमाण से उसका खंडन कर दिया, जिस पर वह परास्त हो गया । उसने भी सच्चे हृदय से अपने ठाकुर शालिग्राम गंगा जी में फेंक दिये और उसी समय पंडित टीकाराम जी ने भी अपने ठाकुर फेंक दिये । जिस गंगामन्दिर के टीकाराम पुजारी थे और जहां से वेतन पाते थे-उसकी पूजा भी छोड़ दी तथा मन्दिर को त्याग दिया । ठाकुर गोपालसिंह, किशनसिंह व रघुनन्दनसिंह आदि ने प्रतिज्ञा की कि हम यज्ञोपवीत करावेंगे और प्रायश्चित्त करेंगे । स्वामी जी ने हमको अर्थात् मिट्ठूलाल, गुरुदत्त और मुझको उपदेश दिया कि तुम स्वामी विरजानन्द जी के पास जाकर मथुरा में अष्टाध्यायी, महाभाष्य पढ़ो । पांच वर्ष में ऐसे पंडित हो जाओगे कि जिला बुलन्दशहर, अलीगढ़ में कोई तुम्हारे सामने बोलने वाला न होगा । गुरुदत्त तो गया नहीं परन्तु मिट्ठूलाल यज्ञोपवीत के संस्कारों से १५) रु० दक्षिणा लेकर पढ़ने को चले गये । एक बार चार अध्याय अष्टाध्यायी के पढ़कर आये । हमसे कुछ भी बात उनके सामने न बन सकी जिससे हमको बड़ी ग्लानि हुई । वह फिर भी गये और शेष चार अध्याय पढ़े परन्तु खेद है कि फिर स्वामी विरंजानन्द जी का शरीर छूट गया ।

अनूपशहर की घटनाएं

स्वामी जी ठाकुरों का यज्ञोपवीत कराकर अनूपशहर में आये और रविशंकर गुजराती तथा ब्रह्मशंकर गुजराती, दोनों उनके शिष्य हुए और संध्या-गायत्री आदि स्वामी जी से सीखी । अंबादत्त ने (हीरावल्लभ के हार जाने और मूर्तियों के गंगा में फेंक देने का वृत्तान्त सुना तो अनूपशहर में आने पर वह स्वामी जी से फिर मिलने आया) निवेदन किया कि महाराज ! मेरी तो जीविका ही वैद्यक की है और मूर्तियों की प्रतिष्ठा की सौ-दो-सौ की आजीविका है, वह भविष्य में नहीं करूंगा । उसने यह प्रतिज्ञा स्वामी जी के सामने की परन्तु खेद है कि वह अपनी प्रतिज्ञा पर स्थिर न रहा ।

स्वामी जी के चले जाने के पश्चात् कस्बा दानपुर में जाकर उसने गंगामन्दिर की प्रतिष्ठा कराई । स्वामी जी को यह सूचना कानपुर में हरनारायण चौबे द्वारा मिली कि दानपुर में अंबादत्त ने मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई । स्वामी जी ने कहा कि हम जब अनूपशहर आयेंगे तब उसे देखेंगे ।

जब इसके पश्चात् अनूपशहर आये और लालाबाबू की कोठी में ठहरे तो हमारे पिता हरदेवसहाय तिवारी भी स्वामी जी से मिलने गये । सात दिन तक स्वामी जी ठहरे । अंबादत्त से बहुत कहा और मिलने के लिए बुलाया परन्तु वह घर से बाहर न निकला और कहता रहा कि हम गृहस्थी हैं, साधुओं के पास नहीं जाते । फिर स्वामी जी अहार की ओर चले गये । गुरुदत्त ने अध्ययनार्थ मथुरा जाने को बहुत कुछ कहा परन्तु अंबादत्त ने नहीं जाने दिया ।'

जीवित के श्राद्ध की स्वामी जी द्वारा निर्दिष्ट विधि-पंडित छोटेलाल गौड़ आयु ५५ वर्ष और पंडित कर्णानन्द गौड़ अनूपशहर निवासी ने ऐसे ही शब्दों में वर्णन किया 'जब स्वामी जी गंगातट पर आकर नर्मदेश्वर के मन्दिर के पास बड़े सती वाले स्थान पर ठहरे तो नगर के लोगों ने उस मन्दिर में पियार अर्थात् धान की छाल डाल दी थी । स्वामी जी दिन को बाहर रहते और शास्त्रार्थ तथा वार्तालाप किया करते । केवल संस्कृत ही बोलते, एक ही लंगोट रखते और सिर के नीचे समस्त शरीर पर गंगा रज लगाते थे । सम्भवत: कुछ काल यहां रहे । रात को जब तक लोग बैठे रहते, दस ग्यारह बजे तक जागते उसके पश्चात् घर के भीतर चले जाते और उस पियार में घुस जाते और कभी लोग ऊपर कम्बल डाल देते । द्वार की ओर लोगों ने एक खिड़की लगा दी थी । प्रात:काल उठकर शौच दिशा के लिए जाते, कोई पात्र न रखते थे । स्नानादि के पश्चात् वहां आ जाते और लोग भोजन का प्रबन्ध कर देते थे । कोई पुस्तक पास न थी । पंडित पन्त सखानन्द पहाड़ी ब्राह्मण, पंडित हीरावल्लभ (स्वर्गीय), पंडित गुरुदत्त व पंडित टीकाराम गुरु (कर्णवास निवासी स्वर्गीय)—इन पंडितों की

स्वामी जी से धर्म संबंधी बातचीत रहती थी । पंडित पन्त जी से श्राद्ध के विषय में वार्तालाप हुआ । इन पंडितों का नियम था कि चार छ: घड़ी रहे नित्य जाया करते थे । पंडित पन्त सखानन्द का नियम था कि मृतकश्राद्ध की क्रिया में भेड़ के बाल के स्थान पर अपनी छाती के एक-दो बाल उखाड़ कर चढ़ा दिया करता था । गुरुदत्त जी ने स्वामी जी से कहा, स्वामी जी ने पन्त जी से पूछा । उन्होंने श्रुतियों के प्रमाण दिये और पहाड़ियों को हजारों गालियां दीं कि गुरुदत्त आदि ने आपसे मेरी निन्दा की । उसके श्रुति के उच्चारण से स्वामी जी अत्यन्त प्रसन्न हुए, मुझे श्रुतियां स्मरण नहीं । स्वामी जी की आज्ञा थी कि जीवित का श्राद्ध करना चाहिए जिसकी विधि यह थी कि रबड़ी के पिंड बनाकर उस ब्राह्मण, आदि के हाथ में दें जिसको निमंत्रित किया गया हो, फिर उसको खिला दे । यह एक बार व्यास ब्राह्मण, एक ब्रह्मा ब्राह्मण, एक बलकेश्वर ब्राह्मण-इन तीनों को कराये थे और ऋषि-तर्पण अर्थात् श्रावणी उपाकर्म भी बुद्धिपूर्वक यहां बहुत से ब्राह्मणों को कराया था । स्वामी जी यहां मूर्तिपूजन को बिलकुल न मानते थे । अठारह पुराणों के विरोधी थे । वाल्मीकि और (महा) भारत को मानते थे और वेद और ब्राह्मण मानते थे । मनुस्मृति के प्रक्षिप्त श्लोक छोड़कर शेष सब मानते थे और अष्टाध्यायी और महाभाष्य को भी स्वीकार करते थे । तर्कसंग्रह को नर्कसंग्रह कहते थे । न्यायदर्शन और षट्दर्शन मानते थे । चार वेद, छ: अंग भी मानते थे; तीर्थ को नहीं मानते थे । जीव ब्रह्म को पृथक् मानते थे । पंडितों से ही उनकी बातें हुई-हमारी बातचीत नहीं हुई । सरल संस्कृत बोलते थे जिसे सब लोग समझ लेते थे । एक दीपेश्वर भी उनके पास जाया करते थे । स्वामी जी अत्यन्त दृढ़ तथा हृष्टपुष्ट शरीरधारी युवक थे ।

जब दूसरी बार आये तो नर्मदेश्वर में उतर कर बांसों के टाल पर जा रहे । उस समय ला० गौरीशंकर कायस्थ तथा पंडित छोटेलाल गौड़ आदि सैकड़ों मनुष्य जाया करते थे । टाल में जिस स्थान पर ठहरे थे वह स्थान अब गंगा में आ गया है । एक महात्मा नामक पंडित सिकन्दराबाद (जिला बुलन्दशहर) निवासी ने स्वामी जी से शास्त्रार्थ की ठहराई परन्तु सारा विषय संस्कृत अक्षरों में घर से लिखकर ले गया । स्वामी जी ने देखकर कहा कि क्या यह अपने लड़के का लग्नपत्र लाये हो । ज्योंही वह स्वामी जी के सामने पहुंचा उसे बोलने की सामर्थ्य न रही ।'

ला० शालिग्राम वैश्य अग्रवाल अनूपशहर निवासी ने वर्णन किया—'स्वामी जी जब नग्नावस्था में यहां पहुंचे तो कुम्भ के मेले पर उनके सर्वस्व त्यागने का वृत्तांत सबको विदित हुआ । एक गुजराती ब्राह्मण जुगल जी यहां रहा करते थे, उनके पास हम स्वामी जी को ले गये । वहां एक सैरंग भट्ट मथुरा के रहने वाले, जो भागवत की कथा बांचते थे, रहते थे । उसने स्वामी जी को पहचान लिया कि यह विरजानन्द जी के पास पढ़ा करते थे । स्वामी जी ने उससे एक पद पूछा जिसका उससे उत्तर न बन सका । इस पर उसे बहुत क्रोध आया परन्तु लोगों ने उसको क्षमा कराया । उस समय और लोग भी बहुत उपस्थित थे । उस बार वह पन्द्रह दिन रहे । पहलवान नवलजंग ने फूस डाल कर चटाई डाल दी थी और रात्रि को कंबल डाल देता था । उस समय बहुत लोग नहीं जाया करते थे । हम चूंकि कुश्ती खेलते थे इसलिए नित्य दर्शन होता था । फिर **काशी जी की ओर चले गये ।**

फिर जब काशी की ओर से आये तो लालाबाबू की कोठोरी में ठहरे । भगवानवल्लभ हकीम पढ़ने जाया करते थे । यहां के एक सबसे प्रख्यात पण्डित अम्बादत्त को लोगों ने कहा कि तुम स्वामी जी से चलकर शास्त्रार्थ करो । उसने कहा कि वहां चलकर क्या करूंगा, जो वह कहते हैं सब सत्य कहते हैं । वह सामने नहीं गया । एक सिकन्दराबाद के महात्मा नामक पण्डित जी तुलसी रामायण की कथा करते और रामलीला के लिए यहां आये थे, सामने गये और बोले कि रामचन्द्र ईश्वर थे । स्वामी जी ने कहा कि नहीं राजा थे । वह सामने संस्कृत न बोल सका, घबरा गया । स्वामी जी ने कहा कि भाषा बोलो और उस पर आक्षेप किया कि पुरुष से तुम स्त्री का वेश धरते हो, इसमें कितना दोष है । इसका वह कोई उत्तर न दे सका । सारांश यह कि इस बार स्वामी जी श्राद्धों के समय से आकर रामलीला के पीछे तक रहे जिसके कारण यद्यपि

रामलीला उस वर्ष हुई परन्तु भविष्य में बिल्कुल बन्द हो गई और अब तक नहीं होती । उस समय मूर्तिपूजा का खंडन करते और पुराणों को जाली ग्रन्थ बतलाते थे ।

उनके उपदेश से भगवानवल्लभ हकीम, दीपेश्वर, बलकेश्वर, ब्रह्मा, पंडित रविशंकर, पण्डित शालिग्राम गुजराती ब्राह्मण आदि छः व्यक्तियों ने शालिग्रामादि की मूर्तियां गंगा में फेंक दी थीं और माखनचोर की मूर्तियां भी लोगों ने फेंक दी थीं । जिस पर नगर के लोगों में कोलाहल मच गया । जिन्होंने मूर्तियां फेंकीं थीं उन्होंने कंठियां भी तोड़ डाली थीं। स्वामी जी के साथ उस समय एक व्यक्ति सम्भवतः पण्डित टीकाराम थे ।

ताजियेदारी मूर्तिपूजा है—सैयद मोहम्मद तहसीलदार अनूपशहर ने आकर और हाथ जोड़कर सलाम करके कहा कि स्वामी जी हमारे मत में तो कोई बात मूर्तिपूजा की नहीं है । उत्तर दिया कि एक बात है अर्थात् ताजियेदारी, यह मूर्तिपूजा है । उसने स्वीकार किया कि ठीक है परन्तु हम विवश हैं, हमारी कुछ नहीं चलती ।

कल्याणसिंह सुनार जो यहां का पेशकार था, उसने यह निश्चय किया कि स्वामी जी को यहां लालाबाबू की कोठी से निकलवा दूं और उसने जाकर मीमानचन्द्र से, जो लालाबाबू की रियासत का तहसीलदार था, कहा परन्तु उसने अस्वीकार कर दिया और कहा कि हम नहीं निकालेंगे ।

एक कृष्णानन्द स्वामी उनसे शास्त्रार्थ करने को आये थे परन्तु सामने नहीं आये । न सामना हुआ और न शास्त्रार्थ । इस बार स्वामी जी डेढ़ महीने रहे । इस बार चर्चा बहुत हुई । जो उनके अनुयायी हो गये थे, लोग उनको जाति से निकालने के लिए पीछे पड़े ।

ला० गौरीशंकर कायस्थ श्रीवास्तव संचालक टाल बांस गंगातट अनूपशहर वर्णन करते हैं कि प्रथम जब कर्णवास की ओर आये तो रुग्ण थे । दो तीन दिन रुग्ण रहे । हमको कहा कि तुलसीदल घोटकर और कुछ काली मिर्च डालकर लाओ, उसको पीकर नीरोग हो गये । हमने रोटी के लिए कहा तो बोले कि हम नहीं खायेंगे । अन्त में हमने अनुरोध करके मूंग की दाल में सोंठ डालकर पिलाई । वह नीरोग हो गये ।

"हमें रोटी की पर्वाह नहीं"—जिन दिनों पहले स्वामी जी आये थे उस समय यहां एक रामदास वैरागी परमहंस राजा बूंदी वाले का गुरु रहता था । उससे स्वामी जी का बहुत प्रेम था । रामदास मूर्तिपूजा नहीं करता था । स्वामी जी जब अनूपशहर को जाने लगे तब रामदास ने कहा कि तुम भागवत का खंडन करते हो और नगर में कथा हो रही है, कोई रोटी को भी नहीं पूछेगा । स्वामी जी ने कहा कि हमें पर्वाह नहीं, हमारा प्रारब्ध हमारे साथ है । यहां जब तक आते रहे कभी वस्त्र नहीं पहनते थे । पहली बार संवत् १९२४ के वर्ष में कर्णवास से आकर हमारे टाल में आठ दिन रहे । उस समय यहां रामदास बाबा परमहंस, एक दक्षिणी स्वामी और सूरजपुरी मौजबाबा परमहंस भी थे । मौजबाबा ने दक्षिणी को कहा कि दयानन्द आये हैं, वे यद्यपि तुम्हारे हमारे मत की कहते हैं परन्तु गृहस्थी लोगों के विरुद्ध हैं । दक्षिणी स्वामी जी ने सूरजपुरी को भेजा, वह कई बार गये । स्वामी जी बुद्धिपूर्वक उत्तर देते थे । दक्षिणी स्वामी बार-बार उनको भेजते थे । अन्त में सूरजपुरी ने एक बात पूछी । स्वामी जी ने कहा कि तुम्हारी मोटी बुद्धि इसको नहीं समझती है । स्वामी जी ने उदाहरण दिया कि चीनी को रेत में डाल दो, उसको हाथी नहीं निकाल सकेगा, परन्तु चींटी निकाल देगी । ऐसे ही सूक्ष्म बातों को मोटी बुद्धि वाले नहीं समझते । फिर स्वामी जी यहां से गढ़मुक्तेश्वर की ओर चले गये और जब गढ़मुक्तेश्वर की ओर से लौटे तो नर्मदेश्वर में रहे । उस समय एक मास तक यहां रहे । वहां लोगों ने एक टट्टी लगा दी थी और धान की पियार नीचे और उसके ऊपर चटाई बिछा दी थी । रात को उसके ऊपर पड़े रहते थे । फिर यहां से कर्णवास की ओर चले गये । पहले पहल यहां स्वामी जी भादों में आये थे और लौटकर सर्दी के दिनों में आये । फिर दो तीन वर्ष के पश्चात् यहां आये, जिससे पहले ग्राम रामघाट

पर कृष्णानन्द से उनका झगड़ा (शास्त्रार्थ) हो चुका था । मैंने सुना है कि कृष्णानन्द आया । मौलवी सैयद मोहम्मद तहसीलदार ने कृष्णानन्द से जाकर कहा कि तुम शास्त्रार्थ कोठी में चलकर करो । न कृष्णानन्द वहां गये और न स्वामी दयानन्द जी यहां आये । उन दिनों सच्चिदानन्द सरस्वती भी वहां उतरे हुए थे । इस बार स्वामी जी पहले दो दिन हमारे टाल पर, फिर लालाबाबू की कोठी में जा रहे । सम्भवतः पन्द्रह दिन रहे थे । फिर यहां से गढ़[१६] की ओर चले गये और जब लौटे तो यहां केवल एक दो दिन रहे । उन दिनों यहां पर बलकेश्वर, रविशंकर तथा कुछ अन्य मनुष्यों ने मूर्तिपूजा अवश्य छोड़ दी थी परन्तु स्वामी जी के चले जाने के पश्चात् वह जाति के डर के मारे फिर करने लगे । प्रत्येक स्थान पर उनके पास बहुत से पण्डित लोग आते थे परन्तु सामने आकर उनके प्रबल युक्तियुक्त और जोरदार भाषण के आगे सबके होश उड़ जाते थे । बाबा रामदास और दयानन्द जी बराबर बैठ जाते थे और हम दोनों पंखा किया करते थे । रघुनाथसहाय पुजारी, शालिग्राम वैश्य, बद्रीदत्त वैश्य, सब ने स्वामी जी का समर्थन किया ।

विष को न्यौलीक्रिया से निकाल दिया, विष देने वाले को कैद से छुड़ाया—अनूपशहर की एक घटना यह भी है कि एक दिन उनके मूर्तिखण्डन से तंग आकर एक ब्राह्मण ने उनको पान में विष दे दिया । उन्होंने जान लिया और भीतर जाकर न्यौली कर्म करके बड़ी कठिनाई से बचे । उस मनुष्य को कुछ न कहा । सैयद मोहम्मद साहब तहसीलदार ने उस मनुष्य को किसी प्रकार बन्दी बना लिया । वह स्वामी जी के पास नित्य आता और उनसे बहुत प्रीति करता था । बन्दी बनाने के पश्चात् जब वह आया तो स्वामी जी ने उससे बोलना बन्द कर दिया । वह मन में प्रसन्न था कि मैंने स्वामी जी के शत्रु को बन्दी कर लिया है । **जब स्वामी जी के पास आया तो स्वामी जी ने उससे बोलना बन्द कर दिया ।** जब उसने कारण पूछा तो स्वामी जी ने कहा कि मैं संसार को बन्दी बनाने नहीं आया प्रत्युत बन्धन से छुड़ाने आया हूं । वह यदि अपनी दुष्टता को नहीं छोड़ता तो हम अपनी श्रेष्ठता का त्याग क्यों करें ? अन्त में तहसीलदार साहब ने अपील करवाकर उसे छुड़वा दिया ।

ठाकुर जी को लगाये भोग का उच्छिष्ट नहीं खाया—कर्णवास के वृत्तांत में पण्डित भूमित्र जी[१७] ने ठाकुर शेरसिंह की अपेक्षा यह अधिक बताया कि जब आरम्भ में स्वामी जी आये तो पण्डित भगवानदास भागवती उनको अपने यहां साथ लाये और अपने मन्दिर में ठहराया । भोजन के समय उसने ठाकुर जी को भोग लगाकर स्वामी जी को खिलाना चाहा । स्वामी जी ने कहा कि हम उच्छिष्ट पदार्थ को नहीं खाते; जिस पर पीछे पण्डित जी को बिना भोग लगाये ही खिलाना पड़ा ।

जब **टीकाराम** गुरु स्वामी जी से मिलकर रामघाट से आये उस समय के विषय में बतलाया है कि स्वामी जी से उन्होंने धर्म विषय में सब प्रकार का शंका समाधान किया और स्वामी जी के कथन पर दृढ़ विश्वास हुआ । वहां से चलकर कर्णवास में आकर उसने ठाकुर गोपालसिंह, घोड़लसिंह, जयरामसिंह, धर्मसिंह, कुंवर शेरसिंह, भूमसिंह[१८] आदि से कहा 'कि एक महात्मा बड़े विद्वान् हमको रामघाट में मिले । उनसे हमको निश्चय हुआ कि वेद-शास्त्रों में मूर्तिपूजा बिल्कुल नहीं है, अष्टादश पुराण भी झूठे हैं और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन वर्णों की एक ही गायत्री है । इसलिए हम तुम्हारे मन्दिर की पूजा छोड़ते हैं, आप किसी और को पुजारी कर दीजिए । हम इस काम को नहीं करेंगे, तुमको भी उचित है कि इस धर्म को छोड़ो, अपने यज्ञोपवीत कराकर वेदोक्त धर्म को स्वीकार करो और उन महात्मा को बुलाओ ।' अतः स्वामी जी यहां आये, पूर्वोक्त क्षत्रियों का यज्ञोपवीत कराया और यह लोग मूर्तिपूजा और पुराणों की कथा से घृणा करके वेदोक्त धर्म में तत्पर हुए । इस बार स्वामी जी ने यहां बहुत समय तक निवास किया । प्रतिदिन अहमदगढ़, अनूपशहर, रामघाट, अतरौली और देश देशान्तर के पण्डित तथा संन्यासी लोग आकर उनसे शास्त्रार्थ किया करते थे परन्तु सबकी पराजय होती थी । बड़े-बड़े राजा और रईस दूर-दूर देशों के यहां पर उनके दर्शन को आया करते थे । प्रातःकाल से रात के ग्यारह बजे तक स्वामी जी के पास सौ-पचास मनुष्य प्रतिदिन बैठे रहते थे और अनेक प्रकार की धर्म विषयक चर्चा किया करते थे । इसी

बीच में ठाकुर गोपालसिंह जी ने उनके लिए एक पृथक् कुटी बनवा दी और एक तख्त भी उसमें डलवा दिया। स्वामी जी महाराज यहां से रात्रि के दो बजे गंगा के किनारे के लिये उठ जाते थे। वहां पर गंगा में गोता लगाकर समाधि मारकर बैठ जाते थे (यह स्थान बिल्कुल गंगातट पर था) । यहां घंटा भर दिन चढ़े समाधि के लिये उठकर व्यायाम करके फिर उस कुटी में आ जाते थे। उनके आने तक मनुष्यों की भीड़-भाड़ हो जाती थी, क्योंकि वह स्थान जहां स्वामी जी ध्यान किया करते थे यहां से दूर और एकान्त झाड़ी में था, इसलिए लोग उधर ही को टकटकी लगाये देखते रहते थे। जब स्वामी जी आते, धर्मचर्चा शास्त्रार्थादि आरम्भ हो जाते। इसी बीच में एक दरोगा अलफखां यहां आये थे। उन्होंने कुरआन के विषय में कुछ बातचीत की। स्वामी जी ने भी कुरआन के विषय में संस्कृत में कुछ पूछा। गुरु टीकाराम जी ने उल्था करके सुनाया परन्तु स्वामी जी के आक्षेप का उत्तर दरोगा जी से कुछ न बन सका।

वेदानुकूल आचरण करने से शुद्धि—इसी समय रईस धर्मपुर जो नव मुस्लिम हैं, स्वामी जी के दर्शन को आये। उन्होंने अपने मुसलमान होने के विषय में कहा कि क्या हम भी किसी प्रकार शुद्ध हो सकते हैं ? तब स्वामी जी ने कहा कि तुम वेदानुकूल अपने आचरण करो तो अवश्यमेव हो जाओगे।

इसी फेरे में एक शास्त्रार्थ यहां बड़े जोर का हुआ कि जिसमें अनूपशहर निवासी पण्डित हीरावल्लभ कि जिनको ऋग्वेद तथा यजुर्वेद की दोनो संहिताएं कंठाग्र थीं और व्याकरण भी अच्छा जानते थे, सम्मिलित थे तथा अनूपशहर के दूसरे पण्डित बलकेश्वर तथा और भी दूर देश के पण्डित इसलिए एकत्रित हुए थे कि स्वामी जी से शास्त्रार्थ मूर्तिपूजा के विषय पर करेंगे। वहां पण्डित हीरावल्लभ ने प्रण किया—यदि मैं मूर्तिपूजा के शास्त्रार्थ में स्वामी जी से जीतूंगा तो पूजा करूंगा अन्यथा छोड़ दूंगा। शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ—हीरावल्लभ भी संस्कृत बोलते थे। पण्डित हीरावल्लभ ने सब पंडितों की ओर से शास्त्रार्थ प्रारम्भ किया। उस दिन लगभग नौ घंटे तक शास्त्रार्थ होता रहा। अन्त में पण्डित हीरावल्लभ ने सब पंडितों के मध्य में स्वामी जी की प्रशंसा की और अपनी मूर्तियों को लेकर गंगा में पधरा दिया और उच्च स्वर से कहा कि मूर्तिपूजा वेदोक्त नहीं है।

पंडित कृष्णवल्लभ जी पुजारी मन्दिर, कर्णवास निवासी ने वर्णन किया कि एक दिन एक रानी हमारी यजमान आई हुई थी। उस दिन हम रामानुज का त्रिपुण्ड्र[१९] माथे पर लगाकर स्वामी जी के पास गये। स्वामी जी ने पूछा कि आज क्या कारण है ? मैं उत्तर देने को ही था कि कहने लगे 'हम समझ गये, आज तेरे यजमान आये हैं।' फिर पूछा, 'बतलाओ क्या दान मिला।' मैंने कहा कि गुप्त है। बोले कि अच्छा।

इसके पश्चात् कहने लगे कि अंगद शास्त्री (पीलीभीत वाले) की चिट्ठी हमारे पास आई और हमने उसका यह उत्तर लिखा है। अंगद शास्त्री की इस चिट्ठी के अन्त में यह श्लोक अंगदराम ने लिखा था, जो मुझे स्मरण है—

शेषः पातालके चास्ति स्वर्लोके च बृहस्पतिः। पृथिव्यामङ्गदः साक्षात् चतुर्थो नैव दृश्यते।

सारांश यह कि अंगदराम ने बहुत-सी अपनी प्रशंसा संस्कृत में लिखी थी। स्वामी जी ने मुझसे पूछा 'क्या अंगद ऐसा ही है ?' मैंने कहा कि मैंने उसको देखा नहीं तो क्या कहूं। स्वामी जी ने कहा कि 'रंडाचार्य्यस्य का गणना' अर्थात् इसके सामने रंडाचार्य[२०] की क्या गिनती ! फिर उन्होंने मुझे अपनी लिखी हुई वह चिट्ठी दिखलाई जो अंगदराम के नाम लिखी थी। वह चिट्ठी संस्कृत में थी और बहुत लम्बी थी। मैंने पढ़ी, और वृत्तांत तो मुझे स्मरण नहीं रहा परन्तु उसके नाम के तीन अक्षरों 'अं ग द' के आठ-आठ खण्ड करके बहुत जोरदार चिट्ठी लिखी थी और उसके अहंकार की दुर्गति की। वह सारा पत्र देखने से सम्बन्ध रखता था। बहुत उत्तम खंडन किया था। यहां स्वामी जी पांच-छः मास रहे। दो-तीन बार आये थे।

मेरे पिता नन्दकिशोर जी से स्वामी जी के निम्नलिखित प्रश्नोत्तर हुए थे। स्वामी जी ने हमारे मूर्तिपूजन पर कहा—'घंटानादेन अलम्'। उन्होंने अर्थात् मेरे पिता जी ने कहा कि ऐसा न कहो, हम इसी के प्रताप से सात हजार के स्वामी हैं। स्वामी जी ने कहा—'एवं मा वद प्रारब्धेन कृतः अर्थात् ऐसा मत कहो, यह इस मूर्ति ने नहीं दिया, प्रारब्ध से हुआ है। पिता जी ने कहा कि आप भी ऐसा न कहें। प्रारब्ध में लिखा है या नहीं इसका क्या पता है। स्वामी जी ने कहा कि तुम चौबारे में जा बैठो तो भी जो प्रारब्ध में होगा वह सब हो ही रहेगा।'

मेरे पिता जी ने कहा कि महाराज आपका वाक्य तो सत्य है (इतने में मैं बोल उठा) कि महाराज आपके वाक्य तो सत्य हैं परन्तु हमको यहीं बैठे रहने दो।

स्वामी जी बोले-मैंने जान लिया सब पुरुषों के मध्य में तू चतुर अथवा सियाना है।

'वे तो मानो बृहस्पति हैं'—अम्बादत्त शास्त्री: मेरे पिता जी ने सुविख्यात पंडित अम्बादत्त अनूपशहर निवासी से पूछा कि आपका स्वामी जी से शास्त्रार्थ हुआ है, वे कैसे विद्वान् हैं? उसने आवेश में आकर दोनों हाथ उठा कर पृथ्वी पर मारे और कहा कि भाई क्या कहूं वह तो मानो बृहस्पति का अवतार है।

जब पंडित अम्बादत्त का अनूपशहर में स्वामी जी से शास्त्रार्थ हुआ था, उस समय वह अधिक वृद्ध होने और संस्कृत बोलने का अधिक अभ्यास न होने के कारण हांफने लगा था, श्वास चढ़ गया था। तब स्वामी जी ने कहा—'ममाऽभ्यासः, त्वं वृद्धोऽसि, मूको भव, मया ज्ञातम्; तव समानोऽनूपशहरमध्ये पण्डितो नास्ति'। अर्थात् मेरा अभ्यास है तू वृद्ध है इसलिए सन्तोष कर, मौन हो जा। मैंने जान लिया, तेरे जैसा अनूपशहर में पंडित नहीं है।

देश की दुर्दशा करने वालों पर क्रोध—मास्टर गोपालसिंह वर्मा, कर्णवास निवासी, ने वर्णन किया कि पहली बार स्वामी जी हरिद्वार की ओर से दिगम्बर वेश में विचरते हुए संवत् १९२४ में कर्णवास पधारे। कई मनुष्यों ने नगर में आकर कहा कि एक महात्मा वेद के जानने वाले और संस्कृत भाषा बोलने वाले आये हैं। सन्ध्या-समय मैं और कुंवर शेरसिंह वर्मा ने जाकर उनका दर्शन किया। उन्होंने संस्कृत में हमसे पूछा कि तुम कौन वर्ण हो? हमने कहा कि क्षत्रिय हैं। पूछा कि तुम्हारा यज्ञोपवीत हुआ है? हमने कहा कि रीति के अनुसार हमारा यज्ञोपवीत विवाह पर कराते हैं; जिसमें शेरसिंह का तो विवाह हो गया था उसका यज्ञोपवीत भी हो गया, मेरा विवाह नहीं हुआ इसलिए यज्ञोपवीत भी नहीं हुआ। महाराज ने उत्तर में कहा कि संजोगड़ों ने इस देश को बिल्कुल भ्रष्ट कर दिया है और इन पोप पंडितों ने बिगाड़ रखा है। जैसे दो चार मढ़ी वाले साधु लोगों को यह गुरुमंत्र सिखलाते हैं 'कम्पनी[२१] किसकी जोरू, संध्या[२२] किसका साला, पी प्याला, मार भाला, लगे दम'! इस अवस्था में किस प्रकार देश की उन्नति हो सके। ऋतु जाड़े की और महीना पौष का था। महाराज के पास लंगोटी के अतिरिक्त और कुछ न था। दो चार लड़कों ने तालाब से कुछ लड़सी (एक प्रकार की घास) लाकर एक उदासी की कुटिया में डाल दी (यह कुटिया जहां अब हवनकुंड बना है उसके पीछे थी, अब नहीं रही) उसी घास को आधा ऊपर ओढ़ लेते और आधा नीचे बिछा लेते थे। दिन में नौ बजे से गंगातट पर जाकर ११ बजे के लगभग लौटते। एक दिन पंडित भगवानदास नगरनिवासी ने महाराज का न्यौता किया। फुल्का, कढी, भात, खीर—खाना खिलाया। दूसरे दिन उक्त पण्डित से स्वामी जी ने तिलक का खण्डन किया जिसको पंडित जी ने बहुत बुरा माना और कहा कि यह अंग्रेजों के भेजे हुए, मत के बिगाड़ने को आये हैं। इस बार स्वामी जी पांच दिन रहे और **रामघाट** की ओर चले गये।

दूसरी बार जो महाराज यहां पधारे उसका कारण यह था कि गुरु टीकाराम ने राजघाट जाकर स्वामी जी से मूर्तिपूजा के बारे में अपने सन्देह निवृत्त किये और कर्णवास आकर ठाकुर गोपालसिंह व ठाकुर कर्णसिंह के गंगामन्दिर की पूजा छोड़

दी। इसलिए स्वामी जी को बुलाया गया। जब वह आये तो इन ठाकुरों और ठाकुर रघुनन्दनसिंह, जयरामसिह व धर्मसिंह आदि ने यज्ञोपवीत कराया जिसमें अनूपशहर के पंडित बलकेश्वर तथा एक और पंडित वेदपाठी थे और सब ने इस विधि को स्वीकार किया। इस बार लगभग एक मास रहे।

तीसरी बार संवत् १९२८ अर्थात् सन् १८७१ में कुंवर लक्ष्मणसिंह, पंडित नाताराम, गिरधर ब्राह्मण, मुंशी ख्यालीराम ककोड़ा निवासी और मुझको तथा इसके अतिरिक्त और भी कई व्यक्तियों को यज्ञोपवीत दिया। इसी बार राव कर्णसिंह रईस बरौली गंगा जी के स्नानार्थ आये और स्वामी जी से उनकी बात-चीत हुई। इस बार लगभग तीन मास रहे।

कुंवर लक्ष्मणसिंह जी और ठाकुर कृष्णसिंह जी ने वर्णन किया कि 'जब स्वामी जी तीसरी बार आये तो दो-चार दिन रहकर अनूपशहर की ओर चले गये। इसी बीच में हमारे वृद्धजनों ने यज्ञोपवीत की सामग्री हमारे लिए इकट्ठी कर ली। फिर अनूपशहर से चार-पांच पंडित बुलाये। अन्य स्थानों से भी पंडित लोग आये थे। आठ-सात दिन तक हवन होता रहा। मेरे साथ आठ-दस ब्राह्मणों के यज्ञोपवीत हुए। लगभग एक मास रहे थे। यहां से छलेसर के लोग आये और ले गये। मेरा यज्ञोपवीत कार्तिक संवत् १९२८ तदनुसार नवम्बर, सन् १८७१ में हुआ था। उसी समय सहाराम, नाथूराम, भजना, राधावल्लभ, ठाकुर बलदेवसिंह और चंदूबाई के मनुष्यों का भी हुआ था।'

गायत्री मंत्र के उच्च स्वर से पठन में हानि नहीं; कोई सुने—एक दिन मैं उनके पास बैठा हुआ गायत्री मंत्र जोर से पढ़ रहा था। एक पंडित आये और मुझ पर कुपित हुए कि गायत्रीमन्त्र को ऐसे जोर से मत पढ़ो, नीच जाति के लोग सुनते हैं। स्वामी जी ने उसको बहुत धमकाया था जिस पर वह चुप कर रहा और मुझे कहा कि निःशंक होकर उच्च स्वर से पढ़ो।

"सूतक कोई चीज नहीं"—ठाकुर शिवलाल वैश्य रईस डिबाई जिला बुलन्दशहर ने वर्णन किया कि माघ बदि १५ संवत् १९२४ (२४ जनवरी, सन् १८६८ शुक्रवार) सूर्यग्रहण के पर्व पर गंगास्नान करने के लिए स्थान कर्णवास गया। वहां पर श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती से भेंट हुई। चूंकि उनकी विद्वत्ता की प्रशंसा मैं प्राय: लोगों से सुन चुका था इसलिए कुछ थोड़ा सा मिष्ठान्न लेकर उनकी सेवा में उपस्थित होकर यह प्रार्थना की कि महाराज ! आप इसमें से कुछ सेवन कीजिए। उन्होंने उत्तर दिया कि इस समय कुछ क्षुधा नहीं। दूसरी बार कहने पर उसमें से थोड़ा सा लेकर मुख में डाल दिया और कहा कि शेष को बांट दो। उनकी आज्ञानुसार उसको बांट दिया गया। तत्पश्चात् मैंने अन्य उपस्थित लोगों की सम्मति से महाराज से पूछा 'आज जो सूर्यग्रहण का पर्व है उसका सूतक किस समय तक मानना चाहिए'? स्वामी जी ने उत्तर दिया कि सूतक कोई चीज नहीं। फिर मैंने पूछा कि महाराज ! भोजन किस समय पाना चाहिए'? उत्तर दिया कि जब क्षुधा लगे। फिर मैं वहां से उठकर और गंगास्नान करके तथा भोजन से निवृत्त होकर महाराज की सेवा में पहुंचा। उस समय एक ब्राह्मण महाराज के लिए भोजन (अरहर की दाल और फुल्का) लाया। महाराज हाथ धोकर भोजन करने लगे और मुझको आज्ञा दी कि तुम बैठे रहो। जब भोजन पा चुके तब मैंने सृष्टि उत्पत्ति के विषय में पूछना आरम्भ किया। महाराज उन दिनों संस्कृत बोलते थे, मैं उनके उत्तर को भली प्रकार न समझ सकता था, तब उन्होंने पंडित टीकाराम को बुलाकर कहा कि तुम इनको समझाते जाओ। जो बातें महाराज कहते गये वह भली प्रकार समझाते गये जिससे मेरा भली-भांति सन्तोष हो गया। तब उन्होंने कहा कि तुम मनुस्मृति को सुनो, मैंने स्वीकार किया।'

इस स्थान पर यह बात भी वर्णन करने योग्य है कि बहुत से लोग जो सूर्यग्रहण के समीप वहां आये हुए थे, परन्तु सूर्यग्रहण का ज्ञान न होने के कारण दोपहर के तीन बजे तक न तो उनमें से किसी ने स्नान किया और न भोजन पाया। तत्पश्चात् जब सब स्नान करके भोजन पाने लगे तो सूर्यग्रहण पड़ना आरम्भ हो गया। उस समय मैं महाराज के पास बैठा

था। भंगी लोग इस प्रकार पुकारने लगे 'दान करियो, ग्रहण पड़े है। यह सुन कर और निरीक्षण करके महाराज जोर से हंसे और कहने लगे, सोचते नहीं है, उस समय तो भोजन न पाया और ठीक ग्रहण के समय भोजन करने लगे, देखो इनकी विलक्षण नीति है।'

श्रेष्ठता शुभ कर्मों से है परन्तु संस्कार अवश्य होना चाहिए—दूसरी बार स्वामी जी मुझे फागुन बदि १३, संवत् १९२४ तदनुसार २१ फरवरी, सन् १८६८ को कर्णवास में मिले। पहुंच कर क्या देखता हूं कि आप दो चार ठाकुरों और वैश्यों के लड़कों के उपनयन संस्कार कराने का प्रयत्न कर रहे हैं। मैंने जाकर नमस्कार किया और यज्ञोपवीत के विषय में-जिसका कराना मुझे भी स्वीकार था, प्रश्न किया।

प्रश्न—महाराज यदि यज्ञोपवीत न हो तो क्या हानि है ? स्वामी जी ने उत्तर दिया-कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का उपनयन संस्कार होना अवश्य है क्योंकि जब तक उपनयन संस्कार नहीं होता मनुष्य को वैदिक कर्म करने का अधिकार नहीं होता।

प्रश्न—एक व्यक्ति उपनयन संस्कार तो करा ले परन्तु शुभ कर्म न करे और दूसरा उपनयन संस्कार न करावे और सत्यभाषाणादि कर्मों में तत्पर हो तो उन दोनों में कौन श्रेष्ठ है ?

स्वामी जी ने उत्तर दिया—श्रेष्ठ **वह जो उत्तम कर्म करता** है परन्तु संस्कार होना आवश्यक है : **क्योंकि संस्कार न होना वेदशास्त्रों के विरुद्ध है** और जो वेद शास्त्र के विपरीत करता है वह ईश्वरीय आज्ञा को नहीं मानता और ईश्वराज्ञा को न मानना मानो नास्तिक होने का लक्षण है।

यज्ञोपवीत, सन्ध्या, बलिवैश्वदेव आदि का विशेषतया उपदेश—पण्डित बलदेव जी गौड़, ब्राह्मण डिबाई निवासी ने वर्णन किया कि स्वामी जी जब राजघाट या रामघाट की ओर से भादों बदी दशमी, संवत् १९२४ तदनुसार २४ अगस्त सन् १८६७ को कर्णवास में आये, तब मैं गंगास्नान के दूधलीला के मेले पर गया था और मेले से निबट कर जब मैं ग्राम की ओर जाने लगा तब वहां पर मुझे पण्डित टीकाराम जी गुरु कर्णवास निवासी ने कहा कि एक बड़े विद्वान् आये हैं जो कृष्णानन्द सरस्वती गुजराती ब्राह्मण बांदा निवासी से भी बहुत विद्वान् हैं, केवल संस्कृत बोलते हैं। मैं उनके मुख से स्वामी जी की प्रशंसा सुनकर उनके दर्शन को गया। वह उस समय पक्के घाट पर बसेन्दु के पेड़ के नीचे टिके थे। मैंने जाकर प्रणाम किया, वह संस्कृत बोलते थे, कोई वस्त्र नहीं था; केवल एक लंगोटी थी परन्तु वह वैरागी लोगों की भांति न थी; प्रत्युत ५ गज लम्बी और ६ गिरही चौड़ी थी। गंगा रज शिर पर तो लगाते थे परन्तु माथे पर नहीं। स्वामी जी ने मुझ से संस्कृत में पूछा कि तुम कहां के रहने वाले हो ? मैंने कहा कि डिबाई का। फिर पूछा कि तुम कौन हो ? मैंने कहा कि गौड़ ब्राह्मण हूं। फिर पूछा कि संध्या करते हो या नहीं ? मैंने कहा कि महाराज संध्या करता हूं और गायत्री का जप भी करता हूं। तब उन्होंने कहा कि 'समीचीनम्'। बलिवैश्वदेव (यज्ञ) करते हो या नहीं ? मैंने कहा कि चावल और घृत से करता हूं। कहने लगे कि अच्छा हम तुमको बलिवैश्वदेव (यज्ञ) की विधि लिख देंगे। उन दिनों महाराज जी का उपदेश यज्ञोपवीत, संध्या, बलिवैश्वदेव आदिक का अधिक था और यह भी उस समय कहते थे कि तीनों वर्णों की गायत्री एक ही है। मैंने कहा कि यह ब्राह्मण लोग तो तीनों वर्णों की पृथक्-पृथक् बतलाते हैं। कहने लगे कि यह 'गप्पाष्टक' है (यह शब्द उस समय पोप के स्थान पर प्रयुक्त करते थे)।

नंगे शरीर पर मिट्टी के लेप से लाभ—उस बार स्वामी जी दशमी के दिन वहां आकर उदासी की कुटी में रात को रहे थे। वह उदासी उनकी बहुत सेवा करता था। स्वामी जी रात को भी वस्त्र नहीं ओढ़ते थे, फूस कुछ टांगों पर और कुछ पेट पर डाल लेते थे। तीन बजे से पांच बजे तक समाधि लगाते थे। फिर उसी समय बाहर शौच को जाते परन्तु कोई

पात्र न ले जाते। वहां गंगा तट पर ही सब काम कर आते थे। वहीं लंगोटी धोकर सुखा लेते परन्तु एकान्त स्थान में जाकर नहाते और शरीर पर अच्छी प्रकार मृत्तिका लगाकर चले आते थे। मैंने पूछा कि महाराज ! आप इतनी मृत्तिका क्यों लगाते हैं ? कहने लगे कि वायु प्रवेश नहीं होता, शरीर नीरोग रहता है। उस समय भी सैकड़ों मनुष्य आते थे। जब उसके दूसरे दिन मूर्तिपूजन और पुराणादि का खंडन आरम्भ किया तो हमने पूछा कि महाराज सत्य क्या है ? स्वामी जी बोले 'महाभारत, वाल्मीकि रामायण, मनु, वेद यह सत्य हैं, और सब 'गप्पं वर्तते'। फिर वहां से चला आया। पीछे सुना कि वह अनूपशहर चले गये और अनूपशहर के पण्डित अंबादत्त से उनकी वार्ता हुई। जिसपर उन्होंने स्वामी जी की बहुत प्रशंसा की और कहा कि ऐसा विद्वान् पण्डित कोई आज-कल दिखलाई नहीं देता, और उस समय अंबादत्त का पुत्र गुरुदत्त उनका आज्ञावर्ती हुआ। जब दूसरी बार स्वामी जी कर्णवास आये तब झन्नालाल, सदासुख, कल्लू आदि वैश्यों और ठाकुर लक्ष्मणसिंह आदि राजपूतों-कुल लगभग १२ मनुष्यों के यज्ञोपवीत हुए। इसी बार कहा कि महाभारत में युद्धपर्व और भीष्मोपदेश के अतिरिक्त और बहुत स्थानों पर गप्प है और मनुस्मृति और रामायण में भी गप्प है।'

झन्नालाल वैश्य बारहसेनी डिबाई निवासी ने वर्णन किया—'मैं कर्णवास में गंगास्नान को गया था क्योंकि पण्डित भगवानदास के यहां दूधलीला थी। उसी दिन अर्थात् भादों बदि दशमी या एकादशी, संवत् १९२४ (२४ या २५ अगस्त सन् १८६७) को स्वामी जी वहां आये थे। हम उनके पास गये। स्वामी जी ने पूछा 'त्वं कोऽसि ?' अर्थात् तुम कौन हो। मैंने कहा कि वैश्य हूं। फिर पूछा कि तुम्हारा यज्ञोपवीत हुआ है ?-मैंने कहा नहीं। कहने लगे कि तुम यज्ञोपवीत करा लो। इस बार स्वामी जी केवल दस-पन्द्रह दिन रहे थे। फिर वहां से सोरों तक गये और फिर लौटकर हरिद्वार की ओर गये, वहां से लौटते समय अनूपशहर से होते हुए फागुन के महीने में कर्णवास आये और हम भी उसी फागुन में कर्णवास गये। तब स्वामी जी ने हमारा यज्ञोपवीत कराया और घोड़लसिंह, मुकुन्दसिंह, गोपालसिंह व किशनसिंह के यज्ञोपवीत कराये। हवन एक दिन हुआ परन्तु तब दश दिन कराया था। जप करने वाले हीरावल्लभ, बलकेश्वर, टीकाराम आदि पण्डित थे। मुझे और कुछ स्मरण नहीं। मैंने मुन्नालाल की शालिग्राम की मूर्ति उसकी सम्मति से कुंए में डाल दी थी जिस पर नगर के लोग क्रोधित हो गये थे।'

यज्ञोपवीत के लिये नियम—सदासुख वैश्य डिबाई निवासी ने वर्णन किया कि 'हम भी यज्ञोपवीत के लिए स्वामी जी के पास गये। स्वामी जी ने हमसे आज तक यज्ञोपवीत न लेने का कारण पूछा। हमने कहा कि हमारे बाप, दादा, परदादा ने कभी यज्ञोपवतीत नहीं लिया। स्वामी जी ने कहा कि यह वैश्य का धर्म है, संस्कार अवश्य कराओ परन्तु घर में कलह न डालना। हम उद्यत हो गये। कार्तिक संवत् १९२८ तदनुसार नवम्बर, सन् १८७१ में यज्ञोपवीत हुआ था। मैयाराम, कल्लू, जीवना ब्राह्मण, बलहा ब्राह्मण, हीरा मुखिया ब्राह्मण, ठाकुर लक्ष्मणसिंह तथा दो और लड़के ठाकुरों के थे। ठाकुरों ने तीन चार सौ रुपये व्यय किये थे। तीन दिन हवन हुआ था। हमारे लिए प्रायश्चित के रूप में पन्द्रह दिन जप तीन ब्राह्मणों ने किया था। कुल दस ग्यारह ब्राह्मण थे। स्वामी जी ने स्वयं वेदी की विधि बतलाई। तीन वेदी एक ओर, तीन दूसरी ओर, बीच में कुंड खोदा। स्वामी जी उच्चारण की शुद्धि करवाते जाते थे और कहते थे कि लीला मत करो, स्पष्ट पढ़ो। यज्ञोपवीत के समय हमें इन चीजों का निषेध किया कि झूठ न बोलना, गर्भवती स्त्री से भोग न करना, फूटे स्थान पर न बैठना। मैंने कहा कि महाराज अपनी स्त्री से भी न करें। स्वामी जी ने कहा कि अपनी से तो यह निषेध ही है अन्यथा परस्त्री से तो स्वप्न में भी न करे और न कुदृष्टि से देखे।'

अंगनलाल शर्मा तथा रामसहाय शर्मा गौड़ डिबाई निवासी ने वर्णन किया —'स्वामी जी भादों शुद्धि चौदस, संवत् १९२८ तदनुसार २८ सितम्बर, सन् १८७१ की रात को कर्णवास से अनूपशहर में आये थे। टाल से होकर लालाबाबू की कोठी में उतरे। हम जब प्रातःकाल डिबाई से चलने लगे तो हमें ज्ञात हुआ कि स्वामी जी आज कर्णवास से अनूपशहर

गये हैं । जब हम अनूपशहर पहुंचे, खोज की; प्रथम पता न मिला परन्तु शाम के सात बजे एक अच्छे ब्राह्मण ने हलवाई की दूकान पर चर्चा की कि अभी स्वामी जी कर्णवास से आकर टालों में और वहां से लालाबाबू की कोठी में ठहरे हैं । हम दोनों गये, कुछ मिष्ठान्न उनके लिये ले गये । स्वामी जी उस समय लालाबाबू की कोठी के गंगा की ओर वाले चबूतरे पर बैठे हुए थे और पण्डित टीकाराम जी चन्दौसी वाले उनके साथ थे । स्वयं टीकाराम जी के मुख से विदित हुआ कि उन्होंने अपनी मूर्ति गंगा में, स्थान रामघाट पर फेंक दी थी । उस समय रात को डेढ़-दो घंटे हम दोनों स्वामी जी के हाथ-पांव दबाते रहे । इन दिनों भी स्वामी जी नग्न रहते थे ।'

रात के १२ बजे स्वामी जी सो रहे, ४ बजे प्रातः जागे और उठकर वहां से चल दिये । पंडित टीकाराम लोटा भर कर स्वामी जी के पास छोड़ आया । शौच करके स्वामी गंगा में एक ओर स्नान करने चले गये और स्नान, ध्यान तथा समाधि से निवृत्त होकर ८ बजे लौटे । उनके आने के पश्चात् सैकड़ों मनुष्यों का आगमन प्रारम्भ हो गया । पूर्णमासी का दिन था, हम वहीं रह गये । सैकड़ों मनुष्य पितरों को जल देने वहां आते थे और दस बीस पंडित भी उपस्थित थे । स्वामी जी ने उस समय अवतार तथा मूर्ति खंडन का बहुत लोगों को उपदेश दिया और कहा कि अरे मूढो ! जल में जल मत डालो; जल यदि डालते ही हो तो किसी वृक्ष की जड़ में डालो ताकि वृक्ष को तो लाभ हो ।

समाधिस्थ दशा में स्वामी जी के दर्शन—रात को स्वामी जी के ऊपर कोई कपड़ा न था । केवल एक चटाई नीचे और एक लंगोटी थी । प्रथम दिन पूर्णमासी को लालाबाबू तहसीलदार ने सेवक से कहा कि महाराज के लिए कोठी खोल दो । स्वामी जी ने कहा कि हम इसमें तब तक नहीं रहेंगे जब तक कोठी साफ न की जावे और धोई न जावे क्योंकि गोरा लोग तक आकर इसके भीतर रहते हैं । जब उसने कोठी की सफाई करा दी तब रहे । तीसरे दिन जब प्रातःकाल हम बैठे तो हम भी शौचादि के लिए चले गये और स्वामी जी भी । जब हम शौच और स्नान करके लौटकर आये तो क्या देखते हैं कि स्वामी जी कोठी के भीतर समाधि लगाये बैठे हैं । जब बहुत समय हो गया तो हमने क्या देखा कि पूर्ववत् समाधि लगी हुई थी और शरीर से ऐसी प्रबल सर्दी में भी पसीने की बूंदें टपक रही थीं ।

जब हम पहले दिन पहुंचे तो हमने नमस्कार किया । स्वामी जी ने पहचान लिया और कहा कि 'बलदेवस्य भ्राता कनिष्ठो वर्तते डिबाई नगरनिवासी' । इन दिनों निरन्तर प्रतिदिन रामावतार, कृष्णावतार और महाभारत की व्यर्थ कथाओं तथा तुलसीदास की रामायण आदि का खंडन करते थे । तत्पश्चात् हम चले आये ।

पंडित शिवलाल ब्राह्मण डिबाई निवासी ने वर्णन किया कि 'मैं तथा गुलजारी लाल कानूनगो स्वर्गीय तथा पंडित गुरुदत्त के पिता पंडित अम्बादत्त, ये सब स्वामी जी के पास लालाबाबू की कोठी में बैठे हुए थे और अम्बादत्त से महादेव की मूर्ति के विषय में चर्चा की । स्वामी जी ने कहा कि महादेव स्वयं अपनी रक्षा तो करते ही नहीं हैं फिर उनकी पूजा से क्या लाभ ? स्वामी जी के वास्तविक शब्द इस प्रकार थे—'महादेवस्थापनं कृत्वा धूपं दीपं नैवेद्यम् इति सामग्री-सहितं पूजनं कृत्वा, तत्पश्चात् कूकुरः मूत्रति ।' अर्थात् जब महादेव की मूर्ति को स्थापन करके धूप, दीप, नैवेद्यादिक सामग्रियों से पूजन करते हैं फिर उसके पीछे अकेला रह जाने के कारण उस पर कुत्ता मूतता है ।' अम्बादत्त ने कहा कि तुम निन्दा करते हो । स्वामी जी ने कहा कि निन्दा नहीं, यह बात प्रत्यक्ष है । फिर कहने लगे कि 'हरः कैलाशे वर्तते' और 'विष्णुः वैकुण्ठे वर्तते' तब तो मूर्तिपूजा किसी प्रकार उचित नहीं । सारांश यह है कि इसी प्रकार की बातें मूर्तिपूजा के विषय में होती रहीं, जिस पर वह मान गये । तब स्वामी जी ने कहा कि यह वास्तव में पण्डित है ।'

लड़कों को नचाने के कारण रामलीला का विरोध—अयोध्याप्रसाद अग्रवाल वैश्य दानपुर निवासी ने वर्णन किया कि 'सन् १८६७ में जबकि मैं तहसील अनूपशहर में लोकल रोड फंड में क्लर्क था, स्वामी जी वहां आये और सती

के मन्दिर में उतरे। मैं केवल एक दिन मिला था। उस समय हकीम अम्बादत्त उनके पास बैठे हुए थे और संस्कृत में परस्पर बातचीत हो रही थी। इतने में एक ब्राह्मण तिलक लगाये और रुद्राक्ष की माला पहने आया। स्वामी जी ने उसे पूछा तुमने यह माला क्यों पहनी है और तिलक क्यों लगाया है? उसने कहा कि यह ब्राह्मण का कर्म है। स्वामी जी ने कहा कि यह ब्राह्मण का कर्म नहीं। तब मैंने निवेदन किया कि आप जो कहते हैं सब सत्य है परन्तु हम गृहस्थी हैं, कुछ बातें विवश होकर करनी पड़ती हैं, अन्यथा वास्तव में मूर्तिपूजादि झूठे हैं, मैं भी उनको बुरा समझता हूं। स्वामी जी ने मेरा समर्थन किया कि निःसन्देह गृहस्थ के धन्धों में बुद्धि ठीक नहीं रहती। फिर मुझे कहा कि तुम रामलीला करते हो यह अच्छी बात नहीं। किसी का स्वांग बनाना और नाचना अच्छा नहीं है। जानकी जी की तस्वीर बनाना और गली-गली फिराना बुरा है। लोग कहते हैं कि देखो यह लड़का कैसा सुन्दर है—यह बात बहुत बुरी है। चूंकि तुम इस काम के मुखिया हो, यह काम मत किया करो। मैंने उसी दिन से महाराज के कथनानुसार छोड़ दी। स्वामी जी महाराज विशालमूर्ति, अत्यन्त सुन्दर युवक, महान् साहसी तथा भले स्वभाव के थे—उस समय नग्न रहा करते थे। तत्पश्चात् मैंने नहीं देखा'।

श्रीकृष्ण शर्मा गौतम ब्राह्मण प्रधान आर्यसमाज दानपुर ने वर्णन किया—'मैं और मेरा बड़ा भाई तुलसीराम तथा सबसे बड़े भाई स्वर्गीय रामलाल हम तीनों स्वामी जी के दर्शन के लिए कर्णवास गये। सर्दी की ऋतु, माघ का महीना तथा मकर की संक्रांति थी। उस समय पक्के घाट पर उतरे हुए थे। दर्शन हुए और हमने भोजन के लिये निवेदन किया। पहले अस्वीकार किया; फिर स्वीकार कर लिया। मेरे बड़े भाई रामलाल शैव थे। उनसे तीन घंटे निरन्तर मूर्तिपूजा पर वार्तालाप हुआ क्योंकि मेरे भाई भी संस्कृत जानते थे। अन्त में मेरे भाई साहब ने उनकी शिक्षा को स्वीकार किया और उसी समय मूर्तिपूजा का विश्वास उनके चित्त से हट गया। फिर कुछ अनमनेपन से मूर्तिपूजा करते रहे। हम लोग उसी समय से आर्य हैं। स्वामी जी हम लोगों से बहुत प्रसन्न हुए और आनन्दपूर्वक भोजन किया। रामलाल से कहा कि तुम फिर मिलना। हमारे बड़े भाई और स्वामी जी—दोनों सुन्दर नवयुवक थे।'

उस दिन प्रथम स्वामी जी ने कौपीन सहित गंगा में स्नान किया फिर स्नान करके कौपीन को खोला, निचोड़ कर सुखाया और बांध लिया। तत्पश्चात् रज मलने का मुझे हाथ से संकेत किया। चूंकि मैं उन दिनों व्यायाम करता था इसी कारण से रज मलते समय उनकी शक्ति की परीक्षा लेने के लिए उंगली उनके शरीर में गाड़ी परन्तु बहुत दृढ़ पाया, उंगली कुछ भी दबाने में सफल न हो सकी।

फिर मेरे भाई रामलाल जी को स्वामी जी फर्रूखाबाद में मिले और सबका वृत्तान्त पूछा। मूर्तिपूजा से हटने को कहा कि यह बुरा कर्म है। मेरे भाई ने वहां स्वामी जी के साथ लोगों के शास्त्रार्थ भी देखे और स्वामी जी की विजयप्राप्ति का समाचार श्रवण किया और अत्यन्त प्रसन्न होकर घर आकर मूर्तिपूजा पूर्णतया छोड़ दी, मूर्ति किसी को दे दी। पूजा सम्बन्धी पात्र अभी तक घर में विद्यमान हैं। फिर नहीं की। लगभग कई वर्ष तक मूर्तिपूजा छोड़े रखी, फिर आषाढ़, संवत् १९२७ में वह मर गये।

बेलोन ग्राम का वृत्तान्त

रामचन्द्र जी प्रतापी राजा थे। अवतार नहीं थे। कृष्ण जी ने रासलीला नहीं की थी : स्वामी जी कर्णवास से होते हुए बेलोन ग्राम, परगना डिबाई जिला बुलन्दशहर में आये और खेरा के स्थान पर पीपल के नीचे ग्राम से बाहर उतरे। केवल लंगोट पहना हुआ, शेष शरीर नग्न और गंगारज शरीर पर लगा लिया करते थे। तीन चार दिन रहे। श्री कृष्ण पंडा ने उनसे रामचन्द्र जी के विषय में पूछा कि वह कैसे थे? स्वामी जी ने उत्तर दिया कि प्रतापी राजा थे। उसने कहा कि अवतार या ईश्वर तो नहीं थे? स्वामी जी ने कहा कि नहीं। फिर उसने कृष्ण जी के विषय में पूछा तो कहा कि वह भी ईश्वरावतार

नहीं थे, केवल राजा थे। उसने पूछा कि गोपियों से रासलीला जो की। कहा कि यह झूठ है और इससे ईश्वर नहीं प्रत्युत एक साधारण मनुष्य सिद्ध होते हैं। हमने कहा कि गंगा जी कैसी है? उत्तर दिया कि एक नदी है। इन दिनों तुलसी के पत्ते अधिक खाते और शर्बत भी अधिक पीते थे। पीपल के नीचे एक तख्त पर बैठे रहते थे। प्रातःकाल जंगल जाया करते और जल के किनारे शौच करके लौट आते थे। मैं स्वामी जी को स्वयं ही रोटी बना दिया करता था। जाते समय वह सदा बिना पूछे अथवा मिले चले जाते थे।

पंडित इन्द्रमणि, रईस ग्राम बेलोन ने वर्णन किया—'जब स्वामी जी यहां पीपल के वृक्ष के नीचे आकर उतरे तो उस समय जो उनके पास जाता उससे पूछते थे कि 'तू गायत्री व सन्ध्या जानता है या नहीं? जो अस्वीकार करता उसको गायत्री सिखलाते थे और उसके लिखने के लिए उनको एक लेखक की आवश्यकता थी। मैंने उनके कथनानुसार बहुत सी कापियां गायत्री की लिखकर उनके समीप रख दी थीं। न्यून से न्यून पचास मनुष्यों को उस समय उन्होंने गायत्री सिखलाई और मेरी लिखी हुई कापियां बांटी थीं। प्रत्येक पर्चे के नीचे एक हजार का अंक लिख देते थे कि एक हजार जाप करो। बहुत लोग तो गये और उनमे से बहुतों ने चिरकाल तक जप किया और बहुत से अब भी करते हैं। यहां के अन्य लोग—उदाहरणार्थ ज्वालादत्त पंडा, बलदेवदास पंडा, हुलासीराम पंडा और श्रीकृष्ण पंडा भी मिले थे, परन्तु (वे) सब अब मर चुके हैं। हुलासीराम पंडा ने उनका बहुत सत्कार किया था। एक दिन स्वामी जी जब देवताओं की पूजा और मूर्तिपूजा का खंडन कर रहे थे तो हरप्रसाद पंडा ने कहा कि महाराज! हम अपने बड़े पुरुषाओं से सुना करते थे कि कलियुग आवेगा तब लोग देवताओं की निन्दा करेंगे। चूंकि आप निन्दा करते हैं इससे विदित होता है कलियुग आ गया। स्वामी जी इस पर बहुत हंसे। उसकी स्वामी जी से बड़ी प्रीति थी और स्वामी जी भी उस पर बहुत प्रसन्न रहते थे क्योंकि वह एक सुन्दर और वीर युवक था।'

हमने पूछा कि आप अधिक मिट्टी क्यों लगाते रहते हैं? कहने लगे कि मुझ पर कीड़ा जो डंक मारता है वह अधिक मिट्टी के कारण भीतर प्रभाव नहीं करता। एक व्यक्ति ने स्वामी जी से आकर कहा कि महाराज! दण्डवत्। स्वामी जी बोले कि दण्डवत् तुम हो। गंगाधर पटवारी ने अपने घर से भोजन बनाकर भी उन्हें खिलाया था। थानसिंह ब्राह्मण ने भी उनसे गायत्री सीखी थी जो उनके कथनानुसार मरण पर्यन्त करता रहा। तख्त के ऊपर सिरकी डलवा कर हम लोगों ने पांच चार गद्दे डलवा दिये थे जिससे बहुत ऊंचा बिछौना हो गया था।

रामघाट का वृत्तान्त

खेमकरण जी भूतपूर्व ब्रह्मचारी, वर्तमान कर्णवास निवासी, ने वर्णन किया—'अगहन मास संवत् १९२४ की बात है, हमने स्वामी जी को रामघाट गंगा के किनारे रेत में बैठे हुए देखा। जिस पर हमने स्वर्गीय रामचन्द्र ब्राह्मण रामघाट निवासी को कहा कि एक संन्यासी प्रातः दस बजे से सायंकाल तक एक आसन पर बैठे हैं, ज्ञात नहीं कि किसी ने भोजन को पूछा है या नहीं। स्वामी जी साधारण पद्मासन लगाये बैठे थे। वस्त्र केवल कौपीन था और कुछ न था। हम दोनों गये और जाकर मैंने यह श्लोक पढ़ा—'ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनः'[२३] जिस पर वह मुस्काये और 'हूं' कहा। तब हमने कहा कि स्वामी जी! अब बहुत शीत का समय है, आप ऊपर चलें। सायंकाल का समय था, हमारे साथ बनखंडी महादेव पर चले आये और आकर बैठ गये। वहां उनके आने से पूर्व पंडित नन्दराम अतरौली निवासी का शास्त्रार्थ चन्दौसी और मथुरा के चार-पांच पंडितों से हो रहा था। कोई कहता था कि भागवत में ऐसा है और कोई कहता था रामायण में। स्वामी जी प्रथम तो सुनते रहे, थोड़ी देर तक कुछ न कहा फिर कहा:—'किम् भागवतं किं वाल्मीकिम्' और संस्कृत का प्रवाह आरम्भ हो गया। प्रथम तो वह पंडित शास्त्रार्थ को उद्यत हुआ परन्तु अन्त में उनकी संस्कृत की उच्च योग्यता देखकर सब मौन हो गये। अन्त में रात हो जाने के कारण वह चले गये। रात को उसी रामचन्द्र ने भोजन का प्रबन्ध कर दिया।

"लक्षण का लक्षण नहीं होता"—वहां एक साधु कृष्णेन्द्र सरस्वती रहते थे । लोगों ने उनसे जाकर कहा कि गंगादितीर्थ-महादेव आदि की मूर्ति और वाल्मीकि, भागवतादि सबका (दयानन्द) श्रुति और स्मृति के अतिरिक्त खंडन करता है । ग्राम में कोलाहल मच गया । अन्त में कृष्णेन्द्र को लोग उसके बार-बार विरोध करने पर भी, वहां बनखंडी पर ले आये और शास्त्रार्थ आरम्भ किया । इतने में एक व्यक्ति ने कृष्णेन्द्र से पूछा कि महाराज मैं महादेव पर जल चढ़ा आऊं तो स्वामी जी बोले कि यहां तो पत्थर है, महादेव नहीं; 'महादेवः कैलाशे वर्तते' तब कृष्णेन्द्र ने पूछा कि यहां महादेव नहीं हैं ? स्वामी जी बोले कि वह महादेव मन्दिर के अतिरिक्त यहां भी है, वहां जाना व्यर्थ है । तब कृष्णेन्द्र ने गीता के इस श्लोक का प्रमाण दिया—

'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत । अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥'

स्वामी जी ने कहा कि ईश्वर निराकार है, अवतारधारी बन नहीं सकता । देह धारना केवल जीव का धर्म है । इसका कोई उत्तर कृष्णेन्द्र से न आया । वह स्वामी जी के सामने बैठा ही धैर्यहीन हो गया था और घबरा कर वही गीता का श्लोक बार-बार लोगों की ओर मुख करके (मुख से कफ निकल रहा था) पढ़ने लगा । तब स्वामी जी ने कहा कि तू लोगों से शास्त्रार्थ करता है या मुझसे शास्त्रार्थ करता है । मेरे सम्मुख होकर बात कर । फिर जब इस पर भी वह बात न कर सका और उसका चित्त भी कुछ स्थिर न हुआ तो 'गन्धवती पृथिवी, धूमवती अग्निः' इस प्रकार की न्याय की बात चली; जिसपर उसने कहा कि लक्षण का भी लक्षण होता है । स्वामी जी ने कहा कि लक्ष्य का तो लक्षण होता है परन्तु लक्षण का लक्षण नहीं होता । पूज्य का पूज्य या चूर्ण का चूर्ण क्या होगा ? इस पर सब लोग हंस पड़े और वह घबरा कर उठ खड़ा हुआ । सब लोग कहने लगे और जान गये कि स्वामी जी की जीत हुई । उस समय जानकीदास नामक एक धूर्त वैरागी ने स्वामी जी को दुर्वाक्य कहा जिस पर एक दूसरा ब्राह्मण टीकाराम स्वामी बोला कि तू मेरे से बात कर, इनके सामने क्या बोलेगा । जिस पर वह घबरा कर चला गया । स्वामी जी उस समय ८-१० दिन रहे, वहां से फिर बेलोन आये । उस समय स्वामी जी के कथनानुसार मेरा मूर्तिपूजा से चित्त हट गया और मन में सन्देह हो गया । कभी रुद्राक्ष की माला उतारता और कभी पहनता था । डांवाडोल मन से कहता था कि क्या करूं । इतने में एक दिन कृष्णेन्द्र मेरे पास आये और लोगों से मेरी निन्दा करने लगे और कहा कि तू नास्तिक है जो मूर्तिपूजा को छोड़ता है । मैंने जब देखा कि यह धूर्त निरर्थक हठ करता है तो पूर्णतया सच्चे हृदय से सब मूर्तिपूजा और रुद्राक्ष की माला भी छोड़ दी । मैं निम्नलिखित देवताओं की पूजा करता था । १—नर्मदेश्वर (भार १५ सेर), २—शालिग्राम (४ मूर्ति), ३—गणेश, ४—गीमतीचक्र, ५—टेढ़ी टांग वाला या बालगोविन्द ।

मैं अपनी १५ वर्ष की अवस्था से संवत् १९२४ तक इन पांचों की पूजा करता रहा । अब ४ जनवरी, सन् १८९० को मेरी ६५ वर्ष की आयु है । मैंने २७ वर्ष इनकी पूजा की । गले में, हाथों मे, मस्तक पर रुद्राक्ष की बड़ी-बड़ी माला पहनता था । स्वामी जी उनकी सर्प से उपमा देते थे । मैं कहता था कि महाराज माला है । स्वामी जी कहते थे कि हे धूर्त ! यह मिथ्या और झूठ है । सारांश यह कि स्वामी जी के उपदेश से मैंने वह छोड़ दिया । कुल भार मेरी पूजा का चार धड़ी अर्थात् २० सेर होता था । मैं इस सब पूजा को घोड़े पर लाद कर फिरा करता था । उस दिन से पूर्णतया त्याग कर दिया ।

वहां से स्वामी जी बेलोन आये, मैं भी साथ था । २० दिन रहे, बेलोन के ठाकुर की मढ़ियों में रहे । वहां से **कर्णवास** आये और यहां कर्णवास में आकर डिबाई के वैश्यों और यहां के ठाकुरों के यज्ञोपवीत संस्कार कराये । यहां **अनूपशहर** गये और जब लौट आये तो यहां से आगे सोरों की ओर चले गये ।

नारायणप्रसाद वैश्य, स्थानापन्न अध्यापक पाठशाला रामघाट ने वर्णन किया—मैंने भी स्वामी जी को महादेव बनखण्डी पर रामचन्द्र मुकद्दम के घर पर देखा । उस समय संस्कृत बोलते और सबको उपदेश देते थे । जो पण्डित उनसे

मिलकर आता वह उनकी विद्या तथा गुण की प्रशंसा करता । हमारे यहां रामघाट के पण्डित बालमुकुन्द मठाचार्य, स्वामी जी से मिले थे । मेरी कई ऐसी शंकाएं थीं जो कभी निवृत्त नहीं होती थीं; वे केवल स्वामी जी से निवृत्त हुई । यह पंडित बालमुकुन्द व्याकरण के बहुत अच्छे विद्वान् थे । इन जैसा विद्वान् यहां और कोई न था । स्वामी कृष्णेन्द्र से भी महाराज दयानन्द जी की चर्चा हुई थी । पांच सात दिन चर्चा होती रही । यद्यपि दोनों ओर के पक्ष वाले अपने-अपने शब्दों में अपनी-अपनी जीत बतलाते थे परन्तु वास्तविक बात यह थी कि स्वामी दयानन्द जी की बात ठीक रही ।'

तुलसी से लाभ—हमसे स्वामी जी ने पूछा कि तुम कौन हो ? हमने कहा कि वैश्य । स्वामी जी से मैंने वैद्यक के प्रमाणित ग्रन्थों के विषय में पूछा था । कहने लगे कि चरक और सुश्रुत प्रमाणित[२४] ग्रन्थ हैं । स्वामी जी तुलसी की पत्ती रोटी खाने के पश्चात् खाते थे । पूछने पर बताया कि इस से मुख सुगन्धित हो जाता है और गृहस्थियों के घर में लगाने के विषय में कहा कि इससे अच्छी वायु निकलती है । सन्ध्या, बलिवैश्वदेव की सबको आज्ञा दी । इस बार २०-२५ दिन रहे । कृष्णेन्द्र और वह, दोनों, पृथक्-पृथक् स्थानों में पास-पास टिके थे । वहां दोपहर पीछे पचास से अधिक मनुष्यों की सभा जब तक रहे, जुड़ा करती थी । पंडित करुणाशंकर से भी उनका शास्त्रार्थ हुआ जिस पर स्वामी जी ने उसको भली-भांति सन्तोष किया । करुणाशंकर कहते थे कि मूर्तिखण्डन वास्तव में तो ठीक है परन्तु हम आजीविका के कारण छोड़ नहीं सकते । हमको कहा कि तुम सन्ध्या तर्पण करो, यज्ञोपवीत लो और छलेसर आओ परन्तु मैं अकेला होने के कारण न जा सका । उस समय उनकी बातों को स्वीकार करने वाले स्वर्गीय चौधरी गंगाराम, टीकाराम स्वामी, स्वर्गीय पंडित करुणाशंकर तथा स्वर्गीय पंडित बालमुकुन्द आचार्य थे । उनके अतिरिक्त नगर के और सब सम्मानित व्यक्ति जाते थे । स्वामी जी मुहूर्त-चिंतामणि, शीघ्रबोध, भागवत, रामायण[२५] इन सबको भ्रष्ट जाल के ग्रन्थ बतलाते थे । अधिक बल उनका यहां मूर्तिपूजा के खण्डन पर था । कोई उत्तर देने वाला उनके सामने न था । सब उनके मुंह पर ठीक, ठीक कहते थे; चाहे घर में आकर कोई कुछ बातें बनावें । यहां दो बार आये और एक ही स्थान पर रहे ।'

शंभुग्रह संन्यासी गुसांई रामघाट, चलदी मन्दिर, बन खंडेश्वर महादेव ने वर्णन किया 'स्वामी जी जेठ, संवत् १९२४ में यहां हरिद्वार के कुम्भ से आये थे । नग्न एक कौपीन धारण किये हुए थे । इस स्थान पर एक बालमुकुन्द पंडित थे । वह करुणाशंकर, टीकाराम कर्णवास निवासी तथा पंडित नन्दराम के साथ स्वामी जी के पास गये । लगभग दो घड़ी उन्होंने धर्म-चर्चा की; जिस पर टीकाराम व बालमुकुन्द और सब ने स्वामी जी की प्रशंसा की और कहा यह बड़े महात्मा और विद्वान् हैं ।'

पंडित बालमुकुन्द आचार्य जी का स्वामी जी से एक श्लोक पर विवाद (शास्त्रार्थ) हुआ था । विष्णु-सहस्रनाम का एक श्लोक था जिस पर स्वामी जी का पक्ष प्रबल रहा और बालमुकुन्द जी ने मान लिया ।

'पंडित टीकाराम जी ने सिद्धांत कौमुदी पर बातचीत की जिसमें वे हार गये ।

स्वामी जी चन्द्रिका के कर्ता रामाश्रम आचार्य[२६] और कौमुदी के कर्ता भट्टोजि दीक्षित का नाम पेटपूजक रखते थे । पंडित टीकाराम जी[२७] तो उनके शिष्य हो गये और तत्पश्चात् उनसे पढ़ते रहे और उन्होंने अपने ठाकुर भी गंगा में फेंक दिये । पहली बार आकर स्वामी जी दस दिन रहे । प्रातःकाल उठकर स्नान कर, दिगम्बर हो, समाधिस्थ हो जाते थे । दो-तीन घण्टे तक प्राणायाम करते फिर यहां आकर भोजन करते ।

हम उनको तुलसी के पत्ते तोड़ कर देते थे कि हमारे तो तुम ही शालिग्राम हो । वह पत्ते खाते जाते थे । हमसे स्वामी जी बहुत प्रसन्न रहते थे । चार बजे से साधारण लोग आने आरम्भ हो जाते थे । सैकड़ों मनुष्य उस समय आया करते थे ।

दूसरी बार जब आये तो चार दिन रह कर चले गये ।

वेद का अर्थ ब्रह्म करते थे—तीसरी बार जब आये तो कृष्णेन्द्र उस समय यहां ऊपर न रहते थे प्रत्युत रोग के कारण पहले ही से यहां से ऊपर खाक चौक पर चले गये थे । जब इस बार स्वामी जी आये तो हमने आसन बिछा कर उनके पांव धोये और कुशल-वृत्तांत पूछा । उस समय स्वामी जी ने पंडित परमानन्द दूबे से कहा कि वेद का अर्थ ब्रह्म है । इस पर उसने विवाद किया परन्तु अन्त में मान गया । फिर उसने कहा कि यहां कृष्णेन्द्र ठहरे हुए हैं । प्रत्युत स्वयं परमानन्द ने कृष्णेन्द्र से जाकर कहा कि स्वामी दयानन्द वेद का अर्थ ब्रह्म करते हैं । उसने कहा कि यह नहीं बनता । इस बात की दोनों पक्षों को सूचना मिली । स्वामी जी ने परमानन्द को भेजा कि उनको यहां ले आओ । वह उस दिन न आये, तीसरे दिन आये । स्वामी जी से उनका न्याय के विषय पर शास्त्रार्थ हुआ । मूर्तिपूजा पर नहीं और न पुराणों पर; प्रत्युत केवल न्याय पर क्योंकि कृष्णेन्द्र न्याय अच्छा जानता था । स्वामी जी ने कहा कि लक्ष्य का लक्षण होता है । कृष्णेन्द्र ने कहा कि लक्षण का भी लक्षण होता है । न उन्होंने उनका माना और न उन्होंने उनका माना । कृष्णेन्द्र ने कहा कि मध्यस्थ नियत करो । स्वामी जी ने कहा कि शास्त्र ही मध्यस्थ हैं । श्राद्ध का निषेध, मूर्ति और तिलक का भी निषेध करते थे । यहां से अनूपशहर की ओर चले गये । एक नन्दकिशोर ब्रह्मचारी ब्राह्मण ने अपने ठाकुर गंगा में फेंके थे ।

भागवत और चक्रांकितों पर आक्षेप उन्होंने मुझे सिखलाये थे परन्तु वे स्मरण नहीं रहे । यहां के लोग इस कारण से कि गंगा के तट पर रहते हैं और तीर्थ से ही उनका निर्वाह होता है आर्यसमाज में सम्मिलित नहीं हुए । यह आशंका थी कि कहीं आजीविका ही न मारी जावे ।

गंगाघाट स्थित **टीकाराम स्वामी सनाढ्य ब्राह्मण रामघाट** ने वर्णन किया—'ग्रीष्मऋतु ज्येष्ठ मास, संवत् १९२४ में पहले पहल स्वामी जी यहां आये और सात दिन रहकर चले गये । पंडित बालमुकन्द, पण्डित नन्दराम, पण्डित गोविन्दराम, पण्डित करुणाशंकर तथा पण्डित जानकीप्रसाद आदि सब पण्डित वहां जाया करते थे । जो जाता अपनी शंका समाधान करके आता था । शालिग्राम पण्डित भी जाया करते थे, उनको सारा वृत्तांत भली भांति विदित है ।'

रामघाट में कृष्णेन्द्र से शास्त्रार्थ

स्वामी कृष्णेन्द्र से उनका शास्त्रार्थ तीन दिन होता रहा । यह शास्त्रार्थ पहर भर दिन से सायंकाल को दीपक जलने तक रहा करता था । यह कृष्णेन्द्र नैयायिक थे । स्वामी जी की जीत हुई । कृष्णेन्द्र कहते थे कि रज्जु का सर्प हो जाता है । स्वामी जी ने कहा कि नहीं, केवल वह भय मानता है परन्तु समझने के पश्चात् वह नहीं डरता, वास्तव में वह रज्जु है । ऐसे ही कृष्णेन्द्र ने कहा कि लक्षण का भी लक्षण होता है । स्वामी जी ने कहा कि लक्षण का लक्षण नहीं होता प्रत्युत लक्ष्य का लक्षण होता है ।

प्रथम बार मेरी भेंट का साधन—यहां पर स्वामी जी एक झोंपड़ी में बैठे हुए थे, मैं उनके आगे से आया । परिचय न होने के कारण मैंने नमोनारायण न की । तत्पश्चात् वहां से मैं केशवदेव ब्रह्मचारी के पास जा बैठा । उन्होंने कहा कि एक बड़े महात्मा आये हैं, तुमने नमोनारायण न की । मैंने कहा कि कहां है ? फिर उसके साथ मैं स्वामी जी के पास गया । स्वामी जी से नमोनारायण हुई । तब उन्होंने कहा कि तू ब्राह्मण है ? मैंने कहा कि हां ब्राह्मण हूं । कहने लगे कि ब्राह्मण किस बात से होता है ? मैंने कहा कि संध्या-गायत्री करने से । कहने लगे कि तू पढ़ा है ? मैंने कहा कि सन्ध्या तो नहीं, परन्तु गायत्री याद है । मुझे सुनाने के लिए कहा तो मैंने कहा कि गुरु जी ने निषेध किया है कि किसी को न सुनाना । उन्होंने कहा कि संन्यासी ब्राह्मणों का गुरु है, तुम हमारे सामने कहो । ब्रह्मचारी जी ने समर्थन किया तब मैंने गायत्री सुनाई । स्वामी जी ने

कहा कि तू अच्छा उच्चारण करता है, ऐसा हमने साधारण लोगों के मुख से कम सुना है । फिर कहने लगे कि तू ठीक ब्राह्मण है, संध्या, अग्निहोत्र, बलिवैश्वदेव यह भी पढ़ ले । फिर मुझे सन्ध्या लिखवा के सातवें दिन यहां से चले गये ।

छः आहुतियों का अग्निहोत्र सिखाया; १५ ऋचाओं का लक्ष्मीसूक्त याद कराया—दूसरी बार यहां संवत् १९२८ में मिले । कहने लगे कि तूने सन्ध्या याद की है ? मैंने कहा कि कोई पढ़ाने वाला नहीं है । कहने लगे कि यदि तू पढ़ेगा तो हम रहकर तुझे पढ़ावेंगे । तू हमारी सहायता करेगा तो हम पड़े रहेंगे । इस बार स्वामी जी २१ दिन रहे । पहले दिन उन्होंने हमे अग्निहोत्र कराया जो छः आहुति का है । फिर मुझे एक ही दिन में १५ ऋचा लक्ष्मीसूक्त की कण्ठ कराई थी और फिर करुणाशंकर ब्राह्मण को बुलवाकर पंचमहायज्ञविधि लिखवाई । दिन को भी अवकाश के समय और रात्रि को भी पढ़ाते रहे । यहां २१ दिन रहकर फिर ठाकुर मुकुन्दसिंह छलेसर वाले की पालकी पर सवार होकर उनके साथ वहां चले गये ।

मुझे २१ दिन में संध्या, अग्निहोत्र पढ़ाया और बलिवैश्वदेव की विधि बतलाई । तर्पण और भोजनविधि भी बतलाई थी ।

पहले पहल स्वामी जी से जब मैं मिला तो उस समय मेरे पास निम्नलिखित पुस्तकें थीं—आदित्य लहरी, गंगालहरी, गंगाकवच, गंगासहस्रनाम, गंगाष्टक, गंगास्तोत्र, विष्णुसहस्रनाम, प्रत्यंगिरा स्तोत्र (वाममार्ग का), रुद्री-अष्टाध्यायी (वेद की) ।

स्वामी जी ने और तो सब फेंक दिये केवल रुद्री अर्थात् आठ अध्याय वेद के रहने दिये जो विद्यमान हैं और सन्ध्या लिख दी । यहां केवल दो बार पधारे (मिले) ।'

पंडित भैरवनाथ, सारस्वत ब्राह्मण अतरौली निवासी ने वर्णन किया 'कि भादों पूर्णमासी, संवत् १९२४ को मैं, पण्डित नन्दराम लखरिया और पण्डित गोविन्दराम हम तीनों गंगास्नान को गये थे । रामघाट बनखंडी पर स्वामी जी हमें मिले तो कुछ प्रश्न राम, कृष्ण के शरीरधारी होने का और शरीर त्यागने के पश्चात् उनकी उपासना व्यर्थ होने पर हुए, परन्तु उस समय कोई बात निश्चित न हुई थी । ब्रह्मा की आयु और चतुर्भुज होने पर भी बातचीत हुई थी परन्तु उसका भी निश्चय न हो सका अर्थात् हमने उनकी बात न मानी थी । स्वामी जी ने कहा कि आयु सब की सौ वर्ष की है और वेद में सौ वर्ष की लिखी है । जो सौ वर्ष से अधिक लाखों वर्ष की कहते हैं वे सब गप्पाष्टक हैं । तीन दिन रहे । उस समय केवल कौपीन और एक चादर गेरुए रंग की थी । उनकी आकृति देखकर बहुत आनन्द होता था । वह उस समय अवधूत संज्ञा में थे । स्वामी जी उस समय महीना या डेढ़ महीना रहे । दूसरी बार हम नहीं गये । स्वामी जी की विद्या में कोई कमी न थी यद्यपि आजकल विशुद्धानन्द स्वामी बहुत विद्वान् हैं परन्तु उनकी एक और ही बात थी । वह वेदविद्या में अद्वितीय थे । मूर्तिखंडन के अतिरिक्त उनकी कोई बात बुरी न थी । यद्यपि कृष्णेन्द्र से शास्त्रार्थ किया परन्तु वह विद्या में उससे अधिक थे । हमने स्वामी जी का काशी का वृत्तांत सुना है । कृष्णेन्द्र उनकी तुलना में कुछ नहीं था ।'

मुंशी शामलाल, कायस्थ मुख्तार तहसील अतरौली ने वर्णन किया है कि मैं भी स्वामी जी से रामघाट में जब वह बनखण्डेश्वर पर गये हुए थे, मिला था । वह केवल संस्कृत बोलते थे और एक कौपीन रखते थे । पाठक छुन्नूशंकर ने उनसे कहा कि आप तुलसीपूजन का निषेध करते हैं और स्वयं उसे, रोटी खाने के पश्चात् खाते हैं । स्वामी जी ने कहा कि जैसे मुख शुद्ध करने को पान खाते हैं उस प्रकार खाता हूं, माहात्म्य समझ कर नहीं खाता । यह छुन्नूशंकर हरजसराय पंडित हाथरस वाले के शिष्य थे । उन्होंने फिर गुरु की प्रशंसा की । स्वामी जी ने कहा 'गुरुसहितेन गंगाप्रवेशः कर्त्तव्यः' अर्थात् गुरु के सहित गंगा में प्रवेश करो, जिसपर वह पूर्णतया निरुत्तर हो गया ।

प्राक्कथन

महर्षि दयानन्द के जीवन-चरित्र का महत्त्व

आधुनिक युग की महान् विभूति, अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी तथा इस युग के निर्माता महर्षि दयानन्द के नाम से कौन भारतीय अपरिचित होगा। उन्होंने भारतवर्ष की धार्मिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय बुराइयों को दूर करने के लिए जो अजेय शक्ति के प्रभाव से सुधारात्मक कार्य किये, उनको मानव-जाति यावच्चन्द्रदिवाकरौ तक चिरस्मरण रक्खेगी। उनका जनमानस पर ज्ञान व तप के अपूर्व प्रभाव के साथ-साथ सच्चरित्र का अद्‌भुत प्रभाव था। उन्होंने जो कुछ जाना या सुना, उसको सत्य की कसौटी पर परखा, इसीलिए उन का ज्ञान उच्चकोटि का तथा परमप्रभावोत्पादक बन सका था, जिसको सुन-सुन कर उनके प्रबल विधर्मी भी दांतों तले अंगुली दबाते थे, और उनके प्रबल एवं प्रखर युक्ति-शरों से विद्ध होकर अवाक् तथा निरुत्तर हो जाते थे। जिनके दर्शन तथा ओजस्वी भाषणों को सुन-सुन कर पं० गुरुदत्त जैसा नास्तिक, आस्तिक तथा नास्तिक एवं भयंकर दुष्कर्मों के पंक में निमग्न मुंशीराम महात्मा (स्वामी श्रद्धानन्द) बन सकता है, तो क्या उस सच्चे महात्मा का जीवनचरित्र पथ-भ्रष्ट लोगों को सन्मार्गदर्शक, अज्ञानान्धकार में भूले-भटकों को सूर्यसम प्रकाशक तथा कुकर्मों के पाशों में दृढ़ता से जकड़े हुओं को पवित्र ज्ञान-सरस्वती में स्नान कराकर काया-पलट कराने वाला नहीं होगा? भगवान् मनु ने सत्य ही कहा है—

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम् ॥

सदाचार अर्थात्=श्रेष्ठ पुरुषों का आचरण वेदादि के तुल्य ही जनसाधारण के लिए साक्षात् धर्म का लक्षण है। महर्षि के जीवनचरित्र की विशेषताओं तथा महत्त्व को समझने के लिए तत्कालीन भारतवर्षीय अवस्था को समझना भी बहुत आवश्यक है। १९वीं शताब्दी में अंग्रेजों ने देश को परतन्त्रता के पाश में जकड़ रखा है। अंग्रेज यहां की संस्कृति-सभ्यता के मूल में कुठाराघात कर रहा था। भारतीय राजा पारस्परिक फूट और विद्वेषाग्नि से मृतप्राय हो गए थे। विधर्मियों द्वारा आर्यधर्मावलम्बियों को भेड़-बकरियों की भांति ईसा-मूसा की भेड़ों में बलात् या लोभाकृष्ट करके मिलाया जा रहा था। आर्यधर्म के मठाधीशों के थोथे पाखण्डों से आर्यधर्म जीर्ण-शीर्ण हो गया था। आर्यों के इतिहास को अन्दर ही अन्दर बदला जा रहा था। नौकरी का लोभ देकर विदेशी भाषा के चंगुल में फंसाकर आर्यभाषाओं और विश्व-जननी देववाणी का खुलेआम तिरस्कार किया जा रहा था। दीन व दलितों को पादाक्रान्त करके उनके सभी धार्मिक अधिकार छीन लिये थे। स्त्रियों को पैरों की जूती समझा जाने लगा था। स्त्रियों व शूद्रों को पढ़ने का कोई अधिकार नहीं था। विधवाओं की दुःखपूर्ण आहों से देश झुलस गया था। ईश्वरोपासना के विषय में मतमतान्तरों के पारस्परिक झगड़ों से ईश्वर भी कलह का कारण बन गया था। एक तरह से ईश्वर को भी कुक्षिम्भरि लोगों ने तुच्छ उदर-दरी को पूर्ण करने का साधन बना लिया था। धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक दुर्दशा के साथ-साथ यहां की आर्थिक-दरिद्रता ने देश को बिलकुल पंगु बना दिया था। सोने-चांदी की खान हिन्दुस्तान दाने-दाने को मुहताज हो गया था। आर्थिकोन्नति में परम सहायक तथा उपयोगी गो-माता की ग्रीवा पर मांसाहार के तुच्छ लाभ के लिए दिन दहाड़े कुठार चल रहा था। देश की ऐसी दयनीय दुर्दशा को देखकर कठोर पत्थर भी द्रवित हो जाता था। ऐसे समय में सुधार की बात सोचना भी अपराध था। मतमतान्तरों के नृशंस ठेकेदार

अपने विरुद्ध बोलने वाले को कैसे सहन कर सकते थे। गंगा के प्रबल प्रवाह को मोड़ना अथवा समुद्री तूफानों से संघर्ष करना तो आसान था, परन्तु धार्मिक क्षेत्र में बोलना तो खुला विद्रोह व जघन्य अपराध था। धन्य है उस महर्षि या महात्मा को जिन्होंने अपने सभी सांसारिक तथा पारमार्थिक सुख पर लात मारकर परोपकार को ही सर्वस्व समझा और वे एक कौपीन बांधकर केवल वेद की पुस्तक लेकर युद्धक्षेत्र में कूद पड़े और उन्होंने अपने ज्ञान, तप तथा सदाचार की भट्ठी में तप्त उज्ज्वल कुन्दन की भांति अपने अद्भुत प्रभाव से विरोधियों को परास्त ही नहीं किया, प्रत्युत उन्हें नतमस्तक होकर वेद-धर्म मानने को विवश भी किया। इसीलिए महात्मा मुंशीराम ने महर्षि के जीवनचरित्र के विषय में ठीक ही कहा है कि "यह 'जीवनचरित्र' ब्राह्मणधर्म में नया जीवन फूंकने की एक पूर्ण कहानी है।"

इस जीवनचरित्र की विशेषताएं—

महर्षि दयानन्द के अब तक उपलब्ध एवं प्रकाशित जीवनचरित्रों में अमर हुतात्मा पं० लेखराम जी द्वारा लिखित जीवनचरित्र ही मूल ग्रन्थ, सर्वाधिक प्रामाणिक तथा मान्य है। महर्षि के सभी जीवन-चरित्र प्रायः इसकी सहायता से लिखे गए हैं। यद्यपि महर्षि की जीवनसम्बन्धी घटनाओं के संग्रह में अन्य भी अनेक व्यक्तियों ने प्रशंसनीय परिश्रम किया है, किन्तु सबसे अधिक घटनाएं पं० लेखराम जी ने एकत्र कीं, जो कि इसमें विद्यमान हैं। बाबू देवेन्द्रनाथकृत जीवनघटनाओं के संकलनकर्ता पं० घासीराम जी द्वितीयावृत्ति की भूमिका में इस जीवनचरित्र की प्रशंसा एवं महत्त्व स्पष्ट करते हुए लिखते हैं—

"ऋषि के जीवनरित्र का कोई भी लेखक पं० लेखराम कृत जीवनचरित्र की सहायता के बिना एक पग भी आगे नहीं रख सकता।" (पृ० २, पं० १८)

इस जीवनचरित्र की परम विशेषता यह है कि इसमें पंडित जी ने भारत में स्वयं घूम-घूम कर महर्षि के प्रत्यक्षद्रष्टाओं एवं श्रोताओं की खोज की और उन प्रत्यक्षदर्शियों द्वारा सुनाई गई अथवा लिखकर दी गई घटनाओं का इसमें ज्यों का त्यों वर्णन है जिससे पाठकों के हृदय में इसके प्रति अधिक आस्था एवं श्रद्धा उत्पन्न होती है। इसमें किसी-किसी घटना का वर्णन भिन्न-भिन्न व्यक्तियों से प्राप्त होने से उनमें कुछ विभिन्नता भी आ गई है। परन्तु उनमें परिवर्तन न करके पण्डित जी ने यथार्थरूप में ही लिख दिया। पाठक ऐसे स्थलों पर स्वयं न्यायाधीश के तुल्य निर्णय करने का प्रयास करने की कृपा करेंगे। उनमें परिवर्तन करना पण्डित जी ने भी उचित नहीं समझा, क्योंकि उससे जीवनचरित्र का यथार्थ स्वरूप नहीं रह पाता। निःसंदेह यह जीवनचरित्र महर्षि के जीवन वृत्तान्त को जानने के लिए विशाल कोष एवं विश्वसनीय है। ऋषि-भक्त आर्य पथिक पं० लेखराम जी ने बहुत उत्साह और श्रद्धा से स्थान-स्थान पर जाकर बड़ी योग्यता से जीवन की घटनाओं का यह संग्रह किया है। महर्षि निर्वाण के तुरन्त बाद ही पण्डित जी ने यह कार्य प्रारम्भ कर दिया था। अतएव उन्हें असलरूप में वे दुर्लभ लेख और वृत्तान्त प्राप्त हो सके, जो कालान्तर में प्राप्त नहीं हो सकते थे। उस समय लोगों को महर्षि के जीवन की पूरी घटनाएं स्मरण थीं। पण्डित जी को महर्षि द्वारा स्वयं लिखित आत्मकथा की आर्य भाषा की मूल प्रति भी प्राप्त हो गई थी, जिससे अंग्रेजी भाषा में अनुवाद करा के थियोसोफिस्ट पत्रिका को भेजा गया था। पण्डित जी को पूना व्याख्यान में कथित जीवन की उसी समय की महाराष्ट्र-भाषा में लिखी एक प्रति भी प्राप्त हुई। इन दोनों प्रतियों को मिलाकर पण्डित जी ने महर्षि का स्वकथित जीवनवृत्त इस पुस्तक में समाविष्ट किया। पं० भगवद्दत्त जी ने भी इसी पुस्तक से लेकर महर्षि का स्वकथित जीवनचरित्र लिखा। 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' ग्रन्थ में भी बहुत से अंश इस पुस्तक से लिये गए हैं। महर्षि ने कितने ही शास्त्रार्थ किए किन्तु उनमें से ३-४ ही उपलब्ध होते थे। इस ग्रन्थ में महर्षि के बहुत से शास्त्रार्थों का सविस्तार कथन है। इस ग्रन्थ से लेकर ही 'दयानन्द शास्त्रार्थ-संग्रह' ग्रन्थ का प्रकाशन हमारे ट्रस्ट ने किया है। जीवन की

अमूल्य घटनाओं के साथ-साथ इसमें महर्षि के सैद्धान्तिक विचारों का भी यत्र तत्र उल्लेख किया हुआ है । अनेक विषयों पर तो ऐसे उपदेश तथा व्याख्याएं इसमें मिलेंगी, जो महर्षि के अन्य ग्रन्थों में भी सुलभ नहीं हैं । महर्षि के इस उच्च, पवित्र और आदर्श जीवन से पाठकों को आदर्श जीवन की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए ।

महर्षि का यह जीवनचरित्र सर्वप्रथम सन् १८९७ में उर्दू भाषा में छपा था । महर्षि के अन्य जीवनचरित्रों में प्रमुख स्वामी सत्यानन्द जी द्वारा लिखित 'श्रीमद्दयानन्दप्रकाश' सन् १९१९ में तथा श्री देवेन्द्रनाथ द्वारा संकलित और पं० घासीराम जी द्वारा सम्पादित जीवनचरित्र सन् १९३३ में प्रकाशित हुआ है जिससे इसकी प्राचीनता स्पष्ट ही है । पण्डित जी ने इसकी मूलप्रति उर्दूभाषा में लिखी थी और उर्दू भाषा में ही इसका प्रथम प्रकाशन हुआ था । परन्तु अब यह कहीं-कहीं जीर्ण-शीर्ण अवस्था में पुस्तकालयों की ही शोभा बढ़ा रही थी । यह जीवनचरित्र बाजार में किसी कीमत पर भी नहीं मिलता था और उर्दू भाषा में होने से नई पीढ़ी के व्यक्ति तो इसका लाभ उठा ही नहीं सकते थे ।

ऐसे अमूल्य जीवनचरित्र का अभाव प्रत्येक महर्षि-भक्त को खटक रहा था । आर्यसमाज नयाबांस (दिल्ली) के मान्य अधिकारियों ने इस समस्या को समझा और अपने समाज की बैठक में निर्णय किया कि अपनी समाज की स्वर्णजयन्ती समारोह के अवसर पर इसे छपवाया जाए परन्तु उर्दू भाषा में जनसाधारण का लाभ न देखकर इसके अनुवाद के लिए प्रयत्न किया गया । सौभाग्यवश एक महर्षि-भक्त आर्य खोज करने पर मिल ही गए । श्री कविराज रघुनन्दन सिंह जी 'निर्मल' ने इस कठिन कार्य को बड़े ही उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से किया । एतदर्थ वे बहुत ही धन्यवादार्ह हैं । ग्रन्थ का प्रकाशन हो गया । इसका आर्य जनता ने बहुत ही स्वागत किया और यह जीवनचरित्र कुछ ही वर्षों में समाप्त हो गया । इसकी लोकप्रियता को देखकर आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट ने इसके पुनः प्रकाशन करने का निर्णय किया और आर्यसमाज नयाबांस के अधिकारियों से स्वीकृति मांगी । हमें खुशी है कि समाज के अधिकारियों ने तुरन्त सहर्ष स्वीकृति दे दी । हम उनका हृदय से आभार मानते हैं । श्री पं० विश्वदेव शास्त्री ने इस पूरे ग्रन्थ को पुनः पढ़कर इसकी अशुद्धियों को शुद्ध किया, एतदर्थ उनका धन्यवाद आवश्यक है । साथ ही इसके प्रूफसंशोधन के श्रम-साध्य कार्य में श्री कर्मवीर जी ने जो तन्मयता से कार्य किया है, उनका भी धन्यवाद करते हैं । इस विशालकाय ग्रन्थ के प्रकाशन में कम्पोजीटर मिश्रादि ने जो हमें पूरा सहयोग दिया है, उसको भी कैसे भुलाया जा सकता है ।

पुस्तक का प्रकाशन बढ़िया कागज पर नया टाइप भरवा कर बहुत ही सुन्दर रूप में किया गया है । इसकी कीमत भी प्रचारार्थ लागत से भी कम रक्खी है । हमें आशा ही नहीं, अपितु पूर्ण विश्वास है कि प्राणिमात्र के परम हितैषी महर्षि के जीवनचरित्र का पाठक हृदय से स्वागत करेंगे और इसके प्रचार में सहयोग देकर जहां हमारे उत्साह को बढ़ायेंगे वहां ऋषि-जीवन से प्रेरणा पाकर अपनी जीवन-यात्रा को सुखद बनाकर पुण्य के भागी बनेंगे ।

दीपचन्द आर्य
प्रधान, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
२ एफ, कमला नगर, दिल्ली-७

ओ३म्

भूमिका

तैयारी तथा सम्पादन का संक्षिप्त इतिहास

अधूरा जीवनचरित्र—स्वामी दयानन्द का जीवन-वृत्तांत जनता के सामने रखते हुए आर्य-प्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर से उसकी तैयारी का संक्षिप्त इतिहास पाठकों की सेवा में रखना आवश्यक प्रतीत होता है । प्रकटतया जिस अधूरे रूप में यह जीवनचरित्र जनता के सामने रखा जा रहा है, उसे न तो 'बायोग्राफी' (व्यक्तिगत जीवनवृत्त—Biography) ही कह सकते हैं; क्योंकि उसमें लेखक अपने विचारों और क्रम के अनुसार घटनाओं को अपनी भाषा में लिख कर अपने निष्कर्ष निकाला करता है, और न ही इसे केवल आर्यसमाज का इतिहास ही कहा जा सकता है; क्योंकि अब तक यद्यपि आर्यसमाज का इतिहास केवल स्वामी दयानन्द का जीवन ही है तथापि इस पुस्तक में उस इतिहास की शाखाओं ने भी पूर्णरूप से विकास नहीं पाया है और स्वामी दयानन्द के जीवन का बहुत सा भाग उसमें नहीं आया है । इसलिए इन दोनों के अतिरिक्त इस संग्रह का कोई नवीन नाम रखे बिना जनता को इसकी वास्तविकता का ज्ञान नहीं हो सकता । परन्तु, इससे पूर्व कि इस पुस्तक का नामकरण संस्कार किया जावे, यह उचित प्रतीत होता है कि इसके वर्तमान रूप में आने की कहानी आपको सुनाई जाये ।

जीवनचरित्र की प्रबल मांग— स्वामी दयानन्द ने जिस दिन इस अनित्य भौतिक शरीर को त्याग कर ब्रह्मलोक को प्रयाण किया, उसी दिन से लोग उनके जीवन का सम्पूर्ण इतिहास जानने की इच्छा प्रकट कर रहे थे । यह इच्छा केवल आर्यसमाजस्थ पुरुषों तक ही सीमित न थी प्रत्युत सर्वसाधारण-हिन्दू, मुसलमान और ईसाई जनता की ओर से स्वामी दयानन्द के जीवनचरित्र से परिचय प्राप्त करने की आकांक्षा पाई जाती थी । परन्तु इस आकांक्षा ने लगभग पांच वर्ष तक कोई क्रियात्मक रूप धारण न किया । केवल समाचारपत्रों के द्वारा कभी-कभी कोई आवाज सुनाई देती थी जो कि सांसारिक झगड़ों के नक्कारखाने (वाद्यालय)में तूती की आवाज के सदृश स्वयं दबकर रह जाती थी । अन्ततः क्रियात्मक आन्दोलन एक ऐसी जगह से प्रारम्भ हुआ जो पंजाब की आर्यसमाजों के प्रारम्भिक इतिहास में एक स्मरणीय शक्ति थी । मेरा अभिप्राय मुलतान आर्यसमाज से है । दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालिज का आन्दोलन चाहे कहीं से आरम्भ हुआ परन्तु क्या इस संस्था के तत्क्षण खोलने के आन्दोलन में लाला ज्वालासहाय जी रईस मियानी तथा सभासद् आर्यसमाज मुलतान के आठ हजार रुपये के दान ने बिजली का काम नहीं किया था ? फिर स्वामी दयानन्द के पश्चात् जब कि वेदों का पठन-पाठन समाप्त-सा होता दिखाई देता था क्या मुलतान ने हमें विश्वासी और विद्वान् गुरुदत्त नहीं दिया जिसने कि सच्चा विद्यार्थी बन कर वेद और परमात्मा में स्वयं पूर्ण श्रद्धा का उदाहरण उपस्थित करके सैकड़ों आत्माओं को टेढ़े और दुर्गम मार्गों से बचाया ? उसी मुलतान आर्यसमाज ने अपनी १२ अप्रैल, सन् १८८८ की अन्तरंग सभा के अधिवेशन में सम्मति दी कि स्वामी दयानन्द के जीवन की घटनाएं एकत्रित करने के लिए पं० लेखराम को नियुक्त किया जाये ।

घटनाओं के अन्वेषण के लिए पं० लेखराम योग्यतम व्यक्ति— पंडित लेखराम आर्य पथिक उस समय 'आर्य-गजट' फिरोजपुर के सम्पादक थे । आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब ने अपनी अन्तरंग सभा के अधिवेशन में, जो १ जुलाई, सन् १८८८ को हुआ था, पंडित लेखराम आर्यपथिक को इस कार्य के लिए नियुक्त करके मानों उन्हें सचमुच आर्यपथिक के पद का अधिकारी बना दिया । पंजाब की आर्यसमाजों से पन्द्रह सौ रुपयों के लिये अपील की गई थी जो थोड़े समय में ही एकत्रित हो गये । अत: नवम्बर १८८८ से पंडित लेखराम जी ने नियमपूर्वक कार्य करना प्रारम्भ कर दिया ।

देरी का कारण अन्वेषक की विशेष परिस्थिति— इसमें सन्देह नहीं कि पंडित लेखराम आर्य जैसा अन्वेषक स्वभाव ही इस कार्य के लिए उपयुक्त था परन्तु मेरे विचार में यह पुस्तक पाठकों के हाथ में और शीघ्र पहुंचती और कदाचित् घटनाओं की दृष्टि से और अधिक पूर्ण होती यदि घटनाओं को एकत्रित करने का कार्य किसी ऐसे अन्वेषक को दिया गया होता जिस पर उपदेश देने का उत्तरदायित्व न होता । कौन नहीं जानता कि पंडित लेखराम को वैदिक (आर्य) धर्म की उन्नति का विचार कभी भी एक स्थान पर बैठने नहीं देता था और यदि उन्होंने कहीं सुन लिया कि अमुक स्थान पर मोहम्मदी अथवा ईसाई मतों के उपदेशक विशेष सफलता प्राप्त कर रहे हैं तो फिर बड़े से बड़े और आवश्यक से आवश्यक कार्यों को छोड़कर भी उस स्थान पर पहुंचना वह अपना कर्त्तव्य समझा करते थे । यही कारण था कि प्राय: विशेष वृत्तांत की खोज में क्रमश: चलते हुए भी धार्मिक शास्त्रार्थों की सूचना प्राप्त होते ही पंडित लेखराम कई आवश्यक स्थानों को बीच में छोड़ कर ही लौट आया करते थे परन्तु आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब भी विवश थी । स्वामी दयानन्द का जीवन कोई साधारण जीवन न था जिसका वृत्तांत केवल एक या दो स्थानों पर जाने से विदित हो जाता । इस जीवन का वृत्तांत जानने के लिए एक ऐसे अन्वेषी स्वभाव के व्यक्ति की आवश्यकता थी जो जहां एक ओर निरन्तर यात्रा करता रहता तो दूसरी ओर विदित हुए वृत्तांत से ठीक निष्कर्ष निकालने की योग्यता रखता । ऐसा व्यक्ति पंडित लेखराम के अतिरिक्त उस समय दूसरा दिखाई नहीं देता था । इसी कारण उन्हीं से काम लेना उचित समझा गया और जब घटनाओं के उस बहुमूल्य और प्रामाणिक संग्रह को देखा जाता है जो वे इकट्ठा कर गये हैं तो यही कहना पड़ता है कि निरन्तर प्रचार कार्य में संलग्न रहने और अपनी बड़ी-बड़ी पुस्तकों के संशोधन और पूर्ति में व्यस्त रहने पर भी जो मसाला पंडित लेखराम ने इकट्ठा किया है, वह कदाचित् ही कोई दूसरा व्यक्ति उस समय एकत्रित कर सकता । परन्तु फिर भी हम उन त्रुटियों की उपेक्षा नहीं कर सकते जो कि इस आवश्यक खोज के मार्ग में विशेष बाधाएं पड़ने के कारण प्रकट हुई हैं । यही कारण है कि बहुत से स्थानों के वृत्तांत पंडित लेखराम जी ने अन्य स्थानों के निवासियों द्वारा प्राप्त करके लिखे हैं और उस स्थान-विशेष पर कई बार जाने पर भी वे उस स्थान पर बैठकर खोज न कर सके ।

जीवनचरित्र की खोज में ये जो बाधाएं पड़ती रहीं इनको दूर करने की आवश्यकता आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब समय-समय पर अनुभव करती रही और इसीलिये विशेष नियम निश्चित करके पंडित लेखराम जी की सेवा में भेजे गये परन्तु पंडित लेखराम जी के धार्मिक उत्साह को शान्त करने के लिए कोई भी नियम सफल नहीं हो सकता था । उनको बुलाने के लिए एक आर्यसमाज का यह सूचना दे देना ही पर्याप्त था कि एक व्यक्ति मुसलमान होने वाला है अथवा किसी मोहम्मदी उपदेशक या मौलवी से शास्त्रार्थ की संभावना है । इस पर यदि आर्यप्रतिनिधि सभा की ओर से आक्षेप होता तो पंडित जी का इतना उत्तर ही सभा को मौन करने के लिए पर्याप्त रहता था कि वह उन दिनों का जो ऐसे शास्त्रार्थों में लगे हैं, वेतन न लेंगे । सन् १८९२ के अन्त तक पंडित जी ने बहुत कुछ कार्य कर लिया था इसलिए उनको एकत्रित वृत्तांत को उचित क्रम देने के लिए बुला लिया गया । कुछ समय तक पंडित जी मेरे पास रहकर समस्त वृत्तांत को नये सिरे से शुद्ध करके लिखते रहे परन्तु आर्य-प्रतिनिधि सभा पंजाब को उस समय उपदेशकों की अत्यन्त आवश्यकता थी । धर्म की प्यास लोगों में बहुत अधिक भड़क उठी थी और प्रत्येक स्थान पर पंडित लेखराम के धार्मिक ज्ञान के लाभ उठाने की इच्छा जाग

उठी थी । इसलिए विवश होकर उन्हें कुछ समय के लिए कार्य बन्द करना पड़ा । इसके पश्चात् जीवनचरित्र सम्बन्धी सारे कागज मुझ को सौंप दिये गये परन्तु पं० लेखराम जी के लेख को पढ़ना बड़ा कठिन काम था । मेरी रिपोर्ट पर आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब ने समस्त कागज राय ठाकुरदत्त जी को सौंप दिये परन्तु जब उन्होंने भी कागजों को अधूरा बताया तो फिर पं० लेखराम जी को ही प्रकाशन का कार्य आरम्भ करने के लिए लाहौर में ठहराया गया ।

पं० लेखराम का बलिदान और कार्य में रुकावट— पंडित लेखराम जी ने यद्यपि लाहौर में रह कर अपने सामने लगभग ६०० पृष्ठों का विषय प्रेस के कातिबों को लिखवा दिया था तथापि यह लेख अभी तक अपूर्ण था क्योंकि घटनाओं का बहुत-सा अंश केवल पंडित जी के मस्तिष्क में ही था जो कि कापियां संशोधन करते समय उन्होंने पुस्तक में सम्मिलित करना था । कुछ कागज इस प्रकार के निकले हैं जिससे विदित होता है कि अभी तक विशेष-विशेष नोट लिखने का कार्य पंडित जी ने अवशिष्ट रख छोड़ा था । ये सब कठिनाइयां ही कुछ थोड़ी न थीं कि ६ मार्च, सन् १८९७ की शाम को स्वामी दयानन्द का जीवनचरित्र लिखते-लिखते पंडित लेखराम आर्यपथिक ने अपने रक्त से उन्नीसवीं शताब्दी के ऋषि के मिशन की पूर्ति करने के लिए अपना बलिदान दे दिया; आर्यसमाज के संस्थापक का जीवनचरित्र पूर्ण करने के स्थान पर वह अपने जीवनचरित्र लिखने का कार्य आर्यसमाज के लिए छोड़ गये ।

ला० आत्माराम ने कार्य संभाला— इस खींचातान की दशा में आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब ने बड़ी गम्भीरता और धैर्य से काम लिया । २१ मार्च सन् १८९७ की अन्तरंग सभा के प्रस्ताव सं० ७ द्वारा स्वामी जी के जीवन वृत्तांत को शुद्ध करके जनता के समक्ष रखने का कार्य ला० आत्माराम जी भूतपूर्व मंत्री आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब को सौंपा गया ।

योग्यता और ज्ञान दोनों ही की दृष्टि से दूसरा कोई भी आर्यसमाजस्थ पुरुष उस समय ऐसा विद्यमान न था जो अपना पूरा समय देकर इस कठिन भार को उठाने का साहस कर सकता । चूंकि प्रूफ देखने और भाषा के शुद्ध करने में प्राय: मेरे मित्र ला० आत्माराम जी मुझ से सम्मति लेते रहे हैं इसलिए मैं उन कठिनाइयों का अनुमान लगा सकता हूं जिनका उन्हें सामना करना पड़ा है, परन्तु जिस सन्तोष और धैर्य के साथ ला० आत्माराम जी ने इन समस्त कठिनाइयों का सामना किया है उसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूं क्योंकि अन्ततः उन्होंने प्रत्येक रुकावट को दूर करके वर्तमान काल के लिए ऋषि का जीवन वृत्तांत सर्वसाधारण के अध्ययनार्थ तैयार कर दिया है ।

उनके अन्य सहयोगी— परन्तु पूर्व इसके कि मैं लाला आत्माराम जी के महान् परिश्रम की प्रशंसा करूं यह उचित प्रतीत होता है कि उन धार्मिक नवयुवकों का भी आर्य प्रतिनिधिसभा पंजाब की ओर से धन्यवाद करूं जिन्होंने कि ला० आत्माराम जी की इस महान् कार्य में सहायता करके पुस्तक के शीघ्र प्रकाशित होने में सहायता दी है । ला० आत्माराम जी चूंकि विशेष कारणों से अपना निवास लाहौर में नहीं रख सकते थे, इसलिए कापी और प्रूफ देखने के कार्य में बड़ी कठिनाई होती यदि इस अवसर पर कोई लाहौर-निवासी आर्य उनकी सहायता न करता । ऐसी आवश्यकता के काल में हमारे पुरुषार्थी आर्य भाई ला० सीताराम जी लकड़ी विक्रेता ने यह साधारण किन्तु कठिन कार्य अपने ऊपर लिया । यद्यपि ला० श्यामसुन्दर अमृतसरी, ला० लब्भूराम और कुछ अन्य नवयुवक भी इस कार्य में ला० सीताराम की सहायता करते रहे जिसके लिए वे सभा तथा जनता के धन्यवाद के पात्र हैं, तथापि चूंकि अन्त में वर्णित समस्त नवयुवक भाई केवल ला० सीताराम की प्रेरणा से कार्य करते रहे इसलिए मैं ला० सीताराम को उनके धार्मिक उत्साह के लिए धन्यवाद देता हूं और परमेश्वर से प्रार्थना करता हूं कि इन सब भाइयों की रुचि दिन-प्रतिदिन धर्म में बढ़ती रहे ।

ला० आत्माराम जी का योगदान— ला० आत्माराम जी ने केवल पुस्तक के उस भाग को ही शुद्ध नहीं किया जिसको पं० लेखराम जी नियमित रूप दे चुके थे प्रत्युत उन्होंने बहुत-सा आवश्यक और लाभदायक पुस्तक का भाग स्वयं

लिखा। द्वितीय अध्याय तक के प्रत्येक विषय का उत्तरदायित्व स्वर्गीय पंडित लेखराम जी पर है। यद्यपि इस भाग में भी बहुत कुछ उद्यम पं० आत्माराम जी को करना पड़ा है और उन्होंने अपने परिश्रम से भाषा में बहुत कुछ शुद्धि की है तथापि इस समस्त भाग को नियमित रूप पं० लेखराम जी ने दिया था, और चूंकि स्वर्गवासी पं० जी ने साधारणतया घटनाएं उन्हीं सज्जनों के शब्दों में लिखी हैं जिनसे कि उनको विदित हुई थीं, इसलिए यह भाग कोमल स्वभाव व्यक्तियों को साधारणतया अरुचिकर प्रतीत होगा परन्तु सत्यप्रिय व्यक्तियों को इस सम्मिश्रणहीनता और सरलता में एक नवीन आनन्द प्राप्त होगा। लेखक की योग्यता का प्रकाश इस पुस्तक के लिखने का प्रयोजन नहीं है। प्रत्युत सत्य-सत्य वृत्तांत बिना किसी प्रकार की काट-छांट के सर्वसाधारण जनता तक पहुंचाना अभीष्ट है। इसलिए भाषा सौन्दर्य की प्रेरणा से बचने में पंडित लेखराम जी ने जनता का बड़ा उपकार किया है क्योंकि उन्होंने प्रत्येक समझदार मनुष्य को एकत्रित घटनाओं से अपने लिए स्वतंत्र निष्कर्ष निकालने का अवसर प्रदान किया है। इस पुस्तक के तृतीय भाग अध्याय प्रथम में स्वामी दयानन्द जी के गुरु (ऋषिवर विरजानन्द सरस्वती) का संक्षिप्त जीवनचरित्र यद्यपि ला० आत्माराम जी ने अपनी भाषा में लिखा है तथापि उसका मूल उन नोटों पर है जो कि पंडित लेखराम जी उस सम्बन्ध में छोड़ गये हैं। इससे आगे इस भाग के द्वितीय अध्याय से समाप्ति पर्यन्त सारा विषय ला० आत्माराम जी की लेखनी से निकला हुआ है।

ला० आत्माराम द्वारा लिखित अंश पर भूमिका-लेखक का मौन-इस अन्तिम भाग के विषय में मैं अपनी कोई सम्मति प्रकट करना नहीं चाहता क्योंकि भिन्न-भिन्न स्वभाव इससे भिन्न-भिन्न प्रकार का प्रभाव ग्रहण करेंगे। हां! इतना लिखना आवश्यक समझता हूं कि वह भाग प्रत्येक पढ़ने वाले के लिए पूरे विचार और पूरे ध्यान का विषय है क्योंकि मैं उस भाग को भली-भांति समझ लेना ही इस पुस्तक के पढ़ने का फल समझता हूं।

घटना-संग्रह की त्रुटियां : पाठकों से निवेदन-मैं पहले ही प्रकट कर चुका हूं कि इस जीवनचरित्र की खोज और इसको नियमित रूप देने में बहुत-सी त्रुटियां रह गई हैं और बहुत से वृत्तांत विशेष बाधाओं के कारण अब तक जनता के समक्ष नहीं आ सके हैं। उदाहरणार्थ, मैं कुछ घटनाएं प्रकट कर सकता हूं जिनका सम्बन्ध मेरे साथ है। पंडित लेखराम जी के कागजों में एक सादा कागज निकला जिस पर केवल इतना लिखा था—'ला० मुन्शीराम द्वारा कथित वृत्तांत'। मेरे अतिरिक्त इस समय कौन जान सकता है कि मैंने कौन-सी घटनाएं पंडित जी को बतलाई थीं। इस प्रकार और बहुत से सज्जन पुरुषों ने वृत्तांत बतलाये होंगे जो पंडित जी के हृदय में ही समाप्त हो गये। मेरा अभिप्राय इस लेख से यह नहीं है कि इन त्रुटियों के कारण हमारे सामने स्वामी दयानन्द का सम्पूर्ण जीवन नहीं आता; क्योंकि चाहे कितनी ही सावधानी क्यों न बरती जाये और कितने ही परिश्रम से घटनाएं क्यों न एकत्रित की जायें फिर भी ऐसे महापुरुषों के जीवन के कुछ वृत्तांत कभी भी विदित नहीं होते। मेरा अभिप्राय केवल यह है कि इस पुस्तक के पढ़ने के पश्चात् जिस भद्र पुरुष के ध्यान में कोई ऐसी घटना आये जो इसमें न लिखी हो तो उसका कर्त्तव्य है कि वह सारी घटना को भली प्रकार लिखकर आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के कार्यालय (लाहौर स्थित में) भेज देवे, ताकि दूसरी आवृत्ति में (जिसकी बहुत शीघ्र आवश्यकता पड़ेगी) ज्ञान का भंडार अत्यधिक विस्तृत हो सके।

भूमिका-लेखक स्वामी जी के सम्पर्क में-इस त्रुटि को पूरा करने के लिए मैं पहला पग उठाता हूं। स्वामी दयानन्द जी महाराज बरेली नगर में १४ अगस्त सन् १८७९ ईसवी को पधारे। उन दिनों मेरे पिता उस स्थान के शहर कोतवाल थे और कालिज में विशूचिका रोग के कारण विशेष छुट्टियां होने के कारण मैं अपने पिता के पास बरेली आया हुआ था। उस स्थान पर ही मुझे पहली और अन्तिम बार ऋषिवर के दर्शन प्राप्त हुए। मैं उन दिनों नास्तिक था। काशी नगर की प्रबल मूर्तिपूजा से व्याकुल होकर मतमतान्तरों में कुछ समय आन्दोलन करने के पश्चात् मैंने ईश्वर की सत्ता को ही अस्वीकार कर दिया था। ईश्वरीय ज्ञान का न तो कभी मानने वाला था और न ही इंजील और कुरान से मुझे कभी

शान्ति प्राप्त हुई । वेद का नाम सुना ही न था । नास्तिक होने के अतिरिक्त मेरा यह दृढ़ मत था कि संस्कृत भाषा में बेहूदापन (मूर्खतापन) के अतिरिक्त बुद्धि की कोई बात है ही नहीं । यही कारण था कि काशी में शिक्षाप्राप्त्यर्थ पांच वर्ष तक निवास रखने और पंडितों के हठ करने पर भी मैंने लघुकौमुदी का कुछ प्रारम्भिक भाग पढ़ने और कुछ संस्कृत काव्य के अध्ययन के अतिरिक्त संस्कृत भाषा की ओर कुछ विशेष ध्यान न दिया था । मेरे पिता पौराणिक धर्म पर पक्का विश्वास रखने वाले और प्रतिदिन ३ घंटों की पूजा करने वाले थे । पुलिस विभाग में वे असाधारण व्यक्ति समझे जाते थे क्योंकि पूजा और पुलिस का कोई सम्बन्ध न था । स्वामी दयानन्द का पहला भाषण सुनकर आते ही पिता जी ने मुझसे कहा 'मुन्शीराम ! एक दण्डी संन्यासी आये हैं । बड़े विद्वान् और योगिराज हैं । तुम्हारे संशय उनकी वक्तृता सुन कर निवृत्त हो जायेंगे ।' मेरे पिता को विदित था कि मैं नास्तिक हूं क्योंकि अपने विचारों को छिपाने की योग्यता मुझमें पहले ही से न थी । उत्तर में मैंने प्रतिज्ञा की कि चलूंगा । परन्तु और कुछ न कहा क्योंकि मन में उसी समय विचार आया कि संस्कृत जानने वाला साधु बुद्धि की क्या बात करेगा । दूसरे दिन खजांची लक्ष्मीनारायण की कोठी बेगम बाग में पिता के साथ पहुंचा । दर्शन करते ही कुछ श्रद्धा उत्पन्न हुई और फिर जब पादरी स्काट और दो तीन और अंग्रेजों को सुनने का इच्छुक पाया तो और भी श्रद्धा बढ़ी । अभी दस मिनट भाषण नहीं सुना था कि मन ने कहा 'यह विचित्र मनुष्य है, केवल संस्कृत का ज्ञाता होकर ऐसी बुद्धि अनुकूल बात कहता है कि विद्वान् लोग दंग हो जायें ।' व्याख्यान ईश्वर के निज नाम 'ओ३म्' पर था । मैं वह पहले दिन का आत्मिक आनन्द कभी भूल नहीं सकता । इसके पश्चात् मूर्ति-पूजा के खंडन पर व्याख्यान जब आरम्भ हुए तो जहां मेरी श्रद्धा बढ़ने लगी वहां मेरे पिता की श्रद्धा यद्यपि घटी तो नहीं, परन्तु उन्होंने व्याख्यानों में जाना बन्द कर दिया और प्रबन्ध का कार्य अपने अधीन एक सब-इन्सपेक्टर को सौंप दिया । मेरे पूछने पर पिताजी ने कहा कि योगिराज दण्डी संन्यासी हैं, ये सब कुछ कह सकते हैं परन्तु हम गृहस्थियों को तो इसी पर आचरण करना चाहिये-हरिहर निन्दा सुनहि जो काना । होय पाप गोघात समाना ॥ (तुलसीदासकृत रामायण)

पहले दिन के व्याख्यान के अतिरिक्त मैं अन्य किसी व्याख्यान से अनुपस्थित नहीं रहा; प्रत्युत पादरी स्काट के साथ जो शास्त्रार्थ हुए उनमें से पहले दो शास्त्रार्थों में काम करता रहा । अन्तिम शास्त्रार्थ के दिन मुझे तीव्र ज्वर हो गया था जिसके कारण मुझे जाते समय भी स्वामी जी महाराज के दर्शन प्राप्त न हुए ।

स्वामी जी की तीन वर्णनीय बातें—इन दिनों की तीन चार बातें वर्णनीय हैं जो कि मैंने पंडित लेखराम जी को लिखवा दी थीं—शनिवार का दिन था । व्याख्यान टाउन हाल में हो चुका था । बहुत से मनुष्यों ने निवेदन किया कि अगले दिन रविवार को नियत समय से एक घंटा पूर्व व्याख्यान आरम्भ हो । स्वामी जी ने स्वीकार कर लिया और कहा, "मैं नगर से ढाई मील के अन्तर पर ठहरा हूं और मेरा समय विभक्त हो चुका है; इसलिए व्याख्यान के लिए तो एक घंटा पहले आ सकता हूं परन्तु सवारी भी साधारण समय से एक घंटा पूर्व आनी चाहिये क्योंकि मैं ठीक उस समय तैयार होता हूं, जब व्याख्यान आरम्भ होने में पन्द्रह मिनट शेष रहें ।" इस पर खजांची लक्ष्मीनारायण ने प्रतिज्ञा की कि सवारी एक घंटा पूर्व पहुंच जायेगी । रविवार के दिन नियत समय से एक घंटा पूर्व प्रत्युत उससे भी पूर्व श्रोताओं का समूह पूर्ववत् एकत्रित हो गया परन्तु स्वामी जी न पहुंचे । अन्ततः पौन घंटे के पश्चात् बग्घी आई; स्वामी जी उतर कर टाउन हाल में पहुंचे और सोटा दीवार के साथ टिका कर पूर्व इसके कि प्रार्थना के लिए बैठें, बोले—'मैं नियत समय पर तैयार था परन्तु सवारी नहीं पहुंची । मैं प्रतीक्षा के पश्चात् पैदल चल पड़ा, मार्ग में बग्घी साधारण समय पर मिली; इसलिए विलम्ब हो गया । सभ्य जनो ! मेरा दोष नहीं है, दोष बच्चों का है जो कि प्रतिज्ञा-पालन करना नहीं जानते' । खजांची लक्ष्मीनारायण जी रुहेलखंड के प्रख्यात धनवानों में से थे और स्वामी जी का आतिथ्य कर रहे थे किन्तु सिर झुकाये चुपचाप सुनते रहे ।

हम तो सत्य ही कहेंगे—एक दिन व्याख्यान के समय श्री स्वामी जी महाराज पुराणों की असम्भव बातों का खंडन करते-करते उनके नैतिक शिक्षण के दोष दिखाने लगे। उस समय पादरी स्काट, मिस्टर रीड, कलक्टर जिला और मिस्टर ऐडवर्ड साहब कमिश्नर आदि पन्द्रह बीस अंग्रेज सज्जन विराजमान थे; स्वामी जी ने पौराणिकों की पांच कुमारियों का वर्णन करते हुए एक-एक के गुण कहने आरम्भ किये और पौराणिकों की बुद्धि पर खेद प्रकट किया कि द्रौपदी को पांच पति करा कर उसे कुमारी कहना और इसी प्रकार कुन्ती, तारा, मन्दोदरी आदि को कुमारी कहना पौराणिकों के नैतिक शिक्षण को दोषपूर्ण सिद्ध करता है।[१] स्वामी जी की वर्णनशैली ऐसी परिहासमयी थी कि श्रोता थकने का नाम नहीं जानते थे। इस पर साहब कलक्टर और साहब कमिश्नर आदि अंग्रेज हंसते और प्रसन्नता प्रकट करते रहे परन्तु इस विषय को समाप्त करके स्वामी जी महाराज बोले, 'पौराणिकों की तो यह लीला है, अब किरानियों की लीला सुनो। यह ऐसे भ्रष्ट हैं कि कुमारी के पुत्र उत्पन्न होना बतलाते और फिर दोष सर्वज्ञ शुद्धस्वरूप परमात्मा पर लगाते और ऐसा घोर पाप करते हुए तनिक भी लज्जित नहीं होते।'

इतना कहना ही था कि साहब कलक्टर और साहब कमिश्नर के मुख क्रोध के मारे लाल हो गये परन्तु स्वामी जी का व्याख्यान उसी उत्साह के साथ चलता रहा। उस दिन ईसाई मत का व्याख्यान के अन्त तक खंडन करते रहे। दूसरे दिन प्रात:कल ही खजांची लक्ष्मीनारायण को साहब कमिश्नर बहादुर की कोठी पर बुलाया गया। साहब बहादुर ने कहा कि 'अपने पंडित साहब को कह दो कि बहुत कठोरता से काम न लिया करें हम ईसाई लोग तो सभ्य हैं, हम तो शास्त्रार्थ में कठोरता से नहीं घबराते परन्तु यदि असभ्य हिन्दू और मुसलमान उत्तेजित हो गये तो तुम्हारे स्वामी पंडित के व्याख्यान बन्द हो जायेंगे'। खजांची साहब यह सन्देश स्वामी जी के पास पहुंचाने की प्रतिज्ञा करके लौट आये परन्तु स्वामी जी तक इस विषय को पहुंचाने वाला वीर कहां से मिलता। कई आने-जाने वालों से खजांची जी ने प्रार्थना की परन्तु कोई भी आगे बढ़ने का साहस न कर सका। अन्त में दृष्टि एक नास्तिक पर पड़ी और उस पर इस विषय को निवेदन करने का उत्तरदायित्व रखा गया। खजांची साहब उस नास्तिक और कुछ अन्य व्यक्तियों के सहित कमरे के भीतर पहुंचे। जिस पर नास्तिक यह कह कर कि खजांची साहब कुछ निवेदन करना चाहते हैं क्योंकि उन्हें साहब कमिश्नर ने बुलाया था' वहां से खिसक गया और सारी विपत्ति मानो खजांची साहब के सिर पर टूट पड़ी। अब खजांची साहब कभी सिर खुजलाते हैं, कभी गला साफ करते हैं। अन्त में पांच मिनट तक आश्चर्य से देखते हुए स्वामी जी ने कहा, 'भाई, तुम्हारा तो कोई काम करने का समय ही नहीं है। इसलिए तुम समय का मूल्य नहीं समझ सकते, मेरा समय अमूल्य है जो कुछ कहना हो कह दो।'

इस पर खजांची साहब बोले, 'महाराज ! यदि कठोरता न की जाये तो क्या हानि है, इससे प्रभाव भी अच्छा पड़ता है और अंग्रेजों को क्रुद्ध भी करना अच्छा नहीं है आदि आदि'। ये बातें अटक-अटक कर और बड़ी कठिनता से खजांची साहब के मुख से निकलीं। इस पर महाराज हंसे और कहने लगे, "अरे, बात क्या थी जिसके लिए गिड़गिड़ाता है और हमारा इतना समय नष्ट किया। साहब ने कहा होगा कि तुम्हार पंडित कठोर बोलता है, व्याख्यान बन्द हो जायेंगे, यह होगा वह होगा। अरे भाई, मैं हौआ तो नहीं जो तुझे खा लूंगा, उसने तुझ से कहा, तू मुझ से सीधा कह देता। व्यर्थ इतना समय क्यों गंवाया।"

एक विश्वासी पौराणिक हिन्दू बैठा था वह कहने लगा 'देखो यह तो कोई अवतार है, मन की बात जान लेते हैं।'

अस्तु, यहां तो जो कुछ हुआ वह हुआ। अब व्याख्यान का वृत्तांत वर्णनीय है। मैंने केशवचन्द्र सेन, लाल मोहन घोष[२], सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी[३], ऐनी बीसेंट[४] तथा अन्य बहुत से विख्यात व्याख्यानदाताओं के भाषण सुने हैं और वे भी उनकी उन्नति के काल में, परन्तु मैं सच्चे हृदय से कहता हूं कि जो प्रभाव मुझ पर उस दिन के व्याख्यान ने किया और जो विशेषता

मुझे उस दिन के सरल शब्दों में प्रतीत हुई वह अब तक तो दिखलाई नहीं दी, भविष्य की ईश्वर जाने । उस दिन आत्मा के स्वरूप पर व्याख्यान था, उसी के मध्य में सत्य के बल पर महाराज ने बोलना प्रारम्भ किया । पहले दिन वाले समस्त अंग्रेज सज्जन, पादरी स्काट के अतिरिक्त, उपस्थित थे । कोई व्यक्ति चेष्टा नहीं करता था, सब चुपचाप तन्मय होकर व्याख्यान सुन रहे थे । मुझे पूरा व्याख्यान तो स्मरण नहीं परन्तु उसके प्रभाव को अब तक अनुभव करता हूं । उसके कुछ शब्द मुझे अन्तिम समय तक याद रहेंगे । ऋषि ने कहा 'लोग कहते हैं कि सत्य को प्रकट न करो, कलक्टर क्रोधित होगा, कमिश्नर अप्रसन्न होगा, गवर्नर पीड़ा देगा । अरे ! चक्रवर्ती राजा क्यों न अप्रसन्न हो, हम तो सत्य ही कहेंगे' । इसके पश्चात् उस उपनिषद्-वाक्य[5] को पढ़कर जिसमें लिखा है कि आत्मा को न कोई शस्त्र छेदन कर सकता है औन न अग्नि जला सकती है, गरजती हुई आवाज में बोले, 'यह शरीर तो अनित्य है । इसकी रक्षा में प्रवृत्त होकर अधर्म करना व्यर्थ है, इसे जिस मनुष्य का जी चाहे नाश कर दें ।' फिर चारों ओर अपनी तीक्ष्ण नेत्रों की ज्योति डालकर सिंहनाद करते हुए वे बोले—'परन्तु वह शूरमा वीर पुरुष मुझको दिखलाओ जो यह दावा करता है कि वह मेरे आत्मा का नाश कर सकता है । जब तक ऐसा वीर इस संसार में दिखाई नहीं देता मैं यह सोचने के लिए भी उद्यत नहीं हूं कि मैं सत्य को दबाऊंगा अथवा नहीं ।'

(ग) **मनुष्य पूजा की निन्दा**—सारे हाल में सन्नाटा छाया हुआ था, व्याख्यान में कुछ विलम्ब हो गया । उठते ही महाराज ने पूछा, 'भक्त स्काट आज नहीं दिखाई दिये' । पादरी स्काट साहब को स्वामी जी से बड़ा प्रेम हो गया था और चूंकि वे किसी व्याख्यान में भी अनुपस्थित नहीं हुए थे इसलिए स्वामी जी उन्हें इसी नाम से पुकारा करते थे । किसी ने कहा कि रविवार का दिन है इसलिए नहीं आये क्योंकि समीप के ही गिरजा में वे रविवार को उपदेश किया करते हैं । टाउन हाल से नीचे आते ही महाराज कहने लगे कि चलो, स्काट का गिरजा देख आवें । यद्यपि अधिकतर श्रोता चले गये थे तथापि तीन या चार सौ की भीड़-भाड़ साथ ले गिरजा में जा पहुंचे । पादरी साहब ने व्याख्यान अभी समाप्त ही किया था, श्रोतागण एक सौ के लगभग थे । स्वामी जी को देखते ही पादरी साहब नीचे उतर आये और स्वामी जी को वेदी (Pulpit) पर ले जा कर प्रार्थना की कि महाराज कुछ उपदेश करें । स्वामी जी ने खड़े-खड़े ही बीस मिनट तक मनुष्यपूजा का खण्डन किया, सब चुपचाप सुनते रहे । यहां प्रश्न यह है कि स्वामी दयानन्द जी का सच्चा अनुयायी कौन है ? यदि कोई है तो उसकी खोज करो क्योंकि वैदिक धर्म की उन्नति का साधन वही होगा ।

(घ) **वेश्यागमन की निंदा**—एक दिन स्वामी जी महराज को ज्ञात हुआ कि खजांची लक्ष्मीनारायण ने एक वेश्या को अपने घर में डाला हुआ है । जब खजांची साहब उस दिन आये तो स्वामी जी ने पूछा, 'खजांची जी ! तुम कौन हो ?' खजांची जी ने उत्तर दिया 'महाराज ! आप गुणकर्मानुसार वर्ण-व्यवस्था मानते हैं, मैं क्या उत्तर दूं । स्वामी जी बोले 'कि यों तो सब वर्णसंकर हैं किन्तु समय के अनुसार तुम अपने को क्या कहते हो ?'

खजांची जी ने उत्तर दिया कि मैं खत्री हूं । महाराज बोले 'यदि खत्री के वीर्य से वेश्या में पुत्र उत्पन्न हो तो उसे क्या कहोगे ?' खजांची जी ने सिर नीचा कर लिया । इस पर महाराज ने कहा 'सुनो भाई ! हम किसी का लिहाज नहीं करते, हम तो सच-सच कहेंगे' । उसी रात खजांची जी ने उस वेश्या को कहीं भेज दिया ।

परमात्मा से मिलन कैसे हो ? भूमिका लेखक को बताया—जगत बीती तो बहुत सी कहानियां हैं जो किसी समय के लिए छोड़ता हूं । अब आपबीती वर्णन करता हूं । मैंने तीन बार महाराज से बातचीत ईश्वर-विषय में की । मुझे उन दिनों अपने नास्तिकपन का बड़ा अभिमान था । यद्यपि स्वामी जी का सारा उपदेश मुझे अच्छा प्रतीत होता था तथापि मैं मन में यही सोचा करता था कि यदि एक ईश्वर और वेद को मानना स्वामी दयानन्द जी छोड़ दें तो फिर संसार का कोई भी विद्वान् उनका सामना करने वाला दिखाई नहीं देता । मैंने अभिमान में आकर पहली बार केवल शास्त्रार्थ के अभिप्राय

से ईश्वर विषय में आक्षेप किये परन्तु पांच मिनट में ही मेरी जिह्वा बन्द हो गई। अन्ततः चारों ओर से युक्तिजाल में फंसकर मैंने कहा, "महाराज ! आपकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण है, आपने मेरी जिह्वा बन्द कर दी परन्तु मुझे विश्वास नहीं दिलाया कि परमेश्वर कोई है"। दूसरी और तीसरी बार भी इसी प्रकार पांच-पांच मिनट में मेरी जिह्वा बंद हो गई। जब तीसरी बार भी मैंने विवश होकर वही उत्तर दिया तब महाराज प्रथम तो हंस पड़े फिर गम्भीरतापूर्वक कहा, "देखो, तुमने प्रश्न किये, मैंने उत्तर दिये। यह युक्ति की बात थी, मैंने कब प्रतिज्ञा की थी कि मैं तुम्हारा विश्वास ईश्वर पर करा दूंगा। तुम्हारा विश्वास ईश्वर पर उस समय होगा जब ईश्वर स्वयं अपने ऊपर विश्वास करायेंगे"। उसी समय महाराज ने उपनिषद् वाक्य[६] भी पढ़ा था जो कि मुझे स्मरण नहीं रहा।

दयानन्द सच्चा ऋषि था—मैं उस समय तो नास्तिक का नास्तिक ही रहा और उसके पश्चात् चिरकाल नक अविश्वास की गहरी गुफा में गिरा रहा परन्तु जब मेरे उद्धार का समय आया युक्ति की आवश्यकता न रही। तब जहां बड़ी-बड़ी युक्तियां, पादरियों, मौलवियों और पण्डितों की असफल होकर रह गई, जहां दयानन्द से योगिराज की युक्ति ने भी सान्त्वना न दी, वहां परमात्मा ने स्वयं अपने ऊपर विश्वास कराया और उस समय मुझे ऋषि का कथन स्मरण आया और मैंने उसकी महानता के आगे सिर झुकाया और सहसा मेरे हृदय से ये शब्द निकले कि 'दयानन्द सच्चा ऋषि था।'

इस पुस्तक का उचित नामकरण

प्यारे पाठको ! मैं आपकी सेवा में निवेदन कर चुका हूं कि इस पुस्तक को न तो कोई बायोग्राफी (जीवनचरित्र) ही कह सकते हैं और न ही इसे आर्यसमाज का इतिहास कह सकते हैं। फिर इसका नाम क्या रखें ? इस पुस्तक को नियमित रूप देने वालों ने तो जो उचित समझा इसका नाम रख दिया परन्तु मैं अपनी ओर से कोई विशेष नाम न रखता हुआ आपके समक्ष इस बारे में अपने विचार प्रकट करता हूं और आपमें से प्रत्येक को यह अधिकार देता हूं कि अपनी योग्यता और बुद्धि के अनुसार इस संग्रह का नामकरण संस्कार स्वयं कर लें।

सच्चे जीवनचरित्र का स्वरूप—महान् ऋषियों और सत्यप्रिय विद्वानों के जीवनचरित्रों के द्वारा धार्मिक शिक्षा देने की रीति आर्यावर्त में कुछ नवीन नहीं है। प्राचीन आर्यावर्त में वानप्रस्थी महात्मा और विरक्त साधुजन सदा पूर्वजों के आचरणों के उदाहरणों के द्वारा अपने शिष्यों को धार्मिक शिक्षा दिया करते थे। उपनिषद् ग्रन्थ जो कि ऋषियों के वानप्रस्थकाल के उपदेश हैं इस प्रकार के असंख्य उदाहरणों से भरे हुए हैं किन्तु तिथियों को असार और परिवर्तनशील समझकर उनका वर्णन वह आवश्यक नहीं समझते थे। इस नई रोशनी के काल में बड़े अभिमान के साथ कहा जाता है कि प्राचीन लोग इतिहास और जीवनचरित्र के सार को नहीं समझते थे किन्तु यदि थोड़ा सा विचार किया जाये तो स्पष्ट स्वीकार करना पड़ता है कि उन्नीसवीं शताब्दी में इतिहास और जीवनचरित्र के गौरव को अभी तक बहुत कम समझा है। इसमें सन्देह नहीं कि योरुप की जातियां शताब्दियों के अन्धकार से पुरुषार्थ के साथ निकलती हुई अब किंचिन्मात्र समझने लगी हैं कि इतिहास और जीवनचरित्र मनुष्य की सच्ची शिक्षा में कहां तक लाभदायक हो सकते हैं। परन्तु खेद है कि हमारा अभागा देश अब तक मोहनिद्रा में सो रहा है। महाभारत के भयानक युद्ध ने हमारे साथ केवल यही अन्याय नहीं किया कि हमसे धर्मात्मा विद्वानों और उच्चतम विचारशक्ति रखने वालों को छीन लिया, प्रत्युत हमें सार और असार में विवेक करने के योग्य भी नहीं छोड़ा। उसके पश्चात् पुराणों का यह अन्धकारमय युग आया जिसमें कि अविद्या और स्वार्थ का पूरा राज्य हो गया और इस अभागी भूमि के सामने से रहा-सहा प्रकाश भी लुप्त हो गया। फिर कालचक्र में फंसे हुए भारतवर्ष का यदि कोई इतिहास विद्यमान न हो तो आश्चर्य नहीं करना चाहिए। आश्चर्य यदि है तो यह कि दर्शनों, ब्राह्मणों और सूत्र ग्रन्थों के द्वारा प्राचीन आर्यावर्त का पूर्ण इतिहास इस अनन्तकाल की हलचल में क्योंकर बचा रहा ? वर्तमान काल में इतिहास प्राय: तिथियों के संग्रह को कहा जाता है और यद्यपि सच्चा इतिहास विद्यमान नहीं है परन्तु योरुप और अमेरिका के पुरुषार्थी

अन्वेषकों ने बड़ी खोज और अनुभव के पश्चात् यह घोषणा की है कि सच्चे इतिहास के साथ तिथियों का कोई आवश्यक सम्बन्ध नहीं है। तिथियों का प्रयोग केवल क्रम के स्मरणार्थ किया जाता है; अन्यथा इतिहास का सम्बन्ध केवल उस सार्वभौम क्रान्ति के साथ है जो कि परमात्मा के नियमों के अनुकूल अथवा प्रतिकूल चलने पर मनुष्य समाज के किसी भाग में उत्पन्न हुआ करती है।

जीवनचरित्र लिखने का सही उद्देश्य—जीवनचरित्र लिखने का सही उद्देश्य भी योरुप की अन्वेषक जातियों ने कहीं अब समझा है। पूर्वकाल में योरुप में भी जीवनचरित्र का उद्देश्य केवल व्यक्तिगत मनोरंजन समझा जाता था और इसलिए तिथियों और साधारण घटनाओं की ऐसे ग्रन्थों में भरमार होती थी परन्तु उन्नतिपथगामी योरुप ने अब निश्चय कर लिया है कि महान् पुरुषों के जीवनचरित्र केवल उन बड़ी-बड़ी घटनाओं का संग्रह है जिन्होंने कि मनुष्यसमाज के आचरणों में कोई विशेष प्रकट क्रान्ति उत्पन्न कर दी हो।

पाठकगण! स्वामी दयानन्द सरस्वती के जीवनचरित्र का अध्ययन यदि आप केवल मनोरंजन के लिए करना चाहते हैं तो इसे हाथ न लगाइये। यदि इस पुस्तक को आपने केवल भाषा-सौन्दर्य अथवा क्रमव्यवस्था की परीक्षा करने के लिए हाथ में लिया है तो इसे तत्काल रख दीजिये। हां! यदि आपको अपने जीवन के उद्देश्य की खोज है तो मन को सावधान कर अन्तःकरण की शुद्धि से इन क्रमहीन किन्तु शिक्षाप्रद पृष्ठों को उलटिए। निश्चय ही शुभ परिणाम पर पहुंच जाइयेगा।

स्वामी दयानन्द का कार्य महान् था—यह एक मानी हुई बात है कि वर्तमान काल की उन घटनाओं में से जिन्हें कि असाधारण कहकर सम्बोधित किया जाता है, स्वामी दयानन्द का कार्य भी एक श्रेष्ठ स्थान रखता है। प्रोफेसर मैक्समूलर से लेकर सर मोनियर विलियम्स[7] जैसे पक्षपातपूर्ण विदेशी ईसाई तक और कट्टर मूर्तिपूजकों से लेकर बिशननारायण दर[8] सरीखे स्वतन्त्र स्वदेशी पुरुष तक, सभी इस बात पर एक-मत हैं कि कम से कम भारतवर्ष में, स्वामी दयानन्द की समानता करने वाला दूसरा सुधारक इस शताब्दी में उत्पन्न नहीं हुआ। फिर इसमें क्या सन्देह है कि भारतवासियों के लिए स्वामी दयानन्द के जीवन-वृत्तान्त से बढ़कर और कोई अध्ययन नहीं हो सकता।

उन्नीसवीं शताब्दी में ऋषि-जीवन का महत्त्व

भारत का इतिहास विश्व-इतिहास की कुंजी—संसार का सामाजिक इतिहास मनुष्यों के विचारों और कर्मों का संग्रह समझा जाता है। किसी सीमा तक तो यह विचार ठीक है परन्तु यदि गूढ़ दृष्टि से देखा जाये तो संसार का इतिहास बनाने वाले केवल कुछ ही चेतन आत्मा प्रतीत होंगे और उनका भी संसार के सच्चे इतिहास से वहां तक ही सम्बन्ध दिखाई देगा जहां तक कि कोई नवीन विचार चेतन-जगत् में उनके द्वारा फूंका गया है। अन्यथा खाना, पीना, उठना, बैठना, जागना, सोना, चलना-फिरना और इसी प्रकार से इन्द्रियों की अन्य साधारण चेष्टाओं का तो मनुष्यसमाज के इतिहास से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। जिस प्रकार के जड़ जगत् का इतिहास समझने के लिए वे बड़े व प्रारम्भिक नियम जानने आवश्यक होते हैं जो कि प्रत्येक काल की चेष्टाओं के मौलिक नियम रहे हैं। इसी प्रकार चेतन जगत् का सच्चा इतिहास तब तक समझ में नहीं आ सकता जब तक कि उन बड़े-बड़े व प्रारम्भिक नियमों का ज्ञान प्राप्त न किया जाये जो कि प्रत्येक कालचक्र के भीतर काम करते रहे हैं। आकाश अवस्था से वायु अवस्था में आने के लिए सहस्रों वर्ष लगे और उस दीर्घकाल में क्या-क्या चेष्टाएं नहीं होती रही हैं और फिर वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथिवी की अवस्था में पहुंचने के लिए कितने असंख्य काल की आवश्यकता थी। इन करोड़ों वर्षों के समय में असंख्य चेष्टाएं जड़ जगत् में होती रही हैं परन्तु जब तक कि भूगर्भ विद्या के विद्वानों ने प्रत्येक काल का आरम्भिक नियम न जाना; तब तक उन अनगिनत चेष्टाओं का मूल-कारण विदित न हुआ जो कि एक-एक काल के भीतर अज्ञानता की दृष्टि में एक दूसरे से पृथक् प्रतीत हो रही थीं।

यही कहानी चेतन जगत् की है और उसको अपने पाठकों के अधिकतर स्पष्टीकरण के लिए हम यदि केवल अपने देश का इतिहास ही ले लेवें तो न केवल पर्याप्त ही होगा, प्रत्युत सर्वथा उचित भी होगा; क्योंकि जिस प्रकार मनुष्य की रचना को प्रत्येक देश और काल के विद्वानों ने ब्रह्माण्ड का दृष्टांत बताया है, उसी प्रकार भारतवर्ष को यदि समस्त संसार का दृष्टांत कहा जाये तो अनुपयुक्त न होगा । और फिर जब हम यह देखते हैं कि निष्पक्ष साक्षी कम से कम यहां तक तो सिद्ध करने और स्वीकार करने के लिए उद्यत हैं ही कि मनुष्य-सृष्टि का आरम्भ भारतवर्ष के उत्तरीय भाग में पहले पहल हुआ, तो यह उदाहरण ठीक समयानुसार प्रतीत होता है ।

भारतीय इतहास का काल-विभाजन : महापुरुषों के प्रादुर्भाव के आधार पर—भारतवर्ष का इतिहास भी, हम अपने ज्ञान और खोज के अनुसार, कुछ बड़े-बड़े कालों में विभक्त कर सकते हैं । वैदिक ऋषियों के काल को यदि एक ही दीर्घकाल मान लिया जाये (यद्यपि सम्भव है कि ज्ञान के बढ़ने पर हमें उस अथाह काल को कई भागों में विभक्त करना पड़े) तो उसके पश्चात् उपनिषत्कारों के काल की उन्नति और पतन का समझना कुछ कठिन नहीं रहता और फिर वाममार्ग के अन्धकारमय काल से घबराकर मनुष्यों में प्रकाश की खोज, गौतम बुद्ध का संघर्ष और उसके पश्चात् जैनमत का प्रचार और फिर धीरे-धीरे जड़पूजा की प्रबलता, इस नये अन्धकार से छुटकारा दिलाने के लिए स्वामी शंकराचार्य का आविर्भाव और फिर मानवी निर्बलता के कारण पुरुषार्थ का नाश और अविद्या का राज्य; कहने का अभिप्राय यह है कि इसी प्रकार क्रमशः हम भारतवर्ष के इतिहास को तीन बड़े भागों में विभक्त कर सकते हैं । परन्तु यद्यपि इस इतिहास के एक-एक काल को पूर्णरूप से समझने के लिए हमें उस काल का रहन-सहन, रीति-रिवाज, विद्या, कौशल, शिल्प, व्यापार, बोलचाल और वर्गों के परस्पर सम्बन्ध का विस्तृत वृत्तांत जानने की आवश्यकता है, तथापि ये सब बातें समझ में आनी कठिन हो जाती हैं । कम से कम उस काल की जीवनचर्या के ठीक कारण तब तक विदित नहीं होते जब तक कि हमें इस बात का ज्ञान न हो कि उस काल के विचारों का आरम्भ कहां से हुआ; जब तक कि इस बात का निश्चय न हो जाये कि उस समस्त काल का प्रेरक प्राचीन विचारों को पलटा देने वाला कौन-सा सिद्धान्त था ।

यह एक माना हुआ सिद्धान्त है कि स्थूल वस्तु की अपेक्षा सूक्ष्म वस्तु अधिक शक्तिशाली होती है और यह इसलिए कि सूक्ष्म वस्तु स्थूल के भीतर प्रवेश करके भी कार्य कर सकती है । विद्युत् सबसे शक्तिशाली वस्तु है, इस तथ्य को कौन व्यक्ति अस्वीकार कर सकता है । कारण स्पष्ट है कि विद्युत् प्रत्येक प्राकृतिक पदार्थ के भीतर व्यापक हो रही है और इसलिए विशाल से विशाल पहाड़ी तक को एक पल में चकनाचूर कर सकती है । यदि हम इसी सिद्धान्त को आंखों के सामने रख कर चेतन जगत् का अवलोकन करें तो वहां भी स्थूल और सूक्ष्म का यही सम्बन्ध प्रतीत होगा । हमारी पृथिवी पर सब से अधिक पूर्ण रचना मनुष्य की है और इस रचना की खोज करने से विदित होगा कि इन्द्रियों के गोलक, उदाहरणतया कानों के पर्दे, आंखों की पुतलियां, रसना का साधन जिह्वा और इसी प्रकार अन्य गोलक, सब के सब, स्थूल हैं और इसीलिए चेष्टारहित हैं । उनकी अपेक्षा उनके भीतरी नियम अर्थात् सुनने, देखने और रस लेने आदि की शक्तियां अधिक महान् हैं । इन सब की अपेक्षा मन जो कि इन सब को चेष्टा देता है अधिकतर शक्तिशाली है और इस शक्तिशाली मन से भी बुद्धि जो कि ज्ञान प्राप्त करने का साधन है, अधिक सूक्ष्म और इसीलिए अधिक शक्तिशाली है । इस मोटे उदाहरण से स्पष्ट विदित हो जाता है कि चेतन जगत् को जितनी चेष्टा ज्ञान का एक सिद्धान्त दे सकता है उतनी चेष्टा और कोई सिद्धान्त नहीं दे सकता जैसा कि पवित्र वेद ने भी कहा है—

"सा विश्वायुः स विश्वकर्मा सा विश्वधायाः" (यजुर्वेद अ० १, मं० ४)

अर्थात् वही (सत्यज्ञान) समस्त जीवन, समस्त कर्म और धारणा का मूल सिद्धान्त है ।

ज्ञान के एक-एक सिद्धान्त ने प्राय: संसार के विचारों की कायापलट कर दी है परन्तु ज्ञान के ये महान् सिद्धान्त संसार में प्रकट क्योंकर होते हैं ? जिस प्रकार कि हम एक-एक ईश्वरीय नियम का पता केवल जगत् की उन रचनाओं को देखने से ही लगा सकते हैं जिनमें कि वे नियम काम करते हैं, इसी प्रकार हम ज्ञान के पवित्र नियमों का पता उन महापुरुषों के जीवनचरित्रों से लगा सकते हैं जो कि उन नियमों के प्रचार के लिए परमात्मा के नियमानुकूल अपने कर्मानुसार नियुक्त किये जाते हैं । मनुष्य समाज के प्रत्येक काल के आरम्भ में उस काल की आवश्यकता के अनुसार ज्ञान का कोई एक नियम प्रकट होता है जो कि मनुष्य समाज के विचारों में परिवर्तन करने के लिए जादू की-सी शक्ति रखता है । ऐसे प्रत्येक नियम का स्पष्टीकरण किसी न किसी जीवात्मा के द्वारा होता है जो कि कदाचित् कई पूर्वजन्मों के साधनों से इसी नियम के प्रचार के लिए तैयारी कर रहा था ।

महात्मा बुद्ध का आविर्भाव-उपनिषत्कार ऋषियों के काल के पश्चात् जब मनुष्य अपनी निर्बलता के कारण बुराइयों की ओर झुकने लगे, सच्चे ब्राह्मणों का अभाव हो गया । वेदों के सिद्धान्त में गड़बड़ होने लगी और अविद्या में फंसकर मदिरा, मांस और व्यभिचार के कर्मों को धर्म का बाना पहनाकर धर्म को दूषित करना आरम्भ हो गया । उस समय कई जन्मों के साधनों से सुसज्जित महात्मा बुद्ध का आविर्भाव हुआ । भारतवर्ष में दुराचरण की विकराल सेना के राज्य में चारों ओर हाहाकार देखकर बुद्धदेव ने शुद्धाचार के सिद्धान्त का प्रचार किया । वाममार्ग रूपी वेश्या को जो कि अपने केश खोल कर बेरोक-टोक भारतवर्ष के गली कूचों में विचरती थी, अपना मुख छुपाना पड़ा । अन्याय दया में परिवर्तित हो गया । परन्तु महात्मा बुद्ध ने अन्ततः अपना कर्तव्य पूरा किया और चल दिये । मानवी दुर्बलता के उस महान् आन्दोलन के मूल सिद्धान्त को भुला दिया । सच्चे पुरुषार्थ का पाठ बुद्धदेव ने पढ़ाया था परन्तु लोगों ने पुरुषार्थ के सच्चे अर्थ को न समझ कर उसे अभिमान में परिवर्तित कर लिया । कर्मों का फल देने वाले परमात्मा को वे भूल गये । बुद्धदेव ने अनन्त शान्ति का नाम मुक्ति रखा था, संसार की वासनाओं से छूटने का नाम मोक्ष बतलाया था । लोगों ने अपने समस्त विचारों को उसी संसार में सीमित कर दिया जिससे छुड़ाने के लिए बुद्धदेव का सारा पुरुषार्थ व्यय हुआ था ।

शंकर का आगमन-समय ने फिर पलटा खाया । चिरकाल तक लोग जड़पूजा करते रहे । अन्ततः ज्ञान के आरम्भिक सिद्धान्त के प्रकाश का काल भी आ पहुंचा । ज्ञात नहीं कि कितने जन्म-जन्मान्तरों में साधन करने के पश्चात् आत्मिक सिद्धान्त का प्रकाश स्वामी शंकराचार्य के द्वारा हुआ । प्रकृतिपूजा के विचारों के दुर्ग को उनकी प्रबल युक्तियों और उनके अटल वेदप्रमाणों के शस्त्रों ने चकनाचूर कर दिया । आत्मा का राज्य हो गया परन्तु मनुष्यों की दुर्बलता ने फिर इस पवित्र आन्दोलन के भी नियम न समझे । आत्मा का महत्व दर्शाना शंकर का काम था परन्तु उसके अनुयायियों ने आत्मा से भिन्न कोई वस्तु ही न रखी । यहां तक कि नास्तिकता का पाठ पढ़कर स्वयं ईश्वर बन बैठे ।

व्यक्तियों का महत्व नहीं, उनके सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण-प्यारे पाठकगण ! आओ । अब थोड़े समय के लिए इस आश्चर्ययुक्त कहानी पर विचार करें । क्या बुद्ध ने, जो हमारी भांति ही दश इन्द्रियों, पांच प्राणों और मन की चारों वृत्तियों का राजा था किसी अपनी शक्ति द्वारा भूमण्डल के लगभग आधे भाग को अपने विचारों का अनुयायी बनाया था ? क्या शंकर ने जो कि हमारे समान ही खाने-पीने, उठने-बैठने की चेष्टाएं करता था, किसी अपनी शक्ति से बौद्ध और जैन मत को भारतवर्ष से भगा दिया था ? आहार और निद्रा आदि के दास जो बुद्ध और शंकर थे, हमें उनसे कुछ भी प्रयोजन नहीं है । मनुष्य समाज के इतिहास की नींव उन्होंने नहीं डाली प्रत्युत उस एक-एक सिद्धान्त ने डाली जिनको संसार में फैलाने के लिए बुद्ध और शंकर साधन बनाये गये । जहां बुद्धदेव समय की आवश्यकता के अनुसार पुरुषार्थ के सिद्धान्त के प्रकटीकरण का साधन था वहां शंकराचार्य आत्मिक ज्ञान अर्थात् ब्रह्मविद्या के सिद्धान्त का प्रचार करने के लिए चुना गया था ।

ऋषि दयानन्द के आविर्भाव की परिस्थिति— परन्तु जब शंकर अपना उद्देश्य पूरा करके चल दिया, मानवी दुर्बलता ने भारतवासियों को फिर आन दबाया। प्रत्येक प्राणधारी स्वयं ईश्वर बन बैठा, शान्ति कोसों दूर भागी। प्रकृति के नियमों का सामना करने की शक्ति न रखते हुए मनुष्यों के हृदयों ने जब साक्षी दी कि वे ईश्वर नहीं हो सकते तब विश्वास की शिथिलता ने आन दबाया। प्रत्येक मनुष्य वा वस्तु जो भयानक अथवा विचित्र दिखाई दी उसी को अविद्याग्रस्त भारत ने अपना इष्टदेव ठहराया। ऐसी हलचल उत्पन्न हुई कि किसी सिद्धान्त का विवेक न रहा। ऐसे घोर समय में पाश्चात्य विज्ञान और पाश्चात्य नास्तिकता एक ओर तथा जड़ की मनुष्य द्वारा पूजा दूसरी ओर भारतवासियों को अपना ग्रास बनाने के लिए आ खड़ी हुई। समय और अधिक भयानक हो चला। चारों ओर से टकटकी लग रही थी कि इस काल की व्यवस्था के अनुसार आरोग्यप्रद सिद्धान्त चलाने के लिए ऋषि कब प्रकट होता है कि महर्षि दयानन्द का आविर्भाव हुआ।

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में अंग्रेजों ने भारतवर्ष में दृढ़तापूर्वक पांव जमा लिए थे। लार्ड ऐमहर्स्ट के शासनकाल में ब्रह्म देश तक अंग्रेजों का हाथ बढ़ चुका था। आर्यावर्त की परतन्त्र जनता अपने लिए नवीन शासकों को उसी उपेक्षा से स्वीकार कर चुकी थी जो कि आठ शताब्दियों की निरन्तर परतन्त्रता के कारण उसकी आदत बन चुकी थी। ब्रिटिश राज्यसत्ता बाहरी और भीतरी शत्रुओं के भय से मुक्त होकर उस समृद्धिशाली राज्य में क्रम और प्रबन्ध का तत्त्व डालने के लिए उद्यत हो रही थी जिसको कि ईश्वरीय नियम के अनुसार उन्होंने अकस्मात् अपने कब्जे में देखा। युद्ध के व्रणों पर मरहम लगाने का समय आ गया था। इंगलैंड के छोटे से द्वीप से लार्ड विलियम बैंटिक भारतवर्ष के गवर्नर जनरल के पद का भार संभालने के लिए चल दिये थे और जहाज में सुधारों पर विचार करते आ रहे थे जिनका आविर्भाव अन्त में उनके सप्तवर्षीय शासनकाल में हुआ। मसीही पादरी काफिर पाषाणपूजकों और मूर्ख अर्ध-असभ्यों को मानवी सहानुभूति और पाश्चात्य सभ्यता का पाठ पढ़ाने का दावा करते हुए हज़ारों मील की यात्रा पर चल पड़े थे। भारतवर्ष में शारीरिक युद्ध के साथ-साथ आत्मिक संघर्ष भी आरम्भ हो चुका था। बंगदेश में राममोहन राय का विशाल हृदय अपने भाइयों को पाषाणपूजा और भ्रमों के जंगल में फंसा हुआ देखकर व्याकुल हो चुका था। चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार देखकर उसने उपनिषदों में कुछ चमत्कार-सा देखा था परन्तु खेद है कि सांसारिक युद्ध में मन विक्षिप्त होने के कारण उसे आगे बढ़ने का साहस न हुआ। वेदों के महान् प्रकाश और उसकी विचाररूपी तीक्ष्ण किरणों को सहन करने की शक्ति न रखते हुए उसकी आंखें चुन्धियां गईं। ब्रह्मसभा[९] तो स्थापित हुई परन्तु खेद है कि मूर्तिपूजा की फौलादी श्रृंखलाओं को काटने वाले वीरों में मनुष्यपूजा की रेशमी डोरी को काटने का साहस न हुआ। लोग मूर्तियों की दासता से स्वतन्त्र होकर मसीह की दासता में फंसने लगे। एक ओर भरतपुर के दृढ़ किले पर अंग्रेजी सेना की चढ़ाई और दूसरी ओर प्राचीन आर्यों के रहे-सहे ब्रह्मविद्या के गढ़ पर मसीही सेना का आक्रमण होने की तय्यारी हो रही थी कि सन् १८२४ में काठियावाड़ के एक छोटे से ग्राम में एक औदीच्य ब्राह्मण के घर एक पुत्र ने जन्म लिया।

इसके पश्चात् कुछ समय तक जहां एक ओर सांसारिक राज्यप्रबन्ध में शान्ति होने लगी, वहां दूसरी ओर आत्मिक राजप्रबन्ध में भी शान्ति और सन्तोष के लक्षण दिखाई देने लगे। ईसाई मिशनरियों के प्रयत्न फल लाने लगे। सहस्रों व्याकुल आत्माएं मूर्तिपूजा और अन्य भ्रमों से घबरा कर मसीही मनुष्यपूजा की शरण लेने लगीं। धर्म का फिर नाममात्र राज्य दिखाई देने लगा। अंग्रेजी शिक्षा के कारण लोगों की आंखें खुलने लगीं। जहां एक ओर भारतवासियों के हृदय में राजनीतिक उमंगें उछलने लगीं, वहीं दूसरी ओर भिन्न-भिन्न प्रकार के आत्मिक भाव भी उत्पन्न होने लगे। उस समय भारतवर्ष की प्रजा ने जहां एक ओर देखा कि अपनी महारानी विक्टोरिया[१०] के पास उन्हें सीधे अपना प्रार्थना पत्र ले जाने की आज्ञा नहीं, प्रत्युत एक व्यापारियों की कम्पनी[११] इसमें बाधक हो रही है, वहां दूसरी ओर अपने आत्मिक पिता जगदीश्वर के पास अपनी प्रार्थना ले जाने में भी उन्हें मसीह आदि पुरुष मार्ग में बाधक दिखाई दिये परन्तु चूंकि सांसारिक और आत्मिक दोनों लोकों में उनके भीतरी और बाहरी दोनों नेत्र खुल चुके थे इसलिए आंखें फिर बन्द नहीं हो सकती थीं।

था। उस अन्धकारपूर्ण काल में जो कुछ मार-काट हुई, जिस-जिस प्रकार के अत्याचार दोनों ओर से किये गये, उनका वर्णन करना हमारा काम नहीं है। हमें इस स्थान पर केवल उसके परिणाम से प्रयोजन है। अन्ततः महारानी का कोमल हृदय हिल गया। उनके पास प्रत्येक अत्याचार की रिपोर्ट पहुंच चुकी थी परन्तु विद्रोहियों को उनके अपराधों के दण्ड देकर हमारी महारानी ने अपना दया का हाथ फैलाया। उन्होंने समझ लिया कि प्रजा पुत्र के समान है। उन्हें विश्वास हो गया कि अपने कर्त्तव्य का भार वणिकों को सौंपने का यही परिणाम होना था। अपने कर्मों का फल भारतवासी भुगत चुके। अब पुत्रों का अधिकार है कि माता से सीधे बातचीत करें। इस शुभ सूचना की घोषणा महारानी ने कर दी जिसको भारतवर्ष में फैलाने वाला लार्ड केनिंग था।

परन्तु आत्मिक क्षेत्र का युद्ध इतना शीघ्र समाप्त होने वाला न था। वहां भी प्रबन्धक वणिकों के हाथ में था। मत-मतान्तरों के नेता और उनके प्रचारक, जिनका काम ही यही है कि अपने मत को जहां तक हो सके बढ़ावें, भारतवर्ष की प्रजा के हृदयों को डांवाडोल करने लगे परन्तु इन हृदयों के ज्ञाननेत्र खुल चुके थे, अब बन्द हों तो क्योंकर? मसीही प्रचारकों ने आश्चर्य से देखा कि जो स्कूल और कालिज उन्होंने अपने मत की वृद्धि के लिए स्थापित किये थे, उन्हीं की शिक्षा उन भारत-निवासियों को उनसे घृणा उत्पन्न कराने का साधन बन चली। भारत-पुत्र व्याकुलता की दशा में समझ बैठे कि हमारा कोई आत्मिक पिता ही नहीं है। मनुष्यपूजा से पीड़ित होकर उन्होंने अपने स्वामी को ही भुला दिया परन्तु इसमें उनका अपराध भी क्या था। जब इसी संसार में विद्यमान महारानी विक्टोरिया को कम्पनी के अधिकारियों की सताई हुई भारत की प्रजा भूल गई थी तो फिर सूक्ष्म से सूक्ष्म जगज्जननी को यदि पादरियों और पुजारियों के अत्याचारों से पीड़ित होकर उसने पूर्णतया छोड़ दिया हो तो इस पर कौन विचारशील पुरुष आश्चर्य कर सकता है। नास्तिकता का राज्य हो गया। जिस प्रकार सन् १८५७ के भयंकर समय में भारत की प्रजा ने विक्टोरिया और उसके विधान का त्याग कर दिया था उसी प्रकार बड़ा भयानक विद्रोह आत्मिक लोक में भी फैल गया और ईश्वर और उसके ज्ञान वेद को सब ने भुला दिया। उस अन्धकारपूर्ण काल में जितना आत्माओं का घात हुआ उसका वर्णन करने की शक्ति इस निर्बल लेखनी में नहीं है।

देश के आत्मिक जगत् में विद्रोह— भारतवर्ष का कौन-सा शिक्षाप्राप्त नवयुवक पुत्र है जो कि अपने विद्रोह के काल का स्मरण करके इस समय शान्ति प्राप्त होने पर भी कांप नहीं उठता और अपने पूर्व जीवन पर रक्त के अश्रु नहीं बहाता? यह वह भयंकर काल था जब अपूर्ण अंग्रेजी शिक्षा के कारण हम सब को सन्देह हो गया था कि संस्कृत के शब्दों में कोई बुद्धि की बात भी लिखी हुई है अथवा नहीं। यह वह भयानक समय था जब मसीही पादरियों ने आर्यावर्त के नवयुवकों को यह पाठ पढ़ाया था कि उनके वेदों की शिक्षा हजरत नूह के वंशजों ने भारतवर्ष में फैलाई है। यह वह समय था कि जब वेदों के मन्त्रों को इस्माइल जोगी के छूमन्तरों में सम्मिलित किया जाता था। सारांश यह है कि जब भारतवर्ष की प्रजा के पापों का प्याला भर गया और आत्मिक जगत् में ऐसा घोर अन्धकार फैला कि भारतनिवासी अपने सिरजनहार को भूल गये; उस समय जहां एक ओर अद्वैत ब्रह्म ने रुद्र रूप का प्रकाश करके भारतवर्षीय प्रजा को न्याय के तीक्ष्ण खड्ग से उनके शताब्दियों के बिगड़े हुए आचरणों के लिए दण्ड दिया, वहां दूसरी ओर प्रेम और विद्या का अमृत दोनों हाथों में लिये अपने जननीरूप का विस्तार किया और अपना शान्ति-पत्र जो कि सदा एकरस ब्रह्माण्ड के एक-एक परमाणु पर विद्युत् के अक्षरों में खुदा हुआ रहता है, अपने सच्चे सेवक द्वारा भेजा। धन्य है जगज्जननी! धन्य है उनका शान्ति पत्र! इस सच्चे सेवक के आगमन की सूचना केवल यही घटनायें नहीं दे रही थीं, प्रत्युत दूरदर्शी लोग अपने विचार के दर्पण में उन्नीसवीं शताब्दी के ऋषि के आगमन की ओर टकटकी लगाये बैठे थे।

शान्ति दूत के आगमन के चिह्न सभी ने देखे— उन दूरदर्शियों में केवल वही थोड़े से व्यक्ति ही सम्मिलित नहीं थे जिनका पालन-पोषण भारतभूमि में हुआ था। प्रत्युत मसीही विचारों की गोद में पले हुए भी और मसीही सभ्यता की पाठशाला में शिक्षा पाये हुए ऐसे उत्तम पुरुष विद्यमान थे जिन्हें स्पष्ट रूप से प्रतीत हो रहा था कि आर्यावर्त का आत्मिक ज्ञान संसार में फिर एक बार हलचल मचा देगा। सन् १८७७ ई० में सर एलफ्रेड लायल ने उस विस्तृत हलचल को गहरी दृष्टि से भांपकर जो कि भारतवर्ष के आत्मिक क्षेत्र में मची हुई थी, भविष्यवाणी की थी कि भारतवर्ष में ब्राह्मण धर्म में नये सिरे से जीवन फूंकने वाला ऋषि बहुत शीघ्र आने वाला है। उपर्युक्त सज्जन ने अपनी पुस्तक 'एशियाटिक स्टडीज' (Asiatic studies) के पृष्ठ ११८ पर इस विचार का स्पष्ट रूप से वर्णन किया है और फिर भारतवर्ष की वर्तमान आत्मिक दशा पर विचार करते हुए उन्होंने उक्त पुस्तक के पृष्ठ १३० पर कहा है 'किसी बड़े आन्दोलन के भारतवर्ष में आने के लक्षण दिखाई देते हैं, यदि शान्ति बनी रही। परन्तु उस आन्दोलन का क्या रूप होगा और किस ओर उसका प्रसार होगा, यह वह प्रश्न है जिसका उत्तर कि समय देगा।'

'आने वाला बड़ा आन्दोलन' आर्यसमाज सिद्ध हुआ—काल की गति और हिन्दू समाज के आचरण ने उत्तर दिया कि वह आन्दोलन 'आर्यसमाज' है और बालब्रह्मचारी के षोडशवर्षीय प्रचार ने, जिस अवधि में परमात्मा के सच्चे सेवक ने सत्य का सहारा लेकर भारतवर्ष के विशाल महाद्वीप के एक सिरे से दूसरे तक आत्मिक हलचल मचा दी थी, जिस अवधि में भारत निवासियों ने आश्चर्य से सुना था कि परमेश्वर न केवल हमारा न्यायकारी पिता ही है प्रत्युत हमारी दयालु माता भी है, जिस अन्तर में कि ईसाइयों ने आश्चर्य के साथ जान लिया कि भ्रातृभाव को मानुषी सहानुभूति के संकुचित घेरे से निकाल कर प्राणधारीमात्र तक विस्तृत करने की आवश्यकता है। हां ! बाल ब्रह्मचारी के उसी षोडश-वर्षीय प्रचार ने बड़े गम्भीर शब्दों में उत्तर दिया कि ब्राह्मण धर्म में नये सिरे से जीवन फूंकने वाला स्वामी दयानन्द है।

इस पुस्तक का उचित नाम-ब्राह्मण धर्म में नया जीवन फूंकने की कहानी

सज्जन पुरुषो ! बस, यह पुस्तक ब्राह्मण धर्म में नये सिरे से जीवन फूंके जाने की एक पूर्ण कहानी है।

उस ब्राह्मण धर्म की विशेषता क्या है ? यह प्रश्न है जिसका उत्तर कि स्वामी दयानन्द ने अपने जीवन में दिया है। इसलिए भारतसन्तान में से प्रत्येक का कर्त्तव्य है कि उस जीवन का सम्यक् रूप से अध्ययन करे।

पं० लेखराम जी की शैली की विशेषता— साधारणतया जीवनचरित्र से लेखक के विचार प्रकट हुआ करते हैं और पढ़ने वालों को निष्पक्ष विचार का अवसर प्राप्त होने के स्थान पर किसी एक विशेष पक्ष में फंसना पड़ता है, परन्तु पण्डित लेखराम ने आपको किसी विशेष पक्ष मे फंसाने का यत्न नहीं किया। केवल घटनाओं को बिना किसी काट-छांट के आपके विचार के लिये आपके सामने रख दिया है।

ब्राह्मणधर्मियों से निवेदन— आर्य पुरुषो ! इस पुस्तक को एक सिरे से दूसरे सिरे तक विचार-पूर्वक पढ़ जाओ और फिर सोचो कि वे कौन से सिद्धान्त थे जिन्होंने कि एक लंगोटबन्द साधु को वह शक्ति प्रदान की थी जो इस समय महाराजाओं में भी दिखाई नहीं देती। पता लगाओ कि आर्यसमाजों के स्थापित करने से ऋषि का क्या प्रयोजन था ? दयानन्द की जीवनयात्रा के मार्ग पर पथ-प्रदर्शन के लिए चिह्नों की खोज करो और जिस समय कि तुम्हें उन्नति का शिखर बड़ा ऊंचा और भयावना प्रतीत हो, उस समय इस ज्योतिस्तम्भ की ओर टकटकी लगाकर ऊपर चढ़ते चले जाओ। फिर देखो कितनी सरलता से मार्ग समाप्त होता है। मेरे प्यारे हिन्दू भाइयो ! ब्राह्मणधर्म का अभिमान करने वालो ! तुम्हारे लिए इस पुस्तक का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। तुम पुराणों में सुनते आये हो कि कलियुग में भी सतयुग की लड़ी वर्तमान

रहेगी। अपने हृदय से पूछो कि सतयुग किस प्रकार से आ सकता है। तुम्हें बतलाया जाता है कि दयानन्द ने तुम्हारे धर्म का नाश कर दिया है। सुनी हुई बातों का कुछ समय के लिए त्याग करके घटनाओं के आधार पर भला विचार तो करो कि दयानन्द ने धर्म का नाश किया है या तुम्हारे बिछुड़े हुए धर्म को तुमसे फिर मिलाने की चेष्टा की है। क्या तुम्हारा हृदय साक्षी देता है-कि वेदों का सम्मान करने वाला दयानन्द, वेदों के प्रेम में पागल कहलाने वाला दयानन्द, ऋषियों की निन्दा को सहन न करने वाला दयानन्द कभी भी धर्म को हानि पहुंचा सकता है। क्या तुम यह अस्वीकार कर सकते हो कि दयानन्द ने तुम्हें उन वेदों का पता दिया जिनका कि चिरकाल से तुमने दर्शन तो क्या श्रवण भी नहीं किया था। आओ! प्रकाश के एकाएक प्रकट होने पर चुंधिया मत जाओ, सावधान हो कर दृष्टि डालो। यह प्रकाश तुम को अविद्यारूपी गर्त से निकालने वाला है। प्रकाश का पता देने वाले के जीवनवृत्तान्त को दीर्घदृष्टि से पढ़ो ताकि तुम्हें प्रकाश से लाभान्वित होने का ज्ञान प्राप्त होवे।

बिछुड़े भाइयों से अपील— हे मेरे बिछुड़े हुए मोहम्मदी और ईसाई मित्रो! अविद्या की अन्धकारमय रात्रि में जब कि हाथ पसारा नहीं सूझता था तुमने भाइयों के हाथ छोड़कर अन्यों के हाथ में अपना हाथ दे दिया। जब क्रियात्मक रूप में तुम्हे विदित हो गया कि तुमने मूर्खता की है और तुम्हारे आत्माओं ने साक्षी दी कि तुम निज गृह से दूर जा रहे हो तो तुमने व्याकुल होकर आतुर वचनों से अपने भाइयों की ओर देखा। तुम्हारे भाई उस समय स्वयं देखने के योग्य न थे फिर तुम्हारा हाथ क्योंकर पकड़ते? परन्तु अब अन्धकार दूर हो गया, वेदरूप सूर्य का प्रकाश हो गया, जीवन के उद्देश्य को समझो और अपने उस भाई के जीवन-वृत्तान्त को पढ़ो जिसने कि तुम्हारे लिए; नहीं-नहीं केवल तुम्हारे लिए ही नहीं प्रत्युत सत्य की खोज करने वाले के लिए; अपनी जान को हेय समझा, सांसारिक सुख तथा आनन्द को हेय समझा और परमेश्वर के अटल नियम के आगे सिर झुकाये हुए अपने मिशन को पूरा किया।

हे शिक्षाप्राप्त भाइयो! इतिहास का सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन करने वालो! उन्नीसवीं शताब्दी में ऋषिजीवन क्या एक अचम्भा नहीं है? मतवादियों के अद्‌भुत चमत्कारों से बढ़कर क्या यह एक अद्‌भुत और आश्चर्यमय चमत्कार नहीं है?

हे दयालु पिता! प्रत्येक मनुष्य को चाहे वह किसी वर्ण, स्वभाव, जाति अथवा सम्प्रदाय का हो, सामर्थ्य दे कि दयानन्द का जीवन-वृत्तान्त पढ़ते हुए उसके मिशन पर विचार करते हुए उन सिद्धान्तों को दयानन्द से पृथक् करके उन पर विचार करने की शक्ति प्राप्त करे जिनके प्रचार के लिए कि तूने दयानन्द को विशेष शक्तियां प्रदान की थीं।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

जालन्धर नगर

२५ अक्तूबर, १८९७ ई०

—मुंशीराम जिज्ञासु

ओ३म्

महर्षि स्वामी दयानन्द जी का जीवन-चरित्र

प्रथम भाग

अध्याय १

घटनाओं की खोज में लेखक का प्रयत्न : प्राक्कथन

नाम और जन्मस्थान न बताने के कारण—स्वामी जी ने अपना और अपने पिता का नाम किसी को नहीं बतलाया; इसके कई कारण हैं।

(१) पूर्ण वैराग्य से जब सांसारिक धन्धों को त्याग कर मनुष्य ईश्वरपरायण हुआ तो फिर सम्बन्धियों के नाम अपने आंपको सांसारिक बन्धनों मे फंसाना है जो संन्यासी के लिए कदापि उपयुक्त नहीं।

(२) महात्मा संन्यासी लोग इस बात को आश्रम बदल जाने की दृष्टि से अच्छा नहीं समझते क्योंकि इससे स्पष्टतया परमात्मा की भक्ति और योगाभ्यास आदि साधनों में विघ्न पड़ जाने की आशंका है। जिन साधुओं ने ऐसा किया उन्हें गृहस्थ सम्बन्धों में फंसना पड़ा। इसके हजारों उदाहरण विद्यमान हैं। जैसे लेखक श्री प्रकाशात्म यति के विषय में उनके विद्वान् टीकाकार ने यह लिखा है—**'यतयः स्वकीयनिबन्धेषु स्वदेशकालादिकं प्रायो नैव निरूपितवन्त इति भगवतः श्रीप्रकाशात्मयतेः स्वदेशकालौ सम्यङ् न ज्ञायेते तथाप्यनुमीयते यद्विद्यारण्यसमयात्पूर्व तस्य स्थितिरासीदिति।'**

अर्थ—संन्यासी लोग अपनी पुस्तकों में अपने देश और जन्मसमय को प्रायः प्रकट नहीं करते हैं; इसलिए महात्मा प्रकाशात्म यति के देशकाल का पता नहीं लगता परन्तु फिर भी विदित होता है कि वे विद्यारण्य स्वामी से पहले हुए थे।*

(३) जिन-जिन धार्मिक शिक्षकों ने अपने सम्बन्धियों के नाम बतलाये या उनसे प्रकट सम्बन्ध न रखते हुए भी सम्बन्ध रखा, उन द्वारा प्रचारित धर्म में मनुष्यपूजा अथवा समाधिपूजा की साझेदारी पर आधारित प्रथाएं प्रचलित हो गईं जिनसे उनका छूटना नितान्त कठिन है। स्वामी जी ने इन सब भ्रमों और नास्तिकतापूर्ण दृश्यों को आंखों से देखा और बहुत से धार्मिक नेताओं का जीवनचरित्र पढ़कर और अपने अनुभव से पूर्ण सोच विचार करके यही उचित समझा कि मनुष्यपूजा तथा समाधिपूजा और स्थानपूजा की घृणापूर्ण शिक्षा और उसकी सभ्यतादूषक प्रथा को वैदिक धर्म के अनुयायियों से सर्वथा पृथक् रखा जाये। इसलिए उन्होंने अपना और अपने माता-पिता का नाम प्रकट करना उचित न समझा।

उनके कार्यों के प्रति जनता का आकर्षण और जीवनवृत्त जानने की जिज्ञासा—मार्च, सन् १८६० में उनका होनहार स्वभाव अपने चमत्कार दिखाने लगा[१] और उसी समय से शिक्षित व्यक्तियों का ध्यान उनके कार्यों की ओर आकृष्ट हुआ। अप्रैल, सन् १८६७ से वे पाखण्डखंडन और सत्यधर्म के मंडन में पूर्णतया संलग्न हो गये।[२] नवम्बर, १८९६ में जब कि उन्होंने बनारस में एक महान् विजय प्राप्त की उनकी ख्याति और भी अधिक होने लगी।[३] सन् १८७२ में जब वे

कलकत्ता में पधारे और संस्कृत भाषा में धर्मप्रचार आरम्भ किया तो यहां के कतिपय सम्मानित सज्जनों ने भी उनके जीवन-चरित्र सम्बन्धी वृत्तान्त जानने का प्रयत्न किया परन्तु असफल रहे । विद्वान् संन्यासियों के अतिरिक्त (जिन्हें वे कुछ वृत्तांत कभी मित्रता के नाते बता दिया करते थे), साधारण गृहस्थियों के सामने ऐसे वृत्तान्त बताना निरर्थक समझते रहे ।

स्वकथित तथा स्वलिखित आत्मवृत्तांतों की कहानी—स्वामी जी ने जब सन् १८७५ में पूना और बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की तो वहां के कई विद्वान् सज्जनों ने उनका वृत्तांत जानने का यत्न किया । और चूंकि उन दिनों वे भाषा बोलने लगे थे और व्याख्यान भी दिया करते थे, लोगों के बार-बार अनुरोध पर एक दिन उन्होंने अपने जीवनचरित्र पर ४ अगस्त, सन् १८७५ को व्याख्यान दिया और वह उसी वर्ष मराठी भाषा में प्रकाशित हो गया । हमने उसका भाष्य मराठी से हिन्दी में पंडित गणेश रामचन्द्र[४] और महाशय श्रीनिवास राव जी[५] से कराया ।

फिर अप्रैल, सन् १८७९ में जब कर्नल ऑल्काट साहब स्वामी जी से मिले[६] तो उनके अनुरोध करने पर स्वामी जी ने अपना जीवनचरित्र लिखने की प्रतिज्ञा की और तदनुसार हिन्दी में लिखकर समय-समय पर भेजते रहे जो 'थियोसोफिस्ट' नवम्बर व दिसम्बर, १८८० के अंकों में प्रकाशित होता रहा ।[७] जो हिन्दी लिखकर स्वामी जी ने भेजी उसकी एक प्रति ला० मथुराप्रसाद मन्त्री आर्यसमाज अजमेर और दूसरी पंडित छगनलाल श्रीमाली भूतपूर्व कामदार रियासत मसूदा किशनगढ़ निवासी के पास से प्राप्त हुई ।

'भारतसुदशाप्रवर्त्तक' पत्रिका फर्रूखाबाद, 'आर्यसमाचार' मेरठ, 'दयानन्द दिग्विजार्क' प्रथम भाग, कुछ दिनचर्या[८], 'आर्य अखबार'[९] बम्बई, ला० दलपतराय एम० ए० द्वारा लिखित उर्दू जीवनचरित्र[१०], 'रीजनेरेटर आफ दी आर्यावर्त'[११] और 'पताका' अखबार कलकत्ता-इन सभी ने 'थियोसोफिस्ट' की नकल की । ४ अगस्त, सन् १८७५ के व्याख्यान को किसी ने हाथ भी न लगाया और न उन्हें उसका ज्ञान हुआ ।

इस आत्मवृत्तान्त के सम्पादन की हमारी शैली—चूंकि मूल प्रतियां केवल तीन हैं अर्थात् पूना का व्याख्यान और 'थियोसोफिस्ट' पत्रिका तथा हिन्दी कापी, हमने तीनों को बड़ी सावधानी के साथ नियमित रूप दिया । इसमें एक-एक शब्द स्वामी जी का है परन्तु नियमित रूप हमारा दिया हुआ है । हमने नियमित रूप देने के अतिरिक्त और कोई अधिकता नहीं की ।

स्वामी जी के जीवनचरित्र सम्बन्धी वृत्तान्त जानने के लिए आर्य प्रतिनिधिसभा पंजाब के कथनानुसार ३ दिसम्बर, १८८८ से सन् १८९२ तक इस संवाददाता[१२] ने निरन्तर खोज की और १८९६ के अन्त तक समय-समय पर भिन्न-भिन्न नगरों में जाकर लोगों से वृत्तांतों को जाना ।

कुल, नाम व जन्मस्थान के विषय में अनेक साक्षी—काठियावाड़ में जो स्वामी जी की जन्म-भूमि है, डेढ़ मास के लगभग फिरता रहा और राज्य की सहायता से उस प्रदेश के सारे ग्राम एक-एक करके छान डाले ।

पिछले वर्ष दीवाली के अवसर पर अमृतसर में एक महात्मा साधु (जिनकी आकृति स्वामी जी से मिलती थी और जिनके विषय में लोगों में प्रसिद्ध था कि वह स्वामी दयानन्द जी का भाई है, जिनका नाम गोविन्दानन्द सरस्वती[१३] है और जो छः वर्ष तक स्वामी जी के साथ गंगातट पर विचरते रहे) से भेंट हुई । उन्होंने कहा कि स्वामी जी के पिता का नाम अम्बाशंकर[१४] औदीच्य ब्राह्मण था । पंडित ज्वालादत्त[१५अ] कान्यकुब्ज और मिस्टर रामदास छबीलदास बैरिस्टर[१५ब] ऐट-ला बम्बई और कई अन्य सज्जनों, जैसे कि ठाकुर मुकन्दसिंह साहब रईस, छलेसर के द्वारा विदित हुआ कि स्वामी जी का जन्म-नाम मूलशंकर था । १८७६ के अन्त में देहली में जो शाही दरबार[१६] हुआ था उसमें काठियावाड़ के कुछ रईस भी

पधारे थे, उन्होंने स्वामी जी को मूलशंकर नाम से पुकारा था जिन्हें स्वामी जी ने अलग ले जाकर ऐसा करने से रोक दिया था।

मोरवी के वर्तमान महाराजा साहब के विचार नास्तिकों के से हैं। उन्होंने विलायत से लौटने के पश्चात् समस्त ब्राह्मणों की धर्मार्थ जागीरें बन्द कर दीं और कुछ सचिवों के जैनी होने का भी कारण है। इसलिए अब उस राज्य में औदीच्य ब्राह्मणों की जमींदारी बिल्कुल नही रही और प्राय: ब्राह्मण लोग वहां २०-२५ वर्ष से भीख अधिक मांगने लग गये हैं।

स्वामी का जन्म-स्थान टंकारा नहीं, मोरवी था—महाशय काहन जी कोबीर जी, जो वर्ष १८९२ ईसवी में रियासत मोरवी की ओर से टंकारा में कामदार थे, वर्णन करते थे कि समीपस्थ सम्बन्धियों में उनका एक चाचा, जिसका नाम मूलशंकर था, लगभग संवत् १९०० वि० में घर से भाग गया था परन्तु उसको अथवा उसके चित्र को पहचानने वाला अब कोई जीवित नहीं है। मैंने जब स्वामी जी का प्रारम्भिक वृत्तांत उनको सुनाया तो वे प्राय: उसका समर्थन करते थे। पुराणों के इस कथन के अनुसार कि 'विप्राणां देवता शंभु:' समस्त काठियावाड़ के ब्राह्मण शिव जी के भक्त हैं और इस रियासत में शिव जी के दो प्रसिद्ध मन्दिर हैं और दोनों का नाम जड़ेश्वर महादेव है। एक तो टंकारा से दो कोस की दूरी पर और दूसरा मोरवी नगर से कुछ कम आधा मील है। चूंकि काहन जी भी मोरवी के रहने वाले हैं और वहां जड़ेश्वर का मन्दिर भी है जिसमें शिवरात्रि की रात को प्राय: ब्राह्मण एकत्रित होते हैं। स्वामी जी के पूना वाले व्याख्यान से तथा संवाददाता की खोज से तो खास मोरवी नगर उनका जन्मस्थान विदित होता है।[१७] कस्बा टंकारा से किसी ऐसे खोये हुए व्यक्ति की सूचना नहीं मिली जिस पर स्वामी जी का संदेह किया जा सके और न जड़ेश्वर का मन्दिर वहां से इतना समीप है कि एक लड़का दो बजे रात के वहां से घर को सोने के लिए चला आये और न ब्राह्मणों के पठनपाठन का वहां कोई प्रबन्ध है। हां ये सारी बातें मोरवी में पाई जाती हैं।

रियासत मोरवी के महाराजा साहब से जब मैंने पंडित काशीराम सेवक राम औदीच्य एम० ए० हेडमास्टर हाईस्कूल मोरवी के द्वारा पूछा तो उन्होंने कहा कि जब स्वामी जी राजकोट में पधारे थे, उन दिनों हम वहां के राजकुमार कालिज में पढ़ते थे और वहां पर वे हमारे कालेज में भी प्रिन्सिपल साहब से मिलने के लिए आये थे। हमने उनके दर्शन किये हैं और पूछने से विदित हुआ कि वह रियासत मोरवी के रहने वाले थे।

'मोरवी गजट' में विज्ञापन भी दिया गया। 'उदीच्य-पत्रिका'[१८] अहमदाबाद में भी नोटिस दे दिया गया परन्तु इससे अधिक पता न मिला। इसी कारणवश इसी पर सन्तोष करके समस्त वृत्तान्त बिना किसी प्रकार की काट छांट के पाठकों की भेंट करता हूं।

अध्याय २

स्वामी जी का स्वकथित जीवनचरित्र

(सन् १८२४ ई० से १८७५; तदनुसार सं० १८८१ से १९३१ वि० तक)

बचपन : वैराग्य : गृहत्याग व संन्यास

मेरा वास्तविक उद्देश्य : देश-सुधार व धर्म-प्रचार—हमसे बहुत लोग पूछते हैं कि हम कैसे जानें कि आप ब्राह्मण हैं। आप अपने इष्टमित्र भाई बन्धुओं के पत्र मंगा दें अथवा किसी की पहचान बता दें ऐसा कहते हैं, इसलिए मैं अपना वृत्तान्त कहता हूं। गुजरात देश में दूसरे देशों की अपेक्षा मोह विशेष है। यदि मैं इष्ट मित्र तथा सम्बन्धियों की पहचान दूं या पत्र व्यवहार करूं तो इससे मुझे बड़ी उपाधि होगी। जिन उपाधियों से मैं छूट गया हूं, वही उपाधियां (कष्ट) मेरे पीछे लग जायेंगी। यही कारण है कि मैं पत्रादि मंगाने की चेष्टा नहीं करता।

पहले दिन से ही जो मैंने लोगों को अपने पिता का नाम और अपने कुल का निवासस्थान आदि नहीं बताया इसका कारण यही है कि मेरा कर्त्तव्य मुझको इस बात की आज्ञा नहीं देता, क्योंकि यदि मेरा कोई सम्बन्धी मेरे इस वृत्तान्त से परिचित हो जाता तो वह अवश्य मुझे खोजने का प्रयत्न करता और इस प्रकार उनसे दो-चार होने पर मेरा उनके साथ घर पर जाना आवश्यक हो जाता अर्थात् एक बार फिर मुझको रुपया, धन हाथ में लेना पड़ता अर्थात् मैं गृहस्थ हो जाता। उनकी सेवाटहल भी मुझे योग्य होती और इस प्रकार उनके मोह में पड़कर सबके सुधार का वह उत्तम कार्य, जिसके लिये मैंने अपने जीवन का अर्पण किया है और जो मेरा वास्तविक मिशन (उद्देश्य) है, जिसके बदले मैंने अपना जीवन बलिदान करने की कुछ चिन्ता नहीं की और अपनी आयु को भी तुच्छ जाना और जिसके लिये मैंने अपना सब कुछ बलिदान कर देना अपना मन्तव्य समझा है अर्थात् देश का सुधार और धर्म का प्रचार, वह देश यथापूर्व अन्धकार में पड़ा रह जाता।

मेरा जन्म मोरवी (गुजरात) के एक समृद्ध औदीच्य ब्राह्मण के घर सं० १८८१ में—संवत् १८८१ विक्रमी, धांग्धा करके गुजरात देश में एक राज्यस्थान है। उसकी सीमा पर मच्छू-कांटा नदी के तट पर एक मोरवी नगर है। वहां संवत् १८८१ वि० तदनुसार सन् १८२४ में मेरा जन्म हुआ। मैं औदीच्य ब्राह्मण हूं यद्यपि औदीच्य ब्राह्मण सामवेदी हैं परन्तु मैंने शुक्ल यजुर्वेद पढ़ा था।

पांच वर्ष की अवस्था से अक्षर-अभ्यास, कुलधर्म, रीति-नीति तथा मंत्र-श्लोकादि की शिक्षा—(संवत् १८८५ विक्रमी) मैंने पांच वर्ष की अवस्था होने से पूर्व ही देवनागरी अक्षर पढ़ने का आरम्भ कर दिया था और तब से ही मेरे माता-पितादि वृद्ध लोग मुझको कुल धर्म और उसकी रीति सिखलाने लगे और मुझको बड़े स्तोत्र, मंत्र, श्लोक तथा उनकी टीकाएं कण्ठस्थ कराया करते थे।

आठवें वर्ष में यज्ञोपवीतधारण के पश्चात् गायत्री तथा सन्ध्योपासन विधि की शिक्षा तथा शैव संस्कार डालने का प्रयत्न (संवत् १८८८ वि०)—आठवें वर्ष में मेरा यज्ञोपवीत हुआ और उसी समय से गायत्री, सन्ध्योपासन करने की विधि सिखलायी गई और प्रथम रुद्री[1] और तत्पश्चात् यजुर्वेद की संहिता आरम्भ की गई। इनके पढ़ानेवाले पिता जी थे।

इसी वर्ष मेरी एक बहन उत्पन्न हुई। मेरे घर के समस्त मनुष्य शैव अर्थात् शिव के भक्त थे। वे चाहते थे कि यह भी उसी मत में प्रवीण हो जाये, उन्होंने बाल्यपन से ही उसके संस्कार डाल दिये थे। मेरे पिता विशेष रूप से मुझे इस ओर लगाना चाहते थे और इस मत के प्रदोषादिक व्रत करने को चेताया करते थे और कहा करते थे कि तू पार्थिवपूजन अर्थात् मिट्टी का लिंग बना कर पूजन किया कर।

दसवें वर्ष में शिव की पार्थिव पूजा, विधिवत् शिवरात्रि व्रत रखने के लिए पिता का आग्रह (संवत् १८९० वि०)— दसवें वर्ष से मैं साधारणतया पार्थिवपूजन किया करता था। मेरे पिता चाहते थे कि मैं नियमानुकूल उपवास करके शिवरात्रि का व्रत धारण, कथाश्रवण और जागरण किया करूं अर्थात् पक्का शैव बन जाऊं, परन्तु मेरी माता जी विरोध किया करती थीं कि यह उपवास के योग्य नहीं। यह बात उन दिनों सदैव कलह रहने का मूल कारण हो गई। पिता जी कुछ-कुछ व्याकरण आदि का विषय और वेद का पाठमात्र भी मुझे पढ़ाया करते थे। मन्दिर और मेल-मिलाप में, जहां तहां मुझ को ले जाया करते और कहा करते थे कि शिव की उपासना सब से श्रेष्ठ है। इसी खींचतान में मेरी अवस्था १४ वर्ष की हो गई।

१४ वें वर्ष में यजुर्वेद कंठस्थ, शिवरात्रि का ऐतिहासिक व्रत (१८९४ वि०)—१४ वर्ष की अवस्था तक मैंने यजुर्वेद की संहिता कण्ठस्थ कर ली और कुछ वेदों का पाठ भी पूरा हो गया था और शब्दरूपावली आदिक छोटे-छोटे व्याकरण के ग्रन्थ भी पढ़ लिये थे। जहां-जहां शिवपुराणादिक की कथा होती थी वहां पिता जी मुझ को पास बिठला कर सुनाया करते थे। हमारे घर में साहूकारी अर्थात् लेन-देन का व्यवसाय होता था, भिक्षा की जीविका नहीं थी। जमींदारी भी थी जिससे अच्छी प्रकार घर के कामकाज चलते थे। पीढ़ियों से जमादारी का पद बराबर चला आता था जो इस देश की तहसीलदारी के तुल्य है क्योंकि उसका काम भूमिकर की वसूली (प्राप्ति) थी और कई सरकारी सिपाही मिले हुए थे।

मेरे पिता ने इस वर्ष मुझे शिवरात्रि का व्रत करने की आज्ञा दी परन्तु मैं उद्यत न हुआ, तब मुझे कथा सुनाई गई। वह कथा मेरे जी को बहुत ही मीठी लगी। तब मैंने उपवास करने का निश्चय कर लिया यद्यपि मेरी माता मुझे कहती थी कि तू उपवास मत कर क्योंकि मुझ को सवेरे ही भूख लगती थी। इस कारण मेरी निरोगिता की दृष्टि से निषेध किया करती थी कि यह प्रातःकाल ही भोजन कर लेता है इससे व्रत कभी नहीं हो सकेगा। पिता हठ करते थे कि पूजा अवश्य करनी चाहिए क्योंकि कुल की रीति है। इस पर अत्यन्त आग्रह करके अन्त में उसके आरम्भ करने की अत्यन्त कठोर आज्ञा दी और मेरी माता के कथन पर कुछ विचार न किया।

जब वह बड़ी विपत्ति और भूखे रहने का दिन, जिसको शिवरात्रि कहते हैं, आया जो माघ[२] वदी त्रयोदशी के अगले दिन काठियावाड़ में मनाया जाता है। मेरे पिता ने त्रयोदशी के दिन कथा का माहात्म्य सुनाकर शिवरात्रि के व्रत का निश्चय करा दिया था। यद्यपि माता ने निषेध किया था कि इससे व्रती नहीं रहा जायेगा तथापि पिता जी ने व्रत का आरम्भ करा ही दिया। जब चतुर्दशी की शाम हुई उससे पहले ही मुझे समझाया गया था कि इसी रात को मुझे पूजा के नियम भी सिखाये जायेंगे और शिवमन्दिर में जागरण में सम्मिलित होना पड़ेगा। मेरे नगर के बाहर एक बड़ा शिवालय है। वहां शिवरात्रि के कारण बहुत लोग रात के समय जाते आते रहते हैं और पूजा-अर्चा किया करते हैं। मेरे पिता, मैं और बहुत से लोग वहां एकत्रित थे। पहले पहर की पूजा पूरी हुई और इसी प्रकार दूसरे पहर की भी। १२ बजे के पश्चात् लोग जहां के तहां मारे ऊंघ के झूमने लगे और धीरे-धीरे सब लेट गये। मैं, उपवास निष्फल न हो इस भय से न सोया था और सुन भी रहा था कि सोने से शिवरात्रि का फल प्राप्त नहीं होता। इसलिए आंखों पर जल के छींटे मारकर जागता रहा। परन्तु मेरे पिता का भाग्य मुझ से नीचे दर्जे का था। वह सबसे पहला मनुष्य था जो थकान आदि का कष्ट सहन न कर सका और सो गया और जागरण करने के लिए मुझको अकेला छोड़ दिया और पुजारी लोग भी बाहर जाकर लेट गये।

चूहे की करतूत और पार्थिव पूजा में अविश्वास के अंकुर मूर्ति पूजा में अविश्वास—इतने में ऐसा चमत्कार हुआ कि मन्दिर के बिल में से एक ऊन्दर (चूहा) बाहर निकल कर पिंडी के चारों ओर फिरने लगा और पिंडी के ऊपर चढ़कर अक्षतादि भी खाने लगा । मैं तो जागता ही था इसलिए मैंने सब खेल देखा ।[1]

इस समय मेरे चित्त में भिन्न-भिन्न प्रकार के विचार उत्पन्न होकर प्रश्न उठने लगे । तब मैंने अपने मन में कहा और यह शंका उठाई कि जिसकी हमने कथा सुनी थी वही क्या यह महादेव है ? या वह कोई और है, क्योंकि वह तो मनुष्य के समान एक देवता है जिसके विकराल गण, पाशुपतास्त्र, वृषभवाहन, त्रिशूल, हाथ में डमरु बजाता, कैलाश का पति है, इत्यादि प्रकार का महादेव जो कथा में सुना था क्या सम्भव है कि यह पारब्रह्म हो ? जिसके शिर पर चूहे दौड़े-दौड़े फिरते हैं । चूहे की यह लीला देख मेरी बालबुद्धि को ऐसा प्रतीत हुआ कि जो शिव अपने पाशुपतास्त्र से बड़े-बड़े प्रचण्ड दैत्यों को मारता है क्या उसे एक साधारण चूहे को भगा देने की भी शक्ति नहीं ।

पिता से निःशंक प्रश्नोत्तर तथा असन्तोष—ऐसे बहुत से तर्क मन में उठे । मैं इन विचारों को बहुत समय तक न रोक सका । इसलिए मैंने अपने पिता को जगाया और बिना किसी प्रकार की झिझक के उनसे यह प्रार्थना की कि मेरे भ्रमों को सच्चे उपदेशों से दूर कीजिए और बताइये कि यह भयानक मूर्ति महादेव की, जो इस मन्दिर में है क्या उसी महादेव के सदृश है जिसे पुराणों में पारब्रह्म कहते हैं अथवा यह कोई और वस्तु है ?

यह सुनकर पहले तो मेरे पिता ने क्रोध से लाल होकर मुझ से कहा कि तू यह बता क्यों पूछता है और यह प्रश्न क्यों करता है ? तब मैंने उत्तर दिया कि इस मूर्ति के शरीर पर चूहे (जिसे काठियावाड़ की भाषा में ऊन्दर कहते हैं) दौड़े फिरते हैं और इसको खराब तथा भ्रष्ट करते हैं । इसके स्थान पर कथा का महादेव तो चेतन है, वह अपने ऊपर चूहा क्यों चढ़ने देगा और यह शिर तक नहीं हिलाता और न अपने आपको बचाता है । मैं इससे उस सर्वशक्तिमान् और चेतन परमेश्वर के विचार प्राप्त करना असम्भव समझता हूं; इसलिए यह बात आप से पूछता हूं । तब पिता जी ने बड़े यत्न के साथ मुझ को इस प्रकार समझाया 'कि कैलाश पर्वत पर जो महादेव रहते हैं उनकी मूर्ति बना, आवाहन कर पूजन किया करते हैं, अब कलियुग में उसका साक्षात् दर्शन नहीं होता इसलिए पाषाणादि की मूर्ति बनाकर, उसमें उन महादेव की भावना रखकर, पूजन करने से कैलाश का महादेव ऐसा प्रसन्न हो जाता है कि मानो वह स्वयं ही इस स्थान पर विद्यमान हो और उसी की पूजा होती हो । तेरी तर्कबुद्धि बहुत बड़ी है, यह तो केवल देवता की मूर्ति है' ।

'शिव को प्रत्यक्ष देखकर ही उसकी पूजा करूंगा', निश्चय—इस उपदेश से मुझ को कुछ भी शान्ति न मिली । प्रत्युत मेरे मन में और भ्रम हो गया कि इसमें कुछ गड़बड़ अवश्य है । मुझे उनकी बातों में कुछ कपट और लाग-लपेट प्रतीत हुई । तब मैंने संकल्प किया कि जब मैं उसको प्रत्यक्ष देखूंगा तभी पूजा करूंगा अन्यथा नहीं । थोड़े समय पश्चात् मुझे बालक होने के कारण भूख और थकान से दुर्बलता प्रतीत होने लगी इसलिए पिता जी से पूछा कि अब मैं घर जाना चाहता हूं । उन्होंने कहा कि सिपाही को साथ लेकर चला जा परन्तु भोजन कदाचित् न करना । मैंने घर जाकर माता से कहा कि मुझे भूख लगी है । माता जी ने कहा कि मैं तुझे पहले ही से कहती थी कि तुझ से उपवास न होगा परन्तु तूने तो हठ ही किया ।

---

1. आनरेबिल सर सैय्यद अहमद खां साहब[३] ने स्वामी जी के इस प्रसंग के विषय में लिखा है कि यदि यह ईश्वरीय प्रेरणा नहीं थी तो क्या थी जिसने स्वामी दयानन्द सरस्वती के मन को मूर्ति-पूजा से फेरा । हिन्दुओं के वेदों के उन स्थलों को देखो जहां उस ज्योतिस्वरूप निराकार के अद्वैत स्वरूप और उसके गुणों का वर्णन किया है ।

(तहजीब अल अख्लाक १२९७ हिज्री, पृष्ठ १५२ से १५६)

उत्तराखंड में पौने दो वर्ष तक विद्वानों तथा योगियों की खोज

संवत् १९११ तक इसी प्रकार भिन्न-भिन्न स्थानों में फिर कर महात्मा विद्वानों और योगिजनों से मिलकर आत्मिक उन्नति और मानसिक शान्ति के उपाय तथा साधन प्राप्त करता रहा और विद्यार्थी बनकर जो मिलता था उससे विद्योपार्जन किया करता था । इसी प्रकार अनेक महात्माओं का सत्संग करता हुआ चलते चलते तीस वर्षकी अवस्था में संवत् १९१२ तदनुसार ११ अप्रैल, सन् १८५५ हरिद्वार के कुम्भ के मेले की धूम सुनकर पहली बार वहां पहुंचा क्योंकि वहां पर श्रेष्ठ सुयोग्य योगी व तपस्वी प्राय: होते और परस्पर मिलते हैं जिनकी यह व्यवस्था किसी को विदित भी नहीं होती । मैं वहां आकर बहुत साधुओं और संन्यासियों से मिला और जब तक मेला रहा, चंडी के पर्वत के जंगल में योगाभ्यास करता रहा और जब सब यात्री चले गये और मेला हो चुका तो वहां से ऋषिकेश को गया । वहां बड़े-बड़े महात्मा संन्यासी और योगियों से योग की रीति सीखता और सत्संग करता रहा ।

तत्पश्चात् कुछ दिनों तक अकेला ऋषिकेश में रहा । इसी समय एक ब्रह्मचारी और दो पहाड़ी साधु मुझसे और आ मिले और हम सब के सब मिलकर स्थान टिहरी को चले गये ।

टिहरी में पहली बार तन्त्र ग्रन्थ दर्शन तथा उनसे घृणा--यह स्थान विद्या की वृद्धि के कारण साधुओं और राजपंडितों से पूर्ण और प्रसिद्ध था । इन पंडितों में से एक दिन एक पंडित ने अपने यहां मुझे निमन्त्रण दिया और नियत समय पर एक मनुष्य भी बुलाने को भेजा । उसके साथ मैं और ब्रह्मचारी दोनों उसके स्थान पर पहुंचे परन्तु मुझको वहां एक पंडित को मांस काटते और बनाते देखकर अत्यन्त घृणा आई । आगे जाकर बहुत से पंडितों को मांस और अस्थियों के ढेर तथा पशुओं के भुने हुए सिरों पर काम करते देखा । इतने में ही गृहस्वामी ने प्रसन्नतापूर्वक अत्यन्त सौहार्द से हमसे कहा कि भीतर चले आइये । मैंने कहा कि आप अपना काम किये जाइये, मेरे लिए कुछ कष्ट न कीजिये । यह कहकर झट वहां से निकल उल्टे पांव अपने स्थान का मार्ग लिया । थोड़े समय पश्चात् वही मांसभक्षी पंडित मेरे पास आया और मुझ से निमन्त्रण में चलने को कहा और साथ ही यह भी कहा कि यह मांसादि उत्तम भोजन केवल आप ही के लिए बनाये गये हैं । मैंने उससे स्पष्ट कह दिया कि यह सब वृथा और निष्फल है क्योंकि आप मांसभक्षी हैं । मेरे योग्य तो केवल फलादि हैं । मांस खाना तो दूर रहा मुझे तो उसके देखने से ही रोग हो जाता है । यदि आपको मेरा न्यौता करना ही है तो कुछ अन्न और फलादि वस्तु भिजवा दीजिये, मेरा ब्रह्मचारी यहां पर भोजन बना लेगा । इन सब बातों को उक्त पंडित स्वीकार कर और लज्जित होकर अपने घर लौट गया ।

तत्पश्चात् मैं कुछ दिन तक स्थान टिहरी में रहा और उन्हीं पंडित जी से कुछ पुस्तकों और ग्रन्थों का वृत्तान्त, जिन्हें मैं देखना चाहता था, पूछता रहा और पता लगाता रहा कि वे ग्रन्थ इस नगर में कहां मिल सकते हैं । यह सुनकर पंडित जी ने संस्कृत व्याकरण, कोश जो बड़े-बड़े कवियों के बनाए हुए थे, ज्योतिष और तन्त्रादि पुस्तकों का नाम लिया । इनमें से तन्त्र की पुस्तकें मेरी देखी नहीं थीं इसलिए उनसे मांगी और उन्होंने शीघ्र थोड़ी सी पुस्तकें इस प्रकार की ला दीं । उनके खोलते ही मेरी दृष्टि ऐसी अत्यन्त अश्लील बातों, झूठे भाष्यों और बेहूदा वाक्यों पर पड़ी जिनको देख कर मेरा जी कांपने लगा । उसमें लिखा था कि मां, बहन, बेटी, चूढ़ी, चमारी आदि से भोग करने और उन्हें नग्न खड़ा करके पूजने और इसी प्रकार मद्य, मांस, मछली, मुद्रा, मैथुन और विविध जन्तुओं का मांस खाने और ब्राह्मण से लेकर चंडाल पर्यन्त एक साथ भोजन करने इत्यादि बातों के लिए आज्ञा है और यह भी स्पष्ट लिखा था कि इन्हीं पांच शब्दों अर्थात् मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन आदि साधनों से जिनका नाम मकार से आरम्भ होता है, मोक्ष प्राप्ति हो सकती है । सारांश यह कि तन्त्र की पुस्तकों के पढ़ने से जिनको वे धर्म समझते हैं, उनके लेखकों की धूर्तता और स्वार्थी दुष्ट कवियों द्वारा उनकी रचना का मुझको अच्छी तरह विश्वास हो गया ।

केदार घाट आदि में पंडितों व ब्राह्मणों से भेंट—तत्पश्चात् मैं वहां से श्रीनगर को चल पड़ा। यहां मैंने केदारघाट पर एक मंदिर में निवास किया। यहां के पंडितों से बातचीत के समय जब कोई वादानुवाद का अवसर होता तो उनको उन्हीं तन्त्रों से हरा देता था। इस स्थान पर एक गंगागिरी नामक साधु से (जो दिन के समय अपने पर्वत से, जो एक जंगल में था कभी नहीं उतरता था) भेंट हुई और विदित हो गया कि यह एक अच्छा विद्वान् है। थोड़े दिन पश्चात् मेरी उसकी मित्रता भी हो गई। कहने का अभिप्राय यह है कि जब तक मेरा उसका साथ रहा योगविद्या और अन्य उत्तमोत्तम विषय पर आपस में बातचीत होती रही और प्रतिदिन के तर्क-वितर्क से यह बात सिद्ध हो गई कि हम दोनों साथ रहने योग्य हैं। मुझे तो उसकी संगत ऐसी अच्छी लगी कि दो मास से अधिक उसके साथ रहा।

केदारघाट से रुद्रप्रयाग को प्रस्थान—तत्पश्चात् पतझड़ के आरम्भ में अपने साथियों अथवा ब्रह्मचारी और पहाड़ी साधुओं सहित केदारघाट से दूसरे स्थानों को चला और रुद्रप्रयाग आदि स्थानों में होता हुआ अगस्त्यमुनि की समाधि पर पहुंचा।

विकट पर्वत श्रृंगों की यात्रा व पंडितों व ब्राह्मणों की स्मरण रखने योग्य बातों का अध्ययन—आगे चलकर उत्तर की ओर एक पर्वत पर—जो कि शिवपुरी नाम से प्रसिद्ध है, गया। यहां शीत ऋतु के चार मास व्यतीत किये फिर ब्रह्मचारी और दोनों साधुओं से पृथक् होकर अकेला और बेखटक मैं केदारघाट को लौट गया। फिर गुप्तकाशी में पहुंचा—यहां बहुत कम ठहरा अर्थात् गौरीकुण्ड और भीमगुफा होता हुआ त्रियुगीनारायण के मन्दिर पर पहुंचा परन्तु थोड़े ही दिनों में केदारघाट को, जहां का निवास मुझको अत्यन्त प्रिय था, लौट आया और वहां निवास किया और कुछ ब्राह्मण पुजारियों और केदारघाट के पंडों के साथ (जो जंगमजाति के थे) तब तक निवास किया जब तक कि मेरे पहले साथी अर्थात् ब्रह्मचारी और दोनों साधु भी लौटकर वहां न आ गये। वहां के पंडितों और ब्राह्मणों के कार्यों को मैं सदा ध्यानपूर्वक देखता और स्मरणार्थ उनकी स्मरण रखने योग्य बातों का ध्यान करता रहता था।

पहाड़ों में योगी नहीं मिले—जब मुझे उनके वृत्तान्त का इच्छानुसार परिचय प्राप्त हो गया तो मेरे मन में आसपास के पर्वतों के भ्रमण करने की इच्छा उत्पन्न हुई जो सदा हिमाच्छादित रहते हैं कि देखूं और उन महात्माओं के दर्शन करूं जिनका समाचार सुनता चला आता था, किन्तु कभी भेंट नहीं हुई। अत: मैंने यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि चाहे कुछ भी क्यों न हो इस बात की अवश्य खोज करनी चाहिये कि वे महात्मा लोग, जैसा कि प्रसिद्ध है, वहां रहते हैं अथवा नहीं। परन्तु पर्वतीय यात्रा की भयानक कठिनाइयों और शीतकाल की प्रबलता के कारण प्रथम मुझको पर्वतीय लोगों से पूछना पड़ा कि वे उन महात्मा पुरुषों के वृत्तान्त से परिचित हैं या नहीं। परन्तु भाग्य की विडम्बना देखो कि जहां भी पूछा वहां या तो निरी अज्ञानता पाई या अन्धविश्वास से भरी हुई गप्प हांक दी। सारांश यह कि बीस दिन तक पथभ्रष्ट और भग्नहृदय फिरकर जिस प्रकार कि अकेला गया था वैसे ही लौट आया क्योंकि मेरे साथी तो दो दिन पूर्व ही मुझको शीत की प्रबलता के भय से अकेला छोड़ कर चले गये थे। इसके पश्चात् मैं तुंगनाथ की चोटी पर चढ़ा। वहां पर एक मन्दिर पुजारियों और मूर्तियों से भरा पाया। मैं उसी दिन वहां से नीचे उतर आया जहां पर मुझे दो मार्ग मिले जिनमे एक पश्चिम को और दूसरा नैऋत्यको जाता था। तब मैं उस मार्ग पर जो जंगल की ओर था-झुक पड़ा। कुछ दूर तक चलकर मैं एक ऐसे घने वन में पहुंचा जहां की चट्टानें खंड-बंड (ऊंची-नीची) और नाले भी शुष्क थे और वहां से आगे को मार्ग भी न चलता था। जब मैं इस प्रकार घिर गया तो मन में सोचने लगा कि अब नीचे उतरना चाहिये अथवा और ऊपर चढ़ना चाहिये परन्तु चोटी की ऊंचाई और दुर्गम चढ़ाव के कारण मैंने विचार किया कि पर्वत की चोटी पर चढ़ना असम्भव है। अत: विवश होकर शुष्क घास और सूखी झाड़ियों को पकड़-पकड़ कर मैं नाले के ऊंचे किनारे पर पहुंचा और एक चट्टान पर खड़े होकर जो चारों

ओर दृष्टि डाली तो मुझको दुर्गम पहाड़ियों, टीलों और जंगल के अतिरिक्त, जिनमें मनुष्य का आना कठिन था, और कुछ दिखाई न पड़ा । चूंकि उस समय सूर्य भी अस्त होने वाला था मुझको चिन्ता हुई कि इस सुनसान निर्जन वन में, बिना जल और ऐसे पदार्थ के जो जल सके, मेरी क्या दशा होगी । सारांश यह है कि मुझे उस विकट जंगल में ऐसे-ऐसे स्थानों पर घूमना पड़ा कि जहां के बड़े-बड़े कांटों में उलझ-उलझ कर कपड़ों की धज्जियां उड़ गईं और शरीर भी घायल हो गया और पांव भी लंगड़े हो गये । अन्त में अत्यन्त कठिनता से बड़े दुख और संकट के साथ उस मार्ग को पूरा करके पर्वत के नीचे पहुंचा और अपने आपको साधारण मार्ग पर पाया । उस समय रात्रि का अन्धकार सब ओर छा रहा था इस कारण अनुमान से मार्ग ढूंढना पड़ा परन्तु मैंने प्रसिद्ध मार्ग से पृथक् न होने का बहुत ही ध्यान रखा । अन्त को ऐसे स्थान पर पहुंचा जहां कुछ झोंपड़े दिखाई पड़े और वहां के मनुष्यों से ज्ञात हुआ कि यह मार्ग ओखीमठ को जाता है । यह सुनकर उस ओर को चल पड़ा और रात ओखीमठ में व्यतीत की । प्रात: जब मैं अच्छी प्रकार विश्राम कर चुका था, वहां से गुप्तकाशी को लौट गया अर्थात् जिस स्थान से मैं पहले उत्तर की ओर चला था ।

ओखीमठ का आडम्बर, 'सत्य', योगविद्या व मोक्ष की खोज के लिये पागल ने ऐश्वर्य को यहां भी लात मारी—परन्तु इस यात्रा की लालसा मुझे ओखीमठ को फिर ले गई ताकि वहां गुफा-निवासियों का वृत्तान्त जानूं । सारांश यह कि वहां पहुंच कर मुझे ओखीमठ के देखने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ जो कि बाहरी आडम्बर करने वाले पाखंडी साधुओं से भरा हुआ था । यहां के बड़े महन्त ने मुझे अपना चेला करने का मनोगत (विचार) किया । उसने इस बात की दृढ़ता के लिये भी मुझे लालच दिखाया कि हमारी गद्दी के तुम स्वामी होगे और लाखों रुपए की पूंजी तुम्हारे पास होगी । मैंने उनको नि:स्पृह भाव से यह उत्तर दिया कि यदि मुझे धन की चाह होती तो मैं अपने पिता की सम्पत्ति को जो तुम्हारे इस स्थल और धन दौलत से कहीं बढ़कर थी-न छोड़ता ।

मेरा उद्देश्य—इसके अतिरिक्त मैंने यह भी कहा कि जिस ध्येय के लिये मैंने घर छोड़ा और सांसारिक सुख ऐश्वर्य से मुख मोड़ा, न तो मैं उसके लिये तुम्हें यत्न करते देखता हूं और न तुम उसका ज्ञान ही रखते प्रतीत होते हो; फिर तुम्हारे पास मेरा रहना किस प्रकार सम्भव हो सकता है । यह सुनकर महन्त ने पूछा कि वह कौनसा ध्येय है जिसकी तुम्हें खोज है और तुम इतना परिश्रम कर रहे हो । मैंने उत्तर दिया कि मैं सत्य, योगविद्या और मोक्ष (जो बिना अपनी आत्मा की पवित्रता और सत्य न्यायाचरण के नहीं प्राप्त हो सकता है) चाहता हूं और जब तक यह अर्थ सिद्ध न होगा तब तक बराबर अपने देशवालों का उपकार, जो मनुष्य का कर्तव्य है—करता रहूंगा । यह सुनकर महन्त ने कहा कि यह बहुत अच्छी बात है और कुछ दिन और तुम हमारे पास ठहरो परन्तु मैंने इस बात का कुछ भी उत्तर न दिया क्योंकि मैं जान गया कि यहां कुछ पूर्ति न होगी ।

बद्रीनारायण के रावल जी से शास्त्र-संलाप—अत: दूसरे दिन प्रात: काल उठा और वहां से जोशीमठ को चल दिया । वहां कुछ दिनों दक्षिणी महाराष्ट्रियों और संन्यासियों के साथ जो संन्यासाश्रम की चतुर्थ श्रेणी के सच्चे साधु थे, रहा और बहुत से योगियों और विद्वान् साधु संन्यासियों से भेंट हुई और उनसे वार्तालाप में मुझको योग विद्या के विषय में और बहुत नई बातें विदित हुईं । उनसे पृथक् होकर फिर मैं बद्रीनारायण को गया । विद्वान् रावल जी उस समय उस मन्दिर का सबसे बड़ा महन्त था और मैं उसके साथ कई दिन तक रहा । हम दोनों का आपस में वेदों और दर्शनों पर बहुत-सा वादानुवाद हुआ । जब उनसे मैंने पूछा कि आसपास में कोई विद्वान् और सच्चा योगी भी है या नहीं, तो उसने बड़ा शोक प्रकट करते हुए कहा कि इस समय यहां आसपास में कोई ऐसा योगी नहीं है परन्तु उसने बतलाया कि मैंने सुना है कि प्राय: ऐसे योगी इसी मन्दिर को देखने के लिए आया करते हैं । उस समय मैंने यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि सारे देश में और विशेषतया पर्वतीय स्थानों में अवश्य ऐसे पुरुषों की खोज करूंगा ।

अलखनन्दा के उद्गम की ओर, अलंखनन्दा के विकट मारक भंवर से प्रभु कृपा से छुटकारा—एक दिन सूर्योदय के होते ही मैं अपनी यात्रा पर चल पड़ा और पर्वतों के मध्य में से होता हुआ अलखनन्दा नदी के तट पर जा पहुंचा। मुझे उस नदी के पार करने की तनिक भी इच्छा न थी क्योंकि मैंने उस नदी के दूसरी ओर एक 'मंग्रम'[१२] नामक बड़ा ग्राम देखा। इसलिए अभी उस पर्वत की घाटी में ही चलता हुआ नदी के बहाव के साथ-साथ जंगल की ओर हो लिया। पर्वत, मार्ग और टीले आदि सब हिमाच्छादित थे और बहुत घनी बर्फ उनके ऊपर थी इसलिये अलखनन्दा नदी के उद्गम स्थान तक पहुंचने में मुझको महान् कष्ट उठाने पड़े। परन्तु जब मैं वहां गया तो अपने आप को नितान्त अपरिचित और विदेशी जाना और अपने चारों ओर ऊंची-ऊंची पहाड़ियां खड़ी देखीं तो मुझे आगे जाने का मार्ग बन्द दिखाई दिया। थोड़े समय पश्चात् सड़क पूर्णतया अदृश्य हो गई और उस मार्ग का मुझ को कोई पता न मिला। मैं उस समय चिन्ता में था कि क्या करना चाहिये। विवश होकर मैंने अपने मार्ग की खोज के लिए उस नदी को पार करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। मेरे पहने हुए वस्त्र बहुत हल्के और थोड़े थे और सर्दी बहुत तीव्र थी। थोड़े ही समय पश्चात् ऐसी प्रबल सर्दी हो गई कि उसका सहन करना असम्भव था। भूख और प्यास ने जब मुझको बहुत ही सताया तो मैंने एक टुकड़ा बर्फ का खाकर उसको बुझाने का निश्चय किया परन्तु उससे कुछ शान्ति प्राप्त न हुई। फिर मैं नदी को पैदल ही पार करने लगा। किसी किसी स्थान पर नदी बहुत गहरी थी और कुछ स्थान पर पानी बहुत कम था परन्तु एक हाथ अथवा आधे गज से कम गहरा कहीं न था परन्तु चौड़ाई अर्थात् पाट में दस हाथ तक था अर्थात् कहीं से चार गज और कहीं से पांच गज था। नदी बर्फ के छोटे और तिर्छे टुकड़ों से भरी हुई थी जिन्होंने मेरे पांव को अत्यन्त घायल कर दिया और मेरे नंगे पांवों से रक्त बहने लगा। मेरे पांव शीत के कारण बिल्कुल सुन्न हो गये थे जिसके कारण बड़े-बड़े व्रणों का भी मुझे कुछ समय तक ज्ञान न हुआ। इस स्थान पर अत्यन्त शीत के कारण मुझको मूर्च्छा-सी आने लगी। यहां तक कि मैं सुन्न होकर बर्फ पर गिरने को था। मैंने अनुभव किया कि यदि मैं यहां पर इसी प्रकार गिर गया तो फिर यहां से उठना मेरे लिये अत्यन्त कठिन और दुष्कर होगा। अतः बहुत दौड़धूप करके जिस प्रकार हुआ मैं बहुत कठिन चेष्टा करके वहां से सकुशल निकला और नदी की दूसरी ओर जा पहुंचा। यद्यपि वहां जाकर कुछ समय तक मेरी ऐसी दशा रही कि मैं जीवित की अपेक्षा मानो अधिक मृतकपन की अवस्था में था तथापि मैंने अपने शरीर के ऊपर के भाग को बिल्कुल नंगा कर लिया और अपने समस्त वस्त्रों से जो मैंने पहने हुए थे-घुटनों या पांव तक जंघाओं को लपेट लिया और वहां पर मैं नितान्त शक्तिहीन और घबराया हुआ आगे को हिल सकने और चल सकने के अयोग्य होकर खड़ा हो गया और इस प्रतीक्षा में था कि कोई सहायता मिले जिससे मैं आगे को चलूं परन्तु इस बात की कोई आशा न थी कि सहायता कहीं से आवेगी। सहायता की प्रतीक्षा में था परन्तु बिलकुल अकेला था और जानता था कि कोई स्थान सहायता का दिखलाई नहीं देता। अन्त में फिर मैंने एक बार अपने चारों ओर देखा और अपने सामने दो पहाड़ी मनुष्यों को आते हुए पाया जो कि मेरे समीप आये और मुझको प्रणाम करके उन्होंने अपने साथ घर जाने के लिए बुलाया और कहा कि आओ हम तुमको खाने को भी देंगे। जब उन्होंने मेरे कष्टों को सुना और मेरे वृत्तान्त से परिचित हुए तो कहने लगे कि हम तुमको 'सिद्धपत (जो कि एक तीर्थ स्थान है) पर भी पहुंचा देंगे परन्तु उनका मुझको यह सब कहना कुछ अच्छा प्रतीत न हुआ। मैंने अस्वीकार कर दिया और कहा कि महाराज ! खेद है कि मैं आपकी यह कृपायुक्त बातें स्वीकार नहीं कर सकता क्योंकि मुझमें चलने की बिलकुल शक्ति नहीं है। यद्यपि उन्होंने मुझको बड़े आग्रह से बुलाया और आने के लिए बहुत कुछ विवश किया परन्तु मैं उसी स्थान पर पांव जमाए हुए खड़ा रहा और उनके कथन तथा इच्छानुसार उनके पीछे चलने का साहस न कर सका। जब मैं उनको कह चुका कि मैं यहां से हिलने की चेष्टा करने की अपेक्षा मर जाना अच्छा समझता हूं और इस प्रकार कहकर मैंने उनकी बातों की ओर ध्यान देना भी छोड़ दिया अर्थात् उनकी बातों को मैंने फिर न सुना। उस समय मेरे मन में विचार आता था कि अच्छा होता यदि मैं लौट गया होता और इस

प्रकार मैंने अपनी शिक्षा और अध्ययन को चालू रखा होता। वे दोनों मनुष्य इतने में वहां से चले गये और थोड़े समय में पहाड़ियों के मध्य में अदृश्य हो गये। वहां पर जब मुझको कुछ शान्ति प्राप्त हुई तो आगे को चला और कुछ समय तक 'बासोधा'[१३] (जो एक तीर्थ-यात्रा का स्थान है) पर ठहर कर और 'माना ग्राम' के आसपास से होकर मैं उसी शाम को आठ बजे के लगभग बद्रीनारायण में पहुंचा।

रावल जी से अन्तिम भेंट—मुझे देखकर रावज जी और उनके साथी, जो सब घबराये हुए थे, आश्चर्य-चकित रह गये और उन्होंने मुझसे पूछा कि आज सारे दिन तुम कहां रहे ? तब मैंने जो कुछ हुआ था अक्षरशः सुना दिया। उस रात्रि को थोड़ा सा खाना खाकर, जिससे कि मेरी शक्ति नये सिरे से लौटती हुई प्रतीत हुई-मैं सो गया परन्तु दूसरे दिन प्रातःकाल शीघ्र ही उठा और उठकर रावल जी से आगे जाने की आज्ञा मांगी और अपनी यात्रा पर चल पड़ा और रामपुर को प्रस्थान किया। उस शाम को चलता-चलता मैं एक योगी के घर जा पहुंचा जो एक बड़ा भारी उपासक था और उसके घर पर रात काटी। वह योगी जीवित ऋषियों और साधुओं में अत्यन्त उच्च कोटि का प्रसिद्ध ऋषि था और धार्मिक विषयों पर उसके साथ बहुत समय तक मेरी बातचीत हुई।

अपने निश्चय को पहले से अधिक दृढ़ करके मैं अगले दिन प्रातःकाल उठते ही आगे को चल दिया और कई वनों और पर्वतों में से होकर और चिल्काघाटी (या चिल्किया घाट) पर से उतर कर मैं अन्त में 'रामपुर' पहुंच गया और वहां पहुंच कर मैंने प्रसिद्ध रामगिरी के गृह पर निवास किया। यह व्यक्ति अपने जीवन की बहुत बड़ी पवित्रता और आत्मिक जीवन की शुद्धता के कारण बहुत विख्यात था। मैंने भी उसको विचित्र स्वभाव का देखा अर्थात् वह सोता नहीं था प्रत्युत सारी रातें बड़े ऊंचे शब्द से बातें करने में व्यतीत कर देता था और वह बातें वह प्रकटतया अपने साथ ही करता प्रतीत होता था। प्रायः बड़े ऊंचे शब्द से हमने उसको चीख मारते सुना और फिर कई बार हमने उसको रोते हुए और चीख मारते अथवा ध्वनि करते हुए पाया परन्तु जब उठकर देखा तो वहां उसके कमरे में उसके अतिरिक्त और कोई मनुष्य दिखाई न दिया। मैं इस बात से अत्यन्त चकित तथा आश्चर्यान्वित हुआ और मैंने उसके शिष्यों आदि से पूछा तो उन बेचारों ने केवल यही उत्तर दिया कि इसका ऐसा ही स्वभाव है परन्तु कोई मुझको यह न बतला सका कि इसका क्या अर्थ है। अन्त में जब मैंने कई बार उस साधु से निजीरूप से एकान्त में भेंट की तो मुझको विदित हो ही गया कि वह क्या बात थी और इस प्रकार से मैं इस बात का निश्चय करने के योग्य हो गया कि अभी वह जो कुछ करता है वह पूरी-पूरी योगविद्या का परिणाम नहीं प्रत्युत उसमें अभी कमी है और यह वह चीज नहीं है जिसकी मुझको खोज है और न यह पूरा योगी है, प्रत्युत योग में कुछ निपुणता रखता है।

काशीपुर आदि की ओर—उससे विदा होकर मैं 'काशीपुर' गया और वहां से 'द्रोणसागर' पहुंचा जहां मैंने शीत ऋतु व्यतीत की। हिमालय पर्वत पर पहुंच कर देह त्याग देना चाहिये ऐसी इच्छा हुई परन्तु यह विचार मन में आ गया कि ज्ञानप्राप्ति के पश्चात् देह छोड़नी चाहिये। वहां से आगे 'मुरादाबाद' होता हुआ मैं 'सम्भल' जा पहुंचा और वहां से 'गढ़मुक्तेश्वर' को पार करता हुआ फिर गंगा नदी के तट पर पहुंचा। उस समय और धार्मिक पुस्तकों के अतिरिक्त मेरे पास निम्नलिखित पुस्तकें भी थीं—शिवसंध्या[१४], हठप्रदीपिका, योगबीज, केसराना संगीत[१५]—इन पुस्तकों को मैं अपनी यात्रा में प्रायः पढ़ा करता था। इनमे से कुछ के विषय हठ योग और नाड़ीचक्र अर्थात् मनुष्य की नाड़ियों को बताने वाली विद्या से सम्बद्ध थे। इनमें ऐसी बातों का ऐसा लम्बा चौड़ा वर्णन किया हुआ था कि मनुष्य पढ़ता-पढ़ता थक जाता था और उनको मैं कभी भी पूर्णरूप से अपनी बुद्धि के वश में न ला सका और न पूर्णरूप से कभी मैं उनको स्मरण कर सका और न पूर्णरूप से समझ सका।

शव को चीर कर नाड़ी-ग्रन्थ की जांच, ऋषि की मौलिकता : असत्य से तीव्र घृणा—इनसे यह विचार उत्पन्न हुआ कि पता नहीं यह ठीक भी है या नहीं । इनके ठीक होने में मुझको सन्देह पड़ गया । मैं प्राय: अपने सन्देह निवृत्त करने का प्रयत्न करता रहा परन्तु आज तक मेरे यह सन्देह दूर नहीं हो सके और मुझे इनको दूर करने का कोई अवसर भी प्राप्त न हुआ । एक दिन की बात है कि मुझको अकस्मात् एक शव नदी के ऊपर बहता हुआ मिला । उस समय ठीक अवसर मिला था कि मैं उनकी परीक्षा करता और अपने मन की उन बातों के विषय में जो उन पुस्तकों में लिखी थी, अपने सन्देह की निवृत्ति करता । अत: उन पुस्तकों को जो मेरे पास थीं एक ओर अपने समीप रखकर वस्त्रों को ऊपर उठा कर मैं दृढ़तापूर्वक नदी में घुसा और शीघ्रता से भीतर जाकर शव को पकड़ कर तट पर लाया । मैंने उसको एक तेज चाकू से, अच्छी प्रकार जैसे मुझ से हो सकता था, काटना प्रारम्भ किया । मैंने हृदय को उसमें से निकाल लिया और ध्यानपूर्वक उसकी परीक्षा की और देखा और हृदय को नाभि से पसली तक काटकर मैंने अपने सामने रखकर देखने का यत्न किया और जो वर्णन पुस्तक में दिया था उससे समता करने लगा और इसी प्रकार सिर और गर्दन के एक भाग को भी काटकर सामने रख लिया । यह जानकर कि इन पुस्तकों और शव में आपस में कोई समानता नहीं मैंने पुस्तकों को फाड़ कर उनके टुकड़े-टुकड़े कर डाले और शव को फेंक कर साथ ही उन पुस्तकों के टुकड़ों को भी नदी में फेंक दिया । धीरे-धीरे उसी समय से मैं यह परिणाम निकालता गया कि वेदों, उपनिषदों, पातञ्जल योग और सांख्यदर्शन के अतिरिक्त समस्त पुस्तकें, जो विज्ञान और योगविद्या पर लिखी गई हैं, निरर्थक और अशुद्ध हैं ।

गंगातटवर्ती स्थानों का भ्रमण—गंगा नदी के तट पर कुछ दिन और इसी प्रकार फिर कर मैं फिर फर्रूखाबाद पहुंचा और जब कि सरन जी राम[१६] से होकर मैं छावनी के पूर्व जाने वाली सड़क से कानपुर को जाने वाला था तो संवत् १९१२ विक्रमी (तदनुसार ५ अप्रैल १८५६) समाप्त हुआ (उस समय आपकी आयु ३२ वर्ष की थी) ।

कानपुर, इलाहाबाद व बनारस में (संवत् १९१३) —अगले पांच महीनों में मैंने कई बड़े-बड़े स्थान जो कानपुर और इलाहाबाद के मध्य मे थे-देखे । भाद्रपद तदनुसार अगस्त मास सन् १८५६ के आरम्भ में रविवार को मैं मिर्जापुर के समीप बनारस में जा पहुंचा, जहां एक मास से अधिक काल तक मैं विन्ध्याचल अशोल जी[१७] के मन्दिर में ठहरा । असौज[१८] (१५ सितम्बर १८५६ सोमवार) के प्रारम्भ में बनारस पहुंचा और उस स्थान पर जाकर उस गुफा में ठहरा जो बरना और गंगा के संगम पर स्थित है और जो उस समय भवानन्द सरस्वती[१९] के कब्जे में थी । वहां पर कई शास्त्रियों अर्थात् काकाराम, राजाराम आदि से मेरी भेंट हुई । वहां मैं केवल १२ दिन ही रहा तत्पश्चात् जिस वस्तु की खोज में था उसके लिये आगे को चल दिया ।

अपने दुर्व्यसन की स्वीकारोक्ति तथा उसका परित्याग—१ अक्तूबर सन् १८५६ बुधवार तदनुसार आसौज सुदी २ संवत् १९१३ को दुर्गाकुण्ड के मन्दिर पर जो चांडालगढ़[१९ए] में स्थित है, पहुंचा । वहां मैंने दस दिन व्यतीत किये । वहां मैंने चावल खाने बिल्कुल छोड़ दिये और केवल दूध पर अपना निर्वाह करके दिन रात योगविद्या के पढ़ने और उसके अभ्यास में संलग्न रहा । दुर्भाग्य से इस स्थान पर मुझे एक बड़ा व्यसन लग गया अर्थात् मुझको भंग सेवन करने का अभ्यास पड़ गया और प्राय: उसके प्रभाव से मैं मूर्छित हो जाया करता था । एक दिन की बात है जब मैं मन्दिर में से निकलकर एक ग्राम की ओर जो चांडालगढ़ के समीप है, जा रहा था वहां मुझको पिछले दिनों का परिचित मेरा एक साथी मिला । गांव के दूसरी ओर कुछ दूरी पर एक शिवालय था जहां मैंने जाकर रात व्यतीत की । वहां जब मैं भंग की मादकता की दशा में मूर्छित पड़ा सोता था तो मैंने एक स्वप्न देखा और वह यह था अर्थात् मुझे ध्यान आया कि मैंने महादेव और उसकी स्त्री

पार्वती को देखा । पार्वती महादेव जी से कह रही थी और उनकी बातों का विषय मैं ही था अर्थात् वह मेरे विषय में बातें कर रहे थे । पार्वती महादेव जी से कह रही थी कि अच्छा हो यदि दयानन्द सरस्वती का विवाह हो जावे परन्तु देवता इस बात से विरोध प्रकट कर रहा था । उसने मेरी भंग की ओर संकेत किया अर्थात् भंग का प्रसंग छेड़ा । जब मैं जागा और इस स्वप्न का विचार किया तो मुझे बड़ा दुःख और क्लेश हुआ । उस समय अत्यन्त वर्षा हो रही थी और मैंने उस बरामदे में जो कि मन्दिर के बड़े द्वार के सम्मुख था—विश्राम किया । उस स्थान पर सांड अर्थात् नन्दी देवता की मूर्ति खड़ी हुई थी । अपने वस्त्रों और पुस्तक को उसकी पीठ पर रखकर मैं बैठ गया और अपनी बात को सोचने लगा । ज्यों ही अकस्मात् मैंने उस मूर्ति के भीतर की ओर दृष्टि डाली तो मुझको एक मनुष्य उसमें छुपा हुआ दिखाई पड़ा । मैंने अपना हाथ उसकी ओर फैलाया जिससे वह बहुत डर गया क्योंकि मैंने देखा कि उसने झटपट छलांग मारी और छलांग मारते ही गांव की ओर सरपट दौड़ गया । तब मैं उसके चले जाने पर उस मूर्ति के भीतर घुस गया और शेष रात वहीं सोता रहा । प्रातःकाल एक वृद्धा स्त्री वहां पर आई और उसने उस सांड देवता की पूजा की जिस अवस्था में कि मैं भी उसके भीतर ही बैठा हुआ था । उसके थोड़े समय पश्चात् वह गुड़ और दही लेकर लौटी और मेरी पूजा करके और मुझको भूल से देवता समझ कर उसने कहा कि आप इसको स्वीकार कीजिये और कुछ इसमें से सेवन कीजिए । मैंने भूख होने के कारण उसको खा लिया । दही चूंकि बहुत खट्टा था इसलिये भंग का मद उतारने में अच्छी औषधि बन गया । उससे मद जाता रहा जिससे मुझको बड़ा विश्राम मिला (आगे को भंग का सेवन बिल्कुल त्याग दिया) ।

योगियों की खोज में नर्मदा के स्रोत की ओर, हितैषियों की ओर से चेतावनी परन्तु अपने निश्चय पर अटल—चैत सुदी संवत् १९१४ वि०-अर्थात् २६ मार्च सन् १८५७ बृहस्पतिवार को वहां से आगे चल पड़ा और उस ओर प्रयाण किया जिधर पहाड़ियां थीं और जिधर नर्मदा नदी निकलती है अर्थात् उद्गमस्थान की ओर चला (यह नर्मदा की दूसरी यात्रा थी ।) मैंने कभी एक बार भी किसी से मार्ग नहीं पूछा प्रत्युत दक्षिण की ओर यात्रा करता हुआ चला गया । शीघ्र ही मैं एक ऐसे सुनसान और निर्जन स्थान में पहुंच गया जहां चारों ओर बहुत घने जंगल थे और वहां जंगल में अनियमित अन्तर पर झाड़ियों के मध्य में बहुत से स्थानों पर क्रमरहित भग्न और सुनसान झोपड़ियां थीं और कहीं कहीं पृथक्-पृथक् ठीक झोंपड़ियां भी दिखाई पड़ती थीं । इन झोंपड़ियों में से एक झोंपड़ी पर मैंने थोड़ा सा दूध पिया और फिर आगे की ओर चल दिया परन्तु इससे आगे कोई डेढ़ मील के लगभग चलकर मैं फिर एक ऐसे स्थान पर पहुंचा जहां से कोई बड़ा मार्ग दिखलाई न देता था और मेरे लिये यही उचित प्रतीत होता था कि उन छोटे-छोटे मार्गों में से (जिनको मैं न जानता था कि कहां जाते हैं) किसी एक को ग्रहण करूं और उस ओर चल दूं । शीघ्र ही मैं एक निर्जन और सुनसान जंगल में घुस गया । उस जंगल में बहुत से बेरियों के वृक्ष थे परन्तु घास इतना घना और लंबा-लंबा उगा हुआ था कि मार्ग बिल्कुल दिखाई न देता था । इस स्थान पर मेरा सामना एक बड़े काले रीछ से हुआ । वह रीछ बड़ी तीव्र और भयानक आवाज से चीखा और चिंघाड़ मार कर अपनी पिछली टांगों पर खड़ा होकर मुझे खाने के लिए अपना मुखा खोला । मैं कुछ समय तक निश्चेष्ट खड़ा रहा परन्तु तत्पश्चात् मैंने शनैः शनैः अपने सोटे को उसकी ओर उठाया और वह रीछ उससे डर कर उल्टे पांव लौट गया । उसकी चिंघाड़ और गर्ज इतने जोर की थी वह गांव वाले जो मुझको अभी मिले थे दूर से उनका शब्द सुनकर और लट्ठ लेकर शिकारी कुत्तों सहित मेरी सहायता करने के लिये उस स्थान पर आये । उन्होंने मुझको इस बात की प्रेरणा देने का यत्न किया कि मैं उनके साथ चलूं । उन्होंने कहा कि यदि इस जंगल में तुम तनिक भी आगे बढ़ोगे तो बहुत सी विपत्तियों का तुमको सामना करना पड़ेगा और पहाड़ियों व वनों में बहुत से भयंकर क्रोधी और जंगली पशु अर्थात् रीछ, हाथी और शेर आदि तुम्हें मिलेंगे । मैंने उनसे निवेदन किया कि आप मेरे कुशलक्षेम की कोई चिन्ता न करें क्योंकि मैं सकुशल और

सुरक्षित हूं । चूंकि मेरे मन में इस बात की चिन्ता थी कि किसी प्रकार नर्मदा के उद्‌गम स्थान को देखूं इसलिये यह समस्त भय और आशंकाएं मुझको मेरे इस निश्चय से नहीं रोक सकती थीं । जब उन्होंने देखा कि उनकी आशंकायुक्त बातें मेरे मन में कुछ भय उत्पन्न नहीं करतीं और मैं अपने निश्चय में पक्का हूं, तब उन्होंने मुझे एक सोटी दे दी जो कि मेरे सोटे से बड़ी थी ताकि मैं उससे अपने को बचाऊं परन्तु मैंने उस सोटी को तुरन्त अपने हाथ से फेंक दिया ।

विकट वन में रेंग कर चलना तथा लहुलुहान—उस दिन मैं निरंतर तब तक यात्रा करता हुआ चला गया जब तक संसार में चारों ओर अन्धकार न छा गया । कई घंटों तक मुझको मनुष्य की बस्ती का तनिक-भी चिह्न न मिला और दूर कोई गांव मुझे दिखाई नहीं दिया और न किसी झोंपड़ी पर ही दृष्टि पड़ी और न ही कोई मनुष्य जाति मेरी आंखों के सामने आई परन्तु जो वस्तुएं साधारणतया मेरे मार्ग में आई, वे वह वृक्ष थे जो प्राय: टूटे हुए पड़े थे । जिनकी जड़ों को मतवाले हाथियों ने तोड़कर और उखेड़ कर वहां फेंक दिया था । उसके थोड़ी ही दूर आगे बढ़ने पर मुझको एक बहुत ही बड़ा जंगल दिखायी दिया कि जिसमें घुसना भी कठिन था अर्थात् इतने घने बेर आदि के कांटेदार वृक्ष वहां पर लगे हुए थे कि उनके अन्दर से निकल कर जंगल और वन में पहुंचना बहुत कठिन ही नहीं प्रत्युत असम्भव दिखाई देता था । पहले पहल तो मुझको उनके अन्दर से निकलना असम्भव दिखाई दिया परन्तु तत्पश्चात् पेट के बल घुटनों के सहारे मैं शनै: शनै: सर्प के समान उन वृक्षों में से निकला और इस प्रकार उस रुकावट और कठिनाई को दूर किया और उस पर विजय प्राप्त की । यद्यपि इस महान् विजय के प्राप्त करने में मुझको अपने वस्त्रों के टुकड़ों का बलिदान करना पड़ा और कुछ बलिदान मुझको अपने शरीर के मांस का भी करना पड़ा जो उसके अन्दर से क्षत विक्षत होकर निकला । इस समय पूर्ण अन्धकार छाया हुआ था और अन्धकार के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं पड़ता था । यद्यपि मार्ग बिल्कुल रुका हुआ था और दिखाई न पड़ता था परन्तु तब भी मैं अपने आगे बढ़ने के निश्चय को छोड़ नहीं सकता था और इस आशा में था कि कोई मार्ग निकट ही आयेगा । अत: मैं बराबर आगे को चलता ही गया और बढ़ता ही रहा यहां तक कि मैं एक ऐसे भयंकर स्थान में घुस गया कि जहां चारों ओर ऊंची-ऊंची चट्टानें और ऐसी-ऐसी पहाड़ियां थीं कि जिनके ऊपर बहुत घनी वनस्पति और पादपादि उगे हुए थे । परन्तु इतना अवश्य था कि बस्ती के वहां कुछ-कुछ चिह्न और लक्षण पाये जाते थे । शीघ्र ही मुझको कुछ झोंपड़ियां और कुछ कुटियाएं दिखाई पड़ीं जिनके चारों ओर गोबर के ढेर लगे हुए थे और शुद्ध जल की एक छोटी नदी के तट पर बहुत सी बकरियां भी चर रही थीं और उन झोपड़ियों और टूटे-फूटे घरों के द्वारों और दराड़ों में से टिमटिमाता हुआ प्रकाश दिखाई पड़ता था जो चलते हुए यात्री को स्वागत और बधाई की आवाज लगाता प्रतीत होता था । मैंने वहां एक बड़े वृक्ष के नीचे जो एक झोंपड़ी के ऊपर फैला हुआ था, रात व्यतीत की और प्रात:काल उठकर मैं अपने घायल चरणों और हाथ और छड़ी को नदी के पानी से धोकर अपनी उपासना तथा प्रार्थना करने के लिए बैठने को ही था कि इतने में ही किसी जंगली जन्तु के गर्जने की-सी ध्वनि मेरे कान में आई । यह ध्वनि टमटम की ऊंची ध्वनि थी । थोड़े ही समय पश्चात् मैंने एक बड़ी सवारी अथवा जलूस आता हुआ देखा । उसमें बहुत से स्त्री, पुरुष और बच्चे थे जिनके पीछे बहुत सी गौएं और बकरियां थीं जो एक झोंपड़ी या घर से निकले थे । सम्भवत: यह किसी धार्मिक उत्सव की प्रथा पूरी करने के लिये आये थे जो रात को हुआ करता है । जब उन्होंने मेरी ओर देखा और मुझको उस स्थान पर एक अपरिचित जाना तो बहुत लोग मेरे चारों ओर इकट्ठे हो गये और अन्त में एक वृद्ध मनुष्य ने आगे बढ़कर मेरे से पूछा कि तुम कहां से आये हो ? मैंने उन सबसे कहा कि मैं बनारस से आया हूं और अब मैं नर्मदा नदी के उद्गमस्थान की ओर यात्रा के लिये जा रहा हूं । इतना पूछकर वह सब मुझे अपनी उपासना में संलग्न छोड़कर चले गये । उनके जाने के आधा घंटा पश्चात् एक उनका सरदार दो पहाड़ी मनुष्यों सहित मेरे पास आया और एक ओर पार्श्व में बैठ गया । वह वास्तव में उन सबकी ओर से एक प्रतिनिधि के रूप में मुझको अपनी झोंपड़ियों में बुलाने के लिये आया था परन्तु पूर्व की भांति मैंने अबके भी उनकी इस कृपा को

स्वीकार नही किया क्योंकि वे सब मूर्तिपूजक थे (इसलिये स्वामी जी ने उनके पूजा के कार्य में सम्मिलित होना पाप समझा और अस्वीकार कर दिया) । तब उसने मेरे समीप अग्नि प्रज्ज्वलित करने की आज्ञा अपने मनुष्यों को दी और उसने दो पुरुषों को नियत किया कि रात भर मेरी रक्षा करते हुए जागते रहें । जब मुझसे उसने मेरे खाने के विषय में पूछा और बताया कि मैं केवल दूध पीकर निर्वाह करता हूं तो उस कृपालु सरदार ने मुझ से मेरा तूंबा मांगा और उसको लेकर अपनी झोंपड़ी की ओर गया और वहां उसने उसको दूध से भर कर मेरे पास भेज दिया । मैंने उसमें से उस रात्रि थोड़ा सा दूध पिया । वह फिर मुझको दो रक्षकों के निरीक्षण में छोड़कर लौट गया । उस रात मैं बड़ी गहरी निद्रा में सोया और सूर्योदय तक सोता रहा । तत्पश्चात् उठकर अपने सन्ध्यादि कृत्यों से निवृत्त होकर मैं यात्रा के लिये उद्यत हुआ ।[२०] सारांश यह कि नर्मदा के उद्‌गम स्थान से लौटकर मैं विशेष विद्याप्राप्त्यर्थ मथुरा में आया । नर्मदा तट पर तीन वर्ष तक यात्रा की और भिन्न-भिन्न महात्माओं से सत्संग करता रहा ।

तीन वर्ष के नर्मदा-भ्रमण के पश्चात् मथुरा में आगमन—(संवत् १९१७ वि०)—मथुरा में एक संन्यासी सत्पुरुष मुझे गुरु मिले । उनका नाम विरजानन्द स्वामी है । यह पहले अलवर में थे । उनकी आयु ८१ वर्ष की थी ।[२१] उनको वेद शास्त्रादि तथा आर्ष ग्रन्थों में बहुत रुचि थी । वे दोनों आंखों से अन्धे थे और उनके उदर में सदा शूल का रोग रहता था । उनको आधुनिक कौमुदी, शेखरादि ग्रन्थ अच्छे नहीं लगते थे । वह भागवतादि पुराणों का तो बहुत ही तिरस्कार करते थे । समस्त आर्ष ग्रन्थों पर उनकी बहुत ही भक्ति थी । आगे जब उनका परिचय हुआ तब उनके 'तीन वर्ष में व्याकरण आता है' ऐसा कहने पर मैंने उनके पास पढ़ने का निश्चय किया (संवत् १९१७ तदनुसार सन् १८६० में) ।

मथुरा के अमरलाल जोशी को कभी न भूलूंगा—मथुरा में एक भद्रपुरुष अमरलाल[२२] नाम का था । उसने भी जब मैं विद्याध्ययन करता था, उस समय जो मेरे पर उपकार किये हैं उनको मैं कभी न भूलूंगा । पुस्तकों की सामग्री, खाने-पीने का प्रबन्ध उसने बहुत ही उत्तम मेरा कर दिया । उसे जब कहीं बाहर रोटी खाने को जाना होता तो प्रथम मुझको घर में बना कर खिलाता फिर आप बाहर जाता । इसी प्रकार वह पुरुष बहुत ही उदारचित्त था । संवत् १९१९ तक मथुरा में रहा अर्थात् सन् १८६२ के अन्त तक ।

संवत् १९२०-१९२१ वि० आगरा में—विद्याध्ययन के समाप्त होने पर मैं आगरे में दो वर्ष रहा परन्तु समय-समय पर पत्र द्वारा अथवा स्वयं मिलकर मैं स्वामी जी के पास से शंकाओं का समाधान कर लिया करता था । वहां से मैं ग्वालियर गया और वहां थोड़ा-सा वैष्णवमत का खंडन करना प्रारम्भ किया । वहां से भी मथुरा में स्वामी जी को पत्र भेजता रहा था । यहां ग्वालियर में एक माधवानु-मताचार्य्य[२३] नामक पंडित था वह[२४] कारकून (लेखक) का रूप बनाकर वाद आदि के सुनने के लिए बैठता । किसी समय मेरे मुख से जब कोई अशुद्धि निकलती तो झट पकड़ लेता । मैंने बहुत बार पूछा कि आप कौन हो परन्तु वह कहता कि 'मैं तो साधारण कारकून (लेखक) हूं, सुन-सुनकर परिचित हो गया हूं' वह ऐसा कहता । एक दिन 'वैष्णव खड़ी रेखा लगाते हैं' इस पर बातचीत चली तब मैंने कहा कि यदि खड़ी रेखा लगाने से स्वर्ग मिलता है तो सारा मुख काला कर लेने से स्वर्ग के आगे भी कुछ मिलता होगा, ऐसा कहते ही उसे बहुत क्रोध आया और वह उठकर चल दिया । तब मुझे खोज करने पर विदित हुआ कि यह अनुमताचार्य्य है । **ग्वालियर से मैं करौली गया ।** वहां एक कबीरपन्थी मिला । उसने 'एक बीर उसका यह कबीर' ऐसा अनुवाद किया था[२५] और कबीर उपनिषद् है ऐसा वह मुझसे कहने लगा । वहां से आगे **जयपुर** को गया—वहां एक हरिश्चन्द्र विद्वान् पंडित था । वहां मैंने प्रथम वैष्णवमत का खंडन करके शैवमत की स्थापना की । जयपुर के राजा महाराजा रामसिंह ने भी शैवमत को ग्रहण किया । इससे शैवमत का विस्तार

हुआ और सहस्रों रुद्राक्ष मालाएं मैंने अपने हाथ से दीं। वहां शैवमत इतना पक्का हुआ कि हाथी, घोड़े आदि सबके गले में भी रुद्राक्ष की मालाएं पड़ गईं।

जयपुर से पुष्कर व अजमेर—जयपुर से मैं पुष्कर गया और वहां से अजमेर गया। अजमेर जाने पर शैवमत का भी खंडन करना आरम्भ कर दिया। वहां जयपुर के महाराजा लाट साहब से मिलने के लिये आगरे जाने वाले थे। वृन्दावन में रंगाचार्य करके एक पंडित था। कहीं उससे शास्त्रार्थ न हो जाये इसलिये राजा रामसिंह जी ने मुझे बुलावा भेजा था। मैं जयपुर गया परन्तु मैंने शैवमत का भी खंडन करना प्रारम्भ कर दिया है यह समझते ही राजा जी को अप्रसन्नता हुई और मैं जयपुर छोड़कर निकल गया। फिर स्वामी जी के पास जाकर शंकाओं का समाधान कर लिया। वहां से फिर मैं हरिद्वार गया (१२ अप्रैल सन् १८६७)।

हरिद्वार के कुम्भ में पाखण्ड खण्डन का आरम्भ

मतमतान्तरों का खण्डन तथा सर्वस्वत्याग-'पाखण्डमर्दन' ये अक्षर लिखकर ध्वजा मैंने अपने मठ पर लगाई। वहां वाद-विवाद बहुत हुआ, फिर मेरे मन को ऐसा प्रतीत होने लगा कि सारे संसार के विरुद्ध होकर और गृहस्थियों की अपेक्षा भी बहुत-सी पुस्तकों आदि का खटराग रखकर क्या करना है, इस हेतु से मैंने सब छोड़ दिया और कौपीन लगाकर मौन धारण कर लिया।

तब से शरीर में जो राख लगानी प्रारम्भ की थी वह गतवर्ष बम्बई आने तक लगाता ही रहा था। रेल पर बैठने के समय से लेकर वस्त्र पहनने लगा। हरिद्वार में जो मैंने मौन धारण किया वह बहुत दिन नहीं रहा क्योंकि बहुत लोग मुझे पहचानते थे और एक दिन मेरी पर्णकुटी के द्वार पर किसी ने लिख दिया 'निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्' अर्थात् भागवत की अपेक्षा वेद कुछ भी अधिक नहीं हैं प्रत्युत भागवत के पीछे हैं।[२६] तब मुझसे वह सहन नहीं हुआ और मौनव्रत छोड़कर मैं भागवत का खंडन करने लगा।

युक्त प्रान्त में शास्त्रार्थों की धूम : काशी का प्रसिद्ध शास्त्रार्थ—(संवत् १९२५ वि०) फिर ऐसा विचार किया कि ईश्वर कृपा से अपने को थोड़ा बहुत ज्ञान मिला है यह सब लोगों को कहना चाहिये। ऐसा निश्चय करके मैं फर्रूखाबाद आया। वहां से मैं रामगढ़[२७] गया रामगढ़ में वाद-विवाद आरम्भ किया। वहां जब दो चार शास्त्री एक साथ बोलने लगते तब मैं 'कोलाहल' ऐसा कहता था। इसलिये आज तक वहां के लोग मुझे 'कोलाहल स्वामी'[२८] कहते हैं। वहां चक्रांकितों के दस आदमी मुझे मारने को आये परन्तु उनसे बड़े संकट से बचा। फर्रूखाबाद से मैं कानपुर आया और कानपुर से प्रयाग गया। प्रयाग में मुझे मारने वाले मारने के लिये आये परन्तु एक माधवप्रसाद[२९] करके भद्रपुरुष था उसने मुझे बचाया। यह माधवप्रसाद गृहस्थी मनुष्य ईसाई धर्म स्वीकार करने वाला था और उसने सारे पंडितों को नोटिस दिये थे कि अपने आर्य धर्म के विषय में मेरा समाधान तीन महीने के भीतर करा दें अन्यथा समाधान न होने की अवस्था में मैं ईसाई धर्म स्वीकार कर लूंगा। मैंने आर्यधर्म के विषय में उसका समाधान कर दिया और वह ईसाई होने से बच गया।

संवत् १९२६ वि०—प्रयाग से रामनगर गया। काशी में—रामनगर के राजा के कहने पर काशी के पंडितों से शास्त्रार्थ करने के लिए गया और उस वाद में 'प्रतिमा' ऐसा शब्द वेदों में है या नहीं ऐसा विषय चला।[३०] वह शास्त्रार्थ और स्थान पर छप कर प्रसिद्ध हुआ है-वह सब पढ़कर देखें। इतिहास से ब्राह्मण-ग्रन्थ ही ग्रहण करने चाहियें ऐसा भी वाद वहां चला था।

द्वितीय भाग

हमारे द्वारा अन्वेषित श्री स्वामीजी का जीवनवृत्त

अध्याय १

गंगातट पर सात वर्ष का जीवन

(संवत् १९१७ से सं० १९२३ तक)

मथुरा में स्वामी विरजानन्द जी से अध्ययन

(संवत् १९१७ से चैत्र सं० १९२० तक)

नर्मदा तट से मथुरा में—स्वामी जी नर्मदा की यात्रा कर रहे थे कि उन्हें समाचार मिला कि मथुरा में एक प्रज्ञाचक्षु दण्डी स्वामी व्याकरण के धुरंधर विद्वान् रहते हैं। उन्होंने दृढ़ निश्चय किया कि जिस प्रकार भी हो उनसे पूर्ण विद्या का अध्ययन करना चाहिये। विद्याप्राप्ति की इच्छा से रीवां बुन्देलखंड से होते हुए कार्तिक सुदी २ संवत् १९१७[1] तदनुसार बुधवार ४ नवम्बर सन् १८६० यम द्वितीया के दिन मथुरा में आये। प्रथम कुब्जा के कुएं पर ठहरे; फिर लक्ष्मीनारायण के मन्दिर में जा रहे। उस समय रुद्राक्ष की माला पहनते, भस्म लगाते और संन्यासियों की भांति कौपीन बांधते, अचरा छाती पर रखते, सिर पर मुंडासा बांधते और एक बहुत बड़ी लाठी हाथ में रखते थे। एक पुस्तक पास थी और यात्रा की कठिनाइयों के कारण शरीर निर्बल हो रहा था। बोलचाल में गुजराती भाषा के शब्द—'हमरे तुमरे'[2] का बहुत प्रयोग करते थे।

गुरु के द्वार पर—जब दंडी जी के मकान पर आये तो किवाड़ भीतर से बन्द थे; नीचे से आवाज दी।

विरजानन्द जी—कौन है ? **दयानन्द जी**—एक संन्यासी।

विरजानन्द जी—क्या नाम है ? **दयानन्द जी**—दयानन्द सरस्वती।

विरजानन्द जी—कुछ व्याकरण पढ़ा है ? **दयानन्द जी**—सारस्वतादि पढ़ा है।

गुरु का प्रथम आदेश : मनुष्यकृत छोड़ो—दंडी जी ने द्वार खोल दिया, भीतर गये। प्रथम थोड़ी परीक्षा ली फिर कहा कि ऋषिकृत शास्त्र और हैं। दयानन्द ने कहा कि महाराज हमें बतलाओ। विरजानन्द जी बोले कि मनुष्यकृत को छोड़े, तब इसको ले सकता है। दयानन्द ने संकल्प डाल दिया कि मैंने वह सब छोड़ दिये।[3]

सारस्वत का कच्चा चिट्ठा—तब विरजानन्द जी ने उनको सारस्वत की वास्तविकता सुनायी कि अनुभूतिस्वरूप आचार्य ने इसे बनाया है। किसी शास्त्रार्थ में बूढ़ा होने के कारण मुख में दांत न रहने से 'पुंसु' शब्द अशुद्ध मुख से निकल

---

1. ये सारी बातें पंडित जुगलकिशोर पुत्र, वसुदेव, गौड़ ब्राह्मण, दामोदर जी चौबे, पंडित हरिकृष्ण जी, व पंडित गंगादत्त जी जो स्वामी जी के सहाध्यायी थे ला० नैनसुख जी जड़िया व रामचन्द्र पुजारी मंदिर लक्ष्मीनारायण स्थित मथुरा जहां स्वामी जी (अपने) शिक्षा की अवस्था में रहते थे और जिनसे प्रतिदिन (उनका) व्यवहार रहता था, के मुंह से सुनकर लिखी गईं हैं, मास दिसम्बर सन् १८८८।

गया । पंडितों ने आक्षेप किया, यह क्रोध में आ गये और उसकी सिद्धि के लिए यह झूठा ग्रन्थ बनाया और मिथ्या अभिमान में आकर इस अशुद्ध को शुद्ध कर दिखाया; परन्तु इस व्यर्थ प्रयत्न करने पर भी 'पुंसु' शुद्ध न हुआ, अशुद्ध ही रहा । दंडी जी ने उस समय यह भी कहा था कि हम संन्यासी को विद्या नहीं पढ़ाते क्योंकि तुम भोजन कहां से लाओगे और किस प्रकार धैर्य पूर्वक पढ़ोगे; परन्तु स्वामी जी ने बहुत अनुरोध किया । तीन-चार दिन उनके पास जाते रहे और उनकी सब बातों को स्वीकार किया ।

भट्टोजि दीक्षित, जो सिद्धान्त कौमुदी संस्कृत-व्याकरण के रचयिता हैं, उनके नाम पर दंडी जी विद्यार्थियों से जूते लगवाया करते थे और जब तक उनका सम्मान विद्यार्थियों के हृदय से दूर नहीं होता था तब तक अष्टाध्यायी का आरम्भ नहीं कराते थे । यह बात उनकी जगत् प्रसिद्ध थी और विशेष रूप से समस्त विद्वानों को विदित थी । स्वामी दयानन्द ने भी इस आज्ञा का पालन किया, तब दंडी जी ने विद्या आरम्भ कराई । समस्त नगर में उगाही करवा कर उनके वास्ते महाभाष्य की पुस्तक मंगवायी गई जिस पर ३१ रुपए व्यय हुआ था ।

अध्ययन काल में अग्नि परीक्षा के अवसर, एकनिष्ठ गुरुभक्ति, ब्रह्मचर्य का कड़ाई से पालन—दयानन्द जी के मथुरा में आने के कुछ मास पश्चात् अकाल पड़ा, जो छः सात मास तक रहा । समस्त नगरनिवासियों के लिये साधारणतया और विद्यार्थियों के लिये विशेषतया अत्यन्त कठिनाई हुई । यह समस्त कष्टों का सामना करते और कठिनाइयों को सहते हुए धैर्यपूर्वक विद्याप्राप्ति में लगे रहे । दुर्गा खत्री, जो डाका वाले के नाम से विख्यात था-उसके यहां कभी सूखे चने और कभी चने की रोटी खाकर निर्वाह करते रहे ।

दुर्भिक्ष के अन्त में मथुरा के प्रख्यात रईस बाबा अमरलाल जोशी से जो जाति के औदीच्य ब्राह्मण थे, एक दिन इनकी भेंट हो गई । वह इनसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुए । तबसे उनके यहां भोजन करने लगे और जब तक मथुरा में रहे, उन्हीं के यहां भोजन पाते रहे । उनके यहां प्रतिदिन सौ सवा सौ ब्राह्मणों को भोजन मिलता था । लाला गोरधन सर्राफ वैश्य उनको चार आने मासिक तैल के लिये देता था, जिससे वह रात को पढ़ने के लिये दीपक जलाते और अपनी सन्था (अपना पाठ) स्मरण करते रहे, और हरदेव पत्थर वाला लगभग २ रु० मासिक दूध के लिये देता था । आर्यावर्त के समस्त नगरों मे मथुरा जैसा शुद्ध दूध कहीं नहीं मिलता । अभी तक वहां दूध में पानी कदापि नहीं मिलाया जाता और विशुद्ध प्राप्त होता है । यही कारण है कि मथुरा के पेड़े सारे भारत में अनुपम हैं ।

(दयानन्द जी) स्वामी विरजानन्द जी के स्नान के लिये १५ या २० घड़े जल यमुना से प्रतिदिन लाते थे तथा बड़े पुरुषार्थी, फुर्तीले और उद्यमी थे । मन्दिर की बैठक पर प्रतिदिन व्यायाम करते और कई मील तक भ्रमण करने जाया करते थे । दंडी जी के पीने के लिये अत्यन्त श्रेष्ठ शुद्ध जल यमुना के बीच में से जाकर लाया करते थे ।

जब तक यहां रहे कभी किसी प्रकार का परिहास नहीं किया और न इस प्रकार की बातें सुनना उनको भाता था । यदि कोई मनुष्य कभी इस प्रकार की कोई बात करता तो यह उसको दुत्कार दिया करते थे, कारण कि इस विषय की बातों से उन्हें हार्दिक घृणा थी । स्वामी दयानन्द कभी-कभी मथुरा में अभ्रक फूंकते और पारे की गोली भी बांधा करते थे । ब्रह्मचर्य का छात्रों को उपदेश करते और स्वयं भी पूरे यति (संयमी पुरुष) थे । कई बार छात्रावस्था में ड्योढ़ी से निकाले गये और कई बार फिर आये । उन्हीं दिनों वृन्दावन में रंगाचार्य्य से स्वामी विरजानन्द जी का शास्त्रार्थ हुआ, दयानन्द जी भी साथ गये थे । वार्तालाप के समय वहां रंगाचार्य का एक शिष्य संस्कृत में बोलने लगा । दयानन्द जी ने उसकी बोली हुई पंक्ति का संस्कृत में खंडन किया परन्तु दंडी जी ने रोक दिया कि तुम मत बोलो, चाहे वह कुछ कहे । एक दिन विरजानन्द जी ने

उनको लाठी से मारा[६] जिससे दंडी जी का हाथ दर्द करने लगा, तब दयानन्द जी ने कहा कि महाराज ! आप मुझे न मारा करें क्योंकि मेरा शरीर वज्र के समान कठोर है, उस पर प्रहार करने से आपके कोमल हाथों को दु:ख होगा । उस चोट का चिह्न स्वामी जी के हाथ पर अन्तकाल तक रहा जिसे देख कर प्राय: महाराज दंडी जी का स्मरण किया करते थे और उनकी विद्या और उपकार का हृदय से धन्यवाद करते थे और कहते थे कि ऐसे-ऐसे कष्ट उठा कर हमने संस्कृत विद्या को ग्रहण किया है ।

फिर एक बार संथा[७] लेते समय पढ़ाते हुए क्रुद्ध होकर दयानन्द जी को गालियां दीं और एक सोटा मारा । नयनसुख जड़िया ने दंडी जी से कहा कि यह कोई हमारी भांति गृहस्थी नहीं हैं, साधु संन्यासी हैं । इनको न तो गाली देनी चाहिये और न मारना चाहिये । विरजानन्द जी ने कहा कि अच्छा हम भविष्य में प्रतिष्ठापूर्वक पढ़ायेंगे । जब पाठ समाप्त करके दयानन्द जी उस शाला से बाहर आये तो नयनसुख जी पर क्रुद्ध हुए कि तुमने मेरा इस प्रकार पक्ष क्यों लिया, दंडी जी तो सुधारने के लिये मारते हैं, शत्रुता अथवा हठ से नहीं-जैसे कुम्हार ताड़-ताड़ कर घट को बनाता है । यह तो उनकी कृपा है, आपने बहुत बुरा किया जो उनको ऐसा करने से रोका ।

योगाभ्यास, शास्त्रचर्चा, उपदेश—स्वामी जी यहां विश्रान्त घाट पर लक्ष्मीनारायण के मन्दिर में रहते थे । अवकाश के समय योगाभ्यास भी किया करते थे और सहपाठियों के साथ व्याकरण सम्बन्धी विचार भी । उन्हीं दिनों ब्राह्मणों को सन्ध्या, उपासना और अग्निहोत्र का उपदेश देते और थोड़ा-थोड़ा सम्प्रदायों का खंडन भी किया करते थे । पंडित जुगल-किशोर जी कहते हैं कि एक दिन विद्यार्थी-अवस्था में हम से स्पष्ट कह दिया कि मूर्तिपूजा, कंठी, तिलक, छाप आदि सब निषिद्ध हैं परन्तु उस समय खंडन-मंडन खुले रूप में नहीं करते थे । उनके कारण मन्दिर में बहुत विद्यार्थी जाया करते थे और रात के ११-१२ बजे तक विद्या पढ़ते रहते थे । स्वामी जी सायंकाल को मन्दिर में बैठकर संस्कृत बोलते और पंडितों से विभिन्न विषयों पर शास्त्रार्थ किया करते थे ।

जब उन के यहां से चले जाने और विद्यासमाप्ति के पन्द्रह बीस दिन रह गये तो एक दिन विरजानन्द जी ने कहा कि दयानन्द ! ऊपर जहां बैठते हैं झाड़ू दे देना । दयानन्द जी ने बुहारी देकर कूड़ा एक स्थान पर इकट्ठा कर दिया । टहलने के समय दंडी स्वामी जी का पांव उस कूड़े में पड़ गया जिस पर क्रुद्ध होकर गालियां दीं कि तूने हमारी आज्ञा नहीं मानी और साथ ही मकान से निकल जाने का आदेश दिया अर्थात् अपने शब्दों में 'ड्योढ़ी बन्द कर दी' । इस पर स्वामी दयानन्द परम दु:खित हुए । पहले नन्दन चौबे से, फिर नयनसुख से सिफारिश कराई । इन दोनों से स्वामी दयानन्द ने यह भी कह दिया कि यद्यपि वह हृदय से क्रुद्ध नहीं होते परन्तु अब मेरी विद्यासमाप्ति के दिन शीघ्र ही पूरे होने वाले हैं, महाराज को ऐसे समय पर किसी प्रकार भी दु:खी करना योग्य नहीं । इसलिए उन दोनों की सिफारिश से दंडी जी का क्रोध-शांत हो गया । दयानन्द जी ने उनके चरणों को स्पर्श किया और क्षमा मांगी । वहां क्या देर थी, क्रोध निवृत्त हो गया ।

आदर्श गुरु-शिष्य और आदर्श गुरु-दक्षिणा

गुरु-दक्षिणा के रूप में 'देश के लिये जीवन अर्पित कर दो' गुरु विरजानन्द जी की निराली मांग : शिष्य द्वारा विनयपूर्वक स्वीकृति—इस घटना के थोड़े दिन पश्चात् विद्या समाप्त की और आधा सेर लौंग जो दंडी जी को अत्यंत प्रिय थे उनको भेंट किये और जाने की आज्ञा मांगी । विरजानन्द जी मनुष्य के बड़े पारखी थे । तीन वर्ष के समय में उन्होंने दयानन्द जी को व्याकरण के अष्टाध्यायी और महाभाष्य और वेदान्तसूत्र और इनसे अतिरिक्त भी जो कुछ विद्याकोष उनके पास था सब उन्हें सौंप दिया था और ऋषिकृत ग्रन्थों से उन्होंने जो बातें निश्चित की हुई थीं वे सभी उनके मस्तिष्क में डाल

दीं । उनका विचार था कि हमारे शिष्यों में से हमारे काम को यदि कुछ करेगा तो दयानन्द ही करेगा । उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर विद्यासमाप्ति की सफलता की गुरुदक्षिणा मांगी । दयानन्द ने निवेदन किया कि जो आपकी आज्ञा हो मैं उपस्थित हूं । तब दंडी जी ने कहा कि (१) देश का उपकार करो, (२) सत्य शास्त्रों का उद्धार करो (३) मतमतान्तरों की अविद्या को मिटाओ और (४) वैदिक धर्म का प्रचार करो । स्वामी जी ने अत्यधिक क्षमा प्रार्थना करते हुए और बहुत विनय पूर्वक इसको स्वीकार किया और वहां से विदा हो गये । गुरु जी ने आशीर्वाद दिया और चलते हुए एक अमूल्य बात और भी कह दी कि **मनुष्यकृत ग्रन्थों में परमेश्वर और ऋषियों की निन्दा है और ऋषिकृत में नहीं; इस कसौटी को हाथ से न छोड़ना।**

मथुरा के विद्वानों की सर्वसम्मत राय : स्वामी दयानन्द झूठ कभी नहीं बोलते थे—मथुरा के समस्त विद्वान् पंडित इस विषय में सहमत हैं कि दंडी जी और स्वामी दयानन्द झूठ कभी न बोलते थे । सच्चे मनुष्यों के मित्र और सत्यप्रिय थे, झूठे मनुष्यों को पास तक न फटकने देते थे ।

स्वामी जी ने स्वयं भी शिक्षा प्रणाली के विषय में इस प्रकार वर्णन किया है—

"अर्थात् जो बुद्धिमान, पुरुषार्थी, निष्कपटी, विद्यावृद्धि के चाहने वाले नित्य पढ़ें-पढ़ावें तो डेढ़ वर्ष में अष्टाध्यायी और डेढ़ वर्ष में महाभाष्य पढ़ के तीन वर्ष में पूर्ण वैयाकरण होकर वैदिक और लौकिक शब्दों का व्याकरण से बोध कर पुनः अन्य शास्त्रों को शीघ्र सहज में पढ़-पढ़ा सकते हैं । किन्तु जैसा बड़ा परिश्रम व्याकरण में होता है वैसा श्रम अन्य शास्त्रों में करना नहीं पड़ता और जितना बोध इनके पढ़ने से तीन वर्षों में होता है उतना बोध कुग्रन्थ अर्थात् सारस्वत, चन्द्रिका, कौमुदी, मनोरमा आदि के पढ़ने से पचास वर्षों में भी नहीं हो सकता । क्योंकि जो महाशय ऋषियों ने सहजता से महान् विषय अपने ग्रन्थों में प्रकाशित किया है वैसा इन क्षुद्राशय मनुष्यों के कल्पित ग्रन्थों में क्योंकर हो सकता है । महर्षि लोगों का आशय जहां तक हो सके वहां तक सुगम और जिसके ग्रहण में समय थोड़ा लगे इस प्रकार का होता है और क्षुद्राशय लोगों की मनसा ऐसी होती है कि जहां तक बने वहां तक कठिन रचना करनी जिसको बड़े-बड़े परिश्रम से पढ़ के अल्प लाभ उठा सकें जैसे पहाड़ खोदना कौड़ी का लाभ होना । और आर्ष ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना बहुमूल्य मोतियों का पाना ।" (सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ३, पृष्ठ ६८)

स्वामी जी के पास एक गीता और विष्णुसहस्र नाम की पुस्तक थी वह मन्दिर लक्ष्मीनारायण के पुजारी को दे दी । स्वामी जी वैशाख मास के अन्त में संवत् १९२० तदनुसार अप्रैल सन् १८६३ में दो वर्ष ६ मास तक मथुरा में शिक्षा पाने के पश्चात् आगरे की ओर पधार गये । चूंकि गर्मी हो गई थी, इसलिये अपना लिहाफ भी वहां मथुरा के मन्दिर में छोड़ गये । मन्दिर लक्ष्मीनारायण का दूसरा पुजारी घासीराम स्वामी जी के साथ आगरे गया था ।

नोट—यह दंडी जी और स्वामी जी के सत्संग का फल है कि नैनसुख जो संस्कृत का अक्षर लिखना भी नहीं जानता—अष्टाध्यायी के सूत्र और महाभाष्य की पंक्तियां उसे कंठस्थ हैं । केवल इतना ही नहीं प्रत्युत भागवत के खंडन के कई श्लोक भी उसने कंठ किये हुए हैं । उसका संस्कृत उच्चारण अत्यन्त शुद्ध है जैसा कि कदाचित् विद्वान् पंडितों का भी नहीं होता । वह संध्या करता है और संध्या के अर्थ भी उसको कंठस्थ हैं जिससे लगभग समस्त मथुरा नगर में बीस तीस विद्वानों के अतिरिक्त और कोई परिचित नहीं; वह मथुरा निवासी होते हुए भी मूर्तिपूजा से घृणा करता है । व्यवहार में स्पष्ट, निर्भीक और स्वतन्त्रता प्रिय है ।

आगरा निवास[1]

(वैशाख सं० १९२० से आश्विन सं० १९२१ तक)

आगरा में पहली शिष्य-मंडली : पं० सुन्दरलाल तथा बालमुकुन्द—मथुरा से आगरा पहुंचकर स्वामी जी यमुना के किनारे भैरव के मन्दिर के समीप ला० गल्लामल, पुत्र रूपचन्द्र अग्रवाल के बगीचे में रहे। दस बारह दिन के पश्चात् घासीराम लौट गया और नौ-दस मास पश्चात् फिर एक बार दर्शन के लिए आया। सत्यधर्म की ओर उसका ध्यान बहुत अधिक हो गया और मूर्तिपूजा से हार्दिक घृणा करने लगा था। कार्तिक संवत् १९२४ में इस घासीराम की मृत्यु हो गयी। यदि वह जीवित रहता तो उससे बहुत वृत्तांत प्राप्त होता। इन दिनों उच्च न्यायालय (हाईकोर्ट) भी आगरा में था। एक अनपढ़ साधु उस बगीचे में ठहरे हुए थे। उसने जाकर पंडित सुन्दर लाल जी; विद्याराम तथा बालमुकन्द-तीनों सज्जनों को स्वामी जी के आने की सूचना दी। ये तीनों सज्जन आगरा निवासी परस्पर मित्र, सनाढ्य ब्राह्मण और पोस्टमास्टर जनरल के दफ्तर में नौकरी करते थे। इन तीनों ने जाकर स्वामी जी के दर्शन किये और फिर उसी प्रकार नित्य जाने लगे और धर्मसम्बन्धी वार्तालाप करते रहे।

स्वामी कैलाशपर्वत जी द्वारा स्वामी जी के पाण्डित्य की सराहना—इन्हीं दिनों की बात है कि कैलाश पर्वत स्वामी जो कि राजसी ठाठ-बाट से रहते और जिनकी हुंडी भी चलती है, उसी बगीचे में आकर उतरे। उनकी राजसी ख्याति के कारण बहुत लोग उनसे मिलने को गये। वहां गीता के एक श्लोक तथा वेदान्त विषय पर कुछ वाद हुआ। सम्भवत: वह श्लोक 'सर्वधर्मान् परित्यज्य' आदि था। स्वामी दयानन्द उन दिनों मथुरा से नये आये थे, उनको कोई न जानता था, वे समीप के एक शिवालय में बैठे हुए थे। जब कैलाश पर्वत जी उस श्लोक के अर्थ से श्रोताओं को सन्तुष्ट न कर सके तब रूपलाल के पुत्र ने स्वामी जी को सम्बोधित कर कहा कि आप कुछ कह सकते हैं। तब स्वामी जी ने कहना प्रारम्भ किया; जिस पर सब सुनने वाले उनकी ओर आकृष्ट हो गये। सम्भवत: उस समय वहां पच्चीस-तीस मनुष्य थे। स्वामी जी के अर्थ से उन सबको सन्तोष हो गया। उस समय कैलाश पर्वत जी ने कहा कि स्वामी जी की विद्या बहुत अच्छी है, यदि तुम में से किसी को कुछ पढ़ना हो तो वह यही एक सशरीर (व्यक्ति) है जो कुछ पढ़ा सकते हैं। उस समय से पढ़ने और धर्मचर्चा में रुचि रखने वाले उनके पास आने लगे। कैलाश पर्वत जी दस दिन रहकर भरतपुर चले गये। कैलाश पर्वत जी ने स्वयं भी इसको स्वीकार किया कि स्वामी जी उस समय साधारण साधुओं की भांति रहते थे और कृष्ण-भागवत का खण्डन किया करते थे परन्तु महाभारत विचारा करते थे। अगले रविवार को पंडित सुन्दरलाल आदि चार उपस्थित व्यक्तियों ने स्वामी जी से प्रश्न किया कि आपने जो इतनी विद्या पढ़ी है उससे आप क्या करेंगे और किसलिए आपने इतना परिश्रम उठाया क्योंकि यह भाषा तो अब मृतभाषा (Dead Language) के तुल्य होती जाती है। न सरकारी दफ्तरों में और न कहीं देश में इसकी पूछ है; इसका चलन छूटता जा रहा है। स्वामी जी ने उत्तर में कहा कि हम इससे अपना परलोक सुधारेंगे और यदि किसी की इच्छा हो तो उसकी भी सहायता कर सकते हैं। इसी बात पर पंडित सुन्दरलाल जी और बालमुकुन्द जी ने उनसे अष्टाध्यायी पढ़नी प्रारम्भ कर दी। यह सब लोग भाषा और इंगलिश जानते थे परन्तु अच्छी संस्कृत इनमें से केवल पं० बालमुकुन्द जी जानते थे। नौ दस बजे रात तक पढ़ाया करते थे।

1.यह वृत्तांत पंडित बालमुकुन्द जी पैन्शनर प्रयाग निवासी, पंडित दयाराम जी कचहरी घाट आगरा निवासी, पंडित ज्वालादत्त भार्गव आगरा निवासी, पंडित गोपालचन्द पिचौड़ी सनाढ्य आगरा निवासी, सैकंड क्लर्क सुपरिण्टडैण्ट इन्जीनियर आफिस मेरठ तथा स्वामी कैलाश पर्वत जी काशी निवासी से सुना।

मनुष्यकृत प्रतीत होते ही पंचदशी बांचना बन्द कर दिया—इसी प्रकार कुछ समय व्यतीत होने पर लोग एकत्रित होने लगे । उनमें से एक-दो वेदान्ती थे । उन्होंने इच्छा प्रकट की कि आप घंटे दो घंटे तक यदि कुछ अपने मुखारविन्द से कहा करें तो समय अच्छा व्यतीत होगा । स्वामी जी ने कहा जैसी इच्छा । इस पर उन लोगों ने सम्मति करके यह बात कही कि 'पंचदशी' वेदान्त का ग्रन्थ है, प्राय: संन्यासियों का उसी में पठन-पाठन रहता है । उसमें ही से यदि आप कुछ कहा करें तो सब लोग सुनने के जिज्ञासु हैं । इसलिए अगले दिन 'पंचदशी' की पुस्तक मंगाई गई और स्वामी जी ने उसका पाठ आरम्भ करने से पूर्व यह बात उनसे कह दी कि मैं ऋषिकृत ग्रन्थ बांचता और मानता हूं । जो ग्रन्थ मनुष्यकृत होगा मैं नहीं बांचूंगा । लोगों ने कहा कि महाराज ! यह तो मनुष्यकृत नहीं दीखता । शंकर स्वामी के शिष्य विद्यारण्य स्वामी का बनाया हुआ है और वे बड़े महात्मा थे । स्वामी जी ने कहा कि अच्छा, और कथा का आरम्भ किया । जहां बैठे हुए थे वहां से ही साधारण रीति से सुनाने लगे । लोगों ने एक चौकी आगे रख दी और उस पर उनको बिठलाया । स्वामी जी ने प्रथम थोड़ा सा बांचा और उसका अर्थ किया । पढ़ते-पढ़ते उसमें एक स्थल ऐसा निकला कि कभी-कभी ईश्वर को भी भ्रम हो जाता है । स्वामी जी ने उस पर स्वयं ही आक्षेप किया कि यह कैसी बात है ! जिसको भ्रम हुआ वह ईश्वर कहां रहा ? ईश्वर को कभी भ्रम हुआ ही नहीं । इससे सिद्ध हुआ कि यह ग्रन्थ मनुष्यकृत है । यह कहकर पुस्तक के पन्ने हाथ से रख दिये । 'हरि ओम् तत्सत्'[९] कहकर कि अब मैं इसको नहीं बाचूंगा, गुरु की आज्ञा नहीं । लोगों ने बहुत हठ किया परन्तु उन्होंने किसी का कहना न माना और न वह पुस्तक हाथ में ली ।

परन्तु क्वार के महीने से गीता की कथा आरम्भ की । रात के समय दो घंटे यह कथा किया करते थे और देवी भागवत[१०] से भी अच्छे-अच्छे उपदेश सुनाया करते थे । यह कथा दीपावली पश्चात् एक मास तक होती रही ।

नेति, धोती और न्यौली क्रिया की स्वास्थ्य के लिए शिक्षा—अष्टाध्यायी के दोनों विद्यार्थी कभी-कभी वहां ही रह जाते थे । रह जाने का कारण यह था कि सुन्दरलाल जी को उन दिनों मस्तिष्क का रोग था अर्थात् सुगन्ध-दुर्गन्ध नहीं आती थी । स्वामी जी ने उसको नेति, धोति और न्यौली कर्म सिखाये और जब वे स्नान कर चुकते थो तो यह घर चले आते थे जिससे वह फिर स्वस्थ हो गये । इनके अतिरिक्त मुंशी ब्रजलाल, मुंशी श्रीकृष्ण और मुंशी हरप्रसाद जो नवाब के नाम से विख्यात थे, इन माथुर कायस्थों आदि ने स्वामी जी से योग का विषय सीखा और पूछा । स्वामी जी ने उनको वस्ति और नेति ये योग की दो क्रियाएं बतलाई थीं । न्यौली कर्म उनसे नहीं हो सका । ध्यान करना भी बतलाया था और कुछ सूत्र पातंजल योग के बतलाये थे ।

न्यौली क्रिया से उदरविकार की निवृत्ति, स्वास्थ्य के लिये योग क्रियाओं का प्रयोग—एक दिन वहां स्वामी जी के पांव पर कुछ फुंसियां निकलीं जिनको वह अपनी बोली में परकी कहते थे । कहने लगे कि अब उदर में विकार हो गया, चलो न्यौली क्रिया करें । तीन चार मनुष्यों को साथ लेकर राजघाट यमुनातट पर जाकर जल में बैठ मूलद्वार से तीन बार जल चढ़ाया और निकाल दिया । प्रथम बार दुर्गन्धि सहित, और दूसरी बार पीला और तीसरी बार केवल श्वेत जल निकला और उदर पूर्णतया शुद्ध हो गया । जल चढ़ाने के पश्चात् नाभि-चक्र को घुमाते थे और नदी से बाहर निकल कर जल फेंक देते थे । अन्त में जब देखा कि मैल नहीं रही तब स्नान करके घर को चल दिये । उस दिन बहुत दुर्बल हो गये थे क्योंकि यह क्रिया विरेचन के तुल्य है । घर पर आकर दाल-भात खाया । कहते थे कि यह क्रिया हमने एक कनफटे जोगी से विन्ध्याचल पर नर्मदा के तट पर बड़े परिश्रम से बहुत काल तक उसके पास रहकर सीखी थी ।

प्रथम रचना, 'सन्ध्या-पुस्तक' का वितरण—उन्हीं दिनों स्वामी जी के उपदेश से एक संध्या पुस्तक[११] जिसके अन्त में लक्ष्मीसूक्त[१२] था छपवाई गई और एक आने में बेची गई । समस्त नगर के लोगों ने बिना किसी पक्षपात के उन

पुस्तकों को मोल लिया। कुछ पंडितों ने इतना आक्षेप किया कि इसमें विनियोग नहीं रखे गये परन्तु सब ने ली और बाल-बच्चों को पढ़ाई। छपाई आदि का रुपया रूपलाल ने दिया था। तीस हजार के लगभग इसकी कापी छपी थीं और डेढ़ हजार रुपया व्यय हुआ था। यह तीनों वर्ण के लिए एक ही संध्या थी।

मूर्तिपूजा का निरन्तर खण्डन, मूर्तिपूजा को निषिद्ध स्वीकार करने वाले आगरा के दो प्रसिद्ध विद्वान्—स्वामी जी इन दिनों निरन्तर मूर्तिपूजा का खंडन किया करते थे। परिणाम यह हुआ कि पंडित चेतोलाल और कालिदास-आगरा के दो परम विख्यात पंडित इस बारे में उनसे सहमत हो गये कि वास्तव में मूर्तिपूजा निषिद्ध है परन्तु यह कहने लगे कि हम लोगों को यह नहीं कह सकते क्योंकि हम गृहस्थी हैं और आप स्वतन्त्र। पंडित सुन्दरलाल जी उनके आने से पूर्व महादेव की पूजा करते थे, उनसे छुड़वा दी। पंडित दयाराम ने भी हृदय से तो छोड़ दी परन्तु बिरादरी के भय के मारे अपनी दुर्बलता के कारण प्रकट रूप में पूजा न छोड़ सके। उसी समय आगरा में एक अनपढ़ ब्राह्मण आ गया जो योग के चौंसठ आसन लगाना जानता था। चाल-चलन उसका अच्छा था और जितेन्द्रिय भी था। स्वामी जी ने उसको धोती धोने के लिए अपने पास रख लिया। जब कभी स्वामी जी मौज में आते तो उससे कौतूहल के रूप में आसन लगवाया करते थे।

आगरा का रहन-सहन, दैनिक कार्यक्रम, समाधि तथा योग शिक्षा—स्वामी जी इस बार आगरा में लगभग दो वर्ष तक रहे। उस समय उनके साथ एक ब्रह्मचारी जिसका नाम ज्ञात नहीं-रसोई बनाने वाला था। कहे कहाये वस्त्र पहनते, लोई और घुस्सा ओढ़ते, अचरा बांधते और जूता पहनते थे परन्तु सिला हुआ रजाई के अतिरिक्त कोई कपड़ा नहीं पहनते थे। महाभाष्य और कुछ अन्य पुस्तकें साथ थीं। सायंकाल और प्रातःकाल प्रतिदिन समाधि लगाते थे। जब आगरा से जाने लगे तो समस्त विद्यार्थियों से जो योग सीखते थे, योग की क्रिया छुड़वा दी और कहा कि तुम गृहस्थी हो तुम्हारा भोजन अच्छा नहीं और पथ्य भी नहीं कर सकते। ऐसा न हो कि हमारे चले जाने के पश्चात् तुमको कोई रोग उत्पन्न हो जावे।

वेदों की खोज में धौलपुर की ओर प्रस्थान—एक दिन स्वामी जी ने पंडित सुन्दरलाल जी से कहा कि कहीं से वेद की पुस्तक लानी चाहिए। सुन्दर लाल जी बड़ी-खोज करने के पश्चात् पंडित चेतोलाल जी और कालिदास जी से कुछ पत्रे वेद के लाये। स्वामी जी ने उन पत्रों को देखकर कहा कि यह थोड़े हैं, इनसे कुछ काम न निकलेगा। हम बाहर जाकर कहीं से मांग लावेंगे। आगरा में ठहरने की अवस्था में स्वामी जी समय समय पर पत्र द्वारा अथवा स्वयं मिलकर विरजानन्द जी से अपने सन्देह निवृत्त कर लिया करते थे।

अभ्रक भस्म उनके पास थी। कहते थे कि जब उस कनफटे योगी के पास हम रहे और जल में प्रायः बैठते थे तो हमारे शिर पर शीत का प्रभाव हो गया था इसलिए हम कभी कभी अभ्रक भस्म खाया करते हैं। पण्डित सुन्दरलाल जी को बतला दिया था।[1]

धौलपुर में १५ दिन रहकर लश्कर की ओर—स्वामी जी कार्तिक बदि संवत् १९२१ तदनुसार १८६४ ईस्वी को आगरा से वेद की पुस्तक की खोज में धौलपुर पधारे और वहां १५ दिन तक निवास किया फिर ग्वालियर चले गये।

1.मूल उर्दू में धौलपुर पधारने की तिथि कार्तिक बदि संवत् १९२१ तदनुसार १८६५ ई० है। उधर लश्कर में भागवत-सप्ताह का मुहूर्त माघ शुदि ९ शनिवार तदनुसार ४ फरवरी सन् १८६५ लिखा है। इसलिए धौलपुर पधारने का सन् १८६४ ही होना चाहिए और कार्तिक शुदि ३ संवत् १९२१ को भी २ दिसम्बर १८६४ लिखा है—वह भी २ नवम्बर होना चाहिए। (सम्पा०)

लश्कर-ग्वालियर के समाचार

(२४ जनवरी सन् १८६५ से ७ मई १८६५ तक)

महाराजा ग्वालियर की ओर से भागवत सप्ताह की तैयारी—पण्डित गंगाप्रसाद शुक्ल तथा जमनाप्रसाद शुक्ल, ग्वालियर निवासी ने वर्णन किया कि तारीख २ नवम्बर, सन् १८६४ तदनुसार कार्तिक शुदि तीज, संवत् १९२१ शुक्रवार को श्रीमान् महाराजा जियाजी राव सिन्धिया आलीजाह बहादुर के दरबार में (देवकी झांकी ?) सर्व सरदार मंडली और गोविन्द बाबा और नाना ज्योतिषी को बुलाया गया। श्रीमद्भागवत सप्ताह का मुहूर्त पूछा गया। बुद्धिमान् और माननीय और योग्य ज्योतिषियों ने मीनमेख विचार और अश्विनी-भरणी की गणना करके माघ शुदि नवमी, शनिवार (२५ माघ संक्रान्त) तदनुसार ४ फरवरी, सन् १८६५ का मुहूर्त निकाला कि इस शुभ दिवस में कथा का आरम्भ किया जाय। इस शुभ मुहूर्त की सभी देश देशान्तरों में तार द्वारा योग्य पण्डितों की सूचना दी गई। लश्कर से कुछ रईस भी भेजे गये। काशी, पूना, सितारा,[१३] अहमदाबाद, हैदराबाद, नासिक आदि से ऐसे पंडित बुलाये गये कि खड़े होकर हरिकथा कहें। दूर दूर से लोग आने प्रारम्भ हो गये और इधर महाराजा साहब की ओर से बड़ी धूमधाम से तैयारियां होने लगीं। अतिथिसत्कार करने में कोई कमी शेष नहीं छोड़ी गई। आये लोगों का स्वागत बड़े मान-सम्मान से आदर सत्कार पूर्वक होने लगा। चार सौ भागवती-पंडित चुने गये फिर उनमें से भी ३७२ स्थित बने रहे। तीन स्थानों की तैयारी की आज्ञा हुई। पहला मण्डप श्रीकृष्ण जी की झांकी का बड़ी तैयारी के साथ सुसज्जित किया गया। ये तीनों मंडप वास्तव में दर्शनीय बने थे। बाहर से प्रसिद्ध कथावाचक आये, उनको लिवा लाने के लिए रथ और पहरे गये थे। महाराजा जियाजी राव ने स्वयं उन का स्वागत किया और उनको रथ में बिठाकर लाये। मिती २४ जनवरी, सन् १८६५, मंगलवार, तदनुसार माघ बदि द्वादशी को महाराजा ने २५ अशर्फी अभय महाराज को रामनवमी की भिक्षा में दीं। उसी दिन गोविन्द बाबा काशी वाले को पालकी, सोने की छड़ी, चंवरी, छतरी व बग्घी दान कीं।

भागवत कथा के अनिष्ट फल

स्वामी जी आबू पर्वत[१४] से ग्वालियर पधारे, धाराप्रवाह संस्कृत में सम्भाषण और भागवत का खण्डन और भागवत की कथा से अमंगल की भविष्यवाणी—और उसी दिन अर्थात् २४ जनवरी सन् १८६५ को श्रीमान् स्वामी दयानन्द महाराज ने, आबू पर्वत से आगमन किया,[1] चार विद्यार्थी साथ थे। आप रामकुई पर विराजमान हुए और बापू आपाड़ जरनैल के गंगा मन्दिर में ठहरे।[१५] इनके पधारने की सूचना लश्कर में पहुंच गई। बहुत लोग और विशेषतया पंडित लोग उनके दर्शनों के निमित्त आने लगे। जो पंडित लोग आते सब आपका सिंहनादवत् धाराप्रवाह संस्कृत भाषण सुनकर चुप हो जाते थे। हम दोनों भाई भी दर्शन को जाया करते थे। जब स्वामी जी ने सुना कि यहां कथा, बड़ी तैयारी के साथ होने वाली है तब आप भागवत का खंडन करने लगे।

---

1. धौलपुर में १५ दिन रहकर स्वामी जी ग्वालियर को चल पड़े। परन्तु आगे लिखा है कि २४ जनवरी, सन् १८६५ को स्वामी जी आबू पर्वत से ग्वालियर पधारे। स्पष्ट है कि स्वामी जी धौलपुर में १५ दिन रहकर लगभग २० अक्तूबर को वहां से चले और ग्वालियर होते हुए किसी मार्ग से आबू पर्वत चले गये। वहां से वे अर्थात् धौलपुर से चलने के बाद लगभग ८५ दिन पश्चात् २४ जनवरी सन् १८६५ को लश्कर पहुंचे। उसी दिन ग्वालियर के महाराजा ने अभय महाराज तथा गोविन्द बाबा को दान दिया था। इस प्रकार धौलपुर से चलकर लगभग २ महीने और २३ दिन पश्चात् ग्वालियर में पहुंचे। इस बीच में वे सम्भवतः अपने योगविद्या सिखाने वाले गुरुओं से भेंट करने आबू पर्वत गये होंगे। इसीलिए यहां आबू पर्वत से पधारना उचित प्रतीत होता है। [सम्पा०]

स्वामी जी ने गंगाप्रसाद दफेदार को बुलाया कि सीताराम शास्त्री के पास जाओ और शिवप्रताप वैश्य को साथ ले जाओ । बड़े-बड़े षट्शास्त्रियों को बुला लाओ, हम उनके दर्शन करना चाहते हैं और इसी ध्येय से आये हैं कि कुछ उनसे विचार करेंगे । यदि वे यहां न आवें तो हमको बुला लें, हम आवेंगे । दफेदार गंगाप्रसाद, सीताराम शास्त्री और शिवप्रताप के साथ बापू शास्त्री चौधरी के पास गये और (स्वामी जी द्वारा किये गये) श्री मद्भागवत के खंडन का वर्णन किया और (बताया कि) कहते हैं कि बड़ा विघ्न लश्कर में होगा । सीताराम शास्त्री बापू शास्त्री के साथ गाड़ी में बैठकर महाराज के पास गये और निवेदन किया कि एक स्वामी महाविद्वान्, पूर्ण ब्रह्मचर्य धारण किये हुए भागवत का खंडन करते हैं और ऐसा कहते हैं कि लश्कर में बड़ा विघ्न होने वाला है । महाराज ने विष्णुदीक्षित पंडित को भेजा । वह रामकुई पर स्वामी जी को प्रणाम करके जा बैठे और कहा कि महाराज ! आपका आगमन सुनकर महाराजा ने भेजा है और श्रीमद्भागवत सप्ताह का माहात्म्य पूछा है । स्वामी जी हंसने लगे और कहा कि दुःख उठाने और क्लेश के अतिरिक्त कोई फल नहीं है—चाहो तो करके देख लो । विष्णुदीक्षित सुनकर चुप हो गये और प्रणाम करके चल पड़े और जाकर शिविर में महाराजा से और गोविन्द बाबा से सब वृत्तांत कह दिया । महाराजा हंसने लगे और बोले कि आप बड़े समर्थ हैं जो चाहें सो कहें । हम सब प्रबन्ध कर चुके, बड़ी-बड़ी दूर से बड़े-बड़े विद्वान् पंडित आ गये-अब कैसे हो सकता है कि न करें । गोविन्द बाबा ने महाराजा से कहा कि ऐसे समय ऐसे महात्मा का आना हुआ है । उन्हें यज्ञ में बुलाना चाहिए ।

भागवत कथा के स्थान पर गायत्री पाठ (पुरश्चरण) कराने का सुझाव—स्वामी जी ने उत्तर में नाथू पंडे के द्वारा कहला भेजा कि गायत्री का पुरश्चरण होना चाहिए । महाराजा ने कहा कि बड़े-बड़े विद्वान् आ गये, कथा की तैयारी हो गई अब कैसे हो सकता है ।

पहले ही दिन की कथा के समय अनिष्ट—मिति ४ फरवरी, सन् १८६५ शनिवार तदनुसार माघ शुदि नवमी, संवत् १९२१ विक्रमी को पांच बजे दिन को कथा बैठी, एक सौ आठ बांचने वाले, एक सौ आठ सुनने वाले, शेष रिसाला पल्टन । तोपखानों में कथा सुनाने और जप करने वाले बिठाये गये, बाजा बजा, तोप की सलामी हुई । १२ बजे दिन के कथा का विसर्जन हुआ, तीन बजे तक खानपान रहा । तीन बजे गोंदा बाबा जी की कथा आरम्भ हुई । समस्त छोटे बड़े जागीरदार और सरदार श्रीमन्महाराजा के साथ बैठे, रात के ९ बजे कथा समाप्त हुई । महाराजा को बड़ी प्रसन्नता हुई परन्तु उसी रात को श्री महारानी जी का पांच महीने का गर्भ गिर गया और स्राव शुरु हो गया, जिसके कारण कथा में आना न हो सका । इससे महाराजा को दुःख हुआ ।

दूसरे दिन भी अनिष्ट—५ फरवरी, १८६५ रविवार तदनुसार माघ शुदि दशमी को रहमतपुर के हरिबाबा की कथा हुई । उसी दिन रावजी शास्त्री के घर में मृत्यु हो गई जिससे वह कथा से उठकर चले गये ।

तीसरे दिन भी दुर्घटना—६ फरवरी, सन् १८६५ सोमवार, माघ शुदि एकादशी को गोविन्द बाबा की कथा हुई । उसी समय ठीक कोठी मंडप के सामने किसी ने सांड (बैल) को तलवार मारी; बड़ा कोलाहल हुआ, मारने वाला भाग गया । महाराजा ने दस रुपये सांड को भोजन देने के लिए देने की आज्ञा दी और जख्म पर टांका लगवाने का आदेश दिया । उस दिन कथा की बड़ी धूम रही-गोविन्द बाबा को दो लाख रुपये दिये गये ।

७ फरवरी, सन् १८६५ मंगलवार, तदनुसार माघ शुदि द्वादशी, संवत् १९२१ को त्र्यम्बक बाबा की कथा हुई; बड़ा आनन्द हुआ, महाराजा उन्हें पांच सहस्र रुपया देते थे परन्तु उन्होंने न लिये ।

८ फरवरी, सन् १८६५ बुधवार, माघ शुदि १३ को धौली बाबा की कथा हुई । महाराज परम प्रसन्न हुए । दो बजे रात तक होती रही ।

९ फरवरी, सन् १८६५ गुरुवार को बुधकर बाबा की कथा हुई-बड़ी प्रसन्नता रही ।

१० फरवरी, सन् १८६५ शुक्रवार पूर्णमासी के दिन कथा अभय महाराज की हुई जो बहुत मन लुभाने वाली थी । महाराजा ने प्रसन्न होकर तामझाम बैठने को और पांच हजार रुपया दक्षिणा और दस रुपये प्रतिदिन भोजन को कर दिये ।

११ फरवरी, शनिवार तदनुसार बदि प्रथमा सबको विदा करने का दिन था । प्रथम सबको विदा करके हाथियों पर बिठला कर शिविर में शोभा यात्रा निकाली गई । जब सब लौट कर शिविर में आये तो श्रीमन्महाराजा ने अहसानअली हकीम से कहा कि श्रीमान् छोटे महाराजा को लाओ । पण्डित राजनारायण डाक्टर (छोटे महाराजा को) अपने साथ बग्घी में लाये । महाराजा ने छोटे महाराजा को सब ब्राह्मणों के चरणों में डाला और गोविन्द बाबा की गोद में दिया । उस दिन बड़ी प्रसन्नता होती रही, सबने उन्हें आशीर्वाद दिया कि "सौ वर्ष पर्यन्त सुखपूर्वक जीवित रहो ।" आशीर्वाद लेकर छोटे महाराजा बाड़े के पिछाड़ी आये । उनके ऊपर निछावर उतारी गयी । पण्डित लोग बहुत सा धन देकर विदा किये गये ।

कथा के १० दिन पश्चात् नगर में हैजे का प्रकोप—मिति २१ फरवरी, सन् १८६५ मंगलवार तदनुसार, फाल्गुन बदि दशमी, संवत् १९२१ को कोतवाल ने रिपोर्ट की कि नगर में विचित्र प्रकार की गर्मी पड़ती है, लोग बुरी दशा को प्राप्त होते जाते हैं और बहुत से मनुष्य मर रहे हैं ।

२५ मार्च सन् १८६५ शनिवार तदनुसार चैत बदि १३ को कोतवाल ने रिपोर्ट की कि विशूचिका का नगर में बहुत जोर है, बड़ी घबराहट मची हुई है ।

अप्रैल में छोटे महाराजा की हैजे से मृत्यु—वैशाख शुदि ५, सवंत् १९२२ तदनुसार ३० अप्रैल सन् १८६५ रविवार को रात के १२ बजे श्रीमान् छोटे महाराज को विशूचिका हुई—जिससे वह देवलोक को पधारे । इस मृत्यु से श्री महाराजा और समस्त लश्कर वालों को बड़ा दुःख हुआ । इधर लश्कर में मरी पड़ी रही थी-नित्य शवों का उस मार्ग से आना जाना और रामकुई पर स्नानार्थ स्त्री पुरुषों का समूह और रोना पीटना हाय हाय मची देखकर श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज वहां से उठकर बाबा साहब के बाग की बारहदरी में आ विराजमान हुए; उधर श्रीमान् महाराजा के प्रति शोक प्रदर्शन करने को बड़े-बड़े राजा रईस आने लगे ।

शास्त्रार्थ के लिए निरन्तर लिखते रहे, पर कोई नहीं आया—वैशाख शुदि १२, संवत् १९२२ तदनुसार ७ मई, सन् १८६५ रविवार के दिन तक बड़े हर्ष के साथ बाबा साहब के बाग में रहे और उस दिन तक शास्त्रार्थ के लिए विज्ञापन लिखकर भेजते रहे । किसी ने शास्त्रार्थ न किया । इन पंडितों से भेंट करने की आपको बड़ी अभिलाषा रही । राणाचार्य, गोपालाचार्य, धन्वन्ताचार्य सुनकर नासिक चले गये और नाना पौराणिक ढोंड शास्त्री, राव जी शास्त्री-इनको कई बार बुलाया, परन्तु (स्वामी जी के पास) न गये । हम दोनों भाई उनकी सेवा में रहते थे । चलते समय हमें आशीर्वाद दिया और यहां से करौली चले गये । उनके आशीर्वाद तथा ईश्वर की कृपा से उसी वर्ष मुझ गंगाप्रसाद के घर पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम सूरजप्रसाद रखा गया । उनके चले जाने से हम लोगों को उनके वियोग से बड़ा दुःख हुआ ।

करौली में कई मास रहकर जयपुर को प्रस्थान—ग्वालियर से स्वामी जी करौली पधारे और राजा साहब से धर्म विषय पर वार्तालाप होता रहा और पण्डितों से भी कुछ शास्त्रार्थ हुए और यहां पर कई मास ठहर कर वेदों का उन्होंने पुनः अभ्यास किया-फिर वहां से जयपुर चले गये ।

जयपुर नगर में

(लगभग मध्य अक्तूबर, १८६५ से ३ मार्च, १८६६ तक)

गायत्री मन्त्र के जाप का उपदेश—जयपुर में उस समय किसी रईस से उनकी जान पहचान न थी । इसी कारण रामकुमार नन्दराम मोदी के बगीचे में निवास किया था । उस समय उनके साथ तीन ब्राह्मण थे-एक सच्चिदानन्द, दूसरा चेतनराम और तीसरे को ब्रह्मचारी के नाम से पुकारते थे । ये तीनों पढ़े-लिखे थे और केवल स्वामी जी के सत्संग और सेवा के निमित्त ही साथ रहते थे । इनमें से सच्चिदानन्द को स्वामी जी ने ईश्वर की उपासना का मन्त्रोपदेश दिया हुआ था जिससे वह सायंकाल सूर्य के सम्मुख खड़ा होकर उसका जप किया करता था (वह मन्त्र गायत्री था) ।

विद्वान् स्वामी जी की विद्वत्ता से प्रभावित—एक गोपालानन्द परमहंस जो घाट में रहते थे उसने जीव-ब्रह्म के विषय में पत्र द्वारा कुछ प्रश्न किये । उनके उत्तर स्वामी जी ने बड़ी योग्यता के साथ लिखकर भेज दिये । उन प्रश्नों के उत्तर पढ़कर गोपालानन्द ऐसे प्रसन्न हुए कि घाट का निवास त्याग कर स्वामी जी के पास उसी बाग में आ ठहरे और प्रतिदिन प्रश्नोत्तर द्वारा अपने चित्त को स्थिर करने लगे ।

"मैं अपनी सम्मति के अनुकूल ही कहूंगा, तुम्हारे मन्दिर में रहने का मुझे कोई लिहाज नहीं होगा" स्वामी जी की वाग्मिता का लाभ उठाने की इच्छा वाले मन्दिर-पुजारी को स्पष्ट कथन—इसके पश्चात् श्रवणनाथ जी के शिष्य लक्ष्मणनाथ जी (जिनको महाराजा रामसिंह जी जोधपुर से लाये थे)[१६] के साथ स्वामी जी महाराज का ब्रजनन्दनजी के मन्दिर में किसी विषय पर सम्भाषण हुआ । लक्ष्मणनाथ जी ने स्वामी जी को शास्त्रव्युत्पन्न और योग्य समझ कर निवेदन किया कि आप कृपा करके इसी मन्दिर में रहिए और सम्प्रदायी लोगों से शास्त्रार्थ में हमको सहायता दीजिए । स्वामी जी ने उत्तर दिया कि यदि शास्त्रार्थ में मुझको भी मिलाया जाये तो मैं भी अपनी सम्मति के अनुकूल कथन करूंगा—यहां रहने पर कुछ बात (निर्भर) नहीं है । यह कहकर स्वामी जी अपने निवास स्थान को पधार गये ।

व्याकरण के दस या पन्द्रह प्रश्न, पंडित उन पर लिखित शास्त्रार्थ करने के लिए तैयार नहीं हुए—इसके पश्चात् स्वामी जी ने व्याकरण के दस या पन्द्रह प्रश्न लिखकर जयपुर की पाठशाला में पंडितों के पास भेजे । पंडित महाशयों ने उन प्रश्नों के उत्तर में अनेक प्रकार के असभ्य शब्द लिख भेजे । स्वामी जी ने उन पंडितों के लेख में आठ प्रकार के दोष निकाल कर पंडितों के पास पत्र भेजा । उस पत्र को पढ़कर हरिश्चन्द्र आदि सम्पूर्ण पंडितों ने अपने चित्त में अत्यन्त क्षोभ माना और उस पत्र का कुछ भी उत्तर नहीं दिया ।

पंडित शिवदत्त जी दायमा ब्राह्मण[१७] ने, जो संस्कृत में अच्छे योग्य हैं, बताया कि उन प्रश्नों में से केवल दो प्रश्न स्मरण हैं; शेष नहीं ।

१—कल्म च किं भवति ।

२—येन कर्मणा सर्वे धातवः सकर्मकाः, किं तत्कर्म ?

प्रत्युत्तर देना स्वामी जी को तो कुछ कठिन न था परन्तु सब पण्डित एकत्र होकर व्यास बख्शीराम जी के समीप गये कि आप उस पुरुष को महलों में बुलवाकर हमारा शास्त्रार्थ कराइयेगा । तब व्यास जी ने पंडितों के कहने के अनुसार स्वामी जी महाराज को महलों में बुलवाया और सब पंडितों को भी । स्वामी जी महलों में पधार कर राजराजेश्वर[१८] जी के मन्दिर में सुशोभित हुए और सम्पूर्ण राजपंडित भी इकट्ठे हुए । इनमें से एक पंडित ने सब का मुखिया बनकर स्वामी जी महाराज से पूछा कि ये पन्द्रह प्रश्न और उनके उत्तर में यह आठ प्रकार के दोष आप ही ने लिखे हैं ? स्वामी जी ने उत्तर

दिया कि हां यह मेरा ही लेख है । तब उसी प्रमुख पंडित ने उन शब्दों में से "कल्म" शब्द की व्याख्या की । जब वह अपना कथन समाप्त कर चुका तब स्वामी जी ने उसका खंडन करना आरम्भ किया । जब पूर्ण खंडन कर चुके तब पंडित लोग कुछ भी न कह सके । उनसे केवल यही कहते बना कि यदि यह व्याख्या ठीक नहीं, तो आप कथन कीजियेगा । इस पर स्वामी जी ने कहा कि मेरा और आपका सम्पूर्ण कथन लिखा जावे तो उत्तम हो क्योंकि लेख के पश्चात् कोई अस्वीकार नहीं कर सकता । इस पर पंडितों ने बहुत हठ किया कि लिखने की कुछ आवश्यकता नहीं है । अन्त में बहुत विवाद के पश्चात् भी पंडितों ने लिखित शास्त्रार्थ को स्वीकार न किया ।

पंडितों ने कहा कि 'महाभाष्य व्याकरण में नहीं गिना जाता', स्वामी जी के आग्रह पर भी यह वाक्य लिख कर नहीं दिया :—तब स्वामी जी ने अपनी विद्या सम्बन्धी योग्यता को प्रकट करने के लिए बिना लेख के ही कथन करना आरम्भ किया और अत्यन्त दृढ़ता के साथ कथन करके मौन हो गये । इसी कथन को श्रवण करके, एक मैथिल ओझा[११] जो पंडितों में नामी गिना जाता था, बोला कि यह अर्थ कहां पर लिखा है ? स्वामी जी ने कहा कि सम्पूर्ण शब्दों की व्याख्या किसी एक पुस्तक में लिखी हुई नहीं है परन्तु यह मेरा सारा कथन निस्सन्देह महाभाष्य के अनुकूल है । इस पर ओझा जी बोले कि महाभाष्य की व्याकरण में गणना नहीं है । इस पर स्वामी जी ने बड़े शोक के साथ कहा कि क्या महाभाष्य की व्याकरण में गणना नहीं है, आप लोगों का ऐसा ही स्मरण है, परन्तु इतना तो अवश्य लिख दीजिये कि 'महाभाष्य की व्याकरण में गणना नहीं है' और इस पर सभा के हस्ताक्षर करा दीजिये । इतना कहने पर सम्पूर्ण पंडित लज्जित हो गये और उनके उस कथन के उत्तर में कुछ भी न बोले ।

इस समय व्यास जी ने मुन्नालाल जी से कहा कि अब सभा विसर्जन करो, नहीं तो निरुत्तर होना पड़ेगा । इस पर सहमत हो कर मुन्नालाल जी शीघ्र ही बोल उठे कि स्वामी जी महाराज ! अब नगर के द्वार बन्द होने वाले हैं । और आपको बाहर पधारना है; इस कारण आप इस विषय को बन्द कीजिये । स्वामी जी ने कहा कि कुछ चिन्ता की बात नहीं है, केवल इतना ही लिखकर हस्ताक्षर करना है कि 'महाभाष्य की व्याकरण में गणना नहीं है', सभा विसर्जित हो जायेगी; आगे कल को विचार किया जायेगा । इतने में सम्पूर्ण लोग खड़े हो गये । तब स्वामी जी ने भी बड़े शोक के साथ कहा कि खेद है, उस सभा को सभा नहीं कहना चाहिए जो निरुत्तर होने के समय उठ भागे और ऐसे पुरुषों को पंडित कहना योग्य नहीं जो महाभाष्य की व्याकरण में गणना न करें । इतना कहकर स्वामी जी निवासस्थान पधार गये और सभा विसर्जित हो गई ।

जैन यति प्रश्न लेकर मौन रह गये—इस शास्त्रार्थ का समाचार सुनकर ओसवाल वैश्यों के गुरु जती श्री पूज्य जी ने स्वामी जी के पास दूत भेजकर कहलाया कि आप मेरे से कुछ वार्ता-विलास करें तो उत्तम होवे । इस पर स्वामी जी ने उत्तर दिया कि बड़े आनन्द की बात है; जब वे उचित समझें तभी मेरे पास चले आवें । इस पर जती जी ने फिर कहला भेजा कि हमारा आना नहीं हो सकेगा क्योंकि दूसरे के घर पर जाने से हमारे सेवकों में हमारे मान में फर्क आता है । इस कारण समयानुकूल आप से किसी बाग या किसी अन्य स्थान पर मेल हो जावे तो उत्तम है । इस पर स्वामी जी ने कहा कि अच्छा जब मिलाप होगा तभी सही; इतने में कुछ पत्र द्वारा ही वार्ता कीजिये । इस पर पूर्वोक्त पन्द्रह प्रश्न व्याकरण विषय के लिखकर जती जी के पास भेजे कि आप इनका उत्तर लिखियेगा । इन प्रश्नों को देखकर जती जी ने कुछ भी उत्तर नहीं लिखा किन्तु जैनमत के अनुकूल आठ प्रश्न लिख कर स्वामी जी के पास भेजे जिनके यथायोग्य उत्तर स्वामी जी ने बुद्धिपूर्वक लिखकर भेज दिये और केवल उत्तर ही नहीं लिखे प्रत्युत जैनधर्म पर आठ प्रश्न नये लिखकर भी भेजे जिनका उत्तर जती जी ने कुछ भी नहीं दिया ।

ठाकुरों पर प्रभाव

स्वामी जी के उपदेश से प्रभावित ठाकुर, स्वामी जी एकान्तवास के अभ्यासी—अचरौल के जागीरदार ठाकुर रणजीतसिंह[२०] की साधुओं में बहुत प्रीति थी। स्वामी जी से मिलने से पहले वह राधाकृष्ण को मानते और उन्हीं का भजन किया करते थे। बीकानेर राज्य के ग्राम लोंच निवासी एक ठाकुर हमीरसिंह किसी मुकद्दमे में वहां जयपुर आये थे। वे स्वामी जी से पूर्ण परिचित थे और मूर्तिपूजा से घृणा करते थे। हमीरसिंह ने ठाकुर रणजीतसिंह साहब की इस पूजा का खंडन किया; जिस पर ठाकुर साहब ने कहा कि फिर हम क्या करें और किसको गुरु करें। वह चूंकि स्वामी जी से मिल चुका था, इस कारण उसने कहा कि एक साधु गोविन्ददास या नन्दराम के बाग में उतरे हुए हैं; आप उनसे मिलें और उनसे उपदेश लें। जयपुर के ये ठाकुर साहब स्वामी जी की चर्चा सुन चुके थे। इसलिए ठाकुर हमीरसिंह जी की सम्मति से ठाकुर रणजीतसिंह जी स्वामी जी से मिले। उन्होंने दूसरे दिन पंडित रूपराम जोशी को मझोली सहित स्वामी जी को लिवा लाने भेज दिया। स्वामी जी निमन्त्रण स्वीकार करके पैदल चले आये और ठाकुर साहब से वार्तालाप किया और भोजन भी वहीं किया; वार्तालाप और प्रश्नोत्तर से ठाकुर साहब के बहुत से सन्देह निवृत्त हो गये और मूर्तिपूजा से मन को पूर्ण घृणा हो गई। अन्त में उन्होंने प्रार्थना की कि जब तक आप रहें; यहीं रहें। स्वामी जी ने स्वीकार किया और सच्चिदानन्द को भेजकर अपना सब सामान वहां मंगा लिया। चार दिन तो ठाकुर साहब के महलों में रहे। उसके पश्चात् ठाकुर साहब के बाग में जो बदनपुरा में गंगापोल द्वार के बाहर है, पधार गये, क्योंकि स्वामी जी ने कहा कि हम एकान्त में रहना चाहते हैं। वहां पक्के घर तो विद्यमान थे परन्तु ठाकुर साहब ने स्वामी जी की इच्छा के अनुसार वहां एक और कच्चा घर छप्पर डलवाकर बारहदरी के प्रकार का बनवा दिया। वहां नित्य नगर के कई विद्यार्थी स्वामी जी के पास पढ़ने को जाने लगे और ठाकुर साहब भी नित्यप्रति स्वामी जी के पास जाकर मनुस्मृति, छान्दोग्योपनिषद्, बृहदारण्यकोपनिषद् आदि श्रवण किया करते थे।

जयपुर में चार मास ठहरे। उपनिषदों की कथा और मूर्तिपूजा का खण्डन करते थे। हृदय में ईश्वर का ध्यान करने का उपदेश देते थे। भगवा कपड़ा पहनते थे—हीरालाल जी कायस्थ माथुर, भूतपूर्व कामदार ठाकुर साहब अचरौल, जिनकी आयु अब इस समय ६२ वर्ष की है, कहते हैं कि मैं उन दिनों मद्यपान किया करता था। मैं मद्य पिये हुए उस गंगापोल बाग में आया। जैसे ही उस बंगले के पास से जाने लगा ठाकुर साहब की स्वामी जी को बुलाने की बात याद आ गई। किसी से मैंने पूछा कि स्वामी जी जो आये हुए हैं वे कहां उतरे हैं? पता मिलने पर सीधा स्वामी जी की सेवा में चला गया। दूर से आकर दण्डवत् की और वहीं बैठ गया। उस समय स्वामी जी मनुस्मृति का प्रायश्चित्त अध्याय बांच रहे थे। प्रकरण यह था कि गोहत्या, स्वर्णचोरी, सुरापान आदि का यह दण्ड है। जब सुरापान का दण्ड उन्होंने पढ़ा और उसका अर्थ समझाया तब मैंने अपने मन में बहुत खेद माना और अपने भूतकाल पर पश्चाताप करने लगा। उसी समय मन विरक्त हो गया और निश्चय किया कि भविष्य में ऐसा कदापि नहीं करूंगा। उस दिन के पश्चात् प्रतिदिन घर से भ्रमण के बहाने सवार होकर जाता और वहां सीधा उनकी सेवा में उपस्थित हो जाता था। मांस और मदिरा मैंने उनके उपदेश से त्याग दिये। वह सम्भवत: चार मास यहां रहे थे। उस समय भगवा कपड़ा (कौपीन) पहनते थे। उन्होंने दसों उपनिषद् ग्रन्थ बम्बई से यहां मंगवाये थे और उनकी कथा किया करते थे और गीता का भी उपदेश करते थे और उसका भाष्य लोगों को सुनाते थे। मूर्तिपूजा का खंडन करते और कहते थे कि परमात्मा तो हृदय में है। हृदय में परमात्मा का ध्यान करो, मूर्तिपूजा अच्छी नहीं है। स्वामी जी ने ठाकुर साहब को सन्ध्या-गायत्री का उपदेश दिया और कहते थे कि साधारण ब्राह्मण लोग आपको बहकाते हैं। उस समय देवीभागवत की पुराण में गणना करते हुए कृष्णभागवत का खंडन करते थे। एक पत्रा[२१] भागवत के खंडन में छपवाया भी था। कृष्ण जी के विषय में जो कलंक भागवत में थे, उन सबका खंडन करते थे और श्रीमद्भागवत का

अपना बनाया हुआ खंडन लोगों को सुनाया करते थे । हीरालाल जी से पूछा कि तुम्हारा यज्ञोपवीत हुआ है ? उन्होंने कहा कि नहीं । तब मन्त्र सिखलाया था—

"ओ३म् भूर्भुवः स्वः । विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव यद्भद्रं तन्न आसुव" ।

फिर उसने यमुना पर जाकर यज्ञोपवीत धारण किया, तब गायत्री याद की । स्वामी जी के उपदेश से ठाकुर साहब ने मूर्तिपूजा छोड़ दी । एक पर्चा तत्त्वबोध का ठाकुर साहब को और एक हीरालाल को दिया । उनके जाने के पश्चात् मैंने (हीरालाल के) उस तत्त्वबोध के दो पृष्ठों की प्रतिलिपि अपनी पुस्तक में उतार ली (देखने पर विदित हुआ कि वे पर्चे संवत् १९२३, चैत्र शुक्ला ५, बुधवार के लिखे हुए अर्थात् नकल किये हुए हैं ।)

वेदान्त और निराकार 'शिव' का उपदेश, सन्ध्या व गायत्री का जप करना ही उपासना बताते थे—इन दिनों स्वामी जी वेदान्त का उपदेश देते और निराकार परमात्मा को 'शिव' नाम से बतलाया करते थे । पार्वती के पति शिव की कोई चर्चा न थी; प्रत्युत उसके विरोधी थे । रुद्राक्ष और भस्म भी पहनते और लगाते और दूसरों को उपदेश भी करते थे । उपासना का प्रकार लोगों के लिए सन्ध्या-गायत्री बताते थे ।

कपटियों ने महाराजा को स्वामी जी से दूर रखा

शिव के पुजारी व्यासों ने स्वामी जी की वाग्मिता से स्वार्थ सिद्ध करना चाहा, परन्तु उनके मूर्तिमात्र का खण्डन करने के आग्रह से वे सतर्क हो गये—इन्हीं दिनों महाराजा रामसिंह जी वैष्णवों और शैवों का शास्त्रार्थ करा रहे थे । वे शैवमत अर्थात् शिवलिंग की स्थापना और अन्य मूर्तियों का खंडन करते थे । व्यास बख्शीराम और उनके भाई धनीराम व्यास इस काम के अधिष्ठाता थे । व्यास जी जानते थे और देख चुके थे कि स्वामी दयानन्द सरस्वती विद्या में बहुत पूर्ण हैं क्योंकि जयपुर में समस्त पंडितों से पहले ही शास्त्रार्थ हो चुका था । व्यास जी ने अपने अन्तःकरण में विचार किया कि यदि स्वामी दयानन्द सरस्वती हमारे पक्ष में हो जावें तो फिर किसी प्रकार की शंका न रहे । ऐसा विचार कर व्यास जी के पास गये और अपने कार्यानुकूल वार्तालाप करके लौट आये । महलों में आकर महाराजा रामसिंह जी से स्वामी जी का समाचार कहा । महाराजा साहब ने कहा कि ठाकुर रणजीतसिंह द्वारा स्वामी जी को महलों में बुलाया जाये और सरदार रणजीतसिंह ने भी जाने की (स्वामी जी को) सम्मति दी तब स्वामी जी ने स्वीकार किया । प्रातःकाल बख्शीराम व्यास ने अपने छोटे भाई धनीराम व्यास को भेजा । स्वामी जी ने कहा कि अच्छा हम दस बजे आवेंगे । फिर पीनस की सवारी में स्वामी जी गये और राजराजेश्वर के मन्दिर में जाकर बैठे परन्तु वहां स्वामी जी ने मूर्ति को नमस्कार न किया । बख्शीराम व्यास ने आकर कहा कि अब मैं महाराजा से पूछता हूं । इसी समय किसी मनुष्य ने बख्शीराम व्यास से यह कह दिया कि यह तो प्रत्येक प्रकार की मूर्ति को उखाड़ना चाहते हैं । यदि तुम इनका यहां प्रवेश करा दोगे तो तुम्हारा सारा कार्य भ्रष्ट करा देंगे और महादेव-वादेव को उठवा देंगे । कुछ तो उसने उनके मन्दिर में आते ही देख लिया था कि उन्होंने नमस्कार नहीं किया, इस पर उसे और भी सन्देह हुआ । महाराजा साहब के पास तो गये नहीं प्रत्युत साधारण रूप से भीतर जाकर और बाहर आकर कह दिया कि महाराजा साहब तो कहीं भ्रमण को गये हैं; आप फिर पधारना । तब स्वामी जी ने कहा कि हमारा महाराजा से क्या प्रयोजन है ! उसी समय पीनस में बैठ कर लौट आये और सब वृत्तांत आकर कहा । सरदारों ने उत्तर दिया चूंकि उनका मूर्तिपूजा में विशेष आग्रह है इसलिए आपसे छुपा लिया । कुछ मनुष्यों के मुख से विदित हुआ कि स्वामी जी प्रथम दिन गये तो अवकाश न होने का बहाना किया फिर दूसरे दिन गये तो भ्रमण का बहाना कर दिया । तीसरे दिन स्वामी जी को उनके कपट का वृत्तांत विदित हुआ तब महाराज ने कहा कि अब कुछ भी हो हम नहीं जावेंगे । ग्रीष्म ऋतु में आये

थे और शीतकाल के अन्त में गये। उन्हीं दिनों और भी कई जागीरदारों को स्वामी जी से भक्तिभाव उत्पन्न हो गया। इस प्रकार चार मास पन्द्रह दिन स्वामी जी ने जयपुर में निवास किया। उन दिनों स्वामी जी चार वेद, मनुस्मृति और दस उपनिषदों को मानते थे।

वे व्याकरण में पूरे थे, शुरु से खण्डन-मण्डन खूब करते थे—पंडित गोपीनाथ जी, नांगलिया दायमा ब्राह्मण संस्कृत पाठशाला जयपुर के अध्यापक ने इसके अतिरिक्त यह भी बताया कि उन दिनों वह रुद्राक्ष का कंठा पहनते और भभूत लगाते थे। केवल एक चौड़ी कौपीन पहनते थे। ठाकुर साहब के वह यज्ञोपवीत के गुरु थे। वह व्याकरण में पूरे थे। सिद्धान्त कौमुदी को अशुद्ध बतलाते और अष्टाध्यायी और महाभाष्य को शुद्ध कहते थे। हम केवल दर्शनार्थ गये थे। यह भी कहते थे कि पंडितों से हमारा शास्त्रार्थ कराओ। उन दिनों उनकी व्याकरण की खूब धूमधाम थी क्योंकि वे एक सुप्रख्यात गुरु से शिक्षा प्राप्त कर चुके थे। वे खंडन-मंडन में कुछ आर्यसमाज के कारण से प्रसिद्ध नहीं हुए प्रत्युत उस समय भी वह जहां जाते ऐसा ही करते थे। उस समय वे केवल सिद्धान्त कौमुदी आदि ग्रन्थों का खंडन करते थे। महाराजा रामसिंह जी को उनसे मिलने की इच्छा थी। प्रथम तो इस बात पर आग्रह होता रहा कि स्वामी जी के घर पर राजा साहब आवें या स्वामी जी उनके महलों में जावें। परस्पर अत्यन्त आग्रह होता रहा अन्त में अचरौल के ठाकुर साहब के कहने से स्वामी जी वहां गये परन्तु राजा साहब महलों के भीतर चले गये जिस पर स्वामी जी क्रुद्ध होकर लौट आये और फिर नहीं गये। उन्हीं दिनों ठाकुर इन्द्रसिंह रईस दूदू, स्वामी जी को अपने यहां ले गये और दो दिन वहां रखा। उपदेश लिया और उनके शिष्य हुए। जब वे स्वामी जी को अचरौल के ठाकुर साहब के पास लौटाकर लाये तो ठाकुर साहब का अत्यन्त धन्यवाद किया कि आपने ऐसे महात्मा से मेरा मिलाप करा दिया।

जयपुर से बगरू, दूदू, किशनगढ़ तथा पुष्कर होते हुए अजमेर पधारे—सारांश यह है कि स्वामी जी चार मास जयपुर में निवास करके चैत्र के कृष्णपक्ष में यहां बैलगाड़ी में बगरू गये और वहां दो दिन रहे।

बगरू से चलकर दूदू में दो दिन ठहरे और रियासत किशनगढ़ में भी दो दिन निवास करते हुए अजमेर में पधारे और राय दौलतराय के बाग[२२] में चार दिन रहकर पुष्कर पधारे।

पुष्कर के मेले का वृत्तान्त

व्यंकट शास्त्री व उनके गुरु द्वारा स्वामी जी का समर्थन—'चैत्र बदि तदनुसार २ व ३ मार्च सन् १८६६ को जयपुर से चलकर दश दिन पश्चात् पुष्कर पहुंच गये और वहां ब्रह्मा मन्दिर में डेरा किया। यह बड़ा भव्य मंदिर है और ब्रह्मा की पूजा केवल इसी मंदिर में होती है। समस्त भारत में और किसी स्थान पर नहीं होती। जब वहां पहुंच कर स्वामी जी ने मूर्तिपूजा का खण्डन आरम्भ किया तो ब्राह्मण लोग झगड़ा करने के लिए इकट्ठे हो गये। परन्तु जब विद्या में कोई स्वामी जी का सामना न कर सका तो वे उन व्यंकट शास्त्री के पास गये जो एक प्रसिद्ध, 'उस्तया'[२३] नामक के शिष्य थे; ये (उस्तया नामक) विद्वान् पुष्कर जी के पर्वत में अगस्त्य जी की गुफा में रहते थे। प्रथम व्यंकट शास्त्री ने स्वामी जी को बुला भेजा कि हम आप से शास्त्रार्थ करेंगे। एक बार यह निश्चय किया कि व्यंकट शास्त्री स्वयं स्वामी जी के पास ब्रह्मा के मन्दिर में आवेगा। परन्तु वह न आया। अन्त में स्वामी जी स्वयं उसके पास गये। तीन चार सौ ब्राह्मण एकत्रित थे। प्रथम शास्त्रार्थ भागवत के विषय पर हुआ। व्यंकट शास्त्री ने कहा 'विद्यावतां भागवते परीक्षा'। स्वामी जी ने उत्तर दिया 'विद्यावतां भागवते अपरीक्षा'। इसके पश्चात् स्वामी जी ने भागवत का प्रबल युक्तियों से खंडन किया। तत्पश्चात् दुर्गा विषय में बातचीत हुई। परस्पर संस्कृत बोलते रहे। अन्त में शुद्धि-अशुद्धि पर बात चल पड़ी। उसने एक बार 'देवासुर' कहा तो स्वामी जी ने कहा ऐसा नही, 'दैवासुर' कहो। एक घंटे तक बातचीत होती रही और मनुष्य भी वहां अधिक संख्या में उपस्थित थे।

अन्त में स्वामी जी का कहना सत्य हुआ । शास्त्री जी ने स्वामी जी की बहुत प्रशंसा की और कहा कि आपकी विद्या बहुत प्रबल है । तब व्यंकट ने स्वामी जी को अपने गुरु अघोरी से मिलाया । यह अघोरी प्रकटरूप में मनुष्यों को पत्थर मारता और गालियां दिया करता था और मरे मनुष्यों को चिता से निकाल कर खा लिया करता था परन्तु स्वामी जी उससे मिलने के पश्चात् कहते थे कि वह संस्कृत का अच्छा विद्वान् है । उससे बातचीत हुई उसने सबके सामने कह दिया कि जो कुछ स्वामी जी कहते हैं वह सत्य है । उधर व्यंकट शास्त्री ने सब ब्राह्मणों से भाषा में कह दिया कि व्यर्थ हठ मत करो, यह सत्य कहते हैं । यह बात सुनते ही सब ब्राह्मण चले गये ।

यह व्यंकट शास्त्री बालशास्त्री के समान नैयायिक थे । उसने स्वामी जी से यह भी कहा जब कभी आपका शास्त्रार्थ किसी से हो मुझे लिखना, मैं आऊंगा । उस समय स्वामी जी उपनिषदों का अभ्यास करते और मार्कण्डेय ऋषि की गुफा में भभूत के गोले मंगाते और शरीर पर लगाया करते थे (यह गुफा पुष्कर से तीन कोस पूर्व की ओर है) । रुद्राक्ष की माला पहनते और उस माला के मध्य में एक-एक श्वेत कांच का दाना होता था ।

पुजारी को सच्चरित्र रहने का उपदेश—गोकुलिया गुसांइयों और चक्रांकितों का यथापूर्व खंडन करते रहे और मूर्तिपूजा और पुराणों का भी खंडन करते थे । उनके आते ही पुष्कर में हलचल मच गई । एक दिन वहां के पुजारी को कहते थे कि तेरे पास यह ढाई मन के पत्थर की मूर्ति मानो पारस पत्थर है । खूब साधुओं को लड्डू खिलाया करो और रंडी-भड़ुओं से बचा करो ।

"स्तोत्र मनुष्य कृत हैं"—विद्या पढ़ने में मन लगाओ; खीर-पूरी भी विद्या से ही अधिक मिलेगी—विभिन्न आचार्यों के बनाये हुए स्तोत्रों को कहते थे कि यह उनके बनाये हुए नहीं हैं । पीछे से लोगों ने बनाये हैं परन्तु नाम उनका डाल दिया ताकि प्रचलित हो जायें । वास्तविक आचार्यों के बनाये हुए नहीं हैं । **स्वामी रत्नगिरि जी कहते हैं** कि मैं भी मन्दिर में, जिसमें कि वे उतरे थे—उतरा था । उनका उन दिनों हमको यही उपदेश था कि आप लोग विद्या पर ही परिश्रम करें । खीर पूरी के जाने की चिन्ता न कीजिये । खीर-पूरी भी विद्या से ही अधिक मिलेगी, घबराइये नहीं । २२ दिन तक मैं वहां रहा और अभी वह वहां ही थे कि मैं चला आया ।

ब्राह्मण विद्वान् के अतिरिक्त कोई संन्यास न ले—पंडित नानूराम जी रईस पुष्कर ने कहा कि जब वे पुष्कर में आये तो कहते थे कि तुम कंठी-वंठी क्यों बांधते हो । हमने कहा कि यदि तुम्हारे में ब्राह्मणों को छोड़कर और कोई संन्यासी न बने तो हम कंठे बांधने छोड़ दें । उन्होंने कहा कि हम क्या करें यह तो आकाश फट गया है ! यदि हमसे कोई पूछे तो स्पष्ट कह दें कि ब्राह्मण विद्वान् के अतिरिक्त और किसी को संन्यास लेने का अधिकार नहीं ।

"आपकी तभी चलेगी जब कोई राजा सहायक होगा ।" व्यंकट शास्त्री—उस समय स्वामी जी ने एक ब्राह्मण के कंठे उतार दिये थे-वह क्रुद्ध हुआ । उसका निर्णय कराने के लिए पंडित व्यंकट जी महाराज दक्षिणी शास्त्री के पास (जो उन दिनों यहां थे) ले गये । उन्होंने कहा कि जो आप कहते हैं सो सत्य है परन्तु यह बात आपकी उस समय चलेगी जब कोई राजा या महाराजा आपकी सहायता करे । हम लोगों ने भी जाकर व्यंकट जी से कहा यह हमारी कंठी उतारते हैं । उन्होंने कहा बात उसकी अच्छी है परन्तु जब तक उसका कोई राजा शिष्य न हो तब तक चलना कठिन है । यहां का नियम है कि यदि कोई संन्यासी महात्मा आता है तो हम उसकी पूजा करते हैं । वैसे ही इनकी भी बहुत अच्छी प्रकार से पूर्णमासी के दिन पूजा की गई ।

---

1. यह वृत्तान्त पंडित वृद्धिचन्द्र व छगनलाल श्रीमाली ब्राह्मण, किशनगढ़निवासी व पंडित रूपराम जी जयपुर निवासी व मुन्शी आनन्दीलाल सरिश्तेदार डिप्टी कमिश्नर अजमेर व साधु रत्नगिरि संन्यासी व मुन्शी हरनाम सिंह ओवरसियर आदि सज्जनों के कथनानुसार लिखा गया ।

शरीर जलाने से स्वर्ग नहीं मिलता, व्रतादि करने से सुख प्राप्त होता है, कंठी-तिलक का निषेध—पंडित रामधन दशनामी पंडा, पुष्कर निवासी ने कहा कि मैं सब संन्यासियों का पुरोहित हूं। स्वामी जी जब आकर संवत् १९२२ के अन्त में ब्रह्मा जी के मन्दिर में उतरे थे तो हमको एक पत्र दिया कि यदि कोई रामानुज सम्प्रदाय वाला हमसे शास्त्रार्थ करना चाहे तो यहां आ जाये अन्यथा हम गोघाट पर चलते हैं। हम पत्र ले गये परन्तु वह शास्त्रार्थ के लिये कभी न आये। स्वामी जी श्रुति, स्मृति के अनुसार लोगों को सत्यधर्म का उपदेश करते रहे। उन दिनों रामानुजियों के इस वाक्य का 'तप्ततनु: स्वर्गं गच्छति'[२४] खंडन करते थे और कहते थे कि इसका यह अर्थ नहीं कि शरीर जलाने से स्वर्ग को जाता है। प्रत्युत यह अर्थ है कि व्रत, तप, नियम से शरीर को तपाये और मन को विषयों से रोककर जप आदि में लगाये तब सुख को प्राप्त होता है। मैंने कहा कि हमको एक श्लोक पुरोहिताई का बना दो जैसा कि एक और संन्यासी ने अपने पुरोहित को बना दिया था। स्वामी जी ने कहा कि अरे ! क्या तुम हमारे पुरोहित बने हो और हंस कर टाल दिया-कोई श्लोक नहीं बनाया। उस समय नंगे नहीं रहते थे प्रत्युत भगवे कपड़े पहनते थे। हमको कहते थे कि तुम ऊंचा तिलक मत निकालो; साधारण लगाया करो और कंठी तोड़ डालो; अत: हमने तोड़ डाली। लगभग एक मास या कुछ न्यूनाधिक रहे।

पाखण्ड छोड़कर 'सच्चिदानन्द' नाम जपो, पुजारी ने पूजा छोड़कर डाकखाने में नौकरी करली—शिवदयाल ब्राह्मण पाराशरी[२५] पुरोहित पुष्कर भूतपूर्व पुजारी मन्दिर श्री ब्रह्मा जी ने कहा कि जब स्वामी जी पुष्कर पधारे मैं उन दिनों ब्रह्मा जी के मन्दिर में पूजा करता था। जब मैं पूजा करता तो स्वामी जी कहते थे अरे शिवदयाल ! तेरा ब्रह्मा मुंह से बोलता है या तुम्हारे से बात करता है ? और जब मैं ढोल बजाता तब कहते कि अरे चमड़ा कूटने से क्या लाभ है और झांझ बजाने से भी हमको रोका करते थे। मैंने कहा कि महाराज, यहां तो कम है परन्तु मारवाड़ में पाखण्ड बहुत फैल रहा है वहां आप सुधारो। उन्होंने कहा कि यदि कोई वहां का कामदार[२६] हमारे लिए सवारी भेजे तो हम अवश्य जावें। मैंने पूछा कि स्वयं ईश्वर का जो नाम है वह मुझे बता दीजिये क्योंकि बड़े ब्रह्मा को ही विष्णु आदि कहते हैं। तब स्वामी जी ने कहा कि 'सच्चिदानन्द' यही नाम जाप किया करो और नहीं। उनको हम दोनों समय रोटी और फिर रात के समय दुग्ध पिलाते थे। उनसे हमारी बहुत बातें हुई परन्तु वह सारी स्मरण नहीं किन्तु एक बात उनकी विशेष रूप से याद है जो कभी नहीं भूल सकती कि यहां से बहुत से लोगों से स्वामी जी ने कंठियां उतरवा कर ब्रह्मा के मन्दिर के एक कोने में ढेर करवा दिया था। मेरी कंठी भी तुड़वा दी थी। रामानुज के तिलक का खंडन करते थे। उस समय शिव या विष्णु की पूजा नहीं, प्रस्तुत केवल परमेश्वर की उपासना बतलाया करते थे। एक जयदेवगिरि जी महाराज साधु थे वह भी स्वामी जी की बहुत प्रशंसा करते थे परन्तु वह अब मर गये हैं। उनकी विद्या, बल और उपकार की महिमा सर्वत्र हो रही थी। पहले मैं पंडों के रूप में घाट पर मांगा भी करता था, उनके उपदेश से ब्रह्मा जी की पूजा और घाट का मांगना छोड़ दिया। अब डाकखाने की नौकरी करता हूं, हरामखोरी से काम नहीं। हमको तो महाराज सुधार गये, उनकी हम पर बड़ी कृपा हुई।

रोजी-रोटी के कारण लोग असत्य से चिपटे रहे—एक विद्वान् पंडित गंगाराम जी ब्राह्मण, (जिनकी आयु ६८ वर्ष है) पुष्कर निवासी कहने लगे कि स्वामी जी मुझे कहते थे कि आप ऊर्ध्वपुण्ड्र मत लगाया करो, सीधा लगाओ और कंठी मत पहनो। हमने कहा कि एक लाख रुपया आप लाये होते हो सब ब्राह्मण स्वीकार कर लेते और कहते कि 'जय महाराज दयानन्द जी महाराज की जय'। स्वामी जी जैसा महात्मा, विद्वान्, जितेन्द्रिय, बलवान् इस भारतवर्ष में दुर्लभ है। उन दिनों चन्द्रघाट पर एक द्राविड़ी संन्यासी अठारह पुराणों की ब्राह्मणों से प्रथम कथा कराता और समाप्ति पर ब्रह्मभोज कराया करता। स्वामी जी मुझको साथ लेकर गऊघाट पर उससे शास्त्रार्थ करने गये। उसको बुलाया परन्तु वह न आया। उस समय मेरे साथ सौ दो-सौ के लगभग और मनुष्य भी थे। जब वह द्राविड़ी संन्यासी न आया तो स्वामी जी ने कहा कि वह हार गये। उनके कहते ही हम सब ने कहा कि वह हार गये क्योंकि हम गऊघाट पर जाजम बिछा कर बैठे थे कि वह शास्त्रार्थ के लिए आवें परन्तु वह न आये।

"भोग लगाकर हमको पिला दिया"—एक दिन ब्रह्मा जी के मन्दिर के बड़े पुजारी गुसाईं मानपुरी संन्यासी ने ब्रह्मा को भोग लगाकर दूध स्वामी जी को पिला दिया। इस बात की जब स्वामी जी को सूचना मिली कि यह मूर्ति को भोग लगाकर हमको पीछे पिलाता है तो कुपित हुए और महन्त से कहा कि अरे! पत्थर को भोग लगाकर हमको पिला दिया! महन्त ने कहा कि देखो खेद है कि उन्होंने मेरे इष्टदेव ब्रह्मा की मूर्ति को पत्थर बतलाया; आगे उनको मैं दूध न पिलाऊंगा। इसी क्रोध में फिर उसने स्वामी जी को दूध न पिलाया और पूछने पर कहा कि मैं ब्रह्मा जी का अन्न खाता हूं।

स्वामी जी अद्वितीय जितेन्द्रिय तथा विद्वान् थे—एक दिन स्वामी जी ने मुझे पूछा कि आप भागवत को क्यों बांचते हैं क्योंकि यह व्यास जी की बनायी हुई नहीं है प्रत्युत बोपदेव की है। मैंने न माना और उल्टा क्रुद्ध होकर चार दिन स्वामी जी से न मिला और न नमो नारायण किया। तब स्वामी जी मेरे पास आये और खड़े होकर मेरा हाथ पकड़ लिया। मैंने कहा कि महाराज! जोर करो। महाराज ने कहा कि घर की लुगाइयां माताएं कहेंगी कि इसकी उंगलियां तोड़ दीं। मैंने कहा कि नहीं टूटती हैं। तब स्वामी जी ने हरगोविन्द अपने रसोइये से कहा कि तू इससे हाथ डाल। उसने पंजा डाला, उसके कहने से मैंने खींचा तब उसका पंजा जख्मी हो गया और वह रोटी पकाने से रह गया। स्वामी जी मुझ पर दया करते थे अन्यथा वह बहुत बलवान् थे और जितेन्द्रियता और विद्या में उनके समान दूसरा नहीं था।

देश की दशा सुधारने का ही हर समय ध्यान—एक दिन रंगाचार्य के शिष्य गोविन्ददास का और स्वामी जी का गीता के एक श्लोक पर शास्त्रार्थ हुआ! स्वामी जी ने उसे बहुत समझाया परन्तु वह मूर्ख न समझा। वह शास्त्रार्थ आदि कार्यों में इतने दृढ़ थे कि यदि कोई तीन-तीन दिन तक शास्त्रार्थ करता रहे तो भी न घबराते और वह बड़े प्रतापी थे। इसी बार जब हमने उनसे पूछा कि आप किसको मानते हैं तो कहा कि हम केवल 'सच्चिदानन्द' परमेश्वर को मानते हैं। हमने एक बार 'शिव जी' के विषय में पूछा। उन्होंने कहा—शिव को हम मानते हैं। परन्तु शिव नाम कल्याण का है जिसको हम मानते हैं। **दूसरा जो शिव पार्वती का पति है उसको हम नहीं मानते।** वहां स्वामी जी लगभग एक मास रहे थे कि अचरौल के ठाकुर साहब ने जोशी रामरूप[२७] को उनको लाने के लिये भेजा। कारण यह था कि स्वामी जी ने एक पत्र उनको लिखा कि हमारा विचार अब आगे को जाने का है। तब सरदारों ने उसे भेजा कि तुम जाकर महाराज को ले आओ। इसलिए वह जाकर एक मास और उनके पास रहा। जोशी **रामरूप कहता** है कि मैंने जाकर ब्रह्मा के मन्दिर में देखा कि एक बालिश्त भर के लगभग पृथ्वी से ऊंचा ढेर टूटी हुई कंठियों का लगा हुआ था। जब मैंने पूछा कि यह क्या कारण है तो बोले कि भाई! तुम्हारे देश की अवस्था बिगड़ रही है उसको हम सुधारते और जो पहले अविद्या बढ़ी हुई है उसको निकालते हैं। जयपुर से शिवनारायण नामक एक ब्राह्मण, मोरोजः[२८] निवासी उनके साथ अष्टाध्यायी पढ़ने को गया था। वह भी वहां उस समय उपस्थित था रसोई भी वही बनाता था और पढ़ता भी था। सब मिलाकर वहां पांच मनुष्य थे। वहां उनके पास सैकड़ों पुरुष आते थे। एक दिन एक जोधपुर का वकील भी आया था। उसकी प्रार्थना पर स्वामी जी ने जोधपुर जाने का विचार किया, फिर मुझसे पूछा कि कहो तुम्हारी क्या सम्मति है। अन्त में मेरी प्रार्थना पर उन्होंने जयपुर लौटना स्वीकार किया; इसलिए वहां से लौटकर अजमेर आये।

शिवदयाल, भूतपूर्व पुजारी ब्रह्मा जी, कहता है कि मैंने उनके कहने के अनुसार मारवाड़ में उनके उपदेश की व्यवस्था की अर्थात् नागौर के पास मोंडवा[२९] स्थान रियासत जोधपुर में जाकर अपने श्रीमाली ब्राह्मण लक्ष्मीचन्द को जो उस ग्राम का शासक था कहा कि इस प्रकार महाराज दयानन्द जी पधारने को कहते हैं यदि आप सवारी भेजें। उसने सवारी भेजने का वचन दिया। फिर वह स्वामी जी को लेने के लिये पुष्कर में भी आया परन्तु स्वामी जी उस समय चले गये थे।

अजमेर में प्रथम बार

द्वितीय ज्येष्ठ संवत् १९२३ (३० मई, सन् १८६६) के लगते ही स्वामी जी पुष्कर से अजमेर में आये और बंसीलाल सरिश्तेदार के बाग मे ठहरे। उस समय कुल छः मनुष्य थे। स्वामी जी ने जोशी रामरूप और पंडित शिवनारायण के द्वारा नगर के मार्गों पर विज्ञापन लगवाये कि जिस किसी को मूर्ति-पूजा आदि पर सन्देह हो वह हमसे आकर शास्त्रार्थ कर ले। पंडित वृद्धिचन्द्र व छगनलाल शास्त्री किशनगढ़ निवासी उन दिनों अजमेर में रहते थे। शास्त्री जी ने स्वामी जी से कुछ व्याकरण के प्रश्न सीखे और कुछ महाभाष्य पढ़ा। उनके व्यय आदि का प्रबन्ध सेठ किशनचन्द जी करते थे।

इस बार कई मनुष्यों से प्रश्नोत्तर होते रहे। प्रथम अजमेर के पंडितों से शास्त्रार्थ की ठहरी तब स्वामी जी ने व्यंकट शास्त्री को कहला भेजा कि हम शास्त्रार्थ करने वाले हैं। हम तुम को अपनी ओर से मध्यस्थ करेंगे, आपको आना होगा। उसने उत्तर में कहला भेजा कि आप शास्त्रार्थ की तिथि से दो तीन दिन पूर्व मुझे कहला भेजें, मैं अवश्य आऊंगा परन्तु यह शास्त्रार्थ नहीं हुआ इसलिए उसको नहीं बुलाया गया।

पादरियों से मित्रतापूर्ण शास्त्रार्थ—फिर स्वामी जी का मित्रतापूर्वक शास्त्रार्थ पादरी लोगों से हुआ। एक तो रेवरेंड जे. ग्रे साहब मिशनरी प्रेजबिटेरियन मिशन अजमेर थे और दूसरे पादरी राबिन्सन साहब थे और तीसरे शूलब्रेड साहब पादरी मेरवाड़ा[३०] अर्थात् ब्यावर थे। प्रथम तीन दिन ईश्वर, जीव, सृष्टिक्रम और वेद विषय में बातचीत होती रही। स्वामी जी ने उनके उत्तर भलीभांति दिये। चौथे दिन ईसा के ईश्वर होने और मर कर जीवित होने तथा आकाश में चढ़ जाने के विषय पर स्वामी जी ने कुछ प्रश्न किये। दो-तीन सौ मनुष्य इस धर्मचर्चा के समय आया करते थे। अन्तिम दिन जब पादरी लोग इस विषय का कोई समुचित समाधान न कर सके तो स्कूल के बच्चे ताली पीटने लगे परन्तु स्वामी जी ने रोक दिया। परस्पर शास्त्रार्थ की विधि यह थी कि प्रथम एक पक्ष प्रश्न ही करे और दूसरा पक्ष उत्तर ही उत्तर दे, मध्य में प्रश्न न करे। तत्पश्चात् इसी प्रकार दूसरा पक्ष करे। प्रथम पादरी लोगों ने प्रश्न किये जिनके उत्तर स्वामी जी ने दिये। इस शास्त्रार्थ में ईसाइयों ने एक वेद मन्त्र का उद्धरण भी दिया था जिसको स्वामी जी ने अस्वीकार किया कि यह वेद मन्त्र नहीं। उन्होंने कहा कि वेद लाकर दिखलावेंगे परन्तु वेद से न दिखला सके।

पादरी ग्रे साहब ने कहा कि एक बार बहुत समय हुआ स्वामी जी यहां आये थे। उन दिनों दंडी जी के नाम से प्रसिद्ध थे। बाग में उतरे थे, वेदान्त के विषय पर कुछ बातचीत हुई थी परन्तु वह अच्छी प्रकार स्मरण नहीं। एक बार वह पादरी राबिन्सन साहब से मिलने को यहां आये थे और मुझसे भी मिले और एक बार हम दोनों उनसे मिलने के लिए बाग में गये थे परन्तु स्वामी जी उन दिनों इतने प्रसिद्ध न थे।

'दयानन्द सा विद्वान् संसार में अप्राप्य', पादरी राबिन्सन—राबिन्सन साहब का जो उन दिनों बड़े पादरी थे एक प्रश्न यह था कि ब्रह्मा जी ने जो व्यभिचार किया है उसका क्या उत्तर है। स्वामी जी ने कहा कि क्या एक नाम के बहुत से मनुष्य नहीं हो सकते? इसलिए यह कौन बात है कि यह ब्रह्मा वही है प्रत्युत कोई और मनुष्य होगा। वह महर्षि ब्रह्मा ऐसे नहीं थे। जिस पर पादरी साहब ने प्रसन्न होकर एक पत्र लिख दिया जिसका विषय यह था कि 'यह एक प्रसिद्ध वेद के विद्वान् हैं। हमने सारी आयु में संस्कृत का ऐसा विद्वान् नहीं देखा। ऐसे मनुष्य संसार में अप्राप्य हैं। जो इनसे मिलेगा उसे अत्यन्त लाभ होगा। जो कोई सज्जन इन से मिले वह इनका बहुत सम्मान करे।'

'राजा प्रजा का पिता होता है, मतमतान्तर के लोग आप की प्रजा को लूट रहे हैं। आप इसका प्रबन्ध करें'—इन दिनों एक बार स्वामी जी मेजर ए० जी० डैविडसन साहब बहादुर डिप्टी कमिश्नर अजमेर से मिलने के लिए गये। स्वामी

जी ने साहब से कहा कि राजा प्रजा का पिता होता है और प्रजा पुत्रवत् समझी जाती है । जब पुत्र कोई बुरा काम करने लगे तो माता पिता का कर्त्तव्य है कि उसको बचावे । आप राजा हैं; देश में अन्धकार फैल रहा है । मतमतान्तरों के लोग आपकी प्रजा को लूट रहे हैं आप इसका प्रबन्ध करें । साहब ने उत्तर दिया कि यह धार्मिक विषय है, सरकार हस्तक्षेप नहीं कर सकती और यदि कोई विशेष बात हो तो हमको सहायता देने में कोई आपत्ति न होगी । तत्पश्चात् स्वामी जी अपटन साहब बहादुर असिस्टैण्ट कमिश्नर अजमेर से भी मिले थे ।

कर्नल ब्रुक को गोरक्षा के लाभ मानने पड़े—इसी बार स्वामी जी कर्नल ब्रुक साहब बहादुर एजेंट गर्वनर जनरल से भी मिले थे । इस भेंट का वृत्तान्त भी रोचकता से शून्य नहीं । पंडित रामरूप जोशी वर्णन करते हैं कि यह कर्नल साहब गेरुए वस्त्र वालों से बहुत चिढ़ते थे । एक दिन स्वामी जी के निवास स्थान बंसीलाल के बाग में चले आये । स्वामी जी सामने बैठे हुए थे । वृद्धिचन्द्र ब्राह्मण ने कहा कि महाराज आप कुर्सी इधर कर लें-यह साहब आप लोगों को देखकर क्रुद्ध होते हैं । स्वामी जी ने कहा कि हम तो यही चाहते हैं, और कुर्सी को और आगे बढ़ा कर बैठ गये । वह देखते देखते आये और स्वामी जी को देखकर झट अन्दर घुस आये । फिर वृद्धिचन्द्र ने कहा कि महाराज ! मैं आपसे कहता था, आपने न माना । महाराज ने कहा कि कोई चिन्ता नहीं-आने दो । स्वामी जी उनके आने से पहले ही उठकर टहलने लगे ताकि उनका स्वागत न करना पड़े । वह आते ही टोपी उतार और हाथ में लेकर स्वामी जी से हाथ मिलाकर स्वामी जी के सामने कुर्सी पर बैठ गये और बातें करते रहे । तब स्वामी जी ने उनसे कहा कि आप धर्म का स्थापन करते हैं या खंडन करते हैं । उन्होंने कहा कि धर्म का स्थापन करना तो हमारे यहां भी अच्छा है परन्तु जिसमें लाभ हो वह करते हैं । स्वामी जी ने कहा कि आप लाभ की बात नहीं करते, हानि ही करते हो । उन्होंने पूछा कि कैसे ? स्वामी जी ने कहा कि एक गऊ होती है उसका एक बछड़ा होता है, इस प्रकार उसकी कितनी वृद्धि होती है । फिर विचारना चाहिए कि उससे कितने मनुष्यों का पालन होता है । सारांश यह कि उन्होंने "गोकरुणानिधि" की विधि से गोरक्षा के लाभ बताये । फिर उनसे पूछा कि अब आप बतलाइए कि इसके वध में आपको लाभ है या हानि ? तब एजेंट साहब ने कहा कि होती तो हानि है । स्वामी जी बोले कि फिर आप गोवध क्यों करते हो ? उन्होंने कहा कि यह बात तो आपकी हमको स्वीकार है; आप कल हमारे बंगले पर आवें वहां हम वार्ता करेंगे और फिर चले गये ।

दूसरे दिन एजेंट साहब बहादुर के यहां से गाड़ी आयी और उस पर बैठकर स्वामी जी और जोशी रामरूप साहब बहादुर के बंगले पर गये । वहां पौन घंटे तक स्वामी जी का साहब बहादुर से गोरक्षा विषय पर शास्त्रार्थ होता रहा । जब वह गोरक्षा में लाभ और हत्या में हानि मान चुके, स्वामी जी ने कहा कि जब आप रक्षा में लाभ मानते हैं तो फिर गोवध बन्द क्यों नहीं करते । उसने कहा कि महाराज ! मेरा अधिकार नहीं कि बन्द कर दूं । मैं आपको चिट्ठी देता हूं, आप लाट साहब से मिलें वह बन्द कर सकते हैं । मेरा अधिकार नहीं, निस्संदेह यह लाभ की बात है । आप मेरी यह चिट्ठी जिस साहब को दिखलावेंगे वह आपसे अवश्य भेंट करेगा । जिस पर स्वामी जी साहब बहादुर से चिट्ठी लेकर और विदा होकर चले आये ।

एजेंट साहब बहादुर ने स्वामी जी से जयपुर का वृत्तान्त सुना था, इसी कारण एक चिट्ठी उन्होंने राजा रामसिंह के नाम जयपुर भेज दी कि खेद है कि ऐसे उत्तम वेदवक्ता के साथ आपने कुछ बातचीत न की । इस चिट्ठी को सुनकर महाराजा साहब ने बड़ा पश्चाताप किया और ठाकुर रणजीतसिंह जागीरदार अचरौल को बुलाकर कहा कि "जो स्वामी जी आपके बाग में ठहरे थे उनको फिर बुलाओ, उस समय मुझको स्वामी जी का ज्ञान नहीं था, अब मैं उनके दर्शन करना चाहता हूं ।" ठाकुर साहब ने उत्तर दिया कि महाराज पुष्कर में हैं । मैंने यहां से सवारी आदि का प्रबन्ध करके अपने मनुष्य उनके पीछे भेज दिये हैं, वह पुष्कर से लौटते हुए यहां अवश्य पधारेंगे । तब मैं श्रीमानों से निवेदन करूंगा ।

सम्भवत: एक चिट्ठी साहब डिप्टी कमिश्नर बहादुर ने स्वामी जी को भी दी थी ।

इस बार अर्थात् संवत् १९२३ में जब स्वामी जी अजमेर आये थे तो वह उन दिनों मूर्तिपूजा का खंडन करते, भागवत को भड़वा और मंदिरों को अड्डा बतलाते थे। सब मालाओं को काष्ठ का भार गले में बतलाया करते थे। व्याख्यानादि देना उस समय प्रारम्भ नहीं किया था परन्तु आम शास्त्रार्थ लोगों से किया करते थे। चूंकि उस समय भागवत और मूर्तिपूजा का खंडन अधिक किया करते थे, इस कारण साधारण ब्राह्मण और भागवत के श्रद्धालु लोग उनके विरोधी हो गये थे।

इसी समय एक बार ब्राह्मणों ने उनसे शास्त्रार्थ की प्रार्थना की थी। शिव बाग[३१] में शास्त्रार्थ होना निश्चित हुआ परन्तु जब मैं, आनन्दीलाल, बाबू हजारीलाल वर्तमान अध्यापक महाराणा स्कूल, उदयपुर तथा पंडित हरनारायण वर्तमान क्लर्क ग्वालियर प्रेजीडैन्सी के साथ शिवबाग में स्वामी जी के कथनानुसार देखने गया तो क्या जाकर देखा कि वहां कोई पढ़ा लिखा पंडित न था और शिव बाग के पुजारी के अतिरिक्त और कोई पंडित वहां उपस्थित न था। हां, बहुत से भंगड़ ब्राह्मण लट्ठ लिये वहां खड़े थे। हमने यह वृत्तान्त जाकर स्वामी जी से कह दिया। वह उस समय आने को उद्यत थे, प्रत्युत कमरे से बाहर निकल आये थे, परन्तु हमारे कहने से लौट गये और शास्त्रार्थ का इरादा स्थगित रहा।

आवश्यक उपदेश के लिए संन्यासी कहीं भी तीन दिन से अधिक भी ठहर सकता है—इन दिनों एक पंडित रामरत्न नामक जो ग्राम रामसर जिला अजमेर में रहता था और गांव का पटवारी भी था, उसने सम्भवतः दस प्रश्न बनाकर भेजे थे जिनका विषय यह था:—

संन्यासी को किसी ग्राम में तीन दिन से अधिक न रहना चाहिए। घोड़ों की बग्घी में सवार न होना चाहिए आदि-आदि। ये प्रश्न संस्कृत में थे। स्वामी जी ने प्रत्येक प्रश्न का उत्तर प्रमाणित पुस्तकों के उद्धरणों सहित लिखकर भेजा और उसकी भाषा में जो अशुद्धियां थीं वे भी साथ ही लिख कर भेज दीं। इन प्रश्नों का एक उत्तर यह था कि यद्यपि संन्यासी को एक स्थान पर तीन दिन से अधिक न रहना चाहिए परन्तु जहां अन्धकार फैल रहा हो वहां उपदेश के लिए अधिक रहना भी उचित है।

भागवत की अशुद्धियां लिखकर दीं, भड़वा भागवत पुस्तिका लिखी गई—चूंकि स्वामी जी भागवत की बुराई किया करते थे, इस कारण पंडितों आदि ने इस विषय में उनसे पूछा कि हमको पता दें कि कहां-कहां भ्रांति है। जिस पर हमने भी कहा कि महाराज ! अवश्य दिखलाना चाहिए। तब स्वामी जी ने अपने हाथ से तीन-चार पृष्ठों में भागवत की विषय सम्बन्धी और विद्या सम्बन्धी अशुद्धियां लिखकर हमको दे दीं। हमने वह जाकर स्कूल के पंडित शिवनारायण को दे दीं इनका उल्था भाषा में कर दीजिये, जिस पर उन्होंने आज तक उल्था करके न दिया, गुम कर गये। कई बार उनसे कहा परन्तु फिर भी कोई परिणाम न निकला। पता नहीं कि शिवनारायण के पास हैं या हरनारायण के पास हैं।

उसी समय का लिखा हुआ एक 'भड़ुवा भागवत' नाम का पुस्तक पंडित छगनलाल व वृद्धिचन्द्र जी से मुझे मिला है जिसके अन्त में संवत् १९२३ द्वितीय ज्येष्ठ तिथि ९ (तदनुसार बृहस्पतिवार ७ जून, सन् १८६६ व २३ मुहर्रम १२८३ हिजरी) लिखा है।

तपस्वियों के अहं की परीक्षा—उन्हीं दिनों, दो तपस्वी नवयुवक कृष्णवर्ण के नाग पहाड़ के जंगल से स्वामी जी से मिलने आये जो संस्कृत के अतिरिक्त हमारी भाषा नहीं बोलते थे और कदाचित् जानते भी न थे। उनकी दूसरी भाषा मराठी या तेलुगु थी, जिसे वे जानते थे परन्तु बहुत कम। हमने उनसे एक बात उर्दू में पूछी जिसको उन्होंने समझ तो लिया परन्तु उत्तर संस्कृत में दिया जिसका अर्थ स्वामी जी ने हमको बताया था। ये तपस्वी दो बार आये थे। एक बार उन्होंने कहा कि महाराज ! हम तो बड़े शान्त हैं। स्वामी जी ने कहा कि नहीं, अभी अहंकार को नहीं जीता। उन्होंने कहा कि हां जीत लिया है। तिस पर स्वामी जी ने अपने ब्रह्मचारी को संकेत से कुछ समझा दिया। जब वह बाहर निकले तो किसी बात

पर साधुओं से उसने झगड़ा करके उन्हें पकड़ लिया और आपस में कुश्ती हो गई । जिस पर उसने उनको और उन्होंने उसको पछाड़ा । उनकी गड़बड़ सुनकर हम लोग बाहर निकले और स्वामी जी ने भी उनको समझाया और पृथक् किया और उनको फिर अन्दर बुलाया और संस्कृत में समझाया कि हम कहते थे कि तुमने अहंकार नहीं जीता जिस पर उन्होंने क्षमा मांगी और नमो नारायण करके चले गये । हम भी उन दिनों नमो नारायण करते थे और स्वामी जी नारायण का उत्तर देते थे । हम दो बार मिले और दोनों बार जिज्ञासु बनकर स्वामी जी से भक्ति का मार्ग सीखते रहे ।

'हम गद्दी नहीं, शास्त्रार्थ मांगते हैं', राम नाम पर आक्षेप—अजमेर में दरवाजे के बाहर रामस्नेहियों के गुरु रहते थे । वहां बाग में ही स्वामी जी ने एक दिन सुना कि (वे) कुछ साक्षर हैं । तब मुझे उनके पास भेजा । हमने जाकर कहा कि स्वामी जी आपसे मिलना चाहते हैं और शास्त्रार्थ करेंगे । उन्होंने उत्तर दिया कि हम शास्त्रार्थ नहीं कर सकते । मैंने कहा कि क्या कारण है, तो बोले कि हम किसी के स्थान पर नहीं जाते और यदि यहां आवें तो हम उत्थानिका अर्थात् गद्दी से उठकर किसी का सम्मान नहीं करते । मैंने यह वृत्तांत स्वामी जी से कहा । उन्होंने कहा कि वह जो कहते हैं कि हम गद्दी से नहीं उठते मत उठें और न हमको गद्दी दें, हम उनसे गद्दी नहीं मांगते प्रत्युत शास्त्रार्थ मांगते हैं । हमने फिर जाकर कहा तो वह बोले कि बाबा ! हम तो राम-राम करते हैं, कुछ शास्त्रार्थ नहीं जानते । मैंने स्वामी जी से कहा, स्वामी जी ने कहा कि तुम यह चिट्ठी जाकर दे दो और उत्तर लाओ । स्वामी जी ने यह चिट्ठी संस्कृत में लिखी थी जिसमें भागवत और राम नाम पर कई आक्षेप किये थे । उन्होंने चिट्ठी लेकर कहा कि अच्छा इस चिट्ठी का उत्तर मैं कल आपको दूंगा परन्तु कल उत्तर तो क्या वह दूसरे दिन प्रात:काल ही वहां से बोरिया-बिस्तर बांध कर भाग गये । शाहपुरा की गद्दी के सबसे बड़े महन्त वही थे ।

फिर वहां दिल्ली के एक पण्डित जो हरिश्चन्द्र जी के गुरुभाई थे, उनसे शास्त्रार्थ हुआ । मनुस्मृति और उपनिषदों के प्रमाणों पर शास्त्रार्थ होता रहा जिससे वह बहुत प्रसन्न हुए । एक दिन का निमंत्रण भी दिया ।

जैनियों में से कई लोग आते थे । एक बच्चूलाल सरावगी[३२] थे, उन्होंने तीन दिन महाराज से शास्त्रार्थ किया । अन्त में उसने नमस्कार करके कहा कि आप जो कहते हैं वह यथार्थ है । धन्नालाल व अमृतसिंह आदि जैनी लोगों से भी चर्चा हुई । धन्नालाल ने उनसे कुछ प्रश्न किये थे । स्वामी जी ने उसका कागज या पुस्तक रख ली थी कि तुम फिर यहां आना क्योंकि तुम नास्तिक हो, हम तुम्हें भली भांति हृदयंगम करावेंगे । वह फिर सामने तो न आया परन्तु डिप्टी कमिश्नर साहब बहादुर के पास जाकर प्रार्थना-पत्र दिया । उन्होंने राय दौलतराम साहब मुख्य अमीन से कहा कि इसकी पुस्तक दिलवा दो, उन्होंने आकर दिला दी । परन्तु धन्नालाल फिर न तो कुछ उत्तर दे सका और न सामने आया ।

स्त्रियों को उपदेश नहीं करते थे, शिवमूर्ति का खण्डन और केवल शिव का उपदेश करते थे—ला० मूलचन्द ने कहा कि इसी समय का वर्णन है कि बाग में हम कुछ मनुष्य स्वामी जी के पास बैठे हुए थे । अकस्मात् कुछ स्त्रियां आ गईं । चूंकि वह मार्ग में थे वह भी दर्शन को आ गईं । स्वामी जी ने पूछा कि माइयो ! कहां गई थीं ? उन्होंने कहा कि रामस्नेही[३३] साधुओं के पास गई थीं । स्वामी जी ने पूछा कि क्यों गई थीं ? उन्होंने कहा कि यदि आप कहें तो आपके पास आ जाया करें । स्वामी जी ने कहा कि हमारे पास तुम्हारा क्या प्रयोजन ? उन्होंने कहा कि हम कुछ उपदेश लेना चाहती हैं । स्वामी जी ने कहा कि यदि तुम्हारा यही प्रयोजन है तो हम तुमको उपदेश नहीं कर सकते, अपने पतियों को भेज दो, उनको उपदेश करेंगे, तुम्हारे को उपदेश नहीं दे सकते । स्त्री को उपदेश नहीं करते थे और न पास आने देते थे । जती-सती व्यक्ति थे । उस समय मूर्तिपूजा का निषेध करते और शिव की मूर्ति का खंडन करते थे । केवल शिव का उपदेश करते थे ।

पंडित वृद्धिचन्द्र ने कहा कि अजमेर में भी स्वामी जी ने कंठियां उतरवाई थीं । अजमेर के समीपस्थ स्थान साव्वर[३४] के ठाकुर साहब भी स्वामी जी से अजमेर में मिलने आते थे और स्वामी जी के उपदेश से उन्होंने कंठी उतार दी थी । अजमेर में छ: मनुष्यों की रसोई हुआ करती थी । एक बूढ़ा नब्बे वर्ष का संस्कृतज्ञ ब्रह्मचारी जिसकी भवें श्वेत थीं स्वामी जी के पास अजमेर में रहता था ।

किशनगढ़ और जयपुर में

अजमेर से चलकर किशनगढ़ में पड़ाव—जब अजमेर से चले तो पंडित वृद्धिचन्द्र जी एक बैलगाड़ी में स्वामी जी को और एक ऊंट पर उनका सामान रखकर उन्हें किशनगढ़ लाये। पंडित शिवनारायण वैद्य जो उनसे विद्या पढ़ता था वह भी साथ आया, शेष सब लौट गये। जब किशनगढ़ में मैं वृद्धिचन्द्र उनको लाया तो शुभ-सागर[३५] के तट पर उतारा था। यहां कृष्णवल्लभ जी जोशी दायमा ब्राह्मण जो एक अच्छे विद्वान् पंडित थे और एक महेशदास ओसवाल स्वामी जी से बहुत प्रीति करते थे। यह महेशदास संस्कृत और भागवतादि के विशेष ज्ञाता थे और यहां की मां जी साहबा के दीवान थे। एक दिन महेशदास के यहां से भोजन भी आया था।

किशनगढ़ में हुंकार

"शस्त्रार्थ में भी मैं पीछे नहीं हटूंगा" किशनगढ़ में हुंकार—यहां के राजासाहब वल्लभ कुल के सेवक हैं और स्वामी जी वल्लभ कुल के प्रसिद्ध विरोधियों में से थे। स्वामी जी यहां आकर पूर्ववत् खंडन करते रहे। तब यहां के राजासाहब पृथ्वीसिंह जी के कहने से ठाकुर गोपालसिंह जी जिन्हें उस्ताद जी भी कहते थे, तीस चालीस मनुष्यों और पांच राजसी पंडितों सहित वहां गये जहां स्वामी जी उतरे हुए थे। उनका विचार हल्ला करने का और स्वामी जी को अपमानित करने का अथवा रोकने का था। स्वामी जी ने उनको आते देखकर मुझ वृद्धिचन्द्र से कहा चलो हम तुम शौच को चलते हैं। हम जंगल से लौटकर उनसे बातचीत करेंगे। पांच बजे शाम का समय था जब हम गये और लौटकर स्वामी जी ने स्नान किया और तिलक भभूत लगाकर एक काष्ठ के आसन पर आ बैठे। वह लोग भी जाजम पर पास आकर बैठे। तब स्वामी जी ने उनसे साधारणतया पूछा कि आप जो आये हैं क्यों आये हैं? उनमें से वल्लभ मत के एक पंडित ने एक पुस्तक के कुछ पृष्ठ लेकर स्वामी जी के सामने किये। स्वामी जी ने कहा कि तुम पढ़ो, हम उत्तर देंगे। पंडित ने पढ़े जिनमें यह लिखा था कि हमारा मत अर्थात् वल्लभमत सनातन मत है, हम सीधे मार्ग पर हैं और भोजन हमारा ठीक है। स्वामी जी ने सब सुनने के पश्चात् उनका खंडन किया जिसपर वह कोई उत्तर न दे सके। तब उन्होंने हल्ला करने का निश्चय किया। यह दशा देखकर स्वामी जी आसन पर खड़े हो गये और कहा कि 'यह मत समझो कि मैं अकेला हूं और अकेला होने पर भी तुम सबके लिए पर्याप्त हूं। तुमको यदि शास्त्रार्थ करना है तो भी तैयार हूं और शस्त्रार्थ से भी मैं पीछे नहीं हूं।' इतने में हमारी जाति के मनुष्य जो सनातन से संन्यासियों के सेवक हैं ३० या ४० की संख्या में स्वामी जी की सहायता को पहुंच गये, जिस पर वह लोग भी बिना किसी प्रकार का उपद्रव किये चले गये। स्वामी जी के यहां आने के यह दूसरे दिन की बात है। इसके पश्चात् स्वामी जी तीसरे दिन अर्थात् पांचवें दिन जाने पर उद्यत हुए। पंडित रूपराम जी भी साथ थे।

किशनगढ़ से आकर दूदू में तीन दिन, फिर बगरू होते हुए जयपुर पहुंचे—वहां से किराये की गाड़ी करके दूदू आये और वहां महलों में डेरा किया। वहां तीन दिन रहकर और साधारण उपदेश देते हुए बगरू में आ गये। वहां केवल एक रात बगीचे में रहकर यहां आ गये, अर्थात् जयपुर में ठाकुर साहब अचरौल के बगीचे में और पूर्व की भांति उपदेश प्रारम्भ कर दिया।

स्वयं न चाहते हुए भी सबके आग्रह पर जयपुर-महाराजा से महलों में मिलने गये फिर भी महाराजा द्वारा उपेक्षा—ठाकुर रणजीतसिंह जी ने महाराजा रामसिंह जी को सूचना भेजी कि स्वामी जी महाराज पुष्कर से यहां पर आ गये हैं। महाराजा रामसिंह जी ने व्यास बख्शीराम को भेजकर निवेदन कराया कि आप महलों में पधारें, महाराज आपका दर्शन करना चाहते हैं। इस पर स्वामी जी ने उत्तर दिया कि व्यास जी! आप अच्छी प्रकार से जानते हैं कि मैं महलों में जाने की कुछ भी इच्छा नहीं रखता, यदि महाराजा को कुछ सम्भाषण करना हो तो किसी समय कुछ काल के लिए यहां ही पधार

आवें, मेरी रुचि महलों में जाने की नहीं है। व्यास जी ने इसी प्रकार महलों में आकर महाराजा से निवेदन किया। तत्पश्चात् रामसिंह जी महाराजा ने ठाकुर रणजीतसिंह जी से कहा कि आप स्वामी जी को महलों में लावें। ठाकुर साहब ने स्वीकार किया और बहुत से प्रतिष्ठित पुरुषों को साथ ले स्वामी जी के पास गये कि एक बार आप महलों में अवश्य पधारें। उनके निवेदन को स्वामी जी अंगीकार कर महलों में पधारे और मौज मन्दिर में जाकर विराजमान हुए। वहां पर सब राजपंडित उपस्थित थे। दैवयोग से रामसिंह जी महाराजा किसी कार्यवश रनवास में चले गये थे। इतने में एक शिष्य ने आकर कहा कि महाराजा तो इस समय रनवास में पधार गये हैं और अभी आना नहीं होगा। यह सुनकर सम्पूर्ण जागीरदार तथा पंडित लोग वहां से अपने-अपने स्थानों को चले गये और स्वामी जी भी ठाकुर रणजीतसिंह जी के बाग को चले गये। इसके पश्चात् महाराजा रामसिंह जी ने बहुत प्रयत्न किया कि स्वामी जी फिर महलों में पधारें किन्तु स्वामी जी ने अस्वीकार कर दिया और कहा कि अब मैं महलों में नहीं जाऊंगा।

इस बार पुष्कर से लौटते समय ८ अक्तूबर, सन् १८६६ अर्थात् आधे असौज तक जयपुर में रहे फिर वहां से हरिद्वार जाने का निश्चय करके चल पड़े। जब स्वामी जी वहां से चलने लगे तो रामदयाल कामदार व सरदार नब्बतसिंह जी रोने लगे। स्वामी जी ने कहा कि हमने तुमको रोने के लिए उपदेश नहीं दिया, प्रत्युत हमने तो उपदेश हंसने के लिए दिया है। अन्त में स्वामी जी को अत्यन्त आदर सम्मान पूर्वक विदा किया।

आगरा दरबार के समय धर्मप्रचार व 'भागवत खंडन' का वितरण—कार्तिक बदि ९ संवत् १९२३ तदनुसार १ नवम्बर, सन् १८६६ के लगभग आगरा पहुंचे। उन दिनों वहां दरबार की धूमधाम थी जो १० नवम्बर, सन् १८६६ से १९ नवम्बर, सन् १८६६ (तदनुसार शनिवार, कार्तिक शुदि ३ से शुदि १२ संवत् १९२३) तक होने वाला था। दरबार के दिनों में स्वामी जी वहां धर्म प्रचार करते रहे। उन्हीं दिनों एक सात-आठ पृष्ठ का ट्रैक्ट संस्कृत भाषा में भागवत खंडन पर श्री-वैष्णवों के विरुद्ध पंडित ज्वालाप्रसाद भार्गव के प्रेस में कई हजार की संख्या में प्रकाशित कराया। उसकी कई हजार कापियां वहां दरबार में बांटी और शेष कई हजार कापियां हरिद्वार के लिए साथ लेकर मथुरा में पहुंचे। एक रसोइया और पांच विद्यार्थी साथ थे।

अपने गुरु दंडी जी महाराज से मिलकर दो अशर्फियां और एक मलमल का थान भेंट किया और आज्ञा मांगी कि मैं हरिद्वार के कुम्भ पर सत्यधर्म प्रचारार्थ जाता हूं और वह पुस्तक भी दिखलायी। उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से आज्ञा दी और सच्चे हृदय से आशीर्वाद दिया। यह दण्डी महाराज से अन्तिम भेंट थी। बहुत से सन्देह दूर करके मतमतान्तरों के विषय में अपनी नई खोजों का वर्णन किया। सारांश यह कि अच्छी प्रकार शंका समाधान करके स्वामी जी कई दिन पश्चात् हरिद्वार का निश्चय करके मेरठ की ओर चल पड़े।

गोरक्षा तथा वेद के पठन-पाठन की व्यवस्था करने को परम उत्सुक थे—वहां जाकर पंडित गंगाराम जी रईस मेरठ से मिले और देवी के एक मन्दिर में ठहरे। एक ब्रह्मचारी जो कि आत्माराम रिवाड़ी वाले के सम्बन्धी हैं, साथ थे। वेश उस समय यह था अर्थात् दोशाला ओढ़े हुए, जुर्राब पहने हुए और स्फटिक की माला धारण किये हुए थे। **पं० गंगाराम जी कहते हैं** कि उस समय स्वामी जी ने कहा कि हम आगरा से आये हैं। गोरक्षा और वेद के पढ़ाने के बड़े इच्छुक थे। हमको कहा कि हम आगरा आदि के रईसों से प्रबन्ध कर आये हैं; वह इस बात में हमारी सहायता करेंगे, तुम भी सहायता करो। हमने कहा कि यदि राजाओं की सम्मति निजी रूप में लिखकर ला दो तो हमें भी स्वीकार है और प्रसन्नता से सम्मिलित हैं। उस समय यहां सात-आठ दिन रहे थे। हमने कहा कि कृष्णाभ्रक हमने एक ब्रह्मचारी से लिया था जिसके एक चावल से वृद्ध को यौवनशक्ति प्राप्त होती है। सात दिन की सेवनविधि है। स्वामी जी कहने लगे कि कृष्णाभ्रक मेरे पास है, ले

लेना और उन्होंने पुड़िया बांध कर दी । मैंने नहीं ली और कहा कि मुझे सब दिखला दो । उन्होंने अस्वीकार किया परन्तु अन्त में मेरे हठ करने पर मेरे सामने रख दिया और मुझे समझाकर दे दिया । तब मैंने कहा कि कामदेव तो सबको खराब करता है, तुम क्योंकर बचे हो ।

कामज्वर से बचे रहने के उपाय—कहने लगे कि इसकी विधि है, उस विधि से रहे तो कामदेव मन्द हो जाता है । जब चढ़ जाता है तो फिर नहीं उतरता । उन्होंने कहा कि १—एक स्थान पर ठहरे रहो, कहीं नाच या तमाशे में मत जाओ । न स्त्रियों की ओर देखो । निरन्तर अभ्यास करने से यह स्वभाव हो जाता है । २—प्रणव का जप रात-दिन करो, जब बहुत आलस्य हो, सो जाओ; यह सुषुप्ति की निद्रा होती है फिर सुषुप्ति से जो अत्यन्त परिश्रम से थोड़े समय के लिये होती है, दो घण्टे पश्चात् मानवी कल्पना से एक भ्रांति वृक्ष भ्रम का होता है, वह अधिक सोने से होता है । इतना सोकर फिर उठकर भजन प्रारम्भ कर दो और पांच दाने (एक माशे के लगभग) मालकंगनी के प्रात:काल शौचादि से निवृत्त होकर नित्य खा लिया करो । ३—न तो बुरा देखे और न बुरा सुने और न श्रुति दौड़ाये, प्रत्युत केवल ब्रह्म के ध्यान में रहे ।

पारे की भस्म बनाने की अपरीक्षित विधि—मैंने प्रश्न किया कि मुझको रसायन विद्या बतला दो । उन्होंने कहा कि मैंने की नहीं परन्तु एक साधु ने मुझे बतलाई थी, यदि तुमसे हो जावे तो मुझे सूचित करना और यदि मुझसे हो गई तो तुम्हें बतला दूंगा । मूर्ति के विषय में मेरे से कोई बात न की थी, न खंडन की; न मंडन की । विधि रसायन की यह थी :—

भिलावे के वृक्ष को जो एक हाथ के लगभग ऊंचा हो खोजकर उसमें बर्मे से तले तक छिद्र करो । उसमें पारा डालकर फिटकरी और फिर पारा, इस प्रकार भरकर चारों ओर उसको खोदकर उसकी लकड़ी पत्ते आदि चुनकर आग दे दो । जब वह भस्म हो जाये तो उसमें से एक डली निकलेगी । यदि तुमसे हो तो तुम अन्यथा हम बतला देंगे कि हो गया है अथवा नहीं । परन्तु हम समझते हैं कि इसका प्रयत्न करना निरर्थक होगा ।

इसके पश्चात् वह हरिद्वार चले गये और लगभग एक मास पहले अर्थात् १२ मार्च सन् १८६७ तदनुसार फाल्गुन शुदि पड़वा, संवत् १९२३ को वहां पहुंच गये थे ।

श्री स्वामी जी के अनुसंधान का संक्षिप्त विवरण

फाल्गुन, संवत् १९२३ के अन्त तक स्वामी जी ने अनुसंधान करते हुए निम्नलिखित दुर्व्यसनों तथा पापों का बोध कर लिया था कि ये सत्य सनातन वैदिक धर्म और ऋषि-आचार के विरुद्ध हैं :—

(१) समस्त प्रकार की मूर्तिपूजा (२) वाममार्ग (३) वैष्णवों के समस्त सम्प्रदाय (४) चोलीमार्ग (५) बीजमार्ग (६) अवतार (७) कंठी (८) माला (९) तिलक (१०) छाप (११) पुराण और उनकी टीकाएं (१२) उपपुराण (१३) शंख, चक्र, गदा, पद्म को तपा कर शरीर को जलाना (१४) गंगा आदि तीर्थों से मुक्ति मानना (१५) काशी आदि क्षेत्रों से मुक्ति मानना (१६) नामस्मरण से मुक्ति मानना (१७) एकादशी आदि व्रत से मुक्ति-इन सब का खंडन करते थे और निम्नलिखित पुस्तकों के पढ़ने-पढ़ाने का उपदेश देते थे :—

चारों वेद, चार उपवेद, ६ वेदांग, मनुस्मृति, महाभारत, हरिवंश, वाल्मीकि रामायण और तीनों वर्णों को यज्ञोपवीत पहनने के पश्चात् सन्ध्या, गायत्री की आज्ञा देते थे । दो समय सन्ध्या करने का निर्देश करते थे और पंचयज्ञ का उपदेश देते थे ।

अध्याय २

गंगा नदी के तट पर सात वर्ष का जीवन

(फाल्गुन शुदि १, सं० १९२३ से सं० १९३० तदनुसार १२ मार्च, १८६७ से सन् १८७३ ई० तक)[1]

(क) हरिद्वार से रामनगर तक

(फागुन शुदि, १९२३ से आश्विन सं० १९२६ तक)

हरिद्वार, ऋषीकेश, कनखल, लंढौरा, शुकताल, मीरापुर, परीक्षितगढ़, गढमुक्तेश्वर, चाशनी (चासी), रामघाट, सोरों, बदरिया, पटियाली, कम्पिल, कायमगंज, फर्रुखाबाद, अनूपशहर, ताहीरपुर, कर्णवास, अहार, छलेसर, अतरौली बेलोन, नरोली (नरदौली), गढ़िया, अलीगढ़, कासगंज, अम्बागढ़, शाहबाजपुर, ककोड़ा, कायमगंज, शृङ्गीरामपुर, जलालाबाद, कन्नौज, भदूर (बिठूर) मदारपुर, कानपुर शिवराजपुर, प्रयाग, रामनगर।

कुम्भ के अवसर पर स्वामी जी : विभिन्न प्रत्यक्षदर्शियों के वक्तव्य

हरिद्वार में पाखण्ड-खण्डन का सूत्रपात—स्वामी जी विद्या में पूर्ण होकर मतमतान्तरों पर विचार करते हुए कुम्भ की संक्रान्ति से एक मास पूर्व लगभग १२ मार्च, सन् १८६७ को हरिद्वार पधारे। एक विश्वेश्वरानन्द और दूसरे शंकरानन्द स्वामी और ईश्वरीप्रसाद गौड़ ब्राह्मण, दिल्ली निवासी तथा पाँच छः अन्य ब्राह्मण साथ थे। सप्तस्रोत पर बाड़ा बाँध कर और उसमें आठ-दस छप्पर डलवा कर वहाँ डेरा किया और वहाँ एक पताका गाड़ दी जिसका नाम **'पाखंड खण्डिनी'** रखा।

हर की पैड़ियों पर स्नान के माहात्म्य का निषेध—पंडित माधवराम गौड, मूल निवासी जयपुर वर्तमान निवासी फतहगढ ने वर्णन किया कि हम रामघाट से चौबीस के कुम्भ पर हरिद्वार को, मेले से एक मास पूर्व गये थे। स्वामी जी उस समय तक वहाँ पहुँच चुके थे और उपनिषदों की कथा किया करते थे। एक दिन हमने हरिद्वार की पौड़ियों पर जाने का निश्चय किया तो कहने लगे कि मत जाओ, यहीं स्नान करो, वहाँ जाकर क्या करोगे ? कोई माहात्म्य नहीं है। हरिद्वार में प्रायः विद्वान् लोग उनके पास आते और घडी आध घड़ी के संभाषण के पश्चात् चले जाते थे। उस मेले में एक दिन एक ब्रह्मचारी, जो सम्भवतः पंजाब की ओर के थे. स्वामी जी से दो घंटे तक संस्कृत में धर्मचर्चा करते रहे। स्वामी जी ने हरिद्वार में 'भड़ुवा भागवत खडन की सहस्रों प्रतियाँ बाँटी थी और मुझे भी दश बारह बांटने के लिए दी थीं जिनमें से दो मेरे पास विद्यमान हैं और उनमें से एक आपको देता हूँ। (देखो परिशिष्ट स० १) और ऐसा ही **सतनामसिंह निर्मले साधु ने वर्णन किया।**

आत्माराम शुक्ल, पुत्र रामसहाय, रिवाड़ी निवासी, ने वर्णन किया कि मुझे भी **स्वामी जी ने** सैकड़ों पर्चे भागवतखंडन के सारे मेले में बाँटने के लिए दिये थे जिनको मैं कई दिन बांटता **रहा और**

---

१. इस अवधि में स्वामी जी निम्नलिखित विविध स्थानों पर धर्मचर्चा, उपदेश, **सन्ध्योपासना**, शिक्षा, शास्त्रार्थ आदि करते रहे तथा मनुस्मृति भी पढ़ाते रहे। पं० लेखरामजी ने इस **अवधि के वृत्तान्त** विविध सज्जनों के मुखाग्र से सुनकर उन्हीं की भाषा मे अंकित किये हैं। इस समय स्वामी जी **कुछ स्थानों** पर एक से अधिक वार भी गये थे। —सम्पा०

२७२ प्रतियाँ जो बाँटने से मेरे पास रह गई थीं वे अब तक विद्यमान हैं ।[1]

उपहारों का गरीबों में वितरण—पंडित दयाराम सनाढ्य आगरा निवासी ने, जो हरिद्वार में **स्वामी** जी के सत्संग में सम्मिलित होते रहे बताया कि वहां साधारण तथा विशेष विद्वानों में धर्मचर्चा होती रही। जो गृहस्थी लोग स्वामी जी के दर्शनार्थ जाते वे भिन्न-भिन्न वस्तुएं भेंट चढ़ाते थे और सायंकाल तक बहुत कुछ एकत्रित हो जाया करता था। प्रतिदिन सायंकाल को सब एकत्रित पदार्थ स्वामी जी निर्धन लोगों को बांट दिया करते थे, अपने लिए कुछ न रखते थे।

वर्णव्यवस्था की मिथ्या धारणा का निषेध—पंडित बलदेवप्रसाद शुक्ल, फर्रुखाबाद निवासी, कहते हैं कि जब वह पाखंडखंडिनी झंडी गाड़ कर वेदविरुद्ध मतों का खंडन करने लगे तो उस समय उनके पास बहुत सी पुस्तकें थीं और कई संन्यासी साथ थे। इस कुम्भ पर स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती और समस्त प्रख्यात पंडित तथा साधु आये हुए थे। बड़े-बड़े राजा, महाराजा और विशेष कर जम्मू तथा काश्मीर नरेश महाराजा रणवीर सिंह भी पधारे थे। बनारस के प्रसिद्ध विद्वान् स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती यजुर्वेद के मन्त्र '**ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः। ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।।**' (यजुर्वेद० अ० ३१, मं ११) का यह अर्थ करते थे कि ब्राह्मण परमेश्वर के मुख से और क्षत्रिय उसके बाहु से और वैश्य जंघाओं से और शूद्र पांव से उत्पन्न हुए हैं। स्वामी जी ने इस अर्थ का खंडन किया और कहा कि यदि इसका यही अर्थ है तो फिर मुख से खँगार भी तो उत्पन्नहोता है। इसलिए, मुख से उत्पन्न नहीं, प्रत्युतब्राह्मण वर्णों में मुख्य है और क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र क्रमशः बाहु, जंघा और पांव के सदृश हैं। इस पर लोगों ने कहना आरम्भ किया कि यह नास्तिकहै—वेदों का खंडन करता है। स्वामी जी ने मरसक लोगों को समझाने का यत्न किया। जो बुद्धिमान् लोग थे वे तो समझ गये। शेष तो झगड़े को ही अच्छा समझते थे—वे कैसे समझते! इतने में गुसाइयों और विशुद्धानन्द का परस्पर झगड़ा हो गया। गुसाइयों ने विशुद्धानन्द पर नालिश की और वह स्वामी जी से सहायता के लिए आये। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि हम न तुम्हारे और न विशुद्धानन्द के, प्रत्युत सत्य के पक्षपाती हैं। जो वेद में लिखा है उसके अनुयायी हैं। उस समय वहां कैलाशपर्वत भी उपस्थित थे। विशुद्धानन्द ने महाराजा साहब जम्मू व कश्मीर से कहा और महाराजा साहब के प्रयत्न से साहब कलक्टर बहादुर ने वह नालिश खारिज कर दी।

अवधूत अवस्था में रहते थे—सन्त अमीरसिंह जी निर्मला ने जो संस्कृत के अच्छे पंडित हैं वर्णन किया कि जब हम स्वामी जी को हरिद्वार में मिले उस समय वह नग्न अवधूतावस्था में थे। हमने उनसे 'चित्सुखी' ग्रन्थ की एक पंक्ति अनुमान के विषय में पूछी क्योंकि उसके विषय में हमें सन्देह था। स्वामी जी ने उसका स्पष्ट अर्थ करके कहा कि यह आर्ष ग्रन्थ नहीं है और हम इसको प्रमाण नहीं मानते परन्तु आपकी प्रसन्नता के लिए हम इसका शुद्ध अर्थ करते हैं।

उन्हें केवल वेद ही मान्य थे—स्वामी महानन्द सरस्वती, जो उस समय दादूपंथ में थे—इस कुम्भ पर स्वामी जी से मिले। उनकी संस्कृत की अच्छी योग्यता है। वह कहते हैं कि स्वामी जी ने उस समय रुद्राक्ष की माला, जिसमें एक-एक बिल्लौर या स्फटिक का दाना पड़ा हुआ था, पहनी हुई थी; परन्तु धार्मिक रूप में नहीं। हमने वेदों के दर्शन, वहां स्वामी जी के पास किये; उससे पहले वेद नहीं देखे थे। हम बहुत प्रसन्न हुए कि आप वेद का अर्थ जानते हैं। उस समय स्वामी जी वेदों के अतिरिक्त किसी को (स्वतः प्रमाण) न मानते थे।

---

१. लगभग एक सौ कापियां उसने मुझे दीं। —संकलन-कर्त्ता।

मूर्तिपूजा, तीर्थों व अवतारों आदि का खण्डन—स्वामी देवेन्द्र सरस्वती, जो स्वामी शंकरानन्द के शिष्य हैं, वे भी उपस्थित थे। उनका कथन है कि स्वामी जी मूर्तिपूजा, भागवत तथा नवीन सम्प्रदायों का वहाँ बड़ी प्रबलता से खंडन करते रहे। वेदान्त को कदाचित् मानते थे परन्तु तीर्थों, अवतारों, मूर्तियों और व्रतों का प्रबल युक्तियों से खंडन करते थे।

पंडित बस्तीराम प्रसिद्ध विद्वान् कनखल पाठशाला, ने कहा कि मैं स्वामी जी से संवत् १६२४ में मिला था। 'व्याकरण' पर बातचीत होती रही। वह पूर्ण विद्वान् थे और वेद तथा शास्त्र का उनको अच्छा ज्ञान था। मूर्तिपूजा के खंडनादि तथा कुछ और बातों में मेरी उनसे सहमति नहीं।

आर्यजाति के गुरुओं संन्यासी आदि की दुर्दशा देखकर द्रवित हो उठे। दिव्य दृष्टि से देखा—प्रतिमापूजन को ही सारी दुर्गति का आधार पाया—स्वामी रत्नगिरि जी, ने स्थान अजमेर में कहा था कि जब स्वामी जी के दर्शन चौबीस के कुम्भ में हरिद्वार पर हुए तो उनके साथ एक अच्छा डेरा था जो अकस्मात् वन में आग लग जाने से जल गया था। उस समय साधु उमीदगिरि जी की मंडली का डेरा भी जल गया था। स्वामी जी का डेरा सप्तस्रोत पर था जो हरिद्वार से तीन कोस पर ऋषिकेश के मार्ग में है। जो लोग हरिद्वार से ऋषिकेश को जाते थे—गृहस्थी, संन्यासी, निर्मले, वैरागी आदि सब, उनके दर्शन को आया करते थे। विशेष-विशेष गद्दीधारी यद्यपि स्वयं नहीं गये परन्तु अपने विद्वान् शिष्यों को भेजकर शंका समाधान करते रहे। पंडित श्यामसिंह ठाकुरों के डेरे वाले और आत्मस्वरूप अमृतसर वाले और समस्त प्रसिद्ध पंडित चर्चा और वार्तालाप के लिए जाया करते थे।

साधारणतया मेले में साधुओं की अत्यन्त बुरी अवस्था थी। संन्यासी जिनका काम जगत् का सुधार करना था वह गिरि, पुरी, भारती, आरण्य, पर्वत, आश्रम, सरस्वती, सागर, तीर्थ, गुसाईं—इन दस भागों में विभक्त होकर परस्पर गृहयुद्ध में फँसे हुए थे। गुसाईं विवाह करके भगवे बाने को लाज लगा रहे थे क्योंकि कलियुगी लोकोक्ति के अनुसार भोग और योग को मिला रहे थे। वे नाम के त्यागी थे परन्तु वास्तव में गृहस्थियों के बाबा बन रहे थे। मद्यपान, मांसभक्षण, व्यभिचार जो वाममार्ग, चोली-मार्ग और बीजमार्ग के साधन हैं, उन्हें वे 'अहं ब्रह्मास्मि' की तरंग में माता का दुग्ध समझ रहे थे। सत्य का मार्ग भुलाकर स्वयं ब्रह्म बने हुए थे। निर्मले नाम ही के निर्मले थे अन्यथा सत्यधर्म की निर्मलता और उज्ज्वलता से कोसों दूर थे और दूर क्यों न होते, क्या कहीं स्वार्थ में भी पवित्रता हो सकती है? उदासी—उदास तो नहीं प्रत्युत साक्षात् आशा की मूर्ति थे। हाथी, घोडे, रुपहली और स्वर्णमयी झूलें, मखमली तकिये और जरबफ्त (एक प्रकार का बहुमूल्य कपड़ा) के गदेले, सोने के कंगन और चांदी के उगालदान—साराश यह कि सब कुछ पास था। उन्हे देख कर कौन है जो उन्हें उदासी कहे और अपनी मूढ़ता को स्वीकार न करे।

वैरागी—यूँ मुँह से कहने को सब वैराग्य विद्यमान, त्याग विद्यमान, लोगों का धन फूंकने को आग की अंगीठी भी पास में, परन्तु काला अक्षर भैंस बराबर। खाने और पड़े रहने या वैरागिनों में जीवन व्यतीत करने के अतिरिक्त सार्थक वैराग्य का वहां पता नही था। गीता का (मूल) पाठमात्र भी हजारों में से एक को ही याद होगा और अर्थ करोड़ों में से दस बारह जानते होंगे और इस पर भी यह दशा कि ऐसा व्यक्ति ढूंढे से भी अप्राप्य जो तम्बाकू, चरस, भंग अथवा गांजे का सेवन न करता हो। योगी गोरखनाथ के नाम को दूषित करने वाले, कानों में सुनहरी कुंडल डाले कोई किसी गद्दी का महन्त और कोई किसी का। धर्म-कर्म से अपरिचित, योग के पूरे शत्रु, मद्यमाँस के सेवन में चतुर, लोगों के सरलप्रकृति बच्चों के कान फाड़ने में सजग। राजा महाराजा आँख के अन्धे, गाँठ के पूरे, इसी प्रकार

के सण्ड-मुसंडों के चेले और अनुयायी, तन, मन, धन, गुसाईं और गुरु जी के अर्पण करने वाले, चाटुकार और भीरु दरबारियों के संसर्ग में दिनरात रहकर धर्म और संसार से बेसुध, अफीम के गोले चलाने में निपुण साधुओं का अविद्यान्धकार में फसना और गृहस्थियों का विनाश, राजाओं की मूर्खों से संगति और विद्वानों के प्रति उपेक्षा; विद्वानों का मौनधारण और सत्य का प्रकाश न करना और इस पर एक सत्यप्रिय तथा सत्यवादी की निन्दा, यह सब देखकर स्वामी जी का चित्त अत्यन्त उत्तेजित हुआ, हृदय भर आया। समस्त भारत निवासियों के प्रतिनिधियों के रूप में जो प्रत्येक प्रकार के मनुष्य वहां उपस्थित थे उनको और समस्त मेले को उनके मर्मज्ञ स्वभाव और मनुष्य को पहचानने वाली आंखों ने दिव्य और सूक्ष्म दृष्टि से देखा और प्रत्येक को मूर्तिपूजा तथा सृष्टिपूजा से डूबा हुआ देखकर अत्यन्त दुःखित हुए। ऋषि-मुनियों की संतान और व्यास और कपिल के वंशजों को प्रतिमापूजन करते देखकर उनके मन में तीव्र वैराग्य उत्पन्न हुआ।

परोपकार के लिए पूर्णाहुति

देश का सुधार ही एकमात्र लक्ष्य—पंडितों का वैदिकधर्म की ओर से प्रमाद और उपेक्षा और ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों को ईसाई और मुसलमान होते देखकर और सुनकर उनका दयालु हृदय स्थिर न रह सका और उन्होंने यह न चाहा कि मैं भी इन सब के साथ मिलकर इन्हीं का अनुकरण करता चला जाऊँ। बार-बार देखा और कई बार देखा, विचार किया और सोचा, एक दिन नहीं, प्रत्युत कई दिन। पर्वी के दस बारह दिन पश्चात् तक सोचते रहे। अन्त को उनके सत्यप्रिय स्वभाव ने अत्यन्त दुःखभरे शब्दों में यह सम्मति दी कि तू औरों की भाँति प्रमाद मत कर। रोग को जानकर उसकी चिकित्सा में प्रमाद करना भयानक पाप है। तुझे परमेश्वर ने आंखें दी हैं, तू सत्यधर्म के महत्त्व को जान चुका है, उठ! खड़ा हो और सोते हुओं को जगा, साहस से काम ले क्योंकि जो औरों की सहायता करता है ईश्वर उसके सहायक होते है। 'परोपकाराय सतां विभूतयः।' यह विचार दृढ़ होते ही व्याख्यान देते-देते एका-एक दिल भर आया। व्याख्यान की समाप्ति पर 'सर्वं वै पूर्णं स्वाहा' कहके अपना सब कुछ त्याग दिया। पुस्तक, बर्तन, पीताम्बरी धोतियाँ, रेशमी वस्त्र, दुशाले और ऊनी कपड़े, रुपया पैसा आदि जो कुछ था—वह सब जो जिसके योग्य देखा उसे बांट दिया।

उस समय स्वामी कैलाशपर्वत ने उनसे कहा कि तुम ऐसा क्यों करते हो? उत्तर दिया कि हम स्पष्ट कहना चाहते हैं और निर्भय हुए बिना स्पष्ट कहना सम्भव नहीं है। जब तक हम अपनी आवश्यकताओं को कम न करेंगे अपनी अभिलाषा को पूरा नहीं कर सकेंगे।

पण्डित दयाराम ने कहा कि जब मेला हो गया तो मेले के दस-ग्यारह दिन पश्चात् सब प्रकार के सांसारिक झंझटों को त्याग कर, पूर्ण वैराग्यवान् हो, नग्न, एक लंगोट रखकर, एक पुस्तक महाभाष्य और ३५ रुपये रोकड़ा और एक थान मलमल, हमको देकर कहा कि स्वामी विरजानन्द जी के पास मथुरा में पहुँचा दो और स्वयं यह प्रण करके कि जब तक हमारी अभिलाषा पूर्ण न हो संस्कृतभाषण करते रहेंगे और गंगातट पर विचरेंगे—शेष सब कुछ बांटकर गंगातट पर चल पड़े। हमने ये वस्तुएँ मथुरा में दंडी जी महाराज को पहुँचा दीं और हरिद्वार का सारा वृत्तांत उनको सुनाया। वह सुनकर मौन हो गये।

जोशी रूपराम कहते हैं कि स्वामी जी ने हरिद्वार पहुँच कर एक चिट्ठी ठाकुर रणजीतसिंह, रईस अचरौल के नाम भेजी; जिस पर सरदार ने मुझे आज्ञा दी कि तुम वहां जाओ और दो अशर्फी भेंट के लिए दीं। परन्तु जब मैं पहुँचा तो उससे पहले ही स्वामी जी सब वस्तुएं लोगों को बांट चुके थे। केवल

एक माला और एक दुर्गा की पुस्तक शेष थी। मुझे दस रुपये देने लगे, मैंने रुपये तो नहीं लिए परन्तु माला और पुस्तक ले ली।

स्वामी रत्नगिरि कहते हैं कि जब स्वामी जी ने सब कुछ त्याग कर गंगा के तट पर विचरने का प्रण किया तो उस समय सब महात्मा साधु लोग यही कहते थे कि जो बात दयानन्द कहते हैं अर्थात् मूर्ति-पूजा और पुराणों का झूठा होना और सम्प्रदायों का मिथ्यापन—यह है तो सत्य परन्तु खुल खेलना अर्थात् संसार की रीति के विरुद्ध चलना अच्छा नहीं।

ऋषिकेश से गढ़मुक्तेश्वर तक—प्रथम **ऋषिकेश** की ओर गये और पांच-छः दिन में लौटकर दक्षिण की ओर चल पड़े। **हरिद्वार** से चल कर **कनखल** होते हुए गंगातीर पर स्थित **'लंढौरा'** पहुँचे। तीन दिन से कुछ न खाया था, अब जब बहुत भूख लगी तो एक खेतवाले से कहा उसने तीन बैंगन दिये—वही खाकर मन को तृप्त किया।

वहाँ से **'शुक्रताल'** गये जहाँ लोग कहते हैं कि शुकदेव ने कथा सुनाई थी। फिर **परीक्षितगढ़** और फिर **गढ़मुक्तेश्वर** आये। वहाँ पन्द्रह दिन रहे, बालू में दिनरात पड़े रहते थे। वहां के पंडितों से शास्त्रार्थ हुआ। रुड़की से बीस कोस इधर **मीरांपुर** में भी किसी से दो दिन शास्त्रार्थ हुआ था।

कर्णवास में आगमन : सभाजयी की धूम मच गई

फिर सीधे गंगा के किनारे चलते-चलते वैशाख शुक्ला, संवत् १९२४ तदनुसार मई मास, सन् १८६७ में कर्णवास पहुँचे। **ठाकुर शेरसिंह जी कर्णवास** निवासी लिखते हैं कि इस बार केवल एक दिन ठहर कर चले गये और उसी संवत् के अषाढ शुदि ५ (६ जौलाई) को **पंडित टीकाराम शास्त्री** ने रामघाट में दर्शन किया और वार्तालाप हुआ। उन्होंने वहां से आकर ठाकुर गोपालसिंह जी से कहा कि एक दिगंबर संन्यासी गंगा किनारे बनखंडी पर मिले और हरिद्वार के कुम्भ में सभा जीत कर आये हैं, संस्कृत वाणी बोलते और बड़े विद्वान् हैं। मूर्तिपूजा, अवतार, कंठी, माला, तिलक, भागवत, सम्प्रदाय आदि को मिथ्या और पाखण्ड बतलाते है। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य की एक ही गायत्री कहते है—हम उनको यहां बुला आये हैं। यह सुनकर ठाकुर धर्मसिंह (जो पंडित टीकाराम जी से व्याकरण पढ़े थे और अच्छे व्याकरणी थे) और ठाकुर गोपालसिंह की परस्पर सम्मति से पंडित टीकाराम जी को बुलाने भेजा गया परन्तु श्री स्वामी जी महाराज उसी दिन कर्णवास पक्के घाट पर गंगा किनारे आ गये और पंडित भगवान-दास, भागवती-पण्डित ने भोजनादि से सेवा सत्कार किया। हम लोगों को पंडित टीकाराम जी ने दूसरे दिन रामघाट से लौट कर स्वामी जी के यहां पधारने की सूचना दी। हम लोग पक्के घाट पर स्वामी जी के पास पहुँचे—देखा कि नागा बाबा की मढी, जो खाली पड़ी थी, उसके आगे बसेन्दू वृक्ष की छाया में गंगा-रज लगाये अकेले लंगोटी बांधे महाराज विराजमान हैं। पंडित टीकाराम जी को हमारे साथ देख कर स्वामी जी प्रसन्न हुए और व्याकरण के जानने वाले ठाकुर धर्मसिंह ने संस्कृत में स्वामी जी महाराज को अपना नाम और जाति कहकर अभिवादन किया। स्वामी जी ने प्रत्युत्तर दिया और अति प्रसन्न होकर हम लोगों से प्रेमपूर्वक वार्तालाप किया। उस दिन दर्शन करके कुछ समय पीछे हम लोग चले आये। अब गांव में चर्चा फैली कि बड़े भारी महात्मा और संस्कृत के पंडित आये हैं। पहले कभी न देखे गये न सुने गये। इसी आन्दोलन में स्वामी जी महाराज को श्रावणमास बीतकर आधा भादों आ गया और पंडित टीकाराम जी स्वामी जी से मनुस्मृति और उपनिषदादि पढ़ते और विचारते रहे। इसी अन्तर में पंडित भगवानदास भागवती से एक दिन स्वामी जी महाराज ने कंठी-तिलक धारण करने का साधारण प्रकार से निषेध किया। वह सुनकर चुपके ही चले आये और ग्राम में आकर स्वामी जी के विरुद्ध उद्योग

करना चाहा। आश्विन के महीने में बाहर के आये हुए पंडितों से भगवानदास ने स्वामी जी के निषेध का सम्पूर्ण वृत्तान्त विरोधी बनकर कह सुनाया। तब तो ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में स्वामी जी की बड़े आश्चर्य के साथ चर्चा फैली और दानपुर के पंडित निद्धालाल जी तथा अहमदगढ़ के पंडित कमलनयन जी शरत् पूर्णिमा को स्नान करने आये स्वामी जी के दर्शन किये और कुछ शास्त्रविचार भी हुआ।

विजय का सूत्रपात

अम्बादत्त वैद्य से शास्त्रार्थ, प्रायश्चित्त तथा ब्राह्मणों और क्षत्रियों का सामूहिक यज्ञोपवीत संस्कार—उन दोनों पंडितों ने नन्दकिशोर उपाध्याय कर्णवास वाले से कहा कि पंडित अम्बादत्त वैद्य अनूपशहर निवासी को बुलाकर उनसे शास्त्रार्थ कराया जाय। तब तो भले ही अर्थ सिद्ध हो, नहीं तो किसी अन्य (दूसरे व्यक्ति) से कुछ नहीं होगा। यह सुनकर उन्होंने पंडित अम्बादत्त जी को बुलाया और स्वामी जी से संस्कृत मे शास्त्रार्थ हुआ। पंडित अम्बादत्त जी ने स्वामी जी महाराज के कथन को स्वीकार कर कहा कि श्री पंडित हीरावल्लभ जी पर्वती जो ऋग्वेदपाठी और व्याकरणी हैं, वे इन बातों को मान लें तो निश्चय हो जाये। परन्तु पंडित अम्बादत्त जी की व्यवस्था देते ही और ढंग हो गया। हम ठाकुर लोग स्वामी जी से प्रार्थी हुए कि जो कर्म बतलाया जाये उसे करने को (हम) उद्यत हैं। स्वामी जी महाराज ने हम लोगों में जिनकी आयु अधिक थी, उनको प्रायश्चित्त करने को कहा और सब का यज्ञोपवीतसंस्कार कराने की आज्ञा दी। स्वामी जी की आज्ञानुसार अनूपशहर, दानपुर, कर्णवास, अहमदगढ़, रामघाट, जहाँगीराबाद से अनुमानतः चालीस के लगभग विद्वान् ब्राह्मण गायत्री का जाप करने के लिए बुलाये गये और जप आधे शुक्लपक्ष तक पूरा हुआ। तदुपरान्त वहीं स्वामी जी की कुटिया पर कुंड बनाया गया और अनूपशहर के दर्शनी [दर्शनों के विद्वान् ?] व पर्वती कर्मकांडी वेदपाठी ब्राह्मणों को ब्रह्मा, होता, ऋत्विज आदि बनाकर यज्ञ प्रारम्भ हुआ और सबको उसी यज्ञ में यज्ञोपवीतसंस्कार के पश्चात् गायत्री मंत्र का उपदेश दिया गया। उस यज्ञ में [यज्ञोपवीत लेने वाले] केवल मिठ्ठनलाल विद्यार्थी, पंडित टीकाराम शास्त्री जी का भाई, ब्राह्मण थे; शेष सब लोग क्षत्रिय थे अर्थात् श्रीमान् ठाकुर गोपालसिंह व उनके भाई ठाकुर कृष्णसिंह जी व रघुनन्दनसिंह जी और उनके पुत्र खूबसिंह जी व भूमसिंह जी और ठाकुर खोडरसिंह जी, ठाकुर दीवान जी, तोताराम व इन्द्रसिंह, कैथलसिंह जी, हरिमाया, मुन्शी गोपालसिंहजी शानी और मै अर्थात् ठाकुर शेरसिंह, संस्कृत हुए (हमारा संस्कार हुआ)। यज्ञ की समाप्ति पर यज्ञशेष बांटा गया और हम सबने अपनी सामर्थ्यानुसार जपकर्ता तथा यज्ञकर्ता को दक्षिणा अर्पण की। उसी यज्ञ में हमारे कुलगुरु कुमर जी नामक पंडित और उनके छोटे भाई पण्डित हीरालाल जी (तिलक कंठी तोड़) पहुँच कर हमारे साथ दीक्षित हुए थे और इस यज्ञ को, उस समय, क्षत्रियों को बहुत दिनों से छूटे हुए संस्कार को फिर से कराने वाला तथा श्री स्वामी जी महाराज की विजय को सूर्योदय की भांति प्रकाशित करने वाला, कहना उचित है। उस समय के आनन्द और आह्लाद का वर्णन नहीं किया जा सकता। इस कर्म से एक अपूर्व अग्नि प्रज्वलित हो उठी अर्थात् इस यज्ञ से धर्मात्माओं के मृत हृदयों में धर्म की अभिनव अग्नि जल उठी और क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य चारों ओर से आ-आकर संस्कार कराने लगे और स्वामी जी महाराज भी निर्भय और निःशंक होकर आठों गप्पों[1] का खंडन करने लगे।

---

१. इन आठ गप्पों का स्वामी जी खंडन करते रहे अर्थात् इन आठ बुराइयों का नाम उन्होंने आठ गप्पें रक्खा था। प्रथम यह कि अठारह पुराण जो व्यासजी के नाम से जाली बनाये हुए हैं वे अशुद्ध और अप्रमाण हैं। दूसरी मूर्ति-पूजा, तीसरी (बुराई) सम्प्रदाय; (अर्थात्) शैव, गणपति, रामानुज आदि सब अनुचित और कृत्रिम हैं। चौथी बुराई तन्त्रग्रन्थ वाममार्ग आदि। पांचवी मादक द्रव्यों का सेवन। छठी बुराई व्यभिचार। सातवीं बुराई चोरी। आठवीं असत्य-भाषण, धोखा देना, कृतघ्नता—ये आठ गप्प अर्थात् बुराइयाँ हैं; इन्हें छोड़ना चाहिए।

हीरावल्लभ शास्त्री से छः दिन धर्म-चर्चा, शास्त्री जी द्वारा सत्यग्रहण, मूर्तित्याग और वेद-प्रतिष्ठा—पौष के महीने में पडित हीरावल्लभ पर्वती शास्त्री, स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने अनूपशहर से आये। उस दिन लगभग दो हजार मनुष्यों की भीड़ थी। पडित हीरावल्लभ जी सभा के मध्य में एक छोटे से सुन्दर सिंहासन पर बालमुकुन्द, गोमतीचक्र, शालिग्राम आदि की मूर्तियाँ रखकर यह प्रतिज्ञा करके बैठे कि स्वामी जी महाराज के हाथ से (भोग लगवा कर) उठूँगा; परन्तु वह दिन दोनों के धारा-प्रवाह संस्कृत बोलने में समाप्त हुआ और इसी प्रकार छः दिन पर्य्यन्त धर्मचर्चा होती रही। कई-कई श्रोता प्रतिदिन नये-नये आते जाते रहे। अन्त में हम सब सभास्थ लोगों के सामने श्रीमत् पण्डित द्रव्योपस्थापक (मूर्तिपूजक) शास्त्री हीरावल्लभ पर्वती ने खड़े होकर श्रीमान् विद्वान् योगिराज श्री १०८ स्वामी दयानन्द जी महाराज की संस्कृत में स्तुति कर प्रणाम किया और बड़े उच्च स्वर से हम सब सभास्थों को सुनाकर कहा कि स्वामी जी महाराज जो कुछ कहते हैं वह सब सत्य और प्रामाणिक है। इसके पश्चात् वह सिंहासन, जिस पर अटरा-बटरा आदि रखी थीं—उठाकर सब मूर्तिया गंगा में डाल दीं और फिर उसी सिंहासन पर वेद भगवान् को प्रतिष्ठित किया। यह देख स्वामी जी महाराज ने शास्त्री जी के सत्य ग्रहण करने और मिथ्या के त्यागने की बड़ी प्रशंसा की। फिर क्या था पोल खुल गई, चोरी पकडी गई, मिथ्या-ग्राही निराश और हतोत्साह होकर अपने-अपने घरो को चले गये।

माघमास के अन्त में प्रस्थान, कानपुर चले गये—और स्वामी जी महाराज भी माघमास के अन्त मे अर्थात् ८ फरवरी, सन् १८६८ को वहाँ से चलकर भ्रमण करते हुए **रामघाट, सोरों, पटियाली, कंपिला फर्रुखाबाद, कानपुर** तक चले गये।

२० मई सन् १८६८ में फिर कर्णवास में—ज्येष्ठ बदि १३ सवत् १६२५ तदनुसार २० मई, सन् १८६८ को कर्णवास में उसी कुटिया पर फिर आ विराजमान हुए। और ज्येष्ठ शुदि १० तदनुसार ३१ मई, सन् १८६८ को यहा गगास्नान का मेला था।

कर्णवास में राव कर्णसिंह की उद्दंडता

पहली भेट में राव कर्णसिंह की धमकी, कई लोगों द्वारा वर्णन : तिलक, गंगापूजन, मूर्तिपूजा का खण्डन करते थे; रंगाचार्य से शास्त्रार्थ का आह्वान—उस मेले पर इस ओर के किसान लोग बहुत इकट्ठे होते है और बरौली के रईस राव कर्णसिंह बड़गूजर (ठाकुर) क्षत्रिय सदा गंगास्नान को आते थे। उस वर्ष भी आये और स्वामी जी से मिले। यह क्षत्रिय थोड़े ही दिन पहले लालच के वश मे रंगाचार्य्य के शिष्य होकर दग्ध (चक्रांकित) हो चुके थे और गंगा की बड़ी भक्ति से आराधना करते थे। उनके और उनके साथियों के खड़े तिलक और रामपटा का चक्रांकित तिलक देखकर स्वामी जी महारज हँसे और बड़े आदर-सत्कार से बैठने को कहा परन्तु रईस साहब स्वामी जी के उद्देश्य को पहले ही से सुन चुके थे (क्योंकि वह इसी कस्बे कर्णवास में ब्याहे हुए हैं)। मुख को कुछ थोडा सा बिगाड़कर बोले कि कहां बैठें? स्वामी जी ने आज्ञा दी कि जहाँ इच्छा हो। इस पर रईस ने कहा कि जहां तुम बैठे हो उस स्थान पर बैठेंगे। स्वामी जी महाराज शीतलपाटी के एक सिरे की ओर हट कर कहने लगे-कि आइये बैठिये। बैठते ही रईस ने क्रोध-भरे वाक्यो से कहा कि 'बाबा जी! तुम्हारा यह गंगा आदि को न मानना अच्छा नहीं। यदि हमारे सामने कुछ खंडन-मंडन की बातें की तो बुरा परिणाम होगा।' स्वामी जी महाराज ने उनके कटु वाक्यों को सहन कर और किंचित् भी चिन्ता न करते हुए, सिहवत् शृगाल से कुछ भी भयभीत न होकर, बड़ी गम्भीरता, शान्ति और मधुर वाक्यों से धर्म का उपदेश करते हुए चक्रांकित मत का भी भली प्रकार खंडन किया और कहा कि तुम अपने रंगाचार्य को शास्त्रार्थ के निमित्त उद्यत

करो। हम उनके सम्प्रदाय का खंडन करने को तैयार हैं। यह सुन रईस ने कुपित हो मूर्खता में आ कुछ दो-एक कटु वाक्य कहे। इन पर ठाकुर किशनसिंह जी ने बड़ी शूरता से उसी समय रईस से कहा कि "बस! अब आगे कुछ बका तो ये आपकी जिह्वा भारी मारपीट करा देगी। भले मनुष्यों की सभा में योग्य बोलना चाहिये। आप धर्मोपदेश कर रहे महात्मा को कटु वाक्य न कहिये। यदि सुनना नहीं चाहते तो चले जाइये" यह तीव्र वचन सुनकर रईस बरौली चुपके से उठकर अपने डेरे को चले गये और सभास्थ लोगों ने रईस की बड़ी निन्दा की परन्तु स्वामी जी महाराज ने इतना कह कर बस किया---

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः। तस्माद् धर्मो न हातव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्॥
और फिर वैसा उपदेश करने लगे।

(इसी वृतान्त को)—पंडित भूमित्र जी कहते हैं कि जब राव कर्णसिंह रईस बरौली यहाँ गंगास्नान के अवसर पर स्वामी जी के दर्शन को आये तो स्वामी जी ने देखकर संस्कृत में कहा कि तुम ने क्षत्रिय होकर यह चंडाल की सी आकृति क्यों कर ली? उसने न समझा और कहा कि मैं समझा नहीं हूँ। स्वामी जी ने गुरु टीकाराम को कहा कि तुम समझा दो। वह डरने लगे क्योंकि उसके साथ दस बारह शस्त्रधारी मनुष्य थे। स्वामी जी ने झिड़क कर कहा कि तुम भय मत करो, जैसा मैंने कहा है वैसा ही समझा दो। इसलिए टीकाराम ने उसको भाषा में समझा दिया कि स्वामी जी महाराज यह कहते हैं कि आपने क्षत्रियों का धर्म छोड़कर यह भिखारियों का चिह्न मस्तक पर क्यों धारण किया हुआ है? परन्तु वह समझ गया और एकाएक लाल-पीला होकर स्वामी जी को गाली देने लगा। स्वामी जी उसकी गाली को सुनकर हँसकर कहने लगे कि यदि तुम शस्त्रार्थ करना चाहते हो तो जयपुर, धौलपुर के राजाओं के साथ जा लड़ो और यदि शास्त्रार्थ करना चाहते हो तो अपने गुरु रंगाचार्य को वृन्दावन से बुला लो और शास्त्रार्थ कराओ और ताम्रपत्र पर अपने गुरु की और मेरी यह प्रतिज्ञा लिखवाओ कि यदि तुम्हारा वह मत झूठा है तो रंगाचार्य सात जन्म नरक में रहे और यदि मेरा वेदोक्त मत झूठा हो तो मैं सात जन्म तक नरक निवास करूँ। अन्यथा यह तुम्हारी मूर्खता है कि जो तुम बे-समझे-बूझे बालकों के समान व्यवहार करते हो। इस पर वह और भी अधिक मारपीट को उद्यत हुआ और (उसने) तलवार की मूठ पर हाथ रखा। उसके साथ बलदेव प्रसाद पहलवान था उसने कहा कि नहीं मैं इसको ठीक करता हूँ। वह आगे बढ़ा और स्वामी जी पर हाथ डालना चाहा परन्तु स्वामी जी ने ज्योंही उसके हाथ को पकड़कर धक्का (झटका) दिया, वह पीछे जा पड़ा। उस समय स्वामी जी ने कहा कि 'रे धूर्त!'। इस पर ठाकुर किशनसिंह जी लट्ठ लेकर खड़े हो गये और कहा कि यदि तुम महात्मा को तनिक भी छेड़ोगे तो मारे लट्ठों के तुम्हारा अभिमान चूर्ण कर देंगे। इसलिए वे दुम दबाकर वहां से चल दिये। उस समय स्वामी जी के पास पचास के लगभग मनुष्य बैठे हुए थे।

पंडित कृष्णवल्लभ, पुजारी मन्दिर कर्णवास ने इस वृत्तान्त को इस प्रकार वर्णन किया---'राव साहब स्वामी जी के पास गये। बातचीत के बीच में कहा कि 'तुम महाराज रंगाचार्य के सामने कीड़े के तुल्य हो और फिर कहा कि तुझसे उसके आगे जूतियां उठाते हैं।' स्वामी जी ने कहा कि 'रंगाचार्यस्य का गणना मम समीपे एक आगतः सहस्रा आगता लक्षा आगताः, शास्त्रार्थं कुरु'। उसने फिर उसकी अनुचित प्रशंसा की और स्वामी जी को कटुवाक्य ही नहीं कहे प्रत्युत बुरी गालियां दीं। उस समय वीरासन पर बैठे हुए थे: एक हाथ तलवार की मूठ पर था और दूसरा हाथ कभी मूठ पर और कभी उनकी ओर संकेत करता था। एक पांव पर अपना भार रखे बैठा हुआ गाली देता था और क्रोध से लाल हो रहा था परन्तु स्वामी जी पद्मासन पर बैठे हुए हँसते जाते थे और यही कहते जाते थे 'रंडाचार्यस्य' इत्यादि।

मास्टर गोपाल सिंह वर्मा क्षत्रिय, कर्णवास निवासी, ने इस प्रकार वर्णन किया—'कि जब राव साहब स्वामी जी के दर्शनों को गये तो स्वामी जी ने पूछा कि तुमने शरीर क्यों दग्ध कराया हुआ है और क्यों चक्रांकित हुए? तुम क्षत्रिय हो तुमको ऐसा करना उचित नहीं है।' इतनी बात स्वामी जी से सुनकर वह बिगड़ा और कहा कि 'यह हमारा परम मत है, इसको तुम किस प्रकार बुरा कहते हो और हम अभी रंगाचार्य स्वामी को वृन्दावन में पत्र भेजते है; शास्त्रार्थ से जो ठीक हो वही मत सच्चा है। तुमने हमारे मत को बुरा कहा हम तुमको इसका मजा चखायेंगे।' स्वामी जी ने इसके उत्तर में कहा कि 'यदि तू हमसे लड़ना चाहता है तो अपने सिपाहियों में से एक-एक को खड़ा कर दे और जो शास्त्रार्थ करना चाहे तो रंगाचार्य को यहां पर बुलाले और एक पत्र इस प्रतिज्ञा का लिखकर (तू जो गंगा जी को मानता है) तू गंगा जी में दे कि जो हारे वह अपने धर्म को छोड़े।' तलवार पर भी उसने हाथ रखा था, मैं उस समय उपस्थित न था—यह सब सुना है।'

ठाकुर गोपालसिंह रईस कर्णवास, मखीना व **हकीम रामप्रसाद,** जो रामो जी के नाम से प्रसिद्ध था, बड़ौली निवासी ने इस घटना का इस प्रकार वर्णन किया दशहरे से बीस दिन पहले राव कर्णसिंह यहां कर्णवास में आये और आकर जब स्वामी जी की ख्याति सुनी तो निश्चय मिलने का किया। लोगो ने यही कहा कि यहां एक संन्यासी आया है जो गंगा को नही मानता, तीर्थों को नही मानता, तिलक का निषेध करता है (प्रसिद्ध हुआ कि एक तिलकचाटा स्वामी आये हैं)। उसने कहा कि हम जायेंगे और वह बीस पच्चीस सेवकों सहित सशस्त्र होकर स्वामी जी के पास गया। जाकर दण्डवत् करके बैठा; वार्तालाप हुआ। उसने कहा कि आप गंगा जी को नही मानते। स्वामी जी ने कहा कि जितनी गंगा जी है उतना मानते है। उसने कहा कि कितनी है? स्वामी जी ने कहा कि हम लोगों (संन्यासियों) की तो गंगा जी कमण्डल ही है क्योंकि इसके अतिरिक्त हमारे पास कोई पात्र नहीं है। इस पर उसने कुछ श्लोक गंगा जी की स्तुति के पढ़े। स्वामी जी ने कहा कि यह बात तुम्हारी गप्प है, यह केवल पीने का पानी है—इससे मोक्ष नहीं हो सकता; मोक्ष तो कर्मों से होता है; ऐसा तुमको पोपों ने बहका लिया है। चूँकि उसने लम्बे-लम्बे तिलक लगाये हुए थे, इसलिए स्वामी जी ने पूछा तुम क्षत्रिय हो, यह वैरागियों के से लम्बे-लम्बे तिलक क्यो लगाते हो? उसने कहा कि हमारे स्वामी जी के सामने आपसे बात भी न होगी, उनसे शास्त्रार्थ करो। स्वामी जी ने कहा कि उनको शास्त्रार्थ के लिए बुलाओ और यदि उनमें आने की सामर्थ्य न हो तो उनको लिखो हम वहा चलें। इस पर वह बहुत क्रुद्ध हुआ और गाली-गलौज भी की। इससे पहले उसने यह भी कहा था कि हमारे यहां रामलीला होती है, तुम हमारे यहां चलो। स्वामी जी ने कहा कि तुम कैसे क्षत्रिय हो जब कि तुम्हारे सामने वे तुम्हारे पुरुषाओं को नचाते हैं। यदि तुम्हारी बहन-बेटी को कोई नचाये तो कैसा बुरा मानो! इस पर झगड़ा हो गया और बलदेवदारा वैरागी तलवार लेकर उठ खड़ा हुआ। फिर वे चले गये और वहां बरौली में जाकर लीला की परन्तु वर्षा और ओलों के कारण वहां भी इस बार लीला न कर सके। रावण तक भी न जला।

आततायी का शारीरिक बल से मुकाबला

रास के खंडन से चिढ़कर स्वामी जी का सिर काटने को तैय्यार हो गया—पंडित गोपाल चन्द्र पिचौड़ी, सनाढ्य ब्राह्मण, सैकण्ड क्लर्क सुपरिण्टैण्डेण्ट इंजीनियर आफिस मेरठ, ने इस घटना को इस प्रकार वर्णन किया कि 'जिन दिनों स्वामी जी केवल एक कौपीन पहनते और बिल्कुल नग्न रहते और गंगातट पर फिरते रहते थे, उन्हीं दिनों मैंने स्थान कर्णवास में दूसरी बार स्वामी जी को देखा। उस समय वह संस्कृत बोलते थे परन्तु मैं संस्कृत न जानता था। वहां हमने यह तमाशा देखा कि रात को

राव कर्णसिंह रईस बरौली ने रास कराया, वह चक्रांकित थे। पंडित रात को स्वामी जी के पास (यह कहने) गये कि रास में चलिये। स्वामी जी ने उसका खंडन किया और उसको निन्दनीय कर्म बतलाया और न पधारे। दूसरे दिन सांयकाल के पश्चात् राव साहब अपने सेवकों और पंडितों सहित उनसे इस विषय में शास्त्रार्थ करने को आये। स्वामी जी ने युक्ति और शास्त्र से उसका खंडन किया और मनु का एक वाक्य बोला कि 'पुरुष के वेश में स्त्री को और स्त्री के वेश में पुरुष को देखने का इतना दोष है कि यदि देखे तो चान्द्रायण व्रत करे और इसके अतिरिक्त और युक्ति भी दी कि जब तुम उसको ईश्वर मानते हो तो फिर कैसे उसका लौंडों का स्वांग भर कर गाने बजाने से अपना चित्त प्रसन्न करते हो। जब तुम उसका स्वांग करते हो तो यदि कोई तुम्हारे मां-बाप का भी स्वांग भर कर ऐसा करे तो निश्चित है कि तत्काल (तुम्हें) क्रोध आ जाये।' यह कहते ही सभा में उपस्थित सब लोग हँस पड़े और राव साहब इस बात पर बहुत लज्जित हुए और कहने लगे कि तुम हमारे इष्टदेव की निन्दा करते हो और उसको बुरा कहते हो। यह कहकर तलवार निकाल स्वामी जी का सिर काटने पर उद्यत हो, उठ खड़े हुए। उस समय स्वामी जी ने कहा कि यदि सत्य कहते हुए सिर ही कटता है तो तुमको अधिकार है कि काट डालो। परन्तु उस समय सत्य का ऐसा दबदबा छा गया उसका हाथ न चला और खड़ा का खड़ा रह गया। उस समय से चक्रांकित लोग स्वामी जी के विरोधी हो गये। यह शब्द भी स्वामी जी ने अवश्य कहे थे कि 'क्षत्रिय या तो शस्त्र निकाले नहीं और यदि निकाले तो जिस संकल्प से निकाले उस संकल्प को पूर्ण करे और जो न कर सके तो उसके क्षत्रियत्व में सन्देह है।' परन्तु वह कुछ न कर सका और अन्त में उसी प्रकार घबराया हुआ अपने साथियों सहित अपने डेरे को चला गया और स्वामी जी अपने आसन से तनिक भी न हिले।

हम अपने ब्राह्मणत्व से क्यों पतित हों—उसके चले जाने के पश्चात् बहुत से लोगों की यह इच्छा हुई कि स्वामी जी इस बात की पुलिस में रिपोर्ट करें और उसके शस्त्र निकालने की जाच हो परन्तु स्वामी जी ने उत्तर दिया कि 'वह अपने क्षत्रियत्व को पूरा न कर सका तो क्या यह आवश्यक है कि हम भी अपने ब्राह्मणत्व से पतित हो जावें ? हमारा सन्तोष करना ही परम धर्म है। और इससे अतिरिक्त, हमको कुछ उससे हानि भी नहीं पहुँची है। उसके लिए इतना लज्जित होना पर्याप्त दंड है; यदि बुद्धिमान् होगा तो फिर ऐसा कर्म न करेगा।' कार्तिक का मेला था, सैकड़ों मनुष्य वहाँ उपस्थित थे, सम्भवतः अक्तूबर या नवम्बर का महीना था।

आततायी का बल से मुकाबला—राजा उदितनारायण जी, रईस मथुरा, ने इस घटना को इस प्रकार वर्णन किया 'मैंने राव कर्णसिंह साहब और स्वामी जी के झगड़े का वृत्तान्त सुना हुआ है कि राव कर्णसिंह एक बार स्वामी जी के पास गये। राव साहब संस्कृत बोलते थे परन्तु बोल नहीं सकते थे, अशुद्ध बोलते थे। जिस पर स्वामी जी टोकते थे कि अशुद्ध मत बोलो; जिस चीज को तुम नहीं जानते हो उस पर अधिकार क्यों जताते हो ? परन्तु वह निरर्थक झगड़ा और बेहूदा बातें करता था। जब कोई धार्मिक चर्चा चली तो निरुत्तर होकर और क्रोध में भरकर उसने तलवार निकाली और स्वामी जी को मारने को उद्यत हुआ परन्तु स्वामी जी ने एक बहुत बड़ा पत्थर उठाकर उसकी ओर फेंका, वह पत्थर के प्रहार से बच गया। स्वामी जी ने गरजकर उसके हाथ से तलवार छीन ली और एक हाथ से पृथ्वी को टेक देकर और उसका हाथ पकड़ कर कहा कि क्या तू यह चाहता है कि यह तलवार तेरे ही घुसेड़ दूँ। इस पर उसके होश उड़ गये और स्वामी जी ने तलवार फेंक कर उसको छोड़ दिया। यह स्वामी जी वन को, और वह घर को चला गया और कह गया कि 'मैं तुमसे (अर्थात् स्वामी जी से) समझूँगा।'

ठाकुर शेरसिंह जी कहते हैं कि तत्पश्चात् स्वामी जी यहाँ कार्तिक पर्य्यन्त ठहरे और इस अन्तर में स्वामी विशुद्धानन्द और कृष्णानन्द आदि कई संन्यासियों से वेदान्त-विचार और योगाभ्यास के प्रकार पर वार्तालाप होता रहा।

राव कर्णसिंह फिर आया—क्वार शुक्ला शरत्पूर्णिमा को रईस बरौली कर्णसिंह फिर गंगास्नान को आये। गंगा के तट पर स्वामी जी की कुटी से थोड़ी दूर पश्चिम की ओर बारहदरी पर ठहरे। स्वामी जी को भी यहीं विराजमान सुनकर रात्रि के समय उसने अपने दो सशस्त्र सेवक स्वामी जी को मार डालने के लिए उनकी कुटिया पर भेजे परन्तु दैवयोग से कुछ दिन पहले इस कारण से कि जब स्वामी जी रात को सोते थे तो अपने ओढ़ने के लिए वस्त्र नही रखते थे—ठाकुरों ने परस्पर सम्मति करके ठाकुर कैथलसिंह को वहां नियत कर दिया था कि जब स्वामी जी रात को सो जाया करें तो उन पर कम्बल डाल दिया करे क्योंकि स्वामी जी लोगों के चले जाने के पश्चात् जब सोते तो प्रथम तो लोग कम्बल उढ़ा देते परन्तु रात को जब उतर जाता तो स्वामी जी स्वयं न लेते थे।

पंडित भूमित्र जी ने कहा कि उन दिनों मोझबाबा संन्यासी योगेश्वर यहाँ थे जो पूर्णतया नग्न रहते थे। वृद्धावस्था के कारण उनको आंखों से कम दिखाई देता था। उनकी सेवा में एक वैरागी जमनादास रहता था। उसने एक रात देखा कि स्वामी दयानन्द जी के ऊपर से कम्बल गिरा हुआ है। उसने लोगों से यह बात कही। जिस पर यहाँ के ठाकुरों ने ठाकुर कैथलसिंह को वहाँ नियत कर दिया कि रात को जब कम्बल उतर जाया करे तो उढा दिया करे।

राव कर्णसिंह ने एक दिन वैरागियों से कहा कि तुम लोग उसका सिर काट डालो, मैं धन व्यय करके तुम्हें बचा लूंगा और यदि तुम में से एक आध मर जावेगा तो तुम्हारी कौन-सी लुगाई रोती है परन्तु इस पर भी किसी वैरागी को ऐसा करने का साहस न हुआ।

अभ्यस्त अपराधी भी योगी से डर गये

राव कर्णसिंह का नीच इरादा, कई व्यक्तियों की साक्षी—एक रात को राव कर्णसिंह ने दो बजे के समय तीन मनुष्यों को अपनी तलवार देकर भेजा कि तुम जाकर स्वामी जी का सिर काट लाओ। यह लोग गये परन्तु कुटी में भीतर जाने का साहस न पड़ा। स्वामी जी उस समय सोते थे और कैथलसिंह भी सोता था। स्वामी जी खड़का सुनकर बैठकर गये। वह लोग लौट कर पहुँचे कि हमारा साहस नहीं पडता। जहाँ राव साहब उतरे हुए थे वह स्थान स्वामी जी से लगभग १२५ पग दूर था। राव साहब ने फिर उनसे कहा कि तुम जाओ और उसे मारो और बहुत धमकाया। यह शब्द सम्भवतः स्वामी जी ने सुने। स्वामी जी ध्यानावस्थित होकर चौकी पर बैठ गये। वे लोग फिर आये। इस बार भी धीरज खो बैठे और साहस न कर सके तथा वापस लौट गये। इस पर राव साहब ने गालियां देकर उनको फिर भेजा। वह तीसरी बार आये और हाथ में तलवार लिये कुटी के भीतर जाने को नीचे से चढ़े और यह कहते हुए कि कौन है इस कुटी में? स्वामी जी ने चौकी से उठकर कुटी के द्वार पर खड़े होकर उच्च स्वर से 'हूँ' की ध्वनि की। इस ध्वनि को और फिर स्वामी जी के स्वर को सुनकर वे ऐसे घबराये कि उल्टे होकर गिर पड़े और तलवार छूट गई। अन्त में बड़ी कठिनता से संभल कर भाग गये। इस अवसर पर ठाकुर कैथलसिंह भी जाग पड़ा और उसने इस कौतुक को देखा। वह भय के मारे उसी समय भागकर ग्राम में आया। स्वामी जी उसे रोकते रहे कि तू कहीं मत जा परन्तु वह न माना। तत्काल आकर ठाकुरों को सूचना दी। उस समय रात्रि लगभग चार घड़ी शेष रह गई थी। ठाकुर गोपालसिंह जी के भ्राता

ठाकुर कृष्णसिंह जी को जगाकर सब घटना सुनाई। ठाकुर जी तत्काल लट्ठ लेकर चल पड़े और अपनी प्रातःकाल के अग्निहोत्र की सामग्री भी लेते गये और दो तीन पुरुषों को भी साथ ले गये। उनके पीछे ठाकुर रघुनन्दनसिंह जी दौड़े। सारांश यह कि बस्ती के बहुत से क्षत्रिय लोग गये और पीछे ठाकुर गोपालसिंह जी भी पहुँच गये और मैं भी गया। उनके जाते ही सबसे प्रथम ठाकुर किशनसिंह ने राव कर्णसिंह को उच्च स्वर से गालियाँ देनी आरम्भ कीं और कहा कि यदि बहुत वीर और वास्तव में क्षत्रिय की संतान हो तो अब हमारे सामने हथियार बाँध कर आओ, देखो तुम्हारी बन्दूक और तलवार एक थप्पड़ में छीनते हैं या नहीं। और भी बहुत कठोर शब्द कहे। उन सिपाहियों के गिरने के चिह्न भी वहाँ पाये गये। जब ये लोग पहुँचे तो स्वामी जी ने ठाकुर किशनसिंह से कहा कि कुछ सन्तोष करो; यह तो स्वयमेव भीरु है। तुम क्रोध मत करो, ये लोग हमारा कुछ नहीं कर सकते। परन्तु ठाकुर किशनसिंह का क्रोध शान्त नहीं हुआ और प्रतिज्ञा की कि यदि वे आज यहाँ रहे तो हम उनको बिना पीटे नहीं छोड़ेंगे। जब उन्होंने यह दृढ़ प्रतिज्ञा की तो राव कर्णसिंह के श्वसुर ठाकुर मोहनसिंह जी ने, जो कर्णवास के निवासी हैं—अपने दामाद राव कर्णसिंह से जाकर कहा कि यदि तुम्हारे अच्छे दिन हैं तो तुम यहाँ से इसी समय चले जाओ अन्यथा आज यहाँ के क्षत्रिय लोग तुम्हारे सब हथियार छीन लेंगे और तुमको भी भली-भाँति पीटेंगे। यह सत्य समझो कि आज अवश्य तुम्हारी मानहानि होगी। यह सुनकर राव साहब तत्काल ही वहाँ से चल दिये और घर जाते ही रुग्ण हो गये और उन्मत्तों की भांति कपड़े फाड़ने लगे। प्रयाग में एक मुकदमा पचास हजार रुपये का हारे और अपने मत (धर्म) के विरुद्ध मांस तथा मदिरा का सेवन आरम्भ कर दिया। सारांश यह कि उनकी बहुत दुर्दशा हुई।

इसी बात को ठाकुर गोपालसिंह जी रईस ने इस प्रकार वर्णन किया 'कि शरत्पूर्णिमा (जो १४ असोज को होती है) को राव कर्णसिंह आतिशबाजी का सामान, वेश्या, रामधारियें, गवैय्ये तथा दशहरे से सम्बन्धित सरकारी पहरा साथ लेकर गंगातट पर आये। उस समय गंगा बहुत बढ़ रही थी। उसने सिपाहियों को तलवार देकर स्वामी जी को मारने के लिये भेजा। स्वामी जी स्वयं कहते थे कि जब वह लोग आये तो उन्होंने आकर आधी रात के पश्चात् कहा 'कुट्यां कोऽस्ति' अर्थात् कुटी में कौन है ? मैंने उठकर जोर से 'हूँ' कहा और एक पांव पृथिवी पर मारा जिससे वह 'पलायनं कृतम्' अर्थात् भाग गये। कंथलसिंह ने स्वामी जी को कहा कि अब यहाँ से चलकर किसी गुफा में रहें जिस पर स्वामी जी तो वहीं रहे परन्तु कंथलसिंह वहाँ से भागा और उसने कर्णवास में आकर ठाकुरों की हवेली में ठाकुर किशनसिंह के पांव मले। जब वह जागे तो सारी घटना उनको सुनाई। वह उठे और लाठी लेकर तोताराम और आनन्दीसिंह कान्यकुब्ज ब्राह्मण को साथ लेकर वहाँ पहुँचे। पूछा कि महाराज क्या आज्ञा है ? स्वामी जी ने कहा कि कुछ आज्ञा नहीं। उसने कहा कि नहीं, जो आप कहें सो करें। स्वामी जी ने कहा कि वह तुम्हारा सम्बन्धी है, हम यह नहीं चाहते कि तुम जमींदार व्यर्थ आपस में लड़ो। प्रातःकाल हम सब पहुँच गये। इतने में कुन्दनसिंह, मदनलाल, खड़कसिंह तथा एक ब्राह्मण—ये चारों मनुष्य उनकी तरफ से कुल्ला करने आये। अभी तक हम लोग वही चर्चा कर रहे थे कि उनमें से खड़कसिंह ने आकर कहा कि तुम हमारी सरकार का नाम लेकर क्या कहते हो ? इस पर आनन्दीसिंह ने फिर कर्णसिंह को बुरा कहा और किशनसिंह जी ने कहा कि राव साहब को उचित नहीं था कि एक संन्यासी के उपर तलवार लेकर आवें। यदि वह मर्द के बच्चे हैं तो अब हमारे सामने आवें। यदि कुछ पौरुष है तो राव को कहो कि हमारे सामने आवे।

यह बात उसी समय राजघाट की ओर फैल गई। दूसरे दिन राजघाट में बीस-पच्चीस शस्त्र

पंजाबी वहां आये और स्वामी जी से निवेदन किया कि चाहे हमारी नौकरी चली जावे परन्तु आप हमको आज्ञा दें कि हम सब दुष्टों को भगा दें। स्वामी जी ने बहुत रोका और वह सब आनकर व्याख्यान में बैठ गये। इतने में नन्दकिशोर ब्राह्मण कर्णवास निवासी आये और बोले कि महाराज ! राव साहब तो ऐसे मूर्ख नहीं हैं जो ऐसा काम करें। स्वामी जी ने कहा कि प्रतीत होता है कि वह तुमको द्रव्य देते हैं इसलिए झूठ बोलते हो। उसने बातें करते हुए हाथ आगे किया तो स्वामी जी ने उसका हाथ पकड़ लिया। वह कहता था कि जैसे वज्र पड़ता है ऐसा उनका हाथ प्रतीत हुआ। जो मनुष्य स्वामी जी के पास आता और उनसे यह वृत्तांत पूछता तो स्वामी जी उसे संस्कृत में सुनाते थे।

राव कर्णसिंह से प्रेरित स्वामी जी को मारने वाले व्यक्तियों की स्वीकारोक्ति—राव कर्णसिंह के वे सब मनुष्य जीवित विद्यमान हैं जो रात्रि को गये थे। वे कहते हैं कि यद्यपि हम सशस्त्र थे और हमने प्रायः ऐसे बड़े काम किये हुए थे परन्तु उनका आतंक हम पर छा गया, हम तलवार न चला सके। राव साहब के श्वसुर ने जब सब ठाकुरों को राव कर्णसिंह के विरुद्ध देखा तो उससे जाकर कहा कि आज ठाकुर लोग दुःखी हो गये हैं, यदि भला चाहते हो तो चले जाओ अन्यथा जो दशा तुम रात को स्वामी जी की करना चाहते थे, वही दशा तुम्हारी होगी। जिस पर वह भय के मारे प्रातःकाल ही चला गया। इस बार स्वामी जी एक मास रहे। पूर्णमासी की रात को यह झगडा हुआ, पड़वा के दिन वह यहां से चले गये। इसके चार-पाँच दिन पश्चात् स्वामी जी महाराज काशी की ओर चले गये।

निर्भय दयानन्द ! —पंडित बलदेव जी गौड़ ब्राह्मण डिबाई निवासी ने कहा 'कि जब कैथलसिंह ठाकुर ने स्वामी जी से कहा कि आप यहां से चलकर किसी और स्थान पर जा रहिए तब स्वामी जी ने कहा कि **'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः'** मुझको कोई नही मार सकता और साधु लोग कहां गढ़ों अथवा घरों में घुसते हैं। हमारा कोई मनुष्य रक्षक नही प्रत्युत देव रक्षक है। अरे ! घबरा मत, उसी का शस्त्र लेकर उसी को हनन कर डालूंगा'।

एक बार हरिद्वार से गढमुक्तेश्वर तक और तत्पश्चात् कर्णवास और रामघाट तक स्वामी जी सीधे चले आये। फिर लौटकर गंगातट के साथ-साथ आये। इस विषय में **पण्डित ज्वालाप्रसाद गौड़** पिलखनी निवासी जिला बुलन्दशहर वर्णन करते है कि पहले पहल मुझे स्वामी जी के दर्शन कर्णवास में वैशाख मास, संवत् १६२४ में हुए। वहां गंगा के तट पर स्नान करके नग्न बैठे हुए थे। लंगोटी सूख रही थी। ऊधो जी तालिबनगर जिला अलीगढ़ निवासी और मैं हम दोनों विद्यार्थी वहां पहुँचे, उन दिनों हम भागवत पढ़ते थे। हमने देखा कि एक परमहंस बैठे हैं। प्रथम हम उनके शरीर पर रेती और गंगारज प्रेम से लगाने लगे। उन्होंने संस्कृत में पूछा कि तुम क्या पढ़ते हो ? हमने कहा कि भागवत। उन्होंने कहा कि तुमने व्याकरण में क्या पढ़ा है ? हमने कहा कि कौमुदी। स्वामी जी ने कहा कि तुमको अष्टाध्यायी पढ़नी उचित है और दसों उपनिषद्, वेदान्त और मनुस्मृति। जिससे धर्म का उपदेश हो वही पढना और उसी के अनुसार चलना। इस पर हमने पूछा कि वैरागी लोग जो शंख-चक्र आदि देते हैं और उपद्रव करते हैं उससे क्या होता है और यह ठीक है अथवा नहीं ? उन्होंने कहा कि वैरागी जितने हैं सब धर्म से बेधर्म हैं क्योंकि शंख-चक्र का लगाना अनुचित है, उचित नहीं। इतनी बात उनकी सुनकर मैंने शफीनगर के समीप स्थित ग्राम खंडवी परगना व अहार के एक पंडित नन्दराम नरौड़ी निवासी का वृत्तांत सुनाया जो समासरी अर्थात् चक्रांकित है और खण्डवी के जाटों को शंख-चक्र देखकर वैष्णव बनाने के लिए मथुरा जी भेजना चाहता है और यह भी सुनाया कि नन्दराम मुझको भी कहता है कि तुम भी समासरी होकर इनके अधिष्ठाता हो जाओ। इसलिए आप वहां चलें ताकि लोगों के धर्म की रक्षा हो। उन्होंने कहा कि तुम जाओ, यदि हमारे आने की आवश्यकता हुई तो हम भी आवेंगे।

चक्रांकितों का कुचक्र निष्क्रिय कर दिया

कोई चक्रांकित नहीं हुआ—इसके पश्चात् एक बार स्वामी जी गंगा के किनारे-किनारे यहां **चाशनी** में आये। तब **छीतरसिंह जाट ने कहा** कि वह महात्मा दयानन्द जी मुझे पहले यहाँ चाशनी में मिल चुके हैं, जो वह कह दें तो हमें स्वीकार है। अन्त में हम और पण्डित नन्दराम व पण्डित भूदत्त **मौवा खेड़ी** निवासी और छीतरसिंह व अतरामसिंह अन्य बीस मनुष्यों सहित वहां गये। स्वामी जी उस समय छोटी धार पर बैठे थे। स्वामी जी को देखकर और उनका नाम सुनकर पंडित नन्दराम परली धार की ओर भाग गया और जब वहां उसको बुलाने के लिए गया तो वह वहां से भागकर अहार में **देवीदास चक्रायत** के मंदिर में जा ठहरा। उसका यह आचरण देखकर उन सबको निश्चय हुआ कि वह धर्म सच्चा नहीं। जो स्वामी जी कहते हैं, वही ठीक है। स्वामी जी के इस प्रयत्न से कोई भी चक्रांकित धर्म में प्रवृत्त न हुआ—सब बच गये। स्वामी जी ने पूछा, 'क्या मनुस्मृति, महाभारत तुम्हारे पास हैं? मैंने कहा कि न मनुस्मृति पढ़ा हूँ और न मेरे पास है और महाभारत भी नहीं है। उस समय स्वामी जी दस पन्द्रह दिन यहां रहकर **ताहीरपुर** में जा ठहरे और वहां से फिर **कर्णवास** की ओर चले गये और **फर्रुखाबाद** तक गये। जब लौटकर कार्तिक के मेले में आये तो यहां **चाशनी** में आकर मुझसे ६।।।) पर मनुस्मृति मंगवायी और पढ़ानी प्रारम्भ कर दी।

जैसा भी भोजन मिलता, जो पहले मिल जाता वही खा लेते थे—उस समय वहां एक बैरागी रहता था। उसने स्वामी जी को देखकर सोचा कि यह हमारी निन्दा करता है; अच्छा है कि यहां न टिके। स्वामी जी का उस समय यह नियम था कि जो रोटी पहले लावे उसको खा लेते थे। वह बैरागी (हठ के मारे) एक दो टुकड़े जलाकर उनको दे देता था और सदा कुपित रहता था। परन्तु लोगों के डर के मारे मुख से कुछ न कहता था। इस पर स्वामी जी उसके नित्य के क्रोध को देखकर वहां से चले गये। लगभग आठ दिन ठहरे।

अनूपशहर में धर्मोपदेश

हम केवल तीन दिन उनके पास पढ़ते रहे। फिर **ताहीरपुर** में जाकर पढ़ाया और वहां कुछ दिन ठहरे। वहाँ से **अनूपशहर** गये। वहाँ से **कर्णवास** गये और वहां महीनों रहे। उनके पास चूँकि मेला लगा रहता था। इसलिए मैं उनके पास से गाजियाबाद में पंडित कृष्णदत्त के पास चला आया। स्वामी जी से मैंने केवल डेढ़-दो अध्याय पढ़े थे। जब मैं साथ था तो उनकी संस्कृत की भाषा करके लोगों को बताया करता था। जब मैं पढ़कर गया तो फागुन के महीने में वहां कुछ मनुष्यों के यज्ञोपवीत संस्कार की सम्मति हुई, मैंने भी गायत्री का उनकी ओर से जप किया। फिर वहाँ से चलकर **सोरों, बदरिया** में रहे। वहाँ वह अंगदराम शास्त्री के पास रहे। मैं उस समय साथ नहीं गया। वहाँ से वह **फर्रुखाबाद** गये। मैं वहाँ उनसे मिलकर अपने घर को चला आया। स्वामी जी फिर लौटकर **अनूपशहर, रामघाट, कर्णवास** में आये। पंडित अंगदराम को जब मनुस्मृति पढ़ा कर आये थे तब कुछ-कुछ उसके श्लोकों का खंडन करने लगे। हमने कहा कि जब हमको पढ़ाते थे तब तो सब मानते थे। **स्वामी जी ने कहा कि बुद्धिमान विद्यार्थी के पढ़ाने से शास्त्र का वृत्तांत विदित होता है**। हमने कहा विदित हुआ कि आपने मनु पढ़ा नहीं, केवल अपनी बुद्धि से पढ़ाते हैं तो बोले कि नहीं, बुद्धिमान् विद्यार्थी के पढ़ाने से विद्या का वृत्तांत विदित होता है। हमने कहा कि आप पूरा यथार्थ निश्चय कर लें, फिर हमें सारा वृत्तांत बता देना। स्वामी जी ने हीरावल्लभ, अंगदराम और ज्वालाप्रसाद को मनुस्मृति पढ़ाई, फिर पढ़ाने का अब

काश न मिला और न विशेष रूप से भेंट हुई। उनका निश्चय उस समय यह था—१—मूर्तिपूजा नहीं मानते थे। २—भागवत का खंडन करते थे। ३—मृतकश्राद्ध नहीं मानते थे। ४—वेदविरुद्ध मतों का खंडन करते थे। लंगोट कौपीन रखते थे, शरीर का शेषभाग नग्न रहता था, भिक्षा जो आ जाती, कर लेते, कोई पात्र या कमंडल साथ न था। जो कोई पण्डित या प्रश्नकर्ता आता, युक्ति द्वारा उसका यहाँ तक समाधान करते थे कि वह अन्त में 'सत्य वचन' कहकर उठता था। कोई व्यक्ति हमारे सामने ऐसा न आया जो बिना संतोष प्राप्त किये गया हो। उनका उपदेश साधारणतया यह था प्रातःकाल की और सायंकाल की संध्या करो; सत्य बोलो अर्थात् मनुस्मृति के 'सत्य ब्रूयात्' वाले श्लोक का उपदेश करते थे। भागवत पर उन्होंने १७ आक्षेप किये थे। हमने कहा कि महाराज ! और पुराणों में कौन सी उत्तम बात है तो उन्होंने कहा **'एतदेव समीचीनम्'** अर्थात् ऐसा ही स्वीकार है अर्थात् वे भी इसी प्रकार हैं जैसे भागवत। इस ओर जाटों का यज्ञोपवीत नहीं कराया। पंडित नन्दराम चक्राकित ने फिर कभी मुख न दिखाया और न फिर उस ग्राम मे आया।

लाo रामप्रसाद वैश्य अग्रवाल अहार निवासी ने वर्णन किया 'कि मैंने स्वामी जी को यहां गंगा के तट पर श्री० वल्लभ जी की कुटी में चटाई पर बैठे देखा था। गंगा पार से आये थे, क्वार या कार्तिक का महीना था, एक कौपीन धारण किये हुए नग्न रहते थे। दो दिन यहां रहे थे, फिर यहाँ से जाकर ढाई कोस चाशनी की कुटी में ठहरे। वहाँ पर प्रायः ग्राम के लोग कार्तिक नहाने जाया करते थे। उनके जाने से धर्मचर्चा होने लगी। जब वे लोग कार्तिक नहा कर आये तो उनके मुख से विदित हुआ कि वही स्वामी दयानन्द थे। खदोई शफीनगर, खनौदा के जाटों के विषय में हमने सुना था कि स्वामी जी ने उनका यज्ञोपवीत कराया था। इसकी उन दिनों बहुत चर्चा हुई थी कि जाटों को वह क्षत्रिय बतलाते हैं। लोगों ने कहा कि बुरा करते हैं, जाट क्षत्रिय नही हैं (परन्तु इसका समर्थन किसी जाट के मुख से नहीं हुआ और न कोई ऐसा मिला जिसको स्वामी जी ने यज्ञोपवीत दिया हो)। चाशनी की कुटी में संभवतः वह चार-पांच मास रहे थे अर्थात् क्वार या कार्तिक से फागुन चैत तक। ज्वालाप्रसाद ब्राह्मण पिलखनी निवासी उनके पास पढ़ने जाया करता था। वह वल्लभ की कुटी गंगा के समीप थी, कुछ गिर गई थी और कुछ शेष थी। उसका जो पुजारी थां वह भी चिरकाल से मर गया था।

(संवाददाता—दुःख की बात है कि जिस घर पर वह आनकर ठहरे थे, वह आज १५ दिसम्बर सन् १८८६ की प्रातः को मैंने देखा। न तो घर अवशिष्ट है और न उसका कुछ चिह्न शेष है, केवल एक टीला सा दिखाई देता है; यह घर ग्राम से पूर्व की ओर गंगातट पर स्थित है परन्तु किसी के बताये बिना चिह्न मिलना अत्यन्त कठिन है और सम्भवतः कई वर्ष तक यह भी न रहेगा।)

मियाराम जाट नम्बरदार शफीनगर ने वर्णन किया—कि हमने स्वामी जी को चाशनी, ताहीर-पुर, अनूपशहर में देखा था। स्वामी जी हमसे यह कह गये थे कि जीवित का श्राद्ध सदा करते रहो और ज्वालादत्त को पद्धति बनवा कर दे गये कि इस रीति से कराते रहो। पाषाणपूजा के झगड़ों का निषेध करते थे। (वेद के जानने वाले) को ब्राह्मण मानते रहो, गुरु (शिक्षा देने वाले) को मानते रहो, बुरा काम मत करो, झूठ मत बोलो इत्यादि बातो का उपदेश करते थे।

जन्मपत्र बेकार है, कर्मपत्र ही ठीक है—चाशनी में एक खदाना के रहने वाले व्यक्ति ने स्वामी जी को हाथ दिखलाया। स्वामी जी बोले कि इसमें हाड़ है, चाम है, रुधिर है और कुछ नहीं। हमने जन्म-पत्र दिखलाया—कहने लगे 'जन्मपत्रं किमर्थं कर्मपत्रं श्रेष्ठम्।' फिर बोले कि यदि विध मिल जावे तो मानो अन्यथा 'गप्पाष्टकम्' जानो अर्थात् केवल गप्प समझो। तत्पश्चात् हम प्रणाम करके घर को चले आये।

लाला भोलानाथ भक्त वैश्य—महेश्वरी अहार निवासी ने वर्णन किया 'कि जिस समय स्वामी जी अनूपशहर में सती के पास उतरे हुए थे, मैं यहां से अनूपशहर को सौदा लेने गया; वहां उनके दर्शन हुए। लगभग तीस पंडित लोग और पचास के लगभग और लोग बैठे हुए थे। कोई व्यक्ति उनकी बात को तोड़ न सकता था। एक हमारा मित्र कहीं परदेश को चला गया था, उसका पता नहीं मिलता था। मैंने उनसे जाकर प्रश्न किया। स्वामी ने हाथ से सकेत किया। पंडितों ने मुझे समझाया कि कहते हैं कि रामेश्वर की ओर गया है। उनकी बातों को पंडित लोग और सब उपस्थित व्यक्ति 'सत्यवचन' करके मानते थे। कोई सामना न कर सकता था और जो कोई कुछ वेदानुकूल कहता उसे स्वीकार करते और जो वेदविरुद्ध पुराण की कहता उसको 'गप्पाष्टकं, मनुष्याणां कोलाहलः' अर्थात् यह गप्प है और मनुष्यों का मचाया हुआ कोलाहल है, ऐसा कहते थे। छः घड़ी मैं उनके पास बैठा रहा फिर चला आया।'

शीशे के समान चमकता अत्यन्त सुडौल शरीर—हकीम मौला बख्श अनूपशहर निवासी ने वर्णन किया 'कि सन् १८६७ की बात है कि स्वामी जी अनूपशहर में आये। प्रथम लालाबाबू की कोठी में देखा था, मैं उस समय वहां अध्यापक था। मैंने रविशंकर अध्यापक नागरी के द्वारा कुछ पूछने की प्रार्थना की। स्वामी जी ने कहा कि कोई दूसरा व्यक्ति तुमको समझा देवे तब हम उत्तर देंगे, हम भाषा नही बोलेंगे। उस समय केवल एक लंगोटी रखते थे। मैंने पूछा कि आपके पास और कोई वस्त्र नहीं है और शीतकाल है, किस प्रकार व्यतीत करते होंगे। उन्होंने हाथ से संकेत करके कहा कि कुछ नहीं है। वहां लगभग एक सप्ताह ठहर कर फिर **नर्मदेश्वर में** सती के मन्दिर में आ ठहरे (ये दोनों स्थान गंगातट पर हैं)। वहाँ के गुजराती पंडित उनके पास प्रतिदिन जाया करते थे और स्वामी जी की शिक्षा तथा प्रेरणा से बहुतों ने उसी समय से मूर्तिपूजा छोड़ दिया था। पंडित अंबादत्त के शास्त्रार्थ के समय मैं उपस्थित न था परन्तु सुना था कि अंबादत्त को सफलता न हुई, स्वामी जी ही सफल रहे। यहाँ दस पन्द्रह दिन रहे थे। रामलीला के विषय में निषेध करते थे। लोग पीछे से विरोध करते थे परन्तु सामने बोलने को किसी में शक्ति न थी। मृत्तिका अर्थात् गंगारज शरीर पर मल लिया करते थे। नीरोगिता की वह अवस्था थी कि शीशे के समान चमकते थे। अंग अत्यन्त सुडौल थे और शरीर अत्यन्त शक्तिशाली था।'

ला० केशरीलाल कायस्थ, सेवक ठाकुर लक्ष्मन सिंह, रईस कर्णवास, अनूपशहर निवासी ने वर्णन किया 'कि स्वामी जी अनूपशहर में श्रावण मास से लेकर कार्तिक की पूर्णमासी तक रहे। वहाँ रामलीला का खंडन किया जिसके कारण यद्यपि उस वर्ष तो हुई परन्तु तत्पश्चात् पूर्णतया बन्द हो गई। उनके उपदेश ने बहुत से लोगों के हृदयों को प्रभावित किया। जब लालाबाबू की कोठी में ठहरे हुए थे तब एक बार गंगा नदी के पार से राजा जयकिशनदाश जी आये। मैंने उनको सूचना दी कि स्वामी जी ठहरे हुए हैं और आप से मिलना चाहते हैं। राजासाहब ने कहा कि आज तो नहीं फिर आऊँगा और चौथे दिन उन्होंने एक पत्र मेरे भाई हजारीलाल बासिलबाकीनवीस लालाबाबू के नाम भेजा कि कोठी में हमारे लिए स्थान रखना और एक कहार का प्रबन्ध कर रखना। वह आये और स्वामी जी से मिले। दोनों परस्पर प्रेम से मिले। वह एक रात ठहरे थे। सायंकाल को आये थे। रात को सैय्यद अहमद खां के विषय में बात चली कि वह पैगम्बर (सन्देशवाहक) बन गया है और यह भी कहा कि मैंने आपकी कलकत्ते में भी खोज की थी। प्रातःकाल वह कोयल चले गये। उस समय तहसीलदार सैय्यद मोहम्मद से जो एक अच्छे मौलवी और विद्वान् थे, स्वामी जी की बातचीत हुई। जो स्वामी जी ने कहा, वह सब उसने स्वीकार किया। स्वामी जी ने उससे कहा था कि मूर्तिपूजा का और पुराणों और उन पुस्तकों का जो वेद के विरुद्ध हैं—मैं खंडन करता हूं। उसने स्वामी जी की सब बातों का समर्थन किया अपितु

पूर्णतया अनुकूल हो गया। फिर स्वामी जी वहाँ से राजघाट चले गये। उस समय नग्न थे, केवल एक लंगोट रखते थे। सुना गया कि वस्त्र कलकत्ते में जाकर पहने थे।'

स्वामी जी के सुझाव पर विरजानन्द जी से अष्टाध्यायी पढ़ी—पंडित बिहारीदत्त शर्मा जी सनाढ्य, ग्राम दानपुर जिला बुलन्दशहर निवासी, कहते है 'जब आरम्भ में स्वामी जी कर्णवास आये उस समय मैं लघुकौमुदी अंबादत्त जी पहाड़ी के पास पढ़ता था। उस समय लोगों ने कहा कि एक क्रिस्तान ऐसा है जो मूर्तिपूजा और कौमुदीकी आदिक ग्रन्थों का खंडन करता है और नहीं मानता। उनको देखने के विचार से हम चार व्यक्ति एक मैं, दूसरे गुरुदत्त, तीसरे मिठ्ठूलाल, चौथे पं०हीरावल्लभ स्वामी जी के पास गये। यहां आनकर शास्त्रार्थ स्वामी जी और हीरावल्लभ का हुआ। प्रतिज्ञा, यह थी कि यदि हम पराजित हो जायेंगे तो प्रतिमापूजन छोड देंगे और यदि तुम हार जाओ तो प्रतिमापूजन करना। हमारे गुरु अंबादत्त ने कह दिया था कि जो हीरावल्लभ कर दे वही हमको स्वीकार है। प्रातःकाल से दोपहर के बारह बजे तक शास्त्रार्थ होता रहा। अन्त को इस सूत्र 'सर्वादीनि सर्वनामानि' पर हीरावल्लभ परास्त हुआ और उसका पक्ष गिर गया। स्वामी जी ने महाभाष्य के प्रमाण से उसका खंडन कर दिया, जिस पर वह परास्त हो गया। उसने भी सच्चे हृदय से अपने ठाकुर शालीग्राम गंगा जी में फेंक दिये और उसी समय पंडित टीकाराम जी ने भी अपने ठाकुर फेंक दिये और जिस गंगामन्दिर के टीकाराम पुजारी थे और जहां से वेतन पाते थे—उसकी पूजा भी छोड़ दी तथा मन्दिर को त्याग दिया। ठाकुर गोपालसिंह, किशनसिंह व रघुनन्दनसिंह आदि ने प्रतिज्ञा की कि हम यज्ञोपवीत करावेंगे और प्रायश्चित्त करेंगे। स्वामी जी ने हमको अर्थात् मिठ्ठूलाल, गुरुदत्त और मुझको उपदेश दिया कि तुम स्वामी विरजानन्द जी के पास जाकर मथुरा में अष्टाध्यायी, महाभाष्य पढ़ो। पांच वर्ष में ऐसे पंडित हो जाओगे कि जिला बुलन्दशहर, अलीगढ मे कोई तुम्हारे सामने बोलने वाला न होगा। गुरुदत्त तो गया नहीं परन्तु मिट्ठूलाल यज्ञोपवीत के संस्कारों से १५) दक्षिणा लेकर पढ़ने को चले गये। एक बार वह चार अध्याय अष्टाध्यायी के पढकर आये। हमसे कुछ भी बात उनके सामने न बन सकी जिससे हमको बड़ी ग्लानि हुई। वह फिर भी गये और शेष चार अध्याय पढ़े परन्तु खेद है कि फिर स्वामी विरजानन्द जी का शरीर छूट गया।

अनूपशहर की घटनाएँ

स्वामी जी ठाकुरों का यज्ञोपवीत कराकर अनूपशहर में आये और रविशंकर गुजराती तथा ब्रह्मशंकर गुजराती, दोनों उनके शिष्य हुए और संध्या-गायत्री आदि स्वामी जी से सीखा। अंबादत्त ने (हीरावल्लभ के हार जाने और मूर्तियों के गंगा में फेंक देने का वृत्तान्त सुना तो अनूपशहर में आने पर वह स्वामी जी से फिर मिलने आया) निवेदन किया कि महाराज! मेरी तो जीविका ही वैद्यक की है और मूर्तियों की प्रतिष्ठा की सौ-दो-सौ की आजीविका है, वह भविष्य में नहीं करूँगा। उसने यह प्रतिज्ञा स्वामी जी के सामने की परन्तु खेद है कि वह अपनी प्रतिज्ञा पर स्थिर न रहा।

स्वामी जी के चले जाने के पश्चात् कस्बा दानपुर में जाकर उसने गंगामन्दिर की प्रतिष्ठा कराई। स्वामी जी को यह सूचना कानपुर में हरनारायण चौबे द्वारा मिली कि दानपुर में अंबादत्त ने मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई। स्वामी जी ने कहा कि हम जब अनूपशहर आयेंगे तब उसे देखेंगे।

जब इसके पश्चात् अनूपशहर आये और लालाबाबू के कोठी में ठहरे तो हमारे पिता हरदेवसहाय तिवारी भी स्वामी जी से मिलने गये। सात दिन तक स्वामी जी ठहरे। अंबादत्त से बहुत कहा और मिलने के लिए बुलाया परन्तु वह घर से बाहर न निकला और कहता रहा कि हम गृहस्थी है, साधुओं

के पास नहीं जाते। फिर स्वामी जी अहार की ओर चले गये। गुरुदत्त ने अध्ययनार्थ मथुरा जाने को बहुत कुछ कहा परन्तु अंबादत्त ने नहीं जाने दिया।'

जीवित के श्राद्ध को स्वामी जी द्वारा निर्दिष्ट विधि—**पंडित छोटेलाल गौड़** आयु ५५ वर्ष और **पंडित कर्णानन्द गौड़ अनूपशहर निवासी ने ऐसे ही शब्दों में वर्णन किया** 'कि जब स्वामी जी गंगातट पर आकर नर्मदेश्वर के मन्दिर के पास बड़े सती वाले स्थान पर ठहरे तो नगर के लोगों ने उस मन्दिर में पियार अर्थात् धान की छाल डाल दी थी। स्वामी जी दिन को बाहर रहते और शास्त्रार्थ तथा वार्तालाप किया करते। केवल संस्कृत ही बोलते, एक ही लंगोट रखते और सिर के नीचे समस्त शरीर पर गंगारज लगाते थे। सम्भवतः कुछ काल यहाँ रहे। रात को जब तक लोग बैठे रहते, दस ग्यारह बजे तक जागते उसके पश्चात् घर के भीतर चले जाते और उस पियार में घुस जाते और कभी लोग ऊपर कम्बल डाल देते। द्वार की ओर लोगों ने एक खिड़की लगा दी थी। प्रातःकाल उठकर शौच दिशा के लिए जाते, कोई पात्र न रखते थे। स्नानादि के पश्चात् वहाँ आ जाते और लोग भोजन का प्रबन्ध कर देते थे। कोई पुस्तक पास न थी। पंडित पन्त सखानन्द पहाड़ी ब्राह्मण व पंडित हीरावल्लभ (स्वर्गीय) पंडित गुरुदत्त व पंडित टीकाराम गुरु (कर्णवास निवासी स्वर्गीय)—इन पंडितों की स्वामी जी से धर्म सम्बन्धी बातचीत रहती थी। पंडित पन्त जी से श्राद्ध के विषय में वार्तालाप हुआ। इन पंडितों का नियम था कि चार छः घड़ी रहे नित्य जाया करते थे। पंडित पन्त सखानन्द का नियम था कि मृतकश्राद्ध की क्रिया में भेड़ के बाल के स्थान पर अपनी छाती के एक-दो बाल उखाड़ कर चढ़ा दिया करना था। गुरुदत्त जी ने स्वामी जी से कहा, स्वामी जी ने पन्त जी से पूछा। उन्होंने श्रुतियों के प्रमाण दिये और पहाड़ियों को हजारों गालियां दीं कि गुरुदत्त आदि ने आपसे मेरी निन्दा की। उसके श्रुति के उच्चारण से स्वामी जी अत्यन्त प्रसन्न हुए, मुझे श्रुतियाँ स्मरण नहीं। स्वामी जी की आज्ञा थी कि जीवित का श्राद्ध करना चाहिए जिसकी विधि यह थी कि रबड़ी के पिंड बनाकर उस ब्राह्मण आदि के हाथ में दें जिसको निमन्त्रित किया गया हो, फिर उसको खिला दें। यहाँ एक भारी व्यास ब्राह्मण, एक ब्रह्मा ब्राह्मण, एक बलकेश्वर ब्राह्मण—इन तीनों को कराये थे और ऋषि-तर्पण अर्थात् श्रावणी उपाकर्म भी बुद्धिपूर्वक यहां बहुत से ब्राह्मणों को कराया था। स्वामी जी यहां मूर्तिपूजन को बिल्कुल न मानते थे। अट्ठारह पुराणों के विरोधी थे। वाल्मीकि और (महा) भारत को मानते थे और वेद और ब्राह्मण मानते थे। मनुस्मृति के प्रक्षिप्त श्लोक छोड़कर शेष सब मानते थे और अष्टाध्यायी और महाभाष्य को भी स्वीकार करते थे। तर्कसंग्रह को नर्कसंग्रह कहते थे। न्यायदर्शन और षट्दर्शन मानते थे। चार वेद छः अंग भी मानते थे; तीर्थ को नहीं मानते थे। जीव ब्रह्म को पृथक् मानते थे। पंडितों से ही उनकी बातें हुईं—हमारी बातचीत नहीं हुई। सरल संस्कृत बोलते थे जिसे सब लोग समझ लेते थे। एक दीपेश्वर भी उनके पास जाया करते थे। स्वामी जी अत्यन्त दृढ़ तथा हृष्टपुष्ट शरीरधारी युवक थे।

जब दूसरी बार आये तो नर्मदेश्वर में उतर कर बाँसों के टाल पर जा रहे। उस समय ला० गौरीशंकर कायस्थ तथा पंडित छोटेलाल गौड़ आदि सैकड़ों मनुष्य जाया करते थे। टाल में जिस स्थान पर ठहरे थे वह स्थान अब गंगा में आ गया है। एक महात्मा नामक पंडित सिकन्दराबाद (जिला बुलन्दशहर) निवासी ने स्वामी जी से शास्त्रार्थ की ठहराई परन्तु सारा विषय संस्कृत अक्षरों में घर से लिखकर ले गया। स्वामी जी ने देखकर कहा कि क्या यह अपने लड़के का लग्नपत्र लाये हो। ज्योंही वह स्वामी जी के सामने पहुँचा उसे बोलने की सामर्थ्य न रही।'

ला० शालिग्राम वैश्य अग्रवाल अनूपशहर निवासी ने वर्णन किया 'कि स्वामी जी जब नग्नावस्था में यहां पहुँचे तो कुम्भ के मेले पर उनके सर्वस्व त्यागने का वृत्तान्त सबको विदित हुआ। एक

गुजराती ब्राह्मण जुगल जी यहाँ रहा करते थे, उनके पास हम स्वामी जी को ले गये। वहां एक सैरंग भट्ट मथुरा के रहने वाले, जो भागवत की कथा बाँचते थे, रहते थे। उसने स्वामी जी को पहचान लिया कि यह विरजानन्द जी के पास पढ़ा करते थे। स्वामी जी ने उससे एक पद पूछा जिसका उससे उत्तर न बन सका। इस पर उसे बहुत क्रोध आया परन्तु लोगों ने उसको क्षमा कराया। उस समय और लोग भी बहुत उपस्थित थे। उस बार वह पन्द्रह दिन रहे। पहलवान नवलजंग ने फूस डाल कर चटाई डाल दी थी और रात्रि को कंबल डाल देता था। उस समय बहुत लोग नही जाया करते थे। हम चूँकि कुश्ती खेलते थे इसलिए नित्य दर्शन होता था। फिर **काशी जी की ओर चले गये।**

फिर जब काशी की ओर से आये तो लालाबाबू की कोठी में ठहरे। भगवानवल्लभ हकीम पढ़ने जाया करते थे। यहाँ के एक सबसे प्रख्यात पण्डित अम्बादत्त को लोगों ने कहा कि तुम स्वामी जी से चलकर शास्त्रार्थ करो। उसने कहा कि वहा चलकर क्या करूँगा, जो वह कहते हैं सब सत्य कहते हैं। वह सामने नही गया। एक सिकन्दराबाद के महात्मा नामक पण्डित जो तुलसी रामायण की कथा करते और रामलीला के लिए यहा आये थे, सामने गये और बोले कि रामचन्द्र ईश्वर थे। स्वामी जी ने कहा कि नहीं राजा थे। वह सामने सस्कृत न बोल सका, घबरा गया। स्वामी जी ने कहा कि भाषा बोलो और उस पर आक्षेप किया कि पुरुष से तुम स्त्री का वेश धरते हो, इसमें कितना दोष है। इसका वह कोई उत्तर न दे सका। साराश यह कि इस बार स्वामी जी श्राद्धों के समय से आकर रामलीला के पीछे तक रहे जिसके कारण यद्यपि रामलीला उस वर्ष हुई परन्तु भविष्य में बिल्कुल बन्द हो गई और अब तक नहीं होती। उस समय मूर्तिपूजा का खंडन करते और पुराणों को जाली ग्रन्थ बतलाते थे।

उनके उपदेश से भगवानवल्लभ हकीम, दीपेश्वर, बलकेश्वर, ब्रह्मा, पण्डित रविशंकर, पण्डित शालिग्राम गुजराती ब्राह्मण आदि छः व्यक्तियो ने शालिग्रामादि की मूर्तिया गंगा में फेक दी थीं और माखनचोर की मूर्तियां भी लोगों ने फेक दी थीं। जिस पर नगर के लोगों में कोलाहल मच गया। जिन्होंने मूर्तियां फेंकी थीं उन्होंने कंठियां भी तोड़ डाली थीं। स्वामी जी के साथ उस समय एक व्यक्ति सम्भवतः पण्डित टीकाराम थे।

ताजियेदारी मूर्तिपूजा है—सैय्यद मोहम्मद तहसीलदार अनूपशहर ने आकर और हाथ जोड़कर सलाम करके कहा कि स्वामी जी हमारे मत में तो कोई बात मूर्तिपूजा की नही है। उत्तर दिया कि एक बात है अर्थात् ताजियेदारी, यह मूर्तिपूजा है। उसने स्वीकार किया कि ठीक है परन्तु हम विवश हैं, हमारी कुछ नही चलती।

कल्याणसिह सुनार जो यहां का पेशकार था, उसने यह निश्चय किया कि स्वामी जी को यहाँ लालाबाबू की कोठी से निकलवा दूं और उसने जाकर मीमानचन्द्र से, जो लालबाबू की रियासत का तहसीलदार था, कहा परन्तु उसने अस्वीकार कर दिया और कहा कि हम नहीं निकालेंगे।

एक कृष्णानन्द स्वामी उनसे शास्त्रार्थ करने को आये थे परन्तु सामने नहीं आये। न सामना हुआ और न शास्त्रार्थ। इस बार स्वामी जी डेढ़ महीने रहे। इस बार चर्चा बहुत हुई। जो उनके अनुयायी हो गये थे, लोग उनको जाति से निकालने के लिए पीछे पड़े।

ला० गौरीशंकर कायस्थ श्रीवास्तव संचालक टाल बांस गंगातट अनूपशहर वर्णन करते हैं कि प्रथम जब कर्णवास की ओर आये तो रुग्ण थे। दो तीन दिन रुग्ण रहे। हमको कहा कि तुलसीदल घोटकर और कुछ काली मिर्च डालकर लाओ, उसको पीकर नीरोग हो गये। हमने रोटी के लिए कहा तो बोले कि हम नही खायेंगे। अन्त में हमने अनुरोध करके मूंग की दाल में सोंठ डालकर पिलाई। वह नीरोग हो गये।

"हमें रोटी की पर्वाह नहीं"—जिन दिनों पहले स्वामी जी आये थे उस समय यहां एक रामदास वैरागी परमहंस राजा बूंदी वाले का गुरु रहता था। उससे स्वामी जी का बहुत प्रेम था। रामदास मूर्ति-पूजा नही करता था। स्वामी जी जब अनूपशहर को जाने लगे तब रामदास ने कहा कि तुम भागवत का खंडन करते हो और नगर में कथा हो रही है, कोई रोटी को भी नही पूछेगा। स्वामी जी ने कहा कि हमें पर्वाह नहीं, हमारा प्रारब्ध हमारे साथ है। यहाँ जबतक आते रहे कभी वस्त्र नहीं पहनते थे। पहली बार संवत् १९२४ के वर्ष में कर्णवास से आकर हमारे टाल में आठ दिन रहे। उस समय यहां रामदास बाबा परमहंस और एक दक्षिणी स्वामी और सूरजपुरी और मौजबाबा परमहंस भी थे। मौजबाबा ने दक्षिणी को कहा कि दयानन्द आये हैं, वे यद्यपि तुम्हारे हमारे मत की कहते हैं परन्तु गृहस्थी लोगों के विरुद्ध हैं। दक्षिणी स्वामी जी ने सूरजपुरी को भेजा, वह कई बार गये। स्वामी जी बुद्धिपूर्वक उत्तर देते थे। दक्षिणी स्वामी बार-बार उनको भेजते थे। अन्त में सूरजपुरी ने एक बात पूछी। स्वामी जी ने कहा कि तुम्हारी मोटी बुद्धि इसको नहीं समझती है। स्वामी जी ने उदाहरण दिया कि चीनी को रेत में डाल दो, उसको हाथी नहीं निकाल सकेगा परन्तु चींटी निकाल लेगी। ऐसे ही सूक्ष्म बातों को मोटी बुद्धि वाले नही समझते। फिर स्वामी जी यहाँ से गढ़मुक्तेश्वर की ओर चले गये और जब गढ़मुक्तेश्वर की ओर से लौटे तो नर्मदेश्वर में रहे। उस समय एक मास तक यहाँ रहे। वहां लोगों ने एक टट्टी लगा दी थी और धान की पियार नीचे और उसके ऊपर चटाई बिछा दी थी। रात को उसके ऊपर पड़े रहते थे। फिर यहाँ से कर्णवास की ओर चले गये। पहले पहल यहां स्वामी जी भादों में आये थे और लौट-कर सर्दी के दिनों में आये। फिर दो तीन वर्ष के पश्चात् यहाँ आये जिससे पहले ग्राम रामघाट पर कृष्णा-नन्द से उनका झगड़ा (शास्त्रार्थ) हो चुका था। मैंने सुना है कि कृष्णानन्द आया। मौलवी सैय्यद मोहम्मद तहसीलदार ने कृष्णानन्द से जाकर कहा कि तुम शास्त्रार्थ कोठी में चलकर करो। न कृष्णानन्द वहाँ गये और न स्वामी दयानन्द जी यहाँ आये। उन दिनों सच्चिदानन्द सरस्वती भी यहां उतरे हुए थे। इस बार स्वामी जी पहले दो दिन हमारे टाल पर, फिर लालाबाबू की कोठी में जा रहे। सम्भवतः पन्द्रह दिन रहे थे। फिर यहाँ से गढ़ की ओर चले गये और जब लौटे तो यहाँ केवल एक दो दिन रहे। उन दिनों यहाँ पर बलकेश्वर, रविशंकर तथा कुछ अन्य मनुष्यों ने मूर्तिपूजा अवश्य छोड़ दी थी परन्तु स्वामी के चले जाने के पश्चात् वह जाति के डर के मारे फिर करने लगे। प्रत्येक स्थान पर उनके पास बहुत से पण्डित लोग आते थे परन्तु सामने आकर उनके प्रबल युक्तियुक्त और जोरदार भाषण के आगे सबके होश उड़ जाते थे। बाबा रामदास और दयानन्द जी बराबर बराबर बैठ जाते थे और हम दोनों पंखा किया करते थे। रघुनाथसहाय पुजारी, शालिग्राम वैश्य, बद्रीदत्त वैश्य, सब ने स्वामी जी का समर्थन किया।

विष को न्यौलीक्रिया से निकाल दिया, विष देने वाले को कैद से छुड़ाया—अनूपशहर की एक घटना यह भी है कि एक दिन उनके मूर्तिखण्डन से तंग आकर एक ब्राह्मण ने उनको पान मे विष दे दिया उन्होंने जान लिया और भीतर जाकर न्यौली कर्म करके बड़ी कठिनाई से बचे। उस मनुष्य को कुछ न कहा। सैय्यद मोहम्मद साहब तहसीलदार ने उस मनुष्य को किसी प्रकार बन्दी बना लिया। वह स्वामी जी के पास नित्य आता और उनसे बहुत प्रीति करता था। बन्दी बनाने के पश्चात् जब वह आया तो स्वामी जी ने उससे बोलना बन्द कर दिया। वह मन में प्रसन्न था कि मैंने स्वामी जी के शत्रु को बन्दी कर लिया है। **जब स्वामी जी के पास आया तो स्वामी जी ने उससे बोलना बन्द कर दिया। जब उसने** कारण पूछा तो स्वामी जी ने कहा कि मैं संसार को बन्दी बनाने नहीं आया प्रत्युत बन्धन से छुड़ाने आया हूं। वह यदि अपनी दुष्टता को नहीं छोड़ता तो हम अपनी श्रेष्ठता का त्याग क्यों करें ? अन्त में तहसील-दार साहब ने अपील करवाकर उसे छुड़वा दिया।

ठाकुर जी को लगाये भोग का उच्छिष्ट नहीं खाया—कर्णवास के वृत्तांत में पण्डित भूमित्र जी ने ठाकुर शेरसिंह की अपेक्षा यह अधिक बताया कि जब आरम्भ मे स्वामी जी आये तो पण्डित भगवानदास भागवती उनको अपने यहाँ साथ लाये और अपने मन्दिर में ठहराया। भोजन के समय उसने ठाकुर जी को भोग लगाकर स्वामी जी को खिलाना चाहा। स्वामी जी ने कहा कि हम उच्छिष्ट पदार्थ को नही खाते; जिस पर पीछे पण्डित जी को बिना भोग लगाये ही खिलाना पड़ा।

जब **टीकाराम** गुरु स्वामी जी से मिलकर रामघाट से आये उस समय के विषय में बतलाया है कि स्वामी जी से उन्होंने धर्म विषय में सब प्रकार का शंकासमाधान किया और स्वामी जी के कथन पर दृढ विश्वास हुआ। वहाँ से चलकर कर्णवास में आकर उसने ठाकुर गोपालसिंह, घोड़लसिंह, जयरामसिंह धर्मसिंह, कुंवर शेरसिंह, भूर्मसिंह आदि से कहा 'कि एक महात्मा बड़े विद्वान् हमको रामघाट में मिले। उनसे हमको निश्चय हुआ कि वेद-शास्त्रों में मूर्तिपूजन बिल्कुल नही है और अष्टादश पुराण भी झूठे हैं और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन वर्णों की एक ही गायत्री है। इसलिए हम तुम्हारे मन्दिर की पूजा छोडते हैं, आप किसी और को पुजारी कर दीजिए। हम इस काम को नहीं करेंगे और तुमको भी उचित है कि इस धर्म को छोड़ो और अपने यज्ञोपवीत कराकर वेदोक्त धर्म को स्वीकार करो और उन महात्मा को बुलाओ।' अत: स्वामी जी यहाँ आये और पूर्वोक्त क्षत्रियों का यज्ञोपवीत कराया और यह लोग मूर्तिपूजा और पुराणो की कथा से घृणा करके वेदोक्त धर्म पर तत्पर हुए। इस बार स्वामी जी ने यहां बहुत समय तक निवास किया। प्रतिदिन अहमदगढ़, अनूपशहर, रामघाट, अतरौली और देश देशान्तर के पण्डित तथा सन्यासी लोग आकर उनसे शास्त्रार्थ किया करते थे परन्तु सबकी पराजय होती थी। बड़े-बड़े राजा और रईस दूर-दूर देशों के यहां पर उनके दर्शन को आया करते थे। प्रातःकाल से रात के ग्यारह बजे तक स्वामी जी के पास सौ-पचास मनुष्य प्रतिदिन बैठे रहते थे और अनेक प्रकार की धर्म विषयक चर्चा किया करते थे। इसी बीच मे ठाकुर गोपालसिंह जी ने उनके लिए एक पृथक् कुटी बनवा दी और एक तख्त भी उसमें डलवा दिया। स्वामी जी महाराज यहाँ से रात्रि के दो बजे गंगा के किनारे से उठ जाते थे। वहां पर गंगा में गोता लगाकर समाधि मारकर बैठ जाते थे (यह स्थान बिल्कुल गंगातट पर था) वहां घण्टा भर दिन चढ़े समाधि से उठकर व्यायाम करके फिर उस कुटी में आ जाते थे। उनके आने तक मनुष्यो की भीड़भाड़ हो जाती थी, क्योंकि वह स्थान जहाँ स्वामी जी ध्यान किया करते थे यहाँ से दूर और एकान्त झाड़ी में था, इसलिए लोग उधर ही को टकटकी लगाये देखते रहते थे। जब स्वामी जी आते, धर्मचर्चा शास्त्रार्थादि आरम्भ हो जाते। इसी बीच में एक दरोगा अलफखां यहां आये थे। उन्होंने कुरआन के विषय में कुछ बातचीत की। स्वामी जी ने भी कुरआन के विषय मे संस्कृत में कुछ पूछा। गुरु टीकाराम जी ने उलथा करके सुनाया परन्तु स्वामी जी के आक्षेप का उत्तर दरोगा जी से कुछ न बन आया।

वेदानुकूल आचरण करने से शुद्धि—इसी समय रईस धर्मपुर जो नव मुस्लिम हैं, स्वामी जी के दर्शन को आये। उन्होंने अपने मुसलमान होने के विषय में कहा कि क्या हम भी किसी प्रकार शुद्ध हो सकते हैं ? तब स्वामी जी ने कहा कि तुम वेदानुकूल अपने आचरण करो तो अवश्यमेव हो जाओगे।

इसी फेरे में एक शास्त्रार्थ यहाँ बड़े जोर का हुआ कि जिसमें अनूपशहर निवासी पण्डित हीरा-वल्लभ कि जिनको ऋग्वेद तथा यजुर्वेद की दोनों संहिताएं कंठाग्र थीं और व्याकरण भी अच्छा जानते थे, सम्मिलित थे तथा अनूपशहर के दूसरे पण्डित बलकेश्वर तथा और भी दूरदेश के पण्डित इसलिए एकत्रित हुए थे कि स्वामी जी से शास्त्रार्थ मूर्तिपूजन के विषय पर करेगे। वहां पण्डित हीरावल्लभ ने प्रण किया

कि यदि मै मूर्तिपूजन के शास्त्रार्थ में स्वामी जी से जीतूंगा तो पूजा करूंगा अन्यथा छोड़ दूंगा। शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ—हीरावल्लभ भी संस्कृत बोलते थे। पण्डित हीरावल्लभ ने सब पण्डितों की ओर से शास्त्रार्थ प्रारम्भ किया। उस दिन लगभग नौ घंटे तक शास्त्रार्थ होता रहा। अन्त में पण्डित हीरावल्लभ ने सब पण्डितों के मध्य में स्वामी जी की प्रशंसा की और अपनी मूर्तियों को लेकर गंगा में पधार दिया और उच्च स्वर से कहा कि मूर्तिपूजा वेदोक्त नहीं है।

पण्डित कृष्णावल्लभ जी पुजारी मन्दिर, कर्णवास निवासी ने वर्णन किया कि एक दिन एक रानी हमारी यजमान आई हुई थी। उस दिन हम रामानुज का त्रिपुण्ड्र माथे पर लगाकर स्वामी जी के पास गये। स्वामी जी ने पूछा कि आज क्या कारण है ? मैं उत्तर देने को ही था कि कहने लगे 'हम समझ गये, आज तेरे यजमान आये हैं।' फिर पूछा, 'बतलाओ क्या दान मिला।' मैं ने कहा कि गुप्त है। बोले कि अच्छा।

इसके पश्चात् कहने लगे कि अंगद शास्त्री (पीलीभीत वाले) की चिट्ठी हमारे पास आई और हमने उसका यह उत्तर लिखा है। अगद शास्त्री की इस चिट्ठी के अन्त में यह श्लोक अंगदराम ने लिखा था, जो मुझे स्मरण है—

शेषः पातालके चास्ति स्वर्लोके च बृहस्पतिः। पृथिव्यामङ्गदः साक्षात् चतुर्थो नैव दृश्यते ॥

सारांश यह कि अंगदराम ने बहुत-सी अपनी प्रशंसा संस्कृत में लिखी थी। स्वामी जी ने मुझसे पूछा 'क्या अंगद ऐसा ही है ?' मैंने कहा कि मैंने उसको देखा नहीं तो क्या कहूँ। स्वामी जी ने कहा कि 'रंडाचार्य्यस्य का गणना' अर्थात् इसके सामने रंडाचार्य्य की क्या गिनती ! फिर उन्होंने मुझे अपनी लिखी हुई वह चिट्ठी दिखलाई जो अंगदराम के नाम लिखी थी। वह चिट्ठी संस्कृत में थी और बहुत लम्बी थी। मैंने पढ़ी, और वृत्तांत तो मुझे स्मरण नहीं रहा परन्तु उसके नाम के तीन अक्षरों 'अं ग द' के आठ-आठ खण्ड करके बहुत जोरदार चिट्ठी लिखी थी और उसके अहंकार की दुर्गति की। वह सारा पत्र देखने से सम्बन्ध रखता था। बहुत उत्तम खंडन किया था। यहां स्वामी जी पांच-छः मास रहे। दो-तीन बार आये थे।

मेरे पिता नन्दकिशोर जी से स्वामी जी के निम्नलिखित प्रश्नोत्तर हुए थे। स्वामी जी ने हमारे मूर्तिपूजन पर कहा—'घंटानादेन अलम्'। उन्होंने अर्थात् मेरे पिता जी ने कहा कि ऐसा न कहो, हम इसी के प्रताप से सात हजार के स्वामी हैं। स्वामी जी ने कहा—'एवं मा वद प्रारब्धेन कृतः' अर्थात् ऐसा मत कहो, यह इस मूर्ति ने नहीं दिया, प्रारब्ध से हुआ है। पिता जी ने कहा कि आप भी ऐसा न कहें। प्रारब्ध में लिखा है या नहीं इसका क्या पता है। स्वामी जी ने कहा कि तुम चौबारे में जा बैठो तो भी जो प्रारब्ध में होगा वह सब हो ही रहेगा।

मेरे पिता जी ने कहा कि महाराज आपका वाक्य तो सत्य है (इतने में मैं बोल उठा) कि महाराज आपके वाक्य तो सत्य हैं परन्तु हमको यहीं बैठे रहने दो।

स्वामी जी बोले—मैंने जान लिया सब पुरुषों के मध्य में तू चतुर अथवा सियाना है।

'वे तो मानो बृहस्पति हैं'—अम्बादत्त शास्त्री मेरे पिता जी ने सुविख्यात पंडित अम्बादत्त अनूपशहर निवासी से पूछा कि आपका स्वामी जी से शास्त्रार्थ हुआ है, वे कैसे विद्वान् हैं ? उसने आवेश में आकर दोनों हाथ उठा कर पृथ्वी पर मारे और कहा कि भाई क्या कहूँ वह तो मानो बृहस्पति का अवतार है।

जब पंडित अम्बादत्त का अनूपशहर में स्वामी जी से शास्त्रार्थ हुआ था, उस समय वह अधिक वृद्ध होने और संस्कृत बोलने का अधिक अभ्यास न होने के कारण हाँफने लगा था, श्वास चढ़ गया था। तब स्वामी जी ने कहा—'ममाऽभ्यास., त्वं वृद्धोऽसि, मूको भव, मया ज्ञातम्; तव समानोऽनूपशहरमध्ये पण्डितो नास्ति'। अर्थात् मेरा अभ्यास है तू वृद्ध है इसलिए सन्तोष कर मौन हो जा। मैने जान लिया तेरे जैसा अनूपशहर में पंडित नहीं है।

देश की दुर्दशा करने वालों पर क्रोध—मास्टर गोपालसिंह वर्मा, कर्णवास निवासी, ने वर्णन किया कि पहली बार स्वामी जी हरिद्वार की ओर से दिगम्बर वेश में विचरते हुए संवत् १९२४ में कर्णवास पधारे। कई मनुष्यों ने नगर में आकर कहा कि एक महात्मा वेद के जानने वाले और संस्कृत भाषा बोलने वाले आये हैं। सन्ध्या-समय मैं और कुंवर शेरसिंह वर्मा ने जाकर उनके दर्शन किये। उन्होंने संस्कृत में हमसे पूछा कि तुम कौन वर्ण हो? हमने कहा कि क्षत्रिय हैं। पूछा कि तुम्हारा यज्ञोपवीत हुआ है? हमने कहा कि रीति के अनुसार हमारा यज्ञोपवीत विवाह पर कराते है; जिसमें शेरसिंह का तो विवाह हो गया था उसका यज्ञोपवीत भी हो गया। मेरा विवाह नहीं हुआ इसलिए यज्ञोपवीत भी नहीं हुआ। महाराज ने उत्तर में कहा कि संजोगड़ों ने इस देश को बिल्कुल भ्रष्ट कर दिया है और इन पोप पंडितों ने बिगाड़ रखा है। जैसे दो चार मढी वाले साधु लोगों को यह गुरुमत्र सिखलाते है 'कम्पनी किसकी जोरू, सध्या किसका साला, पी प्याला मार भाला लगे दम'! इस अवस्था में किस प्रकार देश की उन्नति हो सके। ऋतु जाड़े की और महीना पौष का था। महाराज के पास लंगोटी के अतिरिक्त और कुछ न था। दो चार लडको ने तालाब से कुछ लड़सी (एक प्रकार की घास) लाकर एक उदासी की कुटिया में डाल दी (यह कुटिया जहाँ अब हवनकुंड बना है उसके पीछे थी, अब नहीं रही) उसी घास को आधा ऊपर ओढ़ लेते और आधा नीचे बिछा लेते थे। दिन में नौ बजे से गंगातट पर जाकर ११ बजे के लगभग लौटते। एक दिन पंडित भगवानदास नगरनिवासी ने महाराज का न्यौता किया। फुल्का, कढ़ी, भात, खीर—खाना खिलाया। दूसरे दिन उक्त पण्डित से स्वामी जी ने तिलक का खण्डन किया जिसको पंडित जी ने बहुत बुरा माना ओर कहा कि यह अग्रेजों के भेजे हुए मत के बिगाड़ने को आये हैं। इस बार स्वामी जी पांच दिन रहे फिर **रामघाट** की ओर चले गये।

दूसरी बार जो महाराज यहाँ पधारे उसका कारण यह था कि गुरु टीकाराम ने राजघाट जाकर स्वामी जी से मूर्तिपूजा के बारे में अपने सन्देह निवृत्त किये और कर्णवास आकर ठाकुर गोपालसिह व ठाकुर कृष्णसिंह के गंगामन्दिर की पूजा छोड़ दी। इसलिए स्वामी जी को बुलाया गया। जब वह आये तो इन ठाकुरों और ठाकुर रघुनन्दन व जयरामसिंह व धर्मसिह आदि ने यज्ञोपवीत कराया जिसमें अनूप-शहर के पंडित बलकेश्वर तथा एक और पंडित वेदपाठी थे और सब ने इस विधि को स्वीकार किया। इस बार लगभग एक मास रहे।

तीसरी बार संवत् १९२८ अर्थात् सन् १८७१ में कुँवर लछमनसिह, पंडित नाताराम, गिरधर ब्राह्मण, मुंशी ख्यालीराम ककोडा निवासी और मुझको तथा इसके अतिरिक्त और भी कई व्यक्तियों को यज्ञोपवीत दिया। इसी बार राव कर्णसिह रईस बरौली गगा जी के स्नानार्थ आये और स्वामी जी से उनकी बात-चीत हुई। इस बार लगभग तीन मास रहे।

कुँवर लछमनसिंह जी और ठाकुर कृष्णसिंह जी ने वर्णन किया 'कि जब स्वामी जी तीसरी बार आये तो दो-चार दिन रहकर अनूपशहर की ओर चले गये। इसी बीच में हमारे वृद्धजनों ने यज्ञोपवीत की सामग्री हमारे लिए इकट्ठी कर ली फिर अनूपशहर से चार-पांच पंडित बुलाये अन्य स्थानों से भी

पंडित लोग आये थे। आठ-सात दिन तक हवन होता रहा। मेरे साथ आठ-दस ब्राह्मणों के यज्ञोपवीत हुए। लगभग एक मास रहे थे। यहां से छलेसर के लोग आये और ले गये। मेरा यज्ञोपवीत कार्तिक संवत् १९२८ तदनुसार नवम्बर, सन् १८७१ में हुआ था। उसी समय सहाराम, नाथूराम, भजना, राधावल्लभ, ठाकुर बलदेवसिंह और चंदूबाई के मनुष्यों का भी हुआ था।

गायत्री मन्त्र के उच्च स्वर से पठन में हानि नहीं; कोई सुने—एक दिन मैं उनके पास बैठा हुआ गायत्री जोर से पढ़ रहा था। एक पंडित आये और मुझ पर कुपित हुए कि गायत्रीमन्त्र को ऐसे जोर से मत पढ़ो, और नीच जाति के लोग सुनते हैं। स्वामी जी ने उसको बहुत धमकाया जिस पर वह चुप कर रहा और मुझे कहा कि निःशक होकर उच्च स्वर से पढ़ो।

"सूतक कोई चीज नहीं"—ठाकुर शिवलाल वैश्य रईस डिबाई जिला बुलन्दशहर ने वर्णन किया कि माघ बदि १५ संवत् १९२४ (२४ जनवरी, सन् १८६८ शुक्रवार) सूर्यग्रहण के पर्व पर गंगास्नान करने के लिए स्थान कर्णवास गया। वहां पर श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती से भेंट हुई। चूंकि उनकी विद्वत्ता की प्रशंसा मैं प्रायः लोगों से सुन चुका था इसलिए कुछ थोड़ा सा मिष्ठान्न लेकर उनकी सेवा में उपस्थित होकर यह प्रार्थना की कि महाराज! आप इसमें से कुछ सेवन कीजिये। उन्होंने उत्तर दिया कि इस समय कुछ क्षुधा नहीं। दूसरी बार कहने पर उसमें से थोड़ा सा लेकर मुख में डाल दिया और कहा कि शेष को बांट दो। उनकी आज्ञानुसार उसको बांट दिया गया। तत्पश्चात् मैंने अन्य उपस्थित लोगों की सम्मति से महाराज से पूछा 'कि आज जो सूर्य्यग्रहण का पर्व है उसका सूतक किस समय तक मानना चाहिए? स्वामी जी ने उत्तर दिया कि सूतक कोई चीज नहीं। फिर मैंने पूछा कि महाराज! भोजन किस समय पाना चाहिए? उत्तर दिया कि जब क्षुधा लगे। फिर मैं वहां से उठकर और गंगास्नान करके तथा भोजन से निवृत्त होकर महाराज की सेवा में पहुँचा। उस समय एक ब्राह्मण महाराज के लिए भोजन (अरहर की दाल और फुल्का) लाया। महाराज हाथ धोकर भोजन करने लगे और मुझको आज्ञा दी कि तुम बैठे रहो। जब भोजन पा चुके तब मैंने सृष्टि उत्पत्ति के विषय में पूछना आरम्भ किया। महाराज उन दिनों संस्कृत बोलते थे, मैं उनके उत्तर को भली प्रकार न समझ सकता था तब उन्होंने पंडित टीकाराम को बुलाकर कहा कि तुम इनको समझाते जाओ। जो बातें महाराज कहते गये वह भली प्रकार समझाते गये जिससे मेरा भली-भांति सन्तोष हो गया। तब उन्होंने कहा कि तुम मनुस्मृति को सुनो, मैंने स्वीकार किया।

इस स्थान पर यह बात भी वर्णन करने योग्य है कि बहुत से लोग जो सूर्य्यग्रहण के समीप वहां आये हुए थे, परन्तु सूर्य्यग्रहण का ज्ञान न होने के कारण दोपहर के तीन बजे तक न तो उन्होंने किसी ने स्नान किया और न भोजन पाया। तत्पश्चात् जब सब स्नान करके भोजन पाने लगे तो सूर्य्यग्रहण पड़ना आरम्भ हो गया। उस समय मैं महाराज के पास बैठा था। भंगी लोग इस प्रकार पुकारने लगे 'दान करियो, ग्रहण पड़े है' यह सुनकर और निरीक्षण करके महाराज जोर से हंसे और कहने लगे 'सोचते नहीं हैं, उस समय तो भोजन न पाया और ठीक ग्रहण के समय भोजन करने लगे, देखो इनकी विलक्षण गति हैं।'

श्रेष्ठता शुभ कर्मों से है परन्तु संस्कार अवश्य होना चाहिए—दूसरी बार स्वामी जी मुझे फागुन बदि १३, संवत् १९२४ तदनुसार २१ फरवरी, सन् १८६८ को कर्णवास में मिले। पहुँच कर क्या देखता हूँ कि आप दो चार ठाकुरों और वैश्यों के लड़कों के उपनयन संस्कार कराने का प्रयत्न कर रहे हैं। मैंने जाकर नमस्कार किया और यज्ञोपवीत के विषय में—जिसका कराना मुझे भी स्वीकार था, प्रश्न किया।

प्रश्न--महाराज यदि यज्ञोपवीत न हो तो क्या हानि है ? स्वामी जी ने उत्तर दिया—कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का उपनयन संस्कार होना अवश्य है क्योंकि जब तक उपनयन संस्कार नहीं होता मनुष्य को वैदिक कर्म करने का अधिकार नही होता।

प्रश्न—एक व्यक्ति उपनयन संस्कार तो करा ले परन्तु शुभ कर्म न करे और दूसरा उपनयन संस्कार न करावे और सत्यभाषणादि कर्मों में तत्पर हो तो उन दोनों मे कौन श्रेष्ठ है ?

स्वामी जी ने उत्तर दिया—कि श्रेष्ठ **वह जो उत्तम कर्म करता है** परन्तु संस्कार होना आवश्यक है; **क्योंकि संस्कार न होना वेदशास्त्रों के विरुद्ध है** और जो वेद शास्त्र के विपरीत करता है वह ईश्वरीय आज्ञा को नही मानता और ईश्वराज्ञा को न मानना मानो नास्तिक होने का लक्षण है।

यज्ञोपवीत, सन्ध्या, बलिवैश्वदेव आदि का विशेषतया उपदेश—पण्डित बलदेव जी गौड़, ब्राह्मण डिबाई निवासी ने वर्णन किया कि स्वामी जी जब राजघाट या रामघाट की ओर से भादों बदि दशमी, संवत् १९२४ तदनुसार २४ अगस्त सन् १८६७ को कर्णवास में आये, तब मैं गंगास्नान के दूधलीला के मेले पर गया था और मेले से निबट कर जब मै ग्राम की ओर आने लगा तब वहाँ पर मुझे पण्डित टीकाराम जी गुरु कर्णवास निवासी ने कहा कि एक बड़े विद्वान् आये हैं जो कृष्णानन्द सरस्वती गुजराती ब्राह्मण बांदा निवासी से भी बहुत विद्वान् हैं, केवल संस्कृत बोलते है। मैं उनके मुख से स्वामी जी की प्रशंसा सुनकर उनके दर्शन को गया। वह उस समय पक्के घाट पर बसेन्दु के पेड़ के नीचे टिके थे। मैंने जाकर प्रणाम किया, वह संस्कृत बोलते थे, कोई वस्त्र नहीं था; केवल एक लगोटी थी परन्तु वह बैरागी लोगों की भाँति न थी, प्रत्युत ५ गज लम्बी और ६ गिरह चौड़ी थी। गगारज शिर पर तो लगाते थे परन्तु माथे पर नहीं। स्वामी जी ने मुझ से संस्कृत में पूछा कि तुम कहां के रहने वाले हो ? मैंने कहा कि डिबाई का। फिर पूछा कि तुम कौन हो ? मैने कहा कि गौड़ ब्राह्मण हूँ। फिर पूछा कि संध्या करते हो या नही ? मैंने कहा कि महाराज संध्या करता हूँ और गायत्री का जप भी करता हूँ। तब उन्होंने कहा 'समीचीनम्।' बलिवैश्वदेव (यज्ञ) करते हो या नहीं ? मैने कहा कि चावल और घृत से करता हूँ। कहने लगे कि अच्छा हम तुमको बलिवैश्वदेव (यज्ञ) की विधि लिख देंगे। उन दिनों महाराज जी का उपदेश यज्ञोपवीत, संध्या, बलिवैश्वदेव आदिक का अधिक था और यह भी उस समय कहते थे कि तीनों वर्णों की गायत्री एक ही है। मैने कहा कि यह ब्राह्मण लोग तो तीनों वर्णों की पृथक्-पृथक् बतलाते हैं। कहने लगे कि यह 'गप्पाष्टक' है (यह शब्द उस समय पोप के स्थान पर प्रयुक्त करते थे)।

नंगे शरीर पर मिट्टी के लेप से लाभ—उस बार स्वामी जी दशमी के दिन वहाँ आकर उदासी की कुटी में रात को रहे थे। वह उदासी उनकी बहुत सेवा करता था। स्वामी जी रात को भी वस्त्र नही ओढते थे, फूस कुछ टाँगों पर और कुछ पेट पर डाल लेते थे। तीन बजे से पांच बजे तक समाधि लगाते थे। फिर उसी समय बाहर शौच को जाते परन्तु कोई पात्र न ले जाते। वहां गंगातट पर ही सब काम कर आते थे। वही लंगोटी धोकर सुखा लेते परन्तु एकान्त स्थान में जाकर नहाते और शरीर पर अच्छी प्रकार मृत्तिका लगाकर चले आते थे। मैंने पूछा कि महाराज ! आप इतनी मृत्तिका क्यों लगाते है ? कहने लगे वायु प्रवेश नहीं होता, शरीर नीरोग रहता है। उस समय भी सैकड़ों मनुष्य आते थे। जब उसके दूसरे दिन मूर्तिपूजन और पुराणादि का खंडन आरम्भ किया तो हमने पूछा कि महाराज सत्य क्या है ? स्वामी जी बोले महाभारत, वाल्मीकि रामायण, मनु, वेद यह सत्य हैं, और सब 'गप्प वर्तंते'। फिर वहाँ से मैं चला आया। पीछे सुना कि वह अनूपशहर चले गये और अनूपशहर के पण्डित अंबादत्त से उनकी वार्ता हुई। जिसपर उन्होंने स्वामी जी की बहुत प्रशंसा की और कहा कि ऐसा विद्वान् पण्डित कोई आज-

कल दिखाई नहीं देता, और उस समय अंबादत्त का पुत्र गुरुदत्त उनका आज्ञावर्ती हुआ। जब दूसरी बार स्वामी जी कर्णवास आये तब झन्नालाल, सदासुख, कल्लू आदि वैश्यों और ठाकुर लछमनसिंह आदि राजपूतों—कुल लगभग १२ मनुष्यों के यज्ञोपवीत हुए। इसी बार कहा कि महाभारत में युद्धपर्व और भीष्मोपदेश के अतिरिक्त और बहुत स्थानों पर गप्प है और मनुस्मृति और रामायण में भी गप्प है।

झन्नालाल वैश्य बारहसेनी डिबाई निवासी ने वर्णन किया कि 'मैं कर्णवास में गंगास्नान को गया था क्योंकि पण्डित भगवानदास के यहाँ दूधलीला थी। उसी दिन अर्थात् भादों बदि दशमी या एकादशी, संवत् १६२४ (२४ या २५ अगस्त सन् १८६७) को स्वामी जी वहां आये थे। हम उनके पास गये। स्वामी जी ने पूछा 'त्वं कोऽसि ?' अर्थात् तुम कौन हो। मैंने कहा कि वैश्य हूं। फिर पूछा कि तुम्हारा यज्ञोपवीत हुआ है ?—मैंने कहा नहीं। कहने लगे कि तुम यज्ञोपवीत करा लो। इस बार स्वामी जी केवल दस-पन्द्रह दिन रहे थे। फिर वहां से सोरों तक गये और फिर लौटकर हरिद्वार की ओर गये और वहां से लौटते समय अनूपशहर से होते हुए फागुन के महीने में कर्णवास आये और हम भी उसी फागुन में कर्णवास गये। तब स्वामी जी ने हमारा यज्ञोपवीत कराया और घोड़लसिंह, मुकुन्दसिंह, गोपालसिंह व किशनसिंह के यज्ञोपवीत कराये। हवन एक दिन हुआ परन्तु तब दश दिन कराया था। जप करने वाले हीरावल्लभ, बलकेश्वर, टीकाराम आदि पण्डित थे। मुझे और कुछ स्मरण नहीं। मैंने मुन्नालाल की शालिग्राम की मूर्ति उसकी सम्मति से कुँए में डाल दी थी जिस पर नगर के लोग क्रोधित हो गये थे।'

यज्ञोपवीत के लिए नियम—सदासुख वैश्य डिबाई निवासी ने वर्णन किया कि 'हम भी यज्ञोपवीत के लिए स्वामी जी के पास गये। स्वामी जी ने हमसे आज तक यज्ञोपवीत न लेने का कारण पूछा। हमने कहा कि हमारे बाप, दादा, परदादा ने कभी यज्ञोपवीत नहीं लिया। स्वामी जी ने कहा कि यह वैश्य का धर्म है, संस्कार अवश्य कराओ परन्तु घर में कलह न डालना। हम उद्यत हो गये। कार्तिक संवत् १६२८ तदनुसार नवम्बर, सन् १८७१ में यज्ञोपवीत हुआ था। मैयाराम, कल्लू, जीवना ब्राह्मण, बलहा ब्राह्मण, हीरा मुखिया ब्राह्मण, ठाकुर लछमनसिंह तथा दो और लड़के ठाकुरों के थे। ठाकुरों ने तीन चार सौ रुपये व्यय किये थे। तीन दिन हवन हुआ था। हमारे लिए प्रायश्चित्त के रूप में पन्द्रह दिन जप तीन ब्राह्मणों ने किया था। कुल दस ग्यारह ब्राह्मण थे। स्वामी जी ने स्वयं वेदी की विधि बतलाई। तीन वेदी एक ओर, तीन दूसरी ओर, बीच में कुंड खोदा। स्वामी जी उच्चारण की शुद्धि करवाते जाते थे और कहते थे कि ढीला मत करो, स्पष्ट पढो। यज्ञोपवीत के समय हमें इन चीजों का निषेध किया कि झूठ न बोलना, गर्भवती स्त्री से भोग न करना फूटे स्थान पर न बैठना। मैंने कहा कि महाराज अपनी स्त्री से भी न करें। स्वामी जी ने कहा कि अपनी से तो यह निषेध ही है अन्यथा परस्त्री से तो स्वप्न में भी न करे और न कुदृष्टि से देखे।'

अंगनलाल शर्मा तथा रामसहाय शर्मा गौड़ डिबाई निवासी ने वर्णन किया 'कि स्वामी जी भादों शुदि त्रौदश, संवत् १६२८ तदनुसार २८ सितम्बर, सन् १८७१ की रात को कर्णवास से अनूपशहर में आये थे। टाल से होकर लालबाबू की कोठी में उतरे। हम जब प्रातःकाल डिबाई से चलने लगे तो हमें ज्ञात हुआ कि स्वामी जी आज कर्णवास से अनूपशहर गये हैं। जब हम अनूपशहर पहुँचे, खोज की; प्रथम पता न मिला परन्तु शाम के सात बजे एक अच्छे ब्राह्मण ने हलवाई की दूकान पर चर्चा की कि अभी स्वामी जी कर्णवास से आकर टालों में और वहां से लालाबाबू की कोठी में ठहरे हैं। हम दोनों गये, कुछ मिष्ठान्न उनके लिए ले गये। स्वामी जी उस समय लालाबाबू की कोठी के गंगा की ओर वाले चबूतरे पर बैठे हुए थे और पण्डित टीकाराम जी चन्दौसी वाले उनके साथ थे। स्वयं टीकाराम जी के मुख से विदित हुआ

कि उन्होंने अपनी मूर्ति गंगा में, स्थान रामघाट पर फेंक दी थी। उस समय रात को डेढ़-दो घंटे हम दोनों स्वामी जी के हाथ-पाँव दबाते रहे। इन दिनों भी स्वामी जी नग्न रहते थे।

रात के १२ बजे स्वामी जी सो रहे और ४ बजे प्रातः जागे और उठकर वहां से चल दिये। पंडित टीकाराम लोटा भर कर स्वामी जी के पास छोड़ आया। शौच करके स्वामी गंगा में एक ओर स्नान करने चले गये और स्नान, ध्यान तथा समाधि से निवृत्त होकर ८ बजे लौटे। उनके आने के पश्चात् सैकड़ों मनुष्यों का आगमन प्रारम्भ हो गया। पूर्णमासी का दिन था, हम वहीं रह गये। सैकड़ों मनुष्य पितरों को जल देने वहां आते थे और दस बीस पंडित भी उपस्थित थे। स्वामी जी ने उस समय अवतार तथा मूर्ति खंडन का बहुत लोगों को उपदेश दिया और कहा कि अरे मूढ़ो! जल में जल मत डालो; जल यदि डालते ही हो तो किसी वृक्ष की जड़ में डालो ताकि वृक्ष को तो लाभ हो।

समाधिस्थ दशा में स्वामी जी के दर्शन—रात को स्वामी जी के ऊपर कोई कपड़ा न था। केवल एक चटाई नीचे और एक लंगोटी थी। प्रथम दिन पूर्णमासी को लालाबाबू तहसीलदार ने सेवक से कहा कि महाराज के लिए कोठी खोल दो। स्वामी जी ने कहा कि हम इसमें तब तक नहीं रहेंगे जब तक कोठी साफ न की जावे और धोई न जावे क्योंकि गोरा लोग तक आनकर इसके भीतर रहते हैं। जब उसने कोठी की सफाई करा दी तब रहे। तीसरे दिन जब प्रातःकाल हम बैठे तो हम भी शौचादि के लिए चले गये और स्वामी जी भी। जब हम शौच और स्नान करके लौटकर आये तो क्या देखते हैं कि स्वामी जी कोठे के भीतर समाधि लगाये बैठे हैं। जब बहुत समय हो गया तो हमने क्या देखा कि पूर्ववत् समाधि लगी हुई थी और शरीर से ऐसी प्रबल सर्दी में भी पसीने की बूंदें टपक रही थीं।

जब हम पहले दिन पहुँचे तो हमने नमस्कार किया। स्वामी जी ने पहचान लिया और कहा कि 'बलदेवस्य भ्राता कनिष्ठो वर्तते डिबाई नगरनिवासी'। इन दिनों निरन्तर प्रतिदिन रामावतार, कृष्णावतार और महाभारत की व्यर्थ कथाओं तथा तुलसीदास की रामायण आदि का खंडन करते थे। तत्पश्चात् हम चले आये।

पंडित शिवलाल ब्राह्मण डिबाई निवासी ने वर्णन किया कि 'मैं तथा गुलजारी लाल कानूनगो स्वर्गीय तथा पंडित गुरुदत्त के पिता पंडित अम्बादत्त, ये सब स्वामी जी के पास लालाबाबू की कोठी में बैठे हुए थे और अम्बादत्त से महादेव की मूर्ति के विषय में चर्चा थी। स्वामी जी ने कहा कि महादेव स्वयं अपनी रक्षा तो करते ही नहीं है फिर उनकी पूजा से क्या लाभ? स्वामी जी के वास्तविक शब्द इस प्रकार थे—'राहुस्थापनं कृत्वा धूपं दीपं नैवेद्यम् इति सामग्री-सहितं पूजनं कृत्वा, तत्पश्चात् कुकुरः मूत्रति।' अर्थात् जब महादेव की मूर्ति को स्थापन करके धूप, दीप, नैवेद्यादिक सामग्रियों से पूजन करते हैं फिर उसके पीछे अकेला रह जाने के कारण उस पर कुत्ता मूतता है।' अम्बादत्त ने कहा कि तुम निन्दा करते हो। स्वामी जी ने कहा कि निन्दा नहीं, यह बात प्रत्यक्ष है। फिर कहने लगे कि 'हरः कैलाशे वर्तते' और 'विष्णुः वैकुण्ठे वर्तते' तब तो मूर्तिपूजा किसी प्रकार उचित नहीं। सारांश यह कि इसी प्रकार की बातें मूर्तिपूजा के विषय में होती रहीं जिस पर वह मान गये। तब स्वामी जी ने कहा कि यह वास्तव में पण्डित है।'

लड़कों को नचाने के कारण रामलीला का विरोध—अयोध्याप्रसाद अग्रवाल वैश्य दानपुर निवासी ने वर्णन किया कि 'सन् १८६७ में जबकि मैं तहसील अनूपशहर में लोकल रोड फंड में क्लर्क था, स्वामी जी वहां आये और सती के मन्दिर में उतरे। मैं केवल एक दिन मिला था। उस समय हकीम अम्बादत्त उनके पास बैठे हुए थे और संस्कृत में परस्पर बातचीत हो रही थी। इतने में एक ब्राह्मण

तिलक लगाये और रुद्राक्ष की माला पहने आया। स्वामी जी ने उससे पूछा तुमने यह माला क्यों पहनी है और तिलक क्यों लगाया है ? उसने कहा कि यह ब्राह्मण का कर्म है। स्वामी जी ने कहा कि यह ब्राह्मण का कर्म नहीं। तब मैंने निवेदन किया कि आप जो कहते हैं सब सत्य है परन्तु हम गृहस्थी हैं, कुछ बातें विवश होकर करनी पड़ती हैं अन्यथा वास्तव में मूर्तिपूजनादि झूठे हैं, मैं भी उनको बुरा समझता हूँ। स्वामी जी ने मेरा समर्थन किया कि निःसन्देह गृहस्थ के धन्धों में बुद्धि ठीक नहीं रहती। फिर मुझे कहा कि तुम रामलीला करते हो यह अच्छी बात नहीं। किसी का स्वांग बनाना और नाचना अच्छा नहीं है। जानकी जी की तस्वीर बनाना और गली-गली फिराना बुरा है। लोग कहते हैं कि देखो यह लड़का कैसा सुन्दर है—यह बात बहुत बुरी है। चूँकि तुम इस काम के मुखिया हो, यह काम मत किया करो। मैंने उसी दिन से महाराज के कथनानुसार छोड़ दो। स्वामी जी महाराज विशालमूर्ति अत्यन्त सुन्दर युवक, महान् साहसी तथा भले स्वभाव के थे—उस समय नग्न रहा करते थे। तत्पश्चात् मैंने नहीं देखा।

श्रीकृष्ण शर्मा गौतम ब्राह्मण प्रधान आर्यसमाज दानपुर ने वर्णन किया—कि 'मैं और मेरा बड़ा भाई तुलसीराम तथा सबसे बड़े भाई स्वर्गीय रामलाल हम तीनों स्वामी जी के दर्शन के लिए कर्णवास गये। सर्दी की ऋतु, माघ का महीना तथा मकर की संक्रांति थी। उस समय पक्के घाट पर उतरे हुए थे। दर्शन हुए और हमने भोजन के लिये निवेदन किया। पहले अस्वीकार किया; फिर स्वीकार कर लिया। मेरे बड़े भाई रामलाल शैव थे। उनसे तीन घंटे निरन्तर मूर्तिपूजा पर वार्तालाप हुआ क्योंकि मेरे भाई भी संस्कृत जानते थे। अन्त में मेरे भाई साहब ने उनकी शिक्षा को स्वीकार किया और उसी समय मूर्तिपूजा का विश्वास उनके चित्त से हट गया। फिर कुछ अनमनेपन से मूर्तिपूजा करते रहे। हम लोग उसी समय से आर्य हैं। स्वामी जी हम लोगों से बहुत प्रसन्न हुए और आनन्दपूर्वक भोजन किया। रामलाल से कहा कि तुम फिर मिलना। हमारे बड़े भाई और स्वामी जी—दोनों सुन्दर नवयुवक थे।

उस दिन प्रथम स्वामी जी ने कौपीन सहित गंगा में स्नान किया फिर स्नान करके कौपीन को खोला, निचोड़ कर सुखाया और बांध लिया। तत्पश्चात् रज मलने का मुझे हाथ से संकेत किया। चूँकि मैं उन दिनों व्यायाम करता था इसी कारण से रज मलते समय उनकी शक्ति की परीक्षा लेने के लिए उंगली उनके शरीर में गाड़ी परन्तु बहुत दृढ़ पाया, उंगली कुछ भी दबाने में सफल न हो सकी।

फिर मेरे भाई रामलाल जी को स्वामी जी फर्रुखाबाद में मिले और सबका वृत्तान्त पूछा। मूर्तिपूजा से हटने को कहा कि यह बुरा कर्म है। मेरे भाई ने वहाँ स्वामी जी के साथ लोगों के शास्त्रार्थ भी देखे और स्वामी जी की विजयप्राप्ति का समाचार श्रवण किया और अत्यन्त प्रसन्न होकर घर आनकर मूर्तिपूजा पूर्णतया छोड़ दी, मूर्ति किसी को दे दी। पूजा सम्बन्धी पात्र अभी तक घर में विद्यमान हैं। फिर नहीं की। लगभग कई वर्ष तक मूर्तिपूजा छोड़े रखी, फिर आषाढ़, संवत् १६२७ में वह मर गये।

बेलोन ग्राम का वृत्तान्त

रामचन्द्र जी प्रतापी राजा थे। अवतार नहीं थे। कृष्ण जी ने रासलीला नहीं की थी : स्वामी जी कर्णवास से होते हुए बेलोन ग्राम, परगना डिबाई जिला बुलन्दशहर में आये और खेरा के स्थान पर पीपल के नीचे ग्राम से बाहर उतरे। केवल लंगोट पहना हुआ, शेष शरीर नग्न और गंगारज शरीर पर लगा लिया करते थे। तीन चार दिन रहे। श्री कृष्ण पंडा ने उनसे रामचन्द्र जी के विषय में पूछा कि वह कैसे थे ? स्वामी जी ने उत्तर दिया कि प्रतापी राजा थे। उसने कहा कि अवतार या ईश्वर तो नहीं थे ? स्वामी जी ने कहा कि नहीं। फिर उसने कृष्ण जी के विषय में पूछा तो कहा कि वह भी ईश्वरावतार

नहीं थे, केवल राजा थे। उसने पूछा कि उन्होंने गोपियों से रासलीला जो की। कहा कि यह झूठ है और इससे ईश्वर नहीं प्रत्युत एक साधारण मनुष्य सिद्ध होते हैं। हमने कहा कि गंगा जी कैसी हैं ? उत्तर दिया कि एक नदी है। इन दिनों तुलसी के पत्ते अधिक खाते और शर्बत भी अधिक पीते थे। पीपल के नीचे एक तख्त पर बैठे रहते थे। प्रातःकाल जंगल जाया करते और जल के किनारे शौच करके लौट आते थे। मैं स्वामी जी को स्वयं ही रोटी बना दिया करता था। जाते समय वह सदा बिना पूछे अथवा मिले चले जाते थे।

पंडित इन्द्रमणि, रईस ग्राम बेलोन ने वर्णन किया 'कि जब स्वामी जी यहाँ पीपल के वृक्ष के नीचे आनकर उतरे तो उस समय जो उनके पास जाता उससे पूछते थे कि 'तू गायत्री व सन्ध्या जानता है या नहीं ? जो अस्वीकार करता उसको गायत्री सिखलाते थे और उसके लिखने के लिए उनको एक लेखक की आवश्यकता थी। मैंने उनके कथनानुसार बहुत सी कापियाँ गायत्री की लिखकर उनके समीप रख दी थीं। न्यून से न्यून पचास मनुष्यों को उस समय उन्होंने गायत्री सिखलाई और मेरी लिखी हुई कापिया बाँटी थीं। प्रत्येक पर्चे के नीचे एक हजार का अंक लिख देते थे कि एक हजार जाप करो। बहुत लोग ले गये और उनमें से बहुतों ने चिरकाल तक जप किया और बहुत से अब भी करते हैं। यहां के अन्य लोग—उदाहरणार्थ ज्वालादत्त पंडा, बलदेवदास पंडा, हुलासीराम पंडा और श्रीकृष्ण पंडा भी मिले थे, परन्तु (वे) सब अब मर चुके हैं। हुलासीराम पंडा ने उनका बहुत सत्कार किया था। एक दिन स्वामी जी जब देवताओं की पूजा और मूर्तिपूजा का खंडन कर रहे थे तो हरप्रसाद पंडा ने कहा कि महाराज ! हम अपने बड़े पुरुषाओं से सुना करते थे कि कलियुग आवेगा तब लोग देवताओं की निन्दा करेगे। चूँकि आप निन्दा करते हैं इससे विदित होता है कि कलियुग आ गया। स्वामी जी इस पर बहुत हँसे उसकी स्वामी जी से बड़ी प्रीति थी और स्वामी जी भी उस पर बहुत प्रसन्न रहते थे क्योंकि वह एक सुन्दर और वीर युवक था।

हमने पूछा कि आप अधिक मिट्टी क्यों लगाया करते हैं ? कहने लगे कि मुझपर कीड़ा जो डंक मारता है वह अधिक मिट्टी के कारण भीतर प्रभाव नहीं करता। एक व्यक्ति ने स्वामी जी से आकर कहा कि महाराज ! दण्डवत्। स्वामी जी बोले कि दण्डवत् तुम हो। गंगाधर पटवारी ने अपने घर से भोजन बनाकर भी उन्हें खिलाया था। थानसिह ब्राह्मण ने भी उनसे गायत्री सीखी थी जो उनके कथनानुसार मरण पर्य्यन्त करता रहा। तख्त के उपर सिरकी डलवा कर हम लोगों ने पाच चार गद्दे डलवा दिये थे जिससे बहुत ऊँचा बिछौना हो गया था।

रामघाट का वृत्तान्त

खेमकरन जी भूतपूर्व ब्रह्मचारी, वर्तमान कर्णवास निवासी, ने वर्णन किया 'कि अगहन मास संवत् १९२४ की बात है कि हमने स्वामी जी को रामघाट गंगा के किनारे रेत में बैठे हुए देखा। जिस पर हमने स्वर्गीय रामचन्द्र ब्राह्मण रामघाट निवासी को कहा कि एक संन्यासी प्रातः दस बजे से सायंकाल तक एक आसन पर बैठे है, ज्ञात नहीं कि किसी ने उनसे भोजन को पूछा है या नहीं। स्वामी जी साधारण पद्मासन लगाये बैठे थे। वस्त्र केवल कौपीन था और कुछ न था। हम दोनों गये और जाकर मैंने यह श्लोक पढ़ा :—'ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनः' जिस पर वह मुस्कराये और 'हूँ' कहा। तब हमने कहा कि स्वामी जी ! अब बहुत शीत का समय है, आप ऊपर चलें। सायंकाल का समय था, हमारे साथ बनखंडी महादेव पर चले आये और आनकर बैठ गये। वहा उनके आने से पूर्व पंडित नन्दराम

अतरौली निवासी का शास्त्रार्थ चन्दौसी और मथुरा के चार-पांच पंडितों से हो रहा था। कोई कहता था कि भागवत में ऐसा है और कोई कहता था रामायण में। स्वामी जी प्रथम तो सुनते रहे, थोड़ी देर तक कुछ न कहा फिर कहा :—'किम् भागवतं किं वाल्मीकिम्' और संस्कृत का प्रवाह आरम्भ हो गया। प्रथम तो वह पंडित शास्त्रार्थ को उद्यत हुआ परन्तु अन्त में उनकी संस्कृत की उच्च योग्यता देखकर सब मौन हो गये। अन्त में रात हो जाने के कारण वह चले गये। रात को उसी रामचन्द्र ने भोजन का प्रबन्ध कर दिया।

"लक्षण का लक्षण नहीं होता"—वहां एक साधु कृष्णेन्द्र सरस्वती रहते थे। लोगों ने उनसे जाकर कहा कि गंगादितीर्थ-महादेव आदि की मूर्ति और वाल्मीकि, भागवतादि सबका (दयानन्द) श्रुति और स्मृति के अतिरिक्त खंडन करता है। ग्राम में कोलाहल मच गया। अन्त में कृष्णेन्द्र को लोग उसके बार-बार विरोध करने पर भी, वहाँ बनखंडी पर ले आये और शास्त्रार्थ आरम्भ किया। इतने में एक व्यक्ति ने कृष्णेन्द्र से पूछा कि महाराज मैं महादेव पर जल चढ़ा आऊं तो स्वामी जी बोले कि यहां तो पत्थर है, महादेव नहीं; 'महादेवः कैलाशे वर्तते' तब कृष्णेन्द्र ने पूछा कि यहां महादेव नहीं है? स्वामी जी बोले कि वह महादेव मन्दिर के अतिरिक्त यहां भी है, वहां जाना व्यर्थ है। तब कृष्णेन्द्र ने गीता के इस श्लोक का प्रमाण दिया—

'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥'

स्वामी जी ने कहा कि ईश्वर निराकार है, अवतारधारी बन नहीं सकता। देह धारना केवल जीव का धर्म है। इसका कोई उत्तर कृष्णेन्द्र से न आया। वह स्वामी जी के सामने बैठा हो धैर्य्यहीन हो गया और घबरा कर वही गीता का श्लोक बार-बार लोगों की ओर मुख करके (मुख से कफ निकल रहा था) पढ़ने लगा। तब स्वामी जी ने कहा कि तू लोगों से शास्त्रार्थ करता है या मुझसे शास्त्रार्थ करता है। मेरे सम्मुख होकर बात कर। फिर जब इस पर भी वह बात न कर सका और उसका चित्त भी कुछ स्थिर न हुआ तो 'गन्धवती पृथिवी, धूमवती अग्निः' इस प्रकार की न्याय की बात चली; जिसपर उसने कहा कि लक्षण का भी लक्षण होता है। स्वामी जी ने कहा कि लक्ष्य का तो लक्षण होता है परन्तु लक्षण का लक्षण नहीं होता। पूज्य का पूज्य या चूर्ण का चूर्ण क्या होगा? इस पर सब लोग हँस पड़े और वह घबरा कर उठ खड़ा हुआ। सब लोग कहने लगे और जान गये कि स्वामी जी की जीत हुई। उस समय जानकीदास नामक एक धूर्त वैरागी ने स्वामी जी को दुर्वाक्य कहा जिस पर एक दूसरा ब्राह्मण टीकाराम स्वामी बोला कि तू मेरे से बात कर, इनके सामने क्या बोलेगा। जिस पर वह घबरा कर चला गया। स्वामी जी उस समय ८-१० दिन रहे, वहां से फिर बेलोन को आये। उस समय स्वामी जी के कथनानुसार मेरा मूर्तिपूजा से चित्त हट गया और मन में सन्देह हो गया। कभी रुद्राक्ष की माला उतारता और कभी पहनता था। डांवाडोल मन से कहता था कि क्या करूं। इतने में एक दिन कृष्णेन्द्र मेरे पास आये और लोगों से मेरी निन्दा करने लगे और कहा कि तू नास्तिक है जो मूर्तिपूजा को छोड़ता है। मैंने जब देखा कि यह धूर्त निरर्थक हठ करता है तो पूर्णतया सच्चे हृदय से सब मूर्तिपूजा और रुद्राक्ष की माला भी छोड़ दी। मैं निम्नलिखित देवताओं की पूजा करता था १—नर्मदेश्वर (भार १५ सेर) २—शालिग्राम (४ मूर्ति) ३—गणेश ४—गोमतीचक्र ५—टेढ़ी टांग वाला या बालगोविन्द।

मैं अपनी १५ वर्ष की अवस्था से संवत् १९२४ तक इन पाँचों की पूजा करता रहा। अब ४ जनवरी, सन् १८९० को मेरी ६५ वर्ष की आयु है। मैंने २७ वर्ष इनकी पूजा की। गले में, हाथों में, मस्तक पर रुद्राक्ष की बड़ी-बड़ी माला पहनता था। स्वामी जी उनकी सर्प से उपमा देते थे। मैं कहता था कि महाराज माला है। स्वामी जी कहते थे कि हें धूर्त! यह मिथ्या और झूठ है। सारांश यह कि

स्वामी जी के उपदेश से मैंने वह छोड़ दिया। कुल भार मेरी पूजा का चार घड़ी अर्थात् २० सेर होता था। मैं इस सब पूजा को घोड़े पर लाद कर फिरा करता था। उस दिन से पूर्णतया त्याग कर दिया।

वहाँ से स्वामी जी **बेलोन** आये, मैं भी साथ था। २० दिन रहे, बेलोन के ठाकुर की मढ़ियों में रहे। वहाँ से **कर्णवास** आये और यहां कर्णवास में आकर डिबाई के वैश्यों और यहां के ठाकुरों के यज्ञोपवीत संस्कार कराये। यहां से **अनूपशहर** गये और जब लौट आये तो यहाँ से आगे **सोरों** की ओर चले गये।

नारायणप्रसाद वैश्य, स्थानापन्न अध्यापक पाठशाला रामघाट ने वर्णन किया 'कि मैंने भी स्वामी जी को महादेव बनखण्डी पर रामचन्द्र मुकद्दम के घर पर देखा। उस समय संस्कृत बोलते और सबको उपदेश देते थे। जो पण्डित उनसे मिलकर आता वह उनकी विद्या तथा गुण की प्रशंसा करता। हमारे यहां रामघाट के पण्डित बालमुकुन्द मठाचार्य्य, स्वामी जी से मिले थे। मेरी कई ऐसी शंकाएं थीं जो कभी भी निवृत्त नहीं होती थीं; वे केवल स्वामी जी से निवृत्त हुईं। यह पंडित बालमुकुन्द व्याकरण के बहुत अच्छे विद्वान् थे। इन जैसा विद्वान् यहां और कोई न था। स्वामी कृष्णेन्द्र से भी महाराज दयानन्द जी की चर्चा हुई थी। पांच सात दिन चर्चा होती रही। यद्यपि दोनों ओर के पक्ष वाले अपने-अपने शब्दों में अपनी-अपनी जीत बतलाते थे परन्तु वास्तविक बात यह थी कि स्वामी दयानन्द जी की बात ठीक रही।

तुलसी से लाभ—हमसे स्वामी जी ने पूछा कि तुम कौन हो? हमने कहा कि वैश्य। स्वामी जी से मैंने वैद्यक के प्रमाणित ग्रन्थों के विषय में पूछा था। कहने लगे कि चरक और सुश्रुत प्रमाणित ग्रन्थ हैं। स्वामी जी तुलसी की पत्ती रोटी खाने के पश्चात् खाते थे। पूछने पर बताया कि इस से मुख सुगन्धित हो जाता है और गृहस्थियों के घर में लगाने के विषय में कहा कि इससे अच्छी वायु निकलती है। सन्ध्या, बलिवैश्वदेव की सबको आज्ञा दी। इस बार २०-२५ दिन रहे। कृष्णेन्द्र और वह, दोनों, पृथक्-पृथक् स्थानों में पास-पास टिके थे। वहां दोपहर पीछे पचास से अधिक मनुष्यों की सभा जब तक रहे जुड़ा करती थी। पडित करुणाशंकर से भी उनका शास्त्रार्थ हुआ जिस पर स्वामी जी ने उसको भली-भाँति सन्तोष किया। करुणाशंकर कहते थे कि मूर्तिखण्डन वास्तव में तो ठीक है परन्तु हम आ-जीविका के कारण छोड़ नही सकते। हमको कहा कि तुम सन्ध्या तर्पण करो और यज्ञोपवीत लो और छलेसर आओ परन्तु मैं अकेला होने के कारण न जा सका। उस समय उनकी बातों को स्वीकार करने वाले स्वर्गीय चौधरी गंगाराम, टीकाराम स्वामी, स्वर्गीय पंडित करुणाशंकर तथा स्वर्गीय पंडित बाल-मुकुन्द आचार्य्य थे। उनके अतिरिक्त नगर के और सब सम्मानित व्यक्ति जाते थे। स्वामी जी मुहूर्त-चिंतामणि, शीघ्रबोध, भागवत, रामायण इन सबको भ्रष्ट जाल के ग्रन्थ बतलाते थे। अधिक बल उनका यहां मूर्तिपूजा के खण्डन पर था। कोई उत्तर देने वाला उनके सामने न था। सब उनके मुंह पर ठीक, ठीक कहते थे; चाहे घर में आनकर कोई कुछ बातें बनावे। यहाँ दो बार आये और एक ही स्थान पर रहे।'

शंभुग्रह संन्यासी गुसाईं रामघाट, चलवी मन्दिर, बन-खंडेश्वर महादेव ने वर्णन किया 'कि स्वामी जी जेठ, संवत् १९२४ में यहां हरिद्वार के कुम्भ से आये थे। नग्न एक कौपीन धारण किये हुए थे। इस स्थान पर एक बालमुकुन्द पंडित थे। वह करुणाशंकर, टीकाराम कर्णवास निवासी तथा पंडित नन्दराम के साथ स्वामी जी के पास गये। लगभग दो घड़ी उन्होंने धर्म-चर्चा की; जिस पर टीकाराम व बालमुकुन्द और सब ने स्वामी जी की प्रशंसा की और कहा यह बडे महात्मा और विद्वान् हैं।

पंडित बालमुकुन्द आचार्य जी का स्वामी जी से इस श्लोक पर विवाद (शास्त्रार्थ) हुआ था। विष्णु-सहस्रनाम का एक श्लोक था जिस पर स्वामी जी का पक्ष प्रबल रहा और बालमुकुन्द जी ने मान लिया।

पंडित टीकाराम जी ने सिद्धान्त कौमुदी पर बातचीत की जिसमें वे हार गये।

स्वामी जी चन्द्रिका के कर्त्ता रामाश्रम आचार्य्य कोटविलाश्रम और कौमुदी के कर्त्ता भट्टोजी दीक्षित का नाम पेटपूजक रखते थे। पंडित टीकाराम जी तो उनके शिष्य हो गये और तत्पश्चात् उनसे पढ़ते रहे और उन्होंने अपने ठाकुर भी गंगा में फेंक दिये। पहली बार आकर स्वामी जी दस दिन रहे। प्रातःकाल उठकर स्नान कर, दिगम्बर हो, समाधिस्थ हो जाते थे। दो-तीन घण्टे तक प्राणायाम करते फिर यहां आकर भोजन करते।

मसूढ़ों के दर्द में तम्बाकू का प्रयोग—यहां स्वामी जी के मसूढ़ों में दर्द रहता था इसलिए तम्बाकू मला करते थे। हम उनको तुलसी के पत्ते तोड़ कर देते थे कि हमारे तो तुम ही शालिग्राम हो। वह पत्ते खाते जाते थे। हमारे से स्वामी जी बहुत प्रसन्न रहते थे। चार बजे से साधारण लोग आने आरम्भ हो जाते थे। सैकड़ों मनुष्य उस समय आया करते थे।

दूसरी बार जब आये तो चार दिन रह कर चले गये।

वेद का अर्थ ब्रह्म करते थे—तीसरी बार जब आये तो कृष्णेन्द्र उस समय यहां ऊपर न रहते थे प्रत्युत रोग के कारण पहले ही से यहां से ऊपर खाक चौक पर चले गये थे। जब इस बार स्वामी जी आये तो हमने आसन बिछा कर उनके पांव धोये और कुशल-वृत्तांत पूछा। उस समय स्वामी जी ने पंडित परमानन्द दूबे से कहा कि वेद का अर्थ ब्रह्म है। इस पर उसने विवाद किया परन्तु अन्त में मान गया। फिर उसने कहा कि यहां कृष्णेन्द्र ठहरे हुए हैं। प्रत्युत स्वयं परमानन्द ने कृष्णेन्द्र से जाकर कहा कि स्वामी दयानन्द वेद का अर्थ ब्रह्म करते हैं। उसने कहा कि यह नहीं बनता। इस बात की दोनों पक्षों को सूचना मिली। स्वामी जी ने परमानन्द को भेजा कि उनको यहां ले आओ। वह उस दिन न आये तीसरे दिन आये। स्वामी जी से उनका न्याय के विषय पर शास्त्रार्थ हुआ। मूर्तिपूजा पर नहीं और न पुराणों पर; प्रत्युत केवल न्याय पर क्योंकि कृष्णेन्द्र न्याय अच्छा जानता था। स्वामी जी ने कहा कि लक्ष्य का लक्षण होता है। कृष्णेन्द्र ने कहा कि लक्षण का भी लक्षण होता है। न उन्होंने उनका माना और न उन्होंने उनका माना। कृष्णेन्द्र ने कहा कि मध्यस्थ नियत करो। स्वामी जी ने कहा कि शास्त्र ही मध्यस्थ है। श्राद्ध का निषेध, मूर्ति और तिलक का भी निषेध करते थे। यहां से अनूपशहर की ओर चले गये। एक नन्दकिशोर ब्रह्मचारी ब्राह्मण ने अपने ठाकुर गंगा में फेंके थे।

भागवत और चक्रांकितों पर आक्षेप उन्होंने मुझे सिखलाये थे परन्तु वे स्मरण नहीं रहे। यहां के लोग इस कारण से कि गंगा के तट पर रहते हैं और तीर्थ से ही उनका निर्वाह होता है। आर्यसमाज में सम्मिलित नहीं हुए यह आशंका थी कि कहीं आजीविका ही न मारी जावे।

गंगाघाट स्थित **टीकाराम स्वामी सनाढ्य ब्राह्मण रामघाट ने वर्णन किया** 'कि ग्रीष्मऋतु ज्येष्ठ मास, संवत् १९२४ में पहले पहल स्वामी जी यहां आये और सात दिन रहकर चले गये। पंडित बालमुकुन्द पण्डित नन्दराम, पण्डित गोविन्दराम, पण्डित करुणाशंकर तथा पण्डित जानकी प्रसाद आदि सब पण्डित वहां जाया करते थे। जो जाता अपनी शंका समाधान करके आता था। गंगा, शालिग्राम तथा पुराण का वह खंडन करते थे, कोई सामने से विरोध न करता था। शालिग्राम पण्डित भी आया करते थे, उनको सारा वृत्तांत भली भांति विदित है।

रामघाट में कृष्णेन्द्र से शास्त्रार्थ

स्वामी कृष्णेन्द्र से उनका शास्त्रार्थ तीन दिन होता रहा। यह शास्त्रार्थ पहर भर दिन से सांय-काल को दीपक जलने तक रहा करता था। यह कृष्णेन्द्र नैयायिक थे। स्वामी जी की जीत हुई। कृष्णेन्द्र कहते थे कि रज्जु का सर्प हो जाता है। स्वामी जी ने कहा कि नहीं केवल वह भय मानता है परन्तु समझने के पश्चात् वह नही डरता, वास्तव मे वह रज्जु है। ऐसे ही कृष्णेन्द्र ने कहा कि लक्षण का भी लक्षण होता है। स्वामी जी ने कहा कि लक्षण का लक्षण नही होता प्रत्युत लक्ष्य का लक्षण होता है।

प्रथम बार मेरी भेंट का साधन—यहाँ पर स्वामी जी एक झोंपडी में बैठे हुए थे, मैं उनके आगे से गया। परिचय न होने के कारण मैने नमोनारायण न की। तत्पश्चात् वहां से मैं केशवदेव ब्रह्मचारी के पास जा बैठा। उन्होंने कहा कि एक बडे महात्मा आये हैं, तुमने नमोनारायण न की। मैंने कहा कि कहाँ हैं? फिर उसके साथ मै स्वामी जी के पास गया। स्वामी जी से नमोनारायण हुई। तब उन्होंने कहा कि तू ब्राह्मण है? मैंने कहा कि हां ब्राह्मण हूँ। कहने लगे कि ब्राह्मण किस बात से होता है? मैंने कहा कि संध्या-गायत्री करने से। कहने लगे कि तू पढा है? मैंने कहा कि सन्ध्या तो नहो, परन्तु गायत्री याद है। मुझे सुनाने के लिए कहा तो मैने कहा कि गुरु जी ने निषेध किया है कि किसी को न सुनाना। उन्होंने कहा कि संन्यासी ब्राह्मणों का गुरु है, तुम हमारे सामने कहो। ब्रह्मचारी जी ने समर्थन किया तब मैने गायत्री सुनाई। स्वामी जी ने कहा कि तू अच्छा उच्चारण करता है, ऐसा हमने साधारण लोगों के मुख से कम सुना है। फिर कहने लगे कि तू ठीक ब्राह्मण है, संध्या अग्निहोत्र, बलिवैश्वदेव यह भी पढ़ ले। फिर मुझे सन्ध्या लिखवा के सातवें दिन यहाँ से चले गये।

छः आहुतियों का अग्निहोत्र सिखाया; १५ ऋचाओं का लक्ष्मीसूक्त याद कराया—दूसरी बार यहां सवत् १६२८ में मिले। कहने लगे कि तूने सन्ध्या याद की है? मैंने कहा कि कोई पढ़ाने वाला नहीं है। कहने लगे कि यदि तू पढ़ेगा तो हम रहकर तुझे पढ़ावेंगे। तू हमारी सहायता करेगा तो हम पड़े रहेंगे। इस बार स्वामी जी २१ दिन रहे। पहले दिन उन्होंने हमे अग्निहोत्र कराया जो छः आहुति का है। फिर मुझे एक ही दिन में १५ ऋचा लक्ष्मीसूक्त को कण्ठ कराई थी और फिर करुणाशंकर ब्राह्मण को बुलवाकर पंचमहायज्ञविधि लिखवाई। दिन को भी अवकाश के समय और रात्रि को भी पढ़ाते रहे। यहाँ २१ दिन रहकर फिर ठाकुर मुकुन्दसिंह छलेसर वाले की पालकी पर सवार होकर उनके साथ वहाँ चले गये।

मुझे २१ दिन में सन्ध्या, अग्निहोत्र पढ़ाया और बलिवैश्वदेव की विधि बतलाई। तर्पण और भोजनविधि भी बतलाई थी।

पहले पहल स्वामी जी से जब मै मिला तो उस समय मेरे पास निम्नलिखित पुस्तकें थीं—आदित्य लहरी, गंगालहरी, गंगाकवच, गंगासहस्रनाम, गंगाष्टक, गंगास्तोत्र, विष्णुसहस्रनाम, प्रत्यंगिरा स्तोत्र (वाममार्ग का), रुद्री अष्टाध्यायी (वेद की)।

स्वामी जी ने और तो सब फैंक दिये केवल रुद्री अर्थात् आठ अध्याय वेद के रहने दिये जो विद्यमान हैं और सन्ध्या लिख दी। यहां केवल दो वार पधारे (मिले)।'

पंडित भैरवनाथ, सारस्वत ब्राह्मण अतरौली निवासी ने वर्णन किया 'कि भादों पूर्णमासी, संवत् १९२४ को मै और पण्डित नन्दराम लखरिया और पण्डित गोविन्दराम हम तीनों गंगास्नान को गये थे। रामघाज बनखंडी पर स्वामी जी हमें मिले तो कुछ प्रश्न राम, कृष्ण के शरीरधारी होने का और शरीर त्यागने के पश्चात् उनकी उपासना व्यर्थ होने पर हुए परन्तु उस समय कोई बात निश्चित न हुई थी।

कहा कि तू अच्छा उच्चारण करता है, ऐसा हमने साधारण लोगों के मुख से कम सुना है । फिर कहने लगे कि तू ठीक ब्राह्मण है, संध्या, अग्निहोत्र, बलिवैश्वदेव यह भी पढ़ ले । फिर मुझे सन्ध्या लिखवा के सातवें दिन यहां से चले गये ।

छः आहुतियों का अग्निहोत्र सिखाया; १५ ऋचाओं का लक्ष्मीसूक्त याद कराया—दूसरी बार यहां संवत् १९२८ में मिले । कहने लगे कि तूने सन्ध्या याद की है ? मैंने कहा कि कोई पढ़ाने वाला नहीं है । कहने लगे कि यदि तू पढ़ेगा तो हम रहकर तुझे पढ़ावेंगे । तू हमारी सहायता करेगा तो हम पड़े रहेंगे । इस बार स्वामी जी २१ दिन रहे । पहले दिन उन्होंने हमे अग्निहोत्र कराया जो छः आहुति का है । फिर मुझे एक ही दिन में १५ ऋचा लक्ष्मीसूक्त की कण्ठ कराई थी और फिर करुणाशंकर ब्राह्मण को बुलवाकर पंचमहायज्ञविधि लिखवाई । दिन को भी अवकाश के समय और रात्रि को भी पढ़ाते रहे । यहां २१ दिन रहकर फिर ठाकुर मुकुन्दसिंह छलेसर वाले की पालकी पर सवार होकर उनके साथ वहां चले गये ।

मुझे २१ दिन में संध्या, अग्निहोत्र पढ़ाया और बलिवैश्वदेव की विधि बतलाई । तर्पण और भोजनविधि भी बतलाई थी ।

पहले पहल स्वामी जी से जब मैं मिला तो उस समय मेरे पास निम्नलिखित पुस्तकें थीं—आदित्य लहरी, गंगालहरी, गंगाकवच, गंगासहस्रनाम, गंगाष्टक, गंगास्तोत्र, विष्णुसहस्रनाम, प्रत्यंगिरा स्तोत्र (वाममार्ग का), रुद्री-अष्टाध्यायी (वेद की) ।

स्वामी जी ने और तो सब फेंक दिये केवल रुद्री अर्थात् आठ अध्याय वेद के रहने दिये जो विद्यमान हैं और सन्ध्या लिख दी । यहां केवल दो बार पधारे (मिले) ।'

पंडित भैरवनाथ, सारस्वत ब्राह्मण अतरौली निवासी ने वर्णन किया 'कि भादों पूर्णमासी, संवत् १९२४ को मैं, पण्डित नन्दराम लखरिया और पण्डित गोविन्दराम हम तीनों गंगास्नान को गये थे । रामघाट बनखंडी पर स्वामी जी हमें मिले तो कुछ प्रश्न राम, कृष्ण के शरीरधारी होने का और शरीर त्यागने के पश्चात् उनकी उपासना व्यर्थ होने पर हुए, परन्तु उस समय कोई बात निश्चित न हुई थी । ब्रह्मा की आयु और चतुर्भुज होने पर भी बातचीत हुई थी परन्तु उसका भी निश्चय न हो सका अर्थात् हमने उनकी बात न मानी थी । स्वामी जी ने कहा कि आयु सब की सौ वर्ष की है और वेद में सौ वर्ष की लिखी है । जो सौ वर्ष से अधिक लाखों वर्ष की कहते हैं वे सब गप्पाष्टक हैं । तीन दिन रहे । उस समय केवल कौपीन और एक चादर गेरुए रंग की थी । उनकी आकृति देखकर बहुत आनन्द होता था । वह उस समय अवधूत संज्ञा में थे । स्वामी जी उस समय महीना या डेढ़ महीना रहे । दूसरी बार हम नहीं गये । स्वामी जी की विद्या में कोई कमी न थी यद्यपि आजकल विशुद्धानन्द स्वामी बहुत विद्वान् हैं परन्तु उनकी एक और ही बात थी । वह वेदविद्या में अद्वितीय थे । मूर्तिखंडन के अतिरिक्त उनकी कोई बात बुरी न थी । यद्यपि कृष्णेन्द्र से शास्त्रार्थ किया परन्तु वह विद्या में उससे अधिक थे । हमने स्वामी जी का काशी का वृत्तांत सुना है । कृष्णेन्द्र उनकी तुलना में कुछ नहीं था ।'

मुंशी शामलाल, कायस्थ मुख्तार तहसील अतरौली ने वर्णन किया है कि मैं भी स्वामी जी से रामघाट में जब वह बनखण्डेश्वर पर गये हुए थे, मिला था । वह केवल संस्कृत बोलते थे और एक कौपीन रखते थे । पाठक छुन्नूशंकर ने उनसे कहा कि आप तुलसीपूजन का निषेध करते हैं और स्वयं उसे, रोटी खाने के पश्चात् खाते हैं । स्वामी जी ने कहा कि जैसे मुख शुद्ध करने को पान खाते हैं उस प्रकार खाता हूं, माहात्म्य समझ कर नहीं खाता । यह छुन्नूशंकर हरजसराय पंडित हाथरस वाले के शिष्य थे । उन्होंने फिर गुरु की प्रशंसा की । स्वामी जी ने कहा 'गुरुसहितेन गंगाप्रवेशः कर्त्तव्यः' अर्थात् गुरु के सहित गंगा में प्रवेश करो, जिसपर वह पूर्णतया निरुत्तर हो गया ।

अतरौली[२८] (जि० अलीगढ़) में शास्त्रचर्चा

देवायतन का अर्थ है अग्निस्थान, अर्थात् यज्ञगृह—सीताराम सुनार, चोलाराम ब्राह्मण, भूरा, गंगाराम सुनार—ये तीनों वहां अतरौली से गंगास्नान के लिए रामघाट गये । वहां से वे स्वामी जी को बुला लाये । यहां वह बोलाराम के बाग में बड़े महादेव के पास भैरव के मन्दिर में रहे । यहां पण्डित भैरवनाथ सारस्वत ब्राह्मण से इस विषय पर बातचीत हुई कि प्रतिमा हंसती व रोती हैं और उन्हें पसीना आता है । 'प्रतिमा: हसन्ति रुदन्ति' इस सामवेद के ब्राह्मण के वाक्य पर बातचीत हुई । स्वामी जी ने इसका भी यही अर्थ निकाला कि मूर्तिपूजा न करनी चाहिए । देवायतन स्वामी जी अग्निस्थान को कहते थे और पण्डित लोग शिवालय आदि को कहते थे । जब यहां आये तो कार्तिक-अगहन का महीना, संवत् १९२५ (-२४ ?) शीत ऋतु थी । हम प्रतिदिन मिलते रहे । फिर जब आये तो यहां केवल एक रात रहे । दूसरे दिन **कोयल** की ओर चले गये और वहां से **मथुरा** की ओर वृन्दावन को पधारे । यह संवत् १९३० या १९३१ की बात है ।

मुंशी शामलाल, कायस्थ मुख्तार तहसील अतरौली, **ने वर्णन किया**—'यहां स्वामी जी नारायणदास के बाग में भैरव में मन्दिर के पास नगर से पूर्व की ओर उतरे थे । जाड़े की ऋतु थी ।

फिर दूसरी बार जब यहां आये तो ईदगाह की ओर एक बगीचे में ठहरे । वहां मैंने पूछा महाराज क्या बात है कि दर्पण सामने रखने से उसकी आकृति दिखाई देती है ? स्वामी जी ने कहा कि तुम पदार्थ विद्या नहीं जानते हो इसलिए तुमको क्या बतलावें । जीव ब्रह्म की एकता का भी प्रश्न किया था । स्वामी जी ने कहा कि एकता नहीं है । ब्राह्मणों के बहुत से जाल मेरे हृदय से उन्होंने दूर किये परन्तु जीव-ब्रह्म की एकता के विषय में उनके कथन से मैं सहमत नहीं और गंगा जी और देवताओं की पूजा के विषय में भी मेरा उनसे विरोध है । शेष सब बातें ठीक थीं ।'

पहली पाठशाला छलेसर में : वहां की तीन यात्राओं का वृत्तान्त

ठाकुर मुकुन्दसिंह जी चौहान, क्षत्रिय, रईस छलेसर, वर्णन करते हैं—'मैंने पहले पहल स्वामी जी के दर्शन संवत् १९२४ या १९२५ में कर्णवास में किये थे । उनकी दो घण्टे की भेंट से ही मुझको उनके कथनानुसार सब बातों का निश्चय हो गया और विशेषकर मूर्तिपूजा से तो अत्यन्त घृणा हो गई । कर्णवास से लौटते ही समस्त मन्दिर जो, मेरी जमींदारी से सम्बन्धित थे अर्थात् चामुंडा, महादेव, नगर सेन देवता, लांगर देवता, पथवारी देवता, सैयद देवता—जो सम्भवत: २० या ३० स्थानों पर थे, सब उठवा कर कालिन्दी नदी में फिंकवा दिये । उस समय ऐसा करने का अभिप्राय यह था कि सर्वसाधारण लोग उनके निर्मूल और झूठे होने का निश्चय करें और उनके विषय में खोज प्रारम्भ हो परन्तु खोज करने के स्थान पर उसी दिन से आसपास के समस्त देहात तथा जाति के समस्त चौहान अर्थात् चौहानों के साठ ग्रामों के लोग मेरे विरुद्ध हो गये । केवल जाति के लोग ही नहीं प्रत्युत समस्त ब्राह्मण तथा वैश्य भी मेरे विरोधी हो गये और मेरे लिए वे स्वामी जी से भी अधिक बुरे शब्दों का प्रयोग करने लगे; प्रत्युत यहां तक निश्चय कर लिया कि मुझको जाति से बाहर कर दें ।'

दूसरी बार स्वामी जी से मैं सोरो में मिला । तीसरी बार मैं स्वामी जी को तब मिला जब कि मैं उनको पाठशाला की स्थापना के अवसर पर छलेसर लाया । इस बार स्वामी जी के आने से पूर्व विरोधी लोगों ने यह प्रबन्ध कर लिया कि जब स्वामी जी छलेसर पधारें तब उनके साथ शास्त्रार्थ किया जाये । इसी कारण पधारने की तिथि के दूसरे दिन से ही सर्वसाधारण की ओर से नित्यप्रति समय-समय पर आघात होते रहे । स्वामी जी यहां १२ या १३ नवम्बर, सन् १८७० तदनुसार मंगसिर बदि ४ या ५ संवत् १९२७, शुक्रवार या शनिवार को आये । उनके आने पर पं० झण्डामल खटेर निवासी, वृद्ध पंडित दुर्वासा खटेर निवासी, पंडित हरिकृष्ण गोपालपुर निवासी आदि पंडितों ने आकर उनके साथ अनेक विषयों पर शास्त्रार्थ किये परन्तु उनमे से कोई सफल न हुआ । प्रत्युत जिस पंडित ने बातचीत की, उसने अन्त में वैसा ही स्वीकर किया

जैसा वेदानुकूल स्वामी जी कहते थे । पंडितों के अतिरिक्त बहुत से मुसलमान मौलवी और काजी भी शास्त्रार्थ के लिए आये (उस समय भी स्वामी जी संस्कृत बोलते थे) । हम बीच में स्वामी जी का कथन मौलवियों को और मौलवियों का कथन स्वामी जी को बता देते थे । हम ही बीच के भाष्यकार थे । परन्तु अन्त में मुसलमान लोग मौन होकर चले गये । उन सब में अतरौली निवासी काजी इमदाद साहब एक सत्यप्रिय और विद्वान् पुरुष थे; उन्होंने स्वामी जी की बहुत सी शिक्षाओं पर अपनी स्वीकृति प्रकट की और प्रसन्न होकर किसी प्रकार का आक्षेप न किया । सारांश यह कि स्वामी जी जब तक यहां रहे, कोई दिन ऐसा न था कि पांच या चार सौ व्यक्ति साधारण जनता में से एकत्रित न हुए हों । पंडितों के अतिरिक्त ग्रामीण लोग भी अपनी बुद्धि के अनुसार स्वामी जी से प्रश्न करते थे । स्वामी जी कृपा करके उनका भी अत्यन्त सरल संस्कृत में भाष्यकारों के द्वारा सब प्रकार से सन्तोष कर दिया करते थे । इसी समय में पाठशाला स्थापित हुई । उसका समुचित प्रबन्ध करके पूरे बीस दिन पश्चात् स्वामी जी अतरौली व बिजौली होते हुए सीधे सोरों की ओर चले गये ।

छलेसर में दूसरी बार[२९] **स्वामी जी संवत् १९३०** के अन्त में अर्थात् सन् १८७४ में छलेसर आये और पाठशाला में निवास किया । राजा जयकिशनदास साहब सी० एस० आई० डिप्टी कलक्टर अलीगढ़ की पहले से यह इच्छा थी कि जिस समय स्वामी जी महाराज छलेसर पधारें तो मुझे सूचना दी जावे । इसलिए राजा साहब की इच्छानुसार उन्हें सूचित कर दिया गया । राजासाहब हरदुआगंज तक सवारी में और वहां से घोड़े पर चढ़कर दिन के ९ या १० बजे के लगभग छलेसर आये, अत्यन्त कृपा करके मेरा निमन्त्रण स्वीकार किया और ४ बजे तक पाठशाला में विराजमान रहे । धार्मिक विषयों में उनको जो कुछ भी संदेह थे, वे स्वामी जी महाराज ने सब निवृत्त कर दिये । ४ बजे के पश्चात् स्वामी जी से यह प्रतिज्ञा लेकर कि अलीगढ़ पधार कर व्याख्यान देंगे वह लौट गये ।

तीन चार दिन तक स्वामी जी पाठशाला में नित्य व्याख्यान देते रहे । आसपास के ग्रामों से सहस्त्रों मनुष्य नित्यप्रति उनके व्याख्यान में उपस्थित हुआ करते थे । इस बार पहले की भांति कोलाहल भी नहीं था । इस बार ब्रह्मचारी खेमकरन स्वामी जी के साथ थे । इस बार जो आसपास के पंडित लोग आते थे वे शास्त्रार्थ के लिए नहीं, प्रत्युत निश्चयार्थ आते थे । इन्हीं दिनों में स्वामी जी ने पाठशाला की कार्यवाही के विषय में जो परिवर्तन करना था वह भी कर दिया । तत्पश्चात् स्वामी जी हाथी पर चढ़कर २०-२५ अश्वारोही साथियों सहित, जो सब हमारी जाति (राजपूत चौहान) के ही लोग थे-दिन के ४ बजे **अलीगढ़** पहुंचे । चावनलाल के बाग में जो अचलताल के समीप है, ठहरे और राजा साहब के अतिथि हुए । यहां से **वृन्दावन** की ओर चले गये ।

तीसरी बार स्वामी जी दिसम्बर सन् १८७६ में रेलवे स्टेशन अतरौली पर पधारे । दो-तीन ब्रह्मचारी भी उनके साथ थे । कुल ५-६ मनुष्य थे । लगभग सात दिन छलेसर में निवास किया फिर चर्चा चली कि चूंकि दिल्ली में शीघ्र ही दर्बार होने वाला है इसलिए उसमें जाने का उपाय करना चाहिए और छलेसर से डेरा, शामियाना, दरियां तथा अन्य सामग्री सहित स्वामी जी देहली (Delhi) **पधार** गये ।

गढ़िया, सोरों तथा कासगंज का वृत्तान्त

गुसाईं बलदेवगिरि जी ने वर्णन किया—'इन्द्रबन अनूपशहर निवासी ने कुछ समय पहले स्वामी जी की बड़ी प्रशंसा सुनाई थी; जिस पर हमें उनके दर्शनों की लालसा उत्पन्न हो गई थी । हमने लोगों को कह रखा था कि जब वह आवें तो हमें सूचित करना । एक बार लोगों ने हमें सूचना दी । संबत् १९२५ के चैत्रमास के आरम्भ में (इसी वर्ष दुर्भिक्ष पड़ा था) लोगों में उनके आने का समाचार फैल गया । सब ओर चर्चा होने लगी कि एक ऐसे महात्मा आये हैं जो शालिग्राम के बट्टों से नून व चटनी पीसते हैं; जिस पर हम सोरों के पण्डित नारायण चक्रांकित तथा कुछ अन्य पण्डितों को लेकर गढ़िया घाट पर गये । जाते ही दण्डवत् प्रणाम करके बैठे । उस समय नारायण पंडित ने उनसे वार्तालाप किया परन्तु वह दो-चार बातों में ही परास्त हो गये । सोरों के दो-चार पंडित और भी थे । उनमें से भी कोई शास्त्रार्थ का साहस न कर सका । नारायण

पंडित प्रथम क्रोध में आ गये परन्तु जब हमने कहा कि पंडित जी क्रोध करना अच्छा नहीं; धर्म से बातचीत करो तो वह कुछ बातें करके निरुत्तर हो गये। हम इसी पहले दिन में ही उनके दर्शन तथा वार्तालाप से ऐसे प्रभावित हुए कि फिर नित्यप्रति यहां से जाते और उनके लिए भोजन बनवा कर ले जाते थे। एक मास तक भोजन ले जाते रहे।

दुष्ट को दण्ड देने पर प्रसन्नता दिखाई—एक महीने के पश्चात् एक दिन ऐसा हुआ कि अहे उड़ेस[३०] जिला एटा के एक ठाकुर जिनके यहां जयपुर के राजा ने विवाह किया हुआ है, चार मनुष्यों सहित जिनमें दो के पास तलवारें और दो के पास लट्ठ थे—आये, और इनमें से वह ठाकुर आकर स्वामी जी के बराबर बैठ गया। हमने रोका कि तू महात्मा से अलग बैठ, बराबर बैठना तुझ जैसे गृहस्थियों का काम नहीं; परन्तु उसने न माना और फारसी के उदाहरण सुनाता रहा और अपनी भीषण दुष्टता से न रुका। वास्तव में वह बुरे विचार से आया था। उसके मस्तक पर निम्बार्क सम्प्रदाय का नेमानन्दी का तिलक लगा हुआ था और कंठी काठ की बंधी हुई थी। यह उनके तिलक का चिह्न है। अर्थात् U चिह्न श्वेत वर्ण का और उसके बीच में कृष्ण बिन्दु होता है। स्वामी जी ने उसे महाभारत का एक श्लोक पढ़कर सुनाया और समझाया परन्तु वह नहीं माना और दुष्टता की बातें करता रहा। ग्रीष्म ऋतु थी और हम नंगे शिर वहां बैठे थे। स्वामी जी वह श्लोक सुनाकर और उठकर वहां से एक मढ़ी के भीतर जा बैठे। उस ठाकुर ने हम पर कुपित होकर अपने मनुष्यों से कहा कि यह पुरुष कौन है? इसे पकड़ लो! यह क्या बातें बकता है! उसकी आज्ञा सुनकर उसके मनुष्य संकेत पाकर मेरी ओर लपके और हाथ चलाया। हम चूंकि अखाड़मल्ल थे[३१]—एक उनका हाथ और एक पांव पकड़ कर हमने उनको फैंक दिया। हमारे साथ के और मनुष्य भी थे, एक ने दाढ़ी और तलवार एक की पकड़ ली। पहले के हाथ से जब लाठी छूट गई तो हमने ले ली और लेकर सबके चूतड़ों पर दो-दो लगाई और ठाकुर का जूड़ा पकड़ कर गिरा दिया। इस पर वे सब फिसलते-फिसलते गंगा के कीचड़ में जा गिरे और फंस गये। लोगों ने हल्ला सुना-चारों ओर से दौड़कर एकत्रित हो गये परन्तु जब उन्होंने हमको देखा तो उसे गालियां देनी आरम्भ कीं कि हे ठाकुर दुष्ट! तू हमारे गुरु से क्यों लड़ा है? सारांश यह कि उस ठाकुर की बहुत दुर्गति की। लोग उसको पीटने को भी उद्यत हुए परन्तु हमने रोक दिया। इस लड़ाई के पश्चात् हमको यह ध्यान आया कि कहीं ऐसा न हो कि स्वामी जी हमसे क्रोधित हो गये हों और हमारे भोजन को ग्रहण न करें परन्तु स्वामी जी ने हमारी ओर देखा और कहा—**'श्रृणु, हस्तप्रक्षालनं कृत्वा भोजनमानय'** अर्थात् सुनो, हाथ धोकर भोजन ले आओ। मैं भोजन ले गया। स्वामी जी ने भोजन किया और हमसे बहुत प्रसन्न हुए। फिर महाराज ने हमें कहा कि चलो गङ्गा के तट पर डोल आवें।

हम नित्यप्रति स्वामी जी से कहते थे कि आप सोरों चलें, वहां दस हजार ब्राह्मण हैं कोई संध्या, कोई गायत्री सीखेगा, पुण्य होगा, आप अवश्य चलें। उस दिन हमारी वह शूरवीरता देखकर बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे कि तू हमें ले जाये बिना न छोड़ेगा। मैंने फिर वही प्रार्थना की कि आपको अवश्य जाना चाहिए, जाना ही उत्तम है। फिर उसी दिन आगे-आगे महाराज और पीछे-पीछे हम वहां से चल दिये और **शाम को सोरों पहुंचे** और यहां आकर **गंगातट पर** हमारे शिव के मन्दिर में ठहरे। हम जान गये कि पाषाण देखकर महाराज एक दिन (न) रहेंगे इसलिए हमने निवेदन किया कि महाराज! हमारा एक और स्थान है, उसमें आप चलें। फिर हम अम्बागढ़ के ऊपर महाराज को ले गये, वह उस घर को देखकर संतुष्ट हुए और निवास किया। यहां आकर वह नारायण पंडित चक्रांकित मत छोड़कर शरण में आया और वैदिक मत ग्रहण किया और उनका शिष्य हुआ जिससे नगर में हल्ला मच गया कि एक ऐसे पंडित आये हैं जो समस्त मतों, समस्त पुराणों और समस्त पाषाणपूजा का खंडन करते हैं। इस पर तीसरे दिन सोरों के सैकड़ों पंडित और साधारण लोग स्वामी जी के पास आये। नगर के अन्य रईस लोग भी थे। सब पंडित लोग इकट्ठे हुए और शास्त्रार्थ हुआ, विषय प्रतिमापूजन था।

सोरों में चक्रांकितों की पूर्ण पराजय—पंडित खमानी सबसे मुख्य थे परन्तु चार-पांच बातों में ही सब पंडित परास्त हो गये। इस शास्त्रार्थ का प्रकट प्रभाव यह हुआ कि वहीं सबके सामने पण्डित गोविन्दराम चक्रांकित स्वामी जी का

शिष्य हुआ। ये पण्डित लोग जब शास्त्रार्थ में हार गये तो कोलाहल करने लगे। तब हमने कहा कि आप पढ़े-लिखे लोगों की भांति बातचीत करो, अन्यथा यदि कोलाहल करोगे तो कान पकड़ कर नीचे उतार दिये जाओगे। इस बात से आधे के लगभग सोरों के रईस महाराज जी की ओर हो गये और चक्रांकितों को कहने लगे कि तुम शास्त्रार्थ करते हो या बकवास। चक्रांकितों का मुखिया हरगोविन्द था और स्वामी जी की ओर से उस समय रामनारायण तिवाड़ी था। चक्रांकितों में बिल्कुल शक्ति शास्त्रार्थ की न रही। फिर हल्ला गुल्ला करने लगे, तब नारायण पं० ने कहा कि कोलाहल मत करो अन्यथा सब नीचे उतारे जाओगे। तत्पश्चात् सब चले गये।

अंगदराम शिष्य बने

पंडित अंगदराम का कथन 'सत्य वचन महाराज !'—पं० अंगदराम जी संस्कृत के पूर्ण विद्वान् और व्याकरण के योग्य पंडित थे। बीसियों पंडित उनसे संस्कृत पढ़ते थे और केवल पढ़ते ही न थे प्रत्युत वह पंडितों में शिरोमणि गिने जाते थे। इस ओर के पंडितों मे वह अद्वितीय थे। किसी को यह साहस न था कि अंगदराम जी से शास्त्रार्थ करने को उद्यत हो। उनके नाम से ही पंडितों के देवता कूच करते थे। विशेषतया वह न्याय और व्याकरण में पूर्ण निपुण थे। ग्राम बदरिया जो सोरों के अत्यन्त निकट स्थित है, वहां के रहने वाले थे। पंडित नारायण चक्रांकित जिसे स्वामी जी ने हरा कर अपना शिष्य बनाया था, वह पंडित अंगदराम जी के पास पढ़ा करता था। उसने जाकर पंडित अंगदराम जी से कहा कि एक ऐसे स्वामी आये हैं जिनके सामने किसी को मुख से बात निकालने का भी साहस नहीं। पंडित जी ! तुम चलो। अतः पंडित अंगदराम जी आये और आते ही संस्कृत में मूर्तिपूजा पर विचार होने लगा। पंडित जी महाराज शालिग्राम की पूजा करते थे और नित्य भागवत की कथा बांचा करते थे। स्वामी जी ने वेद और सत्य-शास्त्रों के प्रमाणों से मूर्तिपूजा का अत्यन्त बुद्धिपूर्वक खंडन किया और साथ ही भागवत को भी रगड़े बिना न छोड़ा। पंडित अंगदराम जी से भागवत के विषय में बहुत-सी बातें हुई। वह बहुत विद्वान् थे, स्वामी जी की विद्या पर मोहित हो गये। स्वामी जी ने उनको भागवत के बहुत से दोष बतलाये थे। अन्तिम दोष यह था।

कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः। राज्ञां चोभयवंशानां चरितं परमाद्भुतम्॥[३२]

यह दशम स्कन्ध का पहला श्लोक है। इसमें स्वामी जी ने विस्तार शब्द अशुद्ध और व्याकरण के विरुद्ध बतलाया था कि विस्तर चाहिये, विस्तार नहीं; क्योंकि अष्टाध्यायी में लिखा है कि विस्तार शब्द में 'घञ्' प्रत्यय हो अशब्द में। इस पर स्वामी जी ने बहुत से प्रमाण दिये कि देखो 'विस्तरेण व्याख्याता' सब स्थानों पर ऐसा लिखा है; विस्तार अशुद्ध है। वार्ता या वंश के लिए विस्तर और माप आदि के लिए विस्तार आता है। इनको सुनकर पंडित अंगदराम जी बहुत प्रसन्न हुए और कहा कि महाराज आपकी बातों को कहां तक श्रवण करूं, सब सत्य हैं।

अन्त में पण्डित जी ने अपना पूरा सन्तोष हो जाने के पश्चात् शालिग्राम की मूर्ति जिसे वह पूजते थे, सब के सामने गंगा में डाल दी और भागवतादि पुराणों की कथा पूर्णतया छोड़ दी, प्रत्युत भागवत का बहुत तिरस्कार किया। उनकी यह दशा देखकर गुसांई बलदेव गिरि जी ने भी बहुत सी बहलियां-बटियां गंगा में फेंक दीं ओर पण्डित अंगदराम जी के सम्बन्धियों ने भी अपनी पूजा की मूर्तियां गंगा मे फेंक दीं।

गुरु विरजानन्द जी द्वारा समर्थन—एक दिन की बात है कि स्वामी जी के सहाध्यायी (सहपाठी) पण्डित जुगलकिशोर जी वहां सोरों आये। उस समय अंगदराम शास्त्री जी ने स्वामी जी से कहा कि महाराज ! आप औरों से तो कहते हैं कि शालिग्राम मत पूजो, कंठी मत पहनो और तिलक मत लगाओ परन्तु आपके सहाध्यायी यह सब करते हैं। स्वामी जी ने कहा कि यह मथुरा के रहने वाले हैं, इनका पोपलीला से निर्वाह है इसलिए ऐसा करते हैं। पण्डित जुगलकिशोर

जी इस पर कुपित हो गये और संस्कृत में बोले, जिस में यह शब्द बोला 'य: जयपुरे वसति' पण्डित अंगदराम जी ने कहा कि 'य शब्द अशुद्ध है 'यो' चाहिए। इस पर उनमें परस्पर बहुत चर्चा होती रही। अन्त में जुगलकिशोर ने स्वामी दयानन्द को मध्यस्थ बनाया। स्वामी जी ने कहा कि इन दोनों में से एक संहिता पक्ष और दूसरा अवसान पक्ष है; दोनों हो सकते हैं। इसके पश्चात् जुगलकिशोर जी मथुरा गये। वहां जाकर विरजानन्द जी से शिकायत की कि गंगास्नान को गया था, वहां स्वामी दयानन्द जी मुझे मिले। वह आजकल सोरों में हैं और बड़ा अधर्म कर रहे हैं। कंठी, तिलक, पुराण और शालिग्राम का खण्डन करते हैं, इस पर स्वामी विरजानन्द बोले—हे जुगलकिशोर, शालिग्राम क्या होता है ? 'शालीनां ग्राम: स शालीयो ग्राम:' अर्थात् शालिवृक्ष का ग्राम या चावल के समूह से शलिग्राम अभिप्रेत है। इसकी पूजा क्या निष्फल नहीं है जबकि यह शब्द ही अशुद्ध है। फिर जुगलकिशोर जी ने कहा कि वह तो कंठी, तिलक का भी खंडन करते हैं। विरजानन्द जी बोले कि तुम ही प्रमाण दो कि ऐसा करना कहां लिखा है ? उसने कहा कि जो प्रमाण नहीं है तो यह लो, यह कहा और झट तोड़ डाली।'

सोरों के आसपास का वातावरण बिल्कुल बदल गया—पण्डित अंगदराम जी के शालिग्राम फेंकने से सोरों नगर में साधारणतया और ब्राह्मणों में विशेष रूप से कोलाहल मच गया। यहां चक्रांकितों का बहुत जोर था। प्रतिवर्ष वृन्दावन वाले रंगाचार्य यहां आते और लोगों को दागा करते थे। यहां तक इसका जोर था कि झीवर-झीवरियों तक को अंकित कर डाला गया। एक झीवरी को जब दागा गया तो उसका मूत्र निकल गया। नगर में यह बात सर्वसाधारण को विदित है। सैकड़ों लोग उसके अंकित किये हुए विद्यमान हैं परन्तु जब से स्वामी जी आये तबसे रंगाचार्य यहां नहीं आया क्योंकि पाप मैदान में नहीं आ सकता और वास्तव में वह उनके सामने आने की शक्ति भी नहीं रखता था। लोग उसके मत को छोड़ने और साथ ही धर्म की ओर प्रवृत्त होने लगे। सैकड़ों लोगों ने उस दूषित अधर्म को छोड़ दिया और कंठी तोड़ डाली, तिलक छोड़ दिये। संध्या, गायत्री कंठ कर ली। भागवत और पुराणों के स्थान पर महाभारत और मनुस्मृति की कथा कराने का आयोजन होने लगा। स्वामी जी से पण्डित अंगदराम, पंडित नारायण, हरदेवगिरि, पण्डित जगन्नाथ, पण्डित गोविन्द चक्रांकित अष्टाध्यायी और मनुस्मृति पढ़ने लगे। महाभारत की कथा बैठ गई। यह बात केवल वहीं तक सीमित न रही प्रत्युत चारों ओर फैल गई। सब ओर से लोग वहां स्वामी जी के पास आने लगे। सोमवती, पूर्णमासी तथा वारुणी पर हजारों व्यक्ति स्वामी जी के दर्शनों को आये। सहस्रों मनुष्यों ने गायत्री सीखी और उसका जाप आरम्भ किया। उस समय स्वामी जी यहां ६ मास रहे। क्वार के नवरात्रों में संवत् १९२५ तदनुसार १८ सितम्बर, सन् १८६८ को बिना कहे यहां से चल दिये। पंडित जुगलकिशोर जी मथुरा निवासी, पंडित दैवार जी मथुरा वाले तथा पंडित रामप्रसाद जी कान्यकुब्ज निवासी के मुख से विदित हुआ कि यह अंगदराम जी स्वामी विरजानन्द जी से संवत् १८९३ वि० से पहले कौमुदी पढ़ते रहे और विरजानन्द जी ने उन्हें सोरों रहने की अवस्था में शिक्षा दी थी।

इस बार स्वामी जी की कैलाशपर्वत नाम के एक सुप्रसिद्ध संन्यासी से कुछ धर्म चर्चा हुई। इन महाराज ने कई मन्दिर विभिन्न स्थानों पर बनवाये थे।

वैद्यराज चौबे रामदयाल जी, (लोड़से) होलीपुर निवासी जिला आगरा ने वर्णन किया कि पहले-पहल जब हम लखना जिला इटावा में राव साहब[३३] जसवन्तराव जी के सांझे में व्यापार करते थे, तब एक बार हम सोरों गये। किसी पर्वी के अवसर पर लोग गढ़िया घाट पर गंगा स्नान को गये थे। वहां से लौटकर पंडित गणेश बदरिया[३४] के रहने वाले ने (जिनके सामने और पंडितों की स्वामी दयानन्द जी से बातचीत हुई और अन्त को सब हार गये), सब वृत्तान्त हमको सुनाया कि इस प्रकार 'कोलाहल'[३५] आये हैं, वह किसी को नहीं मानते हैं। हमने कहा कि ऐसा नहीं, वह किसी को तो अवश्य मानते होंगे। उन्होंने कहा कि तुम भी चलो। इससे पहले जब हम वहां ग्राम सोरों में आये, तो लोग हमें कहते थे कि चलो, रामचन्द्र जी या वराह जी के दर्शन को आओ; हम कहते थे कि रामचन्द्र जी और वराह जी तो मर गये अब तो पत्थर जी हैं; क्योंकि हमने मनुस्मृति देखी हुई थी, जिसमें पञ्चमहायज्ञों के अतिरिक्त और किसी प्रकार की पूजा का लेख नहीं।

वाराह क्षेत्र में मूर्तिपूजा विरोधी वातावरण

ब्राह्मणों के लगभग २५०० घरों में से एक भी संध्या नहीं करता था : तीनों वर्ण संध्या करें—अन्त में वही पंडित अर्थात् नारायण, अयोध्या, गणेश आदि जो स्वामी जी से शास्त्रार्थ में हारे थे और गुसांई बलदेवगिरि वहां जाकर स्वामी जी को सोरों लिवा लाये और अम्बागढ़ में डेरा कराया। तब उन्होंने हमको कहा कि वह यहां आ गये हैं, तुम चलो। तब हम गये, वहां सैकड़ों मनुष्य एकत्रित थे। स्वामी जी उस समय संध्या और यज्ञोपवीत का उपदेश कर रहे थे क्योंकि उस समय तक वहां सहस्रों ब्राह्मण भी, संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ होने के कारण, यज्ञोपवीत से रहित थे। लोग कहने लगे कि हमारे पास धन एकत्रित नहीं है। स्वामी जी ने कहा कि एक बूढ़ा मर जाये तो हजारों रुपया लगा देते हो, दो रुपया यज्ञोपवीत पर व्यय करने की शक्ति नहीं है! वहां ब्राह्मणों के २५०० घर थे परन्तु संध्या करने वाले उनमें से पांच भी न थे। स्वामी जी ने आज्ञा दी कि इनको संध्या लिखकर दो। मैंने कहा कि इनका अधिकार कहां है? क्योंकि इनका संस्कार नहीं हुआ। स्वामी जी बोले कि तीन वर्ण का तो अधिकार है। मैंने कहा कि ये तो व्रात्य हैं, इनको अधिकार नहीं। स्वामी जी ने कहा कि यह कहां लिखा है? तब मैंने मनुस्मृति का यह श्लोक पढ़ा-

अत ऊर्ध्वं त्रयोप्येते यथाकालमसंस्कृताः। सावित्रीपतिता व्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः॥[३६]

इस पर स्वामी जी ने कहा—**'एवं न कथनीयम्; यथा कथञ्चित् धर्मो रक्षणीयः'** कि ऐसा मत कहो, किसी प्रकार से धर्म की रक्षा करनी चाहिए। जिस पर हम मौन हो गये। तब स्वामी जी ने सबको संध्या लिखवा दी। उनके उपदेश से वहां लगभग दो-सौ मनुष्य संध्या करने लगे।

पंडित अङ्गदराम बदरिया वाले भी आये, कोई विवाद न किया, केवल एक श्लोक उनकी प्रशंसा का बना कर ले गये कि आप धर्मरक्षा के लिए उत्पन्न हुए हैं। इसी अंगदराम शास्त्री जी ने उन्हीं दिनों कई श्लोक स्वामी जी के सत्योपदेशानुसार बनाये थे, उनमें से एक मुझे स्मरण है—

रुद्राक्ष-तुलसी-काष्ठमाला-तिलक-धारणम्। पाखण्डं विजानीयात् पाषाणादिकस्यार्चनम्॥

पुराण का अर्थ सनातन इतिहास—स्वामी जी के पधारने से पूर्व इसी पंडित अंगदराम ने वराह की प्रशंसा में कैलाशपर्वत के कथनानुसार एक सौ श्लोक बनाये थे परन्तु स्वामी जी के आने पर उनके सत्योपदेश के पश्चात् कई श्लोक मूर्तिखंडन के बनाये। इस पर कैलाश जी ने जगन्नाथ शास्त्री चक्रांकित बांसबरेली वाले को बुलाया परन्तु उसने कोई शास्त्रार्थ न किया, केवल एक श्लोक मनुस्मृति का लिखकर भेजा-'इतिहासपुराणानि धर्मशास्त्राणि श्रावयेत्॥[३७]' स्वामी जी ने उत्तर दिया कि यहां पुराण शब्द सनातन के अर्थ में है अर्थात् सनातन इतिहास। यहां किसी पुस्तक विशेष का उल्लेख नहीं। यद्यपि हरिश्चंद्र, पंडित अंगदराम, बलदेवगिरि, अयोध्या आदि उनको कैलाश जी के बाग में बुलाने गये परन्तु वे स्वामी जी के सामने न आये। सोरों से बिना शास्त्रार्थ किये लौट गये।

पुराणों का बदलता रूप—जब जगन्नाथ जी ने इतिहास पुराण वाला श्लोक कहा तब हमने कहा कि कालिदास ने लिखा है कि मेरे समय तक दस पुराण थे और अब अठारह हैं और उस समय महाभारत के ग्यारह सहस्र श्लोक थे और व्यास जी ने चार हजार चार सौ बनाये परन्तु राजा भोज के समय में ग्यारह हजार और अब एक लाख श्लोक हैं। **यह सारा वृत्तांत कालिदास द्वारा रचित 'संजीवनी' ग्रन्थ में विद्यमान है।** उस समय भागवत विद्यमान न था। यह 'संजीवनी' ग्रन्थ ग्राम भिंड ग्वालियर प्रदेश में हिमाचल पंडित कान्यकुब्ज के यहां विद्यमान था। वह हिमाचल जी उसके श्लोक लोगों को सुनाया करते थे। हमने यह बातें कचौरा में हिमाचल के मुख से सुनी थीं।

भागवत का यह वृत्तांत है कि बोपदेव और जयदेव दोनों भाई थे जो मकसूदाबाद के समीपवर्ती शक्तिपुर, बंगाल प्रदेश के रहने वाले थे। उनकी जाति वैष्णव थी। इसी जाति की अधिकांश स्त्रियां कलकत्ता तथा बर्दवान में वेश्या हैं। ये लोग अपनी इच्छा से अपनी स्त्रियों और लड़कियों को इस काम को बेच देते हैं। यह ग्रन्थ बोपदेव का बनाया हुआ है। श्रीधर तिलक में भी लिखा है कि बोपदेवकृत है, शंका मत करो।

स्वामी जी ने हमको इस ग्रन्थ के लेने के लिए कहा था। हमने बहुत यत्न किया परन्तु उन्होंने किसी प्रकार नहीं दिया। हमने रुपया देकर भी लेना चाहा परन्तु उन्होंने न माना। **स्वामी जी वहां से चलकर शाहबाजपुर आये** जो इस स्थान से चार पांच कोस है। वहां लेखराज जमींदार के बाग की चौपाल में गंगातट पर ठहरे। एक महाराष्ट्र ब्राह्मण हरिद्वार से उनके साथ आया और उनसे मनुस्मृति पढ़ता था। सोरों तक आकर मनुस्मृति पढ़कर चला गया।

स्वामी कैलाशपर्वत जो संन्यासियों में एक प्रसिद्ध महन्त थे यहां सोरों में उनका वराह जी का प्रसिद्ध मन्दिर है। स्वामी जी चूंकि मूर्तिपूजा का खण्डन करते थे इसलिए अवतार का भी खंडन उसके साथ था। इसी कारण कैलाशपर्वत जी से शास्त्रार्थ की ठहरी।

खरी-खरी कहने के लिए ही सर्वस्व त्याग—स्वामी कैलाश पर्वत जी ने बनारस में इस प्रकार वर्णन किया कि सवंत् १९२४ में उन्होंने हरिद्वार में अपने कपड़े, पुस्तक सब त्याग कर गंगातट पर फिरने का निश्चय किया। हमने कहा कि तुम ऐसा क्यों करते हो? कहने लगे कि 'हम साफ-साफ और सत्य कहना चाहते हैं और यह बेखटके हुए बिना नहीं हो सकता। जब तक हम अपनी आवश्यकताओं को कम न कर दें अपने ध्येय को पूर्ण नहीं कर सकते।' इसीलिए उन्होंने सब कुछ लुटा कर केवल लंगोट रखकर भ्रमण आरम्भ किया और अनूपशहर, कर्णवासादि स्थानों पर जब उन्होंने मूर्तिपूजा का भलीभांति खंडन कर लिया और सोरों की ओर जहां हमारा वराह का मन्दिर है आने लगे तो वहां के लोगों ने हमको भी बनारस से बुलाया, हम गये।

देश के सर्वनाशक चार नवीन मत—वहां पर एक दिन हम सोरों से गंगा स्नान के विचार से गये और रात को वहां गढ़ियाघाट पर रहे। शाम को जब हम संध्या कर रहे थे तो क्या देखते हैं कि एक संन्यासी हमारे शिर पर खड़े हैं। हमने पूछा 'कोऽस्ति?' कहा 'दयानन्दोऽहम्।' इसके पश्चात् बैठ गये। उस समय संस्कृत बोलते थे। हमसे कहा कि मैं आपसे कुछ सहायता लेने आया हूं। हमने कहा कि कहो कैसी सहायता? दयानन्द जी ने कहा कि इन चार नवीन मतों ने सत्यानाश कर रखा है रामानुज, वल्लभ, निम्बार्क और माधव[३८]। इनका हम खंडन करना चाहते हैं। हमने कहा कि निस्संदेह यह आपकी बात बहुत श्रेष्ठ है उन्होंने बहुत कुछ वेदविरुद्ध काम कर रखे हैं। हम आपकी सहायता करने को सब प्रकार उपस्थित हैं परन्तु आप हमारी दो बात मान लें। प्रथम मूर्तिपूजन का खंडन मत करें, इससे बहुत लाभ है, मन्दिर बने हुए हैं। अज्ञानी लोग वहां जाकर पूजा करते हैं, सैकड़ों पुरुषों की आजीविका का सम्बन्ध बना हुआ है। दूसरा पुराणों का भी खंडन मत करो। ऐसा मत कहो कि सब पुराण व्यास के बनाये हुए नहीं हैं।

मूर्तिपूजा व पुराणों का खंडन आवश्यक

सबसे पहले शत्रु का सिर तोड़ना आवश्यक—दयानन्द जी ने उत्तर दिया कि इन चार सम्प्रदायों का आदिमूल अर्थात् मुख्य लक्ष्य मूर्तिपूजा है। इस प्रकट धोखे की टट्टी से यह संसार को लूट रहे हैं। इसलिए शत्रु का शिर तोड़ना सबसे प्रथम आवश्यक है और मूर्तिपूजा का जो लेख मिलता है वह केवल पुराणों में है। इसलिए सबसे प्रथम ये ही दोनों खंडन के योग्य हैं। सारांश यह है कि इस प्रकार वह हम को समस्त रात्रि अपनी सहायता के लिए उत्साह दिलाते रहे परन्तु

हमने स्वीकार न किया, इसलिए कि वह मूर्ति और पुराणों के खंडन को नहीं छोड़ते थे। प्रातःकाल हम स्नान करके वहां से सोरों को चले आये और दयानन्द जी वहीं रहे। मार्ग में हमको बलदेवगिरि साधु और कुछ अन्य सोरों निवासी मिले। हमसे दयानन्द जी का वृत्तान्त पूछा। हमने कहा कि बहुत अच्छे साधु और विद्वान् हैं। तत्पश्चात् वह जाकर उनको सोरों ले आये। यद्यपि वह वहां आकर हमसे कई दिन मिलते रहे परन्तु उन्होंने सोरों आकर बहुत ही खंडन आरम्भ किया जिस पर हमको भी लोगों के कहने से क्रोध आ गया। हमने उनको बुरा-भला भी कहा। प्रत्युत एक पुस्तक उनके खंडन में भी लिखी जिस पर दयानन्द जी के सहायकों अर्थात् बलदेवगिरि आदि ने निश्चय किया कि हमको पीटें। हमने भी बदमाश लट्ठबाजों को अपनी सहायता के लिये बुला लिया परन्तु ऐसे समय में भी दयानन्द जी ने हमारे बुरा कहने पर भी हमको कभी बुरा नहीं कहा। हमारा सम्मान करते रहे और कहते रहे कि वे वृद्ध संन्यासी हैं परन्तु फिर सामने मिलने का अवसर नहीं हुआ।

'सत्यधर्मसंरक्षिणी' में स्वामी कैलाशपर्वत जी द्वारा स्वामी जी के कार्य का विवरण—जो 'सत्यधर्मसंरक्षिणी' पुस्तक कैलाश पर्वत जी ने लिखकर, भगवत प्रकाश प्रेस, धौलपुर में संवत् १९२६ वैशाख तदनुसार मई, सन् १८६९ में प्रकाशित कराई थी वह हमें सरदारमल वैश्य अग्रवाल फर्रूखाबाद निवासी से मिली। उसकी भूमिका में लिखा है कि 'स्वामी दयानन्द सरस्वती बड़े विद्वान् खंडन-मंडन में बहुत निपुण, श्री गंगातीर विचरते हैं। किसी पुरुष की प्रेरणा से या कलिकाल की प्रेरणा से संवत् १९२३ के आरम्भ में उनका यह संकल्प हुआ कि भारत से मैं पुराण और पुराण के अर्थ के अनुष्ठान को दूर करूं; इसलिए उन्होंने श्री गंगातीर के सर्वजनों को ऐसा कहना आरम्भ किया कि पुराण तो ब्राह्मणों ने अपनी आजीविकार्थ बनाये हैं, व्यास जी ने तो केवल (महा) भारत ही बनाया है। सो महाभारत, रामायण, मनुस्मृति, वेद से पाषाण, मणि तथा मृत्तिका की मूर्ति का पूजन और मन्दिर निर्माण, एकादशी आदि व्रत नहीं सिद्ध होते। इसलिए व्यर्थ श्रम छोड़कर तुम लोग बलिवैश्व आदि पंचयज्ञ, आदित्य, अग्न्यादिक देवता का पूजन करो।'

पीछे ऐसा कथन करते हुए बहुत जनों से पुराण श्रवण, मूर्तिपूजा, एकादशी आदि व्रत, मन्दिर निर्माण का त्याग करवाते हुए स्वामी जी संवत् १९२५ के वैशाख में श्री वाराहक्षेत्र गंगातट पर घूमते हुए सरदूला[३९] जिला एटा में भी गये और कुछ दिनों के लिए उक्त ग्राम में निवास स्थान किया और वहां के लोगों को सत्योपदेश दिया। उन्हीं लोगों में से ठाकुर हुलाससिंह जी हैं और भी कई भद्रपुरुष उस समय के आर्य हैं। तत्पश्चात् विभिन्न समयों में वे लोग पोप पंडितों से शास्त्रार्थ और यज्ञादिक कर्म करते रहे और अन्त में उन्होंने हवनयज्ञ के अवसर पर श्रावण शुक्ला त्रयोदशी, भृगुवार (संभवतः) संवत् १९३५ को पण्डित भीमसेन जी, पण्डित बद्रीदत्त जी, पण्डित रामदयाल जी, पण्डित रामप्रसाद जी, पंडित गोपालदास जी और स्वामी रामपुरी सरस्वती आदि सज्जनों को बुलाकर उपदेश कराये, आर्यसमाज स्थापित हुआ और निम्नलिखित सज्जनों को अधिकारी नियत किया गया। ठाकुर टीकासिंह प्रधान, ला० राजाराम मन्त्री, पण्डित मवीचन्द्र शर्मा उपदेशक, कुंवरसिंह जी वर्मा कोषाध्यक्ष, स्वामी रामपुरी जी सरस्वती पुस्तकाध्यक्ष।

वहां से स्वामी जी फिर वाराहक्षेत्र सोरों जी में आये। तत्पश्चात् श्री स्वामी कैलाश पर्वत जी ने इस बात में हठ देखकर कि ब्राह्मणों की आजीविका का अभाव होगा। विचारशून्य पुरुषों के लिए पुराणार्थ के अनुष्ठान बिना कल्याण का मार्ग न देखकर उनकी एक-एक बात का उत्तररूप यह 'सत्यधर्म संरक्षणी' ग्रन्थ बनाया और इसी ग्रन्थ में भारत, रामायण मनुस्मृति, वेद के आधार से पुराणों की प्रमाणता[४०] और मूर्ति-अर्चा, एकादशी आदि व्रत दृढ़ कराये और लिखा कि जिस पुरुष को दयानन्द जी के कहने से ऐसी बातों में संशय होवे और वह पुरुष साक्षर होवे तो आप विचार करे। (साक्षर) न होवे

तो किसी विद्वान् के मुख से चित्त देकर श्रवण करे , तब उस पुरुष को भ्रम न होवेगा । जो पुरुष प्रमाद कर इस ग्रन्थ का विचार और श्रवण न करेगा उस पुरुष को नवीन मत वाले पुरुषों की वार्ता श्रवण कर उनका उत्तर देने में असमर्थ होकर स्वधर्म त्याग करना पड़ेगा ।

(यह ३१ पृष्ठों का ग्रन्थ[४१] कैलाशपर्वत जी ने संस्कृत में संवत् १७९० शालिवाहन भादों शुदि दशमी, तदनुसार संवत् १९२५ विक्रमी तदनुसार २७ अगस्त, सन् १८६८ को रचा । संकलनकर्ता)

ठाकुर मुकुन्दसिंह रईस जिला अलीगढ़, वर्णन करते हैं 'श्रावण, संवत् १९२५ में हम जाति के कुछ सज्जनों और पं० हरिकृष्ण तथा पण्डित ईश्वरीप्रसाद सहित सोरों में स्वामी जी से मिले ।[४२] उन दिनों स्वामी जी महाराज और कैलाशपर्वत जी, जो वराहमंदिर में महन्त थे, शास्त्रार्थ के लिए बातचीत कर रहे थे । परन्तु अभी कुछ नियत न हुआ था क्योंकि जब कोई तिथि निश्चित होती तो उस समय महन्त जी बहाना करके अपने को बचा लेते और शास्त्रार्थ पर उद्यत न होते थे । स्वामी जी उन दिनों बदरिया में थे और स्वामी जी की आज्ञानुसार तथा सोरों निवासी लोगों की प्रार्थना पर बदरिया के अंगदशास्त्री महाभारत की कथा बांचते थे क्योंकि वह कुछ दिनों पूर्व आर्य (हो गये थे) अर्थात् वैदिकधर्म को स्वीकार कर चुके थे । सोरों के, समर्थक तथा विरोधी, बहुत से लोग कथा में एकत्रित हुआ करते थे । बलदेवगिरि गुसांई जो एक शूरवीर मनुष्य गिना जाता था वह स्वामी जी का प्रत्येक समय सहायक रहता था और उसकी उस स्थान पर ऐसी धाक बैठी हुई थी कि समस्त सोरों के विरोधी पण्डित शिर न उठा सकते थे । उसी समय एक दूसरे अंगदराम शास्त्री बरेली वाले भी वहीं आये थे । (यह हमारे जाने से कुछ समय पहले की बात है) यह व्यक्ति स्वामी जी के विरुद्ध व्याख्यान देता था । स्वामी जी ने स्वयं तो उससे बात करने की आवश्यकता न समझी परन्तु अपने शिष्य अंगदराम शास्त्री को शास्त्रार्थ की आज्ञा दे दी । सुना गया कि पण्डित अंगदराम जी ने उसे शास्त्रार्थ में भली-भांति पराजित किया ।'

पीलीभीत के अङ्गदराम की चिट्ठी और उसका उत्तर—स्वामी जी जब कर्णवास में थे तब भी एक बार उससे पहले अंगदराम पीलीभीत वाले की चिट्ठी आई थी । पंडित कृष्णवल्लभ पुजारी मन्दिर कर्णवास ने वर्णन किया कि स्वामी जी ने मुझसे कहा था कि अंगदराम शास्त्री की चिट्ठी हमारे पास आई है । उसके अन्त में एक श्लोक लिखा था जिसका अर्थ यह था कि जिस प्रकार पाताल में शेष और आकाश में बृहस्पति है वैसे ही संसार में अंगद है ।

अंगदराम ने अपने पत्र में अपनी बहुत प्रशंसा लिखी थी । स्वामी जी ने उसके उत्तर में चिट्ठी लिखी वह भी मुझे दिखाई थी । वह बड़ी लम्बी और संस्कृत भाषा में थी, मैंने पढ़ी । यद्यपि और वृत्तांत मुझे स्मरण नहीं परन्तु उनके नाम के तीन अक्षर अ, ग, द, लेकर प्रत्येक अक्षर के आठ-आठ खण्ड करके बड़ी युक्तियुक्त चिट्ठी लिखी थी और उसके अहंकार की बहुत दुर्गति की थी । वह सारी की सारी चिट्ठी देखने के योग्य थी ।

पंडित कामताप्रसाद तथा पंडित वेणीमाधव, रईस नदास जिला एटा ने वर्णन किया कि अंगदराम ने चिट्ठी में जो श्लोक अपनी प्रशंसा का लिखा था वह इस प्रकार था कि पाताल शेष के अधीन और आकाश बृहस्पति के है और तीसरा अंगद शास्त्री है, चौथा कोई नहीं ।

स्वामी जी ने इसका उत्तर समस्त पत्र का खण्डन करने के पश्चात् ऐसा लिखा था कि पाताल में शेष और आकाश में बृहस्पति कल्पित कर लेने से क्या अंगद शास्त्री भी कल्पित किया जा सकता है ? कदापि नहीं । यह अंगदराम महाराज शुक्र देवता की भांति, आंख से काने थे ।

विरोधी पंडित द्वारा स्वामी जी की प्रशंसा

ठाकुर मुकुन्दसिंह जी कहते हैं कि मैं वराह के मन्दिर में जाकर वहां के महन्त गुसांई कैलाशपर्वत जी से मिला, परन्तु मैंने उनसे यह न कहा कि मैं स्वामी दयानन्द जी से मिलने आया हूं। मैंने उनसे स्वामी जी के विषय में पूछा, उन्होंने विरोधी होने पर भी कुछ शब्दों में उनकी प्रशंसा करके कोई वाक्य सभ्यताविरुद्ध न कहा। केवल इतना कहा कि वह मूर्तिपूजा का खंडन करते हैं अन्यथा सब बातों में प्रशंसा के योग्य हैं। हम श्रावणी करने के पश्चात् अपने साथियों सहित छलेसर चले आये।

एक सोरों निवासी नारायण **नामक व्यक्ति** ने स्वामी जी की उस समय की उस अवस्था को इस प्रकार कविता में वर्णन किया है—

स्वामी दयानन्द सरस्वती बाबा आये ऐसे शास्त्री। बहुतेरे लड़के कुपढ़ डोलें, पढ़ाई उनको गायत्री॥

समस्त सोरों में सब लोग स्वामी जी की विद्या,गुण,धर्म उपदेश की प्रशंसा करते हैं परन्तु आजीविका के कारण वहां के पाखंड को नहीं छोड़ सकते।

गुसांई बलदेवगिरि ने कैलाश पर्वत की बातचीत को संवत् १९२७ से सम्बन्धित बतलाया परन्तु वर्ष में उनकी भूल है। वह कहते हैं—जब स्वामी जी ने सुना कि बाग में कैलाश पर्वत हैं तो स्वामी जी अंबागढ़ से आये । कैलाश पर्वत मूढ़े[1] पर बैठे थे, देखकर उठ खड़े हुए। फिर स्वामी जी और वह दोनों बैठ गये। हम भी साथ थे। प्रतिमापूजन पर बातचीत हुई परन्तु उन्होंने कुछ उत्तर न दिया,जिस पर सैकड़ों मनुष्यों ने वराह जी के मन्दिर में जाना छोड़ दिया।

कैलाश पर्वत को लोगों ने यह भी बहकाया कि बलदेवगिरि स्वामी जी को कहकर एक तो हमारा धर्म छीन लेगा। दूसरे तुम यदि बाहर जंगल जाओगे तो तुम्हे पीट डालेगा। इस पर उसने थाने में रिपोर्ट करके थानेदार को बुला लिया। जो हमारे दुष्ट शत्रु थे उन्होंने कैलाश पर्वत से कहा कि हजार रुपया हमको दे,हम बलदेवगिरि से लड़ेंगे। यह सूचना हमको भी मिल गई। हम कैलाश पर्वत के पास गये और सारा वृत्तांत कहा कि तुम क्यों लड़ते हो और कौन तुमको मारता है। तुम हमारे शत्रु को हजार रुपया देते हो,यदि वह मुझे मारेगा तो तुम भी पकड़े जाओगे। ऐसा काम मत करो। हम तुम एक हैं, कोई भय की बात नहीं। तत्पश्चात् वह बाग में बराबर आने जाने लगे। आधे लोग स्वामी जी की ओर और आधे कैलाश पर्वत की ओर थे।

मूर्तिपूजा के खण्डन के लिए पंडित का पीछा—इतने में एक और नग्न साधु,चिद्घनानन्द जी यहां आये। ये संस्कृत जानते थे। इन्होंने आकर दावा किया कि हम मूर्तिपूजा को सिद्ध करेंगे। स्वामी जी महाराज ने पत्र लिखा कि तुम आओ या मैं आऊं,परन्तु उसने उत्तर में न तो यह कि तुम आओ और न यह कि मैं आता हूं। केवल दूर से बातें बनाता रहा। जब चार घड़ी दिन रहा तो सोरों से गंगा की बड़ी धार की ओर चला गया। स्वामी जी को उसके चले जाने की सूचना मिली। उसके पीछे गये और यहां से एक मील दूर मरघट के समीप महादूधाधारी के पास उसे जा पकड़ा और दोनों बैठ गये। स्वामी जी ने कहा कि वह मूर्तिपूजा की सावधानी (के समाधान) का मंत्र कहां है, बोलो। वह मौन हो गये। घंटा भर तक बैठे रहे तब स्वामी जी ने फिर कहा-झूठ ने तुम्हारे मुंह पर मुहर लगा दी है, यदि तुम्हारा पक्ष सत्य है तो फिर बोलते क्यों नहीं? अर्थात् अब तुम मौन होकर बैठ गये (उन्होंने कहा कि मूर्तिपूजा का समाधान करो)।

1.स्वामी जी ने इस समय एक चुटकुला भी कहा था कि इस कुटिया में कैलाश पर्वत कैसे समा गया? इसको सुन कर सब लोग हंस पड़े।

"परन्तु वह चिद्घनानन्द जी बिल्कुल मौन हो गये, कुछ भी न बोले । तब स्वामी जी विवश होकर वहां से अम्बागढ़ को लौट आये । स्वामी जी क्वार के नवरात्रों में बिना कहे सोरों से चल दिये ।"

व्याकरण के सूर्य (गुरु विरजानन्द) के अस्त होने का समाचार सुनकर वीतराग भी मुरझा गये। पंडित चैनसिंह जी वर्णन करते हैं—कि सुनने में आया कि स्वामी जी शाहबाजपुर ग्राम में ठहरे हुए हैं । इन दिनों यहां एक चिट्ठी आई थी कि स्वामी विरजानन्द जी दण्डी प्रज्ञाचक्षु की क्वार बदि १३, संवत् १९२५ को मृत्यु हो गई । हमने क्वार शुदि, संवत् १९२५ को पंडित अयोध्याप्रसाद, गिरधारी वैश्य तथा एक अन्य मनुष्य के साथ शाहबाजपुर में जाकर स्वामी जी से सारा वृत्तांत निवेदन किया । स्वामी जी सुनकर कुछ देर मौन रहकर कहने लगे कि आज व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया । उस समय उनके चित्त पर वैराग्य और शोक भी आ गया था, मुख मुरझा गया । तत्पश्चात् हमको सत्यधर्म का उपदेश करते रहे । हम वहां दो दिन रहे ।

शाहबाजपुर में स्वामी जी की हत्या करने की विफल चेष्टा—वहां हमने यह भी सुना था कि गंगा नदी के पार से दो वैरागी स्वामी जी को मारने के लिए आये थे और शाहबाजपुर के एक ठाकुर को एक वैरागी ने अपना मित्र समझ कर कहा कि तुम अपनी तलवार हमें दो, हम इस गप्पाष्टक को मार देंगे । उस ठाकुर ने कहा कि उनकी तो मैंने कई दिन वार्ता यहीं सुनी है, वह बड़े महात्मा हैं । दुष्टो ! यदि फिर यह बात मुख से निकाली तो तुमको मार डालूंगा, जाओ मेरे सामने से दूर हो जाओ ! फिर वह ठाकुर दो-चार सशस्त्र मनुष्यों के साथ स्वामी जी के पास आया और कहा कि महाराज ! आपके मारने की यह दुष्ट लोग सम्मति कर रहे थे, मैं उनको धमका कर यहां आया हूं । स्वामी जी ने कहा कि उनकी क्या सामर्थ्य है कि हमको मारें ! परन्तु वह ठाकुर न माना और रात भर पहरा देता रहा जिस पर वह दुष्ट किसी प्रकार का कोई आक्रमण न कर सके ।

अक्टूबर १८६८ के ककोड़े के मेले का वृत्तांत

फिर, शाहबाजपुर के पश्चात् स्वामी जी की सूचना हमको कादिरगंज में जाने की मिली और सुना कि मेला ककोड़ा में भी उनका शास्त्रार्थ हुआ था ।

ककोड़ा का मेला कार्तिक शुदि में एकादशी से पूर्णिमा तक होता है । उस वर्ष २७ अक्तूबर, सन् १८६८ से ३१ अक्तूबर, सन् १८६८ तक हुआ था । गुसांई बलदेवगिरि वर्णन करते हैं कि—'हमने जब सुना कि महाराज ककोड़े के मेले पर गये हैं तो हम भी पंडित नारायण आदि आठ-दस मनुष्यों सहित वहां जा पहुंचे; परन्तु हमारे जाने से पूर्व सोरों के लोगों ने, जो मांगने के लिए वहां गये हुए थे जब स्वामी जी को देखा तो उनके लिए एक कुटिया बना दी और भिक्षा करके महाराज को खिलाते रहे । इतने में हम भी जा पहुंचे । वहां जाकर हमने कनात बिछवा कर चांदनी लगा दी और गद्दी लगाकर महाराज को उसके ऊपर बिठा दिया ।

चक्रांकितों के रोष की ज्वाला में

गुसांई बलदेवगिरि जी ने वर्णन किया कि जब स्वामी जी छलेसर से यहां सोरों में आये और पांच—चार मास रहकर शाहबाजपुर की ओर दूसरी बार गये तो हम भी पंडित नारायण सहित शाहबाजपुर गये । वहां स्वामी जी नेकराज ठाकुर के यहां ठहरे । ग्राम मियासर के गंगासिंह नंबरदार भी स्वामी जी के शिष्य हुए । एक चक्रांकित ठाकुर वहां भी स्वामी जी से गड़बड़ करने लगा, वह घोड़े पर चढ़कर आया था । जब बातचीत में स्वामी जी से पूरा न हो सका तो क्रोध में आकर असभ्यतापूर्ण बातें करने लगा । तब गंगासिंह ने कहा कि 'सीधा क्यों नहीं बोलता, मुंह संभाल कर बोल ।' हम सब ने भी रोका जिस पर फिर उसने कोई दुष्टता नहीं की और चला गया । फिर पास न आया ।

शाहबाजपुर में एक वैरागी गंगासिंह नंबरदार के पास आया । यह वैरागी गंगापार का रहने वाला था और गंगासिंह से उसकी बहुत मित्रता थी । उन्होंने गंगासिंह से कहा कि मुझे तू तलवार दे, मैं उस पंडित का मस्तक काट डालूंगा । उसने कहा कि इससे पहले कि तू हमारे इष्ट को तलवार मारे, मैं तुझे मार डालूंगा, यदि भला चाहता है तो यहां से चला जा । फिर वह चला गया ।

"मूर्तिपूजा का खण्डन करना ईश्वराज्ञा का पालन करना है"—साधु मायाराम जी उदासी ने २९ अक्तूबर, सन् १८८८ को बगीचा बस्तीराम अमृतसर में वर्णन किया—'सोरों के कस्बे में स्वामी जी ने कई ब्राह्मणों के बालकों से भागवत के पुस्तक और शालिग्राम फिंकवा दिये थे जिस पर उन ठाकुरों के वृद्ध ब्राह्मण कुपित हो गये परन्तु स्वामी जी उनका खण्डन करते रहे । फिर सोरों से आठ कोस पर एक ग्राम, जिसका नाम कदाचित् गढ़ी था, उसमें जाकर एक क्षत्रिय के यहां रहे । यह क्षत्रिय वैरागियों का सेवक था । उसने स्वामी जी के उपदेश से कंठी, माला, मूर्तिपूजादि छोड़ दी । चूंकि वह रईस और कुछ ग्रामों का जमींदार था, इसलिए उसके वैरागी गुरु बहुत कुपित हुए और स्वामी जी से बदला लेने पर उद्यत हुए । कानपुर से इधर चार कोस पर वैरागियों का एक बहुत बड़ा स्थान है । वहां के वैरागियों ने स्वामी विरजानन्द[४३] को (जो अब कदाचित् मर गये है) वहां विचरते देखकर विचार किया कि यही दयानन्द है । स्नान के बहाने उसे गंगा में ले जाकर डुबाना चाहा परन्तु वह बहुत तैराक था, गोता लगाकर नदी के पार चला गया जिसकी सूचना दयानन्द जी को भी मिली; तब से वह ब्राह्मणों और वैरागियों से चौकस अर्थात् सावधान रहने लगे । सोरों से आठ कोस वाले ग्राम में जब हमने दयानन्द जी की ब्राह्मणों के मुख से बहुत निन्दा सुनी, तब दयानन्द जी से कहा (उस समय वह एक चारपाई पर बैठे हुए थे) कि 'आपको मूर्तिपूजा आदि के खण्डन से क्या प्राप्त होता है ? आनन्द से हमारी भांति भोजन पाकर नग्न रहा करो और विश्राम किया करो, क्यों शत्रुता डालते हो ? तब स्वामी जी ने कहा **'ब्रह्मानन्द एव वर्ते'** और **ईश्वराज्ञा पालन में (ब्रह्म) आनन्द है ।** हम ब्रह्मानन्द में वर्तते हैं और जैसे वेद के प्रचार में आनन्द आता है उसके अनुसार वर्तते हैं । उस समय स्वामी जी केवल संस्कृत बोला करते थे ।'

गुसांई बलदेवगिरि द्वारा मेले में स्वामी जी के कार्य का वर्णन—मेले में स्वामी जी की धूम हो गई । सैकड़ों चक्रांकित लट्ठ और सोटा लिए तिलक लगाये आ गये । प्रथम तो द्वेष के मारे लजाते हुए आते थे परन्तु जब स्वामी जी के उपदेश सुनते तो बिल्कुल मौन हो जाते थे । वहां बहुत-सी सभाएं हुईं; कलक्टर साहब भी आये । स्वामी जी को टोपी उतार कर प्रणाम किया । पादरी लोग भी आये परन्तु कोई उत्तर न दे सके । मुसलमान मौलवी आये थे । स्वामी जी चूंकि संस्कृत बोलते थे इसलिए स्वामी जी की बातों का उल्था पंडित नारायण जी कर देते थे । सारांश यह है कि वहां कोई पंडित, मौलवी या पादरी स्वामी जी से शास्त्रार्थ न कर सका । जब दूज हुई और मेला उठने लगा तब महाराज ने हम से कहा कि बेटा तुम भी घर जाओ, हम आगे को जावेंगे ।

शुभ कर्म कैसे छुड़ा रहे हो ?—नौली[४४] जिला बदायूं का रहने वाला गोविन्द कायस्थ (जो कुछ संस्कृत भी जानता था) वैरागी होकर ब्राह्मणों के बेटों को जूठन खिलाता और उनसे सेवा कराता था । जाते समय घाट के ऊपर स्वामी जी को मिल गया । उसको आता देखकर महाराज जी रेत में ही बैठ गये । उसके साथ आठ दस विद्यार्थी थे और सबके हाथ गोमुखियों में थे । लड़कों को वह जाप कराता था 'हरी भजो छोड़ दो धन्धा' अर्थात् सब कुछ छोड़कर हरि का भजन करो । सामना होते ही स्वामी जी ने आक्षेप किया कि यह कैसे हो सकता है ? सब शुभ काम कैसे छुड़ाते हो और किस किस को छोड़ कर ? भोजन को छोड़कर या नासिका को छोड़ कर या जिह्वा को छोड़कर या किसी और वस्तु को छोड़कर ? इसका उत्तर दो । और साथ ही उसके मत का धाराप्रवाह संस्कृत में खंडन आरम्भ किया जिस पर स्वामी जी के सामने उसके मुख से एक शब्द भी न निकल सका, बिलकुल मौन हो गया । उसे निरुत्तर करके स्वामी जी नरदौली की ओर गये और हमसे

कहा कि अब हम विचरते हुए काशी की ओर जायेंगे। हमने कहा कि महाराज ! फिर दर्शन देना। वह प्रतिज्ञा करके चले गये और हम आज्ञा लेकर घर को चले गये।

पण्डित शामलाल कान्यकुब्ज—कायमगंज निवासी ने वर्णन किया कि 'स्वामी जी मुझे ककोड़ा जिला बदायूं गंगापार के मेले में जो कार्तिक को होता है, मिले थे। यहां से ककोड़ा बीस कोस है। ककोड़ा से आकर स्वामी जी नरोली[1] जिला एटा में ठहरे। वहां नरदौली में स्वामी जी के उपदेश से एक गुसांई रामपुरी ने अपने ठाकुर आदि गङ्गा में फेंक दिये थे।

नरदौली से स्वामी जी **कम्पिल** जिला फर्रूखाबाद में आये। जब हमने उनको ककोड़ा में देखा था उस समय भी मेरे साथ बाबा शंकरदास, उमादत्त फर्रूखाबाद निवासी व पंडित गणेशदत्त नरोली[1] वाले थे। वहां पंडित अंगदराम जी बदरिया वाले स्वामी जी के साथ थे। स्वामी जी से वहां उमादत्त का संस्कृत में वार्तालाप हुआ, विषय मूर्तिपूजन था। स्वामी जी ने मूर्तिपूजा का खंडन किया। उमादत्त ने एक श्लोक महाभारत का पढ़ा कि एकलव्य भील ने द्रोणाचार्य की मूर्ति बनाकर पूजी थी। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि वह भील था।

फिर उमादत्त ने दुर्योधन का प्रमाण दिया। स्वामी जी ने उत्तर में कहा कि वह मूढ़ दुर्योधन का वाक्य है, इसलिए अप्रमाण है। मुझसे स्वामी जी ने पूछा कि तुम्हारा घर कहां है ? मैंने कहा कि कायमगंज। पूछा कि क्या करते हो ? मैंने कहा कि कथा-पुराण बांचता हूं। पूछा, कौन सी कथा ? मैंने कहा कि ब्रह्मवैवर्त का कृष्णखंड बांचता हूं। कहने लगे कि २० दिन तक यह शरीर वहां आ पहुंचेगा, शीघ्र उसको समाप्त कर लो ताकि तुम्हारी हानि न हो। फिर हम चले आये और हमने आकर मुन्नालाल से कहा कि एक गप्पाष्टक ककोड़ा में आये हैं, वह मूर्तिपूजा और पुराणों का खंडन करते हैं। पुराण सब स्वामी जी के देखे हुए थे। जिस समय ब्रह्मवैवर्त के कृष्णखंड की बात कही तब कहने लगे कि उसमें तो सबसे अधिक गप्प है।

कायमगंज जि० फर्रूखाबाद का वृत्तान्त

पंडित गंगाप्रसाद जी कान्यकुब्ज रईस कायमगंज ने वर्णन किया कि स्वामी जी यहां दो बार[४५] आये, सम्भवतः चार-पांच वर्ष के अन्तर से। उस समय नग्न रहते थे और संस्कृत बोलते थे। जब पहले-पहल[४६] आये तो शीत ऋतु कार्तिक या अगहन का महीना था। आकर हरिशंकर पांडे के शिवालय में, जो नगर से बाहर उत्तर की ओर है, उतरे और फिर डेढ़ मास यहां ठहरे। जब हम लोगों को सूचना मिली कि एक परमहंस जी आये हैं तो हम लोग दर्शन को गये। जब रोटी का समय हुआ तो लोगों ने कहा कि महाराज ! स्नान कर डालिये क्योंकि भोजन का समय हो गया। कहने लगे कि हमारे पास एक लंगोट के अतिरिक्त और कुछ नहीं और यहां माइयां (स्त्रियां) आती जाती हैं और जब तक वह लंगोटी नहीं सूखती हम दूसरी कोई चीज धारण नहीं करते; इसलिए यहां हम स्नान के पश्चात् नग्न नहीं ठहर सकते। तब सब लोगों ने कहा कि इस स्थान के पास ही ला० गिरधारीलाल महाजन का बाग है, वह एक ओर है, वहां चलिये। फिर स्वामी जी ने वहीं स्नान करके भोजन पाया। इस बार सम्भवतः सात-आठ दिन रहे।

सन्ध्योपासना दिन में दो ही बार ठीक है—एक बार सन्ध्योपासना का उपदेश दे रहे थे कि किसी ने कहा कि हम लोग तीन काल संध्या करते हैं। स्वामी जी ने कहा कि नहीं; तीन काल की सन्ध्या नहीं है, दो काल की सन्ध्या है। यहां पुरुषोत्तम पंडित, पण्डित बलदेवप्रसाद दूबे तथा पंडित बलदेवप्रसाद सनाढ्य आदि चार-पांच व्यक्तियों को सन्ध्या लिखवा दी थी जिसको वह लोग करते रहे। यहां किसी से शास्त्रार्थ नहीं हुआ।

---

(१) सम्भवतः यह स्थान 'नरदौली' है। (सम्पा०)

एक दिन महूरशीदाबाद (मुर्शिदाबाद) परगन कम्पिल के १०-१५ मुसलमान आये थे । उनके आने से पूर्व यहां के पण्डितों से स्वामी जी की मूर्तिपूजा पर बात हो रही थी; इतने में उन्होंने आकर अपने पैगम्बरों और इस्लाम मत की चर्चा की परन्तु स्वामी जी ने सबको बुद्धिपूर्वक उत्तर दिये और परास्त किया ।

उत्तमवृत्ति के देवपुरुष : लंगोटी भी एक ही रखते थे—एक दिन स्वामी जी नीचे बैठे हुए थे । बहुत से लोग आकर ऊंचे स्थान पर बैठने लगे । अन्य लोगों ने कहा कि महाराज नीचे बैठे हैं और ये लोग ऊपर; ऐसा करना तो अच्छा नहीं । स्वामी जी ने कहा कि बहुत से पक्षी भी ऊपर बैठे हुए हैं, कुछ डर नहीं; पक्षी ही समझ लो, रोको मत । वृत्ति उनकी बहुत अच्छी थी, केवल एक लंगोटी पास रखते थे । लोगों ने कहा कि महाराज ! आपके पास पात्र नहीं है । कहने लगे कि हमारे हाथ पात्र हैं । लोग कम्बल उढ़ा देते थे परन्तु वे फेंक दिया करते थे । उस समय दिगम्बर वृत्ति रखते थे । जब तक रहे हम नित्य दर्शन को जाया करते थे, परन्तु कार्य की अधिकता के कारण हम थोड़ी देर ही बैठते थे ।

शिवलिंग की पूजा घृणास्पद : क्या शिव से उसका लिंग पृथक् हो सकता है ? पंडित शामलाल जी कान्यकुब्ज, कायमगंज ने वर्णन किया कि 'जब स्वामी जी शिवालय में आकर उतरे तो लोगो से पूछा कि यह क्या है ? लोगों ने कहा कि यह शिवालय है । कहने लगे कि तुम लोग स्वयं ही कहते हो कि शिवालय तो कैलाश है क्योंकि शिव वहां रहते हैं; इसलिए यह तो सराय अथवा बैठक है । हमको भी स्मरण किया और हम किशनसिंह ठाकुर भूश्रित सहित गये । किशनसिंह ने पूछा कि आप शिवलिंग पूजा का निषेध करते हैं परन्तु इसका तो शास्त्रों में लेख है । तब स्वामी जी ने कहा कि कैसी लज्जा की बात है कि तुम लिंग की पूजा करते हो । फिर जब लिंग पृथक् होकर यहां आ गया तो शिव कैलाश में हीजड़ा रह गया !'

श्रेष्ठ पदार्थों का हवन करना चाहिए—इन दिनों सम्भवत: २०-२२ दिन रहे थे । जो लोग हवन में जौ डालते थे उनको स्वामी जी कहते थे कि जौ तो पशुओं का भोजन है, स्वयं तो यह लोग पूरी खाते हैं और देवताओं को जौ खिलाते हैं जो अमृत के पीने वाले हैं ! इसलिए श्रेष्ठ पदार्थों का हवन चाहिए । संध्या, गायत्री तथा बलिवैश्वदेव का उपदेश करते थे ।

असम्भव संकल्प वृथा होते हैं—एक ब्राह्मण लज्जाधन अग्निहोत्री ने स्वामी जी से कहा कि सत्यनारायण की कथा के लिए रुपया चढ़ाने का संकल्प करते हैं, काम सिद्ध हो जाता है; उसको आप क्योंकर विरुद्ध बतलाते हैं ? स्वामी जी ने कहा कि मान लो हम पांच रुपया सत्यनारायण को दिखाकर, चाहें कि लखपति हो जावें, तो क्या हो जावेंगे ? इस पर वह ब्राह्मण मौन होकर रह गया ।

'त्रिपुण्ड्र' और 'श्री' पर विनोद—एक बिहारी ब्राह्मण जो हजरतपुर जिला बदायूं के रहने वाले थे और हमारे सम्बन्धी तथा चक्रांकित थे, वे हमें नित्य तंग करते और कहते थे कि तुम जो त्रिपुण्ड्र लगाते हो तो पहले ही स्वर्ग की हंसी करते हो और हम जो श्री लगाते हैं तो हम मस्तक सजाते हैं कि स्वर्ग को जाते हैं, आप इसका उत्तर दीजिये । स्वामी जी ने कहा कि इसका उत्तर मैं बतलाता हूं कि तुम्हारा मस्तक अस्वीकार और इनका स्वीकार को सूचित करता है । इसी प्रकार जब चोरी, द्यूत, वेश्यागमन आदि आदि के बारे में प्रश्न होगा तब तुम्हारा मस्तक अस्वीकार और इनका स्वीकार करेगा । इस प्रकार नरक जाने के लिए तुम्हारा मस्तक अस्वीकार और इनका स्वीकार करेगा ।

भोजन कोई कैसा भी लाता उसको अस्वीकार नहीं करते थे—एक ऋचा या श्लोक सुनाया था 'अन्नं न निन्द्यात्'[४७] अर्थात् किसी के अन्न की निन्दा न करे । इसी कारण जैसा कोई अन्न ले जावे वह ले लेते थे और जितनी इच्छा हो रखकर शेष बांट देते थे । जो ले जाता वही (शेष को) उठा लेता था अथवा किसी और को दिलवा देते थे ।

'देश के युवक निर्बल न बनें' उनका ध्यान सदा इस बात पर रहता था—एक ब्राह्मण बस्तीराम गौड़ बहुत दुबले पतले थे, वह वहां एक दिन बैठे थे। स्वामी जी ने बातचीत करते समय दृष्टान्त दिया कि जो लोग अधिक विषयभोग और स्त्री प्रसंग करने वाले हैं उनकी यह दुर्दशा हो जाती है, हाड़ सब निकल रहे हैं, और मेरी ओर देखकर बताया कि जो लोग विषयभोग की ओर बहुत आकृष्ट नहीं होते वह ऐसे बलिष्ठ होते हैं। कहते थे कि जो नित्य प्रसंग करने वाले हैं उनकी सन्तान निर्बल और जो छः मास पश्चात् भोग करते हैं उनकी सन्तान बलिष्ठ होती है।

धात्रीकर्म घर की स्त्रियां स्वयं करें, सन्तान पर इससे उत्तम संस्कार पड़ेंगे—लड़के लड़की के उत्पन्न होते समय जो इस देश में नीच जाति की स्त्रियां उत्तम घरों में जाकर नाड़ीछेदन और धात्री का काम करती हैं और उसके मुख में उंगलियां डालती हैं, यह बहुत बुरी बात है। घर की स्त्रियों को चाहिए कि वह स्वयं करें जिनसे उसकी बुद्धि तीव्र होगी। ऋतुगामी होने को उचित बतलाते थे।

यहां के एक मौलवी अहमद अली उपनाम टोबान से भी बातचीत हुई थी। वह स्वामी जी के उपदेश सुनकर बहुत प्रसन्न हुए थे। मौलवी साहब ने इस बात का समर्थन किया परन्तु कहा कि वह बातचीत मुझे याद नहीं रही।

कायमगंज में सामूहिक यज्ञ

भक्त के आग्रह करने पर सामूहिक यज्ञ करने का आदेश—प्रथम स्वामी जी शिवालय में उतरे थे। फिर वहां से, स्त्रियों के आनेजाने के कारण, गिरधारीलाल के बाग में चले गये थे। गिरधारीलाल ने स्वामी जी से कहा कि आपके आने से मेरा घर पवित्र हो गया, यदि कुछ कमी हो तो बता दीजिये क्योंकि मैं कुछ करना चाहता हूं। स्वामी जी ने कहा कि तुम और कुछ मत करो, केवल यज्ञ संस्कार करा दो। स्वामी जी के कथनानुसार उसने हवन कराया। आठ दस ब्राह्मण हवन करने वाले थे। हलवा, मेवा, घी आदि सुगन्धित पदार्थों से हवन हुआ था। स्वामी जी ने ब्राह्मणों को मन्त्र लिखवाये थे और सम्भवतः स्वयं भी मन्त्र पढ़े थे।

एक पहाड़ी ब्राह्मण उनको रसोई बना कर खिलाता था। समस्त लोग अच्छी-अच्छी वस्तुएं लेकर जाते थे परन्तु वह सब वहीं पड़ी रहती थीं, उन्हें प्रायः लोग ही खाते थे। रात को हम प्रायः दूध दुहा कर ले जाया करते थे। १२ बजे रात तक सब उपस्थित रहते थे पर सबसे वह 'गच्छ, गच्छ' कहते थे और लोग चले जाया करते थे। उसी समय हमको कुछ पूछने का अवसर मिलता था।

स्वामी जी की विनोदप्रियता—एक बार एक मनुष्य रोटी लेकर आया, साथ आचारी भी थी। उस मनुष्य ने कहा कि महाराज ! आचारी भी लोगे ? स्वामी जी ने कहा कि अवश्य ! उसको मैं खाऊंगा क्योंकि मैं जिस प्रकार उसके मत[४८] का खण्डन करता हूं, वैसे ही उसको भी अवश्य खाऊंगा।

पण्डित बलदेव प्रसाद, कान्यकुब्ज दूबे, कायमगंज निवासी ने कहा 'स्वामी जी यहां पहले पहल ककोड़े के मेले के पश्चात् आये थे। प्रथम शिवालय में उतरे। उस समय विद्वान् पंडित मोहनलाल अग्निहोत्री और बंसीलाल जी दोनों भाई जीवित थे। पंडित शामलाल और उनके पिता छोटेलाल तथा गंगाप्रसाद आदि बहुत लोग जाया करते थे। किसी से शास्त्रार्थ न हुआ। लोगों ने भिक्षा के लिए कहा तो बोले कि हम बस्ती में नहीं जावेंगे, यहीं लाओ। सब बातें संस्कृत में करते थे। सन्ध्या, गायत्री और बलिवैश्वदेव का सबको उपदेश दिया। बिहारीलाल, बंसीधर, शामलाल, बलदेव शर्मा आदि लोगों ने उनसे सीख कर सन्ध्या आदि पंचयज्ञों का आरम्भ किया। स्वामी जी ने कहा कि यदि शरीर नीरोग हो तो स्नान करके अन्यथा कुल्ला-दातुन करके गायत्री का जाप करना चाहिए और जो विद्वान् नहीं थे उनको केवल गायत्री का जाप करना बतलाया कि यह ब्राह्मणों का परम धर्म है। इस बार सम्भवतः ५-४ दिन रहे थे।

दूसरी बार स्वामी जी शुकरालापुर[४९] जिला फर्रूखाबाद से ला० छोटेलाल अवस्थी ब्राह्मण शुकरालापुर की बग्घी में बैठकर आये थे । और एक पहर लालाशिव के बाग में ठहर कर लौट गये थे । जो लोग गये उनसे अवश्य मिले ।

ककोड़े के मेले में स्वामी जी को लोग गप्पाष्टक कहते थे । फर्रूखाबाद निवासी ला० प्रसादीलाल वैश्य व **बलदेव तंबोली** ने वर्णन किया कि २२-२३ वर्ष पहले स्वामी जी कादिरगंज की ओर से ककोड़े का मेला देखकर सम्भवतः अगहन मास, संवत् १९२५ में यहां आये थे । उस समय नग्न रहते थे और केवल एक लंगोट रखते थे । शिवालय में पाषाणपूजा और स्त्रियों के आवागमन के कारण कम ठहरे थे ।

मौलवी अहमद अली टोबान के साथ मनुष्य की उत्पत्ति पर शास्त्रार्थ हुआ था । जब आदम और हव्वा के पूर्व और पश्चिम की ओर पृथक् होने की बात आयी तो स्वामी जी ने कहा कि खुदा ने उनमें प्रेम क्यों न उत्पन्न कर दिया ताकि वह विरह का कष्ट न उठाते परन्तु इसका वह कोई उत्तर न दे सके ।

पाप क्षमा नहीं हो सकते—पादरी अनलन साहब दो अंग्रेज पादरियों तथा हरप्रसाद भारतीय ईसाई और ऐसे ही कुछ अन्य ईसाइयों सहित एक दिन शास्त्रार्थ करने के लिए स्वामी जी के पास गये थे । ये ईसाई लोग बाग की खाई से ऊंचे किनारे पर बैठे । लोगों ने कहा कि यह लोग स्वामी जी से ऊंचे बैठ गये ! तब स्वामी जी ने कहा कि इनकी क्रिया पक्षियों की क्रिया के समान है । पादरियों ने प्रश्न किया कि हम जो पापी हैं तो हमारे पापों की क्षमा किस प्रकार हो ? इसका उत्तर स्वामी जी ने संस्कृत में दिया जिसका उल्था करके पंडित मोहनलाल समझाते कि पाप क्षमा नहीं हो सकते । थोड़े समय तक बातचीत हुई थी । हरप्रसाद ने कहा कि हम संस्कृत नहीं जानते हैं इसलिए शास्त्रार्थ नहीं हो सकता, यह कहकर चले गये ।

ला० किशनप्रसाद तहसीलदार कायमगंज सूर्यध्वज भरतपुर निवासी जो शैवमत के थे वह भी उसी दिन स्वामी जी के पास गये और स्वामी जी से पूछा कि श्रीमद्भागवत सत्य है या झूठ ? स्वामी जी ने कहा कि बिलकुल मिथ्या है । उसने कहा कि ऐसा न कहो, मेरा हृदय दुखता है । स्वामी जी ने कहा कि नहीं; बिल्कुल गप्प है । यहां के सब सम्मानित पंडित लोग जैसे पंडित बंसीधर, पंडित मोहनलाल, शामलाल, पण्डित छोटेलाल, बलदेवप्रसाद जाया करते थे । उन्हीं दिनों सुना गया कि पंडित बंसीलाल ने मूर्तिपूजा छोड़ दी क्योंकि वह स्वामी जी से सब बातों में पूर्णतया सहमत थे । हम स्वामी जी को बड़ी प्रसन्नता से स्नान कराया करते थे, वे बड़े दृढ़, बलवान् और शूरवीर थे ।

अब की बार वस्त्र पहने हुए थे—इसके आठ-दस वर्ष पश्चात् स्वामी जी फिर आये । इस बार पूर्व की ओर से आये थे और वस्त्र पहनते थे । केवल उस दिन प्रियासोर[५०] पर ठहरे फिर यहां से पीछे को चले गये । शुकरालापुर[५१] के ब्राह्मण चोखेलाल अवस्थी की सेजगाड़ी में आये थे, वह स्वयं भी साथ थे । इस बार जितने घण्टे स्वामी जी रहे, हम वहीं उनके पास रहे । इस बार शिवनारायण वैश्य के बाग में ठहरे थे ।

पंडित बंशीधर, जिन्होंने अग्निहोत्र छोड़ दिया था, उनको स्वामी जी ने बहुत लज्जित किया और समझाया कि तुमने क्यों छोड़ दिया है, बराबर करना चाहिए । उसने इसको स्वीकार किया ।

ला० गोविन्दलाल वैश्य वकील, रियासत बंगा, कायमगंज निवासी ने वर्णन किया—'एक बार मेरे दादा जी बातचीत के समय कहने लगे कि एक 'गप्पा' यहां आया था । वह जन्माष्टमी के विषय में कहता था कि उस दिन खीरे से पत्थर निकालते हैं और खीरे को देवकी का उदर ठहराते हैं और फिर उसे खा भी लेते हैं । मानो ठाकुर की माता का उदर चीर कर खा जाते हैं, यह कैसे अन्धेर की बात है ! यह सुनकर सब मौन हो गये ।'

फर्रूखाबाद में विविध कार्य

फर्रूखाबाद में शास्त्रार्थ—पंडित गोपालराव हरि[52] ने उस समय का वृत्तांत इन शब्दों में लिखकर दिया—श्री जी महाराज मेरे सामने तो पहले-पहल संवत् १९२५ विक्रमी के अगहन मास में इस जिला (फर्रूखाबाद) के ग्राम **कंपिल, कायमगंज, शमसाबाद में** कुछ-कुछ दिन निवास करते हुए यहां पधारे[53] और ला० जगन्नाथप्रसाद जी के विश्रान्त घाट पर छ: मास तक रहकर वैशाख या चैत में एक दिन अति प्रात:काल एकाएक उठकर पूर्व को चले गये। इस अन्तर में इस जिले के **श्रृंगीरामपुर, जलालाबाद, कन्नौज** नाम के ग्रामों में कुछ-कुछ काल, यथाकार्य, उनकी स्थिति रही। उस समय वे अपने समीप एक लंगोट के अतिरिक्त और कुछ पदार्थ न रखते थे और न संस्कृत के अतिरिक्त दूसरी भाषा बोलते थे। इस अवधि (६ मास) में उनके सम्मुख नीचे लिखे सब कार्य हुए।

(१) यहां के सब प्रसिद्ध पण्डितों के साथ कई बार शास्त्रार्थ हुआ। परिणाम में घमण्डी पुरुष उनसे द्वेष और पण्डित अयोध्याप्रसादजी भट्टाचार्य्य व पण्डित पीताम्बरदास जी पर्वती, मरणपर्यन्त उनसे प्रीतियुक्त रहे। सब द्वेषी पंडितों में से अधिकतर द्वेषी पण्डित श्रीगोपाल थे जो अपना प्रतिमापूजन आदि पक्ष सत्य करने के अर्थ काशी से एक व्यवस्था पत्र ले आये।[54] उसको उन्होंने बड़ी धूमधाम के साथ एक दिन चतुर्मास में श्री जी महाराज के आश्रम के समीप टोकाघाट के मैदान में जा टिकाया। समस्त नगर एकचित्त होकर तीन बजे से सायंकाल तक कोलाहल करता रहा।

इनके अतिरिक्त एक ज्वालाप्रसाद नामक मद्यप पुरुष और एक बने हुए संन्यासी का रूप चरित्र देखने के योग्य था। यह सब तमाशा श्री जी महाराज और उनके श्रद्धालु भक्तजन अपने आश्रम के उच्चस्थल पर बैठे हुए देखते रहे क्योंकि प्रथम तो असभ्य लोगों का बड़ा जमघट था; दूसरे श्री जी महाराज का आरम्भ से दूसरे स्थान पर न जाने का नियम था। जब सब लोग घर को चले गये तब मैंने उक्त व्यवस्था की प्रतिलिपि जिसको मैं एक रात पहले श्रीगोपाल जी के समीप जाकर लिख लाया था, श्री जी महाराज को कुछ सम्मानित पुरुषों के सम्मुख जा दिखाई। स्वामी जी उसको आद्योपान्त पढ़कर बहुत **हंसे और बोले कि काशी के पंडितों की पंडिताई तो देख ली, शेष वहां जाकर निश्चय कर लूंगा।**

(२) नगर और ग्रामान्तरों के अनेक श्रोतागण आते रहे, पुरुषों की अत्यन्त भीड़ होती थी। सबको दोनों समय समाधानपूर्वक सत्योपदेश करते थे।

(३) मैं और नीचे लिखे लोग उनसे मनुस्मृति आदि ग्रन्थ पढ़ते रहे। **कंपिल** के पंडित हरदयाल, **सिकन्दरपुर** के पंडित बद्रीप्रसाद, **फर्रूखाबाद** के शिवदत्त ब्रह्मचारी और पुरोहित गंगादत्त जी।

(४) ला० जगन्नाथप्रसाद जी का **यज्ञोपवीत** और उससे सम्बन्धित कुछ यज्ञ आदि कराया।

(५) ला० पन्नीलाल जी का उनके साथ बहुत दिनों तक एकान्त में अर्धरात्रि को वादप्रतिवाद होता रहा और उन्होंने अपने बाग में, उस स्थान पर, संस्कृत पाठशाला खोली जहाँ वे शिवलिंग पधराना चाहते थे।

(६) कुछ छोटी बड़ी वैदिक पुस्तकें लिखवाईं कुछ मंगवाईं और कुछ एक जर्मनी से मंगवाने को उनसे कह गये, सो आईं।

(७) बरेली वाले पण्डित गंगाराम शास्त्री अपने मुख से बड़ी प्रतिष्ठा मारते थे पर सम्मुख न आये। एकदिन गंगा के मार्ग में रोके गये तो बेचारे षद-पद कर कांपने लग गये थे।

(८) यहां के देवीदास जी नामी खत्री कानपुर से हलधर ओझा को लाये; वह अपने आप को बृहस्पति समझता था और हजारो की शर्तें अपनी विजय में लगाता था परन्तु एक दिन रात को सम्मुख आते ही आते मूर्ख और मूक बन गया।

(९) फेड़ी वाले बाबा नामक यहां के साधु और गंगापुत्रों की सम्मति से कुछ बदमाश स्वामी जी के प्राणहरणार्थ चढ़ आये थे । इस प्रकार एक दूसरी रात्रि को उक्त ज्वालाप्रसाद की चढ़ाई भी इस नगर में प्रसिद्ध है ।

पंडित मुन्नीलाल जी, ला० ज्वालादत्त तथा ला० जगन्नाथप्रसाद जी रईस फर्रूखाबाद ने वर्णन किया कि पहले पहल स्वामी जी जेठ सम्वत् १९२४ में हरिद्वार से आये ।[५५] विश्रान्त घाट पर उतरे । ला० दुर्गाप्रसाद जी के पुरोहित जमनाप्रसाद ने आकर कहा कि एक संन्यासी अच्छे विद्वान् आये हैं । इसलिए हम और ला० जगन्नाथ शाम को वहां गये । उस समय स्वामी जी विश्रान्त घाट पर दिगम्बर अवस्था में चुप बैठे हुए थे । थोड़े समय पश्चात् दंडवत् प्रणाम करके हमने पूछा कि महाराज ! गंगा जी कैसी है ? कहने लगे कि जड़ पदार्थ है । हमने पुनः पूछा कि सूर्यनारायण कैसा है ? उसका भी वही उत्तर दिया । तत्पश्चात् हम नहीं मिले । सम्भवतः दो-तीन दिन रहे, फिर ज्ञात नहीं कि कहां, और कब और किस समय गये ।

दूसरी बार पौष मास, संवत् १९२५ तदनुसार दिसम्बर, सन् १८६८ में यहां आये और विश्रान्त पर ठहरे । शीतऋतु अत्यन्त प्रबलता पर थी । शरीर पर केवल एक कौपीन थी । उनकी यह अवस्था अत्यन्त आश्चर्यजनक थी । इस बार सम्भवतः ५-६ मास रहे । आरम्भ में ही प्रसिद्धि होने लगी । नगर के जितने विद्वान् पंडित थे सब इकट्ठे और बारी-बारी स्वामी जी के पास गये । वह पीछे चाहे कुछ कहे परन्तु वहां उनके **सामने तो यही शब्द थे कि 'भगवन् सत्य है ।'**

फर्रूखाबाद में पहली व दूसरी बार के वृत्तांत : यज्ञोपवीत संस्कार की प्रेरणा—चैत्र शुक्ल, संवत् १९२६ तदनुसार १४ मार्च, सन् १८६९ रविवार को स्वामी जी ने ला० जगन्नाथ को यज्ञोपवीत कराया । विधि निम्नलिखित थी:—

प्रथम प्रायश्चित के रूप में ग्यारह पंडित नियुक्त किये जिनको आठ आने प्रति पण्डित प्रतिदिन दक्षिणा मिलती थी और उनके लिए यह नियम था कि प्रथम प्रातः काल उठकर स्नान आदि से निपट कर एक सहस्र गायत्री तो अपनी जप करें और फिर यजमान को एक-एक हजार जाप करायें । गायत्री के पश्चात् नित्य हवन करें—केवल घृत-शक्कर से । पंडितों के लिए आटा, घृत, मिष्टान्न, पेड़ा आदि एक समय और दूसरे समय का 'सीधा' मिलता था । एक यजुर्वेदी पंडित स्वामी जी के पास रहते थे । हमने उनसे स्वामी जी को कहलाया था कि स्वामी जी आप अपने हाथ से यज्ञोपवीत देवें । स्वामी जी ने कहा कि संन्यासी को यज्ञोपवीत देने का अधिकार नहीं है और न हम नगर में जायेंगे । कई दिन तक इस बात पर हम हठ करते रहे कि स्वामी जी स्वयं नगर में चलकर यज्ञोपवीत देवें । मुझ मुन्नीलाल को भी सन्ध्या-गायत्री नहीं आती थी । इसी कारण से हमने स्वामी जी से कहा कि आप कान में गायत्री नहीं देते तो कागज पर स्वयं लिख दीजिये । स्वामी जी ने कागज पर लिख दी और ला० जगन्नाथ को भी लिख दी । स्वामी जी ने उपवास कराये । एक उपवास कठिन था अर्थात् केवल रात को दुग्ध मिलता था । शेष साधारण थे । तीसरे दिन यज्ञोपवीत था । पंडितों ने ११ दिन जाप किया था । कुल ११ पंडित प्रतिदिन ग्यारह-ग्यारह हजार जाप करते-कराते थे । फिर यज्ञोपवीत दिलाया । उस यजुर्वेदी ब्राह्मण ने यज्ञोपवीत दिया था । परन्तु गुरु उन्होंने स्वामी जी को ही माना था । जाप और हवन ग्यारह दिन तक विश्रान्त पर स्वामी जी के सामने हुआ था और अन्तिम दिन यज्ञोपवीत नगर में हमारे घर पर हुआ और वही वेदपाठी ब्राह्मण स्वामी जी से गायत्री लिखवा लाया था और उसी के अनुसार उसने उपदेश दिया था । यज्ञोपवीत के पश्चात् ग्यारह ब्राह्मणों को धोतियों के जोड़े और आसन आदि भी दिये थे । यज्ञोपवीत देने के पश्चात् शाम को हम विश्रान्त पर स्वामी जी के पास गये । फिर उनसे वही मन्त्र अच्छी प्रकार याद कर लिया ।

पं० गंगाराम, उसका उद्दण्ड पुत्र व एक विद्यार्थी एवं अहंकार की वास्तविकता—गंगाराम शास्त्री बरतिया वाले यहां आये और यह प्रसिद्ध किया कि हम स्वामी जी से शास्त्रार्थ करेंगे । स्वयं तो शास्त्रार्थ नहीं किया परन्तु अपने एक पुत्र

और एक विद्यार्थी को स्वामी जी की परीक्षा के लिए भेजा । उस समय स्वामी जी बाबू दुर्गाप्रसाद के पुरोहित को मनुस्मृति पढ़ा रहे थे । तब उन दोनों में से एक लड़का बोला कि अहंकारी चंडाल होता है । चूंकि स्वामी जी पढ़ा रहे थे, उन्होंने कुछ ध्यान न दिया । जब पढ़ा चुके तो उसको सम्बोधन करके कहा कि अब कह कि तूने क्या कहा था ? उसने फिर वही कहा । स्वामी जी ने कहा कि तू अहंकार के विषय में जानता ही नहीं और फिर क्या तूने अहंकार नहीं किया ? उसने कहा कि महानुभाव पुरुषों ने अहंकार नहीं किया अथवा उनको नहीं करना चाहिये । स्वामी जी ने कहा कि महापुरुष के अर्थ को तू नहीं जानता और महापुरुष सच्चा अहंकार करते हैं, मिथ्या नहीं करते । इसका तो तुझे बोध नहीं, क्योंकि तूने शास्त्र नहीं देखे । तुझे किसी भी महापुरुष का ज्ञान नहीं ऐसा प्रतीत होता है, यदि है तो बतला कि राम महानुभाव पुरुष थे या दुष्ट पुरुष और कृष्ण महानुभाव पुरुष थे या दुष्ट पुरुष ? वह लड़का इस पर चकित तथा मौन रहा कि क्या उत्तर दे, विवश होकर उठकर चला गया । गंगाराम शास्त्री ने किसी प्रकार भी शास्त्रार्थ का निश्चय न किया परन्तु स्वामी जी से कुछ अन्तर पर नरसिंह जी के मन्दिर में गीता बांचनी आरम्भ की । स्वामी जी ने उसे कहला भेजा कि यदि गीता के एक श्लोक का अर्थ हमारे सामने कर दे तो हम परास्त हो जायेंगे । उसने कोई उत्तर न दिया । वह श्लोक (जिसका अर्थ करने के लिए स्वामी जी ने कहा था) यह था **'क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत !'**[५६]

यद्यपि गंगाराम ने इसका कुछ उत्तर दिया परन्तु जब स्वामी जी ने उसके उत्तर का उत्तर लिख कर खण्डन कर भेजा तब फिर उसका कोई उत्तर न आया परन्तु यह कहता रहा कि मैं शास्त्रार्थ करूंगा । एक दिन सुखवासीलाल साधु ने उसे गंगातट पर पकड़ा कि तुम नित्य कहते हो कि हम शास्त्रार्थ करेंगे, आज हमारे साथ चलो । वह बड़ा घबराया और उस से पीछा छुड़ा कर भागा । फिर एक दिन गंगास्नान करके आता था, स्वामी जी से किसी ने कह दिया कि यही गंगाराम शास्त्री है । तब स्वामी जी ने उसे बुलाया परन्तु वह मार्ग छोड़ कर चला गया, सामने न आया । अन्त में वह खाने पीने से भी विवश होकर ऋणी हो गया जिस पर उसके सहदेशी गोपालसहाय साहब ने मुझसे चन्दे के लिए कहा । मैंने भी २०) चन्दा दिया और कुछ गोपालसहाय ने दिया । इस प्रकार वह अपना ऋण चुकाकर अपनी जन्मभूमि को चला गया । हमने स्वामी जी के नीचे पियार डाल दी थी, उस पर रात को सोते थे ।

प्रकट रूप से लोग आर्य भले ही नहीं बने, उनके दिल से मूर्तिपूजा अवश्य छूट गई । ला० सरदारमल वैश्य[५७] ने वर्णन किया कि "संवत् १९२४ में आये थे तो १०-१५ दिन रहे । उस समय तीन बजे उठकर रेते में चले जाते थे । तीन कोस तक फिर कर सूर्योदय से पूर्व नहा-धोकर लौट आते थे । प्रात: लालिमा प्रकट होने के समय और कभी सूर्योदय के समय लौटकर आते थे । व्यायाम भी करते थे । यहां टोकाघाट पर; स्वामी जी के पधारने से पूर्व चूंकि मन्दिर अधिक थे, इसी कारण से लोग भी अधिक मूर्तिपूजा करते थे और मन्दिरों में भीड़ भी अधिक थी और साज सिंगार भी मूर्तियों का अधिक होता था । परन्तु जब से स्वामी जी का आना हुआ तब से सब गांव वाले यद्यपि प्रकटरूप में आर्य नहीं हुए परन्तु उनके हृदय के भीतर से मूर्ति पूजा बिलकुल दूर हो गई । कई मन्दिरों में तो बहुत कम हो गई ।

दूसरी बार जब आये तो समस्त नगर के पंडितों ने संगठन करके एक साथ २५ प्रश्न किये थे जिनका अत्यन्त बुद्धिपूर्ण उत्तर स्वामी जी ने दिया था ।[५८] वह सब प्रश्न 'भारतसुदशाप्रवर्तक' मासिकपत्र में, उत्तर-सहित, छप चुके हैं । इस बार पण्डित विशम्भरदास जी, जो बहुत बड़े प्रकांड विद्वान् थे, जिनकी समानता करने वाला कोई इस नगर में न था, वह स्वामी जी के अनुकूल हो गये । यह पण्डित जी दर्शनशास्त्र और अन्य विद्याओं के अतिरिक्त, ज्योतिष भी बहुत अच्छी जानते थे । अब उनको मरे हुए पर्याप्त समय हो गया ।"

लड़कों की शरारत पर क्रुद्ध न हुए—जसवन्तसिंह साधु, फर्रूखाबाद निवासी ने वर्णन किया कि 'एकबार जल में पांव लटकाये हुए विश्रान्त घाट पर पड़े थे । लोगों के लड़कों ने, जो वहां गंगा पर भ्रमणार्थ गये थे, रेत के गोले इस विचार

से मारने आरम्भ किये कि यह मोटा मनुष्य क्यों पड़ा है, इसको मारो । परन्तु वह मौन रहकर गोले खाते रहे । अन्त में कुछ रेत स्वामी जी की आंख में पड़ी और वह उठकर चले गये परन्तु उस समय कुछ न कहा । शास्त्रार्थ के समय तो हिन्दू लोगों ने उनका विरोध करना चाहा फिर भी लोगों ने स्वामी जी की बड़ी सहायता की । हमारी सहायता के कारण ही हिन्दुओं में से कोई व्यक्ति दुष्टता करने का साहस न कर सका ।'

दया, सत्य आदि ईश्वरीय गुणों को धारण करने से ही ईश्वरप्राप्ति—एक बार हमने पूछा कि मनुष्य के लिए क्या कर्तव्य है अर्थात् उसको क्या करना चाहिये ? इस पर स्वामी जी ने कहा कि जैसा ईश्वर दयालु है, सबके ऊपर दया करता है, मनुष्य को भी सब पर दया करनी चाहिये । वह सत्य है, हमको सत्य बोलना चाहिए । इस प्रकार ईश्वर के गुणों को बतलाया कि ऐसे उत्तम गुणों को धारण करने का अभ्यास करे, तब ईश्वर को प्राप्त हो सकता है ।

कौन-सा अन्न भ्रष्ट होता है ?—एकबार सुखवासीलाल साध कढ़ी और भात स्वामी जी के लिए ले आया । स्वामी जी ने उसे खाया । यहां के ब्राह्मणों ने कहा कि तुम भ्रष्ट हो गये, साध की खा ली । स्वामी जी ने कहा कि रोटी दो प्रकार से भ्रष्ट होती है, एक तो दु:ख देकर प्राप्त किया हुआ धन उससे जो अन्न लावे वह भ्रष्ट है दूसरे कोई मलिन वस्तु उस पर या उसमें पड़ी हो तब भी भ्रष्ट है । जिस पर सब मौन हो गये ।

'अंग्रेजी राज न होता तो ब्राह्मण मुझे नहीं छोड़ते, पर मैं तो ईश्वर के भरोसे ही निर्भय हूं ।' विद्या में उनकी समानता करने वाला मिलना कठिन है, वह किसी से डरते न थे । कहते थे कि जब मैंने खंडन-मंडन आरम्भ किया तब ही विचार लिया था कि लोग मेरा विरोध करेंगे परन्तु ईश्वर का आश्रय लेकर यह बोझ उठाया है । यह भी कहते थे कि यदि अंग्रेजी राज्य न होता तो मैं जो इतनी बार फर्रूखाबाद आया, ब्राह्मण मुझे कभी न छोड़ते, किसी से मरवा डालते । परन्तु इस पर भी किसी से डरते न थे । हमारी साध जाति सदा उनकी समर्थक रही ।

ला० मुन्नीलाल वैश्य ने वर्णन किया कि यद्यपि मेरा यज्ञोपवीत हो चुका था परन्तु गायत्री भूल गई थी । स्वामी जी ने मुझसे पूछा, मैंने स्वीकार किया कि भूल गई है । कहने लगे कि तुम प्रायश्चित्त कर लो अर्थात् हजार गायत्री का जाप करो और ब्राह्मणों को घर में रखो ताकि बाहर जाकर कुछ अनुचित न कर सकें (ठीक विधिपूर्वक जाप करें-करावें) । स्वामी जी से गायत्री याद कर ली और उस दिन से अग्निहोत्र आरम्भ किया ।

चाहे कितना ही करोड़पति क्यों न हो, स्पष्ट कर देते थे कि तुम इस दुष्टता को छोड़ दो— स्वामी जी उन दिनों फूस से शरीर ढांक लेते थे और हाथ पोंछने के लिए एक मिट्टी का ढेला पड़ा रहता था। कौपीन केवल एक ही थी, दूसरी नहीं रखते थे। जितने मनुष्य आते सबको यथार्थ उत्तर देते थे। सत्य बात को बिना रोक-टोक कहते थे। चाहे कितना ही बड़ा करोड़पति मनुष्य क्यों न हो, स्पष्ट कहते थे तुम इस दुष्टता को छोड़ दो। मूर्तिपूजा, तीर्थ और गंगास्नान से मुक्ति का खण्डन करते थे। हजारों को गायत्री बतलाई। **यदि कोई पूछता कि कोई ऐसी विद्या बतलाओ कि मेरे घर में गड़ी हुई सम्पत्ति मुझे मिल जावे तो कहते थे कि सावधान! तुझे कोई बहका कर तेरे कपड़े इत्यादि न छीन ले।** सन्ध्या, गायत्री, हवन, बलिवैश्वदेव की आज्ञा देते थे। ब्राह्मणों को कहते थे कि गायत्री का अर्थसहित जाप नित्य किया करो और कभी भी इस (गायत्री) धन को न त्यागा।

श्रीगोपाल के पहले दिन के शास्त्रार्थ के दस-पन्द्रह दिन पश्चात् नारनौल के दो गौड़ ब्राह्मण यहां आये जो अच्छे विद्वान् थे । उन्होंने भी स्वामी जी से कुछ मनुष्यों के सामने धर्मचर्चा की, दो तीन घण्टे तक बातें होती रहीं । अन्त को वह

दोनों हार गये। फिर रामसहाय शास्त्री ब्राह्मण जो एक अत्यन्त श्रेष्ठ विद्वान् थे, उनसे बातचीत हुई। **वह स्वामी जी की धाराप्रवाह संस्कृत सुनकर घबरा गया** और उसके होश उड़ गये, भाग गया। आकर शंकर ब्राह्मण से कहने लगा कि तुमने कहां जाकर मुझे छोड़ा, उनसे हमारी बात नहीं हो सकती।

मुसलमान भी निरुत्तर—एक दिन तीसरे पहर चार-पांच मुसलमान स्वामी जी के पास गये। मुसलमानों ने पूछा कि 'खुदा ने मोहम्मद को हमारे लिये भेजा है या नहीं?' स्वामी जी ने हमसे कहा कि यह नियम होना चाहिये कि सत्य को सुनकर मनुष्य विचार करे, न कि घबरा कर लड़ने को दौड़े। अब तो यह धार्मिक बात करते हैं पर पीछे युद्ध होगा। **मैंने उनसे कहा कि स्वामी जी कहते हैं 'फिर लड़ोगे तो नहीं'**। उन्होंने कहा कि हम ऐसा नहीं करेंगे, आप तो बलवान् हैं। सारांश यह कि यह बात स्वामी जी ने तीन बार कही तब कहा कि मोहम्मद अच्छा मनुष्य नहीं था, तुम लोगों ने उसका अनुकरण किया यह बुरा किया। जब चोटी कटवाई तो दाढ़ी रखने से क्या प्रयोजन। ऊंची बांग देते हो, क्या यह खुदा की उपासना है? खतने के विषय में भी पूछा था परन्तु कोई उत्तर मुसलमान न दे सके अन्त में वह चले गये।

स्वामी जी का अपना विशेष व्यक्तित्व

कोतवाल को राजकर्त्तव्य सुझाया—गढ़ीवाले नवाब और हकीम नबीबख्श बरेली वाले, ला० जगन्नाथ और मैं तब उपस्थित थे, जब कोतवाल कादिरबख्श श्रीगोपाल के शास्त्रार्थ के पीछे गये थे। कोतवाल स्वयं तो बाहर रहे, भीतर चपरासी को भेजा कि कौन साधु आया है, उसको बुला लाओ, नित्य शास्त्रार्थ करता है, भीड़ होती है। चपरासी ने स्वामी जी को कहा कि आप चलें, कोतवाल साहब बुलाते हैं। स्वामी जी न बोले परन्तु हमने कहा कि यह किसी के पास आते-जाते नहीं, जिसको आना हो, यहां मिल जावे। उसने जाकर कोतवाल से कहा, फिर कोतवाल स्वयं आया और कहा कि यहां क्या करते हो और दंगा-बखेड़ा मचाया करते हो। स्वामी जी ने पूछा, तू राजाज्ञा से ऐसा कहता है अथवा ऐसे ही? मैंने कहा कि ये किसी के दास या सेवक हैं कि आवें? जब कोतवाल साहब को समझाया तब कोतवाल ने कहा कि यह तो ठीक कहता है दुष्ट लोग यूं ही यहां बखेड़ा करने के लिए आ जाते हैं; ये क्या किसी को बुलाते हैं। तब कोतवाल बोले कि तुम मत किसी को आने दिया करो। स्वामी जी ने कहा कि सब वर्णों की रक्षा और प्रबन्ध करना क्षत्रियों का काम है, मैं कोई राजा हूं? तुम स्वयं प्रबन्ध करो। इस पर वह मौन होकर चले गये और दो मनुष्यों का पहरा नियत किया कि कोई दुष्टता करने के लिए आना चाहे उसे मत आने दो। हां यदि कोई भले मानस की तरह से आना चाहे तो आये और बातचीत करे।

योगी केवल सबसे गुप्त ब्रह्म सत्ता को जानना चाहते हैं और उसको जान भी सकते हैं—फिर नवाब ने स्वामी जी से पूछा कि कोई ऐसी विद्या है कि जिससे किसी और स्थान की बात हमें यहां विदित हो जाये। स्वामी जी ने कहा कि गुप्त बातों की इच्छा योगी नहीं करते, सबसे गुप्त ब्रह्म सत्ता है जिसको जानना योगी का मुख्य उद्देश्य है और यह योगविद्या है और प्रकाशित अन्तःकरण वाला योगी पुरुष अवश्य जान सकता है। इस पर नवाब साहब बहुत प्रसन्न हुए।

फर्रूखाबाद से संवत् १९२६ में चलकर स्वामी जी श्रृंगीरामपुर तहसील, जिला फर्रूखाबाद में आये और गंगा विश्रान्त पर उतरे।

गयाप्रसाद जी शुक्ल जलालाबाद निवासी ने वर्णन किया कि वहां एक सामवेदी ब्राह्मण ने (उस समय स्वामी जी गंगा में नहा रहे थे) तीन चार मन्त्र वेद के पढ़े परन्तु अशुद्ध। स्वामी जी ने उसे उनका शुद्ध उच्चारण बतलाया। पूछने से उसे विदित हुआ कि यह स्वामी दयानन्द सरस्वती जी हैं। वहां केवल एक दिन रहे।

वहां से चलकर स्वामी जी यहां **जलालाबाद** में आये और प्रयागदत्त के बगीचे में अनार के पेड़ के नीचे ठहरे। उस स्थान पर हम कुश्ती किया करते थे, हमारा अखाड़ा था। शिवदीन सुनार ने मुझ से आकर कहा कि आज प्रयागदत्त के बाग में एक शक्तिशाली पहलवान आया है, परन्तु जब मैंने आकर देखा तो पहलवान के स्थान पर एक साधु को पाया। यद्यपि मैंने कभी देखा नहीं था, परन्त नाम और आकृति सुन रखी थी। कुछ उनके डीलडौल और कुछ बुद्धि से पहचान लिया कि यह दयानन्द जी महाराज हैं। उनसे बातचीत हुई, वह संस्कृत बोलते थे। उस समय बगीचा सुनसान-सा था। मैंने कहा कि यह स्थान अच्छा और आप के ठहरने के योग्य नहीं, मेरे घर पर चलें। कहने लगे कि हम गृहस्थ के घर पर नहीं चलेंगे। फिर उनको मैं ग्राम से पूर्व की ओर एक उदासी सरनदास की कुटिया में ले गया। हमने ग्राम से बिस्तर ले जाना चाहा, कहने लगे कि नहीं, और ईंटों का तकिया करके रख लिया। फिर हमने ग्राम में आकर उनकी चर्चा की। दस बीस भले पुरुष उनके पास गये। वहां दो और उदासी पथिक ठहरे हुए थे। उनसे स्वामी जी की बहुत समय तक बातचीत होती रही और वह उनका शंका समाधान भी करते रहे। उदयचन्द दूबे जी को स्वामी जी ने कहा कि यहां के प्रसिद्धतम पंडित हकूमतराय को बुला लो। कई बार बुलाने गये परन्तु वह नहीं आया। बहाना किया कि हमारे सिर में पीड़ा है और वह नास्तिक है, मैं नहीं जाता परन्तु और ब्राह्मण प्राय: गये और जो जिसने पूछा उसका ही उत्तर देते रहे। उदयचन्द्र आदि ब्राह्मणों ने प्रश्न किया कि हम ब्राह्मण हैं हमको कौन सा मुख्य काम करना चाहिए? कहने लगे कि सन्ध्या और हवन यह मुख्य कर्म ब्राह्मण का है। एक रात दिन यहां रहे प्रात: उठकर कन्नौज को चले गये।

सखरी-निखरी का विचार नहीं था—पहले हमारा विचार था कि हमारे घर चल कर रोटी खावेंगे। इसलिए हमने कच्ची रोटी बनवाई थी परन्तु जब हमने घर चलने को कहा तो कहने लगे कि यदि यह होता तो हम तुम्हारे घर में क्यों न उतरते। मैंने कहा कि फिर कुछ काल और ठहरिये ताकि पक्की रसोई का प्रबन्ध कर दूं। कहने लगे कि अब पक्की का करोगे तो हम नहीं खावेंगे। जो किया है वही ला दो, यह पक्की है, कच्ची नहीं। किसी ने वृन्दावन की चर्चा की तो कहने लगे कि आगे वृन्दावन था, अब तो वेश्यावन है।

कन्नौज में पन्द्रह-बीस दिन

मई मास सन् १८६९ को स्वामी जी कन्नौज में आये।[५९] गौरीशंकर महादेव के मन्दिर में जो कालिन्दी नदी के तट पर स्थित है, उतरे। **बख्शी रामप्रसाद वैश्य,** सभापति आर्यसमाज कायमगंज वर्णन करते हैं कि मैं उन दिनों वहां था, उनसे मिला। समस्त नगर के पंडित एकत्रित होकर गये और स्वामी जी से मिले। विशेष कर पंडित हरिशंकर शास्त्री और स्वर्गीय पण्डित गुलजारीलाल से उनका मूर्तिपूजा तथा पुराण के विषय पर शास्त्रार्थ हुआ। निरन्तर कई दिन शास्त्रार्थ होता रहा। मैं भी सुनता रहा। अन्त में ये सभी परास्त हुए और पंडित हरिशंकर तो पूर्णतया स्वामी जी के अनुकूल हो गये परन्तु कुछ दिन पश्चात् कन्नौज के कुछ पोप ब्राह्मणों के धमकाने से पण्डित हरिशंकर जी स्वामी जी से पृथक् हो गये। गणेशप्रसाद खत्री तथा किशोरचन्द सुनार, जो अब आर्यसमाज के सदस्य हैं उनके विचार उसी समय से आर्यधर्म के अनुकूल हो गये। और भी कुछ लोगों के विचार आर्यधर्म के अनुकूल हो गये थे। स्वामी जी इस बार यहां १५-२० दिन रहे। यहां समस्त लोगों को उपदेश करते रहे।

शुद्ध गायत्री मंत्र बताया—बहुत से मनुष्यों को पंचमहायज्ञविधि लिखवा गये और मुझसे विशेष कर यह बात हुई, मैंने सन् १८५७ में अपना यज्ञोपवीत संस्कार कराया था। मेरे गुरु गंगादत्त जी ने कुबेर की गायत्री का उपदेश किया था; जो इस प्रकार थी—

तत्पुरुषाय विद्महे कुबेराय धीमहि। तन्नो धनदः प्रचोदयात् ॥

जब स्वामी जी से इसकी चर्चा चली तो उन्होंने कहा कि यह गायत्री नहीं और न यह उपदेश के योग्य है तुम भी उस गायत्री के अधिकारी हो जिसका सब संसार है और जो वेद में विद्यमान है। तुम उसका उपदेश अपने गुरु से ले लो। तुमको सिफारिशी पत्र लिख देता हूं। उन्होंने पत्र लिख दिया। मैंने उनकी आज्ञानुसार कुछ दिन पश्चात् फर्रूखाबाद जाकर पंडित जी से उपदेश लिया और उसी पर आज तक आरूढ़ हूं।

कायस्थ वास्तव में वैश्य हैं, मद्य, मांस के सेवन के कारण वैश्यों से अलग हो गए—मैंने कायस्थों की उत्पत्ति पूछी तो कहा कि यह कायस्थ वास्तव में वैश्य हैं क्योंकि यह चित्रगुप्त को अपना पूर्वपुरुष बतलाते हैं। शास्त्र के अनुसार वैश्य की उपाधि गुप्त है और कायस्थ उनका नाम इसलिए है कि वह काया का श्रृंगार अधिक करते हैं। पहले समय में ये मद्यमांस-सेवी नहीं थे और वैश्यवर्ण होने से राजकाज के अधिकारी गिने जाते थे। परन्तु मद्य, मांस के सेवन करने से वैश्यों से पृथक् होकर स्वयं अपने आप को शूद्रों में सम्मिलित कर लिया। यदि उसको छोड़कर प्रायश्चित करें तो उनका वैश्य बनना कुछ दुर्लभ नहीं है और एक प्रमाण भी दिया था जो मुझे याद नहीं रहा। बहुतसी बातें सृष्टि-विद्या के विषय में मेरे सामने कहीं परन्तु मुझे इस समय स्मरण नहीं है और सब स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश में लिख दी हैं।

"राजा प्रतिमाओं की रक्षा करे अर्थात् बाट तोल को ठीक बनाये रखे" मनुस्मृति के एक श्लोक[६०] का अर्थ—किशोरचन्द सुनार कन्नौज निवासी ने वर्णन किया कि स्वामी जी संवत् १९२६ में यहां आये और दस दिन रहे। प्रतिमापूजन का खण्डन करते थे। पंडित हरिशंकरलाल जी कान्यकुब्ज को कोई उत्तर न आया। केवल एक प्रमाण दिया था जो मनुस्मृति में है कि राजा को चाहिए कि प्रतिमाओं की रक्षा करे।

स्वामी जी ने उत्तर में लिखा कि वहां बाट तोल से अभिप्राय है, मूर्तिपूजा से नहीं। सारांश यह कि स्वामी जी के उपदेश सुनकर उस समय पूर्णतया अनुकूल हो गये थे। पंडित गुलजारीलाल कान्यकुब्ज भी स्वामी जी के पास जाया करते थे। वह यद्यपि उस समय आर्य नहीं हुए थे प्रत्युत उन्हें बुरा ही कहा करते थे परन्तु तत्पश्चात् सत्यार्थप्रकाश देखकर आर्य हो गए थे और उनके लड़के जगन्नाथ आर्य हैं। रामदयाल उनका बड़ा भाई स्वामी जी के पास सेवक तथा विद्यार्थी था और अब यहां कई मनुष्य (आर्य) समाज के सदस्य हैं।

पंडित हरिशंकर ने वर्णन किया कि स्वामी जी यहां गौरीशंकर महादेव के चबूतरे पर कालिन्दी नदी के तट पर उतरे थे। उन दिनों नग्न रहते और केवल एक लंगोट रखते थे। संस्कृत में बोलते थे। यहां आने पर जो लोग उनसे मिलने गये उनसे पूछा कि यहां कौन पंडित हैं? सबने हमारा नाम लिया। पूछा कि वह कहां है? लोगों ने कहा कि वह कहीं चले गये हैं। कहने लगे कि हमारे आने का वृत्तांत सुनकर चले गये, हम दो मास तक उनकी प्रतीक्षा करेंगे और बिना उनसे मिले नहीं जावेंगे। दूसरे दिन हम भी आ गये और विद्यार्थियों सहित स्वामी जी से मिलने गये। स्वामी जी ने कहा कि जो बिना बलिवैश्वदेव किये भोजन खाते हैं वह गोमांस के तुल्य खाते हैं। हमने कहा कि ऐसा आप न कहें क्योंकि लोग बलिवैश्वदेव नहीं करते हैं। इस पर क्रोधित हो गये और कहा कि हम तो थोड़ा कहते हैं परन्तु शास्त्र में इससे अधिक लिखा है—**'भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्'**[६१]। इस पर हम मौन हो गये। उस समय वह मनुस्मृति के अनुसार कहते थे कि सन्ध्या-तर्पण करना ब्राह्मण का मुख्य काम है, मूर्तिपूजा की आवश्यकता नहीं। मूर्तिपूजा पर हमारी उनसे यह बातचीत हुई—

स्वामी जी ने कहा-मूर्तिपूजा का शास्त्रों में निषेध है।

हमने कहा कि आप कोई वचन पढ़ें ।

स्वामी जी ने कहा कि तुम कोई विधि वचन पढ़ो । हमने पढ़ा-'श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः'[६२] इत्यादि; अर्थात् सदाचार श्रुति स्मृति के अनुसार है और मूर्तिपूजा सदाचार है (उस समय हमने और ग्रन्थ नहीं देखे थे और न वेद पढ़े थे) ।

स्वामी जी ने कहा कि सदाचार पंचमहायज्ञ है न कि मूर्तिपूजा और प्रतिमापूजन के कारण से लोगों ने बलिवैश्वदेव आदिक पंचयज्ञ छोड़ दिये हैं । जब इससे अश्रद्धा होगी तब वह काम करने लगेंगे ओर जब वैदिक कर्म करने लगेंगे तो तुम्हारा बड़ा मान होगा ।

हमने कहा कि वैदिक कर्म तो अब कोई कर नहीं सकेगा और मूर्तिपूजा पर अश्रद्धा हो जायेगी तो इससे लोग भ्रष्ट हो जावेंगे । यही बात हमने स्वलिखित ग्रन्थ 'द्वादश परिच्छेद' में लिख दी है । ऐसी ही बातें स्वामी जी से और हमसे तीन चार दिन होती रहीं, वह सब हमको स्मरण नहीं । उस समय स्वामी जी व्याकरण में बहुत विद्वान् थे ।

काम-क्रोधादि रहित, निर्भीक संन्यासी

एक संकटदीन आचार्य हमारे मित्र थे । उन्होंने हमको कहा कि स्वामी जी को पराजित कर दो अन्यथा हम तुमको मार्ग में मारेंगे क्योंकि तुम सदा कहते हो कि भागवत धर्म है और अब यह उसका खंडन करते हैं । यह बात स्वामी जी के सामने कही । स्वामी जी सुनकर हंसने लगे और कहा कि हम पर यह आचार्य दया करता है !

हम स्वामी जी महाराज के पास नित्य जाते थे और बस्ती के लोग कुपित होते थे । यहां तक कि लोगों ने हमसे कहा कि यह मूर्तिपूजन का खंडन करता है, इसको कह दो कि न करे अन्यथा हम उसे मारेंगे । यह बात गार्गीदीन मिश्र ने हमको कही थी । हमने अलग जाकर स्वामी जी से यह बात कह दी कि यह लोग ऐसा कहते हैं कि 'तुम यह बात न करो अन्यथा हम लोग मारेंगे' । स्वामी जी ने कहा कि हमारे मारने से मत डरो, दो मनुष्यों का मूंड तोड़ने को हम पर्याप्त हैं और अधिक मनुष्य यदि इकट्ठे होंगे तो हम सरकार को सूचना देकर पकड़वा देंगे और इसीलिए हम पर्दा अर्थात् ओट के नीचे नहीं ठहरते कि कहीं ऐसा न हो कि कोई ऊपर पत्थर डाल दे (हम तो) मैदान में पड़े रहते हैं ।

यहां उन दिनों बन्दोबस्त जारी था । डिप्टी हेतराम कायस्थ, पटियाला निवासी, भी यहां उपस्थित थे । किशोरलाल कायस्थ प्रयाग निवासी के साथ वह स्वामी जी से मिलने के लिए गए थे । सात-आठ दिन स्वामी जी यहां रहे थे । उस समय न काम, न क्रोध, न लोभ, न मोह, अत्यन्त सुशीलावस्था में थे । एक हाथ भर के पत्थर का तकिया लगाते थे ।

'हमारा शुक्र अस्त नहीं हुआ है' स्वामी जी एक बार हमको फर्रूखाबाद में मिले । उस समय उन्होंने वैश्यों को यज्ञोपवीत कराने का निश्चय किया था । हमने कहा कि शुक्र अस्त हो गया है, आप कैसा यज्ञोपवीत कराते हैं । कहने लगे कि हमारा तो अस्त नहीं हुआ, शुक्र के अस्त से हमें क्या ? हमारे विचार में उनकी बात 'मुहूर्तचिन्तमणि' के विरुद्ध थी । फर्रूखाबाद में भी एक बार कहा कि गंगा नदी के पुत्र भीष्मपितामह नहीं हो सकते क्योंकि गंगा जलरूप है । हमने कहा कि गंगा नदी की अधिष्ठात्री जो देवी है उसके पुत्र होते हैं, नदी के नहीं ।

संवत् १९३६ के कुम्भ पर स्वामी जी हमको हरिद्वार में भी मिले थे । उस समय न्याय शास्त्र में हमको उनकी बहुत अधिक प्रवीणता दिखाई पड़ी थी । वहां कई दिन तक हम उनके पास जाते रहे । हमको उनके पास जाने का एक प्रकार का अमल (व्यसन) हो गया था । काशी में स्वामी जी का पण्डितों से जो शास्त्रार्थ हुआ वह भी स्वामी जी ने हमारे पास भेजा था ।

१८६९ की वर्षा ऋतु के आरम्भ में कानपुर पधारे

स्वामी जी कन्नौज से चलकर **भटूर**[६३] पहुंचे वहां से **मदार** पहुंचे और वहां के सामवेदियों से भेंट की। **मदारपुर से चलकर स्वामी जी कानपुर पहुंचे**। वहां भैरवनाथ के मन्दिर के पास ला० दरगाहीलाल वकील के विश्रान्तघाट पर ठहरे। गुरुप्रसाद शुक्ल ने प्रयागनारायण से कहा कि तुम्हारा खंडन करने वाले आये हैं, उपाय करो। उसने कहा कि हमारा खंडन करने वाले तो बहुतेरे आते हैं यह तुम्हारा ही खण्डन करने वाले हैं, तुम उपाय करो। दोनों ने सम्मति करके **लछमनी शास्त्री**[६४] को बिठूर से बुलाया और हलधर ओझा, जो फर्रूखाबाद से परास्त होकर गया था वह और कानपुर के सब पण्डित मिलकर शास्त्रार्थ करने को गये। इनका विस्तृत वर्णन 'शास्त्रार्थ कानपुर' में लिखा हुआ है। देखो परिशिष्ट।

पंडित हृदयनारायण कौल वकील कानपुर ने वर्णन किया कि 'पहले पहल स्वामी जी के दर्शन हमको फर्रूखाबाद में हुए थे; ग्रीष्म ऋतु के आरम्भ सन् १८६९ में। हम और पण्डित गौरीशंकर हकीम **फर्रूखाबादी और** स्वर्गीय पण्डित रामनारायण तहसीलदार के पुत्र **पण्डित शामनारायण साहब** (जो आजकल रियासत जयपुर के कप्तान हैं), तीनों गये थे। उन दिनों स्वामी जी संस्कृत बोलते और मूर्तिपूजा आदि सब वेदविरुद्ध विषयों का निषेध करते थे। केवल एक लंगोट रखते थे, शेष नग्न रहते थे। संस्कृत न जानने के कारण हम सब उनकी बात अधिक नहीं समझते थे। जब हम लौटकर आये तो मार्ग में गौरीशंकर ने हमसे कहा कि यद्यपि यह इस समय सबका खंडन करते हैं परन्तु अन्त को यह अवश्य शैवमत स्वीकार करेंगे परन्तु अब बहुत अच्छा करते हैं कि चक्रांकितों का खंडन करते हैं। स्वामी जी उन दिनों फर्रूखाबाद में विश्रान्त घाट पर टिके हुए थे। पन्नीलाल सेठ की उनसे बहुत अनुकूलता थी और ला० दुर्गाप्रसाद भी उनके उपदेश से वेश्यागमन से हट गये थे और यह भी सुना था कि पन्नीलाल ने कुछ पाठशाला का प्रबन्ध किया है परन्तु अभी पाठशाला स्थापित नहीं हुई थी। उसके पश्चात् हम लोग यहां कानपुर चले आये और यहीं रहने लगे।

यहां स्वामी जी वर्षा ऋतु के आरम्भ सन् १८६९ में आये थे और भैरवघाट पर उतरे थे। सारी वर्षा ऋतु यहां रहे। सैकड़ों हजारों मनुष्य यहां उनके पास जाया करते थे। यहां वह संस्कृत बोलते और केवल एक ही लंगोट रखा करते थे। यहां उनके भोजन के लिये रोटी प्रायः हमारे घर से और अन्य लोगों के घर से भी आया करती थी। पंडित शिवसहाय का नाम उन्होंने शूरवीर रखा हुआ था। ब्राह्मणों के विषय में वे 'टका धर्मष्टका कर्म टका हि परमं पदम्। यस्य गृहे टका नास्ति हा! टका टकटकायते।' यह श्लोक पढ़ा करते थे। स्वामी जी ने हमको पहले दिन देखते ही पहचान लिया।'

कानपुर की घटनाएं

मगर ने कुछ न कहा—एक दिन यहां गंगा जी में आधा शरीर जल में डाल कर लेटे हुए थे। इतने में बहुत थोड़े अन्तर पर एक मगर जल से निकला। हमारे छोटे भाई प्यारेलाल वर्तमान संरक्षक, दफ्तर कानपुर ने कोलाहल मचाया और भागे कि स्वामी जी मगर निकला है। परन्त उस वीर अर्थात् स्वामी जी के मुख अथवा शरीर पर किसी प्रकार का कोई भय का चिह्न प्रकट न हुआ, जैसे थे वैसे ही पड़े रहे और कहने लगे कि जब हम उसका कुछ नहीं बिगाड़ते तो वह भी हमको दुःख न देगा। ब्रह्मसमाज के सदस्य क्षेत्रनाथ घोष भी जाया करते थे और मुसलमान भी जाते थे। स्वामी जी ने हमसे मुन्शी इन्द्रिमणि की पुस्तकें सुनीं और उसके पश्चात् मुसलमानों का खंडन आरम्भ किया। हमको संध्या और बलिवैश्वदेव अपने हाथ से लिख दिया था परन्तु हमसे खो गया है। स्वामी जी किसी के मस्तक पर श्री देखते थे तो कहते थे कि 'मांगना भीख, और लगाना श्री तिलक' अर्थात् मस्तक में (श्री) लक्ष्मी है और भीख मांग रहा है!

मुन्सिफ ने भी उन्हें समाधि लगाये देखा—कानपुर नगर के मुन्सिफ पंडित काशीनारायण दर स्वामी जी के पास प्राय: जाया करते थे । एक दिन हम और वह दोनों रात को वहीं घाट पर चले गये और जाकर देखा कि स्वामी जी नहा-धोकर समस्त शरीर पर मिट्टी लगाये ध्यान के लिए बैठे हैं । समस्त शरीर में कोई चेष्टा प्रतीत न होती थी । निश्चेष्ट, शान्त और ध्यानावस्थित थे । १५ मिनट तक हमारे सामने वह ध्यानावस्थित रहे, फिर बातचीत करने लगे । मिट्टी लगाने के विषय में हमने पूछा था । कहा कि इससे चींटी और मच्छर नहीं काटता । फिर वहां हम लोगों ने रोटी बनाई, प्रथम स्वामी जी को खिलाई फिर स्वयं खाई । मुन्सिफ महोदय चले गये और हम वहीं रहे । उस समय चटाई पर बैठे थे, लंगोट के अतिरिक्त कोई कपड़ा न था । एक समय भोजन करते थे । हमारे भोजन की प्रशंसा करते थे कि तुम्हारे यहां कश्मीरियों में भोजन अच्छा बनता है और कहते थे कि खेद है कि और तो और, लोग पाक (भोजन) बनाना भी भूल गये ।

उस समय हुलास (नस्वार) सूंघते तथा शिर के नीचे इंटों का तकिया रखा करते थे । एक व्यक्ति ने एक और लंगोट दिया था । हम और हमारे बड़े भाई पंडित प्रेमनारायण वर्तमान वकील रियासत रीवां; और छोटे भाई-हम तीनों ९-१० बजे रोटी खाकर वहां चले जाते थे और शाम तक वहीं रहते थे । इतने काल तक वहां उनकी सेवा में रहने के कारण हमको संस्कृत की इतनी योग्यता हो गई थी कि हम साधारण पण्डितों को उनकी संस्कृत का अर्थ बतला दिया करते थे ।

बिल्वपत्र चढ़ाने पर व्यंग्य—वर्षा ऋतु के श्रावणमास में एक बार पंडित लोग जब महादेव की मूर्ति पर बिल्वपत्र चढ़ाकर आये तो स्वामी जी ने पूछा कि कहां गये थे ? उन्होंने कहा कि बिल्वपत्र चढ़ाने गये थे । स्वामी जी ने कहा कि इससे तो ऊंट को खिलाया होता ताकि उसका चारा हो जाता, पाषाण पर चढ़ाने से क्या लाभ हुआ ।

इस भैरवघाट के समीप पहले सरकारी मैगजीन था । नगर के लोग कहते थे कि रात को जब भैरव जी की सवारी निकली तो संतरी ने टोका था जिस पर भैरव जी ने कोप करके सिपाही को हानि पहुंचाई अथवा उठा कर दे मारा या नदी में गिरा दिया । इस पर मैगजीन के शासक ने सूचना प्राप्त करके कहा कि इस ओर का पहरा उठा दो, आवश्यकता नहीं है, भैरव जी स्वयं रक्षक हैं । सारांश यह कि लोग कहते थे कि भैरव जी जागती ज्योति हैं और प्रत्यक्ष काल हैं । ऐसी ही बातें स्वामी जी के सामने लोग कहते थे तब स्वामी जी ने कहा कि हम तो नित्य खण्डन करते हैं । वह भैरव यदि जागती ज्योति है तो हमको उठाकर फेंक दे, तब हम जानें अन्यथा केवल मूर्खता की बात है ।

इसी पहली बार फर्रूखाबाद वाले बाबू दुर्गाप्रसाद जी यहां मिलने आये थे और कहा था कि पन्नीलाल ने मूर्तिपूजा छोड़ दी । एक दिन पन्नीलाल के पास पुजारी कहने आया कि ठाकुर जी के कपड़े नहीं हैं । पन्नीलाल ने कहा चले जाओ, हमारे ठाकुर जी को जाड़ा नहीं लगता । एक दिन हमने पूछा था कि आप कब जावेंगे ? कहने लगे कि हम नहीं बतला सकते । अन्त में तीन चार मास रहने के पश्चात् एक दिन प्रात:काल चले गये । जब हमने मनुष्य भेजा तो ज्ञात हुआ कि वह चले गये । लंगोट और हुलास की पुड़िया यहीं छोड़ गये ।

महाशय पण्डित शिवराम, गौड़ ब्राह्मण कानपुर निवासी ने वर्णन किया कि मैंने स्वामी जी के मिलने से पूर्व एक नागरी समाचारपत्र देखा था जिसमे ऐसा लिखा था कि एक साधु फर्रूखाबाद में आये हैं जो कहते हैं कि इस देश में जो मूर्तिपूजा फैली हुई है, वेद में उसकी चर्चा नहीं । मैंने भेंट का संकल्प किया क्योंकि मेरे संस्कार पहले से ही मूर्ति के विरुद्ध थे । दूसरे दिन सुना कि वही महाराज कानपुर में ला० दरगाहीलाल जी के घाट पर उतरे हैं । मैं भेंट को गया और वहां जो कुछ मेरे भ्रम थे सो उनसे पूछकर निवृत्त कर लिये ।

विक्रमी संवत् १९२६ अंग्रेजी सन् १८६९ था। यहां एक हलधर ओझा नामक संस्कृत के अच्छे पण्डित थे जिनके विषय में सुना गया कि स्वामी जी का उनसे पहले फर्रूखाबाद में शास्त्रार्थ हो चुका था। उसने जाकर असिस्टेंट कलैक्टर मिस्टर थेन साहब से प्रार्थना की कि यदि आप मध्यस्थ हों तो मैं दयानन्द सरस्वती से शास्त्रार्थ करूं। उनके पास जाने का विशेष कारण यह था कि वह संस्कृत जानते थे। कलैक्टर साहब ने स्वीकार किया और १५ अगस्त, सन् १८६९ को मिस्टर थेन साहब, श्यामचरण साहब, पण्डित काशीनारायण साहब न्यायाधीश और नगर कोतवाल सुल्तान मोहम्मद आदि नगर के हजारों गण्यमान्य सज्जनों के सामने शास्त्रार्थ हुआ जिसका विस्तृत परिशिष्ट में दिया हुआ है।

एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण गंगासहाय जो नगर पुलिस में हेड कान्स्टेबिल था, एक दिन महादेव नर्मदेश्वर लिए और रुद्राक्ष पहने हुए स्वामी जी के पास आया। स्वामी जी ने उसे शिक्षा दी और समझाया जिस पर उसने शिक्षा पाकर स्वामी जी के सत्योपदेश से महादेव फेंक दिया और रुद्राक्ष की माला तोड़ डाली, परन्तु उसने पहले यह कह दिया था कि यदि तोड़ने से कुछ पाप हुआ तो? स्वामी जी ने कहा कि यदि पाप हो तो उसका उत्तरदायित्व मुझ पर है और यदि पुण्य हुआ तो वह तुझको मिलेगा। उस दिन से उसने मूर्तिपूजा का पूर्णतया त्याग कर दिया।

एक दिन एक ब्राह्मण आया जिसके हाथ में फूल थे। स्वामी जी ने पूछा कि यह क्या है? कहा कि भैरव जी के लिए पुष्प पत्र हैं। स्वामी जी ने कहा—'वाह खूब! आप खाओ खीर लड्डू और भैरव को खिलाओ फूल-पत्ते! उसके पास कैलाश पर तो जाओ क्योंकि भैरव तो कैलाश में रहता है, यह तो पाषाण की मूर्ति है। इस पर वह ब्राह्मण क्रोधित होकर बोला कि ऐसा न कहो, आप भैरव की निन्दा करते हैं। अभी थोड़े दिन हुए कि बुर्ज पर से एक व्यक्ति ने निन्दा की थी, भैरव जी ने उसे तत्काल उठा दे मारा। इस पर स्वामी जी ने कहा कि भैरव जी ने न पटका होगा, नींद से ऊंघ कर गिरा होगा। भला उसको तो उठा कर दे मारा परन्तु मैं तो तुम्हारे कथनानुसार नित्य निन्दा करता हूं, मेरा एक बाल भी बांका नहीं किया।! उसके थोड़े दिन पश्चात् वह भैरव की मूर्ति स्वयमेव मन्दिर और घड़े-सहित गंगा जी की लहर से गिरी और टूट कर जल-निमग्न हो गई, उसका चिह्न तक न मिला। लोगों ने फिर दूसरी मूर्ति उसके स्थान पर रख दी।

मेरे पिता एक महादेव, पत्थर के बनाकर, तुलसी को बर्तन अर्थात् गमले में रखकर, पूजा करते थे। प्रथम उसको मैं पूजता रहा परन्तु स्वामी जी के उपदेश से इच्छानुसार सन्तोष हो जाने के पश्चात् विश्वास बदलने के कारण मैं उससे बहुत दिन तक मसाला पीसता रहा। दामोदरदास गौड़ ब्राह्मण कानपुर निवासी ने शिवसहाय जी की समस्त बातों का समर्थन किया और कहा कि सुखनप्रसाद गौड़ ब्राह्मण ने भी अपने ठाकुरों को पर्यंक-सहित गंगा में डाल दिया था।'

संन्यासी कहता तो ठीक है, पर सब की आजीविका मारी जाती है—पंडित सूर्यप्रकाश शर्मा कान्यकुब्ज, रईस कानपुर ने वर्णन किया, 'जब स्वामी जी पहले-पहल यहां आये तो हमारे यहां के पुराना कानपुर के पंडित देवीदयाल, ब्रह्मा, शिवसागर मिश्र, नवाबगंज निवासी पंडित गंगासहाय उनके भाई रामसहाय तथा मदनगोपाल वाजपेयी-ये सब जाया करते थे और प्रतिदिन मूर्तिपूजा पर विचार होता था। विचार के पश्चात् जब आपस में बातचीत करते तो कहते थे कि संन्यासी कहता तो ठीक है परन्तु इससे सबकी जीविका मारी जाती है। यदि यह स्वामी जी मूर्तिपूजा का खंडन न करते होते तो आजकल के समय में यदि इनको ब्रह्मा का अवतार कहते तो भी कुछ अनुचित न था और यदि यह किसी एक का खंडन करते तो कोई इनके सामने नहीं ठहर सकता था, जिसका चाहते उसका विनाश कर देते परन्तु यह तो सबका खंडन करते हैं, यह बात बुरी है।

एक दिन ये पंडित लोग बड़े अभिमान से सामवेद के ब्राह्मणों में से छब्बीसवें षड्विंश ब्राह्मण का 'देवप्रतिमा हसन्ति' वाला वाक्य लेकर स्वामी जी के पास गये। स्वामी जी ने पूछा कि कोई प्रमाण लाये हो? कहा कि लाये हैं। स्वामी

जी ने कहा कि षड्विंश ब्राह्मण का 'प्रतिमा हसन्ति' वाला लाये होगे । इतना सुनते ही पण्डितों से वह षड्विंश ब्राह्मण का पत्रा अंगोछे से न खुला, जैसा कि ले गये थे, वैसा ही लौटा लाये और स्वामी जी ने उसका यथार्थ अर्थ कर दिया ।

इसके कई दिन पश्चात् स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती यहां कानपुर में आ गये । इनके कहने की यहां के बहुत से लोग मानते थे क्योंकि यह वेदान्ती थे । उन्होंने संस्कृतज्ञ पंडितों और हम सब लोगों से कहा कि वह नास्तिक और ईसाई है । अंग्रेजों की ओर से नियुक्त हुआ है । ऐसे कई एक मनुष्य और भी नियुक्त हुए हैं कि लोगों को ईसाई बनावें । इसका उपदेश कदापि नहीं सुनना चाहिए और तुम सब लोग इकट्ठे हो तो हम भैरवघाट से निकाल कर अभी बाहर करें । ३१ जौलाई से थोड़े दिन पूर्व यह ब्रह्मानन्द सरस्वती उपर्युक्त पण्डितों तथा अन्य लोगों सहित इकट्ठे होकर स्वामी जी के पास गये परन्तु उस दिन स्वामी जी को गाली देने और बकवास करने के अतिरिक्त कुछ शास्त्रार्थ न हुआ । ब्रह्मानन्द को स्वामी जी ने कहा कि तू मूर्ख है, यदि कोई विद्वान् पण्डित होता तो हम उससे शास्त्रार्थ करते और वास्तव में यह ब्रह्मानन्द व्याकरण आदि शास्त्र कुछ न जानता था ।

स्वामी ब्रह्मानन्द की व्यर्थ चेष्टाएं—'फिर वहां से लौटकर ब्रह्मानन्द ने हम लोगों और हमारे स्वामी स्वर्गीय तिवारी, सूर्यप्रसाद जी ताल्लुकेदार, पुराना कानपुर और इसी प्रकार और लोगों से (जो स्वामी जी के दर्शन और उपदेश सुनने गये थे) कहा कि तुम लोग प्रायश्चित करो और तिवारी जी के घाट पर न्यून से न्यून २०-२५ मनुष्यों को प्रायश्चित कराया गया । प्रायश्चित यह था कि गंगा में स्नान कराकर कुछ समय तक खड़ा रखकर यज्ञोपवीत बदलवाये और गायत्री का जाप करा कर हम सब लोगों को पंचगव्य पिलाया और यह शिक्षा दी कि अब कदापि उनके पास उपदेश सुनने को न जाना परन्तु उनके पास जाने वालों में एक रामचरण अवस्थी कान्यकुब्ज ने प्रायश्चित करना स्वीकार न किया और ब्रह्मानन्द का कुछ भी कहना न माना और न किसी और का कहना माना । हमसे प्रायश्चित इस बहाने से कराया गया था कि तुमने देवताओं की निन्दा सुनी है ।

इसके अतिरिक्त ब्रह्मानन्द ने एक पत्र भी छपवाया । उसमें लिखा था कि जो ब्राह्मण दयानन्द जी के समीप जावेंगे वह त्याग करने के योग्य हो जावेंगे और कुछ मनुस्मृति के श्लोक भी लिखकर छपवाये थे जिनसे उसने प्रतिमापूजन का सिद्ध होना विचारा था । वह नवें अध्याय का २८५वां श्लोक था[६५] कि जिसमें प्रतिमा तोड़ने वाले को दण्ड लिखा है और स्वामी जी के विषय में जो श्लोक लिखा था उसका आधा हमको याद है—'दयानन्द-समीपे हि यो गच्छति द्विजोत्तम:' । दूसरा भाग हमें स्मरण नहीं परन्तु उसका अर्थ यह था कि वह त्यागने के योग्य है ।

जब ब्रह्मानन्द सब प्रकार से स्वामी जी का सामना करने से निराश होकर लौट आया और शास्त्रार्थ न कर सका तो नगर और पुराने कानपुर में हल्ला मच गया । सबने सम्मति की कि अवश्य इसके साथ शास्त्रार्थ करने का निश्चित प्रबन्ध किया जाये और ब्रह्मानन्द कानपुर नगर में गुरुप्रसाद और प्रयागनारायण के पास गये कि आपस में विरोध छोड़कर इसके खंडन का प्रबन्ध करो; जिस पर उन्होंने अन्त में सहमत होकर हलधर ओझा, लक्ष्मण शास्त्री, लक्ष्मण नारायण, रामचन्द्र आदि पंडितों को शास्त्रार्थ के लिए एकत्रित किया और ३१ जौलाई सन् १८६९ को शास्त्रार्थ हुआ ।

यहां रामचरण ने शालिग्राम की मूर्ति नदी में फेंक दी थी । नवाबगंज में बिहारीलाल कायस्थ, चीफ कांस्टेबिल पुलिस ने शालिग्राम की मूर्ति नदी में प्रवाहित कर दी थी ।मैं स्वयं भी महादेव का पुजारी था, आर्य होकर उसे त्याग दिया । इन दिनों स्वामी चिद्घनानन्द भी यहां थे । उनसे ब्रह्मानन्द ने बहुत कुछ कहा कि तुम भी उनसे शास्त्रार्थ करने चलो परन्तु वह न गये प्रत्युत दु:खित होकर यहां से चले गये ।'

प्रतिमापूजन की आज्ञा जब वेद नहीं देता तब दूसरे किसी के कहने से क्या लाभ है ?—पंडित गंगासहाय, कान्यकुब्ज ग्राम नवाबगंज कानपुर निवासी वर्णन करते हैं कि "वह संन्यासी और बहुत विद्वान् थे । उस समय वह धर्मोपदेश और ईश्वर के चिन्तन में प्रवृत्त थे । लौकिक व्यवहार में उनका ध्यान कम था । हमने पूछा कि स्वामी जी प्रतिमा में क्या दोष है ? बोले कि दोष क्यों नहीं, तुम क्या प्रमाण देते हो । हमने कहा कि वेद की आज्ञानुसार यदि कोई बलिवैश्वदेव करके भावनानुसार प्रतिमापूजन करे तो कोई दोष नहीं । कहने लगे कि वेदों में इसकी कहां आज्ञा है ? मैंने कहा कि कहीं आज्ञा नहीं देखी; परन्तु पुराणों में तो है । कहने लगे कि जिसमें राजा की आज्ञा नहीं उस कार्य का करने वाला दंड पाता है, ऐसे ही जिसमें ईश्वर की आज्ञा नहीं उस बात को करने वाला मनुष्य दंडित होता है । मैंने कहा कि सत्य है । इसके आगे कोई बात नहीं हुई ।

एक दिन एक पुजारी पंडित आया; उसने प्रतिमापूजन के विषय में भागवत का प्रमाण दिया । स्वामी जी ने कहा कि 'गप्पं वर्तते'; कारण यह कि उसमें लिखा है कि छः कोस प्रमाण का पूतना का शरीर था तो फिर जब वह कृष्ण के मारने से गिरी तो क्यों मथुरा, गोकुल तथा वृन्दावन चूर-चूर न हो गये ? इसीलिए भागवत झूठा है । आचार्य फिर नहीं बोला ।"

मुक्ति ज्ञान के बिना नहीं—'एक बार एक पंडित रुद्राक्ष पहने हुए आया । स्वामी जी ने कहा कि इस गुठली के पहनने से क्या लाभ ? उसने कहा कि इसके पहनने से मोक्ष होता है और शिवपुराण का प्रमाण दिया । स्वामी जी ने कहा कि 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' ब्रह्मविज्ञान के बिना मुक्ति कहां अर्थात् ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं, इसको क्या करोगे ? जिस पर वह मौन हो गया ।'

आठ गप्प[६६] **—मुंशी गंगासहाय कान्यकुब्ज, नवाबगंज** कानपुर निवासी, ने वर्णन किया कि 'प्रथम संवत् १९२६ में आते ही पहले-पहल स्वामी जी ने कुछ दिन पश्चात् आठ गप्प का विज्ञापन दिया । पहली गप्प पुराणों का मानना, दूसरी गप्प मूर्तिपूजा करना, तीसरी गप्प शिव, शक्ति, गणपति आदि को मानना, चौथी गप्प वाममार्ग और मद्यपानादि, पांचवीं गप्प भंग पीना, छठी गप्प पर स्त्री से व्यभिचार करना, सातवीं गप्प चोरी करना, आठवीं गप्प झूठ बोलना अर्थात् आठ बातें असत्य हैं । केवल वेद को ही सत्य मानते थे और उसके अनुकूल होने से दूसरे १७ ग्रन्थ भी सत्य मानते थे परन्तु मुख्य वेद ही थे । उस विज्ञापन में कुल २१ ग्रन्थों के विषय में लिखा था । चार वेदों को अनादि मानते थे । शेष १७ विद्या के ग्रन्थों को जैसे मनुस्मृति, महाभारत, अष्टाध्यायी, उपनिषद्, महाभाष्य आदि ऋषियों के बनाये हुए मानते थे और कहते थे कि चचेरे भाई राज्य के लिए लड़े थे इस कारण से उसको इतिहास कहते हैं । कहते थे कि महाभारत पंडितों ने बहुत बढ़ा दिया है । भस्म लगाने वालों को कहते थे कि यदि इससे मोक्ष होता है तो गधा दिनरात भस्म में लोटा करता है उसका मोक्ष होना चाहिए और कहते थे कि चक्रांकित कहते हैं कि हम मांस नहीं खाते परन्तु छाप गरम करके मनुष्य के शरीर पर लगाते और फिर उसी को पानी में डुबो कर चरणामृत देते हैं इसलिए वे मानों मांस खाते हैं । रुद्राक्ष और तुलसी को काष्ठ कहते थे ।'

'अष्टगप्प वाले विज्ञापन को पढ़कर प्रायः पंडित लोग आया करते । प्रथम तो व्याकरण में ही गिर जाते अन्यथा वेद-वेदान्त में हार जाते थे । १०-१५ पंडित नित्य हार जाते थे । उनके आने के लगभग दो मास पश्चात् शास्त्रार्थ हुआ था । दीवानी और फौजदारी के समस्त कार्यकर्ता तथा असिस्टेंट कलैक्टर मिस्टर थेन साहब भी उपस्थित थे और २०-२५ हजार मनुष्यों की भीड़ थी । प्रथम लोग ऊपर इकट्ठे हुए पर स्वामी जी ने कहा कि हमको न हार है न जीत, हम ऊपर नहीं आते । जिसको शास्त्रार्थ करना हो वह यहां आ जावे । अन्ततः सब मनुष्य नीचे आ गये । नीचे, ऊपर, छत, चबूतरा सब में मनुष्य ही मनुष्य थे । मिस्टर थेन साहब मध्यस्थ थे । कदाचित् चार सौ के लगभग ब्राह्मण उपस्थित थे । शास्त्री हलधर ओझा

सामने बैठे थे। प्रथम बाबू श्यामचरण ने केनोपनिषद् की उपासना की। इन्सपैक्टर सुल्तान मोहम्मद, ५०-६० पुलिस के सिपाहियों-सहित उपस्थित थे। अन्ततः स्वामी जी की विजय हुई।'

'जब स्वामी जी ने विज्ञापन दिया कि आठ गप्प और आठ सत्य हैं[६७] तो नगर के पण्डितों ने आक्षेप किया कि गप्प शब्द की धातु कहीं भी नही मिलती। हमने स्वामी जी से पूछा, तो कहने लगे कि यह सारस्वत, चन्द्रिका या कौमुदी के जानने वाले हैं; इसलिए नहीं जानते। स्वामी जी ने 'गप्प' शब्द की सिद्धि बताई। पण्डितों ने भी इसे किसी प्रकार सुन लिया, आक्षेप न किया।'

'स्वामी जी ने एक बार यह भी कहा था कि मुसलमान जो कहते हैं कि 'तोबः' से समस्त पाप छूट जाते हैं, यह झूठ है। कोतवाल साहब ने भी स्वीकार किया कि महाराज आप 'सत्य' कहते हैं। एक दिन मैंने कहा कि महाराज ! जब आप जावेंगे तो मुझे पहले बता देना। कहा कि ऐसा नहीं हो सकता। यदि ऐसा होता तो हम घर वालों से क्यों पृथक् होते, उनको सूचित न करते ! यह तो एक ऐसी बात हुई कि किसी से कहा जाये कि तुम कुशलपूर्वक रहना और हमसे मिलते रहना। ये काम मोह के हैं, हम नहीं करेंगे। जब जाने लगे तो रसोइये ब्राह्मण ने पूछा कि महाराज रोटी बनावें। प्रथम तो न बोले फिर पूछा तो कहा कि 'हूं'। जिस पर बस बनाने की समझा परन्तु बिना उसको सूचित किये पुराने लंगोट के साथ भस्म रमाये चल पड़े। नया लंगोट और मिट्टी का लोटा, जिससे शौच करते थे, वहीं छोड़ गये। वह सायंकाल तक बाट देखता रहा। हम अपने दुर्भाग्य से उस समय उपस्थित न थे।'

एक व्यक्ति ने पूछा कि महाराज ब्रह्मा बड़ा या विष्णु ? बोले कि तुम बड़े या तुम्हारा बाप बड़ा। वह मौन हो गया और अभिप्राय समझ गया। स्वामी जी अठारह पुराणों को नहीं मानते थे। एक कर्नेलगंज निवासी भैरव नामक पण्डित मूर्ति के विषय में कुछ वेदमन्त्र निकाल कर लाया। स्वामी जी ने उनका ठीक अर्थ कर दिया और बताया कि ये मंत्र मूर्ति के विषय में नहीं हैं। वह शान्त होकर चला आया। पण्डित इतने शीघ्र परास्त होते थे कि वर्णन नहीं किया जा सकता। कहने और सुनने में बड़ा अन्तर है।

एक दिन स्वामी जी ने कहा कि **हमने गायत्री का जाप बद्रीनारायण पर जा कर किया है क्योंकि यह बहुत उत्तम मंत्र है।** हमने स्वामी जी से गायत्री का शुद्ध उच्चारण सीखा। कहते थे कि चक्रांकितों की धूर्तता देखने के योग्य है। वह अपने लिंग को सौ बार देखते हैं तो उनकी 'श्री' लज्जित नहीं होती परन्तु पाषाण का शिवलिंग देखने से श्री लज्जित होती है। सारांश यह कि स्वामी जी के ऐसे उपदेशों से मेरी श्रद्धा मूर्तिपूजा पर बिल्कुल न रही। १५ वर्ष तक महादेव की पूजा करता रहा परन्तु शान्ति न मिली। महाराज के कुछ दिन के उपदेश से ही चित्त शान्त हो गया, सब पाखंड की बातें छोड़ दीं। उसके पश्चात् फिर मैंने पूजा नहीं की। यहां के शास्त्रार्थ के पश्चात् हमने पूछा कि महाराज ! यहां के तीन-चार सौ ब्राह्मणों में से आपने कोई भी विद्वान् न पाया, कहने लगे कि सब में संन्यासी लक्ष्मण शास्त्री विद्वान् हैं परन्तु मुद्रा के लोभ में आया हुआ है।

शूद्र के घर नहीं आते तो म्लेच्छों के राज्य में क्यों बसते हो ? उस समय कैलाशपर्वत भी यहां जुगलकिशोर ब्राह्मण, महेरीमुहाल निवासी के यहां उतरे हुए थे। स्वामी जी ने बुलाया कि आ कर समझ लो। कहा कि शूद्र के घर पर हम नहीं आते क्योंकि स्वामी जी कायस्थ के घाट पर उतरे हुए थे। स्वामी जी ने उसे उत्तर दिया कि म्लेच्छ के राज्य में क्यों आये हो ?

स्वामी जी के उपदेश से उन दिनों यहां सत्य का बड़ा प्रचार हो गया था। घर के चार मनुष्यों में से दो स्वामी जी के उपदेशों से मूर्तिपूजा से घृणा करने लगे थे। मै उस समय पुलिस में नौकरी करता था। जो लोग प्रतिमापूजन से भावना

का फल मिलना कहते थे, स्वामी जी उनको उत्तर देते थे कि 'यदि ऐसा है **तो तुम चक्रवर्ती राजा बनने की भावना करो, क्या हो जाओगे ?** कदापि नहीं ! झूठी भावना का फल नहीं मिलता ।'

'हमने यह भी कहा था कि आप काशी से पत्र लिखते रहना । कहा कि यदि हम ऐसा करते तो अवश्य औरों को भी सूचित करते, परन्तु ऐसा नहीं करेंगे ।'

रायबहादुर दरगाहीलाल वकील तथा आनरेरी मैजिस्ट्रेट, कानपुर ने वर्णन किया कि स्वामी जी यहां पहले आकर हमारे घाट पर, जिसे हमने सन् १८६८ में बनवाया था, विराजमान हुए । इस बार तीन मास तक रहे । उनके आते ही नगर में चर्चा आरम्भ हो गई । सैकड़ों मनुष्य नित्य एकत्रित होते थे । एक लंगोट पास था, शेष शरीर से पूर्णतया नग्न थे । कोई तूंबा या वस्त्र पास न था, ईंट शिर के नीचे रखकर सो जाते थे । गर्मी और जाड़े में इसी अवस्था में रहते थे ।

इससे पहले एक मौलवी आये । स्वामी जी ने उनसे कुरान के विषय में पूछा कि तुम्हारा कुरान ईश्वरी वचन नहीं हो सकता, इसलिए कि उसकी बिस्मिल्लाह (आरम्भ) ही अशुद्ध है । मौलवी ने अर्थ किया । स्वामी जी ने कहा कि यदि खुदा ने बनाया है तो फिर वह किस खुदा के नाम से आरम्भ करता है ? इस पर वह मौन होकर चले गये ।

"एक बार स्थानीय पण्डित देवीदयाल को यहां के लोगों ने भेजा । वह बिल्वपत्र और पुस्तक के पन्ने लेकर गया । स्वामी जी ने कहा कि तुम सामवेद का ब्राह्मण लाये हो और कहा कि उससे तुम बाटपूजा सिद्ध करना चाहते हो । वह 'देवप्रतिमा हसन्ति' वाला वाक्य मूर्तिपूजा का नहीं है,उसका अर्थ और है ।

एक बार किसी ने तुलसीदास का प्रमाण दिया कि गुसांई जी यों कहते हैं । कहने लगे कि तुलसीदासो दुष्टः अर्थात् तुलसीदास बहुत बुरा मनुष्य है । नन्द की नौ लाख गाय होने का खंडन करते थे और कहते थे कि वह कहां बंधी थीं । उनके मुकुट के दूर स्थान पर गिरने का भी खंडन करते थे ।

एक बार पण्डित ने आकर पूछा कि मैं क्या करूं कि जिससे मुक्ति पाऊं । कहने लगे कि सन्ध्या आदि पंचयज्ञ किया करो, ब्राह्मणों के लड़कों को विद्या पढ़ाया करो, लोगों के यज्ञोपवीत कराओ और अन्त में कहा कि पत्थर, पानी, जड़ की पूजा कभी न करना । इस अन्तिम वाक्य को सुनकर वह मौन हो गया । उसने कहा कि मूर्तिपूजा तो पुरानी चली आती है । स्वामी जी ने कहा कि चोरी भी तो पुरानी है । कहते थे कि गीता, महाभारत, मनुस्मृति आदि में बहुत श्लोक मिले हुए हैं । मूर्तिपूजादिक आठ चीजों को गप्प और वेदादिक आठ चीजों को सत्य कहते थे । इसी कारण से उनका नाम गप्पा बाबा हो गया था । एक दिन प्रातःकाल बिना किसी से कहे काशी की ओर चले गये । उस समय स्वामी जी किसी का रुपया पैसा नहीं छूते थे और न मांगते थे ।

इस बार यहां से चलकर स्वामी जी गुसांइयों के **शिवराजपुर जिला फतहपुर** में ठहरे । यहां किसी से शास्त्रार्थ हुआ । फिर **काशी** की ओर चले गये ।

स्वामी जी के व्यंग्य और विनोद—बाबू दुर्गाप्रसाद रईस फर्रूखाबाद, ने वर्णन किया कि 'कानुपर निवासी गुरुनारायण ब्राह्मण के घर में एक मेम थी । उनको एक बार भैरवघाट, पुराने कानपुर, पर मेरे सामने उपदेश कर रहे थे कि तूने यह क्या भ्रष्टाचार कर रखा है ? इसी स्थान पर स्वामी जी से किसी ने लोटा मांगा । उन्होंने पूछा कि क्या करेगा ? कहा कि शिव जी पर जल डालूंगा । स्वामी जी ने कहा कि तुझे आप ईश्वर ने लोटा दिया है, उसको भर कर डाल दे । उसने पूछा कि कौन सा ? कहने लगे कि मुख; उसमें कुल्ला भर ले जाओ और उसके ऊपर डाल दो ।'

(ख) काशी से कलकत्ता तथा पुनः काशी-प्रयाग तक

(संवत् १९२६ से आश्विन सं० १९३१, तदनुसार दिसम्बर १८६९ से अक्तूबर १८७४ तक) [1]।

रामनगर और काशी की घटनाएं

बाबू अविनाश लाल जी खत्री, मल्होत्रा, बनारस निवासी ने वर्णन किया कि 'स्वामी जी संवत् १९२६ में रामनगर (गंगा पार) महाराज के हाथी खाने के समीप गंगातट पर एक घर में टिके हुए थे परन्तु हमने उनको मैदान में देखा था। हमने सुना था कि एक संन्यासी आये हुए हैं और मूर्तिपूजा का खंडन करते हैं। हमें इस समाचार को सुनकर आश्चर्य हुआ क्योंकि हमने इससे पहले किसी हिन्दू को मूर्ति पूजा का खंडन करते नहीं सुना था, हम इसी बात को देखने गये थे। मुन्शी हरबंसलाल, पण्डित ज्योतिःस्वरूप उदासी और हम, तीनों थे। स्वामी जी उस समय कपड़े नहीं पहनते थे, केवल एक लंगोट रखते थे। अवस्था उनकी ४० वर्ष से कम प्रतीत होती थी।[६८] वहां हमारे जाने से पूर्व स्वामी जी की पंडितों से मूर्तिपूजा पर बातचीत हो रही थी। हमने ज्योतिःस्वरूप जी से कहा कि आप कुछ उनसे इस विषय पर बातचीत करें। कहने लगे कि वह बात अच्छी कहते हैं, हम क्या कहें ? वहां उनके पास हम दो घंटे तक रहे। उनकी बुद्धि हमने बड़ी चमत्कार वाली देखी और जिन युक्तियों से वह मूर्तिपूजा का खंडन करते थे अत्यन्त प्रबल थीं। हम लोग उनकी बातों से प्रसन्न होकर दंडवत् करके चले आये।'

काशी शास्त्रार्थ के समय स्वामी जी की मान्यताएं और उनका व्यक्तित्व—'इसके दस या पन्द्रह दिन पश्चात् स्वामी जी आकर बनारस के आनन्द बाग में दुर्गाकुण्ड के ऊपर उतरे। इसी बार शास्त्रार्थ हुआ। इसमें बनारस के महाराज कई पण्डितों सहित गये थे। ज्योतिःस्वरूप और हरबंसलाल भी उपस्थित थे। हम नहीं गये। परन्तु हमने यह सुना कि प्रथम तो बालशास्त्री, स्वामी विशुद्धानन्द और वामनाचार्य आदि से प्रश्नोत्तर होते रहे। उस बीच में वामनाचार्य ने उनको वेद का एक पत्रा दिया कि देखो इनमें मूर्तिपूजन लिखा है। स्वामी जी उस पत्रा को लेकर पूर्वापर विचारने लगे। इसी अन्तर में लोगों ने हथेली पीटना आरम्भ कर दिया कि स्वामी जी हार गये और बड़ा कोलाहल मचाया। सब लोग उठकर चल दिये और दुष्ट लोगों ने स्वामी जी पर ढेले फेंकने आरम्भ किये। स्वर्गीय पंडित रघुनाथप्रसाद[६९] कोतवाल और स्वर्गीय मुन्शी हरबंसलाल ने स्वामी जी को कहा कि आप एक कोठरी में चले जायें और उन्होंने वहां पर किवाड़ लगा दिया, फिर लोग चले गये। तत्पश्चात् हमने स्वामी जी से प्रश्न किया था कि देखो, राजा ने कुछ प्रबन्ध न किया। स्वामी जी बोले कि वह क्या प्रबन्ध करते ? वह तो स्वयं भी विरोधी थे। स्वामी जी ने समस्त शास्त्रार्थ फिर लिखवाया और हम लोगों ने छपवाया। शास्त्रार्थ के पश्चात् स्वामी जी मास दो मास रहे। जब शास्त्रार्थ की पुस्तक छप चुकी तो यहां से पश्चिम की ओर चले गये। उस समय २१ शास्त्रों को मानते थे। चार वेद, छः शास्त्र, महाभारत, रामायण आदि। यद्यपि संस्कृत बोलते थे परन्तु वह बहुत सरल होती थी। किसी से दबते नहीं थे, अद्भुत मनुष्य थे। योगी और तेजस्वी पुरुष थे; योग की प्रशंसा

नोट :-कानपुर से रामनगर तक बीच में कहीं अधिक ठहरना विदित नहीं होता। अगस्त के अन्त में चलकर जब अक्तूबर के लगभग रामनगर में पहुंचे तो केवल एक मास मार्ग के लिए था। मिर्जापुर और प्रयाग आदि के वृत्तान्त से विदित होता है कि इन प्रसिद्ध नगरों में स्वामी जी इन दिनों में बिलकुल नहीं रहे। मार्ग में एक-एक या दो दिन ठहरते हुए रामनगर आये।

1. (इस अवधि में स्वामी जी ने सुप्रसिद्ध काशी-शास्त्रार्थ किया और उसके पश्चात् प्रयाग के कुम्भ पर धर्म-प्रचार किया, फिर वराह क्षेत्र सोरों आदि स्थानों में भ्रमण किया और फिर काशी होते हुए कलकत्ता चले गये। मार्ग में मुगलसराय, डुमरांव, आरा, पटना, मुंगेर, भागलपुर, मुर्शिदाबाद में ठहरे। कलकत्ता से लौटकर फिर वर्धमान, छपरा आदि होते हुए फिर वराह क्षेत्र के पहले वाले स्थानों पर धर्म चर्चा की। इसके पश्चात् मथुरा-वृन्दावन से प्रयाग, काशी, जबलपुर, नासिक होते हुए २० अक्तूबर १८७४ को बम्बई पहुंचे-सम्पादक)

भी करते थे; विशेषतया राजयोग की । संध्या भी यहां लिखवा दी थी । सत्य बोलना, ईश्वरप्रार्थना करना, कपट न रखना, एक दूसरे की भलाई करने में सदा लगे रहना आदि का उपदेश और गोदुग्ध तथा उस (गाय) के पालन से जगत् का उपकार बतलाते थे जैसा कि विस्तारपूर्वक उन्होंने गोकरुणानिधि में लिख दिया है । हमारी स्वामी जी से वेदान्त और ईश्वर के न्यायकारी होने पर विशेष बातचीत हुई थी परन्तु अन्त में हम दोनों मौन हो गये । उस समय वह अधिकतर मूर्तिपूजन का खंडन करते थे । वेदान्त विषय पर उनसे हमारा सन्तोष नहीं हुआ; शेष बातों में हम उनसे सहमत हैं । इससे पहले भी स्वामी जी एकबार बनारस आये और कुछ दिन रहे परन्तु इसका वृत्तान्त हमें ठीक विदित नहीं है । यह दूसरी बार थी जब यहां आकर शास्त्रार्थ किया ।'

चाटुकारों ने दर्शनों के उत्सुक राजा को बहकाया—संस्कृत के विद्वान् साधु **जवाहरदास** सती घाट बनारस निवासी वर्णन करते हैं कि 'पहले पहल स्वामी जी हमको रामलीला के अवसर पर संवत् १९२६ तदनुसार १३ अक्तूबर से १५ अक्तूबर सन् १८६९ में स्थान रामनगर में मिले । वहां वह वैष्णव मत का खंडन करते थे । जब रामनगर के राजा ईश्वरीनारायणसिंह जी को सूचना मिली कि एक महात्मा आये हैं जो मूर्ति का खंडन करते हैं तो राजा साहब ने महात्मा जानकर उनके भोजन का प्रबन्ध किया । यद्यपि स्वामी जी नग्न रहते थे परन्तु राजा साहब ने एक बढ़िया मलीदा (ऊनी वस्त्र) उनके लिये भेज दिया । उनकी विद्या की महिमा को सुनकर महाराज ने मिलने की बहुत अभिलाषा की परन्तु चाटुकार लोगों ने इस आशंका से कि कहीं स्वामी जी के उपदेश का उन पर प्रभाव न पड़ जाये, महाराजा को बहकाया और वह न मिले अर्थात् पण्डितों ने न मिलने दिया । वहां स्वामी जी सम्भवतः एक मास रहे । वहां के खंडन-मंडन की चर्चा बनारस में भी फैली ।'

बलदेवप्रसाद शुक्ल, फर्रूखाबाद निवासी ने वर्णन किया कि 'स्वामी जी क्वार, रामनवमी[७०] के दिन संवत् १९२६ में रामनगर पहुंचे थे । मैं स्वामी जी के साथ था । स्वामी जी सत्य का मंडन और असत्य का खंडन करने लगे । राजा साहब ने अपने एक सेवक चौबे को भेजा कि आप यहां आवें । स्वामी जी ने कहा कि हम नहीं जावेंगे; यदि उनकी इच्छा हो तो यहां आवें । चार-पांच दिन यही बातें होती रहीं । तब चौबे ने राजा साहब से कहा कि दोनों मस्त हैं; आप राजा और वह साधु; आपका उसका मेल न होगा । विद्यार्थियों और पण्डितों का स्वामी जी के पास आना आरम्भ हो गया और रामनवमी के कारण वैरागियों की वहां बहुत भीड़ थी (क्योंकि रामनगर की रामलीला का मेला प्रसिद्ध है) ।'

राजा साहब का व्यवहार—'एक दिन ५०-६० वैरागी आये और कुछ कठोर शब्द भी स्वामी जी को कहे । स्वामी जी ने उस ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया । राजा साहब ने यह बात सुनी तो कहला भेजा कि शास्त्रार्थ जिसका जी चाहे करले परन्तु गाली जो देगा वह हमको देगा; स्वामी जी हमारे यहां आये हैं ।' एक दिन मैं गोघाट पर स्वामी निरंजनानन्द जी के पास बैठा था, राजा साहब भी वहां पधारे । राजा साहब ने आकर पूछा कि वेद में मूर्तिपूजा और रामलीला हैं या नहीं ? स्वामी दयानन्द कहते हैं कि नहीं है । **स्वामी निरंजनानन्द जी** ने कहा कि 'वेद में तो कहीं नहीं हैं परन्तु लोकरीति चली आई है, करते चले जाओ ।' इस पर राजा साहब को बड़ा विस्मय हुआ और वे लौट आये । 'इसके पश्चात् उन्होंने चौबे जी को आज्ञा दी कि हमसे आठ आने नित्य ले जाया करो, स्वामी जी को जिस भोजन की इच्छा हो करा दिया करो और सब पण्डितों को एकत्रित करके कहा कि अब क्या करना चाहिए ।'

महाराज के दूसरे भाई, जो वैरागी थे और जिनकी आज्ञा से रामलीला बनती थी, अधिक पक्षपाती होने के कारण स्वामी जी के बड़े विरोधी थे । उन्होंने पंडितों से कहा कि येन-केन प्रकारेण अर्थात् जैसे बन सके मूर्तिपूजा की स्थिति करो परन्तु सिंह के मुख में हाथ डालना कोई सरल बात न थी । जो पंडित स्वामी के सामने आता वह हारकर जाता था । स्वामी जी उसके लत्ते-पत्ते सब उड़ा दिया करते थे । फिर स्वामी जी वहां से उठकर बनारस आ गये और आनन्द बाग में ठहरे ।

साधु जवाहरदास जी वर्णन करते हैं कि 'सम्भवत: कार्तिक द्वितीया-तृतीया (२२ या २३ अक्तूबर) को स्वामी जी यहां बनारस में आकर दुर्गाकुण्ड के समीप आनन्दबाग में राजा माधोसिंह अमेठी के बगीचे में ठहरे । हम उस दिन अकस्मात् दुर्गाकुंड की ओर जा रहे थे । जिस दिन वह आये हमको किसी ने कहा कि वह पार वाले स्वामी जी यहां आ गये हैं, इसलिए हम गये । उस समय हरबंसलाल उनके पास था (इससे विदित होता है कि स्वामी जी २१ सितम्बर, सन् १८६९, आसौज बदि पड़वा, मंगलवार को रामनगर और २२-२३ अक्तूबर, सन् १८६९, कार्तिक बदि २-३, संवत् १९२६ शुक्रवार या शनिवार को बनारस में पहुंचे । पूरा मास रामनगर में रहे और बनारसी पण्डितों की विद्यासम्बन्धी योग्यता की परीक्षा करते रहे ।'

पंडित बलदेवप्रसाद शुक्ल फर्रूखाबाद निवासी जो स्वामी जी के साथ थे, वर्णन करते हैं कि जब स्वामी जी बनारस में आकर आनन्द बाग में ठहरे तब काशी के विद्वान् पण्डित लोग आने लगे; प्रत्युत प्रत्येक समय विद्यार्थियों और पण्डितों का जमघट लगा रहता था । सैकड़ों लोग आते थे, कोई शास्त्रार्थ के लिए, कोई सन्देह निवृत्ति करने के लिए और कोई किसी और संकल्प से । तत्पश्चात् स्वामी जी ने एक प्रश्न लिखकर हमको दिया कि राजाराम शास्त्री जो सारे बनारस में (सबके) मुखिया हैं, उनके पास ले जाओ । वह प्रश्न यह था—

"येनोच्चरितेन सास्नालांगूलककुदखुरविषाणादीनां संप्रत्ययो भवति स: शब्द:; अथवा प्रतीतपदार्थको लोके ध्वनि: शब्द:; अथवा श्रोत्रोपलब्धि: बुद्धिर्निग्राह्य आकाशदेश: स: शब्द:-अस्योदाहरणप्रत्युदाहरणपूर्वकं समाधानं कुर्यात्"[७१]

हम इस प्रश्न को लेकर राजाराम के पास गये । राजाराम ने देखा और कहा कि मध्य में छुरी रख लो यदि इसका उदाहरण हम कर देंगे तो नासिकाछेदन कर लेंगे । हमने ऐसा ही आकर कह दिया । स्वामी जी ने कहला भेजा कि नहीं, दो छुरी मध्य में रख लेनी चाहिये । शास्त्र के स्थान पर शस्त्र ही सही । हमने आकर उनसे भी ऐसा ही कह दिया कि दो छुरी रखनी चाहिये; जिससे न बने उसका नासिकाछेदन तुरंत हो जावे । तब राजाराम ने कहा कि काशी में आ गये हैं, चिन्ता क्या है, विदित हो जायेगा । हमको तो यह कहकर विदा कर दिया परन्तु रात को राजाराम जी अपने एक विद्यार्थी पंडित शालिग्राम को (जो आजकल अजमेर कालिज में पंडित हैं) भेजा कि देख आओ दयानन्द कैसे हैं ।

फिर व्याकरण के विषय में उनसे प्रश्न किये, स्वामी जी ने उन सबके उत्तर दे दिये । शालिग्राम ने जाकर राजाराम जी को कहा कि 'पंडित तो बड़े हैं परन्तु नास्तिक हैं ।'

शास्त्रार्थ कराने वाले रामनगर के राजा थे—पंडित शालिग्राम जी शास्त्री[७२], हेड पण्डित गवर्नमेण्ट कालिज, अजमेर, वर्णन करते हैं कि 'बनारस में स्वामी जी के दर्शन संवत् १९२६ में हुए । इससे पहले सम्भवत: श्री गोपाल फर्रूखाबाद के व्यवस्था लेने आये थे । जब स्वामी जी रामनगर में आये तो हमने सुना कि वहां का राजा, जो मूर्तिपूजक था उससे स्वामी जी ने कहा कि हमसे मिलकर सन्तोष कर लो । उन्होंने कहा कि यहां नहीं, काशी में चलो, हम शास्त्रार्थ करायेंगे । फिर स्वामी जी रामनगर से बनारस में आकर आनन्द बाग, दुर्गाकुंड पर ठहरे । काशी के बहुत से लोग, विद्वान्, विद्यार्थी आदि उनके पास जाया करते थे और कोई-कोई मूर्ख विद्यार्थी कुवाक्य भी बोलते थे ।'

प्रामाणिक ग्रन्थों की सूची लिखवा दी—काशी नरेश ने काशी के पण्डितों को बुलाकर कहा कि स्वामी दयानन्द संन्यासी आये हैं और वह प्रतिमापूजन पर आक्षेप करते हैं, तुम उनसे शास्त्रार्थ करो । तब हमारे गुरु पंडित राजाराम जी और

बहुत से पण्डितों की यह सम्मति हुई कि यदि हम शास्त्रार्थ के समय किसी ग्रन्थ का प्रमाण देंगे तो वह अस्वीकार कर देंगे कि हम नहीं मानते, इसलिए जो ग्रन्थ मन्तव्य हों पहले जाकर उनसे लिख लायें और वह भी बतला दें कि उन्हीं ग्रन्थों को प्रामाणिक मानना और शेष ग्रन्थों को प्रामाणिक न मानना इसमें क्या प्रमाण है ? और वह (स्वामी जी) माननीय ग्रन्थों में भी 'ओ३म् गप्प' कह दिया करते हैं; इसलिए उनसे पहले पृछ लिया जाये कि कितने वाक्य इन ग्रन्थों में ऐसे हैं जो गप्प हैं और प्रमाण आप कितने (अंश को) मानते हैं ?

"इन सब बातों को पूछने के लिए काशी के पण्डितों की ओर से एक मैं और दूसरे ढोंढ़ीराज शास्त्री[७३] धर्माधिकारी, तीसरे दामोदर शास्त्री भारद्वाज[७४], चौथे रामकृष्ण शास्त्री[७५]; उपनाम तातिया, हम चारों गये। जब पहुंचे तो स्वामी जी केवल चौड़ा लंगोट पहने हुए और भस्म शरीर में लगाये बैठे थे, बहुत से विद्यार्थी उनको घेरे हुए थे। हम लोगों ने नमो नारायण की और इन बातों का उत्तर पूछा। हमसे स्वामी जी ने यह बात कही कि अभी नहीं और सम्भवत: स्वामी जी हमें बतलाने को ही थे परन्तु उनके पास उनके शिष्य मुंशी हरबंसलाल कायस्थ, छापेखाने वाले बैठे थे। उन्होंने संकेत कर दिया कि यह पंडितों के विद्यार्थी हैं, आप इनसे न कहें। जब इनके गुरु पंडित लोग आवेंगे तो उस समय इस बात का अच्छी प्रकार निर्णय हो जायेगा। हमने बहुत कुछ कहा परन्तु स्वामी जी ने वही उत्तर दिया कि अभी नहीं। हमने लौटकर अपने गुरु जी और सब पंडितों से कह दिया। तब उन्होंने कहा कि हम (तब तक) शास्त्रार्थ नहीं करेंगे जबतक कि ग्रन्थों का निर्णन न होगा और इन पंडितों ने ऐसा ही राजा साहब[७६] के यहां कहला भेजा। बीच की बातें हमको ज्ञात नहीं परन्तु दो तीन दिन पश्चात् रघुनाथप्रसाद नगर कोतवाल के बीच में पड़ने पर बात निश्चित हुई अर्थात् स्वामी जी ने कहा कि लोग आवें, तो हम ग्रन्थ पहले ही लिखवा देंगे। इसके पश्चात् वही हम चारों फिर गये। तब स्वामी जी ने ग्रन्थ लिखवाये अर्थात् निम्नलिखित इक्कीस शास्त्र-चार वेद, चार उपवेद, छ: अङ्ग, छ: उपांग और मनुस्मृति।"

"इस पर जब हमने यह कहा कि आप इन्हीं ग्रन्थों को (प्रामाणिक) मानते हैं और को नहीं, इसमें क्या प्रमाण है ? तब स्वामी जी ने कहा कि यह बात हम शास्त्रार्थ के समय, यदि पंडितों ने पूछी तो बतलायेंगे। हमने यह भी पूछा था कि आप जो मनुस्मृति में गप्प श्लोक मानते हैं वे कितने हैं ? स्वामी जी ने यह बात भी नहीं बतलाई।"

हम उत्तर लेकर चले गये और आकर शास्त्रार्थ का दिन निश्चित हुआ। नगर के समस्त प्रख्यात पंडितों के नाम लिखे गये कि ये शास्त्रार्थ में सम्मिलित हों। केवल पंडित राजाराम जी शास्त्री और सखाराम जी भट्ट—यह दोनों नहीं गये थे। राजाराम जी के न जाने का यह कारण था कि वह अपने शिष्य बालशास्त्री को पूर्ण विद्वान् समझते थे कि यदि वह सन्तुष्ट हो गये तो हम भी सन्तुष्ट हैं और सखाराम जी का वृत्तांत हमें विदित नहीं क्योंकि वह हमारे गुरु जी के विरोधी थे। परन्तु उनका भतीजा (उपस्थित) था। मैं भी उस समय उपस्थित था।

दुष्ट लोगों में सफलता प्राप्त करना स्वामी जी का ही साहस था—उस दिन लोगों की भीड़ इतनी थी जो सम्भवत: काशी में कभी एकत्रित नहीं हुई। सिपाही उपस्थित थे। बदमाशों के आवागमन के कारण बड़े-बड़े प्रसिद्ध पंडितों की अप्रतिष्ठा हुई। काशी के बहुत से बदमाश तथा गुंडे भीतर प्रविष्ट हो गये क्योंकि वहां लाखों मनुष्यों की इसी मूर्ति पर आजीविका है और इसलिए वहां सहस्त्रों मनुष्य 'लिङ्गिया' कहलाते थे। (शास्त्रार्थ के समय) गृहविशेष में, जिसमें स्वामी जी थे-उसमें लगभग ५० मनुष्य थे और बाहर दालान में तीन सौ मनुष्य तथा उसके बाहर न्यून से न्यून ५० हजार मनुष्य होंगे। पुलिस का सुपरिंटेंडेण्ट भी आ गया था।

स्वामी विशुद्धानन्द जी[७७], बालशास्त्री[७८], पंडित देवदत्त, ताराचरण तर्करत्न, माधवाचार्य, राजा ईश्वरीनारायणसिंह जी रामनगर वाले, रघुनाथप्रसाद कोतवाल आदि सरकारी लोग उपस्थित थे (विस्तृत विवरण काशीशास्त्रार्थ प्रकाशित संवत् १९२६ में लिखा है)।"

और सब बातों का समर्थन करके कहा कि अन्त में जब पत्रा सोचने का समय आया तो केवल दो मिनट स्वामी जी ने पत्रा देखा और फिर रख दिया और सोचने लगे और सोचकर फिर उठाया । अभी उठाया ही था और कुछ कहने को थे कि विशुद्धानन्द ने उठकर ताली बजाते हुए कहा 'हर !हर !'विश्वेश्वर !' इस पर लोगो ने कोलाहल मचा दिया । यदि स्वामी जी शीघ्रता से खिड़की बन्द न करते तो बदमाश लोग पत्थर आदि फेंककर उनको घायल कर देते । परन्तु लोगों ने फिर भी कुछ पत्थर, गोबर व पुराने जूते फेंके और दुष्टता करते हुए चले गये । उस समय वहां अंधकार मच गया था क्योंकि वहां मूर्तिपूजा का खंडन करना केवल कठिन ही नहीं प्रत्युत महाकठिन था । यह केवल स्वामी जी का साहस था जो ऐसे दुष्ट लोगों पर सफलता प्राप्त की । मुझे जब अजमेर में सन् १८७८ में देखा तो पहचान कर कहा था कि आपको हमने काशी में देखा है ।

सुदृढ़ आत्मविश्वास तथा ईश्वर पर पूरा भरोसा

शास्त्रार्थ से पहले भीड़-भाड़ देखकर भक्त की चिन्ता और दृढ़ ईश्वर विश्वासी, निष्पक्ष महर्षि का उसको अश्वासन—पंडित बलदेवप्रसाद जी शुक्ल कहते हैं कि 'इसी प्रकार बहुत से विद्यार्थी आते रहे और पंडित लोग भी वेष बदलकर आते रहे, (वे) नाम प्रकट नहीं करते थे । एक दिन राजा साहब के यहां सब पंडितो ने एकत्रित होकर यह सम्मति की कि चलो स्वामी जी से शास्त्रार्थ करो । यदि विश्वनाथ चाहेंगे तो उनका मुख बन्द कर देंगे । इस भीड़-भाड़ की हमको सूचना मिली तो हमने स्वामी जी को सूचित किया कि आज बहुत भीड़ होगी और गुंडों का नगर है यदि फर्रूखाबाद होता तो दस-बीस मनुष्य आपकी ओर भी होते । परन्तु यहां बड़ा सन्देह है । स्वामी जी हमारी यह बात सुनकर हंसे और कहा 'कि योगियों का निश्चित सिद्धान्त है कि सत्य का सूर्य अन्धकार के समूह पर अकेला ही विजय पाता है । जो ईश्वर की आज्ञानुकूल सत्योपदेश पक्षपात रहित होकर करता है उसको भय कहां ? सत्पुरुष डर कर कभी सत्य नहीं छिपाते । जान जाये तो जाये पर ईश्वर की आज्ञा, जो कि सत्य है, वह न जाये । हे बलदेव ! चिन्ता क्या है, एक मैं हूं, एक ईश्वर है, एक धर्म है और कौन है, देखी जायेगी उनकी; यदि उनका आना होगा । एक नापित को बुला लाओ ।' मैं यह सुनकर एक नाई को बुला लाया । स्वामी जी ने क्षौर कर्म कराया और स्नान कर और सुन्दर मृत्तिका लगाकर चट्टान पर पंथी मेल (आसन लगा) कर बैठे और थोड़े काल परमेश्वर का ध्यान किया । तत्पश्चात् भोजन किया, मुझ से कहा कि तू भी भोजन कर ले । मैंने भी दूध पी लिया । बोले—किसी से वितंडावाद मत करना; क्रोध न करना । मैंने स्वीकार किया ।

सबसे पहले रघुनाथप्रसाद कोतवाल आये और उन्होंने प्रबन्ध किया । तत्पश्चात् सारी भीड़ आयी और (प्रबन्धकों ने) यह वचन दिया कि स्वामी जी से एक-एक मनुष्य शास्त्रार्थ करेगा । उनके आने पर स्वामी जी उनकी ओर घूमकर उसी प्रकार आसन मार कर बैठ गये । राजा साहब, राजा साहब के भाई, बालशास्त्री, विशुद्धानन्द, माधवाचार्य, ताराचरण नैयायिक तथा और बहुत से पंडित बैठे । स्वामी जी ने कहा कि इस प्रकार क्या निश्चय होगा, आप लोग १५ दिन यहां ठहरे । सब ग्रन्थ राजा साहब अपने सरस्वती भंडार से मंगावें, तब निश्चय होगा । उस समय सम्भवत: तीन बजे थे । राजा साहब के भाई ने कहा कि नहीं, शास्त्रार्थ करो । मनुष्यों से बगीचा भरा हुआ था । एक पादरी साहब भी थे । अन्त में विशुद्धानन्द बोले, मुझे विलम्ब हो गया है, मैं जाता हूं । उनके उठते ही सब बदमाश लोग कोलाहल करते हुए उठे । कोतवाल ने आज्ञा दी कि मारो बदमाशों-दुष्टों को । कुछ बदमाशों को डण्डे मारकर मौन कराया । लोग चले गये । स्वामी जी को कोतवाल ने कहा कि आपसे आकर कोई लड़े तो मुझे सूचित कीजिए । स्वामी जी उस स्थान पर बहुत दिन ठहर कर वहां से लौटे परन्तु हम पहले चले आये थे । उस समय स्वामी जी के पास यह लोग अधिक आते थे, हरवंशलाल, उरूड़ा मिश्र लाहौरी (काशीस्थित), गोपालदास वैश्य, एक चौबे ब्रह्मचारी, नीलकंठ ब्रह्मचारी । इनके अतिरिक्त और भी कई मनुष्य प्राय: आया करते थे ।

एक दिन काशी में महाराजा भरतपुर, महाराजा रीवां, महाराज तिरवा और एक अंग्रेज, इन चारों ने आकर नास्तिक मत का पक्षपोषण किया और कहा कि हमारा कोई मजहब (मत) नहीं है । ये सब इन दिनों बनारस कालिज में विद्यार्थी थे । स्वामी जी ने कहा कि यही तुम्हारा मजहब (मत) है । फिर ईश्वर की सत्ता के विषय में उन्हें अच्छी प्रकार समझाया जिस पर वे अन्त में अत्यन्त प्रसन्न होकर लौट गये ।'

पण्डित के पांडित्य की गहराई खूब जान गये थे ! साधु जवाहरदास जी ने वर्णन किया कि 'जब स्वामी जी यहां आये और हम उनसे मिले तो हम प्रतिदिन तीसरे पहर उनके पास जाते और उपनिषदों के ब्रह्मज्ञान के विषय में विचार हुआ करता था । हम मायावाद और जीव ब्रह्म के अभेद का मण्डन करते और स्वामी जी खंडन करते थे । (नगर के) प्रतिष्ठित लोग यद्यपि प्रकट होकर नहीं आये परन्तु छिप कर आते रहे और वार्तालाप करते रहे । नगर में उन दिनों कोलाहल मच गया था । राजा साहब को भी इसकी सूचना पहुंची कि वह वेद का प्रमाण मांगते हैं और पंडित लोग नहीं बतलाते । राजा साहब यह भी कहते कि यदि यह मूर्ति का खंडन न करते तो हम इनको गुरु मानकर अपने हाथ से छत्र चढ़ाते । अन्त में एकदिन राजा साहब ने सबको बुलाकर कहा कि हम तो शास्त्रज्ञ नहीं हैं, आप लोग जो लाखों रुपया लोगों का व्यय कराते हो, मूर्ति (पूजा) का प्रमाण दो । पंडितों ने कहा कि हमने यद्यपि वेद नहीं देखा परन्तु और ग्रन्थ हमने देखे हैं हमको खोजना चाहिए । यदि हमको समय दिया जाये तो हम खोज कर समाधान कर सकते हैं । राजा साहब की ओर से उनके लिए प्रकाश का प्रबन्ध कराया गया और पन्द्रह दिन का अवकाश दिया गया कि पन्द्रह दिन पश्चात् वह शास्त्रार्थ करेंगे । १५ दिन से एक दिन पूर्व सबने अपने-अपने विद्यार्थी स्वामी जी के पास भेजे । उस समय हम उपस्थित थे । उनका अभिप्राय यह था कि जो-जो ग्रन्थ आप प्रामाणिक मानते हैं और जो आपका सिद्धान्त है सो लिख दीजिए, तत्पश्चात् शास्त्रार्थ हो । तब स्वामी जी ने कहा कि हम चारों वेदों को प्रमाण मानते हैं और मूल छः शास्त्र, मनुस्मृति, वाल्मीकि रामायण, महाभारत प्रक्षिप्त श्लोकों के अतिरिक्त प्रमाण हैं और वेदांग भी । तब विद्यार्थियों ने अपने-अपने आचार्यों को जाकर बतलाया । उनके चले जाने के पश्चात् हमने स्वामी जी से पूछा कि ये लोग बड़े विद्वान् हैं और षट्शास्त्र के ज्ञाता हैं; आप उन सबसे शास्त्रार्थ कैसे करेंगे ? यदि एक को आप जीतेंगे तो इससे सबको आप कैसे जीत सकेंगे ? स्वामी जी ने कहा कि यहां एक बालशास्त्री जो है वह विख्यात ब्राह्मण है, उसको वेद का कुछ अभ्यास है । वह कुछ काल हमसे बातचीत कर सकेगा । शेष इतनी योग्यता वाला कोई नहीं । और जो हैं वह 'काकभाषा' (नवीन न्याय और शुष्क व्याकरण) में कुशल हैं, वेदविद्या में कुशल नहीं ।'

पंडित ज्योतिःस्वरूप उदासी विद्वान् को स्वामी जी ने कहा कि आप भी ब्रह्मविद्या के विचार करनेवाले पूर्ण विद्वान् हैं; यदि आप मूर्तिपूजा का खण्डन न कर सके तो भी यदि यथार्थ युक्तियों के निरूपण करने में कोई विवाद करे तो (आप सरीखे) योग्य सभ्य पुरुष को उचित है कि उसे मिथ्या निरूपित करें । इसलिए आप लोग हमारे सहायक हो । ऐसे ही कुछ और विद्वानों को भी कहा । तब ज्योतिःस्वरूप आदि विद्वानों ने कहा यद्यपि हम आप की भांति सामने आकर मूर्तिखंडन में प्रवृत्त नहीं हो सकते, तथापि कुछ सहायता करेंगे ।

राजा रामनगर की चतुराई: शास्त्रार्थ रविवार को नहीं रखा जिससे जिलाधिकारी नहीं आ सकें—जिला अधिकारियों ने जब यह सुना कि एक साधु महात्मा स्वामी दयानन्द जी काशी आये हैं तो उनकी इच्छा हुई कि इस शास्त्रार्थ को हम भी देखें, यदि रविवार को हो । उन्होंने राजा साहब रामनगर को कहला भेजा परन्तु राजासाहब ने कोई बहाना करके यह बात अस्वीकार कर दी (क्योंकि जिला अधिकारी उपस्थित होते, और विशेषतया योरोपियन लोग, तो प्रबन्ध कार्य कदापि न बिगड़ता और न महाराजा साहब मनमाने उपायों से रौला डालने की हिम्मत करते) । अन्त में राजा साहब ने, इस विचार से कि अधिकारी सम्मिलित न हो सकें, मंगलवार कार्तिक शुदि द्वादशी, संवत् १९२६, तदनुसार १६ नवम्बर, सन् १८६९ को शास्त्रार्थ का आयोजन किया । सब पण्डितों को बुलाकर कहा कि हम अभी अभी आते हैं परन्तु आप लोग सब

तीसरे पहर स्वामी जी के पास जाओ। पण्डितों के सत्कार के लिए पालकी, छत्र, चंवर भी राजा ने भेजे। अभिप्राय यह था कि ऐश्वर्य को देखकर स्वामी जी चकित और भौंचक्के रह जायेंगे परन्तु उस विरक्तात्मा को देखने से कुछ भी चिन्ता न हुई और न ही उन्होंने कुछ विचार किया। उस समय नगर के कोतवाल रघुनाथप्रसाद सनाढ्य ब्राह्मण बुन्देलखंड निवासी और होरीलाल डिप्टी इंस्पैक्टर थे। दोनों प्रबन्धार्थ ५० सिपाही लेकर बगीचे में पहुंच गये इस शास्त्रार्थ के कोलाहल को सुनकर समस्त विद्वान्, पण्डित, विद्यार्थी, साधु, महात्मा लोग और अन्य दर्शक लगभग १० हजार व्यक्ति एकत्रित हुए। रघुनाथप्रसाद कोतवाल यद्यपि मूर्तिपूजक था, परन्तु योग्य होने के कारण उसने अपने पद के कर्त्तव्य को बहुत अच्छी प्रकार से निभाया। उसने यह प्रबन्ध किया कि एक आसन पर स्वामी जी को खिड़की में बिठलाया और दूसरा आसन दूसरे पण्डित के लिए सामने बिछाया और तीसरा आसन राजा के लिए रखा। अन्य पण्डितों के लिए उसी स्थान में ही प्रबन्ध किया ताकि स्वामी जी के पास कोलाहल न हो और जिस एक की पराजय हो उसके आने के पश्चात् दूसरा जाये और एक के शास्त्रार्थ में दूसरा बोलने का प्रयत्न न करे।'

काशी नरेश ने प्रबन्ध बिगड़वाया : प्रत्यक्षदर्शी महात्मा का वक्तव्य

कोतवाल का किया हुआ प्रबन्ध बिगाड़ दिया; स्वामी जी के सहायक विद्वानों को दूर हटा दिया गया—'परन्तु जब महाराज काशी नरेश आये तो सब पण्डितों ने उठकर राजा को आशीर्वाद दिया और उस नियम के विरुद्ध राजा के साथ जाकर स्वामी जी को चारों ओर से घेर लिया। वह प्रबन्ध न रहा और जो महात्मा परमहंस स्वामी जी के सहायक तथा पक्षपाती थे, बगीचे में उनके जाने का मार्ग बन्द कर दिया। उस समय लोगों ने एक चिट्ठी स्वामी जी के नाम भेजी कि हम लोग देखने के इच्छुक हैं, आपके पक्ष के हैं और आपने हमसे प्रतिज्ञा भी ली हुई है कि उस समय आप लोगों का आना होगा परन्तु अब मार्ग नही मिलता। यह चिट्ठी हमने होरीलाल थानेदार के हाथ स्वामी जी के पास भेजी तब स्वामी जी ने रघुनाथप्रसाद कोतवाल से कहा कि हमारी ओर से जो लोग महानुभाव और परमहंस हैं वह यहां नहीं आने पाते, इसका क्या कारण है? उनको शीघ्र बुलाओ। इस पर होरीलाल ने आकर ज्योतिःस्वरूप जी को अपने पास बिठलाया और सब महात्माओं का सत्कार किया परन्तु यह बात पण्डितों को खटक गई। उन्होंने राजा से संकेत किया कि प्रथम तो दयानन्द जी का ही विजय करना कठिन है; उस पर यदि ज्योतिःस्वरूप आदिक उनकी सहायता करेंगे तो विजय अत्यन्त दुष्कर हो जायेगी। इसलिये राजा ने उनके संकेत को समझकर उन सब साधुओं के आगे पण्डितों को बिठला दिया और कहा कि आप लोग तनिक हट जाइये; स्थान छोड़ दीजिये। जब पण्डित आगे बैठ गये तो फिर राजा ने संकेत करके ज्योतिःस्वरूप जी को पकड़वा कर वहां से उठवा दिया। इस बात से स्वामी जी को यद्यपि दुःख हुआ परन्तु कुछ न बोले। ऐसे ही कुछ और विद्वानों को भी, जो स्वामी जी के सहायक थे, उन्होंने अपमानित किया तब शास्त्रार्थ में प्रवृत्त हुए। दो अंग्रेज पादरी भी उपस्थित थे।

'तब कोतवाल ने कहा कि राजन्! बड़ा अनर्थ हो रहा है कि एक स्वामी जी को इतने पण्डितों ने घेर लिया और जो व्यवस्था हमने निश्चित की थी वह आपने न रहने दी। यह बात राजाज्ञा के विरुद्ध है, परन्तु हम आपकी प्रसन्नता के लिए कुछ नहीं कहते। इसके पश्चात् शास्त्रार्थ मूर्तिपूजा पर हुआ, जो छपा हुआ विद्यमान है।'

काशी शास्त्रार्थ में उपस्थित पंडितों तथा गण्यमान्य पुरुषों की सूची

स्वामी दयानन्द जी के साथ शास्त्रार्थ में उपस्थित विद्वानों की सूची निम्न प्रकार है। स्वामी जी के दायें-बायें एक-एक स्थान रिक्त था। इनकी पंक्ति भीतर की ओर अंडाकार आकृति में थी—दायीं ओर ३१ सज्जन बैठे थे;

स्वामी दयानन्द सरस्वती

१.	रिक्त स्थान	१७.	ठाकुरदास
२.	स्वामी विशुद्धानन्द	१८.	हरदत्त दूबे
३.	बालशास्त्री	१९.	भैरवदत्त बुवा
४.	पंडित शिवसहाय	२०.	श्रीधर शुक्ल
५.	माधवाचार्य	२१.	विश्वनाथ मैथिल
६.	वामनाचार्य	२२.	नवीननारायण तर्कालंकार
७.	पंडित देवदत्त शर्मा	२३.	मदनमोहन शिरोमणि
८.	जयनारायण तर्क वाचस्पति[७९]	२४.	कैलाशचन्द्र शिरोमणि[८०]
९.	चन्द्रसिंह त्रिपाठी	२५.	शिवकृष्ण वेदान्ती
१०.	राधामोरन तर्कवागीश	२६.	गणेश श्रोत्रिय[८१]
११.	दुर्गादत्त	२७.	पण्डित धनीराम
१२.	बस्तीराम दूबे	२८.	नारायण शास्त्री
१३.	काशीप्रसाद शिरोमणि	२९.	देवधर
१४.	हरिकृष्ण व्यास	३०.	नरसिंह शास्त्री
१५.	अंबिकादत्त पण्डित	३१.	परमहंस जवाहरदास जी उदासी[८२]
१६.	घनश्याम पण्डित		

बायीं ओर १२ सज्जन बैठे थे;

१.	रिक्त स्थान	७.	तेजसिंह वर्मा, रईस मैनपुरी
२.	महाराजा काशी नरेश	८.	राव कृष्णदेवशरण सिंह[८३]
३.	महाराजा साहब के भाई	९.	चौधरी गुरुदत्तसिंह शर्मा
४.	राजकुमार वीर शिवनारायणसिंह शर्मा	१०.	हजारी यदुनन्दन नगल
५.	बाबू फतहनारायणसिंह वर्मा	११.	बाबू हरीचंद गुप्ता[८४]
६.	ईशवरीनारायणसिंह शर्मा	१२.	बाबू गोकल चंद गुप्ता[८५]

छलकपट में फंसकर भी साहस नहीं छोड़ा 'इसके अन्त में यह हुआ कि एक पण्डित ने एक पुस्तक वेद का निकाला (उनके विचार में तो ब्राह्मण और ११२७ शाखा तथा दो-सौ उपनिषद्, सब वेद हैं)। उसमें यज्ञ के प्रकरण में पुराण

का इस विषय का प्रसंग था कि ऋग्, यजुः, साम, अथर्व चारों को पूर्णतया सुनकर उसके पश्चात् ग्यारहवें या दसवें दिन पुराण को सुनना चाहिए। चूंकि उस समय संध्याकाल और अंधियारा था, स्वामी जी को अभिलाषा हुई कि इस पत्रे को हम अपनी आंख से देखें और अर्थ करें। तब उसी काल लालटेन जला कर स्वामी जी को वह पत्रा दिया गया। एक तो वह लालटेन धुंधली थी, दूसरे दिखाने वाला भी शरारत करता था कि वह अच्छी प्रकार न देख सके। तथापि स्वामी जी को उसको देखने में सम्भवतः एक घड़ी का समय लगा तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि अब इसका समाधान स्वामी जी नहीं कर सकते, उनको बहुत कष्ट नहीं देना चाहिए और सन्ध्यावंदन का काल भी अतिक्रमण होता जाता है। यह कहकर फिर उपहास के रूप में स्वामी जी की पीठ पर थापी मारकर कहा कि अब बैठिये, जो होना था सो हो चुका। राजा को भी संकेत किया कि अब चलना चाहिए। राजा की तो पहले ही से इच्छा हो रही थी कि किसी प्रकार चलना चाहिए और किसी प्रकार यह कार्य शीघ्र समाप्त हो, ऐसा न हो कि (दयानन्द) समाधान कर दे और हमारी बात जाती रहे। तब राजा ने ताली बजाई; उनकी देखादेखी सब लोगों ने ताली बजा दी। प्रत्युत स्वामी जी का अपमान करने को भी कई बदमाश उपस्थित हुए। उस समय होरीलाल थानेदार ने अच्छा प्रबन्ध किया; स्वामी जी को एक कोठरी में बिठला दिया और बदमाश लोगों को डंडों से भली भांति पीटा और रघुनाथप्रसाद कोतवाल ने राजासाहब को कहा कि आपने यह बहुत बुरा काम किया, यदि अधिकारी लोग सुनेंगे तो बहुत क्रोधित होंगे। यह आपने ताली बजाने का बहुत अनुचित कार्य किया है। तब राजा ने कहा कि आप भी आस्तिक हैं, यह मूर्तिपूजन परम्परा का धर्म है, शत्रु को विजय करने का जिस प्रकार बने प्रबन्ध करना चहिए। यह कहकर उसका हाथ पकड़कर उसको साथ ले गये।

तंत्पश्चात् स्वामी जी समस्त कार्तिक, मंगसिर और पोह यहां रहे। उन्हीं दिनों में नागा जी (बड़े महात्मा साधुराम उदासी) से जो हमारे मित्र थे, हमने स्वामी जी की भेंट कराई। कुछ दिन उनके पास रहने से उनकी बातें सुनकर वे पूर्णतया स्वामी जी के अनुकूल हो गये। वे डुमरांव में रहते थे और वहीं उनका घर था। वे बड़े विद्वान् थे और दीवान जयप्रकाशलाल, दीवान रियासत डुमरांव उनके शिष्य थे। नागा जी से मिलकर अपने (निवास) घर को लौट गये। उसके पश्चात् स्वामी जी प्रयाग कुंभ पर चले गये।'

काशी शास्त्रार्थ का आंखों देखा प्रामाणिक वर्णन

काशी में मूर्तिपूजा का प्रखर खंडन : काशी कांप उठी—ला० माधोदास जी[८६] रईस तथा आनरेरी मजिस्ट्रेट बनारस ने वर्णन किया कि 'पहले पहल जब स्वामी जी पधारे और आनन्द बाग में उतरे तो उनके आने के लगभग सात दिन पश्चात् हमको उनसे मिलने का अवसर मिला और फिर प्रायः मिलते रहे क्योंकि आनन्द बाग हमारे इस बाग से बहुत समीप है। उस समय स्वामी जी केवल एक कौपीन बांधते थे और समस्त शरीर पर भस्म रमाते थे। संस्कृत बोलते और मूर्तिपूजन का खंडन करते थे। उस समय उनका यहां कोई सहायक न था। इसी बार शास्त्रार्थ हुआ (यह वर्णन कार्तिक मास, १९२६ का है)। स्वामी जी प्रतिदिन प्रातः से ११ बजे रात तक मूर्तिपूजा आदि वेदविरुद्ध बातों का खंडन करते रहते थे। सैकड़ों मनुष्य नित्य आते और स्वामी जी से बातचीत करते थे। उनके खंडन की प्रबलता से काशी में तहलका मच गया। लोग कहते थे कि एक मुडिया (संन्यासी) आया है, मूर्तिपूजा का खंडन करता है, चलो चलकर देखें।

अपने ही स्थान पर शास्त्रार्थ करने का नियम—शास्त्रार्थ से ५-७ दिन पहले पण्डित रघुनाथप्रसाद कोतवाल ने आकर कहा कि आपको शास्त्रार्थ के लिए महाराज काशीनरेश के सामने चलना चाहिए। स्वामी जी ने कहा कि हमारा तो यह नियम है कि जो हमारे पास आवे उससे, जब तक वह चाहे, शास्त्रार्थ करने को उद्यत हैं। अन्यथा यों तो हम कहीं नहीं जाते। रघुनाथप्रसाद ने कहा कि यदि किसी प्रकार का भय है तो साहब कलैक्टर के पास चलो, वहां चलकर शास्त्रार्थ करो;

हम वहां शामियाना खड़ा कर देंगे । स्वामी जी ने कहा कि यों तो हम वहां नहीं जाते और न किसी अन्य स्थान पर जाते हैं परन्तु तुम कोतवाल हो, यदि मुश्कें बांधकर ले जाओ तो हमारा कोई वश नहीं । तत्पश्चात् इसी हमारे बाग के सामने वाले आनन्द बाग में, जो राजा अमेठी का है, शास्त्रार्थ निश्चित हुआ । उसमें एक दूसरा दालान है । वहां शास्त्रार्थ हुआ था । एक ओर विशुद्धानन्द और महाराजा बनारस और दूसरी ओर अन्य पण्डित लोग, खिड़की में स्वामी दयानन्द जी बैठे हुए थे । शेष चारों ओर हम दर्शक लोग थे । यह शास्त्रार्थ ४ बजे शाम को आरम्भ होकर लगभग सायं ७ बजे समाप्त हुआ था । उस समय बीस-पच्चीस हजार दर्शक लोग सड़कों पर चारों ओर एकत्रित थे ।[८७] उस समय बाबू प्रमदादास मित्र[८८] भी उपस्थित थे । अन्त में स्वामी विशुद्धानन्द ने यह शब्द कहा था कि **'शालिग्रामो विष्णुः'** । इस पर स्वामी जी ने आक्षेप किया । विशुद्धानन्द (या किसी अन्य ने)[८९] ने दो पत्रे स्वामी जी के हाथ में दिये और शीघ्रता से स्वामी जी की पीठ ठोंकी कि 'हो ! हो ! हार गये ! हार गये !' साथ ही सब लोगों ने कोलाहल करना आरम्भ कर दिया और दुष्ट लोगों ने पत्थर कंकर फेंकने आरम्भ किये परन्तु कोतवाल ने खिड़की बन्द कर दी और स्वयं सामने आकर पुलिस कान्स्टेबिलों से बदमाशों को हटवा कर वहीं बाग की एक कोठरी में स्वामी जी को बिठाकर पहरा लगा दिया ।'

मूर्तिपूजा के निषेध का तथा पञ्चमहायज्ञों के करने का मुख्य उपदेश था—उसके पश्चात् एक मास के लगभग स्वामी जी यहां रहे और बराबर खंडन करते रहे । लागों ने कह दिया कि जो उनके सामने जायेगा और मुंह लगेगा वह पापी और पतित होगा । इससे लोग कम आने लगे परन्तु स्वामी जी निरन्तर खंडन-मंडन करते रहे । उस समय मुख्य उपदेश उनका यह था कि मूर्तिपूजा नहीं करनी चाहिए पंचमहायज्ञ की शिक्षा देते थे ।

पान में विष देने की कुचेष्टा—इस पहली बार में एक दिन कोई उनके पास भोजन लाया । स्वामी जी उस समय भोजन पा चुके थे । उसने कहा कि यदि भोजन नहीं खाते तो पान का बीड़ा लीजिये । स्वामी जी ने हाथ में लिया और खोला जिस पर वह उठा और भागा क्योंकि उसमें विष था । उसको परीक्षणार्थ अस्पताल भेजा गया, वहां भी विष सिद्ध हुआ ।

काशी शास्त्रार्थ का एक वकील द्वारा आंखों देखा विस्तृत वर्णन

पंडित हृदयनारायण जी, वकील कानपुर, वर्णन करते हैं कि 'स्वामी जी काशी के विषय में कहते थे कि किसी ब्राह्मण ने हमको पान में विष दे दिया था और काशी नरेश ने स्वामी जी को रामलीला देखने के लिए बुलाया था । स्वामी जी ने उत्तर में कहला भेजा कि यह लौंडेबाजों का काम है; संन्यासियों का धर्म नहीं । इस पर काशी-नरेश क्रुद्ध हुए थे ।

कंकड़ों जितने शंकरों से लदी काशी मे वैदिक ध्वनि गुंजाने की उमंग—'वास्वतिक शास्त्रार्थ जो हुआ वह पृथक् पुस्तक रूप में मिलता है, परन्तु हम यहां उसका कुछ ठीक और वास्तविक वृत्तांत बतलाते हैं । विदित हो कि २१ सितम्बर, सन् १८६९ को स्वामी जी रामनगर में आये और रामलीला के मेले में सत्यधर्म का उपदेश दिया । प्रतिमा पूजन का इतना खंडन किया कि सारे मेले में धूम मच गई । सैकड़ों लोगों से धर्मसम्बन्धी वार्तालाप हुआ । कई पण्डित लोगों ने सामना किया परन्तु न कोई मूर्तिपूजा को सिद्ध कर सका और न नवीन सम्प्रदायों-वैष्णव, शैव, गणपति के लिए प्रमाण दे सका । पूरे एक मास तक इस विचार से वहां असत्य का खंडन किया कि काशी में जितने कंकड़ हैं उतने ही शंकर माने जाते हैं । स्वयं महादेव को काशी का स्वामी या राजा, ढोंढीराज गणेश को काशी का कोतवाल और भैरव अथवा लाटभैरव को उसका रक्षक कल्पित किया जाता है और जितने मन्दिर अथवा मूर्तियां बनारस में हैं, उतने कदाचित् भारतवर्ष के कई बड़े नगरों में मिलकर भी न होंगे । कोई गली, कोई बाजार अथवा कोई मार्ग इनसे रहित नहीं है यहां तक कि नालियों में भी शिवलिंग और शिवालय बने हुए हैं, और यहां संस्कृत का भी बड़ा प्रचार है : पण्डितों को अपनी योग्यता का बड़ा अभिमान है । पहले एक बार संवत् १९२२ में वे हमारे विरुद्ध व्यवस्था भी दे चुके हैं जिसको देखकर स्वामी जी ने उसी समय कह

दिया था, "ज्ञातं काशीस्थानां पाण्डित्यम्" अर्थात् मैंने काशी के पण्डितों की विद्यासम्बन्धी योग्यता जान ली, ऐसा ही वहां शास्त्रार्थ होगा। स्वामी जी के हृदय में बड़ा उत्साह और बड़ी उमंग थी कि काशी में वैदिक-धर्म की ध्वनि पहुंचाई जाये और वहां के पण्डितों को सत्यमार्ग बतलाया जाये। इसी महान् निश्चय को पूर्ण करने के लिए २ या ३ कार्तिक, संवत् १९२६, तदनुसार २२ या २३ अक्तूबर के दिन बनारस के आनन्दबाग में पधारे और नियमपूर्वक पण्डितों से शास्त्रार्थ का निश्चय किया। प्रतिदिन वे आनन्दबाग में मूर्तिपूजा आदि वेदविरुद्ध विषयों का खंडन करने लगे। बनारस और मूर्तिपूजा का खंडन, काशी और प्रतिमाओं का विरोध, विश्वनाथपुरी और पाषाणपूजा के विरुद्ध भाषण और वह भी एक संन्यासी संस्कृत के धुरंधर विद्वान् के मुख से ! (यह सब देखकर) अविद्या की नदी उफनने लगी, असभ्यता के समुद्र में ज्वारभाटा आने लगा कोई कुछ, और कोई कुछ पुकारता था। अन्त में कार्तिक शुदि १२, मंगलवार, को शास्त्रार्थ की ठहरी।

विश्वनाथ, ढोंढीराज, लाटभैरव एक ओर और उनके साथ तैंतीस करोड़ देवता सहायता को उपस्थित और केवल यही नहीं कि ये कल्पित देवता ही, प्रत्युत जीवित देवता ब्राह्मण भी २०-२५ हजार के लगभग, शास्त्र तथा शस्त्र से सहायता को उद्यत; महाराजा काशी नरेश भी तन-मन-धन से हितचिन्तक; धन, बल, विद्या, समूह तथा पुरातन रूढ़ियों को साथ लेकर सारे तीन-चार सौ पण्डित शास्त्रार्थ में उपस्थित। और फिर शास्त्रार्थ भी कैसा ! जिसमें आजीविका का भय, सदा से धनहरण करने वाली जातियों की सम्पत्ति छिनने की आशंका और दूसरी ओर सामना करने के लिए केवल एक निर्धन, सर्वसाधनहीन संन्यासी-स्वामी दयानन्द सरस्वती। मूर्तिपूजा अपना सारा बल जितना कि वह रखती थी, देवता अपनी समस्त शक्ति जितनी कि उनमें थी, काशी के पंडित सारे पुराणोक्त महात्माओं के शक्तिशाली धनुषबाण, प्रत्युत विष्णु का कल्पित सुदर्शन चक्र साथ लेकर पूरे तन-मन के साथ सामना करने के लिए आये। विवाद का वास्तविक विषय मूर्तिपूजा था। समस्त काशी के पण्डितों की सहायता से पण्डित ताराचरण नैयायिक भट्टाचार्य्य[१०], स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती, बालशास्त्री, पण्डित शिवसहाय, माधवाचार्य, वामनाचार्य—छःओं सज्जन बारी बारी और बिना बारी, नियमपर्वूक तथा बिना नियम के बोलते रहे। वास्तविक बात का तो कोई उत्तर न दिया प्रत्युत स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि 'वेद में मूर्तिपूजा है या नहीं परन्तु जो केवल वेद को मानता है, उसे हम क्या कहें ?' न तो कोई श्रुति मूर्तिपूजा के प्रमाण में निकली और न आवाहन का कोई मन्त्र ही दिखा सके और न परमात्मा के साकार होने का कोई प्रमाण दिया गया। पाठकगण ! विचार कीजिये न केवल बनारस, काशी ही प्रत्युत विश्वनाथपुरी, महाराजा काशी के सामने साढ़े तीन सौ पण्डित प्रत्युत काशी के समस्त पण्डित, १५ दिन से वेदों की खोज करने वाले और जीवन भर के मूर्तिपूजक; शास्त्रार्थ में कोई मन्त्र वेद का मूर्तिपूजा के प्रमाण में उपस्थित न कर सके और न एक-आध ऋचा ही निकाली ! अब बतलाइये कि मूर्तिपूजा कितनी अनुचित, असंभव और वेदविरुद्ध सिद्ध हो गई और उसका करने वाला कितना "नास्तिको वेदनिन्दकः" कहलाने का अधिकारी हुआ।

एक के बाद एक, पंडित हारते गये !

"जब पण्डित ताराचरण मूर्तिपूजा का कोई प्रमाण न दे सके तो विशुद्धानन्द जी ने प्रथम तो प्रकरणविरुद्ध जगत् के कारण और व्यास के सूत्र पर शास्त्रार्थ छेड़ा और उस पर भी, जब स्वामी जी ने विशुद्धानन्द जी से धर्म का स्वरूप पूछा तो (उन्होंने) कोई भी उचित तथा प्रमाणयुक्त उत्तर न दिया। जब उनसे उत्तर न आया तो तीसरे बालशास्त्री कूद पड़े कि हम विद्वान् हैं, हमसे आप धर्मशास्त्र का प्रश्न करें। स्वामी जी ने जब उनसे अधर्म का स्वरूप पूछा तब वह भी मौन हो गये। पहली पराजय, दूसरी पराजय फिर तीसरी पराजय खाई। अब क्या था, किसी के भी होशहवास ठिकाने न रहे; सुध-बुध भूलकर बहुत से पण्डितों ने एक साथ वार किया अर्थात् मिलकर प्रश्न किया कि प्रतिमा शब्द वेद में है या नहीं ? खेद है उनकी योग्यता पर, जिन्हें यह भी विदित नहीं कि प्रतिमा शब्द वेद में है या नहीं ! और फिर अविद्या की बड़ी अन्य बात यह है कि केवल शब्द आ जाने से क्या तात्पर्य (निकलता) है ? यह भी स्वामी जी ने बतलाया। चूंकि वे लोग ब्राह्मणों को भी

वेद बतलाते थे, इसलिए (स्वामी जी ने) दुर्जनतोष न्याय से उन्हीं में से प्रतिमा शब्द बतलाया (जो सामवेद के ब्राह्मण में विद्यमान है) यद्यपि यजुर्वेद संहिता अध्याय ३२, मंत्र ३ में भी यह शब्द आया है परन्तु शब्द (आ जाने) से क्या ? वहां तो, स्पष्ट मूर्ति का खंडन लिखा हुआ है ।[११] अन्त में (उन लोगों ने) महा-अविद्वानों की भांति कैसी भद्दी युक्ति दी अथवा प्रश्न किया कि जब प्रतिमा शब्द वेद में है तो आप खण्डन कैसे करते हैं ? तब स्वामी जी ने कहा कि प्रतिमा शब्द आ जाने से पाषाणपूजा का प्रमाण नहीं होता । अन्त में स्वामी जी ने उनके अनुरोध पर प्रतिमा शब्द और उस वाक्य का अर्थ किया जिससे लेशमात्र भी मूर्ति का सम्बन्ध सिद्ध न हुआ और परमेश्वर की प्रतिमा का तो उसमें कोई सम्बन्ध ही नहीं सिद्ध हुआ । स्वामी जी इससे पहले बीसियों बार फर्रूखाबाद आदि में इस वाक्य का ठीक अर्थ कर चुके थे । जब उस वाक्य का स्वामी जी ने अर्थ किया तो उसमें दो-तीन शंकाएं बालशास्त्री ने कीं । उन्होंने सबका समाधान कर उसका सन्तोष किया । जब वह शान्त हुए तो पंडित शिवसहाय ने कुछ आक्षेप किया । इस पर स्वामी जी ने जब यह कहा कि यदि आपने वह प्रकरण देखा है तो पूर्वापर का विचार करो । फिर क्या था वह मौन साध गये, अन्त तक न बोले ।

इस दूसरी पराजय के पश्चात् दोनों विषयों को छोड़कर स्वामी विशुद्धानन्द जी बोले कि वेद किस ईश्वर से प्रसिद्ध हुए ? स्वामी जी ने इसका तो वह उत्तर दिया कि उन्हें अपना सारा मीमांसाज्ञान भूल गया । यद्यपि मुख से न कहा कि हम निरुत्तर हो गये परन्तु बुद्धिमान् लोग सब कुछ स्वयं समझ गये । दूसरा प्रश्न यह किया कि वेद और ईश्वर में क्या सम्बन्ध है ? इसका उत्तर प्राप्त करने के पश्चात् फिर तीसरा प्रश्न किया जब मन में ("ख") की उपासना का निर्देश है और सूर्य में भी ऐसा ही निर्देश है तो फिर शालिग्राम का पूजन भी ग्रहण करना चाहिये । परन्तु धन्य है शास्त्रार्थ समर का वह वीर ! तत्काल बोला जैसा "मनो ब्रह्मेति उपासीत्", "आदित्य ब्रह्मेति उपासीत्"—ये दोनों वचन तो उन ब्राह्मणग्रन्थों में लिखे हैं, इसलिए किस प्रकार शालिग्राम का ग्रहण हो सकता है ? इस पर विशुद्धानन्द जी ने फिर कुछ न कहा और यह तीसरी पराजय ऐसी खाई कि फिर मूर्तिपूजा का नाम न लिया । अब इन पूर्वोक्त पराजित व्यक्तियों में से तो कोई न बोला, भला वे बोल भी कैसे सकते थे ! परन्तु एक और पण्डित माधवाचार्य जी एक मंत्र बोले और पूछा कि इसमें (पूर्ति) से किसका ग्रहण है ? स्वामी जी ने कहा कि बावड़ी, कुंआ, तालाब और बाग का । माधवाचार्य ने कहा कि पाषाणादि मूर्ति का क्यों नहीं ? स्वामी जी ने कहा कि न तो पाषाण की मूर्ति में पूर्ति[1] बन सकती है और न यह उचित है; यदि सन्देह हो तो इस मंत्र का निरुक्त और ब्राह्मण देख लीजिये । (अब वे) इसको भी छोड़ और मूर्ति से अपनी पूर्ति करके पुराण की ओर चले । प्रथम यह पूछा कि यह शब्द वेद में है या नहीं ? स्वामी जी ने कहा है—तो बहुत स्थानों पर, परन्तु कहीं भी उससे भागवत या ब्रह्मवैवर्त आदि का ग्रहण नहीं । इसी पर बीच में विशुद्धानन्द जी बोले, उनको भी यथार्थ उत्तर दिया गया । अन्त में पुराण शब्द पर बातचीत होते-होते सात बज गये । नवम्बर का महीना था, अन्धकार हो गया था । तब माधवाचार्य ने गृह्यसूत्र के दो हस्तलिखित पत्रे वेद के नाम से निकाले और पूछा कि यहां पुराण शब्द किसका विशेषण है ? स्वामी जी ने कहा कि कैसा वचन है, पढ़िये । तब माधवाचार्य ने पढ़ा । स्वामी जी ने कहा कि यहां पुराण ब्राह्मण का विशेषण है । तब बालशास्त्री आदि नियमविरुद्ध बोल उठे । जब स्वामी जी ने उत्तर दिया तो फिर विशुद्धानन्द जी बोल पड़े; स्वामी जी ने उनका भी समाधान किया और उपनिषद् का प्रमाण दिया । एक बार वह फिर बोले-स्वामी जी ने उसी पहले प्रमाण की पुष्टि में फिर दूसरा प्रमाण दिया, "इतिहासपुराण: पंचमो वेदानां वेद: ।" इस पर वामनाचार्य ने कहा कि ऐसा पाठ वेद में नहीं है । इस पर स्वामी जी ने उन पंडितों के मतानुसार जो उपनिषदों को वेद के अर्थ में लेते थे, कहा कि यदि वेद मे यह पाठ न हो तो हमारी पराजय और यदि लिखा हो तो तुम्हारी पराजय समझी जावे, यह प्रतिज्ञा लिखी । इस पर सब मौन हो गये और बहुत लज्जा अनुभव की ।

---

1. परितृप्ति अथवा परिपूर्ण सिद्धि —सम्पा० ।

इस चौथी पराजय के पश्चात् स्वामी जी ने उनकी विद्या की परीक्षा करने के लिए उनको एक खुला चैलेंज दिया अर्थात् कहा कि व्याकरण जानने वाले कहें कि व्याकरण में कहीं कल्म संज्ञा की है या नहीं ? बालशास्त्री बोले परन्तु क्या बोले, इससे तो यह अच्छा था कि न बोलते और एक तरफा डिगरी (एकपक्षीय निर्णय) होने देते; अपनी विद्या की योग्यता (सब प्रकार के आक्षेपों से) सुरक्षित रहने देते । सारांश यह कि कुछ भी न कह सके और जैसे बोलने के लिए उद्यत हुए थे वैसे ही चुप बैठ गये ।

अब धूर्तता का समय आ गया : बिना प्रकरण और बिना कारण के गृह्यसूत्र के दो पन्ने, 'ये वेद के हैं; कहते हुए निकाले गये और माधवाचार्य ने उन्हें सभा में पण्डितों के मध्य में रख दिया और कहा कि यहां 'यज्ञ के समाप्त होने के पश्चात् दसवें दिन पुराण का पाठ सुने' ऐसा लिखा है ।[९२] यहां पुराण शब्द किसका विशेषण है ? यह पन्ने उठाकर स्वामी विशुद्धानन्द ने[९३] स्वामी जी के हाथ में दिये । घर के भीतर सायं समय, लैम्प का कोई प्रबन्ध नहीं, यदि है तो एक धुंधली लालटेन; वह भी पोप जी के हाथ में, उसके विचारने में अधिक से अधिक पांच पल व्यतीत हुए होंगे । स्वामी जी यह उत्तर देना चाहते थे, कि पुरानी (प्राचीन) जो विद्या है उसको पुराण-विद्या कहते हैं और वह पुराणविद्या वेद है, न कि यह १८ पुराण, क्योंकि और पुस्तकों में ऐसे स्थान पर विशेष नाम लेकर ऋग्वेद आदि लिखा हुआ है, उपनिषदों का (नाम) नहीं । इसलिए यहां उपनिषदों की ब्रह्मविद्या का उल्लेख है । वेद में पुराण शब्द के साथ १८ की संख्या नहीं आई । इसी कारण यह (प्रमाण) अग्राह्य तथ अमान्य है' कि स्वामी विशुद्धानन्द जी उठ खड़े हुए कि हमको विलम्ब होता है (लगभग भांग पीने या अफीम खाने में विलम्ब होता होगा ! अन्यथा कौन सा आप भाषण करते अथवा ब्रह्मध्यान में लगे रहते हैं ।) उनके इस प्रकार कहने से सबके सब उठ खड़े हुए और कोलाहल करते हुए इस अभिप्राय से चले गये कि किसी न किसी प्रकार स्वामी जी की पराजय प्रसिद्ध हो जावे; परन्तु एक संसार जानता है कि सत्य की विजय होती है न कि असत्य की । देखिये, यहां पूर्णतया प्रकट है कि सारी काशी एक ओर और अकेला स्वामी एक ओर, किसी भी प्रश्न का उत्तर पण्डितों से न बन पड़ा और मूर्तिपूजा, आवाहन, अवतार, ईश्वर के साकार होने को वे सर्वथा न सिद्ध कर सके और न प्रलयकाल तक सिद्ध कर सकेंगे ।'

काशी शास्त्रार्थ के विषय में तत्कालीन समाचारपत्रों की समीक्षा

'तत्त्वबोधिनी' मासिक पत्रिका में 'नई पुस्तक समालोचना' स्तम्भ के अन्तर्गत 'शास्त्रार्थ' व 'सत्यधर्मविचार'[९४] की आलोचना—'दयानन्द सरस्वती नामक किसी दिगम्बर संन्यासी का काशी के पंडितों से विचार हुआ था । एक दिन प्रश्नोत्तर समेत जो उपदेश दिया था वही उपदेश मुंशी हरबंसलाल की सम्मति से गोपीनाथ पाठक ने पुस्तकाकार में बनारस लाइट यन्त्रालय में मुद्रित किया है । यह संस्कृत भाषा में रचित है और हिन्दी भाषा के अनुवाद सहित प्रकाशित हुआ है ।'

शास्त्रार्थ की पुस्तक (प्रथम भाग) का विचार—काशी में जिस प्रकार विचार हुआ था उसी प्रकार विस्तार पूर्वक इसमें लिखा है । दयानन्द सरस्वती बोले कि पाषाणादि निर्मित प्रतिमा का पूजन, शैव, शाक्त इत्यादि बहुत से सम्प्रदाय और रुद्राक्ष, माला प्रभृति तथा रेखा, तिलक आदि के धारण करने का विधान वेद में बिलकुल नहीं मिलता । वेदविरुद्ध आचरण और वेद में जिसकी विधि नहीं है उसका अनुष्ठान करना महापाप का कारण है । वर्तमान काशीराज के उद्योग से नाना देश के पण्डितों ने उक्त मत का खंडन करने के लिए आपस में विचार किया किन्तु पुस्तक के पढ़ने से विदित होता है कि कोई पण्डित वेद से प्रतिमापूजा प्रभृति व्यवस्थाओं का प्रवर्तन (सिद्ध) कर स्वामी जी को परास्त न कर सका । इससे स्वामी जी को सब से बड़ा वेद जानने वाला पंडित कहके मानना चाहिये ।

किन्तु पुस्तक के पढ़ने से एक विषय में इस स्थान पर उनकी वितंडा (मिथ्या तर्क) प्रतीत होती है अर्थात् इसमें कोई संदेह नहीं है कि वेद के समय में एक प्रकार के पुराण प्रचलित थे, और वेद पढ़ने से यह विदित होगा कि वे सब पुराण वेद के अन्तर्गत हैं । परन्तु स्वामी जी ने बुद्धि की चतुरता से पुराणों का होना ही लुप्त कर दिया ।

'सत्यधर्म विचार' नाम के दूसरे भाग में—प्रश्नोत्तर रूप से सत्योपदेश दिया है, उससे बहुत-सी उत्कृष्ट बातें विदित हुईं। स्वामी जी उसमें स्त्रियों के लिए न्यून से न्यून १५ वर्ष की अवस्था में ब्याह देने की व्यवस्था देते हैं और 'कुमार्यावस्था में रजस्वला होने से माता-पिता पापी होते हैं—यह जो लोगों का संस्कार है इसका वह खंडन करते हैं (यह भी उत्कृष्ट है) किन्तु वे भ्रम के वश हो, देवर द्वारा क्षेत्रज सन्तानोत्पत्ति करने की बहुत बुरी व्यवस्था प्रदान करते हैं। कोई शास्त्र सम्पूर्ण प्रमाण है और कोई शास्त्र समस्त अप्रमाण है', उनका यह जो संस्कार है इसी से उनकी यह भूल हुई है।' (तत्त्वबोधिनी मासिक पत्रिका; ज्येष्ठ मास, संवत् १७९२, सं० ३२१, पृष्ठ ३६)।

फिर दुर्गा उत्सव के विषय में वर्णन करते हुए लिखा है—कहां से दुर्गा की उत्पत्ति हुई और हम लोगो का जो आदि ग्रन्थ वेद है और ब्राह्मण का जहां तक हमने पाठ किया है उसमें 'दुर्गा' शब्द के नाम की गन्ध नहीं। वेद का जैसा आशय है उससे यह सिद्धान्त निकलता है कि दुर्गा शब्द की वैदिक ऋषियों में कल्पना तक भी नहीं हुई थी। उस समय दयानन्द सरस्वती नामक एक वेदज्ञ संन्यासी ने काशी आदि देशों (स्थानों) में आकर (जाकर) उच्चस्वर से कहा था कि वेद में प्रतिमापूजन की विधि नहीं है। इसी विषय में काशीराज की सभा में काशी के निवासी और अन्य देशों (स्थानों) के वासी अनगिनत शास्त्रज्ञ पंडितों की सभा हुई थी, परन्तु कोई पंडित भी वेद से प्रतिमापूजन का प्रमाण नहीं दिखला सका था। (तत्वबोधिनी, आसौज मास, सं० ३२५, पृष्ठ ९५, सवंत् १७९२ शालिवाहन)।

कोई अन्तिम निर्णय न होने पर जिज्ञासुओं को दुःख हुआ—समाचार पत्र 'सहीफये आलम' मेरठ, २ दिसम्बर, सन् १८६९ के अन्तिम पृष्ठ में 'शास्त्रार्थ' शीर्षक से एक पत्र छपा है जिसमें उसने एक मूर्तिपूजक के झूठे वक्तव्य का इस प्रकार खंडन किया है-'समाचारदाता ने यह विषय अपने मन से घड़ा है; वह इससे परिचत नहीं कि मूर्तिखंडक दयानन्द सरस्वती का महाराजा साहब ने बड़ा आदर-सत्कार किया, भोजन तथा आतिथ्य का प्रबन्ध महाराजा साहब की ओर से हुआ और धार्मिक शास्त्रार्थ की सभा में स्वयं महाराजा साहब पधारे। जब काशी के पण्डितों ने प्रश्नों के पर्याप्त (संतोषजनक) उत्तर पाये तो लड़ाई पर उद्यत हुए। उस समय गुसांई जी[९५] ने जान-बूझकर मौन धारण किया। इस मौन पर बनारस वालों ने ताली बजाई और बात-चीत पर कोलाहल मचाया। महाराजा साहब और परमहंस जी ने बहुत कुछ रोका[९६] परन्तु वहां सर्वत्र गड़बड़ थी। किसी ने न सुना, प्रत्येक व्यक्ति 'विजय' 'विजय' कहता हुआ अपने घर लौटा। साधारण जनता की यह दशा थी परन्तु जिज्ञासुओं को निर्णय न होने का दुःख था।'

२४ नवम्बर, सन् १८६९ के अंगेजी समाचारपत्र **'पायोनियर'** में एक पत्र प्रकाशित हुआ है उसका लेखक भी इस बात की शिकायत करता है कि ऐसे विषय के उत्तर के लिए समय देना आवश्यक था। **'रोहेलखंड समाचार'** पत्र ने भी कुछ वृत्तांत प्रकाशित किया है कि 'दयानन्द स्वामी सरस्वती जी, जो मूर्तिपूजा का निषेध करते हैं और जिनका कानपुर के पंडितों से भी शास्त्रार्थ हुआ था, काशी के पंडितों को उन्होंने जीत लिया और काशी के पंडितों ने व्यर्थ ही अपनी विजय को प्रकट किया' (नवम्बर मास, सन् १८६९)।

वेद से मूर्तिपूजा सिद्ध नहीं कर सके—इस शास्त्रार्थ के विषय में, **'ज्ञानप्रदायिनी पत्रिका'**[९७] संख्या ४, खंड ५, अप्रैल मास, सन् १८७० तदनुसार चैत, संवत् १९२७, मुद्रित मित्रविलास लाहौर के पृष्ठ ६० पर लिखा है—**'मूर्तिपूजा'** काशी जी में एक संन्यासी दयानन्द सरस्वती आये हैं, जिनका मत यह है कि मूर्तिपूजा की आज्ञा वेदों में नहीं है। यही नहीं, प्रत्युत मूर्तिपूजा वेदविरुद्ध है। इसी प्रकरण में काशी के पंडितों से उन्होंने शास्त्रार्थ भी किया था जिसका वर्णन 'सत्यधर्मविचार' नामक पुस्तक में लिखा हुआ है। इस पुस्तक की एक प्रति निम्नलिखित पत्र के साथ हमारे पास पहुंची और हम पत्र तथा पुस्तक भेजने वाले के आभारी हुए। संन्यासी जी का शास्त्रार्थ 'प्रत्नकम्रनन्दिनी'[९८] नामक पत्रिका में प्रकाशित हुआ है। उक्त पुस्तक तथा पत्रिका के वर्णनों में परस्पर कुछ विरोध पाया जाता है। यह बात तो दोनों से प्रकट है कि काशी के पण्डितों और संन्यासी जी की परस्पर बातचीत में अधिकतया व्यर्थ बातों पर शास्त्रार्थ हुआ परन्तु इसमें

सन्देह नहीं कि प्रतिमापूजन की आज्ञा वेदों से पंडित सिद्ध नहीं कर सके। मूर्तिपूजा का प्रारम्भ अधिकतर पुराणों के काल से है। पुराणो में जैसी असंख्य प्रकार की पूजाओं की आज्ञा है और वेदों में जो प्रथाएं लिखी हैं इन दोनों में परस्पर बड़ा अन्तर है। पुराणों मे भिन्न-भिन्न देव, देवी, अवतार आदि की पूजा फूल, चन्दन, नैवेद्य आदि के साथ लिखी है जिसका वेदों में चिह्नमात्र भी नहीं है। वेदों में सूर्य, अग्नि, इन्द्र अर्थात् अभ्र, मरुत् अर्थात् वायु, वरुण अर्थात् जल आदि प्राकृतिक पदार्थ, जिनमे उस परमात्मा की शक्ति तथा तेज का प्रकटीकरण है, उनसे प्रार्थना और सोमरस तथा हवन के मन्त्र ही भरे हुए हैं। वेदों का एक भाग, जो उपनिषद् है, उसमें अधिकतर ब्रह्मज्ञान का वर्णन है। इसलिए वेदों से मूर्तिपूजा का सिद्ध करना कठिन है। इसलिए इस विषय में दयानन्द सरस्वती जी का कथन पक्का तथा ठीक है परन्तु उनका यह कहना कि वेद और मनुस्मृति ही निर्भ्रान्त हैं, उनके अतिरिक्त और सब शास्त्र भ्रान्तियों से युक्त हैं, हमारे विचार में अशुद्ध है। जैसे वेद तथा स्मृति हैं वैसे ही और पुराण आदि शास्त्र हैं। उनमें केवल काल की दूरी है और इसलिये वेद की उपासना, रीति, प्रथा कहावत आदि का पुराणों की उपासना, रीति तथा प्रथा आदि से बड़ा अन्तर है। इस बात को सिद्ध करने के लिए कि वेदों में जो इन्द्र आदि शब्द हैं उनसे अभिप्राय परमात्मा से है, वेदान्त दर्शन[1] में भी बड़ा यत्न किया गया है परन्तु जो लोग वेदों के जानने वाले हैं और पक्षपात से शून्य हैं, वे समझ सकते है कि इन्द्र अर्थात् बादलों का देवता, सूर्य, अग्नि आदि प्राकृतिक पदार्थों को ही वेद के ऋषि ब्रह्म या परमेश्वर जानकर पूजते थे। इसी कारण उनकी प्रार्थनाओं में उनके शारीरिक तथा ईश्वरीय, दोनों प्रकार के गुणों का वर्णन है। (पृ० ६०-६२)।'

सम्पादक के नाम प्रेषित पत्र—मुगलसराय के एक सज्जन ने निम्नलिखित पत्र समाचार पत्र के सम्पादक को लिखा था-'सेवा में श्रीमान् प्रबन्धकर्ता ज्ञानप्रदायिनी पत्रिका। निवेदन है कि इस देश में आप वेद तथा प्राचीन उपनिषदों के उद्धरण प्रायः दिया करते हैं; इसलिए 'सत्यधर्म' नामक एक छोटी पुस्तक आपकी सेवा में मैंने भेजने का साहस किया। इस पुस्तक के अवलोकन से आपको विदित होगा कि इस समय बनारस नगर मे एक संन्यासी, जिनका प्रसिद्ध नाम दयानन्द सरस्वती है, पधारे हैं और यहां के पंडितों के साथ धार्मिक शास्त्रार्थ में संलग्न हैं। यह सज्जन वेद के जानने वाले हैं; केवल वेद और मनुस्मृति को निर्भ्रान्त मानते हैं और पुराण आदि शास्त्रों को नवीन और कृत्रिम समझकर कहते हैं कि इन शास्त्रों का जो धर्म है वह ग्रहण करने योग्य नहीं। इन महापुरुष का दर्शन प्राप्त करके हम लोगों को अत्यन्त प्रसन्नता हुई।'

काशीराज की सभा में यहां के पण्डितों ने उनको तंग किया; इसलिए उनके साथ शास्त्रार्थ करना उन्होंने स्थगित कर दिया, परन्तु एक सूचना इस विषय की उन्होंने प्रकाशित की कि वेदों में मूर्तिपूजा की कहीं आज्ञा नहीं। ईश्वर की कोई कल्पित मूर्ति बनाने से बड़ा पाप होता है और उस सर्वव्यापक परमात्मा की निन्दा होती है। इस विषय में यदि किसी को शंका हो तो दयानन्द के समीप आकर अपनी बात को सिद्ध करे, परन्तु आज तक उसका उत्तर कोई नहीं दे सका। उपर्युक्त संन्यासी महोदय का धर्म साधारणतया ब्राह्मधर्म के साथ मिलता है। संसार का त्याग करके उन्होंने दृढ़ निश्चय किया है कि यदि कोई राजा अथवा कोई धनवान् सज्जन वेद पढ़ने के लिए एक पाठशाला स्थापित करे तो यह सनातन वेदों के वास्तविक अर्थों को प्रकट करेंगे जिससे हिन्दूजाति से मूर्तिपूजा समाप्त हो सकती है। यह संन्यासी महोदय विशेषतया इसी अभिप्राय से समस्त नगरों में घूम रहे हैं कि इस देश के समस्त मनुष्य एक परमेश्वर के उपासक हों। उनका विस्तृत वृत्तांत अन्य समाचारपत्रों से प्रकट हुआ होगा, अतः इस पत्र में अधिक लिखना व्यर्थ है। हे सम्पादक महोदय ! मैं पहले यह समझा था कि वेदों में बहुत से देवताओं तथा देवियों की उपासना का विधान है परन्तु दयानन्द जी के किये हुए इन्द्र आदि शब्दों के अर्थ सुनने से मुझे विदित हुआ कि यह सब शब्द एक परमेश्वर के ही नाम हैं; उसका अर्थ इन्द्रादि देवता नहीं है। परन्तु काशी में जो लोग वेद पढ़ते हैं उन्हें इन शब्दों का अर्थ इसके विपरीत बताया जाता है। काशी के समस्त पंडित उपर्युक्त

1.प्रतीत होता है कि बाबू नवीनचन्द्र जी (पत्रिका-संपादक) अपने आपको व्यास से भी अधिक वेदज्ञ समझते होंगे; अन्यथा ऐसा न कहते।

सरस्वती महोदय को बुद्धिपूर्वक युक्तियों द्वारा वेद से मूर्तिपूजा के उचित होने का प्रमाण नहीं दे सके (यही नहीं) सरस्वती जी के साथ संस्कृत-संभाषण में भी वे अपने को उनसे अधिक योग्य सिद्ध न कर सके । सरस्वती जी संस्कृत के अतिरिक्त यहां की अन्य कोई भाषा नहीं बोल सकते परन्तु ऐसी सरल संस्कृत बोलते हैं कि हम लोग उनकी समस्त बातों को समझ सकते हैं । यह महोदय दंडियों (वेदान्ती साधुओं) के विरुद्ध भी एक और पुस्तक लिख रहे हैं ।[९९] काशी के सब दंडियों का यह कथन है **'पूर्णोऽहम् सच्चिदानन्दोऽहम्'** अर्थात् मैं पूर्ण और सच्चिदानन्द हूं । दयानन्द सरस्वती जी उनकी इस मूर्खता का खंडन करके यह सिद्ध करते हैं कि महात्मा शंकराचार्य जी का, जिनके दंडी लोग अनुयायी कहलाते हैं, कदापि यह मत न था । शंकराचार्य जी ने ईश्वर की एकता को सिद्ध किया अन्यथा उनके कथन का यह अर्थ नहीं कि 'समस्त संसार सत्य है, ब्रह्म के अतिरिक्त और कोई वस्तु है ही नहीं ।' इन दिनों जो लोग वेद के जानने वाले कहलाते हैं वह इसके विपरीत अर्थ करते हैं । इन संन्यासी जी से जैसा हमने सुना, उससे यह विदित होता है कि ब्राह्मधर्म ही प्राचीन ऋषियों का धर्म था और केवल वेद ही उनके धार्मिक ग्रन्थ थे । ऐसा प्रतीत होता है कि राजा राममोहन राय वेदों के वास्तविक अर्थों से परिचित थे, इसीलिए उन्होंने वेद और वेदान्त को भ्रान्ति से रहित समझा था ।

लेखक, मुगलसराय (पृष्ठ ५७-६० तक) ।

प्रसिद्ध विद्वान् कैलाशपर्वत जी कहते हैं—'जब स्वामी जी का काशी में पहला शास्त्रार्थ, संवत् १९२६ वाला हो चुका उसके पश्चात् हम काशी में आये । वृत्तांत सुनकर हमने कहा कि काशी के पंडितों ने बड़ी धूर्तता की । स्वामी जी का विद्या से सामना करना चाहिए था । यहां उनका धूर्तता करना उनका अपयश और दयानन्द जी का यश बढ़ायेगा ।'

पादरी ऐथरिंगटन साहब, मिशनरी बनारस, अपने 'भाषाभास्कर'[१००] में लिखते हैं—'संख्या ३०६ दयानन्द स्वामी जी से मेरा परिचय हुआ है, बुद्धिमान् शत्रु, बुद्धिहीन मित्र से उत्तम है (देखो, इसका अपादान कारक, पृष्ठ ८१, प्रकाशित अक्तूबर, सन् १८७१) ।'

साधु मायाराम परमहंस उदासी ने वर्णन किया कि 'जब स्वामी जी का काशी में शास्त्रार्थ हुआ तब हम कलकत्ता में थे । हमने एक साधु के मुख से सुना था कि बनारस में दयानन्द के साथ विशुद्धानन्द आदि ने सभ्यतापूर्वक शास्त्रार्थ नहीं किया, प्रत्युत धूर्तता की; जो बुरी बात है । एक बार हम एक ब्रह्मचारी के साथ आनन्दबाग में जहां दयानन्द जी उतरे हुए थे, विचरते हुए गए । हमारा विचार तो नहीं था परन्तु ब्रह्मचारी ले गया । उनके पास पहुंचकर ब्रह्मचारी ने प्रश्न किया कि 'शारीरक (भाष्य)[१०१] पर शंकर और रामानुजादि लोगों के भाष्य हैं, एक द्वैत दूसरा अद्वैत बतलाता है; हम किसको मानें ? स्वामी दयानन्द ने कहा कि दोनों का ही ठीक नहीं है; प्रत्युत भेद और अभेद दोनों हैं । ब्रह्म सर्वव्यापक है इसलिए अभेद है और ब्रह्म जीव नहीं, इसलिए भेद है । हमने आक्षेप किया कि फिर शंकर मत वाले जो अभेद मानते हैं अर्थात् जीव ब्रह्म की एकता; उनको क्या फल प्राप्त होगा ? उत्तर दिया कि चूंकि उनका निश्चय मिथ्या है, मिथ्या फल होगा । हम कोई और प्रश्न करना चाहते थे परन्तु ब्रह्मचारी ने चलने की इच्छा की । स्वामी जी संस्कृत के बड़े विद्वान् थे ।'

गोस्वामी घनश्यामदास जी, रईस मुल्तान ने वर्णन किया कि 'संवत् १९३८ के प्रयाग कुंभ पर हम गुसांई गोवर्धनदास, पंडित रामदेव जी तथा पंडित अनन्तराम जी के साथ जीवनगिरि जी प्रज्ञाचक्षु के घर पर गये । वह एक अच्छे विद्वान् और वेदान्तदर्शन में विशेषतया पूर्ण योग्य थे । सम्भवतः पंडित अनन्तराम जी ने प्रश्न किया कि महाराज वेद का अधिकार सब को है और साथ ही अध्याय २६ वाला मन्त्र पढ़ा ।[१०२] जीवनगिरि जी ने कहा कि इसका अर्थ यह नहीं है; प्रत्युत यह है कि यज्ञ में यजमान ऐसी वाणी कहे कि जो सबके कल्याण देने वाली हो ।[१०३] तब स्वामी जी के विषय में भी बात चली । जीवनगिरि ने कहा कि वह ब्राह्मण का लड़का था और पूर्णानन्द जी का शिष्य है । संस्कृत के बोलने और योग में उसकी बड़ी रुचि थी और खंडन मंडन में भी उसकी आरम्भ से रुचि थी और बड़ा चंचलबुद्धि था जिससे मुझे निश्चय हो गया कि वह वास्तव में ब्राह्मण थे और यह भ्रम दूर हो गया जो लोग प्रसिद्ध करते थे कि वह ईसाई है और ईसाई बनाने के लिए नियुक्त है ।

फिर हम काशी गये तो हमारे साथ गोस्वामी गोवर्धनदास तथा चांदोमल खत्री मुलतानी भी थे। हमें पंडित बालशास्त्री जी से मिलने की इच्छा हुई, हम उनके दर्शन को उनके घर पर गये। बातचीत के समय हमने पंडित जी से प्रश्न किया कि आपका और स्वामी जी का जो शास्त्रार्थ हुआ उसमें किसकी विजय हुई ? तब पंडित जी ने अत्यन्त मीठी वाणी में नम्रता से कहा कि हम गृहस्थ और वह यति संन्यासी, हमारे पूज्य हैं। उनका हमारा शास्त्रार्थ कहां बन सकता है ? फिर हमारी शान्ति हो गई, इन वचनों के सुनने से ही मुझे स्वामी जी पर पूरा विश्वास हो गया और समस्त झूठे सन्देह दूर हो गये।'

'प्रत्नकम्रनंदिनी' पत्रिका का अंक सं० २८, दिसम्बर, सन् १८६९ व संवत् १९२६ में प्रकाशित

पं० सत्यव्रत सामश्रमी[१०४] द्वारा लिखित शास्त्रार्थ का आंखों देखा विवरण

जिस समय यह शास्त्रार्थ हुआ तो उक्त पत्रिका के सम्पादक पंडित सत्यव्रत सामश्रमी यहां उपस्थित थे और अपनी नोटबुक में अपनी आंखों से देखा हुआ सारा वृत्तांत लिखते जाते थे। १६ नवम्बर सन् १८६९ को शास्त्रार्थ हुआ। 'प्रत्नकम्रनन्दिनी' पत्रिका के दिसम्बर, १८६९ के अंक में उसे प्रकाशित कर दिया गया। इस पत्रिका का अंग्रेजी नाम 'दि हिन्दू कॉमेण्टेटर' (The Hindu Commentator) था और संस्कृत भाषा में निकला करती थी। अब उन्होंने एक संस्कृतपत्रिका, 'उषा' नामक चालू की हुई है और एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता के पास सब से योग्य पंडित यही हैं।

संस्कृत	**हिन्दी**
दयानन्दो नाम साधुः, सद्धर्माविर्भविता, असद्धर्मपरिलोपनेह कृतसंकल्पः।	दयानन्द स्वामी एक साधु हैं कि जिन्होंने सत्यधर्म के प्रकाश से असत्य के दूर करने का बीड़ा उठाया है।
दयानन्दः स्वामी—स्वर्गादौ इन्द्रादयो देवाः सन्ति न वा !	**स्वामी द०**—स्वर्गादि में इन्द्रादि देवता हैं कि नहीं ?
विशुद्धानन्दः स्वामी—मन्त्रमय्यो देवताः (अस्पष्ट)	**वि० स्वा०**—वेदों के मन्त्र ही देवता हैं।[1] (काशीराज की भवें चढ़ गई)
द०—कथमुपासना तर्हि ?	**द०**—फिर उपासना किस प्रकार होगी ?
वि०—प्रतीकोपासना, शालिग्रामादौ।	**वि० स्वा०**—शालिग्रामादि की मूर्ति में।
वि०—एकस्य हि सामवेदस्यैव सहस्राः शाखाः, भवता सर्वा एव दृष्टाः किम् ?	**स्वा० वि०**—एक सामवेद[2] की हजार शाखाएं हैं क्या आपने सब देखी हैं ?

---

1. जिस समय स्वामी विशुद्धानन्द ने मन्त्र को देवता कहा काशी के राजा साहब ने समझा कि प्रतिमा का तो अपनी ही ओर से खंडन हो चुका, इससे चकित होकर उनकी भौंहें चढ़ गईं और जब विशुद्धानन्द जी ने उसके पश्चात् शालिग्राम में उपासना बतलाई तो और भी आश्चर्य किया।

2. देखिये प्रश्न क्या था और उत्तर क्या दिया ! किधर से किधर चले गये वह, प्रकरण ही छोड़ गये। इसी प्रकार प्रकरणान्तर में जाकर मूर्तिपूजा का खंडन-मंडन तो दूर रहा, क्या वेद ईश्वरीय ज्ञान है, इस विषय पर चलने लगे। तब स्वामी जी ने उनको एक दो प्रश्नों का उत्तर देकर टोक दिया कि प्रतिज्ञाविरुद्ध और विषयविरुद्ध जा रहे हो, यह शास्त्रार्थ का विषय नहीं। फिर विशुद्धानन्द जी ने वेदों के विषय में पूछा कि वेद और ईश्वर का क्या सम्बन्ध है ? स्वामी जी ने उत्तर दिया कि कार्य-कारण सम्बन्ध है ? विशुद्धानन्द जी ने कहा कि इस सम्बन्ध से वेद रह नहीं सकते। दयानन्द जी ने उत्तर दिया कि जो ईश्वर में कुछ भी नहीं रह सकता तो आकाश से किसी वस्तु का सम्बन्ध कैसे हो सकेगा, यह कहो ? इस पर विशुद्धानन्द जी बोले कि आकाश ही ईश्वर है क्या ? धन्य है, पाठक इस पर तनिक विचार करें।

दयानन्दः—श्रृणु-श्रृणु "सहस्त्रर्त्मा" सामवेदः सहस्त्रमार्गकः इति तस्यार्थः, संहिता तु सर्वत्र शाखासु एका एव ।

स्वा० द०—सुनो ! सुनो हजार शाखाओं से यह अभिप्राय है कि उसका हजार प्रकार से व्याख्यान किया है; परन्तु संहिता एक ही है ।

वि०—स एव ईश्वरः ।

वि० स्वा०—वही अर्थात् आकाश ही ईश्वर है ।

द०—(उपहस्य) हे ! स एव ईश्वरः । अलमनर्थविचारणेन यत्प्रकरणं तद्वद ।

स्वामी दयानन्द—(हंसकर) हां ! वही ईश्वर है । जिस बात का यहां सम्बन्ध नहीं उसकी चर्चा करना व्यर्थ है । यहां प्रतिमा पर शास्त्रार्थ चाहिये प्रतिमा का प्रमाण दो ।

वि०—(पृष्ठे दत्तवामहस्तः)[1] अरे ! बाबा ! तू अभी कुछ पढ़ा नहीं, कुछ दिन पढ़ !

वि० स्वा० (स्वामी जी की पीठ पर हाथ रखकर) अरे ! बाबा ! तू अभी कुछ पढ़ा नहीं, कुछ दिन पढ़ ।

दया०—(हस्तं बलाद्दूरीकृत्य) भवता सर्वं पठितम् ?

स्वा० द०—(उनके हाथ को बल से हटाकर) आपने सब कुछ पढ़ लिया है ?

वि०—(प्रहस्य) सर्वम् !

वि० स्वा० (हंसकर) हां, सब पढ़ लिया है ।

द०—(पुनः पुनः प्रत्युपदृश्य) किं व्याकरणमपि ?

स्वा० द०—(उनकी ओर मुख करके) क्या व्याकरण भी ?

वि०—तदपि ।

वि० स्वा०—हां, वह भी ।

द०—(रक्तेक्षणः) कल्मसंज्ञा कस्य ? (गर्जन्) वद ! वद ![2]

स्वा०—(लाल आंखें करके) कल्म संज्ञा किसकी है ? (गर्जकर) कहो ! कहो !

जब उनसे कुछ उत्तर न बन पड़ा तो बालशास्त्री जी ने देखा कि अब काशी की नाक नहीं रहती और महान् अपमान होता है तो वे अपने बड़े पंडित विशुद्धानन्द का सम्मान बनाये रखने के लिए मैदान में आ गये और बोले कि इसका उत्तर देता हूं । स्वामी जी ने कहा कि आप ही कहिये कि कल्मसंज्ञा किस की है ?

पं० बा० शा०—एकस्मिन् सूत्रे संज्ञा तु न कृता परन्तु महाभाष्यकारेणोपहासः कृत इति ।

तब बालशास्त्री ने कहा कि "संज्ञा तो नहीं की है परन्तु एक सूत्र में महाभाष्यकार ने उपहास किया है ।" उस पर स्वामी जी ने कहा कि "महाभाष्य के किस सूत्र में संज्ञा तो नहीं की और उपहास किया है, उदाहरण-प्रत्युदाहरण पूर्वक समाधान कहो ।"

दया०—कस्य सूत्रस्य महाभाष्ये संज्ञा तु न कृतोपहासः कृत इत्युदाहरणप्रत्युदाहरणपूर्वकं समाधानं वदेति ?

---

1. शास्त्रार्थ संस्कृत में और भाषा पर जा कूदे ! स्पष्ट प्रकट है कि मूर्तिपूजा का कोई किसी प्रकार का प्रमाण न दे सके और इस प्रकार धूर्तता करके अपनी लज्जा को दूर करने लगे ।

2. इस पर विशुद्धानन्द जी से कोई उत्तर न बन पड़ा क्योंकि वह व्याकरण में बिल्कुल कोरे हैं । देखिये, कितनी बड़ी पराजय है और लज्जित होने का स्थान है ऐसे पंडित के लिए कि जो काशी का मुख्य शिरोमणि और जिसे समस्त हिन्दू विश्वनाथ का अवतार मानते हों ! अब कहां गया उनका अभिमान के साथ यह कहना कि हां, सब कुछ पढ़ लिया है !

तदा बालशास्त्रिणा किमपि नोक्तमन्येनापि न केनचिदिति ।

तब बालशास्त्री और अन्य पण्डितों ने भी कुछ न कहा और मौन रहे ।

प्रत्युत इतना अन्याय कि 'प्रत्लकम्रनन्दिनी' के सम्पादक ने तो लिखा और ला० हरबंसलाल ने अपने प्रकाशित शास्त्रार्थ में उनका वर्णन किया है परन्तु काशी वालों ने जो संवत् १९२६ में काशीनरेश के प्रेस में छपवाया है उसमें स्वामी जी को सैकड़ों गालियां तो दी हैं परन्तु 'कल्मसंज्ञा' वाले विषय का कोई उत्तर नहीं दिया और कोई युक्ति अथवा प्रमाण मूर्तिपूजा पर नहीं छपवाया । अन्त में उसी पत्रिका में लिखा है—

श्रीमन्महाराजस्तु गम्भीरधीश्चारचक्षुर्दृष्ट्वाद्यन्तं विचार्य कोलाहलं न हि तृप्तिं जगाम । ततः प्रकाशितवांश्च क्रमादिदं स्वागतम् अस्तु नः । दयानन्दो धृष्टो मूर्खश्च परं स एकेन केनचित्कोविदेन पराजेतुं न संभाव्यते ।

महाराज काशीनरेश को इस शास्त्रार्थ को आदि से अन्त तक सुनकर कुछ सन्तोष न हुआ ।[1]
तब इस प्रकार कहने लगे कि यहां हमारा आना बहुत अच्छा हुआ । यद्यपि दयानन्द धृष्ट और मूर्ख है तथापि उसको कोई एक पण्डित किसी प्रकार नहीं हरा सकता है ।

स हि, षड्भिः कर्णो निपातित इति न्यायेन ध्वस्तबलो निरस्तः । अपि च न हि तस्यैव निरसनेन विचारः शेषतां गतः । उद्भावयन्तु कोविदाः मिथः खण्डनमण्डनात्मकमन्यं कमपि ग्रन्थमिति ।

यह कर्ण के सदृश है कि जिसको छः पहलवानों ने मिलकर गिराया था, जब उसमें बल नहीं रहा तो गिर गया । और भी सुनो ! दयानन्द जी के केवल हरा देने से ही यह विचार समाप्त नही हुआ । सब पंडित लोग मिलकर विचार करो खंडन-मंडन और मंडन-खंडन का दूसरा ग्रन्थ बना कर प्रकाशित करो ।

अपरञ्च । श्रीहरिकृष्णव्यासः, श्री जयनारायणतर्कपंचाननः श्रीशिवकृष्णो वेदान्तसरस्वती इत्येवमादयो विद्वांसः कतिपया वदन्ति विचारस्तु सम्यक् न भूतः परं दयानन्दः पराजित इति तु सत्यम् ॥'

श्री हरिकृष्णव्यास, श्री जयनारायण तर्क पंचानन, श्री शिवकृष्ण वेदान्तसरस्वती आदि लोगों ने, जो वहां विद्वानों में गिने जाते थे—कहा कि यह विचार तो ठीक-ठीक नहीं हुआ परन्तु दयानन्द की हार हो गई यह ठीक है ।

सत्यव्रतसामश्रमिणं प्रति 'लिख्यतां तावत् यथार्थतो वादि-प्रतिवादिवच'-इत्याज्ञापयन्त-लेख्यकार्यनियुक्तः सामश्रमी यथावृत्तं शास्त्रार्थं लिखति तथा हि ॥

स्वयं 'पौराणिक पण्डितों की पुस्तक से भी प्रकट है (पृष्ठ ३,४) कि पण्डित सत्यव्रत सामश्रमी लेखक थे । हमने उनकी पत्रिका से कुछ पृष्ठ यहां उद्धृत किये हैं ।

---

1. इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऐसे शास्त्रार्थ से, जहां इतनी अविद्या और पक्षपात की अधिकता हो, किसी मनुष्य को संतोष नहीं हो सकता । दयानन्द को गालियां देने से कोई उसे नहीं जीत सकता और यह वाक्य-कि दयानन्द ऐसा महान् विद्वान् है जैसा कि महाभारत के युद्ध में कर्ण महान् पहलवान था जिसको कुछ पहलवानों ने मिलकर गिराया था, वास्तविकता को प्रकट करता है "दयानन्द हार गया" ऐसा कहने से दयानन्द नहीं हार सकता । जब तक कि दयानन्द की युक्तियों का कोई खंडन न करे और उसके प्रश्न का उत्तर न दे । युक्ति उसकी यह है कि चारो वेदों की मूल संहिता में मूर्तिपूजा नहीं है इसलिए वह सनातन धर्म नहीं हो सकता और जब वेद इसका खंडन करता है तो फिर इसका पूजना वेदविरुद्ध होने से महापाप है; लालच बुरी बला है, काशी के कुछ पंडित महाराजा के लालच देने से शास्त्रार्थ पर उद्यत हो गये । इससे तो यदि शास्त्रार्थ न करते तो अच्छा होता और मौन रहने से उनका मान बना रहता । पुस्तक का नाम रखा 'दुर्जनमतमर्दन'[१०५] और १९ पृष्ठ की पुस्तक में पुराणों के वाक्यों की भरमार कर दी । सारी पुस्तक में एक भी वेदमंत्र नहीं है । यद्यपि मूलशास्त्रार्थ के अतिरिक्त भी बहुत से वाक्य भरे हैं परन्तु प्रमाण देखने तक को नहीं हैं । इसका अध्ययन करने वालों पर पंडितों की असभ्यता, अयोग्यता, वेद और शास्त्रों की अनभिज्ञता तथा असत्य की पराजय स्पष्ट प्रकट हो जाती है और इसी प्रकार राजा साहब का मिट्टी के माधो या महादेव होना भी प्रकट हो जाता है ।

और केवल यह नहीं कि 'प्रत्नकम्रनन्दिनी' में ही ऐसा लिखा है अपितु प्रसिद्ध अंग्रेजी पत्र 'हिन्दू पैट्रियट' तथा 'ज्ञानप्रदायिनी' ने भी इसी प्रकार लिखा है ।

बम्बई के एक देशी समाचारपत्र में स्वामी जी का वृत्तांत इस प्रकार लिखा है—'उनके गुरु की मृत्यु होने पर उन्होंने हिन्दूधर्म का संस्कार आरम्भ किया । पहले उनका शास्त्रार्थ काशीधाम में, वहां की पंडित मंडली से हुआ । राजा साहब बनारस के यहां सभा हुई । सौ पंडित एकत्र थे परन्तु दयानन्द जी का कथन यह था कि मूर्तिपूजन वेदविहित नहीं है । बहुत तर्कवितर्क तथा वादानुवाद के पीछे दयानन्द जी की जीत हुई । ('ज्ञानप्रदायिनी'[१०६] खंड ४, संख्या १३, ३२, पृष्ठ २३)

स्वामी ज़ी के कार्य तथा साहस की प्रशंसा तथा वैदिक पाठशाला के लिए अपील—'हिन्दुओं की मूर्तिपूजा और पक्षपात का दृढ़ दुर्ग, जो हिन्दुओं की देवगाथा (माइथोलाजी) के अनुसार शिव के त्रिशूल पर खड़ा है और इसलिए किसी के प्रभाव से प्रभावित नहीं हुआ । अब गुजरात से एक ऋषि के प्रकट होने पर समूल हिला दिया गया है । इस बड़े सम्माननीय व्यक्ति का नाम दयानन्द सरस्वती है । वह पंडितों के वर्तमान उपासना के ढंग को नष्ट करने के निश्चय से आया है ।'

वह वेदों को ही प्रमाण योग्य धार्मिक पुस्तक मानता है और पुराणों को धूर्तता से बनाये हुए कहता है जिनको अविद्याकाल के कुछ चालाक ब्राह्मणों ने अपने स्वार्थ के लिए बनाया है । वह कहता है कि वेद मूर्तिपूजा की शिक्षा बिलकुल नहीं देते । वह बनारस के पंडितों और बड़े मनुष्यों को अपने साथ शास्त्रार्थ करने के लिए चैलेंज देता है ।

कुछ समय हुआ कि रामनगर के महाराजा ने एक सभा की; इसमें उसने बनारस के चुने हुए और बड़े-बड़े विद्वान् पंडित बुलाये । दयानन्द सरस्वती और पंडितों के मध्य एक जोरदार और लम्बा-चौड़ा शास्त्रार्थ होता रहा परन्तु अपनी शास्त्रज्ञता का अभिमान रखने वाले पण्डित बुरी तरह पराजित हुए । पण्डितों ने जब जाना कि नियमपूर्वक शास्त्रार्थ द्वारा ऐसे बड़े मनुष्य पर विजय प्राप्त करना असम्भव है तो अपना ध्येय पूरा करने के लिए पापपूर्ण उपायों का आश्रय लेने की ओर प्रवृत्त हुए । उन्होंने ऋषि को पुराणों का एक पत्रा दिया जिसमें मूर्तिपूजा की बात लिखी हुई थी । सरस्वती को वह पत्रा देकर कहा कि यह वेदों के मन्त्र हैं । जब वह अभी उनका अध्ययन कर ही रहा था कि पण्डितों के समूह ने महाराजा साहब की अध्यक्षता में तालियां बजा दीं, यह प्रकट करते हुए कि धार्मिक शास्त्रार्थ में उस बड़े पण्डित की पराजय हुई ।

स्वामी यद्यपि महाराजा साहब के इस कठोर व्यवहार तथा कायरतापूर्ण कृत्य से अत्यन्त दु:खित हुआ परन्तु फिर भी साहस न हारा और अभी तक धार्मिक युद्ध पहले से भी अधिक उत्साहपूर्वक कर रहा है । यद्यपि वह अकेला है परन्तु फिर दोनों पक्षों के समूह के बीच में निर्भय खड़ा है । उसके पास सत्य की ढाल उसकी रक्षा करने के लिए है जिसके कारण यह विजय का झंडा हवा में लहरा रहा है । उसी पंडित ने अभी एक ट्रैक्ट भी प्रकाशित किया है जिसका नाम 'सत्यधर्म-विचार' है और जिसमें उपर्युक्त धार्मिक शास्त्रार्थ का वृत्तांत है । उसने एक सर्क्यूलर अर्थात् नोटिस भी प्रकाशित किया है जिसमें बनारस के पण्डितों को लिखा है कि वह दिखलायें कि कौन सा भाग वेदों का मूर्तिपूजा के उचित होने की आज्ञा देता है, परन्तु किसी ने उसके सामने आने का साहस न किया ।

उस ऋषि की बड़ी ख्याति सुनकर हमने उसके देखने का निश्चय किया और एतदर्थ बनारस मे दुर्गावाटिका[१०७] के समीप उस आनन्द बाग में गये कि जिस मनोहर स्थान पर इस समय उसने निवास किया हुआ है । उस प्रतिष्ठित पण्डित की ऋषियों जैसी आकृति, हंसमुख स्वभाव तथा बच्चों जैसी सरलता ने हमारे हृदय पर ऐसां प्रभाव किया जो कभी दूर नहीं हो सकता । जब वह भाषण करने लगा तो उसके मुख से मणियां बिखरने लगीं और उसने जो बुद्धिपूर्ण शिक्षा दी उनसे हमको विश्वास हआ कि भारत का स्वर्णिमकाल (सतयुग) अभी पूर्णतया समाप्त नहीं हुआ है ।

यह बड़ा पण्डित वेदों में अठारह वर्ष की खोज के पश्चात् इस परिणाम पर पहुंचा कि उनमें मूर्तिपूजा की गन्ध तक नहीं है। वैदिकधर्म, जो कि भारत के प्राचीन ऋषियों का धर्म था, उसको पुनरुज्जीवित करने की इच्छा से यह धार्मिक सुधार के मिशन (प्रचार) पर अग्रसर हुआ है। **उसने समस्त सांसारिक प्रसन्नताओं और आनन्दों को अंतिम प्रणाम करके तपस्वियों के तपोमय जीवन को स्वीकार किया है और हिन्दूधर्म को पुनरुज्जीवित करने की आशा से** और अपने देशवासियों को सदा के लिए एक अपूर्व भेंट देने की इच्छा से वह हर्षित है। एक ईश्वर की सच्ची शिक्षा को फैलाने और वर्तमान संन्यासियों और पण्डितों के सब कुछ ब्रह्म ही है वाले सिद्धान्त (जिसको वे वेदों की विशेष शिक्षा समतझते है) की भ्रांतियों को मिटाने के लिए वह अपने शिक्षित और बुद्धिमान् भाइयों से एक **वैदिक (पाठशाला) स्थापित करने के लिए अपील कर रहा है** जिसका अध्यापक होना वह स्वयं बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार करेगा।

'सारांश यह है कि हम अपने पक्के हिन्दुओं के नेताओं से बड़े जोरदार शब्दों में अपील करेंगे कि वे वैदिक स्कूल स्थापित करने में दयानन्द सरस्वती को सहायता दें क्योंकि साधारणतया समस्त शिक्षित भारतवासी हृदय से एक ईश्वर के मानने वाले हैं; यद्यपि कुछ अपने माता-पिता तथा निकटस्थ सम्बन्धियों को प्रसन्न करने के लिए मूर्तिपूजा करते हैं। बहुतों ने प्रकटरूप में नवीन वेदान्त को स्वीकार कर लिया है। इसलिए यह आवश्यक है कि वैदिकधर्म पुन: फैलाया जावे। उन्नति की लहर रोकी नहीं जा सकती और सनातन धर्मरक्षिणी सभा के सदस्य हिन्दुओं के वर्तमान धर्म को स्थित रखने में सफल नहीं होंगे।

स्वामी जी के उद्देश्य व कार्य का 'हिन्दू पैट्रियट'[१०८] में समर्थन

'वह हिन्दुओं का सदा धन्यवाद प्राप्त करेंगे यदि वह हिन्दूधर्म को उन अशुद्धियों से जो उसमें आ गई हैं, पवित्र करने का प्रयत्न करेंगे और वैदिक धर्म को शिक्षित मनुष्यों का धर्म ठहरायेंगे।' ('हिन्दू पैट्रियट', १७ जनवरी, सन् १८७०)।

फिर उसी समाचार पत्र में फरवरी मास में यह लेख छपा है-'आपके उत्साहवर्धक शब्दों से प्रेरित होकर हम काशी में स्थित आनन्दबाग में गये और मान्यवर पण्डित को आपके सम्पादकीय लेख का भाषार्थ पढ़कर सुनाया, जिसको सुनकर महर्षि बहुत ही प्रसन्न हुए और मुस्कराते हुए आपका हार्दिक धन्यवाद किया। फिर उन्होंने निम्नलिखित सुझाव रखा जिसके अनुसार वैदिक स्कूल स्थापित करने की उनकी इच्छा है। यद्यपि यह स्वामी जी गुजरात के रहने वाले हैं परन्तु उन्होंने शिक्षा मथुरा में सूरदास स्वामी[१०९] के पास वैदिक पाठशाला में पाई है। इस स्वामी जी के शिष्य थोड़े से हैं जो उस स्कूल में उचित वेतन पर शिक्षा देना स्वीकार करेंगे। वेतन ७५) रु० से १००) रु० तक होना चाहिए। इस प्रकार की पढ़ाई प्रारम्भ की जावे जिससे वेदों का अर्थ विद्यार्थी लोग अच्छी प्रकार समझ सकें और उनका विचार है कि पण्डितों में से कुछ अच्छे-अच्छे विद्वान् चुनकर स्कूल में रखे जायें जिससे कि विद्यार्थियों को संस्कृत विद्या भली-भांति आ जाये, जिसकी प्राप्ति के लिए दो वर्ष का समय लगेगा। एक सौ रुपये मासिक पर वेद पढ़ाने के लिए पण्डित रखा जावे। चूंकि उच्च शिक्षा ने बहुत से नवयुवकों के हृदय में धार्मिक उत्साह उत्पन्न कर दिया है, इसलिए संस्कृत कालिज के उच्चशिक्षा प्राप्त विद्यार्थियों को और देशी पाठशालाओं के पण्डितों को प्रेरित करके उस वैदिक पाठशाला में वैदिक विद्या पढ़ने के लिए प्रविष्ट किया जावे। उस अवस्था में एक नाइट स्कूल (रात्रि पाठशाला) बनाया जाना चाहिए। रात्रि पाठशाला चालू किये जाने की अवस्था में दान द्वारा धन की सहायता प्राप्त करने की आवश्यकता न रहेगी चूंकि आशा है कि नवद्वीप अथवा अन्य समाजों के विद्यार्थी इस स्कूल में प्रविष्ट होंगे। इसलिए उनकी आवश्यकताएं पूर्ण करने का प्रबन्ध होना चाहिए। आरम्भ में सौ रुपया मासिक पर पण्डित और दस विद्यार्थियों के लिए पूरे व्यय सहित आवश्यक खर्च मासिक चन्दे से किया जावे। मैं इस समय स्कूल के मकान और बोर्डिंग हाउस (छात्रावास) के विषय में कुछ नहीं कहता क्योंकि मेरा विचार है धनाढ्य पुरुषों में से कोई इस

काम के लिए अपना मकान दे सकता है । जब इसका प्रबन्ध हो जायेगा तो मान्यवर पण्डित दयानन्द सरस्वती, जो एक संस्कृत अध्यापक सहित कलकत्ता को प्रस्थान करेंगे परन्तु जब तक कि यह पाठशाला अच्छी प्रकार स्थापित न हो जावे तब तक वह इस स्थान पर रहेंगे । हमारे पण्डित का यह विचार है कि बनारस, जो सदा से विद्या का घर रहा है वैदिक पाठशालाओं का केन्द्र बनाया जाये । यदि धनाढ्य लोग इस महान् पुरुष की इच्छा पूर्ण करने के लिए उद्यत होंगे तो भारत पर बड़ा उपकार करेंगे । खराबी के वृक्ष की शाखाएं समस्त आर्यावर्त पर छा गई हैं और उनकी यह महान् शुभाकांक्षा है कि सत्य का कुल्हाड़ा इस वृक्ष की जड़ पर चलाकर, जो विशेष कर बनारस में गहरा जमा हुआ है, काट दिये जायें । कल पण्डित जी यहां से इलाहाबाद को प्रस्थान कर गये हैं, जहां वह एक मास ठहरेंगे ।'

'हिन्दू पैट्रियट' दिनांक १४ फरवरी, सन् १८७७ से ।

'एक हिन्दू सुधारक' शीर्षक से लिखित किसी अंग्रेज विद्वान्—का मनन करने योग्य लेख

इसी प्रकार एक विद्वान्, अंग्रेज ने भी उस समय का आंखों देखा वृत्तान्त क्रिश्चियन इन्टैलिजेंसर नामक पत्र में प्रकाशित किया । वह लिखता है—

इस सुधारक की ख्याति जिसने समस्त बनारस नगर को कम्पायमान कर रखा है,दूर-दूर तक फैली हुई प्रतीत होती है । इस व्यक्ति, उसके विचार और शास्त्रार्थ का वृत्तान्त जो पण्डितों का उसके साथ हुआ,एक ऐसे व्यक्ति की ओर से लिखा जाना जो उस शास्त्रार्थ में उपस्थति था और जो उस शास्त्रार्थ से पहले और पीछे इस सुधारक से कई बार मिला और बातचीत की, इन्टैलिजेन्सर के पाठकों के लिए रोचकता से रहित न होगा ।

स्वामी दयानन्द का व्यक्तिव—नाम उस सुधारक का दयानन्द सरस्वती स्वामी है । यह गुजरात प्रदेश के एक ग्राम का रहने वाला है । उस स्थान का नाम किसी पर वह इस भय से प्रकट नहीं करता कि कहीं उसका बाप, जो उसको पागल समझता है, आकर उसको बलात् लौटाकर न ले जावे,जैसा कि पहले एक अवसर पर उसने किया था ।[११०] वह एक सुन्दर और स्वरूपवान मनुष्य है, बड़े कद का परन्तु सुड़ौल,विशेषतया उसके मुख से बुद्धिमत्ता के लक्षण प्रकट होते हैं। वह संन्यासी के वेश में है । प्राय: समस्त शरीर से नग्न, भस्म लगाते हुए रहता है ।

उसकी विद्वता, तर्कशक्ति, और तर्कपद्धति—संस्कृत बहुत स्पष्टता से बोलता है और बोलने में कहीं नहीं रुकता,यद्यपि बहुत परिमार्जित ढंग से नहीं होती और कहीं-कहीं शुद्धता की सीमा से भी गिरी हुई होती है जैसे कि उसको अस्वीकार है कि मन् धातु जिसके अर्थ मानने के हैं वर्तमान काल, उत्तम पुरुष, बहुवचन में उसका रूप मन्यामहे के अतिरिक्त मन्महे भी बन सकता है । यह एक अच्छा तार्किक है और शास्त्रार्थ में न्याय को हाथ से नहीं जाने देता । प्रत्येक दशा में इस बारे में बहुत ही श्रेष्ठ कार्य करता है कि अपने विरोधी को बिना रोक टोक पूरी स्वतन्त्रता के साथ अपना भाषण करने देता है और उसका समस्त कार्य उच्चकोटि के प्रमाणों से युक्त होता है । उसका शरीर, हृदय और मस्तिष्क, बड़े बलवान् और सावधान हैं और चूंकि वह समझता है कि उसका वेदों का ज्ञान उसके विरोधियों से बढ़कर है, इसलिए वह अपने विरोधियों के भाषण को एक प्रकार की उपेक्षा से सुनता है और बहुधा ऐसा होता है (विशेषतया निम्न कोटि के पण्डितों से संभाषण की अवस्था में) कि वह खंडनात्मक उत्तर निर्णय के रूप में देता है । वेदों का वह विशेषज्ञ है । यद्यपि उसने चौथे वेद अथर्ववेद के कुछ भागों का ही अध्ययन किया है और सम्पूर्ण अथर्ववेद पहली बार मुझसे[१११] ही लेकर देखा है, जो मैंने हस्तलिखित अपने पास से उसको मांगा हुआ दिया था परन्तु यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि ब्राह्मण लोग (आजकल) वेदों को उस रूप में नहीं लेते जिस रूप में हम लोग लेते हैं अर्थात् केवल मंत्र-संहिता जो चार वेद प्रसिद्ध हैं प्रत्युत उसमें वे (आजकल के ब्राह्मण) उन धार्मिक गद्य की पुस्तकों को भी सम्मिलित करते हैं जो वेदों के साथ ब्राह्मण, उपनिषद् आदि

नामों से मिलाये जाते हैं । ११ वर्ष की आयु से उसने अपने आपको पूर्णरूप से वेदों के अध्ययन में लगा रखा है; इसलिए व्यावहारिक रूप में यदि वह बनारस के सब पण्डितों से नहीं तो प्राय: बड़े-बड़े पण्डितों से अधिक निपुण है जो वेदों को केवल दूसरी पुस्तकों की सहायता से ही जानते हैं, प्रत्युत इससे भी कम हैं अर्थात् सीधे रूप में वेदों को नहीं पढ़ते । प्रत्येक अवस्था में यह एक विचित्र बात इसमें (दयानन्द में) पाई जाती है कि यह वेदों का, बिना पुस्तक की सहायता के, स्वतन्त्र अध्ययन करता है और यह बड़ा भारी अन्तर इसमें और अन्य पण्डितों में है । भाष्य करने के प्रचलित ढंग का यह अनुकरण नहीं करता । प्रसिद्ध सायण के भाष्य का वह कुछ मूल्य नहीं समझता । इसलिए कोई आश्चर्य की बात नहीं कि वेदों का जो स्वतन्त्रता से उसने अध्ययन किया है, इससे उसको विश्वास हो गया है कि पण्डितों के वर्तमान सम्पूर्ण मतमतान्तर वेदों से और वैदिक काल के धर्म से-जो दो हजार वर्ष व्यतीत हुए, था-पूर्णतया विरुद्ध हैं ।

उसका उद्देश्य तथा लगन—'चूंकि यह एक लगन का मनुष्य है इसलिए उसने यह दृढ़ निश्चय कर लिया है कि जो विश्वास उसे वेदों से प्राप्त होता है उसे वह अपने आप तक ही सीमित न रखे प्रत्युत अपने देशवासी भाइयों को भी श्रवण करावे और हिन्दू समाज में एक पूरा सुधार करे ।

संक्षिप्त शब्दों में उसका अभिप्राय यह है कि हिन्दूसमाज को वह पुन: ठीक-ठीक उसी अवस्था में लावे जिसमें कि वह दो हजार वर्ष पूर्व था—अर्थात् जिस समय तक कि वर्तमान छ: दर्शनों में से कोई भी दर्शन विद्यमान न था और न अठारह पुराणों में से कोई था । और यही पुराण वर्तमान हिन्दू धर्म के जातिभेद और मूर्तिपूजा के स्रोत हैं । परन्तु जिस समय कि वेद और वेदोक्त आचार ही शिरोमणि गिने जाते थे और जब कि केवल एक परमात्मा ही की उपासना होती थी और वेदों का ही अध्ययन किया जाता था तथा हवन-यज्ञ ही सम्पूर्ण क्रियाओं सहित ब्राह्मण लोग अपने और क्षत्रियों तथा वैश्यों के लिए किया करते थे । कम से कम इतनी आकांक्षापूर्ण धुन तो उस सुधारक के मस्तिष्क में अवश्य है ।

परन्तु इतिहास इस प्रकार से पलटा नहीं खाता—कोई जाति भी विशेषतया जब वह हिन्दुओं जैसी हो, यह नहीं कर सकती कि जिस अवस्था में वह दो हजार वर्ष पहले थी फिर उसी अवस्था में जाने के लिए कोई पग उठा सके या उठाना चाहे । परन्तु सम्भव है कि उसके प्रयत्न से सुधार का दूसरा मार्ग बन जावे और यह भी सम्भव है कि वह हिन्दुओं को इस बात का निश्चय करा दे कि वर्तमान हिन्दू धर्म वेदों से पूर्णतया विरुद्ध है । यह एक ऐसी बात है कि जिससे साधारणतया हिन्दू पूर्णतया अपरिचित हैं और कुछ जो परिचित हैं या जिनको इस विषय में कुछ सन्देह हो गया है, वे मौन रहना ही उचित समझते हैं । यदि एक बार उनको इस मौलिक भूल का पूर्ण विश्वास हो जावे तो कुछ सन्देह नहीं कि वह तत्काल हिन्दूमत को छोड़ देंगे क्योंकि वह इस मत पर इसलिये अड़े हुए हैं कि उनका विश्वास है कि सनातनकाल से हिन्दूधर्म ऐसा ही चला आता है और यह उनके उन पूर्वपुरुषों का धर्म है, जिनके विषय में विश्वास किया जाता है कि वह परमेश्वर से प्रेरणा प्राप्त किया करते थे । वह वैदिक काल की अवस्था में नहीं पहुंच सकते, वह अवस्था अब बीत चुकी है और उसके पुन: प्रकट होने की आशा नहीं है । अब जो कुछ अवस्था होगी वह उससे न्यून या अधिक होगी । हम आशा करते हैं कि अब ईसाई मत फैलेगा । जो कुछ वह हो, वह प्रत्येक दशा में वर्तमान मूर्तिपूजा और जात-पात के बन्धनों की अवस्था से अच्छा होगा । मैं यह कहने के लिए विवश हूं कि मुझको पूरा विश्वास नहीं है कि इस सुधारक के प्रयत्न सुधार के मार्ग में इस सीमा तक भी सफल होंगे । वह गंगा के तट पर यात्रा करता है; कभी नीचे की ओर जाता है और कभी ऊपर की ओर । कहीं-कहीं बड़े-बड़े नगरों में अपने विचार फैलाने के लिए ठहर जाता है परन्तु जहां तक कि मुझको सूचना मिली है—फर्रूखाबाद में, जो कानपुर के समीप है, उसको इतनी पूर्ण सफलता हुई, जैसी दूसरे स्थान पर प्राप्त नहीं हुई, परन्तु शर्त यह है कि हमारी यह सूचना ठीक हो । कहते हैं कि उस स्थान के ब्राह्मणों ने सहमत होकर उसकी विजय को स्वीकार किया है और मन्दिरों को मूर्तिविहीन कर दिया है । यह बात निश्चित है कि उस स्थान का बड़ा धनवान् महाजन उसका अनुयायी बन गया है और

उसने एक पाठशाला स्थापित की है[११२] कि जहां सुधार हुआ हिन्दूधर्म सिखलाया जाता है और इसमें कुछ बहुत सन्देह नहीं कि उसके प्रभाव के कारण वे समस्त निर्धन ब्राह्मण उसके अनुयायी बन गये हों जो उससे आजीविका पाते थे। वास्तव में यही बात है, इससे अधिक जो सूचना मिली है वह सम्भवत: अत्युक्ति होगी।

काशी शास्त्रार्थ का परिणाम—इसका बनारस में आना वास्तव में एक असफलता हुई। वस्तुत: उसके आने पर जो पहले यहां जोश फैला था वह बहुत अधिक था। यद्यपि अब वह जोश कम है परन्तु किसी सीमा तक अब भी कुछ लोगों में शेष है और यदि हमारे मिशन के लोग इसमें बुद्धिमत्ता के साथ कुछ कार्य करें और सुधारक के आन्दोलन को गुप्त रूप से कुछ सहायता दी जाये तो यह बात अनुमान से परे नहीं है कि जो ध्येय इसके पहले प्रयत्न से नहीं हुआ वह अब प्राप्त हो जाये।

बनारस में उसके पहुंचने की तिथि मुझको ज्ञात नहीं। अक्तूबर के आरम्भ में वह आ गया होगा परन्तु मैं उस समय वहां उपस्थित न था। मैं जब नवम्बर में लौटकर आया तो उससे मिला। मैं युवराज भरतपुर तथा एक दो पण्डितों के साथ उससे मिलने के लिए आया था।[1] उस समय जोश बहुत फैला हुआ था। बनारस के समस्त ब्राह्मण और शिक्षित लोग अधिकता से उनके पास एकत्रित हुआ करते थे। एक छोटी कोठी के बरांडे में जो बन्दर[2] तालाब के समीप एक बड़े बाग के सिरे पर है, स्वामी जी नित्य प्रात:काल से सायंकाल तक लोगों से भेंट के लिए, जो उनके दर्शन, प्रश्न और उनकी बातचीत सुनने के लिए लगातार आया करते थे, दरबार किया करते थे परन्तु ज्ञात नहीं होता था कि रईस लोग अर्थात् हिन्दुओं के नेता या बड़े प्रख्यात पण्डित प्रकट रूप में उसके पास जाते हों, कदाचित् गुप्त रूप से जाते हों।

अन्त में जोश इतना बढ़ा कि बनारस के राजा को अपनी सभा के पण्डितों और अन्य प्रभावशाली व्यक्तियों की सम्मति से इस सुधारक का सामना करना पड़ा अर्थात् उसके और साधारण पण्डितों के मध्य एक सार्वजनिक शास्त्रार्थ का प्रबन्ध करना पड़ा ताकि इस सुधारक को पराजित करके जोश को ठंडा किया जाये। उनको पूर्ण विश्वास था कि इस साधु को पराजित करेंगे परन्तु कदाचित् आरम्भ से ही उन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया था और पक्का विचार मन में ठान लिया था कि जिस प्रकार भी हो, धोखे या सफाई से-इस पर विजय प्राप्त की जाये।

यह शास्त्रार्थ १७ नवम्बर सन् १८६९[११३] को उसी घर में, जहां कि यह सुधारक ठहरा हुआ था, हुआ। तीन बजे से सात बजे शाम तक होता रहा। राजा स्वयं इसमें उपस्थित था और वही सभापति था बड़ा भारी वेदान्ती, जो पण्डितों के पक्ष का गुरु था अर्थात् विशुद्धानन्द गौड़ स्वामी, जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि पहले कभी अपने घर से बाहर नहीं निकला था और सम्भवत: यह अत्युक्ति हो, अपने उपासनास्थल से, जो गंगातट पर स्थित है, अपनी विद्या से हिन्दुओं की सहायता करने के लिए और विजय पर बल देने के लिए बाहर निकला। इससे स्पष्ट पाया जाता है कि इस सुधारक का इन लोगों को बड़ा भारी भय था। समस्त प्रख्यात पण्डित वहां उपस्थित थे और एक बड़ी भारी भीड़ अन्य लोगों की, जिनमें शिक्षित तथा अशिक्षित, सम्मानित व्यक्ति सम्मिलित थे, वहां हो गई थी। पुलिस के लोगों का भी एक दस्ता उपस्थित था जो द्वार पर इस बात का प्रबन्ध करते थे कि बाहर जो बहुत से लोग एकत्रित हैं वे भीतर प्रविष्ट न हो जायें। लोग भीतर जाने की अनुचित चेष्टा कर रहे थे। मुझे सन्देह है कि कदाचित् पुलिस वाले इस बात की भी देखभाल करते थे कि इस साधु के इतने अधिक जो शत्रु उसके चारों ओर एकत्रित हैं, कहीं उस पर किसी प्रकार का अत्याचार न करें परन्तु कोई बखेड़ा इस प्रकार का नहीं

---

1. देखो, इसी पुस्तक के पृष्ठ १४९ पर बलदेवप्रसाद का वक्तव्य। —सम्पा०

2. बन्दर तालाब से अभिप्राय दुर्गाकुंड से है; यहां बन्दर अधिक होते हैं। इसीलिए बनारस के अंग्रेज उसे 'मंकी टैंक' कहते हैं।

हुआ और समस्त कार्यवाही शान्तिपूर्वक समाप्त हुई। सिवाय इसके कि अन्त में जब लोग उठ खड़े हुए, हिन्दुओं के पक्ष ने एक ऐसा जयकारा बोला जिससे वह अपनी अनुचित रूप से प्राप्त की हुई विजय को प्रकट करते थे। चाहे वह जीत उन्होंने बुरे प्रकार की अथवा भले प्रकार से, इससे उनका अभिप्राय सिद्ध हो गया अर्थात् जितनी शीघ्रता से जोश फैला था उतनी ही शीघ्रता से ठंडा भी हो गया। जैसा कि पहले लोगों के समूह के समूह उनके पास जाते थे अब इतने लोग जाने लगे कि जिनका गिनना सरल था। यह सुधारक एक प्रकार से जाति बहिष्कृत समझा गया और जो कोई इस शास्त्रार्थ के पश्चात् उससे मिलने के लिये जाता उसको भी बहिष्कृत करने का भय दिलाया जाता। इस शास्त्रार्थ के पश्चात् इस सुधारक ने बहुत शीघ्र एक लिखित उत्तर तैयार करके अपने विरोधियों के पास भेजा परन्तु उस पर किसी ने कुछ विचार नहीं किया। तब सुधारक ने अपने प्रश्नों का एक पर्चा तैयार करके एक मास पश्चात् छपवा दिया और उसी समय उसने अपने शत्रुओं को ललकारा कि हमारे प्रश्नों का उत्तर दो परन्तु हिन्दुओं ने उसका भी कोई उत्तर न दिया। सुधारक फिर भी जनवरी, सन् १८७० के अन्त तक वहां रहा। उसके पश्चात् बनारस से चलकर इलाहाबाद में मेला देखने चला गया[११४] ताकि वह उन लोगों को, जो वहां एकत्रित हों, उपदेश करे। जब मैं फिर उससे अन्त में मिला तब तक उसने कोई निश्चय इस बात का नही किया था कि मेले के पश्चात् फिर बनारस जायेगा या किसी और स्थान पर। जब सुधारक वहां से चला गया तो हिन्दुओं के पक्ष ने फिर एक पुस्तिका इस शास्त्रार्थ की तैयार करके छपवाई और उसमें लिख दिया कि विवाद की बात वास्तव में यह थी।

ऋषि दयानन्द की समस्याओं का एक विश्लेषण

सुधारक की समस्याएं—इस सुधारक की समस्याएं इन तीन भागों में विभक्त हो सकती हैं—(१) हिन्दुओं के धर्मशास्त्र (२) मूर्तिपूजा की वास्तविकता (३) पुराण और जातिभेद का प्रश्न। इनसे सम्बद्ध और भी बहुत-सी छोटी-छोटी बातें हैं। (१) इन तीनों में जो पहली है वही उसके समस्त सुधार का मूल है। वह केवल निम्नलिखित पुस्तकों को प्रामाणिक शास्त्र मानता है—चार वेद, उपवेद, छः वेदांग, बारह उपनिषद्, शारीरक सूत्र, कात्यायनसूत्र, योगभाष्य, वाकोवाक्य, मनुस्मृति, महाभारत।[1]

इनमें से वेदों को इसलिये मानता है वे स्वयं परमेश्वर के वाक्य हैं और शेष को इसलिए कि वे वेदों पर आधारित हैं या उनमें उनका विशेष वर्णन है। शेष जिन पुस्तकों को पौराणिक हिन्दू शास्त्र की पदवी देते हैं-उदाहरणतः जिनमें मुख्य पुस्तकें ६ दर्शन और अठारह पुराण हैं, उनको वह झूठा मानता है[११५] क्योंकि उनके विषय या तो वेदों के विरुद्ध हैं या उनका वेदों में वर्णन नहीं है। इस सिद्धान्त पर हिन्दू मत की प्रत्येक वस्तु को, जो स्पष्ट रूप से वेदों के विरुद्ध है या वेदों में उसकी आज्ञा नहीं है—वह त्याज्य कहता है।

इस वृत्तांत से प्रकट होगा कि उसमें और पौराणिक पण्डितों में शास्त्रों के नियमों के विषय में कोई अन्तर नहीं क्योंकि दोनों इसमें सहमत हैं कि केवल चार वेद ही प्रामाणिक हैं और जो कुछ वेद के विरुद्ध है वह झूठ है। वास्तविक

---

1. चार वेद—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद-उसके ब्राह्मणों सहित। चार उपवेद यह हैं; आयुर्वेद जो वैद्यकविद्या के विषय में है जिसमें दो पुस्तकें सम्मिलित हैं। धनुर्वेद—युद्धविद्या। गान्धर्ववेद—गानविद्या। अथर्ववेद—शिल्पविद्या (इन्जीनियरिंग)। छः वेदांग—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, महाभाष्य, निरुक्त, ज्योतिष, जिसमें एक भृगुसंहिता सम्मिलित है। ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, श्वेताश्वतर, कैवल्य ये बारह उपनिषद् हैं और बहुत से उपनिषद् हैं जिनको पौराणिक हिन्दू मानते हैं परन्तु दयानन्द उनका खंडन करता है। सम्पूर्ण महाभारत को नहीं मानता, बहुत से भागों को वह प्रक्षिप्त बताता है और उन्हीं भागों में भगवद्गीता भी सम्मिलित है। यदि मैं भूल नही करता तो जो सूची शास्त्रों की मैंने दी है उसको ठीक समझना चाहिए क्योंकि सुधारक ने स्वयं मेरे लिए अपने हाथ से एक कागज पर लिख दिये थे।

अन्तर इस बात में है कि वेद क्या है ? दयानन्द केवल वर्तमान वेदों को मानता है अर्थात् संहिता को या जो कुछ कि उनसे सिद्ध हो और शेष पण्डित इसके विपरीत यह मानते और दावा करते हैं कि पहले और भी बहुत से वैदिक पुस्तक थे जिनको वे कहते हैं कि अब लुप्त हो गये हैं और वर्तमान हिन्दू धर्म का प्रत्येक शास्त्र तथा प्रत्येक वस्तु जो कि वर्तमान वेदों से सिद्ध नहीं होते हैं उनका उनमें (लुप्त वैदिक पुराणों में) पूरा प्रमाण था । परन्तु इस बात का सिद्ध करना बहुत कठिन है । कुछ अंग्रेज संस्कृतज्ञों की यह सम्मति है कि पण्डितों का मत ठीक है, उसमें मैक्समूलर भी सम्मिलित हैं । उसकी युक्ति संक्षेप में यह है कि 'लुप्त वेदों का वर्णन पहले-पहल बौद्धमत वालों के शास्त्रार्थ में यह प्रमाणित करने के लिए हुआ था कि कुछ ब्राह्मण भी वेदों के ही भाग हैं । यह दावा ऐसा नहीं कि जिसके लिए सरलता से कोई प्रमाण दिया जा सके । सम्भव है कि अपने विश्वास को सहारा देने के लिए पेश किया हो । कुछ भी हो यह एक भयोत्पादक युक्ति है । विचार किया जाता है कि यदि ब्राह्मण उसको सच्चा न जानते तो पेश न करते' (देखो 'एन्शियेण्ट संस्कृत लिट्रेचर' पृष्ठ १०६, १०७) । परन्तु मेरे विचार में मैक्समूलर की यह युक्ति ठीक नहीं है, चूंकि वर्तमान में कतिपय बातों का कुछ प्रमाण नही था इसलिये ब्राह्मणों के लिए इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं था कि वे या तो इसे स्वीकार करें कि वेदों में इसका कुछ प्रमाण नहीं और यह बात उनके लिए आत्महत्या के समान होती या फिर वे दावा करते कि पहले कोई और वेद विद्यमान थे चाहे उसका कुछ आधार हो या न हो । परन्तु उसका यह दावा और अधिक भयंकर था । इसमें कुछ सन्देह नही हो सकता कि इन दो में से वह किस बात को पसन्द करते । दयानन्द वेदों के लुप्त होने को पूर्णतया अस्वीकार करता है । यह बात चाहे कुछ भी हो परन्तु एक निष्पक्ष अन्वेषक ही इस बात को स्पष्ट समझेगा कि यदि पहले कोई अन्य वेद थे तो उनका सामान्य अभिप्राय भी वही होता जो वर्तमान वेदों का है और उनसे वर्तमान हिन्दूमत को किसी प्रकार सहायता नहीं मिलती ।

मूर्तिपूजा व वर्ण-विभाग के सम्बन्ध में ऋषि के विचारों की एक व्याख्या

(२) **मूर्तिपूजा और पुराण—मूर्तिपूजा का यह पूर्णतया खंडन करता है;** न केवल इस विचार से ही कि वह एक हानिकर भूल है प्रत्युत सर्वथा पाप है । वह देवताओं की उपासना अर्थात् अधिक ईश्वरों के मानने का विरोधी है । केवल एक ईश्वर और उसके वही गुण वह मानता है जो साधारणतया अद्वैतवादी लोग मानते हैं । ईश्वर पहले वेदों का रचयिता है और फिर सृष्टि का; इसलिये वेद सृष्टि की अपेक्षा अधिक सनातन हैं परन्तु ईश्वर की अपेक्षा सनातन नहीं हैं । ईश्वर के विभिन्न नाम हैं । वेदों मे उसके विशेष-विशेष ईश्वरीय गुणों के आधार पर विष्णु, आत्मा, अग्नि आदि नाम हैं । परन्तु ईश्वर सृष्टि से पृथक् है क्योंकि दयानन्द वेदान्त, अर्थात् हिन्दुओं के 'सब कुछ ब्रह्म ही है' वाले सिद्धान्त को नहीं मानता तथापि ईश्वर सृष्टि में आत्मा तत्त्व के रूप में विद्यमान और व्यापक है । उदाहरणतया ईश्वर 'अग्नि' माना जाता है जिसका अर्थ 'जीवन' है और इसलिए उसकी उपासना अग्नि के द्वारा की जाती है परन्तु उसके अभिप्राय को समझने में हमको भूल नहीं करनी चाहिये, जबकि वह कहता है कि ईश्वर सृष्टि में अग्नि है तो यहां अग्नि शब्द से उसका अभिप्राय आग से नहीं है प्रत्युत उस वस्तु से है जो आत्मा और जीवन का अर्थ दे । उसका यह अभिप्राय नहीं है कि यह साधारण आग ईश्वर का स्वरूप अथवा उसका प्रतिनिधि है; प्रत्युत यह कि वह वस्तु जो परमात्मा के व्यक्तित्व का एक उत्कृष्ट प्रदर्शक है । चूंकि यह परमात्मा का एक उत्कृष्ट प्रदर्शक है इसलिए इसके द्वारा भी अच्छी प्रकार उसकी उपासना हो सकती है । अग्नि की उपासना न करनी चाहिए प्रत्युत उसको उसकी उपासना के एक साधन के रूप में प्रयोग करना चाहिये । ईश्वर की उपासना विशेषतया इन तीन विधियों से हो सकती है—१. सबसे प्रथम परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करने के अभिप्राय से वेदों का पढ़ना । २. फिर ईश्वर की आज्ञानुसार सामाजिक नियमों का पालन करना । ३. अग्नि अर्थात् अग्निहोत्र द्वारा ईश्वर की उपासना करना । ये तीन उपाय मोक्षप्राप्ति के हैं । मनुष्य की मुक्ति के लिये कभी कोई अवतार नहीं हुआ और न कोई अवतार होना सम्भव है । अवतार होना ईश्वर के गुणों के विरुद्ध है । इसलिये दयानन्द हिन्दुओं के अवतारों का ऐसे ही खंडन करता है

जैसे कि ईसाइयों के अवतार का अर्थात् ईश्वर का अवतार वह बिलकुल नहीं मानता और यदि कोई ऐसे अवतार वास्तव में हुए हैं तो वे देवताओं के अवतार थे न कि ईश्वर के। विष्णु, शिव, ब्रह्मा यदि कोई ऐसे नाम वाले मनुष्य थे तो वे केवल देवता थे अर्थात् उच्चकोटि की सृष्टि; परन्तु ईश्वर नहीं। इसलिए वह पुराणों की प्राय: सभी कहानियों, कहावतों अथवा गप्पों का खंडन करता है और विशेषतया कृष्णलीला का।

(३) **जाति भेद** (जातिपांति) को यह सुधारक केवल एक राजनीतिक कार्यवाही समझता है जो तत्कालीन राजाओं ने प्रजा के सुख के लिए की थी। इस सुधारक के मत में जातिभेद न तो प्राकृतिक वस्तु है और न कोई धार्मिक चिह्न ही है। जातिभेद प्राकृतिक वस्तु इस कारण नही है कि चार वर्णों को मनुष्यों की भिन्न-भिन्न जातियों के रूप में ईश्वर ने उत्पन्न नहीं किया परन्तु सारे मनुष्य एक ही जाति और एक ही प्रकार के हैं। फिर ये धार्मिक चिह्न इस कारण नहीं हैं कि मनुष्यों की मुक्ति और परलोक में उनका भाग्य जातिभेद पर अवलम्बित नहीं है। वर्ण (जाति) केवल भिन्न-भिन्न व्यवसाय (कर्त्तव्य) अथवा अधिकार का नाम है, इनको राजा ने इस विचार से नियमबद्ध किया था कि इनका आपस में सम्मिश्रण (संकर) न हो और समाज में भिन्न-भिन्न सामाजिक कर्त्तव्यों का प्रबन्ध उत्तम रहे। कुछ मनुष्य, जो विशेषरूप से इस काम के लिये योग्य हैं, उनको राजा ने पूजा करने और आचार-व्यवहार तथा विज्ञान की शिक्षा के लिए चुना और उनका नाम ब्राह्मण रखा और बाहरी सुरक्षा तथा राज्य के भीतरी प्रबन्ध के योग्य व्यक्तियों को क्षत्रिय बनाया। व्यापार तथा कृषि के लिए योग्य व्यक्तियों को वैश्य और शेष मनुष्यों को सबकी सेवा के लिए शूद्र बनाया। प्रत्येक वर्ण को एक विशेष प्रकार के अधिकार दिये गये और उनको पैतृक समझा गया परन्तु चूंकि यह सारी व्यवस्था तथा वर्ण-विभाग राज्य द्वारा स्थापित किया हुआ है, इसलिए जो शूद्र उन्नति के योग्य समझा जाता है उसे राज्य वैश्य, क्षत्रिय या ब्राह्मण बना सकता है। इसके विरुद्ध जो पतन के योग्य समझा जाता है उसे राज्य शूद्र बना सकता है। वास्तव में बात वह है कि कोई ब्राह्मण जो अपने काम के अयोग्य हो जाये वह तत्काल शूद्र और जो शूद्र योग्य हो जावे तो वह तत्काल ब्राह्मण बन जाता है, परन्तु वह अपने आप इस प्रकार के परिवर्तन करने का अधिकारी नहीं, राज्य ही केवल ऐसा कर सकता है। इस अन्तिम शर्त से सुधारक का यह सिद्धान्त अव्यावहारिक हो जाता है। राज्य बर्तमान काल में इस प्रकार के अधिकारों के प्रबन्ध से कोई सम्बन्ध नहीं रखता अर्थात् ऐसा नहीं है कि जो दुराचारी ब्राह्मण हो उसे शूद्र और जो श्रेष्ठ बुद्धिमान् शूद्र हो उसको ब्राह्मण बनावे, यह बात स्वयं समाज के अधीन होनी चाहिये।

काशी शास्त्रार्थ में क्या हुआ ? सार्वजनिक शास्त्रार्थ १७ नवम्बर, सन् १८६९[११६] को सुधारक के निवासस्थान पर हुआ। काशीराज के पहुंचते ही शास्त्रार्थ इस प्रकार आरंभ हुआ कि दयानन्द ने राज्य के पण्डित ताराचरण से, जो पण्डितों की ओर से उत्तर देने के लिए नियुक्त हुआ था, पूछा कि वह वेदों को प्रामाणिक मानता है या नहीं ? जब इन्होंने स्वीकार किया कि मैं वेदों को प्रामाणिक मानता हूं तब दयानन्द ने ताराचरण से कहा कि वेदों से वह मन्त्र निकालकर बतलाओ जो पाषाण आदि की पूजा के निमित्त हो अर्थात् जिसमें मूर्तिपूजा की विधि पाई जाये। वेदों का प्रमाण देने के स्थान पर ताराचरण ने कुछ समय पुराणों के प्रमाण देने में व्यतीत किया। अन्त में दयानन्द के मुख से यह बात निकली कि मैं मनुस्मृति और शारीरक सूत्र को प्रमाण केवल इस कारण से मानता हूं कि इनका आधार वेदों पर है। तब प्रसिद्ध वेदान्ती विशुद्धानन्द बीच में आ कूदा और शारीरक सूत्रों में से एक सूत्र[११७] उपस्थित करके दयानन्द से कहा कि बतलाओ यह वेदों पर किस प्रकार आधारित है अर्थात् इसका मूल वेदों में कहां है ? दयानन्द ने थोड़ा रुक कर उत्तर दिया कि मैं वेदों को देखकर इसका उत्तर दे सकता हूं क्योंकि सारे वेद मुझको कण्ठस्थ नहीं हैं। तब विशुद्धानन्द ने बड़े अभिमान से कहा कि यदि तुमको सारे वेद कंठस्थ नहीं थे तो बनारस नगर में आकर अपने गुरु होने का दावा क्यों किया। दयानन्द ने उत्तर दिया कि किसी पण्डित को भी समस्त वेद कंठस्थ नहीं हैं। इस पर विशुद्धानन्द और कई औरों ने अभिमान से कहा कि हमको सम्पूर्ण वेद कंठस्थ

हैं। इस पर बहुत प्रश्न हुए जिनका शास्त्रार्थ के विषय से कुछ सम्बन्ध न था परन्तु दयानन्द ने ये प्रश्न इस अभिप्राय से किये ताकि विदित हो जाय कि उसके विपक्षी का दावा झूठा था। वे लोग दयानन्द के किसी प्रश्न का उत्तर न दे सके।

अन्त में कुछ पण्डितों ने फिर वास्तविक विषय को उठाया और दयानन्द से पूछा कि वेद में आये प्रतिमा और पूर्ति शब्दों से क्या मूर्तिपूजा सिद्ध नहीं होती ? उसने उत्तर दिया कि यदि उनका ठीक अर्थ किया जाये तो उनसे मूर्तिपूजा सिद्ध नहीं होती। चूंकि दयानन्द के विरोधियों में से किसी ने उसके अर्थों पर आक्षेप न किया, इससे प्रकट होता है कि या तो वे लोग समझ गये थे कि दयानन्द के अर्थ ठीक हैं या वेदों से इतने कम परिचित थे कि उसके किये हुए अर्थों का खंडन करने का साहस न कर सके। तब एक माधवाचार्य नामक पण्डित ने, जो कोई प्रसिद्ध पण्डित न था, एक हस्तलिखित पुस्तक के दो पन्ने उपस्थित किये और उनमें से एक वाक्य पढ़कर सुनाया, जिसमें पुराण शब्द आता था अर्थात् यह वाक्य पढ़कर सुनाया—'ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानीति' और पूछा कि इस स्थान पर पुराण शब्द का क्या अर्थ है ? दयानन्द ने उत्तर दिया कि इस स्थान पर यह शब्द केवल विशेषण के रूप में प्रत्युक्त हुआ है जिसका अर्थ पुराना है, यह कोई विशेष नाम नहीं है। विशुद्धानन्द ने इन अर्थों पर आक्षेप किया और व्याकरण द्वारा उसको सिद्ध करना चाहा परन्तु अन्त में सब पंडित दयानन्द के अर्थों को स्वीकार करते हुए प्रतीत हुए। फिर माधवाचार्य ने दो और पृष्ठ एक हस्तलिखित वैदिक पुस्तक के उपस्थित किये और यह वाक्य पढ़कर सुनाया। 'यज्ञसमाप्तौ दशमेऽहनि किंचित् पुराणपाठमाचक्षीत' अर्थात् यज्ञ की समाप्ति पर दसवें दिन पुराण सुनने चाहियें और पूछा कि यहां पुराण शब्द किसका विशेषण है ? दयानन्द ने हस्तलखित पृष्ठ को हाथ में ले लिया और उत्तर देने के लिए विचारने लगे। उनके विरोधियों ने लगभग दो मिनट प्रतीक्षा की और चूंकि इस अन्तर में कुछ उत्तर न मिला वे उठ खड़े हुए और द्वेष और घृणा के साथ यह पुकारते हुए कि उससे उत्तर नहीं बन आया और वह हार गया, चल दिये।

इसमें कुछ सन्देह नहीं कि दयानन्द को कुछ अधिक अवकाश मिलना चाहिये था परन्तु यह स्पष्ट है कि उत्तर देने में कुछ कठिनता प्रतीत हुई और दयानन्द ने पीछे से अपनी पत्रिका में यह उत्तर प्रकाशित किया कि 'पुराण' शब्द के साथ विद्या का शब्द मिलाना चाहिये जिसके अर्थ पुरानी विद्या अर्थात् वेद के हैं। यह उत्तर बहुत सन्तोषजनक नहीं है। इसमें कुछ अधिक सन्देह नहीं हो सकता कि इस स्थान पर 'पुराण' शब्द से अभिप्राय १८ पुराण से है परन्तु चूंकि वह पृष्ठ सामवेद के एक ब्राह्मण में से हैं और उसमें बहुत सी बातें पीछे से सम्मिलित हो गई हैं इसलिए इस प्रमाण का हिन्दुओं की दृष्टि में, और मैं समझता हूं कि दयानन्द की दृष्टि में भी, कुछ महत्त्व नहीं होगा क्योंकि एक बार मुझसे दयानन्द ने यह बात स्वीकार की थी कि ब्राह्मणों में बहुत से भाग पीछे सम्मिलित किये हुए हैं और जो वाक्य ब्राह्मणों में मूर्तिपूजा के समर्थन में कहीं पाया जाता है वह जाली समझना चाहिये।"

काशी शास्त्रार्थ में किये गये धोखे का प्रत्यक्षदर्शी अंग्रेज विद्वान् द्वारा विवरण

यह सुधारक ईसाई मत से अपरिचित नहीं है—'उसने इंजील को पढ़ा है यद्यपि मेरे विचार में बहुत सावधानता-पूर्वक नहीं। मेरी दयानन्द से इस बारे में बातचीत हुई। इस समय उसका ध्यान अधिकतर अपनी ही बातों के सुधार में लगा हुआ है इसलिए वह दूसरे मतों के अनुसंधान की ओर अधिक ध्यान नहीं दे सकता है। ('क्रिश्चियन इण्टैन्लजैन्सर' मार्च, सन् १८७०; पुरातन खंड क्रम सं० ४० नवीन क्रम सं० २, पृष्ठ ७९ से ८७ तक। कलकत्ता टामस स्मिथ सिटी प्रेस)।

'सत्यधर्म निर्णय' में प्रकाशित ध्यान देने योग्य एक अन्य सम्मति

"दयानन्द को वेद, मनुस्मृति आदि सब शास्त्र खूब कण्ठस्थ हैं"—काशी के २६ कार्तिक[११८] वाले प्रसिद्ध शास्त्रार्थ के पश्चात् काशी के विद्वान् पंडितों की सम्मति से वाजपेयी रघुवरदयाल ने एक २१ पृष्ठ की पुस्तक 'सत्यधर्मनिर्णय'[११९]

नाम से भादों शुदि ४, मंगलवार, संवत् १९२७, तदनुसार ३० अगस्त सन् १८७० को दिवाकर प्रेस में प्रकाशित कराई। उसकी पृष्ठ संख्या ३ में स्पष्ट लिखा है 'इस काल में गृहस्थ ब्राह्मणों में विद्याध्ययन का न्यून अवकाश है। इन लोगों में जो कोई विद्याध्ययन करते हैं बहुधा एक ही शास्त्र अर्थात् केवल व्याकरण, न्याय, ज्योतिष वा पुराण धर्मशास्त्र इत्यादि पढ़ते हैं और वेद इतना ही जानते हैं कि मात्र सन्ध्या-वन्दन आदि में उपयोगी हो। कोई ही पुण्यशाली ऐसे गृहस्थ पुरुष हैं जो वेद और शास्त्र सब जानते हों। परन्तु संन्यासियों में ऐसे विद्वान् हैं कि जो वेदों के उपनिषद् भाग को तो अच्छी प्रकार से जानते हैं, परन्तु वे कर्मकांड भाग का अवलोकन नहीं करते कारण कि उससे उनको कुछ प्रयोजन नहीं और दयानन्द स्वामी प्रतिवादी के रूप में शीघ्र कह देते हैं, 'यह वेद में नहीं है अथवा वेद-विरुद्ध है, इसके कारण यह अप्रमाण है। इससे यह जाना जाता है कि दयानन्द सरस्वती को वेद, मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्र बहुत उपस्थित हैं।' (पृष्ठ २,३)

पाठक स्वयं ही देख लें कि विरोधी महानुभाव किस प्रकार उनकी विद्या की विवश होकर साक्षी दे रहे हैं। इति

काशी शास्त्रार्थ के विषय में विस्तृत विवरण

अर्थात्

श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज द्वारा सात बार काशी पधारने का वृत्तांत

काशी का तथाकथित माहात्म्य—पुराणों में बनारस का बड़ा माहात्म्य लिखा है। विशेषतया शैवमत के मानने वाले, तथा साधारणतया सारे पौराणिक हिन्दू भाई काशी की महिमा वर्णन करते हुए अघाते नहीं हैं। कई पुराणों में काशीखंड के नाम से विशेष वर्णन है और केवल यहां तक ही नहीं, प्रत्युत 'काशीमरणात् मुक्तिः' यह श्रुति भी पौराणिकों ने बनाई हुई है और इसी विश्वास के आधार पर लाखों हिन्दू मोक्ष पाने की आशा से काशी में जीवन व्यतीत करते हैं। गंगा स्वयं ही मोक्ष के लिए पर्याप्त थी; बनारस उस पर द्विगुण हो गया; फिर मोक्ष का विश्वास क्यों न हो ? शाहजहां के काल से बनारस का माहात्म्य तनिक कम हो गया था और उसके करवत (क्रकच = आरा) पर जंग जम गया था अन्यथा तो विक्रमादित्य के काल से, शाहजहां के काल तक जो पुराणों की उत्पत्ति और यौवन का वास्तविक काल है, काशीकरवत पर लाखों मनुष्य, मोक्ष की इच्छा से प्राण देकर बलिदान हो गये। सम्राट् शाहजहां की एक पीढ़ी के पश्चात् फिर करवत मनुष्य का लहू चाटने लग गया था परन्तु ब्रिटिश सरकार ने इस निर्जीव तथा जिह्वारहित के गले पर वास्तव में छुरी रखी थी। सन् १७९५ से तो उसकी ऐसी दशा है कि उसे कोई नहीं पूछता परन्तु बनारस का सम्मान तीनों वर्णों के हिन्दुओं के मन में बराबर (विद्यमान) है चाहे उसका कारण कोई दूसरा हो। इसलिए भारत का सुधारक और सत्यधर्म प्रचारक चाहे कोई हो, जब तक बनारस को अपनी विद्या की शतघ्नी से वश में न कर ले, तब तक विजयी कहलाने के योग्य नहीं हो सकता।

इसी अभिप्राय से प्रथमबार—स्वामी जी आसौज, संवत् १९१२ के आरम्भ (१५ सितम्बर, १८५६) सोमवार को बनारस में पधारे तथा गंगा और वरुणा दोनों नदियों के संगम पर जो गुफा है उसमें निवास किया। उस समय वह गुफा भवानन्द सरस्वती के अधिकार में थी। प्रसिद्ध पण्डित काकाराम तथा पण्डित राजाराम शास्त्री और कई अन्य विद्वानों से भेंट की और धर्म सम्बन्धी वार्तालाप हुआ। १२ दिन रहकर जब देखा कि यहां हमारा ध्येय रूपी मोती प्राप्त होना कठिन है तो २७ सितम्बर, सन् १८५६ तदनुसार आसौज बदि १४ को वहां से आगे चांडालगढ़ (जो चुनारगढ़ के नाम से प्रसिद्ध है) की ओर चले गये।

दूसरी बार—यहां तेरह वर्ष पश्चात् उसी तिथि अर्थात् आसौज बदि १, सं० १९२६[१२०], (२१ सितम्बर, सन् १८६९) मंगलवार को पधारे और सैकड़ों पण्डितों तथा कई हजार नगरवासियों के सामने महाराजा काशीनरेश के सम्मुख

१६ नवम्बर, सन् १८६९ को वह प्रसिद्ध शास्त्रार्थ किया जिससे समस्त भारत में उनकी धूम मच गई । लगभग चार मास यहां रहे और माघ की संक्रान्ति, मकर कुम्भ, तदनुसार १२ जनवरी, सन् १८७० बुधवार को प्रयाग पधारे । स्वामी जी ने काशी में इस बार दुर्गाकुण्ड के महाराजा अमेठी के आनन्दबाग में निवास किया । जो सड़क दुर्गा के मन्दिर को जाती है, उसके बीच मार्ग में स्वामी जी ने मार्ग में डेरा जमाया तो जो लोग दुर्गा के दर्शन के लिए जाते वह मार्ग में ही स्वामी जी के पास रुक जाते थे और जब उनका उपदेश सुनते तो आगे जाने की श्रद्धा ही न रहती, मूर्तिपूजा से घृणा हो जाती और आनन्दपूर्वक अपने घर को लौट जाते । ऐसा होते-होते मन्दिर की आय में धक्का लगा और पुजारियों के पेट में चूहे दौड़ने लगे । एक दिन वे सम्मति करके स्वामी जी के पास आये । स्वामी जी ने पूछा कि तुम लोग कैसे आये ? सब वृत्तान्त निवेदन किया कि महाराज ! अब हमारे यहां कोई नहीं पहुंचता, आप कृपा कर इतना अनुग्रह किसी और स्थान पर करें तो हमारी आजीविका बनी रहे । स्वामी जी ने यह सुनकर कुछ उत्तर न दिया और मन में मुस्काये कि तुम अभी से घबराते और चिल्लाते हो, मुझे तो जब तक मूर्तिपूजा को जड़मूल से न उखाड़ लूं तब तक शान्ति नहीं आयेगी । फिर बनारस का शास्त्रार्थ छपवाया और मूर्तिपूजा के बलपूर्वक खंडन से पण्डितों के दांत अच्छी प्रकार खट्टे किये ।

मारने की गीदड़ भभकी में नहीं आये—साधु जवाहरदास जी ने वर्णन किया कि 'इस बार बनारसी गुण्डे स्वामी जी को मारने का विचार रखते थे, उनकी यह बात हमें विदित हो गई । हमने स्वामी जी को सूचना दी, वे बोले कि घबराइये नहीं और अपने घर की एक घटना सुनाई कि जब हम बालक थे तो किसी जमींदार अथवा सम्बन्धी ने हमारे एक खेत पर कब्जा कर लिया था । पिता जी ने हमसे कहा, हम तलवार लेकर गये और जब वह निकल कर उनके पीछे दौड़े तब उन सबको भगा दिया । आप घबराइये नहीं; १०-१५ के लिए मैं अकेला ही पर्याप्त हूं और उस दिन से एक लट्ठ भी पास रख लिया । फर्रूखाबाद की पाठशाला के कुछ विद्यार्थी भी स्वामी जी के दर्शनार्थ चन्द्रग्रहण के मेले पर बनारस आये थे जिनको स्वामी जी ने लौटा दिया ।'

त्यागी होकर खरा उपदेश दे सके-स्वर्गीय पण्डित केशव जी शास्त्री, सारस्वत ब्राह्मण, रईस जामनगर जो स्वामी जी को संवत् १९२६ के शास्त्रार्थ पर मिले ही नहीं थे, प्रत्युत शास्त्रार्थ के समय वहां उपस्थित भी थे, कहते थे कि 'उस समय ४०००० के लगभग मनुष्य एकत्रित थे, सायंकाल का समय था । मूर्तिविषय पर (ग्रह) शांति (विषयक) कोई पत्रा, किसी ब्राह्मणग्रन्थ का एक ब्राह्मण लाया । स्वामी जी बोले कि लाओ देखें कौन वेद का मन्त्र है । जब स्वामी जी ने पत्रा हाथ में उठाया तब सब लोगों ने 'स्वामी जी हारे ! हारे' ऐसा कोलाहल कर दिया परन्तु स्वामी जी जो पत्रा को बांच कर बोलना चाहते थे, बोलने का अवसर नहीं दिया । वह व्याकरण और वेद में पूरी योग्यता रखते थे । हमको स्वामी जी कहते थे कि तुम सत्य का ग्रहण करो; फिर दोनों मिलकर उपदेश करें । हमने कहा कि आप त्यागी हैं, आपकी भांति हमसे नहीं हो सकता । इनके शिष्य पण्डित शंकरलाल शास्त्री ने इस बात का समर्थन किया ।

तीसरी बार-जेठ बदि, संवत् १९२७ के आरम्भ, तदनुसार १६ मई, सन् १८७०[१२१] सोमवार को मिर्जापुर से गंगातट का भ्रमण करते हुए पधारे और ला० माधोदास, आनरेरी मैजिस्ट्रेट बनारस, के बाग में दुर्गाकुंड के समीप निवास किया । इस बार नवीन वेदांतमतखंडन पर एक छोटा सा ट्रैक्ट (पुस्तिका) 'अद्वैतमतखंडन' लिखा और बनारस लाइट प्रेस में छपवाकर प्रकाशित कराया, जिसकी प्रतिलिपि उस समय की मासिक पत्रिका 'कवि-वचन-सुधा' में प्रकाशित हुई (देखो, 'कवि-वचन-सुधा-खंड १, संख्या १४, १५ ज्येष्ठ मास १५ व आषाढ़ शुदि १५, संवत् १९२७ तदनुसार १३ जून व १२ जौलाई, सन् १८७० पृष्ठ ८७ से ९०, ९२, ९६) और बाबू हरिश्चंद्र वैश्य की पुस्तक 'दूषणमालिका' जो उसी वर्ष प्रकाशित हुई थी और जिसमें लेखक ने संस्कृत विद्या की न्यून योग्यता के कारण भीतरी पक्षपात से भरे हुए निर्मूल आक्षेप किये थे;

वह स्वामी जी के सत्योपदेश के पश्चात् रद्दी की टोकरी में डाली जाने योग्य हो गयी और ऐसा ही हुआ । इस बार स्वामी जी ढाई मास बनारस में रहे ।

चौथी बार-फागुन बदि ६, संवत् १९२८ तदनुसार १ मार्च, सन् १८७२ शनिवार को बनारस में विराजमान हुए और १६ अप्रैल, सन् १८७२, मंगलवार; तदनुसार चैत शुदि अष्टमी, संवत् १९२९ तक बनारस में निवास करके,[१२२] मूर्तिपूजा का रात दिन खंडन करते रहे । इस बार ला० माधोदास जी के छोटे भाई ला० मधुसूदनदास के बाग में निवास किया था । अभी तक वस्त्र नहीं पहनते थे और केवल संस्कृत बोलते थे । १७ अप्रैल, सन् १८७३ को डुमरांव होते हुए कलकत्ता की ओर चले गये ।

संवत् १९३१ के अंत में वस्त्र पहनना और (आर्य) भाषा में बोलना आरम्भ किया-पांचवीं बार स्वामी जी बनारस में अपनी पाठशाला देखने आये जो कि ६ मास पहले साधु जवाहरदास जी ने स्वामी जी के कथनानुसार चालू की थी । स्वामी जी जून, १८७४ के अन्त, तदनुसार ज्येष्ठ, संवत् १९३१ के अन्त में जब कि, आमों की ऋतु थी यहां पधारे और आकर गोसांई रामप्रसाद जी उदासी के बाग में डेरा किया । दो मास बनारस में रहे । उस समय वस्त्र पहनते थे ।

इस बार 'भाषा' बोलनी आरम्भ की ।......जी ने टोका कि आप ऐसा न करें परन्तु उन्होंने न माना और कहा कि जब हम किसी को कुछ समझाते हैं तो, संस्कृत में होने के कारण, पण्डित साधारण लोगों को उसका उलटा समझा दिया करते हैं, जिससे हमको बहुत कष्ट होता है । इसलिए आज पिछले पहर से हम 'भाषा' में बोलेंगे । पिछले पहर हम और हरबंसलाल उपस्थित थे, उन्होंने भाषा बोलने का निश्चय किया परन्तु सैकड़ों शब्द ही नहीं, प्रत्युत वाक्य के वाक्य संस्कृत के बोले जाते थे; 'भाषा' बिलकुल न आती थी ।

भक्तों की कठिनाइयां भी अनुभव करते थे : ला० माधोदास जी वर्णन करते हैं 'इस बार की बात है कि हमारे बाग से नित्य फूलों की टोकरी हमारे घर जाया करती थी । एक दिन स्वामी जी ने कहा कि यह टोकरी कहां जाती है ? मैंने कहा कि घर, ठाकुरों के लिए । कहने लगे कि हमें खेद है कि आप अभी तक मूर्तिपूजा करते हैं और ठाकुरों के लिए पुष्प भिजवाते हैं ! यदि ये पुष्प यहां पौधों से लगे रहते तो इससे सुगंध अधिक रहती । दूसरी बात यह कि पंखुड़ियां गिर कर खाद का काम देतीं या यदि आप इनका गुलदस्ता बनाकर घर में रखते तो भी लाभकारी होता परन्तु वहां तो (मूर्ति पर चढ़ाना) नितान्त निष्फल है । हमने कहा कि हमारे घर में सब मूर्तिपूजक हैं, यदि हम न भेजें तो वह २ ॥) या २) नित्य फूलों पर व्यय करेंगे; फिर आप बताएं कि हम क्या करें ? यह सुनकर स्वामी जी हंस पड़े और कहा कि ऐसी अवस्था में कठिन है ।'

पांचवीं बार काशी में पधारने पर स्वामी जी के साथ क्या-क्या बीता ?

स्वामी जी का मुंह देखने वाले भी पाप समझने वाले पं० ताराचरण के सामने ही काशी नरेश स्वामी जी से मिले—'इस बार सैयद अहमद खां साहब सब जज के बंगले पर अरदली बाजार के निकट पुराने जेलखाने के समीप (जो वास्तव में बाबू माधोदास का बंगला है) दो तीन व्याख्यान भी हुए और सैयद अहमद खां ने उन्हें शेक्सपियर साहब[१२३] बहादुर से मिलाया और उन्हीं के द्वारा महाराजा बनारस से मिले । महाराजा ने गाड़ी भेजी और उस समय कामाक्षादेवी वाले बाग में बैठक के समीप स्वामी जी से भेंट की । महाराजा ने बहुत आदर सत्कार किया और गले मिले । उस समय मैं (ला० माधोदास) उपस्थित था । इससे पहले एकबार जब स्वामी जी हमारे बंगले पर उतरे हुए थे, हम महाराजा बनारस से मिलने गये । उस समय पण्डित ताराचरण तर्करत्न (जो महाराजा के यहां मुख्य पंडित थे) हमसे कहने लगे कि आपने अपने दोनों लोक नष्ट कर दिये कि दयानन्द जो यहां आया हुआ है, उसको अपने यहां ठहरा लिया । तुम्हारा मुख देखना भी पाप है । अच्छा यह है कि अभी जाओ और अपने सेवकों से उसे निकलवा दो, यही इस पाप का प्रायश्चित्त है । हमने उत्तर दिया

कि मैं आपसे शास्त्रार्थ करने नहीं आया, यदि शास्त्रार्थ करना चाहते हो तो समय नियत करके मेरे घर पर आओ अन्यथा मेरा तुमसे कोई सम्बन्ध नहीं । परन्तु इस समय जो महाराजा बनारस स्वामी जी से मेरे सामने गले मिले तो उस समय भी ताराचरण उपस्थित थे । मुझसे उस समय न रहा गया, मैंने कहा कि ईश्वर का धन्यवाद है, आज मेरे दोनों लोक बन गये, जिससे आप मुझे रोकते थे, महाराजा और आप दोनों उसके अनुयायी हो गये; जिस पर वे बहुत लज्जित हुए ।'

काशी-नरेश द्वारा स्वागत-सम्मान व क्षमा-याचना—साधु जवाहरदास जी ने वर्णन किया कि 'जब महाराजा काशी नरेश ने (जिसने संवत् १९२६ में स्वामी जी का विरोध करके उनका अपयश कराया अर्थात् ताली बजवाई थी) स्वामी जी के लिये बग्घी भिजवाई तो स्वामी जी ने हमसे पूछा कि हम जायें या नहीं ? हमने कहा कि आप न जायें । पूछा क्यों ? हमने वर्णन किया कि राजा धर्मभीरु है, उस दिन के ताली बजाने से वह बहुत दु:खित है, चाहता है कि उस अपराध का प्रायश्चित्त करे । आपको प्रसन्न करना चाहता है । अन्तत: उस दिन स्वामी जी न गये । दूसरे दिन फिर बग्घी आई और चोबदार आदि भी आ गये । स्वामी जी अपने सहज स्वभाव से चले गये । राजा ने बड़ा सत्कार किया, स्वर्ण की कुर्सी पर स्वामी जी को बिठलाया, यह कहकर क्षमा मांगी कि 'आप जो चाहें खंडन करें मैं अपने अपराध की क्षमा चाहता हूं ।' थोड़े समय पश्चात् विदा किया; एक मन मिठाई भी स्वामी जी के डेरे पर भिजवाई जो स्वामी जी ने लोगों को बांट दी । राजा माधोसिंह, जो अमेठी के रईस भी हैं, एक दिन गुप्तरूप से दर्शन को आये थे और दर्शन करके चले गये ।'

छठी बार स्वामी जी बम्बई से लौटकर जेठ बदि, संवत् १९३३,[१२४] तदनुसार २७ मई, सन् १८७६ में यहां पधारे और उत्तमगिरि के बगीचे में उतरे । सम्भवत: चौमासा यहीं बिताया । दो तीन ब्राह्मण भी साथ थे और पुस्तकों के सन्दूक भरे हुए थे । इसी वर्ष में दिल्ली का दरबार था, यहां से छलेसर और अलीगढ़ होते हुए दिल्ली गये और जनवरी, सन् १८७७ के राजकीय दरबार में सम्मिलित हुए ।

सातवीं बार स्वामी दयानन्द जी के आने पर बनारस में व्याख्यान पर प्रतिबन्ध लगा और फिर वह हटा—स्वामी जी वैशाख, संवत् १९३६ में **हरिद्वार के कुम्भ** पर धर्म प्रचार करते और लोगों को झूठे भ्रमों से हटाते और सत्यमार्ग पर लाते हुए, **देहरादून, सहारनपुर, मेरठ** में सत्योपदेश देते और थियोसोफिकल सोसायटी के संस्थाकों से भेंट करते हुए मिर्जापुर और दानापुर का एक दौरा करके कार्तिक शुदि १४[१२५], गुरुवार, तदुसार २७ नवम्बर, सन् १८७९ को अपने आने की सूचना समस्त नगर निवासियों और काशी के पण्डितों को दी । केवल सूचना ही नहीं, प्रत्युत उसी प्रसिद्ध मूर्तिपूजा विषय पर सार्वजनिक शास्त्रार्थ करने के लिए सबको चुनौती भी दी । विज्ञापनपत्र निम्नलिखित है—

॥ ओ३म् नम: सर्वशक्तिमते परमेश्वराय ॥

प्रथमं विज्ञापनपत्रमिदम् ॥

सर्वात् सज्जानान् प्रतीदंविज्ञाप्यते सम्प्रति दयानन्दसरस्वतीस्वामिन: श्रीयुतमहाराजविजयनगराधिपतेरानन्दारामे निवसन्ति । यैर्वेदानांमतमङ्गीकृत्य तद्विरुद्धं किञ्चिदपि नैव मन्यते । किन्तु यानीश्वरगुणकर्मस्वभाववेदोक्तेभ्य: सृष्टिक्रमात्प्रत्यक्षादिप्रमाणेभ्य: आप्ताचारसिद्धान्तात् स्वात्मपवित्रतासुविज्ञानतश्च विरुद्धत्वात्पाषाणादिमूर्तिपूजा जलस्थलादौ पापनिवारणशक्ति:; व्यासमुन्यादिभिप्रणीतास्तन्नामव्याजेन प्रसिद्धीकृता नवीना व्यर्थपुराणादिसंज्ञा ब्रह्मवैवर्तादयो ग्रंथा:, परमेश्वरस्यावतारा सुपुत्रो भूत्वा स्वविश्वासिनां पापानि क्षमित्वा मुक्तिं प्रददाति; उपदेशाय स्वमित्रं भूमौ प्रेषितवान् पर्वतोत्थापनमृतकसंजीवन-चन्द्रखंडनाकारण-कार्योत्पत्तिस्वीकरणमनीश्वरवाद-जीवब्रह्मणो: स्वरूपैक्यादीनि; कण्ठीतिलकरुद्राक्षादिधारणम्, शैवशाक्तवैष्णवगाणतादिनवीना: सम्प्रदायादयश्य निराकर्त्तुमर्हाणि सन्ति तानि खंड्यन्ते । अतोऽत्र यस्य कस्यचिद्वेदादिसत्यशास्त्रार्थविज्ञा प्रवीणस्य सभ्यशिष्टस्याप्तस्य विदुषो विप्रतिपत्ति:

स्वमतस्थापने परमतखंडने च सामर्थ्यं वर्तते, स स्वामिभिः सह शास्त्रार्थं कृत्वैतेषां मण्डनाय प्रवर्तेत, नेतरः खलु । इह शास्त्रार्थे वेदा मध्यस्था भविष्यन्ति । एतेषामर्थनिश्चयाय ब्रह्मादिजैमिनिपर्य्यन्तर्मुनिभिर्निर्मिता ऐतरेयब्राह्मणादिपूर्वमीमांसापर्य्यन्ता आर्षा वेदानुकूला वादितिवाद्युभयसम्मता ग्रन्था मन्तव्याश्च येऽत्र सभासदो भवेयुस्तेऽपि पक्षपातविरहा धर्मार्थकाममोक्षपदार्थस्वरूपसाधनाभिज्ञाः सत्यप्रिया असत्यद्वेषिणाः स्युर्नातो विपरीताः । यत् किंचित्पक्षिप्रतिपक्षिभ्यामुच्येत तत्सर्वं त्रिभिरभिज्ञैर्लेखकैर्लिपीकृतं भवेत् । स्वस्वलेखान्ते वादिप्रतिवादिनौ सम्मत्यर्थं स्वहस्ताक्षरैः स्वस्वनाम लिखेताम् । ये च मुख्याः सभासदः । एतत्कृत्वैकदिनलेखसिद्धं पुस्तकमेकं वादिने, द्वितीयं प्रतिवादिने देयं, तृतीयं च सर्वसम्मत्या कस्यचित्प्रतिष्ठितस्य राजपुरुषस्य सभायां स्थापितं भवेद्यतः कश्चिदप्यन्यथा कर्तुं न शक्नुयात् । यद्येवं सति काशीनिवासिनो विद्वांसः सत्यानृतयोर्निश्चयं न कुर्य्युस्तर्ह्ये तेषामतीव लज्जास्पदमस्तीति वेदितव्यम् । विदुषामयमेव स्वभावो यत्सत्यासत्य निश्चित्य, सत्यस्य ग्रहणमितरस्य परित्यागं कृत्वा, कारयित्वा, स्वेनान्यैः सर्वैर्मनुष्यैश्चानन्दितव्यमिति ॥

प्रथम विज्ञापन

भाषार्थ

सब सज्जन लोगों को विदित किया जाता है कि इस समय पण्डित स्वामी दयानद सरस्वती जी महाराज काशी में आकर जो श्रीयुत महाराजे विजयनगर के अधिपति का आनन्द बाग महमूदगंज के समीप है, उसमें निवास करते हैं । वे वेदमत का ग्रहण करके उससे विरुद्ध कुछ भी नहीं मानते । किन्तु जो ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव और वेदोक्त १; सृष्टिक्रम २; प्रत्यक्षादि प्रमाण ३; आप्तों का आचार और सिद्धान्त ४; तथा अपने आत्मा की पवित्रता और उत्तम विज्ञान से विरुद्ध होने के कारण जो पाषाणादि मूर्तिपूजा, जल और स्थलविशेष में पाप निवारण करने की शक्ति, व्यास मुनि आदि के नाम पर छल से प्रसिद्ध किये नवीन व्यर्थ पुराण नामक ब्रह्मवैवर्त आदि ग्रन्थ, परमेश्वर के अवतार, व ईश्वर का पुत्र होके अपने विश्वासियों के पाप क्षमा करके मुक्ति देनेहारे का मानना, उपदेश के लिए अपने मित्र पैगम्बर को पृथिवी पर भेजना, पर्वतों का उठाना, मुर्दों का जिलाना, चन्द्रमा का खण्ड करना, कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति मानना, ईश्वर को नहीं मानना, स्वयं ब्रह्म बनना अर्थात् ब्रह्म से अतिरिक्त वस्तु कुछ भी न मानना; जीव ब्रह्म को एक ही समझना, कंठी, तिलक और रुद्राक्ष आदि धारण करना, और शैव, शाक्त, वैष्णव, गाणपतादि सम्प्रदाय आदि हैं, इन सबका खंडन करते हैं । इससे इस विषय में जिस किसी वेदादि शास्त्रों के अर्थ जानने में कुशल, सभ्य, शिष्ट, आप्त विद्वान् को विरुद्ध जान पड़े; (वह) अपने मत का स्थापन और दूसरे के मत का खंडन करने में समर्थ हो, वह स्वामी जी के साथ शास्त्रार्थ करके पूर्वोक्त व्यवहारों का स्थापन करे । इससे विरुद्ध मनुष्य कभी नहीं कर सकता । इस शास्त्रार्थ में वेद मध्यस्थ रहेंगे । वेदार्थ निश्चय के लिए जो ब्रह्मा से लेके जैमिनि मुनि पर्यन्त के बनाये ऐतरेय ब्राह्मण से लेके पूर्वमीमांसा पर्यन्त वेदानुकूल आर्षग्रन्थ हैं वे वादी और प्रतिवादी उभय पक्ष वालों को माननीय होने के कारण, माने जायेंगे और जो इस सभा में सभासद हों वे भी पक्षपातरहित, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के स्वरूप तथा साधनों को ठीक-ठीक जानने, सत्य के साथ प्रीति और असत्य के साथ द्वेष रखने वाले हों, इनसे विपरीत नहीं । दोनों पक्ष वाले जो कुछ कहें उसको शीघ्र लिखने वाले तीन लेखक लिखते जायें । वादी और प्रतिवादी अपने-अपने लेख के अन्त में अपने-अपने लेख पर स्वहस्ताक्षर से अपना-अपना नाम लिखें तथा जो मुख्य सभासद् हों वे भी दोनों के लेख पर हस्ताक्षर करें । उन तीन पुस्तकों में से एक वादी, दूसरा प्रतिवादी को दे दिया जाये और तीसरा सब सभा भी सम्मति से किसी प्रतिष्ठित राजपुरुष की सभा में रक्खा जावे कि जिससे कोई अन्यथा न कर सके । जो इस प्रकार होने पर की काशी के विद्वान् लोग सत्य और असत्य का निर्णय करके औरों को न करावेंगे तो उनके लिए अत्यन्त लज्जा की बात है क्योंकि विद्वानों का यही स्वभाव होता है जो सत्य और असत्य को ठीक-ठीक जान के सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग कर, दूसरों को कराके, आप आनन्द में रहना, औरों को आनन्द में रखना ।

दूसरा विज्ञापन

स्वामी जी को छः पुरुषों की अपेक्षा है ॥ एक—वेद, वेदांग, निघंटु, निरुक्त, व्याकरण, मीमांसादि शास्त्रों में निपुण, शुद्ध लिखने, पूर्वापर शब्द अर्थ और सम्बन्ध के विचार से शुद्धाशुद्ध को जानके शुद्ध करने ओर भाषा के व्याकरण की रीति से संस्कृत की भाषा का सुन्दर रचना करने वाला विद्वान् । दूसरा—व्याकरण में निपुण, लिखने में शीघ्रकारी, पूर्वाक्त रीति से संस्कृत की ठीक-ठीक भाषा की रचना करने हारा । तीसरा—शुद्ध लेखक शीघ्र लिखने वाला । चौथा—ब्राह्मण रसोई बनाने में अति चतुर । पांचवां—चतुर सेवक कहार, काछी कुर्मी, वा किसान । और छठा—नागरी, इंगलिश और उर्दू भाषाओं का लिखने-पढ़ने वाला हो । इन छः पुरुषों को जैसी-जैसी योग्यता अपने-अपने काम में होगी उसको मासिक भी वैसा ही दिया और उससे यथायोग्य काम लिया जायेगा ।

जिस किसी को ऐसा करना अपेक्षित हो वह उक्त स्थान पर जाकर स्वामी जी से मिलकर प्रबन्ध कर लेवे ।

ऋतुकालाङ्कचन्द्रेब्दे मार्गशीर्षेऽसिते दिले ॥ चन्द्रवारे तृतीयायां पत्रमेतदलेखितम् ॥१ ॥

संवत् १९३६ मिति मार्गशीर्ष बदि ३ सोमवार को यह पत्र मैंने लिखा है ॥

तृतीय विज्ञापन

संध्या के चार बजे से लेके रात्रि को दश बजे पर्यन्त स्वामी जी को सबसे मिलने और बातचीत करने का अवकाश प्रतिदिन रहता है ॥

हस्ताक्षर
पंडित भीमसेन शर्मा

दशाश्वमेध आर्य यन्त्र में मुद्रित हुआ ।

इस विज्ञापन को छपवा कर स्वामी जी ने काशी के राजकीय मार्गों, बाजारों, गलियों, मन्दिरों और घाटों पर लगवाया और बहुत-सी प्रतियां इसकी हिन्दी, अंग्रेजी और उर्दू समाचारपत्रों को भी भेजीं ।

'स्टार' अखबार, बनारस, में लिखा है कि 'पंडित दयानन्द सरस्वती आजकल बनारस महाराज विजयनगरम् के बाग में उतरे हैं और हिन्दूधर्म के विषय में वादानुवाद करने की उनकी इच्छा है । इस अभिप्राय से हिन्दी और संस्कृत में विज्ञापन वितरण किया है ।' (६ दिसम्बर, सन् १८७९)

हिन्दी समाचारपत्र 'भारतमित्र' कलकत्ता, ११ दिसंबर, १८७९ पृष्ठ ४, खंड २, संख्या ९४ में भी ऐसा ही लिखा है और 'आर्यसमाचार' मेरठ मंगसिर मास, संवत् १९३६, तदनुसार दिसंबर, सन् १८७९ पृष्ठ १४, १५ खंड १, संख्या ८ व 'आर्यदर्पण' शाहजहांपुर फरवरी, सन् १८८० में यह विज्ञापन ज्यों के त्यों प्रकाशित किये गये हैं ।

और केवल यही नहीं, प्रत्युत इसकी बहुत-सी प्रतियां भारतवर्ष के समस्त बड़े-बड़े नगरों में भिजवाई ताकि ऐसे संकट के समय, यदि कोई अन्य विद्वान् पंडित हो, तो आकर काशीवालों की सहायता करे ।

इतना कोलाहल होने पर भी पंडितों ने बहुत खून के घूंट पिये और वेदों को देखा भाला परन्तु मूर्तिपूजा की विधि न निकलने के कारण बेचारे दम-साधे मौन बैठे रहे, किसी को कुछ कर्त्तव्य न सूझा और सूझता ही कहां से ? जबकि वेदों में इसका मूल ही नहीं है ।

काशी नगरी की उस समय की दशा का एक चित्र—इन्हीं दिनों बनारस के प्रसिद्ध समाचारपत्र **'आर्यमित्र'** ने वहां की साधारण जनता की दु:खपूर्ण तथा अस्तव्यस्त अवस्था का चित्र इन शब्दों में उतारा है—

"जब से स्वामी जी ने आकर विज्ञापन दिया है तब से सारे नगर में भूकम्प सा हो रहा है । कोई स्थान उनकी चर्चा से रहित नहीं दीख पड़ता । क्षुद्र लोगों ने भी स्वामी जी के ऊपर (सम्बन्ध में) निरे असत्य विज्ञापन बनाकर जहां-तहां लगा दिये हैं । कोई लिखता है कि मैंने उसे अमुक नगर में हरा दिया था परन्तु उसका कुछ निर्दोष पत्र नहीं छापा कि जिससे उसका लेख विश्वास योग्य होवे । कोई कहता है कि मैं अब उनको हरा कर (उनसे) पार्थिवपूजा कराऊंगा । एक पण्डित ने लिखा है कि पुराणी, कुरानी व किरानी के विरुद्ध बोलने वाले स्वामी को हम हरायेंगे । इनके लिखने के ढंग से जान पड़ता है कि परस्पर विरोधी ये सब धर्म तो सत्य हैं, केवल वेद-वेदांग के मानने वाले दयानन्द का ही धर्म असत्य है ।"

विरोधी समाचारपत्रों का स्वामी जी के साथ अन्याय

कुछ समाचारपत्रों का पक्षपात—'कुछ समाचार पत्रों ने भी पक्षपात पकड़ा है और जो जी में आया बिना विचारे लिख मारा है । निस्सन्देह यह बड़े खेद की बात है । यहां के किसी महापुरुष का भेजा हुआ एक पत्र 'सार-सुधानिधि'[१२६] में छपा है जिसके प्रत्येक शब्द से पत्रलेखक की उद्विग्नता, ईर्ष्या और पक्षपात टपकता है । स्वामी जी को नास्तिकाचार्य, धूर्तशिरोमणि विशेषण दिये हैं । भला कहो तो वेद-वेदांग मानने वाले को केवल मूर्तिपूजाखंडन पर नास्तिक कहना कैसा अन्याय और मूर्खता है । स्वामी जी ने न कभी किसी को ठगा है, न ठगना चाहते हैं, न औरों की भांति कुकर्म करते हैं, न औरों को वैसा मार्ग बताते हैं; न पाखंडी साधुओं की भांति क्षेत्रों में बैठकर पैसे के लोभ में किसी इच्छुक को यन्त्र-मन्त्र देते हैं; फिर इन्हें धूर्त किस प्रकार कहा जा सकता है ? वह लिखता है कि 'यहां के पंडित अवश्य परास्त करेंगे' परन्तु मेरी ओर से यह बात स्मरण रखिये कि ऐसे लोग कभी स्वामी जी का सामना करके पार न पायेंगे । प्रसिद्ध है 'जो गरजते हैं सो बरसते नहीं ।' इससे हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि काशी में कोई इस योग्य पंडित नहीं है । हम भली भांति जानते हैं कि दो-चार अच्छे विद्वान् हैं परन्तु वह बकते नहीं और न गाली देते हैं प्रत्युत फलित वृक्ष की भांति परम नम्रता से इस विषय की वार्ता करते हैं ।'

'कविवचनसुधा' में ८ दिसम्बर, १८७९ को जो लिखा है, कि बाबू प्रमदादास के सम्मुख स्वामी जी हिचक-हिचक बातें करते थे, वह निर्मूल है । उक्त बाबू जी स्वयं अपने अभिप्राय का प्रतिपादन यथावत् नहीं कर सके । हाय ! न जाने असत्य बातों का बेधड़क प्रचार करने से लोगों को क्या लाभ होता है ! अभी तक उक्त पत्र का कोई काम असभ्य वा अप्रशंसनीय और निर्मूल किसी ने नहीं बताया था । पर इस समय उन्होंने दयानन्द-निन्दारूपी बूटी ऐसी गाढ़ी आकंठ छानी है जिससे उनके ४ फरवरी, सन् १८७८ के लिखित पत्र 'भारत दुर्दैव' (दुर्दशा)[१२७] नाटक में पूर्वापर विरोध उत्पन्न हो गया क्योंकि उक्त नाटक बिलकुल स्वामी जी के उपदेशों के अनुकूल और प्रस्तुत पत्र निरा उसके प्रतिकूल लिखा गया है । वही कहावत हुई कि 'नाक कटी तो कटी पर अपने अनिष्ट का तो अपकुशन हुआ ।' पाठक ! पक्षपात बुरी बला है । इससे केवल यही लोक नष्ट नहीं होता अपितु परलोक भी बिगड़ जाता है ।'—'आर्यमित्र'[१२८] समाचारपत्र हिन्दी, बनारस से प्रकाशित दिसम्बर, १८७९ संख्या १३ ।

बनारस ठहरने की अवस्था में स्वामी जी के दर्शन करने की इच्छा से कर्नल आल्काट साहब और मैडम ब्लैवेट्स्की, दो तीन अन्य सज्जनों सहित, बम्बई से चलकर १५ दिसम्बर, सन् १८७९ (मंगसिर शुदि सोमवार तदनुसार १ मोहर्रम, सन् १२९७ हिज्री) को काशी पहुंचे और स्वामी जी के पास वाले बंगले में उसी बाग में आ विराजमान हुए । १६ दिसम्बर, सन् १८७९ को राजा शिवप्रसाद सी० एस० आई० जैन मतानुयायी तथा कर्नल महोदय स्वामी जी के अतिथि थे । इस कारण

राजा साहब ने प्रथम स्वामी जी से मिलकर कहा कि कर्नल साहब तथा मैडम से मिलना चाहता हूं। स्वामी जी ने एक मनुष्य भेजकर उन्हें सूचना दी और जब तक उक्त सज्जनों के साथ राजा साहब चले न गये तब कुछ बातें (सम्भवतः २०-२५ मिनट तक) स्वामी जी से करते रहे। फिर दूसरी बार भेंट नहीं हुई।

शास्त्रार्थ के लिए विज्ञापन द्वारा चुनौती—स्वामी जी ने बनारस पहुंच कर प्रथम तो साधारण पंडितों, मौलवियों, पादरियों और जैनियों को शास्त्रार्थ के लिए चुनौती दी और शास्त्रार्थ की शर्तें छाप कर प्रसारित की परन्तु जब कोई इस प्रकार शास्त्रार्थ के लिए सन्मुख न हुआ, न ही किसी ने शास्त्रार्थ करने की इच्छा प्रकट की, प्रत्युत गुप्त रूप से कुछ धूर्त लोग भ्रान्तियां भी फैलाने लग गये तो स्वामी जी ने फिर यही उचित समझा कि सार्वजनिक व्याख्यान के द्वारा झूठे मतों की वास्तविकता लोगों के मन पर अंकित की जावे। इसलिए विज्ञापन प्रकाशित किये गए कि 'वेदविद्या के पूर्ण विद्वान् पंडित दयानन्द सरस्वती बंगाली टोले के प्रिपेरेटरी स्कूल में २० दिसम्बर, १८७९ शनिवार, तदनुसार अगहन शुदि, ७, संवत् १९३६ को व्याख्यान करेंगे। आशा है कि सब सज्जन आकर लाभ उठावेंगे। —प्रकाशक भीमसेन शर्मा।

(सूचना—इसी तिथि में कर्नल साहब के व्याख्यान का भी उसी स्थान पर और उसी समय का विज्ञापन था।)

व्याख्यान पर सरकार की ओर से प्रतिबन्ध लगवाया गया—बनारस के लोगों ने देखा कि अब हमारा बचना कठिन है। शास्त्रार्थ न करने की लज्जा से ही अभी तक हम सिर नहीं उठा सकते और स्वामी जी बार-बार विज्ञापन लगवा कर हमें स्मरण तो दिलाते ही हैं, साथ ही हमारी लज्जा को और बढ़ाते और गजों पानी हमारे शिर पर चढ़ाते हैं। इस पर विचित्र बात यह है कि अब वे व्याख्यान देने लगे जिससे हमारा रहा-सहा सम्मान भी चला जायेगा और हमें अच्छी प्रकार 'मनुष्य' बनावेंगे। सब ओर पक्षपाती पण्डितों ने विवश होकर सम्मति करके मिस्टर वाल साहब कलैक्टर बनारस के यहां प्रार्थनापत्र दिया कि स्वामी जी के व्याख्यानों से यहां बलवा हो जायेगा और भयंकर दंगा उठा खड़ा होगा, इसलिए वे बन्द किये जावें।

यही कारण था कि २० दिसम्बर, सन् १८७९ को ठीक समय पर जब स्वामी जी उक्त स्कूल के द्वार पर पहुंचे तो साहब मैजिस्ट्रेट की चिट्ठी स्वामी जी को दी गई जिसमें लिखा था कि उस समय बनारस में कोई धार्मिक शास्त्रार्थ न होना चाहिए।

व्याख्यान पर सरकारी प्रतिबन्ध की आलोचना

प्रतिबन्ध का पूरा प्रबन्ध—इसका विस्तृत विवरण 'स्टार' अखबार बनारस, मिति २७ दिसम्बर, सन् १८७९ में इस प्रकार लिखा है, 'कई दिन हुए जबकि प्रकाशित विज्ञापनों द्वारा प्रसारित किया गया था कि वेदविद्या के पूर्ण विद्वान् पण्डित दयानन्द सरस्वती बंगाली टोले के प्रिपेरेटरी स्कूल में व्याख्यान देंगे परन्तु खेद है कि वहां जाने पर विदित हुआ कि पण्डित जी के उपदेश को कलैक्टर साहब बनारस ने लिखित आज्ञा के द्वारा स्थगित करा दिया परन्तु कर्नल आल्काट साहब, जो अमरीका की ब्रह्मोपासक[१२९] सभा के प्रधान हैं और पण्डित जी के धार्मिक विश्वास के बहुत कुछ मानने वाले हैं, उनके साथ इस प्रकार व्यवहार करना सरल न था। कर्नल साहब ने बड़ी सफाई के साथ सार्वजनिक सभा में अंग्रेजी भाषा में व्याख्यान दिया और जो कुछ उनको कहना था केवल उसी पर सन्तोष न किया प्रत्युत पण्डित जी के अभिप्राय को ठीक-ठीक (यद्यपि एक दूसरी भाषा में) कह सुनाया। इस व्याख्यान के समाप्त होने पर उस सभा में से एक व्यक्ति ने अत्यन्त असभ्यतापूर्ण ढंग से उनके खंडन में अपना मुख खोला। मैं उस व्यक्ति के वक्तव्यों पर अपनी कुछ सम्मति नहीं देना चाहता हूं परन्तु इतना कह देता हूं कि वास्तव में उसके मस्तिष्क में कुछ विकार था। अब विचार कीजिये कि इस ईर्ष्यापूर्ण कार्यवाही का क्या कारण है? यदि कलैक्टर साहब की ओर से स्वामी जी के व्याख्यान का इस विचार से निषेध किया

गया था कि उससे कुछ मतावलम्बी बुरा मानेंगे तो एक अंग्रेज[१३०] के व्याख्यान पर जो पण्डित जी के अनुयायी हैं, वही कारण लागू नहीं हो सकता था ? इस बात का उत्तर देने में कुछ बहुत विचारने की आवश्यकता नहीं । देखो, यह केवल रंग का अन्तर है कि जिसने पण्डित जी को जनता में अपने देश-विशेष के धर्म पर व्याख्यान देने के योग्य न रखा परन्तु कर्नल साहब को, जो धार्मिक विश्वास में बहुत कुछ स्वामी जी के पद का अनुसरण करते हैं, इस अत्याचार से बचाया । पण्डित दयानन्द सरस्वती इस नगर में प्रथम बार ही नहीं आये, प्रत्युत यहां तो उनका नाम पहले ही से प्रत्येक की जिह्वा पर चढ़ा हुआ है । उन्होंने धार्मिक सुधार का प्रशंसनीय कार्य, जिसका कोई आभारी नहीं होता, आरम्भ किया हुआ है । मैं विश्वास करता हूं कि आर्यावर्त देश में बहुत कम ऐसे स्थान होंगे जहां पण्डित जी इस अभिप्राय से न गये हों । इस बीच में बड़े-बड़े कठिन शास्त्रार्थ उनके आगे आये हैं । यहां तक कि कई स्थानों पर उनको अपने देशवासियों की ओर से बड़े-बड़े अत्याचार, झगड़े और उपद्रव सहन करने पड़े हैं, परन्तु बनारस जैसी घटना और कहीं उपस्थित नहीं हुई । इस नगर में, जो आर्य लोगों के धर्म का केन्द्र है, ऐसे महात्माओं का आना अत्यन्त शुभ समझना चाहिए और उनको पौर्वीय[१३१] ब्रह्मविद्या पर स्वतन्त्रता पूर्वक शास्त्रार्थ करने का अधिकार होना चाहिए । मैं स्वीकार करता हूं कि पण्डित जी कभी-कभी उत्तेजित हो जाते हैं और यदा कदा अपमानजनक उत्तर भी देते हैं, परन्तु यह काम कदापि सरकारी हस्तक्षेप करने योग्य नहीं हो सकता । निस्सन्देह, सरकार का यह कर्त्तव्य है कि किसी मजहब का अपमान न होने पावे । परन्तु पादरियों और ईसाइयों से बढ़कर कौन सा वह सम्प्रदाय होगा जिसके मजहबी वक्तव्यों से हमारे हृदयों को अधिक चोट पहुंचती हो । कलैक्टर साहब को मजहबी वैमनस्य का यदि ऐसा ही विचार है तो उनको उचित है कि तत्काल एक आज्ञा जारी करें कि किसी भी रंग और जाति का पक्षपात किये बिना, किसी का भी धार्मिक उपदेश नहीं होने पायेगा...इत्यादि । ('स्टार' २७ दिसम्बर, १८७९ बनारस)

फिर उसी २७ दिसम्बर, १८७९ के 'स्टार' के दूसरे कालम में लिखा है कि 'कलैक्टर साहब बनारस ने स्वयमेव स्वामी जी को इंस्पैक्टर पुलिस के द्वारा यह सूचना दी कि तुमको अपने धार्मिक विश्वास पर व्याख्यान और उपदेश देने की आज्ञा है ।' यद्यपि कलैक्टर साहब का यह रोकना ही अनुचित था जैसा कि उनको स्वयं ही यह निषेधाज्ञा वापस करनी पड़ी, परन्तु यह झगड़ा तो २० दिसम्बर के व्याख्यान के विषय में था और पण्डितों को शास्त्रार्थ की चुनौती देने के लिए स्वामी जी के विज्ञापन तो प्रतिदिन नये लगाये जाते थे ।

जितने गालियों भरे हुए, असभ्यतापूर्ण विज्ञापन बनारस के साधारण पंडित लोग लगाते रहे, उनकी ओर तो किसी ने कोई ध्यान न दिया परन्तु इन तीन सप्ताह पश्चात् २५ दिसम्बर, सन् १८७९ के आसपास, एक विज्ञापन अत्यन्त असभ्यतापूर्ण शब्दों से भरा हुआ, पण्डित ताराचरण शर्मा भट्टाचार्य की ओर से निकला (हमने उसकी बहुत खोज की परन्तु नहीं मिला । संकलनकर्ता) । मूर्खों की गालियों की ओर ध्यान देकर, जब पंडितों को भी देखा कि वे भी गाली देना आरम्भ करने लगे हैं, तब स्वामी जी ने यह दूसरा विज्ञापन २७ दिसम्बर, सन् १८७९ को प्रकाशित किया—

विज्ञापनपत्र की प्रतिलिपि

॥ ओ३म् ॥ नमः शर्वशक्तिमते जगदीश्वराय ॥

विज्ञापनपत्रमिदम्

समस्तान्धार्मिकान् प्रतीदमप्रत्याय्यते । यच्छ्रीताराचरणप्रकाशितं वाराणसीस्थविदुषां स्वामिभिः सह शास्त्रार्थकरणाभिप्रायसूचकं सभ्यविद्वल्लेखविरुद्धं पत्रमस्ति । तद्दृष्ट्वाऽत्यन्तमाश्चर्यं प्रतिभाति नः । यदत्रत्यो दयालुरुपानहान्निर्माताऽन्त्यजोऽपिविद्वदुपमां बिभर्ति, तर्हीहत्याः पण्डिताः खलु कस्योपमां दधतीति । न हि योग्ययोर्विदुषोः समागमेन विना कदापि सत्यासत्यव्यवहाराणां सिद्धान्ता भवितुमर्हन्ति । तस्माद् भाविनि समागमे

विशुद्धानन्दसरस्वतीस्वामिनो, बालशास्त्रिणो वा संवादं कर्तुं प्रवर्तेरन्नेतरा: किल यदैतेत्र प्रवर्त्स्यन्ति तदा स्वामिन्नऽप्युद्यता: सन्त्येवेतयलमति विस्तारेण ॥

विद्वांस: सुविचारशीलसहिता धर्मोपकारे रता: । दुष्टं कर्म विहाय सत्यसरणा नौकेव पारायते ॥
क्रूरा कामसिता: किमत्र समला: स्वार्था अहो भावना ।
विघ्नान् कस्य नरस्य नैव वितनान् कुर्यु: सदा दूषिता: ॥ १ ॥
ऋतुरामाङ्कचन्द्रेब्दे मार्गशीर्षेसिते दले ॥ चतुर्दश्यां शनौ वारे पत्रमेतदलेखिषम् ॥

सब काशीस्थ धार्मिक विद्वान् महाशयों पर प्रकट हो कि श्री ताराचरण शर्मा ने एक विज्ञापनपत्र छपवाया जिसका अभिप्राय यह है कि काशी निवासी विद्वज्जन स्वामी दयानन्द सरस्वती जी से शास्त्रार्थ करने की इच्छा करते हैं। यह पत्र विश्वास करने योग्य तो है परन्तु ऐसा लेख सभ्य विद्वानों का नहीं होता इसके देखनेसे हमको बड़ा आश्चर्य होता है कि जब जूते गांठने और बनाने हारा काशी का चमार विद्वानों की उपमा को धारण करता है तो पण्डित लोग किसकी उपमा को धारण करेंगे। भला बक और हंस की समता कहीं सम्भव है ? यदि यह बात एक मूर्ख से भी पूछी जाये तो वह भी दृढ़तापूर्वक कहेगा कि सत्यासत्य का सिद्धान्त बिना पण्डितों के समागम के कदापि नहीं हो सकता। अब इस काशी में सर्वोत्तम पण्डित दो हैं। एक स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती; दूसरे बालशास्त्री। इन दोनों महाशयों में से कोई एक भी यदि शास्त्रार्थ करना चाहें तो स्वामी जी भी सर्वथा उपस्थित हैं। सिवाय इन दोनों के दूसरों का विज्ञापनपत्र देना और लिखना सर्वथा निरर्थक है।

श्लोकों का अनुवाद—सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर की सृष्टि में दो प्रकार के मनुष्य हैं—एक उत्तम, दूसरे निकृष्ट। उत्तम वे हैं जो कि विचारयुक्त, सुशील, धर्म और उपकार करने में संतुष्ट, दुष्ट कर्मों से दूर, सत्य के प्रेमी, नौका के समान अविद्यादि दोषों और कष्टों से लोगों को पार उतारने वाले विद्वान् हैं। वे अपनी शांति, परोपकार और गंभीरतादि को कभी नहीं छोड़ते और जो क्रूर, कामी, अविद्यादिमलयुक्त, स्वार्थी, दूषित मनुष्य हैं वे श्रेष्ठ मनुष्यों के लिए कौन से बड़े-बड़े विघ्न सदा खड़े नहीं करते हैं ? यह बड़ा आश्चर्य है कि आप्त लोग असभ्य लोगों पर कृपा करके सदा उनका उपकार ही किया करते हैं परन्तु वे अपने दोषों से उपकार को भी अनुपकार ही माना करते हैं। इसलिए हम प्रार्थना करते हैं कि सर्वशक्तिमान् परमात्मा अपनी कृपा से उन मनुष्यों को सब बुरे कामों से हटाकर सत्यमार्ग में सदा प्रवृत्त करें ॥ संवत् १९३६ वि०, मार्ग० शुक्ला १४, शनिवार ॥

स्वामी जी के धर्मप्रचार के सम्बन्ध में विभिन्न सज्जनों के मत

एक यूरोपियन संवाददाता का पायोनियर में लेख

स्वामी दयानन्द के सभी कृत्य पूर्णतया ठीक हैं—'आज यह बात विचारणीय है कि अंग्रेजी सरकार के शासन से हमको मजहबी कामों की स्वतन्त्रता प्राप्त है या नहीं ? मेरा विश्वास था कि हमारी सरकार इन कामों में बिल्कुल हस्तक्षेप नहीं करती है और दिल्ली दरबार के विज्ञापन के शब्दों तथा देश की व्यवस्था को देखने से तो मेरे इस विचार की और भी अधिक पुष्टि होती थी और चूंकि मैंने यूरोप में शिक्षा प्राप्त की है इसलिए मेरा यह विचार था कि यदि सरकार हस्तक्षेप करेगी भी तो वह उन लोगों का साथ देगी जो देश की उन्नति के इच्छुक हैं। परन्तु आजकल की एक उस घटना ने, जो नीचे लिखी जाती है, मेरे इस विचार को बिलकुल बदल दिया है।

स्वामी जी ने नवयुवकों में देशोन्नति की भावना जगाई

देखिये, एक वह व्यक्ति, जिसकी विद्वत्ता और योग्यता में तनिक भी सन्देह नहीं है, पांच वर्ष से इस देश में प्रकट हुआ है । वह नगर-नगर में फिरता है और वेदों की आज्ञाओं का उपदेश करता है जिनमें एक परमेश्वर की उपासना का निर्देश है तथा अन्यों की उपासना का निषेध है । और केवल यही नही, प्रत्युत उसने सिद्ध कर दिया है कि सतीप्रथा, मूर्तिपूजा और अन्य बुरी प्रथाएं, जो पुराणों में लिखी हैं वह स्वार्थी पुजारियों द्वारा आविष्कृत हैं और वेद के अभिप्राय के बिलकुल विरुद्ध हैं । उसने बुरी प्रथाओं को, जो इस समय प्रचलित और जिन्होंने एक सर्वश्रेष्ठ और सर्वोच्च धर्म को ऐसा बिगाड़ दिया है इस प्रकार जनता के समक्ष सिद्ध किया और प्राचीन आर्यावर्त की विद्या और समृद्धि का इस प्रकार वर्णन किया तथा यहां के निवासियों को अपने बाप-दादा के गुणों को ग्रहण करने में वह साहस दिलाया कि आजकल के नवयुवकों के हृदयों में देशोन्नति की एक भावना उत्पन्न हो गई । सत्य तो यह है कि वह तर्क में अद्वितीय है और सुन्दर भाषण करने में दूसरा लूथर ।[१३२] इस व्यक्ति का यह विचार कदापि नहीं कि सरकार के विरुद्ध किसी प्रकार का कोई आन्दोलन खड़ा करे, प्रत्युत उसने अपनी सभाओं में स्पष्ट शब्दों में कहा कि ब्रिटिश सरकार का ही शासन है कि जिसने मजहबी विवाद में कभी हस्तक्षेप नहीं किया अपितु पूरी व अद्‌भुत स्वतन्त्रता दी । सारांश यह है कि इस विद्वान् व्यक्ति के समस्त कृत्य पूर्णतया ठीक हैं और सम्भवत: अपने देश और देशवासियों के लिए अत्यन्त लाभकारी हैं । यह व्यक्ति पण्डित दयानन्द सरस्वती स्वामी; आर्यसमाज का संस्थापक है ।

आर्यसमाजों के काम तथा सिद्धान्त ब्रह्मसमाज के कामों व सिद्धान्तों से विपरीत परन्तु अधिक उचित हैं—आर्यसमाजों के सिद्धान्त और इनके कार्य, प्रबल युक्तियों के आधार पर, ब्रह्मसमाज के सिद्धान्तों के विपरीत हैं क्योंकि केशवचंद्र सेन जातिभेद को बिलकुल नहीं मानते और वेदों को उन पुस्तकों के साथ जिनको परमेश्वरकृत माना जाता है, समान स्तर पर रखते हैं । इसके विपरीत स्वामी जी यद्यपि वेद की शिक्षा के अनुसार वर्णव्यवस्था का उपदेश करते हैं, तथापि वह जाति के प्रचलित वर्ण-विभाग में हस्तक्षेप नहीं करते और वेदों को सबसे उत्कृष्ट प्रमाण मानते हैं । सारांश यह है कि केशवचंद्र सेन की अपेक्षा स्वामी जी के कृत्य कहीं बहुत कुछ उचित हैं और उनसे किसी प्रकार के उपद्रव की आशंका नहीं; इसलिए यदि सच पूछिये तो स्वामी जी भी केशवचन्द्र सेन के समान सरकारी कृपा के योग्य थे ।

स्वामी जी के अनुयायियों की संख्या तीन लाख है—स्वामी दयानन्द सरस्वती नगर-नगर में फिरे और व्याख्यान और उपदेश दिये । उन्होंने बम्बई से लेकर पचास भिन्न-भिन्न नगरों में आर्यसमाज स्थापित कर दिये । इस समय आर्यावर्त देश में उनके अनुयायी तीन लाख के लगभग वर्णन किये जाते हैं ।

वह अपना दौरा करते हुए अन्तत: बनारस में प्रविष्ट हुए और विज्ञापन देकर मूर्तिपूजा आदि विषयों पर वहां के सर्वसाधारण पण्डितों से शास्त्रार्थ के इच्छुक हुए और दो प्रसिद्ध पण्डितों के सम्मुख जो वेद के बहुत अच्छे जानने वाले विख्यात हैं, विशेष रूप से शास्त्रार्थ का प्रस्ताव रखा; इससे उनका यह अभिप्राय था कि यदि बनारस में, जो धार्मिक विचारों का केन्द्र है, पण्डितों की पराजय हो जायेगी तो निस्सन्देह मूर्तिपूजा जाती रहेगी और यहां के निवासियों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ेगा । परन्तु खेद है कि पंडितों ने कुछ उत्तर ही न दिया । यद्यपि अवस्था यह थी कि यदि स्वामी दयानन्द सरस्वती भूल कर रहे थे तो पंडितों को उनको झूठा बनाने का बहुत अच्छा अवसर प्राप्त हुआ था । यही नहीं, यहां की पराजय तो उनके समस्त कृत्यों पर ही पानी फेर देती और ब्राह्मणों के प्रति जनता के हृदय में दुगुना विश्वास उत्पन्न कर देती । अस्तु, लूथर के समान स्वामी जी ने भी इस अवस्था पर सन्तोष न किया और उन्होंने २० दिसम्बर, सन् १८७९ को बंगाली स्कूल में व्याख्यान देने का विज्ञापन दिया । कर्नल आल्काट ने भी (जिनके विचार पंडित दयानन्द सरस्वती से बहुत विषयों में

मिलते हैं) उसी दिन और उसी स्थान पर अमरीका की ब्रह्मोपासक सभा की ओर से व्याख्यान देने का विज्ञापन दिया था और एक विशाल जनसमूह दोनों व्यक्तियों के व्याख्यान सुनने के लिए एकत्रित हुआ था । परन्तु जैसे ही पंडित दयानन्द सरस्वती स्कूल के चबूतरे पर आये वैसे ही एक चिट्ठी बनारस के मैजिस्ट्रेट मिस्टर वाल साहब की ओर से पंडित जी को दी गई जिसमें लिखा था कि इस समय बनारस में कोई मजहबी शास्त्रार्थ नहीं होना चाहिए जिसका कारण यह बताया गया था कि दस या बारह वर्ष पूर्व जब स्वामी दयानन्द सरस्वती इस नगर में आये थे तब उनके साथ हुए शास्त्रार्थ से बहुत उपद्रव हुआ था । अतः आश्चर्य नहीं कि अब भी वैसा ही देखने में आवे ।' मैंने सुना है कि मिस्टर वाल साहब पक्षपाती पंडितों के बहकावे में आ गये और यह आज्ञा लिख दी ।

स्वामी जी के व्याख्यानों पर लगाये प्रतिबन्ध की आलोचना

व्याख्यानों पर प्रतिबन्ध लगाना मैजिस्ट्रेट की भूल थी—'एक यूरोपियन मैजिस्ट्रेट से (जो एक न्यायकारी तथा स्वतन्त्रताप्रिय सरकार के स्थानापन्न है) अपने अधिकारों का प्रयोग करने में कैसे भूल हुई ? -यह बात कुछ विशेष व्याख्यान की अपेक्षा नहीं रखती क्योंकि यह तो स्वयं प्रकट ही है और निस्सन्देह मिस्टर वाल साहब तनिक विचार से स्वयं भी अनुभव करेंगे कि उन्होंने उपर्युक्त कार्य करके इस काल के एक अत्यन्त विद्वान् और योग्य व्यक्ति के हृदय को दुखाया ।' ('पायोनियर' इलाहाबाद, ३० दिसम्बर, सन् १८७९) ।

कर्नल साहब तथा मैडम के बनारस पधारने के विषय में 'भारतसुदशा प्रवर्तक' पत्रिका फर्रूखाबाद में लिखा है 'कर्नल आल्काट आदि का भारत के प्रति प्रेम, दयानन्द के कारण उत्पन्न हुआ । अमरीका के कर्नल आल्काट साहब आदि दो-तीन सम्मानित व्यक्ति बम्बई से चलकर १५ दिसम्बर, सन् १८७९ को स्वामी जी के दर्शनार्थ काशी पहुंचे । उन्होंने वहां कई स्थानों पर विद्वज्जनों की सभा में व्याख्यान देकर अपना यह मुख्य अभीष्ट प्रकाशित किया कि पृथिवी भर में वेद जैसा प्राचीन और ज्ञानपूर्ण कोई दूसरा ग्रन्थ नहीं है । इसी वेद से सर्वत्र ज्ञान फैला है । यहां के दर्शनशास्त्र सब स्थानों के शास्त्रों से श्रेष्ठ हैं । उन्हीं वेद और शास्त्रों को सीखने के लिए हम अपना घरबार, बाल-बच्चे और समस्त सुखों और लोभों को त्याग कर यहां आये हैं, परन्तु परम शोक हमको अब यहां के देशनिवासियों पर है कि जिन्होंने आलसी होकर अपनी सब प्राचीन विद्या त्याग दी है । हमने आर्यावर्त को अपना देश समझ कर यहीं मरना ठाना है, इसलिए कि आर्यों को निद्रा से जगावें और उन्हें उनके प्राचीन महत्व तथा ऋषियों के कृत्यों का स्मरण करावें कि जिनसे प्रत्येक पुरुष विद्वान् होकर समस्त मनुष्यों को अपना भाई समझ कर भला चाहने वाला हो । और कहा कि हमारी सभा में सब धर्म वाले सम्मिलित हो सकते हैं परन्तु वह नहीं जो ईश्वर और परलोक को नहीं मानते ।

इस पर काशीवासियों ने उनको बहुत धन्यवाद दिया और कहा कि हम लोगों के प्राचीन वेद आदि ग्रन्थों पर इन दूर देश के रहने वाले (अन्य धर्मावलम्बी) विद्वानों की इस प्रकार निष्ठा होने का मूल कारण विद्वन्-मंडली-भूषण, भारतरत्न, स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज को समझना चाहिए । यद्यपि कई विषयों में हम लोगों के विचार उनसे नहीं मिलते तो भी हम लोग उनको असंख्य धन्यवाद देते हैं । (दिसम्बर मास, १८७९, पृष्ठ १९-२०, खंड १, संख्या ६) ।

६ जनवरी १८८० के **'अवध अखबार'** में वही लेख 'पायोनियर' से अनुवाद करके छापा गया है और उसके अन्त में लिखा है—

"आशा है कि स्थानीय सरकार बनारस के मैजिस्ट्रेट मिस्टर वाल साहब से उत्तर मांगेगी कि क्यों उन्होंने स्वामी दयानन्द सरस्वती को व्याख्यान देने से रोका जो वेदान्त पर बोलना चाहते थे । वास्तव में यह विचित्र बात है और पहले कभी ऐसा नहीं हुआ । पता नहीं कि इस व्याख्यान से, जो वह एक विशेष धर्म पर देने वाले थे, उनको क्यों रोका गया ?

मिस्टर वाल साहब यह उत्तर नहीं दे सकते कि हमारा जिला ऐसा है कि जहां आर्य (हिन्दू) लोग अपने मजहबी वाद-विवाद उस कारण न कर पायें कि उससे उपद्रव की आशंका है। चूंकि वह मैजिस्ट्रेट थे बस इसलिए यह निषेधाज्ञा प्रचारित की जो केवल एक बचकानी कार्यवाही है और अत्यन्त खेद है कि स्थानीय सरकार को यह बात विदित होनी चाहिए कि ऐसे कार्य से बनारस की अपकीर्ति हुई और यह कार्य ब्रिटिश प्रबन्ध और उदारता के पूर्णतया विरुद्ध है।"

ए० बी० हिन्दू नामक संवाददाता का लेख—तत्पश्चात् स्वामी जी का उस समय का वृत्तांत दो संवाददाताओं ने भी प्रकाशित कराया है, वह भी पाठकों की भेंट करता हूं। इनमें से पहला संवाददाता ए० बी० हिन्दू है। उसने ८ जनवरी, सन् १८८० ई० के **'पायोनियर'** समाचार पत्र में इस प्रकार लिखा—

'पायोनियर' समाचार पत्र के उस लेख को पढ़कर, जिसमें उस कार्यवाही का वर्णन है जो आजकल स्वामी दयानन्द सरस्वती के साथ बनारस में की गई, पाठकों का ऐसा विचार बना होगा कि स्वामी जी प्रथम बार ही बनारस में आये हैं और वहां के ब्राह्मणों ने शास्त्रार्थ के भय से मैजिस्ट्रेट के संरक्षण में शरण ली है परन्तु यह अवस्था तो है ही नहीं। क्योंकि लगभग दस वर्ष व्यतीत हुए, तब भी स्वामी जी बनारस में पधारे थे और वहां के पण्डितों को इस बारे में शास्त्रार्थ का विज्ञापन दिया था कि 'आर्य लोगों (जो आजकल हिन्दुओं के नाम से बदनाम हैं) के पवित्र धर्म ग्रन्थों के अनुसार मूर्तिपूजन की आज्ञा है या नहीं ?, पंडित लोग भी शास्त्रार्थ के लिए उद्यत हुए और श्रीमान् महाराजा साहब बनारस (जो उस शास्त्रार्थ सभा के प्रधान नियुक्त हुए थे) के समर्थन और संरक्षण में दुर्गा मन्दिर के समीप एक बाग में एकत्रित हुए। यह एक बहुत बड़ा शास्त्रार्थ था। सैकड़ों विद्वानों, पुजारियों तथा सहस्त्रों गृहस्थों का समूह शास्त्रार्थ सुनने के लिये एकत्र हुआ था। इस शास्त्रार्थ में एक ओर स्वामी दयानन्द सरस्वती थे और दूसरी ओर पण्डित बालशास्त्री, भूतपूर्व प्रोफेसर संस्कृत कालिज बनारस तथा पंडित ताराचरण तर्करत्न (महाराजा बनारस के विशेष पंडित) थे। इसके अतिरिक्त कुछ और पंडित भी शास्त्रार्थ में आकर सम्मिलित हो गये थे।

इस सभा का वृत्तांत सामवेदी शाखा के विद्वान् संपादक[१३३] ने लिखा था और वह 'प्रत्नकम्रनन्दिनी' नामक एक मासिक संस्कृत-पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। विवादास्पद विषय यह था (जैसा कि ऊपर लिख चुका हूं) कि आर्य लोगों की पवित्र धर्मपुस्तकों में मूर्तिपूजा का निर्देश है या नहीं ? पंडितों का कथन था कि पवित्र वेद में मूर्तिपूजन का इतना अधिक स्पष्ट निषेध नहीं है जितना कि यहूदियों की दश धार्मिक आज्ञाओं में से एक में लिखा हुआ है और पुराणों में तो मूर्तिपूजन का बहुत अधिक अनुरोध है। स्वामी जी ने पुराणों को प्रामाणिक मानना स्वीकार नहीं किया था और उन बहुत-सी बातों में से जो उन्होंने उस समय कही थीं, एक बात यह भी थी कि पुराण शब्द सदा विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है और ऐसी पुस्तकों के नामों के पहले जो प्राचीन कहलाती हैं, विशेषण के रूप में लगाया जाता है। इसके विरुद्ध पण्डितों का दावा था कि पुराण शब्द संज्ञा है और उन कतिपय पुस्तकों का नाम है जो आर्य लोगों (हिन्दुओं) के नवीन धर्म का आधार हैं। अभिप्राय यह है कि हेरफेर के पश्चात् स्वामी जी ने कहा कि यदि यही दावा है तो पवित्र वेद में पुराण शब्द का प्रयोग संज्ञा के रूप में कहीं दिखाओ। दुर्भाग्यवश इस समय एक पंडित ने, किसी पवित्र पुस्तक के कुछ पृष्ठ, जिनमें पुराण शब्द संज्ञा के रूप में प्रयुक्त हुआ था, उठा कर दिखाये। स्वामी जी उस समय न उसकी प्रामाणिकता को अस्वीकार कर सके और न अपनी विद्वत्ता और बुद्धिमत्ता से पुराण शब्द के प्रयोग का उस स्थान पर कुछ और अर्थ कर सके, केवल विचारों में निमग्न हो गये और पंडितों ने विजय की ताली बजा दी, प्रत्युत कुछ उपद्रवी लोग तो, कोलाहल मचा कर, इस विचार से कि वह जाति की प्रचलित उपासनाविधि पर आक्षेप करते हैं, स्वामी जी के मारने को उद्यत हो गये थे परन्तु बनारस के महाराजा साहब की उपस्थिति के कारण उपद्रव की आग बुझ गई और कुछ भड़क न सकी। तत्पश्चात् स्वामी जी बनारस में कुछ दिन और रहे परन्तु उनकी वह प्रसिद्धि जाती रही और पंडितों की विजय की सूचना समस्त आर्य लोगों (सनातनी मूर्तिपूजकों) के हृदयों को आनन्ददायक और नवजीवन प्रदान करने वाली हुई।

सारांश यह कि बनारस के ब्राह्मणों से स्वामी जी का वास्तव में जो शास्त्रार्थ हुआ था उसका सच्चा और पक्षपातरहित वर्णन उक्त प्रकार था ।

ए० बी० हिन्दू के कथन का सारांश—अब इस वर्णन से यह परिणाम नहीं निकलता है कि जब कोई व्यक्ति अपने शत्रु से एक बार बड़ी हार खा जाये फिर वह चाहे कितना ही अधिक सशस्त्र और पहले से अधिक शक्तिसम्पन्न क्यों न हो जाये तो भी पुन: अपने उस शत्रु का सामना करने का अधिकार नहीं रखता । उपर्युक्त दृष्टकोण से दूसरे शास्त्रार्थ का निषेध वास्तव में आक्षेप के योग्य है परन्तु यह विदित रहे कि चाहे इस बार स्वामी जी ही विजयी हो जावें परन्तु यह सम्भव न होगा कि मूर्तिपूजन आर्यावर्त से निर्मूल हो जाये क्योंकि बाईबिल का प्रचार होने पर भी मूर्तिपूजा अब तक यूरोप में भी किसी न किसी रूप में प्रचलित है और निम्नकोटि के मुसलमानों में भी इसका प्रचार है । मैं भी स्वीकार करता हूं कि मूर्तिपूजन एक प्रकार की वह उपासना है जो केवल अज्ञानियों और नौसिखियों का ही कर्त्तव्य है और जो लोग मूर्तिपूजन पर विश्वास रखते हैं और उसके समर्थक हैं उनका भी यही कहना है कि मूर्तिपूजन, जो एक निम्न कोटि की उपासना का ढंग है, केवल अज्ञानियों और नौसिखियों के लिये निश्चित किया गया है, और जो योग की योग्यता रखते हैं और ज्ञानी हैं उनको एक परमेश्वर की उपासना करने और उस मजहब को, जो कि विज्ञान की दृष्टि से सत्य प्रतीत होता हो, मानने का किसी प्रकार का निषेध नहीं है । परन्तु साथ ही उनका कथन है कि मूर्तिपूजा आजकल के नास्तिकों या भौतिकवादियों के मजहब से कई गुना अधिक श्रेष्ठ है ।

मूर्तिपूजन के विषय में इस वादानुवाद से मेरा इसके अतिरिक्त और कुछ अभिप्राय नहीं है कि 'पायोनियर' समाचारपत्र के यूरोपियन पाठक ऐसे-ऐसे वक्तव्यों को देखकर यह विचार न बना लें कि मूर्तिपूजन, अदृश्य परमेश्वर की प्रकट रूप में अथवा उसके सशरीर 'स्थानापन्न' रूप की उपासना नहीं है ।

स्वामी जी के कार्य का चारों ओर से स्वागत

१५ जनवरी, सन् १८७० के 'पायोनियर' समाचार पत्र में एक 'आर्य संवाददाता' ने ए० बी० हिन्दू के उपर्युक्त मत का इस प्रकार खण्डन किया है; 'मैं 'पायोनियर' समाचारपत्र के श्री ए० बी० नामक संवाददाता के उक्त लेख पर कुछ पंक्तियां पाठकों की भेंट करता हूं, क्योंकि उस लेख से स्वामी जी के प्रथम काशी शास्त्रार्थ का सर्वथा स्पष्ट और निष्पक्ष वर्णन कदापि नहीं मिलता ।'

इस अवसर पर उक्त शास्त्रार्थ का विस्तारपूर्वक वर्णन करना मेरी दृष्टि में बिल्कुल उचित नहीं है क्योंकि 'पायोनियर' समाचारपत्र के यूरोपियन पाठकों को उसका ब्यौरा भली प्रकार समझ में न आ सकेगा । रहे वे सज्जन, जो उस शास्त्रार्थ का वृत्तांत विस्तारपूर्वक जानना चाहते हैं और उसकी उत्कृष्ट इच्छा रखते हैं, उनको चाहिये कि 'शास्त्रार्थ' नामक एक छोटी-सी पुस्तक, जो ब्रजवासीदास कम्पनी बनारस की दुकान से मिल सकती है, उसको खरीद कर उस शास्त्रार्थ का वास्तविक वृत्तांत जानने का कष्ट करें ।

सारांश यह है कि उक्त शास्त्रार्थ में विवादास्पद विषय यह था कि पवित्र वेदों में जिनको साधारण हिन्दू भी ईश्वरीय वचन मानते हैं, मूर्तिपूजन का निर्देश है या नहीं ? स्वामी जी का यह दावा था कि पवित्र वेदों में मूर्तिपूजन की बिल्कुल आज्ञा नहीं, परन्तु पण्डित लोग न तो उस समय, और न तब से आजतक ही, पवित्र वेदों से कोई ऐसा वाक्य निकाल कर दिखा सके जिससे स्वामी जी के कथन का खंडन हो और उनके (पण्डितों के अपने) वचन का समर्थन हो । पण्डितों के उस समय के उत्तर बिलकुल सन्देहजनक थे और वह सभा शास्त्रार्थ का एक सार्वजनिक मनोरंजन का स्थान बन गई थी; वह कोई शास्त्रार्थ मंडली नहीं थी, क्योंकि पण्डित लोग विवादास्पद विषय पर तो जमते ही न थे । कभी न्याय, कभी व्याकरण

और कभी किसी और विषय पर, जिसका वास्तविक विवादास्पद विषय से कोई सम्बन्ध न था, समय को टाल रहे थे । अब विचार कीजिये कि जब उस शास्त्रार्थ में ऐसी अवस्था रही और इस प्रकार की कार्यवाही प्रकाश में आई तो संवाददाता ए० बी० साहब, किस प्रकार कह सकते हैं कि स्वामी जी प्रथम शास्त्रार्थ में पराजित हो गये थे ? सारांश यह कि मुझे आशा है कि न्यायप्रिय पाठकगण इस लेख को पढ़कर स्वयं ही सत्यासत्य का विवेक कर लेंगे ।

चूंकि मैं पहले लिख चुका हूं कि 'पायोनियर' समाचारपत्र इसलिए नहीं है कि इसमें मूर्तिपूजन सम्बन्धी शास्त्रार्थ के विषय के विवरण प्रकाशित हुआ करें और फिर मैं अब स्वयं इस अपनी बात के विपरीत ही इस लेख को प्रकाशनार्थ भेजता हूं । इस पर मेरा कहना यह है कि लेख से मेरा यह अभिप्राय है कि आपके संवाददाता ए० बी० साहब जो अशुद्ध समाचार के द्वारा इस युग के वेदविद्या के विद्वान् को बदनाम करना चाहते हैं, वह न कर सकें और इस विषय में सत्य घटना का समर्थन करूं ।

इसके साथ ही यह भी लिख देता हूं कि स्वामी जी के इस कथन का कि प्राचीन आर्य लोगों की शिक्षाओं में मूर्तिपूजन की आज्ञा नहीं है, यूरोपियन संस्कृत के विद्वान् भी समर्थन करते हैं, और साक्षी हैं । जब स्वामी जी का व्याख्यान मैजिस्ट्रेट ने रोक दिया था तो हिन्दू धर्म के समर्थक समाचारपत्र अत्यन्त प्रसन्न हुए और मैजिस्ट्रेट की आज्ञा पर बड़ी खुशी मनाई और जब 'पायोनियर' ने मैजिस्ट्रेट के विरुद्ध लिखा तो हिन्दू-समाचारपत्रों ने 'पायोनियर' के विरुद्ध भी बहुत कुछ लिखा (देखो, 'कविवचनसुधा' खंड ११ संख्या २३, २४, १९ जनवरी, सन् १८८०) और यह भी लिखा कि 'नहीं तो निस्सन्देह आप छिपे हुए ईसाई होंगे और जो आज तक आपको लोग ईसा का अवतार कहते हैं वह बात सत्य होगी' ('कविवचनसुधा' १९ जनवरी, सन् १८८०, खंड ११ संख्या २३, २४)

'थियोसोफिस्ट' पत्रिका मार्च मास सन् १८८० में लिखा है-'स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के व्याख्यान के विषय में मिस्टर वाल साहब, मैजिस्ट्रेट बनारस ने जो एक अनुचित निषेधाज्ञा जारी कर दी थी वह अन्तत: दूर हो गई और स्वामी जी ने २१ मार्च, सन् १८८० तदनुसार फागुन शुदि १० रविवार की शाम से बनारस में उपदेश करना आरम्भ कर दिया । आज्ञा प्राप्त होने से पूर्व (जिसकी स्वामी जी को किसी अवस्था में आवश्यकता नहीं होनी चाहिये थी) मिस्टर वाल साहब और स्वामी जी में एक घंटे तक बातचीत होती रही और श्रीमान् लैफ्टिनैन्ट गवर्नर बहादुर ने मैजिस्ट्रेट साहब की कार्यवाही के विषय में यह बहाना किया कि मुहर्रम के दिनों में स्वामी जी के लिए व्याख्यान देना अच्छा न था । प्रथम व्याख्यान स्वामी जी का सृष्टि के विषय में हुआ ।'

फिर **'भारतमित्र' समाचारपत्र, कलकत्ता** ने लिखा है कि 'बड़े आनन्द की बात है कि श्रीकाशी जी में स्वामी दयानन्द सरस्वती २१ तारीख से वेदान्त के विषय में प्रतिदिन ६ बजे शाम से सात आठ बजे रात तक व्याख्यान दिया करेंगे । ये व्याख्यान लक्ष्मी कुण्ड पर श्रीयुत महाराज विजयनगराधिपति के स्थान में उक्त समय पर हुआ करेगा । देखिये ईश्वर कुशल निभावे । (१ अप्रैल सन् १८८० तदनुसार चैत कृष्णा ६, बृहस्पतिवार संवत् १९३६, खंड २, संख्या १४) ।

बनारस की अंतिम धर्मयात्रा की कुछ घटनाएं

फिर 'देश हितैषी' पत्रिका, अजमेर में लिखा है—कि होली से पांच दिन पहले अर्थात् २१ मार्च सन् १८८० को स्वामी जी के व्याख्यान आरम्भ हुए और होली से दो दिन पहले अर्थात् २५ मार्च, सन् १८७० को समर्थदान[१३४] बख्तावरसिंह[१३५] और बख्तावरसिंह के छोटे भाई मुरारीलाल ने स्वामी जी से यज्ञोपवीत लिया । संस्कार से एक दिन पहले स्वामी जी ने व्याख्यान में यज्ञोपवीत के लाभ बतलाये थे और कहा था कि आजकल के पोप लोग यज्ञोपवीत संस्कार में बहुत पाखंड करते हैं सो वृथा है, किन्तु सूत्रोक्त विधि से जैसा कि संस्कारविधि में लिखा है, वैसा ही करना चाहिये । (खंड १, संख्या १०, पृष्ठ १०, माघ मास, संवत् १९३९ वि०) ।

'आर्यसमाचार' मेरठ में लिखा है—'आर्य लोगों को बड़ी आशा थी कि इस बार काशी में धर्म की मुख्य और आवश्यक बातें सर्वसाधारण जनता की इच्छानुसार अवश्य निश्चित हो जायेंगी परन्तु खेद है कि आज वह आशा निराशा में परिवर्तित हो गई और पक्षपात के विषय में काशीनगर और स्थानों से भी बढ़ गया। भला पोप तो अपनी पोपलीला बनाये रखने के लिए हठधर्मी का त्याग नहीं करते परन्तु बड़े-बड़े विद्वान् और महात्मा संन्यासी क्यों सांसारिक लोभ में फंसे और पोप और अविद्याग्रस्तों से भयभीत हुए? परन्तु वास्तविकता यह है कि यदि ऐसा न करते तो और क्या करते! क्योंकि सच पर आपत्ति कैसी? और वास्तविक तथ्य का खंडन और उस पर शास्त्रार्थ कैसा!

परन्तु धन्य है पक्षपात को जिसने (उन्हें) मौन तो नहीं बैठने दिया। शास्त्रार्थ तो दूर रहा, पोप लोग तो वह चाल चले थे कि बनारस में स्वामी जी का व्याख्यान ही न होने पाये। परन्तु चूंकि सत्य की सदा जय और असत्य की सर्वदा हार होती है इसलिए उनकी चाल कुछ सफल न हुई; अपितु, अन्त में उन्हीं की रही सही कीर्ति भी नष्ट हो गई। देखो, आज चालू वर्ष के २१ मार्च से स्वामी जी का व्याख्यान काशी में हो रहा है और आनन्द मिल रहा है। धार्मिक पुरुष प्रसन्न हैं परन्तु पोपों के कलेजे टुकड़े-टुकड़े हो रहे हैं। अब सर्वशक्तिमान् परमेश्वर से प्रार्थना है कि पाखंड का नाश हो और धर्म की वृद्धि तथा प्रकाश हो' ('आर्यसमाचार' मेरठ, पृष्ठ ९, १०, खंड १, संख्या १२, चैत्रमास, संवत् १९३६)।

पंडित रामप्रकाश जी उपदेशक आर्यसमाज मिर्जापुर ने वर्णन किया 'इस बार हम भी उनके व्याख्यान सुनने बनारस गये थे और वहां १३ भाषण स्वामी जी के सुने। हम चैत बदि को गये थे। स्वामी जी के सब मिलाकर २२ व्याख्यान हुए थे। सृष्टि-उत्पत्ति से लेकर प्रलय तक विभिन्न विषयों पर व्याख्यान हुए थे। हमारे जाने से पहले लोगों ने शरारत करके व्याख्यान बन्द करवा दिये थे परन्तु अन्त में आज्ञा हो गई थी।

दंगाइयों के मन की ताड़ गये : व्याख्यान अपने स्थान पर ही दिये—कुछ दिन व्याख्यान होने के पश्चात् बंगाली टोले के एक व्यक्ति ने एक प्रार्थनापत्र दिया कि कई लोग ऐसे हैं जो यहां नहीं आ सकते। यदि बंगाली टोले में आप किसी स्थान पर व्याख्यान दें, तो वे भी आकर सुन सकते हैं। स्वामी जी ने उस समय उस पत्र का उत्तर न दिया और कहा कि कल इसका उत्तर देंगे। यह पत्र वास्तव में कुछ बदमाशों ने शरारत करने के लिये लिखा था कि यदि वहां व्याख्यान देंगे तो हम पत्थर या जूते फेंक देंगे। जब स्वामी जी ने मकान पर आकर विचार किया तो यह बात अच्छी प्रकार प्रकट हो गई। इसलिए स्वामी जी ने दूसरे दिन व्याख्यान में कह दिया कि यहां किसी को आने का निषेध नहीं। और जो आते हैं सबको हम जानते ही नहीं इसलिए किसी को आने में लज्जा नहीं करनी चाहिये। जिसकी इच्छा हो वह आवे अन्यथा न आवे।

छःओं दर्शनों में एक वाक्यता है—विद्वान् **पंडित मोतीराम जी गौड़** मिर्जापुर निवासी ने वर्णन किया—'संवत् १९३६ में जब स्वामीजी बनारस के आनन्दबाग में उतरे हुए थे तो हम मिलने गये। वहां एक तालाब है, उस तालाब के दक्षिण की ओर घाट की चट्टान पर बैठे हुए थे। साधु जवाहरदास उदासी भी उस समय आये और कहा कि हमें स्वामी जी से कुछ पूछना है और यह कि स्वामी जी जो कहते हैं कि पुराणों में विरोध है, ऐसे तो हमें आर्य ग्रन्थों में भी विरोध दीखता है; जैसे कि षट्शास्त्रों में। उन्होंने स्वामी जी से पूछा और स्वामी जी ने प्रसन्नतापूर्वक उत्तर दिया कि इन सबकी एक वाक्यता है। शारीरक[1] के साथ सबका सम्बन्ध बतला दिया कि शारीरक[१३६] फलस्वरूप है, शेष सब उससे सम्बद्ध हैं, कोई इनका विरोध नहीं। इन दिनों व्याख्यान लक्ष्मीकुंड पर दिया करते थे। सात बजे से नौ बजे रात तक, दो घंटे, व्याख्यान देते थे।

---

1. शारीरक का अर्थ है शरीर में निवास करने वाला-आत्मा तथा परमात्मा। इनका विवेचन ही वेदान्तदर्शन में मिलता है।

शंकासमाधान की खुली आज्ञा थी कि बीच में (अपनी शंका सब) लिख लें अन्त में हम उनका उत्तर देंगे। दस-ग्यारह व्याख्यान हमने सुने और उन दिनों हम, वहां १७-१८ दिन रहे थे। सृष्टि-उत्पत्ति से लेकर प्रलय तक व्याख्यानों का क्रम था।

यहां वेदार्थ कोई नहीं जानता; इसीलिए दयानन्द से शास्त्रार्थ करने में कोई समर्थ नहीं—'हमसे कहा कि विशुद्धानन्द जी से तुम्हारा बहुत सम्बन्ध है अर्थात् तुम एक गुरु के शिष्य हो। क्यों नहीं वह सत्य पर दृढ़ होते; सामने आकर शास्त्रार्थ करके निर्णय कर लें, या हम छोड़ दें या वह छोड़ दें; तुम जाकर कहो।' उन दिनों गुरु हरिश्चन्द्र भी स्वामी जी के पास आता तथा अन्य पण्डितों के पास भी जाया करता था कि किसी प्रकार शास्त्रार्थ हो जावे परन्तु उसको तो विशुद्धानन्द यह उत्तर दे चुके थे कि हम स्वामी हैं, हमको शास्त्रार्थ करने का अधिकार नहीं है। इसलिए स्वामी जी के प्रस्ताव के अनुसार हम विशुद्धानन्द जी के पास गये। कुशलक्षेम पूछने के पश्चात् चर्चा चली कि काशी में इतने विद्वान् हैं परन्तु एक व्यक्ति ने आकर सबका मंथन कर डाला; कोई उत्तर नहीं देता। इसलिए तुमको उचित है कि उठो और बालशास्त्री के साथ जाकर उनका सामना करो; काशी तुम्हारे साथ है। विशुद्धानन्द हमसे कहने लगे कि उनका संग करके तुम भी ऐसे ही हो गये हो। हमने कहा कि हमारा संग पहले तो तुम्हारे से है, और तुम्हारा सम्बन्ध भी बहुत पुराना है परन्तु वह चूंकि सत्यार्थ कहते हैं, इस कारण हमारा चित्त खटकता है कि अवश्य सत्य कहते हैं। तब विशुद्धानन्द ने पूछा तुम कैसे कहते हो कि वह सत्य कहते हैं ? हमने कहा कि वेद आदिकों के प्रमाणों से जानते हैं, क्योंकि वह प्रमाण देते हैं और आप लोगों को आग्रह हो रहा है; फिर किसी आर्षग्रन्थ में मूर्तिपूजा का प्रमाण नहीं मिलता। स्वामी विशुद्धानन्द जी ने कहा कि यही तो (हमारी) कमी है। काशी में इतने विद्वान् हैं, केवल दयानन्द जी से तो वेदार्थ लगता है परन्तु काशी के विद्वानों से किसी से नहीं लगता—यही कमी है। एक गणेश श्रोत्रिय यहां है, केवल वही वेदार्थ को जानने वाला है सो वह भी उनसे मिला हुआ है। दूसरे वह (स्वामी दयानन्द) शास्त्रार्थ भी वेदविषय पर करते हैं। उसके अर्थ लगाना यहां कोई जानता नहीं। इसलिए उनके साथ शास्त्रार्थ करने को कोई समर्थ नहीं होता।

हमने उनसे कहा कि आप भी सरस्वती हैं और वह भी, सो दोनों एक हो जाओ और सत्यधर्म के ऊपर आप दृढ़ हो जाइये। उत्तर दिया कि सत्य पर आरूढ़ तो हो जावें परन्तु गंगा जी का प्रवाह बह रहा है पूर्व को, ऐसा कोई है नहीं कि उसको पश्चिम या उत्तर को कर दे। जो यह प्रवाह चल गया है सो अब रुक नहीं सकता और यदि आज हम उसके विरुद्ध चलें तो सब मनुष्य हमसे विरोध करने लग जायें। हमने कहा कि आपको विरोध और हठ से क्या लाभ है। कहने लगे कि लोग जो भिक्षा दे देते हैं वह भी साले न देंगे। लोग लांछन (अलग) लगायेंगे कि स्वामी जी के अनुयायी हो गये।

आजीविका जाने से भयभीत विशुद्धानन्द जैसे विद्वानों को अपना सहयोगी बनने की प्रेरणा दी—हमने यही वृत्तांत आकर स्वामी दयानन्द जी से कह दिया। स्वामी जी ने प्रत्युत्तर में कहा कि 'वे व्यर्थ भय खाते हैं, संसार विरुद्ध होकर क्या करेगा ? यदि उनको ऐसा ही डर है तो हम उनको एक स्थान पर स्थापित करेंगे, वे काशी में बैठ जावें; देशभ्रमण हम करेंगे। वे क्यों नहीं सत्य पर दृढ़ होते ? परन्तु यह भी तुम उनसे कह देना कि मेरे पास यदि किसी विद्यार्थी ने भी पत्र भेजा तो हम उत्तर, तुमको और बालशास्त्री को देंगे और किसी से सम्बन्ध नहीं'। हमने आकर विशुद्धानन्द जी से कहा तब उन्होंने उत्तर में कहा कि हम तो पत्रोत्तर देंगे नहीं; लोग चाहे सो करें। वह तो अवधूत है, निश्शंक खंडन करता है, हम नहीं कर सकते।'

संस्कृत की विदुषी श्रीमती माजी बडनगरी[१३७] ब्राह्मणी, निवासिनी वरुणा-संगम, आनन्दगुफा बनारस ने वर्णन किया कि 'जब स्वामी जी संवत् १९३६ में यहां आये तो पौष के महीने में, कर्नल आल्काट साहब, मैडम ब्लैवेट्स्की सेन्ट

साहब[१३८] और उनकी पत्नी, कलकत्ता पुलिस के बड़े साहब की पत्नी और दामोदर बम्बई वाले[१३९], ये सब हमसे मिलने को हमारे घर पर आये और स्वामी जी भी साथ थे । योग की सिद्धि की चर्चा चली, हमसे कहा कि हमारे देश में दो पैसे के लिए (योग की) सिद्धि दिखलाते हैं हम इसको बहुत बुरा समझते हैं । यह काम मदारियों के हैं, हम योग में सिद्धि को बुरा समझते हैं, ऐसी बातें ठीक नहीं हैं । फिर हम भी उनसे मिलने आनन्दबाग में गई थीं । फागुन के महीने में स्वामी जी के यहां व्याख्यान हुए थे । चूंकि होली के दिन थे इसलिए हम वहां न जा सकीं । पंडित केशवदेव बापूदेव के प्रसिद्ध शिष्य, जो चन्द्रदेव के नाम से विख्यात थे, नित्य जाया करते थे ।

झूठे रसोइये को निकाल दिया—इस बार की बात है कि एक दिन गणेशराम ब्राह्मण विशनगर गुजराती ने, जो उनके पास रसोइया था, झूठ बोला । स्वामी जी ने उसको निकाल दिया और नोटिस दिया कि हमको दूसरा नौकर चाहिये और एक दूसरे को नौकर रखा । वह गणेशराम अब हरीदास सलामपुर वाले के यहां रसोइया है ।

विरोधियों द्वारा की गई निंदा से सहन शक्ति बढ़ती है—'विरोधी लोग यहां उनको बुरा कहते थे । एक दिन हमने लोगों के बुरा कहने की उनमें चर्चा की कि महाराज, लोग बुरा कहते हैं । कहने लगे कि हमको इससे तितिक्षा अर्थात् सहनशक्ति आती है । उनके चमार कहने से हम चमार थोड़े ही हो गये ? हमारा काम तो उपदेश करना है, उनके क्रोध से हमें क्या लेना-देना, हमको तो संसार का उपकार करना चाहिये ।

स्वामी जी के पहले तो इस बार १४ व्याख्यान हुए थे; यद्यपि दिन १६ होते हैं । जिससे विदित होता है कि दो दिन व्याख्यान नहीं हुए । स्वामी जी ने २१ मार्च, सन् १८८०, तदनुसार, फागुन शुदि १०, संवत् १९३६, रविवार की शाम से बनारस में व्याख्यान देना आरम्भ किया और चैत्र कृष्णा ११, सोमवार, तदनुसार ५ अप्रैल, सन् १८८० को उनका अन्तिम व्याख्यान हुआ । इस व्याख्यान की समाप्ति पर बहुत से योग्य और सम्मानित व्यक्तियों ने मिलकर यह प्रार्थना स्वामी जी की सेवा में की कि 'हे कृपानिकेतन ! आपको इन १४ व्याख्यानों के देने में जो श्रम हुआ उसके लिए आपका आभार मानने की सामर्थ्य हममें नहीं है । निस्सन्देह, आपकी इस अनुकम्पा से हमारे अनेक जन्मों का अन्धकार मिट गया; परन्तु इस अपूर्व अमृतपान से हम भक्तजनों के चित्त की तृप्ति नहीं हुई । इस कारण हम सब आपका आभार मानते हुए आपकी सेवा में अनेक प्रणाम और धन्यवादपूर्वक सविनय प्रार्थना करते हैं कि यदि आप अपनी स्थिति-पर्यन्त कई अन्य व्याख्यान देना स्वीकार करें तो हमारा बड़ा ही अहोभाग्य होगा ।'

उस पर स्वामी जी ने यह उत्तर दिया कि महाशयो ! यद्यपि मेरे प्रस्थान का समय समीप होने के कारण मुझे अब अवकाश नहीं रहा तथापि विदित हो कि आप लोगों का उत्साह भंग न हो इस दृष्टि से, मैं ६ अन्य व्याख्यानों का देना आनन्दपूर्वक स्वीकार करता हूं । यह बात तुम में से कोई एक पुरुष इसी समय उच्च स्वर से पुकार कर समस्त सभासदों को सुना दे कि भाषण आगामी शनिवार से इसी समय और इसी स्थान में होंगे । चार दिन बीच में हैं तावत् (तबतक) अपना बुढ़वामंगल का मेला भी समाप्त कर लो ।

इस प्रकार (अपना निवेदन) स्वीकार हुआ सुनते ही समस्त सभासदों ने एक साथ महान् आनन्दध्वनि की । पश्चात् नमस्ते, धन्यवाद और जय जय ध्वनि करते हुए सब निज निज स्थानों को गये ।

बनारस में प्रथम आर्यसमाज की स्थापना—'इन ६ व्याख्यानों का क्रम शनिवार, १० अप्रैल, सन् १८८०, तदनुसार, चैत शुदि प्रथमा, संवत् १९३७ से आरम्भ हुआ और १५ अप्रैल, सन् १८८०, बृहस्पतिवार, तदनुसार चैत शुदि ६ तक निरन्तर चलता रहा । इन व्याख्यानों की समाप्ति के अन्तिम दिन उसी स्थान में श्री स्वामी जी के सम्मुख सभासदों ने बड़ी

धूमधाम के साथ आर्यसमाज की स्थापना की, जो ईश्वर की कृपा से अभी तक विद्यमान है और अब तो वहां एक सुन्दर स्थान पर सड़क के किनारे, बनारस कालिज के समीप आर्यमन्दिर भी बन चुका है जिससे सदा के लिए सत्यधर्म का झंडा वहां खड़ा हो गया । ईश्वर उसके द्वारा समस्त बनारस को असत्य और अन्धकार से निकाल कर सत्य वैदिक मार्ग पर दृढ करे । और उन्हीं दिनों समाचारपत्रों में यह छपा था, 'मंगल समाचार-परम आनन्द की बात है कि श्रीयुत स्वामी जी महाराज के उग्र प्रताप से काशी में भी १८ अप्रैल, सन् १८८० को आर्यसमाज स्थापित हो गया । यद्यपि इसमें अभी सभासदों की संख्या जैसी कि उक्त नगर के लिए चाहिए वैसी नहीं है, तथापि हमको आशा है कि इसकी उन्नति शीघ्र होगी क्योंकि इसके प्रचारक बड़े सभ्य और अच्छे-अच्छे विद्वान् लोग हुए हैं (पृष्ठ १६, १७ 'भारतसुदशाप्रवर्तक' अप्रैल, सन् १८८०, खंड १, संख्या १० फर्रूखाबाद) और 'आर्यदर्पण' पत्रिका जो बनारस से निकली थी, उसमें भी लिखा है 'ईश्वर की कृपा से बनारस, लखनऊ, कानपुर, छपरा में चार और आर्यसमाज हो गये' (खंड ३ संख्या १, पृष्ठ २४, कालम २) ।

पं० विशुद्धानन्द सरीखे दिग्गजों ने भी स्वामी जी की सच्चाई को स्वीकार किया

पंडित उमराव सिंह अध्यापक रुड़की कालिज लिखते हैं 'हमारे कृपालु मित्र बाबू पृथ्वीसिंह साहब, जो कुमायूं में कम्पोटर (कम्पाउण्डर) थे हमसे शपथपूर्वक कहते थे कि हमारी एक बार मूर्तिपूजकों के आश्रयभूत **श्री पंडित विशुद्धानन्द** स्वामी, बनारसी से अकस्मात् बातचीत हुई थी । स्वामी जी ने चर्चा के समय स्वीकार किया कि वास्तव में पंडित दयानन्द सरस्वती जी का वेदभाष्य, अपने महत्त्व और शुद्धि के दृष्टिकोण से, विश्वसनीय है परन्तु भाई ! सर्वसाधारण के सामने मैं इस बात को क्योंकर प्रकट कर सकता हूं ? यदि करूं तो अभी सारा सम्मान मिट्टी में मिल जाये और नशे-पानी (विद्यामद) में जो अन्तर पड़ जाये वह अलग है । (पृष्ठ २०१ 'आर्यसमाचार' मेरठ, क्वार मास, संवत् १९३८, खंड ४, संख्या ६) ।

हमको जो यहां कई सज्जनों से मिलने का अवसर हुआ तो उनसे यही सुना कि स्वामी विशुद्धानन्द और पंडित बालशास्त्री आदि काशी के पण्डित एकान्त में सब यही कहते हैं कि जो कुछ स्वामी जी कहते हैं, वह सब सत्य है परन्तु क्या करें, यदि हम भी वैसा ही कहने लगें तो बहुत लोग हमको छोड़ दें, हमसे वैर रखने लगें फिर हमारी आजीविका कैसे चले ।'

एक दिन हमको (अर्थात् मुन्शी बख्तावरसिंह, सम्पादक 'आर्यदर्पण' को) एक सज्जन मिले । जब अपने देश के बिगड़ जाने की चर्चा चली तो काशी के एक विद्वान् पंडित का कि जिनको अभी एक हजार रुपये का गांव संकल्प हुआ है (दान में मिला है) वर्णन करने लगे 'कि देखो, पंडित जी से जब स्वामी जी के बारे में हमने पूछा तो पण्डित जी कहने लगे कि स्वामी जी कहते तो सत्य हैं परन्तु हम क्या करें इसको (पेट खोलकर और उसकी ओर संकेत करके) देखो अभी एक जायदाद मिली है, चैन करते हैं जो हम स्वामी जी के समान कहने लगें तो कोई एक फूटी कौड़ी भी न दे, फिर बतलाइये कि हमारी जीविका घर बैठे कैसे चले ? भाई ! हमको पेट सच नहीं कहने देता' (पृष्ठ ४७, ४८ 'आर्यदर्पण' फरवरी, सन् १८८०) ।

राजा शिवप्रसाद सी० एस० आई० की २०-२५ मिनट की १६ दिसम्बर की भेंट का वृत्तांत तो पहले आप पढ़ चुके हैं । इसके पश्चात् स्वामी जी सवा चार मास तक बनारस में रहे परन्तु वह फिर न मिले और न अपने सन्देह निवृत्त किये और न कोई और पंडित बड़ा या छोटा ही मैदान में आया । स्वामी जी ने चलने से कुछ दिन पहले विज्ञापन में प्रकट कर दिया था कि मैं ५ मई, सन् १८८० को यहां से लखनऊ चला जाऊंगा, उससे पहले जो चाहे आकर मुझसे सन्देह निवारण कर ले, परन्तु किसको न्याय से प्रयोजन था । कौन सच्चाई को प्यार करता था । किसे आज मारे जाने की चिन्ता न थी ? कौन लोहे के चने चबाता, अपने दांत तुड़वाता और मुंह की खाता ? स्वामी विशुद्धानन्द, बालशास्त्री या और कोई शास्त्री या आचार्य समरांगण का वीर बनकर सामने न आया ।

अब जैन मतनुयायियों की सुनिये; इनको तो कायरतापूर्ण दांव-पेच के अतिरिक्त कुछ आता ही नहीं ! ठीक बुधवार, ५ मई सन् १८८० (वैशाख कृष्णा एकादशी, संवत् १९३७) को जब स्वामी जी चलने की तैयारी करके सामान भेज रहे थे और स्वयं भी रेल-पर जाने को उद्यत थे, राज साहब ने स्वामी जी को पत्र लिखकर उत्तर मांगा । उनका अभिप्राय तो आप समझ ही गये होंगे । यही कि ऐसी अवस्था में स्वामी जी या तो पत्र नहीं लेंगे या उत्तर दिये बिना चले जायेंगे या पत्र हमारा उनको विलम्ब से मिलेगा और मुफ्त मिली हुई चीज का कहना ही क्या; बिना परिश्रम विजय प्राप्त हो जायेगी और फिर किसी मूर्तिपूजक या नास्तिक मत के समाचारपत्र में झट प्रकाशित करा देंगे कि स्वामी दयानन्द हार गये, भाग गये, राजा साहब का सामना न कर सके ।

परन्तु स्वामी जी ने अवकाश न होने पर भी उत्तर लिख भेजा और उन्हें कहला भेजा कि कृपा करके उत्तर सुन जाइये परन्तु वह बिलकुल न आये क्योंकि सत्यासत्य के निर्णय करने का कदापि विचार न था । अन्त में स्वामी जी वहां से उसी दिन चले आये तो पीछे राजा साहब ने झूठी प्रसिद्धि पाने और काशी के विद्वानों में अपनी टांग अड़ाने के लिए निवेदन नं० १ छपवा कर स्वामी जी के वेदभाष्य के ग्राहकों को भेजा ताकि लोगों को विदित हो कि काशी में बार-बार नोटिस लगाने और शास्त्रार्थ के लिए बुलाने पर भी कोई विद्वान् स्वामी जी के सम्मुख न आ सका और यदि आया तो केवल एक; अर्थात् राजा शिवप्रसाँद जी सितारे हिन्द या पण्डित चतुर्भुज शास्त्री शर्मा । परन्तु इसका प्रभाव इसके अतिरिक्त और क्या हुआ कि राजा की मुट्ठी भर खाक (राख) बर्बाद हो कर रह गई । बस ! आप लोग जान सकते हैं कि क्या इस प्रकार के लोगों में कभी सत्य के स्वीकार करने की आशा हो सकती है ? राजा साहब हमारे देश, धर्म या जाति के जितने हितचिन्तक हैं वह समाचारपत्रों के पढ़ने वाले किसी व्यक्ति से छिपा हुआ नहीं है । एक समय समस्त भारत ने एक मत होकर कहा था कि हम राजा से मित्रता की दृष्टि की आशा रखते हैं परन्तु जब वह स्वयं ही भूले हुए हैं तो हमको क्या शिक्षा देंगे ।

पाखण्ड के गढ़ काशी पर महर्षि के छः[१४०] आक्रमणों का वृत्तान्त

अब हम इस बार का विस्तृत वृत्तांत लिखते हैं । यह वास्तव में बनारस पर स्वामी जी का छठा आक्रमण था । प्रथम जब स्वामी जी वहां गये[१४१] तो केवल यह अनुसंधान, परिचय और ज्ञान प्राप्त करना अभीष्ट था कि वहां कौन-कौन उत्कृष्ट विद्वान् हैं । उस समय वे स्वयं जाकर कुछ पंडितों से मिले और उनकी कार्यविधि का निरीक्षण किया । अभी तक वे व्याकरण में पारंगत भी न हुए थे और न धर्म के विषय में पूर्ण अनुसन्धान कर पाये थे । परन्तु जब जगद्विख्यात स्वामी विरजानन्द जी से सब प्रकार की शिक्षा पाकर निष्णात हो गये और कई महात्माओं से वेद आदि का पूरा अभ्यास कर लिया तो पूर्णरूपेण सत्य पर दृढ़ होकर अपने सारे विद्याबल से सम्पन्न हो, नितान्त अकेले, ईश्वराश्रित होकर उन्होंने "सत्यमेव जयते" के (उद्घोष के) भरोसे धार्मिक युद्ध के लिए बनारस पर प्रथम आक्रमण किया ।

धार्मिक युद्ध का प्रथम आक्रमण—१२ कार्तिक, संवत् १९२६[१४२] को हुआ । आठ-नौ सौ पण्डित, तैंतीस करोड़ देवता और बीस-पचीस हजार बनारसवासी एक ओर महाराज काशी के साथ चलते हुए अपने सारे अस्त्र-शस्त्र लेकर और युद्ध के निश्चय पर दृढ होकर रणक्षेत्र में आये और दूसरी ओर केवल एक जगदीश्वर के भरोसे पर अकेला रणशूर, ऋषि मुनियों के नाम की प्रतिष्ठा का संरक्षक, देवताओं के कलंक को दूर करने वाला, सत्यशास्त्रों के पवित्र सिद्धान्तों को प्रकट करने वाला स्वामी दयानन्द सरस्वती वेद तथा शास्त्र रूपी ज्ञान-शास्त्र लिये और न्याय-कवच पहने, आक्रमणशील हुआ । इतना कोलाहल करने पर भी बनारसी लोग अपनी वीरता का प्रमाण न दे सके और न मूर्तिपूजा सिद्ध हुई । सत्य का बोलबाला और असत्य का मुंह काला हुआ परन्तु जिस प्रकार हाथी के निकल जाने पर बच्चे कोलाहल मचाया करते हैं और कोई-कोई बालक धूल उड़ाया करते हैं वही दशा साधारण दुष्टों की हुई और इसी धूल उड़ाने और हूहा मचाने को ही विजय समझ कर मौन हो गये । यह अभी अचेत सोये ही पड़े थे कि अकस्मात् इन्द्रवज्र के समान दूसरा आक्रमण जेठ संवत् १९२७[१४३]

को बनारस पर हुआ। इस बार उस आक्रमणकारी धर्मात्मा ने पहले से अधिक काम करने का विचार किया; उसे अपनी सफलता और विजय की भी बहुत आशा थी। इस बार केवल मन्दिरों और देवताओं पर ही आक्रमण न था, प्रत्युत ईश्वर की सत्ता को अस्वीकार करने वाले और स्वयं बने हुए नवीन वेदान्तियों पर भी कोप की बिजली गिरी और कई विज्ञापन धार्मिक युद्ध के लिए बार-बार कायर बनारसियों के घरों और मन्दिरों पर चिपकाये गये परन्तु कोई भी सामना करने को न आया। धार्मिक शूरवीर विजयी होकर मूर्तिपूजा, जीव ब्रह्म की एकता, पुराणों और देवताओं की पूजा का खंडन करता हुआ और सन्ध्या, गायत्री आदि वेदोक्त धर्मों का मंडन करता हुआ फिर गंगा के किनारे चल पड़ा। अभी तक पिछले व्रण ठीक नहीं हुए थे कि बनारस के घायलों पर फिर न थकने वाला वीर उससे अधिक उत्साह तथा वेग से तीसरा आक्रमण करने की इच्छा से फागुन मास, संवत् १९२८ की सुहावनी[१४४] ऋतु में वेदों की पवित्र अग्नि का प्रकाश करने आया और दो मास तक सत्यधर्म की अमृतरूपी वर्षा करता हुआ सबके कानों मे मूर्तिपूजा के मिथ्या होने और वैदिक सत्य की पवित्र ध्वनि पहुंचाता रहा। श्रृगालों और लोमड़ियों की भांति विष देने के अतिरिक्त कोई भी साहस करके रण क्षेत्र का वीर बनकर सामने न आया। धर्म के लिए बलिदान होने को उद्यत और धार्मिक युद्ध का प्यासा विजयी वीर कलकत्ते की ओर चला गया। बनारस वालों की कायरता देखकर वीरता के स्वाभाविक सिद्धान्त के अनुसार उन्हें विश्राम करने और शक्ति प्राप्त करने का एक अच्छा अवसर दिया अर्थात् दो वर्ष तक उन्हें अवकाश दिया ताकि वह अपने शास्त्रों को अच्छी प्रकार ठीक कर लें। ठीक तैयारी और सावधानी के समय चौथा आक्रमण, आषाढ़, संवत् १९३१[१४५] को इस उत्तमता और सुचारुता से किया कि विरोधियों के रहे-सहे होश भी जाते रहे। सत्यधर्म प्रचार की पाठशाला बनारस में स्थापित कर दी गई, तीन-चार व्याख्यान भी बड़ी धूमधाम से हुए और साधारण लोग उनमें सम्मिलित होकर वेदमार्ग के अनुयायी होने लगे। महाराजा बनारस ने सन्धि का सन्देश भेजा और भेंट की। बड़े-बड़े नामी पंडित पाठशाला में अध्यापक हो गये।

उपदेश और वैदिक धर्म का प्रचार करता हुआ कुछ मास रहकर वहां से बम्बई की ओर चला गया। शूरवीरों को निचला बैठना और असावधान हो जाना आवश्यक नहीं और यह अफवाह भी सुनी गई कि कुछ पण्डितों ने मूर्तिपूजा के प्रमाण में वेदमन्त्र निकाल कर अस्त्र-शस्त्र संभाले हैं। इस समाचार के सुनते ही विजय प्राप्ति के लिए उसका खून जोश मारने लगा। और पण्डितों की आशा के विरुद्ध बहुत शीघ्र ही पांचवां आक्रमण-संवत् १९३३ में किया और पण्डितों को कई बार ललकारा और विज्ञापन भिजवाकर शास्त्रार्थ के लिए उभारा परन्तु वे तो कुम्भकर्ण के समान ऐसे सोये कि कदापि न जागे। युद्ध का इच्छुक सिंह-शूरमा चार मास उनकी प्रतीक्षा करके विजयी होकर दिल्ली की ओर चला गया। तीन वर्ष तक भारत के विभिन्न भागों में सत्यधर्म का प्रचार करता हुआ और कई स्थानों पर धार्मिक कैम्प (आर्यसमाज) स्थापित करता हुआ, संवत् १९३६ के कुम्भ पर हरिद्वार पहुंचा और वहां अत्यन्त प्रबल युक्तियों से खंडन किया। समस्त भारत के विद्वान् वहां एकत्रित हुए थे, बड़े-बड़े शास्त्रार्थ हुए और अच्छे-अच्छे लोगों ने हाथ दिखाये परन्तु उसकी युक्ति की तेज तलवार के आगे अठारह पुराण कहां रह सकते थे। पण्डितों ने युद्ध की हजारों चेष्टाएं कीं और सिर पटके परन्तु सिरतोड़ प्रयत्न करने पर भी अन्ततः हार गये और दृढ निश्चय किया कि बनारस में फिर मुकाबला करेंगे। यह समाचार उस सच्चे धर्म पर प्राण देने वाले के कान में पहुंच गया और सात मास के पश्चात् बड़ी धूमधाम के साथ बनारस पर छठा आक्रमण कार्तिक शुदि १४, गुरुवार संवत् १९३६, तदनुसार २७ नवम्बर, सन् १८७९ को किया। यह चूंकि सबसे अन्तिम आक्रमण था, इसलिए इसमें इस मनचले वीर ने पहले के युद्धों से बहुत अधिक पुरुषार्थ दिखलाया। इसके धार्मिक शिविर का केन्द्रीय स्थान महाराजा विजयनगर का आनन्दबाग था। स्वामी जी की सहायता के लिए अमरीका के प्रसिद्ध और शूरवीर सेनापति कर्नल आल्काट साहब, तीन अन्य वीरों सहित पधारे।[१४६] बनारस के घिरे हुए पण्डित बहुत से कायरतापूर्ण आक्रमण करते रहे परन्तु कुछ बस न चला। अंगेजी तथा संस्कृत भाषा में वैदिक धर्म के उपदेश हुए। प्रत्येक गली-कूचे तथा सार्वजनिक स्थान पर वैदिक धर्म का डंका बजने लगा। पूर्वपराजित विशुद्धानन्द तथा बालशास्त्री तो घर से बाहर भी न निकले। उनके लिये न तो निकलने का मार्ग था और न ठहरने का स्थान था। हैरानी की अवस्था थी, सारा संसार अन्धकारमय था। वह

घबरा रहे थे कि हम किस विपत्ति में फंस गये । घर से बाहर निकले तो द्वार पर विज्ञापन, बाजार जावें तो सार्वजनिक मार्गों, बाजारों, दीवारों और बोर्डों पर विज्ञापन और घाट पर जाये तो वहां भी लज्जित करने वाला विज्ञापन सुदर्शनचक्र की भांति पीछे लग रहा है ।

इस बार साढ़े पांच मास पूरे प्रत्युत चार दिन ऊपर बनारस में निवास किया । मरे को मारना वीरता के सिद्धान्त के विरुद्ध समझकर सदा के लिए उनके सिर पर वैदिक धर्म का झंडा गाड़ने की सम्मति करके पूरे २० व्याख्यान सुनाकर तथा लोगों के प्रत्येक प्रकार के झूठे सन्देहों का नाश करके कुछ व्यक्तियों के यज्ञोपवीत संस्कार कराये और २१ मार्च, सन् १८८० से १५ अप्रैल, सन् १८८० बृहस्पतिवार, तदनुसार चैत सुदि ६, संवत् १९३७ को सभासदों ने बड़ी धूम के साथ आर्यसमाज की स्थापना की और वैदिक प्रेस भी वहां चालू किया गया । तत्पश्चात् जन-पथ (मालरोड) के किनारे बनारस कालिज के समीप रायबहादुर ला० सरजनमल साहब एक्जीक्यूटिव इंजीनियर, गुजरात (पंजाब) निवासी के सराहनीय प्रयत्नों से आर्यमन्दिर का भी निर्माण हो गया; जिससे सदा के लिए सत्यधर्म का झंडा वहां गड़ गया । ईश्वर उसके द्वारा समस्त बनारस को असत्य और अन्धकार से निकालकर सत्य वैदिकमार्ग पर दृढ़ करे । विजयी अपनी इस अद्वितीय विजय के पश्चात् ईश्वर का धन्यवाद करता हुआ लखनऊ की ओर चला ।

एक अशिष्ट विज्ञापन—समाचार पत्र 'भारतमित्र', कलकत्ता के १९ अगस्त, सन् १८८० के अंक में 'ब्रह्मामृतवर्षिणी सभा' के एक न्यायप्रिय सदस्य ने प्रथम तो उस सभा के सदस्यों की योग्यता का अनुमान लगाया है और फिर उनकी करतूत इस प्रकार प्रकट की है कि शनिवार को सभा में पण्डित जुगलकिशोर ने एक ऐसी अशिष्ट बात कही कि मैं उसको नहीं लिख सकता । इस पर बाबू नारायणसिंह और बाबू गणेशदासादि ने उनको रोका तो लड़ने को उद्यत हो गये । जिस पर बड़ा हुल्लड़ और मारपीट की नौबत भी आ ही गई थी परन्तु ईश्वर की कृपा से सब ठीक हो गया ।'

'अशिष्ट विज्ञापन की पोल खुली'—भारतमित्र के उक्त अङ्क में जिस अश्लील बात का सांकेतिक वर्णन किया गया है हम उसे विस्तारपूर्वक प्रकट करते हैं कि जब स्वामी जी मई मास, सन् १८८० में यहां से चले गये तो उस सभा के एक पंडित जुगलकिशोर ने यह विचार किया कि अब कोई विचित्र और बनावटी बात मन से निकाल कर झूठमूठ उड़ानी चाहिए कि जिससे सभा के लोग भी प्रसन्न हो जावें और हमारा नाम भी धर्मात्माओं में प्रसिद्ध हो जावे । अत: पंडित जी ने विज्ञापन प्रकाशित कराके नगर में लगवाया और सभा में पढ़ा । यह विज्ञापन इस प्रकार था—अभाग्यवश मूर्खजन की प्रसिद्धि के अनुसार हम लोगों ने भी दयानन्द सरस्वती के पास जाकर वेदार्थ जानने की इच्छा की थी; परन्तु जब स्वामी जी के मुख से नाना प्रकार की वेदविरुद्ध, शिष्टाचार के विपरीत वार्ताएं सुनीं तब तो हमने काशीस्थ 'ब्रह्मामृतवर्षिणी' सभा के सब विद्वानों से अपने सन्देह दूर करने की इच्छा की और जब हम अपनी बुद्धि अनुसार समस्त शंका से रहित भये, तब उक्त सभा के सदस्य पंडित जुगलकिशोर पाठक जी (जो कि हमारे वैदिक गुरु हैं) के उपदेश से चित्तग्लानि-निवृत्ति-पूर्वक कुसंगजनित पापनिवृत्यर्थ मणिकर्णिका तीर्थ पर यथाविधि प्रायश्चित और श्री विश्वेश्वरादि देव का दर्शन करके अपनी सम्मति के अनुसार वेदाभ्यास की इच्छा प्रकट करते हैं और यह प्रतिज्ञा करते हैं ताकि हम लोग निज गुरुनिर्दिष्ट मार्ग से दूर न हों ।'

(इसके अनुसार) प्रायश्चित करने वालों के नाम इस प्रकार थे-सीताराम, बाबू आनन्द पांडे, कृष्णराम शुक्ल, रामप्रसाद दूबे और इस पत्र के प्रकाशक वेदशास्त्र सम्पन्न पंडित जुगलकिशोर पाठक ।

जब उपर्युक्त विज्ञापन सभा में पढ़ा तो उस समय बहुत से लोगों को प्रसन्नता हुई कि जिन चार व्यक्तियों के उसमें नाम लिखे हैं, उनके दर्शन भी करने चाहियें । अत: बाबू नारायणसिंह सदस्य आर्य समाज बनारस ने पंडित जुगलकिशोर से पूछा कि वे व्यक्ति कहां हैं ? पण्डित जी क्रोध से लाल होकर बोले कि हम उनको अगली सभा में लेते आवेंगे । पंडित

जुगलकिशोर ने तो यह विज्ञापन और इन चार व्यक्तियों के नाम अपने चित्त से घड़ कर कौतूहल और प्रहसन के रूप में यह कार्य किया था, अब उन चारों को लावें तो कहां से ? अब तो पंडित जी घबराये और लगे इधर-उधर लड़कों को सिखलाने कि तुम वहां हमारे साथ चलकर ऐसा कह देना, परन्तु ऐसे दुष्ट काम में कौन पंडित जी की मानता है । प्रायश्चित का नाम ही सुनकर लोगों के प्राण निकलते हैं; विशेषतया इसलिए कि सब लोग घृणा करेंगे और अपकीर्ति होगी । अन्ततः ज्यों-त्यों करके पंडित जी एक व्यक्ति को दूसरी सभा में लाये । जब उससे उसका नाम पूछा गया तो उसने अपना नाम रामकृष्ण दूबे बतलाया (पंडित जी ने सिखलाया होगा कि रामप्रसाद दूबे कह देना परन्तु बनावटी नाम कब तक याद रह सकता है, वह भूल गया) । फिर पूछा गया कि तुम स्वामी जी के पास गये थे उसने उत्तर दिया कि कभी नहीं । जब वह बात हुई तो पंडित **जुगलकिशोर जी** की पोल खुल गई । फिर लोगों ने कहा कि आपने विज्ञापन झूठमूठ क्यों छपवाया है ? इस पर पंडित जी क्रोध में लाल होकर लगे गड़बड़ बकने; तब उनके मुख से यह वाक्य निकला कि 'जिसने दयानन्द का मुंह तक देखा हो वह हिन्दू का बीज नहीं ।' इस बात के कहने पर बाबू नारायणसिंह ने कहा कि संवत् १९२६ में जो शास्त्रार्थ हुआ था उसमें महाराज काशीनरेश, पण्डित बालशास्त्री और स्वामी विशुद्धानन्द आदि हजारों हिन्दू उपस्थित थे, आप उन सबको मानो इतनी कठोर गालियां देते हैं । इस पर सभा ने विचार करके पंडित जुगलकिशोर को सभा से निकाल दिया । निकालते समय उन्होंने बड़ा कोलाहल मचाया और समीप ही था कि मारपीट आरम्भ हो जाती, परन्तु ईश्वर की कृपा से बात न बढ़ी, कुशल हो गई । ('आर्यदर्पण' बनारस, मई १८८०, पृष्ठ ११४, ११५) ।

इस शुभ सम्मति में उनके परामर्शदाता अवश्य पंडित चतुर्भुज जी थे । उनकी बुद्धिमत्ता से ही जुगलकिशोर जी निकाले गये; अन्यथा इतनी बुद्धि उनमें नहीं थी ।

स्वामी जी साढ़े पांच मास बनारस रहे, उपदेश देते रहे । विज्ञापन कई बार चिपकवाये, प्रेस स्थापित किया, पुस्तकें प्रकाशित कराई, आर्यसमाज की स्थापना की परन्तु पण्डित लोगों का सामना करने का तनिक भी साहस न हुआ । ५ मई, सन् १८८० को **स्वामी जी बनारस** से चलकर **लखनऊ** की ओर प्रस्थान कर गये । जिस तिथि को वह बनारस से चले गये उसी तिथि को पंडित चतुर्भुज शास्त्री ने डाक द्वारा एक छपी हुई चिट्ठी स्वामी जी के नाम, बनारस के पते पर, बैरंग भेजी जो स्वामी जी की अनुपस्थिति में ६ मई को मन्त्री आर्यसमाज बनारस के नाम पहुंची । जब चिट्ठी की मुहर देखी गई तो विदित हआ कि वह ५ मई की तिथि को नगर के डाकखाने से डाली गई है । 'चोर कितना साहसी है कि हथेली पर दीपक रखता है ।'

'वैदिक यन्त्रालय' का वृत्तांत

प्रथम प्रेरक आर्यसमाज मुरादाबाद—सबसे प्रथम १८ सितम्बर, सन् १८७९ को और दूसरी बार २२ जनवरी, सन् १८८० को आर्यसमाज मुरादाबाद ने एक 'वैदिक यन्त्रालय' स्वामी जी के संरक्षण में खोलने की प्रेरणा दी और सब सज्जनों की सेवा में निवेदन किया कि इसकी सहायता के लिए धन तथा चन्दा इकट्ठा करके मुरादाबाद आर्यसमाज के प्रधान तथा आचार्य मुंशी इन्द्रमणि जी के नाम पर भेजें, जिस पर समाजों में चन्दा एकत्रित होना आरम्भ हुआ ।

यही बात पौष मास, संवत १९३६ तदनुसार जनवरी, सन् १८८० को **'आर्यसमाचार'** मेरठ नामक पत्रिका में मुंशी आनन्दलाल मन्त्री आर्यसमाज की एक प्रार्थना द्वारा आर्यसमाजों की सूचनार्थ प्रकाशित की कि रुपया मुंशी इन्द्रमणि जी के पास भेजा जाये और इस सम्बन्ध में जो कुछ पूछना हो वह मुंशी भगवतीप्रसाद कोषाध्यक्ष, आर्यसमाज मुरादाबाद से पूछे ।

फिर उक्त 'आर्यसमाचार' नामक पत्रिका के माघ मास, संवत् १९३६, तदनुसार फरवरी, सन् १८८० के अंक में यही चर्चा आवश्यक प्रार्थना के रूप में की गई कि चूंकि स्वामी जी ने 'वैदिक यन्त्रालय' नामक प्रेस बनारस में चालू कर

दिया है और पुस्तकें प्रकाशित होनी भी आरम्भ हो गई हैं, इसलिए सब लोगों से निवेदन है कि जितना धन एकत्रित हो गया हो, अथवा होने वाला हो बहुत शीघ्र स्वामी जी की सेवा में भेज दें और एक सूची बनाकर आर्यसमाज मेरठ को भेजने की कृपा करें जिसमें ये बातें लिखी हों-नाम समाज, चन्दे की कुल राशि जो यन्त्रालय की सहायतार्थ देने का निश्चय किया हो; प्राप्त चन्दे की राशि; चन्दे की शेष धनराशि, जो स्वामी जी के पास चालूमास के अन्त तक भेजी गई।

आर्यसमाज मेरठ की ओर से निम्नलिखित निवेदन प्रकाशित हुआ था—**निवेदन**—'कुछ समय हुआ कि जब आर्यसमाज मुरादाबाद ने अपने देश की उन्नति और भलाई के विचार से एक देवनागरी पत्र के द्वारा समस्त आर्यसमाजों को इस बात की प्रेरणा की थी कि सब स्थानों से पर्याप्त चन्दा एकत्रित किया जाये और उससे छापाखाना स्थापित किया जावे जिसमें संस्कृत की और आर्यधर्म की पुस्तकें, व्याख्याओं और टीकाओं-सहित, प्रकाशित हुआ करें ताकि हम लोग उस विपुल सम्पत्ति से, जिससे कि चिरकाल से वंचित हैं, इन पुस्तकों के द्वारा सरलतापूर्वक लाभान्वित हों। पुस्तकों का विवरण भी उनके लाभों की व्याख्या-सहित उक्त पत्र में भली भांति लिखा हुआ था। अत: ४२८ रु० इस समाज से धर्मार्थ छापाखाने की सहायता में भेंट किये गये। आशा है कि समस्त समाजों ने यथासामर्थ्य समय की आवश्यकता को देखते हुए अवश्य इस शुभ कार्य में प्रयत्न किया होगा। इसलिए अब आर्यसमाज मुरादाबाद के कथनानुसार सब समाजों और आर्य लोगों की सेवा में निवेदन है कि जो कुछ धन इस सम्बन्ध में एकत्रित हो गया हो अथवा होने वाला हो वह बहुत शीघ्र श्रीमान् मुंशी इन्द्रमणि जी, आचार्य तथा प्रधान आर्यसमाज मुरादाबाद के पास भेज दें। इस कार्य में विलम्ब किसी प्रकार उचित नहीं और ऐसा अवसर भी सदा प्राप्त न होगा क्योंकि स्वामी जी महाराज की कृपा से उन पुस्तकों के भाष्य और टीकाएं, जिनका समझना और समझाना अत्यन्त कठिन है, आजकल सरलतापूर्वक छप सकते हैं और जो कुछ इस सम्बन्ध में पूछना हो वह पत्र द्वारा ला० भगवतीप्रसाद, कोषाध्यक्ष आर्यसमाज मुरादाबाद, अथवा सीधे श्री० मुंशी इन्द्रमणि जी आचार्य आर्यसमाज से पूछ लें और इस कार्य में पूरा-पूरा प्रयत्न करें और अवसर तथा समय का विचार रखते हुए यह समझ लें कि यदि मैं उद्यान में भ्रमण करने के लिए शनैः शनैः चलूंगा तो वसन्त ऋतु इस प्रकार चली जायेगी जैसे हाथ से मेंहदी का रंग उड़ जाता है। इसलिए इस कार्य में उपेक्षा कदापि न करें। प्रकाशक-आनन्दलाल मंत्री, आर्यसमाज मेरठ ('आर्यसमाचार' खंड १, संख्या ९; पौष, संवत् १९३६, पृष्ठ २७)।

चैत मास, संवत् १९३६ की पत्रिका में वैदिक यन्त्रालय का विज्ञापन बख्तावरसिंह, प्रबंधक यन्त्रालय की ओर से प्रकाशित हुआ है जिसमें लिखा है कि माघ शुक्ला दूज, संवत् १९३६ बृहस्पतिवार तदनुसार १२ फरवरी, सन् १८८० को काशी में लक्ष्मीकुण्ड पर श्री महाराज विजयनगर के स्थान में वैदिक यन्त्रालय स्थापित किया गया है। इस यन्त्रालय के अधिष्ठाता श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती हैं और अंक चौदहवें से वेदभाष्य भी यहां प्रकाशित हुआ करेगा। विज्ञापन इस प्रकार है—

॥ विज्ञापनपत्रमिदम् ॥

देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे।
शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥

(ऋग्वेदे १ मण्डले ९४-सूक्ते १३-मन्त्रः)

जिसलिए (अग्ने) हे विज्ञानस्वरूप और सब जीवों को वेद तथा अन्तर्यामी द्वारा विज्ञान देने वाले जगदीश्वर आप, (देवानाम्) सब विद्वान् और सूर्यलोक आदि दिव्य पदार्थों के (देवः) स्वामी, पूजनीय, उनके उपास्य देवता (असि) हैं; (वसूनाम्) जिन्होंने २४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य से वेदादि विद्या पढ़ी है और निवास के हेतु हैं और पृथिवी आदि लोकों के बीच में प्रत्यक्ष और व्यापक होके (वसुः) निवास करने और अपने में सबको निवास कराने हारे (असि) हैं। (अध्वरे) हिंसा करने के अयोग्य,

धर्मयुक्त, उपासनादि व्यवहारों में (चारुः) सर्वोत्कृष्ट, (अद्‌भुतः) अत्यन्त आश्चर्यरूप प्रशस्त गुण-कर्म-स्वभाव सहित, (मित्रः) सबके हितकारी, सुहृद्-सखा हैं। इसलिए हम लोग (तव) सब पर कृपा ही करने के स्वभाव से युक्त आपके (सप्रथस्तमे) सर्वोत्कृष्ट, विस्तीर्ण, विद्यादि शुभगुण और आनन्दों के हेतुओं से संयुक्त (सख्ये) मित्रता के भाव और कर्मों में दृढ़ता से वर्तमान होकर (मा रिषाम) कदाचित् दूसरे मनुष्यादि प्राणियों के अनुपकार, दुःख और पीड़ा रूप हिंसा करने हारे वा किसी दुष्ट से पीड़ित न होकर सदा स्वयं आनन्दयुक्त रह कर, सब जीवों को आनन्द ही देते रहें।

"सब सज्जनों को विदित हो कि आज मैं इस आर्यावर्त देश के निवासियों के लिए बड़ी प्रसन्नता की बात को प्रकट करता हूं कि संवत् १९३६, माघ शुक्ला २, बृहस्पतिवार के दिन यहां काशी में लक्ष्मीकुंड पर श्रीयुत महाराजे विजयनगराधिपति के स्थान में 'वैदिक यन्त्रालय' नियत किया गया है; जिसमें वेदभाष्य (जो प्रथम डाक्टर लाजरस साहब के यन्त्रालय में छपता था और तत्पश्चात् मुम्बई में छपा करता था) वह और व्याकरणादि शास्त्रों के विषय-प्रकाश-युक्त पुस्तक मुद्रित हुआ करेंगे, इस यन्त्रालय के अधिष्ठाता श्रीयुत स्वामी दयानन्द सरस्वती जी हैं और उनकी ओर से मैं बख्तावरसिंह, जो कि मन्त्री आर्यसमाज शाहजहांपुर का था, प्रबन्धक नियत हुआ हूं। इसमें टाइप आदि उत्तम प्रकार की विलायती बनी हुई सामग्री कलकत्ते से मंगाई गई है। इस यन्त्रालय से मुद्रित पुस्तकों में श्रेष्ठ कागज लगा करेगा और अक्षर भी सुन्दर, स्पष्ट और शुद्ध हुआ करेंगे। अब तेरहवें अंक तथा वेदभाष्य मुम्बई में छपकर आगे वहां से उठके यहां काशी में आकर चौदहवें अंक से लेके सदा इसी वैदिक यंत्रालय में मुद्रित हुआ करेगा। इसलिए जिन महाशयों को वेदभाष्य आदि का मूल्य भेजना अथवा वहां से कोई पुस्तक मंगवाना हो तो उक्त ठिकाने में मेरे पास भेजा और मंगवाया करें।"

प्रेस का संक्षिप्त इतिहास—प्रथम कुछ समय तक मुन्शी बख्तावरसिंह (इस यंत्रालय के) मैनेजर रहे। उनके प्रबंध के दोषों के कारण उनसे पंडित भीमसेन ने कुछ दिनों के लिए चार्ज लिया और मास्टर शादीराम मैनेजर नियुक्त किये गये। उनको अवकाश न होने और बनारस में योग्य मैनेजर न मिलने के कारण यन्त्रालय को रायबहादुर पंडित सुन्दरलाल सुपरिण्टैण्डैण्ट गवर्नमेण्ट वर्कशाप इलाहाबाद (जो सन् १८६३ से स्वामीजी के धर्मानुयायी और दृढ़ आर्य पुरुष थे)[१४७] के निरीक्षण में रखने के लिए इलाहाबाद लाया गया और वहां पर स्वामी जी के दूसरे पुराने भक्त पंडित दयाराम जी मैनेजर नियत हुए। तत्पश्चात् मुंशी समर्थदान मैनेजर नियुक्त हुए और ३० अक्तूबर, सन् १८८३ को जब स्वामी जी की मृत्यु हुई, यही सज्जन मैनेजर थे। फिर कुछ दिन मुंशी शिवदयालसिंह जी मैनेजर रहे और तत्पश्चात् इलाहाबाद समाज के कुछ सदस्यों की एक कमेटी और फिर भक्त रेमलदास जी मैनेजर हुए; जिनके प्रबन्ध में सन् १८९१ में यन्त्रालय परोपकारिणी सभा के आदेश से इलाहबाद से अजमेर मंगाया गया और वहां कुछ काल के पश्चात् पंडित ज्वालादत्त व यज्ञदत्त आदि मैनेजर नियुक्त हुए परन्तु अब कमेटी के निरीक्षण में है।

संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित बाल शास्त्री की मृत्यु पर 'हिन्दी प्रदीप' समाचार के सम्पादक[१४८] की टिप्पणी—विद्वज्जनमुकुट अर्थात् काशी के महान् पंडित श्री बाल शास्त्री १३ जौलाई, सन् १८८१ को स्वर्गवासी हुए। उनके स्वर्गवासी होने से काशी में संस्कृत को ऐसा धक्का पहुंचा जिसकी पूर्ति अब आगे को कदाचित् असम्भव है। उक्त शास्त्री जी संस्कृत तथा वेद के पूर्ण पंडित थे। 'शरण्यो वेदविद्यायाः' यह श्रुति इस समय उन्हीं पर चरितार्थ थी। प्रायः ऐसे पंडित बहुत हैं जो या तो १२ वर्ष में पच-पच कर निरा व्याकरण रट डालते हैं; परन्तु वेद या दूसरे विषयों को जानने के सम्बन्ध में उन पर अज्ञान का तिमिर छाया रहता है। या कुछ 'मक्षिकास्थाने मक्षिकाः' की भांति वेद की समग्र संहिता रटे बैठे हैं परन्तु अर्थज्ञान की दृष्टि से कोरे वृषभ के अवतार हैं। उक्त शास्त्री में सो बात नही थी; शास्त्र और वेद दोनों में पंडित थे। अब दुगुना दुःख हमें इस बात का है कि ऐसे महान् पंडित भी इन प्रान्तों में, विशेषतया काशी में, धनी राजा बाबुओं को उल्लू

बनाकर पर्याप्त रुपया ऐंठने के अतिरिक्त, अपना नाम चिरस्मरणीय रहने की कोई दूसरी बात नहीं छोड़ जाते । उनके व्यक्तित्व से न संस्कृत ही को किसी प्रकार का लाभ पहुंचता है, न ही वे लोकोपकार (कर जाते हैं) महावृक्ष की जड़ सींचने की इच्छा से एक़ चुल्लू पानी अपने जीते जी उस पर कभी छोड़ते होंगे । पामर लोगों के समान ये लोग भी (यही करते हैं कि) प्रजा को ठगा, मन-मांगता खाया, लूटा और जितना अधिक धन संचय करते बन पड़ा किया । अन्त में जैसे आये वैसे मुंह बाये चल खड़े हुए । बालशास्त्री ने तो लोकोपकार तो दूर रहा; विद्या की अजीर्णता[1] में आकर अभी विधवा विवाह खंडन पर ही कुछ लिख मारा था । वाह रे बुद्धि ! पढ़ा लिखा सब कुछ, पर पुराने विचार की अपवित्रता दूर न हुई । वहीं बंगाल के पंडित हैं; देश की कितनी भलाई कर रहे हैं ! **ईश्वरचन्द्र ने**[१४९] तो विधवाविवाह प्रचलित कर अपने नाम का स्तम्भ ही गाड़ दिया । **तारानाथ,**[१५०] **प्रेमचन्द**[१५१] **सरीखे** कैसे-कैसे महोपकारी हुए जिन्होंने साहित्य का उद्धार कर दिया । जिन ग्रन्थों का नाम तक कोई नहीं जानता था उन पर टीकाएं तथा टिप्पणियां बनाईं और फिर मुद्रित कर उन्हें (सर्वसाधारण में) फैला दिया । यदि प्रेमचन्द सरीखे महानुभाव हम लोगों के भाग्य से न हुए होते तो साहित्यसुधा का पान हमें कौन कराता ? जहां एक तो काशी के पंडित हैं (जो करोड़ पर करोड़ पढ़ाते हुए) संस्कृत को वज्र का टुकड़ा (अत्यन्त कठिन) करते जाते हैं, वहीं तारानाथ भी हैं जिन्होंने 'सरला' आदि के द्वारा छात्रों के लिए संस्कृत पठन-पाठन महासरल कर दिया । (हिन्दी प्रदीप जौलाई, सन् १८८२, पृष्ठ १८, १९, खंड ५, संख्या ११, आषाढ़ शुक्ला १५, संवत् १९३८) ।

प्रयाग के कुम्भ एवं मिर्जापुर (सवंत् १९२६) के वृत्तांत

काशी के प्रसिद्ध संवत् १९२६ वाले शास्त्रार्थ के पश्चात् स्वामी जी कुछ समय वहां रहकर माघ, संवत् १९२६, तदनुसार, १२ जनवरी, सन् १८७० बुधवार को कुम्भ पर प्रयाग आये ।[१५२] प्रयाग में कुम्भ माघ में मकर की संक्रान्ति पर हुआ करता है ।

विदुषी मांजी बडनगरी[१५३] गुफानिवासी वरुणासंगम बनारस ने वर्णन किया, 'माघ बदि एकादशी को स्वामी जी का नाम हमने प्रयाग के मेले में सुना । उस समय हम विद्यार्थी थीं और लघुकौमुदी पढ़ा करती थीं, ज्योतिष पढ़ चुकी थीं । दस-बीस विद्यार्थी साथ लेकर हम राजा वासुकी[१५४] पर गईं । वहां गंगा तट पर पत्थर के फर्श पर स्वामी जी को बैठे देखा । बहुत से संन्यासी और पंडित लोग वहां एकत्र होकर शास्त्रार्थ के लिए आते और हमारे सामने ही सामने दो-एक बात में उड़ते चले जाते थे । हम कुछ समय तक यह आनन्द देखती रहीं । भीड़भाड़ के कारण कुछ बातचीत स्वामी जी से न कर सकीं । दूसरे दिन फिर गईं । उस दिन स्वामी जी से बातचीत हुई । उनकी बातों से हमारे मन में विश्वास उत्पन्न हो गया । उस समय हमने उनसे यह भी पूछ लिया कि आपका यहांसे किधर चलना होगा । स्वामी जी ने कहा कि मिर्जापुर चलेंगे । इसी से हम माघ सुदि पड़वा को वहां से चल पड़े । हमारे आने के कुछ दिन पश्चात् स्वामी जी मिर्जापुर आ गये ।'

नंगे शरीर को शीत नहीं लगता, किसी चमत्कार का फल नहीं

पंडित रामाधीन जी तिवारी, मिर्जापुर निवासी, ने वर्णन किया 'हमने वासुकी पर स्वामी जी से पूछा कि इस समय जाड़ा बहुत पड़ता है परन्तु आपको जाड़ा नहीं लगता, इसका क्या कारण है । कहने लगे कि आपके मुख को जाड़ा क्यों नहीं लगता ? हमने कहा कि यह सदा खुला है । कहने लगे कि यही अवस्था हमारे शरीर की है । उस समय नग्न रहते और संस्कृत बोला करते थे ।

विद्वान् पंडित मोतीराम जी गौड़, मिर्जापुर निवासी, ने वर्णन किया 'सर्वप्रथम हम स्वामी जी से माघ संवत् १९२६ मकर की संक्रान्ति पर प्रयाग में मिले । हम वहां अमावस्या पर स्नान को गये थे । वासुकीटेक पर स्वामी जी टिके थे । उस

---

1. इतनी मात्रा में विद्या पढ़ी कि मानो पच ही न सकी ।—सम्पा०

समय हमारे साथ एक विद्यार्थी बुधराम थे जो कि पिछले शास्त्रार्थ से उनके परिचित थे । और दूसरे दादरी निवासी गंगाधर, हमारे सहाध्यायी, जो अब मर चुके हैं, हमारे साथ थे । हम प्रातःकाल स्वामी जी के दर्शनार्थ वासुकीटेक गये, चार बजे का समय था । देखा कि वे गंगा के तीर और घाट की बुर्जी पर सो रहे थे । केवल एक लंगोट लगाये हुए और सब नग्न, चारों खाने चित्त, हाथ-पांव फैलाये सो रहे थे । बहुत ठंडी वायु चल रही थी । जब हम पहुंचे तो उनको ऊपर से देखकर बुधराम बोला कि जिसने काशी में शास्त्रार्थ किया था वह 'गप्पाष्टक' यही है । फिर हम नीचे घाट के फर्श पर गये । स्वामी जी हमारे उतरने का शब्द सुनकर खड़े होकर फर्श पर आ गये । उस समय संस्कृत बोलते थे । हमसे पूछा कि आपका वर्ण और निवास स्थान क्या है अर्थात् आप कौन हैं और कहां से आये हैं ? मैंने उत्तर दिया कि मिर्जापुर निवासी और ब्राह्मण वर्ण हूं अर्थात् मैं ब्राह्मण हूं और मिर्जापुर से आया हूं ।

साधारण व्यक्ति के साथ भी लौकिक व्यवहार के पालन करने का पूरा ध्यान रखते थे—उस समय एक सारस्वत ब्राह्मण वहां उपस्थित था । स्वामी जी ने उससे कहा कि वह कट (चटाई) उठा लाओ । यह चटाई लेकर हमारे पास आया और उसे बिछा दिया । स्वामी जी ने कहा कि कट के ऊपर बैठिये । स्वामी जी ने कहा कि आप ही बैठिये । कहने लगे कि मेरा आसन तो सर्वत्र है । मैंने कहा कि जब आप ऐसे बैठते हैं तो हम भी ऐसे ही बैठ जावेंगे, चटाई की क्या आवश्यकता है । स्वामी जी ने हमारे अनुरोध करने पर अन्त में कहा कि सामान्य लोकरीति के अनुसार आपका चटाई पर बैठने का अधिकार है । हमने उत्तर दिया—'यह लोक रीति सत्य (उचित) नहीं ।'

सन्ध्योपासना एकान्त में करनी चाहिये—फिर स्वामी जी ने हमसे कहा कि सब काम छोड़ कर परमकृत्य सन्ध्या-उपासना एकान्त में करनी चाहिये और यह कि सूर्योदय का समय आ गया, गंगा पर जाकर संध्या करके फिर आ जाना । हम उनके कहने के अनुसार गये और सन्ध्या करके लौट आये । वह भी बिना किसी पात्र के गंगा के किनारे-किनारे बहुत दूर चले गये । प्रथम अपना लंगोट उतार और धो कर डाल दिया और रेत में गाड़ दिया । स्वयं शौचादि करके स्नान किया और लंगोट बांधकर अपने स्थान पर चले गये । इतने में हम भी जा पहुंचे । उस समय दो आचार्य वहां बैठे हुए थे और स्वर्गीय रामरत्न लड्ढा, मिर्जापुर निवासी भी वहां थे । स्वामी जी उस समय आचार्यों से यह कह रहे थे 'कि 'मस्तकश्रृंगार' (तिलक आदि लगाने) से अच्छा यह है कि उपासना द्वारा उत्तम श्रृंगार किया करो । ऐसा तिलक लगाने से तुम्हारा क्या प्रयोजन है ? आडम्बर-रचना महात्माओं का काम नहीं, यह तुमने कैसी माया रची हुई है ।' फिर जब वह कुछ उत्तर न दे सका तो कहने लगे कि शोक ! महाशोक ! तिलक आदि चिह्न बनाने में लोगों को रुचि है, योगाभ्यास में किसी की नही है । मूर्ख ! जब तक तू यह तिलक लगाता रहा इतने समय तक गायत्री मन्त्र का जाप क्यों न कर लिया, व्यर्थ समय नष्ट किया । उसने कहा कि यदि आप हमारे देश में हों तो पृथिवी में गाड़ कर मार डालें । स्वामी जी हंसने लगे । उस पर वह चल पड़ा । जब चलने लगा तब कहा कि योगसाधना किया करो । बार-बार उसको बिठला कर भली-भांति निरुत्तर किया ।

इतने में रामरत्न लड्ढा ने कहा कि महाराज यह हमारे मिर्जापुर के पंडित हैं, आप इनके सामने कुछ कहें । स्वामी जी ने उनसे पूछा कि तुम किस मन्दिर के शिष्य हो ? उसने कहा कि हम नाथ जी के शिष्य हैं । स्वामी जी ने कहा कि तुम्हारा आचार्य वेश्यापुत्र और तुम उसके शिष्य हुए । यह तुमको अनधिकार[1] है । फिर स्वामी जी ने हमसे पूछा कि इनको अधिकार है या नहीं ? हमने कहा कि अधिकार नहीं । फिर स्वामी जी ने हमसे पूछा कि धर्म क्या है उसका स्वरूप क्या है ? हमने कहा कि आपके इस कथन में दोष है । बोले, इसमे क्या दोष है ? हमने कहा धर्म का रूप नहीं है, उसका स्वरूप पूछना अनुचित है । तब स्वामी जी ने मनुस्मृति और (महा) भारत से धर्म का स्वरूप बतलाना आरम्भ किया । हमने कहा कि वेद का प्रतिपादित है वही धर्म है ।

---

1. जिस पद पर तुम हो, यहां सम्भवतः पुजारी आदि, उसके तुम अधिकारी नहीं हो; यह अभिप्राय प्रतीत होता है—सम्पादक ।

तथाकथित 'प्रतिष्ठा' आदि के मन्त्रों में 'प्रतिष्ठा' न निकली न 'आवाहन'—तब स्वामी जी ने पूछा कि वेद में प्रतिमा-पूजन है या नहीं ? हमने उत्तर दिया कि है । उस पर स्वामी जी ने कहा कि कहां ? हमने कहा कि (प्रतिमा में देवता की) प्रतिष्ठा और आवाहन वेदमंत्रों से होता है; क्या वह प्रमाण नहीं ? तब स्वामी जी ने कहा कि वह प्रतिष्ठा और आवाहन के वेदमंत्र कहो । तब हमने मंत्र कहा । स्वामी जी ने कहा कि इसका अर्थ कहो । जब अर्थ किया तो उनमें प्रतिष्ठा और आवाहन का कुछ प्रयोजन न आया । फिर हमने पूजन और पुष्प चढ़ाने और धूप, दीप, नैवेद्य आदि के मंत्र उनके आगे पढ़े । उनका अर्थ भी स्वामी जी ने सुनाया कि इनका अर्थ तो यह है; फिर तुम उनसे कैसे नैवेद्य आदि चढ़ाते हो और नवग्रह पूजा के जो मंत्र हैं, उनका भी अर्थ देखिये । उनका अर्थ भी करके सुनाया । उससे भी सूर्य और बृहस्पति के अतिरिक्त किसी ग्रह का सम्बन्ध न निकला ।

एक अन्य शास्त्रार्थ—'तत्पश्चात् एक उदासी ज्योतिःस्वरूप आ गया, उसने हमारे सामने यह वृत्तांत कहा कि यहां प्रयाग में ही स्वामी जी का काशी शास्त्रार्थ से पहले पंडित शिवसहाय से शास्त्रार्थ हो चुका है, जिसकी वास्तविकता इस प्रकार थी कि वाल्मीकि रामायण के ऊपर उस ने टीका बनाई है । स्वामी जी ने किसी से कहा कि वह टीका लाकर दिखलाओ । उसने लाकर दिखलाई । फिर स्वामी जी ने कहा कि जिसने टीका की है उसे हमसे मिलाओ । इसलिए वह बंसीधर सहित आया था । स्वामी जी ने उसकी टीका में अर्थदोष और शब्ददोष बतलाये । उस पर वह कुछ शास्त्रार्थ करने लगा परन्तु स्वामी जी से परास्त हो गया और उठकर गंगा के तीर-तीर काशी को चल दिया । उसके पीछे-पीछे स्वामी जी भी चल पड़े । वह जाकर काशी नरेश के स्थान रामनगर में चला गया । स्वामी जी बाहर खड़े रहे; जब कोई पूछता तो कहते कि जो भीतर छिपा है उसको बुला दो अर्थात् शिवसहाय को निकालो । लोगों ने राजा को जाकर सूचना दी । राजा ने स्वामी जी को बुलाया, वह नहीं गये और गंगातीर पर आकर बैठ गये । राजा ने आज्ञा दी कि उनकी भिक्षा और खाने-पीने के लिए पूछो और बगीचे में ठहरने का आदेश दिया । स्वामी जी ने कुछ समय वहां ठहर कर काशी जाने का संकल्प किया । राजा ने कहा कि हमारी नौका में बैठकर पार जाओ और हमारे बगीचे में जाकर उतरो । स्वामी जी ने दोनों को अस्वीकार किया और स्वयं पार चले गये और एक बगीचे में दुर्गाकुंड पर जा ठहरे । फिर काशी नरेश ने उनसे पंडितों का शास्त्रार्थ कराया । वह सारा छप गया है ।

यह सारा वर्णन ज्योतिःस्वरूप ने हमको सुनाया ।[1] जब वह वृत्तांत सुना चुका तब स्वामी जी ने हमसे धर्म के विषय में पूछा ।

अन्त में मूर्ति विषय पर कोई वेदप्रमाण न निकला । पश्चात् हमने कहा कि आज हम अपने स्थान पर जावेंगे परन्तु रसोई यहीं आकर बनावेंगे, आप कहीं न जाना । स्वामी जी ने स्वीकार किया । हमने आकर भोजन बनाया और स्वामी जी ने और हमने वही भोजन किया और सायंकाल पर्यन्त वहीं रहे, भाषण करते रहे । किसी भी व्यवस्था से मूर्तिपूजा पर वेद का प्रमाण न मिला तब हमारे मन में खटका कि अब तक महात्मा और विद्वान् लोग कैसे करते आये हैं ? तब स्वामी जी ने कहा कि इतिहास में महाभारत और वाल्मीकि रामायण, और स्मृतियों में जो मनुस्मृति और सूत्रादि हैं, उन सूत्र आदि को

---

1. वही वृत्तांत (जो पंडित मोतीराम जी ने पंडित ज्योतिःस्वरूप के मुख से सुना था) पंडित बलदेवप्रसाद शुक्ल फर्रूखाबाद निवासी ने इस प्रकार वर्णन किया 'जब इस प्रकार शिवसहाय के पीछे चलते-चलते स्वामी जी रामनगर पहुंचे तो राजा के बगीचे के पास रेत में एक मिट्टी का डला सिरहाने रखकर सो गये । प्रातः होते ही जो लोग दर्शनार्थ आये उनको शिवसहाय की टीका का खंडन सुनाया । जब यह सूचना शिवसहाय को मिली वह राजासाहब से छुट्टी लेकर घर को चला गया । मैंने कोरी हंडिया में खिचड़ी बनाई । स्वामी जी ने खाई और कहा कि यह उत्तम बनी है । मिट्टी के बर्तन में बहुत गुण है और इस बर्तन में एक बार खिचड़ी अत्युत्तम होती है । तत्पश्चात् वहां नगर में ही वेदविरोधियों का खंडन आरम्भ हुआ । क्वार रामनवमी के मेले पर वहां थे ।'

देखिये । आगे वेद की संहिता तुम्हारी पठित है उसका भाष्य मंगाकर देखिये तब आपको स्वत: ही प्रकाश हो जावेगा कि यह केवल गप्प है ।'

नैयायिक भी सामने नहीं आया—'एक पंडित हरजसराय हाथरस के रहने वाले, जो प्रसिद्ध नैयायिक हैं तथा नदिया शांतिपुर के पढ़े हैं, वह भी संवत् १९२६ के माघ मेले में प्रयाग आये थे । उसके शिष्य स्वामी जी के पास जाकर (अपने गुरु की यह बात) कहते थे कि 'स्वामी अन्यत्र अर्थात् अलग बैठकर खंडन कर रहा है । जब हमारे सामने आयेगा तब उसका वाक्य भी न निकलेगा ।' स्वामी विशुद्धानन्द जी भी वहीं थे । स्वामी जी ने उसके विद्यार्थियों से कहा कि (हमारा) वाक्य न निकले ऐसी सिद्धि तो हमको भी देखनी है; किसी प्रकार उससे हमारी अवश्य भेंट करा दो और उसके साथ विशुद्धानन्द जी भी हों क्योंकि यह विशुद्धानन्द के गुरुभाई हैं । विद्यार्थियों ने उनसे कहा कि उनके पास चलो परन्तु उसने स्वीकार न किया और कहा कि हम उनके पास न जावेंगे । तत्पश्चात् विद्यार्थियों ने आकर उत्तर दिया कि वे कहते हैं कि हम जावेंगे तो नहीं । स्वामी जी ने कहा कि गंगा का किनारा है हम ही चले जावेंगे, परन्तु दोनों गुरुभाई इकट्ठे रहें, उसने यह भी न माना और कहा कि जब कभी ऐसा होगा तब देख लेंगे । जब यह बात हमको विदित हुई तो हमने हरजसराये और स्वामी विशुद्धानन्द जी से कहा, क्योंकि हमको उस समय स्वामी जी का भरोसा (स्वामी जी के कथन पर विश्वास) बहुत कम था, कि देखिये वह (स्वामी जी) क्या कहते हैं । तब हमसे विशुद्धानन्द ने कहा कि वह विरक्त है, उससे कौन लगे । हमने कहा कि आप भी तो संन्यासी हैं । कहा कि 'इससे क्या ! हरजसराय जाये तो जाये परन्तु हम न जायेंगे ।' फिर हम चले आये ।

मूर्तिपूजा का विधान ग्रन्थों में नहीं मिलता—'यहां आकर हमने सब ग्रन्थों को देखा, कहीं भी मूर्तिपूजा का होना सिद्ध न हुआ । तब एक मास पश्चात् स्वामी जी यहां मिर्जापुर आये और रामरत्न लड्ढा के बगीचे में उतरे । वहां पर एक दादूपंथी साधु आया था । उससे हमारा नाम लेकर पूछा कि तुम उनको जानते हो । उसने कहा कि जानते हैं । तब कहा कि उन्हें सूचित कर देना । सूचना पाने पर हम गये । जाते ही पूछा कि कहो, अब तक उस विषय का कुछ प्रमाण मिला । हमने कहा कि नहीं मिला । तब कहने लगे कि ईश्वर प्राप्ति के लिए योग किया करो, मूर्तिपूजन वास्तव में झूठ है, कहां से प्रमाण मिले ।'

मिर्जापुर का वृत्तांत

स्वामी जी का बड़ा उपकार, ब्राह्मण अब संध्या करने लगे—'स्वामी जी ने जब मिर्जापुर में आकर सत्योपदेश देना आरम्भ किया तो मगन पंडित और भगवतीचरण ब्राह्मण वैद्य आदि बहुत से लोगों ने उनके उपदेश से मूर्तिपूजा छोड़ दी । मुख्य तो हम इतना उपकार उनका मानते हैं कि इसी मिर्जापुर में कई एक ब्राह्मण और पण्डित रहते थे परन्तु सब सन्ध्योपासनादि कर्मों से रहित थे । गंगा पर जाते तो जैसे मूसल नहाये, ऐसे चले आते परन्तु अब सब संध्या करते हैं ।

यहां के बाबा बालकृष्ण वैरागी ने महाभारत और उपनिषदों पर टीका की थी । स्वामी जी ने उसका खंडन किया । बाबा बालकृष्ण ने महाभारत से गीता, विष्णुसहस्रनाम, महादेवसहस्रनाम और इसी प्रकार और बहुत सी बातें निकालकर महाभारत को ३२ हजार श्लोक के लगभग का रहने दिया था । स्कूल के पण्डित गिरिधर मालवीय ने उस टीका को शोधा था । एक गजाधर नामक व्यक्ति स्वामी जी के पास उस वैरागी की बनाई हुई टीका के दो पन्ने ले कर गया । स्वामीजी ने उसमें बहुत से शब्दार्थ दोष, संगतिदोष और व्याकरण के दोष, असाधुपद के बारे में बतलाये । वे यहां तक दोषों से भरपूर थे कि उसकी एक पंक्ति अर्थात् ६० अक्षर में ४० दोष बतलाये । तत्पश्चात् गिरिधर मालवीय के लड़के का उपनयन संस्कार होने लगा, उसमें बालकृष्ण को आना था परन्तु वह स्वामी जी के डर के मारे न आया । गिरिधर ने उसे स्वयं ही

जाकर कहा कि स्वामी जी को तो आना ही नहीं था क्योंकि उन दिनों नगर में नहीं आते थे । जब कभी रेल आदि पर जाने का काम पड़ता तो बाहर से चले जाते । यद्यपि स्वामी जी उसमें न आये परन्तु गजाधर ने वह दो पत्रे और बालकृष्ण जी की समस्त अशुद्धियां उस सभा में सुना दीं और यह भी कह दिया कि इस पत्र के देखने से विदित होता है कि शोधन करने और बनाने वाले दोनों मूर्ख हैं । उसको सुनकर शोधक गिरिधर मालवीय क्रुद्ध हुए और उसको दुर्वाक्य सुनाये परन्तु वह क्रुद्ध न हुआ प्रत्युत कहा कि आप चूंकि हमारे मामा हैं, चाहें जो कहें । फिर सब दोषों को प्रकट किया परन्तु किसी ने कोई उत्तर न दिया ।'

प्रतिदिन समाधि लगाते थे

प्रातःकालीन दिनचर्या तथा समाधि—स्वामी जी रात्रि को प्रतिदिन दो बजे उठते और सी० बोल्ड नामक एक अंग्रेज के कार्यालय के आगे से होकर नीचे गंगा के कच्चे घाट पर सोइया तालाब के सामने जाया करते और वहां से शौच और स्नान कर मिट्टी लगाकर चले आते । तीन बजे के लगभग आकर समाधि लगा, ईश्वर के ध्यान में बैठ जाते । फिर, उस समय, किसी के (वहां) आने-जाने का ध्यान तक नहीं था । एक दिन हम बहुत सवेरे गये परन्तु वह उस समय भी समाधि में थे । हम मौन हो कर बैठ गये । जब सूर्य निकला तब उठकर टहलने लगे और हमको देखकर पूछा कि तुम कब आये थे । हमने सब वृत्तांत कहा ।

इस प्रकार एक दिन की बात है कि स्वामी जी रात के दो बजे के लगभग गंगा की ओर जा रहे थे । सी० बोल्ड साहब के सिपाही ने देखा और चकित हो गया कि ऐसे लम्बे शरीर वाले कौन हैं; भयभीत हो गया । साहब को जाकर सूचना दी, साहब लालटेन लेकर आये और देखा कि स्वामी जी हैं । तब सन्तरी से कह दिया कि यह जिस समय आवें आने दिया करो ताकि गंगा को चले जाया करें, कोई रोक-टोक न करे ।'

'**रामगोपाल वैश्य** ने, जो वेदान्ती था, बहुत सी टीकाएं गीता की देखीं परन्तु एक श्लोक के विषय में जो उसका सन्देह था वह दूर न हुआ । अन्त में वह एक दिन हमको साथ लेकर स्वामी जी के पास गया और स्वामी जी से कहा कि आपसे कुछ पूछना है । उन्होंने आज्ञा दी तब यह श्लोक पूछा 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रजं' । स्वामी जी ने कहा कि "शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्" इस वार्तिक से वकार के आकार के आगे (परे जो) अकार रहा उसको तद्रूप हो गया अर्थात् वह शब्द धर्म ही रहा परन्तु वास्तव में अधर्म है; अर्थ अधर्म होगा । जिससे वह बहुत प्रसन्न हुआ और (उसने) फिर पूछा कि कोई प्रमाण भी है ? स्वामी जी ने ऋग्वेद की दो-तीन श्रुतियों के प्रमाण दिये ।'

पंडित रामप्रकाश जी ने वर्णन किया, 'स्वामी जी संवत् १९२६ में प्रयाग के माघ मेले के पश्चात् यहां आये और ला० रामरतन के बगीचे में उतरे तो हमारा आना-जाना प्रारम्भ हो गया । यहां के पंडित लोग प्रतिदिन शास्त्रार्थ के लिए जाया करते थे और हम सुना करते थे ।

समय पड़ने पर निर्भय होकर गुण्डों को डांट से भी सीधा कर देते थे—एक दिन जगन्नाथ मालवीय, छोटूगिरि गुसांई आदि सैकड़ों मनुष्य दंगा-फिसाद करने के विचार से गये । स्वामी जी वहां बारहदरी में बैठे थे । छोटूगिरि गुसांई आते ही स्वामी जी की जंघा पर जंघा मारकर बैठ गया, शेष खड़े रहे । स्वामी जी को कहा कि बच्चा, अभी तक तुम कुछ पढ़ा नहीं, जाकर पढ़ो । इस बात को आप नहीं जानते कि जिस लिंग से सबकी उत्पत्ति होती है उसका तुम खंडन करते हो; यह कहा और श्लोक, लिंगाष्टक, 'ब्रह्ममुरारिसुरार्चितलिंगम् तं प्रणमामि सदाशिवलिंगम् इत्यादि' शिवलिंग के समान हाथ बनाकर पढ़ा । उस पर स्वामी जी ने संस्कृत में सब लोगों से पूछा कि 'कोऽयम् ?' यह कौन है । जगन्नाथ मालवीय ने कहा कि जैसे काशी में विश्वनाथ हैं, इसी प्रकार (उसी के समान) मिर्जापुर में जो बूढ़े महादेव हैं यह उसके पुजारी हैं । स्वामी जी

ने कहा कि काशी में कौन विश्वनाथ है ? विश्वनाथ तो विश्व भर में है; (बनारस में तो) पिंडीनाथ है । उस समय स्वामी जी के पास हम, सीताराम पंडित और मथुरा बैठे थे ।

फिर जगन्नाथ मालवीय ने स्वामी जी से पूछा कि आपका वास्तविक अभिप्राय क्या है? स्वामी जी ने कहा कि 'एक परमेश्वर की उपासना मैं मानता हूं और जड़ पाषाण आदि की बनाई हुई मूर्ति के पूजन का खंडन करता हूं।' 'इस पर छोटूगिरि ने स्वामी जी के शिर पर हाथ फेरा और बोला बच्चा! तू नहीं जानता कि इसी लिंग ने तुझको उत्पन्न किया है। स्वामी जी ने कहा कि तुम्हारी उत्त्पत्ति इस पाषाण के लिंग से हुई होगी हम तो अपने माता-पिता से उत्पन्न हुए हैं। स्वामी जी के सामने कोई मनुष्य दोने में बताशे धर गया था। छोटूगिरि ने कहा कि यह बताशा है। स्वामी जी ने कहा कि हां, यदि खाने की आवश्यकता हो तो लो परन्तु झूठा मत छोड़ना, सब खा लेना। उसने उठाकर खाने आरम्भ किये। थोड़ा सा खाया, शेष झूठा छोड़ दिया। स्वामी जी ने कहा हमने पहले ही कहा था कि झूठा न छोड़ना, तुमने यह अच्छा नहीं किया। उस पर वह बड़े जोर से चिल्ला कर बोला कि बच्चा! तुम नहीं जानते, हम तुम्हारे गुरु हैं और आज इस सब खंडन का फल तुमको विदित हो जायेगा। इस पर स्वामी जी को विश्वास हुआ कि ये लोग अधिक बदमाशी किया चाहते हैं। तब डपट कर बोले कि 'तू मुझको भय क्यों दिखाता है; यदि ऐसे ही हम भय करते तो समस्त देशों में घूम कर क्यों खंडन करते और ललकार कर बोले कि कोई है। किवाड़ों को बन्द कर दो, मैं अकेला सबको मार सकता हूं।' इतना सुनकर सब चकित और भयभीत हो गये और जगन्नाथ मालवीय हाथ जोड़कर बोले कि लोगों को क्योंकर प्रतीत हो कि मूर्तिपूजन आदि उचित नहीं। इस पर स्वामी जी ने कहा कि वेदों में कहीं इसका प्रमाण नहीं और परमेश्वर स्वतन्त्र है, वह किसी के वश में नहीं हो सकता जैसे कि तुम मूर्ति को ताले में बन्द कर रात को चले जाते हो। यह जड़ है इसलिए कुछ वर या शाप किसी को नहीं दे सकती है। उसको सुनकर जगन्नाथ मालवीय प्रसन्न हुए और कहा कि हम यह बात नहीं जानते थे कि आप केवल मूर्तिखंडन करते हैं प्रत्युत हमने सुना था कि आप देवताओं का खंडन करते हैं। फिर छोटूगिरि को भी उसने संकेत किया, वह भी दूर बैठ गया और साधारण रूप से कुछ मिनट बातचीत करके चले आये।

मिर्जापुर में कुछ पण्डितों से शास्त्रार्थ—यहां के कुछ पंडितों ने एक दिन एक पत्र स्वामी जी के पास संस्कृत में लिखकर भेजा । दोपहर के समय जब कि हम उपस्थित थे, यह पत्र पहुंचा । स्वामी जी ने उस पत्र को लेकर देखा और देखने पर उसके प्रत्येक शब्द, वाक्य में अशुद्धियां निकालीं । पत्र को अपने पास रख लिया । उसका विषय यह था कि 'हम लोग आज शास्त्रार्थ करने आवेंगे । आप मूर्ख और दुष्टादि कड़े शब्द कह दिया करते हैं, यदि ऐसा ही हमको कहा तो आपको दंड दिया जावेगा ।' तब स्वामी जी ने लोगों से कहा कि गोविन्द भट्ट भागवत का बड़ा अभिमान रखता है, वह शास्त्रार्थ करने आवेगा । यों तो साधारण रूप से तो मैं चाहे बालक से भी शास्त्रार्थ कर लूं परन्तु इस अभिमानी को तो अवश्य मूर्ख बनाऊंगा । अन्त में दो घंटे पश्चात् वे आये अर्थात् रामप्रसाद महाजन, पंडित जी, श्री साकादेवी, रामप्रसाद ब्रह्मचारी, गिरधर भक्त, हरगोवन्द भट्ट आदि बहुत से लोग थे । आते ही नमोनारायणादि व्यवहार करके चारों पंडित तो स्वामी जी के पास बैठ गये, अन्य लोग खड़े रहे । स्वामी जी ने उस पत्र को निकाल कर उसकी अशुद्धियां कहनी आरम्भ कीं । इस पर उन्होंने कहा कि अक्षर अच्छा होने के लिये लेखक से लिखवाये गये हैं । तब स्वामी जी ने कहा कि आप लोगों ने फिर शोध क्यों नहीं लिया, क्या शोधने की शक्ति नहीं थी ? यदि ऐसा ही था तो भाषा में क्यों न लिखा ? उस पर ब्राह्मण लोगों ने कहा कि जिस काम के लिये हम आये हैं वह करना चाहिये, इसको जाने दीजिये ।

प्रथम—गोविन्द भट्ट ने भागवतखंडन के विषय में शास्त्रार्थ उठाया । स्वामी जी ने उसके उच्चारण की अशुद्धियां निकालनी आरम्भ कीं । यहां तक कि वह कोई अक्षर भी शुद्ध न बोल सकते थे । तब रामप्रसाद ब्रह्मचारी ने कहा कि भट्ट जी ! आप इधर आइये और जयश्री से शास्त्रार्थ होने दीजिये । लाचार होकर भट्ट जी वहां से उठकर पंडितों के पीछे आकर बैठ गये । तब जयश्री पंडित से शास्त्रार्थ होने लगा । स्वामी जी ने उनकी संस्कृत की प्रशंसा की कि इनका बोलना हमको बहुत अच्छा प्रतीत होता है । इतने में बहुत भीड़ हो गई । स्वामी जी ने कहा कि चलो मैदान में । सब वहां उठकर मैदान में आये । पूर्व की ओर स्वामी जी और पश्चिम की ओर पंडित लोग थे । मूर्तिखंडन पर शास्त्रार्थ होने लगा । 'न तस्य प्रतिमास्ति' इत्यादि इस यजुर्वेद के मन्त्र[१५५] का स्वामी जी ने प्रमाण दिया । जयश्री इसका अर्थ दूसरी प्रकार करने लगे । स्वामी जी उसी पर दूसरा प्रमाण देने लगे तब जयश्री ने कहा कि इस मन्त्र पर आपका और हमारा शास्त्रार्थ युक्तिपूर्वक होना चाहिये क्योंकि यह तो हम भी जानते हैं कि आप बहुत से प्रमाण देंगे । तब स्वामी जी ने युक्तिपूर्वक उनके अर्थों के बहुत दोष बतलाये । शास्त्रार्थ होते होते सायंकाल हो गया । स्वामी जी के पीछे रामप्रसाद अग्रवाल बैठे थे, उन्होंने हथेली बजाकर पंडितों को चलने का संकेत किया परन्तु स्वामी जी ने समझा कि यह कदाचित् हमारी हंसी उड़ाने के लिए ताली बजाते हैं । इस पर वह खड़े हो गये और ललकार कर कहा कि 'किसने ताली बजाई ? सावधान ! यदि ऐसा करोगे तो मैं अकेले ही सबको मार सकता हूं, तुम लोग हमको बदमाशी दिखलाते हो, बगीचे का किवाड़ बन्द कर लो, लोग बाहर न जाने पावें ।' इस पर रामप्रसाद ने भय से कांप कर और हाथ जोड़कर कहा कि महाराज ! मैंने चलने का संकेत किया है, हंसी उड़ाने के लिये ताली नहीं बजाई । तब स्वामी जी ने शान्त होकर कहा कि पंडित लोगों का संध्या समय बीत गया और सन्ध्या नहीं की, इनको शूद्र समझना चाहिये कि ब्राह्मण ? ऐसा कहा और सब लोगों ने नमोनारायण की और चले आये । दूसरे दिन से बाबू रामचन्द्र घोष ने एक सिपाही का वहां प्रबन्ध कर दिया ताकि कोई गड़बड़ न होने पावे ।

बाबा बालकृष्ण वैरागी के शिष्य पंडित छोटूराम उपनिषद् पढ़ने के लिये गुप्त रूप से रात को स्वामी जी के पास जाया करते थे । एक दिन वे उक्त बाबा जी की बनाई हुई गीता की टीका स्वामी जी के पास ले गये । स्वामी जी ने देखकर उनकी टीका में कई एक दोष निकाले कि उसका ऐसा अर्थ न होना चाहिये । उसको छोटूराम व्यास (अर्थात् कथा करने वाले) ने आकर बाबा जी से कहा । पहले बाबा जी स्वामी जी की प्रशंसा किया करते थे, इस पर क्रुद्ध होकर स्वामी जी की निन्दा करने लगे; साथ ही यह भी कहने लगे कि उनका मुख नहीं देखना चाहिए । बाबा जी ने उस गीता की टीका में यह भी लिखा था कि गीता व्यास की बनाई नहीं है, क्षेपक है । उस पर स्वामी जी ने कहा कि वह सारी मिथ्या नहीं है, बहुत बातें उसमें अच्छी हैं । हां, कुछ पीछे का मिलाया हुआ है । यदि बाबा जी इसको बिल्कुल क्षेपक कहते हैं तो हम गीता का मंडन करते हैं, कह दो कि वह हमसे शास्त्रार्थ करे । रामरत्न लड्ढा ने (जो बाबा बालकृष्णदास के शिष्य थे और जिसके बाग में स्वामी जी उतरे हुए थे) यह वृत्तांत बाबा जी से जाकर कहा । बालकृष्ण ने उत्तर दिया कि उनके स्थान पर हम न जावेंगे । स्वामी जी ने यह सुनकर कहा कि यह स्थान हमारा तो नहीं है, यह तो तुम्हारा स्थान है और यदि हमारे टिकने से हमारा हो गया है तो उसके शिष्य मलनायक का बगीचा पास है, वहां आ जाइये और शास्त्रार्थ कीजिये । यदि वहां भी नहीं तो गंगा पार चलकर रेती में शास्त्रार्थ कीजिये परन्तु बालकृष्ण जी किसी बात पर न जमे ।

एक मनुष्य ने स्वामी जी से प्रश्न किया कि यह जीवात्मा परमेश्वर है या नहीं ? स्वामी जी ने पूछा कि 'क्या तुम कुछ पढ़े हो ?' उसने कहा, नहीं । तब स्वामी जी ने उत्तर दिया कि तुममें इस बात के समझने की सामर्थ्य नहीं; यह बात बहुत सूक्ष्म है । इस बात पर एक पंडित जी ने 'जले विष्णुः स्थले विष्णुरित्यादि'-श्लोक पढ़ा और कहा कि इस श्लोक से विदित होता है कि जो है सो विष्णु ही विष्णु है । इस पर स्वामी जी ने कहा कि यदि इसका यह अर्थ है और जल-थल बिलकुल विष्णु ही विष्णु है तो आप लोग शौच भी उस पर जाते और मूत्र भी उसी पर करते हो, जिससे बड़ा दोष लगता होगा । उस पर वह मौन हो गया ।

एक दिन पंडित गजाधर से खाने पीने के विषय पर बातचीत थी । स्वामी जी ने मनु का यह श्लोक पढ़ा 'स चक्री इति'—इसमें चक्री शब्द का अर्थ स्वामी जी ने कुलाल किया । उसने कहा कि नहीं इसका अर्थ तेली है और कुल्लूकभट्ट[१५६] का प्रमाण दिया । स्वामी जी ने कहा 'कुल्लूकस्तु उलूक एव' अर्थात् कुल्लूक तो केवल उल्लू है । इसका अर्थ तेली नहीं क्योंकि तेली के पास तो कोल्हू है, उसके पास चाक कहां है जो चक्री कहावे, चक्र तो कुम्हार के पास है, इसलिए वह चक्री कहाता है । जिस पर वह मौन होकर चला आया । पंडित देवीदयाल वैद्य ने भी (स्वामी जी का) समर्थन किया ।

पग-पग पर निर्भयता और सतर्कता—'एक दिन स्वामी जी यहां गंगातट पर स्नान कर रहे थे और नदी में बहुत से लोग डोंगी पर विन्ध्याचल से आ रहे थे; उस समय वह यह बातचीत कर रहे थे कि स्वामी तो नास्तिक है; उसके पास न जाना चाहिये । यदि कोई जाये तो उनका शिर काट ले । यह बात स्वामी जी सुन रहे थे, जब निज स्थान पर आये तब उन्होंने हम लोगों से कहा कि मिर्जापुर के लोग इस प्रकार की बातें करते आ रहे थे । यद्यपि जब तक हमको परमेश्वर नहीं मारता कोई मारने वाला नहीं, परन्तु उनको तो मानसिक पाप हो चुका क्योंकि यदि उनका वश होता तो अवश्य ऐसा कर देते ।'

इस बार स्वामी जी यहां से वैशाख (या चैत) , संवत् १९२७, तदनुसार अप्रैल, सन् १८७० में गये और फागुन में आये थे अर्थात् इस गणना से दो ढाई मास रहे । इस बार भी पाठशाला (स्थापित करने) का उपदेश करते रहे परन्तु अभी स्थापित नहीं हुई थी । अष्टाध्यायी और महाभाष्य के पढ़ने का लोगों को उपदेश करते थे और कहते थे कि कौमुदी आदि धूर्तों के बनाये ग्रन्थों से पूरा नहीं पड़ता । स्वामी जी के ऐसे ही उपदेशों को सुन और ग्रहण कर पंडित भोलाराम जी सरयूपारीण मिर्जापुर निवासी ने प्रसन्नचित्त से अष्टाध्यायी पढ़ने पर सहमत होकर स्वामी जी की सम्मति से फर्रूखाबाद की पाठशाला में जाकर पंडित उदयप्रकाश जी से पढ़ना आरम्भ किया ।

आनरेबिल सैयद अहमद खां साहब, सी० एस० आई० अपने उस व्याख्यान में जो उन्होंने रीति रिवाज के विषय पर, मिर्जापुर इन्स्टीच्यूट में, ३ नवम्बर, सन् १८७३, तदनुसार सोमवार कार्तिक सुदि १४ संवत् १९३० को दिया था-यों वर्णन करते हैं, 'अब अन्त में मैं स्वामी दयानन्द सरस्वती का नाम लेता हूं जिनको मिर्जापुर के लोग भलीभांति जानते हैं । उनके विचार कैसे ही क्यों न हों और वेद और धर्मशास्त्र के अनुकूल हों या नहीं, क्योंकि मैं उस पर ठीक सम्मति देने के योग्य नहीं हूं, परन्तु मैं इस बात की प्रशंसा करता हूं कि उनका ध्येय अत्यन्त श्रेष्ठ है । जो उसके मन में है वह प्रकट रूप में कहते हैं, यद्यपि इसमें मुझको सन्देह है कि वही करते भी हैं या नहीं' (तहजीब अखलाक १५ शिवाल १२९० हिज्री पृष्ठ १६६, खंड ४, संख्या १५; तदनुसार ६ दिसंबर, सन् १८७३) ।

पुनः कासगंज में

यहां से जेठ (चैत या वैशाख) संवत् १९२७ में बनारस चले गये[१५७] और पूरे दो मास अर्थात् मई और जून तक वहां रहकर फिर लौटकर गंगा के तट पर चल पड़े और फर्रूखाबाद[१५८] में आकर कुछ समय निवास किया । सेठ पन्नीलाल का झगड़ा भी इसी बार हुआ । अतः पाठशाला का प्रबन्ध उससे छीन कर ला० निर्भयराम जी के हवाले किया । वहां से लौटकर कई स्थानों पर ठहरते हुए सोरों आये और वहां से कासगंज, जिला एटा के रईस उनको अपने नगर में लाकर पाठशाला स्थापित करने का निमित्त बने । स्वामी जी ने अंगदरामजी शास्त्री के द्वारा कासगंज में जेठ सुदि दशमी, संवत् १९२७, तदनुसार ९ जून, सन् १८७० बृहस्पतिवार को कुछ मनुष्यों के यज्ञोपवीत संस्कार कराये । पंडित चैनसुख जी वर्णन करते हैं कि यहां पर स्वामी जी पहर रात रहे योगाभ्यास किया करते थे और घड़ी आध-घड़ी दिन चढ़े तक ध्यानावस्थित रहकर उठते थे । उस समय सब विद्यार्थी सन्ध्या करके विद्योपार्जन में प्रवृत्त होते थे । स्वामी जी जब ध्यान से निवृत्त होकर बाहर निकलते तो उनके नेत्र योगाभ्यास के कारण प्रतिदिन लाल होते थे । वह हाथ धो और शनैः शनैः आंखों पर पानी

लगाते और हाथ फेरते तब घड़ी दो घड़ी में सावधान होते थे। तत्पश्चात् शौच आदि क्रियाओं के लिए कुंए पर जाते और मैं स्नान कराने को साथ जाया करता था। जब स्नान करके लौटते तो दिनभर बस्ती के सम्मानित लोग, प्रशासक, अहलकार, रईस, आदि आते और वार्तालाप होता रहता। शाम को एक घंटा दिन रहे स्वामी जी मील डेढ़ मील दूरी पर दिशा को जाते और मैं साथ जाता। वहां शौच कर शुद्ध होकर खेत में बैठकर कुछ योगाभ्यास करते और हम लोग सन्ध्या किया करते।

एकबार स्वामी जी जा रहे थे, कि मार्ग में पगडंडी पर एक बड़ा शक्तिशाली सांड सामने आ गया। हम लोग उसको देखकर हट गये परन्तु स्वामी जी छाती ठोककर सामने खड़े हो गये। हमने बहुत पुकारा कि 'सांड आया है! सांड' परन्तु उन्होंने कुछ ध्यान न देकर कहा कि 'किं करिष्यति' (क्या करेगा!) यह मार्ग में डटे खड़े थे कि वह स्वयं ही मार्ग छोड़ कर चला गया। हमने कहा कि स्वामी जी, यदि वह सींग मारता तो क्या होता। कहने लगे 'रे सुन! मैं दोनों हाथों से उसके सींगों को पकड़कर हटा देता।'

अन्ततः इस बार स्वामी जी पाठशाला का प्रबन्ध करके बिना सूचना दिये अज्ञातरूप से चार घड़ी रात रहे तड़के चले गये। दोपहर को सूचना मिली कि बलराम नामक ग्राम में (जो यहां से दो कोस पश्चिम को है) पण्डित गणेश जी ने स्वामी जी को रोका और दूध पिलाया था। वहां घंटा भर ठहर कर और चकेरीग्राम के समीप से होकर रात को कहीं निवास कर के प्रातः कुछ दिन चढ़े हनोट[१५९] ग्राम में पहुंचे थे।

जब स्वामी जी चकेरी ग्राम के इस ओर पहुंचे तो एक चमार से उन्होंने सरल संस्कृत में मार्ग पूछा 'चकेरीग्रामः क्वास्ति?' वह समझा गया और कहा कि चकेरी पूछत हो? 'यह जो सामने दीखत है', हाथ उठा कर मार्ग बतला दिया। वहां के लोग दर्शन के लिए दौड़े और निवेदन किया कि यहां एक मन्दिर में वैष्णव पंडित, रंगाचार्य के मत का रहता है वह आपसे शास्त्रार्थ करेगा क्योंकि वह सदा कहता रहता है कि मैं स्वामी दयानन्द से अवश्य शास्त्रार्थ करूंगा। स्वामी जी हरनोट के पश्चिम की ओर रेत में बैठ रहे और उस ग्राम के ४०-५० मनुष्य स्वामी जी के पास बैठ गये और कुछ उसके बुलाने के लिए गये और इसी प्रकार बार-बार मनुष्य बुलाने के लिए भेजे गये परन्तु वह न आया। अन्ततः जिस नम्बरदार के मन्दिर का वह पुजारी था, वही उसको बुलाने के लिये गया और कह गया कि मैं हाल में ही लाता हूं परन्तु उसने उत्तर में कहा कि शास्त्रार्थ नहीं करता। उसने कहा कि मन्दिर से निकाल दूंगा। पुजारी ने मन्दिर से निकल जाना स्वीकार किया, परन्तु शास्त्रार्थ स्वीकार न किया और वह यहां तक भयभीत हुआ कि ग्राम से बाहर न निकला। वहां के लोगों ने स्वामी जी को दही पिलाया और वहां कुछ घंटे ठहर कर रामघाट की ओर चले गये।

संवत् १९२८ तदनुसार १२ मार्च, सन् १८७१ से ११ मार्च, सन् १८७२ तक की प्रचार यात्राएं

(कासगंज, कर्णवास, अनूपशहर, फर्रूखाबाद, इलाहाबाद, मिर्जापुर, बनारस)।

इस वर्ष भी स्वामी जी गंगा के किनारे यात्रा करते और धर्मोपदेश में संलग्न रहते हुए पाठशालाओं का प्रबन्ध करते रहे। कासगंज से कर्णवास तक विशेष-विशेष स्थानों पर सप्ताहों ठहर कर संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन किया और विशेष कर वेदों के भागों पर अधिक विचार करते रहे। भादों मास से कार्तिक तक कर्णवास तथा अनूपशहर में रहे। इसी वर्ष राव कर्णसिंह ने स्वामी जी पर तलवार निकाली।[१६०] इसी वर्ष ठाकुरों का यज्ञोपवीत कराया।[१६१]

मार्गशीर्ष, संवत् १९२८ तदनुसार दिसम्बर, सन् १८७१ फर्रूखाबाद पधारे और तीन मास रहे। पण्डित विश्वेश्वरदत्त सरयूपारीण से शास्त्रार्थ हुआ और परस्पर प्रसन्नता रही। शेष समय वेद तथा शास्त्र के विचार में लगे रहे।

२५ फरवरी, सन् १८७२ तदनुसार फाल्गुन बदि १ संवत् १९२८, रविवार को फर्रूखाबाद से चलकर इलाहाबाद तथा मिर्जापुर होते हुए बनारस पधारे और कुछ समय निवास करके कलकत्ता जाने की तैयारी की।

संवत् १९२९ तदनुसार १२ मार्च सन् १९७२ से ११ मार्च १९७३ तक

भारत के पूर्वीय नगरों में तथा कलकत्ता में शास्त्रचर्चा

(बनारस, मुगलसराय, डुमरांव, आरा, मुंगेर, भागलपुर, कलकत्ता) ।

स्वामी जी मार्च के आरम्भ से १६ अप्रैल, सन् १८७२ तक बनारस में रहे । १७ अप्रैल, सन् १८७२, बुधवार तदनुसार रामनवमी चैत सुदि ९, संवत् १९२९ को स्वामी जी बनारस से पूर्व की यात्रा को निकले । १९ अप्रैल, सन् १८७२ तक डुमरांव में नागा जी उदासी, जो पूर्णतया स्वामी जी के मतानुयायी थे, उनके पास रहे । कई एक पण्डित लोग उनसे मिलने को आये परन्तु कोई विशेष शास्त्रार्थ नहीं हुआ । डुमरांव में ही आरा के वकील हरबंसराय उनसे मिलने को आये और वहां बुलाया । नागाराम जी भी साथ गये । आरा जाकर स्वामी जी हरबंसराय के यहां ठहरे । उसने बहुत आदर सत्कार किया और वहां के पण्डितों से शास्त्रार्थ भी हुआ । चलती बार उसने एक सौ रुपया भेंट दिया । स्वामी जी ने बहुत रोका परन्तु उसने कहा कि आप कलकत्ते जाते हैं, वहां आपका कोई परिचित नहीं, काम आयेगा । अन्ततः स्वामी जी ने ले लिया और एक ब्रह्मचारी के पास रखवा दिया; यह ब्रह्मचारी उनके साथ था ।

आरा से चलकर पटना गये और वहां मुंशी मनोहरलाल, डिप्टी सावनमल और राय सोहनलाल के यहां उतरे । वहां से ब्रह्मचारी लौट आया क्योंकि उसको तो लोभ हुआ कि यह द्रव्य स्वामी जी उसको दे देंगे । स्वामी जी ने कहा कि यह खर्च के लिये मिला है । अन्त में स्वामी जी ने उसे अयोग्य देखकर वापस लौटा दिया । वहां भी लोगों ने आदर-सत्कार किया ।

पंडित छोटेलाल जी सारस्वत, पटना निवासी, मोहल्ला मिर्जईगंज, ने वर्णन किया कि 'स्वामी जी भादों सुदि ३ या ४, संवत् १९२९, तदनुसार ६ या ७ सितम्बर, सन् १८७२ शुक्रवार या शनिवार को महाराज भूपसिंह के बाग (जो 'ऐशबाग' के नाम से प्रसिद्ध है और मोहल्ला खटमरोर के समीप है) में उतरे थे । उच्च अधिकारी और वकील आदि नगर के प्रतिष्ठित व्यक्ति प्रायः आते थे ।

पटना में शास्त्रार्थ—'रामजीवन भट्ट, जो यहां के एक प्रसिद्ध विद्वान् हैं वह पचास-साठ ब्राह्मणों और पण्डितों को साथ लेकर गये और शास्त्रार्थ किया । इस शास्त्रार्थ में पारस्परिक बातचीत में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने कहा कि 'दृष्ट्वा अहसाव' । इस पर एक हंसराम पण्डित ने कहा कि यह पाठ तुमने अशुद्ध कहा । उसकी सफाई नहीं हुई थी और उक्त भट्ट जी चुपचाप बैठे रहे और शास्त्रार्थ होता रहा । उस समय कालिज के पण्डित रामलाल जी बैठे हुए थे कि इन पण्डितों का आपस में विवाद होकर बिना किसी प्रकार की सफाई के ये लोग चले गये । उसी समय बाबू कुंजबिहारी रईस, अग्रवाल के साथ हम भी गये । यह 'दृष्ट्वा अहसाव' वाली बात हमसे पहले हो चुकी थी और हमको यहां ५०-६० मनुष्य लौटकर आते हुए मिले थे । हमने पूछा था कि क्या हुआ तो रामजीवन भट्ट ने कहा कि जाइये, बैठे हैं । हम गये तो हमसे पूछा (आप) कौन हैं ? हमने कहा कि हम पंचगौड़ों में से हैं अर्थात् सारस्वत । और जब हमारे साथी के विषय में पूछा तो हमने कहा कि अर्वजा ।

जीव को बन्ध और मोक्ष तो प्राप्त होते हैं नरक तथा स्वर्ग नहीं—'फिर बाबू कुंजबिहारी जी ने हमको कहकर स्वामी जी से एक प्रश्न कराया कि मरकर क्या होता है; (अर्थात्) जीव कहां जाता है ? तब स्वामी जी ने कहा कि इसका उत्तर हम यजुर्वेद संहिता से कहते हैं कि जीव मरकर वायुभूत होकर वायु द्वारा आकाश में उड़ता है; फिर पुष्पाश्रय, अन्नाश्रय, जलाश्रय होकर मनुष्य के हृदय और वीर्य में प्राप्त होकर (पहुंचकर) स्त्री में गर्भस्थापन करता है । वहीं फिर जन्मता है; उसको

(इस प्रकार) बन्ध है और मोक्ष है; न नरक है, न स्वर्ग है। और इस मार्ग में (इस बात को समझने में) कंटक (बाधा तो) गरुड़पुराण है; उसका त्याग करो कि जिसमें लिखा है कि लोहे के कड़ाहे में तपाया जाता है और गिराया जाता है, यह सब मिथ्या है। जब हम गये तो स्वामी जी को यहां आये दस दिन हो गये थे; और हमारे मिलने के पश्चात् १९ दिन और रहे।

गायत्री के २० अर्थ बताते थे—'हमने उनसे गायत्री का अर्थ पूछा ! स्वामी जी ने बीस प्रकार का अर्थ सुनाया। स्वामी जी के साथ यहां एक ब्रह्मचारी था, वही रसोई बनाता था। उस समय संस्कृत बोलते, नग्न रहते और माटी लगाते थे। हम स्वामी जी को रेल पर पहुंचाने भी गये थे।

'कालिज के पंडित, शाकद्वीपी ब्राह्मण, पंडित रामलाल ने स्वामी जी के उपदेश से शलिग्राम गंगा में डाल दिये थे। स्वामी जी दुर्गापाठ[१६२] को मुर्गापाठ कहा करते थे।'

जब तक हमारा मस्तिष्क स्वस्थ है तब तक तुम हमारी बात मानना—'हमने एक दिन पूछा कि हम आपकी बात कब तक मानें ? कहने लगे कि 'जब तक हमारी बुद्धि में सन्निपात आदि रोग न हो जावे तब तक हमारे कहने का प्रमाण मानना। जब हमारी बुद्धि में कोई रोग हो जावे तब हमारा वचन प्रमाण न मानना।'

पटना, बांकीपुर के रईस तथा वकील बाबू गुरुप्रसाद सेन ने वर्णन किया—'जिन दिनों स्वामी जी कलकत्ते को जाने वाले थे और कलकत्ता जाने के अवसर पर यहां आये तो उस समय महाराज भूपसिंह के बाग में उतरे थे। उनकी कीर्ति सुनकर हम स्वर्गीय बाबू तेजचन्द्र देव को साथ लेकर उनके दर्शन को गये।'

'संसार का त्याग असम्भव है' सरलरीति से समझाया—'हमने मन में यह प्रश्न ठाना हुआ था कि वह किस प्रकार कहते हैं कि संसार को त्याग दो। हमने जाकर पूछा कि संसार-आश्रम को त्याग करना उचित है या नहीं। स्वामी जी ने कहा कि 'संसार आश्रम' आप किसको कहते हैं ? हमने कहा कि दारा, परिग्रह, लड़का-बाला के साथ रहना इत्यादि। फिर पूछा कि इत्यादि में क्या है ? हमने कहा कि धन, सम्पत्ति प्राप्त करना। तब कहा कि गृह क्या है। हमने उस पर कुछ न कहा। तब स्वयं ही कहा कि गृह में खाना, पानी-पीना, श्वास लेना, शौच, विद्याभ्यास करना, ज्ञानोपार्जन करना। यह कहते ही थे कि हमारे प्रश्न का उत्तर हो गया अर्थात् उनके कहने का यह अभिप्राय था कि ऐसा कोई मनुष्य नहीं जो कि संसाराश्रम का त्याग कर सके। उन दिनों संस्कृत बोलते थे। मुख से तेज और विद्वत्ता प्रकट होती थी।'

बाबू अमृतलाल, ठठेरी बाजार बांकीपुर ने वर्णन किया कि 'स्वामी जी यहां २० वर्ष हुए तब पहले आये और महाराज भूपसिंह की फुलवाड़ी में उतरे।'

दूसरों की भावनाओं का आभास तथा मान

मानव भावनाओं के कुशल अध्येता : बिना कहे ज्ञान—एकदिन की बात है कि स्वामी जी दिशा जंगल को गये हुए थे। जो ब्राह्मण रसोई बनाता था उसका चाचा आ गया। रसोई हो रही थी। रसोई के चौके के पास आकर उसके चाचा ने कहा कि जब रसोई बन चुकती होगी और स्वामी जी खा चुकते होंगे तब ही आप लोग खाते होंगे। उसने कहा कि हां ! उसने कहा कि चौका तो झूठा हो जाता होगा, तुमको चाहिए कि कुछ लकीर आदि का नियम कर लिया करो। उस पर वह ब्राह्मण मौन हो रहा। तत्पश्चात् स्वामी जी आये, कुल्ला-वुल्ला करके स्नान किया और फिर वह मिट्टी जो भीगी हुई रहती थी, शरीर पर लगाई। फिर टहलने और मिट्टी सूखने के पश्चात् शरीर मल दिया और बैठकर ध्यान-पूजा की। उसके पश्चात् जब रसोई बन गई और रसोई के लिए स्वामी जी को बुलाया तो स्वामी जी जाकर पूर्व नियम के विपरीत उस दिन चौके के बाहर ही बैठ गये कि 'हमको यहीं रसोई दो।' रसोइये ने कहा कि महाराज यह क्यों ? कहा कि 'हमको किसी की

जाति का डर नहीं कि कोई हमको जाति से बाहर कर देगा।' वह चकित हुआ कि किसने कहा था। अन्त में स्वामी जी ने रसोई उस दिन चौके के बाहर ही खाई।

आशु पद्यरचना—'एक दिन की बात है कि एक तिरहुत का पण्डित आया। उसकी स्वामी जी से शास्त्रार्थ के रूप में परस्पर संस्कृत में ही बातचीत होने लगी। उसने भागवत का प्रमाण दिया जिसका स्वामी जी ने खंडन किया। तब उसने कहा कि ऐसा भी तो कोई नहीं जो जैसे कि यह १८००० श्लोक बने हुए हैं, बना के दिखलावे। तब स्वामी जी ने कहा कि यह कोई बड़ी वीरता की बात नहीं। उसने जिस प्रकार वह बनावटी ग्रन्थ १८००० का बनाया है हम ३८००० का बना सकते हैं। जूता और खड़ाऊं का प्रश्नोत्तर लीजिए-आप लिखते जायें। वह लिखने लगा। स्वामी जी ने बतलाने आरम्भ किये। अभी दो श्लोक ही लिखे थे। जब उस पण्डित ने संस्कृत और व्याकरण की योग्यता और नवनिर्मित श्लोक के गुण देखे तब उसने आश्चर्यचकित हो कर प्रणाम किया और मौन होकर चला गया।

स्वामी जी प्राय: दालचीनी खाया करते थे। विद्वान्, ब्राह्मण और सैकड़ों मनुष्य यहां उनके पास जाया करते थे और उनसे वार्तालाप करते थे। पण्डित लोगों को उनकी संस्कृत के सामने बोलने की सामर्थ्य कम हुआ करती थी। हमने कोई मनुष्य उनकी समता करता हुआ नहीं देखा। मूर्ति, मद्य, मांस, पुराण, मृतक श्राद्ध, इन सबका खंडन करते थे। दंडवत् प्रणाम का उत्तर आशीर्वाद नहीं दिया करते थे, केवल 'हूं' कह दिया करते थे। एक मास के लगभग यहां रहे।

बाबू अमृतलाल जी ने इस प्रकार वर्णन किया कि सम्भवत: १३ वर्ष पूर्व की बात है, (अर्थात् सन् १८७९ तदनुसार संवत् १९३६ की) हम बनारस को जा रहे थे।

पर रक्षणाय बल का प्रयोग—'हमने देखा कि स्वामी जी लंगोट मारे (पहने हुए) सड़क दाऊदनगर, पर जा रहे हैं। वहां सड़क के ऊपर कीचड़ था। एक गाड़ीवान की गाड़ी और बैल कीचड़ में फंस गये थे। स्वामी जी ने देखा कि बैल वाला बैलों को जोर-जोर से मार रहा है परन्तु वे फिर भी नहीं चलते। स्वामी जी ने जाकर बैल खोल दिये और गाड़ी को खींचकर पश्चिम की ओर शुष्कभूमि पर पहुंचा दिया। हम लोग देखकर बहुत चकित हुए कि ये इतने बलवान् हैं ! तत्पश्चात् हम आगे को चले गये। ऐसा प्रतीत होता है कि स्वामी जी कदाचित् काशी या दाऊदपुर को जा रहे थे।'

भावी शिष्य व रसोइये पं० राजनाथ शर्मा तिवाड़ी के आंखों देखा वर्णन—पंडित राजनाथ शर्मा तिवाड़ी, जो ग्राम जोरानपुर सियादारा, जिला मुजफ्फरपुर, बिहार प्रदेश के रहने वाले हैं, ने वर्णन किया कि 'सन् १८७० में जब मैं पटना नार्मल स्कूल में पढ़ता था, उस समय स्वामी जी काशी में थे और काशी के पण्डितों ने एक विज्ञापन छपवा कर देश-देश के पण्डितों के पास भिजवाया था कि एक संन्यासी आये हैं जो विश्वनाथ की निन्दा करते और सब अवतार और पुराण को बुरा कहते हैं। यह विज्ञापन काशी से पण्डित जमनाप्रसाद जी के पास, जो उस समय स्कूल के पण्डित थे, आया था और उन्होंने मुझे दिखलाया था। इस कारण मेरा जी बहुत दु:खित हुआ। यह बात हमने भादों संवत् १९२८ में सुनी। स्वामी जी आश्विन (या भादों) संवत् १९२९[१६३] को पटना में आ गये और महाराज भूपसिंह के बाग में जो अगमकुंआ के पास, नगर से दक्षिण की ओर है, ठहरे। उस समय पटना नगर में बहुत गड़बड़ हुई। उस समय उनके भय से इस देश के बहुत से पण्डित इधर-उधर भाग गये।

तत्पश्चात् यहां के रईस और धनिक जैसे स्वर्गीय मुंशी मनोहरलाल, स्वर्गीय बाबू रामलाल मिश्र, स्वर्गीय डिप्टी सूरजमल, डिप्टी सोहनलाल और बहुत से बंगाली सज्जन श्री स्वामी जी के दर्शन को जाते थे। उस समय स्वामी जी संस्कृत बोलते थे और मूर्तिपूजन, पुराण और वेदविरुद्ध पुस्तकों का खंडन करते थे। यहां आकर स्वामी जी ने एक बंगाली के द्वारा विज्ञापन भाषा में छपवा कर सारे नगर में लगवा दिये कि जिसको मूर्तिपूजा का मंडन और पुराण को सिद्ध करना हो और

इसके अतिरिक्त जितने मत वाले हों, वह सब श्री स्वामी जी के सामने आकर सिद्ध करें अन्यथा फिर यदि पीछे लोग कहेंगे कि स्वामी जी शास्त्रार्थ के भय से खिसक गये तो नहीं सुना जावेगा।

१५ दिन तक स्वामी जी महाराज आपका सन्देह निवृत्त करके तब पूर्व को जावेंगे। इस विज्ञापन को देखकर तथा सुनकर भी कोई उनके पास न आया और न श्री स्वामी जी का किसी ने सामना किया।

एक दिन ऐसा हुआ कि डिप्टी सोहनलाल, मुन्शी मनोहरलाल, मास्टर गोविन्द बाबू, डिप्टी सूरजमल तथा बाबू रामलाल मिश्र, यह सब नार्मल स्कूल में एकत्रित होकर स्वामी जी की अनुपस्थिति में उनकी बहुत प्रशंसा कर रहे थे। उस समय मैं भी वहां था। उनकी यह बात सुनकर मेरा मन बहुत प्रसन्न हुआ और कहा कि ऐसे महात्मा पुरुष का मिलना बड़े भाग्य से होता है। इसलिए यदि मैं स्वामी जी के दर्शन तथा विद्योपार्जनार्थ उनके साथ रहूंगा तो ब्राह्मण के घर का जन्म मेरा सुफल हो जावेगा क्योंकि ब्राह्मण को चाहिये कि चारों वेदों को पढ़े सो इस समय कोई भी पढ़ता-पढ़ाता नहीं है। सब ब्राह्मण, मात्र चंडीदेवी का पाठ या मेष-वृष के लग्नों को गिनकर कह देना ही मुख्य वेद समझते हैं। सो मैं इस ठगियारी विद्या को न पढ़ूंगा और जो मैं स्वामी जी के साथ हो जाऊंगा तो अवश्य सत्यविद्या और सत्यमार्ग पर चलूंगा। ऐसा समझ कर मैंने एक दिन सायंकाल जाकर स्वामी जी के दर्शन किये। उस समय स्वामी जी फुलवाड़ी में टहल रहे थे और एक ब्रह्मचारी, जो काशी से स्वामी जी के साथ आया था, वह भी उपस्थित था। यह ब्रह्मचारी स्वामी जी के लिए रसोई बनाया करता था। मैं स्वामी जी के सामने जाकर हाथ जोड़ नमस्कार कर खड़ा हो गया; तब श्री स्वामी जी ने मुझसे वर्ण, नाम और मकान पूछा। मैंने कहा कि मेरा नाम राजनाथ तिवारी है, ब्राह्मण, मिथिला देश का हूं। फिर स्वामी जी ने पूछा कि तेरे माता-पिता हैं ? मैंने कहा कि जीते हैं। तब स्वामी जी ने कहा कि बैठ जा। तत्पश्चात् वह बहुत समय तक टहलते रहे और फिर बैठ गये। उस स्थान पर बिछौना न था, कठोर पृथिवी पर गच था। घर बहुत पक्का और श्रेष्ठ था तथा द्वारों पर दर्पण लगे हुए थे, जब स्वामी जी वहीं लेट गये तो मैंने उनके पांव दबाना और अपना मनोरथ भी कहना आरम्भ किया कि मैं आपके साथ रहने की इच्छा करके आया हूं, आप अपने चरण में मुझ को लगा लीजिये। तब स्वामी जी ने पूछा कि तेरे कितने भाई हैं ? मैंने कहा कि अकेला ही हूं। तब स्वामी जी ने कहा कि तुम माता-पिता से आज्ञा ले आओ तब मैं रखूंगा। मैंने कहा कि माता-पिता जब आपका वृत्तान्त सुनेंगे तो कब कहेंगे कि तुम निर्धन साधु के साथ जाओ ? प्रत्युत कहेंगे कि तुमको बहका कर साधु बना लेंगे, (और कहेंगे कि) कहीं और ही किसी पण्डित से पढ़ो, तब पटना भी छुड़वा देंगे; इसलिए मैं उनसे न पूछूंगा। यदि वे किसी से भी सुनेंगे तो आकर रोकेंगे। सो आप कृपा करके इस अधम को अपने साथ लगा लीजिये और विद्यादान दीजिये जिससे यह शरीर पवित्र हो कर आपका यश सर्वथा गाता रहे। मेरी बहुत विनती पर स्वामी जी ने प्रसन्न होकर स्वीकार किया। मैंने रात को वहीं वास किया।

प्रातःकाल होने पर स्वामी जी को प्रणाम करके खड़ा हो गया। स्वामी जी उस समय पहर रात्रि रहे जाग जाते थे और आवश्यक कार्यों से निवृत्त होकर एकान्त में मौन बैठा करते थे। तब स्वामी जी ने मुझसे कहा कि तुम स्नान करो। जब मैं स्नान करके आया तब आज्ञा दी कि आज तू ही रसोई बना। तब मैं रसोई बनाने के लिए गया। वह ब्रह्मचारी जो स्वामी जी के साथ आते थे मुझसे पूछने लगे कि आप किस की रसोई बनाते हैं ? मैंने कहा कि स्वामी जी की। उसने कहा कि आप अपनी रसोई बनाइये, स्वामी जी की हम बनावेंगे। मैंने जाकर स्वामी जी से सारा वृत्तांत कहा। स्वामी जी ने उसको बुलाकर कहा 'तस्करत्वात् ग्रामं गच्छ, पाकं मा कुरु' अर्थात् तुम रसोई मत बनाओ, तुम अपने घर जाओ क्योंकि तुम चोर हो, शीघ्र जाओ। उस पर वह ब्रह्मचारी मौन होकर बैठ गया। जो कहार स्वामी जी के पास था उसको ब्रह्मचारी ने जाकर कहा कि स्वामी जी यदि मुझ को कुछ खर्च देवें; तो मैं घर जाऊं। यह बात कहार ने स्वामी जी से कही। तब स्वामी जी ने बैग से पांच रुपये निकाल कर दिये। फिर सब वस्तुएं मेरे सुपुर्द हो गईं, वह ब्रह्मचारी चला गया। उसकी अयु ४० वर्ष की

थी, नाम ज्ञात नहीं । फिर मैंने रसोई बनाकर चौके पर आसन बिछा कर स्वामी जी को भोजन जिमाया । स्वामी जी तरकारी को शाक कहते थे और दाल को सूप । जब उन्होंने कहा कि 'सूपं देहि', 'शाकं देहि' तो मैं नहीं समझा । मैं अपने मन में बहुत घबराया कि सूप और शाक तो हैं नहीं क्योंकि हमारी बोलचाल में सूप छाछ को, शाक पालकादि को कहते हैं और उनका अभिप्राय सूप से दाल और शाक से आलू, बैंगन, करेला आदि था । जब मैं चकित होकर न समझा तब स्वामी जी ने हाथ से संकेत करके बतला दिया । उस दिन से मैं समझ गया ।

स्वामी जी को भोजन कराने के पश्चात् मैंने भोजन किया । फिर मैंने पूछा कि यदि आज्ञा हो तो मैं डेरे पर जाकर स्कूल से नाम कटवा कर आपकी सेवा में उपस्थित हो जाऊं और अपनी समस्त चीजें भी ले आऊं । श्री स्वामी जी ने आज्ञा दी । तब मैंने उस समय चौक में जाकर जनेऊ मोल लिये और कई और वस्तुएं भी । फिर स्कूल में आकर गोविन्द बाबू मास्टर और डिप्टी सोहनलाल से सारा वृत्तांत कहा कि मैं स्वामी जी के साथ रहूंगा और पढ़ूंगा । मेरा नाम इस स्कूल से कट सकता है या नहीं ? यह सुन डिप्टी सोहनलाल जी बहुत प्रसन्न होकर बोले कि तुम कैसे जानते हो तुमको श्री स्वामी जी साथ रखेंगे क्योंकि वह तो किसी को साथ रखते ही नहीं । जब वह कहेंगे तब स्कूल से नाम कटवाना, पहले नहीं । मैंने उत्तर दिया कि मैं रात को वहां था और अब भी वहीं भोजन पाया है और स्वामी जी को भोजन कराके आया हूं । केवल नाम कटवाने और चीजें लेने आया हूं । स्वामी जी से मैंने रात ही को सब बातें पूछ ली हैं । यह सब वृत्तांत सुनकर उन्होंने बहुत प्रसन्न होकर कहा कि तुम्हारा बड़ा भाग्य है, यदि तुम स्वामी जी के साथ रहोगे तो अवश्य बहुत अच्छे पण्डित हो जाओगे । इस बात को सुनकर जो हमारे साथी थे, सब बहुत प्रसन्न हो गये और मेरा नाम छात्रों के रजिस्टर से कटवा दिया गया और छः बजे शाम तक नार्मल स्कूल में बैठे रहे ।

जब सात बजे सायंकाल का समय हो गया तो डिप्टी सोहनलाल ने मुझको बुलाकर कहा कि तुम स्वामी जी के पास जाओगे या नहीं ? मैंने कहा कि आज तो बहत विलम्ब हो गया है, प्रातःकाल चला जाऊंगा । तब सोहनलाल जी कहने लगे कि तुम अभी चले जाओ और थोड़ा सा दूध और मिश्री भी स्वामी जी के लिए लेते जाओ । तब मैंने कहा कि रात्रि का समय और अंधेरा पक्ष, मार्ग दो-ढाई कोस से कम नहीं । नगर नहीं, प्रत्युत मैदान व जंगल और मार्ग में पानी भी है; फिर मैं अकेला कैसे जाऊंगा ? तब सोहनलाल जी ने कहा कि तुम बड़े भीरु हो, यदि तुम ऐसा भय जी में रखोगे तब श्री स्वामी जी के साथ कैसे रहोगे ? सो आज ही तुम चले जाओ । उसी समय दो सेर मिश्री और एक लोटे में तीन सेर के लगभग दूध अपनी गाय का मंगाकर दे दिया । मैंने उनसे कहा कि यदि कोई मनुष्य मेरे साथ हो तो मैं चला जाऊंगा । तब कहा कि आदमी से क्या प्रयोजन, तुम सब चीजें लेते जाओ । मैंने कहा कि मुझको रात के समय बहुत भय लगता है । सोहनलाल जी ने कहा कि तुम अभी से ऐसे डरोगे तो स्वामी जी के साथ कैसे रहोगे ? वह तो जंगल में रहते हैं न कि बस्ती में । यदि तुम आज न जाओगे तो हम श्री स्वामी जी के साथ न जाने देंगे, जाना है तो आज ही जाओ और इसी समय चले जाओ । तब मैं बहुत उदास होकर चला । एक हाथ में दूध लिया और मिश्री को कमर में बांध लिया, और बादशाही ऐगा गंज में जहां मैं रहता था, पहुंचा और सब वृत्तांत मुंशी श्यामबिहारीलाल से कहा । वह बोले कि तुम चले जाओ, रहने से अच्छा न होगा । तब हमने शीघ्र दिशा-शौच से निवृत्त होकर सन्ध्या करके एक हाथ में दूध का लोटा और एक हाथ में एक बांस की लाठी ले ली और स्वामी जी की ओर ध्यान लगा लिया । नगर की अन्तिम बस्ती तक, जो दरगाह के समीप समाप्त होती है, वहां तक तो निर्भय पहुंचा । उस स्थान से आगे बढ़ा तो कोई मनुष्य न मिला । वहां से आगे वह स्थान लगभग डेढ़ कोस दूर था । उस समय थोड़ा-थोड़ा जी डरने लगा । मैं अपने मन में राम-राम कहने लगा । आसौज का महीना, अंधेरी रात, उस पर थोड़ी-थोड़ी बूंदें पड़ने लगीं और मार्ग बड़ा भयानक । सड़क के दोनों ओर पानी था । ऐसा जी में सोचता हुआ चला जा रहा था कि इतने में देखा कि एक बड़ा भारी सर्प पानी से निकल कर सड़क पर चला आता है । उसे देखकर बड़ा

भय प्रतीत हुआ और आगे जाने को मन नहीं किया; घबरा कर पीछे आने का विचार किया। अब उधर देखा तो उस ओर भी एक सर्प पानी से निकला हुआ चला आता है। तब मैं बहुत ही घबरा गया, न इधर के रहे न उधर के। बहुत समय तक खड़ा रहा फिर सोचा कि स्वामी जी की ओर चलना चाहिये और उनके चरणों की ओर ध्यान लगाकर उनके पास चलने की इच्छा की। जब सर्प के समीप पहुंचा, तो आंख बन्द करके छलांग मारकर उस पर से कूद गया। जब आगे देखा तो कुछ भी न था। उससे आगे रेल की सड़क पर फाटक वाले सिपाही के पास आकर दम लिया। चित्त बहुत घबराया हुआ था, कुछ समय वहां बैठकर फिर आगे चला और स्वामी जी के पास पहुंच गया। उस समय स्वामी जी और माली लोग भी उनके पास बाग में बैठे हुए थे, वर्षा की बूंदें अधिक पड़ने लगी थीं।

आश्चर्य की बात है कि स्वामी जी इस मेरे मार्ग के सब वृत्तांत को जान गये और मेरे पहुंचते ही उन्होंने पूछा कि 'मार्गे विभीतोऽसि' अर्थात् क्या तुझे मार्ग में भय लगा है? मैंने कहा कि महाराज! बहुत ही भय लगा है। तब स्वामी जी ने कहा 'कि सर्पो दृष्टः ?' अर्थात् क्या सांप को देखा है? मैंने कहा कि सत्य है। इस पर वह मौन हो गये। मेरा मन बहुत ही प्रसन्न हुआ। फिर मैंने, डिप्टी सोहनलाल जी ने जो दूध-मिश्री दी थी, वह सब स्वामी जी के सामने रख दी और सब वृत्तांत जो वे कहते थे, कह दिया। स्वामी जी हंस पड़े। यह शनिवार का दिन था।

पटना में धर्मचर्चा

दूसरे दिन अर्थात् आदित्यवार को स्वामी जी के पास सभा करने को निम्नलिखित पण्डित आये—वाजपेई जी के विद्यार्थी, स्वर्गीय पंडित छोटूराम तिवारी, पटना कालिज के मुख्य पंडित; पंडित बृजभूषण मिश्र शाकद्वीपी, ब्राह्मण कालिज के थर्ड (तीसरे) पंडित; पंडित राम अवतार तिवारी पटना कालिज के सेकंड (द्वितीय) पंडित; स्वर्गीय पंडित रामलाल शाकद्वीपी अध्यापक कालिज और पंडित छोटूलाल जी सारस्वत आदि बहुत से ब्राह्मण थे। उपस्थित व्यक्तियों की संख्या उस समय दो सौ के लगभग थी। उनमें से पंडित रामअवतार जी श्री स्वामी जी महाराज से भट्टोजि दीक्षित के बनाये हुए कौमुदी के 'मुनित्रयं नमस्कृत्य, तदुक्ति परिभाव्य च' इत्यादि मंगल श्लोक को पढ़कर शास्त्रार्थ करने लगे। उस समय शब्द उनके मुख से ऐसे अशुद्ध निकलते थे कि जिनका ठिकाना नहीं। सब उसके साथी पण्डित उसको उल्लू कहने लगे कि तुम को तो स्वयं संस्कृत बोलनी नहीं आती, तुम स्वामी जी से क्या बकवास करते हो। सब पंडित लोगों ने और विशेष कर पंडित रामलाल जी मिश्र ने उसे डांट दिया और छोटूराम तिवारी ने उसको रोका कि तुम यूं ही अपनी प्रतिष्ठा खोते हो, तुम्हारे मुख से अशुद्ध बहुत निकलता है, तुम चुप रहो। अभी तक श्री स्वामी जी नहीं बोले थे; थोड़े समय पश्चात् श्री स्वामी जी हंस पड़े और साथ ही उक्त पण्डित रामअवतार के अतिरक्त सब श्रोताओं की भी हंसी निकल गई। पण्डित रामअवतार जी की आंखों में आंसू भर गये और थर-थर कांपते हुए अकेले वहां से निकलकर बाहर जाकर इधर-उधर ताकते हुए घर को चले गये। यह सभा एक बजे से पांच बजे तक रही। स्वामी जी महाराज ने संस्कृत में उपदेश दिया और पण्डित लोग सुनते रहे (उस समय स्वामी जी कौमुदी को कुमति कहते थे) और सारस्वत, चन्द्रिकादि सब नवीन व्याकरण के ग्रन्थों का खंडन करते थे और सब पण्डित लोग 'हूं; हूं' और 'ठीक-ठीक' कहते रहे। मेरा मन उस समय बहुत प्रसन्न हुआ। मैंने मन में कहा कि धन्य भाग्य मेरा है जो ऐसे महात्मा पुरुष के साथ हुआ।

स्वामी जी ने अगले दिन प्रातःकाल अर्थात् सोमवार को पूर्व की यात्रा का आयोजन किया। उस दिन डिप्टी सोहनलाल जी ने मुझको ३० रुपये स्वामी जी के खर्च के लिए दिये और कहा कि स्वामी जी से कहीं अलग न होना। यदि स्वामी जी को कष्ट हुआ तो मैं कुपित हूंगा। मैंने कहा कि मैं उनके चरणों में नित्य मन लगाये रखूंगा और उनका आज्ञाकारी रहूंगा। तब सोहनलाल जी ने कहा कि ऐसा ही चाहिये, अच्छी प्रकार मन लगाकर पढ़ना, यदि खर्च कम हो जाये तो दो दिन

पहले मेरे पास चिट्ठी लिखना, रुपया भेज दूंगा और तुम्हारा वजीफा जो दो मास का होगा, जब कोई तुम्हारे घर से आवेगा हम दे देंगे। यह सब बातें समझाकर डिप्टी सोहनलाल जी और मैं, दोनों स्वामी जी के पास पहुंचे और सब वृत्तान्त कहा। स्वामी जी बहुत प्रसन्न हुए और स्वर्गीय मुन्शी मनोहरलाल जी ने एक कहार चार रुपये मासिक पर साथ कर दिया। उसका नाम शिवचरण था जो अब मर गया है और उन्होंने तवा, कड़ाही, कड़छा, लोटा, गिलास-यह सब चीजें मोल लेकर साथ कर दीं और दाल तरकारी के मसाले भी बनवा कर साथ दे दिये।

तत्पश्चात् ३ अक्तूबर[१६४]**, सन् १८७२,** ६ बजे सायंकाल को स्वामी जी और मुंशी मनोहरलाल बग्घी में और पण्डित छोटूलाल तथा कुछ अन्य मनुष्य इक्के में स्टेशन पर गये। बेगमपुर के स्टेशन से रेल में सवार हुए। पण्डित छोटूलाल ने मुंगेर के टिकट कटवा कर ला दिये। रात के ८ बजे की गाड़ी पर सवार हुए और सबको विदा किया। यह लोग स्वामी जी के बहुत भक्त थे। स्वामी जी लगभग एक मास पटना में रहे।

मुंगेर का वृत्तांत

(आसौज सुदि प्रतिपदा, बृहस्पतिवार, तदनुसार ३ अक्तूबर, सन् १८७२)

"आठ बजे बेगमपुर से सवार होकर रात के २ बजे जमालपुर स्टेशन पर उतरे। वहां गाड़ी बदलती है। एक भागलपुर की लाइन कलकत्ता को जाती है, दूसरी बैजनाथ की लाइन कलकत्ता जाती है और एक मुंगेर को जाती है। एक घंटे तक यहां ठहरे और लगभग आध घंटे तक वहां एक अंग्रेज से स्वामी जी की बातचीत होती रही और उस अंग्रेज ने हम तीनों को ले जाकर एक अच्छे डिब्बे में बिठला दिया और जाते हुए स्वामी जी को प्रणाम किया। हम शुक्रवार, ४ अक्तूबर, सन् १८७२ को ४ बजे प्रातः मुंगेर पहुंचे। स्टेशन से हटकर थोड़ी दूर एक तालाब है; वहां हम ठहरे और शौच जाकर स्नान करके नित्यकर्म से निवृत्त हुए। संक्षेपतः हम लोग ५ बजे के समय वहां से आगे मुंगेर (नगर) की ओर चले। स्वामी जी आगे-आगे शीघ्रता से चलते थे और हम सब पीछे थे। स्वामी जी (जैसे किसी का देखा हुआ हो) वैसे ही जाकर एक साधु की फुलवाड़ी में एक मकान था, उसमें जा ठहरे। कुछ समय पीछे हम लोग भी पहुंचे। उस मकान में दो कमरे थे और कुंआ भी वहां था। गंगा की धारा भी वहां से समीप थी परन्तु उस समय उस मकान या बाग में कोई न था। स्वामी जी ने कहा, 'अत्रैवासनं कुरु' अर्थात् यहीं आसन लगा दो। हम लोग बैठ गये और डेरा करके कहार पानी लाने को और मैं आटा दाल लाने को गया और आकर भोजन बनाया। चार दिन ऐसे ही रहे, एक दो ब्राह्मणों के अतिरिक्त और कोई न आया।"

भिक्षा के लिए सेवकों का निषेध

अपने लिए भिक्षा कहार को भी नहीं लेने दी—'एक दिन कहार ने गंगा पर जाकर एक टालवाले से एक सूखी लकड़ी मांगी कि स्वामी जी की रसोई के लिए दो। टालवाले ने कहा कि हम नहीं जानते कि कौन स्वामी हैं, नहीं देते। हम और स्वामी जी उस समय मकान के भीतर थे। भीतर से वह स्थान दिखाई नहीं देता था। जब कहार आया तो स्वामी जी ने मुझसे कहा 'भो ! राजनाथ ! अस्योपरि उपानद्दक्षिणा दातव्या' कि हे राजनाथ, इसको जूते लगाओ। मैं चकित हो गया कि क्या कारण है। मैंने निवेदन किया कि महाराज ! इसका क्या अपराध है। कहा कि यह धन की भिक्षा मांगने गया था। मैंने उससे पूछा कि तू कहां गया था। वह बोला कि उससे लकड़ी मांगता था। मैंने कहा कि उसने दी ? तो बोला कि नहीं; प्रत्युत कहा कि हम नहीं जानते कौन स्वामी जी हैं। तब मैंने उसको धीरे-धीरे जूते मारे। फिर स्वामी जी ने हम दोनों को समझाया कि यदि कभी भिक्षा मांगोगे तो हम दोनों को निकाल देंगे। तत्पश्चात् वह मनुष्य कि जिससे कहार लकड़ी मांगने

गया था, स्वयमेव पांच बोझ लकड़ी के उठाकर लाया और आकर स्वामी जी को प्रणाम किया । स्वामी जी ने कहा कि तुम लकड़ी उठवाकर ले जाओ, हम नहीं लेंगे, तुमसे कौन मांगने गया है । उसने विनती की कि महाराज हमसे अपराध भया है, यह कहार गया था और हम नहीं जानते थे कि यह कौन है । इसने लकड़ी मांगी, हमने कहा कि विदित नहीं कौन स्वामी हैं । पीछे विदित हुआ कि चार दिन से इस फुलवाड़ी में एक स्वामी जी उतरे हुए हैं । उसके आग्रह पर स्वामी जी ने स्वीकार कर लिया ।

उस दिन से प्रतिदिन दो-चार रईस मुंगेर नगर के आने लगे और समस्त नगर में ख्याति हो गई कि स्वामी दयानन्द जी आये हुए हैं और 'सीधा' अर्थात् अन्नादिक भी आने लगा । फिर स्वामी जी का अपना खर्च कराना लोगों ने बन्द कर दिया ।

एक दिन ब्राह्मण ने आकर बहुत-सी विनती की कि मेरे घर चलकर भोजन कीजिये । स्वामी जी ने स्वीकार किया । दूसरे दिन जब समय आया तो हमको भेज दिया कि तुम जाकर भोजन कर आओ और हमारे लिये यहीं बना लो, हम गृहस्थी के घर नहीं जाना चाहते । उसके दूसरे दिन बहुत से पंडित और रईस लोग इकट्ठे हुए (३० या ४० के लगभग) और मूर्तिपूजा का खंडन होने लगा । सब पंडित लोग सुनते रहे, किसी ने विरोध न किया और न शास्त्रार्थ किया । यह फुलवाड़ी एक कबीरपंथी की थी और किसी रईस का नाम ज्ञात नहीं ।

एक दिन की बात है कि वहां मुंगेर में हम प्रातःकाल 'आदित्यहृदय'[१६५] का पाठ कर रहे थे । स्वामी जी आये और मेरी सब पुस्तकों को उठाकर अपने पास ले गये और सबको देखा । वह पुस्तकें ये थीं-'इन्द्रजाल', 'सूर्यस्तवार्णव' । पूछा कि 'आदित्यहृदय' का पाठ कितने दिन से करते हो । मैंने कहा कि आपके पास आने से पहले तो इक्कीस पाठ नित्य करता था और जब से आपके पास आया हूं, आपके डर के मारे छुपकर, एक-आध पाठ कर लिया करता हूं । 'इन्द्रजाल' को देखा तो पूछा क्या तुम इन सब को सत्य मानते हो ? मैंने कहा कि इस में से मैंने कुछ भी जांच नहीं की; परन्तु विश्वास है कि आपके पास रहने से इसका कुछ भेद मिल जायेगा । स्वामी जी ने कहा कि इन सब को गंगा में बहा दो और उठ खड़े हो, अन्यथा अपने घर को चले जाओ । मैंने उसी समय उनकी आज्ञा का पालन किया अर्थात् सबको गंगा में डाल कर स्वामी जी के पास आया और प्रार्थना की कि आप कुछ मन्त्र दीजिये । स्वामी जी ने कहा कि यज्ञोपवीत जिससे लिया उसने गायत्री दी या नहीं ? मैंने कहा कि अपने ग्राम के एक ब्राह्मण से लिया था । कहा कि वही गुरुमन्त्र है और वही (मंत्र) गुरु है । स्वामी जी ने हमको गायत्री शुद्ध करा दी और उसका मार्जनादि भी बतला दिया और अष्टाध्यायी और लक्ष्मीसूक्त मुझको पढ़ने के लिए दिया और यही पुस्तकें ब्रह्मचारी पढ़ा करता था ।

यहां एक दिन एक मौनी साधु स्वामी जी के भोजन के समय आया और चुपचाप मौन होकर बैठ गया । स्वामी जी ने दो चार बातें पूछीं, उसने कोई उत्तर न दिया । फिर स्वामी जी ने भोजन के विषय में पूछा तो उसने कहा कि करेंगे । स्वामी जी ने उसको भोजन कराया । जब भोजन कर चुका तो स्वामी जी ने एक श्लोक पढ़ा और समझाया कि यदि तू मूर्ख है तो तेरा मौन रहना ठीक है और यदि पंडित है तो कुछ बातचीत कर । इस पर वह बोला, तब स्वामी जी ने उसके सामने मूर्तिपूजन का खंडन किया और पुराणों का भी । उसने दोनों का खंडन स्वीकार किया और कहा कि ये दोनों मानने की चीजें नहीं । एक घंटे तक बातचीत करके वह चला गया । जब स्वामी जी मुंगेर में पहुंचे थे, उसके तीसरे दिन यह साधु आया था । मुंगेर में स्वामी जी १५ दिन रहे । आश्विन की पूर्णमासी मुंगेर में हुई थी । जिसने पांच बोझ लकड़ी के दिये थे वह कायस्थ था । वही स्वामी जी को स्टेशन पर छोड़ने आया था और उसने पांच रुपया भेंट भी किया था । तत्पश्चात् हम वहां से भागलपुर का टिकिट लेकर एक बजे सवार होकर ६ बजे सायंकाल भागलपुर पहुंचे । शुक्रवार ४ अक्तूबर, सन् १८७२ तदनुसार आसौज सुदि २, संवत् १९२९ को मुंगेर में पहुंचे थे और शुक्रवार, १८ अक्तूबर, सन् १८७२ तदनुसार कार्तिक बदि २, संवत् १९२९ को वहां से चले अर्थात् १५ दिन वहां रहे ।'

भागलपुर में ईसाइयों तथा ब्रह्मसमाजियों के साथ धर्मचर्चा

(कार्तिक बदि ४, संवत् १९२९, तदनुसार २०, अक्तूबर, सन् १८७२)

"२० अक्तूबर सन् १८७२, रविवार, ६ बजे सायंकाल को भागलपुर पहुंचे ।[१६६] स्वामी जी आगे आगे जाते थे और हम दोनों पीछे थे । वहां जाकर सात बजे सायंकाल के समय गंगा के तट पर स्थित बूढेश्वरनाथ महादेव के मन्दिर में ठहरे । नगर भी समीप था । कुछ काल वहां ठहरे; फिर आकर कहा कि यहां से चलो । फिर आध कोस दक्षिण में जाकर, नगर के मोहल्ला शुजाअगंज के बाहर, रेलवे स्टेशन से दक्षिण की ओर एक छटपटी तालाब है; वहां गये; शुजाअगंज से आठ आने की पूरी और मिठाई ले ली । आठ बजे रात के हम सब तालाब पर पहुंचे । वहां तालाब के समीप पश्चिम की ओर एक शिवालय और दो कोठरियों तथा एक कमरे वाला मकान था परन्तु उस समय उसमें कोई न था । यह मकान मोहनलाल ब्राह्मण शाकद्वीपी का था । हमारे ठहरने के कुछ समय पश्चात् मोहनलाल ब्राह्मण भी दो चार अन्य मनुष्यों-सहित टहलता हुआ वहां आ गया । स्वामी जी को टहलते देखकर दंडवत् किया और तुरन्त एक लोटा जल तथा बिछौना आदि मंगा दिया । तत्पश्चात् संस्कृत में स्वामी जी उससे वार्तालाप करते रहे । वह अच्छा पण्डित और संस्कृत जानता था । १० बजे रात तक उसकी स्वामी जी से बातें होती रहीं । तत्पश्चात् वे सब लोग अपने-अपने घर चले गये और हम लोगों ने भी विश्राम किया ।

स्वामी जी प्रातःकाल ४ बजे उठे और शौच तथा स्नान से निवृत्त होकर ध्यान में लग गये । ६ बजे हम भी अपनी आवश्यकताओं से निबट कर स्नान कर अष्टाध्यायी का पाठ करने लगे । तत्पश्चात् बहुत से ब्राह्मण और पंडित इकट्ठे होकर सभा होने लगी । स्वामी जी मूर्तिपूजा का खंडन करते रहे और अन्य सब पंडित सुनते रहे । किसी ने भी कोई बात नहीं की । उनकी संस्कृत सुनकर ही लोगों के होश उड़ते थे । अग्रवाल जाति का एक बनिया दो-तीन दिन तक एक लोटा दूध और 'सीधा' (अन्नादिक) भिजवाता रहा । उसकी इच्छा इसमें यह थी कि मेरे घर में पुत्र हो । स्वामी जी ने दो दिन तो लिया, तीसरे दिन फेर दिया और कहा कि स्वार्थ वाली भिक्षा हम नहीं लेंगे । हम ईश्वर नहीं कि तुमको पुत्र दें और तुम्हारा अन्न खायें । यद्यपि उसने यह अभिप्राय अपना अभी तक प्रकट नहीं किया था परन्तु स्वामी जी ने उसके बतलाने से पहले बतला दिया । वह आटा, दूध, मीठा, घी बहुत भेजता था । स्वामी जी ने उसका सीधा लौटा दिया । उससे पहले तीन-चार दिन मोहनलाल पंडित के यहां से भोजन आया और फिर विभिन्न लोग भेजने लगे । जो कोई मारवाड़ी आदि आता तो कुछ रुपया और कुछ अन्य पदार्थ दे जाता था परन्तु वहां एक आचारी था;[१६७] वह सब लोगों को स्वामी जी के दर्शन और उपदेश सुनने से रोकता था परन्तु किसी ने उसका कहा न माना और सब लोग बराबर आते रहे । लोगों ने आचारी को शास्त्रार्थ के लिए कहा परन्तु वह बिलकुल न आया और कहता रहा कि काशी में उसने महादेव की निन्दा की है, यहां भी लोग इसकी ओर जाने लगे, यह बहुत बुरा हुआ । विवश होकर वह नगर छोड़कर भाग गया । उसका नाम सूरजमल आचारी अथवा ऐसा ही कुछ था ।

इस स्थान भागलपुर में जब एक सप्ताह के लगभग व्यतीत हुआ तो एक दिन जब कि हम रसोई बना रहे थे तो स्वामी जी ने एकाएक हमसे कहा कि 'तव पिता आगतः' अर्थात् तेरा पिता आ गया और हम तुमको कहते थे कि पिता से आज्ञा लेकर आओ परन्तु तुमने नहीं माना; जिस पर उनको कष्ट हुआ । हमने जब बाहर आकर देखा तो उस समय तक हमारे पिता नहीं आये थे परन्तु इसके आध घंटा पश्चात् जब रसोई बन चुकी थी, हमारे पिता जी आ गये और आकर स्वामी जी से नमस्कार किया और मुझे देखकर रोने लगे । स्वामी जी को भी दुःख हुआ और कहा कि अपने पुत्र को तुम ले जाओ, हम और साधुओं की भंति चेला बनाने वाले नहीं हैं कि आपको दुख देवें । इस पर हमारे पिता जी कुछ न बोले । फिर इसके

पश्चात् हमने उन्हें पांव धुलवा कर रसोई खिलवाई । फिर हम पिता जी को स्वामी जी के पास छोड़कर, वहां से डेढ़ कोस दूर बरारी में, जहां हम पहले पढ़ते रहे हैं, अपने एक मित्र से मिलने गये । बरारी में हम पण्डित अभयराम जी बनारस निवासी संस्कृताध्यापक गवर्नमेण्ट स्कूल भागलपुर और पार्वतीचरण सेक्रेटरी स्कूल से मिले और सब वृत्तांत सुनाया । इस पर वह लोग कहने लगे कि स्वामी जी को आप यहां ले आइये । हमने कहा कि आप चलिये और दर्शन कीजिए । वहां चलकर जैसी उनकी आज्ञा होगी करेंगे । अत : वे दोनों और अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति आये और स्वामी जी को बग्घी में चढ़ाकर बरारी में ले गये । वहां स्वामी जी ने पार्वतीचरण की फुलवाड़ी में डेरा किया । हमारे पिता भी साथ गये और तीन दिन तक रहने के पश्चात् पंडित अभयराम आदि लोगों के समझाने से कि 'यदि यह स्वामी जी के पास रह जावेगा तो अच्छा विद्वान् हो जायेगा, तुम घबराओ मत, सन्देह मत करो' वह चुप कर गये । स्वामी जी ने कुछ न कहा । इसी प्रकार अधिक समझाने से हमारे पिता समझ गये और तीन दिन के पश्चात् पांच रुपया रेल का किराया लेकर स्वदेश को लौट गये । हम वहीं रहे ।

स्वामी जी वहां प्रतिदिन संस्कृत में उपदेश करते रहे और सैकड़ों हजारों मनुष्य नित्य एकत्रित होते रहे । यहां तक वहां रौनक होती थी कि हलवा, पूरी, तंबाकू वालों की दुकानें लग जाती थीं । इक्का, बग्घी, गाड़ी प्रतिदिन वहां एकत्रित रहते थे । पंडित अभयराम जी ने बर्दवान के राजा की कोठी पर जाकर उनको स्वामी जी के विस्तृत वृत्तांत से परिचित किया, जिस पर राजा साहब ने चार नैयायिक पंडितों को स्वामी जी के पास भेजा । पंडित लोग १० बजे के लगभग आये । वह स्वामी जी के भोजन करने का समय था । पंडितों को आसन देकर बिठाया गया । स्वामी जी ने भोजन करके कुछ समय विश्राम किया, फिर दिन के एक बजे से बातचीत आरम्भ हुई । वे पंडित न्यायशास्त्र में बोलते थे और स्वामी जी उनका उत्तर देते थे । पांच बजे तक उनसे बातचीत होती रही । फिर पंडित लोग चले गये और कह गये कि हम प्रातः राजा साहब को भी आपके दर्शनार्थ लावेंगे । पंडितों ने यहां से राजा साहब के पास लौटकर स्वामी जी की बहुत स्तुति की और उन्होंने दृढ़ निश्चय किया कि ४ बजे सायंकाल को हम अवश्य चलेंगे । उस दिन प्रातःकाल ही से ३०-४० यूरोपियन तथा स्वदेशी पादरी लोग आ गये और कुछ मुसलमान मौलवी भी । स्वामी जी उनसे भी संस्कृत में बोलते रहे । वह भी यथाशक्ति समझते रहे । स्वामी जी का उपदेश सुनकर एक बंगाली ब्राह्मण जो ईसाई हो गया था, बहुत रोने लगा और दुःख प्रकट किया कि यदि आप जैसे पंडित लोग हमको पहले मिलते तो हम ईसाई न होते; क्योंकि जब हम स्कूल से पढ़कर और वहां के पादरियों के आक्षेप सुनकर घर जाकर पंडितों से पूछते तो कोई भी इन प्रश्नों के सन्तोषजनक उत्तर न देता था । यदि हमको उत्तर मिलता तो हम ईसाई न होते ।

उसी दिन ४ बजे सायंकाल को राजा साहब बर्दवान बग्घी पर पधारे । कुर्सियां वहां पहले ही बहुत एकत्रित थीं और इसके अतिरिक्त महाराजा साहब ने भिजवा दी थीं । महाराज के साथ वे चारों पंडित भी थे । उनमें से एक पंडित ने पहले आकर स्वामी जी को सूचना दी; तत्पश्चात् राजा साहब पधारे और कुछ समय तक स्वामी जी की बातें पादरियों के उत्तर में सुनीं परन्तु स्वयं कुछ न बोले । उस समय ईश्वर साकार है या निराकार, इस विषय पर बातचीत थी । बातचीत समाप्त होने के पश्चात् राजा साहब चले गये और पंडितों को आज्ञा दे गए कि स्वामी जी को हमारे मकान पर ले आओ । प्रातःकाल पंडित अभयराम और एक दो पंडित लोग आये और स्वामी जी को कहा कि आपको राजा साहब ने बुलाया है, वहां चलिए । स्वामी जी ने कहा कि यदि वह ऐसा ही एकान्त और स्वच्छ स्थान हो तो हम चल सकते हैं । नगर के बाहर हवादार स्थान हो । जहां कोलाहल हो और एकान्त न हो वहां हम नहीं जा सकते । तुम पहले जाकर स्थान निश्चित करो । स्वामी जी के कथनानुसार पंडित लोगों ने जाकर देखा परन्तु उस एक कोठी के अतिरिक्त जिसमें बहुत प्रकार की गड़बड़ थी और कोई मकान पसन्द न आया । अन्ततः एक मस्जिद निश्चित की जिसके साथ कब्रें भी थीं । स्वामी जी ने कहा कि हम ऐसे कब्रिस्तान में नहीं रहना चाहते; हम मुर्दा नहीं हैं । राजा साहब को यहां आने में क्या आपत्ति है ?

यह राजा साहब हृदय से ईसाई मत की ओर झुके हुए थे । उनकी रानी की भी यही इच्छा थी कि स्वामी जी अवश्य पधारें परन्तु मकान का समुचित प्रबन्ध न होने से स्वामी जी वहां न गये ।"

भागलपुर में वर्णभेद के रहस्य पर वार्तालाप

ब्रह्मसमाजी को वर्ण-विभाग समझाया—'इसके दूसरे दिन स्कूल के हेडमास्टर साहब बंगाली, जो ब्रह्मसमाजी थे, पन्द्रह बीस ब्रह्मसमाजियों सहित लगभग तीन बजे दिन के आये और आकर अपने मत की चर्चा की । स्वामी जी ने उनको विस्तारपूर्वक उत्तर दिया और समझाया कि सब संसार के लोगों के साथ खाना ठीक नहीं और चारों वर्ण भी एक नहीं । वर्ण कर्मानुसार ठीक हैं अन्यथा तुम्हारे कहने से वेद की आज्ञा भंग होती है; इसीलिए तुम्हारा कहना ठीक नहीं । बहुत से उदाहरणों और युक्तियों से उन्हें समझाया । इसी प्रकार रात के दस बजे तक उनसे बातचीत होती रही ।

दूसरे दिन प्रातःफिर ब्रह्मसमाज के लोग आये और वार्तालाप होता रहा । उसी दिन ४ बजे शाम के महाराज बर्दवान फिर पधारे और दंडवत् करके बैठ गये । उस दिन भी महाराज बहुत समय तक सुनते रहे, कुछ न बोले परन्तु ब्रह्मसमाज के लोग जब सब प्रकार से निरुत्तर हुए तब कहा कि कलकते के जो हमारे बड़े हैं वह यदि आपकी बात मान लें तो हम भी मान लेंगे । उस दिन महाराजा साहब और ब्रह्मसमाजी सज्जन आठ बजे रात तक बैठे रहे । एक सुन्दर शामियाना भी वहां तन गया था ।

तत्पश्चात् दो दिन तक स्वामी जी वहां रहे । फिर कलकत्ता जाने की इच्छा हुई । इस बार स्वामी जी कुल एक मास तक वहां रहे । भागलपुर के एक विद्वान् महाशय स्वामी जी से योग की क्रिया सीख त्यागी होकर चले गये थे । उनका नाम मुझे स्मरण नहीं रहा । उन्ही दिनों मेरे शरीर में ज्वर हो गया और स्वामी जी ने जाने की तैयारी कर दी । इतने में एक ब्राह्मण विद्यार्थी गजानन गौड़, मिर्जापुर की पाठशाला में पढ़ता था, वहां आया और स्वामी जी से मिला । स्वामी जी पहले से ही उसको जानते थे । मेरे ज्वर के दिनों में उसने रसोई बनाई । स्वामी जी ने मुझे कहा कि तुम यहां रहो, कलकत्ते का पानी अच्छा नहीं है । हम गजानन को लेकर कलकते जाते हैं, तुम मत जाओ । स्वामी जी ने मुझको अभयराम पण्डित और पार्वतीचरण के सुपुर्द किया कि किसी बात का इसे कष्ट न हो और चिट्ठी डिप्टी सोहनलाल जी के नाम दी कि इसे फिर भर्ती कर लें । हम उसके पश्चात् एक मास तक भागलपुर में रहे, फिर पटना चले आये । स्वामी जी मंगसिर पूर्णमासी तक भागलपुर में रहे, पोह बदी पड़वा, तदनुसार १५ दिसम्बर, सन् १८७२ को रेल द्वारा कलकत्ता को प्रस्थान कर गये ।

राजधानी कलकत्ता में स्वामी जी का पधारना तथा अवस्थिति

(१६ दिसम्बर सन् १८७२ से मार्च सन्१८७३ के अन्त तक)

स्वामी जी को कलकत्ता में बुलाने के लिए अधिक उद्योग श्री चन्द्रशेखर सेन बैरिस्टर ऐट ला ने किया । पहले तो वह देवेन्द्रनाथ ठाकुर के पास गया । वह प्रबन्ध में असमर्थ थे और चाहते भी न थे । इसलिए वह सौरेन्द्रमोहन[१६८] के पास गया । उन्होंने भी पहले कोई अनुराग नहीं दिखलाया परन्तु जब दूसरे दिन चन्द्रशेखर सेन हवड़ा स्टेशन से स्वामी जी को लेकर पहुंचे तब स्वामी जी को देख सौरेन्द्रमोहन जी बड़े सत्कार से उन्हें अपने बाग में ले गये और वहां सब खान-पान का प्रबन्ध कर दिया । एक गजानन विद्यार्थी मिर्जापुर स्वामी जी के साथ था, जो मनु पढ़ता था ।

जिस स्थान पर स्वामी जी ठहरे थे वह बारकपुर ट्रंक रोड के साथ टालागांव के समीप प्रमोद कानन[१६९] नाम का बाग है, जिसका दूसरा नाम निनयान भी है । अंग्रेजी के प्रसिद्ध समाचार पत्र इण्डियन मिरर कलकता के ३० दिसम्बर, सन् १८७२ के अंक में लिखा है कि एक बड़ा प्रबल मूर्ति भंजक हिन्दू अर्थात पण्डित दयानन्द सरस्वती, जिसने अभी कुछ समय

पहले बनारस के सर्वश्रेष्ठ पंडितों को एक सार्वजनिक शास्त्रार्थ में पराजित किया और अपने अन्य कार्यों से पूर्वी भारत में बड़ी प्रसिद्धि पाई है,कलकत्ता आया है और राजा ज्योतीन्द्रमोहन टैगोर के बाग के बंगले में निनयान नामक स्थान पर ठहरा है ।

कलकत्ता में ब्रह्मसमाजियों की शंकाओं का निवारण

पंडित हेमचन्द्र चक्रवर्ती, बंगाल के जिला चौबीस परगना के दक्षिणी बारीसाल निवासी, ब्रह्मसमाज के उपदेशक ने वर्णन किया कि 'इन दिनों हम कलकत्ता की काशीपुर की राजबाड़ी में थे । सुना कि एक बड़ा पंडित, संस्कृत और वेदज्ञ, महाराजा साहब के बाग में आया है । दोपहर के पश्चात् बहुत से लोग वहां पण्डित जी के साथ शास्त्रार्थ और विचार के लिए एकत्रित होते हैं ।'

श्री चक्रवर्ती के प्रश्न तथा उनके उत्तर–'एक दिन हम भी देखने के लिये गये और इस प्रकार प्रश्न किया—

प्रश्न—जाति भेद है या नहीं ?

उत्तर—मनुष्य एक जाति, पशु एक जाति, पक्षी एक जाति-जातिभेद इसी प्रकार है ।

उनके इस उत्तर को सुनकर हम मौन हो गए । तब स्वामी जी ने कहा कि तुम्हारा प्रश्न कदाचित् यह है कि वर्णभेद है या नहीं ? हमने कहा कि यही हमारा अभिप्राय है । स्वामी जी ने कहा कि निस्सन्देह वर्णभेद है । जो वेदज्ञ और पण्डित है, वह ब्राह्मण; जो उससे न्यून और युद्ध रत हैं और ज्ञानवान् हैं वे क्षत्रिय; जो व्यापार करते हैं वे वैश्य और जो मूर्ख वे शूद्र हैं । और जो महामूर्ख वह अतिशूद्र हैं । तब हम बहुत प्रसन्न हुए और इसी से स्वामी जी पर हमारी भक्ति आई ।

दूसरा प्रश्न—हमारा यह था कि ईश्वर मूर्तिवाला साकार है या निराकार ? स्वामी जी ने उत्तर दिया कि वर्तमान संस्कृत पुस्तकों में तो बहुत से ईश्वर (बताये) हैं । तुम कौन सा ईश्वर चाहते (पूछते) हो, सच्चिदानन्द आदि लक्षण वाला चाहते (पूछते) हो तो वह ईश्वर एक है और निराकार है ।

हमने पूछा कि वह जो संसार का स्वामी है उसका आकार है या नहीं ? स्वामी जी ने उत्तर दिया कि उसका आकार नहीं है । वह तो सच्चिदानन्द है, यही उसका लक्षण है ।

अष्टांगयोग से ईश्वरमिलन–'हमने चौथा प्रश्न यह पूछा, कि उसके मिलने का क्या उपाय है ? स्वामी जी ने बतलाया कि बहुत दिन तक योग के करने रूपी कर्म (योगक्रिया) से ईश्वर की उपलब्धि होती है ।

हमने पूछा कि वह योग किस प्रकार का है ? उस पर स्वामी जी ने अष्टांग योग की बातें हमको लिख दीं । वह कागज हमारे पास है और मौखिक इस प्रकार समझाया कि जब रात तीन घड़ी (शेष) रह जाये, उस समय उठकर मुंह-हाथ धो, पद्मासन लगाये (उसका नमूना भी बतलाया) । जहां तुम्हारी इच्छा हो बैठो; परन्तु स्थान हो निर्जन । गायत्री का अर्थसहित ध्यान करो और वह अर्थ भी लिख दिया जो अब तक मेरे पास विद्यमान है । यह पहले दिन की बात है ।

सांख्य दर्शन निरीश्वर नहीं; दर्शनों का परस्पर कोई विरोध नहीं–'फिर हम नित्य जाने लगे । एक दिन हमने पूछा कि सांख्य के कर्त्ता को लोग नास्तिक कहते हैं, सांख्यदर्शन को निरीश्वर कहते हैं और उसमें 'ईश्वरासिद्धेः'[१७०] ऐसा सूत्र भी है । उससे निरीश्वर की बात विदित होती है कि (उसके मत में) ईश्वर नहीं है । क्या यह बात ठीक है कि वह दर्शन निरीश्वर है, अर्थात् ईश्वर को नहीं मानता ?

स्वामी जी ने कहा कि सांख्य निरीश्वर नहीं है । जो जो लोग ऋषि-मुनियों की टीका छोड़ कर और भ्रष्ट लोगों की टीकाओं को देखते हैं वे ऐसा समझते हैं; अन्यथा ऋषियों के भाष्यों से सांख्यकार निरीश्वर नहीं जान पड़ते । हमने पूछा कि ऋषि का भाष्य कौन-सा है ? कहने लगे कि भागुरिभाष्य देखो, तब तुम्हारा सन्देह दूर हो जायेगा । और सांख्य में 'ईश्वरासिद्धेः' सूत्र पूर्वपक्ष में है; आगे इसका उत्तर है । यदि सांख्य वाला नास्तिक होता तो वह इन बातों को न मानता; वह पुनर्जन्म मानता है, वेद मानता है, परलोक मानता है, योग मानता है, आत्मा मानता है फिर तो वह किसी भी प्रकार निरीश्वर नहीं हो सकता । लोग अल्पबुद्धि मनुष्यों के ग्रन्थ पढ़कर भ्रम में पड़ गये अन्यथा कोई दर्शन किसी दर्शन का विरोधी नहीं । सृषि के छः कारणों से छः दर्शनों की उत्पत्ति हुई; न्याय (दर्शन) परमाणुओं का, मीमांसा दर्शन कर्म का, सांख्य (दर्शन) तत्त्वों के मेल का, पातंजल (योगदर्शन) ज्ञान, विचार और बुद्धि का, वैशेषिक (दर्शन) काल का निरूपक है और वेदान्त (दर्शन) कर्ता का वृत्त बतलाता है; इसलिए कोई शास्त्र नास्तिक नहीं ।

यज्ञोपवीत पहनना आवश्यक है; मूर्ख का तोड़ दें—एक दिन हमने पूछा कि यज्ञोपवीत पहनना चाहिए या नहीं क्योंकि इन दिनों ब्रह्मसमाज में यज्ञोपवीत छोड़ देने की बड़ी चर्चा उठी थी क्योंकि बाबू केशवचन्द्र सेन ने इन दिनों यज्ञोपवीत के रखने पर वितर्क किया था (और कहा था) कि जो ब्रह्मसमाजी लोग यज्ञोपवीत रखेंगे वे बड़े पापी तथा कपटी हैं । हमने इसलिये स्वामी जी से पूछा था कि रखना आवश्यक है या नहीं, या फेंकना अच्छा है ।

'स्वामी जी ने हमको कहा कि तुम ब्राह्मण हो; तुम्हारे लिये यज्ञोपवीत रखना बहुत अच्छी बात है । जो मूर्ख ब्राह्मण है, उसका यज्ञोपवीत तोड़ दो और जो पंडित ज्ञानी , वेदज्ञ, धार्मिक लोग हैं उनको अवश्य यज्ञोपवीत पहनना चाहिये ।' इसीलिये उस समय से आज तक हमने यज्ञोपवीत नहीं छोड़ा । यह हम पर बड़ा उपकार किया । इन दिनों बहुत लोग स्वामी जी के पास इस बात के पूछने के लिये गये और उनकी कृपा से पतित होने से बच गये । यज्ञोपवीत नहीं त्यागा, हमारी भांति पहने रहे ।'

'एक दिन स्वामी जी ने हमको कहा कि तुमने सब उपनिषद् पढ़ा है ? हमने कहा कि नहीं; थोड़ा-थोड़ा पढ़ा है । अन्त में उनके कहने से हमने उनसे ही पढ़ना आरम्भ किया और जब यहां से चले गये तो कानपुर में उनसे जाकर मिले फिर वहां से फर्रुखाबाद साथ गये । इन दोनों स्थानों पर कई मास तक साथ रहकर हमने स्वामी जी से छः उपनिषदें पढ़ीं ।

मिलने व धर्म-चर्चा करने वाले प्रतिष्ठित महानुभाव—पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न व पण्डित तारानाथ तर्कवाचस्पति आदि शास्त्री प्रायः जाया करते थे । बाबू केशवचन्द्र सेन राजनारायण[१७१] वसु व द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर[१७२] सदा दयानन्द का पक्ष लिया करते थे । राजा सौरेन्द्रमोहन ठाकुर और देवेन्द्रनाथ ठाकुर भी प्रायः बैठे रहते थे । जो लोग उनसे मिलने को जाते वह केशवचन्द्र और वाचस्पति[१७३] को तो प्रायः वहां बैठे हुआ देखते थे और क्षेत्रनाथ वंद्योपाध्याय, सिटी कालिज कलकत्ता के पण्डित, और क्रिष्टोचन्द्र मित्र[१७४], शरना मोहल्ला शिमला, कलकत्ता भी स्वामी जी के उद्देश्य से बहुत प्यार करते थे ।'

प्रातःकाल से २ बजे तक की दिनचर्या—'प्रातःकाल से लेकर दो बजे तक किसी से भी न मिलते थे इसलिए कोई आता नहीं था । उस समय स्वामी जी अपने योगाभ्यास, भ्रमण तथा विचार में संलग्न रहते थे और ४ बजे के पश्चात् बड़े-बड़े पण्डित लोग एकत्रित होते और स्वामी जी सबके संशय निवारण करते थे । उनके उपदेशों से सैकड़ों-हजारों व्यक्तियों को लाभ पहुंचा ।

होम मूर्तिपूजा का रूप नहीं है—स्वामी जी का बा० केशवचन्द्रसेन के साथ पुनर्जन्म पर शास्त्रार्थ हुआ था और इस विषय पर भी कि अद्वैतवाद वेद प्रतिपादित है या नहीं ? राजनारायण वसु के साथ होम के विषय पर शास्त्रार्थ हुआ

था। वसु ने होम को मूर्तिपूजा का एक दूसरा रूप कहा था। दयानन्द जी ने उत्तर दिया कि 'ब्रह्म स्मरण करने (के लिये) जिस कार्य का अनुष्ठान होता है और विशेष रूप से वह जो समस्त जगत् तथा साधारण जनता के सुख के लिए संपादित होता है उसको हम मूर्तिपूजा का अंग नहीं मान सकते। इसको सुनकर वे फिर कुछ न बोले।'

'हिन्दूधर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करने के लिए महाभारत तक रचित ग्रन्थों का आश्रय लेना चाहिए—'राजनारायण वसु ने अपनी बनाई पुस्तक 'हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता' स्वामी जी को सुनाई थी। सुनने के पश्चात् वे बोले कि हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करने के लिये पुराण और तन्त्र को प्रमाण मानना युक्तिसंगत नहीं। शास्त्रों में से (महा) भारत तक (के ग्रन्थों को) प्रमाण मानना चाहिये और ऐसा ही हम मानते हैं।'

कलकत्ता में धर्म-प्रचार के लिए पधारने पर अद्भुत आन्दोलन-ज्ञानेन्द्रलाल राय, एम०ए०, बी०एल सम्पादक—'पताका' बंगला, लिखते हैं—'स्वामी दयानन्द जब धर्मप्रचार के निमित्त कलकत्ता आये थे तब चारों ओर उसका बहुत ही आन्दोलन होने लगा। क्या बच्चा, क्या बूढ़ा, क्या स्त्रियां-सभी उनके दर्शन और उनके मुख की बात सुनने के निमित्त आतुर थे। उनके व्याख्यान देने की शक्ति और तर्कशक्ति तथा शास्त्रों के पूर्ण ज्ञान को देखकर सब कोई आश्चर्यचकित होने लगे। लोग दल के दल (बांधे) उनके समीप धर्मजिज्ञासु होकर गये ओर अपने प्रश्नों का अच्छा उत्तर पाकर तथा अति तृप्त होकर वापस आये। जो मनुष्य गुणी होता है वही गुण के ग्रहण में समर्थ होता है, अन्य नहीं। स्वर्गवासी केशवचन्द्र सेन ने स्वामी दयानन्द जी का बहुत ही आदर किया था। उनको अपने घर ले जाकर और सभा करके उनका व्याख्यान सबको सुनवाया। केशव बाबू के मकान में हमने जब पहले पहल स्वामी जी का भाषण सुना तो उस दिन हमने एक नवीन बात देखी कि संस्कृत भाषा में ऐसी सरल और मधुर वक्तृता थी जो पहले हमने कहीं न सुनी थी और न देखी थी। वह ऐसी सहज संस्कृत में व्याख्यान देने लगे कि संस्कृत से अत्यन्त अनभिज्ञ व्यक्ति भी उनके व्याख्यान को समझने लगा। और भी एक विषय में हमको बहुत आश्चर्य हुआ कि अंग्रेजी भाषा के न जानने वाले एक हिन्दू संन्यासी के मुख से धर्म और समाज के सम्बन्ध में ऐसा उदारमत अर्थात् निष्पक्ष धर्म पहले कभी नहीं सुना था। नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय ने भी ऐसा ही लिखा है।'[१७५]

कलकत्ता के ब्रह्मसमाजी नेताओं से सम्पर्क

बाबू केशवचन्द्र सेन जी के घर में स्वामी जी ने ९ जनवरी, सन् १८७३ बृहस्पतिवार, तदनुसार पौष सुदि ११, संवत् १९२९ को व्याख्यान दिया था जिसके विज्ञापन हिन्दी, अंग्रेजी और बंगला में चिपकाये गये थे। समाचार पत्र 'इण्डियन मिरर' १२ जनवरी, सन् १८७३ में लिखा है—'पण्डित दयानन्द सरस्वती-यह बड़ा विद्वान् पण्डित पिछले बृहस्पतिवार को ऐशियाटिक म्यूजियम में विशेषतया इस अभिप्राय से गया कि वेद और उपनिषदों की कुछ प्रतियां खरीदे और उसके पश्चात् बाबू केशवचन्द्र सेन के घर पर बहुत से ब्रह्मसमाजियों से मिला और उनके प्रश्नों के उत्तर में अपने वैदिक सिद्धान्त वर्णन किये। हम आशा करते हैं कि इन पंडित जी के मंजे (सुलझे) हुए विचारों का छोटे-छोटे ट्रैक्टों द्वारा प्रकाशित करने के लिये एक सभा स्थापित की जायेगी।'

हेमचन्द्र जी कहते हैं कि 'केशवचन्द्र जी की बाड़ी में वैदिकधर्म विषय पर व्याख्यान हुआ था जिसमें केशवचन्द्र सेन तथा अन्य बहुत से सम्मानित व्यक्ति उपस्थित थे। सब लोग सन्तुष्ट हुए थे। बड़ा बाजार के कई हिन्दुस्तानी[१७६] गुण्डे झगड़ा करने लगे; परन्तु कुछ न कर सके।'

'ब्राह्मधर्म ग्रन्थ नहीं, 'उपनिषदों की टीका' कहो—'एक दिन स्वामी जी ने महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर-कृत 'ब्राह्मधर्म ग्रन्थ' हमसे सम्पूर्ण सुनने के पश्चात् कहा कि इसका नाम उपनिषद् की टीका छोड़ कर ब्रह्मधर्म क्यों रखा। जब इसके

समस्त श्लोक उपनिषदों के हैं तो यह नाम उपयुक्त नहीं । हमने कहा कि वेद में जो ब्रह्मविद्या है वही ब्रह्मविद्या महर्षि ने 'ब्राह्म-धर्म' में समाविष्ट की है । फिर लोग ब्रह्म को मानते हैं इसलिए इसका नाम ब्राह्मधर्म है ।'

महर्षि देवेन्द्रनाथ की बाड़ी में आत्मसाधन पर वार्तालाप—'कलकत्ता ब्रह्मसमाज का वार्षिकोत्सव माघ में होना था, उसकी तैयारी हुई । महर्षि देवेन्द्रनाथ जी के बड़े पुत्र द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर स्वामी जी को बुलाने गये; उस समय स्वामी जी योगध्यान में लगे हुए थे । हमारे जाने से उनके ध्यान में विघ्न हुआ । फिर द्विजेन्द्रनाथ के साथ स्वामी जी का धर्म विषय और शास्त्र विषय पर नाना प्रकार का वार्तालाप हुआ । स्वामी जी ने उनको यह समझाने का प्रयत्न किया कि कपिल का सांख्यशास्त्र निरीश्वर नहीं है । द्विजेन्द्रनाथ जी ने स्वामी जी से महर्षि की बाड़ी में[१७७] आने का अनुरोध किया तब स्वामी जी ने दूसरे दिन आने का वचन दिया, इसलिए दूसरे दिन ११ माघ को मैं हेमचन्द्र गया और स्वामी जी महर्षि की बाड़ी में पधारे । उन्होंने स्वामी जी का बड़ा सत्कार किया । स्वामी जी ने उनको पवित्र धर्मोपदेश दिया और स्वर्गीय हेमेन्द्रनाथ के पुत्र से आत्मसाधन पर बातचीत की । स्वामी जी आत्मा को स्वाधीन मानते थे और वह पराधीन । अन्त में स्वामी जी ने वेद का प्रमाण दिखाकर उसका सन्तोष कर दिया ।'

गृहस्थ के घर में रहना अच्छा नहीं समझते थे—'महर्षि के घर में एक मंडप था उसमें एक वेदी थी जिसके चारों ओर संस्कृत के श्लोक लिखे हुए थे । स्वामी जी ने उन्हें पढ़कर आनन्दलाभ किया । महर्षि ने (स्वामी जी को) यह भी कहा था कि 'आप हमारे महल की तीसरी मंजिल पर रहें और कुछ दिन यहां निवास करें ।' परन्तु स्वामी जी ने उत्तर दिया कि 'मैं गृहस्थ के घर में रहना अच्छा नहीं समझता ।' सन्ध्या के समय स्वामी जी वापिस चले गये ।'

उस समय का वृत्तांत आदि ब्रह्मसमाज की मासिक पत्रिका 'तत्त्वबोधिनी' बंगला में, इस प्रकार लिखा है—'११ माघ, संवत् १७९४ शालिवाहन, तदनुसार मंगलवार २१ जनवरी, सन् १८७३, तदनुसार माघ बदि ८, संवत् १९२९ के वार्षिकोत्सव में दोपहर को ब्रह्मसमाज के प्रधान आचार्य महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के भवन में बहुत से मनुष्यों के साथ परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीयुत स्वामी दयानन्द सरस्वती से दोपहर से शाम तक धर्मालोचना अर्थात् विचार हुआ । सब मनुष्यों को उनसे विचार करके बहुत आनन्द प्राप्त हुआ' (फाल्गुन मास, संवत् १७९४, नं० ३४५, पृष्ठ १८०, १८१) ।

प्रमोदकानन वाटिका में (जहां स्वामी जी उतरे हुए थे) देवेन्द्रनाथ तथा केशवचन्द्र सेन के चित्र लटके हुए थे । स्वामी जी ने देवेन्द्रनाथ का चित्र देखकर कहा कि 'इसका स्वाभाविक अनुराग ऋषि श्रेणी की ओर है ।' उनसे स्वामी जी को बहुत अनुराग हो गया था ।

रविवार, तदनुसार फागुन बदि ११, संवत् १९२९—'इण्डियन मिरर' २२ फरवरी, सन् १८७३ में लिखा है कि '२३ फरवरी, सन् १८७३ को गोराचांद दत्त के घर में ईश्वर और धर्म विषय में व्याख्यान होगा ।' तदनुसार व्याख्यान हुआ; जिसमें वेदों में 'मूर्तिपूजा नहीं है' इस विषय की अच्छी प्रकार व्याख्या की गई । इसमें पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न भी उपस्थित थे । समाप्ति पर उन्होंने बंगाली में अनुवाद करक लोगों को सुनाया परन्तु ठीक अनुवाद न कर सके क्योंकि जो बातें उन्होंने कहीं वह स्वामी जी ने नहीं कही थीं । इस बात पर संस्कृत कालिज के विद्यार्थियों ने महेशचन्द्र के विरुद्ध कहा कि जब ऐसा स्वामी जी ने नहीं कहा तो आपने अपनी ओर से क्यों कह दिया ? जिस पर गोलमाल होकर पंडित महेशचन्द्र चले गये ।'

राजा बहादुर तक के लिये आगन्तुकों को छोड़कर जाना उचित न समझा—'एक दिन शाम के समय तालाब के तट पर, जो उसी वाटिका में था, स्वामी जी और लोगों के साथ बैठे हुए थे कि राजा सौरेन्द्रमोहन गाड़ी पर चढ़े हुए आ गये । थोड़े समय पश्चात् किसी ने स्वामी जी से आकर कहा कि राजा बहादुर आपको बुलाते हैं । दयानन्द जी ने उत्तर दिया

कि मैं इस समय और लोगों के साथ बातचीत कर रहा हूं, इसलिए मैं इनको छोड़कर उठ जाना ठीक नहीं समझता ।' यह सुनकर राजा साहब स्वयं ही आ गये और कुछ समय पश्चात् 'स्वर' की उत्पत्ति पर स्वामी जी से प्रश्न किया । स्वामी जी ने उत्तर दिया परन्तु वह समझ न सके । इस पर स्वामी जी विरक्त हो गये और वह क्रोध में आकर उठ कर चले गये ।'

द्वेषी तथा पक्षपातियों की अनर्गल बातें—'तत्पश्चात् उनके सेवकों और आश्रित लोगों ने स्वामी जी के विरुद्ध बातें लोगों में प्रसिद्ध करनी आरम्भ कीं । इस सम्बन्ध में उन्हीं दिनों 'सोमप्रकाश' समाचार पत्र ने इस प्रकार लिखा—'दिग्विजय करते हुए स्वामी दयानन्द कलकत्ते में पहुंचे हैं । शंकराचार्य ने दिग्विजय से अद्वैतमत स्थापन करके जैसा जगत् में उपकार किया है, स्वामी जी का ऐसा उद्देश्य है या नहीं, यह हम नहीं कह सकते परन्तु उनकी विचारप्रणाली (जैसी कि सुनी है) से स्पष्टतया प्रकट है कि अपने पांडित्य का प्रकाश करके प्रसिद्धि प्राप्त करें ।'(२१ फागुन, संवत् १७९४, तदनुसार २ मार्च, सन् १८७३) जब स्वामी जी के समर्थकों ने इसका उत्तर लिखा तब 'सोमप्रकाश' वाले ने न छापा । उन्होंने उसे 'हिन्दू हितैषी'[१७८] समाचारपत्र ढाका में भेज कर मुद्रित कराया । उन्हीं दिनों वहां के अल्पबुद्धि लोगों ने प्रसिद्ध किया कि यह कोई जर्मन-देशीय व्यक्ति है, जिसने हिन्दू धर्म नष्ट करने के लिये संन्यासी का वेश बनाया हुआ है ।

२ मार्च, सन् १८७३, रविवार तदनुसार फागुन सुदि ४, संवत् १९२९-तीन बजे दिन के समय, (वाराह नगर स्थित) बोर्नियो कम्पनी के हाल में हवन के लाभ पर सरल संस्कृत में व्याख्यान दिया । बहुत लोग इकट्ठे थे, सारा हाल भरा हुआ था । ईश्वर का एक होना, जीव और ईश्वर का भक्ति-सम्बन्ध, पंचमहायज्ञ की आज्ञा, हवन की आवश्यकता और तत्सम्बन्धी आवश्यक बातों का अच्छी प्रकार विस्तारपूर्वक वर्णन किया ।'

कलकत्ता में समाज सुधार-सम्बन्धी व्याख्यान

९ मार्च रविवार, तदनुसार फागुन सुदि ११, संवत् १९२९ को स्वामी जी का व्याख्यान वाराह नगर—[१७८अ]गौर के स्कूल में हुआ; इसके विषय में 'इन्डियन मिरर' १५ मार्च, सन् १८७३ में इस प्रकार लिखा-'९ मार्च, सन् १८७३ को पंडित दयानन्द सरस्वती जी ने वाराह नगर के नाइट स्कूल (रात्रि पाठशाला) में वैदिक सिद्धान्तों पर एक व्याख्यान दिया । उस स्थान पर सम्मानित व्यक्तियों का एक विशाल समूह था । व्याख्यानदाता एक रेशमी वस्त्र पहने हुए बड़ी गम्भीरता के साथ मंच पर पधारे और साढ़े तीन बजे व्याख्यान आरम्भ हुआ, जिसके आरम्भ में सर्वशक्तिमान् पिता से प्रार्थना की और फिर बड़ी शुद्ध, सुन्दर और सरल संस्कृत में तीन घंटे से अधिक समय तक व्याख्यान दिया । उन्होंने वेदों में से बहुत सी स्पष्ट और प्रबल युक्तियों द्वारा परमेश्वर की एकता और जातपात की हानियां तथा बाल्यकाल के विवाह के दोषों को सिद्ध किया । उनके वचनों से सिद्ध होता है कि वह केवल बड़े विद्वान् ही नहीं प्रत्युत बड़े गहरे सोच-विचार के पुरुष (विचारक) हैं । उनकी युक्तियां बड़ी प्रबल और काटने वाली तथा उनका स्वभाव और वर्णनशैली बड़ी निर्भीक और वीरतापूर्ण है । हम आशा करते हैं कि हमारे शिक्षित कलकत्ता निवासी मित्र उनके आगामी व्याख्यानों को सुनने के लिये जाया करेंगे ।' इसी प्रकार मार्च, सन् १८७३ के अन्त तक दो-तीन व्याख्यान और हुए और शिक्षित व्यक्तियों ने रुचिपूर्वक सत्योपदेश से लाभ उठाया ।

पंडित हेमचन्द्र चक्रवर्ती जी कहते हैं कि 'स्वामी जी के डेरे पर दो बजे से सायंकाल तक ठहरने की आज्ञा थी । पूरी शाम हो जाने के पश्चात् किसी को न रहने देते थे । उन दिनों संस्कृत बोलते, केवल एक कौपीन रखते तथा शरीर पर मिट्टी लगाते थे । पान या हुक्का खाते-पीते नहीं थे परन्तु तम्बाकू की नस्वार लेते और कुछ तम्बाकू के टुकड़े मुख में रखते थे । कहते थे कि इससे दांतों को लाभ होता है ।

वेदालोचन-रहित संस्कृत शिक्षा से लोग व्यभिचारी तथा हानिकारक हो जाते हैं—'उन दिनों स्वामी जी ने व्याख्यानों में यह भी कहा था कि वेदालोचना-रहित संस्कृत शिक्षा से कुछ लाभ नहीं है; क्योंकि इससे लोग पुराणों के कुकर्म-उपदेश से व्यभिचारी हो जाते हैं अथवा जो विचारशील हैं वह धर्म से पतित होकर हानिकारक हो जाते हैं। इससे लोगों की कुछ आंखें खुलीं।

बंगाल के लैफ्टीनैंट गवर्नर कैम्बल[१७९] साहब ने भी उन दिनों यह प्रस्ताव किया था कि संस्कृत कालिज उठा दिया जावे। स्वामी जी ने इस बात को सुनकर कहा कि ऐसे संस्कृत कालिज के रहने से कुछ लाभ नहीं जिसमें वेद नहीं पढ़ाये जाते। इसलिए 'मूलाजोड़' में प्रसन्नकुमार ठाकुर ने जिस संस्कृत कालिज की स्थापना की थी, वहां जाकर स्वामी जी ने यह प्रस्ताव किया कि इसमें वेदों की शिक्षा दी जाये और इसी सम्बन्ध में उन्होंने 'नैशनल' पत्रिका के सम्पादक मिस्टर नवगोपाल मित्र को एक लेख भी भेजा।'

"आयुर्वेद के प्रचार में भी स्वामी जी की बहुत दृष्टि (ध्यान था) थी। इस विषय में उन्होंने डाक्टर महेन्द्रलाल सरकार[१८०] से बहुत बातचीत की और उन्हें संस्कृत (ग्रन्थों) की आयुर्वेद विद्या के महत्त्व बतलाये।

उस समय यह प्रस्ताव हुआ कि वे सब व्याख्यान, जो स्वामी जी ने कलकत्ते में दिये हैं, ट्रैक्टों के रूप में बाबू केशवचन्द्र सेन साहब के निरीक्षण में प्रकाशित किये जावें परन्तु स्वामी जी के चले जाने के पश्चात् केशव बाबू ने पूरा ध्यान न दिया; इसलिए यह काम न हुआ। फर्रूखाबाद के एक बड़े रईस, बाबू दुर्गाप्रसाद जी, ने वर्णन किया कि 'उन दिनों हम भी कलकत्ता गये थे। स्वामी जी से पूर्व परिचय होने के कारण उनके दर्शन को गये। उस समय हुक्के के निषेध के विषय में उपदेश कर रहे थे और उसे 'धूम्रपान' शब्द से पुकारते थे।"

गुणग्राही बाबू केशवचन्द्र अपनी आलोचना से क्रुद्ध नहीं हुए—पंडित बलदेव शर्मा ने वर्णन किया कि 'हम स्वामी जी से कलकत्ते में १९२९ में मिले। वहां स्वामी जी का केशवचन्द्र सेन से भली प्रकार मेल-मिलाप हुआ। वह अंग्रेजी का विद्वान् था। उसने एक ग्रन्थ बनाया था और उसके आरम्भ में एक श्लोक लिखा था, जिसमें ईश्वर के चरण इत्यादि वर्णन किये हुए थे और (उसकी) संस्कृत भी शुद्ध न थी। इस श्लोक का स्वामी जी ने (यह कहकर) खंडन किया कि एक तो इसके पद शुद्ध नहीं हैं, दूसरे परमेश्वर के पांव नहीं होते और यदि (इस श्लोक को) गुरु पर लगाओ तो वह व्यापक नहीं। बाबू केशवचन्द्र सेन इस आक्षेप से क्रुद्ध नहीं हुए, प्रत्युत प्रसन्न हुए। बाबू साहब ने स्वामी जी को कहा कि आप संस्कृत में व्याख्यान देते हैं, आप कुछ कहते हैं, लोग कुछ समझ लेते हैं; इसलिए आप भाषा में व्याख्यान दिया करें। स्वामी जी ने स्वीकार किया।'

संस्कृत पाठशालाओं के विरुद्ध मत कैसे बना ?—'वहां सात तालाब के समीप राममोहन राय का बगीचा था। उसका गृहस्वामी स्वामी जी का बहुत आदर सत्कार किया करता था। वहीं स्वामी जी ने मुझसे कहा कि 'बलदेव ! रईसों के लड़के अंग्रेजी-फारसी ने ले लिये; शेष कमीनों (दरिद्रों) के लड़के रह गये, वे संस्कृत के लिये रहे। ये 'वानर' हैं इनसे कुछ नहीं होगा। वहीं से उनकी पाठशालाओं के विरुद्ध सम्मति बनी, और कहा कि मैं वेदभाष्य करूंगा और व्याख्यान दूंगा।'

गजानन विद्यार्थी वहां एक दिन किसी मारवाड़ी का न्यौता जीमने चला गया और वहां से अधिक खा आया जिससे रोगी हो गया। स्वामी जी ने निषेध किया कि फिर न जाना परन्तु वह एक दिन फिर चला गया। सूचना मिलने पर स्वामी जी ने उसको निकाल दिया।'

उचित सलाह को मानने के लिए सदा उद्यत रहते थे, बंगाली भद्रपुरुषों का कहना मानकर 'भाषा में व्याख्यान देना और नग्न न रहना स्वीकार किया'—साधु जवाहरदास जी ने वर्णन किया कि स्वामी जी जब कलकत्ते से लौटकर आये तो वस्त्र पहनते थे । हमने कारण पूछा तो कहा कि जब हम कलकत्ते गये तो ब्रह्मसमाजियों ने आक्षेप किया कि इससे क्या लाभ है, आप जैसे विद्वान् का जगत्-उपकार में वस्त्र पहनने में क्या हानि है ? हमने स्वीकार किया ।

कलकत्ता में क्या-क्या ?

स्वामी जी द्वारा कलकत्ता निवास की स्मरणीय घटनाओं का स्वयं वर्णन । बा० केशवचन्द्र का स्वयं परिचय; वेद के ईश्वरकृत होने में युक्तियां : पं० ताराचरण शास्त्रार्थ करने नहीं आये—फर्रूखाबाद निवासी ठाकुरदास वैश्य ने बताया कि 'हमने स्वामी जी के मुख से कलकत्ता का वृत्तांत सुना था । स्वामी जी ने बताया था कि जब केशवचन्द्र सेन मेरे पास आये और बातचीत होने लगी तो बातचीत की समाप्ति पर उन्होंने प्रश्न किया था कि आप केशवचन्द्र सेन से मिले हैं ? स्वामी जी ने कहा कि हां मिला हूं । पूछा कि वह तो कहीं बाहर गये हुए थे, आप उनसे कब मिले ?; स्वामी जी ने कहा कि मैं मिल चुका । दो-तीन बार हेर फेर करने के पश्चात् स्वामी जी ने कहा कि तुम ही केशवचन्द्र सेन हो । पूछा कि आपने मुझे कैसे पहचाना ? स्वामी जी ने कहा कि यह बातचीत दूसरे की हो ही नहीं सकती । उस दिन से उनकी परस्पर बहुत प्रीति हो गई और फिर बराबर नित्यप्रति आते रहे और घंटों धार्मिक वार्तालाप होता रहा ।

स्वामी जी ने बताया था कि हमसे यह प्रश्न किया कि तीन मजहब इस समय संसार में सब से बड़े हुए हैं—(अर्थात्) बाइबिल, कुरान और वेद (पर आधारित) । अपने-अपने मजहब को सभी परमेश्वरकृत कहते हैं; किसको सत्य मानें ? हमने वेद को छः युक्तियों से ईश्वरकृत सिद्ध किया था (मुझे सब स्मरण नहीं रहीं, परन्तु एक याद है) कि कुरान और बाइबिल में सब प्रकार के झगड़े, किस्से कहानियों और मतों का खंडन पाया जाता है परन्तु वेद में उपदेश के अतिरिक्त कोई झगड़ा नहीं; इसलिए वह (वेद) इन सब से अधिक सच्चा है ।

कलकत्ते के विषय में स्वामी जी ने स्वयं इस प्रकार लिखा है कि 'जिसके स्थान में मैं ठहरा था उनका नाम श्रीयुत जतीन्द्रमोहन ठाकुर[१८१] तथा श्रीयुत राजा सौरेन्द्रमोहन ठाकुर है । संवत् १९२९ में, मेरे निवासकाल में, हुगली नगर के उस पार बसे भाटपाड़ा (भटपल्ली) ग्राम के निवासी, पंडित ताराचरण तर्करत्न (परन्तु आजकल वे पंडित जी श्रीयुत काशीनरेश के पास रहते हैं) ने उनके पास तीन बार जा-जाकर यह प्रतिज्ञा की थी कि आज अवश्य शास्त्रार्थ करने को चलेंगे । ऐसा ही तीन दिन कहते रहे परन्तु एक बार भी शास्त्रार्थ करने न आये । इससे बुद्धिमान् लोगों ने उनकी बात झूठ जान ली ।'

स्वामी विशुद्धानन्द के सहाध्यायी और उनके अतिविरोधी विद्वान् मोतीराम मिर्जापुर निवासी ने वर्णन किया, 'स्वामी जी के पास कलकत्ता में प्रायः बंगाली सम्भ्रान्त सज्जन आया करते थे । वहां एक ब्राह्मसभा थी, जो आदित्यवार को लगती थी । उसके सब मुखिया लोग आया करते थे । वहां के पंडित तारानाथ तर्कवाचस्पति भट्टाचार्य लोगों को कहते थे कि हमारे सामने स्वामी जी की वाक् (बोलती) बन्द हो जायेगी । स्वामी जी ने लोगों को प्रेरणा करके उन्हें बुलाया । आते ही उन्होंने ७० प्रश्न किये जिनको वह अपने विचार से बड़े कठिन और निरुत्तर करने वाले जानते थे परन्तु स्वामी जी ने २२-२३ उत्तरों में ही उन सबका उत्तर दे दिया । जब उन्होंने उत्तर सुने तो स्वामी जी के पांव पर गिर पड़े । जब संवत् १९३१ में स्वामी जी यहां (मिर्जापुर) पधारे[१८२] तो उन दिनों पंडित तारानाथ जी लखनऊ जाते हुए स्वामी जी के पास बाग में उतरे । स्वामी जी ने हमसे उनका परिचय कराया और कहा कि यह तारानाथ हैं । हमने तारानाथ जी से वार्ता की तो उन्होंने कहा

कि आश्चर्य है, हमने जब प्रश्न किये थे तो विश्वास था कि पृथ्वीभर में कोई इनका उत्तर देने वाला नहीं परन्तु उन्होंने क्षण भर में उत्तर दे दिये । उस दिन से हम इनसे अति प्रसन्न हैं ।[1]

दो महापुरुषों द्वारा एक दूसरे की अनभिज्ञता पर खेद प्रकाश—'कहते हैं कि ब्रह्मसमाज के बड़े प्रसिद्ध अध्यापक बाबू केशवचन्द्र सेन[१८३] ने स्वामी जी के अंग्रेजी न जानने पर खेद प्रकट किया था और कहा कि यदि वेदों के विद्वान् अंग्रेजी जानते होते तो इंग्लैंड जाने के लिए मेरे मनचाहे साथी होते परन्तु चूंकि प्राचीन दर्शनों के विद्वान् के मन में अभिमान न था, इसलिए उसने अंग्रेजी के श्रेष्ठ भारतीय व्याख्यानदाता को उत्तर दिया कि मैं भी ब्रह्मसमाज के नेता के संस्कृत न जानने पर वैसा ही खेद प्रकट करता हूं जो कि एक सभ्य धर्म, भारत के लोगों को उस भाषा (अंग्रेजी) के द्वारा सिखलाने का दावा करता है, जिसको वह प्रायः समझ भी नहीं सकते ।'

हुगली का वृत्तांत (१ अप्रेल, सन् १८७३ से १५ अप्रैल, सन् १८७३ तक)

मंगलवार, १ अप्रैल सन् १८७३ तदनुसार चैत सुदि, संवत् १९३० को स्वामी जी ने हुगली में आकर प्रसिद्ध जमींदार वृन्दावनचन्द्र मंडल के बाग की कुटी में निवास किया । आते ही नगर में शोर मच गया । चारों ओर से लोग आने आरम्भ हो गये ।

पादरी को निरुत्तर किया—उस समय हुगली कालिज के अध्यापक, ईसाई मत के प्रसिद्ध समर्थक, रैवरेंड लालबिहारी[१८४] थे । वह स्वामी जी के पास विचार के लिए गये । वर्णभेद पर विचार हुआ जिसमें थोड़े समय के पश्चात् पादरी साहब ने निरुत्तर होकर हार मान ली और कहा कि निस्सन्देह ऐसा समझना मेरी भूल थी ।

बंग-साहित्य जगत् के प्रसिद्ध व्यक्ति बाबू अक्षयचन्द्र,[१८५] (अक्षयकुमार घोष) ने बंगला जीवनचरित के लेखक देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय[१८६] को लिखा है 'कि हम सबके सामने चूंचडा नामक स्थान पर स्थित मंडल बाबुओं के घर में स्वामी जी ने दोपहर को भाषण दिया । उस समय भटपल्ली (भटपारा) के कई एक पंडित उपस्थित थे । स्वामी जी के सरल संस्कृत-भाषण को सुनकर मैंने मन में सैकड़ों बार उस दिन उनकी प्रशंसा की । मेरे हृदय में पहले यह विचार न था कि ऐसे कठिन विषय पर भी ऐसी सरल संस्कृत भाषा में वर्णन किये जा सकते हैं । उनके कथन को सब लोग समझते थे और भटपल्ली के रहने वाले ताराचरण से सन्ध्या के समय शास्त्रार्थ हुआ था और वह मंगलवार का दिन था ।

आठ अप्रैल, सन् १८७३, मंगलवार को हुआ हुगली-शास्त्रार्थ[१८७]

पं० ताराचरण पराजित, आजीविका चले जाने की आशंका से वे सत्य नहीं कह सके—'रविवार ६ अप्रैल, सन् १८७३ को यहां के रईसों ने एक सभा की और उसमें स्वामी जी से व्याख्यान दिलवाया । बहुत से लोग सुनने के लिए आये । स्वामी जी व्याख्यान दे रहे थे कि इतने में पंडित ताराचरण भी आ पहुंचे । उनसे बाबू वृन्दावनचन्द्र आदि लोगों ने कहा कि आप भी सभा में आइये और जो इच्छा हो सो कहिये । पंडित जी सभा में तो न आये परन्तु उस मकान के ऊपर चढ़कर दूर से गरजने लगे । उस समय उनके सभा में न आने पर ऊपर ही ऊपर गरजने से सब लोगों पर प्रकट हो गया कि पंडित जी बस केवल देखने और कहने के ही हैं, जानते कुछ भी नहीं, क्योंकि जो कुछ भी जानते होते तो सभा में आने से क्यों डरते ? फिर नौ बजे सभा समाप्त हो गई ।

---

1. पं० तारानाथ तर्कवाचस्पति द्वारा ७० प्रश्न करने तथा स्वामी जी द्वारा उनके उत्तर देने का वर्णन श्री स्वामी जी द्वारा स्वयं कथित जीवन चरित में नहीं है । वहां यही उल्लेख है कि ताराचरण तर्करत्न एक बार भी शास्त्रार्थ करने नहीं आये । ये पण्डित तारानाथ तर्कवाचस्पति संस्कृत के वृहत्कोश 'वाचस्पत्यभिधान' के रचयिता प्रतीत होते हैं ।—सम्पा०

दूसरे दिन ७ अप्रैल, सन् १८७३ को बाबू वृन्दावनचन्द्र मंडल जी ने स्वामी जी से कहा कि कल पंडित ताराचरण भी आये थे। स्वामी जी ने कहा कि फिर सभा में क्यों नहीं आये? बाबू जी ने कहा कि वे तो बड़ा घमंड करते हैं। स्वामी जी ने कहा घमंड करना तो पंडितों का काम नहीं है, मूर्खों का है। जो पंडित होता है वह कभी अपने मुख से अपनी बड़ाई की डींग नहीं मारता। यदि पंडित जी अभिमान के समुद्र में डूबे जाते हैं तो उनको एक बार मेरे पास ले आइये। जो डूबने से बच जावें तो अच्छा है।

तब बाबू जी आदि ने पंडित जी से कहा कि आप बाग में स्वामी जी के पास चलिये और जैसे आपकी इच्छा हो शास्त्रार्थ कीजिये। आप कुछ चिन्ता न करें, स्वामी जी किसी से वैर नहीं रखते। इस को सुनकर पंडित जी ने कहा कि अच्छा! हम चलेंगे।

८ अप्रैल, सन् १८७३, मंगलवार, तदनुसार चैत सुदि ११, संवत् १९३० को शाम के समय बहुत से लोग शास्त्रार्थ सुनने को एकत्रित हुए और पण्डित जी भी अपने गांव के लोगों को लेकर, जो उन्हीं के पक्ष के थे, वहां पहुंचे। तब पण्डित जी और स्वामी जी में इस प्रकार की बातें होने लगीं-

पंडित जी—हम प्रतिमापूजन की स्थापना का पक्ष लेते हैं।

स्वामी जी—आपकी जो इच्छा हो सो लीजिये; परन्तु मैं तो इसका सदा खंडन ही करूंगा; क्योकि मूर्तिपूजन वेद-विरुद्ध है।

पंडित जी—इस शास्त्रार्थ में वाद होना ठीक है वा जल्प अथवा वितण्डा?

स्वामी जी—वाद ही होना ठीक है क्योंकि जल्प और वितण्डा करना पण्डितों को कदापि उचित नहीं और वाद भी वही जो कि गोतम ऋषि ने लिखा है।

पंडित जी—अच्छा तो फिर वाद ही होगा!

उस समय यह भी सुझाव रखा गया कि इस शास्त्रार्थ में चारों वेद, ६ वेदांग और छः शास्त्रों (उपांगों ?) के अतिरिक्त और किसी का प्रमाण कदापि न लिया जावे। इस बात पर वह दोनों सहमत हो गये।

पंडित जी—**'चित्तस्य आलम्बने स्थूल आभोगो वितर्कः इति व्यासवचनम्।'** यह पातंजल सूत्र है। अर्थात् चित्त बिना स्थूल पदार्थ के स्थिर नहीं होता; इसलिए उपासना में स्थूल पदार्थ, प्रतिमा का ग्रहण किया जाता है। यह व्यास जी का वचन है।

स्वामी जी—पातंजल शास्त्र में ऐसा सूत्र कहीं नहीं है; हां! इस प्रकार अवश्य है—'विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धिनी। (पा० १; सू; ३५) अर्थात् मन की स्थिति का कोई विषय होता है, सो इस सूत्र की व्याख्या में व्यास जी ने यह लिखा है—'नासिकाग्रे धारयत्' इत्यादि अर्थात् नासिका के आगे के भाग में मन को स्थिर करना। आपके अशुद्ध पाठ से विदित होता है कि आपने योगशास्त्र नहीं देखा और आपने जो पहले पातंजल का सूत्र कहकर फिर अन्त में उसको व्यास का वचन कहा सो भी नितान्त अशुद्ध है क्योंकि व्यास जी ने योगशास्त्र के व्याख्यान में कहीं ऐसा नहीं लिखा है। जो यह पातंजल का सूत्र हो तो व्यास जी का वचन नहीं हो सकता और जो व्यास का वचन मानो तो पातंजल का सूत्र नहीं हो सकता। इससे आपकी एक बात दूसरी बात को काटती है।

पंडित जी—स्वरूपे साक्षाद्वती प्रजा आभोगः स च स्थूल-विषयत्वात् स्थूल इत्यादि । अर्थात् एक पदार्थ आंखों से देखने से बुद्धि में साक्षात् होता है और कारण कि आंखों में स्थूल पदार्थ ही देखा जा सकता है; इसलिए उपासना स्थूल विषय होने के कारण 'प्रतिमा' आ जाती है ।

स्वामी जी—आप पहले प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि हम इस शास्त्रार्थ में वेदादि सत्यशास्त्रों के अतिरिक्त और किसी का प्रमाण न देंगे फिर यह जो आपने वाचस्पति का प्रमाण दिया तो क्यों दिया ? देखो, जब तक जागृतावस्था रहती है तब तक दृष्टि में सब पदार्थ स्थूल रहते हैं, स्वप्नावस्था में कोई पदार्थ स्थूल नहीं रहता । फिर स्वप्न में, आपके कथनानुसार किसी वस्तु का ज्ञान नहीं होना चाहिये परन्तु यह बात नहीं है (ऐसा होता नहीं है) ।

आप यह प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि हम जल्प और वितण्डा न करेंगे, (वाद करेंगे) । फिर जाति-साधन से प्रतिमा स्थापन कैसा ? देखिये आपके इस कहने से कि स्थूल पदार्थों में ही मन स्थिर होता है यह दोष है क्योंकि स्थूल पदार्थों में सब संसार आ जाता है । क्या गधा, क्या घोड़ा, क्या वृक्ष, क्या ईंट, पत्थर आदि । आप बतलाइये कि आप किसका ध्यान करेंगे ? केवल प्रतिमा ही तो स्थूल पदार्थ नहीं है ? जो आप उसी को लिये लेते हैं ।

पंडित जी—आपके कहने से ही प्रतिमापूजन का प्रमाण होता है, क्योंकि प्रतिमा स्थूल ही है ।

स्वामी जी—आप ने जो यहां 'एव' शब्द तीन बार व्याकरण के विरुद्ध कहा, इससे आपकी संस्कृत की योग्यता भली-भांति प्रकट हो गई और विदित हुआ कि आपको इसी कारण इतना अभिमान है और 'लोकान्तरस्थ' (शब्द) से जो आप चतुर्भुज विष्णु को लेते हैं सो तो वैकुण्ठ में (स्थित) सुने जाते हैं फिर उनकी उपासना अर्थात् उनका समीप बुलाना और उनमें मन स्थिर करना कैसे हो सकता है ? कदापि नहीं । और जो पाषाण आदि की मूर्ति एक कारीगर के हाथ की बनाई हुई है, वह विष्णु कैसे हो सकती है ? बड़े आश्चर्य की बात है !

पंडित जी—'अथ स यदा पितृनावाहयति पितृलोकेन तेन सम्पन्नो महीयते' इस वचन के अनुसार, दूसरे लोक में रहने वाले की भी उपासना आती है ।

स्वामी जी—यह वचन इस विषय से कुछ सम्बन्ध नहीं रखता क्योंकि इससे उपासना लेशमात्र नहीं आती (नहीं सिद्ध होता) । इसका तो यह अभिप्राय है कि 'जिस योगी को अणिमा आदि सिद्धियां प्राप्त हो गई हैं वह सिद्ध जिस-जिस लोक में जाने की इच्छा करता है वहां जाकर आनन्द करता हैं ।' आप जो यह कहते हैं कि मरकर उस लोक में जाता है या पाषाण की उपासना इस लोक में करता है, सो ये दोनों बातें इस वचन से सिद्ध नही होतीं ।

पंडित जी—उपासना का जो स्थूल विषय कहा था उसमें प्रतिमा भी आ गई । आप देख लीजिये कि हम वाद ही करेंगे, जल्प वा वितण्डा कभी नहीं करेंगे ।

स्वामी जी—आप जो बार-बार स्थूलत्व साधर्म्य से प्रतिमापूजन का स्थापन किया चाहते हैं, सो आप आप अपनी इस प्रतिज्ञा की कि हम वाद करेंगे नाश करते हैं ।

पंडित जी—प्रथमतः अस्माभिः यत्

स्वामी जी—आपने जो यह संस्कृत वाक्य बोला सो व्याकरण के नियम से भी अशुद्ध है और यहां यह कुछ सम्बन्ध नहीं रखता । इस प्रकार चाहिये था—प्रथमतोस्माभिर्यत्..

पंडित जी—जिस बात का उदाहरण दिया जावे उस (उदाहरण) में सब बातों का मिलना कुछ आवश्यक नही ।

स्वामी जी—मैंने कब ऐसा कहा कि उदाहरण सब प्रकार से मिलना ही चाहिए ? आपने जो यह वचन बोला था उसका तो एक भाग भी आपके पक्ष से सम्बन्ध नहीं रखता था इसलिए उसका कथन और आपका पक्ष सब व्यर्थ ही हो गये !

पण्डित जी—"उपासनामात्रमेव भ्रममूलम्" अर्थात् उपासना सभी मिथ्या ही है ।

स्वामी जी—देखो, आपका जो प्रतिमास्थापन का पक्ष था सो जब वह सिद्ध न हो सका तो आप स्वयं ही इसका खंडन करने लगे कि प्रतिमापूजन ही भ्रममूलक अर्थात् मिथ्या है ।

जिस समय पंडित जी ने अपने मुख से यह निकाला उसी समय बाबू भूदेव मुकर्जी तथा पंडित हरिहर तर्कसिद्धान्त व बाबू वृन्दावनचन्द्र आदि यह कहते हुए उठ खड़े हुए कि पंडित जी आये तो थे वह घमंड और दावा करके कि हम मूर्तिपूजा सिद्ध करेंगे और यहां लगे उलटा उसी का खंडन करने । बस, विदित हो गया कि इन पंडित जी की यही योग्यता है ।

तत्पश्चात् स्वामी जी ने मुस्करा कर पण्डित ताराचरण से कहा कि मैं तो (मूर्तिपूजा का) खंडन करता ही हूं परन्तु यहां तो आपके कहने से ही प्रतिमापूजन का खंडन हो गया । इस पर पण्डित जी कुछ न बोले, मौन होकर ऊपर के मकान में चले गये ।

तब स्वामी जी भी उधर ही को चले और सीढ़ियों पर पहुंच कर पण्डित जी का हाथ अपने हाथ में ले लिया और ऊपर चले आये । ऊपर पहुंच कर बाबू वृन्दावनचन्द्र आदि लोगों के सामने स्वामी जी ने पंडित जी से कहा कि आप ऐसा बखेड़ा क्यों करते फिरते हैं ? पंडित जी बोले कि मैं भी तो लोकभाषा का खंडन करता हूं , सत्यशास्त्र पढ़ने-पढ़ाने का उपदेश भी करता हूं और पाषाण आदि मूर्तिपूजन भी मिथ्या ही जानता हूं परन्तु क्या करूं ? मैं जो सत्य-सत्य कहूं तो मेरी आजीविका चली जावे अर्थात् काशिराज महाराज जो सुनें तो मुझको निकाल कर बाहर कर दें । इस कारण मैं आपके समान सत्य-सत्य नहीं कह सकता हूं ।

हुगली से भागलपुर और पटना में

पूरे पन्द्रह दिन स्वामी जी वहां रहे और तत्पश्चात् १६ अप्रैल, सन् १८७३ को भागलपुर चले गये ।

भागलपुर—१७ अप्रैल, सन् १८७३, बृहस्पतिवार तदनुसार वैशाख बदि ५, संवत् १९३० को स्वामी जी **भागलपुर** पहुंचे और उसी पहले स्थान पर निवास किया । इस बार उनके व्याख्यान स्कूल में होते रहे । पूरे एक मास वहां निवास करके नगर निवासियों को अपने मनोहर उपदेशों से कृतार्थ किया । भागलपुर निवासी बाबू मन्मथनाथ चौधरी, बी० ए०, संस्कृत पढ़ने और उपदेशग्रहणार्थ साथ हो लिए और लगभग वर्ष-डेढ़ वर्ष तक साथ रहे ।

पटना—रविवार १८ मई, सन् १८७३; तदनुसार जेठ बदि ६, संवत् १९३० को स्वामी जी पटना में पधार कर बाबू बलदेवसहाय, रईस पटना की मार्फत गुलाब बाग में उतरे । उनका कथन है कि केवल एक सप्ताह यहां रहे । विज्ञापन भी दिया था कि अब भी किसी को सन्देह हो तो आकर निवृत्त कर ले क्योंकि जब पहली बार स्वामी जी चले गये थे, तब पंडित लोग पीछे बहाने करते थे । एक कहे मैं नहीं था, दूसरा कहे मुझे तो सूचना ही नहीं मिली । नगर के प्रतिष्ठित रईस और कालिज के विद्यार्थी और पंडित लोग प्राय: जाया करते थे ।'

मनुष्य के सुख-दु:ख का कारण उसका प्रारब्ध कर्म है, ईश्वर नहीं; वेद स्वत: प्रमाण हैं—स्वामी जी कहते थे कि 'किसी के अच्छा बुरा होने पर लोग ईश्वर को दोष देते हैं, यह लोगों की भूल है, उनका ऐसा कहना ठीक नहीं । सुख-दु:ख

तो सब मनुष्यों के प्रारब्ध कर्म का फल है ।' बातचीत के समय किसी व्यक्ति ने प्रश्न किया स्वामी जी ने श्रुति का प्रमाण दिया । उसने फिर प्रश्न किया श्रुति (के सत्यत्व) का क्या प्रमाण है ? तो स्वामी जी ने कहा कि वहं स्वत: प्रमाण है, जैसे सूर्य के प्रकाश के लिए दीपक की आवश्यकता नहीं, ऐसे ही स्वत: प्रमाण वेद के लिए और प्रमाण नहीं हो सकता ।

यहां का कोई पण्डित उनका सामना करने का साहस न कर सका और न किसी का मुख उनके विरोध में खुला । बनारसी लोग बहुत सी झूठी बातें उड़ाते रहे कि यह कोई जर्मन ईसाई है परन्तु ये सब आरोप व्यर्थ थे । हम प्राय: जाया करते थे, परन्तु जब जाते उनको अकेला न पाते थे, लोगों का जमघट लगा रहता था ।

पटना में इस बार दो दिन सभाएं हुई—पण्डित राजनाथ तिवारी ने वर्णन किया, 'एक दिन ६ बजे से ८ बजे तक सभा हुई । पण्डित छोटूराम, पण्डित ब्रजभूषण तथा रामलाल मिश्र आदि १५० के लगभग लोग उपस्थित थे । इस सभा में स्वामी जी ने मूर्ति (पूजन), पुराण, श्राद्ध, पिंडदान-इन चार विषयों का खंडन किया । दूसरे दिन भी उसी समय सभा हुई, उस दिन वैरागी भी उपस्थित थे । सृष्टि-उत्पत्ति विषयक उपदेश दिया, सब लोग ध्यान देकर सुनते रहे ।

छपरा (बिहार) में (२५ मई, सन् १८७३ से ९ जून, सन् १८७३ तक)[१८८]—रविवार, २५ मई, सन् १८७३ तदनुसार जेठ बदि १४, संवत् १९३० अर्थात् ग्रीष्म के आरम्भ में स्वामी जी छपरा पधारे । राय शिवगुलाम शाह बहादुर एक धनवान् जमींदार उनसे मिलने आया । उस प्रतिष्ठित व्यक्ति ने, (जो कि सदा से ऐसे शुभ कर्मों का संरक्षक तथा मुखिया रहा है), बड़े प्रेमभाव से उनका आदर-सत्कार किया । ब्राह्मणों की षड्यन्त्रकारी चालों (जो प्राय: स्वामी जी के साथ रहती थीं) के होते हुए भी उसने स्वामी जी को एक अत्यन्त सुन्दर सुसज्जित भवन में ठहराया । स्वामी जी के मधु के समान मीठे वचनों ने उसके हृदय में उनके प्रति जो प्रेम और प्रतिष्ठा का भाव उत्पन्न कर दिया था उसके कारण ब्राह्मणों को बड़ी ईर्ष्या हुई और उन्होंने सारे नगर में यह बात फैला दी कि इस नगर पर एक बड़े पक्के नास्तिक ने आक्रमण किया है । उनके आगमन का, ईश्वर के (विषय में) वैदिक सिद्धान्त का तथा पौराणिक मत (वालों) से शास्त्रार्थ की इच्छा का, विज्ञापन सर्वसाधारण को दिया गया । प्रात: और सायं प्रत्येक श्रेणी के मनुष्य नगर के प्रत्येक कोने से आ-आकर वहां एकत्रित होते और स्वामी जी, जो कि एक ऊंचे मंच पर चांदी की कुर्सी पर विराजमान थे, के सुन्दर मुख की ओर देखते । वे उनकी उत्तम भाषण शक्ति पर मोहित हो जाते और पण्डितों की कायरता पर आश्चर्य करते । पण्डित लोग प्रकट में तो उनका सम्मान करते थे परन्तु घरों में जाकर डींग मारते थे; किसी को उनके सामने आने का साहस न हुआ ।

स्वामी जी का व्यक्तित्व तथा प्रभाव—देखने वाले लोगों के हृदयों को जिस प्रकार वह वश में करते थे, लेखनी उसका वर्णन नहीं कर सकती । उनका माथा उभरा, आगे को निकला हुआ था; जिससे उनकी असाधारण मस्तिष्क-शक्ति का ज्ञान होता था; उनकी दृष्टि वश में करने वाली थी और उससे बड़प्पन का तेज टपकता था । उनका बोलने का ढंग प्रभावशाली, विद्वत्तापूर्ण और गम्भीरता से युक्त था और जब वह ऊंचे स्वर से भाषण देते थे तो उनका स्वर घरों की पुरानी महराबों में गूंजता था । उनका भगवे रंग का चोला, जो छाती के ऊपर लपेटा हुआ और आस्तीनों पर खुला लटकता था, प्रत्येक देखने वाले को सतयुग के प्राचीन ऋषियों का स्मरण कराता था । जूतों के स्थान पर उनके पांव में चन्दन की खडाऊं थीं । उनके मुख की गम्भीरता उनके शत्रुओं के हृदयों में भय तथा निराशा उत्पन्न कर देती थी । किसी उत्तम पदार्थ को प्राप्त कर लेने का उनका दृढ़ निश्चय उनके मुख पर कभी-कभी सोच-विचार के लक्षण उत्पन्न कर देता था ।

ब्राह्मणों की संस्था भले ही कितनी ही बड़ी क्यों न थी, वह उनके लिये कभी भी लाभदायक नहीं रही । उन्होंने अपने आप को भिक्षा मांगने वाले फकीरों के जत्थे में बांट लिया था और वे कमर कस कर इस बात पर उद्यत हो गये थे

कि यदि युक्तियों से नहीं तो लाठियों से अवश्य ही उससे शास्त्रार्थ करके निरुत्तर करेंगे । स्वामी जी के प्रति उनकी घृणा की मात्रा इतनी बढ़ी हुई थी !'

छपरा में पर्दे की ओट से शास्त्रार्थ

पर्दे का सुझाव देकर विरोधियों का उत्साह बढ़ाया—'एक दिन ब्राह्मणों ने पण्डित जगन्नाथ की सहायता मांगी जो कि नगर का एक सर्वप्रिय पुरोहित था और स्वयं सभा में सम्मिलित नहीं होता था । उसने ब्राह्मणों को यह बहाना करके सहायता देने से इनकार कर दिया कि यदि मैं जाऊंगा तो मुझे एक नास्तिक से बात करनी पड़ेगी और मेरा धर्म मुझे उसका मुख देखने की आज्ञा नहीं देता; और इतना ही नहीं, प्रत्युत निषेध करता है । यदि मैं ऐसा करूंगा तो मुझे प्रायश्चित करना पड़ेगा ।

ब्राह्मणों का जत्था उसके ऐसे वचन सुनकर, किसी परिणाम पर पहुंचे बिना ही, निराश होकर बिखर गया; परन्तु पूज्य दयानन्द ने दयालुता से उन्हें एक शुभ सम्मति दी कि जिससे वे किसी प्रकार उसे सामने लाकर अपने मत को सिद्ध कर सकें । स्वामी जी अपने शत्रुओं पर कृपा करते थे; अपनी कृपादृष्टि से उन्होंने सफलता का एक मार्ग उन्हें बतलाया जिससे कि वे प्रायश्चित किये बिना ही उनसे बात कर सकें । उन्होंने कहा कि मेरे उस मुंह के सामने पर्दा डाल दो जिसको देखने से अभिमानी पंडितों को पाप लगता है । यह उपाय, यद्यपि बड़ी दुविधा और सोच-विचार के पश्चात् ग्रहण किया गया परन्तु इस गोरखधन्धे में फंस कर पण्डित को अन्त में आना ही पड़ा । प्रत्येक व्यक्ति पण्डित जी की प्रतीक्षा में था, जिनके आने पर ही निर्णय होना था । अन्त में पण्डित अपने शिष्यों को साथ लेकर आया और एक पर्दा वास्तव में उनके बीच में डाल दिया गया ।

पर्दे की ओट से शास्त्रार्थ—प्रथम स्वामी जी ने स्मृतियों में से कुछ प्रश्न पंडित जी से किये परन्तु उनका उत्तर व्याकरण की अशुद्धियों से भरा हुआ था और जो उत्तर दिया वह यों भी स्मृतियों की दृष्टि से अशुद्ध था । स्वामी जी उन समस्त अशुद्धियों को प्रत्येक बार, सभा के सामने बतलाते रहे । संस्कृत बोलते हुए और पद पद पर आक्षेप करते हुए स्वामी जी ने उसे पूर्णतया निरुत्तर कर दिया । केवल निरुत्तर ही नहीं किया, प्रत्युत समस्त सभा को विश्वास दिला दिया कि वह नितान्त अज्ञानी और मिथ्या घमंडी है ।

फिर स्वामी जी चार घंटे तक, बिना किसी रुकावट के बड़े उत्तम ढंग से व्याख्यान देते रहे । इस भाषण के अन्त में पुरोहितों और पंडितों को निश्चय हो गया कि हम हार गये और हमारे नाम पर सदा के लिये कलंक रहेगा । यह सोचकर वे तत्काल बोल उठे कि वेदों के अनर्थ (विपरीत अर्थ) हो रहे हैं और स्वामी जी वेदों की अप्रतिष्ठा कर रहे हैं । फिर उनमें से जो अधिक उपद्रवी थे वे इस प्रकार धमकियां देते हुए कि, यदि स्वामी जी हमको मार्ग में मिले तो, हम उनको पत्थरों से मार देंगे-भाग गये । स्वामी जी छपरा में दो सप्ताह तक रहे और उनका आतिथ्य करने वाले ने उन्हें बड़ी सावधानतापूर्वक रखा । एक दिन जब वह वहां के स्कूल का निरीक्षण करने के लिए गये प्रत्येक कक्षा उनका सम्मान करने के लिए खड़ी हो गई । फिर वह वहां से दानापुर की ओर बिना किसी कष्ट के चल पड़े ।'

बिहार की एक पत्रिका ने **राय शिवगुलाम शाह बहादुर** के नाम का उल्लेख करके लिखा है 'एक बार श्री दयानन्द सरस्वती से शास्त्रार्थ करने के लिए ब्राह्मणों को एकत्रित किया परन्तु दयानन्द के सम्मुख शास्त्रार्थ या युक्ति-प्रत्युक्ति करने में कौन ठहर सकता है ? बड़े-बड़े ईसाई, मुहम्मदी और बौद्धमत वालों का तो कुछ ठिकाना नहीं, फिर इन साधारण ब्राह्मणों से क्या हो सकता है ? लोग कहते हैं कि ब्राह्मणों ने ताली बजा दी थी कि दयानन्द सरस्वती हार गये । राय शिवगुलाम शाह बहादुर इस बात को जान गया कि ब्राह्मणों ने व्यर्थ इनके साथ गोलमाल कर दिया । फिर उन्होंने स्वामी जी का शिष्टाचार भली-भांति किया और जाने के समय बहुत दूर तक साथ-साथ गये ।' ('बिहार दर्पण,' पृष्ठ २५३)

आरा का वृत्तांत (११ जून, सन् १८७३ से २२ जौलाई, सन् १८७३ तक)—आषाढ़ बदि प्रतिपदा तदनुसार ११ जून, सन् १८७३ को स्वामी जी ने आरा में पधार कर बाबू हरबंसराय लाल साहब के यहां निवास किया। उन्होंने स्वामी जी का बड़ा आदर सत्कार किया, सेवा शुश्रूषा में किसी प्रकार की कमी न रखी। लगभग एक मास से कुछ दिन ऊपर यहां निवास रहा और वैदिकधर्म के प्रचार में तत्पर रहे। कोई विशेष वृत्तान्त यहां का विदित नहीं हुआ। वहां से स्वामी जी डुमरांव की ओर चले गये।

रियासत डुमरांव में दूसरी बार (२६ जौलाई, सन् १८७३ से ८ अगस्त सन् १८७३ तक)—आरा से चलकर स्वामी जी रेल द्वारा डुमरांव में पहुंचे और रेलवे स्टेशन के समीप राजा साहब डुमरांव के बंगले में निवास किया। रियासत की ओर से प्रत्येक प्रकार का प्रबन्ध किया गया। महाराजा साहब डुमरांव अपने दीवान साहब को लेकर मिलने को पधारे और दर्शनों से लाभ उठाया तथा उन्होंने अपने संशय निवृत्त किये।

साधु जवाहरदास जी उदासी, बनारस निवासी, वर्णन करते हैं कि 'इस बार पंडित दुर्गादत्त शैव के साथ मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ होने को था परन्तु उसने अस्वीकार किया और कहा कि मूर्ति की हम पूजा करते हैं, आप के खंडन करने पर हम कुपित होंगे। इस कारण से इस विषय पर शास्त्रार्थ न हो। इसके अतिरिक्त और विषयों पर कुछ वार्तालाप मित्रतापूर्वक होता रहा।

पंडित दुर्गादत डुमरांव निवासी (जो स्वयं अपनी प्रशंसा करने के रोग में ग्रस्त हैं और जिन्होंने अपना नाम परमहंस दुर्गादत्त, योगिवर्य, विप्रराजेन्द्र आदि आदि रखा हुआ है) ने वर्णन किया कि 'काशीसभा (काशी शास्त्रार्थ) के तीन वर्ष पश्चात् स्वामी जी कलकत्ते से लौट कर बनारस की ओर जाते हुए यहां उतरे। राजा साहब की बड़ी कोठी में, जो रेलवे स्टेशन के समीप है, निवास किया। जब दयानन्द जी आये तो पंडितों ने उनके पास जाना और मिलना आरम्भ किया। राजा साहब ने भी विशेष-विशेष पंडितों को बुला कर कहा कि पंडित लोग जायें और उनकी विद्या और धर्म का परिचय प्राप्त करें। जिस पर यहां के सब पण्डित, जैसे राधाकृष्ण जी, ठाकुर पंडित, पंडित सोमेश्वर दत्त, पंडित चन्द्रमणि जी आदि अकेले-अकेले गये परन्तु सब परास्त होते रहे। तब महाराज ने विचार किया कि हमारे राज्य में कोई भी इनकी टक्कर का नहीं। ऐसा सोच विचार कर राय बहादुर दीवान जयप्रकाश जी के द्वारा हमको बुलवाया और राजा साहब ने स्वामी जी को भी रेलवे वाली कोठी से तालाब के ऊपर वाली कोठी पर बुलाया। राजा साहब और दीवान साहब के अतिरिक्त वहां पर तीन सौ के लगभग मनुष्य थे।'

डुमरांव में शास्त्रार्थ

पं० दुर्गादत्त से बातचीत व शास्त्रार्थ[१८९]—पण्डित जी चूंकि महादेव के पुजारी थे और यह निश्चय हो चुका था कि शास्त्रार्थ मूर्तिखंडन पर नहीं होगा। इसलिए पण्डित जी इस विचार से कि मूर्ति के बिना यात्रा करना पाप है, शिवलिंग की मूर्ति साथ ले गये और अपने सामने कुर्सी पर रख दी और वार्ता आरम्भ हुई।

अद्वैत का सही अर्थ यही है कि ब्रह्म दूसरा नहीं है, इसमें जीव का निषेध नहीं है। स्वामी जी—हम द्वैत मानते हैं। पण्डित जी—'एकमेवाद्वितीयम् ब्रह्म' इस श्रुति से विरोध होता है; अर्थात् आपका द्वैत मानना इसके विरुद्ध है। स्वामी जी-इसका यह अर्थ नहीं जो आप समझें, प्रत्युत इसका यह अर्थ है कि जैसे किसी के घर में कोई उपस्थित न हो तो वह कहता है कि यहां (घर में तो) मैं एक ही हूं और कोई नहीं; परन्तु (उसके इस कथन से) गांव वालों, नाते वालों और कुटुम्ब का निषेध नहीं होता; वे (अन्यत्र) विद्यमान हैं, उनका अस्वीकार नहीं; परिणाम जैसा शंकराचार्य मानते हैं कि

सजाति-विजातिगत भेद शून्य ब्रह्म है, वह मत मिथ्या है; हम उसको नहीं मानते । यहां केवल दूसरे ब्रह्म का निषेध है, न कि जीव का भी । पं० जी—इस सिद्धान्त को तो हम नहीं मानते । स्वामी जी—शंकराचार्य के सिद्धान्त को न मानने में हमने तो युक्ति दी है परन्तु जो आप नहीं मानते तो आपके पास क्या प्रमाण है ? इसका उन्होंने कोई उत्तर न दिया ।

ईश्वर की मूर्ति होना वेद से प्रमाणित नहीं होता—स्वामी जी ने मूर्ति के विषय में आक्षेप किया कि मूर्तिपूजा में श्रुति का कोई प्रमाण नहीं है । पण्डित जी ने 'ब्राह्मणोऽस्य मुखामासीद् बाहू राजन्यः कृतः । उरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥(यजु० ३१ । ११) 'त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्' (यजु० ३ । ६०) ये दो श्रुतियां प्रमाणस्वरूप उपस्थित कीं और कहा कि यदि मुख नहीं तो चारों वर्णों की उत्पत्ति कैसे हुई और मूर्ति नहीं तो मुख कहां से आया ? और दूसरा मन्त्र विशेषतया शिव की पूजा का है, जिसके तीन नेत्र हैं और जाबालोपनिषद् में लिखा है—'धिक् भस्मरहितं भालं धिक् ग्राममशिवालयम्' इत्यादि प्रमाणों से मूर्तिपूजा सिद्ध है । आप कैसे कहते हैं कि मूर्तिपूजा में श्रुति प्रमाण नहीं है ?

स्वामी जी ने प्रथम उन दो मन्त्रों का व्याकरण और ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार यथार्थ अर्थ करके उनके भ्रम का निवारण करने का प्रयत्न किया और फिर बताया कि प्रामाणिक उपनिषदों में जाबाल नहीं है, वह जालोपनिषद् है उसके रूप में किसी ने वाग्जाल रचा और वेदविरुद्ध है, इसलिए अप्रमाण है । इस पर पण्डित जी ने कुछ उत्तर न दिया । समस्त श्रोता इस बात से परिचित हैं तथा स्वयं दीवानसाहब इसके साक्षी हैं । फिर गीता के श्लोक 'सर्वधर्मान् परित्यज्य' पर कुछ बातचीत होकर हंसी-खुशी सभा विसर्जित हुई ।

स्वामी जी से निरुत्तर होकर भी पं० दुर्गादत्त का सफेद झूठ—परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी पण्डित जी, मूर्तिपूजा के (प्रति) पक्षपात और उससे उत्पन्न अज्ञान के कारण अपनी दिग्विजय (दिखाने) के निमित्त ऐसा अनर्थ लिखते हैं कि जिससे प्रत्येक आस्तिक को घृणा होनी चाहिये । उन्होंने लिखा—'नो शशाक यदा प्रोक्तुं प्रहस्य अथाब्रवीद्वचः; धन्यस्त्वं हि महानात्मा सर्वज्ञः शास्त्रपारगः ॥ अथ सोऽपि सदा वक्तुं न शशाक तदा निरस्तो भूत्वा धन्यस्त्वमिति प्रशंसया दयानन्दः श्रीमद्योगिवर्यम्विप्रराजेन्द्र प्रणम्येत्याह नो शशाक अथ त्वं महानात्मा ब्रह्मैव नाहं वदन्य वक्तारं दृष्टवानिति' अर्थात् जब दयानन्द उत्तर देने में असमर्थ हुआ तब हंसकर कहा कि हे पण्डित दुर्गादत्त जी, तुम धन्य हो, तुम ब्रह्म हो, मैं जीव हूं, तुम सर्वज्ञ हो और सब शास्त्रों के पूरे जानने-वाले हो, इस प्रकार दयानन्द जी ने हमारी प्रशंसा की और हमें प्रणाम करके कहा कि तुम ब्रह्म से मैं जीव बात नहीं कर सकता ।' (पृष्ठ १४)

पाठकगण ! देखिये यह कितना बड़ा झूठ है । और झूठ का ऐसा तूफान उठाते हुए पौराणिक पण्डितों को तनिक लज्जा नहीं आती । जून १८७३ तदनुसार आषाढ़ संवत् १९३० में वह स्वामी से मिले और अक्टूबर १८८३ तदनुसार सं. १९४० तक स्वामी जी जीवित रहे । तब तक गरुड़ जी के भाई ने एक शब्द न लिखा और स्वामी जी की मृत्यु के पश्चात् संवत् १९४१ में अपना शिर से पांव तक मिथ्या जीवनचरित्र, ऐसी ऐसी निकम्मी बातों से भरा हुआ, लिख मारा ।

संवाददाता जब उनसे १७ जनवरी, सन् १८९१ को स्वामी जी का वृत्तांत जानने के लिए मिला और बातचीत के समय मूर्तिपूजा का प्रमाण मांगा तो कहा कि हमने इसका प्रमाण पुस्तकों में लिख दिया है (उस समय आप शिवलिंग की पूजा कर रहे थे) । मैंने 'न तस्य प्रतिमा अस्ति' (यजुर्वेद ३२ । ३) वाला मन्त्र पढ़ा तो विवश होकर हवनकुंड से मुझे एक चुटकी राख की दी । मैंने ले ली और फिर फेंक दी । उन्होंने कहा कि मैंने खाने के लिए दी थी । मैंने कहा कि पागल इसे खाते हैं; बुद्धिमान् नहीं खाते । तब एक बड़ी चौड़ी रेवड़ी दी और उस पर राख मल दी कि इसके खाने से रात को तुम्हें शिव जी स्वयं दर्शन देकर मूर्तिपूजन का निश्चय करा देंगे । मैंने राख पोंछकर रेवड़ी खा ली । दूसरे दिन जब मैं गया तो उन्होंने पूछा कि रात को निश्चय हुआ या नहीं ? मैंने कहा ऐसी तुच्छ बातों से रेवड़ी के मीठा होने के अतिरिक्त और क्या निश्चय

हो सकता है ? तब लज्जित होकर और बातें बनाने लगे । यही दशा समस्त ऐसे ब्राह्मणों की है । वे जगत् को ठगने में बड़े चतुर तथा निर्भीक हैं, सत्य ग्रहण करने का उन्हें तनिक भी ध्यान नहीं ।

सावन सुदि पूर्णमासी, संवत् १९३०, तदनुसार ८ जनवरी, सन् १८७३,[१९०] शुक्रवार को स्वामी जी डुमरांव से रेल में चढ़कर, मिर्जापुर पहुंचे और पाठशाला के प्रबन्ध में संलग्न हो गये, परन्तु पण्डित ज्वालादत्त के कुप्रबन्ध से पाठशाला की दशा शोचनीय थी । इसलिए उसे तोड़ दिया और वहीं साधु जवाहरदास जी को बनारस से बुलाया और बनारस में पाठशाला खोलने के विषय में उनसे परमार्श किया । वह सहमत हो गये और चन्दा एकत्रित करने के लिए प्रयत्न करने लगे । वहां से चलकर स्वामी जी इलाहाबाद आये और कुछ दिन यहां अलोपी बाग में ठहर कर कानपुर को चले गये ।

कानपुर का वृत्तांत (२० अक्तूबर, सन् १८७३ से १९ नवम्बर, सन् १८७३ तक)

पंडित हेमचन्द्र चक्रवर्ती ने वर्णन किया—'हम कलकत्ता से चलकर शिक्षा प्राप्त करने के लिए स्वामी जी के पास कानपुर में पहुंचे । वह उस समय गंगा के टोकाघाट पर थे; यह घाट नगर की आबादी से दो-डेढ़ कोस दूर है । वहां एक कुटिया में बिछाली (पियार) बिछी हुई थी, स्वामी जी वहीं रहते थे । हम भी उनके पास रहे ।

एक दिन स्वामी जी के साथ किसी सम्भ्रान्त व्यक्ति के घर पर गये । वहां उन्होंने गायत्री पर व्याख्यान दिया । बहुत लोग एकत्रित थे और एक ब्रह्मचारी भी स्वामी जी के साथ था जो थोड़ा पढ़ा हुआ था और भोजन बनाया करता था ।

वैदिक पाठशालाओं और वेदभाष्य से उपकार की आशा : दिन-रात का विस्तृत कार्यक्रम—यहां प्रातःकाल स्वामी जी शौच को जाते, फिर आकर आध घंटा दातुन करते, फिर कुल्ला आदि करते हमको उपदेश देते अर्थात् उपनिषद् पढ़ाते । उस समय उनका विचार था कि यदि सब स्थानों पर वैदिक पाठशाला हो जावें तो बड़ा उपकार होगा और जब वेदभाष्य हो जावेगा तो बहुत ही उपकार होगा ।

तैरते हुए आध घंटे तक सूर्यावलोकन—दोपहर के समय स्वामी जी स्नान करते और गंगा के प्रवाह में चित्त लेटे हुए बहते तथा सूर्य की ओर देखते चले जाते; घंटे के लगभग या कुछ अधिक ।

नहाने के पश्चात् व्यायाम अर्थात् दंड करते, फिर धूप में सूर्य की ओर मुंह करके पड़े रहते और कुछ विश्राम करते । तत्पश्चात् ब्रह्मचारी रसोई तैयार करके उन्हें बुलाता, वह हमें साथ ले भोजन को जाते, गरम-गरम फुल्के पका कर ताजा-ताजा घी में भिगो कर देता जाता और हम खाते जाते । एक सब्जी भी होती थी । खाने से पहले ब्रह्मचारी बलिवैश्वदेव करता था ।

बलिवैश्वदेव यज्ञ के अन्न का वितरण—खाने के पश्चात् एक रोटी ऊपर चील-कव्वों के लिए फेंकते; दूसरी पृथ्वी पर कुत्ते के लिए और तीसरी गंगा में मछलियों के लिए डाल देते ।

बोलते समय बीच-बीच में उबले जल का सेवन—फिर थोड़ा विश्राम करते और एक पात्र में पानी डाल कर रख लेते; एक पत्थर ईंट का रोड़ा अच्छी प्रकार तपाकर उस बर्तन में डाल ऊपर उसका मुंह कपड़े से बांध देते और फिर उस जल से घूंट-घूंट पिया करते थे । जो लोग आते उनको सायंकाल के पश्चात् विदा कर देते और उस समय पाव भर गरम दूध, चाय की तरह, पीते थे और हम लोगों से हंसी-खुशी की बातें किया करते ।

आजीविका के जाने की आशंका से पण्डित सत्य को छिपाते हैं—एक दिन हमने पूछा कि इतने बड़े-बड़े पण्डित लोग आप से विचार के लिए आते हैं तो ये सभी भूलते हैं ? कोई कुछ नहीं जानता ? केवल आप ही की बात ठीक है ?

उस पर स्वामी जी ने हंस कर उत्तर दिया कि सत्य तो बहुत लोग जानते हैं परन्तु रोटी बन्द हो जाने के विचार से साफ-साफ नहीं कहते ।

रात भर योगाभ्यास करने का नियम—फिर हम लोगों से पृथक् होकर स्वयं सारी रात इसी प्रकार बैठ कर योगाभ्यास करते थे । कई बार जब हम ११-१२ बजे उठे तो उनको पद्मासन लगाये योगानन्द में बैठे देखा और इसी प्रकार किसी और समय भी उठते तो उनकी यही दशा देखते थे ।

अत्यन्त प्रबल शीत ऋतु होती तो भी (इस समय भी ?) वह वस्त्र बिल्कुल नहीं पहनते थे । जब रात को उनकी समाधि के समय हम लोग ऊंचे-ऊंचे बात करते तो स्वामी जी हुंकार मार देते थे । हम लोग मौन हो जाते थे । एक लंगोट रखते और दिगंबर रहते थे । जब कभी स्वामी जी का ध्यान प्रातःकाल से पहले खुल जाता और हम लोग उस समय सोते होते तो जगा देते और कहते उठो, गायत्री (पाठ) करो, उठो, गायत्री (पाठ) करो ।

स्त्री लोगों की मूर्ति नहीं देखते थे और जिस ओर वे नहाती थीं, उधर वे कभी न जाते थे । न मिठाई खाते थे, न उत्तम गरम कपड़ा या बनात आदि पहनते थे; यदि कोई लाता तो ब्रह्मचारी को बता देते (दिलवा देते) या जाते समय लोगों को बांट देते । जब कानपुर से चलने लगे तो कपड़े और मिठाइयां सब कुछ निर्धन लोगों में बांट दिया ।

पंडित हृदयनारायण कौल दत्तात्रेय, वकील, कानपुर ने वर्णन किया, 'जब स्वामी जी कलकत्ता से लौटकर आये तो पहले जितना कोलाहल नहीं हुआ; परन्तु संशयनिवारण के लिए बहुत से लोग आते-जाते रहते थे । इस बार ८-९ दिन तक ओ३म् और गायत्री के अर्थ लट्ठ घाट पर स्थित पंडित काशीनारायण के बंगले पर सुनाते रहे । प्रायः लोग सुनने को आया करते थे । एक दिन एक मनुष्य बकवास करने लगा, पंडित जी के मनुष्यों ने पकड़ कर यह कहकर निकाल दिया कि बीच में बोलने का अधिकार नहीं है ।'

इस बार पहले ही व्याख्यान में विघ्न पड़ गये—कानपुर के वकील बाबू क्षेत्रनाथ घोष बंगाली ने वर्णन किया, 'जब स्वामी जी कलकत्ता से लौटकर आये तो घाट पर उतरे । इस बार हमने उनके व्याख्यान का सुझाव रखा । परेड के मैदान में शामियाना खड़ा करके मैजिस्ट्रेट को सूचित किये बिना उनके व्याख्यान की डोंडी पिटवा दी । व्याख्यान आरम्भ होने से कुछ पहले कोतवाल ने, जो गुरुप्रसाद[१९१] से (देखो शास्त्रार्थ कानपुर) कुछ सम्बन्ध रखता था, कहा कि आपने मैजिस्ट्रेट को सूचित किये बिना क्यों डोंडी पिटवायी ! यदि बलवा (झगड़ा) हो जायेगा तो कौन प्रबन्ध करेगा ? मैंने उत्तर दिया कि 'आप ! उसने कहा कि 'मैं प्रबन्ध पीछे करूंगा पहले साहब को सूचित कर आऊं । वह सूचित करने घोड़ा दौड़ाकर गये और मैं भी पीछे चला गया । चूंकि उन दिनों मैं फौजीदारी के दफ्तर का उच्च अधिकारी था, कलैक्टर मिस्टर सी० जी० डैनियल साहब ने बंगले से निकलते ही, पहले मुझ से पूछा । मैंने अंग्रेजी में सब वृत्तांत निवेदन कर दिया कि एक विद्वान् पण्डित जी, जिनको आप भी फर्रूखाबाद से जानते हैं, आये हैं । आज उनके व्याख्यान के लिए मैंने आपको सूचित किये बिना मुनादी करा दी है । साहब ने कहा कि कुछ चिन्ता नहीं, वह बड़े विद्वान् हैं, हमने उनका नाम सुना हुआ है । व्याख्यान अवश्य हो, परन्तु उनको कह देना कि कोई कड़ा शब्द न कहे । मैंने कहा कि वे विद्वान् पंडित हैं, ऐसा कभी नहीं करते । इस पर साहब ने कोतवाल से कह दिया कि शीघ्र जाओ, प्रबन्ध करो ।

सारांश यह है कि व्याख्यान आरम्भ हुआ । जब बहुत कुछ हो चुका तो एक ढेला किसी ने फेंका । हमने कोतवाल की शरारत जानकर व्याख्यान बन्द करा दिया । इस बार स्वामी जी कुछ भाषा बोलने लगे थे ।'

पंडित शिवसहाय जी ने कहा, 'इस बार स्वामी जी के व्याख्यानस्थान से कुछ दूरी पर प्रयागनारायण[१९२] ने एक शामियाना खड़ा करके एक मोहनगिरि गुसांई को खड़ा कर दिया । वह स्वामी जी को गालियां देता था और कहता था कि

'यह झूठा है, अंग्रेजों ने भेजा है, बुरा है, (लोगों को) किरानी[१९३] बनाने आया है ।' अभिप्राय यह कि सैकड़ों प्रकार की गालियां देता था । उस दिन साधारण लोगों ने जो प्रयागनारायण के सहायक थे उसकी प्रेरणा से कुछ ईंटें फेंकी भी थीं । यहां तक कि एक पत्थर स्वामी जी के समीप आकर पड़ा; इस पर क्षेत्रनाथ जी और अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति तथा वकील स्वामी जी को अपने साथ ले गये ।

मूर्ति उसकी रखते हैं जिसका कि अभाव हो : गंगा की वर्तमानता में गंगा की मूर्ति से क्या लाभ ? दूसरा व्याख्यान ला० शिवप्रसाद खजांची के मकान, बंगाल बैंक में हुआ—उसमें कोई विघ्न नहीं हुआ । इस बार ला० दरगाहीलाल वकील के भैरोंघाट पर इसलिये न उतरे कि वह बन रहा था । स्वामी जी ने उनको कहा कि यहां एक हवनकुंड बना देना, मूर्ति स्थापित न करना परन्तु स्वामी जी के चले जाने के पश्चात् लोगों ने उनको तंग किया जिस पर उन्होंने विवश होकर गंगा जी की मूर्ति स्थापित कर दी । जब स्वामी जी तीसरी बार आये तो मूर्ति का पधराना सुनकर वहां पर न ठहरे । वह दर्शनों को आये तो स्वामी जी ने कहा कि यह तुमने क्या किया, बहुत मूर्खता की । मूर्ति उसकी रखते हैं, जिसका अभाव हो, गंगा तुम्हारे घाट के नीच बहती है, उसकी मूर्ति रखने से क्या लाभ ?

'नीतिप्रकाश सभा'[१९४] लुधियाना की सन् १८७३ की पत्रिका के पृष्ठ ५९२ पर लिखा है—'कानपुर से हमारे संवाददाता २५ अक्तूबर, सन् १८७३ को लिखते हैं 'स्वामी दयानन्द सरस्वती कुछ दिन से यहां आये हुए हैं । उनका निर्देश है कि परमेश्वर के अतिरिक्त दूसरे की उपासना न करो और मूर्तिपूजा निकम्मा कृत्य है । वे वेदों और स्मृति को अभिनन्दनीय समझते हैं और भागवत आदि पुराणों को किस्सा-कहानी बताते हैं । नगर के मुन्सिफ साहब और कुछ सरकारी अधिकारियों की सहायता से उन्होंने कई स्थानों पर व्याख्यान दिये परन्तु नगर के बनिये और महाजन उनको नास्तिक और भ्रष्ट बताते हैं ।'

स्वामी जी के प्रति अज्ञजनों के व्यवहार पर एक स्पष्टोक्ति

अज्ञ जनों द्वारा स्वामी जी की निन्दा पर एक पत्रकार का व्यंग्य—राय कन्हैयालाल अलखधारी, (सम्पादक) ने अपने 'ग्रन्थसंग्रह' में लिखा है, 'भूतों और चुड़ैलों की पूजा सिखाने वाले, मूर्ख पूजने वालों को डरा फुसला कर, उनकी स्त्रियों, जमीनों और सम्पत्तियों को ठग लेते हैं और कामरूप के जादू के मेढे बने हुए वे वैसी ही चेष्टाएं करते हैं जैसी कि जादू के बल से उनको सिखाई जाती हैं । प्रसिद्ध लोकोक्ति है कि 'कूंए में भंग पड़ीं अर्थात् किसी ग्राम के पानी पीने के किसी कूप में किसी ने भंग डाल दी । अब जो मनुष्य उस कूप से पानी पीता, वह मूर्छित हो जाता था । भारत के तो आज समुद्र और नदियों में ही नहीं, अपितु उसके बादलों तक में भंग पड़ गई है या वीर्य में भी, कि यहां जो है सो पागल है । जो सृष्टि के रचयिता, कारीगरियों के कारीगर, पदार्थों के उत्पादक और संसार के पालनकर्ता को मानता है वह तो नास्तिक और भ्रष्ट है ! और जो पत्थर काटने वालों और ठठेरों के बनाये खिलौनों से अल्पवयस्क छोकरियों के समान खेलते हैं, लिंग तथा जलहरी को पूजते हैं, ताजियों से मनोकामनाओं की पूर्ति की आशा रखते हैं, शेख, सिद्दू और मगनपुर वाले मुर्दों की कब्र पर जाकर जात देते हैं और झूठे किस्से-कहानियों में विश्वास करते हैं, श्रीकृष्ण पर व्यभिचार, चोरी, मक्कारी आदि लांछन लगाते हैं, वे उत्तम भक्त और सन्त जन हैं । सच है, नकटों की सभा में नाकवाला लज्जित होता ही है । सच मानो, जिनके कहने पर चलते हो वे तुम्हारे लोक और परलोक के शत्रु हैं । यदि मित्र हैं तो नादान मित्र हैं । यह (स्वामी दयानन्द) ब्रह्मस्वरूप आत्मारूप निष्कलंक अवतार हैं । खेद है कि संसार के लोगों को जो भयानक परन्तु रोचक बात कहे वह तो उन्हें मीठी लगे, और सच्ची कहे वह कड़वी ? भारत के लोग—मूर्तिपूजा में भी निष्णात नहीं हैं; (उन्हें मूर्तिपूजा करने का सही और पक्का मार्ग ज्ञात नहीं है) यदि वे पक्के पत्थर से बने होते तो जब महमूद गजनवी और पितृघातक आलमगीर ने

उनकी मूर्तियों को तोड़ा था तब उनसे लड़ते और जिस प्रकार उन्होंने भारत के उपासना गृह (मंदिर) भ्रष्ट किये थे, ये उनके उपासनागृहों को तोड़ते। प्रतिदिन हजारों हिन्दू धर्मपरिवर्तन करते हैं और जो हिन्दूपन का दावा रखते हैं, वे मुस्लिम-मुर्दों की कब्रों से नाक रगड़ते हैं। अकस्मात् जो एक ईश्वरोपासक उनके नगर में कहीं से आ जावे तो उसको नास्तिक और भ्रष्ट बताते हैं। बुझा हुआ दीपक कहां और सूर्य का प्रकाश कहां। यह देखना चाहिए कि इन दोनों में कितना अन्तर है। जो जिसको पूजता है वह उसी के समान हो जाता है। मूर्तियों को पूजने से भारतीय मूर्तियों जैसे जड़ हो गये हैं। वे उनके समान अपने स्थान से सरक नहीं सकते और जो अत्याचार उन पर होते हैं उनको वे वैसे ही सहते हैं जैसे कि मूर्तियां। मूर्तिपूजक भारतीयों ने दूसरे देश की एक बिस्वा जमीन भी कभी नहीं ली और न एक फूटी कौड़ी (कभी ली) और अपनी स्त्रियां, पृथिवी और धन दूसरों को देते रहे। यह सारा गौरव (?) उनको उनकी मूर्तिपूजा से प्राप्त हुआ है। यदि उनकी समझ ऐसी ही रही तो कुछ दिन में उनका नाम मात्र चिह्न तक भी नहीं ही रहेगा।'—("कुलियात अलखधारी", मकाला २, बाब २, फस्ल ९, पृष्ठ ६७६ ।)

फर्रूखाबाद का वृत्तान्त (२० नवम्बर, १८७३ से १० दिसम्बर, सन् १८७३ तक) [१९५]

पहले के शत्रु अब भक्त बन गये—हेमचन्द्र जी चक्रवर्ती कहते हैं—'कानपुर से हम सायंकाल को स्वामी जी सहित घोड़ागाड़ी में सवार हुए। एक गाड़ी के स्थान पर कश्मीरी पण्डित महोदय चार-पांच घोड़ागाड़ियां ले आये थे। स्वामी जी ने कहा कि मैं अकेला व्यक्ति पांच गाड़ियों पर तो नहीं जाऊंगा। ठीक है; तुम लोगों की श्रद्धा अच्छी है; हम प्रसन्न हैं। फिर वे गाड़ी में बैठे और हम भी गये। स्वामी जी सारी रात आसन लगाये अपने ध्यान में बैठे रहे। आठ बजे प्रातःकाल फर्रूखाबाद पहुंचे। वहां एक बाग में, जिसमें मन्दिर भी था, उतरे। वहीं स्वामी जी की पाठशाला थी; वह एक बहुत बड़ा बाग था। कुछ लोगों के विषय में स्वामी जी ने कहा कि ये लोग हमको पहले मारने आये थे, अब भक्त हो गए हैं। उस समय हमको नास्तिक कहते थे। फर्रूखाबाद से हम रोगी होकर चले।'

पण्डित गोपालराव हरि जी ने वर्णन किया—'यहां चौथी बार स्वामी जी संवत् १९३० के पौष मास[१९६] में पूर्व से (कलकत्ता की ओर से) आये। इस अवसर पर उन्होंने देशोपकार की दृष्टि से मेरे द्वारा शिक्षा विभाग के डायरैक्टर कैम्पसन साहब और पश्चिमोत्तर प्रदेश (अब उत्तर प्रदेश) के गवर्नर म्यूर साहब से मिलने का उद्योग किया था।'

पंडित हृदयनारायण जी, वकील, कानपुर ने वर्णन किया—'फर्रूखाबाद में स्वामी जी ने लैफ्टीनेण्ट गवर्नर म्यूर साहब से बातचीत करते हुए कहा था कि हमने सुना है कि आप यहां से विलायत जाकर इण्डिया कौंसिल के सदस्य होंगे। इसलिए अच्छा होगा कि भारत के हितार्थ गोरक्षा के लिए आप कुछ प्रयत्न करें। उन्होंने वचन दिया था। इन्हीं दिनों किसी पादरी साहब से भी गोरक्षा के विषय में साहब को सहमत कर लिया था। स्वामी जी यहां से कासगंज गये, वहां आठ-दस दिन निवास किया और पाठशाला का प्रबन्ध करके २० दिसम्बर, सन् १८७३ के लगभग छलेसर चले गये।'

छलेसर (जिला अलीगढ़) का वृत्तांत : इस बार विरोध घटा

२० दिसम्बर, सन् १८७३, शनिवार तदनुसार पोह सुदि १,[१९७] संवत् १९३० को कासगंज से चलकर स्टेशन राजघाट पर स्वामी जी ने कर्णवास के ठाकुर लोगों से भेंट की और छलेसर की पाठशाला में निवास किया। छलेसर-निवास के समय राजा जयकिशनदास साहब सी० एस० आई० डिप्टी कलैक्टर, स्वामी जी के दर्शनों को पधारे और वचन लेकर लौट गये। स्वामी जी ने तीन-चार दिन पाठशाला में लोगों को धर्मोपदेश दिया। आस-पास के हजारों लोग उपदेश सुनने आया करते थे। विरोध की उतनी प्रबलता जितनी पहली बार हुई थी, इस बार नहीं हुई। ब्रह्मचारी क्षेमकरण स्वामी जी के

साथ थे । बाहर से आये हुए पंडितों में से किसी के साथ शास्त्रार्थ नहीं हुआ । जिन लोगों ने वार्तालाप किया, उन्होंने केवल निश्चय के लिए ही वार्तालाप किया; शास्त्रार्थ के लिए नहीं । पाठशाला के सम्बन्ध में जो कुछ परिवर्तन करना था जब वह कर चुके तो वहां से ठाकुर मुकुन्दसिंह जी सहित हाथी पर चढ़कर, अन्य २०-२५ राजपूतों के साथ, ४ बजे सायं काल अलीगढ़ पधारे ।

अलीगढ़ में व्याख्यान माला : सामूहिक प्रश्नों से भी कोई कष्ट नहीं माना—२६ दिसम्बर, सन् १८७३, तदनुसार पौष संवत् १९३० को स्वामी जी अलीगढ़ के बाग चाऊलाल में; अचल तालाब के समीप, ठहरे और राजा जयकिशनदास साहब के अतिथि हुए । महाराज के आते ही नगर, कस्बे और देहातों के लोग सहस्रों की संख्या मे आ-आकर वहां एकत्रित हो गये और धर्मसम्बन्धी बात-चीत आरम्भ हो गई । १० बजे रात तक लोगों ने प्रत्येक प्रकार के प्रश्न किये परन्तु स्वामी जी महाराज किसी के प्रश्नों से तंग नहीं आये । उस दिन १० बजे तक स्वामी जी को बिलकुल अवकाश न मिला । शनिवार, २७ दिसम्बर, सन् १८७३ को नगर के रईसों की प्रार्थना पर उसी बगीचे में स्वामी जी का व्याख्यान हुआ और उसमें विशेष रूप से नगर के गण्यमान्य हिन्दू, मुसलमान तथा नागरिक एवं सैनिक विभाग के अधिकारी सम्मिलित हुए । वह व्याख्यान दिन के लगभग आठ बजे से आरम्भ होकर लगभग १२ बजे रात को समाप्त हुआ था । व्याख्यान के पश्चात् जिन लोगों को कुछ पूछना था, वहीं उसी समय उन्होंने पूछ लिया । इसी प्रकार कई दिन तक निरन्तर व्याख्यान होते रहे ।

व्याख्यानों के अतिरिक्त भी अवकाश का कोई समय स्वामी जी को न मिलता था । कोई न कोई पंडित या मौलवी उपस्थित रहता ही था । एक पंडित बुद्धिसागर जी, जो अलीगढ़ के पण्डितों में अत्यन्त प्रख्यात थे, स्वामी जी से मिले और परस्पर संस्कृत भाषा में बातचीत होती रही । भेंट के पश्चात् वह सदा स्वामी जी की प्रशंसा किया करते थे ।

अभिमानी पण्डित सामने नहीं आया—यहां के पण्डित मेहरचन्द (जो उस समय बद्रीप्रसाद वकील की पाठशाला में पढ़ाते थे) बहुत समय से लोगों को अभिमान वश कहा करते थे 'जब स्वामी जी अलीगढ़ आयेंगे तो मैं उनके साथ शास्त्रार्थ करूंगा और दो मिनट में परास्त कर दूंगा ।' परन्तु यहां स्वामी जी ने लगभग एक सप्ताह निवास किया और नित्यप्रति उनके पास विज्ञापन भेजे गये परन्तु वह एक दिन भी न पधारे और बहाना यह किया कि जब स्वामी जी प्रतिमा का खंडन करते हैं तो हम उनका मुख नहीं देखना चाहते । स्वामी जी ने इसके उत्तर में कहा कि पंडित जी यदि मुझको देखना नहीं चाहते तो बीच में एक परदा खड़ा कर दिया जाये । उधर से वह बोलते जावें इधर से हम । यदि वह भी स्वीकार नहीं तो एक दीवार के परली ओर वह बैठ जावें, उधर से वह, इधर से हम बोलेंगे परन्तु दीवार ऐसी हो कि वह हमारी सुन सकें और हम उनकी । परन्तु इन सब सुझावों में से पंडित जी ने एक भी स्वीकार न किया, मैदान में पांव न रखा और न किसी बात पर ठहरे ।

इस बार एक दिन उसी बाग में स्वामी जी महादेव के मन्दिर के पास फर्श पर बैठे हुए थे । एक शीघ्रबोधी पंडित[१९८], जो कस्बा कोल का रहने वाला था, वहां आकर और मन्दिर के चबूतरे पर बैठकर स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने लगा । उस समय श्रोताओं में से कुछ सभ्य व्यक्तियों ने उससे कहा कि यदि आप बातचीत करना चाहते हैं तो सभ्यतापूर्वक नीचे फर्श पर आकर वार्तालाप कीजिए परन्तु वह उसी स्थान पर बैठा रहा । इस पर स्वामी जी ने कहा कि कुछ हानि नहीं; पंडित जी को वहीं बैठा रहने दो; केवल ऊपर-नीचे बैठने से किसी को बड़प्पन नहीं मिल सकता । देखो ! यह कौआ जो वृक्ष पर बैठा हुआ है, वह पंडित जी से भी ऊंचा है; इससे भला क्या होता है ? परन्तु वह पण्डित वहां से हिला तक नहीं ।

गाली देने वाले की उपेक्षा—वहीं एक भंगेड़ी-चरसी साधु यह पूछता हुआ आया कि दयानन्द कौन है और कहां है ? स्वामी जी के पास आकर भी उसने यही प्रश्न किया । उस समय सौ-डेढ़ सौ मनुष्य स्वामी जी के पास बैठे हुए थे ।

उन्होंने संकेत किया कि यह हैं। स्वामी जी ने उससे पूछा कि तूने गले में क्या डाला हुआ है? तो उसने कहा कि रुद्राक्ष। स्वामी जी ने कहा कि रुद्र की आंख तू उखाड़ लाया है? जिस पर वह और भी क्रोध में आया और कई बेतुकी गालियां दीं परन्तु स्वामी जी तनिक भी दु:खित न हुए परन्तु जब वह गालियां देने से चिरकाल तक न रुका तो स्वामी जी लोटा लेकर शौच को चले गये, अन्यथा यदि वह इशारा करते तो लोग उसे अच्छी प्रकार सीधा करते।

इन्हीं दिनों बेसवां, जिला अलीगढ़ के एक रईस, ठाकुर गुरुप्रसादसिंह (जिन्होंने एक यजुर्वेद भाष्य छपवाया है और कहते हैं कि यह भांष्य हमने लिखा है यद्यपि वह उन्होंने नहीं, अपितु बरेली निवासी एकाक्षी, अंगदराम शास्त्री ने महीधर के भाष्य से हिन्दी किया है परन्तु उस भाष्य पर लिखा यह है कि ठाकुर गुरुप्रसाद इसके लेखक हैं, यही नहीं, यह भी लिखा है कि विलायत की सोसाइटी से एक हजार रुपया पुरस्कार और प्रशंसापत्र भी उन्हीं के नाम पर आया है) यहां आये और स्वामी जी से उनकी बातचीत ठाकुर मुकुन्दसिंह और राजा साहब के समक्ष होती रही। उसने स्वामी जी से अपने भाष्य के विषय में पूछा। स्वामी जी ने उत्तर में कहा कि यह तुमने बहुत भूल की है, वह अत्यन्त अशुद्ध और वेदविरुद्ध है। उस समय ठाकुर साहब ने निवेदन किया कि मैं इसका पुन: संशोधन करूंगा, आप भी कुछ सहायता करें। प्रकट में तो यह शब्द उसने कहे परन्तु मन में उसे स्वामी जी का यह कहना बहुत बुरा लगा किन्तु यह बात उसने प्रकट न की अपितु महाराज से प्रार्थना की कि आप कृपा करके बेसवां पधारें तो मैं अत्यन्त अनुगृहीत हूंगा। स्वामी जी ने स्वीकार किया परन्तु कई दिनों पश्चात् जब कि अभी स्वामी जी अलीगढ़ में ही थे, उसकी धर्मपत्नी की मृत्यु हो गई। इसी कारण स्वामी जी उस तिथि को बेसवां तो न गए, अपितु **मुरसान** के रईस, राजा टीकमसिंह की प्रार्थना पर मुरसान पधारे।

हाथरस में राजा जयकिशनदास के सुप्रबन्ध के कारण व्याख्यानों में रुकावट नहीं पड़ी—स्वामी जी २२ जनवरी, सन् १८७४, बृहस्पतिवार, तदनुसार माघ सुदि, संवत् १९३०[१९९] को अलीगढ़ से चलकर छलेसर के रईस ठाकुर मुकुन्दसिंह जी के साथ रेल द्वारा हाथरस पधारे और वहां एक बाग में विराजमान हुए। स्वामी जी के पधारने से पहले राजा जयकिशनदास जी भी वहां पहुंच गये थे। लोगों से धर्मसम्बन्धी वार्तालाप होता रहा। १०-१२ पंडित प्रतिदिन स्वामी जी के पास आते थे और अपनी शंकाओं का निवारण करते थे। स्वामी जी ने यहां एक व्याख्यान मृतक-श्राद्ध-खंडन पर दिया और लोगों पर इसके मिथ्या होने की अच्छी प्रकार पोल खोली। मूर्तिविषय पर भी साधारण रूप से नित्यप्रति उपदेश करते रहे। इस नगर में भी मथुरा के समीप होने के कारण, मूर्तिपूजा का बड़ा जोर है। सौ-डेढ़ सौ मनुष्य उनके मूर्ति तथा श्राद्ध के खंडन से कुपित होकर झगड़ा करने के उद्देश्य से एक दिन आये थे परन्तु राजा साहब के सुप्रबन्ध के कारण कोई झगड़ा न हुआ।

श्राद्ध-खण्डन के विषय में लोकमत—इसी श्राद्धखंडन वाले व्याख्यान के विषय में मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी ने अपनी एक पत्रिका में इस प्रकार लिखा है—'हाथरस में दयानन्द सरस्वती ने सर्व-साधारण को एक उपदेश दिया। वहां के बिरहमन डर गये कि इन्होंने हमारी रोटियों को खोया और हमारी चिड़ियों को जाल में से निकाला है। खेद है, स्वार्थी मनुष्य अपने लाभ के लिए पशु को मनुष्य बनने नहीं देते हैं; बल्कि, मनुष्य को पशु बनाया करते हैं। भारतीय प्रशंसा के योग्य हैं कि इनके माल, मही और महिलाओं के बिरहमन, मुसलमान और ईसाई सब इच्छुक हैं, बल्कि (उन पर) अपना स्वत्व समझते हैं। यह सब कुछ होने पर भी यह अभी तक मरे नहीं।' (देखो, इनकी पत्रिका 'नीति-प्रकाश' मासिक में पृष्ठ १४१, सन् १८७४)।

स्वामी कृष्णेन्द्र सरस्वती भी इन दिनों वहां उपस्थित थे परन्तु उन्होंने भी स्वामी जी से कोई शास्त्रार्थ नहीं किया। स्वामी जी ५-६ दिन यहां रहे तत्पश्चात् मुरसान (जिला अलीगढ़) के राजा टीकमसिंह की भेजी हुई फिटन पर ठाकुर भोपालसिंह वर्तमान रिसालदार तथा कुछ अन्य साथियों सहित, मुरसान पधारे और कुछ दिन वहां रहकर हाथरस होते हुए मथुरा पहुंचे।

मथुरा और वृन्दावन का वृत्तान्त (२६ फरवरी, सन् १८७४ से १५ मार्च, सन् १८७४ तक)

स्वामी जी कुछ दिन हाथरस में धर्मात्मा राजा टीकमसिंह के अतिथि रहे और उन्हें वैदिक धर्म का उपदेश दिया। उन्होंने चलते समय स्वामी जी से फिर दर्शन देने का वचन लेकर मथुरा की ओर विदा किया। स्वामी जी हाथरस लौटकर आये और हाथरस से एक चिट्ठी राजा जयकिशनदास साहब सी० एस० आई० की, मथुरा के डिप्टी कलैक्टर पण्डित देवीप्रसाद के नाम ले गये और वहां से बख्शी महबूब मसीह, सुपरिण्टैण्डेण्ट चुंगी, वृन्दावन के नाम पण्डित जी का पत्र लाकर मलूकदास के बगीचे में (जिसे कुछ लोग राधाबाग कहते हैं) नगर के बाहर फागुन सुदि एकादशी, संवत् १९३०, तदनुसार २६ फरवरी, सन् १८७४ बृहस्पतिवार १० बजे दिन को डेरा किया। यहां आने के कई कारण थे परन्तु सबसे बड़ा कारण पंडित गंगादत्त जी (स्वामी जी के सहाध्यायी) के वर्णन के अनुसार यह था कि स्वामी जी ने हमको एक चिट्ठी और दस रुपये फर्रूखाबाद से भेजे कि आप पन्नीलाल साहूकार की पाठशाला में पढ़ाने के लिए आवें। मैं जाने को उद्यत हुआ परन्तु मुझे चौबों की बिरादरी ने डराया कि दयानन्द ने वहां लोगों से शालिग्राम की मूर्तियां फिंकवा दी हैं, उसकी नौकरी मत करो।' इस पर हमने स्वामी जी को उत्तर लिखा कि 'हमको वहां आने से लाभ तो बहुत हैं, परन्तु यहां मथुरा जी मूर्तियों का घर है, यहां सुवर्ण की मूर्तियों के बड़े-बड़े स्तम्भ खड़े हैं, रंगाचार्य सारे देश में अपनी विजय का डंका बजाकर और दिन में प्रज्ज्वलित मशाल लेकर यह जयघोष करता चक्कर लगा आया है कि 'मूर्ति सत्य है।' आप तो दूर-दूर मूर्तिपूजा का खंडन कर रहे हैं। हम जब तक इस मुख्य स्थान से मूर्ति का खंडन न कर लें तब तक वहां किस प्रकार आ सकते हैं क्योंकि इस प्रकार जाने से निन्दा होगी और आप यदि यहां आकर मूर्तिखंडन करोगे तो आपकी अधिक प्रतिष्ठा होगी। (स्वामी जी की ओर से) इसका उत्तर आया कि हम अवश्य आवेंगे। इसी प्रतिज्ञा के अनुसार ठीक अवसर पर, जबकि रथ का मेला भर रहा था चैत्रमास में यहां पधारे।'

रथ के मेले का दूसरा नाम 'ब्रह्मोत्सव' है जिसमें समस्त भारत के वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायी विद्वान् लोग एकत्रित होते हैं और इसके अतिरिक्त वह मूर्तिपूजा का प्रसिद्ध दुर्ग और बहुत ही वैभवशाली गढ़ भी है; जिसके (तत्कालीन) दुर्गाध्यक्ष प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ रंगाचार्य थे; जो इसी स्थान पर थे। यह वही तीर्थस्थान है जहां निवास करने के लिए हजारों स्त्री-पुरुष घरबार छोड़कर ब्रजवासी बन रहे हैं। जिस रंगाचार्य की बड़े स्वामी विरजानन्द जी से भी कुछ छेड़-छाड़ थी वह इस धार्मिक विजेता से कब बच सकता था? और जिस रंगाचार्य के सैकड़ों पढ़े-लिखे चेले, उनके सत्योपदेश से मूर्तियों को गंगा जी के समर्पण कर चुके थे, उससे शास्त्रार्थ करने की स्वामी जी की अभिलाषा चिरकाल से थी। फिर (मथुरा में उनके पधारने का) एक बड़ा कारण यह भी था कि उन दिनों इधर तो मूर्ति का खंडन करने वाला और काटने वाली युक्तियों द्वारा उसको जड़मूल से उखाड़ कर फेंकने वाला दयानन्द के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं था; और उधर मूर्तिपूजा का प्रचार करने वाला रंगाचार्य जी से बढ़कर कोई न था। मनचला वीर कितने सच्चे उत्साह से वहां आया, यह बात इसी से प्रकट है कि जिस बाग में जाकर तम्बू लगाया, वह भी रंगाचार्य के बाग के पिछाड़ी था।

मथुरा-वृन्दावन में सिंहनाद

बख्शी महबूब मसीह की ओर से हिन्दी में विज्ञापन प्रकाशित किये गये कि 'होली के त्यौहार के पश्चात् स्वामी दयानन्द जी चैत्र बदि दूज तदनुसार ५ मार्च, सन् १८७४ बृहस्पतिवार को अर्थात् जबकि 'ब्रह्मोत्सव' का मेला आरम्भ होता है, मूर्तिखंडन आदि विषयों पर व्याख्यान देंगे। लोग आकर सुनें और लाभ उठावें।'

पहले दिन होली के त्यौहार के कारण स्वामी जी ने कोई व्याख्यान न दिया। डेरे पर जो कोई सभ्यतापूर्वक आता, उसे धर्मोपदेश करते रहते। वहां भी कोई समय व्यर्थ न जाता था, प्राय: पण्डित लोग स्वामी जी से मिलने को आते और

सत्योपदेश से लाभ उठाते थे । स्वामी जी ने वहां आते ही शास्त्रार्थ के लिए **लिखित चुनौती** रंगाचार्य जी के पास भिजवाई जिसका सार यह था कि तुम कहते थे कि प्रतिमापूजन, कंठी, तिलक वेद से सिद्ध होते हैं, सो दिखलाओ ।

ग्राम सेनी, जिला अलीगढ़ का रहने वाला बलदेवसिंह ब्राह्मण स्वामी जी का यह चैलेंज लेकर आचार्य जी के पास गया । उस समय राव कर्णसिंह भी वहां उपस्थित थे । रंगाचार्य जी ने उसका यह उत्तर दिया कि शास्त्रार्थ मेले के पश्चात् होगा । विशेष विज्ञापन के रूप में जो यह चिट्ठी थी, उसकी एक कापी रंगाचार्य के द्वार पर भी चिपकाई गई ।

स्वामी जी ने ५ मार्च से मूर्तिखंडन, तिलक, छाप, वैष्णवमत आदि विषयों पर बड़े उत्साह से व्याख्यान देने आरम्भ किये । उधर रंगाचार्य को भी स्वामी जी की प्रबल युक्तियों और उपयुक्त तर्क की, दिन प्रतिदिन बढ़ चढ़कर सूचना मिलने लगी और साथ ही मृत्यु सरीखे शास्त्रार्थ के दिन भी समीप आने लगे । रंगाचार्य को भली-भांति यह निश्चय हो चुका था कि वह (स्वामी दयानन्द) बिना शास्त्रार्थ किये नहीं छोड़ेगा और (उसका) परिणाम स्पष्ट था । हिरण्यकशिपु को नरसिंह का सामना (करना) था; इसलिए विवश होकर रोगी बन बैठे और जैसे-जैसे शास्त्रार्थ के दिन समीप आते गये, रोग बढ़ता गया । आये दिन दम तोड़ने की अवस्था उत्पन्न होने लगी । मेला बीत गया परन्तु रंगाचार्य जी बार-बार कहने और अनुरोध करने पर भी शास्त्रार्थ के लिए उद्यत न हुए और न घर से बाहर निकले ।

बख्शी महबूब मसीह साहब, जो एक उत्तम स्वभाव वाले, सत्यप्रिय और स्वतन्त्र विचारों के वृद्ध सज्जन हैं, उन्होंने वर्णन किया कि वस्तुतः रंगाचार्य बहाना करके रोगी हो गये थे अन्यथा वास्तविक बात तो यही है कि वह केवल शास्त्रार्थ से डरते थे । बख्शी महबूब मसीह साहब ने इस बात की स्वामी जी को सूचना दी । इस पर स्वामी जी ने अपने अन्तिम व्याख्यान में यह बात प्रकट कर दी कि वास्तव में मूर्तिपूजा, तिलक, छाप आदि मतमतान्तर किसी प्रकार वेदोक्त सिद्ध नहीं हो सकते, पूर्णतया मिथ्या हैं और यही कारण है कि हमारे बार-बार बुलाने पर भी, आजतक रंगाचार्य सामने नहीं आया क्योंकि उसे अच्छी प्रकार निश्चय हो गया है कि वर्षों की कमाई हाथ से जाती है और अब अन्त में अवस्था यहां तक पहुंच गई कि कलैक्टर साहब से प्रार्थना करते हैं । रंगाचार्य के उपद्रवी चेलों ने कई बार स्वामी जी को मार देने की सम्मति की परन्तु वह इस मिथ्या संकल्प में किसी प्रकार सफल न हो सके ।

बलदेवसिंह आदि, स्वामी जी के साथी, वर्णन करते हैं—'यहां जब रंगाचार्य के मतानुयायियों ने कोलाहल और उपद्रव करने का विचार किया तो हम लोगों ने स्वामी जी से कहा कि आप बाहर न जाया करें । स्वामी जी ने कहा कि कल को तुम कदाचित् यह कहोगे कि कोठी के भीतर छिप कर बैठा करो; जिस पर फिर किसी ने कुछ न कहा ।'

मथुरा निवासी, रईस राजा उदितनारायण ने वर्णन किया—'जब स्वामी जी वृन्दावन जाने के अवसर पर मथुरा आये तो मैं सवारी लेकर उपस्थित हुआ । वह सवारी में बैठकर मकान पर पधारे । मैंने अच्छी प्रकार आदर-सत्कार किया । उन्होंने कहा कि कुछ सहायता कर सकते हो ? मैंने प्रतिज्ञा की, तब बोले कि हम वृन्दावन में ठहरते हैं, वहां दो चार मनुष्य पहरे के रूप में हमारे पास नियत कर दो । मैंने कारण पूछा तो कहा कि 'राव कर्णसिंह बरौली वाला हमसे शत्रुता रखता है और इन दिनों वैकुण्ठोत्सव है, और वह रंगाचार्य का सेवक सदा उत्सव पर आया करता है । कदाचित् कुछ उपद्रव करे और व्याख्यान में विघ्न पड़े, जिस पर मैंने चार मनुष्य नियत कर दिये और स्वयं भी प्रतिदिन जाया करता था ।'

'उधर राव कर्णसिंह हमारे बड़े मित्र थे । एक दिन स्वामी जी के डेरे से मैं आया तो मार्ग में राव साहब मिले । पूछा कि 'कहां से आये हो ?' हमने कहा कि 'श्रीमान् स्वामी दयानन्द जी महाराज सरस्वती के पास से ।' इसके उत्तर में जलभुन कर क्रोध में आगबगूला होकर स्वामी जी के नाम को असभ्यतापूर्वक जिह्वा पर लाकर कहा 'ऐसे नास्तिक के पास क्यों जाते हो ?' हमको उसका यह कहना बहुत बुरा प्रतीत हुआ और हमने कहा कि 'महात्माओं को गाली देना आपको

उचित नहीं' । उसने कहा-'तुम उसके चेले हो ?' मैंने उत्तर दिया कि यद्यपि हम चेले नहीं हैं परन्तु जिसको हजारों मनुष्य अच्छा कहते हैं, उसके विषय में ऐसे कठोर वचन कहना शोभनीय नहीं और हम रंगाचार्य के चेले नहीं, यदि हम उसको गाली दें तो तुम कुपित होगे या नहीं ?'

स्वामी जी का पधारना केवल रंगाचार्य के साथ शास्त्रार्थ करने के अभिप्राय से था परन्तु रंगाचार्य ने शास्त्रार्थ न किया प्रत्युत कहला भेजा कि 'हम शास्त्रार्थ करना नहीं चाहते, हमको शास्त्रार्थ से क्या लाभ ? 'स्वामी जी तो वहां नित्यप्रति व्याख्यान दिया करते थे और पण्डित लोग अधिक संख्या में जाया करते थे । वे तो प्रथम अपने घरों में इकट्ठे बैठ-बैठ कर और सोच-सोच कर प्रश्न लाया करते थे परन्तु उनके सामने पहुंच कर मौन रहने के अतिरिक्त कुछ बन न पड़ता था । स्वामी जी कहते थे कि जो तुम्हें सन्देह हो वह निवृत्त कर लो । तब वे कहते थे कि 'महाराज ! आप सत्य कहते हैं, हम पेट के मारे सत्य नहीं कह सकते ।'

'यह मेरी आंखों देखी बात है और मैं सौगन्ध खाकर कहता हूं कि रंगाचार्य कोई ऐसा रोगी न था कि यदि साहस करता तो शास्त्रार्थ न कर सकता । परन्तु करता कौन ? सूर्य के सामने दीपक नहीं जलता । रोग तो केवल उसका बहाना था बल्कि उसने मेरे एक मित्र के सामने यह भी कह दिया था 'कि यदि वह (दयानन्द) हार जाये तो उस साधु का क्या बिगड़ेगा । परन्तु यदि हम हार गये तो हमारी सारी प्रतिष्ठा नष्ट हो जायेगी ।'

स्वामी जी के सहाध्यायी और उनकी पाठशाला के अध्यापक पंडित उदयप्रकाश जी ने भी कई बार स्वामी जी के पास आकर कहा कि आप मूर्तिखंडन छोड़ दीजिये । स्वामी जी ने उत्तर दिया कि 'यदि (मेरा कथन) सत्य है तो आप भी (उसका) मंडन करें अर्थात् मूर्तिनिषेध में उपदेश दिया करें; अन्यथा हमारे साथ शास्त्रार्थ कर लें । मैं तो इस अन्धेर को जो वैरागियों, गुसांइयों आदि मतमतान्तरों के आचार्यों ने मचा रखा है, नहीं देख सकता ।' उदयप्रकाश जी ने यह इसलिए कहा था कि उनकी भी मान-प्रतिष्ठा, जो मूर्तिपूजा का प्रचारक होने से थी, स्वामी जी के सत्योपदेश से नष्ट हो रही थी ।

जयगोविन्द गिरि संन्यासी, जो वृन्दावन में गोपेश्वर महादेव और अन्नपूर्णा के मन्दिर के निवासी हैं, ने आदि से अन्त तक निरन्तर व्याख्यान में उपस्थित रह कर सत्योपदेश से लाभ उठाया और वे रंगाचार्य की ऐसी बुरी और शोचनीय दशा देखकर मूर्तिपूजा से अत्यन्त घृणा करने लगे । श्री स्वामी जी के सत्योपदेश का ही यह फल है कि यह महात्मा मन्दिर में रहने, चिरकाल तक मूर्तिपूजा करने अपितु पुजारी रह कर भी, अब मूर्तिपूजा से पूर्णतया घृणा करते हैं और सच्चे हृदय से वैदिक धर्म के मानने वाले हैं । इसी प्रकार और भी सत्यप्रेमियों ने उन्हीं दिनों में मूर्तिपूजा को छोड़कर निराकार परमात्मा की भक्ति आरम्भ की ।

स्वामी विरजानन्द जी के विद्यार्थी पण्डित हरिकृष्ण ने वर्णन किया—'स्वामी जी ने हमसे वृन्दावन में पूछा था कि 'वह गुठली वाला (अर्थात् रुद्राक्षधारी) कृष्णानन्द देखा है ?' हमने कहा कि 'हां !' फिर कहा—'स्वामी जी आपका कहना तो अच्छा है परन्तु साठ वर्ष का राम निकलता ही निकलेगा । जो लोग अविद्या में फंसे हुए हैं वे इतने शीघ्र अविद्या से नहीं निकल सकते ।'

स्वामी जी के पास प्रतिदिन प्रातः से सायं तक एक-एक सौ या डेढ़-डेढ़ सौ मनुष्यों का समूह रहता था । उन्हीं दिनों ईसाई लोग भी, जो मेले के अवसर पर आते थे, स्वामी जी के पास गये परन्तु उनकी कोई विशेष बात लिखने योग्य नहीं । लाहौर ब्रह्मसमाज के सभासद् डाक्टर ब्रजलाल घोष, मथुरा के डाक्टर नवीनचन्द्र तथा कई एक बंगाली सज्जन भी आते थे और उन्होंने ब्राह्मधर्म के विषय में बातचीत की थी जिनको स्वामी जी ने उचित युक्तियों द्वारा समझाया कि ब्राह्मधर्म (ब्रह्मसमाजियों के मत) में और हमारे धर्म (मत) में पर्याप्त अन्तर है ।

गोस्वामी राधाचरण जी[२००] ने वर्णन किया—'स्वामी जी यहां प्राय: कहा करते थे कि सेठ लक्ष्मीचन्द ने जितना रुपया लगाकर यह मन्दिर बनाया है यदि इतना व्यय करके पाठशाला बना देता तो बड़ा उपकार होता क्योंकि इस मन्दिर से, लौकिक और पारलौकिक, किसी भी प्रकार का कोई लाभ नहीं ?'

स्वामी जी की पहली चुनौती और विशेष रूप से यहां पधारने का महत्त्वपूर्ण लक्ष्य और विशेष कारण रंगाचार्य थे परन्तु बार-बार विज्ञापन पर विज्ञापन भेजने पर भी उधर से तो अनिच्छा का ही प्रदर्शन होता रहा। पंडित सखालाल गोस्वामी और ब्रह्मचारी गिरधारीदास जी भी बहुतेरी प्रतिज्ञा करते और मध्यस्थ का झगड़ा डालते रहे और दूर से ही गीदड़-भभकियां देते रहे परन्तु उस सत्य रूपी क्षेत्र में दहाड़ने वाले सिंह के, तथा एकेश्वरवाद रूपी परशुहस्त परशुराम के सामने कोई न आया, और न किसी ने मूर्तिपूजा आदि वेदविरुद्ध बातों को वेदों से सिद्ध किया। सिद्ध करना तो एक ओर, उनका नाम तक न लिया।

विजेता वीर ने जब देखा कि शत्रु घिरा हुआ और सामना करने में असमर्थ है तथा कायरता से अपनी गुफा से बाहर नहीं निकलता तो समय नष्ट करना न समझ कर धर्मोपदेश और सत्यविद्या के प्रचार के झंडे का मुख मथुरा की ओर फेरा।

स्वामी जी का एक चुटकला—(पं० गंगादत्त शास्त्री के मुख से)—'स्वामी जी ने बलदेवसिंह को मथुरा में अपने आने से पहले यह चिट्ठी देकर भेजा था कि तुम वृन्दावन में कोई ऐसा मकान खोजो जहां बन्दर और पत्थर न हों।'

मथुरा में[२०१] चौबे शस्त्र लेकर चढ़ आये

(१५ मार्च, सन् १८७४, से १९ मार्च, सन् १८७४, तदनुसार रविवार, चैत बदि १२, संवत् १९३० से चैत सुदि २, संवत् १९३१ तक)

मथुरा वह नगर है जहां हमारे सत्य के उपासक तथा एकेश्वरवाद के समर्थक स्वामी ने तीन-चार वर्ष रहकर अपने वृद्ध गुरु से अपनी संस्कृत शिक्षा पूर्ण की थी। भला ऐसे नगर में जिसको पहले ही उसके गुरु ने जीता हुआ था, उसका सामना करने वाला कौन था ? यही कारण था कि अपना पुराना पाठ्यस्थान जानकर वह बेखटके चला आया। मथुरा में सबसे बड़ा विचार उसको यह रहा कि स्वामी विरजानन्द के विद्यार्थी मुझे अपना सहपाठी समझकर इस विचार से न आ जावें कि मैं उनके कारण मूर्तिखंडन न करूंगा अथवा उनसे पुरानी मित्रता के विचार से शास्त्रार्थ न करूंगा। इस झूठी धारणा को दूर करने के लिए स्वामी जी ने पहले ही मथुरा अपने सहाध्यायियों को कहला भेजा, जैसा कि **पंडित गंगादत्त जी शास्त्री वर्णन करते हैं—**'स्वामी जी ने मथुरा आने से पहले मुझे कहला भेजा था कि पंडित लोग एक इकट्ठे होकर मुझे बुलाते हैं परन्तु मेरे स्थान पर नहीं आते। मेरे न जाने पर मुझे कह देते हैं कि हार गये। तुम ऐसा मथुरा में न करना। जिस स्थान पर तुम कहो मैं वहां जाकर पहले ठहर जाऊं और स्मरण रखो कि वेद में मूर्तिपूजा नहीं है; तुमको यदि मिले तो खोज कर रखना और यदि पंडित लोग शास्त्रार्थ के लिए आवें तो पहले दंडी जी के विद्यार्थी न आवें।'

'हमने लक्ष्मीनारायण का मन्दिर बतलाया कि आप वहां ठहरें परन्तु स्वामी जी, स्थान खुला न होने तथा पर्याप्त प्रबन्ध न होने के कारण यहां आकर वहां न ठहरे; अपितु गोस्वामी पुरुषोत्तमदासजी के बगीचे में ठहरे। उनके कथनानुसार दंडी जी का कोई विद्यार्थी पहले न गया, और पंडित लोग गये परन्तु यहां के लोगों से उनकी बातों का उत्तर न बन सका जिससे उनका दिग्विजय हो गया। अन्तिम दिन जब वह जाने को उद्यत थे तो डिप्टी देवीप्रसाद जी ने स्वामी जी से कहा कि आज आप अवश्य रहें; शास्त्रार्थ होगा। स्वामी जी उनके कथनानुसार रहे परन्तु शास्त्रार्थ किसका ! यहां के चौबे शास्त्रार्थ

करने के निश्चय से गये । एक साथ चार-पांच सौ मनुष्यों का समूह आक्रमण करके चढ़ आया । सभी मुंह से गालियां दे रहे थे और लड़ने-झगड़ने पर उतारू थे ।

'बलदेवसिंह ब्राह्मण ने कोलाहल सुनकर ठाकुर भोपालसिंह रिसालदार, रिसाला नं० १० तथा चार-पांच अन्य ठाकुरों सहित बाग का फाटक बन्द कर दिया । ठाकुर हीरासिंह जी के होश उड़ गये परन्तु स्वामी जी इस कोलाहल से तनिक भी न घबराये । इसी कोलाहल के बीच में ठाकुर किशनसिंह तथा ठाकुर गोपालसिंह आदि कर्णवास के १५ रईस ठाकुर लोग वहां आ गये और चूंकि ये सारे स्वामी जी के धर्मानुयायी थे, इनके आ जाने पर स्वामी जी के साथियों ने द्वार खोल दिया । इतने में मथुरा के डिप्टी कलैक्टर पण्डित देवीप्रसाद जी भी मथुरा के कुछ प्रतिष्ठित रईसों सहित वहां आ गये और मथुरा के पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिये बुलाया । परन्तु वहां किसकी सामर्थ्य थी कि उनके सामने नियमपूर्वक शास्त्रार्थ करने का साहस करता । शेष रहे चौबे, उनके पास लाठी, शस्त्र और गाली प्रमाण के अतिरिक्त और कोई शास्त्रीय प्रमाण, भला कहां था । इसी कारण उन उपद्रवियों को डिप्टी कलैक्टर साहब ने तितर-बितर कर दिया । स्वामी जी इस बार यहां पांच दिन रहे ।'

पंडित बालकृष्ण जी हकीम, रईस मथुरा, ने वर्णन किया कि 'स्वामी जी चैत्र मास संवत् १९३१ में वृन्दावन से लौटकर मथुरा आये, गोस्वामी पुरुषोत्तमदास जी के बलदेव बाग में उतरे और समस्त नवीन मतमतान्तरों का खंडन आरम्भ किया ।

अस्सी वर्षीय पांडे मदनदत्त जी, समस्त शरीर पर छाप और तिलक लगाकर तथा फटे हुए कपड़े की सिली हुई गुदड़ी ओढ़कर, अपने पोते गरुड़ध्वज तथा अपने शिष्य मुझ बालकृष्ण सहित उनके पास गये । यह महाराज ४० वर्ष तक दुग्धाहारी रहे थे और बड़े भक्त व्यक्ति थे । उस समय दो बजे थे । स्वामी जी ने उनको आसन दिया, आनन्दपूर्वक कुशल-क्षेम पूछा और दंडी जी की पाठशाला का वृत्तान्त भी पूछा । तत्पश्चात् उनके पोते से पढ़ाई के बारे में पूछा । उसने कहा कि व्याकरण पढ़ता हूं । स्वामी जी ने उससे 'एचोऽयवायाव:'[२०२] यह सूत्र पूछा । उससे उत्तर न बन सका तब मैंने उत्तर दिया । स्वामी जी मदनदत्त पर बहुत कुपित हुए कि आपने इस लड़के (पोते) को बिगाड़ दिया है, यदि इसी प्रकार रहा तो महामूर्ख होगा और मुझसे पूछा कि 'तुम क्या पढ़ते हो ?' मैंने कहा कि 'कौमुदी' । बोले कि कौमुदी बुद्धि को बिगाड़ देती है, तुम अष्टाध्यायी पढ़ो । उसी दिन जाकर कौमुदी को त्याग अष्टाध्यायी का पढ़ना आरम्भ किया । परस्पर बातचीत करते-करते स्वामी जी की बातों का मदनदत्त जी पर यहां तक प्रभाव हुआ कि वह घर से गये तो थे मूर्तिपूजा को सिद्ध करने के लिए परन्तु सैकड़ों मनुष्यों की उपस्थिति में स्वामी जी के समक्ष मूर्तिपूजा और समस्त वेदविरुद्ध सम्प्रदायों का खंडन आरम्भ कर दिया । सब लोग चकित रह गये और कहने लगे कि स्वामी जी के पास कोई जादू है ।

उससे दूसरे दिन, एक ब्रह्मचारी को उपदेश देकर स्वामी जी ने उसे शालिग्राम की मूर्तियों का पर्यंक (पलना) यमुना में डलवा दिया और भागवत का पढ़ना छुड़वा कर सत्य ग्रन्थों के पढ़ने की आज्ञा दी । मथुरा नगर के समस्त प्रतिष्ठित रईस तथा सज्जन पुरुष स्वामी जी की सेवा में आते रहे और अपने सन्देहों की निवृत्ति करते रहे । यह भी सुना गया कि गोस्वामी पुरुषोत्तमदास जी ने एक चिट्ठी स्वामी जी के पास भेजी कि आप कृपा करके हमारे मत का खंडन न करें परन्तु स्वामी जी ने वह चिट्ठी सैकड़ों मनुष्यों में प्रकट कर दी । एक चौबे ने स्वामी जी से कहा कि जब तुम तिलक, छाप का खंडन करते हो तो स्वयं मिट्टी क्यों लगाते हो ? स्वामी जी ने उत्तर में कहा कि मुझको मक्षिका सताती हैं, अन्यथा कोई आवश्कता नहीं ।

उस समय स्वामी जी एक कुर्ता और लंगोटी पहनते और समस्त शरीर पर रज लगाया करते थे । कोई सामान आदि पास न था । यहां पर जब तक रहे, सेवा के लिए सब प्रकार की सामग्री गोस्वामी पुरुषोत्तमदास जी के यहां से आती थी । यहां से स्वामी जी मुरसान चले गये ।'

मुरसान, जिला अलीगढ़ में (२० मार्च, सन् १८७४; तदनुसार चैत, संवत् १९३१)

मुरसान के राजा टीकमसिंह जी स्वयं फिटन लेकर आये और स्वामी जी, बलदेवसिंह ब्राह्मण सहित उनके साथ मथुरा से सवार होकर चले । शेष सब साथी पीछे से पहुंच गये । मुरसान पहुंच कर राजा साहब के बंगले में उतरे और राजा साहब ने ठाकुर गुरुप्रसादसिंह रईस बेसवां को कहला भेजा कि स्वामी दयाननद जी ठहरे हुए हैं । तुम कहते हो कि मैंने सायणभाष्य के अनुसार[२०३] यजुर्वेद का भाष्य किया है और यह कहते हैं कि तुमने अशुद्ध किया है; आकर निर्णय कर लो । और तुम यह भी कहते थे कि दयानन्द वेद का अर्थ नहीं जानते सो आकर निर्णय करो ।' इस पर वह आये परन्तु स्वामी जी के पास न आये, पृथक् उतरे । जिस समय स्वामी जी मुरसान के राजा साहब के बंगले में बैठे हुए अर्थ कर रहे थे उस समय ठाकुर गुरुप्रसादसिंह भी आ गये । राजा साहब ने बुलाया कि आइये, भीतर आइये; परन्तु वह भीतर न आये । बहुत अनुरोध करने पर भी बाहर ही खड़े रहे; भीतर उनके सम्मुख न आये । तब राजा टीकमसिंह जी ने कहा कि तुम दयानन्द के विषय में कहते थे कि वह कुछ नहीं जानते परन्तु वास्तव में बात यह है कि तुम स्वयं कुछ नहीं जानते । तत्पश्चात् मुरसान के राजा साहब स्वामी जी को बड़े सम्मान और सत्कार से फिटन पर चढ़ाकर स्वयं मेंडू स्टेशन पर पहुंचा गये ।

स्वामी जी के समस्त साथी मेंडू छलेसर की पाठशाला में चले आये और स्वामी जी वहां से चल कर प्रथम इलाहाबाद पधारे और वहां से बनारस जाकर १९ जून सन् १८७४ को पाठशाला का मकान बदला और लगभग एक मास वहां रहकर उसका प्रबन्ध किया ।

इलाहाबाद में तीन मास (बुधवार १ जुलाई, १८७४ से सितम्बर[२०४], १८७४ के अन्त तक)

द्वि० आषाढ़ बदि २, संवत् १९३१; तदनुसार, सन् १८७४ को स्वामी दयानन्द सरस्वती यहां पधारे और नगर के बाहर अलोपी बाग में ठहरे । स्थानीय पोस्ट आफिस के द्वारा नगर निवासियों को यह नोटिस दिया कि जो कोई किसी धार्मिक विषय पर शास्त्रार्थ करना चाहे वह मेरे पास नियत समय पर आ सकता है । उन सज्जनों और पंडितों में से, जो स्वामी जी से मिलने के लिये गये, पंडित काशीनाथ शास्त्री, संस्कृत-प्रोफेसर म्यूर कालिज तथा उनके कुछ विद्यार्थियों के नाम उल्लेखनीय हैं ।

मोहम्याह नीलकंठ गोरे[२०५] नामक एक ईसाई मराठा सभ्यपुरुष प्रोफेसर मैक्समूलर द्वारा रचित ऋग्वेदभाष्य ले आया । वह भाष्य को यह बतलाने के लिए लाया था कि 'अग्नि के अर्थ केवल आग के हैं, ईश्वर के नहीं ।'

स्वामी जी ने उसको यह उत्तर दिया कि 'यदि प्रोफेसर मैक्समूलर ने वेदमन्त्रों का भाष्य करने के लिए केवल इन्हीं अर्थों का प्रयोग किया है तो इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है; क्योंकि एक पक्षपातपूर्ण ईसाई होने के कारण उसकी हार्दिक इच्छा है कि वेदार्थ को बिगाड़े, जिससे भारतवासी अज्ञान में फंस कर वेदों को छोड़ दें और बाइबिल को ग्रहण करें । अतः उसके पक्षपातपूर्ण होने के कारण उसका भाष्य प्रामाणिक नहीं हो सकता ।'

तत्पश्चात् स्वामी जी ने उन हिन्दू मराठों के सामने, जिन्होंने कि हिन्दू धर्म के विरुद्ध हुए इस भाई को, अपना मजहबी प्रवक्ता बनाया था, यह स्पष्ट करने के लिए कि ईसाइयों के ईश्वर-विषयक विचार कितने अज्ञानमूलक हैं, तौरेत के बाबल के बुर्ज वाली उस कहानी की ओर संकेत किया जिसमें यह लिखा है कि प्राचीन पाश्चात्य जातियों ने, (बाबल का बुर्ज बनाकर) ईसाइयों की देवमाला में (प्रविष्ट होने के लिये) आकाश पर चढ़ने का यत्न किया । उनके इस दुःसाहसपूर्ण प्रस्ताव से ईसाइयों का ईश्वर चौंक पड़ा । अत्यन्त भयभीत होकर, अपने बचाव के लिए बाबल के बुर्ज बनानेवालों की वाणी में गड़बड़ी कर दी, जो एक दूसरे की बात को समझने के अयोग्य होकर काम छोड़ बैठे और ईश्वर मनुष्यों के इस बर्बरता पूर्ण आक्रमण से बच गया ।

ईसाइयों के ईश्वर का अपनी ही सृष्टि से डर जाना अत्यन्त अद्‌भुत और वर्णनातीत बात है । निस्सन्देह वे अत्यन्त ही असभ्य होंगे जिन्होंने कि आकाश की केवल मात्र दिखलावे की महराबदार छत को सीमित ऊंचाई की समझकर, उस पर बनावटी साधनों से चढ़ना सम्भव समझा । इससे तो यह प्रतीत होता है कि ईसाइयों का विश्वास है कि ईश्वर सर्वत्र व्यापक और द्रष्टा नहीं है । इसके विपरीत वह एक विशेष स्थान में सीमित है, जिसके विषय में यह ठीक-ठीक नही बतला सकते । ईसाई मराठे ने इस आक्षेप का कुछ उत्तर न दिया परन्तु उसके अन्य हिन्दू भाई कुछ बोले और विशेषतया, काशीनाथ शास्त्री ने अत्यन्त धृष्टतापूर्ण शब्दों में स्वामी जी से पूछा कि किस प्रयोजन के लिये समस्त देश में कोलाहल कर रखा है ? स्वामी जी ने उत्तर दिया कि 'मुझसे पहले पण्डितों ने बड़ी धूर्तता फैला रखी है और पत्थरों के पूजने से उनकी बुद्धि पथरा गई है अर्थात् उनकी बुद्धि पर पत्थर पड़ गये हैं, जिसके कारण वे सत्य के सिद्धान्त को नहीं समझ सकते ।' शास्त्री फिर मौन होकर अपने मित्रों सहित चला गया ।

किसी कालिज के विद्यार्थी ने 'म्लेच्छ' शब्द के अर्थ पूछे । स्वामी जी ने उत्तर दिया कि जिनका उच्चारण शुद्ध नहीं, वे म्लेच्छ हैं । इस बात को कुछ मनुष्यों ने यह कहकर स्वीकार किया कि मिस्टर बॉप ने भी यही अर्थ अपनी 'कम्पैरेटिव ग्रामर' (Comparative Grammar) में किये हैं । अंग्रेजी का शब्द 'गाड' उसने संस्कृत शब्द 'गूढ़' से निकाला है, जिसका अर्थ 'गुप्त' है ।

कालिज के विद्यार्थी स्वामी जी के प्रति बड़ी श्रद्धा प्रकट करते थे, उनके कुछ अन्य प्रश्नों का उत्तर देने के पश्चात् स्वामी जी ने राजा जयकिशनदास साहब सी० एस० आई० के सुपुत्र पं० ज्वालाप्रसाद बी० ए० को सभा में उपस्थित लोगों के सम्मुख संध्या (आर्यों की उपासना-पुस्तक) के पढ़ने के लिये कहा जो कि उस समय हस्तलिखित रूप में थी । बाद में मौलवी निजामुद्दीन से, जो धर्मचर्चा सुनने में बड़ी रुचि लिया करता था, स्वामी जी ने पूछा कि मुसलमान खुदा (ईश्वर) को किस प्रकार मानते हैं । परन्तु उस मौलवी ने किसी इस्लामी पुस्तक का उद्धरण देने के स्थान पर सर डब्ल्यू० हैमिल्टन की मैटाफिजिक्स खंड १ के आरम्भ से खुदा के चार गुण वर्णन किये और स्वामी जी ने उसको मुसलमानों का मन्तव्य जाना ।

जब मौलवी नमाज के लिये गया तो स्वामी जी ने कहा कि मुसलमानों ने औरों की छोटी-छोटी मूर्तियों को तोड़ दिया परन्तु अपनी बड़ी मूर्ति की पूजा को न छोड़ा । मुसलमानों की यह मूर्ति, खुदा की ओर से भेजा हुआ काला-पत्थर (संगे असवद) है जो कि मक्के के मन्दिर में बड़ी सजधज से रखा हुआ है । मुसलमान वहां प्रतिवर्ष संसार के सभी भागों से, झुंड बनाकर सिजदा (नमस्कार) करने के लिये जाते हैं । ऐसी यात्रा (हज) मुसलमानों में नजात (मुक्ति) का साधन मानी जाती है ।

नमाज से लौटने पर मौलवी ने तथा कुछ अंग्रेजी, फारसी जानने वाले हिन्दुओं ने आवागमन का विषय छेड़ा । उन्होंने कहा कि आत्मा एक बार उत्पन्न की गई है और यही बात ठीक है । आप आवागमन के विश्वास को छोड़ दें क्योंकि कोई भी सभ्य मनुष्य इस समय में इसका विश्वास नहीं करेगा । इस पर विश्वास करना प्राचीन हिन्दुओं की एक भूल हुई ।

स्वामी जी ने आवागमन को सिद्ध करने के लिए बड़ी प्रबल युक्तियां दी जिनमें से एक यह है कि 'पशुओं में पाशविक बुद्धि है । उन्होंने कहा कि यह एक शक्ति है जो ईश्वर ने पशुओं को संसार में काम करने के लिये प्रदान की है ।' तत्पश्चात् स्वामी जी ने आवागमन के सिद्धान्त पर एक लम्बा व्याख्यान दिया । तब पंडित ज्वालाप्रसाद बी० ए० ने उनसे कहा कि रात के आठ बज गये हैं और सन्ध्या के लिये बहुत विलम्ब हो गया है । इस पर सभा विसर्जित हुई ।

दूसरे दिन सायंकाल को किसी बंगाली सज्जन के घर में व्याख्यान दिया । लगभग एक हजार मनुष्य व्याख्यान सुनने के लिए एकत्रित हुए । स्वामी जी ने धर्म के १० लक्षण वर्णन किये जो कि किसी (मजहब) विशेष के नहीं थे और कहा कि मनुष्य के प्रबल प्रयत्न भी ऐसे धर्म को नष्ट नहीं कर सकते । उन्होंने युग में व्याप्त मूढ़ता पर खेद प्रकट किया कि जिसके कारण स्त्रियां, सार्वजनिक व्याख्यान के लाभ से वंचित रहकर अपना अज्ञान दूर नहीं कर सकतीं । उस विद्वान् ने और जो बातें कहीं, उनमें से एक यह भी थी कि 'राजा नल ने स्टीम इंजन के समान एक रथ से उस समय काम लिया था जब वह अयोध्या के राजा को दमयन्ती के स्वयंवर में ले गया ।'

स्वामी जी के व्याख्यान का म्यूर कालिज के छात्रों पर ऐसा प्रभाव हुआ कि वह अब तक भारत के विभिन्न भागों में आर्यसमाज के सदस्य हैं ।

इलाहाबाद, जबलपुर, नासिक होते हुए बम्बई को प्रस्थान

जब इलाहाबाद से बम्बई की ओर चलने का निश्चय किया तो बलदेवसिंह को यह पत्र लिखकर बुलाया—'बलदेवसिंह शर्मा, आजकल दयानन्द स्वामी यहां पर ठहरे हैं, उनको तुम्हारी बड़ी आवश्यकता है और तुम्हारे बिना उनको बहुत क्लेश है । इसलिए स्वामी जी की आज्ञानुसार तथा राजा साहब की सम्मति से तुमको लिखा जाता है कि तुम इस पत्र को देखते ही शीघ्र चले आओ और कुछ विलम्ब मत करो क्योंकि स्वामी जी दो-चार दिन में दक्षिण दिशा में जायेंगे ।'-ज्वालाप्रसाद; प्रयाग; २६ सितम्बर, सन् १८७४ (तदनुसार आसौज बदि १, शनिवार, संवत् १९३१ वि०)

सत्यार्थप्रकाश लिखवाया—स्वामी जी ने इलाहाबाद में सितम्बर मास के अन्त तक रहकर राजा साहब को सत्यार्थप्रकाश[२०६] लिखवा दिया और स्वयं बलदेवसिंह के आने से ७-८ दिन पश्चात् रेल द्वारा जबलपुर चले गये ।

स्वामी जी अक्तूबर, सन् १८७४ को जबलपुर पहुंचकर जमनादास के बाग में उतरे । उनके पहुंचते ही समस्त पंडित लोग एकत्रित हुए और मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ का विचार किया परन्तु उस समय पंडितों को मूर्तिपूजा की सिद्धि का वेद से कोई मन्त्र न मिल सका । एक व्याख्यान देकर और दो दिन रहकर, तीसरे दिन वहां से आगे चल पड़े ।

नासिक (२४ अक्तूबर, सन् १८७४ तक) —स्वामी जी अक्तूबर को जबलपुर से चलकर नासिक त्र्यम्बक[२०७] पहुंचे और एक मुन्सिफ ब्राह्मण के मकान पर ठहरे । यह स्थान राम अवतार से सम्बद्ध तीर्थ है; इसको 'पंचवटी' कहते हैं। पांच-सात हजार ब्राह्मण, भीख मांगने वाले, उस स्थान पर रहते हैं जिनका निर्वाह उसी तीर्थ के कारण है । स्वामी जी ने जाते ही दूसरे दिन उपदेश देना आरम्भ किया और एक व्याख्यान में उन्होंने यह भी कहा कि जब रामचन्द्र जी वन को गये तब यहां ठहरे । फिर यहां तीर्थ मानने का कौन-सा कारण है ? उनके मूर्ति और तीर्थ के विरुद्ध उपदेशों के कारण किसी ब्राह्मण को सामने आने की सामर्थ्य न हुई परन्तु श्रुतियों के बदले गालियां देते रहे । क्या करें ? बेचारों के पास वेद नहीं रहे, तो गालियां भी न दें ? स्वामी जी उस स्थान 'पंचवटी' को देखने भी गये थे । यहां कुछ दिन ठहर कर बम्बई की ओर चल पड़े अर्थात् २६ अक्तूबर, सन् १८७४ सोमवार को बम्बई में पधारे ।[२०८]

अध्याय ३

परिच्छेद प्रथम

(अक्तूबर, सन् १८७४ से मार्च १८७७; तदनुसार कार्तिक बदि १९३१ से चैत्र शुदि १९३४ तक)

[इस अन्तर में पं० लेखराम जी ने स्वामी जी महाराज की प्रचार-यात्राओं का वर्णन किया है कि जो उन्होंने वर्तमान महाराष्ट्र, गुजरात तथा उत्तरप्रदेश के राज्यों में की थीं। वे इस समय बम्बई, सूरत, भड़ौच, अहमदाबाद, राजकोट, पुनः अहमदाबाद, पुनः बम्बई और इन्दौर होते हुए फर्रूखाबाद पहुंचे। फिर फर्रूखाबाद, काशी, जौनपुर, अयोध्या, लखनऊ, शाहजहांपुर, बरेली, मुरादाबाद, बरेली, कर्णवास, छलेसर और अलीगढ़ होते हुए जनवरी, १८७७ में दिल्ली पहुंचे। वहां शाही दरबार के अवसर पर, धार्मिक विषयों में सत्यासत्य का निर्णय कराने की राजाओं तथा विद्वानों को प्रेरणा दी। वहां से मेरठ, सहारनपुर, शाहजहांपुर, चांदापुर पुनः शाहजहांपुर और सहारनपुर होते हुए पंजाब में प्रविष्ट हुए।—सम्पा०]

(क) बम्बई, गुजरात तथा पूना की यात्राएं

प्रथम बार—सोमवार, २४ अक्तूबर[१], सन् १८७४ से ३० नवम्बर, सन् १८७४; तदनुसार कार्तिक बदि १, संवत् १९३१ से मगंसिर बदि ७, संवत् १९३१ तक। दूसरी बार-बृहस्पतिवार, २९ जनवरी, सन् १८७५ से बुधवार अन्तिम जून, सन् १८७५; तदनुसार माघ बदि ८, सन् १८७५ से अप्रैल, सन् १८७६; तदनुसार भादों शुदि २, संवत् १९३२ से चैत व वैशाख, संवत् १९३३ तक।

प्रथम बार—बम्बई के कितने ही प्रतिष्ठित गृहस्थों[२] की प्रेरणा से बनारस से चलकर इलाहाबाद, जबलपुर, नासिक होते हुए जब बम्बई के समीप पहुंचे तो वहां से एक सेठ साहब को तार दिया कि हम आते हैं। जब पहुंचे तो वह सेठ गाड़ी लेकर वहां उपस्थित था। स्वामी जी को ले जाकर बम्बई से दो कोस दूर, बालकेश्वर महादेव के पर्वत पर ठहराया[३] और धर्माधर्म सम्बन्धी विचार करने की जिनकी इच्छा हो, उनको वहां बुलाने के लिए एक विज्ञापन चार भाषाओं में प्रकाशित किया।

इस यात्रा में, दारागंज प्रयाग-निवासी पण्डित मंडनराम कान्यकुब्ज स्वामी जी के साथ थे और वे ही पुस्तकें आदि लिखा करते थे। स्वामी जी के बम्बई पहुंचने से एक मास पहले उनके काशी शास्त्रार्थ का सार राय सेवकलाल कृष्णदास ने गुजराती में अनुवाद करके 'आर्यमित्र' नामक गुजराती पत्र में प्रकाशित कराया था। उस समय किसी को ध्यान भी न था कि इतने थोड़े समय में वह महापुरुष यहां पधार कर सारे बम्बई प्रदेश के पण्डितों में इतना प्रबल कोलाहल मचा देगा।

बम्बई में धर्मचर्चा का प्रबल आवेग—इस विज्ञापन के प्रकाशित होने पर उस समय वहां धर्माधर्मसम्बन्धी चर्चा इतनी आवेशपूर्ण हुई कि उनका विस्तृत वृत्तान्त लिखने के लिए तो एक पृथक् पुस्तक चाहिये। मतमतान्तर के पण्डितों को उभारने के लिये भी चित्रविचित्र प्रकार के लेख लिखे जाने लगे। वैसे ही पण्डित लोगों ने भी अपने नाना प्रकार के अर्थों के लिये (स्वार्थों की सिद्धि के लिये) प्रपंच रच के अपने-अपने शिष्यों को झूठमूठ समझा कर धर्माधर्मसम्बन्धी यथार्थ विचार करने के बदले ऐसे-ऐसे जाल फैलाये कि जिनको सुनने और देखने में बड़ा अन्तर है।

सर्वसम्मति से पहले वल्लभ सम्प्रदाय से ही निबटने का निश्चय हुआ—अन्त में कई लोगों ने सम्मति करके दूसरे मतों को प्रकट रूप से विचार करना बन्द करके जिस मत में धर्म के नाम से विशेष व्यभिचार फैल गया था, प्रथम उस

वल्लभाचार्य मत के पण्डितों के साथ प्रकट विवाद चलाया गया। इनमें विशेष करके उस मत से क्रुद्ध होकर उसी को तोड़ने वालों की एक भारी संख्या थी। उन लोगों के मुंह से इस मत के आचार्यों के पाशविक कर्मों का विस्तारपूर्वक वृत्तान्त जब स्वामी जी ने सुना तब उनके मस्तिष्क में भी एक धुन समा गई। इधर-उधर बांटे जाने वाले हैण्डबिलों अर्थात् हस्तपत्रकों में भी यही चर्चा हो रही थी। उधर उस मत के पण्डित लोगों ने भी प्रपंच रचने में कोई कमी शेष न रखी। इसके अतिरिक्त उसके सहायक भी अधिक थे परन्तु स्वामी जी अपनी सूझबूझ से दूर की देखते थे, इसलिये और अव्यवस्थित सभा आदि के उन प्रपंचों में वे महात्मा नहीं फंसे। उनके प्रपंच का गूढ़ प्रयोजन अर्थात् वास्तविक अभिप्राय वह धार्मिक पुरुष समझ गये और दिन-प्रतिदिन दी जाने वाली दूसरे मतों के पण्डितों को स्वार्थमयी प्रेरणा की ओर भी उस विचारशील महात्मा का ध्यान आकृष्ट होने लगा और वह यह भी समझ गये कि पण्डित लोग एकमत होकर कोलाहल मचा कर सत्यधर्म की विशेषताओं को छिपाने का प्रयत्न करते हैं (अर्थात् विभिन्न मतों के पण्डित स्वामी जी के साथ मुठभेड़ में अपनी आजीविका नष्ट होते देखकर एक हो जाते हैं)।

वल्लभाचार्य मत वालों से शास्त्रार्थ

गुसांई के कुचक्र से सावधान हो गये—बम्बई पहुंचकर जब स्वामी जी ने वल्लभाचार्य मत का समस्त वृत्तान्त ज्ञात किया और उसका यथार्थ ज्ञान हो जाने के पश्चात् उन्होंने उस मत के खंडन और उसकी पोल खोलने के लिए लगातार भाषण और उपदेश आरम्भ किये और उस ब्रह्म सम्बन्ध वाले मन्त्र का भी, जिससे वह चेले और चेलियों का तन-मन-धन अपने अर्पण कराके ब्रह्म सम्बन्ध[४] कराते हैं, खूब उपहास किया तो गुसांई जी की बहुत हानि होने लगी। तब जीवन जी गुसांई ने स्वामी जी के सेवक बलदेवसिंह कान्यकुब्ज ब्राह्मण को बुलाकर कहा कि यदि तुम स्वामी जी को मार दो तो तुम्हें मैं एक हजार रुपये दूंगा। उसी समय पांच रुपये नकद और ५ सेर मिठाई प्रसाद के रूप में दी और हजार रुपये देने की प्रतिज्ञा करके एक रुक्का (प्रतिज्ञापत्र) लिख दिया। बलदेवसिंह अभी स्वामी जी के पास पहुंचा नहीं था कि उनको सूचना मिल गई कि तुम्हारा रसोइया जीवन जी के पास खड़ा है।

जब वह पहुंचा तो स्वामी जी ने पूछा कि तुम गोकुलियों के मन्दिर में गये थे?

बलदेवसिंह—हां महाराज! गया था।

स्वामी जी—क्या ठहरा?

बलदेवसिंह—पांच रुपया नकद, पांच सेर मिठाई और यह रुक्का लिखकर दिया है कि मार दो तो हजार रुपये ले लो।

स्वामी जी—मुझको कई बार विष दिया गया है परन्तु मैं मरा नहीं; बनारस में विष दिया गया, कर्णवास में राव कर्णसिह चक्रांकित ने पान में विष दिया तब भी नहीं मरा और अब भी नहीं मरूंगा।

बलदेवसिंह—महाराज मेरे कुल का काम विष देना नहीं है और फिर ऐसे को जिससे समस्त जगत् को लाभ पहुंच रहा है।

स्वामी जी ने मिठाई फिंकवा दी, रुक्का फाड़कर फेंक दिया और कहा कि 'सावधान, भविष्य में उनके यहां कभी मत जाना।'

अज्ञातनामा के प्रश्नों के उत्तर में विज्ञापन प्रकाशित करवाया—बम्बई के रहने वाले किसी अज्ञात 'प, ग, न' नाम के ने कार्तिक शुक्ला ४, संवत् १९३१ को २४ प्रश्न[५] छपवाकर स्वामी जी के पास भिजवाये । स्वामी पूर्णानन्द ने स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की सम्मति इसे प्रश्नों के उत्तर में निम्नलिखित विज्ञापनपत्र प्रकाशित किया—

विज्ञापनपत्र

विदित हो कि जैसा स्वामी नारायण है वैसा मैं नहीं हूं और जिस प्रकार जयपुर नगर में गोस्वामी का पराजय हुआ—ऐसा भी मैं नहीं हूं । बम्बई नगर के निवासी किसी एक हरिभक्तों के चरणों के इच्छुक 'प, ग, न' गुप्त नाम वाले पुरुष के संवत् १९३१ कार्तिक शुक्ल पक्ष ४, शुक्रवार को ज्ञानदीपक-यन्त्रालय के छपे हुए २४ प्रश्नों का उत्तर दिया जाता है—

पहले प्रश्न का उत्तर—प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों को स्वीकार करता हूं ।

दूसरे प्रश्न का उत्तर—चारों वेदों को प्रमाण मानता हूं ।

तीसरे का उत्तर—चार संहिताओं को प्रमाण मानता हूं परन्तु परिशिष्ट को छोड़कर (अर्थात् परिशिष्ट को प्रमाण नहीं मानता, वह अप्रमाण है) । ब्राह्मण आदि ग्रन्थों को मैं मत के रूप में स्वीकार नहीं करता परन्तु उनके रचयिता जो ऋषि हैं, उनकी वेद विषय में कैसी सम्मति है, यह जानने के लिये अध्ययन करता हूं कि उन्होंने कैसा अर्थ किया है और उनका क्या सिद्धान्त है ।

चौथे का उत्तर—तीसरे में समझ लेना ।

पांचवें का उत्तर—शिक्षा आदि वेदांगों के कर्त्ता मुनियों की वेद के विषय में कैसी सम्मति है यह जानने के लिये शिक्षा आदि वेदांगों को देखता हूं । उनको मत मान कर स्वीकार नहीं करता ।

छठे का उत्तर—वेद-वेदांग, भाष्य और उनके व्याख्यान, जो आर्ष अर्थात् ऋषिप्रणीत हैं उनको मत मानकर स्वीकार नहीं करता किन्तु परीक्षा के लिए कि वे ठीक किये गए हैं वा नहीं, यह जानने के लिए देखता हूं, वह मेरा मत नहीं है ।

सातवें का उत्तर—जैमिनि कृत पूर्वमीमांसा, व्यासकृत उत्तर मीमांसा, चरणव्यूह-इनका संग्रह भी मत मानकर नहीं करता किन्तु इनको इनके मत की परीक्षा के लिए देखता हूं; और किसी रूप में नहीं ।

आठवें का उत्तर—पुराण, उपपुराण, तंत्रग्रन्थ-इनके अवलोकन और अर्थ में ही श्रद्धा नहीं रखता, इनको प्रमाण मानने की तो कथा ही क्या है !

नवें का उत्तर—सारी (महा) भारत और वाल्मीकि रचित रामायण को प्रमाण नहीं मानता क्योंकि लोक में वे बहुत प्रकार से (बहुत से रूप में) व्यवहृत हैं । उन (उस समय के राजा आदि) के वृत्तान्त का जानना ही उनका अभिप्राय है; क्योंकि वे व्यतीत हो गये हैं ।

दसवें का उत्तर भी नवें में समझ लेना ।

ग्यारहवें का उत्तर—मनुस्मृति को मनु का मत जानने के लिए देखता हूं; उसको इष्ट समझकर नहीं ।

बारहवें का उत्तर—याज्ञवल्क्य और मिताक्षरा आदि का तो प्रमाण ही नहीं करता ।

तेरहवें का उत्तर—बारहवें में समझ लेना ।

चौदहवें का उत्तर—विष्णुस्वामी आदि जो सम्प्रदाय हैं उनको मैं लेशमात्र भी प्रमाण नहीं मानता; प्रत्युत उनका खंडन करता हूं; क्योंकि ये सारे सम्प्रदाय वेद के विरुद्ध हैं ।

पन्द्रहवें का उत्तर—चौदहवें में समझ लेना ।

सोलहवें का उत्तर—मैं स्वतन्त्र नहीं हूं; प्रत्युत वेद का अनुयायी हूं, ऐसा समझना चाहिए । जड़ आदि जो छः पदार्थ हैं, उनका वेद में जैसा कथन है, वैसा मानता हूं ।

सत्रहवें का उत्तर—जगदुत्पत्ति जैसी वेद में लिखी है और (तथा उसमें लिखे अनुसार) जिसने की है, उस सारे को उसी प्रकार मानता हूं ।

अठारहवें का उत्तर—जिस समय से सृष्टि की परम्परा आरम्भ हुई है, उस काल की कोई गणना नहीं है, यह जानना चाहिये ।

उन्नीसवें का उत्तर—वेदोक्त जो यज्ञ आदि कर्म हैं वे सभी यथाशक्ति किये जाने चाहिएं ।

बीसवें का उत्तर—जो विधि वेदोक्त है, वही माननी चाहिए, अन्य नहीं ।

इक्कीसवें का उत्तर—शाखाओं में जो कर्म विहित हैं वे जहां तक वेदानुकूल हों प्रामाणिक हैं; विरुद्ध हों तो प्रामाणिक नहीं हैं ।

बाईसवें का उत्तर—ईश्वर का कभी भी जन्म मरण नहीं होता । जिनके जन्म-मरण होते हैं वह ईश्वर ही नहीं है । सर्वशक्तिमान् होने से, अन्तर्यामी होने से, निरवयव होने से, परिपूर्ण होने से, न्यायकारी होने से ही ईश्वर ईश्वर है ।

तेइसवें का उत्तर—मैं संन्यासाश्रम में हूं ।

चौबीसवें का उत्तर—'सत्यधर्मविचार' नामक पुस्तक जिसने यन्त्रालय में छपवाई है उसका मत उस (पुस्तक) में है; मेरा उसके मत में आग्रह नहीं ।

यदि हम आर्य लोग वेदोक्त धर्म के विषय में प्रीतिपूर्वक, पक्षपात को छोड़कर, विचार करें तो सब प्रकार से कल्याण ही है; यही मैं चाहता हूं । इसके लिए नित्य सभा होनी चाहिए; ऐसा होवे तो उत्तम हो । जिस विधि से नानाविध सम्प्रदायों का नाश हो जाये, उस विधि का सब को अवलम्बन करना चाहिए ।

प्रश्न दोषपूर्ण हैं—परन्तु १३, १४, १५ प्रश्नों में 'पीसे को फिर पीसना' जैसा पुनरुक्ति दोष है, क्योंकि उन्होंने नहीं समझा, इसलिए मैंने जान लिया कि प्रश्नकर्ता को प्रश्न करने का ज्ञान नहीं है और ऐसे प्रश्नकर्ता के साथ समागम करने से उचित विचार नहीं हो सकेगा, ऐसी मेरी सम्मति है । फिर जिसने प्रश्न किये हैं उसने अपना नाम भी नहीं लिखा, यह भी एक दोष है; ऐसा सज्जनों को समझना चाहिए और इसमें स्वामी जी की सम्मति है । इसके उपरान्त जो कोई अपना नाम प्रकट रूप से लिखे बिना प्रश्न करेगा, इसका उत्तर उसी से दिलाऊंगा और जिस सम्प्रदाय को जो मानता है उसको संक्षेप से जब तक न कहेगा तब तक इसका भी इसी से दिलाऊंगा । प्रकाशक, स्वामी पूर्णानन्द; कार्तिक शुक्ला ७, सोमवार, संवत् १९३१ तदनुसार १६ नवम्बर, सन् १८७४ ।

कोई वैष्णव पंडित सामने नहीं आया—इसके पश्चात् न तो उस पहले प्रश्नकर्ता ने मुख दिखलाया, न किसी और ने सम्मुख होकर शास्त्रार्थ किया, न गट्टूलाल शास्त्री आदि वैष्णव मत के विद्वानों ने कभी शास्त्रार्थ करने का नाम लिया और न कभी स्पष्ट अपना नाम लिख कर कोई विज्ञापन प्रकाशित किया । रणक्षेत्र में सामने आने का साहस दिखाना और मूर्तिपूजा को वेदानुकूल सिद्ध करना तो नितान्त असम्भव और प्राणों के लिए संकट ही नहीं जंजाल बन गया ।

पटना निवासी पंडित छोटेलाल सारस्वत ब्राह्मण को, जो कार्तिक मास, संवत् १९३१ में स्वामी जी से बम्बई में मिले थे, स्वामी जी ने बताया कि 'जीवन जी गुसांई टट्टी की आड़ में हमसे शास्त्रार्थ करते हैं, सामने नहीं आते । हम चाहते हैं कि जो कोई हमसे शास्त्रार्थ करे वह अपना नाम और मत स्पष्ट लिखकर बतलावे, तब हम शास्त्रार्थ करेंगे ।'

इसके पश्चात् स्वामी जी ने एक छोटा-सा पत्र छापा कि जो कोई हमसे शास्त्रार्थ करना चाहे वह अपना नाम, मत, सम्प्रदाय साफ-साफ बतला देवे, तब हम उसका उत्तर देंगे या उससे शास्त्रार्थ करेंगे। पर्दे की ओट में आक्षेप करना ठीक नहीं।

स्वामी जी ने अपने विज्ञापन में एक स्थान पर 'प्रमाणम्' को 'प्रयाणम्' लिखा था। गट्टूलाल ने कहा कि यह अशुद्ध है। तब स्वामी जी ने कहा 'ल्युट् च' एक सूत्र[६] है उससे ऐसा सिद्ध होता है; आप उसका अवलोकन करें।

पंडित गट्टूलाल[७] अपने ही मंच पर अपने ही शिष्य से भी निरुत्तर—मथुरा पंथ नामक एक भाटिया ने, जो पहले जीवन जी के सम्प्रदाय में था, अब उसने उस (सम्प्रदाय वालों) की कंठी तोड़कर स्वामी जी की सहायता ली और बहुत से मनुष्य कंठी तोड़कर अपने साथी बना लिए। उनके निमित्त से स्वामी जी ने धोबी तालाब पर एक अत्यन्त सुन्दर तिखने मकान में तीसरे पहर को एक व्याख्यान दिया। उस समय वहां कम से कम ५-६ हजार मनुष्यों की और अधिक से अधिक १० हजार की उपस्थिति होगी। उस समय हम भी उपस्थित थे, स्वामी जी वेद के मन्त्रों का अर्थ कर रहे थे। सुपरिण्टैण्डैण्ट पुलिस का कठोर पहरा लगा हुआ था। दो बजे से ६ बजे तक व्याख्यान हुआ; विषय उसका 'मूर्तिपूजा' था। स्वामी जी ने उस व्याख्यान में मूर्तिपूजा और गट्टूलाल आदि के मत का वेद मंत्रों और युक्तियों से अच्छी प्रकार खण्डन किया। उस व्याख्यान की बहुत प्रशंसा हुई और जीवन जी आदि वैष्णव सम्प्रदाय वालों को उससे अत्यन्त दुःख हुआ और यह बात भी प्रसिद्ध हुई कि अब उनके विरुद्ध कोई नहीं बोल सकेगा। यह बात जीवन जी ने गट्टूलाल को कही, यह भी कहा कि यदि ऐसा ही हुआ तो फिर बम्बई के हमारे शिष्य, जिनमें से पहले ही बहुत लौट गए हैं और मथुरापंथ ने तो हमको बहुत ही कम कर दिया है, परन्तु अब जो रहे सहे हैं वे भी हाथ से निकल जायेंगे और वैष्णवधर्म उठ जायेगा। तब उसके अगले दिन यह बात ठहरी कि लालबाग में अगले दिन रात को एक व्याख्यान गट्टूलाल की ओर से हो और उसका विषय 'दयानन्द सरस्वती के मन्तव्य के विरुद्ध मूर्तिपूजा स्थापन' रक्खा जावे। वेद तथा शास्त्र रक्खे जावें और सब वैष्णवों और दूसरे मत के पंडितों को बुलाया जाय। ऐसा ही किया गया, हजारों मनुष्य एकत्रित हुए और गट्टूलाल जी आकर बैठे। उनके एक शिष्य ने दयानन्द का वह मत प्रकाशित किया जो उन्होंने पहले दिन के व्याख्यान में कहा था। फिर गट्टूलाल ने संस्कृत भाषा में वक्तृता की, ग्रन्थों के प्रमाण दिए और पुस्तक खोल-खोलकर पंडितों से बंचवाये (क्योंकि वे स्वयं तो अन्धे हैं) इससे[1] सबने समझा कि मूर्तिपूजा सिद्ध हो गई और सब उनकी प्रशंसा करने लगे। तब हमने सबके सामने खड़े होकर

---

1. मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी अपनी पत्रिका में लिखते हैं-'वृत्तान्त यह है कि यह महाराज बम्बई में उपदेश देते हैं (१) मूर्तियों को न पूजो (२) वेदों तथा शास्त्रों की तुलना में पुराण नगण्य हैं। (३) विधवाओं का पुनर्विवाह करो (४) अवतारों को दूसरे मनुष्यों की कोटि का समझो (५) जब लड़का २५ वर्ष का और लड़की १६ वर्ष की हो तभी उसका विवाह-सम्बन्ध करो। ईश्वर के नाम पर उपदेश देने वाले इस अकेले का सामना करने के लिए २०० पंडित (इस अभिप्राय से) एकत्रित हुए थे कि उसके कथन का वेदों के आधार पर खंडन करें।

सम्पादक—मनुष्य को बुद्धि (विवेक शक्ति) और इन्द्रियां इस प्रयोजन से प्रदान किये गए हैं कि वह कर्तव्य अकर्तव्य, सत्य-असत्य, हानि-लाभ और साधारण तथा विशेष में विवेक करे। इसलिए नहीं दिये गए कि किसी एक विवेकशील को पूर्ण-बुद्धिमान् समझकर उसके साथ भेड़ों के तुल्य कूप में गिरे। वेद बुद्धियुक्त पुस्तक हैं, उनमें स्वामी दयानन्द के विरुद्ध कदापि कुछ न होगा। यदि किसी स्वार्थी ने अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए मूर्तिपूजा विषयक कोई श्रुति मिला दी हो तो कुछ आश्चर्य नहीं। क्योंकि चारों वेद एक ग्रन्थ के रूप में कहीं नहीं मिलते। सम्भव है कि अपना प्रयोजन सिद्ध करने की कोई श्रुति बनाकर और उसको व्यास का वचन कह कर मिला दी हो। यदि यह मान भी लिया जाये कि वह व्यास की बनाई हुई है तो भी व्यास एक मनुष्य ही तो था। जितनी विवेक बुद्धि दूसरे मनुष्य रखते हैं वह भी रखता था। यदि उसने समय की अवश्यकता के अनुसार अपना मत प्रतिपादित कर दिया तो यह आवश्यक नहीं कि हम उस समय के मत के अनुसार चलें ही। हजार वर्ष पहले संसार के मनुष्य धनुष-बाण की सहायता से युद्ध करते थे इसी आधार पर भीष्म पितामह को पांडवों के कुल के लोग अपना गुरु मानते थे। परन्तु आज के दिन तो उस गुण और विद्या का मूल्य फूटी कौड़ी के बराबर भी नहीं है; क्योंकि एक

उच्चस्वर से कहा कि महाराज, दयानन्द जी कहते हैं कि वेद में मूर्ति शब्द भी नहीं है और न मूर्तिपूजा ही वेद में है । जब तक इसका उत्तर न मिलेगा तब तक लोगों का संदेह निवृत्त न होगा ।' तब उन्होंने सबको सुनाकर कहा और सामवेद की संहिता निकाली और उसमें से आकाश शान्ति और अद्भुत शान्ति कहकर "प्रतिमा: हसन्ति, रुदन्ति" निकलवाया जिस पर सब लोग प्रसन्न हो गए और सब ब्राह्मणों को आठ-आठ आने दक्षिणा बंटवायी गयी और सभा विसर्जित हुई । खेद है कि इतनी बड़ी सभा में भी किसी को इतनी समझ न आई कि यह वाक्य सामवेद संहिता में नहीं हैं । बात यह है सचमुच दक्षिणा एक बुरी व्याधि है ! (किसी ने कहा है कि हे धन, तू ईश्वर न सही परन्तु फिर भी ईश्वर है क्योंकि तू दोषों का छिपाने वाला और आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला है) । फिर यह वाक्य तो सामवेद या किसी अन्य वेद की संहिता का भी नहीं है । केवल जनता को धोखा दिया गया; उन्होंने समझा कि जैसे हम नैनसुख हैं वैसे और विद्वान् भी होंगे ? परन्तु ऐसा सोचना सरासर झूठ है ।

निर्भय दयानन्द द्वारा बम्बई नगरी में शास्त्रचर्चा

निर्भय दयानन्द—यहां स्वामी जी सदा समुद्र के किनारे टहलने जाया करते थे । जीवन जी ने चार मनुष्य स्वामी जी को मारने के लिए नियत किये । जिस सड़क पर वे बिठाये गए थे उस पर स्वामी जी प्रतिदिन बलदेवसिंह के साथ जाया करते थे । एक दिन उन लोगों से सामना हुआ परन्तु स्वामी जी की मूर्ति देखकर मारना तो एक ओर रहा, वे कुछ बोल भी न सके । तब स्वामी जी ने उन्हें यह कहा कि तुम हमारे मारने के लिए ही आते हो; क्योंकि उनके हृदय का खोट उन पर भलीभांति प्रकट हो गया । वे फिर कभी नहीं मिले परन्तु स्वामी जी सदा उसी सड़क पर घूमने जाते रहे, उनकी कुछ चिंता नहीं की ।

तोप के गोले के धनुर्विद्या के सौ गुरु वहां पहुंच सकते हैं कि जहां का कुछ पता तक नहीं है । इसलिए इस समय के मनुष्य को विवेक से काम लेना उचित है । (वह यह विचार करे) कि मूर्तियां परमात्मा से अधिक उत्कृष्ट हैं या परमात्मा मूर्तियों से (उत्कृष्टतर है) । यदि मूर्तियां अधिक गुण रखती हों तो आत्मा-परमात्मा और ईश्वर-परमेश्वर को पुस्तकों से निकाल दो और वाणी से उनका नाम तक मत लो फिर जिस मूर्ति को वे दो सौ पंडित स्थापित करें, उसको पूजो । तुम करोगे तो वही जो तुम्हारे बाप दादा करते आ रहे हैं, परन्तु इतना कहना तो हमारा कर्तव्य है कि सब हिन्दू मिलकर एक मूर्ति निश्चित कर लें और सब उसकी उपासना करें । वेश्याओं के समान वसन्त और दशहरे को घर-घर न फिरें । मैं नहीं कहता कि विधवाओं का पुनर्विवाह करो परन्तु विधवाओं को गर्भ वैध कराने की आज्ञा दो ताकि गर्भपात न हों । फूट ने भारत से देशप्रेम को खोया है और भारतीयों को मुसलमान और ईसाई बनाया है । जिनके मस्तिष्क विचारशक्ति से शून्य होते हैं, वे दूरदर्शी नहीं होते । इस चेष्टा का लाभ यदि होगा तो ब्राह्मणों को होगा और किसी जाति को नहीं । आज के क्षत्रियों से तो वे कहार अच्छे हैं जिनके कन्धों पर डोले राजाओं के घर से बादशाहों के यहां पहुंचते थे । जैसे काबुल में सब घोड़े नहीं होते, गधे भी होते हैं वैसे प्रत्येक जाति में योग्य और अयोग्य-दोनों प्रकार के व्यक्ति होते हैं । सबसे उत्तम व्यास जी व उनके पिता पाराशर जी (देखो, शंकराचार्य द्वारा रचित वज्रसूची) थे । बाल्यावस्था के विवाह ने हिन्दुओं को शिक्षा, कला कौशल और संसार भ्रमण, सब से खो दिया और छल तथा पाखंड सिखाया और दुर्बलांग तथा साहसहीन बनाया । दयानन्द सरस्वती के कहने को (नहीं सुनना चाहते तो) न सुनो; परन्तु भारत में कोई वेदशास्त्र का जानने वाला और कोई जीवित हो तो उसी से पूछो (तो वह बता देगा) कि ये भीख मांगने वाले तथा मूर्खों को ठगने वाले, जिनके वचनों को तुम प्रमाण समझते हो, वस्तुतः कुछ नहीं मानते । जो वेदों और शास्त्रों और बुद्धि तथा उचित ज्ञान से रहित हैं उनसे कुछ कहना भैंस के आगे बीन बजाना है परन्तु वस्तुतः बात यही है कि प्रत्येक धर्म की पुस्तकें वेदों से (इस बात पर) सहमत हैं कि परमात्मा वह है जिसका अनुभव रूप, रस, स्पर्श, गन्ध तथा शब्द द्वारा न हो । फिर जिसका आकार (या मूर्ति) होगा वह तो मिटेगा ही । इसलिए अवतार तो एक ओर रहे, ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा शक्ति भी यदि आकृति और रूप रखते हैं तो ऐसे ही विनाशी हैं जैसे कि हम या तुम । जिसका नाश न हो ऐसा इस भारत में, प्रत्युत किसी भी देश में, कोई (प्राणी) नहीं हुआ और न है और न होगा ।

संवाददाता ने दयानन्द सरस्वती को आंखों से नहीं देखा परन्तु उनके वृत्तान्त पर विचार करने से तो ऐसा प्रतीत होता है कि दूसरे अवतार जहां पृथिवी का भार दूर करने को हुए थे, वहां इन्होंने संसार के मनुष्यों के हृदयों से अन्धकार को निकालने के लिए अवतार लिया है, दूसरे अवतार तो विष्णु या रुद्र के थे, (परन्तु ये तो साक्षात्) सच्चिदानन्द अद्वितीय के अवतार हैं । इनके चरणों में शीश को झुकाकर बार-बार नमस्कार करता हूं कि यह सच्चे ब्राह्मण हैं ।

पुस्तकालय में शास्त्रार्थ—गोस्वामी जीवन जी ने जब देखा कि इनके आगे हमारा वश नहीं चलता तो मद्रास को भाग गए। तत्पश्चात् स्वामी जी ने 'वल्लभाचार्य-मत-खंडन'[८] पुस्तक लिखकर प्रकाशित की। फिर स्वामी जी का बम्बई के पण्डितों से पुस्तकालय में शास्त्रार्थ हुआ। एक बड़ा सिंहासन बनाया गया और उस पर वेद की पुस्तक प्रमाण के लिए रखी गई। ब्राह्मणों ने कहा कि हम ऊपर बैठते हैं। स्वामी जी ने कहा कि हम संन्यासधर्म से (संन्यासी होने के कारण ऊपर) बैठते हैं; तुम कुछ हमसे पूछो, यदि हम उत्तर न दे सकें तो तुम बैठ जाना, हम उतर आयेंगे। यह शास्त्रार्थ व्याकरण और प्रतिमा के विषय पर था परन्तु कोई पंडित मूर्तिपूजा को वेद से सिद्ध न कर सका।

वेदान्त विषय पर शास्त्रार्थ—बम्बई के पंडितों के शिरोमणि जयकिशन व्यास से लीलाधर सेठ के बाग में जीव-ब्रह्म की एकता पर शास्त्रार्थ हुआ और उसी अवसर पर स्वामी जी ने 'वेदान्तध्वान्तनिवारण'[९] पुस्तक लिखकर छपवाई।

'आर्यसमाज' की स्थापना करने का विचार अंकुरित हुआ—स्वामी जी के चले जाने पर फिर इस उत्तम धर्मकार्य अर्थात् सत्योपदेश का चलाना कठिन होगा इसलिए एक 'आर्यसमाज' स्थापित होना चाहिए, इस प्रकार का विचार कई-एक धर्म जिज्ञासु गृहस्थों के मन में उत्पन्न हुआ।

कुछ स्वार्थी, ढोंगी भक्तों द्वारा इस विचार का विरोध—इस विचार को सुनकर स्वामी जी को यहां (बम्बई में) बुलाने में जिन्होंने अधिक भाग लिया था, वे लोग क्रुद्ध हो गए; क्योंकि उन लोगों का यह हेतु था कि स्वामी जी के द्वारा किसी विशेष मत का खंडन करवाकर, उस मत के बहुत से अनुयायियों को अपनी ओर करें, स्वामी जी के जाने के पश्चात् उन लोगों को अपना शिष्य बना कर उन्हें कथाश्रवण करने के लिए आने का उपदेश किया जाये। (ये पौराणिक पंडित लोग नवीन वेदान्ती थे)। वैसे ही जो लोग वेद को नहीं मानते थे और स्वामी जी के सहायक थे, (अर्थात् ब्रह्मसमाजी और प्रार्थनासमाजी) वे लोग भी इस विचार को जानकर प्रसन्न नहीं हुए, क्योंकि उन लोगों को भी यह निश्चय था कि स्वामी जी के चाहने वालों में से अधिकतर लोग हमारी समाज में सम्मिलित होंगे।

हे भाइयो! विचार करो कि तुम्हारे ज्योतिषियों, गुरुओं और पंडितों ने, और तुम्हारे पत्थरों और देवताओं और मन्दिरों की मूर्तियों ने, मुसलमानों के आक्रमण को बिलकुल नहीं रोका। मुसलमानों ने ब्राह्मणों और तुम्हारी मन्दिरों की मूर्तियों से जो व्यवहार किया (उसको) इतिहास से पढ़ लो और काशी में जाकर देख लो।

शत्रुओं के आक्रमण से बचाव रखने और शत्रुओं पर विजय दिलाने के लिए तो विद्या, कला और वही एक सच्चिदानन्द अद्वितीय है। दयानन्द सरस्वती और ब्रह्मसमाजियों के कथन को सुनो (उनके अनुसार काम करो) अन्यथा सौ वर्ष के भीतर (तुम्हारा मूल्य) कौड़ी के तीन-तीन रह जायेगा। हम उस समय न होंगे परन्तु हमारा लिखा अवश्य रहेगा। खेद है कि मूर्खों को मित्र शत्रु दिखाई देते हैं और शत्रु माता से भी आधिक कृपालु। इससे विदित होता है कि हिन्दू धर्म और भारतीयों का पतन है। आज हिन्दू ऐसे शक्तिहीन हैं कि सौ हिन्दू को एक मुसलमान धमका सकता है और ब्राह्मण जो उनके गुरु हैं, वे अनपढ़ हैं और भीख मांगने को ब्राह्मण का धर्म कहते हैं। इस विद्या और बुद्धि पर रोना आता है!

जब पांच वर्ष की बेटी विधवा होती है तो कहते हैं कि कर्म फूट गए। कोई उस समय नहीं कहता कि तुम्हारी और तुम्हारे पथप्रदर्शकों के हृदयों की आंखें फूटी हैं! जब लोगों को कुछ विवेक होगा तो जानोगे कि उनके पूर्वज कैसी बुद्धि रखते थे और इंग्लैण्ड निवासी दो हजार वर्ष से पहले के इंग्लैंड निवासियों को जिन शब्दों में स्मरण करते हैं, उन्हीं शब्दों से सौ-पचास वर्ष पश्चात् भारतवासी इस समय के गुरु और शिष्यों को स्मरण करेंगे। इस लेख से मुझे यह तो आशा नहीं है कि कोई मेरी इस सम्मति के अनुसार चलेगा क्योंकि पत्थर में जोंक नहीं लगती। जब किसी युग के लोग इस युग के लोगों को मूर्ख कहें तो संवाददाता को क्षमा करें कि जो उनको उस समय कहना अधिकार होगा उनके पूर्वज उससे अधिक कठोर शब्दों में इस समय स्मरण करते हैं। —लेखक, सरस्वती कान्त

सच्चे धर्म जिज्ञासुओं का निश्चय अधिक दृढ़ हुआ—इसी प्रकार जब कुछ विशेष धर्म जिज्ञासुओं को इन दोनों (प्रकार के लोगों) का हार्दिक अभिप्राय विदित हुआ कि वे लोग ऊपर से तो सत्यशोधक हैं परन्तु भीतर से अत्यन्त स्वार्थी हैं; तब 'आर्यसमाज' की स्थापना करने की उनकी इच्छा बहुत बढ़ गई और अन्ततः समाज स्थापित करने पर वह उद्यत हो गए, जिसका परिणाम यह हुआ कि संवत् १९३१ के मंगसिर बदि प्रतिपदा से सप्तमी, तदनुसार २४ से ३० नवम्बर, सन् १८७४ तक के व्यवधान में कई एक महानुभावों ने उस महापंडित को अपना विचार समझा कर उसके सामने ६० सज्जनों से हस्ताक्षर करवाकर 'आर्यसमाज' चलाने का निश्चय किया और स्वामी जी ने हिन्दीभाषा में उसके नियम[१०] भी रच दिए और उसमें समय-समय पर धर्मोपदेश करने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया।

फिर दूसरे विघ्न आ गये—परन्तु उनमें से कुछ सज्जनों पर तो बिरादरी की ओर से ऊपर से बहुत से दबाव डाले गए और कुछ ने इस आर्यसमाज का सभासद् बनने को धनाढ्यता की शान के विरुद्ध समझा और कुछ सज्जनों के मित्रों और सम्बन्धियों से इस बात को लेकर झगड़े आरम्भ हो गए। अन्त में यह भी हुआ कि उस महापण्डित पर लोग नाना प्रकार के कपोल-कल्पित दोष भी लगाने लगे कि वह ईसाई है, अंग्रेजों का नौकर है, म्लेच्छ है आदि आदि (इस अभिप्राय से लगाने लगे कि जिससे महाराज जी से उनकी श्रद्धा उठ जाए)। (परिणाम यह हुआ कि इस समय आर्यसमाज की स्थापना का कार्य सम्पन्न नहीं हो सका)।

गुजरात-काठियावाड़ की धर्म-प्रचार यात्रा

(अहमदाबाद, राजकोट, अहमदाबाद, बम्बई, पूना, बम्बई में धर्म-प्रचार)

अहमदाबाद में मूर्तिपूजन पर शास्त्रार्थ—इतने में दिसम्बर मास, सन् १८७४ में, गोपालराव हरिदेशमुख, बहादुर जज अहमदाबाद, का पुत्र जो कि बैरिस्टर है-आकर स्वामी जी को **अहमदाबाद** ले गया।[११] अहमदाबाद का एक भाटिया रईस स्वामी जी को स्टेशन पर लेने आया था। यह इतना धनी था कि उसने दो तीन लाख रुपया लगाकर अपना मन्दिर बनवाया था। मार्ग में उसने स्वामी जी से अपने मन्दिर की प्रशंसा आरम्भ की। स्वामी जी ने इसके उत्तर में खेद प्रकट किया और गाड़ी में हाथ मार कर कहा कि जितना रुपया तुमने एक पत्थर पर लगाया, यदि किसी पाठशाला पर लगाते तो वेद पढ़े हुए ब्राह्मण संसार को लाभ पहुंचाते। ऐसी ही मूर्खता के कारण हम लोगों की दुर्दशा हो रही है कि जब वेद जर्मनी से आते हैं तब कहीं पढ़ने को मिलते हैं। उसने कहा कि प्रतिमापूजन मैं (वेदानुकूल) सिद्ध करा दूंगा। फिर उसने राजा मल्हारराव[१२] से यह बात कही, पण्डित बुलाये और एक जज के बाग में, जहां स्वामी जी ठहरे हुए थे शास्त्रार्थ होना निश्चित हुआ। दो-ढाई सौ पण्डित एकत्रित हुए। ५-६ घंटे तक शास्त्रार्थ होता रहा। अन्त में जब वे लोग प्रतिमापूजन (वेदविहित) सिद्ध न कर सके तो उलट कर गालियां देने लगे। तब देशमुख गोपालराव हरि जज तथा भोलानाथ भाई[१३] ने कहा कि विदित हुआ, प्रतिमापूजन की बात वास्तव में वेद से तो सिद्ध नहीं होती। मानना न मानना अपनी इच्छा पर है। लगभग एक मास स्वामी जी अहमदाबाद में रहे।

राजकोट के राजकुमार कालेज में मद्य-मांस विषयक व्याख्यान

पौष बदि ५, सोमवार, संवत् १९३१; तदनुसार २८ दिसम्बर, सन् १८७४ को अहमदाबाद से राजकोट[१४] की ओर प्रस्थान किया। ३१ दिसम्बर, सन् १८७४ को वहां पहुंचे। उन दिनों वहां गवर्नर का दरबार हो रहा था। वहां एक धर्मशाला अथवा सरकारी सराय है, उसके बड़े बंगले में उतरे। दस-बारह व्याख्यान वहां दिये। वहां एक राजकुमार पाठशाला है; जिसमें गुजरात प्रदेश के समस्त रईसों के लड़के पढ़ते हैं। उन दिनों वर्तमान राजा मोरवी भी वहां शिक्षा पाते

थे और कई राजकुमार व्याख्यानों में आते थे। वर्तमान महाराज मोरवी ने पण्डित काशीराम एम० ए० उदीच्य,[15] हेडमास्टर मोरवी से कहा था कि हमने भी वहां स्वामी जी का व्याख्यान सुना है। एक दिन वहां के अध्यापक लोग स्वामी जी को पाठशाला (कालिज) दिखलाने के लिए ले गये। वहां के प्रिंसिपल साहब ने स्वामी जी को कहा कि आप राजकुमारों को उपदेश दें। स्वामी जी ने उनको भली प्रकार शास्त्रोक्त शिक्षा दी। फिर प्रिंसिपल साहब स्वामी जी से वार्तालाप करते रहे जिस पर वह प्रसन्न हुए और चलती बार स्वामी जी को दो पुस्तक ऋग्वेद की भेंट कीं। राजकोट के कुछ भद्र पुरुषों ने स्वामी जी का फोटो लिया।

इन्द्र आदि शब्द परमेश्वर के वाचक—पण्डित शंकरलाल जी शास्त्री, अष्टावधानी नागर, रईस मोरवी तथा हेड पण्डित मोरवी हाई स्कूल ने वर्णन किया, 'जब संवत् १९३१ में स्वामी जी राजकोट की बड़ी धर्मशाला के बंगले में उतरे हुए थे, तब हम उनसे तीन बार मिले। प्रथम बार हम और जीवनराम शास्त्री, मणिशंकर जटाशंकर नागर, तीनों उनके पास गये थे। उस समय वेद में इन्द्र, वरुण, अग्नि आदि जो शब्द आते हैं, वे परब्रह्मवाचक हैं, यह बात व्याकरण द्वारा धातु से शब्द की व्युत्पत्ति करके दिखला रहे थे। लगभग हम एक घंटा बैठे थे।'

आर्यों को विमानों का ज्ञान था : अमरीका भी कोलम्बस की खोज नहीं है—'दूसरे दिन धर्मशाला के चौक में सभा करके स्वामी जी ने व्याख्यान देशभाषा[16] में दिया था। उस समय आर्य लोगों का यह वर्णन किया कि आर्य लोग अमरीका गये थे और अग्नियान भी पहले विद्यमान था; यह अंग्रेजों का नवीन आविष्कार नहीं है। इस विषय पर उन्होंने वेद के मन्त्र भी बोले थे, जिनका इस प्रकार का अर्थ था कि अग्नि हमारा सहायक हो तो असुर हम तक नहीं पहुंचेंगे। यह भी कहा था कि अर्जुन ने अमरीका में विवाह किया था[17] और यह बात जो लोग कहते हैं कि अमरिका कोलम्बस ने प्रसिद्ध किया, ठीक नहीं; अपितु आर्य लोग इससे पहले प्रसिद्ध कर चुके थे। इस अवसर पर 'तिरखड़' साहब के साथ कुछ विशेष कहा सुनी हो गई थी। स्वामी जी ने कहा था कि व्याख्यान में मत बोलो; व्याख्यान के पश्चात् उत्तर दूंगा।'

'तीसरे दिन जब मैं मोरवी की ओर जाने लगा तो फिर उनके पास गया। उस समय स्वामी जी बोले कि तुम जैसे विद्वान् को वेदोक्तधर्म विषय पर दृढ़ श्रद्धा रखनी चाहिए।'

पंडित जीवनराम जी शास्त्री, रईस राजकोट, ने वर्णन किया, 'स्वामी जी यहां सम्भवत: २५ दिन रहे थे। उन्हीं दिनों यहां बम्बई के गवर्नर भी पधारे हुए थे। विज्ञापन लगवा कर कई व्याख्यान दिये थे। सब व्याख्यान हिन्दी में दिये थे और संस्कृत भी बोलते थे। किंग कालिज में मांस-भक्षण के निषेध में व्याख्यान दिया था। मणिशंकर जटाशंकर के साथ ग्रन्थों के प्रक्षिप्त भाग पर बातचीत हुई। मणिशंकर ने कहा कि 'मनुस्मृति' और '(महा) भारत' में जो आप प्रक्षिप्त कहते हो इसका क्या कारण है? स्वामी जी ने जो उत्तर दिया वह मुझे स्मरण नहीं। स्वर्गीय चतुर्भुज शास्त्री से भी बातचीत हुई थी।

गोरक्षा, मांसभक्षण-निषेध, देशोन्नति तथा मूर्तिपूजा-खंडन पर बल—कुछ दिन तक हम जाते रहे फिर हमारे पिता जी ने रोक दिया कि तुम मत जाओ। उस समय गोरक्षा करने, मांस भक्षण निषेध, देशोन्नति, मूर्तिपूजाखंडन और नवीन मतों-वेदान्त आदि का खंडन करते थे, हमसे कोई शास्त्रार्थ नहीं हुआ।'

प्रथम 'सत्यार्थप्रकाश' में 'कुरान' तथा 'बाइबिल' का खण्डन भी छापने का निश्चय था
प्रेस के स्वामी के नाम स्वामी जी का एक महत्वपूर्ण पत्र

उस समय के एक पत्र से इस यात्रा का सारा वृत्तान्त अच्छी प्रकार ज्ञात होता है। पाठकों के सूचनार्थ उसको यहां लिखता हूं:—

'स्वस्ति श्रीमच्छ्रेष्ठोपमायोग्य लाला हरिवंशलाल आदि को दयानन्द सरस्वती स्वामी की आशीष पहुंचे। आगे मंडनराम पण्डित और बलदेवदत्त स्वामी जी के शिष्य का आशीर्वाद यथोचित पहुंचे। यहां कुशल आनन्द है, आप लोगों

का कुशल आनन्द चाहिए । आगे पौष बदि ५, संवत् १९३१ (२८ दिसम्बर, सन् १८७४) को अहमदाबाद से राजकोट काठियावाड़ में गये । वहां दस-बारह वक्तृत्व भये । लोग सुनके बड़े प्रसन्न भये । राजकोट में एक राजकुमार पाठशाला है सो इसमें राजकुमार लोग पढ़ते हैं । कई राजकुमार वक्तृत्व में आते रहे; सुनके बहुत प्रसन्न भये । एक दिन मास्टर लोग स्वामी जी को राजकुमार पाठशाला में ले गये । स्वामी जी ने वहां भी वक्तृत्व दिया; राजकुमार लोग सब बहुत प्रसन्न भये । फिर स्वामी जी ने राजकुमार लोगों को बहुत शिक्षा की । फिर राजकुमार-पाठशाला के प्रिंसिपल साहब ने स्वामी जी से कई बातें पूछीं । स्वामी जी ने सबका उत्तर दिया । साहब भी बहुत प्रसन्न हुए । स्वामी जी को दो जिल्द (प्रतियां) ऋग्वेद के पुस्तक नजर किये ।

पौष सुदि ११, संवत् १९३१, सोमवार (१८ जनवरी, सन् १८७५) को राजकोट से अहमदाबाद को चले । पूर्णमासी बृहस्पतिवार (२१ जनवरी, सन् १८७५) को अहमदाबाद में आये ।[१८] पांच-सात दिन रहेंगे । बड़ौदा में नहीं जायेंगे । बड़ौदा में गड़बड़ मची है । अंग्रेज लोग सेना लेके चढ़ गये । राजा को बन्दी कर लिया, राजा के ऊपर विष का फरेब लगा के ।

आगे 'सत्यार्थप्रकाश' कितने अध्याय तक छपा ? जितना छपा हो तितना राजा जयकिशनदास के पास भेज दो । जल्दी छापो, यहां बहुत से लोग लेने को कहते हैं । इसके बिना बहुत कष्ट है और शिक्षा की पुस्तक छपी कि नहीं । आगे शुभ हो । संवत् १९३१, मिति माघ बदि २, शनिवार तदनुसार २३ जनवरी, सन् १८७५ ।

आगे मुरादाबाद में कुरान के खंडन का अध्याय शोधन के लिए गया रहा, सो वह शोध के आपके पास आया कि नहीं ? जो न आया हो तो राजा जयकिशनदास जी को खत लिखो । शीघ्र छापने के लिए भेज देवें और बाइबिल का अध्याय सब शोध कर के छाप दो । दो महीने में छापने के लिए जो आपने लिखा है सो दो महीने में सब पुस्तक छाप दो, शुद्ध करके, अशुद्ध न होने पाये और पाठशाला की व्यवस्था आप लोगों के ऊपर है । जैसे चले वैसे चलाये जाओ । हम लोग और स्वामी जी अति प्रसन्न हैं स्वामी जी का आशीर्वाद सब लोगों से कह देना । उत्तर इस पते से लिखना बम्बई में, ठिकाना में बालकेश्वर के समीप ठाकुर श्री नारायण जी के नाम से भेज देना, मिल जायेगा ।'

स्वामी नारायण मत का खंडन—पौष सुदि ११, संवत् १९३१, तदनुसार १८ जनवरी, सन् १८७५ को राजकोट से अहमदाबाद की ओर चले और पूर्णमासी बृहस्पतिवार २१ जनवरी सन् १८७५ को अहमदाबाद आये और स्वामी-नारायण मत का अच्छा खंडन किया और उन्हीं दिनों पुस्तक 'स्वामी-नारायण-मत-खंडन[१९] लिखी । इस बार सात दिन रहे । यहां से स्वामी जी प्रथम बड़ौदा जाने वाले थे परन्तु उन दिनों बड़ौदा में गड़बड़ मच गई, अंग्रेज लोग सेना लेके चढ़ गये । राजा को विष खिलाने के अपराध में बन्दी कर लिया । इसलिए उधर का विचार स्थगित करके बृहस्पतिवार २९ जनवरी, सन् १८७५ तदनुसार माघ बदि ८, संवत् १९३१ को स्वामी जी दूसरी बार बम्बई में पधारे ।

बम्बई में स्वामी जी के दूसरी बार आने पर आर्यसमाज-स्थापना का विचार पुनः अंकुरित हुआ—स्वामी जी के गुजरात की ओर चले जाने से आर्यसमाज की स्थापना का विचार जो बम्बई वालों के मन में उत्पन्न हुआ था, वह ढीला हो गया था परन्तु अब स्वामी जी के पुनः आने से फिर बढ़ने लगा और अन्ततः यहां तक बढ़ा कि कुछ सज्जनों ने दृढ़ संकल्प कर लिया कि चाहे कुछ भी हो, बिना स्थापित किए हम नहीं रहेंगे । स्वामी जी के लौटकर आते ही फरवरी मास, सन् १८७५ में गिरगांव के मोहल्ले में एक सार्वजनिक सभा करके स्वर्गवासी रावबहादुर दादू बा पाडुरंग जी की प्रधानता में नियमों पर विचार करने के लिए एक उपसभा नियत की गई । परन्तु उस सभा में भी कई एक लोगों ने अपना यह विचार प्रकट किया कि अभी समाज-स्थापना न होना चाहिए । ऐसा अन्तरंग विचार होने से वह प्रयत्न भी वैसा ही रहा ।

बम्बई में प्रथम आर्यसमाज की स्थापना— अन्त में जब कई बार भद्र पुरुषों को ऐसा प्रतीत हुआ कि अब समाज की स्थापना होती ही नहीं, तब कुछ धर्मात्माओं ने मिलकर राजमान्य राज्य श्री पानाचन्द आनन्द जी पारेख को नियत किए हुए नियमों पर विचारने और उनको ठीक करने का काम सौंप दिया। पर जब ठीक किए हुए नियम स्वामी जी ने स्वीकार कर लिए तो उसके पश्चात् कुछ भद्र पुरुष, जो आर्यसमाज स्थापित करना चाहते थे और नियमों को बहुत पसन्द करते थे, लोकभय की चिंता न करके, आगे धर्म के क्षेत्र में आये और चैत्र सुदि ५ शनिवार,[२०] संवत् १९३२, तदनुसार १० अप्रैल, सन् १८७५ व ३ रबीउलअव्वल, सन् १२९२ हिज्री व संवत् १७९७, शालिवाहन व सन् १२८३, फस्ली व माहे खुरदाद, सन् १२८४ फारसी व चैत २९, संक्रान्ति संवत् १९३२ को शाम के समय, मोहल्ला गिरगांव में डाक्टर मानक जी[२१] के बगीचे में, श्री गिरधरलाल दयालदास कोठारी बी० ए०, एल० एल० बी० की प्रधानता में एक सार्वजनिक सभा की गई और उसमें यह नियम सुनाये गये और सर्वसम्मति से प्रमाणित हुए और उसी दिन से आर्यसमाज की स्थापना हो गयी।

प्रथम आर्यसमाज के नियम

संवत् १९३१ चैत्र सुदि ५,[२२] शनिवार को आर्यसमाज बम्बई में स्थापित हुआ।

१—सब मनुष्यों के हितार्थ आर्यसमाज का होना आवश्यक है।

२—इस समाज में मुख्य स्वत : प्रमाण, वेदों का ही माना जायेगा। साक्षी के लिए तथा वेदों के ज्ञान के लिए और इसी प्रकार आर्य-इतिहास के लिए, शतपथ ब्राह्मणादि ४, वेदांग ६, उपवेद ४, दर्शन ६ और ११२७ शाखा (वेदों के व्याख्यान), वेदों के आर्ष सनातन संस्कृत ग्रन्थों का भी वेदानुकूल होने से गौण (प्रमाण) माना जायेगा।

३—इस समाज में प्रति देश के मध्य (में) एक प्रधान समाज होगा और दूसरी शाखा प्रशाखाएं होंगी।

४—प्रधान समाज के अनुकूल और सब समाजों की व्यवस्था रहेगी।

५—प्रधान समाज में वेदोक्त अनुकूल संस्कृत, आर्य भाषा में नाना प्रकार के सत्योपदेश के लिए पुस्तक होंगे और एक 'आर्यप्रकाश' पत्र यथानुकूल आठ-आठ दिन में, निकलेगा। यह सब समाज में प्रवृत्त किये जायेंगे।

६—प्रत्येक समाज में एक प्रधान पुरुष, और दूसरा मंत्री तथा अन्य पुरुष और स्त्री, यह सब सभासद् होंगे।

७—प्रधान पुरुष इस समाज की यथावत् व्यवस्था का पालन करेगा और मंत्री सबके पत्र का उत्तर तथा सबके नाम व्यवस्था लेख करेगा।

८—इस समाज में सत्पुरुष सत्-नीति सत्-आचरणी मनुष्यों के हितकारक समाजस्थ किये जायेंगे।

९—जो गृहस्थ गृहकृत्य से अवकाश प्राप्त होये सो जैसा घर के कामों में पुरुषार्थ करता है उससे अधिक पुरुषार्थ इस समाज की उन्नति के लिए करे और विरक्त तो नित्य इस समाज की उन्नति ही करे; अन्यथा नहीं।

१०—प्रत्येक आठवें दिन प्रधान, मंत्री और सभासद् समाजस्थान में एकत्रित हों और सब कामों से इस काम को मुख्य जानें।

११—एकत्रित होकर सर्वथा स्थिर चित्त हों। परस्पर प्रीति से प्रश्नोत्तर पक्षपात छोड़कर करें। फिर सामवेद आदि गान, परमेश्वर, सत्यधर्म, सत्यनीति के विषय में तथा सत्योपदेश के सम्बन्ध में ही बाजा आदि द्वारा गान हो और इसी विषय पर मन्त्रों का अर्थ और व्याख्यान हो। फिर गान, फिर मंत्रों का अर्थ, फिर व्याख्यान फिर गान आदि।

१२—प्रत्येक सभासद् न्यायपूर्वक पुरुषार्थ से जितना धन प्राप्त करे उसमें से आर्यसमाज, आर्यविद्यालय और आर्यप्रकाश पत्र के प्रचार और उन्नति के लिये आर्यसमाज-धनकोष में (एक) प्रतिशत देवे । अधिक देने से अधिक धर्मफल । इस धन का इन विषयों में ही व्यय होय, अन्यत्र नहीं । '

१३—जो मनुष्य इन कार्यों की उन्नति और प्रचार के लिए जितना प्रयत्न करे, उसका यथायोग्य सत्कार उत्साह के लिये होना चाहिए ।

१४—इस समाज में वेदोक्त प्रकार से प्रत्येक अद्वितीय परमेश्वर की ही स्तुति, प्रार्थना और उपासना करने में आयेगी अर्थात् निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, दयालु, सर्वजगत्पिता, सर्वजगत्माता, सर्वधाम, सर्वेश्वर, सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य-शुद्ध-बुद्ध मुक्तस्वभाव, अनन्त, सुखप्रद, धर्मार्थकाममोक्षप्रद इत्यादि विशेषणों से परमात्मा की ही स्तुति, उसका गुणकीर्तन, प्रार्थना, उससे सर्वश्रेष्ठ कार्यों में सहाय चाहना, उपासना, उसके आनन्द स्वरूप में मग्न हो जाना सो पूर्वोक्त निराकार आदि लक्षण वाले की ही भक्ति करनी, उससे अतिरिक्त किसी और की कभी नहीं करनी ।

१५—इस समाज में निषेक आदि अन्त्येष्टि पर्यन्त संस्कार वेदोक्त किये जायेंगे ।

१६—आर्य विद्यालय में वेदादि सनातन आर्ष ग्रन्थों का पठन-पाठन कराया जायेगा और वेदोक्त रीति से ही सत्यशिक्षा सब पुरुषों और स्त्रियों को प्राप्त होगी ।

१७—इस समाज में स्वदेश के हितार्थ दो प्रकार की शुद्धि के लिए प्रयत्न किया जाएगा, एक परमार्थ और दूसरी लोकव्यवहार । इन दोनों का शोधन और शुद्धता की उन्नति तथा सब संसार के हित की उन्नति की जायेगी ।

१८—इस समाज में न्याय, जो पक्षपातरहित अर्थात् प्रत्यक्षादि प्रमाणों से यथावत् परीक्षित सत्यधर्म वेदोक्त ही माना जायेगा । इससे विपरीत को यथाशक्ति न माना जायेगा ।

१९—इस समाज की ओर से श्रेष्ठ विद्वान् लोग सर्वत्र सत्योपदेश करने के लिए समयानुकूल भेजे जायेंगे ।

२०—स्त्री और पुरुष इन दोनों के विद्याभ्यास के लिए पृथक्-पृथक् आर्य विद्यालय प्रत्येक स्थान में यथाशक्ति बनाए जायेंगे । स्त्रियों के लिए पाठशालाएं, अध्यापन और सेवा प्रबन्ध स्त्री द्वारा ही किया जाएगा और पुरुष पाठशाला का पुरुषों द्वारा । इसके विपरीत नहीं ।

२१—इन पाठशालाओं की व्यवस्था प्रधान आर्यसमाज के अनुकूल पालन की जायेगी ।

२२—इस समाज में प्रधानादि सब सभासदों को परस्पर प्रीति के लिए अभिमान, हठ, दुराग्रह और क्रोधादि दुर्गुण सब छोड़ के उपकार, सुहृदयता से सब से सबको निर्वैर होके, स्वात्मवत् सम्प्रीति करनी होगी ।

२३—विचार समय सब व्यवहारों में न्याययुक्त, सर्वहितकारी जो सत्य बात भली प्रकार विचार से ठहरे, उसी को सब सभासदों को प्रकाशित करके वही सत्य बात मानी जाये, उसके विरुद्ध न मानी जाये । इस का नाम पक्षपात छोड़ना है ।

२४—जो मनुष्य इन नियमों के अनुकूल आचरण करने वाला, धर्मात्मा, सद्गुणी हो, उसको उत्तम समाज में सम्मिलित करना; उसके विपरीत को साधारण समाज में रखना और अत्यन्त प्रत्यक्ष दुष्ट को समाज से निकाल ही देना परन्तु पक्षपात से यह काम नहीं करना, प्रत्युत ये दोनों बातें श्रेष्ठ सभासदों के विचार से ही की जायें, और प्रकार से नहीं ।

२५—आर्यसमाज, आर्यविद्यालय, आर्यप्रकाश और आर्यसमाजार्थ धनकोष-इन चारों की रक्षा और उन्नति प्रधान आदि सभासद् तन, मन और धन से यथावत् सदा करें।

२६—जब तक नौकरी करने और कराने वाला आर्यसमाजस्थ मिले तब तक और की नौकरी न करे और न किसी और को नौकर रखे। वे दोनों परस्पर स्वामिसेवक भाव से यथावत् बरतें।

२७—जब विवाह, पुत्रजन्म, महालाभ या मरण या और कोई समय दान और धनव्यय करने का हो तब तब आर्यसमाज के निमित्त धन आदि का दान किया करें। ऐसा धर्म का काम और कोई नहीं है, इस निश्चय को जानकर इसको कभी न भूलें।

२८—इन नियमों से यदि कोई नियम नया लिखा जायेगा या कोई निकाला जायेगा अथवा न्यूनाधिक किया जायेगा सो सब श्रेष्ठ सभासदों की विचाररीति से सब श्रेष्ठ सभासदों को विदित करके ही यथायोग्य करना होगा।

फिर अधिकारी नियत किये गए। तत्पश्चात् प्रति शनिवार सायंकाल को आर्यसमाज के अधिवेशन होने लगे; परन्तु कुछ मास के पश्चात् शनिवार का दिन सामाजिक पुरुषों के अनुकूल न होने से रविवार का दिन रखा गया, जो अब तक है।

अहमदाबाद में स्वामीनारायण मत का खण्डन—स्वामी जी समाज स्थापित करने और एक दो सप्ताह चलाने के पश्चात् फिर अहमदाबाद को चले गए और वहां जाकर बड़ी प्रबल युक्तियों से स्वामीनारायण मत का खंडन आरम्भ किया और मई १८७५ के अन्त तदनुसार, जेठ बदि ११ तक वहां रहे।[२२अ]

शास्त्रार्थ के लिए शोर मचा; स्वामी जी तुरन्त बम्बई लौटे—उनके बम्बई से चले जाने के पश्चात् पंडित लोगों ने झूठमूठ ऐसा कोलाहल मचाया कि हम शास्त्रार्थ करने को उद्यत हैं परन्तु खेद है कि स्वामी जी चले गये। कई मनुष्यों ने अपनी प्रसिद्धि चाहने के लिए विज्ञापनों द्वारा भी कोलाहल मचाया कि यदि स्वामी ज़ी यहां होते तो हम अवश्य शास्त्रार्थ करते; इस पर समाज के मंत्री ने तार देकर स्वामी जी को अहमदाबाद से बुलाया और वह लौटकर **बम्बई** आ गए। उनके आते ही फिर क्या था, पण्डित लोगों के होश उड़ गए और लगे सामना करने से पीठ दिखाने। अन्त में (आर्य) समाज ने रामानुजमतस्थ पण्डित कमलनयन आचार्य को जब वकील के द्वारा नोटिस दिया तब वह शनिवार, १२ जून सन् १८७५, तदनुसार जेठ सुदि ९, संवत् १९९२ को सभा में पधारे और शास्त्रार्थ हुआ। उसका विस्तृत वृत्तांत पाठकों की सेवा में उपस्थित है।

मूर्तिपूजा विषयक शास्त्रार्थ के लिए पं० कमलनयन आचार्य और स्वामी दयानन्द का संवाद

(शनिवार, १२ जून, सन् १८७५; तदनुसार, जेठ सुदि ९, सं० १९३२)

उपर्युक्त संवाद का विवरण १७, १८ जून, १८७५ के 'बम्बई समाचार' में इस प्रकार प्रकाशित हुआ था—गत शनिवार को प्रकाशित विज्ञापन के अनुसार, फ्राम जी काऊस जी, इन्स्टीट्यूट[२३] में, २.३० बजे से लोगों का आगमन होने लगा और तीन बजे के समय पंडित श्री दयानन्द सरस्वती स्वामी पधारे। उनके पास आर्य लोगों के प्राचीन धर्म की मुख्य पुस्तकें, वेदों की संहिताएं, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, सूत्र, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, निघण्टु व्याकरण आदि की, जो डेढ़-सौ से अधिक थीं, मंच (स्टेज) के मध्यभाग में, एक मेज के ऊपर जमाई गई और उसके दोनों ओर दो कुर्सियां संवाद करने वाले पंडितों के लिए और उसके नीचे आठ कुर्सियां, लिखने वाले शास्त्रियों के लिए रखी गई थीं और सभा में रावबहादुर बेचरदास अम्बाईदास, सेठ लक्ष्मीदास खेम जी, सेठ मथुरादास लोजी[२४], रायबहादुर दादूभाई पांडुरंग, मीरसभाई नानाभाई, गंगादास

किशोरदास, हरगोविन्ददास नाना, मनसुखराम सूरजराम, रणछोड़भाई शास्त्री उदयराम, विष्णु परशुराम पंडित आदि बहुत से प्रतिष्ठित सेठ-साहूकार और प्रकाण्ड पंडितों का बड़ा भारी समूह था; जिस से वह स्थान बहुत खचाखच भरा हुआ था।

प्रथम दयानन्द स्वामी आये; जिस पर कई एक सभा के कार्यकर्ताओं ने स्वामी जी को उस कुर्सी पर बिठाया जो कि मेज के बांई ओर थी; क्योंकि लोकोक्ति है—'नाच न जाने आंगन टेढ़ा' ('नाचना न आवड़े पटले आंगणो वाक) । यूं करके ही कहीं ऐसा न कहें कि हम उसके बायीं ओर बैठेंगे ? इसलिये दांयी ओर की कुर्सी रामानुज सम्प्रदाय वाले कमलनयन आचार्य के लिए खाली रखी गई और सभा में उपस्थित लोग उनकी प्रतीक्षा करने लगे । और उस समय यह भी चर्चा होने लगी कि 'वह तो यवन का स्थान है;[२५] वहां हम लोग क्योंकर आवें ?' ऐसा झूठा आक्षेप करके भी नहीं आवेंगे । ऐसी-ऐसी बातें लोग उड़ाने लगे । इतने में एक यह भी गप्प फैलने लगी कि आचार्य के सम्प्रदाय के लोगों ने ऐसी अप्रतिष्ठा सहन करने के स्थान पर, उसको लाकर मध्यस्थ के लिए झगड़ा करके उसको वापिस ले जाना है; जिससे स्वामी जी के पक्षवाले लोग हमारे आचार्य की हार नहीं कर सकेंगे और जिससे अपना सम्मान भी रह सकेगा । (क्योंकि समस्त बम्बई और उसके आसपास में वह बहुत प्रसिद्ध था) । इसी प्रकार लोग कई प्रकार के विचार कर रहे थे कि इतने में साढ़े तीन बजे के लगभग, आचार्य और पच्चीस-तीस उस सम्प्रदाय के ब्राह्मण, और कई एक भाटिये और मारवाड़ी सेवकों के साथ आ रहे हैं, यह सुनकर, उस सभा के प्रबन्धक गृहस्थ लोग सीढ़ी पर उनके स्वागत के लिए गये और सम्मानपूर्वक लाकर उनको सभा में स्वामी दयानन्द जी के दायीं ओर की कुर्सी पर बिठलाया और उनके साथी कई एक ब्राह्मण और मारवाड़ी आदि आचार्य के आसपास मंच पर बैठ गये । इसके पश्चात् तुरन्त ही राव बहादुर सेठ बेचरदास अम्बाईदास को सभापति की कुर्सी दी गई और उन्होंने कुर्सी पर बैठने के पश्चात् एक संक्षिप्त भाषण दिया जिसका सारांश यह था कि 'भाइयो ! हम सब मूर्तिपूजक हैं और मैं स्वयं भी एक मूर्तिपूजक हूं परन्तु दयानन्द स्वामी हमको यह सिद्ध कर देते हैं कि मूर्तिपूजन वेदप्रतिपादित नहीं है । इसको सुनकर किसी ने क्रोध न करना । सावधानता और सन्तोष से उस बात को ध्यान देकर आप लोग अच्छी प्रकार सुनें और उसको समझें, जिससे हमको अमूल्य लाभ होगा और धर्मसम्बन्धी सच्चा मार्ग कौन सा है, सो हमको विदित होगा और फिर इस बात से अपने देश का कल्याण होगा जिससे हमको अत्यन्त सुख और सन्तोष होवेगा । वैसा ही दूसरी ओर से हमको यह देखना है कि रामानुज सम्प्रदाय के कमलनयन आचार्य यहां विराजमान हैं, वे मूर्तिपूजा वेदप्रतिपादित है, ऐसा सिद्ध करेंगे । वह भी हम सुनेंगे कि जिससे जो सच्चा सारांश है वह हमको विदित हो जायेगा ।' इतना कहने के पश्चात् उन्होंने कहा कि 'इस सभा को बुलाने का विशेष अभिप्राय इसी समय मुझे विदित हुआ कि एक प्रतिज्ञापत्र दो गृहस्थों के बीच हुआ है और उस प्रतिज्ञापत्र के कारण यह सभा बुलाई गई है जो इस समय मिस्टर भाई शंकर नाना भाई इस सभा को पढ़कर सुनायेंगे, जिससे उसका अभिप्राय आपको विदित हो जायेगा ।'

बम्बई में लिखे गये 'प्रतिज्ञापत्र' की कहानी

इसके पश्चात् मिस्टर भाईशंकर नानाभाई ने वह प्रतिज्ञापत्र पढकर सुनाया, जिसकी प्रतिलिपि इस प्रकार है—'प्रतिज्ञापत्र' बम्बई मिति ५ जून, १८७५ । हम नीचे हस्ताक्षर करने वाले दोनों मनुष्यों ने अपनी राजी खुशी से इस प्रतिज्ञापत्र को पढ़कर हस्ताक्षर किये हैं जो अपने सत्यधर्म से उसका पालन करेंगे ।

१—जो श्री दयानन्द स्वामी और कमलनयन आचार्य की सभा फ्राम जी काऊस जी इन्स्टीट्यूट में आगामी शनिवार को की जावे और जो उसका व्यय हो सो नीचे हस्ताक्षर करने वाले दोनों व्यक्ति देवें और पुलिस का प्रबंध करें ।

२—यदि स्वामी दयानन्द सरस्वती वेद में और इसी प्रकार मूर्तिखंडन में जीतें तो मारवाड़ी शिवनारायण बेनीचन्द जो सदा कमलनयन आचार्य की ओर से अपने हस्ताक्षर के विज्ञापन प्रकाशित करता है वह उसका चेला होवे और जो

कमलनयन जीते तो ठाकुर जीवनदयाल कमलनयन का चेला होवे और रामानंदी टीका लगावे; नहीं तो, शिवनारायण अपने तिलक को मिटा देवे ।

३—इस सभा में बिना सम्प्रदाय के (अर्थात् कोई भी सम्प्रदाय का पक्ष न करे) तथा बिना पक्षपात के शास्त्री लोग बुलाये जावें और वह लोग जो अभिप्राय प्रकट करें उसको छाप कर प्रकाशित किया जावे और उसके ऊपर प्रतिज्ञापत्र को लिखने वाले दोनों सज्जन हस्ताक्षर करें और उस पर जो कोई आचरण न करें वह अपना धर्म हारे ।

हस्ताक्षर—ठाकुर[२६] जीवनदयाल । हस्ताक्षर—शिवनारायण बेनीचन्द ।

पीछे सभा को बताया गया कि इन दो गृहस्थों ने यह घरेलू प्रतिज्ञापत्र बनाया है तो भी उससे आज क्या अच्छा अवसर मिला कि दयानन्द स्वामी ने यहां आकर मूर्तिपूजा वेदप्रतिपादित नहीं है-ऐसा सिद्ध किया है सो आज कमलनयन आचार्य मूर्तिपूजन वेदप्रतिपादित है-ऐसा सिद्ध करेंगे और मैं आशा रखता हूं कि यह कमलनयन आचार्य अब अपना व्याख्यान आरम्भ करेंगे क्योंकि कोई भी मनुष्य यूं कहे कि अमुक पुस्तक में नहीं है तो सिद्ध करने का काम स्वीकार करने वालों का है ।

प्रतिज्ञापत्र की उधेड़बुन—इतने में प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करने वाला मारवाड़ी शिवनारायण बेनीचन्द बोला कि इस प्रतिज्ञापत्र में श्रुति-स्मृति से मूर्तिपूजन के सिद्ध करने का लिखा है सो स्मृति का नाम क्यों नहीं पढ़ा गया ? तब मिस्टर भाईशंकर ने फिर से वह प्रतिज्ञापत्र पढ़ कर सुनाया और कहा कि इसमें वेद ही से सिद्ध करने का लिखा है; स्मृति का नाम इसमें बिलकुल नहीं । तब वह फिर बोला कि पण्डित जो लिखा वह पढ़ने में नहीं आया ।[1] तब मि. भाईशंकर ने कहा कि पण्डितों की संख्या इसमें लिखी नहीं है । तब उसने वह प्रतिज्ञापत्र देखने को मांगा जिसे प्रधान जी ने उसे पढ़ने को दे दिया । जिससे उनको और उनके साथियों को सन्तोष हुआ कि इस बारे में इसमें कुछ भी लिखा नहीं । उसके पश्चात् कमलनयन आचार्य बोले ।

कमलनयन आचार्य—यह जो पण्डित लोग बैठे हैं वे किस सम्प्रदाय के हैं क्योंकि सम्प्रदाय वाले न होने चाहिएं । कमलनयन जी का ऐसा कहना सुनकर सभा में बैठे हुए विद्वान् गृहस्थों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि वेदधर्मियों का धर्म विशेषतया चार भागों में विभक्त हुआ था । प्रथम शैव, दूसरे स्मार्त, तीसरे शाक्त और चौथे वैष्णव । तब उन सम्प्रदायों में न हो, वैसा ब्राह्मण कोई मिले, ऐसा कमलनयन का कहना विचारपूर्वक दिखाई नहीं देता था ।

कमलनयन आचार्य कहने लगे कि जो मध्यस्थ हो वह किसी सम्प्रदाय का न हो और पहले मैं उसकी परीक्षा भी लूं; फिर वह मध्यस्थ रखा जायेगा, जिससे यह सिद्ध होता था कि टालमटोल करके समय नष्ट करना चाहते हैं ।

टालमटोल के नये-नये ढंग—फिर उन पंडितों में से एक पंडित को जिसने कहा कि मैं तो वैष्णव हूं, बुलाकर अपने पास बिठलाया और फिर दूसरे पंडितों को कहा कि तुम शालिग्राम और गीता जी की शपथ लेकर सच्चा-सच्चा अभिप्राय प्रकट करोगे । तब कालीदास गोविन्द जी शास्त्री ने कहा कि जो हम को सत्य प्रतीत होगा सो सब को प्रकट किया जायेगा । तत्पश्चात् विष्णु परशुराम शास्त्री से भी इसी प्रकार पूछा गया तो उन्होंने यह उत्तर दिया कि जो हमको ठीक प्रतीत होगा सो ही कहेंगे और तुम दोनों पक्ष वाले जो कुछ बोलोगे उसका एक-एक शब्द हम लिख लेंगे और उस पर योग्य सम्मति भी देंगे । तब कमलनयन आचार्य ने उनसे पूछा कि तुमको किस शास्त्र का अध्ययन है ? शास्त्री ने उत्तर दिया कि इस बारे में यहां बात करने की आवश्यकता नहीं है और जो तुम यही पूछोगे तो तुमको क्या ज्ञात है सो कहो । कमलनयन जी ने कहा हम कहते हैं । ऐसा कहकर आगे कुछ उत्तर न दिया । तब विष्णु परशुराम जी शास्त्री ने उठकर आचार्य की ऐसी चाल पर

अर्थात् '८ पंडितों की आवश्यकता होगी' ऐसा लिखा गया था, वह भी प्रतिज्ञापत्र में पढ़कर नहीं सुनाया गया । सम्पा०

टीका करके कहा कि इस प्रकार व्यर्थ झगड़ा करके समय गंवाने की आवश्यकता नहीं है। आचार्य के ऊपर बड़ा भारी कर्त्तव्य यह है कि मूर्तिपूजन वेदप्रतिपादित है, ऐसा सिद्ध करें। उसके बदले ऐसी निकम्मी बातें करके व्यर्थ समय गंवाना, यह कोई अच्छी बात नहीं है इत्यादि।

सत्य निर्णय कराने का स्वामी जी का विनीत आग्रह : मूर्तिपूजन वेद द्वारा प्रमाणित कीजिये—तत्पश्चात् स्वामी दयानन्दजी ने नम्रतापूर्वक कमलनयन आचार्य को विनती करके कहा, 'आज का दिन मैं बहुत आनन्द का समझता हूं कि आपके साथ मेरा समागम हुआ और मूर्तिपूजन वेद-प्रतिपादित नहीं है, ऐसा मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूं और वह सिद्ध करने को मैं उद्यत हूं और इस बारे में मैंने देश-देश में व्याख्यान और संवाद किये हैं, जो आपको भी विदित होंगे। इसलिए आज आप कृपा करके यह बतलायें कि प्राणप्रतिष्ठा, आवाहन, विसर्जन और पूजन किस वेद में और किस स्थान पर हैं और उसका अर्थ भाष्यकारों ने क्या कुछ किया है और वेद के ब्राह्मण ने उस मन्त्र का कौन सा अर्थ उपयोग में लिया है वह भी कहिये; जिससे सब सुनने वाले गृहस्थों को बड़ा संतोष होवे और हमको परस्पर लाभ होवे और तुम्हारे और हमारे बीच में मध्यस्थ की मैं कोई आवश्यकता नहीं समझता। तिस पर भी यदि आपको मध्यस्थ की आवश्यकता हो तो वेद और वेद के ब्राह्मण आदि मध्यस्थ सब से ऊपर हैं वह किसी का भी पक्षपात न करेंगे और वे समस्त पुस्तकें इस समय मेज पर आपके सामने उपस्थित हैं; इसलिए जो कुछ वेद में तुम्हारे मत पुष्टिकारक वचन हों; वे कृपा करके दिखलावें और उसका अर्थ समझावें कि जिससे झूठ और सत्य क्या है, सो तुरन्त विदित हो जाये और जो कुछ तुम्हारी या हमारी ओर से बोला जायेगा तो एक-एक बात को पंडित लोग लिख लेंगे। उस पर इन दोनों प्रतिज्ञापत्र लिखने वालों के हस्ताक्षर करा कर छपवाकर प्रसिद्ध किया जायेगा और उसके ऊपर समस्त संसार के पंडित लोगों को सम्मति देने का अवसर मिलेगा। ऐसा करने से सारे आर्य लोगों को हमारे-तुम्हारे वाद-विवाद के बीच में खरा और खोटा तुरन्त विदित हो जायेगा।

पंडित दयानन्द की ऐसी योग्य विनती कमलनयन आचार्य ने स्वीकार न की, और इधर उधर टालमटोल करने लगे। यह देखकर सेठ मथुरादास लोजी[२७] ने सभा से कहा कि मैंने स्वामी दयानन्द जी की आज्ञा से कई एक गृहस्थों के साथ ६ जून, सन् १८७५ को कमलनयन आचार्य के पास जाकर निवेदन किया कि आप जब बम्बई में विराजे हों और फिर मूर्तिपूजा वेदप्रतिपादित सिद्ध करने का आपका दृढ़ अभिप्राय है सो बात दयानन्द स्वामी को विदित होने से आपके समागम करने की इच्छा हुई है,इसलिए आप बतावें कि किसी गृहस्थ के घर या बंगले या बगीचे में या फ्राम जी काऊस जी इन्स्टीट्यूट में या खुले मैदान में जहां आप अच्छा समझें उस स्थान पर उन स्वामी जी का और आपका समागम हो। वहां मूर्तिपूजन वेद प्रतिप्रादित है, आप सिद्ध कर दें और वैसा करने का आपके ऊपर बड़ा भारी कर्त्तव्य भी है। आप जानते हैं कि लाखों करोड़ों लोगों का सहारा इस मूर्तिपूजा पर है और मूर्तिपूजा वेद प्रतिपादित नहीं है—ऐसा, स्वामी दयानन्द बेधड़क खुली रीति से सिद्ध कर चुके हैं और इसके अतिरिक्त यह भी कहते हैं कि वेदों में मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा करने के मंत्र बिलकुल नहीं हैं और प्राण-प्रतिष्ठा करने में जिन मंत्रों का विनियोग करते हैं उनका वैसा अर्थ भी बिलकुल नहीं है, वैसे ही मूर्तियों में—आवाहन, विसर्जन, पूजन जिन मंत्रों से करते हैं उनका वैसा अर्थ तथा संकल्प के मंत्रों के अर्थ वेदों में नहीं हैं और जिन मंत्रों को इस बारे में उपयोग करते हैं—उन मंत्रों में भी वैसा अर्थ बिलकुल नहीं है। यह तो आचार्यों का कर्त्तव्य है कि जहां दयानन्द स्वामी हों वहां जाके बिना किसी प्रकार की ढील दिये, मूर्तिपूजा वेद प्रतिपादित है, ऐसा सिद्ध करे। और यदि ऐसा न हुआ तो इस बारे में बड़ी भारी हानि हमारे वैष्णव धर्म को पहुंचेगी और आपका तो सम्प्रदाय बड़ा भारी है और इसके अतिरिक्त आप वेदमत का अधिक अभिमान रखते हो, इसलिए इस समय यदि आप अगुआ होकर मूर्तिपूजा वेदप्रतिपादित है, यह बात सिद्ध न करें तो दूसरे किसी आचार्य से ऐसी आशा नहीं हो सकती। इसलिए आपको अवश्य स्वीकार करना चाहिये और जो आप स्वीकार करें तो इसका प्रबन्ध किया जावेगा। अब तो जो आवश्यकता है वही पूरी की जाये अर्थात्

उपस्थित प्रश्न का उत्तर मिलना चाहिये । मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा, आवाहन, विसर्जन और पूजन जिन मंत्रों से आप करते हैं वे मन्त्र तो आपकी पुस्तकों में संग्रह किये ही होंगे और यह किस वेद की संहिता के और किस स्थान के हैं,वह कृपा करके बतला देवें । उसका भाष्यकारों ने क्या-क्या अर्थ किया है और ब्राह्मणों में किन अर्थों में उनका उपयोग किया गया है, सो भी बतला देवें । इससे समस्त वाद-विवाद की समाप्ति हो जावेगी और सच-सच क्या है , प्रत्येक को विदित हो जायेगा । हम सभा में ऐसा प्रबन्ध कर देंगे कि जो कुछ बोला जायेगा सो उसी समय लिख लिया जायेगा और दोनों पक्षों को केवल मुख से ही बोलने की आज्ञा न दी जावेगी, प्रत्युत आप जो अपने मत की पुष्टि में वचन बोलेंगे, वह वेदादि ग्रन्थों से उसी समय दिखला देना होगा । वैसे ही दयानन्द स्वामी भी जो कुछ खंडन-मंडन के विषय में कहेंगे, सो भी उसी समय वेदादि पुस्तकों में दिखला देवेंगे । इसी प्रकार दोनों पक्ष वालों का जो कुछ बोलना होगा-यह लिखकर तैयार करके उस पर दोनों पक्षवालों के हस्ताक्षर करा लिये जावेंगे और पंडित लोगों की साक्षी होगी और उसकी एक-एक प्रतिलिपि दोनों पक्ष वालों को दी जावेगी । एक प्रतिलिपि प्रतिदिन छाप कर प्रकाशित की जावेगी कि आज इतना ही काम सभा में हुआ । इसी प्रकार जहां इस बात की समाप्ति होवे वहां तक निरन्तर यह क्रम जारी रहेगा और जब उसका अन्त होगा तब तुम्हारे और दयानन्द स्वामी के हस्ताक्षरों और पंडितों की साक्षी के साथ छाप कर भारत के मुख्य भागों में जहां अपने धर्म-भाइयों का बड़ा भारी समुदाय है, इसको वितरित किया जावेगा और उसका आधा-आधा व्यय दोनों पक्ष वाले देंगे ।

'आचार्य' की टालमटोल का ब्योरेवार वर्णन

आचार्य कमलनयन का एक नया अड़ंगा—यह सुनकर कमलनयन आचार्य ने मुझसे कहा कि चार दिशा के चार पंडित चाहिएं जिनकी मैं परीक्षा लूं । तब मैंने कहा कि ऐसे पण्डितों की कुछ आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह जो छापा जायेगा, इस पर चार के बदले सारे पण्डितों को सम्मति देने का अवसर मिलेगा और इस पुस्तक में समस्त पंडितों की सेवा में निवेदन भी किया जायेगा कि जिनको इस बारे में सम्मति देनी हो वह तीन मास में अमुक व्यक्ति के पास लिख कर भेज दें । ऐसा करना अधिक लाभकारी होगा और आप जिन पण्डितों के लिए कह रहे हो, वैसे पंडित बम्बई में बहुत हैं । कहो, वह न्यायशास्त्र जानने वाले हों या व्याकरण जानने वाले या उत्तर मीमांसा या पूर्व मीमांसा जानने वाले या सांख्यशास्त्र जानने वाले अथवा धर्मशास्त्र जानने वाले चाहिएं । तब आचार्य ने कहा कि वेदांग जानने वाले चाहिएं । तब मैंने कहा कि वैसे पंडित तो मिलने कठिन हैं । यह तो ऐसी बात है जैसे कोई कहे कि मुझे तो जहां से भी मिले, सींग वाला खरगोश चाहिए । वेद, वेदांग, उपांग और उपवेद की आवश्यकता पूरी करने में कितना पुस्तकों का भार और संख्या चाहिए, अनुमान करो । सर्वज्ञ के अतिरिक्त कोई इतनी विद्या जानने वाला मिलने का नहीं; तो भी आपके ध्यान में यदि कोई हो तो कृपा करके बता दें । कहा कि आचार्य ने कहा कि नदिया[२८] शान्तिपुरी में रंगजीत तोताद्रि हैं (जहां उनका सम्प्रदाय बहुत फैला हुआ है) । तब मैंने कहा कि उस स्थान पर हमारा परिचित कोई नहीं और बनारस अपने धर्म का सर्वोपरि स्थल है और वहां पण्डितों की बड़ी भारी संख्या है । वहां आपकी जानकारी में कोई वेद वेदांग का जानने वाला पंडित हो तो कहें कि जिससे हम अपने आढ़ती को तार देकर सूचना मंगवा लें । हमें तो विश्वास है कि ऐसा पंडित मिलना दुर्लभ है और कोई ऐसी विद्या जानने वाला भी नहीं; प्रत्युत पहले भी कभी ऐसी विद्या जानने वाला कोई होगा, यह मानना बहुत कठिन है । तब आचार्य ने कहा कि उनके नाम तो हम नहीं कहेंगे । हम तो केवल जो विज्ञापन ४ जून सन् १८७५ को[२९] छापा गया है उसमें जो लिखा है, उसी के अनुसार जो पंडित लोग हों तो वाद-विवाद करें । मैंने वह विज्ञापन पढ़कर सुनाया और कहा कि इस विज्ञापन में शुक्रवार की सूचना है और उसके पश्चात् शनिवार को तुम्हारे शिष्य ने उस विज्ञापन पर हस्ताक्षर कर दिये हैं । उसने शनिवार को दूसरा प्रतिज्ञापत्र करके हस्ताक्षर किए हैं, वह तुमको स्वीकार है या नहीं ? इसके अनुसार तो तुम्हारी और दयानन्द स्वामी की सभा फ्राम जी काऊस जी इन्स्टीट्यूट में इकट्ठी की जायेगी, ऐसा लिखा है । तब आचार्य ने कहा कि

इस बात की मुझको कोई सूचना नहीं और हमें स्वीकार भी नहीं । तब मैंने कहा कि मैं बड़ा दुखित हूं कि जो काम तुमको कर्त्तव्य है, वह न करके टालमटोल करते हो, यह तुमको योग्य नहीं । स्वामी दयानन्द जी कहते हैं वह वास्तव में सत्य है और उसमें कुछ भी अन्तर नहीं है, ऐसा हमारा पूर्ण विश्वास है । जो कुछ आचार्यों के ऊपर स्वामी दयानन्द आरोप लगाते हैं, वह भी वास्तव में ठीक है और उस आरोप से यदि तुम्हें मुक्त होना है तो 'मूर्तिपूजा वेद प्रतिपादित है', ऐसा अपने पूर्वकथनानुसार सिद्ध करो जिससे तुम्हारा सम्मान रहेगा । यदि नहीं करो तो इच्छा । इस प्रकार मेरे विनती करने पर भी कमलनयन आचार्य इस कलंक से मुक्त होने का साहस न कर सके । तिस पर वह आचार्य किस निर्मूल युक्ति से इस बात से अब छुटकारा पाने का यत्न करता है, इसको देखकर तुम लोगों को भी विदित हो गया होगा कि आचार्य में मूर्तिपूजा को वेदप्रतिपादित सिद्ध करने की बिलकुल सामर्थ्य नहीं है । ठाकुर मथुरादास लवजी, जब यह कह चुके तो कमलनयन आचार्य मूर्तिपूजन सम्बन्धी कोई भी प्रमाण दिये बिना बिन बोले चुपके से मुंह उठा कर चल दिये । तब चेयरमैन सेठ बेचरदास ने निवेदन किया कि महाराज ! आप बिना बोले चुपके मुंह चले जाते हो, सो ठीक नहीं । यह सब उपस्थित गृहस्थ लोग तुम्हारे मुख से 'मूर्तिपूजा-वेदप्रतिपादित' है, ऐसा सुनने के लिए हार्दिक उत्सुकता से बैठे हुए हैं । उनको कुछ सुनाए बिना एकाएक चले जाना तुमको उचित नहीं है । इससे समस्त लोगों को यह विदित हो जायेगा कि मूर्तिपूजा वेद में नहीं है ।

इस पर स्वामी दयानन्द जी ने आचार्य जी से अन्तिम विनती की कि 'तुम्हारा मूर्तिपूजन वेद प्रतिपाद्य पक्ष है' । तुमको उचित था कि सिद्ध कर देते और अब जो तुम नहीं करते हो तो मैं विवश होकर मूर्तिपूजा का खंडन करता हूं और वह वेदप्रतिपादित नहीं है, ऐसा सिद्ध कर देता हूं । इसको आप सुनें तो अच्छा है । यह कहने पर भी कमलनयन आचार्य टालमटोल करके चलते हुए और बहुत से मूर्तिपूजक जो मूर्तिपूजन वेद से सिद्ध होगा, ऐसा सुनने को आये थे, वे भी निराश हो गए । बहुत से विचारवान् गृहस्थ लोगों की मूर्ति पर से श्रद्धा भी उठ गई, इतनी पोल हमारे धर्म की मुख्य बात की है, अर्थात् हमारे धर्म की मुख्य बात की दशा यह है कि वह सिद्ध नहीं होती । यह इस लोकोक्ति के अनुसार है कि 'निकल जाये तो हाथी, अटक जाये तो चींटी ।' वास्तव में यह इसी प्रकार हुआ । अन्त में कमलनयन आचार्य न बैठे, कारण यह कि जिन शब्दों में दयानन्द स्वामी मूर्ति का खंडन करें, उन शब्दों को सुनकर कमलनयन आचार्य जैसे के तैसे चुपके मुंह बिना उत्तर दिए लौट जाएं तो वेदधर्मियों में उनकी भारी हंसी हो । इससे सभा को भली भांति विदित हो गया कि इस आचार्य में 'मूर्तिपूजन वेद-प्रतिपादित है', यह सिद्ध करने की बिल्कुल शक्ति नहीं थी । सभा को जो उनके दर्शन हुए इसका भी न जाने क्या कारण था ।

मूर्तिपूजा कलियुग में ही चली है—इसके पश्चात् सेठ हरगोविन्ददास बाबा (या सेठ गोविन्ददास नाना भाई संयोजक) ने दयानन्द स्वामी से प्रश्न किया कि मूर्तिपूजन सतयुग में था या अभी हुआ है ? उत्तर में स्वामी जी ने कहा कि सतयुग या किसी युग में नहीं था । इसी कलियुग में जैन और बौद्धमत निकलने के पश्चात् हम वेदधर्म पालने वालों में स्वार्थी लोगों ने घुसेड़ दिया । जब शंकराचार्य ने जैनमत का खंडन किया तो बहुत से जैनियों ने अपनी मूर्तियां पृथिवी में गाड़ दीं जो उसी समय की गड़ी हुई किसी-किसी स्थान से निकलती हैं । यह मूर्तिपूजा अपने आचार्य लोगों में पहले कभी न थी और न कहीं अपने वेदों में इसका वर्णन है । उनके पश्चात् सेठ छबीलदास लल्लू भाई[३०] ने उस कमलनयन आचार्य की ऐसी बेढंगी चाल पर भाषण करके उस पर टिप्पणी की और मिस्टर बोलजी ठाकरसी[३१] ने अपनी सम्मति इस बात पर प्रकट की ।

अन्त में पण्डित दयानन्द स्वामी जी ने उस आचार्य की विद्या सम्बन्धी निर्बलता के विषय में बोलते हुए कहा कि खेद है कि इतनी बहुत सी पुस्तकें आज जिस शुभकार्य के लिए इकट्ठी की गई थीं, उनका एक भी पृष्ठ नहीं पलटा गया । ऐसा यह कह कर और '**न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः**[३२]' इस मन्त्र से मूर्तिपूजन का खंडन करना आरम्भ किया

और उसकी पुष्टि में वेद के बहुत से प्रमाण दिए तथा आवाहन, पूजन, विसर्जन, प्राणप्रतिष्ठा सम्बन्धी मन्त्रों के अर्थ भी करके सुनाए और कहा कि इन मन्त्रों में ऐसा कोई भी अर्थ नहीं है और ऐसा उपयोग करने के लिए वेदों में कहीं लिखा भी नहीं है । यह मूर्तिपूजा वैदिकधर्म वालों की नहीं है । इस विषय में और भी कई एक मन्त्र, अर्थसहित, कह सुनाये और सिद्ध करके दिखलाया कि किसी समय भी मूर्तिपूजा वैदिक धर्मवालों का धर्म था, यह कभी सिद्ध नहीं होगा और हमको भी उचित है कि मूर्तिपूजा को छोड़ दें ।

इस प्रकार स्वामी दयानन्द ने अपना व्याख्यान समाप्त किया । तत्पश्चात् सेठ बेचरदास ने स्वामी जी को फूलों का हार पहनाया और आठ-दस शास्त्रियों तथा वेदपाठी ब्राह्मणों को दक्षिणा आदि दे कर सभा विसर्जित की गई । दयानन्द स्वामी सेठ छबीलदास लल्लू भाई की दो घोड़े की गाड़ी में बैठकर अपने स्थान पर चले गए ।

पूना की घटनाओं का वृत्तांत

(१ जौलाई, सन् १८७५ से अगस्त सन् १८७५ तक)

उपद्रवियों को कारावास : आर्यसमाज की स्थापना तथा उसके शीघ्र भंग होने के कारण— ला० सेवकलाल कृष्णदास जी के मुख से विदित हुआ कि २० जून, सन् १८७५ को जब स्वामी जी पूना[३३] गए और वहां के शास्त्री लोगों से जब शास्त्रमर्यादा के अनुसार शास्त्रार्थ न हो सका तो पूना में उस महापंडित के सम्मुख सच्ची बात को झूठा न कर सकने से वहां के कई एक पंडितों ने मूर्ख लोगों को बहका कर एक बड़ा उपद्रव खड़ा किया । परन्तु उसका परिणाम यह हुआ कि उसमें आगे बढ़ने वाले निर्धन और असभ्य दो गृहस्थों में से एक को ६ मास और दूसरे को ९ मास जेलखाने की हवा खानी पड़ी । जो लोग सिखलाने वाले थे उनमें से बड़े-बड़े स्वामी जी की अनुनय-विनय करके उनके द्वारा मुकद्दमा चलाने वालों को रोक कर बच गए और वहां समाज भी स्थापित हो गया परन्तु कई एक पूना निवासियों की प्रपंचमय वृत्ति से वह बहुत काल तक न रह सका और वैसे ही भड़ौच, राजकोट आदि कई एक नगरों में भी हुआ । उसका विशेष कारण देखने से यही प्रतीत होता है कि स्वामी जी के अधिक न ठहरने तथा धर्माधर्म समझने की पुस्तक के अपनी भाषा में तैयार न होने और उस सम्बन्ध में क्रमशः आगे किसी के विचार न करने के कारण, उस महात्मा के लगाये हुए पौधे, उनके विदा होने के पश्चात् पण्डितों के प्रपंचमय उपदेश-जाल में फंस जाने के कारण, टिक न सके । क्योंकि, यदि स्वामी जी वहां बहुत दिन रहते तो वे लोग स्वामी जी के साथ विशेष संग करके अपना निश्चय कर लेते और हम आशा करते हैं कि समाजें भी पंजाब की समाजों के समान खूब उन्नत हो जातीं इसमें कुछ संशय नहीं । स्वाभाविक रीति से विचार करने पर तो हमें यही प्रतीत होता है कि स्वामी जी महाराज ने जो-जो उपदेश देने प्रारम्भ किये थे, उनमें का बहुत-सा भाग तो आजकल की प्रचलित धर्मव्यवस्था से बिलकुल विरुद्ध ही प्रतीत होता था ।

बलदेवसिंह जी कान्यकुब्ज वर्णन करते हैं —'बम्बई में समाज स्थापित करने के पश्चात् स्वामी जी पूना गए । (बम्बई आर्यसमाज के सदस्य, बम्बई-निवासी श्री भान जी पुरुषोत्तमदास के कथनानुसार पूना के जज श्री गोपालराव हरि देशमुख ने स्वामी जी को वहां बुलाया था ।) वहां भी मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ हुआ परन्तु कोई भी वेद से मूर्तिपूजा सिद्ध न कर सका । लोगों ने 'प्रतिमाः हसन्ति रुदन्ति[३४] का प्रमाण भी दिया था परन्तु स्वामी जी ने उसका स्पष्ट अर्थ कर दिया कि जिस से वस्तु 'प्रमाण' की जावे वह 'प्रतिमा' है । फिर सारे वाक्य का स्पष्ट अर्थ कर दिया कि इसमें मूर्तिपूजा का कहीं वर्णन नहीं । कन्याओं की शाला और लड़कों की पाठशाला और उनमें एक दूसरे का चित्र भिजवाने की भी व्याख्या में चर्चा की थी ।'

विष्णु शास्त्री से भी स्वामी जी का पूना में शास्त्रार्थ हुआ; वह पुनर्विवाह को मानते थे। नियोग और पुनर्विवाह पर शास्त्रार्थ हुआ था। स्वामी जी ने कहा कि आपत्काल अर्थात् मृत्यु आदि विपत्ति पड़ने पर, ग्यारह तक करने की वेद में आज्ञा है। कुछ निर्णय नहीं हुआ था। इस सारी यात्रा में दारागंज प्रयाग निवासी पंडित मंडनराम मिश्र, कान्यकुब्ज, स्वामी जी के साथ रहे। वही स्वामी जी की पुस्तक आदि लिखा करते थे। पूना के शास्त्रार्थ में ३०-४० पण्डित उपस्थित थे।

वहां विरोधी लोगों ने एक गधे का स्वांग बनाया था। वहां आर्यसमाज स्थापित करके स्वामी जी फिर **बम्बई** आ गए।

पूना में दिए गए पन्द्रह व्याख्यान

स्वामी जी ने पूना में दो मास निवास किया और निम्नलिखित विषयों पर १५ व्याख्यान दिये—

(१) **दिनांक**—४ जौलाई, सन् १८७५ तदनुसार रविवार, आषाढ़ सुदि प्रतिपदा संवत् १९३२; विषय—**'ईश्वर की सत्ता'**।[३५]

(२) **दिनांक**—६ जौलाई, सन् १८७५; तदनुसार मंगलवार, आषाढ़ सुदि ४, संवत् १९३२, उसी व्याख्यान पर शंकाओं का उत्तर।

(३) **दिनांक**—८ जौलाई, सन् १८७५, बृहस्पतिवार, तदनुसार आषाढ़ सुदि ६, संवत् १९३२; विषय—**'वेद-विद्या का सबको अधिकार है।'**[३६]

(४) **दिनांक**—१० जौलाई, सन् १८७५, शनिवार, तदनुसार आषाढ़ सुदि ८, संवत् १९३२; उस पर प्रश्नों के उत्तर।

(५) **दिनांक**—१३ जौलाई, सन् १८७५, मंगलवार, तदनुसार आषाढ़ सुदि १०, संवत् १९३२; विषय—**'वैदिक ईश्वरीय ज्ञान।'**

(६) **दिनांक**—१७ जौलाई, सन् १८७५ शनिवार, तदनुसार आषाढ़ सुदि १४, संवत् १९३२; विषय—**'पुनर्जन्म'**।[३७]

(७) **दिनांक**—२० जौलाई, सन् १८७५, मंगलवार, तदनुसार सावन बदि २, संवत् १९३२; विषय—**यज्ञ, संस्कार।**

(८) **दिनांक**—२४ जौलाई, सन् १८७५, शनिवार, तदनुसार सावन बदि ६, संवत् १९३२; विषय—**'इतिहास'**।

(९) **दिनांक**—२५ जौलाई, सन् १८७५, रविवार, तदनुसार सावन बदि ७, संवत् १९३२; विषय—**'इतिहास'**।

(१०) **दिनांक**—२७ जौलाई, सन् १८७५, मंगलवार, तदनुसार सावन बदि १०, संवत् १९३२; विषय—**'इतिहास'**।

(११) **दिनांक**—२९ जौलाई, सन् १८७५, बृहस्पतिवार, तदनुसार, सावन बदि १२, संवत् १९३२; विषय—**'इतिहास'**।

---

1. लम्बाई, चौड़ाई आदि की माप। —(सम्पा०)

(१२) **दिनांक**—३१ जौलाई, सन् १८७५, शनिवार, तदनुसार सावन सुदि १४, संवत् १९३२; विषय—**'इतिहास'**।

(१३) **दिनांक**—२ अगस्त, सन् १८७५, सोमवार, तदनुसार सावन सुदि प्रतिपदा, संवत् १९३२; विषय—**'नित्यकर्म और मुक्ति'**।[३८]

(१४) **दिनांक**—३ अगस्त, सन् १८७५, मंगलवार, तदनुसार सावन सुदि २, संवत् १९३२; विषय—**'नित्यकर्म और मुक्ति'**।

(१५) **दिनांक**—४ अगस्त, सन् १८७५, बुधवार, तदनुसार सावन सुदि ३, संवत् १९३२; विषय—**'अपना जीवन चरित्र'**।

ये पन्द्रह व्याख्यान, एक पृथक् पुस्तक के रूप में, उसी समय किसी सज्जन ने मराठी भाषा में प्रकाशित करवाये थे।[३९] अन्तिम व्याख्यान में स्वामी जी ने कहा कि पिछले वर्ष बम्बई में आया और बम्बई में गुसांई जी महाराज के पक्ष का खंडन बहुत प्रकार से किया और बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की। बम्बई से अहमदाबाद और राजकोट में कुछ दिन जाकर धर्मोपदेश किया और इन दिनों तुम्हारे इस नगर में लगभग दो मास से आया हुआ हूं। तत्पश्चात् पूना में आर्यसमाज की स्थापना की। पूना के एक विद्वान् महाराष्ट्री ने स्वामी जी के पूना में आगमन आदि की समस्त कार्यवाही विस्तारपूर्वक पत्रिका में प्रकाशित की है; इसको हम यहां जैसे का तैसा दे रहे हैं—

ऋषि दयानन्द का व्यक्तित्व तथा कृतित्व

'लोक हितवादी'[४०] पत्रिका के फरवरी, सन् १८८४[४०अ] के अंक में प्रकाशित विवरण

'स्वामी दयानन्द सरस्वती महाराज इन दिनों के एक ऐसे महान् व्याख्यानदाता, पूर्ण विद्वान् और साधु पुरुष हैं कि जिनकी पूरी स्तुति हमसे नहीं हो सकती। उनकी निर्मल कीर्ति, थोड़े ही दिनों में भूमण्डल में सर्वत्र भांति फैल गई है। स्वामी जी ने अपने वेदभाष्य के आरम्भ से पहले जो 'वेदभाष्य भूमिका'[1] बनाई है, उसको जो कोई शुद्ध चित्त से पढ़ लेगा, उसको फिर वेद और धर्म के विषय में कोई भी शंका नहीं रहेगी। यह एक उत्तम रीति से खूब विचार पूर्वक सब मनुष्यों के कल्याण के लिए की गई रचना है; हमें आशा है कि वेद का महत्त्व जानने के इच्छुक इस 'भाष्यभूमिका' को अवश्य देखेंगे। वेदभाष्य लिखते हुए स्वामी जी वेद का शब्दार्थ करते हैं और साथ ही पहले के भाष्यकार महीधर आदि द्वारा की गई छोटी और बड़ी भूलों को उन्होंने इस 'भूमिका' में प्रकट कर दिया है। इस 'भूमिका' को पढ़कर यह बात भली भांति समझ में आ जाती है कि इस भारतवर्ष पर झूठे आचार तथा विचार कैसे अपना आधिपत्य जमाते चले आये हैं और उन झूठे आचार-विचारों के कारण यहां के शास्त्रज्ञ पंडित और ज्ञानी विद्वान् भी किस प्रकार उदासीन, निकृष्ट और निर्मम बने रहे हैं।'

स्वामी जी सर्वथा स्वतन्त्र और निर्द्वन्द्व थे इसीलिए स्पष्ट कहते थे कि—'दो हजार वर्ष से ब्राह्मण इस बात को रटते आ रहे हैं कि वेद और शास्त्र हमारे ही गोपनीय धन हैं। हमारे अतिरिक्त अन्य कोई भी इनकी ओर देखे भी नहीं। इसके विपरीत स्वामी जी का यह मत है कि प्रत्येक बुद्धिमान् व्यक्ति वेदऔर शास्त्र के पढ़ने का अधिकारी है और उसको आज्ञा है। इसी कारण सब ब्राह्मण पागल कुत्ते की भांति उन्मत्त होकर स्वामी जी पर क्रोधाग्नि की वर्षा करने लगे। यह कोई नई बात नहीं थी। दयानन्द जो कुछ प्रतिपादन करते थे वह लल्लो-चप्पो के साथ नहीं करते थे। वह प्रबल युक्तियों

---

1. 'ऋग्वेदादिभष्यभूमिका'—सम्पा०

और अखंडनीय प्रमाणों से सिद्ध करते थे परन्तु लोगों में इतना विवेक नहीं था कि इन बातों को सभ्यता और विचारपूर्वक ग्रहण करते । इसी कारण ब्राह्मणों और दयानन्द में परस्पर विरोध और वितण्डा होने लगता था । इसे ब्राह्मणों का साहस अल्प और स्वामी जी का साहस विशाल सिद्ध होता है । जो समझदार व्यक्ति हैं वे इस बात को भलीभांति समझ जायेंगे, क्योंकि यह सर्वथा स्पष्ट है कि स्वामी जी को किसी प्रकार का बन्धन, लोभ, घमण्ड, बिरादरी के नियम पालन करने की विवशता नहीं है; इसीलिए वे किसी के पक्षपात, भय और आवभगत को नहीं मानते; न्याय और वेदशास्त्र के अनुसार जो उचित है, उसको वह बेधड़क कहते हैं । उनमे कपट लेश मात्र भी नहीं है । जब कोई व्यक्ति शंका लेकर उनके पास गया, उन्होंने तभी उसका समाधान योग्य रीति से कर दिया ।'

सभी शंकाएं निवारणार्थ 'ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका' व 'सत्यार्थप्रकाश' की रचना—आज पर्यन्त उनके पास जितने शंका करने वाले आये उन सभी की शंकाओं का अथवा जितनी शंकाओं का उन्हें ज्ञान हुआ, उन सभी का समाधान स्वामी जी ने अपने 'वेदभाष्यभूमिका' और 'सत्यार्थप्रकाश' नामक ग्रन्थों में भली भांति लिख दिया है । वे पुस्तकें ऐसी सर्वमान्य हैं कि जिनको देखकर सभी (मतवादियों) के छक्के छूट जाते हैं और स्वामी जी का ही सिद्धान्त सबसे अधिक प्रबल रहता है ।

स्वामी जी के व्याख्यानों में सभी धर्मों और सभी मतों के अनुयायी प्रसन्नता से आते रहे और वे सबके सामने निर्भय व्याख्यान देते और खंडन मंडन करते रहे । इसी प्रकार सर्वत्र और निश्शंक फिर कर और जहां-तहां प्रत्येक के साथ शास्त्रार्थ करके उन्होंने सात समुद्र पार अपनी कीर्ति का झंडा फहराया ।

वैदिक धर्म के संस्थापक दूसरे 'शंकराचार्य'—'लंदन और अमरीका अर्थात् पाताल तक उनकी विजय प्राप्ति का डंका बज रहा है । भारत के बहुत से राजा और रईस और लाखों बुद्धिमान् और समझदार लोगों ने अपने-अपने वैष्णव आदि मतों को छोड़कर भक्ति-पूर्वक स्वामी जी का अनुसरण किया है । समस्त भारतवर्ष के बड़े-बड़े शास्त्रार्थ महारथी और क्रान्तदर्शी ज्ञानी पंडित और शास्त्रियों के मध्य सिंह के समान बेधड़क जाकर बैठना और जाते ही उनसे शास्त्रार्थ करके, उसी क्षण उनको परास्त करके हंसते हुए उठना और सर्वत्र अपना ही पक्ष स्थापित करना, यह स्वामी जी का कितना उच्च साहसिक कार्य है, विद्या और तपोबल के होते हुए भी उनको किसी प्रकार का अहंकार नहीं हुआ । उनके साथ काम के लिये दो-तीन शिष्य सदा रहते हैं । कारण कि वह प्राचीन ऋषि-मुनियों के सत्यपथ पर चलने वाले, शुद्धिमत के संस्थापक, सच्चे देशानुरागी, पूर्ण योगी, अद्वितीय विद्वान्, बिना लाग-लपेट के स्पष्ट कहने वाले, परम नि:स्पृह, जितेन्द्रिय, (मद, लोभ आदि छ:ओं शत्रुओं के विजेता) वैराग्यशाली तपोनिधि हैं; इसलिए उन को इस भूमंडल पर इतना सत्कार प्राप्त हुआ और समस्त भारतवर्ष के छोटे, बड़े, समझदार, राजे, महाराजे, विद्वज्जन और सब प्रकार के बुद्धिमान् लोगों से इनको अनुपम सम्मान मिला । यद्यपि इस समय यहां विष्णु बाबा ब्रह्मचारी और गुजरात में स्वामी नारायण अर्थात् सहजानन्द अच्छे साधु हो चुके हैं, परन्तु वे इनके समान पूर्ण विद्वान् नहीं थे । इसलिए इनका स्थान उनसे ऊंचा है । इनको वैदिक मत संस्थापक, एक दूसरा शंकराचार्य सब लोगों को बिना न नु न च समझ लेना चाहिए । इन दिनों पौराणिक धर्म अपनी परिपूर्णता पर पहुंच गया था और वैदिक धर्म पददलित तथा अवनत हो गया था । पुराणों की कथाएं, एकता (अद्वैत) और अनेकता (अनेकेश्वरवाद) और इसी प्रकार मूर्तिपूजा भी अवैदिक है तथा अज्ञान एवं अनर्थ के सूचक हैं; इसलिए हम सबको वे छोड़ देनी चाहिएं, ऐसा स्वामी जी का उपदेश सुन कर पेटू, भोजनभट्ट शास्त्रियों और पुराणों का मंडन करने वाले सब को, सर्वत्र, अत्यन्त बुरा लगा और वे सब स्वामी जी से द्वेष रखने लगे । उन्होंने भी अपने पेट के लिये स्वामी दयानन्द सरस्वती सरीखे जगत् पूज्य महात्माओं की निन्दा आरम्भ कर दी और ये ही व्यक्ति इस महापुरुष को नास्तिक, पाखंडी और ईसाई कहने लगे । परन्तु

यह बात कोई नई नहीं है; जितने भी सुधारक हुए हैं, उनके ऊपर सदा ऐसी ही विपत्तियां आई हैं, यह बात इतिहास जानने वाले सभी जानते हैं और हम प्रत्यक्ष, अपनी आंखों से भी देखते ही हैं। यह भी ऐसा ही दृश्य है।'

अज्ञानियों द्वारा की गई निन्दा से घबरा कर अपना कर्त्तव्य छोड़ने वाले नहीं थे—'अज्ञानी लोगों के मनों में इस महात्मा पुरुष के प्रति जब इस प्रकार अपूज्यता की भावना उत्पन्न हो गई तो भी उस पूर्णप्रतापी के मन में, कभी भी आरम्भ किये हुए कामों के प्रति तिरस्कार की भावना उत्पन्न होकर उनमें लेशमात्र भी विघ्न नहीं पड़ा। इस प्रकार अपने मान और अपमान में एक समान रहता हुआ, वह सदा परम उत्साह पूर्वक सर्वत्र काम करता रहा और उसके उपदेश से उत्तर भारत के सब नगरों में, 'आर्यसमाज' संस्थाएं स्थापित हो गईं।'

'सन् १८७५ के जून और जुलाई मास में यहां के प्रतिष्ठित और संभावित बड़े विद्वान् और गृहस्थ मंडलों के आग्रह पर श्रीमान् स्वामी जी, पूना नगर में आये थे। उस समय यहां के हिन्दू क्लब में उनके पन्द्रह-सोलह व्याख्यान सुनने में आये थे। उन व्याख्यानों में श्रोताओं की कितनी भीड़ रही थी और इस अपूर्व वक्ता के उपदेशों को सुनकर तथा उसकी वर्णन शैली से प्रभावित होकर उस समय के यहां के श्रेष्ठ लोगों ने, स्वामी जी का बहुत अच्छी प्रकार से सम्मान किया था। यहां तक कि एक दिन तो उनको हाथी पर बैठाकर बड़े ठाठ-बाट के साथ समस्त पूना नगर में फिरा कर लाये; परन्तु यहां के चटोरे, उपद्रवी, मूर्ख, विचारहीन, स्वार्थी और द्वेषी लोग स्वामी जी का वह सत्कार सहन न कर सके और उन्होंने जो कुछ नहीं करना चाहिये था, वह सब किया। परिणाम यह हुआ कि अन्त में पुलिस की सहायता लेनी पड़ी। इनका संक्षिप्त या बहुत विस्तृत वर्णन यहां लिखना अभीष्ट नहीं है क्योंकि जिन्होंने जैसा किया था वैसा ही फल अच्छी प्रकार पा लिया। परन्तु यह निश्चित है कि पूना सरीखे प्रसिद्ध नगर में लोगों ने ऐसा अनुचित कार्य करके अपनी बड़ी निन्दा करा ली।'

स्वामी जी स्पष्टवादिता का मूल्यांकन

निस्पृह और निर्भय सत्यवक्ता—'प्रसिद्ध है कि स्वामी जी में लल्लो-चप्पो और लोभ बिलकुल नहीं था, इसलिए वह निःस्पृह और लोभरहित होकर अपनी सच्ची सम्मति लोगों को देते थे। यह बात स्वार्थी लोगों को कैसे अच्छी लगती। कुल के पुरोहितों को यह भय था कि यजमान को ऐसा मत प्रकट किया तो अपनी पुरोहिताई बन्द हो जावेगी। पण्डितों को यह चिन्ता रहती थी कि यदि हमने ऐसा ही शास्त्राधार प्रकट किया तो अपनी अप्रतिष्ठा हो जावेगी। गृहस्थ इस बात से डरते थे कि हम अमुक आचार के अनुसार चलें तो साधारण लोगों में जो हमारा सम्मान है वह जाता रहेगा और उपहास होगा। बिना किसी का पक्ष किये हृदय को सच्चा प्रतीत होने वाला मत लेकर उसके अनुसार आचरण करने का साहस और निष्कपट भावना किसी में मिलती नहीं। इस प्रकार के बन्धन अथवा लालच जैसे कारण उन में बिलकुल नहीं थे फिर उनसे और उन दिनों के व्यापारी[1] लोगों में कैसे एकता हो सकती थी ? इसलिए उन लोगों ने स्वामी जी का सब प्रकार से विरोध किया।'

पूना के लोगों की दशा और भी अधिक बुरी दिखाई दी—'यहां के लोगों की दशा उन लोगों से भी अधिक बुरी दिखाई दी। यहां के लोगों की ऐसी ही भ्रष्ट बुद्धि थी और उनको सहायता देने वाले और उभारने वाले यहां तीन प्रसिद्ध व्यक्तियों को देखकर तो हमारे चित्त को बड़ा खेद होता है। उनमें से 'निबन्धमालाकार' सबसे बढ़कर था। उपर्युक्त तीन

1. 'धन व सम्मान के लोभी, धर्म को भी व्यापार मानने वाले पंडित'—सम्पा०

गृहस्थों में प्रथम प्रोफेसर रामकृष्ण गोपाल भंडारकर हैं। उनमें और स्वामी जी में परस्पर आक्षेप और शंकाएं आमने-सामने हुईं; इस कारण उनका मत उनके पास रहा; वह लेख में नहीं आया ऐसा समझना चाहिये। दूसरा आक्षेप कैलाशवासी विष्णुशास्त्री पण्डित का है। इन्होंने अपने 'इन्दुप्रकाश' समाचार-पत्र में एक बार स्वामी जी के विरुद्ध कुछ लिखा था परन्तु आगे को स्वामी जी की उच्च योग्यता और तपोबल को समझ गये। वह शीघ्र ही सीधे मार्ग पर आ गये और कभी उनके विरुद्ध नहीं कहा। केवल इतना ही नहीं; प्रत्युत हमने उनके मुख से बहुत बार स्वामी जी की स्तुति सुनी और उन्होंने सदा अपने 'इन्दुप्रकाश' में अहमदाबाद और उसके आस-पास में स्वामी जी को मिला हुआ मान और सुयश विस्तारपूर्वक प्रकाशित किया और हमारे साथ प्रत्यक्ष होने पर भी उन्होंने स्वामी जी के विषय में अपनी परमपूज्य बुद्धि प्रकट की। अब विचारना चाहिये कि 'इन्दुप्रकाश' के सम्पादक विष्णु शास्त्री की विचारशक्ति कितनी शुद्ध और प्रशंसनीय थी और फिर समझना चाहिये कि आरम्भ में लोग स्वामी जी को क्या समझते थे और पीछे से शनैः शनै उनकी बुद्धि उनके विषय में कितनी परिवर्तित हो गई थी। यही दशा बहुतों की देखी गई। इसका यथार्थ वर्णन जिसको देखना हो वह 'सूर्योदय' समाचारपत्र में जो बम्बई के समीपस्थ थाना नामक स्थान से निकलता है, देख ले। अब रह गये तीसरे व्यक्ति अर्थात् कैलाशवासी दूसरे विष्णुशास्त्री,[४१] बम्बई के समीपस्थ चिपलूण के रहने वाले (चिपलूणकर) तथा सम्पादक 'निबन्धमाला'। ये तो अपनी मृत्युपर्यन्त स्वामी जी पर एक समान कटाक्ष करते रहे। यह बड़ा विद्वान् और दीर्घदर्शी था परन्तु स्वामी जी का विरोधी था; वैसा विरोधी 'न भूतो न भविष्यति'।

यद्यपि इस समय वे दोनों नहीं रहे परन्तु इन दोनों के लेख विद्यमान हैं। उन पर समालोचना करनी चाहिये। 'निबन्धमाला' के कर्ता ने जो सभ्य निन्दायुक्त आक्षेप स्वामी जी पर किये हैं उनके विषय में हमको उदासीन रहना ठीक प्रतीत नहीं होता। हमको इतना ही काम करना शेष है, वह करके हम अपना ग्रन्थ समाप्त करते हैं। ऐसा आक्षेप करके बहुत कुछ उसके विषय में अपना यथावत् विचार और विवेक करते-करते अन्त में 'लोक हितवादी' ने अपना यह निर्णय सिद्ध किया है।

'चिपलूण के रहने वाले विष्णुशास्त्री में पूर्ववर्णित विष्णुशास्त्री जी[४२] की-सी विचार करने की शक्ति नहीं थी। यथार्थ कहना और लिखना उनको स्वीकार नहीं था अथवा ऐसा करने से उनके सिर पर घोर विपत्ति आ जायेगी, ऐसी कुछ आशंका और भय उनके चित्त में आ जाता था। इसलिए उन्होंने सब विद्या जानने वालों के समूह से विपरीत चलन रखा।'

'अस्तु ! कुछ भी क्यों न हो श्रीमान् स्वामी जी महाराज का जिस प्रकार भारी सम्मान होना था, वह उनके जीवनकाल में सर्वत्र इस भारतवर्ष में पूर्ण रीति से हो गया। उनके पीछे उनकी वैसी ही कीर्ति सदा इस जगत् में फैली रहेगी और आगे भी नित्यप्रति बढ़ती जावेगी, क्योंकि उस योगीश्वर का सारा काम निष्कपट था, ऐसा ही पूर्ण विश्वास दूरदर्शी लोगों को है और ऐसा ही हो ! तथास्तु। आगे होने वाले लोगों को (हमारी आगामी सन्तति को) हमारे परममित्र (?) चेलों के समान विवेशकशून्य काम कभी नहीं करना चाहिए; क्योंकि वैसा करने वाला पुरुष स्वयं कलंकित होकर अपने सहवासियों को कलंक लगाता है। इसी कारण से ऐसा काम कभी सद्बुद्धि का नहीं कहा जाता, ऐसा सिद्धान्त है।'

मान-अपमान में समबुद्धि ऋषि दयानन्द

"जैसे राजा की सवारी का हाथी गांव के उपद्रवी कुत्तों के भौंकने से तनिक भी नहीं डरता, वैसे ही हमारा यह बड़ी प्रशंसा के योग्य प्रबल वीर उपर्युक्त लोगों की असंख्य कुचेष्टाओं से कभी तनिक भी नहीं डगमगाया। ऐसे जगत् पूज्य

महानुभाव के साथ हमारे पूना के समान अत्यन्त सभ्य नगर में कभी कोई ऐसा छल नहीं करना चाहिए था परन्तु कुटिल, स्वार्थी और मत्सरी लोगों ने अपने साथ इस नगर को भी कलंकित कर दिया । खैर ! जहां बहुत उत्तम लोग रहते हैं वहां चांडालों के घर भी होते हैं, इस लोकोक्ति से यदि हम अपने मन को सन्तोष भी करा लें तो भी यह बात बुरी हो गई । इसलिये यहां के बहुत से सज्जन और विद्वान् लोगों ने स्वामी जी के पास जाकर बहुत खेद प्रकट किया परन्तु धन्य वह तपोनिधि ! जिसके धैर्य, गाम्भीर्य और शौर्य में तनिक भी अन्तर पड़ा हुआ किसी के देखने में नहीं आया ।

जो व्यक्ति इस विचार में कि भारतवासी लोगों को सांसारिक और पारमार्थिक सुख कैसे प्राप्त होगा, रात दिन मग्न हो कर उपदेश करता हो और जिसके सामने आते ही रामानुज और कमलनयन आचार्य जैसे 'मैं मैं' करने वाले अर्थात् अपने समान किसी को न समझने वाले बड़े विद्वानों के भी धुर्रे उड़ गये, उसको मूर्ख या प्रमादी समझने वाले और समझाने वाले कौन कैसे स्याने और चतुर हैं, इसका तुम थोड़ा भी विचार करो । इसके पश्चात् यहां के एक उद्योगी पुरुष ने स्वामी जी के व्याख्यानों का सारांश तैयार किया । उसके ऊपर से स्वामी जी का गंभीर और स्वतंत्र विचार तथा तर्कशक्ति का असीम प्रभाव समझ में आता है । इसीलिये इसको देखो जिसके द्वारा शान्ति प्राप्त होगी ।

विलायत में विप्रबुद्धि के सागर एडम स्मिथ[४३], बेकन[४४], मिल[४५] आदि महापंडित जैसे प्रसिद्ध हो गए हैं और जिनके समान पहले अपनी ओर (अपने देश में) कणाद, गोतमाचार्य जैसे वेद-वेदांग, उपांगों के ज्ञाता और धर्मसंस्थापक हो गये हैं, उनके समान ही स्वामी जी की मूर्ति थी, ऐसा कहने में हमको थोड़ी भी शंका प्रतीत नहीं होती । ऐसा समझना चाहिए कि ऐसे महापुरुष की परीक्षा के लिए हमारे यहां के मत्सरी पुरुष मानो कसौटी हैं । उस पर हमारे इस स्वर्ण की अच्छी प्रकार से परीक्षा होकर वह खरा निकला । जिसकी इच्छा हो वह सामना करके देख ले ।'

फिर बम्बई में—अगस्त, सन् १८७५ के अन्त में स्वामी जी पूना से वापिस बम्बई लौटे[४६] और समाज में निवास किया । उस समय पण्डित मंडनराम तथा बलदेवसिंह दोनों विदा होकर कानपुर में राजा जयकिशनदास जी के पास चले आये ।

ब्रह्मसमाजियों ने निरुत्तर होकर भी अपना पक्ष नहीं छोड़ा—'बम्बई में ब्रह्मसमाज के सदस्य बाबू नवीनचन्द्र राय[४७], बाबू प्रतापचन्द्र मजूमदार[४८] और डाक्टर भंडारकर[४९] से भी स्वामी जी ने धर्मसम्बन्धी वार्तालाप किया और वेदों के विषय में उनकी जो शंकाएं थीं उनका भली भांति खंडन किया और बहुत से ब्रह्मसमाज वालों के सन्देह दूर किये परन्तु इन तीनों सज्जनों ने किसी विशेष कारण से कई बार निरुत्तर होने परभी सत्य को ग्रहण न किया ।[५०] ये लोग न्याय से काम नहीं लेते और सत्यबात के स्वीकार करने से घबराते हैं । उदाहरणार्थ, सबसे बड़ा आक्षेप उनका यह था कि आप वेदों में अग्नि, इन्द्र आदि कुछ शब्दों के ईश्वरवाची अर्थ क्यों करते हो ? स्वामी जी ने वेदों के पुराने व्याख्यान ग्रन्थ-ब्राह्मणग्रन्थ दिखलाए कि स्वयं सब ऋषियों ने अग्नि आदि शब्दों के दो अर्थ किए हैं, एक तो यह भौतिक अग्नि, जड़ पदार्थ; दूसरे ज्ञानस्वरूप परमात्मा । उपनिषदों के भाष्य में शंकराचार्य, आनन्दगिरि, राजा राममोहन राय, मैक्समूलर, दाराशिकोह, सायण, शोपनहार, उव्वट, डेविड पियर्सन आदि समस्त विद्वानों ने एकमत होकर 'ईशावास्योपनिषद्' के १६वें वाक्य में जो अग्नि[५१] शब्द आता है, वहां परमेश्वर अर्थ किया है और आज तक किसी बुद्धिमान् ने उसका विरोध नहीं किया । एशियाटिक सोसाइटी के योग्य विद्वान् सदस्य पण्डित सामश्रमी ने भी अपने निरुक्त व्याख्यानों[५२] के ग्रन्थ में, अन्त में, यही अर्थ किया है । इसी प्रकार शेष शब्दों का अर्थ है जो और समस्त विशेषणों के साथ कुछ अवसरों पर ब्रह्म का वाचक होते हैं; परन्तु पक्षपात को कोई क्या कहे ।

फिर जबकि स्वयं वेदों में कथन है कि जो परमात्मा के अतिरिक्त किसी अन्य की उपासना या प्रार्थना करे वह नितान्त पशु है और नरकगामी होगा (देखो यजुर्वेद अध्याय ४०, मंत्र ९)[५३] और ऐसा ही ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णन है तो फिर वेद में किसी देवता या जड़ वस्तु की उपासना का मानना स्पष्ट मूर्खता है और जो सत्य बात के मानने से जानबूझ कर इनकार करे, उसे हम क्या कहें !'

उस समय के समाचारपत्र 'इण्डियन मिरर' कलकत्ता में यह वृत्तान्त इस प्रकार प्रकाशित हुआ—'प्रतीत होता है कि पण्डित दयानन्द सरस्वती बम्बई प्रेजीडैन्सी में अपने काम का प्रबन्ध कर रहे हैं। आर्यसमाज, जिसका वृत्तान्त हमारे पाठक समय समय पर सुनते रहे हैं, उन्हीं का स्थापित किया हुआ है। समस्त व्यावहारिक लक्ष्यों की दृष्टि से यह समाज मानो ब्रह्मसमाज ही है। परन्तु उनमें एक बड़ा सैद्धान्तिक अन्तर यह है कि आर्यसमाज वाले वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं। यद्यपि स्वामी जी की इच्छा ब्रह्मसमाज से बातों में मेल की है परन्तु वेदों का ईश्वरीय ज्ञान होना उनके (स्वामी जी के) लिये एक बड़े महत्त्व की बात है, इस (मन्तव्य) को वह कदापि नहीं छोड़ेंगे।'

देश में कोई वह सुधार स्थिर नहीं हो सकता जिसका आधार वेद न हो—'वास्तविक बात यह है कि स्वामी जी, क्या इस देश में और क्या अन्य देशों में, ब्राह्म लोगों की क्रियात्मक सहानुभूति और सम्मिलन के बिना सफल नहीं हो सकते और कोई धार्मिक या सामाजिक सुधार इस देश में तब तक स्थायी नहीं बन सकता जब तक कि वह हिन्दुओं की पवित्र पुस्तकों के प्रमाण और समर्थन से जारी न किया जाये। यदि वर्तमान भारत ने पाश्चात्य शिक्षा न पाई होती तो यह विचार उनका ठीक था परन्तु इस समय समस्त बातों का निर्णय काल की गति के अनुसार होता है, न कि शास्त्र से। जो धार्मिक और क्रियात्मक सुधार उस गति (काल की गति) के अनुसार हो रहे हैं उनकी सफलता उतनी ही विश्वसनीय है जितनी कि वेदों की प्राचीन बातों के प्रचलन की असफलता। बम्बई या बंगाल के ब्राह्म पंडित दयानन्द सरस्वती के साथ वहीं तक मिलकर काम कर सकते हैं जहां तक कि मूर्तिपूजा, जातपात और अन्य कुरीतियों के दूर करने का सम्बन्ध है, परन्तु अन्य धार्मिक विषयों में इतना विरोध रखते हुए हमारा (ब्रह्म समाजियों का) सम्मिलित होना असम्भव है।' (सण्डे एडीशन, पृष्ठ २, खंड १४ संख्या २५१, २९ नवम्बर, सन् १८७५)।

सन्तानार्थी महिलाओं को उत्तर—बम्बई में स्वामी जी के पास एक बार बहुत सी स्त्रियां सन्तान की कामना से आईं। उस समय कई सेठ, साहूकार भी बैठे हुए थे। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि पुत्र वैरागियों के अतिरिक्त और कोई नहीं दे सकता, मेरे पास नहीं है। जितने सेठ आदि लोग बैठे हुए थे, सब लज्जित हो गये और वे चली गईं।

ईश्वर भक्ति के प्रचार में विरोधियों की गालियों से भी प्रसन्नता—जब लोग खंडन-मंडन के कारण स्वामी जी को गालियां देते थे तब स्वामी जी कहते थे कि जैसे लोग श्वसुराल में जाते हैं और गालियों से प्रसन्न होते हैं वैसे ही मैं ईश्वर, परमात्मा की भक्ति का प्रचार करते हुए धर्म विरोधियों की गालियों से प्रसन्न होता हूं।

'राजाओं की दुर्दशा ही देश के विनाश का कारण है'

आजकल के राजाओं के चार मन्त्री और उनके कारण राजाओं की दुर्दशा—'एक दिन बम्बई में कई हजार के समूह में व्याख्यान देते समय राजाओं के विनाश का वर्णन करते हुए कहा कि आजकल राजाओं के विनाश का कारण यह

है कि उनके परामर्शदाता इस प्रकार के होते हैं, प्रथम ज्योतिषी, दूसरे तेल वाला, तीसरा ऊंट वाला, चौथा हीजड़ा। किसी एक राजा पर जब शत्रु चढ़कर आया और दुर्ग के भीतर घुसने लगा तो उसे सूचना मिली। प्रथम ज्योतिषी से पूछा उसने कहा कि अभी महाराज को भद्रा है। फिर तेल वाले से पूछा कि आप कहिये, आपकी क्या सम्मति है? उसने कहा कि शीघ्रता क्या है, आप अभी तेल देखें और तेल की धार देखें। फिर ऊंट वाले से पूछा कि आप अपनी सम्मति कहिये। उसने कहा महाराज! देखिये ऊंट किस करवट बैठता है। यह ऐसे ही परामर्श करते रहे और शत्रु भीतर घुस आया। तब हीजड़े से पूछा कि कहिये अब आपकी क्या सम्मति है? उसने कहा कि आप कनात तान लो, क्या वे पर्दे में घुस आयेंगे?

देश की दुर्दशा से अत्यन्त दुःखी—इसके अन्त में दुःख से मेज पर हाथ रखकर कहा कि यदि हमारे राजाओं की यह दशा न होती तो हमारी यह दुर्दशा क्यों होती। देश के विनाश का कारण यही हैं।'

बम्बई के बड़े पादरी विल्सन साहब[५४] को स्वामी जी ने धर्म चर्चा के लिए बहुत बुलाया परन्तु वह सामने न आया। स्वामी जी ने उसके पास प्रश्न भेजे परन्तु उसने उनका कुछ उत्तर न दिया। अन्ततः स्वामी जी स्वयं ही एक दिन उसके पास चले गये, वह बड़े प्रेमपूर्वक मिला और कुछ समय तक बातचीत होती रही। फिर बहाना किया कि मेरा इस समय आवश्यक कार्य है, मैं किसी समय आपके मकान पर उपस्थित हूंगा परन्तु जब तक स्वामी जी वहां रहे, वह न आया, प्रत्युत बम्बई छोड़कर कहीं बाहर चला गया।

बड़े शास्त्रार्थ के दिन विशेष तैयारी—'जिस दिन कोई बड़ा शास्त्रार्थ होने को होता तो उस दिन तीन बजे रात को उठकर और ताजा पानी मंगाकर वैद्यकशास्त्र में मासानुक्रम से बताई हुई रीति के अनुसार सौंफ आदि फांकते, ऊपर से ताजा पानी पीकर शौच को जाते और आकर स्नान करते, फिर प्रातः ६ बजे तक ध्यानावस्थित रहते। शास्त्रार्थ के दिन परमात्मा का ध्यान अधिक किया करते थे।'

मैक्समूलर महोदय का पत्र—बम्बई में ही मैक्समूलर साहब की इस विषय की चिट्ठी[५५] जर्मनी से आई थी। यदि आप यहां आवें तो बहुत बड़ी कृपा होगी और वहां के धन्य भाग्य हैं जहां आपने जन्म लिया है आदि आदि। स्वामी जी ने लिखा था कि मेरी इच्छा आने की अवश्य थी परन्तु यहां के लोग अभी मुझे नास्तिक कहते हैं। जब तक मैं इस देश को अच्छी प्रकार न बतला दूं कि मैं कैसा नास्तिक हूं तब तक नहीं आ सकता। जब मैक्समूलर साहब की चिट्ठी आई थी तब वहां के भाटियों ने अपने जहाज पर ले जाने का वचन भी दे दिया था परन्तु स्वामी जी स्वयं न गये।

श्री दयानन्द स्वामी जी और पंडित रामलाल शास्त्री रानीका रायपुर निवासी के मध्य २७ मार्च, सन् १८७६ को हुआ शास्त्रार्थ

जब स्वामी जी बम्बई से पूर्व की ओर जाने को उद्यत हुए उस समय यहां के पण्डितों ने स्वयं दूर रह कर शान्तिपुर नदिया के विद्वान् रामलाल जी को शास्त्रार्थ-क्षेत्र में आने के लिए उद्यत किया। उसने एक हूकाभाई जीवन जी के घर में बहुत वादानुवाद के पश्चात् चैत सुदि, संवत् १९३३, सोमवार के दिन शास्त्रार्थ आरम्भ किया। बहुत से भद्रपुरुष उस शास्त्रार्थ के समय उपस्थित थे। दोनों पक्षों की सम्मति से धारीपुरी निवासी पण्डित भूझाऊ जी शास्त्री[५६] सभापति निश्चित हुए। (शास्त्रार्थ इस प्रकार हुआ)-स्वामी जी-वेद के किस मन्त्र में मूर्तिपूजा का विधान है सो बतलाइये? पण्डित रामलाल जी पुराण और स्मृतियों के श्लोक बोलने लगे। स्वामी जी—यह ग्रन्थ मानने के योग्य नहीं हैं। वेद का यदि कोई मन्त्र स्मरण हो तो कहिये। पण्डित जी ने मनुस्मृति के वह श्लोक जिनमें प्रतिमा[५७] तथा देव[५८] शब्द थे, बोले। स्वामी जी ने सब

श्लोकों के यथार्थ प्रमाणसहित अर्थ कर दिये कि इनका मूर्तिपूजा से कोई सम्बन्ध नहीं; पंडित जी कोई मन्त्र न बोले (तब मध्यस्थ जी बोले)। मध्यस्थ पण्डित भू झाऊ जी शास्त्री बोले कि रामलाल जी ! प्रश्न स्वामी जी कुछ और करते हैं और आप उत्तर कुछ और ही देते हैं। यह सभा और पण्डितों का नियम नहीं है, जैसे किसी ने किसी के द्वारिका का मार्ग पूछा और बतलाने वाले ने कलकत्ते का मार्ग बतलाया, इसी प्रकार का यह आपका शास्त्रार्थ है। इतना कहने पर भी रामलाल ने कोई वेद का प्रमाण नहीं दिया। तब सब की सम्मति से सभा विसर्जित हुई और सभापति ने सबसे स्पष्ट कह दिया कि 'आज पण्डित रामलाल पाषाण पूजने को वेदोक्त सिद्ध न कर सके।' इस सत्य के कह देने पर इस मध्यस्थ को पण्डितों ने सताने में कोई कमी न रखी।

पं० रामलाल ने एक भेंट में सत्य बात स्वीकार की

फिर चैत, संवत् १९४० में इन्हीं पंडित महोदय की वेदभाष्य तथा वैदिक यन्त्रालय प्रयाग के मैनेजर[५९] से भेंट हुई और वह सारी 'देश हितैषी' पत्रिका के उक्त संवत् के चैत्र मासीय अंक में प्रकाशित हुई। यह भेंट पर्याप्त रोचक है।

भेंट का विवरण : मैनेजर—आपने संस्कृत विद्या का बहुत दिन तक अध्ययन किया है और आप इस भाषा के विद्वान् हैं। आपने धर्मशास्त्र के ग्रन्थ देखे होंगे और आपके अतिरिक्त काशी आदि स्थानों में और भी बहुत विद्वान् हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती भी बड़े विद्वान् हैं; सो आप सब लोग जानते होंगे; फिर क्या कारण है कि धर्म सम्बन्धी विषयों में आप लोगों और स्वामी जी की सम्मति एक नहीं है। स्वामी जी चारों वेदों को प्रामाणिक मानते हैं; तब उनमें लिखी बातों को क्या आप लोग सिद्ध नहीं कर सकते ? जो स्वामी जी सत्य कहते हैं तो आप लोगों को उनका कहना मानना चाहिये और जो असत्य कहते हैं तो उनकी बातों का सभा करके खंडन करना चाहिये। सो आप लोग दोनों बातों में से एक भी नहीं करते; इसका क्या कारण है ?

पंडित रामलाल जी—स्वामी जी संन्यासी हैं, उनको किसी की चिंता नहीं। उन्होंने वेदादि शास्त्रों का अध्ययन बहुत दिनों तक किया है। वे समर्थ हैं, उनकी बुद्धि बड़ी प्रबल है। वे जो कहते हैं सो शास्त्रानुसार सत्य ही कहते हैं; परन्तु हमारी शक्ति नहीं कि उनका सामना कर सकें क्योंकि हम लोग गृहस्थ हैं, हमको अनेक बातों की अपेक्षा बनी रहती है। फिर हम भला स्वामी जी की-सी बातें कैसे कह सकते हैं ? संसार में और भी जो चर्चा फैली हुई हैं, यदि हम उसके विरुद्ध कहें हमारे कहने से कुछ भी न हो (हमारा कथन व्यर्थ तो हो ही), साथ ही लोग हमसे विमुख हो जावें; और फिर आजीविका ही जाती रहे; तब निर्वाह कैसे हो ?

मैनेजर—इससे सिद्ध हुआ कि आप अधर्म की जीविका करते हैं; क्योंकि जानते हैं कि यह बात मिथ्या है फिर उससे द्रव्योपार्जन करना अधर्म है। देखो ! स्वामी जी ने असत्य को छोड़कर सत्य ग्रहण किया तो थोड़े काल में उनका कितना मान हुआ है। इसी प्रकार जो आप लोग भी सत्य को स्वीकार करें तो वैसा ही सम्मान और नाम आप लोगों का क्यों न हो ?

पंडित जी—क्या करें ? सारे संसार की ऐसी ही प्रवृत्ति हो रही है, उसके विरुद्ध हम लोग कहें तो कोई नहीं मानता। इस प्रकार तो स्वामी जी का ही निर्वाह हो सकता है, हम गृहस्थों का नहीं। (पृष्ठ ८,९)

इस शास्त्रार्थ के पश्चात् आर्य भाई जीवनदयाल नेरकादयाल ने निम्नलिखित विज्ञापन प्रकाशित किया—

विज्ञापन

मूर्तिपूजा मंडन करने वाले और धर्म जिज्ञासु लोगों को सूचना

सर्व आर्य भद्र आचार्य, पंडित, शास्त्री लोगों को उचित है कि इस समय जब वेद में मूर्तिपूजा करने का विधान है वा नहीं; इसका निर्णय करने के लिये बड़ी-बड़ी सभा और तकरार होती है तब स्वदेश कल्याणार्थ सब विद्वानों का कर्तव्य है कि पक्षपात छोड़ के जिस वेद में पाषाण मूर्तिपूजन प्रतिपादन मन्त्र हो उस मन्त्र का जो अर्थ अंग से अर्थात् पूर्व ऋषि मुनियों ने ब्राह्मण सूत्रादि ग्रन्थों में कर रखा है वह साक्षी सहित छपवा कर प्रसिद्ध करना चाहिये।

सो १८ मास[६०] हुए पण्डित दयानन्द सरस्वती इस नगर में पधारे। हम वहां से देखते हैं कि गट्टूलाल आदि सब पण्डित यह वास्तविक मार्ग छोड़ कर अपना शिष्यमण्डल अपने को छोड़ न जाये, इसलिए उसकी युक्ति से बोध करते हैं और जैसे सभी मूर्तिपूजकों को घर में बैठे बोध हुआ है सो सीधा मार्ग स्वीकार नहीं करते हैं, यह बड़ी विचारने की बातें हैं क्योंकि गत वर्ष गट्टूलालादि विद्वानों ने नवीन पाषाण मूर्तियों की वेद के आधार से स्थापना कराई। इतना ही नहीं परन्तु वह चारों वेदों के ब्राह्मण वरणी में बैठे थे और वेद के हजारों मन्त्र बोलते थे। पर यदि यह सत्य है तो ऊपर लिखी रीति से प्रसिद्ध क्यों नहीं करते हैं। इससे जिज्ञासु लोगों को निश्चय करना चाहिये कि जो वेद के आधार से ही पाषाणादि प्रकरण चलता होता तो यह पण्डित लोग कभी के यह सब विधान छोड़ के प्रसिद्ध कर देते। इतना ही नहीं बल्कि दस वर्ष हुए पण्डित दयानन्द स्वामी सर्व देश देशांतर में फिरते हैं कि वेद में पाषाण पूजन का लेशमात्र कुछ भी विधान नहीं है, इनको घूमने क्यों देते।

देखो, रामानुज सम्प्रदाय वाले कमलनयनाचार्य सभा में से चले गये और अब थोड़े दिन हुए पण्डित रामलाल नाम के एक पण्डित इधर आते हैं। वे भी वेद से मूर्तिपूजा का मंडन करने को उद्यत हैं, ऐसा सुनके मैं भाई जीवन जी नाम के गृहस्थ के घर में सभा में गया था। वहां देखता हूं कि उस पण्डित को दयानन्द स्वामी वेद से दिखला देने का आग्रह करते हैं और पण्डित रामलाल जी चले स्मृति में। नियम हुआ था कि वेद से सिद्ध करना, तो भी रूक्ष गुप चुप बैठे और अन्त को कुछ भी वेद में से संवाद हुए बिना सभा विसर्जन हुई।

ऐसी ऐसी लीला पण्डित लोगों की देख के और कितने एक विद्वान् एकान्त में कहते हुए। इस पर मैं तो निश्चय करके आर्यसमाज का सभासद् हुआ कि वेद में मूर्तिपूजा का कुछ भी विधान नहीं है। यह तो ब्राह्मण लोगों ने अपने पेट भरने की लीला बनाई है और इसमें कुछ सन्देह नहीं कि इस (मूर्ति-पूजा) को धर्म-जिज्ञासु लोगों को छोड़ देना चाहिये। और यदि कोई फिर भी कहे कि वेद में आज्ञा है तो उसको पूछना चाहिये कि वेद में बतला और मैं भी स्पष्ट रीति से इस विज्ञापन द्वारा प्रश्न करता हूं कि जो कोई पण्डित मुझको वेद में से पाषाणादि पूजन विधायक मंत्र, इसका अर्थ वेद के अंगों से करके भेज देंगे, उसको मैं १२५) दक्षिणा दूंगा। इतना ही नहीं परन्तु वह पंडित जिस रीति से धर्म की व्यवस्था बतायेगा वैसा ही बर्ताव करने को उद्यत हूं। परन्तु ऐसा दिन कब होगा कि मेरे इस प्रश्न का उत्तर मिलेगा। अभी जो भोजन करना होवे तो हजारों उद्यत हो जावें और इस पत्र को बांच के निन्दा करने तो बैठेंगे, परन्तु मुझे तो इसका कुछ भय नहीं; क्योंकि मैंने तो यह यत्न इस वास्ते किया है कि पण्डित लोग जो झूठ बोल-बोल कर लोगों को बहकाते हैं, इसके खरे-खोटे की परीक्षा की मुझको भी बड़ी देर से जिज्ञासा है, इसलिये यह विज्ञापन दिया है।

यदि कोई पण्डित वेद के मंत्र के छपवाने का यत्न करे तो उसे यह मंत्र संहिता में किधर लिखा है सो विस्तारपूर्वक और शुद्ध करके लिखना, सो प्रसिद्ध किया जावेगा और सब धर्म-जिज्ञासु गृहस्थ को इस रीति से पूछना उचित है जिससे सच्चे और झूठे की परीक्षा होवे । यही हमारा विज्ञापन है ।[1]

स्थान, बम्बई
४ अप्रैल, सन् १८७६

जीवनदयाल नेरकादयाल
पता : नल बाजार के नाके के ऊपर
पतनवती के सामने
मकान नं० ६०

इस विज्ञापन पर भी कोई पण्डित महोदय शास्त्रार्थ करने के लिए उद्यत न हुए । दक्षिणा पर जी तो बहुत ललचाया परन्तु अभी अंगूर कच्चे हैं, कौन दांत खट्टे करे, अत: सन्तोष करके बैठ गए और स्वामी जी महाराज १ मई, सन् १८७५ तदनुसार वैशाख सुदि बम्बई से चलकर जेठ बदि, संवत् १९३३ तदनुसार ९ मई, सन् १८७६ को फर्रूखाबाद पहुंचे । स्वामी जी ने वेदों पर भाष्य करने का निश्चय यहीं दृढ़ कर लिया था और इसी स्थान पर वेदभाष्य का नमूना तैयार कर छपवाया था, जिसमें केवल एक मन्त्र की संस्कृत, भाषा और गुजराती दी हुई थी । विज्ञापन के रूप में यह १० पृष्ठ का था ।

'ज्ञानप्रदायिनी पत्रिका' में प्रकाशित समाचार—बम्बई के[६१] एक देशी समाचारपत्र में स्वामी जी के सन् १८७५ में बम्बई पधारने और वहां के पण्डितों के शास्त्रार्थ के सम्बन्ध में इस प्रकार प्रकाशित हुआ है—

---

1. जीवनदयाल नेरकादयाल द्वारा प्रकाशित इस विज्ञापन का स्पष्टार्थ इस प्रकार है—"सब विद्वानों को उचित है कि 'वेद में' मूर्तिपूजा का विधान है—यदि इस विषय का प्रतिपादक कोई मंत्र वेद में हो तो उसका वेदांग और ऋषिकृत ग्रन्थों में किया हुआ अर्थ, पक्षपात रहित होकर, प्रकाशित करें ।

गत १८ मास में पण्डित दयानन्द सरस्वती इस नगर में मूर्तिपूजन का खंडन कर रहे हैं । गट्टूलाल आदि पंडित 'वेदों में मूर्तिपूजा का विधान' दिखाने का सीधा मार्ग तो स्वीकार नहीं करते, अपितु गत वर्ष उन्होंने नवीन पाषाणमूर्तियों की स्थापना कराई, चारों वेदों के ज्ञाता ब्राह्मण बैठे और हजारों मंत्र बोले, यदि इसका कथन सत्य होता तो ये पाषाण आदि पूजा के वेद के आधार को कभी प्रकाशित कर देते और नवीन पाषाणमूर्तियों की स्थापना का अनुष्ठान पीछे करते । उधर पंडित स्वामी दयानन्द सरस्वती दस वर्ष से देश देशान्तर में फिर-फिर कर घोषणा कर रहे हैं कि वेद में पाषाण पूजन का लेश मात्र भी नहीं है ।

रामानुज सम्प्रदाय के पं० कमलनयन सभा में मूर्तिपूजा को वेदसम्मत सिद्ध नहीं कर सके और चले गए । पं० रामलाल मूर्तिपूजा का मण्डन करने को उद्यत हैं, यह सुनकर मैं भाई जीवन जी गृहस्थ के घर सुनने गया; वहां जा कर देखा कि स्वामी दयानन्द पण्डित को वेद में मूर्तिपूजा का विधान दिखाने को कह रह हैं और पं० रामलाल स्मृति में दिखा रहे हैं और फिर वेद से कुछ भी दिखाए बिना सभा विसर्जित हो गई । ऐसे-ऐसे पण्डितों को देखकर मैं यह निश्चय करके आर्यसमाज का सभासद् बना कि मूर्तिपूजा का विधान वेद में तो है नहीं, यह ब्राह्मणों ने केवल अपनी पेट पूजा के लिए बनाया है ।

अब मैं स्पष्ट रूप से इस विज्ञापन द्वारा घोषणा करता हूं कि जो कोई पंडित मुझे वेद में से पाषाण आदि पूजन का मंत्र, वेदांग के अनुसार उसके अर्थसहित, लिखकर भेजेगा उसको मैं १२५ रु० दक्षिणा दूंगा और इतना ही नहीं, वह पंडित पूजा की जिस रीति की व्यवस्था बताएगा मैं वैसा ही अनुष्ठान किया करूंगा । परन्तु वह दिन कब होगा कि जब मुझे इसका उत्तर मिलेगा ? यदि भोजन के लिए निमन्त्रण दिया जाए तो अभी-अभी हजारों पंडित एकत्र हो जायें । इस पत्र को पढ़कर निंदा तो मेरी बहुत करेंगे, परन्तु मुझे इसका भय नहीं है, क्योंकि मैंने यह इसलिए किया है कि लोग जो झूठ बोल-बोलकर अज्ञानी लोगों को बहकाते हैं उसमें खरे-खोटे की परीक्षा सब कर लेंगे । यदि कोई पंडित ऐसा वेदमन्त्र छपवाना चाहे तो वह वेद के नामसहित उसका पूरा उद्धरण विस्तार पूर्वक तथा शुद्ध-शुद्ध लिखे; उसको हम भी प्रकाशित करेंगे ।

'उसके (काशी शास्त्रार्थ के) पीछे स्वामी जी बम्बई आए और यहां उन्होंने घोषणा पत्र (शास्त्रार्थ का विज्ञापन) दिया कि जो पंडित चाहे आकर हमसे शास्त्रार्थ कर ले, पर किसी का साहस नहीं हुआ कि उनके सामने आकर मूर्तिपूजन को वेदोक्त सिद्ध कर सके' ('ज्ञानप्रदायिनी' पृष्ठ सं० २३, २४ संख्या ३१; २२ जनवरी, सन् १८७५)।

(ख) दक्षिण में आर्यसमाज की स्थापना के पश्चात् पुनः उत्तर प्रदेश में

(मई, सन् १८७६ से मार्च सन् १८७७; तदनुसार ज्येष्ठ, सं० १९३३ से चैत्र, सं० १९३४ तक)

फर्रूखाबाद में (मई, सन् १८७६)—जेठ बदि प्रतिपदा, संवत् १९३३, तदनुसार ९ मई, सन् १८७६ को स्वामी जी पांचवीं बार[६२] फर्रूखाबाद में पधारे और ला० जगन्नाथदास के विश्रान्त घाट पर डेरा किया। उस अवसर पर २३ मार्च, सन् १८७६, तदनुसार जेठ की अमावस को, प्रातःकाल एक पादरी साहब[६३] दो देसी ईसाइयों सहित आये और अपनी रीति के अनुसार स्वधर्म सम्बन्धी वार्तालाप करने लगे। अन्त में जब सामना करने की सामर्थ्य न रही और निरुत्तर हो गए तो लोगों के सामने प्रमाण करके कहा कि पण्डित जी महाराज! विश्वास हो गया कि आप शीघ्र हमारे मतानुयायी हो जायेंगे। इस पर स्वामी ज़ी ने उत्तर दिया कि यह तो परम असम्भव है परन्तु थोड़े दिनों पश्चात् देखोगे कि बहुत से ईसाई वैदिकमत की प्रशंसा करते हुए उसके अनुयायी होने की प्रार्थना करेंगे। (ईश्वर की कृपा से स्वामी जी का यह वाक्य सिद्ध हो गया। देखिए, अब किस प्रकार लोगों के समूह के समूह ईसाई मत से निकलकर वैदिक मत की शरण में आ रहे हैं और यूरोप के विद्वान् तक भी किस प्रकार वैदिक धर्म के नियम स्वीकार करते जाते हैं।)

'आर्यसमाज' स्थापित करने पर बल—यहां ज्वालादत्त[६४] को कहा कि तुम हमारे साथ रहो-क्योंकि स्वामी जी को वेदभाष्य के लिए शोधने और सुन्दर लिखने वाले की आवश्यकता थी परन्तु उसने न माना। इस बार भी व्याख्यान हुए और पाठशाला का खर्च तोड़कर शीघ्र पूर्व की ओर चले गए और कह गए कि यदि यहां आर्यसमाज स्थापित हुआ तो मिलेंगे; नहीं तो हम कदापि न आवेंगे। ऐसा निश्चय समझकर अवश्य समाज स्थापित करो।

बनारस में 'वेदभाष्य' का 'प्रकल्प'—ज्येष्ठ सुदि प्रतिपदा तदनुसार २४ मई, सन् १८७६ को फर्रूखाबाद से चलकर ज्येष्ठ सुदि ४ को बनारस पहुंचे और उत्तमगिरि के बगीचे में निवास किया और १४ अगस्त, सन् १८७६, तदनुसार भादों बदि १०, संवत् १९३३, सोमवार तक बनारस में रहे; चतुर्मासा यहीं व्यतीत किया। यहां स्वामी जी इस बात को सोचते रहे कि वेदभाष्य किस प्रकार आरम्भ करें, कहां छपवावें और किस-किस पंडित को नौकर रखें। हमको भी आषाढ़ मास में यहां बुला लिया और कह दिया कि व्याकरण का अभ्यास बढ़ाओ, आगे काम पड़ेगा। यहां स्वामी जी ने वेदभाष्य के दोनों विज्ञापन छपवाने का प्रबन्ध किया तथा भूमिका के छपवाने का प्रबन्ध मिस्टर लाजरस साहब से किया। अभी तक वेदभाष्य का काम आरम्भ नहीं हुआ था। यहां चातुर्मास में स्वामी जी अधिक वैदिक ग्रन्थ विचारते रहे। पण्डित हेमचन्द्र चक्रवर्ती नेपाल जाते हुए स्वामी जी से मिले। स्वामी जी ने उन्हें एक योगदर्शन व्यासभाष्य तथा दूसरा महाभाष्य प्रदान किया।

जौनपुर में केवल तीन दिन—बनारस से चलकर १५ अगस्त, मंगलवार, भादों बदि ११ को जौनपुर पधारे और नदी के किनारे पर स्थित एक मकान में जो-धर्मशाला के समान था, निवास किया। जो कोई आया उसे साधारण रूप से उपदेश देते रहे। यहां केवल तीन दिन रहे। पंडित भीमसेन[६५], शांतगोत्र ब्राह्मण तथा रसोइया, अर्थात् कुल तीन व्यक्ति साथ थे।

अयोध्या में वेदभाष्य लिखना आरम्भ किया—शुक्रवार, १८ अगस्त, सन् १८७६ तदनुसार भादों बदि १४ को अयोध्या पहुंच कर सरयू बाग में, चौधरी गुरुचरणलाल के मंदिर में, जहां पाठशाला है, उतरे और वहीं दो दिन पश्चात् अर्थात् भादों शुक्ल प्रतिपदा रविवार संवत् १९३३ तदनुसार २० अगस्त सन १८७६ को वेदभाष्य भूमिका (ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका) का लेखन आरम्भ किया। यहां स्वामी जी एक मास, ९ दिन रहे अर्थात् २४ सितम्बर[६६], सन् १८७६ तक यहां रहे।

लखनऊ में लेखन कार्य तथा प्रश्नोत्तर—२६ सितम्बर[६७], मंगलवार, तदनुसार आसौज सुदि ९ को स्वामी जी ने हुसैनगंज में स्थित सरदार विक्रमसिंह साहब अहलूवालिया की कोठी में जाकर निवास किया। पंडित रामआधार वाजपेयी ने वहां ठहराया था क्योंकि वह स्वामी जी का पूर्वपरिचित था। यहां एक मास रहे और अधिकतया 'भूमिका' के लिखने में संलग्न रहे।

अंग्रेजी पढ़ना आरम्भ किया—यहां पर ही कई देश और जाति के हितचिन्तकों की सम्मति से निश्चय किया कि अंग्रेजी भाषा पढ़कर विलायत में सत्योपदेश के लिये जाना चाहिये। इसी अभिप्राय से एक बंगाली बाबू[६८] अंग्रेजी पढ़ाने के लिये नौकर रखा और पढ़ना आरम्भ किया। इस विषय में 'इण्डियन मिरर' कलकत्ता से लेकर 'बिहारबन्धु' पटना में इस प्रकार संवाद प्रकाशित हुआ, 'इण्डियन मिरर' से पता लगा कि पंडित दयानन्द सरस्वती विलायत जाना चाहते हैं। इसलिए आजकल लखनऊ में अंग्रेजी पढ़ रहे हैं। इसमें कुछ संदेह नहीं कि उक्त महाशय के विलायत जाने से वहां के विद्वानों को बड़ा आनन्द होगा।' (खंड ४, संख्या ४०, १८ अक्तूबर, सन् १८७६)। 'हिन्दू बान्धव' लाहौर (जो ब्रह्मसमाज का पत्र था) ने प्रकाशित किया कि प्रसिद्ध पण्डित दयानन्द सरस्वती, जो इन दिनों लखनऊ में ठहरे हुए हैं और वहां अंग्रेजी भाषा के सीखने में संलग्न हैं, उक्त भाषा को सीखने के पश्चात् इंग्लैंड जाने का विचार रखते हैं। कुछ संदेह नहीं कि इनके विलायत जाने से वहां के पूर्वी भाषाओं के विद्वानों में इनकी विद्वत्ता की बड़ी धूम होगी। निश्चित रूप से पण्डित जी वहां भी ईश्वरोपासना के प्रचार में प्रयत्नशील और संलग्न रहेंगे।' (१ अक्तूबर, सन् १८७६, पृष्ठ २३७)।

३० सितम्बर, सन् १८७६ को स्वामी जी ने लखनऊ में एक व्याख्यान दिया जिसका विषय था ईश्वर एक है; श्रोताओं की एक बहुत अधिक संख्या ने इसको रुचिपूर्वक सुना था। व्याख्यान का बहुत अच्छा प्रभाव हुआ। इस सम्बन्ध में 'इण्डियन मिरर' और 'हिन्दूबान्धव' में इस प्रकार लिखा है—'३० सितम्बर, सन् १८७६ को दयानन्द सरस्वती ने लखनऊ में एक व्याख्यान दिया; जिसमें उन्होंने प्रगतिशील (प्रोग्रेसिव) समाज के ब्राह्म लोगों और उनके नेता की बहुत प्रशंसा की और कहा कि ब्राह्म लोगों के समस्त प्रयत्न जो उनकी ओर से ईश्वरोपासना के प्रचार के सम्बन्ध में किये जा रहे हैं अत्यन्त प्रशंसा योग्य है'। (१ अक्तूबर, सन् १८७६, 'हिन्दूबान्धव', पृष्ठ २३८)।

लखनऊ में वहां के रईस ब्रजलाल[६९] की विस्तृत प्रश्नमाला

स्वामी जी द्वारा उनके प्रश्नों का युक्तियुक्त समाधान

प्रश्न १—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र किस प्रकार हैं?[1] कबसे हैं? और किसने बनाये हैं?

उत्तर—कर्मों की दृष्टि से चारों वर्ण ठीक हैं और लोक व्यवहार से (आज कल जैसे लोक में प्रचलित हैं, वैसे—सम्पा०) ठीक नहीं हैं अर्थात् जो जैसा कर्म करे वैसा उसका वर्ण है। उदाहरणार्थ, जो ब्रह्मविद्या जाने वह ब्राह्मण, जो

1. इनकी सही व्यवस्था क्या है? —सम्पा०

युद्ध करे वह क्षत्रिय, जो लेन-देन, हिसाब-किताब करे वह वैश्य; और जो सेवा करे वह शूद्र है । यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय या शूद्र का काम करे तो ब्राह्मण नहीं । सारांश यह कि वर्ण कर्मों से होते हैं, जन्म से नहीं । जन्म से यह चारों वर्ण (वर्तमान अवस्था में) लगभग बारह सौ वर्ष से बने हैं । (माने जाने लगे हैं—सं०) जिसने बनाये उसका नाम इस समय स्मरण नहीं परन्तु महाभारत आदि से पीछे बने हैं ।

प्रश्न २—क्या ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से और क्षत्रिय भुजा से उत्पन्न हुए हैं ?

उत्तर—इस (वेद वाक्य) का अभिप्राय यह है कि जैसे शरीर में मुख श्रेष्ठ है, ऐसे सब वर्णों में ब्रह्म का जानने वाला (ब्राह्मण) श्रेष्ठ है । इसी कारण कह दिया कि ब्राह्मण मुख से हुआ है; इसी प्रकार और वर्णों का समझ लो ।

प्रश्न ३—ब्राह्मण यज्ञोपवीत किसलिये रखते हैं ?

उत्तर—यज्ञोपवीत केवल विद्या का एक चिह्न है ।

प्रश्न ४—कोई कर्म करना चाहिये या नहीं ?

उत्तर—उत्तम कर्म करना चाहिये ।

प्रश्न ५—उत्तम कर्म कौन से हैं ?

उत्तर—सत्य बोलना, परोपकार करना आदि उत्तम कर्म हैं ।

प्रश्न ६—सत्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिह्वा से सत्य बोलना, जो मन में होवे वह वाणी से कहना या ऐसा विचार करके कहना जो कभी झूठ न हो ।

प्रश्न ७—मूर्तिपूजन कैसा है ?

उत्तर—बुरा है । कदापि मूर्तिपूजन न करना चाहिये । इस मूर्तिपूजा के कारण ही तो संसार में अन्धकार फैला है ।

प्रश्न ८—बिना मूर्ति के किसका ध्यान करें और किस प्रकार करें ?

उत्तर—जैसे सुख-दुख का ध्यान मन में होता है वैसे परमेश्वर का ध्यान मन में होना चाहिये; मूर्ति की कुछ आवश्यकता नहीं ।

प्रश्न ९—क्या कर्म करना चाहिये ?

उत्तर—दो समय संध्या करे, सत्य बोले और जो श्रेष्ठ कर्म परोपकार के हों वह करे ।

प्रश्न १०—संध्या दो समय करनी चाहिये या तीन समय ?

उत्तर—केवल दो समय, प्रातः तथा सायं; तीन समय नहीं ।

प्रश्न ११—बार-बार या प्रत्येक बार मन्त्र जपना या परमेश्वर का नाम लेना चाहिये या नहीं ? जैसे ब्राह्मण लाख, दो लाख मन्त्र या परमेश्वर के नाम का जाप और पुरश्चरण करते हैं वह ठीक है या ठीक नहीं है ?

उत्तर—पहचानना चाहिये[1] । जप और पुरश्चरण करना कुछ आवश्यक नहीं ।

प्रश्न १२—परमेश्वर का कोई और रूप है या नहीं ?

उत्तर—उसका कोई रूप और रंग नहीं है, वह अरूप है । और जो कुछ इस संसार में दिखलाई देता है, वह सब उसी का रूप है; क्योंकि केवल एक अर्थात् वही एक सबका बनाने और उत्पन्न करने वाला है ।

प्रश्न १३—ईश्वर संसार में दिखलाई क्यों नहीं देता है ?

उत्तर—यदि दिखलाई देता तो कदाचित् सब कोई अपना मनोरथ पूर्ण करने को कहते और उसे तंग करते । दूसरे, जिन तत्त्वों से मनुष्य का यह शरीर बना है उनसे उसका देखना असम्भव है । तीसरे, जिसने जिसको उत्पन्न किया उसको वह क्यों कर देख सकता है ?

प्रश्न १४-जब दिखाई नहीं देता तो किस प्रकार उसको पहचानें ?

उत्तर—दिखलाई देता तो है[2] ? अर्थात् मनुष्य, पशु, वृक्षादि ये सब वस्तुएं जो संसार में दिखलाई देती हैं; उन सबका कोई एक अर्थात् वही एक बनाने वाला प्रतीत होता है, यही उसका देखना है और जैसे सुख, दुःख पहचाना जाता है वैसे ही उसको पहचाने ।

प्रश्न १५—ब्रह्म हम में और सब में है या नहीं ?

उत्तर—सबमें है और हम में भी है ।

प्रश्न १६—किस प्रकार विदित हो ?

उत्तर—जिस प्रकार दुःख-सुख का प्रभाव मन में विदित होता है उसी प्रकार वह भी विदित हो सकता है ।

प्रश्न १७—सब स्थानों पर एक समान है या न्यूनाधिक ?

उत्तर—सर्वत्र एक समान है, परन्तु यह बात भी है कि जिसके आत्मा में उस चेतन का जितना प्रकाश है अर्थात् जितना जिसको ज्ञान है, उतना उसको अनुभव होता है ।

प्रश्न १८—देव किसको कहते हैं ?

उत्तर—जो मनुष्य विद्यावान् और बुद्धिमान् पण्डित हो, उसको देव कहते हैं ।

प्रश्न १९—रामलीला देखना दोष है ?

उत्तर—हां दोष है । हजार हत्या के समान दोष है । इसी प्रकार मूर्तिपूजा करना हजार हत्या के समान पाप है; क्योंकि बिना आकृति के प्रतिबिम्ब नहीं उतर सकता और जबकि उस की आकृति नहीं तो मूर्ति कैसी ? यदि किसी का फोटोग्राफ से या और किसी प्रकार यथार्थ प्रतिबिम्ब उतार कर संस्मरण और देखने के लिये सम्मुख रखा जाये तो वह ठीक

---

1. आगे चलकर १४वें प्रश्न के उत्तर में यही बात स्पष्ट करके बताई है कि अदृश्य परमेश्वर को, सुख-दुख की भांति पहचाना, या अनुभव किया जा सकता है—सम्पा०

2. परमात्मा दिखलाई देता है; उसका ज्ञान होता है, कैसे ? यह यहां बता रहे हैं—सम्पा०

है, परन्तु उसकी अर्थात् ब्रह्म की मूर्ति और आकृति बनाना और प्रतिलिपि बनाकर कुछ का कुछ कर देना नितान्त अशुद्ध और अनुचित है ।

प्रश्न २०—संस्कृत भाषा कब से है और उसको अच्छा क्यों कहते हैं ?

उत्तर—संस्कृत भाषा सदा से है और अत्यन्त शुद्ध है । इसके समान कोई भाषा अच्छी नहीं है । उदाहरणार्थ, यदि फारसी और अंग्रेजी में केवल 'ब' प्रकट किया चाहें (ध्वनि का संकेत देना चाहें) 'बे' और अंग्रेजी में 'बी' है; परन्तु जिसमें और कोई (और कोई ध्वनि) सम्मिलित न हो यह प्रकट करने का गुण केवल संस्कृत भाषा में ही है ।

प्रश्न २१—वेद में परमेश्वर की स्तुति है तो क्या उसने अपनी प्रशंसा लिखी ?

उत्तर—जैसे माता-पिता अपने पुत्र को सिखाते हैं कि माता-पिता और गुरु की सेवा करो उनका कहा मानो । उसी प्रकार भगवान् ने सिखाने के लिये वेद में लिखा है ।

प्रश्न २२—भगवान् का जब स्वरूप और शरीर नहीं तो मुख कहां से आया कि जिससे वेद कहा ?

उत्तर—भगवान् ने चार ऋषियों-अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा के हृदय में प्रकाश करके वेद बताया ।

प्रश्न २३—अब विदित हुआ कि चार वेद उन चार ऋषियों के बनाये हुए हैं ।

उत्तर—नहीं, नहीं, भगवान् के वेद बनाये और कहे हैं क्योंकि वे चारों कुछ पढ़े न थे और न कुछ जानते थे । उनके द्वारा आप ही कहे हैं ।

प्रश्न २४—भगवान् ने उनके हृदय में किस प्रकार आकर वेद कहा ?

उत्तर—जैसे कोई मनुष्य पित्त प्रकोप वा सन्निपात में आप ही आप बोलने लगता है, उसी प्रकार उस भगवान् ने उन चारों के घट में और जिह्वा में प्रकाश करके कहा और उन्होंने उसकी शक्ति से विवश होकर कहा । इसलिये प्रकट है कि भगवान् ने वेद कहे हैं ।

प्रश्न २५—जीव एक है या अनेक ?

उत्तर—जीव का प्रकार एक है और जातियां अर्थात् योनियां अनेक हैं । उदाहरणार्थ, मनुष्य की एक जाति है और पशु की दूसरी जाति है । इसी प्रकार और जातियां भी समझ लो ।

प्रश्न २६—यह जीव प्रत्येक देह में जाता है और छोटा बड़ा हो जाता है ?

उत्तर—जैसे जल में जो रंग मिला दोगे वही रंग हो जावेगा, इसी प्रकार जिस देह में यह जीव जावेगा वैसा ही उसका रूप, रंग और छोटा-बड़ा देह होगा परन्तु जीव सबका एक-सा (एक ही प्रकार का) है; जैसा चींटी का वैसा ही हाथी का ।

राय कन्हैयालाल साहब अलखधारी—'ब्राह्मण या पण्डित या वे जो कथा कहने के योग्य हो या वह जिसको गुरु कहना चाहिये, वह यह (दयानन्द) है (परन्तु) वे बदमाश हैं जो अपनी चेलियों पर सवार होते हैं और उनसे राग गवाते हैं और व्यर्थ में ज्योतिषी बनते हैं ।' (कुलियात अलखधारी मकाला २, बाब २, फस्ल १०, पृष्ठ ७२२ पत्रिका सन् १८७६ पृष्ठ ६९७) ।

स्वामी जी—१ नवम्बर, सन् १८७६ बुधवार, तदनुसार कार्तिक सुदि पूर्णिमा को लखनऊ से शाहजहांपुर पधारे। यहां कोई अच्छा मकान ठहरने को न मिला। एक बगीचे में मन्दिर था, वहां ठहरे परन्तु लोगों ने हल्ला-गुल्ला करके वहां से निकाल दिया। तब एक दूसरे बगीचे में जा रहे। यहां पांच दिन रहे, कोई विशेष उपदेश नहीं हुआ। विज्ञापन उनका प्रत्येक स्थान पर यही होता था कि प्रातः से ९ बजे तक और ५ बजे से ८ बजे शाम तक जो चाहे आनकर प्रश्नोत्तर करे। शेष समय 'भूमिका' बनाने में संलग्न रहते।

बांस बरेली—६ नवम्बर, सन् १८७६ तदनुसार मंगसिर बदि ५, संवत् १९३६ को शाहजहांपुर से बांस बरेली में आये और ला० लक्ष्मीनारायण कोषाध्यक्ष की कोठी में ठहरे। वहां कुछ उपदेश भी हुआ और एक अङ्गदराम शास्त्री से शास्त्रार्थ की भी चर्चा हुई परन्तु वह सामने न आया; दूर से ही कोलाहल करता रहा। उसी समय ला० लक्ष्मीनारायण जी ने १००) वेदभाष्य की सहायता में दिये। नवम्बर के अन्त तक बरेली में रहकर १ दिसम्बर, सन् १८७६ तदनुसार मंगसिर सुदि पूर्णमासी को वहां से चल पड़े। यहां पर ही एक ब्राह्मण का लड़का विद्यार्थी भोला नामक स्वामी जी के साथ रहने लगा। स्वामी जी ने उसका नाम 'भूदेव' रखा।

कर्णवास—राजघाट के स्टेशन पर उतरकर कर्णवास में दो दिन ठहरे। यहां के ठाकुर लोग स्वामी जी के दर्शन से बहुत प्रसन्न हुए और स्वामी जी का निश्चय दिल्ली दरबार का सुनकर कई उत्साही सज्जन वहां जाने को उद्यत हुए। फिर वहां से सवार होकर ४ दिसम्बर सोमवार को अतरौली स्टेशन पर उतरे। ५-६ मनुष्य अन्य भी साथ थे। ठाकुर मुकुन्दसिंह जी और उनके समस्त भाई-बन्धु स्वामी जी के पुराने प्रेमी भक्त हैं; ५-७ दिन रहने के पश्चात् उनसे यह चर्चा चली कि दिल्ली दरबार समीप है, उसमें जाने का उपाय करना चाहिए। एतदर्थ दो डेरे, एक शामियाना और दरियां और दो जोड़ी गाड़ी फिटन दिल्ली भेजे गए। दिसम्बर के अन्त में स्वामी जी ठाकुर मकुन्दसिंह तथा अन्य ठाकुर लोगों के साथ अलीगढ़ के स्टेशन पर पहुंचे। बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि बम्बई वाले भी उसी दिन दिल्ली जाते हुए मिल गये और सब मिलकर दिल्ली की ओर चल पड़े।

दिल्ली दरबार के समय स्वामी जी के दो प्रयत्न

जनवरी सन् १८७७ के दिल्ली दरबार के समय सुधारकों को एक करने का प्रयत्न—दिल्ली में स्वामी जी के डेरे और शामियाने शेरमल के अनार बाग में लगाये गए। यह बाग अजमेरी दरवाजा दिल्ली के पश्चिम दक्षिण की ओर कुतुब की सड़क पर है (जो गुड़गांव को भी जाती है) इस बाग के चारों ओर रईसों और अवध के राजाओं के डेरे लगे हुए थे। इस बाग के द्वार पर एक बड़ा बोर्ड लगा दिया, जिस पर 'निवास-स्थान, स्वामी दयानन्द सरस्वती' लिखा हुआ था। इसी शुभ अवसर पर निम्नलिखित सज्जन भी वहां आ विराजमान हुए—१. राज जयकिशनदास सी० एस० आई०, २. ठाकुर मुकुन्दसिंह, रईस छलेसर, ३. ठाकुर गोपालसिंह, रईस कर्णवास, ४. हकीम रामप्रसाद, अलीगढ़, ५. ठाकुर नयनसुख, ६. मुंशी इन्द्रमणि, रईस मुरादाबाद, ७. ठाकुर भोपालसिंह, रईस दिल्ली, ८. ठाकुर किशनसिंह, कर्णवास, ९. पंडित भीमसेन जी, १०. बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि, ११. खजांची लक्ष्मीनारायण जी, रईस बरेली।

बाग में धर्मचर्चा व शास्त्रार्थ—बाग में नित्य दिल्ली आदि के १०-२० पंडित आते और शास्त्रार्थ करते रहते थे। स्वामी जी ने वहां दिल्ली नगर के अतिरिक्त, समस्त दरबार में और विशेषतया प्रत्येक राजा के द्वार पर नोटिस लगवा दिये थे और महाराजाओं के पास पहुंचा भी दिये थे (जिनका अभिप्राय यह था) कि यह अच्छा अवसर है; अपने पंडितों से कह कर सत्यासत्य का निर्णय करा लीजिये और जो सत्य हो उसको ग्रहण कीजिए।

पंडित हृदयनारायण जी नायब तहसीलदार, सराय सिद्धू मुलतान, वर्णन करते हैं कि जिस समय दिल्ली दरबार हुआ था, मैं दिल्ली गया था। वहां पर 'इण्डियन पब्लिक ओपीनियन' (Indian Public Opinion) समाचारपत्र का एक पर्चा, 'इम्पीरियल असेम्ब्लेज' ('राज समवाय') के नाम से प्रकाशित होने लगा था। उस पर्चे को मैंने कदाचित् एक सप्ताह तक मोल लिया था ताकि दरबार के नवीन वृत्तान्त विदित होते रहें। उसके एक अङ्क में लिखा हुआ पाया था कि मूर्तिभंजक दयानन्द सरस्वती शेरमल के बाग में विराजमान हैं।

उदाहरण देकर एक चौबे के मन पर कृष्ण-लीलाओं की वास्तविकता अंकित की—'उस पते पर स्वामी जी की सेवा में उपस्थित हुआ तो देखा कि मथुरा का एक चौबा आया, उसने 'जय राधाकृष्ण' करके स्वामी जी को मिट्टी देनी चाही। स्वामी जी ने कहा यह कैसी मिट्टी है ? उसने कहा कि बालकपन में कृष्ण जी ने यह मिट्टी खाई थी। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि बच्चे मिट्टी खाया ही करते हैं, सो उन्होंने भी ऐसा किया होगा। बुद्धिमानों को मिट्टी का खाना योग्य नहीं है।

"फिर स्वामी जी ने कुछ काल पश्चात् उससे कहा कि हमने सुना है कि तुम्हारी स्त्री सुरूपा है और चतुर है। यह सुनकर उसको क्रोध आ गया। तब स्वामी जी ने कहा कि तुम जैसे थोड़ी हैसियत के व्यक्ति ने भी (दूसरे के मुख से) अपनी पत्नी के रूप की प्रशंसा किया जाना बुरा माना; यदि कृष्ण जी के सामने उन पर परायी स्त्री का लांछन लगाते और उसका स्वरूप वर्णन करते तो वह तुम्हारे साथ क्या व्यवहार करते ?"

'मैं वहीं से 'सत्यार्थप्रकाश' और 'आर्याभिविनय' मोल लाया था। मुंशी कन्हैयालाल साहब अलखधारी की पुस्तकों का अधिकता से अध्ययन करने के कारण पहले मैं नास्तिकता के विचार रखता था। स्वामी जी की पुस्तकें पढ़ कर आर्यधर्म पर निश्चय हुआ। अवध के कुछ राजा भी कई दिन तक स्वामी जी के पास दर्शनों को आते रहे और जो कुछ धर्म सम्बन्धी निश्चय करना था, किया।

मौलवियों को उपयुक्त उत्तर—'ईरान के एक मौलवी महोदय जो फारसी ही बोलते थे, वह स्वर्गीय मुंशी बलदेवसहाय कायस्थ इन्स्पैक्टर पुलिस, बनारस के साथ आये थे; उनका अभिप्राय स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने का था। चार अन्य हाजियों (हज करने वालों) के साथ एक और मौलवी साहब शास्त्रार्थ को आये। ये हाजी अरबी भाषा बोलते थे। स्वामी जी ने उनको ऐसे उपयुक्त उत्तर दिए कि अन्त में वे निरुत्तर होकर चले गए। एक विद्वान् दक्षिणी ब्राह्मण भी[७०] जो बम्बई प्रदेश में जज थे, प्रतिदिन उपदेश सुनने के लिए आया करते थे।'

काश्मीर महाराजा को मन्त्रियों ने नहीं मिलने दिया—काश्मीर के महाराजा के मन्त्री बाबू नीलाम्बर महोदय, दीवान अनन्तराय महोदय के साथ, एक दिन पधारे और परामर्श किया कि स्वामी जी की भेंट महाराजा रणवीरसिंह जी से कराई जाए। स्वामी जी ने स्वीकार किया। वास्तव में उनको महाराजा साहब ने ही भेजा था परन्तु महाराजा साहब संकल्प करके भी पश्चात् पंडितों के सिखाने से फिर गए। जम्मू में धर्मशास्त्र सम्बन्धी विषयों के निर्णायक पण्डित गणेश शास्त्री ने जम्मू में फरवरी, सन् १८८७ में कहा था कि 'स्वर्गवासी महाराजा ने (दिल्ली दरबार के समय) मिलने का निश्चय अवश्य ही किया था परन्तु हम लोगों ने रोक दिया। स्वामी जी जब पंजाब में आये तब भी महाराजा का विचार उनको जम्मू बुलाने का हुआ था। हमने कहा कि यदि उनको बुलाते हैं तो पहले मन्दिरों को गिरा दीजिए। इसलिए इस बार भी बुलाने का विचार स्थगित रहा है।' ईश्वर की अपार कृपा है कि अब यही पंडित जी स्वामी जी के बड़े प्रशंसक हैं और सच्चे हृदय से मानते हैं कि मूर्तिपूजा वेदों में नहीं है। उन्होंने हजारों मनुष्यों के सामने सन् १८९२ में आर्यसमाज के शास्त्रार्थ के समय जम्मू में जम्मू व कश्मीर नरेश महाराजा प्रतापसिंह जी से स्पष्ट कह दिया कि 'महाराज ! वेद में तो मूर्तिपूजा नहीं है।' यद्यपि

महाराजा उस समय कुपित ही हुए परन्तु ईश्वर ने उनके मुख से सत्य बुलवा ही दिया । हे जगत्पति ! तेरी महिमा अपार है ।

राजाओं से सम्बन्ध—राजाओं में अभी तक स्वामी जी का सम्बन्ध विशेषकर महाराजा होल्कर इन्दौर से था क्योंकि सन् १८७७ से पहले उनके यहां निवास कर आये थे ।[७१] स्वामी जी से वह प्रेम करते थे । स्वामी जी ने यहां रहकर दो प्रयत्न किए । उनका पहला प्रयत्न यह रहा कि इतने राजा, जो यहां एकत्रित हुए हैं, वे सब एक दिन इकट्ठे होकर हमारा व्याख्यान सुन लें तो हमारा आना सफल हो । स्वामी जी ने इसके लिए यत्न भी किया परन्तु राजाओं को अवकाश न होने के कारण यह प्रयत्न न हुआ । महाराजा होल्कर, (इन्दौर) बहुत चाहते थे कि ऐसा हो और महाराजा चंबा की भी यही इच्छा थी । समस्त राजाओं के कान तक यह वैदिक ध्वनि तो वहां बहुत अच्छी प्रकार पहुंच गई कि वेदों में मूर्तिपूजा कदापि नहीं है परन्तु वे सब इकट्ठे होकर (स्वामी जी का) विशेष-व्याख्यान नहीं सुन पाये । हमारे देश के राजाओं को स्वार्थी पंडित किसी सत्यवक्ता की बात नहीं सुनने देते कि कहीं ऐसा न हो कि सोने की चिड़िया उनके जाल से निकल जाये । आर्यावर्त के राजाओं की दुर्दशा का मूल कारण यही है ।

स्वामी जी का दूसरा प्रयत्न यह रहा कि भारतवर्ष भर के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध उपदेशक तथा किसी न किसी ढंग से धार्मिक कार्यों में संलग्न सभी व्यक्तियों को एक स्थान पर एकत्रित किया जाए । एतदर्थ सम्मिलित हुए-मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी, बाबू नवीनचन्द्र राय, बाबू केशवचन्द्र सेन, मुंशी इन्द्रमणि महोदय, बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि, मान्य सैयद अहमद खां तथा सातवें स्वामी जी महाराज ।

सम्मेलन का इतिवृत्त—परस्पर एकत्रित होने के पश्चात् स्वामी जी ने कहा कि हम लोग सब एकमत हो जावें और एक ही रीति से देश का सुधार करें तो देश का सुधार शीघ्र होने की आशा हो सकती है । बाबू नवीनचन्द्र महोदय ने स्वयं इस सम्मेलन का इस प्रकार वर्णन किया है—'फिर दूसरी बार स्वामी जी की भेंट हम लोगों से दिल्ली में सन् १८७७ में दरबार के अवसर पर हुई थी । वहां उन्होंने हमें, बाबू केशवचन्द्र सेन, और श्रीयुत् हरिश्चन्द्र चिंतामणि को आमन्त्रित किया और हम लोगों से यह प्रस्ताव किया कि हम लोग पृथक्-पृथक् धर्मोपदेश न करके एकता के साथ करें तो अधिक फल होगा । इस विषय में बहुत बातचीत हुई परन्तु मूल विश्वास में उनके साथ हम लोगों का मतभेद था । इसलिए जैसा वे चाहते थे, एकता न हो सकी' ('ज्ञान दर्पण'[७२] खंड ४, संख्या ३१, ३२, जनवरी, सन् १८८५, पृष्ठ २३, २४)

'इण्डियन मिरर' कलकत्ता में लिखा है—'हमने सुना है कि एक पापुलर मीटिंग (सार्वजनिक अर्थात् सब सुधारकों की सम्मिलित) सभा दिल्ली में हुई थी अर्थात् पंडित दयानन्द सरस्वती के मकान पर एक सभा इस अभिप्राय से हुई कि भारत के वर्तमान सुधारकों के बीच एक वास्तविक और व्यवहारक्षम आधार पर एकता स्थापित हो जावे तो इसमें कुछ सन्देह नहीं कि बहुत भारी और शुभ परिणाम उत्पन्न होंगे । हम इसकी सफलता के लिए प्रार्थना करते हैं' (खंड १६, संख्या ११, १४ जनवरी, सन् १८७७, सण्डे ऐडीशन) । लाहौर से निकलने वाली पत्रिका **'बिरादरे हिंद'**[७३] में लिखा है—'हम हार्दिक प्रसन्नता के साथ इस बात को प्रकट करते हैं कि दिल्ली दरबार के अवसर पर भारतवर्ष के प्रसिद्ध और योग्य सुधारकों ने पंडित दयानन्द सरस्वती के मकान पर एक विशेष सभा इस अभिप्राय से आयोजित की कि हमारा वास्तविक ध्येय सब की एकता है और भविष्य में पृथक्-पृथक् काम करने के स्थान पर सबको सहमत होकर जाति के सुधार में संलग्न होना चाहिए और यदि आपस में किसी प्रकार का मतभेद हो तो उसका भी निर्णय परस्पर बातचीत से करना चाहिए । इस सभा में ब्रह्मसमाज के नेता बाबू केशवचन्द्र सेन साहब भी सम्मिलित थे' (जनवरी, सन् १८७७, खंड २, संख्या १, पृष्ठ ३२) ।

स्वामी जी चाहते थे कि ये सब सुधारक वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानकर उनके दृष्टिकोण से धर्मप्रचार करें क्योंकि वही सबसे सच्ची और सनातन और युक्ति-युक्त पुस्तक है । इस (विषय) पर स्वामी जी ने सब सज्जनों को समझाने के लिए बड़ा यत्न किया और बहुत सी युक्तियों के द्वारा हृदय पर अंकित करना चाहा परन्तु कई कारणों से जो, ऐसे प्रसिद्ध पुरुषों के मार्ग में बाधक होते हैं, सब सहमत न हो सके । परन्तु विदित हो कि ये सब वेदों के ईश्वरीय ज्ञान होने से इन्कार नहीं करते थे क्योंकि प्रथम (मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी) वेदान्ती थे जो बुद्धि के आधार पर वेदों को सबसे अच्छा मानते थे । चौथे तथा छठे दोनों (मुंशी इन्द्रमणि और बा० हरिश्चन्द्र चिन्तामणि) वेद को ईश्वरीय ज्ञान मानते थे । दूसरे तथा तीसरे (बा० नवीनचन्द्र और बाबू केशवचन्द्र सेन) ब्रह्मसमाजी सज्जन थे और सातवें सर सैयद महोदय थे । सारांश यह कि पिछले तीन सज्जनों ने किसी कारण इस बात को स्वीकार न किया और सत्यधर्म की ओर प्रवृत्त न हुए । अत: (स्वामी जी का) यह प्रयत्न भी पूरा न हुआ ।

यहां परस्पर उन सज्जनों की कई दिन तक भेंट होती रही । एक दिन बाबू केशवचन्द्र जी ने स्वामी जी को सम्मति दी कि आप यदि यह कह दें कि हमको परमेश्वर ऐसा कहता है और ऐसा ही उपदेश करें तो बड़ी सफलता हो ।[७४] स्वामी जी ने कहा कि वे (ईश्वर) अन्तर्यामी हैं, क्या किसी के कानों में कहने आते हैं ? मैं ऐसा झूठा नहीं कह सकता ।

एक दिन वहां स्वामी जी के सामने बाजीगर का खेल हुआ । स्वामी जी ने पंडित भीमसेन से कहा कि तुम इसको कुछ (निकालने को) कहो ताकि वह निकाले । पंडित जी ने आम की मांग की परन्तु वह न निकाल सका । फिर उसने स्लेट पर स्वामी जी और कुछ मनुष्यों के हस्ताक्षर करवाकर उसे तोड़कर ठीक कर दिया और अंगूठी भी तोड़कर जोड़ दी । दरबार के दिन स्वामी जी तो नहीं गए थे परन्तु शेष उनके साथी सब तमाशा देखने गये थे ।

ठाकुर गोपालसिंह, रईस कर्णवास व बरौली के मूल निवासी परन्तु अब अलीगढ़ के वासी हकीम रामप्रसाद ने वर्णन किया कि 'जब हम दिल्ली में साथ गए थे तब स्वामी जी ने कहा कि हमने चारों वेद देख लिए हैं, उनमें मांस-मद्य सेवन का कहीं वर्णन नहीं है, तुम लोग छोड़ दो । हमने छोड़ दिया और हमें सूर्य को अर्घ्य देने से भी रोका और ऐसा ही स्वर्गीय ठाकुर किशनसिंह जी को कहा था ।

'एक ठाकुर नयनसुख, जो मांस-मद्य बहुत खाने-पीने वाला था, वह वहीं स्वामी जी के सत्योपदेश से प्रभावित होकर दोनों को छोड़कर पक्का 'आर्य' हो गया । हमारे भाई स्वर्गीय किशनसिंह ने ठाकुर भूपालसिंह व मुकुन्दसिंह, दोनों भाइयों से कहा कि आप सन्ध्या क्यों नहीं करते हैं ? उन्होंने उत्तर दिया कि हमको स्वामी जी ने निषेध किया है कि तुम सन्ध्या अग्निहोत्र मत करो, केवल ध्यान कर लिया करो । सन्ध्या के समय हमारे भाई ने स्वामी जी से निवेदन किया महाराज ! यह सन्ध्या नहीं करते और कहते हैं कि हमको स्वामी जी ने निषेध कर दिया है । स्वामी जी ने तत्काल उनको उत्तर दिया कि हमने तुमसे कब कहा है, तुम लोग ऐसा झूठ कभी मत कहा करो; इस पर वह बहुत लज्जित हुए और उस दिन से सन्ध्या करनी आरम्भ कर दी ।

वेद भाष्य-सम्बन्धी कार्य पर टिप्पणियां

दिल्ली से स्वामी जी ने अपने 'वेदभाष्य' और 'आर्यसमाज' के नियमों के विषय में दो सूचनाएं समालोचना के लिए **'इण्डियन मिरर'** कलकत्ता और **'बिरादरेहिन्द'** लाहौर के पास भिजवा दीं । इन पर 'बिरादरे हिन्द' के जो 'हिन्दू बान्धव' के नाम से प्रसिद्ध था, फरवरी, सन् १८७७ के अङ्क में निम्नलिखित समालोचना प्रकाशित हुई-'स्वामी दयानन्द सरस्वती के दो विज्ञापन हमारे पास पहुंचे हैं । एक में उन नियमों का वर्णन है जो भारतवर्ष में आर्यसमाजों के स्थापित करने की इच्छा

से उन्होंने इस समय निश्चित किये हैं। दूसरे में एक ऐसी मासिक पत्रिका की चर्चा है जो बनारस में स्थित लाजरस कम्पनी के प्रेस से प्रकाशित हुआ करेगी। इस पत्रिका में केवल वेदों के मूलमन्त्र, संस्कृत और हिन्दी व्याख्या सहित प्रकाशित हुआ करेंगे। अब तक स्वामी जी दस हजार मन्त्रों की व्याख्या लिखकर समाप्त कर चुके हैं और नित्यप्रति लिखने का क्रम जारी है। स्वामी जी समस्त वेदों की व्याख्या, इसी प्रकार से सर्वसाधारण के पढ़ने समझने और (उसके अनुसार) आचरण करने के लिये, एक मासिक पत्रिका के द्वारा प्रकाशित करना चाहते हैं। लोगों के सामने अपनी व्याख्या को प्रकाशित करके सिद्ध करना चाहते हैं कि वेदों में ईश्वरोपासना का ही विधान है इसके अतिरिक्त मूर्तिपूजा अथवा सृष्टि पूजा का विधान नहीं है। संस्कृत और हिन्दी जानने वालों के लिये इस से बढ़कर शुभ सूचना और क्या हो सकती है ? इस पत्रिका का वार्षिक मूल्य ४ ॥) है। जिस किसी को मोल लेना अभीष्ट हो वह धन उक्त कम्पनी अथवा स्वामी जी के पास भेजकर ग्राहक बन जावे। हम आशा करते हैं कि हमारे देश के हिन्दी पढ़े-लिखे लोग इस महान् और पवित्र जातीय कार्य में सहायता करना अपना आवश्यक कर्त्तव्य समझेंगे। हम इस अवसर पर स्वामी जी के इस अद्वितीय साहस पर (उनको) बधाई देते हैं और हृदय से उनकी सफलता के लिये कामना करते हैं।' (खंड ३, संख्या २, पृष्ठ ६२, ६३)

समाचार पत्र 'इण्डियन मिरर' कलकत्ता के रविवासरीय अंक में निम्नलिखित टिप्पणी प्रकाशित हुई-'यदि ऐसा बड़ा विद्वान् मुनष्य, जैसा कि पण्डित दयानन्द सरस्वती है; वेदों का भाष्य करे तो वास्तव में वह एक बहुमूल्य और सम्मान के योग्य कार्य होगा और हम इस बात को सुनकर बड़े प्रसन्न हैं कि पण्डित जी ने यह कार्य आरम्भ कर दिया है। इसी सम्बन्ध में बनारस के प्रिंटिंग प्रेस से संस्कृत में एक विज्ञापन जारी हुआ है कि यह भाष्य मासिक पत्रिका के रूप में प्रकाशित होगा। ग्राहक लोग लाजरस कम्पनी को प्रार्थना पत्र भेजें।' (खंड १६, संख्या ४०, मिति १८ फरवरी, सन् १८७७)

मुंशी कन्हैयालाल महोदय अलखधारी अपनी पत्रिका 'नीतिप्रकाश' में दिल्ली दरबार का वर्णन, दयानन्द सरस्वती जी से की भेंट के वृत्तांत के साथ-साथ लिखते हैं; और दिल्ली के दरबार का वृत्तान्त लिखकर अन्त में कहते हैं-'श्री दयानन्द सरस्वती महाराज ने निम्नलिखित पुस्तकें संवाददाता को प्रदान की' 'सत्यार्थ प्रकाश' यह बहुत बड़ी पुस्तक है और इसमें सदाचार की शिक्षा है। २. वेद विरुद्ध मतखंडन अर्थात् जो मत वेदों के विरुद्ध है उसका खंडन। ३. पंचमहायज्ञ विधि ४. नित्य कर्म ५. आर्याभिविनय—ये पुस्तकें टाइप से (सीसाक्षरों से) मुद्रित की गयी हैं और नागरी लिपि में हैं। आपने अपने मुद्रणालय की पत्रिका भेजने को भी कहा है। ३० जनवरी को वह भी पहुंची, उसका विज्ञापन पृथक् होगा।

'उनके मकान पर एक मनुष्य जलमानस दिखाता फिरता था। नीचे का आधा शरीर मछली के समान मुख और हाथ मनुष्य के सदृश थे परन्तु वह मृत था और दरियाई घोड़ा भी इसी प्रकार का कलकत्ते में देखा था। दरियाई पशु अथवा मनुष्य, भूमि के मनुष्यों और घोड़ों से कुछ सम्बन्ध नहीं रखते परन्तु दो प्रकार की दरियाई (जलीय) सृष्टि देखने से अनुमान होता है कि दरियाई हाथी और ऊंट और गाय भी हों तो क्या आश्चर्य है ! दरबार में जो कुर्सी संवाददाता को मिली उसके समीप कई सुग्रीव की रियासत के सरदार थे। उसकी आकृति देखने से रामचन्द्र जी की सेना का कुछ सन्देह दूर हो गया।' (पृष्ठ ५६, २४ जनवरी, सन् १९७७, संख्या ४)।

पंजाब यात्रा के लिये आमंत्रण—सरदार विक्रमसिंह अहलूवालिया, रईस जालन्धर, पण्डित मनफूल, मुंशी हरसुखराय महोदय, स्वामी 'कोहेनूर' व मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी, रईस लुधियाना आदि सज्जनों ने स्वामी जी से पंजाब में आने की प्रार्थना की, जिसको उन्होंने स्वीकार किया। स्वामी जी आधी जनवरी तक दिल्ली में रहे और यहां से ही बंगाली बाबू को वेदभाष्य का मैनेजर नियत करके बनारस भिजवा दिया और उसके स्थान पर बिहारी बाबू बरेली निवासी को दस रु० मासिक पर रख लिया।

मेरठ में ठहरे—स्वामी जी पण्डित भीमसेन सहित, दिल्ली से चलकर १६ जनवरी[७५], सन् १८७७ को मेरठ पधारे और सूरजकुण्ड पर बनी हुई डिप्टी महताबसिंह की कोठी में ठहरे। उस कोठी पर अंग्रेजी में यह लिखा हुआ था कि यह कोठी प्लोडन महोदय की स्मृति में यूरोपियनों के प्रयोग के लिये बनाई गई है। वहां स्वामी जी १०-१५ दिन रहे। उस लेख के लिखे हुए होने के कारण, गोरे लोग आकर तंग करते थे, इसलिए वहां से समीपस्थ लेखराज के बाग में चले गये। दस दिन वहां रहे। यह मकान यद्यपि बहुत अच्छा नहीं था परन्तु पहले मकान में जैसी कठिनाई आई वैसी इसमें कोई कठिनाई नहीं थी। भागीरथ और कमलनयन पंडित प्राय: जाया करते थे।'

इस बार कोई व्याख्यान नहीं दिया, केवल मिलनेवाले लोगों से धार्मिक बातें करते रहे। नगर में प्रसिद्ध हो गया कि एक साधु, नास्तिक, मूर्ति का खंडन करने वाला और श्राद्धों का न मानने वाला आया है। मेरठ निवासी ला० ज्वालाप्रसाद वैश्य, कहते हैं कि चूंकि मैं शिव का भक्त था, इस कारण स्वामी जी से न मिला। पंडित पालीराम, मुंशी कल्याणराय व ला० सरनदास आदि कई सज्जन जाया करते थे।[1] प्रबन्ध किसी विशेष मनुष्य का न था, अपने पास से खाते और 'ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका' बनाते थे। लोगों ने यह भी प्रसिद्ध कर रखा था कि यह अंग्रेजों से वेतन पाते हैं।

फरवरी तथा मार्च, सन् १८७७—४ फरवरी, सन् १८७७ को मेरठ से चलकर स्वामी जी सहारनपुर पधारे। पनचक्की के पास ला० कन्हैयालाल के शिवालय के समीप वाले मकान में निवास किया। उस समय स्वामी जी के साथ निम्नलिखित व्यक्ति थे—१. पंडित भीमसेन, २. बिहारी बाबू, ३. सामन्ता, ४. भूदेव, ५. बलदेव ब्रह्मचारी।

---

1. इस स्थान पर उर्दू संस्करण में स्वामी जी के हुक्का पीने के विषय में निम्नलिखित शब्दों में विवरण लिखा है—"इन दिनों स्वामी जी हुक्का पीते थे। एक दिन भागीरथ पं० जी ने प्रश्न किया यह जो तम्बाकू पीते हो इसके विषय में बताओ अर्थात्, क्या वेद में कहीं हुक्का पीना लिखा है? स्वामी जी ने कहा कि—वेद में कहीं निषेध है? इस पर थोड़ा सा विवाद हुआ आखिरकार उसने कहा कि तुम संन्यासी होकर हुक्का पीते हो? स्वामी जी ने कहा कि यदि तू हुक्के से क्रुद्ध होता है तो ले! यह कहा और उसे तोड़ डाला।'

उपर्युक्त विवरण विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता क्योंकि—(१) प्रथम तो यह स्वयं कटा-फटा है; प्रतीत होता है कि पं० लेखराम जी के जिस लिखित विवरण से यह लिया गया है उसपें कहीं कांट-छांट हो गई है। (२) फिर पहले पृष्ठ १४५ पर उनके द्वारा नस्य रूप में सेवन का वर्णन आया है। वहां भी उन्होंने रोग निवृत्यर्थ ही उसे बताया, व्यसन रूप में नहीं। (३) पं० बलदेवप्रसाद ने यह वक्तव्य देते हुए कहा कि पं० शालिग्राम जी ने मेरे सामने स्वामी जी से नस्य सेवन के विषय में प्रश्न किया था परन्तु उन्हीं पं० शालिग्राम जी के स्वयं दिये हुए वक्तव्य में जो उसी १४५ पृष्ठ पर अंकित है, इसका कोई उल्लेख नहीं है। (४) फिर यह बात भी अविश्वसनीय प्रतीत होती है कि जिन प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पंडितों को स्वामी जी ने हराया, उनकी छोटी-छोटी त्रुटियों तक को सामने रखा और इससे जिन्होंने अपने आपको अपमानित अनुभव किया, उनमें से किसी ने भी स्वामी जी की इस त्रुटि की ओर संकेत तक नहीं किया। (१) फिर हुक्का पीने का जिसको व्यसन हो; क्या वह घंटों व्याख्यान, उपदेश, शास्त्रचर्चा में, बीच में हुक्का पिये बिना ही संलग्न रह सकता है? पं० लेखराम जी द्वारा संगृहीत किसी भी ऐसे विवरण में स्वामी जी के प्रबल विरोधी तक ने उन पर उस विषय को लेकर अंगुली उठाई हो-ऐसा वक्तव्य नहीं मिलता (६) फिर स्वामी जी के साथ उनकी यात्राओं में साथ रहे हुए, पं० बलदेवप्रसाद ब्राह्मण, राजनाथ तिवारी शिष्य तथा हेमचन्द्र चक्रवर्ती शिष्य किसी ने भी, जहां उनके साथ घटी हुई घटनाओं के अतिरिक्त उनके दैनिक कार्यक्रम और खान-पान तक का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है वहां हुक्का पीने का कहीं नाम तक नहीं लिया। हेमचन्द्र चक्रवर्ती ने तो स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि वे पान या हुक्का खाते-पीते नहीं थे। परन्तु तम्बाकू की नस्य लेते थे और कुछ तम्बाकू के टुकड़े मुख में रखते थे-कहते थे इससे दांतों को लाभ होता है। (देखो, इसी पुस्तक का पृष्ठ २३१)। फर्रूखाबाद के रईस दुर्गाप्रसाद जी का वक्तव्य है कि—'उस समय हुक्के के निषेध के विषय में उपदेश कर रहे थे। वही (पृष्ठ २६) जो स्वयं हुक्का पीने का निषेध करे, जिसका दैनिक जीवन सर्वसाधारण के लिये खुली पुस्तक हो, वह सबके सामने हुक्का पीने का साहस भी भला कैसे करता!

संक्षेपत: 'स्वामी जी हुक्का पीते थे'-यह कथन सर्वथा असंगत प्रतीत होता है।—सम्पादक

'ब्रह्मविचार मेला', चांदापुर की ओर से साग्रह आमन्त्रण—यहां पहुंचते ही स्वामी जी के पास सूचना आई कि कस्बा चांदापुर, जिला शाहजहांपुर में 'ब्रह्मविचार' नामक मेला होगा और उस मेले का विज्ञापन तथा एक प्रार्थनापत्र भी मेले में सम्मिलित होने के लिए प्राप्त हुआ जिसमें लिखा था कि जिस प्रकार हो आप अवश्य पधार कर मेले को सुशोभित करें और अपने पवित्र चरणों में हमें सम्मान प्रदान करें। स्वामी जी ने उनको लिखा कि कम से कम दो सप्ताह तक यदि शास्त्रार्थ करें तो मैं आ सकता हूं, दो तीन दिन के लिये नहीं। इसके उत्तर में मेले के प्रबन्धकों ने मुंशी लेखराज साहब कबीरपंथी की सम्मति से स्वामी जी को एक प्रार्थनापत्र भेजा कि दो सप्ताह का हम प्रबन्ध नहीं कर सकते परन्तु एक सप्ताह का प्रबन्ध करेंगे, आप अवश्य पधारिये और जितने आपके साथ नौकर-चाकर हों उनके विषय में हमको लिखें ताकि आपकी सेवा में पहले से ही खर्च भेज दिया जावे। इस पर मुन्शी गिरधारीलाल नाजर और मास्टर लेखराज तथा अन्य नगरनिवासियों ने स्वामी जी से बहुत प्रार्थना की कि आप वहां जिस दिन चलें हम भी आपके साथ चलेंगे। मेले के प्रबन्धकों ने पचास रुपये मार्गव्यय के लिये भेजे परन्तु सुना गया कि स्वामी जी ने उस खर्च को नहीं लिया। स्वामी जी ने उनको लिख भेजा कि मुंशी इन्द्रमणि को मुरादाबाद से बुला लो और हम १५ मार्च, सन् १८७७ को वहां पहुंच जावेंगे।

अम्बहटा निवासी मुंशी चण्डीप्रसाद के प्रश्न तथा स्वामी दयानन्द जी के उत्तर

सहारनपुर में निवास के समय कई लोगों से धर्मसम्बन्धी बातचीत करते रहे और 'भूमिका' भी बनाते रहे। इस समय स्वामी जी के साथ ग्राम अम्बहटा, जिला सहारनपुर निवासी मुंशी चंडीप्रसाद के प्रश्नोत्तर हुए। उन्हें हम सियालकोट से प्रकाशित 'धर्मसंवाद' पत्रिका अङ्क संख्या ५, पृष्ठ २, ३, ४ से यहां उद्धृत कर रहे हैं—

प्रश्न—वेद शास्त्र के अनुसार हिन्दुओं को किस-किस की उपासना न करनी चाहिये और जन्म-दिवस से लेकर मृत्युपर्यन्त क्या-क्या काम करने चाहियें?

उत्तर—नारायण (परमेश्वर) के अतिरिक्त और किसी की उपासना न करनी चाहिये। विद्या प्राप्त करके मन की शुद्धि करनी चाहिये और सत्य व्यवहारपूर्वक आजीविका कार्य तथा अन्य सांसारिक कार्य करने उचित हैं।

प्रश्न—प्राय: हिन्दू, उदाहरणार्थ कायस्थ, क्षत्रिय आदि, मद्य और शिकार (मांस) खाते-पीते हैं, सो यह काम भी करने उचित हैं या नहीं?

उत्तर—मद्य और शिकार (मांस) का खाना पीना न चाहिये और बुद्धि के अनुसार भी प्राणधारी का खाना अत्याचार में सम्मिलित है और वेद तथा शास्त्र की दृष्टि से निषिद्ध हैं।

प्रश्न—भूत, चुड़ैल, जिन्न और परी की छाया कहीं कुछ है या नहीं? क्योंकि प्राय: लोग ऐसी घटना होने पर मुल्लाओं, स्थानों और कब्रों आदि से उनकी भागने की इच्छा करते हैं।

उत्तर—भूत और चुड़ैल तथा जिन्न व परी की छाया कहीं कुछ नहीं है; वह लोगों का भ्रममात्र है। यदि ये कुछ होते तो फिरंगियों पर उनकी छाया अवश्य होती!

प्रश्न—शरीर के नष्ट हो जाने पर यह आत्मा कहां जाती है?

उत्तर—मृत्यु के पश्चात् आत्मा शरीर से पृथक् होकर 'यमराज' अर्थात् 'वायु' के यहां चली जाती है।

प्रश्न—मृत्यु के पश्चात् पुनर्जन्म भी होता है या नहीं और स्वर्ग और नरक का क्या वर्णन है ? कोई ऐसी बुद्धिगम्य युक्ति नहीं है कि जिससे आवागमन तथा स्वर्ग और नरक का वृत्तान्त भली भांति विदित हो जाये; कारण यह है कि जन्म से पहले और मृत्यु के पश्चात् वृत्तान्त किसी को (कभी) विदित ही नहीं हुआ।

उत्तर—पुनर्जन्म भी अवश्य होता है और स्वर्ग और नरक भी सर्वत्र विद्यमान हैं। जिस प्रकार मनुष्य बुद्धि के द्वारा पहचान सकता है कि पृथिवी, आकाश तथा मनुष्यों और पशुओं का उत्पन्न करने वाला परमात्मा है; इसी प्रकार विद्याप्राप्ति के द्वारा वह स्वर्ग और नरक की परिस्थति को यहां जान सकता है। दिल्ली दरबार के अवसर पर मुंशी कन्हैयालाल साहब अलखधारी से भेंट हुई थी और ज्ञात हुआ था कि वह भी आवागमन और स्वर्ग और नरक को नहीं मानते हैं। वह मुझसे एक ग्रन्थ ले गये हैं। मुझे विश्वास है कि जिस समय उक्त मुंशी महोदय उस ग्रन्थ को भली भांति देख चुकेंगे तो उनका सन्देह निवृत्त हो जावेगा।

प्रश्न—ईश्वर ने सृष्टि को क्यों उत्पन्न किया ? उत्पन्न करने में उसका क्या उद्देश्य था ?

उत्तर—जैसे आंख का काम है देखना और कान का काम है सुनना और देखने या सुनने में आंख या कान का कोई उद्देश्य नहीं होता परन्तु वह तो उसका प्राकृतिक स्वभाव ही है; इसी प्रकार सृष्टि की रचना करना नारायण का भी काम ही है और (सृष्टि को) उत्पन्न करने अथवा उसके संहार करने में उसका उद्देश्य कोई नहीं है।

प्रश्न—आवागमन कब तक होता रहेगा ?

उत्तर—इस विषय में तुम्हारा सन्तोष 'सत्यार्थप्रकाश' तथा वेदभाष्य के एक-दो ग्रन्थ पढ़ने पर ही हो सकेगा; मौखिक रूप से बतलाने से तुम्हारा सन्तोष नहीं हो सकता।

प्रश्न—ईश्वर ने सृष्टि कब उत्पन्न की थी ? और चारों युगों-अर्थात् सतयुग, द्वापर, त्रेता, कलियुग-में से प्रत्येक की कितनी-कितनी आयु (अवधि) है ?

उत्तर—ऐसी बातें वेदों से भली प्रकार सिद्ध हो सकती हैं। प्रत्येक युग की अवधि भिन्न-भिन्न है। वेदशास्त्र के भाष्य से तुम स्वयं देख लोगे।

प्रश्न—स्त्री और पुरुष का विवाह कितनी आयु में करना चाहिए और उसकी क्या विधि होनी चाहिए ?

उत्तर—विवाह के समय पुरुष की आयु (कम से कम) २४ वर्ष और स्त्री की आयु (कम से कम) १६ वर्ष होनी चाहिये। विवाह के समय स्त्री-पुरुष इससे कम वयः परिमाण के कदापि न हों और विवाह स्त्री (तथा पुरुष) को अपनी रुचि के अनुसार करना चाहिए, क्योंकि पुरुष को स्त्री से और स्त्री को पुरुष से सारे जीवन भर निभाव करना पड़ता है। जब वे अपनी रुचि के अनुसार एक दूसरे के रूप, आकार, प्रकार और चाल-चलन तथा अन्य विषयों को देख लेंगे तो फिर सम्भव नहीं कि स्त्री और पुरुष में परस्पर झगड़े की कोई अवस्था उत्पन्न हो। नहीं तो (केवल) माता और पिता का पसन्द किया हुआ सम्बन्ध स्त्री (तथा पुरुष) को कब पसन्द हो सकता है ?

प्रश्न—वेद के दृष्टिकोण से (बताइये कि) विधवा स्त्री अथवा विधुर पुरुष का (पुनः) विवाह होना उचित है या नहीं ? और यह कि अपनी स्त्री के जीवित रहते अथवा उसकी मृत्यु के पश्चात् दूसरा और तीसरा विवाह करने से पुरुष को कुछ दोष तो नहीं लगता ?

उत्तर—विधवा स्त्री का पुनर्विवाह होना चाहिए और अपनी स्त्री के जीवित रहते हुए दूसरे विवाह का पात्र नहीं है; परन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका अधिकार है कि वह पुनः विवाह चाहे करे या न करे। ऐसा ही अधिकार विधवा स्त्री को भी होना चाहिए।

प्रश्न—गुरु किसको बनाना चाहिए और वह गुरु कितने गुणों से युक्त हों ?

उत्तर—गुरु पिता आदि (माता पिता आदि) को बनाना चाहिए और जीवनपर्यन्त उनकी आज्ञा का पालन कर और उनकी प्रसन्नता का अभिलाषी रहे।

प्रश्न—यदि कोई ब्राह्मण, वैश्य या कोई अन्य (जात-पात का) व्यक्ति हिन्दुओं के धर्म में से हानि और लाभ को समझे बिना अथवा किसी मनुष्य के कहने सुनने से मुसलमान या ईसाई हो जावे और उसके पश्चात् यदि वह व्यक्ति अपने अपराधों की क्षमा का प्रार्थी हो तो उसको अपनी जात (बिरादरी) में सम्मिलित कर लेना चाहिए या नहीं ?

उत्तर—निस्सन्देह; यदि वह अपने अपराधों की क्षमा का प्रार्थी हो तो समाज को चाहिए कि उसको अपनी बिरादरी (जात) में सम्मिलित कर ले।

प्रश्न—ईश्वर किस स्थान पर रहता है क्योंकि प्रकटरूप में तो उसका कोई रंग-रूप किसी की दृष्टि में आता नहीं।

उत्तर—नारायण सर्वव्यापक है अर्थात् सर्वत्र विद्यमान तथा (सबका) द्रष्टा है। जो कोई मनुष्य ज्ञान से अपने हृदय-दर्पण को शुद्ध रखता है, वह उसे देख सकता है। वस्तुतः तो अज्ञानियों की दृष्टि से वह दूर है।

प्रश्न—ब्रह्मा के चार मुंह थे या नहीं ? और वेद को ब्रह्मा ने किसी कागज पर लिखा था या उसको वे पूरे पूरे चारों वेद कण्ठस्थ थे ?

उत्तर—ब्रह्मा के चार मुंह नहीं थे, प्रत्युत चारों वेद उसके मुख में थे (कण्ठस्थ) थे। यदि उसके चारों ओर चार मुंह होते तो उसको सोना और विश्राम करना तक भी अत्यन्त कठिन हो जाता। मूर्खों ने 'चारों' वेद कण्ठस्थ थे, इसके स्थान पर उसके चार मुंह कल्पित कर दिए।

प्रश्न—ईश्वर ने जो पृथिवी तथा आकाश, सूर्य तथा नक्षत्र, दिन तथा रात, मनुष्य तथा पशु और भिन्न-भिन्न वर्णों और आकृतियों की वस्तुएं बनाई हैं वे किसी सामग्री अथवा मसाले से बनाई हैं ? या और किसी प्रकार से बनाई हैं ?

उत्तर—नारायण को किसी मसाले की आवश्यकता नहीं है; वह तो स्वयं निर्विवाद रचयिता है और ये सारी वस्तुएं उसने माया अर्थात् प्रकृति से बनाई हैं।

प्रश्न—आपके कथन से विदित हुआ कि ब्रह्मा के चार मुख नहीं थे और न किसी का कोई वर्ण था; परन्तु कर्म (व्यवसाय) के अनुसार वर्ण निश्चित हुआ अर्थात् जो वेदशास्त्र पढ़कर उसके अनुसार उपदेश करता था ब्राह्मण; और जो बाहुबल में वीर और प्रजा का पालन करता था वह क्षत्रिय और जो व्यवहार अथवा कृषि करता था वह वैश्य और जो मजदूरी चाकरी आदि करता था वह शूद्र कहलाता था। इस लेख के अनुसार यह बात अवश्य माननीय हो जाती है कि यदि किसी चमार, भंगी या कसाई ने विद्या प्राप्त कर ली हो तो वह भी पंडित के तुल्य है। अब प्रश्न यह उठता है यदि वह चमार, भंगी या कसाई, जिसने विद्या प्राप्त की है, यह चाहे कि मैं किसी ब्राह्मण के घर में अपना विवाह करूं तो ब्राह्मण को भी यह उचित है या नहीं कि अपनी कन्या उसको विवाह दे ?

उत्तर—यदि इन छोटे (अवर) व्यवसाय करने वालों में से किसी ने विद्या प्राप्त की हो तो वह वस्तुत: पंडित के तुल्य है परन्तु इस कारण कि बहुत समय तक अवर-व्यवसायी मनुष्यों में उसका पालन हुआ है, आवश्यक है कि नीचता की गन्ध उसके मस्तिष्क से न जावे, तो उसका ब्राह्मण की कन्या से सम्बन्ध होना उचित नहीं।

प्रश्न—हिन्दुओं में विवाह के पश्चात् जो मुकलावे अर्थात् गौने की प्रथा प्रचलित है, वह भी होनी चाहिए या नहीं; क्योंकि और जातियों में यह प्रथा बिलकुल नहीं है; अर्थात् मुसलमान और ईसाई इस प्रथा को नहीं मानते।

उत्तर—वह निरी व्यर्थ है; यदि वेद में युक्ति-युक्त कारणों से इस प्रथा का उल्लेख होता तो उसका करना आवश्यक हो सकता था। जिन जातियों में यह प्रथा नहीं है उनमें (इसके अभाव में) क्या बुराई है ?

प्रश्न—दशहरा, होली, दीवाली आदि हिन्दुओं के त्यौहारों में जो प्रथाएं अब प्रचलित हैं, वे भी ठीक है या नहीं ?

उत्तर—होली और दीवाली आदि उचित रूप से (मनाने) चाहिए।

प्रश्न—स्त्रियों को भी विद्या प्राप्त करनी चाहिए या नहीं ?

उत्तर—स्त्रियों को विद्या अवश्य पढ़ानी चाहिए क्योंकि बिना विद्या के मनुष्य की बुद्धि पशु की बुद्धि के तुल्य होती है।

प्रश्न—हिन्दू लोग जो पंडितों से जन्मपत्र लिखवाते हैं और पंडित लोग मीन, तुला, कुंभ, धन, मकर की राशियों का वृत्तांत शास्त्रीय पत्रे से जानकर मंगल, सूर्य और शनि की खोटी दशा और हानि-लाभ बतलाते हैं; जिनमें से प्राय: बातें तो ठीक निकलती हैं और बहुत-सी अशुद्ध भी होती हैं, इसका क्या कारण है ?

उत्तर—यह जन्मपत्र नहीं प्रत्युत रोगपत्र है। पंडित सब-किसी को खोटी दशा के जप करने के लिए अवश्य कुछ न कुछ बतलाता है। बुद्धिमान् व्यक्ति ऐसी बातों को नहीं माना करते।

प्रश्न—भारत के लोग स्त्रियों को, इस प्रयोजन से कि वे व्यभिचारिणी न हों परदे में रखते हैं और ईसाई अपनी स्त्रियों को परदे में नहीं रखते और स्थान-स्थान पर भ्रमण कराते हैं। इतना होने पर भी भारत की स्त्रियां ईसाई स्त्रियों से अधिक व्यभिचारिणी दिखाई देती हैं (इसका क्या कारण है ?)

उत्तर—स्त्रियों को परदे में रखना आजन्म कारागार में डालना है। जब उनको विद्या होगी वह स्वयं अपनी विद्या के द्वारा बुद्धिमती होकर प्रत्येक प्रकार के दोषों से रहित और पवित्र रह सकती हैं। परदे में रहने से सतीत्व रक्षा नहीं कर सकतीं और बिना विद्याप्राप्ति के बुद्धिमती नहीं हो सकती हैं। परदे में रखने की यह प्रथा इस प्रकार प्रचलित हुई कि जब इस देश के शासक मुसलमान हुए तो उन्होंने शासन की शक्ति से जिस किसी की बहू-बेटी को अच्छी रूपवती देखा, उसको अपने शासनाधिकार से बलात् छीन लिया। उस समय हिन्दू विवश थे; इस कारण उनमें सामना करने की सामर्थ्य न थी। इसलिए अपने सम्मान की रक्षा के लिए उन्होंने अपनी स्त्रियों और बहू-बेटियों को घर से बाहर जाने का निषेध कर दिया। सो मूर्खों ने उसको पूर्वजों का आचार समझ लिया। देखो, मेमों अर्थात् अंग्रेजों की स्त्रियों को, वे भारत की स्त्रियों की अपेक्षा कितनी साहसी, विद्यावती, बुद्धिमती और सदाचारिणी होती हैं !

सहारनपुर में व्याख्यानों में खचाखच भीड़

सहारनपुर में स्वामी जी का पहला व्याख्यान—चित्रगुप्त के मन्दिर में नाजिम गिरधारीलाल के प्रबन्ध से हुआ। विषय था **'आर्य कौन हैं?' और कहां से आये हैं?** इस व्याख्यान में बहुत लोग आये; यहां तक कि उस मकान में बैठने के लिए स्थान तक न रहा। साढ़े तीन घंटे तक व्याख्यान होता रहा। दूसरे दिन 'सत्य' के विषय पर व्याख्यान हुआ। उस दिन श्रोताओं की इतनी अधिकता थी कि ऊपर की छत पर, कमरे और द्वार तक लोग भरे हुए थे और वह व्याख्यान् लगभग चार घंटे तक रहा। ४ बजे शाम को व्याख्यान आरम्भ हुआ था। सहारनपुर के समस्त सम्मानित रईस सम्मिलित थे,प्रत्येक के मुख से वाह वाह निकलती थी। लोग चकित थे कि यह किस हृदय और मस्तिष्क का मनुष्य है। रात हो जाने पर मन्दिर की पूजा का समय हुआ परन्तु उस समय पूजा न हुई। पुजारी ने शिकायत की कि व्याख्यान बन्द होना चाहिए परन्तु किसी ने पुजारी की न सुनी और व्याख्यान सरलतापर्वूक समाप्त हुआ। तीसरा व्याख्यान **'सृष्टि उत्पत्ति'** विषय पर था। यह भी इसी स्थान पर हुआ और चार घंटे से अधिक रहा। इस दिन विलम्ब हो जाने के कारण पूजा न हो सकी; पुजारी कई बार बीच में बोला परन्तु श्रोताओं ने उसे रोक दिया और शाम के ९ बजे के लगभग व्याख्यान समाप्त हुआ और भविष्य के लिए यह ठहरा कि वहां व्याख्यान न हों, प्रत्युत शिवालय में; जहां स्वामी जी उतरे हैं, वहां हुआ करें। परन्तु इन व्याख्यानों का वृत्तान्त मुझे स्मरण नहीं परन्तु बहुत दिन तक होते रहे।

'धन से ही सुख नहीं' का एक दृष्टान्त—चित्रगुप्त के मन्दिर में जो व्याख्यान हुए उनमें एक दिन कौन सुखी है और कौन दुखी, इसकी भी मीमांसा की थी। इसमें उन्होंने एक महाजन का दृष्टान्त[७६] दिया जो बहुत धनी था और उसका न्यायालय में एक मुकदमा था। पेशी की तारीख से कुछ दिन पहले से ही वह चिन्ता की अग्नि में जलता रहा। सेवक उसके काम करके चले जाते और विश्राम करते परन्तु वह दिनरात इसी दुःख में रहता था कि देखिये उस दिन क्या होगा। पेशी वाले दिन नियत समय पर पालकी आ उपस्थित हुई, खस की टट्टी भी लगी हुई थी। वह बैठा परन्तु मन घबराया हुआ, कचहरी में जाकर एक ओर उतरा। कहारों ने विश्राम किया, चिलम पी परन्तु वह पूर्ववत् शोकमग्न रहा। इससे भली प्रकार सिद्ध हो गया कि धन से सुख नहीं। धन पर अभिमान करना मूर्खों का काम है; न कि, बुद्धिमानों का।

धर्म का बन्धन तो मानना ही चाहिए—एक दिन यह विवेचन किया कि धर्म के बन्धन में रहना अच्छा है या उससे स्वतन्त्र? इस विवेचन में उन्होंने उपयुक्त युक्तियों से यह बात सिद्ध की कि यह तो मूर्ख ही सोचते हैं कि हम किसी के बन्धन में नहीं हैं। प्रत्येक व्यक्ति, किसी सीमा तक, किसी न किसी के बन्धन में रहता ही है इसलिए और सभी बन्धनों की अपेक्षा धर्म का सम्बन्ध अधिक उत्कृष्ट है। उसी दिन से ला० हरबंससिंह वकील आदि कई सज्जनों के मन में, जो (धर्म से भी) स्वतन्त्र (रहने का) विचार रखते थे—यह बात बैठ गई कि धर्म के अधीन रहना आवश्यक है।

इसी बार यहां के प्रसिद्ध भागवती पंडित बलदेव व्यास स्वामी जी के पास गये परन्तु उनके सामने बिलकुल न चल सके। नगर में कोलाहल मच गया। तब आठ-दस ब्राह्मण एक न्यादर ब्राह्मण, दूसरा परमा, तीसरा कोरा, चौथा गणपत आदि साधु दीवानदास सती के पास गए कि एक क्रिस्तान ऐसा आया है कि आपको चलना होगा। अन्त में वह भी उनके कहने से गये। यह चूंकि स्वामी जी से पहले परिचित थे, इसलिए कुछ अधिक बात न हुई। केवल ब्राह्मणों को स्वामी जी ने यह कहा कि तुम पोप लीला छोड़ कर वेदों को धारण करो। एक परमेश्वर को मानकर पौराणिक बातों को छोड़ दो।

स्वामी जी के कुछ व्यांख्यान ला० कन्हैयालाल के शिवालय में भी हुए। अन्ततः ब्राह्मणों और पुजारियों ने, गृहस्वामी से शिकायत की कि ऐसे व्यक्ति का ऐसे मकान में ठहरना उचित नहीं। प्रथम उसने शिकायत न सुनी, जब इन लोगों ने उसे बहुत ही तंग किया तब अत्यन्त सभ्यता से स्वामी जी से निवेदन किया कि यदि आपको कष्ट न हो तो लोग

मुझे तंग करते हैं, आप किसी और स्थान पर चले जावें तो अच्छा होगा क्योंकि आप मूर्ति का खंडन करते हैं और यह मन्दिर है। स्वामी जी ने तत्काल वहां से सामान उठवा कर रामबाग की तिबारी में, जो मन्दिर से मिली हुई राजसभा के समीप है, जाकर डेरा किया और कुछ दिन वहां ठहरे। जो कोई उनसे कोई प्रश्न करता था उसको ऐसा उत्तर देते कि पूछने वाले के सारे सन्देह निवृत्त होकर पूर्ण सन्तोष हो जाता। कुछ बदमाश लोग मन्दिर के भीतर आकर उपहास करते हुए गाल और घड़ियाल बजाकर कोलाहल मचाते, परन्तु स्वामी जी उनकी चिन्ता न करते थे।

मेला चांदापुर के लिए प्रस्थान; वहां से आकर पंजाब की यात्रा—स्वामी जी बिहारी बाबू सहित चांदापुर गये। शेष सब सेवकों को सहारनपुर के रामबाग में ही छोड़ गये। २४ ता० को मेले से लौटकर रामबाग में उतरे। कुछ व्याख्यान और हुए। समस्त मतों के लोग उनके पास प्रश्न करने जाया करते थे। चूंकि यह सार्वजनिक स्थान था इसलिए प्रत्येक प्रकार का मनुष्य यहां आ सकता था। प्राय: मुसलमान और ईसाई सब गये और अपने सन्देह निवृत्त करते रहे। वहां से स्वामी जी पंजाब को पधार गये।

सत्यधर्म प्रकाशक समाचार

अर्थात्

चांदापुर जि० शाहजहांपुर (उ० प्र०) में हुए 'ब्रह्मविचार' नामक मेले का विवरण

सत्यासत्य के निर्णय कराने की इच्छा से विद्वानों को आमंत्रण—चांदापुर जिला (शाहजहांपुर) के रईस मुंशी प्यारेलाल कायस्थ ने सच्चे धर्म की परीक्षा के निमित्त, जिला शाहजहांपुर के कलैक्टर साहब की स्वीकृति से मिति चैत सुदि चतुर्थी, संवत् १९३४, तदनुसार १९ मार्च, सन् १८७७ को यह मेला नियत किया, और एक घोषणापत्र छपवाकर प्रकाशित किया कि अपने-अपने धर्म के प्रसिद्ध विद्वान् पण्डित, मौलवी और पादरी महोदय पधारें, और अपने-अपने मतानुसार सत्यासत्य का निर्णय करें।

उपस्थित विद्वानों की सूची—उस घोषणापत्र के अनुसार, निम्नलिखित सज्जन, जो समस्त भारत में अपने-अपने मत के सबसे बड़े विद्वान् समझे जाते थे, पधारे। सबसे प्रथम वेद विद्या के प्रसिद्ध आचार्य और आर्यसमाज के संस्थापक श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज और उनके साथी मुहम्मदी मत के प्रसिद्ध विरोधी और अरबी तथा फारसी के पूर्ण ज्ञाता, कुरान और हदीस के पूर्ण अन्वेषक, मुन्शी इन्द्रमणि साहब मुरादाबादी। ये दोनों सज्जन ऐसे कामों में विशेष रुचि रखने के कारण अपने पूर्ण उत्साह से १५ मार्च, १८७७ को वहां आ विराजमान हो गये।

ईसाई मत की ओर से प्रसिद्ध तार्किक और अपूर्व विद्वान् तथा 'कवाइफे मन्तक' और 'खुदा की हस्ती का सबूत' आदि पुस्तकों के लेखक एवं इंजील के व्याख्याता पादरी टी० जी० स्काट साहब[७७], पादी नवल साहब[७८], पारकर साहब, पादरी जॉनसन साहब, पादरी जान टामसन साहब तथा कुछ अन्य पादरी लोगों सहित बरेली, कानपुर, मुरादाबाद तथा शाहजहांपुर से अपनी पूरी विद्या सम्बन्धी शक्ति सहित १९ मार्च, सन् १८७७ की प्रात: पधारे और उसी दिन, उसी समय भारतवर्ष के सब से बड़े और प्रसिद्ध अरबी मदरसा देवबन्द के विद्वान् प्रधानाध्यापक और 'तकरीरे दिलपजीर' पत्रिका आदि के लेखक मौलवी मुहम्मद कासिम साहब पधारे। ये साहब सहारनपुर से सम्बन्धित रामपुर प्रदेश के नानौता नामक ग्राम के रहने वाले थे और मौलवी लोगों को योग्यता की पगड़ी इन्हीं के हाथ से मिलती है। इनके साथ शास्त्रार्थ विद्या के पंडित मौलवी सैयद अबुलमन्सूर साहब देहलवी पधारे। इनके पास रोम के बादशाह द्वारा प्रदत्त विद्वत्ता का तमगा विद्यमान है और पादरी लोगों के उत्तर में लिखी हुई, इनकी पुस्तकें 'जिन्दये जावेद' आदि प्रसिद्ध हैं।

इस सभा में इनके अतिरिक्त निम्नलिखित आर्य सज्जन—बाबू हरगोविन्द बनर्जी, क्लर्क कलक्टरी शाहजहांपुर; ला० राजाराम कोषाध्यक्ष, लखनऊ; मुंशी जगन्नाथ रईस मुरादाबाद; पण्डित बद्रीदास रईस अमरोहा; कुंवर मुकुन्दसिंह रईस अलीगढ़; पण्डित मथुराप्रसाद, रईस बरेली; दीवान दयाशंकर, डिप्टी; पण्डित लक्ष्मीदत्त शास्त्री, रईस बनारस; राय उमरावसिंह; ला० रामप्रसाद आनरेरी मैजिस्ट्रेट शाहजहांपुर; बाबू ब्रजपालदास मुन्सिफ शाहजहांपुर; बाबू लेखराज स्कूल मास्टर सहारनपुर; बाबू बनवारीलाल रईस शाहजहांपुर; बाबू बिहारीलील रईस शाहजहांपुर, मुंशी सोहनलाल रईस शाहजहांपुर; बाबू रामसहाय रेलवे स्टेशन मास्टर और बहुत से शाहजहांपुर के रईस तथा अन्य नगरों और आसपास के लोग; इस्लाम के मौलवी मुहम्मद ताहिर उर्फ मोती मियां आनरेरी मैजिस्ट्रेट शाहजहांपुर; मौलवी मुहम्मद कासिम रईस नानौता, जिला सहारनपुर; नवाब मुहम्मद हैदर अली खां रईस शाहजहांपुर; मुंशी दोस्त मुहम्मद खां स्कूल मास्टर शाहजहांपुर; मौलवी सैयद मुहम्मद अहमद अली वकील न्यायालय शाहजहांपुर; मौलवी सखावत हुसैन खां वकील न्यायालय शाहजहांपुर; और अन्य बहुत से बरेली, मेरठ, मुरादाबाद, लखनऊ और शाहजहांपुर के रईस, मौलवी और ईसाइयों में से-शाहजहांपुर, मुरादाबाद, बरेली व कानपुर आदि के अंग्रेज व यूरोपियन पादरी तथा अन्य ईसाई सज्जन और मुंशी मुहीउद्दीन खां साहब, मुन्शी तोतानाथ साहब व मुंशी मौलादाद खां तथा अन्य बहुत से ईसाई सज्जन पधारे ।

कबीर पन्थ का खण्डन

मेले के समय हुई धर्म-चर्चाओं का विवरण—प्रथम धर्मचर्चा १८ मार्च की रात्रि को स्वामी जी के डेरे पर हुई । इस समय बाबू लेखराज स्कूल मास्टर, सहारनपुर व मुन्शी प्यारेलाल रात्रि के समय स्वामी जी के डेरे पर पधारे और उन्होंने निम्नलिखित वक्तव्य दिया—

"कक्का, केवल ब्रह्म है, बब्बा बिशन शरीर ।
'रा' 'रा' सब में रम रहा, ता का नाम कबीर" ॥

उन्होंने कहा—'कबीर' शब्द इसलिये बोला जाता है कि काया में जो वीर है अर्थात् शरीर में जो (आत्मा) जीव है वही काया का वीर अर्थात् प्रिय पुरुष स्वामी है । जब यह वीर पुरुष काया अर्थात् शरीर से पृथक् हो जाता है तब यह काया विधवा स्त्री के समान बिना पति की रह जाती है; (अर्थात् यह काया) मिथ्या मिट्टी है; इसलिए कायावीर अर्थात् शरीर में जो आत्मा है वही कबीर है ।

"पानी से पैदा नहीं, सो ऐसा नहीं शरीर । अन्नाहार करता नहीं ता का नाम कबीर । ।" यह पद भी इस 'कबीर' शब्द को सिद्ध करता है । वह शब्दरूप कबीर, परमात्मा, ब्रह्म है । ईश्वर, परमात्मा यह शब्द संस्कृत भाषा के हैं, 'गाड, आदि अंग्रेजी भाषा में हैं । खुदा जल्ले शानउ और 'रब्बुल-आलमीन' आदि नाम अरब देश के हैं । कबीर पद एक विशेष हिन्दी शब्द है; इसका अभिप्राय काया में वीर, कायमकबीर, सो आत्मा ही परमात्मा है । जैसे अच्छर (अक्षर) में न अच्छर और फूल में सुगन्ध (व्याप्त है) ऐसा ही शब्द में सर्वत्र व्यापक है । हम शरीर को, जो महाभूतों-तत्त्वों से उत्पन्न है, कबीर नहीं मानते हैं, हर ब्रह्म सच्चिदानन्द को जो अविनाशी अखंड है उसी को परमेश्वर और कबीर मानते हैं । प्रत्येक देश में पृथक्-पृथक् भाषा हैं, (इसलिए ईश्वर का नाम कबीर) रखने में कुछ दोष, पाप व शंका अथवा आक्षेप किसी भी मत के अनुसार नहीं किया जा सकता । इच्छा तो सभी के एक मत हो जाने की है परन्तु सब संसार एक मत न हो सका । हां, यदि परमेश्वर खुदा, कबीर, चाहे तो (एकमत होना) संभव है । क्योंकि जब उसने एक क्षण में अपनी इच्छा और पूर्ण शक्ति से आकाश और पृथिवी आदि को उत्पन्न कर दिया है तो क्या सब धर्मों को एक कर देना उसकी अपनी स्वाभाविक विशेषता से बाहर की अथवा कठिन बात है ? उपासनाविधि इस मत में यह है कि (उपासक) आत्मिक निश्चय (पूर्वक) हृदय तथा

अन्त:करण की भावना सहित 'सुरत' को 'शब्द रूप निअच्छर शब्द' में लगाता है । यह वचन कबीर परमेश्वर सच्चिदानन्द का है जो निम्नलिखित है—

पिंड में होता तो मरता न कोई । ब्रह्माण्ड में होता तो लखता सब कोई ॥
पिंड ब्रह्माण्ड, दोनों से न्यारा । कहे कबीर वह भेद हमारा ॥

—(कबीर परमेश्वर की पुस्तक—'विवेकसार' से)

नीचे लिखी कविताएं भी देखिए—

'मगर कैद मुझको यह भाती नहीं । किसी की गुलामी सुहाती नहीं ॥
मैं इस दामे फानी से नाशाद हूं । मैं कैदे मजाहिब से आजाद हूं ॥
जुदा हूं मैं मन्कूलों माकूल से । है नफरत बड़ी मुझको हर दोनों से ॥
सभों के मतो से ये मत हैं अनूप । हमारा खुदावन्द है शब्दरूप ॥
जिसे कहते हैं रूह वा है खुदा । सभों में व्यापक, सभों से जुदा ॥
मैं हर्गिज न मानूंगा रूह के सिवा । कि है हजरते रूह मेरा खुदा ॥
मैं आनन्द आनन्द में शाद हूं । कि बेहूदा झगड़ों से आजाद हूं ॥
मेरा देस है जो कबीरा का देस । शब्दरूप मेरे खुदा का है भेस ॥

बाबू लेखराज के उपर्युक्त वक्तव्य पर अब दोनों में वादानुवाद हुआ । बाबू लेखराज जी ने 'कबीर' शब्द को लेकर 'कक्का केवल ब्रह्म है'—आदि जो दोहा पढ़ा था उसी के तर्ज पर स्वामी जी ने कोई एक नाम लेकर उसके प्रत्येक अक्षर पर उसी प्रकार दोहा-सा पढ़ा ।

तब बाबू साहब ने कहा कि 'कबीर' का अर्थ बड़ा है; सो परमेश्वर बड़ा है इसलिये हम 'कबीर' कहते हैं । तब स्वामी जी ने मुंशी इन्द्रमणि जी से पूछा कि इस शब्द के अतिरिक्त कोई और शब्द भी है जिसके अर्थ इससे अधिक बड़े के हों ? इस पर मुंशी इन्द्रमणि जी ने कहा कि 'अकबर' शब्द का अर्थ बहुत बड़े के हैं । फिर स्वामी जी ने (बाबू लेखराज से) कहा कि 'अकबर' शब्द तो 'कबीर' शब्द के अर्थों से बड़ा निकला ! इस पर बाबू साहब ने कहा कि मनुष्यों ने सब नाम रखे हैं, सब विद्याओं का आविष्कार किया है, और पुस्तकें तथा पोथी बनाकर ईश्वर का नाम रख दिया है, ऐसे ही हम भी 'कबीर' नाम परमेश्वर का रखते हैं, 'विवेकसार' को आसमान से आई हुई पुस्तक ठहराते हैं और जितनी बात है वह सब मनुष्य ही ने बनाई है । बाबू साहब और मुंशी प्यारेलाल साहब ने कहा कि हम अपना कबीर पंथ का व्याख्यान अवश्य साधारण जनता में देंगे । इस पर मुंशी इन्द्रमणि जी ने उत्तर दिया कि आप चौथा मत कबीरपंथ का भी स्थापित करके अवश्य व्याख्यान दीजिये ।

सृष्टि के आरम्भ में ही ईश्वर ने वेद-ज्ञान दिया—तब स्वामी जी ने कहा 'ईश्वर ने जब सृष्टि रची थी उसी समय वेद विद्या का उपदेश भी प्रजा के सुख के लिये किया था । जब प्रथम ईश्वर ने वेद रच दिये तब ही, उनके पढ़ने के पश्चात् ही (मनुष्य में) बनाने की सामर्थ्य हो सकती है । इसके पढ़ने और ज्ञान के बिना कोई मनुष्य विद्यावान् नहीं हो सकता । ऐसे ही कि जैसे इस समय में किसी शास्त्र को पढ़कर या किसी का उपदेश सुनकर और मनुष्यों का चालचलन आदि देखकर ज्ञान होता है और किसी प्रकार नहीं हो सकता । मान लो कि किसी एक लड़के को उत्पन्न होते ही पृथक् कर दिया जाये और उस का पालन भी किया जाये और जबतक वह जीवित रहे तबतक उससे कुछ बातचीत न की जाये तो उसमें मनुष्यता

किसी प्रकार नहीं आ सकती । ऐसे ही जंगली मनुष्यों को समझना चाहिये । बिना उपदेश के जैसा कि चाहिये वेद का ज्ञान किसी प्रकार से नहीं हो सकता और (बिना उपदेश के) उसका स्वभाव पशु के तुल्य रहेगा । ऐसे ही वेदों के उपदेश के बिना सब मनुष्यों का स्वभाव हो जाता है । फिर पुस्तकों के बनाने के विषय में तो क्या कहना ? फिर जो परमेश्वर अपनी वेदविद्या का उपदेश न करता तो धन, अर्थ, काम और मोक्ष की यथावत् प्राप्ति न होती । जैसे ईश्वर ने सब पदार्थ आदि मनुष्यों के सुख के लिये बनाये हैं, सो सब सुखों का प्रकाश करने वाली और जिसमें सत्य के अतिरिक्त कोई दूसरी बात नहीं, ऐसी वेदविद्या को ईश्वर क्यों न प्रकट करता ? इससे वेदों के ईश्वर रचित मानने में कल्याण है, और किसी प्रकार नहीं ।

आप के 'बीजकसार' में जीव को परमेश्वर ठहराया होगा जैसा कि आपने भी वर्णन किया सो यह नवीन वेदान्तियों का मत है जो चार प्रकार का है—(१) एक तो यह कि जीव को ब्रह्म मानना । जीव को ब्रह्म मानने में प्रथम एक वचन का प्रमाण देते हैं । 'अहं ब्रह्मास्मि' इसको ऋग्वेद का वचन कहते हैं परन्तु ऋग्वेद के आठों अष्टकों में यह वाक्य नहीं है । वेद का व्याख्यान, जो ऐतरेय ब्राह्मण ने किया है, उसमें यह वचन है—'अयमात्मा ब्रह्म' सो इस वचन में ब्रह्म का स्वरूप निरूपण किया है । (२) दूसरे 'तत्त्वमसि' इस वचन का वर्णन करते हैं और इसको यजुर्वेद का वचन बतलाते हैं; परन्तु यह यजुर्वेद का वचन नहीं है, शतपथ ब्राह्मण का है । वेदान्ती लोग इसका यह अर्थ करते हैं कि 'मैं ब्रह्म हूं' अर्थात् भ्रम से छूट कर अब मैंने जान लिया कि मैं ब्रह्म हूं । यह अर्थ भी ठीक नहीं; क्योंकि लेख में से एक टुकड़ा ले लिया और शेष को छोड़कर अपनी स्वार्थसिद्धि का अर्थ करके स्वार्थ सिद्ध करते हैं । शतपथब्राह्मण कण्डिका १४, प्रपाठक ३, तथा कंडिका ८ देखो, जहां यह वचन पूरे लेखसहित उल्लिखित हैं । वहां केवल ईश्वर का वर्णन है । तीसरा वचन वह है जो आप प्रमाण के रूप में देते हैं; वह भी सामवेद का वचन नहीं है किन्तु सामब्राह्मणान्तर्गत छान्दोग्योपनिषद् का है । इसको भी पूरे लेख में से एक टुकड़ा लेकर वेदान्तियों ने बिगाड़ा है, सो वहां पर उद्दालक अपने पुत्र श्वेतकेतु को उपदेश करता है कि ईश्वर कैसा है, (और बताता है कि वह) अत्यन्त सूक्ष्म है, (यहां तक) कि प्रकृत आकाश और जीवात्मा से भी अत्यन्त सूक्ष्म है, आदि । चौथा (वाक्यांश) 'प्रज्ञानं ब्रह्म'—अथर्ववेद का तो नहीं, परन्तु माण्डूक्योपनिषद् आदि का है । (इसका) अर्थ यह है कि विचारशील पुरुष अपने अन्तर्यामी को प्रत्यक्ष ज्ञान से देखकर कह उठता है कि यह जो मेरा अन्तर्यामी सर्वात्मा है, यही ब्रह्म है अर्थात् मेरा भी यही आत्मा है, सो यह (स्वयं) अपने जीव को समझाने के लिये कहा गया वचन है । इसलिए दूसरी बात यह है कि ये जितना चाहें पाप करके कहते फिरें कि हम अकर्त्ता और अभोक्ता हैं परन्तु ये पाप करके फल स्वप्न मिलने वाले दुःख से तो किसी प्रकार बच नहीं सकते । तीसरी बात यह है कि ये जगत् को मिथ्या मानते हैं । चौथे, मोक्ष में जीव का लय होना हम मानते हैं, (ऐसे ही कि) जैसे समुद्र में बिन्दु का मिलना होता है । सो वेदान्ती लोगों में यह दो बड़े दोष हैं—एक, जगत् को झूठा मानना और दूसरा, जीव ब्रह्म को एक मानना । फिर ये यह भी कहते हैं कि यह जगत् स्वप्न तुल्य है । उनका यह कथन लक्ष्य के विरुद्ध है, क्योंकि जिसका कारण सत्य है वह असत्य नहीं हो सकता । स्वप्न भी दृष्ट और श्रुत के संस्कारवश होता है । प्रत्यक्ष अनुभव के बिना स्वप्न में दृष्टि तथा श्रुति संस्कार नहीं होता । स्वप्न और जागृत आदि अवस्थाओं से रहित होने के कारण परमात्मा को तो स्वप्न ही नहीं होता और जो जीव ब्रह्म हो तो, जैसे ब्रह्म ने यह अनन्त सृष्टि रची है वैसे एक मक्खी या मच्छर (तक भी) जीव क्यों नहीं रच सकता ? इससे जगत् को मिथ्या और जीव तथा ब्रह्म को एक समझना ही मिथ्या है । जगत् को मिथ्या मानने से तो जगत् की वृद्धि और परस्पर प्रेम और विद्या आदि हजारों क्रियाएं नहीं होंगी और फिर जगत् के सभी कार्य नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं । जीव और ब्रह्म को एक मानने से परमार्थ सब नष्ट हो जाते हैं; क्योंकि परमेश्वर की आज्ञा पालन, स्तुति, प्रार्थना और उपासना करने में प्रीति बिलकुल टूट जायेगी और तब केवल झूठी बड़ाई और अन्याय का करना रह जायेगा । फिर पाप करने की इच्छा में, इन्द्रियों से विषयों के भोग में अर्थात् अत्यन्त बुरे कामों में फंस कर

अपने मनुष्यजन्म धारण के चारों फल-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-नहीं होंगे और इस प्रकार इस जीव का जन्म ही वृथा हो जाता है । इससे मनुष्य को उचित है कि सत्य ग्रहण करना और असत्य को छोड़कर और आपस में प्रीतिपूर्वक व्यवहार करना उचित है । सो बाबू साहब ! आपका कहना सब मिथ्या और व्यर्थ है ।

ईश्वर के ध्यान करने की ठीक विधि सरल तर्क से समझाई—यह बातचीत हो रही थी कि शाहजहांपुर के कलैक्टर के कार्यालय के हेडक्लर्क, बाबू हरगोविन्द बनर्जी ने एक अंग्रेजी की पुस्तक पढ़नी आरम्भ की । उस पुस्तक में यह लिखा था कि परमेश्वर का ध्यान करने के समय एक चन्दन का चिह्न आगे बना लिया जावे तो चित्त बहुत अच्छी प्रकार से लगता है और बाबू साहब ने यह कहा कि यह पुस्तक विलायत में भी बड़े लोगों ने पसन्द की है । इस पर स्वामी जी ने कहा कि 'ईश्वर सर्वव्यापक है और सर्वत्र विद्यमान है, जैसे वह मेरे आत्मा में भी है और मैं जिस शब्द का उच्चारण करता हूं , उसमें भी है; क्योंकि यदि ऐसा न माना जाये तो वह शरीरवाला हो जायेगा; फिर वह ईश्वर ही नहीं रहेगा । जैसे यदि किसी पदार्थ आदि से ईश्वर को पृथक् करो तो प्रत्येक पदार्थ से हटाते-हटाते एक स्थान पर स्थापित करोगे या फिर उसको एक कण के बराबर अथवा उससे अधिक बड़ा कल्पित करोगे; इस कारण वह शरीर वाली कोई वस्तु हो जायेगा और हटाते-हटाते कहीं स्थापित न करोगे तो फिर कुछ भी न रहेगा । इससे यह सिद्ध हुआ कि परमेश्वर सर्वव्यापक, सर्वत्र विद्यमान है अर्थात् कोई स्थान और पदार्थ उससे रहित नहीं । इसीलिए वह मेरी आत्मा में भी है फिर मुझको क्या आवश्यकता है कि मैं अपने नेत्रों में आऊं और फिर उस चन्दन के चिह्न का ध्यान करूं । इससे तो परमेश्वर के ध्यान में एक प्रकार की हानि होती है । ऐसे ही माला फेरने को भी (ध्यान में हानिकर) समझना चाहिए । क्योंकि जब माला फेरेंगे तो गणना करने में चित्त आकृष्ट रहेगा । इसलिए सबको अपने आत्मा में सच्चे मन से ईश्वर का ध्यान करना चाहिए ।'

फिर स्वामी जी ने बाबू लेखराज साहब से कहा कि "परमेश्वर और ईश्वर, महादेव, शिव, देवी, शेष—जिसको सब लोग सांप समझते हैं, कश्यप—जिसको लोग मनुष्य समझते हैं सच्चिदानन्द, भगवान् और बहुत से नाम लिए और कहा कि इनके अर्थ परमेश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी पर लागू नहीं हो सकते ।[1] और बताया कि इसमें बहुत से प्रमाण भी हैं । परन्तु आपने जो 'कबीर' नाम रखा उससे तो 'अकबर' नाम ही बड़ा निकला ।[2] और आप ('कबीर' का अर्थ, ईश्वर' है, इसमें) कोई प्रमाण भी नहीं दे सकते । इसी कारण यह बात ठीक नहीं ।'

जैसे यह कबीर के अनुयायी हैं ऐसे और भी बहुत से अन्यों के अनुयायी हैं; बात यह है कि लोगों ने महन्त बन-बनकर, मनुष्यों को धोखा दे देकर, धन-धान्य हर लिया है । और फावड़े का नाम गुलशफा (आरोग्य प्रदान करने वाला पुष्प) और आग का नाम आतिश बतला कर लोगों को धोखा देकर अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं । कोई कहता है कि 'कान बन्द करके कैसा फन्द बजता है ! इसमें सब बाजों की ध्वनियां हैं; जब जीव छूटेगा तब इसी में समा जायेगा ।' कोई कहता है कि 'सोऽहम्' आदि 'स्वर' को जपो.....में से ध्वनि नहीं निकलेगी । फिर जब जीव मरेगा तब उसी शब्द में समा जायेगा, फिर आवागमन नहीं होगा । कोई कहता है कि 'श्वास साधो, और इस नथुने से उस नथुने में निकालो ।' कोई कहता है कि 'यह श्वास देखो—इसमें मूलतत्त्व और आकाश आदि विदित होते हैं ।' कोई कहता है 'यह महन्त साहब बड़े अन्तर्यामी हैं; सबके मन की बात बता देते हैं और जो वह मांगे वही हो जायेगा ।' सो इस प्रकार के बहुत से ढंग हैं । यह अन्धकार संसार में हो रहा है सो सबको उचित है कि सत्य का ग्रहण करें, और बात (हठ) को तो त्याग ही दें । सब प्रकार का सुख होगा और परस्पर प्रीति, परोपकार, धन की वृद्धि (होगी), परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, बुरे कामों से पृथक् रहना आदि के द्वारा

---

1. इन नामों के अन्वर्थ ऐसे गुणों वाला अन्य कोई पदार्थ नहीं हो सकता—सम्पा०

2. 'अकबर' का वाच्य 'कबीर' से बड़ा हुआ—सम्पा०

सब संसार में आनन्द ही आनन्द हो जायेगा।' बाबू लेखराज साहब यह भी कहते हैं कि यह जो मैंने वर्णन किया वह मुंशी प्यारेलाल के चित्त को प्रसन्न करने के लिए कहा था।

फिर स्वामी जी ने कहा कि तीन अवतार (!) तो मैंने अपनी आंखों से देखें हैं—एक तो वह सज्जन जिनकी पुस्तक **'बहारे वृन्दावन'** है, उनके हजारों शिष्य हैं और वे उनको अवतार मानते हैं। इस वर्ष उनका स्वर्गवास हो गया है। दो और दक्षिण में जीवित हैं। उन लोगों के भी हजारों शिष्य हैं और उनको अवतार कहते हैं। तब मुंशी मुक्ताप्रसाद जी ने कहा कि 'यदि ऐसा ही अन्धेर है तो मैं भी अपने नाम का मत चालू कर दूंगा या उसको ऐसी युक्ति-युक्त बात समझाऊंगा कि वह मूर्ख उसको मान लेगा। जिस बात या शब्द को मैं खोज कर लाऊंगा, उसको एक पुस्तक में, ऐसे युक्तियुक्त ढंग से सिद्ध करूंगा कि बहुत से लोग उसको पसन्द कर लेंगे। उस पुस्तक में मैं सब मतों का थोड़ा-थोड़ा वृत्तांत लिखूंगा कि जिससे लोग जानें कि बड़े जानने वाले हैं। उस पुस्तक को प्रकाशित करके, भारतवर्ष में प्रसिद्ध कर दूंगा और एक मेरे नाम का भी मत प्रचलित हो जावेगा। परन्तु मुझको एक यह भय है कि कहीं मेरे शिष्य मुझको भी अवतार न कहने लगें जैसे बाबू साहब 'कबीर' के शब्द पर परिश्रम करते हैं ऐसे ही मेरे पीछे मेरे शिष्य भी कहीं शास्त्रार्थ आरम्भ न करें।' तब स्वामी जी ने कहा कि मनुष्य को वह काम करना चाहिए कि जिससे परोपकार, सब प्रकार का सुख और धन की वृद्धि हो और जो काम सबको हानिकारक हो उसका करना अच्छा नहीं। ऐसे ही बहुत काल तक आपस में प्रसन्नतापूर्वक बातचीत होते-होते सब सज्जन विश्राम करने को चले गये।

चांदापुर में शास्त्रार्थ

मौलवियों तथा पादरियों से वार्तालाप, सार्वजनिक सभा में प्रतिनिधियों के भाषण के नियम निश्चित—मौलवी लोग और पादरी लोग, १९ मार्च की प्रात: को और कुछ सज्जन १९ मार्च की सायंकाल पधारे थे। प्रथम कुछ सज्जनों ने स्वामी जी के डेरे पर जाकर यह कहा कि 'हिन्दू और मुसलमान मिलकर पादरियों के मत का खंडन करें।' स्वामी जी ने यह उत्तर दिया कि इस मेले में उचित यह प्रतीत होता है कि कोई किसी का पक्षपात न करे प्रत्युत मेरी समझ में तो यह अच्छी बात है कि हम और मौलवी और पादरी सब प्रीति से मिल कर सत्य का निर्णय करें। किसी का विरोध करना उचित नहीं। तत्पश्चात् सभा के नियम निश्चित करने के लिए यह सुझाव दिया गया कि जो डेरा सभा के लिए निश्चित हुआ है, उसमें सब सज्जन एकत्रित होकर इस बारे में बातचीत करें परन्तु पादरी लोगों ने कहा कि एकान्त में बैठकर यह बात निश्चित की जावे तो अच्छा है, उस डेरे में बहुत भीड़ हो जायेगी। इस पर सब सज्जन सहमत होकर पादरी लोगों के डेरे पर गये और दो-दो सज्जन प्रत्येक मत में से चुने जाकर सभासद् निश्चित हुए। स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज और मुंशी इन्द्रमणि जी तो आर्य लोगों की ओर से, मौलवी मुहम्मद कासिम साहब और मौलवी सैयद अबुल-मन्सूर साहब मुसलमानों की ओर से, और पादरी नवल साहब और पादरी जान टामसन साहब भारतीय ईसाइयों की ओर से, मौलवी मोहम्मद ताहिर उर्फ मोतीमियां साहब रईस व आनरेरी मैजिस्ट्रेट शाहजहांपुर, ला० रामप्रसाद साहब रईस व आनरेरी मैजिस्ट्रेट शाहजहांपुर, मुंशी प्यारेलाल साहब और मुंशी मुक्ताप्रसाद साहब, रईस चांदापुर एकत्रित होकर विचार करने लगे। परन्तु इस पर इतने लम्बे भाषणों की नौबत पहुंची कि कोई पूरे नियम निश्चित होने नहीं पाये, केवल सभा का समय नियत हुआ। यद्यपि सभा का समय प्रात: ७ बजे से ११ बजे तक दोपहर पश्चात् १ बजे से ४ बजे तक निश्चित हुआ था और पादरी लोगों ने यह भी कहा था कि हम दो दिन से अधिक नहीं ठहर सकते क्योंकि विज्ञापन में भी दो दिन के लिए मेला लिखा है और यदि हम को प्रथम विदित होता तो हम ठहर सकते थे और उस समय वह प्रश्न भी जो आगे लिखे हैं, पेश करके स्वीकृत किये

गये थे परन्तु चूंकि नौ बजे से १२ बजे तक सब लोग भोजन करने के लिये चले गये, इसलिए मेले का प्रथम आधा दिन मानो इसी सोच विचार में व्यतीत हो गया । तब स्वामी जी ने कहा कि हम इस प्रतिज्ञा पर आये थे कि मेला कम से कम ५ दिन और अधिक से अधिक ८ दिन तक रहेगा । इस अवधि में सब मतों का वृत्तान्त भली प्रकार विदित हो सकता था । इस पर मुंशी इन्द्रमणि जी ने उत्तर दिया कि स्वामी जी आप विश्वास रखें, एक ही दिन में सच्चा मत विदित हो जावेगा । एक बजे के पश्चात् जब बहुत लोग एकत्रित थे तो मौलवी लोग और पादरी लोग पहले से पहुंच कर कुर्सियों पर बैठ गये । स्वामी जी ने कहा कि यहां तो खड़े होने तक के लिए स्थान नहीं है, प्रत्युत इस डेरे में सभा के होने से सब लोग भाषण को सुन भी नहीं सकेंगे; इसलिए यदि डेरे के बाहर सभा का अधिवेशन हो तो उचित है । इस पर सर्वसम्मति से बाग में फर्श कराया गया और कुर्सियां बिछवाई गईं । सब लोग अपनी-अपनी योग्यतानुसार कुर्सियों पर बैठ गये । तत्पश्चात् यह नियम सर्वसम्मति से निश्चित हुआ कि तीनों मतों में से प्रत्येक व्यक्ति आध-आध घंटे तक उन प्रश्नों के उत्तर दे । फिर जिस किसी को जो शंका हो दस-दस मिनट तक प्रश्न करे और उत्तर दे । यह शर्त भी लगाई गई कि इन दस मिनटों में कोई दूसरा व्यक्ति हस्तक्षेप न करे । इस बात पर सब सज्जनों ने सहमति प्रकट की ।

प्रथम दिन (मिति १९ मार्च, सन् ७७) की सभा

सबसे पहले मुंशी प्यारेलाल का स्वागत भाषण हुआ । उन्होंने कहा—'प्रथम परमेश्वर का धन्यवाद करना चाहिए कि जो सर्वत्र विद्यमान और व्यापक है और यह हम लोगों का सौभाग्य है कि उसने हम सबको ऐसे राजा के प्रशासन में रखा है कि सब लोग धार्मिक बातचीत दिल खोलकर कर सकते हैं । इसके अतिरिक्त मिस्टर राबर्ट जार्ज क्रे साहब, कलैक्टर और जिला मैजिस्ट्रेट का धन्यवाद करना चाहिए कि प्रशंसनीय महोदय ने अपनी गुणज्ञता और परोपकारिता का परिचय देते हुए इस 'ब्रह्मविचार' नामक मेले की स्वीकृति देकर इसको करने की आज्ञा दी । जिह्वा का वर्णन करने की शक्ति नहीं; आज वह शुभदिन है । इस भूमि का सौभाग्य है कि सज्जन पुरुष और प्रत्येक मत के विद्वान् यहां विराजमान हैं । सज्जनो ! यह संसार मुसाफिरखाना है; जीवन का कुछ भरोसा नहीं । आज के दिन परमेश्वर की कृपा का प्रकाश है कि सब सज्जनों ने साहसपूर्वक निश्चय करके इस सभा को सुशोभित किया है और अपने-अपने पवित्र धर्म के गुण अत्यन्त कोमल और मीठी वाणी में वर्णन करेंगे जिसको सुनकर मुक्तिमार्ग का फल श्रोताओं को प्राप्त होगा । मैं आसादास उर्फ प्यारेलाल कबीरपंथी परमेश्वर का धन्यवाद करके इस सभा की सफलता की प्रार्थना करता हूं और जिन सज्जनों ने साहसपूर्वक यहां पधार कर इस सभा को सुशोभित किया है, लेखनी में यह शक्ति नहीं कि उनकी प्रशंसा को लेखबद्ध कर सके और न ही जिह्वा में यह सामर्थ्य है कि वर्णन कर सके । उस पारब्रह्म का हजार बार धन्यवाद है ।'

सभा में मतों के प्रतिनिधित्व का प्रश्न : स्वामी जी ने मौलवियों की चालाकी नहीं चलने दी—तत्पश्चात् इस बात पर बातचीत हुई कि तीनों मतों में से कौन-कौन व्यक्ति बातचीत करे । इस सम्बन्ध में बहुत तर्क-वितर्क हुआ अर्थात् जब मुसलमानों और ईसाइयों की ओर से पांच-पांच व्यक्ति निश्चय किये गए और आर्यों की ओर से केवल स्वामी दयानन्द सरस्वती महाराज और मुंशी इन्द्रमणि जी नियत हुए तो मौलवी लोगों और पादरी लोगों ने बहुत अनुरोध किया कि तुम भी अपनी ओर से पांच व्यक्ति नियत करो । इसके उत्तर में स्वामी जी ने कहा कि हम दो ही मनुष्य पर्याप्त हैं । फिर भी मौलवी लोगों ने बनारस निवासी पंडित लक्ष्मीदत्त जी शास्त्री, स्कूल मास्टर शाहजहांपुर का नाम स्वयमेव ही पादरी साहब से लिखवाना चाहा, तब स्वामी जी ने फिर उनसे यह कहा कि आपको केवल अपनी ओर से चुनने का अधिकार है, हमारे चुनाव का और प्रबन्ध में हस्तक्षेप करने का आपको अधिकार नहीं है और पंडित लक्ष्मीदत्त शास्त्री जी से स्वामी जी ने कहा कि आप यह नहीं जानते कि ये लोग परस्पर हमारा और तुम्हारा विरोध कराके आप तमाशा देखेंगे । इतना कहने पर भी एक

मौलवी साहब ने पंडित लक्ष्मीदत्त शास्त्री जी का हाथ पकड़ कर कहा कि तुम भी अपना नाम लिखवा दो, इनके कहने से क्या होता है । इस पर स्वामी जी ने फिर यही उत्तर दिया कि मेला करने वालों और आर्य लोगों की यदि सम्मति हो तो इनका नाम लिखवा दो; अन्यथा केवल तुम्हारे कहने से नाम नहीं लिखा जायेगा । तत्पश्चात् एक और मौलवी साहब उठकर बोले कि सब हिन्दुओं से पूछा जाये कि इन दोनों का नाम लिखवाने में सबकी सम्मति है या नहीं ? इस पर स्वामी जी ने कहा जैसे सुन्नी सम्प्रदाय को छोड़कर शिया आदि सम्प्रदायों ने आपको सम्मति करके नहीं बिठाया और इसी प्रकार पादरी साहब को रोमन-कैथलिक आदि फिरकों ने नियत नहीं किया; ऐसे ही आर्य लोगों में कुछ हमारे पक्ष में सम्मति रखते होंगे और कुछ हमसे विरुद्ध, परन्तु आपको किसी अवस्था में भी हमारे धर्म में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है । मुंशी इन्द्रमणि जी ने कहा कि हम सब आर्य लोग वेदशास्त्रों को मानते हैं और शास्त्री जी भी वेदशास्त्रों को मानते हैं यदि किसी सज्जन का मत आर्य लोगों में से शास्त्रों के विरुद्ध हो तो चौथा मत स्थापित करके बिठला दीजिये । सारांश यह कि इस बातचीत से मौलवी लोगों का यह अभिप्राय विदित होता था कि यह लोग आपस में झगड़ें तो हम लोग तमाशा देखें ।

तत्पश्चात् पादरी लोगों ने कहा कि चौथे या पांचवें प्रश्न पर बातचीत होनी चाहिये और मौलवी मोहम्मद कासिम साहब ने कहा कि नहीं; प्रश्नों का जैसा क्रम था उसी के अनुसार उनमें से प्रत्येक पर बातचीत हो तो अच्छा है । इस पर स्वामी जी, मुंशी इन्द्रमणि जी, मुंशी मुक्ताप्रसाद जी और मुंशी प्यारेलाल जी ने भी सहमति प्रकट की । आध घंटे तक यही बातचीत होती रही और फिर बहुत काल तक इस बात की चर्चा रही कि पहले कौन सज्जन उत्तर दे । यहां तक कि चार बज गये और मौलवी लोगों ने कहा कि हमारा नमाज पढ़ने का समय आ गया है; और वे सब लोग नमाज पढ़ने को चले गये । जब सब मौलवी लोग नमाज से निवृत्त होकर आये तो मौलवी मोहम्मद कासिम साहब ने कहा कि प्रश्नों के अतिरिक्त पहले मैं एक घंटे तक कुछ अपने विश्वास के अनुसार वर्णन करता हूं और फिर उसमें जिस किसी सज्जन को शंका हो वह कहे, मैं उसका उत्तर दूंगा । इस बात को सबने स्वीकार किया ।

मौलवी मुहम्मद कासिम साहब—'मौलवी साहब ने परमात्मा की स्तुति करने के पश्चात् कहा, 'जिस-जिस समय में जो-जो शासक हो उसी की आज्ञा का पालन करना आवश्यक होता है, जैसे कि इस समय लोग गवर्नर की ही सेवा करते और उसी की आज्ञा मानते हैं । जिस की आज्ञा का समय व्यतीत हो चुकता है, न कोई उसकी सेवा करता है और न उसकी आज्ञा का पालन करता है । जैसे जब कोई कानून रद्द हो जाता है तो उसके अनुसार कोई नहीं चलता और जो कानून पहले कानून के स्थान पर जारी होता है उसके अनुसार चलना सबका कर्तव्य होता है, इसी दृष्टांत के अनुसार जो-जो अवतार और पैगम्बर पहले काल में थे और जो-जो पुस्तकें अर्थात् तौरेत, जबूर और इन्जील उनके समय में उतरीं अब उनके अनुसार नहीं चलना चाहिये । इस समय के अन्तिम पैगम्बर हजरत मुहम्मद साहब हैं, इसलिए उनको मानना चाहिये और जो ईश्वरीय वचन अर्थात् कुरान उनके समय में उतरा उसके अनुसार चलना चाहिये । हम श्रीकृष्ण आदि तथा ईसा मसीह की निन्दा नहीं करते, क्योंकि वह अपने-अपने समय में अवतार और पैगम्बर थे । परन्तु इस समय तो हजरत मुहम्मद साहब का ही हुक्म चलता है, दूसरे का नहीं । जो कोई हमारे मत या कुरान शरीफ अथवा हजरत मुहम्मद साहब को बुरा कहेगा वह वाजिबुल्कत्ल (मार दिये जाने के योग्य) है ।'

पादरी नवल साहब—'मुहम्मद साहब के पैगम्बर और कुरानशरीफ के ईश्वरीय वचन होने में सन्देह है, क्योंकि कुरान में जो-जो बात लिखी हैं सो-सो बाइबिल की है; इसलिये कुरान पृथक् आसमानी पुस्तक नहीं हो सकती और हजरत ईसामसीह के अवतार होने में सन्देह नहीं है; क्योंकि उसके उपदेश से जाना जाता है कि वह सच्चा मार्ग बतलाने वाला था । केवल उसी के उपदेश से यह मनुष्य मुक्ति पा सकता है और उसने चमत्कार भी दिखलाये थे ।'

मौलवी मुहम्मद कासिम साहब—'हम हजरत ईसा को पैगम्बर तो मानते हैं, और बाइबिल को आसमानी पुस्तक भी मानते हैं; परन्तु ईसाई लोगों ने इसमें बहुत कुछ घटा-बढ़ा दिया है; इसलिये वह मूलरूप में नहीं है और चूंकि कुरान शरीफ के अनुसार वह रद्द भी हो चुकी है, इसलिए वह विश्वास के योग्य नहीं रही । हमारे हजरत पैगम्बर साहब अन्तिम पैगम्बर (ईश्वरीय दूत) हैं, इसलिए हमारा मत सच्चा है ।' फिर अन्य मौलवी लोगों ने बाइबल में से एक आयत पादरी साहब को दिखलाई और कहा कि 'आप ही लोगों ने यह लिखा है कि इस आयत का पता नहीं लगता ।'

पादरी नवल साहब—'जिस व्यक्ति ने यह लिखा है वह सत्यवादी था । यदि उसने लेख की अशुद्धि को प्रकट कर दिया तो कुछ बुरा नहीं किया । हम लोग सत्य को चाहते हैं, झूठ को नहीं, इसलिए हमारा मत सच्चा है ।'

मौलवी मुहम्मद कासिम साहब—'यह तो ठीक है कि कुछ बुरा नहीं किया परन्तु जब किसी पुस्तक अथवा दस्तावेज में एक बात भी झूठ लिखी हुई सिद्ध हो जाये तो स्पष्टतया ही वह पुस्तक किसी भी दशा में विश्वास के योग्य नहीं रहती और न वह दस्तावेज न्यायालय में स्वीकार हो सकती है ?'

पादरी नवल साहब—'क्या कुरान शरीफ में लेख-दोष नहीं हो सकता ? इसलिए इस बात पर हठ करना अच्छा नहीं । जो हम सत्य को ही पसन्द करते हैं और सत्य ही की खोज करते हैं, इस कारण इस लेख की भूल को हमने स्वीकार कर लिया और तुम्हारे कुरान में बहुत घटाबढ़ी हुई है ।' इसके समर्थन में एक मौलवी ईसाई ने अरबी भाषा में बहुत कुछ कहा और सूरतों के प्रमाण दिये ।

मौलवी मुहम्मद कासिम साहब—'आप तो सत्य के बड़े अन्वेषक हैं ? यदि आप को सत्य ही पसन्द है तो तीन खुदा क्यों मानते हैं ।'

पादरी नवल साहब—'हम तीन खुदा नहीं मानते; अपितु वे तीनों एक ही हैं अर्थात् एक असली ईश्वर से ही प्रयोजन है । ईसामसीह में मानवता और ईश्वरता दोनों थीं; इसी कारण से वह दोनो व्यवहारों को करता है अर्थात् मनुष्यता के कारण मनुष्य का काम और ईश्वरता के कारण ईश्वर का काम अर्थात् चमत्कार दिखाता है ।'

मौलवी मुहम्मद कासिम साहब—'वाह ! वाह ! ! एक म्यान में दो तलवार क्योंकर रह सकती हैं ! पादरी साहब का यह कहना तो नितान्त अशुद्ध है । उसने तो कहीं नहीं कहा कि मैं ईश्वर हूं परन्तु तुम बलात् उसको ईश्वर बनाते हो ।'

पादरी नवल साहब ने इंजील की एक आयत पढ़ी और कहा कि देखो यह एक आयत है जिसमें मसीह ने अपने आपको ईश्वर कहा है और चमत्कार भी दिखलाये हैं; जिससे उसके ईश्वर होने में कोई सन्देह नहीं हो सकता ।

मौलवी मुहम्मद कासिम साहब—'जो वह ईश्वर था तो अपने आप को सलीब (सूली) से क्यों न बचा सका ?'

एक भारतीय पादरी साहब ने कुरान की कई आयतों का परस्पर विरोध दिखलाया और यह कहा—'आज्ञा और निषेध रद्द हो सकते हैं, समाचार रद्द नहीं हो सकता । आपके कुरान में समाचार रद्द किये गये हैं । पहले 'बैत-उल मुकद्दस' (मक्का) की ओर सिर झुकाते थे फिर 'काबा' की ओर झुकाने लगे । कुछ आयतों के अर्थ भी पढ़कर सुनाये और कहा कि ईसामसीह पर ईमान (विश्वास) लाये बिना किसी की मुक्ति नहीं हो सकती और तुम्हारे कुरान में बाइबिल का और ईसामसीह का मानना लिखा है । तुम लोग क्यों नहीं मानते हो ? इसी प्रकार की बात करते-करते सन्ध्या हो गई ।

दूसरे दिन (२० मार्च १८७७) प्रातः काल की सभा : विवादास्पद पांच प्रश्नों पर विचार

साढ़े सात बजे प्रातः सब लोग आ गये और अपने-अपने स्थानों पर कुर्सियों पर बैठ गये । मुंशी मुक्ताप्रसाद जी और मुंशी प्यारेलाल जी की ओर से वे पांच प्रश्न, जो कमेटी ने स्वीकृत किये थे, पेश किये गये । वे पांच प्रश्न ये हैं—

१—संसार को परमेश्वर ने किस चीज से, किस समय और किसलिये बनाया ? २—ईश्वर सब में है या नहीं ? ३—ईश्वर न्यायकारी और दयालु किस प्रकार है ? ४—वेद, बाइबिल और कुरान के ईश्वरोक्त होने में क्या प्रमाण है ? ५—मुक्ति क्या वस्तु है और किस प्रकार प्राप्त हो सकती है ?

कुछ समय तक इस पर परस्पर बातचीत होती रही और प्रत्येक एक दूसरे को कहता रहा कि पहले वह आरम्भ करे । परन्तु अन्त में पादरी स्काट साहब ने, जो १९ मार्च की रात्रि को आये थे, पहले प्रश्न का उत्तर देना आरम्भ किया और यह भी कहा कि यद्यपि यह प्रश्न किसी काम का नहीं, ऐसे प्रश्न का उत्तर देने में समय नष्ट करना मेरी समझ में अच्छा नहीं है, परन्तु जब सब की यही इच्छा है तो मैं इसका उत्तर देता हूं ।

पादरी स्काट साहब—'यद्यपि हम नहीं जानते कि ईश्वर ने यह संसार किस वस्तु से बनाया है परन्तु इतना हम जानते हैं कि ईश्वर ने इसको अभाव से भाव किया; क्योंकि पहले ईश्वर के अतिरिक्त दूसरा कोई पदार्थ न था । उसने अपनी आज्ञा से इस सृष्टि को रचा है । यद्यपि यह भी हम नहीं जान सकते कि उसने किस समय इस संसार को बनाया परन्तु इसका आरम्भ तो है । वर्षों की संख्या हम को विदित नहीं होती और न ईश्वर के अतिरिक्त कोई जान सकता है । इसलिए इस विषय में अधिक कहना ठीक नहीं । ईश्वर ने किसलिये इस जगत् को बनाया यद्यपि इसका उत्तर भी हम लोग ठीक नहीं जान सकते परन्तु इतना हम लोग जानते हैं कि संसार के सुख के लिए ईश्वर ने यह सृष्टि की है जिससे हम लोग सुख पावें और सब प्रकार के आनन्द करें ।'

मौलवी मुहम्मद कासिम—'उसने अपने ही शरीर (वजूदेखास) से संसार प्रकट किया अर्थात् उत्पन्न किया । उससे हम पृथक् नहीं, यदि पृथक् होते तो उसके अधीन न होते । कब से यह संसार बना यह कहना व्यर्थ है क्योंकि हमको रोटी खाने से काम है न कि इस बात से कि रोटी कब बनी । इससे क्या प्रयोजन है ? यह संसार सृष्टि के लिये बनाया गया है । देखो ! पृथिवी हमारे लिये है, हम को पृथिवी के लिये नहीं बनाया । यदि हम न हों तो पृथिवी की कुछ हानि नहीं परन्तु पृथिवी के न होने से हमारी बड़ी हानि होती है । ऐसे ही जल, वायु, अग्नि आदि सब वस्तुएं मनुष्य के लिए बनाई गई हैं; मनुष्य सारी सृष्टि से श्रेष्ठ है । मनुष्य को बुद्धि भी श्रेष्ठता के पहचानने को दी है; इसलिए मनुष्य को अपनी उपासना के लिये और इस संसार को मनुष्य के लिये बनाया है ।'

स्वामी दयानन्द सरस्वती महाराज—'पहले मेरी सब मुसलमानों, ईसाइयों और सुनने वालों से यह प्रार्थना है कि यह मेला केवल सत्य के निर्णय के लिए किया गया है और यही मेला कराने वाले मुंशी प्यारेलाल जी और मुंशी मुक्ताप्रसाद जी का प्रयोजन है कि इस बात का निश्चय हो जाये कि सब मतों में से सत्य मत कौन-सा है, ताकि हम उससे परिचित होकर उसी को सत्य समझें और झूठे विचारों को छोड़ दें । इसलिए इस अवसर पर हार और जीत की इच्छा किसी को न करनी चाहिये क्योंकि सज्जनों का यही वास्तविक ध्येय होना चाहिये कि सत्य की सदा जीत और असत्य की हार होती रहे । परन्तु जैसे मौलवी लोग कहते हैं कि 'पादरी साहब ने यह बात झूठ कही, ऐसे ही ईसाई कहते हैं कि 'मौलवी साहब ने यह बात

झूठ कही' ऐसी बात कहना उचित नहीं । वास्तव में विद्वानों में परस्पर यह नियम सदा होना चाहिये कि अपने-अपने ज्ञान और विद्या के अनुसार सत्य का मंडन और असत्य का खंडन कोमल वाणी के साथ करें कि जिससे सब लोग प्रीति से मिलकर सत्य का प्रकाश करें । एक दूसरे पर आक्षेप करना, बुरे-बुरे वचनों से बोलना, द्वेष से कहना कि वह हारा और यह जीता—ऐसा नियम कदापि न होना चाहिये क्योंकि सब प्रकार का पक्षपात छोड़कर सत्यभाषण करना सबको उचित है । एक दूसरे के विरुद्ध वाद करना यह अविद्वानों का स्वभाव है, विद्वानों का नहीं । इससे मेरा यह प्रयोजन है कि कोई इस मेले में या और कहीं कठोर वचन का भाषण न करें ।

सृष्टि-रचना आदि विषयक शास्त्रार्थ

"अब मैं इस पहले प्रश्न का उत्तर कि ईश्वर ने जगत् को किस वस्तु से और किस समय और किसलिए बनाया अपनी छोटी बुद्धि और विद्या के अनुसार देता हूं—

"परमेश्वर ने सब संसार को प्रकृति अर्थात् जिसको अव्यक्त, अव्याकृत और परमाणु आदि नामों से कहते हैं, बनाया है । सो यही जगत् का उपादान कारण है जिसको वेदादि शास्त्रों में 'नित्य' करके निर्णय किया है और यह सनातन है । जैसे ईश्वर अनादि है वैसे ही जगत् का कारण भी अनादि है । जैसे ईश्वर का आदि और अन्त नहीं वैसे इस जगत् के कारण का भी आदि और अन्त नहीं है । जितने इस जगत् में पदार्थ दीखते हैं उनके कारण में से एक परमाणु भी अधिक या न्यून कभी नहीं होता । जब ईश्वर जगत् को रचता है तब कारण से कार्य को बनाता है; सो जैसा यह कार्य जगत् दीखता है वैसा ही इसका कारण है । सूक्ष्म द्रव्यों को मिलाकर जब वह स्थूल द्रव्यों को रचता है तब स्थूल द्रव्य होकर देखने और व्यवहार के योग्य होता है । यह जो अनेक प्रकार का जगत् दीखता है इसको इसी (उपादान) कारण से ईश्वर ने रचा है और जब प्रलय करता है तब इस स्थूल जगत् के पदार्थों के परमाणुओं को पृथक्-पृथक् कर देता है क्योंकि जो-जो स्थूल से सूक्ष्म होता है वह आंख से देखने में नहीं आता तब बालबुद्धि लोग ऐसा समझते हैं कि द्रव्य[1] नहीं रहा परन्तु वह सूक्ष्म होकर आकाश में ही रहता है क्योंकि कारण का नाश कभी नहीं होता और नाश अदृश्य[2] को कहते हैं ।

---

1. जब कोई वस्तु बहुत छोटी अर्थात् परमाणु रूप हो जाती है तो फिर उसे और छोटा करना असम्भव है । यदि किसी वस्तु के टुकड़े करते-करते एक इतना छोटा टुकड़ा हो जावे कि फिर उसका विभक्त करना असम्भव हो तो उसको परमाणु कहते हैं । जितने पदार्थ संसार में हैं वे सब परमाणुओं से बनते हैं । किसी पत्थर को तोड़ सकते हैं और अत्यन्त छोटे-छोटे टुकड़ों को अलग कर सकते हैं पर वे परमाणु, जिनके एकत्रित होने से पत्थर बनता है, सदा किसी न किसी रूप में बने रहते हैं । किस एक परमाणु का भी इस संसार मे अभाव नहीं होता, केवल रूप और अवस्था बदल जाया करते हैं । मोमबत्ती जलाते हैं तो देखने में यह जान पड़ता है कि थोड़े समय में ही सब बत्ती नहीं रही, न जाने कि क्या हो गई परन्तु वास्तव में जितने परमाणु बत्ती में थे, वे बदल कर एक प्रकार की वायु का रूप धारण कर लेते हैं, किसी एक भी परमाणु का अभाव नहीं होता ।

2. अर्थात् वह देखने में नहीं आते । जब एक-एक परमाणु पृथक्-पृथक् हो जाता है तब उसका दर्शन नहीं होता । पर जब वही परमाणु मिलकर स्थूल द्रव्य होते हैं तब दृष्टि में आते हैं । यह नाश और उत्पत्ति की व्यवस्था ईश्वर सदा से करता आया है और ऐसे ही सदा करता जायेगा । इसकी संख्या नहीं कि कितनी बार ईश्वर ने सृष्टि उत्पन्न की और कितनी बार कर सकेगा । इस बात को कोई नहीं कह सकता । अब इसके बारे में जानना चाहिए कि जो लोग नास्ति अर्थात् अभाव से भाव मानते हैं और हुक्म अर्थात् शब्द से जगत् की उत्पत्ति मानते हैं, उनका कहना किसी प्रकार से ठीक नहीं हो सकता; क्योंकि 'अभाव' से 'भाव' का होना सर्वथा असम्भव है । जैसे कोई कहे कि बन्ध्या के पुत्र का विवाह मैंने आंख से देखा है, तो इस पर आपत्ति यह उठती है कि यदि उसके पुत्र हो तो वह बन्ध्या क्यों कहलाती ? फिर उसके पुत्र का अभाव होने से उसके पुत्र के विवाह का भाव कब हो सकता है ? जैसे कोई कहे कि मैं किसी स्थान पर नहीं था और आया यहां हूं; यह सर्प बिल में नहीं था और निकल आया, तो ऐसी बात विद्वानों की नहीं होती । इसमें कोई प्रमाण नहीं है क्योंकि जो वस्तु है ही नहीं वह क्योंकर हो सकती है । जैसे हम लोग अपने स्थानों में नहीं होते तो यहां चांदापुर में कभी न आ सकते थे ।

इसका अभिप्राय यह है कि जो है सो आगे को होता है और जो नहीं है वह कभी नहीं हो सकता। इसलिए इस बात से सिद्ध हो चुका है कि अभाव से भाव कभी नहीं हो सकता क्योंकि इस जगत् में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है कि जिसका कारण कोई न हो। इससे यह सिद्ध हुआ कि भाव से ही भाव होता है अर्थात् अस्ति से अस्ति। नास्ति से अस्ति अर्थात् अभाव से भाव किसी प्रकार नही हो सकता। यह 'वदतो व्याघात' सदृश अर्थात् अपनी बात को आप ही काटने के समान बात है। पहले किसी वस्तु का अत्यन्ताभाव कहकर फिर यह भी कहना कि उसका भाव हो गया, प्रत्यक्ष ही पूर्वापर विरुद्ध बात है। इसको कोई विद्वान् नहीं मानेगा कि बिना कारण के कोई कार्य हो सके क्योंकि इसको कोई भी किसी प्रमाण से सिद्ध नहीं कर सकता। न ही कोई ऐसा है कि जो अभाव से भाव अर्थात् नास्ति से अस्ति और हुक्म से जगत् की उत्पत्ति को सिद्ध करके दिखलावे। इससे यही जानना चाहिए कि ईश्वर ने जगत् के अनादि उपादान कारण से सब संसार के पदार्थों को बनाया है, अन्यथा नहीं।

इस अवसर पर दो प्रकार का विचार उपस्थित होता है अर्थात् दो प्रश्न उत्पन्न होते हैं। एक यह कि जो जगत् का (उपादान) कारण ईश्वर हो तो ईश्वर ही सारे जगत् का रूप हुआ; मानो ज्ञान, सुख, दु:ख, जन्म, मरण, हानि, लाभ, नरक, स्वर्ग, तृषा, छेदन, ज्वर आदि रोग, बन्धन और मोक्ष सब ईश्वर में ही कल्पित होते हैं अर्थात् कुत्ता, बिल्ली, चोर, दुष्ट आदि सब ईश्वर ही बन गये। दूसरे जो साथ में रहने वाली आवश्यक सामग्री मानें तो ईश्वर कारीगर के समान होता है। कारण तीन प्रकार का होता है एक उपादान, कि जिसको ग्रहण करके किसी पदार्थ को बनाया जैसे मिट्टी को लेकर घड़ा, और सोना लेकर आभूषण, और रुई लेकर कपड़ा बनाया जाये। दूसरा निमित्त, जैसे कुम्हार अपनी विद्या और सामर्थ्य के साथ घड़े को बनाता है; तीसरा साधारण, जैसे चाक आदि साधन और दिशा, आकाश और काल आदि।

अब जो ईश्वरको जगत् का उपादान कारण मानें तो ईश्वर ही जगत् रूप बनता है क्योंकि मिट्टी से घड़ा पृथक् नहीं हो सकता और जो साधारण मानें तो दोनों अवस्थाओं में वह फिर अधीन वा जड़ ठहरता है। इसी कारण जो यह कहते हैं कि ईश्वर जगत् रूप बन गया है तो उनके मत से चोर आदि होने का दोष ईश्वर में आता है। इससे ऐसी व्यवस्था इस बारे में माननी चाहिए कि जगत् का (उपादान) कारण अनादि है और नानाप्रकार के जगत् को बनाने वाला परमेश्वर है। इस अवस्था में जगत् का (उपादान) कारण और जीव भी अपने स्वरूप से अनादि हैं और (स्थूल) कार्यजगत् तथा जीवों के कर्म, सतत प्रवाह से अनादि हैं। ऐसे माने बिना किसी प्रकार से निर्वाह नहीं हो सकता और न कोई विद्वान् नास्ति से अस्ति मान सकता।

अब यह कि ईश्वर ने किस समय जगत् को बनाया है अर्थात् संसार को बने हुए कितने वर्ष हो गये हैं, इसका उत्तर दिया जाता है। सुनो भाइयो! इस प्रश्न का उत्तर हम आर्य लोग तो दे सकते हैं आप लोग नहीं दे सकते क्योंकि आप लोगों के मत, कोई अठारह सौ वर्ष से, कोई तेरह सौ वर्ष से, कोई पांच सौ वर्ष से कोई सात सौ वर्ष से उत्पन्न हुए हैं; इस कारण आपके मत में जगत् के इतिहास के वर्षों का लेख किसी प्रकार से नहीं हो सकता। हम आर्य लोग सदा से, जब से यह सृष्टि हुई है तब से, बराबर विद्वान् होते चले आये हैं और इसी देश से सब देशों में विद्या गई है। इस बात में सब देश वालों के इतिहासों का प्रमाण है कि आर्यावर्त से मिश्र देश में और मिश्र देश से यूनान में और यूनान से योरप आदि में विद्या फैली है। इसलिए इसका इतिहास दूसरे किसी मत में नहीं हो सकता।

देखो! हम आर्य लोग संसार की उत्पत्ति और प्रलय के विषय में वेदादि शास्त्रों की रीति से सदा से जानते हैं कि हजार चतुर्युगियों का एक ब्राह्मदिन, और इतने ही युगों की एक ब्राह्मरात्रि होती है। अर्थात् जगत् की उत्पत्ति होके जबतक कि जगत् वर्तमान होता है उतने समय का नाम 'ब्राह्मदिन' है और प्रलय होकर जितने समय, हजार चतुर्युगी पर्यन्त उत्पत्ति

नहीं होती, इस उसका नाम ब्राह्मरात्रि है । एक कल्प में चौदह मन्वन्तर होते हैं, प्रत्येक मन्वन्तर ७१ चतुर्युगियों का होता है । सो इस समय सातवां वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है और इससे पहले छः मन्वन्तर व्यतीत हो चुके हैं अर्थात् स्वायम्भुव, स्वारोचिष, औत्तमि, तामस, रैवत और चाक्षुष । इसलिए १९६०८५२९७६ (एक अरब, छियानवे करोड़, आठ लाख, बावन हजार नौ सौ छिहत्तर) वर्षों का भोग हो चुका है और अब दो अरब, तैंतीस करोड़, बत्तीस लाख, सत्ताईस हजार, चौबीस वर्ष (२३३३२२७०२४) वर्ष इस सृष्टि को भोग करने शेष हैं । सो हमारे देश के इतिहासों में यथार्थ क्रम से अर्थात् ज्यों की त्यों सब बातें लिखी हैं और ज्योतिष शास्त्र में भी मिति अर्थात् तारीख और वार प्रति संवत् बढ़ाते रहे हैं और ज्योतिष की रीति से जो वर्षपत्र बनता है, उसमें भी यथावत्, सबको क्रम से लिखते चले आते हैं अर्थात् एक-एक वर्ष भोग में आजतक बढ़ाते आये हैं । सब आर्यावर्त देश के इतिहास इस बात में अविरुद्ध (परस्पर सहमत) हैं । फिर जबकि जैन मत वाले और मुसलमान इस देश की इतिहास पुस्तकों का नाश करने लगे तब आर्य लोगों ने सृष्टि के इतिहास को कण्ठ कर लिया । सो बालक से लेकर वृद्ध तक नित्यप्रति उच्चारण करते हैं कि जिसको 'संकल्प' कहते हैं और वह इस प्रकार है—

"ओं तत्सत् श्री ब्रह्मणो द्वितीये प्रहरार्द्धे, वैवस्तवतमन्वन्तरेष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे आर्यावर्तान्तरैकदेशे अमुकनगरे अमुकसंवत्सरायनर्तुमासपक्षदिननक्षत्रलग्नमुहूर्तेऽत्रेदं कार्यं कृतं क्रियते वा"।

इसको भी विचारिये तो सृष्टि के वर्षों की गणना बराबर जान पड़ती है । यदि कोई यह कहे कि हम इस बात को नहीं मान सकते तो इसका उत्तर यह है कि जो, परम्परा से मितिवार दिन चढ़ाते चले आते हैं, ज्योतिष शास्त्रों में भी वैसा ही लिखा है और इतिहासों में भी उसी प्रकार से लिखा है तो उसको मिथ्या कोई नहीं कर सकता । जैसे बहीखाते में प्रतिदिन मितिवार लिखते हैं उसको झूठ कोई नहीं कर सकता । और जो कोई (इसको झूठ) कहे तो उससे भी कोई पूछेगा कि तुम्हारे मत में सृष्टि की उत्पत्ति को कितने वर्ष हुए तब कोई छः हजार वर्ष, कोई सात हजार या आठ हजार वर्ष बतलायेगा । वह भी अपनी पुस्तकों के अनुसार कहता है तो उसको भी कोई नहीं मानेगा क्योंकि वह पुस्तक की बात है । और भूगर्भ विद्या के अनुसार जो देखा जाता है तो उससे भी उसकी ही गणना आती है । हम आर्य लोगों के मत में तो जगत् के वर्षों की गिनती बन सकती है और किसी के मत में नहीं । इसलिए यह व्यवस्था सृष्टि की उत्पत्ति के वर्षों की सब को ठीक माननी उचित है ।

तीसरा प्रश्न कि सृष्टि किसलिए बनाई ?—इसका उत्तर यह है-जीव और जगत् का (उपादान) कारण, (दोनों) स्वरूप से अनादि हैं और जीव के कर्म तथा कार्यजगत्, प्रवाह से अनादि हैं । जब प्रलय होता है तो जीवों के कुछ कर्म शेष रह जाते हैं । उन कर्मों का भोग कराने के लिए और फल देने के लिए ईश्वर सृष्टि को रचता है और अपने पक्षपातरहित न्याय को प्रकाशित करता है । ईश्वर में ज्ञान, बल, दया आदि (गुण) और रचने की जो अत्यन्त शक्ति है उसको सफल करने के लिए उसने सृष्टि बनाई है । जैसे आंख देखने के लिए और कान सुनने के लिए हैं वैसे ही रचनाशक्ति रचने के लिए है, सो अपनी सर्वसमर्थता की सफलता के लिए इस जगत् को परमेश्वर ने रचा है; जिससे लोग सब पदार्थों से सुख पावें । फिर उसने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि करने के लिए जीवों के नेत्रादि साधन भी रचे हैं । इसी प्रकार सृष्टि के रचने में और भी अनेक प्रयोजन हैं परन्तु चूंकि समय कम है और वर्णन बहुत लम्बा है; इसलिए इतने से ही बुद्धिमान् लोग जान लेंगे ।

पादरी स्काट साहब—'जिसकी सीमा होती है वह अनादि नहीं हो सकता । चूंकि जगत् की सीमा है इसलिए वह अनादि नहीं हो सकता । कोई चीज अपने आप को नहीं बना सकती परन्तु ईश्वर ने जगत् को अपनी सामर्थ्य से बनाया है । कोई नहीं जानता कि ईश्वर ने किस चीज से बनाया है और पंडित जी ने भी नहीं बताया किस चीज से जगत् को बनाया ।'

मौलवी मुहम्मद कासिम—'जब कि सारी चीजें सदा से हैं तो ईश्वर को मानना व्यर्थ है और उत्पत्ति का समय नहीं कह सकता।'

अभाव से भाव नहीं हो सकता

स्वामी दयानन्द सरस्वती महाराज—'पादरी साहब मेरे कथन को अच्छी प्रकार नहीं समझे अर्थात् यह कि मैं जगत् के कारण को तो अनादि कहता हूं परन्तु जो कार्य हैं सो अनादि नहीं होता। जैसे मेरा शरीर साढ़े तीन हाथ का है; सो उत्पन्न होने से पूर्व ऐसा नहीं था और नष्ट होने के पश्चात् ऐसा नहीं रहेगा पर इसमें जितने परमाणु[1] हैं वे नष्ट नहीं होते। इस शरीर के परमाणु अलग-अलग होकर आकाश में बने रहते हैं। उन परमाणुओं में जो संयोग और वियोग की शक्ति है वह तो अवश्य उनमें रहती है। जैसे मिट्टी से घड़ा बनाया जो कि बनाने से पूर्व नहीं था और नाश होने के पश्चात् भी नहीं रहेगा परन्तु उसमें जो मिट्टी है वह नष्ट नहीं होती और जो गुण अर्थात् चिकनापन उसमें है कि जिससे वह पिण्डाकार होती है वह भी उसमें सदा से है। वैसे संयोग और वियोग होने की योग्यता परमाणुओं में सदा से है। इससे यह समझना चाहिए कि जिन परमाणु द्रव्यों से यह जगत् बना है वे द्रव्य अनादि हैं; कार्यद्रव्य नहीं। मैंने यह कब कहा था कि जगत् की वस्तुएं स्वयं अपने को बना सकती हैं। मेरा कहना तो यह था कि ईश्वर ने उस (उपादान) कारण से इस जगत् को रचा है।

जो पादरी साहब ने कहा कि सामर्थ्य से जगत् को बनाया है तो पूछता हूं कि सामर्थ्य कोई वस्तु है या नहीं। यदि कहो कि कोई वस्तु है तो वह अनादि हुई और यदि यह कहो कि कोई वस्तु नहीं है तो उससे आगे कोई दूसरी वस्तु बन भी नहीं सकती। जो पादरी साहब ने यह कहा कि पंडित जी ने यह नहीं बताया कि किससे यह जगत् बना है। कदाचित् पादरी साहब ने नहीं सुना होगा क्योंकि मैंने तो प्रकृति आदि नामों से कारण कहा था जिसको परमाणु भी कहते हैं, उससे यह कार्यजगत् बना है।'

मौलवी साहब के उत्तर में स्वामी जी ने कहा—'सब चीजों का (उपादान) कारण अनादि है तो भी परमेश्वर को मानना आवश्यक है क्योंकि मिट्टी में यह सामर्थ्य नहीं कि आप से आप घड़ा बन जाये। जो (उपादान) कारण होता है वह आप कार्यरूप नहीं बन सकता क्योंकि उसमें बनने का ज्ञान नहीं होता और कोई जीव भी उसको नहीं बना सकता। आजतक किसी ने कोई वस्तु ऐसी नहीं बनाई जैसा कि यह मेरा रोम है। इसको कोई नहीं बना सकता। ऐसा भी आजतक कोई मनुष्य नहीं हुआ और न है जो उन परमाणुओं को पकड़ कर किसी युक्ति से कोई ऐसी वस्तु बना सके अथवा दो त्रसरेणुओं का संयोग भी कर सके। इससे यह सिद्ध हुआ कि उस परमेश्वर की ही यह सामर्थ्य है कि सब जगत् को रचे।

---

1. सब लोग यह बात देखते हैं कि आग में बहुत से पदार्थ जल जाते हैं, अब विचार करना चाहिए कि जब कोई वस्तु जलती है तो क्या होता है? देखने से तो प्रतीत होता है कि लकड़ी जलकर थोड़ी रह जाती है, तो अब यह विचारना चाहिये कि जलने से किसी पदार्थ का वास्तव में अभाव हो जाता है या केवल अवस्था में परिवर्तन आता है। जब मोमबत्ती जलाते हैं तो स्पष्ट विदित होता है कि मोम का अभाव हो गया। यह नहीं दिखायी देता कि वह कहां गई? परन्तु वास्तव में मोम बदलकर वायुरूप हो जाती है और वायु में मिलने के कारण दिखाई नहीं देती। इसकी परीक्षा के लिए एक बोतल के भीतर मोमबत्ती जलाओ और उसका मुख बन्द कर दो तो उस मोमबत्ती का जितना भाग वायुरूप हो जायेगा वह बोतल के बाहर नहीं जा सकेगा। परन्तु इस परीक्षा में थोड़े समय पश्चात् यह दिखाई देगा कि बत्ती बुझ गई। पहले यह देखना चाहिए कि बत्ती क्यों बुझी, और बोतल की वायु में कुछ भेद हुआ है या नहीं? इस बात को इस प्रकार से जानोगे कि थोड़ा सा चूने का पानी इस बोतल में डालो और एक और बोतल में भी जिसमें केवल वायु भरी और कोई मोमबत्ती न जलाई गई हो, डालो तो यह दिखाई देगा कि जिस बोतल में बत्ती जली है उसमें चूने का रंग बदल कर कुछ दूधिया सा हो जायेगा परन्तु दूसरी बोतल में कुछ परिवर्तन न होगा। इससे सिद्ध हुआ कि बत्ती के जलाने से कुछ नई वस्तु बोतल की वायु में मिल गई है और वह वस्तु वायु के सदृश है जो दिखाई नहीं देती। वास्तव में मोमबत्ती के किसी परमाणु का अभाव नहीं होता पर जिन चीजों से वह बत्ती बनती है उनकी अवस्था में अन्तर पड़ता है।

देखो ! एक आंख की रचना को ही ले लो, दृष्टान्त रूप से इसमें ही इतनी विद्या है कि आज तक बड़े-बड़े वैद्य लोग विचार करते-करते थक गये परन्तु आंख का जानना अभी शेष ही है । किस-किस प्रकार के और क्या-क्या गुण उसमें ईश्वर ने रखे हैं, इसको पूर्णतया कोई नहीं जान सकता । एक ईश्वर का ही सामर्थ्य है । देखो ! सूर्य और चन्द्र आदि जगत् की रचना और उनका धारण करना ईश्वर ही का काम है तथा जीवों के कर्मों के फल को देना, यह भी केवल परमात्मा का ही काम है, किसी अन्य का नहीं । इससे ईश्वर को मानना आवश्यक है ।'

एक भारतीय पादरी साहब 'जब दो वस्तु हैं (और उनमें से) एक कार्य, दूसरा कारण तो दोनों अनादि नहीं हो सकतीं; इससे ईश्वर ने नास्ति (अभाव) से अस्ति (भाव) अपने सामर्थ्य से की है ।'

मौलवी मुहम्मद कासिम साहब—'गुण दो प्रकार के होते हैं एक भीतरी, दूसरे बाहरी । भीतरी तो अपने आप में होते हैं और बाहरी दूसरे से अपने में आते हैं । भीतरी गुण दूसरे में जाकर वैसे ही बन जाते हैं परन्तु जिसके गुण होते हैं वह उससे पृथक् होता है । जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब जिस बर्तन में पड़ता है वह वैसा ही बन जाता है परन्तु सूर्य नहीं बन जाता । ऐसे ही ईश्वर ने हमको अपने संकल्प से बनाया है ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज—(पादरी साहब के उत्तर में) 'आप दोनों के अनादि होने में क्यों शंका करते हैं क्योंकि जितने पदार्थ इस जगत् में बने हैं, सब का उपादान कारण अर्थात् परमाणु आदि सब अनादि हैं और जीव भी अनादि हैं जिनकी संख्या कोई नहीं बता सकता । नास्ति से अस्ति कभी नहीं हो सकती जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, परन्तु आप जो कहते हैं कि सामर्थ्य से बनाया तो बताओ कि सामर्थ्य क्या 'वस्तु' है ? जो कहो कि कोई 'वस्तु' है तो फिर वही (वस्तु) कारण ठहरने (निश्चित होने) से अनादि हुई । ईश्वर के नाम, गुण, कर्म सब अनादि हैं, कोई अब बनाने से नहीं बने ।

स्वामी जी—(मौलवी साहब के उत्तर में) 'आप जो यह कहते हैं कि भीतर के गुण से जगत् बना है तो भी नहीं बन सकता; क्योंकि गुण द्रव्य के बिना अलग नहीं रह सकते और गुण से द्रव्य बन भी नहीं सकता । जब भीतर के गुणों से जगत् बना तो जगत् भी ईश्वर हुआ । यदि यह कहो कि बाहर के गुणों से जगत् बना तो ईश्वर के अतिरिक्त वे गुण और द्रव्य भी आपको अनादि मानने पड़ेंगे । और यदि यह कहो कि संकल्प से हम लोग बन गये तो मेरा यह प्रश्न है कि संकल्प कोई 'वस्तु' है या 'गुण' ? यदि 'वस्तु' कहोगे तो वह अनादि ठहर जायेगी और यदि 'गुण' मानोगे तो जैसे केवल इच्छा से घड़ा नहीं बन सकता प्रत्युत मिट्टी से बनता है, वैसे ही 'संकल्प' से हम लोग भी नहीं बन सकते ।'

पादरी स्काट साहब—'हम लोग इतना जानते हैं कि 'नास्ति' से 'अस्ति' को ईश्वर ने बनाया और यह हम नहीं जानते कि किस चीज और किस प्रकार से यह जगत् बनाया । इसको ईश्वर ही जानता है, मनुष्य कोई नहीं जान सकता ।'

मौलवी मुहम्मद कासिम साहब—'ईश्वर ने अपने नूर (प्रकाश) से जगत् को बनाया है ।'

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज—(पादरी साहब के उत्तर में) 'कार्य को देखकर कारण को देखना चाहिये । जैसी कार्य वस्तु होती है वैसा ही उसका कारण होता है । जैसे घड़े को देखकर मिट्टी उसका कारण जान लिया जाता है कि जो चीज घड़ा है वही चीज मिट्टी है । आप कहते हैं कि अपनी सामर्थ्य से जगत् को बनाया सो मेरा यह प्रश्न है कि वह सामर्थ्य अनादि है या पीछे से बनी है ? जो अनादि है तो द्रव्यरूप उसको मान लो; फिर तो वही जगत् का अनादि कारण हो जायेगी ।'

स्वामी जी—(मौलवी साहब के उत्तर में)—'नूर' कहते हैं 'प्रकाश' को; उस प्रकाश से कोई दूसरा द्रव्य नहीं बन सकता परन्तु वह प्रकाश मूर्तिमान् द्रव्य को प्रसिद्ध दिखला सकता है और वह प्रकाश करने वाले पदार्थ से पृथक् नहीं रह

सकता । इससे जगत् का जो कारण प्रकृति आदि अनादि है उसको माने बिना किसी प्रकार से किसी का निर्वाह नहीं हो सकता और हम लोग भी कार्य को अनादि नहीं मानते परन्तु जिससे कार्य बना है, उस कारण को अनादि मानते हैं ।'

एक भारतीय पादरी साहब—'यदि ईश्वर ने अपने 'शरीर' (जात) से सब संसार को बनाया तो यह मानना पड़ेगा कि उसके 'शरीर' में सब संसार सनातन काल से था और वह उसके 'शरीर' में अनादि था । इसलिये ईश्वर की सीमा हो गई !'

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज—'जब (अर्थात् यदि यह मान लिया जाये) कि ईश्वर के 'शरीर' में सब जगत् था तब तो वह अनादि (सिद्ध) हुआ और वही अनादि वस्तु रचने से सीमा में आई अर्थात् लम्बा, चौड़ा, छोटा अनादि सब प्रकार का ईश्वर ने उसमें से बनाया इसलिए रचे जाने के कारण जगत् की ही सीमा हुई, ईश्वर की नहीं । मैंने जो पहले कहा था कि नास्ति से अस्ति कभी नहीं हो सकती किन्तु भाव से ही भाव होता है सो आप लोगों के कथन से भी वही बात सिद्ध हो गई कि जगत् का कारण अनादि है ।'

ईसाई साहब—'सुनो भाई मौलवी लोगो ! पण्डित जी इसका उत्तर हजार प्रकार से दे सकते हैं हम और तुम हजारों मिलकर भी इनसे बात करें तो भी पण्डित जी बराबर उत्तर दे सकते हैं, इसलिए इस विषय का आगे विस्तार करना उचित नहीं ।'

ग्यारह बजे तक यह बातचीत हुई तत्पश्चात् सब लोग अपने डेरों में चले गये । मेले में स्थान स्थान पर यही चर्चा थी कि जैसा पण्डित जी को सुनते थे उससे हजार गुना अधिक पाया ।

दोपहर पीछे की सभा (२० मार्च, सन् १८७७)

फिर एक बजे सब लोग आये और इस बात पर विचार किया कि अब समय बहुत थोड़ा रह गया है और बातें बहुत हैं; इसलिए केवल मुक्ति के प्रश्न पर बातचीत हो तो अच्छा है । थोड़ी देर तक यह बातचीत होती रही कि पहले कौन वर्णन करे, प्रत्येक दूसरे पर डालता था । तब स्वामी जी ने कहा कि पहले क्रम के अनुसार ही भाषण होना चाहिये अर्थात् पहले पादरी साहब, फिर मौलवी साहब और फिर मैं । परन्तु जब पादरी साहब और मौलवी साहब दोनों ने यह निश्चय किया कि हम पहले नहीं बोलेंगे, स्वामी जी ही बोलें तो स्वामी जी ने इस प्रकार कहना आरम्भ किया ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज—'मुक्ति कहते हैं छूट जाने को, अर्थात् जितने दुःख हैं उन सबसे छूट कर एक सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वर को प्राप्त होकर सदा आनन्द में रहना और फिर जन्म मरण आदि दुःखसागर में न गिरना, इसी का नाम मुक्ति है । वह किस प्रकार से होती है ? इसका पहला साधन सत्य का आचरण है और वह सत्य आत्मा और परमात्मा की साक्षी से निश्चय करना चाहिये । जिसमें आत्मा और परमात्मा की साक्षी न हो, वह असत्य है । जैसे किसी ने चोरी की, जब वह पकड़ा गया तो उससे राजपुरुष ने पूछा कि तूने चोरी की या नहीं ? तब वह कहता है कि मैंने चोरी नहीं की परन्तु उसका आत्मा भीतर से कह रहा है कि मैंने चोरी की है । तथा जब कोई चोरी की इच्छा करता है तब अन्तर्यामी परमेश्वर उसको जता देता है कि यह बुरी बात है, इसको तू मत कर और शंका, लज्जा और भय आदि उसके आत्मा में उत्पन्न कर देता है । और जब किसी सत्य काम को करने की इच्छा करता है तब उसके आत्मा में आनन्द उत्पन्न कर देता है कि यह काम तू कर । उस समय अपना आत्मा भी सत्य काम करने में निर्भय और प्रसन्न होता है, असत्य में नहीं । जब उसकी आज्ञा को तोड़ कर बुरा काम कर लेता है तब वह मुक्ति पाने का अधिकारी किसी प्रकार से नहीं हो सकता; उसी को असुर, दुष्ट, दैत्य और नीच कहते हैं । इसमें वेद का प्रमाण है—

'असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः । तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः । (यजुर्वेद, अध्याय ४०, मंत्र ३)

अर्थ—आत्मा का हनन करने वाला अर्थात् जो परमेश्वर की आज्ञा तोड़ता है और अपने आत्मा के ज्ञान के विरुद्ध बोलता और मानता है, इससे उस मनुष्य का नाम असुर अर्थात् राक्षस, दुष्ट, पापी, नीच आदि होता है ।

मुक्ति के मिलने के साधन ये हैं—१. सत्याचरण, २. सत्य विद्या अर्थात् ईश्वरकृत वेद विद्या का यथावत् पढ़कर ज्ञान की उन्नति और सत्य का पालन यथावत् करना । ३. सत्पुरुष ज्ञानियों का संग करना । ४. योगाभ्यास करके अपने मन, इन्द्रियों और आत्मा को असत्य से हटाकर सत्य में स्थिर करना और ज्ञान को बढ़ाना । ५. ईश्वर की कृपा का यश कीर्तन करना अर्थात् उसके गुणों की कथा सुनना और विचारना; जिसका नाम स्तुति है । ६. प्रार्थना इसको कहते हैं । जैसे हे जगदीश्वर ! हे कृपानिधे ! हे अस्मत्पितः ! असत्य से हम लोगों को छुड़ा के सत्य में स्थिर करो; हे भगवन् ! मुझको अन्धकार अर्थात् अज्ञान और अधर्माचरण, प्रमाद आदि दुष्ट कामों से अलग करके विद्या, धर्म और श्रेष्ठ काम करने में लगा और प्रकाश रूप में मुझको सदा के लिये स्थापन कर । हे प्रभु ! मुझको जन्म-मरण रूप संसार के दुःखों से छुड़ाकर अपने कृपा-कटाक्ष से अमृत अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करा । जब सच्चे मनसे अपने आत्मा, प्राण और सब सामर्थ्य से परमेश्वर को जीव भजता है तब वह करुणामय परमेश्वर उसको अपने आनन्द में स्थिर कर देता है । जैसे छोटा बालक जब घर के ऊपर से अपने माता-पिता के पास नीचे आना चाहता है नीचे से ऊपर उनके पास जाना चाहता है, तब माता-पिता हजारों आवश्यक कामों को भी छोड़कर और दौड़ कर अपने लड़के को उठा कर गोद में लेते हैं कि हमारा लड़का कहीं गिर पड़ेगा तो उसको चोट लगने से उसको दुःख होगा । जैसे माता-पिता अपने बच्चों को सदा सुख देने और उनको सुख में रखने की इच्छा और पुरुषार्थ सदा करते रहते हैं, वैसे ही परम कृपानिधि परमेश्वर की ओर जब कोई सच्चे आत्मा के भाव से चलता है तब वह अनन्त शक्ति रूप हाथों से उस जीव को उठाकर अपनी गोद में सदा के लिए रखता है । फिर उसको किसी प्रकार का दुःख नहीं होने देता है और वह सदा आनन्द में रहता है, इत्यादि मुक्ति के साधन हैं ।

अन्याय और पक्षपात के त्याग को धर्म कहते हैं अर्थात् अधर्म से किसी चीज की चाहना न करे । देखो ! सब पाप अन्याय, अधर्म और पक्षपात से होता है । जैसे यह मौलवी साहब का बिस्तरा यदि अत्याचार और अन्याय से भी मुझको मिले तो मैं इसको लेकर सुख पाऊं । इसमें अपने सुख का पक्षपात किया और मौलवी साहब के सुख और दुःख का कुछ विचार नहीं किया । इसी प्रकार पक्षपात से सदा अधर्म होता है और उससे अपने काम को सिद्ध करना जो है, उसी को अनर्थ कहते हैं । धर्म और अर्थ से कामना करना अर्थात् अपने सुख की सिद्धि करना, इसको 'काम' कहते हैं । अधर्म अर्थात् अनर्थ से 'काम' को सिद्ध करना, इसको कुकाम कहते हैं । इसलिए इन तीनों अर्थात् धर्म, अर्थ और काम से पूर्वोक्त मोक्ष को सिद्ध करना चाहिये । इसमें यह बात है कि ईश्वर की आज्ञा का जो पालन करना है उसको धर्म कहते हैं और उसकी आज्ञा के तोड़ने को अधर्म कहते हैं । सो धर्मादि ही मुक्ति के साधन हैं, अन्य कोई नहीं । मुक्ति सत्य पुरुषार्थ से सिद्ध होती है, अन्यथा नहीं ।'

पादरी स्काट साहब—'पण्डित जी ने कहा है कि सब दुःखों से छूटने का नाम मुक्ति है और मैं कहता हूं कि सब पापों से बचने और स्वर्ग में पहुंचने का नाम मुक्ति है । कारण यह है कि ईश्वर ने आदम को पवित्र रचा था परन्तु शैतान ने उसको बहका कर उससे पाप करा दिया । इसलिए उसकी सब सन्तान भी पापी है । जैसे घड़ी बनाने वाले ने उसकी चाल स्वतन्त्र रखी है और वह स्वयं ही चलती है ऐसे ही मनुष्य भी अपनी इच्छा से पाप करते हैं; इसलिए अपनी इच्छा से मुक्ति नहीं पा सकते और न ही पापों से बच सकते हैं । इसलिए हजरत ईसा मसीह पर भरोसा किये बिना किसी की मुक्ति नहीं

हो सकती । जैसे हिन्दू लोग कहते हैं कि कलियुग मनुष्यों को पाप कराकर बिगाड़ता है इससे उनकी मुक्ति नहीं हो सकती, परन्तु ईसा मसीह जिस-जिस देश में गये अर्थात् उनकी शिक्षा जहां-जहां गई है वहां-वहां मनुष्य पापों से बच जाते हैं। देखो ! इस युग में ईसाइयों के अतिरिक्त और किसके मत में भलाई और अच्छे गुणों की बहुतायत है ? मैं एक उदाहरण देता हूं कि जैसे पंडित जी बलवान् हैं, ऐसे ही इंग्लिस्तान में एक मोटा ताजा मनुष्य था, परन्तु वह शराब पीता था और चोरी तथा व्यभिचार भी करता था परन्तु जब ईसा मसीह पर विश्वास लाया तब सब बुराइयों से छूट गया और मैंने भी जब ईसा मसीह पर विश्वास किया तब मुक्ति को पाया और बुरे कामों से बच गया । सो ईसामसीह की इच्छा के विरुद्ध आचरण से मुक्ति नहीं हो सकती । इसलिए ईसा मसीह पर विश्वास सबको लाना चाहिये । उसी से मुक्ति हो सकती है, और किसी प्रकार नहीं हो सकती ।'

मौलवी मुहम्मद कासिम साहब—'हम लोग यह नहीं कह सकते कि पण्डित जी ने जो-जो मुक्ति पाने के साधन वर्णन किये हैं, उनसे ही मुक्ति होती है; क्योंकि ईश्वर को अधिकार है, जिसको चाहे उसको क्षमा करे और जिसको न चाहे उसको न करे । जैसे समय का हाकिम जिस अपराधी पर प्रसन्न हो उसको छोड़ दे और जिस पर अप्रसन्न हो उसको कैद करे । उसको पूर्णाधिकार है, जो चाहे सो करे । उस पर वश नहीं है । न जाने ईश्वर क्या करेगा ? परन्तु समय के हाकिम पर भरोसा करना चाहिये । इस समय हाकिम हमारा पैगम्बर है, उस पर विश्वास लाने से मुक्ति होती है । हां ! यह बात अवश्य है कि विद्या से अच्छे काम हो सकते हैं परन्तु मुक्ति तो केवल उसी के हाथ में है ।'

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज—(पादरी साहब के उत्तर में) 'आपने जो यह कहा कि दुःखों से छूटना मुक्ति नहीं परन्तु पापों से छूटने का नाम मुक्ति है, सो मेरे अभिप्राय को न समझकर यह बात कही है । मैं तो प्रथम साधन में ही सब पापों से अर्थात् असत्य कर्मों से बचना कह चुका हूं । बुरे कर्मों का फल ही दुःख कहलाता है अर्थात् जब पाप करेगा तो दुःखों से नहीं बच सकता । इसके अतिरिक्त और साधनों में भी स्पष्ट कहा है कि असत्य और अधर्म को छोड़कर धर्म का आचरण करना मुक्ति का साधन है । यदि पादरी साहब इन बातों को समझते तो कदापि ऐसी बात न कहते । दूसरे वह जो यह कहते हैं कि ईश्वर ने आदम को पवित्र रचा था परन्तु शैतान ने बहका कर पाप कराया सो उसकी सन्तान भी इसी कारण से पापी हो गई, तो यह बात ठीक नहीं है । आप लोग ईश्वर को सर्वशक्तिमान् मानते ही हैं, सो जब ईश्वर के पवित्र बनाये आदम को शैतान ने बिगाड़ दिया और ईश्वर के राज्य में हस्तक्षेप करके ईश्वर की व्यवस्था को तोड़ डाला तो इससे ईश्वर सर्वशक्तिमान् नहीं रह सकता । ईश्वर की बनाई हुई चीज को कोई नहीं बिगाड़ सकता । एक आदम ने पाप किया तो उसकी सन्तान पापी हो गई ! यह बिलकुल बुद्धिविरुद्ध बात है । जो पाप करता है वही दुःख पाता है, दूसरा कोई नहीं पा सकता । ऐसी बात को कोई विद्वान् नहीं मानेगा । इसलिये आप जो कहते हैं कि आदम ने पाप किया और उसकी सारी सन्तान पापी हुई, यह बात भी ठीक नहीं । इसके अतिरिक्त एक आदम और हव्वा से भी किसी प्रकार इस जगत् की उत्पत्ति नहीं हो सकती और बहन और भाई का विवाह होना बड़े दोष की बात है । इसलिए ऐसी व्यवस्था माननी चाहिए कि सृष्टि के आदि में बहुत से स्त्री और पुरुष परमेश्वर ने उत्पन्न किये ।

जो यह कहा कि शैतान बहकाता है तो मेरा यह प्रश्न है कि जब शैतान ने सबको बहकाया तो शैतान को किसने बहकाया ? यदि यह कहो कि शैतान आप से आप ही बहक गया तो सब जीव भी आपसे आप ही बहक गये होंगे । फिर शैतान को बहकाने वाला मानना व्यर्थ है । यदि यह कहो कि शैतान को किसी ने बहकाया है तब तो ईश्वर के अतिरिक्त दूसरा कोई शैतान को बहकाने वाला नहीं हो सकता, तो फिर जब ईश्वर ने ही सबको बहकाया तब मुक्ति देनेवाला कोई भी आप लोगों के मत में न रहा और न मुक्ति पाने वाला । जब ईश्वर ही बहकाने वाला ठहरा तो बचाने वाला कोई भी नहीं

हो सकता । यह बात ईश्वर के स्वभाव से भी विरुद्ध है क्योंकि वह न्यायकारी और सत्य कर्मों का ही कर्त्ता है तथा अच्छे कामों में ही प्रसन्न होता है । वह किसी को दुःख देने वाला नहीं । फिर उसके राज्य में शैतान इतनी गड़बड़ करता है फिर भी ईश्वर उसको न दण्ड देता है, न कैद करता है । यह बात ठीक है तो इससे स्पष्ट ही ईश्वर की निर्बलता पाई जाती है और ऐसा प्रतीत होता है कि ईश्वर को ही बहकाने की इच्छा है । इसलिए यह बात ठीक नहीं और न शैतान कोई मनुष्य है । जब तक शैतान को मानने वाले शैतान को मानेंगे, तब तक पाप करने से नहीं बच सकते क्योंकि वह समझते हैं कि हम तो पापी हैं नहीं । जैसा शैतान ने आदम को और उसकी जोरू को बहका के पापी किया वैसा ही ईश्वर ने आदम की सन्तान के पाप के बदले में अपने इकलौते बेटे को सूली पर चढ़ा दिया । फिर हमको क्या भय है । यदि हमसे कुछ पाप भी होता है तो हमारा भरोसा ईसा मसीह पर है वह स्वयं क्षमा कर देगा क्योंकि उसने हमारे पापों के बदले में जान दी है । इसलिए ऐसी व्यवस्था मानने वाले पापों से नहीं बच सकते । पर जो घड़ी का दृष्टान्त दिया था सो ठीक है क्योंकि सब अपने-अपने काम में स्वतन्त्र हैं परन्तु ईश्वर की आज्ञा अच्छे कामों को करने के लिए है, बुरे कामों के लिए नहीं । आपने जो यह कहा कि स्वर्ग में पहुंचना मुक्ति है और शैतान के बहकाने के कारण मनुष्यों में शक्ति नहीं कि वह पापों से पवित्र रहकर मुक्ति पा सके, यह बात भी ठीक नहीं क्योंकि जब मनुष्य स्वतन्त्र है और शैतान कोई मनुष्य नहीं तो स्वयं दोषों से बचकर ईश्वर की कृपा से मुक्ति पा सकते हैं । आदम गेहूं खाने के कारण स्वर्ग से निकाला गया और यही आदम का पाप हुआ कि गेहूं खाया तो आपसे पूछता हूं कि आदम ने तो गेहूं खाया और पापी हो गया और स्वर्ग से निकाला गया, और आप लोग जो उस स्वर्ग की इच्छा करते हैं तो क्या आप वहां सब चीज खावेंगे और सब प्रकार आनन्द करेंगे ? यदि ऐसा हुआ तो फिर क्या पाप नहीं होगा और वहां से निकाले नहीं जाओगे ? इससे यह बात भी ठीक नहीं हो सकती । आप लोगों ने ईश्वर को मनुष्य-शासक के समान माना होगा और यह ठहराया होगा कि वह सर्वज्ञ नहीं तभी तो उसके यहां साक्षी और वकील की आवश्यकता बतलाते हो, परन्तु आपके ऐसा कहने से ईश्वर की ईश्वरता सब बिगड़ जाती है । वह स्वयं सब कुछ जानता है, उसको साक्षी या वकील की कुछ आवश्यकता नहीं और वह किसी की सिफारिश की आवश्यकता भी नहीं रखता क्योंकि सिफारिश न जानने वाले से की जाती है । फिर अब देखिये कि आपके कथन से ईश्वर पराधीन ठहरता है क्योंकि बिना ईसा मसीह की साक्षी या सिफारिश के वह किसी को मुक्ति नहीं दे सकता और कुछ भी नहीं जानता । इसलिए आपके कथनानुसार अल्पज्ञता ही ईश्वर में सिद्ध होती है जिससे वह सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ किसी प्रकार नहीं हो सकता । जब वह न्यायकारी है तो किसी की सिफारिश या खुशामद से वह न्याय के विरुद्ध कभी नहीं कर सकता । यदि विरुद्ध करता है तो न्यायकारी नहीं ठहर सकता । यदि आप मनुष्य-शासक की भांति ईश्वर के दरबार में भी फरिश्तों का उपस्थित रहना मानोगे तो बहुत से दोष ईश्वर में आवेंगे और इस बात से ईश्वर सर्वव्यापक नहीं रह सकता क्योंकि यदि सर्वव्यापक है तो शरीर वाला न होना चाहिए और जो सर्वव्यापक नहीं है तो आवश्यक है कि शरीर वाला हो । शरीर वाला होने की दशा में उसकी शक्ति सब को घेरने वाली नहीं हो सकती । शरीर वाला दूर की चीज का ज्ञान रखता है परन्तु वह उसको पकड़ नहीं सकता, मार नहीं सकता इत्यादि । जो शरीर वाला होगा वह उत्पन्न होने और मरने वाला भी होगा । इसलिए ईश्वर किसी स्थान पर है और फरिश्ते उसका काम करते हैं, ऐसी व्यवस्था का मानना किसी प्रकार ठीक नहीं हो सकता । इससे ईश्वर सीमा वाला हो जायेगा ।

देखो ! हम आर्य लोगों के शास्त्रों को यथावत् न पढ़ने के कारण लोगों को उलटा निश्चय हो जाता है, अर्थात् कुछ का कुछ मान लिया जाता है । जो पादरी साहब ने कलियुग के बारे में कहा सो ठीक नहीं, क्योंकि हम आर्य लोग युगों की व्यवस्था इस प्रकार से नहीं मानते । इसमें ऐतरेय ब्राह्मण का प्रमाण है—

कलिश्शयानो भवति सञ्जिहानस्तु द्वापरः । उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन् ।।

ऐत० पञ्चिका ७, कण्डिका १५

अर्थात् जो मनुष्य सर्वथा पाप करता है और नाममात्र धर्म करता है उसको कलियुग कहते हैं । जो आधा धर्म है उसको द्वापर कहते हैं और यदि तीन हिस्से धर्म करे और एक हिस्सा पाप करे तो उसका नाम त्रेता है । यदि कोई सम्पूर्ण धर्म करता है और कुछ अधर्म नहीं करता तो उस मनुष्य का नाम सतयुग है ।' यह ऐतरेय ब्राह्मण का लेख है सो उसके जाने बिना कोई बात कह देनी कभी ठीक नहीं हो सकती । जो कोई बुरा काम करता है वह दुःख पाने से कभी नहीं बच सकता और जो कोई अच्छे काम करता है वह दुःख पाने से बच जाता है, चाहे वह आर्यावर्त का रहने वाला हो या और किसी देश का रहने वाला ।

ईश्वर अपने काम में किसी से सहायता नहीं चाहता—ईसा मसीह के बिना ही क्या ईश्वर अपनी सामर्थ्य से किसी को नहीं बचा सकता ? उसको किसी पैगम्बर पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं है । हां ! यह बात सच है कि जिस देश में शिक्षा देने वाले धर्मात्मा उत्तम पुरुष होते हैं, उस देश के मनुष्य पापों से बच जाते हैं और उन्हीं देशों में सुख और गुणों की वृद्धि होती है । यह ही सब लोगों के सुधार का कारण है, कुछ मत के ऊपर अवलम्बित नहीं है आर्य लोग सदा से सुधरे हुए चले आते हैं । इस समय के सनातन मत में कोई दोष नहीं आ सकता, क्योंकि सृष्टि की उत्पत्ति के समय से लेकर आज तक आर्यों का ही मत चला आता है । वह अब तक कुछ नहीं बिगड़ा ।

यह बात विचारने योग्य है जैसे अठारह सौ या तेरह सौ वर्षों के भीतर ईसाइयों और मुसलमानों के मतों में आपस में विरोध से अनेक फिरके (पंथ) हो गये, यदि उनकी तुलना में एक अरब, छियानवे करोड़, आठ लाख, बावन हजार नौ सौ छिहत्तर वर्षों वाले आर्यों के धर्म के बिगाड़ का मुकाबला किया जावे तो आपलोगों के मत से वह बहुत ही कम हुआ है । आप लोगों में जितना सुधार है सो मत के कारण से नहीं किन्तु पार्लियामेण्ट आदि के उत्तम प्रबन्ध के प्रचार से है । यदि ये प्रबन्ध न हों तो आपके मत में कुछ भी सुधार न रहे । पादरी साहब ने जो इंग्लिस्तान के दुष्ट मनुष्य का दृष्टांत मेरे साथ मिलाकर दिया सो उनकी यह वर्णन शैली उनके योग्य न थी, पर न जाने किस प्रकार से उनके मुख से यह बात भूल से निकली ।'

स्वामी जी (मौलवी साहब के उत्तर में)—'ईश्वर चाहे सो करे, ऐसा कहना ठीक नहीं, क्योंकि वह पूर्ण विद्यास्वरूप और सदा ठीक-ठीक न्याय पर रहता है, किसी का पक्षपात नहीं करता । यह कहना कि जो चाहे सो करे इससे यह भी निकलता है कि ईश्वर ही बुराई भी करता होगा और उसी की इच्छा से बुराई होती है, यह कहना ईश्वर में नहीं बनता । जो कोई भी व्यक्ति मुक्ति के (योग्य) काम करता है, वह उसी को मुक्ति देता है, दूसरे को नहीं देता क्योंकि वह अन्याय कभी नहीं करता । और यदि बिना पाप या पुण्य के किये जिसको चाहे दुःख देवे जिसको चाहे सुख देवे तो ईश्वर में प्रमाद और अन्याय आदि उसके दोष आते हैं, सो वह कभी ऐसा काम नहीं करता । जैसे अग्नि का स्वभाव प्रकाश और जलाने का है, उससे विरुद्ध वह नहीं कर सकती, ऐसे ही ईश्वर भी अपने न्याय के स्वभाव से विरुद्ध पक्षपात से कोई व्यवस्था नहीं करता । प्रत्येक समय का हाकिम मुक्ति के लिए परमेश्वर ही है, दूसरा कोई नहीं है । जो कोई दूसरे को हाकिम माने तो उसका मानना वृथा है । मुक्ति दूसरे के ऊपर विश्वास करने से कभी नहीं हो सकती, क्योंकि ईश्वर यदि मुक्ति देने में दूसरे के अधीन है तो वह ईश्वर ही नहीं हो सकता । ईश्वर अपने काम में किसी की सहायता इसलिए नहीं लेता कि वह सर्वशक्तिमान् है, और मैं जानता हूं कि सब बुद्धिमान् लोग ऐसा ही मानते हैं । यदि मजहबी पक्षपात करके प्रकट रूप से न कहते हों , दूसरी बात है ।'

परन्तु इसका मुझको बड़ा शोक है कि ईश्वर को लाशरीक (किसी की सहायता की अपेक्षा न रखने वाला) मानते हैं और फिर पैगम्बरों को मुक्ति देने में ईश्वर के साथ शरीक (सम्मिलित या सहायक) भी करते हैं, यह बात कोई बुद्धिमान्

नहीं मानेगा । इससे यह सिद्ध होता है कि परमेश्वर मुक्ति के योग्य काम करने पर धर्मात्मा मनुष्यों को मुक्ति स्वतन्त्रता से दे सकता है; इस बात में किसी की सहायता की अपेक्षा नहीं रखता । सहायता की अपेक्षा मनुष्यों को ही परस्पर होती है, ईश्वर को नहीं । न वह खुशामदी है जो खुशामद से अन्याय करे । वह तो अपने सच्चे न्याय से सदा युक्त रहता है और अपने सच्चे प्रेम से युक्त भक्तों को यथावत् मुक्ति देकर सब दु:खों से बचाकर सदा के लिए आनन्द में रखता है; इसमें कुछ सन्देह नहीं ।'

अन्त में गड़बड़ मच गयी—इतने में चार बज गये । स्वामी जी ने कहा कि हमारा व्याख्यान अभी शेष है परन्तु मौलवी लोगों ने कहा कि हम लोगों के नमाज पढ़ने का समय हो गया । पादरी स्काट साहब ने स्वामी जी से कहा कि हमको आपसे एकान्त में कुछ बातचीत करनी है सो वह दोनों एक ओर चले गये । इसी समय एक मौलवी साहब ने, जिस मेज पर बाइबिल, कुरान और वेदों की पुस्तकें रखी थीं, उसके पास की मेज पर जूता पहने हुए खड़े होकर अपना उपदेश करना आरम्भ किया । ऐसे ही उससे दूसरी ओर पादरी साहब और ईसाई महोदय अपने मत का वर्णन करने लगे । कितने ही लोगों ने वहां यह प्रसिद्ध कर दिया कि मेला समाप्त हो गया है । तब स्वामी जी ने पादरी लोगों और आर्य लोगों से पूछा कि यह क्या गड़बड़ हो रही है, मौलवी लोग नमाज पढ़कर आये या नहीं ? तब उन्होंने कहा कि मेला समाप्त हो गया । इस पर स्वामी जी बोले कि ऐसे झटपट किसने समाप्त कर दिया, न किसी की सम्मति ली गई न किसी से पूछा गया, अपनी ही इच्छा से मेला पूरा कर दिया । अब आगे कुछ बातचीत होगी या नहीं ? पादरी साहब ने कहा कि हम नहीं जानते कि किसने किया परन्तु सब लोग हमसे यही कहते हैं कि मेला समाप्त हो गया । जब वहां इस प्रकार का बहुत कोलाहल देखा और मेले में संवाद करने की कोई व्यवस्था दिखाई न दी तब लोगों से स्वामी जी ने कहा कि हमारी इच्छा तो यह थी कि कम से कम पांच दिन तक, और अधिक से अधिक आठ दिन तक, मेला रहता । इसके उत्तर में पादरी साहब ने कहा कि दो दिन से अधिक हम लोग नहीं रह सकते । इसी गड़बड़ में एक ईसाई सज्जन की दो पुस्तकें किसी ने चुरा लीं । स्वामी जी ने अपने डेरे पर आकर धर्मसंवाद आरम्भ कर दिया और सब आर्य लोग स्वामी जी के डेरे पर आकर धर्मसंवाद सुनने लगे ।

आवागमन तथा पुनर्जन्म के प्रमाण

पादरी स्काट से स्वामी जी के डेरे पर संवाद—उसी दिन अर्थात् २० मार्च को शाम के समय मौलवी लोग और पादरी लोग वहां से चल पड़े और पादरी स्काट साहब, दो अन्य पादरियों सहित २० मार्च की रात को स्वामी जी के डेरे पर पधारे । स्वामी ने सायबान के नीचे कुर्सियां बिछवा कर बड़े आदर से उनको बिठलाया और आप भी बैठ गये । फिर आपस में बातचीत होने लगी । पादरी लोगों ने पूछा कि आवागमन सच्चा है या झूठा और इसका क्या प्रमाण है ? स्वामी जी ने कहा कि आवागमन सच्चा है और जैसे कर्म करता है वैसा ही शरीर पाता है । यदि अच्छे कर्म करता है तो मनुष्य का शरीर पाता है और बुरे कर्म करने से पशु आदि का शरीर होता है और जो सब से उत्तम कर्म करता है वह देव अर्थात् विद्वान् और बुद्धिमान् होता है ।

देखो ! जब बच्चा उत्पन्न होता है तो उसी समय अपनी मां का दूध पीने लगता है, कारण यह है कि उसको पूर्वजन्म का अभ्यास बना रहता है । यह भी आवागमन का एक प्रमाण है । धनवान्, निर्धन, भांति-भांति के पद और सुख-दु:ख देने से प्रकट होता है कि यह कर्मों का फल है । कर्म से देह और देह से आवागमन सिद्ध है । जीव अनादि है कि जिसका आदि और अन्त नहीं और जिस देह से जीव जन्म लेता है उस देह का कुछ स्वभाव बना रहता है । यही कारण है कि मनुष्य आदि भिन्न-भिन्न स्वभाव के होते हैं । यह बात भी आवागमन को सिद्ध करती है । इसके अतिरिक्त और बहुत से प्रमाण भी आवागमन के हैं, परन्तु एक बार ही जीव का उत्पन्न होना और फिर कभी न होना, इसका कोई प्रमाण नहीं हो सकता, क्योंकि

जो मैंने कहा उसके विरुद्ध होना चाहिये परन्तु ऐसा होना असम्भव है और फिर यह बात कि मरा और हवालात हुई अर्थात् जब कयामत होगी तब उसका हिसाब-किताब होगा, तब तक बिचारा हवालात में रहेगा, ऐसी व्यवस्था मानना अच्छा नहीं। तत्पश्चात् पादरी लोग चले गये। मुंशी इन्द्रमणि जी ने स्वामी जी से कहा कि 'मैंने एक पुस्तक 'आमदे हिन्द' जिसका नाम 'इन्द्रवज्र' भी है, मौलवी मुहम्मद अली साहब तहसीलदार बिलारी की पुस्तक के उत्तर में लिखी है और वह शीघ्र ही प्रकाशित होगी। उसमें बहुत अच्छी प्रकार से आवागमन को सिद्ध किया है।'

२० मार्च की रात्रि को पादरी साहब ने वहीं विश्राम किया और २१ मार्च की प्रातः वहां से चल पड़े। २१ मार्च को मुंशी इन्द्रमणि जी के नाम एक पत्र मौलवी मुहम्मद ताहिर उर्फ मोती मियां, रईस शाहजहांपुर, का इस प्रार्थना के साथ आया कि यदि आप और स्वामी जी यहां पधारें तो मौलवी अहमद अली साहब आपसे शास्त्रार्थ किया चाहते हैं; जिसका उत्तर मुंशी जी ने यह लिखा कि यदि सार्वजनिक सभा में यह शास्त्रार्थ होगा तो सुनने वालों को आनन्द प्राप्त होगा। यदि आप मौलवी लोग चांदापुर में आ जावें तो सबसे अच्छा है, क्योंकि यहां सब धार्मिक पुस्तकें विद्यमान हैं। जो मौलवी साहब ने लिखा है उसका प्रमाण मौलवी साहब देवें और जो मैंने लिखा है उसका प्रमाण मैं दूं। २२ मार्च को फिर एक पत्र आया कि आप और स्वामी जी यहां पधारें, मौलवी लोग आपसे आवागमन पर शास्त्रार्थ किया चाहते हैं। इसका उत्तर मुंशी जी ने लिखा कि हम आज दोपहर पश्चात् शाहजहांपुर पहुंच जायेंगे, परन्तु डिप्टी साहब के मकान पर हमारा और मौलवी लोगों का शास्त्रार्थ होना चाहिये। जो मैंने लिखा है उस पर मुझसे और जो उन्होंने लिखा है उस पर उनसे शास्त्रार्थ हो जाये। फिर इसी तिथि पर मुंशी जी और स्वामी जी और कई एक रईस जो स्वामी जी और मुंशी जी के साथ कई नगरों से मेला देखने आये थे, मिलकर शाहजहांपुर को चल पड़े और २३ मार्च को दो बजे तक खजान्वी जी की कोठी में विराजमान रह कर, रेल पर सवार होकर अपने-अपने स्थानों को चले गये।

परिच्छेद द्वितीय

पंजाब की यात्रा

लुधियाना नगर में धर्मोपदेश (२१ मार्च[१], सन् १८७७ से १९ अप्रैल, सन् १८७७ तक)

चांदापुर के शास्त्रार्थ के पश्चात् स्वामी जी सीधे लुधियाना आये और मुंशी कन्हैयालाल साहब अलखधारी के द्वारा नगर से बाहर एक मील की दूरी पर स्थित ला० बंसीधर वैश्य के बाग में, जो अब ला० रामजीदास रईस, लुधियाना के पास है, ठहरे। दस बारह मनुष्य साथ थे और जो पण्डित उनके साथ थे, उनसे स्वामी जी वेदभाष्य की प्रतिलिपि कराया करते थे।

स्वामी जी ३१ मार्च, १८७७ को लुधियाना पहुंचे और १ अप्रैल, सन् १८७७ रविवार, तदनुसार वैशाख बदि २, संवत् १९३४ को मुंशी जटमल साहब खजांची के मकान में व्याख्यान दिया। उसके पश्चात् भी बहुत से व्याख्यान हुए। हजारों मनुष्य उनके व्याख्यान सुनने को एकत्रित हुआ करते थे। उस सप्ताह का 'नूर अफशां[२] नामक समाचार-पत्र लिखता है—'पण्डित दयानन्द सरस्वती स्वामी, जो भारत के प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् हैं और स्थान-स्थान पर उपदेश करते फिरते हैं, इस सप्ताह यहां पधारे हुए हैं, और ला० जटमल खजांची के मकान पर प्रतिदिन उपदेश करते हैं। जिससे विदित होता है कि उक्त पण्डित जी हिन्दुओं की वर्तमान प्रचलित रीतियों का सुधार करने पर उद्यत हैं और चाहते हैं कि एक परमेश्वर के अतिरिक्त और किसी की उपासना और पूजा-पाठ आदि न किया जाये। केवल एक ही सृष्टिकर्ता माना जाये और जितने

हिन्दू अब मूर्तिपूजा में संलग्न हैं वे उसको छोड़ दें और शिष्ट प्रथाओं पर चलें जैसा कि पहले आर्य लोग चलते थे । हमें विश्वास है कि उनके उपदेश से हिन्दुओं को बहुत से लाभ पहुंचेंगे ।' 'नूर अफशां' ५ अप्रैल, सन् १८७७, खंड ५, संख्या १४, पृष्ठ २११ ।

फिर दूसरे सप्ताह के 'नूर अफशां' में लिखा है—'९ अप्रैल, सन् १८७७ को ला० जटमल साहब के मकान पर ५ बजे शाम से ८ बजे तक पण्डित दयानन्द सरस्वती जी ने उपदेश किया और दो-तीन बन्धुओं के साथ प्रश्नोत्तर हुए' (१२ अप्रैल, सन् १८७७; खंड ५, संख्या १५, पृष्ठ २२०) ।

सभी मतवादी वे बातें करते हैं जिन्हें बुद्धि स्वीकार नहीं कर सकती—ला० रामजीदास जी खजांची सुपुत्र जटमल महोदय ने वर्णन किया, 'एक दिन पादरी वेरी साहब, मिस्टर कारस्टीफन साहब बहादुर जूडीशियल असिस्टैण्ट कमिश्नर के साथ पधारे और स्वामी जी से कृष्ण जी के विषय में शंका की और कहा कि कृष्ण जी के ऐसे कामों के साथ उनका महात्मा होना बुद्धि स्वीकार नहीं करती । स्वामी जी ने कहा कि यह जो आरोप लगाये जाते हैं यह तो ठीक नहीं हैं। उन्होंने ऐसा कोई काम नहीं किया । परन्तु बुद्धि द्वारा स्वीकार के विषय में तो क्या कहूं । जब बुद्धि यह स्वीकार कर लेती है कि ईश्वर की आत्मा कबूतर के रूप में एक मनुष्य पर उतरी[३] तो इसके स्वीकार करने में कुछ अधिक कठिनाई नहीं होनी चाहिए ।'

संस्कृत के स्थान पर भाषा में वार्तालाप हो तो सब को लाभ होगा—'एक पंडित ने भी संस्कृत में कुछ बात की । स्वामी जी ने प्रथम उसका संस्कृत में उत्तर देकर कहा कि तुमको मेरे इस उत्तर से ही विदित हो गया होगा कि मैं संस्कृत बोल सकता हूं परन्तु अधिक लाभकारी यह है कि भाषा में बातचीत हो ताकि और लोग भी भली प्रकार समझें । इस दिन स्वामी जी ने मेज कुर्सी लगा कर व्याख्यान दिया था ।

दूसरे दिन स्वामी जी ने तख्त पर बैठकर व्याख्यान दिया । उस दिन एक पण्डित ने अपने साथी को कहा था कि 'दुष्ट है । इसका मुख देखना धर्म नहीं, चलो !' तब स्वामी जी ने कहा कि मेरे मुख में तो कोई विशेष बात नहीं है कि जिसको तुम देखो ! यदि घृणा है तो मेरे पीछे खड़े हो जाओ, मेरी केवल बात सुनो ।

श्री लखपत राय, ब्राह्मण सारस्वत, लुधियाना निवासी ने वर्णन किया 'मैं सहारनपुर में पादरियों के पास नौकर था और रात को कन्हैयालाल वैश्य के शिवालय के निचले मकान में रहा करता था । इन्हीं दिनों में स्वामी जी उस शिवालय के ऊपरी भाग में आकर विराजमान हुए । वहां जब-तक उनके व्याख्यान होते रहे मैं सुनता रहा । यह वर्णन मई सन् १८७७ का है ।[४] जर्मन पादरी काल्डरोड साहब मुझे ईसाई होने के लिए तंग किया करते थे इसी कारण से मैं नौकरी छोड़कर यहां चला आया । मेरे आने से सम्भवत: एक सप्ताह पहले स्वामी जी लुधियाना में पधारे थे । मैं यहां भी जब तक वह रहे, नित्य व्याख्यान सुनने जाया करता था । मास्टर खैरुद्दीन, जो अब रोपड़ गवर्नमेण्ट स्कूल में नौकर हैं, स्वामी जी के डेरे पर जाया करते थे । पादरी वेरी साहब ने इंजील भी भेजी थी ।'

अन्तिम दिन कन्हैयालाल अलखधारी और स्वामी जी बग्घी में बैठकर स्टीफन साहब[५] जज की कोठी में गये क्योंकि उन्होंने कह रखा था कि आप मुझसे अवश्य मिलकर जाइये । लोग स्टेशन पर सामान ले गये । वहां स्टीफन साहब ने लिफाफे में बन्द करके कुछ रुपये दिये ।

ला० रामदयाल पुरी ने वर्णन किया कि स्वामी जी प्रथम सात दिन तक उपदेश देते रहे और आरम्भ में कह दिया था कि सात दिन मेरे व्याख्यान सुनो, बीच में कुछ मत बोलो । आठवें दिन व्याख्यान नहीं दिया, प्रत्युत उसी स्थान पर आकर

सबको शास्त्रार्थ के लिए चुनौती दी, परन्तु किसी ने विशेष रूप से प्रश्न नहीं किया । हां, पादरी वेरी साहब नित्य आते और अपने सन्देह निवृत्त करते रहे ।

लुधियाना में दूसरी बार कोई व्याख्यान नहीं दिया—जब अमृतसर और जालन्धर से १३ जुलाई, सन् १८७८ को लौटकर आये तो फिर उसी बाग में उतरे । अन्य लोग उनके दर्शनों को जाया करते थे । ३-४ दिन रहे परन्तु कोई व्याख्यान नहीं दिया । प्रायः मुसलमान आदि भी जाया करते थे ।

श्री लखपतराय ने अपने दूसरे वक्तव्य में कहा कि 'सहारनपुर में जब स्वामी जी शिवालय में ठहरे हुए थे तो एक दिन ला० कन्हैयालाल वैश्य की धर्मपत्नी श्रीमती मंगला वहां आई । स्वामी जी ने, जैसा कि उनका स्वभाव था कि स्त्रियों से बात नहीं करते थे, उस ओर ध्यान न दिया । इस पर वह कुपित हो गई और मुझको कहा कि उनको कह दो कि वह यहां से चले जावें । यह सुनकर स्वामी जी फिर नहर के तट पर स्थित एक पंचायती मकान में जाकर रहे और चित्रगुप्त के मन्दिर में जाकर व्याख्यान दिया । वहां भी मूर्तिपूजा का खंडन करने के कारण एक वैरागी गालियां देता था । उन्होंने कुछ चिन्ता न की और निर्भय होकर अपना काम करते रहे ।'

'नूर अफशां' में अन्तिम दिन के विषय में लिखा है—'सुना जाता है कि यहां के कुछ मुसलमानों ने पण्डित दयानन्द सरस्वती जी से शास्त्रार्थ की प्रार्थना की थी, परन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं की । कदाचित् मुसलमानों के सिद्धान्तों से परिचित न होने के कारण अथवा भाषा न समझने के कारण स्वीकार नहीं की । पंडित जी को उचित है कि मुसलमानों और ईसाइयों के सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त करें क्योंकि जो कोई अपने आपको नैतिक धर्म का पथप्रदर्शक बतावे, उसको चाहिए कि दोनों की उपेक्षा न करे । (**'नूर अफशां'** १९ अप्रैल, सन् १८७७; खंड ५, संख्या १६, पृष्ठ २२८) ।

लाहौर के 'बिरादरे हिन्द' में लिखा है कि स्वामी जी १९ अप्रैल, सन् १८७७ को लुधियाने से चलकर उसी दिन शाम को लाहौर पहुंचे ।

पंडित भीमसेन जी ने वर्णन किया—'सहारनपुर से चलकर स्वामी जी लुधियाना उतरे । मुंशी कन्हैयालाल जी अलखधारी ने ठहराया । वहां एक अंग्रेज जज साहब उनके पास आया करते थे और वे वेदभाष्य के ग्राहक हुए थे । लुधियाना में स्वामी जी १४-१५ दिन रहे और उस समय वहां विरेचन भी लिया था । वहां श्रद्धाराम फिल्लौरी[६] ने कुछ हल्ला किया था परन्तु वह फिर लाहौर चला गया । वहां से चलकर लाहौर में आकर रतनचन्द दाढ़ी वाले के बगीचे में ठहरे ।

ब्राह्मण ईसाई होने से बचा-बनत निवासी पंडित रामशरण गौड़ ने वर्णन किया—'मैं संवत् १९३४ के दिन अलवर से दिल्ली की ओर आ रहा था । मार्ग में एक स्थान पर चोरों ने सोते हुए मेरे कपड़े उठा लिए; केवल एक धोती मेरे पास रह गई थी । वहां से मैं दिल्ली आया । उस समय घंटाघर के समीप पादरी न्यूटन साहब उपदेश कर रहे थे, उन्होंने दुर्गापाठ[७] का एक श्लोक पढ़ा । चूंकि उन्होंने अशुद्ध पढ़ा था, मैंने उनकी अशुद्धि पकड़ी । उन्होंने मुझसे पूछा कि तुम कौन हो ? मैंने उन्हें सारा वृत्तान्त सुनाया । पादरी साहब ने कहा कि तुम नौकरी करना चाहते हो ? मैंने स्वीकार किया । वह मुझ को वहां से लुधियाना अपने साथ ले गये और मैंने उनसे दो रुपये लेकर कपड़े बनवाये । लुधियाना पहुंचकर मुझ को मिशन स्कूल में ५ रुपये मासिक वेतन पर ईसाइयों की लड़कियों को नागरी पढ़ाने के काम पर नियत किया । मैं छः मास तक वहां नौकर रहा । इसी समय में चारों सज्जन अर्थात् वेरी साहब, पादरी रोड एफ साहब, पादरी कालसी साहब और पादरी न्यूटन साहब मुझ को ईसाई मत की प्रेरणा देते रहे । यहां तक कि मैंने वहां एक दिन ईसाई मत के मंडन पर गिरजा में कुछ उपदेश भी दिया । मेरा मन पूर्णतया ईसाई मत की ओर हो गया था और हिन्दूधर्म की भ्रांतियां मेरे हृदय पर अंकित हो गई थीं ।

वेरी साहब लाहौर की ओर दौरे पर गये हुए थे, चार-पांच दिन में आने वाले थे और उनके आने पर मेरे बपतिस्मा लेने का दिन नियत था। मैं ईसाई होने पर उद्यत हो गया था।

इतने में महाराज स्वामी दयानन्द सरस्वती जी लुधियाना पधारे।[८] दो दिन व्याख्यान हो चुकने के पश्चात् तीसरे दिन वहां के बनियों के कहने से मैं भी व्याख्यान सुनने गया। मेरे सामने लोगों ने स्वामी जी से निवेदन किया कि इसको ईसाई क्रिस्तान बना रहे हैं। यह वैश्यों का विद्वान् ब्राह्मण है, इसको आप बचावें। स्वामी जी ने उपदेश दिया और वहां से मेरी नौकरी छुड़ाई परन्तु ईसाइयों ने मेरी ३ रु० मूल्य की पुस्तकें वहीं रोक लीं। स्वामी जी उसके पश्चात् ८-९ दिन वहां रहे। उस समय स्वामी जी के साथ तीन मनुष्य अन्य थे।

भूत के खंडन में तमाशा दिखाया—'फिर मैं उनके साथ लाहौर आदि की ओर गया, और फिर उनसे आज्ञा लेकर अपने घर चला आया। मेरे विचार में, उन का तेज अनुपम था। यहां की बात है कि एक बार स्वामी जी ने भूत के खंडन पर एक तमाशा दिखलाया। जिस मकान में हम (ठहरे हुए) थे, उसके तीन दर थे। उसके दोनों ओर के आलों में एक-एक दीपक जलाकर रख दिया और फिर कहा उस दीपक को बुझा दो। उसके दोनों ओर के आलों में एक-एक दीपक जलाकर रख दिया और फिर कहा उस दीपक को बुझा दो। जब बुझा दिया तो कहा कि जाओ, दूसरे को भी बुझा दो। जब दूसरा बुझाया तो वह पहला जल उठा और जब उसको बुझाया तो वह दूसरा जल उठा। दोनों दीपकों में १०-१२ गज का अन्तर था। यह खेल उन्होंने कई बार किया और ऐसा ही होता रहा। हम नहीं समझे कि क्या बात है। फिर बतलाया कि यह विद्या की बात है, जादू और भूत कोई नहीं। यहां किसी पुरुष की स्त्री को भूत था। उस पुरुष को यह बतलाया था कि यह भूत नहीं, केवल रोग अथवा धूर्तता करने की घटना है।

लाहौर नगर में हुई घटनाओं का विस्तृत विवरण[९]

ला० मदनसिंह बी० ए०, ला० जीवनदास और ला० सांईदास द्वारा संकलित वार्षिक विवरण से उद्धृत-आर्यजाति की भूत तथा वर्तमान दशा का वर्णन

देश की दशा का सिंहावलोकन—इतिहास के अध्ययन से प्रकट होता है कि किसी जाति की दशा समान नहीं रहती। कभी उन्नति तो कभी पतन। कुछ जातियां तो जैसा कि प्राचीन काल के इतिहास से विदित होता है, संसार से लुप्त ही हो गईं और कुछ सभ्यता तथा योग्यता के उच्चतम शिखर से गिरकर पतन तथा अविद्या की दिशा को प्राप्त हो गईं। इनके विपरीत बहुत सी जातियां, जो पहले जंगली और निन्दनीय अवस्था में थीं अब उच्च कोटि की सभ्य और ज्ञान सम्पन्न हो गई हैं।

"यह हिन्दू जाति जो कभी आर्य अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषों की जाति थी, वर्तमान काल में अत्यन्त पतन की अवस्था में पहुंच चुकी है। जाति की दशा जैसी-जैसी होती है धर्म का रूप भी वैसा ही वैसा होता जाता है। जैसे-जैसे यह जाति गिरती गई वैसे-वैसे धर्म का भी ह्रास होता गया। यहां तक कि, ईश्वर के विषय में जो ऊंचे और शुद्ध विचार वेदों में विद्यमान हैं, उनको भी लोग भूल गये और परमात्मा को भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट करके पाषाण आदि से मूर्ति बना कर पूजने लगे। वह ऊंचे और पवित्र विचार जो सदाचार के विषय में वेदों, उपनिषदों और धर्मशास्त्रों में भरे हुए हैं, पूर्णतया भुला दिये और उनके स्थान पर भिन्न-भिन्न प्रकार के कुमार्ग और पन्थ जैसे कि 'वाममार्ग' और 'कूंडापंथ' जिनमें असभ्यता और दुराचार को धर्म के रूप में प्रकट किया गया है, प्रचलित हो गये। अविद्या इतनी बढ़ गई कि एक सर्वशक्तिमान् परमात्मा की प्रार्थना

करने के स्थान पर हजारों भूत, प्रेत, शीतला, मसानी, जिन्न, पीर, कब्र आदि की पूजा करने और उनसे वरदान मांगने लगे। उस जाति, जिसकी प्रत्येक स्त्री शि[illegible]ा होती थी, अब इस दशा को प्राप्त हो गई कि इसकी स्त्रियां पूर्णतया पथभ्रष्टता और अविद्या के गर्त में गिरकर विद्याप्राप्ति को दोषपूर्ण और अशुभ समझने लगी। यह जाति, जो एक समय समस्त संसार में अपना तेज और सम्मान रखती थी, सबसे अधिक गिर गई। यह जाति जिसमें बड़े-बड़े प्रतापी, पुरुषार्थी और तेजस्वी पुरुष जन्म लेते थे, आज ऐसी निर्बल हो गई है कि किसी बड़े काम के योग्य ही न रही। जो लोग परोपकार करना अपना मुख्य धर्म समझते थे, उनकी यह दशा हो गई कि पेट भरना, गुलछर्रे उड़ाना और आनन्द मनाना ही सबको अच्छा प्रतीत होने लगा। वे लोग, जो समुद्रों को पार करके और देश-देश में भ्रमण करके अपने व्यापार द्वारा अपने देश को मालामाल करते थे, अब जहाज में बैठने को धर्म के विरुद्ध समझने लगे। बाल्यावस्था के विवाह ने सन्तान को इतना निर्बल किया कि जैसे वीर, शक्तिशाली और साहसी लोग प्राचीन काल में होते थे, अब वैसे बहुत ही कम दिखाई देने लगे। दूसरी जातियों और मतों ने इस मृत और निर्बल जाति की यह दशा देखकर उस पर अपना हाथ बढ़ाना आरम्भ किया और करोड़ों और लाखों को सरलतापूर्वक अपनी ओर कर लिया। संस्कृत विद्या का शनैः शनैः इतना ह्रास हुआ कि ब्राह्मणों में गिनती के विद्वान् रह गये। जब संस्कृत की शिक्षा इतनी कम हो गई तो फिर वेदों को तो भला कौन पढ़ता? यदि समस्त भारत में भी खोजो तो पूरा-पूरा वेद जानने वाला कोई भी न मिल सकेगा। जब धर्म के मूलपुस्तक से अनभिज्ञता जाति में इतनी हो गई तो फिर क्या ठिकाना है? जो जिसके जी में आया वही धर्म बन गया और जो जिसने चाहा अपने स्वार्थ के लिए वही सिखलाया और अपना पेट भरा। जब भिन्न-भिन्न प्रकार के मत और पन्थ जारी हो गये तो संगठन की जड़ कट गई। वैरागी, संन्यासी के साथ लड़ता था और संन्यासी, उदासी के साथ। प्रत्येक पन्थ का गुरु और शक्तिशाली राजा परमेश्वर का अवतार माना जाने लगा। देश जब इस अवस्था में था तो अंग्रेजी शिक्षा आरम्भ हुई। इसके द्वारा लोगों को कुछ-कुछ समझ आने लगी परन्तु चूंकि धार्मिक शिक्षा से यह जाति फिर भी वंचित ही रही इसलिए देश की धार्मिक अवस्था और भी बिगड़ गई। अपने पूर्वजों और ऋषि मुनियों की महत्ता को न समझकर अंग्रेजी-शिक्षा-प्राप्त लोग उनको भी घृणा की दृष्टि से देखने लगे और मद्यपान का चलन होने लगा। कारण कि अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त लोग अपने सच्चे और दार्शनिक धर्म से अपरिचित थे, इसलिए उनमें से बहुत से ईसाई हो गये और शेष दिन प्रतिदिन होते चले जा रहे थे। ऐसी अवस्था में जबकि भारत का एक चौथाई जहाज डूब चुका था और बाकी डूबने को तैयार था और जहाज पर चढ़े हुए लोग गहरी निद्रा में सो रहे थे, परमात्मा को यह स्वीकार न हुआ कि वह जाति, जिसने समस्त संसार को सभ्य बनाया है, पूर्णतया लुप्त हो जावें। पहले भी कई बार वेदों को लोग भूल गये थे परन्तु सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ने अपनी दयालुता से किसी न किसी महात्मा के द्वारा उनका प्रकाश किया। उस समय, जब कि लोग अपने धर्म और वेदार्थ की अनभिज्ञता के कारण ईसाई और मुसलमानों के मजहब में और दूसरे विविध प्रकार के नये-नये मतों में सम्मिलित होते जाते थे, **स्वामी दयानन्द सरस्वती जी** ने नये सिरे से फिर वेदों का उपदेश देना आरम्भ किया। इस महात्मा के सारे जीवनचरित्र का इस रिपोर्ट में वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु उनके लाहौर में आकर निवास करने और आर्यसमाज स्थापित करने के सम्बन्ध में कुछ-कुछ वृत्तान्त इस रिपोर्ट में लेना आवश्यक प्रतीत होता है।'

१९ अप्रैल, सन् १८७७ बृहस्पतिवार तदनुसार वैशाख सुदि ६, संवत् १९३४ विक्रमी को स्वामी जी लाहौर पधारे। पंडित मनफूल साहब, भूतपूर्व मीरमुंशी पंजाब सरकार, और '**कोहेनूर**' मुद्रणालय के स्वामी मुंशी हरसुख राय साहब उनके स्वागत के लिये रेलवे स्टेशन पर चार गाड़ियां साथ लेकर गये। एक में तो स्वामी जी, मुंशी हरसुखराय और पंडित मनफूल साहब बैठे, दो गाड़ियों में स्वामी जी के सेवक आदि बैठे और चौथी गाड़ी में स्वामी जी की पुस्तकें और सामान आदि रखा गया।

प्रथम स्वामी जी का निवास दीवान रतनचंद साहब दाढ़ी वाले[१०] के बाग में हुआ था । यहां स्वामी जी प्रतिदिन व्याख्यान देते और निर्भयता से हिन्दुओं के वर्तमान धर्म का खंडन और वेदों का सच्चा उपदेश किया करते थे ।

स्वामी जी का प्रथम सार्वजनिक व्याख्यान—बावली साहब में, २५ अप्रैल, सन् १८७७, बुधवार तदनुसार वैशाख सुदि १३ को ६ बजे तक हुआ, इसको सुनने के लिए असंख्य लोग एकत्रित हुए । इस व्याख्यान का विषय वेद और वेदोक्त धर्म था । इसमें स्वामी जी ने वेदों का तात्पर्य, यज्ञ के लाभ और जैसे गौतम, अहिल्या और ब्रह्मा जी का अपनी पुत्री के पीछे दौड़ने आदि की विशेष कथाओं[११] का वास्तविक अर्थ वेदों के अनुसार प्रकट किया । इस अवसर पर स्वामी जी ने यह भी कहा कि वेदों के चार उपवेद और ११२७ शाखाएं हैं और उनमें सब प्रकार की विद्याएं, जो वेदों से निकली हैं, भरी हुई हैं । इस व्याख्यान में सुनने वालों की बड़ी भीड़ थी और पुलिस का भी प्रबन्ध करना पड़ा था ।

इसके पश्चात् स्वामी जी का दूसरा व्याख्यान बावली साहब में शुक्रवार २७ अप्रैल सन् १८७७ को हुआ जिसमें उससे भी अधिक उपस्थिति हुई । इस सप्ताह में स्वामी जी ने जो कुछ कार्य लाहौर में किया और जो कुछ बुद्धिमान् लोगों ने उससे निष्कर्ष निकाला, वह हम इसी सप्ताह के दो प्रसिद्ध समाचारपत्रों से लेकर नीचे लिखते हैं—

'कोहेनूर' लाहौर, २८ अप्रैल, सन् १८७७, खंड २९, संख्या १७ । पृष्ठ ३६९, ३७० पर लिखता है—'वेदों के एक प्रसिद्ध विद्वान् स्वामी दयानन्द सरस्वती ने, जो दिल्ली और लुधियाना होते हुए १९ अप्रैल को लाहौर में पहुंच कर दीवान रतनचन्द साहब के बाग में उतरे हैं, २५ अप्रैल को ६ बजे सायंकाल से ८ बजे तक सत्यधर्म और ब्राह्मणधर्म आदि के सुनने के इच्छुक बहुत से लोगों की इच्छा के अनुसार मकान बावली साहब में वेद तथा वेदोक्त धर्म पर एक व्याख्यान दिया । इस को सुनने के लिए लगभग पांच सौ मनुष्य एकत्रित हुए होंगे । उक्त व्याख्यान में स्वामी जी ने प्रथम तो वेद, श्रुति और मन्त्र आदि के नामकरण का कारण और उनके शब्दार्थ यथा नियम व्याकरण की रीति से वर्णन किये और कहा कि ये चारों वेद जगत् अर्थात् सृष्टि के परमाणुओं के समान अनादि हैं । जब सृष्टि होती है तब ये भी प्रकट हो जाते हैं और प्रलय के समय, जैसे वृक्ष का अंकुर वृक्ष में छिपा होता है वैसे ये भी छिप जाते हैं । परमेश्वर ज्ञानस्वरूप है; हम लोगों को ज्ञानी बनाने के लिये उसने अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा, इन चार महात्माओं के हृदय में वेदों का प्रकाश करके सर्वसाधारण जनता में प्रकाशित कर दिया ।

वेद पदार्थ-विद्या आदि सब विद्याओं के मूल हैं

तत्पश्चात् स्वामी जी ने कहा 'वेद अनादि हैं और उसकी प्राचीनता को सब स्वीकार करते हैं, इससे यह बात स्पष्ट युक्तियों द्वारा भली-भांति सिद्ध होती है कि आरम्भ में समस्त संसार में यही धर्म प्रचलित था और अन्य सब विविध धर्म इसी से निकले हैं । इनकी (वेदों की) ११२७ शाखाएं हैं जिनमें विद्याओं के असंख्य सिद्धान्त विद्यमान हैं । ऐसी कोई विद्या अथवा कला नहीं है कि जिसका मूल वेदों में न हो । उदाहरणस्वरूप, पृथिवी के गोलक के गतिशील होने और सूर्य में केन्द्रीय आकर्षण शक्ति होने के सिद्धान्तों का वेदों में उल्लेख है और इस विषय की वेदमंत्रों से पुष्टि होती है; यद्यपि अविद्वान् लोगों ने इनके अर्थ विपरीत ही कर रखे हैं । राजा भोज के शासनकाल में, जिसको लगभग चौदह सौ वर्ष का समय हुआ, ऐसे विमान प्रचलित थे, जो ५५ मील प्रति घंटा चलते थे और जिनमें नगर के नगर, घर गृहस्थी के सारे सामान सहित, आकाशमार्ग से एक देश से दूसरे देश में जा सकते थे और एक पंखा ऐसा आविष्कृत हुआ था जिसमें एक बार चाबी देने से एक मास तक स्वयमेव चलता रहता था ।

वेद के तीन विषयों की व्याख्या—'वेद में तीन प्रकार के विषय हैं, उपासना, ज्ञान, कर्मकांड, कर्म से अभिप्राय सब प्रकार की मानवीय चेष्टाओं से है । उपासना का अर्थ पूजन है अर्थात् आदर व प्रतिष्ठा देना; स्तुति और गुणकीर्तन भी इसके

अन्तर्गत हैं। ज्ञान से अभिप्राय बुद्धि और विद्या सम्बन्धी शक्ति से है परन्तु जैसे चेष्टा इन तीनों में ही विद्यमान है वैसे ही ज्ञान भी। इसीलिये जो चेष्टा या कर्म बुद्धि के पथप्रदर्शन में किया जाता है उसका नाम धर्म है और उससे विपरीत अधर्म। धर्म का दूसरा अर्थ न्याय भी है अर्थात् धर्म में न्याय और न्याय में धर्म है। चारों वेदों की लगभग बीस हजार ऋचाएं हैं।'

देव कौन हैं? होम तथा यज्ञों का प्रयोजन तथा विधि—'यह जो प्रसिद्ध है कि देवताओं की कोई विशेष योनि थी, यह ठीक नहीं। वास्तव में देव बुद्धिमान् और विद्वान् लोगें को कहते हैं। प्राचीन काल में उनका पूजन होता था। जैसा कि शास्त्रों में वर्णन है कि स्त्रियों का पूजन करना चाहिए उसका यही अभिप्राय है कि उनका आदर सत्कार करे, उन को प्रसन्न रखना चाहिए। विश्वकर्मा एक महात्मा पुरुष और सर्व प्रकार की शिल्पविद्या का आविष्कारक था; कोई बिना शरीर का अशरीरी देवता न था। जैमिनि आदि ऋषियों ने वेदों का स्पष्ट अर्थ शास्त्रों और स्मृतियों में किया है। कर्मकांड का विशेष वर्णन देखने की इच्छा हो तो जैमिनि ऋषि के लिखे हुए[१२], कर्मकांडसम्बन्धी १२ अध्यायों को देखना चाहिए। यजन यज्ञ को कहते हैं जो वेदोक्त रीति से किया जाता है। वे यज्ञ और होम अर्थात् अग्निहोत्र, दुर्गन्धित और दूषित वायु और वर्षाजल की शुद्धि के लिये, प्रातः-सायं किये जाते थे अर्थात् एक सेर घृत में एक रत्ती कस्तूरी और एक माशा केशर आदि कई प्रकार की सुगन्धित वस्तुएं मिलाकर बारह-बारह आहुति प्रत्येक स्त्री और पुरुष अग्नि में डालता था। यह मात्रा उतने वायु और जल के शुद्ध करने को पर्याप्त समझी जाती थी, जितने कि दिन-रात में हम मनुष्यों के शरीर से निकले हुए दुर्गन्धयुक्त वाष्पों के सम्मिलित होने के कारण दूषित हो जाते थे, तथा भिन्न-भिन्न पशुओं और मनुष्यों के मलमूत्र से जो दुर्गन्ध उत्पन्न होती थी उसकी शुद्धि के लिये प्रत्येक पक्ष में, प्रत्येक अमावस्या और पूर्णमासी के दिन, एक बड़ा होम किया जाता था जिसकी सुगन्धित और हल्की वायु से उन दूषित वाष्पों का निवारण हो जाता था। फिर प्रायः सब प्रकार के दुर्गन्धित वाष्पों की शुद्धि के लिये छठे महीने अथवा वर्ष के अन्त में एक-एक बड़ा होम किया करते थे जिनको अब दिवाली और होली कहते हैं और यह प्रथा उसी समय की चली आती है। इस विधि से उस दुर्गन्ध का निवारण होते रहने के कारण जो संक्रामक और भयंकर रोग इस समय संसार में दिखाई देते हैं, उस काल में उनका चिह्न मात्र भी नहीं था। इसी का नाम पुरुषों का पुरुषार्थ था जो आत्मा और परमात्मा का वास्तविक लक्ष्य है।'

वेदों का पढ़ना सभी वर्णों का कर्त्तव्य है—'यह जो प्रसिद्ध है कि वेदों का पढ़ना, ब्राह्मण के अतिरिक्त दूसरे के लिए निषिद्ध है, यह बात अविद्वान् लोगों की स्वार्थ से भरी हुई है। जिसको इस सन्देह की निवृत्ति करनी हो वह यजुर्वेद के छब्बीसवें अध्याय का दूसरा मंत्र[१३] देख ले; उसका स्पष्ट अर्थ यहां भी लिखते हैं, अर्थात् 'ईश्वर सब मनुष्यों को उपदेश करता है कि जैसा मैं तुमको उपदेश करता हूं, वैसा ही तुम भी, सब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र और अतिशूद्र तथा सब लोगों को उपदेश करते रहो। खेद है कि अपने वेदों को अपने आप तो कोई देखता नहीं और दूसरों के कहने पर भेड़ चाल चल रहे हैं। अन्धे का अन्धा पथप्रदर्शक है इसलिए दोनों पथभ्रष्टता रूपी कूप में पड़े हुए हैं। स्वार्थ फैल रहा है। जिसका माल खाया जाता है, उसका हित न करके अहित सिद्ध हो रहा है और वेदों के वास्तविक अर्थों को न समझ कर, जिस कर्म को करना चाहते हैं, उसी को वेदोक्त कह देते हैं। ऐसे भ्रान्ति उत्पन्न करने वालों से छुटकारा तभी हो सकता है जब वेदविद्या का अच्छी प्रकार प्रचार हो।

वेदवर्णित रूपकों की कथाएं गढ़ लीं—'वैसे ही मूर्ख लोगों ने, वेदों में रूपक अलंकार के रूप में वर्णित बातों को पुराणों में एक धार्मिक कथा का रूप दे दिया है। जैसे कि चन्द्रमा का गौतम ऋषि की स्त्री के साथ व्यभिचार करना, ब्रह्मा जी का अपनी पुत्री के पीछे कामातुर होकर भागना आदि लिखा है। अब मैं आज का भाषण समाप्त करता हूं। शेष वर्णन अगली सभा में शुक्रवार को इसी मकान में करूंगा' (पृष्ठ ३७०, खंड २९, संख्या ७)।

स्वामी जी का व्यक्तित्व तथा उनका कार्य

'अखबारे आम' लाहौर के २ मई, सन् १८७७ के अंक में स्वामी जी के आने के विषय में इस प्रकार लिखा है—'एक सप्ताह हुआ कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी लाहौर में विराजमान हैं । आप साधुओं के वेश में रहते हैं और नगर-नगर में यह उपदेश करते-फिरते हैं कि चारों वेद ईश्वरीय पुस्तकें हैं और संसार का ज्ञान इन पुस्तकों में विद्यमान है; कोई बात ऐसी नहीं, जो इन पुस्तकों से बाहर हो । भारत के प्राचीन निवासी प्रत्येक विद्या और कला में निपुण थे । रेल चलाना वे जानते थे; तार द्वारा समाचार पहुंचाते थे; अमरीका का उनको ज्ञान था । वैद्यक विद्या, राजनीति तथा तर्कविद्या उनके यहां पूर्ण थी । परन्तु उनकी बहुत सी पुस्तकों का नाश हो गया, और फूट ने उनकी यह दशा कर दी जो आज हम देखते हैं । वेद में मूर्तिपूजा का कहीं वर्णन नहीं और न चांद, सूरज, अग्नि और वायु की पूजा की शिक्षा है । जो लोग ऐसा समझे हुए हैं, वे भारी भ्रान्ति में हैं । स्वामी जी वेद का भाष्य भी लिख रहे हैं और उसके कई भाग छप चुके हैं । उनकी दृष्टि में जो धर्म वेद का है वही सच्चा धर्म है ।'

हमने भी स्वामी जी के दो-चार व्याख्यान सुने हैं । वास्तविकता यह है कि स्वामी जी बड़े कुशाग्र बुद्धि हैं और आज भारत में वेदों को समझने वाला, उनके समान कोई नहीं सुना जाता । परन्तु हम यह नहीं कह सकते कि वेद के मन्त्रों की जो व्यवस्था वे करते हैं, वही ठीक है, क्योंकि इन पुस्तकों के जो भाष्य दूसरे आचार्यों ने किये हैं, वे स्वामी जी कृत भाष्य से भिन्न हैं । स्वामी जी, भारत के नवशिक्षितों से इस बात में सहमत हैं कि जात-पांत कोई वस्तु नहीं है । उनकी दृष्टि में ब्राह्मण वह है जो ब्राह्मणों के काम करे अन्यथा वह शूद्र से निकृष्ट है और शूद्र का अर्थ अनपढ़ के अतिरिक्त कुछ और नहीं है । आपस में खाने-पीने का परहेज जो इन दिनों इस देश में प्रचलित है और चिरकाल से चला आता है, वह इनकी दृष्टि में झूठा है । वेदों में इस प्रथा का कोई मूल नहीं । विधवाओं का विवाह कर देना उचित है; यह कोई दोष की बात नहीं । छोटे-छोटे लड़के और लड़कियों का विवाह न करना चाहिए । संस्कृति की बातों ने ? ब्राह्मणों को स्वामी जी का शत्रु बना दिया है परन्तु उनको इसकी कुछ चिन्ता नहीं; वह अपने काम में साहसपूर्वक लगे हुए हैं । जो लोग इस देश के हितचिन्तक हैं और उसकी उन्नति के इच्छुक हैं, उनको चाहिए कि तन, मन, धन से स्वामी जी की सहायता करें ।'

इस पर मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी सम्मति देते हैं—'स्वामी जी के विचार और वचनों की प्रशंसा हमने अब तक इसलिए नहीं की थी कि मूर्ख और मूर्खों के अनुयायी लुधियाने में (स्वामी जी के निवासकाल में) कहते थे कि जैसे कन्हैयालाल धर्महीन है, वैसे ही उनके मित्र स्वामी जी पादरियों की ओर से हिन्दुओं को पथभ्रष्ट करने के लिए कन्हैयालाल के बुलाये यहां आये हैं । हे गोबर के खाने वालो और उनकी दुम से नाक रगड़ने वालो ! देखो पंडित मुकुन्दराम साहब[१४] जो लाहौर के एक सच्चे समाचारपत्र के सम्पादक हैं, उनकी कैसी प्रशंसा करते हैं । तुम लोग मेरे जैसे सन्मार्ग बताने वालों के शत्रु हो, परन्तु हम लोग तुम्हारे शत्रु नहीं हैं । हम लोग नपुंसकों को पुरुष और गधों को मनुष्य बनाने वाले हैं भारतवर्ष की भलाई के इच्छुक । सुनो स्वामी जी के उपदेश को और धिक्कारो उनको जो तुमको सच्चिदानन्द अद्वितीय के अतिरिक्त दूसरे किसी को पूजने की शिक्षा देते हैं और मत दो उनको कुछ, परन्तु उनके खाने को गोबर !' (पत्रिका 'नीति प्रकाश सभा' लुधियाना, सप्ताह सं० २०, २४ मई, सन् १८७७, पृष्ठ ३१२-३१९) ।

'शिव' का सम्मान जितना मैं करता हूं, उतना कोई क्या करेगा ! पंडित सोहनलाल जी ने आक्षेप किया—'आप संन्यास धर्म में होकर उसके विरुद्ध काम करते हैं । स्वामी जी ने पूछा कि 'मैं' कौन काम संन्यास के विरुद्ध करता हूं ? कहा कि 'आप शिव जी की निन्दा करते हैं ।' स्वामी जी ने उत्तर दिया 'मैं शिव की निन्दा नहीं करता । प्रत्युत जितना सम्मान शिव का मेरे मन में है अन्य किसी के मन में क्या होगा । उस कल्याणस्वरूप शिव का तो सब सम्मान करते हैं । हां ! तुम्हारा

पत्थर का शिव, जो जड़ अथवा मृत और मन्दिर के भीतर बन्द है, मैं उसको नहीं मानता और न उसका सम्मान करता हूं, न वह सम्मान के योग्य है ।" इस पर वह निरुत्तर होकर चले गये ।

लाहौर आने के दूसरे दिन २० अप्रैल, सन् १८७७ को पंडित शिवनारायण अग्निहोत्री, सम्पादक, **'बिरादरे हिन्द'** ने स्वामी जी के साथ इस विषय पर वार्तालाप किया कि 'वेद ईश्वरीय ज्ञान नहीं है' । यह प्रायः स्वामी जी के पास जाते और वार्तालाप किया करते थे । एक दिन पंडित जी ने एक फूल लाकर भेंट किया । स्वामी जी ने कहा कि यह तुम क्यों तोड़ लाये ?' पंडित शिवनारायण ने कहा कि आपके लिए लाया हूं । 'कहा कि यह तुमने बुरी बात की' पूछा कि किस प्रकार ? उत्तर दिया कि प्रथम तो जितने काल तक सुगन्ध फैलाने के लिए ईश्वर ने उत्पन्न किया था उससे पहले तुमने तोड़ डाला । दूसरे अब शीघ्र सड़ जायेगा और दुर्गन्ध फैलायेगा । तीसरे यदि प्राकृतिक रूप में रहता तो बहुत से मनुष्यों को लाभ पहुंचता । चौथे यदि अपने आप गिरता तो शुष्क होकर गिरता और दुर्गन्ध न फैलाता, प्रत्युत खाद बन जाता । इससे पंडित जी और श्रोताओं को बहुत-सा लाभ हुआ-ला० जीवनदास जी के मुख से) ।

"बावली साहब में व्याख्यान देने के पश्चात् स्वामी जी ने दो व्याख्यान अनारकली स्थित ब्रह्म-मन्दिर लाहौर में दिये । ब्रह्मसमाज के लोगों का विश्वास था कि स्वामी जी ब्राह्मधर्म का उपदेश करेंगे परन्तु जब साक्षात् ब्रह्म मन्दिर के भीतर स्वामी जी ने एक तो वेदों के सत्य और ईश्वरकृत होने पर और दूसरा आत्मा के आवागमन पर व्याख्यान दिया तब ब्रह्मसमाजियों की आंखें खुलीं और सोचने लगे कि यदि हम ऐसा जानते तो इनके व्याख्यान ब्रह्म मन्दिर में न होने देते । ऐसा विचार कर भविष्य में उनका वहां व्याख्यान देना स्वीकार न किया, प्रत्युत उसी समय से ब्राह्म लोग हृदय से उनका विरोध करने लगे ।

'कोहेनूर' लाहौर में लिखा है-'स्वामी दयानन्द सरस्वती अभी लाहौर में ही विराजमान हैं और अनारकली में स्थित डा० रहीम खां साहब खानबहादुर की कोठी में उतर कर कभी-कभी श्रोताओं की इच्छानुसार वेदोक्त धर्म पर उपदेश करते हैं जिनको सुनकर नगर के लोगों में दो दल बन गये हैं । एक वह जो उनके उपदेश को ठीक और लाभकारी समझते हैं; दूसरे वह जो विरुद्ध और बनावटी समझ कर विरोध रखते हैं । पहला दल तो शिक्षाप्राप्त नौकरी करने वाले नवयुवकों का है, दूसरा प्राचीन रूढ़ियों को मानने वाले वृद्ध लोगों का है । इस विषय में अभी हम नहीं कह सकते कि इसका क्या परिणाम निकलेगा परन्तु यह तो देखने में ही आ रहा है कि समर्थकों की संख्या बढ़ रही है और विरोधियों की घटती जाती है । यह सब उसी रीति से हो रहा है जैसा कि हम गत सप्ताह के अंक में वर्णन कर चुके है ।'

—(५ मई, सन् १८७७, खंड २९, संख्या १८, पृष्ठ ३९२)

लाहौर आर्यसमाज के वार्षिक विवरण में इस प्रकार लिखा है—'रतनचन्द के बाग में और बावली साहब आदि में स्वामी जी द्वारा निर्भयता तथा निष्पक्षता से दिये गये व्याख्यानों के प्रभाव से नगर के पुराने विचार के लोगों और ब्राह्मणों में बड़ी हलचल मच गई; क्योंकि स्वामी जी अपने व्याख्यानों में आजकल के ब्राह्मणों की स्वार्थपरायणता और अज्ञानता को प्रकट रूप में जतलाते थे । पण्डित श्रद्धाराम फिल्लौरी भी उन दिनों में लाहौर में विद्यमान थे और भाई नन्दगोपाल साहब की धर्मशाला में उपदेश दिया करते थे (देखो; कोहेनूर' १७, सन् १८७७) ।'

प्रबल विरोध के मध्य भी अपने सत्य मार्ग से अडिग—'इसी प्रकार (होते-होते), बहुत से पण्डितों ने मिलकर एक 'सभा' संगठित की इसमें श्रद्धाराम फिल्लौरी, पण्डित भानुदत्त लाहौरी, पण्डित हरप्रसाद लाहौरी आदि व्यक्ति सम्मिलित थे । प्रथम इस सभा के तत्त्वावधान में पण्डित हरप्रसाद ने बावली साहब में मूर्तिपूजन के मंडन पर व्याख्यान

दिया और १५ मई, सन् १८७७ का इसी विषय पर फिल्लौरी साहब का भाषण हुआ। व्याख्यान सुनने के लिए बहुत लोग एकत्रित हुए थे। पण्डित जी ने एक महत्त्वपूर्ण भविष्यवाणी उनके स्वामी जी (के) विषय में मुंह से निकाली थी। 'कोहिनूर' दिनांक १९ मई, सन् १८७७ में लिखा है कि परमेश्वर कृपा करे और परिणाम शुभ हो। इससे विदित होता है कि स्वामी जी का उस समय प्रबल विरोध था। ब्राह्मण लोग समझते थे कि स्वामी जी हमारी जीवन भर की कमाई को बन्द किये दे रहे हैं। मूर्ख लोग यह नहीं समझे कि स्वामी जी उनकी जड़ें जमा रहे हैं और उनको इस योग्य बनाते हैं कि वर्तमान काल में भी उनका सम्मान हो।

'ब्राह्मण लोग इतने विरोधी हुए कि स्वामी जी के निवास स्थान बने; बाग के स्वामी दीवान रतनचन्द जी के सुपुत्र दीवान भगवानदास से जाकर शिकायत की कि स्वामीजी मूर्तिपूजन का खंडन करते हैं और ब्राह्मणों और देवताओं की निन्दा करते हैं। यह सुनकर दीवान भगवानदास जी भी विरोधी हो गये। इसलिए उचित समझा गया कि स्वामी जी का निवास किसी और मकान में कराया जावे। डाक्टर रहीम खां साहब ने बड़ी प्रसन्नता से अपनी कोठी स्वामी जी के ठहरने के लिए देनी स्वीकार की, जिसको स्वामी जी ने धन्यवाद सहित स्वीकार किया और डेढ़ मास के लगभग वहां रहे।

स्वामी जी अवसरवादी नहीं थे—'डा० रहीम खां की कोठी में जाने से पहले पण्डित मनफूल साहब ने एक दिन स्वामी जी से कहा कि आप मूर्तिपूजन का खंडन न किया करें क्योंकि इससे नगर के लोग अप्रसन्न हैं और यदि आप मूर्तिपूजन का खंडन करना छोड़ दें तो महाराजा साहब जम्मू और कश्मीर भी बहुत प्रसन्न होंगे। यदि स्वामी जी अवसरवादी होते और लोगों को प्रसन्न करना ही उनका प्रयोजन होता तो वे पण्डित जी की इस सम्मति को स्वीकार कर लेते, परन्तु उस महात्मा ने तो भर्तृहरि जी के निम्नलिखित वचनों के अनुसार आचरण किया—

'निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु, लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्ठम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा, न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

अर्थात् संसार के लोग चाहे उनकी निन्दा करें चाहे प्रशंसा, चाहे धन प्राप्त हो या चला जाये, इसी समय मृत्यु हो या एक युग तक जीना हो, परन्तु जो धीर पुरुष होते हैं, वे सत्यमार्ग में तनिक भी पग पीछे नहीं हटाते।

सत्य-धर्म को छोड़ना और लोगों की कुछ दिन की अस्थायी वाहवाही के लिये असत्याचरण करना उन्होंने उचित न समझा और कहा 'कि मैं महाराजा जम्मू और काश्मीर को प्रसन्न करूं या ईश्वर की आज्ञा, जो वेदों में लिखी है, उसका पालन करूं?' स्वामी जी के इस उत्तर से पण्डित मनफूल साहब भी अप्रसन्न हो गये और अपना आना-जाना बन्द कर दिया।

डाक्टर साहब की कोठी में जाकर स्वामी जी ने नियम निश्चित किया कि एक दिन व्याख्यान देते थे और एक दिन शास्त्रार्थ करते थे। सैकड़ों लोग प्रतिदिन उनके व्याख्यान और प्रश्नोत्तर सुनने के लिये जाते थे। सब प्रकार के लोग पादरी, पण्डित, मौलवी और विद्वान् उनसे शास्त्रार्थ करते थे और अपने प्रत्येक प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर पाते थे।

'कोहेनूर' में लिखा है कि 'स्वामी दयानन्द सरस्वती जी अभी लाहौर में ही विराजमान हैं, और अपने उपदेश वेदोक्त धर्म पर डाक्टर रहीम खां साहब की कोठी में दे रहे हैं' (१९ मई, सन् १८७७, पृष्ठ ४३४, खंड २९, संख्या २०)।

पादरी हूपर से प्रश्नोत्तर—एक दिन पादरी डा० हूपर साहब स्वामी जी के शास्त्रार्थ के नियत समय पर कुर्सी पर स्वामी जी के सम्मुख बैठ गये क्योंकि जो व्यक्ति शास्त्रार्थ करना चाहता था वह दूसरी कुर्सी पर, जो स्वामी जी के सम्मुख मेज की दूसरी ओर रखी होती थी, बैठ जाता था। उपर्युक्त महोदय ने संस्कृत भाषा में स्वामी जी से दो प्रश्न किये।

पहला प्रश्न—वेदों में अश्वमेध और गोमेध आदि का वर्णन है और उस समय में लोग घोड़े और गाय आदि की बलि दिया करते थे। आप इसके विषय में क्या कहते हैं?

स्वामी जी ने उत्तर दिया—वेदों में अश्वमेध और गोमेध से घोड़े और गाय की बलि देना अभिप्रेत नहीं है प्रत्युत उनके अर्थ यह है-राष्ट्रं वाश्वमेध: ॥ शत० १३ ।१ ।६ ।३ ॥ अन्नं हि गौ: ॥ शत० ४ ।३ ।१ ।२५ ॥ (अर्थात् राज्य करना अश्वमेध और इन्द्रियां अथवा पृथ्वी आदि 'गौ' हैं इन्हें पवित्र करना 'गोमेध' है ।) घोड़े, गाय, मनुष्य और पशु मारकर होम करना कही नहीं लिखा; यह अनर्थ केवल वाममार्गियों के ग्रन्थों में लिखा है। यह बात वाममार्गियों ने चलाई और जहां-जहां ऐसा लेख है वहां-वहां उन्हीं वाममार्गियों ने प्रक्षेप किया है। देखो ! राजा न्याय से प्रजा का पालन करे यह 'अश्वमेध' है। अन्न, इन्द्रियां अन्त:करण और पृथिवी आदि को पवित्र करने का नाम 'गोमेध' है। जब मनुष्य मर जाये, तब उसके शरीर का विधिपूर्वक दाह करना 'नरमेध' कहाता है। इसके अतिरिक्त इनके अर्थ व्याकरण और निरुक्त आदि के उद्धरणों से बतलाये जिससे पादरी साहब का सन्तोष हो गया।

दूसरा प्रश्न यह था कि वेदों में जात-पांतों का विभाग किस प्रकार है?

उत्तर (स्वामी जी) —वेदों में जाति गुणकर्मानुसार है।

पादरी महोदय—यदि मेरे गुण कर्म अच्छे हों तो मैं भी ब्राह्मण कहला सकता हूं?

स्वामी जी—निस्सन्देह, यदि आपके गुण कर्म ब्राह्मण होने के योग्य हैं तो आप भी ब्राह्मण कहला सकते हैं?

उसी मकान में एक दिन बाबूप्रसाद शारदा जी[१५] ने प्रश्न किया कि मैंने वेदों का भाष्य अंग्रेजी और बंगला में कुछ-कुछ पढ़ा है जिससे मुझे वेदों के सच्चा होने पर सन्देह है। बाबू साहब कई श्रुतियों का भाष्य भी लेकर गये थे। स्वामी जी ने कहा कि जो श्रुति सबसे अधिक आक्षेप के योग्य प्रतीत हो उस को उपस्थित करो। बाबू साहब ने एक श्रुति 'हिरण्यगर्भ: समवर्तताग्रे'[१६] आदि उपस्थित की। स्वामी जी ने कहा कि इसका भाष्य अशुद्ध किया गया है। वास्तविक भाष्य व्याकरण और वेद के नियमानुसार यह है कि जिस पर विस्तारपूर्वक बातचीत करने से बाबू शारदाप्रसाद जी को भली प्रकार संतोष हो गया। यह आक्षेप बाबू जी ने 'तत्त्वबोधिनी'[१७] पत्रिका से लिया था। फिर मैक्समूलर का आक्षेप बतलाया कि जब से स्वर्ण उत्पन्न हुआ तब से यह मन्त्र बनाया। (जून मास, सन् १८७७ की 'बिरादरे हिन्द' पत्रिका से जो पहली जून को निकला करती थी)।

१९ अप्रैल सन् १८७७ से अन्तिम मई, सन् १८७७ तक हुए स्वामी जी के व्याख्यान सुनने और शास्त्रार्थ देखने के पश्चात् 'ब्रह्मो' समाचारपत्र लाहौर में स्वामी जी का निम्नलिखित वृत्तांत प्रकाशित हुआ—

लाहौर में व्याख्यान-स्थलों का पुन:-पुन: परिवर्तन

'पंडित स्वामी दयानन्द सरस्वती' १९ अप्रैल, सन् १८७७ को पंडित दयानन्द सरस्वती लुधियाने से चलकर उसी तिथि की शाम को यहां लाहौर पहुंचे और रतनचन्द दाढ़ी वाले के बाग में उतरे। लोग उनके यहां पधारने की पहले से ही प्रतीक्षा करते थे। जिस समय उन्हें पण्डित जी के पधारने का ज्ञान प्राप्त हुआ, लोग दल बांध-बांध कर उनके दर्शनों को जाने लगे। ब्राह्म लोग विशेषतया उनके आने से प्रसन्न हुए क्योंकि उनकी ओर से विशेषरूप से पंडित जी को यहां बुलाने की चेष्टा की गई थी। चार दिन तक उसी बाग में पण्डित जी के पास लोग एकत्रित होते रहे और धार्मिक शास्त्रार्थ होता रहा। तत्पश्चात् यह हुआ कि पंडित जी नगर के भीतर किसी उचित मकान में लोगों को धर्मोपदेश देना (जो उनके जीवन

का विशेष लक्ष्य है) आरम्भ करें। सर्वसम्मति से यह निश्चित हुआ कि बावली साहब का मकान जो नगर के मध्य में है और विस्तृत भी है, इस काम के लिए बहुत श्रेष्ठ है। निश्चयानुसार विज्ञापन प्रकाशित किये गये और नियत तिथि पर पण्डित जी ने उक्त मकान में वेदों के विषय पर एक व्याख्यान दिया। इस व्याख्यान को सुनने के लिए बहुत बड़ी संख्या में लोग एकत्रित हुए थे, परन्तु चूंकि यह एक प्रसिद्ध बात है कि पण्डित जी मूर्तिपूजा की जड़ खोदते हैं, यहां की पुरानी टकसाल[१८] के लोग विशेषतया ब्राह्मण (जिनकी जीविका बहुत कुछ मूर्तिपूजा पर निर्भर है) व्याख्यान निश्चित होने से पहले ही पण्डित जी के साथ इतनी शत्रुता कर बैठे कि व्याख्यान के समय उन लोगों ने अत्यन्त कोलाहल मचाया और बेहूदापन प्रदर्शित किया। यहां तक कि यदि पुलिस का प्रबन्ध न किया गया होता तो आश्चर्य न था कि किसी प्रकार का उपद्रव भी हो जाता। अस्तु, इस व्याख्यान के पश्चात् एक व्याख्यान उनका वहां और हुआ और फिर यह निश्चय किया गया कि चूंकि उस स्थान पर उपद्रव का भय है और कोलाहल भी बहुत होता है इसलिए अच्छा हो यदि भविष्य में ब्रह्ममन्दिर में उनके व्याख्यान हुआ करें। इस पर दो व्याख्यान ब्रह्ममन्दिर में भी हुए और वहां जैसा कि चाहिए, भली प्रकार नियमों का पालन होता रहा, और अत्यन्त सहनशीलता के साथ लोगों ने उनके उपदेश को सुना; परन्तु इसी बीच में जिस व्यक्ति के बाग में पण्डित जी उतरे हुए थे, उसने एक रईस होने पर भी, इस बात का विचार किये बिना कि उसने स्वयं अपनी इच्छा से उक्त मकान उनको रहने के लिए दिया था, पक्षपात के वश में होकर पण्डित जी से उक्त मकान खाली करने का अनुरोध किया परन्तु मकान की यहां क्या चिन्ता थी। स्वामीजी के शुभचिन्तकों ने तत्काल एक दूसरी कोठी का (जो उस मकान से कहीं बड़ी और कहीं श्रेष्ठ है) प्रबन्ध कर दिया और पण्डित जी ने उक्त रईस के मकान को छोड़कर इस नई कोठी में जाकर निवास किया। यह नई कोठी इस नगर के प्रसिद्ध डाक्टर खान बहादुर रहीम खां साहब की है कि जिनके सौजन्य और उदारता का पाठकगण इस बात से भली प्रकार अनुमान कर सकते हैं कि मुसलमान होने पर भी जब लोगों ने उनसे कोठी के लिए प्रार्थना की तो उन्होंने अत्यन्त प्रसन्नता के साथ कोठी पण्डित जी के लिए प्रदान कर दी। वस्तुत: खान साहब की यह एक ऐसी कृपा थी जिस के लिए पण्डित जी के शुभचिन्तक सदा आभारी रहेंगे। यह कोठी स्वयं इतनी बड़ी थी और उसके आगे का चौक इतना विस्तृत था कि पण्डित जी के निवास के अतिरिक्त उनके व्याख्यान के लिए भी अत्यन्त श्रेष्ठ और उपयुक्त समझी गई। जब से वे कोठी पर आये तब से उनके उपदेश ब्रह्ममन्दिर में न होकर उक्त कोठी में होने लगे।

'यहां पहुंच कर स्वामी जी ने मूर्तिपूजा के विरोध में इतने बलपूर्वक व्याख्यान देने आरम्भ किये कि यहां के ब्राह्मणों में विशेषतया तथा अन्य लोगों में साधारणतया एक उत्तेजना उत्पन्न हो गई, ब्राह्मणों ने जब देखा कि बहुत सी भेड़ें उनके हाथ से निकल गईं और दिन प्रतिदिन निकलती जा रही हैं तो वह मौन न रह सके। विवश होकर उन लोगों ने भी मिलकर एक सभा संगठित की और उसमें नगर के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध और चुने हुए पण्डित सम्मिलित हुए।

मूर्तिपूजा के विरोधी पं० भानुदत्त का व्यवहार—इन पण्डितों ने पण्डित भानुदत्त जी आचार्य, सत्यसभा, पंजाब को भी यह सोचकर बुलाया कि पण्डित भानुदत्त जी एक ऐसी सभा के आचार्य थे कि जिसका ध्येय प्रकट रूप में लोगों में निराकार ईश्वर की उपासना का प्रचार करना था और वह स्वयं भी यहां के शिक्षित लोगों में इस विचार के लिए प्रसिद्ध हो रहे थे कि वह मूर्तिपूजा की प्रथा को अच्छा नहीं समझते और आरम्भ में जब स्वामी दयानन्द जी यहां पधारे तो यह उनके यहां आते जाते भी थे। समस्त सभा के पण्डितों ने एक स्वर होकर उनसे यह बात बहुत आग्रह के साथ कही कि प्रतीत होता है कि तुम भी पण्डित दयानन्द सरस्वती का मत रखते हो। पण्डितों का यह कहना था कि पंडित जी घबराये और कहा कि नहीं, मेरा मत उनके अनुकूल क्यों होने लगा? मेरा मत वही है जो आप लोगों का है। यदि आप लोग उनके विरोध में कुछ कहना चाहें तो मैं हृदय से आपकी सहायता के लिए उपस्थित हूं। इस बात को सुनकर सारे पंडित प्रसन्न हो गए और पंडित जी उक्त सभा के मन्त्री नियत किये गये।

पंडित जी के जब इस सभा में (जिसका उद्देश्य मूर्तिपूजा को बनाए रखना और वेदों से उसका औचित्य सिद्ध करना है) सम्मिलित होने की सूचना लोगों को मिली तो पंडित जी के ऐसे समस्त शिक्षित मित्रों को जो उनके विचारों से परिचित थे, अत्यन्त आश्चर्य हुआ। हमें विशेष रूप से इस बात को सुनकर आश्चर्य के अतिरिक्त कुछ दुःख भी हुआ क्योंकि पंडित जी हमारे विशेष मित्र थे। जब कहीं उनसे हमारी इस विषय में चर्चा चली तो वे कभी मूर्तिपूजा का समर्थन न करते थे। यहां तक कि कुछ दिन व्यतीत हुए कि उन्होंने हमसे यह बात भी कही थी कि 'पंडित दयानन्द सरस्वती चाहते हैं कि मैं उनके साथ-साथ लोगो को उपदेश देने में तथा इस जातिहित के कार्य में उनका सहायक बनूं परन्तु मैं कुटुम्ब के मोह में कुछ ऐसा फंसा हुआ हूं कि यद्यपि वे मेरे और मेरे कुटुम्ब के लिए पर्याप्त जीविका का प्रबन्ध कर देने का भी उत्तरदायित्व लेते हैं और मेरा मन भी इस कार्य में अत्यन्त रुचि रखता है, फिर भी मुझमें इतना साहस उत्पन्न नहीं होता कि मैं इस उत्तम प्रचार कार्य में उनका सहायक बन सकूं।'

'पाठकगण इससे भली भांति अनुमान कर सकते हैं कि पंडित जी ने किसी विशेष उद्देश्य को लेकर मूर्तिपूजक पंडितों की टोली में सम्मिलित होकर उनकी सभा का मंत्री होना स्वीकार किया। न केवल यहां तक, प्रत्युत उस दिन से स्वामी दयानन्द के यहां आना जाना भी बन्द कर दिया। कुछ दिनों पश्चात् उन्होंने अपने हस्ताक्षर से एक विज्ञापन प्रकाशित किया कि अमुक पंडित जी उनकी सभा की ओर से मूर्तिपूजा के औचित्य पर एक व्याख्यान देंगे और सिद्ध करेंगे कि वेदों में मूर्तिपूजा की आज्ञा विद्यमान है। इस व्याख्यान के अतिरिक्त पंडित जी ने स्वयं दो व्याख्यान इसी बीच इस प्रकार के दिये जिनमें उन्होंने बताया कि देवताओं का अस्तित्व वस्तुतः है और दूसरे शब्दों में उनके अस्तित्व के द्वारा पंडित जी ने मूर्तिपूजन का समर्थन किया।'

ब्रह्मसमाज द्वारा लाहौर की घटनाओं का विवरण

'यहां तक तो संक्षिप्त रूप से यहां के पंडितों और उनकी विरोधी सभा का वर्णन किया गया। अब इस बात का वर्णन कि स्वामी दयानन्द सरस्वती के क्या विचार हैं, क्या सिद्धान्त हैं और देश में वह किस प्रकार का सुधार उत्पन्न करने के लिए नगर-नगर में उपदेश करते फिरते हैं। नवयुवक शिक्षाप्राप्त लोगों पर कहां तक उनके उपदेश और शिक्षा का प्रभाव पड़ा है या पड़ सकता है। ब्रह्मसमाज के सिद्धान्तों से उनके विचार कहां तक मिलते हैं और किन-किन बातों में विरोध है और यह विरोध किन कारणों से है? कहां तक स्वामी जी अपने अद्वितीय प्रयत्नों में अब तक सफल हुए हैं और भविष्य में कहां तक उनकी सफलता की आशा की जा सकती है, आशा है कि हम किसी आगामी अंक में यह पाठकों की भेंट करेंगे।' (पृष्ठ १८२-१८६, खंड ३, संख्या)।

मास्टर मुरलीधर जी ने वर्णन किया—'एक बार जब स्वामी जी राय मेलाराम के तालाब पर ठहरे हुए थे, मैं उनके दर्शन करने गया। मेरे साथ मेरे मित्र ला० गोविन्दसहाय भी गये थे। स्वामी जी से जो बातचीत हुई उसका प्रभाव मैं अपने ऊपर बहुत अधिक पाता था। उस समय स्वामी जी ने मुझे कई शिक्षाएं धर्म के विषय में स्वयं मेरे लिये और उनके लिये दीं जिनका सम्बन्ध मुझसे हो। स्वामी जी महाराज का सम्मान उसी दिन से मेरे हृदय में घर कर गया।

वेदान्त विषय पर वार्तालाप—पंडित मथुरादास, अमृतसर निवासी, जिनको अपना शुभचिन्तक होने के कारण, गोगीरा जिला अमृतसर में सरकार ने जागीर दी हुई थी, ला० जीवनदास के साथ स्वामी जी के पास गये। यह वेदान्ती थे। स्वामी जी से महावाक्यों पर बातचीत की। तब स्वामी जी ने कहा कि यह 'अहं ब्रह्मास्मि'[१९] वाक्य वेदों में नहीं है और उपनिषद् में, जहां आया है वहां, इसके पूर्ववर्ती अंश के साथ, यह अगला अंश पढ़ने पर वेदान्तपरक अर्थ नहीं देता। जब उनको अच्छी प्रकार बतलाया गया, तब उनका सन्तोष हो गया।

पंडितों द्वारा असत्य कथन तथा असत्य प्रमाण उपस्थित करने की घटनाएं

भाई दत्तसिंह[२०] जी की रिपोर्ट से—'एक दिन की बात है कि भाई दत्तसिंह स्वामी जी से वेदान्त मत पर शास्त्रार्थ कर रहे थे और अग्निहोत्री जी भी उस समय वहां उपस्थित थे। शास्त्रार्थ के बीच में पंडित शिवनारायण जी बोल उठे कि स्वामी जी को उत्तर नहीं आया और वह हार गये। इस पर स्वामी जी ने पंडित जी से पूछा कि भला अब बताइये कि हमने क्या कहा?

पंडित जी कुछ भी नहीं बता सके!

तब स्वामी जी ने भाई दत्तसिंह जी से पूछा कि क्यों क्या हमने यही कहा था?

भाई दत्तसिंह ने कहा—'नहीं; आपने यह नहीं कहा। पंडित जी ने कुछ नहीं सुना।'

फिर **स्वामी जी ने पंडित जी से पूछा**—भला बताइये तो सही कि भाई दत्तसिंह ने क्या कहा था?

पंडित शिवनारायण ने कुछ बताया।

भाई दत्तसिंह ने कहा कि यह मैंने नहीं कहा था। उस समय स्वामी जी ने पंडित शिवनारायण से कहा कि आप बिना सोचे-समझे सम्मति दे देते हैं। इस पर पंडित जी क्रुद्ध हो गये।' (भाई दत्तसिंह जी ने भी इस वक्तव्य की पुष्टि की)।

पटियाला में असिस्टैंट सर्जन डाक्टर नत्थूराम ने वर्णन किया 'हमारे सामने एक दिन पण्डित शिवनारायण ने आकर शंका की कि स्वामी जी, सामवेद में उल्लू की कहानी है। आप कैसे कहते हैं कि वेद में कोई कहानी नहीं है? तब स्वामी जी ने सामवेद उठाकर उनके हाथ में दे दिया कि यदि है तो आप अवश्य निकाल कर सबके सामने बतलाइये। पंडित जी पुस्तक लेकर कुछ समय तक खोजते रहे फिर अन्त को कह दिया कि इसमें से नहीं मिलती। इस पर स्वामी जी तो मौन रहे परन्तु और लोगों ने उन्हें बहुत लज्जित किया।'

'एक दिन लाहौर के एक पंडित जी स्वामी जी से मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ करने लगे और एक श्लोक पढ़कर कहने लगे कि मनुस्मृति में भी मूर्तिपूजा की आज्ञा दी हुई है। स्वामी जी ने पूछा यदि यह श्लोक मनुस्मृति का न हो तो क्या आप अपनी 'टूं-टूं, पूं-पूं' (मूर्तिपूजा) को छोड़ देंगे?' उसी समय मनुस्मृति मंगाई गई परन्तु पंडित जी ने कहा कि हम आपकी पुस्तक का प्रमाण नहीं मानते, अपने घर जाकर मनुस्मृति देखकर लावेंगे। स्वामी जी ने इस बात को स्वीकार किया। तीसरे दिन पंडित जी जब फिर आये तो स्वामी जी ने पूछा कि वह श्लोक मनुस्मृति में मिला? पंडित जी मौन हो गये और केवल यही कहा कि निस्सन्देह, वह श्लोक मनुस्मृति का नहीं था। (वार्षिक विवरण से)

इसी प्रकार एक और पंडित ने एक दिन एक श्लोक पढ़कर कहा कि देखो योगवासिष्ठ में मूर्ति-पूजा की आज्ञा दी हुई थी। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि यद्यपि हम योगवासिष्ठ को प्रमाण नहीं मानते परन्तु फिर भी यह श्लोक आधा योगवासिष्ठ का है, आधा किसी और मनुष्य का घड़ा हुआ प्रतीत होता है; जांचने पर ऐसा ही निकला। (वार्षिक विवरण से उद्धृत)

इसी प्रकार प्रतिदिन शास्त्रार्थ हुआ करता था। 'एक बार स्वामी जी के पास पंडित तेजभान आया और आकर श्राद्ध विषय पर वार्ता आरम्भ की। बहुत लोग बैठे हुए थे। उसने अपने मन्तव्य के समर्थन में 'आयन्तु नः पितरः सौम्यासः'[२१] वाला मन्त्र उपस्थित किया। स्वामी जी ने इसका अर्थ करके कहा कि इसका सम्बन्ध मृतक श्राद्ध से तो किसी प्रकार नहीं है। जिस पर वह और तो कुछ उत्तर न दे सका, केवल यह कहा कि आपके इतने अनुयायी हो गये हैं परन्तु इनमें कोई भी

ऐसा नहीं जो केवल एक मन्त्र भी शुद्ध पढ़ सके। तब पंडित बिहारीलाल शास्त्री ने उठकर वह मन्त्र शुद्ध पढ़ा और साथ ही पंडित जी ने जो एक श्लोक उपस्थित किया था और वह अशुद्ध था, उसकी अशुद्धियां भी बतलाईं कि आप इन अशुद्धियों को शुद्ध कीजिये। (पंडित बिहारीलाल शास्त्री के मुख से)।

स्त्रियां पतियों से शिक्षा लें—एक दिन कुछ स्त्रियां दोपहर के समय विशेष आज्ञा प्राप्त करके स्वामी जी के पास उपदेश सुनने के अभिप्राय से गईं और स्वामी जी से पूछा कि ज्ञान और शान्ति किस प्रकार हो सकती है? स्वामी जी ने उनसे कहा कि तुम्हारे पति तुम्हारे गुरु हैं, उन्हीं की सेवा तुमको करनी चाहिये, किसी साधु को गुरु मत बनाओ और विद्या पढ़ो। तुम अपने पतियों को यहां भेजा करो और उनके द्वारा हमारे उपदेश से लाभ उठाया करो। उस दिन के पश्चात् स्वामी जी ने स्त्रियों का आना बन्द कर दिया। (वार्षिक विवरण से)।

स्वामी जी ने डाक्टर रहीम खां की कोठी में ही अपने जीवन का वृत्तान्त भी कई दिन तक वर्णन किया था जो अत्यन्त अद्भुत था।

स्वामी जी के सत्योपदेश का परिणाम—स्वामी जी के सत्योपदेशों ने कई सज्जनों के दिल मूर्तिपूजा से फेर दिये। कुछ ने तो मूर्तियों को पूर्णतया विस्मरण ही कर दिया और कुछ ने जाकर चुपके से रावी नदी में बहा दिया। कुछ मनचले धार्मिक वीरों ने, जो बिरादरी की पर्वाह करने वाले नहीं थे, अपनी मूर्तियों को खुल्लमखुल्ला बाजारों में फेंक दीं। उनमें से एक महात्मा स्वर्गवासी ला० बालकराम जी खत्री लाहौर निवासी थे। जिससे समस्त नगर में हुल्लड़ मच गया। 'कोहेनूर' में लिखा है-'स्वामी दयानन्द सरस्वती के उत्तम प्रयत्नों का परिणाम उनके अनुयायियों के अतिरिक्त विपक्षियों के लिये भी रसायन के तुल्य हो गया अर्थात् जैसा कि एक नवीन विचार और शिक्षा प्राप्त सुविधा चाहने वाले लोगों का उनके वश में आ गया है और उनके उपदेशों का प्रभाव यहां तक हुआ कि एक व्यक्ति ने अपने ठाकुरों की चौकी बाजार के बीचोंबीच सड़क पर पटक दी।' (१६ जून, सन् १८७७, पृष्ठ ५०९, खंड २९, संख्या २४, शनिवार)।

पंजाब में प्रथम आर्यसमाज की स्थापना

स्वामी जी के आने से पूर्व शिक्षित लोगों की एक विचित्र दशा थी। अंग्रेजी शिक्षा ने उनको प्राचीन धार्मिक रीतियों और प्रथाओं से विरक्त कर दिया था। कितने ही लोग प्रकट में हिन्दू परन्तु मन से ईसाई और मुसलमान थे। बहुत से लोग ईसाई हो गये थे; केवल समाज के बन्धन ने उनको वश में रखा हुआ था। मद्यपान और व्यभिचार भी बहुत बढ़ गया था। ऐसे समय में कौन यह सोच सकता था कि हिन्दुओं में भी कोई ऐसा व्यक्ति होना संभव है जो धार्मिक विचारों के इस बहाव को एक ओर से दूसरी ओर को बदल दे, हिन्दुओं में भी यह उमंग उत्पन्न कर दे कि हम सब मिलकर एक बन जायें और उनको आत्मसम्मान का पाठ पढ़ावें। निस्सन्देह ऐसे समय में जब शिक्षित लोग धार्मिक शिक्षा के लिये यूरोप तथा अमेरिका की ओर देख रहे थे, अपनी ही जाति में अकस्मात् ऐसे बड़े महात्मा और विद्वान् संन्यासी का देशोपकार और धर्म सम्बन्धी सुधार के लिये कमर बांध कर जीवन पर्यन्त काम करने के लिये खड़ा हो जाना एक अत्यन्त ही अद्भुत बात प्रतीत होती है। किस के ध्यान में आता था कि इस मृतप्राय जाति में भी कोई जीवित व्यक्ति विद्यमान है? इस समय स्वामी जी का पंजाब में आना ईश्वर की एक विशेष कृपा का आविर्भाव समझना चाहिए।

आर्यसमाज-स्थापना की आवश्यकता—विदित हो कि जब स्वामी जी डाक्टर रहीम खां साहब की कोठी (जो नगर के बाहर छज्जू भगत के चौबारे से लगी हुई थी) में उतरे थे, उस समय उन्होंने लोगों को बतलाया कि आर्यधर्म की उन्नति तभी हो सकती है जब नगर-नगर और ग्राम-ग्राम में आर्यसमाज स्थापित हो जावें। चूंकि स्वामी जी के उपदेशों से

लोगों के विचार अपने धर्म पर दृढ़ हो चुके थे, सब लोगों ने इस बात को स्वीकार किया और २४ जून, सन् १८७७, रविवार तदनुसार जेठ सुदि १३ संवत् १९३४ व आषाढ़ १२,[२३] संक्रान्ति के दिन लाहौर नगर में आर्यसमाज स्थापित हुआ। चूंकि इससे पहले बम्बई और पूना में आर्यसमाज स्थापित हो चुका था और नियम भी निश्चित हो चुके थे किन्तु वे बहुत विस्तृत थे, उन विस्तृत नियमों को पंजाब में यहां के कुछ लोगों के कहने से उनकी सम्मति से स्वामी जी ने संक्षिप्त कर दिया और वे नियम ८ सितम्बर, सन् १८७७ के समाचार पत्र 'खैरख्वाह' और 'स्टार आफ इण्डिया' खंड १२, संख्या १७, पृष्ठ ८ सियालकोट नगर में प्रकाशित हुए।

आर्यसमाज लाहौर के नियम

१—सब सत्यविद्या और विद्यासे जो पदार्थ जाने जाते हैं उन सबका आदिमूल परमेश्वर है।[२४]

२—ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा अनन्त, निर्विकार अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहियें।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

निष्कर्ष—'यह उसी आर्यसमाज के शुभ नियम हैं जिसको श्री परोपकारी स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज और उनके शुभ तथा सुशिक्षित अनुयायियों ने स्थापित किया है। बुद्धिमान वह है जो राख से लाल और बातचीत का सार ग्रहण कर लेता है। 'आदि सच जुगादि सच (नानक) है, भी सच और होसी भी सच', 'सांच को आंच नहीं और झूठ को पैर नहीं।' विरोधी, अन्यायकारी और पक्षपाती जो चाहें सो कहें परन्तु हम यही कहेंगे कि उक्त स्वामी जी महाराज हमारे आर्य देश में धर्म और सत्य के प्रकट करने के लिए सम्पूर्ण कला-सम्पन्न अवतार उत्पन्न हुए हैं। आज की तिथि से हमने अपने समाचार पत्र के पालन करने योग्य कर्त्तव्यों में इस आवश्यक कर्त्तव्य को भी सम्मिलित कर लिया है कि जहां तक हमको अवसर और अवकाश मिलेगा, उक्त स्वामी जी के शुभ विचारों को इस पत्रिका के द्वारा प्रकाशित किया करेंगे।'

'आर्यसमाज के अधिवेशन'—आर्यसमाज लाहौर की विवरण पत्रिका में इस प्रकार लिखा है, 'उस समय लाहौर की विचित्र दशा थी। नगर में दो पक्ष हो गए थे, एक वह कि जिनके विचार स्वामी जी के उपदेश सुनकर प्राचीन वैदिक

धर्म की ओर आकृष्ट हो गये थे और दूसरी ओर वे पौराणिक लोग थे जो पुरानी चाल और प्रथा को छोड़ना नहीं चाहते थे। उस समय इन दोनों पक्षों में विचित्र खींचातानी थी। पुरानी चाल के लोग और ब्राह्मण, आर्यसमाजियों को नास्तिक और किरानी कहते थे।'

प्रथम सप्ताह—उपासना डाक्टर रहीम खां साहब की कोठीं में हुई और हवन भी हुआ और वहीं आर्यसमाज की नींव रखी गई और उपासना के पश्चात् बाबू शारदाप्रसाद भट्टाचार्य जी ने कुछ व्याख्यान दिया जिसके पश्चात् स्वामी जी ने कहा कि अब हमको आशा बंध गई है कि आप सत्यधर्म को अच्छी प्रकार से चला सकेंगे।

दूसरे सप्ताह—दिनांक, १ जुलाई सन् १८७७, रविवार तदनुसार आषाढ़ बदि ५, संवत् १९३४ को 'सत्यसभा' के मकान में ईश्वरप्रार्थना होकर आर्यसमाज की कार्यवाही हुई जिसमें स्वामी जी ने पुराणों का बहुत अच्छी प्रकार खंडन किया और बड़ी प्रबल युक्तियों से उनकी वेदविरुद्ध बातों को काटा। इस पर 'सत्यसभा' वाले भी स्वामी जी से अप्रसन्न हो गये और उन्होंने इस विषय का एक पत्र लिखा—'**प्रार्थना**—ज्ञात हो कि चूंकि स्वामी जी महाराज ने गत रविवार को अपने व्याख्यान में 'शास्त्रों और पुराणों का मानना उचित नहीं है' यह बात उपस्थित की और यह बात 'सत्यसभा' के सिद्धान्तों के विरुद्ध है; यहां तक कि इसी कारण कई लोगों का आपस में झगड़ा भी हो गया है और वे साधारण दुकानदार लोग जो 'सत्यसभा' के सिद्धान्तों पर अपना विश्वास रखने लग गये थे, इस बात को सुनने और देखने में अब फिरे हुए दिखाई देते हैं, और सत्यसभा की स्थापना पूर्णतया साधारण लोगों के कल्याण के अभिप्राय से ही हुई है, इसीलिए आर्यसमाज की कार्यकारिणी सभा के सदस्यों से प्रार्थना है कि आगामी रविवार को, उस समाज वालों की जो उपासना इस मकान में (एकत्रित होकर) नियत की गई है, वह किसी और मकान में रख लें तो अच्छा होगा; क्योंकि इस मन्दिर में पुन: ऐसा होने से उपद्रव हो जाने की आशंका है और यदि कुछ काल तक आर्यसमाज के सदस्य इस मन्दिर में अपनी उपासना करना चाहते हों तो निस्सन्देह यह विवादास्पद विषय सत्यसभा की कार्यकारिणी सभा में उपस्थित किया जावेगा और निर्णय की सूचना दी जावेगी। सूचनार्थ निवेदन किया गया। ३ जुलाई, सन् १८७७ तदनुसाद आषाढ़ बदि ७, संवत् १९३४।'

कारण कि सदस्यों की संख्या भी दिन प्रतिदिन बढ़ रही थी और 'सत्यसभा' ने भी (अपने यहां) सभा करने का निषेध कर दिया था, इसलिये ८ जुलाई, सन् १८७७ को अनारकली में स्थित वह मकान, जिसमें आजकल 'ट्रिब्यून' का दफ्तर[1] है, बीस रुपये मासिक किराये पर ले लिया गया, उसी दिन, रविवार को इस मकान में समाज की साप्ताहिक सभा की गई और स्वामी जी ने स्वयं ईश्वरोपासना कराई।

स्वामी जी का एक पवित्र एवं दृढ़ संकल्प—उसी दिन या किसी दूसरे दिन व्याख्यान में स्वामी जी ने कहा था 'कि हम जानते हैं कि वैदिकधर्म-प्रचार का यह भारी काम हमारे इस जीवन में पूरा न होगा, परन्तु यदि इस जन्म में नहीं तो, फिर दूसरे जन्म में हम इस काम को पूरा करेंगे।' इससे विदित होता है कि उनका कितना बड़ा धैर्य और संकल्प था।

आर्यसमाज लाहौर के प्रथम सदस्य—निम्नलिखित मनुष्य उस समय आर्यसमाज के सदस्य हुए और सन् १८७७ के वर्ष के लिए पदाधिकारी चुने गये—१. ला० मूलराज एम० ए०, प्रधान, २. स्वर्गीय ला० श्रीराम एम० ए०, उपप्रधान, ३,४,५ बाबू शारदाप्रसाद भट्टाचार्य, स्वर्गीय ला० सांईदास और ला० जीवनदास, मन्त्री, ६. ला० बिशनलाल एम० ए०, उपमन्त्री, ७. ला० कुन्दनलाल कोषाध्यक्ष, ८. स्वर्गीय ला० वल्लभदास पुस्तकाध्यक्ष, ९. पंडित अमरनाथ, १०. डाक्टर

1. कुछ काल से अब इस स्थान पर भारत इंश्योरेन्स कम्पनी का कार्यालय है। "ट्रिब्यून" का कार्यालय यहां से चला गया ('उर्दू' संस्करण के सम्पादक —श्री आत्माराम)

भगतराम साहनी, ११. डाक्टर खजनचन्द, १२. ला० मदनसिंह, १३. ला० मंगोमल, १४. ला० हंसराज साहनी वकील, १५. ला० द्वारकादास, १६. स्वर्गीय ला० ईश्वरदास बी० ए०, १७. स्वर्गीय भाई निहालसिंह, १८. स्वर्गीय ला० बालकराम, १९. ला० रामसहायमल, २०. ला० गोविन्दसहाय, २१. ला० ईश्वरदास एम० ए०, २२. डाक्टर सदानन्द ।

'वेद के गंगा-यमुना शब्द शरीर की नाड़ियों के वाचक हैं'—एक दिन ब्रह्मसमाज के लोग मिलकर अनारकली स्थित समाज के मकान में आये और स्वामी जी से कहा कि वेदों में मूर्तिपूजा का वर्णन प्राय: स्थान-स्थान पर है । पंडित भानुदत्त ब्रह्मसमाजियों की ओर से स्वामी जी से वार्तालाप करते थे । विशेष रूप से उस श्रुति की भी चर्चा चली जिसमें गंगा-यमुना शब्द आते हैं ।[२५] इस पर आक्षेप यह था कि वेदों में गंगा-यमुना की भी उपासना लिखी है । स्वामी जी ने कहा कि यदि आप लोग समस्त प्रकरण पढ़ लेते तो यह शंका न करते । यहां पर गंगा-यमुना नाम दो नाड़ियों का है और यह स्थान योगाभ्यास का है । यहां पर नदियों से कुछ प्रयोजन नहीं है और इन शब्दों के साथ विशेषतया इस प्रकार के विशेषण हैं जो नदियों पर कदापि लागू नहीं हो सकते । बहुत से प्रश्न व्याकरण के किये जिनका पूरा-पूरा उत्तर ब्रह्मसमाजियों को मिल गया ।

'गुरुपन' के प्रबल विरोधी; परमसहायक भी केवल परमेश्वर ही हो सकता है—जब स्वामी जी अनारकली स्थित आर्यसमाज के मकान में कभी-कभी व्याख्यान दिया करते थे, उन्हीं दिनों एक दिन आर्यसमाज के अन्य सदस्यों की सम्मति से बाबू शारदाप्रसाद ने सार्वजनिक सभा में यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि स्वामी जी को समाज के सम्बन्ध में कोई विशेष पदवी, यथा 'संरक्षक' अथवा 'पथप्रदर्शक' की दी जावे । सब लोगों ने इस बात को स्वीकार किया । तब स्वामी जी ने हंसकर कहा कि इस शब्द से गुरुपन की गन्ध आती है और मेरा उद्देश्य गुरुपन आदि पन्थों के तोड़ने का है, न कि स्वयं गुरु बनकर एक नया पन्थ स्थापित करने का । कहा कि यदि इस प्रकार की पदवी से कल को मेरा ही मस्तिष्क फिर जाये या यदि मैं बच रहा तो जो मेरा स्थानापन्न होगा वह अभिमानी होकर कुछ काम करने लगे तो फिर तुम लोगों को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा और वही बुराई उत्पन्न होगी जो दूसरे नवीन पन्थों में हो रही है । इसलिए इस प्रकार का कोई प्रस्ताव कदापि न होना चाहिये । फिर बाबू शारदाप्रसाद जी ने कहा कि और नहीं तो हम आपको इस समाज का 'परम सहायक' कहेंगे । इस पर स्वामी जी ने कहा कि यदि मुझे आपने 'परम सहायक' माना तो उस जगदीश, जगद्गुरु, सर्वशक्तिमान् सहायक को क्या कहोगे ? अन्त में स्वामी जी ने कहा 'कि मेरा नाम भी आप लोग समाज के सहायकों में प्रविष्ट कर लें, जैसे और लोग सहायक हैं, मैं भी एक सहायक हूं ।'

पर्याप्त सोच-विचार के पश्चात् मुक्ति से पुनरावृत्ति होने के सिद्धान्त का निश्चय—'एक दिन अनारकली के मकान में मुक्तिविषय पर व्याख्यान दिया था और कहा था कि हम इस वैदिक सिद्धान्त को चिरकाल तक सोचते रहे और अब तीन वर्ष पश्चात् हमको पूरा पूरा निश्चय हो गया है कि मनुष्य के परिमित कर्मों का फल परिमित होता है और मनुष्य की आत्मा अपने अच्छे कर्मों का फल भोग कर फिर इसी संसार में आ जाती है । स्वामी जी संस्कृत अत्यन्त सरल बोलते और लिखते थे । बहुत से लोगों की प्रार्थना पर उन्होंने एक व्याख्यान समाज के मकान में संस्कृत भाषा में दिया और वह ऐसा सरल था कि जिनको थोड़ी सी संस्कृत आती थी वे भी उसको भलीप्रकार समझते जाते थे ।'

पंडित नन्दलाल जी, मुख्य पंडित, गवर्नमेण्ट हाई स्कूल, गुजरात[२६] ने वर्णन किया—'मुझे अपने विद्यार्थी ला० सन्तराम बी० ए० (वर्तमान हेडमास्टर नार्मल स्कूल, जालन्धर) के मुख से विदित हुआ कि एक विद्वान् संन्यासी लाहौर आये हुये हैं । इस पर मैं मिलने और शास्त्रार्थ की उत्सुकता से छुट्टी लेकर सन् १८७७ में लाहौर गया और अपने सहपाठी पंडित सुखदयाल नैयायिक, अध्यापक ओरियण्टल कालिज के पास जाकर ठहरा और उनसे कहा कि चलो ! स्वामी जी से चलकर

शास्त्रार्थ करें । उसने कहा कि हम उसके पास नहीं जाते; वह अपनी कहता है; दूसरे की नहीं सुनता । मुझे ज्ञात हुआ कि यह पहले उनके पास हो आये हैं और इनसे उनकी धर्मचर्चा हो चुकी है । अन्त में मैं उनके विद्यार्थी लद्धाराम को साथ लेकर स्वामी जी के पास गया । उस समय वहां ५-६ मनुष्य उपस्थित थे । वह लंगोट पहने लेटे हुए थे । हमारे सामने एक व्यक्ति ने नारियल भर कर दिया । उनके पास बैठा हुआ एक खत्री वेदान्त के विषय में कुछ पूछ रहा था । प्रश्न यह था कि वेदान्त कैसी चीज है ? स्वामी जी ने कहा कि जिस समय मनुष्य दु:खित होता है उस समय वह इससे अपने मन को सहारा दे सकता है । फिर हमारी बारी आई । प्रश्न तो मुझे स्मरण नहीं रहा परन्तु इतना स्मरण है कि उन्होंने संस्कृत बोलते हुए एक स्थान पर 'ल्युट्' प्रत्ययांत अर्थात् अन् प्रत्ययांत शब्द बोला । वहां चाहिए था नपुंसकलिंग परन्तु उन्होंने स्त्रीलिंग बोला । मैंने कहा कि ऐसा न बोलिये यह नपुंसक लिंग है । स्वामी जी ने कहा कि इस सूत्र—'कृत्यल्युटो बहुलम्'[२७] से इसका स्त्रीलिंग हो सकता है, इसलिये यह अशुद्ध नहीं । इतने में उनके व्याख्यान का समय हो गया, वह उठ गये और हम चले आये, फिर हम डाक्टर रहीमखां की कोठी में उनका व्याख्यान सुनने गये, विषय स्मरण नहीं ।'

लाहौर के वृत्तांत के सम्बन्ध में पंडित ताराचंद, क्लर्क पुलिस आफिस, जिला मुजफ्फरगढ़[२८] ने अपने एक भाई का वृत्तांत लिखकर भेजा है, जिसको मैं जैसे का तैसा यहां लिखता हूं ।

स्वामी जी की दूरदर्शिता—'जब स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज पहले-पहल लाहौर पधारे तो वेदोक्त धर्म का व्याख्यान दिया और लाहौर में आर्यसमाज स्थापित किया, उन दिनों कालिज के लड़के उनके पास संस्कृत पढ़ने जाया करते थे । उनमें मेरे भाई पंडित गनपतराय भी थे, जो उन दिनों वकालत की शिक्षा प्राप्त कर रहे थे । स्वामी जी महाराज उनको सच्चे वेदोक्त धर्म और संस्कृत की, जो कि इस देश से नष्टप्राय होती जाती थी, शिक्षा दिया करते थे । एक दिन स्वामी जी महाराज ने पंडित गनपतराय से पूछा कि तुम्हारा विवाह तो नहीं हुआ ? उन्होंने कहा कि महाराज ! विवाह तो नहीं हुआ परन्तु सगाई अर्थात् मंगनी हो गई है । स्वामी जी ने कहा कि तुम विवाह न करना । उन्होंने पूछा कि महाराज, क्यों ? उत्तर में स्वामी जी ने कहा कि तुम्हारी आयु कुछ कम प्रतीत होती है अर्थात् तीस वर्ष के भीतर है । पंडित गनपतराय ने घर में तो कुछ न कहा परन्तु अपने मित्रों आदि से कहा कि मैं विवाह बिलकुल नहीं करूंगा । कुछ समय के पश्चात् उनके श्वसुर ने विवाह कर देने को कहा और उनके घर वालों को बहुत तंग किया । पंडित गनपतराय को लाहौर से विवाह के लिये बुलाया गया । आना तो कहां उन्होंने पत्र का उत्तर भी नहीं दिया । फिर सब चुप हो रहे । कुछ समय पश्चात् उनके पास उनके पिता की ओर से इस विषय का तार पहुंचा कि तुम्हारे पिता अत्यन्त रुग्ण हैं और कहते हैं कि यदि तू हमारा लड़का है तो शाहपुर में (जो कि उसकी जन्मभूमि है) आकर पानी पीना । पंडित गनपतराय विवश होकर शाहपुर चल पड़े । वहां जब पहुंचे तो देखा कि पिता रुग्ण तो थे परन्तु ऐसे भयंकर रुग्ण न थे जैसा कि उनको लिखा गया था । वह उनकी आरोग्यप्राप्ति तक इसी स्थान पर रहे । उनके सम्बन्धियों ने उनको बहुत समझाया और कहा कि यदि तुम अपनी सगाई छोड़ दो और वह किसी और से ब्याही जावे तो भी लोग तुम्हारा नाम अवश्य लेंगे कि पहले इसका अमुक से सम्बन्ध हुआ था । बात उनके भी दिल को लग गई और उन्होंने यह भी सोचा कि कदाचित् कोई लड़का हो जाये जिससे मेरा नाम चले । इसलिये विवाह करने पर सहमत हो गये और उनका विवाह हो गया । यह सोचकर कि जीवन के दिन थोड़े हैं, आनन्द से व्यतीत करें, उन्होंने कालिज में पढ़ना छोड़ दिया और इधर-उधर भ्रमण में दिन व्यतीत करते रहे । एक दिन उनको कहा गया कि तुम्हारा यह विचार कि मेरा जीवन थोड़ा है, झूठा है, ज्योतिष और साधु सदा सत्य नहीं होते । तुमको चाहिए कि कुछ जीविका की खोज करो, बेकार मनुष्य संसार में अच्छा नहीं लगता और उनके बड़े भाई पंडित जसवन्तराय ने, जो कि उन दिनों मुजफ्फरगढ़ के सिविल सर्जन थे, से उनकी सिफारिश करके उनका नाम नायब तहसीलदारों में लिखवा दिया और तहसील लोधरा व शुजाआबाद, जिला मुलतान में स्थानापन्न नायब तहसीलदार भी रहे । अन्ततः रोगी होकर २८ वर्ष

की आयु में इस संसार से चल बसे । मरते समय उन्होंने अपने समस्त सम्बन्धियों और मित्रों से कहा कि मुझको स्वामी जी ने कहा था और इसी कारण से मैंने वकालत की शिक्षा भी छोड़ दी थी । पंडित गनपतराय जिला शाहपुर के एक सदाचारी और वैष्णवकुल में से थे और सदा अपनी जाति की उन्नति के ध्यान में रहते थे ।'

—ताराचन्द, क्लर्क पुलिस, जिला मुजफ्फरगढ़

डाक्टर साहब की कोठी से ही स्वामी जी अमृतसर की ओर चले गये और फिर यद्यपि कुछ रविवारों पर लाहौर आते रहे परन्तु एक-दो दिन से अधिक न रहे ।

राष्ट्रीय सुधार के लिए अपूर्व उत्साह

अत्यन्त उदार तथा सुसंस्कृत विचार—१ जुलाई, सन् १८७७ को प्रकाशित 'बिरादरे हिन्द' में स्वामी जी के विषय में निम्नलिखित लेख है—'उनके विचार प्राय: उदार तथा अधिकांश विचार इस समय के विद्वत्तापूर्ण विचारों के अनुकूल हैं । मस्तिष्क उनका अत्यन्त प्रगतिशील प्रतीत होता है । उन्होंने यद्यपि संस्कृत भाषा के अतिरिक्त और किसी भाषा का साहित्य नहीं पढ़ा, तथापि एक इसी साहित्य के अध्ययन और उत्कृष्ट विचारशील विद्वानों के संसर्ग में उन्होंने अपने विचारों को इतना शुद्ध और उदार बना लिया है कि वह केवल अपने समस्त समकालीन पंडितों के पक्षपातपूर्ण और संकुचित विचारों की कोटि से पार होकर एक सच्चे विद्वान् और उत्कृष्ट विचारशील पंडित का उदाहरण ही नहीं बन गये हैं; अपितु हमारे देश के साधारण अंग्रेजी-पढ़े-लिखे लोगों के विचारों से कुछ अधिक प्रगतिशील हैं । इस व्यक्ति के हृदय में राष्ट्रीय सहानुभूति और राष्ट्रीय सुधार का बहुत बड़ा उत्साह स्पष्ट दिखाई देता है, यद्यपि इस समय यह कहना अत्यन्त कठिन है कि वह उत्साह कहां तक स्वार्थ से रहित और स्वार्थ के मिश्रण से भी रहित है क्योंकि यह बात केवल परीक्षा पर निर्भर करती है और यह तो केवल समय ही बतायेगा । तथापि उनके व्यक्तित्व से जहां तक हम इस समय अनुमान कर सकते हैं, देश में बहुत कुछ उन्नति और सुधार की आशा है । धार्मिक सुधार की दृष्टि से मूर्तिपूजा का यह व्यक्ति बहुत बड़ा शत्रु है और उन लोगों में से जो इन दिनों मूर्तिपूजा को जड़ से उखाड़ने का प्रयत्न कर रहे हैं, इस व्यक्ति को इस काल का बहुत बड़ा मूर्तिभंजक कहें तो भी अनुचित न होगा । जहां तक धार्मिक सुधारों का प्रश्न है, 'ब्रह्मसमाज' भी सिद्धान्त रूप से मूर्तिपूजा को दूर करना और इस संसार में ईश्वरोपासना का प्रचार करना चाहता है । इसलिए उसका तो यह व्यक्ति एक देवदूत की भांति सहायक सिद्ध होगा । इसकी जितनी प्रशंसा की जाये थोड़ी है । यह व्यक्ति केवल धार्मिक सुधार का ही अभिलाषी नहीं है, अपितु समस्त जातीय बुराइयों के सुधार को दृष्टि में रखता है, जैसे देश में फैल रहा बाल्यावस्था में विवाह आदि । स्त्रियों की शिक्षा और उनकी स्वतंत्रता का विशेष रूप से इच्छुक है और उसकी यह सम्मति है कि जब तक उनमें शिक्षा न फैलेगी तब तक उन्हें अपनी कैद से छुटकारा प्राप्त न होगा और तब तक इस देश में किसी स्पष्ट उन्नति की आशा करना व्यर्थ है । सारांश यह है कि जाति से अविद्या और पक्षपात को दूर करना, विद्या का प्रचार करना और सुदृढ़ राष्ट्रीय एकता उत्पन्न करना और उसे साधारण सभ्यता के रूप में लाकर एक श्रेष्ठ नमूना बनाने का यत्न करना, इस व्यक्ति का सामान्य और विशेष उद्देश्य है ।' (पृष्ठ २०२)

२१ जुलाई, सन् १८७७ शनिवार को लाहौर समाज ने एक पुस्तकालय खोलने का निश्चय किया कि जिसमें संस्कृत की पुस्तकें बिक्री के लिए रखी जावें और इस काम के लिए ला० सांईदास ने १००) देने का वचन दिया ।

१२ जुलाई सन् १८७७[२९] रविवार को अनारकली समाज में प्रथम प्रात: ७ बजे पंडित शारदाप्रसाद जी ने आर्यधर्म पर व्याख्यान दिया और सायंकाल स्वामी जी ने उसी स्थान पर 'धर्म की आवश्यकता' और 'आर्यसमाज के लाभ' पर व्याख्यान दिया । इस बार केवल एक दिन के लिए स्वामी जी अमृतसर से पधारे थे ।

इस समय समाचारपत्र 'कोहेनूर' में निम्नलिखित लेख प्रकाशित हुआ 'आर्यसमाज लाहौर'—पहले दो-तीन मास में, स्वामी दयानन्द सरस्वती जी जो धर्मोपदेश करते रहे हैं, उसके सुनने से लोगों के हृदयों में जातीय सहानुभूति ने इतना उत्साह उत्पन्न किया कि उन्होंने २४ जून, सन् १८७७ को यह समाज स्थापित किया । अब इस समाज के लगभग तीन सौ सदस्य हैं और इसमें दिन-प्रतिदिन वृद्धि होती जा रही है । इस समाज का वास्तविक ध्येय आर्यधर्म, संस्कृत और वेदविद्या की उन्नति और प्रचार करना है । इसी अभिप्राय से एक पाठशाला संस्कृत और वेदों की शिक्षा के लिए चालू की गई थी जिसमें इस समय एक सौ व्यक्ति शिक्षा पाते हैं । इस समाज की स्थापना केवल स्वामी जी के पधारने का परिणाम है। इतिहास को देखने से स्पष्ट सिद्ध होता है कि स्वामी शंकराचार्य के समय से लेकर आजतक, इस २५०० वर्ष के अन्तर में कोई वेद का ज्ञाता और ऋषीश्वर शिक्षक उत्पन्न नहीं हुआ, जो सीधा मार्ग बतलाता । क्या यह कुछ कम प्रसन्नता का अवसर है कि स्वामी जी (सब की) भलाई और पथप्रदर्शन के लिए यह सब कुछ कर रहे हैं । हे भाइयो ! आर्यधर्म वालो ! अब प्रमाद निद्रा से क्यों नहीं जागते ? देखो ! धन्य है परमेश्वर दयालु सच्चिदानन्द; जिसने वेद को संसार में प्रकट किया और धन्य हैं वे आर्य लोग, जिन्होंने वेद का अनुसरण स्वीकार किया । वे (आर्यलोग) वेद की शिक्षा के बल से बली और गुण से गुणी बने प्रसन्नतापूर्वक अपना समय व्यतीत करते थे और आपस में एक दूसरे के साथ भ्रातृभाव बरतते थे । यह बात केवल इतने से ही पर्याप्त सिद्ध हो जाती है कि सृष्टि के आरम्भ से लेकर पृथ्वीराज के अन्तिम शासनकाल तक कोई अन्य जाति इस आर्यावर्त पर आक्रमण न कर सकी । परन्तु हे भाइयो ! जब इस जाति में अविद्या के कारण फूट बढ़ गई तो उस समय से आर्यावर्त की दशा और ही प्रकार की हो गई । उस समय महमूद गजनवी आदि आये और अन्त में शाहबुद्दीन गोरी ने इस देश पर अधिकार कर लिया । उस फूट का परिणाम यह निकला कि हमारा पवित्र वेद और आर्य धर्म-कर्म बिलकुल नष्ट हो गया और वेद की शिक्षा तो ऐसी मिटी कि यदि हम दीपक लेकर भी खोजें तो कहीं पता नहीं मिलता। परन्तु धन्यवाद है उस दयालु का कि जिसने अपनी दया से हम लोगों की दुर्दशा को देखकर श्री पं० स्वामी दयानन्द सरस्वती महाराज जी को उत्पन्न किया और अपनी शक्ति से उनके हृदय में यह निश्चय स्थापित किया कि वे ईश्वरोपासना और वेद की शिक्षा सिखलावें, लोगों को मनुष्यपूजा और चमत्कारों आदि के विश्वास से बचावें और उनको सीधे मार्ग पर लावें। हम स्वामी जी के अत्यन्त आभारी हैं कि उन्होंने इतना कष्ट उठाकर और वेद की शिक्षा पाकर अपनी आयु का समस्त अवशिष्ट भाग हमें अर्पित कर दिया; आशा तो यही है कि वे जैसे-जैसे प्रयत्न कर रहे हैं, समस्त देश एक-मत होकर उनका मान करे तो एक दिन में ही दरिद्रता और अविद्या की नौका पार है और फिर वही वेदधर्म, कर्म और सच्ची उपासना जो किसी समय में पहले ऋषीश्वर-मुनीश्वर किया करते थे, हमारे सामने आ जावे । परन्तु खेद है कि कुछ लोग स्वयं तो अविद्या के कूप में गिरे पड़े ही हैं परन्तु औरों को भी निकलने से रोकते हैं । अपने सच्चे धर्म और वास्तविक उपास्य की उपासना करो और समस्त लोगों को सत्य मार्ग पर चलने की शिक्षा दो । आगे तुम्हारी इच्छा है । हे भाइयो ! मेरी सम्मति में [illegible] को एक [illegible] से [illegible] होना चाहिए और केवल वेद पर [illegible] चाहिए । जो कुछ उसमें शिक्षा की गई है, केवल उसी से हमें मुक्ति प्राप्त हो सकती है ।'

लेखक 'नियाज', एम० ए०, शुभचिन्तक आर्यधर्म ।

(कोहेनूर दिनांक—२८ जौलाई, सन् १८७७, पृष्ठ ६४०, खंड ९, संख्या ३३ से उद्धृत)

'नूर अफशां' लुधियाना में लिखा है—

"एक पादरी की शंकाएं—६ अक्तूबर, सन् १८७७, को पादरी पी० एम० मुकर्जी ने मुंगेर में एक व्याख्यान आर्य लोगों के धर्म के विषय में दिया । इसमें **प्रथम**—यह सिद्ध किया कि आर्य लोग कास्पियन समुद्र के तट पर स्थित देश से

भारत आये। **दूसरे**—आर्य लोगों की अवस्था और उनके चालचलन आदि का वर्णन करके उनकी बहुत प्रशंसा की। **तीसरे**—वेद तथा शास्त्रों के कई स्थलों का उद्धरण देकर वर्णन किया कि इन स्थानों की शिक्षा बाइबिल की शिक्षा से मिलती है और अन्त में उक्त सज्जन ने अपने देशवासियों से बार-बार अनुरोध किया कि अपने वेद तथा शास्त्रों की शिक्षा को विचारपूर्वक देखें और ईसाई मत पर पक्षपात रहित होकर विचार करें और उसे जानें। यह पूर्णतया सिद्ध है कि हिन्दू धर्म-जो वर्तमान काल में पाया जाता हैं, उस धर्म से कि जिसका वर्णन वेद और शास्त्रों में है, बिलकुल भिन्न है। इसलिए, यदि कोई और शास्त्रों के धर्म को हिन्दुओं में प्रचलित करके उस पर आचरण करे तो हिन्दू उससे ऐसा ही बरताव करेंगे जैसा कि वह ईसाइयों से करते हैं। उदाहरणार्थ, अधिकतर ब्रह्मसमाजी आरम्भ में वेद तथा शास्त्र के धर्म पर विश्वास रखते थे परन्तु हिन्दुओं की दृष्टि में वे भी नास्तिक ठहरे। फिर थोड़े दिन हुए पंडित दयानन्द सरस्वती ने पंजाब में आकर, हिन्दुओं को शिक्षा दी कि आर्य लोगों के धर्म पर चलना चाहिये परन्तु यद्यपि उक्त पंडित ने वेद तथा शास्त्र की शिक्षा में शाक्यमुनि[३०] की शिक्षा को मिलाकर शिक्षा दी तो भी प्राय: हिन्दू उस पर यह आरोप लगाते रहे कि वह पादरियों का नौकर है और हिन्दू धर्म को बिगाड़ता फिरता है। निष्कर्ष यह है कि हिन्दू धर्म की शक्ति, इस बात पर निर्भर नहीं है कि यह प्राचीन है, क्योंकि वेद और शास्त्र के अनुसार तो कोई चलता नहीं है और अज्ञानमूलक जातपात पर जोर देते हैं। अविद्या को दूर करो तो हिन्दूधर्म, जो आजकल प्रचलित है, ऐसा भाग जावे जैसे अन्धेरा सूरज से भागता है।' (१ नवम्बर, सन् १८७७, पृष्ठ ३४१, खंड ५, संख्या ४३)।

लाहौर में दूसरी बार आगमन

फिर स्वामी जी अमृतसर, गुरुदासपुर और जालन्धर में धर्मोपदेश करते और 'आर्यसमाज' स्थापित करते हुए दशहरे के एक दिन पश्चात् फिर लाहौर (दूसरी बार) पधारे और मोची दरवाजे के बाहर, नवाब रजा अली खां के बगीचे में उतरे।

'कोहेनूर' में लिखा है स्वामी दयानन्द सरस्वती जी दशहरे (१६ अक्तूबर) से एक दिन पश्चात् से यहां आये हुए थे, और नित्य आर्यसमाज में शाम के समय ६ बजे से ८ बजे तक धर्मोपदेश करते रहे' (३ नवम्बर, सन् १८७७, पृष्ठ ९८३)।

प्राणायाम तथा उपासना विधि की शिक्षा—जब इस स्थान पर स्वामी जी ठहरे हुए थे तो कई मनुष्य दिन निकलने से पहले उनके पास प्राणायाम और उपासना की विधि सीखने जाया करते थे, जिससे उनको बहुत लाभ हुआ।

एक दिन इसी बगीचे में एक पादरी साहब और एक मिस साहबा स्वामी जी से मिलने आये। बातचीत के बीच में स्वामी जी ने कहा कि धन का सीमा से अधिक होना जाति के पतन का कारण होता है, जैसे कि इस आर्यजाति की दशा हुई और यह भी कहा कि अब अंग्रेजों में भी धन के अधिक होने से उनका स्वभाव बिगड़ता जाता है। फिर स्वामी जी ने कहा कि यह हमारा अनुभव है कि जिन दिनों हम जंगल में रहा करते थे तो हम प्रात:काल निकलने से पहले बहुत से अंग्रेजों को भ्रमण करते देखते थे परन्तु आजकल प्राय: अंग्रेज दिन चढ़े उठते हैं।'

उसी स्थान पर कसूर निवासी मिर्जा फतह बेग से स्वामी जी का शास्त्रार्थ हुआ था। इसमें स्वामी जी ने उनके प्रश्नों का पूरा-पूरा उत्तर दिया और सिद्ध कर दिया कि वैदिक धर्म ही सच्चा और ईश्वरीय धर्म है।

एक दिन लाहौर निवासी पंडित रामरक्खा ने स्वामी जी से प्रश्न किया कि सामवेद में ऋषियों के नाम आते हैं और इससे यह संदेह होता है कि वेद बहुत पीछे ऋषियों ने बनाये। इस पर स्वामी जी ने बहुत से मन्त्र, जो उनको कण्ठस्थ

थे, पढ़कर सुनाये, इनमें भारद्वाज आदि नाम थे और कहा कि इन स्थानों पर ये नाम किसी मनुष्य-विशेष के नहीं हैं, अपितु इस स्थान पर इनके विशेष अर्थ हैं। साथ ही सारे मन्त्रों का अर्थ सुनाया और कहा इस प्रकार की भूलें वेद के वास्तविक (गूढ़) अर्थ को न जानने के कारण होती हैं। ये नाम ऋषियों के नहीं हैं, अपितु यहीं से लेकर रखे हुए ऋषियों के नाम हैं।[३१] स्वामी जी के इस कथन से पंडित जी का पूरा-पूरा सन्तोष हो गया (वार्षिक विवरण से उद्धृत)।

यहां एक पादरी महोदय ने आकर प्रश्न किया कि वेद के ऋषियों को ईश्वर के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं था कि वह कौन है और अपनी बात की पुष्टि में प्रमाण के रूप में यह मन्त्र उपस्थित किया—'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः[३२] इत्यादि। राय मूलराज ने स्वामी जी को इस मन्त्र का अंग्रेजी भाषा से अर्थ करके सुनाया। तब स्वामी जी ने कहा कि इसका अर्थ यह नहीं है। अशुद्ध अनुवाद के कारण आपको सन्देह हुआ है। इसका अर्थ यह है कि सर्वव्यापक परमात्मा की हम उपासना करते हैं। फिर पादरी महोदय ने कहा कि देखो ! बाइबिल का प्रभाव कि उसका उपदेश इतनी दूर तक फैला हुआ है जहां तक सूर्य नहीं छिपता। स्वामी जी ने कहा कि यह भी वेद के ही कारण है। हम लोग उस धर्म को छोड़ बैठे हैं और आप लोग ब्रह्मचर्य, विद्याध्ययन, एकस्त्रीसंग, दूरदेशयात्रा, देशप्रीति आदि रखते हैं; इसीलिए इतनी उन्नति हो रही है। हमारी जाति के प्रमाद से ही यह आपकी उन्नति है, 'बाइबिल के कारण नहीं।' (बिहारीलाल जी शास्त्री द्वारा प्राप्त)।

२१ अक्तूबर, सन् १८७७ को ब्रह्मसमाज लाहौर का वार्षिकोत्सव था। स्वामी जी महाराज अपने उच्च साहस का परिचय देते हुए लगभग दो-तीन सौ आर्यसज्जनों सहित उसमें पधारे। 'इंडियन मिरर' कलकत्ता, सण्डे ऐडीशन, दिनांक अक्तूबर, सन् १८७७ में इस प्रकार लिखा है—हमको सूचना मिली है कि लाहौर 'ब्रह्मसमाज' के गत वार्षिकोत्सव के अवसर पर प्रार्थना हो जाने के पश्चात् पण्डित दयानन्द सरस्वती, प्राचीन दुर्वासा ऋषि के समान[३३], दो-तीन सौ अनुयायियों के साथ ब्रह्ममन्दिर में पधारे' (खंड १६, संख्या १५५)।

बिरादरे हिन्द में लिखा है—२१ अक्तूबर, सन् १८७७ को रविवार के दिन ब्रह्ममन्दिर लाहौर में ब्रह्म-समाज का चौदहवां वार्षिकोत्सव मनाया गया। भारतीय ब्रह्मसमाज के प्रचारक पण्डित अघोर नाथ गुप्त ने (जो इस शुभ अवसर पर कलकत्ते से पधारे थे) उस दिन की उपासना कराई और उपदेश दिये। इस बार यह उत्सव जिस धूमधाम से हुआ सम्भवतः ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। इसका कारण यह था कि इस वर्ष यहां पंडित दयानन्द सरस्वती के आने और पर्याप्त समय तक उनके निरन्तर उपदेश से साधारणतया लोगों के हृदय कुछ धार्मिक प्रेम से पहले ही उत्साहित हो रहे थे; इसलिए लोग उत्सव में अधिक संख्या में सम्मिलित हुए थे।

उत्सव के समयविभाग के अनुसार सात बजे प्रातः से आठ बजे तक भजन गाये गये। तत्पश्चात् आठ बजे से उपासना आरम्भ हुई। अघोर बाबू ने, जिनका मन प्रेम से हरा भरा हो रहा था, श्रोताओं को सम्बोधन करके कहा कि 'भाइयो ! आज जो उत्सव है वह आन्तरिक उत्सव का दिन है; आज हमें समस्त बाहरी सम्बन्धों को छोड़ देना चाहिये। केवल अपनी आत्मा और कृपालु परमात्मा की पवित्र आत्मा से सम्बन्ध रखना चाहिये। संसार को बिलकुल भूल जाओ और मन को एक बार बेचैनी के साथ, परमेश्वर के प्रेमरस का पान करने के लिए उद्यत करो। सारे दिन योग और धारणा के साथ प्रेममय परमेश्वर के प्रेम में डूबे रहकर अत्यधिक आनन्द और शान्ति प्राप्त करो। परमेश्वर के अमृत का पवित्र स्रोत फूट रहा है। इसलिये इस समय तुम में जिस-जिस के मन में अविश्वास और बेचैनी के किवाड़ लगे हुए हैं, वे उनको विश्वास और ईश्वरीय प्रेम के बसूले से खोलकर सच्चे अमृत के पवित्र स्रोत को अपने-अपने हृदयों में गिरने दें और इस अमृत रस से आज अपनी-अपनी नीरस आत्माओं को भली भांति सरस होने दें।'

फिर एक भजन गाकर नियमानुसार ईश्वर की स्तुति की गई। तत्पश्चात् बहुत काल तक ध्यान हुआ। ध्यान की समाप्ति के समय पण्डित दयानन्द सरस्वती जी भी डेढ़-दो सौ अनुयायियों सहित मन्दिर में आकर उत्सव में सम्मिलित हुए थे। अन्त में अघोर बाबू ने ईश्वर-प्रेम पर एक छोटा सा उपदेश दिया और सबके कल्याण के लिये प्रार्थना की ('बिरादरे हिन्द' मासिक पत्रिका, नवम्बर मास, सन् १८७७, पृष्ठ ३२२-३२६)।

इस बार स्वामी जी केवल १० दिन ठहर कर फिरोजपुर चले गये। इसीलिए 'कोहेनूर' में लिखता है—'लगभग दस दिन ठहर कर फिरोजपुर के आर्यधर्मियों की प्रार्थना पर २६ अक्तूबर, सन् १८७७ को फिरोजपुर की ओर चले गये' (३ नवम्बर, सन् १८७७, खंड २९, संख्या ६३, पृष्ठ ९८३)।

लाहौर में तीसरी, चौथी तथा पांचवीं बार[३४]

स्वामी जी २६ अक्तूबर से ४ नवम्बर, सन् १८७७ तक फिरोजपुर में रहे। जैसा कि 'कोहेनूर' लिखता है—'स्वामी दयानन्द सरस्वती जी फिरोजपुर से ५ नवम्बर को प्रातः ही (तीसरी बार) लाहौर पधारे और सायंकाल आर्यसमाज में व्याख्यान दिया' ('कोहेनूर' १० नवम्बर, सन् १८७७, पृष्ठ १००६)।

आर्यसमाज के उपनियम स्वामी जी की उपस्थिति में स्वीकृत हुए। अंतरंग सभा के सभासद् बनाये जाने पर ही उन्होंने सम्मति दी थी—दिनांक ६ नवम्बर, सन् १८७७, मंगलवार तदनुसार कार्तिक सुदि प्रतिपदा, संवत् १९३४ को आर्यसमाजों के उपनियम अन्तरंग सभा में वादानुवाद के पश्चात् आवश्यक सुधारों सहित स्वीकृत हुए। इस सभा में स्वामी जी महाराज उपस्थित थे। इस अवसर की एक बात उल्लेखनीय है और उससे विदित होगा कि स्वामी जी कितने नियम के अनुसार चलने वाले थे। जब उपनियमों पर बहस हो रही थी तो अन्तरंग सभा की ओर से प्रार्थना की गई कि आप भी अपनी सम्मति दें। स्वामी जी ने कहा कि मैं अन्तरंग सभा का सदस्य नहीं हूं; इसलिए मैं सम्मति देने का अधिकार नहीं रखता। उस समय जबतक अन्तरंग सभा ने उनको अन्तरंग सभा का सदस्य न बनाया, उन्होंने सम्मति नहीं दी'।

—(वार्षिक विवरण से उद्धृत)।

'कोहेनूर' में लिखा है—'तत्पश्चात् रावलपिंडी के उत्सुक लोगों की प्रार्थना पर वह ७ नवम्बर को एक बजे की रेल में उस ओर चले गये' (१० नवम्बर, सन् १८७७, खंड २९, संख्या ६४, पृष्ठ १००६)।

७ नवम्बर, सन् १८७७ से १ मार्च, सन् १८७८ तक स्वामी जी, **गुजरात, वजीराबाद, रावलपिंडी, जेहलम, गुजरांवाला की ओर** रहे और उन नगरों में आर्यसमाज स्थापित किये। 'कोहेनूर' में लिखा है—'स्वामी दयानन्द सरस्वती जी २ मार्च, सन् १८७८ से (चौथी बार) लाहौर में आये हुए हैं और उपदेश और शिक्षा में संलग्न हैं, शीघ्र ही मुलतान जाने का विचार रखते हैं' (९ मार्च, सन् १८७८, पृष्ठ २०२)।

सच्चाई को प्रकट करना ही उनका एकमात्र लक्ष्य था; इसमें वे कहीं डरते नहीं थे—स्वामी जी इस बार भी नवाब के बगीचे में विराजमान हुए। वहां एक दिन इस्लाम मत के खंडन में व्याख्यान दे रहे थे और पास ही श्रीमान् नवाब नवाजिशअली खां साहब टहल रहे थे और व्याख्यानदाता का व्याख्यान बराबर सुन रहे थे। व्याख्यान की समाप्ति पर एक व्यक्ति ने स्वामी जी से कहा कि महाराज! आपके ठहरने के लिए न कोई हिन्दू मकान देता है न कोई ईसाई और न मुसलमान। नवाब साहब ने कृपा करके मकान प्रदान किया। आज नवाब साहब भी व्याख्यान सुन रहे थे, ऐसा न हो कि वह कुपित हों। स्वामी जी ने कहा कि मैं इस्लाम की प्रशंसा करने यहां नहीं आया हूं और न किसी और मत की। मैं तो केवल वैदिकधर्म को सच्चा मानता हूं और शेष सारे मतों को झूठा। जिसे मैं ठीक जानता हूं उसी का उपदेश करता हूं।

मैंने देख लिया था कि नवाब साहब सुन रहे हैं। मैं उनको जान बूझ कर वैदिक धर्म के गुण सुना रहा था। मुझे नारायण परमात्मा के अतिरिक्त किसी का भय नहीं' (स्वर्गीय ला० बालकराम जी के मुख से)।

दूसरे दिन स्वामी जी मुलतान की ओर चले गये और १६ अप्रैल, सन् १८७८ तक मुलतान में रहकर १७ अप्रैल, सन् १८७८ को लौटकर (पांचवीं बार) लाहौर पधारे। आकर सत्योपदेश में संलग्न रहे।

आर्यसमाज के किसी शुभकर्म में हस्तक्षेप पसन्द नहीं करते थे—दिनांक ८ मई, सन् १८७८, बुधवार तदनुसार वैशाख सुदि ६, संवत् १९३५ की लाहौर आर्यसमाज की अन्तरंग सभा में स्वामी जी भी उपस्थित थे और चूंकि एक ऐसा विषय उपस्थित था कि जिसमें स्वामी जी की सम्मति की आवश्यकता थी, इसलिए अन्तरंग सभा के सदस्यों की सम्मति से प्रतिष्ठित सदस्य नियत किये गये। इस समय की इस सभा की कार्यवाही उल्लेखनीय है। अन्तरंग सभा के एक सदस्य ने यह प्रस्ताव रखा कि चूंकि स्वामी जी इस समय उपस्थित हैं इसलिए वह इस सभा के प्रधान नियत किये जावें। स्वामी जी ने वास्तविक प्रधान की उपस्थिति में अपना प्रधान होना अस्वीकार किया। वास्तव में वह किसी श्रेष्ठ कार्य में हस्तक्षेप करना पसन्द नहीं करते थे। जिन दिनों स्वामी जी लाहौर में थे उन दिनों पण्डित श्रद्धाराम ने १२ मई, सन् १८७८ को जम्मू में महाराजा के सम्मुख उपदेश दिया कि आज यह एक बड़ी भयावह स्थिति उत्पन्न हो गई कि हमारे ही लोग हमारे पुरातन धर्म को बिगाड़ने का उद्यम कर रहे हैं; जैसे कि दयानन्द सरस्वती। भाइयो ! शीघ्र जागो और अपने घर की रक्षा करो' ('कोहेनूर' से)।

देश के अन्य प्रान्तों में धर्म प्रचार के लिये जाने का विचार—अन्त में जब स्वामी जी ने लाहौर से अन्य प्रान्तों की ओर जाने का विचार प्रकट किया तो उस समय सार्वजनिक सभा में बाबू शारदाप्रसाद ने उठकर अत्यन्त आवेगपूर्ण शब्दों में प्रार्थना की कि आप यहां से अन्य स्थान पर न जावें और इस स्थान पर कुछ काल और निवास करें। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि जिस प्रकार तुम लोग हमारे यहां रहने की आवश्यकता समझते हो उसी प्रकार अन्य स्थानों पर भी हमारे जाने की आवश्यकता है और हम किसी एक स्थान से बंधकर नहीं रह सकते। जहां तक हमसे हो सकेगा, समस्त देश में वैदिकधर्म का प्रचार करेंगे।

अमृतसर में वैदिकधर्म-प्रचार : दो बार की घटनाएं

प्रथम बार—दिनांक ५ जौलाई,[३५] सन् १८७७ से १२ सितम्बर, १८७७ तक।

दूसरी बार—दिनांक १५ मई, सन् १८७८ से, ११ जौलाई, सन् १८७८ तक।

स्वामी जी ने जब पहली बार अमृतसर आने का विचार किया तो सरदार दयालसिंह[३६] रईस मजीठा ने मियां मुहम्मद जान, रईस अमृतसर से उनकी कोठी ४०) रुपये मासिक किराये पर लेकर स्वामी जी के ठहरने के लिए नियत की। स्वामी जी लाहौर से ५ जौलाई को आकर रामबाग दरवाजे के बाहर स्थित, मियां मुहम्मद जान की कोठी में आ विराजे। उनके पधारने की चर्चा सुनकर लोगों के दल के दल दर्शनों के लिए आने लगे। प्रत्येक मनुष्य अपना सन्देह निवृत्त कराने का प्रयत्न करता था। लोगों का प्रेम और उत्साह देखकर स्वामी जी ने वहीं पिछले पहर व्याख्यान देने आरम्भ किये और यह क्रम १२ सितम्बर तक चलता रहा; परन्तु बीच में कभी-कभी एक दिन के लिए स्वामी जी लाहौर चले जाया करते थे क्योंकि यह समाज अभी नई और निर्बल थी। राजा साहब दयाल, सरदार भगवानसिंह साहब, लाला सन्तराम साहब सपड़ा और अमृतसर के अन्य प्रतिष्ठित रईस व्याख्यानों में आते थे।

मियां अहमद (जिला रावलपिंडी) निवासी तथा इस समय आढ़ती बाजार रावलपिंडी निवासी, भाई अतरसिंह आढ़ती ने वर्णन किया 'कि सन् १८७७ में जिन दिनों आमों की ऋतु थी, हकीम जयसिंह अपने छोटे भाई के साथ लाहौर गया और वहां श्रद्धाराम फिल्लौरी के व्याख्यान सुने। स्त्रियां फूलों के हार अधिक लेकर जाती थीं और वह भी उनसे अधिक आकृष्ट होते थे। वहां हमने स्वामी दयानन्द जी की भी प्रशंसा सुनी और अनारकली आर्यसमाज के उत्सव पर भी गये। स्वामी जी उस समय अमृतसर में थे परन्तु उन दिनों लाहौर में स्वामी जी की निन्दा करने वाले लोग अधिक थे जो कहते थे कि वह ईसाइयों का नौकर है।'

"लाहौर से हम अमृतसर गये और चाहते थे कि स्वामी जी के व्याख्यान सुनने जायें परन्तु वहां आसपास के लोगों से सुना कि वह अंग्रेजों की ओर से हम लोगों को भ्रष्ट करने के लिए आये हैं। इसी कारण हम उनसे मिले बिना तरनतारन चले गये; वहां एक पंडित भाई वीरसिंह जी विरक्त से हमारी भेंट हुई। ये संस्कृत के अच्छे विद्वान् और हमारे पूर्वपरिचित थे। उन्होंने कहा कि स्वामी जी एक सिद्ध पुरुष हैं और उच्चकोटि के विद्वान् हैं। हम ने कहा कि आपने भी तो विरक्तों में झंडा गाड़ा हुआ है। उत्तर दिया कि नहीं, हम उनके बराबर कदापि नहीं। हमने उनको रावलपिंडी आने के लिए उद्यत किया और अमृतसर तक साथ लाये। अमृतसर आकर उन्होंने कहा कि चलो ! तुमको स्वामी जी के सामने कर आऊं परन्तु मैं स्वयं उनके सामने नहीं आऊंगा। ऐसा न हो कि कोई शास्त्रीय वार्ता चल पड़े। उनसे शास्त्रीय वार्ता करने का सामर्थ्य हममें नहीं है।"

"उस दिन हमारे जाने से पहले स्वामी जी क्षौर बनवा कर बैठे हुए थे। हम साधु वीरसिह जी को विदा कर उनके पास जा नमस्कार कर बैठ गये। उन्होंने हमसे सब वृत्तांत पूछा। दो बजे से तीन बजे तक वहां ठहर कर हम जाने लगे तो कहा कि अभी कुछ समय पश्चात् यहीं 'समाज' का अधिवेशन होगा, सब लोग आवेंगे, यदि तुमको सुनना है तो ठहर जाओ। अत: हम ठहर गये। कुछ काल पश्चात् राजा साहब दयाल, रईस किशनकोट, सरदार भगवानसिंह आनरेरी मैजिस्ट्रेट और ला० सन्तराम सपड़ा तथा अन्य बहुत से प्रतिष्ठित सज्जन आ गये और आते ही साधारण रूप से बैठते गये। स्वामी जी ने सिंहासन पर बैठकर मंत्र पढ़कर व्याख्यान आरम्भ किया और एक कुर्सी अपने सामने रख दी कि जिस किसी को व्याख्यान के पश्चात् शास्त्रार्थ करना हो सामने आकर बैठे और विचार करे, यदि निरुत्तर हो जाये या सन्तुष्ट हो जाये तो फिर अपने स्थान पर जाकर बैठ जाये।"

"इतने में एक ब्राह्मण आया और आते ही खड़ा हो गया। राजा साहब दयाल जी ने कहा, आइये पण्डित जी, आगे आ जाइये। पंडित जी बोले कि ऐसी सभा में क्यों आयें जहां 'इस देश के ब्राह्मण लोगों को गोदान का अधिकार नहीं है और उनको (ब्राह्मणों को) कोई श्लोक भी याद नहीं है, 'ऐसे विरोधी तथा अनर्थ वचन भरी सभा में कहे जाते हैं। हम यदि दान न लें तो क्या खाक खायें ?" 'स्वामी जी ने कहा 'हमने ऐसी बात नहीं कही अपितु कहा है कि चूंकि विद्वान् नहीं हो, इसलिए तुमको (दान लेने का) अधिकार नहीं है और न वेदमन्त्र याद हैं। तुम दान लेते हो और खाकर विष्ठा कर देते हो, तुम खाक न खाओ, घास खाओ।' इस पर राजा साहब ने कहा कि महाराज ! आपने यह क्या कहा, घास तो गधे खाते हैं। स्वामी जी बोले कि तुम्हारा इनसे परिहास करने का सम्बन्ध होगा। तुम भले ही अर्थ निकाल सकते हो हमने तो साधारण रूप में ही यह बात कही है। फिर वह पंडित कुछ न बोला।"

"उसके तीन दिन पश्चात् हमने अपने कानों सुना, लोग कहते थे कि यह कोई अवतार आया हुआ है और साक्षात् ईश्वरपूजा का उपदेश करता है। वह पहली सी निंदा अब नहीं रही थी।

उन्हीं दिनों स्वामी जी ने घण्टाघर पर ठाकुर जन्म के व्रत के विषय में उपदेश दिया कि यह बात बनावट है। लोग पत्थर को ठाकुर कहते हैं; और उस अजन्मा का जन्म बतलाते हैं। यह केवल किसी ने भीख मांगने का ढंग बना दिया है अन्यथा वेद शास्त्र में उसका कहीं कुछ पता नहीं। उस दिन श्रोताओं की संख्या अधिक थी। हमको निश्चय हुआ कि आज अवश्य पचास सौ व्यक्तियों की श्रद्धा मूर्तिपूजा से बदल गई। इस व्याख्यान से लोगों के हृदय में उत्साह उत्पन्न हुआ। वहां हमने दो व्याख्यान सुने। फिर हमने उनसे रावलपिंडी आने के विषय में बात की। कहा कि हम अभी ठीक नहीं कह सकते कि आयेंगे या नहीं क्योंकि वहां रेल नहीं जाती।

दिनांक ५ जौलाई, सन् १८७७ से ११ अगस्त तक बराबर उपदेश होते रहे; परिणामतः लोगों के हृदयरूपी क्षेत्र में 'सत्यधर्म' का बीज बो दिया गया। परिणाम यह हुआ कि लोग आर्यसमाज की स्थापना करने के लिए उद्यत हो गये और सावन सुदि, संवत् १९३४ तदनुसार १२ अगस्त, सन् १८७७ रविवार को यहां आर्यसमाज की स्थापना हुई। उस अवसर पर बाबू शारदाप्रसाद भट्टाचार्य, ला० श्रीराम एम० ए०—दो सज्जन—लाहौर से पधारे। प्रथम स्वामी जी ने उपासना करके सत्योपदेश दिया। फिर बाबू शारदाप्रसाद जी ने व्याख्यान दिया और मियां जान मुहम्मद साहब की कोठी में ही समाज की स्थापना हुई। लगभग ५० सज्जन सदस्य हुए और निम्नलिखित अधिकारी नियत किये गये-बाबू कन्हैयालाल वकील प्रधान, पंडित शालिग्राम वकील उपप्रधान; बाबू नारायणसिंह वकील मंत्री; पंडित हृदयनारायण उपमन्त्री आदि।

फिर 'समाज' के लिए मलोई बुंगा[३७] में एक मकान लिया गया और स्वयं स्वामी जी ने सबको यहां हवन की रीति बतलाई। मलोई बुंगा के मकान के भीतर जो चौक है, उसमें स्वयं स्वामी जी ने वेदमन्त्र पढ़कर प्रथम हवन कराया।"

गायत्री ही गुरु मन्त्र है—मनसुखराय का पिता सदा चाहता था कि किसी को बेटे का गुरु बनावे; वह निगुरा (बिना गुरु का) है परन्तु वह किसी को गुरु नहीं बनाता था। जब स्वामी जी आये और उसने उपदेश सुनने आरंभ किये—उसके समस्त सन्देह निवृत्त हो गये। उसने स्वामी जी को गुरु बनाना चाहा और मिश्री का थाल भर लाया, महाराज जी के अर्पण किया और दीक्षा ली। तत्पश्चात गुरु मन्त्र पूछा। स्वामी जी ने कहा कि और कोई गुरुमंत्र नहीं; गायत्री ही गुरुमंत्र है। फिर वह 'समाज' का सदस्य भी हो गया।

एक दिन स्वामी जी मलोई बुंगा में व्याख्यान देने बग्गी पर जा रहे थे। पंडित तुलसीराम जी ने समाज के सदस्यों से पूछकर चलती हुई गाड़ी में से नमस्कार करके उतार लिया और अपनी बैठक में ले जाकर महाराज जी की बड़ी स्तुति की और कहा कि आप विद्या के सूर्य हैं, मेरा आत्मा आपको धन्यवाद देता है। ऐसा कह कर मिश्री के कुछ कूजे और दो रुपये नकद भेंट किये और बड़ी नम्रता से नमस्कार करके विदा किया। फिर स्वामी जी व्याख्यान के लिए आये। इस बात की नगर में बहुत धूम हुई और स्वामी जी के सत्योपदेश की घर-घर चर्चा होने लगी।

उनके सत्योपदेश से दो-चार मनुष्यों ने मूर्तियां फेंक दीं और पूजात्याग करने वालों की संख्या तो सैकड़ों से ऊपर पहुंच गई।

यहां उन दिनों सबसे अधिक विद्वान् पंडित रामदत्त जी थे। जब स्वामी जी के दिन-प्रतिदिन के उपदेश से लोगों की मूर्तिपूजा से श्रद्धा दूर होने लगी तो नगर के पंडितों और उनके शिष्यों ने, जो सरकारी नौकर थे, पंडित जी से कहा कि जिस प्रकार भी हो आप स्वामी जी से शास्त्रार्थ करें। उन्होंने बहुतेरा कहा कि मैं वेद नहीं जानता; वे बड़े विद्वान् हैं; मेरी उनसे शास्त्रार्थ की सामर्थ्य नहीं। पण्डितों ने बहुत तंग किया कि हमारा सम्मान नहीं रहता, आप अवश्य शास्त्रार्थ करें। तब वह महात्मा बुद्धिमान् पंडित अमृतसर छोड़कर हरिद्वार चले गये। ऐसे बहुत से पंडित हैं जो सच्चे हृदय से स्वामी जी की बातों को स्वीकार करते हैं परन्तु संसार से भी डरते हैं।

जिन दिनों संवाददाता[३८] मूर्तिपूजा छोड़कर आर्यसमाज में प्रविष्ट हुआ तो पेशावर के योग्य पंडित स्वर्गीय मुरलीधर जी प्राय: शिक्षा के रूप में कहा करते थे कि 'यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं नाचरणीयं नाचरणीयम्' अर्थात् यद्यपि शुद्ध और सत्य है परन्तु चूंकि संसार की रीति के विरुद्ध है, इस कारण उस पर आचरण नहीं करना चाहिए और न उसे मानना चाहिए। साधारणतया विद्वान् पंडितों का तो यही सिद्धान्त है ।

पण्डित बिहारीलाल, ऐक्स्ट्रा असिस्टैण्ट कमिश्नर अमृतसर, स्वामी जी से भेंट के लिए पधारे और भेंट के समय बातचीत में कहा कि महाराज ! आपके और विचार तो उत्तम हैं, सब प्रकार श्रेष्ठ हैं परन्तु यदि आप मूर्ति का खंडन न करें तो सब लोग आपके अनुकूल हो जावें और आपकी आज्ञा को स्वीकार करें । स्वामी जी ने उत्तर दिया 'मैं सत्य को नहीं छोड़ सकता ।'

सरदार हरचरणदास रईस स्वामी जी से मिलने गये । वे इतने अधिक स्थूलकाय थे कि चल फिर भी कठिनता से सकते थे । स्वामी जी ने उनको देखकर उनके सामने ही कहा कि यह हमारे देश के मृत संरक्षक हैं कि जिनमें चलने तक की शक्ति नहीं है ! ऐसे लोग देश का क्या भला कर सकते हैं ?

स्वामी जी के सत्योपदेशों की जब बहुत चर्चा हुई तो एच० परकिंस साहब, कमिश्नर अमृतसर ने स्वामी जी से मिलने का विचार प्रकट किया । ला० गुरमुख राय वकील ने स्वामी जी से कहा कि कमिश्नर साहब आप से मिलना चाहते हैं और वे आप से पूर्ण अनुराग-पूर्वक भेंट करना चाहते हैं तो आप ही उनके बंगले पर चलें । स्वामी जी एक दिन गये और वहां पर कई विशेष बातों के अतिरिक्त निम्नलिखित बातचीत हुई-

एच० परिकिंस साहब, कमिश्नर अमृतसर—'हिन्दू धर्म सूत के धागों के समान कच्चा क्यों है ?' **स्वामी जी—**'यह धर्म सूत के धागे के समान कच्चा नहीं है अपितु लोहे से भी अधिक पक्का है । लोहा टूट जाये तो टूट जाये परन्तु यह कभी टूटने में नहीं आता ।'

कमिश्नर महोदय—'आप कोई उदाहरण दें तो हमको विश्वास आये ।'

स्वामी जी—'हिन्दू धर्म समुद्र के गुण रखता है;[३९] जिस प्रकार समुद्र में असंख्य लहरें उठती हैं उसी प्रकार इस धर्म में भी देखिये । (१) ऐसे लोगों का भी एक मत है जो छान-छान कर पानी पीते हैं ताकि पानी के द्वारा कोई अदृश्य कीट उनके पेट में न चला जाये । (२) एक मत ऐसे लोगों का भी है जो दुग्धाहारी हैं अर्थात् केवल दूध पीते हैं, अन्य कोई वस्तु नहीं खाते-पीते । (३) साथ ही एक मत ऐसे लोगों का भी है जो वाममार्गी कहलाते हैं । वह जो कुछ पा जाते हैं उसको, पवित्र-अपवित्र और योग्य-अयोग्य का विचार किये बिना, खा जाते हैं । (४) एक मत ऐसे लोगों का भी है जो जीवन भर यति रहते हैं अर्थात् न तो किसी स्त्री से विवाह करते हैं और न किसी पर कुदृष्टि रखते हैं । (५) एक मत ऐसे लोगों का भी है जो पराई स्त्रियों से अपना मुंह काला करते हैं । (६) एक मत ऐसे लोगों का भी है जो केवल निराकार परमात्मा को ही पूजते हैं; उसी का ध्यान करते हैं । (७) फिर एक मत ऐसे लोगों का भी है जो अवतारों की पूजा करते हैं । (८) एक मत ऐसा है कि जो केवल ज्ञानी हैं । (९) एक मत ऐसा है जो केवल ध्यानी हैं । (१०) इसी धर्म में वह लोग भी हैं जो छुआ छूत का ऐसा विचार करते हैं कि अन्य मत के लोग तो एक ओर, शूद्रों के हाथ तक से न पानी पीते हैं, न खाना खाते हैं । (११) एक मत उन लोगों का भी है जो शूद्रों के हाथ से पानी पीते हैं और इनसे भोजन बनवा कर खाते हैं । इतना होने पर भी वह सबके सब हिन्दू कहलाते हैं और वास्तव में हैं भी हिन्दू ही । कोई इनको हिन्दू धर्म से निकाल नहीं सकता । इसलिए समझना चाहिए कि यह धर्म अत्यन्त पक्का है, कच्चा नहीं ।'

पिरकिंस साहब—'आप किस प्रकार का मत बढ़ाना चाहते हैं ?'

स्वामी जी—'हम केवल यह चाहते हैं कि सब लोग पवित्र वेद की आज्ञा का पालन करें और केवल निराकार, अद्वितीय परमेश्वर की पूजा और उपासना करें। शुभ गुणों को ग्रहण करें और अशुभों को त्याग दें।' ('आर्यदर्पण' खंड ३, संख्या २, पृष्ठ २६, २७ से उद्धृत)।

भक्त द्वारा असमर्थता स्वीकृत और स्वामी जी का व्यवहार—वैद्यराज पंडित सर्वसुख जी कहते हैं—'यहां अमृतसर में एक बार स्वामी जी को मोटी हरड़ की आवश्यकता पड़ी। जब उनको कहीं न मिली तो मेरे पास उन्होंने मनुष्य भेजा। उसने आकर मुझसे मांगी परन्तु मेरे घर में मन्दिर देख कर कुपित होकर चला गया और जाकर स्वामी जी को बताया। स्वामी जी ने कहा कि हमने जो कुछ उनके विषय में सुना है वे अच्छे मनुष्य हैं; वे हृदय से मूर्तिपूजा के विश्वासी नहीं। फिर दूसरा मनुष्य आया, मैंने अपना सौभाग्य समझकर हरड़ के कुछ बड़े और मोटे दाने भेज दिये और कहला भेजा कि महाराज! हम अज्ञानी पुरुष हैं, हमारा ध्यान निराकार पर नहीं जमता; अन्यथा हृदय से तो उस निराकार परमात्मा को ही पूजता हूं; मूर्ति को नहीं। स्वामी जी हमसे प्रसन्न रहे।'

पंडित भीमसेन जी कहते हैं—'मैं लगभग दो मास अमृतसर में रोगी रहा और पंडित सर्वसुख जी के लड़के पंडित महादेव की दवा करता रहा; जिससे मैं ठीक हो गया। फिर मैं वहां से घर चला आया।'

१३ अगस्त, सन् १८७७ को अमृतसर में 'चमत्कार' (करामात) के विषय पर एक मौलवी साहब से शास्त्रार्थ नियत हुआ। इस पर बावा नारायणसिंह मंत्री समाज ने निम्नलिखित पत्र लाहौर समाज को भेजा—'श्रीमान् ला० जीवनदास, मंत्री-आर्यसमाज, नमस्ते! दिनांक १३ अगस्त, सन् १८७७ को स्वामी जी का शास्त्रार्थ, चमत्कार विषय पर, एक मौलवी साहब से होगा और स्वामी जी की इच्छा है कि कोई अरबी जानने वाला इस सभा में होना चाहिये और यह विचार किया गया है कि आर्यों का मिलना कठिन है इसलिए पादरी मौलवी इमामुद्दीन का यहां आ जाना उत्तम है और उनके बुलाने के लिए यह पत्र इस मनुष्य के हाथ भेजा है। आप स्वयं इस विषय में सहायक होकर, जिस प्रकार हो, मौलवी महोदय को यहां आने की प्रेरणा देवें, प्रत्येक अवस्था में उनको यहां भेजने का प्रबन्ध करें। यह काम आप का ही है। आर्यसमाज १२ अगस्त, सन् १८७७ को स्थापित हो गया है।'-बावा नारायणसिंह वकील, मंत्री आर्यसमाज; १२ अगस्त, सन् १८७७।'

परन्तु मौलवी साहब समय पर न मिले और न उन्होंने जाना स्वीकार किया इसलिए शास्त्रार्थ स्थगित रहा।

'आर्योद्देश्यरत्नमाला' की रचना और प्रकाशन—उन्हीं दिनों स्वामी जी ने यहां रहकर 'आर्योद्देश्यरत्नमाला' नामक एक लघु पुस्तक मिति १५ अगस्त, सन् १८७७ तदनुसार श्रावण सुदि संवत् १९३४ को लिखी और उसे प्रेस में देकर गुरदासपुर की ओर चले गये और मिति २७ अगस्त, सन् १८७७ को वापिस लौटे। १२ सितम्बर, सन् १८७७ को वह पुस्तक छपकर सब प्रकार तैयार हो गई। स्वामी जी अपने एक पत्र में लाहौर समाज के मंत्री के नाम इस प्रकार लिखते हैं—

'आर्यसमाज के सब सभासदों को स्वामी जी का आशीर्वाद पहुंचे। आगे सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर की कृपा से प्रतिदिन अमृतसर आर्यसमाज का उत्साह वृद्धि को प्राप्त होता है। १०० नियम का पुस्तक (आर्योद्देश्यरत्नमाला) भी आजकल छपकर तथा जिल्द बंधकर तैयार हो जायेगा। पांच सौ पुस्तक लाहौर और पचास पुस्तक गुरदासपुर को भेजे जावेंगे और संवत् १९३४, भादों सुदि ६, गुरुवार, तारीख १३ सितम्बर, सन् १८७७ प्रात:काल ९ ॥ की रेल में जालन्धर को जाना होगा, सो जानना। जो वेदभाष्य पर विरुद्ध सम्मति के उत्तर के पत्र छपवाकर बम्बई आदि में भेज दिये जावें और समाचारपत्रों में छपवा दिये जावें तो बहुत अच्छी बात होगी। आगे आप लोगों की जैसी इच्छा हो वैसा कीजियेगा। संवत् १९३४ मिति भादों सुदि ३, सोमवार तदनुसार १० सितम्बर, सन् १८७७। -दयानन्द सरस्वती।

अमृतसर में दूसरी बार[४०] —स्वामी जी रावलपिंडी आदि की ओर से सत्योपदेश करते हुए १५ मई, सन् १८७८ को दूसरी बार[४१] अमृतसर पधारे और सरदार भगवानसिंह के बाग में निवास करके बुंगा में व्याख्यान देना आरम्भ किया। हजारों मनुष्य स्वामी जी के उपदेश सुनने को आया करते थे।

ला० मुरलीधर, गणिताध्यापक-म्युनिसिपल बोर्ड स्कूल, गुरदासपुर, जो उस समय अमृतसर में थे, लिखते हैं, 'मैं उन दिनों प्रायः स्वामी जी को बाग से लेने और पहुंचाने के लिए जाया करता था। एक दिन मैंने कहा कि महाराज! मुझे गुरुमंत्र देवें। स्वामी जी ने कहा कि क्या अबतक हमने गुरुमंत्र नहीं दिया। हमारा यही गुरुमंत्र है कि सत्य को मानो और असत्य छोड़ दो।'

एक दिन एक ब्राह्मण आया और स्वामी जी के उपदेश के समय उसने जोर-जोर से संस्कृत बोलना आरम्भ किया कि महात्मा जी! थोड़ी देर ठहरिये; मैं अपना व्याख्यान समाप्त कर लूं, फिर आप से बातचीत करता हूं। वह बोलता ही रहा, अन्त में समाज के लोगों ने उसको एक ओर बिठला दिया। व्याख्यान की समाप्ति पर स्वामी जी नियमानुसार आसन पर बैठ गये और कहा कि उस महाराज को बुलाओ। वह पण्डित जी समीप ही बैठे थे, बोले कि मैं यहां उपस्थित हूं। पूछा कि आप कहां से पधारे हैं? उत्तर मिला कि कुरुक्षेत्र से केवल शास्त्रार्थ के लिए आया हूं। स्वामी जी ने पूछा कि आपने वेद भी पढ़े हैं? कहा—हां! पूछा—कि कौन-कौन वेद? उत्तर दिया कि सारे वेद। उसके पश्चात् स्वामी जी ने पूछा कि व्याकरण भी पढ़ा है? कहा कि 'हां'! फिर पूछा महाभाष्य पढ़ा है? उत्तर दिया—हां; इस पर स्वामी जी ने एक प्रश्न व्याकरण में किया तो पण्डित जी ने कुछ संस्कृत का वाक्य पढ़ा। स्वामी जी ने कहा कि यह क्या है? तो उत्तर दिया कि सूत्र है। इस पर स्वामी जी ने पेन्सिल और कागज किसी से लेकर उसको दिया और कहा कि इस वाक्य को लिख दो, और यह भी लिख दो कि यह सूत्र है। इस पर वह घबराया और फिर बातचीत से भागता ही दिखाई दिया और चला गया। मैं और ला० रामगोपाल, सरिश्तेदार, महकमा नहरबारी, सैकेण्ड डिवीजन, एक ही दिन सदस्य बने थे।'

उन दिनों मैंने सुना कि स्वामी जी ने एक विज्ञापन दिया है कि नगर के पण्डित यदि कोई (मेरी) बात वेदविरुद्ध समझते हों तो आकर निर्णय कर लेवें अन्यथा यह धर्म का विषय है, प्रत्येक को इसमें सहायता देनी चाहिये। परन्तु कोई पण्डित प्रकट में सामने नहीं आया। कुछ छोटे-छोटे पण्डित, जैसे गिरधारीलाल आदि, स्वामी जी के निवास स्थान पर आये परन्तु प्रश्न करते हुए घबराते थे।

सुना है कि कटरा नौहरियां स्थित नौहरियों के मन्दिर के एक प्रसिद्ध पंडित स्वामी जी से किसी प्रकार का विरोध नहीं रखते थे अपितु वे कहा करते थे कि स्वामी जी सच कहते हैं।

इसी बीच मैंने सुना कि ला० गागूमल के छोटे भाई ला० ईश्वरदास स्वामी जी के पास गये। स्वामी जी ने स्वभाव के अनुसार उन्हें डांट दिया कि तुम्हें क्या ज्ञान है? इस पर घंटाघर पर हिन्दुओं की एक सभा हुई और यह भी सुना कि वहां लाला ईश्वरदास ने कहा कि मुझे कुछ प्रायश्चित करना चाहिये कि मैं स्वामी जी के पास गया था।

ला० जीवनदास जी ने वर्णन किया—'सरदार दयालसिंह रईस ने वेदविषय पर स्वामी जी से बातचीत करने के लिये एक दिन नियत किया और इस विषय पर शास्त्रार्थ हुआ कि वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं या नहीं? चूंकि सरदार साहब ब्रह्मसमाजी विचार रखने के कारण वेदों के विरोधी हैं, इस कारण उन्होंने विरोधपक्ष लिया और किसी नियम को नियत किये बिना ही बातचीत आरम्भ हुई। परन्तु सरदार साहब बिना किसी कारण बातचीत का विस्तार किये जाते थे और वास्तविक बात की ओर न आते थे। तब स्वामी जी ने समय नियत किया कि इतने काल तक आप बोलें और इतने काल तक हम;

नियमानुकूल बातचीत आरम्भ हो जाये। पर सरदार महोदय फिर नियम के विरुद्ध चलने लगे। तब स्वामी जी ने टोका और नियमानुकूल चलने को कहा जिस पर सरदार महोदय अप्रसन्न होकर चले आये और फिर कभी बातचीत न की।'

अमृतसर में शास्त्रार्थ की निष्फल चर्चा और विज्ञापन

आर्यसमाज की ओर से प्रथम विज्ञापन—'एक वर्ष से स्वामी दयानन्द सरस्वती, मियां मुहम्मद जान की कोठी में ठहरे रहे थे और वहां व्याख्यान देते रहे थे। किसी पंडित ने आकर शास्त्रार्थ न किया और बचाव के लिये यह कहते रहे कि हम कोठी नहीं जाते; यदि स्वामी जी नगर में आयें तो शास्त्रार्थ कर सकते हैं। फिर इसी बात का विचार करके स्वामी जी मलोई बुंगा में आकर व्याख्यान देते रहे परन्तु कोई पंडित न आया।

अब एक मास का समय हुआ फिर स्वामी जी अमृतसर में आये और मलोई बुंगा में नियत दिनों पर व्याख्यान देते रहे। किसी पंडित ने शास्त्रार्थ का नाम न लिया परन्तु जब यह सुना कि अब स्वामी जी चले जायेंगे तो लोगों को कहने लगे कि हम शास्त्रार्थ करेंगे। इसके उत्तर में आर्य समाज की ओर से विज्ञापन दिया गया कि जिस व्यक्ति को शास्त्रार्थ करना हो समाज में आकर समय और नियम निश्चित करे परन्तु कोई व्यक्ति न आया, अपितु एक विज्ञापन छपवा दिया कि हम १४, १५ जून, सन् १८७६ को शास्त्रार्थ करेंगे और घंटाघर और तेजसिंह के शिवालय में करने को कहते हैं और बसन्तगिरि साधु को मध्यस्थ नियत करते हैं, और उसके अतिरिक्त और कोई स्थान स्वामी जी नियत करें तो वहां भी शास्त्रार्थ हो सकता है; मलोई बुंगा और जमादार के बाग में नहीं हो सकता।

इसके उत्तर में आर्यसमाज की ओर से लिखा गया कि जहां तुम करते हो वहीं शास्त्रार्थ स्वीकार है यदि उपद्रव होने का उत्तरदायित्व स्वीकार करो, अन्यथा मलोई बुंगा में शास्त्रार्थ हो तो तुम्हारा कोई उत्तरदायित्व नहीं है। यदि उपर्युक्त स्थान पसन्द न हो तो सरकारी घंटाघर या अन्य कोई विस्तृत मैदान मिल सकते हैं और पुलिस का प्रबन्ध दोनों पक्ष करेंगे। वेद और वेदानुकूल शास्त्रों के अनुसार निर्णय होगा और यह बात भी दोनों पक्षों में निश्चित हुई कि यदि वेद के विरुद्ध मध्यस्थ भी निर्णय देगा तो भी स्वीकार न होगा, जिसका अभिप्राय यह है कि वेद ही मध्यस्थ हो सकते हैं। जिसके उत्तर में पंडितों ने लिखा है कि पूर्ववर्णित स्थानों को हम पसन्द नहीं करते। अब सरदार मंगलसिंह और भाई बस्तीराम महोदय के बंगा में शास्त्रार्थ करें, अपना समस्त प्रबन्ध स्वयं करें, मध्यस्थ अवश्य करें और रईसों को लावें।

इसके उत्तर में आर्यसमाज की ओर से लिखा गया कि आपके लिखित विज्ञापन के अनुसार सरदार भगवानसिंह महोदय का तबेला नियत करते हैं और दिनांक १८ जून, मंगलवार, सन् १८७८ को ६ ॥ बजे सायंकाल शास्त्रार्थ करने को उपर्युक्त स्थान पर पधारें। शास्त्रार्थ लिखा जायेगा; समस्त लोग देखकर न्याय करेंगे और एक सभापति नियत होगा। रईसों को दोनों पक्ष यथा सामर्थ्य लावेंगे और उत्तर शीघ्र देना चाहिये।

जब यह पत्र लेकर पांच मनुष्य पण्डित चन्द्रभान के पास गये तो उन्होंने मौखिक ही निम्नलिखित बातें कहीं और कागज वापस कर दिया कि मैं कागज नहीं लेता और शास्त्रार्थ लिखा न जायेगा, न मैंने विज्ञापन पर हस्ताक्षर किये हैं और चिट्ठी पर मेरे बलात् हस्ताक्षर कराये थे। यदि मुझे स्वीकार होगा तो मैं अकेला मलोई बुंगा या किसी और स्थान पर शास्त्रार्थ कर लूंगा और मैं लिखित उत्तर इसलिए नहीं देता कि बसन्तगिरि ने जो चिट्ठी पहले लिखी थी उसमें दोष रहे (जिसका अभिप्राय था कि व्याकरण की दृष्टि से वह अशुद्ध निकली) और मैं लिखूंगा तो शायद यही दशा हो। मैं पण्डितों में सम्मिलित नहीं हूं क्योंकि वह उपद्रव करना चाहते हैं और मुझे बलात् बुलाते हैं, विज्ञापन में दुनीचन्द ने मेरा नाम आप ही लिख दिया और बसन्तगिरि साधु ने 'समाज' में अपना साधु भेजकर हमारा नाम अकारण निर्णायक के रूप में लिख दिया है, न मुझसे पूछा है और न स्वामी जी के सम्मुख निर्णायक बनने की मुझमें सामर्थ्य है।'

इस सम्बन्ध में विचारणीय बातें इस प्रकार हैं—(१) **प्रथम** तो स्वामी जी जब चलने लगे तो शास्त्रार्थ की चर्चा करनी आरम्भ की । (२) दूसरे अपने आप ही तिथि और स्थान, हमसे पूछे बिना और किसी बात का निश्चय किये बिना छपवा दिया और आप ही विज्ञापन दिया कि और कोई स्थान नियत हो तो हम शास्त्रार्थ कर सकते हैं । अब उसके विरुद्ध दूसरे-दूसरे ऐसे स्थानों का नाम लेते हैं कि जहां कोई जाने भी न दे । (३) तीसरे, स्थान वह बतलावें और प्रबन्ध हम करें यह कैसे सम्भव है ! (४) चौथा, निर्णायक का निर्णय वेदों के विरुद्ध अस्वीकार होगा और फिर निष्पक्ष मनुष्य के निर्णायक बने बिना शास्त्रार्थ नहीं हो सकता । (५) **पांचवें,** यह सिद्ध नहीं कि कौन व्यक्ति है जो स्वामी जी के साथ प्रतियोगिता में निर्णायक होगा-साथ ही ऐसा कि जो पक्षपाती न हो । (६) **छठे,** लोगों को यही कहते रहे कि यथाशक्ति शास्त्रार्थ करेंगे परन्तु ढंग ऐसा दिखलायेंगे जिससे लोगों को विदित हो कि पंडित जी उद्यत हैं । इसलिए इन समस्त बातों पर विचार करके और पण्डितों के लिखित विज्ञापन को स्वीकार करके घोषणा की जाती है कि मंगलवार १८ जून, सन् १८७८ को ६ ॥ बजे शाम के समय स्वामी जी पुस्तकों और वेदों सहित शास्त्रार्थ करने के लिए सरदार भगवानसिंह साहब के तबेले में आवेंगे, वहां २ ॥ घंटा ठहरेंगे और पुलिस का प्रबन्ध होगा । जिस पण्डित को शास्त्रार्थ करना हो, पधारें और जब तक शास्त्रार्थ न होगा तब तक प्रतिदिन आना होगा अन्यथा उसके पश्चात् जो कुछ उचित होगा किया जावेगा । रईस लोग भी पधारें ।' बावा नारायण सिंह, मंत्री, आर्यसमाज ।

यह घोषणा स्वामी जी की आज्ञा से की गई, दिनांक १७ जून, सन् १८७८ ।

आर्यसमाज की ओर से दूसरा विज्ञापन—१८ जून, सन् १८७८ को श्रीमान् डिप्टी कमिश्नर साहब बहादुर की सेवा में प्रार्थना करके शास्त्रार्थ का प्रबन्ध करने के लिए पुलिस ली गई और मिति १७ जून, सन् १८७८ के विज्ञापन के अनुसार शाम के ६ बजे सरदार भगवानसिंह साहब के तबेले में फर्श बिछाया गया । बड़े-बड़े प्रतिष्ठित और विद्वान् लोग शास्त्रार्थ सुनने को आये थे; दो मेज तथा दो कुर्सी आमने-सामने लगाई गई थीं और एक मेज पर पुस्तकें रखी गई थीं । लगभग पांच छः हजार मनुष्यों की भीड़ थी । प्रायः लोग कोठों पर बैठे हुए थे । जब स्वामी जी चार वेद और शास्त्रादि पुस्तक लेकर आये तो प्रथम सार्वजनिक सभा में लोगों को प्रत्येक वेद की पुस्तक का निरीक्षण कराया गया । तत्पश्चात् जब कोई पण्डित शास्त्रार्थ को न आया तो स्वामी जी ने व्याख्यान आरम्भ किया ।थोड़ा व्याख्यान ही हुआ था कि बाबू मोहनलाल वकील आये और खड़े होकर कहा कि मैं पण्डितों की ओर से वकील होकर आया हूं और वह सभा में आना चाहते हैं, उनको बुलाया जाये । इस प्रतिष्ठित व्यक्ति के कहने पर दो-तीन मनुष्य पण्डितों को जैसे-तैसे लाये । जिस समय पण्डित लोग आये, बड़ा कोलाहल हुआ और जयकारे बोलते थे और कुर्सी पर चार पण्डित आ बैठे । प्रथम चन्द्रभान को शास्त्रार्थ के नियम लिखे हुए दिये गये जिसको पढ़कर उन्होंने कहा कि अच्छा; यहां उत्तर नहीं दिया जाता, हम भी अपने नियम लिखेंगे और आपको सूचना देंगे । हम नियम लिखकर आपके पास भेज देंगे और आपके नियम मंगवा लेंगे । यह बात हो ही रही थी और पण्डितों को आये थोड़ी देर हुई थी कि कोलाहल होने लगा और पण्डितों के सहायक ईंट, रोड़ा मारने लगे । ऐसा विचार हुआ कि प्रत्येक रोड़ा प्रतिष्ठित व्यक्तियों को लगे । कुछ खून निकला, कुछ के चोट लगी । दंगे और फसाद की अवस्था उत्पन्न हो गई; लोग जान से तंग आ गये । पुलिस भी खड़ी देख रही थी । अन्त में बड़ी सतर्कता से झगड़ा शान्त हुआ ।

दूसरे दिन बाबू मोहनलाल वकील को एक पत्र, उत्तर की प्रार्थना सहित, लिखा गया । उन्होंने उत्तर दिया कि मैं उसी समय का वकील था और पण्डितों ने कोई उत्तर मुझे नहीं दिया जो मैं आप को दूं, मैं इस काम से असम्बद्ध हूं और पण्डित लोग आपस में एक दूसरे से झगड़ते हैं, उनका कुछ निश्चय विदित नहीं होता ।

विवश होकर २० जून तक उत्तर की प्रतीक्षा करते रहे और प्रवेश करने के लिए टिकट भी छपवाये गये परन्तु पण्डितों की ओर से वही अवस्था रही । इस समस्त वृतान्त से और उनकी उस बात-चीत से जो वे परस्पर करते हैं, विदित होता है कि उनका अभिप्राय केवल झगड़ा करने का था, न कि उत्तर देने और शास्त्रार्थ करने का । इसलिए मैं प्रार्थना करता हूं कि इन घटनाओं से जो निष्कर्ष निकलता है, वह आप लोग स्वयं विचार लें । इति २१ जून, सन् १८७८'

प्रकाशक :—बावा नारायणसिंह वकील, मंत्री आर्यसमाज अमृतसर ।

('आर्यदर्पण', जुलाई, सन् १८७८; खंड १, संख्या ७, पृष्ठ २३ से ३० तक)

स्वामी दयानन्द के साथ प्रतियोगिता में पुराण-पंथियों की असमर्थता की स्वीकारोक्ति 'कविवचनसुधा'[४२] **नामक समाचारपत्र में लिखा है**—'पण्डित दयानन्द सरस्वती एक वर्ष से कुछ अधिक समय से पंजाब में हैं, वे पंजाब के मुख्य नगरों में अपना मत चलाने की इच्छा से फिरते रहते हैं, यही नहीं, उन्होंने पंजाब को मोहनभोग तुल्य समझा हुआ है, कारण कि उनका उपदेश यहां के संस्कृत-शास्त्र न जानने वाले पुरुषों के मनों पर शीघ्र प्रभाव करता है । इसी प्रयोजन से वह इस देश को पसन्द करते हैं और आजकल एक पखवाड़े से फिर यहां अमृतसर में आये हुए हैं और अनेक धार्मिक विषयों पर व्याख्यान देते हैं । जैसे, विधवा-विवाह विषयक युक्तियों का उन्होंने बड़ी प्रबलता से प्रकाश किया । हमने उक्त पण्डित द्वारा रचित ग्रन्थों और उनके कथित वाक्यों को सुना और समुदाय से उनका किस-किस अंश में विरोध है और वह क्यों नहीं मिटता इस पर विचार किया तो पता लगा कि दयानन्द पुराणों और तन्त्र आदिक स्मृतिग्रन्थों को अप्रामाणिक मानते हैं, अवतार को उत्तम पुरुष मानते हैं । इन्द्र आदि, देवता को नहीं किन्तु विद्वान् पुरुष को कहते हैं । प्रतिमा-पूजन, ठाकुरद्वारे, शिवालय आदि की प्रतिष्ठा करने को असत्कर्म ठहराते हैं और चाण्डाल आदि को भी वेदाध्ययन का अधिकारी बतलाते हैं । फिर विधवाविवाह को श्रुतिसिद्ध ठहराते हैं किसी जाति से खानपान में दोष नहीं समझते इत्यादि । उनके संकेत रूप कथन उनके रचित ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से उपलब्ध हैं अर्थात् उक्त पंडित जी जो कुछ कहते हैं, बुद्धिपूर्वक युक्ति से कहते हैं तो मैं सोचता हूं कि यदि हमारी यही बातें हमारे सनातनधर्मानुयायी आर्यों के लिए विरोधहेतु हैं तो क्यों नहीं आजतक किसी विद्वत्समाज ने दयानन्दकृत ग्रन्थों पर समालोचना की । जब वे युक्तिपूर्वक श्रुतिसिद्ध प्रमाण चाहते हैं तो क्यों न ऐसे विषय निस्संदिग्ध रूप में प्रकाशित हों और इस प्रकार आर्यमात्र का एकमत हो । मैं देखता हूं कि जिस-जिस नगर में वे जाते हैं, वहां-वहां अत्यन्त निश्चयपूर्वक स्वमतसिद्ध विषयों पर व्याख्यान देते हैं और थोड़े बहुत मनुष्य तो अपने अनुगामी बना ही लेते हैं और हमारे पुराने चलन के पण्डित लोग सुन-सुन कर या तो मुंह ही मुंह में बड़बड़ाया करते हैं या फिर चुपचाप होकर मुंह ताकते रहते हैं । बाहर लोगों में तो दुर्वचन कहते और धिक्कारते फिरते हैं परन्तु उनके सम्मुख होकर कोई भी किसी विषय में प्रत्युत्तर नहीं दे सकता और जो कोई उनको कुछ उत्तर देना चाहता है, वह भी अंडबंड बकता है । मेरे इस लिखे से बुरा मत मानों; क्योंकि देखो ! हमारे सनातनधर्मानुयायी ब्राह्मण और संन्यासी बड़े-बड़े विद्वान् और सरस्वती अवतार कहलाते हैं परन्तु ऐसा कोई भी प्रतिष्ठित पण्डित नहीं, जो चतुर्वेदार्थ-पारंगत हो, वेदों के शुद्ध अर्थ प्रचारित करता हो और अज्ञानकूप में गिरते भारतवर्ष को बचा सके अथवा प्रतिपक्षियों के आक्षेपों से भरे ग्रन्थ का खण्डन कर अपने सनातन धर्म की स्पष्ट व्याख्या कर सके, ऐसा तो एक भी दिखाई नहीं देता । यह दशा तो हमारे धर्माचार्यों, ब्राह्मणों और परिव्राजकों की है, शेष रहे धनी और राजा लोग ?-यह समाज कुछ ऐसी बाह्य उपाधि (रोग) से ग्रस्त है कि इस वर्ग का इधर तनिक भी ध्यान नहीं है, और इन लोगों की सहायता के बिना कभी काम चल नहीं सकता । इसलिए कहो ! धर्म विवेचना क्योंकर हो ?' (संख्या ३९, १७ जून, सन् १८७८)

परिश्रम ही शक्ति का स्रोत है; सच कहने में कहीं भी भय नहीं होता, पण्डित हृदयनारायण जी ने वर्णन किया—'एक व्याख्यान में स्वामी जी ने यह कहा कि लोग कहते हैं कि अंग्रेज धनवान होते जाते हैं और देशी निर्धन । इस बात की चिन्ता न करनी चाहिये क्योंकि जितने अंग्रेज धनवान् होंगे उतने विलासप्रिय होंगे । विलासप्रिय होने से आलसी और आलस्य के कारण निर्बल हो जायेंगे और देशी लोग निर्धन होने के कारण परिश्रमी होंगे और परिश्रमी होने से शक्तिशाली होंगे । इससे देशी लोग लाभ में रहेंगे । इस पर पण्डित बिहारीलाल साहब, ऐक्स्ट्रा ऐसिस्टैन्ट कमिश्नर, अमृतसर ने स्वामी जी को कहला भेजा कि सार्वजनिक स्थान पर ऐसी बातचीत करना उचित न था । स्वामी जी ने उत्तर दिया कि सच्ची बात प्रकट करने में मुझको भय न था ।

एक ब्राह्मण ने, जो चरस-भंग के मद में व्यसनी था, एक बार स्वामी जी के उपदेश से, जो सम्भवत: मादक पदार्थों के सेवन के विरुद्ध था, कुपित होकर स्वामी जी को सोटा मारना चाहा परन्तु लोगों ने पकड़ लिया । स्वामी जी को जब वह वृत्त विदित हुआ तो उससे कुछ भी पूछताछ न की, प्रत्युत छुड़ा दिया ।'

एक मेज पर खा लेने से मित्रता नहीं हो सकती—'पादरी क्लार्क' साहब ने स्वामी जी को कहा कि हम और आप एक मेज पर खाना खावें । स्वामी जी ने कहा कि इससे क्या होगा ? पादरी साहब ने कहा कि इससे मित्रता बढ़ेगी । स्वामी जी ने उत्तर दिया कि सुन्नी और शिया मुसलमान और रूसी व इंग्लैण्ड वाले एक पात्र में खा लेते हैं और तुम और रोमन कैथलिक एक मेज पर खा लेते हो पर हृदय से एक दूसरे के शत्रु हो, फिर आपके केवल मेज पर खाने से हमारी दूसरे धर्म वालों से किस प्रकार मित्रता हो सकती है ? पादरी साहब निरुत्तर हो गये और कमिश्नर साहब से भी वह चर्चा हुई थी ।

हम केवल अपने परमेश्वर के भरोसे सत्यकथन करते हैं—'एक दिन स्वामी जी ने हर की पौड़ी और अमृतसर के विशेषतात्मक नाम पर आक्षेप किया और प्रबल युक्तियों से खंडन किया कि न यह (हरिद्वार) हर की पौड़ी है और न (अमृतसर के) तालाब का जल अमृत है । यह सारी पुराणों की-सी पोपलीला है । इस पर किसी ने हितचिन्तन की दृष्टि से स्वामी जी को सूचना दी कि कुछ निहंग आपको मारने के लिये फिर रहे हैं और कहते हैं कि स्वामी जी के पास रात को मनुष्य होते हैं; यदि कभी अकेले हुए तो हम रात को अवश्य मार डालेंगे । स्वामी जी ने ईश्वरीय प्रेम के आवेश में आकर उस दिन सब मनुष्यों को कह दिया कि रात को यहां कोई न सोये । हमको जिसने यह निर्देश दिया है कि हम जगत् का उपकार करें, उसी के आश्रय हम सदा रहते हैं, किसी मनुष्य के आश्रय नहीं हैं । देखें कोई निहंग-विहंग हमारा क्या कर सकता है । परिणामत: उस रात्रि उन्होंने ऐसा ही किया । उस अखंडवीर्य ब्रह्मचारी के सामने किसी की क्या शक्ति थी कि सामना करने को आवे । यह सब गीदड़-भभकियां थीं ।'

नव शिक्षित ईसाई बनने से बचे—'स्वामी जी के पधारने से पूर्व पंडित लोग वेद मंत्र सार्वजनिक सभा में नहीं सुनाया करते थे परन्तु जब स्वामी जी ने आ कर उनका (पंडितों का) खंडन आरम्भ किया तब स्वामी जी के सम्मुख विद्वान् बनने के लिये शूद्रों और मुसलमानों के सामने आकर वे भी बराबर वेद मंत्र पढ़ने लगे थे ।'

बाबू ज्ञानसिंह ने वर्णन किया 'जिन दिनों स्वामी जी पंजाब में आये तो मिशन स्कूलों की शिक्षा से बहुत से लड़कों के विचार अपने धर्म से फिरे हुए थे । मैं, उस समय, मिशन स्कूल, अमृतसर में अध्यापक था । उस समय का पादरियों का वृत्तान्त मुझसे कुछ भी छिपा हुआ नहीं था । लगभग चालीस छात्रों ने, जो हृदय से ईसाई मत की ओर आकृष्ट थे और अपने आप को 'अनबैप्टाइज्ड क्रिश्चियन' अर्थात् बिना बपतिस्मा का (अदीक्षित) ईसाई कहते थे—अपनी एक सभा पृथक् स्थापित की हुई थी । उसका नाम उन्होंने 'प्रेयर मीटिंग' (प्रार्थना सभा) रखा हुआ था । वह उसमें रविवार को प्रार्थना, उपासना आदि किया करते थे । वे प्रकट रूप से हिन्दू थे परन्तु भीतर से पक्के ईसाई थे । यदि स्वामी जी न आते तो वे अवश्य ईसाई

हो जाते । इतने में यहां स्वामी जी पधारे और मियां मुहम्मद जान की कोठी में व्याख्यान देने लगे । उनको यहां लाने वाले सरदार दयालसिंह जी थे । कोठी भी उन्होंने ही किराये पर ली थी । परस्पर कुछ धर्मसम्बन्धी बातचीत भी होती थी परन्तु वह कुछ मिनटों से अधिक नहीं । स्वामी जी ने उनको कहा था कि आप अभी लड़के हैं, जिसके आप शिष्य हैं वह अभी जीवित हैं अर्थात् बाबू केशवचन्द्र सेन । आप उन्हें बुलावें या मुझे वहां भेजें और मेरी उनसे धर्मसम्बन्धी अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान पर बातचीत करावें तो आपका अच्छी प्रकार सन्तोष हो जावेगा कि कौन सच्चा है । तब सरदार साहब चुपचाप चले आये और अधिक बल नहीं दिया ।'

'पादरी क्लार्क साहब से खाने-पीने के विषय में चर्चा हुई थी । स्वामी जी के सत्योपदेशों से विशेषतया उन छात्रों और साधारण लोगों को बहुत लाभ हुआ जिनके कि मन में ईसाइयों ने भारी सन्देह उत्पन्न कर दिये थे ।'

'पहली बार—कोई विशेष शास्त्रार्थ नहीं हुआ परन्तु सरदार हरचरणदास ने नियोग पर कुछ आक्षेप किये थे कि यह आपने अच्छा नहीं किया जो रांडों को खसम कराया । स्वामी जी ने कहा कि हमने ऐसा नहीं कहा, प्रत्युत यह कहा कि विधवा का विवाह विधुर पुरुष से होना चाहिए ? क्वारे से नहीं । ये प्रश्नोत्तर साधारण थे ।'

'दूसरी बार जब आये तो उस समय जालन्धर में एक ईसाई लड़के को साधारण हिन्दुओं की सहायता से शुद्ध करके आये थे । यहां आकर शुद्धि पर व्याख्यान दिया । बाबू रुलियाराम वकील की बुद्धि का उनको बड़ा ध्यान था परन्तु उन्होंने नियमपूर्वक शास्त्रार्थ न किया ।'

पादरी बेरिंग महोदय की निराशा—'इस बार बाबू सिंही के प्रयत्न से पादरी बेरिंग ने, पंडित खड्गसिंह को, जो बारह वर्ष पूर्व ईसाई हो चुके थे, और ईसाइयत के बड़े कार्यकर्ता गिने जाते थे, ग्राम धोखे से बुलाया कि वह आकर स्वामी जी से शास्त्रार्थ करें । जब वह आये तो पादरी बेरिंग ने कहा कि लो, अब पंडित जी आते हैं, अब आशा है कि अच्छी प्रकार शास्त्रार्थ होगा ।

पंडित खड्गसिंह जी से मैं बाबू सिंही के मकान पर जाकर मिला । उन्होंने मुझसे पूछा कि आप जानते हैं वह कौन है, जिसके लिये मुझे बुलाया है ? मैंने कहा कि उनका नाम स्वामी दयानन्द सरस्वती जी है और वह सरदार भगवानसिंह के बगीचे में उतरे हैं । उन्होंने कहा कि मुझे उनके पास ले चलो । मैंने कहा, प्रसन्नता से चलिये । मैं और वह ४ बजे के लगभग स्वामी जी के पास पहुंचे । वहां जाकर ऐसा आश्चर्य हुआ जो आज तक कभी नहीं देखा था अर्थात् पंडित खड्गसिंह ने जाते ही नमस्कार किया और स्वामी जी के पास बैठ गये । स्वामी जी के साथ जो लोगों की बातचीत हो रही थीं, वहां पर खड्गसिंह स्वामी जी की ओर से उत्तर देने लगे । एक ब्राह्मण ने कहा कि हम तो स्वामी जी के साथ बातचीत करते हैं । खड्गसिंह ने कहा कि जब हमसे तुम्हारा सन्तोष न होगा तब स्वामी जी से पूछ लेना । जब सभा विसर्जित हुई तो हम खड्गसिंह को अपने साथ घर ले आये और ईसाई मत उनके भीतर से पूर्णतया निकल गया । वह पक्के स्वामी जी के अनुयायी हो गये और तत्पश्चात् अपनी दोनों पुत्रियों का विवाह हिन्दुओं में किया और आर्यसमाज (वैदिकधर्म) का उपदेश देना आरम्भ किया ।'

'पादरी साहब गये तो शास्त्रार्थ की आशा से, परन्तु इसके विपरीत अपने मत से ही हाथ धो बैठे ।'

कोई पादरी शास्त्रार्थ के लिए नहीं आया—'पादरी बेरिंग तथा अन्य पादरी बड़े घबराये और विवश होकर उन्होंने शास्त्रार्थ के लिये पादरी के० एन० बैनर्जी को कलकत्ते में तार दिया । उसका उत्तर आया कि मैं आता हूं । चूंकि स्वामी जी बहुत काल तक रहकर अब (अमृतसर से) जाने वाले थे इसलिए उनको कहा गया कि पादरी के० एन० बैनर्जी आते हैं; आप

अभी न जायें । उन्होंने स्वीकार किया । पादरियों ने उनको तार दिया कि आप शीघ्र आइये तब उसका उत्तर आया कि मैं नहीं आ सकता हूं, मेरी लड़की रुग्ण है । मैंने पादरियों को कहा कि एक लड़की मर जावे तो क्या इस स्थान पर बहुत-सी आत्माएं सुधरती हैं, अवश्य उन्हें बुलावें क्योंकि वह यदि मरती भी है तो मसीह की गोद में जाती है; किसी भयावह स्थान पर नहीं परन्तु वह पादरी महोदय तो फिर आये ही नहीं । इस घटना के पश्चात् कई मनुष्य ईसाईयत से फिर कर आर्यसमाज के सदस्य हो गये ।'

आवागमन सिद्धान्त के पक्ष समर्थक अध्यापक को मिशन स्कूल से निकाल दिया—'तत्पश्चात् बाबू सिंही ने मुझको कहा कि कल मिशन स्कूल में आवागमन पर शास्त्रार्थ होगा । यदि तुम आवागमन सिद्ध करोगे तब तो अपने आपको (नौकरी से) पृथक् समझो और यदि यह मानेंगे कि एक ही जन्म है तब स्कूल में आपकी नौकरी बनी रहेगी । चूंकि मेरे विचार स्वामी जी के उपदेश से आवागमन पर दृढ़ थे इसलिये मैंने आवागमन को सिद्ध किया जिसका परिणाम यह हुआ कि मुझे स्कूल से पृथक् होना पड़ा । मैंने उस दिन से अपनी दुकान चालू कर दी, फिर नौकरी नहीं की ।'

'बाबू साहब के द्वारा कई ईसाई शुद्ध हुये हैं । उनको सदा यही धुन लगी रहती है । परमेश्वर उनके साहस की दिन प्रतिदिन उन्नति करे ।'

पंजाब के आर्यसमाजियों के नाम स्वामी जी का एक महत्वपूर्ण पत्र—स्वामी जी ने पंजाब से चलते हुए एक पत्र मंत्री आर्यसमाज गुजरांवाला के नाम अमृतसर से लिखा है, जो एक प्रकार से समस्त समाजों के लिये उनकी अन्तिम वसीयत और शिक्षा है । इसी कारण उसे हम जैसे का तैसा उद्धृत कर रहे हैं—

'मन्त्री और सभासद् आनन्द रहो ! प्रकट हो कि अब हम ११ जुलाई, सन् १८७८, बृहस्पतिवार को यहां से पूर्व की ओर प्रस्थान करेंगे और जालन्धर, लुधियाना आदि नगरों में मिलते हुए आगे को जावेंगे । सम्भव है दो-चार दिन के लिये अम्बाला में ठहर जावें । अब हमारा और आप लोगों का मिलाप केवल पत्र द्वारा ही हो सकेगा । इसलिये आप सदा पत्र भेजते रहना तथा हम भी भेजा करेंगे । अब आप को लिखते हैं कि प्रतिदिन समाज की उन्नति करते रहो क्योंकि यह बड़ा काम आप लोगों ने उठा लिया है । उसको परिणामपर्यन्त पहुंचाने ही में सुख और लाभ है । यहां का समाज प्रतिदिन उन्नति पर है और कई प्रतिष्ठित पुरुष सभासद हो गये हैं । यहां के पंडितों ने शास्त्रार्थ के लिये सलाह दी थी सो वे सभा में न तो कुछ बोले, न कुछ बात का उत्तर दिया, केवल मुख दिखला कर चले गये और यहां के लोगों ने जो कई पोपों की ओर थे, हाकिम से आर्यसमाज की चुगली खाई थी, जिसका परिणाम सत्य के प्रताप से यह हुआ कि अब कोई आर्यसमाज की ओर आंख उठाकर भी नहीं देखता । सब सभासदों को नमस्ते ।

२६ जून, सन् १८७८ — दयानन्द सरस्वती, अमृतसर

गुरुदासपुर में शास्त्रार्थ

(१८ अगस्त, सन् १८७७ से २६ अगस्त, सन् १८७७ तक)

(स्वामी जी लाहौर समाज के सदस्यों को १० सितम्बर, सन् १८७७ के पत्र में सूचना देते हैं कि 'आर्योद्देश्यरत्नमाला' की ५० प्रतियां हमने गुरुदासपुर में भेज दी हैं; जिससे स्पष्ट है कि इससे पहले वहां पधारे थे और 'वेदप्रकाश' नामक पत्रिका में, जो सन् १८७७ में प्रकाशित हुई, उस पर भी गुरुदासपुर समाज का नाम लिखा हुआ है) ।

गुरुदासपुर में स्वागत—इस बार स्वामी जी अमृतसर में ५ जुलाई, सन् १८७७ से १२ सितम्बर, सन् १८७७ तक रहे और इसी अवधि में वे गुरुदासपुर भी पधारे । लाला मंगलसेन जी वर्णन करते हैं कि भेरा निवासी ला० हंसराज साहनी

और ला० गुरचरनदास गुरुदासपुरी (वर्तमान वकील) उन दिनों लाहौर में शिक्षा पाते थे । उन्होंने गुरुदासपुर में आकर स्वामी जी के व्याख्यानों की प्रशंसा डाक्टर बिहारीलाल जी असिस्टैण्ट सर्जन गुरुदासपुर के सामने की । यह सुनकर डाक्टर साहब ने अपने भाई वल्लभदास को गाड़ी सहित अमृतसर भेजा और मार्ग में डाक लगा दी ।

स्वामी जी अमृतसर से चलकर १८ अगस्त, सन् १८७७[४३] को सायंकाल ५ बजे, सूर्यास्त के समय गुरुदासपुर पधारे । स्वामी जी के आने की चर्चा यहां पहले से ही फैल रही थी । इसलिए उनके आने के दिन बहुत से नगरवासी और जिले के सरकारी कर्मचारी घोड़ों पर चढ़कर और पैदल नगर के बाहर उनके स्वागत को गये । स्वयं डा० बिहारीलाल, मकान की सज्जा में संलग्न रहे । मैं भी स्वागत करने वालों में सम्मिलित था । हम लोग मील भर के अन्तर पर गये होंगे कि उधर से स्वामी जी शिकरम पर चढ़े हुए पधारे । सबने नमस्कार व नमस्ते की । स्वामी जी उतर पड़े और सबने आदर सत्कार किया । कुशल आनन्द पूछने के पश्चात् गाड़ी पर चढ़कर शनैः शनैः हम सब लोग उनको नगर में ले आये और डाक्टर साहब के मकान से, जो औषधालय के समीप सड़क के किनारे था, उतारा । आते ही १५-२० मिनट विश्राम करने के पश्चात् स्नान करके अपना मनोहर व्याख्यान पहले दिन मूर्तिपूजा पर आरम्भ किया । श्रोताओं की संख्या प्रतिदिन एक हजार और कभी-कभी दो-दो हजार हो जाया करती थी । फिर 'अवतार' और 'ईश्वर विषय' पर व्याख्यान दिया । गोरक्षा और उसके लाभ, इसी प्रकार आवागमन, श्राद्ध और आर्यावर्त की प्राचीन दशा पर व्याख्यान दिये और समस्त बातें, जो आर्य बनने के लिए आवश्यक हैं, स्पष्ट रूप से वर्णन कर दीं ।

स्वामी जी के आने के तीसरे दिन मियां हरिसिंह साहब और मियां शेरसिंह जी ने, जो दोनों 'मूर्तिपूजक' थे, स्वामी गणेशगिरि जी से (जो संसार से विरक्त, एकान्तवासी, श्रेष्ठ विद्वान् और नगर से बाहर निहालशाह के तालाब पर रहते थे और एक वर्ष हुआ कि निर्जला एकादशी के दिन स्वर्गवासी हो गये) आकर कहा कि आप चलकर स्वामी दयानन्द जी से शास्त्रार्थ करो । गणेशगिरि जी ने कहा कि किसी से शास्त्रार्थ करना हमारे नियम के अनुकूल नहीं है । हम साधु विरक्त हैं । यदि तुमको शास्त्रार्थ कराना है तो किसी पण्डित को बुलाओ; हम वहां नहीं जायेंगे । तब मियां साहब ने कहा कि यदि आप नगर में जाने या उनके मकान पर जाने में अपना अपमान समझते हैं तो महन्तों के बाग में या किसी और स्थान पर जहां आप चाहें, सभा किये लेते हैं, वहां चलें और शास्त्रार्थ करें । उन्होंने कहा कि नहीं, हमको इसकी कुछ भी आवश्यकता नहीं; दंगा फसाद हो जाता है और विरोध निकलता है । यदि तुम अधिक तंग करोगे तो हम यहां से चले जावेंगे (ला० मंगलसेन जी से स्वयं गणेशगिरि जी ने यह सारा वृत्तांत कहा था) ।

मियां साहब का अशिष्ट बर्ताव : शास्त्रार्थ नहीं कर सके तो झगड़े पर उतर आये—'अन्त में 'दोनों' मियां लोगों ने पंडित लक्ष्मीधर जी व पण्डित दौलतराम जी, दीनानगर निवासी को स्वामी जी महाराज के साथ शास्त्रार्थ करने को बुलवाया । जिस दिन ये पण्डित महोदय आये उस दिन स्वामी जी का व्याख्यान शिवपुराण के खंडन पर था । स्वामी जी ने वह कहानी सुनाई जिसमें यह उल्लेख था महादेव का लिंग बढ़ा और ब्रह्मा तथा विष्णु क्रमशः सूअर और हंस बनकर उसके नापने के लिये गये, आदि-आदि ।

दोनों पण्डितों और दोनों मियां सज्जनों ने कुछ सभ्यता विरुद्ध शब्द कहने आरम्भ किये कि झूठ बकता है, झूठ बकता है । तब डाक्टर बिहारीलाल जी ने सभा के नियमों के अनुसार निवेदन किया कि प्रथम सब कुछ सुन लेना चाहिए तत्पश्चात् आक्षेप करने के लिए उद्यत रहना चाहिए; परन्तु यह कहां सम्भव था । अन्त में जब स्वामी जी ने देखा कि पण्डित लोग बोलने से नहीं रुकते तो कहा कि अब मैं मौन हो जाता हूं; पण्डितों में से जिसे कोई शंका करनी हो, करो । चूंकि भीड़ बहुत थी और लोगों में उत्सुकता थी कि दोनों पक्षों को देखें, इसलिए श्रोताओं की प्रार्थना पर बाबू बिहारीलाल जी ने कहा कि पण्डितों में से जो शास्त्रार्थ करना चाहते हैं, वह मैदान में कुर्सी पर पधारें और स्वयं एक कुर्सी वहां बिछवा दी । चूंकि

उनमें से कोई भी एक वैसा विद्वान् न था और न उनमें स्वामी जी की विद्या और तेज का सामना करने की शक्ति थी, इसलिए मियां सज्जनों और पण्डित लोगों की यह इच्छा थी कि सब मिलकर प्रश्नोत्तर करें और इस तर्क-वितर्क में ये लोग भांति-भांति की बोलियां बोलते थे जिससे कोलाहल होता था। इसलिए स्वामी जी ने कहा कि जो एक पंडित चाहे सामने बैठकर उत्तर-प्रश्न करें। यद्यपि यह सुझाव पूर्णतया उपयुक्त था परन्तु विरोधी पक्ष इसके पक्ष में नहीं था। मियां हरिसिंह ने कहा कि अकेला कोई पंडित आपसे शास्त्रार्थ नहीं कर सकता; दो या अधिक मिलकर करेंगे। स्वामी जी ने कहा कि अच्छा जिसकी इच्छा हो यहां आकर उसको बारी-बारी बतलाता रहे। इस पर सहसा मियां हरिसिंह के मुख से निकला कि यह बन्दर-कला कौन खेल सकता है ? फिर जब डाक्टर साहब ने अनुरोध किया कि शास्त्रार्थ का नियम है कि दोनों 'सम्मुख बैठकर विचार करें, अवश्य पण्डित जी को सामने बैठकर शास्त्रार्थ करना चाहिए।' तब मियां साहब के मुख से निकला 'क्या कंजरियों (वेश्याओं) का नाच है जो बीच में आने की आवश्यकता है।' इस असभ्यतापूर्ण वाक्य की उपेक्षा की गई और जिस प्रकार वह चाहते थे, वैसे ही बातचीत आरम्भ हुई।'

मूर्तिपूजा पर बात चली—'पंडितों ने 'गणनां त्वा'[४४] आदि मंत्र पढ़ा और कहा कि इससे गणेश जी की मूर्ति सिद्ध होती है। स्वामी जी ने इस पर किसी भाष्य का प्रमाण मांगा। उन्होंने महीधर की चर्चा की। स्वामी जी ने झट महीधर का भाष्य निकालकर आगे रखा और उसका अश्लील अर्थ लोगों को सुनाया और दिखाया कि न तो इससे मूर्तिपूजा सिद्ध होती है और न गणेशपूजा; जबकि यह एक अत्यन्त अश्लील अनुवाद है और साथ ही सनातन निरुक्त आदि ग्रन्थों के अनुसार उसका श्रेष्ठ अर्थ बतलाया और दिखाया कि इस का मूर्तिपूजा से कोई सम्बन्ध नहीं है। मियां साहब को यह बुरी लगी; उन्होंने कहा कि अंग्रेज राज्य है; अन्यथा यदि रियासत होती तो कोई आपका सिर काट डालता। स्वामी जी ने इसकी तनिक भी चिंता न की और निरन्तर खंडन करते रहे। जब मियां लोगों से और कुछ न हो सका तो यह कहा कि यहां पर मैजिस्ट्रेट और पुलिस दोनों उपस्थित हैं, इसका भी ध्यान रखना। उनकी बात डाक्टर बिहारीलाल जी को बहुत बुरी लगी, जिस पर उन्होंने मियां साहब को भली भांति मुंहतोड़ उत्तर दिये और डाक्टर साहब और मियां साहब की परस्पर विरोधात्मक बात-चीत होकर सभा विसर्जित हुई। रात के आठ नौ बजे तक यह शास्त्रार्थ या झगड़ा होता रहा। इसके दो मास पश्चात् मियां लोगों ने डाक्टर साहब से क्षमा याचना की और सरदार मुहम्मद हयात खां साहब ने उनका मेल करा दिया।'

'एक दिन के व्याख्यान के बीच, जब कि मिस्टर काक साहब, इंजीनियर भी खड़े थे, स्वामी जी ने कहा कि अंग्रेजों को इस देश में बहत समय हो गया परन्तु अभी तक उनका उच्चारण अशुद्ध है, 'तकार के स्थान पर 'टकार' बोलते हैं, जैसे 'तुम' के स्थान पर 'टुम'। इस पर मिस्टर काक साहब को बहुत बुरा लगा वह चले गये और जाते हुए कह गये कि तुम पेशावर में पश्चिम की ओर जाओ तो तुम्हारी खबर ली जाये।

गवर्नमेंट स्कूल गुरुदासपुर में अरबी के अध्यापक मौलवी वाकर अली से आवागमन के विषय में बातचीत हुई थी।

एक दिन श्राद्ध की चर्चा करते हुए महाराज ने कहा कि देखो ब्राह्मण पितरों को तिल और जौ देते हैं और स्वयं खीर और लड्डू उड़ाते हैं। एक अनपढ़ ब्राह्मण की कथा सुनाई कि वह तिथिपत्र का ज्ञान न रखता था; तिथियों की गणना करना उसको नहीं आता था। प्रतिपदा के चांद को देख कर उस दिन से प्रतिदिन कोने में लाठियां रखता जाता और उनको गिनकर तिथि बतलाया करता था।'

'मुसलमान हिन्दुओं से कहीं अधिक बड़े बुतपरस्त हैं', ला० रामसरनदास प्लीडर ने वर्णन किया 'स्वामी जी ने एक बार व्याख्यान में कहा था कि हिन्दू तो केवल छोटी सी चुहिया को पूजते हैं और मुसलमान उनसे भी बड़े बुतपरस्त

(मूर्तिपूजक) हैं अर्थात् वह बिल्ली को पूजते हैं। शालिग्राम एक छोटी-सी वस्तु है जब कि मक्का का बुतखाना (मूर्तिघर) बहुत बड़ा है; इसलिए मुसलमान बहुत बड़े बुतपरस्त हैं।'

आर्यसमाज की स्थापना—स्वामी जी की उपस्थिति में ही लोगों के धार्मिक उत्साह से वहां २४ अगस्त, सन् १८७७ को आर्यसमाज स्थापित हो गया और निम्नलिखित सज्जन अधिकारी और सभासद् नियत हुए। मुंशी सूरजसरन मुंसिफ, प्रधान; दीवान किशनदास, मिस्ल खां वर्तमान मुंसिक मन्त्री; डाक्टर बिहारीलाल असिस्टैंट सर्जन, बाबू अमृत किशन बोस, हेडक्लर्क जिला पेन्शनर, ला० हरचरनदास मुन्सिफ, लाला कन्हैयालाल साहूकार, लाला काकामल, लाला रामशरणदास, बावा खजानसिंह साहूकार, डा० भक्तराम, लाला हंसराज साहनी तथा ला० गुरुचरणदास वकील, सभासद।

२६ ता० को स्वामी जी वहां से पूर्ववत् शिकरम में चढ़कर बटाला पधारे और लगभग एक घंटा या कुछ अधिक राय भागसिंह के बाग में विश्राम करके सीधे अमृतसर जा विराजमान हुए।

जालन्धर नगर में धर्म प्रचार (सितम्बर मास,[४५] सन् १८७७)

स्वामी जी सन् १८७४ के अन्त से सन् १८७५ के अन्त तक बम्बई की ओर रहे[४६] और वहां आर्यसमाज स्थापित किया, तब उन्हीं दिनों सरदार विक्रमसिंह[४७] और सदार सुचेतसिंह[४८] उनको पहले-पहल बम्बई में मिले थे। फिर दिल्ली के शाही दरबार के अवसर पर सन् १८७६ के अन्त में[४९] उनकी उनसे भेंट हुई; वहीं सरदार साहब ने स्वामी जी से प्रार्थना की कि आप अवश्य पंजाब में पधारें और सत्यधर्म का उपदेश करें।

लाला सूरजमल खत्री मलहोत्रा, बस्ती गुजां, जिला जालन्धर निवासी ने वर्णन किया 'स्वामी जी पहली बार लुधियाने से यहां आकर अप्रैल, सन् १८७७ में एक ही रात[५०] सरदार सुचेतसिंह जी की हवेली में रहकर लाहौर की ओर चले गये। इस बार उन्होंने यहां कोई व्याख्यान नहीं दिया।'

दूसरी बार १३ सितम्बर, सन् १८७७ बृहस्पतिवार तदनुसार भादों सुदि ६ संवत् १९३४ को प्रातःकाल के साढ़े नौ बजे स्वामी जी अमृतसर से चलकर २ बजे के लगभग जालन्धर पधारे और सरदार साहब की कोठी में उतरे।

'दूसरे दिन कुंवर सुचेतसिंह जी के यहां व्याख्यान हुआ। उस दिन मनुष्य बहुत अधिक थे; मकान तंग था। व्याख्यान की समाप्ति पर स्वामी जी ने कह दिया कि कल के दिन व्याख्यान सरदार विक्रमसिंह जी के मकान पर होगा। उस दिन एक हजार के लगभग मनुष्य थे। छत, चौक आदि सब भरे हुए थे। श्राद्धों के आरम्भ से पहले ही व्याख्यान आरम्भ हो गये थे।'

पहला व्याख्यान सृष्टि-उत्पत्ति पर था। उसमें स्वामी जी ने बताया कि मनुष्य पहले युवा उत्पन्न हुए अन्यथा यदि बालक या वृद्ध बनाता तो काम न कर सकते, इसलिए युवा उत्पन्न किये गये।

दूसरा व्याख्यान सरदार विक्रमसिंह जी के मकान पर आरम्भ हुआ। यहां ४० या ५० व्याख्यान दिये। समस्त आवश्यक बातें व्याख्यानों में प्रकट की। संस्कार, श्राद्ध, ईश्वर, ईश्वरीयज्ञान आदि विषयों पर व्याख्यान होते रहे।

राजाओं की वर्तमान दशा पर अनेक व्यंग्य—'एक बार बैंगन का उदाहरण[५१] दिया कि आजकल राजा लोग और पुरोहित लोग कैसे होते हैं, अर्थात् एक राजा ने बैंगन खाने का विचार प्रकट किया। पुरोहित ने कहा कि महाराज कैसी उत्तम वस्तु है, देखिए रंग इसका श्याम, कृष्ण जी के समान मुख में बंसरी या सिर पर मोर मुकुट और नाम कैसा कि बहुगुण! राजा साहब अत्यन्त प्रसन्न हुए और बड़े आनन्द से खाने लगे। कई बार खाने से रक्त आने लगा और अर्श हो गई। तब

उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया और कहने लगे कि पुरोहित जी बैंगन तो बहुत बुरे हैं । पुरोहित जी ने कहा कि महाराजा आप सत्य कहते हैं । देखिए, इसका रंग काला जैसे हब्शी या भंगी का, सिर पर सूली का चिह्न और कांटों का ताज, अत्यन्त बुरी दशा, बीज ऐसे जैसे किसी को कोढ़ हो, नाम कैसा बुरा अर्थात् बेगुन ।

एक बार दिल्ली की मिठाई का दृष्टान्त दिया कि तुम भाव क्या पूछते हो, खाये जाओ । कहा, यही दशा झूठ के प्रचार की है । एक बार अन्धेर नगरी का उदाहरण[५२] दिया (जिसमें चोर के बदले मूर्ख राजा को फांसी मिली) अन्धेर नगरी चौपट राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा ।'

कृष्ण आदि महापुरुष मुक्ति से पुनरावृत्त पुरुष थे—एक बार मुक्ति के विषय में व्याख्यान दिया और कहा कि जो लोग कहते हैं कि जीव ब्रह्म एक हो जाते हैं, यह भूल है (परमात्मा व जीवात्मा का) पिता पुत्र का सम्बन्ध हो जाना ही मोक्ष है । मोक्ष में जीव परमानन्द को भोगता है न कि उसका 'लय' हो जाता है । बताया था कि जीव मोक्ष से एक 'कल्प' के पश्चात् लौटकर आता है परन्तु आकर किसी उत्तम घर में जन्म लेता है और परोपकार करता है । कृष्ण आदि लोग मोक्ष से लौट कर आये हुए जीव थे । एक दिन मांस और मद्य के विषय में भी चर्चा की थी और बताया था कि इनके सेवन से आत्मिक और शारीरिक दशा बुरी हो जाती है और परमाणु बिगड़ जाते हैं ।

अन्यायी व पक्षपाती दुर्योधन सरीखे राजा—एक दिन कहा था कि आजकल के राजाओं की क्या दशा है । अंग्रेज लोग अपने मनुष्यों पर अत्यधिक कृपा दृष्टि रखते हैं । यदि कोई गोरा या फिरंगी किसी देशी की हत्या कर दे और वह न्यायालय में कह दे कि मैंने शराब पी हुई थी तो उसको छोड़ देते हैं । यह एक बड़ा अन्याय है । यही दशा बिलकुल दुर्योधन की थी । जब उसकी आंखें अपने नियत स्थान से निकल कर मस्तक पर चली गई तो राज्य का सत्यानाश हो गया । इसी प्रकार यहां भी यदि अधिक अन्याय करेंगे तो राज्य अधिक न रहेगा जैसा कि उन्होंने लखनऊ के बलवे (झगड़े) में कुछ अंग्रेजों की हत्या के बदले में अनाथ और निरपराध हिन्दुस्तानियों को मार डाला ।[५३]

एक दिन व्याख्यान में जब कि राजा विक्रमसिंह[५४] जी भी बैठे हुए थे कहा कि जो राजा होकर कंजरी (वेश्या) रखता है वह कंजर है । सरदार साहब ने पूछा कि हमारे पर भी ? स्वामी जी ने कहा कि नहीं; हम तो सब को कहते हैं, किसी के साथ नरमी नहीं बरतते; यह धर्म की बात है ।

धोखा खाकर नग्न हुए राजा का दृष्टान्त—एक राजा की कहानी सुनाई ।[५५] एक राजा महोदय दिल्ली गये । वहां उन्हें एक मनुष्य मिला । उसने कहा-महाराज ! मुझे एक ऐसा पहिरावा बनाना आता है कि उसको पहनने पर वह किसी को दिखायी न दे; हां, जो व्यभिचार से उत्पन्न होगा उसको दिखायी देगा । राजा ने प्रसन्न होकर कहा कि क्या लेगा ? कहा कि बीस हजार । अन्त में १० हजार ठहरे । उसने पांच हजार रुपया पेशगी मांगा । कई मास तक बनाने में संलग्न रहा । अन्त में कई मनुष्यों को भेजकर बुलाया गया । राजा साहब ने कहा कि वस्त्र लाये ? कहा, कि श्रीमान् लाया हूं । राजा साहब ने कहा कि हमको दिखाई नहीं देता । उत्तर दिया यदि दिखाई देता तो उसकी प्रशंसा ही क्या होती । आप भीतर झूठमूठ शिर पर हाथ फेर कर पगड़ी, कुर्ता, पायजामा और दुपट्टे का स्वीकार कराता गया । इसी प्रकार बिलकुल नग्न राजासाहब कचहरी में आये । मंत्री कुछ बुद्धिमान था । उसने जब देखा तो वह यह सोच कर अत्यन्त लज्जित हुआ कि यदि अभी किसी राजा का दूत आ जाये तो वह क्या कहेगा ? निवेदन किया महाराज ! एक प्रार्थना है । कहा, आपने सारे ही वस्त्र दिल्ली के पहने हैं; केवल लंगोटी देशी पहन लीजिये ताकि यह नंगापन बुरा न लगे । राजा साहब ने कहा कि क्या हम नंगे हैं ? उसने कहा कि हां, श्रीमान् ! तब राजा साहब ने कठिनता से स्वीकार किया कि उस ठग ने हमें धोखा दिया । यही दशा आजकल के राजाओं की है ।

चमत्कार दिखाने वाले मुसलमान फकीर की पोल खुल गई—पंडित भीमसेन ने वर्णन किया 'एक चमत्कार दिखाने वाले मुसलमान फकीर से कुछ वादविवाद हुआ था। अन्त में खोज करने पर उसके चूतड़ों से एक पांचसेरी निकाली, यद्यपि वह कहता था कि मेरे पास कुछ नहीं है, पदार्थ आकाश अथवा स्वर्ग से मंगाता हूं। सरदार साहब के अनुरोध पर स्वामी जी ने उसकी यह चालाकी प्रकट की थी ताकि यह धोखा सरदार साहब के मनसे दूर हो।

कुलथम (जिला जालन्धर) निवासी कन्हैयालाल ब्राह्मण ने डाक्टर गंगाराम जी से वर्णन किया कि मैं कई बार स्वामी जी की सेवा में उपस्थित होता रहा। एक दिन पूछा कि तुम नित्य क्यों आते हो ? मैंने निवेदन किया कि महाराज ! आप कोई आज्ञा करें जिसको मैं पालन करूं ताकि मेरा कल्याण हो। स्वामी जी ने कहा कि 'यदि तुम कर सकते हो तो एक सराय बना दो, उसमें लिहाफ और चारपाई रख दो ताकि लोग आराम पावें और ठाकुरद्वारा बनाने या मढ़ी या पीर पूजने से कुछ लाभ नहीं। तुम्हारा इसी से कल्याण होगा।'

फिरोजपुर छावनी में 'हिन्दूसभा' के स्थान पर 'आर्यसमाज' स्थापित

(शुक्रवार, २६ अक्तूबर, सन् १८७७ से सोमवार, ४ नवम्बर, सन् १८७७ तक।)

चौधरी बिशनसहाय जी ने वर्णन किया 'स्वामी जी लाहौर पधारे और वहां आर्यसमाज स्थापित किया और इसी प्रकार पंजाब के अन्य नगरों में भी चर्चा होने लगी। उन दिनों यहां एक 'हिन्दू सभा' स्थापित थी। बाबू दीनदयाल वकील के भाई बाबू रघुवंश सहाय ने लाहौर से आकर एक दिन उस सभा में बताया कि एक स्वामी जी आये हैं जो मूर्तिपूजा आदि का खंडन करते हैं और अपने वेद-शास्त्र का महत्व सब धार्मिक पुस्तकों से अधिक सिद्ध करते हैं। लाहौर में बड़े-बड़े विद्वान् उनकी ओर आकृष्ट हुए हैं। मेरी समझ में यह 'सभा' उन्हीं के सिद्धान्तों पर स्थापित रहनी चाहिए।' यह जानकर ला० मथुरादास जी के मन में, जो उस समय उक्त सभा के प्रधान थे, उत्सुकता उत्पन्न हुई और उन्होंने गोविन्दलाल कायस्थ को लाहौर भेजा और वे स्वामी जी को शिकरम में बिठाकर अपने साथ लाये। स्वामी जी के पधारने से पहले ला० मथुरादास जी ने उनके आगमन की प्रसन्नता-प्रसन्नता में ही एक मकान विशेष रूप से सुसज्जित कराया। वह एकान्त स्थान में था और रात को उनके वहां निवास के लिए उपयुक्त था। 'कोहेनूर' में लिखा है कि—

"स्वामी जी २६ अक्तूबर, सन् १८७७ को फिरोजपुर चले गये।" (३ नवम्बर, सन् १८७७, पृष्ठ ९०३) स्वामी जी जब यहां पधारे तो उन्होंने बस्ती में रहना पसन्द नहीं किया। इसलिए बनवारीलाल की कोठी में जो पुराने तोपखाने के सामने थी, डेरा किया। दो तीन पंडित लिखने वाले भी स्वामी जी के साथ थे। स्वामी जी के व्याख्यानों के लिए ला० मथुराप्रसाद के मकान के सामने खाली पड़े मैदान में शामियाने लगाये गये और उन्हें अच्छी प्रकार सजाया। पहले दिन जब स्वामी जी आये तो उनके दर्शनों के लिए बहुत से लोग गये। यहां कुल ८ व्याख्यान हुए और वे सब सायं समय होते रहे।

"पहले व्याख्यान के आरम्भ करते ही गोपाल शास्त्री ने (जो इस जिले का रहने वाला था और अपने-आपको जम्मू का छात्र बताया था) कहा हमको कुछ प्रश्न करने हैं। स्वामी जी ने कहा कि व्याख्यान आरम्भ हो गया है, इसके पश्चात् जो चाहो सो पूछ लेना। उसने कहा कि मुझको आपके कहने पर बहुत आक्षेप करने हैं। स्वामी जी ने कहा कि लिखते जाओ, अन्त में उनका उत्तर दिया जावेगा। उसने कहा कि मैं इतना नहीं लिख सकता। तब उसको सभा की ओर से कहा गया कि यदि नहीं लिख सकते तो मौन रहो और स्वामी जी ने कहा कि चुपचाप सुनते जाओ परन्तु चूंकि उस समय वह अत्यन्त बेचैन था, उसकी वाणी लड़खड़ा रही थी और स्वामी जी के तेज से अभिभूत होकर विक्षिप्त सा हो उठा था, उससे चुपचाप

न बैठा गया और यह कहकर सभा से चला गया कि यह 'गप्पाष्टक' है, जो कोई सच्चा हिन्दू हो वह न सुने । इस पर दस-बारह मनुष्य उठ कर चले आये । व्याख्यानों में समस्त सैद्धान्तिक बातों की उन्होंने स्पष्ट रूप से चर्चा की थी । एक दिन प्रश्नोत्तर के लिए रखा और अन्तिम दिन व्याख्यान मुक्ति के विषय पर था और पहला सृष्टि उत्पत्ति के विषय पर ।"

ब्राह्मणों की शोचनीय दशा पर व्यंग्य—'एक दिन जब वर्तमान काल के मूर्ख ब्राह्मणों की चर्चा कर रहे थे तो उदाहरण के रूप में कहा कि एक महाराजा के यहां कोठारी जी थे । राजा के पास जब कोई पंडित जाता और कोठारी जी से कहता कि मेरी सहायता की जावे, मैं कुछ पढ़ा लिखा नहीं हूं । कोठारी जी कहते कि इसकी कुछ चिन्ता नहीं, जो तुम्हारे मन में आये कहते जाओ, केवल हाथ में माला और गोमुखी होनी चाहिए । इसी प्रकार करते-करते कोठारी ने एक पंडित से अपना भाग नियत कर लिया । वह एक घाट पर जाकर जप करने लगा, राजा का जप करूं, राजा का जप करूं ।' दो चार दिन के पश्चात् एक और पण्डित आया और वह भी पूर्ववत् भाग ठहरा कर वहीं गया और उसने पहले ब्राह्मण का जप सुनकर यह कहना आरम्भ किया 'जो तू करे सो मैं करूं, जो तू करे सो मैं करूं ।' इसके पश्चात् एक विद्वान् पंडित भी वहां पहुंच गये । वह भी जप के लिये भेजे गये । उन्होंने जाकर दोनों का सुना और चकित होकर यह कहना आरम्भ किया—'यह निभेगी कब तक ।' चौथे भी इसी प्रकार पहुंचे और इन तीनों का जाप सुनकर यह कहा कि 'जब तक निभेगी तब तक ।'

इससे उन्होंने यह बताया कि आजकल ब्राह्मणों की दशा ऐसी द्विविधापूर्ण हो रही है कि 'ज्ञान होने पर भी अविद्या में धकेले जा रहे हैं ।' अन्तिम व्याख्यान में जो मुक्ति के विषय पर था, उपासना के आठ अंगों का महत्त्व विस्तारपूर्वक बताया । मुंशी रामसहाय जी, ऐक्स्ट्रा असिस्टैण्ट कमिश्नर, इनके प्रत्येक व्याख्यान को बड़े उत्साह से सुनते रहे और नगर और छावनी के बड़े-बड़े बुद्धिमान् रईस भी उनके व्याख्यानों में बराबर आते रहे । मौलवी करामत अली वकील पटियाला ने भी कुछ प्रश्न किये थे पर वे हमको स्मरण नहीं ।'

पंडित कृपाराम वर्तमान क्लर्क, मैगजीन-फिरोजपुर ने प्रश्न करना चाहा और जाते ही कहा कि 'आप तो कुर्सी पर बैठे हैं, मैं खड़ा हूं, मेरे और आपके प्रश्नोत्तर किस प्रकार हो सकते हैं, ? स्वामी जी ने उनके लिए कुर्सी मंगवाई । जब कुर्सी आने में विलम्ब हुआ तो स्वामी जी ने कहा कि आप कुर्सी के बिना भी बोल सकते हैं और अगर दुःख है कि मैं क्यों बैठा हूं तो मैं भी नीचे बैठ जाता हूं । इतने में कुर्सी आ गई और वे बैठ गये । उन्होंने प्रश्न किया कि खुदा महदूद है या गैर महदूद है ?'

स्वामी जी ने कहा कि 'मैं अरबी नहीं समझता, अपनी भाषा में कहो कि इसका तात्पर्य क्या है । क्या 'एकदेशी और सर्वव्यापक से अभिप्राय है ?'

उसने कहा कि हां ! स्वामी जी ने कहा ईश्वर सर्वव्यापक है । कृपाराम जी ने अपनी घड़ी सहसा मेज पर रख दी कि बताओ इसमें कहां है ? स्वामी जी ने आकाश का उदाहरण देकर कहा कि आकाश सर्वत्र समाया है, सब वस्तुएं आकाश के भीतर समाई हैं । मेरा यह सोटा भी (अपना सोटा खड़ा करके) आकाश के भीतर है । जैसे यह आकाश के बाहर नहीं हो सकता, इसी प्रकार आपकी घड़ी भी परमेश्वर की व्यापकता से पृथक् नहीं । इस पर उन्होंने अपना सन्तोष तो प्रकट न किया; उस समय तो केवल यही कहा कि बस ! तुम्हें गपोड़े हांकने आते हैं । परन्तु विचार करने के पश्चात् उत्तर को सत्य समझ कर सच्चे हृदय से आर्यसमाज फिरोजपुर के सभासद् हो गये और पूरी निष्ठा से स्वामी जी का सम्मान करते हैं ।

उसके पश्चात् छावनी-मजिस्ट्रेट के दफ्तरी मेहनतीराम ने एक (पंजाबी) भाषा का दोहा पढ़ा जिसकी पहली पंक्ति यह है—**"ज्ञान कर ज्ञान कर ज्ञान को खंडर कर खेल चौगान मैदान मांही ।"** दूसरी पंक्ति पढ़ने लगा ही था कि स्वामी

भगत स्वरूपसिंह ने वर्णन किया 'योग के विषय में हमने स्वामी जी से बातचीत की और कई नई बातें विदित कीं। हम विशुद्धानन्द स्वामी बनारस[६०] वाले से भी मिले थे, परन्तु हमारे विचार में विशुद्धानन्द योग का जानना तो एक ओर, उसकी गन्ध मात्र से भी परिचित नहीं थे।'

स्वामी जी के उपदेशों के पश्चात् नियमानुसार हिन्दूसभा[६१] का नाम आर्यसमाज रखा गया। नियम और उपनियम स्वीकार किये गये और निम्नलिखित सज्जन अधिकारी नियत हुए—ला० मथुरादास सुपरवाइजर प्रधान; मुंशी गोविन्दलाल मन्त्री, और बहुत से सज्जन सभासद् बने। स्वामी जी सबसे विदा होकर ५ नवम्बर, सन् १८७७ की रात को फिरोजपुर से चलकर लाहौर पहुंच गये।[६२]

रावलपिंडी नगर में शास्त्रचर्चा (७ नवम्बर, सन् १८७७ से २९ दिसम्बर, १८७७ तक)[६३]

'कोहेनूर' में लिखा है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी रावलपिंडी के लोगों की प्रार्थना पर, ७ नवम्बर, सन् १८७७ को रेल से रावलपिंडी की ओर चले गये।

भाई अतरसिंह जी ने वर्णन किया—'स्वामी जी के पधारने से पहले की बात है कि जवाहर और प्रभुदयाल दो खत्रियों से, जो रावलपिंडी में तेल और घृत की दुकान करते थे तथा दो तीन पुस्तकें संस्कृत की भी पढ़े हुए थे, सरदार सुजानसिंह जी रईस रावलपिंडी ने चर्चा की कि हमने स्वामी जी को लाहौर में देखा है, वे मूर्ति, तीर्थ और श्राद्धों का खंडन करते हैं। प्रभुदयाल ने कहा कि 'यह बात उनकी अनुपयुक्त है, यह सनातन धर्म तो ऋषियों के समय से चला आता है। यदि यह खंडित होता तो ऋषि क्यों यत्न करके इसको स्थापित करते। आप, चूंकि संस्कृत नहीं जानते इसलिए आपको उनकी विद्या अधिक प्रतीत होती है।' सरदार साहब ने कहा कि यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है तो आप वह सब प्रमाण लिखकर हमको दो, हम स्वामी जी के पास भिजवा देंगे। ऐसा ही हुआ, उन्होंने पत्र लिख दिया और सरदार साहब ने उसको लिफाफे में बन्द करके स्वामी जी के नाम भेज दिया। जब वह लिफाफा स्वामी जी के पास लाहौर पहुंचा तो स्वामी जी उनकी योग्यता को जान गये। केवल यह कहा कि आप संस्कृत भाषा नहीं जानते हैं, इसलिए हम स्वयं ही वहां आकर उत्तर देंगे और २५-३० दिन के पश्चात् पधारे। यहां से किराये आदि के लिए रुपये भेजे गये। जब स्वामी जी पधारे तब मैंने स्वामी जी के तेल का खर्च उनकी दुकान पर डलवा दिया परन्तु वे ऐसे घबराये कि उन्होंने मुख दिखलाना बन्द कर दिया परन्तु कभी-कभी मुझको पूछ लेते थे कि वे कब जायेंगे?

रावलपिंडी आकर स्वामी जी जामास्प जी की कोठी में उतरे। प्रात: ७ बजे यहां पधारे थे। **'बिहार-बन्धु'** ५ दिसम्बर, सन् १८७७ खंड ५, संख्या ४८ में लिखा है—'पंडित दयानन्द सरस्वती आजकल रावलपिंडी में विराजते हैं।' **पंडित भीमसेन जी** कहते हैं 'स्वामी जी रावलपिंडी में दो मास ठहरे; जाड़े की ऋतु थी।' स्वामी जी के लेख से विदित हुआ कि वह ७ नवम्बर, सन् १८७७, बुधवार तदनुसार कार्तिक सुदि २, संवत् १९३४ को रावलपिंडी पधारे थे। उन दिनों कनखल की गद्दी के महन्त साधु संपद्गिरि जी वहां विद्यमान थे। स्वामी जी ने आते ही उनका वृत्तान्त पूछा कि क्या वे यहीं हैं?

उस कोठी में स्वामी जी ने लगभग २० व्याख्यान दिये और सम्भवत: २५ दिन रहे।

'कोहेनूर' में लिखा है—'स्वामी दयानन्द सरस्वती लाहौर से पधार कर सेठ जामास्प[६४] जी सौदागर की कोठी पर ठहरे हुए हैं। कल ४ बजे वे व्याख्यान देंगे। पण्डितों आदि से शास्त्रार्थ होगा' (१४ नवम्बर, सन् १८७७, पृष्ठ १०१८, खंड १९, संख्या ६५)।

रावलपिंडी में ईसाई मत की आलोचना

इसी कोठी में एक दिन स्वामी जी ने व्याख्यान के पश्चात् जब वह विशेष व्यक्तियों से बातचीत कर रहे थे, कहा, 'हमें हिन्दुओं की दशा पर अत्यन्त खेद है। वे अन्य मत की पुस्तक नहीं देखते और मेलों में जब कभी कोई पादरी या मौलवी उनको कहता है कि ब्रह्मा जी ने अपनी बेटी से बुरा किया तो झूठ-सच मान लेते हैं। ब्रह्मा की बात तो किसी विश्वसनीय ग्रन्थ में नहीं है परन्तु बाइबिल में पैगम्बर का अपनी बेटियों से व्यभिचार करने का वर्णन है। वे यदि यह बात बतलावें तो पादरी और मुसलमान कदापि सम्मुख आकर बात न कर सकें।' उस समय एक देशी पादरी और मिशन स्कूल के मौलवी बैठे हुए थे। उन्होंने घर में सम्मति की कि यह बात स्वामी जी ने झूठ कही है, कल उन पर आक्षेप करेंगे। दूसरे दिन वे आये और आक्षेप किया। पुस्तकें साथ लाये। व्याख्यान की समाप्ति पर जब स्वामी जी बैठे; तब उन्होंने कहा कि कल जो आपने कहा था कि लूत ने अपनी लड़कियों से व्यभिचार किया है, यह बात झूठ है। स्वामी जी ने कहा कि हमको विदित था कि तुमको इस बात की लज्जा होगी। वे लोग पुस्तकें लेकर पास बैठ गये। स्वामी जी ने कहा कि यह तुम्हारी लड़कपन की बात है, तुमको प्रथम यह चाहिए था कि पहले घर में दीपक जलाकर अपनी चारपाई की दशा जान लेते ताकि तुमको इस सभा में लज्जित न होना पड़ता, परन्तु वे न समझे। तब स्वामी जी ने कहा कि अरे तुलसिया! हमारी बाइबिल लाओ। वह लाया और निकालकर दिखलाया[1]। उसमें स्पष्ट रूप से लिखा था। फिर वे अत्यन्त लज्जित हुए परन्तु साथ ही यह कहा कि शराब के नशे में था। ला० शिवदयाल जी ने कहा कि 'चाहे कुछ भी हो परन्तु उसको यह विदित था कि मेरी स्त्री मर चुकी है, चिरकाल से मैं बिना स्त्री के हूं और ये मेरी लड़कियां हैं। पाप से किसी दशा में छुटकारा नहीं हो सकता' इस पर वे लज्जित होकर चले गये और कहा कि निस्सन्देह यह हमारा अपराध था, यदि घर में देख लेते तो आपको कष्ट न देते।

इतने में लोगों ने जामास्प जी को प्रेरित करना आरम्भ किया कि स्वामी जी को यहां मत रहने दो। स्वामी जी ने उनके कहने से पूर्व ही वहां से स्थान बदलने की ठहरा ली। भाई जयसिंह जी ने सरदार सुजानसिंह जी से कहा कि स्वामी जी की इच्छा वहां रहने की नहीं; यदि आप कहें तो यहां बाग में आ जावें। सरदार साहब ने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया। फिर स्वामी जी यहां आ गये और आकर बाग की बारहदरी में ठहरे। यहां के प्रसिद्ध पंडित लक्खीराम तो छिपते फिरते थे; क्योंकि उनके मस्तिष्क में शुष्कता थी। उनको आशंका थी कि ऐसा न हो कि आवेश में कोई बुरी बात निकल जाये। एक दिन सरदारों के बाग में नगर के लोग जाने के लिए उद्यत हुए। स्वामी संपद्गिरि जी पहले तो साहस दिलाते रहे कि मैं अवश्य चलूंगा परन्तु अन्त को ठीक समय पर टाल गये। नगर के साधारण और विशेष लोग पंडित लक्खीराम के बिना पंडित ब्रजलाल के साथ गये। लगभग पांच सौ मनुष्य थे। भाई अतरसिंह जी ने पहले जाकर निवेदन किया कि महाराज! इस प्रकार लोग आ रहे हैं। स्वामी जी ने कहा कि कुछ चिन्ता नहीं है, आने दो, देखो; क्या होता है?

सरदार कृपालसिंह जी ने यह चर्चा चलाई कि आपने जो आज के लिए मूर्तिखंडन का विषय रखा है, उसमें यह शंका है कि सनातन से लोग मूर्तिपूजा की स्थापना करते आये हैं और आप उसका खंडन करते हैं। कैसे विश्वास हो?

स्वामी जी ने कहा कि यह विषय अन्धे और सुजाखे का है। यदि कोई ऐसा हो कि जिसने शास्त्र देखे हों, वह मूर्तिपूजन तथा व्रत रखने पर लिखे हुए हमारे पत्र का खंडन करे; भले ही वह संपद्गिरि की भी सहायता ले ले अथवा उसको काशी भेज कर उत्तर मंगवा लो। परन्तु कोई तैयार नहीं हुआ और न सम्पद्गिरि ने ही कोई स्थिर सम्मति दी। फिर परामर्श

---

1. उत्पत्ति प्रकरण, अध्याय २०, आयत ३० से ३८ तक।

हुआ कि पण्डित श्रद्धाराम को स्वामी जी के सामने बुलाया जाये परन्तु कुछ व्यक्तियों के कहने से ज्ञात हुआ कि जब वह लाहौर में ही सामना करने के लिए नहीं आया तो यहां कैसे आयेगा और व्यर्थ में सरदार साहब के आठ नौ-सौ रुपये व्यय हो जायेंगे । सारांश यह है कि यह सम्मति भी रह गई ।

पंडित ब्रजलाल जी ने कोई श्लोक बोला । तब स्वामी जी ने पूछा कि यह कहां का है और किस काल का है ? इसका वह कोई उपयुक्त उत्तर न दे सके । तब हरिपुर के पंडित हरिचन्द जी ने अपना सुना-सुनाया श्लोक अशुद्ध पढ़ा । जिस पर स्वामी जी ने उत्तेजित होकर कहा कि यह लड़कों की शाला नहीं है कि तुम अशुद्ध बोलकर समय नष्ट करो । यदि कुछ जानते हो तो बतलाओ कि यह कहां का है ? पंडित ब्रजलाल जी ने भी उसकी अशुद्धि को स्वीकार किया । इस पर पंडित फिर कुछ नहीं बोल सका ।

अपने जन्म का वृत्तान्त १८ घंटों में बतलाया—'सरदार साहब की कोठी में स्वामी जी के दस व्याख्यान हुए और १८ रातों में एक-एक घंटा नित्य कह कर अपने जन्म का वृत्तान्त बतलाया । यह सार्वजनिक व्याख्यान में नहीं, अपितु विशेष व्यक्तियों के सम्मुख बताया । अपना नाम नहीं बतलाया था परन्तु पिता का नाम बतलाया था जो मुझे स्मरण नहीं, मेरे भाई साहब को याद होगा ।'

"यहां भी २०-२५ दिन रहे । अन्त के दिनों में उन्होंने 'आर्यसमाज' स्थापित करने की सलाह की । उस समय लगभग ३० मनुष्य प्रविष्ट हुए । उनमें से ला० गणेशदास, ला० शिवदयाल और ला० लद्धाराम मुख्य थे ।"

"यहीं महाराजा जम्मू की चिट्ठी आई थी । तब स्वामी जी ने कहा कि हम वहां नहीं जा सकते, वह तो मूर्तिपूजा में खचित हो रहा है और उसने मूर्ति के सैकड़ों मन्दिर बनवाये हैं और हमने उनका खंडन करना हुआ; कदाचित् झगड़ा न हो जावे । एक दिन पेशावर जाने का विचार किया परन्तु फिर संकल्प हट गया ।"

"जम्मू की चिट्ठी आने के अवसर पर एक बात यह सुनाई कि किसी मारवाड़ के राजा ने १० सेर के लगभग रुद्राक्ष समस्त शरीर पर पहने हुए थे और ५ सेर मिट्टी के गलोले (गोले) वह बनाता जाता और एक ब्राह्मण उस पर जल छोड़कर उन्हें बहाता जाता था । हमने विचार किया कि उसको उपदेश करें । हम गये और कहा कि जब तक तुम हमारे उपदेश को न सुनोगे, हम तुम्हारा अन्न ग्रहण न करेंगे । हम तीस दिन वहां रहे । अन्त में उसके पंडित का और हमारा शास्त्रार्थ हुआ और राजा सुनता रहा । पंडित ने कहा कि गौरी शंकर हैं, हमने कहा कि नहीं; यह तो एक वृक्ष के बीज हैं । स्वामी जी कहते थे कि उस समय तो उसने (रुद्राक्ष पहनने) न छोड़े परन्तु जब फिर वह राजा हमको मिला और आकर प्रणाम किया तब हमने देखा कि उसने एक ही रुद्राक्ष रखा हुआ है । बोला—मैं बड़ा आभारी हूं कि आपने मेरी इतनी अविद्या दूर की । राजाओं की दशा ऐसी ही हो रही है । एक दिन सायं समय केवल कुछ मिनटों के लिए स्वामी संपद्गिरि जी मिले थे । स्वामी जी का विचार उनसे शास्त्रार्थ का था परन्तु वह सहमत न हुए ।"

ला० मैय्यादास जी सेठी, दुकानदार रावलपिंडी ने वर्णन किया 'स्वामी जी के यहां पधारने से पहले ही ब्राह्मणों ने प्रसिद्ध कर दिया था कि वह लोगों को ईसाई कर रहा है और ईसाइयों का नौकर है, कोई सुनने मत जाये । जब स्वामी जी ने आकर सवां नदी के पुल के ऊपर दायीं ओर अन्त में जो जामास्पजी की कोठी है, वहां निवास किया तो बाबू गिरीशचन्द्र, हेड क्लर्क जिला ने स्वामी जी का स्वागत करके उनको उतारा था । उनके आने पर बाबू गिरीशचन्द्र जी ने अपने हाथ से लिखकर विज्ञापन लगवाये थे । उनके पहले व्याख्यान से ही नगर में हल्ला मच गया था, क्योंकि उन्होंने उसमें बड़ी प्रबल युक्तियों से मूर्तिपूजा का खंडन किया था । बाजार में ब्राह्मण कहते थे कि यद्यपि कपड़े तो भगवे पहने हुए हैं परन्तु आकृति

ईसाइयों की छिपी नहीं; चलकर देख लो। पहले पहल चार सौ के लगभग मनुष्य जाया करते थे, तत्पश्चात् दो सौ के लगभग जाते रहे। जब वे कोई शब्द मूर्ति के विषय में कहते तो लोग कहते थे कि देखो किरानी इससे बढ़कर और क्या कहते हैं।
लगभग जाते रहे । जब वे कोई शब्द मूर्ति के विषय में कहते तो लोग कहते थे कि देखो किरानी इससे बढ़कर और क्या कहते हैं ।

यहां प्रतिदिन व्याख्यान होता रहा फिर सरदार सुजानसिंह के बाग की पुरानी बारहदरी में चले गये । यहां दो दिन व्याख्यान और एक दिन छुट्टी । लगभग एक मास यहां रहे ।

"पंडित लक्खीराम ब्राह्मण से अपने सामने बातचीत नहीं हुई । स्वामी जी ने, चूंकि शास्त्रार्थ का विज्ञापन दिया हुआ था, इसलिए पं० लक्खीराम ने शास्त्रार्थ के लिए उत्तर लिखा कि मैं शास्त्रार्थ करना चाहता हूं । उसमें चूंकि बहुत अशुद्धियां थीं इसलिए स्थान-स्थान पर मिटाया हुआ था । स्वामी जी ने उत्तर दिया कि जब वह लिखना ही नहीं जानता और इतने थोड़े से कागज पर इतने स्थानों पर मिटाया हुआ है; उसे कहो कि शुद्ध लिखकर भेजे परन्तु वह न स्वयं सामने आया और न उत्तर लिखा । हां; गली-कूचों में अपने रूखे भाषण झाड़ता रहा ।"

"स्वामी जी जब सरदारों के बगीचे में थे तो उस ओर से जंगल जाते हुए एक दिन संपद्गिरि मिले । प्रथम आपस में नमस्कार होकर स्वामीजी ने पूछा कि 'संपद्गिरि ! प्रसन्न हो ? कुछ सत्योपदेश भी करते हो या नहीं ? इतनी ही बातें भाषा में होकर फिर संस्कृत बोलने लगे । मकान पर जाकर जब लोगों ने कहा आप उससे शास्त्रार्थ करें । संपद्गिरि ने कहा कि तुम लोग संन्यासियों का युद्ध देखना चाहते हो ? हम ऐसा न करेंगे । लोगों ने कहा कि तुम ऐसा उपदेश क्यों नहीं करते ? कहा कि हमसे नहीं हो सकता, यह तो निर्द्वन्द्व है ।"

स्वामी दयानन्द किसका नाम है

कृपाराम सेठी, वर्तमान वकील, रियासत जम्मू भी हमारे साथ था । जाते ही नमस्कार कर मुट्ठियां भरता रहा । भरते-भरते एक-एक अंग पर हाथ लगाकर नाम पूछता रहा, स्वामी जी बतलाते रहे । तब अन्त में पूछा कि जब इनके हाथ, पांव, नाक, कान आदि नाम हैं तो स्वामी दयानन्द किसका नाम है ? स्वामी जी ने कहा कि जिस प्रकार गाड़ी के एक-एक जोड़ का नाम पहिया, धुरी आदि है और कुल का नाम गाड़ी है; इसी प्रकार अंगों के नाम आंख, कान आदि हैं और कुल का नाम दयानन्द सरस्वती । इस पर उसकी शान्ति हो गई ।

७ नवम्बर, सन् १८७७ से दिसम्बर के अन्त तक रावलपिंडी में स्वामी जी के निवास का पता मिलता है । स्वामी जी की उपस्थिति में ही यहां **आर्यसमाज** स्थापित हुआ और निम्नलिखित सज्जन अधिकारी नियत हुए—ला० गणेशदास प्रधान; ला० किशनचन्द मंत्री, और लगभग २८ सज्जन समाज के सदस्य हुए ।

जेहलम नगर में धर्म-प्रचार

(३१ दिसम्बर, सन् १८७७ से १३ जनवरी, सन् १८७८ तक)

स्वामी जी रावलपिंडी से शिकरम पर चढ़कर ३० दिसम्बर, सन् १८७७ को गुजरात जाने के विचार से **जेहलम रेलवे स्टेशन** पर पधारे ।[६५] साथ के लोगों को स्टेशन पर छोड़कर आप टहलने के लिए परेड की ओर आ गये । किसी व्यक्ति ने लाला लक्ष्मणप्रसाद मास्टर रिसाला नं १२ को आकर कहा कि हिन्दुओं के गुरु आये हुए हैं । वे देखने गये तो पहचाना कि स्वामी जी हैं, क्योंकि पहले लखनऊ में देखा हुआ था । नमस्कार किया और जेहलम में ठहर कर उपदेश

करने के लिए प्रार्थना की । स्वामी जी ने कहा कि यहां कोई प्रबन्ध करने वाला नहीं । मास्टर जी ने प्रबन्ध करने का वचन दिया और उनको एक बंगले में नदी के समीप ठहराया ।

मास्टर लक्ष्मणप्रसाद वर्णन करते हैं कि 'स्वामी जी वहां १४ दिन रहे । बंगला निवासस्थान रहा और गवर्नमेण्ट हाईस्कूल में व्याख्यान दिये, जिनमें आर्यसमाज के सिद्धान्त विस्तारपूर्वक वर्णन किये । किसी ने कोई शंका उपस्थित न की केवल एक देशी पादरी कुछ शंकाएं लिखकर लाये थे, परन्तु जिस समय पढ़ने को खड़े हुए, उनका शरीर कांपने लगा और वे असफल होकर स्कूल से बाहर निकल गये ।

पहले दिन कुछ लोगों ने उपद्रव भी किया परन्तु मैंने दूसरे दिन से गारद का प्रबन्ध कर लिया था, फिर कुछ झगड़ा न हुआ । जेहलम में उनके व्याख्यानों का यह परिणाम हुआ कि वहां उनके रहते-रहते एक आर्यसमाज स्थापित हो गया । मैं, लक्ष्मणप्रसाद, इसका प्रधान बना और कभी-कभी व्याख्यान दे दिया करता था और उपासना भी करता रहा । बाबू ज्वालाप्रसाद मंत्री और ला० नौबतराय कोषाध्यक्ष नियत हुए ।

एकबार ला० नौबतराय के भाई को जो मुसलमान हो गया था, हिन्दू बनाने के लिए मैंने स्वामी जी को पत्र लिखा । स्वामी जी ने मनुस्मृति के कुछ श्लोक लिखकर कहा था कि इस विधि से उसको फिर शुद्ध करते हैं, परन्तु चूंकि जेहलम समाज अभी निर्बल थी, इस काम को हिन्दुओं से करवाना श्रेष्ठ समझा परन्तु हिन्दू सहमत न हुए, इसलिए वह काम न हो सका । जेहलम के अतिरिक्त गुजरात और वजीराबाद में भी मैं स्वामी जी के साथ रहा जहां बहुत उपद्रव हुए थे, परन्तु वहां का वृत्तान्त मुझे स्मरण नहीं ।

ला० गंगाराम धम, वर्तमान प्रधान आर्यसमाज रावलपिंडी, वर्णन करते हैं—'उन दिनों मेरा निवास जेहलम में था क्योंकि मेरे पिता जी रियासत जम्मू-कश्मीर के सरकारी वकील थे । स्वामी जी सेठ जामसनजी की कोठी (जो डाकखाना व गिरजाघर के समीप है) में ठहरे थे । आपका पहला व्याख्यान सराय मंगलसेन के समीप मैदान में हुआ । दूसरे दिन अपने निवासस्थान पर व्याख्यान दिया । उस दिन सरकारी स्कूल के हेडमास्टर बंगाली ईसाई, एक दो अन्य पादरियों सहित शास्त्रार्थ के लिए आये । शास्त्रार्थ का क्रम आरम्भ हुआ परन्तु संक्षिप्त रहा और कुछ परिणाम न निकला क्योंकि समय कम रह गया था । तब पादरी लोगों की प्रार्थना पर निश्चय हुआ कि भविष्य में स्वामी जी के व्याख्यान स्कूल हाल में हुआ करें । उसके पश्चात् सब व्याख्यान स्कूल में होते रहे । ईसाई लोग दो-तीन दिन तक तो बड़ी उत्सुकता से शास्त्रार्थ करने को आते रहे, परन्तु अन्त में अपनी निर्बलता से स्वामी जी की काटने वाली युक्तियों के सामने सामना करने का विचार छोड़कर रोग आदि का बहाना करके शास्त्रार्थ-क्षेत्र से भाग गये और फिर कभी सभा में न आये ।'

स्वामी जी के व्याख्यान की शैली तथा चित्ताकर्षक मंत्रोच्चारण—'स्वामी जी सायं समय व्याख्यान दिया करते थे । व्याख्यान से प्रथम उच्च स्वर से वेदमंत्रो का गान करते हुए (खड़े होकर) प्रार्थना करते थे । उनका वेदोच्चारण अत्यन्त

---

1. एकबार स्वर्गीय सरदार विक्रमसिंह जी ने ब्रह्मचर्य के विषय में चर्चा की कि महाराज ! सुनते हैं कि ब्रह्मचर्य से बहुत बल बढ़ता है । स्वामी जी ने कहा कि यह सत्य है और ऐसा ही शास्त्र में लिखा है कि ब्रह्मचारी रहने से बल-प्राप्त होता है । सरदार साहब ने कहा कि शास्त्र में जो लिखा है उसका सिद्ध होना कठिन है । आप भी तो ब्रह्मचारी हैं परन्तु आप में ऐसा बल प्रतीत नहीं होता । स्वामी जी इस समय तो मौन रहे । कुछ घंटों के पश्चात् जब सरदार जी बग्घी पर चढ़ने लगे तो स्वामी जी ने बग्घी को पीछे से पकड़ लिया, घोड़ा चलने से रुक गया । सरदार जी ने जब पीछे की ओर मुड़ कर देखा तब छोड़ दिया और हंसकर कहा कि ब्रह्मचर्य के बल का प्रमाण मैंने दे दिया । उनके अखंड ब्रह्मचर्य और बलिष्टता की कई अन्य स्थानों पर इससे बढ़कर साक्षी मिली हैं ।

—(सम्पादक, उर्दू संस्करण)

चित्ताकर्षक हुआ करता था । फिर कुर्सी पर बैठकर 'आर्योद्देश्यरत्नमाला' में से क्रमशः एक-एक विषय पर विस्तारपूर्वक व्याख्यान दिया करते थे । आपकी वर्णनशैली स्पष्ट, सबके समझने योग्य और हंसाने वाली हुआ करती थी जिसमें मूर्तिपूजा आदि कुरीतियों और पौराणिक भ्रान्तियों, मांस-भक्षण और किरानी कुरानी मतों का खंडन बड़ी प्रबलता से होता था । स्वामी जी के सामने एक कुर्सी रखी जाती थी, जिस पर व्याख्यान के पश्चात् सर्वसाधारण जनता में से जो प्रश्न या शास्त्रार्थ करना चाहे, उसको बैठने की आज्ञा दी जाती थी । यहां ईसाई लोगों के अतिरिक्त और किसी से कोई उल्लेखनीय शास्त्रार्थ नहीं हुआ । हां, एक-आध बात पूछने या शंकानिवारण के लिए मनुष्य प्रायः आते रहे । आपके निवासस्थान पर भी साधु, पंडित आदि केवल दर्शन के लिए; और कोई शंकानिवारण के लिए आया करता था । आप अच्छे बुरे प्रत्येक व्यक्ति से बड़े ध्यान और प्रेम के साथ बातचीत किया करते थे। आठ पहर के पश्चात् प्रत्येक सायं 5 बजे के लगभग भोजन करते। आपके साथ दो या तीन पंडित वेद भाष्य लिखने वाले और एक अंग्रेजी पढ़ा लिखा बाबू पत्र-व्यवहार के लिये रहा करता था। नित्यकर्म के अतिरिक्त अपना सारा समय वेदभाष्य आदि वेदप्रचार में ही व्यतीत करते थे। रात के समय भी बहुत कम सोया करते थे। मैं प्रायः दिन भर उनके निवास स्थान पर रहा करता था।

मास्टर लक्ष्मणप्रसाद जो पहले ब्रह्मसमाजी थे, प्रायः वे भी उनके पास बैठते और अपने संशय निवारण किया करते थे । अन्त में उन्होंने अपने समस्त सन्देह निवृत्त करके वैदिकमत स्वीकार कर लिया, और स्वामी जी की उपस्थिति में उनके सामने समाज स्थापित होकर मास्टर जी अधिक श्रद्धालु और योग्य होने के कारण प्रधान नियुक्त हुए और बाबू ज्वालाप्रसाद, हेडक्लर्क-फारेस्ट आफिस, मंत्री नियत हुए । समाज के समस्त सदस्यों की संख्या १० या १२ थी ।'

मास्टर लक्ष्मणप्रसाद फिर ब्रह्मसमाजी बनकर भ्रम फैलाने लगे—'यही मास्टर जी सुना है कि कुछ वर्षों से फिर ब्रह्मसमाजी हो गये और लोगों को कुछ का कुछ कहते फिरते हैं । कहीं कहते हैं कि मैंने स्वामी जी के सामने वेद को ईश्वरीय पुस्तक[1] नहीं माना था, कहीं कहते हैं कि स्वामी जी स्वयं भी ईश्वरीय ज्ञान नहीं मानते थे और कहीं और कुछ परन्तु यह सब उनका मिथ्या प्रलाप है क्योंकि मुझे भली भांति विदित है कि वेद का ईश्वरीय ज्ञान होना वे उन दिनों अच्छी प्रकार मान चुके थे क्योंकि स्वामी जी ने ललकार कर कहा था कि यदि कोई शंका शेष रही हो तो उपस्थित करो । इस पर उन्होंने स्पष्ट कहा था कि 'नहीं महाराज ! मेरा पूरा सन्तोष हो गया ।' इसके अतिरिक्त समाज की प्रत्येक सभा में मास्टर जी का विभिन्न लोगों से वेदों के ईश्वरीय ज्ञान होने और अन्य आर्य सिद्धान्तों के समर्थन में शास्त्रार्थ करते रहना उनके आजकल के झूठे बहाने का प्रबल उत्तर है । उस समय जो आर्यभाई समाज के सदस्य हुए थे वे भी इस बारे में भली प्रकार साक्षी दे सकते हैं ।'

---

1. मास्टर जी का यह कहना सर्वथा अनर्थ है कि मैंने स्वामी जी के सामने वेद को ईश्वरीय ज्ञान की पुस्तक नहीं माना था । केवल यही नहीं कि उसी समय प्रत्युत सन् १८७८ से जनवरी, सन् १८८० तक वे बराबर (वेद को ईश्वरीयज्ञान) मानते रहे और केवल गुप्त रूप से ही नहीं, अपितु समाचार-पत्रों में भी वेदों के ईश्वरीय ज्ञान होने के विषय में लेख प्रकाशित कराते रहे । उनका लिखा हुआ एक लेख 'आर्यदर्पण' जनवरी मास, सन् १८७८, पृष्ठ ३ से ७ तक हिन्दी और उर्दू में छपा हुआ विद्यमान है । इसका शीर्षक है—'सृष्टि और स्रष्टा का वर्णन' इसके नीचे यह भी लिखा हुआ है कि यह लेख लक्ष्मणप्रसाद जी, प्रधान आर्यसमाज का लिखा हुआ है । इस लेख में प्रथम तो मास्टर जी ने इस बात को बतलाया है कि जगत् बना हुआ है, उसका बनाने वाला परमेश्वर है । फिर परमेश्वर के गुण आर्यसमाज के नियम नं० २ के अनुसार सिद्ध किये हैं । आगे जीव के अनादि होने पर यों लिखते हैं—'मनुष्य की देह जड़ और आत्मा चेतन है । मन, बुद्धि, भोग, इच्छा और वासना आत्मा के गुण और कर्तृत्व उसकी शक्ति है । अहंज्ञान उसका स्वरूपप्रबोधक है, वह भी अनादि है और मोक्ष प्राप्त करना उसके पुरुषार्थ का लक्षण है । उसकी शक्ति परिमित है और वह स्वभाव से अपूर्ण है । वह कर्मानुसार अनेक लोकों में भ्रमण करता है और मुक्त होकर परमात्मा में विश्राम करता है । यहां तक मनुष्य के आत्मा की गति वर्णित की; अब आगे इसकी संज्ञा जो कि सृष्टि में प्रसिद्ध हुई है, लिखकर वार्ता को पूर्ण करता हूं ।

अत्यन्त आकर्षक तथा प्रभावशाली व्यक्तित्व

उन दिनों की स्वामी जी की वेषभूषा तथा व्यक्तित्व—पंडित द्वारकानाथ, कश्मीरी रईस दिल्ली का-जो उस समय जेहलम स्कूल में पढ़ते थे, कथन है कि 'सन् १८७८ के आरम्भ में[६५] स्वामी जी जेहलम में पधारे और छावनी की एक कोठी में उतरे और लगभग १५ दिन आप यहां विराजमान रहे। निवासस्थान पर एक साधारण संन्यासी की भांति वस्त्रधारण किये रहते थे परन्तु जब व्याख्यान देने जाते तो पीताम्बर इस प्रकार बांध लिया करते थे जैसे मुसलमान तहमद

---

(१) धर्म और विद्या के तत्त्व के धारण करने वाले महात्मा लोग अवतार कहलाते हैं क्योंकि उन्हीं से ईश्वर और ईश्वर के गुण-कर्म प्रसिद्ध होते हैं।

(२) मननशील और शास्त्रकर्ता मनुष्य मुनि और ऋषि कहलाते हैं।

(३) उपदेश करने वाले मनुष्य आचार्य और गुरु कहलाते हैं।

(४) जो लोग सत्यस्वभाव, सत्यकर्मशील और परोपकार निरत हैं, वे साधु कहलाते हैं।

(५) आचार्य, अध्यापक, याजक, साधु, मौनी-सब ब्राह्मण कहलाते हैं।

(६) राजा, राजकर्मचारी और रक्षक क्षत्रिय कहलाते हैं।

(७) खेती आदि व्यवहार करने वाले शिल्पी, वणिक आदि वैश्य कहलाते हैं।

(८) शारीरिक सेवा करने वाले शूद्र कहलाते हैं।

(९) आठ वर्ष से लेकर युवावस्था तक जो विद्या ग्रहण करते और शिक्षा लेते हैं, वे ब्रह्मचारी कहलाते हैं।

(१०) सब प्रकार के व्यवहारों को सिद्ध करने में समर्थ पुरुष गृहस्थ कहलाता है।

(११) एकान्त में विचार करने वाले का नाम वानप्रस्थी है।

(१२) सर्वत्र भ्रमण, असत्य का खंडन, सत्य का प्रकाश करके सबका परम उपकार करने वाला संन्यासी कहलाता है।

(१३) जितने विद्याभाषण, सुविचार, ईश्वरोपासना, धर्मानुष्ठान, सत्संग, ब्रह्मचर्य, जितेन्द्रियता आदि उत्तम कर्म हैं वे सब तीर्थ कहलाते हैं क्योंकि उनसे जीव दुःखसागर से तर जाता है।

(१४) जो ईश्वरोक्त सत्यविद्याओं से युक्त ऋक्, यजु, साम, अथर्व चार पुस्तक हैं और जिनसे मनुष्यों को सत्य-सत्य ज्ञान होता है उनको वेद कहते हैं।

(१५) जो प्राचीन ऐतरेय, शतपथ ब्राह्मण आदि ऋषि-मुनि-कृत सत्यार्थ पुस्तक हैं, उन्हीं को पुराण, इतिहास, कल्प, गाथा और नाराशंसी कहते हैं।

यहां तक जगत् में जो चेतन वस्तु आत्मा है उसका वर्णन हुआ और चूंकि जड़ वस्तुओं का कुछ वर्णन करना आवश्यक नहीं, क्योंकि वह प्रत्येक को भली प्रकार विदित है, इसलिए दूसरे अंक में मनुष्य-व्यवहारों का वर्णन किया जावेगा। आशा है कि लोग मेरे परिश्रम को नष्ट न करेंगे प्रत्युत विचार करके उससे अनेक गुने लाभ प्राप्त करेंगे।

इसलिए पाठकगण भली प्रकार जान सकते हैं कि उनका यह कहना पूर्णतया निर्मूल और झूठ है। ईश्वर जाने क्यों एक भूल स्वीकार करने के बदले उलटा असत्य भाषण करते हैं। ईश्वर उन्हें फिर सत्यमार्गानुगामी करे।—सम्पादक

बांध लिया करते हैं। उस पर एक बड़ा ढीला और लम्बा ऊनी चोगा पहन लेते थे और शिर पर एक पीताम्बर बांध लेते थे। नगर में आप कभी नहीं जाते थे और स्त्रियों को अपने पास न आने देते थे। सदा नगर से कुछ दूरी पर उतरा करते थे। इन सीधे-सादे वस्त्रों में आपके पवित्र मुख पर वह तेज और बल दिखाई देता था कि जो लोग आपके विरुद्ध कुछ कहना चाहते थे, यह कब सम्भव था कि विनयपूर्ण वचनों के अतिरिक्त कोई असभ्यतापूर्ण वाक्य उनके मुख से निकले।

उस समय स्वामी जी वेदों का भाष्य किया करते थे। चार पंडित आपके साथ थे। स्वामी जी महाराज प्रत्येक पंडित को पृथक्-पृथक् बताते जाते और वे लिखते जाते।

उस समय जेहलम गवर्नमेण्ट स्कूल में विभिन्न विषयों पर आप व्याख्यान देते रहे। प्रायः मुसलमान आप की सत्यवादिता से बहुत प्रसन्न हुए विशेषरूप से डाक्टर करम इलाही जी उस समय वहां सिविल डिस्पैन्सरी में थे, आपके व्याख्यानों को बड़े ध्यान और मन से सुनते थे और बड़े प्रशंसक थे।

उस समय जेहलम स्कूल के हेडमास्टर मिस्टर शिवचरण घोष एक बंगाली ईसाई थे। स्वामी जी महाराज से वे शास्त्रार्थ में ऐसे परास्त हुए कि फिर स्वामी जी महाराज के व्याख्यानों में किसी बात पर आक्षेप करने की तो बात क्या, कभी स्वामी जी महाराज के सम्मुख भी आकर न बैठे, परन्तु व्याख्यान प्रतिदित बराबर सुनते रहे। स्वामी जी ने इंजील के उद्धरणों से उन्हें इतना लज्जित किया कि फिर मुंह न हुआ कि स्वामी जी से बातचीत करें।

जिस समय स्वामी जी महाराज जेहलम में विराजमान थे, उस समय एक बूढ़े महात्मा जेहलम नदी के तट पर रहते थे और कदाचित् वर्षों से वहां निवास करते थे। आपको संस्कृत का ऐसा अच्छा ज्ञान था कि स्वामी जी महाराज से संस्कृत में इस प्रकार बातचीत करते थे जैसे हम अपनी प्रचलित भाषा में वर्तालाप करते हैं। यह परस्पर प्रेम की बातचीत थी। स्वर्गवासी अपूर्व विद्वान् पंडित गुरुदत्त जी इन महात्मा को योगी कहा करते थे।

व्याख्यानों का प्रभाव—स्वामी जी महाराज के व्याख्यानों का जेहलमवासियों पर ऐसा अच्छा प्रभाव पड़ा कि वहां अच्छे-अच्छे योग्य और विद्वान् पुरुष 'आर्य समाज' स्थापित करने के लिए उद्यत हो गये, और एक 'समाज' अत्यन्त श्रेष्ठ आधार पर स्थापित किया। मास्टर लक्ष्मणदास बी० ए० फेल, लखनऊ के रहने वाले जो ब्रह्मसमाज के सदस्य थे और बड़े भारी मद्यप थे, मद्यपानका त्याग करके समाज के प्रधान हुए। बाबू ज्वालाप्रसाद जी, जिनकी योग्यता और शिक्षा बी० ए० तक थी और उस समय में फारेस्ट डिपार्टमेण्ट में हैड क्लर्क थे, मंत्री नियत हुए। चूंकि आप जाति के कायस्थ थे; इसलिए जाति के व्यवहार के अनुसार मद्य और मांस खाते-पीते थे। समाज में प्रविष्ट होने पर मांस तो स्वयं ही त्याग दिया था और मद्यपान स्वामी जी के कहने से त्याग दिया। उपर्युक्त दोनों सज्जन चिरकाल तक जेहलम आर्यसमाज के प्रधान और मंत्री रहे और आपके समय में कई उत्सव बड़ी धूमधाम से हुए।'

'नमस्ते' नाम सुनकर भावना में डूब जाने वाले आर्यभक्त का वर्णन—राय लद्धाराम ने, जो अब ऐक्जीक्यूटिव इंजीनियर हैं और उस समय असिस्टैण्ट इंजीनयर थे, एक अवसर पर समाज में बड़े जोर-शोर का व्याख्यान दिया था। उस समय आप इतने आवेश में थे कि अपने आपको नियन्त्रण में नहीं रख सके थे। आप बड़े प्रेमी, उत्साही, समाज के हितचिन्तक सदस्य थे और कदाचित् अब भी वैसे ही होंगे। उस समय आपकी यह दशा थी कि जहां किसी ने नमस्ते की, आपने उससे भ्रातृत्व का व्यवहार आरम्भ कर दिया। यदि कोई रेल में यात्रा कर रहा है और अकस्मात् आपसे उसकी नमस्ते हो गई तो एक-दो दिन अपने पास ठहराये बिना जाने नहीं देते थे। भेंट करने या न करने का उनके यहां कुछ हिसाब न था। उनसे भेंट करने के लिए 'नमस्ते' शब्द ही बड़ी सिफारिश और बड़ी चिट्ठी थी। जिस अवसर पर आपने जेहलम में व्याख्यान

दिया था, उसी अवसर पर एक दिन भजनमंडली के साथ आपने कई अच्छे-अच्छे कपड़ों के झंडे बनवा कर समस्त नगर में ऐसे भजन गाये कि सब सुनने वालों के मनों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। खेद है कि सन् १८९६ में इन महाशय का स्वर्गवास हो गया।'

"पंडित लोग स्वामी जी महाराज से शास्त्रार्थ करने को प्राय: उद्यत हुए; जिन्हें स्वामी जी ने ऐसे ठीक उत्तर दिये कि चुप होने के अतिरिक्त और कुछ बन न आया।"

साधारण चाल भी दौड़ के बराबर; अपूर्व साहस तथा बल—'एक दिन शाम के समय स्वामी जी छावनी से व्याख्यान देने के लिए जेहलम स्कूल की ओर आ रहे थे और साधारण चाल से चल रहे थे परन्तु आपकी साधारण चाल भी ऐसी थी कि मैं द्वारकानाथ, दौड़-दौड़ कर साथ चलता था। आप केवल एक ही बार भोजन किया करते थे परन्तु आपको अपने उत्तम नियमों के कारण ऐसा बल प्राप्त था कि सैकड़ों मनुष्य जब उपद्रव करने पर उद्यत हुए तो आप पर तनिक भी प्रभाव न पड़ा, गम्भीरता के साथ बिना किसी उद्वेग के खड़े रहे और किसी बात का भय न किया। उपद्रवी दल आपकी इस महत्ता को देखकर लज्जित होकर भाग गया।'

ला० गंगाराम जी ने आर्यसमाज के प्रसिद्ध गायक स्वर्गीय मेहता अमीरचन्द जी बाली[६६] के विषय में वर्णन किया, 'मेहता जो उन दिनों जेहलम में कचहरी के कर्मचारी थे पहले उनके विचार नवीन वेदान्त की ओर आकृष्ट थे। स्वामी जी के उपदेश सुनकर उनका चित्त वैदिक धर्म की ओर प्रवृत्त हो गया था क्योंकि मेहता जी स्वामी जी महाराज के उपदेश सुनकर उनकी प्रशंसा किया करते थे और तत्पश्चात् कभी-कभी समाज में भी आया करते थे। इसी प्रकार आते-आते चार-पांच वर्ष के पश्चात् आप समाज के सदस्य हो गये।'

स्वभाव के सरल तथा प्रेमी परन्तु असत्य के कठोर विरोधी, दयानन्द—स्वामी जी का स्वभाव बड़ा सरल, प्रसन्नतायुक्त और प्रेममय था, परन्तु इसके साथ ही वे सत्य की प्रतिमूर्ति थे। इसके कारण छल और पाखंड के अत्यन्त विरोधी थे, जिससे किसी-किसी समय उत्तेजित हो जाते थे; जिसको अल्पदर्शी लोग क्रोध के नाम से पुकारते हैं परन्तु वास्तव में यह क्रोध न था। प्रत्युत सच्चाई का आवेश होता था। जहां आप छोटे लड़कों और साधारण लोगों से भी बराबर ध्यान देकर बातचीत किया करते थे वहां बड़े से बड़े धनी को भी स्पष्ट और निर्भय उत्तर देने से कभी नहीं हिचकते थे। मुझे स्मरण है कि उनके जाने से एक दिन पहले मैंने अपने देश के रहने वाले एक भाई से शास्त्रार्थ करके उससे समाज की सदस्यता का प्रार्थनापत्र लिया था जो मेरी जेब में पड़ा हुआ था। रेलवे स्टेशन पर स्वामी जी के जाने के समय मैंने ही वह प्रार्थनापत्र मन्त्री को दिया। स्वामी जी ने पूछा कि यह कैसा कागज है? जब उनको विदित हुआ कि मैंने एक नये सदस्य का प्रार्थनापत्र दिया है तो प्रेम के आवेश में स्वयं गाड़ी से बाहर आ गये और बड़े प्रेम से मुझे आलिंगन किया और कहा कि यह रियासतों के दीवान कुलीन और राजकर्मचारी लोग हैं, सदा धर्म के सहायक हुआ करते हैं। अभी क्या है, तुम देखोगे कि ये समाज के बड़े सहायक होंगे, हमको इनसे बड़ी आशा है।' स्वामी जी यहां से गुजरात चले गये।

गुजरात में शास्त्र चर्चा (१३ जनवरी, १८७८ से २ फरवरी, १८७८ तक)

स्वामी जी रावलपिंडी और जेहलम होते हुए और समाज स्थापित करते हुए डाक्टर बिशनदास साहब के बुलाने पर गुजरात में १३ जनवरी, १८७८ के दिन पहुंचे और प्रथम दिन दमदम में रहे। दूसरे दिन फतहनगर में पधार कर वहां डेरा किया।

देश की दशा पर व्याख्यान

पंडित नन्दलाल, प्रमुख संस्कृत अध्यापक गवर्नमेंट हाई स्कूल, गुजरात ने वर्णन किया 'जिस मकान में अब गवर्नमेंट स्कूल का बोर्डिंग हाऊस है, उसमें स्वामी जी के व्याख्यान कराने का परामर्श हुआ। मिस्टर बुचानन, हेडमास्टर-स्कूल, से आज्ञा लेकर व्याख्यान आरम्भ हुए।

पहला व्याख्यान देश की अवस्था पर दिया। बैंगन का दृष्टान्त देकर बताया कि किस प्रकार खुशामदी लोगों ने देश का सत्यानाश किया। घरेलू विषय, बाल्यावस्था में विवाह आदि बहुत सी बातों की, जो देश को बिगाड़ने वाली हैं, चर्चा करके उनके सुधार के उपाय बताये। उनके व्याख्यानों के आरम्भ में वेदमन्त्रों का उच्चारण अत्यन्त मनमोहक होता था। हजारों मनुष्य सुनने को आते थे। मुसलमान भी अधिकता से आया करते थे। स्वर्गीय काजी मुहम्मददीन ने मुझसे कई बार उनके वेदों के सुन्दर गान की अत्यन्त प्रशंसा की थी।

"जब स्वामी जी यहां आये तो उन्हीं दिनों एक मंडली वाला संन्यासी भी बड़ी शान से यहां आया था। स्वामी जी के व्याख्यान में उसने अपने शिष्यों को भेजा और यह प्रश्न कराया कि गंगा मानने के योग्य है या नहीं ? स्वामी जी ने उत्तर दिया कि यह भी और जलों की भांति जल है। यह लोगों की बड़ी भूल है कि उन्होंने दूध के समुद्र और नदियां मानी हुई हैं। वास्तव में दूध की नदी कोई नहीं। हां, कुछ नदियों में श्वेत मिट्टी घुल कर आती है, उसे मूर्ख लोग श्वेतता के कारण दूध की नदी कहें तो आश्चर्य नहीं।"

"इसी पहले दिन पंडित हुशनाकराय आया और आकर संस्कृत में कहा कि मैं शास्त्रार्थ करना चाहता हूं। स्वामी जी ने कहा कि यहां नियत समय मिलता है, बैठ जाओ, पीछे सब सुना जायेगा। इसी बीच में स्वामी जी ने पोपलीला का वर्णन करते हुए कहा कि उन्होंने ऐसी कितनी ही श्रुतियां कल्पित कर ली (मन से घड़ ली) हैं। जैसी 'स्त्रीशूद्रौ नाधीयताम्'—यद्यपि यह कहीं का भी मन्त्र नहीं है। गोस्वामी शिवदास ने कहा कि नहीं यह श्रुति है। स्वामी जी ने कहा कि यहां चारों वेद विद्यमान हैं, इनमे से निकाल दें। उसने कहा कि हम अपने वेदों से बतलायेंगे। पहला दिन समाप्त हुआ।"

दूसरे दिन स्वामी जी ने मूर्तिखंडन पर व्याख्यान दिया। उसी में महमूद गजनवी का आना और उसके आक्रमणों से देश के धन की हानि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया, और मन्दिरों में स्त्रियों के जाने और वहां की दुर्दशा का वर्णन किया।[६७] जिस पर किसी व्यक्ति ने जो मकान की छत पर बैठा था, पश्चिम की ओर से यह प्रश्न किया कि आपने कहा कि स्त्री को उचित है कि वह एक ही पुरुष अर्थात् अपने पति के पास ही जाये अर्थात् व्यभिचार न करे। परन्तु जिसका पति कंजरी (वेश्या) के पास जाये, वह स्त्री क्या करे ? उन्होंने कहा 'तो क्या उसकी स्त्री भी एक और बलिष्ठ सा मनुष्य रख ले ?'

'एक दिन किसी ने प्रश्न किया कि यज्ञोपवीत क्यों पहना जाता है ? स्वामी जी ने कहा कि यह धर्म का चिह्न है और इसके अतिरिक्त लोगों के विचार में चाबी बांधने के काम आता है।'

"तत्पश्चात् गोस्वामी शिवदास और पंडित हुशनाकराय की बारी आई। प्रथम गोस्वामी शिवदास से स्वामी जी ने पूछा कि कहां है 'स्त्रीशूद्रौ नाधीयताम्' वाली श्रुति ? वेद लाये हो ? गोस्वामी जी ने कहा कि हमारे इस पुस्तक में है। स्वामी जी ने कहा कि हमारे इन वेदों में बतलाओ। गोस्वामी जी ने कहा कि हमें क्या पता कि आपके इन वेदों में कुड़ियों की[६८] गालियां लिखी हैं। स्वामी जी ने कहा कि अच्छा तुम अपने ग्रन्थ में बतलाओ। वह चूंकि वेद नहीं था इसलिये वहां भी उसने नही बतलाया। तत्पश्चात् पंडित हुशनाक ने कहा कि स्वामी जी ! मैं प्रथम आपसे न्याय-शास्त्र विषयक प्रश्न

करूंगा, इसका उत्तर देना । मध्यस्थ बनाने का प्रस्ताव हुआ । स्वामी जी ने मुझ पंडित नन्दलाल को मध्यस्थ मान लिया और अन्य पंडितों ने भी ।

प्रश्न हुआ व्याप्तिवाद के सम्बन्ध में । 'व्यधिकर्मधर्मावछिन्नभाव:'—यह समानाधिकरण लक्षण में प्रश्न किया । मेरे विचार में चूंकि स्वामी जी जागदीशी नहीं जानते थे इसलिए उन्होंने व्याप्ति के लक्षण जो महाभाष्य में किये हैं, वे बतलाये अर्थात् 'अविनाभावो व्याप्ति:' जो आर्य ग्रन्थों में पाये जाते हैं और साथ ही कहा कि हम तुम्हारे लक्षण को नहीं मानते, तुम इसमें बतलाओ क्या अशुद्धि है ? उसके लक्षण का भी साधारण अर्थ करके दोष भी उसका बतला दिया था । फिर मुझसे पूछा गया । मैंने कहा कि स्वामी जी ने ठीक कहा है । यह दिन समाप्त हआ ।"

दूसरे दिन स्वामी जी ने अपने जन्म-चरित्र का वर्णन सुनाया और शिवपूजन करने तथा मूर्ति पर चूहे दौड़ने का वृत्तान्त भी बतलाया ।

'इसी प्रकार स्वामी जी ने एक व्याख्यान में पाताल का अर्थ अमरीका[६९] किया और इस प्रकार व्युत्पत्ति की, 'पादस्य तले यो देश: स: पाताल:' । इस पर मैंने टोका । तब मुझे स्वामी जी ने कुर्सी पर बिठला कर बातचीत आरम्भ की । मैंने उनसे पूछा कि यह किस प्रकार सिद्ध हुआ ? उन्होंने सिद्ध कर दिया । तब मैंने उनसे पूछा कि पाताल के लक्षण अमरीका में क्योंकर घट सकते हैं ? उन्होंने कहा कि महाभाष्य में लिखा है, 'चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्ति:'—यहां रूढ़ि रूप में 'पाताल' का अर्थ 'अमरीका' होना सम्भव है । यद्यपि यह उत्तर ठीक था परन्तु मैंने कहा कि यदि यह सच है तो और लोक जो हैं, इसी प्रकार उनके भी अर्थ निकाल दो अर्थात् 'तल' और 'वितल' के अर्थ भी बतलाओ । इस पर शास्त्रार्थ पक्के रूप में निश्चित होने लगा । उन्होंने कहा कि तुम हमारे साथ नियम करो । महाभाष्य और छ: दर्शन प्रामाणिक नियत हुए । मैंने अन्त में कहा था कि मैं इनके अतिरिक्त न्यायमुक्तावली[७०] और वेदान्त के नवीन ग्रन्थ भी प्रामाणिक मानता हूं, उन्होंने न माना और वह दिन व्यतीत हो गया ।

गोविन्दसिंह दारोगा जो भीतर से स्वामी जी की ओर था, उसने दूसरे दिन मुझे आकर कहा कि पंडित जी ! तुमने अच्छा कहा । आज फिर कहो ताकि उनको हराया जाये । मैंने कहा कि अच्छा ! अगले सारे दिन बुचानिन महोदय 'इण्डियन विजडम' (Indian Wisdom)[७१] देखते रहे और उसमें से एक प्रश्न निकाला और मेरे साथ यह सम्मति की कि पढ़कर तो तुम सुनाना और शास्त्रार्थ के समय मैं खड़ा हूंगा । ४ बजे व्याख्यान प्रारम्भ हुआ । उसमें स्वामी जी ने जयपुर राज्य के पंडितों का वर्णन किया[७२] कि हमने उनसे कई प्रश्न किये थे, जिसमें से एक हमें स्मरण है, 'कल्म च किं भवति' । पंडितों ने रात को व्याकरण के बहुत से पुस्तक देख मारे परन्तु उसका उत्तर उनको न मिला और वे कोई उत्तर न दे सके ।"

व्याख्यान की समाप्ति पर बुचानिन महोदय उठ खड़े हुए और प्रश्न किया, ओ बाबा, ओ बाबा, तू इन बेचारे अन्धों की जो डन्गूरी[७३] छीनता है उसके बदले इनको क्या देता है ?

'स्वामी जी ने उत्तर दिया कि मैं वेद देता हूं और योगाभ्यास । बुचानिन महोदय ने कहा कि मेरे आप पर प्रश्न हैं । स्वामी जी ने कहा कि कीजिए ।

बुचानिन—वेदों में लिखा है कि पहले इस देश में मुर्दे दफनाये जाते थे, फिर तुम जलाने को कैसे कहते हो ? **स्वामी जी** ने कहा कि मन्त्र सुनाओ ।

मैं (नन्दलाल) ने बुचानिन साहब की ओर से मन्त्र सुनाया, परन्तु अब मन्त्र स्मरण नहीं रहा जिसका अर्थ यह था कि 'हे पृथिवी, तू इसको अपनी दोनों भुजाओं में ले' इत्यादि ।[७४]

स्वामी जी रुक गये और कहा कि अब चूंकि समय व्यतीत हो चुका है इसलिए कल तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दिया जावेगा ।

मुर्दा जलाने की प्रथा का वेद से प्रमाण

दूसरे दिन उन्होंने एक और मन्त्र सुनाया और उसके द्वारा इस मंत्र का अर्थ किया कि इसका अभिप्राय मुर्दा गाड़ने से नहीं है, अपितु यह है कि पृथिवी खोद कर मुर्दे जलाये जाते थे । भूमि के दोनों किनारे उसके दो बाहु कल्पित किये गये हैं । बुचानिन महोदय चुप रह गये ।

"गोपालसिंह कानूनगो ब्राह्मण ने (जो अच्छी प्रकार उपनिषद् जानता था) प्रकृति के अनादि होने पर प्रश्न किया । स्वामी जी ने उसके अच्छी प्रकार उत्तर देकर उसका सन्तोष कर दिया । उसी दिन लोगों ने ढेले आदि भी मारे थे ।"

"एक और दिन रामकृष्ण नामक व्यक्ति ने स्वामी जी को ईंट मारी थी, परन्तु वह लगी नहीं जिस पर जेल के क्लर्क बंगाली बाबू ने उसे पीछे पुलिसमैन भेजे कि उसे पकड़ लाओ । वे उसे पकड़ लाये, परन्तु उसने अस्वीकार कर दिया । कहते हैं कि दमदमे के पास भी उन पर ईंटें चली थीं ।"

"मुझ पंडित नन्दलाल के साथ 'सहस्रशीर्षा' वाले मन्त्र पर चर्चा चली थी । उन्होंने यह अर्थ किया था कि 'हजारों के शिर जिसमें हैं' न कि यह कि 'जिसके हजार शिर हैं ।' चतुरानन का अर्थ भी मैंने पूछा था कि यदि आप चार मुंह नहीं मानते तो कैसे सिद्ध होगा ? स्वामी जी ने मध्यम प्रयोग करके सिद्ध कर दिया ।"

स्वामी जी निर्भीक वक्ता तथा सरल प्रकृति के व्यक्ति थे—डाक्टर बिशनदास जिन्होंने स्वामी जी को रावलपिंडी से गुजरात बुलाया था, चिट्ठी में इस प्रकार लिखते हैं—'ला० मुरलीधर जी, जितना मुझे स्वयं व्यक्तिगत अनुभव है और जो आंखों से देखा है, संक्षेप से वर्णन करता हूं । पंडित दयानन्द सरस्वती से मैंने पत्र द्वारा रावलपिंडी से सम्भवत: सन् १८७८ के आरम्भ में एक प्रतिष्ठित और कृपालु मित्र के कहने पर प्रार्थना की थी कि श्रीमान् यहां पधारें । इस पर वे थोड़े समय के पश्चात् गुजरात (पंजाब) में, जबकि मैं वहां ब्रांच डिस्पैन्सरीज जिला गुजरात का सुपरिण्टैण्डैण्ट था, पधारे और लगभग तीन सप्ताह तक मेरी उनसे दिन रात की अत्यन्त गहरी भेंट और उठना बैठना रहा । स्थान, निवास और भोजन का सब प्रबन्ध मैंने स्वयं किया । निस्सन्देह आहार उनका साधारण था । यद्यपि उन्हीं को नकद रुपया दिया गया था और निवेदन किया गया था कि जिस अन्य वस्तु की आवश्यकता हो, मुझसे कह दें और चित्त में आवे वैसा भोजनादि सेवन किया करें । मुझे पक्का स्मरण है कि वे सब मिला कर पांच या छ: मनुष्य थे और भोजनादि का साप्ताहिक खर्च लगभग पांच या छ: रुपया था । अत्यन्त बुद्धिमान् और निष्कपट मनुष्य थे । संस्कृत के ज्ञान के विषय में मैं नहीं कह सकता कि कैसे विद्वान् थे क्योंकि मैं वह विद्या नहीं जानता, परन्तु यह गुण उनमें अत्यन्त प्रशंसा के योग्य था कि न तो किसी से डरते थे और न किसी की रियायत करते थे । जो बात कहते स्पष्ट कहते थे । यह गुण उन्हीं में देखा है या मुंशी कन्हैयालाल साहब, अलखधारी में । अन्य तो जितने आजकल के उपदेशक आदि हैं या बहुत से जो पीछे भी हो चुके हैं, यह गुण किसी में भी देखने में नहीं आया । यदि कभी अवसर मिला तो फिर अधिक व्याख्या की जावेगी । आनन्द आनन्द ।'

"प्रकृति के अनुसार चलने वाला किसी मत या समाज आदि से कुछ सम्बन्ध नहीं रखता । सबका सेवक और सबको सत्य-सत्य कहने वाला ब्रह्मज्ञानी डा० बिशनदास फलाहारी । माधोपुर जिला गुजरात । २८ फरवरी, सन् १८९० ।"

बाबू मंगोमल, पोस्टमास्टर लाहौर ने वर्णन किया 'स्वामी जी जिन दिनों गुजरात में थे तो वहां के कुछ हिन्दुओं ने परस्पर सम्मति करके स्वामी जी से यह प्रश्न किया कि आप ज्ञानी हैं या अज्ञानी ? (अर्थात् यदि ज्ञानी कहेंगे तो हम कहेंगे

कि आप अहंकार करते हैं, सन्तों को अहंकार नहीं करना चाहिये, अहंकारी का तप नष्ट हो जाता है और यदि कहेंगे कि अज्ञानी हैं तो हम कहेंगे कि जब आप स्वयं ही अज्ञानी हैं तो हमको क्या सिखलावेंगे)।

"स्वामी जी ने ऐसा उत्तर दिया कि वे सबके सब चकित रह गये। कहा कि कई बातों में अज्ञानी हूं और कई बातों में ज्ञानी; उदाहरणार्थ-दुकानदारी, व्यापार, अंग्रेजी, फारसी में अज्ञानी हूं और संस्कृत और धर्म की बातों में ज्ञानी हूं। इस उत्तर को सुनकर वे अत्यन्त लज्जित हुए और निरुत्तर होकर चले गये।"

बाबू रामरतन, गुजरात निवासी, वर्तमान प्रोफेसर सादिक कालिज बहावलपुर ने वर्णन किया—'जब स्वामी जी गुजरात आये, उस समय मैं स्कूल में पढ़ता था। मेहता ज्ञानचन्द, सुपुत्र मेहता वजीरचन्द को सूचना मिली कि ब्राह्मणों ने निश्चय किया है कि रात को जाकर स्वामी जी को हानि पहुंचायेंगे और घायल करेंगे। उसने जाकर स्वामी जी को सूचित किया। स्वामी जी ने उससे कहा कि तुम कुछ मत करो; आठ-सात मनुष्यों के लिए तो मैं अकेला ही पर्याप्त हूं।'

रामरतन जी ने कहा 'वहां पर एक दिन व्याख्यान के समय स्वामी जी ने गायत्री का अर्थ सुनाया जिसको सुनकर मौलवी मुहम्मद अली, अध्यापक फारसी ने कहा कि महाराज, यदि गायत्री का यही अर्थ है तो हम भी इसका अवश्य नित्य पाठ करेंगे और हमें भी इस पर अवश्य आचरण करना चाहिए।'

उनका सर्वोपरि अभीष्ट विषय देशोन्नति ही था

स्वामी जी ने बाबू माधोलाल भूतपूर्व मंत्री आर्यसमाज दानापुर को गुजरात से दो चिट्ठियां लिखी थीं। पहली २० जनवरी, सन् १८७८ की है। जिसमें प्रथम लाजरस के यहां भाष्य छपने की चर्चा करके लिखते हैं कि 'पंजाब प्रदेश में बहुत से नगरों में समाज स्थापित हो चुका है और निरन्तर संख्या बढ़ती हुई चली जायेगी। मेरा आशीर्वाद ग्रहण करो और अपनी दशा से सदा परिचित रखो।' दूसरी चिट्ठी २८ जनवरी, सन् १८७८ की है। उसमें प्रथम पुस्तकें भेजने का वर्णन करके लिखते हैं कि 'पंजाब से लौटकर जब मैं बंगाल प्रदेश में आऊंगा,[७५] तुम्हारी भेंट से अवश्य प्रसन्नता लाभ करूंगा। तुम्हारा प्रयत्न और इच्छा स्वदेशी भाइयों की उन्नति में देखकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ। सकल सृष्टि का कर्ता आपको नीरोग और प्रसन्न रखे। तुम्हारी यह इच्छा देखकर कि तुम अपने देश की अवस्था अच्छी करने का यत्न करते हो, मुझे ऐसी प्रसन्नता हुई कि वर्णन नहीं कर सकता। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि तुम इस जीवन में इसके फल को चखोगे। तुम सबको मेरा आशीर्वाद। दयानन्द सरस्वती, गुजरात।' पत्र वजीराबाद में लिखें।

—पोस्टमास्टर के द्वारा।

ला० गंगाराम जी धम, सभासद् आर्यसमाज रावलपिंडी वर्णन करते हैं—'मैं जेहलम से दो-तीन दिन के लिए गुजरात में स्वामी जी के व्याख्यान सुनने के लिए आया था। नगर के ब्रांच स्कूल में, जो नगर की तहसील के समीप स्थित है, सायं समय आपके व्याख्यान हुआ करते थे। बड़ी भीड़ होती थी। पौराणिक लोग ईंटें भी फेंकते थे और कुछ सभ्य लोग उन उपद्रवियों को धमकाते और पकड़ना चाहते थे, परन्तु स्वामी जी हंसकर टाल देते और कहते भाई, आप बुद्धिमान् हैं, ऐसे पागलों को क्षमा करके जाने दो। उनकी यही चिकित्सा है कि उनको सदुपदेश दिया जावे। हमारे साथ यह कोई नई बात नहीं है।'

"यहां भी व्याख्यान के पश्चात् नियमानुसार (प्रश्नों के लिए) समय दिया जाता था। मेरे सामने स्कूल के पंडित नन्दलाल जी स्वामी जी से प्रश्नोत्तर करते रहे। पंडित जी स्वामी जी के बड़े ही विरोधी थे और कई वर्ष तक विरोधी रहे परन्तु अन्त में सत्य के तेज से आप समाज के सहायक हुए और अब कई वर्षों से गुजरात आर्यसमाज के सदस्य हैं।

दूसरे पंडित हुशनाक (जो उन दिनों रियासत जम्मू की किसी पाठशाला में कदाचित् उत्तर-भैनी में नौकर थे) का सामना स्वामी जी से हुआ था। प्रश्न शास्त्रार्थ में वही था जो पंडित नन्दलाल जी ने वर्णन किया है। यह पंडित भी सुना है कि रियासत से पृथक् होकर आते ही प्रथम आर्यसमाज गुजरात में नौकर हुए। इससे विदित हो सकता है कि **दयानन्द जैसे अद्वितीय और पूर्ण विद्वान् की प्रबल युक्तियां और विद्या का तेज कहां तक विरोधियों के हृदयों को प्रभावित करके उनको वश में कर लिया करता था;** जिससे विरोधियों को सत्यमार्ग पर आ जाने के अतिरिक्त और कोई उपाय न बन पड़ता था।"

वजीराबाद में धर्मोपदेश

(२ फरवरी, सन् १८७८[७६] से ७ फरवरी, सन् १८७८ तक)

स्वामी जी २ फरवरी को गुजरात से रेल में चढ़कर उसी दिन वजीराबाद पहुंचे और समन बुर्ज में आ विराजे।

शास्त्रार्थ के स्थान पर शस्त्र प्रयोग की नौबत आ गई—पंडित भीमसेन ने वर्णन किया—'स्वामी जी वजीराबाद में एक मुसलमान के मकान में ठहरे थे। वहां शास्त्रार्थ के समय की बात है कि विरोध होने के कारण एक लड़का कोलाहल करता था। राय लब्धाराम ने छड़ी से उसको मौन करना चाहा। लोगों ने कहा कि हमारे लड़के को मारता है। सबने स्वामी जी और रायसाहब पर आक्रमण किया और उनको घेर लिया। स्वामी जी ने सोंटा लेकर फिराया, सब हट गये। स्वामी जी ने हमें आदेश दिया कि पुस्तक लेकर ऊपर चढ़ जाओ। हम सब ऊपर पहुंच गये। फिर स्वामी जी भी ऊपर आ गये। लोगों ने नीचे से ईंटें फेंकनी आरम्भ कीं। तब स्वामी जी का क्लर्क बिहारीबाबू समझाने के लिए नीचे गया। उसको लोगों ने गिरा दिया और बहुत पीटा। कहार ने स्वामी जी को सूचना दी कि लोगों ने बाबू को मार डाला। तब स्वामी जी को क्रोध आया, लाठी लेकर नीचे उतरने का निश्चय किया और एक भयानक गर्जना की, जिसको सुनकर भय के मारे लोगों ने उसे छोड़ दिया। स्वामी जी के हितचिन्तकों ने नालिश का प्रस्ताव रखा। स्वामी जी ने उनको शान्त कर दिया कि जो हुआ सो हुआ; नालिश मत करो।'

ला० बालकराम ठेकेदार तरकी, मेहता ढेरामल मियानी निवासी, **पंडित बाशीराम**, इन्सपैक्टर डाकखाना और **राय लब्धाराम जी** ने (यह सब सज्जन उस अवसर पर उपस्थित थे) इतना ही वर्णन किया जितना कि पंडित सहजानन्द जी लाहौर निवासी ने लिखकर दिया। इसलिए हम उसी पर सन्तोष करते हैं। उस समय गुरुकोट के पास एक मकान में 'समाज' के अधिवेशन हुआ करते थे और समाज के अधिकारी निम्नलिखित सज्जन थे-लाला लब्धाराम प्रधान, लाला सुखदयाल मन्त्री।

आर्यसमाज लाहौर के कुछ सदस्यों के वहां अपनी बदली होने के कारण, स्वामी जी के जाने से पहले ही वहां समाज की स्थापना हुई थी।

स्वामी दयानन्द सरस्वती महाराज के वजीराबाद में निवास के सम्बन्ध में स्वामी सहजानन्द जी का पत्र—'हमने वजीराबाद से स्वामी जी की सेवा में गुजरात पत्र भेजा (क्योंकि उन दिनों स्वामी जी गुजरात में विराजमान थे) कि यहां पर पधार कर कुछ दिन निवास कीजिये और उपदेश दीजिये। स्वामी जी ने कृपा करके हमारी इस प्रार्थना को स्वीकार किया। स्वामी जी के पधारने वाले दिन मैं (सहजानन्द) ला० लब्धाराम ऐप्रिण्टिस इंजीनियर, ला० सुखदयाल खत्री, ला० सुखदयाल जी सूद, जो आर्यसमाज वजीराबाद के सदस्य थे, कुछ अन्य मित्रों सहित स्वागत के लिए रेलवे स्टेशन वजीराबाद पर

उपस्थित हुए और स्वामी जी को साथ लाकर समन बुर्ज के समीप राजा फकीरउल्ला के बाग वाले कोठी की ऊपरी मंजिल में उतारा । उस समय स्वामी जी के साथ केवल कुछ पंडित, एक हिन्दुस्तानी (उत्तर प्रदेशीय) क्लर्क, एक रसोइया और एक कहार था । स्वामी जी की इच्छानुसार खाने का उचित और आवश्यक प्रबन्ध किया गया । लोगों को स्वामी जी के पधारने की सूचना दी गई । अगले दिन व्याख्यान आरम्भ हुए । दोपहर पश्चात् होने वाले पहले दिन के व्याख्यान में नगरवासियों की बहुत बड़ी भीड़ उपस्थित थी और अच्छा समां बंध रहा था कि एक व्यक्ति झुंझला कर उठा और चीख कर बोला जो व्याख्यान सुनेगा वह हिन्दू का बीज न होगा । उस पर यद्यपि ब्राह्मण और उनके बहुत से अनुयायी उठ कर चले गये तो भी अधिकांश नगर के लोग बैठे रहे और व्याख्यान चालू रहा ।'

वजीराबाद में शांतिपूर्वक शास्त्रचर्चा होते-होते उपद्रव की घटना

'इस अवसर पर इस बात का वर्णन करना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि वजीराबाद के प्रसिद्ध ब्राह्मण तो स्वामी जी के पधारने से पहले ही स्वयमेव नगर छोड़कर चले गये थे क्योंकि उन्हें भली भांति विदित था कि वे स्वामी जी के साथ शास्त्रार्थ करने का साहस नहीं कर सकेंगे और इसमें उनका अपयश होगा । दूसरे दिन नगर के बहुत से मनुष्य एकत्रित होकर एक-सौ रुपये की दक्षिणा पर एक पण्डित को लाये; उसका नाम वासुदेव था । उसने अपने सिर पर सिखों की भांति बाल रखे हुए थे । कुछ विक्षिप्त चित्त प्रतीत होता था और उसकी जीविका का साधन भिक्षा मांगना था । उन्होंने उसे एक टूटी कुर्सी पर, जिसे वे अपने साथ लाये थे, शास्त्रार्थ करने के लिये स्वामी जी के सामने बिठला दिया । पंडित वासुदेव ने एक मन्त्र उपस्थित किया और स्वामी जी से अर्थ करने के लिए कहा । स्वामी जी ने उस मन्त्र के अर्थ किये जिससे उक्त पंडित का सन्तोष हो गया । यह सब बातचीत संस्कृत में हुई थी फिर पण्डित ने कहा कि कल वह एक वेदमन्त्र, जिससे शालिग्राम और तुलसी की उपासना सिद्ध होती है, लायेगा । यह सब कार्यवाही लोग बड़ी शान्ति के साथ सुनते रहे और उस दिन अत्यन्त शान्ति तथा सरलता के साथ इस समस्त कार्यवाही की समाप्ति हुई । तीसरे दिन नगर वाले बड़ी भीड़-भाड़ के साथ पंडित को लाये और उसी टूटी हुई कुर्सी पर स्वामी जी के सामने विराजमान किया । यह निश्चय हुआ कि बातचीत संस्कृत में हो, उसका अनुवाद हिन्दी में सुनाया जावे । पण्डित ने शालिग्राम और तुलसी की पूजा के समर्थन में मन्त्र उपस्थित किया । स्वामी जी ने कहा कि यह मूल मन्त्र नहीं प्रत्युत किसी मन्त्र की व्याख्या है । इस बीच भीड़ बहुत बढ़ गई । स्वामी जी ने इस विचार से कि कहीं ऐसा न हो कि उपद्रव हो जाये, मुझे कई बार बुलाकर पुलिस का प्रबन्ध करने के लिए कहा । चूंकि इस अवसर पर मेरे मित्र पण्डित रामचंद्र आनरेरी मैजिस्ट्रेट, उपस्थित थे इसलिए मुझे विश्वास था कि वह उपद्रव नहीं होने देंगे, इसलिये पुलिस का प्रबन्ध नहीं किया गया था । स्वामी जी ने मूल मन्त्र उपस्थित करने के लिए पंडित जी से फिर कहा । बातचीत यहीं तक हुई थी कि आनरेरी मैजिस्ट्रेट साहब, यद्यपि उनसे ठहरने के लिये कहा गया, वह यह कहकर कि उन्हें आवश्यक काम है इसलिये ठहर नहीं सकते, चले गये । स्वामी जी ने पण्डित से बहुत कहा कि वह मूल मन्त्र, जिसकी उसने टीका पढ़ी है, उपस्थित करे परन्तु वह उपस्थित न कर सका । इतने में एक लड़का, दस बारह वर्ष की आयु का, कुछ 'सी-सी' करता हुआ सुनाई दिया । स्वामी जी ने कहा कि यह अनुचित चेष्टा करता है इसे चुप करा दो । ला० लब्धाराम साहनी, ऐप्रेण्टिस इन्जीनियर, सदस्य आर्यसमाज वजीराबाद, ने उस लड़के के एक या दो छड़ी लगा दी । चूंकि पण्डित मूलमन्त्र उपस्थित नहीं कर सकता था और उसका पक्ष बिलकुल टूटने वाला था, इसलिए निराश होकर लोगों ने स्वामी जी और लब्धाराम पर आक्रमण किया, परन्तु आर्यसमाज वजीराबाद के शेष सदस्यों ने और आर्यसमाज जेहलम के कुछ सदस्यों ने, जो इस अवसर पर वहां उपस्थित थे, उनके आक्रमणों को रोका और स्वामी जी और लब्धाराम को बचाया ।'

'जिस स्थान पर स्वामी जी उतरे हुए थे वह उस स्थान से जहां भाषण हुए, अत्यन्त समीप था। हम सब सकुशल वहां पहुंच गये और द्वार बन्द कर लिये। लोगों ने ईंटें फेंकीं, पत्थर मारे परन्तु हम द्वार बन्द किये हुए बैठे रहे। स्वामी जी का हिन्दुस्तानी क्लर्क लाठी लेकर भीड़ में गया, लोगों ने उसे बहुत मारा। जब स्वामी जी को यह वृत्तांत विदित हुआ तो स्वयं लाठी लेकर बाहर निकले और प्रबल गर्जन की; लोग भाग गये। इसके पश्चात् भी कई दिन स्वामी जी ने वजीराबाद में निवास किया और व्याख्यान दिये। चूंकि उन्होंने देखा कि व्याख्यान सुनने बहुत कम मनुष्य आते हैं इसलिए अच्छा समझा कि किसी और नगर में जाकर उपदेश करें। इसलिए वह वजीराबाद में एक सप्ताह निवास करने के पश्चात् गुजरांवाला चले गये और वहां कितने ही दिन निवास करके उपदेश करते रहे।

गुजरांवाला में अधूरा शास्त्रार्थ

(७ फरवरी, १८७८, बृहस्पतिवार, से ४ मार्च, १८७८ सोमवार तक)

धर्मोपदेश करते हुए स्वामी जी ७ फरवरी, सन् १८७८, बृहस्पतिवार तदनुसार माघ सुदि ५ संवत् १९३४ (वसंतपंचमी के दिन) वजीराबाद से गुजरांवाला पधारे और शिवरात्रि के दिन दोपहर की गाड़ी में सवार होकर यहां से लाहौर की ओर प्रस्थान कर गये।

मुंशी नारायण किशन जी, कायस्थ, उपप्रधान, आर्यसमाज गुजरांवाला कहते हैं—'यहां पर उनके दर्शन और सत्संग से पहले प्राय: लोग उनको ईसाइयों आदि का गुप्त वेतनभोगी समझा करते थे परन्तु उनके सत्योपदेशों से यह विचार एक साथ बदलना आरम्भ हो गया। लोग समझ गये कि यह एक पवित्र-हृदय और विद्वान् साधु है और फिर केवल मतों की भिन्नता के विषय में नाना प्रकार की बातचीत होने लगी।'

'जब स्वामी जी गुजरांवाला में पधारे तो सरदार धर्मसिंह के बड़े भाई सरदार सन्तसिंह, सरदार ईश्वरसिंह, मुंशी हजूरासिंह जी सहित उनको रेलवे स्टेशन पर लेने गये थे। उनके नाम राय लब्धाराम जी की चिट्ठी आई थी। राय लब्धाराम जी उस समय स्वामी जी के साथ थे। स्वामी जी यहां पधार कर सरदार महासिंह की समाधि के भव्य भवन में ठहरे।'

'पधारने वाले दिन और उससे अगले दिन प्राय: लोगों से विभिन्न विषयों पर उनका वार्तालाप होता रहा। तत्पश्चात् प्रतिदिन ४ बजे सायं से ६ बजे तक 'आर्य्योद्देश्यरत्नमाला' में लिखे हुए उद्देश्यों में से किसी एक उद्देश्य पर उनका व्याख्यान होता रहा। चार-पांच दिन व्यतीत हो जाने पर यहां के पादरी लोगों ने स्वामी जी से उनके धार्मिक सिद्धान्त पूछे। स्वामी जी ने उसके उत्तर में एक प्रति 'आर्य्योद्देश्यरत्नमाला' की उनके पास भेज दी। उस प्रति के पहुंचने पर प्रथम तो पादरी लोगों ने गुजरांवाला के पण्डित लोगों को प्रेरित किया कि वह स्वामी जी से शास्त्रार्थ करें और साथ ही नगर के लोगों ने भी उनको किसी सीमा तक विवश किया।'

'उन्हीं दिनों सरदार लहनासिंह आदि प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने गुजरांवाला निवासी पण्डित ज्वालादत्त को कहा कि आप स्वामी जी के पास चलें, उनसे शास्त्रार्थ करें और सुनें कि वह क्या कहते हैं। पण्डित जी बोले कि आप तो उनसे शास्त्रार्थ करने को कहते हैं और हम यदि कहीं उनसे दो-चार भी हो जायें तो हमको वस्त्रों सहित स्नान करना पड़े, तब शुद्ध हों। हम उनके पास नहीं जावेंगे।'

पं० विद्याधर की समझदारी—तीन-चार पंडित उन्हीं दिनों कहीं नगर छोड़ कर ही चले गये थे। एक पंडित विद्याधारी या विद्याधर जी जो इस नगर में विशेष भद्रपुरुष और प्रसिद्ध विद्वान् हैं और एक संस्कृत पाठशाला के अध्यापक हैं, उन्होंने कहा कि स्वामी जी से यदि हमको किसी विषय में कोई मतभेद है तो वह हमारे घर की बात है; उस पर हम किसी समय निजीरूप से उनसे वार्तालाप कर सकते हैं। हमारे लिए इस समय पादरियों के कहने पर व्यर्थ ही अपने घर में झगड़ा उत्पन्न करना ठीक नहीं है। ऐसा ही उत्तर पादरी लोगों के पास भी उनकी ओर से भेजा गया था और एक दिन पंडित विद्याधर जी स्वामी जी के पास गए भी और चिरकाल तक परस्पर प्रेम की बातें होती रहीं।

इसके पश्चात् किसी ने संस्कृत में लिखे हुए कुछ आक्षेप, जो सम्भवत: किसी समय बम्बई में छपे थे, स्वामी जी के सामने उपस्थित किये। इस पर स्वामी जी ने उनको बतलाया कि हम अमुक समय पर इन प्रश्नों के उत्तर दे चुके हैं। हमारे उस उत्तर पर कोई विचार करना हो तो उपस्थित करो। इस पर प्रश्नकर्ता से कोई उत्तर न बन आया। उन्हीं दिनों के **'कोहेनूर'** में लिखा है—"थोड़े समय से स्वामी दयानन्द सरस्वती जी यहां विराजमान हैं और महासिंह के बाग में ६ बजे रात से ८ बजे रात तक व्याख्यान देते हैं। प्राय: लोग वहां एकत्रित होते हैं। (२३ फरवरी, १८७८, खंड ३, संख्या ८, पृष्ठ १५३)।"

पादरियों का शास्त्रार्थ करने का निश्चय—अन्त में इन सब बातों के पश्चात् स्वयं पादरी लोगों ने शास्त्रार्थ के लिए कुछ चेष्टा आरम्भ की। इस पर दोनों पक्षों की सम्मति से निश्चय हुआ कि जब तक शास्त्रार्थ की आवश्यकता समझी जावे तब तक प्रतिदिन ४ बजे शाम के पश्चात् शास्त्रार्थ हुआ करे क्योंकि स्वामी जी उस समय से पूर्व प्रतिदिन वेदभाष्य के आवश्यक काम में व्यस्त रहा करते थे। शास्त्रार्थ के लिए मकान का कोई विशेष विचार नहीं हुआ था। अन्त में ठीक पादरियों के गिरजाघर में, जो मिशन स्कूल से सम्बद्ध है, शास्त्रार्थ आरम्भ हो गया।

स्वामी जी अपने १९ फरवरी, सन् १८७८ के पत्र में ला० जीवनदास को लिखते हैं—'इस स्थान पर प्रतिदिन व्याख्यान होता है। अभी तक कोई विशेष बात लिखने के योग्य दिखाई नहीं दी। फिर थोड़े समय पश्चात् लिखा जावेगा। आज ६ बजे से पादरी लोगों से शास्त्रार्थ होगा।'

स्वामी जी १९ फरवरी, सन् १८७८ तदनुसार फाल्गुन बदि २, संवत् १९३५, मंगलवार को शाम के ४ बजे गिरजाघर में शास्त्रार्थ के लिए पधारे। निम्नलिखित पादरी लोग उपस्थित थे—पादरी बार साहब मिशनरी स्यालकोट; पादरी मेकी साहब अमरीकन, पादरी सोलफीट जो लाशा देसी नाम से प्रसिद्ध थे। इनके अतिरिक्त देसी पादरी मिस्टर मोहन वीर साहब, गोरखा ऐक्स्ट्रा असिस्टैण्ट कमिश्नर, मिस्टर ह्यूसन असिस्टैण्ट कमिश्नर; मिस्टर वाकर असिस्टैण्ट कमिश्नर, डिप्टी गोपालदास ऐक्स्ट्रा असिस्टैण्ट कमिश्नर, डिप्टी बरकत अली ऐक्स्ट्रा असिस्टैण्ट कमिश्नर और इनके अतिरिक्त प्राय: नगर के सारे प्रतिष्ठित रईस वहां पधारे थे। डिप्टी गोपालदास जी मध्यस्थ बनाये गये थे। श्रोताओं के लिए टिकट लगाये गये थे। गिरजाघर के भीतर और बाहर सब स्थान मनुष्यों से भरा हुआ था। सम्भवत: दो डेढ़ हजार के लगभग मनुष्य होंगे। शास्त्रार्थ करने वाले पादरी सोलफीट थे।

जीव-ईश्वर सेवक और सेव्य हैं समान नहीं—पादरी सोलफीट ने आक्षेप किया 'यदि जीव भी अनादि माना जावे और ईश्वर भी (अनादि), तो वे दोनों समान हो गये। दो दिन तक प्रश्नोत्तर होते रहे। स्वामी जी ने इस बात का विद्वत्तापूर्ण प्रमाणों और बौद्धिक युक्तियों से बड़ी उत्तमता से खंडन किया और कहा कि वे दोनों समान नहीं होते, प्रत्युत

स्वामी और सेवक होते हैं । ४ बजे से ८ बजे तक शास्त्रार्थ होता रहा । शास्त्रार्थ लिखित था अर्थात् दोनों ओर से प्रश्नोत्तर लिखने वाला गंगाराम चोपड़ा था, परन्तु वे लिखित कागज कहीं खो गये । अब नहीं मिलते हैं ।'

मध्यस्थ का निर्णय—भाई **हजूरासिंह जी** कहते हैं 'शास्त्रार्थ के पश्चात् डिप्टी गोपालदास जी ने पादरी साहब को कहा कि स्वामी जी आपके प्रश्नों का पर्याप्त उत्तर दे चुके हैं । आपका हठ है जो नहीं मानते, और लोगों को भी सम्भवतः उस समय विश्वास हो गया था कि स्वामी जी सत्य पर हैं और पादरी साहब भूल पर ।'

पादरियों की पोल खुली—'यह बात भी जतलाने के योग्य है कि शास्त्रार्थ के बीच स्वामी जी ने इंजील के सिद्धान्तों और मसीह के ईश्वरत्व आदि विषयों पर भी निरन्तर बहुत से आक्षेप किये, और इससे ईसाई मत की पोल खुलती रही कि ईसाई मत की बातें कितनी निकृष्ट और थोथी हैं । परन्तु पादरी लोग रह गये । उत्तर से लगातार बचते रहना और उपेक्षा करते रहना ही वे उचित समझते रहे ।' गिरजाघर एक तंग स्थान था जहां से इस शास्त्रार्थ को सुनने के सैकड़ों इच्छुक शास्त्रार्थ के लाभ से वंचित रहकर घर को वापस लौट जाते थे । उनकी भीड़ देखकर उनको निराश लौटाने के लिए गिरजाघर के समस्त द्वार बन्द कर दिये जाते रहे और गिरजाघर के भीतर स्थान की तंगी और श्रोताओं की अधिकता के कारण लोगों के दम घुटने लग जाते थे । इसलिए लोगों की यह इच्छा थी कि यह शास्त्रार्थ किसी खुले स्थान पर हो । इसीलिए दूसरे दिन शास्त्रार्थ का समय पूरा होने के पश्चात् स्वामी जी ने पादरी लोगों को सम्बोधन करके कहा कि यह स्थान अत्यन्त तंग है, शास्त्रार्थ सुनने के इच्छुक लोगों का एक बड़ा भाग निराश जाता है । जो लोग भीतर आकर बैठते हैं, वे भी स्थान की तंगी के कारण बहुत कष्ट पाते हैं । इसके अतिरिक्त यह स्थान एक पक्ष का धार्मिकगृह भी है । इसलिए कोई ऐसा स्थान निश्चित होना चाहिए जो इन समस्त दोषों से रहित हो ।'

पादरियों की चालाकी—पादरी लोगों ने उस समय तो कोई ठीक उत्तर न दिया परन्तु अगले दिन लगभग १२ बजे दिन में, जब कि स्वामी जी वेदभाष्य के काम मे पूर्णतया संलग्न थे और उनको पहले से बिलकुल कोई सूचना नहीं थी और न उनसे कोई सम्मति ली गई थी कि शास्त्रार्थ दिन के १२ बजे होगा, पादरियों ने स्वयं ही कुछ ईसाई भाइयों को गिरजाघर में बुलाकर बिठा लिया और स्वामी जी की ओर एक मनुष्य को भेज दिया कि वे भी इस समय गिरजाघर में आ जायें । स्वामी जी उसकी बात को सुनकर अत्यन्त आश्चर्यान्वित हुए, और कहा कि जब चार बजे सायंकाल का समय दोनों पक्षों की सम्मति से नियत हो चुका है और लोगों को भी केवल उस समय की सूचना है और इस १२ बजे के समय के लिए न तो कोई परस्पर सम्मति हुई और न पहले से मुझको सूचना दी गई है और न लोगों को उसकी सूचना है, तो पता नहीं कि आपने स्वयमेव १२ बजे दिनका समय किस प्रकार नियत कर लिया और हमने कल कहा था कि गिरजाघर पर्याप्त रूप से खुला स्थान नहीं है तो क्या उसका यही उत्तर है कि स्थान का अच्छा प्रबन्ध करने के स्थान पर समय भी स्वयमेव ऐसा निश्चित कर लें, जिसको दूसरे पक्ष ने आरम्भ से ही अस्वीकार कर रखा है ? इसलिए ऐसी निकृष्ट और अभिमानपूर्ण कार्यवाही के अनुसार चलना मेरे लिए आवश्यक नहीं । और न मैं वेदभाष्य जैसे श्रेष्ठ और विशेष कार्य को, जिसको कि मैं अब यहां पर बैठा कर रहा हूं, छोड़कर पादरी लोगों के गिरजाघर में उपस्थित होने के लिए विवश ही हूं । पादरी लोग यदि स्थान का कोई उचित प्रबन्ध नहीं कर सकते तो वह नियत समय पर (जो कि दोनों की सम्मति से निश्चित हुआ है और शास्त्रार्थ सुनने के इच्छुकों को जिसकी पहले से सूचना है) तैयार रहें । ४ बजे शाम के लिए प्रबन्ध का उत्तरदायित्व मैं स्वयं लेता हूं । यह कहकर ईसाई दूत को स्वामी जी ने विदा किया और लाला जी ने भी ऐसा ही उन्हें उत्तर दिया कि इस समय नियमविरुद्ध मैं उपस्थित नहीं हो सकता । नगर का डिप्टी गोपालदास तो क्या कोई व्यक्ति उस दिन दोपहर को गिरजा में

न गया, परन्तु पादरियों ने कुछ क्रिश्चियन और कुछ स्कूल के लड़कों को कुर्सियों पर बिठलाकर उनको सुनाया कि चूंकि स्वामी जी अब १२ बजे नहीं आते हैं, इसलिए वे हारे हुए समझे जावें। यह कहकर सभा विसर्जित हुई।

स्वामी जी पादरियों की इस मूर्खतापूर्ण कार्यवाही पर अत्यन्त कुपित हुए और नगर में सम्भ्रान्त लोगों ने भी इस असभ्यतापूर्ण प्रदर्शन की बहुत हंसी उड़ाई और स्वामी जी की प्रार्थना पर नगर के कुछ प्रसिद्ध सज्जनों ने सायंकाल ४ बजे समाधि के समीप एक विस्तृत स्थान पर दरी, मेज, कुर्सी आदि सब सामग्री जुटा कर शास्त्रार्थ का प्रबन्ध कर दिया और चूंकि वह स्थान उस गिरजाघर के समीप था, जहां पहले दो दिन शास्त्रार्थ हुआ था, इसलिए जो लोग वहां नित्य की भांति शास्त्रार्थ सुनने के लिए आये, वे उसी स्थान पर पहुंच गये जहां शास्त्रार्थ का प्रबन्ध था। सारांश यह कि लोग दल बांध बांध कर वहां आने लगे और स्थान की विस्तृतता को देख कर सब अत्यन्त प्रसन्न हुए। पादरी लोगों को एक बार उनके दूत के मुख से और दूसरी बार एक और प्रतिष्ठित व्यक्ति के द्वारा सूचना समय से पहले ही दी गई परन्तु वे अपने घर से बाहर न निकले। पहले कई बार स्मरण कराने के अतिरिक्त नियत समय पर स्मरण कराया परन्तु उनका वहां पधारना कठिन हो गया। इसलिए विवश हो कर नियत समय से लगभग पौन घंटा पश्चात् स्वामी जी ने व्याख्यान देना आरम्भ किया। उस दिन व्याख्यान भी इंजील की शिक्षा पर था, जिसमें उन्होंने ईसाई मत का अत्यन्त ही विद्वत्तापूर्ण और रोचक ढंग से खंडन किया। आज उपस्थिति सब दिनों से अधिक थी और लोग पादरियों के मत की वास्तविकता सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

इसके पश्चात् लगभग दस-बारह दिन तक स्वामी जी ने गुजरांवाला में निवास किया परन्तु किसी भी पादरी को कुछ साहस न हुआ। व्याख्यान के पश्चात् कुछ व्यक्ति किसी-किसी विषय पर अपनी शंकाएं प्रकट करते थे, उनका उत्तर स्वामी जी अत्यन्त सरल और प्रीतिपूर्ण शब्दों में दृढ़ और संतोषजनक युक्तियों के साथ दिया करते थे और सब लोग बड़ी शान्ति के साथ अपने-अपने घर जाते थे।

आर्यसमाज की स्थापना—उनके जाने से एक दिन पहले यहां आर्यसमाज भी स्थापित हो गया था। **मुंशी नारायणकिशन जी** कहते हैं 'मैं भी इसी नगर में स्वामी जी का एक अद्वितीय और प्रसिद्ध विरोधी था। धार्मिक शास्त्रार्थों में प्राय: रुचि लिया करता था और स्वामी जी को आरम्भ से ही अत्यन्त अपशब्दों से सम्बोधन किया करता था परन्तु जिस समय उस पूर्ण ऋषि और महाविद्वान् के सत्योपदेशों को सुना और उनकी पुस्तकों को पढ़ा, तबसे उस यथा नाम और गुण वाले व्यक्ति के पवित्र कार्य पर आसक्त होना अर्थात् उसके सत्योपदेशों पर चलना सच्चे हृदय से मानवी जीवन का लाभ मानता हूं; और उसके प्रकट होने को परमात्मा का एक बड़ा भारी अनुग्रह जानता हूं।'

सहजी जाति में उत्पन्न, पण्डित भगवद् दत्त, उपनाम हरभगवान ने वर्णन किया—'स्वामी जी के यहां पधारने के समय मैं राय मूलसिंह के बड़े मन्दिर का पुजारी था परन्तु प्रतिदिन स्वामी जी के दर्शन को भी जाया करता था। अन्त को मेरी उत्सुकता बढ़ी कि ठाकुरों की आरती कराकर शीघ्र चला जाता और दूसरे साथी को कह जाता कि लोगों को चरणामृत तुम दे देना, मैं जाता हूं। उनके उपदेशों को सुनने से ही मेरे मन को मूर्तिपूजा से पूर्णतया घृणा हो गई। मेरे सामने स्वामी जी के आने के दूसरे दिन पण्डित वासुदेव वजीराबाद वाले ने यहां आकर प्रश्न किया कि ईश्वर सत्ता कैसे सिद्ध करते हो अर्थात् ईश्वर के होने में क्या प्रमाण है? स्वामी जी ने कहा इसका उत्तर हम विस्तारपूर्वक वजीराबाद में एक बार तुमको दे चुके हैं। दीवान ठाकुरदास दुग्गल तथा वजीराबाद के अन्य रईस ने कहा कि यह तो तुम वहां पूछ चुके हो, और कुछ पूछो, परन्तु उसने फिर कोई प्रश्न नहीं किया।'

स्वामी जी का अपूर्व आत्मविश्वास—'स्वामी जी ने एक दिन व्याख्यान में वर्णन किया कि सरदार हरिसिंह नलुआ बड़ा वीर हुआ है। इसका कारण सम्भवत: यही प्रतीत होता है कि वह २५ या २६ वर्ष तक ब्रह्मचारी रहा। मेरी आयु इस

समय ५१ वर्ष की है[७७] और मुझे विश्वास है कि मेरा भी ब्रह्मचर्य अखंडित है । मैं दावे से कहता हूं, जिस व्यक्ति को शक्ति का घमण्ड हो मैं उसका हाथ पकड़ता हूं, वह छुड़ा लेवे या मैं हाथ खड़ा करता हूं, कोई उसे नीचे करे । उस समय उपस्थिति ५०० के लगभग थी और कई कश्मीरी पहलवान भी वहां उपस्थित थे परन्तु किसी का साहस न पड़ा ।

स्वामी जी के चले जाने के दो वर्ष पश्चात् मैंने मूर्तिपूजा एकदम छोड़ दी और आर्यसमाज का सदस्य हो गया । स्वामी जी के सामने 'समाज' स्थापित हुआ और निम्नलिखित सज्जन अधिकारी नियत हुए—मुंशी नारायणकिशन प्रधान; मास्टर पोहलूराम मंत्री, ला० आत्माराम कोषाध्यक्ष और सरदार सन्तसिंह, हजूरसिंह, मथुरादास, मैं और मास्टर दयाराम आदि बहुत से सज्जन सदस्य हुए ।'

प्रेमभीनी विदाई—सोमवार, ४ मार्च,[७८] सन् १८७८ शिवरात्रि के दिन दोपहर के समय जब स्वामी जी यहां से जाने लगे तो मैंने सब लोगों से छिपाकर मिठाई की एक टोकरी कपड़े में लपेट कर स्वामी जी को जाकर दी । उन्होंने मेरे प्रेम को देखकर प्रसन्नता से ले ली । सारे नगर के प्रतिष्ठित और शिक्षित लोग उनको स्टेशन तक छोड़ने गये थे ।

मुलतान नगर में धूम-धाम से धर्म-प्रचार

(१२ मार्च, सन् १८७८ से १६ अप्रैल, सन् १८७८ तक)

मुलतान नगर में आमन्त्रण—स्वामी जी जब गुजरांवाला में थे तब ला० जीवनदास जी को एक पत्र में लिखते हैं, 'आज की तिथि में मुलतान से भी एक चिट्ठी डा० जसवन्तराय साहब की आ गई है । उस ओर को अवश्य जाना पड़ेगा' ९ फरवरी, सन् १८७८, गुजरांवाला ।

स्वामी जी ४ मार्च, सन् १८७८ को गुजरांवाला से चलकर कुछ दिन लाहौर में रहे और होलियों में मुलतान पधारे । **'कोहेनूर'**[७९] में लिखा है'स्वामी दयानन्द सरस्वती जी यहां (मुलतान) पहुंच गये और अपने उपदेशों में संलग्न हैं ।' (२३ मार्च, सन् १८७८ खंड २०, सं० १२, पृष्ठ २४३, कालम २) ।

बाबा ब्रह्मानन्द जी ब्रह्मचारी, मुलतान निवासी ने वर्णन किया है 'सन् १८७८ में बाबू रलाराम साहब और पण्डित बसन्तराम ब्रह्मसमाजी सज्जनों ने जो यहां के रेलवे मैनेजर के दफ्तर में उच्च पदाधिकारी भी थे, चर्चा छेड़ी कि कोई महात्मा संन्यासी बड़े विद्वान् हैं और वेदों के अनुसार मूर्ति-पूजा का खंडन करते हैं । उन दिनों स्वामी जी लाहौर में थे ।[८०] इस चर्चा के पश्चात् निम्नलिखित सज्जनों की एक समिति संगठित हुई—बाबू रलाराम, पण्डित बसन्तराम, सरदार प्रेमसिंह, पण्डित जसवन्तराय डाक्टर, बाबू मनमोहन सरकार हेडमास्टर, ला० मूलराज सरिश्तेदार कमिश्नरी, मैं ब्रह्मानन्द और कुछ बंगाली सज्जन । सब ने परस्पर सहमति से १३८ रुपया चन्दा किया और स्वामी जी को तार दिया गया । स्वामी जी ने उत्तर भेजा कि कुछ दिन और लाहौर में ठहरकर हम आपको सूचना देंगे ।

मुलतान में स्वागत—फिर कुछ दिन पश्चात् यह सम्मति बनी कि मुझे लाहौर भेजा जावे । मैं लाहौर गया । उस समय स्वामी जी अनारकली बाजार के बाहर उतरे हुए थे और उस दिन उस नगर में व्याख्यान देकर आये थे । अत्यन्त कोलाहल भी हुआ था । जब लुहारी दरवाजे के बाहर, ठंडी कुई पर पानी पीने लगा तो वहां चर्चा हो रही थी कि आज लोगों ने ठाकुरों के कई पर्यंक रावी में बहा दिये हैं । वहां से दूसरे दिन ६ ॥ बजे सायं रेल में सवार होकर हम मुलतान पहुंचे ।

उनके साथ दो पण्डित, एक ब्राह्मण रसोइया और एक कहार था । दूसरे दर्जे के डिब्बे में हम दोनों आये । यहां जब पहुंचे तो छावनी के स्टेशन पर ३० के लगभग सज्जन उपस्थित थे । वहां से बग्घी पर सवार कराकर स्वामी जी को ब्रह्मसमाज के मन्दिर में ले गये । केवल आध घंटा वहां ठहरा कर और पानी आदि पिलाकर बग्घियों पर चढ़ा कर नगर में पहुंचे । बेगी ने बाग में उनका उतारा किया । सम्भवत: मार्च का महीना था । सब ने प्रार्थना की कि आज शाम को यहां आप व्याख्यान दें । उन दिनों होलियों का[1] महीना था और शाम को प्राय: लोग वहां जाया करते थे; इसलिए कोई विज्ञापन नहीं दिया गया, केवल डोंडी पिटवाई गई और वह बाग भी उन दिनों बड़ी रौनक वाला और ठीक मौके पर था । स्वामी जी तख्त के ऊपर आसन बिछाकर और पीछे तकिया लगाकर पद्मासन लगाकर व्याख्यान देते थे; कुर्सी पर नहीं ।

पहला व्याख्यान उनका सृष्टि विषय पर हुआ अर्थात् सृष्टि क्या है, किस स्थान पर और किस प्रकार हुई । उसमें स्वामी जी ने बतलाया कि आदि सृष्टि तिब्बत में हुई[८१] और आर्य, तीखक और मध्यम; लोग तीन प्रकार के थे । जो आर्य थे वे अवसर पाकर विश्वकर्मा की सहायता से बैलों द्वारा आर्यावर्त में चले आये । मध्यम लोग ईरान की ओर चले गये और तीखक लोग तातार आदि की ओर चले गये । अत्यन्त: उपयुक्त और श्रेष्ठ युक्तियां थीं । उपस्थिति ६-७ सौ के लगभग थी । इसी प्रकार दो तीन दिन तक विद्या सम्बन्धी व्याख्यान होते रहे, तत्पश्चात् गोकुलिया गुसांइयों[८२] के मत का खण्डन आरम्भ किया । इस खण्डन को सुन कर नगर में कोलाहल मचा क्योंकि इस नगर में इस मत के लोग अधिक हैं । यही लोग प्रसिद्ध करने लगे कि ये ईसाइयों के नौकर हैं जिन्होंने भारत वर्ष को ईसाई बनाने के लिये इनको एक लाख रुपया देने की प्रतिज्ञा की है । परन्तु श्रोताओं की संख्या इनके विरोध करने पर भी कम नहीं हुई । इन्हीं दिनों एक दिन नगर के प्रतिष्ठित गोसांई गोपाल जी वाले अपने सेवकों सहित वहां उपद्रव करने और दंगा मचाने के अभिप्राय से गये । स्वामी जी के समीप जाकर ठीक व्याख्यान के समय शंख, घड़ियाल बजाने और जयकारे बुलाने आरम्भ किये परन्तु स्वामी जी ने कोई चिन्ता न की और बराबर व्याख्यान देते रहे । उनका अभिप्राय था कि स्वामी जी कुछ बोलें और हम उपद्रव करें परन्तु जब स्वामीजी ने किसी प्रकार उधर ध्यान नहीं दिया तो वे स्वयमेव कोलाहल करते हुए चले गये । उस दिन वास्तव में उपद्रव का भय था । तत्पश्चात् सबकी यह सम्मति हुई कि होलियों के कारण से यहां व्याख्यान न हों । केवल चार व्याख्यान होलियों में हुए ।

तत्पश्चात् हुर्मज[८३] जी कोतवाल, छावनी और मुलतान छावनी के व्यापारी दिनशा जी[८४] और बहराम[८५] जी ने सम्मति करके स्वामी जी के व्याख्यान छावनी में अपनी कोठी पर कराने का परामर्श दिया क्योंकि नगर में होलियों के कारण कोलाहल और उपद्रव की आशंका थी । पारसी सज्जनों की बग्घियों पर स्वामी जी और हम वहां गये । वहां पहला व्याख्यान यज्ञोपवीत के विषय में था । स्वामी जी ने उसमें बतलाया कि पारसी जाति आर्यावर्त से जाकर वहां बसी ।

दूसरे व्याख्यान में यूरोप के बसने की चर्चा थी । **तीसरा व्याख्यान** प्राचीनकाल के विवाह की विधि पर था तथा उसमें लड़कियों और लड़कों की पाठशालाओं और उनके प्रबन्ध, पालन और शिक्षा आदि के विषय में विस्तृत वर्णन था । छावनी में यही तीन व्याख्यान हुए । तीसरे अन्तिम व्याख्यान देने के पश्चात् सायंकाल जब हम छावनी से आने लगे तो पारसी लोगों ने एक थाल किशमिश का और एक सौ रुपया नकद अतिथिसत्कार के रूप में भेंट किया जिसको स्वामी जी ने बहुत सदस्यों के कहने से स्वीकार किया । फिर हमने वेदभाष्य फंड में उसे जमा करा दिया ।

रल मिलकर खाने के विषय में—'एक व्याख्यान स्वास्थ्यरक्षा के नियमों पर दिया था, जिसकी समाप्ति पर हर्मुज जी पारसी ने बेगी के बाग में प्रश्न किया कि जब आप यह सिद्ध करते हैं कि हम और आप एक जाति से हैं तो फिर आप

1. सन् १८७८ में होलाष्टक १२ मार्च, मंगलवार से १८ मार्च, सोमवार तदनुसार फागुन सुदि ८ से पूर्णमासी तक था ।

हमसे खानपान का व्यवहार क्यों नहीं करते ? स्वामी जी ने उत्तर दिया कि आप लोगों का मुसलमान आदि जातियों से व्यवहार होने से हम लोग आप से ऐसा व्यवहार नहीं कर सकते, परन्तु यदि आप लोग कुछ सयम तक आर्य लोगों से मिलते रहें तब यह बात दूर हो जावेगी और आहार-व्यवहार एक हो जायेगा। शेष रहा परस्पर एक स्थान पर झूठा खाना, उसके विषय में आप ही कहें कि आपस में रल-मिलकर खाने से क्या लाभ हैं और न खाने में क्या हानि ? सेठ हर्मुज जी ने कहा कि रलमिलकर खाने से प्रीति और प्रेम अधिक होता है और परहेज करने से फूट उत्पन्न होती है। स्वामी जी ने कहा कि आर्यावर्त की नीति के अनुसार रल-मिल कर खाना निषिद्ध है क्योंकि बहुत से संक्रामक रोग हैं जो एक दूसरे के साथ झूठा खाने से या पानी पीने अथवा हुक्का पीने से या पास बैठने से तत्काल दूसरे पर प्रभाव कर जाते हैं। पण्डित जसवन्तराय, असिस्टैण्ट सर्जन ने उसी समय इन रोगों की व्याख्या कर दी। दूसरे यदि इकट्ठा खाने से प्रीति और प्रेम अधिक होता तो अमीर काबुल, (रोम के राजा को) रूस के सम्राट् के आक्रमण के समय सहायता देने से क्यों निषेध करते ? इससे प्रकट है कि प्रीति और प्रेम बढ़ाने के उपाय दूसरे हैं, न कि रल-मिल कर खाना ! यदि इकट्ठा खाने से प्रीति होती तो मुसलमान भाई एक दूसरे के साथ कभी झगड़ा नहीं करते परन्तु वे एक दूसरे के प्राणों के शत्रु बन रहे हैं। चोटी के लिए कहा कि हिमालय आदि शीतप्रधान देशों में पूरे बाल रखने चाहियें। पंजाब में केवल शिखा, और जो अधिक उष्ण देश हो तो वहां बाल बिलकुल मुंडवा देवे तो कोई हानि नहीं।'

निम्नलिखित विषयों पर व्याख्यान दिये—१.ब्राह्मणों की विद्या आदि, २. वेद ईश्वरीय ज्ञान है, ३. परमेश्वर निराकार है, न कि साकार, ४. गुसांइयों की लीला, ५. तिलक छाप आदि, ६. मूर्तिपूजा और अवतार का खंडन, ७. यज्ञोपवतीत और हवन, ८. अपना जीवन-चरित्र, ९. मुसलमानी मत, १०. ईसाई मत, ११. सृष्टिविद्या, १२. ब्रह्मसमाज की समीक्षा और आर्यधर्म की व्याख्या, १३. यूरोप का बसना, १४. आवागमन, १५. आजकल के वेदान्ती या नवीन वेदान्ती, १६. खान-पान, पथ्य अर्थात् स्वास्थ्यरक्षा, १७. तीर्थयात्रा और मेले, १८. विधवाओं की दुरावस्था, १९. ब्रह्मचर्य के लाभ, २०. पठन-पाठन-विधि, २१. आर्य और हिन्दू शब्द, २२. योग, २३. छः शास्त्रों की एकवाक्यता।

दो ईसाई जो व्याख्यान सुनने आया करते थे, कहने लगे कि स्वामी जी पादरियों से मिशन स्कूल में शास्त्रार्थ करें। स्वामी जी ने कहा कि जहां व्याख्यान होता है, वहीं शास्त्रार्थ हो क्योंकि जैसा कि स्वामी जी ने बताया किसी स्थान पर, सम्भवतः गुजरांवाला में, पादरियों ने ईसाइयों को तो प्रवेश टिकट दिये और हमारे सहायकों को नहीं दिये।

केवल प्रत्यक्ष प्रमाण से ज्ञान नहीं

बाबू केशवचन्द्र सेन को अनुमान प्रमाण समझाया—स्वामी जी ने ब्रह्मसमाज के विषय में भाषण देते हुए अपने कलकत्ता गमन की और वहां बाबू केशवचन्द्र सेन से भेंट की चर्चा की और कहा कि वह प्रत्यक्ष प्रमाण के अतिरिक्त कुछ नहीं मानता था। हमने कहा कि देखो-शरीर की स्थूलता से मनुष्य के भोजन करने का प्रमाण मिलता है और हुक्के का दृष्टान्त दिया और पूछा कि उसमें धुआं है या नहीं ? उन्होंने कहा-हां, है। हमने कहा कि दिखाई तो नहीं देता। सारांश यह है कि उनको (अनुमान प्रमाण) स्वीकार कराया। कहते थे कि वहां हमारी उनसे अधिक बातचीत वेदों के ईश्वरोक्त होने और छः प्रमाणों पर होती रही। स्वामी जी के व्याख्यान सुनकर और उनसे प्रभावित होकर यहां के ब्रह्मसमाजियों ने निश्चय किया कि आर्यसमाज में प्रविष्ट हो जावें परन्तु एक ब्रह्मसमाजी के यह कहने से कि उन्होंने हमको निस्सन्देह मनवा तो दिया है परन्तु यह कोई कारण नहीं कि जो हमको युक्तियों से मनवा दे, हम उसी के लिए अपना धर्म छोड़ दें। जब कोई अन्य आकर दूसरी बात समझा दे तो फिर उसको भी छोड़ना पड़े, सब प्रविष्ट होने से रुक गये परन्तु फिर भी वे सब प्रकार (आर्यसमाज के) सहायक बने रहे।

एक दिन काबुल का एक ब्राह्मण आया; वह सरकारी सेना में नौकर था और संस्कृत जानता था; उसने वेद उठाकर पढ़ा परन्तु अर्थ न कर सका। अन्ततः उससे शास्त्रार्थ इस बात पर हुआ कि आर्यावर्त की सीमाएं कौन सी हैं ? वह चूंकि क्रोधी और उज्जड़ सा व्यक्ति था, बार-बार क्रोध करता था और स्वामी जी हंस पड़ते थे।

नवीन वेदान्त तथा सनातन वेदान्त, दोनों की व्याख्या की—एक दिन मांधीराम गुलाबदासिया ने चार महावाक्यों[८५अ] पर बातचीत की। स्वामी जी ने हंस कर कहा कि इनको पूरा पढ़ो, आधे-आधे टुकड़े न पढ़ो और साथ ही कहा कि प्रथम तो यह वेद के नहीं; दूसरे पूरे-पूरे वाक्यों को देखो तो वेद के विरुद्ध नहीं हैं। स्वामी जी ने पूरे वाक्य सुनाये और अर्थ किया। उसी दिन फिर नवीन वेदान्त खंडन पर व्याख्यान भी दिया और उसके पश्चात् सनातन वेदान्त के समस्त सिद्धान्त बतलाये। उसके दूसरे दिन पंजाब के साधुओं की कार्यवाहियों पर कहा और एक व्याख्यान सिक्ख मत पर दिया कि बाबा नानक जी ने क्या सोचकर यह पन्थ बनाया।

कुछ वैज्ञानिक तथ्य जो भारत में पहले से ज्ञात थे—एक पण्डित आया उसने एक श्रुति बोली। स्वामी जी ने कहा कि यह कहां की है ? उसको उत्तर न आया। तब स्वामी जी ने उसे एक कबीरपन्थी का दृष्टान्त सुनाया कि वह अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिए कबीर जी का नाम डालकर वाक्य बना लिया करता था। हमने उसको गिरधर का नाम डालकर कुछ श्लोक सुनाये और उसका खंडन किया। तीर्थयात्रा के विषय में भी बहुत कुछ कहा और उसके दोष प्रकट किये। पृथिवी के गोल होने तथा उसके परिभ्रमण और नक्षत्रों तथा ग्रहों के विषय में ज्योतिष के अनुसार तथ्य की बातें बताई। रेलगाड़ी के विषय में भी कहा कि इसके नियम चिरकाल से लोगों को विदित हैं और बहुत से प्रमाण दिये और किसी ग्रन्थ का प्रमाण दिया था कि उस समय जो चलाने वाला इंजन हुआ करता था, उसके १६ चक्र होते थे।[८६] त्रिपुर दैत्य के विषय में सुनाया कि वह एक ही समय तीन स्थानों पर लड़ता था; इसका कारण केवल यही कला थी। शास्त्रों के विषय में कहते थे कि हम छओं शास्त्र तथा दश उपनिषद् मानते हैं और वही प्रामाणिक हैं। २५ उपनिषद् झूठे हैं और इसी प्रकार अन्य ग्रन्थ और वेदान्त के उपनिषद् झूठे हैं। महाभारत के कुछ हजार श्लोक असली और शेष जाली (कपोल कल्पित) मानते थे। ब्रह्मचर्य के विषय में स्त्री और पुरुष दोनों को ब्रह्मचर्य की शिक्षा करते थे; जिससे वे शीघ्र वृद्ध न हों।

उन दिनों मुसलमान लोग कहते थे कि देखो, हिन्दुओं में एक साधु आया है जो कहता है चार पुस्तकें ईश्वरोक्त हैं यद्यपि हमारे पास केवल एक है। कई मौलवी उनके पास गये परन्तु निरुत्तर होकर लौट आये, कुर्आन के विषय में कोई बात सिद्ध न कर सके। बूहड़ दरवाजे वाला मौलवी जो सबसे अधिक विद्वान् था, वह भी एक दिन गया था परन्तु स्वामी जी ने युक्तियों से ही उड़ा दिया।

स्वामी जी ३७ दिन यहां रहे, सब मिलाकर ३६ व्याख्यान दिये और एक दिन स्वामी जी रोगी रहे। यहां से सीधे लाहौर चले गये। यहां अच्छी बनने वाली प्रसिद्ध वस्तुएं लगभग ७०) रुपये की हम लोगों ने मोल लेकर उन्हें भेंट कीं।

यहां का एक प्रसिद्ध नास्तिक आस्तिक बनकर वेदभाष्य का प्रथम ग्राहक बना—'एक बड़ा भारी नास्तिक यहां था, वह स्वामी जी के उपदेश से आस्तिक हुआ अर्थात् ला० सागरमल इंजीनियर, वह कहता था कि मैं १४०० पुस्तकें पढ़कर नास्तिक हुआ हूं। तीन दिन उससे शास्त्रार्थ होता रहा। अन्त में उसने ईश्वर की सत्ता स्वीकार की। वेदभाष्य की पहली प्रति छपकर यहां आई थी, यहां सबसे पहले वही ग्राहक बना।'

स्वामी जी पोहलूराम, मन्त्री आर्यसमाज गुजरांवाला को एक पत्र में लिखते हैं—'मुलतान में समाज (स्थापित) होने वाला है, सो जानोगे। व्याख्यान प्रतिदिन हुआ करता है। नवीन समाचार कुछ नहीं है। सभासदों को नमस्ते। २९ मार्च, सन् १८७८। -दयानन्द सरस्वती।'

इस प्रकार एक और चिट्ठी स्वामी जी की १ अप्रैल, सन् १८७८ की लिखी हुई मुलतान से आई हैं; यह दानापुर आर्यसमाज के मन्त्री को लिखी थी, 'बाबू माधोलाल जी आनन्दित रहो । एक कुशलपत्र मिति २४, गत मास का उचित समय हमारे पास पहुंचा । विषय लिखा सो प्रकट हुआ । आपकी इच्छा के अनुसार कल की तारीख ३१ मार्च, सन् १८७८ को दो छपे हुए पत्र आर्यसमाज के मुख्य दश उद्देश्य अर्थात् नियमों के भेज चुके हैं, और एक कापी उक्त समाज के उपनियमों की भेजते हैं । सो निश्चय होता है कि दोनों कापियां नियम और उपनियमों की आपके पास अवश्य पहुंचेंगी । रसीद शीघ्र भेज दीजिए और इन नियमों को ठीक-ठीक समझाकर वेद की आज्ञानुसार सबके हित में प्रवृत्त होना चाहिए । विशेष करके अपने आर्यावर्त देश के सुधारने में अत्यन्त श्रद्धा और प्रेम-भक्ति सब से परस्पर सुख के अर्थ तथा उनके क्लेशों के मेटने में सद्व्यवहार और उत्कण्ठा के साथ अपने ही शरीर के सुख-दु:खों के समान जानकर सर्वदा यत्न और उपाय करना चाहिए । सब के साथ हित करने का ही नाम परम धर्म है । इसी प्रकार वेद में बराबर आज्ञा पाई जाती है जिसका हमारे प्राचीन ऋषि मुनि आदि, यथावत् पालन करते और अपने सन्तानों को विद्या और धर्म के अनुकूल सत्योपदेश से अनेक प्रकार के सुखों की वृद्धि अर्थात् उन्नति करते चले आये हैं । केवल इसी देश से विद्या और सुख सारे भूगोल में फैला है क्योंकि वेद ईश्वर की सब सत्यविद्याओं का कोष और अनादि है । बाकी सब व्यवहार तथा ईश्वर की उपासना आदि के विषय हमारी पुस्तकों और उन उपनियमों आदि के देखने से समझ लेना उचित है । आपको 'हिन्दू सत्सभा' के स्थान में 'आर्यसमाज' नाम रखना चाहिये क्योंकि आर्य नाम हमारा और आर्यावर्त नाम हमारे देश का सनातन वेदोक्त है ।

आर्य के अर्थ श्रेष्ठ विद्वान् धर्मात्मा के तथा हिन्दू शब्द यवन मुसलमान आदि ईर्ष्यक लोगों का बिगाड़ा और बदला हुआ है जिसके अर्थ गुलाम, काला आदमी आदि हैं । ऐसा विचार कर अपनी सभा का नाम आर्यसमाज रखकर वेदोक्त धर्मों पर दृढ़ होकर काम करो और सब सभासदों को नमस्ते कहना चाहिए, सलाम व बंदगी नहीं । तारीख १ अप्रैल, सन् १८७८ । दयानन्द सरस्वती, मुलतान ।'

आर्यसमाज की स्थापना—४ अप्रैल, सन् १८७८ को मुलतान में 'आर्यसमाज' स्थापित हुआ और ७ सभासद् बने । बाबा ब्रह्मानन्द जी कहते हैं कि मैंने उस समय हंसी के रूप में कहा कि केवल सात ही सदस्य हैं ? तब स्वामी जी ने हंसकर उत्तर दिया कि मुसलमानों के पैगम्बर की केवल एक स्त्री सहायक थी[८७] और उसने इतनी उन्नति की और हमारे धर्म के तो सात सहायक हैं । उस समय प्रधान सरदार प्रेमसिंह हुए थे और मन्त्री पंडित किशननारायण सूरी थे ।

एक पंडित महात्मा वृद्ध प्रतिदिन जाते, वे खड़ाऊं पर चला करते थे । उनकी स्वामी जी पर बड़ी श्रद्धा थी । वे प्राय: कहा करते थे कि 'यह महात्मा होनहार है; इनका सम्प्रदाय अच्छा चलेगा ।'

एक दिन मैंने कहा कि प्रात:काल पानी पीना बहुत लाभदायक है । स्वामी जी ने कहा कि अधिक नहीं; मल-त्याग करने से पहले केवल अढ़ाई आचमन जल पीना गर्मी और खुश्की के रोग को बहुत लाभकारी है । एक व्याख्यान योग विषय पर दिया था और उसी दिन कहा था कि हमने स्वामी ब्रह्मानन्द जी सरस्वती से योग पढ़ा है और उसकी विधि भी सीखी है । स्वामी जी के चले जाने के पश्चात् ब्रह्मानन्द जी[८८] यहां मुलतान पधारे थे । वे भी कहते थे कि हमसे दयानन्द जी ने योग सीखा है परन्तु अब वे हमारी बात नहीं मानते ।

एक और पत्र स्वामी जी ने बाबू माधोलाल जी के नाम मुलतान से भेजा, जिसमें लिखा है—'प्रशंसा की बात हुई कि आपने अपनी सभा का नाम आर्यसमाज रखा है । अब आपकी दृष्टि देश के सुधार पर होनी चाहिए । १२ अप्रैल, सन् १८७८, मुलतान, दयानन्द सरस्वती । पुस्तकों की रसीद हमारे पास लिखकर भेज दीजिए, लाहौर के पते से ।'

स्वामी जी का मुलतान से लिखा एक पत्र और है जो २४ मार्च, सन् १८७८ तदनुसार, चैत्र ११, संवत् १९३४ शनिवार का लिखा हुआ है—

श्रीयुत मूलराज, जीवनदास, सांईदास, वल्लभदास जी आनन्द रहो । आगे रामरखा से पत्र मिल सकेंगे तो भेज दिये जावेंगे वा नवीन लिखवाकर भेज देंगे, परन्तु जैसे आज पर्यन्त नहीं छपे वैसे हो तो परिश्रम व्यर्थ है; जैसे अन्तरंग सभा के नियमों का झमेला आज तक पूरा नहीं हुआ है, ऐसा न हो । इसे लिखने का प्रयोजन यह है कि जो काम जिस समय करना चाहिये वह उस समय में होने से सफल हो जाता है । इसलिए समय पर काम करना बुद्धिमानों का लक्षण है । हम लोग यहां बहुत आनन्द में हैं । आशा है कि आप लोग भी आनन्द में होंगे ।

एक काम यह आवश्यक हैं कि इस मुंशी से यह काम ठीक-ठीक नहीं हो सकता । इसलिए एक मुंशी अंग्रेजी, फारसी और नागरी भाषा का पढ़ा हुआ, हिसाब नक्शा निकालना भी जानता हो, जो ऐसा न मिल सके तो अंग्रेजी, फारसी उर्दू तो ठीक जानता हो, चिट्ठी-पत्री ठीक-ठीक पढ़ और लिख सके । वह आलसी न हो और जिसका स्वभाव किसी प्रकार बुरा न हो । उसका वेतन २५) रु० मासिक से अधिक न होना चाहिये । इसको आप चारों जने ध्यान से पन्द्रह और बीस दिनों के बीच में निश्चित करके मुझ को लिखिये । यहां व्याख्यान नित्य होता हैं । समाज होने का भी कुछ-कुछ संभव है ।'

पंडित ठाकुरदत्त जी, रईस, मुलतान ने वर्णन किया—'मैं, पंडित बरातीलाल डेरा गाजीखां निवासी और पंडित कुंवरलाल जी स्वामी जी से मिलने के लिए बाग में गये । आठ नौ बजे दिन का समय था । उस समय वह वेदभाष्य कर रहे थे । मुक्ति के विषय पर बात चली थी । पंडित बरातीलाल का मत यह था कि मुक्ति से पुनरावृत्ति नहीं होती । स्वामी जी का मत यह था कि 'मुक्ति कोई काला पानी नहीं जिससे लौटकर न आ सके ।'

चूंकि उस समय वेदभाष्य हो रहा था, एक मंत्र मुक्ति-विषय का था, उसका भाष्य करवा रहे थे । स्वामी जी ने **'ततो विमुञ्चेत्'** लिखवाया । इस पर पंडित जी ने कहा कि यदि बन्धन नहीं है तो मोक्ष कैसे होगा अर्थात् जीव का ? स्वामी जी ने सोचकर कहा ये ठीक कहते हैं और उसके स्थान पर 'ततो निवर्तयेत्' लिखवाया ।

पंडित बरातीलाल जी, डेरागाजी खां निवासी ने वर्णन किया कि 'वह शब्द 'ततो न अवतीर्येत्' था, 'निवर्तयेत्' नहीं था और इसके अतिरिक्त एक और बात यह थी कि हमने कहा कि श्रीमद्भागवत की श्रीमद्हरि टीका[८९] प्रामाणिक है या नहीं ? उन्होंने कहा कि प्रामाणिक नहीं । हमने कहा कि श्री जगन्नाथ जी ने प्रामाणिक मानी है इसलिए सबको माननी चाहिये । इसके उत्तर में उन्होंने एक ऐसी बात कही जो निन्दायुक्त थी, इसलिए मैं उसे नहीं लिखवाता । हम उठकर चले आये तब उन्होंने कहा कि फिर हमारे पास आना । हमने कहा कि यदि रहेंगे तो आवेंगे । हम फिर जाते परन्तु वे बुद्धिमान् और वेदज्ञ थे, इस कारण से हम फिर न गये ।'

आजकल के ब्राह्मणों की दशा—पंडित हवालाल जी, सारस्वत ब्राह्मण, जाति चतरत ने वर्णन किया—'स्वामी जी ने एक दिन ब्राह्मणों की वर्तमान अवस्था पर व्याख्यान दिया था । जिसमें दृष्टान्त दिया कि एक पठान और एक दुकानदार हिन्दू का एक बार साथ हो गया । उस साहूकार हिन्दू के साथ एक ब्राह्मण सेवक था । जब वह सवेरे उठता तो (साहूकार) प्रथम कहता कि महाराज पांव लागूं और जब पानी की आवश्यकता होती तो ब्राह्मण पानी लाता, हाथ धुलाता, नहलाता और जब रोटी की आवश्यकता होती तो ब्राह्मण रोटी बनाता और उसे खिलाता और जब चलता तो ब्राह्मण बोझा उठा कर

साथ चल पड़ता । एक दिन ऐसा हुआ कि मार्ग चलते हुए अंधेरी (आंधी) आने लगी । पठान ने मन में विचारा कि वह मेरा साथी पीछे रह गया, उसको साथ लेना चाहिये । कुछ काल पश्चात् दुकानदार आ गया परन्तु साथ ब्राह्मण नहीं था । तब पठान ने पूछा वह हिन्दू कहां गया वह तुम्हारा नर, पीर, भिश्ती, बाबरची, खर । यही दशा आजकल के ब्राह्मणों की है ।

मुंशी सफदर हसन, ट्रेजरी क्लर्क, मुल्तान वर्तमान पेंशनर ने वर्णन किया 'स्वामी जी की विद्या तथा योग्यता और युक्तियुक्त तथा उपयुक्त बातचीत के कारण शास्त्रार्थ करना तो एक ओर, किसी को पूछने को भी सामर्थ्य नहीं होता था । ला० सागरचन्द से शास्त्रार्थ अवश्य हुआ था परन्तु विषय मुझे स्मरण नहीं । चार-पांच सौ के लगभग उपस्थिति हुआ करती थी । बाबू मीरां बख्श जी भी जाया करते थे ।'

पंडित चांदमल जी ने वर्णन किया—'एक दिन स्वामी जी व्याख्यान में इस बात का खंडन कर रहे थे कि गौतम और अहिल्या की कथा अलंकार है, उसका पुराणोक्त अर्थ सत्य नहीं है । वे अहिल्या और इन्द्र को रात्रि और सूर्य पर घटा रहे थे । तब एक महाब्राह्मण नारियल हुक्का हाथ में लिए भंग के नशे में बोल उठा । स्वामी जी ने उसकी अंडबंड बातें सुनकर उसे पुलिसमैन द्वारा रोक दिया ।'

'एक दिन गुसांई जी मन्दिर वाले घोड़े पर चढ़कर घड़ियाल बजाते उनके व्याख्यान के स्थान के समीप आये तब स्वामी जी ने बन्द करा दिया । दूसरे दिन गुसांई लोग सारे सेवक साथ ले, सोटे चाकू हाथ में लिये, 'जय गोपाल जी' का शोर मचाते आये । तब स्वामी जी (उनके) उस घमंड को देख उठ खड़े हुए और व्याख्यान बन्द कर दिया । वे लोग भी हाय-हू मचाते हुए चले गये ।'

देसीराम, सारस्वत ब्राह्मण, धनी पुतरा मुहल्ला तोतला कायथान, मुलतान, निवासी ने वर्णन किया, 'जब स्वामी जी यहां आये तो हम नित्य दोनों समय जाया करते थे । वे यह नहीं कहते थे कि ब्राह्मण को न मानो अपितु यह कहते थे कि जो ब्राह्मण धर्म-कर्म करता हो, उसको मानना चाहिए । वे यह नहीं कहते थे कि ब्राह्मण को गाय मत दो प्रत्युत यह कहते थे कि गाय वैतरणी से पार नहीं उतार सकती, यह बात मिथ्या है । हां, ईश्वरनिमित्त गोदान ब्राह्मण को देना पुण्य है, पर मिथ्या नहीं ।'

रेशमी छाता हम साधुओं के किस काम का ?—एक दिन एक ब्राह्मण उनके लिए रेशमी छाता लाया और उनके पास रख दिया । स्वामी जी ने कहा कि यह कैसा रखा है ? उसने कहा कि महाशय ! आप के लिए लाया हूं । स्वामी जी ने कहा कि 'सुनो भाई ! हम साधु लोग हैं, हमारा यह काम नहीं । सरदी में जाएं तो हमको सरदी नहीं सताती और गरमी में जाएं तो धूप नहीं सताती । यह तो किसी नटवे को दो, जो लाहौरी जोड़ा पहन कर खूब गलियों में घूमा करे । हमको ऐसी वस्तु नहीं चाहिए ।' पारसियों ने प्रस्थान के समय (तीन व्याख्यान के पश्चात्) सात सौ रुपया भेंट किया था । मुलतान का कोई पंडित शास्त्रार्थ के लिए न जाता था । वे अभी लाहौर में थे कि मैं यहां के पंडितों से पूछा करता था । वे यही कहते थे कि 'वह बड़ा बुद्धिमान् है और उसने अपनी शक्ति से यह प्रणाली बना ली है ।' सब लोग उन का व्याख्यान सुनने जाया करते थे ।

पंडित देवीदास जी, हरम दरवाजा-मुलतान निवासी, उनके पास प्रतिदिन एक बार जाया करते थे । जिन दिनों वे (स्वामी जी) आये तो होलियों के दिन थे । एक दिन स्वामी जी अपनी कथा कर रहे थे कि गुसांई जी बाग के द्वार के आगे से निकले और घड़ियाल बजाया । स्वामी जी ने कहा कि 'देखो ! घड़ियाल बजा कर लोगों का ध्यान हटाता है; उसको कहो

कि ठहर के बजावे ।' जब उसने पुनः बजाया तो पुलिस के सिपाही ने जाकर बजाने वाले को थप्पड़ लगाया । इसके पश्चात् होलियों की समाप्ति तक स्वामी जी ने छावनी में व्याख्यान दिये । स्वामी जी के व्याख्यान में ७-८ पारसी लोग आया करते थे और कुछ सज्जन स्वामी जी को सदर बाजार में ले गये थे ।

कुरुक्षेत्र प्रदेश का एक ब्राह्मण स्वामी जी के पास आया । उसने बहुत से टीके लगाये हुए थे । स्वामी जी के सामने उसने संस्कृत के श्लोक भी अंड-बंड पढ़े । तब स्वामी जी ने कहा 'समझ के पढ़ो, अशुद्ध पढ़े हुए हो । विद्यादिक (कर्म) छोड़कर आप भीख मांगने पर लग पड़े हो !' इस पर वह कुछ न बोला और चला गया । वे प्रायः कहा करते थे कि काशी में एक बालशास्त्री और एक संन्यासी महात्मा[१०] हैं, और कोई विद्वान् नहीं ।

मिर्जा गुलाम अहमद कादियानी का विज्ञापन ला० मूलराज ने, जो यहां की कमिश्नरी के सरिश्तेदार थे, स्वामी जी को सुनाया था । (उनका आशय यह था) कि यदि स्वामी जी उस का उत्तर दें तो वह कुछ पुरस्कार देना चाहता है । स्वामी जी ने लाला साहब को कुछ कहा था कि उसको लिख दो कि हम समझा देंगे ।

मद्यपान, मांसभक्षण, व्यभिचार आदि का प्रबल निषेध—'सरकार की ओर से ४ सिपाही प्रबन्ध के लिए नियत थे ताकि कोई उपद्रव न करने पावे । गौतम, अहिल्या और इन्द्र की कथा का खंडन किया और कहा कि यह ब्राह्मणों ने व्यर्थ उनकी निन्दा की है । और इसी प्रकार जो यह कहते हैं कि कृष्ण जी ने चीर चुराये थे, यह बिलकुल झूठ है । गोमेध और अश्वमेध आदि यज्ञों का खंडन करते थे कि ऐसा (गौ या अश्व आदि का वध) शास्त्र में कदापि (विहित) नहीं; यही लोगों की समझ का फेर है । कहते थे कि मांस, मदिरापान और इसी प्रकार व्यभिचार करना बड़ा पाप है । कहते थे कि जो मद्य पीने वाला होता है, वह उसी प्रकार दुःख पाता है जिस प्रकार पिंजरे में (पक्षी बन्द हो) और उसके नीचे आग लगा देने से पक्षी दुःखित होता है । अपने आप को उदाहरण के रूप में उपस्थित करते थे कि मैं कोई मांस खाने वाला नहीं हूं, जिसका जी चाहे युद्ध करे । स्वाद केवल मसाले का है, मांस का नहीं । मांस कोई बल नहीं देता । लड़कियों के जो लोग टके लेते हैं, उसका भी प्रबल युक्तियों से खंडन करते थे यह जो बिठला कर टके लेते हैं, यह ऐसा ही है जैसे कोई वेश्या के टके लेता हो । वे तो थोड़े लेते हैं परन्तु यह तो बराबर गिनकर लेते हैं । यह कदापि नहीं करना चाहिए ।'

ला० भोलानाथ, खत्री खन्ना, मुहल्ला घाटरियां मुलतान निवासी ने कहा—'फागुन के व्यतीत होने और होलियों के दिनों में संवत् १९३४ में स्वामी जी यहां आये । होलियों के पश्चात् गये । ३५-३६ दिन ठहरे थे । एक ब्राह्मण के लड़के ने उन दिनों मुझे सूचना दी कि एक भारी पंडित विद्या में समुद्र के तुल्य, आये हुए हैं; पर हैं खारे जल । जिस पर मैंने कहा, अच्छा चलकर सुनें तो सही और मैं और वे दोनों बेगी के बाग में व्याख्यान सुनने गये । उस समय हजारों मनुष्य एकत्रित थे और स्वामी जी महाराज सूर्य के समान लोगों का तिमिर दूर कर रहे थे । उस समय बड़े-बड़े धनवान, रईस, सम्पत्तिशाली, सरकारी कर्मचारी और नगर के रहने वाले प्रत्येक वर्ण के मनुष्य उपस्थित थे । उनके सत्योपदेश भक्तजनों को ऐसे थे, जैसे गुलाब के फूल और नीच जनों को (ऐसे थे) जैसे कांटे । स्वामी जी ने गायत्री का उच्चारण किया और कहा कि यह मंत्र सबसे श्रेष्ठ है और यह भी कहा कि चारों वेदों का यही मूल गुरुमंत्र है । सब ऋषि-मुनि इसी का जाप करते थे । आजकल के लोग जो विभिन्न देवताओं के पुजारी और कोई नानक मत, कोई कबीर और कोई गोकुलिया गुसांई, कोई वाममार्गी हैं; सबने यह मन्त्र छोड़ दिया और नये-नये मन्त्र लोगों ने घड़ लिये । लोग मद्य-मांस में प्रवृत्त होकर सत्यधर्म से पतित हो गये । जब से मद्यमांस का प्रचार हुआ, लोग सत्यधर्म से पतित हुए तब से ही देवभूमि में अनार्य्य लोग आकर राज करने लगे । यह भी कहा कि देश में राजा को चाहिए कि दो ओर बस्ती, एक ओर जंगल एक ओर हरी घास के मैदान, गाय आदि के लिये रखे क्योंकि इससे देश की उन्नति होती है । गोवध की हानियां और रक्षा के लाभ बतलाये थे । एक दिन स्वामी जी

ने व्याख्यान में यह आधा श्लोक पढ़ा '**श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः ।**' तब मैंने आधा टुकड़ा और पढ़ दिया—'**ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव केवलम् ॥**' सिपाही ने मुझे डांटा कि क्यों कोलाहल करता है । स्वामी जी ने उसको रोका कि कुछ मत कहो, उसने कुछ बुरा नहीं किया ।'

'पण्डित जस्साराम कहरोड़ निवासी ने चिट्ठी भेजी थी जो बहुत अशुद्ध थी । स्वामी जी ने उसकी अशुद्धियां साधारण जनता में प्रकट कीं कि देखो शास्त्रार्थ के लिए उद्यत हो जाते हैं परन्तु संस्कृत भी शुद्ध नहीं लिख सकते ।'

'गोकुलिया गुसांइयों की लीला स्वामी जी बहुत प्रकट करते थे; इसलिए गुसांइयों के बालकों को लोग उठा लाये थे । आकर नक्कारा बजाया और 'जय गोपाल', 'जय गोपाल' का शोर मचाया । पुलिस के सिपाही ने उनको रोक दिया और घुड़की दी । कोई गोकुलियों का चेला या गोस्वामी उनका सामना न कर सका । स्वामी जी गोस्वामियों के विभिन्न सम्प्रदायों-बिहार जी वाले, गंजामाली, बेटी वाले, ब्रह्मसम्बन्धी आदि का जी खोल कर खण्डन करते रहे । यहां का कोई पण्डित सामने न जा सका ।'

'एक दिन वार्ता चली । एक हिन्दू व्यक्ति ने यह कहा कि बाबा ! तू 'तत्वमसि' का अर्थ तो कर दिखा । मैंने कहा कि अरे मूर्ख ! ऐसा मत कह, महात्मा से चर्चा करता है परन्तु तुझको तो पढ़ना भी नहीं आता । तब उसने मुझसे कहा कि भोला ! मैंने तुमसे नहीं पूछा, बाबा से पूछा है । मैंने कहा कि अरे बाबा ! तेरे तक (तेरी दृष्टि में) ही में नहीं आता; वह तो विद्या का भरा समुद्र है ।'

'तब स्वामी जी ने कहा कि भविष्य में ऐसे मूढ़ों से हम बात नहीं करेंगे । जो संस्कृत में शास्त्रार्थ करेगा उससे ही बातचीत करेंगे ।' तब मैंने कहा कि महाराज ! ऐसे गंवार लोग आपके गुणों को नहीं जानते क्योंकि—'**गुलस्त स्वामी दूर चश्मे दुश्मनां खारस्त**' अर्थात् स्वामी फूल है और शत्रुओं की आंख कांटा है, वह उससे दूर रहे । स्वामी जी फारसी का यह वाक्य सुनकर हंसे और बोले कि यह क्या कहा ? तब मैंने और अन्य उपस्थित लोगों ने उसका अनुवाद कर सुनाया । उसके पश्चात् वह मुझको सदा मेरे प्रश्नों का भली प्रकार उत्तर देते और मेरी बात पर विचार करते थे ।

'जो लोग कहते हैं कि वे दान देने से रोकते थे, यह अशुद्ध है । वे कहते थे कि 'मुलतान जैसे नगर में यदि सात वर्ष रहूं, ब्राह्मणों के बच्चों के लिए पाठशाला बनाऊं; वह भीख मांगना बिलकुल छोड़ दें । (अब तो) चुंगी (भिक्षा) से उनका निर्वाह है । 'मैं चारों वेदों की टीका करूं ।' वास्तव में स्वामी जी दया का स्वरूप थे ।'

'जब वह पुरुषसिंह मैदान में आया तो सब गीदड़ छिपते फिरे । कोई किसी मत का विद्वान् उनके सामने न आया । मैं प्रायः पण्डितों के पास जाता था और कहता था कि शास्त्रार्थ करो परन्तु वे इसके बदले में मुझे किरानी कहते थे । न कुछ बोलते और न कभी सामने आते थे ।'

'जब स्वामी दयानन्द सरस्वती जी मुलतान सभा के बुलाने पर यहां पधारे थे तो वे बेगी के बाग में उतरे थे । वहां वे प्रतिदिन व्याख्यान दिया करते थे और प्रथम मैं और मेरे मित्र तथा मुसलमान और ईसाई बहुत-सी शंकाएं लेकर उस स्थान पर उपस्थित हुए । उस समय वे व्याख्यान दे रहे थे । मैं वहां व्याख्यान सुनता रहा । थोड़े समय के पश्चात् उन्होंने मेरी शंका का उत्तर एक-एक करके देना आरम्भ किया । मैं अत्यन्त चकित हुआ । इसी प्रकार सब मित्रों ने वर्णन किया कि जो शंकाएं उनकी थीं, उनके उत्तर उनको मिल गये थे । यहां तक कि सबके मुख बन्द हो गये । इस कारण से हम सब ने विश्वास कर लिया कि वे योगी थे । इसके पश्चात् किसी हिन्दू, मुसलमान या ईसाई ने उनसे कोई प्रश्न न किया ।'

'एक बार उनसे मांस-भक्षण पर बातचीत हुई । उन्होंने कहा मांस खाना वेदों के विरुद्ध है, उसका खाना अनुचित है । मैंने कहा कि उसके खाने में कोई हानि प्रतीत नहीं होती । उन्होंने उत्तर दिया जो आज्ञा परमात्मा की है उसके अनुसार करना लाभदायक होता है । ईश्वर की समस्त आज्ञाएं हमारे लिए लाभदायक हैं । आज्ञाभंग करने में लाभ तो एक ओर रहा, हानि सहन करनी पड़ती है । मैंने फिर निवेदन किया कि मांस खाने से कोई हानि नहीं होती है, और न हमको अब तक कोई हानि प्रतीत हुई है । उन्होंने कहा ईश्वरीय आज्ञाएं दो प्रकार की हैं, एक वह जो शरीर के साथ सम्बन्ध रखती हैं, दूसरी, जो आत्मा के साथ सम्बन्ध रखती हैं । यदि शरीर से सम्बन्ध रखने वाली किसी आज्ञा के विरुद्ध चला जावे तो कष्ट होगा और स्वास्थ्य में बाधा पड़ेगी । इसी प्रकार यदि कोई आज्ञा जिसके पालन से आत्मिक प्रसन्नता प्राप्त होती है, न मानी जावे तो आत्मा को वे बातें प्राप्त नहीं होती हैं जो उसको प्राप्त होनी चाहियें ।'

स्वामी जी की बताई विधि से शाकाहार का एक अद्‌भुत अनुभव—'मांस खाना आत्मा के लिए हानिप्रद है; सांसारिक मनुष्यों को इसकी प्रतीति नहीं होती । मांस खाने वाले को योगविद्या नहीं आती है और न कोई सिद्धि उसको प्राप्त होती है अर्थात् मांस खाने वाला गुणग्राहकता तथा आस्तिकता से वंचित रहता है । वेदों का अभिप्राय यही है कि प्रत्येक व्यक्ति गुणग्राही, न्यायशील और आस्तिक हो । इसलिए वेद में (मांस भक्षण का) निषेध किया गया है । यदि तुमको विश्वास नहीं होता तो तुम परीक्षा कर लो । इस बात पर उन्होंने मुझको एक बात बतलाई, उसकी विधि और वैसा करते हुए उचित आहार बताया । मैं कथनानुसार उसको ३० दिन तक निरन्तर करता रहा । यद्यपि मैं केवल चावल, दही और दाल ही खाता रहा तथापि इतना शक्तिशाली हुआ कि पहले कभी उतना नहीं हुआ था । यह शक्ति ऐसी प्रसन्नतादायक और आरोग्यदायक थी कि मैं उसकी विशेषता शब्दों द्वारा वर्णन नहीं कर सकता । मस्तिष्क ऐसा उज्ज्वल हुआ जैसा प्रातः समय सूर्योदय से समस्त संसार उज्ज्वल होता है और मुझमें वे लक्षण स्पष्ट प्रकट होने लगे कि जिनसे मैं भविष्य का वृत्तान्त बतला सकता था । मुझको उस समय ऐसी प्रसन्नता अनुभव होती थी कि जिसको मैं किसी सांसारिक भाषा में प्रकट नहीं कर सकता । यह प्रसन्नता केवल आत्मा ही अनुभव कर सकती है । इकत्तीसवें दिन मेरा लड़का मेरे सामने खाना लाया, मैं सहसा उसके साथ सम्मिलित हुआ; उसमें मांस भी था । जब मैं उसको खा चुका तो उस समय मुझको प्रतीत हुआ कि मेरा मस्तिष्क अन्धकारमय हो गया और वे समस्त बातें जो पहले मुझमें थी, तत्काल उड़ गईं । मैं बहुत पछताया, परन्तु क्या हो सकता था ! अब अवधि में से केवल दस दिन शेष रह गये थे । उस समय से इस समय तक मैं इस अवस्था को वापस नहीं ला सका । यह मेरा अनुभव है जो मैं अब प्रकट करता हूं ।'

'एक दिन स्वामी जी से मैंने पूछा कि अपकी दृष्टि में मैक्समूलर साहब संस्कृतविद्या में कैसी योग्यता रखते हैं ? उन्होंने यह शब्द कहे कि मैक्समूलर वेदविद्या में अभी एक प्रकार से 'बालक' ही है ।[९१] जब तक कोई गुरु उसको शिक्षा न दे, तब तक वह सायण और महीधर का अनुकरण कभी नहीं छोड़ेगा । उसको इस समय तक वेदों के स्पष्ट अर्थ विदित नहीं हुए हैं; गूढ़ अर्थ तो उसको इस आयु में विदित नहीं हो सकते । ये गुप्त अर्थ एक हृदय से दूसरे हृदय को प्राप्त होते चले आते हैं । यह वह बातचीत है जो मैंने उनसे की थी और अच्छी प्रकार स्मरण है, इसे अब प्रकट करता हूं ।' इति ।
(पंडित किशननारायण अनुवादक)

मोहनलाल, हेडक्लर्क, दफ्तर लोकल फंड मुलतान ने वर्णन किया—'स्वामी जी ने नगर के पंडितों के पास शास्त्रार्थ करने के विज्ञापन भिजवाये । पंडित लोगों में से कोई शास्त्रार्थ करने के लिए न आया और न किसी ने उत्तर भेजा । पढ़े लिखे लोग नगर और छावनी से स्वामी जी का व्याख्यान सुनने आया करते थे और व्यापारी लोग भी आते थे परन्तु बहुसंख्या

शिक्षितों की ही हुआ करती थी क्योंकि विरोधी लोगों ने प्रसिद्ध कर रखा था कि स्वामी जी लोगों को ईसाई मत की ओर आकर्षित करने के लिए सरकार की ओर से नियुक्त हुए हैं परन्तु जब विभिन्न विषयों पर स्वामी जी ने व्याख्यान दिये तो उस समय नगर के पंडितों के मुख से यह सुना था कि स्वामी जी विद्या के सागर तो हैं परन्तु खारा समुद्र; क्योंकि ब्राह्मणों के निर्वाह का विचार नहीं करते। मुझ को स्मरण आता है कि स्वामी जी अपने व्याख्यान को किसी समाचारपत्र में प्रकाशित कराया करते थे, परन्तु विदित नहीं कि कौन से समाचारपत्र में। इसके विषय में कदाचित् बाबू रलाराम सोंधी, एकाउण्टैण्ट निर्माण विभाग को जो ब्रह्मसमाज के मुख्य सदस्य हैं, पता होगा। जब स्वामी जी व्याख्यान देते थे तो मुंशी मूलराज, पैंशनर सुपरिण्टैण्डैण्ट चीफ कोर्ट तथा धर्मसभा अमृतसर के प्रधान और ला० देवीदास (आजकल) न्यायाधीश तहसील अम्बाला हैं, अपने संशय नोट करते जाते थे और व्याख्यान के पश्चात् स्वामी जी के साथ शास्त्रार्थ करते। यद्यपि स्वामी जी उनके संदेह निवृत्त करने के लिए बहुत-सी युक्तियों द्वारा विस्तारपूर्वक उनको समझाते थे परन्तु उनका संतोष नहीं होता था। इसलिए स्वामी जी उनको हठी कहा करते थे।' स्वामी जी के व्याख्यान निम्नलिखित विषयों पर सुने थे—परमेश्वर निराकार है न कि साकार, वेद ईश्वरीय ज्ञान है, आर्यधर्म की व्याख्या, आवागमन, नवीन वेदान्त मत खंडन, खान-पान में पथ्यादि।

एक दिन स्वामी जी के व्याख्यान की समाप्ति के पश्चात् सेठ हरमुज जी पारसी भूतपूर्व कोतवाल मुलतान छावनी तथा पैंशनर ने प्रश्न किया था कि जब स्वामी जी के कथनानुसार आर्यावर्त के रहने वाले सब भाई हैं तो फिर क्या कारण है कि हिन्दू भाई हमारे साथ खाने-पीने से परहेज रखते हैं। चूंकि यह ऐसा प्रश्न था जिसका उत्तर प्रत्येक मनुष्य स्वामी जी के मुख से सुनना चाहता था, इसलिए सब मनुष्य उस समय ठहर गये और जब प्रश्नोत्तर आरम्भ हुए तो स्वामी जी ने पूछा कि आपस में रल-मिलकर खाने के क्या लाभ हैं और न खाने में क्या हानि? सेठ हरमुज जी ने कहा, रल-मिलकर खाने से प्रीति और प्रेम अधिक होता है और परहेज करने से फूट उत्पन्न होती है। स्वामी जी ने कहा कि आर्यावर्त की नीति के अनुसार रल-मिलकर खाना वर्जित है क्योंकि बहुत से रोग हैं जो एक-दूसरे के साथ झूठा खाने या पानी पीने से अथवा हुक्का पीने से या बैठने से तत्काल दूसरे पर प्रभाव कर जाते हैं। पं. जसवन्तराय एसिस्टेंट सर्जन ने उस समय इन रोगों की व्याख्या की। दूसरे यदि इकट्ठा खाने से प्रीति और प्रेम अधिक होती तो अमीर काबुल, रोम के राजा को रूस के सम्राट् के आक्रमण के समय सहायता देने से क्यों इन्कार करते? इससे प्रकट है कि प्रीति और प्रेम बढ़ाने के उपाय दूसरे हैं न कि रल-मिलकर खाना। इकट्ठा खाने से प्रीति बढ़ती तो मुसलमान भाई कभी एक दूसरे के साथ झगड़ा न करते परन्तु वे एक-दूसरे के प्राणों के शत्रु बन जाते हैं।

तृतीय परिच्छेद

पश्चिमोत्तर प्रदेश, बिहार, राजपूताना तथा बम्बई में धर्म-प्रचार

(जुलाई, सन् १८७८ से जून, १८८३ तक)

[इस अवधि में स्वामी जी क्रमशः रुड़की, अलीगढ़, मेरठ, दिल्ली, अजमेर, पुष्कर, मसूदा, जयपुर, रिवाड़ी, दिल्ली, मेरठ, रुड़की, हरिद्वार, देहरादून, मेरठ, अलीगढ़, जलेसर, मुरादाबाद, बदायूं, बरेली, शाहजहांपुर, लखनऊ, कानपुर, फर्रूखाबाद, प्रयाग, मिर्जापुर, दानापुर, काशी, मसूदा, ब्यावर, चित्तौड़, इन्दौर, बम्बई, उदयपुर तथा शाहपुरा में रुक कर धर्मप्रचार व शास्त्रचर्चा आदि करते रहे।—सम्पादक]

रुड़की में धर्म-प्रचार (२५ जुलाई, सन् १८७८ से २१ अगस्त, १८७८ तक)

पंडित उमरावसिंह महोदय के मुख से—'जून, सन् १८७८ में ला० मुरलीधर वैश्य, पंजाब से पधारे और उन्होंने स्वामी जी की महत्ता का वृत्तान्त, समाजों के उद्देश्य और स्थापना का वर्णन करके कहा कि पंजाब में इस प्रकार आर्यसमाज स्थापित हुए हैं। सुनकर साधारणतया चित्त में उत्सुकता उत्पन्न हुई और उक्त लाला जी द्वारा समझाने के अनुसार एक पत्र प्रार्थना के रूप में यहां से कुछ रईसों और सरकारी कर्मचारियों के हस्ताक्षर कराकर स्वामी जी की सेवा में भेजा गया और प्रार्थना की गई कि कृपा करके आप कुछ समय के लिए यहां पधारें।'

'स्वामी जी की ओर से उत्तर आया कि इस समय हमारा संकल्प अमुक स्थान की ओर जाने का है। सम्भवतः वहां इतना समय लगेगा और यह नहीं कह सकते कि वहां से प्रस्थान के समय कहां जाना आवश्यक प्रतीत होता हो; इसलिए इस समय रुड़की आने का कोई वचन, समय बांध कर, नहीं दिया जा सकता। परन्तु जिस समय सम्भव प्रतीत होगा, आपको सूचना दी जायेगी।

'हम उस समय तो एक प्रकारसे निराश हो गये परन्तु बहुत थोड़े समय के पश्चात् स्वामी जी का दूसरा कृपापत्र आया, जिसमें लिखा था कि कुछ विशेष हेतुओं से पहला निश्चय स्थगित किया गया और अब तीन दिन के भीतर रुड़की आ सकते हैं; यदि आप उचित न समझें तो सूचित करें। सूचना न देने की अवस्था में समझा जायेगा कि आपको आने से विरोध नहीं। इस पत्र के आने से हम सबको अत्यन्त प्रसन्नता हुई और स्वामी जी के पधारने से पहले सिविल स्टेशन में लाला शम्भुनाथ देहलवी का बंगला उनके निवास के लिए निश्चित किया गया। २५ जुलाई, सन् १८७८ को स्वामी जी ब्रह्मानन्द, भीमसेन तथा ५-६ अन्य मनुष्यों सहित, प्रातःकाल पधारे और बंगले में निवास किया। प्रायः नगर के रईस और विशेषतया थाम्सन कालिज के अध्यापक और इंजीनियरिंग कक्षा के छात्र स्वामी जी की सेवा में उपस्थित हुए और पूछताछ करते रहे, जिससे उनको साधारणतया 'आर्यसमाज' के उद्देश्य का और स्वामी जी के मिशन का परिचय प्राप्त हुआ। जो लोग स्वामी जी से मिलने जाया करते थे उनमें कुछ मुसलमान भी सम्मिलित थे। उन्होंने उस समय तक के स्वामी जी के वचनों को, जहां तक उनके बाहरी आचरण से विदित होता था, पसंद किया और (वे स्वामी जी की) प्रशंसा करते रहे। एक और बात भी वर्णन करने योग्य यह है कि स्वामी जी के पधारने से कुछ समय पूर्व, एक मौलवी साहब इसी नगर में बाजार में, ईसाइयों और हिन्दुओं के विरुद्ध उपदेश दिया करते थे। हिन्दू उनसे बहुत कम शास्त्रार्थ किया करते थे; कारण यह था कि उनके (मौलवी साहब के) चित्त में कठोरता और सभ्यताविरुद्ध भावों की अधिकता थी। यहां तक कि पादरी हापनर साहब से मौलवी साहब का झगड़ा तक हो गया था। जब मुसलमानों को यह वृत्तांत विदित हुआ कि स्वामी जी महाराज

यहां व्याख्यान भी देंगे, तब सम्भवत: उनको यह सन्देह हुआ कि कदाचित् हमारे मौलवी साहब के उत्तर में हिन्दुओं ने किसी पंडित को बुलाया है और यह विचार ऐसा फैला कि व्याख्यानों के आरम्भ होने से पहले मुसलमानों के चित्त, जैसा कि उनका स्वभाव है, फिरे हुए दिखाई दिये ।

पहले-पहल मुसलमानों ने भी प्रशंसा की—'जिस दिन स्वामीजी पधारे उसी दिन सायं समय स्वामी जी ने एक सभा के सामने एक अत्यन्त चित्ताकर्षक भाषण मेरी प्रार्थना पर ईश्वरीय ज्ञान के विषय में दिया । इसके शब्द-शब्द से स्वामी जी की पूर्ण योग्यता प्रकट हुई । विशेषतया इसी भाषण को सुनने से मुसलमानों के मन में स्वामी जी के महत्व का अनुभव हुआ और उन्होंने उस व्याख्यान की बहुत प्रशंसा की । स्वामी जी के इस भाषण में नगर के प्राय: सभी शिक्षित व्यक्ति उपस्थित थे, जिनमें अधिक संख्या कालिज के उन अध्यापकों की थी जो उनके दर्शनार्थ बंगले पर गये थे ।

कर्नल आल्काट की चिट्ठी और उसका उत्तर—उसी दिन स्वामी जी ने कर्नल आल्काट महोदय की अमरीका से आई एक चिट्ठी सभा में उपस्थित लोगों को दिखाई, इसका उत्तर अभी तक नहीं गया था और मैंने उसका अनुवाद करके सब को सुनाया और उसका उत्तर भी उनके कथनानुसार मैंने लिखकर अमरीका भेजने के लिए हरिश्चन्द्र चिन्तामणि के पास भेज दिया । इस उत्तर में स्वामी जी महाराज ने अपने मन्तव्यों को अत्यधिक स्पष्टता और विस्तार के साथ प्रकट किया था; इसको सुनकर श्रोताओं को भी स्वामी जी के मत का अच्छी प्रकार परिचय प्राप्त हो गया । लगभग ५० मनुष्य उस समय बैठे थे । ला० सरजनदास और कन्हैयालाल (उस समय इंजीनियरिंग कक्षा के छात्र और अब इंजीनियर) भी वहां उपस्थित थे । स्वामी जी महाराज प्राय: चर्चा करते हुए यह भी कहा करते थे कि खेद है कि अन्य मत और अन्य देश वालों को हमारे धर्म के अन्वेषण की इतनी उल्लेखनीय रुचि हो और हम इस भूमि के रहने वाले और अपने आप को आर्य पुरुषों की सन्तान समझने वाले, कानों में रुई ठूंसे हुए बैठे रहें ।

अस्पृश्य माने जाने वाले से प्रेम-व्यवहार—स्वामी जी की इन बातों को सुनकर श्रोताओं में से बहुत लोग पूर्णतया लालायित हो गये । यहां तक कि सफरमैना पल्टन का एक मजहबी सिख, जो सफेद कपड़े पहने हुए था और हमारी सभा में कुछ अधिक सतर्कता से सुनता हुआ बैठा था, अत्यन्त रुचिपूर्वक स्वामी जी की प्रत्येक बात को सुनता रहा । अकस्मात् उसी समय कैम्प का डाकिया मुनीर खां स्वामी जी महाराज की डाक ले आया और उसने उस मजहबी को देखकर कोलाहल मचाना आरम्भ किया; यही नहीं, अपितु वह उसको मारने पर भी उद्यत हो गया और चिल्लाकर बोला—'अरे ! मनहूस, नापाक (अशुभ, अपवित्र) तू ऐसे महान् और जगत्प्रसिद्ध व्यक्ति की सेवा में इतनी असभ्यता से आ बैठा और अपनी जात उनको नहीं बताई !' उसी समय पूछताछ करने पर विदित हुआ कि वह व्यक्ति मजहबी था । वह व्यक्ति अत्यन्त लज्जित होकर पृथक् जा बैठा । मुनीर खां ने प्रयत्न किया कि वह व्यक्ति निकाल दिया जाये । स्वामी जी महाराज ने अत्यन्त कोमलता और सभ्यता से कहा कि निस्सन्देह इस व्यक्ति से थोड़ी भूल हुई परन्तु इसको दण्ड भी पर्याप्त मिल गया है । अब उसके पृथक् बैठकर सुनने में कोई हानि नहीं और इससे कोई झगड़ा नहीं करना चाहिए । उसने आंखों में आंसू भरकर और हाथ जोड़कर कहा कि मैंने किसी की कुछ हानि नहीं कि और सबसे पीछे जूतियों के स्थान पर पृथक् बैठा हूं । स्वामी जी ने डाकिये से कहा कि ऐसा अत्याचार करना तुम्हें उचित नहीं था और समझाया कि परमेश्वर की सृष्टि में सब मनुष्य बराबर हैं और उससे कहा कि तुम नित्य आकर उपदेश सुनो और तुमको यहां कोई घृणा की दृष्टि से नहीं देखता । मुसलमानों की दृष्टि में चाहे तुम कैसे ही हो । स्वामी जी के यह कहने से वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ फिर नित्य व्याख्यान में आता रहा ।

"इस सभा में स्वामी जी महाराज की बातचीत के समय वह अवस्था थी कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता । कोई व्यक्ति ऐसा न था जिसके प्रश्न का उत्तन न मिला हो । रात्रि के समय जब सभा विसर्जित हुई; तब स्वर्गीय ला० रामसरनदास, सब-ओवरसियर जिला बुलन्दशहर और मैं शेष रह गये । जब स्वामी जी महाराज वेदभाष्य का काम कर

चुके तब उन्होंने हम दोनों से बातचीत आरम्भ की । जब रात बहुत अधिक व्यतीत हो गई तो स्वामी जी ने कहा कि तुमको घर जाने में कष्ट होगा, यहीं विश्राम करो । परन्तु उत्तर दिया गया कि कोई कष्ट नहीं और हम चले आये । (स्वामी जी) इसी प्रकार कई दिन तक वहीं उपदेश करते रहे ।

दूसरे दिन प्रातःकाल और पूर्ववत् भीड़ हुई और शास्त्रार्थ और बातें होती रहीं । इसी दिन निश्चय हुआ कि नगर में व्याख्यान आरम्भ कराया जावे और मैजिस्ट्रेट साहब से आज्ञा प्राप्त करके आरमन स्कूल के समीप एक मैदान व्याख्यान के लिए निश्चित किया और दरी आदि आवश्यक वस्तुओं से उसको सजाया गया ।

दिनांक ४ अगस्त, सन् १८७८ को पांच बजे सायं समय व्याख्यान का समय निश्चित किया गया । ४ बजे के समीप बग्घी लेकर ला० पन्नालाल और मैं, स्वामी जी की सेवा में पहुंच गये । स्वामी जी ने घड़ी को देखकर कहा कि अभी सवा चार बजे हैं और मार्ग केवल पाव घंटे का है; आध घंटा समय से पूर्व क्यों पहुंचूं ? मैं पांच बजे से केवल पांच मिनट पहले पहुंचना चाहता हूं । ऐसा ही हुआ और ठीक पांच बजे व्याख्यान आरम्भ कर दिया । उस समय लगभग ५-६ सौ मनुष्य उपस्थित थे ।

पहला व्याख्यान सत्यधर्म और वेदों पर था । प्रायः श्रोताओं ने बहुत पसन्द किया किन्तु नगर के पंडित न आये और कहते रहे कि हम स्वामी जी का दर्शन करना नहीं चाहते । हिन्दुओं में से बहुत से उन लोगो ने भी, जिनको स्वामी जी के नाम से भी विरोध था, व्याख्यान सुना (सुनकर) वे यों कहने लगे कि इन बातों से हमको भी विरोध नहीं; परन्तु हमको भय है कि यह कोई नया वेदमत प्रचलित करना चाहते हैं । कहीं ऐसा न हो कि अंग्रेजों के भेजे हुए हों ।

'आवागमन' सिद्धान्त के समर्थन में प्रबल युक्तियां—'दूसरे दिन भी वहीं व्याख्यान हुआ । विषय मूर्तिखंडन और आवागमन था । असिस्टैण्ट सर्जन डा० सुरेशचन्द्र महोदय ने सुनकर कहा कि मैंने अपनी सारी आयु में आवागमन के विषय में ऐसी प्रबल युक्तियां कभी नहीं सुनी थीं और मुझको आवागमन पर विश्वास ही न था । परन्त अब मुझको अपनी भूल का पता लग गया और सम्भव है कि मैं आवागमन को मानने लगूं । उन्हीं के मुख से विदित हुआ कि स्वामी जी महाराज बंगाल में भी बहुत से पंडितों से शास्त्रार्थ कर चुके हैं ।

पौराणिक पंडित का हास्यास्पद व्यवहार—नगर के रईसों ने एक प्रसिद्ध पंडित की सेवा में (जो उस समय आरमन स्कूल में अध्यापक थे और जिनके पिता पूर्वमीमांसा और व्याकरण के बहुत बड़े विद्वान् सुने जाते हैं और कनखल में रहते हैं, और स्वयं यह पंडित जी भी बड़े विद्वान् समझे जाते थे ।) जाकर प्रार्थना की कि आप शास्त्रार्थ के लिए तैयार हूजिये और स्वामी दयानन्द सरस्वती को अपने वेद ज्ञान का परिचय देकर निश्चय करा दीजिए कि वेदों में मूर्ति (पूजन का) मंडन पाया जाता है । पंडित जी ने कहा कि मूर्तिपूजा तो वेद में विद्यमान है और प्राचीनकाल से चली आती है । उसके मंडन की आवश्यकता ही क्या है (वाह रे प्रमाद !) और न आप लोगों को इसमें सन्देह करना चाहिए । स्वामी दयानन्द पंडित बड़े वाचाल व्यक्ति हैं और उनके कथन का कोई उत्तर नहीं दे सकता, इसलिए मैं शास्त्रार्थ करने में विवश हूं परन्तु अपने मकान पर आपके सामने व्याख्यान दे दूंगा । जिस दिन स्वामी जी का तीसरा व्याख्यान था, उसी दिन, स्वर्गीय मुंशी चिरंजीलाल के मकान पर हिन्दुओं की एक सभा हुई और उक्त त्रिलोकचन्द जी ने प्रतिज्ञानुसार वेद पर व्याख्यान देना आरम्भ किया । थाम्सन कालिज के पुस्तकालय से जर्मनी का छपा हुआ ऋग्वेद आया और पंडित जी महाराज के आगे रखा गया । आध घंटे तक पंडित जी उक्त पुस्तक के पृष्ठ उलटते रहे और प्रत्येक व्यक्ति को पृथक्-पृथक् सम्बोधन करते रहे कि 'भाई देखो ! यह वेद है और ऋग्वेद है, मेरा छापा हुआ नहीं और मेरा भाष्य किया हुआ नहीं । इस पर ऋषियों का भाष्य है और विलायत का छपा हुआ है । तुम इसको मानो, स्वामी दयानन्द की बात मत मानो ।' भीड़ में से किसी मनुष्य ने कहा कि महाराज यह भी बताइये कि इसमें क्या लिखा है, जिससे किसी को शिकायत न रहे । तब आपने 'सहस्रशीर्षा' आदि मंत्र पढ़कर सुनाया कि इससे मूर्तिपूजा सिद्ध होती है । तत्पश्चात् शंख और घड़ियाल बजा और 'जयराम जी' की होकर सभा विसर्जित हुई ।

मुसलमानों द्वारा उपद्रव की चेष्टा—उधर स्वामी जी का व्याख्यान नियत समय पर था। सम्भवतः बाइबिल, कुरान और वेद के विषय पर था। इससे पहले ही मुसलमान बहुत विरोधी हो गये थे और उपद्रव के लिए उद्यत प्रतीत होते थे। यहां तक कि व्याख्यान में बाधक भी हुए और कोलाहल करते रहे। पुलिस भी मुसलमान थी इस कारण किसी प्रकार की सहायता नहीं दे रही थी और अन्य सरकारी कर्मचारी भी मुसलमान थे, वे भी गुप्त रूप से शक्ति का प्रयोग करते थे। इस अवस्था को देखकर स्वामी जी महाराज की सेवा में व्याख्यान के समय एक पर्चा, इस विषय का उपस्थित किया गया कि चूंकि उपद्रवी लोगों की ओर से आज उपद्रव की आशंका प्रतीत होती है; इसलिए आप इस्लाम मत पर अधिक न बोलें। स्वामी जी महाराज ने व्याख्यान देते समय इस पर्चे को पढ़ा और संकेत से उत्तर दिया कि मैंने पढ़ लिया, परन्तु व्याख्यान पूर्ववत् जारी रक्खा और इस्लाम मत पर जो कठोर से कठोर आक्षेप हो सकते, थे किये। वह आपका व्याख्यान ही न था अपितु इस्लाम मत का दर्पण ही था। प्रत्येक वर्णन के साथ कुर्आन के उद्धरण उपस्थित थे (इस अवसर पर इस बात का प्रकट करना आवश्यक प्रतीत होता है कि स्वामी जी महाराज ने शाह वलीउल्ला देहलवां के अनुवाद से कुर्आन का भाषा में अनुवाद तैयार करवा रखा था।)[१] मुसलमान आक्षेपों को सुनकर मौन धारण किये रहे और हमारे सुप्रबन्ध के कारण उपद्रव करने में सफल न हुए। बहुत कुछ धमकियां देते थे परन्तु कुछ न कर सकते थे। सारे नगर में कोलाहल था और प्रत्येक गली-कूचे में यही चर्चा थी। अगले दिन फिर व्याख्यान हुआ और सरकारी सहायता का भी प्रबन्ध किया गया कि जिससे उपद्रव न होने पावे।

पाश्चात्य सभ्यता आदि पर मनोरंजक व्याख्यान—चौथे दिन व्याख्यान पाश्चात्य दर्शन, डारविन का सिद्धान्त[२], अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव और अन्य सम्बद्ध विषयों पर हुआ। साथ ही इस्लाम और ईसाई मतों के दार्शनिक सिद्धान्तों पर बातचीत की और पुराणों की बेहूदा बातों का भी वर्णन किया। पाश्चात्य दर्शन को स्वामी जी अपनी भाषा में कीट-पीट का दर्शन कहते थे और शिक्षा के लाभ तथा उसकी विधियों पर भी बहस की। अंग्रेजी शासन के गुण और जो स्वतन्त्रता हमको सरकार ने दी है, उसके विषय में भी बहुत कुछ कहा। डारविन के इस सिद्धान्त का कि बन्दर से मनुष्य की उत्पत्ति है, खंडन किया और कहा कि ऐसा नहीं हो सकता। और इसमें बड़ी ही प्रबल, काट करने वाली युक्तियां दीं। उनमें से एक युक्ति यह थी कि यदि मनुष्य बन्दर से, सम्भोग सम्बन्ध अथवा बिना सम्भोग के ही उत्पन्न हुआ है तो उसका रूप एक वास्तविक बात है। डारविन के अनुयायियों और इस विचारधारा के विद्वानों ने इस विचार को किसी विशेष बन्धन में नहीं बांधा है। इसलिए जब हम देखते हैं कि वह घटना बिना किसी बन्धन के थी तो क्या कारण है कि अब हजार वर्ष से किसी बन्दर का बच्चा मनुष्य (के रूप में उत्पन्न) नहीं होता। यदि पहले कभी बन्दर मछली से संयुक्त हो कर एक विचित्र प्रकार का बच्चा उत्पन्न करता था और फिर वह विचित्र प्रकार का बच्चा किसी और प्राणी से संयुक्त होता था और इसी प्रकार होते-होते इस क्रम का अन्तिम रूप मनुष्य हो गया तो अब क्या कारण है कि वह क्रम बन्द हो गया। क्या अन्तिम विचित्र प्रकार के प्राणी ने वसीयत कर दी थी कि जैसी चेष्टा मेरे पहले पूर्वज करते आये हैं वह भविष्य में कोई पशु, और विशेष कर बन्दर, न करे। इसी प्रकार यह भी कहा कि विभिन्न जातियों के पशुओं के संयुक्त होने से बच्चे उत्पन्न नहीं हो सकते। इसी प्रकार और भी कई काटने वाली युक्तियां दीं। यहां के वर्तमान अंग्रेजी पढ़े-लिखों को ये बातें सुनकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ, क्योंकि ऐसी युक्तियां उन्होंने आजतक नहीं सुनी थीं और यह भी उनको ध्यान था कि जो भौतिक विज्ञान, रसायनविद्या और अन्य दार्शनिक विद्याओं के सिद्धान्त हम अंग्रेजी कालिजों में पढ़ते हैं उसके आविष्कारक अंग्रेज ही हैं और वे पहले किसी को विदित न थे परन्तु चूंकि स्वामी जी महाराज की वाणी से वे ऐसे क्रमबद्ध और युक्तिपूर्वक वर्णन किये गये थे कि मानो आप किसी दार्शनिक की पुस्तक पढ़ रहे हैं, इसलिए श्रोताओं को और भी आश्चर्य होता था। जब इसकी चर्चा स्वामी जी से स्वयं किसी ने की और कहा कि हम इन सिद्धान्तों को नवीन सिद्धान्त समझते थे; तब आपने इस देश की वर्तमान अवस्था पर अत्यन्त खेद प्रकट किया, और कहा कि जिस निर्दोष सिद्धान्त को तुम नव आविष्कृत मानते हो, उसका नाम

लो और मैं उसका प्रमाण प्राचीन पुस्तकों से दूंगा । इस पर कुछ लोग सूर्य की स्थिरता, पृथिवी की गति, अमरीका का वृत्तान्त, मेघ और वर्षा, महाभूतों की वास्तविकता, रासायनिक पदार्थ, धातुओं की खोज, नक्षत्रों और आकाश की वास्तविकता, सूर्य, नक्षत्र और चन्द्रमा का समस्त वृत्तान्त, भूकम्प और तूफान आदि की वास्तविकता आदि बहुत से सिद्धान्तों पर प्रश्न करते रहे[3] और स्वामी जी सत्यशास्त्रों के आधार पर काटने वाली युक्तियों द्वारा उनका उत्तर देते रहे । सुनने वालों को कदापि सन्देह का अवसर न रहता था क्योंकि इधर प्रश्न किया, उधर उत्तर में श्लोक उपस्थित था जिसके शब्दार्थ से ही पूर्ण सन्तोष हो जाता था और शास्त्रों का गौरव हृदय पर अंकित होता था ।

भूमि के आकर्षण-गुण का सिद्धान्त—न्यूटन का आविष्कार है; इससे पहले नहीं था, यह विशेष रूप से मेरा आक्षेप था । जब मैं एक शब्द कह कर रुका तो सारा वृत्तान्त वर्णन कर मैंने सेब के गिरने का न्यूटन के अनुभव का वर्णन किया । तब आपने एक श्लोक पढ़ा और उसका अर्थ किया । श्लोक स्पष्ट था और शब्दार्थ समझ में आता था । पूर्ण विश्वास हो गया कि इस श्लोक के रचयिता का भूमि के आकर्षण सम्बन्धी सिद्धान्त पर पूर्ण विश्वास है । इसी सिद्धान्त की सिद्धि में स्वामी जी ने कई वेदमन्त्र भी श्रीमुख से पढ़े थे । यद्यपि हम वेद की भाषा नहीं समझते थे परन्तु उनके पढ़ने और अर्थ करने के ढंग से भली-भांति समझ में आते थे ।

'नशा और ध्यान' विषय पर मनोरंजक बातचीत—लाला कन्हैयालाल इन्जीनियर ने प्रश्न किया कि नशे की दशा में चित्त भलीभांति एकाग्र हो जाता है और जिस विषय की ओर चित्त आकृष्ट हो जाता है वह उसी में लय हो जाता है । इसलिए इस अवस्था में ईश्वर का ध्यान जैसा अच्छा हो सकता है वैसा अन्य अवस्था में नहीं ।

स्वामी जी ने कहा कि नशे की रीति ऐसी ही है जैसी कि आप वर्णन करते हैं अर्थात् चित्त में जिस वस्तु का ध्यान होता है, मनुष्य उसी में लीन रहता है; परन्तु वस्तुओं का तात्विक ज्ञान अनुकूलता से हुआ करता है । जब हम किसी वस्तु को विचार में लाते हैं और उसका दूसरी वस्तुओं से सम्बन्ध जोड़कर देखते हैं और उस वस्तु की अन्य वस्तुओं से तुलना करके देखते हैं तब हमें उस वस्तु का तात्त्विक ज्ञान होता है नहीं तो, अवास्तविक ज्ञान होता है और गुणी का गुण से कोई लगाव नहीं रहता । प्रश्नकर्ता को यह उत्तर बहुत अच्छा लगा और उनका पूर्ण संतोष हो गया । लाला जी स्वयं मद्य नहीं पीते थे और उससे घृणा करते थे परन्तु लोगों की वर्तमान शंका को स्वयं उपस्थित करके उत्तर मांगा था । चूंकि नगर में कोलाहल बहुत मच गया था और असभ्यों की ओर से उपद्रव की आशंका और अव्यवस्था फैलने तक का डर उत्पन्न हो गया था, **इसलिए नगर में व्याख्यान बन्द कर दिये गये ।** परन्तु जिस बंगले पर स्वामी जी ठहरे हुए थे वहां न्यायप्रिय लोग प्रतिदिन एकत्रित होते और निरन्तर व्याख्यान सुना करते थे । लोग प्रश्न करते थे और स्वामी जी उन्हीं प्रश्नों के सम्बन्ध में व्याख्यान दिया करते थे ।

कर्नल मानसल निरुत्तर—एक दिन कर्नल मानसल, आर० ई० साहब बहादुर 'कमांडिंग अफसर रुड़की' और कप्तान स्टुअर्ट, आई० ई० साहब क्वार्टर-मास्टर व्याख्यान में पधारे । स्वामी जी उस समय इंजील पर व्याख्यान दे रहे थे । कर्नल मानसल ने बहुत ध्यान से सुना और जिन बातों को नहीं समझते थे, उनका कप्तान से अर्थ कराते रहे, परन्तु बाइबिल पर आक्षेप सुनकर कर्नल के चित्त में कुछ उत्तेजना उत्पन्न हुई और शंकाएं करनी आरम्भ कीं । देर तक शास्त्रार्थ होता रहा (इन दोनों के इस) शास्त्रार्थ के बीच में कर्नल का चित्त कभी-कभी उत्तेजित हुआ प्रतीत होता रहा परन्तु उत्तर सुनकर वे मौन हो जाते थे; यहां तक कि शास्त्रार्थ के एक अवसर पर आकर सर्वथा मौन हो गये और बोले कि हम इसका उत्तर कल को देंगे । परन्तु अगले दिन केवल कप्तान साहब पधारे, कर्नल महोदय नहीं आये । कप्तान साहब सब बातें अत्यन्त रुचिपूर्वक सुनते रहे परन्तु कभी वादविवाद नहीं किया । २५ जुलाई से २१ अगस्त तक प्रतिदिन निरन्तर व्याख्यान होते रहे ।

आर्यसमाज की स्थापना—इसी बार मौलवी मुहम्मद कासिम साहब से स्वामी जी का पत्र-व्यवहार आरम्भ हुआ। अन्त में मौलवी साहब शास्त्रार्थ की स्वीकृत शर्तों को अस्वीकार कर गये। उस समय कुछ सज्जनों के चित्त में धर्म का उत्साह उत्पन्न हो गया और उन्होंने स्वामी जी के व्याख्यानों से समस्त आवश्यक वृत्तान्त जानकर २० अगस्त, सन् १८७८ को 'आर्यसमाज' स्थापित किया और निम्नलिखित सज्जन अधिकारी नियत हुए—मास्टर शंकरलाल प्रधान, मास्टर उमरावसिंह मन्त्री, मास्टर रंगीलाल कोषाध्यक्ष।

मौलवी से शास्त्रार्थ का प्रसंग—स्वामी जी महाराज के बार-बार अनुरोध करने पर भी मौलवी साहब नियमपूर्वक शास्त्रार्थ करने के लिए उद्यत न हुए और अन्त तक शास्त्रार्थ की उचित शर्तों से विमुख होते रहे। यद्यपि कर्नल मानसल और कप्तान स्टुअर्ट साहब ने शास्त्रार्थ की आज्ञा भी दे दी, जैसा कि लिखित उत्तर में प्रकट है, और कप्तान साहब ने तो यह भी कहा कि खास मेरे बंगले पर शास्त्रार्थ हो जाये यदि चौबीस तक मनुष्यों की संख्या रहे, तब भी मौलवी साहब सहमत न हुए और यही कहते रहे कि मुसलमान जितने भी एकत्रित होना चाहेंगे, एकत्रित होंगे उनको आज्ञा दी जावे, उन पर आक्षेप न किया जावे और सबसे बढ़कर यह कि लिखी हुई बात का अर्थ सदा उलटा समझते रहे। कभी शास्त्रार्थ के समय पर झगड़ा किया कि यह हमारी नमाज का समय है। जब उसमें भी उनकी इच्छानुसार निर्णय किया गया तब कहा कि अलीगढ़ के मैदान में शास्त्रार्थ हो जो जंगल में स्थित है, जहां पर कोई प्रबन्ध नहीं हो सकता। कभी रमजान के महीने का बहाना किया और शास्त्रार्थ के लिखे जाने और उस पर दोनों पक्षों के हस्ताक्षर होने और प्रकाशित होने पर सहमत न हुए। अन्त तक पूर्णतया अस्वीकृत करते रहे। जब स्वामी जी ने देखा कि ये लोग किसी प्रकार नियम निश्चित नहीं करते और बुद्धिपूर्ण रीति से शास्त्रार्थ करना नहीं चाहते थे, अपितु मूर्खों को बहकाने के लिए, केवल मौखिक वाद-विवाद में सन्तोष मानते हैं और अन्त में जब मौलवी साहब ने पत्र-व्यवहार करना भी अस्वीकार कर दिया (जिसका विस्तृत वृत्तान्त पृथक् लिखा हुआ है) तो उन्होंने अपना अमूल्य समय नष्ट करना उचित न जाना और वहां से सीधे मेलकार्ट द्वारा २१ अगस्त को चलकर सहारनपुर होते हुए दिनांक २२ अगस्त, सन् १८७८ को **अलीगढ़** पधारे।

लौकिक व्याकरण के पंडित का गर्व चूर्ण हो गया—जिन दिनों शास्त्रार्थ की छेड़छाड़ थी और भाष्य करने वाले के विषय में बातचीत चल रही थी उस समय गंगाराम रईस मेरठ के भाई पंडित तुलसीराम ने पंडित उमरावसिंह जी से चर्चा की कि एक पंडित जी की संस्कृत की योग्यता उच्च कोटि की है और शास्त्रार्थ करने में अद्वितीय हैं और फारसी-अरबी की भी योग्यता रखते हैं, उनको बुलाया जाये और अनुवाद आदि में उनसे सहायता ली जाये और शास्त्रार्थ में सम्मिलित रखा जाये। पूछा गया कि वे आजकल कहां हैं? ज्ञात हुआ कि वे शीघ्र रुड़की आने वाले हैं। संयोग से दो तीन दिन के पश्चात् पण्डित जी पधारे और मुझसे मिले तथा स्वामी जी के दर्शनों के इच्छुक हुए। मैं उनको स्वामी जी महाराज के पास ले गया। स्वामी जी ने बहुत आदरपूर्वक बिठाया और विभिन्न विषयों पर बातचीत होती रही। बातचीत के पश्चात् पंडित जी ने स्वामी जी से कहा कि मैंने संस्कृत में एक व्याकरण लिखा है जिसके छपवाने का विचार रखता हूं, आप भी इसको देखिये और यह कह कर स्वामी जी के आगे अपनी पुस्तक रख दी। स्वामी जी ने उसे खोलकर पांच-सात मिनट तक देखा और कहा कि आपकी योग्यता बहुत अच्छी प्रतीत होती है और आपने सामान्य संस्कृत को भली-भांति ग्रहण किया है। आप आजकल क्या करते हैं? कहा कि बेकार हूं। स्वामी जी ने कहा कि आप मेरे पास आवें तो विश्वास है कि आपकी आवश्यकता के अनुसार आपकी सहायता भी होगी, आप वेदविद्या भी प्राप्त करेंगे और मुझको भी आपसे अपने काम में सहायता मिलेगी। उन्होंने स्वामी जी का धन्यवाद किया और कहा कि मैं अभी कुछ घरेलू कारणों से आपकी आज्ञा का पालन नहीं कर सकता। यदि भविष्य में अवसर मिला तो अवश्य सेवा में उपस्थित हूंगा। स्वामी जी ने कहा कि बहुत अच्छा। परन्तु आप अपने समय को किसी श्रेष्ठ कार्य में क्यों नहीं व्यय करते? पण्डित जी ने कहा कि क्या करूं? स्वामी

जी ने कहा कि आपने इस व्याकरण के लिखने में जो समय नष्ट किया है यदि उसको किसी आर्षग्रन्थ का अनुवाद करने में व्यय करते तो सर्वसाधारण को बहुत लाभ होता। पण्डित जी ने कहा कि क्या मेरा व्याकरण नगण्य है ? कहा कि जैसा है वैसा ही है परन्तु इससे कोई लाभ किसी को नहीं हो सकता। ऐसे व्याकरण उदाहरणार्थ, सारस्वत, चन्द्रिका[४] आदि, बहुत से विद्यमान हैं। आपने नया काम क्या किया ? जैसे और व्याकरण अपूर्ण और अपर्याप्त हैं, वैसा यह भी है। आपको कोई अधिक उत्कृष्ट काम करना चाहिए। कहा कि मेरी सम्मति में संस्कृत व्याकरण के समस्त नियम मेरे इस व्याकरण में आ गये हैं; मैं इसको सब प्रकार पर्याप्त और पूर्ण समझता हूं। स्वामी जी ने कहा कि आप अपने इस व्याकरण के ग्रन्थ को देखकर कोई नियम वर्णन कीजिये। पण्डित जी ने अनुरोध पूर्वक कहा कि आप ही किसी नियम की चर्चा कीजिये। बहुत कुछ कहने सुनने के पश्चात् पण्डित जी ने व्याकरण को हाथ में लिया और श्लोक पढ़कर एक नियम का वर्णन किया। स्वामी जी ने १७-१८ वेदमन्त्र पढ़े और कहा कि इन वाक्यों में किसी एक में इस नियम को घटाइये। परन्तु उनका नियम प्रत्येक उदाहरण में व्यर्थ सिद्ध हुआ।'

पण्डित जी बड़ी उलझन में पड़ गये और चिरकाल तक मौन होकर बहुत सोच-विचार करने के पश्चात् बोले कि निस्सन्देह इनमें से किसी मन्त्र में यह नियम नहीं लगता परन्तु वेदों का व्याकरण पृथक् हो सकता है। यह मेरा व्याकरण सामान्य लौकिक संस्कृत के लिए हो सकता है। स्वामी जी ने कहा कि यही तो मेरा आक्षेप है और मैं यही शिकायत करता हूं कि व्याकरण ऐसा होना चाहिए कि जिसमें सभी नियम आ जावें। सामान्य लौकिक संस्कृत के लिए हम एक व्याकरण पढ़ें और वेदों के लिए दूसरे की खोज करते फिरें, इसमें बहुत कष्ट और क्लेश होता है और समय भी बहुत नष्ट होता है। इसके पश्चात् स्वामी जी ने शास्त्रों, इतिहासों और अन्य संस्कृत ग्रन्थों के श्लोक पढ़ने आरम्भ किये जो संख्या में ३२-३३ थे और कहा कि इन समस्त श्लोकों की भाषा साधारण लौकिक संस्कृत है, ये वेदमन्त्र नहीं हैं। इनमें से किसी पर अपने नियम का प्रयोग कीजिये। पण्डित जी अत्यन्त चकित हुए और स्वामी जी के पांव पकड़ लिये और कहा कि आप समुद्र हैं। मुझको इससे पहले कभी ऐसा ध्यान न था कि ये साधारण नियम इतनी बड़ी संख्या में अपवाद रखते होंगे। मुझे इन नियमों की अपूर्णता हृदय से स्वीकार है। मैंने अपनी पुस्तक को काशी के पण्डितों को भी दिखाया था, किसी ने कोई आक्षेप नहीं किया प्रत्युत सबने प्रशंसा की परन्तु आपसे यह सारा भेद खुल गया। इसके पश्चात् स्वामी जी ने पाणिनि मुनि का एक सूत्र पढ़ा जिसमें विचाराधीन नियम का वर्णन था और कहा कि चाहे इस नियम को वेदमन्त्रों पर लगायें, चाहे साधारण लौकिक संस्कृत पर इसका प्रयोग करें, इसमें कदापि कोई विरोध नहीं हो सकता। प्राचीन ऋषियों की रचना में यही तो गुण है। आप ऐसी पुस्तकों पर टिप्पणी लिखने और व्याख्यान करने का प्रयत्न करें, जिससे संस्कृत विद्या की उन्नति हो। इसके पश्चात् बातचीत समाप्त हुई।

हरिद्वार के सतुआ स्वामी भी शास्त्रार्थ के लिए उद्यत नहीं हुए—रुड़की के कुछ सम्मानित व्यक्तियों ने भी प्रयत्न किया कि स्वामी जी का शास्त्रार्थ सतुआ स्वामी से हो जाये। इसलिए हरिद्वार से उनको लाने के लिए मनुष्य भेजे गये। प्रथम प्रसिद्ध हुआ कि सतुआ स्वामी शास्त्रार्थ करेंगे और यहां आवेंगे। पण्डित आत्माराम आदि के मुख से उनका यह निश्चय प्रकट हुआ था, परन्तु पीछे विदित हुआ कि वे शास्त्रार्थ करना नहीं चाहते और कहते हैं कि मैं स्वामी जी का मुख नहीं देखता। इस बात की चर्चा जब स्वामी जी से मैंने की तब उन्होंने कहा कि यदि मेरा मुख देखने में सतुआ स्वामी को आपत्ति है तो अच्छा है कि बीच में एक पर्दा डाल दिया जावे और इस प्रकार शास्त्रार्थ होता रहे। स्वामी जी का यह उत्तर पण्डित आत्माराम आदि से कह दिया गया वे इस प्रकार भी सहमत न हुए।

पण्डित पिता के भय से 'आर्यसमाज' में सम्मिलित न हो सका, यह लालसा लिये ही दिवंगत हुआ—हकीम थानसिंह जी, पण्डित त्रिलोकचन्द की कथा का और सब बातों का समर्थन करते हुए कहते हैं कि जब त्रिलोकचन्द ने वेद

खोलकर मन्त्र पढ़ना चाहा तो कह दिया पहले देख लो, कोई यवनों में से न बैठा हो । इतने में उसकी दृष्टि चिरंजीलाल के नौकर सखावत हुसैन पर पड़ी । तत्काल पुस्तक बन्द करके कहा कि जब तक मियां जी यहां बैठे रहेंगे, मैं न पढूंगा । दारोगा निहालसिंह ने मियां जी को वहां से उठा दिया । उस समय उन्होंने कुछ पढ़ा । तब लोगों ने उससे शास्त्रार्थ करने के लिए कहा । उसने उत्तर दिया कि मैं उसका दर्शन नहीं कर सकता । तिस पर मुंशी लालसिंह, नक्शा नवीस, गोदाम ने कहा कि काशी के शास्त्रार्थ में तो समस्त पण्डित लोग और राजा साहब स्वामी जी के साथ शास्त्रार्थ करते समय सामने बैठे रहे थे और आपने यह ढकोसला कहां से निकाला ? प्रतीत होता है कि आप शास्त्रार्थ नहीं कर सकते ।

चूंकि मैं हकीम हूं, जब यह पण्डित मरने लगा, मैं उसका चिकित्सक था । चिकित्सा के बीच में और बातचीत के समय कई बार उसने कहा कि हकीम जी ! यदि मेरा बाप बस्तीराम जीवित न होता तो मैं निस्सन्देह आर्यधर्म स्वीकार करता, परन्तु अब भय से विवश हूं । सारांश यह कि यही लालसा लिये हुए वह मर गया ।

एक दिन मैंने स्वामी जी से योग सीखने की चर्चा की और कहा कि जब आप इस विद्या को इतना प्रबल समझते हैं तो उसके सीखने के विषय में हम आर्यों को आज्ञा क्यों नहीं देते ? स्वामी जी ने कहा कि अभी नहीं, प्रथम और विद्याएं प्राप्त करो, फिर योग करो । २२ अगस्त को स्वामी जी रुड़की से अलीगढ़ की ओर चले गये

अलीगढ़ का वृत्तांत (२२ अगस्त से २६ अगस्त, सन् १८७८ तक)

२१ अगस्त को रुड़की से चलकर २२ अगस्त को स्वामी जी अलीगढ़ पधारे और पं० आफताबराय के बाग में, जहां ठाकुर मुकुन्दसिंह जी, ठाकुर भोपालसिंह, ठाकुर मुन्नासिंह, छलेसर के रईस ठहरे हुए थे, निवास किया । उन्हीं दिनों स्वामी जी से भेंट करने के लिए श्री मूल सी, थैकर सी[५], हरिश्चन्द्र चिन्तामणि, पण्डित श्याम जी कृष्ण वर्मा, बम्बई से आकर बाबू जोगेन्द्रनाथ वकील के मकान पर उतरे ।

दूसरी जाति के हाथ का पका खाने में कुछ बुराई है न भलाई—कुंवर ज्वालाप्रसाद पाठक ने उनसे प्रश्न किया कि अन्य जाति अथवा मत वालों के हाथ का पका हुआ या छुआ हुआ खाने से वेदोक्त धर्म वालों को कुछ हानि हो सकती है या नहीं और इसमें कुछ बुराई या भलाई है या नहीं ? स्वामी जी ने उत्तर दिया कि न कुछ बुराई है न भलाई । सायंकाल कई प्रतिष्ठित सज्जन उनके दर्शनार्थ गये और अपने सन्देह निवृत्त करते रहे । जीव और प्रकृति के अनादि होने पर कई प्रश्न थे, जिनके स्वामी जी ने बड़े सन्तोषजनक उत्तर दिये ।

स्वामी जी का स्वास्थ्य कुछ बिगड़ गया था, इसलिए यहां इस बार व्याख्यान कम हुए परन्तु निवासस्थान पर नित्य साधारण उपदेश होता रहा ।

२३ अगस्त, सन् १८७८ को सैयद अहमद खां साहब ने स्वामी जी महाराज और बम्बई के सज्जनों की दावत की । स्वास्थ्य बिगड़ जाने के कारण स्वामी जी सम्मिलित न हुए परन्तु अन्य सज्जन दावत में सम्मिलित हुए ।

बहुत से पंडित और मौलवी लोग प्रतिदिन धर्मोपदेश सुनने और बातचीत करने के लिए पधारते और आनन्द उठाते रहे ।

२५ अगस्त को स्वामी जी का व्याख्यान हुआ जिसमें हजारों हिन्दू-मुसलमान सम्मिलित थे । मौलवी फरीदउद्दीन साहब सब जज अलीगढ़ भी उसमें उपस्थित थे । व्याख्यान समाप्त होने पर मौलवी साहब ने खड़े होकर कुछ वाक्यों में स्वामी जी की प्रशंसा की और फिर देर तक बातचीत करके चले गये ।

२६ अगस्त, सन् १८७८ को स्वामी जी अलीगढ़ से चलकर मेरठ पहुंचे ।

मेरठ का वृत्तांत (२६ अगस्त से ९ अक्तूबर, [६] सन् १८७८ तक)

मिति २६ अगस्त, सन् १८७८ को स्वामी जी महाराज मेरठ पधारे और ला० दामोदरदास की कोठी में ठहरे। यह कोठी कैम्प मेरठ में हिन्दुस्तानी रिसाले की पंक्ति के समीप स्थित है। कोठी को पहले से ही विशेषतया इसी प्रयोजन से दरी आदि से सजाया गया था। स्वामी जी के विराजने का समाचार उसी दिन समस्त नगर और छावनी में फैल गया। अगले दिन स्वामी जी ने उक्त कोठी के बरामदे में बैठ कर उपस्थित लोगों को उपदेश देना आरम्भ किया अर्थात् किसी के प्रश्नों के उत्तर देकर उसके सन्देह निवृत्त किये और किसी को स्वयं धर्म का उपदेश देकर अपने कर्तव्य का पालन किया। इसी प्रकार का कार्यक्रम सप्ताह भर चालू रहा। तत्पश्चात् नगर और छावनी के बहुत से सज्जनों की प्रार्थना पर 'जलवए-तूर' प्रेस के अध्यक्ष राय गणेशीलाल साहब, सदर बाजार, कैम्प-मेरठ में स्थित कोठी पर १ सितम्बर, सन् १८७८ से ६ बजे रात तक, आर्य लोगों के 'सत्य सनातन धर्म' विषय पर व्याख्यान देना निश्चित हुआ और इसकी सूचना मुद्रित विज्ञापनों द्वारा एक दिन पहले सर्वसाधारण को दी गई। इस विज्ञापन की प्रतिलिपि इस प्रकार है—

Notice – It is hereby notified that Swami Dayanand Saraswati, the great reformer of the old religious systems of Aryawarta (India) will deliver lectures on the subject of social and religious reforms, at the premises of Rai Ganeshee Lall, Proprietor Jalwai-I-Toor at Sadder Bazar Merutt, on Sunday the Ist of September, 1878 at 6 P.m.

The lecture will last 2 hours and will open to the public as it is highly important that men of alll castes, crceds and colour might avail themselves of the valuable instructions of Swami Ji – (Sd.) Ajoodya Parsad Master.

(हिन्दी में भावानुवाद) महाराज स्वामी दयानन्द सरस्वती मेरठ में पधारे हैं। पहली तारीख को ६ बजे दिन के समय उपदेश उनका कोठी जनाब राय गणेशीलाल साहब पर होगा। इसलिए पधारने और उपदेश सुनने के लिए यह विज्ञापन दिया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति, क्या हिन्दू क्या मुसलमान, क्या अंग्रेज सज्जन पधारकर उपदेश सुनें और जो कुछ प्रश्नोत्तर पण्डित जी से करें उसका पण्डित जी अत्यन्त युक्तिपूर्वक उत्तर मौखिक देंगे। कुछ लोग पण्डित जी के बारे मे यह भी कहते हैं कि वे वेद और देवताओं की निन्दा और अपमान करते हैं। यह विचार उनका बिलकुल झूठा है। पण्डित जी वेद और सत्यशास्त्र के अनुसार उपदेश करते हैं। इसमें जिस प्रकार की बात जिस सज्जन की समझ में न आवे, पण्डित जी उसको वेद के अनुसार अच्छी प्रकार समझा सकते हैं और यह उपदेश ६ बजे शाम के आरम्भ होगा।

प्रकाशक
अजुध्याप्रसाद मास्टर,
निवास स्थान कैम्प मेरठ

सुल्तानउलमुतावइ छापाखाना कैम्प मेरठ
द्वारा मुद्रित

व्याख्यानमाला—स्वामी जी ने पहले दिन सबसे पूर्व लगभग एक घंटे तक कुछ प्रारम्भिक विषय वर्णन किया। इसमें वे सारे नियम भी सम्मिलित थे जो प्रत्येक व्यक्ति को सभा में आने और सभा से जाने, बातचीत और प्रश्न करने में बरतने उचित और आवश्यक होते हैं और यह भी कह दिया कि जिस किसी व्यक्ति को कोई प्रश्न पूछना हो, प्रतिदिन व्याख्यान की समाप्ति के पश्चात् उपस्थित करे और सबके उत्तर अन्तिम दिन की सभा में दिये जायेंगे। इसके पश्चात् परमेश्वर के विषय में व्याख्यान दिया गया। दूसरे दिन धर्म और अधर्म के लक्षण उदाहरणपूर्वक वर्णन किये। तीसरे दिन

उपासना, स्तुति और प्रार्थना की वह विधि जो पवित्र वेद के अनुसार अवलम्बन करनी चाहिये, वर्णन की । चौथा दिन प्रश्नों के उत्तर के लिए नियत हुआ और इसकी सूचना सार्वजनिक सभा में उपस्थित समस्त लोगों को एक दिन पहले दे दी गई थी । चूंकि कोई प्रश्न किसी मनुष्य की ओर से उस समय तक लिखित या मौखिक उपस्थित नहीं हुआ था और विचार था कि आज कुछ न कुछ प्रश्न अवश्य उपस्थित होंगे, इसलिए पहले पूरे एक घंटे तक प्रश्नों की प्रतीक्षा की गई परन्तु जब कोई प्रश्न उस दिन भी उपस्थित न हुआ तो स्वामी जी ने सृष्टि के विषय में व्याख्यान देना आरम्भ किया ।

व्याख्यान के दिनों में केवल एक सदर बाजार, कैम्प-मेरठ निवासी मुस्लिम सज्जन[1] ने एक पत्र सभा की समाप्ति के समय उपस्थित किया था जिसका सार यह था कि स्वामी जी ने सभा का जो समय ६ बजे शाम से ८ बजे रात तक का निश्चित किया है, उस समय रोजा रखने के कारण मुसलमान लोग सभा में नहीं आ सकते । यदि समय में उचित परिवर्तन कर दिया जाये तो वे लोग भी आकर प्रश्नोत्तर करें । परन्तु इस शर्त पर कि स्वामी जी शास्त्रार्थ करने और अपने निवास (ठहरे रहने) का प्रतिज्ञापत्र स्टाम्प पर, किसी प्रतिष्ठित हिन्दू रईस के उत्तरदायित्व पर लिख दें । यह पत्र सभा में उसी समय पढ़ा गया । चूंकि इसमें धर्मसम्बन्धी कोई प्रश्न न था कि जिसका उत्तर स्वामी जी पर विज्ञापनानुसार अपने मुख से देना कर्तव्य होता इसलिए वे मौन रहे और सभा के प्रबन्धक ने उत्तर दिया कि इस प्रार्थनापत्र का उपस्थित होना किसी मुस्लिम रईस के द्वारा उचित है ताकि आवश्यक बातें लेखबद्ध की जावें और पत्र उसी समय लौटा दिया गया । परन्तु उसके पश्चात् वे मुस्लिम सज्जन फिर न पधारे और न कोई लेख उपस्थित किया । परन्तु आश्चर्य है कि हमारे नगर के **'नजमुल अखबार' में** बिना खोज किये यह वृत्तान्त बिलकुल विपरीत (रूप से) क्योंकर प्रकाशित हुआ ? जान पड़ता है कि उक्त छापाखाने के प्रबन्धक ने मौखिक वर्णन अथवा साधारण लेख पर सन्तोष कर लिया और वास्तविक वृत्तान्त न पूछा । इसलिए जब नगर की बात नगर में ही अशुद्ध प्रकाशित हो तो दूर के समाचारों का क्या ठिकाना है । ऐसी व्यवस्था छापाखाने के प्रबन्ध और साधारणतया समाचार पत्र की प्रसिद्धि के लिए बहुत हानिकारक है ।

कहने का अभिप्राय यह कि ५ सितम्बर, सन् १८७५ से ला० रामसरनदास महोदय, रईस मेरठ नगर के मकान पर उनकी प्रार्थना के अनुसार व्याख्यान देना निश्चित हुआ और यह समाचार विज्ञापनों द्वारा प्रकाशित करा दिया गया । उन विज्ञापनों में यह भी लिखा हुआ था कि समस्त लिखित प्रश्न, जो प्रतिदिन सभा में उपस्थित हुआ करेंगे, उनके उत्तर अन्तिम सभा में दे दिये जावेंगे । पांचवीं तारीख से उक्त मकान पर निरन्तर नौ दिन व्याख्यान होते रहे । इन में से छः दिन में आर्यावर्त की पूर्वावस्था और वर्तमान अवस्था, पाप और पुण्य के लक्षण, नरक और स्वर्ग की व्यवस्था (व्याख्या), यज्ञ और हवन का विवरण, वेद और सत्यशास्त्रों की प्रशंसा और उनके अनुसार पाषाण आदि की मूर्तियों के पूजन का निषेध, भागवत आदि नवीन पुस्तकों का विरोध और असम्भव वाक्यों का वृत्तान्त, आवागमन का प्रमाण बहुत से सज्जनों की प्रार्थना पर मेरठ में आर्यसमाज की स्थापना की चर्चा और प्रेरणा और वेदविरुद्ध मतों का खंडन-इन बातों का वर्णन हुआ और विशेषतया मुसलमान और ईसाइयों के मत का खंडन उन्हीं की धार्मिक पुस्तकों के उद्धरण देकर किया गया और तीन दिन में उन समस्त प्रश्नों के उत्तर, जो अब तक उपस्थित किये गये थे और जिनका कुछ वृत्तान्त आगे लिखा जायेगा, दिये गये ।

मेरठ की 'धर्मरक्षिणी सभा' की ओर से प्रथम तो कुछ प्रश्न, जो उत्तर सहित नीचे लिखे जाते हैं, तीन पत्रों के रूप में-(एक संस्कृत भाषा में, दूसरा भाषा में और तीसरा उर्दू भाषा में) उक्त सभा के मन्त्री और दो विद्यार्थियों के द्वारा, उपस्थित किये गये और तत्पश्चात् प्रश्नों के एक दो परचे प्रतिदिन आते रहे । सारांश यह कि १० तारीख को विसर्जन के

---

1. अब्दुलगनी साहब पुत्र रहीम बख्श नेचाबन्द ।

समय सार्वजनिक सभा में यह घोषणा की गई कि उपस्थित किये गये समस्त प्रश्नों के उत्तर कल से दिये जाने आरम्भ होंगे। जिन सज्जनों ने प्रश्न उपस्थित किये हैं, कल के दिन से सभा में आकर उत्तर सुन लें और जिस किसी को उत्तर का लिखना अभीष्ट हो वह उसी समय लिख लेवे। इस घोषणा के अनुसार तीन दिन में समस्त प्रश्नों के उत्तर स्वामी जी ने सभा में दे दिये।

'धर्मरक्षिणी सभा' मेरठ की ओर से उपस्थित किये गये प्रश्नों की प्रतिलिपि

१—जो चार धाम और सप्तपुरी आदि नगर और ग्रामों में उन्नत शिखर और मन्दिर, उनमें देवताओं की मूर्तियों का स्थापन हो रहा है और परम्परा से पूजा होती आती है अब इसमें आपको भ्रम और सन्देह हुआ सुना है। जो अवश्य सन्देह है तो श्रुति, स्मृति के प्रमाण इसमें दीजियेगा और सन्देह नहीं है तो यह व्यक्त कीजियेगा।

२—गंगा जी सब नदियों से श्रेष्ठ और पूजनीय हैं इसमें भी प्रमाण दीजिए और जो कुछ सन्देह हो तो प्रकाशित करें।

३—जो अवतार हुए हैं, ये कौन हैं? उनका बनाने वाला कौन है और पराक्रम उनको किसने दिया अथवा ये समर्थ हैं? अवतारों का-सा सामर्थ्य किसी राजा में अथवा मनुष्य में नहीं सुना। प्रमाण श्रुति, स्मृति का हो लिखियेगा। इति।

उत्तर शीघ्र देना योग्य है। पत्र द्वारा उत्तर में सन्देह समझें तो बलेश्वर महादेव के मन्दिर में सभा नियत की जावे कि जिससे सत्यार्थ का निश्चय और सन्देह की निवृत्ति होवे। इति।

यद्यपि इस बात का उल्लेख करना कुछ आवश्यक तो नहीं है, तथापि सावधानता की दृष्टि से उत्तरों के लिखने के पूर्व लिखा जाता है कि खंडन और सिद्धि दो प्रकार से होनी उचित है अर्थात् वेदादि सत्यशास्त्रों के प्रमाणों द्वारा और उपयुक्त युक्तियों द्वारा। निम्नलिखित उत्तरों में भी इस बता का ध्यान रखा गया है।

विदित हो कि स्वामी जी ने व्याख्यान में 'धर्मरक्षिणी सभा' मेरठ के प्रश्नों के उत्तर के रूप में जो समस्त प्रमाण और वर्णन किया था, वे सब के सब यहां लिखे जाते तो इस लेख का बहुत बड़ा विस्तार हो जाता और इसके अतिरिक्त स्वामी जी के व्याख्यान का भाग भी उस दिन लिखा नही जा सका था; इसलिए दो-चार प्रमाणों और युक्तियों पर ही यहां सन्तोष किया जाता है। इससे शेष वृत्तान्त भी समझ लेना चाहिये। स्मरण रहे कि यथासामर्थ्य ये उत्तर स्वामी जी के वर्णन के अनुसार लिखे गये हैं परन्तु यदि विस्मृति और शीघ्र लिखने के कारण वास्तविक वर्णन से कुछ विरोध हो गया हो तो वह मेरी स्मरणशक्ति की भूल समझनी चाहिये।

उत्तर १—मुझ को पाषाण आदि की मूर्तियों के पूजन के विषय में सन्देह या भ्रम कदापि नहीं, प्रत्युत भली प्रकार निश्चय है कि यह (मूर्तिपूजन) वेदविरुद्ध है, परन्तु भ्रम आप लोगों का ठीक है कि जिसके कारण पाषाण आदि की मूर्तियों को स्थानों और मन्दिरों में स्थापन करके उनका नाम देव या देव की मूर्ति रखते हैं और उनको 'देव' मानते हैं। विचारणीय बात यह है कि पाषाणादि की मूर्तियों के पूजन का विधान न तो किसी ऋषि-मुनि के वचन से और न किसी शास्त्र के उद्धरण से ही सिद्ध होता है, प्रत्युत इन सब से तो उसका निषेध ही विदित होता है और न पाषाण आदि की मूर्ति का नाम किसी वेद या शास्त्र में 'वेद' लिखा है और न किसी ऋषि-मुनि ने, ब्रह्मा जी से लेकर जैमिनि मुनि तक, अपनी पुस्तकों में 'देव' का अर्थ पाषाण आदि की मूर्ति किया है। केवल परमेश्वर, विद्वान् और वेदमन्त्र आदि का नाम 'देव' है जो कि दिव्य गुणों से युक्त है। जब पाषाण आदि की मूर्ति का नाम देव कदापि नहीं है तो फिर बतलाइये कि आपका ऐसा मानना किसी रीति से ठीक है? इसके अतिरिक्त परमेश्वर की पाषाण आदि की मूर्ति बनाकर उसकी उपासना करना तो वेदों के द्वारा, जिन पर हमारा धर्म पूर्णतया निर्भर करता है, निषिद्ध और उनके विरुद्ध है। यह बात यजुर्वेद के ३२वें अध्याय के तीसरे मन्त्र से सर्वथा स्पष्ट है। मन्त्र इस प्रकार है—

'न तस्य प्रतिमास्ति यस्य नाम महद्यशः । हिरण्यगर्भ इत्येष मा मा हिंसीदित्येषा यस्मान्न जात इत्येषः ।'[७]

इस मन्त्र का अर्थ यह है—'परमेश्वर की प्रतिमा अर्थात् उसके सदृश उदाहरण, नाप का साधन या उसका प्रतिबिम्ब, जिसको चित्र कहते हैं, किसी प्रकार सम्भव नहीं है । उसकी आज्ञा का ठीक-ठीक पालन और सत्यभाषण आदि कर्म का करना जो उत्तम कीर्तियों का हेतु है, उसके नाम का स्मरण कहाता है । वही परमेश्वर तेज वाले सूर्यादि लोकों की उत्पत्ति का कारण है । (परमेश्वर) माता-पिता के संयोग से न उत्पन्न हुआ और न (कभी) होगा । इसी से यह प्रार्थना कि हे परमात्मन् ! हम लोगों की सब प्रकार से रक्षा कर, हमको करनी उचित है ।

अब देखिये, इस मन्त्र में स्पष्ट शब्दों में पाषाण आदि की मूर्तियों के पूजन का निषेध है अर्थात् परमेश्वर का न कोई उदाहरण है, न उसके कोई सदृश है और न उसका प्रतिबिंब या चित्र है और न हो सकता है; तो फिर परमेश्वर की पाषाण आदि की मूर्ति बनाना और उसको परमेश्वर मानना और उसकी उपासना करना किस प्रकार सिद्ध हुआ ? यह सब अज्ञान का फल है, और कुछ नहीं । इसके विपरीत वेद में तो केवल एक निराकार परमेश्वर की उपासना का निर्देश और अन्य किसी की उपासना का निषेध है । फिर बतलाइये कि पचासों और सैकड़ों देवताओं की उपासना किस प्रमाण से ठीक (मानी जा सकती) है ?

उपासना सम्बन्धी दो मन्त्र—उपासना विषयक बहुत से मंत्रों में से दो वेदमन्त्र अपनी बात के समर्थन में यहां लिखता हूं—

प्रथम मन्त्र—'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे'[८] **आदि** । इस मन्त्र का अभिप्राय यह है-हिरण्यगर्भ, जो परमेश्वर है वही इस सृष्टि से पूर्व विद्यमान था; वही इस जगत् का स्वामी है और वही पृथिवी से लेकर सूर्य आदि सारे जगत् की रचना करके उसको धारण कर रहा है । उसी सुख स्वरूप परमेश्वर देव की हम उपासना करें, अन्य किसी की नहीं । यह ऋग्वेद के आठवें अध्याय, सातवें अष्टक और तीसरे वर्ग का पहना मन्त्र है ।

दूसरा मन्त्र—'अन्धन्तमः प्रविशन्ति'[९] **आदि** । यह यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय का नवां मन्त्र है । इस मन्त्र का अर्थ यह है—जो मनुष्य न उत्पन्न होने वाले, अनादि जड़रूप कारण की उपासना करते हैं, वे अविद्या आदि दुःखरूप अन्धकार में प्रवेश करते हैं और जो मनुष्य (कारण रूप प्रकृति के) संयोग से उत्पन्न हुए पृथिवी आदि विकार-रूप कार्य (पदार्थों) में उपासना की भावना रखते हैं, वे कारण की उपासना करने वाले मनुष्य से भी अधिक महाक्लेशों को प्राप्त होते हैं । इसलिए इससे स्पष्टतया सिद्ध है कि मनुष्यों को उक्त कारण और कार्य की अर्थात् उपयुक्त सामग्री की और उससे बनी या उत्पन्न होने वाली वस्तुओं और पाषाण आद की मूर्ति की उपासना नहीं करनी चाहिये और केवल एक पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर की उपासना करनी उचित है ।

युक्ति से भी पाषाण आदि की मूर्ति का पूजन उचित नहीं ठहरता[१०] क्योंकि यदि यह कहा जाये कि पाषाण आदि की मूर्ति में देव की भावना करते हैं, उसको पाषाण आदि की मूर्ति नहीं मानते; इस विषय में प्रथम बात तो यह बतलाइये कि यह भावना सच्ची है या झूठी ? यदि सच्ची है तो सुख की भावना करने वालों को दुःख क्यों होता है अर्थात् जब संसार में सभी सुख की भावना करते हैं और दुःख की भावना कोई नहीं करता फिर उसको दुःख क्यों होता है और सुख ही सुख क्यों नहीं होता ? और इसी प्रकार पानी में दूध की और मिट्टी में मिश्री की भावना करके देख लो । यदि भावना सत्य है तो ये वस्तुएं भी भावना करने से वैसी ही हो जावेंगी और यदि न होवें तो भावना से पाषाण आदि की मूर्ति भी 'देव' नहीं हो सकती, और यदि यह कहा जावे कि भावना झूठी है तो आपका कहना और करना भी झूठा हो गया । यदि यह कहो कि चूंकि

परमेश्वर सब में व्यापक है, इसलिए पाषाण आदि की मूर्तियों में भी व्यापक है, तब तो यह आपकी बहुत बड़ी भूल है कि आप लोग चंदन, पुष्प आदि लेकर मूर्तियों पर चढ़ाते हैं । क्या चन्दन और फूल में परमेश्वर व्यापक नहीं और इसके अतिरिक्त अपने ही में परमेश्वर को व्यापक क्यों नहीं मानते ? पाषाण आदि की मूर्तियों को क्यों सिर नवाते हो ? जब परमेश्वर व्यापक है और आप भी व्यापक मानते हैं तो केवल पाषाण आदि की मूर्तियों ही में क्यों व्यापक मानकर उसकी उपासना करते हो ? इस दशा में तो केवल एक वस्तु में परमेश्वर को व्यापक मानकर उसकी व्यापकता को छोटा करते हो । यदि यह कहा जावे कि मूर्तिपूजन अज्ञानी मनुष्यों के लिए ब्रह्म की पहचान का एक साधन बना रखा है तो यह बात भी बुद्धि और युक्ति से सरासर शून्य है क्योंकि गुण गुणी से और गुण प्राप्त करने के साधनों द्वारा मिलता है । जड़ पदार्थों से और ऐसे साधनों द्वारा कभी गुण नहीं मिल सकता है । इसलिए पाषाण आदि की मूर्तियों के पूजन से तो बुद्धि दिन-पर-दिन पत्थर ही होती जायेगी, ब्रह्म पहचानने की तो बात ही क्या है ? दूसरे आपके इस कथन से आपका पहला कथन, भावना का कथन भी झूठ हो गया क्योंकि जब अज्ञानी लोग ब्रह्म को नहीं जान सकते हैं तो केवल पाषाण आदि की मूर्ति को परमेश्वर जानेंगे; न कि परमेश्वर को पत्थर से पृथक् और पत्थर में व्यापक जानेंगे । यदि यह कहो कि जब हम पाषाण आदि की मूर्ति में प्राणप्रतिष्ठा करके प्राण डाल देते हैं तब फिर वह मूर्ति जड़ नहीं रहती है; तो यह बात निपट मूर्खता की है क्योंकि पाषाण आदि की मूर्ति में कभी प्राणप्रतिष्ठा से प्राण आते नहीं देखे और न जीव के लक्षण तथा कर्म कभी मूर्ति में दृष्टिगोचर हुए । यदि आपके कथनानुसार यह मान भी लिया जाये कि प्राण प्रतिष्ठा से पाषाण आदि की मूर्तियों में जान भी पड़ जाती है; तो आप मृतक को जीवित क्यों नही कर लेते हैं । मृतक शरीर में तो श्वास आने के लिए छिद्र भी होते हैं परन्तु पाषाण आदि की मूर्तियों में तो कुछ भी नहीं होता है । यह जो आपने लिखा है कि पाषाण आदि की मूर्तियों में पूजन परम्परा से चला आता है तो यह केवल भ्रम और अविद्या का फल है । विचार तो कीजिये कि यदि पाषाण आदि की मूर्तियों का पूजन सनातन है तो वेदों में उसकी शिक्षा होनी चाहिये क्योंकि वेद सनातन हैं । जब वेदों में उसकी शिक्षा नहीं, तो पाषाण आदि की मूर्तियों का पूजन भी सनातन नहीं है । मन्दिर और धाम आदि के विषय में जो आपने लिखा है, यह सब पाषाणादि मूर्तिपूजन के आवश्यक अंग हैं । जब कि पाषाण आदि मूर्तियों का पूजन ही वेदविरुद्ध और झूठ सिद्ध हो लिया तो उनकी क्या बात है ?

२—प्रथम तो आपका यह प्रश्न विचित्र प्रकार का है । इसकी विशेषता इसके वाक्य विन्यास से ही प्रकट है, वह लिखी अथवा बताई नहीं जा सकती । आप पूछते हैं कि गंगा जी के सब नदियों में पूजनीय और श्रेष्ठ होने में क्या प्रमाण है ? इस प्रश्न से विदित होता है कि या तो गंगा जी आपकी दृष्टि में श्रेष्ठ और पूजनीय नहीं हैं और यदि श्रेष्ठ और पूजनीय हैं भी तो आप इसका प्रमाण नहीं दे सकते । अन्यथा इस बात का मुझ से पूछना क्यों आवश्यक हुआ ? अब इतना प्रश्न शेष रह गया कि यदि गंगा जी के पूजनीय और श्रेष्ठ होने में कुछ सन्देह है तो प्रकट करो । इसका उत्तर यही है कि मुझको इस बात में किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं है, प्रत्युत मैं निश्चय करके गंगा जी को श्रेष्ठ मानता हूं; क्योंकि किसी अन्य नदी का जल ऐसा उत्तम और गुणसहित नहीं है । परन्तु मैं गंगा जी को मुक्ति देने और पाप छुड़ाने का साधन नहीं मान सकता । भली-भांति समझ लो कि पाप और पुण्य जितना किया जाता है उसमें से न एक कण घट सकता है और न बढ़ सकता है । जब गंगा जी के स्नान से मुक्ति प्राप्त हुई या पाप छूट गये तो फिर सत्यधर्म और उत्तम कर्म करना, परमेश्वर की आज्ञा में चलना और उसकी स्तुति और उपासना करना बिलकुल व्यर्थ हुआ, क्योंकि जब कोई वस्तु सरल मार्ग से मिल सकती है तो फिर कठिन मार्ग से क्यों चला जाये ? वेद आदि सत्यशास्त्रों में कहीं गंगा जी के स्नान का माहात्म्य मुक्तिदायक नहीं लिखा । और यदि कहो कि तीर्थ आदि नाम तो वेद और धर्मशास्त्रों में लिखे हैं तो यह केवल समझ की भूल है । वेद आदि धर्मशास्त्रों में तो वेदों के पढ़ने, धर्म के अनुष्ठान करने और सत्य के ग्रहण करने और असत्य को त्यागने का नाम 'तीर्थ' लिखा है क्योंकि इन साधनों से ही मनुष्य दुःख-सागर से तर कर मुक्ति पा सकता है ।

देखिये प्रथम तो मनु जी महाराज ने मनुस्मृति के पांचवें अध्याय के नवें श्लोक में लिखा है—

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति । विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ॥

इसका अर्थ यह है—जल से शरीर की शुद्धि, सत्य से मन की शुद्धि, विद्या और तप से जीवात्मा की शुद्धि और ज्ञान से बुद्धि की शुद्धि होती है ।

"दूसरे, छान्दोग्योपनिषद् का यह वचन है—**'अहिंसन्सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः'** । इसका अर्थ यह है कि अपने मन से वैरभाव को छोड़कर सब को सुख देने में प्रवृत्त रहे और संसारी व्यवहार में किसी को दुःख न देवे, इसका नाम तीर्थ है, मनुष्यों को इस तीर्थ का सेवन करना उचित है । इसके अतिरिक्त अन्य कोई तीर्थ नहीं है ।"

इसलिए अब समझ लेना चाहिये कि सत्यशास्त्रों तथा अन्य युक्तियों के अनुसार गंगा कभी मुक्तिदायक नहीं हो सकती ।

३—आप जिनको परमेश्वर का अवतार कहते हैं वे महापुरुष थे । परमेश्वर की आज्ञा में चलते थे, सत्य धर्म और न्याय आदि गुणों वाले थे, वेदादि सत्यशास्त्रों के पूर्ण जानने वाले थे । आज तक कोई और ऐसा हुआ और न है परन्तु आप जो इन उत्तम पुरुषों को परमेश्वर का अवतार मानते हो यह आपकी भ्रान्ति है । भला परमेश्वर का अवतार कभी हो सकता है ? वह तो अजर और अमर है । जब उसका अवतार हुआ तो उसका यह गुण (अजरता व अमरता) जाता रहा । इसके अतिरिक्त जब परमेश्वर व्यापक और सर्वत्र विद्यमान है तो उसका एक शरीर में आना क्योंकर हो सकता है ? और यदि कहो कि परमेश्वर प्रत्येक स्थान पर और प्रत्येक मनुष्य में विद्यमान है ? हां, यह तो सत्य है परन्तु यह नहीं कि केवल एक मनुष्य और एक स्थान में है और अन्यों में नहीं । इसके अतिरिक्त परमेश्वर को जन्म लेने की आवश्यकता ही क्या है ? यदि आप कहें कि रावण और कंस आदि को परमेश्वर अवतार लिये बिना कैसे मार सकता था ? तो आपका यह कहना अत्यन्त अशुद्ध है क्योंकि जब वह निराकार परमेश्वर बिना शरीर के सब जगत् का पालन और धारण कर रहा है और बिना शरीर के जगत् का प्रलय भी कर सकता है तो उसको बिना शरीर के कंस आदि एक-दो मनुष्य का मारना क्या कठिन था ? और जो यह बात आप पूछते हैं कि इन अवतारों को बनाने वाला कौन है और किसने इनको पराक्रम दिया अथवा वे स्वयं समर्थ थे ? इसका उत्तर अत्यन्त सरल और स्पष्ट है । सबको बनाने वाला और सबको पराक्रम देने वाला परमेश्वर ही है । उसके अतिरिक्त अन्य कोई बनाने और पराक्रम देने वाला नहीं हो सकता । परन्तु आपके प्रश्न से प्रकट होता है कि आपकी दृष्टि में कदाचित् परमेश्वर के अतिरिक्त कोई अन्य भी बनाने और पराक्रम देने वाला है । अपने आप तो न कोई समर्थ हुआ और न है और न होगा । यह जो आप प्रश्न करते हैं कि उन अवतारों का सा सामर्थ्य और किसी राजा अथवा मनुष्य में क्यों नहीं हुआ, यह आपका कहना बिलकुल व्यर्थ है, क्योंकि जिसमें जैसे गुण होते हैं उसमें वैसा सामर्थ्य होता है और जैसा जिसमें सामर्थ्य है वैसा ही उसमें गुण होते हैं । आजकल बहुत से ऐसे मनुष्य हैं कि जो बिलकुल कर्महीन और अज्ञानी हैं और बहुत से ऐसे विद्वान् समर्थ और पराक्रमी हैं कि हजारों में भी अन्य कोई उनके समान नहीं है; तो क्या इसी कारण उन समर्थ मनुष्यों को परमेश्वर का अवतार कहना या मानना उचित है ? वाह ! वाह ! परमेश्वर के अवतार होने का आपने क्या बढ़िया प्रमाण सोच रखा है । किसी ने सच कहा है-"प्रत्येक की विचारशक्ति उसके सामर्थ्य के अनुसार होती है" परन्तु बड़े दुःख की बात है कि आप लोग यद्यपि रामचन्द्र जी और श्रीकृष्ण आदि उत्तम पुरुषों को परमेश्वर का अवतार मानते हो फिर भी उनकी परले सिरे की निन्दा और बुराई करने में संलग्न रहते हो । नगर-नगर और गली-गली में उनकी पाषाण आदि की मूर्ति बनवाकर उनसे भीख मंगवाई जाती है और पैसे-पैसे के लिए सर्वसाधारण के सामने उनके हाथ फैलवाये

जाते हैं । जब धनवान् अथवा साहूकार शिवालय या मन्दिर में आते हैं या पुजारी जी स्वयं उनके पास जाते हैं तो कहते हैं कि सेठ जी ! आज तो नारायण भूखे हैं, राधाकृष्ण जी को कल रात से बालभोग भी नहीं मिला है । इन दिनों सीताराम जी को प्रसादी की कठिनाई पड़ रही है । सरदी के कपड़े नारायण के पास नहीं हैं और शीतकाल शिर पर आ गया है । पुराने कपड़े तो सीताराम जी के कोई दुष्ट चुरा ले गया, उसी दिन से हम सीताराम जी को ताली कुंजी में बन्द रखते हैं; नहीं तो उनकी भी कुशल न थी । यदि किसी रईस या धनवान् की ओर से शिवालय या मन्दिर का मासिक व्यय आदि नियत हुआ तो पुजारी जी या बाबा जी जब कहीं बैठे होते हैं तो अपनी झूठी प्रेमभक्ति जताने के लिए कहते हैं कि लो यजमान ! हमको जाने दो, अब हमारे सीताराम जी या राधाकृष्ण जी भूखे होंगे और जब जावेंगे तो उनको भोजन मिलेगा अन्यथा भूखे बन्द रहेंगे ।

अब देखिए, रामलीला को संगठित करके किस प्रकार आप लोग अपने उत्तम पुरुषों की नकल करवाते और उनकी कितनी निंदा कराते हो ?, अन्य मत वालों को उन पर हंसवाते हो और उनका अपमान कराते हो । इस लीला का तो कुछ वर्णन ही नहीं । देखो ! प्राय: लोग क्या धनवान्, क्या रईस, क्या दुकानदार और क्या श्रमिक, सभी इस रास की सभा में एकत्रित होते हैं और रास देख-देखकर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं । कोई कहता है कि कृष्ण जी अच्छा नाचते हैं, कोई कहता है राधा जी बड़ी सुन्दरी हैं, कोई कन्हैया जी के गाने पर प्रसन्न हो रहा है तो कोई राधा जी की मूर्ति पर मोहित और लट्टू है और अत्यन्त प्रेम-भक्ति प्रकट कर रहा है । कोई कहता है वाह ! वाह ! साक्षात् राधा-कृष्ण जी ही आ गये हैं । इन्हीं कन्हैया जी ने हजारों गोपियों के साथ भोग-विलास किया है; १६०० रानियां रखी हैं, बहुत दूध माखन चुरा कर खाया है । नहाती हुई नंगी स्त्रियों के कपड़े तक चुरा लिये हैं और उनको पहरों नग्न सामने खड़ा रखा है । अधिक और कहां तक तुम्हारी बातों का वर्णन करूं । अब लज्जा भी रोकती है और बुद्धि भी आज्ञा नहीं देती । परन्तु खेद ! लाख बार खेद ! आप लोग अपने देश के ऐसे-ऐसे राजा-महाराजाओं को जो हजारों लाखों पर शासन करते थे और उनका पालन तथा सहायता करते थे, ऐसे-ऐसे उत्तम पुरुषों को जो जीवन पर्यन्त परमेश्वर की आज्ञा में रहे; सत्यवादिता, सदाचार और धर्म के कामों में अद्वितीय रहे, खाने कपड़े के लिए भी भिक्षुक बनाते हो, अधर्मी, व्यभिचारी, तमाशबीन और चोर ठहराते हो और केवल अपनी स्वार्थसिद्धि और मनोरंजन के लिए उनकी अपकीर्ति करते और कराते हो । उनके विषय में ऐसी-ऐसी झूठी कहानियां, जिनका प्रमाण किसी पुस्तक या इतिहास से प्राप्त नहीं हो सकता, अपने मन से बना-बना कर वर्णन करते हो और फिर अपने आप को उनका भक्त, गुणगायक और प्रशंसक समझते हो । हाय, हाय, इन बातों के वर्णन से मन पर इतना शोक और दुःख का भार है कि अधिक वर्णन करने का सामर्थ्य नहीं । इसलिए इसी पर सन्तोष करता हूं और अपने इस कथन के समर्थन में कि परमेश्वर का अवतार किसी अवस्था में नहीं हो सकता है, दो वेदमन्त्र कहता हूं । पहला यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय का आठवां मन्त्र है और दूसरा यजुर्वेद के ३१वें अध्याय का पहला मन्त्र है—

१—स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥[११]

इस मन्त्र का अर्थ यह है—परमेश्वर सबमें व्यापक और अनन्त पराक्रम वाला है, वह सब प्रकार के शरीर से रहित है, कटने-जलने आदि रोगों से परे है । नाड़ी आदि के बन्धन से पृथक् है । सब दोषों से रहित और सब पापों से न्यारा है । सब का जानने वाला, सबके मन का साक्षी, सबसे श्रेष्ठ और अनादि है । वही परमेश्वर अपनी प्रजा को वेद के द्वारा अन्तर्यामी रूप से व्यवहारों का उपदेश करता है ।

२—सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । स भूमिं सर्वतः स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशांगुलम् ।।[१२]

इस मन्त्र का अर्थ यह है—परमेश्वर तीनों प्रकार के जगत् (अर्थात् भूत, भविष्य और वर्तमान) को रचता है; उससे भिन्न दूसरा कोई और जगत् को रचने वाला नहीं है क्योंकि वह सर्वशक्तिमान् है । मोक्ष भी परमेश्वर की ही कृपा से मिलता है । पृथिवी आदि जगत् की स्थिति भी परमेश्वर के व्यापकता गुण के कारण है । वह परमेश्वर इन वस्तुओं से पृथक् भी है क्योंकि उसमें जन्म आदि व्यवहार नहीं । वह अपने सामर्थ्य से सब जगत् को उत्पन्न करता है और स्वयं कभी जन्म नहीं लेता है । बस, अब यह बात भली प्रकार सिद्ध हो गई कि वेद और उपर्युक्त युक्तियों के आधार पर परमेश्वर का अवतार किसी प्रकार नहीं हो सकता । इति ।

प्रथम तो इन प्रश्नों के लिखने के ढंग से मेरठ की 'धर्मरक्षिणी सभा' के पंडितों की योग्यता विदित होती है । दूसरे, लिखित प्रश्नों और लिखित उत्तरों की प्रार्थना; परन्तु सभापति व सभा के पंडितों के हस्ताक्षर का प्रश्नों के पर्चों पर नाम तक नहीं । चूंकि उत्तर देने के अभिप्राय से प्रश्नों का रखना आवश्यक था (इसलिए लौटाया नहीं) परन्तु हस्ताक्षर के बिना किसी काम के न थे (उनको रखना व्यर्थ था) । इसलिए सावधानता की दृष्टि से, उक्त सभा के मन्त्रों के हस्ताक्षर तीनों पर्चों पर सभा में कराये और उनसे कह दिया गया कि इन प्रश्नों के उत्तर सभा के अन्तिम दिन और समस्त प्रश्नों के समान मौखिक दिये जावेंगे परन्तु उक्त सभा के मन्त्री ने लिखित उत्तरों के लिए अनुरोध किया जिसके उत्तर में स्वामी जी ने यह कहा कि यदि सभापति अर्थात् ला० किशन सहाय साहब साहू की हस्ताक्षर वाली चिट्ठी लाओ तो निस्सन्देह लिखित उत्तर दिये जावेंगे । यह उत्तर इस विचार से दिया गया था कि ये प्रश्न एक प्रतिष्ठित सभा की ओर से उपस्थित किये गये थे । सारांश यह कि उक्त सभा के मंत्री कुछ परिवर्तन के पश्चात् यह प्रतिज्ञा करके चले गये कि सभापति के हस्ताक्षर वाली चिट्ठी कल भिजवा देंगे । परन्तु चिट्ठी भेजने का कदापि नाम न लिया और उसी समय से जो कुछ मन में आया, प्रसिद्ध करने लगे ।

अब अन्य उपस्थित प्रश्नों में से केवल तीन या चार सज्जनों के प्रश्न नियमित और उत्तर के योग्य थे अर्थात् पंडित नत्थूसिंह साहब पटवारी, सदर बाजार निवासी, ला० शिवनाथ साहब आढ़ती, और अध्यापक गवर्नमेंट स्कूल पंडित रामनाथ महोदय के प्रश्न इस योग्य थे । पंडित नत्थूसिंह साहब और ला० शिवनाथ साहब के प्रश्न लगभग धर्मरक्षिणी सभा के प्रश्नों से मिलते थे और पंडित रामनाथ जी का प्रश्न लम्बा-चौड़ा आत्मा के विषय में था जिसका वर्णन पुनर्जन्म की चर्चा में किया गया था । शेष रहे, पंडित चुन्नीलाल शास्त्री कर्मचारी 'धर्मरक्षिणी सभा' और पंडित हरदयाल तथा जलजीरा बेचने वाले एक व्यक्ति के, जो पंडित होने का दावा करता था । अन्य मनुष्यों के प्रश्न ऐसे थे कि लिखने के योग्य नहीं । उन प्रश्नों में पंडित हरदयाल के प्रश्न तो ऐसे अश्लील थे कि सभा में पढ़ते समय सभा में उपस्थित लोगों ने उनका पढ़ा जाना बन्द करा दिया । संक्षेप में उनमें से जलजीरा बेचने वाले उपुर्यक्त पंडित के प्रश्नों का सार सर्वसाधारण की सूचना के लिए नीचे लिखा जाता है । इससे औरों के विषय में भी विचार कर लेना चाहिये । जैसे किसी ने कहा है कि ढेर में से एक मुट्ठी नमूना ही पर्याप्त है ।

प्रश्नों का सार—हे स्वामी जी महाराज ! यह किस वेद में लिखा है कि स्वामी जी गुलाबजामुन, बालूशाही और मिठाई खावें और टसर भी पहनें । आप कहते हैं कि आर्यों का नाम चार अक्षरों तक होना चाहिये फिर आपका नाम (अर्थात् स्वामी दयानन्द सरस्वती) इतना बड़ा क्यों है और यह किस वेद में लिखा है कि स्वामी जी लोटे से पानी पीवें ? कहने का अभिप्राय यह कि प्रत्येक पर्चे के उत्तर (पंडित हरदयाल के पर्चे के अतिरिक्त) चाहे वह उत्तर देने के योग्य था, या न था, सभा में मौखिक दिये गये ।

लिखित शास्त्रार्थ से कतराने वाले मौलवी—व्याख्यान के दिनों में मौलवी अब्दुल्ला साहब की ओर से भी एक पत्र आया था, जिसकी प्रतिलिपि अक्षरशः आगे लिखी है । उसके देखने से उक्त मौलवी साहब का समस्त वृत्तान्त विदित हो जायेगा, कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है ।

मौलवी अब्दुल्ला साहब के पत्र की सही प्रतिलिपि

मा बाज फकीर मुहम्मद अब्दुल्ला, साकिन शहर मेरठ, मुहल्ला शामीबाड़ा दर खिदमतशामी दयानन्द प्रशाद से गुजारिश करता है कि आप दीन-ए-मुसलमानी पर चन्द ऐतराज करते हैं और यों भी कहते हैं कि जिसका दिल चाहे हम से मुबाहिसा करे यानि बहस करे । और जो मसायल दर्याफ्त करे हम उसका फौरन जवाब देंगे । सो मुबाहसे के अन्दर बहुत शर्तें हैं लेकिन इनमे पांच शर्तों का होना मुमकिन है । अव्वल यह कि सालिस का होना जरूर चाहिये यानी मुंसिफ का । दोयम यह है कि जब तक मुबाहसा न हो चुके, आपको कहीं जाना न होगा । सोयम यह है कि गुफ्तगू हमारी और तुम्हारी रहेगी । उसमें और कोई शख्श बोलने न पावेगा । चहारुम यह है कि खुदा को हाजिर व नाजिर जानकर और तास्सुब और नफगसानियत को दूर करके जो जो शख्श मगलूब होये, उसी वक्त हक को तस्लीम करे और पंजुम यह है कि किसी रईस का बन्दोबस्त होना जायज है और गुफ्तगू तकरीरी चाहते हैं, हम तहरीरी नहीं चाहते । अगर ये सब बातें आपको मंजूर हों तो जवाब इसका रुक्का हिजा की पुश्त पर दर्ज कर दीजियेगा । फिर इन्शाअल्ला ताला आपसे मुबाहिसा रहेगा ।[1]

अलबत—

मौलवी मुहम्मद अब्दुल्ला साहिब

उक्त पत्र का हिन्दी अनुवाद—सब स्तुति परमेश्वर के वास्ते हैं जो पालन करने वाला है सब संसार का । इसके पश्चात् फकीर मुहम्मद अब्दुल्ला मुहल्ला स्वामीपाड़ा, मेरठ नगर निवासी, स्वामी दयानन्द की सेवा में निवेदन करता है कि आप मुसलमानी मत पर कुछ आक्षेप करते हैं और यह भी कहते हैं कि जिसका मन चाहे हमसे शास्त्रार्थ करे अर्थात् तर्क करे और जो सिद्धान्त पूछेगा हम उसका तत्काल उत्तर देंगे । सो शास्त्रार्थ के लिए यों बहुत सी शर्तें हैं परन्तु इनमें पांच शर्तों का होना सम्भव है । प्रथम यह है कि मध्यस्थ अर्थात् न्यायकारी अवश्य होना चाहिये । दूसरी यह है कि जब तक शास्त्रार्थ समाप्त न हो, आपको कहीं जाना न होगा । तीसरी यह है कि जो व्यक्ति पराजित हो वह ईश्वर को सर्वव्यापक और द्रष्टा जानकर और पक्षपात और स्वार्थ से रहित होकर उसी समय सत्य को स्वीकार करे । पांचवीं यह है कि किसी रईस का प्रबन्ध होना उचित है और छः बजे से ४ बजे तक[2] शास्त्रार्थ हो क्योंकि उसके पश्चात् रोजे का समय आ जाता है और बातचीत मौखिक चाहते हैं, लिखित नहीं चाहते । यदि ये बातें आपको स्वीकार हों तो इसका उत्तर इस पत्र की पीठ पर लिख दीजियेगा, फिर ईश्वर ने चाहा तो आपसे शास्त्रार्थ रहेगा ।

हस्ताक्षर—

मौलवी मौहम्मद अब्दुल्ला साहब

---

1. इस पत्र की प्रतिलिपि में जो लेख आदि की अशुद्धि है वह छापाखाने की अशुद्धि न समझी जावे प्रत्युत प्रतिलिपि मूल के अनुसार है । यदि इसमें किसी को सन्देह हो तो मूलपत्र आर्यसमाज मेरठ के पास विद्यमान है, देख लेवे । लिखित शब्द से यहां यह अभिप्राय है जो कि प्रश्न किया जावे तत्काल लिखा जावे और जो उत्तर दिया जावे वह भी उसी समय लिखा जावे ।

2. यहां कदाचित् ४ से ६ बजे सायं तक ही होगा ।—सम्पादक

इस पत्र का उत्तर मौलवी साहब को लिखित दिया गया जिसकी प्रतिलिपि जैसी की तैसी निम्नलिखित है—

मौलवी अब्दुल्ला साहब सलामत,

दरजवाब आपको लिखा जाता है । बेहतर है कि आप हस्ब मन्शा अपना बजरिये मुअजिज रईसान शहर और सदर के सिलसिल जुम्बानी कीजिये । मुझको कुछ उजर नहीं और जुमला मुआमलात तहरीरी होनी चाहिये न कि तकरीरी । फक्त ।

ता० ७ सितम्बर, सन् १८७८, दयानन्द सरस्वती

इसके पश्चात् उक्त मौलवी साहब का दूसरा पत्र आया । उसका भी वास्तविक अभिप्राय यही था कि शास्त्रार्थ मौखिक उचित है, लिखित नहीं होना चाहिये ।

मेरे विचार में इससे यह अभिप्राय विदित होता था कि भाषण में किसी न किसी बात से इन्कार करने और सिद्ध करने का अवसर रहता है, परन्तु लेख में कुछ बस नहीं चलता । इसीलिए मौलवी साहब शास्त्रार्थ से भागते थे । चूंकि विदित हो चुका था कि मौलवी साहब मौखिक शास्त्रार्थ की हठ न छोड़ेंगे इसलिए उनके दूसरे पत्र के उपस्थित होने के पश्चात् सभा में स्वामी जी ने यह उत्तर दिया कि शास्त्रार्थ लिखित होगा और मौखिक कदापि उचित नहीं । शेष समस्त बातें मौलवी साहब की स्वीकार हैं । इस विषय में और अधिक लिखना और कहना व्यर्थ है ।

अब विचारना चाहिये कि ऐसी निर्मूल कार्यवाहियां तो मौलवी साहब और उनके सहधर्मियों की ओर से प्रकाश में आती रहीं परन्तु वाह रे ! पक्षपात ! फिर भी डींग मारने से नहीं रुकते और सदा समाचार पत्रों के पृष्ठों को अपनी प्रशंसा और दूसरों की झूठी निन्दा से काला करते हैं । खैर ! अभी तो यहां तक ही बात पहुंची है, पता नहीं कि भविष्य में यह पक्षपात और क्या-क्या रंग दिखलायेगा ।

'सनातन धर्मरक्षिणी सभा' की व्यर्थ छेड़छाड़—अब यहां से यह वृत्तान्त लिखा जाता है कि जिससे सभा में उपस्थित लोगों, और मेरठ के आर्य सज्जनों को स्वामी जी और पंडित लोगों के शास्त्रार्थ की दृढ़ आशा हुई थी । ९ सितम्बर, बुधवार को सदर बाजार मेरठ में बलेश्वर महादेव जी के स्थान पर मेरठ के पंडित और कुछ रईस एकत्रित हुए और शास्त्रार्थ के विषय में परामर्श किया गया । उसी दिन एक चिट्ठी देवनागरी लिपि में उनकी ओर से सभा में स्वामी जी के पास आई; इसका सार यह था कि बलेश्वर महादेव में रविवार को धर्मनिर्णय के लिए सभा होगी, स्वामी दयानन्द सरस्वती भी सभा में आवें । इस चिट्ठी पर यद्यपि ला० बख्तावरसिंह, ला० किशनसहाय, ला० हुलासराय और कुछ पंडित लोगों के नाम लिखे हुए थे परन्तु किसी सज्जन के हस्ताक्षर नहीं थे । चूंकि स्वामी जी ने बार-बार पहले ही कह दिया था कि मैं ला० किशनसहाय के हस्ताक्षर[1] के बिना किसी लेख का विश्वास न करूंगा, इसलिए उस समय भी कह दिया कि इस बिना हस्ताक्षर की चिट्ठी का विश्वास नहीं है और कुछ उत्तर न दिया ।

तत्पश्चात् १२ तारीख को ला० मुन्नालाल सुपुत्र ला० किशनसहाय रईस ने उक्त लाला जी की ओर से स्वामी जी से आकर कहा कि लाला जी कहते हैं कि यदि आप शास्त्रार्थ में परास्त होवें तो आप को मूर्तिखण्डन छोड़ देना पड़ेगा ।

---

1. विदित हो कि स्वामी जी शास्त्रार्थ के लिए किसी रईस या प्रतिष्ठित व्यक्ति के हस्ताक्षरयुक्त चिट्ठी इस निमित्त चाहते थे कि शास्त्रार्थ का परिणाम अच्छा हो । क्योंकि एक दो स्थानों पर किसी रईस के लिखने और मध्यस्थ होने के बिना ही शास्त्रार्थ का अवसर हुआ; वहां कुछ परिणाम न निकला । न केवल यह कि परिणाम न निकला, प्रत्युत उपद्रव की अवस्था उत्पन्न हो गई ।

स्वामी जी ने इस बात को स्वीकार किया और सायं समय सार्वजनिक सभा में कह दिया कि शास्त्रार्थ की सभा के लिए ला० किशनसहाय जी इच्छा रखते हैं तो आज से चार दिन के भीतर 'सभा' की समस्त शर्तों को मुझ से अपनी हस्ताक्षरयुक्त चिट्ठी द्वारा निश्चित कर लें। परन्तु ला० किशन सहाय जी की ओर से इस अवधि में फिर कोई बात प्रकाश में न आई। कुछ रईस लोग ला० बख्तावरसिंह जी के मकान पर एकत्रित हुए और परस्पर सम्मति करके एक चिट्ठी ला० किशनसहाय जी रईस सभापति धर्मरक्षिणी सभा मेरठ की ओर से स्वामी जी के पास सभा में आई। परन्तु इस चिट्ठी पर भी लाला जी के निजी हस्ताक्षर नहीं थे; केवल किसी लेखक की लिखी हुई थी और पंडित कमलनेत्र, भागीरथ, शालिग्राम और अन्य पंडित लोगों के नाम भी इसी पर भेजने वालों में लिखे हुए थे और इस चिट्ठी का सार यह था कि पंडित श्री गोपाल जी यहां विद्यमान हैं। जिस दिन आप चाहें उनसे शास्त्रार्थ करें।

सभा में चिट्ठी पढ़े जाने के पश्चात् स्वामी जी ने स्पष्ट कह दिया कि 'मैं शास्त्रार्थ के लिए तो प्रत्येक अवस्था में उपस्थित हूं, परन्तु पंडित भागीरथ और श्रीगोपाल जी से[१३] शास्त्रार्थ न होना चाहिये क्योंकि वे दोनों पंडित अत्यन्त क्रोधी[1] हैं। मुझे श्रीगोपाल से दो-तीन बार बातचीत का संयोग हुआ है परन्तु क्रोध के कारण दोनों-तीनों बार उनमें बात करने तक की भी शक्ति न रही और अन्त में कठोर-भाषण किया और गालियां दीं। इसलिए विश्वास है कि वही अवस्था अब भी उपस्थित होगी और शास्त्रार्थ का कुछ परिणाम न निकलेगा। पंडित जी की योग्यता का वृत्तान्त तो सब जानते ही हैं, कुछ वर्णन की आवश्यकता नहीं। शेष रहा पंडित भागीरथ जी की योग्यता का वृत्तान्त सो वह उनके उपुर्यक्त प्रश्नों के लिखने के ढंग से ही प्रकट है और दूसरे एक बार कई वर्ष व्यतीत हुए जब कि मैं ला० लेखराज के बाग में ठहरा हुआ था, पंडित भागीरथ ने वहां जाकर मुझको बहुत कुछ भला बुरा कहा और अन्त में तालियां बजाईं। ये सभी बातें बड़प्पन से अत्यन्त दूर हैं। परन्तु पं. कमलनेत्र, शालिग्राम या अन्य पंडितों श्रीधर और हरजसराय जी आदि से शास्त्रार्थ होना अत्यन्त श्रेष्ठ बात है परन्तु शर्त यह है कि ला० किशनसहाय जी अपने हस्ताक्षर की हुई चिट्ठी के द्वारा सब बातें निश्चित कर लें।'

अब विचार कीजिये कि स्वामी जी ने वस्तुत: कहा तो क्या और उसमें क्या कुछ जोड़ा गया। उसी समय से सर्वसाधारण में चर्चा हुई कि स्वामी जी ने श्रीगोपाल से शास्त्रार्थ करना अस्वीकार कर दिया; पूर्ण पंडित को देखकर डर गये (वाह ! क्या बात है)। जब यह सूचना स्वामी जी के कानों में पहुंची और कुछ लोगों ने भी स्वामी जी से कहा कि आप श्रीगोपाल जी से ही शास्त्रार्थ स्वीकार कीजिये। कठोर भाषण आदि को रोकने का उपाय पहले ही कर दिया जावेगा। इस पर स्वामी जी ने दूसरे दिन आकर सभा में घोषणा की कि मैं शास्त्रार्थ को उद्यत हूं, चाहे पंडित श्रीगोपाल से हो या और किसी से हो। यहां तक कि यदि ला० किशनसहाय जी, जो कि रईस और भद्रपुरुष हैं, अपनी हस्ताक्षर की हुई चिट्ठी के साथ किसी साधारण विद्यार्थी को भी शास्त्रार्थ के लिए भेजें तो उससे भी मैं शास्त्रार्थ करने को उपस्थित हूं परन्तु हार-जीत का उत्तरदायित्व इस ओर से मुझ पर और उस ओर से ला० किशनसहाय जी पर होगा। सभा विसर्जित होने के पश्चात् पंडित श्रीगोपाल जी जो पंडित जगन्नाथ के मकान पर ठहरे हुए थे, मालिक मकान के द्वारा स्वामी जी की घोषणा की सूचना दी गई और ला० किशनसहाय जी और सर्वसाधारण जनता को भी इस बात की सूचना मिल गई। इसके पश्चात् भी दो दिन और ला० रामसरनदास[१४] जी के मकान पर प्रश्नों का उत्तर देने में व्यतीत हुए परन्तु इस समय में ला० किशनसहाय जी या पंडित लोगों की ओर से कोई लिखित या मौखिक बातचीत आरम्भ न हुई और १३ सितम्बर, सन् १८७८ को यहां पर सभा समाप्त हुई।

---

1. ये पंडित जी मेरठ की धर्मरक्षिणी सभा के एक प्रथम कोटि के पंडित हैं।

१४ सितम्बर से बाबू छेदीलाल[१५], गुमाश्ता कमसरियट की कोठी पर धर्मोपदेश आरम्भ हुआ जिसकी सूचना एक दिन पहले ही सर्वसाधारण को दे दी गई थी और २२ सितम्बर, सन् १८७८ रविवार तक उस स्थान पर निरन्तर नित्यप्रति व्याख्यान होता रहा। इन दिनों स्वामी जी ने कुछ व्याख्यान इन विषयों पर, जैसे पोप लोगों की लीला, पाखंडियों की बनावट आदि पर दिये तथा व्याख्यानों में ही वर्षा की न्यूनता और महामारी आदि के वैद्यकशास्त्र तथा अन्य युक्तियों के आधार पर कारण बताये, आर्य लोगों के सत्यकर्म और आर्यसमाज के नियम और अन्य विभिन्न बातों का उपदेश किया और ऋग्वेद के कुछ अध्यायों का अर्थ सहित पाठ श्रेष्ठ रीति से सभा में कह सुनाया।

सत्य धर्मरक्षिणी सभा में पुनः विचार[1]—इस बीच १५ सितम्बर, सन् १८७८ को ला० शिब्बनलाल रईस के दीवानखाने में नगर के पंडितों आदि की एक सभा हुई, और उसके अगले दिन अर्थात् १६ सितम्बर को एक विज्ञापन भी उनकी ओर से प्रकाशित हुआ जिसका सार यह था कि इस सभा में धर्म का उपेदश होगा और स्वामी दयानन्द सरस्वती शास्त्रार्थ के लिए बुलाये गये हैं। इति। एक पत्र उर्दू लिपि में ला० किशनसहाय, ला० बख्तावरसिंह, और हुलासराय जी की ओर से स्वामी जी के नाम आया जिसका अभिप्राय यह था कि आपको सभा में ला० शिब्बनलाल जी के मकान पर आकर पण्डितों से शास्त्रार्थ करना चाहिये।

परन्तु यद्यपि स्वामी जी ने बार-बार कह दिया कि जब तक ला० किशनसहाय जी की हस्ताक्षरयुक्त चिट्ठी मेरे पास नहीं आयेगी उस समय तक मैं किसी के लिखने के अनुसार आचरण न करूंगा और जब तक कि शास्त्रार्थ के उचित तथा आवश्यक नियम निश्चित नहीं होंगे, शास्त्रार्थ भी संभव नहीं है। इतना कह देने पर भी उपर्युक्त पत्र पर ला० किशनसहाय जी तथा अन्य सज्जनों के हस्ताक्षर नहीं थे, और न उस पत्र में शास्त्रार्थ के नियमों आदि की कोई चर्चा थी। इसका प्रमाण यह है कि उस पत्र के लेख से ही स्पष्ट होता है कि समस्त सज्जनों के हस्ताक्षर लेखक की लेखनी से ही हुए हैं। दूसरे लाला हुलासराय, जो फारसी भाषा से बिलकुल परिचित नहीं और केवल हिन्दी जानते हैं, उनके हस्ताक्षर भी फारसी में और एक ही लेखनी से लिखे हुए थे। सारांश यह कि इस पत्र पर हस्ताक्षर न होने से नाना-प्रकार के विचार स्वामी जी के मन में आये और उन्होंने मौन धारण करना उचित समझा।

उसी दिन शाम को ला० बख्तावरसिंह के सुपुत्र ला० सेढ़ासिंह, सोती गोविन्दप्रसाद जी आदि स्वामी जी के पास सभा में बाबू छेदीलाल के मकान पर आये और स्वामी जी से ला० किशनसहाय तथा अन्य सज्जनों के पत्रों के उत्तर न देने का कारण पूछा। स्वामी जी ने यह उत्तर दिया चूंकि मेरे पास इस क्षण तक भी कोई पत्र ला० किशनसहाय जी के हस्ताक्षर का नहीं आया, इसलिए मैं किस प्रकार उत्तर भेजता? फिर सोती गोविन्दप्रसाद जी ने कहा कि हम खास लाला किशनसहाय जी के भेजे हुए आये हैं। आप शास्त्रार्थ करने की अपनी इच्छा प्रकट कीजिये। इसके उत्तर में स्वामी जी ने कहा कि आप भद्रपुरुष प्रतीत होते हैं और मैं आपके कथन को अविश्वसनीय भी नहीं समझता हूं किन्तु चूंकि पहले से एक सज्जन अर्थात् ला० किशन सहाय के निजी[2] लेख पर इस बात का निश्चित होना निर्भर रखा गया है, इसलिए यही श्रेष्ठ है कि आप उनके

---

1. प्रथम तो यह बात विचारणीय है कि सभा तो १५ ता० को हुई और १६ ता० को यह विज्ञापन छपा कि १५ ता० को सभा होगी और स्वामी जी शास्त्रार्थ को बुलाये गये हैं। दूसरे यह कि साधारण नियम है कि प्रथम समय और अन्य आवश्यक बातें निश्चित हुआ करती हैं, तत्पश्चात् शास्त्रार्थ का विज्ञापन किया जाता है। परन्तु यहां प्रारम्भिक या आवश्यक बातों की बिलकुल चर्चा नहीं की गई, केवल विज्ञापन छपवा दिए, गली-कूचों में लगवा दिए और स्थान स्थान पर वितरित करा दिये। झूठे बड़प्पन के अतिरिक्त इससे और क्या प्रयोजन हो सकता है। शास्त्रार्थ का तो केवल बहाना था।

2. बार-बार हस्ताक्षरयुक्त चिट्ठी की मांग इसलिए थी कि शास्त्रार्थ का कार्य भली भांति सम्पन्न हो और उनके लेख द्वारा तुम लोगों पर भी उत्तरदायित्व प्रत्येक अवस्था में रहे।

हस्ताक्षरों से युक्त चिट्ठी भिजवा दीजिये । मुझको शास्त्रार्थ में कुछ आपत्ति नहीं है, प्रत्युत मेरा मुख्य अभिप्राय यही है और जब कि ला० किशनसहाय महोदय तथा अन्य सज्जनों ने ही आपको भेजा है तो फिर हस्ताक्षरयुक्त चिट्ठी भेजने में क्या सोच-विचार है । उस समय ला० सेढ़ासिंह महोदय ने कहा कि यदि आप को इसी प्रकार इसका निश्चित करना स्वीकार है तो कल प्रात: अवश्य ला० किशनसहाय जी की हस्ताक्षरयुक्त चिट्ठी भिजवा देंगे और इसके पश्चात् दोनों सज्जन सभा से चले गये, परन्तु अगले दिन भी उनके वचन की पूर्ति न हुई । इसके विपरीत विभिन्न कार्यवाहियां, जिनका आगे वर्णन है, प्रकाश में आईं अर्थात् दूसरे दिन दोपहर के पश्चात् एक रजिस्ट्री पत्र इसी विषय का उक्त लाला लोगों की ओर से फिर स्वामी जी के नाम आया परन्तु वह भी बिना हस्ताक्षर का था, केवल लेखक ने भेजने वालों के नाम लिख दिये थे । अब विचार करना चाहिये कि सब प्रकार की कार्यवाहियां तो इस समय में होती रहीं परन्तु हस्ताक्षरयुक्त चिट्ठी और नियमपूर्वक बातचीत बीच में न आई । रजिस्ट्री कराकर भेजे हुए पत्र के आने के पश्चात् स्वामी जी ने लाला किशनसहाय जी के पत्रों का उत्तर लाला शिब्बनलाल साहब के द्वारा भेजा परन्तु (उनकी) सभा घोषित किये हुए समय से पहले ही विसर्जित हो गई थी इसलिए वह पत्र वापस आ गया ।

दूसरे दिन फिर पंडित लोगों की सभा नगर की मंडी के समीप एक कोठी में हुई जहां फिर स्वामी जी की ओर से वही पत्र ला० किशनसहाय साहब के पास सभा में ही भेजा गया । सभा की समाप्ति के समय उन सज्जनों ने, जो पत्र लेकर गये थे, लाला किशनसहाय और लाला बख्तावरसिंह आदि सज्जनों से कहा कि स्वामी जी के पत्र को, जो आपके नाम से भेजे हुए पत्रों का उत्तर है और जिसको कि हम लेकर आये हैं, सभा में सुनवा दीजिये ताकि सर्वसाधारण जनता को लिखे हुए विषय की जानकारी हो जावे । परन्तु लाला किशनसहाय जी ने उस पत्र को सभा में पढ़ने की आज्ञा इस कारण नहीं दी कि उस पत्र पर स्वयं स्वामी जी के हस्ताक्षर नही थे और बहुत कहने-सुनने के पश्चात् कहा कि प्रात: लाला बख्तावरसिंह जी के मकान पर आकर सब बातें निश्चित कर ली जावें इस समय और अधिक बातचीत व्यर्थ है । बड़े आश्चर्य की बात है कि स्वामी जी के पास जितने बिना हस्ताक्षर के पत्र लाला लोगों की ओर से आये, उन सबको स्वामी जी ने सभा में उपस्थित लोगों को अपने उत्तर सहित सुनवा दिया परन्तु लाला लोगों ने इस एक पत्र को भी सभा में पढ़ने की आज्ञा न दी; यही नहीं इसको उन्होंने स्वयं भी न पढ़ा ।

अगले दिन १७ सितम्बर को प्रतिज्ञानुसार पांच मनुष्य स्वामी जी की ओर से सभा की शर्तें निश्चित करने के लिए ला० बख्तावरसिंह महोदय के मकान पर गये और सभा के नियमों की लिखित पांडुलिपि, स्वामी जी की हस्ताक्षरयुक्त चिट्ठी सहित, अपने साथ ले गये । उक्त लाला जी ने पूजन आदि से निवृत्त होकर प्रथम सभा के नियमों की लिखित पाण्डुलिपि सुनी और तत्पश्चात् उन पांचों व्यक्तियों सहित ला० किशनसहाय जी के मकान पर गये ।

ला० किशनसहाय जी ने तत्काल अपने लेखक को बुलाकर सभा के नियमों की लिखित पाण्डुलिपि की प्रतिलिपि करा ली और यह कहा कि इसका उत्तर परामर्श करने के पश्चात् कल प्रात:काल तक भेजा जायेगा । स्वामी जी की ओर से भेजे गये नियमों की प्रतिलिपि सूचनार्थ नीचे लिखी जाती है । इस पत्र में लिखे गये कुछ वाक्यों की व्याख्या टिप्पणी में कर दी गई है; यह व्याख्या ला० किशनसाहय जी को मौखिक कह दी गई थी ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी द्वारा प्रस्तावित शास्त्रार्थ के नियमों की पाण्डुलिपि[1] की प्रतिलिपि

(यह प्रतिलिपि ला० किशनसहाय जी और बख्तावरसिंह जी की प्रार्थना पर १७ सितम्बर को प्रातःकाल पंडित मानसिंह तथा अन्य सज्जनों ने की थी)

१—चूंकि सबसे पहले सभा के प्रबन्धकों का निश्चित किया जाना आवश्यक है इसलिए हमारी दृष्टि में उचित है कि निम्नलिखित सज्जन दोनों पक्षों की आरे से प्रबन्धक नियत किये जायें—

(स्वीकृति के आधीन)

१—पंडित गंगाराम साहब।	१—ला० किशनसहाय साहब, रईस।
२—ला० रामसरनदास साहब, रईस।	२—बख्तावरसिंह साहब, रईस।
३—राय गणेशीलाल साहब, प्रबन्धक छापाखाना 'जल्वये तूर'।	३—हकीम बलदेवसिंह साहब।
४—बाबू छेदीलाल साहब, गुमाश्ता कमसरियट।	४—ला० अंबाप्रसाद साहब, वकील।
५—पंडित गेंदनलाल साहब, अध्यापक गवर्नमेंट स्कूल।	५—ला० तुलसीधर साहब, वकील।
६—पंडित जगन्नाथ साहब।	६—लाला हुलासराय साहब साहूकार।

२—इन सज्जनों में से कोई एक सज्जन और जहां तक सम्भव हो, श्रीमान् सबजज साहब बहादुर प्रबन्धक समिति के सभापति नियत किये जावें।

३—प्रबन्धकों के अतिरिक्त, सभा में उपस्थित लोगों की संख्या दोनों ओर से पचास-पचास से कम और दो-दो सौ से अधिक न हो तो अच्छा है।

४—सभा में आनेवाले लोगों की जितनी संख्या निश्चित की जावे, उतने ही टिकिट छापकर दोनों पक्षों के प्रबन्धकों को आधे-आधे बांट दिये जावें।

५—दोनों पक्ष अपनी-अपनी ओर के लोगों को नियम में रखें और उनके सब प्रकार से उत्तरदायी हों।

६—दोनों ओर से योग्य पंडितों की संख्या दस-दस से अधिक न हो, कम रखने का अधिकार है।

७—दोनों ओर से केवल एक-एक ही पंडित सभा में बातचीत करे अर्थात् एक ओर से स्वामी दयानन्द सरस्वती और दूसरी ओर से पंडित श्रीगोपाल।

---

1. यहां पाण्डुलिपि शब्द इस कारण लिखा गया है कि १७ ता० को प्रातःकाल स्वामी जी ने सभा के नियमों के विषय में अपना अभिप्राय उन पांचों व्यक्तियों से, जो शास्त्रार्थ के नियम निश्चित करने के लिए भेजे गये थे, प्रकट किया था।

८—इस सभा में वेदों के प्रमाण से ही प्रत्येक बात का खंडन और मंडन किया जावेगा ।

९—वेद मंत्रों के अर्थ के निश्चय के लिए ब्रह्मा जी से लेकर जैमिनि मुनि तक के ग्रन्थों[1] की, जिनको दोनों पक्ष स्वीकार करते हैं, साक्षी देनी होगी । इन ग्रन्थों का विवरण निम्नलिखित है—

१—ऐतरेय, २—शतपथ, ३—साम, ४—गोपथ, ५—शिक्षा, ६—कल्प, ७—व्याकरण, ८—निरुक्त-निघंटु, ९—छन्द, १०—ज्योतिष, ११—पूर्वमीमांसा, १२—वैशेषिक, १३—न्याय, १४—योग, १५—सांख्य, १६—वेदान्तशास्त्र, १७—आयुर्वेद, १८—धनुर्वेद, १९—गान्धर्ववेद, २०—अर्थवेद आदि ।

१०—विदित हो कि (उपर्युक्त) ऐतरेय ब्राह्मण से लेकर अर्थवेद आदि तक ऋषियों और मुनियों की ही साक्षी और प्रमाण होगा और यदि इनमें भी कोई वाक्य वेदविरुद्ध हो तो दोनों पक्ष उसको स्वीकार न करेंगे ।

११—उभयपक्षों को वेदों और प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों, सृष्टिक्रम और सत्यधर्म से युक्त बातचीत करनी और माननी होगी ।

१२—इस सभा में जो व्यक्ति किसी का पक्षपात और रियायत करेगा उसको सहस्र ब्रह्महत्या का पाप होगा ।

१३—चूंकि बहुत बड़ी बात केवल एक पाषाण आदि की मूर्तियों का पूजन ही है, इसलिए इस सभा में मूर्तिपूजन का खंडन और मंडन होगा और यदि वेदों की रीति से पंडित जी पाषाण आदि की मूर्तियों के पूजन का मंडन कर दें तो पंडित जी की सब बातें भी सत्य समझी जावेंगे और स्वामी जी उसी समय से मूर्तिपूजन का खंडन करना छोड़कर मूर्तिपूजन करने लगेंगे और जो स्वामी जी वेदों के प्रमाण से पाषाण आदि की मूर्तियों के पूजन का खंडन कर दें तो स्वामी जी की अन्य बातें भी सत्य समझी जावेंगी और पंडित जी उसी समय से पाषाण आदि की मूर्तियों का पूजन छोड़कर मूर्तिपूजा का खण्डन आरम्भ कर देंगे । वैसा ही दोनों पक्षों को स्वीकार भी करना होगा ।

१४—प्रश्न और उत्तर दोनों ओर से लिखित होने चाहियें अर्थात् प्रत्येक प्रश्न मौखिक किया जावे और तत्काल लिख लिया जावे । यही नहीं, जहां तक सम्भव हो वक्ता का एक-एक शब्द लिखा जावे ।

प्रत्येक[2] प्रश्न के लिए पांच मिनट् और १५ मिनट प्रत्येक उत्तर के लिए नियत हों और नियत समय में कमी करने का वक्ता को अधिकार होगा परन्तु अधिक करने के विषय में नियन्त्रण में रहना होगा ।

१५—सभा में स्वामी जी, पंडित जी तथा अन्य सज्जनों की ओर से परस्पर कोई कठोर भाषण न हो प्रत्युत अत्यन्त सभ्यता और कोमलता से सत्यासत्य का निश्चय करें ।

---

1. अर्थात् यदि स्वामी जी केवल इन ग्रन्थों के किसी वचन का प्रमाण देकर मूर्तिपूजन का खंडन करें और वेदों में उसका प्रमाण न हो, वास्तव में यह बात स्वीकार करने योग्य न होगी और यदि पंडित जी केवल इन ग्रन्थों के किसी वचन का प्रमाण मूर्तिपूजन के समर्थन में दें और उसकी साक्षी वेदों में न पाई जावे तो वह भी स्वीकार न होगी । इस व्याख्यान से अभिप्राय ऐसे वचनों से है कि जैसे मनुस्मृति में प्रवृत्तियुक्त वाम-वचन वेदों के विरुद्ध हैं ।

2 यदि भाषण करने का समय नियत न हो तो प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार होगा कि जब तक चाहे बोलता रहे और बीच में उसको रोकने से जहां उसका उत्साह भंग होगा और अपमान होगा वहां यह बात नियमों के भी विरुद्ध होगी इसलिए कम या अधिक समय का नियत किया जाना उचित है ।

१६—सभा का समय[1] ६ बजे शाम से ९ बजे रात तक रहे तो उत्तम है।

१७—प्रश्नों और उत्तरों को लिखने के लिए तीन लेखक नियुक्त होने चाहियें और प्रत्येक लेख पर सभा में परस्पर मिलाने के पश्चात् दोनों पक्षों के हस्ताक्षर प्रतिदिन हों और उस लेख की एक-एक प्रति प्रत्येक पक्ष को दे दी जावे और एक प्रति बक्स में दोनों पक्षों और सभापति के ताले में बन्द होकर सभापति के सुपुर्द कर दी जावे ताकि लेख में कुछ न्यूनता अथवा अधिकता न होने पावे और आवश्यकता के समय काम आवे।

१८—सभा का मकान समस्त प्रबन्धकों की सम्मति से निश्चित होगा।

१९—जम्मू और काशी जी आदि स्थानों की सम्मति पर इस सभा के निर्णय का निश्चय न होना चाहिये क्योंकि उक्त स्थान मूर्तिपूजन के घर हैं और वहां पंडितों से इस विषय में शास्त्रार्थ[2] भी हो चुका है। इसलिए वेद और उपर्युक्त शास्त्र आदि जिनमें प्रत्येक बात को भली प्रकार स्पष्ट किया हुआ है, मध्यस्थ और साक्षी होने को पर्याप्त है। यदि दूसरे पक्ष को कुछ सन्देह हो तो निस्सन्देह उसको यह अधिकार है कि आज १७ तारीख, सन् १८७८ से दो दिन के भीतर उपर्युक्त स्थानों से या और किसी स्थान से जो पंडित उनकी सम्मति में सर्वोत्तम और अच्छे हों, उनसे तार द्वारा आने जाने के विषय में बातचीत करके निश्चय कर लें अथवा उनके आने का प्रबन्ध कर लें। और आज से ६ दिन के भीतर अर्थात् २२ सितम्बर, रविवार तक उनको यहां बुला लेंवे। यदि दूसरे पक्ष की ओर से इस अवधि में उचित प्रबन्ध न हो अथवा इसके विरुद्ध आचरण हो तो उस पक्ष की समस्त बातें कच्ची और निर्मूल समझी जावेंगी और यदि स्वामी जी इस बीच में कहीं चले जावें अथवा इस लेख के अनुसार न चलें तो उनकी बात भी कच्ची और निर्मूल समझी जावेगी।

२०—दोनों पक्षों को वे सब पुस्तकें सभा में साथ लानी चाहियें जिनका वे शास्त्रार्थ के समय प्रमाण दें। बिना मूल पुस्तक के कोई मौखिक साक्षी किसी भी पक्ष को स्वीकार न होगी, इति। लिखित १७ सितम्बर, सन् १८७८।

यह अन्तिम शर्त ला० किशनसहाय जी को नहीं लिखवाई गई थी और इसका लिखा जाना इस कारण आवश्यक भी नहीं समझा गया था कि साक्षी साथ हुआ ही करता है। परन्तु अब सावधानता की दृष्टि से यह शर्त भी सम्मिलित कर ली गई।

१८ सितम्बर, सन् १८७८ को भी ला० किशनसहाय जी ने कोई उत्तर नहीं भेजा। परन्तु पंडित श्रीगोपाल की ओर से 'सभा' के नियमों का प्रस्ताव उर्दू लिपि में, एक नागरी के पर्चे सहित स्वामी जी के पास आया। उन नियमों के विषय में सम्मति देना व्यर्थ है। उनकी शब्दशः प्रतिलिपि नीचे दी जाती है। पाठक स्वयं न्याय कर लेंगे परन्तु कुछ बातों की व्याख्या संक्षिप्त टिप्पणी में कर दी गई है। नागरी पर्चे में पुस्तकों आदि के नाम पूछे गये थे। उसकी प्रतिलिपि यहां नहीं दी गई।

---

1. सरकारी कर्मचारी जो सभा में सम्मिलित होना चाहेंगे वे इस समय से पूर्व सम्मिलित नहीं हो सकेंगे, पढ़े-लिखे तथा योग्य व्यक्तियों का ही सभा में उपस्थित होना प्रत्येक अवस्था में उचित है।

2. चूंकि मूर्तिपूजन ही विवादास्पद है इसलिए कोई बुद्धिमान् कदापि यह सम्मति न देगा कि मूर्ति पूजने वाले जो सर्वथा प्रत्यक्ष और विदित विरोधी हैं, मध्यस्थ या न्यायकारी नियत किये जावें क्योंकि जो वादी है वह कभी न्यायकारी नहीं हो सकता। शेष रहा अवधि नियत करने का प्रश्न, वह भी देखने में पर्याप्त है।

पंडित श्रीगोपाल द्वारा प्रस्तावित तथा स्वामी जी की सेवा में प्रेषित नियमों की प्रतिलिपि

१—उन लोगों के नाम जिनको सभा के प्रबन्धक झगड़ने वालों में मानते हैं अर्थात् **प्रथम पक्ष**—१—ला० किशनसहाय साहब, २—ला० बख्तावरसिंह साहब, ३—हकीम बलदेवसहाय साहब, ४—ला० अम्बाप्रसाद साहब, वकील, ५—ला० तुलसीधर साहब, वकील, ६—ला० हुलासराय साहब साहू । और **दूसरा पक्ष**—१—ला० रामसरनदास साहब, २—बाबू छेदीलाल साहब, ३—ला० गणेशीलाल साहब, ४—ला० जगन्नाथ साहब, ५—पंडित गंगाराम साहब, ६—ला० कुन्दनलाल साहब, मास्टर । (इसमें कुछ नाम और होने चाहियें अर्थात् ला० हरसहाय साहब साहू, ला० शिब्बनलाल साहू, ला० मुरारिलाल साहब, हकीम लक्ष्मणनारायण साहब, स्वामी लेखराज साहब, सोती गोविन्दप्रसाद साहब, ला० प्यारेलाल साहब, ला० बन्सीधर, शिवप्रसाद साहब, बाबू गंगानारायण साहब गुमाशता कमसरियट) ।[1]

२—हमारी[2] दृष्टि में यदि साहब कलैक्टर बहादुर जिला बुलन्दशहर, जो शास्त्रार्थ-विद्या का पर्याप्त ज्ञान रखते हैं, मध्यस्थ नियत होवें तो बहुत अच्छा है क्योंकि बिना मध्यस्थ के वेदों के सत्यासत्य अर्थों का निश्चय असम्भव है और एक मध्यस्थ नियत होने के विषय में ला० गंगासहाय से भी मौखिक बातचीत कर ली है और मध्यस्थ नियुक्त किये बिना धर्मशास्त्र सम्बन्धी सभा करने का नियम नहीं है ।

३—सभा में उपस्थित[3] होने वालों की संख्या नियत करने और टिकिट जारी करने की कुछ आवश्यकता नहीं है । निषेध करने की अवस्था में अपकीर्ति का होना सम्भव है । समस्त प्रबन्धकर्ताओं को इसका ध्यान रहेगा और प्रबन्ध का उत्तरदायित्व उन पर होगा क्योंकि प्रबन्ध बिगड़ने की दशा में कीर्ति अथवा अपकीर्ति उनकी है ।

४—पंडित साक्षर[4] हों; उनकी कुछ संख्या आवश्यक नहीं है । निरक्षरों को लाना व्यर्थ है ।

५—ग्रन्थों[5] के बारे में नागरी चिट्ठी पत्र के साथ है । आप लिखते हैं कि वेदों के विरुद्ध वचन का प्रमाण ग्रन्थों में भी हो तो न माना जायेगा । विदित हो कि इसीलिए एक मध्यस्थ का नियुक्त करना जो झूठ सच को बिना किसी का पक्ष किये साफ-साफ प्रकट करे, आवश्यक है ।

---

1. हमारी सम्मति में इन सज्जनों को पक्ष न मानकर सभा के प्रबन्धक और सनातन धर्म का निश्चय कराने वाले लिखना चाहिए और प्रथम पक्ष पंडित श्रीगोपाल जी महाराज आदि पंडितों को और द्वितीय पक्ष स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज को समझना चाहिए।

2. मेरी सम्मति में यह प्रश्न केवल इसी कारण से उठाया गया है कि शास्त्रार्थ न हो क्योंकि साहब कलैक्टर बहादुर बुलन्दशहर का मेरठ में इस काम के लिए आना और फिर शास्त्रार्थ का परिणाम निश्चित होने तक यहां ठहरे रहना असम्भव है और इसके अतिरिक्त यह बात भी है कि साहब बहादुर अन्य मतावलम्बी हैं और गवर्नमेंट को इसमें हस्तक्षेप करना स्वीकार नहीं है ।

3. इस शर्त में पूर्ण अराजकता और उपद्रव होने की संभावना है । जब प्रत्येक अच्छा और बुरा पक्षपात पूर्ण मनुष्य भी सभा में सम्मिलित हो और कोई व्यक्ति दुष्कर्मों का उत्तरदायित्व अपने ऊपर न लेवे तो फिर प्रबन्ध और शान्ति कहां ?

4. जब प्रत्येक विवादास्पद बात के शब्दों और लेख का स्पष्टीकरण विश्वसनीय पुस्तकों द्वारा, जिनको दोनों पक्षों ने स्वीकार कर रखा है, भली भांति हो सकता है और पक्षपातरहित मध्यस्थ का मिलना कठिन है तो सभा में उपस्थित लोग; मध्यस्थ की उपस्थिति के बिना थोड़ी सहायता द्वारा सन्तोष प्राप्त कर सकेंगे ।

5. इससे प्रकट है कि सत्य का अनुकरण तो करें परन्तु यदि न करें तो अधर्म होगा, यह स्वीकार नहीं है ।

६—यह[1] लिखना आपका अत्यन्त पसन्द है कि सब सज्जनों को सच्चाई का अनुकरण करना चाहिये ।

७—सभा का समय[6] चार बजे से सात बजे तक रहेगा और पांच मिनट प्रश्न लिखने, और १५ मिनट उत्तर लिखने के लिए बहुत कम हैं क्योंकि संस्कृत का लिखना ऐसा नहीं है कि इतना समय लिखने के लिए पर्याप्त हो । इसलिए प्रश्नोत्तर बिना समय के नियन्त्रण के रहें तो श्रेष्ठ हैं और सभा के मकान का निश्चय सभा के प्रबन्धकों की सम्मति पर होगा ।

८—यह जो आपने लिखा है कि 'सन्देहनिवृत्ति के लिए कोई पंडित काशी जी या महाराजा जम्मू के यहां से दो दिन में तार भेजकर ६ दिन के भीतर बुला लीजिये ।' भला यह कब सम्भव है ? वे पंडित कोई हमारे और तुम्हारे नौकर तो नहीं हैं जो इस थोड़े समय में आ जावें । यह बात असम्भव है परन्तु सब बातों के निश्चित हो जाने के पश्चात् जब तक कोई विशेष व्यक्ति उपर्युक्त दोनों स्थानों को न भेजा जावेगा, किसी पंडित जी का ऐसे स्थान से आना कठिन है । इसलिए निवेदन है कि यदि आपको हृदय से इस आवश्यक बात का निर्णय कराना स्वीकार है तो विद्वान् पंडित लोगों के यहां पधारने तक आप भी यहां विराजिये और जो उनके यहां[2] पधारने तक आपको यहां ठहरना अच्छा न लगे तो ऐसा मनुष्य बताइये कि जो मध्यस्थ होने के योग्य हो अर्थात् वेदार्थ का और उन ग्रन्थों का ज्ञाता हो जिनको दोनों पक्ष स्वीकार करें ।

विचारणीय है कि जब तक कोई मनुष्य मध्यस्थ नियत न होगा तब तक इस बात का भली-भांति निश्चय न हो सकेगा कि कौन सत्य कहता है और कौन झूठ कहता है और दोनों पक्षों में किसके अर्थ ठीक हैं । यदि आपका यह विचार हो कि ग्रन्थों के अनुसार हम साक्षी दे देंगे तो भी उन ग्रन्थों के अर्थों का निश्चय करने वाला चाहिए । सारांश यह है कि मध्यस्थ को नियुक्त किये बिना सभा का प्रबन्ध पूरा-पूरा नहीं हो सकता । इस दशा में इस पत्र को पढ़ने के पश्चात् पंडित लोगों को बुलाने और मनुष्य भेजने के विषय में आप बहुत शीघ्र लिखिये ताकि मनुष्य भेजे जावें और कृपा करके सब बातों का उत्तर साफ-साफ और विस्तारपूर्वक दें, इति । उत्तर की प्रतीक्षा है ।

लिखने की तिथि—१७[3] सितम्बर, सन् १८७८ ।

इन नियमों के प्राप्त होने के पश्चात् स्वामी जी ने फिर एक पत्र अपने हस्ताक्षर से ला० किशनसहाय जी के पास भेजा । उसकी प्रतिलिपि भी निम्नलिखित है—

"ला० किशनसहाय जी, आनन्दित रहिये । कल आपके संकेतानुसार पंडित मानसिंह और अन्य सज्जनों ने सभा के जो नियम लिखवा दिये हैं हम उनसे भली-भांति बंधे हुए हैं । यदि आपको वास्तव में हृदय से सत्यासत्य का निश्चय करना स्वीकार है तो आप उन पर विचार कीजिये और आचरण कीजिये अन्यथा उचित बातों में लिखने और कहने के विरुद्ध चलने के परिणाम भी प्रत्येक अवस्था में निष्फल ही होंगे । इति । १८ सितम्बर, सन् १८७८ ।"

इस पत्र के उत्तर में लोगों की ओर से एक बिना हस्ताक्षर का पत्र आया जिसका सार यह था कि पंडितों के मुख से विदित हुआ है कि आप वेद के विरुद्ध उपदेश करते हैं, और इस प्रकार का लेख था जिसका लिखना यहां उचित नहीं

---

1. इसका भय नहीं कि समय बढ़ा दिया जावे परन्तु बिना समय का नियंत्रण किये प्रत्येक पक्ष को अधिकार रहेगा कि कितने ही लम्बे समय तक अपने भाषण को समाप्त न करे । ऐसी अवस्था में ध्येय की प्राप्ति असम्भव है ।

2. इस शर्त में पंडितों के पधारने के लिए कोई थोड़ा या बहुत समय नियत करना चाहिए था क्योंकि 'उनके यहां पधारने तक', इन शब्दों के रहने से सृष्टि के अन्त तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है इसलिए ऐसी शर्त कौन स्वीकार करेगा ?

3. यह पत्र १८ को स्वामी जी के पास आया परन्तु १७ सितम्बर, सन् १८७८ की तिथि के हस्ताक्षर भूल से उसपर किये गये थे ।

और न उससे कुछ कार्यसिद्धि का प्रयोजन था । इसके उत्तर में स्वामी जी ने एक लम्बा-चौड़ा पत्र विशेष रूप से अपने निजी हस्ताक्षर से लाला जी के पास भेजा, जिसका सार यह था कि आपको केवल उन पंडितों के कहने पर जो वेदों से परिचित नहीं, ऐसा लिखना योग्य नहीं । अब उत्तम यही है कि यदि आप उचित समझें कि मैं अपने विद्यार्थियों को आपके यहां सभा में भेज दूं और वे आपकी सम्मति से आपके पण्डित लोगों से वेद के विषय में कुछ पूछें जिससे आपको पंडितों की वास्तविकता विदित हो जावेगी और यदि आपको यह स्वीकार न हो तो आप कृपा करके मेरे निवास स्थान पर या बाबू छेदीलाल के मकान पर पंडितों सहित पधारें और समस्त सन्देह निवृत्त कर लें । इस पत्र का उत्तर भी ला० किशनसहाय तथा अन्य लोगों की ओर से बिना हस्ताक्षर के आया, उसका सार यह था कि आप वेद बिलकुल नहीं जानते, आप पथभ्रष्ट हैं और हमारे पंडित विद्वान् हैं । हमको हमारे पंडित जैसे श्रीधर जी यह कहते और लिखते हैं कि जब तक आप अपना वर्ण औरआश्रम निश्चित न कर देंगे तब तक हमको आपके पास आना नहीं चाहिये और न पंडितों को आपसे संभाषण करना चाहिए । इति ।

जब यह पत्र स्वामी जी के पास आया तो इससे शास्त्रार्थ की स्पष्ट अस्वीकृति विदित हो गई, शास्त्रार्थ की बिलकुल आशा जाती रही और इसके पश्चात् पत्र-व्यवहार का क्रम भी बिल्कुल टूट गया ।

परिणाम—यद्यपि उपर्युक्त वृत्तान्त से प्रत्येक न्यायप्रिय व्यक्ति बिना किसी का पक्ष किये परिणाम निकाल सकता है और प्रत्येक पक्ष की हार्दिक अभिलाषा भी जान सकता है, तथापि वह परिणाम जो इस वृत्तान्त से साफ-साफ व्यक्त है; संक्षिप्त रूप से नीचे लिखा जाता है—

"स्पष्ट है कि जब स्वामी जी ने अपने व्याख्यान में मुस्लिम लोगों के मत पर भी बहुत से आक्षेप उनकी धार्मिक पुस्तकों और अन्य जातियों की दृष्टि से सर्वसाधारण में प्रकट रूप से किये और इस कारण मुस्लिम सज्जनों ने, जिनमें मौलवी लोग और अन्य विद्वान् भी सम्मिलित थे, प्रकट रूप में उनका उत्तर देने के लिए लेख अथवा भाषण द्वारा बातचीत आरम्भ की । इसलिए प्रत्येक व्यक्ति, बिना किसी झिझक के, यह बात कह सकता है कि मुस्लिम लोगों की इस कार्यवाही में वस्तुत: दो बातों में से एक तो अवश्य होगी ही । या तो इन लोगों ने देख लिया कि स्वामी जी के आक्षेप ठीक नहीं हैं; अपितु उनकी धारणा भ्रान्त है; इसलिए उनके सन्देह को दूर करना चाहिए ताकि सर्वसाधारण जनता को लाभ और जानकारी होवे । अथवा उन्होंने यह समझ लिया कि स्वामी जी के आक्षेप बिलकुल ठीक हैं परन्तु धार्मिक पक्षपात या अपना मुख उज्ज्वल रखने और अपनी बात की रक्षा के लिए सत्य को छोड़कर छल और कपट में प्रवृत्त हुए ।

अब देखना चाहिये कि मुस्लिम लोगों की उपर्युक्त कार्यवाही से क्या प्रकट होता है ! प्रत्येक व्यक्ति देखते ही कहेगा कि उनकी कार्यवाहियों द्वारा आक्षेपों को दूर करने और उत्तर देने का अभिप्राय तो कदापि नहीं था; वे तो अपने मतवालों के सम्मुख अपना बड़प्पन प्रकट कर रहे थे । नहीं तो शास्त्रार्थ की शर्तें और स्थान और अन्य आवश्यक बातों के विषय में चेष्टा करते और लिखित शास्त्रार्थ से न भागते, किसी मुस्लिम रईस के द्वारा ये बातें उपस्थित करके उनको अन्त तक पहुंचाते और कदापि झूठे और पक्षपातपूर्ण समाचार समाचारपत्रों में चिट्ठियों द्वारा प्रकाशित न कराते ।

अब कुछ पंक्तियां ईसाई और पादरी लोगों के विषय में लिखी जाती हैं । बतलाइये क्या इस नगर में पादरी और ईसाई नहीं है और क्या स्वामी जी ने उनके मत का खंडन प्रकट रूप में उनकी धार्मिक पुस्तकों और उपयुक्त युक्तियों के आधार पर नहीं किया ? यह बात सब को विदित है कि यहां पर ईसाइयों का एक समूह रहता है और स्वामी जी ने अन्य वेदविरुद्ध मतों के समान उनके मत पर भी प्रकट रूप में आक्षेप किये जिनको प्राय: पादरी और ईसाई लोगों ने सभा में भलीभांति और ध्यानपूर्वक सुना; यही नहीं वे उस समय आपस में चांदापुर के मेले की चर्चा अधिकतया करते रहे । फिर

भला वे लोग क्यों न उत्तेजित हुए और व्यर्थ के लेख और भाषण क्यों न बीच में लाए ? सब को भली भांति विदित है कि वे लोग प्रकट पक्षपात को पसन्द नहीं करते हैं और अन्य नवीन मतवालों के समान उपयुक्त युक्तियों के बिना, कदाचित् कम ही बातचीत करते हैं ।

इन पंडित लोगों और अपने आर्य लोगों का वृत्तान्त सुनिये । विदित हो कि जब स्वामी जी सबके सामने पाषाण आदि की मूर्तियों के पूजन का निषेध और भागवत आदि पुराणों का खंडन, वेद और शास्त्रों के आधार पर, उपयुक्त युक्तियों द्वारा नगर-नगर में करते फिरते हैं यदि वे वास्तव में भूल पर हैं तो क्या यह किसी से नहीं हो सकता कि ऐसा युक्ति-युक्त प्रबन्ध करें और न्याय की दृष्टि से सत्य धर्म के निश्चय के विचार से ऐसा उपाय करें कि स्वामी जी स्वयमेव अपने उपदेश से विरत हो जायें । परन्तु, यद्यपि लगभग समस्त आर्यावर्त देश में स्वामी जी ने आज लगभग सात वर्ष या कुछ कम या अधिक समय से, शोर मचा रखा है, फिर भी खेद है कि पण्डित लोग या कोई अन्य रईस ऐसा प्रयत्न नहीं करते । क्या धर्म के काम में यत्न करना और धन व्यय करना अच्छा नहीं समझते और क्या अपने देशवासियों के कल्याण को अपना कल्याण नहीं मानते । इससे तो यह प्रतीत होता है कि सत्य, सत्य ही है और झूठ, झूठ ही । जैसे किसी ने कहा है कि झूठ की उन्नति कहां हो सकती है ? इससे अधिक और क्या लिखूं ।

अब देखिये कि मेरठ की धर्मरक्षिणी सभा की आरे से कुछ प्रश्न, जो उत्तर सहित ऊपर लिखे गये हैं, उपस्थित तो हुए परन्तु यह किसी से न हो सका कि पक्षपातरहित और विश्वसनीय व्यक्ति बैठकर उनका निश्चय करा लें ताकि बात एक ओर हो जावे और यह वादविवाद, समाप्त हो जाये । सांसारिक झूठे झगड़े में तो जीवन व्यतीत हो जाता है, हजारों रुपये भी व्यय हो जाते हैं परन्तु खेद है कि धर्म के काम में न शारीरिक परिश्रम सहन होता है और न रुपया व्यय किया जा सकता है और यदि किसी ने प्रयत्न भी किया और धन व्यय करने का उत्तरदायित्व भी अपने ऊपर लिया तो वह पक्षपात के कारण और प्रसिद्धि के विचार से ही होता है, जिसका होना न होने से भी बुरा है ।

देखिये मेरठ और आसपास के पंडित लोगों ने विभिन्न और निरर्थक झगड़ों के प्रश्न तो स्वामी जी के सामने उपस्थित किये परन्तु वास्तविक बात पर बहुत कम ध्यान दिया । परन्तु इसमें इन लोगों का कुछ अपराध नहीं है क्योंकि प्रथम तो इनमें आजकल विद्या कम है और फिर इस अविद्या के साथ सर्वज्ञता का दावा पाया जाता है । दूसरे यह कि यदि स्वामी जी का कथन पूर्णतया सिद्ध हो गया तो प्रकट रूप में उनकी जीविका के साधन में कुछ समय के लिए कमी आती दिखाई देती है यद्यपि परिणाम अत्यन्त श्रेयस्कर है ।

अब अपने मेरठ नगर के उन अन्य लोगों की कार्यवाहियों को देखिए कि जो सज्जन सामर्थ्यवान्, प्रबन्धक और कार्यकर्ता थे । उन्होंने, अपने हस्ताक्षरों से युक्त चिट्ठी भेजने और अपनी ओर से सत्यधर्म के निश्चय कराने में इतनी आनाकानी की कि विवाद की सारी बातें एक मास तक उपस्थित होती रहीं परन्तु यह किसी से न हुआ कि अपने हस्ताक्षरों से युक्त चिट्ठी द्वारा या स्वयं बीच में हस्तक्षेप करके सत्यधर्म के निश्चय कराने का उचित उपाय कर लेते । जैसा कि सामान्य लोग कहते फिरते हैं, उन्हीं के समान अपने धर्म से विरुद्ध व्यक्ति को देखने या कभी-कभी मिलने से धर्म बिगड़ जाता है ? या धर्म के काम में व्यस्त होने से कुछ अमीरी में अन्तर पड़ जाता है ? यह बात तो कदापि सत्य नहीं है । और यदि ऐसा ही होता तो फिर अंग्रेजों का मुख क्यों देखते हैं ? और क्यों उनसे मिलते हैं ? और यदि यह कहा जावे कि विवशता है, शासक और शासित का सम्बन्ध है; तो फिर मुस्लिमों से क्यों मिलते हो क्यों उनका मुख देखते हो ? अब तो उनका राज्य भी नहीं है और यह तो सभी जानते हैं कि आर्यों में से ऐसे रईस बहुत कम हैं जिनका सम्बन्ध मुस्लिमों से न हो और जिनके यहां एक-दो मुस्लिम नौकर न हों ।

सारांश यह है कि मेरी समझ में वे सब बातें अविद्या और पक्षपात की हैं और न्याय और धर्म से बिल्कुल परे हैं । ऐसी ही बातों ने आर्य लोगों का राज्य इस देश से खो दिया है और यदि यही अवस्था रही तो भविष्य में रहे-सहे धर्म और ऐश्वर्य को भी, जो अब नाममात्र शेष है, वे किसी दिन खो बैठेंगे । ऐसी समझ और बुद्धि पर रोना आता है । संक्षेप में सारी कार्यवाही का परिणाम यह हुआ कि यहां के कुछ रईसों और पंडितों ने लेख भेजा कि जब तक स्वामी जी अपने वर्ण और आश्रम का निश्चय न करा देवें तब तक हम लोग उनसे बातचीत नहीं कर सकते हैं और न मिल सकते हैं, शास्त्रार्थ की तो बात ही क्या है ।

वाह ! वाह ! सहज में छूटे ! अच्छा बहाना हाथ आया; परन्तु वास्तविक बात खुल ही गई । भला कहिये ! यदि यही ध्येय था तो क्यों झूठमूठ सभाएं स्थान-स्थान पर कराईं और विज्ञापन छपवाये कि स्वामी जी से शास्त्रार्थ होगा और स्वामी जी बुलवाये जावेंगे । परन्तु क्या कीजिये, सच बात तो मुंह पर आ ही जाती है । अन्त में अस्वीकार करना ही पड़ा । सच तो यह है कि यदि अस्वीकार न किया जाता तो और हो ही क्या सकता था ? जब शास्त्रार्थ के ढकोसले से कोई बात न बनी तो उसके पश्चात् कुछ लोगों ने, जिनका नाम मुझ को ज्ञात नहीं है, शासकवर्ग के पास इस अभिप्राय से शिकायतें कराईं और बहुत से झगड़े-बखेड़े उठाये कि स्वामी जी मेरठ में न ठहरने पावें और उनका उपदेश न होने पावे । परन्तु चूंकि हमारी सरकार अत्यन्त सत्यप्रिय और अद्वितीय न्यायकारी है और कभी किसी के धार्मिक विषयों में हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझती, इसलिए उनका कुछ बस न चला और मुंह की खाई । परमेश्वर की कृपा से स्वामी जी का उपदेश मेरठ में लगभग एक मास तक अच्छी प्रकार होता रहा और आर्यसमाज भी मेरठ में स्थापित हो गया ।"

शुभ सूचना

बरीं मुजदा गर जां फिशानम खास्त । कजीं मुज्द आसाईशे जाने मास्त ॥

अर्थात् यदि मैं इस शुभ सूचना पर अपनी जान भी निछावर कर दूं तो उचित है; क्योंकि यह शुभ सूचना मेरी आत्मा का सुख है ।

देखिए, जब अच्छे दिन आते हैं तो अच्छे ही अच्छे काम बन जाते हैं और वैसे ही साधन बन जाते हैं । अहोभाग्य ! कि मेरठ नगर में आर्यसमाज श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज की देखरेख में नगरवासियों के उच्च साहस से मिति आसौज बदि ३, संवत् १९३५ तदनुसार २९ सितम्बर, सन् १८७८ से स्थापित हुआ है । परमेश्वर परमात्मा कृपा करके दिन प्रतिदिन उन्नति दे ।

इस समाज का मुख्य कार्य धर्मोपदेश और देश की उन्नति करने का है प्रत्येक रविवार को आठवें दिन सायं समय इस सभा के उपसभापति ला० रामसरनदास जी रईस मेरठ के मकान पर सभा हुआ करती है । इस सभा में प्रथम किसी एक सभसद् का लेख पढ़ा जाता है । उसके पश्चात् सत्यशास्त्रों के आशय अर्थात् शास्त्रीय विषय का पाठ हुआ करता है । संस्कृत विद्या की उन्नति मुख्य ध्येय है । इसी समय प्राय: सभासदों ने देवनागरी और संस्कृत का पढ़ना भी आरम्भ कर दिया है और संस्कृत विद्या में उनकी रुचि देखकर औरों को भी उसके पढ़ने की प्रेरणा होती है । सभा के प्रबन्धकों और सदस्यों के नाम, उनके पद और निवासस्थान सहित इस प्रकार हैं—

सभा के प्रबन्धकर्ता—पंडित कुन्दनलाल जी० बी० ए० सैकण्ड मास्टर जिला स्कूल मेरठ, सभापति; ला० रामसरनदास जी रईस मेरठ, उपसभापति; बाबू छेदीलाल गुमाश्ता कमसरियट, कोषाध्यक्ष; पंडित जगन्नाथ जी रईस मेरठ, पुस्तकाध्यक्ष; बाबू आनन्दलाल जी सैकण्ड क्लर्क दफ्तर जरनैली, मंत्री, पंडित अम्बाशंकर जी सैकण्ड क्लर्क नहर, उपमंत्री ।

अन्तरंग सभा के सदस्य—मास्टर अजुध्याप्रसाद जी, पंडित पालीराम जी, अध्यापक नार्मल स्कूल, मेरठ; ला० गंगासहाय जी, बाबू उदयचन्द्र बनर्जी, क्लर्क दफ्तर कमिश्नरी, मेरठ; पंडित प्राणनाथ जी।

समाज के सदस्य—राय गणेशीलाल जी, प्रबन्धक 'जल्व्ये तूर' प्रेस; बाबू बहकीलाल जी, क्लर्क महकमा नहर गंग; ला० चन्द्रसेन जी, पंडित किशनलाल जी, ला० प्रागदत्त जी, ला० बलदेवप्रसाद जी, ला० बिशनसहाय जी, ला० कृपाशंकर जी, अहलमद फौजदारी, तहसील बागपत; बाबू सूरजभान जी, अकाउण्टैण्ट; मुंशी ललिताप्रसाद जी, पंडित गोपीनाथ जी, हेडक्लर्क दफ्तर जेल; पंडित बिहारीलाल जी, क्लर्क दफ्तर जेल; मुंशी श्यामसुन्दरजी, दफ्तर सुपरिण्टैण्डिग इन्जीनियर; मुन्शी बशेशरदयाल जी, पंडित बिहारीलाल जी, अध्यापक नार्मल स्कूल, मेरठ; बाबू भोलानाथ जी, क्लर्क दफ्तर इन्स्पैक्टर स्कूल; पंडित अजुध्यानाथ जी, बाबू गणेशीलाल जी, क्लर्क दफ्तर सुपरिण्टैण्डिग इंजीनियर नहर गंग; ला० चुन्नीलाल जी, नक्शा नवीस नहर गंग; डा० रामचन्द्र जी, ला० गणेशीलाल जी नक्शानवीस; ला० नन्दराम जी, बाबू शिवप्रसाद जी, क्लर्क-दफ्तर कमिश्नरी,; ला० देवीप्रसाद जी, ला० रामलाल जी, पंडित देवीचन्द जी, नक्ल नवीस अदालत दीवानी, मेरठ; चौधरी मोहनसिंह जी, जमींदार ग्राम मसोदरा निवासी; मुंशी डालचन्द जी, हेडमास्टर जिला स्कूल, मुजफ्फरनगर; ला० सीताराम जी, मुजफ्फरनगर निवासी; मुन्शी कल्याणराय जी, अध्यापक स्कूल, सहारनपुर; पंडित बलदेवसहाय जी, कस्बा थाना-भवन-निवासी; ला० प्रागदास जी, छात्र गवर्नमेण्ट स्कूल; ला० चूनीलाल जी मिस्त्री, ला० मुन्नालाल जी साहू, बाबू टोडरमल जी जैन, पंडित बिशंभरसहाय जी, ला० गंगासरन जी, बाबू नप्तीमल चित्रकार; ला० नथलदास जी, पुस्तक-विक्रेता; बाबू बालमुकंद जी, ला० गंगाप्रसाद जी, ला० ज्वालानाथ जी, कानूनगो; ला० बद्रीप्रसाद जी, बख्शी किशनलाल जी, मोहर्रिर म्यूनिसिपल फंड, मेरठ; बाबू किशनचरन सरकार, क्लर्क दफ्तर सुपरिण्टैडिंग इंजनीयर, मेरठ; पंडित चन्द्रभान जी, अध्यापक; पंडित बटेश्वरप्रसाद जी नक्शा नवीस; पांडे रघुवरदयाल जी, बाबू मदनमोहनदत्त हेडक्लर्क दफ्तर जरनैली; डाक्टर बसन्तराय जी, बाबू द्वारकानाथ घोष, क्लर्क दफ्तर जेल; ला० जगन्नाथ जी, कानूनगो तहसील हापुड; पंडित गंगाप्रसाद जी पटवारी, ग्राम गयाहत; ला० श्यामलाल जी, ला० ज्योतिस्वरूप जी, ला० भोलानाथ जी, ला० चेतराम जी, मुन्शी रामसरनदास जी, लाला मुन्नालाल जी श्री मनोहरचरन सरनराय, राय कामताप्रसाद जी, प्रबन्धक समाचारपत्र 'सहीले हिन्द'; हरिहर हीरालाल जी, नाजर अदालत सब जजी, मेरठ; ला० जैसीराम जी, चौधरी गुलाबसिंह जी, लाला हीरालाल जी, लाला मिट्ठूमल जी और बाबू जुगलकिशोर जी।

दिल्ली नगर में धर्मप्रचार (९[1] अक्टूबर से ६ नवम्बर, १८७८ तक)

मेरठ नगर में आर्यसमाज स्थापित करने के पश्चात् स्वामी जी दिल्ली पधारे और सब्जीमण्डी में ला० बालमुकुन्द केसरीचन्द के बाग में विराजमान रहकर पांच दिन पश्चात् निम्नलिखित विज्ञापन प्रकाशित किया—

विज्ञापन—पाठकों को शुभ सूचना है कि इन दिनों पंडित स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज दिल्ली नगर में आये हुए हैं और सब्जीमण्डी के स्थान पर ला० बालमुकुन्द केसरीचन्द के बाग में ठहरे हुए हैं। जिस किसी को उनसे भेंट करनी हो वह ५ बजे शाम से लेकर दस बजे रात तक उनसे मिल सकता है और वेद शास्त्र आदि में जो कुछ पूछना अभीष्ट हो, पूछ सकता है। उक्त स्वामी जी कार्तिक बदि तीज, रविवार तदनुसार १३ अक्तूबर, सन् १८७८ से छत्ता शाह जी में स्थित यडहन साहब के मकान में, जिसमें सरकारी स्कूल है, ६ बजे सायं से ८ बजे रात तक व्याख्यान अर्थात् उपदेश किया

1. दिल्ली से ७ अक्तूबर १८७८ को पंडित श्याम जी कृष्ण वर्मा के नाम लिखे गये पत्र के अनुसार स्वामी जी इस बार ३ अक्तूबर को दिल्ली पहुंचे थे। —सम्पादक

करेंगे। जिन सज्जनों को उपदेश सुनना अभीष्ट हो, नियत मकान में नियत समय पर पधारें; क्योंकि इसको ईश्वरीय कृपा समझना चाहिए कि स्वामी जी महाराज यहां पधारे और अहोभाग्य हमारे कि वे यहां उपदेश करेंगे और स्वामी जी महाराज इस प्रकार उपदेश करते हैं कि हम आर्यावर्ती लोग ही क्या, अपितु अमरीका अर्थात् नई दुनिया के हजारों निवासी भी पवित्र वेद के अनुयायी होकर उनके धर्म का अनुकरण करने लगे हैं। इति।

इस विज्ञापन के अनुसार १३ अक्तूबर, सन् १८७८ से व्याख्यान आरम्भ हुए। पहला व्याख्यान वेद विषय पर था।

जोशी रामरूप जी[१६]—(जिनका ठाकुर रणजीतसिंह जी ने जयपुर से स्वामी जी के पास भेजा था) वर्णन करते हैं 'पहले एक बार ठाकुर साहब ने यज्ञ करने का विचार किया था। स्वामी जी ने कहा कि तुम गायत्री पुरश्चरण हमारे सामने कराओ। हम ब्राह्मणों की परीक्षा करके बिठलावेंगे परन्तु यह यज्ञ किसी कारण उस समय रह गया। इतने में सावन संवत् १९४५[१७] को एक चिट्ठी स्वामी जी की मेरठ से आई, तब ठाकुर साहब को वह यज्ञ याद आ गया। मुझे आज्ञा दी कि तुम जाओ और स्वामी जी को मेरठ से लेते आओ। मैं ठाकुर साहब से चिट्ठी लेकर स्वामी जी को लाने के विचार से चल पड़ा। मार्ग में एक सारस्वत ब्राह्मण मिल गया। मैं उसके साथ दिल्ली गया वहां विदित हुआ कि स्वामी जी यहां विद्यमान हैं। वल्लभ नामक ग्राम की ओर दिल्ली नगर के बाहर बगीचे में ठहरे हुए हैं। मैंने जाकर प्रणाम किया; (उन्होंने) मुझे पहचान लिया। उस समय मुलतानी मिट्टी शरीर को लगाये हुए थे। दूसरे दिन एक और बगीचे में जाकर डेरा किया जो पश्चिम की ओर था। वहां मैंने एक दिन व्याख्यान सुना। उपस्थिति लगभग ६०० की थी। 'शन्नो देवी'[१८] का मन्त्र उच्चारण करके व्याख्यान आरम्भ किया। व्याख्यान वेद विषय पर था और यही पहला व्याख्यान था। अन्त में एक मुसलमान ने कुछ प्रश्न किया और स्वामी जी ने उत्तर दिया परन्तु उत्तर और प्रश्न दोनों मुझे स्मरण नहीं। तीसरे दिन मैं चिट्ठी का उत्तर लेकर आया।'

लाला मक्खनलाल व भोलानाथ—(दानापुर, बिहार निवासी जो स्वामी जी के दिल्ली निवास के समय भेंट करने के लिए आये थे।)-अपनी १६-१७ अक्तूबर, सन् १८७८ की चिट्ठियों में लिखते हैं—"वचनानुसार हम आपको स्वामी दयानन्द सरस्वती की पहली भेंट का परिणाम लिखते हैं कि हम लोग आज प्रातः स्वामी जी के पास गये और उन से सब्जी-मंडी में बालमुकुन्द के बगीचे में मिले जो एक बहुत बड़ा और सुन्दर बाग है। जब हम पहुंचे तो स्वामी जी को वेदभाष्य में व्यस्त पाया परन्तु ज्यों ही उन्होंने हम लोगों को देखा तो भीतर बुला लिया। हमने 'भगवन्! नमस्ते' कहा। कारण कि हमने यहां किसी को 'भगवान्! अभिवादये' कहते नहीं सुना इसलिए हमने भी 'भगवान्! नमस्ते' कहा। हम लोगों ने अपनी समाज की दशा से सूचित किया और सदस्यों की संख्या से भी। यह सुनकर स्वामी जी प्रसन्न हुए। फिर हमने नवीन 'धर्मसभा'-दानापुर का वृत्तान्त भी सुनाया, जिस पर स्वामी जी ने कहा कि वह सभा बहुत दिन तक न रहेगी। हमने कहा कि और भी कई एक सदस्य आपकी सेवा में उपस्थित होने को थे परन्तु अवकाश न मिलने के कारण न आ सके। स्वामी जी ने कहा कि यह बात हम जानते हैं, तुम्हारा आना और उनका आना बराबर है। तब हम लोगों ने कहा कि आप दानापुर चलिये। विशेष करके हरिहर क्षेत्र के मेले के समय जो कार्तिक मास में हुआ करता है। स्वामी जी ने कहा कि हम इतने कम समय में नहीं जा सकते, इससे खेद है। चूंकि केवल एक सप्ताह हुआ है कि हम यहां आये हैं और हम वचन दे चुके हैं कि पहले जयपुर और अजमेर जायेंगे। तब हरिद्वार के मेले में पहुंचेंगे और पुष्कर के मेले में (जायेंगे)। जहां कई लाख मनुष्य प्रतिवर्ष इकट्ठे होते हैं। कहा कि हम जब दानापुर जायेंगे तो इसी मेले के समीप जायेंगे। इसी से हम लोग समझ

गये कि स्वामी जी का दानापुर जाना, संभव है कि आने वाले वर्ष में 'क्षेत्र' के मेले के समीप हो और इसके बारे में हम फिर लिखेंगे ।"

"जब हम यहां पहुंचे और १६ अक्तूबर को हम लोगों ने डाकघर के पोस्टमास्टर से सुना कि स्वामी जी का भाषण शाहजी के छत्ते नामक स्थान में होगा तो हम लोग ६ बजे शाम को ठीक समय पर पहुंचे परन्तु दुर्भाग्य से हम लोगों की स्वामी जी से भेंट न हुई कारण कि स्वामी जी के डेरे पर गाड़ी न भेजी गई थी । इसका कारण यह था कि यह काम जिसके जिम्मे था, वह रोगी हो गया । परन्तु स्वामी जी ने आज प्रातः हम लोगों से कहा कि आप लोग मेरे पास ४ बजे सन्ध्या को आइये, तब हम बड़े अवकाश से आप लोगों से बातचीत करेंगे और जहां व्याख्यान होगा वहां ले चलेंगे और कहा कि आज रात को तुम लोग यहीं रहना । हम लोगों ने इस बात को स्वीकार किया । हम लोगों ने स्वामी जी को प्रार्थनापत्र का हिन्दी फार्म दिखलाया । स्वामी जी ने उसमें और कुछ बढ़ा दिया । उसी प्रकार अंग्रेजी प्रार्थनापत्र में भी संशोधन किया गया । जो परिवर्तन हुआ है वह बहुत अच्छा है और जब हम लोग पहुंचेंगे तब सब लोगों को बतलायेंगे । हम लोग (आपके) बड़े आभारी हैं कि स्वामी दयानन्द सरस्वती से पहली भेंट हुई । वे बहुत सुन्दर और पूरे लम्बे शरीर के हैं । उनकी मुखाकृति तथा दर्शनों से ही उनकी भारी विद्वत्ता प्रकट होती है । उनके पास सहायक एकत्रित रहते हैं और वे वेदभाष्य करने में व्यस्त रहते हैं । स्वामी जी ने कहा कि यह काम हम आप ही लोगों के लिए कर रहे हैं, मेरे संसार से चले जाने के पश्चात् यह बहुत ही उन्नतिकारक होगा । इस पर हम लोगों ने कहा कि ईश्वर ऐसा न करे । स्वामी जी ब्राह्मणों को 'पोप' के नाम से पुकारते हैं । देखिये, यह बात सबसे कृपा करके मत कहियेगा । दुःख की बात है कि इन दिनों यहां मलेरिया ज्वर बहुत जोर शोर से है । बहुत लोग रोगी हैं । जहां-कहीं जाते हैं लोगों को रोगी ही पाते हैं । हम लोग इतने डर गये थे कि आज ही रात को डाक में चल पड़ते परन्तु चूंकि स्वामी जी ने आज रात को अपने ही डेरे में रहने के लिए हम लोगो को कहा कहा है, आज हम लोग नहीं आ सकते परन्तु हम लोग शीघ्र आवेंगे । पंडित जी से जो कुछ हमें पूछना है उसके लिए बहुत समय मिलेगा । कल दूसरी चिट्ठी लिखेंगे । जब हम इधर आते थे तब इलाहाबाद में एक दिन के लिए उतर गये थे और पंडित सुन्दरलाल जी से भेंट की थी । वे बड़े पक्के आर्य हैं ।"—मक्खनलाल । १६ अक्तूबर, सन् १८७८ ।

दूसरी चिट्ठी—कल के पत्र के ही सिलसिले में आपको यह सूचित करते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि हम कल माननीय पंडित दयानन्द सरस्वती के व्याख्यान में जो शाहजी के छत्ते में हुआ था, गये । लोग बहुत प्रसन्न हुए । स्वामी जी की शिक्षाओं से लाभ प्राप्त करने के लिए ३०० से अधिक मनुष्य उपस्थित थे । रात को हम स्वामी जी के डेरे पर रहे और प्रातः जो पुस्तक हम चाहते थे, ली, और भी पुस्तकें लीं । साठ प्रतियां 'पंचमहायज्ञविधि' की ली हैं और दश प्रतियों का मूल्य दिया है । स्वामी जी ने कहा कि इनको साथ लेते जाओ, समाज में रख देना । जैसा अवसर मिले, बेचते रहना । बिकने के पश्चात् मूल्य भेज देना । इसके अतिरिक्त स्वामी जी ने तीन प्रतियां 'रत्नमाला' और एक प्रति 'सत्यार्थप्रकाश' की भी दी । वास्तव में स्वामी जी का अभिप्राय है कि वहां भी छोटे से पुस्तकालय के रूप में बिकने की पुस्तकें रहें । इससे बड़ी उन्नति होगी । इस बात में बाबू सुन्दरलाल जी की भी सम्मति थी । मुझे स्मरण पड़ता है कि बाबू ठाकुरप्रसाद गुप्त की भी यह सम्मति थी । शेष वृत्तान्त हम आने पर कहेंगे । आज रात दूसरा व्याख्यान सुनने केपश्चात् चल पड़ेंगे । हमने कल कहा (लिखा) था कि स्वामी जी सामान्य ऊंचाई के मनुष्य हैं, उससे मेरा अभिप्राय यह है कि स्वामी जी एक लंबे मनुष्य हैं, बड़े स्वस्थ हैं और शरीर को देखने में बड़े सुन्दर पहलवान प्रतीत होते हैं । जैसा काम करने का अवसर हो वैसा करने के लिए तैयार जान पड़ते हैं । वे अपने साथ सदा एक डंडा रखते हैं । कल उन्होंने बहुत ही बढ़िया उपदेश लोगों को सुनाया है । इसमें कुछ आश्चर्य की बात नहीं कि थोड़े दिनों में यहां भी समाज स्थापित हो जावे क्योंकि तीन चार मनुष्य बड़े सहायक

हैं और सभासद् (भी) हो गये हैं और एक नया समाज स्थापित किया जावेगा। कल हम स्वामी जी के यहां पांच बजे तक रहे और जब गाड़ी आई, स्वामी जी ने हम सब को अपने साथ उस गाड़ी में बिठला लिया और जहां व्याख्यान होने वाला था, वहां ले गये। बहुत अच्छा मकान है, इसी मकान में दिल्ली स्कूल है। आज हम फिर भी आपका व्याख्यान सुनेंगे और दिल्ली नगर आज ही रात को बड़े दु:ख के साथ छोड़ देंगे। मलेरिया ज्वर भी बहुत कम है, वहां आने पर पूरा वर्णन करेंगे। और सूचना के लिए प्रतीक्षा कीजिये। स्वामी जी दूसरे वर्ष के अक्तूबर में दानापुर को देखेंगे।

दिल्ली १७ अक्तूबर, सन् १८७८। —मक्खनलाल

स्वामी जी के सत्योपदेशों के परिणामस्वरूप दिल्ली में आर्यसमाज नवम्बर, सन् १८७८ के प्रारम्भिक सप्ताह में समारोह सहित स्थापित हो गया और निम्नलिखित सज्जन अधिकारी नियत हुए-लाला मक्खनलाल प्रधान; लाला हकूमतराय मंत्री। तत्पश्चात् स्वामी जी ६ नवम्बर की रात को दिल्ली से रेलगाड़ी द्वारा अजमेर चले गये।

(७ नवम्बर, सन् १८७८ की) अजमेर पधारने की कथा

संवत् १९३५ में जिन दिनों स्वामी जी पंजाब में थे, तब अजमेर के लोगों की बहुत इच्छा हुई कि स्वामी जी महाराज को यहां बुलावें। फिर स्वामी जी पंजाब से मेरठ और वहां से दिल्ली पधारे। तब सब लोगों का अतिप्रेम बढ़ा। सब सत्यधर्म के अभिलाषियों की ओर से समर्थदान जी चारण ने स्वामी जी को पत्र लिखा। स्वामी जी ने सबका प्रेम देखकर उत्तर में लिखा कि आप लोग मकान आदि का प्रबन्ध कर रखें, हम दिल्ली के काम से निपट कर आयेंगे, और जब तुम मकान आदि की तैयारी कर लो, तो हमको कहना। हम चलने से तीन-चार दिन पहले एक पत्र लिखेंगे और जब सवार होंगे, तब तार दे देंगे। स्वामी जी की आज्ञा के अनुसार लोगों ने वहां मकान आदि का प्रबन्ध करके चन्दा इकट्ठा किया और स्वामी जी को पत्र लिखा कि आप पधारें, यहां सब प्रकार की तैयारी है। अजमेर निवासी इस प्रतीक्षा में थे कि स्वामी जी शीघ्र अपने चलने का हाल लिखते हैं, इस बीच एक स्वार्थी पोप ने अत्यन्त आश्चर्यजनक लीला की अर्थात् जब अजमेर में स्वामी जी के पधारने के लिए चन्दा हुआ और नगर के प्रतिष्ठित लोगों में उनके आने की चर्चा आरम्भ हुई तो पाखण्डियों की नींद जाती रही और पोपलीला में फंसे हुए लोगों के पाप पंच थर्राने लगे कि स्वामी जी आये और हम लोगों की सब लीलाएं विदित हो जायेंगी। इसलिए कोई ऐसा उपाय करें जिससे एक बार तो उनका आना हम रोक दें अथवा टाल दें, फिर जैसा होगा देखा जायेगा। सब ने विचार कर स्वामी जी को एक पत्र लिखा और उसके नीचे अपना कल्पित नाम 'जुगलबिहारी' लिख दिया।

कल्पित नाम से लिखा पत्र—'अजमेर, १७ अक्तूबर, सन् १८७८। स्वामी जी महाराज ! बड़ा दु:ख है कि हमने आपके यहां आने का सुझाव रखा था और समर्थदान जी ने भी अत्यन्त प्रयत्न किया। चन्दा लिखा तो गया, परन्तु प्राप्त होने की आशा नहीं है सो फागुन ताईं अवश्य प्रबन्ध पक्का हो जावेगा। समर्थदान अपको यह सूचना नहीं देना चाहते परन्तु प्रयत्न कर रहे हैं। सो सब मनुष्य समर्थदान से अप्रसन्न हो गये हैं और सब बुरा-भला कहते हैं। अब समर्थदान पछताते हैं कि आपको पहले लिख दिया। सो अब आप राह न देखें। फागुन में सब काम पक्का रखेंगे तब आप अनुग्रह करके हमारी अभिलाषा को तृप्त करना। यहां आर्यसमाज जारी करने का विचार है।'

—आपका दास जुगलबिहारी शर्मा, कालिज अजमेर

जब यह पत्र स्वामी जी को मिला तब स्वामी जी ने समर्थदान को पत्र लिखा—'बाबू समर्थदान जी, आनन्द से रहो ! विदित होवे कि आज जुगलबिहारी शर्मा की एक चिट्ठी आई जिससे जाना गया कि वहां चन्दे का कुछ प्रबन्ध नहीं हुआ है । सो तुम कुछ चिन्ता मत करो, अब मिलना न हो तो फिर कभी मिलेंगे और कुछ अफसोस मत समझो, हम तुम्हारे प्रेम को खूब जानते हैं और कुछ शोक की बात नहीं है । यहां पर भी आनन्दपूर्वक व्याख्यान हो रहा है और सब प्रकार से कुशल है । हम बहुत आनन्द में हैं ।'

दिल्ली,

२१ अक्तूबर, सन् १८७८,

हस्ताक्षर—दयानन्द सरस्वती ।

स्वामी जी का यह पत्र जब अजमेर आया तब जाना गया कि यह किसी पोप की कृपा है । तब स्वामी जी को एक विस्तृत पत्र लिखा गया कि वह जुगलबिहारी शर्मा के नाम से पत्र किसी ने झूठा लिख भेजा है । यहां सब तैयारियां कर ली हैं, आप पधारो । इस पत्र के पहुंचने पर स्वामीजी का पत्र २८ अक्तूबर, सन् १८७८ का लिखा आया कि अजमेर अवश्य आवेंगे । यहां हमने समझ लिया है कि यह जुगलबिहारी शर्मा के नाम से किसी ब्राह्मण ने लीला की है । परन्तु क्या होता है ! ऐसे धूर्त बहुत होते हैं । स्वामी जी के आने पर जुगलबिहारी शर्मा का वास्तविक पत्र देखा गया । मुंशी समर्थदान जी कहते हैं कि वह पत्र अब भी मेरे पास विद्यमान है । देखते ही लिखने वाले के हस्ताक्षर और लिखने की रीति पहचान ली । यह नाम उसने बनावटी लिखा है । वास्तव में वह (इसके लेखक) एक प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं । हम उनका लिहाज करके ताकि वे और अधिक बदनाम न हों, उनका नाम प्रकट नहीं करते । ('सुदशाप्रवर्तक' नं० ३० पृष्ठ २१, दिसम्बर, सन् १८८१) ।

स्वामी जी दिल्ली से अजमेर की रेल में सवार हुए । उन्होंने तार दिया था कि हम आते हैं । कार्तिक शुक्ला १३, गुरुवार, संवत् १९३५ तदनुसार ७ नवम्बर, सन् १८७८ को तीसरे पहर गाड़ी आने वाली थी । मुंशी समर्थदान और बाबू माधोप्रसाद एक स्टेशन आगे स्वागत के लिए गये । फिर वहां से गाड़ी में साथ ही सवार होकर आये । स्टेशन पर सरदार भगतसिंह जी और ला० ईश्वरदास जी सी० ई० आदि कई महाशय उपस्थित थे । सब लोग स्वामी जी सहित नगर में निवासस्थान पर पहुंचे ।

पुष्कर में धर्मप्रचार

स्वामी जी द्वारा पुष्कर के मेले पर प्रचार—कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को पुष्कर का मेला था, इसलिए स्वामी जी की आज्ञा के अनुसार उनके पुष्कर पधारने की तैयारी कर रखी थी । उसी दिन स्वामी जी पुष्कर पधारे । वहां जाकर महाराजा जोधपुर के नाथ जी के झरोखे के नाम से प्रख्यात और पहले से ही स्वामी जी के निवास के लिए रिक्त रखे गये घाट पर ठहरे । दूसरे दिन सारे मेले में निम्नलिखित विज्ञापन चिपकाये गये ।

विज्ञापन पत्र—सब सज्जन लोगों को विदित हो कि पंडित स्वामी दयानन्द जी महाराज संवत् १९३५, कार्तिक शुक्ला १३ गुरुवार को पुष्कर में आकर नाथ जी के झरोखे अर्थात् जोधपुर के घाट पर ठहरे हैं । जिस सज्जन को सनातन वेदोक्त धर्मविषय में कहना वा सुनना होवे, सत्पुरुष उक्त स्थान में जाकर और समागम करके सभ्यता और प्रीतिपूर्वक वेद और प्राचीन शास्त्रों के विषय में संभाषण करें । सब मनुष्यों को अत्यन्त आवश्यक है कि अति पुरुषार्थ से सत्यासत्य का निर्णय करके उस से सब मनुष्यों को जानकार करें क्योंकि यह मनुष्य-जन्म अति दुर्लभ धर्म के सेवने, अधर्म के छोड़ने, परमात्मा की भक्ति और परमानन्द भोगने के लिए है । इसलिए जो शुभ काम कल करना हो, आज ही करें जिससे सब समय मंगलकारी बना रहे । ('सुदशाप्रवर्तक', संख्या ३१, पृष्ठ १०, जनवरी, सन् १८८२) ।

इस विज्ञापन को देख कर क्या साधु और क्या गृहस्थ, प्राय: सभी लोग आते रहे । सब ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार पूछताछ कर संशय निवारण किये । कितने (ही) पोप जी (भी) आये सो वहां जो प्रश्न किया उस का प्रमाणपूर्वक उत्तर पाया परन्तु आगे मेले में जाकर (उन्होंने) लोगों को उल्टा-सीधा समझाया क्योंकि उनकी तो यह प्रकृति ही है । मसूदा नरेश श्रीयुत रावसाहब बहादुरसिंह जी प्रथम दर्शन को वहीं पधारे और इसी प्रकार सब लोग आते रहे । वहां पुष्कर में मन्त्र जपने वाले कई साधु भी आते थे । उन का वृत्तान्त भी कुछ सुनिये ।

मन्त्रशक्ति दिखाने वाले दम्भी साधु की परीक्षा—अजमेर के पास एक ग्राम में वाममार्गी साधु रहते थे, वे मन्त्र-यन्त्रों के नाम से सिद्ध बने हुए थे । उस ग्राम के विद्यार्थी अजमेर कालिज में पढ़ते थे । उन्होंने उन साधुओं से कहा कि तुम्हारे मन्त्र आदि सब झूठे हैं । तब साधुओं ने कहा कि हम मन्त्रों की शक्ति दिखला सकते हैं । लड़कों ने उसी समय देखना चाहा । तब साधुओं ने कहा कि तुम्हारा गुरु कौन है ? उत्तर दिया कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी । साधु बोले-बस, हम उसी को दिखला देंगे, जब वह आवे तब उससे हमें मिलाना । सारांश यह है कि वहां के ठाकुर के सामने लड़कों ने साधुओं से यह वचन ले लिया कि हम स्वामी जी को मन्त्रशक्ति दिखला देंगे ।

उस समय जब पुष्करमें स्वामी जी, वह ठाकुर, विद्यार्थी, साधु और मुंशी समर्थदान एकत्र हुए, तब पूर्वोक्त बात निश्चित (रूप से) करने के लिए हमने स्वामी जी महाराज से पूछा कि महाराज ! यहां कई साधु आये हैं, वे मनुष्य आदि को मारने का मन्त्र चलाकर अपनी मन्त्र-शक्ति दिखलाना चाहते हैं, सो आपकी आज्ञा हो तो हम उनको परीक्षार्थ आप के सामने लावें । स्वामी जी ने आज्ञा दी कि जाओ लेते आओ । हम तो तुम लोगों को निश्चय कराने के लिए ऐसी बातों में उत्साहपूर्वक तत्पर रहा करते हैं । हमने पूछा कि आप परीक्षा किस प्रकार लेंगे ? तब स्वामी जी ने कहा कि हम हवादार शीशे में एक मक्खी को बन्द कर देंगे और उस शीशे को अपने पास रखेंगे और उन से कहेंगे कि लो ! भाई इस मक्खी को तुम मन्त्रों से मारो और जो वे मनुष्य पर ही मन्त्र चलाना चाहेंगे तो मैं कहूंगा कि मेरे ऊपर (मन्त्र) चलाओ । हम ने उस ठाकुर को तथा विद्यार्थियों को साधुओं को बुला लाने के लिए भेजा । उन्होंने आकर कहा कि आप स्वामी जी को मन्त्रशक्ति दिखाने के लिए कहा करते थे । स्वामी जी यहां पधारे हैं और आपको इसी कार्य के निमित्त बुलाते हैं । साधु क्रुद्ध हो कहने लगे कि चलो, चलो, यहां कहां मन्त्र रखे हैं ! क्या ऐसे मन्त्र दिखलाये जाते हैं ? सारांश यह कि वे इसी प्रकार क्रोधाग्नि से लाल हो गये । सब आकर कहने लगे कि वहां तो यह दशा हुई । स्वामी जी ने कहा कि भाई, तुम लोगों को बहकाने के लिए यह प्रपंच किया था परन्तु हमारा आना हो गया इस से वास्तविकता प्रकट हो गई । तुम लोग धोखा खा जाते हो; परन्तु हम तो ऐसे बहुत लोगों से मिल चुके हैं । जहां जाते हैं वहां इसी प्रकार के जाल बिछे हुए देखते हैं ।

इसी प्रकार अनेकानेक वादविवाद करते-करते पांच छ: दिन तक पुष्कर में रहे । फिर पीछे **अजमेर** में आकर सेठ रामप्रसाद के बाग में ठहरे । थोड़े दिन के पीछे गजमल जी की हवेली में, **ईश्वर प्रतिपादन, वेद, वर्णाश्रम, नियोग, परदेशगमनागमन, भक्ष्याभक्ष्य** इत्यादि विषयों पर व्याख्यान होने लगे । व्याख्यानों का विज्ञापन भी अंग्रेजी, उर्दू, आर्यभाषा तीनों में दे दिया गया था । इस कारण व्याख्यान सुनने के लिए रावसाहब मसूदा सरदार बहादुरसिंह, मुंशी अमीचन्द जी जज; पण्डित भागराम जी, सरदार भगतसिंह जी तथा अन्य सेठ साहूकार आदि श्रेष्ठ पुरुष आते थे और साधारण लोग दो-सौ से लेकर चार सौ तक आते थे । जो-जो लोग व्याख्यान सुनने जाते थे वे अपने स्थानों पर आर्य लोगों को सुनाया करते थे । ('भारतसुदशाप्रवर्तक' नं० ३४, सन् १८८२)

कहने का अभिप्राय यह है कि जब तक व्याख्यान होते रहे, अजमेर में आप ही की चर्चा रही । जिस दिन वेदादि विषय पर व्याख्यान था उस दिन अजमेर के बड़े पादरी ग्रे साहब और मिशन अस्पताल के डाक्टर हजबैंड भी आये थे ।

इस विज्ञापन को देख कर क्या साधु और क्या गृहस्थ, प्राय: सभी लोग आते रहे। सब ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार पूछताछ कर संशय निवारण किये। कितने (ही) पोप जी (भी) आये सो वहां जो प्रश्न किया उस का प्रमाणपूर्वक उत्तर पाया परन्तु आगे मेले में जाकर (उन्होंने) लोगों को उल्टा-सीधा समझाया क्योंकि उनकी तो यह प्रकृति ही है। मसूदा नरेश श्रीयुत रावसाहब बहादुरसिंह जी प्रथम दर्शन को वहीं पधारे और इसी प्रकार सब लोग आते रहे। वहां पुष्कर में मन्त्र जपने वाले कई साधु भी आते थे। उन का वृत्तान्त भी कुछ सुनिये।

मन्त्रशक्ति दिखाने वाले दम्भी साधु की परीक्षा—अजमेर के पास एक ग्राम में वाममार्गी साधु रहते थे, वे मन्त्र-यन्त्रों के नाम से सिद्ध बने हुए थे। उस ग्राम के विद्यार्थी अजमेर कालिज में पढ़ते थे। उन्होंने उन साधुओं से कहा कि तुम्हारे मन्त्र आदि सब झूठे हैं। तब साधुओं ने कहा कि हम मन्त्रों की शक्ति दिखला सकते हैं। लड़कों ने उसी समय देखना चाहा। तब साधुओं ने कहा कि तुम्हारा गुरु कौन है? उत्तर दिया कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी। साधु बोले-बस, हम उसी को दिखला देंगे, जब वह आवे तब उससे हमें मिलाना। सारांश यह है कि वहां के ठाकुर के सामने लड़कों ने साधुओं से यह वचन ले लिया कि हम स्वामी जी को मन्त्रशक्ति दिखला देंगे।

उस समय जब पुष्करमें स्वामी जी, वह ठाकुर, विद्यार्थी, साधु और मुंशी समर्थदान एकत्र हुए, तब पूर्वोक्त बात निश्चित (रूप से) करने के लिए हमने स्वामी जी महाराज से पूछा कि महाराज! यहां कई साधु आये हैं, वे मनुष्य आदि को मारने का मन्त्र चलाकर अपनी मन्त्र-शक्ति दिखलाना चाहते हैं, सो आपकी आज्ञा हो तो हम उनको परीक्षार्थ आप के सामने लावें। स्वामी जी ने आज्ञा दी कि जाओ लेते आओ। हम तो तुम लोगों को निश्चय कराने के लिए ऐसी बातों में उत्साहपूर्वक तत्पर रहा करते हैं। हमने पूछा कि आप परीक्षा किस प्रकार लेंगे? तब स्वामी जी ने कहा कि हम हवादार शीशे में एक मक्खी को बन्द कर देंगे और उस शीशे को अपने पास रखेंगे और उन से कहेंगे कि लो! भाई इस मक्खी को तुम मन्त्रों से मारो और जो वे मनुष्य पर ही मन्त्र चलाना चाहेंगे तो मैं कहूंगा कि मेरे ऊपर (मन्त्र) चलाओ। हम ने उस ठाकुर को तथा विद्यार्थियों को साधुओं को बुला लाने के लिए भेजा। उन्होंने आकर कहा कि आप स्वामी जी को मन्त्रशक्ति दिखाने के लिए कहा करते थे। स्वामी जी यहां पधारे हैं और आपको इसी कार्य के निमित्त बुलाते हैं। साधु क्रुद्ध हो कहने लगे कि चलो, चलो, यहां कहां मन्त्र रखे हैं! क्या ऐसे मन्त्र दिखलाये जाते हैं? सारांश यह कि वे इसी प्रकार क्रोधाग्नि से लाल हो गये। सब आकर कहने लगे कि वहां तो यह दशा हुई। स्वामी जी ने कहा कि भाई, तुम लोगों को बहकाने के लिए यह प्रपंच किया था परन्तु हमारा आना हो गया इस से वास्तविकता प्रकट हो गई। तुम लोग धोखा खा जाते हो; परन्तु हम तो ऐसे बहुत लोगों से मिल चुके हैं। जहां जाते हैं वहां इसी प्रकार के जाल बिछे हुए देखते हैं।

इसी प्रकार अनेकानेक वादविवाद करते-करते पांच छ: दिन तक पुष्कर में रहे। फिर पीछे **अजमेर** में आकर सेठ रामप्रसाद के बाग में ठहरे। थोड़े दिन के पीछे गजमल जी की हवेली में, **ईश्वर प्रतिपादन, वेद, वर्णाश्रम, नियोग, परदेशगमनागमन, भक्ष्याभक्ष्य** इत्यादि विषयों पर व्याख्यान होने लगे। व्याख्यानों का विज्ञापन भी अंग्रेजी, उर्दू, आर्यभाषा तीनों में दे दिया गया था। इस कारण व्याख्यान सुनने के लिए रावसाहब मसूदा सरदार बहादुरसिंह, मुंशी अमीचन्द जी जज; पण्डित भागराम जी, सरदार भगतसिंह जी तथा अन्य सेठ साहूकार आदि श्रेष्ठ पुरुष आते थे और साधारण लोग दो-सौ से लेकर चार सौ तक आते थे। जो-जो लोग व्याख्यान सुनने जाते थे वे अपने स्थानों पर आर्य लोगों को सुनाया करते थे। ('भारतसुदशाप्रवर्तक' नं० ३४, सन् १८८२)

कहने का अभिप्राय यह है कि जब तक व्याख्यान होते रहे, अजमेर में आप ही की चर्चा रही। जिस दिन वेदादि विषय पर व्याख्यान था उस दिन अजमेर के बड़े पादरी ग्रे साहब और मिशन अस्पताल के डाक्टर हजबैंड भी आये थे।

व्याख्यान होने के पीछे पादरी साहब और स्वामी जी का शास्त्रार्थ होने की बातचीत हुई। फिर जब व्याख्यान हो चुके तो पीछे शास्त्रार्थ हुआ। विस्तृत परिशिष्ट में अंकित है।' ('आर्यदर्पण' जून मास, सन् १८८० से)

पादरी साहब ने तो शास्त्रार्थ किया और इसी प्रकार मुसलमान और पोप लोगों ने भी कई प्रकार की लीला फैलाई। पहले तो नगर के कई मौलवी कहते फिरे कि हम शास्त्रार्थ करेंगे, पीछे पादरी साहब की दशा देखकर डर गये और कहने लगे कि मौलवी मुहम्मद कासिम साहब को बुलावेंगे, उनसे शास्त्रार्थ करना होगा। स्वामी जी ने कहा कि उनको तुम लोग बुलाना चाहते हो तो तार दे दो और हमसे शास्त्रार्थ के नियम कर लो कि हम इतने दिनों में उनको बुलावेंगे। जो इस प्रकार का प्रबन्ध न करोगे तो हमारा ठहरना नहीं होगा क्योंकि हमको आगे की यात्रा करनी है। मुसलमानों ने इस बात को स्वीकार न किया।

पीछे से मौलवी मुहम्मद कासिम के एक शिष्य को स्वामी जी के मकान पर लेकर आये और कहने लगे कि आप इनसे शास्त्रार्थ करो। स्वामी जी ने कहा कि हमारा इनसे शास्त्रार्थ नहीं हो सकता; इनके गुरु को बुलाओ, उनसे करेंगे। ऐसे तो बहुत से विद्यार्थी हैं, उन से हम शास्त्रार्थ नहीं कर सकते। हां, जो उन की हार-जीत से मौलवी मुहम्मद कासिम की हार-जीत समझी जायेगी, तो फिर हो सकता है। मुसलमानों ने कहा कि ऐसा तो नहीं हो सकता। उस दिन वहां पंडित भागराम जी, ऐक्स्ट्रा असिस्टैण्ट कमिश्नर, अजमेर भी उपस्थित थे। उन्होंने मौलवी साहब के शिष्य से कहा कि मौलवी साहब को बुलाओगे तब तो स्वामी जी का शास्त्रार्थ होगा नहीं तो तुम करना चाहो तो मुझ से करो। तुम मौलवी साहब के शिष्य और मैं स्वामी जी का। मुसलमानों को यह भी स्वीकार न हुआ, ऐसे ही गाल बजा कर बैठे रहे। कुछ किया न कराया। इसी प्रकार पोपों ने भी अपने ढंग के गीत गाये परन्तु शास्त्रार्थ करने का साहस किसी को न हुआ।

निदान स्वामी जी तेईस-चौबीस दिन अजमेर में रहकर मसूदा पधारे। ('भारतसुदशाप्रवर्तक' नं० ३६, पृष्ठ १०-१२, जून, सन् १८८२ से)।

अजमेर में धर्मप्रचार का वृत्तान्त

(७ नवम्बर, सन् १८७८ तदनुसार कार्तिक शुदि १३, संवत् १९३५ से १ दिसम्बर,[१९] सन् १८७८, तदुनसार मंगसिर शुदि, संवत् १९३५ तक)।

(यह वृत्तान्त ला० शिवप्रसाद जी कायस्थ, सुपुत्र ला० गणेशीलाल तहसीलदार, जिला अजमेर की दैनिक डायरी से नकल किया गया है)।

७ नवम्बर, सन् १८७८—'बृहस्पतिवार दो बजे दिन के, मैं रेल पर गया क्योंकि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी आने वाले थे। तीन बजे की रेल में आ गये परन्तु मुझ को दर्शन न हुए। मैं दूसरी ओर खड़ा रहा। वे बाबू भगतसिंह की बग्घी में सवार होकर चले आये।'

१४ नवम्बर, सन् १८७८—'बृहस्पतिवार शाम को कड़क्का चौक में एक मकान में गया, जहां दयानन्द सरस्वती जी ने परमेश्वर की एकता और अस्तित्व पर भाषण दिया। वह भाषण ७ बजे से ९ बजे तक हुआ। इस व्याख्यान में लगभग वही वर्णन था जो वेदभाष्य की भूमिका में इस विषय में लिखा गया है। हां, इस व्याख्यान में नास्तिकों का खंडन तनिक अच्छा किया। अत्यन्त सुन्दर भाषा में पूरे स्वर के साथ व्याख्यान दिया गया। एक धन्नामल नामक सरावगी[२०] व्याख्यान समाप्त होने के पश्चात् आया और उसने वर्णन किया कि मैं कुछ प्रश्नोत्तर करना चाहता हूं और यदि मैं उसमें हारूं तो मैं स्वामी जी की बातें मान लूं और जो स्वामी जी हार जावें तो वे जैनधर्म मान लें। जिस पर स्वामी जी ने कहा कि चूंकि मुझ

को अवकाश कम है, प्रथम तुम बाबू ईशरदास जी से निबट लो और यदि वहां तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर न मिलें तो फिर मैं उत्तर दूंगा। जिस पर उसने कहा कि मैं आपसे शास्त्रार्थ करना चाहता हूं परन्तु उधर से वही बात ठीक जानी गई और साहब एक्स्ट्रा असिस्टैण्ट कमिश्नर बहादुर जो पंडित भगतराम साहब हैं, उठ खड़े हुए और कहा कि बस साहब, बस ! और सभा विसर्जित हुई।'

१५ नवम्बर, सन् १८७८ शुक्रवार—'दो बजे दिन के रामप्रसाद के बाग में गया कि जहां उक्त स्वामी जी उतरे हैं। स्वामी जी की आयु पचास वर्ष[२१] की होगी। एक लंगोट बांधे हुए, उस पर एक धोती लपेटी हुई और एक बानाती कोट ऊदे रंग का, वैसा ही टोप और एक बरांडी अर्थात् धुस्सा कि जिसके नीचे बानात लगी हुई थी, ओढ़े हुए लेट रहे थे। विदित हुआ कि आपको दस्त लग रहे हैं परन्तु इस दशा में भी ब्रह्मचर्याश्रम के साधन के कारण यह अवस्था थी कि किसी को यह भी ज्ञात न होता था कि ये रोगी हैं। शरीर में ठीक-ठीक, क़द में लम्बे हैं और उच्च स्वर में बोलते हैं। सिरहाने पर दो तकिये थे और एक रुमाल में कई तालियां बंध रही थीं। कुछ इधर-उधर की बातें हो रही थीं। आप के साथ पांच मनुष्य हैं। वहां से शाम तक वापस मकान पर आया। उक्त हवेली में व्याख्यान सुनने गया। आज मैं तनिक विलम्ब से गया था और कल का अवशिष्ट व्याख्यान प्रारम्भ हुआ। प्रथम भूमिका बांधी कि ईश्वर की ओर से एक पुस्तक का आना आवश्यक है। फिर यह प्रकट किया कि उस में क्या-क्या गुण चाहियें ? उन में से एक ही कहा था कि नौ बजे गये। शेष अगले दिन पर छोड़ा। विदित हो कि लगभग ये सभी युक्तियां वेदभाष्य में आ गई हैं। कल व्याख्यान न होगा, कल लोग विश्राम करें।

१७ नवम्बर, सन् १८७८ रविवार—आज व्याख्यान सुनने सात बजे गया। आज वेद में से विभिन्न विद्या बतलाई और सावित्री और अहिल्या की कथा सुनाई। नौ बजे वापस आया।

१८ नवम्बर, सन् १८७८ सोमवार—आज व्याख्यान शाम के ६ बजे से ही आरम्भ हुआ। कुछ वेद विद्या का वर्णन हुआ और कुछ प्रश्न तौरेत, इंजील और कुरआन के सम्बन्ध में सुनाये; जिस पर ग्रे साहब पादरी ने कहा कि हमारे पास इन प्रश्नों को भेज दो तो हम इन का उत्तर दें। वहां से आठ बजे उठे। रामप्रसाद के बाग में गये, वहां स्वामी जी महाराज से कुछ बातचीत हुई। वहां से नौ बजे वापस आया।

२२ नवम्बर, सन् १८७८ शुक्रवार—शाम को व्याख्यान में गया। आज कुछ सती-प्रथा की चर्चा की, उसको धर्मविरुद्ध बतलाया और फिर विदेशों में आने-जाने की चर्चा की। उस के उदाहरण भी दिये (जैसे शुकदेव जी, अर्जुन और कृष्ण आदिका जाना)[२२] और कुछ देशों के नाम भी बतलाये। फिर यह कहा भाई, किसी विद्या के (ग्रहण करने के) लिए जाओ परन्तु अपनी अच्छी-अच्छी प्रथाओं को मत छोड़ो। इसके उदहारण भी दिये। फिर दो-तीन और उदाहरण दिये। फिर चौके की चर्चा की और युद्ध के समय उसका निषेध किया परन्तु यह नहीं कहा कि चौका मत लगाओ।[२३] फिर जन्म मरण का वर्णन आरम्भ किया। उसमे यह बतलाया कि जन्म क्या है और मरण क्या है ? शेष कल होगा। नौ बजे वापस आया।

२३ नवम्बर, सन् १८७८ शनिवार—रात को व्याख्यान में गया। जन्म-मरण का वर्णन, उसमें पुनर्जन्म के प्रमाण वर्णन किये और गरुड़पुराण आदि मिथ्या ग्रन्थों का निषेध किया। नौ बजे वापस आया।

२५ नवम्बर, सन् १८७८, सोमवार—आज शाम को व्याख्यान में गया। आज यह चर्चा की कि पहले आर्यों में उन्नति किस प्रकार और किस चीज के कारण से थी और फिर वह किस प्रकार वर्तमान अवस्था को पहुंच गये और अब

फिर किस प्रकार सुधर सकते हैं ? बिगड़ने के विशेषकर दो कारण बतलाये कि (१) इनके पास अनन्त धन हो गया था और इसी कारण भोगों में पड़ गये । (२) संसार भर में कोई जीत न सकता था इसलिए अत्याचार करने लगे और अत्याचार करने से राज्य का पतन हुआ और इस विनाश का कारण महाभारत की प्रसिद्ध लड़ाई भी हुई ।[२४] अब समाज आदि स्थापित करने से इसको ठीक किया जा सकता है । आज दस बजे मकान पर आया । यह व्याख्यान स्वामी जी का अन्तिम है ।

२८ नवम्बर, सन् १८७८, बृहस्पतिवार—आज शाम को उस मकान में गया जहां स्वामी जी महाराज व्याख्यान दिया करते थे । आज पादरी ग्रे साहब से शास्त्रार्थ था[२५] अर्थात् स्वामी जी ने कुछ प्रश्न इंजील और तौरेत आदि के विषय में किये हैं । इनका उत्तर पादरी साहब देंगे । इसके अतिरिक्त और कुछ न होगा । तीन मनुष्य-बाबू रामनाथ, हेडमास्टर राजपूत स्कूल जयपुर; बाबू चन्दूलाल, वकील गुड़गावां; हाफिज मुहम्मद हुसैन, दारोगा चुंगी अजमेर, लिखने के लिए बैठे और शब्द प्रतिशब्द लिखा जाता था परन्तु खेद है कि पादरी साहब ने यह कहा कि स्वामी जी किसी बात में दो से अधिक शंका न करें । इस बात से कुछ परिणाम न निकला, केवल दो प्रश्नों का उत्तर हुआ । नौ बजे तक रहा परन्तु कुछ न हुआ । बात अधूरी सी रही और पादरी साहब ने कहा कि यदि स्वामी जी मौखिक प्रश्नोत्तर करें तो मैं तैयार हूं । स्वामी जी ने मौखिक प्रश्नोत्तर को केवल समय नष्ट करना समझ कर इन्कार किया ।

मौलवी मुहम्मद मुराद अली साहब, प्रोपराइटर 'राजपूताना गजट' अजमेर ने स्वामी जी की भेंट का वृत्तान्त इस प्रकार लिखकर दिया—

"मुझे श्री महाराज स्वामी जी जगतारक से पांच बार मिलने का अवसर प्राप्त हुआ है । प्रथम बार सन् १८७८ में जब कि मुंशी अमीचन्द साहब सरदार भूतपूर्व जूडिशियल असिस्टैण्ट कमिश्नर ने प्रशंसनीय महाराज को यहां बुलाया था, जिस दिन रात को सेठ गजमल लूथ की हवेली जो चौक कड़क्का में है, में महाराज ने प्रशंसनीय उपदेश दिया । उस दिन प्रथम तो लगभग दो बजे दिन के भेंट हुई थी । चूंकि स्वामी जी महाराज की प्रसिद्धि समस्त देशों में फैल रही थी और यहां आप प्रथम बार ही पधारे थे इसलिए मैं एक प्रश्नकर्ता के रूप में आपकी सेवा में गया । मेरे साथ एक सेवक और एक हिन्दू जो दीवान बूटासिंह के यहां कम्पोजिटर था, गये और बैठते ही महाराज जी से मैंने ये प्रश्न किये—

१—आत्मा क्या वस्तु है ?

२—बहुत से मत शरीर के नष्ट होने के पश्चात् शुभ कर्मों के कारण मनुष्य का मुक्त होना स्वीकार करते हैं । वास्तव में वह मोक्ष किस वस्तु का नाम है ?

३—बार-बार जन्म लेने का क्या कारण है ? यदि इस कथन को माना जाये कि पाप करने से मनुष्य बार-बार जन्म लेने का अधिकारी होता है तो मेरे विचार में मनुष्य का स्वभाव यही है कि जब तक ज्ञान प्राप्त न हो, वह अवश्य पाप किया करता है । इससे सिद्ध होता है कि स्वयं ईश्वर ही की इच्छा से मनुष्य बार-बार जन्म लेने का अधिकारी ठहरता है । यदि ईश्वर की इच्छा न हो तो मनुष्य मां के पेट ही से ऐसा उत्पन्न हो कि पवित्रता प्राप्त करके आये ताकि पाप न करे ।

४—बुराई या तो शैतान से उत्पन्न हुई है या खुदा से, या अपनी ही इच्छा से । यदि अपनी इच्छा से उत्पन्न हुई है तो विदित हुआ है कि ईश्वर के अतिरिक्त भी कोई कारण बुराई या भलाई का ऐसा है जो स्वयं ही उत्पन्न होने की शक्ति रखता है । खुदा के बस का नहीं और जो खुदा ही ने इस बुराई को उत्पन्न किया तो विदित हुआ कि बुराई का आविष्कारक भी परमेश्वर है और चूंकि उसकी उत्पन्न की हुई कोई वस्तु श्रेष्ठता से रहित नहीं और न निकम्मी है, इसलिए इससे यह मानना पड़ेगा कि स्वयं खुदा ने मनुष्य के लिए बुराई उत्पन्न की, तो फिर अब बुराई का दंड क्यों है ?

भाषण के मध्य पानी पीना किसी की नकल नहीं है; उपचार है—इन प्रश्नों के उत्तर स्वामी जी महाराज ने कई प्रकार से देर तक दिये । प्रश्न नं १ और ४ का उत्तर ऐसा युक्तियुक्त था कि मेरा संतोष हो गया था और प्रश्न नं २ और ३ के विषय में उत्तर देने का वचन दिया था । उसी दिन सायंकाल स्वामी जी ने उपदेश दिया । अजमेर के असंख्य सामान्य और विशेष व्यक्ति एकत्रित थे । चूंकि उपदेश करने में दो-चार वाक्य कहने के पश्चात् गिलास में से पानी के घूंट लेते थे, दूसरे दिन मैंने उसके विषय में भी आपसे निवेदन किया कि यह रीति तो अंग्रेज पादरियों की है, आप क्यों करते हैं ? कहा कि यह वैद्यक से सम्बद्ध बात है । मनुष्य दुर्बल है, कहते-कहते चित्त में उत्तेजना आ जाती है, पानी के घूंट लेने से वह दूर हो जाती है, इसमें क्या बुराई है ?

उसी दिन स्वामी जी महाराज की गोरक्षा के विषय में चिरकाल तक मुझ से बातें हुईं । चूंकि मेरे विचार पहले ही से गोहत्या के विरुद्ध हैं, मैंने निरन्तर लेखों में और विशेष पत्रिका में यह बात भली-भांति सिद्ध कर दी है कि भारत जैसे देश में गाय मारना बिलकुल मूर्खता और नाामझी है और यह कि गाय मारने में मुसलमानी नहीं धरी हुई है, इसलिए स्वामी जी मुझ से बहुत प्रसन्न हुए और कहा कि आज से हम तुम को अपने विचारों का एक स्तम्भ समझते हैं और यह भी कहा कि तुम जो पत्रिका गोरक्षा के बारे में लिखो उसकी एक प्रतिलिपि हम को भी दिखलाना । उस समय एक चित्र भी स्वामी जी ने अपना मुझ को दिया ।

इसके पश्चात् जब स्वामी जी उदयपुर गये तब भी भेंट हुई । जोधपुर में गये तब भी हुई थी । मेरे विचार में स्वामी जी महाराज एक महान् पुरुष थे और उनके मरने से भारतवर्ष को बहुत बड़ा धक्का लगा है ।"

हस्ताक्षर—मुरादअली

नसीराबाद छावनी का वृत्तांत[२६]

(१० दिसम्बर, सन् १८७८ तदनुसार पोह बदि प्रतिपदा, संवत् १९३५ से १४ दिसम्बर, सन् १८७८ तदनुसार पोह बदि ५, संवत् १९३५ तक)

पंडित सुखदेवप्रसाद जी, अध्यापक नार्मल स्कूल, अजमेर ने वर्णन किया 'नवम्बर मास, सन् १८७८ के अन्त में मैंने सुना कि स्वामी जी मसूदा में विराजमान हैं । मैंने निवेदन-पत्र उनकी सेवा में भेजा कि छावनी नसीराबाद में भी पधारें और यहां सत्यधर्म का उपदेश करें ताकि यहां की भी कुछ अविद्या दूर हो । १० दिसम्बर, सन् १८७८ के लगभग वे मसूदा से पधारे । मैंने जो चिट्ठी नागरी में लिखी थी, उसमें यह चौपाई भी लिखी—'मंगल रूप हुए वन तब से । कीन्ह निवास रमापति जब से ।'

अभिप्राय यह था कि 'जब आप यहां आवें और आपके सत्योपदेश से यहां सत्यधर्म की चर्चा फैले तब मैं प्रसन्न होकर यह दोहा पढूंगा ।'

'वे नवम्बर, सन् १८७८ के अन्त में अर्थात् मंगसिर (पौष ?) के आरम्भ में मसूदा से पधारे । मैं उस समय मिशन स्कूल नसीराबाद में अध्यापक था । उन दिनों स्वामी जी मसूदा में १० दिन रहे थे । रावसाहब मसूदा के रथ में बैठकर स्वामी जी नसीराबाद आये । दो सवार उनकी अर्दली में थे । मुंशी ब्रह्मानन्द साथ थे । उनके कहने के अनुसार बस्ती से बाहर एक मील पूर्व की ओर भूताखेड़ी के प्रसिद्ध बगीचे में, जो उस समय कल्लू महाराज के अधिकार में था, ठहरा दिया । दूसरे दिन प्रात: होते ही व्याख्यान का निश्चय किया गया । ब्रह्मानन्द ने मुझे विज्ञापन की भाषा बना दी । उसकी कई एक प्रतियां छात्रों से करवा कर दस स्थानों पर चिपका दीं और विशेष-विशेष लोगों को भी दे दीं । वह विज्ञापन आगे लिखेंगे ।'

उस समय का नसीराबाद का कुछ वृत्तांत उसी समय से पंडित सुखदेवप्रसाद जी ने लिखकर रखा हुआ था। वह कागज दे दिया जिसकी प्रतिलिपि निम्नलिखित है।

"ओ३म् तत्सत्। १० दिसम्बर, सन् १८७८, मंगलवार को ४ बजे दिन के श्रीमन् पंडित स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज स्थान राजधानी मसूदा से दो घोड़ों की बग्घी में इस स्थान छावनी नसीराबाद में पधारे। उक्त सन् के उक्त मास की ११, १२, १३ तारीख को तीन तक वेद के आधार पर मनुष्यों के कर्मों के विषय में व्याख्यान दिये। अनुभव से सिद्ध हुआ कि वेद की शिक्षा प्रत्येक प्रचलित सम्प्रदाय और मत के लोगों को कुछ कठोर प्रतीत हुई है। सत्य तो यह है कि सच्ची शिक्षा पहले-पहल प्रत्येक युग और प्रत्येक देश में मनुष्य के हृदय पर थोड़ी-बहुत चोट पहुंचाती ही है परन्तु पीछे से लोक और परलोक दोनों को सुधारती है। अन्य ब्राह्मणों की अपेक्षा जैनमत वालों को जो कि बौद्धमत की ही एक शाखा है, और जिन्होंने बहुत परिवर्तन करके बड़ा मत इस आर्यावर्त में स्थापित कर लिया है, वेदों की शिक्षा कुछ अधिक अप्रिय प्रतीत होती है। परन्तु जब वे ईश्वर की प्रेरणा से वेद और उसकी आज्ञाओं अथवा शास्त्रीय पुस्तकों को देखेंगे या चेतनापूर्वक सुनेंगे तब उनको भली भांति विदित हो जायेगा कि निस्संदेह वेद ही एक ऐसी पुस्तक है जो सारी भलाई और लोक और परलोक के लाभ का मौलिक सिद्धान्त है। ईश्वर करे ऐसा ही हो।"

"यद्यपि यहां पर व्याख्यान थोड़े ही हुए तथापि लोगों के कान खुल गये। वे ऊंघते हुए चौंक पड़े। जो कुछ सचाई वेद के प्रत्येक शब्द से टपकती है उसके लिए युक्ति की आवश्यकता नहीं है। किसी ने ठीक कहा है—'मुश्क की तारीफ की हाजत नहीं अत्तार की' अर्थात् औषधिविक्रेता को कस्तूरी की प्रशंसा की आवश्यकता नहीं होती।"

यद्यपि इस पर्चे के द्वारा आर्यावर्त और अन्य देशों के सब बुद्धिमान् लोगों के सामने यह चर्चा पहुंचेगी परन्तु तो भी क्या सुना हुआ देखे हुए के समान हो सकता है? अब तक (हमें) विश्वास है कि बड़े-बड़े बी० ए० और एम० ए० आदि की परीक्षा उत्तीर्ण हुए लोगों ने इस प्रकार का वेद का सच्चा अर्थ अर्थात् व्याख्या हम लोगों के समान कदाचित् भी नहीं सुनी होगी जैसा कि यह अपूर्व और अपने युग का अद्वितीय गुरु सुनाता है। ज्ञान और बुद्धि के ऐश्वर्य के धनिकों को यह बड़ा भारी अवसर मिला है कि वह इस गुरु के उपदेश से अपने उक्त धन की वृद्धि करें। प्रशंसनीय स्वामी जी ने पथभ्रष्टों के लिए प्रकाश फैलाना आरम्भ किया है परन्तु शर्त यह है कि हम लोग आर्यावर्तवासी प्रमाद और आलस्य को दूर करके सुनें और वेदपुस्तकों को देखने में प्रयत्नशील हों। भला कभी यह भी सुना है कि खान को खोदे बिना ही किसी को हीरा मिल गया हो? इससे लगभग दो सप्ताह पूर्व स्थान अजमेर में भी उन्होंने दस-ग्यारह व्याख्यान कुछ विषयों पर वेद के आधार पर दिये थे। इससे सर्वसाधारण जनता को यह लाभ हुआ कि प्रत्येक छोटा-बड़ा वेद की पुस्तकों की खोज करने लगा है; बहुत-सों ने तो वहां पर मंगाई भी हैं। यहां पर अर्थात् नसीराबाद में तो अभी एक ही पुरुष के पास आई है। आशा है कि और लोग भी मांग करेंगे और तब सब को इसका लाभ विदित होगा। परमेश्वर ने अपनी अत्यन्त कृपा से ऐसी बुद्धिमान गवर्नमेंट हम लोगों के सिर पर नियत की है कि जिसके शासनकाल में सब प्रकार लाभदायक ऐसी विद्याओं की उन्नति हो रही है। हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि इस गवर्नमेण्ट को चिरकाल तक बनाये रखे।"

पंडित सुखदेवप्रसाद जी ने वर्णन किया 'जो विज्ञापन उस दिन लगाया गया था उसका विषय यह था कि यहां पर स्वामी दयानन्द सरस्वती पधारे हैं। वे सन्ध्या के सात बजे से कर्त्तव्याकर्त्तव्य विषय पर व्याख्यान देंगे। सब लोग आकर श्रवण करें। विज्ञापन मेरी ओर से था। मैंने निजी रूप से दो पंडितों को जो पुष्कर निवासी थे और स्कूल नसीराबाद में पढ़ाते थे, व्याख्यान के प्रबन्ध करने में आपका सहायक निश्चित बना लिया था और शोभाराम जी का मंदिर व्याख्यान के लिये निश्चित हुआ। सब बात निश्चित करके मैं पांच बजे के पश्चात् किराये की बग्घी लेकर स्वामी जी के लेने को बगीचे

में गया। वहां से लगभग सात बजे वापस आये। उन पंडितों ने मुझ से प्रतिज्ञा कर ली थी कि तुम्हारे लौटते तक अच्छी प्रकार लैम्प, दरी आदि का प्रबन्ध कर रखेंगे परन्तु जब हम वापस लौटे और बग्घी को मन्दिर के द्वार पर लेकर पहुंचे तो देखा कि वहां मन्दिर में न दीपक है और न दरी और न कोई मनुष्य ही वहां दिखाई दिया। मैंने उतर कर पूछा तो एक पुजारी कोठरी से बोला कि यहां कोई प्रबन्ध नहीं। जब यह वृत्तांत स्वामी जी को विदित हुआ तो वे कुछ उत्तेजित होने के पश्चात् कहने लगे कि यह तुमने कैसा कच्चा प्रबन्ध किया? मैंने कहा कि 'महाराज! मैं विवश हूं, जो मेरे सहायक थे वे कच्चे निकले।' अस्तु। अब मैं शीघ्र दूसरा प्रबन्ध करता हूं और मैं पैदल बग्घी के आगे-आगे स्वामी जी को कल्लू महाराज की दुकान और पुलिस स्टेशन के समीप ले आया और तत्काल कल्लू महाराज और दीनामल कोतवाल को स्वामी जी के आने की सूचना दी। वे तत्काल निकल आये और कहा कि स्वामी जी कहां हैं? मैंने उनको स्वामी जी से मिलाया और स्वामी जी के सामने उनसे मैंने यह वृत्तान्त कहा कि अब कोई मकान निश्चित करना चाहिये। कल्लू महाराज ने भी ला० दीनामल को प्रेरणा की कि मकान की खोज अवश्य और शीघ्र करो। वे बाजार में गये और कोई दस मिनट पश्चात् वापस आकर कहा कि चलो, मकान सजा-सजाया तैयार है और उसी समय मुन्नालाल जी के मकान में स्वामी जी को ले गये। स्वामी जी बैठे और लोग दल बांध-बांध कर आने आरम्भ हो गये, परन्तु इन दो पण्डितों अर्थात् गोकलचन्द और कालिदास ने मुख तक न दिखलाया।'

व्याख्यान आरम्भ होने को था कि मुन्नालाल और हीरालाल नामक सरावगियों ने आकर प्रश्न करने आरम्भ किये। इसमें लगभग १५-२० मिनट व्यतीत हो गये। वे दोनों स्वामी जी के उत्तर सुनकर मौन हो गये। तब प्रथम व्याख्यान आरम्भ हुआ। उस दिन साठ-सत्तर मनुष्य सम्मिलित थे। नौ बजे व्याख्यान समाप्त हुआ, स्वामी जी उठकर बग्घी में बैठकर चले गये। उन्हीं दिनों सरावगियों के बहकाने से पांच-चार लड़कों ने ताली पीटना और कोलाहल करना आरम्भ किया। तब मैंने लाला दीनामल जी की सहायता से उनको भयभीत किया। इस पर वे मौन हो गये और स्वामी जी लगभग दस बजे अपने निवासस्थान पर पहुंचे।

दूसरे तीसरे दिन भी इसी विषय पर व्याख्यान होते रहे। फिर कोई कोलाहल न हुआ और न किसी ने प्रश्न या शंका की। दूसरे दिन एक सौ पचास और तीसरे दिन लगभग दो सौ मनुष्य थे। सामने पादरी लोगों के चेले-चांटे थे। व्याख्यानों को सुनकर कोई भी तर्कवाद नहीं करता था प्रत्युत यही कहते थे कि स्वामी जी का व्याख्यान बहुत श्रेष्ठ है, बहुत अच्छा है। बगीचे में भी विभिन्न लोग प्रश्नोत्तर करने आते थे। स्वामी जी ने यह कह दिया था कि जिस किसी को शंकासमाधान करना हो, वह वहां दिन को आवे। कई लोग गये और सन्देह निवृत्त करते रहे।

एक दिन किसी मनुष्य ने स्वामी जी से अपने कितने ही प्रश्नों में यह प्रश्न भी किया कि मांस खाना और मद्य पीना ठीक है या नहीं? स्वामी जी ने कहा कि मद्य तक ही क्या सीमित है, किसी प्रकार का भी नशा अच्छा नहीं; अपितु (प्रत्येक नशा) त्याज्य समझना चाहिये। रहा मांस के विषय में, वह बिना जीवहत्या के मिल नहीं सकता इसलिए सत्यशास्त्र और वेदोक्त रीति से मांस खाना भी ठीक नहीं प्रत्युत पाप है।

चौथे दिन तीन बजे रेलवे स्टेशन पर आकर सीधा जयपुर का टिकिट लिया अर्थात् १४ दिसम्बर, सन् १८७८ को **नसीराबाद** से सीधे **जयपुर** को चले गये।

पंडित सुखदेवप्रसाद जी ने कहा—'जयपुर के विषय में सुना कि वहां के प्रधान मंत्री फतहसिंह जी ने स्वामी जी का बड़ा सत्कार किया और वे आया-जाया भी करते थे और शिक्षाविभाग के अफसर बाबू श्री वल्लभ जी स्वामी जी के

उपदेश सुनकर पक्के विश्वासी हो गये। महाराजा को कई सम्प्रदायी लोगों ने बहका दिया था। महाराज यद्यपि न आये थे परन्तु सब प्रकार के अतिथि-सत्कार का प्रबन्ध कर दिया था।

यहां दिनचर्या यह थी कि प्रातः ४ बजे उठते थे। शौच करके और थोड़ी देर एकान्त में बैठकर ध्यान करते थे, फिर चार-पांच कोस भ्रमण को जंगल में निकल जाया करते थे। वहां से सात बजे के पश्चात् लौट कर आते और फिर ब्रह्मानन्द को कुछ लिखाने बैठते और ११ बजे के समीप स्नान करके मृत्तिका शरीर पर लगाते थे। फिर कोठरी में जाकर व्यायाम करते। १२ बजे अर्थात् केवल एक ही समय खाना खाते। शाम को दूध पीते थे और तम्बाकू कभी-कभी मुंह में लेते थे।

उनके चले जाने के पश्चात् मैंने स्थान-स्थान पर मूर्तिपूजकों और ईसाइयों से वैदिकधर्म के विषय में शास्त्रार्थ आरम्भ कर दिये और मिशन स्कूल के द्वार पर भी किसी-किसी ईसाई से शास्त्रार्थ होता रहा। कभी-कभी बाजार में पंच के रूप में खड़े होकर उपदेश किया करता। एक बार कुछ छात्रों सहित जा रहा था कि ऊपर एक मकान पर एक रामसनेही[२७] साधु बैठा था। एक लड़के ने उस को देखकर नमस्ते किया। दूसरा बोल उठा कि ये नमस्ते को नहीं समझते; ये तो राम-राम जानते हैं। इस पर उक्त साधु ने कुपित होकर कहा कि तुम लोग इस ओर आओ, तुमने क्या कहा! हम लौट आये। मैंने उसे कहा कि तुम यह बताओ कि क्या राम नाम परमेश्वर का है जैसा कि आज तक तुमने मान रखा है। यह किस वेद का है या किस शास्त्र के अनुसार है? वह कहने लगा कि हां, राम नाम वेदों में है। हमने कहा कि किस वेद के किस अध्याय और किस मन्त्र में? इसका उत्तर वह बिलकुल न दे सका और घबरा गया।'

रिवाड़ी का वृत्तान्त (२४ दिसम्बर,[२८] सन् १८७८ से ९ जनवरी, सन् १८७९ तक)

राव युधिष्ठिरसिंह,[२९] पुत्र राव तुलाराम (जो ८५ ग्रामों के जमींदार थे) दिल्ली के शाही दरबार में गये थे। वहीं स्वामी जी का विज्ञापन देख उनसे मिलने गये। दर्शन और बातचीत के पश्चात् उनसे प्रार्थना की कि आप हमारे यहां पधारें; मैं आपका उपदेश सुनना चाहता हूं। रावसाहब को सत्यधर्म का अधिक इच्छुक देख स्वामी जी ने कहा कि हम आपको स्थिर-बुद्धि देखेंगे तो वैदिक धर्म की शिक्षा अवश्य देंगे। तत्पश्चात् बहुत समय तक परस्पर पत्रव्यवहार होता रहा। अन्ततः सत्यधर्म की खोज के प्रति उनका बहुत अधिक अनुरोध देखकर जयपुर से तार दिया कि हम रिवाड़ी आते हैं। सवारी और निवासस्थान का प्रबन्ध कर दें। रावसाहब ने तलापुरियों के बाग में जो नगर से आधा मील पूर्व की ओर है स्वामी जी के ठहरने का प्रबन्ध किया। बड़े आदर-सत्कार से स्वामी जी को लाये। चार व्यक्ति स्वामी जी के साथ थे।

राव मानसिंह, रईस रिवाड़ी ने वर्णन किया 'नगर और रेलवे स्टेशन के मार्ग में जो हमारे पूर्वजों की छत्रियां और तालाब हैं, उन पर स्वामी जी के व्याख्यान होते रहे जिसके पास अब गिर्जाघर बना हुआ है। मूर्ति खंडन, मृतकश्राद्धखंडन, गायत्री और वेद का अधिकार सब को है, महीधर भाष्य का खंडन किया और ब्रह्मा और उसका अपनी कन्या से व्यभिचार की कहानी का युक्तिपूर्वक खंडन करके उसका सत्यार्थ बतलाया। पादरियों और मुसलमानों के स्वर्ग का खंडन करके वैदिक मुक्ति को सिद्ध किया और कहा कि जैसे पौराणिक लोग हुण्डी लिखा करते हैं वैसे ही पादरी भी हुण्डी लिखा करते हैं। गायत्री के व्याख्यान के दिन कहा था कि ब्राह्मण हम से क्रुद्ध होंगे और मन में कुढ़ते होंगे कि यह सब के सामने गायत्री पढ़ता है परन्तु मैं उनकी भलाई के लिए सुनाता हूं। फिर सब के सामने गायत्री सुनाई और उस व्याख्यान के आरम्भ में साम्राज्ञी के उत्तम राज्य को धन्यवाद दिया कि हम उसकी कृपा से सत्यधर्म का उपदेश करतें हैं। अन्यथा सम्भव नहीं था कि हम इस प्रकार उपदेश कर सकते। श्राद्ध विषय में उदाहरण दिया था कि यदि वास्तव में मृतक को श्राद्ध (का अन्न आदि) पहुंचता है और वही वस्तु जो यहां ब्राह्मणों को खिलाई जाती है, पहुंचता है तो जो लोग मांसभक्षण के समर्थक हैं, उनके

लिए ब्राह्मणों को मांस खिलाना चाहिये परन्तु वे नहीं खाते । इससे स्पष्ट प्रकट है कि अपने कर्मों से स्वर्ग-नरक मिलता है, मृतकश्राद्ध से नहीं । गोरक्षा पर भी व्याख्यान दिया था जिसमें विस्तारपूर्वक उसके लाभों का वर्णन किया था । नियोग और पुनर्विवाह पर भी व्याख्यान दिया था कि इसके न होने से व्यभिचार की अधिकता हो रही है ।'

"एक दिन स्वर्गीय रावसाहब स्वामी जी को अपने मकान रामपुरा में (जो उनकी राजधानी है और रिवाड़ी से बाहर एक मील की दूरी पर है) ले गये । वहां एक देशी पादरी से बातचीत भी हुई परन्तु हमें वह स्मरण नहीं ।

यहां उनके ११ व्याख्यान हुए । उपस्थिति चार सौ से सात सौ तक हुआ करती थी । उनके सामने किसी पंडित को उनका सामना करने का सामर्थ्य न हुआ परन्तु उनके चले जाने के पश्चात् लोग प्राय: गप्प हांका करते थे ।

रावसाहब ने अपनी बिरादरी[३०] के लोग व्याख्यानों को सुनने के लिए दूर-दूर से बुलाये थे जिनसे उन लोगों को बहुत लाभ पहुंचा और उन्हीं के प्रभाव से अभी तक बहुत से सज्जनों के मन में वे विचार जमे हुए हैं; पुराने विचार अब बिलकुल नहीं हैं । मेरा छोटा भाई राव लालसिंह और मैं सच्चे हृदय से आर्य हैं । तत्पश्चात् यहां बराबर आर्यधर्म की चर्चा होती रही और अब तीन मास से कुछ नवयुवकों ने आर्यसमाज भी स्थापित किया हुआ है । हम लोग सब प्रकार से उनके सहायक हैं ।

जब राव युधिष्ठिरसिंह जी की माता की मृत्यु हुई तो स्वामी जी द्वारा निषेध किये जाने के कारण रावसाहब ने भद्रा[३१] बिलकुल नहीं कराई और प्राय: वेदोक्त रीति से सब क्रिया कर्म किया और अपने मरने पर भी उन्होंने मृतकसंस्कार वेदोक्त रीति से करने की आज्ञा दी परन्तु (वैसा) हो नहीं सका । उनका स्वर्गवास १२ फरवरी, सन् १८८९ को हुआ ।"

पण्डित रामसहाय आदि गौड़ ने वर्णन किया 'यहां रिवाड़ी में कोई पंडित उनके सामने नहीं आया । जब वे आठ दिन व्याख्यान दे चुके तब हमने और रामसेवक गुजराती पंडित ने मिलकर उन को पत्र लिखा कि आप हनुमान मन्दिर में पधारें, वहां हमारा और आपका सम्भाषण होगा । स्वामी जी ने मौखिक उत्तर भेजा कि हमको हनुमान जी के मन्दिर में आकर कोई हनुमान नहीं करना है । तुमको जो कुछ पूछना है यहां चले आओ परन्तु हम नहीं गये ।"

गंगाप्रसाद दूसर[३२] ने वर्णन किया—'मैंने एक दिन स्वामी जी से कहा कि महाराज ! ब्रह्मगायत्री के बारे में पंडित लोग कहते हैं कि ब्राह्मण के अतिरिक्त किसी को इसका अधिकार नहीं । इस में आपकी क्या सम्मति है ? कहा कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों वर्णों के लिए गायत्री और संध्या करना मुख्य है और एक ही गायत्री सब के लिए है । तुम सीखो, हम तुम को उपदेश करेंगे और स्वामी जी ने एक पुस्तक 'पंचमहायज्ञविधि' बिना मूल्य हम को दी और ब्रह्मगायत्री कण्ठस्थ कराई । दूसरे दिन जब मुझसे सुनी तो मेरा उच्चारण शुद्ध नहीं था । तब एक घंटे तक मुझे शुद्ध उच्चारण कराया जो अब तक कण्ठस्थ है । नगर के ब्राह्मणों ने मुझ से कहा कि यह ब्रह्मगायत्री नहीं । तब स्वामी जी ने हंसकर कहा कि जो कोई कहे यह ब्रह्मगायत्री नहीं है, उससे कहना कि स्वामी जी तुम को बुलाते हैं, वहां चलो । दूसरे, यह कि तुम उनके सामने पढ़ो, वे पढ़ने से क्रुद्ध होंगे । मैंने आकर ऐसा ही कहा परन्तु कोई भी मेरे साथ न गया । एक मनुष्य ने मुझ को कहा था कि इसके पढ़ने से पाप होता है । स्वामी जी ने मुझे उत्तर दिया कि जो पाप हो वह मुझ को और जो पुण्य है वह तुझ को । यहां का कोई पंडित उनके सामने न आया ।

एक साधु ने कहा कि मैं ब्रह्म हूं । (सुन कर स्वामी जी) प्रथम तो मौन रहे फिर कहा कि ईश्वर ने सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि को बनाया । तू एक हाथ भर पृथिवी अधर (वायु में लटकती हुई) रच कर यदि हम को बतलावे तो हम तुझको परमेश्वर मानें । सब लोग हंस पड़े और वह मौन हो गया ।'

गोस्वामी दुर्गाप्रसाद ने वर्णन किया—'स्वामी जी पन्द्रह दिन रहे और ११ व्याख्यान दिये । मैं नित्य जाया करता था । एक दिन उन्होंने व्याख्यान में कहा कि 'जगत् चार प्रकार का है । एक तो बकरी के प्रकार का जो पानी पीती है और पानी को दूषित किये बिना उठकर चली जाती है । दूसरा भैंसे के प्रकार का जो पीते हैं, उसी में मूतते हैं और पानी को गंदला भी करते हैं (शेष दो स्मरण नही) ।

यहां पर एक दिन स्वामी जी के पास एक चिट्ठी इस विषय की आई कि मुझ को विरोधियों ने विश्वास करा दिया था कि स्वामी जी मर गये हैं । मैं बड़ा शोकातुर था परन्तु अब जो सुना कि आप जीवित हैं, मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई । स्वामी जी ने कहा कि देखो ! धूर्त लोग कितनी शरारत करते हैं । फिर उन को सन्तोषजनक पत्र लिख दिया ।

यहां के एक पंडित भागीरथ जी स्वामी जी को मेरठ में मिले । वे जब गये तो स्वामी जी ने कहा कि तुम भी पंडितों में पग अड़ाने के अभिप्राय से आये हो ताकि लोगों को विदित हो कि यह भी दयानन्द स्वामी से संस्कृत बोल आये हैं । तुम अभी जाकर पढ़ो ।'

यहां से ९ जनवरी, सन् १८७९ को रेल द्वारा दिल्ली को पधार गये । रावसाहब ने अत्यन्त आदर और सत्कार से विदा किया था ।

दिल्ली का वृत्तान्त (१० जनवरी,[३३] सन् १८७९ से १५ जनवरी,[३४] सन् १८७९ तक)

९ ता० को रिवाड़ी से सवार होकर उसी दिन दिल्ली पहुंच कर काबुली दरवाजे सब्जीमंडी के पास बालमुकुन्द किशोरीचन्द[३५] के मोतीबाग में निवास किया । ९ से ११ तक कोई व्याख्यान नहीं दिया । जो लोग डेरे पर आते रहे उन्हें सत्योपदेश करते रहे । १२ जनवरी, सन् १८७९ को पहला व्याख्यान दिया । इस बार केवल दो या तीन व्याख्यान दिये । ६ दिन रहकर मेरठ पधार गये और वहां से शीघ्र हरिद्वार चले गये ।

देहरादून का वृत्तान्त (१४ अप्रैल, सन् १८७९ से ३० अप्रैल, सन् १८७९ तक)

स्वामी जी हरिद्वार के कुम्भ में प्रचार कर देहरादून पधारे । धर्मप्रचार के साथ विश्राम करने का भी विचार था क्योंकि हरिद्वार के दिन रात के परिश्रम के कारण और रोग के कारण शरीर में दुर्बलता आ गई थी ।

रुड़की-निवासी **पंडित कृपाराम गौड़** तथा वर्तमान समय देहरादून के निवासी ने वर्णन किया—'अप्रैल में स्वामी जी का पत्र हरिद्वार से आया कि हम पर्वी से दूसरे दिन देहरादून को कूच करेंगे जिससे इस बात की चिन्ता उत्पन्न हुई कि कोई स्वतंत्र मकान लिया जावे । अन्त में कुछ बंगाली सज्जनों की सम्मति से मिस डक का बंगला निश्चित किया गया । इसक पश्चात् बाबू श्यामलाल का पत्र हरिद्वार से आया कि कर्नल आल्काट साहब और मैडम ब्लेवेत्स्की स्वामी जी से मिलने के लिए वहां आयेंगे, इनके लिए भी बंगले का प्रबन्ध कर रखना परन्तु शीघ्र ही दूसरी चिट्ठी आई कि कुछ आवश्यकता नहीं; वे देहरादून नहीं आयेंगे ।

१४ अप्रैल, सन् १८७९ को स्वामी जी के आने की सूचना थी । उस दिन मैंने हरिद्वार की सड़क पर अपने भतीजों और दो सेवकों को इसलिए भेज दिया कि वे स्वामी जी को (उस) ज्ञात बंगले पर साथ लिवा लावें । स्वयं छुट्टी न मिलने के कारण उपस्थित न हो सका । १० बजे के लगभग, मेरे पास दफ्तर में सूचना पहुंची कि स्वामी जी आ गये । मैं अपने अफसर से पूछ कर स्वामी जी से मिलने गया । देखा कि वहां बहुत-से बंगाली सज्जन एकत्रित हैं । उनमें से एक ने गाड़ी का किराया भी अपने पास से दे दिया था । पंडित भीमसेन, नीलाम्बर और एक विद्यार्थी—कुल तीन पुरुष स्वामी जी के

साथ थे । मैं उस समय भेंट करके चला गया । फिर शाम को उपस्थित हुआ । सारे नगर में चर्चा फैल गई । बहुत-से मनुष्य एकत्रित हुए । विभिन्न विषयों पर बातचीत होती रही ।

इन दिनों स्वामी जी को अतिसार के रोग ने इतना तंग कर रखा था कि बातचीत करते हुए कई बार शौच के लिए जाना पड़ता था । हम लोगों ने कहा कि आपके लिए किसी डाक्टर को बुलाते हैं । कहा कि मैं डाक्टरी औषधि न खाऊंगा और नहीं खाई । घंटे दो घंटे के पश्चात् जब सब लोग चले गये तब स्वामी जी ने मुझे एकान्त में बुलाया और पूछा कि मेरे बुलाने के लिए जो यहां चन्दा हुआ है, उसमें कौन लोग सम्मिलित हैं ? मैंने सूची दिखलाई । इसमें बंगालियों के अतिरिक्त केवल दो नाम दूसरे थे और वे बंगाली भी सभी ब्रह्मसमाज के सदस्य थे । स्वामी जी ने सुनकर बहुत खेद प्रकट किया कि इन लोगों के भरोसे तुम्हें यह बोझ अपने ऊपर नहीं उठाना चाहिए था[३६], क्योंकि ये लोग आज तुम्हारे मित्र और कल तुम्हारे शत्रु हो जावेंगे । यह तुमने भूल की जो ब्रह्मसमाज के सदस्यों का विश्वास किया कि ये किसी प्रकार की सहायता करेंगे । मैंने निवेदन किया कि आप कुछ विचार न करें, ये सहायता न करेंगे तो मैं अकेला ही आपकी सेवा के लिए पर्याप्त हूं । कहा कि मेरी यह इच्छा नहीं है कि मैं किसी अकेले को कष्ट दूं ।

यहां आने पर दो-तीन दिन के विश्राम से अतिसार में कमी हुई और आरोग्य लाभ होने पर व्याख्यानों का विज्ञापन दिया गया और उसी मिस डक के बंगले में स्वामी जी के व्याख्यान आरम्भ हुए ।

पहला व्याख्यान ईश्वर विषय पर हुआ । उसमें तीन-सौ के लगभग मनुष्य थे । नास्तिक मत का बहुत अच्छी प्रकार खंडन किया ।

दूसरा व्याख्यान वेद के ईश्वरकृत होने पर था । उसमें विशेषता यह हुई कि एक ओर बाइबिल (रखी) थी और दूसरी ओर 'कुरआन' था । उस दिन ये पांच अंग्रेज-मिस्टर पारमर, मिस्टर गार्टलेन, कर्नल ब्रायली, मिस्टर क्रोन, रैवरेण्ड डाक्टर मारेसन भी उपस्थित थे । स्वामी जी ने बाइबिल और कुरआन दोनों के सिद्धान्तों का प्रबल युक्तियों से युक्तियुक्त खंडन किया । ढाई घंटे तक व्याख्यान होता रहा । पांच-सौ के लगभग मनुष्य थे । बाइबिल का खंडन होते समय पादरी साहब को बहुत आवेश आया परन्तु फिर भी व्याख्यान की समाप्ति तक नियन्त्रण किये हुए मौन बैठे रहे । व्याख्यान के समाप्त होने पर एकदम आवेशपूर्वक बोल उठे, 'पंडित जी ने केवल धूल उड़ाई और अपने वेदमत को उसी धूल में छुपा लिया ।' यह शब्द चूंकि क्रोध की अवस्था में कहे गये थे इसलिए क्रमहीन थे और यह भी कहा कि हम ने आज तक किसी पंडित को वेद के सिद्धान्त वर्णन करते नहीं सुना । क्या यही (उन सिद्धान्तों से) परिचित हैं ? इसके पश्चात् बाइबिल के जिन सिद्धान्तों का स्वामी जी ने खंडन किया था, उनको पादरी साहब सिद्ध करने लगे । जब पादरी साहब कह कर मौन हुए तब स्वामी जी खड़े हुए । पादरी महोदय ने क्रोध की दशा में जो अनुचित शब्द कहे थे, उन पर स्वामी जी ने कुछ न कहा केवल उनके उपस्थित किये हुए प्रमाणों का खंडन किया । इस खंडन को पादरी साहब सुन तक न सकते थे और उत्तेजना के मारे चिल्ला-चिल्ला उठते थे । यहां तक कि (स्वयं) मिस्टर पारमर ने अंग्रेजी भाषा में पादरी साहब से कहा कि 'डा० मारेसन ! जिस योग्यता और नम्रता के साथ व्याख्यानदाता अपने दावे को सिद्ध करता है, उसको तुम अनुचित और क्रोध भरे शब्दों से रोकना चाहते हो ? यह बात मेरी सम्मति में अच्छी नहीं । चाहिये तो यह कि जिस दृढ़ता और दृढ़ निश्चय के साथ वह अपने दावे की सिद्धि और आपके खंडन में युक्तियां देते हैं, आप भी दें ।'

इसके उत्तर में पादरी साहब ने यह कहा कि मैं बहुत उचित रूप से उत्तर दे रहा हूं । यदि तुम को उचित नहीं प्रतीत होते तो तुम भी इनके साथ मिल जाओ । यह कहा और क्रोध में उठकर चले गये और शेष अंग्रेज बैठे रहे । जब पादरी

साहब चलने लगे तो स्वामी जी ने उनसे पूछा कि पादरी साहब, कल भी आओगे ? इसके उत्तर में पादरी साहब ने अत्यन्त क्रोध में आकर बहुत कोलाहल पूर्वक कुछ कहा परन्तु किसी की समझ में नहीं आया कि उन्होंने क्या कहा ?

इसके पश्चात् मिस्टर पारमर और गार्टलेन ने मेरे द्वारा स्वामी जी से बातचीत करने की प्रार्थना की । स्वामी जी ने स्वीकार किया और व्याख्यान के स्थान से उठकर बरामदे में उनके पास चौकी पर बैठ गये । मिस्टर गार्टलेन साहब स्वामी जी से बातचीत आरम्भ करना चाहते थे कि मिस्टर विपिनमोहन बोस (पादरी रामचन्द्र के भाई) ने बाइबिल के बारे में बातचीत छेड़ दी । पांच से साढ़े सात तक तो व्याख्यान होता रहा था । आठ बजे के लगभग उन से (मिस्टर बोस से) बातचीत आरम्भ हुई । दस बजे तक बातचीत होती रही । सारा समय बोस साहब हेडमास्टर मिशन स्कूल देहरादून ने ले लिया अन्ततः बीच में ही हेडमास्टर और मिस्टर गार्टलेन का आपस में झगड़ा हो गया । हेडमास्टर साहब बाइबिल को सिद्ध करते थे और गार्टलेन साहब खंडन । दोनों को चुप कराने का बहुत यत्न किया गया परन्तु वे चुप न हुए । इसलिए अन्य किसी से बातचीत न हुई ।

उस दिन मुसलमान भी बहुत आये थे जिन में से कुछ मौलवी थे । उसी दिन के वर्णन (व्याख्यान) में ब्रह्मसमाज के नियमों (सिद्धान्तों) का खंडन किया था जिससे वे भी विरुद्ध हो गये और प्रत्येक प्रकार की सहायता करने से इन्कार कर दिया । स्वामी जी का वचन पूरा हुआ । सारांश यह कि १२ बजे रात तक वहां बातचीत होती रही ।'

निर्भय दयानन्द—"जिस बंगले में स्वामी जी उतरे थे, वह फूस का था । मुझे घर आकर यह सूचना मिली कि आज रात को स्वामी जी का बंगला जलाया जायेगा । मेरे हृदय में भय उत्पन्न हुआ । इस पर प्रथम तो स्वामी जी को सूचना दे दी और दो-तीन अपने नौकर वहां भेज दिये और दो चौकीदार नियत किये । रात को पंडित भीमसेन भी जागते रहे परन्तु स्वामी जी हमें आश्वासन देते रहे ।"

"दूसरे दिन जब मैं दफ्तर गया तो थोड़ी देर पश्चात् मेरा भतीजा पीछे-पीछे आया और कहने लगा कि लगभग एक सौ पचास मुसलमान स्वामी जी के मकान पर पहुंच गये हैं जो उपद्रव करने पर उद्यत प्रतीत होते हैं । यह सुनकर मेरे चित्त में बड़ा जोश उत्पन्न हुआ और साहब से आज्ञा लेकर वहां पहुंचा परन्तु वे मेरे पहुंचने से पहले ही चले गये थे । उस समय वहां कोई उपस्थित न था । स्वामी जी के मुख से विदित हुआ कि मुसलमानों की एक बड़ी भीड़ उन के पास पहुंची थी जिन्होंने कहा कि हम से शास्त्रार्थ करो । आपने जो अनुचित आरोप हमारे मत पर लगाया है, उसकी सफाई कीजिये । हमने कहा कि मैं एक-एक से शास्त्रार्थ नहीं कर सकता । प्रथम शास्त्रार्थ की शर्तें तैयार हों फिर जो तुम में से अधिक विद्वान् हो, वह मुझसे शास्त्रार्थ कर सकता है । उन लोगों ने नियम तैयार करके फिर आने को कहा और उससे दूसरे दिन अर्थात् व्याख्यान के तीसरे दिन ठीक व्याख्यान के समय मुसलमानों ने अपने नियम उपस्थित किये जो समस्त सभा के सामने पढ़े गये । विदित हुआ कि वे एकपक्षी हैं और मौलवी अहमद हसन का उन में नाम था । स्वामी जी ने लोगों से पूछा कि कोई उनसे परिचित हो तो बतलावे कि वे कैसे व्यक्ति हैं ? लोगों ने कहा कि निस्सन्देह वे विद्वान् पुरुष हैं और बौडीगार्ड में नौकर हैं । तब स्वामी जी ने नियम स्वीकार करके जो परिवर्तन करना था, वह उचित रूप से करके वापस दे दिया । उस दिन व्याख्यान धर्मविषय पर था जो अच्छी प्रकान निर्विघ्नतापूर्वक समाप्त हुआ । उस दिन (के व्याख्यान में) एक ही अंग्रेज मिस्टर बर्कले साहब उपस्थित थे ।

चौथे दिन पुराणों के विषय पर व्याख्यान हुआ जिस में मूर्तिपूजा का खंडन आदि भी आ गया और किसी ने कोई शंका न की ।

पांचवें दिन से नवें दिन तक आर्यावर्त के पिछले इतिहास पर व्याख्यान थे जिन में स्वामी जी ने राजा सुग्रीव आदि लोगों के जीवनचरित्र सुनाये।

सारे डेरे में हल्ला मच गया। लोग कहते थे कि पीछे से तो बहुत लोग बुड़बुड़ाते हैं परन्तु सामने बोलने का साहस कोई नहीं रखता। व्याख्यान और युक्तियां अत्यन्त प्रबल हैं।

इन व्याख्यानों के पश्चात् फिर स्वामी जी अतिसार के रोग में फंस गये। इसी समय में मिस डक ने किसी के बहकाने से नोटिस दिया कि हमारा बंगला शीघ्र खाली करो। लोग कहते थे कि पादरी साहब के बहकाने से नोटिस दिया है परन्तु ठीक ज्ञात नहीं कि क्यों ऐसा किया ? हमने गथरी साहब को कोठी लेने का परामर्श कर लिया, परन्तु इतने में स्वामी जी के नाम कर्नल साहब[३७] का तार सहारनपुर से आ गया। इस पर स्वामी जी ने तत्काल चलने का निश्चय कर लिया। उस समय न हमारा कोई सहायक था और न कोई धार्मिक कार्य में सहानुभूति रखने वाला।

एक दिन ब्रह्मसमाज के सदस्य बाबू कालीमोहन घोष स्वामी जी के पास गये। मैं उस समय उपस्थित नहीं था, परन्तु मेरे बड़े भाई हरगुलाल जी और पंडित मुकुन्दलाल तहसीलदार उपस्थित थे। उन्होंने स्वामी जी से प्रार्थना की कि आप कल हमारे यहां भोजन करें। स्वामी जी ने कहा कि 'मुझे भोजन करने में कोई आपत्ति नहीं परन्तु सुना जाता है कि ब्रह्मसमाज वालों के वहां अन्त्यज (महानीच लोग) भी भोजन पकाने का काम करते हैं। इसलिए उनका भोजन करने में मेरी रुचि नहीं।' इस के पश्चात् खाने के विषय पर परस्पर चर्चा होती रही। अन्त में बाबू साहब ने यह कहा कि निस्सन्देह यह बात ठीक है कि हम किसी के हाथ से खाने को बुरा नहीं समझते परन्तु हम ऐसा करते नहीं है। स्वामी जी ने कहा कि यदि आप मन से मानते हैं और करते नहीं हैं तो हम खा लेंगे। दूसरे दिन खाने के समय मेरे भाई ने मुझे कहा कि आज स्वामी जी ने कालीमोहन के यहां निमन्त्रण स्वीकार किया है। यह सुनते ही मैंने एक थाल में खाना परोस कर तत्काल उन के डेरे पर पहुंचा दिया और स्वयं भी जा पहुंचा। स्वामी जी ने पूछा कि यह क्या है ? मैंने कहा कि आपके लिए खाना है, आपने बड़ी भूल की जो कालीमोहन के यहां खाना स्वीकार किया क्योंकि यह मेरी आंखों-देखी बात है कि उनके यहां एक भंगन खाना पकाया करती थी। कहा कि हमें ज्ञात नहीं था। हम ने अभी उनके भोजन में से साग अलग निकाल कर रखा है। मैंने कहा कि आप इस खाने को लौटा दीजिये। कहा कि उन्होंने हमारे साथ धोखा किया। तुम्हारे भाई और पंडित मुकुन्दलाल के सामने बातें हुई, उन्होंने भी हम को नहीं कहा। फिर वह थाल वापस करके मेरे लाये हुए भोजन को खाना आरम्भ किया। थोड़ी देर पश्चात् वे भी आ गये। मैं उपस्थित था। कहा कि बड़े खेद की बात है कि कल आपने स्वीकार किया और आज अस्वीकार कर दिया। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि जो बात कल आपने कही थी वह मिथ्या सिद्ध हुई। हमने सुना है कि तुम्हारे यहां भंगन खाना पकाया करती है। उसने कहा कि मैंने कह दिया था कि हम प्रत्येक के हाथ का खाना खा लिया करते हैं। मेरे इस कहने पर भी आपने मान लिया था। स्वामी जी ने कहा कि पंडित मुकुन्दलाल और हरगुलाल उपस्थित थे। आपने स्पष्ट कहा था कि हम केवल कहते हैं, करते नहीं हैं ?

जब स्वामी जी चलने को उद्यत हुए तो मैं उनके पास चालीस रुपये व्ययार्थ लेकर गया जिनमें पन्द्रह रुपये चन्दे की सूची में प्राप्त किये हुए भी सम्मिलित थे। उन्होंने मेरे अनुरोध पर दस रुपये लौटाकर तीस रुपये मार्ग-व्ययार्थ ले लिये। शेष के लिए मैंने बहुत कहा परन्तु उन्होंने न माना और ३० अप्रैल, सन् १८७९ को मेलकार्ट द्वारा यहां से चले गये।

उनके चले जाने के पश्चात् २९ जून, सन् १८७९ को यहां आर्यसमाज स्थापित हुआ जिसमें निम्नलिखित अधिकारी नियत हुए-बाबू माधोनारायण प्रधान; बाबू गोपालसिंह कोषाध्यक्ष; पंडित कृपाराम मन्त्री।

देहरादून से चलकर १ मई, सन् १८७९ को स्वामी जी सहारनपुर पहुंचे और दो दिन वहां रहकर कर्नल साहब और मैडम के साथ मेरठ में पधारे। ७ मई, सन् १८७९ को उक्त सज्जन भाई मूलजी[३८] सहित रेल द्वारा बम्बई को लौट गये। विस्तृत विवरण पृथक् लिखा है।

स्वामी जी मेरठ से २५ मई[३९], सन् १८७९ को चलकर उसी दिन अलीगढ़ पहुंचे, चूंकि स्वास्थ्य पूर्ववत् बिगड़ा हुआ था, तीन दिन वहां रहकर ठाकुर भोपालसिंह और मुन्नासिंह के साथ छलेसर चले गये। वहां बड़े ध्यान और सावधानी से चिकित्सा होती रही। अच्छी प्रकार आरोग्य लाभ करके पूरे एक मास के पश्चात् ३ जुलाई को वहां से मुरादाबाद की ओर चले गये।

मुरादाबाद नगर मे दो बार धर्मप्रचार

लाο खेमकरनदास[४०] मन्त्री, आर्यसमाज मुरादाबाद ने वर्णन किया 'श्री स्वामी जी **मुरादाबाद में तीन[1] बार पधारे थे** और तीनों बार मैंने महाराज के दर्शन से अपना जन्म सफल किया था।

"प्रथम बार सन् १८७६ में यहां पधारे और राजा जयकिशनदास साहब बहादुर सी० एस० आई०[४१] के बंगले में जो हवेली के बाग में है, उतरे। ये वही राजा साहब हैं कि जिनकी सहायता से सत्यार्थप्रकाश का प्रथम बार प्रकाशन हुआ था और जिन्होंने बहुत से उत्तम पुस्तक विलायत जर्मनी से मंगाकर स्वामी जी को अवलोकनार्थ दिये थे और उन्हीं की प्रशंसा में मुंशी इन्द्रमणि ने 'तोहफतुल इस्लाम' नामक पुस्तक के आरम्भ में एक कसीदा (स्तुतिगान) लिखा है।

व्याख्यान के नोटिस कुंवर परमानन्द जी की ओर से दिये गए। स्वामी जी ने पांच-छः दिन सायंकाल को राजा साहब की हवेली की कोठी के चबूतरे पर कई उत्तम विषयों पर व्याख्यान दिये। यद्यपि नगर के पंडितों ने स्वामी जी के विरुद्ध बहुत कोलाहल मचाया परन्तु शास्त्रार्थ के लिए कोई सामने न आया। हां, एक दिन एक सभा 'धर्मसभा' के नाम से रामगंगा के तट पर ठाकुर जगमोहनसिंह तहसीलदार के उत्साह से आरम्भ हुई परन्तु पंडितों ने अपनी-अपनी प्रशंसा चाही; आपस में विरोध और झगड़ा हो गया; इस कारण इस सभा में कोई प्रयोजन सिद्ध न हुआ।

एक दिन श्री स्वामी जी महाराज व्याख्यान दे रहे थे कि पंडित बन्देदीन सुपरिण्टैण्डैण्ट-टीका, ऐसे कटुवचन कहकर चले गए कि यह दुष्ट हमारे देवताओं की निन्दा करता है, इसका मुख न देखना चाहिए परन्तु स्वामी जी अपने शान्तचित्त से बराबर व्याख्यान देते रहे और इस बात पर तनिक भी ध्यान न दिया।

व्याख्यान की समाप्ति पर शंका-निवारण के लिए समय देते थे और प्रायः लोग दस-ग्यारह बजे रात्रि तक स्वामी जी महाराज से सत्संग करते रहते थे। उन्हीं दिनों निम्नलिखित सज्जनों ने स्वामी जी से यज्ञोपवीत लिया था—ला० खेमकरनदास, ला० चन्द्रमणि, ला० द्वारकादास और एक और सज्जन जिनका नाम मुझे स्मरण नहीं।

एक दिन मैंने पूछा कि यदि लोग यज्ञोपवीत लेने में दोष लगावें (बतावें) और हमारा मत पूछें तो क्या उत्तर दिया जावे? कहा कि संन्यासी से यज्ञोपवीत लेना शास्त्रोक्त है और अपना मत वैदिक बतलाया करो। अभी तक वेदभाष्य आरम्भ नहीं हुआ था। स्वामी जी उसके छपवाने की तैयारी कर रहे थे। मैंने प्रथम ग्राहकों की सूची में नाम लिखाया जिसके नमूने के अंक में नं ९ पर रसीद प्रकाशित हुई। इन्हीं दिनों स्वामी जी का पादरी पार्कर साहब से कई दिन तक प्रातःकाल लिखित शास्त्रार्थ होता रहा जिसके पत्र कुंवर परमानन्द के पास होंगे।

---

1. श्री स्वामी जी शास्त्र-चर्चा तथा धर्म-प्रचार के लिए मुरादाबाद में दो ही बार पधारे। पहली बार सच्चे गुरु की खोज-यात्रा में मुरादाबाद बीच में पड़ गया था।

साहू श्यामसुन्दर जी, रईस मुरादाबाद ने वर्णन किया कि पादरी पार्कर साहब का शास्त्रार्थ राजा जयकिशनदास साहब बहादुर की कोठी पर कम से कम पन्द्रह दिन तक होता रहा । मैं नित्य जाया करता था । कुंवर परमानन्द, रूपकिशोर अध्यापक मिशन स्कूल, मास्टर हरिसिंह तथा और भी कई सज्जन जाया करते थे ।

सृष्टि-रचना काल का वैज्ञानिक उत्तर—अन्तिम दिन का विषय यह था कि सृष्टि कब उत्पन्न हुई ? पादरी साहब का कथन था कि सृष्टि पांच हजार वर्ष से उत्पन्न हुई और स्वामी जी इसका खंडन करते थे । इसी समय ब्रिटिश इण्डियन ऐसोसियेशन कमेटी की सभा उस कोठी के एक कमरे में हुआ करती थी । उस अन्तिम दिन स्वामी जी दूसरे कमरे में जाकर एक बिल्लौर का पत्थर उठा लाये और बोले कि आप लोग विज्ञान जानते हैं । इसको विज्ञान से सिद्ध करें कि कितने वर्ष में यह पत्थर इस रूप में आया । अन्त में खोज से यही सिद्ध हुआ कि वह कई लाख वर्ष में बना है । फिर कहा कि जब सृष्टि नहीं थी तो यह पत्थर कैसे बन गया ? जिस पर पादरी साहब ने यह निकम्मा बहाना पेश किया कि हम मनुष्य की उत्पत्ति को पांच हजार वर्ष कहते हैं । इस पर स्वामी जी ने कहा कि जब सृष्टि की उत्पत्ति की चर्चा है तो सृष्टि के भीतर मनुष्य आदि सब आ गये । इसी पर शास्त्रार्थ समाप्त हुआ था । पादरी साहब ने इस शास्त्रार्थ का वृत्तान्त किसी समाचारपत्र में प्रकाशित कराया था परन्तु उसका नाम मुझे ज्ञात नहीं और यह भी सुना कि पादरी साहब ने एक चिट्ठी अमरीका भेजी कि हमने आज तक ऐसा विद्वान् पंडित कोई नहीं देखा । इस बार भोजन प्राय: मेरे यहां से जाया करता था । एक दिन मैंने कहा कि आज भोजन मेरे मकान पर चल कर करें । उन्होंने अस्वीकार किया । एक और सज्जन ने स्वामी जी को भोजन के लिए कहा, उनके यहां जाकर भोजन पा लिया । मुझे यह बात बहुत बुरी लगी और मैंने स्वामी जी से शिकायत की । स्वामी जी ने मुझे इसका उत्तर सार्वजनिक सभा में दिया कि तुझ से मुझे आर्य बनने की आशा है । जब तक तू कुकर्म न छोड़ेगा मैं तेरे यहां जाकर भोजन न करूंगा, और यही अपमान तेरे लिए पर्याप्त है ।"

बाबू रूपकिशोर जी ने वर्णन किया—रैवरेण्ड डब्ल्यू पार्कर साहब[४२] और स्वामी जी के मध्य जो शास्त्रार्थ हुआ था वह मैंने लिखा था परन्तु खेद है कि मेरे पुत्र के प्रमाद से वे कागज नष्ट हो गए । अब जो बात मुझे कण्ठस्थ ज्ञात है, वह लिखवाता हूं—'इस शास्त्रार्थ में तीन अंग्रेज सज्जन उपस्थित थे । एक पादरी पार्कर, दूसरे मिस्टर बेली साहब और तीसरे एक और पादरी साहब । इनके अतिरिक्त डिप्टी इमदाद अली, बाबू रामचन्द्र बोस, कुंवर परमानन्द, मास्टर हरिसिंह और इसी प्रकार ४०-५० मनुष्य थे । शास्त्रार्थ लिखा जाता था । १४-१५ दिन शास्त्रार्थ होता रहा । बेली साहब अब अलीगढ़ में रजिस्ट्रार हैं । प्रतिदिन प्रात: दो तीन घंटे बैठते थे ।'

अन्त में हुई एक बात मुझे स्मरण है । स्वामी जी ने सिद्ध कर दिया था कि मसीह मूर्तिपूजा की शिक्षा देता था क्योंकि जो ईश्वर को किसी के द्वारा मानता तथा किसी के द्वारा इच्छापूर्ति की प्रार्थना करता है वह मूर्तिपूजक है और हम लोग मूर्तिपूजक नहीं हैं ।

एक बार राजा साहब के मकान पर शाम को स्वामी जी का व्याख्यान था । उसके पश्चात् पादरी पार्कर साहब से आदम के स्वर्ग से निकाले जाने के विषय में चर्चा हुई । स्वामी जी अपनी बातचीत में आदम जी और हव्वा जी कहते थे । बातचीत के बीच में पादरी साहब ने कहा कि आदम पापी था । इस पर डिप्टी इमदाद अली साहब ने कहा कि आप ऐसा शब्द न कहें, हमारे पैगम्बर को आप पापी न कहें । देखिए स्वामी जी आदम जी कहते हैं । तब पादरी साहब ने कहा कि मेरा प्रयोजन बिना पापी कहे सिद्ध नहीं होता । इस पर डिप्टी इमदाद अली साहब घबरा गये और पेट खोलकर बतलाया कि मैं यों सरकार का हितचिन्तक हूं और इस हितचिन्तन में इतनी तलवारें लगी हैं । इस पर पादरी साहब ने शान्ति से कहा कि यह डिप्टीपन का काम नहीं है; यहां धार्मिक शास्त्रार्थ है । स्वामी जी मौन रहे और फिर शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ ।

मुंशी इन्द्रमणि इससे पहले इनको किसी और स्थान पर जाकर मिले थे और इस कारण से पहले इनके अनुयायी हुए थे और उन्हीं के बुलाने से स्वामी जी इस बार यहां पधारे थे और नाममात्र समाज भी स्थापित किया था परन्तु वह (आर्यसमाज) स्वामी जी के चले जाने के पश्चात् मुंशी इन्द्रमणि की राजा साहब के सेवक से अनबन होने के कारण इसी वर्ष टूट गया । स्वामी जी पंजाब की ओर चले गये ।

दूसरी बार स्वामी जी ३ जुलाई, सन् १८७९ को मुरादाबाद में विराजमान हुए और श्रीमान् राजा साहब के उसी बंगले में उतरे । रोग के कारण इस बार केवल तीन व्याख्यान दिये । एक दिन मिस्टर स्पीडिंग साहब कलैक्टर के निवेदन से मुरादाबाद छावनी की पहली कोठी में राजनीति पर व्याख्यान दिया । लोगों के बुलाने का प्रबन्ध स्वयं साहब बहादुर ने किया था और एक प्रकार का टिकिट जारी किया था ताकि बिना टिकिट कोई व्यक्ति न जा सके । समस्त आर्य लोगों को टिकिट मिल गये और अनपढ़ और कम समझ लोगों को टिकिट नहीं दिये गये । समस्त प्रतिष्ठित अंग्रेज, न्यायाधीश, वकील, रईस और न्यायालय के कर्मचारी बुलाये गये । तीन सौ के लगभग लोग एकत्रित थे । ६ बजे सायंकाल से व्याख्यान आरम्भ हुआ और कई घंटे तक होता रहा । प्रथम स्वामी जी ने यजुर्वेद का मन्त्र जो सत्यार्थप्रकाश के आरम्भ में दिया है,[८३] ऐसी मीठी वाणी से पढ़ा कि सारी कोठी गूंज उठी, शान्ति फैल गई और इससे पूरी साक्षी मिल गई कि संसार में जितनी गानविद्या फैली हुई है, वह सब वेदों से ली गई है । फिर व्याख्यान आरम्भ हुआ और श्रोताओं ने भलीभांति मन लगा कर सुना । व्याख्यान में स्वामी जी ने राजा और प्रजा-सम्बन्धी कर्मों का उपदेश किया और आपस के कर्त्तव्य अच्छी प्रकार चित्त पर अंकित किये और चूंकि साहब कलैक्टर बहादुर को शिकार में अधिक रुचि थी, स्वामी जी ने शिकार आदि व्यसनों का यथावत् खंडन किया ।

जब व्याख्यान समाप्त हुआ, साहब कलैक्टर बहादुर ने खड़े होकर स्वामी जी की बड़ी प्रशंसा की और कहा कि जैसा पंडित जी ने इस समय कहा है यदि इस प्रकार का व्यवहार प्रजा और राजा करते तो विद्रोह के दिनों में जितने कष्ट और दुःख राजा और प्रजा ने उठाये, कदापि न उठाने पड़ते । जो कुछ इन्होंने कहा है सब सच है, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं । लोगों पर भी इसका बहुत प्रभाव हुआ ।

इसके पश्चात् बाबू काली प्रसन्न वकील जजी मुरादाबाद, किसी से अंग्रेजी में बातचीत करने लगे । स्वामी जी ने उन्हें रोका ओर कहा कि सभा में बैठकर ऐसी भाषा में बातचीत करना जो साधारण लोग न समझ सकें धर्मविरुद्ध और चोरी की बात है । आपने अंग्रेजी जानने का अभिमान किया, यद्यपि आपसे अधिक अंग्रेजी जानने वाले अंग्रेज यहां उपस्थित हैं । यदि मुझ से छुपा कर बातचीत की तो ऐसे लोग बहुत मौजूद हैं जो मुझे आपकी अंग्रेजी समझा सकते हैं । यदि इसके बदले मैं संस्कृत बोलूं तो कहां जाओगे और किससे पूछोगे । ऐसा करना योग्य नहीं ।

साहू श्यामसुन्दर जी ने कहा 'उन्हीं दिनों की बात है कि एक दिन पंडित नारायणदास स्वामी जी से संस्कृत में बात कर रहा था । अकस्मात् स्वामी जी के मुख से एक शब्द अशुद्ध निकला । उसने आक्षेप किया, स्वामी जी ने स्वीकार किया कि हां यह अशुद्धि भूल से मेरे मुख से निकल गई है । इस पर उसने घमंड किया और इस पर बार-बार अनुरोध किया । तब स्वामी जी ने क्रोध से कहा कि अरे छोकरे ! मैंने अपनी भूल स्वीकार की और तू उस पर भी नहीं मानता । परन्तु यदि मैं हठ करूं तो उसे सिद्ध कर सकता हूं और तू उसे कदापि खण्डन न कर सकेगा, परन्तु यह अधर्म है ।'

जब मेरे लड़के के यज्ञोपवीत संस्कार का समय आया तब स्वामी जी को एक चिट्ठी भेजी । उनका उत्तर आया कि यज्ञोपवीत कराकर उस को घर में पढ़ाओ, आजकल गुरुकुल का प्रबन्ध ठीक नहीं है और इसका विवाह मत करना ।

इस पर हमको आश्चर्य हुआ कि स्वामी जी ने यह क्या लिखा परन्तु हम ने इसी विचार से उसका विवाह न किया। अन्त में वह लड़का, पांच वर्ष व्यतीत हुए, इस संसार से चल बसा।"

साहू ब्रजरत्न जी ने वर्णन किया—'इन दिनों मैं यद्यपि स्वामी जी का विरोधी था परन्तु उनके पास जाया करता था। स्वामी जी इन दिनों रुग्ण थे और उनको दस्त आते थे। एक दिन मेरे जाने से पहले नारायणदास से जो 'पीपलपत्ता' के नाम से प्रसिद्ध है, बातचीत हो रही थी। जब मैं पहुंचा तो उसने स्वामी जी से कहा कि देखिये, मूर्तिपूजा में जो बात हो रही थी, उसमें आपने संस्कृत बोलने में भूल की थी और मैंने वह भूल पकड़ी थी। यह कहने से उसका आशय अपनी विद्या का बल बतलाने और यह जतलाने का था कि मैंने स्वामी जी की अशुद्धि पकड़ी थी। स्वामी जी ने कहा कि हां, तुम ने मेरी अशुद्धि पकड़ी थी और मैंने स्वीकार किया था। मैंने कहा कि यदि आप मूर्तिपूजा वेदों से सिद्ध कर दें तो हम लोगों का उद्धार हो जावेगा परन्तु उसने कोई मन्त्र न पढ़ा, प्रत्युत उसी अशुद्धि को दुहराना आरम्भ कर दिया। तब स्वामी जी ने कहा कि अरे छोकरे ! तू उसी भूल से हुई अशुद्धि पर अड़ रहा है। यदि तुझ में सामर्थ्य है तो विद्या की बात कर, परन्तु उसने और कुछ बात न की और चला गया।

यहां संग्रहणी से रुग्ण-अवस्था में उनकी चिकित्सा के लिए पहले तो बदायूं के पंडित लक्ष्मीदत्त वैद्य बुलाये गये। स्वामी जी ने उनसे संस्कृत में वार्ता करके उनसे चिकित्सा कराई और फिर जब उनसे ठीक न हुए तो डाक्टर डीन साहब बहादुर ने उनकी चिकित्सा की। वह दिन में कई बार आया करते थे और उन्होंने भली-भांति मन लगाकर चिकित्सा की। स्वामी जी के स्वस्थ हो जाने पर लगभग दो सौ रुपये फीस के उनको भेंट किये गये परन्तु उन्होंने लेना अस्वीकार किया; कहा कि मैं स्वामी जी की चिकित्सा की फीस नहीं लेता। ये जगत्-उपकारी पुरुष हैं। उनकी चिकित्सा की फीस लेना उचित नहीं। तब हम लोगों ने मुरादाबाद की बनी हुई कुछ वस्तुएं भेंट के रूप में उनको दीं; उनको डाक्टर साहब ने बड़ी प्रसन्नता से लिया और कहा कि 'हम इनको विलायत के म्यूजियम (संग्राहलय) में रखेंगे।'

रामजीलाल यदुवंशी ने वर्णन किया—'जब श्री स्वामी जी सन् १८७९ में मुरादाबाद पधारे तो मेरे मित्र मुंशी माधोप्रसाद ने मुझे कायमगंज में सूचना दी। मैंने उत्तर लिखा कि यद्यपि इस वर्ष वर्षा अधिक हो रही है और सड़क टूट जाने के कारण रेलवे मार्ग में बड़े-बड़े कष्ट हैं परन्तु मैं प्रण करता हूं कि मुझको मृत्यु के अतिरिक्त और कोई (वहां आने से) नहीं रोक सकता। जीवित रहा तो मैं अवश्य उपस्थित हूंगा। फिर मैंने बड़े झगड़े के साथ छुट्टी प्राप्त की और मुरादाबाद पहुंचा। मुंशी इन्द्रमणि जी ने, कि जिन के पास मैं कुछ दिनों फारसी पढ़ा था, मुझ को प्रेरणा की कि चलो, तुम्हें स्वामी जी के दर्शन करा दें। मैं उनके साथ स्वामी जी के पास गया। उन्होंने मेरा वृत्तान्त यूं प्रकट किया कि महाराज ! आपकी भेंट को यह व्यक्ति ऐसी वर्षा में कायमगंज से आया है। स्वामी जी महाराज ने प्रसन्न होकर पूछा कि वहां एक बलदेवप्रसाद पंडित हैं जिसको हमने वेदधर्म का उपदेश किया है, उस को तुम जानते हो ? मैंने कहा कि हां महाराज ! मैं जानता हूं, वे निरन्तर उसी दिन से दूसरों को वेदमत का उपदेश किया करते हैं।' फिर कहा कि एक और बंशीधर पंडित था, उसने हमारे सामने तो पाषाण की मूर्ति फेंक दी थी, अब वह कैसा है ? मैंने कहा कि महाराज ! उन्होंने दूसरे ब्राह्मणों और सम्बन्धियों के कहने से फिर मूर्तिपूजा आरम्भ कर दी है। दूसरे दिन मुंशी इन्द्रमणि जी ने मुझ को शिक्षा दी कि ये बहुत अच्छे विद्वान्, धर्मात्मा, परोपकारी, सर्वहितैषी संन्यासी हैं, तुम भी इनके शिष्य हो जाओ अर्थात् यज्ञोपवीत ले लो, जैसा कि और बहुत लोगों ने लिया है। मैं स्वयं भी सत्यार्थप्रकाश के पढ़ने से श्री स्वामी जी के उपदेश को सत्य और शुभ समझ चुका था और इस पर मुंशी इन्द्रमणि जी ने प्रेरणा की; इसीलिए तत्काल श्री स्वामी जी से हवन के पश्चात् उपदेश ले लिया अर्थात् उन्होंने मुझे यज्ञोपवीत देकर गायत्री मन्त्र कण्ठस्थ कराया। जब मैं शुद्ध पढ़ने लगा तब बड़े प्रेम से मेरी पीठ पर हाथ फेर कर कहा

कि "हमारा यह शरीर सदा नहीं रहेगा । तुम जब तक जीवित रहो हमारी पुस्तकों से शिक्षा लेते रहना और दूसरे लोगों को शिक्षा देते रहना ।" मैंने स्वीकार किया । फिर अपने मकान पर आया, मेरी बिरादरी और घर के लोगों ने मुझ पर झूठे दोष लगाये और गौड़ ब्राह्मणों ने ताने दिये परन्तु मैंने सब का कथन मिथ्या समझ कर कुछ ध्यान न दिया और निकट सम्बन्धियों तथा कुटुम्ब वालों से स्पष्ट कह दिया कि यदि बकवास करोगे तो मैं तुम सब को भी छोड़ दूंगा और इस विषय में मुझको अपनी माता, पत्नी और लड़की का प्रेम भी (बाधक) नहीं है । मैं धर्म से बढ़ कर किसी को नहीं समझता । दस दिन तक स्वामी जी मेरी उपस्थिति में मुरादाबाद रहे । मैं नित्य उन की सेवा में उपस्थित होता रहा ।'

'नमस्ते तथा सलाम' पर आपसी वाद-विवाद—

समाज स्थापित होने से पहले कई दिन तक परस्पर मुंशी इन्द्रमणि और श्री स्वामी जी महाराज का इस बात पर विवाद हुआ कि समाजों में 'सलाम' के स्थान पर क्या शब्द नियत किया जावे ? श्री स्वामी जी कहते थे कि 'नमस्ते' कहना चाहिए । मुंशी इन्द्रमणि कहते थे कि 'परमात्मा जयते' कहना चाहिए । मुंशी इन्द्रमणि ने कहा कि हम ने प्रथम 'जयगोपाल' और तत्पश्चात् 'परमात्मा जयते' प्रचलित किया । इस पर लोगों ने बहुत आक्षेप किये और हंसी उड़ाई । अब सब बात ठण्डी हो गई है । अब नमस्ते प्रचलित की जाएगी तो फिर लोग द्वन्द्व मचावेंगे और इसके अतिरिक्त परमेश्वर का नाम जिस शब्द में आवे, उसे कहना चाहिये । नमस्ते कहने में यह बुराई है कि जो राजा से नमस्ते किया जावे तो क्या राजा भी एक तुच्छ कोल-चमार से नमस्ते कहेगा ? स्वामी जी महाराज ने कहा कि 'मुंशी जी ! बड़ा किस को कहते हैं ? जिस मनुष्य ने यह अभिमान किया कि मैं बड़ा हूं अर्थात् राजा, विद्वान् या शूरवीर हूं तो उसमें अभिमान आ गया और उसके बड़प्पन में दोष लग गया । देखो ! जितने महाराजाधिराज़, शूरवीर और विद्वान् हुए हैं, उन्होंने अपने मुख से अपने आपको बड़ा कभी नहीं कहा । नमस्ते का अर्थ मान और सत्कार का है इस कारण राजा-प्रजा दोनों को आपस में नमस्ते कहना ठीक है । अब हम तुमसे पूछते हैं, तुम अपने अन्तःकरण से सत्य कह देना कि जब कोई व्यक्ति तुम्हारे मकान पर आता है या तुमको मिलता है तो उसे देखकर तुम्हारे मन में क्या भाव आता है ? मुंशी जी मौन रहे । तब स्वामी जी कहने लगे कि कौन नहीं जानता कि सम्मानित को देखकर उसके सत्कार और छोटे को देखकर उसके आतिथ्य का तुरन्त ध्यान आता है । फिर बतलाइये ऐसे अवसर पर परमेश्वर के नाम का क्या सम्बन्ध है ? मनुष्य को चाहिये कि जो मन में हो वही मुख से कहे और यह आपका दोष है कि आपने प्रथम 'जय गोपाल' और फिर 'परमात्मा जयते' प्रचलित किया । विचार करके ऐसा शब्द जो पहले इस देशवासियों में प्रचलित था, चालू क्यों न किया ? इससे सब आर्यसमाजों में नमस्ते का उच्चारण करना ठीक है, जैसा कि सब दिन से महर्षि लोगों में प्रचार था और नमस्ते शब्द वेदों में भी आया है । हम यजुर्वेद के बहुत से प्रमाण देसकते हैं ।[४४] आप 'परमात्मा जयते' का किसी प्राचीन ग्रन्थ से प्रमाण नहीं दे सकते । फिर उसी दिन दोपहर पश्चात् बहुत से प्रमाण आर्ष ग्रन्थों और वेदों में से निकाल कर दिखाये परन्तु मुन्शी जी ने अपने दुराग्रह और हठधर्मी से न माना ।

"एक दिन दो-तीन पंडित श्री स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने आये । उन दिनों स्वामी जी का शरीर अतिसार के रोग से दुर्बल हो गया था परन्तु फिर भी पंडित लोग उनके सामने कांपने लगे और उनके मुख से बात का निकलना कठिन हो गया । स्वामी जी ने कहा कि भाई, घबराओ मत, सावधान होकर मुझसे कहो, क्या पूछते हो ? पंडितों ने कहा कि महाराज ! आपके सम्मुख बातचीत करने का हमारा क्या सामर्थ्य है । इसके अतिरिक्त हम अकेले हैं, आपके सब शिष्य बैठे हैं; हमारी कौन मानेगा ? स्वामी जी महाराज ने कहा कि तुम को अधर्म की बात कहते हुए लज्जा नहीं आती ? देखो, तुम्हारे सामने जगन्नाथ हमारा शिष्य हमारी बात को कहने मात्र से नहीं मानता और हम से कह रहा है कि महाराज ! जब तक आप मुझ को प्रमाण-सहित न बतलावेंगे, मैं कभी न मानूंगा और कहा कि ये लोग हमारी हां मे हां मिलाने वाले नहीं हैं । पण्डित लोग

सब का समय नष्ट करके चले गये । शास्त्रार्थ करने का साहस न हुआ । फिर स्वामी जी ने सब लोगों से कहा कि भाई ! तुम सब का वेदमत है । यदि ऐसा कहोगे कि हम दयानन्द स्वामी के मत में हैं तो कोई तुम से प्रश्न करेगा कि दयानन्द स्वामी और उनके गुरु का क्या मत है तो तुम उत्तर नहीं दे सकोगे ।

फिर २० जुलाई, सन् १८७९ को राजा साहब के मकान पर हवन कराने और समाज बनाने की सम्मति हुई । बहुत-सी सामग्री मंगाई गई और मोहन भोग भी तैयार किया गया । बाग की पटरी पर वेदी बनाई गई । संयोग से उस समय वर्षा अधिक होने लगी । लगभग पांच सौ मनुष्यों की भीड़ थी । धनवान निर्धन सब प्रकार के लोग एकत्रित थे । स्वामी जी ने कहा कि ईश्वर की इच्छा ऐसी ही थी कि वर्षा कम नहीं हुई और विलम्ब बहुत हो गया है । इन में बहुत से धनवान लोग ऐसे भी हैं जो अपने घर पर अब तक भोजन कर चुके होते; इसलिए उचित है कि थोड़ा-थोड़ा मोहन भोग सब लोगों को दे दो और कुछ बाजार से पूरी-कचौरी मंगाकर सब को खिला दो और बन्द मकान में थोड़ी सामग्री का हवन कर दो; अतः ऐसा ही किया गया । अभी हवन और सभा समाप्त नहीं हुई थी कि बाजारी लोगों ने यह गप्प उड़ाई कि स्वामी जी का झूठा हलुवा सब लोगों ने खाया है । इतना ही नहीं, अपितु मेरे सामने उसी स्थान पर उसी समय धनवान लोगों के साथी और अन्य मनुष्य वृत्तान्त पूछने के लिए उक्त बाग में पहुंचे और कहने लगे कि सारे नगर में यह प्रसिद्ध हो रहा है । सब लोग और स्वामी जी सुनकर हंसे और कहने लगे कि मूर्खों में ऐसी बातें होती ही रहती हैं । उस दिन समाज स्थापित किया गया और निम्नलिखित सज्जन अधिकारी नियत हुए-मुंशी इन्द्रमणि, प्रधान; कुंवर परमानन्द और ठाकुर शंकरसिंह, मंत्री; साहू श्यामसुन्दर जी, कोषाध्यक्ष; ला० जगन्नाथदास, पुस्तकाध्यक्ष ।[४५] शेष ३८ सदस्यों के नाम रजिस्टर में लिखे गये ।

साहू श्यामसुन्दर जी कहते हैं इस बार जब उन को ज्ञात हुआ कि मैंने सब दुराचार छोड़ दिये हैं तब कहा कि आज से हम तुम्हारे यहां भोजन करेंगे और अग्निहोत्र और बलिवैश्वदेव की आज्ञा दी और मेरी माता को भी उपदेश दिया कि जिस दिन तेरा लड़का बलिवैश्वदेव न करे उसे भोजन कदापि न देना और उस दिन से हमारे यहां भोजन किया ।

लोगों ने जो धूर्तता से यह बात प्रसिद्ध की थी कि स्वामी जी ने हलुवे में थूक दिया है और वह सबने खाया, इस पर पंचायतें की गईं और जात-बिरादरी से अलग किये जाने की धमकियां दी गईं । शेष सदस्य तो दृढ़ और स्थिर रहे परन्तु कुछ मनुष्य इन गीदड़-धमकियों से डर कर 'समाज' से अलग हो गये । स्वामी जी ३० जुलाई, सन् १८७९ को रेल द्वारा बदायूं की ओर चले गये ।

बदायूं का वृत्तान्त
(३१ जुलाई[४६], सन् १८७९ से १४ अगस्त, सन् १८७९ तक)

बदायूं में आर्यसमाज की स्थापना देश-जाति के कुछ शुभचिन्तकों के साहस द्वारा मई, सन् १८७९ में स्थापित हुई थी और स्वामी जी के मुरादाबाद आने पर यहां के कुछ उत्साही सदस्यों ने साहस करके पंडित बिहारीलाल, सभासद् को मुरादाबाद भेजा और आर्यसमाज बदायूं की प्रार्थना पर स्वामी जी मुरादाबाद से ३१ जुलाई तदनुसार सावन शुदि, संवत् १९३६ बृहस्पतिवार को चलकर उसी दिन रात को ३ बजे के समय यहां पधारे । उनके साथ तीन मनुष्य और थे । उनके अतिरिक्त पंडित बिहारीलाल सभासद् आर्यसमाज बदायूं, मुंशी बलदेवप्रसाद सभासद् आर्यसमाज मुरादाबाद भी उनके साथ थे । स्वागत के पश्चात् स्वामी जी को साहू गंगाराम के बाग में ठहराया गया ।

१ अगस्त, सन् १८७९—प्रात:कल के समय आर्यसमाज के बहुत से सदस्य सेवा में उपस्थित हुए। स्वामी जी का स्वास्थ्य ठीक न था और औषधियों का सेवन करते थे। भागवत पुराण की चर्चा चली। कहा कि भागवत में श्रीकृष्ण की (जो एक बड़े विद्वान् महात्मा मनुष्य थे) निन्दा की गई है।[४७] यद्यपि महाभारत के देखने से विदित होता है कि वे बड़े बुद्धिमान् और सदाचारी थे और जो-जो अश्लील बातें उनके बारे में भागवत में लिखी हैं वे महाभारत में बिलकुल नहीं हैं। सभासदों का समस्त वृत्तान्त अत्यन्त कृपापूर्वक पूछते रहे।

शनिवार, दो अगस्त—प्रात:काल से ही स्वामी जी के व्याख्यान के विज्ञापन स्थान-स्थान पर नगर में चिपका दिये गये और शाम को स्वर्गीय ला० गंगाप्रसाद जी के दीवानखाने में ईश्वर विषय पर व्याख्यान हुआ।

रविवार, ३ अगस्त को कोठी चुंगी पर धर्म विषय पर व्याख्यान हुआ। श्रोताओं की संख्या दो हजार से कम न थी। इसके पश्चात् स्वामी जी के निवास-स्थान पर व्याख्यान होते रहे।

मौलवी हामिद बख्श साहब, रईस बदायूं, कुछ अन्य मुसलमानों के साथ एक दिन स्वामी जी के पास बाग में गये और शास्त्रार्थ की चर्चा छेड़ी। स्वामी जी ने कहा कि आप सब लोग एक व्यक्ति को चुन लें और शास्त्रार्थ की शर्तें निश्चित हो जावें। मौलवी साहब ने कहा कि मौलवी मुहम्मद कासिम को तार द्वारा सूचना दे दी है। विश्वास है कि वे चार-पांच दिन में आ जायेंगे। स्वामी जी ने कहा कि बहुत अच्छा, मेरी उनकी मुलाकात चांदापुर में हो चुकी है। परन्तु फिर न कभी मौलवी मुहम्मद कासिम साहब आये और न कभी शास्त्रार्थ की चर्चा चली।

एक दिन शाहजहांपुर के मिश्नरी हाकिन्सन साहब भी स्वामी जी के पास गये। कुछ समय तक नम्रतापूर्वक बातें करके चले गये परन्तु कोई शास्त्रार्थ की चर्चा बीच में न लाये।

४ अगस्त, सोमवार को शास्त्रार्थ के लिए नगर के पंडितों की चिट्ठी स्वामी जी के पास पहुंची उस में लेखक ने बिना पूछे पंडित प्राणनाथ का भी नाम लिख दिया था। दूसरे दिन पण्डित जी ने स्वामी जी से जाकर कह दिया कि उस चिट्ठी पर मेरे हस्ताक्षर नहीं थे। मेरा नाम व्यर्थ लिख दिया।

शास्त्रार्थ का वृत्तान्त—पंडित रामप्रसाद, पंडित वृन्दावन, पंडित टीकाराम, रामप्रसाद, दारोगा सभा आदि सज्जन स्वामी जी के निवास स्थान पर शास्त्रार्थ की इच्छा से पहुंचे। प्रथम पंडित रामप्रसाद जी ने बातचीत आरम्भ की।

पंडित रामप्रसाद—ईश्वर साकार है और उस में पुरुष सूक्त की यह ऋचा प्रमाण है—**'सहस्त्र शीर्षा पुरुषः' इत्यादि (यजु० अ० ३१, मंत्र १)** यदि ईश्वर साकार नहीं तो उसको 'सहस्त्रशीर्षा' आदि क्यों लिखा?

स्वामी जी—'सहस्त्र' कहते हैं सम्पूर्ण जगत् को और असंख्य को। जिस में असंख्यात सिर, आंख और पैर ठहरे हुए हैं उस परमेश्वर को 'सहस्त्रशीर्षा' आदि कहते हैं। यह नहीं कि उस की हजार आंखें हों।

पंडित जी ने 'अमरकोश' का प्रमाण दिया। **स्वामी जी** ने कहा कि 'वेदों में 'अमरकोष' प्रमाण नहीं है, अपितु निरुक्त और निघण्टु आदि प्रमाण हैं।

पंडित जी ने कहा कि हम तो वह पढ़े ही नहीं और लक्ष्मी विष्णु की स्त्री है और साकार है। इस में **लक्ष्मी सूक्त** का प्रमाण है—**"अश्वपूर्णा रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम्। श्रियन्देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवीर्कुजुषताम्"**। इसमें जो विशेषण हैं उनसे उसका साकार होना सिद्ध होता है।

स्वामी जी—प्रथम तो यह वाक्य संहिता का नहीं । और फिर जो तुम उसको विष्णु की स्त्री समझ कर बुलाते हो तो विष्णु तुम को अपनी स्त्री कभी नहीं देगा । तुम उसके मांगने से पाप के भागी होगे और वह भी व्यभिचारिणी ठहरेगी । **'लक्ष्मी के अर्थ राज्यलक्ष्मी, राज्य की सामग्री और शोभा के हैं** और इसी कारण से इस श्लोक में हाथी, रथ और घोड़े लिखे हैं ।'

पंडित रामप्रसाद—आप जो कहते हैं कि वेदों के पढ़ने का अधिकार सब को है, यह अनुचित है । वेद पढ़ने का अधिकार केवल द्विजों को ही है और उन में भी मुख्य ब्राह्मणों को है ।

स्वामी जी—"यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ।"[४८] इत्यादि इस वेदमन्त्र से स्पष्ट सिद्ध है कि **वेदों को पढ़ने का अधिकार सब को है ।**

पंडित जी—जो रामचन्द्र और कृष्ण आदि हुए हैं, वे साक्षात् परमेश्वर के अवतार हैं ।

स्वामी जी—ऐसा न समझना चाहिये, यह समझना वेद के विरुद्ध है । परमेश्वर कभी अवतार नहीं लेता ।

पंडित जी—नीचे लिखे यजुर्वेद के मन्त्र से विष्णु का वामनावतार सिद्ध होता है—**"इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्"** ।[४९]

स्वामी जी—इससे वामनावतार **सिद्ध नहीं होता** । इस का अर्थ यह है कि परमेश्वर अपने सामर्थ्य से सब जगत् को तीन स्थानों में स्थापन करके धारण करता है; न यह कि परमेश्वर ने तीन प्रकार से चरण रखा, जैसा कि तुम कहते हो ।

पंडित वृन्दावन जी बोले—तो इससे कैसे विदित हुआ कि विष्णु साकार नहीं है ।

स्वामी जी—विष्णु के अर्थ तो करो, यह किस धातु से बना है ?

पंडित वृन्दावन जी—'विष्लृ व्याप्तौ' से विष्णु बनता है अर्थात् जो सर्वव्यापक हो, उसे विष्णु कहते हैं ।

स्वामी जी—फिर जो व्यापक है वह साकार कैसे हो सकता है ?

पंडित रामप्रसाद—**"मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः"** इत्यादि यजुर्वेद के इस मंत्र[५०] मे जो 'कुचर' शब्द आया है उससे (मच्छ) आदि अवतार सिद्ध होते हैं क्योंकि 'कुचर' का अर्थ है पृथिवी पर चलने वाला ।

स्वामी जी—कुचर से मत्स्य आदि अवतार सिद्ध नहीं होते । 'कु' के अर्थ वेद में कभी पृथिवी के नहीं लिये जाते ।

पंडित रामप्रसाद—महीधर की टीका में तो ऐसा ही लिखा है ।

स्वामी जी—महीधर की टीका प्रायः अशुद्ध है । निघण्टु आदि के बिना वेद का अर्थ शुद्ध नहीं हो सकता ।

पंडित रामप्रसाद—फिर आपने अपने पास महीधर की टीका क्यों रखी हुई है ?

स्वामी जी—खंडन के लिए । और देखो, **"गणानां त्वा गणपतिं हवामहे"**[५१] इत्यादि आठ-दस मन्त्रों पर महीधर का अशुद्ध अर्थ है । क्या ऐसे प्रमाण योग्य हैं कि यजमान की स्त्री घोड़े के पास सोवे आदि आदि ? वेदों पर जो ऋषियों की टीकाएं हैं वही प्रमाण के योग्य हैं और अवतारों का न होना-यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के मन्त्र **"सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्"**[५२] इत्यादि से सिद्ध है । उस का अर्थ है कि सर्वव्यापक परमात्मा, कल्याणस्वरूप, काया अर्थात् शरीर से रहित, नाड़ी नस आदि बन्धन से मुक्त और शुद्धस्वरूप, पापों से न्यारा है । जिसने आदि जगत् में अपनी अनादि प्रजा जीवों के लिए वेद-विद्या का प्रकाश किया ।

यह शास्त्रार्थ दो दिन में समाप्त हुआ । १४ अगस्त, सन् १८७९ दोपहर के समय तक स्वामी जी बदायूं में निवास कर वहां से **बरेली** की ओर चले गये । यह उस पत्र से विदित होता है जो उन्होंने मैनेजर प्रेस के नाम लिखा था । उस पत्र में स्वामी जी लिखते हैं—"हम मुरादाबाद से चल कर बदायूं ठहरे हैं । यहां से भाद्रपद, कृष्णा १२, गुरुवार, १४ अगस्त, सन् १८७९ को बरेली पहुंचेंगे । अब तक हमारा शरीर ठीक-ठाक काम के योग्य नहीं हुआ है ।"

रामजीलाल, पुत्र बालकृष्ण अहीर यदुवंशी मुरादाबाद निवासी ने वर्णन किया कि बदायूं में सलूनो के अवसर पर (२ अगस्त, सन् १८७९) रक्षा बांध कर बहुत बूढ़े-बूढ़े लोग आये जिनमें कई पंडित और वैद्य भी थे । स्वामी जी उन को देखकर हंसे और कहा कि तुम वृद्ध लोगों ने रक्षाबन्धन क्यों बांधा है ? तुम अपने देश की रीति को भी भूल गये कि आज के दिन इस आर्यावर्त में क्या होता था । इन लोगों ने पूछा कि महाराज आप कहो कि क्या होता था ? स्वामी जी ने कहा "आज के दिन राजा की ओर से बड़ा यज्ञ होता था और जितने विद्यार्थी लोग शालाओं में पढ़ा करते थे, उन सब के हाथ में रक्षाबन्धन राजा की ओर से बांधा जाता था जिससे सब प्रजा और राज्यसम्बन्धी लोग विद्यार्थियों की रक्षा करें और उन को कोई दु:ख न दे सके । अब पेट भरने के लिए तुम सभी बड़े-छोटों ने, रक्षाबन्धन बांध लिया । पंडित लोग निरुत्तर होकर बैठ गये और इसको स्वीकार कर और बातें पूछने लगे ।

एक बीस वर्षीय मनुष्य जो उन के साथ आया था, उस के विषय में उस वैद्य ने पूछा कि महाराज जी ! इस को भूतबाधा है; बहुत चिकित्सा की, ठीक नहीं होता । कहा कि तुम पंडित और वैद्य होकर ऐसे अज्ञानी हो रहे हो और ऐसी असत्य बात को मानते हो । शोक है ! तुम्हारी बुद्धि और विद्या पर । अरे भाइयो ! भूत, भविष्यत्, वर्तमान-ये तीनों नाम काल के हैं, भूतयोनि कोई नहीं है और जो लोगों को पीड़ा होती है उसके विषय में वैद्यक ग्रन्थों में बहुत से ऐसे रोग हैं जिन के होने से मनुष्य उलटी चेष्टा करने लगते हैं और अंड-बंड बकने लगते हैं । क्यों जी हकीम जी ! तुम क्या नहीं जानते ? हकीम जी ने कहा कि हां महाराज ! सत्य है । फिर स्वामी जी ने कहा कि इसने कोई मादक पदार्थ खाया है ? लोग छुपाने लगे । एक मनुष्य ने धीरे से कहा कि इसने भंग बहुत पी है, मैं इसके पास बैठा हुआ था । मैंने सुन कर स्वामी जी से निवेदन कर दिया । उस समय स्वामी जी धुतकारने लगे । तब सब मान गये । फिर स्वामी जी ने उसको एक औषधि बतलाई । जिसका मुझे स्मरण नहीं रहा । फिर मुझ को दो औषधियां-एक दांतों का मंजन और एक दाद की दवाई बतलाई और सब विधि लिखवा दी । मैंने कुछ भूल की । क्रुद्ध होकर कहा कि तुम यह नहीं समझते कि विधि ही बड़ी बात है । यों तो परमेश्वर ने संसार की समस्त वस्तुएं और औषधियां मनुष्यों के उपयोग के लिए दे रखी हैं । जो विधि नहीं जानते वह उनसे हो सकने योग्य लाभों से वंचित रहते हैं । उनको इनसे कुछ सुख नहीं मिल सकता इसलिए विधि ठीक-ठीक लिखनी चाहिये ।

बरेली का वृत्तान्त (१४ अगस्त से ३ सितम्बर[५३] सन् १८७९ तक)

१४ अगस्त, सन् १८७९ तदनुसार भादों बदि १२, संवत् १९३६, बृहस्पतिवार को स्वामी जी बरेली पधार कर ला० लक्ष्मीनारायण जी कोषाध्यक्ष की कोठी, बेगम बाग में उतरे ।

पहले कई दिन तक व्याख्यान होते रहे, जिनमें साहब कलैक्टर बहादुर, अन्य प्रतिष्ठित अंग्रेज और पादरी लोग तथा नगर के रईस सुनने को आते रहे और बड़ा आनन्द रहा । तत्पश्चात् प्रस्ताव हुआ कि पादरी टी० जे० स्काट साहब से स्वामी जी का शास्त्रार्थ हो । दोनों ने प्रसन्नचित्त से स्वीकार किया और २५ अगस्त, सोमवार शास्त्रार्थ की तिथि नियत की गई ।

स्वामी जी ने यहां से ही कर्नल आल्काट साहब के बार-बार अनुरोध करने पर अपना जीवन-चरित्र[५४] संक्षेप में लिखकर भेजा, जैसा कि वे एक चिट्ठी में मैनेजर वेदभाष्य को लिखते हैं—'कर्नल साहब ने हमको लिखा था कि आप

अपना जन्मचरित्र कुछ लिख दीजिए। प्रथम तो हमारा शरीर अच्छा नहीं रहा, इस कारण से नहीं भेज सके। अब दो-चार दिन से कुछ अच्छा है तो आज तुम्हारे इस पत्र के साथ कुछ थोड़ा-सा जन्मचरित्र लिखकर भेजते हैं सो तुम जिस समय पहुंचे उस समय उनके पास पहुंचाना क्योंकि उनके समाचारपत्र में छापने का समय आ गया है। आल्काट साहब को यह बात भी हमारी ओर से सुना देना कि हमारा यह अभिप्राय नहीं कि इस समाचार का नाम केवल 'आर्यप्रकाश' वा 'थियोसोफिस्ट' हो किन्तु दोनों को मिलाकर रखा जावे और यह भी कह देना कि आपने जो चिट्ठी के साथ दो पत्र विलायत के भेजे, पहुंच गये। हमारा शरीर दस्तों की बीमारी से बहुत दुर्बल हो गया था। अब आनन्द है। २७ अगस्त, सन् १८७९।'

—दयानन्द सरस्वती, बरेली

श्री स्वामी दयानन्द तथा पादरी स्काट के मध्य हुआ शास्त्रार्थ

स्वामी जी और पादरी टी० जे० स्काट साहब के मध्य जो शास्त्रार्थ हुआ था, उसका मूलरूप हम पाठकों के मनोरंजनार्थ यहां दे रहे हैं—

ओ३म् तत्सत् भूमिका—विदित हो कि यह लिखित शास्त्रार्थ बड़े आनन्द के साथ जैसा कि साधारणतया दो सभ्य, शिक्षित और योग्य व्यक्तियों में हुआ करता है और जैसा कि वास्तव में होना भी चाहिए, स्वामी दयानन्द सरस्वती जी और पादरी टी० जे० स्काट के मध्य बरेली पुस्तकालय में तीन दिन अर्थात् २५, २६, २७ अगस्त, सन् १८७९ को हुआ और ला० लक्ष्मीनारायण साहब खजांची व रईस बरेली इसके सभापति रहे।

शास्त्रार्थ तीनों दिन इन सिद्धान्तों पर रहा—पहले दिन का **विषय आवागमन अर्थात् पुनर्जन्म** का सिद्धान्त। इसकी सिद्धि स्वामी जी ने और खंडन पादरी साहब ने किया। **दूसरे दिन**-विषय **ईश्वर देह धारण करता है**। इसकी सिद्धि पादरी साहब ने और खण्डन स्वामी जी ने किया। **तीसरे दिन**—विषय **ईश्वर अपराध क्षमा भी करता है**। जिसकी सिद्धि पादरी साहब ने और खंडन स्वामी जी ने किया।

नियम—अन्य नियमों के अतिरिक्त अत्यन्त आवश्यक नियम यह था कि शास्त्रार्थ लिखित होगा। तीन लेखक एक स्वामी जी की ओर, दूसरा पादरी साहब की ओर, तीसरा सभापति की ओर बैठकर सारा शास्त्रार्थ शब्दश: लिखते जावें। जिस समय एक व्यक्ति एक नियत समय के मध्य अपनी बात कह चुके तो उसकी लिखाई हुई बातें सभा में उपस्थित लोगों को सुना दी जावें, तीनों प्रतियों पर उसके निजी हस्ताक्षर कराये जावें और शास्त्रार्थ समाप्त होने के पश्चात् अन्त में सभापति के हस्ताक्षर हों। इन तीनों प्रतियों में से एक स्वामी जी के पास, दूसरी पादरी साहब के पास और तीसरी सभापति के पास प्रमाणरूप में रहे ताकि कोई पीछे कभी घटा-बढ़ा न सके।

निवेदन—हम इस शास्त्रार्थ को अक्षरश: मूल से कि जिस पर स्वामी जी और पादरी साहब के हस्ताक्षर हैं, मिलाकर और स्वामी जी की आज्ञानुसार ठीक करके इस मुद्रणालय में प्रकाशित करते हैं। एक शब्द का भी हेर-फेर नहीं किया है। यहां तक इसके ठीक छपने का ध्यान रखा है कि जहां जिस सज्जन के हस्ताक्षर थे वहां हस्ताक्षर का शब्द लिखकर उन्हीं का नाम लिख दिया है। पाठकगण दोनों सज्जनों की बातचीत को सत्य की दृष्टि से देखें और पक्षपात को पास तक न आने दें ताकि सत्यासत्य भली भांति प्रकट हो जावे।

कुछ सज्जनों ने कहा कि इन शास्त्रार्थों का अन्त में परिणाम भी निकाल देना चाहिए, परन्तु हमने अपनी सम्मति देना उचित नहीं समझा। परिणाम का निर्णय पाठकों की उत्तम बुद्धि पर ही छोड़ा जाता है।

विषय : पुनर्जन्म सम्बन्धी शास्त्रार्थ का वृत्तान्त[५५]

(ता० २५ अगस्त, सन् १८७९ ई०)

स्वामी दयानन्द सरस्वती—जीव और जीव के स्वाभाविक गुण, कर्म और स्वभाव अनादि हैं और परमेश्वर के न्याय करना आदि गुण भी अनादि हैं। जो कोई ऐसा मानता है कि जीव की और उसके गुण आदि की उत्पत्ति होती है, उसको उनका नाश मानना भी अवश्य होगा, तिसके कारण आदि का भी निश्चय करना और कराना होगा क्योंकि कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति सर्वथा असम्भव है। जो-जो जीव के पाप और पुण्य आदि कर्म प्रवाह से अनादि चले आते हैं, उनका ठीक-ठीक फल पहुंचाना ईश्वर का काम है और जीवों का, बिना स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर के सुख-दुःख का भोग करना असम्भव है। जब यह बात हुई तब बारम्बार शरीर का धारण भी जीव को अवश्य है क्योंकि क्रियमाण कर्म नये-नये करता जाता है, उनका संचित और प्रारब्ध भी नया-नया होता चला जाता है। जब इस सृष्टि में विद्या की आंख से मनुष्य देखे तो सृष्टिक्रम और प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से ठीक-ठीक सिद्ध होता है कि देखो जो आज सोमवार है, वही फिर भी आता है। महीना, रात, दिन आदि भी पुनःपुनः आते हैं और गेहूं का बीज बोने से फिर वही गेहूं आता है।

—हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती

पादरी टी० जे० स्काट साहब—इस आवागमन के बारे में केवल सत्य के लिए खोज करनी चाहिये। हार-जीत की बात नहीं है। यह शिक्षा पुरानी तो है परन्तु संसार से मिटती जाती है। इसका[1] अभिप्राय यह है कि जितने आत्मा हैं, वे सदा जन्म लेते रहते हैं। कभी मनुष्य के शरीर में, कभी बैल के शरीर में, कभी बन्दर के, कभी कीड़े मकोड़ों के शरीर में उत्पन्न होते हैं। परन्तु यह ऐसी शिक्षा है कि शिक्षित जातियां इसको छोड़ती जाती हैं। प्राचीन मिस्त्रियों ने पहले इसको माना हुआ था फिर छोड़ दिया। इसी प्रकार यूनानियों, रुमियों[५६] और अंग्रेजों ने भी छोड़ दिया। हमारे पुराने द्रविड़ लोग भी जो हमारे गुरु थे, यही सिखलाते थे और हम लोग सब के सब मानते थे परन्तु रोशनी के फैलने, शिक्षा प्राप्त करने से इस पुरानी और निराधार शिक्षा को छोड़ दिया। सो हमारा प्रश्न पंडित जी से यह है कि इस सिद्धान्त के लिए कौन-सी युक्ति है? जब कोई विशेष प्रमाण दिया जावेगा तो हम उसका खण्डन करने के लिए आक्षेप करेंगे। इस समय मेरे दो-चार प्रश्न यहां पर ये हैं—ईश्वर की आत्मा के अतिरिक्त और आत्माएं भी अनादि काल से हैं या नहीं? यह भी प्रश्न है कि परमेश्वर सब समय सगुण है या कभी निर्गुण भी होता है? यह जन्म लेना उसी के निजी प्रभुत्व या अधिकार से प्रतिक्षण होता रहता है या किसी प्राकृतिक नियम से होता है जैसे कि बीज का उगना, फल का पकना, पानी का बरसना आदि?

—हस्ताक्षर टी० जे० स्काट साहब

स्वामी दयानन्द सरस्वती-तीन पदार्थ अनादि हैं—एक ईश्वर, एक कारण[५७] औरसब जीव (जो) पुनर्जन्म से कभी निवृत्त न होंगे। पुनर्जन्म दण्ड और पुरस्कार दोनों के लिए है। परमेश्वर सगुण और निर्गुण सदा रहता है। प्राकृतिक नियम उसका यही है कि जैसा जिसने पाप या पुण्य किया उसको वैसा ही अपने सत्य न्याय से फल देता है। अब पादरी साहब ने जो कहा था कि पुरानी शिक्षा भी पुनर्जन्म की (ही) हमारे बीच में थी; इससे सिद्ध हुआ कि सब देशों में पुनर्जन्म की शिक्षा थी। यह जो कहा कि पुरानी बातें बिलकुल झूठ (ही होती है) या कुछ सच्ची भी होती हैं? नई शिक्षा सब (की सब) सच्ची (ही) हैं या इसमें कुछ झूठ भी हैं? जो पादरी साहब कहें कि पुरानी शिक्षा मानने के योग्य नहीं तो तौरेत, जबूर, इंजील की

1. आवागमन का।

शिक्षा आज की अपेक्षा से पुरानी है, यह भी न माननी चाहिए । यह कोई बात प्रमाण की[1] नहीं है कि पहले मानते थे अब नहीं मानते इसलिए सच्ची या झूठी है । या पहले नहीं मानते थे और अब मानते हैं; इसलिए झूठी या सच्ची है ।

अब, पादरी साहब ने कहा कि कुछ प्रमाण दें तो हम उस पर कुछ आक्षेप करें । प्रमाण के लिए मैंने प्रथम लिखा दिया कि इस जीव के कर्म आदि अनादि हैं, और ईश्वर के न्याय करना आदि गुण भी अनादि हैं । जो कर्म की बात न मानी जावे तो सृष्टि में बुद्धिमान्, निर्बुद्धि, दरिद्र, राजा और कंगाल को अवस्था ईश्वर किस प्रकार कर सके ? इसमें पक्षपात आता है और पक्षपात से उसका न्याय ही नष्ट हो जाता है । जब (ये अवस्थाएं) कर्म के फल हैं तो परमेश्वर बराबर न्यायकारी बनता है, अन्यथा नहीं । और ईश्वर अन्याय कभी नहीं करता ।

—हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती

पादरी स्काट साहब—पंडित जी के कहने से सब जीव अनादि हैं तो इस हिसाब से हमारे और ईश्वर के अनादित्व में कुछ भेद नहीं अर्थात् दो वस्तुएं अनादिकाल से हैं । एक प्रकार से दो परमेश्वर हुए । मेरा यह आक्षेप है कि यह तौरेत, जबूर और इंजील के बिलकुल विरुद्ध है और मैं पूछता हूं कि किस शिक्षा में अधिक सन्तोष है अर्थात् हमारे आत्मा सदैव हैरानी में फिरते रहेंगे, कभी बैल के शरीर में, कभी बन्दर के शरीर में, कभी घृणित कीड़े के शरीर में और कभी किसी अच्छी देह में । इस अनादि चक्र में अधिक सन्तोष है या तौरेत, जबूर और इंजील की शिक्षा में कि अन्ततः जो लोग नेकी का प्रयत्न करते हैं और नेक बनते हैं, वे एक ऐसे विश्रामगृह में पहुंचेंगे कि फिर जन्म लेना न होगा, न किसी प्रकार का कष्ट होगा । विचार कीजिये कि किस पुस्तक की शिक्षा में अधिक सन्तोष है ?

इसके अतिरिक्त परमेश्वर निर्गुण और सगुण दोनों प्रकार का कैसे हो सकता है ? अर्थात् वह गुण वाला भी है और गुण रहित भी है । वह क्या वस्तु है कि जिसमें कोई गुण नहीं है । कहिये—यदि उसमें न्याय का गुण न हो तो न्याय क्योंकर करे और पुनर्जन्म के द्वारा लोगों को दण्ड क्योंकर देवे ? ऐसे-ऐसे निर्मूल विचारों के कारण शिक्षित जातियां इस सिद्धान्त को छोड़ती जाती हैं ।

इसके अतिरिक्त यदि यह पुनर्जन्म दण्ड के लिए है तो इसमें दण्ड क्या हुआ ? उदाहरणार्थ, जब बन्दर जानता ही नहीं कि मैंने क्या अपराध किया या कोई पादरी साहब या पंडित साहब किसी घृणित कीड़े के शरीर में उत्पन्न हुए तो उनका यह दण्ड कैसा हुआ जब यह वे जानते ही नहीं कि हमने क्या-क्या अपराध किए । क्या कभी किसी को स्मरण आया है या आता है कि मैं अमुक काल में बन्दर था या मैं किसी समय में गीदड़ था । जब समस्त संसार मे किसी को स्मरण नहीं है तो ऐसे पुनर्जन्म में किसी को क्या दण्ड है ? हम मानते हैं कि कष्ट कभी-कभी दण्ड के लिए होता है और कभी नहीं भी ।

—हस्ताक्षर टी० जे० स्काट साहब

स्वामी दयानन्द सरस्वती—दोनों अनादि होने से बराबर नहीं होते जब तक कि उनके सब गुण बराबर न हों । परमेश्वर अनन्त, जीव सान्त, परमेश्वर सर्वज्ञ, जीव अल्पज्ञ, परमेश्वर सदा पवित्र और मुक्त तथा जीव कभी पवित्र कभी बद्ध और कभी मुक्त । इसलिए दोनों बराबर नहीं हो सकते ।

तौरेत, इंजील, जबूर के विरुद्ध होने से सच्ची बात झूठ नहीं हो सकती क्योंकि तौरेत आदि में भी भ्रम से सच को झूठ और झूठ को सच बहुत स्थानों पर लिखा है । सच्ची तो उस पुस्तक की बात हो सकती है जिसमें आरम्भ से अन्त तक

1. प्रमाण सिद्ध ।

एक भी झूठ न हो । ऐसी पुस्तक वेदों के अतिरिक्त भूगोल में ईश्वरकृत और कोई नहीं हैं; क्योंकि ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव से अनुकूल पुस्तक वेद ही है, दूसरी नहीं । वेद के उपदेश के अतिरिक्त किसी पुस्तक में ठीक-ठीक सब बातों का निश्चय नहीं दिखाई देता है । इसलिए सबसे उत्तम वेद की शिक्षा है, दूसरे की नहीं ।

परमेश्वर अपने गुणों से सगुण है अर्थात् सर्वज्ञता आदि गुणों से । और निर्गुण (भी है अर्थात्) कारण के जड़त्वादि गुण, और जीव के अज्ञान, जन्म, मरण, भ्रमादि, गुणों से रहित होने से परमात्मा निर्गुण है । इसलिए यह निश्चय जानना चाहिए कि कोई पदार्थ भी इस रीति से सगुणता और निर्गुणता से रहित नहीं ।

जब जीव का पाप अधिक और पुण्य न्यून होता है तब उसे बन्दर आदि का शरीर करना पड़ता है, जब पाप पुण्य बराबर होते हैं तब मनुष्य का और जब पुण्य अधिक और पाप न्यून होता है तब विद्वान् आदि का ।

—हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती

पादरी स्काट साहब—सब पुरानी शिक्षा झूठी नहीं और न सब नई शिक्षा सच्ची है, परन्तु जब शिक्षित जातियां सोचते-सोचते (खूब सोच विचार पूर्वक) किसी बात को मिथ्या ठहरा देती हैं तो यही उसके मिथ्या होने की एक प्रबल युक्ति (हो जाती) है ।

एक ही बार के जन्म लेने के विषय में सोच लीजिये कि यह कोई नई बात नहीं है । यह भी बहुत पुरानी है । क्योंकि तौरेत किसी प्रकार नई नहीं है; तौरेत किसी भी प्रकार वेद से नई नहीं है । इसमें पुनर्जन्म (का उल्लेख) बिलकुल नहीं है । तौरेत और इंजील के मिथ्या होने का विषय अब विवादास्पद नहीं है । इस व्यर्थवाद का खण्डन करना कि ये मिथ्या हैं, आज का विषय नहीं है । वेद के विषय में भी कुछ नहीं कहना है क्योंकि यह भी आज वाद का विषय नहीं है । परन्तु इस बात पर ध्यान दीजिये कि शिक्षित जातियां तो तौरेत और इंजील[५८] पर स्थिर हैं परन्तु हिन्दू लोग ज्यों-ज्यों शिक्षित होते और जितने अधिक शिक्षित होते जाते हैं, त्यों-त्यों वेद को छोड़ते जाते हैं । यदि आवश्यकता हो तो सैकड़ों युक्तियां दे सकता हूं ।

यह कहना कि कर्म अनादि है इसलिए पुनर्जन्म होता है तब तो परमेश्वर को भी जन्म लेना चाहिए । यदि कोई कहे कि उसके कर्म सब अच्छे हैं तो क्या कठिन है कि उसकी कृपा से हम भी ऐसे पक्के हो जावें कि फिर बन्दर या गीदड़ बनना न पड़े । जैसे कि हमारी पवित्र पुस्तक में लिखा है—'एक बार मनुष्य के लिए मरना है, उसे पश्चात् न्याय ।'

निर्गुण सगुण के बारे में स्वामी जी के अर्थ को मैं नहीं मानता । निर्गुण के अर्थ ये नहीं हैं कि कुछ गुण न हो । जब उसमें गुण नहीं है तो वह सगुण नहीं है । फिर उस समय जन्म लेने का प्रबंध कौन करता है ? अब फिर मैं पूछता हूं कि यदि दण्ड (भुगतने) के लिए जन्म लेता है तो ऐसा चाहिए कि दण्ड पाने वाला स्मरण करे कि मुझे दण्ड क्यों मिला है अन्यथा दण्ड व्यर्थ है । मैं फिर पूछता हूं कि किसी को स्मरण क्यों नहीं रहता कि हम (पिछले जन्म में) बन्दर या गीदड़ थे ।

हस्ताक्षर—स्काट साहब

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी—(पहले प्रश्न के विषय में उत्तर) जीव अल्पज्ञ है; इसलिए पूर्वजन्म की बात को स्मरण नहीं रख सकता है । पादरी साहब को विचार करना चाहिए कि ऐसी बात क्यों पूछते हैं क्योंकि इसी जन्म में पांच वर्ष तक की बात क्यों स्मरण नहीं रहती और सुषुप्ति अर्थात् गहरी नींद में जब सो जाता है तब जागृत की बात एक भी स्मरण नहीं रहती । कार्य-कारण के अनुमान से अर्थात् कर्म को देख कर कारण का निश्चय कर लिया जाता है । सब विद्वान् लोग मानते हैं कि जब पाप पुण्य का फल सुख-दुःख, नीच-ऊंच जगत् में दीखता है तो (उसका) कारण जो पूर्वजन्म का कर्म है सो क्यों नहीं (होगा ?)

पुरानी और नई शिक्षा, दृष्टान्त के लिए पर्याप्त नहीं क्योंकि वह सर्वथा सत्य नहीं है । जिनको आप शिक्षित मानते हैं, उन जातियों में कोई-कोई मनुष्य अर्थात् दार्शनिक बन्दर से मनुष्य का जन्म होना मानता है यह बिलकुल असत्य है । (इंजील में) ये—'वेदी का बनाना; इब्राहीम का खुदा से कहना कि इससे मैं प्रसन्न होता हूं तुम यज्ञ करो ।' इत्यादि वेद की बातें बाइबिल में पाई जाती हैं और ईसा ने भी साक्षी दी है कि इसका एक बिन्दु विसर्ग तक भी झूठ नहीं है । इसकी सिद्धि के लिए दूसरी युक्ति देता हूं कि आजकल मैक्समूलर आदि व्याख्याता अपनी पुस्तकों में लिखते हैं कि ऋग्वेद से पहले की कोई पुस्तक भूगोल में नहीं है ।[५९] अब मैं सैकड़ों साक्षियां दे सकता हूं कि 'बाइबिल इन इण्डिया'[६०] के बनाने वाले आदि और आजकल के सैकड़ों दार्शनिकों के मुख से मैंने सुना है कि हम बाइबिल वा इंजील को नहीं मानते और कर्नल आल्काट आदि ने भी बाइबिल की शिक्षा को बिलकुल छोड़ दिया है और हमारे आर्य लोग—एफ० ए०, बी० ए०, एम० ए०, एल० एल, बी०-लाखों लोग बाइबिल को नहीं मानते और शिक्षित हैं । सो यह दृष्टान्त पादरी साहब का पर्याप्त नहीं । परमेश्वर का पुनर्जन्म नहीं होता; क्योंकि वह अनन्त और सर्वव्यापक है, शरीर में नहीं आ सकता । यह नित्य युक्त है; बन्धन का काम कभी नहीं करता ।

हस्ताक्षर—दयानन्द सरस्वती

पादरी स्काट साहब—बच्चे के दृष्टान्त से पंडित जी का यह दावा कि वह लड़कपन में हुई किसी बात को स्मरण नहीं रखता, यहां मिथ्या ठहरता है; इसलिए कि बच्चे कुछ तो याद भी रखते ही हैं । और फिर यह प्रश्न उठता है कि जब हमारे आत्मा अनादिकाल से हैं तो हम भी बच्चे के समान तब से अब तो कुछ बढ़ ही गये हैं; हमें कुछ तो वृत्तान्त ज्ञान होने चाहियें, परन्तु ऐसा नहीं होता । इस युक्ति पर विचार कीजिए ।

यह सम्भव प्रतीत नहीं होता कि हम अनादिकाल से चले आते हैं । जन्म लेकर यदि सब बात भूल जाते हैं तो फिर, जन्मग्रहण रूपी दण्ड का कुछ भी अर्थ न निकला ? नींद की बात जो कही सो उत्तर से सिद्ध होता है कि नींद की बातें भी याद रहती हैं । कुछ लोग नींद के समय बड़े विचार निकालते हैं । यहां पर मैं एक अखण्डनीय आक्षेप का उल्लेख करना चाहता हूं; वह यह कि इस शिक्षा से संसार में पाप को बल मिलता है; क्योंकि लोग कहते हैं कि जो चाहे सो करें, भोगेंगे, फिर किसी समय में अच्छा जन्म भी कभी होगा ही । यह भी कहते हैं कि यह चक्र तो सदा रहेगा ही । क्या करें ! हम मानते हैं कि कष्ट आदि संसार में है उसका कोई हेतु अवश्य होगा । कभी दुष्टों को दण्ड के लिए, कभी इसलिए कि सज्जनों को नाना प्रकार की शिक्षा मिले । कहानी है कि राजा का एक लड़का था । वह पंडित के यहां शिक्षा के लिए भेजा गया । पंडित ने उसको सब प्रकार योग्य बनाया फिर राजा के पास लाया और उससे कहा कि केवल एक ही काम शेष है । उसने पूछा कि इसने कुछ अपराध किया ? कहा कि नहीं । तब कहा कि मुझे चाबुक देना और स्वयं सवार होकर लड़के से कहा कि दौड़ और उसको खूब मारता गया । फिर राजा के पास ले आया । राजा ने कहा कि ऐसा क्यों किया ? पंडित ने कहा ताकि औरों से सहानुभूति करना सीखे और दयावान हो जाये । सो सम्भावना है कि अच्छे पुरुषों को भी किसी अच्छे प्रयोजन के लिए कष्ट मिले । यह कुछ आवश्यक नहीं है कि पुराने जन्म के कारण से (ही कष्ट मिले) ।

डारविन साहब आवागमन नहीं मानते, केवल यही कहते हैं कि संसार में वंशानुक्रम से अवर नस्ल के प्राणी उच्च नस्ल को प्राप्त करते गये । उनका यह अभिप्राय नहीं कि कोई प्राणी जो अब है वह पहले भी था ।

कर्नल आल्काट साहब की चर्चा जो चली सो उन का जो दावा है वह सुन लीजिए तब विदित होगा कि कैसे मनुष्य हैं ?

हस्ताक्षर—स्काट

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी—लड़के के उदाहरण से मेरा यह अभिप्राय है कि वह जो कुछ सुख-दुःख भोगता है, उसकी स्मृति उसको अपने आप नहीं होती, कहीं किसी के कहने से होती है। और जीव का स्वाभाविक गुण एक-सा रहता है परन्तु नैमित्तिक गुण घटते-बढ़ते रहते हैं। इसलिए जीव एक सा है परन्तु उसके ज्ञान की सामग्री पांच वर्ष पश्चात् बढ़ती जाती है। अब यदि पादरी साहब से या मुझसे कोई पूछे कि दस वर्ष पहले किसी से दिन भर जो बातचीत की क्या वह पद और अक्षरों सहित याद है ? तो यही कहना पड़ेगा कि ठीक-ठीक याद नहीं।

जब जीव सदा से नहीं आते तो कहां से हुए ? कारागार के बन्दियों के अपराधों को सब लोग यद्यपि ठीक-ठीक नहीं जानते परन्तु अनुमान तो करते ही हैं कि किसी अपराध के करने से कारागार में पड़ा है। इसी हेतु हम भी अपराध न करें; अन्यथा हमारी भी यही दशा होगी। पादरी साहब मेरे अभिप्राय को नहीं समझे। (मैंने जो कहा था) वह स्वप्न की बात नहीं थी प्रत्युत सुषुप्ति की थी कि उस (सुषुप्ति की) नींद में कुछ भी याद नहीं रहता। उस नींद में एक भी बात का कोई स्मरण नहीं रख सकता। जो पुनर्जन्म नहीं मानते उनकी शिक्षा से संसार में पाप बढ़ते हैं क्यों (वे सोचते हैं कि) आगे तो जन्म लेना ही नहीं है, जो मन में आवे करते रहो।

और निरर्थक दौरा सुपुर्द हुआ[1] अर्थात् आज मरा और कयामत (प्रलय) तक वैसे ही हवालात में पड़ा रहा। कचहरी के द्वार बन्द हैं और खुदा बेकार बैठा है। जो नरक में गया वह वहां का हुआ। जो स्वर्ग में गया वह वहीं का हो गया। फिर कर्म तो सीमा वाले (सीमित) किये जाते हैं परन्तु उसका फल असीम मिलता है। इससे ईश्वर में बहुत अन्याय आता है। आशावान हुए बिना केवल रंज से मनुष्य सुधर नहीं सकते। (अब प्रश्न है कि) कष्ट का कौन-सा हेतु है ? जो सीख के लिए उस को कष्ट मिलता है, वह उसके सुधार के लिए है। परन्तु उसका फल विद्या आदि हैं। पादरी साहब ने कहा था कि एक स्थान में सदा सुख भोगेंगे तो वह स्थान कौन-सा है और कहां है ?

हस्ताक्षर—दयानन्द सरस्वती

पादरी स्काट साहब—कर्नल आल्काट साहब का एक कागज मेरे पास मौजूद है। उसमें ईसाइयों, पादरियों और ईसाई मत के विषय में ऐसे व्यर्थ और कठोर वचन कहे हैं जो मैं किसी बाजारी और बदमाश के लिए भी न कहता। वे कहते हैं कि ये (ईसाई आदि) वज्रहृदय और निर्दय हैं। यह ईसाई मत संसार के सारे दोषों का आविष्कारक और बुराई की जड़ है। इसके अतिरिक्त और प्रकार के कठोर वचन भी कहे हैं, अब विचार कीजिये कि इस व्यक्ति का हृदय और बुद्धि कैसी होगी ?

तौरेत में कुर्बानी (यज्ञ) का वर्णन है, इस तथ्य से यह बात सिद्ध नहीं होती कि वेद तौरेत से पुराना है। हम दावे से कह सकते हैं कि यज्ञ का पहले पहल वर्णन उसमें किया गया; वेद वालों ने तौरेत से ले लिया। दोनों बातों का दोनों में वर्णन है। यह कोई नहीं कह सकता कि प्रथम वर्णन किस में हुआ।

यह कहना कि (जीव के) कुछ स्वभाव या गुण स्थायी हैं और कुछ (स्थयी) नहीं हैं; इस कारण इस जन्म की बातें (अगले जन्म में) हमें याद नहीं रहतीं। (परन्तु जब) कुछ गुण तो स्थायी रहते ही हैं; इसलिए होना ऐसा चाहिये कि कोई बात तो पुराने जन्म की याद हो। यदि हमारी और पंडित जी की बातचीत इस वर्ष कहीं हुई हो तो कोई-कोई बात तो अवश्य याद रहती है।

---

1. आसामी को फैसले के लिए सेशन्स जज के पास भेज दिया।

नींद का दृष्टान्त तो ठीक नहीं है, क्योंकि कभी-कभी नींद में बात भले ही याद नहीं रहती, परन्तु तो भी बात प्रायः याद तो रहती ही है। इसी प्रकार पिछले जन्म की कोई (एक भी) बात क्यों नहीं याद रहती? कारागार का जो उदाहरण है वह भी पूरा नहीं घटता क्योंकि इससे दण्ड का केवल एक ही प्रयोजन स्पष्ट हुआ, दण्ड के दो प्रयोजन हैं। दण्ड एक तो दण्डित व्यक्ति को सुधारने के लिए होता है, दूसरा देखने वालों की सीख के लिए परन्तु इस पुनर्जन्म में केवल देखने वालों को सीख मिलती है। ऐसा नहीं है कि दण्डित व्यक्ति को इस बात का ज्ञान हो कि यह दण्ड मुझ को क्यों मिला?

रहा यह प्रश्न कि आत्माएं कहां से आई हैं; सो शिक्षित जातियों का आजकल यह दृढ़ कथन है कि बीज से बीज और वृक्ष से वृक्ष उत्पन्न होता है; कोई यह नहीं कहता कि अमुक वृक्ष पहले हुआ। इसी प्रकार आत्मा से आत्मा और शरीर से शरीर उत्पन्न होता है। तथापि यह बात बुद्धि से परे की है कि कोई शरीर-विशेष किस प्रकार उत्पन्न होता है और आत्मा किस प्रकार उत्पन्न होती है। परन्तु यह आत्मा जो अब विद्यमान है, वह पहले किसी शरीर में थी, यह समस्या नहीं है। यह तो अभी उत्पन्न हुई है और जब यहां से जायेगी तो इसका न्याय कर्मानुसार ठीक-ठीक होगा। इससे परमेश्वर अन्यायी नहीं ठहरता है; प्रत्युत इससे भी परमेश्वर का न्याय ही सिद्ध होता है। रहा यह प्रश्न कि आत्मा सदा कहां रहती है सो हम यह दावा नहीं करते कि हम परोक्ष के जानने वाले हैं और सुख का स्थान बतलावें कि वह कहां है? सर्वशक्तिमान् ईश्वर आत्मा को सुख का स्थान दे सकता है। हमारे जानने या न जानने से क्या होता है!

हस्ताक्षर—स्काट

स्वामी दयानन्द सरस्वती—जो कर्नल आल्काट साहब के विषय में पादरी साहब ने कहा कि वह अच्छा पुरुष नहीं, यह बात मैं ठीक नहीं मान सकता क्योंकि जिन का जिन से विरोध होता है वे दोनों एक दूसरे को उलटा-सीधा कहा ही करते हैं।

वेद तौरेत से बहुत पुराना है और जिसकी बात पूरी (में) से लेकर दूसरी में अधूरी लिखी हो वह उससे पहले का होता है। लड़कपन में नैमित्तिक गुण कम थे और स्वाभाविक गुण सब समय एक-से रहते हैं। इस बात को पादरी साहब ठीक-ठीक नहीं समझे। जो अग्नि के संयोग से जल में ऊष्णता आती है वह नैमित्तिक है और जो अग्नि में ऊष्णता है वह स्वाभाविक है। जो-जो जीव के स्वाभाविक गुण हैं वे न्यूनाधिक नहीं होते किन्तु नैमित्तिक न्यूनाधिक होते हैं।

पादरी साहब ने कहा कि कारागार के बन्दियों को देखकर देखने वालों को भय होता है कि हम ऐसा कर्म न करें परन्तु जिसको पूर्वजन्म के कर्मों का दण्ड मिलता है उस को याद ही नहीं। जैसे और लोग कार्य से कारण को जानते हैं, क्या वह न जानेगा? एक वैद्य को ज्वर आया और एक गंवार को भी। वैद्य ने विद्या से उसका कारण जान लिया कि अमुक कारण से मुझ को ज्वर है, परन्तु उस गंवार ने नहीं जाना, यद्यपि ज्वर का कष्ट दोनों के ज्ञान में है। फिर भी गंवार यह कहता है कि किसी कुपथ्य के कारण मुझ को ज्वर आया है। इस से उस को दण्ड से सुधरने का फल प्राप्त होता है कि जो मैं बुरा कर्म करूंगा तो बुरा फल जैसा कि उस को है, मुझ को भी प्राप्त होगा।

जब जीव से जीव और शरीर से शरीर उत्पन्न होते हैं तब तो आपका बनाने वाला परमेश्वर नहीं हुआ। इससे तो आपका कथन ठीक नहीं रहा और प्रथम-प्रथम आपके कथनानुसार जो जीव हुए वे किन-किन जीवों और शरीरों से हुए। जो कहें कि परमेश्वर से, तो परमेश्वर भी मनुष्य, घोड़े, वृक्ष और पत्थर के समान हुआ, क्योंकि जिसका कार्य जैसा होता है उसका कारण भी वैसा ही ही होता है।

बीच में बहुत दिनों तक दौरा सुपुर्द करना तो दण्ड से भी अधिक भारी है । फिर उस को स्वर्ग या नरक किन कर्मों से मिल सकता है ? कोई भी नहीं । और जब आप सर्वज्ञ नहीं तो, क्यों दावा करते हैं कि पुनर्जन्म नहीं । इस से आप का एक जन्म सिद्ध नहीं होता है और पुनर्जन्म सिद्ध हो गया ।

विषय—"क्या ईश्वर देह धारण करता है ?"

(ता० २६ अगस्त, सन् १८७९)

पादरी स्काट साहब—आज का प्रश्न यह है कि परमेश्वर देह धारण करता है या नहीं अर्थात् वह साकार हो सकता है या नहीं ? उचित तो यह है कि इस विषय में अत्यन्त दैन्यभावना से बातचीत की जाये । जब महान् ईश्वर के सम्बन्ध में वार्तालाप हो तो मनुष्य को चाहिये कि अत्यन्त सोच-विचार और गम्भीरतापूर्वक बोले । इसमें घमंड और गर्व को अवकाश नहीं है कि मानो हम ईश्वर के विषय में सब कुछ जानते हैं । किसी कवि ने कहा है—

अर्श[1] से ले फर्श[2] तक जिसका कि ये सामान[3] है । हम्द[4] उसकी गर[5] लिखा चाहूं तो क्या इमकान[6] है ॥

जब पैगम्बर[7] ने कहा 'हूं मैंने पहचाना नहीं । फिर कोई दावा[9] करे इसका बड़ा नादान[10] है ॥'

सोचिये तो सही कि ईश्वर की शाश्वतता के विषय में हम क्या जानते हैं ? सो इसी प्रकार हम उस सर्वशक्तिमान् के विषय में क्या जानते हैं ? वह सर्वव्यापक अर्थात् प्रत्येक स्थान पर है, इसके विषय में हम क्या जानते हैं ? हां, इन शब्दों के कुछ-कुछ अर्थ हम जानते हैं परन्तु दृढ़ता से यह कथन कि हम ईश्वर के विषय में सब कुछ जानते हैं, मूर्ख ही करते हैं । आज की बातचीत में दो प्रश्न ये हैं—क्या ईश्वर देह धारण कर सकता है ? दूसरे यह कि ऐसा कभी हुआ है कि नहीं ? विशेष रूप से पहले प्रश्न के बारे में ही इस समय बातचीत है । पहले प्रश्न का भाव यह है कि क्या यह सम्भव है कि ईश्वर अपने आप को शरीर में प्रकट करे ? विचार कीजिए, यह अभिप्राय नहीं है कि ईश्वर शरीर बन जाये । हमारा पहला दावा यह है कि उसके लिए देहधारण करने की सम्भावना है । मनुष्य की आत्मा और ईश्वर की आत्मा बहुत-सी बातों में समान है, अपितु यह कहना उचित है कि दोनों एक ही प्रकार की आत्माएं हैं क्योंकि ईश्वर की वाणी में लिखा है कि खुदा ने मनुष्य को अपनी सूरत पर बनाया । परन्तु यह नहीं कि शारीरिक आकृति में (समान बनाया) परन्तु आध्यात्मिक रूप में (समान बनाया) अर्थात् बहुत-सी विशेषताएं जो ईश्वर में हैं, वही मनुष्य में भी हैं—उदाहरणतया दया, न्याय और नाना प्रकार की धार्मिक विशेषताएं । इसी कारण मनुष्य ईश्वर के साथ मेल कर सकता है । ऐसी अवस्था में हम जो शरीरधारी हैं क्यों अहंकार करें कि ईश्वर देहधारी न हो । यदि उसकी इच्छा हो कि देह में प्रकट हो तो ऐसा करना उसकी शक्ति से क्या बाहर है ?

हस्ताक्षर—पादरी स्काट साहब

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी—जो पादरी साहब ने कहा कि उसकी हम परीक्षा नहीं कर सकते तो इस पर मेरा प्रश्न यह है कि (परीक्षा) बिलकुल नहीं कर सकते या कुछ-कुछ कर सकते हैं ? वैसे सर्वव्यापक के विषय में कुछ जानते हैं या नहीं ? यदि कुछ जानते हैं तो कितना ? यदि किसी का कहना हो कि मैं ईश्वर को जानता हूं तो वह मूर्ख है । और यदि पादरी साहब का यही कथन है तो उसका जानना किसी के वश की बात नहीं रही । पादरी साहब यह बात अपने पहले इस वचन के विरुद्ध बोले हैं कि ईश्वर देह धारण करता है (या नहीं ?) । कर सकता है या नहीं; ऐसा नहीं (था); परन्तु देह धारण

---

1. आकाश, 2. पृथिवी, 3. सामग्री, 4. प्रशंसा, 5. यदि, 6. सम्भावना, 7. संवादवाहक, 8. ईश्वर का एक नाम, 9. गर्व, 10. मूर्ख ।

करता है (या नहीं यह प्रश्न था)। यहां प्रथम तो प्रश्न यह है कि उसको देहधारण करने की आवश्यकता ही क्या है? दूसरे-उसकी इच्छा पर कोई प्रतिबन्ध है या नहीं? तीसरे, वह निराकार है या साकार? चौथे वह सर्वव्यापक है या एकदेशीय? जीव और ईश्वर के दया आदि गुण परस्पर ठीक-ठीक एक-से हैं या नहीं? बहुत से जीवों में भी दया देखने में आती है।

वे दोनों एक हैं, तो फिर दोनों ईश्वर सिद्ध होते हैं? इसका क्या उत्तर है? आत्मिक रीति में यदि परमेश्वर देहधारी होता है तब (प्रश्न यह उठता है कि) वह सारा का सारा ही देह में आ जाता है या टुकड़े-टुकड़े होकर आता है? यदि टुकड़े-टुकड़े होकर आता है तो नाशवान् हुआ और जो सारा का सारा देह में आ जाता है तो शरीर से छोटा हुआ। यदि ऐसा है तो वह ईश्वर ही नहीं हो सकता और जीव तथा ईश्वर में कुछ भी भेद नहीं आ सकता है। और यदि वह एकदेशी है तो एक स्थान पर रहता है या घूमता फिरता है? जो कहिये कि एक स्थान पर रहता है तो उस को सब स्थानों की सूचना रखना असम्भव है[1] और जो घूमता-फिरता है तो कहीं अटक भी जाता होगा और कहीं धक्का और शस्त्र भी लगता होगा। जब परमेश्वर सृष्टि करता है तब निराकार स्वरूप से या साकार से? जो कहो कि निराकार स्वरूप से तब तो ठीक है और जो कहो कि देहधारी होकर (सृष्टि करता है, तब) तो सर्वथा सृष्टि करना असम्भव है क्योंकि सृष्टि के कारणभूत त्रसरेणु आदि आदि पदार्थ उसके (देहधारी के) वश में कभी नहीं आ सकते।

हस्ताक्षर—**स्वामी दयानन्द सरस्वती**

पादरी स्काट साहब—हम नहीं कहते कि ईश्वर को सर्वथा नहीं जान सकते परन्तु तो भी बहुत बातें हम बिलकुल नहीं जान सकते। सर्वव्यापक के विषय में विश्वास है कि वह ऐसा है परन्तु कोई नहीं कह सकता कि इसका अभिप्राय हम को अच्छी प्रकार से विदित है। यह तो हम कह सकते हैं कि ईश्वर ने देह धारण किया परन्तु उसका अपने में देह धारण करना एक रहस्य है; यही नहीं अपितु हमारी आत्मा का शरीर से सम्बन्ध एक रहस्य है। रहा यह प्रश्न कि ईश्वर की इच्छा पर कोई प्रतिबन्ध है या नहीं? पंडित जी इसका तात्पर्य बतलावें। मैं कहता हूं कि परमात्मा की आत्मा और मनुष्य की आत्मा किसी प्रकार एक-समान नहीं है। एक सीमित है तो दूसरी असीम। इसलिए दो ईश्वर नहीं हैं। इनमें एक सृष्टिकर्ता है और दूसरा सृष्ट (बना हुआ) है। परन्तु (यह तो) ईश्वर की इच्छा थी कि (उसने) मनुष्य को अपने जैसे बनाया। हम यहां मनुष्य की आत्मा के बारे में बात करते हैं, दूसरे जीवों के बारे में नहीं। यह नहीं लिखा है कि ईश्वर ने बन्दरों को अपनी सूरत में बनाया। रहा यह प्रश्न कि क्या पूरा का पूरा ईश्वर शरीर में आ जाता है। हां, पूरा का पूरा शरीर में; परन्तु तो भी बाहर भी रहता है क्योंकि सर्वव्यापक है। तो उस शरीर के भीतर क्यों नहीं है? परन्तु हम यह नहीं कहते कि और कहीं नहीं है। ध्यान दीजिए कि इस कमरे के भीतर है, वह सर्वशक्तिमान् इस समय उपस्थित है अर्थात् ईश्वर अपनी समस्त विशेषताओं के साथ इस कमरे के भीतर विद्यमान है। क्या कोई अस्वीकार कर सकता है? तो इस में क्या कठिनाई है यदि उसकी इच्छा ऐसी हुई कि अपने आपको एक शरीर में प्रकट करे। यह असम्भव नहीं है। उसकी इच्छा है; जब कोई उद्देश्य हुआ (शरीर में आ गया) और यह अपनी विवशता से नहीं करता, प्रत्युत हम लोगों के लिए (करता है)। क्योंकि यदि हमारी बुद्धि बहकाना जानती है तो आगे चलकर हम देख लेंगे कि (इसका) कोई उचित कारण है या नहीं कि ईश्वर देह धारण करे। यदि कोई कह देवे कि देह धारण करना उसकी पूज्यता के विरुद्ध है तो यह उसकी भ्रान्ति है। वह किस बात में उसकी पूज्यता के विरुद्ध है? देह में कोई दोष है या कोई अपवित्रता है या कुछ गन्दापन है कि ईश्वर उससे घृणा करे? देह को किसने बनाया है? क्या वह अब भी सर्वव्यापक नहीं है? (है) अर्थात् प्रत्येक देह में अब भी विद्यमान है।

हस्ताक्षर—**स्काट साहब**

---

1. अर्थात् उसको सारी सृष्टि का ज्ञान भी नहीं रहेगा।—सम्पा०

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी—पादरी साहब ने मेरे प्रश्नों के ठीक-ठीक उत्तर नहीं दिये । जब वह सर्वव्यापक है तो एक देह में आना या एक देह से निकलना असम्भव है । ईश्वर ने देह धारण किया, इसकी आवश्यकता मैंने पूछी थी; इसका कुछ उत्तर नहीं दिया और इसका भी कुछ उत्तर नहीं दिया कि ईश्वर और जीव आध्यात्मिक (आत्मिक) रूप से सर्वथा समान हैं या उस विषय में कुछ भिन्नता है ? पहले पादरी साहब कह चुके हैं कि लिखा है कि मनुष्य की आत्मा अपने स्वरूप में बनाई । इसके विपरीत पीछे कहा कि वे पृथक्-पृथक् हैं; एक नहीं । मुझ से पूछा कि पंडित जी इसका अभिप्राय बतलावें । मैं पादरी साहब का तात्पर्य क्यों बतलाऊं ? वही बतलावें । मैं भी जानता हूं कि परमेश्वर सर्वव्यापक है इस कारण वह अवतार धारण नहीं कर सकता; क्योंकि (प्रश्न होगा कि) क्या पहले वह उसमें नहीं था ? या उसमें एक था ? अब दूसरा, तीसरा इसी प्रकार ? हजारों घुस गये ? जब वह असीम है तब सीमा वाले शरीर में देह धारण किया, यह बात बिल्कुल झूठ है । जो पादरी साहब ने यह कहा कि मनुष्य की आत्मा अपने स्वरूप में बनाई, बन्दर की नहीं; इस पर मैं पूछता हूं कि बन्दर किसके रूप में बनाये ? क्या बन्दर का खुदा कोई दूसरा है ? इस प्रकार तो सब के अर्थात् हाथी, घोड़े आदि के खुदा दूसरे अलग-अलग होंगे ।

जब सर्वव्यापक है तो उसमें देह धारण नहीं किया प्रत्युत (उसने) सारा जगत् अर्थात् एक-एक कण धारण कर रखा है । पादरी साहब का यह कहना कि (ईश्वर) देह धारण करता है, सर्वथा मिथ्या है । क्या वह पहले धारण नहीं करता था ? क्या सर्वशक्तिमान् ईश्वर अपनी इच्छा से देह धारण करता है ? यदि करता है तो मैं पूछता हूं कि वह अपनी इच्छा से देह छोड़ भी देता होगा क्योंकि जो कोई पकड़ेगा वह छोड़ेगा भी । वह कभी अपने मारने की भी शक्ति रखता है या नहीं ? जो कहिये कि नहीं तो उस बात में तो वह सर्वशक्तिमान् नहीं है । जैसे अविद्या आदि और अन्याय आदि का उसका स्वभाव ही नहीं है, वैसे ही जन्म-मरण आदि के न होने में भी उसका स्वभाव प्रतिबन्धक है क्योंकि यह अपने स्वभाव के विपरीत कोई कार्य चरितार्थ नहीं कर सकता ।

हस्ताक्षर—**दयानन्द सरस्वती**

पादरी टी० जे० स्काट साहब—मेरा यही प्रश्न है कि क्या पंडित जी का यह अभिप्राय है कि अब परमेश्वर देहधारी है ? क्योंकि उनकी युक्ति से प्रतीत होता है कि वे यह दावा करते हैं कि परमेश्वर अब देह में है और अब ये सभी सूरतें (आकृतियां) जो दिखाई देती हैं, उसका देह ही हैं; तो बस इसी से मेरा दावा सिद्ध हो गया । अब इसमें और (सिद्ध करना) क्या रहा ? देहधारण का अर्थ क्या है ? क्या इसका यह अर्थ है कि पशु, वृक्ष और पाषाण आदि के देह में होना हो उसका देहधारण है ? यद्यपि अनादि काल से परमेश्वर सर्वव्यापक तो है, परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि वह इस प्रकार से देहधारी है; जैसे जब कोई कह दे कि अमुक व्यक्ति परमेश्वर का अवतार है तो पंडित जी इसमें क्यों झगड़ते हैं ? देहधारण का अर्थ कौन नहीं जानता ? और यह कह देना इस विशेष अभिप्राय से कि ईश्वर देहधारी हुआ, इसमें कुछ आने-जाने की चर्चा नहीं है परन्तु केवल यही अर्थ है कि वह हमारे लिए शरीर में प्रकट हुआ । जब वह शरीर अदृश्य हो जाये तब भी ईश्वर वहां पर विद्यमान है; परन्तु वह ईश्वर की आत्मा उस शरीर में उस समय भी हैवानी (जैवी) आत्मा नहीं है । अभी आत्मा इस शरीर में प्रकट हुई । यह कुछ आने-जाने की बात नहीं है । मैंने साफ-साफ कहा है कि मनुष्य की आत्मा ईश्वर की आत्मा के समान है परन्तु पृथक् है । बन्दर की स्थिति और है । उसकी चर्चा करना क्या आवश्यक है ? रहा प्रश्न यह कि ईश्वर ने बन्दर को किस सूरत में बनाया; (उत्तर यह है कि) जैसी उसकी इच्छा हुई बनाया अर्थात् बन्दर की आकृति, गीदड़ की आकृति और बैल की आकृति (बनाई) और मनुष्य को अपनी आकृति का बनाया । अब इसमें शंका करने की क्या आवश्यकता है ?

अब रहा यह प्रश्न कि ईश्वर ने देह धारण क्यों की ? इसका उत्तर देता हूं । इसकी (देह धारण की) सम्भावना तो आपने जान ही ली (ऐसा होना) कुछ असम्भव नहीं है । मकान का उदाहरण स्मरण कीजिये । और यह भी देह धारण का अर्थ यह है कि अपने आपको एक देह में प्रकट करना । यदि (आप) इसकी (परमेश्वर की) चेष्टा समझते हैं तो समझिये; हम डरते नहीं हैं कि कह दें कि परमेश्वर की विशेषताएं चेष्टा करती ही नहीं हैं । (नही) तो क्या वह पत्थर है अथवा निर्गुण है कि उसका आना-जाना कुछ न हुआ, जीना-मरना कुछ न हुआ । केवल मनुष्य की निर्बलता के हेतु अवतार होता है अर्थात् देह धारण करता है । देह धारण करने में यह लाभ है कि मनुष्य के लिए योग्य पथप्रदर्शक और आदर्श चाहिए । जब पथप्रदर्शक योग्य और आदर्श योग्य हो तो मनुष्य उन्नति करता है नहीं तो, उन्नति का साधन अच्छा नहीं होता ।

हस्ताक्षर—**स्काट साहब**

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी—जो पादरी साहब ने यह कहा कि पंडित जी के दावे ने मेरे दावे को सिद्ध किया, सो बात मिथ्या है; क्योंकि देह-धारण करता है इसका अर्थ यह है कि पहले वह देह में नहीं था । इस कथन ने पादरी साहब के दावे को खारिज किया न कि सिद्ध किया । जो सर्वव्यापक है, वह 'देह धारण करता है या देह धारण करे और छोड़े'—यह कहना सर्वथा असम्भव है । जब वह सर्वव्यापक है तो देह धारण करने को कहां से आया ? क्या ऊपर या नीचे या बाहर या बगल से । जो कहें कि किसी (भी) ओर से आया तो सर्वव्यापक नहीं हुआ और जो कहें कि सर्वव्यापक है तो कहीं से आना सिद्ध नहीं हो सकता । प्रकट होने के विषय में, पादरी साहब से मैं पूछता हूं कि क्या पहले गुम (खोया हुआ) था कि आंख से नहीं दीखा; प्रकट होने पर दीख पड़ा ? जो कहें कि दीख पड़ा तो क्या आत्मा आंख के देखने का विषय है ? जो कहें कि नहीं; तो फिर प्रकट होने का क्या अर्थ है ? जैसे सांप बिल में से निकल कर प्रकट होकर फिंर गुम हो जाये । मैंने पूछा था कि बन्दर किस की सूरत में बनाया, उसका कुछ उत्तर नहीं दिया । क्या बन्दर और मनुष्य का बनाने वाला एक ही खुदा है अथवा पृथक्-पृथक् ? जब उसके (परमात्मा के) देह-धारण करने की पादरी साहब कोई आवश्यकता नहीं दिखला सकते तो पादरी साहब का दावा खारिज हो गया । जो पादरी साहब ने कहा कि परमेश्वर की विशेषताएं गति करती हैं, यह बात सर्वथा झूठी है; क्योंकि विशेषता गुण है; द्रव्य नहीं । चेष्टा करने वाला द्रव्य होता है, गुण नहीं । जो पादरी साहब कहें कि देह धारण करना आवश्यक है तो उसकी ठीक-ठीक आवश्यकता भी बतलावें । यह जो कहा कि मनुष्य की उन्नति के लिए देह-धारण करता है तब भी पादरी साहब के कहने में पूर्वोक्त सब दोष आते ही हैं । फिर मैं पूछता हूं कि वह सर्वव्यापकता और अपने सामर्थ्य से क्या जीवों की उन्नति नहीं कर सकता ? जो कहें कि कर सकता है तो देह-धारण करना निरर्थक हुआ । जो कहें कि नहीं कर सकता तो सर्वशक्तिमान् नहीं रहा और पादरी साहब के कथन में मैंने जो दोष बताया था कि देह-धारण करने पर तो परमाणु आदि को वश में लाने का सामर्थ्य भी नहीं हो सकता आदि, उनका निराकरण नहीं हुआ ।

हस्ताक्षर—**दयानन्द सरस्वती**

पादरी टी० जे० स्काट साहब—प्रत्येक बात में यह कहना कि यह झूठ है, तनिक सभ्यता के विरुद्ध है क्योंकि झूठ बेईमानी और फरेब होता है । बहुत-सी बातें गलत (भ्रममूलक या अशुद्ध) हैं परन्तु उनको झूठ बताना तनिक सभ्यता के विरुद्ध प्रतीत होता है । ईश्वर तो बन्दर की देह में सर्वव्यापक के रूप में है, परन्तु भले ही कोई उसको बन्दर बता दे और वैसे ही कोई उसको गीदड़ बता दे, परन्तु हां, अद्वैतवादी ऐसा ही कहेंगे परन्तु पंडित जी तो द्वैतवादी हैं । मैं पंडित जी से यह पूछता हूं कि परमेश्वर के अतिरिक्त और कोई वस्तु संसार में है या नहीं ? परन्तु जब परमेश्वर का कोई विशेष अवतार हो तो उस देह में वह सर्वव्यापक है और परमेश्वर के अतिरिक्त और कोई जीव उसमें (उस देह में) नहीं होता, इसको अवतार

कहते हैं । इसमें आने-जाने की कुछ बात नहीं है । कोई स्याही ऐसी होती है कि जब उससे लिखते हैं तो कुछ दिखाई नहीं देता परन्तु वह लिखाई मौजूद है या नहीं ? स्याही मौजूद है, अक्षर भी मौजूद हैं, उसको तनिक आग के सामने करो तो सब लिखाई दिखाई पड़ती है । मौजूद तो थी परन्तु दिखाई नहीं देती थी । इसी प्रकार परमेश्वर का दिखाई देना कुछ आने-जाने का विषय वास्तव में नहीं है । उसने केवल हमारी निर्बलता के लिए अपने आपको इस शरीर में प्रकट किया । वह कहीं गुम न था । कहीं से आया नहीं । फिर इस बारे में यह बात कहूंगा कि विशेषता का गति करना यह है कि क्रियाशील होना जैसे कि प्रेम और दयाभाव रखना और न्याय करना । यह कहना कि देह धारण करने से परमेश्वर की विवशता विदित होती है, भ्रान्तिपूर्ण है । पंडित जी का विश्वास यह है कि जन्म लेने से मनुष्य सुधर जाता है तो इसमें भी परमेश्वर विवश है या उसकी इच्छा है ? यदि वह सर्वशक्तिमान् है पंडित जी के कथनानुसार तो नहीं कहना चाहिये कि विवश है और यदि उसकी इच्छा है तो अपनी इच्छा वह जानता है कि मनुष्य के विषय में कौन-सा उपाय उत्तम है । परन्तु हां, कुछ बातों में हम मानते हैं कि परमेश्वर विवश है । विचार कीजिये कि यदि वह सर्वशक्तिमान् है तो एक क्षण में ही आत्मा को सर्वथा पवित्र क्यों नहीं कर देता ? क्यों मनुष्य को अनेक प्रकार के दुःख देता है ? विचार करना चाहिये कि मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है और ईश्वर उसके साथ अत्याचार नहीं करता है । (हठात् उससे कोई काम नहीं कराता है) ईश्वर तो चाहता है कि वह सुधर जाये । परन्तु (उसका) सुधरना ईश्वर के सर्वथा वश में नहीं है । ईश्वर ने मनुष्य को ऐसा ही बनाया और यह कर्म करने की स्वतन्त्रता में मनुष्य की प्रभावशालिता है, और इस कर्म-स्वतंत्रता से वह अपनी बड़ी हानि भी कर सकता है । (इसलिए) ईश्वर ने उत्तम बात यही जानी कि मनुष्य को सुधारने के लिए अवतार के रूप में एक योग्य आदर्श उसको दिखा दे । ईश्वर के गुम होने से नहीं, मनुष्य के गुम होने से । और बातों को छोड़कर आगे चलकर अधिक वर्णन करूंगा ।

हस्ताक्षर—**स्काट साहब**

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी—जो पादरी साहब ने अशिष्टता के विषय में कहा सो ठीक है परन्तु सत्य के कथन में कभी अशिष्टता नहीं हो सकती । झूठ के कहने में अशिष्टता है । जो पादरी साहब ने मुझ को द्वैतवादी बतलाया सो भी ठीक नहीं क्योंकि मैं अद्वैतवादी हूं[६१] मैं ईश्वर को एक मानता हूं । जो पादरी साहब ने कहा कि बन्दर और गीदड़ के शरीर में परमेश्वर व्यापक होने से बन्दर और गीदड़ नहीं कहा जाता तो मनुष्य के शरीर में व्यापक होने से मनुष्य भी नहीं कहा जाना चाहिये और जो कहें कि कहना चाहिये तो बन्दर आदि में भी कहना चाहिये । जो कहा कि जिस शरीर में ईश्वर ने अवतार लिया, उसमें दूसरा जीव नहीं था तो मैं पूछता हूं कि उसमें पहले ईश्वर था या नहीं ? जो कहें कि था तो उसका आना-जाना असम्भव है । जो कहें कि नहीं था तो उसका सर्वव्यापक होना नहीं हो सकता । जो मैंने प्रकट होने के विषय में पूछा था, उसका ठीक-ठीक उत्तर पादरी साहब ने नहीं दिया, इस बात को वे गोल कर गये । जो ईश्वर दृश्य नहीं तो उसका प्रकट होना कहना निरर्थक है और जो कहें कि दृश्य है तो सर्वव्यापक नहीं । जो पादरी साहब ने कहा कि हमारी निर्बलता के हेतु वह अवतार लेता है तो हमारी निर्बलता के हेतु क्या वह सर्वव्यापक हमारा पूरा (सारा ही) काम नहीं कर सकता ? जो यह कहें कि नहीं कर सकता तो इसमें क्या युक्ति है और इस प्रकार वह सर्वशक्तिमान् भी नहीं रहता । और जो कहें कि कर सकता है तो (फिर हमारा) जन्म धारण करना निरर्थक है । और जो यह कहा कि प्रीति वह रखता है; सो, ठीक नहीं है । क्योंकि यहां प्रीति गुण और प्रीति करने वाला चेतन द्रव्य है इसलिए पादरी साहब का कहना ठीक नहीं । परमेश्वर अपने स्वाभाविक गुण के अनुकूल काम करने में कभी विवश नहीं (होता), परन्तु अवतार के धारण करने में वह विवश है । जैसे कि पादरी साहब ने कहा कि मनुष्य को वह नहीं सुधार सकता । अब मैं पूछता हूं कि सर्वशक्तिमान् का क्या अर्थ है ? पादरी साहब क्या (कहना) चाहते है ? जैसे पादरी साहब ने कहा कि कुछ बातों में ईश्वर विवश है वैसे अवतार लेने में भी विवश है क्योंकि सर्वव्यापक का आना-जाना, प्रकट या गुम होना, सर्वथा असम्भव है । जब वह दुःख का नाश नहीं करता

तो पादरी साहब के कहने से ही पादरी साहब की यह बात खण्डित हो गई कि अवतार लेकर मनुष्यों का दुःख काटता है। जो कहा कि दुःख क्यों देता है तो इसका उत्तर यह है कि वह न्यायाधीश है। जीवों के जैसे पाप-पुण्य होते हैं वैसा ही उनका फल देना आवश्यक होता है क्योंकि वह सच्चा न्यायकारी है।

हस्ताक्षर—**दयानन्द सरस्वती**

पादरी टी० जे० स्काट साहब—द्वैतवादी वे हैं जो दो पदार्थ मानते हैं—एक ईश्वर, दूसरी सृष्टि। अद्वैतवादी वे हैं जो एक ही पदार्थ मानते हैं, सो विदित हुआ कि पंडित जी एक ही पदार्थ मानते हैं; दो नहीं। ईश्वर अनदेखा (अदृश्य) तो है परन्तु जब अपने को शारीरिक रूप में अर्थात् शरीर में प्रकट करना चाहता है तो हम आत्मा से आपके शरीर को देखते हैं, ईश्वर को नहीं। परन्तु उस प्रकार के निमित्त से ईश्वर का वृत्तान्त बहुत अधिक जानते हैं क्योंकि उस समय हमारी दृष्टि में एक पवित्र और पूर्ण आदर्श नहीं होता है; इसलिए ईश्वर अवतार लेता है। ईश्वर ने देख लिया कि मनुष्य के लिए उत्तम मार्ग यही है; इसलिए ऐसा हुआ।

ईश्वर सर्वशक्तिमान् तो है परन्तु तब भी इसका अर्थ यह नहीं है कि कोई भी बात उसकी पहुंच से बाहर नहीं है। अधर्म उसकी पहुंच से दूर है, झूठ उससे दूर है; वह दो और दो पांच नहीं मान सकता है। इससे यह भी नहीं हो सकता कि एक वस्तु हो और न भी हो अर्थात् एक अर्थ से उसकी शक्ति की सीमा है।

मैंने यह कहा कि यदि मनुष्य की इच्छा न हो तो ईश्वर उसको नहीं सुधार सकता। सुधारने के लिए उसका उत्तम मार्ग यही है कि देह धारण करके मनुष्य के लिए एक पूर्ण आदर्श स्थापित करे। मनुष्य तो आदर्श चाहता ही है संसार में तो ऐसा कोई पवित्र गुरु है नहीं कि जिसने कभी पाप न किया हो और जो प्रत्येक बात में योग्य हो। इसलिए ईश्वर देह धारण करके मनुष्य को ऐसा आदर्श प्रदान कर सकता है कि जिससे वह धर्म का ठीक-ठीक मार्ग पाकर प्रत्येक बात में शुभ कर्म करे। इसमें बहुत बड़ा प्रयोजन है। कौन नहीं जानता कि मनुष्य सदा आदर्श का सहारा लेता है। विद्यालयों में देखो, सेना में देखो, घर में देखो, सभी स्थानों पर यदि आदर्श उत्तम है, पथ-प्रदर्शक अच्छा है तो उन्नति भी अच्छी होती है। क्या यह कोई श्रेष्ठ प्रयोजन नहीं है कि ईश्वर देह धारण करके मनुष्य को एक योग्य तथा पूरा आदर्श दिखला दे जिससे कि मुक्ति की व्यवस्था पूरी हो? ईश्वर की इच्छा इस प्रकार है। मेरा अभिप्राय यह है कि खुलकर कह देना कोई अच्छी बात नहीं है। इसमें दैन्य से काम लेना चाहिए। यदि ईश्वर ने अपनी इच्छा से इसलिए ऐसा किया कि यह उत्तम मार्ग प्रतीत हुआ तो हम उसके विरुद्ध क्यों बोले?

अब पुस्तक का प्रमाण लीजिये। इंजील में लिखा है कि आदि में वचन था और वचन ईश्वर के संग था और वचन ईश्वर था और वचन शरीरी बना अर्थात् वही ईश्वर शरीर में प्रकट हुआ। जिस पुस्तक में यह लिखा है, ऐसी अच्छी पुस्तक है और इस बात का प्रमाण है कि वह ईश्वर की ओर से है। जो कुछ उसमें लिखा है कि वह बुद्धिपूर्वक और युक्तियुक्त है। यह कहा कि अधिकांश लोग इस पुस्तक को झूठी समझकर छोड़ देते हैं जैसा कि वेद को, सो यह बात सर्वथा मिथ्या है क्योंकि उसके समर्थन में कोई युक्ति नहीं दी जा सकती।

हस्ताक्षर—**स्काट साहब**

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी—अद्वैत विशेषण परमेश्वर का है, दूसरे का नहीं। इस कथन से यह सिद्ध हुआ कि परमेश्वर एक है, जीव अनेक हैं; जगत् का कारण अनेक प्रकार का है। पादरी साहब कहें कि ईश्वर के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं था तो जीव (कहां से आया) और यह जगत् कहां से आया? जो कहें कि ईश्वर से (आये) तो जीव और जगत्

ईश्वर हुए। जो कहें कि कारण से; तो पादरी साहब को भी कारण का मानना आवश्यक हुआ। यदि जीव की उत्पत्ति मानते हैं तो उसका नाश भी अवश्य मानना होगा। फिर यह बात कई बार आई परन्तु ठीक-ठीक उत्तर नहीं दिया गया कि उसको देहधारण करने की क्या आवश्यकता है और क्या उसके बिना वह अपना काम नहीं कर सकता? इसका कुछ उत्तर नहीं दिया गया। जब उसकी शक्ति की सीमा है तो ईश्वर की सीमा क्यों नहीं? जो कहें कि ईश्वर की भी सीमा है तो वह सर्वव्यापक नहीं और यह बात पादरी साहब के पहले कथन की विरोधी ठहरती है। जब (पादरी साहब) परमेश्वर की सब बातों को नहीं जानते तो यह बात जो पादरी साहब ने कही थी कि वह अवतार लेता है, इस बात पर क्यों हठ करते हैं? जब उसको अवतार लेने से पहले कोई नहीं जान सकता तो उसी ने अवतार लिया यह कहना निरर्थक है। क्योंकि वही पुरुष या पादरी साहब इस बात पर ध्यान नहीं देते कि पृथिवी, सूर्य, चन्द्र और मनुष्य शरीर आदि ही परमेश्वर की प्रकृति के कितने महान् आदर्श हैं। एक साढ़े तीन हाथ के शरीर में आकर, खा-पी, बढ़-घट कर मर जाना क्या कोई महान् आदर्श है? जो इंजील के लेख की बात कही कि उस वचन का अवतार हुआ, यह बात सर्वथा मिथ्या है क्योंकि वचन शब्द होता है और शब्द गुण है? ऐसी मिथ्या (गलत) बात जिस इंजील में लिखी है क्या वह कभी सत्य और उत्तम हो सकती है? क्यों वह कभी द्रव्य हो सकता है? पादरी साहब की इंजील में योहन्ना के स्वप्न के प्रकाशित वाक्य की यह कथा सर्वथा असम्भव है कि पोथी का एक बन्धना खोलने से उसमें से एक सवार घोड़ा सहित निकला। क्या ऐसे कभी निकल सकता है? क्या ऐसी ऐसी कई मिथ्या बातें पादरी साहब ने न देखी होंगी? फिर भी ऐसी पुस्तक के सत्य होने का दावा करते हैं। यह सब हठ के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसलिए पादरी साहब और सब मनुष्यों को चाहिए कि सर्वथा सत्य ईश्वरकृत वेदों की शरण लेकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि अवश्य करें।

हस्ताक्षर—**दयानन्द सरस्वती**

पादरी टी० जे० स्काट साहब—योहन्ना के विषय में 'मकाशफात' नामक पुस्तक में जो कुछ लिखा है, उसके सम्बन्ध में यदि पंडित जी की ऐसी ही समझ हो तो मैं उत्तर नहीं दे सकता। ईश्वर अपनी परिपूर्ण शक्ति से इस सृष्टि को अभाव से भाव में लाया। अच्छा तो यह है कि वह जब चाहे इसका प्रलय भी करे। जब तक यह नियुक्त है तब तक वह इसमें (सर्व) व्यापक नहीं है वह इससे पृथक् है। मैंने बार-बार यह कहा कि उस द्वारा अवतार लेने का कुछ कारण था। (मैंने वह कहा या नहीं, इसके लिए) मेरे पहले लेख को पलट कर देख लीजिए।

ईश्वर की शक्ति की सीमा है; इसका अर्थ यह है कि वह कोई बात अपने व्यक्तित्व के विरुद्ध नहीं कर सकता। हम दावा करते हैं कि हमारे भी सभी के शरीर में प्रकाश होता है और सब कार्यों के लिए उसने एक परिपूर्ण आदर्श दिया है। मनुष्य के लिए उसका तेज सूर्य, चांद और सितारों से अधिक है। वचन का अर्थ यह है कि वह ईश्वर का प्रकट करने वाला हुआ। जैसे कि वचन मनुष्य के मतलब (आशय) को प्रकट करता है उसी प्रकार मसीह से अवतार ईश्वर के मतलब को प्रकट करते हैं।

अब देखिये कि लोग बाइबिल को कितनी तत्परता से पकड़े हुए हैं और सभ्य-शिक्षित जातियां इस पुस्तक को किस प्रकार पकड़े हुई हैं। पच्चीस सोसाइटियां इस को छपवाती हैं। (अब तक) २०० भाषाओं में इसको प्रकाशित किया गया है। नमूने के लिए दो ही सोसाइटियों का काम देख लीजिये। एक ने इंगलिस्तान में एक वर्ष में २२ लाख ६६ हजार एक सौ तीस प्रतियां छपवाईं। अमरीका में एक सोसाइटी के पास (बाइबिल के) छापने के लिए ही सत्तर बड़ी-बड़ी मशीनें हैं, चार सौ कार्यकर्ता हैं। उसमें बीस हजार पांच सौ प्रतियां एक दिन में तैयार होती हैं। एक वर्ष में सात लाख पचास हजार प्रतियां बांट दीं। एक वर्ष का व्यय १२ लाख चौरासी हजार रुपया है। यह एक वर्ष का काम हुआ। (फिर) कौन कह सकता

है कि (लोग) इस पुस्तक को नहीं मानते । सो मैंने सिद्ध कर दिया कि ईश्वर का देह धारण करना सम्भव है; बुद्धि से परे नहीं है, सर्वथा उचित प्रतीत होता है । इसका महत्त्वपूर्ण कारण मैंने वर्णन कर दिया और इस पुस्तक का वचन सत्य निकलता है ।

हस्ताक्षर—**टी० जे० स्काट साहब**

विषय : ईश्वर पाप को क्षमा भी करता है । (ता० २७ अगस्त, सन् १८७९)

पादरी टी० जे० स्काट साहब—यह दावा नहीं है कि ईश्वर दण्ड नहीं देता । वह दण्ड भी अवश्य देता है परन्तु केवल यह अभिप्राय है कि वह समय-समय पर उसको जैसा कि उसको उचित प्रतीत होता है, मनुष्य की उन्नति के लिए पाप क्षमा कर सकता है । जब कोई ईश्वर है और वह सगुण भी है और उसमें नाना प्रकार के गुण हैं; तो यह अवश्य समझना चाहिये कि वह हम को देखता है, हमारी चिन्ता करता है; हमारी उन्नति चाहता है, हम को सुधारना चाहता है । इस प्रकार यह हमारा कोई अनुचित दावा नहीं है ।

बहुत-सी बातों में हम ईश्वर के समान हैं । अर्थात् हम धर्म की बातों को, जैसे कि न्याय और अन्याय आदि हैं, जानते हैं । ईश्वर में नाना प्रकार के गुण हैं जैसे कि न्याय, प्रेम, दया आदि सो ये मनुष्य में भी पाये जाते हैं । जब हम इस बात पर विचार करें कि जब अधिकतर बातें हम में और ईश्वर में एक ही हैं तब हम ईश्वर के व्यक्तित्व को किसी मात्रा में तो पहचान ही सकते हैं । यह समझना चाहिये कि हमारे साथ ईश्वर का ऐसा सम्बन्ध है जैसा कि हम आपस में रखते हैं अर्थात् ईश्वर हमारा शासक है; हम पर शासन करता है; वह हमारा पिता है । उसने हम को उत्पन्न किया, हमारा पालन और देखभाल करता है । ज्यों-ज्यों हम इन बातों पर ध्यान देते जाते हैं, त्यों-त्यों ईश्वर के विषय में अधिकाधिक जानते जाते हैं । ध्यान दीजिये कि वेद और धार्मिक पुस्तकों में ईश्वर के साथ शासक और पिता आदि सम्बन्धों का उल्लेख मिलता है । अब सोचना चाहिये कि धार्मिक पुस्तकों में जो यह उल्लेख है तो इसमें कुछ न कुछ हमारा मतलब हमें समझाने के लिए है । वह यह कि हम समझें कि जैसे ये शासक और पिता आदि के सम्बन्ध हैं उनके समान ही हमारे साथ ईश्वर का कुछ सम्बन्ध है । अब विचारना चाहिये कि शासक और पिता आदि का क्या काम होता है ? ये निस्सन्देह दण्ड देने वाले हैं, और इसमें भी कुछ सन्देह नहीं है कि दण्ड देने का एक प्रयोजन यह है कि दण्डित का सुधार हो और दूसरों को नसीहत मिले । हम और आप यह भी कहते हैं कि दण्ड को शीघ्र छोड़ना चाहिये । परन्तु देखिये कि यद्यपि शासन का उद्देश्य शिक्षा देना होना चाहिये, फिर भी क्षमा होती ही है ।

हस्ताक्षर—**टी० जे० स्काट साहब**

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी—पादरी साहब का ऐसा दावा था कि ईश्वर पापों को क्षमा भी करता है, क्षमा कर सकता है, उनके ये शब्द नहीं थे । तो फिर पादरी साहब ने दूसरी प्रकार से क्यों कहा ? और यह कहा कि दण्ड भी अवश्य देता है । ये बातें परस्पर विरुद्ध हैं । क्या आधा दण्ड देता है और आधा क्षमा करता है या कुछ न्यूनाधिक ? जैसे ईश्वर सब बातें जानता है वैसे ही जीव लोग जानते हैं या न्यूनाधिक ? जैसे हमारे बीच में न्यायाधीश न्यायकारी और अन्यायकारी भी होता है क्या वैसा ही ईश्वर है या वह केवल न्यायकारी है ? जो न्यायकारी है, तो क्षमा करना कहां रहा ? क्योंकि न्याय इसका नाम है कि जिसने जितना, जैसा कर्म किया उसको उतना वैसा ही फल देना । जो वे ईश्वर को कुछ जानते हैं तो मैं उनसे पूछता हूं कि ईश्वर की सब बातों में ऐसी ही रीति है या कुछ-कम अधिक ? मैं भी मानता हूं कि ईश्वर के साथ हमारा राजा और पिता का सम्बन्ध है परन्तु क्या (वह सम्बन्ध) अन्याय करने के लिए है ? नहीं; कभी नहीं । वेदादि पुस्तकों में

क्षमा करना नहीं लिखा है। न्याय करने में ईश्वर का क्या प्रयोजन है? न्यायाधीश और सभा आदि के दण्ड सुधारने के लिए होते हैं या उनका कुछ और प्रयोजन है? यदि ईश्वर क्षमा करता है तो कौन कौन काम क्षमा करता है और कौन कौन नहीं? यदि वह क्षमा करता है तो ईश्वर पाप का बढ़ाने वाला बनता है, क्योंकि इस प्रकार पाप करने में जीवों का उत्साह बढ़ता है। जब परमात्मा सर्वज्ञ है तो उसके न्याय आदि गुण भी भ्रान्तिरहित हैं। इसलिए जब परमेश्वर अपने कर्म-स्वभाव के विपरीत काम नहीं कर सकता तो न्याय के प्रतिकूल क्षमा क्यों कर सकेगा? ईश्वर जो दयालु है तो दया का भी वही प्रयोजन है जो कि न्याय का है। क्षमा करना दया नहीं। जैसे किसी डाकू को कोई दयापूर्वक क्षमा कर दे तो क्या वह दयालु गिना जावेगा? कभी नहीं, क्योंकि उसने तो जीवों को दुःख पहुंचाया था। और जब उस को क्षमा कर दिया जायेगा तो बड़े उत्साह के साथ वह और भी डाके मारेगा। इसलिए दया का भी और ही अर्थ है, जो पादरी साहब जानते हैं, वह नहीं है।

हस्ताक्षर—**दयानन्द सरस्वती**

पादरी स्काट साहब—पंडित जी शीघ्रता न करें। बेईमानी पर कमर बांधने का मेरा लक्ष्य नहीं है। जब ईश्वर क्षमा करता है तो उसमें 'सकता या नहीं सकता' की चर्चा, प्रथम तो इसलिए की कि इससे क्षमा करने की सम्भावना प्रतीत होती है। निस्सन्देह आगे चलकर हमारा पक्ष यह है कि वह करता है। हम नहीं कह सकते कि वह कहां तक दण्ड देता है और कहां तक क्षमा करता है। यह (जानना तो) उसी का काम है, हमारा नहीं है, परन्तु वह सर्वज्ञ है, हम लोगों के समान भूल कभी नहीं करता। हम लोग अपनी बातों में भूल भी करते हैं। ईश्वर अपनी अच्छी बातों में (उसकी तो सभी बातें अच्छी हैं) भूल कभी नहीं करता। ईश्वर सब कुछ जानता है। हम सब कुछ नहीं जानते। उसको क्षमा करने में, निस्सन्देह भेद (कुछ रहस्य की बात) है क्योंकि क्षमा करना सदा गूढ़ या जोखों का विषय होता है। ईसाई लोग दावे से कहा करते हैं कि बिना किसी मध्यवर्ती के और बिना कोई भेंट लिए ही वह क्षमा करता है परन्तु जब वह दयालु है और न्यायकारी भी है तो यह बिलकुल एक ही बात है अर्थात् न्याय और दया एक ही बात है। न्यायपूर्वक सोचिये, उसकी दया का प्रयोजन कोई वह अवश्य होगा जो कि न्याय में (उस समय) नहीं है। वेद में अवश्य लिखा है कि ईश्वर क्षमा करता है। देखिये, अब मैं यहां पर म्योर महोदय की एक पुस्तक का प्रमाण देता हूं, उसमें लिखा है कि 'अदिति[६२] पाप को क्षमा करती है'। पंडित जी कहेंगे कि यह अनुवाद अशुद्ध है। अंग्रेजी जानने वालों का कर्त्तव्य है कि वे म्योर साहब आदि की पुस्तकें[६३] देखकर न्याय करें। मैं यह पूछता हूं कि क्या क्षमा का विचार वेद वालों को बिलकुल आया ही नहीं? या क्या वे क्षमा का तात्पर्य ही नहीं जानते थे और क्या क्षमा करना भूल है। मैं सिद्ध करूंगा कि समय-समय पर क्षमा करना बड़ा अच्छा काम होता है। इसको संसार में से निकाल दो तो संसार का विचार बहुत बिगड़ जावेगा। प्रत्येक व्यक्ति अनुमान से यह जानता है कि नहीं कि क्षमा के भी संसार में बड़े-बड़े अच्छे परिणाम होते हैं।

यह कहना कि क्षमा करने से पाप बढ़ जाता है, ठीक है; तभी जब कि क्षमा सदा ही क्षमा हो दण्ड कभी हो ही नहीं। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि कुछ अवस्थाओं में किसी भी रूप में क्षमा न करना चाहिये; जैसा कि डाकुओं आदि के विषय में परन्तु सभी विषय ऐसे नहीं हैं कि हम क्षमा को संसार में से सर्वथा दूर कर दें। जो अनादि है और न्यायकारी है, वह जानता है कि क्षमा और दया कब करनी चाहिये। आगे चलकर मेरा दावा होगा कि क्षमा करने से पाप छूट भी जाता है और दण्ड देने से कभी-कभी पाप बढ़ भी जाता है और इस प्रकार से मनुष्य और भी निडर और बड़ा शैतान हो जाता है।

हस्ताक्षर—**पादरी टी० जे० स्काट साहब**

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी—दावे के जो शब्द हैं अर्थात् जिस पर पहले पहल प्रतिज्ञा की थी, उससे भिन्न कथन करना न्यायशास्त्र की रीति से दावे का खारिज होना है इसको 'प्रतिज्ञान्तर' कहते हैं। पादरी साहब ने कहा कि मूल दावा

वही है कि ईश्वर पापों को क्षमा भी करता है । इससे यह सिद्ध हुआ कि पादरी साहब के लिए उचित यही था कि वे ऐसे अवसर पर वास्तविक दावे को सिद्ध करें । मैं पूछता हूं कि जितने अंश में क्षमा करना पादरी साहब मानते हैं, उसको भी ठीक-ठीक जानते हैं या नहीं या उसमें भी सन्देह है ? क्या आपके मत में ईश्वर डाकू आदि को क्षमा नहीं करता आप डाकू आदि को क्षमा करने का उपदेश नहीं करते ? यदि ईश्वर किसी मध्यवर्ती के द्वारा क्षमा करता है तो वह पराधीन सिद्ध होता है वह किस मध्यवर्ती की सहायता लेता है ? अपने आप की या किसी दूसरे की ? यदि कहो कि अपने आपकी सहायता है तो यह झूठ है और यदि कहो कि किसी दूसरे की है तो फिर ईश्वर स्वतन्त्र नहीं रहा । पादरी साहब ने जो कहा कि 'अदिति' पाप को क्षमा करती है—यह वेद में लिखा है, तो मैं पूछता हूं कि अदिति किसका नाम है ? क्षमा करना तो चारों वेदों में कहीं भी नहीं लिखा । जब क्षमा करना ही निरर्थक है तो ऐसी असत्य बातें वेद में क्योंकर होंगी ? बड़े आश्चर्य की बात है कि अंग्रेजी जानने वाले संस्कृत भाषा के वेदों का सिद्धान्त निश्चित करें । यह तो ऐसी बात है जैसे कोई संस्कृत पढ़कर अंग्रेजी भाषा का सिद्धान्त निश्चित कर दे ।

जो माता-पिता आदि क्षमा करते हैं ज़ैसा कि पादरी साहब का कथन है तो वे भी पूर्णतया क्षमा करते हैं या कुछ-कुछ, तो भी ठीक नहीं क्योंकि पाप करने से माता-पिता के आत्मा क्या अपने लड़कों पर प्रसन्न होते हैं ? यदि हां, तो फिर वह उनको घुड़कते क्यों हैं ? यही दण्ड है । जब बालक समर्थ हो जाते हैं और पांच वर्ष से उनकी आयु अधिक हो जाती है तो बहुतों के माता-पिता साधारण अपराध भी क्षमा नहीं करते । जो कहें कि करते हैं तो बहुत से माता-पिता और लड़कों में कभी-कभी वैर क्यों होता है ? इससे पादरी साहब का दृष्टान्त मिथ्या है क्योंकि सारे माता-पिता क्षमा करते तो उपमा ठीक रहती । आपके मतानुसार शैतान ने बहुत पाप किये हैं परन्तु ईश्वर ने उसको आजतक कोई दण्ड दिया या नहीं और आगे देगा या नहीं ? जब शैतान को बनाया तो वह पवित्र था । फिर जब उसने पाप किया तो ईश्वर ने उसको क्षमा क्यों नहीं किया और आगे करेगा या नहीं ?

हस्ताक्षर—**दयानन्द सरस्वती**

पादरी स्काट साहब—हमारे विद्वान् और प्यारे मित्र स्वामी दयानन्द जी घबरायें नहीं । मैं विषय से दूर नहीं जाऊंगा परन्तु मुझको अधिकार है कि मैं अपनी युक्ति की नींव जिस प्रकार चाहूं, रखूं । पहले बुद्धि से यह सिद्ध करता हूं कि क्षमा की सम्भावना है । फिर आगे चलकर देख लेना पुस्तकीय प्रमाणों से यह सिद्ध करूंगा कि यह आधार ठीक है या नहीं अर्थात् मूल दावा बुद्धि के अनुकूल है या नहीं, फिर इसकी चर्चा न करूंगा । इस वार्तालाप में मैं तीन प्रकार की युक्तियों का प्रयोग कर रहा हूं—बौद्धिक, पुस्तकीय और अनुभवसिद्ध । वह डाकू का उदाहरण इस प्रकार से है कि शासन की दृष्टि से डाकू को क्षमा करना अच्छा नहीं है परन्तु कौन नहीं जानता कि कभी-कभी डाकुओं को क्षमा करने से बड़ा अच्छा परिणाम निकलता है । उदाहरणार्थ—योहन्ना रसूल ने एक व्यक्ति को गिर्जा में सम्मिलित किया । पीछे वह डाकू गिर्जा से निकल गया, जंगल में भाग गया और बड़े डाकुओं का काम करने लगा । योहन्ना रसूल उसको खोजने गया । पहले डाकू ने उसको मार डालना चाहा । योहन्ना रसूल उस समय वृद्ध था, उससे न डरा उसके पास गया और कहा कि मैं बूढ़ा आदमी हूं, मुझको क्यों मारता है ? डाकू का दिल टूट गया और रोने लगा । उसने सभी डाकुओं को छोड़ दिया और योहन्ना के साथ चला आया । फिर वह एक बड़ा उत्साही और श्रेष्ठ पुरुष बना और उसने फिर कभी अपराध नहीं किया, प्रत्युत संसार में अत्यन्त उत्साहपूर्वक श्रेष्ठ कार्य करता रहा । डाकुओं आदि के विषय में, यह सम्भावना रहती है कि हम क्षमा कर दें, तो ईश्वर भी क्षमा कर देता है और यह भी हो सकता है कि ईश्वर क्षमा करे तब मनुष्य में क्षमा करना है । मन का जानने वाला वही है । ईसाइयों का दावा यह है कि निष्कलंक अवतार ईसामसीह की मध्यवर्तिता से इस संसार में (मनुष्यों के पाप) क्षमा करने की व्यवस्था है ।

मैं पंडित जी से पूछता हूं कि 'अदिति' का अर्थ क्या है ? म्योर साहब की पुस्तक की मैंने जो चर्चा की उससे स्वामी जी जल्दी में कोई बात उलटी न समझें । मैं मूर्ख नहीं हूं । मेरा अभिप्राय यह है कि म्योर साहब की पुस्तक यद्यपि अंग्रेजी में है परन्तु उसमें वेद के संस्कृत-श्लोक भी भरे हुए हैं । परन्तु अंग्रेजी जानने वाले म्योर साहब की युक्तियां अंग्रेजी में भी देख सकते हैं और अपनी संस्कृत में भी समझ सकते हैं ।

शैतान का वृत्तान्त हम नहीं जानते । कदाचित् उसे बीस बार क्षमा किया हो और अब उसके लिए क्षमा की आशा नहीं, यह कौन जानता है । परन्तु हम इतना कहते हैं कि आज शैतान विवादास्पद विषय नहीं है । मैं पंडित जी से यह पूछता हूं कि क्या क्षमा कभी नहीं होनी चाहिये और क्या यह शब्द सर्वथा एक झूठा शब्द है ? इसको कोष में नहीं होना चाहिये ? क्या मनुष्य के हृदय में क्षमा की कामना कभी नहीं होती ? क्या इस शब्द का संसार में कोई काम नहीं है ? पंडित जी इस बात पर विचार करें ।

हस्ताक्षर—**स्काट साहब**

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी—मैं कब घबराया हूं जो आपने कहा कि घबरावें नहीं ? जब पहले कहा कि ईश्वर पापों को क्षमा करता है और अब कहा कि कर सकता है तो क्या यह बात परस्पर विरुद्ध होने से प्रतिज्ञा-हानि नहीं है ? युक्ति, शास्त्रप्रमाण और अनुभव आप्त लोगों का सच्चा होता है, सब का नहीं । जब डाकू का कहीं-कहीं क्षमा करना अच्छा है तो आजकल की सरकार को भी चाहिये कि किसी-किसी अवसर पर डाकुओं को क्षमा करे । योहन्ना के क्षमा करने से क्या क्षमा के योग्य हुआ ? उसने भय से, मृत्यु भय से अथवा किसी स्वार्थवश क्षमा किया होगा तो क्या उसने यह काम अच्छा किया ? जब तक उसने डाके डालना न छोड़ा तब तक अपने साथ क्यों न रखा ? जो कहो कि क्षमा करने पर साथ लिया तो यह बात सत्य नहीं है क्योंकि जब उसने डाके डालने का काम छोड़ दिया, अच्छा काम करने लगा, वह भला बन गया और उसके डाका मारने का और भला काम करने का-दोनों कामों का ही फल ईश्वर देता है । जब पादरी साहब का यह दावा था कि ईश्वर पापों को क्षमा भी करता है तो उसके विरुद्ध पादरी साहब ने स्वयं यह कहा कि जब कभी हम क्षमा करते हैं तो ईश्वर क्षमा नहीं करता और जब हम क्षमा नहीं करते तो ईश्वर क्षमा करता है ।

पादरी साहब ने जो मुझ से 'अदिति' का अर्थ पूछा सो इसके अर्थ पृथिवी, अन्तरिक्ष, माता, पिता और ईश्वर आदि हैं । जैसे किसी हल जोतने वाले के सामने या किसी दूसरी विद्या वाले के सामने रत्नों की या अन्य किसी विद्या की बात करे, तो (वैसा करना) क्या निरर्थक नहीं है ?

जो शैतान का पाप क्षमा नहीं होगा तो आपका दावा शैतान को क्षमा करने के विषय में अटक गया ।

क्षमा शब्द किसी और मुहावरे के लिए है । दण्ड तो दिया जाता है परन्तु जैसा समर्थ को दिया जाता है वैसा असमर्थ को नही दिया जाता । उदाहरणतया, पागलों को पागलखाने में भेजा जाता है । जो ईश्वर ईसा की सहायता से क्षमा करता है तो क्या वह इस प्रकार खुशामदी नहीं सिद्ध होता है ? क्या आप ईश्वर के सामने भी वकील आदि की आवश्यकता समझते हैं ? क्या उसको सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक नहीं मानते ? और यदि ईसा की सहायता से आप क्षमा करना मानते हैं तो ईसा के किए हुए पापों की क्षमा किसके माध्यम से होती है ?

हस्ताक्षर—**दयानन्द सरस्वती**

पादरी स्काट साहब—अब यहां पर इस बात पर ध्यान देना उचित है कि क्षमा करना दूसरी बात है और हृदय को पवित्र करना दूसरी बात है । इस कारण मनुष्य की क्षमा और ईश्वर की क्षमा में तनिक अन्तर है । जब मनुष्य तोबा करे

(भविष्य में पाप न करने की दृढ़ प्रतिज्ञा करे) और उस नियम पर चले जो उसके लिए नियत है तो ईश्वर उसको क्षमा कर देता है और उसके हृदय को पवित्र भी करता है । मेरा अभिप्राय यह है कि सम्भव है कि ईश्वर ने किसी को क्षमा किया हो और उसके हृदय को पवित्र भी किया । परन्तु मनुष्य के शासनाधिकार तथा धर्मशास्त्र के कारण, (बने) कानूनों के दृष्टिकोण से वह क्षमा प्राप्त नहीं करता । क्षमा का लाभ इसमें प्रतीत होता है कि बीसियों युक्तियां जानने वाले जानते हैं कि क्षमा कर देने का परिणाम बहुत अच्छा निकलता है । पक्षपात और झगड़ा करके कोई इन्कार करे तो करे । पंडित जी का यह दावा है कि ईश्वर किसी को बिना दण्ड दिये नहीं छोड़ता परन्तु योहन्ना ने उस डाकू को दण्ड नहीं दिलाया, क्षमा किया । हमारा यह दावा है कि ईश्वर भी जब उसको उचित प्रतीत होता है, क्षमा करता है जैसा कि पवित्र पुस्तक में लिखा है । पंडित जी ने 'अदिति' के अर्थ परमेश्वर भी किये हैं और म्योर साहब का दावा है कि यह अदिति वेद के वचनानुसार पापों को क्षमा भी कर देती है । यदि शैतान को अब तक क्षमा नहीं किया गया तो यह बात मेरे दावे कें विरुद्ध नहीं है, क्योंकि 'भी' शब्द मेरे दावे में मौजूद है जिसका अर्थ है समय-समय पर क्षमा और समय-समय पर दण्ड । पंडित जी का दावा यह है कि ईश्वर कभी क्षमा नहीं करता और 'क्षमा' शब्द को संसार से निकाल दिया जाये । यदि ईश्वर एक पाप भी क्षमा करे तो मेरा दावा सत्य सिद्ध हो जाता है क्योंकि सब पापों के सम्बन्ध में मेरा दावा नहीं है जैसा कि 'भी' शब्द पता देता है ।

ईसा की मध्यवर्तिता का विषय यहां उपस्थित नहीं है, इसलिए इस रहस्य में मैं हस्तक्षेप नहीं करता । हमारे लिए तो इतना ही सिद्ध करना पर्याप्त है कि किसी वसीले से पाप क्षमा होता है । उदाहरणार्थ, औषधि से दर्द मिट गया, हम औषधि को नहीं जानते तो इसमें क्या हानि है, दर्द तो मिट ही गया, इसी प्रकार क्षमा होने की भी शर्त है ।

अब शास्त्रीय प्रमाण लीजिए । अब इस वचन पर विश्वास करने के लिए विषय में मैं अधिक कुछ नहीं कहता । जो लोग इस विषय में जानना चाहें और प्रमाण पूछें, वे कल के लेख पर विचार करें और तौरेत में खरुज की किताब अध्याय ३४ आयत ८ तथा गिनती की किताब में अध्याय १४ आयत १८ को देखें ।

हस्ताक्षर—**स्काट साहब**

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी—क्षमा करना पवित्र होना है या नहीं ? क्या क्षमा पवित्र होने के लिए है या पवित्र होना क्षमा करने के लिए है ? जो कहें कि (क्षमा) पवित्र होने के लिए है तो ठीक नहीं क्योंकि, क्षमा करने से पाप की निवृत्ति संसार में देखने मे नहीं आती और जो अशुद्ध होने के लिए क्षमा करना है तो क्षमा करना ही निरर्थक है । जब हमारा और ईश्वर का क्षमा करना पृथक्-पृथक् है तो आपने पहले क्यों कहा था कि हम दयालु हैं और ईश्वर के तुल्य हैं । यदि ईश्वर के सामने क्षमा कराने वाला योहन्ना है तो ईश्वर खुशामदी और बेसमझ ठहरता है । क्या योहन्ना मनुष्य नहीं था कि जिसने क्षमा किया । क्या योहन्ना राजा था ? वह ईश्वर या राजा नहीं था यह मै जानता हूं ।

पुनश्च; दण्ड देने से न्याय को वह छोड़ता नहीं है और छोड़ता भी है, ये दोनों बातें परस्पर विरुद्ध हैं । मनुष्यों के राज्य के विषय में पादरी साहब ने जो यह कहा कि कानून की पाबन्दी होने के कारण डाकुओं को क्षमा नहीं किया जाता । तो मैं पूछता हूं कि क्या ईश्वर के घर में कानून की पाबन्दी नहीं है और अन्धेर है ? क्या ईश्वर सर्वज्ञ नहीं है जो योहन्ना के फुसलाने या खुशामद करने से क्षमा करने पर राजी हो गया ? ईश्वर की सर्वज्ञता ऐसी बातों से नष्ट हो जाती है । जो पादरी साहब ने कहा कि ईश्वर कभी-कभी न्याय से दण्ड देता और कभी-कभी क्षमा भी कर देता है, यह बात ऐसी ही मिथ्या है जैसे कोई कहे कि अग्नि कभी-कभी गरम और कभी-कभी ठंडी हो जाती है । जो यह बात कही कि आज ईसामसीह विवाद का विषय नहीं है तो ईसामसीह को बीच में लाने वाले आप ही हैं क्योंकि आप ही ने ईसा की मध्यवर्तिता द्वारा पापों का क्षमा होना कहा था । यहां मैं पूछता हूं कि ईसा जीव था या ईश्वर ? जो कहें कि जीव था तो सभी मनुष्य जीव होने के कारण,

ईश्वर के सामने समर्थन देने और दिलाने के अधिकारी हो गये । फिर आप एक ईसा का ही नाम क्यों लेते हैं ? यदि वह ईश्वर था तो अपने आप अपना वसीला कभी नहीं बन सकता । जो कहें कि उसमें जीवात्मा और परमात्मा दोनों थे तो दोनों के क्या-क्या काम थे और दोनो साथ-साथ थे या पृथक्-पृथक् ? जो कहें कि पृथक्-पृथक् तो व्याप्य-व्यापकता नहीं रही । जो कहें कि व्याप्य-व्यापकता है, तो ईसा में और उन जीवों में क्या अन्तर है ? जो कहें कि वह विद्या पढ़ा हुआ था तो भी ठीक नहीं क्योंकि इंजील के लेख से विदित होता है कि वह विद्वान् नहीं था परन्तु एक साधु पुरुष था । जो लोग ईसा को मानते हैं उनके कथनानुसार जब यहूदियों ने ईसा को फांसी पर चढ़ाया तब उसने ईश्वर से प्रार्थना की कि तूने मुझे क्यों छोड़ दिया । ऐसी बातों से प्रकट है कि उसमें केवल जीव ही चेष्टा करने वाला था, ईश्वर नहीं किन्तु ईश्वर तो जैसे सब में व्यापक है, वैसे ही उसमे भी था । जो कहें कि उसने मुर्दों को जिलाया, अन्धों को आंखें दीं, कोढ़ियों को चंगा किया, भूत निकाले, इसलिए वह ईश्वर था तो मैं कहता हूं कि ये बातें प्रत्यक्ष आदि प्रमाण और सृष्टिक्रमादि से विरुद्ध होने से विद्वानों के मानने योग्य न कभी थीं, न हैं ओर न होंगी । ये बातें पौराणिकों के समान हैं । पक्षी बोला । मछली, पशु, हाथी आदि मनुष्य की बोली बोले । जैसा कि तौरेत में लिखा है कि गधे मनुष्य की बोली बोले; क्या इन बातों को कोई विद्वान् मान सकता है अथवा किसी विद्यावान से मनवा सकता है ।

जो यह कहा कि जैसे औषधि खाने से रोग छूट जाता है वैसे पापों को क्षमा करता है तो क्या औषधि का नियम से सेवन करना, पथ्य करना, वैद्य के कहने के अनुसार चलना, अपनी इच्छा से न चलना, यह दण्ड नहीं है ?

अब तीन दिन तक मुझ में और पादरी साहब में बातें हुईं, उनके विषय में अपनी बुद्धि के अनुसार मैं समझता हूं कि पुनर्जन्म सम्बन्धी मेरे दावे का खंडन करने और अपने दोनों दावों को सिद्ध करने तथा मेरी युक्तियों और आक्षेपों का उत्तर देकर अपने दावे का मंडन करने में पादरी साहब सफल नहीं हुए और उन्होंने इस सम्बन्ध में कोई ठीक और पक्की युक्ति नहीं दी ।

हस्ताक्षर—**दयानन्द सरस्वती**

पादरी स्काट साहब—अब ध्यान देने वाले ध्यान दें कि इस लिखाई के बीच शास्त्रार्थ के नियमों के विरुद्ध कुछ बातें कहीं गई हैं और वे लिखी नहीं गई हैं । बात वही हुई जिसको लेकर झगड़ा हुआ अर्थात् केवल अर्थ मिलाने के लिए मैं एक वाक्य सुनाना चाहता था परन्तु मैंने यह आवश्यक न समझा कि लिखने वाले से उसे लिखने के लिए भी कहूं । सो अब संकेत देते समय केवल संकेत लिखवाऊंगा और सन्दर्भ का कुछ विचार न करूंगा । देखने वाले पीछे इस स्थल को निकाल कर देख लें । केवल यह लिखवा दूंगा कि किस उद्देश्य से उद्धरण देता हूं ।

पंडित जी का यह कहना कि मेरी युक्ति पक्की नहीं है और मैंने यह-यह सिद्ध किया, इत्यादि, इसमें कुछ सार नहीं है । मैं भी इसी प्रकार कह सकता हूं । अब यह सुनने वालों का काम है कि सब बातों को देखकर स्वयं न्याय करें । यह भी स्मरण रखना चाहिए कि मैं यह नहीं चाहता कि इस विषय में किसी प्रकार का पक्षपात किया जावे । मेरा पक्षपात भी न होना चाहिए ।

पंडित जी ने इसका कुछ उत्तर नही दिया कि 'क्षमा' शब्द को संसार से निकाल क्यों नहीं देते । यह केवल एक झूठा और दोषयुक्त शब्द है और इससे हानि ही होती है । निस्सन्देह मैं यह कहता हूं कि ईश्वर की क्षमा मनुष्य की क्षमा के समान है क्योंकि मैंने कहा है कि वह रहस्यों का जानकार है और क्षमा के ठीक अवसर को पहचानता है और क्षमा के नियम भी जानता है । परन्तु मनुष्य चूक जाता है । अव्यवस्था ईश्वर के घर में तो नहीं परन्तु संसार में है क्योंकि देखो

कितना पाप, अन्याय, घमण्ड, रक्तपात और करोड़ों प्रकार के दोष संसार में हैं। पंडित जी नहीं मानेंगे, एक प्रकार की अव्यवस्था संसार में है। अंग्रेजी सरकार ने इसका प्रबन्ध किया है और ईश्वर भी इसका प्रबन्ध करेगा।

मैं निस्सन्देह मसीह के विषय में कोई बात न करूंगा केवल इतना ही कहता हूं कि इस पवित्र पुस्तक में जिसको क्षमा करना लिखा है, वह उसी के वसीले से (मिलती) है। यह दर्द की चर्चा तो है परन्तु दर्द का विवरण नहीं है कि वह कहां और कैसे-कैसे है? जब कभी इस विषय पर बातचीत होगी तो देख लेंगे। मेरी केवल यही युक्ति है कि धर्मपुस्तक से विदित होता है कि क्षमा होती है और तोबा से भी ज्ञात होता है कि क्षमा होती है। जानने का उपाय करना और बात है और ईश्वरीय वचन का इस प्रकार उपहास करना आदि पंडित जी को उचित प्रतीत होता है और वे प्रत्येक बात को उलटा समझना चाहते हैं तो वे जानें। वेद की अनेकानेक बातों के बारे में यहां पर कुछ नहीं कहता। अब इन उत्तरों को देख लीजिए, गिनती की पुस्तक अध्याय १४, आयत १८ का अर्थ यह है कि ईश्वर पाप क्षमा करता है।

लूका की इंजील अध्याय ९, आयत ४ तथा अध्याय १५, आयत १० और योहन्ना का पहला पत्र अध्याय १, आयत ९ का अर्थ यह है कि पाप क्षमा होता है। फिर मसीह ने अपने शिष्यों को समझाया कि अपनी प्रार्थना में इस प्रकार बोलो कि 'हे ईश्वर, हमारे पापों को क्षमा कर।'

अब अनुभवसिद्ध युक्तियां देख लीजिए। अनुभव बहुत श्रेष्ठ कार्य है। जैसी पक्की अनुभव की युक्ति है वैसी पक्की कोई और युक्ति नहीं। मनुष्य कह सकता है कि मेरा पाप क्षमा हो, और बातें मिथ्या हैं। क्योंकि जैसे पंडित जी ने स्वयं एक उदाहरण में कहा कि पापी को दण्ड मिलेगा। वही पाप भी है। फिर तोबा तोबा कहा तो भी वही पाप मौजूद है फिर ईश्वर के पुत्र का नाम लिया, तब भी पाप वर्तमान है। मैं जानता हूं कि मनुष्य झूठा दावा कर सकता है। कल्पना करो कि वे सच्ची तोबा करके श्रेष्ठ मार्ग पर आ जावें और देख लें कि अब वह बात नहीं है, मन को सन्तोष है, शान्ति है, जो वस्तु है प्रकाशमय है, सन्देह नाममात्र नहीं। अब सभझ लीजिए कि ऐसे हजारों मनुष्य संसार में हैं कि जिनका यही अनुभव है। देख लिया कि निस्सन्देह ईश्वर ने मेरे पाप को मिटा दिया। अब वे प्रसन्न हैं, वह आशंका और भार हृदय पर नहीं है। बुराई की इच्छा भी मन में नहीं है। एक क्षण में हृदय बदल गया।

मैंने इंजील का प्रमाण प्रस्तुत किया, यह कह देना सरल है कि यह मिथ्या बात है परन्तु जानने वाले जानते हैं। जिसका दर्द गया वह जानता है। कदाचित् कोई कह दे कि यह धोखा है। मेरे मत के इकतालीस करोड़ ईसाई हैं, उनमें बहुत से तो झूठे हैं, यह मैं मानता हूं और उनका कथन भी मिथ्या है परन्तु सच्चे मनुष्य भी बहुत से हैं जिनका कथन सत्य है ओर उनके चालचलन से भी विदित होता है कि उनका पाप पूर्णतया मिट चुका है। यह अनुभव की बात है। मैं फिर कहता हूं कि जहां तक मन और युक्ति का सम्बन्ध है, यह बहुत पक्की युक्ति है। ऐसा नहीं कि हम केवल दावा करें, दावा तो झूठा भी हो सकता है परन्तु जिसका पाप तोबा करके पूर्णतया मिट गया क्या वह यथार्थ बात नहीं जानता? जैसे कोई पिता अपने पुत्र से क्षमा का वाक्य कहे तो क्या वह पुत्र नहीं जानता कि पिता ने मुझ को क्षमा कर दिया। मनुष्य के हृदय की यही अवस्था है।

मैंने उपयुक्त युक्तियों, शास्त्रीय प्रमाणों और अनुभव के आधार पर यह सिद्ध कर दिया कि ईश्वर पाप क्षमा करता है।

हस्ताक्षर—**स्काट साहब**

शाहजहांपुर में व्याख्यान व शास्त्रार्थ-चर्चा

(४ सितम्बर, सन् १८७९ से १७ सितम्बर, सन् १८७९ तक)

स्वामी जी यहां ४ सितम्बर को पधारे और बंगला खजांची साहब में जिसका पहले से प्रबन्ध कर लिया गया था, उतरे। उसी दिन स्वामी जी की इच्छानुसार निम्नलिखित विज्ञापन छपवा कर नगर में स्थान-स्थान पर लटकाये गये और नगर के समस्त रईसों और पंडितों की सेवा में भेजे गये।

आर्यसमाज शाहजहांपुर की ओर से विज्ञापन—(१) विदित हो कि पंडित स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज इस स्थान पर कल ४ सितम्बर, सन् १८७९ को दोपहर के समय पधारे हैं और बंगला खजांची साहब (जो मैजिस्ट्रेट साहब की कोठी के पीछे है) में उतरे हैं। जिन सज्जनों को दर्शनों की अभिलाषा हो और वार्तालाप करना चाहें, वे उक्त बंगले में पधारें।

(२) स्वामी जी के संकेत पर मिस्टर विलियम साहब बहादुर, हेडमास्टर की आज्ञानुसार सर्वसाधारण जनता की सूचना के लिए प्रकाशित किया जाता है कि गवर्नमेण्ट हाईस्कूल अर्थात् सरकारी पाठशाला में जो जेलखाने के समीप है, निम्नलिखित तिथियों में स्वामी जी का व्याख्यान होगा-**शनिवार** ६ सितम्बर; **रविवार** ७ सितम्बर; **मंगलवार** ९ सितम्बर; **बृहस्पतिवार** ११ सितम्बर; **शनिवार** १३ सितम्बर और **रविवार** १४ सितम्बर; व्याख्यान प्रतिदिन ठीक पांच बजे से ७ बजे सायं तक हुआ करेगा।

(३) व्याख्यान के समय किसी सज्जन को इस बात की आज्ञा न होगी कि वह किसी प्रकार का प्रश्न कर सके या व्याख्यान में हस्तक्षेप कर सके।

(४) हां, किसी सज्जन को यदि कोई बात पूछनी हो तो बंगले पर, जिस में स्वामी जी उतरे हुए हैं, पधार कर पूछ लें।

(५) यदि कोई हिन्दू, मुसलमान, ईसाई या और किसी का विचार शास्त्रार्थ का हो तो उचित है कि कृपा करके अपने वास्तविक अभिप्राय से इस समाज को सूचित करें ताकि उसका पर्याप्त प्रबन्ध कर लिया जावे परन्तु यह ध्यान रहे कि शास्त्रार्थ लिखित होगा; मौखिक कदापि नहीं हो सकता। शास्त्रार्थ के शेष नियम सूचना देने के समय दोनों पक्षों की सम्मति से निश्चित कर लिये जावेंगे।

(६) चूंकि बहुत से लोग स्वामी जी के चले जाने के पश्चात् इस प्रकार की बातें किया करते हैं कि स्वामी जी चले गये अन्यथा हम शास्त्रार्थ करते। इसलिए ऐसी बातों का ध्यान रखते हुए यह भी प्रकाशित किया जाता है कि जो सज्जन शास्त्रार्थ करना चाहें, आज से लेकर १४ सितम्बर तक अर्थात् इन्हीं दस दिनों के बीच में अपने हस्ताक्षरयुक्त लिखित निश्चय से इस समाज को सूचित कर अनुगृहीत करें। आगे इच्छा है। इति। प्रकाशक, **बख्तावरसिंह**

पं० अंगद शास्त्री की चिट्ठियां और उन पर समाज की टिप्पणी—हम चाहते हैं कि स्वामी जी के प्रत्येक व्याख्यान का सार यहां पर लिखें ताकि पाठक उसको पढ़ कर अपने धर्म कर्म आदि से भली भांति परिचित हों और वेदोक्त व्याख्यान को जान लें। परन्तु इससे पूर्व हम एक मुख्य बात की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करते हैं, वह यह है कि जब लोगों को स्वामी जी के यहां पधारने की सूचना मिली तो बड़ी खलबली मच गई। कुछ सज्जनों ने जिनको शास्त्रार्थ करने की इच्छा थी, पंडित अंगद शास्त्री को बुलाया। ये पंडित जी सरकारी पाठशाला पीलीभीत में पन्द्रह रुपया मासिक वेतन पर संस्कृत

और हिन्दी पढ़ाने का काम करते हैं। सन् १८७८ में दुर्भिक्ष के दिनों में उन्होंने कुछ भूखों का पालन किया था इसलिए सरकार की ओर से एक पदक भी उनको मिल चुका है। उसी वर्ष उन्होंने एक विज्ञापन भी दिया था कि अमुक दिन वर्षा होगी। संयोग से उसी दिन वर्षा हुई। हमने सुना है कि इस वर्ष भी उन्होंने यह समझकर कि कदाचित् अनुमान ठीक हो जावे, फिर विज्ञापन दिया था कि २७ अगस्त से २७ सितम्बर तक वर्षा न होगी। इस वर्ष की वर्षा का वृत्तान्त पाठकों पर भली-भांति प्रकट है कि कितनी वर्षा हुई ओर विशेष रूप से उन्हीं दिनों में; जिससे सैकड़ों-हजारों मकान गिर गये। संस्कृत और हिन्दी भाषा में आपकी योग्यता आपकी निम्नलिखित चिट्ठी से जो स्वामी जी के नाम आई, पाठकों पर भलीभांति प्रकट हो जावेगी। हम उचित नहीं समझते थे कि पंडित जी की चिट्ठियों की अशुद्धियां प्रकट करें परन्तु समाज के निश्चय से विवश हो गये। इस शास्त्रार्थ के सम्बन्ध में जो पत्रव्यवहार उक्त पंडित जी और स्वामी जी के मध्य हुआ हम उसको बिना किसी प्रकार की कमी किये हस्ताक्षरयुक्त मूल चिट्ठियों के अनुसार जो नागरी लिपि में हैं और समाज के कार्यालय में मौजूद हैं, यहां प्रकाशित करते हैं। जहां उचित समझा गया है संस्कृत शब्दों के उर्दू अर्थ भी लिख दिये गये हैं और किनारे पर मूल शब्द जैसे के तैसे अर्थात् जिस प्रकार चिट्ठियों में लिखे हैं, नागरी में लिखे जाते हैं ताकि पाठकों को अशुद्धियां समझने में कठिनाई न हो। चिट्ठियों के मूल लेख में जो अशुद्धियां हैं तथा उसमें जो बातें वास्तविकता के विरुद्ध लिखी हुई हैं, उन पर समाज की ओर से टिप्पणियां दी गई हैं—

पंडित अंगद शास्त्री जी की ओर से स्वामी दयानन्द सरस्वती जी को भेजी हुई चिट्ठी की प्रतिलिपि

श्री[1]

हरि ओम्[2]

श्रीयुत[3] दयानन्द सरव्ती समीपे स्वतमकुशलपूर्वक मद्विज्ञापनम्

आप एक अर्से से एतद्देशी मनुष्यों कू[4] अनादि ईश्वरी[5] वाक्य वेद बोधित धर्म के विरुद्ध उपदेश कर्ते[6] हो। में[7] भी शास्त्रार्थ चिकीर्षु बहोत[8] दिनों से जहां-तहां आपका आगमन सुनकर गया। प्रथम मुकाम कर्णवास श्री गंगा जी के तट

---

1. श्री शब्द यहां बिना क्रिया के व्यर्थ है।

2. ओम्' जो इस प्रकार लिखा, यह भी अशुद्ध है। 'ओ३म्' इस प्रकार चाहिये।

3. व्याकरण के नियमानुसार यह संस्कृत की पंक्ति अशुद्ध है। इस प्रकार होनी चाहिये—"श्रीयुत दयानन्द सरस्वतीनां समीपे मत्कुशलपूर्वकं मद्विज्ञापनम्।"

4. 'कू' के स्थान पर 'को' होना चाहिये।

5. केवल ईश्वर ही पर्याप्त था।

6. कर्ते हो' के स्थान पर 'करते हो'—चाहिये।

7. यह शब्द "मैं है न कि मे"

8. यह शब्द 'बहुत' है।

पर, फेर अलीगढ़; परन्तु आप वहां से किनारा[1] कर चल दिये । संवत् ३३ में बरेली नगर में आकर एक इश्तहार दिया । मैं भी अपना कारज छोड़कर बरेली आया । आपने प्रसन्नपूर्वक मुझसे शास्त्रार्थ करना स्वीकार किया । उक्त संवत् मार्गशीर्ष शुक्ल रविवार का[2] दिन बारह बजे का मकरिर[3] किया और कुल, नियम शास्त्रार्थ के भी हो गये । समस्त जन श्रवण कांक्षी[4] उनको भी प्रसिद्ध पत्र द्वारा खबर दी गई । नियुक्त समय पर पांच हजार[5] पुरुष के जमा हुए । बर वक्त शास्त्रार्थ आपने इन्कार[6] किया और वहां से चल दिये । अब आपका फिर बरेली आगमन हुआ । जब तक मैंने अपने आने का अवकाश किया आप वहां से शाहजहांपुर[7] चले आये । मैं भी अपना निहायत काम हर्ज कर कल तारीख ९ सितम्बर सन् हाल को शहाजहांपुर आया हों[8] । आप कृपा कर्के[9] शास्त्रार्थ कर लीजिये और आर्यावर्ती लोगों की प्रवृत्ति सत्यमार्ग छुड़ाकर कुपथ में न कीजिये

---

1. पंडित जी का यह लिखना वास्तविकता के विरुद्ध है । इसका विस्तृत विवरण पाठक स्वामी जी की अगली चिट्ठी अर्थात् इसके उत्तर में पावेंगे ।

2. 'का' शब्द उपयुक्त नहीं है, इस शब्द के स्थान पर 'के' होना चाहिये ।

3. उर्दू में तो यह शब्द लिखने में कुछ बन भी गया परन्तु नागरी का नहीं है । केवल यदि कोई पढ़े तो कदापि समझ में न आवे कि मकरिर क्या बला है । वास्तव में यह शब्द 'मुकर्रर' इस प्रकार लिखना चाहिये था ।

4. यह शब्द इस प्रकार लिखने चाहियें 'कांक्षियों को' ।

5. पांच हजार मनुष्यों को एकत्रित करने से स्पष्ट है कि नीयत उपद्रव कराने की थी । क्या सारे के सारे पांच हजार मनुष्य विद्वान् थे जो शास्त्रार्थ को समझ जाते । यदि नहीं तो एकत्रित करना व्यर्थ था ।

6. यह कथन पंडित जी का वास्तविकता के विरुद्ध है, आगे चलकर पाठकों पर भलीभांति प्रकट हो जावेगा ।

7. १४ अगस्त से लेकर ४ सितम्बर तक २१ दिन बरेली ठहरे । क्या पंडित जी की यह इच्छा थी कि एक ही स्थान पर बैठे रहते। प्रायः हमारे देखने और सुनने में आया है कि जहां स्वामी जी एक स्थान से दूसरे स्थान पर चले गये, तत्काल उन लोगों ने यह बात उड़ा दी कि स्वामी जी चले गये अन्यथा हम शास्त्रार्थ करने को तैयार थे । हरिद्वार में यद्यपि स्वामी जी दो महीने के लगभग ठहरे, विज्ञापनादि भी चिपकाये परन्तु किसी ने शास्त्रार्थ का नाम तक न लिया । जब वहां से देहरादून चले गये तो श्रद्धाराम फिल्लौरी ने क्या उड़ा दिया कि स्वामी जी भाग गये । अब आप ही कहिये किसी निर्मूल बात पर कैसे विश्वास किया जावे । इस प्रकार हम भी कह सकते हैं कि पंडित अंगद शास्त्री यहां से भाग गये, स्वामी जी से शास्त्रार्थ न कर सके क्योंकि स्वामी जी के जाने से पहले चले गये परन्तु ऐसी बालकपन की बात करना हमको उचित नहीं । पंडित जी यहां लगभग एक सप्ताह तक ठहरे रहे, यदि वास्तव में उनकी इच्छा शास्त्रार्थ की होती तो यह समय इस काम के लिए पर्याप्त था । बरेली में देखिये कि पादरी स्काट साहब से तीन दिन तक कैसे आनन्द के साथ शास्त्रार्थ होता रहा । हम पंडित जी के अत्यन्त आभारी हैं कि उन्होंने पीलीभीत से यहां तक आने का इतना कष्ट सहन किया और विशेषतया इस बात के कि यह चिट्ठी शास्त्रार्थ के अभिप्राय से स्वामी जी के पास भेजी परन्तु खेद केवल इतना ही है कि वास्तविक ध्येय उनका कुछ और ही रहा । यदि शास्त्रार्थ का होता तो जो-जो नियम स्वामी जी ने लिखे थे उनको स्वीकार करके शास्त्रार्थ आरम्भ कर देते । यह हठ कि खजांची साहब के बाग में या विश्रान्त घाट के बाग में एक बड़ी भीड़ के सामने ही शास्त्रार्थ हो, कदापि न करते । हम पंडित जी का यह अभिप्राय कि एक भीड़ एकत्रित हो, अब तक नहीं समझे । क्या यह सम्भव है कि शास्त्रार्थ की बातें प्रत्येक व्यक्ति समझ ले । शास्त्रार्थ की बातें तो विद्वान् और बुद्धिमान् पुरुषों की समझ में कभी-कभी आनी कठिन हो जाती हैं । फिर बताइये कि इस बड़ी भीड़ के साथ शास्त्रार्थ करना था या दंगल ।

8. यह शब्द 'हूं' है न कि हों ।

9. 'करके' इस प्रकार होना चाहिये ।

क्योंकि में[1] भी श्रीमहाराज मुक्त स्वामी जी महाराज प्रज्ञाचक्षु[६४] को आपकी समय से पूर्व का ज्येष्ठ शिष्य विद्यारूपी वंश में हों ।[2] इसी कारण आपको ऐसा लिखना हुआ । अगर आपको मुझसे शास्त्रार्थ करना है तौ[3] इस पत्रलिखित नियमों की एक नकल इसकी दस्तखती अपनी पास मुझे भेज दीजिये । अगर आप की राय में और नियम होवें तो मुझको लिखना । मुनासिब समझकर स्वीकार करूंगा ।

(१) अव्वल तो यहां पर कोई मध्यस्थ नहीं मालूम होता इसलिये बुद्धिमान् बहुत पार्सी अर्बी अंग्रेजी पढ़े हुए धर्मात्मा पुरुष दस तथा बीस बिठाय लिये जामें ।[4] अव्वल जो विषय शास्त्रार्थ में होवे उसको संस्कृत में अव्वल मैं कहूं फेर उसको आप संस्कृत में अनुवाद कर व तशदीक[5] मेरे तर्जमा भाषा करके उक्त सज्जनों को श्रवण करा देवें । इसी तरह पर आपके कथन को मैं सुना[6] दूंगा और जिस विषय के समझने को उक्त पुरुष असमर्थ होयेंगे तो वही विषय लिखकर दस्तखती उन लोगों को दिये जामें ।[7] वह जिस पंडित को श्रेष्ठ समझें उसको दिखाकर जय पराजय[8] का निश्चय कर लेमेंगे ।[9]

---

1. पंडित जी ने शब्द 'को' को 'कौ' और 'मैं' को 'में' और 'तो' को 'तौ' और 'के' को 'कै' सारी चिट्ठी में लिखा है । बार-बार इन शब्दों को ठीक करने की आवश्यकता नहीं ।

2. 'हों' का यहां कुछ अर्थ नहीं, यहां 'हूं' होना उचित है ।

3. यह शब्द 'तो' है ।

4. 'जामें' के स्थान पर 'जावें' चाहिये ।

5. 'तश्दीक' कोई शब्द नहीं; यह 'तसदीक' को बिगाड़ा हुआ है ।

6. इस नियम से स्पष्ट प्रकट है कि पंडित जी का अभिप्राय केवल यही है कि जो वाक्य स्वामी जी कहें पंडित जी उसका अर्थ उल्टा सीधा करके श्रोताओं को सुना देवें । जिस समय स्वामी जी रोकें और यह कहें कि नहीं यह अर्थ इसका नहीं तो उसी समय ये लोग जोर-जोर से बोलकर एक गड़बड़ मचा दें और यह कहकर कि 'स्वामी जी हार गये, हार गये', खड़े हो जावें और तत्काल लट्ठ और पत्थर चलवा दें जैसा कि अमृतसर में हो चुका है जिसका वृत्तान्त पाठकों ने 'आर्यदर्पण' पत्रिका में देखा होगा । यदि पंडित जी भाषा में ही बोलें तो क्या हानि है ? वह भाषा भी यदि शुद्ध हो तो बड़ी बात जाननी चाहिये । पंडित जी की संस्कृत और भाषा की योग्यता तो इस चिट्ठी से ही प्रकट है कि एक दो पृष्ठ की चिट्ठी में पचास के लगभग अशुद्धियां हैं । आश्चर्य केवल यही है कि जब पंडित जी सरकारी पाठशाला पीलीभीत के संस्कृत के अध्यापक होकर ऐसी ऐसी प्रकट अशुद्धियां करते हैं तो वहां के दीन छात्रों की तो क्या दशा होती होगी । कदाचित् इस नियम से पंडित जी का यह अभिप्राय हो कि स्वामी जी की संस्कृत की योग्यता को जांचें तो स्वामी जी ने बहुत से ग्रन्थ बनाये हैं और वेदभाष्य संस्कृत और भाषा में प्रतिमास छपता है, उस को देखें और जांचें । यदि कहीं अशुद्धि हो तो निकाल कर प्रकट करें । इस अवसर पर यह वर्णन करना भी उपयुक्त होगा कि पंडित महेशचन्द्र न्यायरत्न कलकत्ता निवासी और पंडित गुरुप्रसाद लाहौरी ने जो पुस्तकें वेदभाष्य के खण्डन में बनाई हैं, उनका उत्तर स्वामी जी ने अत्यन्त श्रेष्ठता के साथ लिख दिया है और हमारे पास विद्यमान है । परमेश्वर ने चाहा तो एक मास के भीतर छपकर तैयार हो जावेगा ।

7. 'जावें'—इस प्रकार लिखना चाहिये ।

8. आजकल के पंडित लोग पराजय देने पर जान देते हैं ।

9. यह 'लेवेंगे' है न कि 'लेमेंगे ।'

(२) दूसरे शास्त्रार्थ में बैठकर क्रोध गुस्सा[1] अश्लील कटुवाक्य[2] कहिने[3] का इख्तियार फरीकैन में से किसी को न होगा । अगर जिसकी तरफ से होवे वह पराजय[4] समझा जावे ।

(३) तीसरे समय मुकरिर होना चाहिये अर्थात् शास्त्रार्थ में दस मिनट मैं उपवादन करूं तो[5] दस ही मिनट[6] आप उपवादन करें ।

(४) यहां मेरा कोई मकान नहि[7] है । खजान्ची साहब ब्रजकिशोर का तदवीज[8] किया है आप एक दिन निश्चय कर दिया कीजिये ।

(५) इसके जवाब से इत्तला दीजिये ।[9] किमधिकम् ।

तारीख १० सितम्बर, सन् १८७९ हस्ताक्षर—**अंगद शास्त्री**[10]

1.क्रोध और गुस्सा एक ही चीज है । यदि क्रोध का अर्थ गुस्सा लिखना था तो इन दोनों शब्दों के बीच में कोई शब्द जैसे 'अर्थात्' या 'यानि' आदि डालना था ।

2. पंडित जी ने अपनी सभा में बैठकर राजा काशीपुर की चिट्ठी पढ़ी जिसमें स्वामी जी के विषय में असभ्यतापूर्ण और धृष्टतापूर्ण शब्द लिखे थे और पंडित जी ने अपने श्रीमुख से बार-बार उन शब्दों को पढ़ा । फिर कहिये कि ये कटुवाक्य है या मधुरवाक्य ?

3. 'कहने' इस प्रकार लिखना चाहिये ।

4. ये बातें अविद्वान् और अल्पबुद्धि वालों की होती हैं । विद्वान् और बुद्धिमान् मनुष्यों को तो सदा सत्य की जय और असत्य की पराजय करनी और माननी चाहिये ।

5. 'करूं तो' स्थान पर 'कहूं तो' लिखना चाहिये ।

6. शास्त्रार्थ के लिए यह नियम अच्छा है, प्रश्नोत्तर के लिए कदापि नहीं । इसका क्या अर्थ कि एक मनुष्य दस मिनट में सौ प्रश्न कर सकता है परन्तु उत्तर एक का भी दस मिनट में देना कठिन है ।

7. 'नहीं' इस प्रकार होना चाहिये ।

8. यह कोई शब्द किसी भाषा का नहीं । यह शब्द 'तजवीज' है, इसी प्रकार लिखना चाहिये था ।

9. इस वाक्य को नियमों में सम्मिलित करना और उस पर ५ की संख्या डालना कदापि न चाहिये । यह वाक्य नियमों से क्या सम्बन्ध रखता है ?

10. शास्त्री शब्द के ऊपर हम नहीं समझते कि यह चर्खे का सा चिह्न किस बात का है । हम अपने सुलेखक से इसकी प्रतिकृति वैसी की वैसी उतरवा देते हैं जैसी कि पंडित जी के हस्ताक्षर में मौजूद है । पाठकों में से यदि कोई सज्जन इसका अर्थ समझें तो हमको भी सूचित करें क्योंकि संस्कृत और भाषा में हमने यह चिह्न नहीं देखा और न बीजगणित अथवा रेखागणित में कहीं पढ़ा । फारसी, अरबी, अंग्रेजी की सभ्यता और व्यवहार की दृष्टि से अपने आपको मौलवी, पंडित, ऐस्क्वायर (Esquire), बी० ए०, एम० ए० आदि लिखना ठीक नहीं है । यदि साहब गवर्नर जनरल बहादुर अपने हस्ताक्षर करते हैं तो केवल 'लिटन' शब्द लिखते हैं । संस्कृत में भी जहां तक हमने देखा है और बड़े-बड़े पंडित जैसे स्वामी दयानन्द सरस्वती जी, पंडित गोपालराव हरि, पंडित रामभरोसे जी आदि से जो पत्रव्यवहार रहता है और दक्षिण के बहुत से पंडितों के हस्ताक्षर जो देखे तो किसी स्थान में 'शास्त्री' शब्द का प्रयोग होते हुए न देखा यद्यपि छओं शास्त्र उनकी जिह्वा पर हैं ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की ओर से पत्र का उत्तर

ओ३म् नमः सर्वशक्तिमते परमेश्वराय

क्या आप लोग मूर्तिपूजा आदि वेदविरुद्ध काम करने से वेदविमुख होकर वेदप्रतिपादित एक अद्वितीय ईश्वरपूजा और सत्यधर्म आदि से उलटा चल और चलाकर अपना प्रयोजन (मतलब) सिद्ध नहीं करते हैं ? और क्या मैं कोई धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सम्बन्धी कर्म वेदविरुद्ध कभी करता और कराता हूं ? जो आपको शास्त्रार्थ करने की सच्ची इच्छा होती तो सभ्यता और विनयपूर्वक शास्त्रार्थ करने का निषेध मैंने कब किया था और अब भी नहीं करता। परन्तु जो शास्त्रार्थ की आपकी सच्ची इच्छा होती तो जहां मैं ठहरा था उसी स्थान में आकर ठहरते। अन्य स्थान में ठहरने से प्रतीत होता है कि आपकी इच्छा शास्त्रार्थ करने की नहीं है, किन्तु कहने ही मात्र है। अब आगे जैसी होगी वैसी विदित भी हो जायेगी। हां, जहां मूर्ख और असभ्य पुरुषों का हल्ला-गुल्ला होता है; वहां मैं खड़ा भी नहीं होता। तुम ने जो यह लिखा कि मैं जहां-जहां जाता हूं, वहां-वहां से तुम किनारा काट कर चले जाते हो यह बात तुम्हारी अत्यन्त झूठ है। तुमसे मुझ को किंचिन्मात्र भी भय न कभी हुआ था, न है और न होगा क्योंकि आप में ऐसे गुण नहीं हैं, जो भयप्रद हों।

बांस बरेली में भी तुम्हारी विपरीत कार्यवाही अर्थात् दंगा-बखेड़ा करने वाले मनुष्यो को संग लाने के कारण खजान्ची लक्ष्मीनारायण आदि ने अपने बंगले में तुमको आने से रोक दिया था। यह तुमको तुम्हारे ही कर्मों का फल मिला है। बरेली और शाहजहांपुर के अतिरिक्त मैंने कभी आपका आना सुना भी नहीं। अब आप और मैं दोनों शाहजहांपुर में हैं। जो इस समागम से भागे सो झूठा। अब आपको जितना शास्त्रार्थ करने का बल हो, कर लीजिए परन्तु याद रखना चाहिए कि सब आप्तों की यही रीति है कि सर्वदा सत्य की जय हो और झूठ की पराजय हो। इसको मत भूलियेगा। मैं अपनी विद्या और बुद्धि के अनुसार निश्चित जानता हूं कि मैं और पुरुषों को जहां तक शक्ति है-वेदोक्त सत्य सनातनधर्म पर चलाता हूं। इसमें जो तुमको वेदविरुद्धपने का भ्रम हुआ सो जो शास्त्रार्थ होगा उस में तुम वेद-विरुद्ध चलते हो या मैं, निश्चय हो जायेगा।

हां, मथुरा में श्री स्वामी जी के पास बहुत विद्यार्थी जाते थे, आप भी कभी गये होंगे ! परन्तु जो आप स्वामी जी के शिष्य होते तो उनके उपदेश से विरुद्ध आचरण क्यों करते ? ज्येष्ठ कनिष्ठ तो उत्तम गुण-कर्म और नीच गुण-कर्मों से ही होते हैं। इस शास्त्रार्थ में निम्नलिखित नियम उभय पक्ष वालों को मानने होंगे—

१—इस शास्त्रार्थ में चारों वेद मध्यस्थ हैं अर्थात् वेदविरुद्ध झूठा और वेदानुकूल सच्चा माना जायेगा।

२—इस शास्त्रार्थ में जो वेद के किसी मन्त्र-पद के अर्थ करने में विप्रतिपक्ष हो तो जिसके अर्थ पर ब्रह्मा जी से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्त उक्त सनातन माननीय ग्रन्थों के प्रमाण साक्षी में मिलेंगे उसका अर्थ सत्य माना जायेगा, दूसरे का नहीं। और वेदानुकूल सृष्टिक्रमानुसार, प्रत्यक्षादि प्रमाण, लक्षण-लक्षित आप्तानुचरणाविरुद्ध और अपने आत्मा की विद्या और पवित्रता आदि इन पांच कसौटियों से परीक्षा में जो-जो सच्चा वा झूठा ठहरेगा सो-सो वैसा ही माना जायेगा, अन्यथा नहीं।

३—एक-एक की ओर से सब धार्मिक विद्वान् चतुर पचास-पचास पुरुष शास्त्रार्थ में सभासद् होने चाहियें।

४—दोनों पक्षों के जिन सौ मनुष्यों को प्रथम से सभा में प्रवेश करने के लिए टिकट मिल जायेंगे, वे ही सभा में आ सकेंगे, अन्य नहीं।

५—जो जिसका पक्ष होगा वही अपने प्रमाण पक्ष को लिखाकर सुना समझा या दूसरे से सुनाकर समझाया करेगा।

६—उभय पक्ष वालों को अपने-अपने समय में एक-एक अक्षर प्रश्न या उत्तर का लिखवा कर आगे चलना होगा, अन्यथा नहीं।

७—इस शास्त्रार्थ में उभय पक्ष वाले जो-जो कहेंगे उस उसको तीन लेखक लिखते जावेंगे। अपने-अपने पक्ष के लेख लिखवा कर अन्त में तीनों पर स्वहस्ताक्षर कराकर एक प्रति मुझ को, दूसरी आपको और तीसरी सरकार में रहेगी कि जिससे कोई घटा-बढ़ा न सके।

८—अपने पत्र में जो आप ने दस-दस मिनट लिखे सो स्वीकार करता हूं परन्तु उत्तर देने के लिए दस मिनट और प्रश्न करने के लिए दो मिनट होना योग्य है।

९—शास्त्रार्थ विषय में मुझे और आपको ही बोलने और लिखवाने-सुनवाने का अधिकार होगा, अन्य को नहीं। अन्य सभासद् तो ध्यान देकर सुनते रहेंगे।

१०—जहां खजान्ची जी के बंगले में ठहरा हूं यही शास्त्रार्थ के लिए निश्चित रहना चाहिए क्योंकि यह न मेरा स्थान है न आप का।

११—इस शास्त्रार्थ में वेदादि सनातन शास्त्रों की रीति से पाषाण आदिक की मूर्ति की पूजा और पुराण आदि पक्षों का खंडन विषय मेरा और आपका मंडन विषय रहेगा।

१२—कुवचन, हठ, दुराग्रह, क्रोध, पक्षपात, भय, शंका, लज्जादि को छोड़कर सत्य का ग्रहण और झूठ का छोड़ना उभय पक्ष वालों को अवश्य होना चाहिये क्योंकि आप्तों का यही सिद्धान्त है।

१३—जब तक किसी विषय का खंडन या मंडन पूरा न हो तब तक शास्त्रार्थ बन्द न होगा किन्तु प्रतिदिन होता ही जायेगा क्योंकि आरब्ध कर्मों को बीच में निष्फल न छोड़कर सिद्धान्त पर्यन्त पहुंचा देना विद्वानों का मुख्य सिद्धान्त है और इसी रीति से बहुत दिनों व महीनों तक शास्त्रार्थ होने से आप के शास्त्रार्थ करने की उत्सुकता भी परिपूर्ण होगी, अन्यथा नहीं।

१४—उभय पक्ष वालों को सरकार से, पुलिस आदि का प्रबन्ध अवश्य करना होगा कि जिससे कोई असभ्य मनुष्य शास्त्रार्थ में विघ्न न कर सके।

१५—इस शास्त्रार्थ का समय जिस दिन से आरम्भ होगा उस दिन से संध्या के ५ बजे से आठ बजे तक प्रतिदिन होना चाहिये।

१६—एक दिन पहले मैं बोलूंगा तो दूसरे दिन आप बोलेंगे और जो पहले बोलेगा वही उस दिन अन्त में भी बोलेगा और सब सुनने वाले जब छपकर तैयार होगा तो सब सज्जन लोग बांचेंगे। तब अपनी अपनी विद्या और बुद्धि के अनुसार सच वा झूठ को छोड़कर सत्य का ग्रहण कर लेंगे।

आप की चिट्ठी कल दोपहर समय आई इससे आज उत्तर लिखा गया। जो प्रातःकाल आती तो कल ही लिख दिया होता। आप का पत्र संस्कृत और भाषा में अनेक प्रकार से बहुत अशुद्ध है। सो जब मिलोगे तब समझा दिया जायेगा संवत् १९३६। आश्विन कृष्णा ११, सोमवार।[1]

---

1. यहां शुक्रवार होना चाहिए।—सम्पा०

पंडित अंगद शास्त्री की ओर से इस चिट्ठी का उत्तर

हरि ओ३म्

'श्रीयुत दयानन्द सरस्वती समीपे स्वमतकुशलपूर्वक मद्विज्ञापनम्'[1]

ता० १० सितम्बर को एक पत्र मैंने आपकी सभा के सेक्रेटरी द्वारा[2] आपके पास भेजा था। उसका प्रत्युत्तर आज ता० १२ पांच बजे दिन के सत्य समाज में आया। इसको भले प्रकार पढ़कर सम्पूर्ण सभासदों को श्रवण करा दिया। आपके पत्रावलोकन से ज्ञात होता है कि वेदविरुद्ध चलना चलाना किसी मतलब[3] के कारण होता है। इस हेतु से प्रकट है कि कोई मतलब आप को सिद्ध करना है। आपका शास्त्रार्थ करने का निषेध और मेरे शास्त्रार्थ करने की सच्ची इच्छा होने का आशय आपके अन्तःकरण[4] से अच्छे प्रकार विदित होगा और यहां के सज्जन पुरुषों को भी मालूम होगा क्योंकि गृहस्थाश्रम में ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं है जो अपना तन, मन, धन तथा विदेशयात्रा आदि श्रम शमन कर एतदर्थ जावे न कि सरकारी नौकर। मेरा आपके पास बंगले में न ठहरना और पंडित कन्हैयालाल रईस के मकान पर ठहरना शास्त्रार्थ करने की इच्छा का प्रतिबन्ध नहीं हो सकता। शास्त्रार्थ करने की इच्छा आप के निम्नलिखित नियमों से प्रसिद्ध है। आपका जहां-तहां से चला जाना जो मैंने अपने पूर्वपत्र में लिखा था उस को अत्यन्त झूठ लिखना झूठ[5] है। और जो आपने लिखा कि तुमसे मुझको किंचिन्मात्र भी भय न कभी हुआ था, न है न होगा क्योंकि आप में ऐसे गुण ही नहीं हैं जो किसी को भयप्रद हों। यह वार्ता आपकी अयथार्थ है। मुझमें ऐसे भयंकर गुण नहीं हैं, जो किसी को भयप्रद हों परन्तु मेरे गुणों से समस्त[6] सभ्यजन प्रसन्न हैं और हर समय परमेश्वर से प्रार्थना करता हूं कि मुझ में और इष्ट मित्रों में भी भयंकर गुण न हों।

---

1. ये अशुद्धियां पहली चिट्ठी के समान हैं। उसकी टिप्पणी में शुद्ध कर दी गई हैं।

2. यह सर्वथा मिथ्या और शिर से पांव तक बकवास है। मन्त्री के पास कदापि चिट्ठी नहीं भेजी गई प्रत्युत मन्त्री ने स्वयं जाकर स्वामी जी के पास चिट्ठी को देखा। स्वामी जी के पास चिट्ठी बाबू हरगोविन्द बैनर्जी की मार्फत पहुंची। क्या बाबू जी समाज के मन्त्री हैं? पहले प्रधान बेशक थे। समाज ने बाबू जी को समाज के इस पद से पृथक् कर दिया क्योंकि बाबू जी आर्य-धर्म के विरोधी पाये गये। बाबू जी ने यह चिट्ठी स्वामी जी के पास १२ सितम्बर को ११ ॥ बजे दिन के समय भेजी थी। हम नहीं कह सकते कि बाबू जी ने इतने समय तक क्यों दबा रखी। पण्डित जी ने अपने किसी मनुष्य के हाथ सीधे स्वामी जी के पास या मुंशी बख्तावरसिंह मन्त्री आर्यसमाज के पास क्यों न भेज दी ताकि उत्तर उसी समय मिलता।

3. यह वही उदाहरण हुआ कि उलटा चोर कोतवाल को डांटे। अपना प्रयोजन पण्डित जी सिद्ध करते हैं या स्वामी जी? भला कोई सज्जन बतला तो दे कि स्वामी जी ने कब धुत्कार की रोटियां, नवग्रह का चढ़ावा, शनैश्चरादि का लाल, काला, पीला, दान, दक्षिणा का टका किसी से मांगा है? वेदादि सत्यशास्त्रों के पढ़ने का कब किसी को निषेध किया है।? कब किसी को जन्मपत्रे देकर उस को झूठा भय दिलाकर उसका माल ठगा है? पण्डित जी ही कोई उदाहरण दें कि जहां स्वामी जी ने किसी के सामने हाथ पसारा हो। स्वामी जी को सब बड़े-छोटे जानते हैं कि सबको इन ठगाइयों और झूठे भय से बचाते हैं।

4. अन्तःकरण से तो भलीभांति प्रकट है कि पंडित जी शास्त्रार्थ के बहाने प्रायः मूर्तिपूजा वालों की विद्यारहित बड़ी भीड़ को इकट्ठा करके दंगे और उपद्रव की नीयत रखते हैं जैसा कि पंडित जी के नियत किये हुए स्थान और बिना संख्या श्रोताओं का शास्त्रार्थ में लाना आदि नियमों से प्रकट होता है।

5. सच बात को सच और झूठ को झूठ लिखना झूठ नहीं होता है। पंडित जी ने चूंकि यह बात अपने मन से गढ़ कर लोगों को प्रसन्न करने को झूठ लिख दी थी। इसलिए इस झूठ को झूठ लिख दिया, क्या झूठ हुआ?

6. सब नहीं। जो मूर्तिपूजक नहीं हैं प्रत्युत उसको बुरा जानते हैं वे कैसे प्रसन्न होते होंगे?

बांस-बरेली[1] में शास्त्रार्थ विषयक जो कार्यवाही निश्चित हुई थी वह जिस की तरफ से तोड़ी गई उसका अभिप्राय वहां वा अन्य देशी पुरुषों को जो वहां समाज में उपस्थित थे, अच्छी प्रकार विदित है किन्तु यहां भी इस वृत्तान्त के जानने वाले दस-बीस पुरुष वर्तमान हैं और किंचित् वृत्तान्त को मौलवी अब्दुलहक साहब इन्स्पैक्टर पुलिस और थर्ड मास्टर जिला स्कूल शाहजहांपुर भी जानते हैं। आपको अच्छी प्रकार स्मरण करना चाहिये कि खजान्ची लाला लक्ष्मीनारायण साहब के बगीचे में शास्त्रार्थ रुकवा देना आप ही का कर्म था। मैंने तो अपने शास्त्रार्थ विषयक नियमों में बाग में शास्त्रार्थ करना प्रथम ही नापसन्द करके राजा नौबतराम साहब बहादुर स्वर्गवासी के तराग (तड़ाग) पर शास्त्रार्थ करना लिखा था। इसको आपने त्याग कर बाग में समस्त शास्त्रार्थदर्शक लोगों को पत्र द्वारा आह्वान कर आपने ही इन्कार किया। अपने कर्मों का फल दूसरे पर आरोपित करना अत्यन्त बुद्धिमत्ता है और जो कि श्री स्वामी जी के शिष्य होने में आपको सन्देह[2] है, वह मिथ्या है। मेरे

---

1. बरेली में जो दशा हुई उसका ठीक वृत्तान्त स्वामी जी की चिट्ठी से विदित होगा कि किसकी ओर से इन्कार हुआ। पंडित जी ने तो अपनी इच्छा के अनुसार जो चाहा प्रकट कर दिया और उनके विशाल दल ने बिना सोचे-समझे उसी को ठीक मान लिया। अब चूंकि पंडित जी ने मौलवी नियाज अहमद साहब थर्ड मास्टर जिला स्कूल शाहजहांपुर को साक्षी के रूप में उस विषय का सच्चा वृत्तान्त जानने वाला घोषित किया है, हमने यह समझकर कि सांच को आंच नहीं, मौलवी साहब से इस बारे में जो पत्रव्यवहार किया उस की प्रतिलिपि नीचे देते हैं ताकि पंडित जी के घोषित किये हुए साक्षी से ही बरेली का वास्तविक वृत्तान्त पाठकों पर प्रकट हो जावे।

मौलवी नियाज अहमद, साहब, थर्ड मास्टर गवर्नमेण्ट जिला स्कूल, शाहजहांपुर को भेजे हुए पत्र की प्रतिलिपि

"श्रीमान् जी, प्रणाम के पश्चात् विदित हो कि कुछ लोग इस बात की इच्छा रखते हैं कि आपसे बरेली के शास्त्रार्थ का वृत्तान्त जो स्वामी दयानन्द सरस्वती और पंडित अंगद शास्त्री के मध्य होने वाला था, मालूम करें। इसलिए कृपया यह लिख दीजिये कि वह शास्त्रार्थ किस कारण से न हो सका। किस की ओर से ढील हुई और ढील का कारण क्या था? उत्तर इसकी पृष्ठ पर लिख दीजिये ताकि उन को दिखला दिया जावे। आप विश्वास है कि अच्छी प्रकार से इस वृत्तान्त को जानते होंगे। अधिक प्रणाम। आपका सेवक—**बख्तावरसिंह**

मुंशी बख्तावरसिंह मन्त्री आर्यसमाज के नाम आया हुआ इस पत्र का उत्तर

मुंशी साहब, निवदेन है कि शास्त्रार्थ इस कारण से न हुआ कि अंगद शास्त्री के साथी पंडित दयानन्द सरस्वती का अपमान करने पर उतारू थे; ये प्रायः बरेली के रहने वाले हैं। जब उनसे यह कह दिया गया कि ये सज्जन धर्म में नई-नई बातें निकालते हैं और मूर्तिपूजा का निषेध करते हैं, वे लोग उत्तेजित हो गये और चाहते थे कि एक बड़ी भीड़ के साथ नगर के बाहर शास्त्रार्थ हो। इस बात को पंडित दयानन्द सरस्वती ने पसन्द न किया। उनकी इच्छा थी कि विशेष लोगों के सामने किसी रईस के यहां जहां विद्वान् हों, झगड़े वाली बातों का निर्णय किया जाये।

—नियाज अहमद फारूकी

ये दोनों पत्र असली हमारे पास मौजूद हैं। अब पाठक विचार करें कि पंडित जी ने जो नगर के बाहर एक बड़ी भीड़ के साथ शास्त्रार्थ करना चाहा था, उसका क्या प्रयोजन था। क्या यह भारतीय दंगल था? कहिये ऐसे स्थान से स्वामी जी यदि इन्कार न करते तो क्या करते? ऐसे-ऐसे ढकोसले स्वामी जी ने पंजाब में बहुत देख लिये हैं। अब कदापि किसी के जाल में न फंसेंगे। अमृतसर का वृत्तान्त 'आर्यदर्पण' पत्रिका में पाठकों ने देखा होगा कि क्या हुआ था।

2. क्या अच्छा स्वामी जी की चिट्ठी का अर्थ समझे। कहां लिखा है कि सन्देह है प्रत्युत यह स्पष्ट लिखा है कि पंडित जी भी उनके शिष्य होंगे क्योंकि उनके पास सैकड़ों विद्यार्थी आते जाते थे। क्या एक गुरु के कुछ शिष्य समान विद्या और समान गुणवान होने का दावा कर सकते हैं? सम्भव नहीं कि सब समान हों। एक गुरु के पास सैकड़ों विद्यार्थी आते हैं, बहुत से योग्य हो जाते हैं और बहुत से नहीं पढ़ते तो रह जाते हैं। क्या उन सब का समानता का दावा ठीक हो सकता है? कदापि नहीं।

सहाध्यायी उनके जो शिष्य हैं वे सब अद्यापि राजद्वारों में विद्या बल से प्रतिष्ठ पा रहे हैं और यह समाचार भी समस्त मथुरावासी श्रेष्ठ पुरुषों को मालूम है कि महाराज दण्डी जी नियमपूर्वक प्रतिदिन सप्तशती स्तोत्र का पाठ और कभी-कभी नीलकंठ महादेव जी तथा रंगनाथ महादेव जी के श्रद्धापूर्वक दर्शन तथा तीर्थ परिक्रमा और दानादिक कर्म सब करते थे।[1] हां जब से कि कृष्णशास्त्री से कौमुदी में षष्ठी सप्तमी समास विषयक पत्र द्वारा शास्त्रार्थ हुआ[६५] पश्चात् अत्यन्त बीमार हुए तब से नागोजी भट्ट और केवटकौमुदी पर भारती ग्रन्थों का खंडन पर वाक्यमीमांसा[६६] धूर्तनिराकृत व्याकरण के ग्रन्थ बनाये परन्तु वेदविरुद्ध मिथ्याचरण कुमार्गप्रवृत्ति[2] यह उनका धर्म नहीं था और न कोई उन्होंने ऐसा ग्रन्थ बनाया। इसी बात पर आरूढ़ होकर शास्त्रार्थ से बहिर्मुख हुए। बहुत थोड़े दिन की वार्ता है, मथुरावासी श्रेष्ठ पुरुषों से निश्चय हो सकता है किन्तु मुकाम अलवर राजधानी से भी जहां कि दस वर्ष की अवस्था से रहे थे,[3] पीछे कुछ दिन श्री गंगा जी, घाट सोरों जी और मथुरा जी मौहल्ला छत्ते बाजार केदारनाथ क्षत्रिय स्थान पर किराया देकर रहते थे। जो प्रज्ञाचक्षु जी पाषाणादि मूर्तिपूजा[4] तथा सप्तशती स्तोत्र पाठ, तीर्थादिकों के विरोधी साबित होयं तो मैं भी उसी मत को ग्रहण करूं वरन आप ऐसी बेजा हरकत हठधर्मी का परित्याग कीजिये। आप के सभासद् तथा यहां शाहजहांपुर के रईसों से प्रार्थना है कि श्री मथुरा जी से निश्चय कर लेंगे। प्रज्ञाचक्षु मेरे भी और दयानन्द सरस्वती दोनों के गुरु हैं। जो उनका आचरण होवे वह सत्य मानकर करना चाहिये और ज्येष्ठ कनिष्ठ व्यवहार में मैंने जो लिखा है सो वंश विषयक है न कि अपने मुख से आप में उत्तम गुणों का आवेश मान कर ज्येष्ठ बनना सभ्यता के विरुद्ध है। जो शास्त्रार्थ नियम आपने लिखे उसमें भी अन्तराशय आपका विदित हो चुका अर्थात् कथन अन्य और वृत्तान्त निराला और पूर्वापर विरोध[5] भी है। स्थान के विषय में यह कथन हुआ कि खजाञ्ची साहब के बंगले[6] में शास्त्रार्थ करेंगे क्योंकि उभयपक्षों से उस स्थान को कुछ किसी प्रकार का स्वत्व सम्बन्ध नहीं है। यह कहना आप से स्वल्प वक्ता उन को सम्भव नहीं होता है। आपका सो तो निवासद्वार प्रकट है। हमने तो उभयपक्ष रहित आपके लेखानुसार खजाञ्ची साहब का बाग शास्त्रार्थ के निमित्त निश्चय किया है। अब इसमें आपको निषेध करने का अवसर विशेष न रहना चाहिये क्योंकि इसमें तो आपके दोनों नियम साधन हो जायेंगे। इस कारण से शास्त्रार्थविषयक स्थान के आग्रह करने से मालूम होता है कि आपकी शास्त्रार्थ करने की इच्छा नहीं है किन्तु कथनमात्र ही है।[7] यदि इस स्थान को

---

1. स्वामी जी कहते हैं कि हम ने कभी इन स्थानों में जाते हुए उनको न देखा। ये सब बातें पंडित जी की मिथ्या हैं। हां, सप्तशती स्तोत्र का पाठ निस्सन्देह करते थे परन्तु उस को शुद्ध बना लिया था, उसके अनुसार करते थे।

2. वेदविरुद्ध चलने से कुमार्ग होता है। क्या वेदविरुद्ध चलते थे जो कुमार्गी होते?

3. यह मिथ्या है। जब वे अलवर गये थे तब उनकी ४० वर्ष से अधिक आयु हो गई थी।

4. वे मूर्तिपूजा नही करते थे प्रत्युत उसको छोड़ने का सब को उपदेश किया करते थे।

5. खेद है कि पंडित जी ने बतलाया नहीं कि कहां कथन और, और वृत्तान्त और, और कहां पूर्वापर विरोध है। चिट्ठियों की लिखित भाषा है, मौखिक नहीं कि कोई बदल सके। पंडित जी बतलावें कि कहां पूर्वापर विरोध है। अन्यथा मुख से तो हम भी जो चाहें सो कह दें परन्तु क्या करें, विवश हैं, हमारा यह दस्तूर नहीं।

6. क्या दो चार दिन के ठहरने से खजाञ्ची साहब का बंगला स्वामी जी का हो गया? न वह मकान स्वामी जी का है और न पंडित जी का। इसमें क्या सन्देह है? वाह! कहिये यह एक ही रही कि तेरे मुंह पर ही झूठ बोलता हूं। स्वामी जी ने कहां लिखा है कि खजान्ची साहब के बाग में शास्त्रार्थ हो? स्वामी जी ने तो खजान्ची साहब का बंगला लिखा है। पाठक पंडित जी के लेख पर विचार करें।

7. पंडित जी और स्वामी जी दोनों की चिट्ठियों के देखने से लोगों को विदित हो जावेगा कि किसका निश्चय कथनमात्र है। हम को यहां अधिक लिखना योग्य नहीं।

अग्राह्य है तो विश्रान्तघाट खनौत पर जो बाग महाराज नन्दगोपाल जी का है अथवा लालबहादुर लाल के बाग में[1] जहां रुचि होवे वहां स्वीकार कीजिये[2] और इन व्यर्थ वार्ताओं से हमारा समय व्यर्थ[3] न गमाइये । रविवार[4] को २ बजे[5] से ६ बजे तक शास्त्रार्थ होना चाहिये । रात्रि में शास्त्रार्थ करने का कौन अवसर है ? मध्यस्थ के विषय में जो चारों वेद और ब्रह्मा से जैमिनि समय पर्यन्त जो पदार्थ बोधक शास्त्र आप अंगीकार करते हो—यह कथन आपका क्या है ? जैमिनि समय पर्यन्त कोई ग्रन्थ वेदार्थप्रतिपादक नही हुआ है ।[6] हां, सूत्रादि और पदक्रम आदि ग्रन्थ पर्यन्त दस बैठती है । अन्य कोई अर्थप्रतिपादक सायण महीधरादि[7] प्रभृति सदृश नहीं है । जो कोई ग्रन्थ आपके पास हो तो दिखलाइये । परन्तु ग्रन्थ सो कंठ सब से जय पराजय के प्रति उत्तरदाता नहीं हो सकते किन्तु हमारे पत्रलिखित सभ्यजनों के न्याय वेदविरुद्ध विषयक शास्त्रार्थ वार्ता करने में हमारा कोई अभिप्राय नहीं है जैसा कि आपका इस विषय में । अब भी उत्सुक होवे कि उभय पक्ष को केवल वेदार्थ ही चिन्तवन करना पड़ेगा, न स्वकपोलकल्पित वार्ता । जो आपने कथनानुकथन में प्रश्न के दो मिनट और उत्तर के दस मिनट किये हैं इस शास्त्रार्थ में यह निबन्ध कैसे पूर्ण हो सकता है किन्तु कभी-कभी पन्द्रह[8] और बीस भी अपेक्षित होंगे । आपके जिस पक्ष में शास्त्रार्थ होगा वही प्रश्न समझा जायेगा । इसमें खंडन-मंडन में उभयपक्ष को समान ही समायोग होना चाहिये । हम अपने नियम को कदापि न त्यागेंगे अर्थात् दस मिनट एक पक्ष संस्कृत उपादान करें और दूसरा उसका उल्था देशभाषा में लिखवा देवे । इस प्रकार दूसरा पक्ष विवेचना करे तो वह देशभाषा लिखावे और जो आशय सभ्यजन लेख से न समझें वह परित्याग करें ।

---

1. पंडित जी जो स्थान बतलाते हैं, खेद है कि वे सब हमारी दृष्टि में शास्त्रार्थ के लिए तो नहीं प्रत्युत अखाड़े और दंगल के लिए उपयुक्त प्रतीत होते हैं । भला कहां शास्त्रार्थ और कहां अखाड़ा ? हां, इन स्थानों पर दंगे और फिसाद का अच्छा अवसर हाथ लग सकता है ।

2. खेद है कि यहां ऐसी बातों से घृणा है ।

3. पाठक स्वयं जान सकते हैं कि कौन किसका समय व्यर्थ नष्ट कर रहा है ।

4. रविवार को चिट्ठी भेजें और शास्त्रार्थ के नियम निश्चित हुए बिना रविवार को ही शास्त्रार्थ करना चाहें । ऐसा सम्भव हो सकता है ?

5. ७ बजे शाम से ९ बजे तक का समय हमने समस्त उपस्थित लोगों की इच्छानुसार इस अभिप्राय से लिखा कि उस समय में कचहरी के लोग भी कि जो विद्वान् हैं, आ सकें अन्यथा अविद्वान् लोगों के सामने शास्त्रार्थ का करना सर्वथा निरर्थक है ।

6. वाह जी वाह ! यह अद्‌भुत बात नहीं ! बस पंडित जी की योग्यता का वृत्तान्त विदित हो गया । इतिहास और पुस्तकों के बनने तक का वृत्तान्त पण्डित जी को ज्ञात नही । स्वामी जी ने ये सब पुस्तकें सभा में उपस्थित लोगों के सामने निकलवा कर सब को दिखला दीं कि जिन के होने से ही पण्डित जी को इन्कार है । भला इस का क्या उत्तर हो सकता है ? हमारे नगर के एक योग्य पण्डित जी का भी यह कथन है कि वेद लुप्त हो गये । भला जब इन पण्डितों की खोज इस चरम सीमा को पहुंच गई हो तो फिर क्या ठिकाना है ?

7. महीधरादि की टीका ऐसी बेसिर पैर की और अश्लील है, जिनका वर्णन करते हुए लज्जा आती है । क्या यह वास्तविक टीका वेद की कहला सकती हैं ? कदापि नहीं ।

8. कभी पन्द्रह और कभी बीस मिनट नियत करने से पण्डित जी का विचार गड़बड़ मचाने का जान पड़ता है । भला ऐसे नियम सभ्य और बुद्धिमान् लोगों में कहीं सुने हैं ? यदि विचारपूर्वक देखा जावे तो पण्डित जी के प्रत्येक वाक्य से विचित्र प्रकार की गन्ध आती है । क्या इस चिट्ठी को पढ़कर कोई कह सकता है कि पंडित जी का विचार शास्त्रार्थ का है ?

आपने तीसरी चौथी दफा का अद्भुत आशय लिखा है कि उभय पक्ष के पचास मनुष्य बिना टिकट सभा में प्रवेश न करें। इसका क्या प्रयोजन है ? जहां कहीं सभा होती है यह विलक्षण[1] नियम कहीं नहीं होता है। यहां मौजा चांदपुर की सभा[67] में आप भी मौजूद थे। किसी को आने जाने का प्रतिबन्ध न था। लज्जा का परित्याग कर निर्लज्ज होना वेद शास्त्र विरुद्ध है। लज्जा[2] का स्वीकार कर मनुष्यत्व १ व १५ अनेक महीनों की अवधि और दिन-प्रतिदिन तीन घंटे शास्त्रार्थ होने से यह निश्चय होता है कि केवल हील-हुज्जतों[3] मेरी रुखसत के दिन व्यतीत करना है मेरी ऐसी है तो पीलीभीत चलिये।[4] न्यायानुसार सत्कार का शास्त्रार्थ करूंगा। आप सर्वत्र आते जाते हैं वहां जाने में क्या बंधन है ? आपके पत्र में भाषा के ही शब्द अशुद्ध[5] हैं क्या संस्कृत। आश्विन कृष्ण द्वादश्याम् शनैश्वरे, संवत् १९३६ तारीख १३ सितम्बर, सन् १८७८।

हस्ताक्षर—अंगद शास्त्री

स्वामी जी की ओर से पंडित अंगद शास्त्री के उपर्युक्त पत्र का उत्तर

ओ३म् नम: सर्वशक्तमते जगदीश्वराय श्रीयुतांगदशास्त्र्यादिपंडितान्प्रतीदम्प्रख्यानम्।

संवत् १९३६ आश्विन कृष्णा १२ शनिवार का लिखा तुम्हारा पत्र आश्विन कृष्णा १३ रविवार को दिन के ११ ॥ बजे मेरे पास पहुंचा। पत्रस्थ लिखा अभिप्राय सब प्रकट हुआ। मुझको अति निश्चय है कि तुम लोग शास्त्रों का विचार करना कराना तो तब जानोगे जब तुम्हारे अनेक जन्मों के पुण्य उदित होंगे परन्तु जो मैं तुम्हारे निश्चय किये स्थानों में बातचीत करने को आऊं तो तुमको हल्ला गुल्ला करने को अवसर अच्छा मिल जावे। अब जो तुमको पूर्वोक्त पचास धार्मिक बुद्धिमान् रईसों के साथ यहां आकर कुछ कहना सुनना हो तो मैं आने से रोकता नहीं। आगे तुम्हारी प्रसन्नता। संवत् १९३६। आश्विन कृष्णा १३ रविवार।

---

1. यह नियम तो विलक्षण नहीं प्रतीत होता परन्तु निस्सन्देह यह विलक्षण है कि शास्त्रार्थ में अपने और पराये सब चले आवें। वहां लट्ठबाजखां, मनचले खां, भांग खां, धतूरा खां, चरस खां आदि को एकत्रित करने का क्या प्रयोजन है ? जहां कहीं सभा होती है यह विलक्षण नियम कहीं नहीं होता। यह शास्त्रार्थ क्या प्रत्युत एक अखाड़ा है। खेद है कि पण्डित जी श्रोताओं की संख्या निश्चित करने से घबराते हैं। पण्डित जी के इन्कार से स्पष्ट प्रकट है कि यदि श्रोताओं की संख्या निश्चित हो गई तो हथेली पीटने और ढेले बरसाने को कोई नहीं मिलेगा। पण्डित जी का वास्तविक प्रयोजन सिद्ध न होगा।

2. खेद है कि पण्डित जी लज्जा से अभिप्राय भांडों और रासधारियों के तमाशे से समझे। सच बात सच और झूठ को झूठ कह देना, इस में क्या लज्जा है।

3. पाठक स्वयं जान लेंगे कि किस की ओर से हीले (बहाने) और हुज्जतें हुईं।

4. यहां तो पण्डित जी एक दिन भी स्वामी जी के पास न आये। सब प्रकार से स्वामी जी की हानि ही हानि पर कमर बांधे रहे। वहां ले जाकर न जाने क्या-क्या करेंगे। भला स्वामी जी कब ऐसी पट्टियों में आने वाले हैं ?

5. पण्डित जी प्रकट करें कि कहां-कहां कौन-कौन अशुद्धियां हुई हैं। वैसे ही अटकलपच्चू लिख देने से क्या होता है ? पण्डित जी के पत्र में जो अशुद्धियां थीं, वे जहां तक हो सका हमने प्रकट कीं। शेष पाठक स्वयं जान लेंगे। रही स्वामी जी की, वे पण्डित जी बतलावें। जो अशुद्धियां इस चिट्ठी में पहली चिट्ठी के समान हैं, वे पाठक स्वयं देख लें। उनकी चिट्ठियों के शब्दों की नकल जैसी की तैसी टिप्पणियों में दे दी गई है। देखिये 'के, मैं, को' आदि शब्द कितने अशुद्ध लिखे हैं ? लेखक—बख्तावरसिंह

पं० अंगद शास्त्री की ओर से स्वामी जी के पत्र का उत्तर

जय जय त्रिजटाय परमात्मने नम: श्रीयुत दयानन्द सरस्वती समीपे स्वमतकुशलपूर्वकं मद्विज्ञापनम् ।

आपका पत्र ३ ॥ बजे मेरे पास पहुंचा । लेखाशय प्रकट हुआ ! आपको ऐसा नहीं चाहिये । कभी कुछ लिखना और कभी कुछ ।[1] या तो स्वामी जी प्रज्ञाचक्षु के मत पर होना चाहिये जिसका आप अपने पूर्वपत्र में स्वीकार कर चुके हैं, जिस परम्परा से शास्त्रार्थ होते हैं, उस बुद्धि[2] से कीजिये, हम तैयार हैं । तीन स्थान जो निर्णीत हैं उनमें से किसी पर आ जाओ ।[3] मिति आश्विन कृष्णा १३ । रविवार, संवत् १९३६ ।

फर्रूखाबाद में दिये गये स्वामी जी के व्याख्यानों का सार

उस दिन स्वामी जी ने सत्यधर्म पहचानने और जानने का एक ऐसा रोचक और ठीक उदाहरण[६८] दिया कि उस का जानना प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यक है ।

स्वामी जी ने कहा कि एक मनुष्य जिस ने अभी तक किसी धर्म को स्वीकार नहीं किया था, एक पंडित के पास गया और कहा कि महाराज ! मैं किसी एक धर्म जो सच्चा हो और जिस से मोक्ष मिल सके, स्वीकार करना चाहता हूं । कृपा करके बतला दीजिये कि कौन-सा धर्म सच्चा है ? पंडित जी ने कहा कि चलो, तुम को सच्चा धर्म बतला दें । पंडित जी उस व्यक्ति को एक ऐसे स्थान पर कि जहां सौ मनुष्य विभिन्न मतों के बैठे हुए अपने-अपने मत की बड़ाई और दूसरों के मत की बुराई कर रहे थे, ले गये और कहा कि तू प्रत्येक मनुष्य से प्रार्थना करता चल कि मैं एक सच्चे मत को स्वीकार करना चाहता हूं और आप कृपा करके बतला दीजिये कि कौन सच्चा है ?

वह व्यक्ति पहले एक मत वाले के पास गया और यह बात कही । वह मतवादी बोला-कि 'आइये, आइये बैठिये, मैं अभी आपको सच्चा मत, जिससे आप झटपट मुक्तिमार्ग को प्राप्त कर लें, बतलाता हूं । सुनो, यह केवल एक मेरा मत तो सच्चा है और शेष देखो, ये ९९ जो तुम को दिखाई देते हैं, सब झूठे हैं । इन की एक न मानना, आओ शीघ्र मेरे मत में हो जाओ । वह व्यक्ति बोला कि औरों के पास भी तो हो आऊं । देखूं वे क्या कहते हैं ।

दूसरे मतवादी के पास गया तो वह चिल्ला कर दौड़ा-"आओ ! भाई, बैठो ! तुम यदि मुक्ति चाहते हो तो मेरा मत शीघ्र स्वीकार कर लो । मेरे मत में होते ही जहां एक कलमा पढ़ा, तत्काल मुक्ति हुई और शेष जो ये ९९ बैठे हैं, सब झूठे हैं । इनकी बात कदापि न माननी चाहिये ।"

तीसरे मतवादी के पास गया तो वह-यह समझकर कि खूब जाल में फंसा है, बच्चा जावेगा कहां, घर बैठे शिकार मिलने लगा है; अपने मत की प्रशंसा करने लगा, 'देखो ! एक मेरा ही मत सच्चा है और शेष ९९ सब झूठे हैं । केवल एक मेरे ही मत से मुक्ति हो सकती है, दूसरे के से कदापि नहीं ।' ऐसी बातें कह-कह कर उसको फुसलाने लगा ।

---

1. स्वामी जी ने तो कहीं ऐसा नहीं किया । यह पण्डित जी की समझ का गुण है । पाठक स्वयं देख लें कि कहां ऐसा हुआ है ।

2. हमको तो जो विधि परम्परा से सज्जन पुरुषों में शास्त्रार्थ की विदित थी जिसके अनुसार लिख चुके । अब पण्डित जी वह विधि बतलावें जो परम्परा से शास्त्रार्थ हो और परम्परा की विधि वही है जो पण्डित जी ने लिखी तो हमारा दूर ही से दंडवत् है । हम ऐसे गुल-गपाड़े के स्थान से घबराते हैं ।

3. क्या कुश्ती है ? —बख्तावरसिंह

चौथे मतवादी के पास गया तो क्या देखता है कि हाथ में रस्सी-सी लिये हुए वह कहीं खटाखट कर रहा है । उस को देखते ही वह बोल उठा कि "आओ, बैठो ! परमेश्वर की तुम पर बड़ी कृपा हुई जो तुम को यहां भेजा । अब तुम शीघ्र आओ और बहुत देर मत लगाओ ।"

सारांश यह कि इसी प्रकार ९९ मतवादियों के पास गया । सब सराय की भटियारिनों के समान लगे कोलाहल करने और अपने-अपने घरों में बुलाने ।

फिर अन्ततः वह उस सौवें मत वाले के पास गया और अपना अभिप्राय प्रकट किया । वह बोला कि भाई सुनो, मुक्ति का प्राप्त करना खाला जी का घर नहीं है । केवल एक अद्वितीय परमेश्वर का ध्यान करने और उसमें परम प्रीति करने से ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है अन्यथा तो इन ९९ पथभ्रष्टों के समान धक्के खाते हुए फिरना है ।

अन्ततः जब वह व्यक्ति सब के पास हो आया तो अपने मन में यह सोचकर कि विचित्र बात है, जो कहता है अपनी ही-सी कहता है,घबराता हुआ पंडित जी के पास आया और विस्तारपूर्वक सब वृत्तान्त कहा । पंडित जी ने कहा कि एक बार फिर जाकर प्रत्येक से पूछो कि आप का धर्म क्या है ?

आप का धर्म क्या है ?—वह व्यक्ति जब फिर गया तो कोई कहता है कि श्री रामचन्द्र साक्षात् परमेश्वर हैं । श्री रामचन्द्र की भक्ति करना परम धर्म है । कोई कहता है कि लाल-लंगोट वाले की लालसा में सब दिन मस्त पड़े रहना धर्म है । कोई कहता है कि माखन के चोर, गोपियों से कलोल करने वाले की शरण आना धर्म है । कोई कहता है कि चरस पीकर, धतूरे का दम लगा कर, भंग का लोटा चढ़ाकर, भोले की याद में मग्न हो जाना, यही ठीक धर्म है । कोई कहता है कि मुफ्तखोरों को खिलाना, धन भेंट में देना यहां तक कि स्त्री तक भी दे देना धर्म है । कोई कहता है कि गंगा मैया, जमना मैया, सरस्वती इत्यादि में डुबकी लगाना धर्म है । कोई कहता है कि कथा का कराना और अच्छे-अच्छे द्रव्य पदार्थ ब्राह्मणों को देना धर्म है । कोई कहता है कि खूब तान कर कण्ठ तक मद्य पीना, मछली और कलिया (पका हुआ मांस) खाना और फिर डट कर व्यभिचार करना, यही परम धर्म है । इसी प्रकार कोई जलसिंह, कोई सूरजसिंह, कोई तुलसीसिंह, कोई पीपलसिंह, कोई मथुरासिंह, कोई काशीसिंह, कोई रामसिंह, कोई गणेशसिंह, कोई भैरोंसिंह, कोई गूगासिंह, कोई शहीदसिंह, कोई गाजीसिंह, कोई पीरसिंह, कोई कब्रसिंह, कोई मुर्दासिंह, कोई मदारसिंह, कोई भूतसिंह, कोई चुड़ैलसिंह,-कोई मसानसिंह, कोई जिन्नसिंह, कोई पत्थरसिंह, कोई कागजसिंह आदि को पूजना धर्म बतलाता है । कोई कहता है होली घोस्ट (Holy ghost) और ईश्वर के इकलौते बेटे पर ईमान लाना धर्म है । कोई कहता है कि रसूल पैगम्बरों को मानना, जहाद (लड़ाई) करना यही धर्म है ।

सारांश यह कि इसी प्रकार सबने अपने-अपने धर्म बतलाये । प्रत्येक मनुष्य के मुख से नये ही धर्म सुनकर यह व्यक्ति स्तम्भित-सा हो गया और सब से पूछकर पंडित जी के पास आया और सब वृत्तांत वर्णन किया तो पंडित जी ने कहा कि अब देखो, इन सब में से सच्चा धर्म तुम को बतलाता हूं । ध्यान से सुनो । देखो ! जब एक बात के सच होने पर चार मनुष्यों की साक्षी एक समान भुगत जाती है तो शासक जान जाता है कि यह बात सच है और जब एक बात पर निन्यानवे लोगों की साक्षी हो तो उसके सच होने में क्या सन्देह है ? तो बस, जब एक मनुष्य अपने धर्म की बात बतावे और उस को निन्यानवे मनुष्य मिथ्या कहें तो उस को किस प्रकार माना जावे ? कदापि नहीं । **उदाहरणार्थ**—यहां एक व्यक्ति ने कहा कि पत्थरों को पूजना धर्म है । इसपर निन्यानवे मनुष्यों की साक्षी हुई कि नहीं यह झूठ है । इसी प्रकार दूसरे ने कहा कि ईसा पर विश्वास लाना धर्म है, इस पर भी निन्यानवे लोगों ने विरुद्ध गवाही दी, तो उसको कदापि न मानना चाहिये । तीसरे ने कहा कि मुहम्मद साहब का मानना धर्म है परन्तु शेष सब ने विरोध किया कि यह झूठ है तो समझना चाहिये कि ये सब अपने मत के लोगों की सेना एकत्रित करने वाले हैं ।

अब जिन बातों को मानने में सब की साक्षी समान हो उस को मानो । क्या कोई ऐसी बात किसी ने कही कि जो सब में समान हो ? उस व्यक्ति ने उत्तर दिया कि हां महाराज ! बहुत सी बातें मिलती हैं; जैसे केवल एक ईश्वर का मानना, उसी का ध्यान करना, सत्य बोलना और मानना, असत्य को छोड़ना, दीनों पर दया करना आदि ऐसी बातें हैं जो सब के धर्म में एक-समान हैं । तब पंडित जी ने कहा कि यही धर्म की बातें हैं, केवल इन्हीं को मानो । शेष सब मिथ्या और पथ-भ्रष्ट करने वाली हैं । इति ।

लखनऊ जाने की सूचना—यहां से स्वामी जी मैनेजर वेदभाष्य को लिखते हैं—

"कुंवर मुन्नासिंह छलेसर वाले का अब चन्दा वसूल करने का कुछ भरोसा नहीं, इसलिए तुमको चाहिये कि जहां तक हो चन्दा वसूल करो । आठ दिन पीछे लखनऊ जावेंगे । अब हमारा शरीर कुछ अच्छा है ।" १७ सितम्बर, सन् ७९ । शाहजहांपुर । दयानन्द सरस्वती ।

यहां से ही स्वामी जी ने संस्कृत पठन-पाठन सम्बन्धी पुस्तकें[६९] बनानी आरम्भ कीं और उनकी सूचना एक विज्ञापन द्वारा साधारण जनता को दी ।

लखनऊ पधारे (१८ सितम्बर, सन् १८७९ से २३ सितम्बर, सन् १८७९ तक)—स्वामी जी शाहजहांपुर से १७ को चलकर १८ को लखनऊ आ विराजे और केवल छः दिन यहां रहकर फर्रूखाबाद चले गये । वे स्वयं एक पत्र में लिखते हैं-"हम १८ सितम्बर, सन् १८७९ को सायंकाल को शाहजहांपुर से लखनऊ आये और ता० २४ सितम्बर, सन् १८७९ बुधवार के दिन प्रातःकाल कानपुर को जावेंगे और वहां से उसी दिन फर्रूखाबाद को जावेंगे और वहां एक सप्ताह या दस दिन ठहर कर फिर कानपुर आवेंगे । फिर यहां दो-चार दिन ठहर कर प्रयाग, मिर्जापुर, काशी होते हुए कार्तिक पूर्णमासी तक दानापुर पहुंचेंगे । अब हमारा शरीर पहले से अच्छा है ।" दयानन्द सरस्वती । २१ सितम्बर, सन् १८७९ लखनऊ ।

फर्रूखाबाद का वृत्तान्त

(२५ सितम्बर, सन् १८७९ से ८ अक्तूबर, सन् १८७९ तक)

स्वामी जी २४ सितम्बर, सन् १८७९ को लखनऊ से चलकर २५ सितम्बर, सन् १८७९ बृहस्पतिवार, आसौज सुदि १०, संवत् १९३६ को फर्रूखाबाद पहुंचे । जब तक स्वामी जी रहे प्रतिदिन ५ बजे शाम से ७ बजे शाम तक व्याख्यान होता रहा । जिले के शासक, अधिकारीगण, मुहल्ले वाले, रईस और साहूकार आदि हजारों मनुष्यों की भीड़भाड़ रही । २ अक्तूबर, सन् १८७९ को स्वामी जी ने ला० जगन्नाथप्रसाद रईस फर्रूखाबाद के मकान पर एक व्याख्यान दिया । शुद्ध हृदय, सत्पुरुष बड़े प्रेम से व्याख्यानों को सुनकर आनन्द में मग्न होते थे परन्तु कुमार्गगामी और वे लोग जिन की नाना प्रकार के छल कपट, धोखे आदि हजारों स्वांग से जीविका चलती थी, कुढ़ते थे और समाज से बाहर निकलकर स्वामी जी के व्याख्यान का अर्थ कुछ का कुछ सुनाते, और लोगों के हृदयों में प्रकट भ्रम उत्पन्न करते थे । उदाहरणार्थ, स्वामी जी ने किसी व्याख्यान में कहा था कि आजकल के प्रशासन में गाय-बैल आदि मारे जाते हैं; इस से इस देश के रहने वालों की बड़ी हानि होती है । देखो ! एक अच्छी मोटी ताजी गाय को यदि लोग मारेंगे तो अधिक से अधिक बीस मनुष्यों का पेट भरेगा वह भी तब, जब कि उसके साथ दस सेर अनाज भी हो और जो उस की रक्षा करेंगे तो वह कम से कम बीस वर्ष तक जीयेगी, तो देखो ! इस से कितना लाभ होगा अर्थात् कम से कम वह दस बार जनेगी और उस के दूध की औसत पांच सेर प्रतिदिन होगी और (एक) वर्ष तक देगी तो अठारह हजार सेर दूध होगा । इस में प्रति मन पांच सेर चावल डाल कर खीर बनावेंगे और एक मनुष्य एक सेर खावेगा तो दूध से १२८३० मनुष्यों का पेट भरेगा; उसी गाय से कि जिस को मारकर

खाने से वह केवल २० मनुष्यो को एक दिन के लिए पर्याप्त होती है । इस के अतिरिक्त उसके यदि दस बछिया हुई और बछड़े भी हुए तो और अतिरिक्त लाभ होगा । जो बछड़े हुए तो हजारों स्थानों पर उनसे पृथ्वी जोतकर नाना प्रकार का लाखों मन अनाज उत्पन्न होकर हजारों मनुष्यों को अनेक प्रकार का लाभ होगा । अब विचार करना चाहिए कि जब एक गाय के मारने से इतनी भारी हानि होती है तो समस्त देश में प्रतिदिन हजारों गायों के मारे जाने से प्रतिवर्ष कितनी हानि होगी ?[७०] इसी प्रकार गाय से दुगनी भैंस से और तिहाई बकरी के मारे जाने से हानि होती है । अच्छी प्रकार जान लो कि इसी कारण यह देश उजड़ हो गया है और होता चला जाता है । अब देखो, कितने दु:ख की बात है कि इतनी हानिको देखकर भी हमारे देश के प्रशासक लोग इधर ध्यान नहीं देते । यह दोष केवल उन्हीं का नहीं प्रत्युत हम लोगों का भी है कि हम लोगों में एकता न होने से यह हानि होती चली जाती है । यदि देश के मनुष्य मिलकर सरकार को प्रार्थनापत्र दें और वहांसे इस बात को बन्द करावें तो क्या नहीं हो सकता है । परन्तु जब हम देखते हैं कि एक मुहल्ले के एक घर के भाई-भाइयों में फूट है तो सारे देश का क्या कहना है ?

गोरक्षा-विषयक व्याख्यान को गाय का निन्दक समझा—अब पाठक तनिक पोपलीला पर विचार करें कि कहां तो यह व्याख्यान हो रहा था और कहां पोप जी ने यह प्रसिद्ध कर दिया कि देखो स्वामी जी गायको पशु बतलाते हैं और उसके मारने में कुछ भी दोष नहीं, ऐसा कहते हैं । वाह रे समझ, इस बुद्धि पर रोना आता है । !

परन्तु स्वामी जी इस पोपलीला का खंडन निस्सन्देह करते हैं जिस में गौ को माता[७१] और बैल को पिता कहा जाता है और जन्म भर चाहे कितने ही पाप क्यों न करे, जहां मरते समय एक गौ का दान किया कि तत्काल पूंछ पकड़े हुए वैतरणी नदी से वैकुण्ठ में पहुंच गये । भला इनसे कोई पूछे कि वह गाय तो पोप जी के घर बंधी रहती है; पर बिचारे मरे हुए को कहां से उस का दुम पकड़ना प्राप्त होता होगा और फिर किस की पूंछ पकड़कर वैतरणी तैरते होंगे ? और फिर देखो कि एक मृतक को एक गाय की पूंछ का सहारा चाहिये सो हम देखते हैं कि उस एक ही गाय को बहुत से मनुष्यों के हाथ से दान कराया जाता है । जब बहुत से मनुष्यों के हाथ एक ही गाय दी गई तो फिर कहिये कि वैतरणी के तट पर इस पार उतरने के झगड़े में कैसा जूता चलता होगा ? उस के उत्तर में तेरी चुप और मेरी भी चुप । अब यदि कोई बड़े बुझक्कड़ हुए तो बोले कि वाह साहब ! वह गाय तो उसी समय कसाई के हाथ बहुत से ब्राह्मण जाकर बेच देते हैं । बस इसके सामने तो सब ही चुप जानो ।

हमारे इस कहने से कोई यह न जाने कि गोदान करना ही न चाहिये । यह दान तब उत्तम है जब दान करने वाला अच्छी प्रकार वेद के जानने वाले, वेदानुकूल चलने वाले कुटुम्बी सत्पात्र विप्र को देवे । हाय, कैसे-कैसे धोखे दिये जाते हैं परन्तु नाम के नयनसुखों को कुछ भी नहीं सूझता । जो कोई समझाये और दरिद्रता की जड़ काटे और लाखों गौओं के बचाने का उपाय बतावें वही वैरी, नास्तिक और जो गोदान लेकर कसाई के हाथ गाय कटवा दें, वे बड़े धर्मात्मा, धर्मध्वजी कहलावें ।

हे परमेश्वर ! कृपा कर । इन बुद्धि वालों को सोचना चाहिये कि स्वामी जी ने गाय का माहात्म्य घटाया या बढ़ाया ? जो वे लोग कहते हैं कि स्वामी जी गाय को पशु कहते हैं[७२] तो इस से क्या लाभ या हानि जगत् में उत्पन्न होती है ? विचार करो तो वास्तव में गाय पशु है या देवता ? उस को माता कहने वाले उसके पुत्र हुए, वे छोटी आयु में बछड़े और बड़ी आयु में बैल कहलायेंगे या नहीं ? जब कोई उन से बैल या बछड़ा-ताऊ कहे तो चिढ़ेंगे या नहीं ? जहां गाय की पूजा है, वहां घास, भुस, जल से उस को सन्तुष्ट रखना कहा है या गन्ध, चावल, पुष्पादि से उसे पूजकर दंडवत् करना उचित है ? वेद में होम के पीछे जो परमधार्मिक और वेदोक्त विद्यावान् यजमान ईश्वर से प्रार्थनाएं करते हैं, यजमानः—"पशून्मे पाहि"[७३]

अर्थात् यजमान कहता है "हे परमेश्वर ? मेरे पशुओं की तू अच्छी प्रकार रक्षा कर कि जिस से मेरे यहां होम की सामग्री, दूध, दही, घृतादि की कमी न पड़े और सन्तान पुष्ट हों, इस प्रकार इस प्रार्थना में पशुओं से गाय का ग्रहण है या नहीं ? फिर स्वामी जी जो पशु कहते हैं तो क्या विपरीत करते हैं परन्तु जब सब लोग यहां से वहां तक गायपुत्र अर्थात् बछड़े बन रहे हैं तो उनसे क्या कहा जावे ? यहां वही कहावत याद आती है कि "अन्धे के आगे रोये अपने दीदे खोये" । भाइयो ! स्वामी जी महाराज सरीखे दयालु और देशहितकारी की विद्यमानता में जो मनुष्य ने मनुष्यत्व प्राप्त न किया तो फिर आगे कौन-सा दिन ऐसा होगा ?

यहां तक तो बातों का जमा खर्च करने वाले और निरक्षर पोपों की लीला हुई । अब थोड़ा-सा धन का जमा खर्च करने वाले और साक्षर अर्थात् महाभारती,[७४] भागवती[७५] और न्याय, व्याकरण आदिक संस्कृत और बी० ए० तक अंग्रेजी पढ़े हुए पोपों की लीला सुनो ।

३ और ४ अक्तूबर, सन् १८७९ को यहां के बड़े-बड़े प्रतिष्ठित रईस और धनाढ्य लोगों ने स्वामी जी के दरबार में उपस्थित होकर दो सौ से लेकर हजार-हजार रुपये तक एकत्रित करके आर्यसमाज की दृढ़ स्थापना की प्रार्थना की, एक हजार रुपया वेदभाष्यादिक पुस्तकों के शीघ्र तैयार होने के लिए पृथक् दिया और बहुत से लोगों ने मासिक अपने सामर्थ्य के अनुसार देना स्वीकार किया ।

जब यह चर्चा नगर में फैली तब सब पोपों का पेट फूला और उनके मस्तक में शूल चढ़ा । ज्यों-त्यों करके रात काटी ।

५ अक्तूबर, सन् १८७९ के प्रात: बड़ी धूमधाम मचाते, तिलक लगाये, धोती चटकाये, माला हाथ में लिये अपने एक प्रतिष्ठित यजमान लाला साहब के मकान पर एकत्रित होकर शरणागत हुए कि लाला साहब ! अब हमारा धर्म, लज्जा और जीविका आप ही बचा सकते हैं और इस का उपाय अब हमने यह सोचा है कि स्वामी जी के पास जाने का तो हमारा सामर्थ्य नहीं परन्तु वे कल जाने को हैं । आज हम कुछ प्रश्न बनाकर कल उन के पास भेजेंगे । उन को उत्तर देने का अवसर मिलेगा नहीं । पीछे से हम ताली बजा देंगे और सब नगरों में प्रसिद्ध करा देंगे कि फर्रूखाबाद के पण्डितों के प्रश्नों का उत्तर स्वामी जी न दे सके । यह सुनकर सब ने कहा कि वाह, वाह, बड़ा अच्छा उपाय है । सारांश यह कि ऐसा ही किया अर्थात् पीछे अण्ड बण्ड निरर्थक प्रश्न उसी दिन तैयार किये ।

५ अक्तूबर, सन् १८७९ को आर्यसमाज के नये मकान में स्वामी जी ने व्याख्यान दिया ।

६ अक्तूबर, सन् १८७९ के सायंकाल को पण्डितों ने निम्नलिखित २५ प्रश्न स्वामी जी के पास भेजे । वास्तव में उस समय स्वामी जी को उन प्रश्नों के सुनने तक का भी अवकाश न था परन्तु उन लोगों के आने पर सुनते ही उसी समय उनका उत्तर देना आरम्भ किया और उनसे लिख लेने को कहा परन्तु वे न लिख सके ।

७ अक्तूबर, सन् १८७९ को बहुत से आर्य सभासदों ने सायं समय प्रार्थना करके उन प्रश्नों के उत्तर स्वामी जी से लिखवा लिये और स्वामी जी के चले जाने के पश्चात् शुद्ध करके १२ अक्तूबर, सन् १८७९ को आर्यसमाज में सुनाये और तत्पचात् वे उत्तर पोप लोगों के पास भेज दिये ।

७ अक्तूबर, सन् १८७९ को कैम्प फतहगढ़ में मुन्शी गौरीदयाल साहब वकील के मकान पर बड़ी धूम-धाम के साथ उत्तम और मनोहर व्याख्यान देकर यहां से **कानपुर** को चले गये ।

फर्रूखाबाद के पण्डितों की ओर से 'विज्ञापन'—दयानन्द सरस्वती के पास ये प्रश्न धर्मसभा फर्रूखाबाद की ओर से भेजे जाते हैं कि आप्त ग्रन्थों के प्रमाण से इन प्रश्नों का उत्तर पत्र द्वारा धर्मसभा के पास भेज दें और यह भी विदित रहे कि धर्मसभा के सभासदों ने यह संकल्प कर लिया है कि यदि आप इन प्रश्नों के उत्तर पत्र द्वारा प्रमाण सहित न देवेंगे तो यह समझा जायेगा कि आपने अपना मत आधुनिक मान लिया और एक प्रति इन प्रश्नों की आपकी मतानुयायी सभाओं में और अमरीका के सज्जनों[७६] के पास भेजी जायेगी तथा देशी और अंग्रेजी पत्रों में मुद्रित की जायेगी। इन प्रश्नों पर चौदह व्यक्तियों ने हस्ताक्षर किये थे कि जिन के नाम 'भारतसुदशाप्रवर्तक' पत्रिका में लिखे हैं।

विज्ञापन का उत्तर—जो आप को शास्त्र प्रमाण सहित उत्तर अपेक्षित था, तो इतने पंडितों में से कोई एक भी तो कुछ पंडिताई दिखलाता? आपके तो प्रश्न सब के सब अंडबंड शास्त्रविरुद्ध यहां तक कि भाषारीति से भी शुद्ध नहीं। ऐसों का उत्तर प्रमाण सहित मांगना, मानो गाजरों की तुला देकर तुरन्त विमान की मार्ग-परीक्षा करना है। शास्त्रोक्त उत्तर शास्त्रज्ञों को ही मिलते हैं क्योंकि वे ही इन वचनों को समझ सकते हैं। तुम्हारे सामने शास्त्रोक्त वचन लिखना ऐसा है जैसा कि गंवार मनुष्यों के आगे रत्नों की थैलियां खोल देना। वास्तव में तुम्हारा एक भी प्रश्न उत्तर देने के योग्य न था तथापि हमने 'तुष्यतु दुर्जनः'[७७] इस न्याय से सब का उत्तर शास्त्रोक्त प्रमाण सहित दिया है। समझा जाये तो समझ लो।

फर्रूखाबाद के पंडितों के प्रश्न और स्वामी जी के उत्तर

पहला प्रश्न-आप्त ग्रन्थों अर्थात् वेदादिक सत्यशास्त्रों के अनुसार परिव्राजकों अर्थात् संन्यासियों के धर्म क्या हैं। वेदों के अनुसार उनको यानों अर्थात् सवारियों पर चढ़ना और धूम्र अर्थात् हुक्का आदि पीना योग्य है या नहीं?

उत्तर-वेदादि शास्त्रों में विद्वान् होकर वेद और वेदानुकूल सत्य शास्त्रोक्त रीति से पक्षपात, शोक, वैर, अविद्या, हठ, दुराग्रह, स्वार्थसाधन, निन्दास्तुति, मान, अपमान, क्रोधादि दोषों से रहित हो स्वपरीक्षापूर्वक सत्यासत्य निश्चय करके सर्वत्र भ्रमणपूर्वक सर्वथा सत्यग्रहण, असत्यपरित्याग से सब मनुष्यों को शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति, उपासना के साधन, सत्यविद्या, सनातन धर्म, स्वपुरुषार्थयुक्त करके व्यावहारिक और पारमार्थिक सुखों से वर्तमान (युक्त) करके, दुष्टाचरणों से पृथक् कर देना, संन्यासियों का धर्म है। लाभ में हर्ष, अलाभ में शोकादि से रहित होकर विमानों में बैठना और रोगादि निवारणार्थ औषधिवत् धूम्र अर्थात् हुक्का पीकर परोपकार करने में तत्पर, तिन्हों को कुछ भी दोष नहीं। यह सब शास्त्रों में विधान है, परन्तु तुमको वर्तमान वेदादि सत्य शास्त्रों से विमुखता होने के कारण, भ्रम है; सो इन सत्य ग्रन्थों से विमुखता न चाहिए।

दूसरा प्रश्न—यदि आपके मत में पापों की क्षमा नहीं होती तो मन्वादिक आप्त ग्रन्थों में प्रायश्चित का क्या फल है? वेदादि ग्रन्थों में परमेश्वर की क्षमाशीलता और दयालुता का वर्णन है, इससे क्या प्रयोजन है? यदि उससे आगन्तुक पापों की क्षमा से प्रयोजन है तो क्षमा न हुई और जब मनुष्य स्वतन्त्र है और आगन्तुक पापों से बचा रहे तो उसमें परमेश्वर की क्षमाशीलता क्या काम आ सकती है?

उत्तर—हमारा, अपितु हम लोगों का, वेद-प्रतिपादित मत के अतिरिक्त और कोई कपोलकल्पित मत नहीं है। किये हुए पापों की क्षमा वेदों में कहीं नहीं लिखी; न कोई युक्ति से भी विद्वानों के सामने किये पापों की क्षमा सिद्ध कर सकता है। शोक है उन मनुष्यों पर कि जो प्रश्न करना नहीं जानते और करने को उद्यत हो जाते हैं। क्या प्रायश्चित तुमने सुख-भोग का नाम समझा है? जैसे जेलखाने में चोरी आदि पापों का फल होता है वैसे ही प्रायश्चित भी समझो। इसमें क्षमा का कोई कथन तक नहीं। क्या प्रायश्चित वहां पापों के दुःखरूप फल का भोग है? कदापि नहीं। परमेश्वर की क्षमा

और दयालुता का यह प्रयोजन है कि बहुत से मूढ़ मनुष्य नास्तिकता से परमात्मा का अपमान और खंडन करते और पुत्रादि के न होने या अकाल में मरने, अतिवृष्टि, रोग और दरिद्रता के होने पर ईश्वर को गाली प्रदान आदि भी करते हैं; तथा परब्रह्म सहन करता और कृपालुता से रहित नहीं होता । यह भी उस के दयालु स्वभाव का फल है । क्या कोई न्यायाधीश कृतपापों की क्षमा करने से अन्यायकारी और पापों के आचरण का बढ़ाने वाला सिद्ध नहीं होगा । क्या परमेश्वर कभी अपने न्यायकारी स्वभाव से विरुद्ध अन्याय कर सकता है ? हां, जैसे न्यायाधीश विद्या और सुशिक्षा करके पापियों को पाप से पृथक् करके राजदण्ड-प्रतिष्ठित आदि करके उन को पवित्र कर सुखी कर देता है, वैसे परमात्मा का भी जानो ।

तीसरा प्रश्न—यदि आपके मत से तत्त्वादिकों के परमाणु नित्य हैं और कारण का गुण कार्य में रहता है तो परमाणु जो सूक्ष्म और नित्य हैं उन से स्थूल और सान्त संसार कैसे उत्पन्न हो सकता है ?

उत्तर—सूक्ष्मता की जो परम सीमा अर्थात् जिसके आगे, स्थूल से और अधिक सूक्ष्मता कभी नहीं हो सकती वह परमाणु कहलाता है । जिसके प्रकृत, अव्यक्त, कारण आदि नाम भी कहलाते हैं । वे अनादि भी कहलाते हैं । वे अनादि होने से सत् हैं । हाय खेद है लोगों की उलटी समझ पर ! कारण के जो गुण उस में समवाय सम्बन्ध से हैं, वे कारण में नित्य हैं । कारण के जो गुण कारणावस्था में नित्य हैं वे कार्यावस्था में भी नित्य होते हैं । क्या जो गुण कारणावस्था में नित्य हैं वे कार्यावस्था में भी वर्तमान होकर जब कारणावस्था होती है तब भी कारण के गुण नित्य नहीं होते ? और जब परमाणु मिलकर स्थूल होते हैं या पृथक्-पृथक् होकर कारणरूप होते हैं तब भी उन के विभाग और संयोग होने का सामर्थ्य, नित्य होने से, अनित्य नहीं होता । वैसे ही गुरुत्व, लघुत्व होने का सामर्थ्य भी उन में नित्य है क्योंकि यह गुण गुणी में समवाय सम्बन्ध से है ।

चौथा प्रश्न—मनुष्य और ईश्वर में परस्पर क्या सम्बन्ध है ? विद्याज्ञान से मनुष्य ईश्वर हो सकता है या नहीं ? जीवात्मा और परमात्मा में (परस्पर) क्या सम्बन्ध है और जीवात्मा और परमात्मा दोनों नित्य हैं और जो दोनों चेतन हैं तो जीवात्मा परमात्मा के अधीन है या नहीं ? यदि है तो क्यों है ?

उत्तर—मनुष्य और ईश्वर का राजा-प्रजा, स्वामी-सेवकादि सम्बन्ध है । अल्पज्ञान होने से जीव ईश्वर कभी नहीं हो सकता । जीव और परमात्मा में व्याप्य व्यांपकादि सम्बन्ध है । जीवात्मा परमात्मा के अधीन सदा रहता है परन्तु कर्म करने में नहीं । किन्तु पाप कर्मों के फलभोग में वह ईश्वर की व्यवस्था के अधीन रहता है तथापि दु:ख भोगने में स्वतन्त्र नहीं है । चूंकि परमेश्वर अनन्त-सामर्थ्य युक्त है और जीव अल्प सामर्थ्य वाला है; अत: उसका परमेश्वर के अधीन होना आवश्यक है ।

पांचवां प्रश्न—आप संसार की रचना और प्रलय को मानते हैं या नहीं ? जब प्रथम सृष्टि हुई तो आदि सृष्टि में एक या बहुत उत्पन्न हुए ? जब कि उन में कर्म आदिक की कोई विशेषता नहीं थी तब परमेश्वर ने कुछ मनुष्यों को ही वेदोपदेश क्यों किया ? ऐसा करने से परमेश्वर पर पक्षपात का दोष आता है ।

उत्तर-संसार की रचना और प्रलय को हम मानते हैं । सृष्टि प्रवाह से अनादि है, सादि नहीं; क्योंकि ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव अनादि और सत्य हैं । जो ऐसा नहीं मानते उनसे पूछना चाहिये कि क्या प्रथम ईश्वर निकम्मा था और उस के गुण, कर्म, स्वभाव निकम्मे थे ? जैसे परमेश्वर अनादि है, वैसे ही जगत् का कारण तथा जीव भी अनादि है; क्योंकि किसी वस्तु के बिना उससे कुछ कार्य होना संभव नहीं । जैसे इस कल्प की सृष्टि के आदि में बहुत से स्त्री-पुरुष उत्पन्न हुए थे वैसे ही पूर्व कल्प की सृष्टि में भी बहुत से स्त्री-पुरुष उत्पन्न हुए थे और आगे की कल्पान्त सृष्टियों में भी उत्पन्न होंगे ।

जीव में कर्म आदि भी अनादि हैं । चार मनुष्यों की[७८] आत्मा में वेदोपदेश करने का यह हेतु है कि उन के सदृश या अधिक पुण्यात्मा जीव कोई भी नहीं था । इस से परमेश्वर में पक्षपात कुछ नहीं आ सकता ।

छठा प्रश्न—आपके मतानुसार न्यूनाधिक कर्मानुसार फल होता है तो मनुष्य स्वतन्त्र कैसे हैं ? परमेश्वर सर्वज्ञ है तो उस को भूत, भविष्यत्, वर्तमान का ज्ञान है अर्थात् उसको यह ज्ञान है कि कोई पुरुष किस समय में कोई कर्म करेगा और परमेश्वर का यह ज्ञान असत्य नहीं होता क्योंकि वह सत्यज्ञान वाला है अर्थात् वह पुरुष वैसा ही कर्म करेगा जैसा कि परमेश्वर का ज्ञान है तो कर्म इस के लिए नियत हो चुका; तो फिर जीव स्वतन्त्र कैसे है ?

उत्तर—कर्म के फल न्यूनाधिक कभी नहीं होते क्योंकि जिसने जैसा और जितना कर्म किया हो उस को वैसा और उतना ही फल मिलना न्याय कहलाता है । अधिक-न्यून होने से ईश्वर में अन्याय आता है ।

हे आर्यो ! क्या ईश्वर के ज्ञान में भूत, भविष्यत् काल का सम्बन्ध भी कभी होता है ? क्या ईश्वर का ज्ञान होकर न हो और न होकर होने वाला है ? जैसे ईश्वर को हमारे आगामी कर्मों के होने का ज्ञान है वैसे मनुष्य अपने स्वाभाविक गुण-कर्म-साधनों के नित्य होने में सदा स्वतन्त्र हैं परन्तु अनिच्छित दुःखरूप पापों का फल भोगने के लिए ईश्वर की व्यवस्था में परतन्त्र होते हैं । जैसा कि राजा की व्यवस्था में चोर और डाकू पराधीन हो जाते हैं वैसे उन पापपुण्यात्मक कर्मों के दुःख-सुख होने का ज्ञान मनुष्य को प्रथम नहीं है । क्या परमेश्वर का ज्ञान हमारे किये हुए कर्मों से उलटा है । जैसे वह अपने ज्ञान में स्वतन्त्र है वैसे ही सब जीव अपने कर्म करने में स्वतन्त्र हैं ।

सातवां प्रश्न-मोक्ष क्या पदार्थ है ?

उत्तर-सब दुष्ट कर्मों से छूटकर सब शुभ कर्म करना जीवन्मुक्ति और सब दुःखों से छूट कर आनन्द से परमेश्वर में रहना, यह मुक्ति कहलाती है ।

आठवां प्रश्न-धन बढ़ाना अथवा शिल्पविद्या व वैद्यकविद्या से ऐसा यन्त्र अर्थात् कला तथा औषधि निकालना जिस से मनुष्य को इन्द्रियजन्य सुख प्राप्त हो अथवा पापी मनुष्य जो रोगग्रस्त हो उस को औषधि आदि से नीरोग करना, धर्म है या अधर्म है ?

उत्तर—न्याय से धन बढ़ाने, शिल्पविद्या करने, परोपकार बुद्धि से यन्त्र वा औषधि सिद्ध करने से धर्म, और अन्याय करके करने से अधर्म होता है । न्याय से आत्मा, मन, इन्द्रिय, शरीर को सुख प्राप्त हो तो धर्म और जो अन्याय से (आत्मा आदि को सुख प्राप्त) हो तो अधर्म होता है । जो पापी मनुष्य को अधर्म से छुड़ाने और धर्म में प्रवृत्त करने के लिए औषधि आदि से रोग छुड़ाने की इच्छा हो तो धर्म, इस से विपरीत करने से अधर्म होता है ।

नवां प्रश्न—तामस भोजन (मांस) खाने से पाप है या नहीं ? यदि पाप है तो वेद और आप्त ग्रन्थों में हिंसा करना यज्ञ आदिकों में क्यों विहित है और भक्षणार्थ हत्या करना क्यों लिखा है ?

उत्तर-मांस खाने में पाप है । वेदों तथा आप्त ग्रन्थों में कहीं भी यज्ञ आदि के लिए पशुहिंसा करना नहीं लिखा है । गो, अश्व, अजमेध के अर्थ वाममार्गियों ने बिगाड़ दिये हैं । उनके सच्चे अर्थ, हिंसा करना, कहीं भी नहीं लिखा । हां, जैसे डाकू आदि दुष्ट जीवों को राजा लोग मारते, उन का बन्धन और छेदन करते हैं; वैसे ही, हानिकारक पशुओं को मारना लिखा है । परन्तु मार कर उनको खाना कहीं भी नहीं लिखा । आजकल तो वामियों ने झूठे श्लोक बनाकर गोमांस खाना भी बतलाया है जैसे कि मनुस्मृति में इन धूर्तों का मिलाया हुआ लेख है कि गोमांस का पिंड देना चाहिये । क्या कोई पुरुष ऐसे भ्रष्ट वचन मान सकता है ?

दसवां प्रश्न—जीव का क्या लक्षण है ?

उत्तर—न्यायशास्त्र में जीव का लक्षण इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दु:ख, ज्ञान लिखा है ।

ग्यारहवां प्रश्न—सूक्ष्म नेत्रों से ज्ञात होता है कि जल में अनन्त जीव हैं; तो फिर जल पीना उचित है या नहीं ?

उत्तर—क्या विद्याहीन लोग अपनी मूर्खता की प्रसिद्धि अपने वचनों से नहीं करा देते ? न जाने यह भूल संसार में कब तक रहेगी । जब पात्र और पात्रस्थ जल अन्त वाले हों तो उनमें अनन्त जीव कैसे समा सकेंगे और छानकर या आंख से देख कर जल पीना सब को उचित है ।

बारहवां प्रश्न—मनुष्य के लिए बहुत स्त्री करना कहां निषेध है ? यदि निषेध है तो धर्मशास्त्र में जो यह लिखा हुआ है कि यदि एक पुरुष के बहुत स्त्री हों और उन में एक के पुत्र होने से सब पुत्रवती हैं, यह क्यों लिखा ?

उत्तर—वेद में मनुष्य के लिए अनेक स्त्रियों के करने का (बहु विवाह का) निषेध लिखा है । संसार में प्रत्येक व्यक्ति अच्छा नहीं होता । जो अनेक अधर्मी पुरुष कामातुर होकर अपने विषयसुख के लिए बहुत-सी स्त्री कर लेवें तो उनमें (परस्पर) सपत्नीभाव (सौकन के भाव) से विरोध अवश्य होता है । जब किसी एक स्त्री के पुत्र हुआ तो कोई विरोध से विष आदि के प्रयोग से न मार डाले, इसलिए यह लिखा है ।

तेरहवां प्रश्न—आप ज्योतिष शास्त्र के फलित ग्रन्थों को मानते हैं या नहीं और भृगुसंहिता आप्त ग्रन्थ है या नहीं ?

उत्तर—हम ज्योतिष शास्त्र के गणित भाग को मानते हैं; फलित भाग को नहीं; क्योंकि ज्योतिष के जितने सिद्धान्त-ग्रन्थ हैं, उन में फलित का लेश भी नहीं है । भृगुसिद्धान्त-जिस में केवल गणित विद्या है, उसको हम आप्त ग्रन्थ मानते हैं; इतर को नहीं । ज्योतिष शास्त्र में भूत, भविष्यत् काल का सुख-दु:ख विदित होना अनाप्तोक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त अर्थात् अप्रमाणित व्यक्तियों की लिखी हुई पुस्तकों के अतिरिक्त कहीं नहीं लिखा ।

चौदहवां प्रश्न—ज्योतिष शास्त्र में आप किस ग्रन्थ को आप्त ग्रन्थ समझते हैं ?

उत्तर—ज्योतिष शास्त्र में जो जो वेदानुकूल ग्रन्थ हैं, उन सबको हम आप्त ग्रन्थ मानते हैं, अन्य को नहीं ।

पन्द्रहवां प्रश्न—आप पृथिवी पर सुख, दु:ख, विद्या, धर्म और मनुष्य संख्या की न्यूनता-अधिकता मानते हैं या नहीं ? यदि मानते हैं तो आगे इनकी वृद्धि थी या अब है या होगी ?

उत्तर—हम पृथिवी में सुखादि वृद्धि आदि की व्यवस्था को सापेक्ष होने से, अनियत मानते हैं; मध्यावस्था में समान जानो ।

सोलहवां प्रश्न—धर्म का क्या लक्षण है और धर्म सनातन है या परमेश्वरकृत अथवा मनुष्यकृत ?

उत्तर—जो पक्षपातरहित न्याय कि जिसमें सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग हो, वह धर्म का लक्षण कहलाता है; सो वह सनातन, ईश्वरोक्त और वेदप्रतिपादित है; मनुष्य-कल्पित कोई धर्म नहीं ।

सत्रहवां प्रश्न—यदि कोई मतानुयायी आपके अनुसार मुहम्मदी या ईसाई है और आपके मत में दृढ़ विश्वास हो जाये तो क्या आपके मतानुयायी उस को ग्रहण कर सकते हैं या नहीं और उसका पाक किया हुआ (पकाया) भोजन आप और आपके मतानुयायी कर सकते हैं या नहीं ?

उत्तर—वेदों के अतिरिक्त हमारा कोई कपोलकल्पित मत नहीं है। फिर हमारे मत के अनुसार कोई कैसे चल सकता है ? क्या तुमने अन्धेरे में गिरकर खाना-पीना, मलमूत्र करना, जूती, धोती, अंगरखा धारण करना, सोना, उठना, चलना, धर्म मान रखा है ? हाय, खेद है कि इन कुमति पुरुषों पर कि जिनकी बाहर और भीतर की दृष्टि पर पर्दा पड़ा हुआ है जो कि जूता पहनना या न पहनना धर्म मानते हैं। सुनो; और आंख खोल कर देखो; ये सब अपने-अपने देशव्यवहार हैं।

अठारहवां प्रश्न—आपके मत से ज्ञान के बिना मुक्ति होती है या नहीं ? यदि कोई पुरुष आपके मतानुसार धर्म पर आरूढ़ हो और अज्ञानी अर्थात् ज्ञानहीन हो तो उसकी मुक्ति हो सकती है या नहीं ?

उत्तर—**परमेश्वर सम्बन्धी ज्ञान के बिना मुक्ति किसी की न होगी।** सुनो भाइयो ! जो धर्म पर आरूढ़ होगा उस को क्या ज्ञान का अभाव कभी हो सकता है ? वा ज्ञान के बिना क्या कोई मनुष्य धर्म में दृढ़ आस्था रख सकता है ?

उन्नीसवां प्रश्न—श्राद्ध आदिक अर्थात् पिंडदान आदि, जिसमें पितृतृप्ति के अर्थ ब्राह्मणभोजनादि कराते हैं, शास्त्ररीति है या अशास्त्ररीति ? यह यदि अशास्त्ररीति है तो पितृकर्म का क्या अर्थ है और मनुस्मृति आदि ग्रन्थों में इनका लेख है या नही ?

उत्तर—जीते पितरों की श्रद्धा से सेवा, पुरुषार्थ व पदार्थों से तृप्ति करना; श्राद्ध और तर्पण कहलाता है। यह तर्पण वेदादि-शास्त्रोक्त है। भोजनभट्ट अर्थात् स्वार्थियों का लड्डू आदि से पेट भरना श्राद्ध और तर्पण शास्त्रोक्त तो नहीं किन्तु पापों का अनर्थकारक आडम्बर है। जो-जो मनु आदिक ग्रन्थों में लेख है सो वेदानुकूल होने से माननीय है; अन्य कोई नहीं।

बीसवां प्रश्न—कोई मनुष्य यह समझ कर कि मैं पापों से मुक्त नहीं हो सकता, आत्मघात करे तो उसको कोई पाप है या नहीं ?

उत्तर—आत्मघात करने में पाप ही होता है; और भोगे बिना पापाचरण के फल के पापों से मुक्त कोई भी नहीं हो सकता।

इक्कीसवां प्रश्न—जीवात्मा संख्यात हैं या असंख्यात ? कर्म से मनुष्य पशु अथवा वृक्ष आदि योनियों में उत्पन्न हो सकता है या नहीं ?

उत्तर—ईश्वर के ज्ञान में, जीव संख्यात और जीव के अल्पज्ञान में असंख्यात हैं। पाप अधिक करने से जीव, पशु, वृक्ष आदि योनियों में उत्पन्न होता है।

बाईसवां प्रश्न—विवाह करना अनुचित है या नहीं ? सन्तान करने से किसी पुरुष पर पाप होता है या नहीं ? और होता है तो क्या ?

उत्तर—जो पूर्ण विद्वान् और जितेन्द्रिय होकर सर्वोपकार किया चाहे उस पुरुष वा स्त्री को विवाह करना योग्य नहीं, अन्य सबको उचित है। वेदोक्त रीति से विवाह करके ऋतुगामी होकर सन्तानोत्पत्ति करने में कुछ दोष नहीं। व्यभिचार आदि से सन्तान उत्पन्न करने में दोष है, क्योंकि अन्यायाचरणों में, दोष हुए बिना कभी नहीं रह सकता है।

तेईसवां प्रश्न—अपने सगोत्र में (विवाह) सम्बन्ध करना दूषित है या नहीं, यदि है तो क्यों है ? सृष्टि के आदि में ऐसा हुआ था या नहीं ?

उत्तर—अपने सगोत्र में विवाह करने से दोष यों है कि इससे शरीर, आत्मा, प्रेम, बल आदि की उन्नति यथावत् नहीं होती; इसीलिए भिन्न-भिन्न गोत्रों में ही विवाह-सम्बन्ध करना उचित है। सृष्टि के आदि में गोत्र ही नहीं थे फिर **वृथा**

क्यों परिश्रम किया । हां, पोपलीला में दक्ष प्रजापति वा कश्यप की एक ही सब सन्तान मानने से पशुव्यवहार सिद्ध होता है । इसको जो माने मानता रहे ।

चौबीसवां प्रश्न—गायत्री जाप से कोई फल है या नहीं और है तो क्यों है ?

उत्तर—गायत्री जाप यदि वेदोक्त रीति से करे तो फल अच्छा होता है क्योंकि इसमें गायत्री के अर्थानुसार आचरण करना लिखा है । पोपलीला के जप अनर्थरूप फल होने की तो कथा ही क्या है ? कोई अच्छा व बुरा किया हुआ कर्म निष्फल नहीं होता है ।

पच्चीसवां प्रश्न—धर्म-अधर्म मनुष्य के अन्तरीय भावसे होता है या कर्म के परिणाम से ? यदि कोई मनुष्य किसी डूबते हुए मनुष्य को बचाने को नदी में कूद पड़े और वह आप डूब जाये तो उसे आत्मघात का पाप होगा या पुण्य ?

उत्तर—मनुष्यों के धर्म और अधर्म भीतर और बाहर की सत्ता से होते हैं कि जिन का नाम कर्म और कुकर्म भी है । जो किसी को बचाने के लिए परिश्रम करेगा और फिर उपकार करते हुए जिसका शरीर वियुक्त हो जाये, तो उसको पाप नहीं पुण्य ही होगा ।

रामजीलाल, पुत्र-बालकिशन अहीर, यदुवंशी ने जो राजा दुर्गाप्रसाद के यहां काम करते हैं, वर्णन किया—'मैंने जब कायमगंज में सुना कि स्वामी जी बरेली आदि से होते हुए फर्रूखाबाद पधारे हैं तो उसी समय दर्शन के लिए फर्रूखाबाद गया । प्रथम मैंने गोविन्दलाल, वर्तमान मुख्तार न्यायालय रियासत दरभंगा और बद्रीप्रसाद का, जो उक्त जिले के न्यायालय में वकील हैं, यज्ञोपवीत स्वामी जी से कराया ।'

"एक दिन लाला कालीचरण के बाग में छत के ऊपर श्री स्वामी जी और बहुत से लोग बैठे हुए थे । स्त्रियों के आने की आहट प्रतीत हुई । उसी समय स्वामी जी ने अपने शरीर पर बगलों के नीचे तक, कपड़ा बांध लिया और कहा कि स्त्री लोग आती हैं । इतने में स्त्रियां आईं और श्री स्वामी जी महाराज को दंडवत् अर्थात् नमस्ते करके बैठ गईं । एक लड़के का नाम (जिस की आयु दो वर्ष की थी) उसकी माता से पूछा । उसने उसका नाम भीमा बतलाया, स्वामी जी कहने लगे कि यह नाम अच्छा नहीं । उसकी माता ने कहा कि महाराज ! आप कोई अच्छा नाम रख दीजिये । स्वामी जी महाराज ने उस का नाम 'भूराज' रख दिया और अर्थ कि 'भू' कहते हैं पृथिवी को और राज नाम 'प्रकाश' का है । इसलिए जो पृथ्वी पर प्रकाशमान है उस का नाम 'भूराज' होना चाहिये । उस की माता और समस्त उपस्थित लोग यह नाम सुनकर प्रसन्न हुए । उसकी दो लड़कियां उपस्थित थीं उनके विषय में शिक्षा दी कि प्रथम इन लड़कियों का विद्या पढ़ना आवश्यक है । जब विद्या पढ़ चुकें, तब, विवाह करा देना; अभी विवाह की शीघ्रता नहीं है । लड़कियों की अवस्था उस समय सम्भवत: दस-बारह वर्ष की होगी ।"

"एक दिन उक्त बाग से व्याख्यान के लिए स्वामी जी घोड़ागाड़ी पर चढ़कर आर्यसमाज के मकान की ओर आ रहे थे; मैं भी साथ था । एक कुत्ता बड़े जोर से भौंकता हुआ घोड़े के पीछे दौड़ा और थोड़ी दूर चलकर थक कर रह गया । स्वामी जी महाराज ने कहा कि इसका इतना ही सामर्थ्य था; घोड़े के बराबर किस प्रकार आ सकता था ? इसी प्रकार कपोलकल्पित ग्रन्थ मानने वाले पोप लोगों का सामर्थ्य है, वे भी प्राचीन वेदमत मानने वालों के सम्मुख शास्त्रार्थ करने में असमर्थ हो जाते हैं ।"

कमेटी के सदस्यों के कर्त्तव्य, न्यायाधीश कौन बने ?—फिर 'समाज' के स्थान पर पधार कर बाबू दुर्गाप्रसाद साहब रईस व आनरेरी मैजिस्ट्रेट फर्रूखाबाद से बातचीत हुई। स्वामी जी ने पूछा कि यहां कमेटी के सदस्य कौन-कौन हैं ? बाबू साहब ने कहा कि महाराज मैं भी हूं। कहा कि क्या तुम मुकद्दमों में न्याय करते हो ?

बाबू साहब—हां महाराज। **स्वामी जी**—राजा का काम है कि पक्षपात लेशमात्र भी न करे और अन्याय कभी न करे। **बाबू साहब**-महाराज मुझ से जहां तक हो सकता है, अच्छी प्रकार छानबीन कर लेता हूं परन्तु हृदय की बात क्योंकर जान सकता हूं ? **स्वामी जी**-"जब तक पूर्ण विद्या और विज्ञान और दूसरे के अन्तःकरण की बात जानने का सामर्थ्य न होवे, न्याय करने लगना किसी को उचित नहीं है। यदि तुम्हारा सामर्थ्य इतना नहीं है तो न्यायाधीश का काम करते ही क्यों हो ?" बाबू साहब चुप रहे।

फिर व्याख्यान आरम्भ हुआ। इसी विषय पर व्याख्यान भी हुआ। स्वामी जी ने न्याय और साक्षी के विषय में बहुत कुछ विस्तारपूर्वक उपदेश दिया और अन्त में यह भी कहा कि म्युनिसिपैलिटी का यह प्रबन्ध कि मल को ढेर करा देते हैं, अत्यन्त हानिकारक है; और इससे बहुत रोग उत्पन्न होते हैं।"

एक दिन फतहगढ़ में भी स्वामी जी का व्याख्यान हुआ था। व्याख्यान से पहले स्वामी जी ने यह कहा था कि आर्यसमाज के दस नियमों पर बहुत से लोगों ने प्रत्येक प्रकार की परीक्षा की परन्तु आज तक एक शब्द भी उनमे व्यर्थ न पाया और न कोई मनुष्य व्यर्थ सिद्ध कर सकता है। व्याख्यान में ब्रह्मसमाजियों का बड़ी प्रबल युक्तियों से खंडन किया। ठीक व्याख्यान के बीच में एक बंगाली या पंजाबी व्यक्ति मद्य पीकर आया और चिल्लाने लगा। ऐसा प्रतीत हुआ कि किसी का सिखलाया हुआ आया है। लोग उसको धीरे से समझाने लगे। जिस समय स्वामी जी ने उसका शब्द सुना तो तत्काल एक ऊंचे स्वर से उसे ललकारा। साधारण मनुष्य मौन हो गये, उस व्यक्ति का नशा हिरन हो गया और वह स्वयं भी वहां से भाग गया।

समाचार पत्र 'नौरंगे मलामी' खंड २, संख्या ९, तिथि ३० अक्तूबर, सन् १८७९ शुक्रवार में उस समय का वृत्तान्त निम्नलिखित शीर्षक से लिखा हुआ है—

फर्रूखाबाद नगर और कैम्प फतहगढ़—'दस सप्ताह का समय व्यतीत हुआ कि महाराज दयानन्द सरस्वती जी, घोड़ा गाड़ी द्वारा फर्रूखाबाद में आकर गंगातट पर ला० जगन्नाथ साहब के विश्रान्त पर ठहरे। उक्त महाराज के पधारने के समय नगरवासियों में से बहुत से लोग उन की सेवा में गये और उनके मधुर वचनों को सुनकर प्रसन्न हुए। इस बात में बहुत से लोग एकमत हैं कि वे संस्कृत में अत्यधिक दक्ष हैं और मूर्तिपूजा का सर्वथा निषेध करते हैं। उक्त महाराज ने ३० सितम्बर से एक दिन का अन्तर देकर, उपर्युक्त ला० जगन्नाथ साहब के मकान पर तीन दिन सभा की। इस सभा के विषय में विज्ञापनों द्वारा नगर के समस्त रईसों को सूचित कर दिया गया था। उनमें से बहुत से सभा में सम्मिलित हुए। ज्वाइण्ट मैजिस्ट्रेट तथा पादरी स्काट साहब भी एक या दो बार पधारे और सभा के आरम्भ से अन्त तक विराजमान रहे। संवाददाता भी इस सभा में था। वास्तव में उक्त महाराज की वर्णनशैली ऐसी है कि सुनने वालों की सुनने से किसी प्रकार तृप्ति नहीं होती। उनके वचनों से प्रकट होता था कि उनका आचरण वेद के अनुसार है और मूर्तिपूजा जो आजकल लोग करते हैं, उसके वे विरुद्ध हैं। बहुत से हिन्दुओं ने उनका अनुकरण स्वीकार किया है तथा अन्य करते चले जा रहे हैं। जब वे वर्णन करने को बैठते हैं तो प्रायः अच्छी शिक्षाएं देते हैं और कुछ बातें ऐसी होती हैं जो हिन्दू मुसलमान सब के विरुद्ध होती हैं। परन्तु अस्पष्ट को छोड़कर स्पष्ट का अनुकरण करना चाहिये। प्रत्येक सभा में हजारों मनुष्यों की भीड़ होती थी और ऐसा धक्का-मुक्का होता था कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। अन्तिम सभा ला० मदनमोहनलाल साहब के मकान पर हुई थी

और संवाददाता वहां भी गया था। विभिन्न सम्प्रदायों के लोग एकत्रित थे। इस सभा के अगले दिन प्रातःकाल ला० मदनमोहनलाल साहब के सम्बन्धियों में किसी स्त्री का देहान्त हो गया। चूंकि उपर्युक्त लाला साहब, सरस्वती महाराज के विश्वासियों में से हैं, उन्होंने महाराज से कहा कि जैसे आप कहें वैसे क्रियाकर्म किया जावे। स्वामी जी ने जो क्रियाकर्म बताया वह अग्रवाल वैश्यों में प्रचलित प्रथा के विरुद्ध था, परन्तु उन्हीं के बतलाने के अनुसार आचरण किया गया और उनके बहुत से वैश्य सम्बन्धी अपनी प्रथाओं से विरुद्ध होते देखकर उनके साथ सम्मिलित नहीं हुए। आजकल इस नगर में गली-गली और घर-घर में सरस्वती महाराज की बातों ही की चर्चा हो रही है। पंडित बलदेवप्रसाद साहब, हेडमास्टर जिला स्कूल-फर्रूखाबाद ने नगर के अन्य पंडितों के कहने पर पच्चीस प्रश्न लिखकर उन के पास भेजे थे। सुना गया है कि उन्होंने उत्तर तो उसी दिन सब के दे दिये थे परन्तु यहां उनके पास नहीं आये हैं। सरस्वती महाराज ने ८ अक्तूबर को कैम्प फतहगढ़ में सभा की और उसी दिन वहां से **कानपुर** होते हुए **पटना** आदि की ओर चले गये और महाराज के आदेशानुसार लगभग दो हजार रुपया पुस्तकों आदि के प्रकाशनार्थ इस नगर से एकत्रित हो गया और प्रति सप्ताह पंडित गोपाल राव हरि और अन्य लोग सरस्वती महाराज के कथनानुसार सभा किया करेंगे और उक्त पंडित बलदेवप्रसाद साहब, ला० झुन्नालाल साहब और अन्य व्यक्ति मूर्तिपूजा के समर्थन में सभा किया करेंगे।"

सम्पादकीय टिप्पणी—पंडित बलदेवप्रसाद साहब, हेडमास्टर जिला स्कूल के विषय में हमने तो सुना था कि बी० ए० हैं परन्तु वे बी० ए० नहीं प्रतीत होते। एक बी० ए० द्वारा ऐसी चेष्टा का किया जाना असम्भव प्रतीत होता है। क्या विचित्र बात है कि पंडित साहब ने जन्म-कर्म में एक ही तो सभा संगठित की ओर वह भी मूर्तिपूजा की। वही कहावत हुए कि बहुत प्रसन्न हुई तो ईंट मारी। वाह, वाह, बी० ए० की खूब दुर्गति की। गणित की पढ़ाई और सर विलियम हैमिल्टन की फिलासफी का यह परिणाम निकला कि २५ प्रश्न मूर्तिपूजकों की ओर से स्वामी दयानन्द सरस्वती के विरुद्ध बना डाले। प्रश्नों का महत्त्व तो इसी से प्रकट है कि आक्षेप करने वाले सज्जन एक मूर्तिपूजा समर्थक सभा के प्रधान हैं। इसी प्रकार के समस्त बी० ए० शिक्षितों पर कलंक लगाते हैं प्रत्युत अपने अध्यापकों और कालिज के अपमान का भी कारण हैं। अब हम हैडमास्टर साहब से विनयपूर्वक अनुरोध करते हैं कि यदि वे सब पढ़ा-लिखा भूल गये हों अर्थात् अंग्रेजी के कुछ शब्दों के अतिरिक्त और कुछ स्मरण न रहा हो तो अभी समय है फिर से उन्हीं पुस्तकों का अध्ययन आरम्भ करें और वर्ष अथवा ६ महीने में जब उनके अध्ययन से निवृत्त हों तो एकान्त में बैठकर अपनी बुद्धि से परामर्श करें कि मूर्तिपूजा उचित है या अनुचित?

हैडमास्टर साहब बड़े साहसी प्रतीत होते हैं क्योंकि उन्होंने इस बात की तनिक भी चिंता नहीं की कि ईश्वर न करे यदि इस बुद्धिपूर्ण सभा के प्रधान होने की सूचना डाइरैक्टर साहब तक पहुंचेगी तो उनके मन में आपकी ओर से कैसे सुन्दर विचार उत्पन्न होंगे? हे परमेश्वर! उनको शीघ्र सीधे मार्ग पर ला।"

कानपुर (८ अक्तूबर सन् १८७९ से १६ अक्तूबर, सन् १८७९ तक)—स्वामी जी ८ अक्तूबर को फर्रूखाबाद से चलकर उसी दिन यहां पधारे। यहां पर आकर उन्होंने निम्नलिखित विज्ञापन प्रकाशित किया—

विज्ञापनपत्र—ठाकुर मुकुन्दसिंह और मुन्नासिंह आम मुकद्दमा के वास्ते मुख्तार हैं परन्तु पुस्तकें बेचने और रुपया लेने के मुख्तार ये हैं—मुन्शी समर्थदान बम्बई वाले, मुन्शी इन्द्रमणि जी प्रधान आर्यसमाज मुरादाबाद, बख्तावरसिंह मन्त्री आर्यसमाज शाहजहांपुर, ला० रामसरनदास उपप्रधान आर्यसमाज मेरठ, ला० सांईदास मन्त्री आर्यसमाज लाहौर, ला० बलदेवदास व डा० बिहारीलाल मंत्री आर्यसमाज गुरदासपुर, चौधरी लक्ष्मणदास सभासद् आर्यसमाज अमृतसर, बाबू रामाधार वाजपेयी तार आफिस रेलवे लखनऊ, पंडित सुन्दरलाल, रामनारायण पोस्टमास्टर जनरल पोस्ट आफिस प्रयाग,

बाबू माधोलाल मन्त्री आर्यसमाज दानापुर—इन सबको वेदभाष्य का चन्दा अगराहने का अधिकार है और जिसके पास जितना चन्दा होवे जैसराज गोटेराम साहूकार फर्रूखाबाद के पास रुपया भेजकर रसीद मंगा लें । मुन्शी समर्थदान बम्बई वाले तथा मुन्शी इन्द्रमणि जी मुरादाबादी के पास मेरे बनाये सब पुस्तक मिलेंगे ।

१४ अक्तूबर, १८७९, कानपुर ।

—दयानन्द सरस्ती

छापाखाना के वास्ते एक हजार रुपया फर्रूखाबाद से हुआ है और अब छापाखाना स्वतन्त्र कराया जावेगा । तुम भी बम्बई में इसके लिए चन्दा करो । हमारा विचार मार्गशीर्ष तक अपना छापाखाना कर लेने का है । कानपुर । ११ अक्तूबर, सन् १८७९ ।

आश्विन बदि ११, शनिवार अर्थात् १६ अक्तूबर[1] को यहां से प्रयाग जावेंगे ।

—दयानन्द सरस्वती, कानपुर ।

प्रयाग के समाचार—(१७ अक्तूबर से २२ अक्तूबर तक) स्वामी जी कानपुर से रेल द्वारा आश्विन बदि ११ संवत् १९३६ तदनुसार १६ अक्तूबर, सन् १८७९ को चलकर १७ अक्तूबर को प्रयागराज पधारे और केवल ६ दिन विश्राम करके मिर्जापुर की ओर चले गये । कोई विशेष काम नहीं किया । हां, जो सज्जन मिलने आये उन्हें सत्योपदेश से लाभ पहुंचाते रहे ।

मिर्जापुर का वृत्तान्त (२३ अक्तूबर, सन् १८७९ से २९ अक्तूबर, सन् १८७९ तक)—स्वामी जी आश्विन शुदि ९, गुरुवार, संवत् १९३६ तदनुसार २३ अक्तूबंर, सन् १८७९ को **प्रयाग से मिर्जापुर** में पधार कर सेठ रामरतन जी के बाग में ठहरे । शरीर अस्वस्थ था; तो भी परोपकार के बिना चैन न थी । कुल तीन व्याख्यान वहां दिये । व्याख्यानों के अतिरिक्त भी प्रत्येक समय लोग आते और अपने सन्देह निवृत्त किया करते थे । विस्तृत वृत्तान्त इन दो पत्रों में है जो साथ सम्मिलित हैं । दानापुर से बाबू मक्खनलाल स्वामी जी को लेने के लिए मिर्जापुर आये । वे अपने दो पत्रों में यहां का वृत्तान्त इस प्रकार लिखते हैं—

"बाबू माधोलाल जी, यहां ५ बजे कल हम पहुंच गये और एक लड़का स्टेशन पर उपस्थित था जिसको बाबू नन्नूलाल ने भेजा था । जहां स्वामी जी व्याख्यान दे रहे थे, वहां हम गये और आठ बजे तक ठहरे । तत्पश्चात् स्वामी जी के साथ उनके डेरे पर गये जो बगीचे में था ।

समस्त विवरण में से मैं सबसे पहले व्याख्यान का वृत्तान्त लिखना चाहता हूं । व्याख्यान का कमरा बुहत बड़ा और अच्छा था जिसमें बहुत मनुष्य बैठ सकते हैं और बहुत एकत्रित थे । शतरंजी और दरी बिछी हुई थी और रोशनी भी खूब की हुई थी । बीच में एक चौकी रखी हुई थी जिस के ऊपर दरी और तकिया रखा हुआ था; जिस पर स्वामी जी ने ठीक ६ बजे बैठकर व्याख्यान आरम्भ किया । सब लोग बड़े ध्यान से व्याख्यान सुन रहे थे, जो धर्म के विषय में था और बहुत रोचक था । बाबू नन्नूलाल उपस्थित न थे क्योंकि आंव की बीमारी से उनको दस-पन्द्रह मिनट में दस्त जाना पड़ता था । शामलाल यहां रविवार को आये और फिर उसी दिन बनारस चले गये । उन्होंने स्वामी जी को न देखा जैसा कि उन को चाहिये था और स्वामी जी के ले जाने के लिए रहना चाहिये था । इसके बदले में वह यहां से बनारस जाते हैं और आज

---

1. १६ अक्तूबर को आश्विन (द्वि०) सुदि प्रतिपदा पड़ती है ।—सम्पा०

शाम तक घर पहुंच जायेंगे । जब हम बगीचे में आये तो हमने देखा कि बंगला, जो हम लोगों के लिए दिया है, अच्छा बना हुआ और भली भांति सजा हुआ है । चित्र, दर्पण और कुछ वस्तुएं असली भी जहां-तहां लटकी हुई हैं । टेबिल, चौकी, कोच, बैठने की वस्तुओं से कमरे सजे हैं । दरी, मूंज की चटाई सर्वत्र फैलाई हुई है । अब मैं इसको दुःख के साथ वर्णन करता हूं कि हमारे स्वामी जी इस समय निर्बल हैं और उन की आकृति और शरीर अपेक्षया उस समय से, जैसा कि हमने दिल्ली में देखा था, दुर्बल है परन्तु कुछ भय की बात नहीं है । पूछने से विदित हुआ कि संग्रहणी का रोग डेढ़ मास हुआ कि अच्छा हो गया और गत सप्ताह से उनको एक दिन के अन्तर से ज्वर आता है । परन्तु मैं हर्ष से कहता हूं कि ता० २६ को ज्वर की बारी थी परन्तु न आया । हमने उनसे दानापुर सीधा चलने को कहा परन्तु वे यह कहते हैं कि 'यदि हम जायेंगे भी तो भी हम वचन नहीं देते कि नित्य व्याख्यान दे सकेंगे या नहीं और पन्द्रह दिन तक ठहरेंगे । हरिहर क्षेत्र में जाने का भी वचन नहीं कर सकते ।' तिस पर हमने उत्तर दिया कि जैसी आपकी इच्छा हो वैसा कीजिये और नित्य व्याख्यान देने की आवश्यकता नहीं है । सोमपुर के बारे में पीछे देखा जावेगा । मैं आशा करता हूं कि इस बात को आप पसन्द करेंगे । अब मैं पूरा वृत्तान्त लिखता हूं ।

तीन पंडित और एक साधु उनके साथ हैं और एक कहार नौकर है । स्वामी जी को छोड़ कर पांच मनुष्य हुए सो आप तैयारी कीजिये । एक पलंग निवार का स्वामी जी के लिए और चार साधारण चारपाई औरों के लिए । चूंकि स्वामी जी निर्बल हैं वे आटा, चावल और मूंग की दाल खाते हैं । आप अरहर, उड़द की दाल का भी प्रबन्ध कर रखियेगा । घी को सावधानता से खरीदकर रखियेगा । परन्तु हम समझते हैं कि उनको अभी इसकी आवश्यकता न होगी क्योंकि वे कहते थे कि बाजार का घी बुरे प्रकार का और मिलावट वाला मिलता है परन्तु हमने उनको कहा कि हम अच्छा घी खरीद लेंगे ।' वे सहमत हुए हैं । मिर्जापुर से वीरवार[७९], ३० अक्तूबर, सन् १८७९ को चलने के लिए उस गाड़ी में जो नौ बजकर ३० मिनट पर यहां से चलती है और दानापुर को उसी दिन साढ़े तीन बजे सायं पहुंचती है । इस शर्त पर कि आप वहां भोजन तैयार रखें क्योंकि यहां से बहुत सवेरे चलकर वहां पहुंचते ही स्वामी जी भोजन करेंगे तत्पश्चात् किसी से भेंट करेंगे । वे चाहते हैं कि निम्नलिखित पदार्थों का भोजन बनावें, चावल, रोटी, मूंग की दाल और साग; परन्तु मिर्च खटाई न पड़े और रोटी में घी भी न लगे । पहले स्वामी जी ने कहा था कि पैसेंजर ट्रेन से जो यहां से साढ़े १२ बजे चलती है और दानापुर साढ़े नौ बजे रात को पहुंचती है, उसकी फर्स्ट क्लास में चलें क्योंकि उस में शौच आदि की सुविधा रहती है । फिर कहा कि उसमें पन्द्रह रुपये साढ़े सात आने किराया लगता है जो अधिक है, इसलिए हम डाकगाड़ी की द्वितीय श्रेणी में जायेंगे जिसका किराया सात रुपया ग्यारह आने नौ पाई है; और जिसमें शौचालय भी है । इस चिट्ठी के पाते ही आप बाबू गुलाबचन्द का बंगला खाली रखिये और जितने सदस्य स्टेशन पर आ सकें, साढ़े तीन बजे उपस्थित रहें, क्योंकि हम लोग साढ़े तीन बजे अवश्य पहुंचेंगे । कृपा करके आप कुछ फल भी रखियेगा जैसे कि अमरूद, शरीफा, केला । कदाचित् वे उनको मांगे क्योंकि हमने इन वस्तुओं को देखा है । अच्छे प्रकार की थोड़ी सी मिठाई भी रखिये परन्तु बहुत नहीं । दूसरा पण्डित भी आने वाला है आज या कल ।

मिर्जापुर समाज के कोई सदस्य हम लोगों के साथ नहीं जायेंगे सो हम लोग सात मनुष्य आते हैं । मैं समझता हूं कि मेरे पास रुपया पर्याप्त है परन्तु औरों के लिए हमको ड्योढ़े दर्जे का किराया देना होगा परन्तु दो मनुष्यों को छोड़कर, जिनको स्वामी जी के सेवकों के रूप में तीसरी श्रेणी का किराया देना पड़ेगा । २८ अक्तूबर, सन् १८७९ । मिर्जापुर ।"

—मक्खनलाल

"कल की चिट्ठी के क्रम में मैं आज प्रसन्नता से वर्णन करता हूं कि स्वामी जी आज बहुत अच्छे हैं। व्याख्यान अवश्य देवेंगे यदि वहां विलम्ब न हुआ। कोई रसोइया नहीं है। एक ब्राह्मण को रसोई के लिए रखिये जो चतुर हो और खाना बनाने में धोखा न करे अन्यथा हमको बहुत कुछ सहना पड़ेगा। बर्तन आदि भी उपस्थित रखियेगा। आज ६ बजे नगर में स्वामी जी भाषण देवेंगे सो हम जायेंगे। कल बगीचे में बहुत से मनुष्य आये थे और उनके साथ सेठ रामरतन भी थे। उन्होंने स्वामी जी को कहा कि हम ३० अक्तूबर को अजमेर होते हुए भतीजे के विवाह के लिए बीकानेर जा रहे हैं; इसलिए हम आपके साथ दानापुर नहीं जा सकते और न दूसरे सदस्य ही जा सकते हैं। लैक्चर हाल (व्याख्यान भवन) बनाने के लिए मै समझता हूं कि कटड़ा पर अच्छा होगा जो महावीरप्रसाद के सामने है और जहां कई-सौ मनुष्य स्वामी जी का व्याख्यान सुनने के लिए एकत्रित हो जावेंगे। यदि आपने आज्ञा नहीं ली है तो उचित है आप मैजिस्ट्रेट साहब की आज्ञा ले लें; जिससे वे कभी इन्कार न करेंगे। २९ अक्तूबर, सन् १८७९, मिर्जापुर।

—मक्खनलाल

दानापुर (बिहार) में धर्मप्रचार

(३० अक्तूबर, सन् १८७९ से १९ नवम्बर, सन् १८७९ तक)

आर्यसमाज दानापुर के सम्मानित सदस्यों—बाबू माधोलाल, रामनारायण तथा जनकधारीलाल ने वर्णन किया कि संवत् १९६४ को हमारे मन में धर्म के विषय में अनुसंधान करने का विचार उत्पन्न हुआ। उस समय हम अपना स्कूल जारी करके उस में पढ़ाया करते थे। मूर्तिपूजा की श्रद्धा हमारे मन से उठ गई थी। कोई धर्म पुस्तक न होने से हमने अपने आप को 'विचारपन्थी' घोषित किया था और निम्नलिखित व्यक्ति मिलकर तर्क-वितर्क किया करते थे—शिवगुलामप्रसाद, ठाकुरप्रसाद शाह, बाबूलाल, श्यामलाल, हीरालाल, माधोलाल, जनकधारीलाल और 'विचार-सभा' उसका नाम रखा हुआ था। उसमें 'बहारेवृन्दावन', 'वैदिक धर्मतत्व' अर्थात् 'मकजने ब्रह्मज्ञान' आदि पढ़ा जाता था। इस के एक-दो वर्ष पश्चात् जब हमने मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी की पुस्तकों को देखा और सदस्य भी अधिक हो गये तो उसका नाम 'हिन्दू सत्यसभा' रखा गया जिसमें ब्रह्मसमाज की कुछ पुस्तकें पढ़ी जाती थीं। तारक बाबू, नन्दलाल गुप्त, शिवचंद्रसिंह, मुंशी गणेशप्रसाद ब्रह्मसमाज के विचार के लोग थे और इसी के विषय में व्याख्यान दिया करते थे।

"एक बार जनकधारीलाल बनारस गये। उन दिनों 'सत्यार्थप्रकाश' वहां प्रकाशित हो रहा था। उन्होंने वहां से लौटकर ग्यारहवें समुल्लास के कुछ रद्दी प्रूफ दिखलाये और कहा कि दयानन्द स्वामी की ओर से एक पाठशाला बनारस लक्ष्मीकुंड पर है और उसी स्थान पर मुंशी हरबन्सलाल का एक छापाखाना है जिसमें यह 'सत्यार्थप्रकाश' छप रहा है। मुंशी हरबंसलाल से भी मिले थे। एक व्यक्ति छेदीलाल, जो पहले दानापुर में रह गया था, वह उस समय प्रेस में प्रूफ देखने वाला था, उसी के यहां ये ठहरे थे और वहां से ही प्रूफ के टुकड़े मिले थे और उन्हीं के मुख से दयानन्द स्वामी जी की प्रशंसा सुनी कि वे बहुत बड़े मनुष्य हैं। पूछा कि क्योंकर बड़े हैं? उत्तर दिया कि सत्य के कहने में। कितनी ही अपमान की अवस्था क्यों न उत्पन्न हो परन्तु वे सत्य कहने से नहीं रुकते, सो यह काम महात्मा का है प्रत्येक से नहीं हो सकता क्योंकि लोग जानते हुए भी बहुत से कारणों से पूरा सत्य नहीं कहते। स्वामी जी में केवल विद्या ही नहीं है, अपितु उनकी विचारशक्ति और सत्य की ओर दृढ़ता भी वैसी ही है। उन रद्दी पर्चों को उन्होंने यहां लाकर सभा में सुनाया जिसे बहुत लोगों ने पसन्द किया।

दूसरे वर्ष हरिहर क्षेत्र के मेले पर जो कार्तिक की पूर्णिमा को होता है, हम गये और वहां 'सत्यार्थप्रकाश' की एक प्रति मिली, जिसको एक सभासद् ने मोल ले लिया। हम लोग उसको आदि से अन्त तक पढ़कर बहुत प्रसन्न हुए।"

"फिर हमने सभा की ओर से एक पत्र छेदीलाल को लिखा कि स्वामी जी की कोई और पुस्तक है या नहीं? छेदीलाल ने उत्तर दिया कि सुना है कि लाजरस के यहां की बनाई 'वेदभाष्यभूमिका' छपती है जिस पर हम ने लाजरस[८०] के यहां से ७ जनवरी सन् १८७८ को तीन प्रति 'भूमिका' की मंगवाई और उसी पर से स्वामी जी का पता ज्ञात होता रहा और पत्रव्यवहार आरम्भ हुआ। अप्रैल, सन् १८७८ में हमने स्वामी जी के कथनानुसार 'हिन्दू सत्य सभा' का नाम 'आर्यसमाज' रखा और सब कार्यवाही नियमोपनियम के अनुसार करनी आरम्भ की और अक्तूबर, सन् १८७९ में बाबू भोलानाथ, मक्खनलाल, बुद्धोलाल-इन सज्जनों को स्वामी जी के पास दिल्ली भेजा जिस पर स्वामी जी ने यहां पधारने का वचन दिया।"

तत्पश्चात् जब स्वामी जी ने इधर आने का विचार किया तो हम को कानपुर से यह पत्र लिखा—"आर्यसमाज के मन्त्री बाबू माधोलाल, आनन्दित रहो। तुम्हारी कई चिट्ठियां आईं। हम सफर में रहे इसलिए चिट्ठी का जवाब नहीं भेज सके। विज्ञापन तुम छपवा लेना। नमूना भेजते हैं और हम १६ अक्तूबर को प्रयाग जायेंगे तब तुमको और चिट्ठी भेजेंगे। अब हम बनारस नहीं जावेंगे, मिर्जापुर से दानापुर सीधे चले जावेंगे। मार्ग में कहीं न ठहरेंगे। हमारे पास कोई मनुष्य आप भेजें। जब हम दूसरी चिट्ठी लिखें तब मिर्जापुर भेजना। मुरादाबाद से विज्ञापन बाबत नवीन पुस्तक छपवाने आपके पास गया होगा, उसके मुताबिक चन्दा करने का बन्दोबस्त कर रहे होंगे। फर्रूखाबाद से एक हजार रुपये हो गये होंगे। यह चन्दा, हमको बनारस में मार्गशीर्ष में ले जाना होगा सो समझ लेना। हमको दानापुर से लौटकर आरा अथवा जहां कहीं ठ्हरना होगा, वहां ठहरेंगे। मार्गशीर्ष तक बनारस लौटकर आ जावेंगे। विज्ञापन में स्थान की जगह छोड़ दी है सो तुम जो जगह निश्चित हो लिखकर छपवा देना और तारीख की जगह छोड़ देना। जब हम आयेंगे, लिखवायेंगे। हमारे रहने का मकान शहर से एक मील अलग रहे, इससे दूर न हो। व्याख्यान का मकान नगर में हो और रहने के मकान की जलवायु अच्छी देख लेना। हरिहर क्षेत्र के मेले में जायेंगे। वहां का भी बन्दोबस्त, मकान, डेरा, तंबू वगैरा का कर लेना। अब हम चिट्ठी मिर्जापुर से लिखेंगे और अगले महीने में बनारस आकर छापाखाना अपना बनवाने की तजवीज करेंगे सो चन्दा अपने यहां जल्दी करना और अब बनारस में छः महीना रहने का बन्दोबस्त हुआ है, जिसमें वेदभाष्य ओर शेष पुस्तक शीघ्र छपकर तैयार हो जावेंगे, ऐसा विचार है। मुकाम कानपुर, १२ अक्तूबर, सन् १८७९।"

—दयानन्द सरस्वती।

इसके पश्चात् दूसरा पत्र मिर्जापुर से आया—'बाबू माधोलाल जी, आनन्दित रहो। विदित हो कि आश्विन शुदि ९, गुरुवार, संवत् १९३६; ता० २३ अक्तूबर, सन् १८७९ को हम प्रयाग से मिर्जापुर आकर सेठ रामरतन के बाग में ठहरे हैं। अब तुम लोगों का क्या विचार है। हमारा शरीर अस्वस्थ है परन्तु तुम्हारे यहां आने का लिख चुके हैं। आना तो होगा ही। व्याख्यान होना न होना वहां आकर विदित होगा। व्याख्यान न होगा तो तुम लोगों से बातचीत तो अवश्य होगी। तुम लोगों ने लिखा था कि हमारे सभासद् आपको लेने आवेंगे सो जो आने का विचार हो तो छः दिन के बीच मिर्जापुर में पूर्वोक्त पते पर आ जावें क्योंकि कार्तिक बदि प्रतिपदा, ता० ३० अक्तूबर, सन् १८७९ को हम यहां से चलकर डुमरांव व आरा अथवा पटना पहुंचेंगे। इसमें सन्देह नहीं। सबसे मेरा नमस्ते।"

—दयानन्द सरस्वती

"इस पत्र के आने पर हमने बाबू मक्खनलाल और स्वर्गीय शामलाल को मिर्जापुर भेजा जो स्वामी जी को सैकण्ड क्लास की गाड़ी में ले आये। पण्डित भीमसेन और पण्डित देवदत्त तथा एक सेवक ब्राह्मण (जो पहले किसी मन्दिर का पुजारी था और अब मूर्तिपूजा छोड़कर स्वामी जी के साथ हो लिया था) साथ थे। ३० अक्तूबर, सन् १८७९, ६ बजे

सायंकाल यहां पधारे । बहुत से लोग गाड़ी और टमटम लेकर वहां पहुंच गये थे मानो एक प्रकार का मेला था । प्लेटफार्म पर लगभग १५ मनुष्य थे । मार्ग में बाजार के दोनों ओर हजारों मनुष्य थे । जोड़ी में चढ़कर यहां दानापुर में आकर बाबू माधोलाल के मकान पर ठहरे, लोगों से भेंट की और चाय पी ।

यहां पर ही बाबू उमाप्रसाद मुकर्जी, हेडक्लर्क महकमा मैजिस्ट्रेट साहब ने प्रश्न किया । **बाबू**—यद्यपि आपका कहना ठीक है परन्तु लोग हठ से न मानें तो आप क्या करेंगे ? **स्वामी**—'हमारा काम इतना ही है कि हमारे कथन को लोग कान में स्थान दें और जब वे उसको पूरा-पूरा सुन लेंगे तो वे (हमारे कथन) सुई की भांति भीतर चुभ जायेंगे, निकालने से न निकलेंगे । यदि उनका कोई मित्र या प्यारा एकान्त में पूछेगा तो स्पष्ट कह देंगे कि ठीक है । हठ या लोभ-लालच से न कहें तो न कहें ।"

स्वामी जी वहां से भोजन करके बंगला जोन्स साहब (जो 'वीघा लाज' कहलाता है और जो साहब बहादुर ने बिना किराये दिया था) पधारे । चूंकि व्याख्यान छावनी की सीमा में होने थे इस कारण हमने साहब मैजिस्ट्रेट बहादुर कैम्प दानापुर से प्रार्थनापत्र द्वारा आज्ञा मांगी । ३१ अक्तूबर को निम्नलिखित आज्ञा मिली—"इन व्याख्यानों के होने में हमको कोई आपत्ति नहीं परन्तु शर्त यह है कि व्याख्यानदाता और उनके मानने वाले (अनुयायी) दूसरों के हृदय को न दुखावें, जो उनसे भिन्न विचार के हैं और मिस्टर गिलबर्ट इंस्पैक्टर पुलिस से कहा जावे कि कोलाहल रोकने के लिए आवश्यक प्रबन्ध कर दे ।"

—मेजर एच० बेलो मैजिस्ट्रेट, कैम्प दानापुर । ३० अक्तूबर, १८७९ ।

फिर २ नवम्बर, सन् १८७९ को निम्नलिखित विज्ञापन अंग्रेजी अनुवाद सहित छपवा कर लगवाया गया—

विज्ञापन

सब सज्जन लोगों को विदित हो कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज कार्तिक बदि २, संवत् १९३६ गुरुवार के दिन दानापुर में आकर 'वीघा लाज' नामक बंगले में ठहरे हैं । जिस किसी को उनसे मिलने की इच्छा हो वह उक्त स्थान में प्रातःकाल ८ बजे से लेकर साढ़े नौ बजे तक और जिस दिन व्याख्यान हो उस दिन सन्ध्या के ५ बजे से १० बजे तक उपस्थित होकर वेदादि सत्यशास्त्रानुकूल और युक्तिपूर्वक संवाद करे, सत्यासत्य का निश्चय कर परस्पर सत्य का ग्रहण असत्य का त्याग करें और उक्त स्वामी जी दो नवम्बर, सन् १८७९ इतवार से लेकर प्रतिदिन सन्ध्या के ६ बजे से ८ बजे तक दानापुर, नया कटड़ा में व्याख्यान देंगे । सब सज्जन लोगों को उचित है कि नियत समय पर पधार कर सुनें और सभा को सुशोभित करें ।

—माधोलाल, मन्त्री आर्यसमाज दानापुर, २ नवम्बर, सन् १८७९ ।

इसी के अनुसार महावीरप्रसाद की दुकान के सामने नया कटड़ा कैम्प की सीमा में एक बड़े शामियाने को लगाकर प्रकाश आदि के प्रबन्ध के पश्चात् व्याख्यान आरम्भ हुआ । इस तारीख से १६ नवम्बर तक निरन्तर व्याख्यान होते रहे । केवल १३ नवम्बर, सन् १८७९ तदनुसार, कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी, बृहस्पतिवार को दीवाली के त्यौहार के कारण व्याख्यान नहीं हुआ । सब मिलाकर १४ व्याख्यान हुए । निम्नलिखित विषयों पर व्याख्यान हुए थे-सृष्टिविषय, देशोन्नति, वैदिकधर्म, पौराणिकमतखंडन, ईसाईमतखंडन, मुसलमानीमतखंडन, धर्म में एकता की आवश्यकता, ईश्वरीय ज्ञान, शिक्षापद्धति, मूर्तिपूजन । किसी-किसी विषय पर दो दिन, अन्यथा शेष सब पर एक-एक व्याख्यान हुआ । बीच-बीच में अवसरानुसार नवीन वेदान्त और ब्रह्मसमाज का भी खंडन करते रहे ।

एक दिन मुसलमानों ने शरारत करके व्याख्यान के स्थान के बहुत ही समीप एक मौलवी वाइज को खड़ा कर दिया। हिन्दू भी उसके साथ मिले हुए थे क्योंकि पंडित चतुर्भुज ऐसे कामों में बहुत चतुर है। यह मौलवी इतना असभ्य था कि उसे स्वामी जी का नाम भी ठीक से लेना नहीं आता था। वह स्वामी जी के स्थान पर असामी जी कहता था। जब हम ने विघ्न होते देखा तो इंस्पैक्टर साहब को सूचना दी जिसने आकर तत्काल हटा दिया और व्याख्यान की समाप्ति तक वहां कुर्सी डालकर बैठा रहा और भविष्य में भी ऐसा ही किया। प्रत्युत एक दिन एक पादरी साहब और कई अंग्रेजों को भी लाया और उपदेश सुनवाया।

"एक दिन बाबू गुलाबचन्दलाल ने स्वामी जी से कहा कि महाराज ! आप मुसलमानों के विरुद्ध कुछ न कहें। स्वामी जी ने उनको उस समय कोई उत्तर न दिया परन्तु जब व्याख्यान आरम्भ हुआ तो इस्लाम मत का भलीभांति खंडन किया और कहा कि कुछ छोकरों के छोकरे[८१] हमको रोकते हैं परन्तु मैं सत्य को क्यों छुपाऊं ? मुसलमानों की जब चलती थी तो उन्होंने हम लोगों का तलवार से खण्डन किया। अब क्या अन्धेर है कि वह मुझे बातों से खंडन करने में भी रुकावट डालते हैं ? ऐसा सुराज[८२] पाकर किसी की पोल खोलने में कभी रुक सकता हूं ?"

"व्याख्यान के पश्चात् डेरे पर आकर स्वामी जी ने कहा कि यह समय ऐसा है कि किसी मत की पोल खोलने और श्रेष्ठता दिखलाने में कोई मनुष्य किसी को नहीं रोक सकता। यह बात अंग्रेजों के राज की बड़ी बड़ाई की है। देखो ! पंजाब के किसी नगर में (जिसका नाम अब मुझे स्मरण नहीं रहा) मैं एक दिन व्याख्यान दे रहा था और उस से एक दिन पहले यह विज्ञापन हो चुका था कि मैं आज ईसाई मत का खंडन करूंगा। इसलिए बहुत से विलायती (विदेशी) और नेटिव (देशी) क्रिश्चियन और पादरी वहां आये थे और सब से बढ़कर किसी कारण से जनरल राबर्ट्स साहब[८३] बहादुर भी मेरे व्याख्यान में पहुंच गये। मेरी जिह्वा में जितनी शक्ति थी उससे बाइबिल का खंडन किया और उसका परस्पर विरोध दिखला कर प्रबल युक्तियों से उस को झूठा धर्म सिद्ध किया। व्याख्यान की समाप्ति पर बुरा मानना तो एक ओर जनरल राबर्ट्स साहब इतने प्रसन्न हुए कि हम से आकर हाथ मिलाया और कहा कि निस्सन्देह आप निर्भीक मनुष्य हैं। जब हमारे सामने आपने हमारे मत का इतना खंडन किया और नहीं डरे तो अन्य किसी से तो क्या डरते होंगे और प्रसन्न होकर चले गये।"

"एक दिन ठाकुरप्रसाद सुनार ने (जिसने इससे कुछ दिन पहले एक स्त्री की विद्यमानता में भी दूसरा विवाह कर लिया था) स्वामी जी से पूछा कि मुझ को योग की विधि बतलाइये ताकि मैं उस पर आचरण करूं। स्वामी जी ने (इस वृत्तान्त के जाने बिना ही) उत्तर दिया कि तू एक विवाह और कर ले तब तेरा योग ठीक हो जावेगा। जिसे सुनकर वह चकित रह गया और फिर कभी योग सीखने की इचछा न की।

उसी ने एक बार समाज की सदस्यता की अवस्था में बातचीत के समय सभा में एक सदस्य से कटुवचन कहे जिस पर हम लोगों ने उसे रोका और वह क्रुद्ध होकर चला गया। हमने उस का नाम काट दिया। वह नाम काटने पर अप्रसन्न था। स्वामी जी के पधारने पर उसने स्वामी जी से सिफारिश कराई कि मुझे भरती कर लिया जावे। हम लोगों ने स्वामी जी से निवेदन किया कि आप बिना नियम के कहें तो हम कर लेते हैं अन्यथा नियम यह है कि यह एक क्षमा का प्रार्थना-पत्र सभा में दे। स्वामी जी ने कहा कि ठीक है, हम बिना नियम के कभी नहीं कहते और न बिना नियम के कोई काम होना चाहिये।"

बाबू शिवगुलामप्रसाद (जो बहुत भंग पिया करते थे) ने स्वामी जी से पूछा कि मन एकाग्र होने का कोई उपाय बतलाइये। स्वामी जी ने कहा कि तुम दो तोला भंग पी लिया करो, फिर ध्यान खूब जमेगा। वह सुनकर बहुत चकित हुआ

क्योंकि स्वामी जी को उसके वृत्तान्त का ज्ञान न था । वास्तव में लोग दुर्व्यसनों को नहीं छोड़ते और श्रेष्ठ आध्यात्मिक बातें पूछते हैं ।

स्वामी जी ६ नवम्बर, सन् १८७९ को मैनेजर के नाम पत्र लिखते हैं—"आजकल दानापुर में प्रतिदिन व्याख्यान होते हैं । आज पांचवां दिन है । यहां का समाज और समाज के पुरुष बहुत उत्तम हैं । समाज का प्रबन्ध भी बहुत उत्तम किया है । यहां से अमावस के पश्चात् हरिहर क्षेत्र के मेले में जाना होगा । वहां से कार्तिकी पूर्णमासी के अनन्तर काशी जाकर छापाखाने का प्रबन्ध किया जावेगा और वहां आधे चैत या अन्त तक ठहरेंगे ।"

—दयानन्द सरस्वती, दानापुर

एक दिन स्वर्गीय बाबू अनन्तलाल ने एक गुलाब का फूल तोड़ा । उसे देखकर स्वामी जी ने ललकार कर कहा कि भाई ! तूने बुरा किया । यह फूल कितनी वायु को सुगन्धित करता । तूने इसे तोड़ कर इसके नियत कार्य से इसे रोका । इसके पश्चात् जब स्वामी जी भीतर आकर बैठे तो स्वामी जी के एक हाथ में मक्खी उड़ाने का मोरछल था तब उक्त बाबू ने कहा कि फूल के तोड़ने में तो आपने पाप बतलाया परन्तु क्या आप के हाथ में मोरछल से मक्खी को कष्ट नहीं होता ? इस पर स्वामी जी ने कहा कि आततायी को रोकने में तुम्हारे जैसे मनुष्यों ने बाधा डाली, जिससे भारत का नाश हो गया । तुम जैसे निर्बल और कायर लोगों से रणभूमि में क्या हो सकता है ?

मुझ माधोलाल ने ९ नवम्बर, सन् १८७९ को अपने घर में स्वामी जी को बुलाकर संस्कारविधि के अनुसार हवन यज्ञ कराकर यज्ञोपवीत और गायत्री का उपदेश लिया था । किदारनाथ और ठाकुरप्रमाद ने जोन्स साहब के बंगले पर हवन के पश्चात् यज्ञोपवीत ग्रहण किया ।

ठाकुरदास घड़ी बनाने वाले ने वर्णन किया—"हम स्वामी जी के पास प्राय: जाया करते थे । हम निवाजदास के पंथ में हैं जो सुकृत का पंथ कहलाता है । अखर बती, भयहरण, अर्जी, कदम आदि उन के ग्रन्थ तथा बहुत से भजन और विनय बने हुए हैं । बथेर गूलरिया नामक ग्राम जो जिला लखनऊ में है, वहां उनकी समाधि है । हम लोग प्रणव का जाप और योग की क्रिया साधते हैं । रेचक, पूरक, कुम्भक अर्थात् खींचना, छोड़ना और धारना साधते हैं । इनसे प्राणायाम करते हुए हमको रोग हो गया था जिस से हमारे नाभि कमल की वायु बिगड़ गई थी । प्राय: दर्द रहता था और खाना कम होकर कमर निर्बल हो गई थी । उस समय हमारे इस रोग को तीन वर्ष हो चुके थे । हमने स्वामी जी से सारा वृत्तान्त कहा । बोले कि हम भी योग जानते हैं और प्राय: किया भी है, हम इस रोग को छुड़ा देंगे । उसी समय हमको चित्त लिटा कर जानु हमारे खड़े रहने दिये, दोनों पांव भूमि पर जोड़कर और उन पर अपने दोनों पांव रखकर हमको इस प्रकारसे उठा दिया कि हमारे पांव भूमि से न उठने पाये । हमारे शिर के नीचे किसी दूसरे ने हाथ देकर उठाया था । इस प्रकार करने से उसी समय हमारा नाभि कमल ठीक हो गया और एक मिनट में हमको चंगा कर दिया । वह दर्द फिर आजतक नहीं हुआ ।

घड़ी का भेद सीखा—फिर स्वामी जी ने कहा कि हम भी तुम से एक बात सीखना चाहते हैं, क्योंकि मित्रता हो गई है । हमारे पास घड़ी है, उसको खोलने, बिगड़ने और ठीक करने का भेद हम नहीं जानते, उसको बतला दीजिये । हम ने उस घड़ी को उनके सामने खोला, ठीक किया । नई कमानी लगाई और सब विधि स्वामी जी को बतला दी और दो उपकरण अर्थात् चिमटी और पेचकस भी स्वामी जी को दे दिये । स्वामी जी उनका मूल्य देने लगे । हमने इन्कार किया कि जब हमारा आपसे गुरुभाव हो गया तो हम आप से कुछ नहीं लेते ।

फिर हमने एक दिन स्वामी जी से प्रश्न किया कि ईश्वर अरूप है, उसका रूप क्योंकर देखें ? जब उसका नाम है तो उसका कुछ रूप भी होगा । कहा जिस प्रकार परमाणु समस्त आकाश में उड़ रहे हैं परन्तु केवल सूरज की किरणों और झरोखे में दिखलाई देते हैं, प्रत्येक स्थान पर नहीं, वैसे ही ईश्वर है तो सर्वत्र; परन्तु ध्यान करने से सूझता है, यों नहीं ।

हमने पूछा कि वह ध्यान क्या है ? उसका भेद हमको बतलाइये जिससे हमको दीख पड़े । तब स्वामी जी ने कहा कि यह जो कण सूर्य की किरणों में दीख पड़ते हैं, इनका यदि लाखवां भाग किया जावे तो भी वह टुकड़ा दीखेगा नहीं सो इसी प्रकार ईश्वर वर्तमान और सर्वज्ञ तो है परन्तु दिखाई नहीं देता । इसपर हमारा निश्चय हो गया कि वह अरूप तो है, ध्यान से सूझता है परन्तु मूर्तिवाला नहीं है ।

एक दिन जोन्स साहब सौदागर (व्यापारी) ने कहला भेजा कि हम भेंट को आना चाहते हैं । फिर वह पादरी साहब, मिस्टर छैरियर साहब ओवरसीयर और कुछ मेमों के साथ पधारे । कुर्सी और चारपाइयों का प्रबन्ध किया गया था । जोन्स साहब ने कहा कि आप कुछ कहें । स्वामी जी ने कहा कि हम तो नित्य कहते हैं, आज आप ही कुछ कहें ताकि हम भी सुनें । अन्त में सबने यह कहा कि स्वामी जी वर्णन करें । तब स्वामी जी ने इस प्रकार कहना आरम्भ किया कि समस्त प्राकृतिक पदार्थ जो परमेश्वर ने उत्पन्न किये हैं-सूर्य, चन्द्र, मेघ, पृथिवी, वायु आदि, वे परमेश्वर ने सभी मनुष्यों के लिए बनाये हैं; किसी एक के लिए नहीं (पादरी साहब स्वीकार करते गये) । जैसे परमेश्वर की बनाई हुई वस्तुएं सब के लिए हैं वैसे ही परमेश्वर का बनाया हुआ धर्म भी सब के लिए समान होना चाहिये, न कि पृथक् (पादरी साहब ने कहा कि हां, समान होना चाहिये) तब स्वामी जी ने कहा कि अनुमान[८४] करो कि एक मेला है जिसमें सब धर्म के पादरी (उपदेशक) मौजूद हैं, और अपने-अपने धर्म का उपदेश करते हैं । एक अन्वेषक वहां गया और वह क्रिश्चियन, मुसलमान, हिन्दू, जैन आदि जिनकी संख्या एक हजार तक है, सबके पास सच्चे धर्म की खोज में गया और प्रत्येक ने यह बतलाया कि हमारा धर्म सच्चा है और ये शेष नौ-सौ निन्यानवे झूठे हैं । अब देखिये, यहां प्रत्येक की अपनी-अपनी सच्चाई के लिए तो केवल उस-उस का ही अपना-अपना वचन और प्रत्येक की झुठाई के लिए नौ-सौ निन्यानवे की साक्षी है । इस से क्या समझना चाहिये ? (साहब ने उत्तर दिया कि साधारण न्याय से तो हजारों झूठे ठहरते हैं) फिर स्वामी जी ने कहा कि संसार की कोई वस्तु एकदम हानिकारक नहीं । कुछ न कुछ लाभ प्रत्येक वस्तु रखती है, इसलिए ये हजारों जो मत हैं, एकदम झूठे नहीं हो सकते । कुछ न कुछ सच्चाई इन में अवश्य है । स्वामी जी ने कहा कि अनुमान कर लो कि वह अन्वेषक एक सादी नोटबुक बनाकर फिर उन हजारों में से प्रत्येक के पास गया और प्रत्येक से यह प्रश्न किया कि सच बोलना अच्छा है या झूठ ? सब ने कहा कि सच बोलना । फिर उसने पूछा कि चोरी करना अच्छा है या साहूकारी ? सब ने कहा साहूकारी । फिर पूछा कि दया करना अच्छा है या शाप देना ? सब ने कहा कि दया करना । जिन सब बातों में हजारों की एक सम्मति है, बस उस के सच्चा होने में कोई सन्देह नहीं । इसी प्रकार जो-जो प्रश्न उसके मन में उपजे, वे सब पूछे । जिसमें सबकी सम्मति हो जाये वह धर्म है और जिसमें विरोध हो वह अधर्म अर्थात् धर्म का विपरीत है । बस, इन शिक्षाओं को जिस में सबकी एक सम्मति है, वह अन्वेषक एकत्रित करे । बस वही धर्म परमेश्वर की ओर से सच्चा है । इस में किसी की खींच नहीं । इस में ऐसा कहीं नहीं है कि मुहम्मद की सिफारिश के बिना या ईसा पर विश्वास लाये बिना या राम, कृष्ण की साक्षी के बिना या किसी संसारी मनुष्य के साधन के बिना मुक्ति नहीं मिल सकती । इतना कहकर स्वामी जी ने पूछा कि इस में आप लोगों को कुछ कहना है ? तब जोन्स साहब बोले कि आप इस प्रकार से इन बातों को कहते हैं कि इनके विरुद्ध कहने में कठिनाई पड़ती है; परन्तु जब ऐसा ही विचार आपका है तो आप छूतछात क्यों मानते हैं ? हमारे साथ खाने में क्या आपत्ति रखते हैं ?

स्वामी जी ने कहा कि किसी के साथ खाने या न खाने में हम अधर्म नहीं मानते। ये सब बातें देश और जाति की प्रथा से सम्बन्ध रखती हैं, वास्तविक धर्म से नहीं। जो समझदार हैं वे भी बिना आवश्यकता अपने देश या प्रथा के विरुद्ध काम नहीं करते। क्या आप अपनी बेटी का विवाह किसी नेटिव (देशी) क्रिश्चियन से कर सकते हो और करने के पश्चात् आपको प्रसन्नता होगी? साहब ने कहा कि नहीं। तब स्वामी जी ने पूछा कि धर्म के विचार से या अपनी जाति की प्रथा के विचार से? उन्होंने कहा कि जाति की प्रथा के विचार से। तब स्वामी जी ने कहा कि इसी प्रकार देशी भाइयों की प्रथा के अनुसार हम भी इस को नहीं करते अन्यथा हम इस को धर्म बिलकुल नहीं मानते। यह सुन कर वे मौन हो गये।

फिर मूर्तिपूजा के विषय में चर्चा चली। मिस्टर जोन्स साहब ने पूछा कि हिन्दू लोग मूर्तिपूजा क्यों करते हैं? स्वामी जी ने कहा कि यह मूर्तिपूजा हिन्दुओं का धर्म नहीं है क्योंकि उनके सत्यशास्त्रों में इसका वर्णन नहीं। प्रतीत होता है कि लोग अपने पूर्वजों की मृत्यु के पश्चात् उनके चित्र बनाकर अपने पास रखने लगे और इसी प्रकार समय व्यतीत होने पर प्रेम की दृष्टि से उनकी पूजा आरम्भ की जैसे कि आप लोगों में बहुत से लोग ईसा व मरियम का क्रास और मसीह के शिष्यों का चित्र या मूर्ति बना कर पूजते हैं। अविद्या (अज्ञान) की ये बातें दोनों पक्षों में समान हैं। जिस पर वे बहुत प्रसन्न हुए और हाथ मिलाकर चले गये। यह बातचीत सम्भवत: दो घण्टे तक होती रही।

"फिर एक दिन पादरी साहब भेंट के लिए स्वामी जी के बंगले पर पधारे। वहां पर स्वामी जी और जोन्स साहब में गोमांस के विषय पर चर्चा हुई। स्वामी जी ने पूछा कि किस विचार को नेकी कहते हैं अर्थात् नेकी का क्या लक्षण है? साहब ने कहा कि आप ही कहें। स्वामी जी ने कहा कि हम नेकी समझते हैं उस को, जिस से बहुतों का उपकार हो। साहब ने भी स्वीकार किया। तब स्वामी जी ने कहा कि गाय से अधिक उपकार होता है या मांस से? उस अवसर पर स्वामी जी ने विस्तृत गणना करके बतलाया ('गोकरुणानिधि' के अनुसार) कि इस दृष्टि से गाय का मारना अधर्म और पालन करना धर्म है। जोन्स साहब ने कहा कि इस से तो यह सिद्ध होता है। स्वामी जी ने पूछा कि जो बात सिद्ध हो जावे उस के अनुसार चलना चाहिये या नहीं? साहब ने कहा कि, हां। तब स्वामी जी ने कहा कि फिर आप गोमांस क्यों खाते हैं? इस को छोड़ दीजिये। इस पर साहब बहादुर ने प्रतिज्ञा की कि मैं भविष्य में गोमांस न खाऊंगा परन्तु बकरे आदि का खाऊंगा। स्वामी ज ने कहा कि हम इस की तुम्हें आज्ञा नहीं देते परन्तु गाय का अवश्य निषेध करते हैं। तत्पश्चात् परस्पर प्रसन्नतापूर्वक मिलकर चले गये।

"स्वामी जी समय के बड़े पक्के थे। ज्यों ही व्याख्यान का समय होता था घंटा बजता था, चाहे श्रोतागण आये हों या न आये हों झट 'ओ३म्' कहकर व्याख्यान आरम्भ कर देते थे।"

पौराणिकराज पंडित चतुर्भुज जी की करतूत

जिन दिनों स्वामी जी यहां आये तो 'धर्मसभा' ने अलीगढ़ के पंडित जी को व्याख्यान के लिए बुलाया था। उन के आने से पहले ही स्वामी जी का नोटिस घूम चुका था कि जिस किसी को शास्त्रार्थ करना या कुछ पूछना हो वह अवश्य आकर पूछ ले और व्याख्यान भी आरम्भ हो गये थे। पंडित जी के आने पर परस्पर पत्रव्यवहार आरम्भ हो गया।

बाबू सूबेदारसिंह, सौदागरसिंह और जयरामसिंह को (जो तीनों एक ही बिरादरी के हैं) स्वामी जी ने भेजा कि जाकर चतुर्भुज से पूछें कि वे किस विषय पर शास्त्रार्थ करेंगे? वे कहते हैं कि हम गये और सन्देश सुनाया कि आप लिखकर उत्तर दीजिये कि आप किस विषय पर शास्त्रार्थ करेंगे या कि (पहले निश्चित किये बिना) जो मन में आयेगा उस पर करेंगे? तब पंडित जी ने कागज निकाला और कहा कि मैंने वहां हराया, वहां हराया, वहां हराया। लगभग ३२ स्थानों की चर्चा

की । हमने कहा कि यदि हराया है तो एक बार फिर हरा दो । रामलाल और नन्दलाल दोनों भाइयों ने (जिन के मकान में स्वामी जी उतरे हुए थे) कहा कि इनके कहने से क्या लाभ है ? यदि हराया है तो फिर हरा दो; परन्तु पण्डित जी यहां तक हराया हराया कहते रहे कि हमारी बात ही न सुनी । अन्त को एक और बात कही कि तुम लोग नहीं जानते हो, दयानन्द स्वामी वास्तव में क्रिस्तान हैं । उस समय हम ने कहा कि तुम भले मनुष्य नहीं हो जो ऐसे महात्मा को ऐसा कहते हो । ऐसी व्यर्थ बातों से क्या लाभ है; स्पष्ट शास्त्रार्थ का उत्तर दो । हमारी ये सब बातें बाजार वालों ने भी सुनीं परन्तु उन्होंने शास्त्रार्थ वाली बात का कोई उत्तर न दिया और न कोई नियम निश्चित किये ।

दूसरे दिन प्रात:काल हम बुद्धिशाह सुनार की दुकान पर बैठे हुए थे । देखा कि पुस्तकों की गटरी लिये हुए पंडित जी पश्चिम की ओर बाजार के मार्ग से चले आते हैं । कारण यह था कि नन्दलाल और रामलाल ने उनकी व्यर्थ बकवास और शास्त्रार्थ से टालमटोल देखकर उपद्रव की आशंका से उन्हें वहां से निकाल दिया था; तब उन्होंने जाकर ठाकुरबाड़े में थाने के समीप डेरा किया । आर्यसमाज से विरोध कराने के अभिप्राय से चतुर्भुज मुसलमानों से बड़ा प्रेम किया करता था और मुसलमान भी उसके सहायक होकर स्वामी जी का विरोध करते थे । हम ने चतुर्भुज का सारा वृत्तांत स्वामी जी को सुनाया । उन्होंने कहा कि वह सामने नहीं आयेगा; दूर से ही शोर मचाता रहता है ।

एक दिन यों धोखा दिया गया कि जब स्वामी जी व्याख्यान दे चुके तो प्रस्ताव रखा गया कि जहारी शाह के मकान में; जहां चतुर्भुज भी आयेगा, स्वामी जी चलकर परस्पर शास्त्रार्थ के नियम निश्चित कर लें । हम लोग उस मकान के वृत्तांत से अपरिचित थे । स्वामी जी और अन्य कई सज्जन हमारी जाति के गये । बहुत से तो उस मकान के बाहर रह गये । उस मकान में दूसरे मार्ग से पहले ही बहुत से हिन्दू-मुसलमान भरे हुए थे जो उपद्रव करने के ध्येय से बैठे थे । स्वामी जी गये तो पूछा कि किधर हैं चतुर्भुज; सामने आवे और बात करे । तब गोविन्दसरन मन्त्री 'धर्मसभा' ने कहा कि पण्डित जी नहीं हैं; हमसे बात कीजिये क्योंकि उनको इस समय आंखों से नहीं सूझता । तब स्वामी जी ने कहा कि यदि नहीं सूझता तो मुख से प्रश्नोत्तर करें । उसने कहा कि वे सामने नहीं आवेंगे क्योंकि वे कहते हैं कि हमको उनके दर्शन करने पर प्रायश्चित लगता है । स्वामी जी ने कहा कि वे कपड़े की आड़ से बातचीत करें । गोविन्दसरन ने कहा कि हमसे आप बातचीत करें; वे नहीं आवेंगे । स्वामी जी ने कहा कि तुम कौन हो; जिससे हम बातचीत करें, वे आवें । तब उसने एक दीपक जो जलता था उसको बुझा दिया और सब ने ताली बजाना आरम्भ किया । तब हमने ललकारा कि सब को मार डालेंगे, ऐसा मत जानो । हमको बाहर आने का मार्ग भी अन्धेरे के कारण विदित न था । लैम्प हमारे साथ था । हमारा एक सदस्य लैम्प लेकर स्वामी जी के आगे चला, स्वामी जी उस के पीछे और हम सब स्वामी जी के पीछे । उन्होंने दो-तीन ढेले फेंके थे परन्तु वे हम तक न पहुंच सके । हम दोनों हाथ में डंडा लिये हुए और यह कहते हुए कि, अरे बदमाशो ! तुमको जान से मार डालेंगे, कोई आवे तो सही, धीरे-धीरे बाहर निकल आये । हम सब भाई एकत्रित हुए और स्वामी जी को गाड़ी में बिठलाया । हमारी ओर बहुत बलवान् मनुष्य थे, वे हमारी दृढ़ता के कारण कुछ न कर सके । यद्यपि हम पहले उनके समर्थक थे और मूर्तिपूजक थे परन्तु उन की ऐसी करतूत से धर्मसभा से विरक्त होकर आर्यसमाज के सदस्य हो गये । फिर हम व्याख्यान के समय आठ-दस मनुष्यों सहित स्वामी जी का पहरा देते रहते थे कि कोई उपद्रवी ढेला न फेंक दे । उपदेश कम सुनते थे परन्तु इतने पर भी कोई-कोई बात हम सुन लेते थे । वही अपने लिए पर्याप्त समझते थे । यह काम अपनी प्रसन्नता से करते थे, किसी के कहने से नहीं ।

उन्हीं दिनों एक परवाना नं० ५९७ मैजिस्ट्रेट साहब की कचहरी से इस विषय पर जारी हुआ कि दुर्गाप्रसाद, माधोलाल, महावीरप्रसाद और जनकधारीलाल दानापुर निवासियों को विदित हो कि सब इन्स्पैक्टर दानापुर की रिपोर्ट को

देखने से ज्ञात हुआ कि दो पंडित इस नगर में आये हुए हैं । दोनों की धार्मिक विचारधारा दो प्रकार की है । अपनी-अपनी धार्मिक विचारधारा के अनुसार चलने वाले बहुत से लोग दोनों पंडितों की सहायता कर रहे हैं । दोनों पंडितों में उनकी अपनी-अपनी धार्मिक विचारधारा को लेकर परस्पर सभा-शास्त्रार्थ होने की बात चल रही है । दोनों की धार्मिक मान्यताओं तथा बातचीत के विरोध होने के कारण किसी भयंकर घटना के घटित होने की आशंका है । इस कारण तुम लोगों को तथा दानापुर के रहने वाले गुरसरन, प्यारेलाल, बाबूलाल तथा नन्दलाल को लिखा जाता है कि यदि सभा के करने अथवा शास्त्रार्थ में किसी प्रकार का कोई झगड़ा बखेड़ा उत्पन्न हुआ तो तुम लोगों पर इसका उत्तरदायित्व होगा । पुनः ताकीद की जाती है । १० नवम्बर, सन् १८७९ ।"

"इसके दो दिन पश्चात् जब हम सौदागरसिंह झकरीगिरि गुसांई के शिवालय में बैठे हए थे तो उस समय गोविन्दसरन, रामकिशन और परमेश्वरी क्षत्रियों तथा चार अन्य मनुष्यों सहित वहां आये । हमने चटाई देकर बिठलाया । उन्होंने कहा कि शास्त्रार्थ होना चाहिये । हमने कहा कि स्वीकार है । तब कहा कि कोई स्थान बताओ । हमने उमाचरण बंगाली का मकान बतलाया और कहा कि टिकिट (प्रवेश-पत्र) दिये जायें और प्रबन्ध सरकारी हो । दोनों ओर के मन्त्री जितने चाहें उतने ही मनुष्य दोनों ओर से समान संख्या में हों । उसने कहा कि बाहर का उत्तरदायित्व कौन लेगा ? वह हमने अपने ऊपर लिया । तब कहा कि वहां नहीं; सार्वजनिक स्थान पर हो । हम ने कहा कि ऐसा स्थान राजा का बंगला है । उन्होंने वहां से भी इन्कार किया; तब हम ने कहा कि तुम्हारी इच्छा कहां है ? कहा कि उस शिवालय के पास मैदान में जहां खलिहान है । हम ने कहा कि उस की एक ओर शराबखाना और दूसरी ओर ताड़ीखाना है जिस में तीन-चार हजार बदमाश इकट्ठे हो सकते हैं और ऐसे ही लोग वहां रहते हैं । वहां कौन भला मनुष्य जावेगा । तुम्हारी इच्छा उपद्रव कराने की प्रतीत होती है ।"

"एक नवाब, दूसरे डाक्टर वजीर खां और पंडित बशेशर मिश्र, ये सज्जन प्रायः प्रतिदिन व्याख्यानों में जाया करते थे । पहले दोनों सज्जनों को मुसलमानों ने बहुत तंग किया कि तुम उनके व्याख्यानों की प्रशंसा करते हो ? परन्तु वे न्यायप्रिय होने के कारण सत्य से न हटे ।"

"ठाकुरदास घड़ी बनाने वाले ने कहा—"हम भी चतुर्भुज की ओर से सन्देश लाया करते थे । स्वामी जी ने कहा कि हमारे सामने आकर मूर्तिपूजा का प्रमाण दें तो हम उनको पांच सौ रुपया पुरस्कार देंगे । हमने जाकर उनसे कहा । उन्होंने उत्तर दिया कि भाई ! हम नहीं जा सकते ।"

ऋषि का अमर्ष और शाप—एक हलवाई थानचन्द भगत भी उन दिनों चतुर्भुज शर्मा की ओर से सीख-साख कर स्वामी जी से मूर्तिपूजा पर विवाद किया करता और बकवास भी बहुत करता था । वह बड़ा चतुर मनुष्य था । एक दिन स्वामी जी ने उस को कहा कि तू हमको नित्य तंग करता और हमारा समय व्यर्थ नष्ट करता है । ऐसा न कर अन्यथा तेरा अंगभंग हो जावेगा क्योंकि वेद में मूर्तिपूजा कदापि नहीं है; ऐसा करना महापाप है । जिस पर वह क्रोधित होकर कुछ बोला और चला गया । उसको हमने अपनी आंख से देखा कि वह गलित कोढ़ी होकर इस झगड़े के दस बारह दिन पश्चात् मर गया । सब कोई जानते हैं कि उसकी यह दशा हुई ।

"हरिहर क्षेत्र पर जाने का परामर्श होता रहा और राय बहादुर बाबू महावीरप्रसाद जी ने अपने मनुष्य भी नियत कर दिये परन्तु नियमित रूप से ठीक प्रबन्ध न होने के कारण स्वामी जी वहां नहीं गये ।"

बाबू मणिलाल सदस्य, आर्यसमाज दानापुर ने वर्णन किया—"एक व्यक्ति दुर्गावस्थी ब्राह्मण जो स्टाम्प बेचता था और पुराना दानापुर का रहनेवाला था, अपने जाति-भाइयों के भय से स्वामी जी के व्याख्यान में नहीं जाया करता था

और यदि जाता तो चोरों के समान बाहर खड़ा रहकर सुनता और फिर चला जाता। वह बहुत चाहता था कि मैं स्वामी जी के मुखारविन्द से कुछ सुनूं। कई बार यत्न किया परन्तु असफल हुआ। अन्त में उसे विदित हुआ कि स्वामी जी प्रातःकाल तीन-चार बजे निकल जाया करते हैं। एक रात जिधर स्वामी जी जाया करते थे वह उधर जाकर पहले ही बैठा रहा। जब स्वामी जी लौटकर दानापुर से पूर्व नहर के तट पर आ रहे थे तब वह उन के पीछे-पीछे चला। मार्ग में स्वामी जी ने उससे पूछा कि तुम कौन हो और क्या चाहते हो? उस ने कहा कि मैं यहां का ही निवासी हूं परन्तु बिरादरी के भय से आप के व्याख्यान सुनने लोगों के सामने नहीं आ सकता। आपसे बातचीत करने की बहुत इच्छा है। यही बातें करते-करते स्वामी जी बंगले के द्वार पर पहुंच गये तब पूछा कि तुम्हारा अभिप्राय क्या है? उस ने कहा, कि महाराज! मेरी यह श्रद्धा है कि 'आप अपने चरण को मेरे मस्तक पर लगा दीजिये।' स्वामी जी ने कहा कि 'इस का क्या फल होगा' और किसी बात की इच्छा हो तो कहो, अन्यथा हम जाते हैं। किसी समय आकर पूछ लेना।' उस ने कहा कि अवश्य किसी समय उपस्थित हूंगा परन्तु इस समय मेरी यह श्रद्धा है। अन्त में स्वामी जी ने उसके हठ करने पर कहा कि 'इस से होगा तो कुछ नहीं; परन्तु यदि तू चाहता है तो ले और अपने पांव का अंगूठा उस के मस्तक पर लगा दिया और वह चला गया। यह बात मुझको उसने स्वयं सुनाई थी।

"जिन दिनों स्वामी जी बिहार प्रदेश के दानापुर नगर में उपदेश दे रहे थे तो किसी ने झूठमूठ 'इण्डियन मिरर' के सम्पादक को कहा कि स्वामी जी ने किसी पत्थर की मूर्ति पर लात मारी, जिससे लोगों में बुरा प्रभाव हुआ और उन्होंने उपदेश में आना बन्द कर दिया। यह समाचार उस समाचारपत्र में इन शब्दों में लिखा है—

('इण्डियन मिरर' से उद्धृत) "आशा है कि हमें यह समाचार सही नहीं मिला कि पंडित दयानन्द सरस्वती लोगों के धार्मिक विश्वासों का उल्लेख सम्मानपूर्वक नहीं करते। कहते हैं कि बिहार के एक कस्बे में स्वामी जी ने हिन्दुओं की एक पत्थर की मूर्ति पर लात मारने की इच्छा प्रकट की थी। हमको विदित है कि इस कार्यवाही से लोगों पर बुरा प्रभाव हुआ और परिणाम यह हुआ कि लोग उनका उपदेश सुनने से हट गये। एक हिन्दू मूर्तिभंजक और एक जोशीले ईसाई प्रचारक में थोड़ा ही अन्तर है, इसलिए आश्चर्य की बात नहीं है कि **'लखनऊ विटनैस'** (Lucknow witness) नामक समाचारपत्र में यह वाक्य प्रकाशित हुआ—"जब ब्राह्मणों को सब के सामने देश का अत्यन्त अशुभचिन्तक कहा जाता है और उन के पापों को प्रकट किया जाता है और उनको निरन्तर दण्डनीय घोषित किया जाता है, तो जो प्रतिष्ठा इस सम्प्रदाय को शताब्दियों से प्राप्त है, उसमें बड़ी भारी कमी हो जाती है। अपने देश के बड़े भारी (महत्वपूर्ण) सम्प्रदाय के विषय में ऐसे कटुवचन कहने से हम ईश्वर की शरण मांगते हैं। भलाई करना कुछ और ही है।" (२ दिसम्बर, सन् १८७९, खंड १९, संख्या २९७, रविवार)।

परन्तु यह झूठा आरोप है। किसी मूर्ख ने शरारत करने के लिए यह झूठी सूचना भेजी। स्वामी जी ने कदापि ऐसा नहीं किया और उनके व्याख्यानों से कोई अप्रसन्न नहीं हुआ। सब लोग व्याख्यान अत्यन्त उत्साह से सुनते रहे और पंडित गोकलचन्द आदि जो शुरु से ही बड़े कट्टर मूर्तिपूजक और चतुर्भुज जी के सहायक थे, मूर्तिपूजा की वास्तविकता और स्वामी जी के सत्योपदेशों के कारण उसी दिन से आर्यसमाज के समर्थक बन गये जो अब कलकत्ता आर्यसमाज के सभासद् और वैदिक धर्म के बड़े प्रेमी और उत्साही सदस्य हैं। कई स्थानों पर ऐसे निर्मूल समाचार स्वामी जी के विषय में लोगों ने प्रकाशित कराये।

अन्त में स्वामी जी २० दिन वहां सत्योपदेश करके कार्तिक सुदि ७, गुरुवार तदनुसार १९ नवम्बर को दानापुर से चलकर उसी दिन बनारस में आ विराजमान हुए और महाराजा विजयनगर के आनन्द बाग में निवास किया।

लखनऊ नगर का वृत्तान्त

(५ मई, सन् १८८० से १९ मई, सन् १८८० तक)

स्वामी जी बनारस से[८५] चलकर लखनऊ पधारे। पंडित यज्ञदत्त शास्त्री ने प्रयाग में [illegible]न किया कि जिन दिनों मैं गंगाधर शास्त्री के पास लखनऊ में पढ़ता था तो एक दिन मेरा रामानुज मतानुयायी पंडित बिशनदत्त से (जो भागवत जानता था) 'अतप्ततनु:'[८६] के अर्थ पर झगड़ा हुआ। मैंने कहा कि चल तेरा स्वामी जी से सन्तोष करा दूं; जिस पर हम दोनों आये। स्वामी जी उस समय हिंडोले के नाके पर एक बाग में उतरे हुए थे और आमों की ऋतु थी। स्वामी जी उस समय भोजन कर रहे थे। हम ने जाकर कहा कि महाराज! 'अतप्ततनु:' का यह रामानुजी पंडित शरीर को जलाना अर्थ करता है और मैं कहता हूं कि ऐसा नहीं है। कहा कि हम भोजन कर लें। फिर भोजन करने के पश्चात् थोड़ा सा टहले और कहा कि 'भोजनं कृत्वा शतपदं गच्छेत्' अर्थात् भोजन करक सौ पग चले। फिर थोड़ा सा लेटकर पलंग पर बैठकर नौकर को कहा कि वेद लाओ। वह लाया, स्वामी जी ने वह मन्त्र निकाला (ऋग्वेद मंडल ९, सूक्त ७३, मन्त्र १, २) और अर्थ करके बतलाया और साथ ही कहा कि यदि तुम हमारा अर्थ न मानो तो तुम्हारा सायण भी ऐसा ही अर्थ करता है। फिर वहां क्या करोगे? "अतप्ततनु:'—इस मन्त्र का अभिप्राय जप, यम, नियम आदि करना है; शरीर का जलाना उसका अर्थ नहीं है परन्तु पंडित बिशनदत्त फिर भी हठ करता रहा।

फिर स्वामी जी ने तरबूज चीरकर सब को बांट दिया। उस रामानुजी ने कहा कि तुलसी का पता हो तो हम खावें। स्वामी जी ने कहा कि तुम्हारा बकरी का स्वभाव नहीं जाता? उसने कहा कि यह तो अच्छा है। स्वामी जी ने कहा कि 'रोग के लिए; न कि सब समय। सब समय चबाना तो प्रत्यक्ष पशुपन है और कुछ नहीं। इस के खाने में कुछ माहात्म्य नहीं।'

पहले स्वामी जी ने एक बार 'सत्यप्रकाश पाठशाला' भी स्थापित की थी जिस में हम ने प्राज्ञ तक पढ़ा, फिर कालिज में चले आये। बहुत समय हुआ यह शाला बन्द हो गई है।

फर्रूखाबाद नगर का वृत्तान्त

(२० मई, सन् १८८० से ३० जून, सन् १८८० तक)

आर्यसमाज की अंतरंग सभा पर नियन्त्रण रखने के लिए 'मीमांसक सभा' स्थापित कीं[८७] पंडित गोपालराव हरि जी वर्णन करते हैं —"सातवीं बार अर्थात् अन्तिम बार श्री स्वामी जी महाराज संवत् १९३७ के अर्ध वैशाख मास में यहां आये और डेढ़ मास रहकर मैनपुरी होते हुए मेरठ को चले गये। इस अवसर में आर्यसमाजी पुरुषों का संयोग-वियोग कुछ हुआ। यहां का धर्मानुकूल कार्य चलने के अर्थ अन्तरंग सभा के ऊपर उन्होंने 'मीमांसक सभा' स्थापित की। बहुत से व्याख्यान यहां और फतहगढ़ में दिये और इसी अवसर पर धर्मसभा वालों के पंडित उमादत्त जी से, मुख्यतया शास्त्रार्थ होने के अर्थ, यथेच्छ लिखा-पढ़ी भी हुई। राजा शिवप्रसाद कृत निवेदनपत्र का मुंहतोड़ उत्तर भी दिया गया।

ला० जगन्नाथ जी, रईस फर्रूखाबाद ने वर्णन किया—"वे संवत् १९३७ में आये। इस बार बहुत से व्याख्यान दिये। सम्भवत: समाज के मकान में तीन, माधोराम की बाड़ी में दो और कैम्प फतहगढ़ में बाबू गौरीलाल के बंगले पर तीन व्याख्यान दिये। अन्त को जब चलने लगे तो और लोगों और बाबू दुर्गाप्रसाद जी ने कहा कि आप आज न जावें। स्वामी जी ने कहा कि हम आज अवश्य जावेंगे। डाकगाड़ी की खोज की गई। स्वामी जी ने कहा कि हम पैदल चले जावेंगे और सवेरा मैनपुरी में करेंगे; रहेंगे नहीं। वह प्रोग्राम को तोड़ना नहीं चाहते थे और लोग प्रेम से रखना चाहते थे। जिस पर

अन्त में बाबू दुर्गाप्रसाद जी ने नगर कोतवाल से कहकर बलात् गाड़ी जुतवाई और अपना जमादार सालह मौहम्मद खां साथ कर दिया । तोताराम चौबे यहां से मैनपुरी तक साथ गये थे ।

"एक बार माधोराम के तले में व्याख्यान देते हुए कहा कि लोग जो कहते हैं कि पृथिवी 'शेष' पर (स्थित) है; यदि वे आगे सोचें तो उनको शेष के लिए कोई अन्य आधार खोजना पड़ेगा और उस के लिए कोई अन्य । वास्तव में यह शब्द तो ठीक है; परन्तु लोग इस का अर्थ नहीं जानते और भूल से लोगों ने इसका अर्थ सांप जान लिया अन्यथा वास्तव में ये सब तो नाशवान् हैं; सब में से शेष परमेश्वर है और पृथिवी उस के आधार पर स्थित है ।"[८८]

व्यञ्जना द्वारा शिक्षा—"एक दिन हम को शिक्षा के रूप में सुनाकर कहा कि ऐसा कौन मूर्ख होगा जो अपना बीज दूसरे के खेत में जाकर बोवे और यदि कोई ऐसा करे तो उस का फल कैसे मिल सकता है ? स्वीकार करने के अतिरिक्त हम से और कोई उत्तर न बन पड़ा और एक बार हमसे कहा कि तुम इसको छोड़ दो और वचन दो । मैंने कहा वचन तो नहीं देता परन्तु अवश्य छोड़ दूंगा । अब परमेश्वर की कृपा और उनके उपदेश से हमने इस व्यसन को पूर्णतया छोड़ दिया ।

ला० नारायणदास साहब मुख्तार, मन्त्री आर्यसमाज फर्रूखाबाद ने वर्णन किया—"यहां पर समाज के एक सदस्य से कुछ बदमाशों की लड़ाई हुई थी जिस पर न्यायालय से दो बदमाशों को तीन-तीन मास की कैद हुई थी । कुछ दिन पश्चात् स्वामी जी फर्रूखाबाद आये । इस मुकद्दमे का निर्णय मिस्टर आल्काट साहब के न्यायालय से हुआ था, वे स्वामीजी के भी परिचित थे । स्वामी जी से भेंट के समय मैजिस्ट्रेट साहब ने स्वामी जी से मुकद्दमे की चर्चा की । स्वामी जी ने उन से कहा कि और तो ठीक था परन्तु घटनास्थल कोई दूसरा था; वह स्थान नहीं था, केवल इतना झूठ था । स्वामी जी ने बिना रोक-टोक वास्तविकता बता दी; किसी का कुछ पक्ष न किया ।

कैम्प फतहगढ़ में व्याख्यान के समय डान्स्टन साहब ज्वाइण्ट मैजिस्ट्रेट ने योग के विषय में पूछा था । स्वामी जी ने योग की व्याख्या की और कहा कि यदि आप लोग योग करना चाहें तो नहीं कर सकते क्योंकि मांस-मदिरा का सेवन करते हैं । यदि योग करना चाहो तो रोटी और मूंग की दाल खानी चाहिये; तभी कर सकते हो, अन्यथा नहीं ।

मैनपुरी का वृत्तान्त—चौबे हरदयाल जी ने वर्णन किया 'मिर्जा अहमद अली बेग, सदरुलसदूर; और मोहनलाल मुन्सरिम आदि बहुत से लोग बाग में मिलने गये थे और प्रतिदिन जाया करते थे । व्याख्यान उन के अकटगंज में सराय के भीतर हुए । कुल तीन व्याख्यान हुए । शामियाना लगाकर निश्चित रूप से प्रबन्ध किया गया था और एक दिन परमेश्वर की सिद्धि में व्याख्यान दिया । दूसरे दिन वेद की उत्पत्ति और धर्मोपदेश, तीसरे दिन वेद के प्रतिपादन और सब मतों के खंडन पर व्याख्यान दिया । एक अंग्रेज डाक्टर ने नास्तिकपन का प्रश्न किया । स्वामी जी ने उस का उत्तर देकर कहा था कि वे परले सिरे के नास्तिक हैं, जो मैटर (प्रकृति) आदि को भी नहीं मानते । कलैक्टर साहब, इलियट साहब जज और डाक्टर साहब प्रतिदिन व्याख्यान में आया करते थे । व्याख्यानों की समाप्ति पर मिर्जा अहमद अली बेग ने बहुत धन्यवाद दिया था । वह जो कहते हैं कि दूर देश जैसे चीन आदि के लोग यहां पढ़ने आया करते थे तो निस्सन्देह जब महाराज के समान महात्मा लोग होंगे तब ही अन्य देशों के लोग आते होंगे ।

स्वामी जी कुल पांच दिन रहे । हमने 'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्'[८८अ] वाले मन्त्र का अर्थ पूछा था । स्वामी जी ने कहा कि 'तीन पदों से अभिप्राय, अंधकार, पोल और 'प्रकाश' से है । चौबे अमीलाल प्लीडर और किशनगोपाल वकील भी जाया करते थे । किसी पादरी या पंडित से यहां शास्त्रार्थ नहीं हुआ । हम ने 'पवित्र भूमि' के विषय में पूछा था । कहा कि हिमालय पर भी कोई पाप करेगा तो भी फल भोगेगा ।'

स्वामी जी यहां से घोड़ागाड़ी में चढ़कर **भारौल** गये और एक दिन **भारौल** रहकर ८ जौलाई, सन् १८८० को मेरठ चले गये ।

मैनपुरी के मंगल समाचार

(१ जौलाई, सन् १८८० से ६ जौलाई, सन् १८८० तक)

३० जून, सन् १८८० को स्वामी जी **फर्रूखाबाद** से चलकर १ जौलाई, सन् १८८० को ६ बजे प्रातःकाल मैनपुरी में सुशोभित होकर करमल दरवाजे के बाहर, थानसिंह सोहिया[८९] के बाग में ठहरे । यह समाचार सुन हजारों नगर निवासी, उस समय से लेकर रात्रि के ११ बजे तक परमानन्दपूर्वक दर्शन की इच्छा कर आते-जाते रहे और प्रमोद से परस्पर वार्तालाप आदि द्वारा चित्त को हर्षित करते रहे । लोगों के सन्देह-निवृत्त होने से जो उन्हें आनन्द होता था वह मानो इस वाक्य के अनुसार था—'जन्म दरिद्री मानो नवनिधि पाई ।'

पंडित तोताराम जी वर्णन करते हैं—"वहां शिष्टजन यह कहते फिरते थे कि "जैसा कुछ आनन्द हम पहले के ऋषि मुनियों के समागम का सुनते आये हैं, वह प्रत्यक्ष देख लिया । इस अपूर्व मूर्ति को धन्य है ।" इस प्रकार आनन्दपूर्वक दो दिन व्यतीत हो गये ।

"तीसरे दिन ता० ३ जौलाई, सन् १८८० को पांच बजे सायंकाल एक बड़े लम्बे-चौड़े अकटगंज नामक स्थान में व्याख्यान का आरम्भ हुआ । यह व्याख्यान धर्मविषय पर था । यद्यपि उस दिन बादल थे परन्तु बड़े-बड़े सेठ साहूकार और अच्छे-अच्छे रईस, शासक और अफसर तथा पदाधिकारी लोगों और अन्य श्रोताओं की बड़ी भीड़भाड़ थी ।"

लगभग एक हजार मनुष्य होंगे । उस समय का प्रबन्ध भी प्रशंसनीय था अर्थात् आरम्भ से समाप्ति तक कोई किसी प्रकार का कोलाहल नहीं हुआ क्योंकि सभा के प्रबन्धकर्ता साहब कलैक्टर बहादुर थे । जज महाशय की यह अवस्था देखने में आई कि व्याख्यान के आरम्भ से समाप्तिपर्यन्त दो घंटे तक निरन्तर चित्त लगाकर सुनते रहे । अन्य किसी ओर कोई ध्यान न दिया ।

४ जौलाई, सन् १८८० को भी यही अवस्था रही । उस दिन आकाश स्वच्छ था इसलिए पहले दिन से दुगुने मनुष्य थे । यह व्याख्यान ईश्वर विषय में हुआ । सभा की समाप्ति पर सब लोग सब प्रकार से धन्यवाद देते हुए घरों को यह कहते जाते थे कि जैसी स्वामी जी की प्रतिष्ठा पहले से सुनते थे वैसी ही देखने में आई ।

५ जौलाई, सन् १८८० का दिन शंकासमाधान के लिए रखा गया था ताकि जो कुछ दो दिन में शंका उत्पन्न हुई हो वह निवृत्त की जावे । उस दिन लोगों ने अपनी-अपनी समस्याओं का समाधान कराया । लोग स्वामी जी से फिर व्याख्यान देने के लिए बहुत कहते रहे और इस के साथ ही समाज स्थापित करने की भी इच्छा प्रकट की परन्तु स्वामी जी एक आवश्यक काम के कारण अधिक न ठहर सके और ६ जौलाई, सन् १८८० को मेरठ की ओर चले गये और समाज स्थापित करने के लिए पंडित तोताराम जी को पीछे छोड़ गए । जब तक वहां रहे लगभग सौ सवा सौ मनुष्य हर समय प्रश्न, दर्शन और उपदेशार्थ उपस्थित रहते थे ।

११ जौलाई, सन् १८८०, रविवार को समाज स्थापित हुआ और उस दिन से निरन्तर जारी है । ('भारत सुदशाप्रवर्तक,' संख्या १३, जौलाई, सन् १८८० पृष्ठ ८ से ११ तक) ।

मेरठ का वृत्तान्त

(८ जौलाई, सन् १८८० से १५ सितम्बर,[१०] सन् १८८० तक)

८ जौलाई, सन् १८८० को स्वामी जी मेरठ समाज की प्रार्थना पर यहां पधारे और छावनी स्थित मुंशी रामशरणदास जी उपमन्त्री आर्यसमाज मेरठ की कोठी में निवास किया । उनके आगमन का समाचार सुनते ही विद्याप्रेमी सज्जनों के मन हर्ष से भर गये और पोप और उनके शिष्यों का कलेजा ईर्ष्या से टुकड़े-टुकड़े हो गया परन्तु उन्हें कुछ प्राप्त न हुआ क्योंकि अपनी ओर से वह पहले ही बहुत मनघडंत लिखते रहे परन्तु चूंकि असत्यभाषी की कभी प्रशंसा नहीं होती, इसलिए उनको लज्जित ही होना पड़ा । परन्तु क्या करें; स्वभाव से विवश थे । जब इस बार और कुछ न हुआ तो किराये पर एक-दो कथा कहने वाले ही बुलाकर कथाएं कराईं ।

एक सज्जन ने तो समाज के समीप उपदेश के समय रामायण की चौपाइयां उच्च स्वर से कई दिन कहलवाईं; ताकि न स्वय सुनें न औरों को सुनने दें परन्तु इन बातों से होता ही क्या था । सुनने वालों का तो कुछ भी न गया परन्तु दोषियों का दोष प्रकट हो गया ।

"सारांश यह कि इस बार स्वामी जी ने दो मास से अधिक यहां निवास किया और प्रतिदिन शाम के समय अपने निवासस्थान पर बैठकर लोगों को सत्योपदेश से लाभ पहुंचाते रहे । इन दिनों प्रति सप्ताह दो-दो व्याख्यान होते रहे जिन में विद्या का महत्त्व और उस की प्राप्ति की आवश्यकता, धर्म का सच्चा ज्ञान, ईश्वर और माया का वर्णन, पवित्र वेद के ईश्वरकृत होने के प्रमाण, प्रकटरूप में मुक्ति के साधन और उन की व्याख्या, वेदान्तदर्शन, स्वार्थियों का स्वार्थ, पाप और पुण्य के विचार का समर्थन, नास्तिकों के आक्षेपों का खंडन तथा एक उपनिषद् के बहुत से स्थल और अन्य विभिन्न विषयों पर प्रकाश डाला । चूंकि स्वामी जी और रमाबाई[११] का बहुत समय से पत्रव्यवहार हो रहा था, इसलिए उसी पत्रव्यवहार के समय रमाबाई एक बंगाली[१२] और दो सेवकों सहित जिनमें एक स्त्री और एक पुरुष था, मेरठ समाज की प्रार्थना पर कलकत्ता से यहां पधारीं और समाज के सदस्य बाबू छेदीलाल साहब की कोठी पर ठहरीं । ये अपने आपको दक्षिण की रहने वाली बताती हैं और अब कुछ वर्षों से कलकत्ता और उस के आसपास के प्रदेशों में रहती हैं । इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस देश की वर्तमान समय की स्त्रियों की तुलना में ये संस्कृत-विद्या में अति निष्णात हैं और व्याख्यान देने में तो जगद्विख्यात हैं । इन्होंने स्त्रीशिक्षा के विषय में चार या पांच व्याख्यान, एक बाबू छेदीलाल की कोठी पर और शेष समाज में दिये । ये व्याख्यान बड़ी धूमधाम के रहे । प्रथम तो भाषा साफ-सुथरी, फिर उस पर युक्तियां और उदाहरण प्रबल और प्रकरणानुकूल ।

सारांश यह कि बाई जी दो सप्ताह से अधिक यहां ठहरीं और फिर अपने एक बंगाली मित्र के साथ जो उनके आने के पश्चात् मेरठ आये थे, दिल्ली होती हुई अपनी जन्मभूमि की ओर चली गई । स्वामी जी महाराज ने अपनी रची हुई पुस्तकों का एक पैकेट (जिस में संस्कारविधि, सत्यार्थप्रकाश, सन्ध्या, आर्याभिविनय आदि बहुत-सी पुस्तकें सम्मिलित थीं) रमाबाई को प्रदान किया और समाज ने उन के मार्गव्यय और उत्साहवृद्धि के विचार से एक सौ पच्चीस रुपया नकद और दस रुपये मूल्य का एक थाल प्रस्थान के समय उनकी भेंट किया । बाई जी की विद्या सम्बन्धी योग्यता में कुछ सन्देह नहीं और यह सब कुछ होने पर भी आश्चर्य है कि यदि वे सदाचारिणी न रहें और दुराचार से अपनी योग्यता को बट्टा लगायें । उनके कुछ दिन यहां रहन-सहन देखने का हमारा यह अनुभव हुआ । इससे अधिक वृत्तान्त अधिक सम्पर्क होने पर ही जाना जा सकता है ।

इस बार कर्नल आल्काट साहब मैडम ब्लैवेट्स्की सहित शिमला जाते हुए स्वामी जी महाराज की भेंट के लिए यहां पधारे और बाबू छेदीलाल जी की कोठी पर उतरे ।

यों तो कर्नल साहब और मैडम से बहुत से विषयों पर बातचीत हुई और उन्होंने भी योगविद्या आदि के विषय में पंडित बलदेवप्रसाद साहब[९३] हेडमास्टर नार्मल स्कूल मेरठ के द्वारा स्वामी जी के बहुत से विचार सुने और पूछे परन्तु सब बातों में उदाहरणार्थ, समाज के एक या दो नियमों और ईश्वर विषय में उनका स्वामी जी से बहुत कुछ मतभेद रहा परन्तु जैसे कि किसी ने कहा कि 'जिस का हिसाब साफ है उसको हिसाब लेने वाले से क्या भय'—सब प्रकार से उनका सन्तोष करा दियां गया परन्तु ईश्वर विषय में उनका भ्रम दूर न हुआ। यद्यपि मुझको विश्वास है कि यदि वे स्वामी जी महाराज के वर्णनों को इस बारे में सुनते तो निस्सन्देह सत्यासत्य को समझ जाते। परन्तु वे तो ऐसे हठ पर अड़े कि ईश्वर विषय पर अपना अविश्वास प्रकट करते चले गये परन्तु बातचीत करने या सुनने को स्वामी जी के अनुरोध करने पर भी सहमत न हुए। कर्नल साहब ने दो दिन समाज में जाकर थोड़े-थोड़े समय तक अपनी सीलोन यात्रा का वृत्तान्त सुनाया। इस देश वालों को प्राचीनकाल का गौरव सुनाकर कुछ उत्साह दिलाया और एक दिन बाबू छेदीलाल जी की कोठी पर भाषण दिया जिसमें उन्होंने प्रथम आर्यसमाज के नियमों को, जिनका अनुवाद अंग्रेजी में हमारे प्रधान जी ने कर दिया था, सभा में उपस्थित लोगों को पढ़कर सुनाया। तत्पश्चात् अपनी सोसाइटी के सिद्धान्तों को पढ़ा और एक दूसरे का मुकाबला करके दिखाया। फिर सीलोन-यात्रा का हाल सुनाया और वहां के पादरियों से शास्त्रार्थ का वृत्तान्त वर्णन किया और स्वामी जी महाराज से जो कुछ इस बार बातचीत हुई थी (जिस का वर्णन मैं संक्षेप में ऊपर कर चुका हूं) उसको भी कह सुनाया। फिर थियासोफिकल सोसाइटी और आर्यसमाज के सम्बन्ध का वर्णन किया जिसको स्वामी जी महाराज ने भी इससे पहले भाषा के विज्ञापन द्वारा प्रकाशित किया था। इसके पश्चात् वे अगले दिन शिमला चले गये परन्तु स्वामी जी महाराज के दो व्याख्यान और हुए। फिर वे भी मुजफ्फरनगर के कुछ रईसों और निवासियों की प्रार्थना पर ता० १५ सितम्बर,[९४] सन् १८८० को वहां चले गये। 'आर्यसमाचार' मेरठ, कार्तिक मास, संवत् १९३७, खंड २, संख्या १९, पृष्ठ २१८ से २२२ तक।)

आर्यसमाज मेरठ के द्वितीय वार्षिकोत्सव में व्याख्यान—फिर स्वामी जी मुजफ्फरनगर से आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव के अवसर पर मेरठ पधारे।[९५] प्रथम आश्विन बदि चतुर्दशी, संवत् १९३७ तदनुसार ३ अक्तूबर, सन् १८८० रविवार का दिन था और आर्यसमाज की स्थापना की दृष्टि से यह दूसरा वार्षिकोत्सव था।

७ बजे प्रातः से 'समाज' के चौक में वेदमन्त्रों से नियमानुसार प्राचीन ऋषियों और मुनियों के हवन का प्रारम्भ हुआ जो दस बजे समाप्त हुआ। इस के पश्चात् श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने प्रथम वेदमन्त्रों से परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना की, फिर हवन के महान् लाभों की व्याख्या की और पक्षपातियों और हठधर्मियों के साधारण आक्षेपों का (जैसे कि श्रेष्ठ पदार्थों का व्यर्थ आग में जलाना, परमेश्वर को पुण्य पहुंचाना, अग्निपूजा करना, झूठे विश्वास में फंसे रहना आदि-आदि) जो कुछ लोग अपरिचित होने के कारण और कुछ हठधर्मी से जान-बूझ कर किया करते हैं, भली भांति खंडन किया। दोपहर के १२ बजे सभा विसर्जित हुई। मंगलवार को ४ बजे फिर उत्सव आरम्भ हुआ। प्रथम मेरठ समाज के सदस्य बाबू मदनमोहन ने, फिर मास्टर बख्तावरसिंह साहब, बाबू गोविन्दसिंह साहब, मुंशी डालचन्द साहब, बाबू भागवतप्रसाद साहब, पण्डित पालीराम साहब और पण्डित लक्ष्मीदत्त जी ने व्याख्यान दिये। सब के पश्चात् जगद्विख्यात पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने श्रीमुख से उपदेश करके श्रोताओं को लाभान्वित किया। स्वामी जी के व्याख्यान की जहां तक प्रशंसा की जाये ठीक है और जितना उनकी कृपाओं का धन्यवाद किया जाये, उचित है। उन्होंने कुछ तो पण्डित लक्ष्मीदत्त जी के कथन का समर्थन किया और ईश्वर-विषय में सत्यवादिता की प्रशंसा की तथा कुछ विभिन्न प्रकार की शिक्षाएं दीं और परोपकार और धैर्य के गुण वर्णन किये। यों तो यह समाज वैसे ही स्वामी जी की कृपाओं का जो इस समाज पर प्रत्युत इस देशवालों पर साधारणतया हैं, किसी प्रकार धन्यवाद नहीं कर सकती और अब स्वामी जी महाराज और पण्डित लक्ष्मीदत्त जी ने तथा सहारनपुर, रुड़की, आगरा, लाहौर, अम्बाला, कानपुर समाज के प्रतिनिधियों तथा बाहर

के कृपालुओं ने वार्षिकोत्सव के अवसर पर यहां पधार कर समाज पर जो कृपा की है और कुछ महाशयों के व्याख्यानों, विशेषतया स्वामी जी महाराज और पण्डित लक्ष्मीदत्त जी के उपदेश ने जो उत्सव की शोभा को दुगुना कर दिया है, इस कारण यह समाज उनका और भी अधिक आभार मानता है और उनके प्रति धन्यवाद प्रकट करता है । 'आर्यसमाचार' कार्तिक मास, संवत् १९३७, खंड २, संख्या १९, पृष्ठ २०६ से २०९ तक ।

मुजफ्फरनगर का वृत्तान्त

१५ सितम्बर, सन् १८८० से २ अक्तूबर, सन् १८८० तदनुसार २ आसौज संक्रान्त और भादों सुदि १२, संवत् १९३७, बुधवार से बदि १३, सवंत् १९३७ शनिवार तक ।

लाला निहालचन्द जी वैश्य, रईस मुजफ्फरनगर ने वर्णन किया, 'स्वामी जी आसौज के महीने में यहां पधारे और हमारे बंगले में नगर के पूर्व की ओर उतरे । मुंशी डालचन्द, हेडमास्टर जिला स्कूल, ला० बद्रीप्रसाद तहसीलदार, बाबू बैजनाथ मुन्सिफ और मैं, बुलाने में सम्मिलित थे । उन दिनो कनागत[९६] थे और इसी विषय पर मैंने स्वामी जी से कुछ पूछा था क्योंकि नगर के कुछ पण्डित मेरे पास आये और कहा कि चलो हम चल के स्वामी जी से शास्त्रार्थ करें परन्तु मैंने जब उन से (पण्डितों से) स्वयं बातचीत की तो वे मेरे ही प्रश्नों का उत्तर न दे सके परन्तु अन्त में उनके अनुरोध पर मैं स्वामी जी के पास गया । इतने में ला० बद्रीप्रसाद जी भी आ गये और स्वामी जी से बातचीत आरम्भ की । लाला बद्रीप्रसाद जी ने स्वामी जी से कहा कि आपसे शास्त्रार्थ करना चाहते हैं परन्तु मैंने कहा कि मैं न शास्त्रार्थ करना चाहता हूं और न शास्त्रार्थ करने की योग्यता रखता हूं परन्तु केवल शिष्य रूप में समझना चाहता हूं । उन्होंने कहा कि 'श्राद्ध का फल उस के (श्राद्धकर्ता के) पूर्वजों को नहीं पहुंच सकता क्योंकि प्रथम तो यह विदित नहीं कि पितर किस लोक में हैं ?

"इसके उत्तर में मैंने निवेदन किया कि यदि यह सिद्धान्त स्वीकार किया जावे तो दान का देना भी निष्फल है । इसका फल हमको मरने के पश्चात् किस प्रकार मिलेगा ?

उत्तर—वह जीव का अपना कर्म है और कर्म कर्ता के साथ रहता है; नष्ट नहीं होता । परन्तु मृतक का श्राद्ध दूसरे का किया हुआ कर्म है । वह तब किया गया है कि जब उस का सम्बन्ध संसार से सर्वथा टूट चुका था । इसलिए निष्फल है और शास्त्र में भी ऐसा ही लिखा है । इसके अतिरिक्त यदि यह माना जावे कि हमारे दान या प्रार्थना से पितरों को अच्छा लाभ पहुंचता है तो यह भी मानना पड़ेगा कि उसके (मृतक के) शत्रु जो शाप देते हैं या उसके बेटे उस के नाम से छल करते हैं, उस का भी प्रभाव उस पर अवश्य होगा । इस प्रकार तो यह सिद्ध होता है कि हमारी प्रार्थना द्वारा (मृतक को) स्वर्ग में और (शत्रुओं के) शाप के द्वारा नरक में बार-बार आना-जाना पड़ेगा ।"

प्रश्न—इस पर मैंने यह कहा कि उसको शुभकर्मों का फल मिलना चाहिये; अशुभ का नहीं, कारण कि जिस समय वह व्यक्ति मरा उस समय उस के अशुभ कर्मों के फल का निर्णय तो अवश्य किया जा चुका होगा । इसीलिए शाप का प्रभाव अब नहीं हो सकता; ऐसे ही जैसे कि अधिकार प्राप्त न्यायाधीश जब किसी अपराध का दण्ड दे चुकता है तो प्रतिवादी चाहे कितनी ही पुकार क्यों न करे, परन्तु दण्ड में न्यूनता या अधिकता नहीं हो सकती । पुण्य का फल किसी मृतक पितर को इसलिए लिखा है कि जो धन मृतक ने इकट्ठा किया था वही धन उस की सन्तान शुभकर्म में व्यय करती है । उदाहरणार्थ, उसने अपने धन संचय का कर्म करते हुए यदि कोई अधर्म भी किया हो और उस का दण्ड भी निर्णीत हो चुका हो तो चूंकि उसके पश्चात उसकी सन्तान ने (वह धन) शुभ कर्म में लगा दिया, इसलिए उसका फल उस को मिलना चाहिये ।"

उत्तर—यह ठीक नहीं है कि पाप के फल का निर्णय हो चुका। यदि निर्णय हो चुका तो भी कर्म के अनुसार (भलाई-बुराई के) दोनों का निर्णय होगा; पहले-पीछे की कोई शर्त (अनुबन्ध) नहीं। यह ठीक है कि दण्ड न्यूनाधिक नहीं हो सकता इसलिए तो फिर बेटे के दान करने से उस के नरकगामी (पितर) को क्या लाभ हो सकता है ? अब रही मृतक के एकत्रित किये धन के व्यय की बात, तो यदि वह पुण्य में व्यय करता है तो और पाप में व्यय करता है, तो दोनों प्रकार से व्यय करने वाले का हानि-लाभ है; किसी मृतक का उस से कोई सम्बन्ध नहीं। अन्यथा यदि पुण्यकार्य में व्यय करने से मृतक को लाभ है तो पापकार्य में व्यय करने से हानि भी अवश्य होगी, क्योंकि, उस धन से उसका लड़का पीछे जो काम करता है, यह असम्भव है कि उस का प्रभाव न हो और चूंकि बाप के एकत्रित किये हुए धन से प्रायः सन्तान दुराचारिणी ही होती है इसलिए यह सिद्धान्त ही अत्यन्त बुरा प्रभाव डालने वाला है। (संवाददाता से)

फिर मुझे शीघ्र जाना था, अधिक बातचीत न हुई। चलते समय भी स्वामी जी कहते थे कि इस बात का पूरा निर्णय नहीं हुआ। उस दिन से स्वामी जी का प्रेम मेरे हृदय में घर कर गया।

"मेरे एक मित्र ला० बुधसिंह, मुजफ्फरनगर निवासी ने कहा कि स्वामी जी से एकान्त में एक बात पूछना चाहता हूं। उसने पूछा कि स्त्रीशिक्षा के विषय में आप की क्या सम्मति है ? स्वामी जी ने कहा कि (स्त्री-शिक्षा से) जो लाभ हैं उन्हें सब लोग जानते हैं। फिर मैंने कहा कि आपका जो यह आक्षेप है कि स्त्रियां लिख-पढ़कर अधिक बिगड़ जावेंगी और व्यभिचार करने लगेंगी क्योंकि लिखे-पढ़े होने के कारण उन्हें गुप्त-रूप से पत्र-व्यवहार का अवसर प्राप्त होगा तो इस का उत्तर यह है कि लिखने-पढ़ने से पाप न अधिक हो सकता है न कम। यह अधिकतर संगति और चित्त पर निर्भर है। बहुत से मनुष्य लिखे-पढ़े हैं और दुराचारी हैं परन्तु इतना अन्तर है कि यदि शिक्षित मनुष्य पाप करेगा तो योग्यता के साथ करेगा जिस का परिणाम बुरा न होगा।"

यहां पर इस बार कम से कम व्याख्यान हुए। ४ बजे से व्याख्यान होता था।

भगत जीवनलाल कायस्थ, मुजफ्फरनगर से प्रश्नोत्तर

प्रश्न—(प्रथम दिन) अज्ञान की निवृत्ति और ज्ञान की प्राप्ति के बिना दुःख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति होती है या नहीं ?

उत्तर—(स्वामी जी) सुख दो प्रकार के होते हैं-एक विद्याजन्य दूसरे अविद्याजन्य। विद्याजन्य ऐसा सुख होता है जिसको सर्वसुख कहते हैं और अविद्याजन्य ऐसा होता है कि जैसा पशु आदि को। अज्ञान की निवृत्ति बिना ज्ञान के नहीं होती और न ज्ञान की निवृत्ति बिना अज्ञान के। जीव के अल्पज्ञ होने से एक विषय में उस को ज्ञान होता है और अनेक विषय में अज्ञान और जो सर्वज्ञ है उस में अज्ञान नहीं रहता और जो अल्पज्ञ है उस में ज्ञान और अज्ञान दोनों रहते हैं, और जो सर्वज्ञ है वह अल्पज्ञ नहीं और जो अल्पज्ञ है वह सर्वज्ञ नहीं। जो अल्पज्ञ है वह परिमित और एकदेशी होता है और जो सर्वज्ञ है वह अनन्त देश, वस्तु, काल आदि सभी की सीमा से रहित है। जैसे आकाश सभी साकार द्रव्यों में व्यापक है और मूर्तिमान् द्रव्य व्याप्य हैं। व्यापक उसको कहते हैं जो सर्वदेशस्थित हो और व्याप्य उस को कहते हैं जो एकदेशी हो। व्याप्य वस्तु व्यापक से भिन्न होती है। तीनों अवस्था उस की व्यापक के साथ ही रहती हैं और जैसे मूर्तिमान् द्रव्य किसी अवस्था में आकाश नहीं हो सकते और आकाश मूर्तिमान् द्रव्य का स्वरूप भी नहीं हो सकता, इसीसे दोनों वस्तु भिन्न है अर्थात् व्याप्य-व्यापक दो वस्तुएं विशिष्ट रहती हैं, एक वस्तु विशिष्ट नहीं हो सकती।"

रात के ग्यारह बज गये इसलिए वार्तालाप पूर्ण न हुआ।

दूसरे दिन बातचीत के बीच में स्वामी जी ने कहा कि यह इन पोप जी की लीला है । पार्वती ने अपने शरीर से मैल उतार कर बालक बना कर रख दिया, द्वार पर युद्ध हुआ, पार्वती को विदित न हुआ, चूहे की सवारी और हाथी का शिर लगा दिया ।

मैंने कहा कि इसमें शास्त्रार्थ की तो कुछ भी मात्रा प्रतीत नहीं होती; क्योंकि पार्वती के तो हाथ थे और शरीर से मैल उतार कर पुतला बना ही सकते हैं । परन्तु आप तो यह कहते हैं कि तीन वस्तुएं अनादि हैं; जब स्थूल (सावयव) सृष्टि हुई तो निरवयव परमात्मा ने संयोग कर दिया । वह निरवयव (परमेश्वर) परमाणुओं का संयोग-विभाग कैसे कर सकता है ?

"स्वामी जी ने कहा कि क्या तुम परमाणु को समझते हो ? झरोखे में जो दिखाई देते हैं उन को 'त्रसरेणु' कहते हैं, उनका ६० वां भाग परमाणु होता है । तुम उस परमाणु का अपने हाथों से संयोग-वियोग नहीं करा सकते । परमात्मा उन परमाणुओं से भी सूक्ष्म है, उसकी दृष्टि में वे स्थूल हैं इसलिए वह संयोग-वियोग कर सकता है ।

इस पर मैंने यह निवेदन किया कि जो परमेश्वर सूक्ष्म है, वह व्यापक कैसे है ?

स्वामी जी ने कहा कि जो सूक्ष्म होता है वह व्यापक होता है; स्थूल कहीं व्यापक नहीं होता । जैसे आकाश सूक्ष्म है वह व्यापक है परन्तु पृथिवी स्थूल है सो व्यापक नहीं ।

मैंने कहा कि यदि परमेश्वर की व्यापकता आप आकाश की भांति मानते हैं तो इससे जीव और ईश्वर के स्वरूप में अभिन्नता माननी पड़ेगी ।

स्वामी जी—इस का पहले उत्तर हो चुका है । (उनमें परस्पर) अभिन्नता कदापि नहीं है; व्याप्यव्यापक भाव (सम्बन्ध) रहता है ।

पंडित भगवानसहाय मुख्तार न्यायालय ने वर्णन किया—'एक दिन स्वामी जी का श्राद्धखंडन पर व्याख्यान था । ब्राह्मणों ने कुछ ढेले भी फेंके थे परन्तु उसका प्रबन्ध ला० उल्फतराय कोर्ट इन्स्पैक्टर आदि सज्जनों ने कर दिया और भविष्य में लोगों ने शरारत नहीं की ।

एक दिन एक मुसलमान का लड़का आया और उसने कुछ प्रश्न किया और साथ ही कुछ निरर्थक बकने लगा । इस पर स्वामी जी ने शान्ति से उत्तर दिया परन्तु वह पूर्ववत् बकवास करता रहा फिर भी स्वामी जी को तनिक क्रोध न आया । यहां एक दिन व्याख्यान देते और एक दिन प्रश्नोत्तर करते थे । फिर यहां से मेरठ के उत्सव पर चले गये ।

"जिन दिनों स्वामी जी मेरठ में थे उन्होंने अपने शिष्य पंडित श्याम जी कृष्ण वर्मा को एक पत्र संस्कृत में भेजा था ।[१७] लन्दन के प्रसिद्ध समाचार पत्र 'एथिनिअम' के ता० २३ अक्तूबर, सन् १८८०, संख्या २७६५ के अंक में पृष्ठ ५३२-५३३ पर इसको विद्वान् मोनियर विलियम्स ने अपनी टिप्पणी को साथ प्रकाशित किया है ।

पत्र पर विद्वान् मोनियर विलियम्स की टिप्पणी—बहुत कम व्यक्ति इस बात से परिचित होंगे कि संस्कृत भाषा अभी तक आर्यावर्त के पत्रव्यवहार तथा दैनिक बोलचाल में कहां तक प्रत्युक्त होती है । इसकी एक विशेषता तथा सुविधा यह है कि फ्रांसीसी भाषा के समान आर्यावर्त के समस्त प्रान्तों में जहां विभिन्न भाषाएं बोली जाती हैं, शिक्षित लोगों के बीच में इस का प्रयोग होता है । कृष्ण (अर्थात् श्याम जी कृष्ण वर्मा) साहब ने अपने अनुसंधान से बताया है कि आर्यावर्त में दो-सौ के लगभग भाषाएं बोली जाती हैं । शिक्षित लोगों में प्रचलित संस्कृत तथा हिन्दुस्तानी भाषा जिन प्रान्तों में नहीं बोली

जाती हैं, वहां भिन्न-भिन्न प्रकार की भाषाएं भिन्न-भिन्न प्रान्तों के विचारों के इकट्ठा करने में अत्यन्त कठिनाई उत्पन्न कर सकती है । कुछ लोगों का यह विचार है कि संस्कृत भाषा प्रयोग में नहीं लाई जाती और बहुत से मान लेते हैं कि इस का ह्रास हो रहा है । परन्तु क्या कोई ऐसी भाषा को मृतक कह सकता है जो अभी वर्तमान हो और श्वास ले रही हो, जिसमें परस्पर विचारों का आदान-प्रदान किया जाता हो और बातचीत की जाती हो तथा दैनिक पत्रव्यवहार द्वारा जिसकी सत्ता को स्थिरता प्राप्त हो और हिन्दूकुश से लेकर सीलोन (लंका) पर्यन्त विद्याओं और धार्मिक विषयों के प्रकटीकरण द्वारा पूरी दृढ़ता के साथ जिस का प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई देता हो ।

'एथिनिअम' के पाठकों को स्मरण होगा कि एक वर्ष के लगभग व्यतीत हुआ कि जब एक हिन्दू क्षत्रिय नवयुवक के पधारने के विषय में (जिसका नाम श्याम जी कृष्ण वर्मा[९८] है, जिसकी संस्कृत विद्या में उत्तम योग्यता है और जिसका इस भाषा में लिखने और बोलने का सामर्थ्य इतना उत्तम है कि उचित समझकर उस को पंडित की उपाधि प्रदान की गई है) एक लेख प्रकाशित हुआ था और इस समाचारपत्र में यह भी लिखा था कि उस नवयुवक व्यक्ति ने एक ऐसे जगत् प्रसिद्ध व्यक्ति[९९] से शिक्षा पाई है जो केवल प्राचीन संस्कृत भाषा को ही जानता अपितु जिसने अद्वैत, नास्तिकता और मूर्तिपूजा के खंडन द्वारा आर्यावर्त के समस्त धार्मिक सम्प्रदायों में बड़ी हलचल उत्पन्न कर दी है ।'

पं० श्याम जी कृष्ण वर्मा को पत्र

स्वामी जी आर्यजाति के एकमात्र, सच्चे धर्म एकेश्वरवाद के मानने वाले हैं और अपने धार्मिक सिद्धान्तों को वेद पर आधारित सिद्ध करते हैं । देश की उन्नति और सुधार करने वाले इस व्यक्ति का नाम दयानन्द सरस्वती स्वामी है जिसके भाषण की सुन्दरता और लेख की दृढ़ता का मैं स्वयं साक्षी हूं क्योंकि जब मैं बम्बई में था तो उस समय मैंने उक्त स्वामी जी को आर्यसमाज की सार्वजनिक सभा में धर्म-सम्बन्धी उपदेश देते सुना है जिस का विषय 'आर्यों का जीवित धर्म' था और इसके अतिरिक्त उनका एक संस्कृतपत्र जो उन्होंने अभी कुछ दिन पहले अपने शिष्य श्याम जी कृष्ण वर्मा को जो अब बेलियल कालिज आक्सफोर्ड के सदस्य हैं, लिखा था; देखा है । इस पत्र को प्राप्त करने वाले की आज्ञा से मैं इस पत्र का अर्थ लिखता हूं—

पत्र का भावार्थ[1]

"प्रियवर श्याम जी कृष्ण वर्मा को दयानन्द सरस्वती के अनेकशः आशीर्वाद । विदित हो कि यद्यपि तुम वेदमार्ग पर दृढ़ रहने और अपनी विद्या के कारण प्रशंसा के योग्य हो परन्तु खेद है कि तुमने अपने लिखित पत्रों द्वारा मुझ को चिरकाल से आनन्दित नहीं किया । अब मैं आशा करता हूं कि अपनी कुशलता लिखकर तथा निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर से मुझको प्रसन्न करोगे ।

---

1. यहां मूल उर्दू में भावार्थ लिखा है, परन्तु वस्तुतः यह भावार्थ ही है । मूल संस्कृत पत्र नीचे टिप्पणी में दिया गया है ।—सम्पा०

स्वस्ति श्रीमच्छ्रेष्ठोपममार्हाय विद्वद्वर्याय वैदिकधर्ममार्गैकनिष्ठाय निगमोक्तलक्षणप्रमाणैःधर्म्यकर्मोपदेश-प्रवर्तितस्वान्तायैतद्विरुद्धस्योच्छेदने प्रोत्साहितचित्ताय सद्विद्वद्भ्योऽभ्यानन्दार्थं सूक्तसमूहवाक्यानुवाक्यप्रयुक्तवक्तृत्वाभ्यासशालिने सर्वदा विद्यार्जनदानोत्कृष्टस्वभावाय लब्धार्यविपश्चिन्मानायास्मत्प्रियवराय श्रीयुत श्यामजि (कृष्ण) वर्म्मणे दयानन्द सरस्वती स्वामिन आशिषो भूयासुस्तमाम् । शमत्रास्म(दीयम)स्ति; तत्रत्यं नित्यमेधमानं चाशासे ।

बहुमासाभ्यन्तरे भावत्कपत्रानागमेन चित्तानन्दह्रासात् पुनरानन्दप्रजननायेदानीमेतस्मिन्निम्नलिखितताभिप्रायाणां भवतः (सका)शात् सद्यः स प्रत्युत्तराभिकांक्षिणोत्साहयुक्तं....मया पत्रं श्रीमत्सनीडं प्रेष्यते ।

(इंग्लैण्ड) के निवासी किस प्रकार के हैं और उनके स्वभाव और व्यवहार कैसे हैं ? वहां की भूमि और जलवायु कैसी है और खानपान के पदार्थ आदि वहां पर कैसे मिलते हैं ? जब से तुम यहां से गये हो तुम्हारे स्वास्थ्य की क्या दशा है और तुम जिस प्रयोजन से वहां गये हो, वह तुम्हारी इच्छा वहां पर प्रतिदिन पूरी भी होती है या नहीं ? तुम्हारे समीप कितने लोग संस्कृत पढ़ते हैं और कौन-कौन से ग्रन्थ तुम से पढ़ते हैं ? तुम्हारा मासिक आयव्यय क्या है ? तुम्हारे अपने अध्ययन तथा दूसरों को पढ़ाने और विचार करने के कौन-कौन से समय हैं ? इस का क्या कारण है कि धर्मोपदेश करने विषयक तुम्हारी कीर्ति जैसे यहां देशदेशान्तर में फैल गई थी वैसी वहां अभी तक नहीं फैली ? कदाचित् या तो यह कारण हो कि मैं दूर हूं और तुम्हारी कीर्ति का मुझे ज्ञान न हुआ और या यह कि तुमको इस काम के लिए अवकाश न मिलता हो । यदि दूसरा कारण है तो अब मेरी हार्दिक इच्छा है कि जिस समय तुम पढ़ाने से निवृत्त होओ तो वेदमत की उन्नति में प्रयत्न करो और इस के पश्चात् यहां लौट आओ परन्तु इस से पहले नहीं क्योंकि ऐसे उत्तम कार्य में कीर्ति प्राप्त करना रुपया प्राप्त करने से श्रेष्ठ ही नहीं है; अपितु इस से एक प्रकार का कल्याण प्राप्त होता है । हमारे मित्र प्रोफेसर मोनियर विलियम्स[१००] और मोक्षमूलर साहब[१०१] की वेद तथा शास्त्रों के विषय में इस समय क्या सम्मति है और उनकी और औरों की वेदभाष्य के विषय में जो मैं इन दिनों कर रहा हूं—क्या सम्मति है ? इन ग्रन्थों के अर्थों के प्रचार करने में उनको कहां तक रुचि है ? क्या यह सत्य है कि थियोसोफिकल सोसाइटी ने एक शाखा वेदमत की नन्दनपुरी (लन्दन) में स्थापित की है ? कभी तुमने राजराजेश्वरी[१०२] का दर्शन भी प्राप्त किया है और कभी पार्लियामेंट (Parliament) में भी गये हो ? इन सब प्रश्नों का उत्तर बहुत शीघ्र भेज दो । इसके अतिरिक्त और बातें, जिन को तुम लिखने योग्य समझो, विस्तारपूर्वक लिख भेजो । इस समय

तत्र कीदृग्गुणकर्मस्वभावा मानवा भूजलवायुभक्ष्यभोज्यलेह्यचूष्याः पदार्थाश्च सन्ति। अतो गत्वाऽद्य पर्यन्तं तत्र भवदात्मशरीरारोग्यमस्ति न वा । यदर्था यात्रा कृता तत्प्रयोजनं प्रतिदिनं सिध्यति न वा । भवत्समर्य्यादे तत्रत्याः कति जनाः संस्कृतमधीयते कं कं ग्रन्थं च । तत्र भवतः कियती मासिकी प्राप्तिर्व्ययश्च । कस्मिन् कस्मिन् समये पठ्यते पाठ्यते चिन्त्यते च । ततोऽत्र कदाऽगमनाय निश्चितं कृतमस्ति । किमिदं यथाऽत्र सद्धर्मोपदेशजन्या भवत्कीर्तिस्तूर्णं देशदेशान्तरे प्रसृता तत्र कुतो न जाता । जाता चेद्यतो दूरदेशस्थास्ति, तस्मादस्माभिर्न श्रुता किम् ? किं वैतत्कारणेऽवकाशो न लब्धः ? एवं चेद् यदा भवता पठनपाठने सम्पूर्य वेदार्थोत्कर्षाभिप्रायसूचकानि वक्तृत्वानि तत्रत्येषु कृत्वैवात्रागमने भद्रं नान्यथेति निश्चयो मेऽस्ति। कुतः? धनलाभात् सत्कीर्तिलाभो महान् शिवकरोऽस्त्यतः। श्रीयुतप्रियवराध्यापकमुनियर विलियंस (मो)क्षमूलराख्यानामधुना वेदादिशास्त्राणां मध्ये कीदृङ् (निश्चयः) प्रेम तदर्थप्रचारा(य) चिकीर्षास्त्यन्येषां च । तत्र नन्दनपुर्या काचिद् वैदिकी शाखाख्या थियोसोफिकल सभा प्रेरिता सभास्तीति श्रुतं तत्तथ्यं न वा। भवता (कदाचिच्छ्रीमती) राजराजेश्वरी महाराज्ञी पारलीमेंटाख्या सभा च दृष्टा न वा। भवतां श्रीमत्प्रियवराध्यापकमुनियर विलियंसाख्यादिभ्योऽत्यादरेण मन्नियोगतो नमस्त इति संश्राव्य कुशलं पृष्ट्वा ते श्रुत्वा यद्यत् प्रत्युत्तरं ब्रूयस्तत्तदन्यच्च यद्यद्युक्तं च लिखितुं तत्तस्य सर्वस्योक्तिप्रत्युत्तराणि यद्यस्यानुक्तप्रश्नस्यापि लेखार्हमुत्तरं वै तत्सर्वं विस्तरेण संलिख्याविलम्बेन पत्रं मत्सन्नत(धौ) प्रेषणीयमेवेत्यलमधिकलेखेन विचक्षणोत्कृष्टेषु ।

मुनिरामांकभूम्यब्द आषाढस्य शुभे दले ।
षष्ठ्यां हि मंगले वारे पत्रमेतदलेखिषम् ॥

इस पते से पत्र भेजना-बनारस लक्ष्मीकुण्ड, मुंशी बख्तावरसिंह जी मैनेजर वैदिक यन्त्रालय के द्वारा स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के पास पहुंचे ।

इदं वैदिकयन्त्रं स्वाधीनं नवीनं स्थापितमस्मा(भि)रार्यैर्वेदादिशास्त्राणां मुद्राक्षरसंसिद्ध्यइति वेद्यम् ।

[दयानन्द सरस्वती]

मेरा इतना लिखना ही पर्याप्त है और बुद्धिमानों को संकेत ही पर्याप्त होता है। अधिक विस्तार की आवश्यकता नहीं। मंगलवार, आषाढ़ शुक्ला ६, संवत् १९३७ तदनुसार १३ जौलाई, सन् १८८०।"

उपर्युक्त चिट्ठी अत्यन्त स्पष्ट संस्कृत में लिखी हुई है। यो तो बहुत से शिक्षित आर्य लोगों से मेरा पत्रव्यवहार रहा है और काश्मीर, त्रावनकोर आदि के विद्वानों से भी पत्रव्यवहार जारी है परन्तु यह चिट्ठी सबका एक नमूना है, इसका अनुवाद छापने में मेरा अभिप्राय यह बतलाना है कि इस समय भी संस्कृत प्रचलित है और व्यवहार में लाई जाती है तथा इसमें वे विचार प्रकट किये जाते हैं जो आर्यावर्त के शिक्षित व्यक्ति धार्मिक सुधार और अपने देश की शिक्षा की उन्नति से ब्रिटिश सरकार के शासन काल में शान्तिस्थापना के लिए किया करते हैं। उक्त स्वामी जी ने भारत साम्राज्ञी के स्थान पर राजराजेश्वरी शब्द का प्रयोग किया है।

लेखक-मोनियर विलियम्स। आक्सफोर्ड, अक्तूबर, सन् १८८०।

इस चिट्ठी का अनुवाद उन्हीं दिनों 'इण्डियन मिरर' कलकत्ता और 'नसीम' आगरा में २० दिसम्बर, सन् १८८० पृष्ठ २७४ पर तथा 'आर्यसमाचार' मेरठ खंड २, संख्या २४, पृष्ठ ३७० पर प्रकाशित हो गया था।

स्वामी जी के देहरादून पधारने का संक्षिप्त वृत्तान्त : नवीन मतवालों से शास्त्रार्थ की छेड़छाड़ और तत्सम्बन्धी वास्तविकता

(७ अक्तूबर, सन् १८८० से २० नवम्बर,[१०३] सन् १८८० तक)

"विदित हो कि स्वामी जी महाराज ७ अक्तूबर, सन् १८८० को प्रात: आठ बजे के समय इस भूमि के सौभाग्य से देहरादून पधारे और आते ही प्रत्येक की सूचना के लिए अपने आगमन के विज्ञापन स्थान-स्थान पर लगवाये जिससे सर्वसाधारण को सूचना मिल गई। सत्य से प्यार करने वालों को प्रसन्नता हुई और अधर्मियों को दु:ख और बेचैनी प्राप्त हुई। संक्षेप में साधारणतया यह प्रकट कर दिया गया कि स्वामी जी केवल वेदमत को मानते हैं और अन्य नवीन मतों अर्थात् पुराणी, कुरानी, जैनी आदि की त्रुटियों और बुराइयों को उपयुक्त युक्तियों और शास्त्रोक्त प्रमाणों से सिद्ध करते हैं। इसलिए उपुर्यक्त मतों में से जो सज्जन अपने मत की सत्यता और वेदमत का खंडन कर सकते हों, वे आकर इस रूप में शास्त्रार्थ करें कि अपने पक्ष के बीस सत्यप्रिय और न्यायकारी विद्वानों को अपने साथ लावें और उन को पंच ठहरायें। इस प्रकार स्वामी जी की ओर से भी बीस मनुष्य पंच नियत किये जावें और तीन आशुलिपिक दोनों पक्षों के प्रश्नोत्तर लिखने के लिए (एक स्वामी जी की ओर से, दूसरा विरोधी पक्ष की ओर से और तीसरा पंचों की ओर से) नियत हों और प्रत्येक प्रश्नोत्तर पर दोनों पक्षों और पंचों के हस्ताक्षर कराये जावें। शास्त्रार्थ की समाप्ति के पश्चात् प्रश्नोत्तर की एक प्रतिलिपि स्वामी जी के पास और दूसरी विरोधी पक्ष के पास रहेगी और तीसरी पंचों के मतानुसार न्यायालय में भेजी जावेगी ताकि कोई व्यक्ति किसी प्रकार का परिवर्तन न कर सके और न किसी को व्यर्थ बोलने का अवसर प्राप्त हो।"

उपर्युक्त नियमों को देखकर पौराणिक मत वाले सज्जनों ने आपस में मिलकर शास्त्रार्थ विषयक कुछ चर्चा तो लोगों को दिखाने के लिए की परन्तु साहसहीनता के कारण परामर्श करके मौन धारण करना ही उन्होंने उचित समझा। फिर भी केवल एक दिन ऐसी चर्चा चली कि स्वामी जी से यहां के पण्डित लोग आज दिन के २ बजे मिशन स्कूल में शास्त्रार्थ करने को तैयार हैं। इस पर स्वामी जी ने उत्तर दिया कि प्रथम तो मैं संन्यासी हूं, मुझे अभ्यागत समझकर मेरे पास आना आपके लिए कुछ अनुचित नहीं और यदि यह स्वीकार न हो तो थोड़ी दूर आप चलकर आयें और थोड़ी दूर मैं आऊं।

पूरनसिंह सौदागर की दुकान के समीप दोनों पक्षों के लिए निकट और उपयुक्त स्थान है, शास्त्रार्थ किया जावे और उसको सत्यासत्य के निर्णय का स्थान गिना जावे । वहां सत्यासत्य का निर्णय हो और यदि आप को यह आशंका हो कि कदाचित् यहां सभा में से कोई व्यक्ति आप सज्जनों के प्रति असभ्य वचन कहेगा अथवा हंसी-ठट्ठा करेगा तो इसका उत्तरदायित्व इस ओर के प्रबन्धक आप के सन्तोषार्थ लेने को तैयार हैं और यदि आप लोग मुझ को ही अपने पास सम्मानार्थ अथवा और किसी कारण बुलाना चाहते हैं तो मुझको इसमें भी आपत्ति नहीं परन्तु शर्त यह है कि मैजिस्ट्रेट साहब का प्रबन्ध हो क्योंकि जहां कहीं मैंने पौराणिक मत वालों से उनके पास जाकर शास्त्रार्थ किया है वहां कटुवचन बोलने की तो बात ही क्या, नाना प्रकार के उपद्रव तक भी उनकी ओर से हुए हैं और आपस का सारा प्रबन्ध उन्होंने समाप्त कर दिया है ।

अत्यन्त खेद की बात है कि पण्डितों की ओर से इसका कोई उत्तर न मिला, मानो उत्तर का न आना ही उत्तर हुआ । कुछ दिनों पश्चात् कई एक सज्जनों ने स्वामी जी से कहा कि यदि आप एक सप्ताह ठहरें तो हम रामलाल नामक एक पण्डित को, जो अत्यन्त चतुर और विद्वान् है शास्त्रार्थ के लिए बुलावें । इस पर स्वामी जी ने उत्तर दिया कि आप उनको बुलाइये, मैं दो मास तक ठहर सकता हूं । इसके पश्चात् न कोई आया न गया, केवल व्यर्थ की बातें इधर-उधर मिलाते फिरे ताकि साधारण लोगों में मुख उज्ज्वल रहे परन्तु कहां तक ?

इसके पश्चात् मुहम्मदी लोगों की ओर से एक लेख द्वारा छेड़छाड़ हुई परन्तु शास्त्रार्थ किस का, बातचीत कैसी ? वहां तो केवल जग दिखावा और आत्मप्रदर्शन था । उनके हर आग्रह का सार (जो गुप्त रूप से शास्त्रार्थ की अस्वीकृति ही थी) यह था कि हम वेद के ईश्वरीय वाक्य होने के विषय में प्रश्न करेंगे और जब तक हमारा अपना सन्तोष न होगा तब तक किसी की न सुनेंगे । इस पर स्वामी जी ने उनको भी वही उत्तर दिया जो पण्डितों को दिया था और इसके अतिरिक्त यह भी कह दिया कि पहले आप वेद के विषय में प्रश्न करें, मैं उत्तर दूंगा, फिर मैं कुरान पर आक्षेप करूंगा, आप उत्तर दें और यदि आपको केवल वेद के ईश्वरीय वाक्य होने के विषय में ही प्रमाण चाहिये तो मेरी वेदभाष्य की भूमिका में जिसमें समस्त बातें विस्तारपूर्वक लिखी हैं, देख लीजिये और फिर जो कुछ सन्देह रहे तो मुझसे प्रश्न कीजिये । सारांश यह कि यह छेड़-छाड़ भी यहीं तक रही, आगे न बढ़ी ।

एक चतुर पादरी की कहानी—इसके पश्चात् एक पादरी साहब जिनका नाम गिलबर्ट और उपाधि मैक्मासर है, कुछ ईसाइयों के साथ शास्त्रार्थ के लिए आये और आते ही स्वामी जी से यह बातचीत आरम्भ की कि वेद के ईश्वरीय वाक्य होने में तुम्हारे पास क्या युक्ति है ? चूंकि स्वामी जी उनके ढंग से समझ गये थे कि यह सब छेड़छाड़ है, कुछ सत्य के निर्णय पर इस बातचीत का आधार नहीं इसलिए उनके प्रश्न के उत्तर में इस प्रकार कहा कि इञ्जील के ईश्वरीय वाक्य होने का आपके पास क्या प्रमाण है ? यह सुनकर पादरी साहब कहने लगे कि वाह ! पहले तो हमारा प्रश्न है । उधर स्वामी जी ने कहा कि वाह ! मुझको भी तो पहले उत्तर लेने का ध्यान है । इस पर पादरी साहब उठकर चलने लगे । तब स्वामी जी ने कहा कि पादरी साहब ! आप तो शास्त्रार्थ करने को आये थे फिर इतना शीघ्र क्यों भागते हैं ? पादरी साहब ने इस पर यह कहा कि जब आप उत्तर ही नहीं देते तो हम बैठ कर क्या करें ? इस पर स्वामी जी ने कहा बहुत अच्छा पहले मैं ही उत्तर दूंगा परन्तु उस के पश्चात् इञ्जील के विषय में प्रश्न करूंगा और आप से उत्तर लूंगा । इस पर भी पादरी साहब न जमे और उठकर भागने लगे । तब स्वामी जी ने कहा कि पादरी साहब ! आप पहले वेद पर केवल एक नहीं प्रत्युत दो-तीन प्रश्न कर लीजिये परन्तु उत्तर देने के पश्चात् तो मेरे आक्षेपों को सुनिये ? परन्तु यह बात भी पादरी साहब को बुरी लगी और उठकर चलने को उद्यत हो गये । तब स्वामी जी ने यह कहा कि अच्छा पहले आप पांच प्रश्न तक वेद पर कर लीजिये और जब उनके उत्तर मैं दे चुकूं फिर मुझको अपनी इञ्जील पर आक्षेप करने दीजिये परन्तु यह भी पादरी साहब को स्वीकार न

हुआ और पूर्ववत् डरते रहे । तब स्वामी जी ने कहा कि आप इञ्जील पर आक्षेपों के होने से क्यों इतना घबराते हैं ? लीजिये पहले आप वेद पर दस प्रश्न तक कर लीजिये और उत्तर सुनने के पश्चात् मुझ को इञ्जील पर आक्षेप करने की आज्ञा दीजिये ताकि सुनने वालों को आनन्द आवे, सत्य और झूठ की वास्तविकता प्रकट हो जावे । भला यह कहां की रीति है कि आप अपनी कहे जावें और दूसरे की न सुनें । इस पर पादरी साहब को भीड़ की लज्जा ने रोका और तब उन्होंने विवश होकर कहा कि बहुत अच्छा ! परन्तु जिस समय इन्जील पर आक्षेप किये जाने की घड़ी आई और लिखने की अवस्था उत्पन्न हुई तब तो पादरी साहब की विचित्र दशा हुई अर्थात् वही मुसलमान लोगों की सी रट लगाये गये जाते थे कि जब तक हम अपने प्रश्न के उत्तर से सन्तोष प्राप्त न कर लेंगे और उसकी स्वीकृति न दे देंगे तब तक न हम तुमको बोलने देंगे और न तुम्हारी सुनेंगे । यह देखकर स्वामी जी ने कहा कि आप अपने प्रश्नों के विषय में तो कहते हैं परन्तु मेरे प्रश्नों के विषय में भी इस बात को स्वीकार करते हैं ? तो बस 'नहीं' के अतिरिक्त और क्या उत्तर था क्योंकि यह सारा बखेड़ा तो अपना बड़प्पन दिखाने और झूठ-मूठ का यश लूटने के अभिप्राय से था । शास्त्रार्थ से तो पूर्णतया इन्कार ही था । जब स्वामी जी ने पादरी साहब का अन्तिम 'नहीं' का उत्तर सुना तो यह कहा कि पादरी साहब ! आप न्याय से काम बिलकुल नहीं लेते; केवल शास्त्रार्थ का नाम करते हैं परन्तु आप की यह चतुराई कि कहीं पोल न खुल जाये, व्यर्थ गई और आपकी सारी वास्तविकता प्रकट हो गई क्योंकि आप उन नियमों को जो शास्त्रार्थ में आवश्यक होते हैं, स्वीकार नहीं करते और न दूसरे की सुनना चाहते हैं । देखो, मैं पहले भी कह चुका हूं और फिर भी कहता हूं कि प्रथम आप वेद पर एक से लेकर दस तक आक्षेप कीजिये और मुझसे उत्तर लीजिये और तत्पश्चात् मुझको अपनी इञ्जील पर आक्षेप करने दीजिये और उत्तर प्रदान कीजिये और जब आप मेरे आक्षेपों का उत्तर दे चुकें तो फिर आप चाहे और नये दस प्रश्न मुझ पर कीजिये, चाहे अपने पहले दस प्रश्नों में से यदि किसी में कोई सन्देह शेष रहे और मेरे उत्तर से इच्छानुसार सन्तोष न हो तो वह पूछिये और फिर उत्तर सुनिये ताकि सभा में उपस्थित लोग भी जान लें कि सत्य क्या है और असत्य क्या है ? सारांश यह कि जब पादरी साहब के पास कोई और बहाना अवशिष्ट न रहा तो यह कहा कि या तो आप केवल मेरा ही सन्तोष कीजिये और अपने आक्षेपों को रहने दीजिये अन्यथा मैं जाता हूं, आप बैठे रहिये । इस पर स्वामी जी ने कहा कि पादरी साहब ! इस सभा में उपस्थित लोग तो आप के बार-बार भागने और किसी शर्त पर न जमने से भली भांति जान ही गये हैं कि आप इञ्जील पर आक्षेप होने से थरथर कांपते हैं और पीछा छुड़ाने के लिए बार-बार कूदते-फांदते फिरते हैं । खैर, अब आप जानें और आपका काम । अच्छा तो यही था कि आप शास्त्रार्थ करते और अपने जी की भड़ास निकाल लेते । यह सुनकर पादरी साहब ने कठोर शब्दों में कहा कि बस आप उत्तर देते ही नहीं, मैं जाता हूं । मुझे काम है । इस पर स्वामी जी ने भी कहा कि आप प्रश्न का उत्तर लेते ही नहीं क्योंकि आपका प्रयोजन तो कुछ और ही है, शास्त्रार्थ का तो केवल नाम है । अच्छा जाइये, मुझ को इस समय काम है ।

विचारणीय बात है कि ऐसी कार्यवाहियों से भला कभी शास्त्रार्थ होने की सम्भावना रहती है और कहीं इस प्रकार सत्यासत्य का विवेक हो सकता है ? कदापि नहीं । यह बात किसी को स्वीकार नहीं होसकती कि हम तो आक्षेप करें और दूसरे को आक्षेप करने न दें । अपनी कहें, दूसरे की न सुनें । परन्तु वास्तविकता तो यह है कि जिस बात से किसी का सिद्धान्त निर्बल होता है उसको स्पष्ट करने को वार्तालाप करने के लिए कौन उद्यत हो सकता है ! और जो पुस्तक आदि से अन्त तक आक्षेप के योग्य हो; उस की निर्दोषता पर शास्त्रार्थ करना कौन स्वीकार कर सकता है ? यदि आक्षेप करने वालों की धार्मिक पुस्तकें सच्ची और आक्षेप योग्य बातों से रहित होतीं तो क्यों इस अभिप्राय से कि इन पर शास्त्रार्थ न हो इतना छल-कपट किया जाता और बीसियों प्रकार की बनावटें बनाई जातीं । यही न मान लेते कि बहुत अच्छा, पहले आप प्रश्न कीजिए और

उत्तर लीजिये, पीछे हम को आक्षेप करने दीजिये और उत्तर प्रदान कीजिये। इस के अतिरिक्त देहरादून के समस्त रईसों और सज्जनों को भली भांति विदित हो गया कि इन पादरी लोगों को केवल अनपढ़ मनुष्यों को ही बहकाना आता है। विद्वान् के सामने इन लोगों ने कभी किसी स्थान पर शास्त्रार्थ नहीं किया और यदि कदाचित् किया भी तो नाम नहीं पाया। बस अब और अधिक इस विषय में कहां तक लिखूं ? सम्मानित पाठक वास्तविकता को इतने कथन से ही स्वयं समझ सकते हैं और सत्यासत्य का विवेक कर सकते हैं।"

"इस बीच में मुंशी मुहम्मद उमर[१०४] साहब को जो गतवर्ष से देहरादून आर्यसमाज में सम्मिलित हैं और जिन का वर्तमान नाम अलखधारी है, मुसलमानों ने जा पकड़ा और कहा कि तेरी मुक्ति असम्भव है और तू अत्यन्त दुःख पाने का अधिकारी और कष्ट उठाने के योग्य है। उसके उत्तर में उक्त मुंशी साहब ने, जो आजकल के मुसलमानों में से एक स्मरणीय, सत्यप्रिय तथा सदाचारी व्यक्ति हैं, उन आक्षेप करने वाले विरोधियों से प्रश्न किया कि आपका ईश्वर सारे संसार का पालनकर्ता है या केवल मुसलमानों का ? पहली अवस्था में तो कल्याण के विषय में मेरी अपेक्षा आप में कोई विशेषता है ही नहीं और जो दूसरा विचार है वह तो केवल बकवास है। अच्छा तो यही है कि आप लोग भी पवित्र वेद पर विश्वास करें और सत्यधर्म को ही सत्य मानें अन्यथा छुटकारा कठिन है। आगे आपको अधिकार है !

बहुत से लोग जो बिना देखे भाले स्वामी जी के विषय में अशिष्ट शब्द, चाहे पक्षपात से अथवा और किसी कारण, जिह्वा पर लाते थे, उनके व्याख्यान सुनते ही और उनसे बातचीत करते ही सत्यमार्ग पर आ गये, अपनी भूल पर लज्जित हुए और कहने लगे कि हमने झूठे समाचार सुनकर स्वामी जी के विषय में कुछ और ही समझ रखा था परन्तु यहां तो बात ही और निकली। किन्तु हठी लोग हठधर्मी के कारण, मुसलमान और ईसाई लोग कुरान और इञ्जील के खंडन के कारण, आजकल के ब्राह्मण लोग अपनी आजीविका की चिन्ता के कारण, व्यभिचारी, दुराचारी और असत्यवादी लोग दुष्कर्मों के प्रति अपने मोहवश, अब भी स्वामी जी को बुरा-भला कहे जाते हैं। रहे सत्यप्रिय और दूरदर्शी लोग, वे तो पहले ही से इस परिवर्तनशील समय में स्वामी जी को एक महान् विभूति समझते हैं। विचार था कि स्वामी जी के व्याख्यानों का विस्तारपूर्वक वृत्तांत भी यहां लिखूं परन्तु प्रथम तो उन का विस्तारसहित लिखना तनिक कठिन है, दूसरे उनमें से बहुत से स्वामी जी की रचनाओं में मौजूद हैं इसलिए इस को छोड़ता हूं और वर्तमान लेख को इस प्रार्थना पर कि परमेश्वर अविद्या का नाश करके धर्म का प्रकाश करे, समाप्त करता हूं। ('आर्यसमाचार' मेरठ, पृष्ठ २४२ से उद्धृत) इति।

कृपाराम[१०५] मन्त्री, आर्यसमाज देहरादून

('**आर्यसमाचार**', मार्गशीर्ष मास, संवत् १९३७ तदनुसार नवम्बर, सन् १८८०, पृष्ठ २४२ से २५० तक)।

मेरठ का वृत्तान्त—स्वामी जी **देहरादून** से चलकर मेरठ पधारे जैसा कि वे अपने एक पत्र में लिखते हैं, "ला० कालीचरण जी व रामसरन जी, आनन्दित रहो। मैं देहरादून से यहां आया। चौबे तोताराम के प्रमाद से पुस्तकों की हानि हो जायेगी। यहां से दो-चार दिनों में आगरा जाऊंगा, वहां मैं एक महीना ठहरूंगा और मास्टर शादीराम जी की जमानत ला० रामसरनदास जी ने दे दी और मुंशी बख्तावरसिंह जी की चिट्ठियों से विदित हुआ कि उनके ऊपर कानून से पेश आना चाहिये सो ठाकुर मुकुन्दसिंह जी व भूपालसिंह जी मुख्तार हैं; सब काम कर लेंगे। वैदिक यन्त्रालय के प्रबन्ध में मुंशी बख्तावरसिंह के कारण खराबी आ रही थी। उसका प्रबन्ध भी करते रहे। पांच दिन रहे, कोई व्याख्यान नहीं हुआ। १ नवम्बर, सन् १८८० को पंडित भीमसेन जी ने वैदिक यन्त्रालय का चार्ज बनारस में ले लिया।"

आगरा नगर में पधारने का वृत्तान्त

(२५ नवम्बर,[१०६] सन् १८८० से १० मार्च, सन् १८८१ तक)

समाचारपत्र 'नसीम' आगरा में लिखा है—"आजकल यहां पर दयानन्द सरस्वती जी के पधारने की चर्चा है।" (२० नवम्बर, सन् १८८०, खंड ३, संख्या ३२, पृष्ठ २२५)

विदित हो कि स्वामी जी देहरादून से २० नवम्बर को चलकर २१ को मेरठ पहुंचे और वहां से २४ की रात को चलकर २५ नबम्बर सन् १८८० को आगरा पहुंचकर ला० गिरधारीलाल जी भार्गव वकील के मकान पर उतरे। उसी दिन उनके आगमन का समाचार सर्वसाधारण में फैल गया और उनके पधारने की धूम समीप और दूर सब स्थानों में मच गई। दो दिन के पश्चात् (जो मिलने मिलाने में कटे और व्याख्यानादि के प्रबन्ध में बीत गये) २८ नवम्बर, सन् १८८० को स्वामी जी का उपदेश आरम्भ हुआ।

'नसीम' आगरा में लिखा है—"२५ नवमबर को स्वामी दयानन्द सरस्वती नौ बजे रात के समय यहां पर पहुंचे और २८, २९ और ३० ता० को भूतपूर्व पाठशाला 'मुफीदे आम' के मकान में व्याख्यान दिया। श्रोताओं की भीड़ अत्यधिक थी और व्याख्यान भी प्रशंसनीय है।" (३० नवम्बर, संख्या ३३३, पृष्ठ २६३)॥

दस दिन पश्चात् के दूसरे अंक में लिखा है—"स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने इन दस दिनों में प्रतिदिन लगातार व्याख्यान दिये और श्रोताओं में से कुछ को छोड़कर शेष सब उनके प्रभावपूर्ण व्याख्यानों से आनन्दित होते रहे। ९ ता० की प्रातः को ठाकुर श्यामलालसिंह के यहां उक्त स्वामी जी ने एक छोटा-सा हवन कराया और पृथिवी खोद कर वेदी बनवाई। उस समय बहुत से मनुष्य एकत्रित थे। उक्त ठाकुर के तीन लड़कों को यज्ञोपवीत वेद के अनुसार कराया। हलवे और कुछ सुगन्धित पदार्थों से आहुति दिलाई। उपस्थित ब्राह्मणों को भी एक रुपया से लेकर चार आने तक दक्षिणा दिलाई गई और इसके अतिरिक्त परोपकार के लिए उक्त ठाकुर से कुछ धनराशि अलग जमा कराई गई।" (१० दिसम्बर, सन् १८८०, खंड ३, संख्या ३४)।

पंडित काशीनारायण, मुन्सिफ आगरा ने वर्णन किया—"एक मेम साहब भी इस अग्निहोत्र को देखने आई थीं जो रोमन कैथोलिक चर्च की थीं।"

फिर इसी समाचारपत्र में लिखा है "स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज का व्याख्यान नियत समय पर प्रतिदिन होता है। वास्तव में उक्त स्वामी जी का भाषण सर्वथा दृढ़ आधारस्थ तथा उत्कृष्ट होता है; और उसका हेतु परोपकार होता है। चालू महीने की १२ ता० को कैथोलिक चर्च के बड़े पादरी साहब की इच्छानुसार प्रशंसनीय स्वामी जी बड़े गिर्जे में पधारे। उनके साथ प्रतिष्ठित वकील, उच्च पदाधिकारी तथा अन्य कुछ सज्जन भी वहां गये थे। पादरी साहब सज्जनों की रीति के अनुसार उनसे मिले और बहुत काल तक अपनी परिस्थिति तथा धर्म की बातें करते रहे और अपनी बातचीत के बीच में यह भी कहा कि उच्च पादरी छोटे ईश्वर के रूप में समझा जाता है और जो कोई भूल हम लोगों से हो उसका सुधार उच्च पादरी अर्थात् रोम के पोप द्वारा होता है परन्तु पोपसाहब की भूल के विषय में वे किसी उपयुक्त युक्ति से श्रोताओं का सन्तोष न कर सके। वेद के विषय में जो कुछ स्वामी जी से पूछा गया उस का अत्यन्त युक्तियुक्त और श्रेष्ठ उत्तर प्रशंसनीय स्वामी जी ने दिया, यद्यपि बहुत थोड़ा समय उसके उत्तर के लिए था। तत्पश्चात् गिर्जे को देखकर उक्त स्वामी जी लौट आये। दो तीन बार यहां के पंडितों ने इस विचार से सभा की थी कि स्वामी जी से धार्मिक शास्त्रार्थ किया जावे परन्तु उसका कोई परिणाम प्रकट नहीं हुआ और न इस विषय में अभी तक संकल्प की दृढ़ता पाई जाती है। अभी तक

किसी पंडित या किसी और व्यक्ति से किसी विषय पर स्वामी जी का शास्त्रार्थ नहीं हुआ और कुछ समाचारपत्रों में जो शास्त्रार्थ के विषय में प्रकाशित हुआ है, वह मिथ्या है ।" (२० दिसम्बर, सन् १८८०, खंड ३, संख्या ३५)

"प्रत्येक व्यक्ति का एक निराला अभिप्राय होता है जैसे पंडितों का अभिप्राय केवल दक्षिणा है । स्वामी दयानन्द सरस्वती का अभिप्राय मूर्तिपूजन को जड़ से उखाड़ देना है ।" ('नसीम' आगरा, पृष्ठ ३८५, २३ दिसम्बर, सन् १८८०)

"ता० २२ दिसम्बर, सन् १८८० को श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती के व्याख्यानों का क्रम समाप्त हुआ और उसके पश्चात् दस दिन का अवकाश इस अभिप्राय से दिया गया कि जिन सज्जनों को कुछ शंका या संदेह हो, वे पांच बजे सायं से दस बजे रात तक इस पर शास्त्रार्थ कर लें परन्तु अभी तक कोई विद्वत्तापूर्ण शास्त्रार्थ नहीं हुआ । कुछ सज्जनों ने यह अवश्य लिखा था कि मथुरा जी में कोई पंडित हैं, उनसे शास्त्रार्थ हो । उक्त स्वामी जी ने उसका यह उत्तर दिया कि वास्तव में वे एक ऐसे पंडित हैं कि जिनकी अब तक कोई प्रसिद्धि नहीं है और न उनकी विद्वत्ता का ही अभी तक कोई चमत्कार देखने में आया है । यदि वे मुझसे किसी विषय में शास्त्रार्थ करना चाहते हैं तो उनका यहां पधारना हमारी प्रसन्नता का कारण होगा परन्तु मथुरा जाना उसी दशा में उचित हो सकता है जब उक्त पंडित की योग्यता के विषय में यह पूर्ण विश्वास हो जाये कि वह अत्यन्त असाधारण है । 'दिल्ली गजट' ने इस सम्बन्ध में जो यह निर्मूल और निरर्थक लेख लिखा है कि स्वामी जी मथुरा जाने से इन्कार करते हैं, वह सर्वथा मिथ्या है क्योंकि इस बात का विश्वास किये बिना कि कोई विद्वान् किसी विषय में शास्त्रार्थ की इच्छा रखता है, मथुरा में कि जहां पर बहुत से असभ्य लोग उन के शत्रु हैं और एक बार उन पर आक्रमण भी कर चुके हैं, उनका जाना व्यवहार के विरुद्ध है । यदि वास्तव में किसी को किसी विषय में सन्देह हो तो वह शिष्टता से शास्त्रार्थ करने को उद्यत हैं । हमारी सम्मति में इस बात का अनुरोध करने वालों को उचित है कि जिस किसी को वह इस योग्य समझें, उसको आगरा में बुला लें ताकि एक विशाल जनसमूह के सामने इस बात का निर्णय हो जावे और लोगों का सन्देह दूर हो जावे ।" **'नसीम'** आगरा ३० दिसम्बर, सन् १८८०, खंड ३, संया ३६, पृष्ठ २८७) ।

२२ से २८ ता० तक का तो यह वृत्तान्त रहा । इसके पश्चात् स्वामी जी के लगातार २५ व्याख्यान निम्नलिखित विषयों पर हुए—दिनांक २८ नवम्बर—धर्म का स्वरूप । २९ नवम्बर—परमेश्वर की वास्तविकता और विशेषता । ३० नवम्बर व १ दिसम्बर-सृष्टि-उत्पत्ति और आदिसृष्टि का वृत्तान्त । २ व ३ दिसम्बर—पवित्र वेद के ईश्वरोक्त होने का प्रमाण और मैक्समूलर तथा महीधर के भाष्यों का खंडन । ४ दिसम्बर—संस्कारों का महत्व, गर्भाधान से लेकर आठवें संस्कार तक वर्णन किया । ५ दिसम्बर—विवाह संस्कार । ६ दिसम्बर—नियोग और संन्यास । ७ दिसम्बर—पंचमहायज्ञों का महत्त्व और उनके करने पर बल दिया गया । ८ व ९ दिसम्बर—मूर्तिपूजन का खंडन, निरन्तर दो दिन तक प्रभावशाली व्याख्यान दिया । १० व ११ दिसम्बर—पुनर्जन्म और जन्म-मरण का वृत्तान्त । १२ दिसम्बर—पृथिवी आदि लोकों के परिभ्रमण और परस्पर आकर्षण, इस सम्बन्ध में शास्त्रों का मंडन और पुराणों का खंडन । १३ दिसम्बर—राजाप्रजाधर्म, राज्यव्यवस्था और अधिकार । १४ व १५ दिसम्बर—उपासना और प्रार्थना कीं आवश्यकता, उनके गुण तथा करने की विधि । १६ व १७ दिसम्बर—मुक्ति का स्वरूप और उसके साधन । १८ दिसम्बर—समस्त व्याख्यानों का सार । १९ दिसम्बर—खान-पान का विचार । २० दिसम्बर—गोवध की असीम हानियां और गोरक्षा के असंख्य लाभ । २१ व २२ दिसम्बर—सभा और सोसाइटी के नियमों का वर्णन किया । पहले क्रम के व्याख्यान समाप्त करके सबको सुना दिया और विज्ञापन द्वारा प्रकाशित कर दिया कि अब जिस किसी को मुझसे शास्त्रार्थ की इच्छा हो या मेरे कथन में किसी बात पर कुछ सन्देह हो या निजी रूप में कुछ पूछने का अभिप्राय हो तो आज से लेकर दस दिन तक मेरे निवासस्थान पर आकर अपना सन्तोष कर लें अर्थात् शंकाएं उपस्थित करें और उनके उत्तर सुन लें । परन्तु आकर बातचीत करना तो एक ओर, किसी ने

भी जो इधर-उधर बातें बनाते और शास्त्रार्थ की डींग मारते थे, उस ओर मुख तक न किया। क्यों न हो, शास्त्रार्थ करना खाला जी का घर नहीं है। यद्यपि इतना तो हुआ कि जिन सज्जनों को कुछ पूछना था, वे इन दिनों में आकर निरन्तर अपने सन्देह मिटाते रहे और कुछ विद्याहीन लोग जिन्हें न समझने की योग्यता थी और न कहने का ढंग आता था, वे अपना नित्य का समय नष्ट ही करते रहे।

सारांश यह है कि स्वामी जी के उपदेशों ने देश के शुभचिन्तकों के हृदयों पर प्रभाव डाला और देशोन्नति तथा धर्मोन्नति का उत्साह उत्पन्न किया जिससे परस्पर यह निश्चय हुआ कि एक समाज आगरा नगर में (गोकुलपुरा में स्थित आर्यसमाज के अतिरिक्त-जो नगर से बहुत दूर है और जहां मार्ग लम्बा होने के कारण नगर वालों का आना-जाना कम होता है), स्थापित किया जावे। इस सम्बन्ध में २६ दिसम्बर, सन् १८८० रविवार को एक सभा हुई और आगरा नगर में आर्यसमाज की नींव रखी गई।

व्याख्यानों का दूसरा क्रम—२३ जनवरी, सन् १८८१ से स्वामी जी ने व्याख्यानों का दूसरा क्रम आरम्भ किया। इस सम्बन्ध में लिखा है—'२३ ता० की शाम से स्वामी दयानन्द के व्याख्यान फिर आरम्भ हुए।' ('नसीम' आगरा, पृष्ठ २३, २३ जनवरी, सन् १८८१, खंड ४, संख्या ३)

स्वामी दयानन्द सरस्वती महाराज के व्याख्यानों का दूसरा क्रम २९ जनवरी, सन् १८८१ को समाप्त हुआ। 'नसीम' आगरा, ३० जनवरी, सन् १८८१, पृष्ठ ३१)

दूसरे क्रम में कुल सात व्याख्यान हुए।

"स्वामी दयानन्द अभी तक यहीं हैं। मुंशी इन्द्रमणि भी कुछ दिनों के लिए यहां आये थे। (आगरे से निज संवाददाता द्वारा)। ('कवि वचन सुधा', ३१ जनवरी, सन् १८८१, खंड १२, संख्या २६)।

"स्वामी दयानन्द सरस्वती जी अभी तक यहां उपस्थित हैं और प्रति रविवार को कोठी नं० १३४ सेब के बाजार में रात्रि के समय व्याख्यान हुआ करता है।" ('भारती विलास', आगरा, २५ फरवरी, सन् १८८१)।

"रविवार, ता० २७ फरवरी, सन् १८८१ की रात को स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का व्याख्यान सेब के बाजार में हुआ।" ('नसीम', आगरा, २८ फरवरी, सन् १८८१, संख्या ८, पृष्ठ ६३)।

"श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज का व्याख्यान ता० ६ मार्च, रविवार को सेब के बाजार में हुआ" ('नसीम', आगरा, ७ मार्च, सन् १८८१, संख्या ९, पृष्ठ ७१)।

मुंशी गिरधारीलाल साहब वकील ने वर्णन किया—"सन् १८८० के अन्त में स्वर्गीय मुंशी लक्ष्मणप्रसाद पेंशनर, प्रोफेसर बरेली कालिज और कुछ अन्य सज्जनों ने स्वामी जी को मेरठ से बुलाने का प्रस्ताव किया और सम्मति हुई कि नगर से बाहर किसी मकान में उन्हें ठहराया जावे। जिस रात की गाड़ी में उनको आना था, उस पर वे लोग उपस्थित नहीं हुए। चूंकि मुझे भी सूचना मिली थी, मैं स्टेशन पर उपस्थित था। उस मकान के ज्ञात न होने के कारण मैं स्वामी जी को अपने मकान पर ले आया। दूसरे दिन वे लोग उपस्थित हुए और अनुपस्थिति की क्षमा मांग कर निश्चित मकान पर जाने की सम्मति हुई परन्तु स्वामी जी ने मुझसे कहा कि यदि तुमको कष्ट न हो तो हमको यह मकान पसन्द है। मैंने अत्यन्त प्रसन्नता से स्वीकार किया। फिर मैंने यह भी कहा कि आप जब तक यहां हैं, भोजन आदि का व्यय मैं उठाऊंगा। स्वामी जी ने कहा कि हमारा यह नियम नहीं कि व्यय का भार किसी एक मनुष्य पर डालें। हमारे पास सामान मौजूद है, कहार, ब्राह्मणादि साथ हैं, हम स्वयं प्रबन्ध करेंगे। हां, जो कभी कुछ आवश्यकता होगी, कह दिया जावेगा। इसी प्रकार

सेठ सोनीराम जी ने, जो पन्नेलाल जी के दामाद थे, बहुत कुछ कहा कि आप हमारे पर कृपा करें परन्तु स्वामी जी ने अस्वीकार किया। अन्त में हम दोनों उनकी इच्छा के अनुसार उनसे सहमत हो गये, यहां उस समय कोई 'आर्यसमाज' नहीं था और न कोई सामाजिक विचार का था। स्वामी जी ने पीछे पूछा कि हम यहां महीना भर या न्यूनाधिक रहेंगे और व्याख्यान दिया चाहते हैं, लोगों की इस विषय में क्या सम्मति है ?"

"उस समय मुंशी लक्ष्मणप्रसाद जी के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति सामाजिक विषयों से परिचित न था, इसलिए हम सब लोगों ने परामर्श करके पीपल मंडी स्थित 'मुफीदे आम' स्कूल के मकान में व्याख्यान का प्रबन्ध किया। यहां लगभग एक मास तक सायंकाल के सात बजे से साढ़े आठ बजे तक प्रतिदिन लगातार व्याख्यान दिया और प्रत्येक व्याख्यान के अन्त में नित्य आध घंटे तक शंकासमाधान होता रहा। वह मकान लगभग भर जाया करता था।

एक दिन मौलवी तुफैल अहमद, नगर कोतवाल ने पुनर्जन्म पर आक्षेप किया और कहा कि यह गलत प्रतीत होता है; पुनर्जन्म मानने से तो अनेक आक्षेप खड़े हो जाते हैं। ईश्वर ऐसा अन्यायकारी नहीं है कि जीवों को बार-बार उत्पन्न करे और फिर वे अनुचित अपराध करें। उदाहरणार्थ, एक व्यक्ति मर गया; इस समय जो उसकी बेटी है अगले जन्म में वह उसकी पत्नी होवे ! स्वामी जी ने उत्तर दिया कि बेटी और बाप का सम्बन्ध शरीर का है, आत्मा का नहीं। चूंकि आत्मा का किसी के साथ कोई सम्बन्ध नहीं इसलिए यह आक्षेप आत्मा पर लागू नहीं हो सकता। इस पर उनकी शान्ति हो गई और वे फिर कोई उत्तर न दे सके।"

"एक पादरी साहब हमारे मकान पर आये थे। उन्होंने प्रश्न किया कि आपने जो वेदभाष्य में 'अग्नि' को परमेश्वर कहा है, वहां 'अग्नि' का अर्थ परमेश्वर नहीं हो सकता।[१०७] स्वामी जी ने कहा कि प्रथम तो व्याकरण के अनुसार इस शब्द का अर्थ परमेश्वर हो सकता है। दूसरे-गुणों की दृष्टि से भी परमेश्वर का नाम हो सकता है। इस पर उनकी कोई शंका न रही। फिर उन्होंने स्वामी जी से पूछा कि आप कभी पर्वत पर आते हैं या नहीं ? यदि कभी आवें तो मैं बहुत-सी बातें पूछना चाहता हूं। स्वामी जी ने कहा कि मैं विश्राम करने के लिए तो नहीं, हां धार्मिक काम करने के लिए जा सकता हूं। स्मरण पड़ता है कि वे मसूरी या नैनीताल के पर्वत पर रहने वाले पादरी थे।"

"सेंट पीटरसन चर्च के बड़े पादरी साहब ने स्वामी जी के पास मनुष्य भेजा कि मैं आपसे मिलना चाहता हूं। स्वामी जी ने मुझसे कहा कि यदि हम उनसे मिलें तो कुछ हानि नहीं और अच्छा होगा, प्रत्युत उन के चर्च को भी देखेंगे। मैंने कहा कि कोई हर्ज नहीं। फिर हम गये। पादरी साहब ने कहा कि जिस प्रकार राजराजेश्वरी विक्टोरिया, किसी दूसरे की सहायता लिये बिना भारत पर शासन नहीं कर सकती, उसी प्रकार ईश्वर मसीह की सहायता के बिना संसारी मनुष्यों का अथवा मुक्ति का प्रबन्ध नहीं कर सकता। स्वामी जी ने कहा कि प्रथम तो जो उदाहरण है, वह ठीक नहीं क्योंकि जीव तथा परमेश्वर में समता है ही नहीं। दूसरे, पहले ईश्वर का लक्षण करो कि ईश्वर क्या वस्तु है ? फिर स्वामी जी ने उसके सर्वज्ञता, सर्वव्यापकता, अविनाशित्व, सर्वशक्तिमत्ता आदि गुण बताये और कहा कि ऐसे गुणों वाला ईश्वर इस बात की आवश्यकता नहीं रखता कि किसी दूसरे की सहायता से प्रबन्ध करे। तीसरे, यदि हम मान भी लें कि ईसा कोई अच्छे पुरुष थे तो भी वे एक मनुष्य थे और ईश्वर न्यायाधीश है, फिर वह किसी मनुष्य की सिफारिश से अन्याय नहीं कर सकता। जैसा जिसका काम होगा वैसा फल होगा इसलिए यह असम्भव है कि परमेश्वर किसी की न्याय-विरोधी सिफारिश को स्वीकार करके पुण्य-पाप के अनुसार फल न देवे। इसका वे कोई उत्तर न दे सके।"

"फिर पादरी साहब से पूछकर गिर्जा को देखने गये। वहां एक व्यक्ति ने कहा कि आप पगड़ी उतार लीजिये। स्वामी जी ने कहा कि हमारे नियम के अनुसार पगड़ी का पहनना सम्मान में सम्मिलित है, यदि तुम चाहो तो हम जूता उतार

कर जा सकते हैं । उसने कहा कि नहीं, आप को जूता और पगड़ी दोनों उतार कर जाना चाहिये । इसलिए स्वामी जी केवल बाहर के बरामदे से उनकी मूर्तियां देखकर चले आये ।

एक दिन पंडित छीतू जी और कालिदास जी माईथान निवासी आये और संध्या के विषय में प्रश्न किया कि आप तो संध्या दो काल ही कहते हैं परन्तु संध्या तो त्रिकाल है । इसके उत्तर में स्वामी जी ने कहा कि प्रथम तो किसी विश्वसनीय ग्रन्थ में नहीं पाया जाता कि तीन काल संन्ध्या आवश्यक है, दूसरे, संध्या के अर्थ से भी प्रकट है कि दो समय होनी चाहिये । यदि आप लोग दोपहर की तीसरी संध्या कहें तो आधी रात की चौथी क्यों न हो ? और फिर पहर-पहर और घड़ी-घड़ी के पीछे क्यों न हो ? इस प्रकार कोई समय खाली न रहा, सब समय संध्या ही किया करें । इसलिए (सन्ध्योपासना) दो समय की ही ठीक है, अधिक की ठीक नहीं । यही ऋषि-मुनियों का सिद्धान्त है । इस पर वे कुछ उत्तर न दे सके ।

उन्हीं दिनों मुंशी इन्द्रमणि यहां आये और मार्ग में वृन्दावन में सेठ नारायणदास के मकान पर ठहरे और उनके समर्थक तथा उन जैसे विचार वाले बनकर यहां आये । यद्यपि स्वामी जी के सामने उन्होंने कोई भाषण नहीं दिया परन्तु उन की इन बातों से मुझे ऐसा जान पड़ा कि सेठ साहब ने उन्हें लालच देकर मिला लिया है । वे निरे 'मुंशी' ही थे, धर्म की उन्हें पर्याप्त पहचान नहीं थी ।"

"एक दिन मुंशी इन्द्रमणि ने जीव के मुक्ति से लौटने के विषय में प्रश्न किया । स्वामी जी ने कहा कि यह असम्भव है कि सदा के लिए मोक्ष हो जाये और यह भी असम्भव है कि जीव परमेश्वर में मिल जाये । पृथक्-पृथक् गुणों के कारण वे एक-दूसरे से सम्मिलित नहीं हो सकते । मुंशी इन्द्रमणि नवीन वेदान्त के ढंग पर उत्तर देते थे ।"

राधास्वामी मत वालों से प्रश्नोत्तर—"एक दिन राधास्वामी[१०८] मत के ५-७ पंजाबी साधु आये जिनमें स्त्रियां और पुरुष दोनों सम्मिलित थे और प्रश्न किया कि कोई गुरु के उपदेश और सहायता के बिना संसार-सागर को पार नहीं कर सकता । स्वामी जी ने उत्तर दिया कि गुरु की शिक्षा तो आवश्यक है परन्तु जब तक कोई चेला अपना आचार ठीक न करे, कुछ नहीं हो सकता । उन्होंने प्रश्न किया कि ईश्वर के दर्शन कैसे हो सकते हैं ? स्वमा जी ने कहा कि जैसे तुम मूर्खता से ईश्वर के दर्शन करना चाहते हो उस प्रकार नहीं हो सकते । उनका एक प्रश्न यह था कि ईश्वर तो भक्त के वश में है । स्वामी जी ने कहा कि भक्ति तो ईश्वर की आवश्यक है परन्तु पहले यह समझो कि भक्ति चीज क्या है ? किसी पुरुषार्थ के किये बिना कोई वस्तु स्वयमेव प्राप्त नहीं हो सकती और जिस प्रकार तुम भक्ति करना चाहते हो उस ढंग से तो लोगों को बिगाड़ने के लिए बहुत पंथ चल निकले हैं । इनसे लोक या परलोक का कोई लाभ नहीं हो सकता । मूर्तिपूजा पर भी बात चली और उन्होंने कहा कि हम और हिन्दुओं से अच्छे हैं । स्वामी जी ने कहा, नहीं, वे (हिन्दू) रामचन्द्र और कृष्ण आदि उत्तम पुरुषों को देवता और अवतार मानते हैं, तुम गुरु को परमेश्वर से बढ़कर मानते हो । इसलिए तुम उनसे किसी प्रकार अच्छे नहीं; प्रत्युत बुरे हो । उन्होंने कहा कि वेद के पढ़ने में बहुत समय नष्ट होता है परन्तु उससे कुछ भक्ति प्राप्त नहीं होती । स्वामी जी ने कहा कि जो पुरुषार्थ कुछ नहीं करता और भिक्षा मांग कर पेट पालना चाहता है, उसे वेद का पढ़ना बहुत कठिन है । ये लोग कुछ भी विद्वान् नहीं थे ।"

वकील महोदय की दृढ़ता—'स्वामी जी ने किसी से झूठा समाचार सुना चूंकि वे प्रत्येक मत का खण्डन करते हैं इसलिए मैजिस्ट्रेट ने उनको मेरे मकान से निकल जाने की आज्ञा दी है । स्वामी जी ने मुझसे कहा कि यदि आपको कुछ भय हो तो हम किसी और स्थान पर प्रबन्ध कर सकते हैं । मैंने कहा कि प्रथम तो मैं किसी का दास नहीं हूं, दूसरे आप कोई बात कानून के विरुद्ध नहीं कहते और न सरकार के विरोधी हैं, इसलिए मुझे कोई भय नहीं । वास्तव में यह झूठा समाचार था जो सर्वथा निर्मूल निकला । सम्भवतः यह बात सेठों या पादरियों की ओर से उड़ाई गई थी क्योंकि सेठ नारायणदास[१०९]

गुमाश्ता, सेठ लक्ष्मणदास (जो हमारे मुवक्किल हैं) एक दिन हमारे पास आये और कहा कि आपने स्वामी जी को अपने यहां ठहराया हुआ है और ये हमारे मत की निन्दा करते हैं, आप इनको मकान से निकाल दें क्योंकि आप हमारे वकील हैं। मैंने कहा कि यदि किसी भलेमानस के मकान पर कोई छोटा मनुष्य भी आये तो उसे नहीं रोकता, फिर वे तो एक महान् व्यक्ति हैं। मैं यह काम कदापि नहीं कर सकता। तत्पश्चात् एक भेंट में नारायणदास ने कहा कि मथुरा में शास्त्रार्थ हो। मैंने कहा कि वहां मध्यस्थ कौन होगा और कौन प्रबन्ध करेगा? उचित यह है कि जो शास्त्रार्थ करना चाहे वह एक लेख लिखे और उत्तर स्वामी जी लिखें और फिर स्वामी जी के लिखे हुए का उत्तर वह लिखे। फिर पंडित लोग स्वयं निर्णय कर लेंगे कि किस का कथन ठीक है और किस का अशुद्ध। इस पर वे सहमत न हुए, फिर वे कलकत्ता चले गये और वहां जाकर एक धर्मसभा के पंडितों की मंडली इकट्ठी की। पंडितों की सभा से तो कोई पत्र नहीं आया परन्तु उन दिनों कलकत्ता के समाचारपत्र में कुछ लेख छपा था।"

"यहीं 'गोकरुणानिधि' लिखी और कुछ अंग्रेजी पढ़ा करते थे। कदाचित् विलायत जाने का विचार था कि वहां जाकर सत्योपदेश करें।"

उनके व्याख्यान का सारांश बाल्यावस्था के विवाह को रोकना, ब्रह्मचर्य का प्रचार, जीव रक्षा करना, देशी शिल्प और कला की उन्नति और सत्यधर्म की ओर अधिक विचार करना था।

स्त्रियों में व्याख्यान देने के लिए प्रथम स्वीकार किया, फिर कहा कि उनके पति आकर हमारा व्याख्यान सुनें, हम स्त्रियों में व्याख्यान देना पसन्द नहीं करते।

"एक मन्दिर के स्वामी जी ने हमको उसका ट्रस्टी बनाना चाहा; हम ने इन्कार किया। स्वामी जी से जब बात हुई तो उन्होंने कहा कि आपने बुरा किया। यदि आप (ट्रस्टी) होते तो सम्भवत: इस जायदाद से बहुत कुछ धर्मकार्य होता। इतने में उन्होंने हमारे इन्कार करने पर भी हमारा नाम लिख ही दिया। स्वामी जी का कथन अब सत्य सिद्ध हुआ क्योंकि हमने उस मन्दिर की जायदाद से एक स्कूल मथुरा में चालू कर दिया है।"

उन्हीं दिनों बाबू शिवदयाल असिस्टैंट इंजीनियर स्वामी जी से मिलने आये और उन्होंने यहां गोरक्षा पर व्याख्यान दिया। स्वामी जी तख्त पर बैठकर व्याख्यान देते थे और व्याख्यान के पश्चात् तख्त से उतर कर नीचे बैठ जाते थे। यदि कोई और व्याख्यान देना चाहता तो वह तख्त पर दे सकता था। किसी बात का उन्हें अभिमान न था।

पंडित चतुर्भुज का आना"इसी बीच में पंडित चतुर्भुज शास्त्री जी भी आ गये और केवल अकेले ही नहीं आये प्रत्युत अपना सदा का ढकोसला भी साथ लाये अर्थात् आते ही गली-कूंचों में, अनपढ़ों के सामने अपनी बड़ाई बघारने लगे और स्वामी जी की अकारण निन्दा करना आरम्भ कर दिया। किसी को किसी ढंग से बहकाया, किसी को किसी लालच में फुसलाया। सारांश यह कि जहां तक बन सका जो चंगुल में आया, उसको धर्मविरुद्ध मार्ग बतलाया।"

अन्त में पंडित जी के व्याख्यान आरम्भ हुए। "३० दिसम्बर, सन् १८८० को पंडित चतुर्भुजसहाय पौराणिक ने मौहल्ला बेलनगंज में, और ३ जनवरी, सन् १८८१ को पाठशाला विक्टोरिया कालिज में व्याख्यान दिया।" ('नसीम', आगरा, ७ जनवरी, सन् १८८१) "और १५ जनवरी को उसके व्याख्यान समाप्त हो गये।" ('नसीम', आगरा, १५ जनवरी, सन् १८८१)।

"पंडित जी व्याख्यान आरम्भ करने से पूर्व उच्च स्वर से कह दिया करते थे कि यदि आर्यसमाज का कोई सदस्य यहां बैठा हो तो उसको चाहिये कि वह उठ जाये क्योंकि हम उसको न अपना व्याख्यान सुनाना चाहते हैं और न अपना मुख दिखाना और न उसका मुख देखना चाहते हैं।"

मुंशी गिरधारीलाल साहब वकील ने वर्णन किया कि—"वह इस अभिप्राय से आया था मैं स्वामी जी से शास्त्रार्थ करूंगा परन्तु वह सामने तो कभी न आया। पं० चतुर्भुज ने विक्टोरिया कालिज में कथा बांचने के ढंग से व्याख्यान दिये। अधिकतर उसका बल इस बात पर था कि स्वामी जी ने ब्राह्मणों, पुराणों और मूर्तियों की बहुत हानि की। वल्लभ मत के गुसांइयों को बहकाता था कि यदि तुम इस प्रकार प्रमाद करते रहोगे तो तुम्हारी आजीविका जाती रहेगी। तुमको चाहिये कि उस पर नालिश करो। एक दिन मैं उसके व्याख्यान में गया, वह इस के अतिरिक्त कुछ न कहता था कि जो ब्राह्मणों की बुराई करता है, पुराणों और अवतारों को नहीं मानता, वह साधु नहीं हो सकता। जो इस प्रकार बस्ती और नगरों में रहे वह संन्यासी नहीं हो सकता। ब्राह्मणों का बहकाता था कि तुम गुसांइयों से मिलकर उसपर नालिश करो, वह तुम्हारी बहुत हानि कर रहा है और यह भी कहता था कि मैं इतना यत्न करके बनारस से आया हूं, मुझे भेंट दो और सहायता करो। वह एक साधारण विद्वान् था। वह समस्त पौराणिक बातों को उदाहरण के रूप में उपस्थित किया करता था। स्वामी जी उसे एक साधारण संस्कृत जानने वाला और सत्यनारायण की कथा बांचने वाला मानते थे और कहते थे कि वह अपनी आजीविका के लिए यत्न कर रहा है।"

पंडित जुगल जी सनाढ्य ने वर्णय किया "हम एक दिन पंडित चतुर्भुज की के व्याख्यान मे गये। उस समय गायत्री का विषय था। उन्होंने 'अष्टवर्षं ब्राह्मणम् उपनयेत्' यह गृह्यसूत्र पढ़ा परन्तु इस का अन्तिम भाग जिसमें यह लिखा है "अथ सर्वेषां गायत्री" नहीं पढ़ा। तब हमने कहा कि आप इस अन्त के टुकड़े को क्यों नहीं पढ़ते ? इस पर मोहनलाल पंडित ने कहा कि महाराज ! यह बेलनगंज में सबको गायत्री मंत्र देते हैं। हम ने कहा कि शास्त्रानुकूल देते हैं; यदि विरुद्ध हो तो बतलावें। लोगों ने कहा कि तुम चतुर्भुज जी का सामना करते हो ? हमने कहा कि आपको चतुर्भुज दीखते होंगे; हम को तो दो भुजाओं में से भी केवल एक वही भुजा दीखती है जिसको वे उछाल रहे हैं। तब चतुर्भुज जी ने कहा कि मैं दयानन्दी से बात नहीं करता। मैंने कहा कि मैं दयानन्दी नहीं हूं, सत्यावलम्बी हूं। चतुर्भुज बोले कि शास्त्रार्थ करना हो तो घर पर आओ। इस पर हम और हमारे मित्र रामेश्वर उनके मकान पर गये। तब बहाना किया कि मेरा माथा धमकता है, आप कृपा करके घर जायें और चलते समय उन्होंने आधा सेर पेड़े और एक-एक रुपया हमारी भेंट किया। हम अपने घर चले आये और फिर उनके व्याख्यान में नहीं गये।"

चतुर्भुज जी ने दो स्वांग रचे। एक तो कुंजबिहारीलाल कायस्थ से, जिसने कभी स्वामी जी का व्याख्यान सुनकर कंठी तोड़ डाली थी, प्रायश्चित कराकर उसी नगर में बाजे बजवा कर फिराया कि मैंने प्रायश्चित कर लिया है।

दूसरा यह कि रिवाड़ी निवासी हरदयाल ब्राह्मण, जो साधारण संस्कृत जानता और दीन दशा में फिरा करता, उन दिनों बाबू भगवतप्रसाद सदस्य आर्य समाज आगरा के पास नागरी पढ़ाने पर छः, सात रुपया मासिक पर नौकर था। चतुर्भुज ने उसे जाल में फंसा कर और झांसा देकर इस बात पर उद्यत किया कि वह एक विज्ञापन इस विषय का जारी करे कि मैं आगरा आर्यसमाज का पंडित हूं और आर्यसमाज के अमुक-अमुक सदस्यों को पढ़ाता हूं। अब तक मैं उनको और आर्यसमाजों को बहुत अच्छा और सच्चा जानता तथा स्वामी जी के कथन को श्रेष्ठ मानता था परन्तु अब शास्त्री जी के मिलने से मुझ को ज्ञात हुआ कि मैं अब तक धोखे में था और अधर्म करता था इसलिए आज मैं प्रायश्चित करके आर्य लोगों से अलग होता हूं और सब आर्य लोगों से प्रार्थना करता हूं कि तनिक होश मे आयें, आर्य समाज के जाल से अपने आप को बचायें आदि-आदि। सत्य है कि दुष्टों से भलाई करना ऐसा है कि जैसा सज्जनों से दुष्टता करना। खेद है कि लालच; करने योग्य और न करने योग्य सब काम करा देता है। सारांश यह है कि उनके इस कार्य से पोप लोगों के छल और पाखण्ड का भेद और भी अच्छी प्रकार लोगों पर खुल गया क्योंकि सब बुद्धिमान् जानते थे कि हरदयाल न तो

आर्यसमाज का सदस्य और न आर्यसमाज का उपदेशक था । झूठ मनुष्य को लज्जित करता है । इसी लज्जा के कारण उसे शीघ्र आगरा छोड़ना पड़ा ।

एक दिन स्वामी जी चन्द्रग्रहण के समय, चन्द्रग्रहण की वास्तविकता पर व्याख्यान दे रहे थे । जिला मथुरा के ग्राम अछनेरा का रहने वाला रघुनाथ नामक सारस्वत ब्राह्मण वहां आ गया । यह व्याख्यान पीपलमण्डी में हो रहा था। उसने जाते ही रौला डाला कि लोगो ! ग्रहण पड़ रहा है, तुम लोग इस नास्तिक की बात सुन रहे हो, यह बड़ा पाप है । परन्तु किसी ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया । १५ जनवरी, सन् १८८१ के पश्चात् पंडित जी शीघ्र ही लज्जित होकर मथुरा के सेठ जी के पास चले गये ।

पंडित चतुर्भुज और स्वामी दयानन्द

परिचय—यह पण्डित चतुर्भुज वर्ष में एक बार यहां माघ मेले के दिनों में आते हैं और दयानन्द के विरुद्ध अपने मन की जो कुछ चाहते हैं, बक-झक जाते हैं । उसका कुछ प्रभाव हो या न हो, कोई समझदार उनकी बात पर कान दे या न दे, पर ये व्यर्थ की टांय-टांय करने से नहीं चूकते । प्रतीत होता है कि अवश्य ही इसमें चतुर्भुज का कोई गुप्त प्रयोजन है।

"यह तो प्रसिद्ध बात है कि चतुर्भुज में दयानन्द की-सी विद्या नहीं है । तब ये अपने को किस प्रकार संसार में उजागर कर रोटी कमा खायें ? कुछ न सही, यही एक युक्ति सूझ गई । पुराने ढंग के छोटे-मोटे रजवाड़ों में प्रवेश पाने की यह बहुत अच्छी चाल है । यह अपने को राज-पौराणिक कहकर प्रसिद्ध करते हैं । फिर पूछना चाहिये कि यह पंडितराज की उपाधि आपको किसने दी है ! बृहस्पति भी यदि अपनी प्रशंसा स्वयं करे तो पतन या अपमान को प्राप्त होता है । दूसरे यह कि जहां कहीं पहुंचे, दस-बीस धूर्त ब्राह्मणों को मिला, सौ-पचास मनुष्यों को कहीं इकट्ठा कर हू-हा करा चम्पत हुए । इन दिनों के अनपढ़ मूर्ख ब्राह्मणों ने अब हिन्दू मत को स्थिर रखने की यही युक्ति सोच समझ ली है कि जिसमें न विद्या का कोई काम, न विवेक और योग्यता चाहिए । बस इसी प्रकार असभ्यता के आधार पर गोलमाल करा प्रजा की आंख में धूल झोंकते जायें और हिन्दूधर्म की वास्तविकता को इसी प्रकार छिपाते हुए मनमाने ढंग से मूर्ख, हीन-दीन, प्रजा का शिकार कर मारते-खाते रहें । सो अब उन्नीसवीं शताब्दी में यह बात चलने वाली नहीं है । पढ़े-लिखे लोगों को किसी प्रकार चतुर्भुज जैसे लोगों की बेसिर पैर की बातों में श्रद्धा नहीं हो सकती । क्या बनारस या रीवां के दो-एक पुराने ढंग के राजाओं ने चतुर्भुज को अपने दरबार में आने दिया, इतने ही से यह बस राजपौराणिक हो गये । झींगुर और मछली वाला उदाहरण ! हमको दयानन्द से कुछ प्रयोजन नहीं, न हम सर्वांश में उनके मत के पोषक हैं, न हमारा किसी प्रकार का सम्बन्ध उनसे है परन्तु इतना कहेंगे कि दयानन्द एक अकेला साधु मनुष्य है जो सच्चे जी से देश की भलाई चाहता है । क्या भया जो कहीं-कहीं पर किसी बात में बहका हुआ है; फिर पूरा करते बन नहीं पड़ता । फिर भी उसके व्यक्तित्व से देश को बहुत कुछ लाभ पहुंचता है । चतुर्भुज तथा इस समय के विद्याहीन मूर्ख ब्राह्मण अपना प्रयोजन सिद्ध करने के अतिरिक्त देश और जाति को कौन-सा लाभ पहुंचाते हैं जिससे सोच समझ कर अपनी पक्षपात-शून्य सम्मति का प्रकाश न करें । (**'हिन्दी प्रदीप'**) फरवरी, सन् १८८३, खंड ५, संख्या ६, पृष्ठ २०, २१)

ऐसे लोगों से क्या होता है ?—नाम के पण्डितों की कार्यवाहियों का नमूना भी देख लीजिए । माघ के मेले में यहां प्रयाग में शास्त्री चतुर्भुज शर्मा आये और अपनी कार्यवाही की चिन्ता में पड़े । ता० २५ फरवरी को विज्ञापन दिया कि वे सत्य सनातन धर्म वेद तथा शास्त्र पुराणोक्त उपदेश करेंगे और नीचे यह भी लिख दिया था कि 'श्री दयानन्द सरस्वती जी ने वैष्णव मत का खण्डन किया है और जो उसमें दोष लगाये हैं, उन का खंडन करेंगे ।' इस विज्ञापन को देखकर कितने सज्जनों ने तो यही कहा कि ये वही शास्त्री हैं जो पहले भी बाजीगर (मदारी) की सी लीला करते थे, इनको खंडन-मंडन कुछ

नहीं आता ये तो केवल हू-हा और तौबा (पापों का छोड़ना) जानते हैं; सो करेंगे । बहुत से लोग तमाशा देखने ही के प्रयोजन से और कितने ही ऐसे थे जिन्होंने पहले उनकी नकलें न सुनीं थीं, उपदेश सुनने के प्रयोजन से भी गये । शास्त्री जी ने पहले से ही अपने चारों ओर पुस्तकें फैला कर विस्तार सा कर लिया था कि जिससे कि वे बड़े भारी चारों वेद के वक्ता जाने जायें । लोग आने लगे; तब लगे हांकने परन्तु उपदेश क्या और सत्य धर्म किसका ? जो जी में आया सो कहने लगे । पुस्तकों में से एक को हटाया एक को धरा, एक को आप पढ़ते हैं एक को दूसरे से पढ़वाते हैं; बीच में पुस्तकों को पटकते भी जाते हैं । सारांश यह कि पुस्तकों की दुर्दशा करने और एक पुस्तक के दो-ढाई पृष्ठ सुनाने के अतिरिक्त और कुछ न हुआ । हां, इतना तो अवश्य हुआ कि स्वामी दयानन्द जी सरस्वती और आर्यसमाजियों को बुरे शब्द पेट भर कर कहे । अपने व्याख्यान को सर्वांग सुन्दर करने और भाषा का लालित्य दिखलाने को बीच में ऐसे-ऐसे अवाच्य अपशब्द भी कहे कि आर्यसमाजियों को चाहिये कि अपने घर की विधवाओं को ग्यारह-ग्यारह पति करावें; जो मैं आर्यसमाज में होता तो अपनी विधवाओं, बेटियों को ग्यारह-ग्यारह पति अवश्य करवाता । ऐसा अश्लील बोलने में उन्होंने कुछ कमी नहीं की । प्रत्युत तीन घंटे से अधिक समय लिया । इसमें सब लोगों के प्रसन्न करने के लिए एक नियम भी रखा कि पुस्तक के ढाई पन्ने सुनाये, उनको पन्द्रह-पन्द्रह बार लौट-लौट कर पढ़ा । कोई नया श्रोता आता तो फिर उन पत्रों को आरम्भ से सुनाना प्रारम्भ करते । ज्यों-ज्यों नये श्रोता आते गये त्यों-त्यों उन्हीं पृष्ठों को बार-बार सुनाते रहे, पीसे हुए को पीसते रहे ।

"कहिये सम्पादक जी ! आपने या आपके पाठकों ने भी कभी ऐसा भाषण सुना है ? हां, जो कभी ऐसे महात्माओं का संयोग हुआ हो तो सम्भव है । ऐसे अनोखे व्याख्यानदाता कहीं और किसी को ही कभी-कभी मिलते हैं । मैंने कई बड़े नगरों में बड़े-बड़े विद्वानों के व्याख्यान विभिन्न भाषाओं में सुने हैं । परन्तु यह ठठ्ठा, यह थियेटर, यह हाय-हाय, यह तौबा-तौबा, यह असभ्यता, यह दुर्वाद, यह भद्दापन, यह प्रत्येक बात का बार-बार कहना, कहीं नहीं देखा । मैं नहीं चाहता कि ऐसे सभ्यताविरुद्ध व्याख्यान के खंडन में ध्यान दूं । ऐसी मूर्खतापूर्ण बातों के खंडन में कौन बुद्धिमान् प्रवृत्त हो सकता है । ऐसी असभ्यता के कारण वे दो चार आर्यसमाजी जो वहां उसके व्याख्यान में उपस्थित थे, उसकी चेष्टा से घृणा करने लगे और उनकी दृष्टि में वह गिर गया । मेरा प्रयोजन यहां इससे केवल शास्त्री जी की योग्यता को प्रकट करना है कि देखिये ऐसे लोग भी शास्त्री कहलाते फिरते हैं ।

पाठकगण ! कुछ और भी सुनिये । जैसे को तैसा मिला; ब्राह्मण को नाई । इस कहावत का तात्पर्य भी यहीं खुला है । शास्त्री जी कह चुके तब रामनारायण और बिहारीलाल नाम के दो ब्राह्मण उठकर बोले कि हमने स्वामी जी के वैदिक यन्त्रालय में थोड़े दिन काम किया था; इस से पापी हो गये थे । अब शास्त्री जी के उपदेश से प्रायश्चित करके शुद्ध हुए हैं ! धन्य रे बुद्धिहीनो ! धन्य रे अविद्याभण्डारो ! क्या वैदिक मत के मानने वालों के कार्यालय में काम करने से तुम लोग पापी हो गये । हम यहां कुछ नहीं कहते, केवल इतना ही कहते हैं कि पत्थर पड़ें इन बुद्धियों पर ! हम प्रायश्चितकर्ता रामनारायण से कहते हैं कि आर्यलोग तो साधारण हिन्दुओं को अपने से पृथक् नहीं समझते परन्तु तुम समझते हो । इसलिए इस पर विचार करो कि अन्य देश तथा अन्य मत वाले हिन्दू मत के विरोधी पादरी लोगों के यहां जो पंडित पुस्तक और प्रूफ शोधते और पढ़ा कर तथा रुपया कमा कर अपने घर वालों और सम्बन्धियों का पालन करते हैं, उनका तुमने क्या किया ? वे बड़े संस्कृत के विद्वान् हैं, क्या तुम उनसे भी प्रायश्चित कराओगे ? क्या तुम उनके प्रायश्चित न करने से अपना मेल-मिलाप उनसे छोड़ दोगे ? क्या समस्त आर्यावर्त को जो अंग्रेजी शासन के भीतर है, प्रायश्चित कराओगे ? हम कहते हैं कुछ होना हवाना नहीं, यह तुम्हारी छोटी बुद्धियों का नमूना है ।'

इन लोगों के पीछे इनकी बात का खंडन करने में एक महाशय कुछ बोले थे परन्तु पीछे प्रयाग सम्पादक पंडित देवकीनंदन ने संक्षेप से शास्त्री जी और प्रायश्चितकर्ताओं की निकम्मी बुद्धियों का वृत्तान्त कह दिया कि जो कुछ उस सभा में उन लोगों ने किया, वह प्रपंच और आडम्बर ही था । शास्त्री जी इस काम की आजीविका महाराज काशी के यहां से पाते हैं, इसलिए उनको इस बुढ़ापे में ऐसा खेल करना पड़ता है । विद्याधर्म प्रचारिणी सभा, प्रयाग के उपर्युक्त उपदेशक दोनों प्रायश्चितकर्त्ता ही हैं । कहिये, जिनकी ऐसी बुद्धियां हैं वे क्या धूल विद्या और धर्म का प्रचार करेंगे । ये भलेमानस सभा के और लोगों को क्यों बदनाम करते हैं ? सभा को इस विषय में सावधान होना चाहिये ।

पाठकगण ! आप लोगों ने शास्त्री जी और उन के प्रपंची प्रायश्चितकर्त्ताओं की करतूत जान ली । क्या इन लोगों से कुछ भी देश और धर्म की उन्नति होगी ? (प्रयाग से एक द्रष्टा) ('भारतमित्र', कलकत्ता ८ मार्च, सन् १८८३, खंड ६, संख्या १०)

आगरा से भरतपुर को प्रस्थान—"१० मार्च, सन् १८८१ को श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी १० बजे दिन के समय रेल द्वारा भरतपुर की ओर चले गये । उस समय आर्यसमाज आगरा की ओर से एक मानपत्र सुनहरी कागज पर उन को भेंट किया गया; जिस को स्वामी जी ने अत्यन्त प्रसन्नता से ले लिया और बहुत से लोग उनको रेल तक पहुंचाने गये ।" ('नसीम', आगरा, १५ मार्च, सन् १८८१, पृष्ठ ७९, खंड ४, संख्या १० व 'भारती विलास' खंड १, संख्या ८, पृष्ठ ६२)।

अजमेर (५ मई, सन् १८८१ से २२ जून,[११०] सन् १८८१ तक)

स्वामी जी अभी आगरा में थे कि 'भारती विलास' आगरा में यह समाचार प्रकाशित हुआ—'श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज का इस ओर आगमन सुनकर सज्जन लोगों को अति प्रसन्नता हो रही है परन्तु ईसाई और मुसलमानों के पेट में पानी उछलता है । इस कारण ये लोग उक्त महाराज जी से शास्त्रार्थ करने के लिये प्रबन्ध कर रहे हैं ।' (संवाददाता, अजमेर) (२५ फरवरी, सन् १८८१, खंड १, संख्या ६)

फिर लिखा है—"अजमेर नगर में भी सज्जन आर्यपुरुषों ने एक आर्यसमाज १३ फरवरी, सन् १८८१ को स्थापित किया है । प्रत्येक आदित्यवार को गायन सहित ईश्वर-प्रार्थना की जाती है, तत्पश्चात् एक या दो सभासद् देशोन्नति या आर्यधर्म के विषय पर व्याख्यान देते हैं । आशा है कि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के आने से यह समाज शीघ्र उन्नति करेगा ।" ('भारती विलास', १५ अप्रैल, सन् १८८१, पृष्ठ ८६)

सारांश यह है कि स्वामी जी महाराज आर्य पुरुषों के निमन्त्रणानुसार जयपुर से रेल द्वारा ५ मई, सन् १८८१ के ११ बजे रात को अजमेर स्टेशन पर पधारे । सज्जन आर्य पुरुष पहले ही स्टेशन पर उपस्थित थे । स्वामी जी को बग्घी में बिठाकर सेठ फतहमल जी के बगीचे की कोठी में ठहराया । यह कोठी नगर के बाहर अत्यन्त खुले और चित्ताकर्षक स्थान में स्थित है, शहर से बहुत दूर भी नहीं है ।

प्रातःकाल ही स्वामी जी के पधारने के समाचार दूर-दूर और घर-घर फैल गये । ७ मई, सन् १८८१ को आर्यपुरुषों की ओर से निम्नलिखित विज्ञापन प्रकाशित किया गया—

'विज्ञापनपत्र'—सब महाशय सज्जनों को विदित हो कि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज संवत् १९३८, मिति वैशाख सुदि ७, गुरुवार के दिन अजमेर में आकर आगरा दरवाजे के बाहर तार और डाकघर के पास श्री सेठ फतहमल जी की वाटिका की कोठी में ठहरे हैं । उक्त स्वामी जी का सनातन वेदोक्त धर्म पर मिति वैशाख सुदि १०, रविवार, संवत्

१९३८ को सायंकाल ७ बजे से लेकर नौ बजे तक सेठ गजमल के स्थान पर व्याख्यान होगा। इसलिए सब आप्त सभ्य सज्जन पुरुषों को विदित किया जाता है कि नियत समय पर उक्त स्थान में पधार सभा को सुशोभित करें।"

ला० शिवप्रसाद कायस्थ, वर्तमान मन्त्री वैदिक यन्त्रालय, अजमेर अपनी डायरी में लिखते हैं—"८ मई, सन् १८८१, तीसरे पहर सेठ फतहमल की कोठी पर गया, जो तारघर के समीप है क्योंकि वहां स्वामी दयानन्द जी ठहरे हुए थे। उनके दर्शन किये। विदित हुआ कि आज उन का व्याख्यान सेठ गजमल की हवेली में सात बजे से नौ बजे तक होगा। शाम हो गई थी, वहां गया। आधा घंटा ठहरा, फिर अधिक न ठहरा गया।"

"१६ मई, सन् १८८१ को गंज में नये दरवाजे के बाहर आग लगी और २२ मई, सन् १८८१ को मदार दरवाजे के बाहर पुराने स्कूल में गये। स्वामी जी ने अपने व्याख्यानों के श्रोताओं से चन्दा करके उन विपत्तिग्रस्तों की सहायता की।"

आर्यपथिक पं० लेखराम द्वारा स्वामी जी का साक्षात्कार तथा प्रश्नोत्तर—"११ मई, सन् १८८१ को संवाददाता[1] पेशावर से स्वामी जी के दर्शनों के निमित्त चलकर १६ की रात को अजमेर पहुंचा, स्टेशन के समीप वाली सराय में डेरा किया और १७ मई को प्रातःकाल सेठ जी के बगीचे में जाकर स्वामी जी का दर्शन प्राप्त किया। उनके दर्शन से मार्ग के समस्त कष्टों को भूल गया और उनके सत्योपदेशों से समस्त गुत्थियां सुलझ गई। जयपुर में एक बंगाली सज्जन ने मुझसे प्रश्न किया था कि आकाश भी व्यापक है और ब्रह्म भी; दो व्यापक किस प्रकार इकट्ठे रह सकते हैं? मुझसे इसका कुछ उत्तर न बन पाया। मैंने यही प्रश्न स्वामी जी से पूछा। उन्होंने एक पत्थर उठाकर कहा कि इसमें अग्नि व्यापक है वा नहीं? मैंने कहा कि व्यापक है। फिर पूछा कि मिट्टी? मैंने कहा कि व्यापक है। फिर पूछा कि जल? मैंने कहा कि व्यापक है। फिर पूछा कि आकाश और वायु? मैंने कहा कि व्यापक है। फिर पूछा कि परमात्मा? मैंने कहा कि वह भी व्यापक है। कहा कि देखा! कितनी चीजें, परन्तु सभी इसमें व्यापक हैं। वास्तव में बात यह है कि जो जिससे सूक्ष्म होती है वह उसमें व्यापक हो सकती है। ब्रह्म चूंकि सबसे अति सूक्ष्म है इसलिए वह सर्वव्यापक है। जिससे मेरी शान्ति हो गई।

मुझसे उन्होंने कहा कि और जो तुम्हारे मन में सन्देह हों सब निवारण कर लो। मैंने बहुत सोच-विचार कर १० प्रश्न लिखे जिनमें से आठ मुझे स्मरण हैं, शेष भूल गये।

प्रश्न—जीव ब्रह्म की भिन्नता में कोई वेद का प्रमाण बतलाइये?

उत्तर—यजुर्वेद का ४० वां अध्याय सारा जीव ब्रह्म का भेद बतलाता है।

प्रश्न—अन्य मत के मनुष्यों को शुद्ध करना चाहिये या नहीं?

उत्तर—अवश्य शुद्ध करना चाहिये।

प्रश्न—विद्युत क्या वस्तु है और किस प्रकार उत्पन्न होती है?

उत्तर—विद्युत सर्वत्र है और रगड़ से उत्पन्न होती है। बादलों की विद्युत बादलों और वायु की रगड़ से उत्पन्न होती है।"

"मुझसे कहा कि २५ वर्ष से पूर्व विवाह न करना।" कई ईसाई और जैनी प्रश्न करने आते थे; परन्तु शीघ्र निरुत्तर हो जाते थे।

---

1. आर्यपथिक पं. लेखराम

"एक हिन्दू नवयुवक जिसके विचार पूर्णतया ईसाई मत की ओर झुके हुए थे, प्रतिदिन प्रश्न करने आता और शान्त होकर जाता था। अन्त में वह पूरी शान्ति पाने के पश्चात् ईसाई मत से विरक्त होकर वैदिक धर्मानुयायी हो गया।"

चिह्न-स्वरूप अष्टाध्यायी की प्रति प्रदान की—"व्याख्यानों में सैकड़ों मनुष्य आते और लाभ उठाते थे। २४ मई, सन् १८८१ को दोपहर के समय महाराज जी से विदा होने पर मैंने निवेदन किया कि आप मुझे अपना कोई चिह्न प्रदान करें। एक पुस्तक अष्टाध्यायी की प्रदान की जो अभी तक पेशावर समाज में विद्यमान है। तत्पश्चात् उनके चरणों को हाथ लगाकर नमस्ते करके दास वहां से विदा होकर चला आया।"

ता० ८ मई, सन् १८८१, रविवार से सेठ गजमल जी के स्थान पर महाराज जी के व्याख्यान आरम्भ हुए और ३० मई, सन् १८८१ तक अर्थात् २२ व्याख्यान वेदादि विषयों पर निरन्तर निर्विघ्नतापूर्वक होते रहे। सैकड़ों पुरुष प्रतिदिन उपदेश सुनने को आते थे और अपने-अपने धार्मिक गुणों से परिचित होकर लाभ उठाते और प्रसन्नता प्रकट करते थे। शेष रही व्याख्यानों की व्यवस्था, सो वह तो कहने में नहीं आ सकती। हमारे व्याख्यानों के प्रबन्धकर्ता रायबहादुर पंडित भागराम जी जज अजमेर थे। उन की कृपा और सहायता से वह आनन्द आता था कि वर्णन नहीं हो सकता।

"प्रबन्ध के अतिरिक्त स्वयं राय साहब व्याख्यान के आरम्भ से अन्त तक बराबर सभा में उपस्थित रहते थे और श्रोताओं की यह दशा थी कि ऐसे आनन्द में मग्न हो जाते थे कि उनको सात बजे से नौ बजे तक कुछ भी समय का व्यतीत होना जान नहीं पड़ता था। यही इच्छा रहती थी कि कुछ और भी श्रवण करते रहें। यही व्यवस्था प्रत्येक व्याख्यान में रहती थी और सभा की समाप्ति पर सब लोग धन्यवाद देते हुए अपने घरों को जाते थे परन्तु कोई-कोई अविद्याग्रस्त पोपमतानुयायी पीछे से निन्दा भी करते थे। व्याख्यानों की समाप्ति के पश्चात् अर्थात् ५ जून, सन् १८८१ को एक हमारे आर्य भाई बाबू हीरालाल नसीराबाद निवासी ने श्री महाराज जी से यज्ञोपवीत लिया और आठ बजे से हवन आरम्भ होकर १२ बजे समाप्त हुआ। तत्पश्चात् सब आर्य भाइयों को भोजन भी सत्कारपूर्वक कराया गया।"

इसके पश्चात् स्वामी जी के चार व्याख्यान प्रत्येक आदित्यवार को समाज मन्दिर में होते रहे। २२ ता० तक आर्य सज्जन पुरुष अपनी-अपनी शंकानिवारणार्थ आते जाते रहे। परन्तु कोई किरानी, कुरानी, पुराणी, जैनी इत्यादि शास्त्रार्थ करने को नहीं आये। हां, हिन्दू भाइयों ने पंडित चतुर्भुज को स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने को बुलाने का विचार किया और स्वयं पंडित जी ने दो पत्र भी काशी से अजमेर में एक सेठ के गुमाश्ते के पास भेजे कि मुझको अजमेर बुलाओ, स्वामी जी से शास्त्रार्थ करके उनको परास्त करूंगा। जिस पर कई पौराणिक पंडित लोग भागराम जी के पास आये और बड़े अभिमान से अपना अभिप्राय प्रकट किया कि उक्त शास्त्री अर्थात् पंडित चतुर्भुज शर्मा राजपौराणिक जी को स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने को बुलाते हैं, आप स्वामी जी को सूचित कर दीजिये। तब पंडित भागराम जी ने समाज के मन्त्री पंडित सुखदेवप्रसाद जी को बुलाकर उक्त शास्त्री की चिट्ठी-पत्री दिखलाई और कहा कि यह स्वामी जी को दिखला कर अभिप्राय विदित करो।"

"सब को विदित है कि स्वामी जी सत्य के आधार पर सिंहवत् आर्यावर्त में सर्वत्र गर्जन कर रहे हैं फिर भला इन की गीदड़-भभकी में कब आने वाले थे (और जब कि वे उक्त शास्त्री को भली भांति जानते थे)। तुरन्त ही स्वामी जी ने कहा कि हम तो सत्यासत्य का निर्णय करने को ही फिरते हैं। पंडित भागराम जी से कह दो कि जो पंडित चतुर्भुज यहां आवें तो हम भी उनके साथ शास्त्रार्थ करने को तैयार हैं। परन्तु प्रबन्ध और नियमों के साथ शास्त्रार्थ होना चाहिये। भागराम जी से मंत्री द्वारा सब वृत्तान्त कहा गया तब उन्होंने पौराणिक पंडितों को बुलाकर कह दिया कि तुम निस्सन्देह अपने शास्त्री जी को बुलाओ परन्तु निम्नलिखित नियम प्रबन्ध के लिए रहेंगे—

१—सभा का स्थान हमारी सम्मति के अनुसार होगा।

२—इस सभा में हम प्रधान की रीति पर सम्पूर्ण अधिकार रखेंगे जिससे दोनों पक्ष वालों के न्याय-अन्याय पर ध्यान रहे।

३—शास्त्रार्थ लिखित होगा।

४—शास्त्री जी को स्वामी जी के सम्मुख बैठकर उत्तर-प्रश्न करने होंगे।

५—यदि कोई पुरुष मूर्खता वा किसी प्रकार से असभ्य भाषण करेगा, तत्काल सभा से निकाल दिया जायेगा।

जब ये नियम पंडित लोगों ने सुने तब उनका उत्साह और साहस सब भंग हो गया क्योंकि उनका वास्तव में सत्यासत्य का निर्णय करने का अभिप्राय नहीं था किन्तु दूर-दूर ही एक गप्पाष्टक द्वारा आपको वैसी ही लीला करनी थी जैसी आगरा आदि में कर चुके हैं। अन्त को स्वामी जी की वह प्रसिद्ध कहावत 'तेरी चुप मेरी भी चुप' की लीला हुई। किसी ने सत्य कहा है 'सत्ये नास्ति भयं क्वचित्' अर्थात् सत्य को कोई भय नहीं। यह वर्णन ७ ता० का है।"

"इसके पश्चात् श्री स्वामी जी निर्भय होकर पन्द्रह दिन तक आर्य लोगों को सत्योपदेश से आनन्द मंगल देते रहे परन्तु किसी ने शास्त्रार्थ का नाम तक न लिया। अन्त में राव साहब मसूदा का निमन्त्रण आने पर २३ जून, सन् १८८१ को स्वामी जी **मसूदा** चले गये। १ जौलाई, सन् १८८१ मुन्नालाल उपमन्त्री आर्यसमाज, अजमेर।" ('भारत सुदशा प्रवर्तक', जौलाई, सन् १८८१, खंड १, संख्या २५)

'भारती विलास' आगरा में लिखा है—"स्वामी दयानन्द सरस्वती अजमेर में डेढ़ मास निवास करके और आर्यों पर सदुपदेशों की वर्षा करके २३ जून, सन् १८८१ को मसूदा की ओर, जो अजमेर से १६ कोस की दूरी पर है, यात्रा पर गये।" (खंड १, संख्या १८, पृष्ठ १४५, ५ जौलाई, सन् १८८१)

उन्हीं दिनों आर्यावर्त के शिष्ट और प्रसिद्ध समाचारपत्रों में यह टिप्पणी प्रकाशित हुई-"प्रत्येक मनुष्य का अपना-अपना एक आदर्श होता है; जैसे पंडितों का आदर्श केवल दक्षिणा है। स्वामी दयानन्द का आदर्श प्रतिमापूजन का जड़-मूल से उच्छेदन है। इण्डियन पोप लोगों का आदर्श सेवकों से उनके तन-मन-धन का अर्पण कराना है।"

('हिन्दी प्रदीप' खंड ५, संख्या २, पृष्ठ १३; आश्विन शुक्ला ८, संवत् १९३८ तदनुसार अक्तूबर, सन् १८८१ व 'नसीम' आगरा-२३ दिसम्बर, सन् १८८१, पृष्ठ ३८५; **'उचितवक्ता'** व 'आर्यदर्पण' सन् १८८१, पृष्ठ १९७)।

बम्बई नगर का वृत्तान्त (३१ दिसम्बर,[१११] सन् १८८१ से २ जून, सन् १८८२)

तदनुसार पोह सुदि ११, संवत् १९३८, शनिवार से आषाढ़ बदि प्रतिपदा, संवत् १९३९, शुक्रवार तक)।

शनिवार,[११२] ३० दिसम्बर, सन् १८८१ को स्वामी जी फिर बम्बई में पधारे। चूंकि उनके आने की सूचना पहले ही आ चुकी थी इस कारण कर्नल एच० एस० आल्काट साहब, प्रधान थियोसोफिकल सोसाइटी, आर्यसमाज के कई सम्मानित सदस्यों सहित, स्टेशन पर सवारी लेकर उपस्थित थे। गाड़ी के पहुंचते ही सब अत्यन्त उत्साह और प्रेम से, बड़ी नम्रता के साथ 'नमस्ते' कहकर मिले। स्वामी जी ने सब की कुशल क्षेम पूछ, घोड़ागाड़ी पर सवार हो, बालकेश्वर गोशाला पर पहुंचकर सब की इच्छा-अनुसार जो मकान नियत हुआ था, उसमें निवास किया। यह एक अति मनोहर और उत्तम स्थान, समुद्र के तट पर स्थित है। इस मकान के निचले भाग पर अरब का सागर टक्कर खाता है।

बम्बई नगर के वार्षिकोत्सव का वृत्तान्त

(दिनांक २० मार्च, सन् १८८२, सोमवार तदनुसार चैत सुदि प्रतिपदा, संवत् १९३९)

आर्यसमाज दानापुर (बिहार) के सदस्य बाबू रामनारायणलाल, पंडित आदित्यनारायण, जनकधारीलाल इस उत्सव के अवसर पर इस विचार से कि स्वामी जी भी वहीं हैं, बम्बई गये और स्वामी जी के पास ही ठहरे । स्वामी जी उस समय समुद्र के तट पर गोशाला के समीप एक बंगले में उतरे हुए थे । उनका कथन है कि हम लोगों को दूर से देखते ही स्वामी जी ने कहा कि देखो ! ये पटना वाले आते हैं ।

हम लोगों ने स्वामी जी को मुख से न पहचाना; क्योंकि जब स्वामी जी दानापुर आये, उस समय दुर्बल और रोगी हो रहे थे परन्तु इस समय नीरोग, स्वस्थ और मोटे-ताजे थे । उन की बोली से हम लोगों ने पहचाना और नमस्ते किया। स्वामी जी ने उत्तर के पश्चात् कहा कि उत्सव का हवन अभी होगा और सभा आरम्भ होगी, तुम लोग स्नान कर आओ।

हम लोग शीघ्र स्नान कर स्वामी जी के साथ वहां से चले और थोड़ी दूर जाकर जहां से मार्ग ठीक है, सवारी पर बैठकर नियत स्थान पर पहुंचे । हवन कराने वाले दक्षिणी ब्राह्मण थे । उनमें से एक ब्राह्मण ऐसा था कि जिसको चारों वेद स्वर-सहित कण्ठस्थ थे । वह बूढ़ा और काले रंग का था और उसके मुख में दांत भी नहीं थे ।

स्वामी जी ने हमसे कहा कि तुम लोग जो चतुर्मुख-ब्रह्मा (का नाम) सुना करते थे, वह यही है । चारों वेद इस ब्राह्मण के मुख में है; यही ब्रह्मा है । परिणामत: उस दिन के यज्ञ में वही ब्रह्मा नियत किया गया । हवन के पश्चात् हम लोग स्वामी जी के साथ चले आये ।

सामवेद का सस्वर मधुर गायन—फिर सायंकाल स्वामी जी ने धर्मविषय पर व्याख्यान दिया और व्याख्यान आरम्भ होने से पहले एक दक्षिणी ब्राह्मण ने तानपूरा हाथ में लेकर ऐसे स्वर से 'सामवेद' का मन्त्र अलापा मानो राग को साकार सा खड़ा कर दिया । लोग उस स्वर में मग्न हो गये । वहीं डाकखाने के बड़े अधिकारी एक अंग्रेज महोदय अपने बाल-बच्चों सहित आये थे; वे चकित होकर सुनते रहे । व्याख्यान समाप्ति के पश्चात हम डेरे पर चले आये ।

इस उत्सव का वृत्तान्त 'देश हितैषी' समाचारपत्र, अजमेर में इस प्रकार लिखा है—"२ मार्च,[११३] सन् १८८१ को आर्यसमाज बम्बई का वार्षिकोत्सव बड़ी धूमधाम से हुआ और स्वामी दयानन्द जी महाराज के ऐसे समय में उपस्थित रहने से उत्सव में अत्यन्त आनन्द रहा ।"(खण्ड १, संख्या १, १४ वैशाख, संवत् १९३९) ।

मोरवी निवासी पंडित शंकरलाल शास्त्री, नागर कहते हैं— दूसरी बार स्वामी जी के दर्शन हमने चैत्र मास, संवत् १९३९ में बम्बई में आर्यसमाज के उत्सव पर किये । वहां स्वामी जी ने एक व्याख्यान संस्कृत में दिया था, उसमें बताया था कि (व्यक्ति के) सुधार की जो व्यवस्था आज प्रचलित है, उससे मनु आदि द्वारा विहित सुधार (की व्यवस्था) अच्छी थी । उन्होंने बताया था कि चोर आदि को जो दण्ड मनु आदि ने विहित किया है उसके कारण चोर चोरी करने से सदा डरता था और आजकल के नियम के अनुसार तो चोरी करने में चोर को आनन्द आता है । उसको (अब तो) अपने घर की अपेक्षा अच्छा भोजन और अच्छा घर मिलता है ।"

२९ मार्च, सन् १८८२ को पंडित अमृतनारायण ने स्वामी जी से पूछा कि मन लगाकर उपासना की विधि बतलाइये ? स्वामी जी ने कहा कि यम-नियम का पालन करो । कुछ समय के पश्चात् उन्होंने फिर यही प्रश्न किया और इसी प्रकार तीन बार यही उत्तर मिला । बार-बार प्रश्न करने का उन का प्रयोजन यह था कि आप जो यम-नियम कहते हैं,

उनमें सत्य बोलने का आदेश है और वह विवादास्पद है, हमको इस से भिन्न कोई उपाय बतलाइये; क्योंकि पंडित जी पहले एक मुकद्दमें में झूठी साक्षी दे चुके थे और एक बार फिर देनी थी; अतः दी ।

आर्यसमाज दानापुर के अन्य सदस्यों को स्वामी जी ने कहा कि तुम हमसे कई प्रश्न पूछने के लिए आये हो । ये प्रश्न तुम को (एक साथ) याद न आयेंगे, एक कागज लेकर जब-जब याद आते जायें लिखते जाओ । वास्तविक बात यह है कि बाबू जनकधारीलाल केवल प्रश्न पूछने के लिए ही गये थे और जब कागज लेकर लिखने लगे तो उस समय जो प्रश्न जी में उठता था, उस का उत्तर अपने ही जी से मिल जाता था । दूसरे समय जब स्वामी जी ने कहा कि कहो, क्या पूछना है ? मुझ जनकधारीलाल को कुछ सोचने की बात शेष न रही; केवल यही पूछा कि परमेश्वर की उपासना किस रीति से करनी चाहिए ? स्वामी जी ने कहा कि हमने तुम्हें और तुम्हारे कई साथियों को एक दिन जोन्स साहब के बंगले पर इसकी विधि बतला दी थी । मैंने उत्तर दिया कि आपने जैसे बतलाया था वैसे ही मैं किया करता हूं । स्वामी जी ने कहा कि तुम नहीं करते हो, मेरे सामने करो । मैंने प्राणायाम करना आरम्भ किया । स्वामी जी ने कहा कि यह प्राणायाम न हुआ क्योंकि जब तुम भीतर का वायु बाहर फेंकते हो तो चाहिये कि गुदेन्द्रिय ऊपर को उठ जाये सो तुमसे नहीं होता, अब यूं ही करो । फिर हमने पूछा कि इस उपासना के करते समय मन इधर-उधर चला जाता है, इसका क्या उपाय करें ? स्वामी जी ने कहा कि इसको एक स्थान पर ठहरा लो । मैंने कहा कि कैसे रूप का ध्यान करके उस पर ठहरावें ? स्वामी जी ने कहा कि रूप की कुछ आवश्यकता नहीं । हमने कहा कि बिना रूप के ठहरता नहीं । कहा कि 'असंप्रज्ञात योग' में रूप की कोई आवश्यकता नहीं है । परन्तु यदि तुमसे यह नहीं हो सकता तो अपने शरीर के भीतर किसी स्थान की कल्पना कर लो और वहां एक सूई की नोक के समान या तिल समान किसी वस्तु का ध्यान करो और फिर ध्यान में ही उसके दो टुकड़े कर डालो और उस आधे टुकड़े पर ध्यान जमाओ । फिर उसके भी दो टुकड़े कर डालो और उस पर ध्यान जमाओ इसी प्रकार निरन्तर ध्यान में उसे छोटा करते चले जाओ जब तक कि वह अत्यन्त छोटी से छोटी मात्रा पर न पहुंच जाये । फिर उसे भी उड़ा दो, इतने में तुम्हारी धारणा हो जायेगी । अब समाधि का वृत्तान्त बतलाते हैं । हमने कहा कि बस इतना ही रहने दीजिये । जब इतना अभ्यास हो जायेगा तब फिर मैं आप से पत्र द्वारा पूछ लूंगा । स्वामी जी ने कहा कि मैं पत्र का उत्तर न दे सकूंगा । मैंने कहा कि जब उस ओर समीप आवेंगे तो मैं स्वयं आकर मिलूंगा स्वामी जी मौन हो गये, फिर कुछ न बोले ।

दूसरे दिन सन्ध्या के समय बम्बई का एक सेठ अपने दस-ग्यारह वर्ष के लड़के को लिए हुए, स्वामी जी के दर्शनार्थ आया । नमस्ते होने के पश्चात् स्वामी जी लड़के से बात करने लगे । लड़का बड़ा लजीला था, कई एक उपाय करके स्वामी जी ने उसे बुलाया । अन्त में उसे कुछ उपदेश देने लगे । उस लड़के से कहा कि प्रातःकाल उठकर मुंह-हाथ धो कर अपने मां-बाप से नमस्ते करो और जब पाठशाला को जाने लगो तो अपनी पुस्तक अपने हाथ में लो, न कि नौकरों के हाथों में । इसी प्रकार बहुत-सी शिक्षाओं के बीच यह भी कहा कि तुम किसी स्त्री के मुख की ओर ध्यानपूर्वक मत ताको और जब कोई आंख के सामने आये तो अपनी दृष्टि फेर लो नहीं तो उसकी आकृति तुम्हारे मन में घुस कर एक प्रकार की उत्तेजना उत्पन्न करेगी ओर उसका परिणाम यह होगा कि तुम को धातुक्षीणता का रोग हो जायेगा जिससे तुमको बहुत हानि होगी ।

एक दिन एक मनुष्य स्वामी जी के दर्शनों के लिए आया । स्वामी जी ने पूछा कि तुम कौन हो ? उत्तर दिया कि ब्राह्मण । स्वामी जी ने पूछा कि क्या काम करते हो ? कहा कि मैं पहले सरकारी नौकर था, अब पेंशन पाता हूं । स्वामी जी ने कहा कि कुछ संस्कृत भी जानते हो ? उसने कहा कि अपना साधारण क्रिया-कलाप जानता हूं । कहा कि तब तुम उपदेश क्यों नहीं करते ? उसने कहा कि क्योंकर उपदेश करूं, यहां दिन रात लड़के-बालों की चिन्ता में पड़ा रहता हूं । स्वामी जी

ने कहा कि अब तुम्हारा चिन्ता करना सर्वथा मूर्खता है, तुम्हें पेंशन मिलती है वह तुम्हारे लड़कों के पालन के लिए पर्याप्त है। बस अब तुम चूंकि ब्राह्मण देश में उत्पन्न हुए हो और तुम्हारे पूर्वज जगत्-गुरु कहलाते थे, तुम्हें उचित है कि तुम भी अब जगत् के उपकार के लिए कमर कस लो। तुम कोल-भीलों के देश[११४] **में चले जाओ और उनको ईसाई होने से रोको।** किसी प्रकार से जैसे तुम्हारा चित्त चाहे, उनको एक ईश्वर की पूजा सिखलाओ या कोई जाप बताओ परन्तु क्रिस्तान होने से बचाओ।' परन्तु उसने न माना। उन दिनों बहुत से पादरी, नगरों को छोड़कर कोलों-भीलों तथा जंगलियों को क्रिस्तान बनाने के लिए (गांवों में) गये हुए थे। उसने कुछ उत्तर न दिया। स्वामी जी ने बहुत ललकारा परन्तु वह न बोला और उस बात को न माना। हम ८-१० दिन बम्बई में रहे। हस्ताक्षर-अंग्रेजी में लेखक जनकधारीलाल।

स्वामी जी की उपस्थिति में ही सामाजिक पुरुषों के धार्मिक उत्साह के वशीभूत हो, सदस्यों ने केवल व्याख्यान सुनने के लिए तथा पुस्तकालय और शाला बनाने के लिए पांच ट्रस्टी नियत करके एक हजार गज भूमि का एक टुकड़ा मोल लिया जो गिरगांव, पुलिस कोर्ट के पीछे काकड़वाड़ी नाम से प्रसिद्ध है और इसी स्थान पर अब आर्यसमाज का भव्य मन्दिर कई हजार रुपये की लागत से बनाया गया है।

आर्यसमाज के नियमों और उपनियमों के संशोधन का वृत्तान्त

स्वामी जी जब पहली बार यहां आये थे तब नियमोपनियम बड़े विस्तारपूर्वक बनाये[११५] गये थे और अभी तक समाज उन्हीं पुराने नियमों के अनुसार चलता था। तीसरा 'समाज' लाहौर में स्थापित हुआ तो वहां पर उन नियमों को संक्षिप्त करके स्वामी जी की सम्मति से वर्तमान दस नियम बनाये गये जो तत्पश्चात् सब समाजों को छपवा कर भेजे जाते रहे।

अब इस बार स्वामी जी की उपस्थिति में ही बम्बई में नियम और उपनियमों के संशोधन के सम्बन्ध में भी विचार उत्पन्न हुआ। ८ अप्रैल, सन् १८८२ की रात को स्वामी जी की उपस्थिति में 'आर्यसमाज' की अन्तरंग सभा हुई। इसमें पुराने नियम और उपनियमों के सम्बन्ध में सभासदों की ओर से बहुत विचार हुआ और सब आर्यसमाजों का उद्देश्य एक करने के लिए सर्वसम्मति से यह निश्चय हुआ कि जो नियमोपनियम स्वामी जी की सम्मति से लाहौर आर्यसमाज ने सब स्थानों के आर्यसमाजों के लिए छपवा कर प्रसिद्ध किये हैं, उन्हें बम्बई आर्यसमाज अंगीकार करे और इस स्वीकृति के निमित्त आर्यसमाज की साधारण सभा का अधिवेशन किया जाये।

इस निर्णय के अनुसार १५ अप्रैल, सन् १९९२ की रात को बालकेश्वर में महापंडित[११६] की उपस्थिति में साधारण सभा का अधिवेश किया गया उसमें सर्वानुमति से वह प्रस्ताव पास हुआ और स्वामी जी की सम्मति से प्रत्येक स्थान के समाजों के लिए लाहौर आर्यसमाज ने जो नियमोपनियम छपवा कर प्रसिद्ध किए हैं, यथार्थ होने से उन्हें स्वीकार किया गया। परन्तु साथ ही यह भी निश्चय हुआ कि बम्बई के स्थानीय 'समाज' के लिए उनका देश काल के अनुकूल होना आवश्यक है। यह भी निश्चय हुआ कि यदि उपनियमों में फेरफार करने और न्यूनाधिक करने की कुछ आवश्यकता न हो तो वे विशेष उपनियम वर्तमान उपनियमों की पूर्ति करेंगे। इस पर विचार करने के लिए निम्नलिखित सज्जनों की उपसमिति बना दी गई—१. रावबहादुर गोपालराव हरि देशमुख। २. राजमान्य राजश्री आत्माराम बापू दलवी।[११७] ३. राजमान्य रावबहादुर इच्छाराम भगवानदास बी० ए०। ४. राजमान्य सेवकलाल कृष्णदास। ५. प्राणजीवनदास काहनदास। इस समिति ने वहां के लिए उपनियमों में थोड़ा परिवर्तन कर लिया है।

इस बार कई सम्मानित रईस इस प्रतीक्षा में रहे कि यदि स्वामी जी कहें तो हम बड़ी भारी धनराशि मन्दिर के फंड के लिए देवें परन्तु स्वामी जी ने अपने मुख से कुछ न कहा। केवल इतना ही कहा कि यह काम मेरा नहीं है, मैं केवल उपदेशक हूं। क्या देना और क्या लेना यह काम तुम्हारा और उनका है।

दक्षिण भारत से भी आमन्त्रण-सन्देश मिला था और इसी प्रकार काठियावाड़ गुजरात से भी, परन्तु अवकाश न होने के कारण स्वामी जी वहां न गये और यहां के सभासदों और सहायकों के अधिक अनुरोध पर २२ जून तक बम्बई में रहे और २३ जून,[११८] सन् १८८२ को वहां से खंडवा की ओर चले गए। समाज के समस्त सम्मानित सदस्य तथा नगर के अन्य धर्मरुचि रईस स्टेशन पर पहुंचाने आये और प्रेमपूर्वक परस्पर नमस्ते कहकर विदा हुए।

जब स्वामी जी बम्बई में ही विराजमान थे और बड़ी प्रबलता से मूर्तिपूजन आदि विषयों का खंडन कर रहे थे तो आर्यसमाज के योग्य और सम्मानित सभासद् सेठ मथुरादास लोजी भाटिया बम्बई निवासी ने यह विज्ञापन दिया—'मूर्तिपूजकों के लिए पारितोषिक, जो मनुष्य मूर्तिपूजन को शास्त्रविहित (वेदोक्त) कर्म निश्चय कर देगा उस को मैं पांच हजार रुपया पारितोषिक दूंगा।' मई मास, सन् १८८२। विज्ञापक—बम्बई निवासी मथुरादास लोजी भाटिया।

लाहौर के समाचारपत्र '**आफताबे पंजाब**' ने इस समाचार को बम्बई के अंग्रेजी समाचारपत्रों से लेकर प्रकाशित किया। इस पर '**विक्टोरिया पेपर**'—सियालकोट लिखता है "हमें चाहिये चिड़ियों का दूध", '**आफताबे पंजाब**' लाहौर के कथनानुसार बम्बई के एक धनवान भाटिया ने पांच हजार रुपये उस पंडित को दान देने किये हैं जो सिद्ध करे कि वेद व शास्त्र मूर्तिपूजा की आज्ञा देता है।'

'**विक्टोरिया**' पेपर सम्मति देता है—"मैं डंके की चोट से कहता हूं कि वेद शास्त्र ईश्वरोपासना की आज्ञा देते हैं, न कि मूर्तिपूजा की। पंडित क्यों झगड़ते हैं? अनुचित हठ न करें।" (प्रकाशित द्वितीय सप्ताह, जुलाई, सन् १८८२, तृतीय भाग, पृष्ठ...)

फिर यही समाचार '**आर्यदर्पण**'-शाहजहांपुर में प्रकाशित हुआ और उससे लेकर '**देशहितैषी**' अजमेर लिखता है-"आर्य लोग इन दिनों अपने धर्म के जीर्णोद्धार में बड़े तत्पर हो रहे हैं। एक गुरु कहता है कि वेदान्त में मूर्तिपूजा का निषेध है। दूसरा उसके विरुद्ध उपदेश करता है। इस कारण महाशय मथुरादास लोजी भाटिया, जो एक विद्वान् सज्जन पुरुष हैं, पांच हजार रुपये उस मनुष्य को पारितोषिक देना स्वीकार करते हैं जो मूर्तिपूजन को शास्त्रविहित निश्चय करा देवे। मूर्तिपूजकों को इस पर अवश्य उद्योग करना चाहिये।" ('देशहितैषी' अजमेर, खंड ४, संख्या ७, क्रम संख्या ४३, कालम १, पृष्ठ २०, जनवरी, सन् १८८३।)

बम्बई—स्वामी जी १ जनवरी, सन् १८८२ से २३ जून, सन् १८८२ तक बम्बई में रहे और २४ जून को वहां से चलकर रेल द्वारा **खंडवा**[११८] पहुंचे। वे स्वयं एक चिट्ठी में लिखते हैं—**खंडवा**, "ला० कालीचरण रामचरण, आनन्दित रहो। विदित हो कि हम सुखपूर्वक **बम्बई** से **खंडवा** में आ गये हैं। यहां रा० रा०[११९] भाऊ टाटा जी के बगीचे में ठहरे हैं। २५ जून, सन् १८८२। (दयानन्द सरस्वती, खंडवा) और एक पत्र ३ जुलाई, सन् १८८२ का भी। इसलिए ३ जुलाई[१२०] तक खंडवा में रहे।"

इन्दौर—४ जुलाई को **खंडवा** से चलकर इन्दौर में आ विराजे। चूंकि महाराज तगोराव[१२१] जी होल्कर स्वामी जी के बड़े श्रद्धालु थे और उनसे प्रेम रखने वाले थे। उन्होंने उनको कई बार पहले भी बुलाया था परन्तु वे स्वामी जी से मिले नहीं थे क्योंकि उस अवसर पर महाराजा साहब राजधानी में नहीं थे। इसलिए यह समाचार सुन स्वामी जी इन्दौर की ओर

नहीं गये। एक दिन स्टेशन के डाक बंगले पर ठहर कर रतलाम को चले गए। अपने एक पत्र में लिखते हैं—"आज हम **इन्दौर** से दो बजे की गाड़ी में बैठकर **रतलाम** जावेंगे। वहां से **उदयपुर** जाने का विचार है।" **श्रावण बदि ५, बुधवार,** तदनुसार ५ जुलाई, सन् १८८२। -दयानन्द सरस्वती, इन्दौर।

रतलाम-स्वामी जी ५ जुलाई,[१२२] सन् १८८२ को इन्दौर से रतलाम आये और ८ जुलाई तक वहां विराजमान रहे। स्वामी आत्मानन्द जी भी उनके साथ थे। **मालवा, नवाब जावरा (इन्दौर प्रदेश)** स्वामीजी स्वामी आत्मानन्दजी सहित रतलाम से चल कर उसी दिन जावरा में आ गये और स्टेशन पर ठहरे। वहां से उदयपुर पत्र भेजा कि हम श्री महाराणा को दिये हुए अपने वचनानुसार आते हैं। आप सवारी आदि का प्रबन्ध कर के हम को सूचित करें।"

१४ जुलाई, सन् १८८२ को उदयपुर का पत्र मिला कि हमने चित्तौड़गढ़ के प्रशासक के नाम मियाना, रथ, गाड़ी आदि सवारियों के लिए आज्ञा भेज दी है। यथावत् प्रबन्ध हो जावेगा, आप पधारिये। इस चिट्ठी के आने पर स्वामी जी ने आत्मानन्द सरस्वती जी को भेजा कि वह आगे जाकर देखें कि प्रबन्ध हो गया है या नहीं और पत्र लिखें ताकि हम को वहां विलम्ब न हो। प्रशासक चूंकि दौरे पर गया हुआ था इसलिए विलम्ब हुआ और २३ को आत्मानन्द जी का पत्र आया कि प्रशासक आ गया है, सब प्रबन्ध हो गया है; आप पधारें। फिर स्वामी जी २४ जुलाई, सन् १८८२ को वहां से चलकर २५ को चित्तौड़गढ़ पधारे।

अध्याय ४

देशी रियासतों और रजवाड़ों में धर्मोपदेश

प्रथम परिच्छेद

सनातन-धर्मियों से शास्त्रार्थ

रियासत जयपुर

प्रथम बार—आर्यसमाज की स्थापना से पहले स्वामी जी कई बार इस रियासत में पधारे और ठाकुर रणजीतसिंह जी, रईस अचरौल, आदि रईसों को धर्मोपदेश दिया परन्तु आर्यसमाज-स्थापना का क्रम आरम्भ करने के पश्चात् यह पहला अवसर था कि ठाकुर साहब ने स्वामी जी को लाने के लिए जोशी रामरूप[१] को दिल्ली भेजा क्योंकि वे एक यज्ञ का आयोजन कर रहे थे। जोशी जी स्वामी जी से मिलकर और उनको जयपुर पधारने के लिए तैयार करके स्वयं पहले चले आये। उन का कथन है—"मेरे दिल्ली से लौटने से पहले ही सरदार साहब[२] के शरीर में कुछ आक्षेप (विकार) हो रहा था परन्तु उन्होंने यज्ञ की सामग्री एकत्रित करने की आज्ञा दी। मैंने निवेदन किया कि अष्टमी का मुहूर्त ठीक नहीं प्रतीत होता, कोई और होना चाहिये। मैं किसी और अच्छे मुहूर्त की खोज कर रहा था, इतने में सरदार साहब का दु:ख बढ़ने लगा और कार्तिक शुक्ला १० सोमवार, संवत् १९३५; तदनुसार, ३ नवम्बर, सन् १८७८ को सरदार साहब का शरीरपात हो गया।"

(किसी बुद्धिमान् ने सत्य कहा है "एक घड़ी में घर जले और नौ घड़ी भद्रा", जोशी जी का मुहूर्त ही न बना और सरदार साहब स्वर्गवासी हो गये-संकलन कर्ता)।

"उनका शरीरपात होने के चौथे दिन, ७ नवम्बर, सन् १८७८ को स्वामी जी दिल्ली से पधारे। सरदार साहब की गद्दी पर उनके पुत्र ठाकुर लक्ष्मणसिंह[३] और उनके छोटे भाई रघुनाथसिंह जी थे। मैं गाड़ी लेकर स्टेशन पर पहुंचा। मेरा

मुंडन देखकर पूछा, 'जोशी जी की क्या दशा है ?' मैं रो पड़ा । महाराज ने खेद प्रकट किया और मुझे आश्वासन देकर कहा कि हम यहां नहीं ठहरेंगे और उसी समय सेवक को कहा कि अजमेर का टिकिट ले आओ और वचन दिया कि दोनों ठाकुरों से कह देना कि हम आते समय तुम से मिलकर जावेंगे । उस समय **अजमेर** की ओर चले गये ।

लगभग डेढ़ मास पश्चात लौटते हुए पधारे और ढड्ढे के बाग में डेरा किया । ठाकुर रघुनाथसिंह जी और हम दोनों गये । प्रार्थना की कि आप अपने बाग में चलिये । कहा कि यही स्थान श्रेष्ठ है, यहीं टिकेंगे । रसोई आदि का प्रबन्ध कर दिया गया और वहीं रहे ।"

'कोहेनूर' में लिखा है—"१४ दिसम्बर,[४] सन् १८७८ को दयानन्द सरस्वती जी **जयपुर** मे प्रविष्ट हुए ; वे बाग ढड्ढा में ठहरे हुए हैं । बहुत से लोग उनके पास आते जाते हैं परन्तु महाराजा साहब बहादुर से अभी भेंट नहीं हुई और इसी कारण कोई सभा भी अभी तक नहीं हुई ।" (२५ दिसम्बर, सन् १८७८, पृष्ठ १०७२, कालम २, खंड ३०, संख्या ५५) ।

जोशी जी कहते हैं, "तत्पश्चात् पंडित लोग वहां जाते रहे और प्रश्नोत्तर करते रहे । हमने प्रार्थना की कि एक दिन हमारे यहां व्याख्यान दीजिये । उन्होंने स्वीकार किया और उसी दिन सायंकाल उनके व्याख्यान का महलों में प्रबन्ध किया और अपने परिचितों को सूचना दी गई । वेद विषय पर ८ बजे रात से ९ बजे तक व्याख्यान हुआ । इस पर महाराजा माधोसिंह जी की कुछ अप्रसन्नता विदित हुई । इस बार कुल दस दिन रहे ।"

शिवनारायण जी वैद्य ने कहा—"इस बार ठाकुर रघुनाथसिंह और रावल विजयसिंह ने महाराजा साहब से (स्वामी जी की) प्रशंसा की कि एक बहुत उत्तम साधु आये हैं, श्रीमान् को अवश्य मिलना चाहिये । तिस पर श्रीमान् ने जाने का निश्चय किया, परन्तु किसी की शरारत अथवा स्वयमेव सरकारी विदूषक पुरन्दर ब्राह्मण वहां आया और उसने कहा कि महाराज ! उनसे न मिलना चाहिये; वे तो ईसाई हैं । राजा ने कहा कि हमारी इसमें क्या हानि है ? हम तो अंग्रेजों से मिलते हैं, क्या उनसे मिलने पर हम ईसाई हो जायेंगे ? इस पर पुरन्दर ने कहा कि ब्रह्मचारी जी अप्रसन्न होंगे । यह बात सुनकर महाराजा नहीं गये । मैंने स्वामी जी से चर्चा की कि इस प्रकार पुरन्दर ने महाराजा का मन बिगाड़ा । कहा कि मुझे तो केवल ब्राह्मणों की भलाई के लिए ही मिलना था; अन्यथा मेरा कोई निजी प्रयोजन नहीं है । पीछे पुरन्दर भी पछताया था ।"

'भारत सुदशा प्रवर्तक' पत्रिका में लिखा है—"१५ दिसम्बर, सन् १८७८ को स्वामी जी जयपुर में आकर सांगानेर दरवाजे के बाहर ढड्ढे के बाग में ठहरे । वहां उन के निवासस्थान पर ही सब लोग सायंकाल को आते और अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार प्रश्नोत्तर कर जाते । महाराजा साहब के दीवान श्रीयुत ठाकुर फतहसिंह जी मुसाहब, अचरौल के सरदार ठाकुर लक्ष्मणसिंह जी, उनके छोटे भाई ठाकुर रघुनाथसिंह जी और बाबू श्रीप्रसाद आदि सभी प्रतिष्ठित पुरुष आते रहे । तीन दिन तक ठाकुर लक्ष्मणसिंह जी की हवेली पर वेद आदि सत्यशास्त्रों के विषयों पर व्याख्यान हए । जयपुर में भी पोप लोगों ने एक विचित्र लीला की कि विद्यार्थियों को बुलाया और उनको प्रश्न लिख-लिख कर दिये और कहा कि जाओ स्वामी जी से उत्तर मांगो । जब स्वामी जी के पास जाकर उत्तर चाहते, तब स्वामी जी उनसे कहते कि यदि ये प्रश्न तुम्हारे हैं तो हम उत्तर नहीं देंगे । हमारे शिष्यों से उनके उत्तर पूछ लो । यदि वहां शंका-निवारण न हो तो हमारे पास आना । और, यदि तुम्हारे गुरुओं के ये प्रश्न हैं तो हम उत्तर देंगे । पोपों ने टट्टी की ओट में शिकार मारना चाहा परन्तु स्वामी जी ऐसे विद्यार्थियों के साथ अपना अमूल्य समय क्यों खोते ? लोगों का विचार स्वामीजी को एक-दो मास ठहराने का था परन्तु स्वामी जी वहां दो कारणों से अधिक न ठहरे । एक तो यह कि जयपुर के लोग दिन भर स्वामी जी के पास बैठे रहते, इस कारण उनका वेदभाष्य बनाने का काम नहीं हो सका । दस दिन वहां रहे और बहुत थोड़ा काम हुआ । दूसरे, स्वामी जी को हरिद्वार के मेले पर जाना आवश्यक था इसलिए जयपुर में दस दिन रहकर रिवाड़ी पधारे ।" (सन् १८८२, पृष्ठ २५, २६, संख्या ३९) ।

जयपुर के विषय में स्वामी जी स्वयं एक पत्र में, जो ७ जनवरी, सन् १८७९ को रिवाड़ी से बाबू प्यारेलाल सभासद् आर्यसमाज लाहौर को लिखा है, इस प्रकार लिखते हैं—"आज आपका पत्र हम को रिवाड़ी में मिला। बहुत प्रसन्नता हुई। हम अजमेर से जयपुर आये थे और नौ दिन वहां निवास किया। इस बीच में वहां पर ठाकुर फतहसिंह साहब, बाबू श्री प्रसाद निरीक्षक बन्दोबस्त तथा अन्य सरकारी अधिकारी और प्रतिष्ठित व्यक्ति कप्तान आदि हमसे मिले और अत्यंत आनन्द रहा। परन्तु महाराजा साहब से भेंट नहीं की गई और वहां से हम २४ दिसम्बर को चलकर २५ को रिवाड़ी जिला गुड़गांवा पहुंचे और व्याख्यान दिया। अब यहां व्याख्यान पूरा हो चुका है इसलिये हम परसों ता० ९ जनवरी, सन् १८७९ को दिल्ली जाकर सब्जीमण्डी के पास बाबू केसरीलाल[1] के बाग में ठहरेंगे और जो वृत्तान्त वहां का होगा वह लिखा जावेगा और सब प्रकार से कुशल है। हम बहुत आनन्द में हैं। सब सभासदों को नमस्ते।"

७ जनवरी, सन् १८७९ — दयानन्द सरस्वती, रिवाड़ी, जिला गुड़गांवा

नीमचाना (जिला बुलन्दशहर) निवासी, हजारीलाल वैश्य कहते हैं—"मैं उन दिनों जयपुर में अपने सम्बन्धी बाबू हरिप्रसाद साहब के पास था। समाज स्थापित करने की सम्मति थी। मेरे और ला० श्री प्रसाद, भोडू निवासी भगवानदास, जहांगीराबाद निवासी कन्हैयालाल और चौबे भगवानदास के विचार तो पूर्णतया वैदिक हो गये और अब हम आर्यसमाज के सदस्य हैं। स्वामी जी वहां चार बजे उठकर मुंह हाथ धोकर भ्रमण के लिए कई मील पैदल जाया करते थे। एक दिन हमने कहा कि सवारी ले जाया करें। कहा कि इससे मेरा बैठे रहना ही अच्छा होगा।'

एक झूठे समाचार से भक्त की बेचैनी-पण्डित उमरावसिंह मन्त्री आर्यसमाज रुड़की ने वर्णन किया—"१८ दिसम्बर, सन् १८७८ को जब मैं कालिज जा रहा था तो मार्ग में कालिज के अध्यापक पंडित बलदेवराम मिले। उन्होंने स्वामीजी का वृत्तान्त पूछा कि वे आजकल कहां हैं? मैंने कहा कि अजमेर में विराजमान हैं। कहा कि जयपुर क्यों नहीं गये? मैंने कहा कि अभी कुछ दिन हुए मेरे पास पत्र आया था। जहां तक मुझे ज्ञात है, जयपुर नहीं गये। उन्होंने फिर कई बार कहा कि कदाचित् जयपुर गये हों। मैंने कहा कि आपको उन के जयपुर जाने की कहां से सूचना मिली है? कहा कि **मेरठ** से मोटामल गुजराती ब्राह्मण आये हुए हैं। अन्य वृत्तान्त कहने में उन्होंने संकोच किया। जब मैं कालिज पहुंचा तो मुझसे कहने लगे कि हमने सुना है कि स्वामी जी जयपुर में कैद हो गए हैं। यह बात सुनते ही मेरे होश जाते रहे। उस समय पंडित बलदेवराम के सांकेतिक वार्तालाप का अभिप्राय समझ में आया। तत्काल मोटामल गुजराती ब्राह्मण को बुलाया। यह स्वामी जी को भली-भांति जानता था। उससे वृत्तान्त पूछा, उसने कहा कि जयपुर से दो-चार दिन हुए, एक ब्राह्मण मेरठ आया है और पत्थर वालों के यहां ठहरा है। वह आंखों देखी बात कहता है कि स्वामी जी जयपुर पधारे थे वहां श्राद्ध आदि के विरुद्ध उपदेश देते थे। चूंकि राजा के भाई का उन दिनों देहान्त हो चुका था, राजा को इससे अत्यन्त दुःख हुआ और समस्त साथियों सहित स्वामी जी को कैद कर दिया। लोगों ने बहुत प्रयत्न किया परन्तु कुछ लाभ न हुआ। उसने इस बात को अत्यन्त विश्वसनीय रूप से वर्णन किया जिससे अत्यन्त चिन्ता हुई और उसी समय एक तार ला० ईश्वरदास को अजमेर दिया। पांच-छः घंटे तक उत्तर की प्रतीक्षा की। शाम को दूसरा तार दिया परन्तु कोई उत्तर न आया। रात बड़ी कठिनता से काटी, प्रातःकाल फिर तार दिया, वह जवाबी था। उत्तर आया कि स्वामी जी जयपुर चले गये हैं। भय द्विगुण हो गया और समाचार की सत्यता पर विश्वास होने लगा। उस समय १९ दिसम्बर, १२ बजे के लगभग स्वामी जी को जयपुर तार दिया गया जिसका उत्तर स्वामी जी की ओर से ५ बजे शाम के लगभग आया कि मैं सकुशल हूं, पूर्ण संतोष हो गया। छानबीन करने पर ज्ञात हुआ कि यह खबर केवल बदमाशों ने उड़ाई थी। इसके पश्चात् जब रुड़की पधारे तब उनसे मैंने तार की चर्चा की। कहा कि हमने तार के पहुंचते ही समझ लिया था कि किसी ने कोई झूठी खबर उड़ाई है।

रियासत मसूदा का वृत्तान्त

(२ दिसम्बर, सन् १८७८ से ९ दिसम्बर[६] सन् १८७८ तक)

प्रथम बार—मंगसिर सुदि ८, संवत् १९३५, सोमवार को स्वामी जी राव बहादुरसिंह जी रईस मसूदा के बुलाने पर मसूदा पधारे और नगर के बाहर रामबाग में उतरे। किले में भी पधारे, दो-तीन व्याख्यान हुए और डेरे पर साधारणतया उपदेश होता रहा।

जोशी जगन्नाथ ने वर्णन किया— "उस समय शिवराम, दारोगा अस्तबल ने वहां आकर हनुमान जी के दर्शन किये, दण्डवत् किया, हाथ जोड़े और कुछ श्लोक बोलकर उसकी स्तुति की। यद्यपि हनुमान् के पश्चात् मुझे तो नमस्कार किया परन्तु स्वामी जी को नमस्कार न किया। तब स्वामी जी ने कहा कि इतने समय तक तूने हाथ जोड़े, दण्डवत् किया और श्लोक भी पढ़ा, परन्तु शोक है कि वह तुझसे कुछ नहीं बोला। हमसे तू बोला भी नहीं, देख हम तुझे, ब्राह्मण समझकर बिना बुलाये ही, तुझसे बोलते हैं और वह तेरे बुलाने पर भी नहीं बोलता। **शिवराम** ने कहा कि हनुमान् का बोलना और लोग नहीं समझते परन्तु हम समझते हैं। स्वामी जी ने कहा कि क्या हम लोगों से हनुमान् डरते हैं जो तुझसे गुप्त बोलते हैं। जिस पर वह मौन हो गया।

रावसाहब बहुत प्रेम से व्याख्यान सुनते रहे, प्रत्युत प्राय: सारे दिन स्वामी जी के डेरे पर ही रहे और प्रश्नोत्तर द्वारा अपने और अन्य मनुष्यों के संशय निवारण करते रहते थे। रावसाहब के कामदार जगनलाल बड़ी प्रीति से सत्योपदेश सुना करते थे। रावसाहब ने दो-सौ रुपये वेदभाष्य की सहायता में दिये। १० दिसम्बर, सन् १८७८; तदनुसार पोह बदि प्रतिपदा, संवत् १९३५ मंगलवार को बग्घी पर सवार होकर स्वामी जी **नसीराबाद** चले गये।"

रियासत भरतपुर का वृत्तान्त

(फागुन सुदि १०, संवत् १९३७ से चैत बदि ५, संवत् १९३८ तक)

स्वामी जी एक चिट्ठी में ला० कालीचरण जी को फर्रूखाबाद में लिखते हैं—"हम आगरा से चलकर भरतपुर में दस दिन रहे और वहां से चलकर ५ चैत बदि, रविवार को यहां जयपुर पहुंचे।" २२ मार्च, सन् १८८१। जयपुर। दयानन्द सरस्वती।

स्वामी जी १० मार्च, सन् १८८१ को दिन के दस बज के समय आगरा से रेल में चढ़कर भरतपुर गये और उस दिन वहां पहुंच कर रेलघर के समीप एक रईस के बाग में ठहरे। पूरे दस दिन वहां रहे और उपदेश करते रहे। मुंशी गिरधारीलाल साहब वकील आगरा वहां मिलने के लिये गये परन्तु वे उनके पहुंचने से पहले ही चले गये थे।

रियासत जयपुर में पुनः पधारना (२९ मार्च, सन् १८८१, रविवार से ४ मई, सन् १८८१ बुधवार तदनुसार चैत बदि ५, संवत् १९३७ वि० से वैशाख सुदि ६, संवत् १९३८ वि० तक)—स्वामी जी भरतपुर से चलकर चैत बदि ५, रविवार को जयपुर पहुंचे और गंगापोल दरवाजे के बाहर बदनपुरा में अचरौल वाले ठाकुरों के बाग में निवास किया। **जोशी रामरूप वर्णन करते हैं —**'चैत कृष्णा ९, संवत् १९३७ को फिर स्वामी जी पधारे और ठाकुर साहब के बाग में ठहरे। एक व्याख्यान सृष्टिविषय पर ठाकुर साहब की हवेली में हुआ। अन्त में ठाकुर रघुनाथसिंह जी ने अद्वैत विषय पर एक प्रश्न किया था जिस पर दो घड़ी तक अद्वैतखण्डन का उपदेश करते रहे। फिर कोई व्याख्यान नहीं हुआ।

नगर के लोग स्वामी जी के निवासस्थान पर आकर अपने सन्देह निवृत्त करते रहे। प्रबन्ध सब ठाकुरसाहब की ओर से था। कई पंडितों ने भी आकर प्रश्नोत्तर किये और इसी वर्ष उनके सत्योपदेशों से आर्यसमाज का धार्मिक अंकुर बोया गया जिसको थोड़े से जल से सींचकर पंडित कालूराम जी महाराज[७] ने अपने सत्योपदेश से 'वैदिक धर्म सभा' के नाम से प्रकट किया और फिर जिसका नाम 'आर्यसमाज' रखा गया।'

रियासत मसूदा में पुनः पधारना (२३ जून, सन् १८८१ से १७ अगस्त,[८] सन् १८८१ तक)-स्वामी जी के अजमेर पधारने के समाचार मसूदा नरेश राव बहादुरसिंह[९] जी के कानों में पड़े। राव साहब ने स्वामी जी को बुलाने के लिए पंडित वृद्धिचन्द्र को निमन्त्रण पत्र देकर अजमेर भेजा। पंडित जी ने सब व्यवस्था कह सुनाई। तब स्वामी जी ने मसूदा की ओर पधारना स्वीकार किया। जब अजमेर में व्याख्यानों का क्रम समाप्त हुआ तब स्वामी जी अपने वचनानुसार आषाढ़ १२, बृहस्पतिवार, दिन के ४ बजे, अजमेर स्टेशन से रेल में चढ़कर नसीराबाद उतरे और वहां से रथ में बैठकर उसी दिन २३ जून, सन् १८८१ को रात के ९ बजे मसूदा में जा विराजे और नगर के पश्चिम की ओर राम बाग की बारहदरी में डेरा किया। वहीं छोलदारी लगाकर डेरा, चौकी, पहरे का भली प्रकार प्रबन्ध किया गया।

आषाढ़ बदि १३, संवत् १९३८ से महाराज के व्याख्यान महलों में होने आरम्भ हुए और निम्नलिखित विषयों पर १२ व्याख्यान हुए—१. धर्म, २. राजनीति, ३. पुनर्विवाह, ४. सत्यशास्त्र और ५. मोक्ष आदि। फिर दो-तीन दिन बाहर बाग में आनन्द-मंगल होता रहा।

आषाढ़ सुदि २ तदनुसार २८ जून, सन् १८८१ को पादरी शूलब्रेड और बाबू बिहारीलाल ईसाई, ब्यावर नया नगर[१०] से स्वामी जी को मिलने आये। प्रथम स्वामी जी ने दोनों सज्जनों को आदरसहित बिठलाया, फिर धर्मसम्बन्धी वार्तालाप होने लगा। स्वामी जी ने पादरी साहब से उनके धर्मविषय में कुछ प्रश्न किये जिनका उत्तर कुछ न देकर पादरी साहब कहने लगे कि स्वामी जी! मैं आप से शास्त्रार्थ करने नहीं आया हूं; प्रत्युत आप से कुछ व्याख्यान सुनने की अभिलाषा है। स्वामी जी ने कहा कि बहुत अच्छा, मैं व्याख्यान देता हूं, आप श्रवण करें। पादरी साहब बोले—मैं २० मिनट से अधिक नहीं ठहरूंगा, आप व्याख्यान दीजिये। तब स्वामी जी ने राजनीति के विषय में व्याख्यान दिया। समाप्ति पर पादरी साहब ने पूछा कि क्या वेदों में गोमेध और अश्वमेध लिखा है? स्वामी जी ने कहा कि नहीं ऐसी बात वेदों में कहीं नहीं लिखी। हमारे पास चारों वेद हैं, आप उनमें बतलाइये। पादरी साहब ने कहा कि मेरी पुस्तकें तो नये नगर[११] में हैं। स्वामी जी ने कहा कि किसी मनुष्य को भेज दो, ले आवेगा। पादरी साहब ने कहा कि इस समय नहीं मंगवा सकता, अर्थात् इस समय तो अवकाश नहीं। बिहारीलाल ने कहा कि आप राजाओं को उपदेश करते हैं, निर्धनों को सर्वत्र जाकर नहीं करते, यह कहां लिखा है? स्वामी जी ने उत्तर दिया कि प्रथम तो मेरे व्याख्यान में किसी मनुष्य के आने की रुकावट नहीं; सब आकर सुन सकते हैं; कोई निषेध नहीं है। इसके अतिरिक्त कूप के पास प्यासा आता है न कि कूप प्यासे के पास। मैं सर्वत्र यात्रा करता हूं और यथाशक्ति राजा-प्रजा, सब को सत्योपदेश करता हूं। तत्पश्चात् वे दोनों सज्जन चले गये।

स्वामी जी की वैज्ञानिक सूझ—इतने में एक तारा टूटा। लोगों ने कहा कि तारा टूटा है! स्वामी जी ने कहा कि यह तारा नहीं है प्रत्युत वायु की रगड़ से अग्नि उत्पन्न हुई है।

जैनियों से शास्त्रार्थ—इसी प्रकार जैनियों के प्रसिद्ध साधु सिद्धकरण जी से शास्त्रार्थ हुआ और अन्त में जब साधु जी हार गये तो जैनियों ने जैन धर्म छोड़कर वैदिक धर्म स्वीकार किया जिस का विस्तृत विवरण पांचवें परिच्छेद में लिखा है।

यह वर्षा ऋतु थी। वर्षाकाल चालू होने से वाटिका की बांई ओर का तालाब भर गया। इस कारण जो लोग स्वामी जी के दर्शनार्थ जाते, उन को कष्ट होने लगा। बड़े परिश्रम से लोग जाते थे। उस दयावान ने लोगों के कष्ट को सहन न करके वहां रहना उचित न समझा और वहां से थोड़ी दूर सोहन मगरी[१२] की पहाड़ी पर चले गये और वहां रहना स्वीकार किया। रावसाहब ने स्वामी जी की आज्ञा पाकर वहां सब प्रकार का प्रबन्ध कर दिया।

उन्हीं दिनों सुना गया था कि उस रियासत में मुस्लिम शासनकाल के मुसलमान बने हिन्दुओं के साथ उनकी जाति के हिन्दू लोग पूर्ववत् सम्बन्ध करते हैं; वे हिन्दूपन की मूर्खता के कारण बेटी देते तो हैं किन्तु लेते नहीं,[१३] जैसा कि जोधपुर राज्य के शैव प्रदेश के राजपूतों में अभी तक प्रथा है, जिससे वहां के लोग साधारणतया परिचित हैं। स्वामी जी ने उन्हें बुलाकर समझाया कि ऐसा अनर्थ क्यों करते हो? जो तुम्हारे धर्म को नहीं मानते उनसे सम्बन्ध करना योग्य नहीं। उनके इस शुभ उपदेश से भविष्य में लाखों लड़कियां मुसलमान होने से बचीं और हिन्दू जाति का दिन-प्रतिदिन अधिक होने वाला पतन रुक कर उन्नति के लक्षण दिखाई देने लगे।

स्वामी जी ने यहां दो यज्ञ कराये। पहला यज्ञ सावन सुदि पूर्णमासी, संवत् १९३८ को हुआ। स्वामी जी ने पहले ही से निर्देश दे दिया था कि जिन लोगों को यज्ञोपवीत लेना हो, सवेरे आठ बजे स्नान करके चले आवें। उसी पहाड़ी पर जहां स्वामी जी रहते थे, यज्ञशाला स्थापित करके हवनकुण्ड बनाया गया। ९ अगस्त, सन् १८८१ को यज्ञशाला पत्तों और पुष्पों से सजाई गई। एक ओर तख्त बिछा कर उस पर स्वामी जी के लिए आसन सजाया गया। कुण्ड के एक ओर श्री रावसाहब के लिए आसन बिछाया गया और उसके शेष तीनों ओर यज्ञोपवीत लेने वालों के लिए आसन बिछाये गये। ठीक आठ बजे स्वामी जी महाराज वेद का पुस्तक लेकर अपने आसन पर विराजमान हुए और सब यज्ञोपवीत लेने वाले अपने-अपने आसन पर बैठ गये। सामग्री रखी गई, प्रथम कुण्ड में पीपल का काष्ठ रखकर उस पर चन्दन धर दिया गया और फिर कपूर को अग्नि लगा कर और मन्त्र पढ़कर पहली आहुति श्री रावसाहब के हाथों से प्रवेश कराई गई। पश्चात् केशर-कस्तूरी से सुवासित क्षीर, घृत का एक-एक पात्र चारों मनुष्यों के समीप रखा गया और सबको असली चांदी के स्रुवा दिए गये। जब स्वामी जी वेदमन्त्र पढ़ कर 'स्वाहा' शब्द उच्चारण करते थे तब समस्त यज्ञकर्ता लोग आहुति डाल देते थे। दो घंटे तक निरन्तर वेदमन्त्रों से आहुतियां देते रहे। पश्चात् यज्ञोपवीत लेने वालों को यज्ञोपवीत देकर, गायत्री मन्त्र का उपदेश कर एक-एक के हाथ से पृथक्-पृथक् आहुतियां दिलाई गईं। उस दिन समस्त हवनकर्ता ४० के लगभग और यज्ञोपवीत लेने वाले ३२ थे। स्वयं रावसाहब नाहरसिंह[१४] जी ने दस-ग्यारह क्षत्रियों, तीन ब्राह्मणों और एक कायस्थ सहित यज्ञोपवीत लिया। १६ से अधिक जैनियों ने उस दिन यज्ञोपवीत लिया।[१५] इस हवन यज्ञ को देखने के लिए पांच सौ के लगभग मनुष्य उपस्थित थे। सबने आश्चर्य माना कि ऐसा यज्ञ आगे कभी नहीं देखा था। यज्ञ होता देख और स्वामी जी महाराज के मुख से वेदमन्त्रों का स्पष्ट और शुद्ध उच्चारण सुनकर चित्त को ऐसा आनन्द होता था कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। १२ बजे दोपहर को सब मनुष्य स्वामी जी से आज्ञा लेकर अपने-अपने स्थान को गये और यह चर्चा सारे नगर और परगना में फैल गई।

दूसरा यज्ञ भादों बदि द्वितीया, संवत् १९३८ तदनुसार ११ अगस्त, सन् १८८१ को हुआ। भरतपुर के लोगों ने स्वामी जी से निवेदन किया कि हम बिना यज्ञोपवीत के रह गये इसलिए कृपा करके हमको भी यज्ञोपवीत दीजिये। स्वामी जी महाराज से रावसाहब ने कहा कि ये मनुष्य भी यज्ञोपवीत लेना चाहते हैं, इनके लिए भी प्रबन्ध कर दीजिये इसलिए उस समय भादों कृष्णा पंचमी तदनुसार १४ अगस्त, सन् १८८१ रविवार का दिन निश्चित होकर सब को पूर्ववत् सूचना दी गई और नियत दिवस पर प्रातःकाल से सामग्री इकट्ठी होकर ९ बजे स्वामी जी के विराजमान होने पर और यज्ञोपवीत लेने वालों को यज्ञकुण्ड के आसपास बिठला कर वेदोक्त मन्त्रों से आहुतियां दिलाकर यज्ञोपवीत धारण करा दिया और गायत्रीमन्त्र

का उपदेश देकर, फिर एक-एक से पृथक्-पृथक् आहुतियां दिलाई गईं। यह यज्ञ एक घंटे के पश्चात् समाप्त कराया। उस दिन भी अधिक यज्ञोपवीत लेने वाले जैनी थे। उनके अतिरिक्त राजपूत क्षत्रिय, माहेश्वरी, वैश्य, चारण, कायस्थ सज्जनों ने भी यज्ञोपवीत धारण किया। जितने जैनी सज्जनों ने यज्ञोपवीत लिया उनका विस्तृत वृत्तान्त हम मसूदा के जैनी शास्त्रार्थ में लिख चुके हैं; यहां दुहराने की आवश्यकता नहीं।

भावभीनी विदाई—इसी बीच में स्वामी जी को रायपुर[१६] से बुलावा आने लगा। इस यज्ञ के पश्चात् तीसरा पत्र आया। स्वामी जी ने उनका विचार उत्तम समझकर वहां जाना आवश्यक समझा और रावसाहब से कहा कि अब आप मुझको प्रसन्नता के साथ विदा कर दीजिये कि मैं रायपुर जाऊं। उन्होंने कहा कि आप की विदाई मेरे मन को प्रसन्नता नहीं देती; आप यहीं विराजिये, आपकी आज्ञा का मैं कभी उल्लंघन न करूंगा और वेदभाष्य करने का सब प्रकार से अच्छा प्रबन्ध कर दिया जावेगा। स्वामी जी ने कहा कि आप क्षत्रिय हैं; आप की प्रीति और धर्म ऐसा ही है परन्तु हम साधुओं को एक स्थान में अधिक रहना उत्तम नहीं। हमको तो देश-देश में भ्रमण करके उपदेश करना चाहिये। दोनों के परस्पर वार्तालाप के पश्चात् निश्चित हो गया कि भादों कृष्णा नवमी, गुरुवार, १८ अगस्त, सन् १८८१ को दिन के तीन बजे स्वामी जी को विदा करेंगे। तत्पश्चात् यात्रा की तैयारी होने लगी। गाड़ियों में सामान और पुस्तकें आदि अच्छी प्रकार धरवा कर, रक्षा के लिए चतुर मनुष्य नियत किये गये और एक बजे के समय बग्घी, राजमन्त्री और बन्धुजन को स्वामी जी के स्थान पर भेजा कि स्वामी जी दुर्ग में प्रवेश करें और वहां पर व्याख्यान और अन्त का सत्योपदेश उनके मुख से सुनकर उन को विदा करें। स्वामी जी महाराज बग्घी में विराज कर नगर के बाजार में से होते हुए दुर्ग के द्वार तक पहुंचे। वहां श्रीमान् रावसाहब आगे खड़े हुए थे। वहां महाराज बग्घी से उतरे और रावसाहब के हाथ में हाथ डाल कर खास महलों में प्रवेश किया और ड्योढ़ी से आगे यज्ञमंडप के पास फर्श बिछा कर एक चौकी पर आसन लगा दिया गया। महाराज निज आसन पर और रावसाहब गद्दी पर विराजमान हुए। शेष सब लोग भी यथावत् बैठ गये। उस समय स्वामी जी ने राजधर्म और प्रजाधर्म पर व्याख्यान दिया। फिर रावसाहब ने स्वयं अपने मुख से प्रार्थनापत्र (अभिनन्दन पत्र) पढ़ा; इसमें ईश्वर की प्रार्थना से फूले नहीं समाते थे और सब परमेश्वर को धन्यवाद देते थे कि जिसकी दया से हमने ऐसा सत्संग पाया। फिर सब ने ईश्वर से प्रार्थना की कि वह रावसाहब मसूदा नरेश को चिरंजीव रखे और कुंवर प्रदान करे। तत्पश्चात् रावसाहब ने पांच सौ रुपये वेदभाष्य की सहायता में भेंट किये, रामानन्द ब्रह्मचारी को दस रुपये और हरजू कहार को पांच रुपया पुरस्कार दिया। एक माला फूलों की उन्होंने स्वामी जी के गले में डाली और परस्पर प्रीतिपूर्वक वार्तालाप करते हुए दुर्ग से बाहर निकले और बग्घी में विराजमान हुए। नगरनिवासी लगभग चार सौ मनुष्य आधा मील तक साथ थे। अन्त में स्वामी जी ने बग्घी को रोक कर सबको धर्मोपदेश और धैर्य देकर विदा किया। रावसाहब पांच मील तक पहुंचा कर शाम के पांच बजे दुर्ग में प्रविष्ट हुए।

फिर स्वामी जी तीसरी बार आसौज बदि १३, संवत् १९३८, बुधवार तदनुसार २१ सितम्बर, सन् १८८१ को यहां पधारे और उसी पूर्व निवासस्थान अर्थात् रामबाग में विश्राम किया। साधारण उपदेश होता रहा, कोई विशेष व्याख्यान नहीं हुआ। १५ दिन रहे और फिर **बनेड़ा** की ओर चले गये। अगस्त, सन् १८८१ के प्रथम सप्ताह में एक दिन एक साधु कबीर-पन्थी ब्यावर से स्वामी जी के पास मसूदा आया और परस्पर धर्मचर्चा होने लगी।

स्वामी जी—आप के मत के कितने ग्रन्थ हैं? **साधु जी**—हमारे २४ करोड़ पुस्तक हैं। **स्वामी जी**—यह बात मिथ्या है क्योंकि ग्रन्थों की इतनी बड़ी संख्या (ही आश्चर्यजनक है) और फिर उन्हें रखने को कितना स्थान चाहिये (इस पर भी साधु जी कुछ न बोले)। तब स्वामी जी ने फिर कहा कि तुम्हारे कबीर कौन थे और जब तुम कबीर मत में होते तो तब उन की प्रसादी और गुरु का उच्छिष्ट भी खाते हो कि नहीं? **साधु जी**—उच्छिष्ट खाते हैं। कबीर का जन्म नहीं है; वह अजन्मा

है । उसके मां-बाप भी नहीं । **स्वामी जी**—कबीर जी काशी में कुकर्म से उत्पन्न हुए थे । इस कारण उसकी मां ने उसे बाहर फेंक दिया था । उस समय वहां पर (जहां कबीर पड़ा था) एक मुसलमान जुलाहा आ निकला । वह कबीर को उठाकर घर ले गया और अपना पुत्र-सा जान उसको पाला और बड़ा किया । अब देखिये कि उसका जन्म भी हुआ और मां-बाप भी ठहरे ।[१७] साधु जी इस बात को सुनकर चुप रहे और कुछ उत्तर न दिया । फिर और विषय पर बातें होती रहीं । ('देशहितैषी', खंड १, संख्या ८, पृष्ठ ६, ७)

रियासत रायपुर का वृत्तान्त

(१८ अगस्त, सन् १८८१ से ८ सितम्बर, सन् १८८१ तक)

चांदमल कोठारी, मसूदा निवासी ने वर्णन किया—"भादों कृष्णा ९, संवत् १९३८, गुरुवार को ३ बजे स्वामी जी मसूदा से चलकर ठीक सात बजे रात के **नयानगर**[१८] स्टेशन की एक सराय में पहुंचे, मैं साथ था । वहीं नगर के कुछ भले मनुष्य अर्थात् पंडित रामप्रताप कथाव्यास, चैनराम दारोगा चुंगी, बाबू बिहारीलाल ईसाई, आदि सज्जन आ गये और सब आवश्यकताओं का प्रबन्ध निश्चित रूप से कर दिया ।

पंडित रामप्रताप जी ने निवेदन किया कि आप कृपा करके कुछ दिन यहां विराजिये और हमारी आत्मा को ज्ञानरूपी व्याख्यान से शुद्ध कीजिये । महाराज ने कहा कि मेरा भी चित्त कुछ दिन ठहरकर आप लोगों से धर्मचर्चा करने का है, परन्तु रायपुर से तीन पत्र बुलावे के आये हैं, अभी तो वहां जाता हूं परन्तु जब वहां से लौटकर आऊंगा तब आपकी इच्छानुसार यहां ठहरूंगा । दस बजे रात के वे सब लोग आज्ञा लेकर चले गये । एक बजे रात के अजमेर से एक रेल आई और हम सब उसमें बैठ कर रात के तीन बजे हरिपुर पहुंचे । यह स्टेशन रायपुर से लगभग दो मील दूर है । गाड़ी प्लेटफार्म से दूर ठहरी । दैवयोग से रात अन्धेरी थी, बादल थे और बिजली चमक रही थी और कुछ बूंदें भी गिर रही थीं । उतरते समय अकस्मात् पत्थर पर पांव लगने और उसके लुढ़क जाने से स्वामी जी पांव फिसल कर गिर पड़े; हाथ में कंकर गड़ गये परन्तु और कहीं चोट न लगी । परमात्मा ने सहायता की; फिर शीघ्र उठकर उस गाड़ी में गये जिसमें साथ के मनुष्य और सामान था । वह उतरवा कर सड़क पर रखवा दिया गया । सवारी की खोज करवाई और बहुत पुकारा परन्तु कोई न बोला । एक रथ और दो गाड़ियां स्टेशन पर मौजूद थीं परन्तु हांकने वाले नींद में मस्त रहने के कारण न बोल सके । स्टेशन मास्टर ने महाराज का बहुत सत्कार किया और अपना कमरा खोल दिया । उसमें सब सामान रखकर कोचों पर सो गये । जब प्रातःकाल सूर्योदय हुआ तब गाड़ीवान और रथ देखने में आये । उनको बुलाकर सामान और पुस्तकें उनमें रख और उनमें चढ़कर वहां से चले और १९ अगस्त, सन् १८८१, शुक्रवार दिन के आठ बजे नगर के बाहर पहुंचकर माधोदास की वाटिका में, जिसके द्वार पर एक महल है और जो स्वामी जी के निवास के लिए साफ कराया गया था, आकर ठहरे । अभी तक वर्षा की बूंदें गिर रही थीं ।

स्वामी जी के पधारने की सूचना जब ठाकुर हरिसिंह जी को मिली तब वे अपने बन्धुजन और अमीरों सहित दर्शन करने के लिए आये । एक अशर्फी और पांच रुपये भेंट कर हाथ जोड़ खड़े रहे । स्वामी जी ने पूछा कि आप प्रसन्न तो हैं ? उत्तर दिया कि हां, आज आपके दर्शनों से प्रसन्न हूं । फिर सब यथायोग्य बैठ गये । फिर स्वामी जी ने प्रश्न किया कि आपके यहां राजमन्त्री कौन हैं ? ठाकुर साहब ने उत्तर दिया कि शेख इलाही बख्श हैं परन्तु वे जोधपुर गये हैं, उनके भतीजे करीमबख्श जी उनके पीछे सारे काम का प्रबन्ध करते हैं और बतलाया कि वे बैठे हैं । तब महाराज ने कहा कि—'आपके यहां मुसलमान मन्त्री हैं, ओहो ये तो दासीपुत्र हैं । आर्यपुरुषों को उचित है कि यवनों को अपना राजमन्त्री न बनावें ।' उन के ऐसा कहने से करीमबख्श और ५-७ मुसलमान, जो वहां उपस्थित थे, क्रोध में आकर बुड़बुड़ाने लगे और ठाकुर साहब

भी स्वामी जी से आज्ञा लेकर अपने राज-महलों में चले गये और मुसलमानों ने शेख जी की हवेली में इकट्ठे होकर यह विचार किया कि उन्होंने हमको दासी का पुत्र बताया; इसलिए उनसे फौजदारी (लड़ाई) करनी चाहिये । जिस पर किसी ने कुछ कहा और किसी ने कुछ; परन्तु एक चमनू खां मुसलमान ने कहा कि मेरी बात मानो और पहले कुछ न करो । पांच-सात दिन पश्चात् जब रमजान की ईद पर काजी जी आवेंगे तो उनको ले जाकर स्वामी जी से प्रश्नोत्तर करायेंगे । यदि झूठ होंगे तो फिर ऐसा ही करेंगे । यह बात सबने स्वीकार की ।

स्वामी जी को वहां पहुंचे पांच-सात दिन हो गये परन्तु न तो किले में व्याख्यान हुआ और न यज्ञ करने की सामग्री तैयार हुई परन्तु ठाकुर साहब नित्य स्वामी जी के डेरे पर आते और व्याख्यान सुनते रहते । एक दिन स्वामी जी ने उनसे कहा कि आप के यहां से हरवान जी[१९] चारण का पत्र आया था; जिसमें यज्ञ कराने की चर्चा थी, उसमें क्या विलम्ब है क्योंकि मुझ को नयानगर होकर मेवाड़ देश में जाना अवश्य है । ठाकुर साहब ने उत्तर दिया कि महाराज ! मुझको भी ध्यान है परन्तु हरवान जी अपने गांव गये हुए हैं । हम उनकी प्रतीक्षा में हैं । ठाकुर साहब ने उन्हीं के उपदेश से स्वामी जी को बुलाया था ।

भादों शुक्ला ११ तदनुसार ४ सितम्बर, सन् १८८१ रविवार तक न तो हरवान जी आये न ठाकुर साहब रायपुर के भाई, ग्राम बरौली के ठाकुर कल्याणसिंह, किसी आवश्यक कार्यवश न आ सके इसलिए हवन न हुआ । अब ईद के दिन का वृत्तान्त और काजी जी का शास्त्रार्थ विस्तारपूर्वक लिखता हूं ।"

२७ अगस्त, सन् १८८१ को ईद-उल-फितर पर काजी जी आये और २८ अगस्त, सन् १८८१ रविवार तदनुसार भादों सुदि ४ को जब प्रातःकाल स्वामी जी आठ बजे के समय बाहर से घूमकर आये तो उन्होंने यवनों का झुण्ड अपने मकान की ओर आता देखा । स्वामी जी ने मुझ को पुकारा कि कोठारी जी ! ऊपर आओ । मैं ऊपर गया, कहने लगे कि देखो, कदाचित् यवनों का समूह आता है । मैंने नीचे आकर मुसलमानों को आते देखा । उनको नीचे ठहरा कर स्वामी जी से जाकर कहा कि यहां आते हैं । महाराज दुग्धपान करके कुर्सी बिछवाकर स्वयं बैठ गये और उनको बुलवाया तथा फर्श पर बिठा दिया । आते ही काजी जी ने प्रश्न किया-आप हमको दासी पुत्र कैसे बतलाते हो ?

स्वामी जी—अपने कुरान शरीफ को देखो । इसराईल जिसको इब्राहीम कहते हो उसकी दो पत्नियां थीं-एक ब्याही हुई 'सारा', दूसरी दासी 'हाजरा' जिसको उसने घर में डाला हुआ था । अब देखिये कि सारा से अंग्रेज लोग और हाजरा से तुम लोग उत्पन्न हुए, फिर दासीपुत्र होने में क्या सन्देह है ? **काजी जी**—कुरान में ऐसा नहीं लिखा । **स्वामी जी** ने रामानन्द ब्रह्मचारी को कहा कि कुरान का पुस्तक लाओ । पुस्तक लाकर काजी जी को दिखलाया (कुरान सूरये अन्कबूत-उसी वर्ष में इस्माइल को हाजरा ने उत्पन्न किया जो सारा खातून की दासी थी । खंड २, पृष्ठ १६७) । **काजी जी**—वह दासी तो थी परन्तु निकाह (विवाह) कर लिया था । **स्वामी जी**—फिर भी वास्तव में तो दासी ही है तो फिर आप के दासीपुत्र होने में क्या सन्देह है ? इसपर काजी जी निरुत्तर हो गये । मुसलमान सब देखते के देखते रह गये ।

इस समय कुरान को स्वामी जी ने हाथ से पृथिवी पर रख दिया । काजी जी ने कहा-आपने यह क्या किया कि कुरान को पांव में रख दिया । स्वामी जी-काजी साहब ! तनिक विचार करो, क्या काजी नाम ही के कहलाते हो ? कागज और स्याही कैसे बनता है और छापाखाना में किस पर कागज छपते हैं और कलम (लेखनी) क्या चीज है और कहां उत्पन्न होती है ? इसपर निरुत्तर होकर काजी जी उठ खड़े हुए और उनके साथ सब यवन शान्त होकर चले गये ।

भादों शुक्ला १२, सोमवार तदनुसार ५ सितम्बर, सन् १८८१ को तार द्वारा सूचना मिली कि ठाकुर साहब की ठकुरानी, शेखावाटी[२०] वाली, जो जयपुर में थीं, उसका देहान्त हो गया । तब ठाकुर साहब शोकातुर होकर गरुड़-पुराण के

गपोड़े सुनने लगे । उसी दिन प्रातःकाल ७ बजे बाबू रूपसिंह ट्रेजरी क्लर्क कोहाट[२१] तीन मास की छुट्टी लेकर देशाटन करते हुए स्वामी जी के दर्शन को आ पहुंचे ओर जब प्रातः स्वामी जी बाहर से घूम कर पधारे तो उन्होंने प्रेम से दस रुपये का नोट वेदभाष्य की सहायता में भेंट करके नमस्कार किया फिर प्रार्थना की कि आप पंजाब के सीमावर्ती जिलों की ओर क्यों नहीं आते ? महाराज ने उसका शिर उठाकर कहा कि आपकी ओर से हमें सन्तोष है, राजपूताने में उपदेश की आवश्यकता है ।

तत्पश्चात मैं, बाबू रूपसिंह और लाला चमबामल[२२] कायस्थ नित्य किले में जाते और गरुड़पुराण के गपोड़े सुनकर पोपों से प्रश्न किया करते थे । ऐसे समय जब कि ठाकुर साहब के शोकातुर होने के कारण यज्ञ और व्याख्यान की आवश्यकता न रही तो स्वामी जी ने मुझ को कहा कि आज ठाकुर साहब से कहो कि हमको विदा कर देवें । हमने ठाकुर साहब से निवेदन किया । कहा कि बहुत अच्छा, कल विदा कर देंगे परन्तु तुम मेरी ओर से हाथ जोड़कर निवेदन करना कि मैं शोकातुर होने से विवश हूं परन्तु आप दया करें और मुझ को अपना शिष्य जानें । ईश्वर ने चाहा तो आपको शीघ्र बुलाऊंगा और किसी मनुष्य ने जो कुछ कहा हो तो वह आप क्षमा करें । कल शाम को सवारी का प्रबन्ध कर दिया जायेगा ।

मैंने सारा वृत्तान्त महाराज को आ सुनाया और साथ ही कहा कि आप महाराज के पास शोक प्रकट करने के लिए जावें । स्वामी जी ने कहा—कि भाई ! मैंने तो सब संसार से सम्बन्ध छोड़ दिया है; किसी का मरना और जीना मेरे लिए एक-सा है । मैं किसी से शोक या प्रसन्नता प्रकट नहीं करता और न मुझे किसी से कुछ सम्बन्ध है । मेरा सम्बन्ध केवल उपदेश और धर्म से है शेष किसी चीज से नहीं । एक दिन रामानन्द ब्रह्मचारी की नरसिंह द्वारा के साधुओं से लड़ाई हो पड़ी, मैंने जाकर सन्धि करा दी ।

८ सितम्बर, सन् १८८१, बृहस्पतिवार को भोजन के पश्चात् चलने की तैयारी होने लगी । मैं जाकर किले से एक रथ, दो गाड़ियां, एक घोड़ा सवारी के लिए लाया । ठाकुर साहब ने अपने पिता ठाकुर भभूतसिंह, अपने गाहड़सिंह और रामकिशन आदि बीस प्रतिष्ठित मनुष्यों को विदा करने के लिए भेजा । उन्होंने आकर सत्कारपूर्वक कई बातें निवेदन कीं और चालीस रुपये वेदभाष्य की सहायता में अर्पण किये । स्वामी जी ने उन सबका यथायोग्य सत्कार किया और कुछ उपदेश देकर उनको विदा किया । कुल २० दिन यहां रहे । पांच बजे शाम के चलकर स्टेशन पर आये । स्टेशन मास्टर तथा तार बाबू आदि सब सरकारी कर्मचारियों को धर्मोपदेश दिया । १० बजे मारवाड़ वाली रेल[२३] में सवार होकर १२ बजे **नयानगर** में आ गये । रात्रि को सराय में ठहरे और प्रातःकाल डाक बंगले में डेरा किया ।

नयानगर अर्थात् ब्यावर का वृत्तान्त-९ सितम्बर, सन् १८८१ की प्रातः से लोगों का आना आरम्भ हो गया और दल के दल लोग महाराज के दर्शन को आने लगे । पंडित रामप्रताप, चैनराम दारोगा चुंगी और बाबू बिहारीलाल ईसाई आदि सज्जन आ गये और सब आवश्यकताओं का सन्तोषजनक प्रबन्ध कर दिया । स्वामी जी ने चांदमल को कहा कि तुम भोजन करके ऊंट लेकर मसूदा जाओ ताकि बाबूसाहब रावसाहब से भेंट कर लें । वे आज्ञा पाकर उसी दिन शाम से पहले मसूदा पहुंच गये ।

स्वामी जी यहां उपदेश में व्यस्त हुए । पादरी शूलब्रेड साहब[२४] और बाबू बिहारीलाल साहब से कई दिन परस्पर प्रेमपूर्वक बातचीत हुई और इसी प्रकार पंडित व्यास जी ने भी अपने समस्त सन्देह निवृत्त कर लिये । और कई सज्जनों ने सत्योपदेश से लाभ उठाया और वास्तव में उन्हीं दिनों से 'आर्यसमाज' का बीज बोया गया । एक श्रीमाली ब्राह्मण, जोशी सूरजमल किशनगढ़-निवासी का बेटा, यहां पर स्वामी जी का नैष्ठिक ब्रह्मचारी हुआ जिसका नाम स्वामी जी ने गुरुनन्द[२५] रखा और उसको विद्या पढ़ने में संलग्न किया । यहां स्वामी जी के कई व्याख्यान हुए । पन्द्रह दिन यहां रहे । क्वार बदि १३ के दिन यहां से मसूदा की ओर चले गये ।

रियासत बनेड़ा का वृत्तान्त

(६ अक्तूबर, सन् १८८१ से २६ अक्तूबर, सन् १८८१ तक)

आश्विन शुक्ला १४, शुक्रवार को तीन बजे स्वामी जी मसूदा से चलकर रात को यहां से नौ कोस की दूर पर स्थित हुरड़ा पहुंचे। वहां ६-७ घंटा विश्राम करक **रूपाहेली** गये और नगर के बाहर एक बाड़ी में उतरे। वहां के रईस ठाकुर लालसिंह स्वामी जी के पास आये और नवीन वेदान्त के विषय पर वार्तालाप करते रहे। यहां एक दिन और एक रात रहकर **रायला** गये और वहां एक रात विश्राम करके दूसरे दिन १० अक्तूबर, सन् १८८१ को चार घड़ी दिन चढ़े **बनेड़ा** पहुंचे और वहां जवाड़िया[२६] के एक मकान में उतरे।

पंडित बद्रीनाथ, जो स्वामी जी से अष्टाध्यायी पढ़ने के लिए गया था, कहता है कि वहां राजा साहब उनसे मिलने के लिए आते रहे। राजा साहब चार-पांच बार स्वामी जी के पास आये। स्वामी जी ने उनसे पूछा कि आप किस को मानते हो ? राजा साहब ने कहा कि वेद को। स्वामी जी ने कहा कि अच्छी बात है। एक दिन सामवेद का गायन महाराजा साहब के दो राजकुमारों[२६अ] ने सुनाया था। संस्कारविधि आदि बहुत सी पुस्तकें स्वामी जी से मांग कर ले गये और उन्हें देखकर बहुत-से प्रश्न लिखकर लाये और महीधर का भाष्य भी लाये। बहादुर पंडित[२७] राजगुरु भी साथ था। यह महीधर का मतानुयायी था। स्वामी जी ने जब महीधर का बहुत खण्डन किया तो उसने विवश होकर यह कहा कि आप महीधर की अनुपस्थिति में उसका खंडन करते हैं, ऐसा ही कोई आपकी अनुपस्थिति में आपका खंडन करेगा। सारांश यह कि पक्षपात में आकर बहादुर पंडित ने सत्य को स्वीकार न किया और चला गया। एक बात के कारण कि जिसको लिखना मैं बहुत बुरा समझता हूं, स्वामी जी ने उन्हें रोका जिससे वे फिर उनसे मिलने को न आये। सामवेद की संहिता स्वामी जी ने यहां नकल करवाई। सम्भवत: रामानन्द ने लिखी थी।

श्रीमान् राजा गोविन्दसिंह जी बहादुर, बनेड़ा नरेश ने कहा—"पहले मसूदा के ठाकुर साहब ने जो हमारे भानजे हैं, हमें एक पत्र लिखा[२८] था कि संस्कृत के विद्वान् स्वामी दयानन्द जी यहां आये हुए हैं। आपका उनसे अवश्य मेल-मिलाप होना चाहिये। जोशी जगन्नाथ उनका पुरोहित पत्र लेकर आया। हम सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और उत्तर लिखा कि अवश्य पधारें। तदनुसार चार-पांच दिन पश्चात् ९-१० बजे दिन के स्वामी जी पधारे। ठाकुर साहब मसूदा की ओर से एक तांगा, एक रथ, एक असबाब गाड़ी और चार सवार साथ थे। स्वयं स्वामी जी के साथ भी कुछ मनुष्य थे। दो ब्रह्मचारी थे जिन में एक अन्धा था।[२९] अन्धे को अष्टाध्यायी पढ़ाया करते थे। एक का नाम रामानन्द था।

जब स्वामी जी आये तो हमने नगर के बाहर **झालरा**[३०] मन्दिर के कूप पर दो तम्बू खड़े करा दिये। एक सामान के लिए और दूसरा उनके निवास के लिए। हम पिछले पहर उनके दर्शन को गये। हमने पंडित बहादुर जी राजगुरु से सम्मति की कि तीन-चार दिन तक तो स्वामी जी से कुछ प्रश्नोत्तर न करेंगे। तत्पश्चात् यदि अपने में शक्ति देखी तो कुछ पूछेंगे परन्तु जब हम स्वामी जी के पास गये तो दूर से उनकी विशाल मूर्ति देखकर ही हमें बड़ा आनन्द हुआ। उस समय स्वामी जी एक काले आसन पर कौपीन या लंगोट बांधे हुए थे और हमारे लिए एक ओर आसन दरी के ऊपर बिछवा रखा था। साधारण लोगों के लिए दरी थी। सब बैठ गये। सम्भवत: उस समय दो-तीन सौ के लगभग मनुष्य होंगे। हमने निवेदन किया कि महाराज ! आपने पधार कर हमको और नगर निवासियों को कृतकृत्य किया। हम आपके दर्शन से अति प्रसन्न हुए।

इस के पश्चात् स्वामी जी ने हमारी कुशल क्षेम पूछकर कहा कि कुछ प्रश्न कीजिये। प्रथम हमने इन्कार किया। जब उन्होंने फिर कहा तब हमने प्रश्न किया—

प्रश्न—जीव, आत्मा और परमात्मा क्या हैं और उनमें क्या भेद है ?

उत्तर—जीव और आत्मा को तो हम एक ही मानते हैं और परमात्मा परमेश्वर उससे न्यारा है । हमने गीता के निम्नलिखित दो श्लोक पढ़े—

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥
उत्तमः पुरुषस्त्यवन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥

—अध्याय १५, श्लोक १६, १७ ।

स्वामी जी ने कहा कि गीता प्रामाणिक ग्रन्थ नहीं है,[३१] हम गीता को प्रामाणिक नहीं मानते । आप वेद का पाठ करते हैं और आपके यहां वेद की बहुत चर्चा है । वेद परम मान्य हैं, वेद का प्रमाण दीजिये । इस पर हम मौन हो गये । पहले दिन केवल इतनी बातें हुई ।

दूसरे दिन स्वामी जी ने हमको चारों वेदों के दर्शन कराये क्योंकि हमारी इच्छा थी । हमारे यहां केवल यजुर्वेद की चर्चा है ।[३२] स्वामी जी ने ऋग्वेद की ऋचा **'अग्निमीड़े'** का उदात्त उच्चारण किया और ऊपर अंगुली खड़ी की । वह हमारे विचार में अनुदात्त है; अंगुली खड़ी न होनी चाहिये । हमने आक्षेप किया । स्वामी जी ने कहा कि हम अंगुली खड़ी करने या हिलाने को प्रमाण नहीं मानते हैं, यह तो हमने केवल संकेत किया था । फिर और व्यवहार की बातें होती रहीं ।

स्वामी जी के पास तीन वेद अर्थात् ऋग् यजु; साम तो स्वरसहित थे परन्तु अथर्ववेद पर स्वर लगे हुए नहीं थे ।

हमारे विचार में स्वामी जी महाराज अष्टाध्यायी और महाभाष्य को बहुत अच्छी प्रकार जानते थे और निघण्टु निरुक्त के कोष से भी बहुत अच्छी प्रकार परिचित थे और उनके अनुसार ही वे वेदों का अर्थ करते थे । हमारे सरस्वती-भंडार के निघण्टु से स्वामी जी ने अपने निघण्टु को मिलाया; एक-दो शब्दों का भेद था जो स्वामी जी ने मिलाकर ठीक कर लिया ।

हम प्रतिदिन तीसरे पहर जाया करते थे और इसी प्रकार सैकड़ों लोग जाते थे । हमारे दोनों राजकुमारों से 'सामवेद' का गायन सुना । फिर पदक्रम में स्वामी जी ने उनकी परीक्षा ली और सुनकर स्वामी जी बहुत प्रसन्न हुए और पारितोषिक रूप में 'वर्णोच्चारणशिक्षा'[३३] की पुस्तक दी । यजुर्वेद की याज्ञवल्क्य शिक्षा की उन्होंने यहां से नकल कराई थी परन्तु अब वह ग्रन्थ किसीने बम्बई में प्रकाशित कराया है और अशुद्ध कर दिया है; ठीक नहीं छापा गया । १६-१७ दिन तक यहां रहे थे ।

एक बार ऊपर किले में भी हम उनको हाथी पर बिठला कर लाये थे । यहां धर्मशास्त्र और वेद का उपदेश भी दिया था और सत्यधर्म पर रहने का अति उत्तम व्याख्यान दिया था । वेदांग की उनकी भाष्य की हुई कुछ पुस्तकें हमने मोल ली थीं ।

अन्त को जाने से पहले हमारे पूछने पर उस पहले प्रश्न का यह उत्तर दिया कि जैसे "मन्दिर और आकाश एक नहीं और न पृथक् हैं और पृथक् भी हैं; इसी प्रकार ब्रह्म और जीव व्याप्य-व्यापक होने से एक नहीं हैं और ब्रह्म के सर्वव्यापक होने से जीव से ब्रह्म न्यारा भी नहीं । इस कारण ब्रह्म और जीव एक नहीं हैं, पृथक्-पृथक् हैं ।" **'गोकरुणानिधि'** भी हमको सुनाई थी जिसको सुनकर हमको बहुत आनन्द प्राप्त हुआ था । चक्रांकितों को एक दिन शरीर तपाने पर उन्होंने कहा कि

यदि शरीर अग्नि में जलाने से मुक्ति होती है तो तुम भड़भूजों के भाड़ में जा पड़ो ताकि तुम सबकी मुक्ति हो जाये। प्राय: चक्रांकित और नगर के लोग उनके पास जाते और उनके उपदेशों को सुना करते थे। यह भी कहा कि वेद सब के लिए हैं, यहां तक कि चांडाल तक के लिए भी हैं परन्तु कुछ प्रमाण न दिया (संवाददाता ने निवेदन किया कि यह बात आपकी ठीक नहीं क्योंकि इस विषय का प्रमाण तो प्राय: आर्य लोग जानते हैं तो स्वामी जी क्यों न जानते होंगे। कहा कि यह कौनसा प्रमाण है तब मैंने यजुर्वेद अध्याय २६ का मन्त्र सुनाया)[३४] तब महाराज और उनके पुरोहित ने कहा कि हां, स्वामी जी ने यह प्रमाण तो अवश्य दिया था, अब हमें स्मरण आ गया।

अब उनके जाने की सम्मति हुई तो हमने रथ, घोड़ा, सेजगाड़ी और सामान की गाड़ी देकर चित्तौड़ स्थित अपने वकील के नाम कागज लिख दिया और महाराज को अच्छी प्रकार विदा किया। वहां से स्वामी जी **भीलवाड़ा** और **सोनियाणा** होते हुए दूसरे दिन **चित्तौड़** पहुंच गये थे।

चित्तौड़गढ़ का विस्तृत वृत्तान्त

(२७ अक्तूबर, सन् १८८१ से २० दिसम्बर, सन् १८८१ तक)

स्वामी जी ने **बनेड़ा** रियासत से कविराजा श्यामलदास जी महामहोपाध्याय[३५] को पत्र लिखा था कि हमको चित्तौड़गढ़ २७ अक्तूबर को पहुंचना है। आप स्थान आदि का प्रबन्ध कर रखना ताकि कष्ट न हो। अभी तक केवल पत्रव्यवहार की भेंट थी परन्तु दैवयोग से उन दिनों कविराजा जी रुग्ण थे इसलिए स्वामी जी भीलवाड़ा और सोनियाणा से होते हुए दूसरे दिन चित्तौड़ पधारे और घमेरी नदी[३६] के पश्चिमी तट पर ओंढ़ी के महादेव[३७] के मन्दिर में ठहरे। सूचना मिलने पर कविराजा ने महाराणा साहब से (जो उन दिनों रिपन के गवर्नरी दरबार के अवसर पर वहां उपस्थित थे) निवेदन करके एक डेरा और बिछावन (फर्श आदि) और भील कम्पनी का पहरा (जिसको देखने का स्वामी जी को चाव था) वहां भिजवा दिया। प्रबन्ध की आज्ञा आदि लेकर उदयलाल पुरोहित स्वामी जी के पास आया।

उसी स्थान पर नदी के पूर्व की ओर पावटा के मन्दिर में स्वामी जीवनगिरि जी और आत्मानन्द गिरि जी ठहरे हुए थे। उन्होंने शास्त्रार्थ को कहा। स्वामी जी बड़ी प्रसन्नता से तैयार हुए कि अवश्य शास्त्रार्थ होना चाहिये, परन्तु कविराजा ने इस विचार से कि दोनों उन्हीं के द्वारा आये थे, शास्त्रार्थ न होने दिया।

स्वस्थ होने पर कविराजा जी किले से प्रतिदिन स्वामी जी के पास आते रहे और अपने साथ तैलंगी[३८] सुब्रह्मण्य शास्त्री को लाते रहे। कविराजा जी की प्रेरणा से स्वामी जी और शास्त्री जी के मध्य न्याय शास्त्र के पदार्थों पर बातचीत हुई। स्वामी जी ६ पदार्थ मानते थे और शास्त्री जी सात। स्वामी जी अभाव को न मानते थे। छ:-सात दिन तक कविराजा शास्त्री जी को ले जाते रहे और प्रतिदिन इसी विषय पर बातचीत होती रही। यद्यपि अच्छी प्रकार शास्त्री जी ने न माना परन्तु कविराजा जी कहते हैं कि स्वामी जी की युक्तियां प्रबल थी।

कविराजा जी का आना-जाना आरम्भ होने पर उदयपुर राज्य के समस्त प्रतिष्ठित सरदार भी आने-जाने लगे। इनमें असीन[३९] के राव अर्जुनसिंह जी, भीलवाड़ा के राजा फतहसिंह जी, शाहपुरा के राजाधिराज नाहरसिंह जी, कानौड़ के रावत उमेदसिंह जी और शावड़ी[४०] के राजा राजसिंह जी थे। इसी प्रकार और प्रतिष्ठित रईस आने-जाने लगे थे और अपनी शंका निवारण करते रहते थे।

लार्ड रिपन साहब के दरबार के पश्चात् सम्भवत: १५ नवम्बर, सन् १८८१ को स्वामी जी को श्री हजूर राणा साहब ने बुलाया था तदनुसार वे गये। तत्पश्चात् दरबार भी श्री स्वामी जी के डेरे पर गये और देर तक वार्तालाप करते

रहे। स्वामी जी जब पहली बार राणा साहब से मिले तो वहीं धर्म के साथ राजनीति का उपदेश दिया था और कहा था कि आप सिंह के तुल्य हैं। पहरे वाली स्त्रियां जो कन्या के समान हैं, उनको महलों में बिल्कुल न डालना चाहिए।[४१] दरबार ने उसी दिन से निश्चय जान लिया कि केवल यही मनुष्य है जो बिना लाग-लपेट के सत्योपदेश करता है और हृदय से उनके उपदेश को पसन्द किया।

मंगसिर सुदि १४, संवत् १९३८, रविवार तदनुसार ४ दिसम्बर, सन् १८८१ को दूसरी[४२] बार राणा साहब स्वामी जी के दर्शनार्थ चित्तौड़ में नदी के तट पर पधारे और कई घंटे बैठकर उनके सत्योपदेश से साथियों सहित लाभ उठाया।

एक दिन ब्राह्मणों ने आक्षेप किया कि गायत्री मन्त्र सब के सामने न पढ़ना चाहिये। स्वामी जी ने इस का खंडन किया और स्वयं उच्चस्वर से सबके सामने पढ़ा। चित्तौड़ के प्रशासक ठाकुर जगन्नाथ जी को स्वयं गायत्री मन्त्र का उपदेश दिया और कहा कि यह ईश्वर की विद्या सबके लिए है, किसी विशेष व्यक्ति के लिए नहीं। उनका किया हुआ पाठ मुसलमान आदि ने भी सुना।

यद्यपि जीवनगिरि जी ने प्रकटरूप में प्रतिष्ठा प्राप्ति के लिए ही शास्त्रार्थ का विचार प्रकट किया था, परन्तु स्वामी जी के सामने उसका ठहरना कठिन था और उसके मन में ईर्ष्या भी अधिक थी। जब स्वामी जी का राणा साहब ने मान किया तो जीवनगिरि जी बहुत दु:खित हुए और जब स्वामी जी ने पौने दो मास वहां रहकर चलने की तैयारी की तो दरबार ने पहले बग्घी स्वामी जी के डेरे पर भिजवाई। वहां से सवार होकर स्वामी जी किले में पधारे। दरबार में उदयपुर आने को कहा और अनुरोध किया। उन्होंने उत्तर दिया कि हम बम्बई होकर आवेंगे। महाराणा साहब ने अन्त को पांच सौ रुपया मार्ग की आवश्यकताओं के लिए भेंट किया और दो सौ रुपया अन्य दरबारियों ने। तत्पश्चात् आदर सत्कारपूर्वक स्टेशन पर पहुंचाने गये और २० दिसम्बर, सन् १८८१ को स्वामी जी रेल में चढ़कर २१ को इन्दौर पधारे।

जब जीवनगिरि जी ने स्वामी जी को चलते समय सात-सौ रुपये भेंट किये जाने का समाचार सुना तो कपड़ों से बाहर हो गये, जो मुंह में आया कहते रहे और झट चलने की तैयारी कर दी। राणासाहब को उनके क्रोध का वृत्तान्त विदित हो गया। उनके न मिलने पर भी राणा साहब ने उनके लिए पांच सौ रुपये भेजे परन्तु वे क्रोध से जले हुए थे; रुपया न लिया और कहा कि तुमने दयानन्द का मान किया है इसलिए हम नहीं लेते। इसी क्रोध में आग-बबूला हुए वहां से चले गये।

चित्तौड़ का आनन्ददायक समाचार—"यद्यपि आठ-सात वर्ष अथवा कुछ न्यूनाधिक समय से आर्यावर्त देश में स्थान-स्थान पर आर्यसमाज स्थापित हैं और देश तथा धर्म की उन्नति के लिए श्रेष्ठ तथा दृढ़ साधन बने हुए हैं। इन सभाओं के उद्देश्य भी अब सब पर प्रकट हो गये हैं चाहे प्रथम जनता की समझ में कदाचित् न आये हों परन्तु यह सब कुछ होने पर भी अपने देश के धनाढ्य इधर बहुत कम ध्यान देते हैं और साहस को काम में नहीं लाते। क्या वे इस अवसर को प्राप्त कर सन्तोष अनुभव नहीं करते? मेरी सम्मति में तो इस उपेक्षा का कारण इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं कि प्रथम तो कुछ विशेष-विशेष व्यक्तियों को छोड़कर ये लोग प्राय: विद्याहीन हैं और इसी कारण इस देश और देशवालों के कल्याण पर दृष्टि नहीं करते और दूसरे अदूरदर्शी लोगों ने छल और कपट का जाल बिछा रखा है और समाजों की ओर से उनको धोखे में डाल रखा है, परन्तु बड़ी प्रसन्नता की बात है कि इसके विपरीत इन दिनों सम्पन्न और धनाढ्य तो एक ओर रहे हमारे देश के राजा महाराजाओं का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है और सहानुभूति और सहायता की थोड़ी बहुत सम्भावना उनकी ओर से प्रकट की गई है। क्या हम इन बातों को देखकर नहीं समझ सकते कि अब हमारे देश के अच्छे दिन आते दिखाई देते हैं और दुर्भाग्य और ह्रास के सामान बिगड़ते जाते हैं। निस्सन्देह ऐसा ही समझना चाहिये और इस पर अभिमान करना चाहिये।

"यह भूमिका इस विस्तृत वर्णन की है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी जो नगर-नगर में उपदेश करते हुए २७ अक्तूबर, सन् १८८१ को रियासत मेवाड़ में पहुंचे और चित्तौड़गढ़ में निवास किया तो उदयपुरनरेश श्री महाराज महाराणा साहब ने उनके आगमन का समाचार सुनते ही अपना श्रेष्ठ डेरा उनके निवास के लिए खड़ा करा दिया और आवश्यक सामग्री भी तत्काल जुटा दी। रक्षा की दृष्टि से दो सिपाही भी गारद के रूप उनके निवास स्थान पर नियत कर दिये और दोनों समय के खाने-पीने का यथायोग्य प्रन्बध कर दिया और स्वयं भी देख भाल करते रहे। सारांश यह कि महाराणा साहब ने न आदर-सत्कार में कोई त्रुटि रखी और न अतिथि सत्कार के नियमों का पालन करने में किसी प्रकार की कोई उपेक्षा की।

"स्वामी जी ने पहुंचने के एक या दो दिन पश्चात् नित्य नियमानुसार उपदेश करना आरम्भ किया और व्याख्यानों का क्रम जारी रखा तो श्रोताओं और उत्सुकजनों की भीड़ रहने लगी। महाराणा साहब के सरदार और साथी तो नित्यप्रति उपदेश में आते और लाभ उठाते ही रहे। दैवयोग से रियासत उदयपुर के सरदार, रईस और आसपास के राजा भी जो गवर्नर जनरल के दरबार के कारण वहां आये हुए थे, स्वामीजी के निवासस्थान पर पधारे और उपदेश सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। यहां तक कि उनमें से बहुतों ने तो मिलकर स्वामी जी से प्रार्थना की कि कृपा करके हमारे राज्यस्थानों में भी अवश्य पधारिये और उपदेश से लाभान्वित कीजिये, जिसको स्वामी जी ने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया। परन्तु बम्बई से लौटने के समय आने का वचन दिया।

"इसी बीच श्रीमहाराज महाराणा साहब स्वयं भी दो बार स्वामी जी के निवासस्थान पर पधारे और उपदेश सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। एक दिन उनको अपने राज्यस्थान पर भी ले गये और उनके पधारने तथा विशेषतया व्याख्यान देने का बहुत धन्यवाद किया। बार-बार महाराणा साहब ने कभी दरबार में और कभी उपदेश से लौटते समय, अपने साथियों और सरदारों से कहा कि देखो, स्वामी जी से सच्चे और देशहितैषी महात्मा के विषय में दुष्ट लोग क्या-क्या कहा करते और अपनी हठधर्मी से कैसे-कैसे झूठे आरोप उनपर लगाया करते थे। यदि आज उनके दर्शन न होते तो उनकी ओर से जो सन्देह हृदयों में विद्यमान थे, वे कब दूर होते? यही नहीं, नानाप्रकार के दूसरे बुरे विचार उनकी ओर से बढ़ जाते। ऐसे अदूरदर्शियों की बात का जो अकारण किसी की बुराई करें, भविष्य में क्या विश्वास करना चाहिये और ऐसे दुष्ट लोगों के वचनों पर जो अपने स्वार्थ के लिए औरों को धोखे में डालते हैं, कैसे निर्भर किया जाये। केवल महाराणा साहब का ही यह विचार नहीं था अपितु अन्य सभी सरदारों और राजाओं की भी यही अवस्था रही कि जितने सन्देह विरोधियों ने उनके हृदयों में स्वामी जी की ओर से डाले थे वे सब दूर हो गये और अहितचिन्तक लोग उलटे, उन की दृष्टि में गिर गये।

"सारांश यह कि स्वामी जी ने दो मास के लगभग वहां निवास किया और अपने सत्योपदेश से श्रोताओं और उत्सुकजनों को अत्यन्त लाभ पहुंचाया। स्वामी जी की रचनाओं में से बहुत-सी पुस्तकें महाराणा साहब ने मोल लीं। वेदभाष्य भी मासिक लेना आरम्भ कर दिया और कुछ सरदारों और पंडितों ने भी ग्राहकों की सूची में नाम लिखवा दिए। चलते समय स्वामी जी महाराणा साहब की भेंट को राज्यस्थान पर गये और नाना प्रकार की बातचीत के पश्चात् विदा हुए तो महाराणा साहब ने पांच सौ रुपया मार्गव्यय के लिए और सरदारों ने कुछ कम दो सौ रुपये भेंट किए और फिर शीघ्र दर्शन देने का वचन ले लिया। चूंकि अपने देश के ऐसे दृढ़ संकल्प और धार्मिक राजा महाराजाओं की हितचिंता और कृपा के लिए धन्यवाद देकर ही उत्तरदायित्व पूर्ण नहीं हो सकता। अतएव उनके लिए इस प्रार्थना पर सन्तोष किया जाता है—'रंगों बूये गुलशने हशमत तरक्की पर रहे। जब तलक है गुलशने आलम में जोशे रंगो बू।' (अर्थात् जब तक इस संसार रूपी उद्यान में रूप और गन्ध की अधिकता है तब तक इनके सम्मान-रूपी उपवन का रूप और गन्ध उन्नति करता रहे)। आशा

है कि जैसी और जिलों में धर्मचर्चा आजकल हो रही है वैसी ही, प्रत्युत उससे भी अधिक, अब राजपूताने में भी देखने को आयेगी ।" (**'आर्यसमाचार', मेरठ,** माघ मास, संवत् १९३८; खंड ३, संख्या १०, पृष्ठ ३२७-३३०)

'भारतसुदशा प्रवर्तक', जनवरी, सन् १८८२, पृष्ठ २० से २२ तक में भी लगभग ऐसा ही लिखा है ।

रियासत इन्दौर—(२१ दिसम्बर, सन् १८८१ से २७ दिसम्बर, सन् १८८१ तक) "चित्तौड़ से चलकर स्वामी जी इन्दौर पहुंचे परन्तु इन्दौर नरेश श्री महाराजा तुकोजी राव होल्कर अपने राज्यस्थान से कहीं बाहर गये हुए थे । उनके जज श्रीनिवास जी ने स्वामी जी को बड़े सम्मानपूर्वक ठहराया और सब प्रकार का आदर-सत्कार किया । एक सप्ताह तक वहां ठहर कर स्वामी जी ने उपदेश दिया और श्रोताओं और उत्सुकजनों को लाभ पहुंचाया । इसके पश्चात् स्वामी जी बम्बई की ओर चले गये ।" **'आर्यसमाचार'** माघ मास, संवत् १९३८, पृष्ठ ३२९-३३१) ।

यह बात जब महाराजा साहब को राजधानी में आकर विदित हुई तो बहुत दुःख प्रकट किया और स्वामी जी को बम्बई में तार दिया कि अब मैं राजधानी में आ गया हूं कृपा करके शीघ्र दर्शन दीजिये । स्वामी जी ने उत्तर दिया कि अब तो हमारा आना यहां से लौटते समय होगा । परन्तु संयोग की बात है कि जब मई मास, सन् १८८२[४३] में लौटकर आये तो भी महाराजा साहब राजधानी में नहीं थे ।[४४] यह समाचार सुनकर स्वामी जी महाराज फिर राजधानी की ओर नहीं फिरे । थोड़े दिन खंडवा में ठहर कर सीधे **उदयपुर** की ओर चले आये ।[४५]

रियासत उदयपुर मेवाड़

२५ जुलाई, सन् १८८२ तदनुसार सावन सुदि १०, संवत् १९३९, मंगलवार से १ मार्च, सन् १८८३ तदनुसार फागुन बदि ७, बृहस्पतिवार, संवत् १९३९ प्रातःकाल तक ।)

२५ जुलाई, सन् १८८२ को स्वामी जी नवाब के **जावरा** से रेल द्वारा **चित्तौड़** पधारे । चित्तौड़ के प्रशासक ठाकुर जगन्नाथ जी ने रियासत की ओर से उनके लिए यथायोग्य प्रबन्ध किया । चूंकि वर्षा ऋतु थी, इसलिए रियासत से सवारी आदि आने में एक सप्ताह से अधिक लग गया । जो लोग दर्शन को आते रहे उन्हें धर्मोपदेश सुनाते रहे, कोई विशेष व्याख्यान नहीं हुआ ।

स्वामी जी २६ जुलाई, सन् १८८२ को चित्तौड़गढ़ से लिखे एक पत्र में ला० कालीचरण, मन्त्री आर्यसमाज फर्रूखाबाद को लिखते हैं कि अनुमान है कि चातुर्मास्य वहीं होगा ।

चित्तौड़ से खाहड़ी[४६] तक रेल में और वहां से मियाने में बैठे । चूंकि मियाना[४७] कोमल था और ये बड़े हृष्ट-पुष्ट और बलवान् थे, मियाना मार्ग में टूट गया जिसके कारण उनको कोई कोस तक पैदल जाना पड़ा । फिर उदयपुर से हाथी और बग्घी पहुंच गये जिस पर चढ़कर स्वामी जी ११ अगस्त, सन् १८८२ के दिन **उदयपुर** पहुंच कर नौलखा बाग के महलों में जिसको अब 'सज्जननिवास' कहते हैं, उतारे गये । राज्य की ओर से सब प्रबन्ध हो गये । रामानन्द ब्रह्मचारी[४८], पंडित भीमसेन[४९] और महाशय आत्मानन्द जी[५०] उनके साथ थे ।

स्वामी जी का व्यक्तित्व, विचारधारा और दैनिक कार्यक्रम

कविराजा श्यामलदास महामहोपाध्याय ने वर्णन किया "एक दिन नौलखा बाग से मैंने एक फूल सूंघने के लिए तोड़ा । स्वामी जी ने कहा कि यह अच्छा नहीं किया । मैंने कहा कि क्या मुझसे पाप हुआ ? कहा कि और पाप तो नहीं, परन्तु यह फूल जो यहां रहता और इसके द्वारा जितनी यहां की वायु शुद्ध होती, वह अब नहीं होगी । उसकी हानि का यह दोष तो अवश्य हुआ । तब मैं लज्जित हो गया ।"

हमारी चारण पाठशाला में उस समय ५०-६० विद्यार्थी पढ़ते थे। स्वामी जी ने उनकी परीक्षा ली, अपनी ओर से भोजन खिलाया और शिक्षा दी कि वेद और वेदांग के पढ़ने का ध्यान रखना और अपने बनाये 'वेदाङ्गप्रकाश' को पढ़ने की आज्ञा दी। स्वामी जी ने रियासत के समस्त अमीरों के लड़कों की शिक्षा की यह व्यवस्था नियत की कि उनके लिए एक पाठशाला बनाई जाये और उसमें संध्या आदि का प्रबन्ध किया जावे। तदनुसार भूमि का नक्शा बना और स्वामी जी और दरबार ने उसका अवलोकन भी किया परन्तु दरबार की रुग्णता के कारण वह कार्यरूप में परिणत न हो सका। उसमें शस्त्र और शास्त्र दोनों को सिखलाने की सम्मति दी थी। यहां की सरकारी पाठशाला में कक्षाक्रम से विभाग भी स्वामी जी ने किया था। कई एक अध्यापकों ने पढ़ाने में आपत्ति की परन्तु दरबार ने आज्ञा दी कि यदि नौकरी करनी है तो इसी प्रकार पढ़ाओ; अन्यथा त्यागपत्र दे दो। समस्त न्यायालयों में देवनागरी लिपि के प्रयोग पर बल दिया। कुछ अरबी के शब्द जो न्यायालय के कानून में व्यवहृत होते थे, उनके स्थानीय संस्कृत शब्द न मिलते थे, वे स्वामी जी ने लिखवा दिए।

आरम्भ में नित्य प्रातःकाल उठकर **'गोवर्धनविलास'**[५१] पर्वत तक जो यहां से दो-तीन मील पर है, जाया करते थे परन्तु जब राणा जी ने प्रातःकाल आना आरम्भ किया तो केवल गुलाब बाग में ही उसी अनुमान के अनुसार भ्रमण कर लिया करते थे।

दैनिक कार्यक्रम-बाग के भ्रमण से निबट कर वहां बाग के दरीघर के चबूतरे की चौकी पर बैठकर ध्यान किया करते थे। उपासना और समाधि के पश्चात् डेरे पर जाकर हाथ-मुंह धो कर दूध और ब्राह्मी पीते थे; फिर वेदभाष्य किया करते थे। १२ बजे नहा-धोकर भोजन से निवृत होते। फिर दो-चार करवट लेकर पत्रों का उत्तर देते या प्रूफ देखते। फिर ४ बजे वहां से उठकर जाजम बिछ जाती; लोग आने आरम्भ हो जाते। सब मतों के लोग आते; प्रश्नोत्तर हुआ करते। दीपक जलने पर सभा विसर्जित होती थी। दरबार स्वयं भी श्रोताओं में सम्मिलित होते। पहले-पहले तो नहीं परन्तु पीछे से स्वामी जी के सामने दरबार के लिए गद्दी लग जाती थी।

एकदिन प्रातःकाल जब स्वामी जी ध्यान से निवृत्त हुए तो दरबार ने प्रश्न किया कि जब किसी मूर्तिमान् वस्तु को चाहे वह कैसी ही हो आप नहीं मानते, तो फिर ध्यान किसका करें ? स्वामी जी ने उत्तर दिया कि कोई चीज मान कर ध्यान नहीं करना चाहिए। ईश्वर सर्वशक्तिमान्, सर्वसृष्टिकर्ता और सृष्टि को एक क्रम से चलाने वाला, नियन्ता, पालनकर्ता और ऐसे ही अनेक ब्रह्माण्डों का स्वामी और नियन्ता है, उसकी ऐसी-ऐसी महिमा का स्मरण करके अपने चित्त में उसकी महिमा का ध्यान करना चाहिए अर्थात् इसी प्रकार समस्त विशेषणों से युक्त परमेश्वर को स्मरण करके उसका ध्यान करना और उसकी अपार महिमा का वर्णन करना, संसार के उपकार में चित्त की वृत्ति लगाने की प्रार्थना करना, यह ध्यान है। मैंने भी जब एक बार ऐसा प्रश्न किया था तब भी यही उत्तर दिया था।

स्वामी जी नवीन वेदान्त के विषय में कहते थे कि जीव और ब्रह्म पृथक्-पृथक् हैं; एक नहीं। यद्यपि उनकी युक्ति के सामने किसी की शक्ति नहीं थी परन्तु मेरा पूर्ण सन्तोष नहीं हुआ। स्वामी जी के विषय में मेरा विचार है कि ऐसा साहस वाला मैंने आजतक कोई मनुष्य नहीं देखा। मैंने कई बार राजनीति के नियम के अनुसार अर्थात् पालिसी से काम करने को कहा परन्तु उन्होंने मेरी ऐसी किसी बात को भी न माना।[५२]

मैंने और दरबार ने कई बार स्वामी जी को कहा कि आप मूर्तिपूजा का खंडन न करें; साधारण लोग विरोधी हो जाते हैं। पोलिटीकल (Political) चाल पर आप और विषयों का उपदेश करें ताकि शीघ्र आपकी बात लोग मान लें। स्वामी जी ने इस का उत्तर दिया कि अब कुछ ही हो, परन्तु हम (आप लोगों की) ऐसी बातों को न मानेंगे।[५३] हम सत्य को नहीं छोड़ सकते और न छुपा सकते हैं, चाहे कोई कितना ही विरोधी हो। यह सुनकर हम चुप हो रहे।

तत्काल उत्तर देने में इतने प्रवीण थे कि दूसरे के लिए वैसा होना असम्भव है । वे सच्चे पुरुष थे, झूठ उनके मन में बिलकुल नहीं था और किसी ऐसी बात पर जो झूठी हो वे आग्रह (हठ) नहीं करते थे । परोपकारी और देशहितैषी सबसे बढ़कर थे । उनके इन सिद्धान्तों में कभी अन्तर नहीं आया । मैं उनको पूर्ण श्रेष्ठ पुरुष समझता हूं ।

स्वामी जी का यह विचार था कि अपने देश के वैद्यों की औषधियों द्वारा चिकित्सा करानी चाहिये । परन्तु मैं इस कारण कि समय के हेर-फेर से वर्तमान वैद्य लोगों में अभी ऐसी शक्ति नहीं, केवल इसी बात में उनसे सहमत नहीं हूं । परन्तु मैं यह अवश्य सोचता हूं कि किसी समय तो अवश्य ही अपनी देशी चिकित्सा-पद्धति पूर्णतया उन्नति के शिखर पर थी । देशी कपड़ा पहनने को भी कहा करते थे । मैं निपट श्रद्धालु नहीं हूं, सन्देही भी हूं परन्तु मुझे स्वामी जी की बातों पर बहुत ही कम सन्देह हुआ है, यही नहीं, मुझे तो उनके कथन पर पूर्णतया विश्वास है । उनकी मृत्यु से देश की बड़ी हानि हुई । गोरक्षा के बहुत इच्छुक थे । मैंने निवेदन किया कि आप ऐसा प्रबन्ध करें कि जिससे देश को अधिक लाभ पहुंचे और वेदविद्या का प्रचार हो अर्थात् कोई वेदशाला बनाइये जिसमें केवल वेदों की शिक्षा हो । तब स्वामी जी ने वैदिकनिधि (वैदिक फंड) का प्रस्ताव किया । यदि वे जीवित रहते तो बहुत अच्छा प्रबन्ध हो जाता ।

एक दिन मैंने निवेदन किया कि आपका स्मारक चिह्न बनाना चाहिये । कहा कि 'नहीं; प्रत्युत मेरी भस्मी को किसी खेत में डाल देना, काम आयेगी । कोई स्मारक न बनाना, ऐसा न हो कि (मेरी) मूर्तिपूजा आरम्भ हो जाए ।' मेरा (मुझ शामलदास का) स्वयं भी पहले विचार था कि अपना स्टैच्यू (प्रस्तर मूर्ति) बनवाऊं । कहा कि 'कविराजा जी ! ऐसा न करना, मूर्तिपूजा का मूल यही है ।' उनकी समस्त बात श्रेष्ठ थीं । ब्रह्मचारी तो प्रथम श्रेणी के थे । जहां तक उनसे हो सकता था स्त्रियों को देखते ही न थे । उनका कथन था कि वीर्य का नाश आयु का नाश है । यह वीर्य बड़ा रत्न है । यदि मार्ग में जाते हुए कहीं कोई स्त्री आ जाती तो उस ओर पीठ कर लिया करते थे । उनकी ये बातें ढोंग नहीं प्रत्युत सच्ची और हार्दिक थीं; क्योंकि वे एक महान् जितेन्द्रिय थे । विषयों के प्रति उनकी कभी कोई चेष्टा नहीं दिखाई दी । अपितु, स्वामी गणेशपुरी[५४], जो राग रंग कराते, स्त्रियों को पढ़ाया करते थे और आजकल जोधपुर में हैं, स्वामी जी उनकी बहुत हंसी उड़ाया करते थे और कहते कि यह उनका स्पष्ट ढोंग और व्यभिचार है । कहते थे कि साधु को चाहिये कि स्त्री को आंख से भी न देखे क्योंकि यह तो ब्रह्मचारी की आंख में घुस जाती है ।"

महाराणा स्कूल के सैकण्ड मास्टरसाहब,[५५] कायस्थ ने वर्णन किया—"एकदिन यहां बाग में स्वामी जी से एक मुसलमान वकील बातें करते हुए कहने लगे कि यह जो अच्छे-अच्छे घरानों की अच्छी-अच्छी सुन्दर स्त्रियां वेश्या बन जाती हैं, इसका क्या कारण है ? स्वामी जी ने कहा कि हमें ऐसे भड़वेपन की बातें पसन्द नहीं, किसी और से पूछना ।"

ठाकुर जगन्नाथ जी, वर्तमान प्रशासक जहाजपुर[५६] ने वर्णन किया—"स्वामी जी के उदयपुर आने पर, मैं भी, कुछ दिन अनुज्ञा लेकर चित्तौड़ से उदयपुर आ गया था । मुझे और मेरी साली को स्वामी जी ने सन्ध्या का उपदेश दिया था और मेरे सामने की बात है कि उदयपुर में दरबार को मनुस्मृति पढ़ाते हुए कहा कि यदि स्वामी धर्म के विषय में (धर्म के अनुकूल) आज्ञा देवे तो पालन करनी चाहिये और यदि अधर्म के विषय में हो तो नहीं । इस पर ठाकुर मनोहरसिंह जी, रईस सरदारगढ़ ने निवेदन किया कि ये हमारे उच्चतर अधिकारी हैं; यदि आज्ञा देवें और हम उसको अधर्म समझ कर न मानें तो ये हमारी जागीर जब्त कर लें । स्वामी जी ने कहा कि कुछ चिंता नहीं; यदि धर्म के लिए सम्पति या जागीर चली जावे तो अधर्म का खाने से और अधर्म के काम करने से मांग कर खाना भी अच्छा है ।"

पंडित ब्रजनाथ जी ने वर्णन किया—"एक दिन बाग में स्वामी जी किसी से बात कर रहे थे । वहां एक गुरदयाल नामक देसी ईसाई बार-बार यह कहता रहा 'अजी मेरे प्रश्न का उत्तर दो, अजी मेरे प्रश्न का उत्तर दो ।' स्वामी जी ने कहा 'जब बात समाप्त हो जाय तब तुम बोलना ।' लोगों ने भी रोका परन्तु उसने न माना और बार-बार अपने प्रश्न का उत्तर मांगता रहा । स्वामी जी ने उपस्थित लोगों से कहा "आप तनिक सन्तोष करें; पहले मैं इसी का उत्तर दे दूं ।" सब लोगों का ध्यान उधर आकर्षित हो गया । स्वामी जी ने कहा 'अच्छा बोल ! तेरा क्या प्रश्न है ?' उसने कहा कि 'हम कहां से आये हैं, कहां हैं और कहां जायेंगे ? स्वामी जी ने कहा सुनो, तुम पोल से आए हो, पोल में हो और पोल में जाओगे । वह कहने लगा कि 'हैं', 'हैं' । स्वामी जी ने कहा किनारे बैठकर सोच, तेरा उत्तर मिल गया । हम सब लोग उसके प्रश्न करने पर चकित थे कि ऐसे प्रश्न का देखिये स्वामी जी क्या उत्तर देंगे परन्तु उत्तर सुनते ही स्वामी जी की बुद्धिमत्ता और विद्वत्ता का लोहा सभी मान गये ।"

पंड्या मोहनलाल विष्णुलाल[५७] सदस्य एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता ने वर्णन किया—"पहले-पहले मैंने और जगन्नाथ वर्तमान इन्स्पैक्टर स्कूल तथा पंडित ब्रजनाथ ने स्वामी जी से पढ़ना आरम्भ किया । यह देखकर महाराणा साहब की भी पढ़ने की इच्छा (उत्पन्न) हुई । उनके साथ फिर हम तीनों के अतिरिक्त मार्ट किशन जी[५८], उजल फतहकरन जी[५९] और पंडित रामप्रसाद विक्रमाश्रय[६०] पढ़ते थे । दरबार नें सारा योगदर्शन और गौतमसूत्र[६१] तथा कुछ वैशेषिक सूत्र पढ़े और शेष का सार (स्वामी जी ने) उन्हें बतला दिया और कहा कि यही सब शास्त्रों का मूल है । मनुस्मृति पढ़ाने से पहले कुछ व्याकरण स्लेट पर राणा साहब को स्वामीजी ने सिखला दिया था । राणा साहब एक समय प्रातःकाल और एक समय सायं आया करते थे । सायंकाल पढ़ते थे । प्रातः काल को भ्रमणार्थ आया करते थे और उसी समय स्वामीजी उनको उपासना की विधि बतलाया करते थे । फिर राणासाहब रोगी हो गये, स्वामी जी महलों में जाया करते थे । स्वामी जी युक्ति से प्रत्येक बात मनवाते थे । मनुस्मृति के प्रक्षिप्त श्लोक स्थान-स्थान पर बतलाते जाते थे कि देखो यह बीच के आपस में नहीं मिलते । मनुस्मृति सातवें अध्याय के अन्त तक सुनाई थी ।

जब दशहरा आया तो स्वामी जी बग्घी पर बैठकर दशहरा देखने गये । नवदुर्गा[६२] के दिनों में बलिदान के लिए भैंसे बहुत मारे जाते थे । इस पर स्वामी जी ने दरबार से एक युक्तियुक्त शास्त्रार्थ किया और एक मुकद्दमे के रूप में कहा कि हमको भैंसों ने वकील किया है और आप राजा हैं, हम आपके आगे मुकद्दमा करते हैं । पुरानी प्रथाओं के नये-नये रूप दिखाते हुए अन्त में स्वामी जी ने उन्हें समझा दिया कि इनके मारने से पाप के अतिरिक्त कुछ लाभ नहीं; यह निरा अत्याचार है । तत्पश्चात् स्वामी जी ने उनको निषेध किया । तब राणा साहब ने स्वीकार करके कहा कि हम एकदम बन्द नहीं कर सकते और न करना उचित है, लोग क्रुद्ध होंगे । तब स्वामी जी ने कहा, 'अच्छा शनैः शनैः कम कर दो । तदनुसार वहीं सूची बनाई गई । राणा साहब ने प्रतिज्ञा की कि मैं धीरे-धीरे कम करने का प्रयत्न करूंगा ।

बृहत् हवन का आयोजन—स्वामी जी ने यहां एक बड़ा हवन कराया जो नीलकंठ जी के मन्दिर के पास कई दिन तक होता रहा । अच्छे-अच्छे सुगन्धित और पुष्टिकारक पदार्थ डाले गये थे । चारों वेदों के पाठी वहां यज्ञ में उपस्थित थे । वे मन्त्र पढ़ते जाते थे । अन्तिम दिन दरबार भी पधारे थे । पूर्णाहुति दरबार के हाथ से कराई थी और यज्ञशेष हम सबको चखने के लिए दिया था । इस यज्ञ में होता आदि सब विधिपूर्वक नियत किये गये थे । दरबार के सदस्यों ने उनकी आज्ञानुसार प्रतिदिन अग्निहोत्र होने की आज्ञा दी । हवन के पश्चात् वह तांबे का कुंड सब महलों में घुमाया जाता था, उनके जीते-जी बराबर ऐसा होता रहा । जब महाराणा सज्जनसिंह जी का स्वर्गवास हो गया और महाराणा फतहसिंह जी गद्दी पर बैठे तब लोगों ने सन्देह डाला कि वे हवन कराते थे; इसलिए मर गये । तब उन्होंने भ्रम में पड़कर बन्द कर दिया, फिर नहीं हुआ ।

गिरानन्द साधु अन्धा भी साथ था। उसने पुलिस में स्वामी जी के सम्बन्ध में रिपोर्ट की कि ये मुझे जन्मभूमि में जाने नहीं देते। पुलिस ने रिपोर्ट वापस कर दी परन्तु स्वामी जी ने उसकी शरारत के कारण जो केवल टके के लिए थी, उस अन्धे को निकाल दिया।

सब वेदमन्त्र गेय हैं—वेदमन्त्रों के गाने के सम्बन्ध में चर्चा चली। कहा कि सब वेद गाये जाते हैं। यदि कोई आपके यहां गाने वाला और शुद्ध उच्चारण करने वाला गवैया हो तो हम वेदमन्त्र सिखला सकते हैं।

वेश्याओं को कुतिया कहते थे और कहा करते थे कि इनसे सदा दूर रहो। यदि तुम को राग (संगीत) में रुचि हो तो वेद सुना करो और उसकी अच्छी उन्नति करनी चाहिये। कहा करते थे कि यहां बाग तक कुतियों की आवाज आया करती है; इन्होंने अन्धेर मचा रखा है। परिणाम यह हुआ कि राणा साहब को वेश्याओं से पूर्णतया घृणा हो गई।

इनायतखां माली रोगी को सिखलाना चाहा परन्तु उसका उच्चारण शुद्ध न होने से न सीख सका; क्योंकि वह अपनी चालाकी से उच्चारण बिगाड़ देता था।

एक दिन स्वामी जी को अकेला पाकर राणा जी ने[६३] अत्यन्त अनुनय विनयपूर्वक प्रार्थना की कि आप राजनीति के अनुसार[1] मूर्तिपूजन का खंडन न करें। यह तो आप जानते हैं कि यह रियासत एकलिंगेश्वर महादेव[६४] के अधीन हैं। आप वहां के महन्त बन जावें; बस कई लाख रुपये पर आपका अधिकार हो जायेगा और यह रियासत भी धार्मिक दृष्टि से उस मन्दिर के एक प्रकार से अधीन होगी। महाराणा साहब ने स्वामी जी से यह चर्चा ऐसी उत्तमता से की कि इसमें किसी प्रकार की कोई बनावट ज्ञात न हुई। इसको सुनते ही स्वामी जी को बड़ा क्रोध आया और क्रुद्ध होकर कहा कि तुम मुझे तुच्छ लालच देकर एक महान् शक्तिशाली ईश्वर की आज्ञा मुझ से तुड़वाना चाहते हो? यह छोटी-सी रियासत और उसके मन्दिर जिससे मैं एक दौड़ में बाहर जा सकता हूं, मुझे कभी भी वेद और ईश्वर की आज्ञा तोड़ने पर विवश नहीं कर सकते। इसलिए जिह्वा को संभाल लें। लाखों की श्रद्धा मुझ से सम्बद्ध है। मुझे सब प्रकार से ध्यान रहता है कि सत्य से काम लूं।' यह सुनकर महाराणा साहब भौचक्के रह गये और उनकी धार्मिक भावना से चकित होकर उन्होंने निवेदन किया कि 'महाराज! मैंने यह सब इसलिए कहा था कि देखूं आप मूर्तिपूजा के खंडन में कितने दृढ़ हैं। अब मेरा निश्चय पहले से बहुत अधिक हो गया कि आप वेद की आज्ञा पालने में दृढ़ हैं।"

परोपकारिणी सभा की स्थापना तथा स्वीकारपत्र—यहीं स्वामी जी ने परोपकारिणी सभा स्थापित की और कविराजा श्यामलदास जी को मन्त्री बनाया और महाराणा साहब को उसका प्रधान नियत किया। यहां पर ही स्वामी जी ने स्वीकारपत्र (वसीयतनामा) लिखा।

वसीयतनामे की तसदीक—फिर महाराज ने उदयपुर में उसे तसदीक (रजिस्ट्री) कराया। उसका जल्सा शुभनिवास महल में हुआ था। स्वामी जी ने अपने पूर्ण स्वास्थ्य और ठीक होश हवाश में उसकी तसदीक की। उसकी एक प्रतिलिपि स्वामी जी के पास और एक सभा में रही।

फिर एक वैदिक निधि (वैदिक फंड) परोपकारिणी सभा की सहायता के लिए स्थापित की जिस का नाम 'स्वामी दयानन्द स्थापक वैदिक निधि' रखा गया और कह दिया कि 'जो मेरे पास इस समय रुपया है वह भी और भविष्य में जो मुझे मिले वह सब इसी फंड में जमा हो। स्वीकार-पत्र में लिखे तीन[६५] उद्देश्यों को परोपकारिणी सभा पूरा करती रहे।'

---

1. अर्थात् राजनीति यह कहती है कि—(सम्पा०)

उदयपुर के राणा जी को शिक्षा तथा उसका प्रभाव "अच्छे-अच्छे सिद्धान्तों से थोड़े काल में राणा जी को परिचित करा दिया। शरीर के रोगादि की शिक्षा, दिनचर्या की शिक्षा लिखकर राणा जी को दी। प्रात:काल का भ्रमण, राजनीति, घर का प्रबन्ध, नमस्ते का प्रयोग, हवन का आरम्भ आदि बहुत सी श्रेष्ठ बातें प्रचलित कराईं। स्वामी जी के उपदेश से राणा साहब ने अपना जीवन सुधार लिया। बहुविवाह से घृणा हो गई। निश्चित बात है कि उन्हीं दिनों में एक स्थान से विवाह की सूचना आई परन्तु राणा साहब ने पूर्ण इन्कार किया।

"एक दिन स्वामी जी ने राणा साहब को कहा था कि हमको लड़का होने की आशा है। उन्होंने कहा कि फिर आप तब तक रहें, देखिये क्या होता है। स्वामी जी ने कहा कि 'हम सिद्ध नहीं, यह सब ईश्वराधीन हैं। ९ फरवरी, सन् १८८३ को परमेश्वर की शक्ति से लड़का ही हुआ। सबसे प्रथम राणासाहब ने स्वामी जी को पुत्र होने की चिट्ठी लिखी और एक अशर्फी लिफाफे में लपेट कर भेजी कि आपके आशीर्वाद से हुआ है। स्वामी जी ने अशर्फी दरिद्रों में बांट दी, इस अवसर पर स्वामी जी के कहने से आठ सौ रुपये अनाथालय फिरोजपुर को भेजे। अन्त को जब स्वामी जी जाने लगे तो दरबार ने दो हजार रुपये भेंट किये, स्वामी जी ने इन्कार किया। उन्होंने कहा कि वापस नहीं ले सकते और दरबार ने अपनी दूरदर्शिता से वैदिक निधि में जमा कर दिये।

छः दर्शनों के भाष्य का विचार था—दरबार ने स्वामी जी से कहा कि आप छः दर्शनों की टीका छपवा दें। इसके लिए मैं बीस हजार रुपये तक व्यय करूंगा। स्वामी जी ने कहा कि मैं इनकी टीका करना आवश्यक जानता हूं, वेदभाष्य के पश्चात् इसका प्रबन्ध करूंगा।

चलते समय दरबार ने निम्नलिखित प्रशंसापत्र स्वामी जी को भेंट किया और विदा के समय स्पष्ट रूप से निवेदन किया कि मुझे आपके सत्योपदेशों से बहुत लाभ पहुंचा। कहने के अनुसार आचरण करने वाला मैंने आपके अतिरिक्त कोई नहीं देखा।

स्वामी जी के सामने यहां समाज की स्थापना नहीं हुई परन्तु उनके जाने के पश्चात् उत्तम रीति से स्थापित हुई और बहुत से योग्य व्यक्ति उसके सभासद् बने।

दिनचर्या का उपदेश

मौलवी अब्दुल रहमान साहब, सुपरिण्टैण्डैण्ट पुलिस उदयपुर ने वर्णन किया कि स्वामी जी महाराज ने महाराणा सज्जनसिंह जी को एक बार चित्रसाल महल में छः घड़ी रात गये इस दिनचर्या का उपदेश किया था—

"दरबार तीन घड़ी रात रहे उठिये। प्रथम शौच जाकर मुंह-हाथ धो एक प्याला ठंडे पानी का पीजिये या उसके बदले तीन माशे चोब चित्रक[६६] रात को भिगोकर, प्रात: उसे नितारकर पीजिये और कहा कि इसके प्रयोग से मेरी यह अवस्था है। इसका पीना, पानी की अपेक्षा, अच्छा है। फिर उस समय पास वालों को अलग करके एक घड़ी के अनुमान परमेश्वर की उपासना कीजिये। और कुछ मन्त्र बतलाये परन्तु मुझे स्मरण नहीं।"

"इसके पश्चात्, प्रथम तो पैदल ही, अन्यथा घोड़े या बग्घी पर, वायुसेवनार्थ जाइये। युक्तियां देकर सिद्ध किया कि पैदलयात्रा बहुत लाभकारी है शेष दोनों दूसरी और तीसरी कोटि की हैं। पूरा एक घंटा तक सैर करके, मकान पर वापस आवें। परन्तु भ्रमण करते हुए मार्ग में प्रत्येक वस्तु को ध्यानपूर्वक देखते जायें। यह स्वभाव अर्थात् प्रत्येक वस्तु को ध्यान से देखना, जीवन भर रखें। दरबार भ्रमण को जावें तो वापस आकर जिस महल में सारा दिन रहें, वहां घृत का हवन करावें। उसकी विधि बतलाई और लोहे का हवनकुंड बनवा दिया। उसके उन्होंने तीन लाभ बतलाये। प्रथम वायु की शुद्धि, दूसरा

लाभ बतलाने के लिए एक श्लोक सुनाया जिसका अभिप्राय यह था कि हवन से केवल वायु ही शुद्ध नहीं होती प्रत्युत वर्षा आदि सब शुद्ध होते हैं ।[६७] इस से महा उपकार होता है । ऐसी श्रेष्ठता से कहा कि दरबार थरथराने अर्थात् रोमांचित लगे । (किसी ने मकान पर आकर शंका की कि दरबार जब महलों में न हों और समूर बाग में हों तो यहां हवन से क्या लाभ होगा; (बाग में तो) वायु बिखर जायेगी । दरबार में कहा कि हम स्वामी जी से पूछेंगे, तदनुसार हमारे सामने पूछा गया । इस आक्षेप के उत्तर में स्वामी जी ने युक्तिपूर्वक सिद्ध किया कि एक बाग क्या, प्रत्युत समस्त नगर को लाभ पहुंच सकता है ।)

रियासत के काम में हस्तक्षेप नहीं—फिर आकर ९ बजे से पहले तक रियासत का आवश्यक काम करें । दरबार ने कहा कि मुझे विधि बतलाओ । कहा कि हम नहीं बतलावेंगे (हाथ के संकेत से कहा) ।

फिर खाना खायें, खाना खाकर महल में टहलें और ११ बजे तक मनोरंजन करें । फिर एक घंटा अर्थात् १२ बजे तक यदि मन करे तो, विश्राम करो । दरबार ने कहा कि मन करने का प्रतिबन्ध क्यों लगाया ? स्वामी जी ने कहा कि गर्मियों में मन करेगा और सर्दियों में नहीं ।

दोपहर के पश्चात् ४ बजे तक न्यायलेखन आदि राज्यकार्य करें । ४ बजे शौच (से निवृत्त होकर) और वस्त्र आदि बदलने के पश्चात् दरबार सवार हो जावें (व्यवस्था के निरीक्षण के लिए) और सेना, मकान, बाग, महल, नगर और सड़क आदि का निरीक्षण करें । सारांश यह है कि सवारी करते हुए महलों के अतिरिक्त, जितने कामों का करना रुचिकर हो, करें ।

दिन छुपने पर अपने महलों में आवें और उस समय उपासना के विषय में कुछ पढ़ें और विद्या की बात करें, बुद्धिमानों से संगति करें, उनके वार्तालाप से लाभ उठावें, इतिहास भी सुनें । यह सब काम दो घंटे तक करें ।

इसके पश्चात् खाना खावें, खाना खाने के पश्चात् आधे घंटे तक टहलें और फिर रागियों की ओर संकेत करके कहा कि स्वयं टहलते जावें और उस समय ये यदि कुछ गाते हों तो सुनें परन्तु अधिक आसक्त न हो जावें ।

उस समय एक चारण अर्थात् हिन्दी कवि ने कहा कि कविता का गायन भी सुनना चाहिये या नहीं ? स्वामी जी ने कहा कि हां; उसका सुनना और विशेषतया बहुत ही सूक्ष्म विचारों वाले गायन सुनना आवश्यक है; परन्तु ऐसे गाने न सुनें जिनमें नायिका-भेद आदि स्त्रियों की बातें हों । हमको तो इसकी चर्चा से भी घृणा है । तत्पश्चात् सेज पर जाकर सो रहो ताकि तुम को पूर्ण नींद आवे । जहां तक हो सके निश्चिन्त होकर सो रहो अर्थात् चिन्ता से छूटकर, न कि उसमें डूब कर । विश्राम में बाधा न हो; पूरे ६ घंटे तक विश्राम करो । स्त्रियों के साथ मत सोओ । नियत समय पर सप्ताह या पन्द्रह दिन में एक बार स्त्रीप्रसंग करो जिस पर दरबार मौन हो रहे । यह बात दरबार ने हमारे द्वारा पूछी थी । इसके पश्चात् यह कहा कि हम तुमको बतलायेंगे । तुम्हारे यहां तीन ऋतु आती हैं, प्रत्येक ऋतु में थोड़ा थोड़ा अन्तर है । रईस लोग रस लेते हैं, वह हम सायंकाल कहेंगे परन्तु मैं सायंकाल नहीं गया ! इसलिए ज्ञात नहीं ।"

"जाते समय स्वामी जी ने पूछा कि क्या दरबार इस पर आचरण करेंगे ? दरबार ने सिर हिलाकर कहा कि 'हां, कल से ही आरम्भ करूंगा ।' स्वामी जी ने कहा कि 'जितना दरबार आचरण करें मुझसे प्रतिदिन कह दें ।' दरबार ने प्रतिज्ञा की ।"

फलतः उपदेश के पश्चात् दूसरे दिन से ही दरबार ने आचरण किया । तीन घड़ी रात रहे उठे । एक रियासत का इंजीनियर, एक मैं और एक ठाकुर मनोहरसिंह जी साथ गये । वहां से लौटकर प्रातः दिन निकलने के समय स्वामी जी के पास आये । वहां से स्वामी जी को लेकर महलों में आये ।"

मन्दिर, मूर्ति आदि का प्रयोजन—मार्ग में शीतला के मन्दिर के पास पुरुष, स्त्रियां खड़ी थीं। प्रथम पूछा और कहा जिस का सार यह है—"कारीगर अपनी कारीगरी से जो चीजें बनावे वे उसके सामर्थ्य और रचनाशक्ति को प्रकट करती हैं परन्तु वे इस योग्य नहीं कि कारीगर उनको पूजे या दूसरे लोग उन को पूजें। वे चीजें उस कारीगर की जितनी श्रेष्ठ रचना होंगी, उसके गुण बतलायेंगी।" (इस भाषण को सुनने के लिए दरबार ने बग्घी धीरे चलानी आरम्भ की।) "बनाने वाला जिन वस्तुओं को बनाता है, वे जिस प्रयोजन या अभिप्राय के लिए होती हैं, वही प्रयोजन उनसे सिद्ध करना चाहिये।"

अब जो पाषाण आदि हैं, उनके विभिन्न काम, उद्देश्य और कारण हैं, उनसे अधिक काम न लेना चाहिये। खेद है न जाने दरबार ने ये किस प्रकार वैध कर रखे हैं। यह पत्थर सामान्य है; इसमें किसी को दु:खित करने अथवा किसी को लाभ पहुंचाने का गुण होना किस प्रकार सम्भव है? दरबार ने कहा, मैं समझ गया हूं, मैंने आपका अभिप्राय जान लिया है। मुझे आशा है कि आपका उपदेश बहुत अच्छा फल लावेगा। यदि तत्काल कर दूं तो भारी हंगामा मच जायेगा।"

फिर शम्भु निवास में जाकर दरबार ने सबके सामने दो घंटे तक इसी मूर्तिपूजा पर भाषण दिया। उस उपदेश का सार मुझे विस्तारपूर्वक स्मरण नहीं।

एक दिन स्वामी जी ने कहा कि दरबार षट्शास्त्र का अर्थ पहले मुझसे सुन लें। पढ़ाने के बदले मौखिक अच्छी प्रकार हृदयङ्गम करा दूंगा। फिर मुझसे वेद का अर्थ सुनिये।

कैलाशपर्वत[६८] से जब दरबार कोई कठिन प्रश्न करते थे तो वे निरुत्तर होकर खिसियाने हो जाते थे परन्तु स्वामी जी को हमने कभी (उत्तर देने में) अटकते (या हिचकिचाते) नहीं देखा।

एक बार कैलाशपर्वत के सामने स्वामी जी की चर्चा मिली। उस समय जीवनगिरि बैठे हुए थे। कैलाशपर्वत ने कहा कि वह साधु बहुत अच्छा है परन्तु एक दोष है। किसी ने पूछा कि वह क्या है? उत्तर दिया कि बोल उनका कटु है।

बाहर-भीतर एक से और सत्यवक्ता—एक बार चर्चा चली कि मूर्तिपूजा-खंडन के विषय को यदि आप गुप्त रखते? स्वामी जी ने उत्तर दिया कि मेरा यह नियम नहीं कि मन में कुछ और रखूं और प्रकट कुछ और करूं। इसके अतिरिक्त मैं सत्य को छुपाना भी नहीं चाहता।'[६९]

उन्हीं दिनों यहां एक जवेर सागर[७०] जती जी सरावगी ने आवेश में आकर एक कागज पर यह लिखकर और उसे तख्ते पर चिपकाकर अपने द्वार पर लटका दिया कि जितनी हमको विद्या है, स्वामी जी को नहीं है। वह यहां आया हुआ है, हमसे आकर शास्त्रार्थ कर ले; हम उसका सब बातों में सन्तोष कर देंगे। वह जिन बातों में मार्ग से बहका हुआ है, हम उन बातों में उसका सन्तोष कर देंगे। हमने यह वृत्तान्त दरबार से निवदेन किया। दरबार ने पूछा कि वह कैसा है? अन्त में खोज से विदित हुआ कि विद्वान् पुरुष है। ऐसा लिखकर लटकाना उसकी साहसहीनता है। यदि उसमें विद्या की भावना होती तो ऐसा न करता।

सांसारिक धन्धों से सर्वथा असम्पृक्त—एक बार जब दरबार स्वामी जी से मिलकर विदा हुए तो मार्ग में लगभग ५० पग की दूरी पर कुछ जमींदार (पटेल) स्वामी जी को मिले। उन्होंने मुकद्दमे के विषय में कुछ कहा। दरबार स्वामी जी की ओर देख रहे थे। स्वामी जी ने हाथ से कुछ कहा और चले गये। राणा साहब ने मुझे दौड़ाया कि जाकर मुकद्दमे वालों से पूछो कि उन्होंने क्या कहा और स्वामी जी ने क्या उत्तर दिया? मैं इस प्रकार गया कि मुकद्दमे वालों ने मुझको न पहचाना

कि यह दरबार के पास से आया है अर्थात् मैं दूसरे मार्ग से गया और उनसे पूछा । उन्होंने उत्तर दिया कि हमने महाराज-सभा[७१] में अपील की थी; स्वामी जी से यही कहा ? तब मैंने पूछा कि स्वामी जी ने क्या कहा ?" उत्तर दिया कि 'हम साधु हैं हमें सांसारिक राजाओं के काम से कोई सम्बन्ध नहीं; राणा जी से कहो । मैंने यही वृत्तान्त आकर राणा जी से कहा । राणा जी ने कहा कि मैंने क्या कहा था, भला मौलवी ! ऐसा मनुष्य सांसारिक धन्धों से सर्वथा स्वतन्त्र तुमने कोई देखा है ? ऐसा होना कठिन है ।

स्वामी जी ब्राह्मणों के छल का प्रमाण और मूर्तिपूजा का अनौचित्य अच्छी प्रकार से वर्णन किया करते थे । एक दिन दरबार के सामने किसी धार्मिक पुस्तक का एक लेख पढ़ा जिसका यह अर्थ था कि यदि किसी ब्राह्मण को कोई जूते का जोड़ा पहना दे तो समस्त पृथिवी दान देने का पुण्य उस पहना देने वाले को मिलता है । फिर कहा कि यदि यह सच हो तो दरबार ने जितनी जागीर लाखों रुपये की ब्राह्मणों को दी हुई है, वह जब्त करके एक ब्राह्मण को एक जोड़ा जूता पहना देवें तो समस्त धरती पुण्य करने का फल दरबार को मिल जायेगा । माला जपने को बिलकुल व्यर्थ बताया और पूछा कि यदि कोई व्यक्ति सरकारी सेवा छोड़कर दरबार के नाम की माला जपे तो दरबार उसे व्यर्थ जानेगा या नहीं ? राम नाम के अधिक उच्चारण से 'म' और 'र' मिलकर शब्द और अर्थ बिगड़ते हैं । मनुष्य को परमेश्वर के ध्यान और विद्या के द्वारा ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करना चाहिये ।

स्वामी जी का रियासत उदयपुर में पधारना

(११ अगस्त, सन् १८८२ से १ मार्च, सन् १८८३ तक)

'मोहनचन्द्रिका'[७२] नामक पत्रिका से उद्धृत विवरण—"अधिक सावन बदि १३, गुरुवार, ता० ११ अगस्त, सन् १८८२ के दिन श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती अपने कर्त्तव्यानुसार भूमिभ्रमण करते हुए उदयपुर आ गये हैं और गुलाब बाग में संस्थापित हुए (ठहराये गये) हैं । विद्वज्जनों के लिए अपने सन्देह मिटा लेने का यह एक अच्छा अवसर (उपलब्ध हुआ) है । मूर्तिपूजा निषेधकों को चाहिये कि वे अब स्वामी जी से इस विषयक वाक्यों वा तात्त्विक बातों को पूर्ण रीति से समझ लें; जिससे किसी संस्कृतज्ञ विद्वान् से काम पड़ने पर उन्हें निरुत्तर न होना पड़े ।" (दूसरे भादों, संवत् १९३९, खंड ९, संख्या १०, पृष्ठ १०९, अगस्त, सन् १८८२) ।

"आजकल दयानन्द सरस्वती अपने शिष्य आत्मानन्द जी सहित गुलाब बाग में विराजमान हैं । ईसाइयों और म्लेच्छों का खूब खंडन करते हैं । अभी कोई शास्त्रार्थ नहीं हुआ ।" (संख्या ११, श्रावण शुक्ल, पृष्ठ १३४, अगस्त, सन् १८८९)

"भाद्रपद कृष्णा ११ (८ सितम्बर, सन् १८८२) को सायं समय श्री उदयपुराधीश स्वामी दयानन्द सरस्वती के पास पधारे । स्वामी जी ने राजनीति का उपदेश किया ।"

"भाद्रपद कृष्णा १४ (१४ सितम्बर, सन् १८८२) को सायं समय (उदयपुरधीश) फिर दयानन्द सरस्वती के यहां पधारे । वहां उस दिन मौलवी अब्दुल रहमान खां से बहुत बौद्धिक विचार-विमर्श हुआ । उस दिन वृष्टि भी हुई ।"

पृष्ठ १४४, संख्या १२ तदनुसार सितम्बर मास, सन् १८८२)

"आश्विन कृष्णा ६, संवत् १९३९, सोमवार के दिन (२ अक्तूबर, सन् १८८२) श्री जी हजूर स्वामी जी के यहां पधारे । वहां दो घंटे तक वार्तालाप हुआ ।" पृष्ठ १६२, संख्या २४, तदनुसार अक्तूबर, सन् १८८२)

पंडित छगनलाल जी शास्त्री कामदार रियासत मसूदा को स्वामी जी एक पत्र में लिखते हैं—"श्रीयुत महाराणा जी दूसरे-तीसरे दिन समागम करते हैं और उपदेश सुनकर बहुत से व्यसन अर्थात् दिन का सोना, रात्रि में न सोना, दिन चढ़े उठना इत्यादि बहुत बातें छोड़ दी हैं और अच्छी-अच्छी बातों को ग्रहण करते जाते हैं।"

(आश्विन सुदि ११, संवत् १९३९, ७ अक्तूबर, सन् १८८२, रायपुर[1] से)।

"कार्तिक शुक्ला ३, सोमवार (१३ नवम्बर, सन् १८८२) आजकल श्री हजूर प्रतिदिन प्रातःकाल के समय बग्घी पर चढ़कर हवा खाने को पधारते हैं और सायंकाल को श्रीयुत स्वामी दयानन्द सरस्वती के यहां पधार कर पातंजल सूत्र पठन करते हैं।" पृष्ठ २०६, खंड ९, संख्या १७ तदनुसार नवम्बर, सन् १८८२)।

"श्री हजूर ने पातंजल सूत्र तो समाप्त कर दिया और अब वैशेषिक दयानन्द सरस्वती के पास (से) पठन करते हैं।' (पृष्ठ २२२, खंड ९, संख्या १८, कार्तिक शुक्ल संवत् १९३९ तदनुसार नवम्बर, सन् १८८२)।

"और मार्गशीर्ष कृष्णा २ (२६ नवम्बर, सन् १८८२, रविवार) के दिन श्रीहजूर का गादी उत्सव था; इस दिन प्रातःकाल श्री हजूर नीलकण्ठ महादेव को पधारे; जहां स्वामी दयानन्द सरस्वती की ओर से होम होता है, उसका प्रारम्भ कराया।" (पृष्ठ २२१, संख्या १८, खंड ९)

"श्रीयुत महाराणा उदयपुराधीश ने सूचना दिलवाई थी कि 'जिन पुरुषों को मूर्तिपूजा आदि विषयों में सन्देह हो, वे वेदानुसार सत्यासत्य निश्चय कर लें अन्यथा पीछे का वादानुवाद उठाना उचित वा प्रामाणिक नहीं।' परन्तु अभी तक किसी ने श्रीयुत से शास्त्रार्थ का निश्चय नहीं किया।" ('भारत सुदशा प्रवर्तक' दिसम्बर, सन् १८८२; संख्या, ४२, पृष्ठ २१, २२)

"श्री हजूर जी षट्शास्त्र समाप्त कर महाभारत के वनपर्व व उद्योगपर्व को भी समाप्त कर श्रीयुत दयानन्द सरस्वती द्वारा मनुस्मृति का सातवां अध्याय सब अहलकारों (राजकर्मचारियों) सहित सुनते हैं।' ('मोहन चन्द्रिका' पौष शुक्ल, संवत् १९३९; तदनुसार जनवरी, सन् १८८३, खंड ९, संख्या २१)।

"स्वामी जी ने फागुन बदि ५, मंगलवार, संवत् १९३९ तदनुसार २७ फरवरी, सन् १८८३ मंगलवार को अपना वसीयतनामा (स्वीकारपत्र) लिखकर वहां रियासत में रजिस्ट्री कराया।" ('भारतमित्र' कलकत्ता, ३१ मई, सन् १८८३, खंड ६, संख्या २१)

वह वसीयतनामा इस प्रकार है—

वसीयतनामा परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीयुत दयानन्द सरस्वती स्वामी
स्वीकार पत्र

मैं स्वामी दयानन्द सरस्वती निम्नलिखित नियमों के अनुसार, तेईस सज्जन आर्य पुरुषों की सभा को वस्त्र, पुस्तक, धन और यन्त्रालय आदि सर्वस्व का अधिकार देता हूं और उसको परोपकार सुकार्य में लगाने के लिए अध्यक्ष बनाकर यह स्वीकारपत्र लिख देता हूं कि समय पर काम आवे।

इस सभा का नाम 'परोपकारिणी सभा' है और निम्नलिखित तेईस सज्जन इसके सभासद् हैं—

---

1. 'रायपुर' भूल से छपा प्रतीत होता है; 'उदयपुर' होना चाहिये।—सम्पा०

१. श्रीमन्महाराजाधिराज महामहेन्द्र यावद् आर्य कुल दिवाकर महाराणी जी श्री १०८ श्री सज्जनसिंह[1] वर्मा, धीर-वीर, जी० सी० एस० आई०, उदयपुराधीश, उदयपुर राज्य मेवाड़
—सभापति

२. लाला मूलराज एम० ए०, ऐक्स्ट्रा असिस्टैण्ट कमिश्नर, प्रधान आर्यसमाज, लाहौर; जन्मभूमि लुधियाना —उपसभापति

३. श्रीयुत कविराजा श्यामलदास जी, उदयपुर राज्य मेवाड़; —मन्त्री

४. लाला रामशरणदास[2], रईस व उपप्रधान आर्यसमाज मेरठ; —मन्त्री

५. पण्ड्या मोहनलाल विष्णुलाल जी, उदयपुर निवासी, जन्मभूमि मथुरा;
—सभासद्

६. श्रीमन्महाराजाधिराज श्री नाहरसिंह जी वर्मा, शाहपुरा; —सभासद्

७. श्री राव तख्तसिंह जी बेदला, राज्य-मेवाड़;
—सभासद्

८. श्रीमद्राजराणा श्री फतहसिंह जी वर्मा, देलवाड़ा;
—सभासद्

९. श्रीमद्रावत श्री अर्जुनसिंह जी वर्मा, आसींद;
—सभासद्

१०. श्रीमत् महाराज गजसिंह जी वर्मा, उदयपुर;
—सभासद्

११. श्रीमद् राव श्री बहादुरसिंह जी वर्मा, मसूदा, जिला अजमेर;
—सभासद्

१२. रावबहादुर पंडित सुन्दरलाल सुपरिण्टैण्डैण्ट वर्कशाप व प्रेस, अलीगढ़ आगरा;
—सभासद्

१३. राजा जयकृष्णदास, सी० एस० आई०, डिप्टी कलैक्टर बिजनौर, मुरादाबाद;—सभासद्

१४. साहू दुर्गाप्रसाद, कोषाध्यक्ष आर्यसमाज फर्रूखाबाद; —सभासद्

१५. लाला जगन्नाथप्रसाद, फर्रूखाबाद;
—सभासद्

१६. सेठ निर्भयराम, प्रधान आर्यसमाज फर्रूखाबाद, ब्यावर, राजपूताना;
—सभासद्

१७. लाला छेदीलाल, गुमाश्ता कमसरियट, छावनी मुरार ग्वालियर;
—सभासद्

१८. लाला सांईसाद[3], मन्त्री आर्यसमाज, लाहौर;
—सभासद्

१९. बाबू माधोदास, मन्त्री आर्यसमाज दानापुर;
—सभासद्

२०. रावबहादुर पंडित गोपाल राव हरि देशमुख, सदस्य कौंसिल गवर्नर बम्बई व प्रधान आर्यसमाज बम्बई पूना; —सभासद्

---

1. अत्यन्त खेद से प्रकट किया जाता है कि यह महाराजा साहब २४ दिसम्बर, सन् १८८२ को यौवनावस्था में दिवंगत हो गये। अब तक उनके स्थान पर कोई सभापति नियत नहीं हुआ है।

2. लाला रामशरणदास साहब की मृत्यु हो गई और उनके स्थान पर महाराज प्रतापसिंह जी जोधपुर; सभासद् नियत हुए और मन्त्री के पद पर रायबहादुर पंडित गोपालराव हरि देशमुख साहब नियत हुए; इनका नाम सूची की संख्या २१ पर लिखा है।

3. इन सज्जन की मृत्यु हो चुकी है।

स्वीकार पत्र के नियम

प्रथम—उक्त सभा जैसी कि इस समय मेरी और मेरे समस्त पदार्थों की रक्षा करके परोपकार के कार्य में लगाती है वैसे ही मेरे पीछे अर्थात् मेरे मरने के पश्चात् भी लगाया करे अर्थात्—

१—वेद और वेदांग आदि शास्त्रों के प्रचार अर्थात् उनकी व्याख्या करने-कराने, पढ़ने-पढ़ाने, सुनने-सुनाने, छापने-छपवाने आदि में।

२—वेदोक्त धर्म के उपदेश और शिक्षा अर्थात् उपदेशक मंडली नियत करके देशदेशान्तर और द्वीपद्वीपान्तर में भेज कर सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग आदि में।

३—आर्यावर्त के अनाथ और अकिंचन लोगों के पठन-पाठन में व्यय करें और करावें।

द्वितीय—जैसे मेरी उपस्थिति में यह सभा सब प्रबन्ध करती है वैसे ही मेरे पीछे तीसरे या छठे महीने किसी सभासद् को वैदिक यन्त्रालय का हिसाब-किताब समझने और पड़तालने के लिए भेजा करे और वह सभासद् वहां जाकर समस्त आय-व्यय और जमा की जांच-पड़ताल करे और उसके पीछे अपने हस्ताक्षर करे और इस पड़ताल की एक-एक प्रति प्रत्येक सभासद् के पास भेजे और यदि यन्त्रालय के प्रबन्ध में कुछ दोष देखे तो उसको सुधारने के विषय में अपनी सम्मति लिखकर प्रत्येक सभासद् के पास भेज देवे और प्रत्येक सभासद् को उचित है कि अपनी-अपनी सम्मति सभापति के पास लिख भेजे और सभापति सब की सम्मति से उचित प्रबन्ध करें। इस विषय में कोई सभासद् आलस्य या अनुचित कार्यवाही न करे।

तृतीय—इस सभा को उचित ही नहीं, प्रत्युत आवश्यक है कि जैसा यह परमधर्म और परमार्थ का काम है वैसा ही इसको उत्साह, पुरुषार्थ, गंभीरता, उदारता से करे।

चतुर्थ—उपर्युक्त २३ आर्यजनों की सभा मेरे पीछे सब प्रकार मेरी स्थानापन्न समझी जावे अर्थात् जो अधिकार मुझे अपने सर्वस्व का है वही अधिकार सभा को है और रहेगा और उपर्युक्त सभासदों में कोई व्यक्ति स्वार्थ में पड़कर इन नियमों के विरुद्ध आचरण करे या और कोई अन्य व्यक्ति हस्तक्षेप करे तो यह नितान्त झूठा समझा जावे।

पंचम—जैसे इस सभा को वर्तमान काल में मेरी और मेरे सब पदार्थों की यथाशक्ति रक्षा और सुधार करने का अधिकार है वैसे ही मेरे मृतक शरीर के संस्कार कराने का अधिकार है अर्थात् जब मेरा देह छूटे तो न उसको गाड़े, न जल में बहाये; न जंगल में फेंकने देवे। निरे चन्दन की चिता बनवा दे और जो यह सम्भव न हो तो दो मन चन्दन, चार मन घृत, पांच सेर मुश्क काफूर, ढाई मन अगर-तगर, दस मन लकड़ी लेकर वेद के अनुसार जैसा कि 'संस्कारविधि' पुस्तक में लिखा है, वेदी बनाकर वेदमन्त्रों से जो उसमें लिखे हैं, भस्म करे। इसके अतिरिक्त और कुछ वेद के विरुद्ध न करें और जो इस सभा के कोई सभासद् उपस्थित न हों तो जो कोई उस समय उपस्थित हो वही यह काम करे और जितना धन उसमें लगे उतना सभा से ले ले और सभा उस को दे दे।

षष्ठ—अपने जीवन में मुझे और मेरे पीछे इस सभा को अधिकार है जिस सभासद् को चाहे पृथक् करके किसी और योग्य सामाजिक आर्य पुरुष को उसका स्थानापन्न नियत करे परन्तु कोई और सभासद् सभा से तब तक पृथक् न किया जायेगा जब तक उसके काम में कोई अनुचित चेष्टा न पाई जावे।

सप्तम—मेरे सदृश यह सभा सदा वसीयतनामे की व्याख्या या उसके नियमों के पालन या किसी सभासद् के पृथक् करने और उसके स्थान में अन्य सभासद् नियत करने या मेरी विपत्ति और आपत्काल के निवारण करने के उपाय और यत्न में वह उद्योग करे जो सब सभासदों की सम्मति से निश्चय और निर्णय पाया जाये या पावें और यदि सभासदों के मत में विरोध रहे तो बहुमत के अनुसार काम करें और सभापति की सम्मति को सदा द्विगुण जानें।

अष्टम—किसी दशा में भी यह सभा तीन से अधिक सभासदों को अपराध के प्रमाणित होने पर पृथक् न कर सकेगी जब तक कि उनके स्थान पर और सभासद् नियत न करे ।

नवम—यदि सभा में कोई व्यक्ति मर जाये अथवा उक्त नियमों और वेदोक्त धर्म को छोड़कर विरुद्ध चलने लगे तो सभापति को उचित है कि सब सभासदों की सम्मति से उसको पृथक् करके उसके स्थान पर कोई और योग्य वेदोक्तधर्मयुक्त आर्यपुरुष नियत करे परन्तु उस समय तक (जब तक नया सभासद् नियत न किया जाये) साधारण कार्य के अतिरिक्त कोई नया काम आरम्भ न किया जाये ।

दशम—इस सभा को अधिकार है कि सब प्रकार का प्रबन्ध करे और नये उपाय निकाले, परन्तु यदि सभा को अपने परामर्श और विचार पर पूरा-पूरा निश्चय और विश्वास न हो तो समय नियत करने के पश्चात् पत्र द्वारा समस्त आर्यसमाजों से सम्मति ले और बहुमत से उचित प्रबन्ध करे ।

एकादश—प्रबन्ध न्यूनाधिक करना या स्वीकार अस्वीकार करना या किसी सभासद् को हटाना या नियत करना या आयव्यय और जमा की जांच-पड़ताल करना और लाभ तथा हानि की अन्य बातों को सभापति वार्षिक या षाण्मासिक छपवा कर पत्रद्वारा सब सभासदों में प्रकाशित किया करें ।

द्वादश—यदि इस वसीयतनामे के विषय में कोई झगड़ा उत्पन्न हो तो उसको समय के शासक के न्यायालय में उपस्थित न करना चाहिये; प्रत्युत यह सभा अपने आप उसका निर्णय करे परन्तु जो अपने आप निर्णय न हो सके तो राजगृह में उपस्थित करके कार्यवाही की जाये ।

त्रयोदश—यदि मैं अपने जीते जी किसी योग्य आर्य पुरुष को पारितोषिक देना चाहूं या उसकी लिखत-पढ़त कराकर रजिस्ट्री करा दूं तो सभा को उचित है कि उसको माने और दे ।

चतुर्दश—मुझे और मेरे पीछे सभा को सदा अधिकार है कि उक्त नियमों को किसी विशेष लाभ, देशोन्नति, शुभकार्य और परोपकार के लिए न्यूनाधिक करे । (हस्ताक्षर-दयानन्द सरस्वती)

(हस्ताक्षर) जीवनदास; (इस वसीयतनामे का अनुवादक) फरवरी, सन् १८८३

स्वामी जी को मानपत्र—महाराणा जी ने फागुन कृष्णा ५ के दिन अर्थात् उसी दिन एक मानपत्र अपने हाथ से लिखकर स्वामी जी की सेवा में समर्पण किया । (३ अप्रैल, सन् १८८३ **'भारतमित्र'** कलकत्ता) उस मानपत्र की प्रतिलिपि यह है—

मानपत्र का प्रतिलिपि[७३]

स्वस्ति श्रीसर्वोपकारार्थकारुणिकपरमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्यश्री ५ श्रीमद्यानन्दसरस्वतियतिवर्येषु इत: महाराणा-सज्जनसिंहस्य नतिततय: समुल्लसन्तु इदन्तु । आप का अठै सात मास का निवास अत्यन्त आनन्द मैं रह्यो क्योंकि आपकी शिक्षा के प्रकार श्रेष्ठ और उन्नतिदायक हैं और आपका संयोग सूं ही न्याय धर्मादि शारीरिक कार्यों में निस्सन्देह लाभ प्राप्त होवा की म्हां का सभ्य जना सहित दृढ़ आशा हुई; कारण कि शिक्षा और उपदेश वां का श्रेष्ठपुरुषां का दृढ़ होवै है जो स्वकीय आचरण भी प्रतिकूल नहीं राखै सो यो आप मैं यथार्थ मिल्यो, अब म्हे आप का वियोग को संयोग तो नहीं चावां हां परन्तु आपको शरीर अनेक मनुष्यां कै उपकारक है जीसूं अवरोध करणो अनुचित है तथापि पुनरागमन सूं आप भी म्हां का चित्त ने शीघ्र अनुमोदित करेगा इत्यलम् ।

संवत् १९३९ फाल्गुन कृष्णा ५ भौमे

हस्ताक्षर—महाराणासज्जनसिंहस्य

उदयपुर से नींबाहेड़ा व चित्तौड़ होते हुए शाहपुरा में धर्मोपदेश—स्वामी जी ८ मार्च, सन् १८८३ को उदयपुर से चलकर नींबाहेड़ा पहुंचे । फिर वहां से **चित्तौड़** पहुंच,[७४] तीन दिन निवास कर, **शाहपुरा** में जा विराजमान हुए (**'देश हितैषी'**, चैत्रमास, संवत् १९४०, पृष्ठ २२) ।

पाया जाता है कि स्वामी जी ३ मार्च, सन् १८८३ से ७ मार्च, सन् १८८३ तक चित्तौड़ में रहे और वहां से ८ को शाहपुरा चले गये ।

स्वामी जी के पत्र से उदयपुर के समाचार—राजा दुर्गाप्रसाद जी, रईस फर्रूखाबाद को स्वामी जी ने ४ मार्च, सन् १८८३ के पत्र में उदयपुर का वृत्तान्त इस प्रकार लिखा है—'हम आज चित्तौड़गढ़ में हैं । आगामी फाल्गुन बदि चतुर्दशी गुरुवार के दिन राजस्थान शाहपुरा मेवाड़ में जाकर यथारुचि वहां ठहरेंगे । अब उदयपुर का वृत्तान्त सुनो । हम वहां बहुत आनन्द में रहे । नित्यप्रति श्रीमान् महाराणा जी की ओर से सेवा उत्तम रीति से होती रही । किसी (किसी) दिन को छोड़, (शेष) सब दिन, तीन-चार वा पांच घण्टे तक मुझसे मिलकर प्रेमपूर्वक सत्संग किया करते थे । केवल सुनते ही मात्र नहीं थे; किन्तु उसका धारण और आचरण भी करते थे । छः शास्त्रों का मुख्य-मुख्य विषय, मनुस्मृति के राजधर्मविधायक तीनों अध्याय,[७५] विदुर प्रजागर[७६] आदि के उपदेश के योग्य श्लोक, थोड़ा-सा व्याकरण का विषय और थोड़ी अन्वय की रीति श्रीमान् ने मुझ से पढ़ी और राजधर्म में तत्पर थे और विशेष कर अब पूर्णरीति से हुए हैं । वेश्या आदि का नृत्य दर्शन आदि हैं सो निर्मूल कर दिया (सर्वथा त्याग दिया) । स्वीकारपत्र जिसको वसीयतनामा कहते हैं वह उदयपुर में श्रीमानों से स्वीकृत स्वमुद्रायुक्त स्वहस्ताक्षर सुव्यवस्थित करके उस लिखी हुई सभा के उदयपुराधीश सभापति हुए । उसका विशेष समाचार तुमको छपने पर विदित होगा । एक मान्यपत्र मुझको दिया है और रुपया १२०० कलदार[७७] वेदभाष्य के सहायतार्थ और एक दुशाला और एक साधारण दुशाला और सौ कलदार रामानन्द ब्रह्मचारी को तथा ५०० कलदार फिरोजपुर अनाथालय को और १०० रुपया अन्य इसके अतिरिक्त अनाथालय के स्कूल की कसीदा काढ़ने वाली लड़कियों को पुरस्कार दिया । वैदिकधर्म की ओर प्रथम से ही रुचि थी, अब विशेषतया हो गई । जैसे श्रीमान् आर्यकुलदिवाकर सुशीलता, शीतलता, कृतज्ञता, सुसभ्यता, प्रसन्नता, ज्ञानता आदि शुभ गुण कर्म स्वभाव युक्त मैंने देखे वैसे बहुत (ही कम) विरले होंगे । अब हम इस समय चित्तौड़ में हैं ।" (४ मार्च, सन् १८८३, फाल्गुन बदि १०, संवत् १९३९ ।) —दयानन्द सरस्वती

'रियासत शाहपुरा' (फागुन बदि अमावस, संवत् १९३९, शुक्रवार से ज्येष्ठ कृष्णा ४, संवत् १९४० तदनुसार ९ मार्च,[७८] सन् १८८३ से २६ मई, सन् १८८३ तक)-बाबू सूरजनारायण, प्राइवेट सैक्रेट्री महाराज साहब[७९] शाहपुरा ने ७ मार्च, सन् १८८९ को शाहपुरा नरेश महाराजाधिराज नाहरसिंह जी वर्मा के मुख से सुनकर निम्न वृत्तान्त लिखकर दिया—

"स्वामी जी महाराज से महाराजा साहब की पहली भेंट संवत् १९३१ में चित्तौड़ में हुई और वहां महाराजा साहब ने स्वामी जी से शाहपुरा पधारने के लिए निवेदन किया । तब स्वामी जी ने कहा कि मैं लौटते समय आऊंगा । तत्पश्चात् स्वामी जी बम्बई पधार गये और कुछ महीनों के पीछे जब स्वामी जी उदयपुर पधारे और वहां चिरकाल तक निवास करके चलने लगे तब यहां समाचार आया, जिस पर रियासत की ओर से कुछ प्रतिष्ठित व्यक्ति स्वामी जी को लेने के लिए चित्तौड़ गये और उनको निमन्त्रणपत्र भी दिया गया । वहां से स्वामी जी की आज्ञा लेकर उत्तर पहुंचा कि स्वामी जी पधारते हैं। सवारी आदि का प्रबन्ध रूपाहेली स्टेशन पर किया जावे, तदनुसार कर दिया गया । जब स्वामी जी महाराज रेल से उतर कर शाहपुरा जाने लगे तब महाराजा साहब ने स्वागत के लिए निवेदन कराया परन्तु स्वामी जी ने इन्कार किया । स्वामी जी फागुन बदि अमावस तदनुसार ९ मार्च, सन् १८८३ को ४ बजे दिन के यहां आ विराजे । और 'नाहर निवास बाग' में रीता कव्वां[८०] के पास जहां डेरे आदि पहले ही से लगवा दिये गये थे, निवास किया । उसी दिन सायंकाल श्री जी हजूर स्वामी जी के पास पधारे और भी नगर के बहुत से प्रतिष्ठित लोग दर्शनों के लिए आये । उस दिन स्वामी जी और महाराजा साहब की परस्पर दो घंटे तक बातें होती रहीं और यही ढंग पांच दिन तक रहा । तत्पश्चात् निश्चित हुआ कि सायंकाल ६ बजे से ९ बजे तक प्रतिदिन स्वामी जी के पास रहना, जिसमें एक घंटा साधारण बातचीत करना या किसी विषय पर सन्देह निवारण करना और दो घंटे तक पढ़ना । सबसे प्रथम महाराजा साहब ने मनुस्मृति पढ़ी और उसमें जो प्रक्षिप्त श्लोक थे

वह युक्तियों से जान गये । फिर योगसूत्र पढ़ते रहे और प्राणायाम आदि क्रिया भी, प्रात:काल के समय स्वामी जी महाराज जहां नित्य जंगल में जाते थे, वहां श्री जी हजूर भी किसी-किसी दिन महाराज के साथ जाकर सीखते थे । योगशास्त्र की समाप्ति के पश्चात् थोड़ा-सा वैशेषिक शास्त्र पढ़ा ।

और स्वामी जी ने यहां एक ब्राह्मण को (जो थोड़ा सा पढ़ा हुआ था, उसके अनुरोध पर) संन्यास ग्रहण कराया और दण्ड धारण कराया और उसका नाम ईश्वरानन्द सरस्वती रखा गया (और उसी समय से विद्या पढ़ने के लिए प्रयाग भेज दिया गया और वहां मैनेजर के नाम चिट्ठी लिख दी कि जब तक यह विद्या पढ़ता रहे दस रुपया मासिक इसे भोजन के लिए मिलता रहे; वह प्रयाग चला गया) इस बीच स्वामी जी महाराज को जोधपुर को ले जाने के लिए भद्रपुरुष आये ।[८१] स्वामी जी उनके साथ जाने को तैयार हुए । ज्येष्ठ कृष्णा ४, संवत् १९४० शनिवार[८२] के दिन के ४ बजे यहां से पधारे । महाराजा साहब स्वामी जी को पहुंचाने के लिए बहुत दूर तक बग्घी में बैठकर बातें करते हुए साथ गये थे ।

"यहां रामस्नेहियों का बड़ा महन्त[८३] रहता है और सब से बड़ा अखाड़ा उनका यहीं है । स्वामी जी ने उसके महन्त से शास्त्रार्थ के लिए बहुत प्रयत्न किया परन्तु वे किसी प्रकार तैयार न हुए । वास्तव में उनमें विद्वान् कोई भी नहीं है और न किसी में शास्त्रार्थ का सामर्थ्य है ।

श्रीमान् शाहपुराधीश ने वेदभाष्य की सहायता में २५० रुपये दिये और ३० रुपये मासिक एक उपदेशक रखने के लिए अर्पण किये जो वैदिकधर्म का प्रचार करता रहे ।

श्रीमान् महाराजाधिराज श्री नाहरसिंह जी, वर्मा शाहपुराधीश की उदारता और धर्मनिष्ठा—स्वस्ति श्री सर्वोपकारणार्थ कारुणिक परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीमद्दयानन्द सरस्वती जी महाराज के चरणारविन्दों में, महाराजाधिराज शाहपुरेश की बारम्बार नमस्तेऽस्तु । वैदिक धर्म उपदेशक मंडली में मेरी ओर से एक उपदेष्टा रहे जिसके व्यय के वास्ते १) मुद्रा नित्यप्रति मासिक ३०) रौप्य[८४] यहां से निरन्तर आज की तिथि से प्राप्त होते रहेंगे सो वैदिकधर्म स्थापन पुन: पाखंड आदि खंडन करते रहें । सं० १८४० मि० ज्येष्ठ कृष्णा ४ । हस्ताक्षर—नाहरसिंहस्य

स्वस्ति श्री सर्वोपकारणार्थ कारुणिक परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीमद्दयानन्द सरस्वती जी महाराज के चरणारविन्दों में शाहपुरेश की बारम्बार नमस्तेऽस्तु ।

अपरं च यहां आपका विराजना सार्द्धद्वय[८५] मास पर्यन्त हुआ तथापि आपके सत्यधर्मोपदेश के श्रवण से मेरी आत्मा तृप्त न हुई । आशा थी कि आप ग्रीष्मान्त अत्र स्थित होते परन्तु जोधपुराधीशों की ओर से दर्शनों की और वेदोक्त धर्म उपदेश ग्रहण की, पुन: सत्याचरण, असत्य का त्याग और आपके मुखारविन्द से श्रव्ण करने की अभिलाषा देख कै, आपने वहां पधारना स्वीकार किया और भवच्छरीर भी करोड़ों मनुष्यों के उपकारार्थ प्रकट हुआ है । यह समझ के मेरी भी सम्मति यही हुई कि आपका पधारना ही उत्तम है । यही समझ के यहां विराजने की प्रार्थना नहीं की । आशा है कि कृतकृत्य करने के निमित्त पुनरागमन करेंगे । संवत् १९४० मि० ज्येष्ठ कृष्णा ४ । हस्ताक्षर—नाहरसिंहस्य ॥

(यह मानपत्र 'भारतमित्र' कलकत्ता खंड ६, संख्या २८, मिति १९ जुलाई, सन् १८८३ पृष्ठ ६ पर प्रकाशित हो चुका है ।)

रियासत उदयपुर में महाराजा होल्कर के कुछ पत्र बुलाने को आये थे जिस पर स्वामी जी ने यह निश्चय किया कि शाहपुरा के राजासाहब से हमने पिछले वर्ष से प्रतिज्ञा की हुई है । प्रथम वहां जाना आवश्यक है, तत्पश्चात् होल्कर जायेंगे । शाहपुरा से होल्कर जाने का विचार था परन्तु इतने में जोधपुर की रियासत में लेने के लिए मनुष्य पहुंच गये जिस पर जोधपुर की तैयारी कर सीधे अजमेर चले गये । २६ मई, ४ बजे **शाहपुरा** से चलकर २८ मई,[८६] सन् १८८३ सोमवार को **अजमेर** में पहुंचे । ला० शिवप्रसाद अपने रोजनामचे (दैनिक डायरी) में लिखते हैं—'२८ मई को विदित हुआ कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी आये हैं । दफ्तर से आकर सेठ फतहमल की कोठी में गया जहां वे ठहरे हैं । बहुत से मनुष्य उपस्थित थे । एक सेठ जी जैन मत के आ गये । उनसे स्वामी जी की संसार और धर्माधर्म और मत आदि पर चर्चा रही । सेठ जी

वास्तविक बात संसार का त्याग बतलाते थे । स्वामी जी इसको असंभव कहते थे । संसार का लक्षण सेठ जी न बतला सके । और नाना प्रकार की बातें उलटी बेतुकी होती रहीं । फिर भूतप्रेत आदि की चर्चा चली । स्वामी जी कहने लगे कि जब मनुष्य मर जाता है; जब तक उसका शरीरदाह नहीं किया जाता है, तबतक वह 'प्रेत' कहा जाता है । फिर (उसके पश्चात्) उस का नाम 'भूत है', शेष सब ढोंग है । परमात्मा जीवात्मा का विषय हुआ, फिर उनके चलने की तैयारी हुई । आप जोधपुर पधारने वाले हैं । स्टेशन पर आये; साढ़े दस बजे थे । रेल मे विलम्ब था । वहां पर एक दक्षिणी[८७] भाई मिले; ये स्वामी जी से योग सीखने आये हैं । यहां पर विभिन्न चर्चा रही । बारह बजे दूसरी श्रेणी के डिब्बे में चढ़ गये ।

अध्याय ५

शास्त्रार्थ

प्रथम परिच्छेद

सनातन-धर्मियों से शास्त्रार्थ

काशी शास्त्रार्थ (१६ नवम्बर, सन् १८६९)

एक दयानन्द सरस्वती नामक संन्यासी, दिगंबर जो गंगा के तट पर विचरते होते हैं, सत्पुरुष और सत्यशास्त्रों के जानने वाले हैं । उन्होंने समस्त ऋग्वेद आदि का विचार किया है । वे सत्य शास्त्रों को देख और निश्चय करके ऐसा कहते हैं कि पत्थर आदि की मूर्ति का पूजन, शिव, शक्ति, गणपति और विष्णु आदि सम्प्रदाय बनाने का और रुद्राक्ष, तुलसीमाला, त्रिपुंड्र आदि धारण करने का वर्णन कहीं भी वेदों में नहीं है । इससे पता लगता है कि ये सब (बातें) मिथ्या ही हैं; ऐसी मर्यादा वेदों में लिखी है । इस कारण हरिद्वार से लेकर सब कहीं इसका खण्डन करते हुए, उक्त स्वामी जी काशी नगर में आये और दुर्गाकुंड के समीप बाग[१] में निवास किया । उनके आने की धूम मची । बहुत से पंडितों ने वेदों की पुस्तकों में विचार करना आरम्भ किया परन्तु पाषाण आदि की मूर्ति की पूजा का विधान कहीं भी नहीं मिला ।

"चूंकि पाषाण पूजा का लोगों को बहुत (आग्रह) है इसलिए काशी महाराजा ने समस्त बड़े-बड़े पंडितों को बुलाकर (उन से) पूछा कि इस विषय में क्या चाहिये ? तब सबने निश्चय करके यह कहा कि किसी न किसी प्रकार दयानन्द स्वामी से शास्त्रार्थ करके चिरकाल से प्रचलित प्रथा को जैसे भी सम्भव हो, स्थापित रखना चाहिये ।

यह मन में ठान कार्तिक सुदि द्वादशी, संवत् १९२६, मंगलवार (१६ नवम्बर, सन् १८९६) को महाराज काशीनरेश बहुत से पण्डितों को साथ लेकर स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने के अभिप्राय से गये । तब **दयानन्द स्वामी** ने महाराज से पूछा कि 'आप वेदों की पुस्तक ले आये या नहीं ?' **महाराज ने** कहा कि 'वेद समस्त पंडितों को कण्ठस्थ हैं; पुस्तक का क्या प्रयोजन है ?' **दयानन्द स्वामी ने** कहा "पुस्तक के बिना पूर्वापर के विषय का विचार ठीक-ठीक न होगा । अस्तु; पुस्तक नहीं लाये तो, न सही !"

तत्पश्चात् पण्डित रघुनाथप्रसाद कोतवाल ने यह नियम निश्चित किया कि स्वामी जी से एक-एक पण्डित विचार करे ।[1]

प्रथम **पंडित ताराचरण दार्शनिक**, शास्त्रार्थ के लिए स्वामी जी के सामने आये । स्वामी जी ने उनसे पूछा कि 'आप वेद को प्रमाण मानते हो या नहीं ?" **पंडित ताराचरण**—वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाले सभी वेदों को प्रमाण मानते ही

1. कोतवाल साहब का प्रबंध कहां रहा ?

हैं। स्वामी जी—वेद में पाषाण आदि की पूजा का जहां प्रमाण हो, वह (स्थल) दिखलाइये। जो न हो तो कहिये कि नहीं है। पं० ताराचरण-वेदों में ऐसा प्रामाणिक हो या न हो यह तो अलग प्रश्न है; परन्तु जो व्यक्ति यह कहे कि केवल वेद ही प्रमाण हैं, इसको क्या कहा जाये ?[1] **स्वामी जी**—औरों का विचार पीछे होगा, वेदों का विचार मुख्य है, इसलिए इस बात का पहले विचार करना चाहिये क्योंकि वेदोक्त कर्म ही मुख्य हैं और मनुस्मृति आदि भी वेदमूलक हैं; इस कारण ये भी प्रामाणिक हैं परन्तु वेद के विरुद्ध और वेद-अप्रसिद्ध प्रामाणिक नहीं है। **ताराचरण**—मनुस्मृति का वेद में कहां मूल है ?

स्वामी जी—'यद् वै किंचन मनुरवदत्तद्भेषजं भेषजतायाः'[२]—अर्थात् जो कुछ मनु ने कहा है सो औषधियों की औषधि है, ऐसा सामवेद के छान्दोग्य ब्राह्मण में कहा है।

विशुद्धानन्द जी—'रचनानुपपत्तेश्च नानुमानम्'[३] अर्थात् रचना की अनुपपत्ति होने से अनुमान-प्रतिपाद्य, प्रधान, जगत् का कारण नहीं, व्यास जी के इस सूत्र का वेदों में कहां मूल है ? **स्वामी जी**—यह प्रकरण से पृथक् बात (अप्रासंगिक) है; इस पर विचार करना न चाहिए। **विशुद्धानन्द**—जो तुम जानते हो तो अवश्य कहो। **स्वामी जी** ने देखा कि शास्त्रार्थ मूर्तिपूजा से हटकर दूसरी ओर चला जायेगा; इसलिए न कहा और कह दिया कि यदि कोई बात किसी को स्मरण न हो तो पुस्तक देखकर कही जा सकती है। **विशुद्धानन्द**—जो स्मरण नहीं था तो काशी नगर में शास्त्रार्थ करने को क्यों तैयार हुए ?

स्वामी जी—क्या आपको सब कण्ठस्थ हैं ? **विशुद्धानन्द**—हम को सब कण्ठस्थ है। **स्वामी जी**—कहिये; धर्म का क्या स्वरूप है ? **विशुद्धानन्द**—वेदप्रतिपाद्य, सप्रयोजन अर्थ 'धर्म' कहलाता है। **स्वामी जी**—यह तो आप की संस्कृत (आपका अपना संस्कृत वाक्य) है। इस का भला क्या प्रमाण ? श्रुति वा स्मृति (का जो प्रमाण कण्ठस्थ हो वह) कहिये **विशुद्धानन्द**—'चोदनालक्षणार्थो धर्मः'[४]—अर्थात् चोदना लक्षण लिये जो अर्थ हो सो, धर्म कहलाता है; यह जैमिनि सूत्र है। **स्वामी जी**-चोदना का अर्थ प्रेरणा का है; जहां प्रेरणा होती है वहां श्रुति अथवा स्मृति (का प्रमाण) कहना चाहिए। इस पर विशुद्धानन्द स्वामी ने कुछ भी नहीं कहा।

तब स्वामी जी ने कहा—'अच्छा जाने दीजिये। आप यही कहिये कि धर्म के कितने लक्षण हैं ? **विशुद्धानन्द**-धर्म का एक ही लक्षण है। **स्वामी जी**—वह क्या है ? **विशुद्धानन्द स्वामी**—फिर मौन हो गये। **स्वामी जी**—धर्म के तो दश लक्षण हैं; आप एक कैसे कहते हैं। **विशुद्धानन्द**—वे दश लक्षण कौन-कौन से हैं ? **स्वामी जी** ने मनुस्मृति का श्लोक पढ़ा और कहा धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध-ये दश धर्म के लक्षण हैं।[५]

तब **बालशास्त्री ने** कहा—हमने सब धर्मशास्त्र देखा है। **स्वामी जी**—आप अधर्म का लक्षण कहिये। बालशास्त्री ने उनका कुछ उत्तर न दिया।

फिर बहुत से पण्डितों ने हल्ला करके इकट्ठे (एक साथ मिलकर) पूछा कि वेदों में 'प्रतिमा' शब्द है या नहीं ?[2] **स्वामी जी**—'प्रतिमा' शब्द तो (वेद में) है।

उन लोगों ने पूछा कि कहां पर है ?[2] **स्वामी जी**—सामवेद के ब्राह्मण में है[६] (वा यजुर्वेद के ३२वें अध्याय के तीसरे मन्त्र में है)। उन लोगों ने फिर पूछा कि वह कौन-सा वचन है ? **स्वामी जी**—(देखिये स्पष्टहृदयता का चिह्न ! कि पक्षपात के बिना बतलाते हैं) 'देवतायतनानि कम्पन्ते दैवतप्रतिमा हसन्ति'[७] अर्थात् देवता के स्थान कांपते हैं और प्रतिमा हंसती है आदि। फिर उन लोगों ने कहा कि जब प्रतिमा शब्द वेद में है तो आप कैसे खंडन करते हैं ? **स्वामी जी**—'प्रतिमा'

---

1. इस उत्तर को ध्यान से पढ़िये वेद में मूर्तिपूजा का स्पष्ट निषेध है। —संकलनकर्ता।

2. खेद है कि काशी के पंडित और वेदों के विषय में इतनी अज्ञानता ! और फिर 'प्रतिमा' शब्द की विद्यमानता सुनकर बच्चों के समान प्रसन्न होना और विजय का प्रयत्न करना ताकि साधारण अनपढ़ों को कह दें कि अब 'प्रतिमा' शब्द तो वेदों में से निकल आया; मूर्तिपूजा सिद्ध हो गई !

शब्द (आ जाने) से ही पाषाणपूजा आदि का प्रमाण नहीं बन जाता; इसके लिए तो प्रतिमा शब्द का अर्थ करना चाहिये । तब उन लोगों ने कहा कि जिस प्रकरण में यह मन्त्र है—उस प्रकरण का क्या अर्थ है ? **स्वामी जी**—इस का यह अर्थ है[1]—'अब अद्‌भुत शान्ति का व्याख्यान करते हैं, ऐसा आरम्भ करके फिर इन्द्र (त्रातारमिन्द्र) आदि सब मूलमन्त्र वहीं सामवेद के ब्राह्मण में लिखे हैं और वहां कहा है कि इनमें से प्रत्येक मन्त्र पर तीन-तीन हजार आहुति करनी चाहिये । इसके पश्चात् व्याहृतियों से पांच-पांच आहुति देनी चाहियें ।' ऐसा कहकर सामगान करना भी लिखा है । इस क्रम से अद्‌भुत शान्ति का विधान किया जाता है । जिस मन्त्र में प्रतिमा शब्द है, (वह) मन्त्र मृत्युलोकविषयक नहीं है किन्तु ब्रह्मलोक विषयक है; जैसे—'स प्राचीं दिशमन्वावर्तते' अर्थात् 'जब वह विघ्नकर्ता देवता पूर्वदिशा में वर्तमान होवे'—इत्यादि मन्त्रों से पूर्वदिशा की अद्‌भुत दर्शनशान्ति होकर फिर दक्षिणदिशा की, पश्चिमदिशा की शान्ति कहकर, उत्तरदिशा की शान्ति कही । फिर भूमि और मृत्युलोक का प्रकरण समाप्त कर अन्तरिक्ष की शान्ति कही । और उसके पश्चात् स्वर्गलोक की और फिर परम स्वर्ग अर्थात् ब्रह्मलोक की ही शान्ति कही ।

फिर **बालशास्त्री** ने कहा कि जिस-जिस दिशा में जो देवता हैं तिस-तिस देवता की शान्ति करने से दृष्टि-विघ्न की शान्ति होती है । **स्वामी जी**—यह तो सत्य है परन्तु इस प्रकरण में दिखाने वाला कौन है ? **बालशास्त्री**—इन्द्रियां दिखाने वाली हैं । **स्वामी जी**—इन्द्रियां तो देखने वाली हैं । दिखाने वाली नहीं । परन्तु 'स प्राचीं दिशमन्वावर्तते' मन्त्रों में 'वह' शब्द का वाच्यार्थ क्या है ? बालशास्त्री से इस पर कुछ भी उत्तर न बन सका ।

पंडित शिवसहाय (प्रयागवासी)—शान्ति करने का फल अन्तरिक्ष आदि गमन, इस मन्त्र द्वारा कहा जाता है। **स्वामी जी**—यदि आपने वह प्रकरण देखा है तो किसी मन्त्र का अर्थ कहिये । तब शिवसहाय जी चुप हो गये, कुछ न बोल सके ।[2]

फिर **विशुद्धानन्द स्वामी** ने कहा कि वेद कैसे उत्पन्न हुए? **स्वामी जी**—वेद ईश्वर से उत्पन्न हुए। **विशुद्धानन्द**—किस ईश्वर से ? न्यायशास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर से, योगशास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर से अथवा वेदान्तशास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर से ? **स्वामी जी**—क्या ईश्वर बहुत से हैं ? **विशुद्धानन्द**—ईश्वर तो एक ही है; परन्तु वेद कौन से लक्षण के ईश्वर से भये हैं ? **स्वामी जी**—सच्चिदानन्द लक्षण वाले ईश्वर से होते हैं। **विशुद्धानन्द**—ईश्वर और वेदों में क्या सम्बन्ध है ? प्रतिपाद्यप्रतिपादक भाव या जन्यजनक भाव या समवायभाव वा स्वस्वामी भाव अथवा तादात्म्य आदि। **स्वामी जी**—कार्यकारण भाव सम्बन्ध है ।

विशुद्धानन्द—जैसे (मनो ब्रह्मेत्युपासीत) मन में ब्रह्मबुद्धि करके और (आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीत) सूर्य में ब्रह्मबुद्धि करके प्रतीक उपासना कही है तैसे ही शालिग्राम का पूजन भी ग्रहण करना चाहिये । **स्वामी जी**—जैसे 'मनो ब्रह्मेत्युपासीत'[१०] आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीतेत्यादि[११] वचन वेद में देखे जाते हैं, तैसे 'पाषाणादि ब्रह्मेत्युपासीत' आदि वचन वेद में नहीं दीख पड़ते; फिर क्योंकर मूर्तिपूजा का ग्रहण हो ?

तब **माधवाचार्य** ने कहा 'उद्‌बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते इति'[१२] इस मन्त्र में पूर्ति शब्द से किसका ग्रहण है ? **स्वामी जी**—पूर्त शब्द पूर्ति का वाचक है । इस से किसी प्रकार और कभी भी पाषाण आदि की मूर्ति का ग्रहण नहीं होता; यदि शंका हो तो इस मन्त्र का निरुक्त और ब्राह्मण देखिये । (फिर इस पर कोई कुछ न बोला) ।

माधवाचार्य—ने फिर एक नया प्रश्न पूछा कि पुराण शब्द वेदों में है या नहीं ?

---

1. अथातोद्‌भुतशान्तिं व्याख्यास्याम इत्युपक्रम त्रातारमित्यादयस्तत्रैव सर्वे मूलमन्त्रा लिखिताः ।

2. बेचारे ने देखा होता तो कहता ।

स्वामी जी—पुराण शब्द तो बहुत से स्थानों पर वेदों में है परन्तु पुराण शब्द से ब्रह्मवैवर्त, भागवत, गरुड़ आदि ग्रन्थों का कदापि अर्थ नहीं लिया जा सकता क्योंकि वह शब्द भूतकाल का वाची है। और सभी स्थानों पर द्रव्य ही का विशेषण होता है। इस पर विशुद्धानन्द जी बोले कि बृहदारण्यकोपनिषद् के इस मन्त्र में 'एतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं श्लोका व्याख्यानान्यनुव्याख्यानानीति"[१३] जो ये सब पठित हैं, वे ग्रन्थ प्रामाणिक हैं या नहीं? **स्वामी जी**—केवल सत्य श्लोकों का ही प्रामाण्य होता है, औरों का नहीं।

विशुद्धानन्द—यहां पुराण शब्द किस का विशेषण है? **स्वामी जी**—पुस्तक लाइये, तब विचार किया जा सकता है।

तब किसी ने बृहदारण्यक (ग्रन्थ तो) न निकाला; प्रत्युत इसके विपरीत एक और गृह्यसूत्र का ग्रन्थ लेकर उसके दो पत्रे निकाल कर **माधवाचार्य** बोले-यहां पुराण शब्द किसका विशेषण है? **स्वामी जी**—कैसा वचन है? पढ़िये। **माधवाचार्य** ने तब कुछ पढ़ा उसमें लिखा था कि—'ब्राह्मणनीतिहासः पुराणानीति।' **स्वामी जी**—यहां पुराण शब्द ब्राह्मण का विशेषण है पुराने अर्थात् सनातन, ब्राह्मण हैं। तब **बालशास्त्री** ने कहा कि क्या कोई ब्राह्मण नवीन भी होते हैं? **स्वामी जी**—नवीन ब्राह्मण नहीं है परन्तु ऐसी शंका किसी को न हो इसलिए यहां यह विशेषण कहा है। **विशुद्धानन्द**—यहां इतिहास शब्द का व्यवधान होने से कैसे विशेषण होगा? **स्वामी जी**—क्या ऐसा कोई नियम है कि व्यवधान हो तो विशेषण नहीं होता है और अव्यवधान में ही होता है। देखो गीता के इस श्लोक में—"अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।" दूरस्थ देही का भी विशेषण क्या नहीं है? और व्याकरण आदि में भी कहीं यह नियम नहीं है कि समीपस्थ ही विशेषण होते हैं, दूरस्थ नहीं। **विशुद्धानन्द**—यहां पुराण शब्द 'इतिहास' का विशेषण नहीं है तो फिर इससे क्या अभिप्राय हुआ कि यहां नवीन इतिहास का ग्रहण करना चाहिये? **स्वामी जी**—अन्य किसी स्थान पर इतिहास का विशेषण पुराण शब्द है, सुनिये—'इतिहासः पुराणः पंचमो वेदानां वेदः'[१४] इत्यादि। इस वाक्य में इतिहास का विशेषण पुराण शब्द है। **वामनाचार्य** आदि बहुत पंडितों ने कहा कि यह पाठ नहीं है। **स्वामी जी**—सामवेद के छान्दोग्योपनिषद् में यह पाठ न हो तो हमारा पराजय हो और जो ऐसा हो तो तुम्हारा पराजय हो, यह प्रतिज्ञा लिखो। तब सब चुप हो रहे, किसी ने प्रतिज्ञा लिखने का नाम न लिया।

फिर पूर्ण विद्वान् **स्वामी दयानन्द जी** ने सत्यधर्म की पूरी विजय देखकर और बार-बार प्रत्येक बनारसी विद्वान् को विद्याबल से (पृथक्-पृथक्) पछाड़ कर सर्वसामान्य (सभी पंडितों को) चुनौती दी। **स्वामी जी**—व्याकरण जानने वाले इस पर कहें कि व्याकरण में कहीं कल्मसंज्ञा की है या नहीं? **बालशास्त्री**—संज्ञा तो नहीं की है परन्तु एक सूत्र में महाभाष्यकार ने उपहास किया है। **स्वामी जी**-महाभाष्य के किस सूत्र में संज्ञा तो नहीं की प्रत्युत उपहास किया है? जो जानते हो तो उदाहरणपूर्वक समाधान कहो। इस पर **बालशास्त्री** आदि कोई भी कुछ उत्तर न दे सका और सर्वथा गूंगे बन गये।

कपट का आश्रय लिया—उस समय चूंकि अच्छी प्रकार अन्धेरा हो गया था। चार घंटे तक शास्त्रार्थ करते-करते सब थक गये थे, प्रत्येक अलग-अलग अपनी शक्ति की परीक्षा करके पराजित हो चुका था इसलिए उन्होंने एक कपट का दाव खेला अर्थात् माधवाचार्य ने दो पत्रे वेद के नाम से निकाल कर सब पंडितों के बीच में फेंक दिये और कहा कि यज्ञ के समाप्त होने पर यजमान दसवें दिन पुराणों का पाठ सुने, ऐसा लिखा है। यहां पुराण शब्द किस का विशेषण है? **स्वामी जी** ने कहा कि पढ़ो, इसमें किस प्रकार का पाठ है? जब किसी ने न पढ़ा तब **विशुद्धानन्द स्वामी** ने पत्रे उठाकर स्वामी जी की ओर करके कहा कि तुम ही पढ़ो। **स्वामी जी**—'आप ही इस का पाठ कीजिये।' कहकर पत्रे लौटा दिए। **विशुद्धानन्द**—मैं बिना ऐनक के पाठ नहीं कर सकता-ऐसा कहकर वे पत्रे उन्होंने उठाकर स्वामी दयानन्द जी के हाथ में दे दिये। **स्वामी जी** पत्रे लेकर विचार करने लगे। अनुमानतः पांच पल बीते होंगे कि ज्यों ही स्वामी जी यह उत्तर दिया चाहते थे कि 'पुरानी जो

विद्या है उसे पुराण विद्या कहते हैं, वह पुराण विद्या वेद है । पुराण विद्या से वेद इत्यादि ब्रह्मविद्या का यहां ग्रहण है (देखो मांडूक्य का आरम्भ) । और अन्य स्थानों में ऋग्वेद आदि चार वेदों का यहां श्रवण लिखा है, उपनिषदों का नहीं, इसलिए "दशमेऽहनि किंचित्पुराणमाचक्षीत पुराणविद्या वेदः ।' गृह्यसूत्र के इस पाठ में यहां उपनिषदों का ही ग्रहण है औरों का नहीं; क्योंकि पुरानी विद्या वेदों ही की ब्रह्मविद्या है इसलिए इस से भागवत, ब्रह्मवैवर्त आदि नवीन ग्रन्थों का ग्रहण कभी नहीं कर सकते क्योंकि जो यहां ऐसा पाठ होता कि ब्रह्मवैवर्त आदि १८ ग्रन्थ पुराण हैं, सो वेद या उपनिषदों या किसी ऋषिकृत ग्रन्थ में ऐसा पाठ कदापि नहीं है । इसलिए इस वचन से इन १८ ग्रन्थों का ग्रहण किसी भी प्रकार नहीं हो सकता ।"

विशुद्धानन्द स्वामी उठ खड़े हुए कि हमको विलम्ब होता है, हम जाते हैं । तब सब के सब उठ खड़े हुए और कोलाहल करते हुए चले गए ताकि उनके कोलाहल करने से लोगों को यह विदित हो कि स्वामी दयानन्द जी की पराजय हुई ।

अब इस पर बुद्धिमान् लोग विचार करें कि किसकी जय और किसकी पराजय हुई । दयानन्द स्वामी के चार उपर्युक्त प्रश्न हैं, उन चारों का वेद में प्रमाण न निकला तो क्योंकर उनकी पराजय हुई ? प्रत्युत स्पष्ट प्रकट है कि काशी के पंडितों की पराजय हुई और स्वामी दयानन्द जी की जय ।

विचारणीय टिप्पणी[१५]—विदित हो कि दयानन्द जी महाराज अकेले सत्यधर्म और सत्यविद्या के बल से काशी के समस्त मूर्तिपूजक और शैव, शाक्त आदि सम्प्रदायी पंडितों के सम्मुख शास्त्रार्थ को उपस्थित थे । उचित तो यह था कि कोई एक पंडित जो सब में मुख्य होता, आरम्भ से अन्त तक बातचीत करता परन्तु उस धार्मिक पुरुष ने इसकी कुछ चिन्ता न की और चार बातों में उन्हें शास्त्रार्थ के लिए ललकारा ।

पहला—"पाषाण आदि की मूर्ति का पूजन वेदविरुद्ध है; इसलिए उसका करना पाप है ।" सारा शास्त्रार्थ हो चुका, बनारस की सारी विद्या बल लगा चुकी और आज उसको २८ वर्ष होते हैं कि कोई मन्त्र किसी ने भी वेद से मूर्तिपूजन-विधान का न निकाला और निकालें किस प्रकार जब कि वेद में उसका पता ही नहीं है । दो-तीन बार जब प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पंडितों ने पछाड़ खाई, फिर सारा शास्त्रार्थ देखिए किसी ने मूर्ति की ओर मुख तक नहीं किया और न शालिग्राम आदि का कहीं नाम लिया । प्रिय पाठको ! यह कितनी बड़ी विजय है ।

दूसरा—मूर्तिपूजा के विषय में हार खाकर काशी के पंडित, मनुस्मृति आदि (ग्रन्थ) वेदमूलक हैं या नहीं, इस ओर दौड़े । अहंकार का शिर नीचा होता है । विशुद्धानन्द का यह कहना कि हां, हमको सब कंठ है कितना अशुद्ध निकला और किस प्रकार उन्हें लज्जित होना पड़ा । यहां तक कि वह धर्म का और बालशास्त्री अधर्म का स्वरूप तक न बतला सके । सत्य है कि एकेश्वरवाद के सूर्य के सामने मूर्तिपूजा का मृत दीपक नहीं जल सकता । (धुंधला दीपक कैसे प्रकाशित होगा ?) ।

तीसरा—प्रतिमा शब्द पर पंडितों का चकित होना और उनकी व्यग्रता वास्तव में दया के योग्य है । जिस धार्मिक बल से सत्यप्रतिज्ञ महात्मा ने उनको अवसर दे-दे कर गिराया वह अत्यन्त ही आश्चर्यजनक है ।

चौथा—"पुराण शब्द जो वेदादिक सनातन ग्रन्थों में आया है उससे अठारह पुराण अभीष्ट नहीं ।" पंडितों ने कितना प्रयत्न किया और कितने हाथ पांव मारे; अपनी ओर से (वे) जान पर भी खेल गये; सत्यासत्य का कुछ भी ध्यान न रखा परन्तु ऋषि का ढंग न प्राप्त होना था न हुआ । न अठारह पुराण सिद्ध हुए न वे पुराण शब्द को विशेष्य वाची सिद्ध कर सके । छान्दोग्य के वाक्य पर समस्त पंडितों का एकमत होकर अस्वीकार करना कि यह कहीं नहीं है और स्वामी जी का इसपर पूर्ण सत्यता से डटे रहना और कहना कि यदि यह वाक्य सामवेद के छान्दोग्योपनिषद् में न हो तो हमारी पराजय अन्यथा तुम्हारी, यह प्रतिज्ञा लिखो । इस पर पंडितों का मौन साध जाना और प्रतिज्ञा से मुंह छुपाना, स्वामी जी की कितनी बड़ी सफलता है ! माधवाचार्य का अन्धेरे में पत्रों का पटकना, सब पंडितों का पढ़ने से जी चुराना, विशुद्धानन्द का ऐनक का

बहाना बनाकर जान छुड़ाना । **स्वामी जी** का ऐसे समय में पृष्ठ उठाकर पढ़ने में पांच पल लगाना और जब उत्तर देने लगना तो प्रथम **विशुद्धानन्द** का विलम्ब का बहाना करके खड़ा हो जाना और साथ ही सारे पंडितों का कोलाहल करना और कोलाहल करते हुए बाहर निकल जाना कैसी शिष्टता, कैसी बुद्धिमत्ता और सत्यासत्य के निर्णय का कितना ध्यान समझा जा सकता है ।

पंडित काशीनारायण वजीर—मुन्सिफ, वर्तमान पेंशनर, बनारस निवासी कहते हैं "स्वामी राम निरंजन जी[१६] को (जो कि संस्कृत विद्या के बड़े प्रसिद्ध विद्वान् हैं) किसी ने सूचना दी कि महात्मा दयानन्द नामक आये हुए हैं जो मूर्तिपूजा का खंडन करते हैं, तब उन्होंने आगे-पीछे देखकर कि कोई अन्य तो नहीं सुनता, कहा कि कहता तो सच है परन्तु प्रतीत होता है कि अल्पवयस्क और अनुभवशून्य है ।"

फर्रूखाबाद में पहला शास्त्रार्थ

शास्त्रार्थकर्त्ता—श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा पंडित श्रीगोपाल जी ।[१७] (दिनांक सोमवार, २४ मई, सन् १८६९ ।)

संवत् १९२५ में जब स्वामी जी दूसरी बार फर्रूखाबाद आये तो उस बार चर्चा अधिक हुई । दिन प्रतिदिन उनके उपदेश की कीर्ति बढ़ गई । सैकड़ों रईस और भले लोग उनके पास जाते और अपने सन्देह निवृत्त करते रहे और इसी प्रकार साधारण लोग भी इस उपकार-स्रोत से लाभ उठाते और अपनी प्यास बुझाते रहे । जो ब्राह्मण आदि उनके पास जाते, स्वामी जी उन्हें गायत्री, अग्निहोत्र और बलिवैश्वदेव का उपदेश करते और सबसे पूछते कि तुम वेद पढ़ते या जानते हो या नहीं ? बहुत से लोग उनके सत्योपदेश से सन्ध्या करने लगे और जिन्होंने पहले करके छोड़ दी थी उन्होंने पुनः आरम्भ कर दी । जिन्होंने तीसरे काल का नियम रखा था उन पर स्वामी जी ने आक्षेप किया कि तीसरा काल तुमने कौन सा नियत किया ? लोगों ने मध्याह्न काल बताया । स्वामी जी ने कहा कि शास्त्र द्वारा सन्ध्या की व्युत्पत्ति करने से स्पष्ट हो जाता है कि सन्ध्या केवल दिन और रात के मिलाप का नाम है; मध्याह्न की सन्ध्या नहीं हो सकती । प्रातःकाल और सायंकाल, दो ही सन्ध्या के समय हैं । यहां के लोग मध्याह्न के लिए प्रमाण खोजने लगे और राजा कर्ण का प्रमाण दिया कि वह मध्याह्न की सन्ध्या करके भोजन करता था परन्तु जब स्वामी जी ने महाभारत निकाल कर उसका खंडन किया और महाभारत में लिखी हुई द्वारिका से हस्तिनापुर तक की कृष्णचन्द्र की यात्रा से दो-काल-सन्ध्या के समय का प्रमाण[१८] निकाला और लोगों को दिखलाया तो लोगों ने वह आग्रह छोड़ दिया और स्वामी जी की बात मान ली ।

स्वामी जी ने उनकी सन्ध्या के मन्त्रों पर भी आक्षेप किया और एक सन्ध्या लिखवाई जो 'पंचमहायज्ञविधि' के नाम से प्रसिद्ध है । वहां के ब्राह्मणों को बहुत समझाया कि तुम प्रातःकाल उठकर गायत्री का जाप करो और पाखंड आदि छोड़ दो । पोपलीला अच्छी नहीं और न इसमें भला है । जो लोग शास्त्र द्वारा कर्म करने वाले थे उनको कुछ न कहा परन्तु जो अपने भ्रष्टाचार में संलग्न, संसार को बहकाने में प्रवृत्त, निरक्षर भट्टाचार्य, सत्कर्मों से हीन होने पर भी अपने आपको ब्राह्मण मानते थे, उनका खुल्लमखुल्ला खंडन आरम्भ किया । मनुस्मृति का प्रमाण देते थे कि जो वेदविद्या कुछ नहीं जानता वह चाहे किसी का पुत्र हो, शूद्र है ।[१९] जिस पर सामान्य जन्मना ब्राह्मणों ने जाकर पंडितों से शिकायत की कि ये हमारी जीविका का नाश करते हैं, यह बात बहुत बुरी है । तब जिला मेरठ के रहने वाले पंडित श्रीगोपाल यहां आये और शास्त्रार्थ के लिए उद्यत हुए ।

शास्त्रार्थ[२०] —इस शास्त्रार्थ में मध्यस्थ पीताम्बरदास जी थे तथा उनके अतिरिक्त दस-पांच पंडित और भी थे। विश्रान्त घाट पर जहां स्वामी जी उतरे थे, सब लोग एकत्रित हुए और पंडित श्रीगोपाल जी भी गये। उस समय श्रीगोपाल जी और स्वामी जी के मध्य निम्नलिखित बातचीत हुई—

पण्डित जी बोले—"भो स्वामिन् मया रात्रौ विचारः कृतः" हे स्वामी ! मैंने रात्रि में विचार किया है। आप मूर्तिपूजा का क्यों और कैसे खंडन करते हैं ? यह मूर्तिपूजा जो सर्वथा लिखी (शास्त्रोक्त) है।

स्वामी जी—"कुत्र लिखितमस्ति तदुच्यताम्" अर्थात् कहां लिखी है वह कहो और तुम्हारा यह संस्कृत (वाक्य) अशुद्ध है।

पंडित जी ने संस्कृत की अशुद्धि तो स्वीकार न की परन्तु मूर्तिपूजा के प्रमाण में मनु० अध्याय २, श्लोक १७२ पढ़ा—"देवताभ्यर्चनं चैव समिधाधानमेव च"।

स्वामी जी—"अस्यार्थः क्रियताम्" अर्थात् इस का अर्थ करो। **पंडित जी**—देवता का पूजन करे, सायं-प्रातः हवन करे और पूजन चूंकि प्रतिमा का ही हो सकता है, और का नहीं; इसलिए इस से मूर्तिपूजन सिद्ध है।

स्वामी जी—व्युत्पत्ति द्वारा इसका अर्थ करो। 'अर्च पूजायाम्' अर्थात् अर्चा-पूजा और सत्कार को कहते हैं; इसलिए यहां अग्निहोत्र और विद्वानों का सत्कार करे, यह अभिप्राय है; मूर्तिपूजा करे, यह अभिप्राय नहीं है।

इस पर थोड़ी देर तक शास्त्रार्थ चलता रहा। श्रीगोपाल जी निश्चय करके गये थे कि स्वामी जी को परास्त करेंगे, वह बात न हुई और न मूर्तिपूजन का प्रतिपादन हुआ। इस पर स्वामी जी की विद्वत्ता की ख्याति नगर में और अधिक फैल गई और इसका कारण भी श्रीगोपाल हुए क्योंकि उसने यद्यपि उस समय अपनी भूल न मानी परन्तु दूसरे दिन पंडितों से पूछता फिरता था कि अर्चा शब्द कहीं नपुंसक भी होता है या नहीं क्योंकि मैंने वहां भूल से अर्चा नपुंसक लिंग बोल दिया है। पंडितों ने कहा कि नहीं वह तो (स्त्रीलिंग) होता है।

काशी से 'व्यवस्था' का ढोंग—इस अवसर पर श्रीगोपाल ने अपनी अपकीर्ति देखकर अपनी सफलता का एक यह उपाय सोचा कि काशी जाकर स्वामी जी के विरुद्ध मूर्तिपूजा के पक्ष में व्यवस्थापत्र लाऊं और उनको शास्त्रार्थ में इस बहाने हराने का यत्न करूं। यह निश्चय कर वे बनारस गये।

पंडित शालिग्राम जी शास्त्री,[२१] मुख्याध्यापक गवर्नमेंट कालिज अजमेर, वर्णन करते हैं—'जब स्वामी जी ने हमारे नगर फर्रूखाबाद में आकर मूर्तिपूजा का खण्डन आरम्भ किया तब पंडित श्रीगोपाल जी बनारस में हमारे पास आये कि आप फर्रूखाबाद नगर के रहने वाले हैं। आजकल एक स्वामी दयानन्द नामक वहां आये हैं और मूर्तिपूजा का खंडन करते हैं, कृपा करके हमें व्यवस्था दे दीजिये। हमने उनके लिए प्रमाण लिखने का निश्चय किया परन्तु हमारे गुरु पंडित राजाराम शास्त्री ने कहा कि तुम क्यों परिश्रम करते हो ? पहले भी एक बार दक्षिण में मूर्तिखंडन की चर्चा हुई थी, उस समय हमने काशी के पंडितों के हस्ताक्षर से एक व्यवस्था लिखी थी; उसकी प्रतिलिपि भेज दो। मैंने उसकी प्रतिलिपि करके काशी के पंडितों के हस्ताक्षर कराने के पश्चात् उनको दे दी। हस्ताक्षर कराने में श्रीगोपाल जी के कुछ रुपये भी पंडितों की भेंट-पूजा में व्यय हुए थे। हमने पहली बार श्रीगोपाल जी के मुख से ही स्वामी जी का नाम सुना था।'

श्रीगोपाल जब वह व्यवस्था लाया तो मन में फूला न समाया। संवत् १९२५ के अन्त में यह व्यवस्था लाया और आते ही बड़ी-बड़ी डींग मारनी आरम्भ की और अपने साथ डाकमुंशी ज्वालाप्रसाद, कान्यकुब्ज शाक्तमतावलम्बी को

(जो एक अग्रगण्य शराबी प्रसिद्ध था) मिला लिया । २२ मई, १८६८ शनिवार के दिन ज्वालाप्रसाद ने विज्ञापन लिखकर दरवाजों पर लगा दिये कि हम और श्रीगोपाल, स्वामी जी से शास्त्रार्थ करेंगे ।

पंडित गोपालराव हरि जी, उक्त व्यवस्था की प्रतिलिपि, नरसिंह चौदस से एक रात पहले ही श्रीगोपाल के पास जाकर लाये और स्वामी जी के पास ले गये । उसको स्वामी जी ने आदि से अन्त तक पढ़ा और पढ़कर हंसे और कहा कि मैंने काशी वालों की योग्यता जान ली । वहां शास्त्रार्थ भी ऐसा ही होगा ।

वैशाख सुदि नरसिंह चौदस, संवत् १९२६ मंगलवार तदनुसार २४ मई, सन् १८६९ को उसने अत्यन्त धूमधाम से स्वामी जी के समीप गंगा के तट पर टोका घाट के मैदान में जाकर उसी व्यवस्था को जा टिकाया और एक बांस लेकर उस का झंडा बनाया और उस पर संस्कृत में **'धर्मध्वजेयं'** लिखकर गाड़ दिया ।

पंडित दिनेशराम, पंडित गंगाप्रसाद और ला० जगन्नाथप्रसाद, रईस फर्रूखाबाद ने कहा—"उस दिन वहां बड़ा मेला लग गया; हजारों मनुष्य उपस्थित थे । उस समय उसने स्वामी जी के पास मनुष्य पर मनुष्य भेजे कि आप शास्त्रार्थ के लिए आइये ! उस समय स्वामी जी ने कहा कि वह शास्त्रार्थ क्या करेगा जिसे पुल्लिग और स्त्रीलिंग का भी ज्ञान नहीं । सारे व्याकरण में 'ध्वज' शब्द पुल्लिग होता है और उस बुद्धिमान् ने उसे स्त्रीलिंग लिखा है । शेष रहा नीचे बुलाना । वह इसलिए है कि कुछ बखेड़ा करे । श्रीगोपाल ने एक बार बांस रेत में गाड़ा और लोगों से कहा कि इस पर सब जल चढ़ाओ । जल चढ़ाना ही ठीक है, ये व्यर्थ मूर्तिपूजा की निन्दा करते हैं । सैकड़ों मनुष्यों ने लुटिया भर-भर कर उस पर जल चढ़ाया और इसी अविद्या का अन्धाधुन्ध अनुकरण करते रहे । स्वामी जी ऊपर विश्रान्त पर खड़े तमाशा देख रहे थे और सैकड़ों मनुष्य उनके पास बैठे हुए थे । ला० सुखवासीलाल साध[२२] रईस ने, दो अन्य रईसों सहित, स्वामी जी से कहा कि आप बखेड़े से न डरें, हम प्रबन्ध करेंगे । स्वामी जी ने कहा कि प्रथम तो हजारों में प्रबन्ध कठिन, दूसरे यदि हो भी तो प्रयोजन क्या है ? जो उनको निश्चय करना है तो उनमें से जो पंडित लोग हैं, यहां चले आवें और यदि उनका अभिप्राय बखेड़ा करने का है तो उसकी हमको आवश्यकता नहीं । इतने में श्रीगोपाल का भेजा हुआ एक चौबा स्वामी जी के पास आया । उस समय स्वामी जी श्रीगोपाल की लीला देखकर हंस रहे थे और कहते थे 'सर्वे वासिता: वर्तन्ते' कि एक श्रीगोपाल ने सब को चढ़ा दिया है । चौबे ने आकर कहा कि चलो शास्त्रार्थ करो । स्वामी जी ने संस्कृत में कहा कि तू जानता है कि शास्त्रार्थ कैसे होता है ? चौबे ने मुन्नीलाल वैश्य से पूछा कि तनिक बतलाना तो सही कि स्वामी जी क्या कहते हैं । उसने कहा कि पूछते हैं 'तू शास्त्रार्थ का अर्थ जानता है ?' उसने कहा कि नहीं । तब स्वामी जी ने कहा कि फिर तुझे क्या, जैसा तू यहां वैसा वहां । इस पर वह चकित हो गया और वहीं खड़ा रह गया । श्रीगोपाल को जब लोगों ने कहा कि चलो स्वामी जी के पास ऊपर चलकर शास्त्रार्थ करो, नीचे क्यों कोलाहल कर रहे हो तब यह उत्तर दिया कि स्वामी जी ने विश्रान्त (घाट) कील दी है; यदि नीचे आवेंगे तो स्वामी जी हार जावेंगे । यदि मैं ऊपर जाऊं तो मैं हार जाऊंगा । सारांश यह कि वह ऊपर न गया और नीचे ही कोलाहल करता रहा । नगर के प्रतिष्ठित पंडितों में से उसके साथ कोई सम्मिलित न था । उस दिन ४ बजे तक तो मकान की छत पर भ्रमण करते रहे । फिर ४ बजे से बारहदरी में आ बैठे और उसी की चर्चा होती रही । नगर के समस्त विद्वान् पंडित स्वामी जी को परोक्ष में बृहस्पति का अवतार और शुकदेव की मूर्ति कहते थे ।"

२५ मई को मुंशी बख्तावरलाल सरिश्तेदार फौजदारी ने कलैक्टर साहब को उन लोगों के एकत्रित होने और शास्त्रार्थ की सूचना दी । मिस्टर ओल्डफील्ड साहब कलैक्टर थे; वे पीछे हाईकोर्ट के जज बने । साहब ने कोतवाल को आज्ञा दी कि मजहबी झगड़ा हुआ, तुमने हम को सूचना नहीं दी । तब सायंकाल कोतवाल कादिरबख्श वहां विश्रान्त पर गया । उस समय ला० जगन्नाथ रईस फर्रूखाबाद, भी वहां उपस्थित थे । प्रथम उसने स्वामी जी को बाहर बुलाया, उन्होंने

कहा कि तुम भीतर चले आओ। तदनुसार वह आया। तब कोतवाल ने कहा कि बाबा जी ! यह क्या बखेड़ा है ? स्वामी जी ने कहा कि हम अपने स्थान पर बैठे हैं; हमें किसी से प्रयोजन नहीं, चाहे कोई कुवाक्य या कुवचन कहे। हम किसी बुरा समझने वाले को (हमें बुरा समझने से) नहीं रोक सकते। फिर कोतवाल ने जाकर पंडित श्रीगोपाल को बुलाया। पं० श्री गोपाल ला० पन्नालाल के पास गया और पन्नालाल ला० जगन्नाथप्रसाद के पास आये और कहा कि श्रीगोपाल कहता है कि यदि मेरे पर कोई बात हुई तो मैं जान दे दूंगा। तब ला० जगन्नाथ जी ने कोतवाल से कहला भेजा कि कोई शास्त्रार्थ नहीं हुआ; लोग केवल स्वामी जी के दर्शन को गए थे। इस पर यह बात यहीं शान्त हो गई और श्रीगोपाल नगर से बाहर चला गया। उसके दो-तीन दिन पश्चात् ज्वालाप्रसाद शराब पीकर स्वामी जी के स्थान पर गया और कुर्सी अपने घर से ले गया। वहां कुर्सी बिछा कर बैठा और स्वामी जी को बहुत कुवाक्य कहे जिस पर प्रथम तो उसे उपस्थित लोगों ने रोका, जब न माना तो मुन्नीलाल वैश्य, मदनमोहन वैश्य, शिवदत्त ब्रह्मचारी और नन्दकिशोर विद्यार्थी ने उसे बहुत पीटा और उसकी कुर्सी आग में जला दी। स्वामी जी ने रोका कि इस पागल को मत पीटो। वह अपने मन में स्वामी जी को मारने की इच्छा से आया था। उसने कोतवाली में रिपोर्ट की परन्तु कुछ न हुआ।

फिर यह सुना गया कि ठाकुरदास पांडे डाकमुंशी का समधी २०-२५ मनुष्यों को साथ लेकर स्वामी जी पर आक्रमण करेगा। यह सुनकर ला० जगन्नाथप्रसाद दो-तीन सिपाहियों और मुन्नीलाल सहित वहां गये। जब विश्रान्त के समीप पहुंचे तो सुना कि वह किसी भी कारण या तो अपने पकड़े जाने के भय के कारण अथवा स्वामी जी की उत्कृष्ट बलिष्ठता से डरकर लौट गये हैं। उन्होंने जाकर यह सारा वृत्तान्त स्वामी जी से निवेदन किया कि हमने ऐसा सुना है, अब आप बाहर के मकान के बदले भीतर के मकान में रहिये। इस पर स्वामी जी ने कहा यदि यहां मेरी रक्षा तुम करोगे तो अन्यत्र कौन करेगा ? वह परमात्मा सर्वत्र मेरी रक्षा करने वाला है। मुझे किसी का भय नहीं, मैं अकेला रेत में गंगातट पर घूमा करता हूं। ऐसी घटनाएं मेरे साथ बहुत स्थानों पर हुई हैं।

स्वामी जी के साथ घटी कुछ घटनाएं उन्हीं के श्री मुख से—एक घटना यह सुनाई कि सोरों में लोगों ने सम्मति की कि इनको सोते हुए उठाकर गंगा में डाल दो या विष दे दो। तदनुसार उन्होंने मेरे सन्देह पर एक और सोते हुए साधु[२३] की चारपाई उठाकर गंगा में डाल दी; इस पर वह चीखा अर्थात् उसने चीख मारी। लोगों ने उसका स्वर पहचान कर खेद प्रकट किया कि बहुत धोखा हुआ और फिर उसे निकाल लिया।

दूसरी घटना—"एक स्थान पर मैंने गंगातट पर आचार्यों के मत का बहुत खंडन किया था। वहां के ठाकुर लोग आचार्यों के अनुयायी थे, वे दोपहर को मुझे मारने के लिए आये और जहां मैं बैठा हुआ था, वहां पर उसी वृक्ष के नीचे पहाड़ी कामार्थी[1] भी दोपहर को विश्राम करनेके लिए उतरे हुए थे। जब उन्होंने देखा कि ये लोग इस साधु के मारने के लिए आए हैं तो उन्होंने अपने कुत्ते उनके पीछे छोड़ दिए और लाठियों से उनका सामना किया जिस पर वे सब ठाकुर लोग पलायन कर गये। यह समाचार सारे ग्राम में फैल गया। तब समस्त लोगों ने उन ठाकुरों और चक्रांकितों को बहुत बुरा कहा। तत्पश्चात् उन्होंने कोई बाधा नहीं डाली।"

ला० जगन्नाथप्रसाद जी ने वर्णन किया—"ज्वालाप्रसाद के विषय में हमने स्वामी जी से पूछा। उन्होंने बताया कि वह मद्य पीकर आया था और बकवास करता था। उन्होंने (लोगों ने) उसको पीटा था और उसकी कुर्सी लेकर आग में जला दी थी। हम इस काम से लोगों को रोकते भी रहे।" उन का (स्वामी जी का) नियम था कि ऐसे झगड़े के अवसर पर

---

1. ये 'कामार्थी' लोग पहाड़ से गंगोत्तरी का जल भर कर लाते हैं। जो उनकी कामरी शिव पर चढ़ावे उसे प्रसाद रूप में खिला या पिला दिया करते हैं। पश्चिमी और उत्तरी देशों में अधिक आते हैं और बड़े सीधे-सादे होते हैं।

—संकलनकर्ता

लोगों को शान्ति का उपदेश दिया करते थे । फिर हम ने सुना कि वह अर्जी (प्रार्थनापत्र) देने वाला है तब हम ने स्वामी जी से पूछा कि आप यदि न्यायालय में जावेंगे तो क्या कहेंगे ? स्वामी जी ने कहा कि हम तो यथार्थ कहेंगे कि वह शराब पीकर आया था, उन्होंने उसे उपानत्-प्रहार किया (जूते मारे); हम रोकते रहे । हमने कहा कि इस प्रकार कदाचित् उनको जुर्माना हो जावे । कहा कि हम असत्य न कहेंगे परन्तु उसने अर्जी न दी ।

काशी के पंडितों की व्यवस्था

(इसको संवत् १९२५ के अन्त में श्रीगोपाल लाये थे)

श्रीगणेशाय नमः अथ मूर्तिपूजादौ व्यवस्था लिख्यते ॥ येन केचिच्छिवविष्ण्वादिप्रतिमानां बाणलिंग-शालिग्रामशिलाप्रभृतीनांचार्चनं चातुर्वर्णिकैः परमादरपुरस्सरमहरहरनुष्ठीयमानं कतिपयपुराणादिश्लोकैरवगम्यमानमपि सकलास्तिकशिष्टानां प्रधानप्रमाणत्वेनानुमतं श्रुतिमनुस्मृत्योरनुपलम्भात् प्रमाणकोटिप्रवेशं नार्हतीति एवमष्टादशपुराणानि गयाश्राद्धं च प्रमाणपथमधिरोढुं न शक्नुवन्ति इति ब्रुवन्ते तान् प्रत्याचक्षते शास्त्रतत्त्वविदः-प्रथमं तावत्प्रतिमा-बाण-लिंगप्रभृत्यर्चनं श्रुतिसिद्धं न भवतीति मनोरथमात्रम् ॥

अथर्ववेदीयदेव्यथर्वशीर्षगोपालतापिनीयोपनिषदादिषु प्रतिमापूजनं बिल्वोपनिषदादिषु बाणलिंगार्चनस्य च स्पष्टमुक्तत्वात् । तथाहि, देव्यथर्वशीर्षोपनिषदि एतदथर्वशीर्षमज्ञात्वा योर्चां स्थापयति स शतलक्षं जप्त्वा च शुद्धिं विन्दति नूतनप्रतिमायां जप्त्वा देवतासान्निध्यं भवति प्राणप्रतिष्ठायां जप्त्वा प्राणानां प्रतिष्ठापयतीत्युक्तम् तथा गोपालतापिनीये स होवाच तं नारायणो देवः सकाम्पामेरोः श्रृंगे यथा सप्तपुर्यो भवन्ति तथा भूगोलचक्रे सप्तपुर्यो भवन्ति तासां मध्ये साक्षाद् ब्रह्म गोपालपुरीहीति मथुरेत्युपक्रम्य तत्र बृहद्वनादिद्वादशवनानि भद्रेश्वरादिलिंगानि चोक्तानि द्वादशमूर्तयो भवन्तीत्युक्ते एकां हि रुद्रा यजन्तीत्यभिधाय द्वादशेति भूम्यां तिष्ठन्ति ता हि ये यजन्ति ते मृत्युं तरन्ति मुक्तिं लभन्ते जन्ममरणगर्भ- तापत्रयात्मकं दुःखं तरन्तीत्युत्तरम् ॥

सामवेदीये विंशतिब्राह्मणेद्भुतशान्तौ देवतायतनानि कम्पन्ते, दैवतप्रतिमाः हसन्ति रुदन्ति, गायन्ति, स्विद्यन्तीत्युक्तम् तथाथर्ववेदीय-कौशिक-गृह्य-परिशिष्टे देवतार्चाः प्रनृत्यन्ति प्रदीप्यन्ति ज्वलन्ति वेति तत्रैव लिंगायतनचित्राणां रोदने गर्जने तथा अष्टमासात्परं राज्ञो ज्ञेयो मृत्युर्न संशयः इति च तत्रैव देवराजध्वजानां च पतनं भंगमेव वा क्रव्यादानां प्रवेशश्च राज्ञो नाशकरो ध्रुवं आश्वलायनगृह्यपरिशिष्टे नवग्रहयज्ञे ताम्रमयीं सूर्यप्रतिमां पीठेधितिष्ठिति स्फाटिकीमिन्दो रक्तचन्दनप्रतिमां भौमस्येति रीत्यानताद्देड़मुखप्रतिमास्थापनं निरूप्य तत्रैव अथ होमोऽहरहश्चैत्य गृहस्थोऽहरहरिष्टान्देवानिष्ट्वेष्टार्थांश्चिनोति तस्य नेहरहश्चैत्यास्ते गणपतिर्वा स्कंदो वान्यो वा योभिमतस्त एते यथारुचि समस्ता वेज्यन्तेत्यादि यजते तानप्सु ह वाग्नौ वा सूर्ये वा स्वहृदयो वा स्थंडिले वा प्रतिमासु वा यजेत् प्रतिमा स्वक्षणिकासु नावाहनविसर्जने भवतः, स्वाकृतिषु शस्तासु देवता नित्यं सन्निहिता इत्यस्थिरायान्तु विसर्जनादिविकल्पः । स्थंडिले तु भयं भवति । प्रतिमां प्राङ्मुखीं प्रत्यङ्मुखो भूत्वा यजेतान्यत्र प्राङ्मुख इत्युक्तम् । तथा विल्वोपनिषदि वर्तते एतानि दलानि वृक्षे यथा तथार्च्यानि मदीयमूर्तावित्युक्तं शिवेन सनकं प्रति । अथातो महादेवस्याहरहः परिचर्याविधि व्याख्यास्यामः । स्नात्वा शुचिः शुचौ गोमयेनोपलिप्य मृदादिप्रतिकृतिं कृत्वेत्यादि वदन् बौद्धायनोपि प्रतिमापूजनं सममंस्त । अतएव मनुस्मृतौ देवताभ्यर्चनं चैव समिदाधानमेव चेति प्रतिमादिषु हरिहरादिपूजनमिति कुल्लूकभट्टादयः । तत्रैव सोमविक्रयणोविष्टाभिषजे पूयशोणितम् नष्टं देवलकेदतम प्रतिष्ठन्तु वार्धुषाविति ॥ तत्रैव मृदंगां दैवतं विप्रघृतं मधु चतुष्पथमित्यादि प्रतिमाया एव

तत्करणसम्भवादतएव कुल्लूकभट्टः, पाषाणादिदैवतमिति तत्रैव न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचनेति देवतानां गुरोराज्ञा चेति छाया हि प्रतिमानामेव संभवति देवब्राह्मणसान्निध्येत्यत्र सान्निध्यं प्रतिमाया एव सम्भवति पुनश्च सीमासंधिषु देवतायतनानि चेति एतानि मनुवचनानि स्पष्टं प्रतिमापूजनं वर्णयन्ति संगच्छते ॥

अथ प्रदर्शितवचनजातेन प्रतिमाद्यर्चनस्य बोधनेऽपि तदितिकर्तव्यताकलापप्रदर्शनेनानुष्ठानस्य कर्तुमशक्यतया बोधित प्रायमेवेति चेत्तुल्यमेव तदष्टकाग्निहोत्रादिष्वपि । अथ तदिति कर्तव्यताकलापः कल्पसूत्रैरभिहित एवेति नोक्तोत्रेति चेत् प्रतिमादिपूजनस्य च इतिकर्तव्यताकलापो बौद्धायनीय कल्पेभिहित इति नोक्त इति तदपि तुल्यमेव; बौद्धायन सूत्रं प्रागेव दर्शितमिति सन्तोष्टव्यम् ॥ तस्माद्बाण-लिंगाद्यर्चनमत्यन्तमभ्युदय हेतुतया श्रुतिस्मृत्यादि बोधितं भवत्येव। अतएवान्तर्दिग्गतं शिष्टैरनुष्ठीयमानं सर्वानुभवसिद्धं प्रतिमाद्यर्चनमिति । पुराणानि गयाश्राद्धादिकं चाप्रामाणिकमिति कथन तदपि स्वस्यातीवाज्ञानबोधक तैत्तिरीयारण्यकीयस्य यद्ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा इत्यादि वचनस्य पुराणप्रामाण्यबोधकस्य जागरूकत्वात् । तथा शिवाथर्वशीर्षेऽपि इतिहासपुराणानां रुद्राणां च दशसहस्राणि जप्तानि भवन्तीति हि वचनम् । मनुरपि स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्रो इति भारते इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेदित्युक्तेश्च । आनुशासनिके च अष्टादश पुराणानां श्रवणाद्यत् फलं सम्भवेदित्युक्तेश्च । तथा च निरुक्तवचनैः पुराणानां प्रामाणिकत्वे सिद्धे गयाश्राद्धादिकस्यापि प्रामाण्यं निर्विवादमेवेति सर्वमनवद्यम् । एवं श्रुतिस्मृतिकल्पसूत्रैः प्रतिमापूजनादीनां प्रमाणमिति संक्षेपः ॥[1]

१—श्रीमत्परमहंसपरिविशुद्धानन्दसरस्वती-स्वामिनां संमतिः[२४] । २—संमतिरत्र सखारामभट्टस्य। ३—सम्मतिरत्रार्थे वामदेवशास्त्रिणः । ४—सम्मतिरत्र राजारामशास्त्रिणः[२५] । ५—सम्मतिरत्र बालशास्त्रिणः[२६] ६—ह० चन्द्रशेखरस्य । ७—ह० कृपाकृष्णस्य । ८—ह० वस्तीरामद्विवेदिनः[२७] । ९—ह० पाण्डे दुर्गादत्तस्य[२८] । १०—ह० शीतलमित्रस्य । ११—ह० देवदत्तपण्डितस्य[२९] । १२—ह० पण्डितघनश्यामस्य[३०] । १३—ह० चन्द्रधरमैथिलस्य। १४—ह० कालीप्रसादस्य बंगवासिनः ।[३१] १५—ह० दयारामसारस्वतस्यादि ॥

उक्त व्यवस्था का हिन्दी रूपान्तर—शिव, विष्णु आदि की प्रतिमा और शिवलिंग, शालिग्राम शिला प्रभृतियों का पूजन जो चातुर्वर्णिक जनों से प्रतिदिन अनुष्ठेय है, कई पुराणादि श्लोकों के प्रमाणों से सम्मत और सकल आस्तिक शिष्ट जनों में मानित होने से अनुमत है । उसको जो कोई श्रुति और स्मृति की असम्मति से अप्रमाण ठहराते हैं और अठारह पुराण, गयाश्राद्धादि को भी प्रमाणभूत नहीं मानते, हम उनको उत्तर देते हैं उनका यह कहना कि प्रतिमाशिवलिंग आदि का पूजन श्रुतिसिद्ध नहीं है, पहले तो उनका यह कहना ही कथनमात्र है । अथर्ववेद की देवीशीर्ष, गोपालतापनीय उपनिषद् आदि में प्रतिमापूजन और बिल्वोपनिषद् आदि में बाण लिंगार्चन का स्पष्ट विधान है । उदाहणार्थ— देवी अथर्वशीर्ष उपनिषद् में 'इस अथर्वशीर्ष को न जानकर जो पूजन करता है वह सौ लाख जपकर पूजनशुद्धि को प्राप्त होता है; नूतन प्रतिमा में जपकर देवता का सामीप्य होता है, प्राणप्रतिष्ठा में जपकर प्राणों को स्थापन करता है, ऐसा कहा है और गोपालतापनीय में कहा है कि जैसे मेरु के श्रृंग पर सात पुरियां हैं वैसे ही भूगोलचक्र में भी (सात पुरियां) हैं; उनके बीच साक्षात् ब्रह्मगोपालपुरी-मथुरा है । यह कहकर वहां बृहद् भद्रेश्वर आदि द्वादश लिंग मूर्तियां हैं । वहां पर जो केवल रूद्र का पूजन करते हैं वे मृत्यु को तैर जाते हैं, मुक्ति को प्राप्त होते हैं और जन्म मरण गर्भ के ताप और तीनो दुःखों को तैर जाते हैं, यह कहा है ।

---

1. विदित हो कि इस प्रकार यह व्यवस्था लिख इसके नीचे बहुत-सी पंक्तियों में श्री स्वामी जी महाराज के लिए अनेक अवाच्य शब्द लिख लिखकर लोगों को "उसका कहा न मानो" ऐसा बहुत कुछ उपदेश दिया है उसको व्यर्थ समझ कर हमने यहां छोड़ दिया है। —संकलनकर्ता

सामवेद के विंशति ब्राह्मण की अद्‌भुत शान्ति में लिखा है कि देवताओं के मन्दिर कांपते हैं, प्रतिमा हंसती हैं, रोती हैं, गाती हैं, दुःखी होती हैं। वैसे ही अथर्ववेद के कौशिक गृह्य परिशिष्ट में देवता ऋचा नाचती हैं, शोभा देती हैं, ज्वलन करती हैं। वहीं पर लिंग और मन्दिरों की मूर्तियों के गर्जने, रोने पर आठ मास के अन्तर राजा की मृत्यु जाननी चाहिए, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। वहीं देवराज ध्वजों के गिरने अथवा टूटने और क्रवादों के प्रवेश होने से राजा का नाश होना लिखा है और आश्वलायन गृह्य परिशिष्ट में भी नवग्रह यज्ञ में सूर्य को ताम्रमय, चांद को बिल्लौरी और भौम (मंगल) को रक्तचन्दनी सिंहासन पर आरूढ़ करना बतलाया है और इस प्रकार से वहां मुख्य प्रतिमास्थापन निरूपण किया है क्योंकि गृहस्थ उन्हीं प्रिय देवताओं का पूजन करके अपने अभीष्ट कार्यों को प्राप्त होता है। फिर वहां पर ही लिखा है कि हरिहर, गणपति, स्कन्द या और देवता जो अभीष्ट हो, पूजें। प्रतिमाओं में आवाहन और विसर्जन होता है और उनको अग्नि में, सूर्य में, अपने हृदय में या स्थंडिल पर विराजमान करके पूजन करें। अक्षणिक प्रतिमाओं में आवाहन और विसर्जन नहीं होते। अपनी आकृति वाली प्रतिमाओं में देवता समीप होते हैं। अस्थिर मूर्तियों में आवाहन और विसर्जन का विकल्प है; पर स्थंडिल पर भय होता है। पूर्वमुख प्रतिमा के सम्मुख जाकर पश्चिममुख होकर जप किया जाता है। और स्थान पर यह लिखा है कि पूर्वमुख होकर जप किया जाता है। और बिल्वोपनिषद् में लिखा है "शिव ने सनक को कहा कि जैसे वृक्ष पर शाखएं होती हैं वैसे ही मेरी मूर्ति में पूजाएं।"

अब महादेव की प्रतिदिन पूजा वर्णन करेंगे। स्नान कर शुद्ध होकर गोबर से लिपे हुए पवित्र स्थान में मिट्टी आदि की मूर्ति बनाकर, यहां इस प्रकार का जो कथन हुआ है उससे सिद्ध होता है कि बोधायन ने मूर्तिपूजा को माना है।

अब मनुस्मृति में "देवताओं का पूजन और लकड़ी आदिका लाना" देखिये! उसकी टीका में कुल्लूक भट्ट आदि ने लिखा है "कि देव मूर्तियों में हरिहर आदि का पूजन करना"। और उसमें यह भी कहा है कि 'मृदंगां दैवतम्' आदि, इस का करना भी प्रतिमा में ही हो सकता है। इसलिए कुल्लूक पाषाणादिक की मूर्ति को देवता मानता था। "न पुराने देवघर में और न वल्मीक में कभी करे" आदि कहा है। फिर "देवताओं की छाया और गुरु की आज्ञा" छाया भी प्रतिमा की हो सकती है 'देव ब्राह्मणों की समीपता' इसमें समीपता भी मूर्तियों की हो सकती है। "फिर सीमाओं के मिलाप पर देवताओं के मन्दिर बनाने चाहियें"-ये सब वचन स्पष्ट रूप से मूर्तिपूजा का वर्णन करते हैं। इससे क्या पाया जाता है?

अब दिखाये हुए वचनों से प्रतिमापूजन का ज्ञान कराने पर भी यदि यह कहा जावे कि बोधायन कल्पसूत्रों में जहां कर्त्तव्यता-कलाप वर्णित है, वहां मूर्तिपूजन का वर्णन नहीं है तो यह ठीक नहीं। हमने पूर्व बौधायन से ही इसकी कर्तव्यता दिखलाई है; इसलिए सन्तोष करना चाहिये। इसलिए शिवलिंग आदि का पूजन अत्यन्त मुक्ति का हेतु होना, श्रुति स्मृति से जताया गया है। प्रतिमापूजन चारों दिशाओं में शिष्टों से अनुष्ठेय और अनुभवसिद्ध है। गयाश्राद्धादि अप्रमाण हैं, यह कथन उनका उनकी अज्ञानता को प्रकट करता है। तैत्तिरीयारण्यक में 'ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि' यह वचन पुराणों की प्रामाणिकता को सिद्ध करते हैं। वैसे ही अथर्वशीर्ष का यह वचन है "इतिहास-पुराणानां रुद्राणां च दशसहस्राणि जप्तानि भवन्ति"। मनु ने भी कहा है—"तीर्थ में स्वाध्याय को सुनावे।" महाभारत में भी "इतिहास पुराणों से वेद को जाने।" अनुशासन पर्व में भी कहा है, 'अठारह पुराणों के सुनने से सुफल होता है।' और निरुक्त में भी पुराणों का प्रमाण होना सिद्ध है। इसलिए गयाश्राद्ध आदि की प्रामाणिकता विवादरहित है। इसी प्रकार प्रतिमापूजन भी श्रुति, स्मृति, कल्पसूत्रों के प्रमाणों से सिद्ध है। यह संक्षेप है।

इसके आगे पंडित विशुद्धानन्द आदि १५ पंडितों के हस्ताक्षर हैं।

पंडित श्रीगोपाल के इस व्यवस्था लाने और स्वामी जी की ओर से उसका खंडन हो जाने के पश्चात् ला० पन्नीलाल वैश्य, रईस फर्रूखाबाद ने इस बात के अन्तिम निर्णय के लिए कि वास्तव में वेद में मूर्तिपूजा है या नहीं, अपने गुरु एक विद्वान् पंडित पीताम्बरदास पर्वती को ज्येष्ठ मास, संवत् १९२६ में काशी भेजा। उन्होंने वहां जाकर समस्त योग्य और विद्वान् पंडितों से मिल-मिलाकर अच्छी प्रकार पूछा परन्तु सब विद्वानों से उन्हें भी यही उत्तर मिला कि भाई ! वेद में तो मूर्तिपूजा नहीं है परन्तु लोकाचार है। उन्होंने फर्रूखाबाद लौटकर यही बात पन्नीलाल जी से कही। ला० पन्नीलाल ने उस पर भी और पन्द्रह दिन तक अपने गुरु जी को साथ लेकर स्वामी जी से शंकासमाधान किया। जब सारे सन्देह निवृत्त हो गये तब पूरे सन्तोष के पश्चात् जहां शिवलिंग की स्थापना करना चाहते थे वहां पर स्वामी जी की आज्ञा से वैदिक पाठशाला स्थापित की और मूर्तिपूजा को छोड़ सत्य सनातन वैदिकधर्म में आस्थावान हुए।"

ला० गोविन्दप्रसाद, फर्रूखाबाद निवासी ने वर्णन किया—"जब इस शास्त्रार्थ की प्रसिद्धि हुई तो लाला मांगनलाल, मुन्सिफ कायमगंज ने लाला कहनोलाल की सम्मति से मुझे भेजा और कहा कि प्रातःकाल आकर वर्णन करो कि कौन जीता है। मैंने आकर देखा कि स्वामी जी विश्रान्त के ऊपर बैठे थे, बहुत भीड़-भाड़ थी। उसे चीर कर मैं स्वामी जी के पास पहुंचा, वे बहुत प्रसन्नता से बैठे हुए थे। वे लोग स्वामी जी को कहते थे कि आप नीचे आओ। स्वामी जी कहते थे कि वहां लोग नहीं देख सकते और हम दूर से आये हैं और यह विश्रान्त भी तुम्हारा है, तुम यहां आओ, परन्तु वे न आये, नीचे से कोलाहल करते और गाली देते हुए चले गये। ज्वालाप्रसाद, डाकमुंशी, शराब पीये हुए, गालियां देता जाता था। एक साधु ने उसको पीटना भी चाहा परन्तु स्वामी जी ने संस्कृत में यह कहकर कि ऐसा करना अच्छा नहीं; उसको रोक दिया। अन्त में वे चले गये। हमने यही सब वृत्तान्त मुन्सिफ साहब को सुना दिया।"

अपने मुंह मियां मिट्ठू—पंडित श्रीगोपाल जी ने ४१३ पृष्ठ की 'वेदार्थप्रकाश' नाम की एक पुस्तक पौष सुदि १०, संवत् १९३५, शुक्रवार तदनुसार ३ जनवरी, १८७९ को प्रकाशित की। इसमें पहले तो ऊपर संस्कृत, नीचे भाषा और उसके नीचे उर्दू थी अर्थात् यह तीन भाषाओं में थी। उस पुस्तक का इतिहास ला० शम्भुनाथ कायस्थ; मुरादाबादी ने लिखा; इसमें से कुछ शेर हम यहां लिखना पर्याप्त समझते हैं। इस शेर में स्वयं श्रीगोपालजी कहते हैं—'संवत् १९२६ में प्रथम (बार स्वामी दयानन्द) फर्रूखाबाद नगर में आये और आकर हमारे धर्म का खंडन करने लगे तथा पण्डित लोगों को झूठा, पाखंडी आदि कहने लगे। (और कहा कि) इन पण्डितों ने अपनी आजीविका के लिए पुराण, जो कहानियां हैं, बना लिये हैं। उस समय नगर के सब लोग भ्रम में पड़ गये और पण्डितों को पाखंडी कहने लगे। इस पर पंडित लोगों की मानहानि हुई और आजीविका भी गई। यहां के कई एक पण्डित उनके पास जाकर बोले भी परन्तु उनको (स्वामी दयानन्द ने) हथेली बजाकर निरुत्तर कर दिया। इसलिए मैंने काशी में जाकर १६ दिन तक बहुत परिश्रम से ढूंढ कर वेदपुस्तक लिखवाये और सब काशी के पण्डितों के हाथ का व्यवस्थापत्र लाया और जहां स्वामी दयानन्द ठहरे थे, वहीं उनके आगे गंगा जी की रेती में बाजे गाजे के साथ एक धर्मध्वज मैंने खड़ा कर दिया और यह बात कह दी कि आज से तीसरे दिन ध्वजा के नीचे सभा होगी। आपको कोई पुस्तक मंगानी होवे वा कोई पण्डित बुलाना होवे तो बुलवाओ। नगर के द्वार पर यह बात लिखकर कागज चिपका दिया कि जिस किसी को शास्त्रार्थ सुनना हो, वह वहां उपस्थित हो जाये। सो वहां दस हजार तक मनुष्य इकट्ठे हुए और तीन पहर सब सभा उनके लिए बैठी रही। दयानन्द जी को बहुत-सा बुलाया पर वे फिर सभा में नहीं आये' ('वेदार्थप्रकाश', पृष्ठ ५)।

फर्रूखाबाद का दूसरा शास्त्रार्थ

शास्त्रार्थकर्ता—श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा पण्डित हलधर ओझा मैथिल (शनिवार, १९ जून, सन् १८६९)

जब पंडित श्रीगोपाल ने इस प्रकार हार खाई और व्यवस्था उसके किसी काम न आई तब वहां के ला० प्रेमदास और देवीदास अरोड़वंशी सज्जनों ने पण्डित हलधर ओझा मैथिल ब्राह्मण को जिसको लोग संस्कृत का बहुत बड़ा पण्डित अर्थात् विद्वान् जानते थे, कानपुर से बुलाया जहां पर वह एक मन्दिर की प्रतिष्ठा के लिए बनारस से आया हुआ था।

जब हलधर जी फर्रूखाबाद में आये तो उन लोगों ने यह बात उड़ाई कि यदि कोई शर्त बांधे तो हम स्वामी दयानन्द जी से हलधर ओझा का शास्त्रार्थ कराते हैं। ला० जगन्नाथप्रसाद ने २५०० रुपया, सातावनलाल ब्राह्मण के द्वारा देवीदास के पास भेजा कि आप यदि शर्त के रुपये मांगते हैं तो यह आधे हमारी ओर से उपस्थित हैं। इतना रुपया और डालकर आप उन्हें किसी साहूकार के पास जमा करा दो। यदि हलधर जीते तो तुम पांच हजार रुपया ले लेना और यदि स्वामी जी जीते तो हम ले लेंगे। इसके उत्तर में देवीदास जी ने कहला भेजा कि रुपये की बात नहीं; पण्डित जी गुरुप्रसाद शुक्ल के यहां मन्दिर की प्रतिष्ठा के लिए कानपुर आये थे। मैंने उनको इस अभिप्राय से बुलवाया है कि आज या कल उनको विश्रान्त (स्वामी जी का निवासस्थान) पर ले चलूं और बातचीत कराऊं।

ला० जगन्नाथप्रसाद और पंडित बलदेवप्रसाद शुक्ल फर्रुखाबाद निवासी ने कहा कि ओझा लोगों से कहता था कि वे स्वयं मेरे मकान पर चलकर आवेंगे और मैं मन्त्रशास्त्र के बल से उनका मुख बन्द दूंगा परन्तु यह सब बकवास थी। मैं स्वामी जी की ओर से दूत बनकर उसके पास जाया करता था।

जेठ सुदि दशमी, संवत् १९२६, शनिवार तदनुसार १९ जून, १८६९, रात्रि को आठ बजे के समय ला० प्रेमदास तथा देवीदास साहूकार, पण्डित उमादत्त, पण्डित पीताम्बरदास, पण्डित रामसहाय शास्त्री, पण्डित गौरीशंकर, पण्डित ललिताप्रसाद, पण्डित गणेश शुक्ल, पण्डित चरनामल शुक्ल, पण्डित माधवाचार्य, पण्डित ब्रजकिशोर, ला० जगन्नाथप्रसाद, पण्डित दिनेशराम, पण्डित बिहारीदत्त सनाढ्य, पण्डित गंगादत्त पुरोहित और पण्डित हलधर ओझा को साथ लेकर नगर के बाहर गंगातट पर स्वामी जी के निवास स्थान पर गये।

लाला जगन्नाथप्रसाद, रईस फर्रूखाबाद ने आगे बढ़कर स्वामी जी को सूचना दी (उस समय स्वामी जी पूर्वाभिमुख बैठे हुए खरबूजा खा रहे थे) कि महाराज! हलधर आया है। स्वामी जी ने उनकी ओर से दृष्टि नीचे कर ली और खरबूजा छोड़ दिया और फिर सिर उठा कर कहा कि 'आने दो।' उक्त लाला साहब नीचे आकर उनको ले गये। हलधर ने जाकर प्रणाम किया। स्वामी जी ने उत्तर में कहा अरे हलधर आनन्द है? अरे! हलधर आनन्दो जात:?' उसने कहा—महाराज आनन्द है।

यह पहले निश्चय हो गया कि शास्त्रार्थ मूर्तिपूजा पर होगा परन्तु मूर्तिपूजा पर आरम्भ होते ही बात सुरापान पर जा पड़ी क्योंकि यह हलधर तांत्रिक पण्डित था जो मांस-मद्य खाता पीता था और उसे उचित समझता था। मैथिल ब्राह्मण प्राय: तांत्रिक होते हैं और मांस-मद्य खाते-पीते हैं। हलधर ने प्रमाण दिया 'सौत्रामण्यां सुरां पिबेत्' अर्थात् सौत्रामणि यज्ञ में सुरा पीनी चाहिये। स्वामी जी ने कहा कि 'सुरा शब्द से अच्छे फल की रसरूप औषधि का वर्णन है; मद्य का नहीं।' (स्वामी जी ने यहां सुरा का अर्थ) मद्य करने वालों का अच्छी प्रकार खंडन किया और कहा कि इसका अर्थ यह है कि सौत्रामणि यज्ञ में 'सोमरस अर्थात् सोमवल्ली का रस पीवे।' फिर हलधर ने स्वामी जी से संन्यासी के लक्षण पूछे। स्वामी जी ने सब लक्षण बतला दिये।

तत्पश्चात् स्वामी जी ने हलधर से पूछा कि आप ब्राह्मण के लक्षण कहें परन्तु वे उससे न बन सके (नहीं बताये जा सके) और संस्कृत में गड़बड़ करने लगा। तब स्वामी जी ने कहा कि हलधर "भाषायां वद, भाषायां वद" अर्थात् भाषा में बात कर, भाषा में बात कर। इस पर वह बहुत घबरा गया और प्रकरण छोड़कर दूसरी ओर जाने लगा। तब स्वामी जी ने कहा अरे हलधर! प्रकरण छोड़कर मत जाओ, प्रकरण पर रहो। "भो हलधर, प्रकरणं विहाय मा गच्छ" हलधर ने इसका उत्तर दिया—

"अहं तु न प्रकरणं विहाय गच्छामि, परन्तु श्रीमान् पुनः पुनः प्रकरणमभिनयते, प्रकरणशब्दस्य कथं सिद्धिः"? अर्थात् मैं तो प्रकरण छोड़कर नहीं जाता परन्तु आप बार-बार प्रकरण शब्द कहते हैं। बतलाइये, प्रकरण शब्द किस प्रकार सिद्ध होता है?

स्वामी जी—प्रपूर्वात् कृधातोर्ल्युट्प्रत्यये कृते सति प्रकरणशब्दस्य सिद्धिर्भवति" अर्थात् प्रपूर्वक 'कृ' धातु से 'ल्युट्' प्रत्यय करने से प्रकरण शब्द सिद्ध होता है।

हलधर—"कृ धातुः समर्थो भवति किं वऽसमर्थो भवति" अर्थात् 'कृ' धातु समर्थ होती है या असमर्थ? **स्वामी जी**—"समर्थो भवति। समर्थः पदविधिः"[३२] अर्थात् 'कृ' धातु समर्थ होती है और इस सूत्र में समर्थ पदविधि है; जितने पद प्रसिद्ध होते हैं। **हलधर**—यह तो कहिये कि 'समर्थ' किसको कहते हैं और 'असमर्थ' किसको कहते हैं? **स्वामी जी**—"सापेक्षोऽसमर्थो भवति" अर्थात् अपेक्षा करने वाला 'असमर्थ' होता है। यह महाभाष्य का वाक्य है। **हलधर**—यह वाक्य महाभाष्य में नहीं लिखा है, यह तो केवल आपकी संस्कृत है। **स्वामी जी**—व्रजकिशोर पंडित से बोले कि महाभाष्य के दूसरे अध्याय[३३] का प्रथम पाद निकालिये। जब निकाला और देखा गया तो वही बात निकली जो स्वामी जी कहते थे।

अन्त में निरुत्तर होकर हलधर ओझा ने कहा कि महाभाष्यकार भी पंडित है और मैं भी पंडित हूं। मैं क्या उससे कम हूं? **स्वामी जी** ने कहा कि तुम तो उसके बाल के समान भी नहीं हो। यदि हो तो कहो कि कल्मसंज्ञा किसकी है? **हलधर** इसका कुछ उत्तर न दे सके। जब हलधर से कुछ उत्तर न बन सका तब **स्वामी जी** ने कहा कि महाभाष्य के अकथितं च'[३४] इस सूत्र में देख लो कि कल्म संज्ञा 'कर्म' की है।

इस पर सब लोग जान गये कि हलधर ओझा की कितनी विद्या है?

इसी प्रकार व्याकरण पर शास्त्रार्थ होते-होते एक बजे रात का समय हो गया। अन्त में यह निश्चय हुआ कि "समर्थः पदविधिः'—यह सूत्र यदि सर्वत्र लगे तो हलधर जी की हार हो गई और यदि एक स्थान पर लगे तो **स्वामी जी** की। यह निश्चय करके सब लोग हलधर सहित उठकर चले आये।"

लाला जगन्नाथप्रसाद और **पंडित मुन्नीलाल** जी ने कहा—"हम और सब पंडित लोग एक साथ ही चले जा रहे थे। मार्ग में सब पंडितों ने कहा कि स्वामी जी ने बड़ा हठ किया क्योंकि यह सूत्र केवल सूत्र में लगता है; सर्वत्र नहीं लगता। चूंकि हम स्वामी जी के हितचिन्तक थे इसलिए प्रातःकाल हम दोनों स्वामी जी के पास गये। वह एकादशी का दिन था। हमने स्वामी जी से अलग जाकर कहा कि महाराज! अब यहां तक ही रहने दो। उन्होंने पूछा कि 'क्यों?' हमने कहा कि 'रात को सब पंडित कहते थे कि 'समर्थः पदविधिः' यह सूत्र केवल सूत्र में ही लगता है, सर्वत्र नहीं।' अभी न हमारी हार है और न उनकी। यदि बात बनी रहे तो अच्छा है।" तब **स्वामी जी** ने क्रोध करके कहा कि गोवध का पाप तुझे है यदि उसे न लावे और गोहत्या का पाप उसे है यदि वह न आवे। तब हमारा मुंह बिगड़ गया और हमने जान लिया कि स्वामी जी अपने ज्ञान तथा सत्य पर बड़े दृढ़ हैं अतः हम चले आये।

उस दूसरी रात के लिए दरियों का प्रबन्ध हो गया था परन्तु स्वामी जी चटाई पर ही बैठे रहे । आठ बजे रात के सब एकत्रित हुए । रात चांदनी थी, कुशल क्षेम पूछ कर बैठ गये । सबके सामने स्वामी जी ने कहा कि कल हमारा और तुम्हारा किस बात पर शास्त्रार्थ था ? क्या इसी बात पर था या नहीं कि 'समर्थः पदविधिः' सूत्र यदि केवल सूत्र पर लगे तो हमारी पराजय और यदि सर्वत्र लगे तो तुम्हारी पराजय । वह मौन रहा परन्तु पीताम्बरदास ने कहा कि हां महाराज ! कल यही बात निश्चित हुई थी जिसे सब पंडितों ने स्वीकार किया । इस रात शास्त्रार्थ आरम्भ होने से पहले यह ज्ञात हुआ कि कुछ लोगों का विचार कोलाहल करने का है इसलिए सबको सुनाकर कह दिया गया कि जिस किसी को स्वामी जी से बात करने की इच्छा हो वह अकेला-अकेला करे । यदि कोई बीच में बोलेगा तो उठा दिया जायेगा । पंडितों के अतिरिक्त जो अन्य लोग थे उनको कहा गया कि आप लोग यहां से उठकर नीचे चबूतरे पर सुनें । इस पर गौरीशंकर कश्मीरी ब्राह्मण क्रुद्ध होकर अपने घर चला गया और उसी दिन से स्वामी जी के विरुद्ध हो गया ।

शास्त्रार्थ आरम्भ होने से पहले स्वामी जी ने हलधर मे कहा कि हलधर ! तू अभी नवीन पढ़कर आया है और गृहस्थ है । तू अब यदि समझ ले कि मेरी हार हो गई तो कुछ हानि नहीं परन्तु हार होने पर तेरी हानि है । हलधर ने इस बात की कुछ परवाह न की और उसी हठ पर अड़ा रहा । तब स्वामी जी ने पंडित ब्रजकिशोर को आवाज दी कि ब्रजकिशोर ! महाभाष्य लाओ । दीपक भी पास मंगा लिया । महाभाष्य खोल कर उस सूत्र को सबके सामने सर्वत्र लगा दिया जिस पर हलधर बिलकुल मौन हो गया । पंडित लोग और बातें करने लगे । स्वामी जी ने कहा कि नहीं, जिस बात पर हमारा शास्त्रार्थ हुआ है, पहले उसका निर्णय कर दो कि किसकी हार हुई । तब सब चुप हो गये ।

लाला जगन्नाथ प्रसाद जी ने कहा कि जो बात सच सच हो, कह दो । तब सबने स्वीकार किया कि कल यही ठहरी थी कि 'समर्थः पदविधिः' यह सूत्र सर्वत्र लगता है या एक स्थान पर । जो बात कल हलधर ने कही थी वह अशुद्ध सिद्ध हुई । इतना सुन कर हलधर निश्चेष्ट सा हो गया और दुख से गिरने लगा । उसके साथियों ने संभाल लिया । उस रात को पहली रात से बहुत अधिक मनुष्य थे । अन्ततः हलधर को पराजित होने के पश्चात् लोग उठा ले गये । शेष पण्डित भी चले गये और केवल पं. पीताम्बरदास, उमादत्त, रामसहाय शास्त्री, मुन्नीलाल तथा लाला जगन्नाथ प्रसाद बैठे रहे । रात एकादशी की थी । कुछ लोग तो पुण्यार्जन के विचार से और कुछ सत्योपदेश के लिये वहां रातभर जागते रहे । आज भी एक बजे तक शास्त्रार्थ होता रहा । फिर उसी रात को स्वामी जी का पं. उमादत्त से मित्रतापूर्वक वार्तालाप हुआ । बीच में पं. रामसहाय बोलने लगे । स्वामीजी ने उनसे कहा कि आप बूढ़े हैं, शास्त्रार्थ में अपमान हो जाता है, आप सुनते रहें जिस पर उन्होंने समझदारी बरती और मौन रहे । प्रातःकाल सब गंगा स्नान करके अपने घर को चले गये और उनके चले जाने के पश्चात् बिना किसी को सूचना दिये स्वामी जी भी कानपुर की ओर चले गये । इसी हार के कारण हलधर ओझा को ला० देवीदास जी ने कुछ (भी) रुपये नहीं दिए अन्यथा अवश्य देते । वे कहते थे कि हम तुमको क्यों रुपया दें तुम तो उलटे हारे । अन्त में ओझा भी निराश होकर चला गया ।

ला० जगन्नाथप्रसाद, रईस फर्रूखाबाद, दो रात जागने, ओस में सोने और प्रातः ठंडे पानी में नहाने के कारण रुग्ण हो गये अर्थात् हाथ-पांव में पीड़ा आरम्भ हो गई । लोगों ने प्रसिद्ध किया कि हलधर ने प्रयोग किया है क्योंकि वह मन्त्रशास्त्री है । आपने उसे ले जाकर स्वामी जी से हरवाया इसलिए उसने आप पर प्रयोग किया है । रोग के बीच में किसी ने जाकर हलधर से कहा कि लाला साहब आप पर नालिश करने वाले हैं । उस को डरा कर लाला जी के पास लाये और हमको कहा कि इसका सत्कार करना चाहिए । हलधर कुछ समय बैठकर और बहाना करके कि मैंने कुछ नहीं किया, लोग झूठ बकते हैं, चला गया । इस बार स्वामी जी लगभग ६ मास यहां रहे ।

कानपुर का शास्त्रार्थ

शास्त्रार्थकर्ता—श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी तथा पंडित हलधर ओझा शास्त्री। (३१ जौलाई, सन् १८६९)

सन् १८६९ की वर्षा के आरम्भ में स्वामी जी पहले-पहल कानपुर में आकर लाला दरगाहीलाल के भैरवघाट पर उतरे और धर्मोपदेश आरम्भ किया।

समाचारपत्र 'शोलये तूर' कानपुर में इस प्रकार लिखा है-"थोड़े दिनों में एक महाराज दयानन्द सरस्वती संन्यासी यहां पधारे हैं। लाला दरगाहीलाल साहब, वकील न्यायालय दीवानी के गंगातटवर्ती नवनिर्मित घाट पर ठहरे हैं। शास्त्री अर्थात् संस्कृत के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा, नागरी या यावनी (उर्दू फारसी) में बातचीत नहीं करते। एकान्तवासी साधु हैं; किसी स्थान पर आते-जाते नहीं। अवधूतों की-सी आकृति है। मूर्तिपूजा और मन्दिर निर्माण का प्रबल निषेध करते हैं। कहते हैं कि मूर्तिपूजा की आज्ञा वेद में नहीं है। इसी विषय का एक पत्र (विज्ञापन पत्र) संस्कृत भाषा में हिन्दुओं के मतों के सम्बन्ध में **'शोलये तूर'** के मुद्रणालय में छपवाया है, उसका अनुवाद आगामी अंक में छापा जायेगा। पाठकों के देखने में आयेगा। ये स्वामी जी भारतवर्ष के पंडितों में बड़े विद्वान् और संसार में अद्वितीय हैं। वेद और शास्त्र के, व्याकरण तथा दर्शनशास्त्र के बड़े ज्ञाता और संसार के चुने हुए पंडितों में से हैं। अपने आप को दक्षिण[३५] का मूल निवासी कहते हैं। पांच वर्ष की आयु में उनके पिता ने वेदारम्भ कराया। मथुरा में उन्होंने संस्कृत विद्या प्राप्त की। कुछ दिन तक जयपुर में निवास किया। वहां हिन्दुओं के मत पर इसी प्रकार समीक्षा करते रहे। तत्पश्चात् ग्वालियर और फर्रूखाबाद की ओर ध्यान दिया। वहां भी पंडितों से शास्त्रार्थ किया। अब जब से कानपुर आये हैं यहां भी धूम मच गई है। सुना है कि ३१ जुलाई, सन् १८६९ शनिवार को तीन बजे घाट पर बड़ी सभा होगी। महाराज हलधर जी ओझा, थोला निवासी, जो बहुत दिनों से महाराज गुरुप्रसाद के नवनिर्मित मन्दिर में विराजमान और अपनी विद्या में निपुण हैं, पधारेंगे और महाराज संन्यासी जी से संवाद करेंगे।" (खंड १०, संख्या ३०, २७ जुलाई, सन् १८६९, पृष्ठ ४८२, कालम २)।

पंडित हृदयनारायण वकील ने वर्णन किया—'प्रामाणिक पुस्तकों का एक विज्ञापन स्वामी जी की आज्ञा से मैंने संस्कृत में छपवाया था। यह स्वयं संस्कृत में स्वामी जी ने लिखकर दिया था। जब छपकर आया तो उसकी मुद्रित अशुद्धियों को स्वामी जी ने स्वयं शोधा था और कहा कि देखो, मूर्ख ने छापने में कितनी भूल कर दी। एक कापी स्वामी जी की शोधी हुई हमारे पास विद्यमान है जो आप को देता हूं, शेष उस समय बांट दी गई थीं।'

स्वामी जी द्वारा प्रचारित संस्कृत-विज्ञापन

श्रीस्तु॥ ऋग्वेदः १ यजुर्वेदः २ सामवेदः ३ अथर्ववेदः ४ एतेषु चतुर्षु वेदेषु ज्ञान-कर्मोपासनाकाण्डानां निश्चयोस्ति॥ तत्र सन्ध्यावन्दनादिरश्वमेधान्तः कर्मकाण्डो वेदितव्यः, यमादिः समाध्यन्तः उपासनाकाण्डश्च बोद्धव्यः॥ निष्कर्मादिः परब्रह्मसाक्षात्कारान्तो ज्ञानकाण्डो ज्ञातव्यः॥ आयुर्वेदः ५ तत्र चिकित्साविद्यास्ति॥ तत्र चरकसुश्रुतौ द्वौ ग्रन्थौ सत्यौ विज्ञातव्यौ॥ धनुर्वेदः ६—तत्र शस्त्रास्त्रविद्यास्ति॥ गांधर्ववेदः ७—तत्र गानविद्यास्ति॥ अर्थवेदः ८—तत्र शिल्पविद्यास्ति॥ एते चत्वारो वेदानामुपवेदा यथासंख्यं वेदितव्याः॥ शिक्षावेदस्था ९—तत्र वर्णोच्चारणविधिरस्ति॥ कल्पः १०—तत्र वेदमन्त्राणामनुष्ठानविधिरस्ति॥ व्याकरणम् ११—तत्र शब्दार्थसम्बन्धानां निश्चयोस्ति; तत्र द्वौ ग्रन्थावष्टाध्यायीव्याकरणमहाभाष्याख्यौ सत्यौ वेदितव्यौ॥ नैरुक्तम् १२—तत्र वेदमन्त्राणां निरुक्तयः सन्ति॥ छन्दः १३—तत्र गायत्र्यादिछन्दसां लक्षणानि सन्ति॥ ज्योतिषम् १४—तत्र भूतभविष्यद्वर्तमानानां ज्ञानमस्ति॥ तत्रैका भृगुसंहिता सत्या वेदितव्या॥ एतानि षट् वेदांगानि वेदितव्यानि। इमाश्चतुर्दशविद्याश्च ईश-केन-कठ-प्रश्न-मुण्डक-माण्डूक्य-

तैत्तिरीयैतरेय-छान्दोग्य-बृहदारण्यक-श्वेताश्वतर-कैवल्योपनिषदो द्वादश ॥ १५—अत्र ब्रह्मविद्यैवास्ति ॥ शरीरकसूत्राणि १६—तत्रोपनिषन्मन्त्राणां व्याख्यानमस्ति ॥ कात्यायनादीनि सूत्राणि १७—तत्र निषेकादिश्मशानान्तानां संस्काराणां व्याख्यानमस्ति ॥ योगभाष्यम् १८—तत्रोपासनाया ज्ञानस्य च साधनानि संति । वाकोवाक्यमेको ग्रन्थः १९—तत्र वेदानुकूला तर्कविद्यास्ति ॥ मनुस्मृतिः २०—तत्र वर्णाश्रमधर्माणां व्याख्यानमस्ति; वर्णसंकरधर्माणांञ्च । महाभारतम् २१-तत्र शिष्टानां जनानां लक्षणानि सन्ति दुष्टानां जनानाञ्च । एतान्येकविंशतिशास्त्राणि सत्यानि वेदितव्यानि । एतेष्वेकविंशति-शास्त्रेष्वपि व्याकरण-वेद-शिष्टाचार-विरुद्धं यद्वचनं तदप्यसत्; एतेभ्यः एकविंशतिशास्त्रेभ्यो ये भिन्ना ग्रन्थाः संति ते सर्वे गप्पाष्टकाख्या वेदितव्याः; गपृ मिथ्यापरिभाषणे । तस्मात्पः प्रत्ययः । गपयते यत्तद् गप्पम् अष्टौ गप्पानि यत्र स्युर्गप्पाष्कं तद्विदुर्बुधाः । अष्टौ सत्यानि यत्रैव तत्सत्याष्टकमुच्यते । कान्यष्टौ गप्पानीत्यत्राह-मनुष्यकृताः सर्वे ब्रह्मवैवर्तपुराणादयो ग्रन्थाः प्रथमं गप्पम् १; पाषाणादिपूजनं देवबुद्धया द्वितीयं गप्पम् २; शैवशाक्तवैष्णवगाणपत्यादयः संप्रदायास्तृतीयं गप्पम् ३; तन्त्रग्रंथोक्तो वाममार्गश्चतुर्थं गप्पम् ४; भंगादिनशाकरणं पंचमं गप्पम् ५; परस्त्रीगमनं षष्ठं गप्पम् ६; चौरीति सप्तमं गप्पम् ७; कपटछलाभिमानानृतभाषणमष्टमं गप्पम् ८; एतान्यष्टौ गप्पानि त्यक्तव्यानि ॥ कान्यष्टौ सत्यानीत्याह-ऋग्वेदादीन्येकविं-शतिशास्त्राणि परमेश्वरर्षिरचितानि प्रथमं सत्यम् १; ब्रह्मचर्याश्रमेण गुरुसेवास्वधर्मानुष्ठानपूर्वकं वेदानां पठनं द्वितीयं सत्यम् २; वेदोक्तवर्णाश्रमस्वधर्मसन्ध्यावंदनाग्निहोत्राद्यनुष्ठानं चतुर्थं सत्यम् ४; शम-दम-तपश्चरण-यमादिसमाध्यन्तोपासना सत्संगपूर्वकं वानप्रस्थाश्रमानुष्ठानं सत्यम् ५; विचारविवेकपराविद्याभ्याससंन्यासग्रहणपूर्वकं सर्वकर्मफलत्यागाद्यनुष्ठानं षष्ठं सत्यम् ६; ज्ञानविज्ञानाभ्यां सर्वानर्थ जन्ममरणहर्षशोककामक्रोधलोभमोहसंगदोषत्यागानुष्ठानं सप्तमं सत्यम् ७—अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशतमोरजः सत्त्वसर्वक्लेशनिवृत्तिः पंचमहाभूतातीतमोक्षस्वरूपस्वाराज्यप्राप्तिः अष्टमं सत्यम् ॥ ८ ॥ एतान्यष्टौ सत्यानि ग्रहीतव्यानि इति ॥ दयानन्दसरस्वत्याख्येनेदम्पत्रं रचितम् । तदेतत्सज्जनैर्वेदितव्यम् ॥

संस्कृत विज्ञापन का भाषारूपान्तर— कल्याण हो । १. ऋग्वेद, २. यजुर्वेद, ३. सामवेद, ४. अथर्ववेद-इन चारों वेदों में कर्म, उपासना, ज्ञानकांड का निश्चय है । सन्ध्या उपासना से लेकर अश्वमेध तक कर्मकांड जानना चाहिये । यम से लेकर समाधि तक उपासनाकांड जानें । निष्कर्म से लेकर परब्रह्म के साक्षात्कार तक ज्ञानकांड समझें । ५. आयुर्वेद में चिकित्सा विद्या है जिसके दो ग्रन्थ चरक और सुश्रुत सत्य जानो । ६. धनुर्वेद-उस में शस्त्रास्त्र विद्या है । ७. गान्धर्ववेद में गानविद्या है । ८. अर्थवेद में शिल्पविद्या, कलाकौशल और भवननिर्माण की विद्या है । ये चारों वेदों के क्रमशः चार उपवेद हैं ९. शिक्षा में वर्णोच्चारण की विधि है । १०. कल्प-में वेदमन्त्रों के (द्वारा यज्ञ आदि के) अनुष्ठान की विधि है । ११. व्याकरण में शब्द, अर्थ और उन के परस्पर सम्बन्ध का निश्चय है । उसके प्रामाणिक ग्रन्थ अष्टाध्यायी और महाभाष्य दो हैं; दोनों को सत्य जानना चाहिये । १२. निरुक्त-में वेदमन्त्रों की निरुक्ति है । १३. छन्द में गायत्री आदि छन्दों के लक्षण हैं । १४. ज्योतिष में भूत, भविष्य, वर्तमान का ज्ञान है; इसमें केवल एक ही ग्रन्थ 'भृगुसंहिता' सत्य जानना चाहिये । ये छः वेदांग हैं । यही १४ विद्या हैं । १५. उपनिषद् अर्थात् ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, श्वेताश्वतर कैवल्य-ये बारह उपनिषदें हैं । इनमें ब्रह्मविद्या है । १६. शारीरकसूत्र में उपनिषदों की व्याख्या है । १७. कात्यायन आदि सूत्र-इनमें जन्म से लेकर श्मशान तक संस्कारों की व्याख्या है । १८. योगभाष्य में उपासना और ज्ञान के साधन हैं । १९. वाकोवाक्य-इस एक ग्रन्थ में वेदों के अनुकूल तर्क करने की विधि है । २०. मनुस्मृति में वर्णाश्रम धर्मों के व्याख्यान हैं और वर्णसंकरों के भी । २१. महाभारत में अच्छे लोगों और दुष्ट जनों के लक्षण हैं ।

इन इक्कीस शास्त्रों को सत्य जानो परन्तु इन इक्कीस शास्त्रों में भी जो वचन व्याकरण, वेद और शिष्टाचार के विरुद्ध हैं, वह असत्य है ।

इन इक्कीस शास्त्रों के अतिरिक्त जो ग्रन्थ हैं—उन सब को 'गप्पाष्टक' जानो । गप्प कहते हैं मिथ्याभाषण को और फिर जिसमें आठ गप्प हों उस को बुद्धिमान् 'गप्पाष्टक' कहते हैं और जिसमें आठ सत्य हों उसको 'सत्याष्टक' कहते हैं । अब आठ गप्प कौन सी हैं : १—मनुष्य के बनाये हुए ब्रह्मवैवर्त से लेकर पुराणादि सब ग्रन्थ, यह पहली गप्प है । २—पाषाण आदि में देवता की बुद्धि (भावना) रख कर उनकी पूजा करना, यह दूसरी गप्प है । ३—शैव, शाक्त, वैष्णव, गाणपत्य आदि सम्प्रदाय, यह तीसरी गप्प है । ४—तन्त्र ग्रन्थों में कहा हुआ वाममार्ग मत चौथी गप्प है । ५—भांग आदि नशों का प्रयोग करना यह पांचवीं गप्प है । ६—परस्त्रीगमन यह छठी गप्प है । ७—चोरी करना यह सातवीं गप्प है । ८—छल, अभिमान मिथ्याभाषण, यह आठवीं गप्प है । ये आठ जो गप्पें हैं, इनको छोड़ देना चाहिये ।

अब आठ सत्य कौन से हैं, वे कहते हैं १—ऋग्वेद आदि इक्कीस शास्त्र परमेश्वर और ऋषियों के बनाये हुए, यह सब पहला सत्य है । ब्रह्मचर्य्याश्रम से गुरु की सेवा, अपने धर्म के अनुष्ठान के अनुसार वेदों का पढ़ना, दूसरा सत्य है । ३—वेदोक्त वर्णाश्रम के अनुसार अपने-अपने धर्म, सन्ध्या, वन्दना, अग्निहोत्र का अनुष्ठान, तीसरा सत्य है । ४—शास्त्र के अनुसार अपनी स्त्री से सम्बन्ध और पंचमहायज्ञों का अनुष्ठान, ऋतुकाल में अपनी स्त्री से गमन करना; श्रुति और स्मृति के अनुसार चालचलन रखना, यह चौथा सत्य है । ५—दम, तपश्चरण; यम आदि से लेकर समाधि तक उपासना और सत्संगपूर्वक वानप्रस्थाश्रम का अनुष्ठान करना, पांचवां सत्य है । ६—विचार, विवेक, वैराग्य, पराविद्या का अभ्यास और संन्यासग्रहण करके सब कर्मों के फल की इच्छा न करना, यह छठा सत्य है । ७—ज्ञान और विज्ञान से समस्त अनर्थ से उत्पन्न होने वाले जन्म, मरण, हर्ष, शोक, काम, क्रोध, लोभ, मोह, संगदोष के त्यागने का अनुष्ठान सातवां सत्य है। ८—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश, तम, रज, सत्त्व सब क्लेशों की निवृत्ति, पंचमहाभूतों से अतीत होकर मोक्षस्वरूप और आनन्द को प्राप्त होना आठवां सत्य है । ये आठों सत्य ग्रहण करने चाहियें । इति ।

दयानन्द सरस्वती ने यह पत्र रचा, यह भी सज्जनों को जानना चाहिये । ('शोलयेतूर' मुद्रणालय में छपा)

पंडित **हृदयनारायण जी** ने वर्णन किया—"जब स्वामी जी वर्षा के आरम्भ में यहां पधारे तो इस नगर के प्रतिष्ठित रईस स्वर्गीय प्रयागनारायण और गुरुप्रसाद, स्वामी जी के पास प्रायः जाया करते थे । उन्होंने यहां 'कैलाश' और 'वैकुण्ठ' नामक दो प्रसिद्ध मन्दिर बनवाये हुए थे । स्वामी जी ने उनको शिक्षा दी कि आपने लाखों रुपया निरर्थक लगाया । चूड़े, चमार, कोली, मुसलमान खा गये । २०-५० वर्ष के पश्चात् ये गिर जायेंगे । अच्छा होता कि आप कोई ऐसा काम करते जिससे मनुष्यमात्र या देश का भला होता या किसी निर्धन की लड़की का विवाह करा देते और यदि उनका नहीं तो तीस-तीस वर्ष की कन्नौजी[३६] ब्राह्मणों की लड़कियां कुंवारी बैठी हैं, उन्हीं का विवाह करा देते या कोई पाठशाला लड़के और लड़कियों की बनाते या कोई कला-कौशल का कार्यालय खोलते जिससे देश और जाति का भला होता । ये लाखों रुपये आपने व्यर्थ नष्ट कर दिये ।

जब उन्होंने स्वामी जी के पास अपनी छांव जमती न देखी तो हलधर ओझा को शास्त्रार्थ की प्रेरणा की । भैरवघाट के नीचे फर्श पर शास्त्रार्थ हुआ था । सदरे-आला और डब्ल्यू० थेन साहब बहादुर ज्वाइण्ट मैजिस्ट्रेट, कानपुर तथा नगर कोतवाल आदि सब प्रतिष्ठित व्यक्ति वहां उपस्थित थे । मेरे विचार में उस दिन लगभग २०-२५ हजार मनुष्य उपस्थित थे । दो बजे से मनुष्य एकत्रित होने आरम्भ हुए । ४ ॥ बजे से शास्त्रार्थ आरम्भ हो गया । शास्त्रार्थ का विषय 'मूर्तिपूजन' था । स्वामी जी के सम्मुख लक्ष्मण शास्त्री भटूर[३७] वाले और हलधर ओझा दोनों उपस्थित थे । शास्त्रार्थ संस्कृत में हुआ । मिस्टर थेन साहब बहादुर जो अच्छे संस्कृतज्ञ थे, मध्यस्थ नियत हुए । सूर्यास्त होने के पश्चात् शास्त्रार्थ समाप्त हुआ ।

स्वामी जी नीचे भैरवघाट पर उतरे हुए थे । प्रथम सब लोगों ने यह चाहा कि वे घाट के ऊपर आकर शास्त्रार्थ करें और कोतवाल आदि अधिकारियों ने भी स्वामी जी से कहा कि आप ऊपर आ जायें । स्वामी जी ने उत्तर दिया कि मैंने किसी को नहीं बुलाया; जिसका जी चाहे वह यहां आ जाये और जिसका जी चाहे वह न आवे । इस पर सब नीचे चले आये ।

बाबू श्यामाचरण बंगाली सदरे-आला और पंडित काशीनारायण मुन्सिफ (जो इस समय बनारस में रहते हैं) तथा सुलतान अहमद कोतवाल आदि सब प्रतिष्ठित व्यक्ति उपस्थित थे । अन्त में सबके सामने मिस्टर थेन साहब मध्यस्थ ने निर्णय दिया था कि स्वामी जी जीते हैं और उनकी विद्वत्ता की बहुत प्रशंसा की थी ।

पंडित शिवसहाय जी ने वर्णन किया कि उस दिन मैं उपस्थित था । शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ । हलधर ओझा अपने साथ लक्ष्मण शास्त्री को भी लाया था ।

प्रथम प्रश्न हलधर ओझा ने यह किया कि आपने जो विज्ञापन दिया है जिसका विषय 'अष्ट गप्प' और 'अष्ट सत्य' है, उसमें व्याकरण की अशुद्धि है । **स्वामी जी**—ये बातें पाठशाला के विद्यार्थियों की हैं । ऐसे शास्त्रार्थ सदा पाठशालाओं में हुआ करते हैं । आज वह विषय छेड़ो जिसके लिए हजारों मनुष्य एकत्रित हैं । व्याकरण के बारे में कल मेरे पास आना, मैं समझा दूंगा । तब ओझा जी ने प्रश्न किया कि आप महाभारत को मानते हैं ? स्वामी जी ने कहा कि हम मानते हैं । ओझा ने एक श्लोक भारत का उपस्थित किया जिसका अभिप्राय यह था कि एक भील ने द्रोणाचार्य की मूर्ति बनाकर और सामने रखकर धनुषविद्या सीखी । **स्वामी जी**—मैं तो यह कहता हूं कि कहीं प्रतिमापूजन की आज्ञा बतलाओ । इसमें तो आज्ञा नहीं पाई जाती प्रत्युत लिखा है कि एक भील ने ऐसा कार्य किया जैसा कि सदा अज्ञानी लोग आजतक किया करते हैं । वह कोई ऋषि-मुनि न था, न उसको किसी ने ऐसी शिक्षा दी थी और यदि यह बात कहो कि उसको ऐसा करने से धनुर्विद्या आ गई तो उसका कारण द्रोणाचार्य की मूर्ति न थी प्रत्युत अभ्यास का परिणाम था जैसा कि अंग्रेज लोग चांदमारी के द्वारा सीखते हैं, परन्तु वे कोई मूर्ति नहीं धरते ।"

इस पर ओझा जी चुप रहे और दूसरा प्रश्न यह किया, **ओझा जी**—वेद में प्रतिमा की आज्ञा नहीं है तो निषेध कहां है ? **स्वामी जी** ने उत्तर दिया कि—"जैसे किसी स्वामी ने सेवक को आज्ञा दी कि तू पश्चिम को चला जा; इससे स्वयं तीन दिशाओं का निषेध हो गया । अब उसका यह पूछना कि 'उत्तर' दक्षिण को न जाऊं व्यर्थ है । इसलिए जो वेद ने उचित समझा कह दिया और जो नहीं लिखा वही निषेध है ।"

इस के पश्चात् थेन साहब को सन्देह हुआ कि स्वामी जी कुछ पढ़े हैं या केवल मौखिक शास्त्रार्थ ही करते हैं । इसकी परीक्षा के लिए एक पत्रा जो हलधर ओझा लाये थे वही स्वामी जी के सामने रख दिया । स्वामी जी ने पढ़कर सुना दिया । इस पर साहब बहादुर ने स्वामी जी से प्रश्न किया । **थेन साहब**—आप किसको मानते हैं ? **स्वामी जी**—एक ईश्वर को ।

तत्पश्चात् थेन साहब ने छड़ी और टोपी उठाई और कहा कि ठीक बात है; अच्छा प्रणाम । उनके उठते ही सब उठ खड़े हुए और कोलाहल मचाते हुए चले कि बोलो श्री गंगा जी की जय । यह सारा कार्य स्वर्गीय प्रयागनारायण तिवारी का था और रुपया या आठ आने के पैसे भी ओझा जी के शिर से लुटाये और शोर मचाया कि ओझा जीते और स्वामी जी हारे और उनको गाड़ी में चढ़ाकर ले गये ।

दूसरे दिन स्वर्गीय गुरुप्रसाद शुक्ल, जिनका 'कैलाश' नामक मन्दिर है—'शोलये तूर' समाचार पत्र वाले के यहां गया जो उन्हीं का किरायेदार था । उससे कहा कि कल का शास्त्रार्थ छापो । उसने पूछा कि क्या (छापूं ?) गुरुप्रसाद जी ने

"अन्यतम मध्यस्थ लक्ष्मण शास्त्री ने वेद, वेदान्त, मीमांसा, धर्मशास्त्र आदि से बहुत अच्छी प्रकार समझाया जिस से स्पष्ट प्रकट हुआ कि मूर्तिपूजन ठीक है और समस्त मध्यस्थों ने इस बात को स्वीकार किया और ओझा जी की प्रशंसा की जैसा कि मध्यस्थ लक्ष्मण शास्त्री ने कहा ओझा जी का कथन और उनका दिया हुआ प्रमाण बहुत ठीक थे। इसलिए दूसरे मध्यस्थ, साहब बहादुर ने निर्णय किया कि जब सरस्वती जी शास्त्र के अनुसार प्रमाण और उत्तर न दे सके तो हिन्दुओं के लिए मूर्तियों का पूजन करना ठीक और उचित है और शास्त्र में इसकी विधि पाई जाती है। इसलिए हलधर जी ओझा की जय हुई और सरस्वती जी की पराजय हुई। इस बात के सुनते ही समस्त रईसों ने जो उस स्थान पर उपस्थित थे अत्यन्त प्रसन्नता से जय-जय का शब्द करके ओझा की जीत सूचित की। उस समय महाराज प्रयागनारायण तिवारी ने ओझा जी पर से रुपये और पैसे लुटाये और सब अपने-अपने घर आये। यह शास्त्रार्थ महाराज गुरुप्रसाद शुक्ल और महाराज प्रयागनारायण की सहायता और उच्च साहस से हुआ। इन दोनों सज्जनों ने इस कानपुर नगर में बहुत-सा धन व्यय करके बड़े-बड़े भव्य मन्दिर बनवाये हैं और लोक और परलोक में अपना भला किया है। इस स्थान पर शास्त्रार्थ करना अत्यन्त उचित था, इसलिए शास्त्रार्थ में और अधिक नाम हुआ।" ('शोयले तूर', खंड १०, संख्या ३१, पृष्ठ ४९४ कालम १, २ पृष्ठ ४९१, कालम १)

स्वामी जी की सफलता का एक अत्यन्त प्रबल और ज्वलन्त प्रमाण

यद्यपि कुछ मूर्तिपूजा के प्रेमियों और मूर्तिपूजारूपी अविद्या के जाल में फंसे हुए सज्जनों ने अपने आंसू पोंछने के लिए शोकपूर्ण स्वर में (जिससे उनका लज्जित होना प्रकट न हो) हलधर ओझा की जीत या मूर्तिपूजा की विजय प्रसिद्ध की परन्तु जनता अन्धी नहीं थी। साधारण हिन्दू पब्लिक जो कई हजार की संख्या में वहां उपस्थित थी, उसकी आंखों में कौन धूल डाल सकता था। बादलों के समान उमड़ कर वहां आये हजारों मनुष्यों के दल मूर्तिपूजा की असामयिक और आकस्मिक मृत्यु पर आंसू बहाये बिना न रह सके। हलधर ओझा जैसे विद्वानों और लक्ष्मण शास्त्री जैसे पंडितों की प्रकट पराजय से उनके हृदय पहले तो टूक-टूक हुए परन्तु शीघ्र ही प्रफुल्लित और प्रसन्न हो गये और निरन्तर सैकड़ों जीवितहृदय और सत्य को प्यार करने वाले आर्यपुत्रों ने शालिग्राम और शिवलिंग की मूर्तियां उठा-उठाकर गंगा में फेंकनी आरम्भ कर दीं। नगर में कोलाहल मच गया। सत्य से प्यार करने वालों के हृदय प्रसन्न हुए और असत्य से प्यार करने वालों के घरों में शोक होने लगा।

विद्वान् ओझा ने जब स्वयं देखा कि लोग इस शास्त्रार्थ से स्वामी जी के अनुयायी होकर मूर्तियों को नदी में प्रवाहित करने लगे हैं और हमारी जीविका नष्ट होने लगी है तो उन्होंने निम्नलिखित विज्ञापन संस्कृत, उर्दू, नागरी तीन भाषाओं में प्रकाशित किया।

विज्ञापन (नागरी शब्दों में) जो कि दयानन्द सरस्वती मत के मुताबिक (अनुसार) बहुत लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, वगैरः (आदि) अपना कुलधर्म छोड़ कर देवताओं की मूर्तियां गंगा जी में प्रवाहित कर देते हैं, यह बात बेजा व नामुनासिब (अनुचित) है। इसलिए यह इश्तिहार (विज्ञापन) जारी किया जाता है कि जो लोग उनके मत को अख्तयार (ग्रहण) करें उन को चाहिये कि मूर्तियों को बराय मेहरबानी (कृपा करके) एक मन्दिर कैलाश नामी महाराज गुरुप्रसाद शुक्ल का है, उसमें या मन्दिर महाराज प्रयागनारायण तिवारी में पहुंचा दिया करें और अगर उनको पहुंचाने की गुंजाइश (समाई, सामर्थ्य) न हो तो इत्तला (सूचना) करें। हम उनको उठा लिया करेंगे और उन्हें बहाने वा फेंकने में जो पाप है वह संस्कृत में लिखा है। फकत। इति। दस्तखत (हस्ताक्षर) ओझा हलधर

किसी ने सच कहा है—'जादू वह जो शिर पर चढ़ कर बोले, क्या लुत्फ (आनन्द) जो गैर (दूसरा) पर्दा खोले।'

इस विज्ञापन के पश्चात्, जो सम्भवत: २ अगस्त, सन् १८६९ को मुद्रणालय 'शोलये तूर' कानपुर में ला० बिहारीलाल मैनेजर के प्रबन्ध से छपा और जिसे एक हिन्दू कापी नवीस (कातिब-लेखक) वृन्दावन नामक ने लिखा, समाचारपत्र 'शोलये तूर' में यह सम्पादकीय नोट प्रकाशित हुआ है—"संन्यासी जी की संगति के प्रभाव से कुछ हिन्दू मूर्तियों को नदी में डालने लगे । ओझा जी ने इसके लिए विज्ञापन दिया है कि वेद तथा शास्त्र में ऐसा करना अनुचित लिखा है । जिसकी इच्छा नदी में मूर्ति डालने की हो हमारे पास पहुंचा दे । नदी में डालकर पाप न ले" । पृष्ठ ४९८, कालम १, खंड १०, संख्या ३१, मिति ३ अगस्त, सन् १८६९)

प्रिय पाठको ! आपने सैकड़ों धार्मिक पथप्रदर्शकों के जीवनचरित्रों का अध्ययन किया होगा । उनके स्वार्थी और कहानियों से प्यार करने वाले अनुयायियों ने कितने आकाश-पाताल एक किये और कितने झूठ बोले परन्तु कदापि किसी धार्मिक पथप्रदर्शक ने अपने युक्तिपूर्ण और प्रभांवशाली भाषण से इतनी सार्वभौम और चित्ताकर्षक सफलता प्राप्त नहीं की और न इतनी आत्माओं को वशीभूत किया और सबसे बढ़कर यह कि सामना करने वाले विरोधी ने भीतरी विरोध रखते हुए भी उसकी अद्वितीय सफलता और विजय-प्राप्ति की साक्षी दी । इतना ही नहीं, प्रत्युत स्वयं विज्ञापन देकर उस ईश्वरीय पथ के पथप्रदर्शक की विजय और सफलता को स्वीकार करे ।

पंडित शिवसहाय जी ने वर्णन किया—"जब ३ अगस्त, सन् १८६९ के 'शोलयेतूर' में महाराज गुरुप्रसाद और महाराज प्रयागनारायण के किसी चाटुकार ने सत्य से रहित और वास्तविकता के विरुद्ध झूठा लेख प्रकाशित कराया तो उसी समाचार- पत्र को लेकर एक व्यक्ति दूसरे दिन मेरे पास आया क्योंकि उन दिनों स्वामी जी के अनुयायियों में एक मैं ही अधिक प्रसिद्ध था । उसे पढ़कर मुझे दु:ख हुआ कि उसने जान बूझकर ऐसा वास्तविकता के विरुद्ध वृत्तान्त प्रकाशित किया । उस समाचार- पत्र को लेकर मैं स्वामी जी के पास गया और उनको सुनाया कि देखिये शास्त्रार्थ का वृत्तान्त; आपकी हार और ओझा की जीत छापी गई है । स्वामी जी ने कहा कि छापने दो; हमें इसका कुछ हर्ष वा शोक नहीं; शास्त्रार्थ में हार-जीत मानना मूर्ख का काम है । इस पर हमने कहा कि ऐसा कहना आपके लिए तो उचित है, क्योंकि आप संन्यासी हैं परन्तु हम गृहस्थ हैं, नगर वाले हमें तंग करते हैं और छेड़ते हैं कि तुम्हारे गुरु हार गये । इसको हम लोग सहन नहीं कर सकते । इस पर स्वामी जी ने कहा कि तुमसे जो हो सके सो तुम करो परन्तु ऐसा न करना कि मुझको कहीं आना-जाना पड़े ?

उनकी आज्ञा लेकर मैं पण्डित हृदयनारायण और प्रेमनारायण जी के पास गया क्योंकि वे भी स्वामी जी के अनुयायी थे और दिन भर स्वामी जी के पास बैठे रहते थे । उन्होंने कहा कि चलो अभी हम पण्डित काशीनारायण मुन्सिफ के पास चलते हैं । तब मैं और पण्डित हृदयनारायण दोनों पण्डित काशीनारायण जी के पास गये । उनको भी समाचारपत्र दिखलाया । पढ़कर पूछा कि क्या चाहते हो ? हम लोगों ने कहा कि उस दिन आप भी शास्त्रार्थ में पधारे थे, आपके मत में किस की हार-जीत हुई ? उन्होंने कहा कि मुझ से अधिक उच्च पदाधिकारी सदरे आला वहां उपस्थित थे, उनकी सम्मति लेना ठीक है । फिर हम लोग सदरे-आला के पास गये, उनको भी समाचार पत्र सुनाया । उन्होंने हमारे प्रश्न के उत्तर में कहा कि इस बात का उत्तर हम नहीं दे सकते । आप लोग असिस्टैण्ट कलैक्टर मिस्टर थेन साहब बहादुर के पास जाओ जो वह कहें, वह ठीक है क्योंकि वे मध्यस्थ थे । तब हम लोग मिस्टर थेन साहब के पास गये । उनको वह समाचारपत्र सुनाया । उन्होंने सुनकर कहा कि नहीं, नहीं, उस दिन तो फकीर (साधु) जीता । तब हमने कहा कि देखिये समाचार पत्र वाले ने इसके विपरीत यह झूठा समाचार छापा है । तब थेन साहब ने पूछा कि 'तुम क्या मांगता है ? हम लोगों ने कहा कि जैसे आपने देखा और ठीक समझा है उसका एक प्रमाणपत्र हम लोगों को देना चाहिये । बैरे को कहा कि बक्स लाओ, और एक प्रमाणपत्र प्रदान किया जो अभी तक मूल अंग्रेजी में मेरे पास विद्यमान है जो आपको देता हूं ।"

विज्ञापन—इस कानपुर नगर में इन दिनों नगर निवासियों के सौभाग्य से एक महात्मा चारों वेदों के अर्थ और तत्त्व को जानने वाले अर्थात् स्वामी दयानन्द सरस्वती जी संन्यासी पधारे और नगर के बहुत से सत्याभिलाषी उनके दर्शन को जाते थे। बातचीत के बीच में उन्होंने उन परिवर्तनों की चर्चा की जो धर्मविक्रेता ब्राह्मणों की ओर से प्रमाणित पुस्तकों में किये गये हैं। इस बात को सुनकर उन लोगों ने, जिन्होंने प्रचुर धन व्यय करके बड़े-बड़े मन्दिर बनवाये हैं, मन ही मन बहुत चक्कर खाया और शास्त्रार्थ करना चाहा। नगर के कुछ रईसों ने हलधर ओझा और भटूर निवासी[४०] लक्ष्मण शास्त्री को नगर के अन्य पण्डितों सहित बड़ी कठिनता से बलात् शास्त्रार्थ पर उद्यत किया और ता० ३१ जुलाई, सन् १८६९ का दिन नियत हो कर भैरव घाट पर, दीवानी और फौजदारी के कई उच्च पदाधिकारियों, वकीलों, पुलिस कर्मचारियों और अंग्रेज अधिकारियों की उपस्थिति में शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। उस समय लगभग बीस-पच्चीस हजार मनुष्य एकत्रित थे। मिस्टर डब्ल्यू० थेन साहब बहादुर, असिस्टैण्ट कलैक्टर ने, जिनको संस्कृत विद्या का ज्ञान है और जिनको ओझा आदि ने इस बात के निर्णय के लिए मध्यस्थ नियत किया था, पूछा कि किस विषय पर शास्त्रार्थ होगा? ओझा ने कहा कि पाषाणपूजा के विषय में अर्थात् मूर्तिपूजन उचित है या नहीं। हम ये सब पुस्तकें प्रमाण के लिए लाये हैं जिनमें पाषाण की मूर्ति को देवता समझकर पूजन करना उचित लिखा है। फिर ओझा आदि ने निम्नलिखित पुस्तकें दिखलाईं—मनुस्मृति टीका सहित, रुद्री टीका[४१] सहित, महाभारत का एक श्लोक तथा सामवेद का ब्राह्मण; परन्तु चूंकि ये समस्त प्रमाण मूल ग्रन्थ, वेद के अनुकूल न थे क्योंकि इन टीकाओं का अर्थ मूल (वेद) के सर्वथा विरुद्ध है, इसलिए स्वामी जी ने इनको स्वीकार न किया और कहा कि ऐसे ही अशुद्ध अर्थों से जनता पथभ्रष्ट हुई है। मूल वेद में दिखलाओ तो मैं स्वीकार करूं। परन्तु ओझा की ओर से बार-बार उन्हीं स्थलों का आग्रह होता रहा; मूल वेद में (वे मूर्तिपूजन) कहीं दिखला न सके। लक्ष्मण शास्त्री जो कुछ समझदार व्यक्ति थे, स्वामी जी की युक्ति को ठीक समझकर दूसरी रीति से (मूल वेद को छोड़कर) केवल (वेद की शाखाओं से मूर्तिपूजा को स्थापित करना चाहते थे; इसलिए उन्होंने उस अवसर पर कहा कि यहां गुरु, देवता, राजा और कुष्ठी की छाया लांघने का निषेध है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि पत्थर को देवता मानकर उसकी छाया को न लांघें; क्योंकि देवता की छाया होती ही नहीं। यह सुनकर स्वामी जी ने कहा कि जिस प्रकार देवता इस समय प्रकट नहीं हैं, उसी प्रकार (आजकल) गुरु और राजा आदि भी प्रत्येक समय समीप और विद्यमान नहीं रहते। यह बात शास्त्र में केवल इसलिए लिखी है कि प्राचीन युग में जब लोग यज्ञ किया करते थे सब देवता (उनमें) आ जाते थे। फिर देवता, राजा और दैत्यों में परस्पर लड़ाई भी हुआ करती थी और देव मारे भी जाते थे। इसलिए यदि (देवता की) छाया न होती तो उनको मारना, जीना, मरना-मारना किस प्रकार सम्भव था; क्योंकि देवताओं का खाना, पीना, सोना, जागना (उनके) पत्नी-पुत्र होना आदि पुस्तकों से सिद्ध हैं। इसलिए (इस प्रसंग का यह अर्थ हुआ कि) यदि अकस्मात् देवता और मनुष्य एक स्थान पर एकत्रित हों तो ऐसी दशा में देवता की छाया को न लांघे। इन सब बातों के अतिरिक्त देवता की छाया लांघने का निषेध है। यहां 'पत्थर' शब्द तो किसी स्थान पर है नहीं।

तत्पश्चात् ओझा ने पूछा—अग्नि में हवन करने की क्या आवश्यकता है? पृथिवी, आकाश, जल, वायु और भी तो चार तत्त्व हैं; उनमें करें तो क्या हानि है? **स्वामी जी** ने कहा कि अग्नि के अतिरिक्त और किसी तत्त्व में भेदन करने का सामर्थ्य नहीं है और फिर वेद में परमेश्वर की आज्ञा भी इसी प्रकार है कि देवता-पूजन अग्नि में करना चाहिये; न कि पत्थर में। इसके पश्चात् ओझा ने साहब असिस्टैण्ट बहादुर से कहा कि मैंने चार-पांच पुस्तकों का प्रमाण दिया परन्तु स्वामी जी ने एक भी न माना और न मूर्तिपूजा का निषेध वेद के अनुसार वर्णन किया। स्वामी जी ने कहा कि जब होम की विधि अर्थात् अग्निपूजा वेद में लिखी है तो प्रत्येक अवस्था में सब प्रकार की पूजा का निषेध हो गया। उदाहरण उसका यह है कि यदि कोई व्यक्ति अपने सेवक से कहे कि तू पूर्व की ओर बनारस को जा तो उत्तर, दक्षिण और पश्चिम दिशाओं में जाने का निषेध स्वयमेव हो गया और वेद में निषेध भी है जैसा कि केनोपनिषद् में निम्नलिखित मन्त्र है—"यद्वाचानभ्युदितं येन

वागभ्युद्यते । तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् । तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।'[४२] इस श्रुति से जड़, मिथ्या, दुःखरूप जो दिखाई पड़ती है, उसका निषेध है; इसलिए जड़रूप की उपासना करना निषिद्ध है; परन्तु सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म की ही उपासना करनी चाहिये, यह बताया है ।

इसके पश्चात् **लक्ष्मण शास्त्री** ने कहा—परमेश्वर सर्वव्यापक है इसलिए पत्थर में भी विद्यमान है फिर मूर्तिपूजन में क्या दोष है ? **स्वामी जी**-इस दृष्टिकोण से सब में परमेश्वर व्यापक है तो फिर पत्थर में ही क्या विशेषता है और चेतन को छोड़कर जड़ को पूजने में क्या विशेषता है ? यह उत्तर सुनकर वे मौन हो रहे । तत्पश्चात् उक्त साहब ने विभिन्न प्रश्न ओझा और स्वामी जी से किये । तब उनको भली भांति निश्चय हुआ कि स्वामी जी का कथन युक्ति-युक्त और वेद की आज्ञा तथा प्राचीन ऋषियों के वचनों के अनुकूल है और ओझा का कथन निर्मूल है । अत्यन्त प्रसन्न होकर और कुर्सी से उठकर टोपी उतार कर स्वामी जी को चार-पांच बार प्रणाम किया (जो इस बात की स्वीकृति था) कि स्वामी जी की बात ठीक और माननीय है तथा ओझा की बात सर्वथा मिथ्या है । उपर्युक्त प्रशंसनीय महोदय की मिति ७ अगस्त, सन् १८६९ की लिखी अंग्रेजी चिट्ठी अनुवाद सहित नीचे लिखी जाती है । विरोधियों ने **'शोलये तूर'** समाचारपत्र में तो समाचार छपवाया वह वास्तविकता के विरुद्ध और सर्वथा मिथ्या है । न जाने 'शोलये तूर' के प्रबन्धक ने किस प्रकार ऐसा मिथ्या समाचार छाप दिया । आशा है कि बुद्धिमान् मनुष्य कभी इस समाचार का विश्वास न करेंगे । (पंडित हृदयनारायण की ओर से)

अंग्रेजी चिट्ठी—Jentlemen,-At the time in question I decided in favour of Dayanand Saraswati Fakir, and I believe his arguments are in accordance with the Vedas, I think he won the day. If you wish, I will give you my reasons for my decision in a few days.

Yours obediently

Cawnpore (Sd.) W. Thaina

अनुवाद—सज्जनो, शास्त्रार्थ के समय मैंने दयानन्द सरस्वती फकीर (साधु) के पक्ष में निर्णय दिया था और मैं विश्वास करता हूं कि उनकी युक्तियां वेदों के अनुकूल थीं । मेरा विचार है कि उस दिन उन की विजय हुई । यदि आप कहेंगे तो मैं अपने इस निर्णय के कारण कुछ दिनों में दे दूंगा ।

कानपुर । (हस्ताक्षर) डबल्यू० थेन

हस्ताक्षर प्रकाशक—पंडित हृदयनारायण, पुत्र पंडित रामनारायण मुन्सिफ महोबा । १७ अगस्त, सन् १८६९ ई० निजामी प्रेस, मौहल्ला पुराना नाचघर, कानपुर में छपा ।

प्रमाणपत्र प्राप्त करने के पश्चात् पंडित हृदयनारायण सुपुत्र पंडित रामनारायण साहब मुन्सिफ, महोबा ने उपर्युक्त विज्ञापन जारी किया जिसमें शास्त्रार्थ का समस्त वृत्तांत और दोनों पक्षों के प्रश्नोत्तर ठीक-ठीक लिखकर उसके अन्त में असिस्टैण्ट कलैक्टर साहब बहादुर का प्रमाणपत्र भी लिख दिया । यह विज्ञापन १७ अगस्त, सन् १८६९ को निजामी प्रेस, कानपुर में कई हजार की संख्या में छापकर प्रकाशित किया गया और फिर यही विज्ञापन समाचारपत्र 'शोलये तूर' कानपुर में भी २३ सितम्बर, सन् १८६९ को प्रकाशित हुआ ।

पंडित सूरजकुमार शर्मा कान्यकुब्ज, रईस पुराना कानपुर, वर्णन करते हैं "उस शास्त्रार्थ में हम भी उपस्थित थे और उस समय हम स्वामी जी के प्रबल विरोधी थे । विरोध के कारण चलते हुए हम कई ईंटें भी फेंक गये थे । पता नहीं कि किसी को लगी थी या नहीं । मनुष्यों की भीड़ बहुत अधिक थी । नौकाएं, घाट, छत, मैदान सब भरे हुए थे । इस शास्त्रार्थ

में मिस्टर थेन साहब मध्यस्थ थे । इस शास्त्रार्थ के पश्चात् हम आगे से अधिक विरोधी हो गये क्योंकि उन्होंने स्पष्ट रूप से सबके सामने मूर्ति का खंडन किया । हम यहां तक विरोधी थे कि उनके नाम से जलते थे और जब कोई उनकी पुस्तकें लाता था तो हम यथाशक्ति फड़वा देते थे । यह विरोध बहुत काल तक चलता रहा । सारांश यह कि संवत् १९२९ से संवत् १९३९ तक (हमारा) यही नियम रहा कि जो उनकी वार्ता करता हम उसे बुरा तो समझते ही, साथ ही उस बात को सुनते भी नहीं थे । अगहन संवत् १९३९ के अन्त में हमारा छोटा भाई स्वामी जी की बहुत सी पुस्तकें मोल ले आया । हम ने वे सब उस से बलात् फाड़ने के लिए छीन लीं परन्तु जब फाड़ने लगे तो उन पुस्तकों की छपाई की सुन्दरता देखकर पढ़ने को मन चाहा । प्रथम चांदापुर का मेला पढ़ा । अध्ययन से स्वामी जी की युक्तियां मन को दृढ़ प्रतीत हुईं । दूसरी पुस्तक **'सत्यासत्यविवेक'** बरेली की थी । उसको पढ़ने से समस्त सन्देह और विरोध दूर हो गये । जब मन से सारी विरोध की भावना दूर हो गई तो सावन, सवंत् १९४० में यहां समाज स्थापित करके उसके सभासद् हो गये ।"

रायबहादुर मुंशी दरगाहीलाल, कायस्थ, आनरेरी मैजिस्ट्रेट व वकील, नवाबगंज, कानपुर ने वर्णन किया कि "हलधर के शास्त्रार्थ में हम और पंडित काशीनारायण मुन्सिफ, मिस्टर थेन साहब डिप्टी मैजिस्ट्रेट, राव बख्तावरसिंह और बाबू श्यामाचरण उपस्थित थे । तमाशा देखने वालों की बहुत अधिक भीड़ थी । घाट की सीढ़ियों के ऊपर जो फर्श है वहां शास्त्रार्थ हुआ था । वृक्षों, नौकाओं, छतों, फर्श-सब पर मनुष्य ही मनुष्य थे । घाट की तीनों मंजिलें भरी हुई थीं । रामधन कोषाध्यक्ष भी उपस्थित थे । प्रथम बाबू श्यामाचरण जी ने जगत्पिता परमेश्वर की प्रार्थना की, फिर शास्त्रार्थ दो बजे के लगभग आरम्भ हुआ परन्तु जनता तो एक बजे से ही एकत्रित होने लगी थी । सायंकाल शास्त्रार्थ समाप्त हुआ । स्वामी जी जीते । फिर मिस्टर थेन साहब ने कहा कि अब समाप्त हुआ । अन्त में एक बात हलधर ने कही थी तब स्वामी जी ने कहा कि यह तो तुम दस बार कह चुके हो और मैं खंडन कर चुका । अब बार-बार कहने से क्या लाभ ?

उस समय विलियम हाल्सी साहब कलैक्टर थे । उन्हींकी आज्ञा से सब प्रबन्ध हुआ था । कोतवाल सुलतान अहमद और एक सौ मनुष्य पुलिस के थे । जब मिस्टर थेन साहब उठे तो उसी समय सब उठ खड़े हुए और वे लोग कोलाहल करते और हलधर की झूठी जीत कहते हुए चले गये ।"

पण्डित काशीनारायण दर, भूतपूर्व मुन्सिफ कानपुर, वर्तमान पेंशनर, गोघाट बनारस निवासी ने वर्णन किया "स्वामी जी जब पहले-पहले[४३] सन् १८६९ में फर्रूखाबाद की ओर से आये तो भैरवघाट पर उतरे । बड़ी तत्परता से मूर्तिपूजा का खंडन करते थे । हलधर ओझा से शास्त्रार्थ हुआ ।" (अपने शेष कथन में उन्होंने पंडित हृदयनारायण जी के कथन का समर्थन किया) ।

"स्वामी जी कहते थे कि वेद का अभ्यास न रहने के कारण ही लोग पराक्रम हीन हो गये हैं अन्यथा, भारत के लोग जैसे पहले पराक्रमी थे वैसे अब भी हो सकते हैं । गायत्री के जप का भारी महत्त्व बताते थे और कहते थे कि प्राणायाम से बहुत शक्ति उत्पन्न हो जाती है । नव शिक्षितों का यह विचार कि योग से कुछ नहीं होता, सर्वथा मिथ्या है; अब भी ऐसे-ऐसे लोग विद्यमान हैं कि योगबल से पृथिवी से हाथ भर ऊपर तक उठ सकते और ठहर सकते हैं । देवर से पुनर्विवाह की अनुमति देते थे और कहते थे कि ऐसा करने की ऋषियों ने स्पष्ट आज्ञा दी है । सारी आयु विधवा को दु:ख में बिठाये रखना बुरी बात है । विवाह के सम्बन्ध में बालपन के विवाह का खंडन करते थे और कहते थे कि जब लड़की १५-१६ वर्ष की और लड़का २४-२५ वर्ष का हो जावे तब विवाह करना चाहिए । मूर्तिपूजा के विषय में कहते थे कि (इस विषय में) वेद का अर्थ समझने में भूल हुई है । वेदों का कदापि यह अभिप्राय नहीं है कि मूर्तिपूजा की जावे । कहते थे कि वेद के अतिरिक्त गीता में भी मूर्तिपूजन का खंडन विद्यमान है ।

एक दिन हंसी में कहा था कि जो लोग आधी पंक्ति का मन्त्र सुना दें वे तो गुरु बन जावें और मैं जो मन्त्रों के पृष्ठों के पृष्ठ सुनाता हूं, मैं गुरु क्यों नहीं ? (स्मृति) और (महा)भारत के विषय में कहते थे कि इनमें बहुत से प्रक्षेप हो चुके हैं। जो ठीक मनु के वचन हैं वही मैं मानता हूं, शेष नहीं ।"

"एक बार हमने स्वामी जी को निमन्त्रण दिया था, वहीं गंगातट पर भोजन बना कर उनको खिलाया और रात को भी वहीं रहे । गायत्री के अर्थ भी उन्होंने हमको लिख दिए थे जो हमारे पास हैं ।"

"शारीरिक स्वास्थ्य के लिए व्यायाम करना आवश्यक बतलाते थे । हमको कहा था कि लड़के को अष्टाध्यायी पढ़ाना, इससे वेद का ज्ञान हो जाता है ।"

स्वामी जी के उपदेश से कानपुर में बहुत से लोगों ने मूर्तियां गंगा में फेंक दी थीं ।

कुम्भ मेला हरिद्वार का विस्तृत वृत्तान्त

(फाल्गुन बदि १४, संवत् १९३५ वीरवार[४४] तदनुसार २० फरवरी, सन् १८७९ से वैशाख बदि, ५, संवत् १९३६, शुक्रवार तदनुसार ११ अप्रैल[४५], सन् १८७९ तक)

माघ अमावस्या, संवत् १९३५ तदनुसार २२ जनवरी, सन् १८७९ को स्वामी जी ने 'चश्मये फैज' प्रेस मेरठ में विज्ञापन छापने के लिए दिये और वहां से कई हजार प्रतियां छपवा कर पूरे प्रबन्ध के साथ सहारनपुर को चल पड़े और कन्हैयालाल के शिवालय में उतरे । वहां दो व्याख्यान दिये और मिस्टर पाल ने जो रेलवे विभाग के कर्मचारी थे, स्वामी जी से बातचीत की । उनको स्वामी जी ने सन्तोषजनक उत्तर दिये । इस बार बहुत से जैनी भी स्वामी जी से मिलने के लिए आये । विशेषतया जैनियों के पंडित मथुरादास और लाला शुगनचन्द जी भी आये थे परन्तु कोई प्रश्न किसी ने नहीं किया । इस बार स्वामी जी ने उन पर यह प्रश्न भी किया कि जैनी प्रकट रूप में जैसी जीवरक्षा करते हैं वैसी उनकी पुस्तकों से ज्ञात नहीं होती ।

सहारनपुर से मेल कार्ट[४६] में बैठकर रुड़की पधारे और केवल एक दिन निवास किया । कोई व्याख्यान नहीं हुआ । बृहस्पतिवार, २० फरवरी, सन् १८७९ को रुड़की से रथ द्वारा ज्वालापुर में जा विराजमान हुए और ज्वालापुर निवासी मूला मिस्त्री के बाग के बंगले में डेरा किया और निरन्तर सत्यधर्म का उपदेश देते रहे ।

राव एवज खां रईस ज्वालापुर ने वर्णन किया—"उन दिनों मैं स्वामी जी से ५-७ बार मिला । मैंने सत्यधर्म के विषय में उनसे पूछा था । उन्होंने युक्तियुक्त उत्तर दिये जिनसे मेरा भलीभांति सन्तोष कर दिया । वे वेद के बहुत बड़े विद्वान् थे । प्रायः वैद्यक और दर्शनशास्त्र की बातें करते थे । गोरक्षा पर बहुत बल देते थे । मैंने कहा कि जहां तक जीवरक्षा का प्रश्न है तो गोरक्षा क्या और सुअर रक्षा क्या, सभी प्राणियों की रक्षा करना अच्छा है । उन्होंने कहा कि नहीं; इससे (गोरक्षा से) बहुत लाभ हैं और उसमें सर्वथा हानि; इसलिए गोरक्षा की आवश्यकता है । मैंने नित्यप्रति के स्नान पर भी आक्षेप किया कि हिन्दुओं ने क्यों नियम कर रखा है । कहा कि ऐसा (प्रतिदिन स्नान करने का) नियम तो नहीं है परन्तु वैद्यक के अनुसार युक्ति-युक्त उत्तर दिये और कहा कि स्नान के बहुत से लाभ हैं; इसलिए स्वस्थ होने के लिए नित्य नहाना परमावश्यक है । मैंने उनकी बहुत-सी बातें सुनीं और सब बुद्धि के अनुकूल थीं । मैं उनसे सहमत हूं, मैं जानता हूं कि वे अपने धर्म के नेता थे । मायापुर में वे मेले में उपदेश करते थे । हजारों मनुष्य सुनते थे । मुन्शी इन्द्रमणि के साथ भी मैं मिला था । यहां के ब्राह्मणों की उनसे बातचीत करने की सामर्थ्य नहीं थी ।'

रावसाहब चूंकि स्वयं हकीम थे, उन्होंने स्वामी जी के उपदेश से मांस खाना भी छोड़ दिया था और प्रतिज्ञा की कि मैं यथाशक्ति और मुसलमान भाइयों को भी गोरक्षा की शिक्षा और मांसभक्षण का निषेध हृदयंगम कराता रहूंगा।

२७ फरवरी, सन् १८७९ बृहस्पतिवार तदनुसार फागुन सुदि ६, संवत् १९३५ को ज्वालापुर से मायापुर हरिद्वार में जाकर श्रवणनाथ के बाग और निर्मलों की छावनी के सामने बूचा नाले के पार मूला मिस्त्री के खेत में, कलैक्टर साहब के डेरे के समीप, आ विराजे और वहीं डेरे लगा दिये। फिर निवास का यथावत् प्रबन्ध करके निम्नलिखित विज्ञापन मार्गों, घाटों, पुलों और मन्दिरों की दीवारों पर लगवा दिये।

स्वामी जी का विज्ञापन

ओ३म् नमः सर्वशक्तिमते परमेश्वराय

विज्ञापनपत्रमिदम्

सब सज्जन लोगों को विदित हो कि पंडित स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज विक्रमादित्य के सं० १९३५, फा० शु० ६, गुरुवार को हरिद्वार में आकर श्रवणनाथ के बाग के पास निर्मलों की छावनी के सामने बूचा नाला के पार मूला मिस्त्री के खेतों में ठहरे हैं। जो महाशय उन स्वामी जी से संभाषण करके लाभ उठाना चाहें वे पूर्वोक्त स्थान पर उपस्थित होकर सभ्यता और प्रीतिपूर्वक वार्तालाप करें।

सब सज्जनों के लिए वेदोक्त उपदेश—ऐसा कौन मनुष्य होगा जो अपना, अपने बन्धुवर्गों का हित और परमेश्वर की आज्ञा का पालन करना न चाहे। क्या कोई ऐसा भी मनुष्य है जो परस्पर मित्रता, सदुपदेश, प्रीति, धर्मानुष्ठान, विद्या की वृद्धि, दुष्ट काम और आलस्य के त्याग, श्रेष्ठ कामों के सेवन, परोपकार और पुरुषार्थ के बिना सर्वहित कर सके और ईश्वर-प्रतिपादित वेदोक्त (धर्म) के अनुसार आचरण किये बिना सुख को प्राप्त हो सके। इसलिए आर्यों के इस महा-समुदाय में वेदमन्त्रों के द्वारा सब सज्जन मनुष्यों के हित के लिए ईश्वर की आज्ञा का प्रकाश संक्षेप में किया जाता है जिसको सब मनुष्य देख, सुन और विचार कर ग्रहण करें और मेले में तन, मन और धन से आने के सत्य सुखरूप फलों को प्राप्त हों और अपने मनुष्य देहरूप वृक्ष के धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी चार फलों को पाकर जन्म सुफल करें और अपने सहचारी लोगों को भी उक्त फलों की प्राप्ति करावें। इस विषय में नीचे लिखे वेद मन्त्रों का प्रमाण देख लीजिये—

ओ३म्। विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद् भद्रं तन्न आसुव ॥ १ ॥ (ऋ० मं० ५, सूक्त ८२, मं० ५।)

२. उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु।
अधेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रुवां अफलामपुष्पाम् ॥ २ ॥

३. यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति।
यदीं श्रृणोत्यलकं श्रृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् ॥ ३ ॥

४. सर्वे नन्दन्ति यशसागतेन सभासाहेन सख्या सखायः।
किल्विषस्पृत्पितुषणिर्ह्येषामरं हितो भवति वाजिनाय ॥ ४ ॥

५. सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत ।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि ॥ ५ ॥

(ऋ० मं० १० । सूक्त ७१ । मं० ५ । ६ । १० । २ ॥)

६. सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै । तेजस्विनावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै ॥
ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ ६ ॥ (तैत्तिरीयारण्यके प्र० ९ । अनु० १ ।)

इन मन्त्रों के अर्थ—१. सब मनुष्य इस प्रकार ईश्वर की प्रार्थना करें कि हे (देव) सब सुखों के देने और (सविता) सब जगत् की उत्पत्ति और धारण करने वाले परमेश्वर आप कृपा करके (नः) हमारे जितने (विश्वानि) सब (दुरितानि) दुष्टकर्म और दुःख हैं उन सबको (परासुव) दूर कीजिये और (यत्) जो (भद्रम्) शुभकर्म और नित्य सुख हैं, उनको हमारे लिए सदा प्राप्त कीजिये ॥ १ ॥

२. परमात्मा ऐसे धार्मिक मनुष्यों को वेद और अन्तर्यामीपन से उपदेश करता है कि जो अविद्वान् मनुष्य (अपुष्पाम्) साधनरूप पुष्पों और (अफलाम्) अर्थ, काम और मोक्ष रूप फलों से रहित (वाचम्) अर्थ-ज्ञान से रहित वाणी (शुश्रुवान्) सुनकर (एषः) यह पुरुष (अधेन्वा) सुशिक्षा शब्द-अर्थ और सम्बन्ध के बोधरहित वाणी और (माया) छल, कपटादि बुरे कामों से युक्त होकर, (चरति) चलता है, जिसको विद्वान् लोग अज्ञानी (आहुः) कहते हैं (उत) और जिसको कुछ भी दुःख (न) नहीं प्राप्त होता और जो आप विद्वान् होकर (एनम्) इस विद्यारहित मनुष्य को (स्थिरपीतम्) दृढ़ विद्यायुक्त करके (हिन्वन्ति) बढ़ाते (त्वम्) उसको (सख्ये) वैर विरोध छोड़कर मित्र होने के लिए प्राप्त करते (अपि) और उसको (वाजिनेषु) अति श्रेष्ठ गुणकर्मयुक्त करके सुखी कर देते हैं; वे मनुष्य धन्य हैं ॥ २ ॥

३. इन से विरुद्ध (यः) जो मनुष्य (सचिविदम्) सब से प्रीति-प्रेम-भाव से सबको सुख प्राप्त कराने वाले, (सखायाम्) सर्वहितकारी मित्रों को (तित्याज) छोड़ देता है अर्थात् औरों से मित्रभाव नहीं रखता (तस्य) उसका (वाचि) सुशिक्षित विद्या की वाणी में (अपि) कुछ भी (भागः) अंश (नास्ति) नहीं है अर्थात् वह भाग्यहीन पुरुष और (यत्) जो कुछ वह विद्वानों का अविद्वानों के मुख से (ईम्) शब्द को (श्रृणोति) सुनता है सो अब (अकलम्) अर्थ प्रयोजन रहित (श्रृणोति) सुनता है अर्थात् वह विद्या और ज्ञान के बिना अर्थ का अनर्थ और अनर्थ का अर्थ समझकर (सुकृतस्य) धर्म के (पन्थाम्) मार्ग को (नहि प्रवेद) कभी नहीं जान सकता । और जो आप सबका मित्र और सबको अपना मित्र समझ के सत्य से सबका उपकार करता है वही धर्म के मार्ग को जानकर आप उसमें चल और सबको चला के धन्यवाद के योग्य होता है ॥ ३ ॥

४. इन को ऐसे होना और होना ऐसा न चाहिये; जो मनुष्य (वाजिनाय) विद्यादि शुभगुण प्राप्ति करने और कराने के लिए (किल्विषस्पृत्) पाप का सेवन कराने हारा (पितुषणिः) स्वार्थी (भवति) होता है वह सुख को कभी प्राप्त नहीं होता और जो (हि) निश्चय करके (एषां) इन मनुष्यादि वर्तमान जीवों का (अरं हितः) अत्यन्त हितकारी है उस (यशसा) कीर्तिमान् (सभासाहेन) सभा का भार उठाने और सभा की उन्नति करने (आगतेन) सब प्रकार से प्राप्त होने वाले (संख्या) मित्र के साथ (सखायः) मित्रभाव रखते हैं वे (सर्वे) सब लोग (नन्दन्ति) परस्पर सदा आनन्दयुक्त रहते हैं ॥ ४ ॥

५. जहां ऐसे मनुष्य होते हैं वहां दुःख का क्या काम हैं ? (सक्तुमिव) जैसे सत्तू को (तितउना) चालनी से छानकर सार-असार को अलग-अलग करके शुद्ध कर देते हैं, वैसे (यत्र) जिस देश, जिस समुदाय, जिस सभा में (धीराः) धार्मिक विद्वान् लोग (मनसा) विज्ञान और प्रीति से (वाचम्) वाणी को सुशिक्षित और विद्यायुक्त करके सत्य का सेवन और असत्य का त्याग करने के लिए (सखायः) परस्पर सुहृद् होकर (सख्यानि) मित्रों के कर्म और भावों को (जानते) जानते और जनाते

हैं (अत्र) इस में वर्तमान होने वाले (एषां) मनुष्यों ही की (वाचि) सत्य वाणी में (भद्रा) कल्याण और सुख करने वाली (लक्ष्मी:) विद्या, शोभा और चक्रवर्ती राज्य की श्री (निहिता) सदा स्थित रहती है और जो एक-दूसरे के साथ सुख करने में निश्चित नहीं होते उनको दरिद्रता घेर कर सदा दु:ख देती रहती है ॥ ५ ॥

६. इसलिए हे मनुष्य लोगो, तुम ऐसा समझ के इस आगे लिखी बात को सदा करते रहियो । (सह नाववतु) हम लोग परस्पर एक-दूसरे की रक्षा सदा करते (सह नौ भुनक्तु) एक-दूसरे के साथ विरोध छोड़ आनन्द भोगते (सह वीर्यं करवावहै) और एक-दूसरे का बल, पराक्रम, विद्या और सुख को बढ़ाते रहें और (तेजस्विनावधीतमस्तु) हमारे बीच में विद्या का पठन-पाठन (तेजस्वि) अत्यन्त प्रकाशयुक्त हो (मा विद्विषावहै) और हम लोग आपस में वैर-विरोध कभी न करें । इस प्रकार चाल-चलन शुद्ध करने से (ओ३म् शान्ति: शान्ति: शान्ति:) जो हमारे (आध्यात्मिक) शरीर की पीड़ा (आधिभौतिक) शत्रु आदि से पराजय आदि क्लेश का होना, (आधिदैविक) अर्थात् अति वर्षा होने न होने आदि और मन आदि इन्द्रियों की चंचलता से तीन प्रकार का दु:ख होता है, वह कभी उत्पन्न न हो, किन्तु सदा सब सुख बढ़ते रहें ॥ ६ ॥

विचारना चाहिये ! हे मनुष्य लोगो ! ऊपर लिखी व्यवस्था पर आत्मा में ध्यान देकर देखो कि परमेश्वर ने वेद द्वारा सब मनुष्यों को सुखी होने के लिए कैसा सत्योपदेश किया है कि जिसमें चलने से अपने लोगों में सब दु:खों का नाश और सत्य सुखों की वृद्धि बनी रहे । क्या तुमने नहीं सुना है कि अपने पुरुष ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्त महर्षि और स्वायंभुव से लेके महाराजे युधिष्ठिर पर्यन्त राजर्षि लोग वेदोक्त धर्म के अनुकूल चल के कैसे-कैसे बड़े और विद्या और चक्रवर्ती राज्य के असंख्यात सुखों को भोगते, विमान आदि सवारियों में बैठते, सर्वत्र विद्या और धर्म को फैला कर सदा आनन्द में रहते थे । यह बड़े आश्चर्य की बात है कि पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, दिन, रात, प्रहर, मुहूर्त, घड़ी, पल, क्षण, आंख, नाक, कान आदि शरीर, औषधि, वनस्पति, खाना-पीना आदि व्यवहार ज्यों के त्यों बने हैं और हम आर्यों का हाल क्यों बदल गया ! हे मनुष्यो ! आप लोग अत्यन्त विचार करके देखो कि जिसका फल दु:ख वह धर्म और जिसका फल सुख वह अधर्म कभी हो सकता है ? अपना हाल अन्यथा होने का यही कारण है कि जिसको ऊपर लिख चुके वेदविरुद्ध चलना और उस प्राचीन अवस्था की प्राप्ति कराने वाला कारण वेदोक्तानुकूल चलना है और वह चाल-चलन यह है कि जैसा आर्यावर्तवासी आर्य लोग आर्यसमाजों के सभासद् करते और कराना चाहते हैं कि संस्कृत विद्या के जानने वाले, स्वदेशियों की बढ़ती के अभिलाषी, परोपकारक, निष्कपट होके सबको सत्य विद्या देने की इच्छायुक्त, धार्मिक विद्वानों की उपदेशक मंडली और वेदादि सत्य शास्त्रों के पढ़ने के लिए पाठशाला किया चाहते हैं । इसमें जिस किसी आर्य की योग्यता हो वह अपने अभिप्राय को प्रसिद्ध करके इस परोपकार महोत्तम कार्य में प्रवृत्त हो । इसी से मनुष्यों की शीघ्र उन्नति हो सकती है । मैं निश्चित जानता हूं कि इस बात को सुन के सब भद्र लोग स्वीकार करके आर्योन्नति करने में तन, मन, धन से प्रवृत्त होंगे, नि:सन्देह ॥

भूतरामांचन्द्रेऽब्दे माघमासासिते दले ।
अमायां बुधवारे वै पत्रमेतदलेखिषम् ॥ १ ॥

स्वामी जी के पधारने की धूम सुन कर कई आर्य सज्जन भी वहां जा विराजे । मेरठ के रईस ला० रामसरणदास जी, चौधरी मोहनलाल जमींदार मेरठ, मुंशी इन्द्रमाणि जी मुरादाबाद, पंडित उमरावसिंह जी मंत्री आर्यसमाज रुड़की, हकीम थानसिंह जी रईस रुड़की, मास्टर जमीयतराय जी सहारनपुर, मास्टर शंकरलाल साहब रुड़की आदि लगभग ५० सज्जन स्वामी जी के डेरे पर विराजमान थे ।

स्वामी विशुद्धानन्द जी काशी वाले कस्बा कनखल की हनुमानगढ़ी में ठहरे थे और सतुआ स्वामी जो प्राय: हनुमानगढ़ी में रहा करते थे, सप्तसरोवर पर जा रहे ।

दुर्गादत्त मिस्त्री, पुत्र मूला मिस्त्री, ज्वालापुर निवासी ने वर्णन किया—"स्वामी जी यहां आकर लगभग दो मास ठहरे । ज्वालापुर और मायापुर दोनों स्थानों में हमारे मकान में ठहरे थे । हम पर उनकी बड़ी कृपा थी । प्रतिदिन उनका व्याख्यान होता था । मुझे भी उपदेश किया था कि मूर्तिपूजा गरुड़िया पुराण है, तुम मूल को छोड़कर इस पर लग गये । तुम वह उन्नति करो जो मूल से हो सके । उम्मीद खां ने मेरे पर प्रश्न किया था कि तुम मूर्तिपूजक हो । **स्वामी जी** ने उत्तर दिया यह तो छोटा मूर्तिपूजक है, परन्तु तुम (मुसलमान) बड़े मूर्तिपूजक हो; जो "कोहे[1] तूर" और कदम आदम वाले पहाड़ को पूजते हो; संगे असबद[2] को चूमते, ताजिये को मानते और फकीरों से मुराद मांगते हो । जिस पर वह निरुत्तर हो गया ।

गौतम-अहिल्या की कहानी[४७] का भी तात्पर्य समझाया था; वह यह था कि शीघ्र चलने के कारण गौतम नाम चन्द्रमा का है और अहिल्या रात को और इन्द्र सूर्य को कहते हैं । साथ ही रामचन्द्र के चरण छूने से अहिल्या के मुक्त हो जाने का भी खंडन किया ।

"उम्मीद खां और पीर जी इब्राहीम ने स्वामी जी से प्रश्न किया कि हमने सुना है कि आप मुसलमानों को भी आर्य बना लेते हैं ? **स्वामी जी** ने कहा कि हम वास्तव में आर्य बना लेते है । आर्य के अर्थ श्रेष्ठ और सत्यमार्ग पर चलने वाले के हैं । जब आप सत्यधर्म स्वीकार करें तब आर्य हो गये । उन्होंने कहा कि तो फिर तो हमारे साथ मिलकर खाओगे ? **स्वामी जी** ने कहा कि हमारे यहां केवल उच्छिष्ट का त्याग है; हम एक-दूसरे के साथ इकट्ठा नहीं खाते । मुसलमानों ने कहा कि एक स्थान पर खाने से प्रेम बढ़ता है । **स्वामी जी** ने कहा कि कुत्ते भी तो मिलकर एक स्थान पर खाते हैं परन्तु खाते-खाते आपस में लड़ने लगते हैं ।" इस पर वे मौन हो गये ।

"स्वामी जी ने सतुआ स्वामी को बहुतेरा बुलाया परन्तु वे सामने न आये; प्रत्युत कहला भेजा कि हम उनका दर्शन करना नहीं चाहते । स्वामी जी ने उत्तर दिया कि यदि दर्शन करना नहीं चाहते हो तो पर्दा डलवा लो परन्तु ये सब दूर की गीदड़ भबकियां थीं, सम्मुख आकर शास्त्रार्थ करना टेढ़ी खीर थी ।"

परिहासात्मक उदाहरण—"स्वामी जी एक उदाहरण दिया करते थे कि एक जाट ने गुरु कर लिया । उसकी स्त्री ने कहा कि यह तूने बुरा किया; दो धड़ी अनाज का और खर्च बढ़ा लिया । जाट ने उत्तर दिया कि देखो तुम मुझे प्यारी हो और लड़के भी मुझे प्यारे हैं और इसी प्रकार समस्त कुटुम्ब के लोग भी मुझे प्यारे हैं इसलिए मैं और किसी की सौगन्ध नहीं खाता, सौगन्ध खाने के लिए यह गुरु कर लिया है; तुम दो चार धड़ी अनाज का कुछ विचार न करो ।"

लक्कड़पंथी मत बनो-दुर्गादत्त के **भाई दतीलाल** ने कहा—स्वामी जी ने देखा कि निर्मले साधु झंडे को चंवर डुलाते हैं । यह देखकर स्वामी जी ने उनको कहा कि तुम लक्कड़पंथी (लक्कड़ की सेवा करने वाले) हो; यदि तुम्हारे में कोई वृद्ध मनुष्य हो तो उसकी सेवा करो; इस प्रकार अविद्या के जाल में मत फंसो ।"

अंग्रेज भी यदि उन्नत भारत में आते !—"कुछ अंग्रेज भी एक दिन आये । उनसे स्वामी जी ने कहा कि आप लोग फूट के समय भारत में आये । यदि उन्नति के समय आते तो देखते कि भारत में कैसे-कैसे शूरवीर, योद्धा विद्यमान थे और फिर उनकी विद्या और बल की प्रशंसा करते ।"

---

1. एक पर्वत का नाम ।

2. एक काले रंग का पत्थर जो काबे में रखा हुआ है, हज करने वाला प्रत्येक व्यक्ति इस पत्थर को चूमता है । मुसलमानों का ऐसा विश्वास है कि यह पत्थर लोगों के पाप चूसता है, इस कारण काला पड़ गया है ।

"स्वामी जी का सारा दिन उपदेश में व्यतीत होता था। पंडित लोग दूर से डींग मारा करते परन्तु कोई सामने न आता। हमारे पिता सन् १८८१ में मर गये, उनको बहुत वृत्तान्त स्मरण था।"

एक मनुष्य ने प्रश्न किया कि तुमने मुलतानी मिट्टी क्यों लगाई है? उत्तर दिया इसलिए लगाई कि जो मक्खी-मच्छर हमें काटे, उसके मुख में मिट्टी आवे।"

मुंशी मूलचन्द ने वर्णन किया "एक दिन उनका व्याख्यान सुनते-सुनते एक वृद्ध ब्राह्मण बोला कि स्वामी तेरा गला काट लूं और अपना भी काट डालूं; तूने हमारी बड़ी हानि की और जीविका नष्ट कर दी। स्वामी जी ने कहा कि कोई है जो इसे हटा दे। सिपाही ने उसे हटा दिया, और लोग भी दौड़े। तब स्वामी जी ने कहा कि ऐसे यत्न की आवश्यकता नहीं; यह कोई मेरे से बलिष्ठ नहीं; केवल इतना करो कि यह व्याख्यान में बाधा न डाले।"

दण्ड धारण भी पाखण्ड है—"एक दिन सायंकाल दो साधु आये और नमस्ते करके बैठ गये। स्वामी जी ने कहा कि अरे आत्मानन्द! तू ने दंड का[४८] पाखंड अभी तक नहीं छोड़ा, मैं तो इसको चिरकाल तक लिये फिरा परन्तु कुछ भी लाभदायक नहीं।

"एक प्रसिद्ध उदासी साधु को निर्मले लोग कहीं से खोज कर शास्त्रार्थ के लिए लाये थे। वह आकर बहुत समय तक वाद-विवाद करता रहा; उसका नाम मुझे स्मरण नहीं। वह कहता था कि मेरा तो अनुभव ही परमेश्वर में फट गया है, तुम्हारी बात माननी ही नहीं। स्वामी जी ने कहा कि देखो जी, इनका अनुभव फट गया है। परन्तु कम से कम दो घंटे तक उस से बातें होती रहीं। वह केवल एक कम्बल ही ओढ़े था।"

दयाद्रवित हृदय : विधवाओं और गायों के शाप की गहरी अनुभूति—"एक दिन स्वामी जी बैठे बैठे लेट गये। अकस्मात् स्वामी जी ने उठकर और सांस भर कर यह कहा कि विधवाओं और गायों के शाप से ही यह देश नष्ट हुआ।"

"एक दिन एक नांगा साधु जटाधारी आया और कहा कि स्वामी जी! मैं आपसे पढ़ना चाहता हूं; भिक्षा मांगकर लाया करूंगा। स्वामी जी ने कहा कि तुम कहां के हो? वह बोला कि मैं साधुओं की मंडली का हूं। स्वामी जी ने कहा कि हमको पढ़ाने का अवकाश इतना नहीं है और तुम्हारा साथ रहना भी कठिन है। उसने कहा कि नहीं, मैं आपके साथ रहूंगा। यह कहकर वह बैठ गया और वहीं रहा।"

"स्वामी जी का विचार कनखल में व्याख्यान देने का था परन्तु मैं प्रबन्ध न कर सका। रामानन्द ब्रह्मचारी वहां रोटी पकाया करता था। एक बीस वर्षीय अमृतसर-निवासी नवयुवक ने आकर निवेदन किया कि महाराज! मुझे अमृतसर-समाज ने निकाल दिया है। स्वामी जी ने पूछा कि क्या कारण? कहा कि पुस्तकों की चोरी का आरोप लगाया था। स्वामी जी ने कहा कि सच-सच बतला दे। उसने कहा कि हां महाराज। स्वामी जी ने कहा कि सावधान, झूठ न बतलाना। उसने प्रतिज्ञा की। स्वामी जी ने कहा कि अच्छा तू ने चोरी नहीं की? उसने स्पष्ट स्वीकार किया कि हां मैंने अवश्य की थी परन्तु अब क्षमा मांगता हूं। स्वामी जी ने कहा कि अच्छा, तेरा अपराध क्षमा किया गया और उसको ला० रामशरणदास जी के पास भिजवाया कि एक पत्र अमृतसर-समाज को लिख दो कि इसका अपराध क्षमा किया गया है; फिर समाज में सम्मिलित कर लें।"

प्रारब्धवाद और कर्मवाद परस्पर विरोध नहीं है—मैंने स्वामी जी से प्रश्न किया कि मनुष्य की आयु जो प्रारब्धानुसार नियत है, उसको यदि कोई मनुष्य बीच में मार दें तो फिर वह प्रारब्ध कहां रहा और उसकी क्या दशा होगी? उत्तर दिया कि जितना मनुष्य को भोगना है, वह फिर मनुष्य की देह में जन्म लेकर अपना शेष भोगेगा।

पंडित परशुराम अचारज (जो मृतकों की शय्या लिया करते हैं), कनखल-निवासी ने वर्णन किया—"कनखल के लगभग ५० पंडितों ने मिलकर मुझे मुखिया बनाया और कहा कि चलो स्वामी जी से चलकर धर्मचर्चा करें। तब हम सब ने दशमी के दिन स्वामी जी से कहा कि धर्म की कुछ वार्ता होनी चाहिये। स्वामी जी ने कहा "अरे लड़के! तू क्यों पूछता है? जो वृद्ध हैं वे पूछें। मैंने कहा कि सब पंडितों की आज्ञा मेरे लिए है। तब उन्होंने कहा कि पूछ भाई, क्या पूछता है। मैंने कहा कि धर्म-पदार्थ किसको कहते हैं? स्वामी जी ने कहा कि वेदविहित पदार्थ को धर्म कहते हैं। इस पर मैंने तीन श्रुति प्रमाण रूप में दीं—

सेनोनाभिचरण, ऋतुभार्यमुपगमत, सौत्रामण्यां सुरां पिबेत्

जिस काल मैंने ये तीनों मन्त्र पढ़े, उस काल वे हंसकर कहने लगे कि ये कहां के मन्त्र हैं? मैंने कहा कि अथर्ववेद[1] के। स्वामी जी ने पुस्तक मंगाई और मेरे हाथ में देने लगे। मैंने कहा कि इस पुस्तक को मैं स्पर्श नहीं करता, यह विलायत की छपी हुई है। इस पर वे क्रुद्ध हो गये और हम सब उठकर चले आये। यह बात कुम्भ के दस दिन पहले की है।"

मुंशी उमरावसिंह, कनखल-निवासी ने वर्णन किया कि स्वामी जी यहां ढाई महीने रहे। आधे माघ गये, सम्भवतः द्वितीया या तृतीया को आये थे। वैशाखी के दिन पूर्णिमा के पश्चात् यहां से चले गये। स्वामी जी को ताजा दुग्ध की आवश्यकता रहती थी जो मेले की भीड़ के कारण मिलना कठिन था। मैं उन दिनों गांव में अध्यापक था। बाहर से मैंने प्रबन्ध किया कि दो सेर पक्का दूध नित्य बाबू शामलाल जी के पास कनखल में पहुंच जाया करे और वहां से वे स्वामी जी को पहुंचा दिया करें। उनके निवास पर्यन्त यह प्रबन्ध रहा। निरञ्जनी अखाड़े के दो नांगे, शिर पर जटाजूट धारण किये आये थे कि हम आपके साथ रहकर पढ़ना चाहते हैं। स्वामी जी ने समझाया कि हमारे साथ रहकर पढ़ना नहीं हो सकता। अच्छा यह है कि तुम किसी समाज में रहकर या किसी और स्थान पर जाकर विद्या प्राप्त करो और साथ ही उदाहरण देकर समझाया कि स्वामी शंकराचार्य के साथ दो जैनी शिष्य होकर रहने लगे और कुछ समय पश्चात् अवसर पाकर भोजन में विष देकर मार डाला। उन्होंने यह कहकर स्वीकार कर लिया कि जैसी आप आज्ञा देते हैं, वैसा ही करेंगे।

कढ़ी बनाने की विधि पूछी—स्वामी जी ने इन नागों से कढ़ी (चने और दही की भाजी) का बनाना पूछा। उन्होंने बताया कि प्रथम दही को कपड़े में छान लें ताकि उसमें पानी न रहे। फिर उसको घोलें, उसमें बेसन गाढ़ा घोल कर डालें। बेसन डालकर फिर मसाले को घृत में भूनें (कड़ाही में) और तत्पश्चात् सब वस्तुएं अर्थात् वह बेसन और दही घुला हुआ उस घी में छोंक दें यहां तक कि पकाते-पकाते तीसरा पहर हो जाये। उसके पकाने के अन्दर जितनी बार हो घी का छौंक दें अर्थात् सकोरे को गर्म करके उसमें घी डालें और गर्म होने के पश्चात् उसको एक ओर से ढांप कर कड़ाही में डाल दें। फिर उसे उतार कर मिट्टी के खुले बर्तन में डाल दें। (स्वामी जी को इसका ध्यान था, लिख लिया)।

"नजफ अली तहसीलदार और डिप्टी साहब की बातचीत जो पृथक् दी हुई है, उसके अतिरिक्त नजफ अली साहब ने कहा कि हमारे पैगम्बर साहब ने आज्ञा दी है कि कई स्त्रियों से विवाह करना चाहिए जैसे एक राजा के कई मन्त्री होते हैं। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि एक पुरुष के लिए एक ही स्त्री पर्याप्त है और यह बात अनुभव तथा उपयुक्त युक्तियों और पुस्तकों के प्रमाणों से सिद्ध है। तुम देख लो कि एक वेश्या सैकड़ों पुरुषों को बिगाड़ती है तो जब एक घर में कई स्त्रियां हों तो उनको कभी एक पुरुष पर्याप्त नहीं हो सकता। इसीलिए हमारे वेदों में आज्ञा है कि एक ही विवाह होना चाहिये। नजफ अली साहब ने स्वीकार किया कि यह सत्य है, अवश्य एक ही विवाह होना चाहिए।

---

1. जब संवाददाता ने पूछा कि आपने घर में वेद से ये मन्त्र देख लिये थे तो कहा कि मैंने ये श्रुतियां अथर्ववेद में नहीं देखीं और न आजतक अथर्ववेद कभी देखा है परन्तु हम गुरु द्वारा परम्परा से सुनते चले आते हैं। —संकलनकर्ता।

"मूला मिस्त्री ने मेरे सामने केदारनाथ और बद्रीनाथ के तीर्थों के विषय में पूछा । स्वामी जी ने कहा कि हमने भी देखे हैं; तुम स्वयं भी देख आये हो, जैसी वास्तविकता हो स्पष्ट शब्दों में वर्णन करो और जिस प्रकार दूसरे लोग (उनका) वर्णन करते हैं उसका विचार न करो । तब उसने स्पष्ट स्वीकार किया कि निस्सन्देह मैंने (तीर्थों की) निरर्थक यात्रा की; मुझे अपने परिश्रम पर खेद है ।"

"एक मारवाड़ी पंडित दो घंटे तक संस्कृत बोलता रहा । अन्त में उसने कहा कि महाराज ! मेरा अपराध क्षमा हो, जो कुछ शास्त्रार्थ में आपसे विरोध किया वह मेरी भूल थी और आनन्दपूर्वक चला गया ।

काठियावाड़ औदीच्य परिवार द्वारा स्वामी जी के दर्शन—एक दिन व्याख्यान में गुजरात काठियावाड़ अर्थात् स्वामी जी की जन्मभूमि के ओर की दो स्त्रियां पोटली के रूप में बांधी हुई मिठाई लाई थीं । हमने उनसे उनकी जाति पूछी तो विदित हुआ कि वे औदीच्य थीं । वे डेरे के बाहर स्वामी जी की पीठ की ओर एक कोने में बैठ गईं और उमके पुरुष भी साथ थे । पहले दिन ४ बजे स्वामी जी ने उनको कहा कि हमारे यहां स्त्रियों के रहने के लिए कोई स्थान नहीं; तुम नगर में चली जाओ । अत: वे चली गईं । फिर वे कई दिन तक अपने पुरुषों सहित आती रहीं । और पूर्ववत् ४ बजे के पश्चात् चली जाती रहीं । वे सब मिलाकर सात मनुष्य थे ।"

मेले में अत्यन्त सावधानी रखने पर भी स्वामी जी रोगी हो गये और अजीर्ण से अतिसार[1] आरम्भ हो गया जिसने बहुत कष्ट दिया परन्तु वह अकेला पुरुषसिंह धार्मिक उत्साह से लगातार उपदेश करता रहा । एक दिन जूना अखाड़े में बहुत

---

1. स्वामी जी अपने पत्रों में लिखते हैं, हमको १५ दिन से दस्त आते हैं । दिन भर में १०-१२ । अब दो एक दिन से आराम है परन्तु निर्बलता बहुत है । सो यहां से १२ ता० को देहरादून के पहाड़ को जावेंगे । वहां से (बम्बई) आने का प्रबन्ध करेंगे जब शरीर अच्छा होगा । सो तुम अमरीका वालों से कह देना । उनको समझा दो कि हमारा शरीर महीने डेढ़ तथा दो से कम में अच्छा भी नहीं होगा और जो इस गर्मी के दिनों में रेल में भी बड़ी गर्मी होगी सो आठ दिन के जाने और आठ दिन के आने में बड़ा कष्ट होगा और देह को बड़ा दु:ख होगा । तुम उनको अच्छी प्रकार सन्तोष कर देना कि हम अवश्य आवेंगे जिस दिन हमारे देह को आराम होगा । और हमको बड़ा दु:ख है कि अमरीका वाले ऐसे समय में आये जिसमें हमारा उनसे शीघ्र मिलाप नहीं हो सकता । चैत शुक्ला ११, २ अप्रैल, सन् १८७९ । दयानन्द सरस्वती, हरिद्वार ।

"दो लाख के लगभग वैरागी और संन्यासी आदि आये हैं । मेले के बन्द होने का समाचार है । विशूचिका से पांच मनुष्य तीन दिन में मर गये हैं ।" चैत्र सुदि ५, २७ मार्च, सन् १८७९ । हरिद्वार ।

"तुम्हारे जाने के पीछे हमारा शरीर अच्छा नहीं रहा अर्थात् ४०० से अधिक-अधिक दस्त हुए । इस से शरीर अति दुर्बल हो गया । विचार था कि यदि शरीर अच्छा रहता तो हम हरिद्वार से ही बम्बई को अवश्य आते परन्तु अब यहां से देहरादून जाने का विचार है सो वहां जाकर थोड़े दिनों में शरीर अच्छा हो जायेगा तब आने के विषय में लिखेंगे सो तुम अमरीका वालों के पास हमारा नमस्ते कहना और किसी प्रकार का सोच-विचार वे लोग न करें क्योंकि बम्बई में आकर उन लोगों से हम अवश्य मिलेंगे । मुंशी इन्द्रमणि जी भी यहां हमारे पास आकर ठहरे हैं और मेला भी कुछ विशेष नहीं जुड़ा है ।" वैशाख सुदि २ संवत् १९३६, हरिद्वार । दयानन्द सरस्वती ।

"अमरीका वालों से अति प्रेम से हमारा नमस्कार कहना और उनसे कुशलता पूछना कि लाहौर आदि के समाज में आप लोगों के लिए तैयारी कर चुके हैं, वहां कब तक जावेंगे । और उन्होंने संस्कृत पढ़ने का आरम्भ किया है वा नहीं और जो कुछ वे हमारे विषय में कहा करें सो लिख दिया करना और हम नहीं लिखें तो भी उनकी कुशलता आदि सदैव लिखते रहें । यहां मेला अब तक साधुओं का ही है । गृहस्थ लोग तो कम आये हैं । हमने एक पत्र कर्नल आल्काट साहब को २४ ता० को और दिया है । तुम उनसे उत्तर लिखवाना । शामलाल खन्ना को नमस्ते ।" २६ मार्च, सन् १८७९; चैत्र सुदि ४, संवत् १९३६ । हरिद्वार । दयानन्द सरस्वती ।

"हरिद्वार में ओंकारमल और सुनन्दराज हम को नहीं मिले । रामगढ़ से भी बहुत से प्रेमी लोग पहुंच गये । हरिद्वार में बहुत लोगों से बातचीत हुई । साधु लोगों ने उपदेश सुना, लाभ भी बहुत-सा हुआ है । हैजा बहुत-सा नहीं है, थोड़ा-सा हुआ । जब अमरीका वाले सुनेंगे

पंडित एकत्रित हुए और उन्होंने स्वामी जी के पास शास्त्रार्थ का संदेश भिजवाया कि यहां आकर हमारे साथ शास्त्रार्थ करो। जो सन्देश लाया था उसे स्वामी जी ने यह कहा कि मैं ईंटें फिंकवाने और हुड़दंग कराने के लिए जाना नहीं चाहता। हां, यदि वे उस मकान से अतिरिक्त या मध्य में या ललता रौ की नदी में निश्चित करें तो मैं शास्त्रार्थ करूंगा और यही बात लिख भी दी परन्तु उन्होंने फिर कोई स्थान नियत नहीं किया, वहीं बैठे हुए गाली गलौज देते रहे।

वेदों के गम्भीर अध्ययन से जीव-ब्रह्म की द्वैतता का निश्चय; अभेदपरक श्रुतियों का वास्तविक अभिप्राय—पंडित ईशरसिंह जी, निर्मला साधु ने वर्णन किया कि एक बार स्वामी जी हरिद्वार के कुम्भ पर हमको मिले। हमें कुर्सी पर बिठलाया और स्वयं भी बैठ गये। मैंने कहा कि चारों वेदों के दर्शन हमें कराइये। वे भीतर से उठा लाये, हमने बड़े आनन्द से दर्शन किये। फिर महीधर और सायणकृत भाष्यों की अशुद्धियां बताईं और कहा कि इन धूर्तों ने अर्थों के महा अनर्थ किये हैं। मैंने कहा कि आप पहले तो जीव-ब्रह्म की एकता मानते थे। उत्तर दिया कि उस समय हमने समग्र वेद नहीं देखे थे। जब ध्यान से समस्त वेदों को पढ़ा और विचार किया तो पूर्ण विश्वास हो गया कि जीव ब्रह्म की एकता मानना वैदिक धर्म के विरुद्ध है। मैंने कहा कि जीव-ब्रह्म की एकता पर तो शंकराचार्य की साक्षी है, आपके मत में कौन-सी साक्षी है? उत्तर दिया कि वेदपुरुष अर्थात् परमात्मा। मैंने कहा कि कोई श्रुति जो अभेद को कहती है, उसका क्या उत्तर है? कहा कि दोनों ठीक हैं और दृष्टांत दिया कि जैसे आकाश से हमारी कुटिया पृथक् नहीं, इस प्रकार तो अभेद ठीक है और कुटिया आकाश नहीं, इस रूप में भेद ठीक है।

"एक दूसरे साधु ने **ईशरसिंह जी** के सामने वर्णन किया कि मैं हरिद्वार में स्वामी जी के पास गया। स्वामी जी ने देखा कि बहुत से साधु एक ओर जा रहे थे। स्वामी जी ने मुझसे पूछा कि साधु जा रहे हैं? मैंने कहा कि एक उदासी साधु आये हैं, उसको मिलने जाते हैं। उन्होंने कहा कि देखो, आर्यावर्त में सनातन वेदविरुद्ध कितने मतमतान्तर चल गये हैं। कोई उदासी, कोई निर्मला, कोई वैरागी आदि हो रहे हैं, वास्तविक धर्म सबने छोड़ दिया। मैंने कहा कि महाराज; एक धर्म होना कठिन है। स्वामी जी ने कहा कि पुरुषार्थ अवश्य करना चाहिये जिससे बहुत कुछ संगठन और एकता हो सकती है।

स्वामी रत्नगिरि जी ने अजमेर में वर्णन किया—"स्वामी जी संवत् १९३६[४९] के कुम्भ पर भी हमें मिले थे; वहां वे कपड़े पहने हुए थे। मुझे कहा कि आप हमारा पत्र तीन स्थानों पर ले जाया करें। प्रथम सुखदेवगिरि जी के पास जो उदितगिरि जी की मंडली वाले हैं; दूसरे जीवनगिरि जी के पास जो अब मर गये हैं; तीसरे बनारस के प्रसिद्ध स्वामी विशुद्धानन्द जी के पास। उनके कथनानुसार मैं एक पत्र स्वामी सुखदेवगिरि जी के पास ले गया परन्तु उन्होंने हमको निषेध किया और कहा कि उनकी ओर से हमारे नाम कोई सन्देश या पत्र अब मत लाना क्योंकि तुम दोनों स्थानों के जाने वाले हो, यह उचित नहीं है कि हमारी बात वहां और उनकी बात यहां वर्णन करो और उसके तो सारा संसार विरुद्ध है। फिर हमने चिट्ठी लानी बन्द कर दी परन्तु मिलने जाते थे। उस पत्र में यह लिखा हुआ था—"मैं जो बात कर रहा हूं उसको आप सब लोग जानते हैं कि वह सर्वथा ठीक है परन्तु आप लोग विद्वान् होने पर भी प्रसिद्ध होकर क्यों नहीं प्रकट करते"? स्वामी जी कहा करते थे कि इन तीनों शरीरों[५०] को मैं विद्वान् समझता हूं और उन्होंने ग्रन्थ भी गूढ़ विचार से पढ़े हैं और शेष सब लड्डू-पूरी उड़ाने वाले हैं। उन्होंने उत्तर देने से हमको स्पष्ट निषेध कर दिया। स्वामी जी उस समय सब वेदविरुद्ध मतों का खंडन करते थे और गंगा आदि नदियों का भी। **स्वामी जी महाराज** की संस्कृतविद्या तो अद्भुत थी। जो कोई सामने आता बोल न सकता

और उन से बातचीत होगी तो सब भ्रम निकल जावेंगे। हमको हरिद्वार में लगभग ४०० दस्त हुए और अबतक भी कुछ-कुछ आते हैं परन्तु यहां की हवा ठंडी होने से कुछ-कुछ आराम होता आता है परन्तु शरीर बहुत निर्बल हो गया है। आज दस्त बन्द हुआ दीखता है। जो बन्द हो जावेंगे तो शरीर भी १५-२० दिन में अच्छा हो जावेगा।" वैशाख बदि १२, संवत् १९३६। देहरादून, दयानन्द सरस्वती।

था। सैकड़ों विद्वान् निश्चय करके प्रथम तो गये नहीं परन्तु जो गये सब निरुत्तर होकर आये। कारण यह था कि जो कोई प्रश्न लाता, वह युक्तियुक्त उत्तर मिल जाने के कारण निरुत्तर हो जाता था। वहां यह भी सुना गया कि बहुत मनुष्यों ने स्वामी जी से अपना-अपना संस्कार कराया। उन दिनों समस्त मेले में उनकी धूम मची हुई थी। प्रत्येक डेरे में लोगों की जिह्वा पर यही चर्चा थी। स्वामी जी हमसे हरिद्वार में पूछते थे कि अब बतलाओ इन साधुओं में से आजकल किस की दुकान अधिक तेज है।

मास्टर जमीयतराय जी शर्मा, आर्मन स्कूल, रुड़की ने वर्णन किया कि यद्यपि मैं (हरिद्वार के कुम्भ पर) **स्वामी जी** के साथ तो नहीं गया; परन्तु पीछे से गया। ९ दिन उनके व्याख्यान में सम्मिलित रहा। चूंकि स्वामी जी के विषय में हरिद्वार से बहुत से झूठे समाचार आये थे, इसलिए कई एक छात्र गवर्नमेंट मिशन स्कूल सहारनपुर से उन बातों को पूछने के लिए दो सप्ताह पहले हरिद्वार आये और स्वामी जी के पास एक मकान में ठहरे। यहां पर स्वामी जी ने बहुत से छप्पर के मकान डलवाये थे इस अभिप्राय से कि जो मनुष्य किसी प्रकार से आवे उसको ठहरने के लिए कठिनाई न हो। हम भी उन छप्परों में जा उतरे। मेरे साथ ला० कृपाराम जो आजकल रुड़की के समीपस्थ डाकखाना, लढौरा के हैं और ला० बैजनाथ, अध्यापक मिशन स्कूल सहारनपुर और ला० मुन्नूलाल, कर्मचारी-सिन्ध-पंजाब-दिल्ली रेलवे और जिला मुजफ्फरनगर के कस्बा जानसठनिवासी रामगुलाम लड़का थे। जिस मकान में मैं ठहरा मुंशी इन्द्रमणि जी मुरादाबादी भी वहां थे। ला० रामशरणदास रईस मेरठ और मेरठ के समीप के चौधरी गूजर रईस आर जगन्नाथ, शिष्य इन्द्रमणि, अख्यानन्द, नाथ जी, पंडित भीमसेन, ज्वालादत्त,[५१] मास्टर शंकरलाल, हकीम थानसिंह, ला० नाथेराम, शामलाल कम से कम १५० आर्य लोग बाहर से पधारे हुए थे। मेरे सामने निम्नलिखित कार्यवाही हुई—

हरिद्वार के कुम्भ पर स्वामी जी का दैनिक कार्यक्रम—प्रातःकाल स्वामी जी सब आवश्यकताओं से निवृत्त होकर ७ बजे के लगभग बैठ जाते थे और विभिन्न स्थानों से आये मनुष्य वहां आकर बैठते थे। बाहर के मनुष्य, विशेषतया पंडित लोग, आने आरम्भ हो जाते थे। विभिन्न स्थानों से आते थे और विभिन्न विषयों पर शास्त्रार्थ होता था परन्तु कोई मनुष्य, जहां तक मैंने देखा, सन्तुष्ट हुए बिना न जाता था। यह शास्त्रार्थ ११ बजे तक रहता था और किसी-किसी दिन १२ बजे तक भी। विभिन्न स्थानों के बड़े-बड़े प्रसिद्ध पंडित कि जिनका नाम और स्थान इस समय मुझे ज्ञात नहीं; वहां आते थे और भिन्न-भिन्न मन्त्रों के अर्थों पर शास्त्रार्थ होता था और प्रायः विभिन्न पुस्तकों के वचनों पर भी बहस होती थी परन्तु जो आता था पूर्ण उत्तर पाता था। तीन अत्यन्त प्रसिद्ध पंडित जिनके नाम मुझे स्मरण नहीं-"नदिया शान्तिपुर" से आये थे। उन्होंने बड़े युक्ति-युक्त ढंग से निरन्तर ४ बजे से ११ बजे तक शास्त्रार्थ किया। प्रायः यजुर्वेद और अथर्ववेद के मन्त्रों के अर्थों पर बहस हुई। अन्तिम दिन उन्होंने स्वीकार किया कि हम वास्तव में इनमें से बहुत से मन्त्रों के अर्थ नहीं समझते थे जिस को अब हम स्वामी जी के कहने से भली-भांति समझ गये। निःसन्देह यही अर्थ ठीक है और मेले की समाप्ति तक पीछे आठ-दस दिन तक आते रहे परन्तु फिर कभी शास्त्रार्थ नहीं हुआ प्रत्युत किसी-किसी विषय में सन्देह होने के समय स्वामी जी से सम्मति लिया करते थे।"

"उन्हीं दिनों में काश्मीर से महाराजा[५२] की ओर से एक व्यक्ति उनका पत्र लेकर आया और यह बातचीत मौखिक की कि महाराजा साहब को किसी ने यह लिख दिया था कि स्वामी जी का देहान्त हो गया इसलिए मुझको उन्होंने भेजा है कि यदि स्वामी जी जीवित होंगे तो अवश्य हरिद्वार के मेले पर आवेंगे। महाराजा साहब का एक पत्र भी स्वामी जी को दिया जिस पर महाराजा साहब की मुहर थी और यह लिखा था कि स्वामी जी कृपा करके एक ऐसी पुस्तक बना दें कि जिस से यह बात बिना पक्षपात के सिद्ध हो जावे कि जो लोग हिन्दू धर्म से दूसरे मत में चले गये हों वे वापस आ सकते हैं और

यह प्रमाण दें, यदि सम्भव हो सके, कि ईसाई, मुसलमान या अन्य जातीय पुरुष आर्य धर्म में आ सकते हैं और उनके साथ खान-पान करने में कुछ दोष नहीं है । इस पर स्वामी जी ने मुख से केवल इतना कहा कि बात असम्भव नहीं ।'[५३] बहुत ही सरलता से सत्यशास्त्रों से सिद्ध हो सकती है और यह कहा कि आप यहां ठहरें, जब जायें तो सूचना देकर जायें, मैं पत्र महाराजा के नाम पर दूंगा ।

"फिर एक बजे से पांच बजे तक सभा होती थी जिसमें प्रत्येक मत या पन्थ के लोग आते थे । ऐसी दशा थी कि प्रात:काल जितनी भीड़भाड़ गंगा पर नहाने वालों की होती थी उतनी ही तीसरे पहर स्वामी जी के स्थान पर लोगों की रहती थी । बहुत से संन्यासी और अन्य पन्थ के साधु आकर प्रश्न भी किया करते थे जिसका उत्तर सभा की समाप्ति पर दिया जाता था और सायंकाल ७ बजे से ९ बजे तक जो सामाजिक पंडित और स्वामी जी के शिष्य थे उनका आपस में विभिन्न शास्त्रीय विषयों पर स्वामी जी के सामने शास्त्रार्थ हुआ करता था और स्वामी जी मध्यस्थ होते थे । जितने दिन तक मैं रहा बिना रुके यही तीनों काम अपने-अपने समयों पर प्रतिदिन हुआ करते थे । नवीनवेदान्त मत खंडन, मूर्तिपूजाखंडन, नवीन मत और पंथ खंडन, तीर्थयात्रा के माहात्म्य का खंडन, गुरु के पश्चात् गद्दी स्थापित होने का खंडन आदि बहुत से विषयों पर शास्त्रार्थ होता था और यह भी सिद्ध किया कि केवल संन्यास ही सत्य है, इसके अतिरिक्त जितने और सम्प्रदाय हैं, सब झूठे और निरर्थक हैं । तीन व्याख्यान ज्योतिष के फलित अंग के खंडन पर दिये और एक योगशास्त्र के विषय पर दिया तथा एक इस बात पर दिया कि छः शास्त्र परस्पर विरोधी नहीं हैं; एक ही मत का प्रतिपादन करते हैं । यह व्याख्यान ४ दिन तक रहा और एक व्याख्यान नागामत के खंडन पर दिया । इसके अतिरिक्त मुझे स्मरण नहीं ।"

"जब मैं गया था उसके चौथे दिन हिन्दू पंडितों की ओर से एक पत्र शास्त्रार्थ के लिए आया था जिसका स्वामी जी ने यह उत्तर दिया कि मेरे यहां किसी को आने का निषेध नहीं; जिसका जी चाहे शास्त्रार्थ के लिए आ जाये । इसके उत्तर में श्रद्धाराम[५४] और चतुर्भुज ने यह लिखा कि हम किसी के स्थान पर शास्त्रार्थ को नहीं आते, स्वामी जी हमारे स्थान पर आवें । स्वामी जी ने इसका उत्तर दिया कि न तुम हमारे स्थान पर आओ और न हम तुम्हारे स्थान पर, प्रत्युत कोई ऐसा स्थान हो, जो न हमारा हो और न तुम्हारा हो और उसमें सरकारी प्रबन्ध हो । उन्होंने उत्तर दिया कि नागों का अखाड़ा न हमारा स्थान है न तुम्हारा; वहीं आप आ जाइये और पुलिस आदि बुलाने की कुछ आवश्यकता नहीं । स्वामी जी ने उत्तर दिया कि वे भी एक तुम्हारे ही पक्ष के हैं इसलिए वह तुम्हारा ही मकान है और सरकारी प्रबन्ध के बिना हम कदापि सहमत नहीं हो सकते, वह अवश्य होना चाहिए । इसके पश्चात् ला० रामशरणदास रईस मेरठ ने यह कहा कि चूंकि भीड़ बहुत हो जायेगी, उसमें उपद्रव होने की आशंका है । दोनों ओर से उचित जमानत ले लेनी चाहिए ताकि उपद्रव न होने पावे । स्वामी जी ने कहा कि यदि स्वामी विशुद्धानन्द जी यह कह दें कि ये लोग मेरे समान वेदों को समझ सकते हैं और शास्त्रार्थ कर सकते हैं तो मैं सहमत हूं और विशुद्धानन्द जी को मैं अपना मध्यस्थ ठहराता हूं । इस पर स्वामी जी की चिट्ठी लेकर वे लोग विशुद्धानन्द जी के पास गये, मैं भी उनके साथ चला गया । जिस समय स्वामी विशुद्धानन्द ने उस चिट्ठी को लेकर पढ़ा, उस समय मैं उनके समीप था यहां तक कि दो एक मनुष्य मेरे और उनके बीच में थे । उन्होंने चतुर्भुज और श्रद्धाराम को इतनी गालियां दीं और ऐसे अश्लील शब्दों में दीं कि मैं उनका वर्णन नहीं कर सकता । अन्त को यह कहा कि तुम उसकी तुलना में तो एक अक्षर भी नहीं जानते हो; मैं तुम्हारे शास्त्रार्थ का मध्यस्थ नहीं हो सकता । यही नहीं, उन्होंने स्वामी दयानन्द जी को एक चिट्ठी अपनी ओर से लिखी जिसका आशय यह था कि बहुत से असभ्य और अविद्वान् मनुष्य उपद्रव करने की इच्छा से एकत्रित हुए हैं, आप कदापि इन लोगों की बात पर ध्यान न दें और मैं ऐसे लोगों के कहने से सभा का मध्यस्थ नहीं हो सकता जिसमें कि आप जैसे विद्वान् शास्त्रार्थ करें । यह चिट्ठी ३ बजे के लगभग स्वामी दयानन्द जी ने सार्वजनिक सभा में सुना दी । उस समय लगभग दस हजार मनुष्य होंगे । पंडित भीमसेन ने खड़े हो कर उच्च स्वर से सुनाई थी । इसके पश्चात् पोपों की ओर से कोई उत्तर नहीं आया ।"

"इन दिनों में एक दिन मेले के प्रबन्धक ने मल को जलवाना आरम्भ किया । उसकी दुर्गन्ध से मेले में कुछ-कुछ विशूचिका फैली । स्वामी जी ने कलैक्टर साहब को कहा कि यदि जलाया जावेगा तो बहुत प्रबल रूप से विशूचिका फैलेगी । उचित यह है कि आप किसी दूर स्थान पर इसे गड़वा दें जिस पर फिर जलाना बन्द कर दिया गया । अपने जाने से एक दिन पहले स्वामी जी ने सब समाज वालों को उनके मकानों पर वापस भेज दिया कि अब वायु बिगड़ेगी, सब चले जाओ और आप भी दूसरे दिन देहरादून को चले गये ।"

हकीम थानसिंह जी ने वर्णन किया कि तीसरी बार[५५] चैत्र मास, संवत् १९३६ में स्वामी जी रुड़की आये । दो दिन ठहर[५६] कर बहली में हरिद्वार गये थे और गाड़ी में डेरे आदि थे । मूला मिस्त्री की भूमि में श्रवणनाथ के बाग के सामने निर्मलों के अखाड़े के बराबर हरिद्वार की सड़क पर स्वामी जी ने डेरे लगवाये ।

एक विचित्र पंडित का अद्भुत व्यवहार-स्वामी जी के यहां से जाने के चार दिन पश्चात् मैं हरिद्वार पहुंचा और स्वामी जी के पास तंबू में निवास किया । प्रतिदिन स्वामी जी व्याख्यान देते थे । निर्मले, साधु और सैकड़ों यात्री लोग आते और अपनी शंका निवारण करते थे । एक पंडित रावलपिंडी का आंख से काना, लुंजा, मुख पर शीतला के चिह्न, रंग कुछ काला, दाढ़ी रहित, मूंछ कटी हुई और शिर के बालों का पता नहीं, प्रातःकाल आठ बजे दो विद्यार्थियों के साथ वहां आया । उस समय मैं द्वारपाल था, मुझ से आकर कहने लगा कि दयानन्द कहां है ? मैंने पूछा कि कौन दयानन्द ? कहा कि वह साधु जो स्वामी के नाम से प्रसिद्ध है । मैंने उस को डांट कर कहा कि सभ्यता से बात कर और श्री दयानन्द सरस्वती मुख से कह तब मैं तुझे बतला सकता हूं अन्यथा (जा, तू) कोई होगा ! मेरी उसकी यह परस्पर बातचीत श्रीमहाराज ने अपने कानों से सुनकर और उसके स्वर को पहचान कर आज्ञा दी कि हकीम जी, आने दो । जिस समय वह डेरे के भीतर जाने लगा, दैवयोग से उसके शिर का मुंडासा[५७] गिर गया । शामलाल, हेड क्लर्क पोस्ट आफिस सहारनपुर ने कहा कि पंडित जी शीघ्रता क्यों करते हो, धीरे चलो, परन्तु वह इसी बात पर कुपित हो गया । स्वामी जी ने उस को सम्मान से बिठलाया और आमने-सामने बातचीत होने लगी । प्रथम ही उसने कहा कि वे अशुद्धियां जो आपने मेरी चिट्ठी में निकाली हैं, दिखलाओ । यह कहकर वह इतना चिल्लाया और उसको इतनी गर्मी हो गई कि पानी मांगने लगा । स्वामी जी उसको कोमल और मीठी वाणी में समझाते थे परन्तु उस पंडित को जोंक न लगती थी । फिर खड़े होकर कहा कि मुझको शीघ पानी दो । मैं उसके लिए पानी ले गया । बोला कि मैं यह पानी नही पीने का, गंगा जी से लाओ । मैंने कहा कि मैं प्रातःकाल के समय ठंडे पानी में हाथ नहीं डालता; तुम्हें यदि नहीं पीना तो तुम्हारी इच्छा ! स्वामी जी ने कहा कि ला दो । जिस समय मैं लाने को चला उस समय वह घबरा कर वहां डेरे से निकल चला और "थुआड्डे घर दा पानी कौन पिये, थुआड्डे घर दा पानी कौन पिये" कहता हुआ चला गया ।

विद्वान् परमहंस ने लगातार ९ घंटे तक संस्कृत में शास्त्र व धर्म चर्चा की—एक दिन प्रातःकाल तहसील रुड़की के झबरेढ़ा ग्राम के रहने वाले सबाराम जमींदार के साथ मैं बैठा हुआ था ओर चारों और से तंबू के द्वार खुले हुए थे कि अकस्मात् एक संन्यासी जिसका नाम **'आनन्दवन'** था, परमहंस के वेष में कफनी पहने और शिर मुंडाये हुए सामने से आता दिखाई पड़ा और उसी आकृति के लगभग दश विद्यार्थी उसके साथ थे । महाराज जी उसको सामने देखकर खड़े हो गये और तंबू के द्वार तक आ, स्वागत करके भीतर ले जाकर गद्दी पर बिठलाया । आयु उसकी ८० वर्ष से कम न थी परन्तु शरीर से बलिष्ठ और सावधान था । बैठते ही दोनों मुस्करा कर शास्त्रार्थ में प्रवृत्त हुए । दोनों बोलते थे । हम लोग संकेतों से समझते थे कि वह जीव-ब्रह्म की एकता और "अहं ब्रह्मास्मि" पर विवाद था । प्रातः ६ ॥ बजे से आरम्भ होकर ११ बजे का समय हो गया । उस समय योगी सन्तनाथ ने आकर भोजन के लिए कहा । स्वामी जी ने परमहंस जी से कहा । उसने उत्तर दिया कि जब तक इसका निश्चय न हो ले, मैं भोजन नहीं करने का । ११ बजे के पश्चात् चारों वेद और अन्य पुस्तकें

६०-६५ के लगभग मैंने स्वामी जी की आज्ञानुसार सन्दूक से निकालीं और स्वामी जी उनके सामने रखने और प्रमाण दिखलाने लगे । २ बजे यही अवस्था रही ।"

"२ बजे के पश्चात् दोनों खड़े हो गये और कुछ बातें आपस में शनैः-शनैः करने लगे । उस परमहंस ने दो बजे के पश्चात् अपने शिष्यों को सम्बोधित करके कहा कि दयानन्द के मत को मैंने स्वीकार किया, तुम भी ऐसा ही मानो और भोजन किये बिना ही चला गया । देशभाषा नहीं बोलता था, जब कभी आता, मुस्करा कर आनन्द से खड़े-खड़े चला जाता। हमने जब स्वामी जी से पूछा कि यह कौन है तो कहा कि बड़ा विद्वान् संन्यासी है, पहले अपने को ईश्वर अर्थात् जीव-ब्रह्म की एकता मानता था, अब हमारी भांति जीव तथा ब्रह्म को पृथक्-पृथक् मानता है ।"

स्वामी जी का सर्वव्यापी शुभ प्रताप—एक दिन रात को सरकारी चौकीदार एक मृत यात्री को स्वामी जी के डेरे के सामने सड़क पर गाड़ने लगे, मशाल उनके साथ थी । स्वामी जी ने पूछा कि देखो ये क्यों चिल्लाते हैं ? जब मैंने जाकर पूछा और सब वृत्तांत स्वामी जी से निवेदन किया तो कहा कि हमारे क्षेत्र में मत गाड़ने दो; कहो कि कहीं अन्यत्र ले जावें। जहां तक सम्भव हो जलवाओ; गाड़ने मत दो । हमने उनको बहुत समझाया परन्तु उन्होंने न माना । हम रोकते थे, वे सरकारी नौकरी के अभिमान में गाड़ने की हठ करते थे । इतने में एक गोरा चक्कर लगाता हुआ आ पहुंचा । उसने इस विवाद को सुनकर कहा कि तुम क्यों नहीं मुर्दा गाड़ने देता ? मैंने कहा कि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का यह अहाता (घेरा, चार दीवारी) है, वे अपने क्षेत्र में नहीं गाड़ने देते । उस समय उसने कहा कि ओहो ! वह दयानन्द पण्डित जो सबको ईश्वर की ओर बुलाता है, उसकी यह आज्ञा है ? मैंने कहा कि 'हां' । तब उसने सिपाहियों को आज्ञा दी कि जाकर इसको पर्वत के नीचे फेंक दो परन्तु यहां मत गाड़ो, फिर वे ले गये ।

उच्च सरकारी अधिकारियों पर प्रभाव—"एक दिन प्रातःकाल संरक्षक वनविभाग, कमिश्नर मेरठ तथा कलैक्टर सहारनपुर और मिर्जा वकार अली बेग, डिप्टी कलैक्टर, कुछ अन्य साथियों सहित उस डेरे के नीचे जहां स्वामी जी व्याख्यान दिया करते थे, आ खड़े हुए और पूछा कि स्वामी जी कहां हैं ? मैंने उत्तर दिया कि इस समय स्वामी जी ईश्वरोपासना में संलग्न हैं । कहा कि तुम जा सकते हो ? मैंने कहा कि जा सकता हूं परन्तु मैं इस समय उनसे कुछ कह नहीं सकता; जाकर मौन खड़ा रह सकता हूं । उन्होंने कहा कि फिर जाने से क्या लाभ ? क्या तुम कह सकते हो कि कमिश्नर मेरठ तुमसे मिलने को आया है ? मैंने कहा कि नहीं । बाबू श्यामलाल जी ने कहा कि यदि आप कुछ समय ठहरें या बैठें तो स्वामी जी से आपकी भेंट हो सकती है । उसी समय कुर्सियां मंगवा कर उनको बिठलाया गया । थोड़ी देर पश्चात् स्वामी जी को सूचना दी गई और वे बाहर पधारे । जिस समय वे डेरे के नीचे आये तो चारों सज्जन खड़े हो गये और प्रसन्नमुख से भेंट की । फिर सब बैठ गये और परमेश्वर के विषय में बातचीत होती रही जिस से वे बहुत प्रसन्न हुए और उसी दिन से पुलिस का प्रबन्ध कर दिया ताकि किसी प्रकार का कष्ट न हो और यह भी कहकर गये कि यदि किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो सूचित कर दें; प्राप्त करा दी जायेगी ।"

विशूचिका रोकने के डाक्टरों के उपाय निष्फल, स्वामी जी का सफल—"एक दिन नैनीताल के एक यूरोपियन डाक्टर और दूसरे दिन रुड़की की पल्टन के डाक्टर वहां आये और स्वामी जी से हवन के विषय में बातचीत की । अन्त में स्वामी जी ने उनसे प्रश्न किया कि तुमने विशूचिका को रोकने का क्या प्रबन्ध किया है क्योंकि सदा दुहाई पड़ती है कि हरिद्वार में विशूचिका फैलती है । उन्होंने कहा कि टट्टियों का मल इकट्ठा करके आसपास की मूत्र की नालियों में बहाया जाता है और शेष टट्टियों में भूमि खोद कर दबवा दिया जाता है । स्वामी जी ने कहा कि भूमि में दबवाने से विशूचिका अवश्य होगी । उस डाक्टर ने शर्त लगाकर यह बात कही कि विशूचिका नहीं होगी, सरकार की ओर से बहुत प्रबन्ध हो

गया है । स्वामी जी ने प्रश्न किया कि कितने दिनों से मल दबवाया जाता है ? उत्तर दिया कि १२ दिन से । उस समय स्वामी जी ने कुछ देर चुप रहकर कहा कि तीसरे या चौथे दिन विशूचिका फूट पड़ेगी । उस समय वे दोनों अंग्रेज मुस्करा कर दूसरी बातों में व्यस्त हो गये और कुछ काल पश्चात् प्रसन्नमुख विदा होकर चले गये । जब दो दिन व्यतीत हो गये और तीसरा दिन आरम्भ हुआ तो १० बजे दिन के विशूचिका हरिद्वार में आरम्भ हो गई । आनन्दगिरि के मकान में एकदम ९ मनुष्य मर गये और सायंकाल तक लगभग ३० मनुष्य मर गये । तब दोनों डाक्टर घबराये हुए लगभग ७ बजे सायंकाल स्वामी जी के पास आये और कहा कि कोई ऐसा उपाय बतलाओ जिससे हमारी अपकीर्ति न हो और विशूचिका बन्द हो जावे । स्वामी जी ने कहा कि जहां तक हो सके कपूर और चन्दन जलाओ और मल दूर ले जाकर फुंकवाओ । जिस ओर से वायु न हो और मेले को कम करने का उपाय करो । उनके कथनानुसार उसी समय सब मल की गाड़ियां जगजीतपुर की ओर ले जाने लगे क्योंकि उस ओर की वायु न आती थी ।"

"एक दिन रुड़की के तहसीलदार नजफ अली वहां आये और व्याख्यान सुनने लगे । व्याख्यान सुनकर कहा कि आज तक कुछ सन्देह था परन्तु अब अच्छी प्रकार सिद्ध हो गया कि ईश्वरीय ज्ञान जितना संस्कृत में है उतना अन्य भाषा में नहीं, दूसरी बार वकारअली बेग डिप्टी मैजिस्ट्रेट को साथ लेकर आये । डिप्टी साहब तम्बू के द्वार में और तहसीलदार साहब भीतर आ गये और डिप्टी साहब से कहा कि स्वामी जी बड़े सिद्ध पुरुष हैं, मैं भी उनका सेवक हूं ।

हिन्दू-मुसलमान सभी बहकाये हुए हैं—डिप्टी साहब ने स्वामी जी से प्रश्न किया यह हरिद्वार और हर की पौड़ी क्या है ? स्वामी जी ने उत्तर दिया कि पैड़ी तो नहीं किन्तु हाड़ की पैड़ी है क्योंकि हजारों मन हड्डियां यहां पड़ती हैं । डिप्टी साहब ने कहा कि यदि इस गंगा में स्नान का माहात्म्य है तो इसमें ही क्या विशेषता है कि हर की पौड़ी पर स्नान-दान करें ? स्वामी जी ने कहा कि यह बात पण्डों की बनाई हुई है क्योंकि यदि लोग गंगा में प्रत्येक स्थान पर स्नान करने लगें तो पण्डित जी दक्षिणा कहां से लें ? आपके यहां अजमेर में[५९] भी यही बात है । मुजाविर (कब्र के समीप रहने वाले) कहते हैं कि न इधर चढ़ाओ न उधर; बल्कि इन ईंटों में चढ़ाओ; ख्वाजा साहब इन ईंटों में धंसे हैं । इस पर वे निरुत्तर हो गये ।

एक दिन हरिद्वार में उपस्थित समस्त पण्डित और स्वामी संपद्गिरि जी, जीवनगिरि जी तथा सतुआ स्वामी (जो सत्तू खाया करता था) ढोले खाले पर एकत्रित हुए और स्वामी जी विशुद्धानन्द के नाम एक चिट्ठी इस आशय की आई कि यदि आप मध्यस्थ हों तो स्वामी दयानन्द से शास्त्रार्थ करते हैं । आपको चाहिये कि दयानन्द को साथ लेकर शास्त्रार्थ के लिए आओ । वही चिट्ठी उन्होंने स्वामी जी के पास भिजवा दी । स्वामी जी ने उसका उत्तर लिखा कि पहले नियम निश्चित हों तब हमें शास्त्रार्थ करने में कुछ आपत्ति नहीं; नियम लिखकर भेज दो । इसके पश्चात् न कोई चिट्ठी आई और न नियम भेजे । नियम क्या भेजते, वहां उनके यहां स्वयं ही शैवों और वैष्णवों में विवाद होकर आपस में ही जूता चल गया ।"

क्रोधी को शान्ति से समझाया और वह अनुगामी बना—"एक दिन जोतसिह निर्मला साधु एक बजे के समय आया और स्वामी जी से बातचीत आरम्भ की । वह प्रत्येक शब्द निन्दापूर्ण कहता था । इस पर मुझे क्रोध आया, सहसा मेरे मुख से निकला कि मौन हो जाओ अन्यथा ठीक कर दिया जावेगा । स्वामी जी ने मुझको रोक दिया और समझाया कि वह बातचीत मुझसे करता है तुम इसमें हस्तक्षेप मत करो । अन्त में क्रोध में उठकर बाहर चला आया । इसी प्रकार वह दो दिन तक लगातार आता रहा और बातचीत करता रहा । तीसरे दिन जब स्वामी जी व्याख्यान से उठे तो वह इतना प्रभावित हुआ कि एकदम हाथ जोड़कर रोने लगा और स्वामी जी के पांव पर गिर कर कहने लगा कि आप मुझे कृतार्थ कीजिये और जो कुछ मैंने कठोर वचन कहे हैं, उनके लिए क्षमा कीजिये । स्वामी जी ने उसे आश्वासन दिया और कोमलतापूर्वक समझाया, पांव छुड़वा कर पास बिठा लिया और समझाते रहे । रात का खाना भी उसने वहां खाया, फिर वहीं रहने लगा और आर्य हो गया ।"

नांगे भी अनुगत हुए—एक दिन निरंजनी अखाड़े के दो नांगे जो स्वामी जी से पहले भी परिचित थे, बड़ी असभ्यतापूर्वक बातचीत करने और अश्लील वचन बकने लगे। स्वामी जी कोमलतापूर्वक प्रसन्नमुख से उनका उत्तर देते रहे; कोई कठोर वचन नहीं कहा और न कुपित हुए। उसी दिन वे दोनों साधु बातचीत करने के पश्चात् अपने पहले मत से लज्जित होकर सीधे मार्ग पर आ गए अर्थात् पीतल के कड़े, माला, कफनी और जटा गंगा में फेंक कर स्वामी जी के पास आये और बड़ी प्रार्थना से अपने शेष सन्देह निवारण करके और कर्त्तव्य पूछकर चले गये।

बाबू श्यामलाल, हेडक्लर्क पोस्ट आफिस सहारनपुर एक रात को कपड़े उतारकर रोटी खाने गया और कपड़े डेरे के द्वार पर रखा गया। लौटकर कपड़े न पहने; वहीं रखे रहे। स्वामी जी ने कहा कि कपड़े उठा लो। कहा कि महाराज क्या चोर पड़ते हैं? स्वामी जी ने कहा कि कुछ पहरा भी तो ऐसा नियत नहीं है। अन्त में उसी रात को उसके कपड़े चोरी चले गये।

अपराधी को भी शान्ति से समझाते थे—"एक रात हम अर्थात् मैं बरमाराम और नत्थूराम एक बजे रात से ५ बजे प्रात: तक बातचीत करते रहे। प्रात:काल जब स्वामी जी तम्बू से बाहर निकले, लोटा पानी मांगा। मैंने लोटा दिया और दांतुन लेने को चला गया। स्वामी जी जब लौट कर आये तो ब्रह्मचारी हाथ धुलाने लगा और मैंने दांतुन उपस्थित की तो कहने लगे कि ये सब लोग जानते हैं कि हम रात को अपने तम्बू के समीप किसी को बात नहीं करने देते (ऐसी बात जो हमारे कान तक पहुंचे) परन्तु तुमने रात भर ऐसी बातें कीं जिससे हमारी हानि हुई, भविष्य में ध्यान रखो।"

पंडित उमरावसिंह जी ने कहा—कदाचित् दो दिन के लिए मैं भी कुम्भ पर गया था और स्वामी जी कुम्भ से बहुत पहले गये थे। रसद आदि का प्रबन्ध स्वामीजी के लिखे अनुसार पहले से किया गया था। जाते समय स्वामी जी सब सामग्री साथ ले गये और उसका मूल्य भी स्वामी जी ने स्वयं दे दिया था।

"मुंशी इन्द्रमणि से स्वामी जी ने मेरी भेंट कराई और स्वर्गीय ला० रामशरणदास रईस मेरठ से भी वहीं भेंट हुई। उस समय मैंने मुंशी इन्द्रमणि से व्याख्यान देने की प्रार्थना की। स्वामी जी ने कहा कि ये लिख सकते हैं परन्तु व्याख्यान बिलकुल नहीं दे सकते। इन्द्रमणि जी ने इसका समर्थन किया। दो दिन स्वामी जी के व्याख्यान मैंने सायं समय सुने; विषय स्मरण नहीं। भीड़ बहुत होती थी। उन्हीं दो दिन में से एक दिन एक साधु की संस्कृत में बातचीत आरम्भ हो गई जो बहुत काल तक रही। हम उसको कुछ नहीं समझे। वह साधु उत्तर से बहुत प्रसन्न प्रतीत होता था, सम्भवत: वेदान्त पर बातचीत थी।"

मुंशी मूलचन्द, अध्यापक कनखल निवासी ने वर्णन किया कि स्वामी जी ने यद्यपि उन दिनों विरेचन ले रखा था और शरीर भी दुर्बल हो रहा था परन्तु फिर भी उनका कोई भी समय रिक्त नहीं रहता था। तीन घंटे शास्त्रार्थ के लिए नियत थे; इस समय जो चाहे कोई आवे और शास्त्रार्थ करे। प्राय: निर्मले साधु वेदान्ती पंडित जिनका अखाड़ा स्वामी जी के डेरे के समीप था, आया करते थे और शास्त्रार्थ किया करते थे और सन्तोषजनक उत्तर पाते थे। ये लोग पोपों की अपेक्षा कुछ सभ्य थे परन्तु पक्षपात से रहित न थे। अपनी युक्तियां प्रतिदिन ढूंढ कर लाया करते थे। पंडित हरिसिंह निर्मला जो पंजाब प्रदेश में बहुत प्रसिद्ध पंडित था और निर्मले लोगों में सब से अधिक वही प्रख्यात था, उसने स्वामी जी के साथ वेदान्त विषय पर शास्त्रार्थ किया परन्तु विद्यारूपी सूर्य के सामने क्या प्रकाश दिखा सकता था? बहुत बहस हुई, अन्त में विवश हुआ। यह शास्त्रार्थ स्वामी जी के सामने बहुत लम्बा हुआ था। स्वामी जी अद्‌भुत विद्या प्रकट करते थे, सुनने वाले जो सन्देह अपने मन में रख कर लाया करते थे, व्याख्यान सुन कर उन्हें फिर पूछने की आवश्यकता न रहती थी; व्याख्यान ही में सन्देह निवृत्त हो जाते थे। मूर्तिपूजन आदि के सम्बन्ध में जो सन्देह मेरे मन में जमे हुए थे और जिनका समाधान मैं

अत्यन्त कठिन समझता था और मेरे मित्र मुंशी उमरावसिंह जी, जिन्होंने स्वामी जी के दर्शन रुड़की में किये थे, मुझको प्रतिदिन समझाया करते थे परन्तु सन्तोष न होने के कारण मैंने मूर्तिपूजा नहीं छोड़ी थी। स्वामी जी का मूर्तिविषयक व्याख्यान सुनते ही मन को इतना सन्तोष हुआ कि फिर पूछने को आवश्यकता न रही। मैं और उक्त मुंशी उमरावसिंह जी प्रतिदिन स्वामी जी की सेवा में जाया करते थे।

मूर्तिपूजा के खंडन का विचार स्वामी जी के मन में कब से उत्पन्न हुआ ?—एक दिन मूला मिस्त्री जो गंग नहर विभाग में सब-ओवरसियर थे, स्वामी जी से पूछने लगे कि आपने यह बात क्यों और कैसे उठाई ? स्वामी जी ने उत्तर दिया कि मेरा पहले से ही यह विचार था कि मूर्तिपूजा केवल अविद्या-अन्धकार से है परन्तु इसके अतिरिक्त मेरे गुरु परमहंस श्री विरजानन्द सरस्वती जी महाराज बैठे-बैठे (मूर्तिपूजा का) खंडन किया करते थे क्योंकि चक्षुहीन थे और कहते थे कि कोई हमारा शिष्य ऐसा भी हो जो इस अन्धकार को देश से हटा दे; इसलिए मुझे इस देश पर दया आई और यह बीड़ा उठाया है।

पर्वी से पूर्व अद्‌भुत व्याख्यान—पर्वी (स्नान के दिन) से चार दिन पहले स्वामी जी ने ऐसा व्याख्यान दिया कि उसको सुनकर लोग स्तब्ध हो गये। उस समय हजारों मनुष्य उपस्थित थे और व्याख्यान बड़ा अद्‌भुत था। संक्षेप में उसका सार वर्णन करते हैं—

स्वामी जी ने कहा 'हे भाइयो ! तुम लोग जो इस मेले में अपने बाल-बच्चों और सम्बन्धियों को छोड़कर आये हो, तुम अपने अन्तःकरण में यही आशा करते हो कि स्नान करके हम कुशल से अपने घर को पहुंच जावें और हम भी यही आशा करते हैं परन्तु इस बात को अच्छी प्रकार ध्यान देकर सुन लो कि पर्वी के दिन मरी पड़ेगी। यह बात विद्या से सम्बन्ध रखती है। (भौतिक-विज्ञान के आधार पर कह रहा हूं) इस का कारण यह है कि मनुष्य के शरीर से जो विद्युत् अर्थात् छिद्रों के मार्ग से ऊष्णता निकलती रहती है वह ऊष्णता स्वभावतः उस स्थान से ऊपर को चढ़ती रहती है कि जिस स्थान पर बहुत समुदाय हो जाता है। ज्यों-ज्यों मनुष्य अधिक होते जावेंगे त्यों-त्यों वह ऊपर ही को चढ़ेगी और वह ऊष्णता ऐसी होती है कि जिसमें वह प्रवेश करेगी, कदापि न बचेगा। जब उस समुदाय में उछीड़ होगी तो उस स्थान पर सर्दी होने से वह विद्युत् नीचे आ जावेगी और जिसको लगेगी वह न जीवेगा, तत्काल मर जावेगा।

हे मनुष्यो ! मैं तुमको अपना सुहृद् समझ कर पहले ही से जतलाता हूं कि पर्वी से एक-दो दिन पहले या जो पर्वी नहाने को बड़ा उत्सुक हो, पर्वी के दिन प्रातःकाल ही, जिस स्थान पर विश्राम का अवसर देखो स्नान करके तत्काल चल पड़ना, विलकुल विलम्ब मत करना। इसी में तुम्हारी कुशल है और यह भी तुमसे कहता हूं कि इस बात पर मत मरना कि हम हाड़ की पैंड़ी पर ही स्नान करेंगे।[६०] जिस को तुम हर की पौड़ी कहते हो वहां बहुत भीड़ होने से तुमको उस स्थान पर समुदाय के कारण अधिक विद्युत् का प्रभाव और धक्कम-धक्का होने से प्राणों का भय है। जिस स्थान पर अच्छा अवसर देखो, स्नान करके चले जाना और श्रेष्ठ यह है कि एक-दो दिन पहले ही यहां से चले जाओ तो घर जीवित पहुंच जाओगे।"

हे पाठकगण ! दास तो यहां का रहने वाला है, ठीक वही दशा यहां की देखी कि पर्वी के दिन दोपहर बाद उछीड़ होने के पश्चात् अनन्त मरी पड़ी और सम्भवतः दस-पन्द्रह प्रतिशत मनुष्य जीवित भागने से बचे होंगे। बैठा-बैठा और चलता-चलता मनुष्य मर जाता है।

मेला-प्रबन्ध में डाक्टरों की अज्ञानता से उत्पन्न दोष—अन्तिम व्याख्यान में स्वामी जी ने उन कप्तानों को सम्बोधन करके यह कहा कि आपके डाक्टरों ने जो धारा ३४ लागू करा दी, उस से जनता की लगभग हानि ही है। इस मेले में ही

विचार कीजिये कि जब यात्री को मलमूत्र का वेग है और इस स्थान से टट्टी डेढ़ मील पर है तो वहां तक उसको वेग का दमन करना पड़ेगा उसकी ऊष्णता मस्तिष्क में चढ़ जावेगी। जब उसका भीतर दूषित हुआ तो दूषित वायु उस पर बहुत शीघ्र प्रभाव करती है और इसी कारण बहुत से जीवन आपके कानून पर न्यौछावर हो जाते हैं। मैंने जो आज व्याख्यान में कहा है, आप अपने डाक्टरों से वर्णन करके पूछ लें। आप को चाहिये कि यात्रियों पर दया करके सड़क से कुछ अन्तर पर झंडियां लगा देवें ताकि झंडी से परे यात्री लोग शौच निवृत्ति कर लिया करें और आप गंगा के क्षेत्र में बुर्ज अर्थात् भट्टा लगाकर मल डालकर जलवाते हो ? यहां की वायु को क्यों अशुद्ध करते हो ? इससे तो बहुत बड़ी महामारी फैल जावेगी जिससे मेले के प्राण बचाना कठिन होगा। आपके डाक्टर वैद्यक विद्या से सर्वथा अपरिचित हैं और कुछ भी नहीं समझते कि यह हम क्या कराते हैं। इससे उलटा जनता का सत्यानाश होता है। मैं पहले इस स्थान पर रहा और कुम्भ के और मेले देखे परन्तु ऐसी कठोरता पहले नहीं होती थी। जो कुछ मैंने आप से कहा है, अपने डाक्टरों को अवश्य जाकर समझा दें या उनको मुझ से मिला दें।

महर्षि का महर्षित्व—महाशय ! ऐसी-ऐसी बातों से आश्चर्य होता है कि वे महर्षि थे; और मनुष्य शरीरधारी, परन्तु यह बात स्पष्टतया बुद्धिगम्य नहीं क्योंकि किसी मनुष्य ने आजतक ये बातें प्रकट न की थीं। स्वामी जी महाराज दास से यह भी कहते थे कि हम इस जंगल में चंडी[६१] और सप्त-सरोवर आदि में बहुत दिनों तक विचरते रहे। स्वामी जी का विचार पर्वी से दो-तीन दिन पहले देहरादून जाने का था। सवारी का प्रबन्ध कर लेने के लिए प्रयत्न किया गया, परन्तु प्राप्त न हुई। अस्वस्थता के कारण पर्वी के दिन देहरादून चले गये थे। स्वामी जी के निवास-काल में कदाचित् पर्वी से आठ-नौ दिन पहले (मुझे स्मरण नहीं) कर्नल आल्काट साहब का तार बम्बई से स्वामी जी के नाम इस आशय का आया था कि आप यहां पधारें, हम आपके दर्शन करना चाहते हैं। दास ने यह तार स्वयं पढ़ा और उत्तर दिया था कि हम तो नहीं आ सकते; यदि तुम हमसे मिलना चाहते हो तो स्वयं आ जाओ। फिर सुना था कि आल्काट साहब देहरादून में स्वामी जी महाराज के पास आ गये थे।

ला० भोलानाथ वैश्य सहारनपुर निवासी ने वर्णन किया, 'मैंने देखा कि स्वामी जी उपदेश करने के विचार से पूरे सामान सहित हरिद्वार गये हैं। चूंकि मैं उस समय धर्मसभा का सदस्य था और पण्डित श्रद्धाराम साहब फिल्लौरी का विशेष शिष्य था, मैंने अपने गुरु को फिल्लौर से विशेष पत्र द्वारा बुलाया और स्वामी दयानन्द के विरुद्ध इस प्रकार का विज्ञापन छपवाया कि हम स्वामी दयानन्द सरस्वती के विरुद्ध सनातन धर्म का उपदेश जूना-अखाड़ा में करते हैं; जिन सज्जनों को सुनना हो वे अवश्य सभा को सुशोभित करें।'

'पंडित जी मुझ से पहले गये और पीछे मैं भी हरिद्वार पहुंचा। मेरी अभिलाषा थी कि हरिद्वार की सैर करता परन्तु मुझ को बाहर निकलने का कोई अवसर न मिला; इसका कारण यह था कि पंडित जी अपने समय के योग्य उपदेशक और प्रसिद्ध मनुष्य थे। उनके पास लोगों के आने-जाने के कारण कोई अवकाश का समय न मिलता था। इसी बीच में अकस्मात् जूना-अखाड़ा में धर्मसभा का उत्सव होने की चर्चा चली जिसमें एक दिन मैं भी सम्मिलित हुआ। पर्वी से तीन-चार दिन पहले यह सभा हुई जिसमें बड़े-बड़े पंडित, बंगाली, पंजाबी, पंडित चतुर्भुज अलीगढ़ वाले, मुन्सिफ ईश्वरीप्रसाद देवबन्द वाले और इसी प्रकार के लोग उपस्थित थे। उस समय एक कागज जिस पर बहुत बड़ा लेख लिखा हुआ था पण्डित चतुर्भुज ने उपस्थित किया जो उर्दू लिपि में था और सामने एक चौकी पर बहुत सी पुस्तकें लगी हुई थीं। तब पं. चतुर्भुज ने वर्णन किया कि देखो भाई ! इस समय ये चारों वेद, वेदांग सहित विद्यमान हैं और पंडित भी उपस्थित हैं। दयानन्द जो सब के विरुद्ध उपदेश करता है इस समय उसको चाहिये कि वह यहां आकर शास्त्रार्थ करे ताकि बात ठीक हो जाये। जो

वह यहां न आये तो लोगों को स्पष्ट समझ लेना चाहिये कि वह शास्त्रार्थ नहीं कर सकता। इस प्रकार की बहुत सी बातें बलपूर्वक वर्णन कीं, तत्पश्चात् एक चिट्ठी स्वामी जी के पास भेजी गई।'

वैशाख कृष्णा प्रतिपदा को यह पत्र भेजा गया-"श्री गणेशाय नमः। श्री दयानन्द सरस्वती जी प्रति निवेदन। निम्नलिखित साधुवर्ग और पंडित जन तथा सभासद् लोगों की प्रार्थना यह है कि तीन चार दिन से नित्य चार बजे से ६ बजे पर्यन्त, धर्मविषयक सत्यासत्यविचार होता है और यह भी ज्ञात भया कि जब से जूना अखाड़ा मायादेवी के पास अलीगढ़ सत्यधर्मावलम्बी सभा का प्रारम्भ भया तब से इस सभा से आपके पास पत्र भेजे गये और यह पत्र भेजते हैं। यदि इस सभा में आकर आप भी कुछ वक्तृता करें तो इसमें दो फल हम को दीखते हैं। एक यह कि एकान्त बैठकर जो वेदशास्त्र द्वारा व्याख्यान देते रहते हो और विद्वानों के सामने वक्तृता करने में सब को यह ठीक निश्चित हो जायेगा कि आपका कथन वेद और शास्त्र के अनुसार है या नहीं; दूसरा यह कि यदि आपका कहना वेद और शास्त्र के अनुसार निकला तो हम सब आपके मतप्रतिपादन में उद्यत हो जायेंगे और इस भाव से आर्यावर्त का बड़ा भारी लाभ होगा। आप कृपा करके सभा में अवश्य पधारें। यदि किसी हेतु से आना न हो तो वह हेतु लिखियेगा।" पंडित गोविन्दलाल देवबन्दी, सतुवा स्वामी, केशवाश्रम स्वामी, चित्घनानन्द स्वामी, पंडित श्रीधर डासना वाले, वैकुण्ठ शास्त्री पूना, शालिग्राम आचारी मझवा, गोविन्दाचारी चित्रकूट, गोपाल शास्त्री जम्मू, तारानाथ भट्टाचार्य, पंडित सीताराम, मनोहरदास पंडित, कोशल शास्त्री, खाकियों के पंडित अयोध्यादास, शत्रुघ्न शास्त्री, बांकेबिहारी वाजपेयी, श्री वैष्णवों के पंडित नरसिंह शास्त्री, पंडित सुखरामदास महन्तन के खालसा, गदाधर शास्त्री, पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी, पंडित जवाहरलाल अहमदाबादी, पंडित शंभुदत्त, पंडित वीरभानु, पंडित गणेशीलाल ज्वालापुरी, अतुल अविनाश पंडित काशी, पंडित भगवद्दत्त अलीगढ़, पंडित वासुदेव शास्त्री, पंडित केशवदत्त, पंडित लेखराज जलालाबादी।"

पंडित लेखराज यह चिट्ठी लेकर गये परन्तु उसी समय वहां मेरे कानों में यह आवाज भी उन लोगों की, जिनको आजकल साधु कहते हैं अर्थात् भंगड़ी, चरसी और रुद्राक्ष आदि की माला पहनने वाले लोगों की पड़ी कि "यदि वह यहां आवे तो....को एक पत्थर मारो, शिर फूट जावे, कुछ परवाह नहीं; एक फांसी हो जावेगी।"

इसके उत्तर में स्वामी जी की ओर से जो चिट्ठी आई उसका आशय यह था-"शास्त्रार्थ करने से मुझको किसी समय में भी इन्कार नहीं है। मैं प्रत्येक समय उद्यत हूं, परन्तु शास्त्रार्थ इस रीति से होना चाहिये कि इस शास्त्रार्थ का प्रबन्धकर्त्ता राजपुरुष (कोई मैजिस्ट्रेट) हो और उस शास्त्रार्थ में पंडितों के अतिरिक्त अनपढ़ा कोई न हो और शास्त्रार्थ का स्थान ऐसा हो जो न मेरा और न आपका समझा जावे। अब जहां यह सभा हुई है (अर्थात् जूना अखाड़ा में) वहां पर आने से मैं अपने जीवन की हानि समझता हूं। यद्यपि मुझे इसका कुछ शोक नहीं कि मेरा शरीरपात हो जावे परन्तु इस बात का शोक है मैं जिस परोपकार के लिए इस शरीर की रक्षा करता हूं वह उपकार रह जावेगा। इस कारण मैं वहां आना उचित नहीं समझता।" और चिट्ठियों का वृत्तान्त मुझे ज्ञात नहीं।

फिर ठीक पर्वी के दिन तीसरे पहर के समय मैंने पंडित श्रद्धाराम से आज्ञा मांगी कि मैं बाहर भ्रमण कर आऊं। उनसे आज्ञा लेकर स्वामी जी के डेरे पर पहुंचा। उस समय की शोभा मेरी आत्मा को अति आनन्ददायक हुई। मैंने क्या देखा कि श्री स्वामी जी महाराज एक चौकी पर भस्मी रमाये हुए व्याख्यान दे रहे हैं। सभा में उस समय लगभग ४०० मनुष्य थे कि जिसमें साधु, पंडित, रईस, धनिक, बुद्धिमान्, बड़े-बड़े योग्य व्यक्ति प्रतीत होते थे। स्वामी जी के डेरे की सरकारी सिपाहियों द्वारा रक्षा हो रही थी; संगीन का पहरा था। व्याख्यान समाप्ति पर था, उस समय मैंने इतनी वार्ता स्वामी जी के मुखारविन्द से श्रवण की अर्थात् स्वामी जी ने ईश्वर की प्रार्थना करके उसके पश्चात् कहा कि इस समय आनन्दपूर्वक

पर्वी का मेला ईश्वर की दयालुता से समाप्त हुआ। इस कारण मैं आपको सूचित करता हूं कि अब आप लोग शीघ्र अपने-अपने स्थान को चले जाओ। इस पर बहुत से मनुष्य ऐसा कहेंगे कि अंग्रेज भी मनुष्यों को ठहराना नहीं चाहते और स्वामी जी भी चूंकि अंग्रेजों की ओर से हैं इसलिए उन्होंने भी यही कहा कि तुम यहां से चले जाओ, परन्तु हे बुद्धिमानो! मैं तुमको एक ऐसी बात समझाता हूं कि जिसके सुनने से तुम शीघ्र ही समझ जाओगे कि अब यहां ठहरना उचित नहीं। इस समय तक चारों ओर से मनुष्यों का आगमन था और जितने मनुष्य आते थे उतने चूल्हे जलते थे, ऊष्णता बढ़ती थी और मलमूत्र का भी त्याग करते थे। जिस पर्वी के स्नान की आवश्यकता लोगों को थी वह बात पूरी हो गई, अब सबका मुख अपने-अपने देश को हो गया। इस कारण मनुष्य यहां भी थोड़े रह जावेंगे और जब मनुष्य यहां भी थोड़े हो जायेंगे तो ऊष्णता कम होगी और ऊष्णता कम होगी तो दुर्गन्धित वायु जो उष्णता के कारण ऊपर आच्छादित है, वह तत्काल ही नीचे आवेगा और वायु में प्रवेश करके उस महामारी को फैलायेगा कि जिससे बहुत मनुष्यों की मृत्यु होगी। यह कहकर व्याख्यान समाप्त कर दिया।"

"दो पंजाबी जो योग्य और सम्मानित प्रतीत होते थे, उठे और हाथ जोड़कर स्वामी जी से कहा कि स्वामी जी! आप ग्रन्थ साहब को भी मानते हैं या नहीं? स्वामी जी ने उत्तर दिया कि 'ग्रन्थसाहब के कर्त्ता मनुष्य हैं इस कारण मैं केवल ईश्वरोक्त वेद को ही मानता हूं, और को नहीं।'

जब मैं व्याख्यान सुनकर चला तो मार्ग में एक मनुष्य को विशूचिका हो गई। मुझे स्वामी जी की बात का और भी पूरा विश्वास हो गया और बहुत शीघ्र गाड़ी किराया करके वहां से सहारनपुर को चला आया।"

इस हरिद्वार के कुम्भ के विषय में **'कोहेनूर'** १६ अप्रैल, सन् १८७९, पृष्ठ २७८, खंड ३१, संख्या ३१ में लिखा है—

"एक मित्र के पत्र में विदित हुआ कि इसमें संदेह नहीं कि जनता की भीड़ पहले कुम्भ की अपेक्षा बहुत अधिक है। कुछ उच्च कोटि के पंडित लोग भी जैसे पंडित श्रद्धाराम साहब फिल्लौरी, स्वामी दयानन्द सरस्वती जी, पंडित श्रद्धानाथ साहब काशी निवासी आदि यहां विद्यमान हैं। परस्पर वाद-विवाद का विचार भी सुना जाता है, यात्री लोग श्री गंगा जी से आठ-दस कोस की दूरी तक पड़े हैं। ज्वालापुर से भीमगोड़े तक यात्रियों की ही भीड़ दिखाई देती है।"

'कोहेनूर' १९ अप्रैल, सन् १८७९, पृष्ठ ३९१, खंड ३१, संख्या ३२ में एक पत्र पंडित श्रद्धाराम ने जो विरोधी पक्ष के प्रसिद्ध नेता, व्याख्यानदाता थे, छपवाया है जिसे हम जैसा का तैसा यहां लिखते हैं। शीर्षक **"दयानन्द सरस्वती"**

"धर्ममूर्ति मुंशी हरसुख राय साहब,[६२] जय श्री कृष्ण! मैं आजकल हरिद्वार में हूं। इस मेले का विस्तृत वृत्तान्त विश्वास है कि किसी ने आपको अवश्य लिखा होगा परन्तु मैं दयानन्द सरस्वती का वृत्तान्त आपको लिखता हूं। यदि **'कोहेनूर'** में प्रकाशित करेंगे तो बहुत लोगों को प्रसन्नता होगी।

मैंने जब उनके विरुद्ध मेले में विज्ञापन चिपकाया और एक सभा स्थापित करके उपदेश होने लगा तो पंडित चतुर्भुज अलीगढ़ निवासी, मेरे पास पधार कर बोले कि स्थान-स्थान पर सब का होना अच्छा नहीं। उचित है कि हम-तुम सब एक ही स्थान पर सभा किया करें। उनके कहने से मायादेवी के मन्दिर के समीप सभा होती रही। मेरी इस सभा में असंख्य साधु और पंडित लोग सम्मिलित थे और प्रतिदिन वेद तथा शास्त्र के अनुसार शाम के चार बजे उपदेश आरम्भ होता था जिसके सुनने को हजारों मनुष्य एकत्रित होते थे। तीन दिन बराबर हमारी सभा की ओर से दयानन्द सरस्वती के पास इस आशय का पत्र जाता रहा कि आजकल समस्त भारत के विद्वान् यहां एकत्रित हो रहे हैं; आप जो कुछ वर्णन करते

हो सभा में आ कर पण्डित लोगों के सामने वर्णन करो ताकि सारे संसार के संशय निवृत्त हो जावें और यदि आपको किसी कारण उपद्रव का भय हो तो हम सब, जिनका नाम इस पत्र में लिखा है, उत्तरदायी हैं। प्रथम नाम उसमें हम तीन मनुष्यों का था-मेरा, पण्डित चतुर्भुज जी का और पंडित गिरधारीलाल जी अमृतसरी का। इनके अतिरिक्त और बहुत से पण्डितों के नाम थे। परन्तु श्री दयानन्द ने स्पष्ट लिख दिया कि हम सभा में नहीं जावेंगे। हमारे उपदेशों को सुनकर हमारी सभा में १२ मनुष्य हाथ जोड़ कर बोले, 'हम दयानन्द के उपदेश सुनकर अपने धर्म से पतित हो गये थे और अब प्रायश्चित्त करते हैं।' उस समय सब पंडितों ने यह निश्चय किया कि इन का तीन दिन व्रत कराके इन को पवित्र कर लिया जाये। जब वे व्रत से निवृत्त हुए तो हम सब लोग लगभग दो हजार मनुष्यों के एकत्रित होकर बाजे बजाते हुए बड़ी धूमधाम से हरिद्वार पर ले गये। फिर वहां से दक्ष प्रजापति के दर्शन को लाये और समस्त मेले में इस उत्साह को प्रसिद्ध किया। हमारी सभा के होते-होते ही दयानन्द सरस्वती मेले को छोड़ गये। मैं आज सहारनपुर को जाता हूं, वहां निवास रहेगा।" लेखक—**श्रद्धाराम**।

जून मास, सन् १८७९ की 'विद्याप्रकाशक' पत्रिका में लिखा है **"पंडित श्रद्धाराम की बनावट"**—यद्यपि कोई व्यक्ति कैसा ही पक्षपातपूर्ण होता है परन्तु कभी-कभी सत्य की ओर आकृष्ट हो जाता है। थोड़े दिनों की बात है कि बातचीत के बीच गोपालशास्त्री ने प्रतिज्ञापूर्वक कहा कि 'मुझे हरिद्वार में बड़ी लज्जा और परमेश्वर का भय प्रतीत हुआ जब पंडित श्रद्धाराम के साथ मिलकर अनुचित कार्यवाहियां करते थे। उन बातों के बीच यह एक बड़ा भारी कपट का काम पंडित श्रद्धाराम ने किया कि कुछ साधुओं को सिखलाया कि तुम सभा में आकर वर्णन करो कि हम स्वामी दयानन्द के उपदेश सुनकर बिगड़ गये थे, आप कृपा करके हमारा प्रायश्चित कराइये। इस कार्यविधि के अनुसार साधुओं ने सभा में आकर यह बात सब लोगों के सामने प्रकट की और फिर सारे मेले में इस बात को प्रसिद्ध कर दिया। जब यह समस्त कार्यवाही हो चुकी तो मैं अपने मन में बड़ा पछताया और कहने लगा कि तू बड़ा अयोग्य है जो ऐसे पाखंडियों के साथ मिल रहा है। फिर प्रायश्चित किया, उनसे पृथक् हो गया।' हमको ब्राह्मणों की ऐसी पाखंडयुक्त अवस्था को सुनकर बड़ा दुःख होता है और इससे यह पूर्ण विश्वास होता है कि स्वार्थी ब्राह्मण सदा पाखंड और झूठ के मुखिया रहे हैं और कई एक झूठे पुस्तक बना दिये हैं। खेद है कि अब तो इन्हीं पाखंडों के कारण भूखे भी मरने लगे हैं परन्तु अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते और जिन साधुओं और ब्राह्मणों ने झूठी बातें कहीं, वे स्वामी जी के पास तक भी कभी नहीं गये थे और वे साधु भी बनावटी थे। यदि कोई मनुष्य इस बात का अनुकरण करता तो उसका क्या परिणाम प्रकट होता? (पृष्ठ ४६, ४७ 'धर्मचर्चा' शीर्षक के अन्तर्गत)।

पंडित रामशरण जी गौड़, नबत-निवासी ने वर्णन किया कि यहां हरिद्वार में श्रीधर डासना वाले, मेहरचन्द लांखे वाले जो उस समय अलीगढ़ में थे और पंडित किशनलाल भैंसवाल वाले, सेवकराम बराली वाले मेरठ निवासी, एक जम्मू के पंडित, पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी, मुजफ्फरनगर के पंडित भावानन्द, चतुर्भुज-सबने इकट्ठे होकर सम्मति की कि चलो स्वामी जी से शास्त्रार्थ करें। तब पण्डित श्रीधर जी डासना वाले ने कहा कि भाइयो! वह व्यक्ति परदेश का रहने वाला,[६३] वेद का जानने वाला, चतुर और बोलने वाला है। वेद का भाष्य भी उसने किया है और तुम केवल व्याकरणी हो तो वहां मत जाओ, व्यर्थ नीचा देखोगे।' जिस पर कोई न गया, मैं चूंकि गौड़ और उनका परिचित था इसलिए मैं वहां उपस्थित था। मुझ से उनका कोई लगाव नहीं था।

जून मास, सन् १८७९ के **'आर्यदर्पण'**, खंड २, पृष्ठ १६४ से १६९ तक में 'पण्डित श्रद्धाराम साहब कौन हैं? और **'कोहेनूर'** में छपे उन के **'वक्तव्य की शुद्धि'** शीर्षक के अन्तर्गत लिखा है—

"वास्तविक अभिप्राय आरम्भ करने से पहले प्रथम हम इस बात का वर्णन करना अत्यन्त उचित समझते हैं कि ये पण्डित श्रद्धाराम साहब हैं कौन ? सभ्यता के विषय में इनके कैसे विचार हैं और धर्म के बारे में क्या विश्वास रखते हैं । हमें तो अपनी खोज के अनुसार ये वही पण्डित प्रतीत होते हैं जो प्राय: देश के प्रेमियों और शुभचिन्तकों के शत्रु हैं । श्री मुंशी कन्हैयालाल साहब अलखधारी और श्री बाबू नवीनचन्द्र साहब जैसे लोगों से उलझते रहते हैं । **'नीतिप्रकाश'**[६४] और **'बिरादरे हिन्द'**[६५] पत्रिकाओं के अवलोकन से पाया जाता है कि उक्त मुंशी साहब तो ऐसे लोगों की ओर आकर्षित होकर समय के सुधार का कारण ही नहीं हुए, हां उक्त बाबू साहब ने आपकी पुस्तक 'धर्मरक्षा' का ऐसा युक्तियुक्त उत्तर (यद्यपि हम बाबू साहब के बहुत से सिद्धान्तों से सहमत नहीं है) दिया कि फिर पण्डित जी ने दम न मारा । परन्तु आश्चर्य है कि इतना होने पर भी अब तक पण्डित जी के मस्तिष्क में वादविवाद की इच्छा और शास्त्रार्थ की उत्सुकता चली आती है । चाहे इच्छा अवशिष्ट हो या न हो, परन्तु समाचारपत्रों के द्वारा उत्सुकता का प्रकाशित करना निस्सन्देह पाया जाता है परन्तु उसकी वास्तविकता का प्रकट होना भी कुछ दूर नहीं । पण्डित जी के धार्मिक विश्वास के बारे में हमारे कुछ अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं । केवल इतना कहना पर्याप्त प्रतीत होता है कि पण्डित जी एक साधारण मूर्तिपूजक हैं और उन लोगों में से हैं जिन्हें ऐसी प्रथाओं का आविष्कारक और सहायक समझना चाहिये जिन्होंने इस जाति, इस सम्प्रदाय, इस धर्म, सारांश यह कि इस देश की यह दशा कर दी । यद्यपि पण्डित जी द्वारा रचित पुस्तकों के अवलोकन तथा अन्य सूचना-स्रोतों से हमें यही ज्ञात हुआ कि पण्डित जी एक साधारण मूर्तिपूजक हैं परन्तु एक बात हमने पण्डित जी के विषय में ऐसी सुनी है कि जिससे हमारे आश्चर्य का कुछ ठिकाना नहीं रहा । वह यह कि हमारे पण्डित जी पंजाबी भाषा तथा गुरमुखी लिपि में एक पुस्तक ईसाई मत के समर्थन में भी प्रकाशित कर चुके हैं । हमें स्मरण पड़ता है कि गवर्नमेण्ट गजट पंजाब में इस पुस्तक[1] का रजिस्टर नम्बर ४९ है ।

हम नहीं कह सकते कि इस पुस्तक से जिसमें ईसा को ईश्वर का पुत्र आदि माना है, पण्डित जी का क्या सम्बन्ध था; हां कोई सांसारिक लाभ अभीष्ट होगा और यदि वास्तव में कोई ऐसा ही कारण हो तो हम भी शिकायत नहीं करते क्योंकि मनुष्य रोटी तो किसी प्रकार कमा खाये । आजकल जीविका के लिए मनुष्य जो करे सो थोड़ा है । स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का सा साहस, सैयद अहमद खां साहब का सा हृदय, कन्हैयालाल अलखधारी साहब का सा उत्साह प्रत्येक व्यक्ति में तो नहीं पाया जाता कि भीतर भी बाहर ही के अनुरूप हो अन्यथा साधारण तो साधारण बहुत से विशेष लोग भी मुहम्मद साहब का यह पाठ स्मरण कर रहे हैं—**"अलद्दुनिया जोर लायहसल इल्ला बिज्जोर"** अर्थात् दुनिया मक्कार है; नहीं प्राप्त होती बिना मक्कारी (धोखा) के । अस्तु,

अब इस प्रारम्भिक कहानी को समाप्त करके थोड़ा-सा हरिद्वार का वृत्तान्त जिसको पंडित श्रद्धाराम ने अपनी मनमाने रूप में **'कोहेनूर'** समाचार पत्र में प्रकाशित करा दिया है, मैं भी पाठकों की सेवा में भेंट करता हूं और जो कुछ कहता हूं उसकी सत्यता के उत्तरदायित्व का भार अपने सिर पर लेता हूं ।

"२० फरवरी, सन् १८७९ को स्वामी दयानन्द सरस्वती जी रुड़की से चलकर हरिद्वार पहुंचे[६६] और निवासस्थान आदि के निश्चय के पश्चात् एक विज्ञापन अपने उद्देश्यों के प्रकाशनार्थ दिया । उस विज्ञापन में जो आप मेरठ से छपवा कर साथ ले गये थे, अपने निवास का ठिकाना, अपने आने का उद्देश्य और इस बात की चर्चा कि बातचीत के लिए कौन-सा

---

1. इस पुस्तक में पंडित जी द्वारा रचित भजन की एक पंक्ति यह है—

ईसा मेरा राम रमैया, ईसा मेरा कृष्ण कन्हैया । मुख से ईसा बोल, तेरा क्या लगेगा मोल ॥ आदि ।

समय नियत होगा और इस काम के लिए आपका कबतक निवास रहेगा, आदि सब बातें विस्तारपूर्वक प्रकट कर दी थीं। जिस समय वह विज्ञापन दिया गया था उस समय तक न पंडित श्रद्धाराम हरिद्वार पहुंचे थे और न कोई अन्य सज्जन जिन्हें स्वामी जी से अनुकूलता अथवा शास्त्रार्थ की इच्छा थी, पधारे थे। स्वामी जी का यह विज्ञापन एक साधारण विज्ञापन था, कुछ इसका एक-दो व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध न था। जिसको स्वीकार होता, इस विज्ञापन के अनुसार नियत स्थान तक जाने का कष्ट उठाता और विवादास्पद विषयों पर बातचीत करके सन्तोष प्राप्त कर लेता। इसीलिए जिन लोगों के मन में वास्तव में खोज की इच्छा थी, उन्होंने ऐसा ही किया। हमने स्वयं अपनी आंखों से देखा कि साधुओं में से कुछ ने जिन में बहुत से विद्वान् प्रतीत होते थे, कई दिन तक आ-आ कर घण्टों बातचीत की और जिसे शास्त्रार्थ अथवा सत्संग का आनन्द कहते हैं, उसका पूरा-पूरा लाभ उठाया। अब इस अवसर पर विवेकपूर्ण व्यक्ति के मन में यह प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि जब शास्त्रार्थ के लिए यह समस्त प्रबन्ध भली प्रकार उपलब्ध हो चुके थे और प्रकाशित भी हो चुके थे तो फिर पण्डित श्रद्धाराम साहब को शास्त्रार्थ के लिए पधारने में क्या आपत्ति शेष रह गई थी ? कहीं यह तो नहीं था कि किसी दूसरे के निवासस्थान पर जाना हमारी शान में कमी का द्योतक होगा या फिर समाचारपत्रों में अपने चित्त के अनुसार गप्पें छपाने और मन बहलाने का अवसर जाता रहेगा। हम भली-भांति समझते हैं कि पंडित जी महाराज ने इस शास्त्रार्थ के अवसर को जान-बूझ कर अपने हाथ से खो दिया और अवसर भी कैसा जो वास्तव में बहुत ही अच्छा था और फिर कठिनता से प्राप्त हो सकता है। दैवयोग से स्वामी जी के साथ उस समय के और भी विद्वान् जैसे, मुंशी इन्द्रमणि जी आदि उपस्थित थे और पंडित श्रद्धाराम साहब को भी इस बात की सूचना मिल गई थी। इस अवस्था में जो पंडित जी पधारने से बचते रहे तो इस में कुछ भलाई ही सोची होगी। अब पंडित श्रद्धाराम के इस वाक्य का अर्थ कि स्वामी जी ने शास्त्रार्थ से इन्कार किया, प्रत्येक व्यक्ति समझ सकता है और पूछ सकता है कि आपके पास आपके दावे का कोई लिखित या मौखिक किसी प्रकार का प्रमाण भी है या केवल मित्रों को प्रसन्न करने के लिए बातें ही बातें हैं ? हम नहीं जानते कि पण्डित जी इस बात का क्या उत्तर रखते हैं कि जिस समय उनके आने से पहले एक विज्ञापन स्वामी जी की ओर से शास्त्रार्थ की इच्छा का प्रकाश करने के लिए प्रकाशित हो चुका था तो उसके पश्चात् बिना कारण गलियों में पंडित जी का विज्ञापन चिपकाना क्या अर्थ रखता है ? फिर पंडित जी की एक और पहेली हमारी समझ में नहीं आती। वह यह कि स्नान से एक दिन पहले लेखक के एक मित्र जिनका पण्डित जी से चिरकाल से सम्बन्ध था, उनसे मिले। बातों-बातों में पण्डित जी ने कहा कि स्वामी जी तो देहरादून चले गये। जिस समय पण्डित जी का यह वक्तव्य मुझ तक पहुंचा, मुझे स्वयमेव हंसी आ गई और मैंने अपने मित्र को स्वामी जी का उस समय तक हरिद्वार में रहना सिद्ध कर दिया। स्वामी जी ने अपने विज्ञापन में कुम्भ की समाप्ति के पश्चात् ठहरने की प्रतिज्ञा नहीं की थी और एक स्थान पर शिक्षा और उपदेश के लिए महीना डेढ़ महीना ठहरना कुछ थोड़ा भी नहीं गिना जाता। फिर पण्डित जी का स्वामी जी के डेरे पर पधारना, जो इस कुम्भ की समाप्ति के पश्चात् हुआ, मानो वास्तविक घटना को सर्वथा विपरीत कर देना है।

फिर यह लिखना कि स्वामी जी नग्न रहते थे, दो अर्थ रखता है। एक तो यह कि स्वामी जी सर्वथा नग्न थे; दूसरे यह कि सिर या पीठ पर कपड़ा न रहता था और केवल आवश्यक वस्त्र रखते थे। यदि अभिप्राय प्रथम अवस्था से है तो पंडित जी का कथन वास्तविकता के सर्वथा विरुद्ध है परन्तु दूसरी अवस्था में हम इस कथन की सत्यता को किसी सीमा तक स्वीकार करते हैं। परन्तु इसके साथ ही उनके आक्षेप को व्यर्थ समझते हैं। हरिद्वार में व्याख्यान के लिए मेज कुर्सी का होना और अपने साधारण स्वच्छ वस्त्रों का प्रयोग आदि स्वामी जी ने लाभदायक न समझा था। कारण यह कि स्वामी जी का वहां पधारना सर्वसाधारण जनता के हित के लिए था; न कि विशेष लोगों के हितार्थ। मेले में अधिकतया साधु आदि थे जिनसे बातचीत करने का अवसर प्राप्त होने की सम्भावना थी। यदि मेज-कुर्सी आदि सामग्री एकत्रित करके उपदेश

आरम्भ किया जाता तो अनुभवी लोग भली प्रकार समझ सकते हैं कि उन लोगों का एकत्रित होना अत्यन्त कठिन था। वे लोग अपने अनुभव की कमी से ऐसी भीड़ को ईसाइयों आदि की भीड़ समझकर एकत्रित नहीं होते (परन्तु स्वामी जी तो प्राय: सारी आयु पर्यन्त एकान्त में केवल संन्यासियों का ढंग रखते और व्याख्यान के समय समस्त शरीर पर कपड़ा ओढ़ लिया करते थे। संकलनकर्ता) प्रत्युत भली प्रकार जी खोलकर अपने समान ढंग रखने वाले लोगों से बातचीत करते हैं और ऐसे ही लोगों से उन्हें प्रेम और भलाई की आशा हो सकती है जो लगभग संन्यासियों का सा ढंग रखते हैं। इसलिए स्वामी जी का वह रूप जो उनके साधारण रूप से बहुत कम भेद रखता था और विशेष नीति पर आधारित था, कदापि आक्षेप के योग्य नहीं हो सकता और न ही स्वयं स्वामी जी के विश्वास के अनुसार यह बात उनके सिद्धान्त के विरुद्ध पड़ती है।"

लेखक—आर्यसमाज का एक सभासद्

पंडित श्रद्धाराम जी का मत—पंडित जी ने 'सत्यामृत-प्रवाह' नामक एक ग्रन्थ मरने से कुछ दिन पहले लिखकर समाप्त किया था। इसमें वे अपना मत इस प्रकार लिखते हैं—संवत् १९१० विक्रमी में जब मेरी अवस्था १० वर्ष की थी तो एक महापुरुष के संग से उस सत्य विद्या का शब्द मेरे कान में पड़ा था जिसको मैं इस ग्रन्थ में पराविद्या के नाम से लिखूंगा। उसके पीछे जो मुझे कई प्रकार के विद्वानों से मिलने का अवसर पड़ता था और कुछ न्याय, वेदान्त आदि शास्त्रों का पढ़ना हुआ तो उस पढ़ी-सुनी विद्या का छुपाना उचित समझ लेता था क्योंकि जगत् को उसका अधिकारी नहीं समझता था...फिर यह बात मेरे संकल्प को शिथिल कर देती थी कि यह सत्य विद्या जैसी मेरे मन में भरी हुई है ऐसी सांगोपांग किसी दूसरे की समझ में न आई तो लोग यथेच्छाचार और कुकर्मी हो जायेंगे। इस विचार से सत्यविद्या को प्रकट करना तो मैंने उचित न समझा परन्तु उस दिन से जो लोग मुझ से पूछते-सुनते रहे हैं, उन्हें वैष्णव धर्म का उपदेश करता रहा। संवत् १९३२ में मुझे चारों वेद पढ़ने और अर्थ विचारने का समागम मिला तो यह बात निश्चय हुई कि ऋग्वेद आदि चारों वेद भी यथार्थ सत्य विद्या का उपदेश नहीं करते क्योंकि अपरा विद्या को लोगों के मन में भरते हैं। हां, वेद के उपनिषद् भाग में कुछ-कुछ सत्यविद्या अर्थात् परा विद्या अवश्य चमकती है परन्तु ऐसी नहीं कि जिसको सब कोई स्पष्ट समझ लेवें। चाहे वेद और उपनिषद् का लिखने वाला सत्य विद्या को जानता तो अवश्य था परन्तु उसने सत्य विद्या को वेद में न लिखना और छुपा कर रखना इस हेतु से योग्य समझा है कि जिनके लिए वेद और उपनिषद् को लिखा उनके लिए यही उपदेश श्रेष्ठ था जो वहां लिखा है। संवत् १९३६ में हरिद्वार के कुम्भ पर जो मैंने मतमतान्तर के विषय में कई प्रकार के वादविवाद होते देखे, कारण उनका मुझे यह प्रतीत हुआ कि वे लोग इस सत्य विद्या से शून्य हैं कि जिसके जानने से सब विवाद शान्त हो जाते हैं। चित्त में तो उसी दिन से यह उमंग उठी कि आज से सत्य विद्या का शंख अवश्य बजा देना चाहिये परन्तु अपने आश्रम में पहुंचने तक मैं कई दिन फिर भी इसी (संशयात्मक) विचार में रहा कि सत्य के प्रकट करने में कहीं जगत् का कुछ अपकार न हो जाये। बहुत से सोच-विचार के पश्चात् घर पहुंचते ही मेरे मन में यह बात दृढ़ हो गई कि सत्य विद्या के प्रकट करने में जैसे पहले के विद्वानों ने कई अनर्थ समझे थे वैसे अब इसको गुप्त रखने में भी कई अनर्थ (सम्भाव्य) प्रतीत होते हैं।

पहला अनर्थ यह (सम्भाव्य) है कि भले ही मनुष्य सब एक ही हैं परन्तु जब तक वे सत्य विद्या (सच्चा ज्ञान) नहीं प्राप्त करेंगे, कोई भेदभाव को मानेगा और कोई अभेदवाद को; इस से शून्य नहीं होंगे और शैव, शाक्त, वैष्णव तथा जैन-बौद्ध के झगड़ों में कष्ट उठाते रहेंगे। इसी भांति कोई लोग आजकल ब्रह्मसमाज और कोई आर्यसमाज में प्रवृत्त (हो रहे हैं) तथा रामदास से गुलाम मुहम्मद और गुलाम मुहम्मद से अब्दुल मसीह बनकर अपने सम्बन्धियों को दु:खी करते हैं तथा अन्य मतावलम्बियों के साथ लड़ लड़ मरते हैं।

दूसरा अनर्थ यह है कि बुद्धिमानों ने ईश्वर ओर परलोक का लालच और भय केवल नीच और मध्यम श्रेणी के मनुष्यो को शुभ आचार में प्रवृत्त और मन्दाचार से निवृत्त करने के निमित्त नियत किया था; परन्तु अब उसको सत्य जान के अत्यन्त उच्च कोटि के मनुष्य भी अपना तन, मन, धन नष्ट करने लग गये और सदा करते रहेंगे।

तीसरा अनर्थ यह है कि अब मेरी आयु ४० वर्ष से आगे निकल गई। अनुमान से जाना जाता है कि अब मृत्यु का समय निकट है सो उचित है कि अब उस सत्य को न छुपाऊं[1] जो चिरकाल से मेरे मन में भरा हुआ है। यदि सत्यविद्या को साथ ले मरूंगा तो बड़ी अनर्थ की बात होगी। यद्यपि सत्य विद्या के लिखने में मुझे यह आपत्ति पड़ती दिखाई दी कि अपरा विद्या (वेद तथा शास्त्र) के प्रेमी लोग मेरे शत्रु और निन्दक बन जायेंगे परन्तु सत्य विद्या का प्रेम अब मुझे रुकने नहीं देता, उलटा बलात् मुख और हाथ को कहने और लिखने में जोड़ता है। मैं बहुतेरा ही अपनी जिह्वा और लेखनी को थामता हूं, परन्तु क्या करूं और कुछ लिखने और कहने को जब मन ही नहीं मानता तो अब इस **'सत्यामृत प्रवाह'** नामक ग्रन्थ को लिखने का आरम्भ अवश्य करना पड़ा। जो सत्य विद्या मैंने इस ग्रन्थ में लिखी है वह प्राप्त तो, भले ही, सत्पुरुषों को है, परन्तु इस विषय का प्रसिद्ध ग्रन्थ जो मैंने आज तक कोई नहीं देखा इस कारण मैंने इसके लिखने का परिश्रम उठाया, नहीं तो कभी न कहता। विद्वानों के आगे मेरी एक प्रार्थना है कि इस ग्रन्थ के पाठ से केवल यही बात न निकाल लें कि यह ग्रन्थ नास्तिकमत को सिद्ध करता है परन्तु शूरवीर वह होगा जो इस ग्रन्थ के लेख को अपनी जिह्वा और युक्ति से खंडन करके दिखावे। हां, मैं देखता हूं कि कई एक लेखकों ने अपने ग्रन्थों में नास्तिक मत का खंडन कुछ लिख रखा है[2] परन्तु (वह सब) एकदेशीय खंडन है; इसके कारण हम इसको भी शूरवीरता नहीं समझते। जिसका सामर्थ्य हो वह किसी के[3] सामने आकर या उसे अपने पास बुला कर खंडन करे क्योंकि जो प्रयोजन विद्वानों के परस्पर आमने-सामने वार्तालाप होने से सिद्ध होता है वह दूर बैठे लेख द्वारा सिद्ध नहीं होता। ईर्ष्या और द्वेष के बल से तो चाहे कोई कुछ नाम रखे परन्तु न्याय द्वारा हम नास्तिक नहीं हैं क्योंकि नास्तिक वह होता है जो होनी को न होनी कहे। (अस्ति को नास्ति कहे) हमारे मत में उसी वस्तु की सत्ता मानी जाती है जो प्रत्यक्ष में दिखाई देती है (प्रत्यक्ष के अतिरिक्त किसी की नहीं)। अब विचारना चाहिये कि नास्तिक हम हैं या वे लोग हैं जो प्रकट रूप से वर्तमान सत्ता अर्थात् सृष्टि को 'नास्ति' (नाश होने वाली) कहकर किसी बन्ध्यापुत्र (अर्थात् परमेश्वर को जो कभी न उत्पन्न हुआ, न है) की विद्यमानता के मानने वाले हैं? अब ये तो आस्तिक बन रहे हैं। इस ग्रन्थ के पाठ से प्रकट हो जावेगा कि हम आस्तिक हैं, या नास्तिक हैं?" (सन् १८९० ई० दिल्ली से प्रकाशित 'सत्यामृत प्रवाह' की भूमिका से)।

पंडित जी ने अपनी मृत्यु से कुछ दिन या घंटे पहले एक पत्र पंडित कन्हैयालाल साहब सम्पादक **'मित्र विलास'** को लिखा था जो उन्हीं दिनों उसमें प्रकाशित भी हो गया था जिस में लिखा था, "हमारी बड़ी भूल है कि हम इस वृद्धतर (बूढ़े हुए) धर्म को फिर युवा बनाने का उद्योग करें। हमने तो जगत् का भला करते-करते जन्म खो दिया। न घर के रहे न घाट के। लाल जी! अब तो कमर टूट गई। किस का उपदेश? किस की सभा? किसी की यात्रा? अब तो अपना ही खेल रचायेंगे क्योंकि लोगों का खेल बहुत दिन खेल के कुछ फल न पाया।" (**'देश हितैषी'**, भादों संवत् १९३९, खंड १, संख्या ५, पृष्ठ ११, पंक्ति ३ से ७ तक)

---

1. स्पष्ट प्रकट है कि सारी आयु सत्य को छुपाते और असत्य का उपदेश करते रहे।

2. यहां स्पष्टतया नास्तिकता स्वीकृत है।

3. यहां पंडित जी का अपने व्यक्तित्व की ओर संकेत है।

हरिद्वार के कुम्भ की एक अत्यन्त आश्चर्यजनक घटना—५ अप्रैल, सन् १८७९ रविवार तदनुसार पूर्णमासी, चैत, संवत् १९३६ को जब कि स्वामी जी अतिसार की अधिकता के कारण रुग्ण हो गये और जंघा भी दर्द करती थी अर्थात् एक छाला निकला हुआ था; मेले में धूम पड़ गई क्योंकि एक दिन व्याख्यान नहीं हुआ था। साधुओं ने इसका स्वर्ण अवसर समझा और दल बांध-बांध कर शास्त्रार्थ के लिए आने लगे, इस अभिप्राय से कि जब वे शास्त्रार्थ करना स्वीकार न करेंगे तो हम प्रसिद्ध कर देंगे कि हार गये। स्वामी जी उस दिन तम्बू में चारपाई पर विश्राम कर रहे थे। जब दूर से उनको आता देखा तो उठ बैठे और साधारण सत्कार के पश्चात् आने का कारण पूछा। उनमें से एक परम प्रसिद्ध साधु ने, जो सबसे अधिक विद्वान् था, कहा कि हम आपसे शास्त्रार्थ करने आये हैं। स्वामी जी ने कहा कि बहुत अच्छा, आप किसी विषय पर बातचीत करें।

साधु जी—हम वेदान्त पर चर्चा करेंगे। **स्वामी जी**—पहले आप मुझे यह समझा दें कि वेदान्त से आपका क्या अभिप्राय है? **साधु जी**-वेदान्त से यह अभिप्राय है कि जगत् मिथ्या है और ब्रह्म सत्य है। **स्वामी जी**—जगत् से क्या अभिप्राय है और कौन-कौन पदार्थ जगत् के भीतर हैं और मिथ्या किसको कहते हैं? **साधु जी**—परमाणु से लेकर सूर्य पर्यन्त जो कुछ भी है उसे जगत् कहते हैं और यह सब मिथ्या अर्थात् झूठा है। **स्वामी जी**—तुम्हारा शरीर, बोलना-चालना, उपदेश, गुरु और पुस्तक भी इसके भीतर है या नहीं? **साधु जी**—हां, ये सब इस के भीतर हैं। **स्वामी जी**—और आपका मत भी इसके भीतर है या बाहर? **साधु जी**—हां, वह भी जगत् के भीतर है। **स्वामी जी**—जब तुम स्वयं ही कहते हो कि हम और हमारा गुरु, हमारा मत और हमारी पुस्तक, हमारा बोलना और उपदेश, यह सब मिथ्या ही मिथ्या है तो हम तुमको क्या कहें। स्वयं वादी के कहने से ही उसका दावा खारिज है। साक्षी आदि की कुछ आवश्यकता नहीं।'

साधु जी आश्चर्यचकित तथा पराजित होकर वहां से चले गये और फिर कभी इस प्रकार जत्था बांध कर स्वामी जी के सम्मुख शास्त्रार्थ को न आये।

'आर्य सन्मार्ग सन्दर्शिनी सभा' कलकत्ता और श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज

(दिनांक २२ जनवरी, सन् १८८१, रविवार)

२२ जनवरी, सन् १८८१, रविवार को शाम के समय सीनेट हाल, राजधानी कलकत्ता में वहां के बड़े-बड़े रईसों और प्रसिद्ध पंडितों ने एकत्रित होकर यह सभा[1] स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की कार्यवाहियों के विरुद्ध निर्णय देने के अभिप्राय से आयोजित की थी।

समाचारपत्र **'सार सुधानिधि'** में लिखा है कि इस सभा के प्रबन्धक कालिज के प्रिंसिपल पंडित महेशचन्द्र न्यायरत्न थे।[६७] इसी सभा में पंडित तारानाथ तर्कवाचस्पति, जीवानन्द विद्यासागर बी० ए०,[६८] नवद्वीप के पंडित भुवनचन्द्र तर्करत्न, जैसोर के रामधन, कानपुर के पंडित बांकेबिहारी वाजपेयी, पंडित जमनानारायण तिवाड़ी, वृन्दावन के सुदर्शनाचार्य, तन्जौर प्रदेश के कोड़म ताल्लुक के त्रिदोष-नललोरो ग्राम, मद्रास प्रेजीडैन्सी के पंडित रामसुब्रह्मण्य शास्त्री (जिनको राम सोबा शास्त्री भी कहते हैं) आदि तीन सौ ऐसे ही पंडित सुशोभित थे। इनके अतिरिक्त रईसों में वहां के प्रसिद्ध जमींदार आनरेबल

---

१. 'सार सुधानिधि' कलकत्ता २४ व ३१ जनवरी, सन् १८८१, पृष्ठ ४८२-४८६, खंड २ संख्या ४१ तदनुसार १९ माघ, संवत् १९३७ और खंड २, संख्या ४०, १२ माघ, पृष्ठ ४७३, ४७४ तथा 'हिन्दू पैट्रियट' जनवरी, सन् १८८१ व 'इण्डियन डेली न्यूज' खंड १७, संख्या १५२, २५ जनवरी, सन् १८८१ व 'इंगलिश मैन' खंड ४२, संख्या २२, २६ जनवरी, सन् १८८१ व 'बिहारशास्त्र' २७ जनवरी, सन् १८८१, खंड ४, संख्या ४ व 'दिल्ली गजट' खंड ११, संख्या ४२, १९ फरवरी, सन् १८८१ व 'आर्यदर्पण' खंड ३, पृष्ठ २५३-२६६।

महाराजा जितेन्द्रमोहन ठाकुर,[६९] सी० एस० आई०, महाराजा कमलकृष्ण बहादुर, राजा सुरेन्द्र मोहन ठाकुर,[७०] सी० एस० आई०, राजा राजेन्द्रलाल मलिक, बाबू जयकृष्ण मुखोपाध्याय, कुमार देवेन्द्र मलिक, बाबू चारुचन्द्र मलिक, आनरेबल बाबू कृष्णदास पाल; लाला नारायणदास मथुरा निवासी; राय बद्रीदास बहादर निवासी, सेठ जुगलकिशोर जी, सेठ नाहरमल, सेठ हंसराज आदि कलकत्ता निवासी, रईस उपस्थित थे। यद्यपि पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और बाबू राजेन्द्रलाल साहब मित्र एल० एल० डी०-ये दोनों सज्जन इस बड़ी सभा में न पधारे तथापि इन सज्जनों ने सभा की कार्यवाही को हृदय से स्वीकार किया।

'हिन्दू पैट्रियट' (Hindu Patriot) में लिखा है कि गत शनिवार को यहां के सीनेट हाउस में बंगाल के पंडितों की एक सभा हुई थी। लगभग पांच सौ मनुष्य एकत्रित थे जिनमें अनुमानत: तीन सौ पंडित होंगे। इस सभा में सब मनुष्य कुर्सियों पर बैठे थे। मथुरा के सेठ नारायणदास के प्रयत्न से यह सभा वेद के कई विषयों में सन्देह-निवारण करने के लिए की गई थी। मद्रास के एक रामसोबा शास्त्री ने कहा कि पंडित दयानन्द सरस्वती ने वेदों के विषय में जो मत दिया है उस से दक्षिण और दूसरे देश के लोगों को बहुत सन्देह होता है और उस विषय में बंगाल के प्रधान पंडितों की सम्मति लेने के लिए वे कलकत्ता आये हैं।

जिस समय उपर्युक्त समस्त सज्जन सीनेट हाल में एकत्रित हो गये तब पंडित महेशचन्द्र न्यायरत्न ने इस सभा के स्थापित करने का विशेष उद्देश्य वर्णन करके निम्नलिखित प्रश्न उपस्थित किये थे। वे प्रश्न तथा उक्त सभा में उनके निर्णीत समाधान इस प्रकार हैं—

१. ब्राह्मण भाग भी वेद के मन्त्रभाग और संहिता भाग के समान मानने योग्य हैं या नहीं और मनुस्मृति के समान दूसरी स्मृतियां भी मानने योग्य हैं अथवा नहीं हैं। इसके उत्तर में निश्चय हुआ कि दोनों माननीय हैं।

२. विष्णु, शिव, दुर्गा का पूजन, श्राद्धविधि और तीर्थयात्रा शास्त्रोक्त हैं अथवा नहीं? निश्चय हुआ कि—हां, ये सब शास्त्रोक्त हैं।

३. ऋग्वेद संहिता में **'अग्निमीले पुरोहितम्'** आदि-आदि मन्त्र हैं। इसमें आये **'अग्नि'** शब्द से अग्नि अथवा ईश्वर किसको समझना चाहिये? निश्चय हुआ कि 'अग्नि' (आग)।

४. यज्ञ, वायु और जल की शुद्धि के लिए किया जाता है अथवा मुक्ति के लिए? निश्चय हुआ कि मुक्ति के लिए।

संस्कृत और बंगला दोनों भाषाओं में तर्क-वितर्क होता रहा। प्रश्नों के उत्तर सब लिख लिये गये थे और उन पर सब पंडितों की सही (हस्ताक्षर) हुई थी। पण्डित लोंगों को बधाई भी मिली थी। ('हिन्दू पैट्रियट' से) **'भारत मित्र'** २७ जनवरी, सन् १८८१।

अब हम समस्त उत्तर और प्रश्न उनके उन प्रत्युत्तरों सहित, जो आर्यसमाज और स्वामी दयानन्द जी की ओर से दिये गये, पाठकों की भेंट करते हैं और इसी में राजा शिवप्रसाद के आक्षेपों का खंडन भी विद्यमान हैं।

प्रथम प्रश्न—पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न जी ने प्रथम प्रश्न यह किया कि वेद का संहिता भाग जैसा (प्रामाणिक) माना जाता है, ब्राह्मणभाग भी वैसा ही (प्रामाणिक) मानने के योग्य है या नहीं? मनुस्मृति धर्मशास्त्र के समान और स्मृतियां भी स्वीकार करने के योग्य हैं या नहीं?

उत्तर—इसका उत्तर पंडित राम सुब्रह्मण्य शास्त्री ने यह दिया कि यजुर्वेद संहिता में लिखा है—**"यत्किंचिन्मनुरब्रवीत्तद्[1] भेषजं भेषजतायाः"** अर्थात् जो कुछ मनु ने कहा सब स्वीकार करने के योग्य है। इस वेद के वचन से समस्त मनुस्मृति स्वीकार करने के योग्य है और यदि मनुस्मृति का (केवल) कोई एक (ही) भाग (प्रामाणिक) माना जाये तो उस मन्त्र में, जो 'यत् किंचित्' शब्द आया है जिसका अर्थ 'जो कुछ भी' है; वह व्यर्थ हो जाता है; इसलिए समस्त मनुस्मृति को (प्रामाणिक) मानना योग्य है। यदि मनुस्मृति को स्वीकार न किया जावे तो वह वेद भी कि जिसमें मनुस्मृति का मानना एक आवश्यक बात लिखी है—मानने के योग्य नहीं रहता। इसलिए वेद संहिता को (प्रामाणिक) मानने वाले के मत में मनुस्मृति को (प्रामाणिक) न मानना संहिता के मत से विपरीत ठहरता है। दयानन्द सरस्वती ने भी मनु को (प्रामाणिक) मान कर ही अपनी पुस्तक **'सत्यार्थप्रकाश'** के पृष्ठ में ३ में ये शब्द लिखे हैं—**"प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि"** इत्यादि। इसलिए स्वामी जी का मनुस्मृति को मानना स्पष्टतया प्रकट है।

अब देखिये मनुस्मृति के अध्याय ६ में लिखा है कि—

एताश्चान्याश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन्। विविधाश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धये श्रुतीः ॥[७१]

इस श्लोक के अनुसार, ब्राह्मण भाग के अतिरिक्त उपनिषद् भाग का भी, वेद के समान (प्रामाणिक) होना और स्वीकार किया जाना सिद्ध है। यजुर्वेद आरण्यक के प्रथम अध्याय के दूसरे भाग में लिखा है कि—**"स्मृतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं चतुष्टयम् एतैरादित्यमण्डलं सर्वैरेव विधास्यते।"** इस वचन के अनुसार श्रुति के समान सब स्मृतियां भी (प्रामाणिक) मानने योग्य सिद्ध होती हैं क्योंकि **'विधास्यते'** शब्द के अर्थ **'प्रमीयते'** के हैं अर्थात् जिससे कि ठीक-ठीक ज्ञान उत्पन्न हो और यही अर्थ भाष्यकार ने भी लिखे हैं और पंडित तारानाथ वाचस्पति ने भी ऐसा ही लिखा है—**'वेदोखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।'**[७२] अर्थात् वेद धर्म की जड़ हैं और स्मृति भी वैसी ही है। मनु के इस वचन के अनुसार भी सब स्मृतियां मानने योग्य सिद्ध होती हैं। इसी प्रकार बहुत-सी युक्तियों से यह बात सिद्ध होती है कि संहिता के समान ब्राह्मण भाग और मनुस्मृति के समान विष्णु, याज्ञवल्क्य आदि समस्त स्मृतियां मानने के योग्य हैं और यही सब पंडितों की इकट्ठी सम्मति है।

आर्यसमाज की ओर से प्रत्युत्तर[७३]—प्रथम हमारी अन्वेषिणी सभा में यह प्रमाण उपस्थित हुआ—"यत्किंचिन्मनुरब्रवीत्तद् भेषजं भेषजतायाः"[७४] अर्थात् जो कुछ मनु ने कहा सब स्वीकार करने के योग्य है। यद्यपि जो बात इस वचन से सिद्ध होती है उस पर हमें कोई आक्षेप नहीं है परन्तु जो इसको यजुर्वेद संहिता का वचन बताया गया है, यह बात सर्वथा अशुद्ध है। यह वचन यजुर्वेद संहिता के चालीसों अध्यायों में कहीं नहीं है। कदाचित् यही कारण है कि इसका पता ठिकाना नहीं दिया गया। मनुस्मृति में जो वेदों का बार-बार वर्णन आया है और उनके पढ़ने-पढ़ाने की प्रेरणा की गई है उससे स्पष्ट प्रकट है कि वेद मनु जी के काल से पहले विद्यमान थे। फिर समझ में नहीं आता कि किस विचार और किस अभिप्राय से उक्त वचन यजुर्वेद संहिता का वर्णन किया गया है। वेदों में मनुस्मृति की चर्चा आने की क्या आवश्यकता थी? क्या वेद अपने आप में अधूरे थे कि उनकी पूर्ति मनु जी पर छोड़ी गई थी। आश्चर्य तो यह है कि हमारी 'अन्वेषिणी' सभा में से किसी ने चूं तक नहीं की और पंडित राम सुब्रह्मण्य शास्त्री जी मद्रास का कहना बिना विवाद स्वीकार कर लिया गया। हमारी भोली सभा कदाचित् इस बात से अपरिचित है कि ऐसे मिथ्या कथन से स्वामी दयानन्द सरस्वती के उपदेशों का खंडन नहीं होता प्रत्युत उनको और बल प्राप्त होता है। वास्तव में उक्त वचन सामब्राह्मण का है जिसमें यह जताया है कि कर्मकांड के विषय में जो कुछ मनु ने कहा है वह औषधि की भी औषधि है। भला यदि वह ब्राह्मण ही का

1. वास्तव में यह वचन सामवेदीय ब्राह्मण का है। —अनुवादक

वचन कहा जाता तो इसमें क्या बुराई थी । तर्क का तर्क था और सत्य का सत्य । वास्तव में मनु जी ने जो कुछ कहा है उसको तो हम स्वीकार करते हैं परन्तु जो बातें मनुस्मृति में मनु जी के पश्चात् स्वार्थी लोगों की ओर से मिला दी गई हैं उनको प्रामाणिक मानने में तो निस्सन्देह हमको आपत्ति है । जो व्यक्ति मनुस्मृति को ध्यान से पढ़ेगा उसे विश्वास हो जायेगा कि उसमें ऐसी बातें बहुत पाई जाती हैं । कुछ स्थानों पर तो परस्पर विरोध की सी अवस्था उत्पन्न हो गई है । उनका कुछ वर्णन आगे चलकर किया जायेगा ।

वेद का संहिता भाग जैसा (प्रामाणिक) माना जाता है ब्राह्मणभाग भी वैसा ही मानने के योग्य है या नहीं ? यह प्रश्न अशुद्ध रूप में रखा गया है, इस में एक दार्शनिक भूल है जिससे शास्त्रार्थ का वास्तविक विषय सर्वथा नष्ट हो जाता है अथवा कोई शास्त्रार्थ का विषय निश्चित ही नहीं होता । यदि ब्राह्मण वेद का भाग है तो कोई कारण नहीं कि वह संहिता के समान प्रामाणिक न माना जाये । दोनों पक्षों में विवाद का विषय तो वास्तव में यह है कि जैसे संहिता वेद मानी जाती है वैसे ही ब्राह्मण भी (वेद) मानने के योग्य है या नहीं ? इसलिए अच्छा होता यदि यह प्रश्न इस रूप में रखा जाता कि ब्राह्मणग्रन्थ भी 'संहिता भाग' के समान ही वेद है या नहीं; या जैसी संहिता (स्वत: प्रमाण) मानी जाती है वैसे ही ब्राह्मण (ग्रन्थ भी स्वत: प्रमाण) स्वीकार करने योग्य हैं या नहीं ? यह प्रश्न बड़ा आवश्यक है और इसके विषय में आजकल बहुत कुछ चर्चा हो रही है । इधर तो स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ब्राह्मणों को वेद का भाग नहीं मानते; उधर राजा शिवप्रसाद, सितारे हिन्द ने स्वामी जी के खंडन में एक पुस्तिका[७५] लिख मारी है । हमारे देश के पंडित कुछ और ही गीत गा रहे हैं । कुछ लोग (ऐसे भी हैं जो) न संहिता को मानते हैं और न 'ब्राह्मण-ग्रन्थों' को मानते हैं, यों ही विवादग्रस्त विषय में हस्तक्षेप कर रहे हैं । कुछ ने स्वामी जी की निन्दा करना ही अपना ध्येय बना रखा है कि कदाचित् इसी से परलोक सुधरे । हमारी सम्मति में इस निर्णय से वेदमत के मानने वालों के बहुत से विवाद दूर हो सकते हैं । उचित यह है कि राजा शिवप्रसाद साहब को भी 'आर्य सन्मार्गसन्दर्शिनी' सभा के पंडितों या उस सभा की रईसों की शाखा में सम्मिलित समझा जाये और फिर सबका उत्तर सामूहिक रूप में दिया जाये । राजा शिवप्रसाद जी ने इस बात को सिद्ध करने के लिए ब्राह्मण वेद का भाग हैं, पूर्वमीमांसा के दो सूत्र उपस्थित किये हैं और उनका समर्थन पंडित विशुद्धानन्द जी बनारसी और डाक्टर टीबू साहब[७६] ने किया है । इसलिए आवश्यक है कि इस बात पर विस्तारपूर्वक विचार किया जाये । प्रथम हम इस विचार को उन्हीं सूत्रों से आरम्भ करते हैं । वे सूत्र ये हैं—**तच्चोदकेषु मन्त्राख्या ।**[७७] **शेषे ब्राह्मणशब्दः ।**[७८] इनका अर्थ यह वर्णन किया गया है कि वेद का मन्त्रों से शेष जो भाग है वह ब्राह्मण है । परन्तु खेद है कि राजा साहब ने पहले और पीछे के सूत्र सर्वथा छोड़ दिये हैं; बीच में से दो सूत्र ले लिये हैं । प्रतीत होता है कि उनका प्रकट प्रयोजन एक व्यक्ति का खंडन था, कुछ सत्य की खोज अभीष्ट न थी । यदि पूर्वापर के प्रसंग को देखकर शास्त्रार्थ के रूप में विचार करते तो निस्सन्देह यह एक महत्वपूर्ण बात होती और उससे साधारणरूप से पढ़ने वाले पर भी कुछ वास्तविकता प्रकट हो सकती थी । वास्तव में इन दो सूत्रों से राजा साहब का अभिप्राय सिद्ध नहीं होता क्योंकि इनमें वेद या उसका समानार्थक कोई और शब्द नहीं आया है; यही नहीं, यदि वह अगले पिछले सूत्रों को ध्यान से देखते तो इन दो सूत्रों का प्रमाण देने का कदापि साहस न करते । हम जैमिनि जी की पूर्वमीमांसा के दूसरे अध्याय के प्रथम पाद के ३० से लेकर ३७ सूत्रों तक (और इन्हीं में वे दो सूत्र हैं) नीचे देकर उन की व्याख्या करते हैं जिस से स्पष्ट सिद्ध हो जायेगा कि आपका ब्राह्मण ग्रन्थ वेद का भाग नहीं है । वे सूत्र ये हैं—

विधिमन्त्रयोरैकार्थ्यमैकशब्द्यात् ॥ ३० ॥ अपि वा प्रयोगसामर्थ्यात् मन्त्रोऽभिधानवाची स्यात् ॥ ३१ ॥ तच्चोदकेषु मन्त्राख्या ॥ ३२ ॥ शेषे ब्राह्मणशब्दः ॥ ३३ ॥ अनाम्नातेष्वमन्त्रत्वमाम्नातेषु हि विभागः ॥ ३४ ॥[७९] **तेषामृग्यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था ॥ ३५ ॥**[८०] **गीतिषु सामाख्या ॥ ३६ ॥**[८१] **शेषे यजुः शब्दः ।१ ३७ ॥**[८२]

प्रथम सूत्र (३०) का यह अर्थ है कि विधि (अर्थात् ब्राह्मण) और मन्त्र (अर्थात् संहिता) इन दोनों का एक ही अर्थ है क्योंकि दोनों में एक ही प्रकार के शब्द आते हैं, मानो इन दोनों में कुछ भेद नहीं। यह (प्रश्नात्मक) कथन आक्षेपकर्ता का है ? दूसरे सूत्र (३१) में जैमिनि जी इसका उत्तर देते हैं कि ऐसा नहीं (अर्थात् मन्त्र और विधि एक नहीं) है; अपितु मन्त्र प्रयोग शक्ति से निरपेक्ष की कथा का वर्णन करता है और उससे अगले सूत्र (३२) में मन्त्र की परिभाषा व्याख्या के रूप में लिखी है अर्थात् मन्त्र वह है जो मनुष्य के मन में किसी वस्तु या कार्य का निरपेक्ष ज्ञान उत्पन्न करता है। फिर आगे चौथे सूत्र (३३) शेषे ब्राह्मणशब्दः में 'ब्राह्मण' (ग्रन्थ) की परिभाषा लिखी है और यह पहले सूत्र (३०) के आगे है; इस में विधि शब्द आया है। इन सूत्रों में यद्यपि अब तक वेद का शब्द नहीं आया है परन्तु विषय तथा शब्दों से यह सिद्ध होता है कि चूंकि मन्त्रों अर्थात् संहिता में निरपेक्ष और सृष्टि की दशा का शुद्ध वर्णन है इसलिए संहिता ही वेद है और वेद का अर्थ भी निरपेक्ष ज्ञान है।

विधि का अर्थ ब्राह्मण—शेष रहा विधि शब्द, सो यह ब्राह्मणों पर लागू होता है और उनमें मन्त्रों के अर्थ तथा विधि-निषेध आज्ञाएं और ऐतिहासिक घटनाएं आदि टीका के रूप में लिखी हैं। यह बात उनकी रचना, क्रम और विषयों से प्रकट है। प्रत्युत जब 'ब्राह्मण' शब्द की वास्तविकता पर विचार किया जाता है तो भी वही परिणाम उत्पन्न होता है अर्थात् ब्राह्मण शब्द ब्रह्म का बताने वाला है और ब्रह्म का अर्थ वेद (या परमात्मा आदि) के हैं और जो ब्रह्म अर्थात् वेद को जानता है या जिससे वेद जाना जाता है या जिसमें वेद के सिद्धान्तों की व्याख्या है, उस को ब्राह्मण कहते हैं। वेद के आदि भाष्यकार 'ब्रह्मवादी' कहलाते थे और उन्हीं के नाम पर उनके भाष्यों का नाम ब्राह्मण रखा गया और यह नाम वास्तव में उचित है। इसके अतिरिक्त 'ब्राह्मण' का अर्थ ब्राह्मणों के समूह के भी हैं। पहले यह प्रथा थी कि जब कोई धार्मिक या वैधानिक पुस्तक लिखी जाती थी या कोई विशेष टीका की जाती थी अथवा उसमें कोई सुधार या परिवर्तन किया जाता था तो वह विद्वानों की किसी सभा में उपस्थित करके वादविवाद के पश्चात् स्वीकृत होता था और यह प्रथा अब भी प्रचलित है जैसा कि श्री महाराजा साहब जम्मू व कशमीर ने जो धर्मशास्त्र बनाया है, वह बहुत से पण्डितों की सम्मति लेने के पश्चात् प्रकाशित किया गया है। इसी प्रकार आश्चर्य नहीं कि ब्राह्मण ग्रन्थ भी प्रामाणिक ब्राह्मणों के समूह या सभा में स्वीकृत होकर प्रकाशित किये गये हों और ब्राह्मणों के नाम से प्रसिद्ध हुए हों और प्रकट रूप में यह भी एक कारण है कि वे अब तक प्रामाणिक चले आते हैं और उनका आदर-सम्मान वेदों के समान होता है; यहां तक कि सर्वसाधारण जनता में वे वेद का भाग समझे जाते हैं अन्यथा यह बात अनुमान में नहीं आती कि ब्रह्म (वेद) का एक भाग संहिता और दूसरा भाग ब्राह्मण है। ऐसा विभाजन शाब्दिक और आर्थिक दृष्टि से अनुचित प्रतीत होता है। इसलिए ऐसी अवस्था में ब्राह्मण शब्द के कोश में दिये हुए युक्तियुक्त अर्थों को छोड़ कर जो उसको वेद के भाग पर लागू किया जाता है इसके लिये कोई अत्यन्त दृढ़ कारण होना चाहिये और वह नहीं है।

'आम्नाय' तथा 'विभाग' शब्द की व्याख्या—अब आगे चलिये **'अनाम्नातेष्वमन्त्रत्वमाम्नातेषु हि विभागः'** (सूत्र ३४) अर्थात् जो कुछ वैदिक नहीं वह मन्त्र नहीं; क्योंकि जो कुछ वैदिक है उसमें विभाग है। इस सूत्र में दो शब्द व्याख्यान करने के योग्य हैं **'आम्नातेषु'** जो दूसरे शब्द **'आम्नाय'** से बताया गया है, आम्नाय का अर्थ है वेद। और दूसरा **'विभागः'** जिसका अर्थ विभाजन है। अब यदि सूत्र के प्रथम भाग में जो निषेधार्थक शब्द दो स्थानों पर आया है, उसे निकाल दिया जाये तो शेष यह रह जाता है कि जो कुछ वैदिक है वह मन्त्र है अर्थात् मन्त्र ही वेद है। और यदि इस वाक्य में जो शब्द 'आम्नातेषु' आया है उससे अभिप्राय उन शब्दों से लिया जाये जो यज्ञ कराने वाले ब्राह्मण यज्ञ के समय अवसर के अनुसार बढ़ाते, परिवर्तन करते या निकाल देते हैं तो भी हमारा प्रयोजन नष्ट नहीं होता। दूसरा वाक्य जो युक्ति के रूप में प्रयुक्त हुआ है, स्पष्ट रूप से हमारे अर्थ का समर्थक है। पहले वाक्य में कहा है कि जो कुछ वैदिक नहीं वह मन्त्र नहीं। दूसरे में

इसका कारण वर्णन किया है कि जो कुछ वैदिक है उसमें विभाग है अर्थात् वैदिक ग्रन्थों का क्रम और विभाग नियत और स्वीकरणीय है, उसमें अन्य शब्दों के लिए स्थान नहीं और इस विभाग का विस्तार अगले सूत्रों में लिखा है । यदि आक्षेपकर्ता यह कहे कि इस विभाग से अभिप्राय वेदों के दो भागों अर्थात् मन्त्रभाग और ब्राह्मण भाग से है तो हम पूछते हैं कि सूत्र में ब्राह्मण शब्द या उसका समानार्थक कोई और शब्द कहां है ? अपितु ब्राह्मण आदि के जो शब्द यज्ञ के समय अवसर के अनुसार पढ़े जाते हैं, उनको अवैदिक घोषित किया है । इसके अतिरिक्त यदि इस युक्ति को स्वीकार कर लिया जाये तो इस सूत्र का विषय यहीं समाप्त हो जाता है और इसका अगले सूत्रों के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं रहता प्रत्युत अगले सूत्र व्यर्थ और निरर्थक हो जाते हैं । वास्तविकता यह है कि अगले सूत्र इसी 'विभाग:' अर्थात् विभाजन की व्याख्या करते हैं और **'तेषामृग्यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था'** इसका अर्थ यह है—इनमें से एक ऋग् है जो अर्थों की व्यवस्था के साथ छन्दों की व्यवस्था रखता है (और मन्त्र भी है) । इस सूत्र में जो बहुवचन में सर्वनाम 'तेषां' (उनका) आया है वह 'आम्नातेषु' शब्द की ओर संकेत है जो पहले सूत्र में लुप्त बहुवचन के रूप में प्रयुक्त है ।

इसके अतिरिक्त कोई और शब्द ऐसा नहीं है जिससे सर्वनाम 'तेषां' का सम्बन्ध जोड़ा जा सके । इससे स्पष्ट सिद्ध है कि पहले सूत्र के दूसरे भाग में जो वेदों के विभाग का वर्णन आया है उस से अभिप्राय यही विभाग है जो विवादास्पद सूत्र और अगले सूत्रों में किया गया है और ब्राह्मण शब्द का उससे कुछ सम्बन्ध नहीं । इसके अतिरिक्त ऋग्वेद की जो परिभाषा की गई है, वह किसी प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों पर लागू नहीं होती क्योंकि वे न तो सामूहिक रूप में छन्दोबद्ध हैं और न मन्त्र हैं । अगले सूत्र में सामवेद की परिभाषा यह दी गई है कि **'गीतिषु सामाख्या'** अर्थात् जो उपर्युक्त लक्षण के अतिरिक्त गाया भी जाता है । **'शेषे यजु:शब्द:'** अर्थात् ऋग् और साम के अतिरिक्त यजुर्वेद है । इससे आगे कई सूत्रों तक निगदों पर विचार चला गया है जिनको आक्षेपकर्ता चौथा वेद कहता है । वह विचार हमारे वास्तविक प्रयोजन से सम्बन्ध नहीं रखता इसलिए उसकी उपेक्षा की जाती है । केवल इतना कह देना पर्याप्त है कि उससे भी यही सिद्ध होता है कि इन समस्त सूत्रों में वेदों के स्वरूप पर विचार किया गया है । इसलिए उपर्युक्त वर्णन और वचनों की शैली तथा स्वयं ब्राह्मण ग्रन्थों के विषयों से स्पष्ट निश्चित होता है कि ब्राह्मण वेद नहीं प्रत्युत संहिता ही वेद है । यद्यपि इस विषय में असंख्य प्रमाण विद्यमान हैं परन्तु ढेर में से एक मुट्ठी नमूना अर्थात् जैमिनि जी के प्रमाणों ही पर संतोष किया जाता है । आवश्यकतानुसार और प्रमाण फिर उपस्थित किये जायेंगे । इन सूत्रों का प्रमाण विशेषतया इसलिए दिया गया है कि राजा शिवप्रसाद साहब सितारे हिन्द ने, जो इस वादविवाद के मानो अगुआ हुए हैं, इन्हीं में से दो सूत्रों पर अपने तर्क को आश्रित रखा था और उनके लेख पर बहुत से अपरिचित लोग अब तक गर्व कर रहे हैं । अभी कुछ दिन पहले एक पौराणिक पंडित चतुर्भुज नामक ने मैडेम ब्लैवेट्स्की की **'थियोसोफिस्ट'** पत्रिका में एक विज्ञापन छपवाया है जिसमें आपने राजा शिवप्रसाद जी के लेख का प्रमाण देते हुए स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के वेदभाष्य को मोल लेने का निषेध किया है । वाह ! इस महात्मा को क्या अच्छी सूझी ! धन्य है ! धन्य है ! आपने तो वेदों को छुपाते-छुपाते वह अवस्था उत्पन्न कर दी कि ईश्वर की शरण ! और जब दूसरे व्यक्ति ने उनके प्रकाशन पर कमर बांधी तो यह विरोध ! इस प्रकार का विज्ञापन भी आजतक किसी पत्रिका या समाचारपत्र में छपा नहीं देखा ।

अन्य प्रमाण—अन्त में पूर्वमीमांसा के प्रथम अध्याय के दूसरे पाद के ३१ से लेकर ५३ तक सूत्र भी अवलोकनीय हैं । इनमें आक्षेपकर्ता ने वेदों अर्थात् संहिता के विषय में बहुत से आक्षेप किये हैं और जैमिनि जी ने उनके उत्तर दिये हैं । इन आक्षेपों में एक यह भी है कि चूंकि मंत्रों के अर्थ समझ में नहीं आ सकते हैं इसलिए मन्त्र निरर्थक और व्यर्थ हैं । इस का एक उत्तर जैमिनि जी यह देते हैं कि चूंकि ब्राह्मण ग्रन्थ विद्यमान हैं इसलिए इनके अर्थ भलीभांति समझे जा सकते हैं । देखो सूत्र ५३ **"विधि शब्दाश्च"** । सारांश यह कि समस्त आक्षेपों और उत्तरों के क्रम से निश्चित होता है कि संहिता ही

ईश्वरीय ज्ञान की पुस्तक है और ब्राह्मण ग्रन्थ उसका व्याख्यान हैं । हां, यह बात अवश्य है कि ब्राह्मण ग्रन्थ भी प्रामाणिक और आदर के योग्य हैं; परन्तु वहीं तक जहां तक उनका मन्त्रों से विरोध न हो । इसका निर्णय भी जैमिनि जी ने ही कर दिया है—**"मन्त्रतस्तु विरोधे स्यात् प्रयोगरूपसामर्थ्यात् तस्मादुत्पत्तिदेशः सः ।"** (पूर्वमीमांसा अध्याय ५, पाद १, सूत्र १६)

मन्त्र और ब्राह्मण का विरोध हो तो ?—इसका अर्थ यह है कि विरोध की अवस्था में मन्त्र प्रधान है; क्योंकि मन्त्र अपने आप में प्रमाणित है और इसीसे कर्म की पूर्णता होती है; इसलिए वह अर्थात् 'ब्राह्मण' कर्म का प्रकाशित करने वाला है । इससे स्पष्ट प्रकट है कि मन्त्र को ब्राह्मण पर प्रधानता है अर्थात् मन्त्र मुख्य है और ब्राह्मण गौण और मन्त्र बिना कर्मप्रयोगरूप सिद्धि नहीं होती । इसीसे हमारे आचार्यों ने मन्त्र को अन्तरंग और ब्राह्मण को बहिरंग कहा है । मानो कि एक प्राण है और दूसरा शरीर । एक स्वतः प्रमाण है और दूसरा परतः प्रमाण ।

और जो हमारी योग्य सभा ने मनुस्मृति के निम्नलिखित श्लोक का प्रमाण देकर उससे यह सिद्ध करना चाहा है कि ब्राह्मणग्रन्थों का उपनिषद् भाग वेद के समान है—इसमें वह सफल नहीं हुई । **"एताश्चान्याश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन् । विविधाश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धये श्रुतीः"**[८३] इस श्लोक का अर्थ यह है कि वन में रहकर इस दीक्षा तथा अन्य दीक्षा का सेवन करे और आत्मा की शुद्धि तथा मन की पवित्रता के लिए उपनिषदों में जो श्रुति अर्थात् वेद के मन्त्र हैं या जो मन्त्र ब्रह्मविद्या से सम्बन्धित हैं, उनका सेवन करे अर्थात् उनको पढ़े और विचारे । यह श्लोक वानप्रस्थाश्रम के विषय में है, इस में उपनिषद् शब्द विशेषण है और श्रुति शब्द विशेष्य; अर्थात् इसका अर्थ हुआ—"जो श्रुतियां (वेदमन्त्र) उपनिषदों में आती है ।" चूंकि वानप्रस्थाश्रम आत्मा की शुद्धि और मोक्ष के लिए धारण किया जाता है और उपनिषदों में प्रायः इसी उद्देश्य के चुने हुए मन्त्र लिखे हैं; इसलिए मनु जी ने मन्त्रों की ओर विशेष ध्यान दिलाया है ।

मनुस्मृति के समान अन्य स्मृतियां भी माननीय हैं या नहीं ? प्रतिष्ठित सभा में इस विषयक दो वचन प्रमाणरूप से स्वीकार किये गये और उनमें से एक यह है—**"स्मृतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं चतुष्टयं एतैरादित्यमण्डलं सर्वैरेव विधास्यते ।"**

हे मेरी प्रिय सभा ! इसमें कहां लिखा है कि सब स्मृतियां या अमुक-अमुक स्मृति मानने के योग्य हैं । इस वचन में जो स्मृति शब्द आया है उसके अर्थ तो स्मरणशक्ति के हैं और उसको स्मृति पुस्तकों पर कदापि लागू नहीं किया जा सकता । इस वचन के अर्थ स्पष्ट हैं अर्थात् स्मृति, प्रत्यक्ष, ऐतिह्य (इतिहास), अनुमान-इन चारों से आदित्यमण्डल के भेद जाने जाते हैं । यदि यहां 'स्मृति' शब्द का अर्थ समस्त स्मृतियां किया जाये तो यह वचन समस्त स्मृति पुस्तकों से पीछे का बना हुआ ठहरता है परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है, क्यों ?

दूसरा वचन मनुस्मृति का है और वह यह है—**"वेदोखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम् ।"**[८४]

हे मेरी अन्वेषिणी सभा ! मनुस्मृति तो आदि स्मृति गिनी जाती है, भला इसमें पीछे की बनी हुई स्मृतियों का वर्णन क्योंकर आ सकता था ? मनु जी ने तो सार्वजनिक शिक्षा के रूप में एक पूर्ण सिद्धान्त का वर्णन किया है कि वेद सम्पूर्ण धर्म का मूल है और जो वेद को जानते हैं उनका वचन और कर्म जो वेद की शिक्षा पर आधारित है, सत्यधर्म का मूल है । अभिप्राय यह है कि समस्त धर्म का आरम्भ वेद से होता है और जो वेद को जानकर उसकी आज्ञाओं के पालन से अपने मन और मस्तिष्क को उज्ज्वल कर लेते हैं और विद्या तथा आचार का एक जीवित तथा प्रभावशाली उदाहरण हैं, उनकी शिक्षा, वचन और स्वभाव भी धर्म के बोधक हैं । जो लोग स्वयं वेद नहीं जान सकते, वे ऐसे लोगों की शिक्षा और संगति से लाभ उठावें ।

अब हम दो-एक प्रमाण नमूने के रूप में अपनी ओर से उपस्थित करते हैं ताकि वास्तविक स्थिति और भी अधिक प्रकट हो जाये । प्रथम देखो, पूर्वमीमांसा अध्याय पहला, पाद ३, सूत्र ३—**"विरोधे त्वनपेक्ष्यं स्यादसति ह्यनुमानम्"** । इस का अर्थ यह है कि श्रुति के विरुद्ध जो स्मृति हो, वह त्याग करने योग्य है और जो अनुकूल हो वह मानी जा सकती है । वास्तव में समस्त स्मृतियों को पूरा-पूरा मानने का कोई मनुष्य दावा नहीं कर सकता क्योंकि इनमें इतने विरोध पाये जाते जाते हैं कि उनका समाधान कठिन है । ऐसी अवस्था में यही हो सकता है कि या तो वे पूर्णतया अस्वीकृत किये जायें या जैमिनि जी के इस व्यापक सिद्धान्त पर आचरण किया जाये कि जो कुछ वेद और बुद्धि के अनुकूल पाया जाये वह माननीय और शेष अमाननीय ठहराया जावे ।

फिर देखो मनु जी क्या कहते हैं—

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः ।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः ॥
उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित् ।
तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च ॥ (अ॰ १२, श्लोक ९५, ९६)

इनका अर्थ यह है कि जो स्मृतियां वेद के विरुद्ध हैं और जो-जो नवीन और नास्तिक मत हैं वे सब निकम्मे और तमोगुण से भरे हैं क्योंकि वेद से बाहर जो वचन हैं, वह मनुष्य का बनाया हुआ और नाशवान् है और इसलिए प्रमाणित और मानने योग्य नहीं हो सकता । इससे प्रकट है कि सभी स्मृतियां पूर्णतया माननीय नहीं हो सकतीं । हां, इनका जो वचन वेद पर आधारित हो और जो बुद्धि तथा विवेक के अनुकूल हो, उसका अस्वीकार नहीं किया जा सकता। जैसे—**"श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते । तत्र श्रौतं प्रमाणन्तु तयोर्द्वैधे स्मृतिर्वरा ।" अर्थ**—जहां वेद, स्मृति और पुराण इन तीनों में विरोध हो वहां वेद ही प्रमाण माना जाता है और स्मृति और पुराण के विरोध की अवस्था में स्मृति को विशेषता है ।

दूसरा प्रश्न—पंडित महेशचन्द्र न्यायरत्न ने दूसरा प्रश्न यह किया कि शिव, विष्णु, दुर्गा आदि देवताओं की मूर्तियों की पूजा और मरने के पश्चात् पितरों का श्राद्ध आदि और गंगा तथा कुरुक्षेत्र आदि तीर्थों में तथा क्षेत्रों में स्नान और वास, शास्त्र के अनुसार उचित हैं या नहीं ।

उत्तर—इसका पं. राम सुब्रह्मण्य शास्त्री ने यह उत्तर दिया कि ये सब शास्त्रानुसार वैध हैं । इसकी सिद्धि में ऋग्वेद में यह लिखा है—तव श्रियै मार्ज्जयन्ति रुद्र यत्ते जनिं चारुचित्रम् । इसके अनुसार शिवलिंग की मूर्ति की पूजा स्थापना आदि से पूजन का फल होता है । इसका अर्थ यह है—"हे रुद्र ! यत् यस्मात् तव जनिं जन्म चारु मनोज्ञं चित्रं च कर्माधीनत्वेन जीवजनिविलक्षणं तस्मात् तव त्वत्तः श्रियै ऐश्वर्यप्राप्तये लिंगरूपं त्वां मरुतो देवाः मार्ज्जयन्ति गंगादितीर्थेऽभिषेचयंतीत्यर्थः । अभिषेचनमस्य लिंगादिरूपप्रतिमायामेव सम्भवात् लिंगस्य प्रतिसिद्धिः ।"

अर्थात् हे रुद्र ! जब आपका जन्म आपकी इच्छा पर निर्भर है तब आपका जन्म और जीव के जन्म से विलक्षण प्रकार का है अर्थात् आप कर्मों के वश नहीं; इसलिए देवता अपने कल्याण के लिए आपके लिंग की स्थापना करके उसका पूजन करते हैं । स्थापना करना बिना लिंगादि रूपों के असम्भव है । इसलिए लिंगादि की मूर्ति का पूजना स्वयंसिद्ध हुआ ।

रामतापनी उपनिषद् में भी साफ-साफ लिखा है कि—"अविमुक्ते तव क्षेत्रे सर्वेषां मुक्तिसिद्धये अहं सन्निहितस्तत्र पाषाणप्रतिमादिव । क्षेत्रेऽस्मिन् योऽर्चयेद् भक्त्या मन्त्रेणानेन मां शिवं । ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मोक्षयिष्मामि मा शुचः ।"

अर्थात् रामचन्द्र जी शिव जी से कहते हैं कि हम तुम्हारे क्षेत्र अर्थात् काशी में सबकी मुक्ति के लिए पत्थर की मूर्ति में विद्यमान हैं। जो हमारी पूजा पत्थर की मूर्तियों में करते हैं उनको ब्रह्महत्या आदि पापों से मुक्त कर देते हैं इसमें कुछ सन्देह न समझे। बृहज्जाबाल उपनिषद् के इस वाक्य से भी कि **"शिवलिंगसिसन्ध्यमभ्यर्च्येति।"** शिवलिंग की पूजा स्पष्ट सिद्ध होती है।

मनुस्मृति के दूसरे अध्याय में भी **"नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्याद्देवर्षिपितृतर्पणम्। देवताभ्यर्चनं चैव समिदाधानमेव च॥"**[८५] और **'देवलस्मृति'** में भी लिखा है—**'अस्नात्वा नैव भुञ्जीत ह्यजप्ताग्निमपूज्य च। शालिग्रामं हरेः चिह्नं प्रत्यहं द्विजः॥ भास्करं गणपश्चास्मि शंखश्चैव सरस्वतीम् महालक्ष्मीं महादुर्गां नित्यं विप्राणामर्चयेत्॥ शालिग्रामशिलातीर्थं पिबेद्यो मनुजोत्तमः। तस्य पापानि नश्यन्ति ब्रह्महत्यादिकानि च॥"**

ऋग्वेद के गृह्य परिशिष्ट में लिखा है कि—**"गौरी वा गौरीपतिर्वा श्रियः पतिर्वा स्कन्दो वा विनायको वा ईज्यंते।"**

और **बोधायन सूत्र** में भी लिखा है—**"महादेवं महापुरुषं वार्चयेत्"** इत्यादि।

इसी प्रकार और बहुत-सी विभिन्न पुस्तकों से सिद्ध होता है कि शिव, विष्णु, दुर्गा आदि की पूजा उचित है और पूजा न करने से पाप होते हैं जैसा कि नीचे धर्मशास्त्र का प्रमाण है—**यदि विप्रः सनत्सम्ये देवतार्चनाजादरात्। स याति नरकं घोरं यावदाचन्द्रलाभा। स काशदिविप्रथे प्रायश्चित्तमुदाहृतम्। ब्रह्मकृच्छ्रं चरेदेव दिनैकस्मिन् द्विजोत्तमः। पर्णकृच्छ्रं वर्षत्यागे उदुम्बरम्। शालिग्रामशिला नास्ति यत्र चैवामृतोद्भवा। श्मशानसदृशं गेहं स विप्रः पंक्तिदूषकः॥** ये गौतमस्मृति के श्लोक हैं। इनसे स्पष्ट प्रकट होता है कि जो मूर्तिपूजन न करेगा उसको जबतक कि सूर्य, चन्द्र और तारागण स्थित हैं-तब तक नरक में रहना पड़ेगा। उसका प्रायश्चित्त यह है कि यदि एक दिन पूजन न करे तो **'ब्रह्मकृच्छ्र'** प्रायश्चित्त और यदि एक मास न करे तो **'पर्णकृच्छ्र'** प्राश्यचित्त करे और यदि वर्ष भर न करे तो **'उदुम्बरकृच्छ्र'** प्रायश्चित्त। जिसके घर में शालिग्राम की मूर्ति और शंख नहीं हैं वह घर श्मशान के समान है। इसके अतिरिक्त शास्त्री जी ने और भी बहुत से प्रमाण उपस्थित किये जो स्थान पर्याप्त न होने के कारण छोड़ दिये जाते हैं।

फिर यह कहा कि यदि स्वामी जी रामतापनी और बृहज्जाबाल उपनिषद् को, कि जिनमें पूजन लिखा है, दश उपनिषदों में गणना न किये जाने के कारण स्वीकार न करें तो देखो स्वामी जी ने अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिए अपनी पुस्तक सत्यार्थप्रकाश में कैवल्योपनिषद् का प्रमाण दिया है वह भी दश उपनिषद् से बाहर है। उदाहरणार्थ, सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ ३ में लिखा है—**"स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रस्त शिवस्सोऽक्षरस्स परमः स्वराट्। स इन्द्रस्स कालाग्निस्स चन्द्रमाः इत्यादि।"** यह 'कैवल्योपनिषद्' का वचन है। इसलिए जबकि उन्होंने कैवल्योपनिषद् को, जो दश उपनिषद् से बाहर है स्वीकार कर लिया तो फिर उनको शेष और उपनिषद् भी मानने पड़ेंगे। तो बस रामतापनी और बृहज्जाबाल आदि उपनिषद् सब समान हैं।

और यदि कहो कि श्रुति और स्मृति में तो मूर्तिपूजन का वर्णन है ही नहीं, फिर मूर्तिपूजन क्योंकर हो सकता है? तो यह बात ठीक नहीं है क्योंकि सामवेद के ब्राह्मण के पांचवें अनुवाक के दसवें खंड में साफ-साफ यह लिखा है**"स परन्दिवमन्वावर्तते अथ यदास्यायुक्तानि यानानि प्रवर्तन्ते देवतायतनानि कम्पन्ते दैवतप्रतिमा हसंति रुदंति गायन्तीत्यादि"।**[८६] इनसे देवताओं का मन्दिर और उनमें देवताओं की मूर्ति सिद्ध हुई। परन्तु दयानन्द सरस्वती जी इस वचन के विषय में कहते हैं कि यहां देवताओं के मन्दिर और देवताओं की मूर्ति से अभिप्राय ब्रह्मलोक से है। स्वामी जी के इस कथन से स्पष्ट विदित होता है कि उन्होंने इस श्रुति के अर्थ लगाने में विचार नहीं किया। इस श्रुति में जो शब्द (परन्दिव)

है यदि उसके अर्थ ब्रह्मलोक के लगावें तो **'अन्वेति'** शब्द कि जिसके अर्थ **'देखकर'** है किस प्रकार से उपयुक्त हो सकता है ? क्योंकि जब दोनों शब्द के अर्थ मिलकर ब्रह्मलोक देखकर हवन आदि शान्ति करना हुआ तब यह किस प्रकार हो सकता है क्योंकि हम इस लोक के रहने वाले ब्रह्मलोक को किसी प्रकार नहीं देख सकते । तब हम नहीं जानते कि स्वामी जी इस श्रुति के अर्थ ब्रह्मलोक की प्रतिमा क्योंकर लगाते हैं ? **'परन्दिव'** शब्द के अर्थ ब्रह्मलोक के कदापि नहीं है । इससे भूलोक के रहने वाले वैष्णव आदि से ही अभिप्राय है और यही अर्थ यहां उचित है । देखो सायणाचार्य ने भी अपने भाष्य में यही अर्थ लगाये हैं— **"वक्ष्यमाणाद्भुत वामधिकारी परंदिव उत्कृष्टां वैष्णवीं दिशं अकीर्णं होमार्थं वर्तते प्रवर्तततद्गति ॥"**

इसी खंड में **"खननात् दहनात् इत्यादि भूमिशुद्ध्यतेत्यंत"** इस लेख से पृथिवी का खोदना आदि पाया जाता है । दयानन्द स्वामी जी यह कहते हैं कि इसी अनुवाक के सातवें खंड में **"स पृथिवीम् अन्वावर्तते"** यह लिखा है । इसमें पृथिवी शब्द दिखलाई देता है और इससे पहले पृथिवी शब्द कहीं नहीं पाया जाता; पृथिवी शब्द का प्रयोग यहीं समाप्त हो गया । यह उनका कहना ठीक नहीं क्योंकि दसवें खंड में भी 'भूमि' शब्द आया है और मनुस्मृति में भी लिखा है— **"सीमासंधिषु कार्याणि देवतायतनानि च** ॥ (८ । १८) **संक्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकः । प्रतिकुर्याच्च तत्सर्वं पञ्च दद्याच्छतानि च** ॥" (९ । २८५) इन श्लोकों के अनुसार दो ग्रामों के बीच में एक देवता का मन्दिर बनाना उचित है और जो कोई पत्थर आदि की मूर्ति उसमें न रखे उस पर पांच सौ रुपया जुर्माना होना आवश्यक है । इस बारे में स्वामी दयानन्द जी कहते हैं कि "प्रतिमीयते अनेनेति व्युत्पत्त्या" प्रतिमा शब्द के अर्थ भार-तोलने के हैं अर्थात् भार तोलने के बाटों का नाम 'प्रतिमा' है । स्वामी जी के कहने से स्पष्ट प्रकट है कि उन्होंने मीमांसाशास्त्र नहीं देखा है । देखो पूर्वमीमांसा में रथ के बनाने वाले के बारे में लिखा है, **"वचनाद्रथकारस्य इत्यादिवर्षासु रथकारोऽग्निमादधीतेति ।"** वेद के इस वचन में जो **'रथकार'** शब्द है उस की व्युत्पत्ति इस प्रकार है— **'रथं करोतीति रथकारः ।'** इस प्रकार व्युत्पत्ति करके इसके अर्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य हैं ऐसा नहीं समझना चाहिये क्योंकि ऐसा समझने से उसके केवल यौगिक अर्थ हो जायेंगे । इस शब्द के कोष में दिये हुए अर्थों से एक नीच जाति का व्यक्ति अभिप्रेत है । यदि इसको छोड़कर इनके यौगिक अर्थ अर्थात् 'रथ का बनाने वाला' लिये जावें तो चारों वर्ण के लोगों से अभिप्राय हो जाता है । इसलिए पूर्वमीमांसा के रचयिता जैमिनि ने भी यही निश्चित किया है कि जहां कोष के अर्थ होते हों वहां यौगिक अर्थ न लिये जावें । इसलिए 'प्रतिमा' शब्द के कोष में दिये हुए अर्थ-पत्थर की मूर्ति के अतिरिक्त और कोई यौगिक अर्थ लेना उचित नहीं होगा । कोष के अर्थ को छोड़कर यदि केवल यौगिक अर्थ लें तो— **"अग्निर्नष्टः अग्निरुत्पन्नः इत्यादि"** वाक्यों में यह व्युत्पत्ति करके अग्नि शब्द का विशेष अर्थ-'जलाने वाला' छोड़ कर इन्द्र आदि देवता को भी समझा जायेगा । क्योंकि (यौगिक तो) यही अर्थ हो सकते हैं । इसलिए देवताओं की मूर्ति और उनकी पूजा करना सब श्रुतियों और स्मृतियों के अनुसार उचित है ।

यजुर्वेद संहिता में श्राद्ध के विषय में यह लिखा है कि— **"निवीतम्मनुष्याणां प्राचीनावीतं पितृणाम्"**[1] इससे प्राचीनावीत अर्थात् यज्ञोपवीत को दाहिने कन्धे पर (लटका) करके[2] पितृकर्म करना प्रकट होता है । इसमें जो "पितृणाम्" शब्द बहुवचन में प्रयुक्त हुआ है इससे मरे माता-पिता का श्राद्ध पाया जाता है । जब एक मनुष्य जीवित है तो उस समय उसका केवल एक पिता होता है परन्तु मरने के पश्चात् पिता के समान पितामह, प्रपितामह को भी शास्त्र के अनुसार **'पितृणाम्'** (शब्द से वाच्य) कह सकते हैं । इसलिए इस वेदवचन में जो 'पितृणाम्' शब्द आया है उससे मृतकश्राद्ध आदि ही अभिप्रेत है, देखो— **"मृताहं समतिक्रम्य चाण्डालः कोटिजन्मसु"** स्मृतियों में भी इसका यह अर्थ है कि जो मरे हुए लोगों का मरने के दिन श्राद्ध आदि नहीं करता है वह सहस्रों पीढ़ियों तक चाण्डाल की योनि में उत्पन्न होता है । ऊपर लिखा हुआ वचन

---

1. 'जैमिनीयन्यायमाला विस्तार' में दिया हुआ है ।—सम्पा०

2. देखो, मनुस्मृति अ० २२, श्लो० ६३ ।—सम्पा०

केवल स्मृति का है। 'मनु' भी लिखते हैं—"**पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य विप्रश्चेन्दुक्षयेऽग्निमान्। पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यान्मासानुमासिकम्**॥" (मनु० ३-१२२) अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति को अमावस्या के दिन अपने पिता आदि के श्राद्ध का करना अत्यन्त आवश्यक है। और '**न निवर्तयति यः श्राद्धं प्रमीतपितृको द्विजः। इन्दुक्षये मासि मासि प्रायश्चित्ती भवेत् सः**॥' जो नहीं करता वह ऐतरेय स्मृति के इस वचन के अनुसार पापी होता है। इसलिए यह बात स्पष्ट रूप से निश्चित हो गई कि मरे हुओं का श्राद्ध-तर्पण, श्रुति और स्मृति दोनों के अनुसार विहित है। ऋग्वेद संहिता १०-७५-५ में तीर्थ के विषय में लिखा है, "**सितासिते सरितौ यत्र संगते तत्र प्लुतासो दिवमुत्पतंति। ये वै तन्वा विसृजन्ति धीराः ते जनासोऽमृतत्वं भजन्ते।** "**यत्र गंगा च यमुना च यत्र प्राची सरस्वती, इमम्मे गंगे यमुने इत्यादि।**" इस में 'गंगे यमुने' आदि शब्दों से प्रकट होता है कि गंगा आदि तीर्थस्नान करने से स्वर्ग होना और पाप से छूटना अभिप्रेत है। मनुस्मृति में भी लिखा है कि—"**यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैष हृदि स्थितः॥ तेन चेदविवादस्ते मा गंगां मा कुरून्गमः।**"[८७] इसका यह अर्थ है कि झूठ बोलने के पाप से छूटने के लिए गंगास्नान और कुरुक्षेत्र वास करना चाहिये। तीर्थ-क्षेत्रों के बारे में और भी बहुत से प्रमाण हैं। इसलिए गंगा आदि का स्नान और कुरुक्षेत्र आदि का वास श्रुति और स्मृति दोनों से सिद्ध है।

इसके पश्चात् श्री तारानाथ तर्क वाचस्पति ने मूर्ति-पूजन को उपनिषदों के अनुसार सिद्ध करना आरम्भ किया। उनका वर्णन बहुत बढ़ने लगा और इधर सभ्य समय भी होता जा रहा था; इस कारण से महेशचन्द्र न्यायरत्न ने तारानाथ जी को एक पर्चा लिखकर दिया कि यद्यपि आप इस बारे में कई दिन तक बोल सकते हैं परन्तु आज समय बहुत कम और काम बहुत अधिक है। यद्यपि तारानाथ जी को बहुत कुछ कहना था परन्तु महेशचन्द्र जी के कहने से अपना भाषण समाप्त करके कहने लगे कि अभी मुझको इस बारे में बहुत कुछ कहना शेष है।

आर्यसमाज की ओर से प्रत्युत्तर

ब्राह्मणों और स्मृतियों पर विचार के पश्चात् अब हम दूसरे प्रश्न की ओर आकृष्ट होते हैं कि क्या शिव, विष्णु दुर्गा आदि देवताओं की मूर्ति तथा शिवलिंग की पूजा और मरने के पश्चात् पितरों का श्राद्ध आदि उचित है या नहीं? गंगा और कुरुक्षेत्र आदि तीर्थों के स्नान और वास से पाप की निवृत्ति और मुक्ति होती है या नहीं?

उत्तर—यद्यपि इस बारे में पहले भी पर्याप्त तर्क वितर्क हो चुके हैं और कोई भी व्यक्ति उपर्युक्त युक्तियों या शास्त्र के प्रमाणों से किसी ऐसे दावे को सिद्ध नहीं कर सका परन्तु चूंकि अब इन बातों का विचार एक ऐसी विद्वानों की सभा में हुआ है, जिसका उदाहरण भारत के इतिहास में पाया नही जाता। इसलिए उचित नहीं कि इस सभा के निर्णय की समीक्षा किये बिना यों ही छोड़ दिया जाये। विचार आरम्भ करने से पहले इस बात का वर्णन करना आवश्यक है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती, जिनके वचनों के लिए इस सभा का आयोजन हुआ था, इस सम्बन्ध में क्या कहते हैं। विदित रहे कि वे अपने तर्क-वितर्क का आधार वेद आदि सत्यशास्त्रों पर रखते हैं और उन सत्यशास्त्रों को हमारी विद्वानों की सभा भी स्वीकार करने योग्य समझती है और स्वामी जी के लेखों में स्थान-स्थान पर उनका प्रमाण पाया जाता है। स्वामी जी कहते हैं कि सत्यशास्त्रों में मूर्तिपूजन आदि नहीं लिखा। ऐसी अवस्था में उचित तो यह था कि उन्हीं शास्त्रों के प्रमाणों से स्वामी जी के वचनों का खंडन किया जाता परन्तु इसके स्थान पर इधर-उधर के प्रमाण दिये गये हैं और यदि कहीं किसी सत्यशास्त्र का प्रमाण भी दिया है तो उससे कुछ सिद्ध नहीं होता। अब हम उत्तर आरम्भ करते हैं।

शिवलिंग और मूर्तिपूजन—"तव श्रियै मरुतो मार्ज्जयन्ति रुद्र यत्ते जनिं चारुचित्रम्"—इस वचन से हमारी श्रेष्ठ-मस्तिष्क (!) सभा शिवलिंग की पूजा सिद्ध करती है और इसका अर्थ भी प्रमाण के रूप में उपस्थित किया गया है

परन्तु हमारी समझ में नहीं आता कि (इस वचन से) शिवलिंग की पूजा कहां से निकलती है और उसके सिद्ध करने के लिए सीध साधे अर्थ को छोड़कर क्यों इतना कष्ट उठाया गया है । शब्दों के अर्थ तो स्पष्ट रूप से यह हैं कि 'हे रुद्र ! तेरी सृष्टि अथवा प्रकाश विचित्र, चित्ताकर्षक और आश्चर्यजनक है; इसलिए देवता लोग तेरी महिमा के लिए उसको शुद्ध कर रहे हैं (अर्थात् तेरी महत्ता को प्रकट कर रहे हैं या तेरी स्तुति और प्रशंसा उच्च स्वर से कर रहे हैं)' । भला ! अब बताइये कि आपके भाष्यकार ने **'मार्जयन्ति'** शब्द पर जो टिप्पणियां की हैं उनको कौन मान सकता है ? क्या देवताओं का कल्याण इसी पर निर्भर है कि परमात्मा की सच्ची पूजा छोड़कर लिंग आदि स्थापन करे, उसका पूजन गंगा आदि तीर्थों के पानी से करें ? वास्तव में उक्त 'मृजु' या 'मार्ज' शब्द **'मृज्'** धातु से बना है जिसके अर्थ हैं पवित्र करना, शब्द करना, सजाना । देवता और लिंग की पूजा भला (इन दोनों का सम्बन्ध) कब सम्भव है ? यदि हमारे अर्थ आपकी दृष्टि में ठीक न हों तो आप को कोई और अच्छे अर्थ खोजने पड़ेंगे या इस प्रमाण का ही त्याग करना पड़ेगा क्योंकि आजकल के देवता आपके शिवलिङ्ग की पूजा से घृणा करने लगे हैं और प्राचीन ऋषि-मुनियों के ढंग पर केवल सर्वशक्तिमान् परमात्मा ही की पूजा को अपनी मुक्ति का कारण समझते हैं । हां, यदि शिवलिंग से कल्याण या कल्याणस्वरूप परमात्मा का अनुमान कराने वाला, गायत्री आदि मन्त्र या कोई और साधन जो वेद और बुद्धि के अनुकूल हो, लिया जाये तो उसका सेवन तीन काल क्या यदि दिन भर भी करो तो कुछ हानि नहीं । परन्तु यह नहीं कि जिस वस्तु का नाम लेने से शिष्ट जनों को घृणा होती हो, उसका चिह्न बनाकर व्यापार (लेन-देन) के लिए उसकी पूजा की जाये ।

मूर्तिपूजा के बारे में अप्रामाणिक उपनिषदों और स्मृतियों आदि के जो प्रमाण दिये गये हैं उनके विषय मे तर्क करना व्यर्थ है क्योंकि जब हम इन मूल पुस्तकों को ही प्रामाणिक नहीं मानते तो उनके प्रमाणों को कब मान सकते हैं ! इसलिए ऐसे प्रमाणों का उपस्थित करना ही व्यर्थ है । इसके अतिरिक्त उन पुस्तकों में मूर्तिपूजा आदि के खंडन के भी बहुत प्रमाण पाये जाते हैं जिनका वर्णन आगे किया जायेगा और फिर हम जैमिनि जी और मनु जी के वचनों से ऊपर सिद्ध कर आये हैं कि स्मृतियों आदि के जो वचन वेद के अनुकूल नहीं, वे स्वीकार करने योग्य नहीं । जिस देश में, जिस घर में विद्या का प्रकाश नहीं है वह, निस्सन्देह, दीपकरहित घर के समान है । जब शरीर से आत्मा निकल जाती है तो वह जलाने या गाड़ने के योग्य हो जाता है । जिस आत्मा में परमात्मा का प्रेम और सत्य का प्रकाश प्रकाशित नहीं, वह अविद्या, अन्धकार और दु:ख में फंसी रहती है । परन्तु इस बात को कभी श्रेष्ठ बुद्धि स्वीकार नहीं कर सकती कि जिस घर में शालिग्राम या शिवलिंग नहीं वह श्मशान के समान है । हमार विदुषी (?) सभा यह भी कहती है कि स्वामी जी ने अपनी पुस्तक सत्यार्थप्रकाश में अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिए **'कैवल्योपनिषद्'** का प्रमाण दिया है और यह दश उपनिषदों से बाहर है; इसलिए जब उन्होंने कैवल्योपनिषद् को स्वीकार कर लिया तो फिर उनको शेष और उपनिषदें भी माननी पड़ेंगी । यह एक विचित्र प्रकार का तर्क है ! भला, यदि हम पुराणों से मूर्तिपूजा खंडन में कोई प्रमाण दें, जैसा कि देंगे ही, तो क्या इससे यह आवश्यक होता है कि हमने सब पुराणों को मान लिया ? किसी विशेष बात के समर्थन या उसकी सिद्धि के लिए किसी पुस्तक के वचन-विशेष का प्रमाण देने से यह परिणाम कदापि नहीं निकला कि प्रमाण देने वाले ने, उस पुस्तक को और अन्य बीसियों को सामूहिक रूप से प्रामाणिक मान लिया है ।

"गौरी वा गौरीपतिर्वा श्रियः पतिर्वा स्कन्दो वा विनायको वा न्यस्ता समस्ता वा ईज्यन्ते ।" यह वचन भी (यदि इसके वही अर्थ लिये जो हमारी इस अत्यन्त समझदार सभा के मस्तिष्क में है) वैसा ही वेद की शिक्षा के विरुद्ध है जैसे कि अन्य अप्रमाणिक प्रमाण हैं—जिन पर निर्भर किया गया है । हमारी समझ में नहीं आता कि इतने बड़े ऋग्वेद को छोड़कर परिशिष्टों और टिप्पणियों की ओर क्यों ध्यान दिया गया है । यदि ऋग्वेद, जिसका पाठ (जिसकी मन्त्र संख्या) दस हजार के लगभग है[८८] और जो सृष्टि की वास्तविकता और उसके प्रबन्ध और उसकी क्रमिकता के सिद्धान्त की एक प्रतिलिपि है,

आपके दावे का समर्थन नहीं करता तो इधर-उधर भाग दौड़ करने से क्या कुछ मिल सकता है । जो बोधायन सूत्र का प्रमाण दिया गया है, उसके शब्दों से तो महादेव महापुरुष अर्थात् परमात्मा की पूजा प्रकट होती है; इसमें शिवलिंग आदि की कोई चर्चा नहीं ।

"स परन्दिवमन्वावर्तते अथ यदास्यायुक्तानि यानानि प्रवर्तन्ते देवतायतनानि कम्पन्ते दैवतप्रतिमा हसन्ति रुदन्ति गायन्तीत्यादि ।" इस वचन से मूर्तिपूजन कदापि सिद्ध नही होता और न इसमें पूजा की कुछ चर्चा है । हमको ज्ञात नहीं कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी इसका क्या अर्थ करते हैं परन्तु यदि आक्षेपकर्ता के कथनानुसार वह इस वचन का सम्बन्ध ब्रह्मलोक से जोड़ते हैं (यद्यपि उनकी रचनाओं और लेखों में ऐसा नहीं देखा गया) तो कुछ पाप नहीं करते । वचन की भाषा को आगे पढ़ने से प्रकट होता है कि वे सत्य पर हैं । यदि आपको यह अर्थ पसन्द नहीं तो भला कहिये कि आप और आप के भाष्यकार ने 'परन्दिव' शब्द के जो अर्थ इस भूलोक के रहने वाले वैष्णव आदि लिखे हैं वे वे क्योंकर स्वीकरणीय हो सकते हैं ? जब कोष में या व्युत्पत्ति द्वारा भी इस शब्द के ये अर्थ ही नहीं हैं; तो समझ में नहीं आता कि वैष्णव आदि मत से इसका सम्बन्ध क्यों जोड़ा गया है ? यदि हमारी प्यारी सभा इच्छा से या अनिच्छा से इन्हीं अर्थों पर डटी रहना चाहती है तो और मत वालों को अर्थात् शिव, शक्ति, गणपति, भैरव आदि के उपासकों को और उस सत्यवक्ता कबीर और ईश्वरभक्त नानक के अनुयायियों को भी यह अधिकार प्राप्त हो जाता है कि वे उक्त शब्द का सम्बन्ध अपने-अपने मत से जोड़ें क्योंकि सब अपने-अपने मत को उत्तम और सर्वोपरि जानते हैं । वास्तव में 'परंदिव' शब्द के यहां वे अर्थ उपयुक्त नहीं हैं जो हमारी विदुषी (?) सभा स्थापित करना चाहती है । अब रही यह बात कि इस वचन में देवताओं के आयतन और देवताओं की मूर्ति का वर्णन है, सो विदित रहे कि इन शब्दों से देवता की मूर्ति का पूजन सिद्ध नहीं होता । यदि लेखक को मूर्तिपूजन को वैध सिद्ध करना अभीष्ट था तो उसको इस वचन में दो-एक शब्द और बढ़ाकर अपने उद्देश्य को प्रकट कर देने में क्या बाधा थी ? इस प्रकार के शब्द तो उन लोगों की पुस्तकों में भी पाये जाते हैं जो मूर्तिपूजन को महापाप और परमात्मा का अपमान समझते हैं जैसे जबरईल फरिश्ता और उसका मकान बेरी[1] का वृक्ष आदि-आदि । इसके विषय में कुछ आगे भी लिखा जायेगा ।

'खननात् दहनात् इत्यादि भूमिः शुद्ध्यतेत्यंतम्' इस वचन की भी वही दशा है जो ऊपर अन्य वचनों की वर्णन की है; इसकी व्याख्या की कुछ भी आवश्यकता नहीं । पृथिवी आदि खोदना कुछ मूर्तिपूजन का प्रमाण नहीं हो सकता ।

अब रहा मनुस्मृति का प्रमाण—**'सीमासंधिषु कार्याणि देवतायतनानि च । संक्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकः । प्रतिकुर्याच्च तत्सर्वं पञ्च दद्याच्छतानि च ॥'** इन तीनों पंक्तियों में से पहली पंक्ति तो मनुस्मृति के आठवें अध्याय के श्लोक संख्या २४८ की दूसरी पंक्ति है; जिसका अर्थ यह है कि (ग्राम की) सीमा के मिलने के स्थान पर देवस्थान बनाना चाहिए । यहां कई श्लोकों में सीमाओं पर चिह्न लगाना और सीमाओं के झगड़ों का निर्णय तथा सीमाओं के पहचानने के चिह्नों का वर्णन है । इसलिए उक्त श्लोक की पहली पंक्ति में[2] तालाब, कूप, बावली और झरने के समानार्थक (संस्कृत) शब्द विद्यमान हैं जो उसी अभिप्राय से प्रयुक्त हुए हैं, जिससे देवस्थान हुआ है । वास्तव में यहां देवस्थान से अभिप्राय किसी पवित्र गृह जैसे पाठशाला या यज्ञस्थान या धर्मशाला आदि से है; सीमासन्धियों पर ऐसे स्थान होंगे तो लोग सीमाभंग करने से डरते रहेंगे । फिर इस शब्द को मूर्तिपूजन का प्रमाण मानना केवल मात्र महर्षि मनु का अपमान करना है ! ईश्वर

---

1. मुसलमानों का ऐसा विश्वास है कि सातवें आसमान पर एक बेरी का वृक्ष है उससे आगे जबरईल फरिश्ता नहीं जा सकता । —अनुवादक ।

2. तडागान्युदपानानि वाप्यः प्रस्रवणानि च । (मनु० ८ । २४८)—सम्पा०

की शरण, कहां सीभा का बांधना और कहां मूर्तिपूजन ? अन्तिम दो पंक्तियां—मनुस्मृति के नवें अध्याय के श्लोक संख्या २८५ की हैं, अर्थ यह है कि जो व्यक्ति पुल, ध्वजा और पानी के ऊपर आने-जाने के साधनों और बाटों या नापने के साधनों की हानि करे वह पांच सौ रुपया जुर्माना दे और उस हानि को पूरा करे । इसमें विचारणीय शब्द केवल 'प्रतिमा' शब्द है । औचित्य तो यह चाहता है कि इसके अर्थ बाट आदि के हों (साथ[1] ही के अगले दो श्लोकों में इसी प्रकार से शुद्ध वस्तुओं में मिलावट करने और उनके बिगाड़ने के लिए और समान मूल्य देने वालों में से एक को अच्छी और दूसरे को बुरी वस्तु देने तथा मूल्य में छल करने आदि करने के लिए दंड निर्धारित किया गया है) परन्तु हमारी प्यारी सभा यह कहती है कि इस शब्द के प्रसिद्ध अर्थ मूर्ति के हैं और प्रसिद्ध अर्थ छोड़कर यौगिक अर्थ लेने अनुचित हैं । इस कथन के समर्थन में जैमिनि मुनि का एक वचन भी उपस्थित किया गया है । यह युक्ति प्रकटतया कुछ मूल्य रखती है परन्तु जो लोग किसी भाषा के साहित्य से परिचित हैं वे इसको पूर्ण (अटल) नियम के रूप में स्वीकार नहीं कर सकते । बहुत स्थान ऐसे होते हैं जहां प्रसिद्ध अर्थ को छोड़कर यौगिक अर्थ ही लिये जाते हैं । हां, जहां प्रसिद्ध अर्थों से काम निकलता है वहां इच्छा अथवा अनिच्छा से यौगिक अर्थों का लेना व्यर्थ है । यही अभिप्राय जैमिनि जी का है; अन्यथा यह वचन समस्त व्यावहारिक और यौगिक अर्थों का मिटाने वाला ठहरता है । हमारी भोली सभा ने जो 'रथकार' आदि शब्द का उदाहरण देकर अपना मीमांसाज्ञान प्रकट किया है उससे कोई दृढ़ निष्कर्ष नहीं निकलता । यद्यपि 'रथकार' आदि शब्दों के भी यौगिक अर्थ लिये जा सकते हैं परन्तु 'प्रतिमा' शब्द के यौगिक अर्थ लेने से यह आवश्यक नहीं हो जाता कि इन शब्दों या सारी भाषा के शब्दों के अवश्य यौगिक अर्थ ही लिये जायें । प्रत्येक स्थान पर अवसर और प्रकरण को देखा जाता है । विचारणीय वचन में औचित्य और आगामी प्रसंग पर विचार करने से स्पष्ट होता है कि यहां 'प्रतिमा' शब्द का अर्थ मूर्ति नहीं है । यदि इसका अर्थ 'मूर्ति' ही लिया जाये तो भी मूर्तिपूजन का औचित्य क्योंकर सिद्ध होता है ? 'मूर्ति' शब्द आ जाने से ही यह नहीं सिद्ध होता कि यहां मूर्तिपूजन का विधान किया गया है । इसके विपरीत इस शब्द से तो उस समय की एक अद्भुत अवस्था का ज्ञान होता है और उससे प्राचीन आर्यों की महत्ता, उनके विचारों की व्यापकना और समानता की भावना सिद्ध होती है । वह यह कि धर्मात्मा, न्यायप्रिय राजा और शासक इस बात को उचित नहीं समझते थे कि प्रजा या प्रजा के किसी सम्प्रदाय में अपने धार्मिक विश्वासों को डंडे के बल पर फैलायें प्रत्युत उनका सदा यही दृष्टिकोण रहता था कि प्रत्येक जाति और प्रत्येक सम्प्रदाय धार्मिक बातों में अपने-अपने धार्मिक विश्वास के अनुसार आचरण करे और धार्मिक कृत्यों को स्वतन्त्रता और शान्ति के साथ पूरा कर सके और कोई किसी को बलात् रोकने वाला न हो और इसी अभिप्राय से कानून बनाया जाता था । इस बात का उदाहरण अंग्रेजी सरकार के शुभ शासनकाल में, जो भारतवर्ष के लिए एक महान् वरदान और अप्रत्याशित लाभ का देने वाला सिद्ध हुआ है, पाया जाता है । चारों ओर स्वतन्त्रता का सुप्रभाव फैल रहा है, धार्मिक विचार और शास्त्रार्थ होते हैं । शासनविधान एकेश्वरवादियों और मूर्तिपूजकों का समान रूप से समर्थन करता है । यह तो प्रत्येक को अधिकार है कि मूर्तिपूजा को अधर्म समझे और घोपित करे परन्तु यह किसी का साहस नहीं कि मूर्ति को तोड़े और यदि तोड़े तो उसको दण्ड दिया जाता है । यदि विधान में मूर्ति तोड़ने वाले के लिए कोई दण्ड निर्धारित किया गया है तो उससे यह सिद्ध नहीं होता कि मूर्तिपूजा का निर्देश दिया गया है या विधान के बनाने वाले या शासक या उनकी जाति या प्रजा मूर्तिपूजक है । यही बात महर्षि मनु के काल पर भी लागू हो सकती है । यदि उस समय कुछ स्वार्थी नेताओं ने अपने विद्याहीन विश्वासियों को अपने फंदे में फंसाये रखने के अभिप्राय से मूर्तिपूजा का कुछ प्रचार किया हो और मनु जी ने देश की परिस्थिति को देखते हुए कानून विधाननिर्माता के रूप में मूर्ति तोड़ने के लिए दण्ड निर्धारित कर दिया हो तो इससे यह सिद्ध नहीं होता कि मनुस्मृति में मूर्तिपूजा का करना विहित ठहराया गया है । यदि मूर्तिपूजा वैध होती तो पवित्र वेद, सत्यशास्त्रों और प्राचीन ऋषि-मुनियों

---

1. इस से अगला श्लोक इस प्रकार है—'अदूषितानां द्रव्याणां दूषणे भेदने तथा' इत्यादि ।—सम्पादक

के ग्रन्थों में उसका वर्णन अवश्य ही स्पष्ट रूप से पाया जाता, परन्तु ऐसा नहीं है । भला जब तीन सौ विद्वान् पंडितों की सभा मूर्तिपूजन के समर्थन में सत्यशास्त्रों से कोई प्रमाण नहीं दे सकी तो औरों से क्या आशा की जाती है ! वास्तव में इसका प्रचार बौद्धों के काल से हुआ है ।

मूर्तिपूजा के निषेध में प्रमाण-उपर्युक्त युक्तियों से यह तो भली भांति निश्चित हो गया कि मूर्तिपूजन उचित नहीं और अब उसके खंडन में वेदों के कुछ प्रमाण देकर इस विषय को समाप्त करते हैं—

"न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः ।" (यजुर्वेद संहिता, अध्याय ३२, मं० ३) **अर्थ**—उस परमात्मा की कोई प्रतिमा नहीं, उसका नाम अत्यन्त तेजस्वी है ।

"स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धमित्यादि" । (यजु० अध्याय ४०, मन्त्र ८) । **अर्थ**—वह (परमात्मा) सर्वव्यापक तथा सर्वद्रष्टा, सर्वशक्तिमान्, शरीर रहित, पूर्ण, नाड़ी आदि के बन्धन से रहित, शुद्ध, पापों से पृथक् है ।

"अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसंभूतिमुपासते । ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्यां रताः ।।' **अर्थ**—जो लोग प्रकृति आदि जड़ पदार्थों की उपासना करते हैं वे अन्धकारमय नरक में जाते हैं और जो उत्पन्न हुई वस्तुओं की उपासना करते हैं वे उससे भी अंधकारयुक्त नरक में जाते हैं ।

"तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ।" अर्थ—जो बुद्धिमान् उसे आत्मा में स्थित देखते हैं, उन्हीं को शाश्वत सुख प्राप्त होता है, औरों को नहीं ।

"ततो यदुत्तरतरं तदरूपमनामयम् । य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यतेतरे दुःखमेवापि यन्ति ।" **अर्थ**—जो संसार और संसार के उपादान कारण से उत्कृष्ट है, निराकार और निर्दोष है, जो उसको जानते हैं उनको अमर जीवन प्राप्त होता है और दूसरे लोग केवल दुःख में फंसे रहते हैं ।

"तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति, नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।" अर्थ—उसी के ज्ञान से मृत्यु के पंजे से छुटकारा होता है, कोई और मार्ग इच्छित स्थान पर पहुंचने का नहीं है ।

किसी देवता की उपासना करना भी उचित नहीं—शतपथ ब्राह्मण में जहां तैंतीस देवताओं की व्याख्या की है (और उन्हीं तैंतीस से तैंतीस करोड़ बन गये हैं और उस सूची की पूर्णता के पश्चात् जो उसमें और जैसे गूगापीर[८९] आदि समय-समय पर सम्मिलित होते रहे हैं वे उसके अतिरिक्त रहे) वहां भी परमात्मा के अतिरिक्त और किसी की उपासना विहित नहीं रखी; प्रत्युत उसका खंडन किया है । जैसे—**आत्मेत्येवोपासीत । स योऽन्यमात्मनः प्रियं ब्रुवाणं ब्रूयात्प्रियं रोत्स्यतीतीश्वरो ह तथैव स्यात् । योऽन्यां देवतामुपास्ते न स वेद । यथा पशुरेव स देवानाम् ।।"** (शतपथ ब्रा०, कांड १४, अध्याय ४) परमेश्वर जो सबका आत्मा है उसी की उपासना करनी चाहिये । जो परमेश्वर के अतिरिक्त किसी और को प्रिय अर्थात् उपास्य समझता है उसे जो कहे कि तू प्यारे के विरह से दुःख में पड़ेगा वह सत्य की ओर है । जो और देवता की उपासना करता है वह वास्तविकता को नहीं जानता, वह निश्चित रूप से बुद्धिमानों में केवल पशु के तुल्य है ।

हाय, खेद ! हमारी प्यारी सभा इन प्रामाणिक वचनों और सैकड़ों और ऐसे ही प्रमाणों की उपेक्षा करके प्रकृतिपूजा को वैध सिद्ध करना चाहती है और बड़ी धमूधाम के साथ प्रकट करती है कि जो व्यक्ति शिवलिंग और शालिग्राम की पूजा नहीं करता वह सीधा नरक जाता है । हे मेरी प्रतिष्ठित सभा ! तेरी महत्ता और विद्वत्ता में तो किसी को सन्देह नहीं हो सकता

परन्तु मैं चकित हूं कि तेरी कार्यवाही ऐसी क्यों निकली कि उसके खंडन के लिए एक साधारण मनुष्य को भी लेखनी उठा कर उद्यत होना पड़ा है।

अब देखो आपका प्यारा श्रीमद्भागवत क्या कहता है-**मृच्छिला-धातु-दार्वादिमूर्तावीश्वरबुद्धयः। क्लिश्यन्ति तपसा मूढाः परां शान्तिं न यान्ति ते।"** **अर्थ**—मिट्टी, पत्थर, धातु, लकड़ी आदि की मूर्ति में जो ईश्वर का ध्यान करते हैं ऐसे मूढ़ तप से केवल कष्ट उठाते हैं और वास्तविक शान्ति प्राप्त नहीं करते।

और भी कहा है—'यस्यात्मबुद्धिः' इत्यादि। अर्थात् जो व्यक्ति तीन धातुओं से निर्मित शरीर को आत्मा समझता है, स्त्री और पुत्र आदि को अपना समझता है, मिट्टी की मूर्ति को उपासना के योग्य समझता है और जो बुद्धिमान् मनुष्यों को तो नहीं, जल को तीर्थ समझता है, वह निश्चित रूप से गधा है।

मूर्तिपूजा के खण्डन में कुछ युक्तियां—हमारे विचार में मूर्तिपूजन के खंडन में शास्त्रों के जो प्रमाण ऊपर लिखे गये हैं वे पर्याप्त हैं; इससे अधिक लिखना तो व्यर्थ बोलना ही कहलायेगा। अब एक-दो तर्कसम्मत युक्तियां उपस्थित की जाती हैं—

देखिये, जैसा उपास्य (होता है) वैसा ही उपासक या यों कहिये कि जैसा उपासक (होता है) वैसा ही उपास्य (होता है)। यह एक सूक्ष्म बात है जिसकी व्याख्या से विचारणीय समस्या भली-भांति सुलझ सकती है। प्रत्यक्ष है कि जो गुण उपास्य में माने जाते हैं उनका प्रभाव न्यूनाधिक उपासक के व्यक्तित्व पर अवश्य होता है या शिक्षा-दीक्षा की दृष्टि से जैसा उपासक होता है वैसा ही वह अपना उपास्य कल्पित कर लेता है। इन बातों में ध्यान का बड़ा हाथ है। यदि हमारा उपास्य क्रोधी, अत्याचारी है तो उसका क्रोध और यदि लज्जालु है तो उसकी लज्जा और यदि दयालु है तो उसकी दया की छाया हमारी आत्मा पर पड़ती है और इसका प्रभाव हमारी समस्त शारीरिक और मानसिक शक्तियों पर पड़ता है। इस सिद्धान्त पर जब हम यह मानते हैं कि हमारा उपास्य सत्, ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप, परमपवित्र, सत्यस्वरूप, तेजःस्वरूप, परमस्नेही, प्राज्ञ, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, सर्वगत, सर्वद्रष्टा, सर्वव्यापक, सर्वोत्कृष्ट, अनादि और अनन्त है, जैसा कि वेदों में लिखा है तो हमारी आत्मा की भीतरी शक्तियों का विकास और प्रकाश होकर उसमें एक प्रकार की महत्ता, तेज, विस्तार और पवित्रता उत्पन्न होती है जिससे हमारा सारा आत्मिक और सामाजिक ढांचा प्रकाशमय हो जाता है और जिसका परिणाम शाश्वत सुख है। यदि हम ऐसे उपास्य को पत्थर और धातु आदि की मूर्ति या किसी और परिमित वस्तु में ध्यान करके उसको नमस्कार करना स्वीकार करते हैं तो विपरीत परिणाम होता है। यह भी एक प्रत्यक्ष बात है कि समस्त धार्मिक और सांसारिक विषयों में बुद्धि हमारी सबसे बड़ी पथप्रदर्शक है। यही कारण है कि हमारी गायत्री जो बीजमन्त्र गिनी जाती है, उसके द्वारा बुद्धि के प्रकाश के लिंए ही प्रार्थना की गई है। जिन साधनों से बुद्धि की उन्नति और सुधार हो, उनका व्यवहार में लाना अत्यन्त उचित है और जिस बात से बुद्धि में निर्बलता और अन्धकार उत्पन्न हो उसको धारण करना आत्महत्या में सम्मिलित है। सच्ची ईश्वरोपासना, सच्ची शिक्षा और बुद्धिमानों के संग से बुद्धि उज्ज्वल और शुद्ध होती है और इसके विपरीत जड़ वस्तुओं की उपासना, बुरी शिक्षा और अविद्वानों के संग से वह निर्बल और अन्धकारयुक्त होती है। इसलिए जड़ वस्तुओं में सर्वशक्तिमान् परमात्मा का ध्यान करके उनको नमस्कार के योग्य बताना मानो बुद्धि को बिगाड़ना है और बुद्धि का बिगाड़ना आत्मघात है और आत्मघात करना पाप है। इसलिए सिद्ध हुआ कि मूर्तिपूजन पाप है। मद्यपान और व्यभिचार इसी कारण से पाप हैं कि उनसे बुद्धि नष्ट और आत्मा अपवित्र होती है तथा दूसरे के अधिकार का हरण होता और ईश्वराज्ञा भंग होती है। इसलिए जब मूर्तिपूजन से बुद्धि नष्ट और आत्मा का पतन तथा ईश्वर का अपमान होता है तो बताइये कि मूर्तिपूजन पाप नहीं तो और क्या है ? जैसी जो वस्तु हो उसको वैसा समझना वास्तविक ज्ञान है और जड़ पदार्थों में ईश्वरभावना करनी या करानी या किसी काल्पनिक देवता का ध्यान करना या कराना पथभ्रष्टता और भ्रान्ति है।

मृत्यु के पश्चात् पितरों का श्राद्ध आदि—हमारी प्रिय सभा ने श्राद्ध के विषय में एक यह वचन प्रमाण के रूप में उपस्थित किया है—**"निवीतम्मनुष्याणां प्राचीनावीतं पितृणाम्"**[१०] इस वचन में न तो मरे हुए माता-पिता की कुछ चर्चा है और न श्राद्ध का शब्द आया है; फिर पता नहीं कि इससे मरे हुओं का श्राद्ध क्योंकर सिद्ध होता है ? केवल यज्ञोपवीत का इधर-उधर करना श्राद्ध का प्रमाण नहीं समझा जा सकता। श्राद्ध और तर्पण का जो वास्तविक अभिप्राय है, उसको हम अस्वीकार नहीं करते। हमारा आक्षेप तो यह है कि मृतकों के लिए श्राद्ध और तर्पण करना और उनके नाम से किसी विशेष वर्ग के लोगों को बिना अधिकार की परीक्षा किये अच्छे-अच्छे प्रकार का भोजन कराना और चांदी-सोना कर के रूप में देना बुद्धि और शास्त्र के अनुसार अवैध और अनुचित है। हां, मृतकों की स्मृति में यदि कोई परोपकार का कार्य इस अभिप्राय से किया जाये कि हमको मृत्यु का स्मरण रहे और हम बुराइयों से बचे रहें तो कुछ हानि नहीं। हमारी सूक्ष्म बातों पर विचार करने वाली सभा ने जो यह वर्णन किया है, कि 'पितृणाम्' शब्द बहुवचन में प्रयुक्त हुआ है; इसलिए उससे मृतकों का श्राद्ध सिद्ध होता है, यह युक्ति ठीक नहीं प्रतीत होती। यह शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त होता है। प्रतीत होता है कि किसी काल में वह सम्मान और उपाधि देने तथा उनके महत्त्व और योग्यता के वर्ग विभाग करने के अर्थों में भी प्रयुक्त किया जाता था और फिर परिस्थिति के परिवर्तन से वह प्रयोग स्थगित होकर उसके स्थान पर और-और शब्द प्रयुक्त होने लगे। अंग्रेज़ी भाषा का शब्द 'फादर' (Father) इस शब्द से एक विचित्र समानता रखता है, जिसका वर्णन रोचकता से रहित न होगा। 'फादर' शब्द पितृ शब्द से निकला है और वह लगभग उन्हीं अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है जिसमें कि 'पितृ' शब्द प्रयुक्त होता है या होता था। पहली शताब्दी में हुए ईसाई मत की पुस्तकों के लेखक और रोम की सीनेट के सदस्य 'फादर' कहलाते थे और इस समय के ईसाई मत के नेताओं अर्थात् पादरी लोगों और पहले तथा पिछले पूर्वपुरुषों के लिए भी इस शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह इस बात का एक समर्थक प्रमाण है कि 'पितृणाम्' शब्द से अभिप्राय उच्चकोटि के गुणवान् विद्वानों और बुद्धिमानों आदि से है। शतपथ ब्राह्मण में उनके आठ भेद लिखे हैं, जो इस प्रकार हैं : १—चित्त की एकाग्रता और ज्ञान की वास्तविकता के इच्छुक **'सोमसद्'** कहलाते हैं। २—अग्नि जो समस्त पदार्थों में सबसे अधिक क्रियाशील है उसकी अवस्थाओं और गुणों का ज्ञान प्राप्त करके जो उससे अच्छी प्रकार काम ले सकते हैं उनको **'अग्निष्वात्त'** कहते हैं। ३—जो विद्या और आचार से अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण करके गुणों की वृद्धि में विशेषता प्राप्त करते हैं वे **'बर्हिषद्'** कहलाते हैं। ४—जो औषधियों के लाभ और गुणों के ज्ञान में योग्यता प्राप्त करते हैं वे **'सोमपा'** कहलाते हैं। ५—जो अग्निहोत्र आदि यज्ञों में पूर्ण योग्यता रखते हैं वे **'हविर्भुज्'** कहलाते हैं। ६—जो उचित साधनों से शरीर और आत्मा की रक्षा करते हैं उनको **'आज्यपा'** कहते हैं। ७—जो अपना बहुमूल्य समय सदा ज्ञान और तप की शिक्षा और प्रेरणा में व्यतीत करते हैं उनको **'सुकालिन्'** कहते हैं। ८—जो सूझ-बूझ और न्यायकारिता आदि में अद्वितीय हैं वे **'यम'** कहलाते हैं।[११]

इससे प्रकट है कि उक्त शब्द बहुवचन में ही प्रयुक्त होना उचित था। यदि इन शब्दों से अभिप्राय सृष्टि के पूर्वपुरुषों से हो तो भी **'पितृणाम्'** शब्द का सम्बन्ध मृत माता-पिता से स्थापित नहीं किया जा सकता प्रत्युत पाया जाता है कि विचारणीय वचन में मनुष्यों और पितरों के कर्मों में एक प्रकार का भेद किया गया है। इस प्रकार का भेद 'शतपथ ब्राह्मण' में मनुष्यों और देवताओं में किया गया है जैसा कि **"इयं वा इदं न तृतीयमस्ति।" "सत्यं चैवानृतं च सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्याः"** अर्थात् स्वभाव और गुणों की दृष्टि से मनुष्य के दो भेद हैं—देव और मनुष्य। जो सत्यवादी और सत्यमार्ग पर हैं वे देव कहलाते हैं और जो झूठे और कपटी हैं उनको मनुष्य कहते हैं।

पितृयज्ञ की व्याख्या—इस स्थान पर यदि पितृयज्ञ की कुछ व्याख्या की जाये तो उससे विचारणीय विषय भलीभांति स्पष्ट हो जायेगा।

विदित रहे कि पितृयज्ञ के दो भेद हैं—श्राद्ध और तर्पण । **श्राद्ध** वह कार्य है जो सच्ची श्रद्धा से किया जाये अर्थात् देव, ऋषि और पितरों की सेवा । **तर्पण** से अभिप्राय है उनको प्रसन्न करना और प्रसन्न रखना तथा उनको सुख पहुंचाना । जो लोग विद्या, सुशीलता और सज्जनता में पूर्णता प्राप्त करके अपने पुण्य कर्मों से संसार में एक उदाहरण स्थापित करते हैं, वे **देव** कहलाते हैं । **ऋषि** वह हैं जो बड़प्पन और गुणों में पूर्ण योग्यता प्राप्त करके पठन पाठन का कार्य चालू रखते हैं । **पितृ** वे हैं जो 'इल्मुल्यकीन' (देखे बिना ही किसी वस्तु की वास्तविकता पर पूर्ण विश्वास कर लेना) और 'ऐनुल्यकीन' (किसी वस्तु को देखने के पश्चात् उसकी वास्तविकता को पूर्ण विश्वास के साथ भली भांति जानना) की अवस्थाओं में से गुजरकर 'हक्कुल यकीन' (किसी वस्तु में प्रविष्ट हो जाना या स्वयं वह वस्तु बन जाना या उसमें खो जाना) का पद प्राप्त करते हैं । इसी विषय के सम्बन्ध में मनुस्मृति का एक श्लोक (मनु० २ । १७६) जिसको हम बिना व्याख्या यों ही छोड़ आये हैं नीचे लिखा जाता है—**"नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्याद्देवर्षिपितृतर्पणम् । देवताभ्यर्चनं चैव समिदाधानमेव च ।"** यह श्लोक ब्रह्मचारी के सम्बन्ध में है और इसमें उन कार्यों का वर्णन है जो ब्रह्मचारी को गुरु की सेवा में रहकर अपनी उन्नति के लिए करने चाहियें और उनका अगले श्लोकों में विस्तारपूर्वक वर्णन है । प्रथम प्रणाम और आदर सत्कार एवं सच्ची शिक्षा की वास्तविकता साधारण रूप में बताई गई है अर्थात् प्रतिदिन स्नान करके और पवित्र होकर देव, ऋषि और पितृ अर्थात् गुणवान् व्यक्तियों की सेवा करे और उनके गुणों का चिन्तन करे जिससे उसके मन में वैसे ही गुणों को प्राप्त करने की उमंग उत्पन्न हो । शास्त्रों का सेवन अर्थात् अध्ययन करे और इन्द्रियों को वश में रखे । मूर्तिपूजन के खंडन में हम बहुत कुछ लिख आये हैं, यहां केवल इतना ही कहना पर्याप्त है कि इस श्लोक से भी हमारी प्यारी सभा का प्रयोजन सिद्ध नहीं होता ।.

हमारी प्यारी सभा ने श्राद्ध के बारे में एक प्रमाण मनुस्मृति का दिया है वह यह है—**"पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य विप्रश्चेन्दुक्षयेग्निमान् । पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यान्मासानुमासिकम् ।।"**[९२] **अर्थात्** पितृयज्ञ से निवृत्त होकर अग्निहोत्री ब्राह्मण प्रत्येक मास की अमावस्या में पितरों का श्राद्ध करे । यह श्लोक स्पष्टतया मनु जी का कहा हुआ नहीं है; परन्तु दुर्जनतोष न्याय से मनु-प्रोक्त मान लिया जाये फिर भी इससे कुछ सिद्ध नहीं होता । यदि प्रत्येक मास में इस प्रकार का श्राद्ध जिसका ऊपर वर्णन हुआ है, होम की भांति विशेषता के साथ किया जाया करे तो कुछ हानि भी नहीं । हम किसी ऐसे कार्य के विरुद्ध नहीं जो एक श्रेष्ट आदर्श स्थापित करने के अभिप्राय से ऐसे पूर्वजों की स्मृति में किया जाये जिनके महान् व्यक्तित्व से लोगों को धार्मिक और सांसारिक विषयों में लाभ पहुंचा हो या पहुंचता हो अन्यथा देश की धन सम्पत्ति को यों ही नष्ट करना और किसी विशेष वर्ण या सम्प्रदाय को उससे किसी प्रकार का धार्मिक या सांसारिक काम लिये बिना, काल्पनिक दान के रूप में मुफ्त खिलाना-पिलाना और धन व्यय करके निकम्मा और आलसी बनाना राजनीतिक सिद्धान्तों की दृष्टि से महान् अपराध है ।

मनुस्मृति का जो एक-आध प्रमाण दिया गया है उसके खंडन में कुछ लिखना व्यर्थ है क्योंकि हम उसको प्रामाणिक नहीं समझते । जो वर्ष में पन्द्रह दिन श्राद्ध किये जाते हैं, उनका कुछ वर्णन हमारी प्यारी सभा ने नहीं किया, इसलिए उनके विषय में विचार करना भी व्यर्थ है । अब हम अपने कथन के समर्थन में मनुस्मृति के चौथे अध्याय के तीन श्लोक (२३९ से २४१ तक) नीचे देकर इस विषय को समाप्त करते हैं और अपनी प्यारी जाति से अत्यन्त नम्रतापूर्वक न्याय चाहते हैं-

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः ।
न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः ।।
एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते ।

एको नु भुंक्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥
मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ॥

अर्थ—परलोक में माता, पिता, शत्रु, पुत्र, स्त्री और भाई-बन्धु, इनमें से कोई भी सहायता नहीं कर सकता; केवल धर्म ही सहायक होता है (क्योंकि) मनुष्य अकेला ही उत्पन्न होता है और अकेला ही मरता है । अकेला ही अपने किये हुए भले-बुरे कर्मों का फल पाता है । लकड़ी और मिट्टी के ढेले के समान मृत शरीर को पृथिवी पर छोड़कर भाई-बन्धु अलग हो जाते हैं; केवल धर्म ही उसके साथ जाता है । इससे प्रकट है कि मरने के पश्चात् मनुष्य के पुण्यकर्म ही उसके सहायक होते हैं । किसी अन्य के किए हुए श्राद्ध आदि से उसको कुछ लाभ नहीं पहुंचता । सृष्टिनियमों में कोई ऐसा नियम ही नहीं पाया जाता कि एक के खाने से दूसरे की तृप्ति हो । जो यहां कुछ नहीं कर सकता उसको आगे भी कुछ नहीं मिलता । अपना किया हुआ ही काम आता है ।

गंगा आदि तीर्थों में स्नान और वास करने से पाप की निवृत्ति होती है या नहीं ? हमारी प्यारी सभा ने तीर्थ के विषय में एक यह प्रमाण दिया है—**'सितासिते सरितौ यत्र संगते तत्र प्लुतासो दिवमुत्पतंति । ये वै तन्वा विसृजन्ति धीरा: ते जनासोऽमृतत्वं भजन्ते ॥ यत्र गंगा च यमुना च यत्र प्राची सरस्वती, इमम्मे गंगे यमुने"**[१३] **इत्यादि** । इस वाक्य में जो गंगा आदि शब्द आये हैं उनको हमारी प्यारी सभा प्रसिद्ध नदियों के नाम से तीर्थ बताती है परन्तु यह ठीक नहीं, क्योंकि शब्द सित और असित (श्वेत और काला) जो आरम्भ में विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुए हैं, वही हमारी इस प्रतिष्ठित सभा के काल्पनिक तीर्थों की असारता सिद्ध करते हैं । वास्तव में गंगा आदि से अभिप्राय श्वास यन्त्रों से है; जिनको इड़ा, पिंगला, सुषुम्णा भी कहते हैं । ये योगसाधान की नाड़ियां हैं जिनसे योग के इच्छुक प्राणायाम और ध्यान आदि के द्वारा बीच की सीढ़ियों को पार करके मन की स्वच्छता प्राप्त करते हैं और समाधि में स्थित होकर परमात्मा का साक्षात् करते हैं । विचाराधीन वचन का अभिप्राय यह है कि जहां दो श्वेत और काली नदियों (इड़ा और पिंगला) का मेल होता है अर्थात् अन्धकार (विषयवासना का राज्य) की सीमा समाप्त होकर ज्ञान का प्रकाश आरम्भ होता है, वहां अद्वैत की लहरों में डुबकी लगाकर योगी लोग ब्रह्मलोक में भ्रमण करते हैं और पवित्र योगमार्ग में चलने वाले जो लोग सांसारिक विषयों का परित्याग करते हैं, वे शाश्वत सुख को प्राप्त करते हैं । वास्तव में यहां वे बड़े तीर्थ हैं जो मनुष्य की आत्मा को पापों से रहित अतएव पवित्र करके अनन्त आनन्द प्रदान करते हैं । तीर्थ के अर्थ हैं तैराने का उपकरण । नदियों को तैराने का उपकरण नहीं माना जा सकता; इसके विपरीत (उन्हें) डुबोने का (साधन) कहना ही उचित है । सत्यशास्त्रों में तीर्थ से अभिप्राय परमेश्वर, गुरु, विचार, सत्यशास्त्र, भक्ति, उपासना, योग आदि से है और वास्तव में यही मुक्ति के साधन हैं । फिर यदि गंगा आदि शब्दों के यौगिक अर्थों की ओर ध्यान दिया जाए तो उनसे भी हमारी बात का समर्थन होता है । आश्चर्य तो यह है कि उनके समानार्थक इड़ा, पिंगला, सुषुम्णा के यौगिक अर्थ भी क्रमश: लगभग वैसे ही पाये जाते हैं । यही दशा रेचक, पूरक, कुंभक शब्दों की है जो योगदर्शन में प्रयुक्त होते हैं । उनकी व्याख्या यहां व्यर्थ है, प्रत्येक व्यक्ति कोष की पुस्तकों को देखकर अपना सन्तोष कर सकता है । फिर यह बात भी वर्णन करने योग्य है कि पुराणों के अनुसार गंगा भगीरथ के काल से चली है । भगीरथ राजा सगर की तीसरी पीढ़ी में हुआ है और वह उसे अपने पितरों की मुक्ति के लिए स्वर्ग से लाया था और अपने संकल्प में सफल हुआ । यदि इस कथा को सत्य माना जाये तो दो प्रश्न उत्पन्न होते हैं । एक यह कि जो लोग भगीरथ के काल से करोड़ों वर्ष पहले इधर-उधर मर चुके थे, उनकी क्या गति हुई और यदि भगीरथ उसे अपने ही पितरों की मुक्ति के लिए लाया था तो उससे हमारा क्या सम्बन्ध है ? दूसरे, यह कि वेद जो सनातन माना जाता है उसमें गंगा शब्द उन अर्थों में जो उस पर लागू किये जाते हैं, क्योंकर प्रयुक्त हुआ ? वास्तविकता यह है कि ये सब ढकोसले वेद की शिक्षा के विरुद्ध हैं।

यह भी विदित रहे कि विचाराधीन वचन ऋग्वेद संहिता का नहीं, प्रत्युत उसके एक व्याख्यान का है । कदाचित् यही कारण है कि उस का पता नहीं बताया गया ।

तीर्थ की मीमांसा—हमारी प्यारी सभा ने तीर्थों के विषय में मनुस्मृति का एक यह श्लोक प्रमाण के रूप में उपस्थित किया है—**"यमो वैवस्तवो देवो यस्तवैष हृदि स्थितः । तेन चेदविवादस्ते मा गंगां कुरून्गमः ॥"**

हम चकित हैं कि हमारी विदुषी सभा ने क्या समझ कर इस श्लोक को तीर्थों का प्रमाण निश्चित किया है । यहां तो इसके विपरीत उसका खंडन पाया जाता है; कहा है गंगा और कुरुक्षेत्र मत जाओ । यह श्लोक मनुस्मृति के आठवें अध्याय के उस स्थान का है जहां साक्षी के अतिरिक्त शपथ लेने और झूठ बोलने के दण्ड आदि का वर्णन है । इस श्लोक और उससे ऊपर के श्लोक में अगले पिछले श्लोकों के सम्बन्ध में साधारण रूप में झूठ से बचने की प्रेरणा की गई है । दोनो का अर्थ यह है कि यदि तुम समझते हो कि मैं अकेला हूं तो ऐसा नहीं क्योंकि तुम्हारे भीतर पाप और पुण्य को देखने वाला मुनीश्वर सदा विद्यमान रहता है । ऐसा जो पवित्र तेजोमय वकील तुम्हारे भीतर विद्यमान है उसके साथ यदि तुम्हारा झगड़ा नहीं तो गंगा और कुरुक्षेत्र मत जाओ (अर्थात् उस मुनीश्वर की शिक्षा के अनुसार चलो और झूठ न बोलो, यही मूल बात है और गंगा आदि जाने से कुछ नहीं होता) ।

वास्तव में मूल अभिप्राय पहले ही श्लोक में आ जाता है और पुनः उसी बात को दूसरे श्लोक में दुहराना व्यर्थ है । इसी से प्रतीत होता है कि यह श्लोक मनु जी का कहा हुआ नहीं प्रत्युत उस काल का बढ़ाया हुआ है जब स्वार्थ या भ्रान्ति से काल्पनिक तीर्थों और मूर्तिपूजा को प्रचलित किया गया था । यह भी विदित रहे कि इस स्थान के अतिरिक्त सारी मनुस्मृति में कहीं गंगा का नाम भी नहीं आया है । भला जिस अवस्था में मनु जी ने छोटी-छोटी बातों के वर्णन में श्लोकों के श्लोक लिख मारे हैं तो यदि यह काल्पनिक तीर्थयात्रा और मूर्तिपूजन (जिसका आजकल इतना प्रचार है और जिसके कारण वास्तविक धर्म हमको छोड़कर चला गया है) उनकी दृष्टि में वैध होता या यदि उनके समय इसका प्रचार होता तो इसके विषय में दो चार श्लोक लिख देने कौन बड़ी बात थी ? वास्तव में मनु जी ने धर्म और मोक्ष के जो सिद्धान्त लिखे हैं उनका ऐसी बातों से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है ।

इन काल्पनिक तीर्थों का खंडन तो भागवत जैसे ग्रन्थों में भी पाया जाता है; जैसा कि हम ऊपर वर्णन कर आये हैं अर्थात् जो मनुष्य पानी को तीर्थ समझता है और विद्वानों को नहीं, वह गधा है । फिर देखो—**"इदं तीर्थमिदं तीर्थं भ्रमन्ति तामसा जनाः । आत्मतीर्थं न जानन्ति कथं मुक्तिर्वरानने ॥" अर्थात्**—यह तीर्थ है, वह तीर्थ है-अविद्वान और तमोगुणी लोग ऐसा कहते फिरते हैं, वे आत्मा के तीर्थ को नहीं जानते, उनकी मुक्ति क्योंकर हो सकती है अर्थात् नहीं हो सकती ।

इस बारे में अब और अधिक लिखना व्यर्थ है, केवल मनु जी का एक वचन साधारण सिद्धान्त के रूप में नीचे लिखा जाता है—

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ॥

अर्थ—जल से शरीर के अंग शुद्ध होते हैं, मन सत्य से पवित्र होता है, विद्या और उपासना से आत्मा पवित्र होती है, ज्ञान से बुद्धि शुद्ध होती है ।

यह श्लोक व्याख्या की आवश्यकता नहीं रखता । यदि गंगास्नान से पाप छूट सकते हैं और स्वर्ग मिल सकता है तो उपासना आदि का कष्ट उठाने की क्या आवश्यकता है ? इधर हत्या की, चोरी की, व्यभिचार किया; उधर गंगा में नहाए, पवित्र हुए और स्वर्ग प्राप्ति इसके अतिरिक्त ।

पापों से छूटना तो एक ओर रहा, इसके विपरीत ऐसे विश्वास से तो पापों की प्रेरणा होती है और पाप करने का साहस बढ़ता है । आप हजार ऐसे जाल बिछायें और लोगों को भ्रमायें परन्तु **'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।'** पापों का फल प्रत्येक को अवश्य भोगना पड़ेगा ।

तीसरा प्रश्न—पंडित महेशचन्द्र जी ने तीसरा प्रश्न यह किया कि **'अग्निमीले पुरोहितं'** आदि मन्त्रों में अग्नि शब्द से अभिप्राय परमात्मा से है या (भौतिक) आग से ?

उत्तर—इसके उत्तर में पंडित रामसुब्रह्मण्य शास्त्री ने कहा कि इस मन्त्र में जो 'अग्नि' शब्द आया है उससे अभिप्राय 'जलाने की आग' (भौतिक अग्नि) से है । यदि इसके यौगिक अर्थ करें तो वे पूर्वमीमांसा, के 'रथकाराधिकरणवत्'—इस सूत्र के विरुद्ध होते हैं; इसलिए इस मन्त्र में अग्नि शब्द से भौतिक अग्नि ही अभिप्रेत है ।

'आर्यसमाज की ओर से प्रत्युत्तर'—हमारी प्यारी सभा कहती है कि इस मन्त्र में जो 'अग्नि' शब्द आया है उसका अभिप्राय 'जलाने की आग' है; परमेश्वर नहीं । परन्तु इस बात को अस्वीकार नहीं किया गया कि यह शब्द कहीं भी परमेश्वर के अर्थों में नहीं आया है । यहां भी वही 'रथकार' आदि की युक्ति उपस्थित की गई है जिसका हम ऊपर खंडन कर चुके हैं । हमारी समझ में तो जैसा अवसर होता है वैसे (प्रकरणानुसार) अर्थ लिये जाते हैं । ऐसे ही एक विशालबुद्धि पंडित ने जो वर्षों काशी में पढ़कर आया था, साधारण रूप में मृग का अर्थ हरिन जानते हुए **'मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति'** वाले भर्तृहरि जी के श्लोक का अर्थ मनुष्य के आकृति वाले हरिन किया था और ऐसे ही भट्टाचार्य्यों के लिए संस्कृत वालों ने 'सैन्धवमानय' वाला उदाहरण रखा हुआ है । जो पूर्वापर प्रसंग को देखे बिना किसी वाक्य का अर्थ करते हैं, उन्हें बुद्धिमानों के सामने लज्जित होना पड़ता है । सर्वांश में कोई नियम निश्चित नहीं किया जा सकता कि सब स्थानों में रूढ़ि अर्थ लिये जायें अथवा यौगिक । व्याकरण जानने वाले उन अर्थों को महत्त्व देते हैं जो धातु-प्रत्यय के नियमों से बन सकते हैं और यही विधि ऋषियों के काल में प्रचलित थी । अग्नि शब्द के रूढ़ि और यौगिक दोनों अर्थ लिये जाते हैं । इस शब्द के विषय में स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने अपनी 'भ्रान्ति-निवारण' पुस्तक में (जो उन्होंने साधारणतया समस्त पंडितों और विशेषतया पंडित महेशचन्द्र न्यायरत्न के खंडन में लिखी है) तथा अन्य पुस्तकों में भी इतने विस्तार के साथ विचार किया है कि किसी न्यायप्रिय मनुष्य को कोई सन्देह शेष नहीं रह जाता और यही कारण है कि न 'सन्मार्ग-दर्शनी' के तीन सौ पंडितों ने और न भारतवर्ष के समस्त पंडितों ने आज तक उसका खंडन किया है । फिर भी हम केवल दो-तीन अन्य प्रमाण यहां लिख देना ही पर्याप्त समझते हैं—**'अग्निद्रविणोदा अश्वो वायुः श्येनोश्विनौषध इति ।'** (निघण्टु अध्याय ५) अर्थात् (इस वाक्य में परिगणित) अग्नि आदि सभी शब्द ब्रह्म के समानार्थक हैं । इसी प्रकार देखिए—**'ब्रह्माग्निः'**—(शतपथ ब्रा १, २, ११) **'आत्मा वाग्निः'**—(शतपथ ब्रा० २, ३, ३) ॥ आदि ।

चौथा प्रश्न—पण्डित महेशचन्द्र जी ने पूछा कि अग्निहोत्र आदि यज्ञों का लक्ष्य जल और वायु की शुद्धि है या कि स्वर्ग आदि में पहुंचना ?

उत्तर—पण्डित रामसुब्रह्मण्य शास्त्री जी ने कहा कि **"अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत"** आदि यजुर्वेद के मन्त्रों से अग्निहोत्र आदि यज्ञ स्वर्गसाधक हैं अर्थात् उनके करने से स्वर्ग प्राप्त होता है ।

आर्यसमाज की ओर से प्रत्युत्तर—यदि स्वर्ग से सुख का प्राप्त होना अभिप्रेत है, जैसा कि कोष में इस शब्द के अर्थ हैं, तो हमें कोई आपत्ति नहीं और यदि उससे अभिप्राय हूर और गिल्मां (मोतियों के रंग वाले लड़के) के विश्रामस्थल और इन्द्रियों के विषयों की **पूर्ति करने वाले स्थान से है, तो हम उसको स्वीकार नहीं कर सकते ।**

होम आदि से तत्काल मुक्ति मिल नहीं सकती प्रत्युत यह तो शारीरिक सुख और सांसारिक आनन्द तथा परोपकार के साधन हैं और ऐसा ही समस्त ऋषि-मुनि मानते चले आये हैं । इससे स्पष्ट प्रकट है कि अग्निहोत्र आदि यज्ञों के अनुष्ठान से जल, वायु की शुद्धि और औषधि द्वारा सुख होता है ।

हां, यदि यह कहो कि होम में जो वेदमन्त्र पढ़े जाते हैं उनसे प्रार्थना-उपासना; और प्रार्थना-उपासना से ईश्वरप्राप्ति होती है तो निस्सन्देह, इस प्रकार क्रमश: तो वह भी मुक्ति का एक कारण हो सकता है । अथवा-आत्मिक होम मुक्ति का कारण होता है । इसलिए मनु आदि सत्यशास्त्रों और उपनिषदों में लिखा है कि **इन्द्रियों का होम मन में करे, मन का आत्मा में और आत्मा का परमात्मा में करे** और ऐसा ही महात्मा व्यास जी ने भी लिखा है ।

पांचवां—पंडित महेशचन्द्र जी ने पूछा कि वेद के ब्राह्मण भाग का अपमान करने से पाप होता है या नहीं ?

उत्तर—पंडित रामसुब्रह्मण्य शास्त्री ने उत्तर दिया कि यह तो हम पहले प्रश्न के उत्तर में लिख चुके हैं कि ब्राह्मण भाग भी वेद ही है । फिर ब्राह्मणभाग का अपमान करने से मानो वेद का अपमान हुआ और मनु ने वेद के अपमान के विषय में लिखा है ।

आर्यसमाज की ओर से प्रत्युत्तर—जो श्लोक पंडित जी ने उपस्थित किया है उसका वास्तविक अर्थ यह है कि पढ़े हुए वेद को भूल जाना, वेद की निन्दा करना, झूठी साक्षी देना, मित्र को पीड़ा पहुंचाना, अपवित्र भोजन करना, मद्य पीना—ये छहों समान पाप हैं । हमारी अन्वेषिणी सभा कहती है कि जो पाप मद्य पीने वाले को होता है वही पाप वेद का अपमान करने वाले को होता है । यह बात बुद्धि के अनुकूल है परन्तु देखना तो यह है कि वह वेद का अपमान करने वाला कौन है ? स्वामी दयानन्द सरस्वती या उसके विरोधियों का विशाल समूह ? इस बात का निर्णय करने के लिए आवश्यक है कि दोनों पक्षों के कुछ वचनों को यथार्थ रूप में वर्णन किया जावे ।

विदित रहे कि दोनों पक्ष **वेद को प्रामाणिक मानते हैं और ईश्वरीय वचन समझते हैं** । विवाद तो इस विषय में है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती केवल संहिता को वेद और ब्राह्मणों को उनके व्याख्यान कहते हैं और हमारी प्यारी सभा दोनों को समष्टि रूप से वेद मानती है । स्वामी जी कहते हैं कि वेद में मूर्तिपूजन, ईश्वर का अवतार, मृतकश्राद्ध और गंगा आदि तीर्थों का कोई उल्लेख नहीं है प्रत्युत उनका खण्डन पाया जाता है । हमारी प्यारी सभा इन बातों को वेद का विधान मानती है और शिवलिंग, शालिग्राम आदि की पूजा को एक सिद्धान्त बताती है । स्वामी जी वेद के सिद्धान्तों के अनुसार ईश्वरोपासना सिखाते हैं और हमारी प्यारी सभा प्रकृतिपूजा की शिक्षा देती है । स्वामी जी वेद को स्वत: प्रमाण और अन्य ग्रन्थों को परत: प्रमाण मानते हैं और हमारी प्यारी सभा समस्त शास्त्रों और ग्रन्थों को वेद के बराबर प्रामाणिक मानती है । स्वामी जी समस्त धार्मिक और सांसारिक विषयों में बुद्धि का हस्तक्षेप उचित बताते हैं और हमारी प्यारी सभा बुद्धि के पांवों में शास्त्राज्ञा की बेड़ी डालकर उसको गिराना चाहती है । स्वामी जी कहते हैं कि वेद के पढ़ने-पढ़ाने का समस्त मनुष्य जाति का समान अधिकार है और हमारी प्यारी सभा उसे अपना व्यक्तिगत पैतृक दाय समझती है । इन सब बातों पर ऊपर विस्तार के साथ विचार हो चुका है और यहां उसकी पुनरावृत्ति की आवश्यकता नहीं । अब हम इस बात का निर्णय-कि वेद का अपमान करने वाला कौन ठहरता है, अपने न्यायप्रिय पाठकों पर छोड़ते हैं और इस लेख को इस प्रार्थना पर समाप्त करते हैं कि परमात्मन् ! तू अपनी कृपा से समस्त मनुष्यजाति को और विशेषतया भारत को (जिसे बुद्धि की अधिक आवश्यकता है)—उस बुद्धि का प्रकाश प्रदान कर जिसके लिए वेद के बीजमन्त्र गायत्री में प्रार्थना की गई है, ताकि मूर्खता और अनेकेश्वरवाद का अन्धकार दूर होकर तेरे ईश्वरत्व ओर एकेश्वरवाद का तेज प्रस्फुरित हो । उलझे हुए विचारों और झूठे भ्रमों के स्थान पर एकता और वास्तविकता की लहरें मन में उठें ।"

एक सम्पादक की कुबुद्धि व अदूरदर्शिता—'सार-सुधानिधि' कलकत्ता के सम्पादक की बुद्धि, विद्या और दूरदर्शिता (?) का नमूना भी हम यहां दिखलाये बिना नही रह सकते, वह लिखता है—

"सम्प्रति स्वामी दयानन्द सरस्वती संसार के अनिष्ट में प्रवृत्त हुए हैं। उनका अपूर्व और अद्‌भुत मत देखने से स्पष्ट बोध होता है। इसका कारण केवल यही है कि **"येन केन प्रकारेण प्रसिद्धो मानवो भवेत्"** इसके अतिरिक्त और कोई कारण नहीं जान पड़ता है; क्योंकि इस संसार में जितने धर्म प्रचलित हैं-स्वामी जी उन सभी धर्मों पर दोषारोप करके अपना एक अद्‌भुत पंथ प्रचारित करते हैं। उससे हित होना तो क्या है, प्रत्युत और भी अहित होता दिखाई पड़ता है। इन सब के अतिरिक्त सबसे बड़ी हानि भारतीय आर्यों की यह होती है कि सनातन बृहत् आर्य धर्म की जीवनीशक्ति में आघात (चोट) लगता है। विचार करके देखने से प्रकट हो जायेगा कि इससे पहले जितने धर्मप्रचारक हुए उनमें से किसी ने भी हमारे आर्यधर्म की मूल जीवनीशक्ति को स्पर्श नहीं किया था क्योंकि जितने अन्य देश और अन्य मतवाले हुए उन्होंने तो यह मान लिया था कि 'हमारी धर्मपुस्तकें ईश्वर के द्वारा हमारे पैगम्बरों को प्राप्त हुईं' ऐसा मानने में उन्होंने हमारे मूल धर्म को छुआ ही नहीं। उनके लिए जो ईश्वर ने अच्छा समझा उनके पैगम्बरों द्वारा उपदेश किया, हमारा उससे कुछ सम्बन्ध नहीं; उनका उपदेश अच्छा हो या बुरा। इसलिए यदि आप विचार करें तो इससे हमारे धर्म की कोई हानि नहीं हुई। इतनी ही हानि कही जा सकती है कि उपदेशकों के लुभावने वचनों से लुभाये जाकर या किसी के अत्याचार से पीड़ित होकर बीस करोड़ में से हजार अथवा लाख, दो लाख (पांच छः करोड़ कहते लज्जा आती है?) मनुष्यों ने भी अपना धर्म छोड़ दिया तो उससे भी मूल धर्म की कोई हानि नहीं है। और जो कहो कि भारतवर्ष में एक आर्यधर्म में जो इतने पृथक्-पृथक् सम्प्रदाय हैं उनसे मूल धर्म में जो बिगाड़ हुआ था वह इससे भी हो जायेगा। जहां सौ; वहां सवा सौ सही और इससे अधिक हानि क्या होती है? तो इसके उत्तर में यह कहना पड़ता है कि इन सम्प्रदायों से हमारे मूल धर्म की कोई हानि नहीं हुई क्योंकि श्रुति स्मृति सभी को सब बराबर मानते हैं केवल पुराणों से सम्प्रदायों की संख्या बढ़ी है। जिसका जो सम्प्रदाय है वह उसी सम्प्रदायसम्मत पुराण को अधिक मानता है और उसी के आश्रय पर रहता है। परन्तु इससे वेद और स्मृति-प्रतिपादित मूल धर्म में आज तक किसी सम्प्रदाय वाले का हस्तक्षेप नहीं हुआ। इस विशाल भारतवर्ष देश में जितने भी आस्तिक सम्प्रदाय हैं उनके सभी पण्डितों और मूर्खों तक का सभी का विश्वास है कि धर्म का मूल वेद ही है और वास्तव में सभी सम्प्रदाय वेदमूलक हैं किन्तु अधिकांश मूर्ख हैं जो यह तो जानते हैं कि वेद ही सर्वस्व है परन्तु यह नहीं जानते कि उसमें क्या लिखा है। **दयानन्द जी द्वारा भी यही बड़ी हानि हो रही है कि ये** उसी वेदमूलक सनातन धर्म का विरुद्ध अर्थ करके प्रचार करते हैं। इससे जिन वेदों को सब लोग जानते हैं कि यह हमारे धर्म का मूल हैं, जब उसी वेद के विपरीत अर्थों का प्रचार हुआ तब जिन लोगों को वेद का वास्तविक अर्थ और उसका भेद विदित नहीं, उन लोगों को तो, अवश्य ही स्वामी दयानन्द के विपरीत अर्थ में विश्वास जमता है और शनैः शनैः जमता जायेगा। इस कारण आर्य धर्म की जीवनीशक्ति पर आघात पहुंचा है (**'सारसुधानिधि'** पृष्ठ ४८२, १९ माघ संवत् १९३७, खंड २, संख्या ४१, कलकत्ता)।

उपर्युक्त सभा की उपर्युक्त कार्यवाही के विषय में पंडित भानुदत्त जी शास्त्री की सम्मति-('भारतमित्र' कलकत्ता, १० फरवरी, सन् १८८१, खंड ४, संख्या ६, पृष्ठ ४ से)। "महाशय, आपके साप्ताहिक **'भारतमित्र'** के गतांक के पृष्ठ ५ स्तम्भ को पढ़ने से विदित हुआ कि कलकत्ता सीनेट हाल में दयानन्द सरस्वती के मतविषयक अमुक नामा एक दक्षिणी पंडित[९४] और सेठ नारायणदास जी की प्रेरणा से सत्यासत्य विचार के लिए एक महासभा हुई; इसमें प्रायः तीन सौ के लगभग बड़े-बड़े धार्मिक पंडित सुसज्जित हो चौकियों पर विराजे और प्रायः दो-सौ के लगभग सभ्य भी उपस्थित थे। इस सभा में चार विषयों पर मीमांसा हुई—(१) मन्त्रभाग की भांति ब्राह्मण भाग भी प्रामाणिक हैं। (२) मनुस्मृति की भांति अन्य स्मृतियों की भी मान्यता है। (३) यज्ञ आदि क्रियाकलाप केवल जल और पवन की शुद्धि के लिए ही नहीं; प्रत्युत मुक्ति का भी कारण

हैं और (४) पूर्वमीमांसा प्रतिपाद्य नित्य नैमित्तिक आदि कर्मसमुदाय जैसा कि अब हिन्दू जाति में प्रचलित है—सब शास्त्रसम्मत है ।"

सम्पादक महाशय ! यद्यपि इस प्रकार की सभाओं के आयोजन से उन लोगों को भले ही सन्तोष हो जाये कि जो आजतक यह समझे बैठे थे कि हिन्दू-जाति को धर्म के विषय का सहारा देने वाला कोई नहीं या वे देख रहे थे कि हिन्दूजाति का धर्मपोत तीर से बिछड़ कर अब महासमुद्र की झंझावात से पूर्व से पश्चिम को और दक्षिण से उत्तर को बारम्बार घूमता फिरता है, एक न एक किसी पर्वत से टकरा कर जल मग्न हो विनष्ट हो जायेगा और हमारी बन आयेगी । अथवा शास्त्रों के अत्यन्त श्रद्धालु पुराने लोगों को धीर बन्ध जाये परन्तु, आधुनिक सम्प्रदाय के पढ़े-लिखे उन लोगों के लिए तो, जो धर्म को यथार्थ शान्तिनिकेतन, परस्पर भ्रातृभावजनक और देशोन्नति का एकमात्र सोपान समझते हैं—यह आयोजन न केवल सन्तोषजनक नहीं होगा अपितु सर्वथा निष्फल ही रहेगा । क्या आपको और आधुनिक बंगवासी पण्डितों को यह बात विदित नहीं है कि हिन्दू जाति की वही दशा नहीं रही कि जो एक पुरुष की बहुत-सी पत्नियों द्वारा खींचे जाने पर होती है ! (बहवः सन्तयः इव गृहपतिं लगुडयन्ति) । पुरानी शताब्दियों के सम्प्रदायों को तो भला एक ओर रहने दो; (उन्हें छोड़िये) इस शताब्दी के पढ़े-लिखों में परस्पर जो मत विषयक दलभेद होता जाता है, उसे देख-सुनकर ही हम तो विस्मयसागर में डूबे जाते हैं कि हा नारायण ! यह क्या हो रहा है ? एक पुरुष है और सौ ओर से उसे घसीटा जाता है । श्रीयुत राजा राममोहन राय द्वारा प्रवर्तित ब्राह्म-धर्म को ही सत्यधर्म समझ कर महात्मा देवेन्द्रनाथ टाकुर आदि आचार्य लोगों को उस ओर खींच रहे थे कि उन्हीं में से एक दूसरे 'प्रोग्रेसिव पार्टी' (प्रगतिवादी दल) के आचार्य महामान्य केशवचन्द्र आदि ने अपनी ओर ही खींचा और यह खींचतान हो ही रही है कि किसी दूसरे महात्मा शिवनाथ शास्त्री[९५] आदि साधारण ब्रह्मसमाज प्रवर्तक 'आलूद्रा प्रोग्रेसिवों' ने अपना ही जामा (वस्त्र) पहनाया ।

इधर ये अपने वाग्जाल में फंसा ही रहे थे कि 'आर्यसमाज' अथवा 'स्वकीय वैदिकधर्म' के प्रवर्तक श्री दयानन्द स्वामी जी प्रकट हुए थे । ये वेद के मन्त्रभाग को ही सनातन ईश्वर की वाणी और मनुस्मृति को ही यथार्थ आचरणीयधर्म का ज्ञापक धर्मशास्त्र मान कर समस्त शास्त्रों और पुराणों को कल्पित कह रहे हैं और फिर एक और आसाम[1] निवासी ने स्वामी जी की चर्चा सुनी । (यह संकेत स्वामी आत्मानन्द जी की ओर है) कि वे और ही स्वर से आर्य धर्म का उपदेश करते हैं । ईश्वर कभी उनका दर्शन दिखावेंगे तो प्रतीति होगी के वे महात्मा क्या कहते हैं । किस-किस का वर्णन करें । एक दूसरे दाक्षिणात्य पण्डित सभापति स्वामी अपने योगमत की प्रख्याति के अर्थ यथासाध्य चेष्टा कर रहे हैं । अंग्रेजी भाषा में पुस्तकें भी लिखते हैं और स्थान-स्थान पर व्याख्यान सुना कर भोले हिन्दू भाइयों को अपनी ही ओर कर रहे हैं । इसके अतिरिक्त बड़े-बड़े विद्वानों और महा विद्वानों की सीख प्राप्त कर हमारे आर्यभाइयों के चित्तों में जो यह घमण्ड हुआ था कि अब हम भूतप्रेत आदि को मानना, मन्त्रसिद्धि पर विश्वास करना और योगशास्त्र की सब सिद्धियों को सच मानना आदि कुसंस्कारों को दूर कर सुसंस्कृत हो गए, उनके वे वही कुसंस्कार थियोसोफी सभा के प्रधान आल्काट, ब्लैवेत्स्की के उपदेशों और **'थियोसोफिस्ट'** पत्र के प्रचार से फिर 'सुसंस्कार' होते जा रहे हैं । फिर कहीं **'ब्रह्मामृतवर्षिणी**, कहीं **सनातनधर्मरक्षिणी** और कहीं **हरिज्ञानप्रदायिनी'** आदि सभाओं के भी आचार्य अपना-अपना भिन्न-भिन्न मत प्रकाशित कर रहे हैं ।

---

1. 'भारतमित्र' खंड ३, संख्या २९, मिति ९ दिसम्बर, सन् १८८० में लिखा है कि आत्मानन्द सरस्वती आसाम देश में आर्यधर्म का उपदेश कर रहे हैं । इससे पंडित भानुदत्त जी ने समझा कि वे किसी आर्यधर्म का उपदेश दे रहे हैं परन्तु ऐसा नहीं है; ये स्वामी जी आर्यसमाज के ही एक उपदेशक हैं और उसी धर्म के प्रचारक हैं, जिसका उपदेश श्री स्वामी दयानन्द जी किया करते थे; कोई दूसरे नहीं हैं ।—इति ।

सम्पादक महाशय ! जब हमारे देश की यह दशा है तो फिर तर्क का आश्रय लिये बिना और वादियों के ग्रन्थ देखे बिना घर में ही निर्णय करना किसी प्रकार से भी योग्य नहीं प्रतीत होता और न उससे वादियों के मत का खंडन और साधारण समाज की सन्तुष्टि ही हो सकती है । सब यही कहेंगे कि सब कोई अपने-अपने घर में अपनी स्त्री का नाम महारानी रख सकते हैं । सम्पूर्ण स्मृतियों को सत्य मानने वालों को कोई यह तो पूछे कि तुमने बाबू नवीनचन्द्र राय कृत 'धर्मरक्षा' सटीक और 'सत्यधर्मसूत्र' नामक पुस्तकों को देखा है ? अवतार आदि के मानने वाले तथा वेद-विरुद्ध मूर्ति-पूजन के स्थापन करने वालों से यह तो पूछो कि कभी तुमने स्वामी दयानन्द सरस्वतीकृत **'सत्यार्थप्रकाश'** और उनके वेदभाष्य का प्रत्यक्ष विचार भी किया है ? फिर पूछो कि कभी राजनारायण वसु कृत[१६] **'वेदान्तप्रवेश'** जैसे श्रेष्ठ ग्रन्थ का भी कभी अवलोकन किया है ?

प्रयत्न वही करना चाहिये कि जो पंडितों का कर्त्तव्य है और जिससे लोक-परलोक, दोनों का कल्याण हो । स्वार्थ को कौन नहीं जानता ? प्रिय भ्राता ! यदि कोई मन में दुःख न माने तो ऐसी सभा के समर्थकों से यह बात कहना उचित प्रतीत होता है **कि सरस्वती जी के सम्मुख आकर शास्त्रार्थ कोई नहीं करता ।** अपने-अपने **घरों में जो जी चाहे ध्रुपदें गाते हैं ।**

भारतवर्ष की इतनी विशाल राजधानी कलकत्ता के निवासी पंडितों को उचित था कि इस सभा के समय उन सब नवीन-मत प्रवर्तकों को अपने साथ मिला उनका उद्देश्य पूछ, तर्कवितर्क के द्वारा सिद्धांत स्थिर कर फिर सम्मति के लिए प्रत्येक राजधानी और प्रत्येक बड़े नगर में पंडितों की सम्मति के लिए भिजवाते और समस्त भारत वाले पंडितों की सम्मति से एक पुस्तक प्रस्तुत करते; जिसमें हिन्दू जाति के आचार-व्यवहार, नीति और धर्म की प्रवर्तक एक ऐसी पद्धति होती कि **जिसको सम्पूर्णतया मानने से ही हिन्दू बनता; नहीं तो पतित वा अशुद्ध समझा जाता ।** यद्यपि यह बात अत्यन्त ही कठिन हैं, इसको मैं भी जानता हूं; परन्तु फिर भी धर्म से परे और किसी वस्तु को उत्कृष्ट न जाने । 'धर्मात्परं नास्ति'-इस बात को सम्मुख रखकर **'ब्राह्मणस्य शरीरन्तु शंकामवेक्षते'** इस वाक्य के तात्पर्य को समझ 'प्रेत्यानन्तसुखाय च' इस महावाक्य पर सम्पूर्ण हिन्दू जाति का आधार है और इस पर ही अपना कल्याण मन में ठान इस कठिन कार्य के करने में कलकत्ता के पंडितों को भारत के पंडितों में अग्रगण्य होना चाहिए । फिर तो निश्चित है कि इस महान् कार्य में हमारे सम्पूर्ण भारतवर्षीय पंडित भी अपने-अपने स्थान में सभा स्थापन करके इन विषयों पर मीमांसा कर उक्त महासभा के साथ सहमति प्रकट करेंगे और शीघ्र ही ऐसा समय आ जायेगा जो अन्धेरे के पीछे आ जाया करता है । शान्ति ! शान्ति ! शान्ति ! (गुरदासपुर से पंडित भानुदत्त, तत्त्व जिज्ञासु; मिति २, फरवरी, सन् १८८१) ।

'भारती विलास्ये—आगरा खंड १, संख्या ५, मिति १५, फरवरी, सन् १८८१ में **'अपूर्व सभा'** शीर्षक के अन्तर्गत पोपमण्डली के एक गहरे घर के भेदी ने छपवाया है-

अपूर्व सभा—महाशय भारती विलास जी ! सुन लीजिये कि हमारी लालसा भी अपूर्व है । न्यायविचार को कक्ष में दाब हम मनमानी ही करते हैं । फिर तो ब्रह्मा भी क्यों न उतर आयें; हम भला किसकी सुनते हैं ? और हम में यह गुण है कि युक्तियुक्त हो वा न हो, पर हम सिद्ध कर ही देते हैं । इस कारण हम अपने अमूल्य समय को वृथा नहीं खोते । यही विचार करोगे तो समझ लोगे कि संसार में हमारे बिना उस उत्कृष्ट कार्य का साधक और कोई न होगा । बहुत दिनों से हमारे मन में थी कि कुछ अपना नाम भी कर दिखायें और इन्द्रप्रस्थ के पांच अश्वारोहियों में नाम लिखावें । इसी हेतु, सोच-विचार कर हमने बृहत् सभा का ढांचा खड़ा कर दिया । (हमने सोचा कि) धनाढ्य तो किसी के प्रभाव से बने ही हुए हैं; इस प्रकार ज्ञानी भी विख्यात हो जायेंगे । इधर ऐसा विचार ही था कि अनगिनत कलियुगी विद्वान् और सर्वशास्त्र-पारंगत, बिना बुलाये ही आ पहुंचे; नाम सुनते ही तांता लग गया; कनागत का रूपक बंध गया । तुम यह शंका मत करना कि ऐसे क्यों आये और जो करते हो तो समाधान सुन रखो कि भाई ! सत्यासत्य विद्या को आजकल कौन पूछे है, संसार में साढ़े ग्यारह माशे की

लीला फैल रही है । क्या तुम नहीं जानते कि रुपये ही का रूप बन रहा है । देख लो जो कुछ है सो इसी का चमत्कार है । के० सी० एस० आई० की द्रव्य ही माई है; बुद्धिबल या विद्या को कोई नहीं पूछता । आजकल विशेष-टके वाले की ही चतुराई है । राजा, महाराजा, सेठ, साहूकार इसी के प्रताप से बनते हैं, इसके आगे बुद्धि-विद्या की कुछ नहीं चलती । अधिक क्यों विचारते हो, देख लो कि नारायण भी लक्ष्मी के अधीन और दुलहन बन रहे हैं । जो श्रीमद्भागवत पढ़ी व सुनी होगी तो इसमें संशय न करोगे । फिर जब नारायण इसके आप ही दास बन गये[1] हैं तो मनुष्य की क्या सामर्थ्य है ? इसीलिए देशदेशान्तर के वही विद्वान्, जो हमारे कार्यसाधन में तत्पर थे-कहीं क्षणमात्र ही में विद्युत् की भांति, मनतरंगवत्, मनतरंगारूढ़ आ ही पहुंचे । लो, देखते ही देखते सभा बैठ गई, झांय-झांय होने लगी । प्रकार-प्रकार के शब्द-मधुर, कठोर, तीव्र होने लगे । हुलास की धांस से छींक की छनकाछनक बढ़ी और इससे अधिक सभा का प्रबन्ध भी अनोखा था । कुर्सी न मूढ़े, दरी न चटाई, पृथिवी पर और आकाश के मध्य में स्वर्णमंडित झूले बड़े-बड़े वटवृक्षों पर सुख योजन लटकवा दिये । दिन की चकाचौंध न लगे और सत्यरूपी भानु का प्रकाश न हो सके, यह विचार कर मामा ने तमावृत चन्द्रातप ऊपर तनवा दिया । अब तो विचार होने लगा परन्तु थैली मेरे हाथ थी; इस कारण मेरी ही भृकुटि और कटाक्ष के अनुसार वे, विचार-विचार कर विचार करते थे ।

अब यह सुन लो कि यह समारोह क्यों हुआ ? इसलिए कि सत्य का ह्रास और असत्य का तम फैले क्योंकि कलि के राज्य में सत्य का क्या काम ? फिर यह भी डर है कि अमृततुल्य सुरस सत्य के आगे मेरी इस असत्य खट्टी अचारी कौन पूछता है ? इस कारण स्वाद ही का परिवर्तन कर्त्तव्य समझा गया, अब कुछ विचार भी सुन लो ।

प्रश्न १—वेद संहिता सब ब्राह्मणग्रन्थों समेत समान रूप से माननीय हैं या नहीं ? कोई कहा ही चाहते थे कि नहीं; क्योंकि वेदोत्पत्ति के पश्चात् इनकी उत्पत्ति है । परन्तु दो चन्द्रातप और फिर माया का प्रताप; झट-पट औघट घाट चल निकले । **उत्तर हुआ**—'हमारे मनवा ने कहा कि सब समान माननीय हैं ।' **प्रश्न**—क्यों ? **उत्तर**—ब्राह्मण न होते तो वेद कहां से आता ? क्यों जी, क्या तुमने कात्यायन जी को मान लिया, और ऋषियों को झूठा बतला दिया और इतिहास, पुराण, नाराशंसी, कल्प, गाथा के भेदों को न समझा । फिर वचन के इन तीन भेदों अर्थात् विधिवाक्य, अर्थवाक्य, और प्रकरण को विचार कर न देखा (परन्तु) इनको कौन समझता है, यहां तो अपने प्रयोजन से ही प्रयोजन है ।

प्रश्न ३—क्या मनु के समान और स्मृतियां भी मानने योग्य हैं ? **उत्तर**—एक कहा ही चाहता था कि यह श्रेष्ठ-कनिष्ठ का भेद है; दूसरे ने यह पूछा कि मनु में जो यह **"न मांसभक्षण दोषो न मद्ये न च[१७] मैथुने"** इत्यादि लिखा है; क्या यह सत्य है ? परन्तु तीसरा बोल उठा कि दाता का मन बिगाड़ना अनुचित है, कोई मरो, कोई जियो, **मद्य** पियो, मांस खाओ, व्यभिचार करो, पांडे जी को तो लस्सी-मांडे से प्रयोजन है ।

प्रश्न ४—देव-देवी की पूजा । **उत्तर**-कैसी पूजा ? एक बोला चुप ! बात बिगड़ जायेगी, कोरे ही जाओगे । **उत्तर**—हां महाराज, शास्त्र-सम्मत है परन्तु यहां वेद को बचा गये (मन में) दक्षिणा चाहिये कोई भूत, पिशाच, ईंट, पत्थर, कहार, पहाड़, घास, लकड़ी, चूल्हा, चक्की भले ही पूजा लो ।

प्रश्न ५—अग्नि से क्या अर्थ हैं ? **उत्तर**—आग । **प्रश्न**—हैं ! आग ? **उत्तर**—नहीं, नहीं सर्वशक्तिमान् ईश्वर । यदि यह (आग) ईश्वर न होता तो कथनमात्र से ही संसार के भस्म करने की सामर्थ्य अन्य किस में है ! देखो, देखते ही देखते सजा सजाया बंगला जल गया । ईश्वर की ही यह सामर्थ्य है ।

---

1. 'भारतमित्र' में लिखा है कि "मथुरा के सेठ नारायणदास के यत्न से यह सभा हुई थी और पंडित लोगों को विदायगी भी मिली थी ।" २७ जनवरी, सन् १८८१, खंड ४, संख्या ४ । और ऐसा ही 'हिन्दू पैट्रियट' में भी लिखा है ।

प्रश्न ६—यज्ञ से क्या मुक्ति मिलती है ? एक कहा ही चाहता था कि ऐतरेय, शतपथ ब्राह्मणों ने यज्ञ को जलवायु की शुद्धि का कारण बताया है । (देखो शतपथ कांड ५, अध्याय ३) और विज्ञान व युक्ति से भी सिद्ध है परन्तु हाथ की हथेली और यजमान का मन दोनों रखने चाहियें ? इसलिए । **उत्तर मिला**—यज्ञ से परमपद की प्राप्ति होती है ।

प्रश्न ७—श्राद्ध उचित है ? **उत्तर**—भला आपके कहने की बात है, यह तो सदा कर्त्तव्य ही है; नहीं तो पूजन और दक्षिणा दोनों को रेड़ मारी जायेगी । यहीं बुद्धि से विचारो तो जब मरे का दूसरा जन्म मान लिया तो कौन खाने आता है वा कोई दूसरे के मरे स्वर्ग देखता है । फिर तुम्हारे जौ के भूसे मिले पिंड खाते समय क्या उनको उबकाई न आती होगी वा वर्ष भर में एक दिन खाकर सदा पेट भरा रहता होगा । देख लो, '**द्रव्येषु सर्वे वशाः**' अर्थात् रुपये के सब वश में हैं । हमने कहा मन के तरंग से रूपक सिद्ध कर दिखाया । यद्यपि गुणाकर, रत्नाकर आदि जैसे निर्लोभ तो हमारे यहां नहीं आये परन्तु हमने मदार छाप करा ही ली । पश्चात् जो कुछ हो; हमने तो अपनी बात करी ही रखी है । '**भारती-विलास**' महाशय ! हम आशा कर कहते हैं कि इस शून्य, निर्मल, छायारूप सभा का वृत्तान्त सर्वसाधारण को विदित करके हर्षित करोगे । यदि फिर कभी समय मिला तो फिर और सभा रचेंगे ।' (लोटपोट' शुभचिन्तक) ।[९८]

द्वितीय परिच्छेद
जैनमत वालों से शास्त्रार्थ

विदित हो कि स्वामी जी महाराज जहां पधारते वहां इन चार मतों जैनी, पुराणी, किरानी, कुरानी का विशेष रूप से खंडन करते थे । सैकड़ों स्थानों पर कोई जैनी सामने न आया और जहां कोई सम्मुख आया भी तो उसने पराजित होकर भागते हुए पीठ दिखाई और यदि कोई न्यायकारी और सत्यप्रिय हुआ तो वह झट जैनधर्म से हाथ खींचकर वैदिकधर्म का अनुयायी हो गया और यज्ञोपवीत का पवित्र सूत्र गले में डालकर महान् ईश्वर पर विश्वास लाया; उसने दो सौ सात भ्रमों से निकलकर सत्य और सरल मार्ग पर अपना पांव टिकाया ।

पंजाब के जैनियों का वृत्तान्त—इस वृत्तान्त में निम्नलिखित विषयों का वर्णन किया गया है—

१—ठाकुरदास का पहला और दूसरा पत्र (मिति आषाढ़ बदि ११ व आषाढ़ सुदि ५, संवत् १९३७) । मन्त्री-आर्यसमाज-गुजरांवाला की ओर से 'मित्रविलास' पत्रिका के और ठाकुरदास के पत्रस्थ विषय का खंडन; और साथ ही स्वामी जी की ओर से मन्त्री आर्यसमाज मेरठ द्वारा उसका संतोषजनक उत्तर (मिति सावन बदि ९, संवत् १९३७) ।

२—ठाकुरदास का तीसरा और चौथा पत्र (मिति श्रावण सुदि १ व भादों बदि १० संवत् १९३७) और आर्यसमाज के मन्त्री द्वारा स्वामी जी की ओर से उसका उत्तर ।

३—ठाकुरदास का पांचवां पत्र (मिति आश्विन बदि ९, संवत् १९३७) और उस पर स्वामी जी की ओर से मन्त्री आर्यसमाज-गुजरांवाला द्वारा उत्तर ।

४—पूज्य आत्माराम जी के नाम आर्यसमाज गुजरांवाला की चिट्ठी (मिति २३ अक्तूबर, सन् १८८०) और उसका उत्तर) दिनांक २५ अक्तूबर, सन् १८८०)

५—जैनसभा लुधियाना और गुजरांवाला के नाम स्वामी जी के पत्र (मिति ६ नवम्बर, सन् १८८०) ।

६—पूज्य आत्माराम जी के नाम स्वामी जी के दो पत्र। पहला-मिति १४ नवम्बर जो ४ नवम्बर, सन् १८८० के पत्र के उत्तर में लिखा गया और दूसरा-मिति २१ जनवरी, सन् १८८१।

७—स्वामी जी के नाम २२ नवम्बर, सन् १८८० को दिया हुआ ठाकुरदास का नोटिस, फिर ठाकुरदास का दूसरा नोटिस आर्यसमाज के नाम और उसका आर्यसमाज, 'आफताबे पंजाब' लाहौर और 'पंजाबी अखबार' लाहौर की ओर से उत्तर।

८—ला० ठाकुरदास जी का तीसरा नोटिस-समस्त आर्यसमाजों के नाम; जिसमें भारतीय दंडविधान की धारा २९५ के अन्तर्गत नालिश की धमकी दी हुई है और आर्यसमाजों की ओर से फरवरी, सन् १८८१ को लिखा हुआ उसका उत्तर।

९—राजा शिवप्रसाद की साक्षी और उसका मूल्य।

१०—ठाकुरदास का अन्तिम नोटिस और उसका अन्तिम निर्णय तथा स्वामी जी का अन्तिम मुंह तोड़ उत्तर।

११—अन्त को ठाकुरदास ने ६ फरवरी, सन् १८८१ का इसका एक निवेदन सब समाजों को भेजा कि हम स्वामी जी पर नालिश करेंगे।

१२—**'मित्रविलास'** चैत सुदि, संवत् १९३७ में राजा शिवप्रसाद का उत्तर छपा है (४ अप्रैल, सन् १८८१)।

१३—बम्बई के नोटिस।

स्वामी जी महाराज ने **'सत्यार्थप्रकाश'** प्रथम बार सन् १८७५ में प्रकाशित कराया और उसके बारहवें समुल्लास में जैन और बौद्ध तथा अन्य नास्तिक मतों का खंडन किया।[१] उसके पश्चात् जब बम्बई में आर्यसमाज स्थापित करके जून-जुलाई, सन् १८७७ में वे लाहौर आये और तत्पश्चात् फरवरी मास, सन् १८७८ में जब गुजरांवाला जाकर सत्य वैदिकधर्म का मंडन और वेदविरुद्ध जैन आदि मतों का खंडन किया और वहां आर्यसमाज स्थापित हुआ तब से वहां के लोगों को इसकी सूचना मिली। जब कई वर्षों तक सोच-समझ कर वे स्वामी जी के आक्षेपों का खंडन न कर सके तो विवश होकर कोलाहल मचाना आरम्भ किया जिसका विस्तृत और ठीक वृत्तान्त इस प्रकार है—

गुजरांवाला निवासी मूलराज ओसवाल का पुत्र ठाकुरदास भाबड़ा नामक व्यक्ति, जो संस्कृत, हिन्दू, उर्दू, फारसी आदि सब विद्याओं से शून्य है परन्तु व्यर्थ विवाद करने में बड़ा चतुर है, पंडित आत्माराम जी पूज्य की सम्मति से इस बातके लिए उद्यत हुआ कि स्वामी जी से पत्रव्यवहार करे। वह बेचारा इतना अशिक्षित है कि चिट्ठी भी स्वयं नहीं लिख सकता और जिससे उसने लिखवाई वह भी नितान्त मूर्ख है। इस बात की साक्षी स्वयं उसकी भाषा है वह उर्दू-हिन्दी, दोनों से रहित है और संस्कृत के तो शब्दमात्र से भी परिचित नहीं है।

१—**लाला ठाकुरदास का पहला पत्र** (मिति ३, जुलाई, सन् १८८०) इस प्रकार है—"स्वामी दयानन्द सरस्वती योग आतर गुजरांवाला ने लिखतम जैन मती कारण लिखने का यह है कि जो आपने सन् १८७५ में सत्यार्थप्रकाश छापा है-उस पुस्तक का समुल्लास १२ में पृष्ठ ३९६ से लेकर जो व्याख्यान जैनियों के विषय में लिखा है और उनमें हवाल (वृत्तान्त) जैनमत के श्लोकों का लिखा है सो आप कृपा करके जैन के शास्त्रों का नाम लिखो कि यह कौन से जैन के शास्त्र के श्लोक हैं। इस बात का जवाब जल्दी भेजो। चूंकि जो जैनमत में यह श्लोक है नहीं और झूठ लिखना यह बुद्धिमानों की बात नहीं। इस वास्ते आपको योग्य है कि इस शास्त्र का नाम लिखना। इस वास्ते आप को चिट्ठी दी जाती है। इसका

जवाब जल्दी देना । इस चिट्ठी को ठाकुरदास के नाम गुजरांवाला जैन मन्दिर में भेजना । चिट्ठी लिखी मिति आषाढ़ बदि ११, संवत् १९३७, पंजाबी हस्ताक्षर बेलीराम के ।"

इसका उत्तर आने में विलम्ब हुआ; इसलिए आषाढ़ सुदि ५, तदनुसार १२ जुलाई, सन् १८८० को दूसरा पत्र फिर आगरा में भेजा और यह खुशीराम से लिखवाया और इसमें पहले से बढ़कर पृष्ठ ४०२ के श्लोक भी लिख दिये और कहा कि यह चिट्ठी नोटिस के रूप में है । आर्यसमाज गुजरांवाला ने इसका उत्तर **'आर्यदर्पण'** (दिनांक अप्रैल, सन् १८८०) के, जो विलम्ब से प्रकाशित हुआ था, पृष्ठ ९१ से ९३ तक में इस आशय का छपवाया—

संवाददाता महोदय ! नमस्ते । हमने १९ जुलाई, सन् १८८० को प्रकाशित होने वाले समाचारपत्र **'मित्रविलास'** लाहौर में यह लिखा देखा कि जैन लोगों ने मिलकर स्वामी दयानन्द सरस्वती पर नालिश करने का बीड़ा उठाया है और इसके विषय में गुजरांवाला निवासी ठाकुरदास ने एक पत्र भी स्वामी जी के पास भेजा था आदि-आदि ।

इस विचार से कि कहीं हमारे भाइयों को इस समाचार से भ्रम उत्पन्न न हो, हमें इसका स्पष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है । विदित हो कि आजकल जैनमन्दिर-गुजरांवाला में जैनियों के एक प्रसिद्ध गुरु जो जैनियों में अत्यन्त विद्वान् हैं, आये हुए हैं । उक्त समाचार का वास्तव में सम्बन्ध उनसे ही है; अन्यथा ठाकुरदास उनका शिष्य तो जो पत्र व्यवहार का अगुआ बना हुआ है, केवल एक अपठित मनुष्य है । पाठक विचार करें कि यह कार्यवाही कैसी हुई है, क्या यह विद्वानों का काम है कि एक अपठित व्यक्ति को ढाल बनाकर लड़ें और तिस पर यह इच्छा करें कि स्वामी जी एक विद्याहीन मनुष्य के मूर्खतापूर्ण पत्र का उत्तर अपनी ओर से भेजें । इस समाचारपत्र में कई एक झूठी बातें भी छपी हैं । जैसे लिखा है कि 'जैनमत के लोगों ने मिलकर नालिश करने का बीड़ा उठाया है', यद्यपि स्वयं गुजरांवाला नगर के समझदार भाबड़े भी अब तक इस विषय में सहमत नहीं हैं । फिर लिखा है कि इस बारे में एक पत्र पहले स्वामी जी को लिखा गया था । जब इसका कोई उत्तर न आया, तब, दूसरा पत्र, नालिश के नोटिस के सहित रजिस्ट्री करवा कर उनके पास भेजा ।' वास्तविकता यह है कि पत्र भेजने वाले ने एक पत्र के अतिरिक्त, जिसमें नालिश का नोटिस दिया गया था, दूसरा कोई पत्र नहीं भेजा । इस बात को गुजरांवाला के कई लोग जिन्होंने उस पत्र को देखा है, जानते हैं और उस पत्र से भी, जो स्वामी जी के पास जैसे का तैसा विद्यमान होगा, यह बात प्रमाणित हो सकती है । उसमें स्वामी जी को लिखा गया था कि आप उसका उत्तर दें, यदि उत्तर न आवेगा तो हम मानहानि की नालिश करके न्यायालय द्वारा तुमसे उत्तर लेंगे ।

देखिये, इस मूर्खतापूर्ण पत्र को ! इसमें अनुचित धमकी (दी गई है) और उस पर यह इच्छा (की गई) कि कोई सभ्य व्यक्ति सभ्यता के साथ हमको उत्तर दे ! पत्र के भेजने वाले की योग्यता को देखिये ! फिर उसी समाचारपत्र में यह भी लिखना कि स्वामी जी ने जैनमत की बहुत-सी बातें केवल मान-हानि के उद्देश्य से लिखी हैं ।

ठाकुरदास जी को विदित हो कि सत्य का प्रकट करना और उसका निश्चय करना देश की धार्मिक और सांसारिक उन्नति के लिए एक विशेष नियम और विद्वानों का कर्त्तव्य है (स्वामी जी की समस्त बातचीत इसी सिद्धान्त पर है) । इस सिद्धान्त या इसके प्रयोग को आप मानहानि का नाम देते हैं परन्तु इसको यह नाम देना कभी सम्भव नहीं है । यदि इसको मानहानि कहा जावे तो कभी सत्य और असत्य का निश्चय न हो सके और ऐसा होवे तो देश की विद्या और बुद्धि की उन्नति को अत्यन्त हानि पहुंचे; सो आप लोग कहां तक देश की हानि ही किये जायेंगे ! इसको अब तो छोड़ दीजिये । हम तो उस समय की प्रतीक्षा में हैं जब आपके विद्वान् लोग भी स्वामी जी के समान सार्वजनिक सभाओं में खोजपूर्ण व्याख्यान देते और सत्य को प्रकट करते हुए दिखाई देंगे और देश के ज्ञान (की वृद्धि करने) के लिए जैनमत की समस्त पुस्तकें मुद्रित होकर प्रकाशित होंगी, ताकि लोग उन्हें देखें और जानें (परमेश्वर ऐसा ही करे) । और इसी समाचारपत्र में लिखा है कि "कई

बातों का प्रमाण भी नहीं है ।" इसके उत्तर में हम केवल यही कहते हैं कि जिन बातों को आप लोग अप्रामाणिक समझते हों उनके विषय में अपने मत के किसी योग्य और विद्वान् व्यक्ति को तैयार करके शास्त्रार्थ करें, अन्यथा ठाकुरदास जी कोई शास्त्र नहीं पढ़े हैं; उनकी योग्यता तो उस पत्र से ही प्रकट है जो पहले भेज चुके हैं : ऐसे व्यर्थ पत्र या अपढ़ व्यक्ति द्वारा उठाये हुए विवादों के उत्तर में अपने अमूल्य समय को नष्ट करना स्वामी जी जैसे विद्वानों का काम नहीं । (आर्यसमाज गुजरांवाला)

चूंकि स्वामी जी उन दिनों आगरा में न थे प्रत्युत मेरठ में थे इसलिए उनको यह चिट्ठी बहुत विलम्ब से पहुंची । स्वामी जी की ओर से मुन्शी आनन्दीलाल मन्त्री आर्यसमाज मेरठ ने इसका उत्तर २६ जुलाई, सन् १८८० को लिख भेजा । वह इस प्रकार है—**"ठाकुरदास जी योग नमस्ते ।** पत्र आपका संवत् १९३७ आषाढ़ सुदि पञ्चमी का लिखा हुआ स्वामी जी के पास पहुंचा । देखकर अभिप्राय जान लिया । उसका उत्तर लिखने के लिए स्वामी जी ने मुझको आज्ञा दी है, इससे आपको मैं लिखता हूं ।

बड़े आश्चर्य की बात है कि जो लोग विद्वान् नहीं होते वे ही अन्यथा बातों के लिखने में प्रवृत्त होकर अपनी हानिमात्र कर बैठते हैं क्योंकि उनको अपनी और पराई बातों की समझ तो होती ही नहीं । इससे अपने आप गड्ढा खोद उस में आप ही गिर पड़ते हैं । तुम्हारे लेख से हमको यह विदित हुआ कि तुम किसी विद्या को न पढ़े और न किसी विद्वान् से कभी तुमने संग किया है । नहीं तो, स्वामी जी के लेख के अभिप्राय को क्यों न समझ लेते और अपना लेख अपनी इच्छा के विरुद्ध क्यों लिखते ? देखिये, जब स्वामी जी ने बारहवें समुल्लास में अनेक ठिकानों में यह लिखा ही था कि 'जैन लोग ऐसा कहते हैं' तो फिर आपने यह क्यों पूछा कि किस शास्त्र के अनुसार छापा है ? इस लेख से विदित होता है कि आप जिस सम्प्रदाय में हैं जब उसी का वृत्तान्त ठीक नहीं जानते तो जैनियों के दूसरे सम्प्रदायों की बातों को जानने में क्योंकर समर्थ हो सकते हैं ? और इससे यह भी विदित होता है कि आपका कोई भी संगी-साथी संस्कृत और भाषा नहीं पढ़े हैं । जब स्वामी जी ने यह लिखा है (कि जैन लोग ऐसा कहते है) फिर तुम्हारा यह पूछना कि किस शास्त्र और ग्रन्थ की अमुक बात है, क्या व्यर्थ नहीं है ? और जो तुमने श्लोक लिखे हैं, वे ही स्वामी जी के सब लेख में प्रमाणभूत हैं परन्तु जो तुमने "अग्निहोत्र, तीन वेद, त्रिपुण्ड्र, भस्म-धारण आदि बुद्धि और पुरुषार्थ से हीन मनुष्यों की जीविका, स्वभाव से जगत् की व्यवस्था, वर्ण और आश्रमों की क्रिया सब निष्फल हैं"—लिखा, क्या ये बातें तुम्हारा सर्वस्व नीलाम होने में थोड़ा अपराध है ? मैं आपसे सुहृदयता से लिखता हूं कि इस विषय को आप झूठा कभी मत समझना । इसमें सब जैनमत वालों की सम्मति ले लीजिये जैसे कि हम सब आर्यों का तुम्हारे सामने तन, मन, धन से न्याय करते हैं । निश्चित है क्योंकि तुम जैन लोगों ने परम पवित्र, सब सत्यविद्याओं से युक्त, सब मनुष्यों के लिए अत्यन्त हितकारी, ईश्वरोक्त, वेदों और वेदानुकूल अन्य सत्य शास्त्रों की निन्दा (करके) और इन पर-उपकारी पुस्तकों का नाश करके इतनी हानि की और (अधिक) करना चाहते हो कि यदि उन सब जैनियों का तन, मन और धन लग जावे तो भी नालिश की डिग्री पूरी न होगी । इसलिए तुम सब जैनियों को विज्ञापन दे दो कि वे भी सब तुम्हारे सहायक होकर इस विषय को हम लोगों से चला सकें । तुम सब इसमें तैयार हो जाओ कि हम लोग सत्य और असत्य के निश्चय करने में तत्पर हैं । यह अपने मन में बड़ा विचार कर लीजियेगा । हम आर्य लोगों को वैष्णव आदि के समान कभी मत समझ लेना जैसे उनके रथ निकालने आदि के झगड़े को न्यायालय से जीत लेते हो वैसे हमारे साथ कभी न कर सकोगे क्योंकि जैसे पाषाण आदि की मूर्तियों के पूजक तुम हो, वैसे वे भी हैं । हम हैं, परमेश्वरपूजक और तुम हो अनीश्वरवादी अर्थात् स्वतः सिद्ध, अनादि ईश्वर को नहीं मानते । इत्यादि हेतुओं से हमारे सामने तुम्हारा पराजय होना किसी प्रकार असम्भव और कठिन नहीं है । इसलिए तुमको नोटिस देते हैं कि तुम आपस में मिलकर इस विषय को चलाओ । और जब तुम्हारी योग्यता हमारी ही तुलना में कम दीखती है तो स्वामी जी की तुलना में

तो तुम्हारी योग्यता कितनी हो सकती है ? कुछ भी नहीं । देखना हम न्यायालय में सभी न्यायाधीशों आदि के सामने तुम्हारे हजारों ग्रन्थों से उन द्वारा की गई वेद आदि सत्य शास्त्रों की मिथ्या निन्दा, ठीक-ठीक सिद्ध कर देंगे । इसमें कुछ भी सन्देह मत जानना । जितना तुम्हारा सामर्थ्य हो उतना व्यय हो जाने पर भी आप लोगों का बचना अति कठिन दीख पड़ता है और एक यह बात भी करो कि जैसे हमारे बीच में स्वामी जी बहुत उत्तम विद्वान् हैं वैसे ज़ो कोई एक तुम्हारे बीच में सर्वोत्कृष्ट विद्वान् हो उसको स्वामी ज़ी के सामने खड़ा कीजिये कि जिससे तुम और हमको वैदिक और जैन मत की चर्चा में कुछ आनन्द प्राप्त हो और अन्य मनुष्यों को भी लाभ पहुंचे । हमारे इस लेख को निस्सन्देह सत्य और मूलमन्त्र तथा सूत्र के तुल्य समझना कि इतने ही लिखने से सब कुछ जानियेगा । तुम्हारे सामने इससे अधिक लिखना हमको आवश्यक नहीं किन्तु जब-जब जहां-जहां जैसा-जैसा प्रकरण आयेगा; तब-तब, वहां-वहां, वैसा-वैसा ही हम लोग तुमको ठीक-ठीक साक्षात् करा दिया करेंगे, ऐसा निश्चित जानो । जैसे यह पत्र हम लोग वहां स्थित गुजरांवाला के आर्यसमाज के द्वारा ही भेजते हैं, वैसे आप लोग वहीं के समाज के द्वारा ही हमारे पास पत्र भेजा कीजियेगा । मिति श्रावण बदि ५, सोमवार, संवत् १९३७ ।"
दयानन्द सरस्वती ।

इस पत्र के पश्चात् ला० ठाकुरदास ने स्वामी जी के नाम निम्नलिखित पत्र, ७ अगस्त को भेजा—"स्वामी दयानन्द सरस्वती योग नमस्ते । वाहे रे वाह उत्तर लिखने वाले ! उस उत्तर के लिखाने से तुम्हारी बड़ी विद्वत्ता जाहिर हो गई है । तुमने जो लिखा है कि हम ऐसे हैं या वैसे हैं; तुम ऐसे अभिमान के पंच हो । विद्वानों की यही रीति होयगी न ? कि जो कोई उत्तर मांगे उसका तो यथार्थ उत्तर नहीं लिखना किन्तु उत्तर के बदले उसकी निन्दा और अपनी बड़ाई लिख देना । वाह, क्या ही निर्मल बुद्धि का प्रभाव है ! परन्तु ऐसे उत्तर लिखने से हमारे पत्र का उत्तर नहीं लिखा किन्तु व्यर्थ ही तुमने कागज काला किया है । परन्तु तुम्हारे लिखने से हमको ऐसा प्रतीत होता है जो स्वामी जी ने किसी जैन के कथन सुनकर 'सत्यार्थप्रकाश' में लिख दिया होगा परन्तु जैनमत के शास्त्र स्वामी जी ने कभी भी नहीं देखे होंगे । जेकर (यदि) देखे होते तो 'इत्यादिक श्लोक जैनियों ने बना कर रखे हैं' ऐसा कदी न लिखते क्योंकि जैनमत की दो शाखाएं हैं—एक श्वेतांबर और एक दिगंबर । इन दोनों में से कौन-सा जैन स्वामी जी के कान में सुना गया था, 'जैसे अपर श्लोक जैनियों के बनाये हुए हैं ।' अब स्वामी जी को उचित है (कि) इन श्लोकों का ठिकाना कहें अथवा जिसने उनके कान में सुनाया है उस जैनी का नाम लिखें अथवा स्वामी जी की समझ में उक्त दोनों शाखाओं के अतिरिक्त और कोई जैन मत है जिसका श्लोक है तो उसका नाम लिखें । अभिमान की बातें लिखने से विद्वान् नहीं होता । उत्तर नहीं लिखा और उत्तर के स्थान पर अभिमान की वार्ता लिखनी तो योग्य नहीं ।" (श्रावण बदि १, संवत् १९३७) यह जैनियों का दासानुदास ठाकुरदास ।

इसका उत्तर शीघ्र न आने पर दूसरा पत्र ३० अगस्त, १८८० को भेजा ।[1]

उसका उत्तर मुंशी आनन्दीलाल साहब ने १२ सितम्बर, सन् १८८० को दिया—ओ३म् भाई ठाकुरदास जी योग नमस्ते । पत्र आपका मिति भादों बदि १० सोमवार का लिखा स्वामी जी के पास पहुंचा । स्वामी जी ने हमको दे दिया । उक्त पत्र को देख, अभिप्राय जानकर मुझको आश्चर्य होता है कि आप पुनः-पुनः पिष्टपेषणवत् श्रम क्यों करते हैं ? मैंने प्रथमपत्र में सब बातों के प्रत्युत्तर लिखे; फिर भी तुम न समझे तो मेरा क्या दोष है । क्या मैंने यह बात न लिखी थी कि जो स्वामी जी से मतविषयक शास्त्रार्थ किया चाहो तो अपने मत के सर्वोत्कृष्ट (सब से बड़े विद्वान्) को स्वामी जी के सम्मुख करो अथवा जो ऐसा न कर सको तो इस समय गुजरांवाला में आत्माराम जी[2] उपस्थित हैं उन्हीं को शास्त्रार्थ के लिए नियुक्त करो जिसमें आप लोगों के मत की सत्यता सर्वत्र प्रसिद्ध होकर सबको विचार करने का समय (अवसर) प्राप्त हो, और जो

---

1. ला० ठाकुरदास के पत्र की नक्ल जैसी की तैसी कर दी गई है । शुद्धि और सुधार का विचार जानबूझ कर नहीं किया गया ।

(मत और स्वग्रन्थों को गुप्त रखने से) मिथ्यात्व रूप कलंक आप लोगों पर लगाया जा रहा है वह दूर होकर (आपके) स्वमत का तत्त्व यथार्थ प्रकाशित हो जाये । लोग ऐसा अपवाद तुम्हारे पर धरते हैं कि जैसे वेद आदि शास्त्रों का आर्य लोग, बाइबिल आदि का ईसाई लोग और कुरान आदि का मुसलमान लोग व्याख्या और देशभाषान्तर में उल्था करके प्रचार कर रहे हैं वैसे जैन लोग क्यों नहीं करते ? यदि जैनियों के मत विषयक पुस्तक ठीक-ठीक सत्य और विद्यापुस्तकों के अनुकूल होते तो वाममार्गियों के सदृश कौल-पद्धति[1] के समान अपने पुस्तकों को गुप्त क्यों रखते ? इत्यादि बुद्धिमानों द्वारा किये गये अपवाद का निवारण करना आप लोगों को अत्यन्त उचित है । इसके निवारण के उपाय दो ही हैं—**एक स्वामी जी के साथ तुम्हारे मत के सर्वोत्तम विद्वान् का शास्त्रार्थ होना और द्वितीय-अपने सब पुस्तकों को अनेक देशभाषाओं में छपवा कर प्रसिद्ध करना ।** जब तक ऐसा न करोगे तब तक पूर्वोक्त कलंक दूर कभी न होगा । प्रथम यत्न का उपाय जो किया चाहो तो शीघ्र ही हो सकता है । स्वामी जी और आत्माराम जी का संवाद हम और तुम मिलकर करावें । जो स्वामी जी का पक्ष खंडित होकर आप लोगों का पक्ष सिद्ध रहे तो आत्माराम जी आदि आठ जैनियों का रेल और खाने-पीने का जितना खर्च उठे उतना हम दें और जो आत्माराम जी का (पक्ष) निराकृत होकर स्वामी जी का पक्ष सिद्ध रहे तो आठ पुरुषों का पूर्वोक्त व्यवहार में यावत् खर्च हो तावत् आप लोग देवें । कोई मध्यवर्ती उत्तम स्थान हो जहां दोनों महात्मा उपस्थित होकर शास्त्रार्थ करें । हम लोगों ने स्वामी जी से इस विषय में पूछा था । स्वामी जी ने कहा कि जो ऐसा हो तो हमको स्वीकार है ।

अब तुम लोग आत्माराम जी से पूछो कि वे ऐसा चाहते हैं वा नहीं ? जो वे शास्त्रार्थ करने को उद्यत हों तो शीघ्र लिखें क्योंकि स्वामी जी यहां से अन्यत्र जाने वाले हैं । इससे यह कार्य अतिशीघ्र होना चाहिये अर्थात् दोनों महात्माओं के समागम से सब सिद्धान्त प्रकाशित हो जा सकेंगे और दूसरे पत्र का उत्तर इसलिए नहीं भेजा कि उसमें कुछ विशेष न था । अब जो तीसरे उत्तर में तुमने लिखा है सो पिष्ट को पेषणवत् है क्योंकि उनका उत्तर प्रथम पत्र के उत्तर में हम लिख चुके हैं और इस पत्र में तुमको ऐसा अशिष्ट लेख करना योग्य न था तथा स्वामी जी के नाम पत्र भेजना भी अनुचित था । यह निश्चय जानो कि स्वामी जी और उनका सर्वस्व हमारा और हम तथा हमारा सर्वस्व स्वामी जी का है । जैसा तुमने लिखा वैसा तुम पर भी आ गिरता है कि तुम कौन कहने और लिखने वाले, और जो हो, तो हम क्यों नहीं ? ये सब बातें विद्वानों के समागम के बिना, केवल लिखने से कभी नहीं निपट सकतीं । बार-बार बिना समझे लिखते हो कि सत्यार्थप्रकाश आपने क्यों छपवाया ? इतना भी बोध तुमको नहीं कि यह ग्रन्थ स्वामी जी ने छपवाया है वा राजा जयकृष्णदास सी० एस० आई० मुरादाबाद ने छपवाया है । जब ऐसी छोटी-छोटी बातों को नहीं समझ सकते हो तो गूढ़ बातों को क्या समझ सकोगे ! यह तुम और हमको अत्यन्त योग्य है कि अपने और दूसरे मत का सत्यासत्य-निर्णय के लिए बैठना । विद्या, प्रमाण और शास्त्रोक्त व्यवहार के सहित प्रीतिपूर्वक शास्त्रार्थ करके असत्य का निरोध और सत्य का प्रचार करें । यह शास्त्रार्थ प्रथम उस प्रकृत विषय में हो, जो सत्यार्थप्रकाश में स्वामी जी ने लिखा है—पश्चात् अन्य विषय में हो । जो इस शास्त्रार्थ में तुम्हारा पण्डित सत्यार्थप्रकाश के द्वादश समुल्लासोक्त विषय को तुम्हारे मत के विरुद्ध ठहरा देगा तो स्वामी जी उस विषय को दूसरी बार सत्यार्थप्रकाश में छपवाने न देंगे और क्षमा भी मांगेंगे और जो वह विषय स्वामी जी ने तुम्हारे मत के अनुसार सिद्ध कर दिया तो जितनी तुमने वेदादिक विषय की निन्दा लिखी है उसको छोड़ना और स्वामी जी से क्षमा मांगनी होगी । जो तुम **शीघ्र शास्त्रार्थ करना न चाहो तो कब तक करोगे इसका निश्चित समय लिखो** परन्तु जितना बने उतना शीघ्रता से करो । स्वामी जी और हमारी ओर से कुछ भी विलम्ब नहीं । इसका प्रत्युत्तर पत्र देखते ही दीजिये और इस बात में तुमको विलम्ब करना उचित नहीं क्योंकि तुमने यह बात उठाई है । इसलिए आपको योग्य है कि कल शास्त्रार्थ करने में प्रवृत्त हुआ चाहो

---

1. शाक्त सम्प्रदाय के समान-(सम्पा०)

तो आज ही तत्पर हूजिये । देखो, हमारे साथ पत्र-व्यवहार करने से तुमको कितना लाभ हुआ कि जो प्रथम और दूसरा पत्र तुमने हमारे पास भेजे थे वे कैसे अशुद्ध थे और जो तीसरा पत्र तुमने भेजा तो भाषा के नियम से कुछ अच्छा है और अभिप्राय अर्थ से तो यह भी शुद्ध नहीं है । अब मैं अपनी लेखनी को अधिक लिखने से रोककर आप लोगों को जताता हूं कि आप लोग पूर्वोक्त बातों पर ध्यान अवश्य देवें । यह बात बहुत उत्तम और लाभकारी है ।" मिति भाद्रपद सुदि ८, रविवार, संवत् १९३७ । आनन्दीलाल मन्त्री आर्यसमाज, मेरठ ।

इस पत्र-व्यवहार का संकेत **'आर्यसमाचार'** पत्रिका मेरठ, आसौज मास, संवत् १९३७ तदनुसार सितम्बर, सन् १८८० में पृष्ठ १९३ से १९५ तक विद्यमान है ।

ला० ठाकुरदास जी की ओर से इसका उत्तर—"स्वामी दयानन्द सरस्वती योग नमस्ते । आपका पत्र मुझे पहुंचा परन्तु जो मैने पूछा था कि यह श्लोक कौन से जैनमत के शास्त्र के हैं अथवा कौन से जैन से आपने सुने व लिखे-इन दोनों में से आपने एक का भी उत्तर नहीं लिखा । क्या यह शोक की बात नहीं है कि जब सत्यार्थप्रकाश में लिखा था तब नहीं विचारा था कि जो इस बात का उत्तर कोई मांगेगा तो क्या उत्तर दूंगा ? हम आपको प्रेमपूर्वक लिखते हैं या तो उक्त प्रश्नों का उत्तर लिखो, नहीं तो अपनी भूल प्रकट करो, हमसे क्षमा मांगो और जो तुमने लिखा है हमारे पास आओ; चर्चा करो; सो हां ! जब तुम हमारे प्रश्न का यथार्थ उत्तर लिखोगे तो हमको प्रतीत हो जावेगा कि स्वामी जी सत्यावादी हैं; फिर भी हमको जो संशय होगा तो आपके पास सोचने को चले आवेंगे । जेकर उत्तर यथार्थ न लिखा तो फिर असत्यवादी से हम को पूछने की वा चर्चा करने की क्या जरूरत है ? (अर्थात् यदि आपने यथार्थ उत्तर न लिखा तो फिर भला असत्यवादी के साथ चर्चा करना क्या हमारे लिए आवश्यक है ?) आश्विन बदि ९ सोमवार तदनुसार २७ सितम्बर, सन् १८८० । गुजरांवाला । ठाकुरदास भावड़ा ।

चूंकि प्रश्न फिर वही था और केवल बेतुकी हांक कर शास्त्रार्थ से बचने की चेष्टा की गई थी इस कारण इस पत्र को गुजरांवाला समाज ने स्वामी जी के पास भेजना आवश्यक न समझकर (क्योंकि उन्हीं के द्वारा पत्रव्यवहार होता था) स्वयं समाज के मन्त्री ने इसका उत्तर लिखा और दूसरा पत्र आत्माराम जी के नाम भेजा ।

ठाकुरदास जी के नाम बिना तिथि का पहला पत्र—"लाला ठाकुरदास जी, नमस्ते । हमको आप से कुछ मित्रभाव भी है । हमारी बातों से अप्रसन्न वा क्रोधयुक्त न होना । आपका पत्र, मिति आसौज बदि ९ का आपने स्वामी जी के पास भेजने के लिए इस समाज में भेजा था, सर्वथा पहली ही बातों से भरा हुआ है और स्वामी जी के पास उसका भेजना व्यर्थ जाना; इसलिए नहीं भेजा गया क्योंकि स्वामी जी की ओर से उत्तर आपके पत्र का जैसा उचित था, आ चुका है । उन्होंने जो लिखा है कि आपके मत के किसी उत्तम विद्वान् आत्माराम जी से, जो इस समय गुजरांवाला में हैं, शास्त्रार्थ होकर सब सत्यार्थ विषयक बातों पर विचार किया जाये । यह बहुत उत्तम और आपकी सब बातों का उत्तर है और इससे जिन बातों का निर्णय महीनों में पत्र द्वारा नहीं हो सकता है उनका दिनों ही में हो जाता है और निस्सन्देह शास्त्रों की अत्यन्त विचारणीय बातों का निश्चय जब तक दो विद्वान् मिलकर परस्पर शास्त्रार्थ से विचार न करें, हो ही नहीं सकता । यदि आप शास्त्रार्थ के लिए अभी कोई निश्चित समय नहीं ठहरा सकते तो जब कोई उचित समय पर मध्यवर्ती स्थान नियत कर सकें, उससे सूचना देते जायें । वृथा और दोषयुक्त बातों के लिखने में आप प्रवृत्त न हों और विदित रहे कि अशिष्ट लेख ओर कड़वी बातों के करने से कभी आपस में विचारपूर्वक प्रश्नोत्तर व्यवहार नहीं हो सकता और जो पुरुष विद्या आदि गुण रहित होके पहले ही लड़ाई और अयोग्यता की बातें करे जैसा कि आपने कृपा की है कि पत्र के आदि से ही कठोरता और अशिष्ट लेख करके मुन्शी आनन्दीलाल जी से उसका उत्तर सुनते रहे और अभी तक उससे नहीं हटे, ऐसे अविद्वान् लोगों से विद्वानों और विचारयुक्त

पुरुषों को अवश्य अलग रहना चाहिए और ऐसा प्रश्नोत्तर-व्यवहार एक दूषित व्यवहार है । शोक की बात है कि आप पहले ही से ऐसी चाल चले हैं । यदि आपके मत के किसी उत्तम विद्वान् के साथ शास्त्रार्थ हो कर विचारणीय बातों का निश्चय यथावत् किया जावे तो अच्छी प्रकार सत्यासत्य का निर्णय हो सकता है । आगे आपकी इच्छा नमस्ते ।"

हस्ताक्षर—**नारायणकृष्ण**, उपप्रधान आर्यसमाज, गुजरांवाला ।

उन्हीं दिनों में एक पत्र स्वामी जी का मन्त्री आर्यसमाज गुजरांवाला के नाम इस आशय का आया कि आत्माराम जी के जो-जो सन्देह सत्यार्थप्रकाश के विषय में हों, उनसे लिखवा कर और हस्ताक्षर करवाकर हमारे पास भिजवाइए ताकि हम उनको अपने हस्ताक्षर का पत्र भेजें । तब कुछ सदस्यों ने मौखिक जाकर कहा, उन्होंने सोचने की प्रतिज्ञा की ।

तत्पश्चात् समाज की ओर से यह पत्र २३ अक्तूबर, सन् १८८० को आत्माराम जी के नाम भेजा गया—"श्रीयुत पंडित आत्माराम जी योग नमस्ते । महाशय, इस समाज में स्वामी दयानन्द जी सरस्वती का एक पत्र आया है जिसमें उन्होंने लिखा है कि पंडित आत्माराम जी से एक पत्र उन सन्देहयुक्त बातों का, जिनको वे सत्यार्थप्रकाश में जैनियों के विरुद्ध ठहराते हैं, उनके हस्ताक्षर सहित हमारे पास भिजवा दो कि हम विचारपूर्वक उनका उत्तर लिखकर और अपने हस्ताक्षर करके उनके पास भेजेंगे । इस बात के निवेदन के अर्थ इस समाज के दो-तीन सभासद् आपके पास प्राप्त हुए (पहुंचे) थे जिस पर आपने कहा था कि प्रथम इस विषय में हम विचार कर लेवें, सो विचार कर लिया होगा । महाशय, यह सबको विदित है कि आप ही के उपदेशपूर्वक आपके सेवकों ने इस विषय में पत्र स्वामी जी के नाम भेजा था और आप स्वयं भी अपने मुखारविन्द से यह बात कह चुके हैं । इसलिए हम लोग विनती करते हैं कि यदि आपको 'सत्यार्थप्रकाश' विषयक सन्देहों पर सम्मति है ('सत्यार्थप्रकाश' के विषय में आप सबके जो सर्वसम्मत सन्देह हैं) तो हस्ताक्षर करने के लिए आप सोच में न पड़ेंगे । (अर्थात् हस्ताक्षर करने में आप 'ननु नच' नहीं करेंगे) और अब सब बातों (सभी सन्देहास्पद स्थलों) का एक सूचीपत्र अपने हस्ताक्षर से सुशोभित (हस्ताक्षर सहित) स्वामी जी के पास भेजने के अर्थ हमारे पास भिजवा देंगे ताकि हम शीघ्र स्वामी जी के पास भेज देंगे । परस्पर शास्त्रार्थ के बदले (जो आपने स्वीकार नहीं किया) आपके हस्ताक्षरयुक्त सूचीपत्र पर ही सब बातों का निर्णय हो सकता है । (परन्तु यह तभी सम्भव है जब कि) आप भी यथार्थ निर्णय को भला जान कर, इस पर ध्यान देवें; अन्यथा नहीं ।" ५ कार्तिक, संवत् १९३७ तदनुसार २४ अक्तूबर, सन् १८८० । हस्ताक्षर नारायण कृष्ण[३] उपप्रधान, आर्यसमाज गुजरांवाला ।

इस पर आत्माराम जी ने समस्त प्रश्न लिखकर अपने हस्ताक्षर करके समाज को दे दिये क्योंकि यह छेड़छाड़ आरम्भ में भी उन्हीं की ओर से थी; भले ही सामने ठाकुरदास को किया हुआ था । ये प्रश्न आर्यसमाज गुजरांवाला द्वारा स्वामी जी के पास देहरादून भेजे गये । ला० ठाकुरदास जी ने उनके नाम से जो पत्र था उसका उत्तर कार्तिक बदि ७, संवत् १९३७ को लिखवाकर भिजवाया । वह यह है—

"दयानन्द सरस्वती योग नमस्ते । महाशय, कार्तिक पंचमी को एक पत्र गुजरांवाला आर्यसमाज ने हमारे मन्दिर में भेजा । वह पत्र हमारे परमपूज्य विद्वानों में अग्रगण्य साधुओं में प्रतिष्ठित श्रीमान् आत्माराम जी के नाम था । उन्होंने यह पत्र देखते ही मुझे दे दिया । कारण कि उनको वादानुवाद से कुछ सम्बन्ध नहीं । पत्र का आशय जो खोलकर मैंने पढ़ा तो बहुत ही चकित हुआ और जब बीच में देखा कि आपकी आज्ञानुसार यह पत्र लिखा गया है और आप ही ने अपनी गुजरांवाला की समाज को पत्र भेजकर प्रेरित किया है कि वह आत्माराम जी के नाम यह पत्र भेजे, तब तो मेरे आश्चर्य की सीमा न रही । पत्र का शीर्षक और ऊपर आत्माराम जी का नाम देखकर तो मैंने समझा था कि आर्यसमाज को भ्रम हुआ जो उन्होंने मेरे नाम के बदले आत्माराम जी का नाम लिख दिया परन्तु नहीं, जब पत्र का आशय पढ़ा तो प्रतीत हुआ कि आर्यसमाज ने

जान-बूझ कर यह भ्रान्ति की है और इस भ्रान्ति के मूल कारण आप हो क्योंकि आप ही के उपदेश से आर्यसमाज ने ऐसा किया । अहा, हा, प्यारे दयानन्द जी ! यह बुद्धि आपको किस ने दी ? यह आपको किसने समझाया कि आत्माराम जी के नाम पत्र भेजो । एक बात मैं आपसे पूछता हूं—पांच-छ: पत्र मैंने आपके पास भेजे, दो-तीन पत्र आपने भी मेरे ही नाम पर भिजवाये, फिर आज आप बिन बुलाये आत्माराम जी के सामने क्यों जा पड़े ? वाह, यह न्याय और विद्वत्ता आपने कहां से सीखी कि जो पत्र भेजे उसको उत्तर न देना और जो न भेजे उसके गले जा पड़ना । आप पहले मेरे साधारण से प्रश्न का तो उत्तर दीजिये फिर आत्माराम जी के ही सामने आयें, उसमें आपको क्या सम्बन्ध ? एक प्रश्न की जिज्ञासा मैं आप से करता हूं और आप फिसल-फिसल कर दूसरी ओर जाते हैं परन्तु इस फिसल-फिसल जाने से आप झूठ वाक्य और व्यर्थ लिखने के अपराध से न छूट सकेंगे । इस बात का भली-भांति आप ध्यान रखें । आत्माराम जी को पत्र भेजने से कदाचित् आपने यह समझ लिया होगा कि इनको इधर-उधर की बातें बनाकर समझा लूंगा और नालिश तक न पहुंचने दूंगा परन्तु मैं आपको सच-सच कहता हूं कि यह आपका महान् भ्रम है । आत्माराम जी को इस मुकद्दमे से कुछ सम्बन्ध न होगा, जो कुछ करना है सो मैंने करना है, आत्माराम जी इस झंझट से अलग हैं । हां, मेरी उनकी इच्छा होगी तो जब कभी उन्हें अवकाश होगा वे आपकी लिखित बातों का खंडन भी कर देंगे परन्तु इस समय उन्हें इस बात से कुछ सम्बन्ध नहीं ।

सरस्वती जी महाराज ! आप विचार कर तो देखिये मेरा प्रश्न कुछ बड़ा भारी नहीं, केवल इतना मात्र आपसे पूछा और पूछता हूं कि सत्यार्थप्रकाश के बारहवें समुल्लास में जो जैन मत विषयक आपने श्लोक लिखे हैं वे किस जैन पुस्तक वा जैनी शास्त्र का प्रमाण लेकर लिखे हैं ? बड़े ही शोक का विषय है कि अब इस प्रश्न को किये हुए चार मास हो गये परन्तु आपने अन्धाधुन्ध पत्र भेज-भेज कर ये चार मास उड़ा दिये; पर स्पष्ट उत्तर न दिया । न्यायालय में पहला दावा मेरा यही होगा कि ये श्लोक जो सत्यार्थप्रकाश में दयानन्द ने लिखे हैं और हमारे मत की निन्दा की है ये श्लोक हमारे मत के किसी प्राचीन से प्राचीन और नवीन से नवीन ग्रन्थों में कहीं नहीं हैं और यह जो इसने (दयानन्द ने) बिना प्रमाण के व्यर्थ हमारे धर्म का अपमान किया है, इसका दण्ड इसको अवश्य मिलना चाहिये । प्रियवर, फिर उस समय आप क्या करोगे ? इससे मैं चाहता हूं कि घर में निबेड़ा करना उत्तम और श्रेष्ठतम है । गुजरांवाला की समाज के प्रेरित पत्र में यह भी लिखा है कि सत्यार्थप्रकाश में लिखे हुए वाक्यों में से जिन-जिन को आप अशुद्ध ठहरायें उनको आप हमारे पास लिखकर भेज दें, हम इसका निर्णय करा देंगे । सो महात्मन् ! आप और बातों के निर्णय को तो रहने दीजिये, सबसे प्रथम इस बात का निर्णय करा दीजिये कि वे श्लोक आपने कहां से लेकर और किस प्रमाण को रखकर लिखे हैं । बस शेष बातों का निर्णय फिर आप से आप हो जावेगा । अन्त में आपको यह जताना चाहता हूं कि मेरा प्रश्न कुछ गम्भीर नहीं है, केवल एक साधारण-सा है । उसका उत्तर आप शीघ्र दे दीजिए और कुछ कहना हो सो मुझे लिखें, आत्मारम जी को दु:ख देने से प्रयोजन नहीं । और दूसरा यह कि यदि अपनी बात को सिद्ध करने के अर्थ कोई प्रमाण आपके पास नहीं तो आप हस्ताक्षर सहित एक पत्र भेजकर हमसे क्षमा मांग लीजिये और क्षमापत्र नम्रतापूर्वक लिखें, हम शान्त हो जायेंगे; नहीं तो अपना पक्ष दृढ़ रखकर मुझे आज्ञा दीजिये । फिर न्यायालय में अपना निर्णय करवा लिया जाये । यदि आप देने वाले बनें तो हमारा उत्तर दो बातों और दो पंक्तियों में आ सकता है ।" गुजरांवाला । २५ अक्तूबर सन् १८८० । जैनियों का एक दास ठाकुरदास भाबड़ा ।

स्वामी जी की ओर से अन्य पत्र—चूंकि इस पत्रव्यवहार में आत्माराम जी पूज्य और लुधियाना तथा गुजरांवाला के सरावगी सम्मिलित थे, कोई प्रकट रूप में और कोई छुपकर; इसलिए स्वामी जी ने सब के नाम एक ही आशय के पत्र मिति ६ नवम्बर, सन् १८८० भेजने के लिए मन्त्री आर्यसमाज देहरादून के द्वारा आर्यसमाज गुजरांवाला में भिजवा दिये जिन्हें १३ नवम्बर, सन् १८८० को प्रधान आर्यसमाज ने सबके पास भेज दिया ।

पत्र की प्रतिलिपि—"श्रीयुत पंडित आत्माराम जी और ला० ठाकुरदास जी को नमस्ते ! देहरादून से यहां एक पत्र उन प्रश्नों के उत्तर का जो आप सज्जनों ने स्वामी जी से किये थे, इस प्रयोजन से पहुंचा था कि इसकी एक प्रतिलिपि

आपके पास भेजी जावे सो प्रतिलिपि आपके समीप भेजी जाती है और यह भी प्रकट किया जाता है कि उसकी एक प्रतिलिपि स्वामी जी की आज्ञानुसार लुधियाना के श्रावक सज्जनों के पास भी भेजी गई है। मुंशी प्रभुदयाल जी से आपको विदित हुआ होगा।" मिति १३ नवम्बर, सन् १८८० नारायणकृष्ण, उपप्रधान आर्यसमाज गुजरांवाला।

पूज्यवर आत्माराम जी पंचायत सरावगियां[४] लुधियाना और ठाकुरदास जी रईस गुजरांवाला जैन-मतानुयायी सज्जनों के प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश में जो श्लोक लिखे हैं वे जैनियों के किस शास्त्र या ग्रन्थों के हैं?

उत्तर—ये सब श्लोक बृहस्पति मतानुयायी चार्वाक जिनके मत का दूसरा नाम लोकायत है और वे जैनमतानुयायी हैं उनके मतस्थ शास्त्र व ग्रन्थों के हैं। श्लोकों का अनुवाद निम्नलिखित है—

(१)—जब[1] तक जिये सुख से जिये, मृत्यु गुप्त नहीं, भस्म हुए पीछे शरीर में फिर आना कहां? (इसी प्रकार इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत आभाणक का मत है।)(२)—अग्निहोत्र, तीन वेद, त्रिपुंड्र, भस्म लगाना-यह निर्बुद्धि और साहस रहित लोगों की जीविका बृहस्पति ने रची है।(३)—अग्नि उष्ण तथा जल शीतल और छूने वाली ठंडी वायु-किसी ने इनके बनाने वाले को देखा? ये अपने स्वभाव से ऐसे हैं।(४)—न स्वर्ग, न नरक, न कोई और मोक्ष, न वर्ण और न आश्रम के काम फलदायक हैं।(५)—अग्निहोत्र, तीन वेद, त्रिपुण्ड्र, भस्म लगाना-ये निर्बुद्धि तथा साहस रहित लोगों की जीविका ब्रह्मा ने बनाई है।(६)—यदि पशु ज्योतिष्टोम यज्ञ में मारे जाने से स्वर्ग को जाता है तो यजमान अपने बाप को इसमें क्यों नहीं मार डालता? (७)—मरे हुए जीवों का यदि श्राद्ध तृप्ति का कारण है तो यात्रा में लोगों को भोजन जलादि ले जाना व्यर्थ है। (८)—स्वर्ग में बैठा हुआ यदि दान से तृप्त होता है तो कोठे पर बैठा हुआ क्यों न होता? (९)—जब तक जीवे, सुख से जीवे; ऋण लेकर घृत पिये; भस्म हुए पीछे शरीर में फिर आना कहां? (१०)—यदि शरीर से निकल कर जीव परलोक को जाता है तो बन्धुओं के प्रेम से फिर लौटकर क्यों नहीं आता? (११)—यह सब जीवन-निर्वाह का साधन ब्राह्मणों ने बना लिया है। मरे हुए जीवों की क्रियादि और कुछ नहीं है।(१२)—घोड़े का लिंग स्त्री ग्रहण करे, भांडों ने इस प्रकार की बातें बना रखी हैं।(१३)—तीन वेद के बनाने वाले भांड, धूर्त, निशाचर और जर्फरी और तुर्फरी शब्द पंडितों के कल्पित हैं। (१४)—मांस खाना राक्षसों का काम है। इसी प्रकार ये सब श्लोक इस बात को प्रकट कर रहे हैं कि जैन मत के सम्प्रदायों ने कठोर निन्दा वेद मत की की है और जो कुछ मैंने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है वह सब ठीक-ठीक है।

'पहले पत्र के उत्तर में ला० ठाकुरदास आदि को लिख भेजा गया था कि जैन मत की कई शाखाएं हैं। यदि आप प्रत्येक शाखा के मन्त्र सिद्धान्त जानते होते, तो आपको सत्यार्थप्रकाश के लेख में सन्देह कभी नहीं होता। आप लोगों के प्रश्न के उत्तर में विलम्ब इसलिए हुआ कि यदि कोई सज्जन सभ्य विद्वान् जैसा कि श्रेष्ठ पुरुषों को लेख करना चाहिए, वैसा करता तो उसी समय उत्तर भी लिखा दिया जाता क्योंकि सभ्यतापूर्वक लेख का उत्तर देने में स्वामी जी विलम्ब कभी नहीं करते। देखिये अब पंचायत सरावगियां लुधियाना ने योग्य लेख किया तो स्वामी जी ने उत्तर भी शीघ्र लिखवा दिया और अब भी लिख दिया गया है कि आप लोगों के सत्यार्थप्रकाश-विषयक जितने भी प्रश्न हों वे सब लिखकर भेज दीजिये। ताकि सबके उत्तर एक संग लिख दिये जावें। जैसा स्वामी जी ने लिखवाया था कि आत्माराम जी को जैन मत वाले शिरोमणि पंडित गिनते हैं। इनका और स्वामी जी का पत्र लेखानुसार समागम होता तो सब बातें शीघ्र ही पूरी हो जातीं, परन्तु ऐसा

---

1. ये श्लोक जो 'सत्यार्थप्रकाश' प्रथमावृत्ति पृष्ठ ४०२,४०३ पर हैं—ये समस्त श्लोक स्वामी जी से पहले सर्वशास्त्रसंग्रह में सायणाचार्य ने, उनकी टीका में तारानाथ तर्क वाचस्पति ने लिखे हैं जो जीवानन्द प्रेस से प्रकाशित हो चुके हैं (देखो उसका प्रारम्भ)।

न हुआ और यह भी शोक की बात है कि हमने इस विषयक रजिस्टरी चिट्ठी पंचायत-सरावगियां लुधियाना को भेजी, उसका उत्तर भी अब तक नहीं मिला, न प्रश्न भेजे। किन्तु जो ठाकुरदास ने एक बात लिख भेजी थी कि ये श्लोक जैनमत के किस शास्त्र और किस ग्रन्थ के अनुसार हैं और जो बात करने के योग्य आत्माराम जी हैं, उनका शास्त्रार्थ करने में निषेध लिख भेजा और ठाकुरदास जी की यह दशा है कि प्रथम चिट्ठी में संस्कृत और भाषा के लिखने में अनेक दोष लिखे हैं। अब आप लोग धर्म न्याय से विचार कर लीजिये कि क्या यह बात ऐसी होनी योग्य है कि जब-जब चिट्ठी ठाकुरदास ने लिखी तब-तब स्वामी जी के पास और उसमें जो बात शिष्ट पुरुषों के लिखने योग्य न थी, सब लिखी और जो योग्य है अर्थात् आत्माराम जी, उनको बात करने और लिखने वा चिट्ठी पर हस्ताक्षर करने से अलग रखते हैं और एक यह कि ठाकुरदास जी से स्वामी जी का सामना कराते हैं, क्या ऐसे बात करनी शिष्टों को योग्य है ? अब अधिक बात करते हो तो आप अपने मत के किसी योग्य विद्वान् को प्रवृत्त कीजिए कि जिससे हम और आपको सत्य और झूठ का निश्चय होकर बहुत उत्तम ज्ञान हो सके। बुद्धिमानों के सामने अधिक लिखना आवश्यक नहीं किन्तु अपनी सज्जनता, उदारता, अपक्षता तथा बुद्धिमत्ता और विद्वत्ता में थोड़े लिखने से बहुत जान लेते हैं। मिति कार्तिक सुदि ४, शनिवार, संवत् १९३७ तदनुसार ६ नवम्बर, सन् १८८० कृपाराम, मन्त्री आर्यसमाज, देहरादून।

श्री आत्माराम जी के प्रश्नों के उत्तर—आत्माराम जी ने अपने हस्ताक्षरों से जो प्रश्न १४ नवम्बर, सन् १८८० को भेजे थे उनके नाम स्वामी जी ने यह पत्र भेजा—

पूज्यवर आत्माराम जी, मिति १४ नवम्बर, सन् १८८०

नमस्ते। पत्र आपका मिति ४ नवम्बर, सन् १८८० का लिखा हुआ १० नवम्बर, सन् १८८० की सायंकाल को मेरे पास पहुंचा, देखकर आनन्द हुआ। अब आपके प्रश्नों का उत्तर विस्तारपूर्वक लिखता हूं। (समाचार पत्र '**आफताबे पंजाब**' १३ दिसम्बर, १८८०)।

प्रश्न १—(सत्यार्थप्रकाश समुल्लास १२, पृष्ठ ३९६, पंक्ति १६) में लिखा है कि जब प्रलय होता है तो पुद्गल अलग-अलग हो जाते हैं, ऐसा नहीं है।

उत्तर—जैन-बौद्ध दोनों एक हैं। मैंने ठाकुरदास जी के उत्तर में एक पत्र आर्यसमाज गुजरांवाला के द्वारा भेजा था, जो आपके पास भी पहुंचा होगा। उसमें यह बतलाया गया है कि जैन और बौद्ध दोनों एक ही हैं चाहे उनको बौद्ध कहो चाहे जैन कहो। कुछ स्थानों में महारवीरादि तीर्थंकरों को बुद्ध और बौद्धादि शब्दों से पुकारते हैं और कई स्थानों पर जिन, जैन, जिनवर, जिनेन्द्रादि आदि नामों से बोलते हैं। जिनको चार्वाक बुद्ध की शाखाओं में कहते हैं उन्हें लोग बुद्ध स्वयं बुद्ध आदि कहते हैं। आप अपने ग्रन्थों में देख लीजिये (ग्रन्थ विवेकसार, पृष्ठ ६५, पंक्ति १३) बिध, बोध-ये एक सिद्ध अनेक सिद्ध भगवान् हैं (पृष्ठ ११३, पंक्ति ७)। चारबुद्ध की कथा (पृष्ठ १३७, पंक्ति ८) प्रत्येक बुद्ध की कथा (पृष्ठ १३८, पंक्ति २१) स्वयं बुद्ध की कथा (पृष्ठ १५२, पंक्ति १४)। चार बुद्ध समकाल मोक्ष को गये। इसी प्रकार और भी आपके ग्रन्थों में कथा स्पष्ट विद्यमान है जिनको आप या और कोई जैन श्रावक विरुद्ध न कह सकेंगे। और ठाकुरदास की पहली चिट्ठी में (उन श्लोकों के साथ जो मैंने इससे पहले पत्र में लिखकर आपके पास भिजवाये हैं) आप लोग कई श्लोक स्वीकार भी कर चुके हैं। उस चिट्ठी की प्रतिलिपि मेरठ में है और आपके पास भी होगी (कल्पभाष्य भूमिका, जिसमें राजा शिवप्रसाद जी ने अपने जैनमतस्थ पितादि पूर्व पुरुषों की परम्परा का वृत्तान्त लिखा है, उनकी साक्षी भी लिख भेजी और '**इतिहासतिमिर-नाशक**') खंड ३, पृष्ठ ८, पंक्ति २१ से लेकर पृष्ठ ९ की पंक्ति ३२ तक) स्पष्ट लिखा हे कि जैन और बौद्ध

एक ही के नाम हैं । कई स्थानों पर महावीरादि तीर्थंकरों को बौद्ध कहते हैं, उन्हीं को आप लोग जैन और जिनादि कहते हैं । अब रहे बौद्ध की शाखाओं के भेद जो चार्वाक, अभ्याणकादि हैं जैसा कि आपके यहां श्वेताम्बर, दिगम्बर, ढूंढिया आदि शाखाओं के भेद हैं कि उनमें कोई शून्यवादी, कोई क्षणिकवादी, कोई जगत् को नित्य मानने वाला, कोई अनित्य मानने वाला, कोई स्वभाव से जगत् की उत्पत्ति और प्रलय मानते हैं और कोई आत्मा को पांच तत्त्वों (पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और उनके मेल से) बनी हुई मानते हैं और उसका नाश हो जाना भी मानते हैं (देखो रत्नावली ग्रन्थ, पृष्ठ ३२ पंक्ति १३ से लेकर पृष्ठ ४३, पंक्ति १० तक) कि उस स्थान पर सब जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय भी लिखा है या नहीं ।

इसी प्रकार चार्वाकादि भी कई शाखा वाले जिसको पुद्गल कहते हैं, उसको अलूदादि नाम से लिखते हैं और उनके आपस में मिलने से जगत् की उत्पत्ति और अलग होने से प्रलय होना ही मानते हैं और वे जैन और बौद्ध से पृथक् नहीं हैं; प्रत्युत जैसे पौराणिक मत में रामानुजादि वैष्णवों की शाखा, पाशुपतादि शैवों की, वाममार्गियों की दस महाविद्या शाखाएं, ईसाइयों में रोमन कैथलिक आदि और मुसलमानों में शिया और सुन्नी आदि शाखाओं के कतिपय भेद हैं । इतने पर भी वेद, बाइबिल और कुरान के सम्प्रदाय में वे एक ही समझे जाते हैं । वैसे ही आपके अर्थात् जैन और बौद्ध मत की शाखाओं के भेद यद्यपि अलग-अलग लिखे जा सकते हैं परन्तु जैन या बौद्ध मत में एक ही हैं ।

आपने बौद्ध अर्थात् जैन मत के प्रत्येक सम्प्रदाय के तन्त्र सिद्धान्त अर्थात् भेद वर्णन करने वाले ग्रन्थ देखे होते तो 'सत्यार्थप्रकाश' में जो लेख उत्पत्ति और प्रलय के विषय में है उस पर शंका कभी न करते ।

प्रश्न नं० २—'सत्यार्थप्रकाश' पृष्ठ ३९७, पंक्ति २४ (प्रश्न) "मनुष्यादिकों को ज्ञान है, ज्ञान से वे अपराध करते हैं इससे उनको पीड़ा देना कुछ अपराध नहीं ।"—यह बात जैनमत में नहीं ।

उत्तर—विवेकसार ग्रन्थ में पृष्ठ २२८, पंक्ति १० से लेकर पंक्ति १५ तक देख लीजिये क्या लिखा है अर्थात् गणाभियोग और स्वजनादि समुद्री की आज्ञा जैसे विष्णुकुमार ने कछ की आज्ञा से बौद्धरूप रचना करके नमूची नाम पुरोहित को कि वह जिनका विरोधी था, लात मार कर सातवें नरक में भेजा और ऐसी ही और बातें ।

प्रश्न नं० ३—'सत्यार्थप्रकाश' पृष्ठ ३९९, पंक्ति ३ । और उसके ऊपर (अर्थात् पद्मशिला पर) बैठ के चराचर का देखना ।

उत्तर— पुस्तक **'रत्नसार'** भाग पृष्ठ २३, पंक्ति १३ से लेकर पृष्ठ २४ पंक्ति २४ तक देख लीजिये कि वहां महावीर और गौतम की पारस्परिक चर्चा में क्या लिखा है ।

प्रश्न नं० ४—'सत्यार्थप्रकाश' पृष्ठ ४०१, पंक्ति २३ । और उनके मत में न हुए वे श्रेष्ठ भी हुए तो भी उसकी सेवा अर्थात् जल तक भी नहीं देते ।

उत्तर—पुस्तक **'विवेकसार'** पृष्ठ २२१, पंक्ति ३ से लेकर पंक्ति ८ तक लिखा है कि अन्य मत की प्रशंसा या उनका गुण कीर्तन नमस्कार, प्रणाम करना या उनसे कम बोलना या अधिक बोलना या उनको बैठने के लिए आसनादि देना या उनको खाने-पीने की वस्तु, सुगन्ध, फूल देना या अन्य मत की मूर्ति के लिए चन्दन पुष्पादि देना, ये छः बातें नहीं करनी चाहियें ।-वहां देख लीजिये ।

प्रश्न नं० ५—'सत्यार्थप्रकाश' पृष्ठ ४०१, पंक्ति २७ । किन्तु साधु जब आता है तब जैनी लोग उसकी दाढ़ी, मूंछ और सिर के बाल सब नोच लेते हैं ।

उत्तर—ग्रन्थ 'कल्पभाष्य' पृष्ठ १०८, पंक्ति ४ से लेकर ९ देख लीजिये और प्रत्येक ग्रन्थ में दीक्षा के समय (अर्थात् चेला बनाने के समय) पांच मुट्ठी बाल नोचना लिखा है । यह काम अपने हाथ से अर्थात् चेले या गुरु के हाथ से होता है और अधिकतर ढूंढियों में है ।

प्रश्न नं० ६—'सत्यार्थप्रकाश' पृष्ठ ४०२, पंक्ति २० से लेकर जो श्लोक जैनियों के बनाये लिखे हैं, वे जैनमत के नहीं ।

उत्तर—मैं इसका उत्तर इससे पहले पत्र में लिख चुका हूं (मिति कार्तिक सुदि ४, शनिवार) । आपके पास पहुंचा होगा, देख लीजिये ।

प्रश्न नं० ७—'सत्यार्थप्रकाश' पृष्ठ ४०३, पंक्ति ११ । अर्थ और काम दोनों पदार्थ मानते हैं ।

उत्तर—यह मत जैनधर्म से सम्बन्धित सम्प्रदाय चार्वाक का है जिसने ऐसे-ऐसे श्लोक कि जब तक जिये सुख से जिये, मृत्यु गुप्त नहीं; भस्म होकर शरीर में फिर आना नहीं आदि-आदि अपने मत के बना लिये हैं । इसी प्रकार नीति और काम शास्त्र के अनुसार अर्थ और काम दो ही पदार्थ पुरुषार्थ और विधि से माने गये हैं ।

यहां संक्षेप से आपके प्रश्नों का उत्तर दिया गया है क्योंकि पत्रों के द्वारा पूरी व्याख्या नहीं हो सकती थी । जब कभी मेरा और आपका समागम होवे तब आपको मैं ग्रन्थों के प्रमाण और युक्तियों के साथ ठीक-ठीक निश्चय करा सकता हूं । आपको और भी जो कुछ संदेह सत्यार्थप्रकाश के १२ वें समुल्लास में होवें (मेरठ आर्यसमाज के द्वारा) लिखकर भेज दीजिये । सब का ठीक उत्तर दे दिया जावेगा । अब मैं यहां थोड़े दिन तक रहूंगा और यदि आप अम्बाला तक आ सकें तो मिति १७ नवम्बर, सन् १८८० तक प्रात: आठ बजे से पहले-पहले देहरादून में और उसके पश्चात् आगरा में मुझको तार द्वारा सूचना देनी चाहिये कि मैं आपसे शास्त्रार्थ अर्थात् पारस्परिक बात-चीत के लिए वहां पहुंच सकूं । बुद्धिमान् व्यक्ति के लिए इतना ही पर्याप्त है, अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं । मिति कार्तिक सुदि १३, रविवार, संवत् १९३७ । (हस्ताक्षर) दयानन्द सरस्वती, देहरादून ।

स्वामी जी का दूसरा पत्र—फिर पं० आत्माराम जी पूज्य ने ८ माघ, संवत् १९३७ तदनुसार १९ जनवरी, सन् १८८१ को एक पत्र स्वामी जी के पास भेजा जिसमें कुछ बातों को माना और कई बातों पर फिर आक्षेप किये । स्वामी जी ने उसका यह उत्तर २१ जनवरी, सन् १८८१ को भेजा **"आनन्द विजय आत्माराम जी,** नमस्ते । आपका पत्र ८ माघ का लिखा हुआ मेरे पास पहुंचा । लिखित वृत्तान्त विदित हुआ । मेरे प्रश्न के उत्तर में जो आपने लिखा है कि बौद्ध और जैन एक ही मत के नाम मानने से हमारी कुछ मानहानि नहीं, इसको पढ़कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई । यही सज्जनों का काम है कि सत्य को मानें और असत्य को न मानें परन्तु यह बात जो आपने लिखी है कि ''योगाचारादि चार सम्प्रदाय जैन बौद्ध मत के हैं सो वह बौद्धमत जैनमत से एक पृथक् शास्त्र का है ।" इसका उत्तर मैं आपके पास भेज चुका हूं कि मत में शाखाओं का भेद थोड़ी बातें पृथक् होने से होता है परन्तु मत की दृष्टि से शाखाएं एक ही मत की होती हैं । देखिये कि उन ही नास्तिकों में चार्वाकादि नास्तिक हैं और जो आप उनका इतिहास और जीवनचरित्र पूछते हें सो उसका उत्तर भी मैं दे चुका हूं अर्थात् 'इतिहास-तिमिरनाशक' के तीसरे अध्याय में देख लीजिये ।

और आप जिन बौद्धों को अपने मत से पृथक् कहते हैं वे आपके सम्प्रदाय से चाहे पृथक् हों परन्तु मत की दृष्टि से कदापि पृथक् नहीं हो सकते । जैसे कई जैनी, उदाहरणार्थ श्वेताम्बर दूसरे जैनियों जैसे सरावगी साधुओं पर आक्षेप करके उन्हें पृथक् और नया मानते हैं । यह प्रकट रूप से 'होवेक' नामक पुस्तक में लिखा है । इसी प्रकार से आप लोगों ने

उन पर बहुत से आक्षेप करके उनके मत में संयुक्त निर्णय पुस्तक लिखी है फिर भी इससे वे और आप बौद्ध या जैनमत से अलग नहीं हो सकते और न कोई विद्वान् उनके धार्मिक सिद्धान्तों की दृष्टि से उन्हें अलग मान सकता है । उनकी समस्याओं में भेद तो अवश्य होगा । आपके इस वचन से कि "इसमें क्या आश्चर्य है कि महावीर तीर्थंकर के समय में चार्वाक मत था, उनसे पीछे नहीं हुआ ।" इससे मुझको आश्चर्य हुआ । क्या जो महावीर तीर्थंकर के पहले २३ तीर्थंकर हुए उन सबके पहले चार्वाक मत को आप सिद्ध नहीं कर सकते । यदि किसी प्रकार का संदेह आपके लिए हो तो प्रश्नकर्त्ता पूछ सकता है कि ऋषभदेव भी चार्वाक मत से चले हैं ? फिर आप इसके उत्तर में क्या कह सकते हैं । क्या चार्वाक १५ जातियों में से एक जाति का भी नहीं है ? और उसमें एक सिद्ध और मुक्त नहीं ? क्या वे आपके सिद्धान्तों और पुस्तकों से अलग हो सकते हैं ?

इसके अतिरिक्त आपने भी अपने लेख में बौद्धमत को अपने मत में स्वीकार कर लिया है क्योंकि करकंडा आदि को आपने बौद्ध माना है और मैंने अपने पहले पत्र में जैन और बौद्ध के एकमत होने का लिखित प्रमाण दे दिया है फिर आपका पुन: पूछना निरर्थक और निष्प्रयोजन है । इस अवस्था में स्वयं वादी की साक्षी से मुकद्दमा ठीक सिद्ध हो जाता है तो फिर न्यायाधीश को अन्य पुरुषों की साक्षी लेनी आवश्यक नहीं होती । भला जिसकी कई पीढ़ियां जैनमत में चली आई हों अर्थात् राजा शिवप्रसाद की साक्षी को और वर्तमान काल में जो यूरोपियन लोग बड़े परिश्रम से इतिहास बनाते हैं उनकी साक्षी को आप मिथ्या कह सकते हैं कि जिन्होंने अपने इतिहासों में बौद्ध और जैन को एक ही लिखा है और साथ ही यह भी लिखा है कि कुछ बातें आर्यों की और कुछ बौद्धों की लेकर जैनमत बना है ।

दूसरे प्रश्न के बारे में जो आप ने लिखा है—वह नमूची जैनमत का अहितचिन्तक, साधुओं को निकालने और कष्ट देने वाला था, उसको मार कर सातवें नरक में भेजा गया । यह लेख आपने सत्यार्थप्रकाश के लेख के उत्तर में नहीं समझा । विचार कीजिये कि वह नमूची जैनमत का शत्रु था इसलिए मारा गया तो क्या उसने जानबूझ कर पाप नहीं किया था । कितने खेद की बात है कि आप सीधी बात को भी विपरीत समझ गये ।

तीसरे प्रश्न के उत्तर में जो आपने प्राकृत भाषा का एक श्लोक लिखा है परन्तु उसके अर्थ स्वयं नहीं लिखे, केवल मेरे पर उसका समझना छोड़ दिया । उसका यह अभिप्राय होगा कि मैं उसके अर्थ तक नहीं पहुंच सकूंगा । हां, मैं कुछ सब देशों की भाषा नहीं जानता हूं, केवल कुछ देशों की भाषा और संस्कृत जानता हूं परन्तु मतों और उनकी शाखाओं तथा सम्प्रदायों के सिद्धांत अपनी विद्या, बुद्धि और विद्वानों की संगति के प्रभाव से जानता हूं । आप और आप लोगों के पथ-प्रदर्शकों ने ऐसी भाषा बिगाड़ कर अपनी भाषा बना ली है जैसे धर्म का धम्म आदि । जिनका मत बौद्धिक तथा लिखित युक्तियों से सिद्ध नहीं हो सकता वे ऐसे-ऐसे अप्रसिद्ध शब्द बना लेते हैं ताकि कोई दूसरा उसको समझ न सके जैसे मद्य का नाम तीर्थ, मांस का नाम पुष्पादि बना लिया है ताकि उनके अतिरिक्त कोई दूसरा न जान ले । जो राजा लोग न्यायकारी होते हैं वे तो मार्ग ऐसे सीधे बनाते हैं कि अन्धा भी निर्दिष्ट स्थान पर पहुंच जाये परन्तु उनके विरोधी मार्गों को इस प्रकार बिगाड़ते हैं कि कोई परिश्रम से भी चल न सके । आप कुछ 'रत्नसार भाग' को विश्वसनीय नहीं समझते तो क्या हुआ, बहुत से श्रावक और जैन लोग उसको सच्चा मानते हैं ।

देखिये, आप ऐसे विद्वान् होकर 'मूर्ख' को मूर्रा लिखते हैं और पत्र में लिखित शब्दों के ठीक करने में बहुत सी हरताल भी लपेटते हैं (मिटाते हैं) । कैसे शोक की बात है कि संस्कृत तो दूर रही, देशी भाषा भी आप लोग नहीं जानते परन्तु इस लेख के स्थान पर यह लिखना उचित था कि आपकी भूल का कुछ नहीं क्योंकि मनुष्य प्राय: भूल किया ही करता है ।

चौथे प्रश्न के उत्तर में जो कुछ आपने लिखा है वह बहुत चकित करने वाला है । विद्या प्राप्ति की इच्छा मनुष्य वहां प्रकट कर सकता है जहां अपने से अधिक किसी विद्वान् को देखता है । मैंने भी उन्हीं विद्वानों से शिक्षा पाई है जो मुझ

से अधिक बुद्धिमान् तथा विद्वान् थे। आप भी कदाचित् इसको स्वीकार करते होंगे। क्या आप लोग अन्य मत के विद्वानों को विद्वान् न समझ कर शिष्य के विचार से और मोक्ष के परिणाम का ध्यान न रखकर किसी विपरीत प्रयोजन की प्राप्ति की इच्छा से दान करते हो। क्या ये बातें अविद्वानों की नहीं हैं कि अपने मत और उसके साधुओं के बड़प्पन का ध्यान रखना और अन्य मत के विद्वानों के विषय में उसके विपरीत चलना, ये अच्छे लोगों की बातें नहीं हैं। निश्चय पूर्वक समस्त सृष्टि में से अच्छे को अच्छा और बुरे को बुरा मानना अन्वेषकों-धर्मात्माओं और महात्माओं का काम है और उसको ही हम मानते हैं और उचित है कि आप भी इसको स्वीकार करें। मेरे लेख का अभिप्राय ठीक-ठीक आप उस समय समझेंगे जब कि मेरी आप की भेंट होगी। मेरी पुस्तक 'सत्यार्थप्रकाश' के लेख से कोई मनुष्य यह परिणाम नहीं निकाल सकता कि जैनमत के लोगों को चिरकाल तक कष्ट देना और दान न देना और जैनमत बेईमानी की जड़ है; प्रत्युत यह सिद्ध है कि 'अच्छे और ईमानदार लोगों और अनाथों की सहायता करना और बुरे लोगों को समझाना।'

परन्तु इन छः निषेधों का कलंक आपको ऐसा लिपट गया है कि जब ईश्वर की दया हो और आप लोग पक्षपात को छोड़कर यत्न करें तब धोया जा सकता है अन्यथा कदापि नहीं।

भला जब यह प्रकट रूप में लिखा है कि अन्य मत की प्रशंसा न करना और दूसरों को रोटी और पानी न देना तो फिर आप उसको अशुद्ध क्यों कर सकते हैं। ये बातें आपके हजारों ग्रन्थों में लिखी हुई हैं और आप लोग इसको समझ लें कि मुझे ऐसा स्वप्न में विचार नहीं आया है। हां, जो आप लोग कुछ भी विचार कर देखें तो उनको छोड़ देना ही धर्म है आगे आपकी इच्छा।

पांचवें प्रश्न का उत्तर—उसके विषय में जो आपने लिखा है उससे मेरे उत्तर का खंडन नहीं हो सकता क्योंकि जब बालों के नोंचने का प्रमाण आपकी पुस्तकों में लिखा है और मैंने उसके उद्धरण से सिद्ध कर दिया फिर भला कहीं दार्शनिक युक्तियों का आश्रय लेने से उस बात का अस्वीकार हो सकता है, कदापि नहीं।

छठे प्रश्न के उत्तर में—जब मैं यह सिद्ध कर चुका हूं कि जैन और बौद्ध जिस मत का नाम है उसी की शाखा चार्वाकादि हैं, फिर यह कैसे अशुद्ध हो सकता है।

जो आप जैन लोगों के ग्रन्थों में हमारे धर्म के विषय में लिखा है और जिसका हमारी धार्मिक पुस्तकों में कहीं वर्णन नहीं पाया जाता और इससे हमारे धर्म का अपमान टपकता है। इसलिए आप जैन लोगों से पूछा जाता है कि लौटती डाक से शीघ्र उत्तर दें कि वे बातें हमारी किन धार्मिक पुस्तकों में लिखी हुई हैं। ज्ञात रहे कि जिस व्याख्या और ठीक-ठीक पता दिनमान के साथ पृष्ठ व पंक्त्यादि के उद्धरण सहित मैंने आपके प्रश्नों का उत्तर दिया है। इसी प्रकार आप भी उत्तर दें, अन्यथा आप सज्जनों की बड़ी हानि होगी। इस बात को केवल विहंगम दृष्टि से न देखें, प्रत्युत एक प्रकार की सावधानता दृष्टिगत रखें ताकि यह लम्बी न हो जावे। उत्तर भेजने में शीघ्रता करने से कल्याण है।

जैनियों के विवेकसार ग्रन्थ के लेख पर कुछ शंकाएं : पहली शंका—विवेकसार पृष्ठ १०, पंक्ति १ में लिखा है कि श्री कृष्ण तीसरे नरक को गया। **दूसरी शंका**-विवेकसार पृष्ठ ४०, पंक्ति ८ से १० तक लिखा कि हरिहर, ब्रह्मा, महादेव, राम, कृष्णादि कामी, क्रोधी, अज्ञानी, स्त्रियों के दूषी, पाषाण की नौका के समान आप डूबते और सबको डुबाने वाले हैं। **तीसरी शंका**-विवेकसार पृष्ठ २२४, पंक्ति ९ से पृष्ठ २२५ की पंक्ति १५ तक लिखा है कि ब्रह्मा, विष्णु, महादेवादि सब अदेवता और अपूज्य हैं। **चौथी शंका**-विवेकसार पृष्ठ ५२ पंक्ति १२ में लिखा है कि गंगादि तीर्थों और काशी आदि क्षेत्रों से कुछ परमार्थ सिद्ध नहीं होता। **पांचवीं शंका**-विवेकसार पृष्ठ १३८, पंक्ति ३० में लिखा है कि जैन का साधु भ्रष्ट भी हो तो भी अन्य मत के साधुओं से उत्तम है। **छठी शंका**-विवेकसार पृष्ठ १, पंक्ति १ से लेकर कहा है कि जैनों में

बौद्धादि शाखाएं हैं । इससे सिद्ध हुआ कि जैनमत के अन्तर्गत बौद्धादि सब शाखाएं हैं । (हस्ताक्षर) स्वामी दयानन्द सरस्वती, आगरा । मिति माघ बदि ६, शुक्रवार, संवत् १९३७ तदनुसार २१ जनवरी, सन् १८८१ ।

ठाकुरदास द्वारा धमकी—उधर स्वामी जी तो अपने योग्य पंडित आत्माराम जी के प्रश्नों का खंडन लिख रहे थे और आत्माराम जी भी अपने प्रश्न लिखकर जो स्वामी जी ने उनका उत्तर लिखा था उसका उत्तर तैयार कर रहे थे कि ठाकुरदास ने बीच में अपनी हानि समझ और अपनी प्रसिद्धि कम होती जान कर स्वामी जी के नाम २२ नवम्बर, सन् १८८० को एक नोटिस जारी कर दिया । जिसमें प्रथम तो समस्त पिछले पत्रव्यवहार का अपने विचार के अनुसार सार था और अन्त में ये सभ्यतापूर्ण (?) शब्द लिखे थे । **"यदि आपकी अब भी क्षमा मांगने की इच्छा हो तो** शीघ्र मांग लो परन्तु पीछे से यह न कहना कि जैनियों में दया और क्षमा नहीं । अब भी यदि आप अपना क्षमापत्र भेज दें तो आप पीछे से निर्लज्जता उठाने की आपत्ति से बच सकते हैं, नही तो आपको अधिकार है । आपकी आज्ञानुसार हमने अम्बाला, लुधियाना इत्यादिक स्थानों के बहुत से जैनों को इस काम में अपने साथ मिला लिया है जो अपना-अपना नोटिस भी आपको देंगे और आपने चिट्ठी-पत्री भेजने में ही इतने छल किये हैं इसमें भी आप पकड़े जायेंगे, क्या आप झूठ लिख-लिखकर औरों को धोखे में फंसाते और मेरा नाम बदनाम करते हैं । आप स्मरण रखिये कि आपके ये सब कपट न्यायालय में प्रकट किये जावेंगे और उसका यथायोग्य दण्ड भी आपको दिलाया जावेगा । इस पत्र का उत्तर चाहे आप भेजें या न भेजें, यह आपकी इच्छा है ।"

परन्तु यह नोटिस वापस आ गया । स्वामी जी को न पहुंचा क्योंकि हमारे चालाक ला० ठाकुरदास ने उसे न तो देहरादून भेजा और न आगरा, प्रत्युत अंबाला भेजा, इसलिए अवश्य वापस आना ही था क्योंकि पता अशुद्ध था । यद्यपि आर्यसमाज गुजरांवाला ने भी उनको ठीक-ठीक पता बतला दिया था । (देखो **'आर्य समाचार'** पृष्ठ ३३७, खंड २, संख्या २३) और यदि न भी बतलाते तो स्वामी जी के पत्र से भी आत्माराम जी और उनको विदित था कि वे १७ नवम्बर के पश्चात् आगरा जायेंगे और उनका वहां जाना और उपदेश करना प्रत्युत शास्त्रार्थ करना **'नसीम'** आगरा और **'भारती-विलास'** में प्रकाशित हो चुका था, इसलिए यह जान बूझ कर की चालाकी थी या अनपढ़ होने के कारण आगरा का अंबाला स्मरण रखा । धन्य है !

फिर ला० ठाकुरदास ने २१ दिसम्बर, सन् १८८१ को फारसी अक्षरों में एक नोटिस लिखा और समाजों के नाम भेजा जिसका विषय यह था कि हमारे प्रश्न का उत्तर स्वामी जी के पास नही है, इससे स्वामी जी छुपकर बैठे हैं तो उनका ठांव ठिकाना बता दो ।' इसके उत्तर में आर्यसमाज की ओर से एक नोटिस जारी हुआ जिसके शीर्षक में यह शेर लिखा गया था—**'गर न बीनद बरोज शप्परा चश्म चश्मये आफताब रा च गुनाह'** अर्थात् यदि दिन के समय में चमगादड़ को न दिखाई दे तो इसमें सूर्य का क्या दोष है ? इसमें उसकी समस्त बातों का उत्तर और स्वामी जी का पता भी लिखा हुआ था । (देखो आर्य **समाचार** पृष्ठ, ३३७, बुधवार) परन्तु ठाकुरदास चूंकि स्वयं पढ़ा हुआ नहीं है और कुछ ख्याति का भी इच्छुक है उसको विज्ञापन में भी पता न मिला अर्थात् न पढ़ सका ।

'उन्मत्त अपने काम में चतुर होता है ।' इस कहावत के अनुसार उसने १२ जनवरी को एक पत्र आर्यसमाज गुजरांवाला के नाम भेजा जिसमें लिखा था कि—"स्वामी जी के साथ सत्यासत्य का निर्णय करने के लिए हम २०-३० जनवरी तक अंबाला में इकट्ठे होंगे । तुम स्वामी दयानन्द जी को अम्बाला भेजो ।"

परन्तु स्वामी जी के लेखानुसार न तो आत्माराम जी ने उनको लिखा, न तार दिया, न आत्माराम जी शास्त्रार्थ के लिए उद्यत हुए और न ठाकुरदास के अतिरिक्त किसी और विद्या-प्रेमी जैन ने स्वामी जी को लिखा, इसलिए वहां कोई

शास्त्रार्थ न हुआ क्योंकि आत्माराम जी शास्त्रार्थ से और फिर स्वामी जी के साथ शास्त्रार्थ करने से अत्यन्त जी चुराते और घबराते थे ।

और इसी प्रकार १६ फरवरी, सन् १८८० को आर्यसमाजों के प्रति एक और निवेदन छपवाया जिसका वही विषय और वही अभिप्राय था कि हम स्वामी जी पर नालिश करेंगे ।

इस विवाद पर समाचारपत्रों की सम्मतियां—अब हम चाहते हैं कि इसके सम्बन्ध में जो कुछ देशीय समाचारपत्रों और आर्यपत्रों में प्रकाशित हुआ है, वह पाठकों की भेंट करें—

समीक्षा है, धार्मिक अपमान नहीं—समाचारपत्र **'आफताबे पंजाब'** मिति १२ फरवरी, सन् १८८० में जो अन्तिम नोटिस आााज गुजरांवाला को जैन जाति की ओर से प्रकाशित हुआ था, उसके अध्ययन से प्रकट हुआ कि वह पुराना झगड़ा जो उक्त जाति ने स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के उस लेख पर जिसमें उन्होंने जैनियों की धार्मिक पुस्तकों और उनके सिद्धान्तों पर आक्षेप किया है, एक छोटी सी बात को एक बड़ा भारी मुकद्दमा बनाकर उसका न्यायालय में निर्णय कराना श्रेष्ठ समझा है । परन्तु खेद है कि इस जाति ने उस न्यायपूर्ण लेख पर जो नोटिस के उत्तर में इसी समाचारपत्र में ६ दिसम्बर, सन् १८८० को प्रकाशित हुआ, बिलकुल ध्यान न दिया और पहले की भांति अपने कुतर्क को विस्तार देने के अभिप्राय से कमर बांधे रहे । लेखक को आश्चर्य तो इस बात पर है कि जब दयानन्द सरस्वती जी ने इस जाति के उन प्रश्नों का जिनको वे अपना धार्मिक अपमान समझते हैं, उत्तर ठीक विस्तारपूर्वक और व्याख्या सहित जैनियों की धार्मिक पुस्तकों का पता देकर १३ दिसम्बर के समाचारपत्र में प्रकाशित किया तो फिर उक्त जाति की कौन-सी समस्या शेष रही जिसको कि स्वामी जी सुलझा न सके । उक्त जाति कहती है कि यह मुकद्दमा इस प्रकार का और इस कारण से है कि स्वामी दयानन्द जी ने जो हमारे धर्म पर आक्षेप किया है वह मानो हमारा धार्मिक अपमान है परन्तु हम कहते हैं कि जिस धर्म और सम्प्रदाय पर युक्तियुक्त और बुद्धिपूर्ण प्रमाण देकर विचार किया **जावे वह एक प्रकार की सच्ची समीक्षा है न कि धार्मिक अपमान।** हां, निस्सन्देह अप्रामाणिक प्रमाण और बनावटी युक्तियों की बलरहित और क्षणिक सहायता से आक्षेप करने वाला धार्मिक अपमान रूपी अपराध या अपराधी ठहर सकता है परन्तु क्या कोई दयानन्द जी जैसा-जो मतों के समुद्र में डुबकी लगाकर और दृढ़ युक्तियों का बहुमूल्य रत्न लाकर किसी विशेष मत पर विचार करे-धार्मिक अपमान के बनावटी अपराध का अपराधी घोषित किया जा सकता है ? नहीं; कदापि नहीं । कुछ पाठकों, समाचारपत्रों और अन्य लोगों का जैनियों के लगातार विज्ञापनों के अध्ययन से यह विचार करना कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी इस जाति से क्यों समझौता नहीं करते, केवल विषय की वास्तविकता का ज्ञान न होने के कारण है और वास्तविक बात यह है कि स्वामी जी के आक्षेपों ने जैन जाति की सत्यता और असत्यता को सूर्य के समान प्रकट करके दिखाया है । इसी कारण यह जाति इन आक्षेपों को अपने धार्मिक विचारों का झुठलाना समझती है । एक न्यायकारी मनुष्य हम पर आक्षेप कर सकता है कि जैन जाति ऐसी-वैसी नहीं कि वह एक छोटी-सी बात पर मुकद्दमा खड़ा कर दे । इस खिलती हुइ कली का कुछ और ही कारण होगा । निश्चित रूप से इसका एक विशेष कारण यह है कि उपर्युक्त जाति का केवल एक ही मनुष्य इस मुकद्दमे का विस्तार करके अपनी प्रसिद्धि प्राप्त करना चाहता है परन्तु खेद है कि वह अपने विचारों को समाचारपत्रों में अपनी जाति के मत का दर्पण प्रकट करता है। वस्तुत: उसकी जाति के शिक्षित लोग उसको इस कठोर कार्य से रोकने के लिए काल्पनिक दर्पण पर मैल लगा रहे हैं । अब हम सब सज्जनों की सेवा में निवेदन करते हैं कि बार-बार स्वामी जी को नालिश की धमकी न दें, प्रत्युत इस वचन को क्रियात्मक रूप से लाकर दिखावें और इसके परिणाम पर पहुंचने वाले हों ।" (**'आफताबे पंजाब'**-दिनांक १८ फरवरी, सन् १८८१)

'पंजाबी अखबार' लाहौर (दिनांक १९-३-१८८१ की टिप्पणी) —'हमको ज्ञात हुआ है कि गुजरांवाला में जो शंकाएं पूज्य आत्माराम ने ठाकुरदास भाबड़ा के द्वारा प्रसिद्ध की थीं, स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आत्माराम जी का

हस्ताक्षरयुक्त शंकापत्र पहुंचने पर उनका एक विस्तृत उत्तर उनके पास भेज दिया था। उसका उल्था समाचारपत्र **'आफताबे पंजाब'** मिति १३, दिसम्बर, सन् १८८० में छपा है। स्पष्ट रूप से स्वामी दयानन्द सरस्वती ने उसमें प्रत्येक बात का उत्तर लिख दिया है और अन्त में वे यह भी लिखते हैं कि पूज्य साहब को इसमें यदि कोई बात अधिक रूप से निश्चित करनी हो तो हमसे आमने-सामने बातचीत कर लें परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि न वे उन उत्तरों को स्वीकार करते हैं और वे दयाननद जी से आमने-सामने बातचीत करना चाहते हैं। अनुमान से प्रतीत होता है कि या तो वे लज्जित हो गये हैं या भविष्य में लज्जित हो जाने का भय करते हैं, अन्यथा इन बातों से जानबूझ कर बचने का यत्न करके समाचारपत्रों में एक प्रकार की अत्यन्त अद्भुत और प्रकट रूप में विरुद्ध बातें प्रकाशित करने पर वे कभी उद्यत न होते। उदाहरणार्थ **'अखबारे आम'** मिति २६, जनवरी, सन् १८८१ में छपा है कि 'सरस्वती जी के नाम एक मास की अवधि का एक नोटिस भेजा गया परन्तु कुछ दिन पश्चात् वह लौटकर आ गया कि दयानन्द का पता नहीं मिलता। रजिस्ट्री आर्यसमाज गुजरांवाला को दिखाई गई कि सदस्य लोग पता बतायें परन्तु वहां से उत्तर मिला कि हमें भी इस बात की कुछ सूचना नहीं है। अन्त में जैनियों ने विज्ञापन प्रकाशित किया कि दयानन्द अदृश्य हो गया है और अम्बाला में अब इस निर्णय के अभिप्राय से २० जनवरी से २२ जनवरी तक बड़ी भारी सभा होगी। आर्यसमाजों को उचित है कि अपने स्वामी को इससे परिचित कर दें ताकि पधार कर शीघ्र निर्णय करें।' फिर इन्हीं बातों का कुछ समर्थन **'अखबारे आम'** मिति २ फरवरी, सन् १८८१ में भी किया गया है। सच पूछिए तो ये बातें (जो विचित्र और निर्मूल गप्पें हैं) पूज्य साहब और उनके सेवक ठाकुरदास जी की एक प्रकार से हंसी और अपकीर्ति कर रही है क्योंकि स्वामी दयानन्दजी का पत्र जो आफताबे पंजाब में छपा है, उसमें उनके निवास का पता साफ-साफ अर्थात् १७ नवम्बर, सन् १८८० तक देहरादून और उसके पश्चात् आगरा लिखा है और तिस पर वे आगरा में जब से अब तक विविध विषयों पर व्याख्यान बड़ी धूमधाम से दे रहे हैं, जिससे उनके अदृश्य होने का किसी को ध्यान भी नहीं आ सकता और इस नगर में यह भी प्रत्येक को विदित है कि यहां के आर्यसमाज के सदस्यों ने भी पूछने के समय यह पता उनको ठीक-ठीक बता दिया था; प्रत्युत एक विज्ञापन भी जिसके शीर्षक में यह शेर—**"गर न बीनद बरोज शप्परा चश्म। चश्मये आफताबरा च गुनाह।**[1]**"** लिखा हुआ था, छपवा कर ठाकुरदास जी के विज्ञापन के उत्तर में स्वामी जी के पते सहित स्थान-स्थान पर चिपकवाया था परन्तु ठाकुरदास ने जो नोटिस यहां से स्वामी जी के नाम भेजा वह न तो देहरादून भेजा और न आगरा प्रत्युत अंबाला भेजा। इसी कारण प्रसन्न होने वाली कार्यवाहियों से उन लोगों को किसी सीमा तक लज्जित होना चाहिए था कि समाचारपत्रों में और भी छीछालेदर करनी थी और फिर लिखा है कि २० जनवरी, सन् १८८१ से २४ जनवरी तक इसी निर्णय के लिए तिथि निश्चित थी और विज्ञापन प्रकाशित हुआ। इस वाक्य में वे मानो खुल्लम-खुल्ला सुनाते हैं कि हम भी पांच सवारों में हैं। कोई पूछे कि वह विज्ञापन कौन सा है जो २० जनवरी से २४ जनवरी, सन् १८८१ तक अम्बाला में होने वाली सभा के विषय में छपा था। कहो, क्या यह वही विज्ञापन नहीं है जो सुनहरी अक्षरों में दिल्ली के किसी मुद्रणालय से छपकर अम्बाला में होने वाले रथयात्रा के मेले की सूचनार्थ बहुत से स्थानों पर भेजा गया था। क्या ये वही तिथियां नहीं जो दिगम्बर सम्प्रदाय की एक विशेष मूर्तिपूजा अर्थात् रथयात्रा के लिए नियत हुई थीं और क्या यह वही मेला नहीं कि उसमें जाने से आत्माराम जी आदि आरम्भ से अन्त तक बचते ही रहे? और क्या यह वही विज्ञापन नहीं कि ठाकुरदास जी उसको भेद खुल जाने के विचार से (कि विज्ञापन रथयात्रा के मेले की सूचना के लिए छपा था और ठाकुरदास जी उसको स्वामी दयानन्द सरस्वती के अदृश्य होने और शास्त्रार्थ की घोषणा का झूठा समाचार बनाना चाहते थे) दिखाते नहीं थे और अन्त में जब गुजरांवाला में भेद खुला तो उनके पूज्य साहब की लोगों में बहुत हंसी भी हुई थी। खेद है कि यदि पूज्य साहब और उनके सेवक इन बातों से लज्जित नहीं हुए। पूज्य साहब यदि

---

1. अर्थात् यदि चमगादड़ को दिन में न दिखाई दे तो इसमें सूर्य का क्या दोष।

किसी कारण से स्वामी दयानन्द सरस्वती से आमने-सामने बातचीत नहीं कर सकते थे तो मौन ही रहते । ऐसी-ऐसी बातें समाचारपत्रों में छपवाकर अपनी और अपने सेवक की अपकीर्ति क्यों कर रहे हैं ? विशेषतया तब जबकि वे सारे जैनमत के एक प्रसिद्ध विद्वान् हैं । ये बातें उनकी शान से बहुत परे की हैं । उनके सामने होकर बात को तत्काल एक ओर क्यों नहीं कर लेते, दूर ही दूर से बखेड़ा करने में वे अपना या अपने सेवक का क्या सुधार समझते हैं ? हम कुछ स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के पक्षपाती या पूज्य साहब के विरोधी नहीं हैं । हमको केवल सहानुभूति के कारण ऐसी व्यर्थ बातों पर खेद होता है । पूज्य साहब यदि किसी कारणवश स्वामी जी से बातचीत नहीं कर सकते और स्वामी जी के पास जाने में उनको हिचक है तो जैन लोग और उनके बड़े-बड़े पंडित कहां हैं ? मेरठ, सहारनपुर, आगरा आदि जहां-जहां स्वामी जी का इन दिनों में निवास रहा है, सब स्थानों पर जैन लोग और उनके अच्छे-अच्छे पंडित विद्यमान हैं । पूज्य साहब यदि चाहें तो उनको पत्र द्वारा प्रेरणा कर सकते हैं कि वे अपने किसी उत्तम पंडित के द्वारा वहीं बातचीत करके प्रत्येक बात का अच्छी प्रकार से निश्चय कर लें जिससे सब बातों का सम्यक्तया शीघ्र निर्णय हो जाये और दोनों पक्षों का समय व्यर्थ नष्ट न हो । **'अखबारे आम'** या **'मित्र विलास'** में, जो कभी प्रकट रूप से व्यर्थ और विरुद्ध बातें तथा आक्षेपपूर्ण वाक्य एक समय से उनकी ओर से छपते हैं वे मानो उनको और उनकी जाति को दिन-प्रतिदिन बदनाम करते जाते हैं । इसमें कुछ सन्देह नहीं कि उनकी, चाहे उनके किसी सेवक की, इस प्रकार की कार्यवाहियों से व्यर्थ में सारी जाति बदनाम हो रही है जैसे किसी विद्वान् ने कहा है—**'जो अज कौमे यक बेदानिशी कर्द । न कह रा मन्जिलत मानद न महरा ।।'** अर्थात् यदि जाति में से कोई एक मनुष्य मूर्खता करता है तो न छोटे का सम्मान रहता है न बड़े का । आशा है कि वह उस पर स्वयं ही तत्काल ध्यान देंगे ।'

—'गुजरांवाला से कोई एक'

ला० ठाकुरदास के कानूनी नोटिस का आर्यसमाज की ओर से उत्तर—लाला ठाकुरदास जी ने जो नोटिस भारतीय दण्ड विधान की धारा २९५ के अन्तर्गत आर्यसमाजों के नाम अपनी बुद्धिमत्ता से ६ फरवरी, सन् १८८१ को जारी किया उसका उत्तर समस्त आर्यसमाजों की ओर से सामूहिक रूप में **'आर्यसमाचार'** मेरठ फागुन, संवत् १९३७ तदनुसार अन्तिम फरवरी, सन् १८८१ के पृष्ठ ३२९ से ३४५ तक में प्रकाशित हुआ था जिसको हम नीचे लिखते हैं-'पंजाब प्रदेश के गुजरांवाला नामक स्थान से ला० ठाकुरदास साहब जैन ने ६ फरवरी, सन् १८८१ को प्रकाशित होने वाले विज्ञापन द्वारा मजहबी अपमान करने के सम्बन्ध में भारतीय दण्ड विधान की धारा २९५ के अन्तर्गत श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज और आर्यसमाज के विरुद्ध नालिश करने का अपना निश्चय प्रकट किया है और पूछा है कि क्या भारतवर्ष की आर्यसमाज के सदस्य उक्त स्वामी जी के उस लेख में जो **'सत्यार्थप्रकाश'** के बारहवें समुल्लास में जैनमत के विषय में है, सम्मिलित हैं और उसको सत्य मानते हैं या नहीं ? यदि मानते हैं तो वे भी इस अभियोग में सम्मिलित हैं जो उक्त लेख से उत्पन्न होता है । (यदि कदाचित् उत्पन्न होता हो !) चूंकि उक्त विज्ञापन की लेखन शैली से ऐसा प्रतीत होता है कि वह सब आर्यसमाजों में भेजा गया है और उसके द्वारा समस्त आर्यभाइयों के हृदयों में भय उत्पन्न करना लाला साहब का ध्येय है इसलिए आवश्यक हुआ कि इस निस्सार अभागे विवाद का वास्तविक वृत्तान्त, जिसका सम्बन्ध उक्त विज्ञापन द्वारा यहां के समाज से जोड़ा गया है, सब सज्जनों की सूचना के लिए विस्तारपूर्वक वर्णन करके विज्ञापन के उत्तर में यहां के समाज का अभिप्राय पाठकों की भेंट किया जावे । यह बात सबको विदित रहे कि जिन दिनों स्वामी जी महाराज गत वर्ष यहां सुशोभित थे उन्हीं दिनों लाला ठाकुरदास साहब ने अपने मजहबी शास्त्रार्थ के विषय में कुछ छेड़छाड़ आरम्भ की थी और पूछा था कि 'सत्यार्थप्रकाश' में जो जैनमत के सिद्धान्त लिखे हैं वे किस पुस्तक के हैं और जैनमत का बौद्धमत की शाखा होना किस पुस्तक से सिद्ध होता है ? यहां से लिखे जाने योग्य समस्त युक्तियां और वे समस्त प्रमाण जिनसे जैनमत का बौद्धमत की शाखा होना पाया जाता है, कुछ पत्रों द्वारा उक्त लाला साहब की सेवा में समय-समय पर भेज दिये गये और

यह भी लिखा गया कि यदि आपको सत्य के आधार पर विवादास्पद बातों का निर्णय स्वीकार है तो कोई तिथि निश्चित करके शास्त्रार्थ कर लीजिये । **उन प्रमाणों और शास्त्रार्थ का अन्तिम उत्तर जो लाला साहब की ओर से प्राप्त हुआ वह यही विज्ञापन है कि जिसमें वे लिखते हैं कि हम नालिश करते हैं।** सो खैर, यह उनकी इच्छा ।

ठाकुरदास के आरोप के विषय में आर्यसमाज द्वारा विश्लेषण—इस प्राप्त विज्ञापन के उत्तर में यहां के समाज का यह अभिप्राय है कि किसी सदस्य को उक्त स्वामी जी की सम्मति से इन्कार नहीं और न यह कोई ऐसी बात है कि लाला साहब की धमकी का प्रभाव समाज के सदस्यों के हृदयों पर पहुंचा सके । इसलिए मैं इस अवसर पर पूर्ण आत्मविश्वास के साथ घोषित करता हूं कि यहां समाज के समस्त सदस्य उक्त युक्तियों से समर्थन करके अपने आप को तन, मन धन से उनका योग्य आज्ञावर्ती समझते हैं ।

'सत्यार्थप्रकाश' के पृष्ठ ३९६ से लेकर पृष्ठ ४०७ तक की भाषा को और उस विषय को कि जिसका यह शीर्षक है—**जैनमत विषय का व्याख्यान**, विचारपूर्वक देखने के पश्चात् सब लोग समझ जावेंगे कि जैनियों के प्रधान लाला ठाकुरदास साहब ने 'सत्यार्थप्रकाश' के उक्त वर्णन को कैसे सच्चे विचार और कितनी बुद्धिमत्ता से पढ़ा है (!) और कैसे सूक्ष्म विचारों और गम्भीर समीक्षा से उसके लेखों से अपने मत के अपमान करने का निष्कर्ष निकला है (!) यदि सुकुमारमति सज्जनों की अप्रसन्नता की आशंका न होती तो कह देता कि श्रीमान् लाला जी ने बुद्धिमत्ता से तो नहीं पढ़ा प्रत्युत पक्षपात के अन्धकार में, अपनी परिणाम न देख सकने वाली दृष्टि से काम लिया है, सो धृष्टता की क्षमा चाहता हूं । हमारे अभिमानी लाला ठाकुरदास साहब का 'सत्यार्थप्रकाश' के प्रसंग को समझना ही प्रशंसनीय नहीं है, अपितु विदित हुआ कि उक्त महोदय को कानून समझने की भी बहुत अच्छी योग्यता है (!) देखो, सारे भारतीय दण्डविधान में से वह धारा चुनी है कि जिसमें इस मामले का सबसे अधिक कठोर दण्ड लिखा है । क्यों न हो ? बड़ों के बड़े विचार और बड़े ही काम होते हैं ! किसी ने कहा है—"पड़े पत्थर समझ पर ऐसी वह समझे तो क्या समझे ।" खेद है कि इस स्थान पर मुझको अपनी अल्पबुद्धिता का भी स्वीकार करना पड़ा । बहुत प्रयत्न करने पर भी मैं अब तक यह न समझ सका कि इस सांझे का स्वीकार करा लेने से लाला साहब ने हम सब लोगों को अपराधी ठहराने की कौन सी लाभदायक युक्ति अपने चित्त में विचार रखी है । यदि मान लो कि 'सत्यार्थप्रकाश' में लिखा हुआ स्वामी जी का झूठा लेख हो और उस झूठे लेख के देखने वाले इस कारण कि वे उस लिखने वाले के सच्चा होने का पूरा विश्वास रखते हैं उस लेख को सत्य मान लें और उनके इस सत्य मानने के कारण किसी मनुष्य या मनुष्यों के समुदाय को मानसिक कष्ट अथवा हानि पहुंचे अथवा कानूनी आरोप भी बन जाये तो यद्यपि वे सत्य मानने वाले अपने सत्य माने हुए विचार और उसको वर्णन करने वाले की सच्चाई में विश्वास करते हों तो भी यह समझ में नहीं आता कि उन स्वीकार करने वालों पर आरोप का क्या प्रभाव पड़ेगा ?

कदाचित् अंग्रेजी कानून का कोई सिद्ध पुराना सिद्धान्त होगा जिसके द्वारा उक्त लाला साहब हम पर भी इस स्वीकृति के द्वारा अंग्रेजी कानून को लागू कराना चाहते हैं । या कदाचित् जैनधर्म की राजनीति का कोई कानूनी सिद्धान्त इन विद्वान् महोदय की दृष्टि के सामने आया हो ? नहीं तो अंग्रेजी सरकार द्वारा भारत देश में लागू किये हुए साधारण कानून का तो ऐसा उद्देश्य हमारी समझ में नहीं आता ।

आश्चर्य है कि लाला साहब ने अपने अभिप्रायों की व्याख्या करके भी स्वामी जी का अपमान करने में कोई कमी न रखी और जिन शब्दों और पदवियों से स्वामी जी को सम्बोधित किया उनको कानून के प्रभाव से सर्वथा असम्पृक्त जाना । यह तो उनको निस्संदेह, विदित होगा कि कानून का प्रभाव हम पर भी है । परन्तु हमको इससे क्या; वे जानें और उनका काम ! हमको तो अपने समाज के नियमों के अनुसार सहानुभूतिपूर्वक जो देशप्रेमियों का कर्त्तव्य है वह करना है ।

ला० ठाकुरदास साहब की सेवा में इस समय भी हाथ जोड़कर यह निवेदन कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि हमारे समाज या उक्त स्वामी जी की कदापि यह इच्छा अथवा ध्येय नहीं है कि हमारे वचन या कर्म या भाषण अथवा लेख से किसी मनुष्य या मनुष्यों का अपमान हो या उनको दुःख पहुंचे । अपितु सच्चे धार्मिक विश्वास के साथ विद्या और बुद्धि का सच्चा प्रकाश अपने देश में फैलाना ही हम अपना कर्त्तव्य जानते हैं; और जिस अस्थायी पतन के कारण इस देश और देश के रहने वालों की वास्तविक स्थिति को निन्दनीय दशा में देखते हैं; उस पर दुःख और दया की दृष्टि डालकर केवल लोक और परलोक की उन्नति के उपाय समझा देना, यह हमने अपना कर्त्तव्य समझ रखा है । इसके विपरीत, यह ढंग हमारा कदापि नहीं कि अपकीर्ति की विपत्ति में पड़े हुओं को उन कर्मों और व्यवहारों का स्मरण कराकर दुःख दें कि जिनके कारण आज वे इस दशा में पहुंच गये हैं और हम न किसी को उस बल या प्रेरणा या उत्तेजना से भड़काते हैं जो कानून, नैतिकता, सभ्यता और दूरदर्शिता की दृष्टि से निषिद्ध हैं; यद्यपि इस सच्चे और सीधे मार्ग को बताने का हमारा यह काम ही बहुत से असहनशील स्वभावों के विपरीत पड़ता है । परन्तु इसका क्या उपाय है !

धर्मावलम्बी सत्यानुगामी भाइयो ! आप लोग भी विचार करें कि ला० ठाकुरदास साहब हमारी समाज पर जो यह आरोप लगाते हैं कि आर्यसमाज इस मजहबी अपमान के अपराध में सम्मिलित है और अपराध में सम्मिलित होने का मूल कारण लेखक को बताते हैं, उसमें वस्तुतः अपराध किसका है ? प्रशंसनीय स्वामी जी ने तो (जहां तक हम समझ सकते हैं) यथा सामर्थ्य अपनी पुस्तक 'सत्यार्थप्रकाश' में केवल समष्टि रूप से जैनमत का वृत्तान्त लिखा है और उसके समर्थन में जहां तक कि सम्भव हुआ, प्रायः तो लिखित और कुछ मौखिक सोदाहरण युक्तियों का प्रयोग किया है । यदि जैन सज्जनों की दृष्टि में वे मिथ्या हैं तो उनके मिथ्या होने का प्रमाण लिखकर प्रकाशित कर देना ही न्याय की दृष्टि में सत्य या न्यायप्रियता की पर्याप्त युक्ति हो सकती है । इसके विपरीत नालिश करने की इच्छा का जो कुछ लक्ष्य होता होगा, वे लोग स्वयं समझ लेंगे । मैं शिष्टता के नाते उक्त महोदय की झिड़की से स्वयं डरता हूं । इसी प्रकार यदि जैनमत वाले बौद्धमत की शाखा हैं, यह बात लाला ठाकुरदास की इच्छानुकूल नहीं तो न सही; हमको क्या ! यदि कोई अपनी जाति और मत से इन्कार करता है तो करे ! हमने तो राजा शिवप्रसाद साहब सी० एस० आई० की 'इतिहास तिमिरनाशक' पुस्तक के तीसरे भाग के पृष्ठ ८ के लेख से यह बात सिद्ध की है । राजा साहब स्वयं जैनमत में हैं और कतिपय कारणों से उन्होंने यह विश्वास कर रखा है कि जैनमत भी बौद्धमत की एक शाखा है । यदि जैन साहब हमारी इस बात से ऐसा बुरा मानते हैं कि जो सभ्य और शिक्षित मनुष्यों के सर्वथा विपरीत है, तो वह हमारे या राजा शिवप्रसाद साहब के प्रमाणों का खंडन अपनी पुस्तकों के प्रमाणों सहित छापकर प्रकाशित कर दें । यदि ठीक होगा तो फिर हम ही क्या, कोई भी जैनमत को बौद्धमत की शाखा न कह सकेगा और यदि जैनी वास्तव में बौद्ध हैं (और किसी अर्थसिद्धि के लिए अपनी वास्तविकता को छिपाने की आवश्यकता से हमको डराकर झूठ बुलवाना चाहते है) तो जैनी जी ! हम लोग जैनी को बौद्ध कहना बन्द नहीं कर सकते; क्योंकि सत्य बोलना हमारा पहला धर्म है । यदि वास्तव में लाला साहब हमारी किसी चिट्ठी या किसी पुस्तक का कोई वाक्य दिखाकर हमको समझा दें कि जिससे बुद्धिमानों की दृष्टि में भी हम लोग उक्त लाला साहब के बताये हुए आरोप के दोषी सिद्ध हो सकें तो हमसे हमारे अपराध का स्वीकार करा लेना भी ठीक है । और यूं तो हमको अपनी विनम्रता और अकिंचनता निम्नलिखित वचन के अनुसार स्वयं ही स्वीकार है—**"जबां खोलेंगे हम पर मुद्दई क्या बदशआरी से । कि हमने मुंह में उनके खाक भर दी खाकसारी से ।"**[1] व्यर्थ ही पापपूर्ण डींग मारने से क्या हो सकता है ? यह तो ऐसे ही महापुरुषों का काम है जैसे हमारे कृपालु लाला ठाकुरदास हैं ।"—लेखक-आनन्दलाल, मन्त्री आर्यसमाज, मेरठ । 'आर्यसमाचार' मेरठ, माघ संवत् १९३७, खंड २, संख्या २२, पृष्ठ ३१५ से ३४५ तक व फागुन संवत् १९३७, संख्या २३ ।)

---

1. अर्थात् हमारे विरोधी अपने दुराचरण से हमारे विरुद्ध क्या मुख खोलेंगे क्योंकि हमने धूलिवत् (तुच्छ, अकिंचन) होकर अपनी नम्रता से उनके मुख में धूल भर दी । अनुवादक

जैनियों का राजा शिवप्रसाद को पत्र और उनका उत्तर—फिर जैनी लोगों से जब और कुछ न हो सका अर्थात् न वे शास्त्रार्थ के लिए आत्माराम जी को उद्यत कर सके और न किसी और पंडित को ला सके और न आत्माराम जी ने स्वामी जी के पत्रों का कोई उत्तर दिया बस, राजा शिवप्रसाद को कोई पत्र भेजकर उनसे उत्तर मंगा लिया कि जो इतिहास 'तिमिरनाशक' में लिखा है वह मेरा मन्तव्य नहीं है । राजा शिवप्रसाद जी का पत्र निम्नलिखित है—"श्री शुक्ल जैन पंचायत गुजरांवाला को शिवप्रसाद का प्रणाम पहुंचे । कृपापत्र पत्रों सहित पहुंचा । उत्तर इस प्रकार है—

नं० १—जैन और बौद्धमत एक नहीं हैं; सनातन से भिन्न-भिन्न चले आये हैं जर्मन देश के एक बड़े विद्वान् ने इसके प्रमाण में एक ग्रन्थ छापा है ।

नं० २—चार्वाक और जैन मतों का परस्पर कुछ सम्बन्ध नहीं है । जैन को चार्वाक कहना ऐसा है जैसा स्वामी दयानन्द सरस्वती को मुसलमान कहना ।

नं० ३—'इतिहास तिमिरनाशक' का आशय स्वामी जी की समझ में नहीं आया । उसकी भूमिका की प्रतिलिपि इसके साथ भेजी जाती है । उससे विदित होगा कि यह बहुत सी बातों का संग्रह है, जो खंडन के लिए लिखी गई हैं । मेरे निश्चय के अनुसार उसमें कुछ नहीं है ।

नं० ४—जो स्वामी जी जैन को 'इतिहास तिमिरनाशक' के अनुसार मानते हैं तो वेदों को भी उसके अनुसार क्यों नहीं मानते ? आपका दास-शिवप्रसाद ('मित्र विलास', ४ अप्रैल, सन् १८८१ तदनुसार चैत सुदि ६, संवत् १९३८ से उद्धृत ।)

संवाददाता[1] **की ओर से उत्तर** : नं० १—यह राजा साहब की बड़ी भारी भूल है । तिमिरनाशक की वह भाषा ऐसी नहीं है कि जिसको साधारण मनुष्य और फिर स्वामी जी जैसा व्यक्ति क्यों न समझ सके । हम पाठकों के अवलोकनार्थ वह भाषा नीचे लिखते हैं—स्वामी शंकराचार्य से पहले जिनको हुए केवल हजार वर्ष के लगभग व्यतीत हुए हैं, सारे भारतवर्ष में बौद्ध अथवा जैनधर्म फैला हुआ था । **उस पर नोट—**'बौद्ध कहने से हमारा आशय उस मत से है जो वेदविरुद्ध मत महावीर के गणधर गौतम स्वामी जी के समय से लेकर शंकर स्वामी के समय तक सारे भारतवर्ष में फैला रहा था और जिसको अशोक और सम्प्रति महाराज ने माना । हम उससे बाहर किसी प्रकार नहीं निकल सकते क्योंकि जिससे जैन निकला उन्हीं से बौद्ध निकला । जैन बौद्ध दोनों पर्यायवाची शब्द हैं । कोष में दोनों का अर्थ एक ही लिखा है और गौतम को दोनों मानते हैं अन्यथा 'देववंश' इत्यादि पुराने बौद्धग्रन्थों में शाक्यमुनि गौतम बुद्ध को प्राय: महावीर ही के नाम से लिखा है । इसलिए उसके समय में एक ही उनका मत रहा होगा । हमने जो जैन न लिखकर गौतम के मत वालों को बौद्ध लिखा, उसका प्रयोजन केवल इतना ही है कि उनको दूसरे देश वालों ने बौद्ध के नाम से लिखा है ।' ('इतिहास तिमिरनाशक' तीसरा खंड, पृष्ठ ८, प्रकाशित संवत् १८७३) ।

'जब राजा साहब इस प्रकार स्पष्टरूप में छाप चुके हैं और आजतक भी 'इतिहास तिमिरनाशक' में वैसा ही प्रकाशित होता है (देखो 'इतिहास तिमिरनाशक') तो यह केवल अपने सजातीयों को प्रसन्न करने की एक बिना प्रमाण की गप्प है ।

जैन-बौद्ध मतों के एक होने के अन्य प्रमाण— फिर स्वामी जी के कथन का केवल यही एक 'इतिहास् तिमिरनाशक' ही सबसे बड़ा प्रमाण नहीं है । प्रत्युत इसके अतिरिक्त और भी कई इससे बढ़कर प्रमाण हैं, जैसे 'अमरकोष'

---

1. पं० लेखराम जी

कांड १, वर्ग १, श्लोक ८ से १० तक में जिसका लेखक एक अत्यन्त विद्वान् जैनी हुआ है, उसने भी बौद्ध और जैनमत को एक ही लिखा है। इसलिए राजासाहब या ठाकुरदास का जैन और बौद्ध को एक न मानना एक बहुत भारी भूल है, इसका एक और भी बड़ा प्रमाण है कि दोनों के देवता और तीर्थ एक हैं। इसलिए इसको अस्वीकार करना केवल अविद्या है और यह भी सर्वथा गप्प है कि सनातन से भिन्न-भिन्न चले आते हैं; वास्तव में ऐसा बिलकुल नहीं है। बुद्ध से पहले तो जैन की विद्यमानता में कभी कोई प्रमाण भी नहीं मिलता है। बौद्ध के अस्तित्व में आने पर उससे जैन अस्तित्व में आया और उसके खंडन के साथ ही उसका खंडन और उसकी उन्नति के साथ ही उसकी उन्नति है अर्थात् अनुसंधान पूर्वक निश्चय करके देखा जाये तो बौद्ध जैन हैं और जैन बौद्ध हैं। दोनों एक प्राण और दो शरीर दिखाई देते हैं; परन्तु वास्तव में शरीर भी एक ही है।

नं० २—स्वामी जी का चार्वाक को जैन का एक सम्प्रदाय कहना और राजा साहब का क्रोधित होना और स्वामी जी को मुसलमान कहना मिथ्या है; क्योंकि इस का निर्णय न तो स्वामी जी ने राजासाहब पर डाला और न उनका इससे सम्बन्ध है। यह तो स्वामी जी की अपनी खोज है कि जब बौद्ध और जैन एक ठहरे या यों कहो कि जिस प्रकार बौद्धों की एक शाखा जैन है उसी प्रकार एक शाखा चार्वाक है; इसलिए जैन और चार्वाक एक ही मत की शाखा हैं और बड़े मतों में क्रम में वे एक ही हैं।

नं० ४—के विषय में स्वामी जी या हम लोग मान लेते; यदि राजा साहब संस्कृत के तनिक भी पंडित होते। फिर वेद के विषय में उनकी सम्मति स्वीकार करने योग्य कब हो सकती है ? परन्तु चूंकि ये स्वयं जैन थे और जैनधर्म का परिचय रखते थे इसलिए उनका वह लेख उन्हीं के शब्दों में हमारे लिए दृढ़ प्रमाण है। इस कारण उनके समस्त आक्षेप व्यर्थ ठहरे। फिर किसी के कथनानुसार दीवानी (मुकद्दमेबाजी) किसी अंकुश को नहीं मानती और वह अकाल मृत्यु का कारण बन जाती है। ला० ठाकुरदास ने १० जनवरी, सन् १८८२ को बेसुध व्यक्ति के प्रलाप के समान एक नोटिस '**आफताबे पंजाब**' में छपवाया कि स्वामी जी लाहौर, बनारस, अहमदाबाद और बम्बई, इन नगरों में आकर मुझ से शास्त्रार्थ कर लें और फिर १७ अप्रैल, सन् १८८२ को एक नोटिस '**अहमदाबाद समाचार**' में और दूसरा नोटिस अर्थात् उसी की प्रतिलिपि '**बड़ौदा वत्सल**' में १९ अप्रैल, सन् १८८२ को छपवाई और भी एक कापी १२ मई, सन् १८८२ को '**शमशीर बहादुर**' समाचार पत्र में भी प्रकाशित कराई और स्वयं भी अपनी प्रसिद्धि कराने और गालियों भरी पुस्तक छपवाने के अभिप्राय से बम्बई जा पहुंचे। उन दिनों स्वामी जी भी बम्बई में विराजमान थे। इसलिए एक कार्ड १ जून, सन् १८८२ को लिखा कि मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूं। स्वामी जी ने तत्काल समाज के मन्त्री से कार्ड का उत्तर लिखवा दिया, जो निम्नलिखित है—

बम्बई में ला० ठाकुरदास के पत्र का उत्तर—'मित्रवर ठाकुरदास मूलराज योग बम्बई से। आपने जो जेठ सुदि १५ दिन श्रीमत् पंडित दयानन्द सरस्वती स्वामी जी के पास कार्ड भेजा था उसके उत्तर में आपको विदित हो कि तुम्हारे मत का जानने वाला और धर्मोपदेशक विद्वान् प्रतिज्ञापूर्वक नियमानुसार शास्त्रार्थ करने को उद्यत हो जाये तब स्वामी जी को शास्त्रार्थ में तनिक भी आपत्ति नहीं है; वे उसके लिए सदा उद्यत हैं। इसलिए यदि तुम्हें सत्यासत्य के निर्णय करने-कराने की इच्छा है तो अपने मत का कोई प्रतिष्ठित विद्वान् धर्मोपदेशक जब तुम्हें मिले अथवा विदित हो तो तत्काल मुझे सूचना दो, परन्तु इस विषय में विलम्ब न होना चाहिये क्योंकि स्वामी जी थोड़े समय के पश्चात् यहां से जाने वाले हैं। उनके जाने के पश्चात् आपको यदि कोई मिला भी तो भी उसका मिलन निष्फल रहेगा। इसलिए कृपा करके तीन दिन के भीतर यदि किसी विद्वान् को ला सकते और शास्त्रार्थ करा सकते हो तो हमें सूचना दो और यदि यह इच्छा न हो तो मैं तुम्हें अपनी सम्मति बतलाता हूं कि स्वामी जी को प्रतिदिन शाम के ५ बजे से ९ बजे तक अवकाश है और उस समय प्रत्येक को आने

की स्वतन्त्रता है। आप उस समय भेंट के लिए आइए और अपने संशय निवारण कर लीजिये। यदि यह स्वीकार हो तो मुझे सूचना दो कि मैं उस समय उपस्थित हो जाऊं।' ५ जून, सन् १८८२। आपका सेवक-सेवकलाल कृष्णदास, मंत्री आर्यसमाज बम्बई।

समाज के मंत्री के माध्यम से ठाकुरदास की स्वामी जी से भेंट—'परन्तु इस कार्ड के पहुंचने से पहले ही समाज का मन्त्री ठाकुरदास को स्वामी जी के पास ले गया, वह उस भेंट के विषय में लिखता है—'मेरे को स्वामी जी के पास ले गया। कितनी बात (बातों) की चर्चा होकर पीछे इस प्रकार मुझसे बोला कि तुम्हारे कार्ड के उत्तर में हमने पत्र लिखकर टपाल (डाक) में तुमको भेजा है, उससे जान लेना।' जैनियों ने एक प्रसिद्ध वकील नियत किया, उसने स्वामी जी को १३ जून, १८८२ को नोटिस दिया। स्वामी जी ने एक प्रसिद्ध वकील नियत किया, उससे जैनियों के वकील के नोटिस का १८ जून, १८८२ को उत्तर दिया।

तोप के मुंह के आगे भी सत्य ही निकलेगा—लाला भोलानाथ वैश्य, सहारनपुरी ने वर्णन किया—"जब मुजफ्फरनगर में स्वामी जी लौटकर आये तो भोजन करने के पश्चात् मैंने निवेदन किया कि महाराज! आपके पकड़ने के लिए जैनी लोगों ने विज्ञापन दिया है और भारतीय दंड विधान के अनुसार पकड़वा कर बन्दी कराने की सम्मति की है। यहां सहारनपुर में भी स्थान-स्थान पर बाजारों में विज्ञापन लगे हुए हैं। स्वामी जी ने कहा कि स्वर्ण को जितनी आग दी जाती है उतना ही वह कुन्दन होता है। स्वामी जी को यदि तोप के मुंह से बांधकर भी कोई प्रश्न करे कि क्या सत्य है तो वेद ही की श्रुति मुख से निकलेगी और अब तो मैंने बहुत ग्रन्थ जैनियों के देख लिये हैं, वे मेरे प्रश्नों का क्या उत्तर दे सकते हैं!"

स्त्रीशिक्षा सम्बन्धी पुस्तक लिखने की स्वामी जी की अभिलाषा—फिर मैंने चलते समय प्रश्न किया कि महाराज! सत्यार्थप्रकाश दूसरी बार कब तक छपेगा, उसकी बहुत आवश्यकता है। कहा कि मैं यही तो कर रहा हूं, और कोई मेरा काम नहीं। फिर कहते थे कि **ईश्वर कृपा करे तो इन सबके पश्चात् स्त्रीशिक्षा की पुस्तकें बनाऊंगा।** यह कह कर गाड़ी से देहरादून को चले गये।"

पाठको! स्वामी जी के बार-बार लिखने और पत्र भिजवाने पर भी जैनधर्म से परिचित किसी विद्वान् पंडित को न ठाकुरदास ले गये और न पंडित आत्माराम जी आदि ने ध्यान दिया और रणक्षेत्र के वीर बने। बम्बई नगर में हजारों जैनी हैं परन्तु कोई भी धर्म के लिए कटिबद्ध होकर स्वामी जी के पास न गया और स्वामी जी प्रथम दिन से अर्थात् संवत् १९३६ से कार्तिक संवत् १९४० तक जैन मत का खंडन करते रहे। सैकड़ों जैनी उनके शुभ उपदेश सुनकर वैदिकधर्म की ओर आकृष्ट हुए और आर्यसमाज में सम्मिलित हो गये परन्तु फिर भी जैनी पंडितों के कान पर जूं तक न चली। बीसियों जैनियों ने यहां तक साहस किया कि अपनी धर्मपुस्तकें भी समाज को सौंप दी इस रूप में यह शुष्क शास्त्रार्थ था अर्थात् केवल एक अनपढ़ जैनी ने अपनी प्रसिद्धि के लिए स्वामी जी से छेड़छाड़ की तो भी इसका लाभ आर्यसमाज को ही हुआ अर्थात् उस की पुस्तक पढ़कर और उसकी असभ्यता और निर्बुद्धितापूर्ण उत्तर देखकर लोग उलटे स्वामी जी की सभ्यता के प्रेमी हो गये। ढेर में से एक मुट्ठी नमूना वाली कहावत यहां चरितार्थ होती है, उस पुस्तक का नाम ही सुन लीजिये, 'दयानन्दसरस्वतीमुखचपेटिका।'

पाठको! ऐसी योग्यता वाले प्राय: जैन लोग हैं फिर आप विचार कर सकते हैं कि असभ्यता से किस प्रकार एक सभ्य रिफार्मर (सुधारक) का सामना कर सकते हैं और यही कारण हुआ कि इतना कष्ट उठाने और निरर्थक कोलाहल मचाने

पर भी पश्चात्ताप के अतिरिक्त और कुछ उनको प्राप्त न हुआ । न शास्त्रार्थ कर सके और न कर सकते थे क्योंकि वे असत्य पर थे और इस अवस्था में नालिश करने का तो प्रश्न ही कहां उठता है !

स्वामी जी ने उसी विषय को सत्यार्थप्रकाश की द्रितीयावृत्ति में इस योग्यता और प्रबल युक्तियों से लिखा है कि अब तो उनके रहे सहे छक्के भी छूट गये (देखो पृष्ठ ३९५ से ४५० तक)।

इस बार चूंकि उनको सैकड़ों पुस्तकें जैनमत की हस्तलिखित और छपी हुई भी मिल गई थीं और आवश्यक है कि तीक्ष्ण खड्ग की तीक्ष्णता के अनुसार वीर सेनापति अधिक पराक्रम करता है और यही कारण हुआ कि उन्होंने 'सत्यार्थप्रकाश' की द्रितीयावृत्ति में अत्यन्त ही प्रबल युक्तियों से जैनमत का खंडन किया जो आदि से अन्त तक देखने से सम्बन्ध रखता है ।

रियासत मसूदा में जैनियों से शास्त्रार्थ (६ जुलाई से १६ जुलाई तक)

जब आषाढ़ बदि १२ संवत् १९३८ तदनुसार २३ जून, सन् १८८१ को स्वामी जी धर्मोपदेश के निमित्त मसूदा पधारे तो कई दिन तक निरन्तर व्याख्यान देने के पश्चात् ५ जुलाई, सन् १८८१ को राव बहादुरसिंह साहब, रईस मसूदा ने अपनी रियासत के सम्मानित जैनियों को बुलाकर कहा कि तुम अपने किसी विद्वान् पंडित या मतावलम्बी को बुलाओ ताकि उससे स्वामी जी का शास्त्रार्थ कराया जावे और सत्यासत्य का निर्णय हो ।

जैनियों ने उत्तर दिया कि हम अपने साधु सिद्धकरण जी को बुलाते हैं, वे स्वामी जी से शास्त्रार्थ करेंगे ।

रावसाहब ने कहा कि वे कहां हैं ? जैनियों ने उत्तर दिया कि वे ग्राम सरवाड़ (किशनगढ़ क्षेत्र) में यहां से १६ कोस पर हैं । रावसाहब ने कहा कि हमारे यहां से सवारी ले जाओ और तुममें से कोई जाकर साधु जी को बुला लाये । उन्होंने उत्तर दिया कि सवारी पर बैठकर वे नहीं आते परन्तु उनका चतुर्मासा यहां पर करना निश्चित हुआ है । इसलिए विश्वास है कि कल आ जावेंगे । दैवयोग से प्रातःकाल आषाढ़ सुदि १०, संवत् १९३८ तदनुसार ६ जुलाई, सन् १८८१ बुधवार को साधु जी वहां आ विराजे ।

आषाढ़ सुदि १३ अर्थात् ९ जुलाई, सन् १८८१ शनिवार को स्वामी जी महाराज अपने नियमानुसार भ्रमण को गये तो सिद्धकरण साधु से जो शौचादि से निवृत्त होकर आते थे, मार्ग में भेंट हो गई । **साधु ने स्वामी जी के निकट आकर कहा** कि आपका क्या नाम है और कहां से पधारना हुआ ? **स्वामी जी ने उत्तर दिया** कि मेरा नाम दयानन्द सरस्वती है और अजमेर से आया हूं । फिर स्वामी जी ने कहा कि आपका क्या नाम है और कहां से आना हुआ ? साधु जी ने कहा कि मेरा नाम सिद्धकरण है और सरवाड़ (किशनगढ़ क्षेत्र) से आया हूं, चार मास यहीं पर रहूंगा । **स्वामी जी—**यहां आप कहां ठहरे हैं ? **साधु जी ने कहा** कि एक उपाश्रय में । **स्वामी जी ने कहा** कि आप ही को जैनियों ने बुलाया है ? **साधु—**हां मुझी को । तब साधु जी ने कहा कि आपका पेट तो बड़ा मोटा है, क्या इसमें ज्ञान भरा है ? आप लोहे का तवा बांध लीजिये; नहीं तो फट जायेगा । आपको ज्ञान-अजीर्ण हो रहा है । **स्वामी जी ने** इसका उस समय उत्तर देना अनुचित समझ साधु से यह प्रश्न किया आप लोग मुख पर पट्टी क्यों बांधते और गर्म जल क्यों पीते हो ? **साधु जी ने कहा** कि जो आप भी मुख पर पट्टी बांधें तो मैं इसका उत्तर दूं ।

अभी इनमें परस्पर वादानुवाद हो ही रहा था कि रावसाहब ने जो प्रायः अपने महल की छत पर बैठ प्रातःकाल दूरवीक्षण द्वारा स्वामी जी को भ्रमण करते देखा करते थे, देखा कि किसी से स्वामी जी वार्ता कर रहे हैं । तत्काल ही रावसाहब घोड़े पर सवार होकर स्वामी जी के पास आ उपस्थित हुए । रावसाहब को देखकर साधु चलने लगा । तब राव साहब ने

साधु जी से कहा ठहरो, प्रश्न करो, क्यों जाते हो ? अन्त को राव साहब के आते ही साधु जी चले गय और स्वामी जी महाराज और राव बहादुरसिंह जी मार्ग में परस्पर वार्ता करते हुए निज स्थान को पधारे । फिर स्वामी जी ने श्रावण बदि २, संवत् १९३८, बुधवार तदनुसार १३ जुलाई, सन् १८८१ को निम्निलिखित प्रश्न पंडित छगनलाल कामदार और ज्योतिषी जगन्नाथ आदि सम्मानित व्यक्तियों के हाथ सिद्धकरण साधु के पास भेजे ।

मुख पर कपड़ा बांधने के विषय में स्वामी जी के प्रश्न—

प्रश्न—जैन मतान्तर्गत तुम लोग ढूंढिये[1] जो मुख पर पट्टी बांधना अच्छा जानते हो, यह तुम्हारी बात विद्या और प्रत्यक्षादि प्रमाणों की रीति से सिद्ध नहीं है । इससे जो तुम ऐसा मानते हो कि मुख की वायु से जीव मरते हैं तो भी ठीक नहीं क्योंकि जीव अजर-अमर हैं और तुम भी ऐसा ही मानते होगे । जो तुम कहो कि जीव तो नहीं मरता परन्तु उसको पीड़ा अर्थात् दुःख देवें तो हम पाप के भागी होते हैं; तो भी सर्वथा ठीक नहीं क्योंकि ऐसा किए बिना किसी का निर्वाह नहीं हो सकता । इसमें जो तुम कहते हो कि जहां तक बन सके वहां तक जीवों की रक्षा करनी चाहिये; कारण सर्व वायु आदि पदार्थ जीवों से भरे हैं इसलिए हम लोग मुख पर कपड़ा बांधते हैं कि मुख से ऊष्ण वायु निकलने से बहुत से जीवों को दुःख और बांधने से थोड़े जीवों को कष्ट पहुंचता है; तो यह कहना आप लोगों का अयुक्त है; क्योंकि कपड़ा बांधने से जीवों को बहुत दुःख पहुंचता है । कारण यह है कि मुख पर कपड़ा बांधने से गर्मी रखने से ऊष्णता अधिक होती है जैसे किसी मकान का द्वार बन्द हो और पर्दा डाला जाये तो उसमें गर्मी अधिक होती है और खुला रखने से कम होती है । इससे विदित होता है कि मुख पर कपड़ा बांधने से जीवों को अधिक पीड़ा होती है इसलिए जो कोई मुख पर कपड़ा बांधते हैं वे जीवों को अधिक पीड़ा पहुंचाने से अधिक पापी होते हैं । जो नहीं बांधते वे उन बांधने वालों से अच्छे हैं । किन्तु जब तुम मुख पर कपड़ा बांधते हो मुख द्वारा वायु रुक कर नाक के छिद्र से वेग से बाहर निकलती है, वह, जीवों के लिए अधिक दुःखदायी होती है । जैसे मुख से कोई अग्नि फूंके और कोई नल से, तो नल से वायु चारों ओर रुक अधिक बलवान् हो अग्नि सी लगती है । इसी प्रकार नाक की वायु जीवों को अधिक पीड़ा देती है, इससे तुम हिंसक हो । जो तुम कहो कि हम नाक और मुख पर एक कपड़ा बांधेंगे तो पूर्वोक्त रीति से मुख और नासिका की गर्मी बढ़कर दुगनी हिंसा होगी । इससे मुख और नासिका पर कपड़ा बांधना कदापि योग्य नहीं । दूसरे कपड़ा बांधने से बोला भी ठीक-ठीक नहीं जाता । निरनुनासिक शब्दों को सानुनासिक कर देना दोष है । दुर्गन्ध भी अधिक बढ़ती है क्योंकि शरीर के भीतर दुर्गन्ध है । शरीर से जितना वायु निकलता है वह दुर्गन्धयुक्त ही है । जब वह रोका जाये तो अधिक दुर्गन्ध बढ़ता है जैसा कि बन्द जाजरूर (शौचालय) । इस प्रकार मुखादि प्रक्षालन न करने और मुख पर कपड़ा बांधने से अधिक दुर्गन्ध होकर अधिक रोग उत्पन्न करता है जैसा कि मेले आदि में । और न्यून दुर्गन्ध विशेष रोग नहीं करता; यह बात प्रत्यक्ष है । इससे यह सिद्ध हुआ कि अधिक दुर्गन्ध बढ़ाने वाला अधिक अपराधी होता है । जैसा कि आप दन्तधावन और स्नानादि कम करने से दुर्गन्ध बढ़ाते हो, जिससे रोगोत्पत्ति कर बुद्धि और पुरुषार्थ को नष्ट करके धर्मानुष्ठान के बाधक होते हो । जैसे जाजरूर (शौचालय) के शुद्ध करने वालों की दुर्गन्ध के संग से न्यून बुद्धि होती है वैसे आप लोगों को क्यों नहीं होती होगी ! जब दुर्गन्धयुक्त पुरुष की बुद्धि अति मन्द होती है तो उसके संगियों की क्यों नहीं होती होगी ! (**'देश हितैषी'** खण्ड १, संख्या २, पृष्ठ ७ से १३, ज्येष्ठ मास, संवत् १९३९) ।

"जो तुम लोग कच्चा जल पीने आदि में दोष गिनते और ऊष्ण में नहीं यह भी तुमको अत्यन्त भ्रम हुआ है क्योंकि ठण्डे के जीव ऊष्ण जल करने में अधिक दुःख पाते हैं और उनके शरीर जीवित जल में घुल जाते हैं जैसे सौंफ का अर्क । सिद्ध हुआ कि उक्त जल के पीने वाले मानो मांस का जल पीते हैं और जो ठण्डा जल पान करते हैं वे (इन जीवों को) गर्म जल पीने वालों की अपेक्षा थोड़ा दुःख देते हैं । दूसरे वे जीव जठराग्नि में प्राप्त होकर भी बहुत से प्राणवायु के साथ बाहर

भी निकल जाते हैं । इससे ठण्डा जल पीने वाले तुमसे बहुत कम जीवों को दुःख देने वाले ठहरते हैं । जो तुम कहो कि न तो हम जल गर्म करते हैं और न हम किसी को अपने लिए जल को ऊष्ण करने का निर्देश देते हैं, तो भी तुम अपराध से नहीं छूट सकते क्योंकि जो तुम गर्म जल न लेते, न पीते और न ऊष्ण करने का निर्देश देते तो वे अधिक जल क्यों गर्म करते । जो ऐसा कहो कि पाप करने वालों को दोष लगता है, अन्य को नहीं । यह भी कथन ठीक नहीं हो सकता क्योंकि चोरी करने वाला तो आप ही चोरी करता है । परन्तु आप बहुतों को चोर बना देते हैं । इसलिए तुम ही अधिक पापी हुए। फिर जल के गर्म करने और उस जल से भाप ऊपर उड़ाने से भी जीवों को दुःख पहुंचता है । इस कारण यह भी तुम्हारा कथन व्यर्थ हुआ ।

तुम्हारे मत में ऐसी-ऐसी बहुत सी बातें अयुक्त हैं । जैसे एक छोटे से अर्थात् पैसा भर के कुण्ड में अनन्त जीवों का रहना । इस पर यदि कोई तुमसे प्रश्न करे कि जिसमें जीव रहते हैं उसका अन्त है, तो फिर उसमें रहने वालों का अन्त क्यों नहीं ? फिर तुमसे उसके उत्तर में केवल चुप वा हठ के अतिरिक्त और कुछ न बन पड़ेगा । **यह थोड़ा-सा अर्थात् समुद्र में से बिन्दुवत् तुम्हारे मत के सिद्धान्तों में दोष दिखलाया है ।** जो तुम सम्मुख बैठ कर चर्चा करो तो तुमको और तुम्हारे साथियों को तुम्हारे मत के दोष भली-भांति विदित हो जायें परन्तु जब कोई विद्वान् तुम्हारे सम्मुख मत के खण्डन-विषय में चर्चा करना चाहे तो भी तुम कभी न चाहोगे क्योंकि जो तुम्हारा मत निर्दोष होता तो दूसरे मत वालों के संवाद करने में कभी न डरते । इसका दृष्टान्त यह है कि तुम अपनी पुस्तकों को बहुत गुप्त रखते और अपने मतवालों के अतिरिक्त दूसरों को देखने के लिए नहीं देते । तुम्हारी ये बातें ही तुम्हारी सिद्धान्त पुस्तक और तुम्हारे सिद्धान्तों को झूठी कर देती हैं । जिसका चांदी का रुपया है वह सर्राफ और **सुनार आदि** को दिखलाने में क्यों डरेगा ? देखो ! हमारा वेदमत सच्चा है इससे हम को किसी के साथ चर्चा करने में डर नहीं होता । जैसे तुम डर के कारण हठ करते हो कि मुख पर कपड़ा बांधे बिना तुमसे हम बात नहीं करते । यह तुम्हारा केवल छल है क्योंकि “नाच न आवे आंगन टेढ़ा ।” (हस्ताक्षर) दयानन्द सरस्वती ।

साधु सिद्धकरण का व्यवहार—जब उक्त प्रश्नों को लेकर साधु जी के स्थान पर पहुंचे तो क्या देखते हैं कि साधु जी स्त्री और पुरुषों के मध्य में बखान (व्याख्यान) कर रहे हैं तब ये लोग वहां जा बैठे । जब बखान पूर्ण हो चुका तब पण्डित छगनलाल मन्त्री राव मसूदा ने जो उक्त प्रश्न ले गये थे, सब लोगों के सम्मुख पढ़कर सुना दिये और कहा कि इनका उत्तर देना आप को योग्य है । इस पर साधु जी ने कहा कि जो तुम लोग मुख पर पट्टी बांधो तो मैं उत्तर दूं । तब उन लोगों ने कहा कि हम मुख पर पट्टी बांधना पाप गिनते हैं । आप इन प्रश्नों का उत्तर दें, जब पट्टी का बांधना सिद्ध कर देंगे तब हम प्रसन्नतापूर्वक पट्टी क्या, जैसा आप हमसे कहेंगे, स्वीकार करेंगे । यह सुन साधु ने कहा कि मैं उत्तर नहीं दे सकता और उठकर भीतर की ओर चले गए । फिर उन्होंने सब वृत्तान्त स्वामी जी और राव साहब को सुनाया और अपने-अपने स्थान को पधारे । तत्पश्चात् साधु जी ने तीसरे दिन अर्थात् १५ जुलाई, सन् १८८१ को सुजानमल कोठारी के हाथ स्वामी जी के प्रश्नों के निम्नलिखित उत्तर भेजे—

“साधु सिद्धकरण जी की ओर से प्रश्नों के उत्तर—प्रश्न : मुंह बांधने में क्या धर्म है ? हमको तो पाप प्रतीत होता है इत्यादि । **उत्तर**—जब कि मकान में अग्नि की ज्वाला निकलती है, उस मकान के द्वार में होकर वायु भीतर जाती है तो वायु के जीव सब मर जाते हैं । जब बारणा (द्वार)[६] बन्द किया जावे वायु की ओट से सब जीव बच सकते हैं और बाहर भी उस ज्वाला का तेज कपड़े की ओट से ठंडा होकर जाता है जैसा कि ऊष्ण जल की भाप । बाहर एक गर्म की हुई चीज की भाप के निकलते समय कपड़े की ओट दो तो फिर ओट से बच कर भाप बाहर जावेगी, वह फिर वैसी गर्म कभी न रहेगी वा आड़ा हाथ देकर देखो तो पहले जो हाथ देगा उसका जलेगा । वही जल की भाप निकलेगी तो दूसरी ओर जो आजू-बाजू रहेगा कभी वैसा नहीं जल सकता । यह तो प्रत्यक्ष दीख पड़ता है और जीव अजर अमर है परन्तु वायु के जीव का शरीर

है । बिना शरीर के जीव नहीं रह सकता । **दूसरे** खुले मुख रहने से प्रत्यक्ष दोष भी है कि उसको सब कोई समझ सकता है क्योंकि जो कोई बड़े मनुष्य के निकट बात करे तो मुंह के पल्ला लगा रहता है क्योंकि जिससे थूक न उछले वा अपनी दुर्गन्धता का श्वास उनके द्वारा न पहुंचे तो आपड़ों से (आप सरीखे) बुद्धिमान् होकर यह क्या प्रश्न पूछा । आपको यह तो विचार चाहिए कि वेद की पुस्तकों को खुले मुंह बांचना क्या पुस्तक के थूकारा वा दुर्गन्ध-श्वासा नहीं पहुंचती होगी ? इसलिए अवश्य आपको उघाड़े (खुले मुंह) रहना उचित नहीं और हम तो साधु हैं, हम निरर्थक झोड़[७] नहीं करते क्योंकि यह बात पक्षपात कहलाती है, धर्म के अतिरिक्त साधु का कुछ प्रयोजन नहीं । कोई हमारे निकट आवे और सुनना चाहे तो सुने । जाने-आने का कुछ प्रयोजन नहीं । हां यह पक्की देखी कि कुछ धर्म की बात मानेंगे तो जा भी सकते हैं । (हस्ताक्षर) सिद्धकरण ('देश हितैषी' खंड १, संख्या ४, पृष्ठ ७ से १० तक)

स्वामी दयानन्द जी महाराज की ओर से उत्तर—जब कि मकान में अग्नि की ज्वाला निकलती है इत्यादि । यह तुम्हारा मुख की पट्टी बांधने का उत्तर अविद्यारूप है क्योंकि बाहर का वायु ही सब पदार्थों का जीवन-हेतु है । बिना इसके संयोग के कोई भी प्राणी नहीं बच सकता और उसके सम्बन्ध के बिना अग्नि भी नहीं जल सकती । जैसे किसी प्राणी वा जलती अग्नि को बाहर की वायु से वियुक्त करें तो वह उस समय मर जाता है और दीपकादि अग्नि भी बुझ जाता है क्योंकि इस के जलाने आदि का कारण बाहर का वायु है । न मानो तो बन्द कर देख लो । इसलिए यह तुम्हारा अविद्यारूपी उत्तर सिद्ध होता है । यद्यपि ऐसी अन्यथा बातों पर लिखना व्यर्थ है क्योंकि जो किसी से हो ही नहीं सकता । देखो जो मकान के द्वार और छिद्र बिल्कुल बन्द किये जायें तो अग्नि कभी न जलेगी और एक ओर से ओट किया जाये तो दूसरी ओर से जहां मार्ग पाता है वहां से अतिवेग से चलकर वही वायु के जीवों से उसका सम्बन्ध होता है और कपड़े की ओट से भी वह कभी ठंडा नहीं हो सकता किन्तु वह एक ओर से रुक कर दूसरी ओर से गर्म हो जाता है ज्वाला की जितनी गर्मी है । जब तक बाहर की वायु से सम्बन्ध और संघात छूट कर एक-एक परमाणु पृथक्-पृथक् होकर न मिल जाये तब तक अग्नि ठंडा कैसे हो सकता है और सर्वत्र वायु में विद्युत् रूप अग्नि भी (कि जहां वायु के शरीर वाले जीव हैं) व्याप्त हो रहा है फिर वायुस्थ जीव क्यों नहीं मर जाते ? जब एक ओर कपड़े आदि से आड़ा किया जाये तो दूसरी ओर गर्म वायु अधिक इकट्ठा फैलने और टपकने से शीघ्र ठंडा नहीं होता जो चारों ओर से खुला रहे तो शीघ्र ठंडा हो जाता है जैसे कि मैदान की अग्नि । जब अग्नि की ओर आड़ा हाथ दिया जाये तो हाथ की आड़ से दूसरी ओर गर्मी फैलेगी । आड़े हाथ करने से गर्मी कुछ भी कम नहीं हो सकती, इससे यह अविद्वानों की बात है । देखो, जो सूर्य की ओर हाथ करे तो क्या सूर्य की गर्मी घट जाती है और क्या जिस बर्तन में जल गरम किया जाता है उसका मुख खुला रखने से अधिक गरम और आधा वा तीन भाग बन्द करने से अर्थात् आधे वा चौथे भाग से भाप अधिक और जोर से निकल कर बाहर की वायु में नहीं फैलती और जो उसका मुख सर्वथा बन्द किया जाये तो क्या बर्तन टूट फूट और उड़ न जायेगा ? क्या जिसने अग्नि की ज्वाला के सामने आड़ की तो उसकी ओर गर्मी कम होने से दूसरी ओर अधिक गर्मी नहीं होती । क्या हाथ के आड़े किये हाथ से अग्नि के दूसरी ओर जिस किसी के हाथ और कोई वस्तु हो तो वह अधिक तप्त नहीं होती और जब चारों ओर से आड़ कर अग्नि को रोका जावे तो गोलाकार होकर ऊपर को क्यों न चढ़ेगा और भाप के दूसरी ओर हाथ जैसा कि इधर का जलता है वैसा उधर का न जलेगा और हाथ की आड़ से हाथ में गर्मी इसलिए अधिक नहीं लगती कि वह अगल बगल होकर ऊपर उड़ जाती है । देखो ! तुम्हारी यहां अत्यन्त भूल है क्योंकि जो वायु के शरीर वाले जीव गर्म वायु से मर जाते तो वैशाख और ज्येष्ठ मास में जब कि वायु अत्यन्त तप्त हो लू चलता है तब क्या सब जीव मर जाते हैं और गर्म वायु के जीव जब कि पौष मास में अति शीत पड़ता है तब क्या मर जाते हैं ? इससे यह बात सृष्टिक्रम से विरुद्ध होने से मिथ्या ही है; क्योंकि जो ऐसा होता तो परमेश्वर इस सृष्टि से अग्नि और सूर्यादि को क्यों रचता ? इससे जो तुम सत्यासत्य बातों का निश्चय करना चाहो तो

वेदादि सत्यशास्त्र पढ़ो और सुनो जिससे यथार्थ ज्ञान पाके धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी फल को प्राप्त हो सको। जो ऐसा न करके अपने मत के ग्रन्थों के विश्वास में रहोगे तो यह उत्तम मनुष्यजन्म व्यर्थ ही नष्ट करोगे। (**'देश हितैषी'**८ पृष्ठ ८ से १० तक, खंड १, संख्या ५, भादों संवत् १९३९)।

अजर-अमर मरणशील कैसे हो सकता है ?—यह बड़े आश्चर्य की बात है कि जीवों को अजर-अमर मान कर फिर उनका मरण भी मानते हो। जो तुम खुला मुख रखने में प्रत्यक्ष दोष लिखते हो तो प्रतीत होता है कि आप प्रत्यक्ष के लक्षणादि विद्या को ही नहीं जानते। इसी से किसी बड़े मनुष्यादि से बातें करने में पल्ला लगाना अच्छा समझते हो। जो ऐसा है तो फिर वैसा क्यों नहीं करते। छोटे मनुष्य के सम्मुख हर समय मुख बांधे रहते हो। क्या बड़े मनुष्य का थूका छोटे मनुष्य के साथ लग जाना अच्छा समझते हो ? क्या बड़े के मुख में कस्तूरी घुली होती है, छोटे के नहीं ? यदि बड़े छोटों का विचार है तो अपने चेलों के सम्मुख मुख क्यों बांधे रहते हो ? क्योंकि जब किसी बड़े मनुष्य से बोला करो तब बांध लिया करो। सदैव व्यर्थ बातें क्यों किया करते हो ? देखो इस बात को तुम नहीं जानते। बड़े मनुष्यों से बात करते समय पल्ला लगाने से यह प्रयोजन है कि सभा में कभी गुप्त वार्ता करनी पड़ती है, यदि मुख खुला रखा जावे अर्थात् कपड़ा न लगावें तो अन्य मनुष्य जो निकट बैठे हों अवश्य सुन लें। जहां कोई तीसरा मनुष्य नहीं होता वहां बातें करने में पल्ला नहीं लगाते और क्या पल्ला लगाने से दुर्गन्ध रुक सकता है ? इसमें इतना ही प्रयोजन है कि वायु को रोक के न बातें करें तो उसके फैलने के साथ ही शब्द भी फैल जाये और कान में वायु लगने से ठीक-ठीक सुना भी न जाये जैसा कि वायु के वेग से चलने में ठीक-ठीक नहीं सुना जाता। देखो ! कैसे अन्धेर की बात है; क्या दुर्गन्ध को कान ग्रहण कर सकता है ? नहीं, किन्तु सुगन्ध-दुर्गन्ध का ग्रहण नासिका ही से होता है। इस बात का आपने प्रयोजन नहीं समझा है जैसे गान विद्या न जानने वाला ध्रुपद को समझ नहीं सकता क्योंकि जो-जो विद्या की बातें हैं उनको विद्वान् ही समझ सकता है, अविद्वान् नहीं। **हम शब्द, अर्थ और उनके सम्बन्ध को वेद समझते हैं; कागज स्याही को नहीं।** और कागज स्याही को, जड़ होने से सुगन्ध-दुर्गन्ध का ज्ञान वा सम्बन्ध नहीं होता। क्या जो तुम्हारे जैनी लोगों के ग्रन्थ वा पुस्तकों के कागज वा लेखादि हैं, उन को बनाने वालों ने, मुख बांधकर बनाया और लिखा होगा ? हम खुले मुख से वेदों का पाठ करना अत्युत्तम समझते हैं क्योंकि मुख बांधने से स्पष्ट यथार्थ उच्चारण नहीं होता जैसा कि तुम्हारा सब अक्षरों के नासिका से अशुद्धोच्चारण होता है। इसका उत्तर हमने पहले ही लिख दिया था कि मुख बांध कर निरनुनासिक को सदैव सानुनासिक बोलना शुद्ध नहीं, परन्तु इसके समझने को तो विद्या चाहिये।

जैन साधु का सिद्धान्त विरुद्ध व्यवहार—जो आप साधु बनते हो तो बताओ साधु के क्या लक्षण हैं और आप स्वार्थी हो वा परमार्थी। जो स्वार्थ की इच्छा नहीं है तो "निरर्थक हम नहीं बोलते" ऐसा क्यों कहते हो ? और जो स्वार्थी हो तो साधु क्यों बनते हो ? जो आपको पक्षपात नहीं होता तो मुख पर पट्टी बांधने का झूठा यह आग्रह क्यों करते ! कि बिना मुख पर पट्टी बांधने के हम नहीं बोलते ? यदि ऐसा नियम था तो प्रथम ही प्रथम (जंगल में भ्रमण करते समय) हमसे क्यों बोले थे कि आपका क्या नाम है ? इत्यादि, खुले मुख बोले थे। और अन्य जनों से भी बातें क्यों किया करते हो ? और भोजन के समय (स्वप्रयोजन के लिए) क्यों मुख खोलते हो ? क्या तुम अपने शरीर-पोषण, भोजन, छादन, मलविसर्गादि कर्म मौन के अतिरिक्त नहीं समझाते होगे। यह बात मिथ्या है क्योंकि जब हम सुनना चाहते थे तब तो तुम सुनाने को खड़े भी न हुए और जो तुम कहीं आते-जाते नहीं तो यहां कहां से आ गये ? क्या एक ही स्थान पर शिला के समान स्थिर रहते हो ? भला जिसका रुपया चांदी का है उसको उसके कच्चेपन की क्या आशंका हो सकती है ? क्या सबके सामने दिखलाने से वह रुपया ताम्र का भी हो जाता है ? क्या तुम नहीं जानते हो जहां तुम्हारी बातें बिना समझे-बूझे मान लेवें ? हां ठीक है, तुम तो उन्हीं गोबर-गणेशों को सुना सकते हो जो प्रसन्नता से 'सत्यार्थ' और 'प्रमाण' शब्दों को सुनते ही हल्ला करके तुम

को सन्तुष्ट किया करें; तुम चाहे सत्य कहो वा असत्य, मान ही लें; जैसे दिल्ली की मिठाई । न पूछें, न शंका करें, न झूठ का खंडन करें । ठीक समझ लिया, जैसे तुम वैसे तुम्हारे सिद्धान्त हैं, मानों बालकों का खेल ! जो मुख की पट्टी का उत्तर तुम नहीं दे सकते तो छोटे से कुण्ड में अनन्त जीवों के होने आदि का तो उत्तर देना । तुमने तो क्या, किन्तु तुम्हारे तीर्थंकरों ने भी, विद्या की इन बातों को नहीं समझा था । जो समझते होते तो ऐसी असंभव बातें क्यों लिख जाते ? सत्य है जब से तुम लोगों ने वेदविरोधी होकर वेदोक्त सत्य मत को छोड़ के कपोल-कल्पित असत्य मत को ग्रहण किया है तब ही से तुम लोग विद्यारूप प्रकाश से पृथक् होकर अविद्यारूप अंधकार में प्रविष्ट हो गये हो । इसी से ईश्वर, जीव और पृथिवी आदि तत्त्वों को यथावत् नहीं जान सकते हो ।

आओ ! अब भी क्यों झूठा पक्ष करते हो ? वेदोक्त सत्य मत का स्वीकार क्यों नहीं करते और मुख पर पट्टी बांधने आदि विद्याविरुद्ध कपोलकल्पित बातों को क्यों नहीं छोड़ते और अन्यथा आग्रह करते जाते हो । सत्य है, जो तुम लोगों के आत्माओं में वेद विद्या का थोड़ा भी प्रकाश होता तो ऐसी निर्मूल झूठी बातों के लिखने में लेखनी कभी न उठाते और जो तुम्हारे सिद्धान्त सत्य होते तो चर्चा करने में झूठे हीले-बहाने क्यों पकड़ते और ऐसे अशुद्ध लेख का व्यर्थ परिश्रम क्यों करते ? यदि अब भी सच्चे हो तो सम्मुख आकर थोड़े काल में सत्यासत्य का यथार्थ निश्चय क्यों नहीं कर लेते क्योंकि जो वाद-प्रतिवाद से बात सिद्ध होती है वही मानने योग्य है । जिस किसी ने मत-मतान्तर वालों से पक्ष-प्रतिपक्ष पूर्वक वादानुवाद नहीं किया वह सत्यासत्य को ठीक-ठीक कभी नहीं जान सकता । इसीलिए तुम भी ऐसा क्यों नहीं करते ? परन्तु क्यों करो; नाच न आवे आंगन टेढ़ा ! (हस्ताक्षर) दयानन्द सरस्वती

यह उपर्युक्त पत्र १६ जुलाई, सन् १८८१ को पण्डित वृद्धिचन्द, जगन्नाथ जोशी, व्यास रामनारायण, बाबू बिहारीलाल तथा अन्य मुखिया लोगों के हाथ स्वामी जी ने साधु जी की ओर भेजा । जब वे लेकर चले तो उस समय लगभग दो सौ मनुष्य इकट्ठे हो गये थे । इन्होंने पहुंचते ही साधु जी को उक्त पत्र पढ़ सुनाया और निवेदन किया कि अब आप इसका फिर उत्तर दीजिये । परन्तु पाठकगण ! उत्तर देने के लिए तो विद्या अपेक्षित है । न जाने पहले किस की सहायता से उत्तर लिखा था । विशेष क्या लिखूं, साधु जी के छक्के छूट गये । अन्त को उन लोगों ने जब बहुत कहा-सुना तब यही मुख से निकला कि हमारे से तो उत्तर कोई नहीं बन आता । **आपां तो साधु हैं ।**[१] जब लोगों ने देखा कि अब साधु जी ने ही अपने मुख से हार मान ली तो अब विशेष कहना उचित नहीं, यह समझ कर नमस्ते करके चले आये और सब वृत्तान्त राव साहब और स्वामी जी से निवेदन कर अपने-अपने स्थानों को चले गये । (हस्ताक्षर) वृद्धिचन्द श्रीमाली मसूदा (**'देश-हितैषी'** खंड १, संख्या ६, संवत् १९३५, आश्विन, पृष्ठ १२ से १५ तक) ।

महायज्ञ, ब्रह्मभोज तथा सामूहिक यज्ञोपवीत संस्कार—ला० चांदमल साहब कोठारी, भूतपूर्व जैनी, वर्तमान आर्य, वर्णन करते हैं कि जब स्वामी जी के प्रश्नों का उत्तर साधु जी से न पाकर निराश होकर और साधु जी को लज्जित देखकर हम लोग उठकर चले आये और सारा वृत्तान्त स्वामी जी महाराज और राव साहब से निवेदन कर दिया और फिर साधु जी से धर्मचर्चा करनी बन्द रखी । फिर किले में स्वामी जी के निरन्तर व्याख्यान सुन कर हम लोगों के सब सन्देह निवृत्त हो गये; तब सावन सुदि पंचमी, रविवार, ३१ जुलाई, सन् १८८१ को हम में से कुछ मनुष्यों ने उपस्थित होकर निवेदन किया कि आप जैसे महात्मा पुरुषों का पधारना हमारा अहोभाग्य है । इसलिए हमारा यज्ञोपवीत संस्कार करा दीजिये । तब स्वामी जी ने राव साहब को यज्ञ की आज्ञा दी, जिस पर श्रावण सुदि १५, संवत् १९३८ तदनुसार ९ अगस्त, सन् १८८१ मंगलवार को रावसाहब की ओर से सोहन मगरी में बड़ी धूमधाम और उत्साह सहित हवन हुआ जिसमें लगभग पांच सौ मनुष्य उपस्थित थे । हवन के पश्चात् ब्रह्मभोजन भी सत्कारपूर्वक कराया गया । फिर निम्नलिखित पुरुषों ने प्रणपूर्वक सच्चे

हृदय से यज्ञोपवीत के लेने की अभिलाषा प्रकट की, इस कारण श्री स्वामी जी महाराज ने योग्य पुरुषों को यज्ञोपवीत भी दिया। यहां हम उन जैनियों के नाम लिखते हैं।

इनमें ठाकुर, जैनी, कायस्थ, चारण और ब्राह्मण सम्मिलित थे।[१०] १—राजमल जी कोठारी, २—**किशनसिंह जी** कोठारी, ३—**अनन्त** जी कोठारी, ४—शिवदानसिंह जी कोठारी, ५—हीरालाल तातेड़[अ], ६—कजोड़ीमल जी **चौरड़िया**[आ], ७—छगन जी बोहरा[इ], ८—पान जी कोठारी, ९—वल्लभ जी कोठारी, १०—अमरसिंह जी कोठारी, ११—राजमल जी मेहता, १२—रिखबदास बाफना[ई], १३—हंसराज जी कोठारी, १४—बालकिशन जी मेहता, १५—किशनसिंह जी कोठारी, १६—शिवदान जी मेहता, १७—शिवदान जी फौजदार, १८—रामचन्द्र अग्रवाल, १९—ओनाड़जी पुरोहित[उ], २०—लालू पुरोहित लोढाणे का, २१—बालकिशन मेहता, २२—अवतार सुकला, २३—कल्याणसिंह कोठारी, २४—जसवन्तसिंह कोठारी, २५—किशनलाल जी, २६—छगनमल जी कोठारी[ऊ], २७—कजोड़ीमल नाहर[ए], २८—गोपाल जी धूत, २९—शिवदानसिंह कोठारी, ३०—चांदमल कोठारी, ३१—बिशनसिंह, ३२—बलवन्तसिंह जी मेहता, ३३—बलवन्तसिंह चौरड़िया[ऐ]। इनके अतिरिक्त और जैनी भी थे जिन्होंने आर्य धर्म स्वीकार किया[११]। इनमें से बहुतों ने तो ९ अगस्त, सन् १८८१ तदनुसार सावन सुदि पूर्णमासी को यज्ञोपवीत धारण किया और शेष सज्जन भादों कृष्ण पंचमी तदनुसार १४ अगस्त, सन् १८८१ को यज्ञोपवीत से सुशोभित हुए और आर्यधर्म ग्रहण किया।

उन्हीं दिनों 'भारतमित्र' कलकत्ता में यह समाचार इस प्रकार प्रकाशित हुआ—"स्थान मसूदा जिला अजमेर में स्वामी दयानन्द जी के व्याख्यानों को सुनकर ३५ मनुष्यों ने जैनमत छोड़कर वैदिकधर्म प्रेम से अंगीकार किया। विद्वानों के व्याख्यानों का ऐसा ही प्रभाव होता है।" (८ दिसम्बर, सन् १८८१, खंड ४, संख्या ४८ व **'आर्यदर्पण'** खंड ४, संख्या ४६, अक्तूबर मास, सन् १८८१ व **'भारतसुदशाप्रवर्तक'** खंड ३, संख्या ५, पृष्ठ २४, दिसम्बर, सन् १८८१)।

तृतीय परिच्छेद
पादरी लोगों से शास्त्रार्थ

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज और पादरी ग्रे साहब, मिशनरी प्रिस्बटेरियन मिशन, अजमेर के मध्य हुआ। यह शास्त्रार्थ जो २८ नवम्बर, सन् १८७८, बृहस्पतिवार मंगसिर सुदि ४, संवत् १९३५ को हुआ। कार्तिक सुदि १३, संवत् १९३५ तदनुसार ७ नवम्बर, सन् १८७८ को स्वामी जी अजमेर में पधारे। मंगसिर बदि ४ तदनुसार १४ नवम्बर, सन् १८७८ बृहस्पतिवार से कड़क्का चौक[१] में व्याख्यान देना आरम्भ किया। पहले दिन **ईश्वर विषय पर** व्याख्यान दिया। १५ नवम्बर को ईश्वर विषय समाप्त करके ईश्वरीय ज्ञान का विषय आरम्भ किया। १७ नवम्बर को भी यही विषय रहा। १८ को फिर **ईश्वरीय ज्ञान पर** ही व्याख्यान दे रहे थे। व्याख्यान की समाप्ति पर एक बड़ी सूची तौरेत, इञ्जील तथा कुरान मजीद की अशुद्धियों की पढ़कर सुनाई और कहा कि मैंने यह सूची किसी को चिढ़ाने के लिए नहीं सुनाई। प्रत्युत इसलिए कि सब लोग पक्षपात-रहित होकर विचार करें कि जिन पुस्तकों में ऐसी-ऐसी बातें लिखी हैं वे ईश्वरकृत हो सकती हैं या नहीं? उस दिन सैकड़ों मुसलमान, ईसाई तथा हिन्दू उपस्थित थे। मुसलमान तो कोई न बोला। पादरी ग्रे साहब और डाक्टर हसबैण्ड साहब उपस्थित थे। उनमें से माननीय ग्रे साहब बोले कि व्याख्यान के दिन शास्त्रार्थ नहीं होता। आप इन आक्षेपों को लिखकर हमारे पास भेजिए, मैं उनका उत्तर दूंगा। स्वामी जी ने कहा मैं तो यही चाहता हूं और सदा मेरी यही इच्छा रहा करती है कि आप जैसे बुद्धिमान् मनुष्य मिलकर सत्यासत्य का निर्णय करें। पादरी साहब ने कहा कि सत्य का

निर्णय तब होगा कि आप मेरे पास प्रश्न भेजेंगे और मैं उत्तर दूंगा। फिर स्वामी जी ने कहा कि लिखकर दोनों ओर से प्रश्नोत्तर भेजने में काल बहुत लगता है और मनुष्यों को भी इससे लाभ नहीं पहुंचता; इसलिए यही बात अच्छी है कि आप यहीं आवें, मैं प्रश्न करूं और आप उत्तर दें। तब पादरी साहब ने कहा कि आप प्रश्न मेरे पास भेज देवें। जब मैं दो-चार दिन में उनको विचार लूंगा तब पीछे उत्तर आपको यहां आकर दूंगा। स्वामी जी ने कहा कि प्रश्न तो मैं भेजूंगा परन्तु मुझको जहां-जहां तौरेत और इञ्जील में शंकाएं हैं उनमें से थोड़े से वाक्य लिखकर भेज़ दूंगा। उनको जब आप विचार लेंगे तो उन्हीं में से प्रश्न करूंगा, आप उत्तर देना। इतनी बात होने के पश्चात् पादरी साहब चले गए।

उसके दूसरे दिन अर्थात् १९ नवम्बर, १८७८, मंगलवार को स्वामी जी ने तौरेत और इञ्जील के ६४ वाक्य लिखकर पंडित भागराम साहब, एक्स्ट्रा ऐसिस्टैण्ट कमिश्नर अजमेर द्वारा पादरी साहब के पास भेज दिये। कई दिन तक पादरी साहब उनको विचारते रहे। उनके अच्छी प्रकार विचार लेने के पूरे दस दिन पश्चात् २८ नवम्बर, सन् १८७८ बृहस्पतिवार तदनुसार मंगसिर सुदि ४, संवत् १९३५ शास्त्रार्थ का दिन नियत हुआ।

उस दिन शास्त्रार्थ देखने और सुनने के लिए सर्वत्र विज्ञापन दे दिया गया था इसलिए बहुत अधिक संख्या में लोग सुनने के लिए आये। सरदार बहादुर मुंशी अमीचन्द साहब जज, पंडित भागराम एक्स्ट्रा ऐसिस्टैंण्ट कमिश्नर, सरदार भगतसिंह साहब इञ्जीनियर आदि सरकारी अधिकारी भी सभा में सम्मिलित थे।

नियत समय पर स्वामी जी चारों वेदों के पुस्तक साथ लेकर आये। पादरी ग्रे साहब और डा० हसबेंण्ड साहब भी पधारे। बाबू रामनाथ, हेडमास्टर राजपूत स्कूल जयपुर; बाबू चन्दूलाल वकील गुड़गांवा; हाफिज मुहम्मद हुसैन दारोगा चुंगी अजमेर-ये तीन लेखक नियत हुए। प्रथम स्वामी जी ने कहा कि मैंने कितने स्थानों पर पादरी लोगों से बातचीत की हैं, कभी किसी प्रकार की गड़बड़ नहीं हुई। आज भी मैं जानता हूं कि पादरी साहब से वार्तालाप निर्विघ्नता से पूरा होगा। फिर पादरी साहब ने भी निर्विघ्नता से बातचीत होने की आशा प्रकट की और कहा कि स्वामी जी ने जो वाक्य लिख कर हमारे पास भेजे हैं वे बहुत हैं और समय केवल दो या ढाई घण्टे का है इसलिए इन आक्षेपों पर दो-चार ही प्रश्नोत्तर का होना ठीक है। इसके पश्चात् शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। बोलते समय इन तीन लेखकों को स्वामी जी और पादरी साहब अक्षरश: लिखवाते जाते थे।

शास्त्रार्थ : स्वामी जी—तौरेत उत्पत्ति की पुस्तक पर्व १ आयत दो में लिखा है कि पृथिवी बेडौल है। अब देखना चाहिए कि परमेश्वर सर्वज्ञ है; उसमें सारी विद्याएं पूरी हैं। उसके विद्या के काम में बेडौलता कभी नहीं हो सकती क्योंकि जीव को पूरी विद्या और सर्वज्ञता नहीं है इसलिए जीव के काम में बेडौलता आ सकती है, ईश्वर के काम में नहीं।

पादरी—यंहा अभिप्राय बेडौल से नहीं बल्कि उजाड़ है। अयूब की पुस्तक अध्याय २, आयत २४ में कि जंगल में आत्मा बिना मार्ग नहीं भ्रमता है। यहां जिस शब्द का अर्थ जंगल है उसीका अर्थ वहां बेडौल है।

स्वामी जी—इससे पहली आयत में यह बात आती है कि आरम्भ में ईश्वर ने आकाश और पृथिवी को सृजा और पृथिवी बेडौल सूनी थी, गहराई पर अन्धेरा था। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि उजाड़ का अर्थ यहां नहीं ले सकते; क्योंकि कहा था कि सूनी थी। बेडौल के अर्थ 'उजाड़' के होते तो, 'सूनी थी' इस शब्द की कुछ आवश्यकता नहीं थी और जब कि ईश्वर ने ही पृथिवी को रचा है सो प्रथम ही अपने ज्ञान से डौल वाली क्यों नहीं रच सकता था ?

पादरी साहब—दो शब्द एक ही अर्थ के सब भाषाओं में एक दूसरे के पीछे होकर आते हैं। जैसे इबरानी में तो 'हो बोहो', फारसी से 'बूदो-बाश'-ये सब एक ही अर्थ के वाची हैं। इसी प्रकार उर्दू में यह अर्थ ठीक है कि पृथिवी उजाड़ और सुनसान थी।

स्वामी जी इस बात पर और प्रश्न करना चाहते थे कि इतने में पादरी साहब ने कहा कि एक-एक वाक्य पर दो-दो प्रश्न और दो-दो उत्तर होने चाहिएं क्योंकि वाक्य बहुत हैं तो सब प्रश्न आज न हो सकेंगे। स्वामी जी ने कहा कि अवश्य नहीं है कि आज ही सब वाक्यों पर प्रश्नोत्तर हो जायें। कुछ आज होंगे फिर इसी प्रकार दो-चार दिन अथवा जब तक ये वाक्य पूरे न हों तब तक प्रश्नोत्तर होते रहेंगे। पादरी साहब ने इस बात को स्वीकार नहीं किया। तब स्वामी जी ने कहा कि और अधिक न हो तो एक वाक्य पर दस बार प्रश्न होने चाहियें। पादरी साहब ने यह भी स्वीकार न किया। स्वामी जी ने फिर कहा कि एक-एक वाक्य पर कम मे कम तीन बार प्रश्नोत्तर होने ही चाहियें। इसमें फिर पादरी साहब ने कहा कि हम को दो बार से अधिक प्रश्नोत्तर करना कदाचित् स्वीकार नहीं है। तब स्वामी जी ने कहा कि हमको इसमें कुछ हठ नहीं है, सभा की जैसी सम्मति हो वैसा किया जावे। स्वामी जी की इस बात पर कोई कुछ न बोला परन्तु डाक्टर हसबैण्ड साहब ने कहा कि यदि सभा से प्रत्येक विषय में पूछेंगे तो चार सौ मनुष्य हैं, उनमें से किस-किस से पूछा जायेगा। स्वामी जी ने कहा कि यदि पादरी साहब को तीन प्रश्न करना स्वीकार नहीं है तो जाने दो; हम दो ही करेंगे क्योंकि इतने मनुष्य विज्ञापन देखकर इकट्ठे हुए हैं। जो यहां कुछ बातचीत न हुई तो अच्छा नहीं। **फिर दूसरे वाक्य पर प्रश्न किया।**

स्वामी जी—(वही पर्व, वही आयत) ईश्वर का आत्मा जल के ऊपर डोलता था। पहली आयत से विदित होता है कि ईश्वर ने आकाश और पृथिवी को रचा। यहां जल की उत्पत्ति नहीं कही तो जल कहां से हो गया। ईश्वर आत्म-स्वरूप है वा जैसे कि हम स्वरूप वाले हैं वैसा? जो वह शरीर वाला है तो उसका सामर्थ्य आकाश और पृथिवी बनाने का नहीं हो सकता क्योंकि शरीर वाले के शरीर के अवयवों से परमाणु आदि को ग्रहण करके रचना में लाना असम्भव है और वह व्यापक भी नहीं हो सकता। जब उसका आत्मा जल पर डोलता था तब उसका शरीर कहां था?

पादरी साहब—जब पृथिवी को सृजा तो पृथिवी में जल भी आ गया। दूसरी बात का उत्तर यह है कि परमेश्वर आत्मरूप है। तौरेत के आरम्भ से इंजील के अन्त तक परमेश्वर आत्मरूप कहलाया।

स्वामी जी—ईश्वर का वर्णन तौरेत से लेकर इंजील पर्यन्त बहुत ठिकानों में ऐसा ही है कि वह किसी प्रकार का शरीर भी रखता है क्योंकि आदम की बाड़ी का बनाया, वहां आना, फिर ऊपर चढ़ जाना, सनाई पर्वत पर जाना, मूसा, इब्राहीम और उनकी स्त्री सरः से बातचीत करना, डेरे में जाना, याकूब से मल्लयुद्ध करना इत्यादि बातों से यह पाया जाता है कि वह अवश्य किसी प्रकार का शरीर रखता है और उसी क्षण अपना शरीर बना लेता है।

पादरी साहब—ये बातें इस आयत से कुछ सम्बन्ध नहीं रखतीं, केवल अनजानपने से कही जाती हैं। इसका यह उत्तर है कि यहूदी, ईसाई और मुसलमान जो तौरेत को मानते हैं, इसी पर एकमत हैं कि खुदा रूह है।

स्वामी जी—(पर्व वही, आयत २६) तब ईश्वर ने कहा कि हम आदम को अपने स्वरूप में अपने समान बनावें। इससे स्पष्ट पाया जाता है कि ईश्वर भी आदम के स्वरूप जैसा था। जैसा कि आदम आत्मा और शरीर-युक्त था, ईश्वर को भी इस आयत से वैसा ही समझना चाहिए। जब वह शरीर जैसा स्वरूप नहीं रखता तो अपने स्वरूप से आदम को कैसे बना सका?

पादरी साहब—इस आयत में शरीर का कुछ कथन नहीं। परमेश्वर ने आदम को पवित्र, ज्ञानवान् और आनन्दित रचा। वह सच्चिदानन्द ईश्वर है और आदम को अपने स्वरूप में बनाया। जब आदम ने पाप किया तो परमेश्वर के स्वरूप से पतित हो गया। जैसे पहले प्रश्नोत्तर के २४ और २५ प्रश्न से विदित होता है। (कोलोसियों के पत्रे तीसरा पर्व, ९ और १० आयत) एक दूसरे से झूठ मत बोलो क्योंकि तुमने पुराने फैशन को उसके कार्यों समेत उतार फेंका है और नये फैशन

को ज्ञान में अपने सिरजनहारे के स्वरूप के समान नये बन रहे हैं, पहना है । इससे विदित होता है कि ज्ञान और पवित्रता में परमेश्वर के समान बनाया गया और नये सिरे से बनाया (करन्तियों अध्याय १७, आयत १९) और प्रभु ही आत्मा है और जहां कहीं प्रभु का आत्मा है वहीं निर्विघ्नता है और हम सब बिना पर्दा प्रभु के तेज दर्पण में देख-देख प्रभु से आत्मा के द्वार पर तेज से उसके स्वरूप में बदलते जाते हैं । इससे ज्ञात होता है कि विश्वासी लोग बदल के फिर परमेश्वर के स्वरूप में बन जाते हैं अर्थात् ज्ञान, पवित्रता और आनन्द में, क्योंकि धर्मी होने से मनुष्य के शरीर का रूप नहीं बदलता है ।

स्वामी जी—परमात्मा के सदृश आदम के बनने से सिद्ध होता है कि ईश्वर भी शरीर वाला होना चाहिए । जो परमेश्वर ने आदम को पवित्र और आनन्द से रचा था उसने परमेश्वर की आज्ञा क्यों तोड़ी और जो तोड़ी तो विदित होता है कि यह ज्ञानवान् नहीं था और जब उसने ज्ञान के पेड़ का फल खाया तब उसकी आंखें खुल गईं । इससे जाना जाता है कि वह ज्ञानवान् पीछे से हुआ । जो पहले ही ज्ञानवान् था तो फल खाने के पीछे ज्ञान हुआ, यह बात नहीं बन सकती । और प्रथम परमेश्वर ने उसको आशीर्वाद दिया था कि तुम फूलो फलो, आनन्दित रहो और फिर जब उसने ईश्वर की आज्ञा के बिना उस पेड़ का फल खाया तब उसकी आंखें खुलने से उसको ज्ञान हुआ कि हम नंगे हैं । गूलर के पत्ते अपने शरीर पर पहने ।

अब देखना चाहिए कि जो वह ईश्वर के समान ज्ञान में और पवित्रता में होता तो उसको नंगा होना, क्यों नहीं जान पड़ता । क्या उसको इतनी भी सुध नहीं थी ? जब परमेश्वर के समान वह ज्ञानी, पवित्र और आनन्दित था तो उसको सर्वज्ञ और नित्य शुद्ध आनन्दित रहना चाहिए और उसके पास कुछ दुःख भी कभी न आना चाहिए क्योंकि वह परमेश्वर के समान है । इन ऊपर कही तीन बातों में तो वह पतित किसी प्रकार से नहीं हो सकता और जो पतित हुआ तो परमेश्वर के समान नहीं हुआ क्योंकि परमेश्वर ज्ञानादि गुणों से पतित कभी नहीं होता । फिर बतलाइये कि कभी आदम प्रथम ज्ञानादि तीनों गुणों में परमेश्वर के समान होके फिर उनसे पतित हो गया वैसे ही विश्वासी लोग ज्ञानी, पवित्र और आनन्दित होंगे वा अधिक कम । जो वैसे ही होंगे तो फिर जैसे आदम पतित हो गया वैसे ही विश्वासी भी हो जायेंगे क्योंकि वह तीनों बातों में परमात्मा के समान होकर पतित हो गया था ।

पादरी साहब—कई बातों में पहला उत्तर पर्याप्त है और रहा यह प्रश्न कि यदि आदम पवित्र था तो आज्ञा क्यों तोड़ी ? **उत्तर यह** है कि वह पहले पवित्र था, आज्ञा तोड़ के पापी हुआ । फिर यह कहा कि ज्ञानवान् पीछे से हुआ । यह बात नहीं है; जब भले बुरे के ज्ञान के पेड़ का फल खाया तब बुरे जान पड़े, पहले न जानता था, आंखें खुल गई और उसको जान पड़ा कि मैं नंगा हूं । इसका उत्तर यह है कि पापी होके उसको लज्जा आने लगी । फिर यह कि यदि वह परमात्मा के समान होता तो पतित न होता ? इसका **उत्तर यह** है कि वह परमात्मा **के समान** बनाया गया न कि उसके तुल्य । यदि परमात्मा के तुल्य होता तो पाप में न गिरता । अन्त में जो पूछा कि विश्वासी लोग आदम से अधिक पवित्र हो जाएंगे । **इसका उत्तर** यह है कि अधिक और कम पवित्र होने का प्रश्न नहीं है किन्तु स्वरूप के विषय में है कि परमेश्वर का रूप शरीर जैसा था वा नहीं । यदि वह स्वरूप जिसका कथन होता है शारीरिक होता तो धर्मी लोग जब परमेश्वर के स्वरूप में नये सिरे से नहीं जाते हैं तो अपने शरीर को नहीं बदल डालते ।

स्वामी जी—(तौरेत का पर्व २, आयत ३) उसने सातवें दिन को आशीर्वाद दिया और पवित्र ठहराया । ईश्वर को सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, सच्चिदानन्द स्वरूप होने से परिश्रम जगत् के रचने में कुछ भी नहीं हो सकता फिर **सातवें दिन विश्राम करने की क्या आवश्यकता ?** और विश्राम किया तो छः दिनों तक परिश्रम करना पड़ा होगा । और सातवें दिन को आशीर्वाद दिया तो छः दिनों को क्या दिया ? हम नहीं कह सकते कि ईश्वर को एक क्षण भी जगत् के रचने में लगे और कुछ भी परिश्रम हो ।

पादरी साहब—अब समय हो चुका; इससे अधिक हम नहीं ठहर सकते और बोलते समय लिखाना पड़ता है इससे देर बहुत लगती है । इसलिए हम कुछ नहीं करना चाहते, जो बोलते समय लिखा न जाये तो हम कर सकते हैं । यदि स्वामी जी को लिखकर प्रश्नोतर करना है तो हमारे पास प्रश्न लिखकर भेज दें । हम लिखकर उत्तर देंगे ।

इस पर डाक्टर हसबैण्ड साहब के कहने से सरदार बहादुर अमीचन्द साहब ने कहा कि मेरी भी यही सम्मति है कि प्रश्न लिखकर पत्र द्वारा किया करें । आज की भांति किये जायेंगे तो छः महीने तक पूरे न होंगे ।

स्वामी जी ने कहा कि प्रश्नोत्तर के लिखे बिना बहुत हानि है । जैसे अभी थोड़ी देर के पश्चात् अपने में से कोई अपनी कही हुई बात के लिए कह सकता है कि मैंने यह बात नहीं कही । दूसरे इस प्रकार की बातचीत होने में और लोगों को यथार्थ छुपा कर प्रकट नहीं कर सकते और यदि कोई छुपावे भी तो जिसके जी में आवे सो छुपा सकता है और जो मकान पर प्रश्नोत्तर लिख-लिख किया करें तो इसमें काल बहुत लगेगा और जो कहा गया कि इस प्रकार छः मास में पूरा न होगा सो मैं कहता हूं कि इसमें छः मास का कुछ काम नहीं है । हां, जो मकान पर पत्र द्वारा करेंगे तो तीन वर्ष में भी पूरा न होगा और मनुष्य जो मेरे सामने सुन रहे हैं **वह नहीं सुन सकेंगे इसलिए यही अच्छा है कि सबके सामने प्रश्नोत्तर किये जावें और लिखाया भी जावे ।**

पादरी साहब ने कहा कि आपने यहां प्रश्नोत्तर करने में लोगों के सुनने का लाभ दिखलाया परन्तु मैं जानता हूं कि आज की बातों को जो इतने लोग बैठे हैं, उनमें से थोड़े ही समझे होंगे । पादरी साहब की यह बात सुनकर हाफिज मुहम्मद हुसैन और अन्य मुसलमान लोग कहने लगे कि हम कुछ भी नहीं समझे । इस पर पादरी साहब ने कहा कि देखिये, लिखने वाला ही नहीं समझा तो और कौन समझ सकता है ? पर स्वामी जी ने शेष जो दो लिखने वाले थे उनसे पूछा कि तुम समझे वा नहीं ? उन्होंने कहा कि हां हम बराबर समझे; हमने जो लिखा है उसको अच्छी प्रकार कह सकते हैं । तब स्वामी जी ने कहा कि दो लिखने वाले तो समझे और एक नहीं समझा । **सारांश यह कि पादरी साहब ने दूसरे दिन शास्त्रार्थ का लिखा जाना स्वीकार नहीं किया ।**

स्वामी जी ने पादरी साहब से कहा कि आज के प्रश्नोत्तर के तीन परत लिखे गए हैं, उन पर आप हस्ताक्षर कर दीजिये, मैं भी कर देता हूं और सभा के प्रधान से भी कराकर एक प्रति आपके पास, एक मेरे पास और एक प्रधान के पास रहेगी ।

पादरी साहब ने कहा कि हम ऐसी बातों पर हस्ताक्षर करना नहीं चाहते । तत्पश्चात् सभा उठ खड़ी हुई और सब लोग अपने-अपने घरों को चले गये । परन्तु स्वामी जी महाराज, सरदार बहादुर अमीचन्द साहब, पंडित भागराम साहब, सरदार भगतसिंह जी के मकान पर जो सभा के मकान के पास था, ठहरे । उस समय शास्त्रार्थ की दो कापियों पर जो स्वामी जी के पास रही थीं (क्योंकि एक पादरी साहब साथ ले गये थे) उन दोनों सज्जनों ने हस्ताक्षर भी कर दिये और सब अपने मकानों को गये ।

दूसरे दिन अर्थात् २९ नवम्बर, सन् १८७८ को पादरी साहब ने स्वामी जी के पास पत्र लिखकर भेजा कि आप प्रश्नोत्तर करेंगे या नहीं । यदि करना हो तो किया जाये परन्तु लिखा न जाये और लिखना हो तो पत्र द्वारा किया जाये ।

स्वामी जी ने इसके उत्तर में लिख भेजा कि प्रश्नोत्तर सब के सामने किये जावें और लिखें भी जावें । इस प्रकार हमको स्वीकार है, अन्यथा नहीं क्योंकि और प्रकार करने में बहुत हानि है जो कि हम पहले लिख चुके हैं । अब यदि आप को लिखकर प्रश्नोत्तर करना हो तो मुझको लिखिये । मैं जब तक आप कहें यहां रहूं और यदि आपको इस प्रकार न करना

हो तो सरदार भगतसिंह जी को लिख भेजो कि अब शास्त्रार्थ न होगा ताकि उन्होंने जो तम्बू आदि का प्रबन्ध कर रखा है, उसे उठा लेवें। पादरी साहब ने इसको बड़ा सुअवसर जाना और प्रसन्नता से सरदार साहब को इसी प्रकार कहला भेजा। उन्होंने सब सामान उठवा दिया। इसके पश्चात् स्वामी जी तीन-चार दिन और अजमेर रहे। चौथे दिन दूसरी दिसम्बर, सन् १८७८ को मसूदा की ओर प्रस्थान कर गये।

पादरी महोदय बाजार में गरजे : स्वामी जी के सम्मुख मौन हो गये—जिस दिन स्वामी जी अजमेर से चले गये, उससे दूसरे दिन पादरी साहब ने मिशन स्कूल में कुछ अजमेरवासी लोगों और विद्यार्थियों को एकत्रित करके स्वामी जी के दो आक्षेपों के उत्तर सुनाये ताकि उनकी निर्बलता प्रकट न हो। फिर पूर्ववत् पादरी साहब बाजार में उपदेश करने लगे परन्तु जब तक स्वामी जी रहे, क्या मजाल जो बाजार के उपदेश का नाम लिया हो। तत्पश्चात् उनको बाजार में उपदेश करता देखकर कुछ लोगों ने कहा कि साहब ! आप यहां ही मूर्ख लोगों के साथ घण्टों तक मस्तिष्क मारा करते हैं परन्तु जब स्वामी जी से प्रश्नोत्तर करते थे तब तो आपने यह कहा था कि हमको इतना समय नहीं कि प्रश्नोत्तर करते समय लिखाते जायें। यदि आप स्वामी जी को अपने मत की कोई बात भी स्वीकार करवा देते तो उनका अनुकरण करके हजारों मनुष्य आपके अनुयायी बन जाते परन्तु उनके चले जाने के पश्चात् आपके निरर्थक कहने से क्या होता है !

केवल सत्य से ही मुक्ति होती है—हाफिज मुहम्मद हुसैन, दारोगा चुंगी अजमेर ने वर्णन किया 'मैं स्वामी जी से इस नगर में दो बार मिला। स्वामी जी से पूछा कि मनुष्य की मुक्ति किस बात से होती है ? कहा कि केवल सत्य से ही मुक्ति होती है और किसी प्रकार नहीं होती।'

शास्त्रार्थ के एक लेखक की गवाही—"स्वामी जी के शास्त्रार्थ के समय मैं लेखक था, दो और भी थे। पादरी साहब लिखने पर बिलकुल सहमत न थे परन्तु स्वामी जी केवल लिखित (अर्थात् दोनों पक्ष बोलते जायें और लेखक लिखते जायें) शास्त्रार्थ करना चाहते थे। ७ बजे से ९ बजे तक केवल दो प्रश्नों का उत्तर हुआ; अभी बहुत प्रश्न शेष थे। पादरी साहब उदास थे, मुझसे पूछा कि तुम समझे ? मैंने कहा कि मैं तो नहीं समझा। पादरी साहब ने कहा कि जब लिखने वाला ही नहीं समझा तो और कोई क्या समझेगा। स्वामी जी ने शेष दो लिखने वालों से पूछा कि तुम समझे हो ? उन्होंने कहा कि हम तो समझे हैं। स्वामी जी ने कहा कि दो तो समझे, यदि एक नहीं समझा तो न सही। पादरी साहब ने कहा कि भविष्य में लिखा न जावे। स्वामी जी ने कहा कि लिखित हो; इस पर उपस्थित लोगों से वोट लिये गये। मैंने और एक मुसलमान तथा दो पादरियों ने लिखे न जाने पर हाथ रखा था और शेष सब लोगों ने स्वामी जी का पक्ष किया था। पादरी साहब विवश हो गये परन्तु फिर भी कहा कि हम लिखित नहीं करेंगे।"

पादरी ग्रे साहब ने कहा कि—"स्वामी जी हमको दो बार मिले। एक बार बहुत समय हुआ कि वे यहां रहते थे। उन दिनों दंडी जी के नाम से प्रसिद्ध थे; बाग में उतरे थे। एक बार वे फादर राबिन्सन साहब से मिलने के लिए यहां आये और मुझसे मिले। वेदान्त के विषय पर कुछ बातचीत हुई परन्तु वे बातें कुछ अच्छी प्रकार स्मरण नहीं। फिर हम स्वामी जी से मिलने के लिए उस बाग में गये। उन दिनों स्वामी जी इतने प्रसिद्ध न थे।"

"एक बार स्वामी जी सन् १८७८ में यहां आये और उनके एक व्याख्यान में हम और डाक्टर हस्बैण्ड दोनों गये। उस दिन स्वामी जी ने ईसाई मत और मुहम्मदी मत पर बहुत से आक्षेप किये और खण्डन किया। हमने कहा कि व्याख्यान के दिन शास्त्रार्थ नहीं होता, आप इन आक्षेपों को लिखकर हमारे पास भेजिये। स्वामी जी ने प्रतिज्ञा की और सब मिलाकर ६४ आक्षेप लिखकर मेरे पास भेजे। फिर एक दिन नियत हुआ, जिस दिन हम गये उत्तर देने के लिए प्रत्येक आक्षेप पर दो बार प्रश्नोत्तर करने की सम्मति ठहरी; इससे अधिक नहीं। इसके पश्चात् भी स्वामी जी लिखना चाहते थे परन्तु मैंने अस्वीकार

किया जिस पर स्वामी जी ने अनुरोध न किया। हमारी इच्छा थी कि शास्त्रार्थ लिखा न जाये ताकि लोगों को आनन्द प्राप्त हो, परन्तु स्वामी जी लिखने का अनुरोध करते थे। अन्त में यह सम्मति ठहरी कि तीन मनुष्य लिखते जावें। एक लिखने वाला हाफिज जी दारोगा चुंगी था और शेष दो के नाम स्मरण नहीं हैं।

चूंकि लिखाने में धीरे लिखाने के कारण विलम्ब होता था इसलिए लोगों को आनन्द न आया और ९ बजे रात का समय हो गया। लोग सोने लगे, केवल दो प्रश्नों का निर्णय हुआ और वह भी पूरा नहीं। जिस पर मैंने कहा कि अब फिर कभी हो परन्तु लिखा न जाये अन्यथा हम नहीं करेंगे। स्वामी जी ने कहा शास्त्रार्थ लिखा अवश्य जायेगा, आपकी इच्छा हो करें या न करें, इसलिए शास्त्रार्थ नहीं हुआ। वह शास्त्रार्थ **'थियोसोफिस्ट'** पत्रिका में किसी ने छपवा दिया था जिसमें कुछ बातें विरुद्ध (यथार्थ नहीं) थीं। मैंने उनको ठीक लिखकर भेज दिया इसलिए वह मेरी चिट्ठी भी छप गई। मैंने यह भी लिखा था कि इस समय स्वामी जी लिखने पर सहमत हैं, अब समाचार पत्र मौजूद हैं, शर्त यह है कि मेरा लेख सारा छपता जावे, वह आक्षेप करते रहें तब अच्छा हो। उसके सम्पादक ने लिखा था कि स्वामी जी कहते हैं कि कोई बिशप हो तो हम शास्त्रार्थ करते हैं, इसी समाचार पत्र के द्वारा या सामने; अन्यथा तुम्हारे से नहीं। परन्तु उस समय कोई बिशप मौजूद न था और यदि था तो भारतीय विषयों से परिचित न था क्योंकि वह भारतीयों की कार्यवाही के लिए नहीं; प्रत्युत अंग्रेज पादरियों का काम करते हैं।"

यह शास्त्रार्थ **'थियोसोफिस्ट'** पत्रिका खंड १, संख्या २, जनवरी, सन् १८८० में पृष्ठ ९८ से १०० तक प्रकाशित हुआ था।

शरारती शरारत नहीं कर सके-मुंशी समर्थदान ने वर्णन किया—"पादरी ग्रे वाले शास्त्रार्थ के सम्बन्ध में रात को यह सूचना मिली कि शरारत के कारण मुसलमानों का यह विचार है कि एक साथ संगठन करके (सबके सब एक ही समय) शामियाने के चारों ओर की सारी रस्सियां काट डालें ताकि स्वामी जी पर शामियाना गिरे और वे मर जायें। जिसकी सूचना पाकर हमने पहले ही प्रबन्ध कर दिया, हमने शामियाने की प्रत्येक लकड़ी के पास एक-एक चौकीदार बिठला दिया ताकि कोई किसी प्रकार की शरारत न कर सके।"

इस शास्त्रार्थ पर कर्नल आल्काट साहब का मत और उस पर सम्पादक 'थियोसोफिस्ट' की सम्मति—"उपर्युक्त शास्त्रार्थ से प्रकट है कि पादरी लोग भारतवर्ष में किस चतुराई से काम करते हैं। यथासामर्थ्य सार्वजनिक सभाओं में भारतीय विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ करने से दूर भागते हैं और प्राय: नीच से नीच और असभ्य से असभ्य जातियों तक ही अपने उपदेश को सीमित रखते हैं। पादरियों के स्कूलों और कालिजों में भी चतुर अध्यापक भारतीय नवयुवकों के धार्मिक प्रश्नों के उत्तर कक्षाओं में देने से बचते हैं और कह दिया करते हैं कि हमारे निजी स्थान पर आकर अपने प्रश्नों का उत्तर लें। जो पक्षपातरहित यूरोपियन भारत में आते हैं उनसे यह बात छुपी नहीं रह सकती कि पादरियों की कार्यवाही को भारत में अत्यन्त असफलता प्राप्त हुई और जो उदार लोग लाखों रुपया पादरियों को चन्दा देते हैं वे वास्तव में अपना धन नष्ट कर रहे हैं। भारत के बहुत से पुराने ऐंग्लो इण्डियन लोगों की यही सम्मति जान पड़ती है। हमारा विचार है कि अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय पर जो साक्षियां हमें मिलती रहेंगी हम प्रकाशित किया करेंगे?" (पत्रिका जनवरी, सन् १८८०, खंड १, संख्या ४, पृष्ठ १००, कालम १)।

पादरी ग्रे साहब ने भी **'थियोसोफिस्ट'** पत्रिका खंड १, संख्या ६, मार्च सन् १८८०, पृष्ठ १४१ पर अक्षरश: शास्त्रार्थ का समर्थन किया है और अन्त में लिखा है—"यदि स्वामी जी उचित समझें तो आपके समाचार पत्र में अपने आक्षेपों को जिनका उत्तर सुनने के लिए वे अजमेर नहीं ठहरे, छपवा दिया करें और यदि मेरे उत्तर के लिए इतना स्थान

अपने समाचारपत्र में दें तो मैं उस शास्त्रार्थ को जो अजमेर में अपूर्ण रह गया था, प्रकाशित करूं ।" (हस्ताक्षर) ग्रे । २७ जनवरी, सन् १८८० ।

इसका उत्तर स्वामी जी ने बनारस से १० फरवरी, सन् १८८० को लिखा कि जब अजमेर में सभा हुई थी तो मैंने पादरी साहब को कहा था कि अगले दिन सभा में आओ और शास्त्रार्थ करो, परन्तु उन्होंने आना स्वीकार नहीं किया इसलिए अब हम उनके साथ शास्त्रार्थ करना उचित नहीं समझते । हां, यदि कोई शिक्षित बिशप इस प्रकार का शास्त्रार्थ आपके समाचार पत्र के द्वारा करने के लिए उद्यत हो तो हम निस्सन्देह शास्त्रार्थ करेंगे ।

इस पर सम्पादक ने लिखा—"यद्यपि ईसाई मत के खंडन का विषय भारत में ऐसा आदर के योग्य नहीं, तो भी पक्षपातरहित होने के विचार से हम प्रतिज्ञा करते हैं कि यदि कोई बिशप युक्ति की एक बड़ी दृढ़ चट्टान की कठोर टक्कर से अपना शिर तोड़ना चाहते हैं तो इस समाचारपत्र में शास्त्रार्थ छाप दिया करेंगे ।"

स्वामी जी के शास्त्रार्थों का परिणाम—"अमृतसर में १३ ईसाइयों ने ईसाई मत को घृणित जान कर छोड़ दिया और सनातन आर्य धर्म को स्वीकार किया । धन्य है उन सज्जनों और वहां के आर्यसमाज को ।" **'देश हितैषी'** अजमेर, खंड २, संख्या ३, आषाढ़ संवत् १९४०) ।

'बधाई हो, मैं बड़ी प्रसन्नता से प्रकाशित करता हूं कि एक सौभाग्यशाली पवित्र विचार वाले ईसाई सज्जन ने जिनका प्रसिद्ध नाम मिस्टर मार्टिन लूथर था (जो रुड़की के क्रिश्चियन अनाथालय में अध्यापक और उपप्रबन्धक रह चुके हैं) अपनी आदरणीय धर्मपत्नी सहित ईसाई मत से हाथ उठा कर पवित्रधर्म अर्थात् वेदमत स्वीकर किया । परमेश्वर औरों को भी सामर्थ्य दे ।" (**'आर्य समाचार'** मेरठ, खंड ३, संख्या ३, पृष्ठ ८०, आषाढ़, संवत् १९३८) ।

"सौभाग्य—पश्चिम उत्तरीय-प्रदेश के पुलिस गजट मिति ८ सितम्बर, सन् १८८० में प्रकाशित हुआ है कि जॉन मिण्टगुमरी हैमिल्टन साहब, इन्सपैक्टर द्वितीय श्रेणी पुलिस, जिला बस्ती ने आर्यधर्म स्वीकार करके अपना पूर्व नाम जो सुखलाल था, धारण किया । यह पहले हिन्दू थे, इन्होंने ईसाईमत स्वीकार करके अपना नाम भी बदल दिया था, फिर शुद्ध हो गये ।" (समाचारपत्र **'नौरंगे मजामीं'** मथुरा और 'आर्यसमाचार' मेरठ, खंड २, संख्या १८, पृष्ठ १९७, क्वार मास, संवत् १९३७) ।

बाबू बिहारीलाल ईसाई और मसूदा नरेश राव बहादुरसिंह जी के मध्य हुआ शास्त्रार्थ

(इसके मध्यस्थ स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज थे । दिनांक ३० जुलाई, सन् १८८१)

सावन सुदि ४, संवत् १९३८ शनिवार के दिन बाबू बिहारीलाल जी ईसाई, ब्यावर से स्वामी जी से मिलने को दुबारा आये । थोड़े समय पश्चात् बातों ही बातों में धर्मविषय पर चर्चा होने लगी । तिस पर श्रीयुत रावसाहब ने बाबू जी से कहा कि आइये, मेरी और आपकी परस्पर वार्ता होनी उचित है क्योंकि यदि आपके पादरी साहब आते तो उनसे स्वामी जी वार्तालाप करते । सो अब संयोग की बात यही है कि आप पादरी साहब के शिष्य हैं और मैं स्वामी जी का । इसलिए मुझसे और आपसे ही वार्ता होनी अति उत्तम है और स्वामी जी हम दोनों के मध्यस्थ रहेंगे । यह बात बाबू साहब ने स्वीकार की और इस प्रकार **प्रश्नोत्तर** होने लगे—

रावसाहब—तुम्हारा ईमान (विश्वास) पूरा है वा नहीं? **बाबू जी**—हमारा विश्वास परमेश्वर पर है। **रावसाहब**—तुम्हारा विश्वास पूरा है या अधूरा ? **बाबू जी**—हमारा विश्वास पूरा है । **रावसाहब**—जो तुम्हारा पूरा विश्वास

है तो इस पर्वत को यहां से हटा दो; क्योंकि आप लोगों के नये 'प्रतिज्ञापत्र' के पर्व १०, आयत २० में उपदेश करते हैं कि यदि तुम लोगों में राई के समान विश्वास होवे तो इस पर्वत को उठाये दूर तक ले जा सकते हो। **बाबू जी**—विश्वास दो प्रकार का है, उनमें आप कौन-सा पूछते हो? **रावसाहब**—वे दो विश्वास कौन कौन से हैं? **बाबू जी**—पहला विश्वास यह है कि ईश्वर को अपना सिरजनहार समझे। दूसरा यह कि किसी की बड़ाई की ओर नतमस्तक होकर विश्वास करना; जैसे एक मनुष्य ने कोसालस के पास आकर कुछ रुपये भेंट किये और कहा कि "मुझ में यही (इतनी ही) शक्ति है!" उसने कहा कि शक्ति ईश्वर के रुपये पैसे से नहीं मिलती। **रावसाहब**—आप चाहे जौन से विश्वास या ईमान से पर्वत को हटा दो। यदि नहीं हटा सकते हो तो आप में राई के बराबर भी विश्वास नहीं। **बाबू जी**—इस प्रश्न का तात्पर्य प्रत्येक ईसाई पर नहीं लग सकता; कारण कि उस समय मसीह के शिष्यों ने अपना बड़प्पन पाने के लिए यह निवेदन किया। परन्तु फिर भी उनका विश्वास प्रभु पर था और यह बात उनके बड़प्पन पर थी और मसीह ने भी इस बड़प्पन पर उत्तर दिया। अब मेरा विश्वास जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, प्रभु परमेश्वर पर (इस रूप में) पूरा है कि वह हमारा उत्पन्न करने वाला और मुक्तिदाता है और इस बात की अभिलाषा हम नहीं रखते कि हम करामाती (चमत्कार दिखाने वाले) हो जायें। **रावसाहब**—हम प्रत्येक ईसाई का विश्वास एक-सा मानें या जुदा-जुदा? जो एक-सा है तो सब ईसाइयों में इस विश्वास के राई भर अंश का फल कहने मात्र से पर्वत का हिल जाना क्यों नहीं? और परमेश्वर पर आपका पूर्ण विश्वास है तो क्या इस विश्वास में वह सामर्थ्य नहीं है? फिर ईसा जिस विश्वास के बल पर आश्चर्यजनक काम करते थे; वही विश्वास (जिसको आप मानते हैं) क्या आपका भी है या कोई दूसरा है? यदि वह दूसरा है तो ईसा मसीह ने आप लोगों से कपट किया कि किसी को अपना विश्वास न बताया और जो बताया तो उनमें और आप लोगों में उस विश्वास का फल इस समय क्यों नहीं दिखाई देता? मुझको तो यह निश्चय होता है कि ईसा मसीह में यह सामर्थ्य नहीं है कि वह किसी को वह विश्वास पूरा प्राप्त करा दे! जो होता तो उसके साथ जो शिष्य थे, जब उनका ही विश्वास पूरा न करा सका तो आप लोगों का विश्वास पूरा क्योंकर हो सकता था या वह कैसे प्राप्त करा सकता है। जो ऐसा है तो तुम लोगों का ईसा मुक्ति आदि भी नहीं दे सकता। जो आप उसके उत्पन्न किये हुए हैं तो मर ही जायेंगे क्योंकि जो उत्पन्न होता है उसका नाश भी होता है। जब नाश हुआ तो जिस पर आप विश्वास कर रहे हैं कि हमको मुक्ति देगा, वह व्यर्थ हो जायेगा; क्योंकि यदि मुक्ति का भोगना नाश धर्म वाला है तो नित्य-सुख जो आपके मतानुसार है, उसको कौन भोगेगा? जो आप कहेंगे कि उत्पत्ति तो होती है, नाश नहीं होता, यह बात सृष्टिक्रम और विद्या के विरुद्ध है कि जिसकी उत्पत्ति तो हो और उसका नाश न हो। प्रभु के पूरे विश्वास से बड़प्पन और चमत्कार करने का गुण प्राप्त होता है वा नहीं? जो होता है तो आप अवश्य ही इस पर्वत को हटा देंगे और जो नहीं; तो परमेश्वर के विश्वास में वैसा बड़प्पन नहीं रहा। तो अब आप बतलाइये कि वह दूसरा विश्वास कौन सा है कि जिससे बड़प्पन और चमत्कार प्राप्त होता है। क्या परमेश्वर के विश्वास से भी किसी अन्य का विश्वास बड़ा है और क्या परमेश्वर से भी कोई वस्तु उत्तम है? अथवा परमेश्वर में चमत्कार है या नहीं? जो है तो अपने ही विश्वास व अन्य के और उसके विश्वासियों में भी ऐसा ही उचित है अथवा और कुछ। जब स्वयं ईसा मसीह ने उनसे कहा कि जो तुममें राई भर विश्वास भी होता तो इस पर्वत से कहते कि यहां से चला जा, तो चला जाता।' इससे सिद्ध होता है कि उनमें राई भर विश्वास न था तो उन्हें विश्वास उस पर न करना चाहिए था। इञ्जील मनुष्य के विश्वास के योग्य नहीं, क्योंकि सत्य नहीं। जो कहो कि ईसा के मरने के पश्चात् उन १२ शिष्यों का विश्वास ठीक हो गया था, पश्चात् इञ्जील बनी, यह भी ठीक नहीं हो सकता क्योंकि यदि उसके सामने (अर्थात् उनको स्वयं ईसा मसीह ने विश्वासी बनाना चाहा और परिश्रम किया) तो भी वे विश्वासी नहीं बन सके तो पश्चात् कैसे बन सकते थे? **बाबू जी**—"स्वामी महाराज! मैं इसका उत्तर अब नहीं दे सकता। अब मैं नया नगर में अपने घर को जाता हूं, पादरी साहब से पूछकर उत्तर दूंगा।"

इतना कहकर बाबू बिहारीलाल ईसाई थोड़ी देर पश्चात् अपने गृह की ओर पधारे परन्तु इस आक्षेप का उत्तर फिर आकर किसी ने न दिया।

बम्बई में एक पादरी साहब से शास्त्रार्थ
(३१ दिसम्बर, सन् १८८१ से २ जून, सन् १८८२ तक)

जब स्वामी जी बम्बई में अन्तिम बार अरब-समुद्र के तट पर अपने धार्मिक कार्यों में व्यस्त थे, उन दिनों की एक विशेष घटना यह है, इसको पढ़कर आप चकित होंगे **कि सचाई के सामने झूठ का सिर कितना शीघ्र नीचे झुकता है !**

रैवरेण्ड जोसफ कोक साहब[२] ने बम्बई टाउन हाल में १७ जनवरी, सन् १८८२ को एक व्याख्यान दिया जिसमें उसने बतलाया कि केवल ईसाई मत सच्चा और ईश्वर की ओर से है और यह समस्त भूमण्डल पर फैलेगा, शेष कोई मत ईश्वर की ओर से नहीं।

स्वामी जी ने उसके इस उपदेश का वृत्तान्त सुनकर मौन रहना उचित न समझा और पादरी साहब को निम्नलिखित पत्र भेजा—"बम्बई बालकेश्वर। १८ जनवरी, सन् १८८२। श्रीमान् आपने अपने सार्वजनिक व्याख्यानों में वर्णन किया है (१) ईसाई मत ईश्वर की ओर से है। (२) यह समस्त भूमंडल पर फैलेगा। (३) और कोई मत ईश्वर की ओर से नहीं है। मैं कहता हूं कि इन बातों में से कोई भी बात सच्ची नहीं है। यदि आप इनको सिद्ध करने के लिए उद्यत हैं और यह नहीं चाहते कि आर्यावर्त के लोग आपकी बातों को बिना प्रमाण के मान लें तो बड़ी प्रसन्नता से आपके साथ शास्त्रार्थ करूंगा। इस पहले रविवार को सायंकाल साढ़े पांच बजे के समय फ्रामजी काऊस जी इन्स्टीट्यूट में व्याख्यान के लिए नियत करता हूं। यदि यह आपको पसन्द न हो तो और कोई समय और स्थान बम्बई में नियत कर सकते हैं। चूंकि हमारे में से कोई भी एक दूसरे की भाषा नहीं बोल सकता इसलिए मैं यह शर्त रखता हूं कि हम दोनों की युक्तियों का अनुवाद करके एक दूसरे को सुनाई जावें और एक शीघ्र लिखने वाला नियत किया जावे समस्त कार्यवाही को लिखता जावे और दोनों के हस्ताक्षर कराये जावें। यह शास्त्रार्थ प्रतिष्ठित व्यक्तियों के सम्मुख होगा और इनको दोनों पक्ष लायेंगे और उनमें कम से कम तीन या चार के उस कागज पर हस्ताक्षर कराये जायेंगे और फिर यह समस्त लेख पुस्तिका के रूप में छपकर प्रकाशित किया जावेगा, ताकि सर्वसाधारण जान लें कि कौन सा मत ईश्वरीय है।" —दयानन्द सरस्वती

इस चिट्ठी को कर्नल आल्काट साहब ने स्वामी जी के सामने अंग्रेजी में अनुवाद करके महाराज के हस्ताक्षर कराने के पश्चात् पादरी साहब की सेवा में भेज दिया और इसी प्रकार स्वयं कर्नल साहब और बीनन साहब कप्तान नेटिव इन्फैन्टरी नं० ३९ ने उसी तिथि को एक ही स्थान से ऐसे शास्त्रार्थ की चिट्ठियां उक्त पादरी को लिखीं। (देखो **'थियोसोफिस्ट'** पत्रिका का परिशिष्ट भाग, पृष्ठ १२, १३ फरवरी, सन् १८८२)।

जोसफ कोक की ओर से उत्तर—कर्नल आल्काट के नाम मिति २० जनवरी, सन् १८८२, बम्बई। "मैं चुनौतियों को स्वीकार नहीं करता हूं क्योंकि इनका प्रकट उद्देश्य अविश्वास को फैलाना है।" (देखो **'थियोसोफिस्ट'** का परिशिष्ट भाग, फरवरी, सन् १८८२, खण्ड ३, संख्या ५, क्रम संख्या २९, पृष्ठ संख्या ९५)।

इस कोरे उत्तर के आने के पश्चात् स्वामी जी ने रविवार २२ जनवरी, सन् १८८२ को सायंकाल ५-३० बजे फ्रामजी काऊस जी इन्स्टीट्यूट[३] में कई हजार की उपस्थिति में ईसाई मत के खण्डन पर प्रबल युक्तियों से युक्त एक व्याख्यान दिया जिससे समस्त नगर में ईसाई मत की निरर्थकता की प्रसिद्धि हो गई और उसी दिन कर्नल साहब ने भी वहां ईसाई मत के विरुद्ध अंग्रेजी में भाषण दिया।

धर्मचर्चा

(यह धर्मचर्चा फादर कानरीड साहब ओ० सी० वाई० रैवरेण्ड, नायब बिशप सेंट पीटरसन रोमन कैथोलिक चर्च आगरा और श्रीमान् स्वामी दयानन्द जी महाराज के मध्य १२ दिसम्बर, सन् १८८० रविवार तदनुसार मंगसिर शुक्ला ११, संवत् १९३७ विक्रमी को हुई । स्वामी जी कई वकीलों और प्रतिष्ठित व्यक्तियों तथा मार्टिन साहब, म्यूनिसिपल कमिश्नर सहित बिशप साहब से मिलने को गये थे ।)

स्वामी जी—नास्तिक लोग उत्पन्न करने वाले को नहीं मानते । यदि हम और आप दूसरे मत के बुद्धिमान् लोग मिलकर और सब मतों में जो सत्य बातें हैं, उनका विचार करके जिन पर सब लोग एकमत हो जावें और आपस का मतभेद जाता रहे, तो विरोध में केवल नास्तिक लोग ही रह जावेंगे । फिर उनको हम अच्छी प्रकार बौद्धिक युक्तियों द्वारा परास्त कर देंगे । **गोरक्षा**—जिससे लाभ ही लाभ है, जैसी श्रेष्ठ बातों में हमको और आपको और सबको मिलकर काम करना चाहिए ।

बिशप साहब—यह काम अत्यन्त कठिन है इसलिए कि मुसलमान हलाल करना कभी नहीं छोड़ेंगे । वैसे ही ईसाई लोग मांस खाना कभी नहीं छोड़ेंगे । इसमें सन्देह नहीं कि ईश्वर अवश्य है और चूंकि ईश्वर का रूप नहीं देखा और वह बोलता नहीं है, इस कारण यह (मानना) आवश्यक है कि उसने अपना एक स्थानापन्न, धर्म का बतलाने वाला, संसार में भेजा । जिस प्रकार महारानी विक्टोरिया दूसरे व्यक्ति के बिना भारतवर्ष का शासन नहीं कर सकती; उसी प्रकार खुदा यीशु मसीह की सहायता के बिना संसार के मनुष्यों का तथा मुक्ति का प्रबन्ध नहीं कर सकता ।

स्वामी जी ने कहा कि प्रथम तो जो उदाहरण (दिया) है वह ठीक नहीं क्योंकि जीव और परमात्मा की परस्पर कोई समानता नहीं । पहले ईश्वर का लक्षण होना चाहिए कि ईश्वर क्या वस्तु है । स्वामी जी ने उसके विशेषण, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, अविनाशी, सर्वशक्तिमान् आदि बताये और कहा कि ऐसे गुणों वाला ईश्वर किसी के आधीन नहीं कि स्वयं प्रबन्ध न कर सके और उसको दूसरे की सहायता लेनी पड़े । फिर यदि हम मान भी लें कि ईसा कोई अच्छे पुरुष थे; तो भी तो वे एक मनुष्य ही थे और ईश्वर न्यायाधीश है, वह एक मनुष्य की सिफारिश से अन्याय नहीं कर सकता । जैसा जिसका कर्म होगा (ईश्वर उसको) वैसा ही फल देगा । इसलिए यह असम्भव है कि परमेश्वर किसी की न्यायविरोधी सिफारिश मानकर पुण्य-पाप के अनुसार फल न देवे । अत: ईश्वर को स्थानापन्न भेजने की आवश्यकता नहीं है । स्थानापन्न देना यह कार्य मनुष्यों का है । वह ऐसा स्वामी है कि समस्त कार्य और प्रत्येक प्रबन्ध स्थानापन्न के बिना ही कर सकता है ।

बिशप साहब—क्योंकर प्रबन्ध कर सकता है !

स्वामी जी—निर्देश अर्थात् ज्ञान के द्वारा ।

बिशप साहब—वह पुस्तक ज्ञान की कौन-सी है ?

स्वामी जी—चारों वेद परमेश्वर की ओर से प्रमाण हैं । (१८ पुराणों का नाम नहीं लिया ।)

बिशप साहब—क्या अठारह पुराण भी धर्म पुस्तक हैं ?

स्वामी जी—नहीं ।

बिशप साहब—चारों वेद कैसे आये, ईश्वर ने किसको दिये, किसने संसार में पहले समझाये ?

स्वामी जी—अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा-इन चारों ऋषियों के आत्मा में ईश्वर ने वेदों का ज्ञान दिया, उन्होंने समझाया।

बिशप साहब—वेद ईश्वर की ओर से नहीं, प्रत्युत वेद का बनाने वाला एक ब्राह्मण है जिसका नाम इस समय स्मरण नहीं रहा।

स्वामी जी—ऐसा नहीं, वेद सृष्टि के आदि में परमात्मा ने प्रकाशित किये। किसी ब्राह्मण ने इनको नहीं बनाया; प्रत्युत वेद पढ़ने से मनुष्य ब्राह्मण बन सकता है और जो वेद न पढ़े, वह कदापि ब्राह्मण नहीं कहला सकता।

बिशप साहब—वे चारों मर गये या जीवित हैं?

स्वामी जी—मर गये हैं।

बिशप साहब—उनके पश्चात् उनका स्थानापन्न कौन हुआ और एक के पश्चात् कौन स्थानापन्न होता रहा और अब कौन है?

स्वामी जी—हजारों-लाखों ऋषि-मुनि उनके स्थानापन्न होते रहे। जैसे छः शास्त्रों के कर्ता छः ऋषि; उपनिषदों तथा ब्राह्मणों के लेखक ऋषि-मुनि लोग। उनके अतिरिक्त प्रत्येक काल में जो ऋषियों के निश्चित नियमों के अनुसार चले, शुद्धाचारी हो वही स्थानापन्न हो सकता है परन्तु आप बतलाइये, ईसा के पश्चात् आपके यहां अब तक कौन हुआ?

बिशप साहब—हमारे यहां ईसा के पश्चात् रोम का पोप अर्थात् उच्चतम पादरी ईश्वर का स्थानापन्न समझा जाता है। जो भूल हम लोगों से हो जाये उसका सुधार उच्चतम पादरी अर्थात् रोम के पोप द्वारा होता है।

स्वामी जी—और जो भूल रोम के पोप से हो उसका सुधार किस प्रकार हो सकता है? आपको पोप के अत्याचार और धार्मिक नवीनताएं जो लूथर के काल से पहले और उस समय होती थीं, विदित होंगी और ईसाइयों की पहली सभाओं के वृत्तान्त और धार्मिक लड़ाइयां तथा सार्वजनिक हत्याएं आप से छिपी न होंगी। उनका सुधार वह पोप जो स्वयं उनको करने वाला है और जो स्वयं उन रोगों में फंसा है, कर सकता है? यह बात ठीक वैसी ही है जैसे हमारे पोप पौराणिक लोगों की।

उक्त बिशप महोदय से संवाददाता (पं० लेखराम जी) की भेंट—बिशप महोदय इसका कोई इतना बुद्धिपूर्ण और युक्तियुक्त उत्तर नहीं दे सके जिससे स्वामी जी और श्रोताओं का सन्तोष हो। तत्पश्चात् लगभग १२ बजे के समय स्वामी जी एक बड़ा गिर्जा देखने के लिए चले गये।

आगरा कालिज के छात्र बाबू ज्वालाप्रसाद एम० ए० के साथ संवाददाता ३ मार्च, सन् १८९३ को बिशप साहब से मिला। उन्होंने प्रायः सब बातों का समर्थन किया। जर्मन भाषा अधिक बोलते हैं, अंग्रेजी धीरे-धीरे बोलते हैं परन्तु उर्दू बहुत कम। बाबू ज्वालाप्रसाद मेरे अनुवादक थे। ये सारी बातें उन्होंने हमें सुनाईं और हमने लिख लीं जिस पर उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक हस्ताक्षर कर दिये और कहा कि और कोई बात हुई होगी मुझे स्मरण नहीं रही। फिर कहा कि जब वे मुझसे मिल चुके (अर्थात् हमारा परस्पर शास्त्रार्थ हो चुका) तो उसके दो दिन पश्चात् मैंने सुना कि लोग कहते हैं कि वे स्वामी जी अंग्रेजों की ओर से इस बात पर नियत हैं कि विधवाविवाह शास्त्रों से सिद्ध करें। उस समय मैं तैयार नहीं था यदि विदित होता तो मैं तैयार रहता।

एक मूर्तिपूजक भाई की नासमझी—इस पर एक मूर्तिपूजक भाई ब्रजमोहन वैश्य ने 'आ बैल मुझे मार' वाली कहावत के अनुसार १५ दिसम्बर, सन् १८८० को एक विज्ञापन प्रकाशित किया। इसमें लिखा कि खेद है कि ये महाराज

साहब ऐसे छोटे-छोटे प्रश्नों का भी उत्तर न दे सके । हमारे भारतवर्ष के पण्डित लोग तो ऐसे प्रश्नों का उत्तर ऐसा युक्तियुक्त देंगे ही कि पादरी साहब और सब लोग स्वयमेव स्वीकार कर लेंगे; क्योंकि वेदों को अनादि मानने में तो किसी को कोई आपत्ति नहीं । पण्डितों के अतिरिक्त दूसरे वे सामान्य लोग भी जिनको कुछ भी ज्ञान है और थोड़ी सी भी बोलने की शक्ति है, ठीक उत्तर दे सकते हैं । सज्जनो ! यह धार्मिक विषय अत्यन्त सूक्ष्म है । प्रत्येक व्यक्ति को अपने मत पर दृढ़ रहना चाहिये । किसी का व्याख्यान या उसकी कड़वी-मीठी बात सुनकर चित्त को तत्काल न बदलना चाहिए ।

देखिये पाठकगण ! भारतवर्ष में ऐसे भी पुरुषसिंह, धार्मिक हैं और वे ऐसे तार्किक तथा योग्य हैं कि सारी आयु मूर्तिपूजा में व्यतीत कर दी परन्तु बुद्धि न आई और न किसो एक ईसाई को शुद्ध कर सके और यदि एक धुरंधर विद्वान् धर्मरक्षक उत्पन्न हुआ तो उसे केवल इस कारण कि वह मूर्तिपूजा के विरुद्ध हैं, घर से टके खर्च करके बदनाम करते हैं ।

चतुर्थ परिच्छेद
मुसलमानों से शास्त्रार्थ

(क) मौलवी अहमद हसन से चमत्कार तथा पुनर्जन्म पर प्रश्नोत्तर
जालन्धर में मौलवी हसन (उर्फ वली मुहम्मद तपाखी) के साथ शास्त्रार्थ

भूमिका—फकीर, म्मुम्मद मिरजा मौहिद, जालन्धर निवासी पाठकों को इस ट्रैक्ट (पुस्तिका) के प्रकाशित होने के कारणों से परिचित करता है कि मिति १३, सितम्बर, सन् १८७७ को स्वामी दयानन्द सरस्वती जी भ्रमण करते हुए जालन्धर भी पधारे और परोपकारमूर्ति श्रीमान् सरदार विक्रमसिंह जी अहलूवालिया की कोटी में विराजमान हुए । वे वेद के अनुसार जिसको वे ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं, कथा करने लगे । मैंने इच्छा प्रकट की कि सरदार साहब[1] तथा मौलवी अहमद हसन साहब की बातचीत भी किसी उपयुक्त विवादास्पद विषय पर होनी चाहिए । माननीय सरदार साहब ने इसको पसन्द किया और स्वामी जी ने भी स्वीकार करके २४ सितम्बर के प्रात: सात बजे का समय एतदर्थ निश्चित कर दिया । मौलवी साहब नियत समय पर हिन्दू तथा मुसलमान नगर-निवासियों के साथ वहां आ गये । मौलवी साहब की इच्छानुसार **पुनर्जन्म** का विषय तथा स्वामी जी की इच्छानुसार चमत्कार का विषय शास्त्रार्थ के लिए नियत हुआ अर्थात् यह निश्चय पाया कि स्वामी जी पुनर्जन्म को सिद्ध करेंगे तथा मौलवी साहब उसका खण्डन करेंगे और मौलवी साहब अहले अल्लाह (ईश्वर-भक्तों के) चमत्कार को सिद्ध करेंगे तथा स्वामी जी उसका खण्डन करेंगे । बातचीत प्रारम्भ होने से पूर्व यह निश्चित हुआ कि दोनों ओर से कोई व्यक्ति अशिष्ट बात न करेगा और स्वामी जी की ओर से यह घोषणा भी की गई कि कोई सज्जन इस शास्त्रार्थ के समाप्त होने पर किसी की हारजीत न माने; यदि मानेगा तो पक्षपाती और असभ्य समझा जायेगा; क्योंकि ये समस्याएं ऐसी नहीं हैं कि दो-तीन शास्त्रार्थों में इनका निर्णय हो जाये अथवा किसी किसी की हार-जीत समझी जाये । परन्तु जब यह शास्त्रार्थ पुस्तक रूप में प्रकाशित होगा तो स्वयं हाथ कंगन को आरसी के अनुरूप होगा और बुद्धिमान् इसको पढ़कर स्वयं इसका निर्णय कर सकेंगे । जो प्रश्नोत्तर लिखे जायेंगे वे ला० हमीरचन्द जी और मुन्शी मुहम्मद हुसैन साहब के हस्ताक्षर कराने के पश्चात् प्रकाशित होंगे । शास्त्रार्थ समाप्त होने के पश्चात् मौलवी साहब की ओर से विद्वानों की परिपाटी के विरुद्ध जो एक कार्य हुआ, न्याय की दृष्टि से उसका भी वर्णन करना आवश्यक है और वह यह था कि बातचीत समाप्त होने के पश्चात् मौलवी साहब खानकाह (फकीरों के रहने का स्थान) इमाम नासिरउद्दीन के द्वार पर गये और कुछ गर्व कथा सुनाकर

1. यहां सरदार साहब के स्थान पर 'स्वामी जी' होना चाहिए । —सम्पा०

उपस्थित मुसलमानों से अपनी अस्तित्वहीन प्रसिद्धि के इच्छुक हुए यद्यपि विद्वान् और समझदार मुसलमान तो इस ख्याति की इच्छा को मूर्खों का खेल समझ कर इससे पृथक् हो गये परन्तु साधारण असभ्य लोग जो मुर्गं और बटेर आदि की लड़ाई देखने का स्वभाव रखते थे और हार-जीत की ख्याति के इच्छुक थे उन्होंने मौलवी साहब को विजयी घोषित किया और घोड़े पर चढ़ाकर शहर के गली-कूचों में भली-भांति फिराया और हार-जीत का कोलाहल मचाया परन्तु विशेष समझदार और सभ्य लोगों ने इसको बुरा समझा। अब प्रश्नोत्तर सुन लीजिये।

चमत्कार विषयक प्रश्नोत्तर : स्वामी जी—चमत्कार आप किसको मानते हैं ? **मौलवी**—जो अद्‌भुत कार्य मनुष्य के स्वभाव के विरुद्ध मनुष्य से सम्पन्न हो। **स्वामी जी**—स्वभाव आप किसको मानते हैं। **मौलवी**—जो काम मनुष्य की प्रकृति की मांग हो उसको उसका स्वभाव कहते हैं। **स्वामी जी**—जो (कार्य) मनुष्य की शक्ति से बाहर है वह उससे किस प्रकार हुआ ? **मौलवी**—मनुष्य से सम्बद्ध कार्य दो प्रकार के हैं। एक तो वे कि जिनके सम्बन्ध में कि मनुष्य को उनका प्रदर्शक कहा जाता है और दूसरे वे जिनका कि मनुष्य स्वयं उद्‌गम या मूल होता है। पहले प्रकार के कार्यों में मनुष्य को वास्तविक कर्ता नहीं समझा जाता। उदाहरणार्थ, जैसे कठपुतली का नाच। अर्थात् ऐसे कार्य खुदा की ओर से मनुष्य के द्वारा प्रकट होते हैं। **स्वामी जी**—सब मनुष्यों में ये दोनो प्रकार के कार्य हैं अथवा किसी एक में ? **मौलवी**—प्रत्येक में नहीं; कुछ में होते हैं। **स्वामी जी**—ईश्वर उलटे काम कर और करा सकता है या नहीं ? **मौलवी**—मनुष्य के स्वभाव के विरुद्ध करा सकता है परन्तु वह काम ईश्वर के स्वभाव के विरुद्ध नहीं होता और वह स्वयं अपने स्वभाव के विरुद्ध नहीं करता। **स्वामी जी**—ईश्वर के काम उलटे होते हैं वा नहीं ? **मौलवी**—खुदा के कार्य कभी उसके स्वभाव के विरुद्ध नहीं होते; यद्यपि मनुष्यों के स्वभाव की दृष्टि से वे विरुद्ध समझे जा सकते हैं। **स्वामी जी**—चमत्कार, सृष्टि के स्वभाव के अनुसार होता है या नहीं ? अर्थात् प्रकृति की इच्छा के विरुद्ध होता है या नहीं ? **मौलवी**—चमत्कार में यह शर्त नहीं है कि वह समस्त सृष्टि के स्वभाव के विरुद्ध है। यद्यपि यह सम्भव है कि किसी नबी (पैगम्बर) या वली (ईश्वर को प्राप्त करने वाला) से कोई ऐसा कार्य हो कि जो समस्त सृष्टि के स्वभाव के अनुकूल न हो। **स्वामी जी**—चमत्कार किसी ने दिखाया अथवा कोई दिखायेगा, इसका क्या प्रमाण है ? मौलवी—यह प्रश्न ऐसा है जैसे कहा जावे कि किसी के मुख पर जो दाढ़ी आई है उसके आने में क्या युक्ति है ? जब चमत्कार के विषय में पहले ही यह कह दिया गया कि यह वह कार्य है जो मनुष्य से मनुष्य के स्वभाव के विरुद्ध हुआ हो। उसका कार्य मानवी स्वभाव के विरुद्ध होता है, यही युक्ति चमत्कार का प्रमाण है। बहुत से मनुष्यों ने जो दयालु ईश्वर की दृष्टि में प्रतिष्ठित और कृपापात्र हैं और ईश्वर ने जिनको सृष्टि के उपकार के लिए भेजा है, पूर्वकाल में चमत्कार दिखाये और भविष्य में भी दिखायेंगे; जैसा कि अल्लाह के रसूल हजरत मुहम्मद साहब ने भी बहुत चमत्कार करके दिखाये और ऐसे ही उन्से पूर्व हजरत ईसा ने भी बहुत से चमत्कार करके दिखाये। सिद्धि इस बात की दो प्रकार से होती है, एक तो सच्चे पत्र संवाददाताओं के द्वारा और दूसरे स्वयं जैसा कि ऊपर दोनों महापुरुषों का वर्णन किया। जो लोग उनके समय में विद्यमान थे उन्होंने स्वयं अपनी आंखों से देखा और हम लोगों को, जो इस समय के हैं इसका ज्ञान सच्चे समाचारदाताओं के वचनों और लेखों से हुआ।

स्वामी जी : चमत्कार में कार्य कारण भाव दिखलाइये—यह ठीक-ठीक युक्ति से सिद्ध नहीं हुआ क्योंकि सुनना, कहना और लिखना दो प्रकार का होता है-सच्चा और झूठा। अब यह चमत्कार की बात सच्ची है, इसका क्या प्रमाण है ? जैसे कार्य को देखकर कारण की पहचान होती है अर्थात् नदी के प्रवाह को देखकर विदित होता है कि ऊपर वर्षा हुई है; इसी प्रकार चमत्कार हुआ, इसकी सिद्धि में इस समय क्या युक्ति है ? कदाचित् वह झूठा ही लिखा, कहा अथवा सुना हो ? क्योंकि जैसे अब कोई स्वार्थी मनुष्य झूटी बातों से बहका-सुना कर अपना प्रयोजन सिद्ध करता है (वैसे ही यह भी है)। जैसे इस समय में भी दो-चार चमत्कारिक अवतार हुए हैं। आगरा में शिवदयाल[४] और रामसिंह कूका[५] जो काले पानी

चले गये हैं । एक अकलकोट का स्वामी दक्षिण में विद्यमान है और एक देव मामलादार ने सात दिन बैकुंठ में रहकर फिर आकर सुनाया कि मैं नारायण से बात करके आया हूं और जो-जो आज्ञा हुई वह तुम को सुनाता हूं । अब लाखों मनुष्य उसके चरणो में इतना नमस्कार करते हैं कि उसका पैर सूज गया है । जैसे यह बात अब झूठ, इन्द्रजालवत् है, ऐसी पहले भी होगी । अब इस समय इतने मनुष्यों के बीच में कोई चमत्कार दिखाने वाला विद्यमान हो तो दिखलाइये और जो अब नहीं, तो पहले भी नहीं था और आगे भी नहीं होवेगा क्योंकि कार्य को देखे बिना कारण की सिद्धि नहीं होती अथवा कारण के देखे बिना कार्य की । **मौलवी**—जब यह सिद्ध हो चुका कि चमत्कार पवित्र ईश्वर का एक कर्म है, यद्यपि मनुष्य की अपेक्षा से वह असम्भव होता है तथापि परमात्मा की अपेक्षा से वह असम्भव नहीं क्योंकि यदि खुदा की अपेक्षा से वह असम्भव हो जाये तो उड़ना पक्षी का कभी न पाया जाये । इसके अतिरिक्त स्वभाव के विरुद्ध समस्त कर्म यद्यपि मनुष्य की अपेक्षा से असम्भव दिखाई देते हैं परन्तु परमात्मा की अपेक्षा से असम्भव नहीं है । जब खुदा एक के शरीर के बारे में वह असम्भव सम्भव कर देता है तो दूसरे शरीर के बारे में भी उत्पन्न कर सकता है । इसका अस्वीकार करना मानो परमात्मा की शक्ति को अस्वीकार करना है । यदि समाचार प्रत्येक चीज का झूठ हो तो हमको चाहिए कि कलकत्ता, लन्दन अथवा और कोई नगर जिसको हमने अपनी आंखों से नहीं देखा है, उसका विश्वास ही न करें । इसलिए सिद्धि चमत्कार तो इसी प्रकार से है जिस प्रकार आप वेद को सिद्ध करते हैं अर्थात् जिस प्रकार आप यह कह सकते हैं कि यह वेद वही पुस्तक है जो ईश्वर की ओर से आई थी अन्यथा उस पर कोई खुदा की मुहर नहीं लगी हुई थी जिससे कहा जावे कि यह वेद वही पुस्तक है । वेद की सिद्धि में जो युक्तियां आप देंगे वही चमत्कार के विषय में भी होंगी ।

ईश्वर की शक्ति की भी सीमा है : स्वामी जी—मैंने इस बात का प्रमाण चाहा था कि ईश्वर ने अमुक-अमुक व्यक्ति के द्वारा चमत्कार दिखाये, इसका क्या प्रमाण है ? चमत्कार, परमेश्वर अपने स्वभाव के विरुद्ध नहीं करता । इसका दृष्टान्त सब सृष्टि की रचना, धारण करना, प्रलय करना आदि है । वह न्याय, दया तथा अनन्त विद्या वाला है, कभी अपने स्वभाव के विरुद्ध नहीं करता । इसका उदाहरण समस्त सृष्टि है; जैसे इस समय मनुष्य का पुत्र मनुष्य ही होता है; पशु नहीं होता । इसी प्रकार परमेश्वर के काम में कभी भूल नहीं रहती । इसलिए परमेश्वर की शक्ति मानना चमत्कार पर अवलम्बित नहीं और जो कोई चमत्कार मानता है वह वर्तमान समय में किसी चमत्कार दिखाने वाले का उदाहरण दे । परमेश्वर की शक्ति की भी कुछ न कुछ सीमा है जैसे ईश्वर मर नहीं सकता, अज्ञानी नहीं हो सकता, बुरा काम नहीं कर सकता क्योंकि वह न्यायकारी और अविनाशी है । यह उदाहरण चमत्कार पर लागू नहीं हो सकता क्योंकि कोई कहे कि बम्बई नहीं तो वह बराबर बम्बई को दिखा सकता है । ऐसे ही जो यह उदाहरण सच्चा हो तो बम्बई के समान चमत्कार को भी दिखा दे ।

अन्तर्यामी रूप से ईश्वर जीवात्मा में अपना प्रकाश सदा कर सकता है ।

वेद का ईश्वरकृत होना असम्भव नहीं है—क्योंकि वह अन्तर्यामी और पूर्ण विद्वान्, दयालु तथा न्यायकारी है । वह बराबर जीवात्मा में अन्तर्यामी रूप से अपना प्रकाश कर सकता है; जैसे इस समय भी बराबर अन्यायकारी की आत्मा में भय और लज्जा और न्यायकारी की आत्मा में हर्ष तथा उत्साह का प्रकाश करता है । इसलिए वेद का उदाहरण चमत्कार से सम्बन्धित नहीं और इस विषय में कि यह पुस्तक ईश्वरकृत है, मेरा अभिप्राय यह है कि जैसा सृष्टि के क्रम और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सिद्ध है ईश्वर का स्वभाव अनन्त विद्या का प्रकाश करना और निर्दोषिता आदि हैं ।

ये सब उसके स्वाभाविक गुण ईश्वर की रचना सिद्ध करने में मुहरें हैं । जो आप कहें कि और प्रकार की मुहर चाहिए तो बताइये पृथिवी, सूर्य, चन्द्र और मनुष्य पर ईश्वरकृत होने की क्या मुहर है ? जब मुहर से ही इन्हीं को ईश्वर की रचना सिद्ध करना है तो कहीं मुहर दिखलाई नहीं देती । ईश्वर का स्वभाव क्या है ? जो ईश्वर मनुष्य के स्वभाव से उलटा

करा सकता है तो बताइये किसी मनुष्य को उसने पांव से खिलवाया और पिलाया है और मुख से पांव का काम लिया है या लिवाया है ? मुझको ऐसा विदित होता है कि सब सम्प्रदाय वालों ने यह चमत्कार तथा भविष्यवाणी के नाम से ऐसे ही फंसाया है जैसे कि रसायन आदि का लोभ दिखा के बहुत लोगों को फंसाया है । परमेश्वर कृपा करे सबके आत्मा में विद्या का प्रकाश हो कि मनुष्य ऐसे जाल फन्दों से छूट कर सत्य को मानें और झूठे से अलग रहें । **मौलवी**—हम पहले कह चुके हैं कि चमत्कार का कार्य अर्थात् मनुष्य के स्वभाव के विरुद्ध कराना, असम्भव बात नहीं है जिससे कहा जावे कि परमात्मा की शक्ति के बाहर है । यदि किसी को सन्देह हो तो मक्का नगर अथवा शाम देश में जाकर उन चालीस मनुष्यों को देख ले जो चमत्कार के दिखाने वाले हैं । वेद के अतिरिक्त ऐसी बहुत सी पुस्तकें हैं जिनको कह सकते हैं कि मनुष्य के स्वभाव के विरुद्ध है । जैसे शिक्षा के विषय में 'गुलिस्तां'[1] और बोस्तां इत्यादि । किन्तु यह कहना कि इसमें (वेद में) सब विद्याएं हैं, यह दावा युक्तिशून्य है क्योंकि इसमें इल्मे इजतराव (विद्रोह की विद्या) कहां है ? अनोखी बातों का ज्ञान और निर्मित पदार्थों के ईश्वररचित होने का प्रमाण यह है कि वह निर्माण किये हुए हैं और यह निर्माण ही मानो खुदा की मुहर है । यह पुस्तक तौरेत के काल से निस्सन्देह पहले की है । इसमें वह समाचार है जो आज के दिन प्राप्त होता है । पुस्तक दानियाल अध्याय ११, पाठ १० से १९ तक भी प्रमाण है कि वह भविष्यवाणी जो सैकड़ों वर्ष पूर्व लिखी गई थी अब पूरी हुई । दूसरे कुरान शरीफ के बारे में मुसलमानों का तेरह सौ वर्ष के सारे सम्प्रदायों के विरुद्ध यह दावा है कि इस कुरान शरीफ के समान एक पंक्ति भी बना कर कोई मनुष्य दिखावे जैसा कि—**फातू बिसूरतिम् मिम्मिस्लि हीं** (तो इसकी सी एक सूरत ले आओ) अब तक किसी से बना नहीं, न बनेगा । यदि पंडित साहब को यह चमत्कार स्वीकार नहीं तो इसके समान एक पंक्ति बनाकर दिखायें । चमत्कार का प्रदर्शन हमने इस सभा में कर दिया । अब हम पवित्र परमात्मा से यह प्रार्थना करते हैं कि वह समस्त सृष्टि को सीधे मार्ग पर लावे और उनकी दृष्टि से पक्षपात को दूर करे ।

पुनर्जन्म के विषय में प्रश्नोत्तर

मौलवी—वर्तमान स्वरूप के मिले बिना 'अस्तित्व' नहीं होता । जब स्वरूप का अस्तित्व ही विनाशी है तो उसका मूलतत्त्व प्रकृति भी अवश्य नश्वर होना चाहिए; क्योंकि मूलतत्त्व का अस्तित्व स्वरूप से ज्ञात हुआ है । द्रव्य की अपेक्षा द्रव्य का कारण प्रधान होता है तो पुनर्जन्म मानने वालों के लिए जगत् को विनाशी मानना आवश्यक हो जाता है यद्यपि उन्होंने ऐसा माना था कि सनातन है । **स्वामी जी**—स्वरूप दो प्रकार का होता है-एक ज्ञान से ग्रहण होता है और दूसरा चक्षु आदि इन्द्रियों से । कारण में ही स्वरूप की स्थिति है परन्तु वह इन्द्रियों द्वारा ग्रहण नहीं होता क्योंकि जो सूक्ष्म वस्तु होती है जब वह स्वयं ही नहीं दिखाई देती तो उसका स्वरूप तो क्या दिखाई देगा । और जो कारण का स्वरूप न हो तो वह कार्य में भी नहीं आ सकता; क्योंकि जो कारण के गुण हैं वही कार्य में आते हैं । जैसे एक तिल के दाने में तेल होता है, वह करोड़ों दानों में भी बराबर होता है । लोहे के एक अणु में तेल नहीं होता; तो वह मन भर में भी नहीं होता । जो वस्तु नित्य हैं, उसके गुण भी नित्य हैं । कारण का होना न होना नहीं कहा जाता, वह तो सनातन है । जो वस्तु सनातन है-जैसे द्रव्य का स्वरूप, वह कारणावस्था में भी सनातन है क्योंकि स्वरूप द्रव्य से पृथक् नहीं रह सकता; तो वह स्वरूप उसी द्रव्य का है । इसी से सिद्ध है कि कारण सनातन है । **मौलवी**-यह बात नहीं है कि जो चीज किसी चीज के बिना उससे पृथक् न पाई जाये तो वह उसका रूप ही हो । उदाहरणार्थ, हाथ और चाबी की चेष्टा को लीजिये । चाबी की चेष्टा हाथ की चेष्टा के बिना नहीं पाई जाती, प्रत्युत जब चाबी की चेष्टा होगी तभी हाथ की चेष्टा होगी और जब हाथ की चेष्टा होगी तो चाबी की चेष्टा होगी । अर्थात् इन दोनों चेष्टाओं में से किसी का कोई काल किसी से पहले या पीछे नहीं निकलता और निस्सन्देह उत्कृष्ट बुद्धि

---

1. गुलिस्तां और बोस्तां शेखसादी द्वारा रचित फारसी भाषा की दो प्रख्यात पुस्तकें हैं । अनुवादक ।

जानती है कि कुंजी की चेष्टा, हाथ की चेष्टा के बिना नहीं होती अर्थात् कुंजी की चेष्टा हाथ की चेष्टा पर निर्भर है; यद्यपि वर्तमान समय में दोनों इकट्ठी हैं। ऐसे ही जगत् का मूलतत्त्व और उसका स्वरूप है। यद्यपि इन दोनों के काल में एकता है; परन्तु बुद्धि इस बात को जानती है कि मूलतत्त्व के स्वरूप की अपेक्षा मूलतत्त्व प्राचीनतर है क्योंकि गुणी गुण की अपेक्षा सनातन होता है। मूलतत्त्व का अस्तित्व अर्थात् उसका अनुभव होना और दिखाई देना किसी चीज के लगने से होता है। या तो स्वरूप के लगने से होता है या किसी और चीज के लगने से। कुछ भी हो; वह पदार्थ, जिसके लगने से वह मूलतत्त्व वर्तमान संसार में इस प्रकार स्थित हुआ कि अनुभव हुआ और दिखाई दिया वह किसी ऐसे कारण से हुआ जो पीछे से आकर मूलतत्त्व को लगा। और जो उत्तर में यह लिखा गया कि कारण का होना अथवा न होना नहीं कहा जाता तब तो वह चीज अद्‌भुत हुई जिसको उपादान कारण में होना या न होना नहीं कह सकते। वह वस्तु जिसका उपादान कारण ऐसा हो उसका अस्तित्व किस प्रकार हो सकता है अर्थात् विद्यमान वस्तु अभाव से नहीं बन सकती और यदि उसके सनातन होने से ही कोई मनुष्य यह कहे कि वह विद्यमान भी होगी तो यह गलत है; इसलिए कि अभाव से विशेष का होना। उदाहरणार्थ, कोई कहे कि 'जैद' के मूलतत्त्व को एक विशेष स्वरूप प्राप्त हुआ है जिसके कारण उसका 'जैद' नाम रखा गया तो वह विशेष स्वरूप इस स्वरूप से पहले कभी विद्यमान न था; इसलिए उसको अर्थात् उसके अभाव को सनातन कहा जावेगा। रूप के जो दो प्रकार कहे—एक वह विशेष जिसको आकृति कहते हैं और दूसरा उसके अतिरिक्त; इससे विदित हुआ कि स्वरूप मूलतत्त्व से भिन्न का होता है (मूलतत्त्व का नहीं होता) **स्वामी जी**—स्वाभाविक गुण-रूप आदि वस्तु के पीछे कभी उत्पन्न नहीं होते और जो पीछे हो उसको स्वाभाविक नहीं कहते; जैसे अग्नि के परमाणुओं का स्वाभाविक अतीन्द्रिय रूप अर्थात् आंख से अनुभव न होना, स्वाभाविक सब काल उसके साथ है। निमित्त कारण का संयोग होने पर परमाणुओं का संयोग करने से स्थूल कार्य होकर उसका इन्द्रिय-ग्राह्य रूप प्रकट होता है जैसे जल के परमाणु उड़कर आकाश में ठहरते हैं और जब तक बादल नहीं बनते तब तक नहीं दीख पड़ते।

हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि वह मूलतत्त्व नहीं है या मूलतत्त्व के स्वाभाविक गुण नहीं हैं। उदाहरणार्थ, जैसे लड़के का होना और लड़के का ना होना तो ठीक है परन्तु कार्य में जैसा यह होना या न होना गुण है, वैसा कारण में नहीं है। कारण और कारण के जो स्वाभाविक गुण हैं, वे अनादि हैं। कार्य वह है जो संयोग से हो और वियोग के पीछे न रहे। वह जो एक संयोगजन्य स्वरूप है वह कार्य का स्वरूप कहलाता है; उसका प्रवाह से अनादिपन है; स्वरूप से नहीं। ईश्वर जो सर्वज्ञ है वह तो निमित्त कारण अर्थात् बनाने वाला है, उसके ज्ञान में सदा है और रहेगा। (अन्तिम वाक्य का उत्तर ऊपर आ गया)।

मौलवी—प्रमुखता अथवा उत्कृष्ट अर्थात् सर्वप्रथमता दो प्रकार की होती है—एक व्यक्तित्व से और दूसरी कालक्रम से। जैसा कि हम पहले वर्णन कर चुके हैं कि हाथ की चेष्टा और चाबी की चेष्टा, इनमें से एक पहले और दूसरी पीछे कालक्रम से होगी। और ऐसा ही उत्कर्ष गुणी का अपने स्वाभाविक गुणों पर निर्भर होता है। उदाहरणार्थ, पानी का उत्कर्ष अपनी शीतलता पर निर्भर है। उत्कृष्ट बुद्धि जानती है कि शीतलता की स्थिति पानी के साथ है। इस उत्कर्ष को निजी उत्कर्ष कहा जावेगा। कहने का अभिप्राय यह कि गुणी का जो उत्कर्ष उसके अपने गुणों के कारण है वह 'निजी' उत्कर्ष कहलाता है क्योंकि गुणी अपने गुणों से तो अवश्य उत्कृष्ट होता है। सन्देह तब उत्पन्न होते हैं जब उत्कर्ष कालक्रम से हो। कालक्रमानुसारी उत्कर्ष वह है जैसा कि बाप का अपने बेटे पर होता है। व्यक्ति का अपने स्वाभाविक गुणों से रिक्त होना तब आवश्यक होता है जब कालक्रमानुसारी उत्कर्ष हो। तात्पर्य यह है कि मूल प्रकृति का अपने स्वरूप पर निर्भर जो उत्कर्ष है, वह निजी उत्कर्ष है; क्योंकि गुणी गुणों से उत्कृष्ट होना चाहिए।

स्वामी जी—द्रव्य उसको कहते हैं कि गुण, क्रिया, संयोग, वियोग होने का स्वभाव पाया जावे । परन्तु जो द्रव्य परिच्छिन्न अर्थात् पृथक्-पृथक् हैं उनका ही यह लक्षण है । जो द्रव्य विभु व्यापक है वह संयोग-वियोग के स्वभाव से रहित होता है । किसी-किसी व्यापक में गुण ही होते हैं, क्रिया नहीं; जैसे कि परमेश्वर में संयोग-वियोग नहीं होता परन्तु क्रिया और गुण हैं और आकाश, दिशा, काल ये भी व्यापक हैं परन्तु इनमें क्रिया नहीं है; केवल गुण हैं ।

मौलवी— इस उत्तर का मेरे प्रश्न से कुछ सम्बन्ध नहीं है; क्योंकि इस उत्तर में व्यक्तिगत और कार्यक्रमानुसारी भेद नहीं बताया गया । ज्ञानस्थ आकृति की अपेक्षा 'जैद'का विशेष प्रकार का अभाव अर्थात् उसके एक स्थिर शरीर पर जो एक नश्वर समय नियुक्त हुआ था, वह उसके शरीर के अस्तित्व में आने से पहले सनातन नहीं था । यह जो विचार प्रकट किया गया कि पूर्व अभाव उस शरीर-विशेष का नही है, उसकी आकृति ईश्वर के ज्ञान में विद्यमान है; यह बिल्कुल गलत है । क्योंकि ईश्वर के ज्ञान में यह शरीर-विशेष तो विद्यमान नहीं जो तीन हाथ का है । किसी वस्तु के अनादि होने से किसी वस्तु का अस्तित्व तो सिद्ध नहीं होता । ज्ञानस्थ अस्तित्व के बारे में बात यह है कि ईश्वर का ज्ञान ज्ञानस्थ अस्तित्व के साथ नहीं है क्योंकि ज्ञानस्थ अस्तित्व वह होता है जो बाहरी वस्तु के देखने से प्राप्त होता है । जब कि रूप विशेष और आकार-विशेष कोई सनातन नहीं माना जाता तो ईश्वर के ज्ञान में वह ज्ञानस्थ आकृति कहां से प्राप्त हुई ? यदि कोई सनातन-विशेष थी तो आपके मन्तव्य के अनुसार प्रकृति अनादि थी और जिस वस्तु का साधनों द्वारा अनुभव न किया जा सके जैसे कि आप प्रकृति और आकार को मानते हैं कि प्रथम अवस्था में अनुभव के योग्य न था तो उसका ज्ञान किसी प्रकार भी प्राप्त नही किया जा सकता क्योंकि किसी पदार्थ को जानने की विधि यही है कि किसी चेष्टा के द्वारा ज्ञानेन्द्रिय में उसका आकार प्राप्त हो,उसी को ज्ञानस्थ-आकृति कहा जाता है और जहां तक जल के परमाणुओं का सूक्ष्म होकर वाष्प बन जाने का प्रश्न है यद्यपि वह दृष्टिगोचर तो नहीं होता फिर भी किसी न किसी चेष्टा के द्वारा वह जानने के योग्य है । प्रत्येक अवस्था में जो आकार इस प्रकार का माना गया है कि जिसका ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा अनुभव नहीं किया जा सकता तो उसका कोई अस्तित्व भी नहीं है । जब अनादित्व ही गलत सिद्ध हुआ तो पुनर्जन्म कहां रह गया । यदि यह कहा जाता है कि एक शरीर से दूसरे शरीर में जाने का कारण उसके वे कर्म हैं जो प्रथम शरीर में किये थे तो यह प्रकट है कि कर्म चेष्टा द्वारा होते हैं और चेष्टा काल पर निर्भर है और काल का आदि, अन्त और मध्य इकट्ठा नहीं रह सकता । इसके अतिरिक्त कर्म जो किसी समय के द्वारा किये गये वे भी नष्ट हो गये । अथवा दूसरे शरीर से सम्बन्ध किसी उत्कर्षक की ओर से न होगा । जब आत्मा का शरीरों से समान सम्बन्ध है तो विशेष सम्बन्ध होने से उत्कर्षता बिना उत्कर्षक के बाधक होगी । इसके अतिरिक्त इस सम्बन्ध से बहुत सी हानियां उत्पन्न होंगी क्योंकि जो विशेषताएं प्रथम शरीर में प्राप्त की थीं वे दूर हो गईं और उदाहरणतया यदि दूसरा सम्बन्ध कुत्ते अथवा गधे से हो तो उस कुत्ते और गधे के शरीर से वे विशेषताएं प्राप्त नहीं कर सकता जो मनुष्य के शरीर में प्राप्त कर सकता था । अब आपको उचित है कि प्रथम विद्याओं के प्राप्त करने की विधि निश्चित कीजिए फिर उसके पश्चात सम्बन्ध का कारण निश्चित किया जाये तब उस पर आक्षेप किया जा सकता है ।

स्वामी जी— दश इन्द्रियों के विषय में मौलवी साहब का कहना ठीक नहीं जैसा कि जीवात्मा किसी इन्द्रिय से नहीं देखा जाता परन्तु अस्तित्व उसका है । जो मौलवी साहब ने कहा कि अनादि वस्तु झूठी है, यह किसने कहा है; क्या यह बात आपने अपने दिल से जोड़ ली है ? क्योकि जब मैं लिखवा चुका कि परमेश्वर, जीव और जगत् का कारण ये तीनों सनातन हैं । इससे अनादित्व सिद्ध है और अभाव से भाव कभी नहीं होता । यदि कोई कहता है तो उसका प्रमाण नहीं है । गधे और कुत्ते के शरीर में मनुष्य का जीव जाने से मौलवी साहब कहते हैं कि बड़ी हानि होती है क्योंकि की हुई सब कमाई चली जाती है । यदि मौलवी साहब ऐसा मानते है तो मौलवी साहब को कभी सोना भी नहीं चाहिए क्योंकि निद्रा में जाग्रत की कमाई सब भूल जाती है । यदि मौलवी साहब कहें कि जागने से वह ज्ञान फिर आ जाता है तो गधे के शरीर में

भी आ जायेगा और ज्ञान फिर प्राप्त कर सकता है जैसे कि मनुष्य निद्रा से जागकर करता है । इसलिए मैं जानता हूं कि मौलवी साहब के भाषण और मेरे भाषण को बुद्धिमान लोग स्वयं देख लेंगे और एक जन्म इन बातों से सिद्ध नहीं होता परन्तु पुनर्जन्म सिद्ध है ।

हस्ताक्षर अंग्रेजी—ला० हमीरचन्द

हमारे समक्ष जो बातचीत के विषय निश्चित हुए वे वास्तव में यही थे जो इस भूमिका में लिखे हैं ।

हस्ताक्षर मुहम्मद हुसैन महमूद

स्वामी जी और मौलवी मुहम्मद कासिम के मध्य शास्त्रार्थ के नियमों की विफल चर्चा (दूसरी बार स्थान रुड़की, जिला सहारनपुर)

भूमिका— २५ जुलाई, सन् १८७८ को स्वामी जी पंजाब निवासियों के धार्मिक हृदयों की प्यास बुझाते हुए रुड़की पधारे और शम्भुनाथ देहलवी के बंगले में ठहरे । आते ही स्वामी जी ने प्रथम तो अपने निवास स्थान पर उपदेश देना आरम्भ किया और ३ अगस्त, सन् १८७८ तक इसी प्रकार काम किया और फिर विज्ञापन द्वारा सर्वसाधारण को सूचना देकर आर्मन स्कूल के समीप ४ अगस्त,सन् १८७८ से व्याख्यान देने आरम्भ किये । इस स्थान पर ४ व्याख्यान बड़े युक्तियुक्त और स्पष्ट-स्पष्ट हुए, जिनमें श्रोताओं के सैकड़ों सन्देह निवृत्त हो गये और वे सत्यधर्म की ओर आकृष्ट हुए ।

मुसलमानों ने भी स्वामी जी के आक्षेपों से घबरा कर मौलवी मुहम्मद कासिम अली साहब मुख्याध्यापक मदरसा(पाठशाला) देवबन्द को बुलाया जो ८ अगस्त, सन् १८७८ को पधारे और आते ही निम्नलिखित विज्ञापन बाजार में चिपकवा दिये ।

मौलवी साहब की ओर से विज्ञापन—पंडित दयानन्द सरस्वती जी की आत्मश्लाघाएं और विशेष रूप से इस्लाम मत के विषय में उनकी बकवास (वचन) किस-किस के कान में नहीं पड़ी ? चूंकि गवर्नमेण्ट ने मजहब के सम्बन्ध में और उसका अनुसंधान करने के विषय में अपनी प्रजा को स्वतन्त्र कर रखा है इसीलिए अंग्रेजी शासन के प्रारम्भिक काल से लेकर आज तक भारतवर्ष में सैकड़ों शास्त्रार्थ-सभाएं हुई किन्तु सरकार की ओर से कोई धर-पकड़ न हुई और दो वर्ष से शाहजहांपुर के पास 'ब्रह्मविचार' नामक मेला[६] होता है जिसमें हजारों मनुष्य एकत्रित होकर धार्मिक शास्त्रार्थ का तमाशा देखते हैं । इसलिए हमने पंडित जी की वाचालता की ख्याति सुनकर बहुत चाहा कि कुछ मित्रों के माध्यम से शास्त्रार्थ सभा की ऐसी तिथि निश्चित हो जाये कि जिससे देवबन्द पाठशाला के हमसे सम्बद्ध कार्यों की हानि न हो, हमारी घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति में हमको किसी कठिनाई का सामना करना न पड़े, दूर-पास के सुनने की इच्छा रखने वाले सज्जन समय पर आ जावें और सरलतापूर्वक सत्य के निश्चय का आनन्द उठायें परन्तु ईश्वर जाने कि क्या रहस्य था कि पंडित जी तिथि निश्चित करने पर किसी प्रकार सहमत न हुए और कहा तो यह कहा कि मैं मौलवी कासिम अली से बातचीत करूंगा और जब वे आयेंगें तभी सब बातें हो जायेंगी । यद्यपि यह विशेषता निरर्थक है; क्योंकि जब आक्षेप सबको सुनाया जाये तो उत्तर भी सभी दे सकते हैं । परन्तु विवश होकर सब कार्यों को छोड़कर आज हमें ही आना पड़ा । अब समस्त हिन्दुओं और विशेष रूप से पंडित जी के अनुयायियों की सेवा में निवेदन है कि जिस प्रकार बन पड़े पंडित जी को बातचीत पर सहमत करें, सभा की तिथि ऐसी नियत करायें जो बाहर के लोग भी सूचना पाकर सम्मिलित हो सकें और इसके अतिरिक्त शास्त्रार्थ सम्बन्धी बातों का भी शीघ्र निश्चय कर लें । तीन दिन-तक हम प्रतीक्षा करते हैं । यदि ठीक उत्तर आया तो ठीक, अन्यथा पंडित जी और उनके अनुयायियों पर इस अपराध का उत्तरदायित्व सदा-सदा के लिए रहेगा ।

हम वह नहीं कि दूर से दावा किया करें।
हम वह नहीं कि दून की बैठे लिया करें॥
अपना यह कौल है कि हम आये हैं, आइये।
दावा अगर किया है तो कुछ कर दिखाइये॥

मिति ८ अगस्त, सन् १८७८ बृहस्पतिवार। निवेदक मुहम्मद कासिम

मौलवी साहब का पत्र—'हिन्दूधर्म के नेता पंडित स्वामी दयानन्द सरस्वती जी, महान् ईश्वर हमारा और आपका पथप्रदर्शन करे। यह अत्यन्त तुच्छ अज्ञानी मुहम्मद कासिम कुछ समय हुआ खांसी से पीड़ित था। खांसी इतनी प्रबल थी कि कभी-कभी तो बात करना भी कठिन हो जाता था और कुछ कुछ आवश्यकताएं भी ऐसी विद्यमान थीं। इतने में यह शोर मचा कि आप रुड़की में आ विराजे हैं और समस्त मतों पर विशेषतया इस्लाम मत पर आक्षेप करते हैं। अस्तु; यह बात तो ऐसी न थी कि इस पर ध्यान दिया जाता, क्योंकि प्रत्येक मत वाला दूसरे मतों पर आक्षेप किया ही करता है। परन्तु उसके साथ यह भी सुना गया कि आपको कोई मनुष्य उत्तर देता है तो आप नहीं लेते। इसको सुनकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ क्योंकि किसी मत पर आक्षेप हो तो, निस्संदेह उसका उत्तर लेने का अधिकार प्रत्येक मतावलम्बी को है। फिर यह कहने का क्या अर्थ है कि मैं तुझसे उत्तर नहीं लेता; उस व्यक्ति से उत्तर लूंगा। फिर इसके साथ ही यह भी सुना गया कि आप स्वयं सार्वजनिक विज्ञापन इस बात के स्थान-स्थान पर लटकवा चुके हैं जिसका अभिप्राय यह है कि 'जिस किसी का जी चाहे आओ और शास्त्रार्थ कर जाओ।' यदि यह फिर घोषणा सबके लिए थी तो शास्त्रार्थ करने वालों में विद्या को विशेषता पर ध्यान क्यों देना पड़ा? परन्तु हमको फिर भी कुछ प्रयोजन न था; इतने में यह सुना कि आप विशेष रूप से मेरी ओर संकेत करते हैं। यद्यपि रोग तथा उन आवश्यकताओं के कारण जिनका ऊपर संकेत किया गया, मुझको आना कठिन था परन्तु सत्यमार्ग के अनुसन्धान के लिए प्रयत्न करना मनुष्य का सर्वप्रथम कर्त्तव्य है; जब सृष्टिकर्ता ईश्वर और उसके मार्ग को ही हमने और हमारे भाइयों ने न पहचाना तो और किसी वस्तु को जाना भी तो क्या हुआ'-यह समझकर इससे बच निकलना उचित न समझा। आपकी मुझको विशेषता देने की बात को इस बात पर आधारित समझा कि मेरी और आप की एक बार भेंट और परस्पर एक-दो बातें भी हो चुकी हैं। जिससे परिचय होता है, उसकी बातचीत पर अधिक विश्वास होता है और (जिस किसी से भी) वैसी बातचीत करने में कदाचित् आपको यह खटका हो कि 'ईश्वर जाने बातचीत का ढंग भी उनको आता है या नहीं!' यद्यपि यह बात उसी समय तक उचित है कि अपने विपक्षी का वृत्तान्त किसी साधन से भी दिदित न हो सके। परन्तु यहां तो जो मौलवी अहमद अली साहब और हाफिज रहीमुल्ला साहब आपसे बातचीत की इच्छा रखते थे, उनकी योग्यता ऐसी नहीं है कि जिसको कोई न जानता हो। परन्तु जो कुछ भी परिणाम हो आपकी इस कृपा ने कि आप मुझ को विशेषता देते हैं, रुकावटें होने पर भी मुझको कल यहां तक पहुंचाया, अन्यथा विद्या की दृष्टि से मैं अपनी गणना इस्लाम के विद्वानों में नहीं करता। अकारण पांव आगे बढ़ाना यह काम विद्वानों और गुणवानों का है परन्तु यह भी ठीक है कि ऐसे झगड़ों में बड़े-बड़े विद्वानों का आना शोभा नहीं देता; हम जैसे अल्प विद्या वाले ही पर्याप्त हैं। अस्तु, कल उपस्थित होकर आपका अनुकरण किया अर्थात् जैसे आपने शास्त्रार्थ की घोषणा के लिए विज्ञापन लगवाये, मैंने भी विज्ञापन लगवा दिये। आपको उनकी और उनके विषयों की सूचना पहुंची होगी। इसलिए उसकी कोई प्रति भेजने की आवश्यकता नहीं। यह सब होने पर भी इस आवेदन पत्र के साथ आपकी सेवा में पृथक् पर्चा भी पहुंचे इसलिए सावधानता की दृष्टि से रजिस्ट्री द्वारा एक विशेष पत्र भी इस बारे में भेजना उचित समझा। अब यह निवदेन है कि आप कोई तिथि ऐसी नियत करें जिसकी सूचना के पश्चात् दूर और पास के उत्सुक जन भी सम्मिलित हो सकें। परन्तु इतना ध्यान रहे कि हम नितान्त बेकार नहीं हैं और पूर्ण स्वतन्त्र हैं; हजारों कार्य और सैकड़ों सम्बन्ध हमरे साथ लगे हुए हैं। यदि तिथि में अधिक विलम्ब हुआ तो

फिर हमको ठहरना कठिन होगा। इसके पश्चात् हमारी ओर से प्रथम तो यह निवेदन है कि आप बातचीत करें तो उर्दू भाषा में करें; क्योंकि बहुत से लोगों की साक्षी के अनुसार आप उर्दू बोलने में समर्थ हैं, व्याख्यान सुनने वाले सब इस बात के साक्षी हैं। दूसरे यह कि भाषण के लिए व्यर्थ में ऐसी सीमा नियत न की जावे कि जिससे आवश्यक बातों का वर्णन न हो सके। यदि ऐसा न हुआ तो शास्त्रार्थ ही क्या हुआ ? तीसरे यह कि जब तक एक बात का निर्णय न हो ले तब तक दूसरे विषय में बातचीत आरम्भ न हो। फिर भी यद्यपि, उचित तो यह था कि हम और आप समान रहते अर्थात् दो-चार सिद्धान्त इस प्रकार के नियत हो जाते कि आधों में हम शंकाकर्त्ता और आप उत्तरदाता और आधे में आप शंकाकर्त्ता और हम उत्तरदाता होते। परन्तु हमारी न्यायप्रियता देखिये कि हम इसको भी महत्त्व नहीं देते। अभिप्राय यह है कि चांदापुर जैसी अव्यवस्था न हो। उचित उत्तर की प्रतीक्षा करने के अतिरिक्त और अधिक क्या निवेदन करूं। इति। मिति ९ अगस्त, सन् १८७८।

पुन: यह कि शास्त्रार्थ आरम्भ होने के पश्चात् ईश्वर ने चाहा तो हम आपसे अधिक पांव जमाने वाले सिद्ध होंगे परन्तु बेकारी में दिन व्यतीत करना कठिन है। इति। (हस्ताक्षर)—मुहम्मद कासिम।

इस चिट्ठी पर मौलवी साहब के हस्ताक्षर न थे इस कारण स्वामी जी ने उनको यह पत्र लिखा—"श्री मौलवी मुहम्मद कासिम साहब, आपकी सेवा में विदित हो कि कल सायं ६ बजे आपकी रजिस्ट्री चिट्ठी मेरे पास पहुंची। उस चिट्ठी पर आपके हस्ताक्षर न थे इसलिए आपको यह कष्ट दिया जाता है कि मुन्शी चिट्ठी लेकर आप की सेवा में पहुंचता है; आप इस पर हस्ताक्षर कर देवें। विज्ञापन और लिफाफे पर तो आपके हस्ताक्षर थे परन्तु केवल चिट्ठी पर न थे इसलिए निवेदन है कि कृपा करके उक्त चिट्ठी पर हस्ताक्षर कर दें ताकि हम भी अपने हस्ताक्षर करके चिट्ठी रजिस्ट्री डाक द्वारा आपके पास भेज दें। शेष कुशल। —दयानन्द सरस्वती, रुड़की; जिला सहारनपुर। १० अगस्त, सन् १८७८।

इसके उत्तर में मौलवी साहब ने उस चिट्ठी पर हस्ताक्षर कर दिये, कोई पत्र नहीं भेजा। मौलवी साहब का उक्त कृपापत्र पहुंचने पर स्वामी जी के श्रद्धालुओं ने यह विज्ञापन प्रकाशित किया और गली कूचों में लगाया।

विज्ञापन—'एशिया और यूरोप में जो सभ्य सभाओं और शास्त्रार्थों के प्रारम्भिक पत्र-व्यवहार का ढङ्ग होता है उसका उल्लंघन चाहे कोई अपने लेख में करे परन्तु हम उसको अनौचित्य मानते हैं और ऐसा करना कदापि उचित नहीं समझते। न अपना यह विश्वास है कि वास्तविक अभिप्राय से सम्बद्ध विषयों की बातचीत में उच्चारण की अशुद्धि बतला देने पर विशेषतया जब कि उसकी शुद्धि का भी किसी को दावा न हो, पाठशाला के बालकों की भांति प्रयत्न करना उचित है। यदि ऐसा होता तो इस स्थान पर क्या उन समस्त व्याकरण और मात्राओं की अशुद्धियों का वर्णन न आता जो मौलवी साहब के विज्ञापन में पाई जाती हैं ? अस्तु।

(१) कभी वह भी समय था जब कि मजहबी विषयों में बातचीत व शास्त्रार्थ होने पर लोगों के सिर कट जाते थे और ऐसा भी समय था कि एक मत के अतिरिक्त दूसरे के मत के विषय में किसी प्रकार का प्रवचन करना या व्याख्यान देना मानो प्राणों को खो देना था और ऐसे भी दिन थे कि जो राजा का मजहब होता था उसके अनुयायी तो, प्रत्येक प्रकार स्वतन्त्र होते थे परन्तु क्या साहस कि दूसरे मत वाला अपने सिद्धान्तों को प्रकट कर सके। लाख अपने मन में कोई सत्य को सत्य क्यों न जाने परन्तु झूठ को झूठ कहने का अधिकार न रखता था। सारांश यह है कि सत्य की खोज करने वाले और झूठ को झूठ सिद्ध करने वाले सुलेमान के कारागार में नहीं तो उनके पीछे होने वाले राजाओं के कारागार में तो अवश्य डाले जाते थे। हजार-हजार धन्यवाद ईश्वर का है कि अब अंग्रेजी सरकार ने अपनी न्यायप्रियता से प्रजा को स्वतन्त्रता प्रदान की। जिस बात को मनुष्य अपने बुद्धिबल से प्रमाणित समझता था उसको प्रकट करने का ढंग भी उत्पन्न हो गया।

सत्य तो यही है कि न्यायकारियों और अन्वेषकों को तो मानो एक सम्पत्ति हाथ लगी । हां, ऐसों के लिए तो प्रलय का ही दिन आ गया जिनका विचार यह था, और है कि जिसको हम मानते हैं वह चाहे सिद्ध हो सके या न हो सके, हम ऐसा ही मानेंगे और जिन सद्धान्तों को हम मानते हैं उनको बुद्धिमान् किसी भी प्रकार अयुक्ति-युक्त न कहें; अपितु हम ऐसा कहने का अवसर ही न उत्पन्न होने देंगे ।

(२) मौलवी साहब कहते हैं कि हमने कुछ मित्रों द्वारा बहुत चाहा कि शास्त्रार्थसभा की तिथि नियत हो जावे । हम अत्यन्त दुःख से कहते हैं कि उन मित्रों में से कोई सज्जन हमारे पास आकर वर्णन नहीं करते कि उन्होंने हमसे जिस विषय में बातचीत की थी उसका क्या उत्तर पाया और उसके पश्चात् वह हमसे उत्तर की आशा करते हैं या हम उनसे ? एक-दो अन्य सज्जनों की उपस्थिति में हम में से एक से अन्य मित्रों (जिनकी संख्या हमें विदित नहीं है और हम यह भी नहीं कह सकते कि (मौलवी साहब की ओर से) जिनकी ओर संकेत किया गया है वे उक्त मित्रों के समूह में से हैं या नहीं) से एक सज्जन ने शास्त्रार्थ के विषय में बातचीत की थी; उस समय जो-जो नियम उन्होंने वर्णन किये उनमें से एक के अतिरिक्त सब का निर्णय हो गया था । एक का निर्णय होना शेष था, उसके विषय में उनकी सम्मति मांगी गई थी । उसका और कोई उत्तर तो हमें नहीं मिला; कदाचित् मौलवी साहब का विज्ञापन ही उसका उत्तर हो !

अब तनिक पाठक स्वयं विचार करें कि शास्त्रार्थ की तिथि निश्चित होने में इस ओर से आलस्य हुआ या उस ओर से ? इसके अतिरिक्त मौलवी साहब का तो श्री स्वामी जी से पहले ही परिचय हो चुका था; वे स्वयं ही इस विषय में लिखते । हां, उस अवस्था में इतना दोष अवश्य था कि मौलवी साहब या उनके शिष्यों को कदाचित् यह श्रेय प्राप्त न होता जो विज्ञापन के प्रकाशित करने से हुआ ।

(३) फिर विज्ञापनदाता कहते हैं कि 'आक्षेप सबको सुनाया जाये तो उत्तर सभी दे सकते हैं ।' इस तर्क पर तो बस निछावर हो जाइये ! यदि यों कहा जाता कि 'आक्षेप सबको सुनाया जावे तो उत्तर देने का भी सबको अधिकार हैं' तब तो जहां तक शब्दों की सीमा का सम्बन्ध है, यह वाक्य अशुद्धिरहित कहा जाता । इस तर्क की यथार्थता से कि उत्तर सभी दे सकते हैं बुद्धिमान् भली-भांति परिचित हैं । हे महाशय ! मजहबी विषय तो कठिन है; हमें तो यह ऐसा काम नहीं दिखाई देता कि जिसको सभी कर सकें ।

४-अ—"जिस प्रकार बन पड़े पण्डित जी को बातचीत पर सहमत करें"—तनिक उपर्युक्त वाक्य को एक दो बार विचारपूर्वक पढ़ लीजिये और फिर देखिये कि पंडित जी बातचीत करने पर सहमत प्रत्युत उद्यत कब नहीं थे । उनके यहां इतने काल तक ठहरने का कारण यही प्रतीत होता है कि जो सज्जन धार्मिक बातचीत की योग्यता रखते हों, आयें और बातचीत करें ।

४-ब—स्वामी जी कहते हैं कि हम आज (और कदाचित् अवकाश न मिले तो कल) मौलवी साहब की सेवा में शास्त्रार्थ के नियम विस्तारपूर्वक रजिस्ट्री पत्र द्वारा भेजेंगे । यदि मौलवी साहब से ठीक उत्तर मिला तो ठीक; अन्यथा बुद्धिमान् स्वयं जान लेंगे । १० अगस्त, सन् १८७८ ।

विज्ञापनदाता—स्वामी दयानन्द सरस्वती के शिष्य । १० अगस्त, सन् १८७८ ।

रजिस्ट्री पत्र—उक्त विज्ञापन को प्रकाशित करने के साथ ही साथ रजिस्ट्री द्वारा यह पत्र भेजा—"इस्लाम मत के नेता मौलवी मोहम्मद कासिम साहब, परमेश्वर आपको, हमें और सबको सत्यमार्ग पर स्थिर रखे । मुझे इस बात का दुःख है कि इस समय आपको शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त नहीं है परन्तु ईश्वर से आशा है कि आपको आरोग्य प्रदान करेगा । मैं

आपके इस स्थान पर पधारने का धन्यवाद प्रकट करता हूं; विशेषतया इस कारण कि आपने रुग्णावस्था में पधारने का कष्ट किया। अब इन कर्तव्यानुसार उचित बातों को कहने के पश्चात् आपके कृपापत्र के उत्तर में निम्नलिखित निवेदन करता हूं—

"मैंने इस नगर में आकर अपने स्वभाव के अनुसार महजबी विषयों पर बातचीत करनी आरम्भ की। परन्तु मैं दुःख से कहता हूं कि मेरे प्रवचनों और व्याख्यानों का कुछ लोगों ने यह निष्कर्ष निकाला कि वह विचार-विमर्श विशेषरूप से मुसलमानों के विरुद्ध था। यह तो मैं प्रत्येक अवस्था में स्वीकार करता हूं कि मैं अपनी समझ के अनुसार जहां उचित समझता हूं, इस्लाम के विरुद्ध भाषण देता हूं, **परन्तु इस विषय में मैंने इस्लाम को ही विशेषरूप से चुना, यह कहना सर्वथा मिथ्या है।** जैसा मैं इस्लाम मत का खण्डन करता हूं ईसाईमत का खण्डन भी कदापि उससे कम नहीं करता। यहां तक कि मैं अपने हिन्दुओं की वर्तमान धार्मिक अवस्था पर भी सहमति प्रकट नहीं करता। आप यह तो जानते ही होंगे कि व्याख्यान के समय शास्त्रार्थ करना अभिप्राय की वास्तविकता और शिक्षा के महत्त्व को सर्वथा नष्ट करना है। वास्तविकता तो यह है कि कोई काम भी उचित व्यवस्था और प्रबन्ध के बिना भली-भांति सम्पन्न नहीं हो सकता। इसलिए मैंने व्याख्यान के आरम्भ करने से पहले इस प्रकार प्रकट कर दिया था कि जो सज्जन मेरे कथन में कोई ऐसा आक्षेप पायें कि जिसके विषय में उन्हें कुछ पूछने की इच्छा हो या उत्तर लेने योग्य आक्षेप हों या मेरे कथन के सम्बन्ध में कोई दूसरा आक्षेप हो तो उन्हें उचित है कि ऐसे वाक्यों को उचित व्याख्या व स्मारक संकेतों सहित लिखते जायें। व्याख्यान क्रम की समाप्ति के पश्चात् जो समय इस काम के लिए नियत किया जाये उस समय शास्त्रार्थ के रूप में इन बातों पर बातचीत करें। आप तो विद्वान् हैं, क्या आप की यह सम्मति न होगी कि जब तक किसी रूप में एक बातचीत का क्रम समाप्त न हो जाये और जब तक कोई अपनी समझ के अनुसार दावे का प्रमाण, सत्य की मांग और विवादास्पद विषय की आवृत्ति का विस्तारपूर्वक वर्णन न कर ले, तब तक कथन में के अन्तर का रहस्य-भेदन अर्थात् आक्षेप का खण्डन कब कोई कर सकता है!

यह कारण है कि मैंने अपने व्याख्यानक्रम के समय से, शास्त्रार्थ को पृथक् रखा था। व्याख्यान की समाप्ति के पश्चात् मैंने दो दिन तक इस विषय का विज्ञापन किया कि जो सज्जन चाहें, व्याख्यान से सम्बद्ध विषय में जो बात विचारणीय और पूछने योग्य प्रतीत हो, उस पर बातचीत करें। विज्ञापन में केवल एक दिन की चर्चा थी परन्तु अन्त में सारे लेख का यह आशय था कि यदि कल और विज्ञापन इस विज्ञापन के विपरीत प्रकाशित न हो तो इस विज्ञापन का आशय कल के लिए भी स्वीकार किया हुआ जानना चाहिए। इस दो दिन की अवधि में कोई सज्जन शास्त्रार्थ के अभिप्राय से न पधारे; न किसी ने कोई लिखित आक्षेप ही भेजा। दूसरी यह बात भी बताने योग्य है कि मैं शास्त्रार्थ सभ्यतापूर्ण ढंग से ऐसे लोगों से ही करना चाहता हूं जो अपने मत के सिद्धान्तों और उसकी भीतरी बातों का श्रेष्ठ ज्ञान रखते हों अर्थात् चाहे मेरे विषय में जनता का कुछ भी विश्वास हो परन्तु मैं शास्त्रार्थ की दृष्टि से बातचीत करने का विचार केवल ऐसे सज्जनों से रखता हूं जो शिष्टता और ज्ञान (ज्ञान से अभिप्राय मजहबी ज्ञान से है) दोनों में अद्वितीय हैं। आपकी इन दोनों योग्यताओं पर पूर्वपरिचय के कारण, मुझे पूर्ण सन्तोष था और यही कारण हुआ कि कई बार आपकी चर्चा मजहबी मामलों के सम्बन्ध में बातों-बातों में जिह्वा पर आई। मौलवी अहमद अली साहब और हाफिज रहीमुल्ला साहब के विषय में, जो आप कहते हैं, इस सम्बन्ध में मेरा यह उत्तर है कि मौलवी अहमद अली साहब के विषय में यह तो मैंने निस्सन्देह सुना था कि उनकी मजहबी ज्ञान सम्बन्धी योग्यता साधारणतया इतनी पर्याप्त है कि वह अपने मतानुयायियों से सामान्यतया विश्वासपूर्वक दूसरे मजहब के विद्वानों से बातचीत कर सकते हैं। परन्तु खेद है कि मुझे मौलवी साहब के शास्त्रार्थ करने के ढंग के विषय में, सन्तोषजनक सूचनाएं न पहुंची; प्रत्युत ऐसी सूचनाएं पहुंचीं कि जिनको सुनकर शिष्ट साहस ने शास्त्रार्थ आरम्भ करने की प्रेरणा नहीं की। मुझे खेद है कि मौलवी साहब के सम्बन्ध में ऐसी शिकायत का कारण बना, परन्तु न्यायप्रिय लोगों की सेवा में वास्तविकता

का प्रकट करना कुछ दोष नहीं है । अब हाफिज रहीमुल्ला के विषय में सुनिये । उनके बारे में मुझे अत्यन्त विश्वसनीय साधनों से विदित हुआ है कि उन्हें अपने मत का इतना ज्ञान नहीं जो शास्त्रार्थ के लिए पर्याप्त समझा जावे । इसका सबसे बड़ा कारण यह प्रतीत होता है कि हाफिज साहब उस अरबी भाषा से अनभिज्ञ हैं, जिसमें कुरआन और हदीस के अतिरिक्त, बड़े-बड़े विश्वसनीय भाष्य और दूसरी मजहबी पुस्तकें पाई जाती हैं । जो लोग इस बातको कहते हैं वे अपने कथन को सिद्ध करने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेते हैं; इतना ही नहीं प्रत्युत यहां तक कहते हैं कि यदि हम हाफिज साहब से हदीसों आदि के विषय में (न कि अन्य मतवालों की ओर से शास्त्रार्थ के रूप में) कुछ प्रश्न करें और यदि वे आपकी ही सम्मति के अनुकूल उत्तर दें तो हमारा दावा झूठा गिना जाये । यह निस्सन्देह स्वीकार किया जा सकता है कि हाफिज साहब हाफिज[1] होंगे परन्तु साहित्य के विद्वान् से गणित की समस्याओं का समाधान कराना असम्भव है । सारांश यह है कि इन दोनों सज्जनों से मेरा शास्त्रार्थ न करना सकारण था, अकारण न था । आप अपनी योग्यता के विषय में जो कहते हैं, उसको कोई बुद्धिमान् स्वीकार नही कर सकता क्योंकि यह सब जानते हैं कि बुद्धिमान् लोग अपनी चर्चा नम्रतापूर्वक ही किया करते हैं । कहा है कि फलों से लदी हुई शाखा पृथिवी की ओर झुकती है । परन्तु हां, मैं आर्यधर्म के विद्वानों में गणना के योग्य नहीं । योग्यता तो इतनी नहीं कि शास्त्रार्थ का दावा या विचार करूं परन्तु स्वभाव और इच्छा से विवश हूं । इसके अतिरिक्त, ऐसे छोटे-छोटे शास्त्रार्थों के लिए आवश्यकता भी नहीं कि लाला कन्हैयालाल अलखधारी, मुंशी इन्द्रमणि जी, बाबू हरिश्चन्द्र, गोपालराव हरि देशमुख और पंडित हेबतराम जी आदि सज्जन कष्ट करें । मुझे इस बात पर बड़ा आश्चर्य है कि यद्यपि आप, विशेषतया मुझसे बातचीत करने आये तो फिर सार्वजनिक विज्ञापन द्वारा घोषणा करने की क्या आवश्यकता थी ? यदि आप मुझ निर्धन के स्थान पर (साधु को जिस स्थान पर रात आ जाये वही उसकी सराय है) पधारना अपनी शान के विरुद्ध समझते हैं तो पत्रव्यवहार द्वारा अभिप्राय प्रकट किया जा सकता था परन्तु न जाने विज्ञापन लगवाने का क्या उद्देश्य था ! मेरा किसी अवस्था में भी यह कर्त्तव्य न था कि विज्ञापन का उत्तर लिखता, परन्तु जिन लोगों ने अपनी समझ के अनुसार उचित समझ कर उत्तर लिखा, इस अभिप्राय से कि विज्ञापन के उत्तर की प्रतिलिपि मैं अपने पत्र के साथ आपकी सेवा में भेजूं । इसलिए मैं उनके कथनानुसार कार्य करता हूं ।

अब शेष रही शास्त्रार्थ विषयक बातचीत; सो दिन और समय तो निश्चित हो ही गया है । अब यह निवेदन है कि समस्त शास्त्रार्थ के नियम जो आप अपने विचार में उचित समझें, लिखकर भेजने की कृपा करें और इसी प्रकार मैं भी जो नियम उचित समझूंगा, उनसे आपको सूचित करूंगा । मुझे खेद है कि रजिस्ट्री द्वारा पत्र भेजने के कारण और भी अधिक समय नष्ट हुआ, यदि हाथ के पर्चों से काम चलता तो एक दिन में दोनों के प्रश्नोत्तर का निर्णय हो जाता परन्तु आपने न जाने इसमें क्या दूरदर्शिता समझी ।

फिर आप अपने कृपापत्र में चांदापुर की कुव्यवस्था की चर्चा करते हैं । इससे तो आप अवश्य परिचत होंगे कि उस कुव्यवस्था का कारण क्या था ? इसका वृत्तान्त चांदापुर मेले के प्रबन्धक रईस मुक्ताप्रसादऔर मुंशी प्यारेलाल साहब द्वारा प्रकाशित पत्रिका से भली-भांति विदित हो सकता है । अब क्या निवदेन करूं ? हां, इतना उचित है कि इस पत्र की समाप्ति भी आपके पत्र की समाप्ति के उत्तर में हो तो अच्छा । आप कहते हैं कि महाशय ! शास्त्रार्थ आरम्भ होने के पश्चात् मेरी पहले शास्त्रार्थ की दृढ़ता को भुला न दीजियेगा । मुझे भी आपकी दृढ़ता के प्रकटीकरण पर कुछ आश्चर्य नहीं है परन्तु ईश्वर ऐसा करे कि कास रोग से आपको तनिक शान्ति मिले और फिर नये बहाने का कोई अवसर न रहे । ११ अगस्त, सन् १८७८ ।

यह पत्र रजिस्ट्री द्वारा नं० ९२७ पर मौलवी साहब के नाम भेजा गया ।—दयानन्द सरस्वती ।

---

1. मुसलमान लोग कुरआन के कण्ठस्थ करने वाले को 'हाफिज' कहते हैं ।—अनुवादक

मौलवी साहब का पत्र—सेवा में श्री पंडित दयानन्द सरस्वती जी, प्रणामादि के पश्चात् निवेदन यह है कि मैं तो कुछ कारणों से उपस्थित नहीं हो सकता। शास्त्रार्थ-महारथी हाफिज रहीमुल्ला साहब पधारते हैं। वह मेरी ओर से मुख्तार आम हैं, उनसे बातचीत करके आज सब बातों का निर्णय कर दीजिये और जो बात संशोधन या परिवर्तित करने योग्य हों उसका सुधार कर दीजिये। निवेदक मुहम्मद कासिम, ११ अगस्त, सन् १८७८।

इस पत्र के आने पर यह सम्मति हुई कि जब तक मौलवी मुहम्मद कासिम साहब स्वयं न पधारें, तब तक नियम निश्चित नहीं हो सकते। तत्पश्चात् मौलवी साहब स्वयं पधारे और कमेटी (समिति) बैठी।

शास्त्रार्थ के नियम निश्चित करने के लिए समिति (११ अगस्त, सन् १८७८)। कर्नल मानसल साहब बहादुर और कप्तान स्टुअर्ट साहब बहादुर, आफिसर रुड़की छावनी के समक्ष)।

मौलवी साहब और स्वामी जी की उपस्थिति में दोनों की इच्छानुसार निम्नलिखित नियम निश्चित हुए। दोनों शास्त्रार्थ करने वालों और दो यूरोपियन सज्जनों के अतिरिक्त लगभग तीस-चालीस मनुष्य उस समय और भी उपस्थित थे।

१—जिस कोठी में स्वामी जी उतरे हुए हैं वहीं शास्त्रार्थ होगा (प्रथम मौलवी साहब ने आपत्ति की, तब कप्तान साहब ने यह कहा कि यदि इस मकान पर आपत्ति है तो हमारे निजी बंगले पर शास्त्रार्थ हो जाये परन्तु शर्त यह है कि मनुष्यों की संख्या २४ से अधिक न हो क्योंकि वहां अधिक स्थान नहीं है। मौलवी साहब ने उसको अस्वीकार करके कोठी (स्वामी जी का निवास स्थान) पर शास्त्रार्थ करना स्वीकार किया।

२—दोनों पक्षों के मनुष्य चार सौ से अधिक न होंगे।

३—शास्त्रार्थक्षेत्र में प्रवेश के लिए चतुर और बुद्धिमान् मनुष्यों को टिकिट बांट दिये जावेंगे।

४—शास्त्रार्थ लिखित होगा अर्थात् जो कुछ कोई बोलेगा, वह लिखाता जावेगा ताकि अस्वीकार करने की सम्भावना न रहे और प्रकाशित कराने के काम आवे।

५—६ बजे सायं से ९ बजे रात तक शास्त्रार्थ रहेगा।

६—दोनों ओर से शास्त्रार्थ में बुद्धिमानों के समान, सभ्यतापूर्ण बातचीत करने का ध्यान रहे और कोई किसी के पूर्वजों या नेताओं के विषय में कठोर वचनों का प्रयोग न करे।

७—शास्त्रार्थ के समय मेरे और आपके अतिरिक्त और कोई सज्जन शास्त्रार्थ के विषय में किसी ओर से बातचीत न कर सकेंगे।

८—स्वामी जी वेद के उत्तरदाता बनेंगे और केवल कुरआन पर आक्षेप करेंगे और मौलवी साहब कुरआन के उत्तरदाता होकर केवल वेद पर आक्षेप करेंगे।

९—१८ अगस्त, सन् १८७८ को नियत समय से शास्त्रार्थ उपर्युक्त नियमानुसार आरम्भ किया जावेगा।

ये सारे नियम लेखबद्ध होकर दोनों पक्षों को सुनाये गये, दोनों ने स्वीकार किये और फिर मौलवी साहब और स्वामी जी, दोनों साधारण प्रणाम आदि के पश्चात् एक दूसरे से विदा हुए।

वहां तो ईश्वर जाने क्यों और किस विचार से मौलवी साहब ने नियम स्वीकार कर लिये परन्तु जब मकान पर आये तो शास्त्रार्थ का भयानक दिन काले पहाड़ के समान सामने दिखाई देने लगा और चांदापुर की सी विपत्ति ने पहले ही से घेरना आरम्भ किया। अन्ततः चारों ओर से घेर लिया और समय से पहले बुद्धि आ गई और स्पष्टरूप से लिखित शास्त्रार्थ और श्रोताओं की संख्या से खुल्लमखुल्ला इन्कार कर दिया तथा कहा कि शास्त्रार्थ सार्वजनिक सभा में हो और बातचीत मौखिक हुआ करे, जैसा कि उनके अगले पत्र से प्रकट हैं। मौलवी साहब ने उसका यह उत्तर भेजा—

"हिन्दू धर्म के नेता पंडित दयानन्द सरस्वती जी, ईश्वर हमारा, आपका और सबका पथप्रदर्शन करे। कल आप का कृपा पात्र पहुंचा। आपकी कृपाएं मेरे शिर पर। रजिस्ट्री कराकर भेजने का केवल यह कारण है कि मुझको विश्वसनीय सूत्र से यह सूचना मिली थी कि आप इस सम्बन्ध में यदि पत्र व्यवहार हो तो रजिस्ट्री कराकर भेजे हुए पत्र का ही विश्वास करेंगे। परन्तु अब इस कृपा-पत्र से विदित हुआ कि इसकी कुछ आवश्यकता नहीं। इसलिए डाक के साधन की कुछ आवश्यकता नहीं है और वैसे ही आपकी सेवा में भेजता हूं और यह निवेदन करता हूं कि नियमानुसार ऐसे विषयों में निर्णय हुआ तभी समझा जाता है जब लिखने के पश्चात् उस पर मुहर लगा दी जावे या हस्ताक्षर हो जावें। शास्त्रार्थ की बातचीत पर हस्ताक्षरों की आवश्यकता नहीं और न प्रथा है। केवल उपस्थित लोगों की साक्षी पर विजय या पराजय का आधार होता है। जब उसमें आप हस्ताक्षरों की आवश्यकता समझते हैं तो लिखने और हस्ताक्षर होने से पूर्व नियम क्योंकर स्वीकरणीय होंगे। हां, इतनी बात में कुछ सन्देह नहीं है कि जब आप किसी बात से न हटे और युक्तियुक्त कारणों के उत्तर में अकारण अपनी वही एक कहते गये तो स्वभाव के अनुसार मुझको कोमल होना पड़ा अन्यथा उस बातचीत का अन्त न (होना) था। सारांश यह कि, मुफ्त की माथा-पच्ची और समय नष्ट होता देखकर विषय को संक्षिप्त किया और यह भी कि नमाज में विलम्ब हो जाने की आशंका से भी मुझको उठना पड़ा अन्यथा मेरी सम्मति तो मेरे उसी भाषण से प्रकट है जिसको नियमों के सम्बन्ध में आप श्रवण कर चुके हैं। हां, यदि आप श्रोताओं की संख्या तथा भाषण के समय के सम्बन्ध में कोई बुद्धिपूर्ण कारण बताते तो अवश्य मेरी सम्मति बदल जाती। निस्सन्देह मकान नियत किये जाने के सम्बन्ध में तो अपनी यह दशा है कि न किसी के मकान से इन्कार और न कहीं आने-जाने में कुछ लज्जा। ऐसे विचार से जैसे आपने कुछ आग्रह न किया था मैंने भी कुछ विवाद न किया; परन्तु न मुझको आपके मकान की तंगी या खुले होने की कोई सूचना थी और न उसके पास-पड़ौस का कुछ ज्ञान था। यहां आकर सुना तो सबको यह बात अरुचिकर प्रतीत हुई। फिर उस पर नमाज की कठिनाई दिखाई दी। दो सौ मनुष्यों की नमाज के लिए पानी आदि का प्रबन्ध होना कठिन प्रतीत हुआ और आने-जाने और खाने-पीने का कष्ट पृथक् रहा। मेरे मित्र शास्त्रार्थ सुनने को बहुत उत्सुक हैं, उनका मकान पर ठहरना कठिन, जो जाने का प्रबन्ध करें और उस समय बाजार खुला न रहेगा जो बाजार से खाकर काम करें। इसी प्रकार अन्य यात्रियों को खाने-पीने का जो कष्ट होगा, वह प्रकट ही है। सारांश यह कि चाहे यात्री हों चाहे नगर निवासी, इतनी दूर रहना, विशाल समूह का जाना और आधी रात के समय वापस आना पसन्द नहीं करते। इससे अच्छा यह है कि आप आने का कष्ट किया करें और नहर के समीप सुशोभित होकर व्याख्यान के पिपासुओं की पिपासा बुझाया करें। शेष रही संख्या उसका वृत्तान्त सुनिये। यहां आकर जिसको देखा उसे क्रुद्ध पाया कि चिरकाल के उत्सुकों को वंचित रखा जावे। गलियों और बाजारों में आपके इन्कार पर जो कुछ झगड़ा हो रहा और आपके विषय में जो कुछ विचार प्रकट किये जा रहे हैं, मैं लिख नहीं सकता और कुछ आवश्यकता भी नहीं। आपको अवश्य सूचना पहुंची होगी। मुसलमान तो मुसलमान, आपके हिन्दू पंडित भी प्रकट विरोध के कारण क्रुद्ध हैं और फिर इन सब बातों के होते हुए समय पर रुकते दिखाई नहीं देते। यदि ईश्वर न करे कोई अवर्णनीय बात सामने आई तो इस कारण कि सार्वजनिक आज्ञा के इच्छुकों में मेरी प्रथम गणना है, आश्चर्य नहीं कि उसकी पूछताछ मुझसे हो। विशेष रूप से जब यह विचार किया जावे कि अंधेरी रातें होंगी और रात का समय होगा और फिर वह

सार्वजनिक उत्सुकता जिसने जनता को पागल बना रखा है, ऐसी अवस्था में किसी प्रकार की उद्दण्डता किसी से आपके प्रति हो जाये तो कुछ दूर नहीं । उक्त आशंका और भी प्रबल होती है । हां, यदि आप मुस्लिम मजहब के सन्देशवाहकों का अनुकरण करते हुए सत्य के प्रकाश में छाती चौड़ी कर लें और वीरतापूर्वक मैदान में आयें तो फिर कुछ आशंका नहीं, प्रत्युत सत्य का प्रकाश (यदि आपके द्वारा हो गया तो वह पुरानी शत्रुता जो आपके) सवा महीने तक आक्षेप करने से हिन्दू-मुसलमानों के हृदयों में भरी हुई है, प्रेम में परिवर्तित हो जावेगी और आप उन समस्त आक्षेपों के करने में विवश समझे जावेंगे और इसलिए कोई हानि भी न होने पायेगी और यदि हो भी गई तो फिर सत्य का प्रकाश करने में मजहबी नेताओं ने बहुत कुछ कष्ट उठाये हैं; उनका अनुकरण कुछ बुरा नहीं ।

यदि सत्य को प्रकट करने में कुछ कष्ट सामने आया तो उसकी गणना किसी के अनुकरण में करके अपने हृदय का सन्तोष कर लीजियेगा । इसके अतिरिक्त यह भय तो मुझे और आपको समान रूप से है । मैं सम्बन्धों की अधिकता के कारण इसे एक भ्रान्त धारणा सभझता हूं, आप इस स्वतन्त्रता से क्यों इतना डरते हैं । फिर इन सब (बातों) को जाने दीजिये; इस जिले में विद्वान् और विद्यार्थी इतने अधिक हैं कि उन सबको एकत्रित कीजिये तो उनकी संख्या नियत सीमा से कहीं बढ़ जाती है और निरन्तर सूचनाएं आती हैं कि सबको शास्त्रार्थ सुनने की उत्सुकता है, दिनरात इसी विचार में रहते हैं । इसके अतिरिक्त और मत पृथक् रहे । कितने अत्याचार की बात है कि उनकी इच्छाएं मन की मन में रहें और रुड़की की सर्व साधारण जनता वंचित रहे । फिर कालिज के कुछ कार्यकर्त्ताओं का इतना ध्यान हो कि प्रातः की शामन कर दी जाये । उपर्युक्त समस्त कारणों से ये दोनों नियम अर्थात् संख्या और समय भी स्वीकार करने योग्य नहीं, इसलिए यह अन्तिम निवेदन है कि यदि आपको शास्त्रार्थ करना है तो कुछ आगा-पीछा न देखिये, सबको आने की आज्ञा दीजिये और समय को भी बदल दीजिये अन्यथा इन्कार लिख भेजिये ताकि हम निराशा की अवस्था में अपने घर का मार्ग पकड़ें परन्तु उस दशा में यह दुःख रहेगा कि हम निराश गये और आपकी अपकीर्ति हुई । रही तिथि, उसको स्वीकार करने में यद्यपि बोझ के नीचे दबना पड़ता है और समय नष्ट होने के कारण कठिनाई भी है परन्तु फिर भी हमको कुछ आपत्ति नहीं । जब चाहे आप हस्ताक्षर करा लें । इसी प्रकार इस बात में भी हमको कुछ झगड़ा नहीं कि आप पूर्वकाल के विपरीत तीन वेदों को क्यों नहीं मानते और यद्यपि संशयास्पद गाथाओं के अनुसार सब वेद समान हैं, तीनों को एक जैसा क्यों नहीं जानते ? यदि विषयों की बुराई के कारण यह अस्वीकृति है तो वे सारी गाथाएं आपत्तियोग्य लेख समान विश्वसनीय नहीं रहनी चाहिएं । इसी प्रकार हमको इसमें भी कुछ आपत्ति नहीं कि वह भाष्य जो सब वेद के विद्वानों की दृष्टि में मान्य हैं, आप क्यों नहीं मानते । अब रही मौलवी अहमद अली साहब की शिकायत, उनकी सभ्यता से मैं चिरकाल से परिचित हूं, उन्होंने अपनी ओर से कदापि कुछ न लिखा होगा । यदि लिखा होगा तो आपके और आपके शिष्यों के आक्षेपों और निन्दापूर्ण वचनों के उत्तर में लिखा होगा । आपके निन्दापूर्ण वचनों का प्रमाण तो मैं इससे अतिरिक्त कुछ नहीं दे सकता कि सैकड़ों मनुष्य इस बात के साक्षी हैं कि आपके आक्षेप इस रूप में भी थे और यही कारण हुआ कि जो सरकार की ओर से आपके व्याख्यान पर रोक लगी और आपके शिष्यों की सभ्यता पर तो यही आपका भेजा हुआ विज्ञापन साक्षी है । यह हमारी नम्रता है जो उनके इस अनुचित अभिमान का हम उत्तर नहीं देते अन्यथा किसी के इस वचन के अनुसार—**'खुदा[1] जाने सबब[2] क्या है जो हम खामोश[3] हैं जालिम[4] । वर्ना[5] हम रकीबों[6] के अभी छक्के छुड़ा देते ।।'** उनके ऐसे लत्ते लिये जाते कि कदाचित् उनको अपने पास से सरकारी पास वापस करने पड़ते । तनिक उनका साहस तो देखो कि व्याकरण की ओर तो बढ़े सो बढ़े परन्तु दर्शनशास्त्र और वैद्यक में भी अनुचित हस्तक्षेप करने लगे । आप उनको सुना दें कि एक-दो बार की उपेक्षा के पश्चात् भी उन्होंने न माना तो फिर प्रसिद्ध कहावत के अनुसार एक बार, दो बार, अन्त में विवश होकर उन्हें बुद्धिमान् बनाना पड़ेगा ।

---

1. ईश्वर 2. कारण 3. मौन
4. अत्याचारी, नृशंस 5. और नहीं तो 6. शत्रुओं ।

उनको उलटी बात उलटे चित्र के समान उनके मुख पर शोभा नहीं देती और आपको जो कुछ किसी ने कहा वह सब आप के शिष्यों की कृपा का फल है—'मन[1] **अज बेनानगां हर्गिज न नालम। कि बामन हर्चे कर्द आं आशना कर्द ॥'**

हाफिज रहीमुल्ला साहब के विषय में आपके शिष्य जो कुछ कहते हैं कदाचित् उनको उस पदवी और उस प्रमाणपत्र की सूचना नहीं जो मुसलमानों में पूर्ण ज्ञानियों की ओर से मिलने की प्रथा है। हमने कल्पना की कि उनको अरबी भाषा में वह प्रभुत्व नहीं जिसके कारण उनको भाषाविद् कहना ठीक हो परन्तु मुसलमानों में वह कौन-सी आवश्यक पुस्तक है जिसका भाष्य फारसी अथवा उर्दू में अधिकता से प्राप्त न हो। कुरान के भाष्य और हदीसों (गाथाओं) की पुस्तकों के भाष्य अधिकता से बाजारों में मिलते हैं। अर्थज्ञान और मौलिक बातों तथा शाखाओं के ज्ञान के लिए जिस पर शास्त्रार्थ का आधार है, इतना पर्याप्त है। अन्यथा मैं जानता हूं कि वेदज्ञता संसार में लुप्त हो चुकी है जैसा कि संस्कृत भाषा के प्रचार की दशा से प्रकट है और चांदापुर की कुव्यवस्था की जो आप चर्चा करते हैं तो आप कदाचित् लोगों के कहने के अनुसार कुछ और समझ गये। वास्तव में क्रमबद्धता उस कार्य का नाम है जिसका परिणाम प्रबन्ध होता है। सो वह प्रबन्ध जिसको शास्त्रार्थ का प्रबन्ध कहिये न कि मेले का प्रबन्ध, वह भी नियमों के निश्चित होने पर निर्भर है। उसमें आपको स्मरण होगा कि आप पांच ही मिनट पर अड़ गये थे और इस सम्बन्ध में पादरियों के स्वर में स्वर मिलाकर वाक्यों की व्याख्या के लिए समय का विस्तार नहीं होने देते थे। हां, पीछे से बहुत कहने-सुनने के पश्चात् और पादरी स्काट साहब के पधारने पर उनके समर्थन से कुछ समय बढ़ाया गया और मैंने आपकी दृढ़ता पर कब आक्षेप किया था जो आपने स्मरण दिलाया जिससे मुझको यह स्मरण आया कि मुन्शी प्यारेलाल और मुन्शी मुक्ताप्रसाद ने, जिनके आप प्रिय अतिथि थे और जो सब प्रकार से आप का मान रखने और प्रसन्नता प्राप्ति के लिए उपस्थित थे, सब प्रश्नों को छोड़कर अन्तिम प्रश्न पर विचार कराया और जब सभा के लम्बा होने की आशा थी, उसको एक ही दिन में समाप्त करा दिया जिससे वह हमारे दूर की यात्रा और अपनी सामर्थ्य से अधिक किया हुआ खर्च व्यर्थ गया। विवश होकर शहाजहांपुर में वापस आकर जो मोती मियां साहब की ओर से मुंशी इन्द्रमणि और आपकी सेवा में दो पत्र क्रमश: (एक के पश्चात दूसरा) भिजवाये गये तो उसका उत्तर आपको स्मरण होगा कि क्या आया। जब सब प्रकार से निराशा हो गई तब शास्त्रार्थ करने वालों और शास्त्रार्थ सुनने के इच्छुक लोगो ने अपना-अपना मार्ग पकड़ा और 'कहरे[2] दरवेश बर जाने दरवेश" कहकर चले आये। अब इस लम्बे लेख को समाप्त करता हूं; परन्तु समाप्ति पर एक-दो बात निवेदन किये देता हूं। निवेदन से यदि कोई व्यक्ति विवश हो जाये तो किसी की दृष्टि में निन्दनीय नहीं। यह सब कुछ होने पर भी आपकी कृपा से दिन प्रतिदिन आरोग्यलाभ होता जाता है, आप कुछ चिन्ता न करें। परन्तु परमात्मा ऐसा न करे कि आपको किसी बम्बई की रजिस्ट्री और तार का बहाना करना पड़ जाये, जिसकी सत्यता और तात्कालिक आवश्यकता को सिद्ध करने में आपको परिश्रम करना पड़े। अन्तिम कथन यह है कि आप कष्ट को कम करने के अभिप्राय से अपने शिष्यों को कह दें कि शब्द प्रति शब्द उत्तर देने का विचार छोड़ दें अन्यथा हमको भी यह ढंग कुछ स्मरण है यद्यपि वैसी पूर्णता नहीं, जैसी आपके शिष्य आपके विषय में समझते हैं। उत्तर बहुत शीघ्र प्रदान करें और स्वीकृति अथवा अस्वीकृति जो कुछ हो, स्पष्ट लिखें। निवेदक अज्ञानी मुहम्मद कासिम। १२ अगस्त, सन् १८७८।

इस्लाम मत के नेता मौलवी मुहम्मद कासिम साहब,

परमेश्वर हमारा और आपका और सबका पथप्रदर्शन करे। आपका कृपापत्र जिसको पढ़ने का मुझे कल सौभाग्य प्राप्त हुआ था, भाषा और विषय की दृष्टि से इस श्रेणी का था कि मुझे बहुत कुछ विचार करने से पहले कल ही उसका

---

1. मैं दूसरों के अत्याचार की शिकायत कदापि नहीं करता क्योंकि मेरे साथ तो जो कुछ किया वह मेरे मित्रों ने किया। —अनुवादक

2. अर्थात् दीन का क्रोध अपने ऊपर ही होता है।

उत्तर दे देना बुद्धमत्ता से रहित प्रतीत हुआ । परन्तु हां, आज उसका उत्तर जहां तक संक्षिप्त सम्भव है, भेजता हूं । वास्तविकता यह है कि आपके कृपापत्र के एक-एक शब्द पर मुझे आक्षेप है और प्रत्येक के लिए बुद्धिपूर्ण उत्तर रखता हूं । परन्तु इस प्रकार का विस्तारपूर्वक लेख मैं अब अपने लिए कवेल समय का नष्ट करना समझता हूं । कारण यह कि उचित बात का उचित उत्तर नहीं मिलता प्रत्युत ऐसे ढंग की मुझे आपसे कदापि आशा नहीं हो सकती थी परन्तु अपना कदापि यह विश्वास नहीं कि किसी के प्रति सभ्यताविरुद्ध और अश्लील भाषा का प्रयोग किया जाये जैसा कि आप अपने लेख में प्रयुक्त करते हैं । अस्तु, इन बातों को पृथक् रखकर अवश्य प्रकट करने योग्य अभिप्राय को लिखता हूं । आपके और मेरे मध्य कप्तान स्टुअर्ट व कर्नल मानसल साहब के सामने इन चार बातों का निर्णय हो चुका था—(१) शास्त्रार्थ में उपस्थित होने वाले लोगों की संख्या, (२) शास्त्रार्थ का स्थान, (३) शास्त्रार्थ का समय, (४) शास्त्रार्थ में होने वाली बातचीत का लिखा जाना ।

अब मैं आपके लेख से इन सब विषयों में आपकी सहमति नहीं पाता । मेरी सम्मति में बुद्धिमानों का यह व्यवहार है कि जिस विषय पर सहमत होकर प्रतिज्ञा करते हैं, फिर उससे नहीं फिरते । यदि कोई बात अथवा युक्ति उचित न प्रतीत हो तो उस पर आरम्भ से ही कदापि सहमत न होना चाहिए, परन्तु प्रतिज्ञा करने के पश्चात् फिर जाना कदापि उचित प्रतीत नहीं होता । अस्तु, मैं इस बारे में अपनी यह सम्मति प्रकट करता हूं कि उक्त चार बातें जो निश्चित हो चुकी हैं, मैं उनका कदापि उल्लंघन नहीं कर सकता । स्वीकार करके फिर उनसे फिर जावें तो उसका कुछ उपाय दिखलाई नहीं देता । मैं अपनी ओर से निश्चित किए हुए नियमों में कोई परिवर्तन उचित नहीं समझता और न ऐसा करने का समर्थन करता हूं । यदि आपको नियमों के निश्चित होने में कुछ सन्देह है तो कप्तान साहब आदि से, जिनके सामने इन बातों का निर्णय हुआ था पूछ लीजिये ।

चारों वेद मान्य हैं—चारों वेदों में से मेरे एक पर विश्वासी होने के विषय में जो आपका कथन है उसके उत्तर में निवेदन है कि न जाने आपने यह बात किस आधार पर लिखी, मेरे कौन से लेख और भाषण से आपने यह जाना कि मैं केवल एक ही वेद को मानता हूं । हे महाशय ! इस विषय में मेरा यह विश्वास है कि चारों वेदों में से एक वाक्य भी ऐसा नहीं जिसको मैं न मानता हूं । फिर वेद के भाष्यों के विषय में जो आप कहते हैं सो स्पष्ट वर्णन नहीं कि किन भाष्यों से अभिप्राय है । उर्दू, फारसी और अरबी में तो निश्चय है कि अभी वेद का भाष्य नहीं हुआ परन्तु अंग्रेजी में किन्हीं-किन्हीं अंशों का अनुवाद हुआ है । मुझे इन अंग्रेजी अनुवादकों की योग्यता के विषय में बड़ी-बड़ी शंकाएं हैं । हम उनकी इतनी विद्यासम्बन्धी और धार्मिक योग्यता को स्वीकार नहीं करते और यही कारण है कि यह अंग्रेजी के कुछ संक्षिप्त से अनुवाद प्राचीन भाष्यों के कहीं अनुकूल नहीं होते । समाप्ति पर निवेदन है कि चार निश्चित किये हुए नियमों के अतिरिक्त जो-जो नियम आप अपने मत में उचित समझते हैं, लिखने की कृपा कीजिये । मैं अपनी सम्मति उनके विषय में बहुत शीघ्र भेजूंगा । अधिक प्रणाम । १३ अगस्त, सन् १८७८ ।

मौलवी साहब का पत्र—हिन्दू धर्म के नेता पंडित दयानन्द सरस्वती जी, ईश्वर हमको, आपको और सबको सत्यमार्ग दिखावे । इस समय प्रातःकाल के पत्र का उत्तर पहुंचा । जी तो चाहता था कि जब दूसरे पत्र का भी उत्तर आ लेता तभी उत्तर लिखता, परन्तु पत्रवाहक शीघ्रता करता है इसलिए यह निवेदन है कि आपकी और मेरी यह पहली भेंट नहीं है, गत वर्ष मेरा बोलने का ढंग आप देख चुके हैं । उसको बदलने में चित्त का बहाव नहीं रहेगा और इससे शीघ्रता की शक्ति नहीं । इस अवस्था में आपसे हो सके तो लिख भेजिएगा और न हो सके तो आप जानें । परन्तु यह आपत्ति कि जब तक यह नियम स्वीकार न किया जावे मैं शास्त्रार्थ को उचित नहीं समझता, पर्दे में शास्त्रार्थ से इन्कार है । इससे अच्छा यह है कि आप स्पष्ट ही इन्कार करें और किसी का समय नष्ट न करें । हजारों शास्त्रार्थ हुए, हजारों विचार-सभाएं हुईं, किसी ने यह

नियम न रखा था, आपको यह नियम सूझा। कारण इसका इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं कि आप शास्त्रार्थ से बचना चाहते हैं। पूर्व पत्र के उत्तर की प्रतीक्षा के अतिरिक्त और अधिक क्या निवेदन करूं।

—हस्ताक्षर मुहम्मद कासिम।

(इस पर यद्यपि तिथि नहीं परन्तु १३ अगस्त की तिथि प्रतीत होती है)।

हिन्दू धर्म के नेता स्वामी दयानन्द सरस्वती जी, ईश्वर हमको और सबको सत्यमार्ग दिखावे। कल एक पत्र आपकी सेवा में आपके कृपापत्र के उत्तर में भेज चुका हूं। आज यह पत्र दो कारणों से लिखना उचित प्रतीत हुआ। प्रथम तो परसों जिस समय आपका कृपापत्र पहुंचा, कुछ मित्रों के पधारने के कारण उस समय उसके अध्ययन का अवकाश न मिला; थोड़ी देर में शाम हो गई। उस समय सूक्ष्म अक्षरों के पढ़ने में कठिनता प्रतीत हुई। प्रातःकाल उसको तनिक देखकर उसका उत्तर लिखा और उसकी प्रतिलिपि कराकर उसी समय आपकी सेवा में भेज दिया। चूंकि शीघ्रता में लिखा था इसलिए पत्र लिखते समय समस्त विषय स्मरण न रहे, जो रात्रि को उत्तर लिखता। और विषय तो विशेष विचारणीय न थे फिर विज्ञापन की शिकायत के कारण बताना भेंट के विचार से आवश्यक था इसलिए कारण बताने में विलम्ब होने का बहाना करके निवेदन करता हूं कि उक्त विज्ञापन के लटकवाने और चिपकवाने से कुछ अपनी प्रसिद्धि और आपकी बदनामी (अपकीर्ति) अभीष्ट न थी। केवल इस बात का इतना अभीष्ट था कि विचार और शास्त्रार्थ की मांग हमारी ओर से आरम्भ नहीं हुई। मेरे देवबन्द से यहां तक आने और आपके उस ओर न जाने से कोई यह न समझे कि आरम्भ इस दास की ओर से है परन्तु यह बात सारी गाथा का विस्तार किये बिना विचारणीय न थी। इसके अतिरिक्त मजहबी अनुराग के अनुरोध से प्रत्येक को अपने मजहब की सफाई अभीष्ट होती है और अपने मजहब की पवित्रता का प्रत्येक को अपने मजहब की सफाई अभीष्ट होती है और अपने मजहब की पवित्रता का प्रत्येक को ध्यान रहता है परन्तु यह बात बिना इसके नहीं हो सकती कि प्रसिद्ध कहावत के अनुसार—**"आं[1] रा कि हिसाब पाक अस्त अज मुहासिबा च बाक"**।

दूसरों के आक्षेपों को सुनकर निर्भीकता से अपने मजहब की सत्यता प्रकट करने के लिए आ उपस्थित हुआ और प्रत्येक को मौखिक रूप से और यदि आवश्यकता हो तो लेख द्वारा अपने उद्यत होने की सूचना दे दी। आपने कुछ और समझ कर मित्रतापूर्ण शिकायत की और मुझको ऐसा लज्जित किया कि क्या कहिये और इस शिकायत द्वारा इस कारण से कि शिकायत बिना कृपा के नहीं होती, अपना आभारी बना लिया। इसलिए यह शिकायत मेरी दृष्टि में कृपा के समान है। और क्या निवेदन करूं, सारांश यह कि अपनी बड़ाई और आपकी मानहानि अभीष्ट न थी। चाहे आप नम्रता के कारण अपने आपको उतना न समझें जितना हम समझते हैं परन्तु मेरे विचार में आप अपने समय में अपने मजहब में अद्वितीय हैं। मुंशी कन्हैयालाल साहब आदि भी कदाचित् हों तो उतने ही हों। हां, मुंशी इन्द्रमणि के विषय में आप कुछ न कहें। अपरिचित होने के कारण मुंशी कन्हैयालाल के सम्बन्ध में तो मैं कुछ नहीं कह सकता परन्तु मुंशी इन्द्रमणि को तो आप रहने ही दें। दो बातें तो आप मुझसे सुन लीजिए। गतवर्ष जब संस्कृत शब्दों की अधिकता के कारण मैं आपके भाषण को न समझा तो **'सौते अल्लाहुलजब्बार'** के लेखक मौलवी मुहम्मद अली साहब को कष्ट देने से पूर्व मुंशी इन्द्रमणि से मैंने कहा कि आप पंडित जी के भाषण का अनुवाद ही कर दें। उन्होंने धीरे से यह उत्तर दिया कि सच तो यह है कि मुझे कभी व्याख्यान देने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ, जो लोग यह काम करते रहते हैं उन्हीं से यह काम हो सकता है। दूसरी बात यह है कि प्रथम तो प्रातःकाल की सभा में मेरे निश्चय के विषय में आपको दो बार यह कहने का अवसर प्राप्त हुआ कि क्या कहिये, समय हो लिया, यदि समय शेष रहता तो मौलवी साहब की बात का भी उत्तर दिया जाता परन्तु ११ बजे के लगभग अर्थात्

---

1. अर्थात् जिसका हिसाब साफ है उसको हिसाब लेने वाले से क्या भय?—अनुवादक

अन्तिम सभा में कदाचित् इस दृष्टि से कि अब सभा विसर्जित हो जायेगी और मुसलमानों को उत्तर का अवसर न मिलेगा। आपने मेरे उस विषय के सम्बन्ध में जिसमें मैंने यह सिद्ध किया था कि जगत् का उपादान कारण ऐसा सत्तावान और विस्तृत है कि ईश्वर की सत्ता से ऐसा सम्बन्ध रखता है जैसे किरणें सूर्य के साथ, यह कहा कि यदि मौलवी साहब का कथन ठीक हो तो इस दृष्टि से कि बुराई भी संसार में है, ईश्वर पर बुराई भी लागू होगी और उसके पश्चात् मैं भाषण के स्थान पर पहुंचा तो पादरी लोगों ने न माना और यह कहा कि सभा का समय हो चुका और उस समय मैंने आपसे निवेदन किया कि पंडित जी ! बातचीत तो अब हमारे और आपके मध्य है, आप तनिक ठहर जाइये तो आपने भी यह कहा कि मुझसे भी ठहरा नहीं जाता; भोजन का समय आ गया है । यहां तक कि अपनी स्मृति के अनुसार मैंने आपका हाथ तक पकड़ा परन्तु आप हाथ छुड़ा कर चल दिये । जब आपकी ओर से भी उपेक्षा ही देखी तो फिर मैं मुंशी इन्द्रमणि की सेवा में पहुंचा और यह निवेदन किया कि पंडित जी तो नहीं सुनते, आप ही सुनते जाएं । उनको कुछ बहाना करने का अवसर समझ में न आया, विवश होकर सुनना पड़ा । मैंने निवेदन किया, इस आक्षेप का उत्तर तो मैं अपने भाषण व अपनी व्याख्या के समय भाग्य के हस्तक्षेप का निषेध करने के रूप में उदाहरण देकर दे चुका हूं, उसको समझ लीजिये । तो फिर इस आक्षेप का अवसर ही नहीं रहता । फिर जब पंडित जी ने उस पर कुछ ध्यान न दिया तो मुझको पुन: विस्तारपूर्वक निवेदन करना पड़ा । सारांश यह कि उस समय वह विषय निवेदन किया जिसका आधार इस बात पर था कि कर्ता और कर्म की दृष्टि से कर्ता का प्रभाव तो कर्म की ओर आता है परन्तु कर्म का प्रभाव कर्ता की ओर नहीं जाता । उस पर मुंशी साहब ने कहा तो यह कहा कि कदाचित् पंडित जी इस पर कुछ और आक्षेप करें । मैंने उनको उभारने को यहां तक कहा कि ईश्वर ने चाहा तो पंडित जी से प्रलयकाल तक भी इसका उत्तर न आयेगा; परन्तु फिर भी वे कुछ न बोले और उठकर चल दिये । यदि वह भी गुणवानों में होते और आपका विचार उनके विषय में ठीक होता तो और कुछ नहीं तो उक्त अवसर पर तो बोलते । यही कारण जान पड़ता है कि यद्यपि उनका नाम भी शास्त्रार्थकर्ताओं में था परन्तु दोनों दिन आरम्भ से अन्त तक कुछ न बोले । इस दृष्टि से क्योंकर कह दीजिये कि वह तो गुणवानों में से है और आप इस सारे साहस के होते हुए उनसे कम हैं परन्तु आपको इन बातों की सूचना क्यों मिली होगी जिससे मुंशी इन्द्रमणि के विषय में आपके विश्वास में कुछ कमी आती । परन्तु मेरी दृष्टि में उनको बुलाना व्यर्थ है । मैं तो ऐसा समझता हूं कि यदि मुंशी साहब को यह सन्देह भी होगा कि कदाचित् मुझको बोलना पड़े तो इस ओर आने का विचार भी करेंगे । दूसरा कारण पत्र लिखने का यह है कि आपको सार्वजनिक भीड़ के होने और इसी प्रकार सभा के समीप नहर होने के कारण कदाचित् कुछ झिझक हो, परन्तु अभी तक आपकी उन युक्तियों पर दृष्टि नहीं, इसलिए शीघ्रता में कुछ कारण लिखकर निवेदन करता हूं, इसके पश्चात् कुछ और समझ में आयेगा तो पुन: निवेदन करूंगा । अब आपकी सत्यप्रियता से मुझको यह आशा है कि विदित अनुरोध के होते हुए स्वभाव के विरुद्ध आप भी सार्वजनिक सभा के पक्ष में ही सम्मति देंगे और कुछ विचार न करेंगे और यद्यपि आप बातचीत से इन्कार कर चुके हैं, जैसा कि आज के पत्र से विदित होता है परन्तु फिर भी इच्छा अथवा अनिच्छा से बातचीत पर उद्यत हो जायेंगे । हे महाशय ! आपके प्रेमियों को अपने वंचित रह जाने का अत्यन्त दु:ख है, परमेश्वर के लिए अब तो आप मान ही लीजिये । चारों वेदों की स्वीकृति से हमको अत्यन्त प्रसन्नता हुई, परन्तु इस बात का दु:ख है कि आप उन वचनों को भूल गये जो कप्तान स्टुअर्ट साहब के सामने कुछ मनुष्यों के समूह में आपने कहे थे । अत्यन्त खेद है कि आप अपने वचनों से फिर जाने पर भी लज्जित नहीं होते और हमको यह कहते हैं कि प्रतिज्ञा करके नहीं फिरा करते । आश्चर्य की बात है, क्या कहिये ? ईश्वर जाने इसमें कुछ भेद होगा । कदाचित् आपको स्मरण न रहा हो, आप अपने उन दो शिष्यो से ही पूछ लें जो उस समय साथ थे, उनको स्मरण होगा अन्यथा कप्तान साहब से पूछकर देखें । इन सबसे बढ़कर यह है कि कर्नल साहब को भी आप निर्णय का साक्षी बताते हैं । हे महाशय ! उनके सामने तो हमारी आपकी कुछ बातचीत नहीं हुई परन्तु ईश्वर करे आप इसी पर दृढ़ रहें । सभ्यता के अभाव की

शिकायत आपको करनी शोभा नहीं देती, प्रथम तो मेरे लेख में कोई वाक्य सभ्यता से रहित न था, दूसरे आपने यह न देखा कि आरम्भ किसने किया—**"जरा[1] इन्साफ तो कीजे निकाला किसने शर पहले"**। जिस वाक्य को आपने सभ्यता-विरुद्ध समझा, उसका अर्थ आप कुछ और समझ गये हैं। उसका यह अर्थ नहीं है जो आप समझते हैं। अधिक क्या निवेदन करूं, आपसे शास्त्रार्थ की आशा ही रही।

हस्ताक्षर मुहम्मद कासिम। १३ अगस्त, सन् १८७८।

पुन: निवेदन यह है कि आज आपने और भी उन्नति की। कल के कृपापत्र में जो तीन ही नियम निश्चित हुए बताये थे आज चौथा नियम भी निश्चित हो गया, बता दिया। इस अनुमान से ऐसा प्रतीत होता है कि स्वीकृत किये हुए दिन तक बिना निश्चित किये हुए ही सब नियम निश्चित हो जायेंगे। इतना सत्य बोलने पर भी यह आप ही का साहस है कि हमको झूठा बनाते हैं। महाराज! कर्नल साहब आपके गवाह हो गये, कप्तान साहब को आपने साक्षी बना लिया, हमारे लिए आपने किस को छोड़ा? हे महाशय! यहां से कर्नल साहब दूर नहीं हैं, कप्तान साहब की चिट्ठी विद्यमान है। वे मुंशी अहसानुल्ला साहब को लिखते हैं कि उक्त बातों में परस्पर सहमत होकर और निर्णय करके हमको सूचना दो ताकि हम उस सम्मति में सम्मिलित हों या और कुछ सम्मति दें। यदि उनकी दृष्टि में निर्णय हो चुका था तो यों कहो कि कप्तान साहब को भी आपने झूठा सिद्ध कर दिया। इन्हीं बातों को आप युक्तियुक्त समझते हैं जिनके भरोसे आप यह कहते हैं कि युक्तियुक्त बात का उत्तर नहीं मिलता। हे महाशय! यदि आप कप्तान साहब पर भरोसा रखते हैं तो वही हमारे निर्णायक रहें; जो वे निश्चय कर दें और जो उनकी सम्मति हो वही हमको स्वीकार है और उन्हीं से यह भी पूछ लिया जाये कि वेद के विषय में आपने क्या कहा था और अब क्या कहते हैं। और हमने माना निर्णय हो गया था परन्तु हम यदि अपने लाभ की कहें तो आप न मानें। आप बताइये जन साधारण के मध्य और खुले मैदान में शास्त्रार्थ करने से हमारा क्या लाभ है? यदि लाभ है तो सार्वजनिक लाभ है और आपके साहस और विद्या का प्रकाश है। फिर यदि हम प्रतिज्ञा कर लेने के पश्चात् आपसे यह निवेदन करें कि आप पूर्व की अपेक्षा और कृपा करें और संख्या को सीमित न करें तो आपको क्यों अस्वीकार है? हां, यदि इस प्रकार का खंडन निषिद्ध हो तो ऐसे भी सही। आप न्याय से कहिये कि यह बात कौन से वेद के अनुसार निषिद्ध हैं? शेष यही यह बात कि आप जो लिखते हैं कि मुझ को तेरे एक-एक शब्द पर आक्षेप है तो वास्तव में यह पूर्ण न्याय का वाक्य है और उच्च श्रेणी की सच्चाई है और क्यों न हो विद्वानों में ही यह गुण होता है कि किसी की ठीक बात को भी और शब्द-शब्द को मिथ्या सिद्ध कर दें परन्तु मुझको उन आक्षेपों के जानने की अभिलाषा ही रही। क्या कहिये आपके इस संक्षिप्त लिखने से यह दु:ख उठाना पड़ा अन्यथा आप निस्सन्देह लिख ही देते? पंडित जी! मैं इससे बढ़कर और अन्य कोई पद नहीं देखता जो उत्तर में लिखूं। इसके अतिरिक्त और क्या लिखूं कि आपका तो शब्द-शब्द शुद्ध और अशुद्ध बातें, सभी ठीक हैं; स्वयं यही कह सकता हूं और क्या कहूं? श्रीमान् पंडित जी? यदि करार इसी का नाम है तो यों कहो कि कल को आप उन धनवानों को भी भिक्षुकों पर धन व्यय करने का निषेध करेंगे कि जिन्होंने यह प्रण कर रखा हो कि रुपया दो रुपया भिक्षुकों को बांट दिया करेंगे। यह सब होते हुए यदि कुछ दोष आ गया तो हमारी ओर से आया, आपकी क्या हानि? परन्तु इसमें भी हानि है या नहीं कि कहीं कुछ कह दिया और कही कुछ; कप्तान साहब के बंगले में गये तो तीन वेदों को अस्वीकार कर दिया और शिष्यों को थामने का समय आया तो चारों को सिर और आंखों पर रखा। कानपुर के विज्ञापन में इक्कीस शास्त्रों पर आस्था प्रकट की, और कहीं और पहुंचे तो केवल चार वेदों पर सन्तोष कर लिया। कभी सारे भाग स्वीकरणीय और कभी ब्राह्मण भाग की अस्वीकृति और मन्त्रभाग की स्वीकृति; परन्तु आश्चर्य

1. अर्थात् तनिक न्याय तो कीजिए कि किसने पहले शरारत आरम्भ की।—अनुवाद

तो इस बात पर है कि पूर्वकाल में तो आप विश्वास बदलने का भी सामर्थ्य रखते थे और अब दो-सौ मनुष्यों से अधिक संख्या बढ़ाने की भी शक्ति नहीं ? पंडित जी ! विश्वास तो एक बाहरी आज्ञा के आधीन होता है अर्थात् किसी समाचारदाता का समाचार होता है और प्रकट है कि बाहरी आज्ञा वास्तव में किसी के अधिकार में नहीं । वास्तविक को कोई अवास्तविक नहीं बना सकता, अवास्तविक को वास्तविक नहीं कर सकता । यदि उन विश्वासों के बदलने में, जिनका संकेत किया गया, आप इस कारण से समर्थ हैं कि बाहरी आज्ञाओं के बलदने की आप में उपर्युक्त रूप से सामर्थ्य है तो प्रतिज्ञा को भूलने और दास की प्रार्थना को स्वीकार करने की सामर्थ्य आपको क्यों नहीं और यदि बदलने का कारण यह है कि अपनी भूल प्रकट होगी, तो बताइये कि आपकी सम्मति के ठीक होने में क्या युक्ति है ? शेष रही मेरी सम्मति, उसकी प्रथम सत्यता तो आपको कप्तान साहब की कोठी पर उस समय विदित हो गई थी जब आप दास के निवेदन किये हुए कारणों का खंडन न कर सके और जो कुछ सन्देह होगा तो वह ईश्वर की कृपा से अब दूर हो जायेगा । यह तो मैं जानता हूं कि यथासामर्थ्य आप बातचीत न करेंगे और जिस प्रकार हो सकेगा, टलायेंगे । परन्तु मैं अपनी उत्सुकता को क्या करूं, इसलिए आपके इस गुप्त रूप में इन्कार करने पर भी मैं प्रकट रूप में अनुरोध किये जाता हूं । पंडित जी ! यदि मान लो कि मैं प्रतिज्ञा से फिरता हूं तो आप न्याय के अनुसार शास्त्रार्थ से इन्कार करते हैं । श्रीमान् जी ! प्रतिज्ञा इसको कहते हैं कि ऐसे विषयों में जिनमें दोनों पक्षों को लाभ-हानि की आशंका हो जैसे क्रय-विक्रय और राजाओं की प्रतिज्ञाएं कि परस्पर किसी बात पर सहमत हो जायें, उससे फिरना बुरा है । यहां किसका लाभ और किसकी हानि है । ये प्रतिज्ञा हानि को बुरा समझते हैं और प्रतिज्ञा से नहीं फिरते । आप औरों से तो परामर्श कीजिये, यदि बुद्धिमान् होंगे तो यही कहेंगे कि यदि दूसरी बात में अधिक गुण दिखाई दें तो फिर पहली बात पर अड़ जाना और हठ किये जाना बुद्धिमानों की प्रथा नहीं, औरों की प्रथा है । इसलिए बालहठ और त्रियाहठ किसी को अच्छी नहीं लगती । अब निवेदन यह है कि आप जिस प्रकार बन पड़े, मैदान और सार्वजनिक सभा को स्वीकार कीजिये । हमारी प्रार्थनाओं पर दृष्टिपात कीजिये । यह भी नहीं तो संसार की इच्छा पर विचार कीजिये । इसकी भी परवाह नहीं तो मेरे वर्तमान युक्तियुक्त निवेदन का ही अनुकरण कीजिये । यह भी नहीं हो सकता तो परमेश्वर ही के लिए सत्य की घोषणा पर कमर बांधिये । उससे भी सम्बन्ध नहीं तो अपना और अपने शिष्यों का मान तो संभालिये । यह भी स्वीकार नहीं तो यही कह दीजिये कि मुझमें साहस नहीं, हम अपना-सा मुंह लेकर चले जायेंगे । अब निवेदन यह है कि आपको पचास से दो-सौ तक आना तो स्मरण रहा परन्तु यह स्मरण न रहा कि हम पुन: यह निवेदन कर चुके थे कि इस नियम को स्थगित रखिये । क्या स्थगित रखने का अर्थ यह नहीं कि इस पर फिर विचार किया जावेगा । हां, कदाचित् आप यह कहने लगें कि स्थगित रखने को पहले कहा था परन्तु इसका क्या उत्तर दीजियेगा कि हमने उठते समय यह कहा था कि यदि आप दो-सौ से अधिक नहीं बढ़ते तो इतना तो करो कि इनके अतिरिक्त, जिनकी हम जमानत दें, वे आ जायें परन्तु आपने उस समय भी इस वाक्य के अनुसार कि "यह संसार एक ओर, और मैं अकेला एक ओर"-न माना परन्तु मेरे सहमत होने के लिए भी तो युक्ति चाहिये । यदि आप ईश्वर को साक्षी करके यह कहें कि तू सहमत हो गया था तो यों ही सही । वेदों के भाष्यों के विषय में आपकी खोज तो नई ही निकली । अकबर बादशाह और दाराशिकोह के समय के भाष्यों को पहले संसार से नष्ट कर देना था, फिर यह वाक्य कहना था । यों तो ये बातें शोभा नहीं देतीं । उत्तर शीघ्र प्रदान कीजिये, दिन थोड़े रह गये हैं । आने वालों के सन्देश चले आते हैं । आपके हिस्से की लज्जा भी हमें उठानी पड़ती है । यदि आप थोड़ा सा दान करें तो सबका मन बहल जाये ।

१४ अगस्त, सन् १८७८ । मुहम्मद कासिम

स्वामी जी का प्रत्युत्तर—इस्लाम मत के नेता मौलवी मुहम्मद कासिम साहब, परमेश्वर हमारा, आपका और सबका पथप्रदर्शन करे । मेरे १३ अगस्त तथा गत रविवार के भेजे हुए पत्रों के उत्तर में आपका भेजा हुआ कृपापत्र कल प्राप्त हुआ ।

आपके कृपापत्र के आरम्भ के विषय में मैं अपनी ओर से प्रबन्ध की आवश्यकता समझता हूं; विशेषतया इस कारण से कि आपने विज्ञापन की शिकायत को भेंट की दृष्टि से कुछ और ही समझा और यद्यपि विज्ञापन की भाषा से दो बातें भली-भांति प्रकट हैं, जिन पर शिकायत का आधार था परन्तु इस अवस्था में आप बड़ी कृपा करके अपने कृपापत्र में अपना उद्देश्य कुछ और ही लिखते हैं तो मेरी सम्मति में लिखित भाषा में शाब्दिक दोषों के होते हुए भी उन शिकायतों का स्मरण रखना कदापि उचित प्रतीत नहीं होता और यद्यपि मैं जानता हूं कि विचार और शास्त्रार्थ की मांग प्रथम मेरी ओर से न थी परन्तु किसी मत को विशेषता दिये बिना सत्य का प्रकाश करने के अतिरिक्त मेरा अभिप्राय कुछ और न था परन्तु तो भी अब आपके इस प्रेम भरे लेख का खंडन इस विचार से कि उसमें अर्थसंगति नहीं, इस स्थान पर अच्छा नहीं समझता। आप फिर अपने कृपापत्र में अपनी योग्यता के कारण मेरा वैसा ही सम्मान करते हैं जैसे आप अपनी सम्मति साहब के सामने पहले भी प्रकाशित कर चुके थे। परन्तु मैं चूंकि मुंशी कन्हैयालाल, मुंशी इन्द्रमणि और अन्य सज्जनों को, जिनसे आप परिचित नहीं प्रतीत होते, अपनी अपेक्षा इस्लाम सम्बन्धी विषयों में कई गुना अधिक पाता हूं।[7] इसलिए आपके इस शब्दरचनायुक्त स्तुति के ढंग से, जिसके कि मैं योग्य नहीं, केवल लज्जित होता हूं।

मुंशी इन्द्रमणि की योग्यता—परन्तु अत्यन्त खेद है कि मुंशी इन्द्रमणि साहब के विषय में आप जो लिखते हैं वह कदापि स्वीकरणीय नहीं हो सकता। जो दो कारण आप अपनी बात की सिद्धि के लिए उपस्थित करते हैं उनके ठीक होने की साक्षी आपके लेख में कभी नहीं पाई जाती। प्रथम तो यह कि मुंशी इन्द्रमणि साहब उस अवसर पर मुझसे कभी पृथक् नहीं हुए परन्तु जिन विषयों में आप उनसे बातचीत का होना वर्णन करते हैं, उनके सम्बन्ध में शास्त्रार्थ आरम्भ होने से पहले आप कुछ सज्जनों ने उनसे यह प्रार्थना की कि मुंशी साहब! यदि आप थोड़ी सी देर के लिए जनता से पृथक् होकर इधर आवें तो आपसे एकान्त में एक बात निश्चित की जावे। मुंशी साहब ने इस बात को स्वीकार किया और पादरी नवल साहब[8] के डेरे के समीप आपके साथ चले गये। एकान्त में आप लोगों ने मुंशी साहब से कहा कि श्रीमान् जी! हमारी आप की पुस्तकीय वार्ता तो चिरकाल से चली आती है और इसी प्रकार चलती रहेगी। हमारा आपका कोई नया शास्त्रार्थ नहीं। इस अवसर पर हमारी सम्मति यही है कि आप मौन बैठे रहें तो अच्छा है, औरों से बातचीत होती रहेगी। मुंशी साहब ने उत्तर में कहा कि जैसा सभा में उचित होगा, आपकी आज्ञा का पालन करूंगा अन्यथा उचित समय पर आवश्यकतानुसार मौन कठिनता से धारण किया जा सकता है। हां, यदि आपकी इस प्रार्थना और मुंशी इन्द्रमणि साहब[9] के इस उत्तर से उनकी योग्यता के विषय में आपने ऐसी मति स्थिर की हो तो वास्तव में प्रत्येक बुद्धिमान् के लिए स्वीकार करने योग्य है।

वाह रे आपकी सत्यवादिता!—दूसरे इस सत्यवादिता की उच्चता का तो अन्त ही नहीं पाया जाता कि 'आपने मुझसे शास्त्रार्थ के एक विषय में बातचीत करनी चाही और मैंने भोजन का बहाना उपस्थित किया, यहां तक कि आपने मेरा हाथ तक भी पकड़ लिया परन्तु मैं बलपूर्वक हाथ छुड़ा कर चल ही दिया।' हे महाशय! मुंशी प्यारेलाल साहब और अन्य कुछ सज्जन जो सभा में सम्मिलित थे, वे बहुत दूर नहीं हैं; उनको लिखिये और अपने कथन की सत्यता की साक्षी मंगा लीजिये। फिर यदि इन बातों की सत्यता में अनुचित इन्कार होगा तो उसके लिए भी कदापि स्थान न रहेगा। फिर आपका यह कहना कि यद्यपि मुंशी जी का नाम शास्त्रार्थकर्त्ता में था परन्तु वे दोनों दिन आदि से अन्त तक कुछ न बोले, मुझे विश्वास नहीं होता कि इस स्थान पर आपके लेख से यह अभिप्राय है। चूंकि मुंशी साहब को दो दिन तक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं हुई तो यह मुंशी साहब की अयोग्यता का प्रमाण हुआ, यदि आपका वास्तव में यही अभिप्राय है तो सैयद अबुलमन्सूर साहब की योग्यता को भी आप अवश्य अस्वीकार करेंगे क्योंकि सैयद साहब ने भी दो दिन तक आदि से अन्त तक कोई बातचीत नहीं की। फिर आपका यह विचार कि मुंशी साहब का बुलाना व्यर्थ है, आप सन्तोष रखिये, मैं मुंशी साहब को नहीं बुलाता। मैं आपके इन शिक्षाप्रद वचनों का अभिप्राय भली भांति समझता हूं। मुंशी साहब तो शास्त्रार्थ की चर्चा सुनकर

इस ओर पधारने का विचार करेंगे या न करेंगे, मैं भलीभांति जानता हूं। परन्तु उनके यहां पधारने से वास्तव में मुझे एक भय है, वह यह कि मुंशी साहब की अनुपस्थिति में जिन्होंने यहां शास्त्रार्थ के लिए पधारने का विचार किया है; कहीं वे अपने विचार को झूठा विचार न समझ लें और फिर इस समझ का परिणाम भी कुछ और हो।

चारों वेदों की मान्यता कभी अस्वीकृत नहीं की—अस्तु, अब इस अभिप्राय को समाप्त करता हूं और पुन: इस पत्र में निवेदन करता हूं कि मैंने कभी चारों वेदों के मानने से इन्कार नहीं किया अर्थात् ऐसा कभी नहीं हुआ कि मैंने केवल एक वेद को स्वीकार किया हो और शेष को नहीं। मुझे आपकी योग्यता पर कदापि यह सन्देह नहीं होता कि पवित्र वेद के विषय में मैंने जो अपना विश्वास प्रकट किया था, उसके अर्थ आपने वास्तविकता के विरुद्ध समझे हों। यह तो बड़े ही आश्चर्य की बात प्रतीत होती है कि कप्तान साहब, जो इस देश के भाषाभाषी नहीं, वे तो मेरे संक्षिप्त से वर्णन से वास्तविक अभिप्राय समझ जायें और आप जो केवल यही नहीं कि पश्चिमी उत्तरी प्रदेश के रहने वाले हैं प्रत्युत इन जिलों के विशेष व्यक्तियों में से हैं, वास्तविक अभिप्राय को छोड़कर कुछ और ही अर्थ कल्पित कर लें। उस समय जो मैंने अपनी बातचीत में शब्द प्रयोग किये थे, वे लगभग इस प्रकार थे—**"मैं केवल एक कुरआन पर ही आक्षेप करूंगा और आप भी केवल एक वेद पर कीजिये।"** इस वाक्य में **जो 'एक' शब्द दो स्थानों पर आया है, उससे संख्या का प्रकट करना अभीष्ट नहीं है; प्रत्युतत 'एक' शब्द केवल के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।** यही कारण था कि इस वाक्य को प्रकट करते समय 'एक' शब्द के उक्त अर्थ ग्रहण करने के लिए इस शब्द पर और विशेषतया उसके बीच के अक्षर पर अन्य शब्दों की अपेक्षा न्यून बल दिया गया था। परसों कप्तान साहब से जो मैंने इस सम्बन्ध में बातचीत की तो वे खेद प्रकट करने लगे कि मौलवी साहब ने इस साधारण वाक्य के अर्थ ऐसे प्रकरणविरुद्ध समझ लिये।

कर्नल साहब की साक्षी—फिर आप मुझसे इस बात की शिकायत करते हैं कि मैंने कर्नल साहब को अपना निर्णय का गवाह बताया, मैं अब भी कर्नल साहब को गवाह घोषित करता हूं। कप्तान साहब से जब मैंने इस शिकायत की चर्चा की तो वे कहने लगे कि निस्सन्देह कर्नल साहब निर्णय के साक्षी हैं। यदि आपको इस बारे में कुछ सन्देह हो तो तत्काल कप्तान साहब और कर्नल साहब से मेरे इस पत्र का उद्धरण देकर पूछ लीजिये। इससे आपको यह भी विदित होगा कि मैंने आपके कथनानुसार कप्तान साहब को झूठा सिद्ध कर दिया या आपने उन दोनों सज्जनों को झूठा सिद्ध किया। आप कहते हैं कि मुझे सभ्यता के अभाव की शिकायत करना शोभा नहीं देता और इसमें प्रमाण इस वचन का देते हैं—**"जरा इन्साफ तो कीजे निकाला किसने शर पहले"** स्वीकार है, मैं इस प्रमाण को पर्याप्त समझता हूं। इस विषय के सम्बन्ध में मेरा प्रथम लेख और अपना विज्ञापन भी पढ़िये और न्याय कीजिये। शेष रहा आपका यह वाक्य कि जिस वाक्य को आपने सभ्यता-विरुद्ध समझा; हे महाशय ! अर्थ इन शब्दों से वही लिये जायेंगे जो इन शब्दों के लिए नियत हैं। हां, यदि आप कहना कुछ और चाहें और कहें कुछ और अर्थात् अभिप्राय कुछ हो और प्रकट उसके विरुद्ध किया जावे तो ऐसे लेख और कथन का अर्थ वही समझ सकता है, जिसे आपने पहले समझा दिया हो कि मैं कहूंगा तो यों परन्तु तुम उस कथन का यह दूसरा अर्थ समझना। परन्तु धन्यवाद है कि आपने अपने कल के लेख में अन्तत: एक सभा पर सभ्यता-विरुद्ध होने का सन्देह तो किया परन्तु प्रत्येक सभ्य मनुष्य की दृष्टि में एक क्या कितने ही वाक्य इस गुण से प्रत्युत यों कहना चाहिए कि इस दोष से युक्त हैं। फिर आपका यह कथन कि आज आपने और नई उन्नति की, कल के कृपापत्र में तो तीन ही नियम थे इत्यादि। श्रीमान् मौलवी साहब ! न्याय को हाथ से न जाने दीजिये, तनिक अभिप्राय की ओर भी तो आकृष्ट हूजिये। पूर्वपत्र में तीन निर्णीत नियमों की चर्चा की गई और इससे पीछे के पत्र में आवश्यकतानुसार ४ निश्चित की हुई बातों की चर्चा आई। न पहले पत्र में यों लिखा था कि केवल तीन ही नियम निश्चित हुए हैं, न दूसरे में वर्णन है कि केवल चार नियमों का निर्णय है और यह निर्णय की समाप्ति है। पहले पत्र में निश्चित किये हुए नियमों में से केवल तीने की चर्चा की आवश्यकता हुई थी, उससे पीछे के पत्र में चौथा निश्चित किया हुआ नियम भी लेखबद्ध हुआ। कारण यह हुआ कि प्रथम पत्र के उत्तर

में आपका पत्र आया उसमें आपने चौथे नियम से इन्कार प्रकट किया । इन चार नियमों के अतिरिक्त और भी कई नियम हैं जो निश्चित हो चुके हैं परन्तु बार-बार आपकी सेवा में उनके प्रकट करने की आवश्यकता उपस्थित न हुई परन्तु यदि आप अब उनमें से किसीसे फिरते हुए दिखाई देंगे या कोई और आवश्यकता का अवसर प्रदान करेंगे तो निस्सन्देह उन नियमों की चर्चा भी भावी पत्रों में की जावेगी । उदाहरणार्थ, आप स्मरण कीजिए कि सबसे प्रथम यह बात निश्चित हुई थी कि शास्त्रार्थ में दोनों ओर से बुद्धिमानों के समान सभ्यतापूर्ण बातचीत करने का ध्यान रहे और कोई किसी के पूर्वजों और नेताओं के सम्बन्ध में कठोर वचनों का प्रयोग न करे । दूसरी यह कि शास्त्रार्थ के समय मेरे और आपके अतिरिक्त और कोई सज्जन न मेरी ओर से और न आपकी ओर से शास्त्रार्थ के सम्बन्ध में बातचीत कर सकेंगे । तीसरी यह कि मैं वेद का उत्तरदायी बनूंगा और केवल कुरआन पर आक्षेप करूंगा और आप उसके विरुद्ध कुरआन के उत्तरदायी और वेद पर आक्षेप करने वाले होंगे । अब आप ही कहिये कि चार पूर्वोक्त नियमों में ये तीन भी निश्चित हो गये हैं या नहीं ? चर्चा तो उनकी अबतक मैंने किसी पत्र में नहीं की । प्रकट है कि चर्चा की आवश्यकता भी उपस्थित नहीं हुई । इसके अतिरिक्त यह आपका आक्षेप केवल उस अवस्था में उचित गिना जा सकता है कि जब यह कहते हैं कि पूर्वपत्रोक्त तीन नियम तो निश्चित हो चुके हैं, इस चौथे का निर्णय अभी नहीं हुआ । न जाने आप इस चौथे का निश्चित होना स्वीकार करते हैं या नहीं ? कप्तान साहब और कर्नल साहब के साक्षी होने की आप फिर चर्चा करते हैं और मैं फिर उसके उत्तर में आपको सूचित करता हूं कि यह बात मैं ही केवल नहीं कहता कि वे निश्चित की हुई बातों के साक्षी हैं प्रत्युत वे स्वयं अपना साक्षी होना स्वीकार करते हैं । हे महाशय ! यहां से ये दोनों सज्जन कुछ दूर नहीं, आप तनिक उनके मकान तक पधारिये या पत्र द्वारा पूछिये और अपने चित्त का सन्तोष कीजिये । फिर उस चिट्ठी की चर्चा करते हैं जो कप्तान साहब ने मुंशी अहसानुल्ला साहब को लिखी थी । मैंने आपका इस चिट्ठी के सम्बन्ध में लेख कप्तान साहब को पढ़कर सुनाया था । कप्तान साहब कहते थे कि लोगों ने मेरे लेख के उलटे अर्थ लगाये और क्या समझे । और कहा कि मैं हूंगा तो मुंशी अहसानुल्ला साहब से कहूंगा कि मेरा यह अभिप्राय न था जो आप समझे, प्रत्युत यह था । कप्तान साहब उस अपने लेख के विषय में यह कहते हैं कि उनके पास मुंशी अहसानुल्ला साहब का एक इस आशय का पर्चा आया कि मौलवी साहब आपसे शास्त्रार्थ सम्बन्धी बातों के विषय में स्वयं बातचीत किया चाहते हैं; रविवार का दिन था । उसके उत्तर में कप्तान साहब ने लिखा कि मुझे अब अवकाश नहीं; मौलवी साहब को चाहिये कि वह और पंडित जी परस्पर जिस विषय में बातचीत की आवश्यकता समझें, करें; पीछे से मैं देख लूंगा । जिस अवस्था में मैं स्वीकार करता हूं कि कप्तान साहब ने यह जो कुछ कहा सच है तो मेरा यह कहना कि विदित नियम उनके सामने निश्चित हो गये थे और वे निर्णय के साक्षी हैं, कदापि कप्तान साहब के कथन के विरुद्ध नहीं हैं । प्रत्युत उनके कथन और मेरे कथन में समानता है । मैं यह कदापि नहीं कहता कि कोई नियम केवल मेरे कहने से स्वीकार करने योग्य माना जाये या कप्तान साहब कहें तो प्रमाणित गिना जावे या किसी और सज्जन की सम्मति पर केवल उसका निर्णय हो, प्रत्युत वास्तविकता यह है कि वे नियम जो मैंने पूर्ण प्रयत्न से निश्चित कराये और जिन पर आप बहुत-सी बातचीत के पश्चात् सहमत हो गये, मेरी सम्मति में अत्यन्त उचित और आवश्यक थे और कप्तान साहब और कर्नल साहब ने भी उन्हें ऐसा ही समझा और उनके निश्चित होने से सन्तुष्ट हुए और अबतक निर्णय के साक्षी हैं । फिर आप यह क्यों लिखते हैं कि हमने माना निर्णय भी हो गया था । हे महाशय ! यदि निर्णय नहीं हुआ था तो कदापि स्वीकार न कीजिये । मैं तो एक ओर, कप्तान साहब और कर्नल साहब जो इस कैम्प में अत्यन्त सम्मानित हैं, उनका तो विश्वास कीजिये ।

फिर आप कहते हैं कि "यदि इस प्रकार का खण्डन निषिद्ध हो तो यूं ही सही, आप न्याय से लिखिये कि ये बात कौन से वेद के अनुसार निषिद्ध हैं" इत्यादि । निस्सन्देह हमारा यह धार्मिक विश्वास है कि जो प्रमाणसिद्ध और उचित न हो, कदापि स्वीकार करने योग्य नहीं हो सकती और यही कारण है कि जो संख्या के नियत करने में इतना प्रयत्नशील होना पड़ा है । कारण नहीं कहता क्योंकि संख्या का नियत होना अत्यन्त उचित और आवश्यक देखता हूं और इसके विपरीत होने में बहुत हानि दिखाई देती है । इस बात का विस्तृत ज्ञान इस पत्र के साथ लगे हुए परिशिष्ट से भली-भांति हो जायेगा

जो उन कारणों के खण्डन में उपस्थित करता हूं जो आपने संख्या को नियत न करने के विषय में प्रमाणस्वरूप पेश किये हैं।

शब्द-शब्द पर आक्षेप—आप मेरे यह लिखने की शिकायत करते हैं कि मुझे आपके शब्द-शब्द पर आक्षेप है। मुझे भय है कि आपने कदाचित् इस स्थान पर भी शब्द-शब्द के ऐसे ही अर्थ लिये होंगे जैसे मेरे वेदों के विश्वास के विषय में उलटे अर्थ समझ लिये थे और अभिप्राय समझने से हाथ धो बैठे थे। इस वाक्य के अर्थ लगाते समय यह भी ध्यान रखिये कि लेख में ऐसे भी स्थान हुआ करते हैं जहां अवास्तविक अर्थों के मानने की भी आवश्यकता हुआ करती है। यह तो उक्त वाक्य की भाषा से भली-भांति प्रकट है कि वास्तविक अर्थ और अवास्तविक अर्थ में सम्बन्ध कैसा दृढ़ है? मैं निस्सन्देह वे समस्त आक्षेप जो मुझे उस सम्पूर्ण लेख पर थे, यहां पर प्रकट कर देता परन्तु चूंकि इस विस्तार से वास्तविक अभिप्राय नष्ट होता प्रतीत हुआ, इसलिए उपेक्षा की। अब आगे आपका यह लेख "कहीं कुछ कह दिया कहीं कुछ" इत्यादि। मनुष्य को चाहिए कि बात को मुख से निकालने से पूर्व सोच ले और शब्दों और लेख को लेखनी से पीछे निकाले। कप्तान साहब के सामने निर्णय और अपने वेदों के विश्वास के विषय में तो मैं विस्तारपूर्वक वर्णन कर चुका। यदि वह वर्णनपत्र आपको यहां तक पढ़ते-पढ़ते चित्त से विस्मृत हो गया हो तो एक बार फिर अध्ययन कर लीजिये।

इक्कीस शास्त्रों की प्रामाणिकता—आप कहते हैं कि कानपुर के विज्ञापन में इक्कीस शास्त्रों पर विश्वास लाये इत्यादि। वाह! समझे तो क्या समझे, तनिक पहले किसी से 'शास्त्र' शब्द के अर्थ पूछ लीजिये और फिर आक्षेप करने पर कमर बांधिये। यदि मैं आपसे आपके इस कथन की सत्यता का प्रमाण मांगू तो बताइये, आप क्या उत्तर देंगे? श्रीमान् जी! मैंने उस शास्त्रार्थ में पवित्र वेद के इक्कीस विभिन्न व्याख्यानों की सत्यता स्वीकार की है और अब भी उनके ठीक होने का स्वीकार करता हूं। आर्यों में शास्त्र केवल छ: हैं।[१०] उनसे और उन व्याख्यानो में कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। ब्राह्मण और मन्त्रभाग-बताइये, मैंने उनसे कहां इन्कार किया? प्रमाणरहित दावे को तो हम मानते नहीं, आप ही इसे कुछ विद्वत्ता का प्रदर्शन समझते होंगे।

विश्वास-परिवर्तन की सामर्थ्य के सम्बन्ध में—"फिर आपका कथन कि पूर्वकाल में तो आप विश्वासपरिवर्तन में भी समर्थ थे, दास के निवेदन पर आपको सामर्थ्य क्यों नहीं इत्यादि।" क्या तमाशा है कि पहले तो आप यों लिखते हैं कि बाहरी बातें वास्तव में किसी के अधिकार में नहीं, वास्तविक को कोई अवास्तविक नहीं बना सकता और अवास्तविक को वास्तविक नहीं कर सकता और फिर आप ही हमारी ओर से वकील बन जाते हैं और कहते हैं कि आप बाहरी बातों के परिवर्तन में पूर्वोक्त रूप से समर्थ हैं। हे महाशय! यदि हमारे विश्वास के विषय में हमसे भी पूछ लेते तो क्या पाप होता? वास्तविकता यह है कि वे धार्मिक सिद्धान्त जो विश्वास का आधार हैं, अपने आप में स्थिर हैं, कदापि उनमें परिवर्तन नहीं हो सकता परन्तु यों कहिये कि जब दो व्यक्ति एक ही धार्मिक विषय का अध्ययन करते हैं और दोनों की विद्या सम्बन्धी योग्यता में अन्तर है, इस कारण एक, एक अर्थ समझता है और दूसरा, दूसरा अर्थ। वास्तव में उनमें से प्रत्येक यह कभी नहीं जानता कि ये अर्थ वास्तविक अर्थों से विरोध उत्पन्न करते हैं क्योंकि यह बात उसकी शक्ति से सर्वथा बाहर है। हां, दूसरे के विषय में वह बुद्धि का दोष मानता है। उदाहरणार्थ, दृष्टिशक्ति के दोष से यदि किसीको वस्तुएं वास्तविक घेर से छोटी दिखाई देने लगें तो वह उसको अपनी दृष्टि का दोष मानता है न कि वस्तु का वास्तव में छोटा होना। दूसरे यह कि मैं यह कभी नहीं कहता कि मैं दो-सौ मनुष्यों से आगे संख्या बढ़ाने की शक्ति नहीं रखता। मैं केवल यह कहता हूं कि जबतक कोई उचित कारण न हो, मैं इस शक्ति का प्रयोग कदापि नहीं समझता। कप्तान साहब के मकान पर इस विषय में कुछ आपने सम्मति प्रकट की थी मैंने उसे भली प्रकार समझा, परन्तु खेद है कि उसके उत्तर में जो कुछ मैंने निवेदन किया

वह या तो आप सर्वथा भूल गये या प्रथम समझे ही न थे । अब साथ लगे हुए परिशिष्ट से मेरे प्रश्न का व्याख्या सहित प्रदर्शन हो जावेगा परन्तु मैं नहीं कह सकता कि आप उचित होने पर भी उसको स्वीकार करेंगे क्योंकि उचित नियमों को स्वीकार करने से बातचीत या शास्त्रार्थ करना ही पड़ेगा और फिर आपके उस प्रयत्न का नाश हो जावेगा जो आप इस अभिप्राय से कर रहे हैं कहीं शास्त्रार्थ तक नौबत न पहुंचे, केवल ऊपरी बातों से ही निर्णय हो जाये । नियमों का स्वीकार न करना ही हमारे शास्त्रार्थ का परिणाम हो, फिर आप नियमों को क्यों मानेंगे ? यह तो भली-भांति विदित है कि यथासामर्थ्य आप बातचीत न करेंगे ।

निश्चित रूप से वचन भंग—इसके पश्चात् आपका यह कहना कि "यदि मान लो मैं प्रतिज्ञा से फिरता हूं तो आप न्याय के अनुसार शास्त्रार्थ से इन्कार करते हैं ।" 'मान लो' का शब्द आपने ठीक नहीं कहा; निश्चित रूप से आप प्रतिज्ञा से फिरते हैं । अब मेरे विषय में जो आप कहते हैं उसके उत्तर में प्रथम तो यह कि मैं शास्त्रार्थ से कब इन्कार करता हूं; हां, शास्त्रार्थ से पूर्व उचित नियमों का निश्चित हो जाना कि जिससे प्रबन्ध का ठीक रखना अभीष्ट है, निस्सन्देह चाहता हूं । आप यह जो कहते हैं कि समझौता उसको कहते हैं जिसमें दोनों पक्षों के लाभ और हानि की आशंका न हो । यहां किसका लाभ और किसकी हानि ? तो यह कहिये कि शास्त्रार्थ के नियमों से सम्बन्धित करार हो ही नहीं सकता क्योंकि जो विदित करार की सत्ता का स्वीकार करूं तो आप पूछेंगे कि इसकी अति आवश्यक स्थापना (पूर्व पक्ष) है ? इसके उत्तर में मुझसे प्रार्थना की जायेगी कि आपको अपनी स्थापना (पूर्व पक्ष) अवश्य रखनी है । पूर्व पक्ष के बिना करार सम्भव न हो सकेगा । आपको उस अवस्था में करार करना पड़ेगा । जब यह कहा जायेगा कि इस करार का पूर्व पक्ष सुप्रबन्ध है । जिसकी पूर्ति को लाभ और अपूर्ति को हानि कहेंगे । राजाओं की आपसी सन्धियां (करार) अथवा क्रय-विक्रय के समझौतों (करारों) में परस्पर किसी बात पर सहमत हो जाने के पश्चात् समझौतों की समाप्ति नहीं हो सकती । करार और प्रकार के भी होते हैं और उनसे फिरना भी अच्छा नहीं समझा जाता । परन्तु यदि आपकी दृष्टि में उक्त दो प्रकार के करारों के अतिरिक्त शेष दूसरे प्रकार के करारों से फिर जाना उचित ही है तब तो बात ही और है—"चो[1] कुफ्र अज काबा बर खेज़द कुजा मानद मुसलमानी ।" आप तनिक न्याय कीजिये, हठ को छोड़िये, और उचित नियमों को उचित ही समझिये और यदि शास्त्रार्थ नहीं करते तो परदे में रहने की अपेक्षा स्पष्ट कह दीजिये । फिर अधिक विषयों में विवाद न किया जावेगा । हमारा समय व्यर्थ नष्ट किया और आपके विश्वासियों की आत्मश्लाघाएं पूरी न हो सकीं । आपके विदित नियम पर सहमत न होने के लिए ईश्वर की साक्षी की तो उस समय आवश्यकता हो सकती है जब कप्तान स्टुअर्ट और कर्नल मानसल भी आपकी भांति फिर जायें । अभी गवाह विद्यमान हैं, यों ही निर्णय हो जाना सम्भव है ।

वेदों के भाष्य के सम्बन्ध में-वेदों के भाष्यों के विषय में मेरी खोज नहीं हुई है । किसी के विनष्ट हो जाने का शब्द उस समय लागू होता है जब पहले उसके अस्तित्व की सिद्धि हो । उदाहरणार्थ-कुरआन का अनुवाद संस्कृत भाषा में नहीं हुआ है । इस दशा में आप यों नहीं कह सकते कि किसने कुरआन के संस्कृत-अनुवाद को संसार से नष्ट कर दिया । अकबर और दाराशिकोह के समय में वेद का कहीं भाष्य नहीं हुआ । दाराशिकोह ने उपनिषदों का अनुवाद फारसी में किया और उसका नमा **'सिर्रे अकबर'** (महान् भेद) रखा, परन्तु इस कथन में आपका क्या अपराध ? आपको यह विदित ही नहीं कि वेद किसे कहते हैं और उपनिषद् किसका नाम है ? उपनिषद् और वेदान्त किसकी रचनाएं हैं और वेद से क्या सम्बन्ध

---

1. अर्थात् यदि काबे (उपासनागृह) से ही कुफ्र (खुदा और इस्लाम का न मानना) उठ खड़ा हो तो फिर मुसलमानी कहां रहेगी ?—अनुवादक

रखती हैं और वेद से किसका वचन अभिप्रेत है ? हे महाशय ! हम केवल वेद को ही ईश्वरीय वाक्य मानते हैं। अब समाप्ति पर निवेदन है कि न्याय करके निश्चित नियमों से न फिरिये और अपनी सम्मति से आज ही सूचित कीजिये और यदि आज अवकाश न मिले तो कल प्रातःकाल तक अवश्य सूचना भेज दीजिये ताकि समस्त प्रबन्ध शास्त्रार्थ का किया जाये। आगे आपको अधिकार है परन्तु इस विरोध की अवस्था में अपनी सम्मति से सूचित कीजिये।" १५ अगस्त, सन् १८७८।

(आगे परिशिष्ट है, जिसमें उन कारणों का खण्डन है जिनके विचार से सार्वजनिक आज्ञा का होना आवश्यक समझा जाता है परन्तु कुलेख के कारण अत्यन्त प्रयत्न करने पर भी वह नहीं पढ़ा जाता, इसलिए छोड़ दिया गया-संकलनकर्त्ता)।

परिशिष्ट-मौलवी साहब की नई सूझ—"चूंकि मौलवी साहब को विशेष सज्जन पुरुषों और विद्वानों में बैठकर बिना उपद्रव के शास्त्रार्थ करना स्वीकार नहीं था इसलिए सब बातों का निर्णय हो जाने पर भी १६ अगस्त को कुछ मुसलमानों से मैजिस्ट्रेट साहब रुड़की छावनी के यहां प्रार्थना-पत्र दिलवा दिया कि हमको छावनी में सार्वजनिक सभा करने और उसमें शास्त्रार्थ करने की आज्ञा दी जावे। उन्होंने उस पर लिखा कि हम ऐसे शास्त्रार्थ की न रुड़की में, न सिविल स्टेशन में, न छावनी में कहीं आज्ञा नहीं देते। फिर पूछा कि फिर हम कहां जाकर करें तो क्रोधित होकर उत्तर दिया कि कब्रिस्तानों में जाकर शास्त्रार्थ करो।" (**'आर्यदर्पण'**, अक्तूबर मास, सन् १८७८)

फिर मौलवी साहब ने ऐसा ही प्रार्थनापत्र मुसलमानों से कर्नल मानसल साहब की सेवा में दिलवाया कि "श्रीमान् जी ! सेवा में निवेदन यह है कि हम लोगों से कह-कह कर पण्डित दयानन्द सरस्वती जी ने जो श्रीमान् मौलवी मुहम्मद कासिम को शास्त्रार्थ के लिए बुलवाया है तो हम लोगों ने श्रीमान् मैजिस्ट्रेट साहब बहादुर से शास्त्रार्थ के लिए एक खुले मैदान की प्रार्थना की थी जिस पर मैजिस्ट्रेट साहब ने यह लिखा कि हम शास्त्रार्थ की न रुड़की में, न सिविल स्टेशन में, न छावनी में-कहीं आज्ञा नहीं देते। अब चूंकि पण्डित दयानन्द सरस्वती जी बार-बार यह अनुरोध करते हैं कि मेरे मकान पर आकर शास्त्रार्थ करो और वह स्थान आपके अधिकृत क्षेत्र में है, इसलिए सेवा में प्रार्थी हैं कि श्रीमान् हम लोगों को पण्डित जी के मकान पर साधारण रूप से जाने की आज्ञा दें ताकि मौलवी साहब विवश होकर उन्हीं के मकान पर जाकर शास्त्रार्थ करें। उचित मान कर निवेदन किया।" **निवेदक**—मुहम्मद लुत्फ अल्ला खां, जहीरउद्दीन, अहमद बेग, सफदर अली, जामिन अली इत्यादि समस्त रुड़की के मुसलमान। मिति १७ अगस्त, सन् १८७८।

इस पर कर्नल साहब ने हुक्म दिया कि हमारे अधिकृत क्षेत्र से इस शास्त्रार्थ का किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। यदि तुमको शास्त्रार्थ करना है तो कहीं और करो। रुड़की या छावनी में हम इसकी बिलकुल आज्ञा नहीं देते। हमारे और मैजिस्ट्रेट साहब के क्षेत्र से कुछ अन्तर पर यदि तुमको करना स्वीकार है तो जाकर करो, परन्तु सावधानतापूर्वक करो जिससे उपद्रव न हो। हमारा और मैजिस्ट्रेट साहब का क्षेत्र कुछ दूर तक नहीं है और हम इस शास्त्रार्थ का निषेध नहीं कर सकते।" कर्नल मानसल साहब (हस्ताक्षर अंग्रेजी) १७ अगस्त, सन् १८७८।

मौलवी साहब का पत्र—इसको मौलवी साहब ने अपने इस पत्र के साथ भेजा, 'हिन्दू धर्म के नेता स्वामी दयानन्द सरस्वती जी, ईश्वर हमारा, आपका और सबका पथप्रदर्शन करे। प्रातःकाल एक पत्र आपकी सेवा में भेज चुका हूं। उसके अध्ययन से समस्त वृत्तान्त ज्ञात हो गया होगा और यह भी विदित हो गया होगा कि हम विवश होकर जिस प्रकार आप कहें, आप ही के मकान पर उपस्थित होने को तैयार हैं परन्तु दूरदर्शिता की दृष्टि से जैसे कल मैजिस्ट्रेट साहब की सेवा में एक प्रार्थनापत्र आज्ञा प्राप्त करने के लिए दिया था, आज कर्नल साहब की सेवा में एक प्रार्थनापत्र एतदर्थ दिया, आपने जो

उपद्रव की आशंका का कोलाहल मचाया तो न उन्होंने आज्ञा दी, न उन्होंने । दोनों ने सर्वथा निषेध किया । कल का वृत्तान्त सुना होगा, आज का वृत्तान्त प्रार्थनापत्र की प्रतिलिपि और हुक्म की प्रतिलिपि से जो इस पत्र के साथ लगी हुई है, विदित होगा । इसलिए निवेदन है कि आपके मकान पर और रुड़की मे तो यह शास्त्रार्थ हो ही नहीं सकता परन्तु रुड़की और छावनी के क्षेत्र से बाहर सम्भव है, जैसा कर्नल साहब के हुक्म से स्पष्ट प्रकट है, सो हमारी दृष्टि में ईदगाह का मैदान सबसे श्रेष्ठ है । यदि आप कहें तो वहीं सब प्रबन्ध किया जाये, हम सब काम कर लेंगे, आपको केवल पधारने ही का कष्ट होगा और ईश्वर ने चाहा तो यथासामर्थ्य आपके सन्तोष में कोई कमी न रखी जायेगी और आप विश्वास रखिये कि आपके और आपके साथियों के आतिथ्य और आदर-सत्कार में कोई उपेक्षा न की जावेगी । हमारा यह व्यवहार नहीं कि किसी के अपमान का विचार करें, प्रत्युत यदि किसी प्रकार का गुणवान् व्यक्ति है तो हम उसका आतिथ्य अपने ऊपर आवश्यक समझते हैं । आप, परमात्मा ने चाहा तो उससे अधिक प्रसन्न रहेंगे जितने अपने मकान पर प्रसन्न रहते । आप निस्संकोच दृढ़ संकल्प करें और बहुत शीघ्र हमको अपने अभिप्राय से सूचित करें ताकि अभी से ईदगाह के मैदान में या जहां आप कहें, विदित सामग्री भेज दें । अधिक क्या निवेदन करूं, उचित उत्तर का प्रतीक्षक हूं और यदि किसी प्रकार आपको किसी और स्थान पर पधारना स्वीकार ही नहीं तो अपने मकान पर शास्त्रार्थ की आज्ञा प्राप्त करके हमको सूचना दें ।" इति । १७ अगस्त, सन् १८७८ । (हस्ताक्षर) मुहम्मद कासिम ।

एक और पत्र—हिन्दू धर्म के नेता पंडित दयानन्द सरस्वती जी, ईश्वर हमको और आपको और सबको सत्यमार्ग दिखावे । इस समय प्रातःकाल के पत्र का उत्तर पहुंचा । जी तो यूं चाहता था कि जब दूसरे पत्र का भी उत्तर आ लेता, तब उत्तर लिखता, परन्तु पत्रवाहक शीघ्रता करता है इसलिए यह निवेदन है कि आपकी और मेरी यह पहली भेंट नहीं । गत वर्ष मेरा बोलने का ढंग आप देख चुके हैं, उसके बदलने में चित्त का बहाव नहीं रहेगा और इससे अधिक शीघ्रता की शक्ति नहीं । इस अवस्था में आपसे हो सके तो लिख भेजियेगा और न हो सके तो आप जानिये । परन्तु यह आपत्ति कि जब तक ये नियम स्वीकार न किये जायें, मैं शास्त्रार्थ को अच्छा नहीं समझता, परदे में इन्कार है । इससे अच्छा यह है कि आप स्पष्ट ही इन्कार करें और किसी का समय नष्ट न करें । हजारों शास्त्रार्थ हुए, हजारों सभाएं हुईं, किसी ने यह नियम न किया था, आपको यह नियम सूझा । कारण इसका इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं कि आप शास्त्रार्थ से बचना चाहते हैं । पूर्व पत्र के उत्तर की प्रतीक्षा के अतिरिक्त और अधिक क्या निवेदन करूं । १७ अगस्त, सन् १८७८ । (हस्ताक्षर) मुहम्मद कासिम ।

इसके उत्तर में स्वामी जी ने दो पत्र भेजे । एक में तो लिखा 'हजारों बार धन्यवाद परमेश्वर का है कि अन्ततः आप शास्त्रार्थ सम्बन्धी नियमों पर सहमत तो हुए परन्तु तो भी इस अवसर पर मुझे इस बात का दुःख है कि आप इस कृपापत्र में यह नहीं लिखते कि हम शास्त्रार्थ की बातचीत के लिखने में सहायक होंगे । इसके विपरीत आप कहते हैं कि तुमको अधिकार है, तुमसे लिखा जाये तो लिख लेना, हम अपने भाषण को जब समाप्त कर लेंगे तभी बैठेंगे । इससे तो यह पाया जाता है कि आप हमारे इस संकल्प के विरुद्ध प्रयत्न करेंगे । यदि कोई मनुष्य धीरे-धीरे भाषण दे तो उसका लिखना कुछ कठिन नहीं परन्तु यदि कोई इस विचार से बोले कि दूसरा मेरा भाषण न लिख सके तो वास्तव में दूसरा नहीं लिख सकता । शास्त्रार्थ के लिखे जाने का नियम इतना आवश्यक है कि आप द्वारा इसको स्वीकार किये बिना शास्त्रार्थ पर कदापि सहमत नहीं । कहने का अभिप्राय यह कि एक ओर से प्रश्न हो, जब तक वह लिखा न जावे दूसरा पक्ष उत्तर न दे और जब तक यह उत्तर न लिखा जावे, दूसरा प्रश्न न हो । बोलना ऐसा धीरे से चाहिए कि लिखने में कठिनाई न आये । प्रश्नोत्तर के लिए समय की अवधि कल शास्त्रार्थ आरंभ होने से पूर्व निश्चित हो जावेगी । इन बातों में यदि आप सहमत हों तो इस पत्र लाने वाले के द्वारा अभी सूचित करें ।" दयानन्द सरस्वती । १७ अगस्त, सन् १८७८ ।

दूसरा पत्र—आपके उस कृपापत्र के उत्तर में फिर दो चार बातें निवदेन करता हूं ताकि फिर आपको एक बार सोचने और न्याय करने का अवसर मिले। कोई बुद्धिमान् और न्यायप्रिय इस प्रबन्ध के गुणों से इन्कार नहीं कर सकता कि शास्त्रार्थ के समय एक लेखक मेरी ओर से नियत हो जावे और एक आपकी ओर से। वे दोनों जो कुछ बातचीत हो, लिखते जायें। तत्पश्चात् दोनों लेखों को मिलाकर मेरे आपके हस्ताक्षर हो जायें ताकि शास्त्रार्थ के पश्चात् दोनों पक्षों के उत्तर और सत्यता में सन्देह न हो। यदि आप इस उचित नियम को स्वीकार नहीं करते तो आप जानें। इससे तो आपका केवल शास्त्रार्थ न करने का विचार विदित होता है। मैं किसी आवश्यक बात से फिरना कदापि स्वीकार नहीं कर सकता। इस समय आपका दूसरा पत्र आया। मेरे कुछ मित्रों ने कप्तान साहब को लिखा है, जिस समय परिणाम निकलेगा आपको सूचित करूंगा।" १७ अगस्त, सन् १८७८।

इसी तिथि को एक पत्र स्वामी जी ने मन्त्री आर्यसमाज मुलतान को लिखा, "रुड़की में व्याख्यान नित्य होते हैं। दृढ़ आशा है कि आर्यसमाज अवश्य बन जावेगा। मौलवी मुहम्मद कासिम भी हमसे शास्त्रार्थ करने के लिए आया है और १८ ता० नियत है सो अभी कुछ (शास्त्रार्थ होने की आशा) ठीक-ठीक नहीं। जब कुछ होगा सूचना दी जावेगी। हम बहुत आनन्द और कुशलपूर्वक हैं। सब सभासदों को नमस्ते।" १७ अगस्त, सन् १८७८। दयानन्द सरस्वती (रुड़की)

इसके पश्चात् मौलवी साहब का पत्र आया जिसमें कुछ शिकायतों के पश्चात् वे लिखते हैं "हम दो हुक्म सुना चुके हैं। आप एक कर्नल साहब ही की आज्ञा प्राप्त करके सन्तोष करें। सार्वजनिक सभा न सही, हम थोड़े ही मनुष्यों सहित उपस्थित होंगे। कल भी लिखा, आज फिर लिखता हूं।" १८ अगस्त, सन् १८७८। (हस्ताक्षर) मुहम्मद कासिम।

इस पत्र के आने पर समाज के सदस्यों ने जो कप्तान साहब को १७ अगस्त को इस आशय का अंग्रेजी में पत्र लिखा था और उस पर जो कप्तान साहब ने हुक्म दिया था वह निम्नलिखित है—

अंग्रेजी चिट्ठी की प्रतिलिपि जो कप्तान साहब को लिखी गई—

To, Captain W. stuart, R.E. Rurkee.

Sr,

We beg leave to state that some Muhamadans of the station applied to cantonment Magistrate for permission for a religious discussion between Maulvi Muhammad Qasim and Swami Dayanand, the Magistrate said in reply that he could not sanction such a meeting to be held in the Civil or cantonment station. A similar reply was received by the Muhamadans on their application to Colonel Maunsell. The Muhamadans in this case propose to us the holding of the assemblage in the jungle out of the station where all could attend, but we believe that it would be inconvenient, and request the favour of being allowed to hold a meeting in the place where Swami Ji presently stops.

We beg to remain,
Sir,
Your's obediently
Umrao singh.

17th August, 1878.

कप्तान साहब की आज्ञा की प्रतिलिपि अंग्रेजी अक्षरों में-

To Pandit Umrao Singh and friends. Colonel Maunsell has already said that he had no objection to a few people meeting and discussing their affairs in a quiet orderly way like Philosophers.

I think, therefore, that all concerneed, both Muhammadans and Aryans, should adopt his suggestion, and meet as they do at present at the Swami's residence.

I would willingly give my own house, but it would not admit of more than twenty four people attending.

Dated 17th August 1878. (Sd.) W. Stuart.

अनुवाद—सेवा में श्रीमान् कप्तान स्टुअर्ट साहब, रुड़की । निवेदन है कि कुछ मुसलमानों ने श्रीमान् मैजिस्ट्रेट साहब बहादुर छावनी की सेवा में स्वामी दयानन्द और मौलवी मुहम्मद कासिम के मध्य शास्त्रार्थ की आज्ञा प्राप्त करने के लिए प्रार्थनापत्र दिया था जिसमें मुसलमानों ने जंगल में स्टेशन से बाहर शास्त्रार्थ करने के लिए कहा जिसको हम लोग पसन्द नहीं करते । आपसे प्रार्थना है कि उसी मकान पर शास्त्रार्थ की आज्ञा मिल जावे जहां कि स्वामी जी इस समय रहते हैं । निवेदनकर्ता उमरावसिंह व ललिताप्रसाद आदि समाज के सदस्य १७ अगस्त, सन् १८७८ ।

कप्तान साहब के हुक्म और कर्नल साहब की आज्ञा का हिन्दी रूपान्तर—

पंडित उमरावसिंह और उनके मित्रों के नाम । कर्नल मानसल ने कहा है कि थोड़े मनुष्यों की सभा को जो फिलासफरों (दार्शनिकों) के समान अपना काम करना चाहें, कोई रुकावट नहीं है । इसलिए मेरे विचार में मुसलमान और आर्य इस समय उसी मकान पर अपना शास्त्रार्थ करें जहां पर स्वामी जी रहते हैं । मैं अपना मकान भी देने को उद्यत था परन्तु उसमें चौबीस मनुष्यों से अधिक नहीं आ सकते । स्टुअर्ट १७ अगस्त, सन् १८७८ ।

यह हुक्म निम्नलिखित पत्र के साथ मौलवी साहब की सेवा में भेजा गया—

पत्र-इस्लाम मत के नेता मौलवी साहब,परमेश्वर आपका, हमारा और सबका मार्गप्रदर्शन करे । मैं दुख: से कहता हूं कि ईदगाह के समीप सभा कदाचित् उचित प्रतीत नहीं होती । कारण यह है कि मनुष्यों की संख्या नियत किये बिना वहां पूर्ण प्रबन्ध नहीं हो सकता और आप भी अपने अतिरिक्त औरों की ओर से किसी अवैधानिक कार्यवाही का उत्तरदायित्व नहीं ले सकते, इसलिए मेरा मकान या कप्तान साहब आदि का मकान ही उचित प्रतीत होता है । कप्तान साहब की सेवा में कल हमने इस प्रार्थनापत्र के उपस्थित करने की चर्चा की थी, उसका उत्तर आ गया । दोनों प्रतिलिपियां सेवा में भेजता हूं,अवलोकन करके निर्णय कीजिये । १८ अगस्त,सन् १८७८ । दयानन्द सरस्वती ।

इसको फिर मौलवी साहब ने न समझा प्रत्युत जान बूझकर उपेक्षा करके असभ्यों में बात टाल अवसर को संभाल कर पानी विद्वता की प्रसिद्धि का विचार किया कि ऐसा न हो कि सारी आयु की कीर्ति नष्ट हो और पराजय का दुःख उस पर अधिक । विवश होकर एक अत्यन्त ही कायरतापूर्ण बहाना बना कर लिखते हैं—"यह हुक्म कप्तान साहब का है । कप्तान साहब को उससे क्या सम्बन्ध जो उनको कष्ट दें । इस बात का अधिकार कर्नल साहब का है । कप्तान साहब का कथन कहां परन्तु उनके इस लेख में यदि उस प्रथम बात की ओर संकेंत है तो प्रकट हुक्म देने के पश्चात अब वह ध्यान देने योग्य नहीं (अर्थात् जब वह पहले निषेध कर चुके हैं तो हम इस हुक्म की ओर ध्यान नहीं देते) । एजेण्ट साहब और

कर्नल साहब के हुक्म के पश्चात् हमको इस समय पकड़धकड़ की आशंका तो है, छानबीन करने के पश्चात् भी यही अर्थ निकलेंगे । आपका बंगला कप्तान साहब की कोठी से बड़ा नहीं । घरेलू सामान के अतिरिक्त यदि उसमें चौबीस पच्चीस की समाई है तो आपके बंगले में घरेलू सामान के अतिरिक्त कदाचित् बारह ही मनुष्य समायें । उसमें सिविल और छावनी के सज्जनों को निकाल देने के पश्चात् हमारे भाग में कदाचित् चार-पांच मनुष्य ही आयें तो आयें और यदि ठूंसठांस कर सौ पचास को भर ही दीजिये तो शेष दो-सौ क्या आपके छप्पर पर बैठेंगे ? एक एक वाक्य यदि लिखा जाये तो फिर मौखिक और लिखित शास्त्रार्थ में क्या भेद रहेगा । इससे श्रेष्ठ यह है कि शास्त्रार्थ लिखित ही हो जाये (खेद की बात है,देखिये मौलवी साहब कितने बहाने कर रहे हैं) । छ: बजे से नौ बजे तक सारा शास्त्रार्थ का समय ठहरा, उसमें लिखने की भी पच्चर लगा दी जाये तो अर्थ हुए कि जाओ अपना काम करो ।"(संक्षेपतया) १८ अगस्त, सन् १८७८ । मौलवी मुहम्मद कासिम ।

पाठकगण । जब मौलवी साहब बार-बार वही मुर्गी की तीन टांग वाला राग गाते दिखाई दिये और किसी प्रकार शास्त्रार्थ के लिए निश्चित किये हुए नियमों के अनुसार न पधारे तो स्वामी जी वहां आर्यसमाज स्थापित करके २२ अगस्त,सन् १८७८ को मेरठ चले गये ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी और मौलवी मुहम्मद कासिम साहब के शास्त्रार्थ सम्बन्धी नियमों पर बातचीत (तीसरी बार;स्थान मेरठ)

नियम निश्चित करने के लिए बातचीत—१० मई,सन् १८७८ को सायंकाल पारस्परिक निश्चय के अनुसार स्वामी दयानन्द सरस्वती जी और मौलवी मुहम्मद कासिम साहब बाबू शिवनारायण साहब गुमाश्ता कमसरियट की कोठी पर शास्त्रार्थ सम्बन्धी नियम निश्चित करने के लिए एकत्रित हुए और बहुत से सज्जन रईस और अधिकारी भी पधारे परन्तु चूंकि साधारण जनता की भी बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई थी,इसलिए यह निश्चय हुआ कि स्वामी जी, मौलवी साहब और दोनों पक्षों की ओर से दस-दस सज्जन जिनके नाम सूचनार्थ नीचे लिखे हैं,एक पृथक कमरे में बैठ कर शास्त्रार्थ के नियम निश्चित कर लें । अब जो बातचीत उस समय शास्त्रार्थ सम्बन्धी नियमों के विषय में स्वामी जी और मौलवी साहब के मध्य परस्पर हुई और जो-जो कारण अपने-अपने कथन के समर्थन में दोनों ओर से उपस्थित किये गये,उनके अवलोकन से ही न्यायप्रिय सज्जनों पर वह परिणाम जो शास्त्रार्थ के होने से अन्त में उत्पन्न होता,प्रकट हो जायेगा ।

उन सज्जनों के नाम जो शास्त्रार्थ सम्बन्धी नियमों के लिए दोनों पक्षों में से चुने गये थे ।

आर्यों की ओर से	मुसलमानों की ओर से
१—स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ।	१—मौलवी मुहम्मद कासिम साहब ।
२—मास्टर गेंदनलाल साहब बी० ए० ।	२—मौलवी नज्मउद्दीन साहब, डिप्टी-इंस्पेक्टर स्कूल ।
३—बाबू आनन्दलाल साहब मन्त्री आर्यसमाज व सम्पादक 'आर्य-समाचार' ।	३—मौलवी मुहम्मद हयात साहब, प्रबन्धक दैनिक 'नज्मुल अखबार' ।
४—राय[1] बख्तावरसिंह साहब, सब जज बहादुर मेरठ ।	४—मौलवी कादिर अली साहब, डिप्टी कलैक्टर व मैजिस्ट्रेट,मेरठ ।

1. ये सज्जन तनिक विलम्ब से पधारे थे ।

५—मास्टर अयोध्याप्रसाद साहब ।	५— मौलवी मुहम्मद हाशिम साहब, प्रबन्धक हाशमी मुद्रणालय ।
६—ला० गंगासहाय साहब ।	— हकीम मुकरिब हुसैन साहब, प्रबन्धक 'अखबारे-आम' मेरठ ।
७—बाबू शिवनारायण साहब ।	चार सज्जन और थे जिनके नाम ज्ञात नहीं हुए ।
८—पं० देवीचन्द साहब ।	
९—पं० जगन्नाथ साहब रईस मेरठ ।	
१०—ला० ललितप्रसाद साहब ।	

इनके अतिरिक्त मिस्टर कैस्पन साहब हेडमास्टर गवर्नमेण्ट स्कूल, मेरठ भी दोनों पक्षों की सम्मति से इस सभा में सम्मिलित हुए । प्रथम मौलवी साहब की ओर से शास्त्रार्थ के नियम जिनको वे लिखकर अपने साथ लाये थे और जो १२ मई,सन् १८७८ के 'नज्मुल अखबार' में प्रकाशित हो चुके हैं,पढ़े गये । उनकी प्रतिलिपि निम्नलिखित है ।

मुसलमानों की ओर से शास्त्रार्थ के नियम । १—शास्त्रार्थ की तिथि में न्यूनातिन्यून आठ दिन का अन्तर होना चाहिए ताकि दूर के इच्छुक भी लाभान्वित हो सकें और यदि पंडित जी को जाने की शीघ्रता हो तो उससे कम अन्तर सही ।

२—जैसे पंडित जी ने भाषण देने के समय जो और मतों पर आक्षेप करने का समय होता है, श्रोताओं की कोई संख्या नियत नहीं की ऐसे ही शास्त्रार्थ के समय जो औरों की ओर से उत्तर का समय होता है श्रोताओं की संख्या नियत न होनी चाहिए ।

३—बोलते समय वह बात न रखी जावे जो उनके भाषण में रुकावट डाले । उदाहरणार्थ, यह न हो कि भाषण करने वाला एक वाक्य कहके मौन हो रहे,जब लिखने वाला लिख चुके तो फिर उसको कहने की आज्ञा हो अन्यथा फिर लिखित और मौखिक शास्त्रार्थ में क्या भेद होगा ।

४—शास्त्रार्थ का समय प्रात: ७ बजे से ११ बजे तक होना चाहिए ताकि मुसलमानों को नमाज आदि धार्मिक आवश्यकताओं के लिए व्यग्र रहने की आवश्यकता न हो ।

५—भाषण के लिए कोई समय निश्चित न किया जाये क्योंकि कौन अपने भाषण को समय पर नाप तोल कर लाता है और यदि व्यर्थ बोलने की आशंका से लिखना ही स्वीकार हो तो यदि हम इसकी उपेक्षा भी करें कि भाषण को पूर्ण करने की इच्छा के रह जाने की आशंका है तो भी मत के गुण वर्णन करने वाले के लिए एक घण्टा और उत्तरदाता के आक्षेप के लिए आधे घण्टे से कम न होना चाहिए ।

६—मुसलमानों को तो अपने मत की सत्यता समझाने के लिए दूसरे मतों के नेताओं को बुरा कहने की आवश्यकता नहीं है परन्तु दूसरे मत वालों से यह आशंका है इसलिए यह निवेदन कर देना आवश्यक है कि हजरत मुहम्मद साहब और उनके महान् अनुयायियों की शान में ढिठाई न होने पावे ।

७—दोनों पक्ष बातचीत उर्दू भाषा में करें और ऐसे शब्दों का यथाशक्ति प्रयोग न करें, जो औरों की समझ में न आवें ।

८—शास्त्रार्थ का स्थान न वह मकान हो जहां पण्डित जी उतरे हुए हैं और न वह स्थान जहां मौलवी मुहम्मद कासिम साहब निवास करते हैं । यदि हो तो वह स्थान हो जो नगर, लालकुर्ती व सदर आदि के लगभग बीच में हो ताकि किसी को दूरी की न्यूनाधिक्य की शिकायत न हो ।

९—शास्त्रार्थ का स्थान खुला हो ताकि सभा में उपस्थित होने वालों को कष्ट न हो ।

१०—यदि एक प्रश्न या आक्षेप पण्डित जी की ओर से हो तो एक प्रश्न या आक्षेप हमारी ओर से होना चाहिए।

इन पर स्वामी जी का कथन—इन समस्त नियमों के पढ़े जाने के पश्चात् नियम १ के विषय में स्वामी जी ने कहा कि मैं शास्त्रार्थ का प्रतीक्षक नहीं रह सकता । आज से तीसरे दिन बुधवार को शास्त्रार्थ आरम्भ हो जाना चाहिए और इस बात को मौलवी साहब ने भी स्वीकार किया । तीसरे नियम के विषय में स्वामी जी ने कहा कि मैं शास्त्रार्थ के भाषण का न लिखा जाना कदापि पसन्द नहीं कर सकता क्योंकि मनुष्य को बात बदलते कुछ कठिनाई नहीं पड़ती । इसलिए पहले मैंने यह बात उन लोगों से जो बाबू शिवनारायण साहब के साथ आये थे, निश्चित कर ली थी कि यदि मौलवी साहब शास्त्रार्थ विशेष सज्जनों की सभा में करना चाहें और भाषण के लिखने पर भी सहमत हों तो पधार कर शास्त्रार्थ के नियम निश्चित कर लें और जब उन्होंने इस बात को स्वीकार कर लिया था तब मैंने आपको कष्ट दिया था । इसके अतिरिक्त बिना लिखे कोई बात प्रमाण के पद को नहीं पहुंचती । जिसके जी में या मुख में जो आया कहना आरम्भ कर दिया, कोई चीज इस बात को रोकने वाली नहीं हो सकती कि जो बात एक बार कही जावे उसके विरुद्ध दूसरी न कही जावे । चाहे मुझको या आपको ऐसा कहने का अवसर मिल सकता है कि 'यह बात हमने नहीं कही थी', यद्यपि वास्तव में कह चुके हों । इसके अतिरिक्त प्रत्येक पक्ष के मनुष्य अपनी-अपनी विजय वर्णन किया करते हैं, एक कहता है कि मैं जीता, दूसरा हारा और दूसरा कहता है कि मैं जीता, वह हारा । बिना लिखे वह परिणाम नहीं निकलता जो एक दूसरे की व्यर्थ बातों के रोकने को पर्याप्त हो और भाषण के लिखे जाने से यह परिणाम अत्यन्त श्रेष्ठ रीति से प्राप्त हो सकता है । इसके अतिरिक्त न कोई पक्ष और बात बदल सकता है, न वास्तविकता के विरुद्ध व्यर्थ बातें हो सकती हैं । लिखे हुए कथन को देखकर प्रत्येक व्यक्ति सन्तोष कर सकता है कि कौन जीता, कौन हारा । इसके अतिरिक्त यह भी सम्भव नहीं कि जैसे शब्द उस समय मुख से निकलें, उनको कोई जैसे का तैसा स्मरण रख सके और सभा में उपस्थित लोगों के अतिरिक्त और लोग शास्त्रार्थ का पूरा-पूरा आनन्द भी नहीं उठा सकते । लिखा हुआ शास्त्रार्थ जब छपकर संसार के देश-देशान्तर अर्थात् प्रत्येक नगर और ग्राम में पहुंच सकता है और प्रत्येक स्थान के निवासी उससे ऐसा आनन्द उठा सकते हैं मानो उसी सभा में उपस्थित थे ।

मौ० मुहम्मद कासिम का मत—इस पर मौलवी मुहम्मद कासिम साहब ने कहा कि लिखित शास्त्रार्थ में विचारों का आना रुक जाता है, चित्त निष्क्रिय हो जाता है और जब लिखित शास्त्रार्थ हुआ तो मेरी और आपकी एक सभा में एकत्रित होने की क्या आवश्यकता थी ? अपने घर बैठे तुम हम पर और हम तुम पर आक्षेप करते रहे और उत्तर लिखते रहें । इस पर मिस्टर कैस्पियन साहब, मुख्याध्यापक गवर्नमेंट स्कूल, मेरठ ने कहा कि जिस विद्वान् व्यक्ति का चित्त केवल लिखने के कारण निष्क्रिय हो जाये और उसमें विचारों का आना रुक जाये वह भी क्या अच्छा विद्वान् है कि अपनी महानता, विद्वत्ता और वर्णन शक्ति पर जिसको इतना अधिकार नहीं कि केवल लिखे जाने तक अपने मानसिक विचारों का स्मरण रख सके और फिर अपने इच्छित आशय को प्रकट कर सके, यदि यही महानता और यही चित्त है तो उस विचारशक्ति और विद्वतापूर्ण चित्त का ईश्वर ही रक्षक है ।

स्वामी जी ने यह कहा कि देखिये, घर बैठे तो मुंशी इन्द्रमणि और मुसलमान परस्पर चिरकाल से आक्षेप कर रहे हैं परन्तु अब तक उसका कुछ परिणाम न निकला । यद्यपि मुंशी जी ने मुसलमानों पर वे-वे आक्षेप किये हैं कि यदि विचारपूर्वक देखा जाये तो दम मारने (विश्राम लेने तक) की गुंजाइश नहीं । परन्तु तिस पर भी आप शास्त्रार्थ पर उद्यत हैं और सामने बैठकर भाषण होने और उसके कहे जाने में यह लाभ भी है कि जो पक्ष जिसपर आक्षेप करता है, उसका

ठीक-ठीक उत्तर तत्काल आमने-सामने देना पड़ता है और परिणाम उसका यह होता है कि दोनों में से एक पक्ष अवश्य पराजित होता है, दूसरा विजयी । वर्षों के झगड़े कुछ दिन में निबट जाते हैं और बहुत से आक्षेपों और उत्तरों का परिणाम कुछ दिन में प्राप्त हो जाता है, इसलिए मैं कहता हूं कि सामने बैठ कर शास्त्रार्थ हो और तीन लेखक बैठकर प्रत्येक प्रश्न तथा उत्तर को शब्द प्रति शब्द लिखें और तीनों पड़तों पर शास्त्रार्थ करने वालों और सभापति के हस्ताक्षर हों । एक-एक पड़त शास्त्रार्थ करने वालों को और एक पड़त सरकार में दाखिल कर दिया जाये, ताकि कोई पक्ष अपने कथन से फिरने न पावे और किसी प्रकार का छल शास्त्रार्थ के विषय में न चल सके ।

दूसरे[1] नियम के सम्बन्ध में—स्वामी जी ने कहा कि **व्याख्यान देने के** समय तो व्याख्यान देने वाला अपनी सम्मति और विचार, अपनी बुद्धिपूर्ण युक्तियां प्रत्येक बात के विषय में प्रकट किया करता है, दूसरे किसी को बीच में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं होता । जिसको अच्छा प्रतीत हो सुने, जिसको बुरा प्रतीत हो न सुने और परस्पर प्रश्नोत्तर नहीं होते ताकि कोई व्यक्ति पराजित होकर लज्जा के कारण उपद्रव पर उद्यत न हो । केवल एक दूसरे पक्ष के मत का खण्डन किया करता है और वह उसका उत्तर देता है और फिर वह उस उत्तर का खण्डन करता है । इसी प्रकार से जब शास्त्रार्थ में परस्पर मण्डन और खण्डन होता है तो जिस पक्ष से उचित उत्तर न बन आवे या अपने मत की निन्दा सहन न हो सके तो इसके अतिरिक्त कि लज्जा अथवा चित्त की उत्तेजना के कारण मानवी स्वभाव से उपद्रव पर उद्यत हो-और कुछ नहीं बन जाता । इसलिए यदि सभा में उपस्थित लोग चुने हुए विद्वान्, बुद्धिमान् और अच्छे स्वभाव के हुए तो अपनी महानता और अच्छे स्वभाव के कारण क्रोध पर नियन्त्रण करके उपद्रव पर उद्यत नहीं होते और यदि कूंजड़े, कसाई, तेली, तम्बोली, धोबी, जुलाहे, उठाईगीरे, लुच्चे, बदमाश और कुछ बुद्धिमान् और अच्छे स्वभाव वाले न हों और सार्वजनिक सभा हो तो तत्काल ईंटें फेंकते हैं और उपद्रव होते कुछ देर नहीं लगती ।

हे महाशय ! शास्त्रार्थ तो बुद्धिमानों और विद्वानों की सभा में होता है जो आनन्द भी प्राप्त करें और न्याय कर सकें कि किसका कथन सच्चा है । शास्त्रार्थ असभ्य मूर्खों की भीड़ में नहीं होता । वे लोग अविद्या के कारण न समझ सकते हैं, न न्याय कर सकते हैं और प्राय: दंगा फिसाद असभ्यों में या असभ्यों के कारण से होता है इसलिए शास्त्रार्थ बुद्धिमानों ही की सभा में होना चाहिए ।

इस पर मौलवी साहब ने कहा कि न जाने अब आप क्यों विशेष व्यक्तियों की सभा के लिए हठ करते हैं । चांदापुर जिला शाहजहांपुर में तो आपने इस बात पर कुछ भी हठ नहीं की थी और फिर विशेष व्यक्तियों की सभा में सब लोग शास्त्रार्थ के आनन्द से लाभान्वित भी नहीं हो सकते ।

शास्त्रार्थ विशेष विद्वानों के सम्मुख ही होना चाहिए-स्वामी जी ने कहा कि आपने देखा नहीं कि चांदापुर में सार्वजनिक सभा होने से कैसी गड़बड़ हो गई थी अर्थात् मेले के लिए सात दिन नियत किये गये थे, पूरे दो दिन भी मेला न रहने पाया, दूसरे दिन लोगों ने उपद्रव कर दिया और कोलाहल मचा दिया कि मेला समाप्त हो गया और क्या आप भूल गये कि हमारे भक्तों की चौकी पर लोग जूते रख-रखकर खड़े हो गए थे और परिणाम जैसा कि अभीष्ट था, प्राप्त न हुआ । यदि चांदापुर में ही शास्त्रार्थ विशेष व्यक्तियों की सभा में हो जाता तो अब मुझे और तुम्हें फिर शास्त्रार्थ करने की

---

1. चूंकि स्वामी जी ने प्रथम तीसरे नियम के विषय में विचार किया था और तत्पश्चात् दूसरे नियम के विषय में । इसलिए यहां भी इसी प्रकार लिखा गया है ।

क्यों आवश्यकता पड़ती । सात दिन में, सम्भव था कि, शास्त्रार्थ में भली-भांति निश्चय हो जाता जैसा कि वहां सार्वजनिक सभा होने से इच्छानुसार कोई परिणाम न निकला, ऐसा ही प्रत्येक स्थान पर होता है और होगा । मैं इसलिए शास्त्रार्थ का विशेष व्यक्तियों की सभा में होना पसन्द करता हूं और जो यह कहते हो कि सब लोग लाभान्वित नहीं हो सकते तो मैं नहीं जानता कि आपका अभिप्राय समस्त संसार के लोगों से है या सारे मेरठ से या क्या ? यदि यह कहो कि समस्त संसार से फिर सारे संसार के मनुष्य कदापि एक स्थान पर एकत्रित नहीं हो सकते । यदि यह कहो कि सारे मेरठ से, तो भी किसी मकान या कोठी में नहीं समा सकते । इसलिए जब आपकी सार्वजनिक सभा भी समस्त संसार या सारे मेरठ की दृष्टि से विशेष मनुष्यों की सभा है और यदि मान लो कि सारे मेरठ के मनुष्य किसी मकान में आ भी जावें तो भी दो-चार, दस-बीस हजार, मनुष्य सब के सब मेरे या आपके कथन को नहीं सुन सकते क्योंकि जो मेरे और आपके इतने समीप हों कि उनके कान तक मेरा या आपका स्वर जा सके (वही सुन सकते हैं) । फिर बताइये कि सार्वजनिक सभा में बिना लिखे सब लोग क्योंकर शास्त्रार्थ से लाभान्वित हो सकते हैं ? इसलिए मैं कहता हूं कि बीस-बीस बुद्धिमान् और विद्वान् (दोनों पक्षों में से ले लिये जावें) । यदि दोनों पक्षों में कम से कम दो-दो, तीन-तीन सौ विद्वान् होंगे तो भी सम्भव है कि उनमें से जो अधिक से अधिक बुद्धिमान् और विद्वान् हों वे चुन लिए जावें ।

इसी बीच में श्री राय बख्तावरलाल साहब[११] सब जज, सैयद जाकिर हुसैन साहब मुन्सिफ मेरठ और राय गणेशीलाल साहब प्रबन्धक समाचारपत्र **'प्रिंस आफ वेल्ज'** पधारे । उस समय मौलवी मुहम्मद कासिम साहब नमाज पढ़ने को और दो-तीन सज्जनों सहित चले गये परन्तु शेष मुसलमान वहीं बैठे रहे ।

स्वामी जी ने सब जज साहब से कहा—"आज मैं और मौलवी साहब यहां शास्त्रार्थ के नियम निश्चित करने के लिए एकत्रित हुए हैं और आप सज्जनों को भी इसी अभिप्राय से कष्ट दिया गया है । मौलवी साहब सार्वजनिक सभा में शास्त्रार्थ करना चाहते हैं और भाषण का लिखा जाना स्वीकार नहीं करते । जो-जो कारण और आक्षेप इन दोनों बातों के विषय में ऊपर लिखे जा चुके हैं, वे स्वामी जी ने प्रशंसनीय महोदय से पुन: वर्णन कर दिये और यह भी कहा कि यदि मुझको बात बदलनी या छल करना अभीष्ट होता तो मैं भाषण के लिखे जाने और शास्त्रार्थ की एक पड़त सरकार में दाखिल करने की क्यों कामना करता ।

मौलवी साहब ने जो नमाज से निवृत्त होकर आ गये थे, कहा कि लिखने से भाषण के प्रवाह में अन्तर आयेगा । सार्वजनिक सभा में सब लोग अपने सामने शास्त्रार्थ होता देख लेते हैं और सबके मन की इच्छा पूर्ण हो जाती है ।

इस पर श्रीमान् सब जज साहब ने कहा कि स्वामी जी को प्राय: सार्वजनिक सभा में मौखिक शास्त्रार्थ करने का अवसर पड़ा है और परिणाम उसका उपद्रव के अतिरिक्त और कुछ न हुआ । इसलिए अब भी स्वामी जी को सार्वजनिक सभा में शास्त्रार्थ करने से उपद्रव की आशंका है । सम्भव है कि यदि श्रीमान् डिप्टी साहब, जो इस जिले में डिप्टी मैजिस्ट्रेट हैं, इस बात का उत्तरदायित्व ले लें कि हम किसी प्रकार का उपद्रव न होने देंगे, तो क्या हानि है; सार्वजनिक सभा में ही शास्त्रार्थ सही ।

इस पर मौलवी कादिर अली साहब, डिप्टी कलैक्टर तथा मैजिस्ट्रेट ने कहा कि मैं उपद्रव का कदापि उत्तरदायित्व नहीं ले सकता परन्तु यदि जिला मैजिस्ट्रेट साहब चाहें तो उसका प्रबन्ध सम्भव है ।

इस पर किसी ने कहा कि गवर्नमेंट मजहबी मामलों में कदापि हस्तक्षेप नहीं करती है । श्रीमान् जिला मैजिस्ट्रेट साहब को क्या प्रयोजन है जो शास्त्रार्थ का प्रबन्ध करते फिरें । यदि आपको भी हमारे समान उपद्रव की आशंका है तो आप

क्यों सार्वजनिक सभा में शास्त्रार्थ होने का अनुरोध करते हैं, विशेष व्यक्तियों की सभा में शास्त्रार्थ होने को क्यों नहीं स्वीकार करते ?

स्वामी जी ने सुनकर डिप्टी साहब से कहा—"आपको सभा के प्रबन्ध से क्या प्रयोजन है, जब किसी के चोट-फेंट लगेगी तब आप छानबीन करने और उपाय करने को तैयार होंगे और मौलवी मुहम्मद कासिम साहब को सम्बोधन करके यह कहा कि मैं और आप जो कुछ कहेंगे वह लिख दिया जावेगा और सभा में उपस्थित लोगों को सुना दिया जावेगा फिर भाषण के प्रवाह में क्या अन्तर आ सकता है ।

नियम ४ के सम्बन्ध में स्वामी जी ने लिखा— प्रातःकाल के समय अधिकारी लोग अपनी कचहरी और न्यायालय के काम के कारण शास्त्रार्थ में सम्मिलित नहीं हो सकते इसलिए अच्छा है कि शास्त्रार्थ शाम के ६ या ७ बजे से नौ-दस बजे रात तक हो और मुसलमान लोग शास्त्रार्थ के बीच में नमाज के समय नमाज पढ़ सकते हैं जैसा कि अब मौलवी साहब नमाज पढ़कर पधारे हैं ।

नियम ५ के सम्बन्ध में स्वामी जी ने कहा—भाषण के लिए यदि समय नियत न होगा तो बड़ी कठिनाई होगी अर्थात् सम्भव है कि एक व्यक्ति चार दिन तक अपनी ही कहे जाये, दूसरे की सुने ही नहीं और जब समय नियत कर दिया जायेगा तो अपने समय में प्रश्न करने वाला प्रश्न करेगा, उत्तर देने वाला उत्तर देगा और मत की महानता वर्णन करने की शास्त्रार्थ में क्या आवश्यकता है; आप व्याख्यान देंगे या शास्त्रार्थ करेंगे, जो मत की महानता वर्णन करने का पहले ही से विचार है । शास्त्रार्थ में प्रश्नोत्तर के द्वारा खंडन और मंडन होगा या मत की महानता वर्णन की जावेगी ? और हे महाश्य ! वह प्रश्न कौन-सा है कि स्वयं तो एक घण्टे में पूरा हो और उत्तर आधे घण्टे में पूरा हो जाये ? एक प्रश्न अधिक से अधिक पांच मिनट में और उसका ठीक-ठीक उत्तर अधिक से अधिक पाव घण्टा अर्थात् १५ मिनट में अच्छी प्रकार दिया जा सकता है । उदाहरणार्थ, देखिये कि 'परमेश्वर है या नहीं' यह प्रश्न है और सबका उत्तर कि 'परमेश्वर है' कैसा शीघ्र पूरा हो गया । प्राय: प्रश्नोत्तर जो बहुत लम्बे तक होते रहते हैं, उसका यह कारण होता है कि एक प्रश्न में कुछ प्रश्न और एक उत्तर में कुछ उत्तर सम्मिलित हुआ करते हैं और जब एक ओर उसका ठीक-ठीक उत्तर हो तो कुछ अधिक समय की आवश्यकता नहीं । यदि प्रश्न के लिए एक घण्टा और उत्तर के लिए आधा घण्टा नियत किया जावे तो प्रकट है कि शास्त्रार्थ प्रतिदिन अधिक से अधिक तीन घण्टे होगा तो इस गणना से दो प्रश्न और दो उत्तर प्रतिदिन होंगे, इस प्रकार शास्त्रार्थ के लिए भी एक सुदीर्घ कालावधि अपेक्षित होगी; वह कभी समाप्त नहीं होगा । इसलिए पांच मिनट में एक प्रश्न १५ मिनट में उसका ठीक-ठीक उत्तर बड़ी अच्छी प्रकार से दिया जा सकता है । इस गणना से कई प्रश्नोत्तर एक दिन में हो सकते हैं और शास्त्रार्थ की समाप्ति भी सम्भव है ।

नियम ६—निस्सन्देह कोई सभ्यता विरुद्ध वाक्य किसी धार्मिक नेता के सम्बन्ध में न कहा जाएगा परन्तु उनके वचनों और कर्मों पर अवश्य आक्षेप किया जायेगा इसलिए कि उनके वचनों और कर्मों के खंडन के बिना शास्त्रार्थ कब संभव है और यदि इस नियम से वही अभिप्राय है जो चांदापुर में वर्णन किया गया था अर्थात् मौलवी साहब ने कहा था कि जो हमारे मुहम्मद साहब को बुरा कहे, वह वाजिबुल्कत्ल (मार डालने योग्य) है तो शास्त्रार्थ भी हो लिया, क्योंकि कत्ल (मारने) की आज्ञा तो पहले ही हो चुकी, फिर शास्त्रार्थ कौन करेगा ?

नियम ७ के विषय में यह कहा कि जितनी भाषा मैं जानता हूं, अत्यन्त स्पष्ट कहूंगा और यदि कोई शब्द किसी पक्ष का दूसरे की समझ में न आवे तो सभा में उपस्थित लोगों में से जो सज्जन दोनों भाषाएं जानते हों, समझा दिया करें ।

नियम ८, ९, के विषय में—सभा में उपस्थित लोगों को अधिकार है कि जौन-सा मकान चाहें निश्चित करें।

नियम १० के विषय में—मैं आपको छूट देता हूं कि पहले आप ही वेद पर आक्षेप करें और मैं उत्तर दूं और उसके पश्चात् मैं कुरआन पर आक्षेप करूं और आप उत्तर दें।

मौलवी साहब ने कहा कि पंडित जी प्रश्नोत्तर के लिए बहुत थोड़ा समंय नियत करते हैं, इतने समय में प्रश्नोत्तर का कार्य नहीं हो सकता इसलिए कि विषय की स्पष्टता और समयानुकूलता सब जाती रहती है।

इस पर मिस्टर कैस्पियन साहब ने कहा कि साहब ! आप शास्त्रार्थ करेंगे या अलंकारों और नवीनताओं को काम में लायेंगे। अलंकारों और नवीनताओं में अवश्य स्पष्टता और समयानुकूलता की आवश्यकता होती है, शास्त्रार्थ में अलंकारों और नवीनताओं की क्या आवश्यकता है ?

इसके पश्चात् मुन्सिफ साहब ने कहा कि पहले कोई मध्यस्थ अर्थात् पंच नियत कर लीजिये तब इन बातों का निश्चय होगा। इसलिए निश्चित हुआ कि श्रीमान् सब-जज साहब, मुन्सिफ साहब, मिस्टर कैस्पियन साहब, डिप्टी साहब और पण्डित गेंदनलाल साहब परस्पर सहमत होकर जो नियम निश्चित कर दें, वे सबको स्वीकार हों। स्वामी जी ने कहा कि उपुर्यक्त सज्जन एक पृथक् कमरे में जाकर इन बातों का निश्चय करें और बाबू शिवनारायण साहब ने उसी समय एक पृथक् कमरा फर्श और प्रकाश आदि से युक्त ठीक करा दिया परन्तु मुसलमानों ने अनुरोध किया कि इस समय नियमों का निश्चित होना स्थगित रखा जावे। इस पर मिस्टर कैस्पियन साहब ने पूछा कि क्या कारण है कि जो इस समय नियमों के निश्चित करने से इन्कार है ? इसके उत्तर में डिप्टी साहब ने कहा कि मैं जब तक मौलवी साहब का हार्दिक अभिप्राय इस विषय में न जान लूं, सम्मति देना अच्छा नहीं समझता और इस समय हम कचहरी से इसी ओर चले आये हैं, दिन भर की थकान भी है, इन बातों का निश्चित होना किसी और समय पर ही स्थगित रहे तो अच्छा है और मुन्सिफ साहब तथा सदर आला साहब ने भी यही कहा।

तत्पश्चात् **स्वामी जी** ने यह कहा कि इस समय इनका निश्चित हो जाना ही उचित था परन्तु मुझको डिप्टी साहब और आप लोगों का कहना स्वीकार है। फिर निश्चय हुआ कि कल रविवार ११ मई, सन् १८७९ को पांचों सज्जन मिलकर नियम निश्चित कर दें। मिस्टर कैस्पियन साहब ने कहा कि मैं कल रविवार के कारण सम्मिलित नहीं हो सकता, आप चारों सज्जन ही निश्चित कर लें, परन्तु इसके पश्चात् जब सब सज्जन कमरे के बाहर कोठी के द्वार तक ही पधारे थे कि मास्टर गेंदनलाल साहब ने ला० गंगासहाय साहब सदर बाजार निवासी द्वारा, जो दस चुने हुए सज्जनों में सम्मिलित थे, सब जज साहब, मुन्सिफ साहब और डिप्टी साहब से यह कहला भेजा कि अच्छा हो यदि परसों शास्त्रार्थ के नियम निश्चित किये जावें ताकि मिस्टर कैस्पियन साहब भी सम्मिलित हो सकें और इस बात को तीनों सज्जनों ने स्वीकार कर लिया। परन्तु सोमवार १२ मई, सन् १८७९ के दिन दोनों मास्टर साहब इस कारण कि गवर्नमेण्ट के बोर्डिंग हाउस में स्कूल के छात्रों के मध्य कुछ ऐसा उपद्रव हुआ कि स्कूलों के इंस्पैक्टर साहब तक नौबत पहुंची, सब जज साहब के बंगले पर न जा सके और विवशता के कारण से सूचना दे दी गई। डिप्टी साहब सब जज साहब से यह कह आये थे कि और सज्जनों के आने के पश्चात् मुझको सूचना देकर बुला लें। जब कोई सज्जन वहां न पहुंचे तो सब जज साहब ने डिप्टी साहब को भी सूचना न दी, सारांश यह कि उस दिन कोई सज्जन वहां न पधारे।

तत्पश्चात् जब सब जज साहब स्वामी जी के पास पधारे और कहा कि आप जानते हैं कि सार्वजनिक सभा में शास्त्रार्थ का होना अच्छा नहीं। प्रत्युत मैं स्वयं सार्वजनिक सभा में सम्मिलित नहीं हो सकता और बिना लिखे मौखिक बातों से कुछ परिणाम भी नहीं निकल सकता परन्तु मौलवी साहब को न विशेष सज्जनों की सभा पसन्द है, न लिखित शास्त्रार्थ। यदि ऐसा न होता तो १० ता० को ही नियम निश्चित न हो जाते ?

यह सुनकर सच्चे लोगों को पूर्ण विश्वास हो गया कि जैसे रुड़की में मौलवी साहब यूरोपियन अधिकारियों के सामने लिखित शास्त्रार्थ और विशेष सभा को स्वीकार करके मुकर गये थे, यहां भी विशेष सभा और शास्त्रार्थ के लिखे जाने तथा प्रचलित होने को कब मानेंगे और वर्णनशक्ति मौलवी साहब की चांदापुर शास्त्रार्थ में प्रकट हो चुकी थी । आगे कुछ चेष्टा न हुई । 'आर्यसमाचार' मेरठ, ज्येष्ठ मास, संवत् १९३६ तदनुसार मई, सन् १८७९, पृ० २२ से ३५ तक) ।

चतुर्भुज शास्त्री का स्वांग—उन्हीं दिनों में पंडित चतुर्भुज शास्त्री भी हरिद्वार से मेरठ को चले आये । औरों से बढ़कर एक नया स्वांग साथ लाये अर्थात् किसी सभा का एक चपरासी भी साथ था । बात-बात में क्रोध, गली-कूचों में डींगें मारने के वीर, संस्कृत विद्या से अपरिचित, धनाढ्य लोगों को बहकाने में अद्वितीय, सारांश यह कि मेरठ में आवारागर्दी (व्यर्थ भटकना) के अतिरिक्त उनसे और कुछ न बन सका । गली-कूचों में शास्त्रार्थ का दम भरते फिरे परन्तु शास्त्रार्थ करने वाले अर्थात् स्वामी जी या समाज वालों से कभी आकर न भिड़े । इस भय से कि कहीं शास्त्रार्थ न हो जाये और तत्काल दक्षिणा मिले । इन बातों के अतिरिक्त उनकी एक बुद्धिमत्ता विचारणीय है कि जब उनसे और कुछ न बन पड़ा तो मौलवी मुहम्मद कासिम साहब से जाकर मेल किया और स्वामी जी के विरुद्ध होकर उनकी सहायता में प्रयत्नशील हुए और स्वयं पुराणों की बुराइयां उनको बतलाई । पवित्र वेद और सत्य शास्त्रों से न तो स्वयं परिचित थे जो मुंह खोलते और न उनमें कोई ऐसी बात अथवा स्थान है कि जहां आक्षेप किया जा सके । फिर शास्त्री जी अपनी पंडिताई क्या छौंकते । सारांश यह कि पुराणों की बुराइयां मुसलमानों को दिखलाने और हुसैनी ब्राह्मण बनकर उनसे कुछ दक्षिणा कमाने के अतिरिक्त ये कोरे के कोरे रह गये ।

स्वामी जी के विरुद्ध एक दिन मूर्तिपूजा के पुण्य और औचित्य में पंडित चतुर्भुज जी ने कहा—भक्ष्याभक्ष्य सब खाये, ब्रह्महत्या करे, मद्यपान या व्यभिचार करे परन्तु प्रतिमा पर फूल चढ़ावे तो चढ़ाते ही शुद्ध हो जाये । सारांश यह कि ऐसे-ऐसे उत्तम उपदेश करके चले गये ।

बाद में स्वामी जी का कार्यक्रम—स्वामी जी २२ मई, सन् १८७९ तदनुसार जेठ सुदि २, संवत् १९३६ को मेरठ से चलकर अलीगढ़ में ठाकुर मुकुन्दसिंह जी के यहां पधारे । यहां आते ही स्वास्थ्य फिर बिगड़ गया । २८ ता० तक वहां रहकर ठाकुर भूपालसिंह और ठाकुर मुन्नासिंह जी के साथ छलेसर चले गये; पीछे ठाकुर मुकुन्दसिंह जी भी चले गये । चिकित्सा होती रही । कुछ दिन पश्चात् ठीक हो गये । एक मास और कुछ दिन यहां रहे । अस्वस्थता के कारण इस बार कोई शास्त्रार्थ नहीं हुआ परन्तु लोग दर्शनार्थ आते रहे और कोई-कोई धर्म-सम्बन्धी बातचीत भी करते रहे । २ जुलाई, सन् १८७९ तक यहां ठहर कर ३ जुलाई, सन् १८७९ को **मुरादाबाद** चले गये ।

एक पत्र में स्वामी जी लिखते हैं—"हम स्थान छलेसर परगना थल, जिला अलीगढ़ में ठहरे हुए हैं । जुलाब जो लिया था, उससे निवृत्त हो गये परन्तु कुछ निर्बलता है । ७-८ दिन के पश्चात् मुरादाबाद जायेंगे । मुंशी इन्द्रमणि भी यहां आये हैं ।" २२ जून, सन् १८७९ । दयानन्द सरस्वती छलेसर ।

"पाताल निवासियों[१२] के पत्र का अभिप्राय यहां लिखना कठिन है, जब समझेंगे तब उत्तर लिखा जावेगा । हमारा शरीर अब कुछ अच्छा होता आता है ।" आषाढ़ सुदि ५ मंगलवार, संवत् १९३६ । छलेसर । दयानन्द सरस्वती । (चन्दा वेदभाष्य का मुन्नासिंह वसूल करेंगे) ।

स्वामी जी एक और पत्र लिखते हैं—शोक की बात है कि आर्य पुरुष ठाकुर मुन्नासिंह का शरीर छूट गया ।" २० नवम्बर, सन् १८७९ । काशी । दयानन्द सरस्वती ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी और मौलवी अब्दुर्रहमान सुपरिण्टैण्डैण्ट पुलिस तथा न्यायाधीश न्यायालय उदयपुर (मेवाड़ देश) के मध्य होने वाला शास्त्रार्थ।

(स्थान उदयपुर। दिनांक ११ सितम्बर, सन् १८८२ तदनुसार भादो बदि १४, संवत् १९३९ सोमवार)।

पंडित ब्रजनाथ जी, शासक—साइर मेवाड़[१३] देश (जो उस समय इस शास्त्रार्थ के लिखने वाले थे) ने वर्णन किया—"मैं उस समय स्वामी जी के मध्य दुभाषिया भी था। अरबी के कठिन शब्दों का अर्थ स्वामी जी को और संस्कृत के कठिन शब्दों का अर्थ मौलवी जी को बता दिया करता था। यह शास्त्रार्थ मैंने उस समय अपने हाथ से लिखा, जिसका लेख पैंसिल का लिखा हुआ, अभी तक मेरे पास विद्यमान है।" तीन मनुष्य इस शास्त्रार्थ के लिखने वाले थे। एक पण्डित ब्रजनाथ जी शासक साइर, दूसरे मिर्जा मुहम्मद अली खां, भूतपूर्व वकील, वर्तमान सदस्य विधान सभा टौंक; तीसरे मुंशी रामनारायण जी सरिश्तेदार, बाग कलां सरकारी, जिनमें से १ व ३ सज्जनों के मूल लेख हमको मिल गये हैं और जिनको मौलवी साहब ने भी समर्थन किया है परन्तु उनकी बुद्धिमानी तथा ईमानदारी पर खेद है कि उस समय तो कोई उचित न बन आया और पीछे से दिसम्बर, सन् १८८९ में निर्मूल और झूठे-झूठे उद्धरण देकर मूल लेख के विरुद्ध कुछ का कुछ प्रकाशित करके अपनी धार्मिकता का चमत्कार दिखाया। इस शास्त्रार्थ के दिन सामान्य तथा विशेष हिन्दू-मुसलमान श्रोताओं की बहुत अधिकता थी। यहां तक कि श्री दरबार वैकुण्ठवासी महाराणा सज्जनसिंह जी भी शास्त्रार्थ सुनने के लिए पधारे हुए थे।

प्रथम मौलवी साहब—ऐसा कौन सा मत है जिसकी मूल पुस्तक सब मनुष्यों की बोलचाल और समस्त प्राकृतिक बातों को सिद्ध करने में पूर्ण हो। जब बड़े-बड़े मतों पर विचार किया जाता है जैसे भारतीय वेद, पुराण या चीन वाले चीनी, जापानी, बरमी बौद्ध वाले, फारसी जिन्द वाले, यहूदी तौरेत वाले, नसरानी इंजील वाले, मुहम्मदी कुरआन वाले तो प्रकट होता है कि उनके मजहबी नियम और विशेष शाखाएं एक देश में एक भाषा के द्वारा एक प्रकार से ऐसे बनाए गए हैं जो एक-दूसरे से नहीं मिलते और इन मतों में से प्रत्येक मत के समस्त गुण और विशेष चमत्कार उसी देश तक सीमित हैं जहां वह बना है। जिनमें से कोई एक लक्षण और चिह्न उसी देश के अतिरिक्त दूसरे देश में नहीं पाया जाता प्रत्युत दूसरे देश वाले अनभिज्ञता के कारण उसे बुरा जानकर उसके प्रति मानवी व्यवहार तो क्या, उसका मुख तक देखना नहीं चाहते। ऐसी दशा में सब मतों में से कौन सा मत सत्य समझना चाहिये?

स्वामी जी-मजहबों की पुस्तकों में से विश्वास के योग्य एक भी नहीं है; क्योंकि वे पक्षपात से पूर्ण हैं। जो विद्या की पुस्तक पक्षपात से रहित है, वह मेरे विचार में सत्य है और ऐसी पुस्तक का साधारण प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध न होना भी आवश्यक है। मैंने जो अभी तक खोज की है उसके अनुसार वेदों के अतिरिक्त कोई पुस्तक ऐसी नहीं है, जो सबके लिए विश्वास के योग्य हो; क्योंकि समस्त पुस्तकें किसी देश-विशेष की भाषा में हैं और वेद की भाषा किसी देश-विशेष की भाषा नहीं; केवल विद्या की भाषा है। चूंकि यह विद्या की पुस्तक है इसी कारण से किसी मत विशेष से सम्बन्ध नहीं रखती। यही पुस्तक समस्त देशों की भाषाओं का मूल कारण है, पूर्ण होने से विधि और निषेध की परिचायक है और समस्त प्राकृतिक नियमों के अनुकूल है।

मौलवी साहब—क्या वेद मजहबी पुस्तक नहीं है?

स्वामी जी—वेद मजहब की पुस्तक नहीं है; प्रत्युत विद्या की पुस्तक है।

मौलवी साहब—मजहब का आप क्या अर्थ करते हैं?

स्वामी जी—पक्षपात सहित को मजहब कहते हैं। इसी कारण मजहब की पुस्तकें सर्वथा मान्य नहीं हो सकतीं।

मौलवी साहब—हमारे पूछने का अभिप्राय यह है कि समस्त मनुष्यों की भाषाओं पर तथा समस्त मनुष्यों के आचारों पर और समस्त प्राकृतिक नियमों पर कौन सी पुस्तक पूर्ण है सो आपने वेद निश्चित किया। सो वेद इस योग्य है या नहीं ?

स्वामी जी—हां, है।

मौलवी साहब—आपने कहा कि वेद किसी देश की भाषा में नहीं। जो किसी देश की भाषा नहीं होती उसके अन्तर्गत समस्त भाषाएं कैसे आ सकती हैं ?

स्वामी जी—जो किसी देश-विशेष की भाषा होती है वह किसी दूसरी देश भाषा में व्यापक नहीं हो सकती; क्योंकि उसी में बद्ध (सीमित) है।

मौलवी साहब—जब एक देश की भाषा होने से वह दूसरे देश में नहीं मिलती तो जब वह किसी देश की है ही नहीं, तो सबमें व्यापक कैसे हो सकती है ?

स्वामी जी—जो एक देश की भाषा है उसका व्यापक कहना सर्वथा विरुद्ध है और जो किसी देश विशेष की भाषा नहीं वह सब भाषाओं में व्यापक है। जैसे आकाश किसी देश विशेष का नहीं है, इसी से सब देशों में व्यापक है। ऐसे वेद की भाषा भी किसी देश-विशेष से सम्बन्ध न रखने से व्यापक है।

मौलवी साहब—यह भाषा किस की है ?

स्वामी जी—विद्या की।

मौलवी साहब—बोलने वाला इसका कौन है ?

स्वामी जी—इसका बोलने वाला सर्वदेशी है।

मौलवी साहब—तो वह कौन है ?

स्वामी जी—वह परब्रह्म है।

मौलवी साहब—यह किसको सम्बोधन की गई है ?

स्वामी जी—आदिसृष्टि में इसके सुनने वाले चार ऋषि थे—जिनके नाम अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा थे। इन चारों ने ईश्वर से शिक्षा पाकर दूसरों को सुनाया।

मौलवी साहब—इन चारों को ही विशेष रूप से क्यों सुनाया ?

स्वामी जी—वे चार ही सबमें पुण्यात्मा और उत्तम थे।

मौलवी साहब—क्या इस बोली को वे जानते थे ?

स्वामी जी—उस जनाने वाले ने उसी समय उनको भाषा भी जना दी थी अर्थात् उस शिक्षक ने उसी समय उनको भाषा का ज्ञान दे दिया।

मौलवी साहब—इसको आप किन युक्तियों से सिद्ध करते हैं ?

स्वामी जी—बिना कारण के कार्य कोई नहीं हो सकता ।

मौलवी साहब—बिना कारण के कार्य होता है या नहीं ।

स्वामी जी—नहीं ।

मौलवी साहब—इस बात की क्या साक्षी है ?

स्वामी जी—ब्रह्मा आदि अनेक ऋषियों की साक्षी है और उनके ग्रन्थ भी विद्यमान हैं ।

मौलवी साहब—यह साक्षी सन्देहात्मक और बुद्धि विरुद्ध है । कारण कथन कीजिये ।

स्वामी जी—वेद की साक्षी स्वयं वेद से प्रकट है ।

मौलवी साहब—इसी प्रकार सब मजहब वाले भी अपनी-अपनी पुस्तकों में कहते हैं ।

स्वामी जी—ऐसी बात दूसरे मजहब वालों की पुस्तकों में नहीं है और न वह सिद्ध कर सकते हैं ।

मौलवी साहब—पुस्तक वाले सभी सिद्ध कर सकते हैं ।

स्वामी जी—मैं पहले ही कह चुका हूं कि मजहब वाले ऐसा सिद्ध नहीं कर सकते (और यदि कर सकते हैं तो बताइये कि मुहम्मद साहब के पास कुरआन कैसे पहुंचा) ?

मौलवी साहब—जैसे चार ऋषियों के पास वेद आया ।[1]

दूसरा प्रश्न-मौलवी साहब—समस्त संसार के मनुष्य एक जाति के हैं अथवा कई जातियों के ?

स्वामी जी—जुदी-जुदी जातियों के हैं ।

मौलवी साहब—किस युक्ति से ?

स्वामी जी—सृष्टि की आदि में ईश्वरीय सृष्टि में उतने जीव मनुष्य शरीर धारण करते हैं कि जितने गर्भ सृष्टि में शरीर धारण करने के योग्य होते हैं और वे जीव असंख्य होने से अनेक हैं ।

मौलवी साहब—इसका प्रत्यक्ष प्रमाण क्या है ?

स्वामी जी—अब भी सब ही अनेक मां-बाप के पुत्र हैं ।

मौलवी साहब—इसके विश्वसनीय प्रमाण कहिये ।

स्वामी जी-प्रत्यक्ष आदि आठों प्रमाण ।

मौलवी साहब-वे कौन से हैं ?

---

1. खेद है कि मौलवी साहब ने बिना सोचे-समझे ऐसा कह दिया,यह किसी प्रकार ठीक नहीं । न तो कुरआन आदिसृष्टि में मुहम्मद साहब की आत्मा में प्रकाशित हुआ और न उसमें वर्णित कहानियां ही ऐसी हैं जो आदिसृष्टि से सम्बन्धित हों और न उसकी भाषा ही ऐसी है । मुहम्मद साहब और खुदा के बीच में तीसरा जबराईल और असंख्य फरिश्तों की चौकीदारी और पहरा और आकाश से उतरना आदि समस्त बातें ऐसी हैं जिनसे कोई मुहम्मदी भाई इन्कार नहीं कर सकता । इसलिए कुरआन किसी प्रकार भी इस विशेषण का पात्र नहीं हो सकता और उस्मान और कुरानों के बदलने की कहानी इसके अतिरिक्त है ।—संकलनकर्ता

स्वामी जी—प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, ऐतिह्य, संभव, उपमान, अभाव, अर्थापत्ति ।

मौलवी साहब—इन आठों में से एक-एक का उदाहरण देकर सिद्ध कीजिए ।

मौ० साहब—ये जो आकार मनुष्यों के हैं, इनके शरीर एक प्रकार के बने अथवा भिन्न-भिन्न प्रकार के बने ?

स्वा०—मुख आदियों मे एक से हैं, रंगों में कुछ भेद है ।

मौ०—किस-किस के रंग में क्या-क्या भेद है ?

स्वा०—छोटाई-बड़ाई में किंचिन्मात्र अन्तर है ।

मौ०—यह अन्तर एक देश अथवा एक जाति में एक ही प्रकार के हैं अथवा भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न प्रकार के ?

स्वा०—एक-एक देश में अनेक हैं । जैसे एक मां-बाप के पुत्रों में भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं ।

मौ०—हम जब संसार की अवस्था पर दृष्टिपात करते हैं तो आपके कथनानुसार नहीं पाते । एक ही देश में कई जातियां जैसे हिन्दी, हब्शी, चीनी इत्यादि देखने में पृथक्-पृथक् विदित होती हैं अर्थात् चीन वाले दाढ़ी नहीं रखते और तिकोने मुंह के होते हैं । हब्शी, मंगोली, चीनी-तीनों की आकृतियां परस्पर नहीं मिलतीं । एक ही देश में यह भेद क्योंकर है ?

स्वा०—उनमें भी अन्तर है ।

मौ०—दाढ़ी न निकलने का क्या कारण है ?

स्वा०—देश, काल और माता-पिता आदि के शरीरों में कुछ-कुछ भेद है । समस्त शरीर रज वीर्य के अनुसार बनते हैं । वात, पित्त, कफ आदि धातुओं के संयोग-वियोग से भी कुछ-कुछ भेद होते हैं ।

मौ०—हम समस्त संसार में तीन प्रकार के मनुष्य देखते हैं जिनका विभाजन इस प्रकार है-दाढ़ी वाले, बिना दाढ़ी वाले, घुंघराले बालों वाले । दाढ़ी वाले भारतीय, फिरंगी, अरबी, मिश्री आदि । बेदाढ़ी वाले चीनी, जापानी । घुंघराले बालों वाले-हब्शी । इन तीनों की बनावट और प्रकार में बहुत सा भेद है । एक दूसरे से नहीं मिलता और यह भेद आपके कथनानुसार ऊपर वाले कारणों से है । यदि एक देश के रहने वाले ये तीनों प्रकार के मनुष्य दूसरे देश में जाकर रहें तो कभी भेद नहीं होता । जाति समान है । इस अवस्था में संसार के मूलपुरुष आपके कथनानुसार तीन हुए; अधिक नहीं ।

स्वा०—भोटियों को किस में मिलाते हैं, वे किसी से नहीं मिलते । इस प्रकार तीन से अधिक सम्पत्ति (?) विदित होती हैं ।

मौ०—जैसा भेद इन तीनों में है वैसा दूसरे में नहीं । तीनों जातियों का परस्पर मिल जाना इस थोड़े भेद का कारण है परन्तु इन तीनों की पूर्ण आकृति एक दूसरे से नहीं मिलती ।

तीसरा प्रश्न—मौ०—मनुष्य की उत्पत्ति कब से है और अन्त कब होगा ?

स्वा०—एक अरब छियानवे करोड़ और कितने लाख आदि वर्ष उत्पत्ति को हुए और दो अरब वर्ष से कुछ ऊपर तक और रहेगी ।

मौ०—इसका क्या कारण और क्या प्रमाण है ?

स्वा०—इसकी गणना विद्या और ज्योतिष शास्त्र से है ।

मौ०—यह गणना बतलाइये ?

स्वा०—'भूमिका' के पहले अंक[१४] में लिखा है और हमारे ज्योतिषशास्त्र से सिद्ध है, देख लो ।

चौथा प्रश्न—(१३ सितम्बर, सन् १८८२ बुधवार तदनुसार भादों सुदि एकम् संवत् १९३९ विक्रमी)

मौ०—आप धर्म के नेता हैं या विद्या के अर्थात् आप किसी धर्म के मानने वाले हैं या नहीं ?

स्वा०—जो धर्म विद्या से सिद्ध होता है उसको मानते हैं ।

मौ०—आपने किस प्रकार जाना कि ब्रह्म ने चारों ऋषियों को वेद पढ़ाया ?

स्वा०—प्रदान किये हुए वेदों के अवलोकन से और विश्वसनीय विद्वानों की साक्षी से ।

मौ०—यह साक्षी आप तक किस प्रकार पहुंची ?

स्वा०—वचनानुक्रम से और उनकी पुस्तकों से ।

मौ०—प्रश्नों से पूर्व परसों यह निश्चित हुआ था कि उत्तर बुद्धि के आधार पर दिये जावेंगे; पुस्तकों के आधार पर नहीं । अब आप उसके विरुद्ध ग्रन्थों की साक्षी देते हैं ।

स्वा०—बुद्धि के अनुकूल वह है जो विद्या से सिद्ध हो, चाहे वह लिखित हो अथवा वाणी द्वारा कहा जावे । समस्त बुद्धिमान् इसको मानते हैं और आप भी ।

मौ०—इस कथन के अनुसार ब्रह्म द्वारा चारों ऋषियों को वेद की शिक्षा देना विद्या अथवा बुद्धि द्वारा किस प्रकार सिद्ध होता है ?

स्वा०—बिना कारण के कार्य नहीं हो सकता इसलिए विद्या का भी कोई कारण चाहिये और विद्या का कारण वह है जो सनातन हो । यह सनातन विद्या परमेश्वर में उसकी कारीगरी को देखने से सिद्ध होती है । जिस प्रकार वह समस्त सृष्टि का निमित्त कारण है उसी प्रकार उसकी विद्या भी समस्त मनुष्यों की विद्या का कारण है । यदि वह उन ऋषियों को शिक्षा न देता तो सृष्टि नियम के अनुकूल यह जो विद्या का पुस्तक है, इसका क्रम ही न चलता ।

मौ०—ब्रह्म ने वेद चारों ऋषियों को पृथक्-पृथक् पढ़ाया अथवा एक साथ क्रमशः शिक्षा दी अथवा एक काल में पढ़ाया ?

स्वा०—ब्रह्म व्यापक होने के कारण चारों को पृथक्-पृथक् क्रमशः पढ़ाता गया क्योंकि वह चारों परिमित बुद्धि वाले होने के कारण एक ही समय में कई विद्याओं को नहीं सीख सकते थे और प्रत्येक की बुद्धि प्राप्ति की शक्ति भिन्न-भिन्न होने के कारण कभी चारों एक समय में और कभी पृथक्-पृथक् समझ कर एक साथ पढ़ते रहे । जिस प्रकार चारों वेद पृथक्-पृथक् हैं उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य को एक-एक वेद पढ़ाया ।

मौ०—शिक्षा देने में कितना समय लगा ?

स्वा०—जितना समय उनकी बुद्धि की दृढ़ता के लिए आवश्यक था ।

मौ०—पढ़ाना मानसिक प्रेरणा के द्वारा था अथवा शब्द अक्षर आदि के द्वारा जो वेद में लिखे हुए हैं अर्थात् क्या शब्द-अर्थ-सम्बन्ध सहित पढ़ाया ?

स्वा०—वही अक्षर, जो वेद में लिखे हुए हैं, शब्द-अर्थ-सम्बन्ध सहित पढ़ाये गये ।

मौ०—शब्द बोलने के लिए मुख, जिह्वा आदि साधनों की अपेक्षा है । शिक्षा देने वाले में ये साधन हैं या नहीं ?

स्वा०—उसमें ये साधन नहीं हैं क्योंकि वह निराकार है । शिक्षा देने के लिए परमेश्वर अवयवों तथा बोलने के साधन आदि से रहित है ।

मौ०—शब्द कैसे बोला गया ?

स्वा०—जैसे आत्मा और मन में बोला, सुना और समझा जाता है ।

मौ०—भाषा को जाने बिना शब्द किस प्रकार उनके मन में आये ?

स्वा०—ईश्वर द्वारा डालने से; क्योंकि वह सर्वव्यापक है ।

मौ०—इस सारे वार्तालाप में दो बातें अनुमान (तर्क) विरुद्ध हैं; प्रथम यह कि ब्रह्म ने केवल चार ही मनुष्यों को उस भाषा में वेद की शिक्षा दी जो किसी देश अथवा जाति की भाषा नहीं । दूसरे यह कि उच्चारित शब्द जो पहले से जाने हुए न थे, मन में डाले गए और उन्होंने ठीक समझे । यह बात यदि स्वीकार की जावे तो सब मतों की समस्त अनुमान (तर्क) विरुद्ध बातें, चमत्कार आदि सत्य स्वीकार, करनी चाहिएं ।

स्वामी जी—ये दोनों बातें अनुमान (तर्क) विरुद्ध नहीं क्योंकि ये दोनों ही सच्ची हैं । जो कुछ जिह्वा से अथवा आत्मा से बताया जावे वह शब्दों के बिना नही हो सकता । उसने जब शब्द बतलाये तो उनमें ग्रहण करने की शक्ति थी । उसके द्वारा उन्होंने परमेश्वर के ग्रहण कराने से अपनी योग्यतानुसार ग्रहण किया और बोलने के साधनों की आवश्यकता बोलने और सुनने वाले के अलग-अलग होने पर होती है क्योंकि जो वक्ता मुख से न कहे और श्रोता के कान न हों तो न कोई शिक्षा कर सकता है और न कोई श्रवण । परमेश्वर चूंकि सर्वव्यापक है इसलिए उनके आत्मा में भी विद्यमान था, पृथक् न था । परमेश्वर ने अपनी सनातन विद्या के शब्दों को उनके अर्थात् चारों के आत्माओं में प्रकट किया और सिखाया । जैसे किसी अन्य देश की भाषा का ज्ञाता किसी अन्य देश के अनभिज्ञ मनुष्य को जिसने उस भाषा का कोई शब्द नहीं सुना, सिखा देता है उसी प्रकार परमेश्वर ने जिसकी विद्या व्यापक है और जो उस विद्या की भाषा को भी जानता था, उनको सिखा दिया । ये बातें अनुमान (तर्क) विरुद्ध नहीं । जो इनको अनुमान-विरुद्ध कहे वह अपने दावे को युक्तियों द्वारा सिद्ध करे । पुराण जो पुरानी पुस्तकें हैं अर्थात् वेद के चार ब्राह्मण हैं, वे वहीं तक सत्य हैं जहां तक वेदविरुद्ध न हों और अठारह पुराण नवीन हैं जैसे भागवत, पद्मपुराण आदि । वे प्राकृतिक नियमों और विद्या के विरुद्ध होने से सत्य नहीं, सर्वथा झूठे हैं ।

मौ०—पुराण मत की पुस्तकें हैं या विद्या की ?

स्वा०—वे प्राचीन पुस्तकें अर्थात् चारों ब्राह्मण विद्या की और पिछली भागवत आदि पुराण मत की पुस्तकें हैं जैसे कि अन्य मत के ग्रन्थ ।

मौ०—जब वेद विद्या की पुस्तक है और पुराण मत की पुस्तकें हैं और वे आपके कथनानुसार असत्य हैं तो आर्यों का धर्म क्या है ?

स्वा०—धर्म वह है जिसमें निष्पक्षता, न्याय और सत्य का स्वीकार और असत्य का अस्वीकार हो । वेदों में भी उसी का वर्णन है और वही आर्यों का प्राचीन धर्म है, पुराण केवल पक्षपातपूर्ण सम्प्रदायों अर्थात् शैव, वैष्णव आदि से सम्बन्धित हैं जैसे कि अन्य मत के ग्रन्थ ।

मौ०—पक्षपात आप किसे कहते हैं ?

स्वा०—जो अविद्या, काम, क्रोध, लोभ, मोह, कुसंग से किसी अपने स्वार्थ के लिए न्याय और सत्य को छोड़कर असत्य और अन्याय को धारण करना है, वह पक्षपात कहलाता है ।

मौ०—यदि कोई इन गुणों से रहित हो, आर्य न हो तो आर्य लोग उसके साथ भोजन और विवाह आदि व्यवहार करेंगे या नहीं ?

स्वा०—विद्वान् पुरुष भोजन तथा विवाह को धर्म से सम्बन्धित नहीं मानते; प्रत्युत इसका सम्बन्ध विशेष रीतियों, देश तथा समीपस्थ वर्गों से है । इसके ग्रहण अथवा त्याग से धर्म की उन्नति अथवा हानि नहीं होती । परन्तु किसी देश अथवा वर्ग में रहकर इन दोनों कार्यों में अन्य किसी मत वाले के साथ सम्मिलित होना हानिकारक है । इसलिए करना अनुचित है । जो लोग भोजन तथा विवाह आदि पर ही धर्म अथवा अधर्म समझते हैं उनका सुधार करना विद्वानों की आवश्यकता है और यदि कोई विद्वान् उनसे पृथक् हो जावे तो वर्ग को उससे घृणा होगी और यह घृणा उसको शिक्षा का लाभ उठाने से वंचित रखती है । सब विद्याओं का निष्कर्ष यह है कि दूसरों को लाभ पहुंचाना । दूसरों को हानि पहुंचाना उचित नहीं ।

पांचवां प्रश्न—(रविवार, १७ सितम्बर, सन् १८८२ तदनुसार भादों सुदि पंचमी, संवत् १९३९ वि०) ।

मौ०—समस्त मतावलम्बी अपनी मजहबी पुस्तकों को सबसे उत्तम और उनकी भाषा को श्रेष्ठ कहते हैं और उनको उस कारण का कार्य भी कहते हैं । जिस प्रकार की बौद्धिक युक्तियां वे देते हैं उसी प्रकार आपने भी वेद के विषय में कहा । परन्तु ऐसी कोई युक्ति नहीं दी कि जिससे वेद की विशेषता प्रकट हो ?

स्वा०—पहले भी इसका उत्तर दे दिया गया है कि प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों और प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध विषय जिन पुस्तकों में होंगे वे सर्वज्ञ की बनाई हुई नहीं हो सकतीं और कार्य का होना कारण के बिना असम्भव है । चार मत जो कि समस्त मतों का मूल हैं अर्थात् पुराणी, जैनी, इंजील तौरेत वाले किरानी, कुरानी-इनकी पुस्तकें मैंने कुछ देखी हैं, इस समय भी मेरे पास हैं और मैं इनके बारे में कुछ कह भी सकता हूं और पुस्तक भी दिखा सकता हूं । उदाहरणार्थ-पुराण वाले एक शरीर से सृष्टि का आरम्भ मानते हैं, यह अशुद्ध है; क्योंकि शरीर संयोगज है; इसलिए वह कार्य है । उसके लिए भी कर्त्ता की अपेक्षा है । जिन्होंने इस सृष्टि को इस प्रकार अनादि माना है कि कोई इसका रचयिता नहीं यह भी अशुद्ध है; क्योंकि संयोगज पदार्थ स्वयं नहीं बनता । इंजील और कुरआन में अभाव से भाव माना है । ये चारों बातें उदहारण के रूप में विद्या के नियमों के विरुद्ध हैं । इसलिए इनकी वेद से समता नहीं कर सकते । वेदों में कारण से कार्य को माना है और कारण को अनादि कहा है । कार्य को प्रवाह से अनादि और संयोगज होने के कारण सान्त बताया है । इसको समस्त बुद्धिमान् मानते हैं । मैं सत्य और असत्य वचनों के कारण वेद की सत्यता और मतस्थ पुस्तकों की असत्यता कथन करता हूं । यदि कोई सज्जन इसको प्रकट रूप में देखना चाहें तो मैं किसी दिन तीन घण्टे के भीतर उन मतों की पुस्तकों को प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध सिद्ध करके दिखा सकता हूं । यदि कोई नास्तिक वेद में से प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध कोई बात दिखायेगा तो उसको विचार करने के पश्चात् केवल अपनी अज्ञानता ही स्वीकार करनी पड़ेगी । इसलिए वेद सत्य विद्याओं की पुस्तक है न कि किसी मत-विशेष की ।

छठा प्रश्न : मौ०—क्या प्रकृति अनादि है ?

स्वा०—उपादान कारण अनादि है ।

मौ०—अनादि आप कितने पदार्थों को मानते हैं ?

स्वा०—तीन । परमात्मा, जीव और सृष्टि का कारण—ये तीनों स्वभाव से अनादि हैं । इनका संयोग, वियोग, कर्म तथा उनका फल भोग प्रवाह से अनादि है । कारण का उदाहरण-जैसे घड़ा कार्य, उसका उपादान कारण मिट्टी, बनाने वाला अर्थात् निमित्त कारण कुम्हार, चक्र दण्ड आदि साधारण कारण, काल तथा आकाश समवाय कारण ।

मौ०—वह वस्तु जो हमारी बुद्धि के भीतर नहीं आ सकती, हम उसको अनादि क्योंकर मान सकते हैं ?

स्वा०—जो वस्तु नहीं है, वह कभी नहीं हो सकती और जो है वही होती है । जैसे इस सभा में मनुष्य जो थे तो यहां हैं तो फिर भी कहीं होंगे । बिना कारण के कार्य का मानना ऐसा है जैसे वन्ध्या के पुत्र उत्पन्न होने की बात कहना । कार्य वस्तु से चारों कारण जिनका वर्णन ऊपर किया है पहले मानने पड़ेंगे । संसार में कोई ऐसा कार्य नहीं जिसके पूर्वकथित चार कारण न हों ।

मौ०—सम्भव है कि जगत् का कारण जिसे आप अनादि कहते हैं कदाचित् वह भी किसी अन्य वस्तु का कार्य हो जैसे कि बिजली के बनने में कई साधारण वस्तुएं मिलकर ऐसी शक्ति उत्पन्न हो जाती है जो अत्यन्त महान् है । इस वार्तालाप के परिणाम से प्रकट है कि प्रत्येक वस्तु के लिए कोई न कोई कारण होना चाहिए तो कारण के लिए भी कोई कारण अवश्य होगा ।

स्वा०—अनादि कारण उसका नाम है जो किसी का कार्य न हो । जो किसी का कार्य हो उसको अनादि अथवा सनातन कारण नहीं कह सकते किन्तु वह परम्परा पूर्वापर सम्बन्ध से कार्य कारण नाम वाला होता है । यह बात सब विद्वानों को जो पदार्थ विद्या को यथावत् जानते हैं-स्वीकरणीय है । किसी वस्तु को चाहे जहां तक अवस्थान्तर में विभक्त करते चले जावें, चाहे वह सूक्ष्म हो चाहे स्थूल, जो उसकी अन्तिम अवस्था होगी, उसको कारण कहते हैं और यह जो बिजली का दृष्टान्त दिया, वह भी निश्चित कारणों से होता है जो उसके लिए आवश्यक हैं । अन्य कारणों से वह नहीं हो सकती ।

सातवां प्रश्न : मौ०—यदि वेद ईश्वर का बनाया होता तो अन्य प्राकृतिक पदार्थों सूर्य, जल तथा वायु के समान संसार के समस्त साधारण मनुष्यों को उसका लाभ पहुंचना चाहिए था ।

स्वा०—सूर्य आदि सृष्टि के समान ही वेदों से सबको लाभ पहुंचा है क्योंकि सब मतों और विद्या की पुस्तकों का आदि कारण वेद ही हैं और इन पुस्तकों में विद्या के विरुद्ध जो बातें हैं वे अविद्या के सम्बन्ध से हैं क्योंकि वे सब पुस्तकें वेद के पीछे बनी हैं । वेद के अनादि होने का प्रमाण यह है कि अन्य प्रत्येक मत की पुस्तक में वेद की बात गौण अथवा प्रत्यक्ष रूप से पाई जाती हैं और वेदों में किसी का खंडन-मंडन नहीं । जैसे सृष्टि-विद्या वाले सूर्य आदि से अधिक उपकार लेते हैं वैसे ही वेद के पढ़ने वाले भी वेद से अधिक उपकार लेते हैं और नहीं पढ़ने वाले कम ।

मौ०—कोई इस दावे को स्वीकार नहीं करता कि किसी काल में वेद को समस्त मनुष्यों ने स्वीकार किया हो और न किसी धार्मिक पुस्तक में प्रत्यक्ष अथवा गौण रूप से वेदों का खण्डन-मण्डन पाया जाता है ।

स्वा०—वेद का खण्डन-मण्डन पुस्तकों में है जैसे कुरआन में बे-किताब वाले और एक उसी ईश्वर के मानने वाले जैसे बाइबिल में पिता, पुत्र और पवित्रात्मा, होम की भेंट, ईश्वर को प्रिय, याजक, महायाजक, यज्ञ, महायज्ञ आदि शब्द आते

हैं । जितने मतों के पुस्तक बने हुए हैं-बीच के काल के हैं । उस समय के इतिहास से सिद्ध है कि मुसलमान, ईसाई आदि जंगली थे तो जंगलियों को विद्या से क्या काम ? पूर्व के विद्वान् पुरुष वेदों को मानते थे और आजकल सब भाषाओं का मूल निश्चित करते हैं । मोक्षमूलर आदि विद्वान् भी संस्कृत भाषा तथा ऋग्वेद आदि को सब भाषाओं का मूल निश्चित करते हैं । जब बाइबिल, कुरआन नहीं बने थे तब वेद के अतिरिक्त दूसरी मानने योग्य पुस्तक कोई भी नहीं थी । मनुष्य की उत्पत्ति का आदिकाल ही ऋषियों की वेदप्राप्ति का समय है जिस को १९६०८५२९९७ वर्ष हुए । इससे प्राचीन कोई पुस्तक नहीं है ।

पांडे[१६] मोहनलाल जी ने कहा कि मौलवी साहब के शास्त्रार्थ के प्रथम दिन तो राणा साहब नहीं आये थे परन्तु उन्होंने शास्त्रार्थ लिखित होना स्वीकार किया था । अन्तिम दिन श्री महाराणा पधारे और मौलवी साहब की हठ देखकर श्री दरबार ने कहा जो कुछ स्वामी जी ने कहा है वह निस्सन्देह ठीक है । फिर शास्त्रार्थ नहीं हुआ । कविराजा श्यामलदास जी ने भी इसका समर्थन किया ।

अध्याय ६

संस्कृत विद्या का प्रचार

प्रथम परिच्छेद

वैदिक पाठशालाओं की स्थापना

जब तक श्री स्वामी विरजानन्द जी जीवित रहे तब तो जो विद्यार्थी स्वामी जी से मिलता या जो उनसे विद्याभ्यास करने की इच्छा प्रकट करता, स्वामी जी—उसको अपने पत्र के साथ गुरु जी के पास भेज देते थे । कई विद्यार्थी उन्होंने ऐसे भेजे और वे महाराज जी से शिक्षा पाते रहे । जब आसौज कृष्ण पक्ष त्रयोदशी, संवत् १९२५ तदनुसार १४ सितम्बर, सन् १८६८ को स्वामी विरजानन्द जी का स्वर्गवास हुआ, उसके पश्चात् स्वामी जी ने वैदिक पाठाशालायें स्थापित करने का दृढ़ संकल्प किया और निम्नलिखित स्थानों पर पाठशालाएं चालू कीं- १. फर्रूखाबाद, २. मिर्जापुर, ३. कासगंज, ४. छलेसर, ५. बनारस, ६. लखनऊ ।

फर्रूखाबाद की पाठशाला (संवत् १९२६ से संवत् १९३२ तक) **आरम्भ कैसे हुआ**—जब स्वामी जी ने हरिद्वार के कुम्भ से त्यागी होकर गंगातट पर घूमना आरम्भ किया तो घूमते हुये फर्रूखाबाद भी आये और कई पंडितों से धर्मचर्चा होती रही । परिणामत: सैंकड़ों धर्मात्माओं के मन स्वामी जी के उपदेशों की ओर आकृष्ट हो गये । लाला पन्नीलाल सेठ वैश्य, फर्रूखाबाद के एक प्रसिद्ध साहूकार थे, वे एक स्थान पर शिवालय बनाकर, उसमें शिवलिंग स्थापित करना चाहते थे । यह संवत् १९२५-१९२६ की बात है । इसी वर्ष स्वामी जी ने वहां आकर मूर्तिपूजन का खण्डन आरम्भ किया और पंडित श्रीगोपाल और हलधर ओझा आदि प्रसिद्ध पंडितों को स्पष्ट रूप से पराजित किया । परिणाम यह हुआ कि सेठ पन्नीलाल ने जब स्वामी जी से एकान्त में बैठ-बैठ कर अपने सारे सन्देह निवृत्त कर लिये तब उन्होंने बाग में उस स्थान पर संस्कृत पाठशाला खोली, जहां वे शिवलिंग स्थापित करना चाहते थे ।

आरम्भ में ही ५० विद्यार्थी—इस बार स्वामी जी अगहन संवत् १९२५ से लेकर ६ मास तक फर्रूखाबाद में रहे और इसी बार पाठशाला आरम्भ की । ५० के लगभग विद्यार्थी एकत्रित हो गये । पहले-पहल पंडित ब्रजकिशोर जी मथुरा से आये, ३० रु० मासिक वेतन पाते थे । विद्यार्थियों के भोजन तथा वस्त्र का सब प्रबन्ध बाबू दुर्गाप्रसाद जी की ओर से

होता रहा । ला० पन्नीलाल जी पंडित का वेतन देते थे । उनके बाग में पाठशाला स्थापित करके और उसका उचित प्रबन्ध करने के पश्चात स्वामी जी वहां से पूर्व की ओर चले गये ।

डेढ-दो वर्ष तक सफलता से चली—कुछ काल तक पंडित ब्रजकिशोर जी पढ़ाते रहे, परन्तु जब वे छुट्टी लेकर गये तो पुनः लौटकर न आये । तब स्वामी जी ने जुगलकिशोर[1] स्वाध्यायी को मिर्जापुर की पाठशाला से फर्रूखाबाद बुला लिया और वहां रसिक विद्यार्थी को भेज दिया । फर्रूखाबाद में उस समय ७० से १०० तक विद्यार्थी पढ़ते थे । अनुमानतः डेढ़ या दो वर्ष तक लाला पन्नीलाल के आधीन पाठशाला रही ।

सात वर्ष में सफलता के कुछ प्रमाण—फिर जब स्वामी जी माघ संवत् १९२७ में पूर्व से लौट कर कुछ काल यहां रहे, उसी दिन एक अन्याय की बात पन्नीलाल से हुई और उसके कारण स्वामी जी उससे अप्रसन्न हो गये और पाठशाला उसके मकान से उठवा कर विश्रान्त पर, जहां स्वयं ठहरे हुये थे, ले गये । वहां नये सिरे से स्वयं उसका प्रबन्ध किया । उस समय पाठशाला के सहायक सेठ हरीराम और लाला जगन्नाथप्रसाद जी थे ।

फिर समय-समय पर यहां आते और पाठशाला का प्रबन्ध करते रहे । अन्ततः संवत् १९३३ के उत्सव में जब बम्बई से आये और वेदभाष्य करने का दृढ़ संकल्प हुआ, उस समय पाठशाला को तोड़कर सब रुपया वेदभाष्य के खर्च के लिये ले गये । यह पाठशाला ७ वर्ष और कुछ मास रही । **पंडित देवदत्त कान्यकुब्ज,** जो इस समय वैदिक पाठशाला पुराना कानपुर के मुख्य पंडित हैं, **पंडित भीमसेन जी,** सनाढ्य ब्राह्मण[2] जो इस समय एक प्रख्यात पंडित हैं और 'आर्यसिद्धांत' नामक पत्रिका के सम्पादक हैं, **पंडित ज्वालादत्त जी शास्त्री,** [3] कान्यकुब्ज जो वैदिक यन्त्रालय अजमेर में हैं, पंडित दिनेशराम जो कासगंज की पाठशाला के मुख्य पंडित हैं और देवरऊ निवासी पंडित कंवरसेन, इसी प्रकार और भी बीसियों विद्वान इसी प्रकार फर्रूखाबाद की पाठशाला के विद्यार्थी रहे हैं ।

पन्नीलाल का अन्याय—फर्रूखाबाद की पाठशाला लाला पन्नीलाल के प्रबन्ध से निकल जाने और उसके अन्याय की वास्तविकता यह है कि किसी विद्यार्थी की लुटिया और धोती चोरी चली गई । वहां एक सुन्दर नाम चौबे रहता था जिस को चार रुपया मासिक मिला करता था । उसकी माता वहां आया करती थी क्योंकि पन्नीलाल की ओर से वहां भवन-निर्माण का काम जारी था । जो मजदूर वहां काम करते थे, वह चौबे उन मजदूरों का मेट था । लोटा और धोती ले जाने का सन्देह सब विद्यार्थियों ने उस चौबे की माता पर किया; यही नहीं उन्होंने एक मजदूर को उसी विद्यार्थी के मकान से निकलते हुये भी देखा था । जिस विद्यार्थी की धोती और लोटा चोरी गया था उसने उससे पूछा ही था कि उसने जाकर अपने बेटे से कह दिया । वह चूंकि बदमाश व्यक्ति था उसने आकर विद्यार्थी को मारा । विद्यार्थी ने पंडित से पुकार की । पंडित जी ने कहा कि मैं इसमें कुछ नहीं कर सकता, तुम स्वामी जी से कहो । जब उसने स्वामी जी से फरियाद की तो उन्होंने कहा कि तुम पाठशालाधीश के पास अर्थात् लाला पन्नीलाल के पास जाओ । विद्यार्थी कई बार उसके पास गये परन्तु उसने कुछ भी ध्यान नहीं दिया । कई बार हेराफेरी में राजा दुर्गाप्रसाद जी[4] के पुरोहित, पंडित गंगादत्त जी गौड़ स्वामी जी के पास गये । तब स्वामी जी ने कहा-विद्यार्थी क्या मेरे बेटे पोते या धेवते हैं जो मैं उनके अपराधी को जाकर दंड दूं या चौबे को भी ? और मैं राजा भी नहीं हूं; परन्तु वही उनके अन्नदाता हैं, वही दंड देवें ।

अन्त में जब बहुत सी बातचीत के पश्चात् स्वामी जी को चौबे का अपराध और पन्नीलाल की उसको दंड देने में उपेक्षा विदित हो गई तो बोले—"वह चौबे तो कदाचित् उसका दामाद है जो उसका अपराध जानकर भी उसको दंड न दिया परन्तु दीन विद्यार्थी उसके क्या लगते हैं ?"

पंडित गंगादत्त जी ने इन पिछले शब्दों को छोड़कर सारी बात लाला पन्नीलाल से आकर कह दी और कहा कि आप ही इसका निर्णय करें । यदि तुमसे न हो तो फिर स्वामी जी ही या कोई और प्रबन्ध करें । फिर सायंकाल

लाला पन्नीलालजी मुझे साथ लेकर स्वामी जी के पास गये । विद्यार्थियों का वृत्तान्त लाला पन्नीलाल ने मेरे द्वारा स्वामी जी से फिर लिखवाया और पन्नीलाल ने अपने मुख से यह शब्द कहे कि चौबे ने इस विद्याथी को मार ही क्यों न डाला; अच्छा करता यदि मार डालता । तब स्वामी जी ने वही शब्द फिर उसके मुंह पर कहे । इसपर पन्नीलाल को बहुत बुरा लगा । स्वामी जी ने यह भी कहा था कि "पन्नीलाल ने उस विद्यार्थी को आश्वासन क्यों न दिया और न्याय क्यों न किया" । इस पर पन्नीलाल ने क्रोध किया था । फिर हम वहां कुछ काल बैठे रहे । फिर हमने स्वामी जी से कहा कि आपको प्रत्यक्ष ऐसा नहीं कहना चाहिये । तब स्वामीजी ने यह कहा कि तुम्हारा वह होकर रहेगा परन्तु हमारा तो वह बाल भी बांका नहीं कर सकता, हमारा क्या करेगा और यह कहा कि विद्यार्थियों का अन्नदाता तो कोई और हो जावेगा । यदि वह विद्यार्थियों का अपराध न सुनेगा तो तीन दिन ये लोग उसका अन्न ग्रहण न करेंगे परन्तु न्याय करने पर ग्रहण करेंगे । यदि उसने तीन दिन तक न्याय न किया तो विद्यार्थी सब पण्डित सहित यहां चले आवेंगे । इस पर पन्नीलाल वहां से चला आया और पंडित गंगादत्त भी उसके साथ चले आये ।

पंडित देवदत्त जी कहते हैं कि उस सुन्दर चौबे ने प्रथम तो विद्यार्थी को मारा फिर गोविन्द को पकड़ कर स्वामी जी के पास विश्रान्त पर ले गया परन्तु स्वामी जी की दृष्टि बदली हुई देखकर छोड़कर भाग आया । अन्ततः जब पन्नीलाल ने उस चौबे को कोई दण्ड न दिया तब स्वामी जी ने पंडित को सब विद्यार्थियों सहित विश्रान्त पर बुला लिया ।

पाठशाला से स्वामी जी की अरुचि का कारण—लाला जगन्नाथ जी रईस फर्रूखाबाद ने भी इसका समर्थन किया और कहा कि जब कई वर्षों तक पाठशाला रही और दो-चार विद्यार्थी भाष्य पर्यन्त[६] पढ़कर निकले । वे फिर अपनी प्राचीन रीति अर्थात् पोपलीला में फंस गये इस पर स्वामीजी की पाठशाला की ओर से अरुचि हो गई । तब स्वामी जी ने चाहा कि पाठशाला तोड़ दी जाये । स्वामी जी ने मुझसे कहा कि तुम अपना भाग वैदिक निधि अर्थात् वेदभाष्य की सहायता में दो और निर्भयराम अपने भाग से कुछ-कुछ पाठशाला चालू रखे । तत्पश्चात् निर्भयराम जी पाठशाला को वहां से अपने बाग में ले गये और स्वामी जी हमसे हमारे भाग का रुपया वेदभाष्य की सहायता में लेते रहे । प्रथम यहां पंडित ब्रजकिशोर फिर जुगलकिशोर और उनके पश्चात् उदयप्रकाश[७] जी आये । फिर नन्दकिशोर आये । जुगलकिशोर केवल कुछ दिन रहे थे । ये नन्दकिशोर वहां के विद्यार्थी थे । इसके पश्चात नीलाम्बर आये; ये भी उसी पाठशाला के विद्यार्थी थे ।

पंडितों की पोपलीला भी पाठशाला में बाधक बनी—पंडित शामलाल कान्यकुब्ज, कायमगंज निवासी ने वर्णन किया कि उदयप्रकाश को जब स्वामी जी ने फर्रूखाबाद में नियत किया और स्वयं चले गये तो उसने पीछे से उन शैवों का, जिनका स्वामी जी खंडन करते थे, मंडन करना आरम्भ किया । लोगों ने स्वामी जी को सूचना दी । फिर स्वामी जी आये और उदयप्रकाश को रोका । उसने कहा कि हम इस बात से न रुकेंगे क्योंकि यह तो हमारा स्वभाव ही है कि जो कोई हमारे सामने आकर किसी बात का मंडन करे, हम उसका खंडन करते हैं और यदि कोई खंडन करे तो हम मंडन करते हैं । यह तो हम अपनी विद्या दिखलाने के लिये किया करते हैं । सारांश यह कि ऐसी-ऐसी बातों से तंग आकर और लालची पंडितों के पोपलीला न छोड़ने के कारण स्वामी जी ने सात वर्ष के पश्चात् फर्रूखाबाद की पाठशाला तोड़ दी ।

मिर्जापुर की पाठशाला

स्थापना-आरम्भ समारोह में ब्रह्मभोज; परन्तु स्वयं वह भोजन नहीं किया—काशी शास्त्रार्थ के पश्चात् प्रयाग के कुम्भ से होकर मिर्जापुर वालों के प्रेम से स्वामी जी मिर्जापुर आये । इससे पहले भी एक बार आ चुके थे । इस बार फागुन संवत् १९२७[८] तदनुसार फरवरी, सन् १८७१ में स्वामी जी यहां पधारे और रामरत्न लड्ढा के बाग में निवास किया । जो विद्यानुरागी उनके पास आता उसे पाठशाला स्थापित करने की प्रेरणा देते थे । इन्हीं दिनों सरजूप्रसाद शुक्ल के द्वारा चौधरी गुरचरणलाल से और रामगोपाल अग्रवाल से बातचीत हुई । जिस पर वे संतुष्ट हो गये और कहा कि सौ रुपये मासिक हम दिया करेंगे, पाठशाला स्थापित की जावे । यह बातचीत होते-होते दो मास व्यतीत हो गये । अन्ततः जेठ, संवत्

१९२८ तदनुसार जून, सन् १८७१ में पाठशाला का प्रारम्भ हुआ। लालडिग्गी के पास जो, गुरचरणलाल जी का मकान है, वह पाठशाला के लिये नियत हुआ। स्वामी जी वहां पधारे, हवन हुआ और मंगलार्थ महाभाष्य का पाठ करा दिया गया। दस-ग्यारह ब्राह्मणों को भोजन भी दिया गया। ब्रह्मभोज की मिठाई से स्वयं स्वामी जी ने कुछ नहीं खाया। संन्ध्या, बलिवैश्वदेव का नियम प्रचलित हुआ। जो विद्यार्थी संध्या नहीं करता था और सूर्योदय से पहले नहीं उठता था वह दिन भर भोजन से वंचित रहकर सारे दिन गायत्री जपता था। ३०-३१ विद्यार्थी प्रविष्ट हो गये, सबको भोजन पाठशाला से मिलता था। पढ़ाने के लिये पंडित जुगलकिशोर जी मथुरा से बुलाये गये। वे अपने विद्यार्थी, कासगंज-निवासी पंडित गोपाल तथा अपने दूसरे विद्यार्थी बलदेवप्रसाद सहित यहां आये। पाठशाला स्थापित करने के पश्चात् स्वामी जी काशी की ओर चले गये और जाते समय सूरजप्रसाद शुक्ल की देखरेख में पाठशाला को छोड़ गये।

विद्यार्थियों की शरारत—विद्यार्थी लोग प्रायः शरारत किया करते थे। जब वस्त्र और पुस्तक मिलने का अवसर आता तो बहुत नाम लिखाते और पीछे भाग जाते। प्रथम पंडित जुगलकिशोर, उनके पश्चात् पंडित ज्वालादत्त, फिर बलदेवप्रसाद, फिर गोपाल पंडित, फिर मंडनराम पंडित-ये लोग एक दूसरे के पश्चात् पढ़ाते रहे।

पाठशाला की चिन्तनीय समाप्ति—पंडित देवदत्त जी शास्त्री, मुख्य पंडित पाठशाला कानपुर वर्णन करते हैं कि मैं फर्रूखाबाद की पाठशाला में दो वर्ष पढ़कर फिर अधिक पढ़ने के लिये मिर्जापुर की पाठशाला में गया। वहां उस समय पंडित ज्वालादत्त अध्यापक थे। एक बार वहां मैं एक मूर्ति पर बैठ गया। यह मूर्ति महादेव की थी। देवकीनन्दन विद्यार्थी ने हमसे झगड़ा किया। हम दोनों परस्पर झगड़ा करते हुये अपने विवाद पंडित ज्वालादत्त के पास ले गये। पंडित ज्वालादत्त जी ने उस लड़के का पक्ष किया। इतने में स्वामी जी भी आ गये; उन्होंने भी विवाद-विषय को सुना। अन्ततः सन् १८७३ में स्वामी जी ने पण्डित ज्वालादत्त को हटा कर पाठशाला तोड़ दी। फिर कुछ लोगों के कहने से स्वामी जी ने पंडित गजाधर को बुलाया कि वहां पाठशाला चलावें परन्तु वे न पढ़ा सके और पाठशाला टूट गई। हम वहां मिर्जापुर में पंडित ज्वालादत्त के पास एक वर्ष तक पढ़ते रहे। यह पाठशाला तीन वर्ष तक रही अर्थात् जून, सन् १८७० से जून, सन् १८७३ तक।

कस्बा कासगंज[९] (जिला एटा) की पाठशाला

नगर में से गुजरने में कोई दोष नहीं माना—स्वामी जी गंगातट पर विचरते हुये और सत्योपदेश करते हुये गढ़ैया में आये और वहां पंडित अंगदराम शास्त्री बदरिया वासी से एक महान् शास्त्रार्थ करके उसे अपना शिष्य किया। कासगंज के लगभग एक सौ मनुष्य इकट्ठे होकर स्वामी जी को लाने के लिये सोरों गये। इन दिनों स्वामी जी की प्रतिज्ञा थी कि हम कुछ समय तक गंगा के तट पर उपदेश करेंगे और तट छोड़ कर तब जावेंगे जब कोई पाठशाला स्थापित कर देगा। इसी प्रतिज्ञा पर कासगंज के पंडित सखानन्द जी, पंडित अजुध्याप्रसाद जी, पंडित खैरातीलाल जी रईस, नारायण ब्राह्मण रईस, गिरधारी लाल वैश्य-सब मिलाकर लगभग सौ मनुष्य वहां गये। यह वर्णन चैत या वैशाख, संवत् १९२७ तदनुसार मार्च या अप्रैल, सन् १८७० का है। स्वामी जी सोरों से बलदेवगिरि संन्यासी के साथ उसी की बग्घी में बैठकर कासगंज को चल पड़े। जब बग्घी नगर के पास पहुंची तो खड़ी कर दी। जब और सब साथ वाले आ गये तो लोगों ने पूछा कि स्वामी जी! आप को नगर में चलने में कुछ दोष तो नहीं अन्यथा बाहर से ले चलें। स्वामी जी उन दिनों संस्कृत में बोलते थे, कहा कि इसमें क्या दोष है? ये सब लोग स्वामी जी के साथ पैदल शनैः शनैः सोरों दरवाजे से प्रविष्ट होकर और नदरी[१०] दरवाजे से निकल कर पंडित मुकुन्दराम ब्राह्मण रईस कासगंज के बाग में जो बीच घरौना है, उसमें आकर स्वामी जी को ठहराया। दिलसुख और गिरधारीलाल की दुकान पर जो १७०० रुपये पुण्य के एकत्रित थे,वे सबने मिलकर सारे ही इस पाठशाला के व्यय के लिये नियत कर दिये और पंडित दुलाराम[११] जो स्वामी जी की फर्रूखाबाद की पाठशाला का विद्यार्थी था, उसको

यहां बुलाया गया। प्रथम सूचना आई कि वह रोगी है; जिस पर स्वामी जी खेद प्रकट करने लगे कि यदि वह मर गया तो बहुत हानि होगी क्योंकि हमारी पाठशाला का पढ़ा हुआ सुबोध विद्यार्थी है। फिर उसके निरोग होने पर वह यहां आया और १५ रुपया मासिक पर अध्यापक होकर पाठशाला में पढ़ाने लगा। स्वामी जी ने उसका नाम बदलकर दिनेशराम रखा।

पाठशाला के नियम—पाठशाला के नियम ये थे। १—प्रथम संन्ध्या पढ़कर विद्यार्थी पाठशाला में भरती हो और इसीसे उन की बुद्धि की परीक्षा भी हो जावेगी।

२—अष्टाध्यायी, महाभाष्य, मनुस्मृति, वेद-ये ग्रन्थ पढ़ाये जावें।

३—यदि कोई विद्यार्थी सूर्योदय से पहले उठकर सन्ध्या न कर ले तो उस दिन उसको भोजन की आज्ञा नहीं है। उसे सायंकाल की सन्ध्या करके भोजन मिले और इस बात की देखभाल हो कि वह उस बस्ती में जाकर खाना न खा ले।

४—विद्यार्थियों को नगर में जाने की आज्ञा नहीं है, परन्तु निमन्त्रण में कभी-कभी जाने की आज्ञा है।

५—इस पाठशाला के कोष से नगर के विद्यार्थियों को भोजन न मिले; बाहर वालों को मिले।

६—उद्यमी और बुद्धिमान विद्यार्थी के लिए खाने का विशेष प्रबन्ध किया जावे। इसी शाला के मकान के पास एक कोटरी में हवनकुंड खुदवा कर उसमें अग्निहोत्र करने की आज्ञा दी। इस चन्दे के अतिरिक्त और भी लोगों ने मासिक चन्दा लिखा था और केवल यही नहीं प्रत्युत विवाहों पर जो संकल्प होता था, वह सब पाठशाला के लिये एकत्रित होने के विषय में सबकी सम्मति हो गई थी। लाला निर्भयराम जी सेठ फर्रूखाबाद के लेखानुसार ला० रूपचन्द्र सुखानन्द वैश्य चौधरी से रुई के क्रय की जो गंगा जी की चुंगी छटांक मन की दर से लगती है; उसके भी ३५ रूपये एक बार हमने लिये थे।

यज्ञों तथा वेदपाठ के प्रचार से पुनः उन्नति सम्भव—पंडित दुलाराम, जो दिनेशराम जी गौड़ के नाम से प्रसिद्ध हैं, ने वर्णन किया कि जब स्वामी जी फर्रूखाबाद में आकर टोका घाट पर सिद्धगोपाल के स्थान पर ठहरे तो संवत १९२५ था और ग्रीष्म ऋतु थी। उस समय स्वामी जी प्रतिमापूजन और भागवत का खंडन यह बताकर करते थे कि ये वेदविरुद्ध हैं और यह कहते थे कि जब पूर्वकाल में यज्ञ होते थे तो विद्वान् (देवता) आते थे परन्तु जब से संस्कृत प्रचार और यज्ञ का प्रचलन उठ गया; तब से ये नाना प्रकार के मतमतान्तर फैल गये और बहुत सी बातों में अधोगति हो गई है। जब लोग फिर यज्ञ करें, वेद पढ़ें तो अवश्य उत्तमगति का समय हो जावे। इन्हीं दिनों स्वामी जी ने पन्नीलाल सेठ से कहा कि पाठशाला बिठलाने का प्रबन्ध कराओ ताकि पाणिनि व्याकरण और महाभाष्य का प्रचार हो।

बाग में गिरा आम उठाने पर दण्ड-कासगंज निवासी पंडित रामप्रसाद शर्मा,[१२] सनाढ्य ने वर्णन किया कि स्वामी जी मुझे 'तर्कबुद्धि' कहा करते थे। न्यायपूर्वक शिक्षा होती थी; किसी का पक्षपात नहीं था। पांच या चार मास स्वामी जी रहे थे। एक बार मैं स्वामी जी को नहलाने के लिये जीवाराम कायस्थ के बगीचे में ले गया। स्वामी जी आगे-आगे और मैं पीछे-पीछे था। मार्ग में उस बाग के भीतर बाग वाले का एक आम गिरा हुआ मैंने उठा लिया। स्वामी जी ने जब लौटकर देखा कि मेरे हाथ में आम है तब कहा कि तूने आम क्यों उठा लिया? क्या तेरे पिता का आम है या तेरे पिता का बाग है? और मकान पर आकर दो रुपयो जुर्माना किया। उपर्युक्त चन्दे के अतिरिक्त रूप धन वाले २ रु० मासिक, मोहन वाले २ रुपये मासिक; कुंवर हुलाससिंह २० रु० मासिक देते थे।

वेद की पुस्तक के द्वारा शपथ की निंदा—"एक बार स्वामी जी की अनुपस्थिति में माधो और चैनसुख की सम्मति से यह निश्चय हुआ कि सब लोग सत्य पर चलें और सत्य ग्रन्थों का प्रचार करें; पुराण आदि कोई न पढ़े। इस पर सब विद्यार्थियों ने अष्टाध्यायी आदि आर्षग्रन्थों के पढ़ने की शपथ लेने के लिये वेद की पुस्तक उठाकर कहा कि वेद-विरुद्ध काम न करेंगे परन्तु मैंने इन्कार किया; परिणामतः उन्होंने मुझे पाठशाला से निकाल दिया। जब फिर स्वामी जी आये तो परीक्षा के दिन मुझे स्मरण किया। चैनसुख ने कहा कि उसको पढ़ाने की पंडित दिनेशराम जी की आज्ञा नहीं है। स्वामी जी ने सब वृत्तांत पूछा; उस पर वेद की पुस्तक उठाकर शपथ लेने की व्यवस्था सब सुनाई गई। यह सुनकर स्वामी जी सब पर बहुत कुपित और अप्रसन्न हुये कि हमारी आज्ञा के बिना क्यों ऐसा काम किया। क्या यह ब्राह्मण लोग बिना पोपलीला के रह सकते हैं? अब तो यह बे-धर्म हो गये हैं और कहा कि यह नीच, यह चमारों के यहां जाने वाले कब इतना शीघ्र मान सकते हैं। ये तो पूर्णतया जीविका के अधीन हैं। फिर स्वामी जी ने मुझ रामप्रसाद का पठन-पाठन चालू करवा दिया। स्वामी जी विद्यार्थियों का परस्पर शास्त्रार्थ कराते थे।"

कासगंज की पाठशाला के अन्य वृत्तान्त—इन्हीं दिनों में स्वामी जी ने सेठ पन्नीलाल को पाठशाला बिठलाने के लिये कहा। इस पाठशाला में अन्न तो सबको मिलता था परन्तु योग्य विद्यार्थियों को वस्त्र और पुस्तकें भी मिलती थीं। जब ऐसा प्रारम्भ हुआ तो मैं जो उस समय माधवाचार्य के पास चूरू वालों की पाठशाला में पढ़ता था,वहां चला आया और अष्टाध्यायी पढने लगा। महीने में एक आवृत्ति अष्टाध्यायी की अर्थसहित कर ली और सुगम उदाहरण वैदिक प्रक्रिया के अतिरिक्त भी पढ़ लिये। पंडित ज्वालादत्त प्रयाग, नन्दकिशोर फर्रूखाबाद निवासी, अजुध्याप्रसाद सरदारिया, यमुनादत्त पुष्कर निवासी, इन्द्रमणि बंगाल, मण्डनधर प्रयाग, कुमारसेन सोहना जिला बुलन्दशहर, बलदेव कायमगंज निवासी, देवदत्त पोलियां निवासी, ऐसे ही और लगभग ५० विद्यार्थी उस समय पढ़ते थे। अभी स्वामी जी काशी नहीं गये थे। प्रथम वहां पंडित ब्रजकिशोर पढ़ाते रहे, फिर वहां जुगलकिशोर जी आये, उनके स्थान पर उदयप्रकाश जी बुलाये गये। वे वहां पढ़ाते रहे, इतने में संवत् १९२७ को स्वामी जी यहां कासगंज आये। यहां पाठशाला का निश्चय किया जिसके लिये उदयप्रकाश जी को लिखकर मुझे वहां से बुला लिया। मैं ज्येष्ठ मास, संवत् १९२७ में यहां आया और स्वामी जी के कथनानुसार एक पुस्तक महाभाष्य, हस्तलिखित धातुपाठ, अष्टाध्यायी वार्तिक-यह भी वहां से ले आया। यहां काम करने के लिये मंगामल ब्राह्मण कासगंज से मुझे लिवाने गया था। जब मैं आया तो यहां पाठशाला आरम्भ हुई। मै १५ रुपये मासिक पर यह्मं नियत हुआ और लगभग छः मास पश्चात बीस रुपये हो गये। स्वामी जी की मुझ पर अत्यंत कृपा थी। वहां फर्रूखाबाद में भी कह आये थे कि तुमको हम पढ़ाने के लिये बुलावेंगे; तुम पक्षपात छोड़कर भली प्रकार पढ़ाना, विद्यार्थियों की कमी का विचार न करना और किसी के बहकावे में न आना।

इस पाठशाला के विषय में स्वामी जी के एक पत्र का सार—इस पाठशाला के विषय में स्वामी जी की ७ मार्च, सन् १८७४ को चिट्ठी वृंदावन से लिखी हुई थी, जिसका सार नीचे दिया जाता है—

"विशुद्धानन्द निकल गया, इसमें जो सत्य-सत्य कारण हो, सो शीघ्र लिख भेजना। वृन्दावन, सेठ जी के बाग में पूर्व निकट मलूकदास जी का बाग, यह ठिकाना लिफाफे के ऊपर लिख दीजिये। हमको अनुमान से विदित है कि जुगलकिशोर से पढ़ाया नहीं गया होगा, और कुछ कारण हुआ होगा। जो ऐसे-ऐसे विद्यार्थी चले जायेंगे तो पढ़ाने वाले की कमी गिनी जायेगी इसका वृत्तान्त शीघ्र लिखो और कौन क्या-क्या पढ़ता है सो भी लिखना जैसा वर्तमान होय। संवत् १९३०।

इस पाठशाला के विद्यार्थी ये थे: १—गोपालदत्त, २—चैनसुख, ३—रामप्रसाद, ४—कल्याणदत्त, ५—कृष्णवल्लभ, ६—बुद्धसेन, ७—नारायणदत्त, ८—शंकरदत्त, कासगंज निवासी, ९—कुंवर बलालसिंह, १०—अम्बाप्रसाद, ११—कामताप्रसाद, १२—गंगाधरसहाय नदरी, १३—गोपालदत्त, १४—टीकाराम, १५—शालिग्राम सहाय सहावर, १६—बिहारीदत्त, १७—देवीसहाय वरनपुर, १८—नन्दकिशोर ब्रह्मचारी, १९—देवदत्त कान्यकुब्ज, २०—छेदीलाल काजिमाबाद निवासी, २१—पंचमदत्त, २२—जुगलकिशोर बदरम[१३] निवासी, इनके अतिरिक्त सुन्दर, जगन्नाथ और लक्ष्मणप्रसाद वैश्य थे तथा चांदरीप्रसाद कायस्थ भी । इनके अतिरिक्त और लोग भी पढ़ते थे । सेठपुर के नारदमुनि और रुस्तमगढ़ के हरनारायण आदि भी विद्यार्थी थे ।

जात देने पर अर्थदण्ड—कहा जाता है कि इस शाला का पंचम विद्यार्थी कुटुम्ब सहित अमरोहे में मीरां की जात[१४] को गया । वहां जात करके जब लौटा तो पंडित चैनसुख ने सब वृत्तांत स्वामी जी से कहा । स्वामी जी ने कहा कि ऐसा करने पर अवश्य उसको दण्ड होगा । उस पर २५ रुपये जुर्माना किया, उनमें से १० रुपये क्षमा किये और १५ रुपये पाठशाला में दाखिल करा लिये थे और आज्ञा दी कि आज से ऐसा काम कोई न करने पावे ।

परीक्षा में उत्तम आने पर पारितोषिक—इस पाठशाला में जगन्नाथ सुपुत्र गिरधारीलाल ने अष्टाध्यायी को ऐसा कण्ठस्थ किया कि वह पहले अध्याय के पहले पाद को उल्टा भी सुना दिया करता था । इस पर स्वामी जी ने परीक्षा के समय प्रसन्न होकर उसको पिता से पांच रुपये दिलवाये थे । पूर्णमासी को शाला में परीक्षा होती थी, जिसके गण अर्थात् पास के नम्बर अधिक होते थे । (सब मिलाकर १० तक गण थे) उसकी प्रतिष्ठा होती और उसके भोजन में घृत की वृद्धि होती थी और जिस विद्यार्थी की उत्तम परीक्षा नहीं होती थी उससे छोटे विद्यार्थी के जूते उठवाते थे । प्रबन्ध के कर्त्ता पंडित चैनसुख और स्वर्गीय पंडित बेनीमाधव थे । छुट्टी के दिन, अमावस्या और पूर्णमासी को पांच मनुष्य नित्य हवन करते थे । पंडित दिनेशराम, पंडित चैनसुख, द्वारकाप्रसाद वैश्य, भूदेव अर्थात् गोपालदत्त, हरनारायण वेदपाठी तथा रूपधन वालों का भी प्रवन्ध था ।

ब्राह्मी और मालकंगनी खाने के निर्देश—पहली बार स्वामी जी जेठ में आये और क्वार में गये । ४ मास यहां रहे, फिर संवत् १९२७ में आये और एक मास पाठशाला में रहकर फर्रूखाबाद की ओर चले गये । फिर अगहन, संवत् १९२९ तदनुसार नवम्बर, सन् १८७३ को जब कलकत्ते से लौट कर आये तो तीसरी बार पाठशाला के पास रामदयाल सर्राफ के बाग में ठहरे । इन दिनों पंडित दिनेशराम के स्थान पर पंडित जुगलकिशोर जी २० रुपये मासिक पर काम करते थे और पंडित दिनेशराम, गोपालदास और अन्ध संन्यासी विशुद्धानन्द ये तीनों जुगलकिशोर जी से महाभाष्य पढ़ते थे । इस बार स्वामी जी यहां १०-१२ दिन रहे फिर यहां से छलेसर की ओर चले गये । ब्राह्मी और मालकंगनी[१५] खाने का विद्यार्थियों को निर्देश किया करते थे और खिलाते भी थे ।

कृपालु स्वामी जी—एक बार वर्षा के कारण वायु आती थी जिससे विद्यार्थियों को कष्ट होता था । पंडित जी ने पंडित चैनसुख जी को दीवार बनाने के लिये कहा परन्तु मजदूरों के न मिलने के कारण प्रबन्ध न हो सका । सात द्वारों में से केवल दो बन्द हुये । स्वामी जी ने फूस के छप्पर बनाने को कहा । हमने कहा कि हमें बनाने की विधि ज्ञात नहीं । अन्त को स्वामी जी स्वयं बतलाने लगे और चार-पांच स्थानों पर बनाकर विधि बतलाई । फिर हमने बना लिया । सारांश यह कि विद्यार्थियों के ऊपर अत्यंत कृपा करते थे । यह पाठशाला संवत् १९३१ में पंडित जुगलकिशोर जी के कुप्रबन्ध से टूट गयी । पंडित जी इस शाला को तोड़कर स्वयं कुंवर हुलाससिंह जी के पास चले गये और पाठशाला समाप्त हुई । सब मिलाकर ४ साल कुछ महीने यह पाठशाला चालू रही अर्थात् मई, सन १८७० से जून, सन् १८७४ तक ।

कस्बा छलेसर जिला अलीगढ़ की पाठशाला

छलेसर में स्वामी जी का भव्य स्वागत तथा यज्ञ व ब्रह्मभोज आदि पूर्वक पाठशाला का आरंभ—ठाकुर मुकुन्दसिंह जी रईस छलेसर पहले-पहल स्वामी जी को संवत् १९२४ में कर्णवास में मिले थे और अपने समस्त सन्देह निवृत्त करके सच्चे हृदय से आर्य हो गये थे। इसी प्रकार फिर भी प्रायः मिलते रहे। अन्त में काशी शास्त्रार्थ जीतने के पश्चात् जब संवत् १९२७ में स्वामी जी रामघाट पर पधारे और बनखंडी महादेव जी के स्थान पर ठहरे तो कार्तिक शुक्ला चौदस को ठाकुर साहब वहां गये और स्वामी जी से निवेदन किया कि मैं पाठशाला स्थापित करना चाहता हूं; आप छलेसर चले चलें। स्वामी जी ने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया और कहा कि तुम चलो, हम चौथ या पंचमी अगहन बदि, संवत् १९२७ तदनुसार १२,१३ नवम्बर, सन् १८७० शनिवार, रविवार को आवेंगें। ठाकुर साहब का कथन है कि हमने एक पालकी छलेसर जाकर भेज दी और उनके आने से पहले ही प्रत्येक जाति के लगभग २०० या २५० मनुष्य जिनमें क्षत्रिय अधिक थे, स्वामी जी के स्वागत को आये। १० बजे दिन के स्वामी जी वहां पधारे, वहीं उन्होंने स्नान किया और गंगारज सारे शरीर पर लगाई। कपड़ों के स्थान पर केवल एक कौपीन थी। तत्पश्चात् स्वामी जी पालकी में नहीं चढ़े; प्रत्युत सब के साथ पैदल आये। हम सब लोग नंगे पांव नम्रतापूर्वक उनके स्वागत के लिये गये थे। लोगों ने महाराज को पालकी में चढ़ने के लिये बहुत कहा परन्तु उन्होंने स्वीकार न किया। तब १२ बजे कस्बा छलेसर से होते हुये पश्चिम की ओर वाले बाग में जहां पाठशाला स्थापित करने की सम्मति थी, स्वामी जी पधारे। वहां स्वामी जी के लिये एक स्थान अच्छी प्रकार शुद्ध कर दिया गया था। स्वामी जी के बैठने के लिये एक उत्तम देसी चौकी बिछाई गई थी। उस पर एक बढ़िया कालीन बिछाया गया था। प्रथम स्वामी जी ने उस पर बैठने से इन्कार किया कि हमारे मृत्तिका लिप्त शरीर से यह बहुत बिगड़ जायेगा परन्तु हम लोगों के अत्यंत अनुरोध से उस पर विराजमान हुये। अन्ततः एक दो दिन पश्चात् पाठशाला स्थापित करने की तिथि नियत की गई। उस दिन हवन किया गया और ठाकुरों, पंडितों और आसपास के ब्राह्मणों में से बहुत से सज्जनों को पाठशाला के ब्रह्मभोज की सभा में बुलाया गया। ब्रह्मभोज के पश्चात् ब्राह्मण लोग अत्यन्त प्रसन्न हुये और कहा कि वास्तव में हम लोग बहुत भ्रान्ति में थे; जो कुछ स्वामी जी कहते हैं वह सब सत्य है। भोजन के अतिरिक्त दक्षिणा भी दी गई। बहुत काल तक स्वामी जी को लोग स्मरण करते और उनकी प्रशंसा करते रहे। पाठशाला के लिये पंडित कुमारसेन दोरद (जिला अलीगढ़) निवासी जो फर्रूखाबाद की पाठशाला का विद्यार्थी और स्वामीजी का परिचित था बुलाया गया। पाठशाला में तीन दिन में ही बीस के लगभग विद्यार्थी एकत्रित हो गये।

पाठशाला के नियम—इस पाठशाला के ये नियम थे कि पंडित का वेतन, विद्यार्थियों का भोजन और वस्त्र उन क्षत्रिय लोगों को जो दान का भोजन पसन्द न करते थे- (पाठशाला की ओर से दिया जाता था) और यह भी नियम किया गया था कि ऋषिकृत ग्रन्थों के अतिरिक्त और कोई अन्य ग्रन्थ न पढ़ाया जाये। सब विद्यार्थी दोनों समय सन्ध्या किया करें और यह भी प्रेरणा हुई कि एक हवन कुण्ड का स्थान भी बनाया जाये और वह बनाया गया। इस पाठशाला में बहुत दूर-दूर के विद्यार्थी पढ़ते थे जैसे बनारस, सुकेत, मंडी, अलीगढ़ आदि के। कुमारसेन के पश्चात संवत् १९३१ में पंडित दिनेशराम जी यहां पढ़ाने आये और संवत् १९३४ के क्वार तक पढ़ाते रहे। अन्त में अभीष्ट लाभ न होने और छात्रों के फिर पूर्ववत पोपलीला में फंस जाने तथा ठीक प्रबन्ध न होने के कारण स्वामी जी ने संवत्. १९३४ के क्वार अर्थात सितम्बर, सन् १८७७ में स्वयं आकर पाठशाला को तोड़ डाला। यह पाठशाला सात वर्ष तक रही। इसका समस्त व्यय मुकुन्दसिंह जी रईस छलेसर अपनी ओर से करते रहे।

बनारस की पाठशाला

पाठशाला की स्थापना—असीघाट, बनारस निवासी साधु जवाहरदास उदासी ने वर्णन किया—"एक बार स्वामी जी ने हमको मिर्जापुर बुलाया और जब हम वहां पहुंचे तो हमसे कहा कि हम काशी में पाठशाला स्थापित करना चाहते हैं; आप उसकी देखभाल स्वीकार करें। हमने स्वीकार किया और परस्पर सम्मति से हम बनारस से पूर्व को और स्वामी जी बनारस से पश्चिम को चन्दे के लिये गये। हम डुमरांआ, आरा, छपरा, पटना आदि नगरों में फिर कर लगभग दो मास में ४० रुपये मासिक चन्दा लिखवा कर और दो मास के ८० रुपये अगाऊ लेकर बनारस लौटे और यहां आकर वह ८० रुपये स्वामी जी के पास भिजवाये। स्वामी जी ने उसके सौ रुपये करके हमारे पास वापस भेजे कि तुम इससे काम करो, पीछे हम और भेजेंगे। उस रुपये के आने पर हमने पौष बदि द्वितीया, संवत् १९३० विक्रमी तदनुसार ६ दिसम्बर, सन् १८७३ सोमवार को केदार के मन्दिर के पास एक मकान ३ रु० १२ आने मासिक किराये पर लेकर पाठशाला स्थापित की। पंडित शिवकुमार शास्त्री २५ रुपये मासिक वेतन पर व्याकरण पढ़ाने के लिये नियत किये गये। पहले दिन पांच रुपये की मिठाई निम्नलिखित पंडितों को दी गई, पंडित शिवकुमार, पंडित हरिकिशन, पंडित विद्याधर, पंडित व्यास जी, पंडित गणेश श्रोत्रिय, पंडित मुरलीधर, पंडित हरबंससहाय, पंडित हरिप्रकाश और एक अन्य पंडित को एक-एक रुपया दक्षिणा सहित दी गई। पंडित शिवकुमार जी[१६] व्याकरण पढ़ाते थे और हम तीसरे पहर जाकर योगभाष्य और न्यायदर्शन पढ़ाते थे। ६ मास तक पाठशाला हम चलाते रहे इसके पश्चात् स्वामी जी आये और सरजूप्रसाद बनिये के बगीचे में उतरे, पाठशाला को देखा और सब परीक्षा ली। शिवकुमार को कहा कि तुम आर्य धर्म का उपदेश दिया करो। उसने कहा कि इस वेतन पर नहीं, यदि पचास रुपया दो तो ऐसा कर सकता हूं क्योंकि ऐसा करने से मेरी उपजीविका की हानि होती है। वास्तव में वह वेद का जानने वाला नहीं था, इसलिये स्वामी जी ने उसे हटा कर पंडित गणेश श्रोत्रिय[१७] को हमारे द्वारा बुलवा कर १५ रुपये मासिक पर नियत किया। इस बार स्वामी जी दो मास रहे, आम का मौसम था और गर्मी की ऋतु थी।

कानपुर निवासी बाबू शिवसहाय गौड़-ब्राह्मण ने वर्णन किया—"मुझे स्वामी जी ने बनारस की पाठशाला के लिये जिस का दूसरा नाम 'सत्यशास्त्र पाठशाला' था-चन्दा उगाहने के लिये कानपुर, लखनऊ, फर्रूखाबाद, शुकरुल्लापुर[१८] की ओर भेजा था और एक चिट्ठी प्रमाणपत्र के रूप में चन्दा प्राप्ति के अधिकार में दी थी।"

इसी पाठशाला के सम्बन्ध में स्वामी जी की दूसरी चिट्ठी २९ मई, सन् १८७४ शुक्रवार की इस प्रकार है—"स्वामी दयानन्द की आशीष पहुंचे। आगे सुदि ७ का लिखा पत्र पहुंचा, समाचार भी विदित हुआ। यहां एक मास तक तो हमारी स्थिति होगी, सो जानना। यहां की पाठशाला का प्रबन्ध बहुत अच्छा है। एक छः शास्त्रों का पढ़ाने वाला बहुत उत्तम अध्यापक रखा गया है, वैसा ही एक वैयाकरण नियुक्त किया गया है। दशाश्वमेध पर स्थान लिया गया है बहुत उत्तम, उस में पाठशाला पूर्णमासी के पीछे बैठेगी। केदारघाट का स्थान अच्छा नहीं था, इससे अब हमारे पास बाग में पाठशाला है, अच्छे-अच्छे विद्यार्थी भी पढ़ते हैं, सो जानना। आगे तुम पत्र देखते ही रुपया और पुस्तक शीघ्र भेज दो, विलम्ब क्षणमात्र भी मत करना। दिनेशराम को एक महाभाष्य पुस्तक देकर शेष सब पुस्तक यहां भेज दो। जो दिनेशराम न दे तो फिर देखा जायेगा। तुम अपने पास के पुस्तक और रुपये-यह हुण्डी कराके शीघ्र भेज दो। आगे गोपाल व अन्य को पढ़ने की इच्छा होवे तो चला आवे। ब्रह्मचारी लक्ष्मीनारायण यहां अब तक नहीं आया और न कोई तुम्हारा पत्र, किन्तु यह पत्र आया; इसका यह उत्तर जानना। सब यहां आनन्द मंगल है और पंडित जुगलकिशोर, महता गोपालदत्त और दिनेशराम आदि को भी हमारा प्रत्यभिवादन कह देना। संवत् १९३१, मिति ज्येष्ठ सुदि १३. शुक्रवार।"

पाठशाला की नई व्यवस्था के लिये कृतसंकल्प, आर्षग्रन्थों की स्वामी जी की मान्यता के विषय में एक और प्रमाण—इन पत्रों के लिखने से पाया जाता है कि स्वामी जी ने पाठशाला का नये सिरे से प्रबन्ध करने का दृढ़ निश्चय कर लिया था और कुछ काल वहां रहकर सब प्रकार का प्रबन्ध करना ठान लिया था। इस शुभ इच्छा को पूर्ण करने के लिये उन्होंने एक विज्ञापन २० जुलाई, सन् १८७४ के समाचारपत्र **'कवि वचनसुधा'** बनारस में प्रकाशित कराया, जिसकी प्रतिलिपि हमें 'बिहारबन्धु' में इस प्रकार मिली है-

बिहारबन्धु (सुदि १४, संवत् १९३१ विक्रमी) — **'कवि वचनसुधा'** दिनांक २० जुलाई में आपका विज्ञापन पत्र छपा है, इसे हम यहां बड़ी ही प्रसन्नता से छापते हैं। **'विज्ञापनपत्र'**-एक समाचार सबको विदित हो कि आपका आर्य विद्यालय काशी में संवत् १९३० पौष मास तदनुसार दिसम्बर, सन् १८७३ में केदारघाट पर आरम्भ हुआ था, वही अब मित्रपुर भैरवी मुहल्ला में दुर्गाप्रसाद मिश्र के स्थान में संवत् १९३१ मिति आषाढ़ सुदि ५ शुक्रवार, १९ जून, सन् १८७४ को प्रातःकाल ७ बजे के उपरान्त आरम्भ होगा। इसका प्रबन्ध अब अच्छी प्रकार होगा। प्रातः७ बजे से पठन और पाठन होगा दस ग्यारह बजे तक और फिर १ बजे से पांच बजे तक। इसमें अध्यापक गणेश श्रोत्रिय जी रहेंगे। सो पूर्वमीमांसा, वैशेषिक, न्याय, पातंजल, सांख्य, वेदान्तदर्शन, ईश, केन कठ,प्रश्न, मुंडक, मांडूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक-दश उपनिषद्, मनुस्मृति, कात्यायन और पाराशर कृत गृह्यसूत्र-ये ग्रन्थ पढ़ाये जावेंगे। थोड़े समय के पीछे चार वेद, चार उपवेद तथा ज्योतिष के ग्रन्थ भी पढ़ाये जायेंगे और एक उप व्याकरण रहेगा वह अष्टाध्यायी, धातुपाठ, गण आदि गणशिक्षा और प्रातिपदिक गणपाठ-ये पांच पाणिनि मुनिकृत और पतंजलिमुनिकृत महाभाष्य, पिंगलमुनि कृत छन्दोग्रन्थ, यास्कमुनिकृत निरुक्त और काव्य, अलंकार, सूत्र, भाष्य इन सब को पढ़ना होगा। जिनको पढ़ने की इच्छा होवे सो आकर पढ़े। जो विद्या और श्रेष्ठाचार की परीक्षा में उत्तम होगा, उस की परीक्षा के पीछे पारितोषिक यथायोग्य मिलेगा। सो परीक्षा प्रतिमास हुआ करेगी। इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सब पढ़ेंगे वेद पर्यन्त और शूद्र मंत्र भाग को छोड़ के सब शास्त्र पढ़ेंगे। फिर जब-जब इस आर्य विद्यालय के लिये अधिक-अधिक चन्दा होगा तब तब अध्यापक और विद्यार्थी लोगों को भी पढ़ाया जायेगा। इसकी रक्षा और वृद्धि के लिये एक आर्यसभा स्थापित हुई है और एक **'आर्यप्रकाश'** पत्र भी निकलेगा। मास-मास में इन तीनों बातों की प्रवृत्ति के लिये बहुत भद्र लोग प्रवृत्त हुये हैं और बहुत प्रवृत्त होंगे। इससे ही आर्यावर्त देश की उन्नति होगी। इस विद्यालय में यथावत शिक्षा दी जावेगी जिससे सब उत्तम व्यवहारयुक्त होंगे।

(हस्ताक्षर) स्वामी दयानन्द सरस्वती ('बिहारबन्धु', खंड २, संख्या २१, ८ जुलाई, सन् १८७४)।

सारांश यह है कि बनारस में दो मास रहकर और पाठशाला का नये सिरे से नियमपूर्वक प्रबन्ध कराके जुलाई मास, सन् १८७४ के आरम्भ में स्वामी जी प्रयाग पधारे और वहां से बम्बई की ओर चले गये।

उपदेशक आदि—ब्रह्मसमाज कलकत्ता का पंडित हेमचन्द्र चक्रवर्ती[१९] जो स्वामी जी से शिक्षा प्राप्त करने के अभिप्राय से कानपुर आया था, वह अपनी यात्रा पुस्तक में लिखता है—"जब हम कानपुर गये तो वहां पंडित दयानन्द सरस्वती से हमारी भेंट हुई। उन्होंने काशी में एक वैदिक सर्वधर्म पाठशाला माघ महीने के शुक्लपक्ष से स्थापन किया है, यह उन्होंने हम से कहा है और यह भी कहा कि लोगों ने इसके लिये बहुत सहायता दी। स्वामी जी के दौरे से इस देश में धर्मसम्बन्धी बहुत उन्नति होती है।" ('तत्व-बोधनी' कलकत्ता, ज्येष्ठमास, संवत् संख्या ३६९,पृष्ठ ३६)।

स्वामी जी का एक पत्र—इस पाठशाला के विषय में स्वामी जी ने अपनी एक चिट्ठी में मिति २३ जनवरी, सन् १८७५ में लाला हरबंसलाल कायस्थ को बनारस में निम्नलिखित शब्द लिखे हैं—

"और पाठशाला की व्यवस्था आप लोगों पर है, जैसे चले, चलाओ ।" (अहमदाबाद गुजरात से) ।

सम्भवत: फरवरी मास, सन् १८७५ में यह पाठशाला टूट गई । वैदिक पाठशाला पुराना कानपुर के अध्यापक पंडित देवदत्त शास्त्री ने वर्णन किया—"स्वामी जी ने यह पाठशाला स्थापित की तो प्रथम जवाहरदास साधु इसके प्रबन्धक रहे । जवाहरदास के पश्चात लाला हरबंसलाल साहब कायस्थ इसके प्रबन्धकर्ता रहे । इस पाठशाला के मुख्य अध्यापाक गणेश श्रोत्रिय जी थे । मीमांसा आदि शास्त्र वहां लोग पढ़ते रहे । स्वामी जी जब बम्बई और पूना में समाज स्थापित करके आये तब तीन वर्ष पश्चात् इस पाठशाला को तोड़ दिया । इस बार चातुर्मास्य बनारस में किया था ।"

द्वितीय परिच्छेद

स्वामी जी की रचनाएं

१—पाखंड खंडन

७ पृष्ठ की यह पुस्तक संस्कृतभाषा में स्वामी जी ने भागवतखंडन विषय पर लिखी । संवत् १९२१-१९२२ में । जब वे दो वर्ष आगरा में रहे उन्हीं दिनों की लिखी प्रतीत होती है । सबसे पुरानी हस्तलिखित प्रति इसकी ज्येष्ठ २, ९ तिथि व नक्षत्र संवत् १९२३ तदनुसार ७ जून सन् १८६६ की लिखी हुई पंडित किशनलाल जी शास्त्री[१] किशनगढ़ के पास विद्यमान है । अजमेर से वापस जाकर संवत् १९२३ के अन्त में आगरे में ज्वालाप्रकाश प्रेस में पंडित ज्वालाप्रसाद भार्गव के प्रबन्ध में कई हजार प्रतियां प्रकाशित हुईं और १ वैशाख, संवत् १९२४ तदनुसार १२ अप्रैल सन् १८६७ के कुम्भ मेला हरिद्वार पर उसे बिना मूल्य वितरित किया । यह अत्यन्त सुन्दर और उपयुक्त ट्रैक्ट उच्च कोटि की शुद्ध और ललित संस्कृत में है, पुन: प्रकाशित नहीं हुआ[२] ।

२—सत्यधर्मविचार अर्थात् काशी शास्त्रार्थ[३]

यह वह प्रसिद्ध शास्त्रार्थ है जो स्वामी जी और काशी के पंडितों के मध्य १६ नवम्बर, सन् १८६९ तदनुसार कार्तिक सुदि १२, संवत् १९२६ को बनारस नगर में दुर्गाकुण्ड पर हुआ था, जो उसी वर्ष दिसम्बर मास, सन् १८६९ में मुंशी हरबंसलाल साहब के प्रबन्ध में 'लाइट प्रेस' में पंडित गोपीनाथ मैनेजर के प्रयत्न से संस्कृत और भाषा में २४ पृष्ठों पर प्रकाशित हुआ है । आज तक उर्दू, हिन्दी और संस्कृत में ६ बार प्रकाशित हुआ है और वास्तव में दर्शनीय है । इसके अध्ययन से दिन के समान प्रकाशित हो जाता है कि किस प्रकार सत्य झूठ पर विजय प्राप्त करता है और किस प्रकार ज्ञान अज्ञान का नाश करता है ।

३—अद्वैतमत खंडन[४]

यह ट्रैक्ट स्वामी जी ने काशीनिवास काल में शास्त्रार्थ संख्या २ के पश्चात् दूसरी बार लिखा और पृथक यत्न करके 'कविवचनसुधा' नामक हिन्दी पत्र में संस्कृतभाषा में भाषाभाष्य सहित मुद्रित कराया । (देखो 'कविवचनसुधा' खंड १, संख्या १४, १५ ज्येष्ठ मास सुदि १५ व आषाढ़ सुदि १५, संवत् १९२७ तदनुसार १३ जून, सन् १८७० पृष्ठ ८७, ९०,९२, ९६) । लाइट प्रेस में गोपीनाथ पाठक के प्रबन्ध से प्रकाशित हुआ । यह जीविका सहायक (?) ट्रैक्ट नवीन वेदान्त का दुर्ग तोड़ने के लिये एक सैनिक दल से अधिक बलवान है । पुन: प्रकाशित नहीं हुआ ।

४—प्रतिमापूजन विचार अर्थात हुगली शास्त्रार्थ

संवत् १९३४ तदनुसार सन् १८७५[५] में जब स्वामी जी कलकत्ता से होकर हुगली पधारे तो वहां उनका पंडित ताराचरण तर्करत्न भट्टाचार्य से (जिन्होंने सन् १८६९ तदनुसार संवत् १९२६ में बनारस के पंडितों की ओर से शिरोमणि होकर स्वामी जी से काशी महाराज के सामने शास्त्रार्थ किया था) संस्कृत भाषा में शास्त्रार्थ हुआ । उसी समय उसका अनुवाद बंगाली भाषा[६] में प्रकाशित किया गया और साथ ही बहुत शीघ्र संवत् १९३०, तदनुसार सन् १८७३ में लाइट प्रेस बनारस में १८ पृष्ठों का बाबू हरिचन्द्र एक मूर्तिपूजक हिन्दू[७] ने जो कि गोकुलिया गोस्वामी के मत में था, इसे अक्षरशः हिन्दी भाषा में छपवा कर प्रकाशित किया । आज तक पांच बार प्रकाशित हो चुका है परन्तु पृथक् बिकने वाली पुस्तक के रूप में नहीं मिलता ।[८]

५—पंचमहायज्ञविधि

संवत् १९२४ से स्वामी जी ने लोगों को गंगा के तट पर पंचयज्ञों का उपदेश देना आरम्भ किया । सैंकड़ों पुस्तकें संन्ध्या की लिखवा कर बांटते रहे ।[९] संवत् १९३० से छपवा कर बांटनी आरम्भ कीं । सन् १८७५ से तो आर्यसमाज स्थापित हुआ, इससे पहले छः बार संस्कृत में प्रकाशित हुई । सन् १८७५ से सन् १८९६ तक बीस बार प्रकाशित हो चुकी है । इसका विवरण इस प्रकार है—

वार	नाम वर्ष या संवत्	नाम स्थान या प्रेस	संख्या	भाषा	विशेष
एक बार	संवत् १९३० श्रावण शुक्ल	बनारस विद्यासागर प्रेस	१०००	संस्कृत	—
एक बार	संवत् १९३०	लाइट प्रेस बनारस	१०००	संस्कृत	—
दो बार	संवत् १९३१	लाइट प्रेस बनारस	२०००	संस्कृत	—
तीन बार	सन् १८७४ व सन् १८८२	लखनऊ नवलकिशोर	५०००	संस्कृत	—
	संवत् १९३१ असौज सुदि पड़वा	बम्बई	२००० १३००	संस्कृत	—
कुल ७ बार			१२३००		आर्यसमाज की स्थापना से पहले तक

बार	नाम वर्ष या संवत्	नाम स्थान या प्रेस	संख्या	भाषा	विशेष
एक बार		विरजानन्द प्रेस लाहौर	२०००	मूल	—
दो बार		विरजानन्द प्रेस लाहौर	२०००	अंग्रेजी	—
एक बार		विरजानन्द प्रेस लाहौर	१०००	उर्दू	—
एक बार	सन् १८८७	विरजानन्द प्रेस लाहौर	२०००	अंग्रेजी	—
एक बार		विरजानन्द प्रेस लाहौर	१०००	अंग्रेजी	—
एक बार		बम्बई	१०००	गुजराती	—
चार बार		लाहौर	२०००	उर्दू	—
एक बार		अमृतसर	१०००	उर्दू	—
दो बार		लखीमपुर	१५०००	मूल	—
चार बार		वैदिक यन्त्रालय	१५०००	मूल संस्कृत व भाषा	—
एक बार		बुलन्दशहर	७००	मूल उर्दू भाष्य सहित	—
एक बार		मेरठ	७००	मूल नागरी अनुवाद सहित	—
कुल २० बार			४३४००	आर्यसमाज स्थापना के पश्चात्	
			१३०००	आर्य समाज की स्थापना से पूर्व	
			५६४००		

६—सत्यार्थप्रकाश

यह पुस्तक अन्य मतों के परिचय और स्वधर्म बोधन के लिये सितम्बर, सन् १८७४ में स्वामी जी ने लिखवाई और सन् १८७५ में स्टार प्रेस बनारस में राजा जयकिशनदास साहब बहादुर सी० ऐस० आई०[१०] की लागत से प्रकाशित हुई। यह ग्रन्थ ५०० से अधिक पृष्ठों में लिखा गया था परन्तु वैदिकधर्म का सिद्धांत और मुहम्मदी तथा ईसाईमत का वृत्तान्त कई कारणों से पहली बार प्रकाशित न हो सका था[११] और प्रेस की उपेक्षा से बहुत स्थानों पर अशुद्धियां हो गई थीं। इसलिये ४०७ पृष्ठों पर पहली बार एक हजार अपूर्ण प्रकाशित हुआ।

दूसरी बार— स्वामी जी ने इसे पूर्ण रूप से शुद्ध किया। १२ दिसम्बर, सन् १८८२ तदनुसार भादों बदि १ संवत् १९२९[१२] को प्रयाग प्रेस[१३] में प्रकाशित होने के लिये दिया गया और २००० की संख्या में प्रकाशित हुआ।

तीसरी बार—सन् १८८७ में स्वामी जी के स्वर्गवास होने के पश्चात २००० छापा गया और चौथी बार संवत् १९४८ तदनुसार सितम्बर, सन् १८९० में अजमेर में ५००० प्रकाशित हुआ। आज तक ११००० प्रकाशित हो चुका है। अब पांचवी बार प्रकाशित हो रहा है। धार्मिक ज्ञान का भण्डार, विद्या सम्बन्धी खोज का कोष, वैदिकधर्म का जंगी मैगजीन है। जिसने एक बार उसे पूर्णतया समझकर पढ़ लिया फिर सम्भव नहीं कि कभी वैदिक धर्म से दूर हटे। सत्यार्थप्रकाश स्वामी जी की धार्मिक विजय का स्मृतिस्तम्भ है। हम दावे से कहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य के मस्तिष्क को सत्यार्थप्रकाश बहुत-सी नवीन बातें सिखलाता है।

७—पन्द्रह व्याख्यान-(आषाढ़-सावन सं० १९३२)

स्वामी जी ने जुलाई तथा अगस्त, सन् १८७५ में महान् विद्वानों की एक सभा के सम्मुख १५ व्याख्यान दिये जो उसी समय वहां के एक समाचारपत्र के सम्पादक ने शार्टहैंड में लिख कर मराठी भाषा में प्रकाशित किये।

आर्यप्रतिनिधि सभा राजस्थान ने सन् १८९३ में[१४] पंडित गणेश रामचन्द्र महाराष्ट्र ब्राह्मण से हिन्दी में अनुवाद करवा कर ८ नवम्बर को प्रकाशित किया और संवाददाता ने जीवनचरित्र के लिये मिस्टर श्रीनिवास राव जी[१५] महाराष्ट्री से भाषा में अनुवाद कराया। ये सब भी देखने के योग्य हैं।

८—आर्याभिविनय

यह पुस्तक सन्ध्या के अतिरिक्त प्रार्थना पुस्तक है। इसमें ५० मन्त्र ऋग्वेद के और ५० मन्त्र यजुर्वेद के हैं जिनका भाषार्थ साथ ही किया गया है। पाठ करने के योग्य और आत्मा को शान्ति देने वाली है। प्रथम बार वैशाख शुक्ल,[१६] संवत १९३२ तदनुसार ७ अप्रैल, सन् १८७५ में ७४ पृष्ठों पर बम्बई में प्रकाशित हुई। आज तक तीन बार प्रकाशित हो चुकी है।

९—वल्लभाचार्यमतखण्डन[१७]

यह ग्रन्थ स्वामी जी की सम्मति और सहायता से संवत् १९३१ तदनुसार १० नवम्बर, सन् १८७४ कार्तिक की अमावस मंगलवार को निर्णयसागर प्रेस बम्बई में प्रकाशित हुआ था। वल्लभाचार्य मत का इसमें अच्छी प्रकार खंडन किया गया है। इस पुस्तक का संस्कृत से गुजराती में पंडित श्याम जी कृष्ण वर्मा ने अनुवाद किया है; २४ पृष्ठों का है।[१८]

१०—स्वामीनारायण मत-खंडन अर्थात् शिक्षापत्रीध्वान्ति-निवारण

यह पुस्तक भी स्वामी जी ने बम्बई निवास के समय स्वामी सहजानन्द सरस्वती द्वारा इलाहाबाद में स्वप्रवर्तित स्वामी नारायणमत के खण्डन में संवत् १९३१ एकादशी रविवार तदनुसार सन् १८७४ में लिखकर सन् १८७६ में ओरियण्टल प्रेस बम्बई में गुजराती[१९] और संस्कृत में प्रकाशित कराई।

११—वेदान्तध्वान्तिनिवारण

नवीन वेदान्त के खंडन में यह स्वामी जी की दूसरी पुस्तक है। उन्होंने संवत् १९३२ तदनुसार सन् १८७६ में ओरियण्टल प्रेस बम्बई में यह छपवाई थी। वेदान्तखंडन में अत्यंत उपयुक्त और रोचक पुस्तक है। भाषा इसकी संस्कृत और हिन्दी है।[२०]

१२—संस्कारविधि

यह पुस्तक उन धार्मिक संस्कारों को सम्पन्न करने के लिये बनाई गई है जिनसे प्रत्येक मनुष्य का सम्बन्ध है। इसमें १६ संस्कार हैं जो गर्भाधान से लेकर मरण पर्यन्त करने योग्य हैं। इसके अध्ययन से प्रकट होता है कि प्राचीन ऋषि किस प्रकार इस संसार में अपनी जीवनयात्रा को पूरा करते थे। यह ग्रन्थ स्वामी जी ने पुराने ऋषि-मुनियों की रीति से पूर्ण संस्कार सम्बन्धी पुस्तकों से संग्रह[२१] करके बनाई है। इसकी प्रत्येक गृहस्थ के घर में आवश्यकता है। पहली बार एशियाटिक प्रेस बम्बई में संवत् १९३१ विक्रमी, तदनुसार १७९८ शालिवाहन तदनुसार सन् १८७७ में एक हजार की संख्या में प्रकाशित हुई थी। यह ग्रन्थ कार्तिक कृष्णपक्ष, अमावस्या, शनिवार, संवत् १९३२; तदनुसार १३ नवम्बर, सन् १८७५ को लिखा जाना आरम्भ हुआ और पौष सुदि दशमी, संवत् १९३२,[२२] सोमवार तदनुसार ३ जनवरी, सन् १८७६ को पूर्ण हुआ। दूसरी बार स्वामी जी ने अपने जीवनकाल में इसको कई स्थानों पर ठीक करके आषाढ़ बदि १३, संवत् १९४०, रविवार तदनुसार १ जुलाई, सन् १८८३ को प्रेस में दिया। आज तक तीन बार प्रकाशित हो चुकी है।

संस्कारविधि की समीक्षा— अंग्रेजी समाचारपत्र "इण्डियन मिरर"—कलकत्ता में 'संस्कारविधि' पर निम्नलिखित समीक्षा प्रकाशित हुई है—'पण्डित दयानन्द सरस्वती जी ने मूल वेदों में से संस्कारों की एक पुस्तक तैयार की है ताकि जो लोग अपने घरेलू संस्कारों और जाति की प्रथाओं को वर्तमान मूर्तिपूजा की रीति से नहीं करना चाहते, वे इस पुस्तक के अनुसार कर सकें। ये पण्डित जी वास्तव में पूर्ण हृदय से मूर्तिपूजा को दूर करने में तत्पर हैं। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये जो प्रयत्न और आत्मबलिदान वे कर रहे हैं वह निस्संदेह प्रत्येक जाति के अनुकरण करने योग्य हैं। हमको सूचना मिली है कि हरिश्चन्द्र चिन्तामणि बम्बई वाले ने अपने पिता का मृतकसंस्कार उस विद्वान् पण्डित की बताई हुई वैदिक रीति के अनुसार किया है।' (२५ जून, सन् १८७६, खंड १५, संख्या १४९, संडे एडीशन, कालम ४, पृष्ठ १)।

१३—वेदभाष्यभूमिका[२३]

यह ग्रन्थ वेदभाष्य की भूमिका है। स्वामी जी ने इसमें पूर्ण योग्यता और श्रेष्ठता के साथ वैदिक धर्म सम्बन्धी समस्त शंकाओं और झूठी भ्रान्तियों का प्रबल खंडन किया है। भादों शुक्ल संवत् १९३३, रविवार तदनुसार २० अगस्त, सन् १८७६ को इसका आरम्भ करके संवत् १९३५ को समाप्त किया है। लाजरस प्रेस, बनारस में २७६ पृष्ठों में प्रकाशित हुई है।[२४] उच्चकोटि की विद्यासम्बन्धी योग्यता की पुस्तक आद्योपान्त दर्शनीय है। इस पर मुंशी कन्हैयालाल साहब ने निम्नलिखित समीक्षा की है—

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का वेदों के रहस्य और शास्त्र में लिखित गाथाओं के सम्बन्ध में लेख—[२५]

१—'प्रजापति' सूर्य का नामं है। गाथा लेखक ने 'उषा' देवता को उसकी कन्या कल्पित किया है। देवता का अर्थ प्रकाशस्वरूप है; उषा का अर्थ प्रातःकाल है। सूर्य ने किरणों (द्वारा अपना प्रकाश) डाला; उसको "वीर्य" कल्पित किया। उससे दिन अर्थात् आदित्य उत्पन्न हुआ।

२—पर्जन्य अर्थात् बादल को पिता बताया और पृथ्वी को कन्या। जब बादल ने पृथ्वी पर जल बरसाया तो उसको वीर्य कहा, उससे कृषि और सब अन्य पदार्थ उत्पन्न हुये। इस उपमा को मूर्खों ने विरुद्ध लिखकर प्रसिद्ध किया जिससे दोष लगता है।

३—इन्द्र ने गौतम की पत्नी अहिल्या से भोग किया। इस गाथा में इन्द्र सूर्य का नाम और गौतम चन्द्रमा का नाम है; और रात्रि का नाम अहिल्या है। क्योंकि अभ्र नाम दिन का है और वह रात्रि में लय अर्थात् लुप्त होता है। मानो यह भी

एक प्रकार का स्त्री-पुरुष का संयोग है । रात्रि का (मित्र) सूर्य है क्योंकि वह उस में लुप्त होता है । इस (रूपक) के अर्थ मूर्खों ने विपरीत कर लिये हैं ।

४—वृत्रासुर और इन्द्र की कथा या गाथा भागवत के छठे स्कन्ध में है । ऋग्वेद के एक मन्त्र का यह अभिप्राय है । इन्द्र नाम सूर्य का है; (निघण्टु में देखो) जब सूर्य ने बादल को वज्र के सदृश अपनी प्रकाशकिरण से तोड़ा तो वृत्रासुर अर्थात् बादल, पर्वत और पृथ्वी पर आकर उनसे सहायता का प्रार्थी हुआ अर्थात जल होकर बहता हुआ समुद्र की ओर गया । फिर उस जल को सूर्य ने अपनी किरणों के साधन से खींचा; वह वाष्प बनकर ऊपर को गया । कभी वृत्रासुर सूर्य की किरणों को रोकता है, कभी सूर्य की ऊष्णता से जल होकर पृथ्वी पर गिरता है । सदा यही अवस्था रहती है । सारांश यह है कि विज्ञ पुरुषों ने बादल की उत्पत्ति और वर्षा की अवस्था का वर्णन सूर्य और बादल के युद्ध के रूप में किया है । बुद्धि के शत्रुओं ने इसका अभिप्राय न समझ कर वह लिख मारा जो बुद्धि के विरुद्ध है । परिणामत: इस प्रकार की बहुत सी उपमायें (रूपक) हैं; उनमें से एक और कथा भी वेदभाष्य की भूमिका में लिखी हुई है ।

परिणाम—सत्य यह है कि राजाओं के वचनों को समझने के लिये राजाओं का सा मस्तिष्क चाहिये और ऋषिवरों के वचनों के समझने को ऋषीश्वरों का मस्तिष्क चाहिये । राजा और ऋषीश्वर कभी अयुक्त और अनुमान विरुद्ध वचन नहीं कहते । व्यभिचारिणी स्त्रियों वाली और पुरुषों को दूषित करने वाली तथा झूठी बातें बनाकर ठगने वाली कथा को बुद्धिविरुद्ध कथा बताते हैं । स्वामी जी महाराज की रचना से दुष्ट की दुष्टता इस प्रकार दूर हो जायेगी जैसे वायु से मेघ, गधों के सिरों से सींग, (आज कल के) ब्राह्मणों के सिर से विद्या और सन्तोष तथा राजाओं के मन से साहस और लज्जा । वह अभागा व्यक्ति होगा जो स्वामी जी महाराज की रचना से वंचित रहेगा । आशा है इसी प्रकार हम इस पत्रिका में आपके पवित्र वचनों को प्रकाशित करते रहेंगे ।

१५—वेदभाष्य का विज्ञापन

स्वामी जी ने जब वेदभाष्य को प्रकाशित कराने का निश्चय किया तो इससे पहले इसको एक ट्रैक्ट के रूप में प्रकाशित कराया था ।[२६] इसमें तीन बातें थीं; **प्रथम**—वेद के भाष्य का विज्ञापन पत्र, ८ पृष्ठ; **दूसरी**—भाष्य के नमूने का अंक, पृष्ठ २४; तीसरी-गुजराती भाष्य के नमूने का अंक । तीनों एक साथ मार्गशीर्ष शुक्ल पूर्णमासी, संवत् १९३३ तदनुसार १ दिसम्बर, सन् १८७६ को प्रकाशित होकर वितरित किये गये ।

समाचारपत्रों द्वारा हर्षोद्‌गार—इस पर 'इण्डियन मिरर' कलकत्ता ने सम्मति लिखी है—"यदि ऐसा बड़ा विद्वान् जैसा कि पंडित दयानन्द सरस्वती है-वेदों का भाष्य करे तो वह वास्तव में एक अनमोल और आदर के योग्य काम होगा और हम इस बात को सुनकर बड़े प्रसन्न हैं कि पंडित जी ने यह काम आरम्भ कर दिया और बनारस के प्रिण्टिग प्रेस से संस्कृत में एक विज्ञापन प्रकाशित हुआ है कि यह भाष्य प्रतिमास प्रकाशित होगा । ग्राहक लोग लाजरस कम्पनी में आवेदनपत्र भेजें ।"

१६—सत्यधर्मविचार अर्थात् मेला चांदापुर

यह शास्त्रार्थ स्वामी जी महाराज, पादरी टी०जे० स्काट साहब और मौलवी मुहम्मद कासिम साहिब के मध्य दो दिन तक सहस्त्रों मनुष्यों की सभा में बड़े अच्छे ढंग से सम्पन्न हुआ । इससे मौलवी लोगों और पादरी लोगों की ऐसी प्रत्यक्ष पराजय हुई कि स्वामी शंकराचार्य के पश्चात् आज तक आर्यावर्त के इतिहास में इस प्रकार का कोई उदाहरण नही मिलता । स्वयं मेले के प्रबन्धकों की ओर से यह इसी मास में "रफाहे आम" प्रेस, सियालकोट में प्रकाशित हुआ । यदि कोई यह

देखना चाहे कि किस प्रकार दार्शनिक युक्तियों से विद्वान् लोग अन्य मत के विद्वानों का मुंह बन्द करते हैं या किस प्रकार पवित्र वेद,बाइबिल तथा कुरान पर विजय प्राप्त कर सकता है तो, अवश्य इसका अध्ययन करे। आज तक आठ बार प्रकाशित हो चुका है और अभी तक यही प्रतीत होता है कि यह प्रथमावृत्ति ही है।

१७—आर्येद्दिश्यरत्नमाला

यह पुस्तक इस प्रयोजन से लिखी गई थी कि जब स्वामी जी स्थान-स्थान पर पहुंचते और सत्यधर्म का उपदेश करते थे तो लोग उनसे आर्यसिद्धांत पूछा करते थे और इसकी सरल भाषा की पुस्तक की मांग करते। एक सरल और स्पष्ट पुस्तक न होने के कारण प्रायः समय नष्ट करना पड़ता। इस कारण स्वामी जी ने कठिनाई को दूर करने के लिये अमृतसर निवास के समय श्रावण सुदि ७, बुधवार, संवत् १९३४ तदनुसार १५ अगस्त, सन् १८७७ को लीथोग्राफ 'चश्मये नूर' प्रेस, अमृतसर में ३० पृष्ठों की यह पुस्तक प्रकाशित कराई। आर्यसिद्धान्त जानने के लिये अत्यंत श्रेष्ठ, सस्ता और सरल भाषा का अच्छा ट्रैक्ट है।

१८—जालन्धर-शास्त्रार्थ अर्थात् पुनर्जन्म और चमत्कार के विषय में प्रश्नोतर

यह शास्त्रार्थ स्वामी दयानन्द सरस्वती जी और मौलवी अहमद हसन उर्फ वली मुहम्मद तपाखी के मध्य जालन्धर नगर (पंजाब) में सरदार विक्रमसिंह साहब अहलूवालिया की कोठी[२७] पर २४ सितम्बर, सन् १८७७ सोमवार तदनुसार २ आसौज, संवत् १९३४ को प्रातः सात बजे हुआ था। इसको उसी समय मिर्जा मुवाहिद जालन्धरी ने पंजाबी प्रेस में दिसम्बर मास, सन् १९७७ में प्रकाशित कराया, दूसरी बार आर्य दर्पण के जून तथा जुलाई १८७८वें अंक में प्रकाशित हुआ और तीसरी बार मिर्जा मुवाहिद साहब ने अपने 'वजीरे हिन्द' प्रेस सियालकोट में छपवाया। चौथी बार लाहौर और पांचवी बार आर्यसमाज अमृतसर ने सन् १८८६ में प्रकाशित किया। स्वयं मुसलमानों को निर्णय है कि मौलवी साहब सफल नहीं हुये और चमत्कार सिद्ध न कर सके।

१९—ऋग्वेदभाष्य[२८]

भूमिका के पश्चात् स्वामी जी ने इसकी रचना आरम्भ की। इसके आरम्भ की तिथि मार्गशीर्ष शुक्ल ६, संवत् १९२४ सोमवार तदनुसार ११ दिसम्बर, सन् १८७७ है। रोग के आरम्भ होने तक निरन्तर इसमें जी जान से लगे रहे। ऋग्वेद तक समाप्त कर लिया था चूंकि सायणाचार्य और मैक्समूलर आदि के अयोग्य और वेदविरुद्ध भाष्यों से संसार में पर्याप्त अधर्म फैला हुआ है, अतः स्वामी जी ने जब अच्छी प्रकार मनन किया तो उन्हें निश्चय हो गया कि वेदों का वह सिद्धांत जो ऋषि-मुनियों ने प्रवर्तित किया था और जो कुछ पूर्वज समझते थे, यह नहीं है जो इस पौराणिक काल में पाया जाता है, प्रत्युत वह अन्य ही है। आजकल के भाष्यकार पुराणों को आगे रखकर वेद का भाष्य करते हैं, न कि वेद को सामने रखकर। यही बड़ी भारी भूल है जिसके कारण सत्यमार्ग सनातन धर्म से दूर जा पड़ता है। इसी विशेष उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए स्वामी जी ने अपना पृथक् भाष्य बनाया जिसका वास्तविक अभिप्राय यही है कि वेदों के सिर से मिथ्या कलंक दूर हो और ईश्वर की अपार कृपा से वह इस उद्देश्य में पूर्णतया सफल हुये।

२०— भ्रान्तिनिवारण[२९]

जब स्वामी जी ने ऋग्वेदभाष्य प्रकाशित कराया और उसकी प्रसिद्धि दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी तो मूर्तिपूजक पण्डितों के औसान जाते रहे। वाममार्गी, चोलीमार्गी, नवीनवेदान्ती, द्वैतवादी वैष्णव, शैव, नानकपन्थी, चक्रांकित, शाक्त, नास्तिक आदि समस्त मूर्तिपूजक पण्डित तथा उपर्युक्त विचारधाराओं के विश्वासी अपनी आजीविका को नष्ट होता देखकर,

अपनी आय कम हो जाने की बात सोचकर परस्पर घोर विरोध रखते हुए भी मूर्तिपूजा में सबका एकमत देखकर सबके सब लंकेश की सेना की भांति एक आर्यकुलदिवाकर पर टूट पड़े। किसी ने वेदभाष्य पर आक्षेप किये तो किसीने '**दयानन्दमतमर्दन** और किसी ने **दयानन्द मत अमूल** ' आदि कुवाक्ययुक्त ग्रन्थ रचे और यथा नाम तथा गुण अर्थात् दुर्वचन उन पुस्तकों के भीतर भरे। इन पुराण पाठकों ने पुराणों के अध्ययन से निश्चय किया कि गालियां ही मनुष्य को सफल करती हैं। स्वामी जी ने इन सबकी भ्रान्ति अर्थात् सन्देह दूर करने के अर्थ यह ग्रन्थ 'भ्रान्तिनिवारण ' कार्तिक शुक्ला २,संवत १९३४, तदनुसार ७ नवम्बर, सन् १८७७ बुधवार को जब वे पंजाब में विराजमान थे,लिखकर आर्यभूषण प्रेस शाहजहांपुर में छपवाया। आजतक तीन बार प्रकाशित हो चुका है।

२१—यजुर्वेद भाष्य

सायणाचार्य का तो यजुर्वेदभाष्य मिलता ही नहीं है[३०] इसलिए उस पर सम्मति देना ही व्यर्थ है परन्तु महीधर का भाष्य मिलता है और आज के लोगों का पथप्रदर्शक है। यह बात सूर्य की भांति प्रकट है कि वह वाममार्गी था[३१] क्योंकि उसका बनाया हुआ 'मन्त्रमहोदधि ' स्वयं इस बात का साक्षी है। इस वेद का सम्पूर्ण भाष्य स्वामी जी तैयार कर चुके हैं और प्रकाशित भी हो गया है। पौष सुदि १३ संवत् १९३४, गुरुवार तदनुसार १७ जनवरी, सन १८७५ को स्वामी जी ने इसका आरम्भ किया और मार्गशीर्ष; कृ. १ सं. १९३९ को इसे समाप्त किया। २६३३ पृष्ठ की पुस्तक है।[३२]

२२—सत्यासत्यविवेक

यह वह लिखित शास्त्रार्थ है जो दिनांक २५, २६, २७ अगस्त, सन् १८७९, सोमवार, मंगलवार, बुधवार तदनुसार भादों सुदि ७, ८, ९ संवत् १९३६ को पुस्तकालय बरेली में स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज और रैवरेण्ड टी०जे० स्काट साहब[३३] के मध्य पुनर्जन्म, अवतार और पापों की क्षमा के विषयों पर हुआ था। इसमें पादरी साहब की जैसी असफलता और श्री स्वामी जी महाराज की जैसी सफलता हुई है, वह इसके अध्ययन करने वाले पर भली-भांति प्रकट हो जाती है। बड़ी सावधानता से प्रथम बार सितम्बर मास, सन् १८७९ में 'आर्यभूषण' प्रेस शाहजहांपुर में छपा और दूसरी बार 'आर्यदर्पण' शाहजहांपुर में तथा चौथी और पांचवी बार उर्दू तथा हिन्दी में लाहौर में प्रकाशित हुआ।[३४]

२३—गोकरुणानिधि

यह ग्रन्थ स्वामी जी ने नैतिक सभ्यता और दयालुता में अत्यंत प्रबल विकार उत्पन्न करने वाले, मांस-भक्षण तथा मद्यपान-इन दो कार्यों के विरुद्ध लिखा और इसमें इस नववैज्ञानिक युग में केवल शास्त्रीय प्रमाणों से ही काम नहीं लिया; प्रत्युत युक्तियुक्त तर्क के द्वारा इन दोनों के विनाशकारी प्रभावों को संसार के सामने उपस्थित किया। प्रथम बार यह ग्रन्थ नागरी में स्वामी जी ने संवत् १९३७, तदनुसार दिसम्बर, सन् १८८०, गुरुवार को वैदिक यन्त्रालय बनारस से प्रकाशित कराया। दूसरी बार २० अप्रैल, सन् १८८२ तदनुसार वैशाख, संवत् १९३८ को एक हजार की संख्या में प्रकाशित हुआ और आज तक पांच बार प्रकाशित हो चुका है।

समाचारपत्र 'भारतमित्र' कलकत्ता ने इस पर निम्नलिखित समीक्षा लिखी है—"हम बहुत धन्यवाद के साथ इस अपूर्व पुस्तक की प्राप्ति स्वीकार करते हैं। गोवधनिषेध के प्रमाणों के अतिरिक्त भेड़, बकरी इत्यादि समस्त जीवों के मांस खाने की अवैधता इसमें दिखाई है। मूल्य भी इसका बहुत थोड़ा है। इसके साथ गौ आदि पशु-रक्षिणी सभा का नियम भी छपा है। इसके नियम सब ऐसे हैं कि धर्म के झगड़ों और मतमतान्तरों का पिट्टन छोड़कर भी प्रत्येक समाज के मनुष्य इसमें सम्मिलित हो सकते हैं। इस बारे में हम लोग यह प्रस्ताव करना चाहते हैं कि देश हितैषी और पशुओं पर दयालु लोग अपने

पास से थोड़ा-थोड़ा व्यय करके मांसभोजन निषेध और उसके प्रमाण छपवा कर सब देश में बिना मूल्य वितरण कर दें। आशा है इस उपाय से बहुत मनुष्यों की आंखें खुल जावेंगी। स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा रचित, बनारस वैदिक यन्त्रालय में छपी। मूल्य ६ पैसे। ('भारतमित्र', ५ मई, सन् १८९१, खंड ४, संख्या १८)

२४-३६—वेदांगप्रकाश

इस (ग्रन्थमाला) में निम्नलिखित पुस्तकें हैं—

वैदिक व्याकरण या वेदों की वर्णोच्चारण शिक्षा; इसको स्वामी जी ने माघ चतुर्थी, शनिवार, संवत् १९३६ तदनुसार ३१ जनवरी, सन् १८८० को लिखा।

२. संस्कृत वाक्यप्रबोध—यह ग्रन्थ संस्कृत बोलने के सम्बन्ध में है जिसमें कुछ संस्कृत के वाक्य और उनके सम्मुख हिन्दी अनुवाद है। फागुन शुक्ल, संवत् १९३६[35] तदनुसार २२ मार्च, सन् १८८० को संकलित होकर ५० पृष्ठों की यह पुस्तक प्रकाशित हुई। शीघ्र छपने के कारण इसमें कई स्थानों पर अशुद्धियां रह गई थीं। इस पर बनारस के कुछ स्वार्थी मूर्तिपूजकों ने मिलकर एक ग्रन्थ सिर से पांव तक अश्लील बातों से भरा हुआ 'अबोध निवारण'[36] नामक बनाया और इस विचार से कि कहीं कानून के नीचे न धरे जावें, लेखक के नाम का स्थान रिक्त छोड़ दिया। इस पर एक पक्षपातरहित हिन्दू समाचारपत्र 'हिन्दी प्रदीप'[37] ने निम्नलिखित समालोचना की, जिसे हम पाठकों के अध्ययनार्थ यहां देते हैं—प्राप्त ग्रन्थ हमारे पास 'अबोध निवारण' नामक एक छोटी सी पुस्तक बनारस से आई है। इसमें दयानन्द के खण्डन का पुराना राम आसरा बहुत-कुछ गाया गया है; पर वही निरी पंडिताई के ढंग पर; (इसके लेखक की) दयानन्द के आशय पर कुछ दृष्टि नहीं है। इन दिनों शुष्क वैयाकरणों की लड़ाई के ढंग पर उनके लेख पर अशुद्धियां निकाल-निकाल कर लिख दी गई हैं। हम दयानन्द के किसी प्रकार के पक्षपाती नही हैं पर निरे संस्कृतज्ञ पंडितों की भी सराहना नहीं कर सकते। दयानन्द चाहे बहुत बुरे हों, पर देश के लाभ और सुधार की ओर तो वे बहुत प्रवृत्त हैं। पंडितों की तोंद भला किस काम की ? आंख में धूल झोंक कर प्रजा को लूटने (के लिये ?) और फिर वे यद्यपि एक सिर के हैं तो भी चतुर्भुज हैं ! "जिनके अगुआ बैंटे भिखारी, तिन की बाट गुसइयां मारी।" (सितम्बर मास, सन् १८८०, खंड ४ संख्या १)

स्वामी दयानन्द के प्रादुर्भाव से सुदशा की ओर प्रवृत्ति—एक और पंडित जी जो लाहौर सनातन धर्म सभा के विद्वान उपदेशक हैं, इसी 'अबोध निवारण' के विषय में 'भारतमित्र' कलकत्ता में इस प्रकार लिखते हैं—"यह (अबोध निवारण का प्रकाशन) अत्यंत अच्छा हुआ।" कारण कि सोने की शलाका का रंग कसौटी पर कसने और उसको आंच देने से ही खुलता है। आप जैसे महात्माओं को चाहिये कि दयानन्द सरस्वती जी कृत पुस्तक रूप वन को भली प्रकार मथ कर उसमें से ही आंच निकालें जो इस वन को स्वयमेव जला दे। जब तक यह नही होगा, सत्यासत्य का निर्धारण नहीं हो सकता। शोक यह है कि हमारे आज दिन के अकृतविद्य व आधुनिक वैज्ञानिक उन्नति से अनभिज्ञ व्यक्ति नहीं जानते कि देशोन्नति मूलत: तीन कारणों पर निर्भर है, उनकी ओर विशेष दृष्टि रखनी चाहिये। पहला कारण मातृभाषा की उन्नति है, दूसरा एक धर्मपुस्तक का मान; तीसरा धर्महितैषी सत्पुरुषों का आदर। पंडितगण ! इनकी ओर दृष्टि न रखने से हमारा सर्वस्व नाश होना सम्भव है। देखिये देश भाषा के नष्ट होने से हमारी आर्यजाति अपना घर भूलकर किधर जा रही है। आर्यभाषा के छोटे-छोटे शब्दों के अर्थ हमें फारसी और अंग्रेजी शब्दों में अनुवाद करके समझाने पड़ते हैं। सभाओं में यदि हम उक्त भाषाओं के शब्दों का बोलचाल में व्यवहार न करें तो मूर्ख ठहरते हैं। जब यह दशा है तो प्राचीन पद्धति के रहने का क्या ठिकाना है ! "मूले नष्टे नैव वृक्षो न शाखा" अर्थात जब जड़ें कट गई तो वृक्ष और शाखा कब रह सकते हैं ? कदापि नहीं। मतमतान्तर की ओर ध्यान जाता है तो कंठी-तिलक आदि के अतिरिक्त तथा पारस्परिक राग-द्वेष के अतिरिक्त कुछ दिखाई नहीं देता। मूलसूत्र तो सब छिपे ही हुये हैं। रही देशप्रीति ?—यह रहती तो फिर अन्य क्या चाहिये था ! यह जब

तक रही इसके दृष्टांत आप लोग मराठों के इतिहास और पंजाब में सिख जाति के इतिहास से भली-भांति जान सकते हैं। जब इन तीनों बातों में हमारी यह दशा हो रही है तो भ्रातृ-गण ! क्या, हमें अपने अभिप्राय और अर्थ के कारण उन लोगों की, जिन्होंने इस तीनों बातों के उद्धार करने का बीड़ा उठाया है और मानापमान के दुःख-सुख को एक ओर रख दिया है, अभिमान की पोट को दूर परे फेंका है; अपने पुत्र, कलत्र और बंधुओं के सुख से निराश हुये और दिन रात देश का भला चाहते हैं, निन्दा करना उचित है ? कदापि नहीं । सच पूछो तो स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के प्रादुर्भाव से जगत् में वेदविद्या का अवगाहन, आर्यभाषा की उन्नति के चिन्ह, हिन्दू इस अपवित्र नाम से घृणा और 'आर्य' नाम में लोगों की श्रद्धा दीखने लगी । पंडित-गण ! जब तक इन तीनों विषयों की उन्नति न होगी तब तक देशोद्धार की सम्भावना, प्राचीन पद्धति के आविर्भाव की आशा और फिरसे अपने शास्त्रों का उद्धार होने का विचार, सब दूर रहेंगे । महात्मा गुणग्राहक होते हैं; वे दोषानुदोष में नहीं लगे रहते ! यदि मत के विषय में कहीं विरोध हो तो उनसे पत्रव्यवहार द्वारा या नवीन पुस्तक रचना व संवादपत्रों (समाचारपत्रों) के द्वारा प्रकट करो । विचक्षण पाठक सत्यासत्य का निर्धारण कर लेंगे; नहीं तो इस महात्मा को सहयोग देने में निरुत्साहित करने से देश का अमंगल होगा । बहुत से ऐसे-ऐसे उत्साही पुरुष आप लोगों से विमुख रहने के कारण उत्साह-भंग किये बैठे हैं और मन में कुढ़ते हैं कि इन कंटकों का कब ध्वंस होगा जो हम अपने भाव स्वाधीनता में प्रकट करें । मेरे प्यारे पंडितो ! टुक जागो, अब सोने का समय नहीं । अपने पहले दिनों को देखो कि किन कारणों से हमारी जाति का इतना मान हुआ था कि हमारे ६ वर्ष के बालक के सामने भी भयभीत होकर बड़े-बड़े राजा महाराजा हाथ बांधे खड़े रहते थे और किसी को साहस न पड़ता था कि वह हमारी जाति का निरादर करे । यह हमारी ही शक्ति थी कि जिसे चाहते राजा बनाते और सिंहासन से उतार भी देते थे । और अब क्यों अपमान होता है ? प्यारे भाइयो ! टुक इस वाक्य की ओर भी धन दो—'सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्द्धं त्यजति पण्डितः ।' अर्थात् सबका नाश होता हुआ देखकर पंडितजन आधे को त्याग देते हैं । अब समय बहुत दुरत्यय आया है, नवीन विद्याओं ने युवा पुरुषों के हृदय को प्रकाशित किया है और जो युक्ति ही को प्रधान मानते हैं, आप उनको सन्तोष नहीं दे सकते । वे सारी प्राचीन पद्धति को छोड़ते जाते हैं । जिनकी धर्म में कुछ रुचि हुई वह यदि ब्रह्म नहीं बन सके तो इसमें सन्देह नहीं कि मंडलियों के रूप में नास्तिक हुये चले जा रहे हैं । यदि यही दशा है तो आप नहीं जान सकते कि उसकी अपेक्षा दयानन्द स्वामी का मत श्रेष्ठ है या अश्रेष्ठ ।" लेखक भानुदत्त । (२६ अगस्त, सन् १८८० खंड ३, संख्या ३५)

३. व्यवहारभानु—३४ पृष्ठों की यह पुस्तक फाल्गुन शुक्ला १५, संवत् १९३६, तदनुसार, ६ मार्च सन् १८८०, बनारस में प्रकाशित हुई थीं । ये तीनों पुस्तकें मुंशी बख्तावरसिंह मैनेजर के प्रबन्ध से छपीं ।

४. सन्धि-विषय—पृष्ठ ६४ । संवत् १९३७, मैनेजर मास्टर शादीराम के प्रबन्ध से बनारस में प्रकाशित हुई ।

५. नामिक—पृष्ठ २६ । ज्येष्ठ शुक्ल, संवत् १९३८, तदनुसार मई, सन् १८८१; वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में छपी ।

६. तद्धित[३८]— पृष्ठ १७७ । मार्गशीर्ष शुक्ल ८, संवत् १९३८ तदनुसार २८ नवम्बर, सन् १८८१ । पंडित दयाराम मैनेजर के प्रबन्ध से प्रयाग में मुद्रित हुई ।

७. सामासिक—पृष्ठ ६३ । भाद्रपद कृष्ण १२, संवत् १९३८ तदनुसार २१ अगस्त, सन् १८८१ ।

८. अव्ययार्थ—पृष्ठ २४ । माघ कृष्ण १०, संवत् १९३८ तदनुसार १४ जनवरी, सन् १८८२ ।

९. आख्यातिक—पृष्ठ ३९२ । पौष कृष्णा ९, संवत् १९३८, तदनुसार २ जनवरी, सन् १८८२ । समर्थदान मैनेजर ।

१०. कारक[३९]—पृष्ठ ४६ । भाद्र कृष्णा १२, संवत् १९३८; २ अगस्त, सन् १८८१ **को आरम्भ । भाद्र बदि बुधवार को समाप्त किया** । पंडित दयाराम मैनेजर ।

११. सौवर[४०] — पृष्ठ २४ । कार्तिक कृष्णा १, संवत् १९३६; २७ अक्तूबर, सन् १८८२ को मुंशी समर्थदान के प्रबन्ध से प्रयाग में छपी ।

१२. पारिभाषिक[४१]—पृष्ठ १५६ । आश्विन शुक्ल, संवत् १९३६, अक्तूबर, सन् १८८२ उदयपुर । मुंशी समर्थदान प्रयाग निवासी के प्रबन्ध से छपा ।

१३. उणादिकोष[४२]—पृष्ठ १३८ । आश्विनं कृष्णा ३, संवत् १९४०; १९ सितम्बर, सन् १८८२ को प्रकाशित हुई । माघ कृष्णा १, संवत् १९३९, २६ नवम्बर, सन् १८८२, शीत ऋतु में लिखी, उदयपुर में ।[४३] समर्थदान प्रयाग निवासी के प्रबन्ध से छपा ।

१४. गणपाठ[४४]—पृष्ठ १३८ । श्रावण कृष्णा ४, संवत् १९४०; २ अगस्त, सन् १८८३ को प्रकाशित हुई । माघ शुक्ला १०, संवत् १९३९, १६ फरवरी, सन् १८८३ को स्वामी जी ने उदयपुर में भूमिका लिखी ।

१५. निघण्टु[४५]—पृष्ठ ६६ । उदयपुर में लिखी गई । मार्गशीर्ष ४, संवत् १९३९, गुरुवार तदनुसार १४ दिसम्बर, सन् १८८२ को प्रकाशित हुई । आश्विन कृष्णा ३, समर्थदान प्रयाग निवासी के प्रबन्ध से छपी ।

१६. अष्टाध्यायी ।[४६]

१७. धातुपाठ—पृष्ठ ७२, उदयपुर में लिखी गई । पौष बदि १०, संवत् १९३६, गुरुवार को लिखी गई और प्रयाग में कार्तिक शुक्ला २, संवत् १९४० को समर्थदान के प्रबन्ध से छपी ।

४०. भ्रमोच्छेदन व अनुभ्रमोच्छेदन

राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने बनारस निवास के समय स्वामी जी से पत्रव्यवहार किया और उन पर अपनी अयोग्य टिप्पणियां चढ़ाकर निवेदन नं० १ के नाम से सन् १८८२ में प्रकाशित कराया । इसका उत्तर स्वामी जी ने ज्येष्ठ बदि २, संवत् १९३७, गुरुवार तदनुसार १० जून, सन् १८८२ को तैयार करके प्रकाशित कराया और उनके बनाये वैसे ही असभ्य निवेदन नं० २ का उचित उत्तर भी दिया ।

मैं ऐसा नहीं हूं कि मन में कुछ हो और कहूं कुछ और ! एक विश्वसनीय सूत्र से ज्ञात हुआ कि स्वर्गीय ला० सेवाराम बी०ए०, सुपुत्र राय कन्हैयालाल साहब, ऐग्जेक्टिव इन्जीनियर[४७] ने स्वामी जी को लिखा कि इसमें आपने नम्रता से काम नहीं लिया है और कठोर शब्दों का प्रयोग किया है । स्वामी जी ने स्वर्गीय लाला सांईदास जी, प्रधान आर्यसमाज लाहौर के द्वारा उन्हें उत्तर दिया कि 'मैं आजकल के कालिजों और स्कूलों का पढ़ा हुआ नहीं हूं जो मन में कुछ हो और प्रकट कुछ और करूं । मैं जो मन में ठीक समझता हूं उसी को प्रकट करता हूं । लाग लपेट की और पालिसी की बातें मुझे नही आतीं ।'

स्वामी जी के वेदभाष्य की अन्य भाष्यों से तुलना ।

स्वामी जी ने लाहौर आकर अपना वेदभाष्य एक चिट्ठी सहित पंजाब सरकार की सेवा में इस अभिप्राय से भेजा कि वह इसे शिक्षा-विभाग के पाठ्यक्रम में सम्मिलित करे । इस चिट्ठी को पंजाब गवर्नमेण्ट ने सम्मति जानने के लिये सीनेट[४८] के पास भेज दिया और सीनेट ने पंडितों और संस्कृत के प्रोफेसरों की सम्मति मांगी । वह सम्मति स्वामी जी को किसी प्रकार विदित हो गई । स्वामी जी ने उन आक्षेपों का उत्तर लिखकर आर्यसमाज लाहौर को भेज दिया; ताकि वह उसका अंग्रेजी में अनुवाद कराके सरकार की सेवा में भेजे ।

वेदभाष्य सम्बन्धी पत्र:आर्यसमाज की ओर से—सेवा में डाक्टर जी० डब्ल्यू० लाइटनर महोदय, एम० ए० बैरिस्टर एट ला, रजिस्ट्रार पंजाब यूनीवर्सिटी कालिज, शिमला ।

महाशय, जो चिट्ठी पंजाब सरकार ने स्वामी दयानन्द सरस्वती के वेदभाष्य के गुणावगुण की जांच के लिये आपके यूनीवर्सिटी कालिज की सीनेट के पास भेजी थी, उसका परिणाम जानने के लिये दक्षिण में बम्बई और पूना की, पश्चिमी उत्तर प्रदेश में मुरादाबाद और शाहजहांपुर की और पंजाब में लाहौर और अमृतसर की आर्यसमाजें अत्यधिक उत्सुक हैं । इससे पहले कि आर्यसमाज लाहौर को मिस्टर ग्रिफिथ, मिस्टर टानी और लाहौर के कुछ पंडितों की सम्मतियां ज्ञात हों, आर्यसमाज ने, यद्यपि उससे कुछ नहीं पूछा गया, अपना यह कर्त्तव्य समझा है कि ऐसे वृत्तांत और घटनायें आप पर प्रकट की जावें जिनसे विद्वानों (सीनेट के सदस्य) की वह सभा दोनों पक्षों का कथन सुनने के पश्चात् इस विषय में अधिक ठीक और दृढ़ निर्णय दे दे ।

स्वामी दयानन्द ने स्वयं भी इस बारे में एक लेख तैयार किया है जिसको आर्यसमाज विरोधियों के समस्त आक्षेपों का सन्तोषजनक उत्तर समझता है और वह मूल लेख भी साथ भेजा गया है ।

प्रतीत होता है कि महाभारत के उस युग से पहले से ही कि जिसका समय, अंग्रेजी गणना के अनुसार भी और औसत अनुमान के आधार पर भी ईसा से छ:सात सौ वर्ष पहले होता है, वेदों की शिक्षा और व्याख्या भारत में नियम से होती थी और वेदों की टीका तथा व्याख्या की सुविधा की दृष्टि से भाष्य, शब्द कोष और व्याकरण लिखे जाते थे । समय-समय पर क्रान्तियां और विध्वंस होने पर भी इन रचनाओं में से कोई-कोई रचनायें अब तक विद्यमान हैं । ये रचनायें यद्यपि कम मिलती हैं परन्तु सर्वथा नष्ट नहीं हुई । इनमें से अधिक प्रसिद्ध पुस्तकें ये हैं—ब्राह्मण, निरुक्त, निघण्टु और पाणिनि मुनिकृत व्याकरण आदि । इसलिये इन पुस्तकों को वेदों की सबसे पुरातन और विश्वसनीय व्याख्या और व्याकरण समझना चाहिये । जब महाभारत युद्ध का युग आया तो, उस समय हिन्दू समाज की जड़ पर भयंकर कुठाराघात हुआ । उस समय लोगों को विद्याध्ययन के स्थान पर आजीविका पर ही अधिक ध्यान रहा । इस युद्ध में समस्त देश का उत्तरी भाग किसी न किसी एक पक्ष में हो गया । न केवल युद्ध के दिनों में, प्रत्युत कई शताब्दियों पश्चात् तक भी वेदोक्त शिक्षा का पूछने वाला कोई न रहा । जब तनिक शान्ति तथा व्यवस्था का समय आया तो वेदों की शिक्षा की नये सिरे से चर्चा होनी आरम्भ हुई और नये प्रकार की पाठशालायें चालू हुईं और नये भाष्य बनने लगे जिनमें प्राचीन ऋषियों के भाष्यों का कोई ध्यान न रखा गया, प्रत्युत लोगों ने उस समय के अनुसार मनमाने भाष्य बना लिये । अभी इससे बुरा काल आगे आने वाला था अर्थात् वह समय जब कि बौद्धमत इस देश में फैलने लगा । वेदों के विद्वान् पकड़-पकड़ कर मारे गये और उनकी पवित्र पुस्तकें जलाई गई और नष्ट की गईं । अभी बौद्धमत को देश से निकाले हुये थोड़ा ही समय व्यतीत हुआ था और ब्राह्मणों को विजय प्राप्त किये बहुत काल न हुआ था कि और अधिक भयानक शत्रु का सामना करना पड़ा । महाभारत युद्ध ने और बौद्धमत ने देश का नाश करने में जो कमी शेष रखी थी वह मुसलमानों की विजय ने पूरी की । समस्त कला-कौशल और वैदिक विद्या की समाप्ति हुई । सायण, महीधर, उव्वट और रावण के भाष्य इसी पीछे के काल के हैं । इनसे केवल हानि ही हानि हुई; लाभ कुछ भी न हुआ और साधारण लोगों के हृदयों पर इन टीकाओं ने ऐसा प्रभाव डाला कि प्राचीन ऋषियों के भाष्यों को कोई नहीं पूछता था । परन्तु भविष्य में एक प्रकाश प्रकट होने वाला था । पिछले आघात के अन्त में कोलब्रुक, जोन्स और कैरी सरीखे बड़े-बड़े विद्वानों का ध्यान संस्कृत भाषा की ओर गया । परिणामत: इन लोगों के आन्दोलन ने भाषाविज्ञान में वह-वह चमत्कार दिखाये कि बॉप, बर्नफ, श्लेगल, विल्सन,[४९] वेबर और मैक्समूलर सरीखे, पूर्वी भाषाओं के विद्वान् उत्पन्न हुये । इस आन्दोलन का परिणाम न केवल राजेन्द्र लाल मित्र ही हुये, प्रत्युत आशा है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती के

वेदभाष्य के द्वारा वेदविद्या की कुंजी हमको मिलेगी । परन्तु इस बात का बहुत दु:ख है कि यूरोप के विद्वानों का बहुत-सा ज्ञान इस देश के उन पंडितों से प्राप्त किया हुआ है जो कि स्वयं भी वेदविद्या की गहरी बातों से परिचित नहीं थे । इन यूरोप वालों में जो सबसे अधिक विद्वान् समझे जाते हैं उनको सायण और महीधर के अतिरिक्त और किसी के नाम तक ज्ञात नहीं । यही कारण है कि वैदिक विद्या में उन्नति बहुत कम हुई और वेद के मंत्रों की शिक्षा के सम्बन्ध में मिथ्या विचार यूरोप में फैले ।

परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि प्रतिवर्ष, प्रतिमास और प्रतिदिन इस देश की प्राचीन सभ्यता और विद्या के सम्बन्ध में नया प्रकाश मिलता जाता है और यद्यपि यूरोप के पूर्वी विद्वानों के सम्मिलित प्रयत्नों ने इस सम्बन्ध में बहुत कुछ काम किया है, परन्तु अभी बहुत कार्य शेष हैं और हमको आशा है कि एक समय आयेगा जब कि वर्तमान वेदभाष्य वैदिक विद्या के परिचय और ज्ञान की एक कुंजी समझी जावेगी । इस लिये कुछ आश्चर्य नहीं कि वे इस बात को सुनकर हंसी उड़ावें कि वेदों में केवल एक ईश्वर की शिक्षा है । परन्तु हमको विश्वास है कि स्वामी दयानन्द जी ने जो आन्दोलन व प्रयत्न इस सम्बन्ध में किया है, उससे और अधिक छानबीन करने का उत्साह फैलेगा और अन्त में सत्य का प्रकाश होगा । परन्तु इस देश के पंडितों की अपेक्षा यूरोपियन विद्वानों से हमको अधिक आशा है क्योंकि मूर्तिपूजा को प्रचलित रखने में यूरोपियन विद्वानों का निजी स्वार्थ कुछ नहीं है । इस समय आर्यसमाज को केवल इस बात की आशा है कि जैसे-जैसे प्रकाश फैलेगा, अन्धकार दूर होकर लोग संभलते जायेंगे । यह बात कि वेदविद्या यूरोप में भी आज के दिन कम प्राप्त हैं, सिद्ध करने के लिये इससे अधिक प्रमाण की आवश्यकता नहीं कि यूरोप के बड़े-बड़े विद्वान इस बात को स्वीकार करते हैं कि वेदों के कई मन्त्र ऐसे गूढ़ हैं जिनका कुछ अर्थ समझ में नहीं आता और इन मंत्रों के अर्थ प्रकट करने के सम्बन्ध में अब तक जो थोड़ा-बहुत प्रयत्न किया गया है, उसमें शब्दों के केवल आनुमानिक अर्थ बताये गये हैं जिनसे कुछ सुसम्बद्ध अर्थ नहीं निकल सकता । वर्तमान काल के विद्वानों की वैदिकविद्या से अनभिज्ञता निम्नलिखित एक मन्त्र के उस अनुवाद से ही प्रकट है कि जो छ: विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से किया है और इन अनुवादों में सम्भवत: परस्पर इतना विरोध है जितना कि मूलमन्त्र के वास्तविक अर्थों से ।

उत ब्रवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत । दधाना इन्द्र इद्दुवः ॥ ५ ॥

उत नः सुभगां अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः । स्यामेन्द्रस्य शर्मणि ॥ ६ ॥

देखो मैक्समूलर रचित भूमिका ऋग्वेद संहिता पृ. २२-२४

मैक्समूलर का अर्थ—१. हमारे शत्रु यह कहते हैं कि तुम जो केवल इन्द्र की पूजा करने वाले हो, और कहीं चले जाओ ।

२. अथवा चाहे हे बलशालिन् ! सब लोग हमें भाग्यशाली कहें हम सदा इन्द्र की रक्षा में रहें ।

मुझे ध्यान आया कि इस मन्त्र के सामान्य अर्थों में तो कोई सन्देह नहीं है परन्तु इसमें एक शब्द 'अरि' है; उसके अर्थ अधिक विचारने योग्य हैं परन्तु बहुत से अर्थ जो विभिन्न विद्वानों ने किये हैं, वे विचित्र हैं । पहले यदि हम सायण की ओर देखें तो वह यह अर्थ करता है । सायण कृत अर्थ-१. हमारे पुरोहित इन्द्र को उठा दें, (उसकी स्तुति करें) हमारे शत्रु यहां से चले जायें और अन्य स्थानों से भी चले जायें, हमारे पुरोहित इन्द्र की उपासना करें वे जो कि सदा इन्द्र की पूजा करते हैं । २. शत्रुओं का नाश करने वाले लोग हमें धनवान कहें और कितने मित्र लोग ! हम सदा इन्द्र की प्रसन्नता में रहें ।

प्रोफेसर विल्सन ने सायण का पूरा अनुकरण नहीं किया; प्रत्युत यह अनुवाद किया है । १. "हमारे पुरोहित उत्सुकता से उसकी पूजा करते हुये बोले; ओ गालियां निकालने वालो ! यहां से चले जाओ और अन्य स्थान से भी जहां वह पूजा

जाता है। २.हे शत्रुओं के नाशक, हमारे शत्रु कहें कि हम यश वाले हैं। लोग हमें बधाई दें; हम सदा उनकी प्रसन्नताओं में रहें जो सदा इन्द्र की कृपा से प्राप्त हुई हैं।"

स्टीवेन्सन ने यह अर्थ किया है—१. समस्त मनुष्य ईश्वर की उपासना में सम्मिलित हों। तुम दुष्ट और घृणा करने वाले यहां से चले जाओ और अन्य स्थान से भी, जब कि हम इन्द्र की पूजा करते हैं। २. ओ शत्रु के नाश करने वाले! तुम्हारी कृपा से हमारे शत्रु भी हमारे साथ- जोकि हम धनवान हैं, नम्रता से बोलते हैं फिर क्या आश्चर्य है यदि और मनुष्य भी ऐसा करते हैं। हम प्रसन्नतायें मनायें (उस आनन्द को भोगें) जो कि इन्द्र की कृपा से आती है।

प्रोफेसर बैनफी—यह अनुवाद करता है १. घृणा करने वाले कहें कि वे सबसे निकाले गये हैं; इसलिये वे इन्द्र को मनाते हैं। समस्त शत्रु और देश हमें अच्छा कहें। २. ओ नाश करने वाले। यदि हम इन्द्र की रक्षा में रहें।

प्रोफेसर राथ ने—'अन्यतः' शब्द को दूसरे स्थान के अर्थों में ठीक ही लिया है और इसलिये इस वाक्य को कि यहां से चले जाओ, इन्हीं अर्थों में लिया जिसमें मैंने लिया। पीछे से उसने अपने आपको ठीक किया, उन्हीं शब्दों का इस प्रकार अनुवाद किया कि 'तुम किसी और को भूलते हो।'

प्रोफेसर बोलेन्सन ने अपनी पुस्तक 'ओरियण्ट ओर आक्सीडेण्ट', — खंड २, पृष्ठ ४६२ में प्रोफेसर राथ के दूसरे अर्थों को किसी सीमा तक लेकर और (उनको) बैनफी (के अर्थों) से श्रेष्ठ बताकर यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि वह अन्य वस्तु जो कि भूल गई है, अनिश्चित है। परन्तु इन्द्र के अतिरिक्त अन्य देवताओं की उपासना है।

वेदार्थ के सम्बन्ध में इसी अनश्चितता के कारण प्रोफेसर मैक्समूलर ने अपनी ऋग्वेद संहिता की भूमिका में लिखा हैं कि मेरा भाष्य कई स्थानों पर ठीक किये जाने के योग्य है और विलम्ब से या शीघ्र इसके स्थान पर नया भाष्य होगा। भारतवर्ष में वेद के ज्ञान का कम होना इस बात से सिद्ध होता है कि स्वामी दयानन्द के बारम्बार चुनौती देने पर भी कोई पंडित इस बात को सिद्ध करने कें लिये अभी तक सामने नहीं आ सका कि वेदों में मूर्तिपूजा है; यद्यपि वे सारे कहते हैं कि यह इनमें है। ऐसी दशा होने का यह कारण है कि भारतवर्ष में वेदों को केवल मौखिक याद कर लेते हैं और उसके अर्थ नहीं समझते। इसके विपरीत स्वामी दयानन्द न केवल अपनी वाग्मिता और प्रबल युक्तियों के बल से लोगों के हृदयों को विश्वास दिला देता है, प्रत्युत अपने वेदभाष्य में शब्दों के इतिहास और प्रत्येक स्थल को जिससे वह अपने अर्थ करता है, बतलाता जाता है और जो अर्थ वह शब्दों के देता है वह वेदों, ब्राह्मणों, निघण्टु और पाणिनि के व्याकरण से सिद्ध करता जाता है। सारांश यह कि अपनी बड़ी भारी विद्वत्ता और गहरे विवेक को इस कार्य में प्रयुक्त करता हुआ वह, मनुष्यों के पुस्तकालय की इस सबसे प्राचीन पुस्तक में बड़े प्रेम से जीवन डाल रहा है। वह उन कठिनाइयों को भी बताता है जिन्होंने उसकी (वेद की) स्वतन्त्र उन्नति को आज तक रोके रखा। वह भाषाविज्ञान की साधारणतया, और भारतवर्ष के भाषाज्ञान की विशेष रूप से अनन्त सेवा कर रहा है। उसके हजारों ग्राहक बन गये हैं और दिन-प्रतिदिन बढ़ रहे हैं। इन बातों का विचार करके और इस बात को जैसा कि पंजाब सरकार और भारतवर्ष की स्थानीय सरकारें यह जानती हैं कि भारतवर्ष के इतिहास पर वेद ने कितना प्रभाव डाला है और इस बात को भी जानकर कि वह प्रत्येक भारतीय साहित्य के साथ अत्यन्त निकटस्थ सम्बन्ध रखता है। भारतवर्ष की जाति के मन पर वेदों की धार्मिक और नैतिक बातों ने जो गहरी जड़ जमाई है वह और उसके सनातन प्रमाणों से भारतवर्ष के सामाजिक और व्यक्तिगत काम नियमित किये जाते हैं। यह सब जानकर 'आर्यसमाज' विश्वास रखती है कि सरकार उनकी सम्मतियों पर (जो और बातों में यद्यपि कितने ही योग्य क्यों न हों परन्तु हमारी सम्मति में उनको इतनी प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हुई कि उन्हें 'वैदिक स्कालर' कहा जाये) निर्णय नहीं करेगी।

अब अन्त में समाज इन सब बातों को संक्षिप्त रूप में दुहराने की आज्ञा मांगती है जिनके आधार पर सरकार स्वामी दयानन्द जी के भाष्य को अपने संरक्षण में लेना स्वीकार करे और आशा करती है कि देश की सरकार स्वयं भी और स्थानीय सरकारों को भी एक बड़े भारी रिफार्मर और स्कालर के निष्काम शुभ कार्य में सहायता देने के लिये उद्यत करेगी।

१—भारतवर्ष का भाषाविज्ञान यदि स्वाभाविक गति से चले तो अवश्य वेदों से आरम्भ होगा। इसलिये वेदों का प्रचार बहुत आवश्यक है।

२—इस वेदभाष्य के प्रकाशन से अनुसंधान की जो भावना उत्पन्न हुई है, उसकी वृद्धि में सहायता देगी।

३—वेदविद्या का फैलना हिन्दू मस्तिष्क को भ्रान्त धारणाओं और असभ्यतापूर्ण पक्षपात से स्वतन्त्र करेगा।

४—स्वामी दयानन्द का भाष्य अत्यन्त विश्वसनीय प्रमाणों पर आधारित है जिनको यूरोपियन स्कालर भी मानते हैं, यद्यपि वे अभी तक उसे काम में नहीं लाये।

५—चूंकि स्वार्थी ब्राह्मणों और मिथ्याज्ञान रखने वाले यूरोपियनों से इस समय निष्पक्ष सम्मति मिलने की कोई आशा नहीं है; इसलिये इस अवस्था में उसको परीक्षा का उचित अवसर दिया जावे।

लाहौर हम हैं श्रीमान् आपके आज्ञाकारी,

२५ अगस्त,१८७७ जीवन दास और शारदाप्रसाद भट्टाचार्य आदि।

स्वामी जी के भाष्य पर किये गये आक्षेपों का स्वामी जी द्वारा उत्तर

स्वामी दयानन्द के भाष्य पर समीक्षा करने वालों के आक्षेपों के उत्तर का अंग्रेजी में स्वतंत्र अनुवाद मुझे 'वकीले हिन्द' समाचार पत्र और यूनीवर्सिटी के उन कागजों से, जो उन्होंने छापे हैं मिलता है। वह उत्तर निम्नलिखित हैं—

"यह पढ़कर दु:ख हुआ कि कई मनुष्यों ने मेरे भाष्य के प्रतिकूल सम्मतियां दी हैं। उनके आक्षेपों का मैं क्रमश: उत्तर देता हूं।

प्रथम— आर० ग्रिफिथ साहब[५०], एम०ए० प्रिंसिपल बनारस कालिज के आक्षेपों का उत्तर देता हूं। मुझे इस बात के कहने की आज्ञा हो कि उसकी सम्मति की कुछ बातें उपेक्षा करने के योग्य हैं। पांच हजार वर्ष से वेदों का अभ्यास नहीं रहा। महाभारत से पहले समस्त आचार-व्यवहार वैदिक रीति से होते थे। इसलिये वे (वेद) सदा पढ़े जाते थे और जो शब्द उनमें आते हैं, उनके ठीक अर्थ लिये जाते थे। जो भाष्य उस समय किये गये उनको पक्का पथप्रदर्शक समझना चाहिये। सायण का भाष्य जो बहुत काल पीछे हुआ वह ऐसा नही हो सकता। पुराने भाष्य कण्ठस्थ किये जाते थे। कोई भी पाठशाला ऐसी नहीं थी कि जहां वेदों की व्याख्या नहीं की जाती हो। प्राचीन भाष्यों के बिना वेदों की व्याख्या असम्भव है। मेरा भाष्य सर्वथा उन पर आधारित है। जो मन्त्र अब तक छप चुके हैं मैंने उन पर प्रमाण दिये हैं और जो मैंने लिखा है, वह उनके प्रमाणों के अनुकूल है। मुझे विश्वास है कि यदि मिस्टर ग्रिफिथ के पास, वे पुराने भाष्य या प्रमाण जो मैंने दिये हैं, होते तो वे सर्वथा इसके विरुद्ध सम्मति न देते जो कि अब उन्होंने दी है। सायण, महीधर और उव्वट के भाष्य पूर्वकाल के भाष्यों से सर्वथा विपरीत हैं और वही हैं जिनका अब तक मैक्समूलर और विल्सन ने अनुवाद किया है। इसलिये ये ठीक प्रामाणिक नहीं कहे जा सकते और यही पुस्तकें हैं कि जिनको मिस्टर ग्रिफिथ आदि ने ठीक प्रमाण माना और यही पुस्तकें हैं जिनसे मिस्टर ग्रिफिथ और शेष समीक्षा करने वालों ने धोखा खाया। मुझ पर यह आरोप लगाया गया है कि मैंने स्थान-स्थान पर ऐतरेय ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण, निरुक्त और पाणिनि व्याकरण के प्रमाण दिये हैं। मैं ऐसा विचार करने से नहीं रुक सकता कि मिस्टर ग्रिफिथ ने मेरी पुस्तकें पूरी पढ़े बिना ही सम्मति दी है अन्यथा मुझे विदित नहीं होता कि मिस्टर ग्रिफिथ मेरे

परिश्रम को वृथा क्यों समझता है । एक हजार से अधिक मैंने वेदभाष्य के ग्राहक उत्पन्न कर लिये हैं और मेरे भाष्य के लिये प्रतिदिन नये प्रार्थनापत्र अधिकता से आ रहे हैं । मैं इस बात को कह दूं कि मेरे भाष्य के ग्राहकों में संस्कृत और अंग्रेजी दोनों भाषाओं के विद्वानों के नाम हैं । अन्त में मिस्टर ग्रिफिथ की यह बात कि "जिन मन्त्रों में बहुत से देवताओं का वर्णन स्पष्टतया विद्यमान है, उनका विद्वान् और अविद्वान् के लिये संतोषजनक उत्तर नहीं हो सकता ।" मैं चाहता था कि वे कुछ ऐसे मन्त्र उपस्थित करते और फिर देखते कि सन्तोषजनक रूप से उनका उत्तर दिया जाता है या नहीं । उपर्युक्त दावे की सिद्धि में कोलब्रुक की पुस्तक 'वेदाज'[1] (Vedas) में और चार्ल्स कोलमैन की पुस्तक 'हिन्दू माईथोलोजी'[2] (Mythology of the Hindus) में से और रैवरेण्ड गैरट की भगवद्‌गीता' और मैक्समूलर की 'हिस्ट्री आफ एन्शिएण्ट संस्कृत लिट्रेचर'[3] (History of Ancient Sanskrit Literature) पृष्ठ ७५६ से नीचे लिखा जाता है[४]—

१—मिस्टर टानी साहब एम०ए० प्रिंसिपल -प्रेजीडेन्सी कालिज, कलकत्ता—ऋग्वेद के पहले मन्त्र में 'अग्नि' शब्द हैं और मिस्टर टानी उसका अनुवाद आग करता है परन्तु उसकी स्वयं की पहले ही निश्चित की हुई यह सम्मति धोखा देती है कि आग भी एक उपासना की वस्तु है । अग्नि महाभूत की उपासना कभी किसी ऋषि ने नहीं की । अग्नि शब्द का प्रयोग भौतिक पदार्थ (आग) के अर्थों में केवल उन्हीं मन्त्रों में आता है, जिनमें लौकिक व्यवहार का वर्णन है परन्तु अन्य मन्त्रों में, जिनमें प्रार्थनाओं और उपासना का वर्णन है, वहां यह ईश्वर का एक नाम है और यह मेरी मनघड़ंत या अनुमान की हुई बात नहीं है; प्रत्युत इसके दोनों अर्थ ब्राह्मणों और निरुक्त में स्पष्ट प्रकट हैं । अन्त में मिस्टर टानी की यह सम्मति हुई कि 'मेरा वेदभाष्य सायण और अंग्रेजी भाष्यों का खंडन करता है' इस आधार पर मुझ पर कोई आरोप नहीं लगाया जा सकता कि सायण ने भूल की और अंग्रेजी अनुवाद करने वालों ने उसे अपना आधार चुना । भूल बहुत समय तक बनी नहीं रह सकती; केवल सच्चाई ही ठहर सकती है और झूठ प्रगतिशील सभ्यता की कसौटी पर अवश्य गिरेगा ।

---

1. सामान्यता देखने से विदित हो जाता है कि वेद के देवता इतने ही थे जिनको प्रार्थनाओं के लिखने वालों ने सम्बोधित किया है । परन्तु भारतवर्ष की पवित्र पुस्तक के बहुत प्राचीन व्याख्यानों के अनुसार वे असंख्य मनुष्यों और पदार्थों के नाम तीन देवताओं में घट जाते हैं और अन्ततः एक ईश्वर में । निघण्टु या वेदों की व्याख्या देवताओं की तीन सूचियों से समाप्त होती है । पहले वे जो अग्नि के विशेष पर्यायवाची हैं; दूसरे वे जो विशेष वायु के और तीसरे वे जो सूर्य के । निरुक्त के अन्तिम भाग में जिसमें केवल देवताओं की चर्चा है, यह बात दो बार कही गई है कि सब मिलाकर तीन देवता हैं— "**तिस्र एव देवताः**" । दूसरा यह कि परिणामतया केवल एक ही ईश्वर को प्रकट करते है । वेदों के कई मन्त्रों से सिद्ध होता है और यह स्पष्ट और प्रकट रूप में ऋग्वेद के इण्डैक्स में निरुक्त और वेद के प्रमाण से प्रकट किया गया है । इससे प्रकट होता है (जो कि उनसे और उनसे पहले लेख भारतवर्ष की पवित्र पुस्तक के अनुवाद से निकलता है) कि भारतवर्ष का प्राचीन धर्म, जो कि भारतवर्ष की पवित्र पुस्तक पर आधारित है, केवल एक ही ईश्वर को मानता है ।

2. हिन्दू पूर्वजों (आर्य ऋषियों) का धर्म जो वेद में प्रकट किया गया है, वह बड़े और केवल उस एक ईश्वर में विश्वास और उसकी उपासना है जो कि सर्वव्यापक, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है; जिसके गुण वह (वेद) अत्यंत पूजनीय वाक्यों में प्रकट करता है । यह गुण वह अलंकार के रूप में वर्णन करता है और तीन प्रकार की अलंकृत शक्तियों में अर्थात् उत्पन्न करना, धारण करना, नाश करना ।

3. ये श्रेष्ठ बातें हमें यह विश्वास दिला कर कहती हैं कि वेद केवल उस एक ही ईश्वर को मानता है जो सर्वशक्तिमान्, अनन्त, अनादि, स्वयम्भू, सब सृष्टि का स्वामी है । मैं एक और सूक्त लिखता हूं जिसमें ईश्वर की एकता का इतनी प्रबलता तथा स्पष्टता से वर्णन किया गया है कि आर्यों की जाति को स्वाभाविक रूप से एकेश्वरवादी न मानना संदेहास्पद हो जाता है ।

4. इसी सूक्त में एक और मन्त्र है; जो स्पष्ट रूप से एक ईश्वर की सत्ता को प्रकट करता है यद्यपि वह ईश्वर अनेक नामों से पुकारा जाता है । वह उसको इन्द्र, मित्र, वरुण कहते हैं फिर वह सुपर्ण वा गरुत्मान् है । कोई कोई बुद्धिमान मनुष्य उसे कई नामों से कहते हैं—अग्नि, यम, मातरिश्वा ।

२—**पंडित गुरुप्रसाद हेड पंडित ओरियण्टल कालिज लाहौर**—पंडित जी कहते हैं कि छापने वाले ने वही छाप दिया जो उसको दिया गया। यह ऐसा ही लिखना है कि छापे वाले की भूल मेरी भी भूल है फिर भी उसकी कृपा का मैं आभारी हूं कि यदि उसने प्रत्येक चीज की भूल निकाली है तो उसने कम से कम मेरे छापने वाले को कुछ गौरव दिया है।

३—मुझ पर यह आरोप लगाया गया है कि मैं अपना एक मत घड़ता हूं। मुझे दुःख है कि इस बात से वेदों के विषय में उसकी अनभिज्ञता प्रकट होती है; क्योंकि यदि उसने पहले भाष्य पढ़े हुये होते तो वह इन युक्तियों के होते हुये भी जो पहले दी गई हैं, ऐसा कभी न कहता।

४—मुझ पर यह आरोप लगाया जाता है कि मैंने वृत्र, इन्द्र आदि को अपने अर्थ दिये हैं। इस आक्षेप के उत्तर में मैं उसका ध्यान अपने वेदभाष्य के विज्ञापन की ओर दिलाता हूं जिसमें इन शब्दों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है और जिसकी एक प्रति साथ लगी हुई है। यह केवल उनकी प्राचीन संस्कृत से अनभिज्ञता का परिणाम है।

५—वह मेरी व्याकरण की अशुद्धियां निकालता है। मुझ पर 'परस्मैपद' के स्थान पर 'आत्मनेपद' के प्रयोग करने का आरोप लगाया है। इस बात का विश्वास दिलाने के लिये कि वह व्याकरण की बातों में बड़ी भूल पर है, मैंने कैय्यट के भाष्य (प्रदीप), नागेश, रामाश्रम आचार्य, अनुभूतिस्वरूप आचार्य के चार टुकड़े दिये हैं जिनकी कापियां पंडित जी को भेजी जा सकती हैं। इनसे पता लगता कि वे मेरे 'विदधीमहि'[1] के प्रयोग को ठीक और सर्वथा युक्त समझते हैं। मेरे 'वदामहे'[2] के ठीक प्रयोग के लिये मैंने पाणिनि की अष्टाध्यायी के तीसरे पाद के ४७ वें सूत्र का प्रमाण दिया है।

६—जो छन्द मैंने प्रयोग किया है उस पर भी आक्षेप है। ये सब आक्षेप उनकी हंसी कराने वाले हैं। यदि मैं उसके उचित होने का प्रमाण दूं तो यह संक्षिप्त उत्तर पत्र (मेरी ओर से विवाद में जोड़ा गया उत्तर—संयोजन) भर जायेगा। मैं पिंगल के सूत्रों से केवल एक ही उपयुक्त प्रमाण देकर सन्तोष करूंगा और उसके भाष्यकर्ता हलायुध भट्ट से एक उदाहरण (देखो मूल हिन्दी में)

पंडित हृषीकेश"१ सैंकण्ड टीचर ओरियण्टल कालेज लाहौर—ऐसा प्रतीत होता है कि पंडित हृषीकेश ने पंडित गुरुप्रसाद के चरणों का अनुकरण किया है और इसलिये उसके समस्त आक्षेपों का उत्तर (उनको दिये गये उत्तर में) दिया गया है। वह शब्द 'उपचक्रे'[3] के प्रयोग पर (एक नया) आक्षेप करता है। इस बात को प्रकट करने के लिये कि मेरा प्रयोग ठीक है मैं केवल उसको पाणिनि के अध्याय १, पाद ३, सूत्र ३२ का प्रमाण देता हूं। उसको देखकर तुष्ट होवें।

७. पंडित भगवानदास असिस्टैण्ट संस्कृत प्रोफेसर गवर्नमेण्ट कालिज, लाहौर—'पंडित भगवानदास किसी नई बात की चर्चा (या शंका) नहीं करता और इसलिये मैं उसका ध्यान जो कुछ पहले लिख चुका हूं, उसकी ओर आकर्षित करता हूं।

समाप्ति पर मुझे यह कहने की आज्ञा हो कि इन समस्त आक्षेपों का बल देश की पाठशालाओं में मेरे वेदभाष्य के लगाये जाने के विरुद्ध लगाया गया है परन्तु मेरे आलोचक बड़ी भ्रान्ति में हैं। मेरा वेदभाष्य महाभारत के पहले भाष्यों के प्रमाणों के कारण, यूरोपियन विद्वानों के भाष्यों के विरुद्ध होने के कारण अनुसन्धान की एक प्रबल भावना उत्पन्न कर

---

1. वेदानां भाष्यं वयं विदधीमहि-(ऋग्वेदा० भा० भूमिका-ईश्वर प्रार्थना विषय) —सम्पा०

2. एवं प्राप्ते वदामहे-ऋ० भा० भूमिका वेदोत्पत्ति विषय) —सम्पा०

3. यथा पिता....सर्वमनुष्यार्थ वेदोपदेशमुपचक्र (ऋ० भा० भूमिका : वेदोत्पत्तिविषय)

देगा । इससे सचाई प्रकट होगी और पाठशालाओं में सदाचार व नैतिकता की भावना बढ़ायेगा । चूंकि यह ऐसा करेगा इसी कारण यह (मेरा वेदभाष्य) सरकार की संरक्षकता का अधिकारी है ।[५२]

पंजाब सरकार ने इस प्रार्थनापत्र को बंगाल, पश्चिमी उत्तरी प्रदेश, बनारस और मद्रास में सम्मति प्रकाशनार्थ भेज दिया परन्तु जैसा कि उपर्युक्त से प्रकट होता है, उन सबने अपनी सम्मतियां भाष्य के विरुद्ध प्रकट कीं क्योंकि वे महीधर और सायण के भाष्य से पक्षपात में आये हुये थे; इसलिये सफलता न हुई । मूर्तिपूजक एक ओर समाज को गालियां निकाल रहे थे और दूसरी ओर से ईसाई मिशनरी उस पर अपनी शत्रुता निकालते थे । परन्तु सर्वशक्तिमान् ईश्वर का धन्यवाद है कि जिसने अपनी सहायता का हाथ बढ़ाया और समाजों को दिन-प्रतिदिन उन्नति देकर शुभ काम पूरा किया ।

तृतीय परिच्छेद

वेद भाष्य विषयक विवाद

'इण्डियन मिरर' का लेख—पंडित दयानन्द सरस्वती को विदित हो कि उन्होंने अपने अनोखे और उत्तम वेदों के भाष्य से एक बड़े भारी भिड़ों के छत्ते को छेड़ दिया अर्थात् स्वामी जी की वेदभाष्य पत्रिका के विषय में प्रोफेसर टानी और ग्रिफिथ जैसे विद्वानों ने आक्षेप किये हैं जिसमें आर्यसमाज लाहौर एक ओर है और अन्य पंडित तथा वेदपाठी दूसरी ओर । एक दूसरे पक्ष के पंडित महेशचन्द्र न्यायरत्न, प्रिंसिपल संस्कृत कालिज कलकत्ता सम्भवतः सबसे बड़े विद्वान हैं और उनकी सम्मति इसी कारण अत्यंत माननीय है । पंडित न्यायरत्न जी ने कृपा करके हमारे पास एक पत्रिका भेजी है जिसमें उन्होंने अपनी सम्मति इस विषय में प्रकाशित की है । इस पत्रिका में उक्त पंडित जी पंडित दयानन्द सरस्वती की उन सम्मतियों का खंडन करते हैं जो पंडित दयानन्द सरस्वती ने अपने वेद भाष्य में लिखी है । हमको स्मरण है कि बड़ा भारी शास्त्रार्थ कलकत्ता में (जिन दिनों स्वामी सरस्वती संवत् १९२६ में कलकत्ता में विराजमान थे) इन्हीं दिनों पंडितों के बीच में पंडित दयानन्द सरस्वती जी की मान्यताओं को लेकर हुआ था । जो दशा विद्वान् पंडितों के शाब्दिक शास्त्रार्थों की हुआ करती हैं वैसा ही परिणाम इस शास्त्रार्थ का हुआ अर्थात् कोई अभीष्ट परिणाम न निकला; प्रत्युत दोनों पक्षों के बीच मनमुटाव हो गया । वेदों के ईश्वरोक्त होने के विषय में हम स्वामी जी से सहमत नहीं हैं और न इस बात में सहमत हैं कि वेदों में केवल ईश्वरोपासना का ही विधान है । चाहे पंडित दयानन्द भ्रान्ति में हों और विरोधी पक्ष सत्य पर और चाहे विरोधी पक्ष भ्रान्ति में हो और पंडित दयानन्द सत्य पर अर्थात् 'अग्नि' शब्द का अर्थ किसी समय और किसी युग में 'ईश्वर' होता था या पंडित न्यायरत्न के कथनानुसार इसका अर्थ सदा 'आग' ही होता है, इस सारे विषय की उपेक्षा करके हम एक बात के विषय में अपनी सम्मति प्रकट करने का साहस करते है । हमारी सम्मति में पंडित दयानन्द सरस्वती पूरे शौक से जिस प्रकार चाहें वेदों का अर्थ करें; क्योंकि जो कुछ वे भाष्य करते हैं वह भाष्य भी तो मूल वेद नहीं है । जिस प्रकार सायणाचार्य आदि पहले भाष्य कर चुके हैं और उनके लाखों अनुयायी हिन्दुओं में विद्यमान हैं और उन्हीं के भाष्यों के आधार पर विभिन्न सम्प्रदाय एक दूसरे के विरुद्ध स्थापित हो चुके हैं । इससे भी इन्कार नहीं हो सकता कि सांख्य का नास्तिकपन, वेदान्त का ब्रह्माद्वैतवाद, पुराणों की मूर्तिपूजा और इन सब के पश्चात घृणा के योग्य वाममार्ग आदि सभी सम्प्रदाय वेदों और वेदों के वचनों को अपना आधार मानते हैं । जब कि इस प्रकार के विभिन्न सम्प्रदाय एक ही प्रकार के शास्त्रों से निकल चुके हैं तो कोई कारण नहीं कि पंडित दयानन्द जी को एक और सम्प्रदाय स्थापित करने, एक और सिद्धांत निकालने और एक और भाष्य करने का शौक पूरा न करने दिया जावे । यह विशेषता हिन्दू धर्म की है । यह बात क्यों न कही जावे कि ईश्वर की

उपासना करनी वेदों में ऐसी ही लिखी हैं जैसे कि अद्वैतवाद या मूर्तिपूजा या ध्रुपद की समस्याओं के विषय में यह कथन कि वेद से ही इनका समाधान हुआ है । हम जो किछ लिखते हैं, वाचालतापूर्ण शास्त्रार्थ की दृष्टि से नहीं लिखते; प्रत्युत केवल भूतकाल से चले आये एक तथ्य की दृष्टि से ही हम अपनी सम्मति देते हैं । हमारी सम्मति में पंडित दयानन्द सरस्वती चाहे कितना ही अपने पक्ष पर बल दें परन्तु कुछ भी हो, प्राचीन एकता के काल की बातों को पुनः स्थापित करने के लिये उनकी चेष्टा कुछ न कुछ शुभ परिणाम अवश्य उत्पन्न करेगी ।

यद्यपि वह काल इतना प्राचीन था कि हिन्दुओं की ईश्वरोपासना की वह प्रारम्भिक अवस्था थी । हमको आशा है कि इन दोनों पण्डितों के बीच में शास्त्रार्थ चालू रहेगा । इनके अतिरिक्त धीरे-धीरे और पण्डित भी शास्त्रार्थ में सम्मिलित होंगे । इस शास्त्रार्थ की आवश्यकता रूपी संघर्ष से उत्पन्न सत्य की एक चिंगारी भी, पुराने फैशन के हिन्दुओं के धार्मिक विश्वासों को हिलाने के लिये सैंकड़ों आधुनिक आन्दोलनों की अपेक्षा बहुत बड़ा काम करेगी ।'('इण्डियन मिरर'कलकत्ता, खंड १६, संख्या १६१, मिति ४ नवम्बर, सन् १८८० ।)

थियोसोफिस्ट में आक्षेप—'थियोसोफिस्ट' मार्च, सन् १८८३ में मिस्टर ए०ओ० ह्यूम साहब[1] ने स्वामी जी पर निम्नलिखित आक्षेप किये हैं—

'वेद ईश्वर की वाणी है; इसलिये अभ्रान्त हैं, आर्यधर्म और स्वामी दयानन्द जी का यही मूलमन्त्र है । परन्तु फिर प्रश्न उठता है कि इतना अनुमानातीत वेद ऐसा अनुमान क्यों है ? ईश्वर का वचन इतना रहस्यमय क्यों है ? यदि इस मूलमन्त्र को कि वेद अभ्रान्त है सत्य मान लें तो इसका अर्थ यह होगा कि वेद का उपदेशक अभ्रान्त (निर्भ्रान्त) हैं; क्योंकि वेद में भ्रान्ति का अस्तित्व और अनस्तित्व, भाष्यकारों के हाथ में है । स्वामी दयानन्द का वेदभाष्य भी तब अभ्रान्त हो सकता है जब दयानन्द जी स्वयं ईश्वर के तुल्य हों और उनमें ईश्वर की पूर्ण प्रेरणा हो । इसलिये मैं ललकार कर कहता हूं कि स्वामी जी अपने मूलमन्त्र को प्रमाणित करें या अपनी प्रेरणा का प्रमाण दें ।

इस पर सम्पादक 'भारतमित्र' कलकत्ता लिखता है—"हम लोगों को आशा है कि स्वामी दयानन्द जी इसका खंडन कर आर्यसमाज का गौरव बढ़ावेंगे ।" (१४ जुलाई, सन् १८८३ तदनुसार आषाढ़ सुदि ८, संवत् १९४०, खंड ६, संख्या २७ ।)

वेदों पर किये गये आक्षेपों के उत्तर में स्वामी जी का पत्र- श्रीयुत 'भारतमित्र' सम्पादक महाशय समीपे शिव ! संवत् १९४०, आषाढ़ सुदि ८ गुरुवार को प्रकाशित आपके समाचारपत्र में किसी ने वेद पर आक्षेप किये हैं । इस लेख का लक्ष्य यह कथन ही प्रतीत होता है कि वेद ईश्वर का वचन तथा भ्रान्ति से रहित नहीं है, परन्तु इस प्रश्न के करने वाले ने केवल आक्षेप ही किया है, अपने कथन को प्रमाणित करने के लिये कोई विशेष युक्ति या प्रमाण नहीं लिखा । विचार कीजिये कि यदि किसी वेद वचन के भ्रान्ति युक्त होने अर्थात् असत्य होने का संदेह किया जाता तब तो उस बात का उत्तर दिया जाता । ऐसा होने की अवस्था में उसका उत्तर उसी समय दे दिया जाता । जैसे कोई कहे कि यह एक हजार रुपयों की थैली खरी नहीं । दूसरे ने उससे पूछा क्या मैं तुम्हारे कहने मात्र से ही थैली को खोटा मान सकता हूं ! जब तक तुम खोटा रुपया इसमें से एक भी निकाल सिद्ध नहीं कर देते तब तक थैली को खोटा नहीं मानूंगा । वैसा ही मि० ए०ओ० ह्यूम साहब और जिसने आपके समाचारपत्र में छपवाया है, उन दोनों महाशयों का लेख है । इस स्थान पर उनको उचित था और है कि किसी एक या अधिक मंत्रों को अपनी प्रयोजन सिद्धि के लिये वेद से अध्याय और मंत्र संख्या के पते सहित उपस्थित करते और फिर कहते कि इससे सिद्ध है कि वेद ईश्वर का वचन तथा भ्रान्ति से रहित नहीं है, वह तो उत्तर देने योग्य, आक्षेप कहाता । अब भी यदि पूरा उत्तर प्राप्त करने की इच्छा हो तो ऐसा करें, अन्यथा आक्षेप करने का कोई महत्त्व नहीं ।

वेदों में मतभेद नहीं है, विद्यायें भिन्न-भिन्न अवश्य हैं—निस्संदेह इसमें इतनी बात तो समाधान के किसी प्रकार योग्य है कि वेदों में मतभेद क्यों है ? परन्तु यदि कोई विचार से देखे तो यह भी उनकी गोलमोल बात है क्योंकि वेदों में किस ठिकाने और किस-किस मन्त्र में किस प्रकार मतभेद हैं या नहीं—यह नही बतलाया । हां, विद्या भेद से (अर्थात विषय की भिन्नता के कारण) कथन का भेद होना तो उचित ही है । जो व्याकरण और निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, वैद्यक, राजविद्या, गान, शिल्प और पृथ्वी से लेकर परमेश्वर पर्यन्त अनेक विद्याओं की मूलविद्या वेदों में है उनके शब्द, अर्थ और सम्बन्ध पृथक्-पृथक् हैं जैसे व्याकरण विद्या के संकेतों आदि से, ज्योतिष विद्या आदि के संकेत, परिभाषा, नियम और पदार्थ विज्ञान पृथक्-पृथक् होते हैं वैसे ही इन विद्याओं के वाचक अर्थात् प्रकाशक मन्त्र भी पृथक्-पृथक् अर्थ के प्रतिपादक हैं । यदि इन्हीं को मतभेद कहते हैं तो प्रश्नकर्त्ता का आक्षेप असंगत है और दूसरे प्रकार के मतभेद मानते हैं तो उनका कथन सर्वथा अशुद्ध है । इसलिये प्रश्नकर्त्ताओं को उचित है कि पूर्वोक्त प्रकार से चारों वेदों में से जो कोई एक मन्त्र भी भ्रान्त प्रतीत होवे आप के पत्र में मिस्टर ए० ओ० ह्यूम साहब छोड़ दें (प्रकाशित करा दें) । उनके उत्तर भी आप ही के पत्र में उचित समय पर छोड़ दिया जावेगा । (प्रकाशित करा दिया जायेगा ।) इसके अतिरिक्त यदि उनकी वेदों की निभ्रान्तता के जानने की पक्की जिज्ञासा हो तो मेरी बनाई ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका को देख लेवें । यदि उनके पास न हो तो वैदिकयन्त्रालय प्रयाग से मंगाकर देखें और जो उनको आर्यभाषा का पूरा ज्ञान न हो तो किसी सत्य वक्ता अनुवादक से सुनें । इस पर भी यदि उनको शंका रह जाये तो मुझसे सम्मुख होकर जितनी शंका हों उन सबका यथावत समाधान प्राप्त करें क्योंकि समाचारपत्र या पत्रव्यवहार से शंका-समाधान होने में बहुत विलम्ब होता है और अधिक अवकाश की भी आवश्यकता है । मुझको वेदभाष्य के बनाने के काम से अवकाश न मिलने के कारण अधिक प्रश्नोत्तर का समय नहीं है और जो उन्होंने लिखा है कि स्वामी जी ईश्वर व ईश्वर की प्रेरणायुक्त हों तो उनका भाष्य निर्भ्रम हो सके—इसका उत्तर यह है कि मैं ईश्वर नहीं किन्तु ईश्वर का उपासक हूं परन्तु वेद मनुष्यों के हितार्थ परमात्मा ने प्रकाशित किये हैं । इस अभिप्राय से जहां तक मनुष्यों को विद्या और बुद्धि है, इतना निष्पक्ष होकर वेदों का अर्थ प्रकाश करता हूं और वह सब सज्जनों के दृष्टिगोचर हुआ है और होगा भी । यदि कहीं भ्रान्ति हो तो उक्त सज्जन प्रकट करें । बड़े शोक की बात है कि आज पर्यन्त एक भी दोष वेदभाष्य में कोई भी नहीं निकाल सका है, फिर भी उनका भ्रम दूर नहीं हुआ । ऐसी निर्मूल शंका कोई भी किया करे, इससे कुछ भी हानि नहीं हो सकती और सत्यार्थ होने ही से वेदों का निर्भ्रान्तत्व यथावत् सिद्ध है । यदि इस मेरे बनाये भाष्य में मिस्टर ए०ओ० ह्यूम साहब को भ्रम हो तो उसमें से भ्रान्तिमत्व किसी मन्त्र के भाष्य के द्वारा आप समाचार पत्र द्वारा छपवा देवें । मैं उत्तर भी आप ही के पत्र द्वारा दूंगा ।

और जो 'थियोसोफिस्ट' के अध्यक्ष[2] ऐसी बातें करें तो इसमें क्या आश्चर्य है क्योंकि वे अनीश्वरवादी, बौद्धमतावलम्बी होकर भूत-प्रेत और चुड़ैलों को मानने वाले हैं । बड़े शोक की बात है कि सर्वथा विद्यासिद्ध (प्रत्येक प्रकार से ज्ञान तथा युक्ति से प्रमाणित) परमात्मा को न मानकर भूत, प्रेत, मृतकों में फंसकर और भोले मनुष्यों को फंसा अपने को सुधारक मानना यह कितनी बड़ी अनुचित बात है ! उनको नास्तिकमत (ईश्वर को न मानना) ही प्रिय लगता है परन्तु इसमें इतनी ही न्यूनता है कि भूत-प्रेतों ने उनको घेर लिया । सच है जो सत्य ईश्वर को छोड़ेंगे वे मिथ्या भ्रमजाल भूत-प्रेतों और बन्ध्या-पुत्रवत् कुतू हूंबीलाल सिंह आदि में क्यों न फंसेंगे । बहुत से समाचारों में छपवाते हैं कि इतने-इतने हजार मनुष्यों को मिस्टर एच० एस० कर्नल आल्काट साहब ने रोगरहित किया । यदि यह बात होती तो मुझको यह चमत्कार क्यों नहीं दिखलाते और मनवाते मेरे सामने जिसको मैं कहूं, एक को भी नीरोग कर दें तो मैं थियोसोफिस्टों के अध्यक्ष को धन्यवाद दूं । इसमें मुझको निश्चय है कि जैसे एक थियोसोफिस्ट दम्भ के मारे लाहौर में अंगुली कटवा के अंगभंग हो गया, कहीं ऐसी गति मेरे सामने उनकी न हो जाये और चमत्कार कुछ भी काम न आयेगा ! मैं घोषणापूर्वक कहता हूं कि यदि इनमें कुछ भी अलौकिक शक्ति व योगविद्या हो तो मुझको दिखलावें ।

मैंने जहां तक इनकी योगविषयक लीला एवं सिद्धियां देखी हैं वे मानने के योग्य नहीं थीं। अब क्या कोई नई विद्या कहीं से सीख आये? मुझको तो यह विषय निकम्मा आडम्बर ही दीखता है। बुद्धिमानों में जो श्रेष्ठ हैं उनके लिये अधिक विस्तार की आवश्यकता नहीं। बुद्धिमानों को संकेत ही पर्याप्त है। दयानन्द सरस्वती श्रावण बदि ४, संवत् १९४० तदनुसार २३ जुलाई, सन् १८८३ सोमवार। जोधपुर से। ('भारतमित्र' कलकत्ता, २ अगस्त, सन् १८८३; पृष्ठ ६ व 'देशहितैषी' अजमेर, खंड २, संख्या ५, भादों, संवत् १८४०, पृष्ठ ४-७।)

अध्याय ७

प्रथम परिच्छेद

मुंशी इन्द्रमणि जी मुरादाबादी का मुसलमानों से मुकद्दमा, उसमें स्वामी जी महाराज की सहायता और मेरठ समाज में चन्दे का प्रबन्ध

पूर्व वृत्तान्त—चालीस वर्ष का समय व्यतीत हुआ कि इस्माइल नामक मौलवी ने हिन्दू धर्म के विरुद्ध 'रद्दे हनूद' नामक एक पुस्तक बम्बई में प्रकाशित कराई। उसके उत्तर में चौबे बद्रीदास ने उन्हीं दिनों 'रद्दे मुसलमान' नामक एक पुस्तक लिखी।

इसके पश्चात एक अबीदुल्ला[१] नामक व्यक्ति ने 'तुहफतुल हिन्द' नामक पुस्तक सन् १२७४ हिज्री में उर्दू में प्रकाशित की जिसमें हिन्दुओं के देवताओं और पूर्वज़ों की कठोर निंदा की गई तथा जिसे पढ़ कर कई विद्याहीन हिन्दू मुसलमान हो गये। तब मुन्शी इन्द्रमणि ने अपने हिन्दू धर्म के अनुसार उसका उत्तर सन् १२७४ हिज्री में फारसी भाषा में प्रकाशित कराया और उसका नाम 'तुहफतुल इस्लाम' रखा। मौलवी सैयद महमूद हुसैन ने 'तुहफतुल इस्लाम' के खंडन में 'खिलअत अल् हनूद' फारसी में सन् १२८१ हिज्री तदनुसार संवत् १९२२ विक्रमी में प्रकाशित की। फिर उसके प्रत्युत्तर में मुंशी इन्द्रमणि ने 'पादाशे इस्लाम' लिखकर सन् १८६६ तदनुसार संवत् १९२५ वि० में मुसलमानों का फारसी में गर्व चूर्ण किया जिसका उत्तर उनसे आज तक कुछ न बन सका।

तत्पश्चात बरेली के एक अज्ञात मुसलमान ने मसनवी[1] 'असूले दीने हिन्दू' लिखी जिसका उत्तर मसनवी 'असूले दीने अहमद' के रूप में इन्द्रमणि ने सन् १८६९ में लिखा। फिर एक मुसलमान ने एक अत्यंत अश्लील शब्दों से भरी हुई 'तेगे फकीर बर गर्दने शरीर' नामक पुस्तक सन् १८७३ में लिखकर अपना चमत्कार दिखाया। फिर मुरादाबाद के मुसलमानों में से मौलवी अहमद दीन ने 'अयजाजे मुहम्मदी' और मौलवी कुतुब आलम ने 'हदिया उल् अस्नाम्' दो पुस्तकें लिखीं अर्थात् 'तुहफतुल हिन्द' के समर्थन में लेखनियां उठाईं। इस पर इन्द्रमणि ने संवत् १९२२ में 'हमलये हिन्द' और 'समसामे हिन्द' तथा सन् १८६८ में 'सौलते हिन्द'—तीन पुस्तकें तैयार कीं जो प्रथम बार मेरठ में प्रकाशित हुईं और दूसरी बार सम्भवतः बुलन्दशहर में छपीं। इसी बीच में स्वामी जी के सत्योपदेशों से देश में आर्यसमाजें स्थापित होने लगीं और जब सन् १८७९ में उपदेशार्थ स्वामी जी मुरादाबाद पधारे[२] तो उनके सत्योपदेश से मुंशी इन्द्रमणि भी पौराणिक जाल को छोड़कर वेदमतानुयायी होकर आर्यसमाज के सदस्य बन गये और चुनाव के समय प्रधान चुने गये। तत्पश्चात् सन् १८८० में वही पुस्तकें तीसरी बार प्रकाशित हुई। अब इन्द्रमणि जी का समाजों से विशेष सम्बन्ध हो चुका था और स्वामी जी

1. कविता का एक प्रकार जिसके प्रत्येक शेर में दो अलग-अलग काफिये होते हैं—अनुवादक।

की भी उन पर कृपा दृष्टि थी। इस बार मुसलमानों को जोश इसलिये आया कि वे पुस्तकें मुरादाबाद में प्रकाशित हुईं। मुसलमानों के एक पक्षपातपूर्ण समाचारपत्र 'जामे जमशेद' ने अपने १६ मई, सन् १८८० के अंक में इस प्रकार लिखा—"इस्लाम के शत्रु मुंशी इन्द्रमणि मुरादाबादी ने एक प्रेस चालू करके इस्लाम की निन्दा पर कमर बांधी है। इस समय तक पुस्तक 'हमलये हिन्द' नामक निकल चुकी है और इसी सप्ताह मुंशी इन्द्रमणि ने दूसरी पुस्तक 'समसामे हिन्द' नामक निकाली है जिसमें इस्लाम के पैगम्बरों (सन्देशवाहकों) को खुल्लमखुल्ला गालियां लिखी हैं। ये पुस्तकें शरारत का घर और उपद्रव का कार्यालय हैं। मुरादाबाद के मुसलमान उत्तेजित्त हो रहे हैं। यदि मुंशी इन्द्रमणि की यही दशा रही तो बकरे की मां कब तक खैर मनायेगी! अन्तत: एक दिन गला और छुरी दिखाई देगी। आश्चर्य है कि इस मुद्रणालय का चालू किया जाना, जिसमें एक विशेष जाति के मत की निन्दा की पुस्तकें छपा करती हैं, मैजिस्ट्रेट साहब ने क्योंकि स्वीकार किया है। हम गवर्नमेण्ट से प्रार्थना करते हैं कि इन पुस्तकों को जलवा दे और भविष्य में मुद्रणालय बन्द कर दे।" (खंड ५, संख्या ८, मुरादाबाद)।

इस पर गवर्नमेण्ट ने एक चिट्ठी वृत्तान्त जानने के लिये, मिस्टर मूल साहब, मैजिस्ट्रेट मुरादाबाद के नाम भेजी। उन्होंने वह चिट्ठी अमादअली साहब डिप्टी को सौंपी। मौलवी साहब ने चिट्ठी पर अपनी रिपोर्ट लिखकर वापस कर दिया।

२२ जुलाई, सन् १८८० को कचहरी में आते ही मुंशी इन्द्रमणि के नाम भारतीय दण्ड विधान की धारा २९२-२९३ के अनुसार वारण्ट जारी करके कचहरी में बुलाया और वे आये। साहब बहादुर ने उनसे पूछा कि तुमने 'हमलये हिन्द' और 'समसामे हिन्द' में ये तीन बातें जो झगड़े का कारण हैं, कहां से लिखीं—

१—महर[1] को खर्ची क्यों लिखा?

२—मरियम के बारे में जो लिखा, सो कहां से लिखा?

३—आयशा और संगे असबद[2] का वर्णन कहां से लिखा?

मुंशी जी ने कुछ दिन का समय मांगा कि यदि समय मिले तो सबका उत्तर दूंगा। साहब बहादुर ने वकीलों के कहने पर भी कुछ ध्यान न दिया और आज्ञा दी कि हम २५ को सुनेंगे और २६ को मुकद्दमा करेंगे; एक घण्टे के भीतर एक हजार की जमानत दो। एक सज्जन ने तत्काल एक हजार की जमानत दे दी। ऐसी कठोर जमानत मांगने से स्पष्ट विदित होता था कि साहब बहादुर की इच्छा उनको जेल भेजने की थी क्योंकि वे केवल विद्वान् हैं, धनवान नहीं हैं।

२३ को छुट्टी थी, २४ को मुकद्दमा पेश हुआ। बाबू बैजनाथ साहब वकील ने प्रथम प्रश्न के उत्तर में 'शरहे मुहम्मदी' का अनुवाद बाबू श्यामाचरण का किया हुआ, जो कि सरकारी कानून है, दिखलाया कि इसमें महर को खर्ची लिखा है।

दूसरे प्रश्न का उत्तर मुंशी साहब ने कुरआन की सूरये तहरीम से दिखलाया और अंग्रेजी कुरआन भी देखा गया, उस में भी वही अर्थ निकला।

तीसरी बात का उत्तर मुंशी साहब ने यह दिया कि 'हदिया उल अस्नाम' वाले ने एक कथा शिव पार्वती की निन्दा की 'रद्दे हिन्द' से नकल करके लिखी है, मैंने उसका उत्तर 'रद्दे मुसलमान' से नकल किया है। मुंशी जी ने पुस्तकों के

1.—महर मुसलमानों में उस धन को कहते हैं जो विवाह के बदले में पति पत्नी को देता है।

2.—'संगे असबद' वह काले रंग का पत्थर है जो काबे में रखा हुआ है। प्रत्येक हज करने वाला उसको चूमता है। मुसलमानों का यह विश्वास है कि यह लोगों के पाप चूसता है इसलिये काला पड़ गया है।—अनुवादक।

मंगाने के लिये समय मांगा परन्तु उनकी प्रार्थना अस्वीकृत हुई । बाबू बैजनाथ वकील ने अस्वीकृति के हुक्म की प्रतिलिपि मांगी ताकि अपील की जावे, यह भी अस्वीकृत हुई । पांच सौ रुपया मुंशी इन्द्रमणि पर जुर्माना किया और कोर्ट इंस्पैक्टर को भेजकर 'हमलये हिन्द' और 'समसामे हिन्द' की समस्त प्रतियां मुंशी साहब के मकान से मंगवा लीं और फड़वा डालीं । **('आर्यदर्पण', मई मास, सन् १८८०, पृष्ठ १०३ ।)**

इस मुकद्दमे में स्वामी जी की विशेष प्रेरणा से मेरठ समाज में एक समिति स्थापित हुई जिसके प्रधान लाला रामशरणदास जी बनाये गये और समस्त समाजों से चन्दे के लिये अपील की गई । इस पर रुपया मेरठ समाज और स्वामी जी के पास और मुंशी जी के पास मुरादाबाद में आना आरम्भ हो गया । आर्यसमाजों और समाज के प्रति सहानुभूति रखने वालों के हार्दिक प्रयत्नों से उन दिनों इस बारे में समाचारपत्रों में भी बड़ा वादविवाद होता रहा । विशेषतया **'विद्या-प्रकाशक'** लाहौर, **'आर्यदर्पण'**, शाहजहांपुर, **'आर्यसमाचार'** मेरठ में महीनों उत्तम लेख प्रकाशित होते रहे । इनके अतिरिक्त **'नसीम'** आगरा, **'अवध अखबार', 'कोहेनूर', 'सफीरे हिन्द', 'सिविल मिलिटरी गजट', 'अखबारे आम', 'आफताबे पंजाब', 'अंजुमन पंजाब', 'प्रिंन्स आफ वेल्ज गजट'** आदि समाचारपत्रों में भी समय-समय पर लिखा जाता रहा । गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया (भारत सरकार) की सेवा में भी कई स्थानों से मैमोरियल (आवेदन पत्र) भेजे गये । जिस पर गवर्नर-जनरल साहब बहादुर ने राजकीय कृपा के रूप में शिमले से ८ सितम्बर, सन् १८८० को नैनीताल में पश्चिमोत्तरप्रदेश की सरकार के नाम और वहां से मैजिस्ट्रेट साहब मुरादाबाद के नाम तार आया कि मुंशी इन्द्रमणि के मुकद्दमे की मिस्ल शीघ्र भेज दो । मैजिस्ट्रेट साहब बहादुर मुरादाबाद ने उत्तर दिया कि मिस्ल अपील के न्यायालय में है और १८ सितम्बर, सन् १८८० की पेशी उस में नियत है । इस पर शिमले से आदेश आया कि अपील के निर्णय के पश्चात् मिस्ल जज साहब की आज्ञा की प्रतिलिपि सहित शीघ्र हमारे पास आवे ।

सारांश यह कि १८ सितम्बर, सन् १८८० को अपील जज साहब के सम्मुख पेश हुई । अपील करने के समस्त कारण हाईकोर्ट और जिले के वकीलों तथा बैरिस्टरों ने अत्यंत श्रेष्ठता से वर्णन कर दिये । उस दिन मुकद्दमा स्थगित करके कुरआन की 'सूरये तहरीम' के अंग्रेजी और रोमन अनुवाद तथा भाष्यों और अरबी के कोषों आदि को देखा गया । सब में वही अर्थ निकला जो 'समसामे हिन्द' के पृष्ठ ११, १८ में लिखा है । सरकारी वकील के कथनानुसार दामन, चोली और गिरेबान का अर्थ नहीं निकला । जो चुने हुये अनुचित शेर (पद्य) और असभ्यतापूर्ण लेख, 'तेगे फकीर बर गर्दने शरीर', लज्जत उल् हिन्द, 'रिसाला हकगो,' सौत उल् जब्बार', 'तुहफतुल हिन्द' आदि मुसलमानों की लिखी हुई पत्रिकाएं पेश की गईं उनको साहब बहादुर ने नहीं लिया और न ही मिस्ल में सम्मिलित किया । २० और २१ ता० को साहब बहादुर कचहरी में नहीं आये ।

२२ सितम्बर, सन् १८८० को यह हुक्म सुनाया कि पांच सौ रुपया जुर्माने में से चार सौ रुपये क्षमा कर दिया गया और एक सौ रुपये जुर्माना कायम रहा और लिखा कि इस मुकद्दमे में समस्त हिन्दू सम्मिलित नहीं हैं और न समस्त हिन्दुओं का इससे कुछ प्रयोजन है न यह धार्मिक विषय है और न जातीय, प्रत्युत लेखक का इससे व्यक्तिगत सम्बन्ध है जिसका न कोई सहायक है और न पक्ष लेने वाला, चूंकि वह निर्धन है इसलिये चार सौ रुपये क्षमा किया गया । अपराध उस पर सिद्ध है, इसलिये सौ रुपये जुर्माना कायम रहा । (**'आर्यदर्पण'** पृष्ठ १६६, जुलाई, मास सन् १८८ ।)

हाईकोर्ट का निर्णय—यह मुकद्दमा ३१ दिसम्बर, सन् १८८० से हाईकोर्ट में दायर है और पांच मास तक कोई तिथि नियत न होकर अन्त में पेशी का समय आया । जैसा कि लिखा है कि मुंशी इन्द्रमणि का मुकद्दमा ६ मई, सन् १८८१ को हाईकोर्ट में पेश हुआ । उस दिन न्यायाधीश ने अपने मुख से यह शब्द कहे कि मुरादाबाद के मैजिस्ट्रेट ने सारी कार्यवाही

अधूरी की, प्रतिवादी के गवाह क्यों नहीं सुने। मुसलमानों ने जो इस प्रकार की पुस्तकें बनाई हैं उन पर मुकद्दमा क्यों नहीं किया; अपील की अवधि के भीतर उनकी पुस्तकों को क्यों नष्ट कर दिया। ऐसे वचन सुनकर सबको निश्चय हो गया था कि न्याय यथार्थ होगा।

उस दिन न्यायाधीश ने हुक्म सुनाया और इसी प्रकार यह मुकद्दमा एक महीने तक बिना आज्ञा सुनाने के पड़ा रहा। ३ जून, सन् १८८१ को यह आज्ञा सुनाई कि जज साहब मुरादाबाद का निर्णय बहाल रहा। (**'भारतसुधार' से**)

अन्त में भारत सरकार ने राजकीय कृपादृष्टि के रूप में एक सौ रुपया जुर्माना भी क्षमा कर दिया। इस पर मुंशी इन्द्रमणि ने एक पत्र सम्पादक **'आर्यसमाचार'** मेरठ को लिखा—'श्रीमान् जी, परमात्मा जयते। आपको विदित हो कि हाईकोर्ट इलाहाबाद ने प्रसिद्ध मुकद्दमे में ३ जून, सन् १८८१ को सैशन जज मुरादाबाद की सम्मति बहाल (यथावत्) रखते हुये सौ रुपये जुर्माना कायम रखा था। अब २९ जून को लैफ्टीनैण्ट गवर्नर बहादुर ने शेष जुर्माना भी क्षमा कर दिया। इस आज्ञा की सूचना मुरादाबाद के मैंजिस्ट्रेट द्वारा हमको ४ जुलाई को मिली है।' लेखक इन्द्रमणि, मुरादाबाद से। ('आर्यसमाचार' पत्रिका, खंड ३, संख्या ३ पृष्ठ ११३)।

मेरठ की समिति का वृत्तांत और मुंशी इन्द्रमणि का विचार बदल जाना

८ अगस्त, सन् १८८० को जब कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज के आर्यसमाज मेरठ के गश्ती (घूमने वाला) पत्र नं० ७९ द्वारा लाहौर अमृतसर आदि की आर्यसमाजों को प्रेरणा दी गई थी कि मुंशी जी पर जो अपराध भारतीय दंडविधान की धारा १९४ के अधीन मिस्टर मूल साहब बहादुर मैंजिस्ट्रेट मुरादाबाद के न्यायालय में कायम किया गया है, उसका उत्तर देने और सफाई पेश करने के लिये मुंशी जी को उनकी निर्दोषिता का विचार करते हुये सहायता के रूप में रुपया देना कर्त्तव्य है। यह वह समय था कि स्वयं मुंशी जी ने आर्यसमाज मुरादाबाद के सभापति के रूप में मेरठ में स्वामी जी की सेवा में आकर उपर्युक्त सहायता की अत्यंत नम्रतापूर्ण शब्दों में प्रार्थना की थी कि यह झगड़ा समस्त वैदिकधर्म वालों का है, मुझ अकेले का ही नहीं है।

इस प्रेरणा में यह भी प्रकट कर दिया गया था कि उक्त मुकद्दमे में व्यय होने के पश्चात् जो कुछ रुपया शेष रहेगा वह चन्दा देने वाले सज्जनों के कथनानुसार व्यय किया जायेगा या लौटा दिया जायेगा। इस सम्बन्ध में मेरठ समाज के कार्यकारी सदस्यों की एक समिति बनाई गई। इसके साथ ही उसके कोषाध्यक्ष मेरठ समाज के प्रधान एवं वहां के प्रसिद्ध साहूकार ला० रामशरणदास जी बनाये गये और यह निर्णय हुआ था कि जितना रुपया आवे वह मेरठ समाज की इस समिति के पास एकत्रित हो और इसी एक स्थान से व्यय किया जावे। यह जितना रुपया स्वामी जी या लाला रामशरणदास के पास आया, वह समाज के संरक्षण में दिया गया और समाज की प्रेरणा और आज्ञा के अनुसार व्यय किया गया। स्वामी जी या लाला रामशरणदास का निजी अधिकार इस रुपये के प्राप्त करने या एकत्रित रखने अथवा व्यय करने के विषय में कुछ नहीं है इसलिये वे सब प्रकार के आरोपों से मुक्त हैं ('आर्यसमाचार' पृष्ठ ३४९)। हां, एक आरोप हम उन पर लगाते हैं कि उन्होंने ऐसे लोभी की सहायता करने पर क्यों कमर बांधी, क्या उनको स्मरण नहीं रहा कि:—

निकुई[1] बा बदां कर्दन चुनां अस्त। कि बद कर्दन बजाये नेक मर्दां॥

परन्तु इसका उत्तर स्वामी जी ने स्वयं दे दिया है कि मुंशी जी ! जो मैं आपको ऐसा (लालची) पहले से जानता तो आपके पास एक क्षण भी न ठहरता और आपकी कुछ भी सामर्थ्य न थी कि इस प्रकार सहायता पा सकते।

---

1. अर्थात् दुष्टों से भलाई करना ऐसा है जैसा सज्जन पुरुषों से बुराई करना।—अनुवादक।

समाचारपत्र '**तहजीब**' मुरादाबाद खंड २, संख्या १० के १२ मार्च, सन् १८८३ को प्रकाशित होने वाले अंक से हम मुंशी इन्द्रमणि का विज्ञापन नीचे देकर समस्त शेष वृत्तांत पाठकों की सेवा में भेंट करते हैं ।

'तहजीब' समाचारपत्र के सम्पादक आरम्भ में 'शिक्षा' शीर्षक के अन्तर्गत एक नोट देते हैं—

"विद्याहीनों का तो भला क्या परन्तु विद्वानों की यह दशा है कि साधारण बातों पर आपस में कटे मरते हैं । हम पहले जानते थे कि भारत के मुसलमानों में ही कुछ पारस्परिक झगड़ों का व्यवहार है । अब जो विचारपूर्वक देखते हैं तो हिन्दू इनसे भी चार पग बढ़े हुये हैं । एक छोटी सी निधि के लिये मुंशी इन्द्रमणि का अपने धर्म के एक बहुत बड़े विद्वान् को सभ्यताविरुद्ध शब्दों के साथ याद करना क्या शिक्षा की दृष्टि से देखने के योग्य नहीं है ?"

विज्ञापन—विदित हो कि स्वामी दयानन्द सरस्वती का प्रसिद्ध जगन्नाथदास की प्रश्नोत्तरी के खंडन में एक लेख 'देश हितैषी' नामक मासिक पत्रिका अजमेर में प्रकाशित हुआ है और उसमें बहुत से स्थानों पर मेरा नाम भी घृणा की दृष्टि के साथ लिखा हुआ है । इसका उत्तर शीघ्रतर मासिक पत्रिका के द्वारा जो निकट भविष्य में धार्मिक खोज के सम्बन्ध में हमारे यहां से चालू होने वाली है, छपकर प्रकाशित होगा परन्तु उक्त लेख के अन्त में जो यह लिखा है कि इन्द्रमणि और जगन्नाथ के प्रतिज्ञाभंग करने आदि को जो कोई जानना चाहे वह मेरठ के सभासद ला० रामशरणदास आदि से पूछ ले कि मुसलमानों का उपद्रव शान्त करने के लिये उन्होंने क्या अधर्म किया है ? मैंने इस बात को स्वामी जी की अपकीर्ति का कारण जानकर प्रकाशित न किया परन्तु चूंकि इससे "उल्टा चोर कोतवाल को डांटें" वाली कहावत के अनुसार मुझ पर दोष लगाने लगे कि मुंशी इन्द्रमणि की सहायता के लिये चन्दा एकत्रित करके हमारे और लाला रामशरणदास सभासद आर्यसमाज के पास भेज दो, यहां से मुन्शी जी की सेवा में भेजा जायेगा ताकि उस रुपये से जुर्माना क्षमा कराने के लिये अपील करें । स्वामी जी के लेखानुसार लाहौर, अमृतसर, रुड़की, फर्रूखाबाद, फिरोजपुर, शाहजहांपुर, औरंगाबाद, दार्जिलिंग, गुरदासपुर, जेहलम, मुलतान, बटाला आदि से धर्मात्मा लोगों ने प्रचुर धन एकत्रित करके स्वामी जी और लाला रामशरणदास के पास भेजना आरम्भ किया । जब कि उक्त मुकद्दमे की अपील जजी मुरादाबाद में चल रही थी, मुझको ६ सौ रुपया बैरिस्टर हल साहब के पास भेजने की आवश्यकता हुई इसलिये मैंने स्वयं मेरठ जाकर ला० रामशरणदास से कहा कि छः सौ रुपये बैरिस्टर साहब की सेवा में भेजना है, चार सौ मेरे पास हैं, दो सौ चन्दे के रुपये में सो जो आपके पास एकत्रित हैं, प्रदान कीजिये । उक्त लाला साहब ने उत्तर दिया कि यहां से तो अभी तुमको कुछ न मिलेगा, वहीं से उपाय करके भेज दो । फिर मैंने पूछा कि अब तक आपके पास कितना रुपया इकट्ठा हुआ है ? उत्तर दिया कि बतलाने के लिये समाज की आज्ञा नहीं है । क्या विचित्र बात है कि जिसकी सहायता के लिये सज्जन पुरुषों ने रुपया भेजा उसको देना तो एक ओर, संख्या भी न बतलाई जावे कि अब तक इतना रुपया एकत्रित हुआ है । अन्ततः मैं रिक्तहस्त अपने घर को चला आया और एक भले मनुष्य की सहायता से बैरिस्टर साहिब के पास छः सौ रुपये भेजा गया । फिर जब जजी मुरादाबाद से पांच सौ रुपये जुर्माने में से चार सौ छूटकर एक सौ शेष रहा, इस बीच में लाला रामशरणदास भी मुरादाबाद आ गये । उस समय मैंने उक्त लाला साहब से कहा कि अब हाईकोर्ट में अपील करना है, रुपये भेजिये । उस समय भी उन्होंने वही उत्तर दिया कि हमारे से तो अभी रुपया न मिलेगा, मुरादाबाद से ही कुछ उपाय करके हाईकोर्ट का अपील कर दीजिये । फिर लाला रामशरणदास मेरठ चले गये । तत्पश्चात् मैंने रुपये के लिये स्वामी जी और लाला रामशरणदास को कई बार लिखा परन्तु दोनों सज्जनों ने कोई उत्तर नहीं दिया । तब मैंने समाचारपत्र 'भारतमित्र' कलकत्ता में यह बात प्रकाशित कराई कि जिन लोगों को मेरी सहायता करनी स्वीकार हो वे सज्जन सीधा मेरे ही पास रुपया भेजें क्योंकि दूसरे स्थान पर भेजा हुआ रुपया मुझे प्राप्त नहीं होता । फिर मैंने स्वामी जी को लिखा कि यदि आपको चन्दे के रुपये में से इस मुकद्दमे में कुछ व्यय करना अभीष्ट नहीं है तो स्पष्ट लिखिये ताकि हम हाईकोर्ट में अपील करने का विचार छोड़ दें । इस प्रकार बार-बार लिखने के पश्चात् स्वामी जी ने चन्दे

के रुपये में से छ:सौ रुपये लाला रामशरणदास के द्वारा भिजवाये । सारांश यह कि जो कुछ लाहौर और अमृतसर आदि से मेरे मुकद्दमे के लिये स्वामी जी और लाला रामशरणदास के पास रुपया एकत्रित हुआ था, उसमें से यही छ: सौ रुपये मुझको प्राप्त हुये । शेष सारा रुपया इन दोनों महापुरुषों के अधिकार में रहा परन्तु जिन सज्जनों ने सीधा मेरे पास रुपया भेजा वह सारे का सारा मुझको मिला और उक्त मुकद्दमे के व्यय में काम आया । यहां यह अभिप्राय संक्षेप में निवेदन किया, भविष्य में विस्तारपूर्वक प्रकट किया जायेगा । अब बुद्धिमान लोग न्याय करें कि जो रुपया मेरी सहायता के लिये लोगों ने स्वामी जी और रामशरणदास के पास एकत्रित किया और उन्होंने मुझको पूर्णरूपेण न दिया, स्वयं उसके स्वामी बन बैठे तो मुसलमानों का उपद्रव शान्त करने के सम्बन्ध में स्वामी जी और उक्त लाला साहब ने धर्मविरुद्ध कार्य किया या निर्धन इन्द्रमणि ने ? प्रकाशक—इन्द्रमणि, मुरादाबाद ।

संवाददाता के पत्र का अनुवाद

श्रीमान् जी, नमस्ते ! प्रंकट हो कि एक कागज विज्ञापन के रूप में मुंशी इन्द्रमणि जी का मेरे पास आया । उसका उत्तर बहुत लम्बा है परन्तु इस समय थोड़े से उत्तर को आप अपनी पत्रिका में स्थान देकर मुझको अनुगृहीत कीजिये । जो मुंशी इन्द्रमणि जी अपने लिखने के अनुसार सच्चे हों तो इस विषय में और स्थानों से जितना आयव्यय हुआ हो, आपकी पत्रिका 'देशहितैषी' में छपवा कर प्रकाशित करें और इसी प्रकार लाला रामशरणदास भी । जिसके देखने से सब सज्जनों को आप ही सच और झूठ खुल जायेगा और इस हिसाब के सम्बन्ध में यह भी लिखा था कि जिस-जिस सज्जन ने मुंशी जी और मुरादाबाद के मुसलमानों के झगड़े में जितने-जितने रुपये जिसके पास भेजें हों और जिस-जिस की रसीद भी उन के पास हो, वह अपना नाम विवरण सहित "देशहितैषी' पत्रिका के सम्पादक के पास भेजें और उन पत्रों को आप अपनी पत्रिका में छापकर प्रकाशित कर दिया करें जिससे सत्य और झूठ सबको विदित हो जावे । इसमें सत्य तो यह है कि मुंशी जी जो झूठा अपराध स्वामी दयानन्द सरस्वती जी और लाला रामशरणदास जी रईस मेरठ का बताते हैं, यह सब अपराध मुंशी जी का है क्योंकि जब मुंशी जी पर मुरादाबाद के मैजिस्ट्रेट ने पांच सौ रुपये जुर्माना किया था, उसके पश्चात् मुंशी जी मेरठ आये (जहां उस समय स्वामी जी भी विराजमान थे) और कहा कि मुकद्दमा सब वैदिकधर्म वालों पर समझना चाहिये न कि केवल मुझ पर । इस पर स्वामी जी और अन्य सज्जनों ने कहा कि यह ठीक है क्योंकि मुंशी जी ने वेदमत की रक्षा के लिये इतना बड़ा कष्ट सहन किया है इसलिये इस सम्बन्ध में सब वेदमत वालों को सहायता करना उचित है । इस पर सब की यही सम्मति हुई कि इस बात के लिये एक सभा स्थापित हो जो चन्दा एकत्रित करे और उसके आय-व्यय का हिसाब वह सभा रखे और मुंशी जी को उसमें से उतना रूपये दिया जावे जितना व्यय होना आवश्यक हो ।

अन्तत: यह सभा मेरठ में की गई और मुंशी साहब से कहा कि जो कोई आपके पास रुपये भेजे, उसको आप भी इस सभा के कोषाध्यक्ष लाला रामशरणदास साहब के पास भेज दिया करें और इसके आय-व्यय के लिये पड़ताल (जांच) यह सभी किया करें और हिसाब भी लेवें । इन सब बातों को मुंशी साहब ने स्वामी जी आदि के सामने स्वीकार किया था और यह भी उस समय निश्चय हुआ था कि इस सभा के सदस्यों के अतिरिक्त दूसरे को इस रुपये के आय-व्यय की संख्या उस समय तक न बतलाई जावे जब तक यह काम पूरा न हो जावे । यदि चन्दे का रुपया कम आवे और व्यय अधिक करना हो तो किसी योग्य धनवान् सज्जन से सभा ऋण लेकर काम करे ।

इसलिये लाला रामशरणदास ने चन्दे के रुपये की संख्या मुंशी साहब को नहीं बतलाई थी क्योंकि सभा की आज्ञा बतलाने की न थी । इस भलाई को मुंशी साहब ने बुराई समझा । वाह रे मुंशी साहब की बुद्धिमत्ता ! इससे सब सज्जन

समझ सकते हैं कि यह मुंशी साहब को संख्या न बतलाने में लाला रामशरणदास साहब का अपराध है या उन पर क्रुद्ध होकर उल्टे-सीधे बुरे शब्द कहने-लिखने में मुंशी इन्द्रमणि साहब का ?

इस विरुद्धाचरण का कारण यह प्रतीत होता है कि जब इधर-उधर से बहुत-सा रुपया मुंशी साहब के पास आने लगा तब लालच में आकर पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार अर्थात् जितना रुपया मुंशी साहब के पास आवे, वह मेरठ सभा के कोषाध्यक्ष लाला रामशरणदास साहब के पास भेजना तो दूर रहा प्रत्युत जब लाला रामशरणदास साहब ने कई बार पत्र लिखकर हिसाब मांगा तो मुंशी साहब ने मौन धारण किया, हिसाब नहीं दिया । इस बात की खोज के लिये लाला श्यामसुन्दर साहब रईस मुरादाबाद के पास लाला रामशरणदास साहब ने पत्र भेजा कि मुंशी साहब से हिसाब पूछ कर मेरे पास भेजिये । उनको भी मुंशी साहब ने हिसाब न दिया प्रत्युत सब वेदमत की रक्षा के लिये प्राप्त रुपये को अपना ही रुपया समझ लिया । तब से ला० रामशरणदास साहब ने मुंशी साहब को रुपया देना बन्द कर दिया और स्वामी जी को पत्र द्वारा सूचना दी । तब स्वामी जी ने उत्तर दिया कि इस समय इस बात के होने से काम में बाधा पड़ेगी, काम होने दीजिये और छः सौ रुपया जो मांगते हैं दे दीजिये, तब उन्होंनें दे दिये और इससे अधिक रुपया मुंशी साहब को कितना दिया और कितना लाला रामशरणदास साहब के पास एकत्रित रहा, यह बात हिसाब छपने से सबको विदित हो जायेगी और स्वामी जी ने उक्त लाला साहब अर्थात् श्यामसुन्दर साहब कोठी वाले रईस मुरादाबाद के पास पत्र भेजा कि मुंशी साहब से हिसाब लेकर लाला रामशरणदास साहब के पास भिजवा दीजिये । उन्होंने उत्तर दिया कि मुंशी साहब हिसाब तो नहीं बतलाते और जब इस विषय में पूछा जाता है तो कुछ भी नहीं कहते ।

वाह रे धन ! तुझमें बड़ा आकर्षण है कि तू बड़े-बड़ों को भी शुभमार्ग से हटाकर नीचे गिरा देता है । जब देहरादून से आते समय मेरठ के स्टेशन पर लाला रामशरणदास साहब आदि से भेंट हुई तब मुंशी साहब के झगड़े के विषय में सुनकर बड़ा आश्चर्य करके उनसे स्वामी जी ने कहा कि मैं अलीगढ़ इसीलिये ठहर कर वहां मुंशी साहब को बुलाकर समझा दूंगा । स्वामी जी ने अलीगढ़ आकर मुंशी साहब को बुलाने के लिये तार दिया । उसके उत्तर में मुंशी साहब ने तार द्वारा सूचना दी कि मैं रोगी हूं; नारायणदास इलाहाबाद गया है अर्थात् मैं नहीं जा सकता । फिर स्वामी जी ने आगरा आकर मुंशी साहब के पास पत्र भेजा कि यदि यह बात सच है तो इसमें आपकी बड़ी निन्दा होगी; आप यहां शीघ्र पधारिये ! मुंशी साहब ने बहुत क्रोध में आकर सभ्यताविरुद्ध बातें जो कि उनके लिखने के योग्य नहीं; लाला रामशरणदास साहब के विषय निन्दासहित बहुत-सी लिखीं और यह भी उस पत्र में लिखा कि आप रामशरणदास साहब से हिसाब मंगवाइये । स्वामी जी ने तब लाला रामशरणदास साहब को लिखा कि आप हिसाब लिखकर मेरे पास यहां भेज दीजिये । जब मैं आपका हिसाब मुंशी साहब को दिखला दूंगा तब वे भी अपना हिसाब देंगे । इसके थोड़े ही दिनों पश्चात् मुंशी साहब लाला जगन्नाथदास आदि सहित मथुरा होते हुये आगरा स्वामी जी के पास आये । तब स्वामी जी ने उनसे कहा कि हिसाब लाये हो या नहीं ? तब मुंशी जी ने कहा कि हां लाये हैं परन्तु पहले लाला रामशरणदास जी का हिसाब मंगवा लो, तब हम भी दिखा देंगे । तब स्वामी जी ने कहा कि जब आपके पास हिसाब है तो क्यों नहीं दिखलाते ? फिर मुंशी जी और लाला जगन्नाथदास जी ने कहा कि उनका हिसाब आने दीजिये, तब दिखला देवेंगे ।

पत्र के पाठको ! परमेश्वर की कृपा और लाला रामशरणदास जी की अच्छी नीयत से दूसरे ही दिन मेरठ से हिसाब आ गया । स्वामी जी ने मुंशी जी और लाला जगन्नाथदास जी को दिखलाया । फिर स्वामी जी ने कहा कि अब तुम दिखलाओ । तब मुंशी जी के कहने से लाला जगन्नाथदास जी ने बैग को हाथ लगाया, इधर-उधर हाथ फेर-फार कर कहा कि वह हिसाब का कागज तो मैं भूल आया ।

सज्जनो ! देखो, क्या गुरु-चेले की मिली भगत है । तब स्वामी जी ने कहा कि जितना आप को स्मरण हो उतना ही मौखिक लिखवाइये । तब मुंशी जी लिखाने लगे, अनुमान से दो हजार रुपये तक का हिसाब तो लिखाया और कहने लगे कि अब मुझे स्मरण नहीं है । हम मुरादाबाद पहुंच कर हिसाब तत्काल भेज देंगे सो आज तक नहीं भेजा । अब आप लोग इन बातों से सोच लें कि मुंशी जी सच्चे हैं या ला० रामशरणदास जी ? तब मुंशी जी और लाला जगन्नाथ दास जी व्यर्थ में नीतिविरुद्ध बातें करने लगे और कहा कि जो ढाई सौ रुपये लाला वल्लभदास जी ने भेजे थे वे क्यों नहीं जमा किया । तब स्वामी जी ने कहा कि वे रु० तो गुरदासपुर में मेरे नाम आये थे, मैंने लाला रामशरनदास जी को दिये थे, न जाने उन्होंने जमा क्यों नहीं किये ? इसका वृत्तान्त मैं लिखकर मंगा दूंगा ।

स्वामी जी ने उसी दिन लाला रामशरणदास जी को पत्र लिखकर उत्तर मंगवाया । तब उन्होंने लिखा कि यह मेरे मुंशी की भूल है, लाहौर वालों के रुपयों के साथ गुरदासपुर के ढाई सौ रुपये भी जमा लिखे गये हैं अर्थात् जिस दिन डेढ़ सौ रुपये लाहौर समाज से आये थे, उसी दिन ढाई सौ रुपये के नोट आपने भी दिये थे । भूल से चार सौ रुपये आर्यसमाज लाहौर के नाम जमा किये गये हैं । अब मुंशी जी इसका निश्चय करें या करावें अर्थात् इन ढाई सौ रुपये के अतिरिक्त किसी ने स्वामी जी के पास रुपया नहीं भेजा, यदि भेजा हो तो जिसके पास स्वामी जी की हस्ताक्षर-युक्त रसीद हो वह प्रसन्नता से उसको प्रकट करे और छपवा देवे । परन्तु स्वामी जी के विरुद्ध यदि इसमें कोई बात हो तो स्वामी जी प्रतिज्ञापूर्वक कहते हैं कि ढाई सौ रुपये के अतिरिक्त मेरे पास एक पैसा भी किसी का नहीं आया क्योंकि जो कोई उनसे पूछता या पत्र भेजता था तो स्वामी जी यही उत्तर देते थे कि जो भेजना हो वह ला० रामशरणदास के पास मेरठ भेजो क्योंकि उसी सभा के अधीन यह सब प्रबन्ध है ।

इस श्रेष्ठ प्रबन्ध को तोड़ने वाले मुंशी जी हैं जिन्होंने 'भारतमित्र' आदि समाचार पत्रों में अपना प्रयोजन पूरा करने को उचितानुचित छपवा कर अपना प्रयोजन सिद्ध कर लिया और अपनी कीर्ति पर बट्टा लगाया ।

खेद है कि यह रुपया बुरी बला है जो बड़े-बड़े समझदारों को फंसा लेता है । उसी दिन स्वामी जी ने मुंशी जी से कहा था कि हिसाब ठीक-ठीक मेरठ सभा में भेज दीजिये, जो एक प्रतिज्ञा हुई है उसको तोड़ना अच्छा नहीं । आप पूर्वप्रतिज्ञानुसार काम कीजिये जिससे सब प्रेमपूर्वक सहायक बनें, इसी में अच्छा है, विरुद्ध होना अच्छा नहीं । तब तो मुंशी जी और लाला जगन्नाथदास जी दोनों क्रुद्ध होकर कहने लगे कि हमसे हिसाब लेने वाला कौन है ? इसके स्वामी हम हैं; हम पर यह सब झगड़ा चला है, हमारे नाम चन्दा आता है, जो आता है वह हमारा ही है । और लाला जगन्नाथ जी बोले कि आपसे कोई वैदिक यन्त्रालय का हिसाब पूछे तो आप क्या बतावेंगे । स्वामी जी ने कहा कि कल के लेते आज ही ले लो, यहां कोई बात गुप्त नहीं परन्तु जब कोई आर्यसमाज का सम्मानित सदस्य हिसाब लेना चाहे तो उसको रोक नहीं है । तब स्वामी जी ने मुंशी जी को पृथक् ले जाकर समझाया कि ऐसी बात करनी योग्य नहीं है । एक तो वह बात थी जो मेरठ में आपने कही थी कि यह सब वैदिक धर्म वालों का झगड़ा है, मेरा अकेले का नही है और इसके विपरीत आज की बात है कि मेरा अकेले का ही झगड़ा है इत्यादि । इसलिये मुंशी जी ! जो मैं आपको पहले से ऐसा जानता तो आपके पास एक क्षण भी न ठहरता और आपकी कुछ भी शक्ति न थी कि अकेले इस प्रकार सहायता पा सकते ।

अस्तु, मैं तो इसी बात को समझा हूं, कि यह सब वैदिकधर्म वालों से सम्बन्ध रखने वाली बात है । तब तो मुंशी जी कुछ टंडे हुये; फिर स्वामी जी ने कहा कि अब शेष काम आप कीजिये और इलाहाबाद में एक दो सज्जनों का नाम लिखा के उनकी सम्मति से सब काम कीजियेगा और मुरादाबाद पहुंच कर हिसाब मेरठ शीघ्र भेज दीजियेगा । मुंशी जी ने कहा कि जाते ही भेज दूंगा । सो भी न किया और न हिसाब भेजा । करते और भेजते तो तब जब उनका मन स्वच्छ होता । इसके

विपरीत वहां इलाहाबाद में भी वैसा ही गुप्त व्यय कर-करा कर, जैसा कि मुरादाबाद जजी में किया था, अपनी नीयत का फल पाकर चले आये । फिर भी न जाने किन-किन भले पुरुषों के प्रयत्न से श्रीमान् गवर्नर जनरल साहब बहादुर से प्रार्थना करके सौ रुपये का जुर्माना क्षमा कराया गया । यदि अब तक भी मुंशी जी अपनी बात को सच्चा करना चाहें तो मुसलमानों के साथ के इस झगड़े में जहां-जहां से जितना रुपया जिस-जिस ने भेजा उनका नाम पता आदि लिखकर और जितना-जितना जिस-जिस काम में व्यय हुआ हो, सब समाचारपत्रों में छपवा दें और जितना रुपया इस मुकद्दमे के खर्च से शेष रहा हो उसको मेरठ सभा में भेज देवें क्योंकि जो मेरठ सभा में वह प्रतिज्ञा हुई थी कि जो मुंशी जी के झगड़े से चन्दे का रुपया बचे उसका क्या किया जावे, उस पर सब की यही सम्मति हुई थी कि इस रुपये को आठ आना सैंकड़ा सूद पर किसी धनिक के पास रखा जावे और जब दूसरे मत वालों से वैदिक आर्यों का झगड़ा न्यायालय में चले तब उसी में इसका व्यय किया जावे, अन्यथा नहीं । क्योंकि यह रुपया इसी बात के लिये एकत्रित किया जाता है और जैसा आज मुंशी जी पर कष्ट पड़ा है, सम्भव है कि और किसी पर भी कभी न कभी आ पड़े, इसलिये इस रुपये को सम्भाल कर रखा जावे और आवश्यकतानुसार वैसे काम पर व्यय किया जावे ।

परन्तु पत्र के पाठको ! इस बड़े लाभदायक काम को मुंशी जी के लालच ने बंधने न दिया । अब बुद्धिमान लोग विचार लेवें कि इसमें स्वामी जी और लाला रामशरणदास जी का विरुद्ध आचरण है या मुंशी इन्द्रमणि जी का । अधिक लिखना बुद्धिमानों के आगे आवश्यक नहीं क्योंकि बुद्धिमान लोग थोड़े लेख से बहुत समझ लेते हैं । लेखक—सत्यवक्ता

महाशय ! इसको अपने देशोपकारक अति उत्तम पत्र में छापकर सार्वजनिक आनन्द बढ़ाइये ।

विदित हो कि विक्रम संवत् १९३७ तदनुसार सन् १८८० में मुंशी इन्द्रमणि जी मुरादाबाद निवासी का मुसलमानों से झगड़ा होकर मुंशी जी पर जो पांच सौ रुपया मुरादाबाद के मैजिस्ट्रेट ने जुर्माना किया था उस पर आर्य लोगों ने इस झगड़े को अपना जानकर सहायता की थी । झगड़ा उसी समय हो चुका था परन्तु मेरठ में उस समय उसके लिये यह नियम निश्चय हुआ था कि मुंशी जी के झगड़े से जितना धन बचे वह अच्छे प्रसिद्ध साहूकार के यहां आठ आना सूद पर रखा जावे । जब कभी ऐसा हो कि किसी और वैदिक धर्म मानने वाले का अन्य मत वालों से धर्म विषय पर विवाद होकर झगड़ा कचहरी में जावे और वह शक्ति न रखता हो तो इन्हीं रुपयों से उसकी सहायता की जावे । इस नियम को मुंशी जी ने भी स्वामी जी आदि के सम्मुख मेरठ में मान लिया था परन्तु दुःख का स्थान है कि अब वे इस उत्तम नियम को तोड़कर हिसाब नहीं देते और उल्टा चोर कोतवाल को डांटे, इस कहावत के अनुसार लाला रामशरणदास रईस मेरठ और स्वामी दयानन्द सरस्वती जी पर मिथ्या दोष लगाते हैं । इसलिये आर्यसमाज मेरठ आय-व्यय का हिसाब नीचे लिखकर प्रकाशित करता है कि जैसा मिथ्या भ्रम मुंशी इन्द्रमणि जी को हुआ है वैसा किसी और सज्जन पुरुष का न हो । मुंशी जी का सत्य और झूठ इस हिसाब को और मुंशी जी के विज्ञापन को देखकर सब पर प्रकट हो जायेगा । मुंशी जी लिखते हैं कि बहुत आर्य लोगों ने मेरे झगड़े की सहायता के लिये मेरठ समाज और स्वामी जी के पास धन भेजा था, उसमें केवल छः सौ रुपये मेरे पास पहुंचे, शेष उनके पास रहे । इस मेरठ समाज के मितिवार विस्तृत हिसाब को देखने से सिद्ध है कि मुंशी जी के पास उन्हीं के झगड़े के सम्बन्ध में ९६३ रुपये १४ आने ९ पाई मेरठ समाज से पहुंचे हैं । अब इससे अच्छे लोग समझ लेंगे कि मुंशी जी का छः सौ रुपये पहुंच कहना सत्य है या झूठ? यदि मुंशी जी का कहना सत्य हो और इन रुपयों के अतिरिक्त लाला रामशरणदास या स्वामी जी के पास किसी ने रुपये भेजे हों और उनके पास उनकी हस्ताक्षर युक्त रसीद हो तो निस्संदेह प्रकट करें या करावें । सांच को आंच कहां ? जैसा झूठा भ्रम मुंशी जी को हुआ है वैसा और किसी अच्छे मनुष्य को न हो इसलिये हिसाब छपवा दिया । मुंशी जी हिसाब के छपवाने में टचपच करते हैं, यह उनके लिये कलंक है । इसके दूर करने

के लिये उनको अवश्य उपाय करना चाहिये कि जब-जब जिस-जिसने जितने-जितने रुपये इस झगड़े की सहायता में भेजे थे, उनमें से जहां-जहां जितना-जितना व्यय हुआ है, ठीक-ठीक मितिवार छपवा दें और शेष रुपया आर्यसमाज मेरठ में परोपकार के लिये भेज दें । पहले माने हुये नियमों को भी ठीक करें तो बहुत अच्छी बात है । नहीं तो, रुपये गये हुये तो आ भी जाते हैं; परन्त् धर्मयुक्त कीर्ति गई हुई कभी नहीं आती ।

सत्पुरुषों को मरने से अपकीर्ति बहुत बुरी समझनी चाहिये । यदि हम आर्यों का विशेषकर उपदेशकों का आरम्भ से मृत्यु तक आचरण प्रशंसनीय रहे तो देश की बड़ी उन्नति हो । सर्वशक्तिमान् परमात्मा आर्यावर्त पर कृपा करे जिससे हमारे आर्यावर्तीय उपदेशक अपने किये हुये उत्तम उपदेश को स्वाभाविक दोषों से कलंकित न करके आरम्भ से अन्त तक शुभाचरण से देश की सुदशा बढ़ाया करें ।

मुकद्दमे के लिये एकत्रित धन का हिसाब

मेरठ आर्यसमाज द्वारा प्रेषित तथा 'आर्यसमाचार'-मेरठ दिनांक फाल्गुन, संवत् १९३९, तदनुसार मार्च, सन् १८८३ में प्रकाशित आय-व्यय के हिसाब की प्रतिलिपि

आय

आर्य समाज लाहौर द्वारा प्राप्त

विवरण—आर्यसमाज मुलतान ३०) आर्यसमाज जेहलम १००), लाहौर के समीपस्थ आर्यसमाज के सदस्यों से १०५), आर्यसमाज लाहौर ११५) ।

	रु०	आ०	पा०
आर्यसमाज अमृतसर—	५०)		
" रुड़की	१००)		
" फर्रूखाबाद	१००)		
" फिराजपुर	२३३ ॥=)		
" गुरुदासपुर	१५० ॥-)		
" मेरठ	२४५ ॥)		
जोड़	८७९-१२-०		

लाला केवलकृष्ण
लाला रौनकराय व
मुरलीधर ओरंगाबाद
निवासी १३८ ॥)

व्यय

	रु०	आ०	पा०
रजिस्ट्रीपत्र का व्यय—जो मुन्शी इन्द्रमणि के पास ७ अगस्त १८८० को भेजा गया ।	०	५	६
ला० श्यामसुन्दर, रईस मुरादाबाद द्वारा मुन्शी इन्द्रमणि को ७ अगस्त १८८० को दिये गये ।	३००	०	०
मेरठ से मुरादाबाद तक का चार मनुष्यों को रेल किराया-दिनांक, १४ अगस्त, सन् १८८० ।	११	४	०
किराया रेल; बरेली से मेरठ और बरेली से मुरादाबाद तक ।	६	०	०
इलाहाबाद से प्राप्त ला० शादीराम के पत्र का डाक महसूल	०	५	०

पांडा रामदीन जी संकेण्ड मास्टर—जिला स्कूल—दार्जिलिंग १३६ ।।।)	
जोड़	२५६-४-०
कुल जोड़	१५१६-०-०

मेरठ में बैरिस्टर बुल महोदय के पास जाते समय दिया गया किराया गाड़ी—	०	९	०
मुरादबाद में चलने वाले प्रारम्भिक मुकद्दमे का फुटकर खर्च—जिसका विवरण केवल मुंशी इन्द्र-मणि जी को विदित है।	२३	०	०
इलाहाबाद जाने-आने का खर्च (६ सितम्बर, सन् १८८०)।	१७	३	३
नोट द्वारा मुंशी इन्द्र-मणि जी को भेजे गये (२ अक्तूबर १८८०)।	१००	०	०
रजिस्ट्री पत्र का डाक महसूल।	०	५	०
हुण्डी द्वारा मुंशी जी को भेजे गये (३० अक्तूबर सन् १८८०)।	३००	०	०
फीस हुण्डी	१	८	०
झंडू सेवक का मेरठ से अलीगढ़ तक जाने-आने का किराया—भोजन सहित	३	५	०
कुल जोड़	९६३	१४	९
शेष	५५२	१	३
कुल जोड़	१५१६	०	०

शेष रुपये ५५२-१-३ का व्यय सभा के निश्चयानुसार निम्न प्रकार किया गया-

आर्यसमाज मुलतान	११)	आर्यसमाज के लेखानुसार उपदेशक मण्डली के कोष में जमा।
आर्यसमाज जेहलम	३९ ।)	मंगवाने पर लौटा दिये गये।
आर्यसमाज लाहौर	४१ ।।।=)	मंगवाने पर लौटा दिये गये।

आस-पास के सदस्य	३८ ।)	समाज के लेखानुसार लौटाये गये ।
आर्यसमाज अमृतसर	१६ ।)	आर्यसमाज अमृतसर के कथनानुसार आर्यसमाज जेहलम को दिये गये ।
आर्यसमाज रुड़की	१६ ।)	आर्यसमाज के कथनानुसार उपदेशक मंडली के फण्ड में जमा ।
आर्यसमाज फर्रूखाबाद	३६ ।)	किसी अच्छे काम में व्ययार्थ यहां जमा है ।
आर्यसमाज फिरोजपुर	८५-) ।।।	लौटाये गये ।
आर्यसमाज गुरदासपुर	५४ ।।)	लौटाये गये ।
आर्यसमाज मेरठ	५९ ।।)	लौटाये गये ।
लाला केवलकिशन	४)	अभी तक उत्तर नहीं आया, इसलिये जमा हैं ।
लाला रौनकराय व मुरलीधर	५०)	पता नही लगा; इसलिये जमा हैं ।
मास्टर रामधन पांडे	४९ ।)	उनके लेखानुसार इस लागत की पुस्तकें भेजी गई ।
कुल जोड़	५५२-) ।।।	

अब देखिये कि अपराध भी मुंशी इन्द्रमणि जी पर आया या नहीं ? यदि मुंशी जी पहले स्वीकार किये हुये नियम के अनुसार चलते तो ५५२ रु० १ आना ३ पाई भी सर्वोपकार, आर्यधर्म की रक्षा में लगते और आर्यसमाज मुंशी जी के उलटे व्यवहार पर खेद प्रकट करके बचे हुये भाग के रूप में वैदिक धर्म रक्षार्थ धन को फिर देने वालों के पास क्यों फेर देती । थोड़े से उच्च साहस वाले आर्यों ने अवश्य ही वैदिक धर्मोपदेशक मण्डली के लिये अपने-अपने भाग के रूप में दे दिया । वैसे सब आर्यावर्त देश की उन्नति में लगता तो कितनी अच्छी बात होती, परन्तु ऐसी-ऐसी तुच्छ बातों से देश हितैषी महाशय जन उन्नति करने में उदासीन न हों । किन्तु जब बुरे बुराई नहीं छोड़ते तो भले भलाई क्यों छोड़ें । (दयानन्द सरस्वती, शाहपुरा) 'भारतमित्र' कलकत्ता, २६ अप्रैल, सन् १८८३, खंड ६, संख्या १६, पृष्ठ ६ से उद्धृत ।

मुंशी इन्द्रमणि और उनके मुख्य शिष्य आर्यसमाज से निकाले गये

अन्त में जब मुंशी इन्द्रमणि जी का अत्याचारी पेट जिसे लालच ने अपने नाम की भांति बिन्दुरहित कर दिया था, सीमा से अधिक बढ़ गया और वह इस अधर्मयुक्त काम से किसी प्रकार न रुके; प्रत्युत यह समझना चाहिये कि उनके चेले साहब ने उनको किसी प्रकार सत्यमार्ग पर न आने दिया तो वे दोनों सज्जन आर्यसमाज मुरादाबाद से निकाल दिये गये जैसा कि समाचार पत्र 'देश हितैषी' में प्रकाशित निम्नलिखित लेख से विदित होता है—"महाशय, नमस्ते । विदित हो कि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज की आज्ञानुसार आर्यसमाज के नियमों के विरुद्ध आचरण करने के कारण मुंशी इन्द्रमणि प्रधान और लाला जगन्नाथदास पुस्तकाध्यक्ष अपने-अपने पद और इस आर्यसमाज की सभासदी से २९ मई, सन् १८८३ से अलग किये गये और मुंशी दुर्गाचरण प्रधान नियत हुये । आगे को पत्र आदि मुंशी खेमकरन मन्त्री के नाम ठिकाना मकान साहू श्यामसुन्दर जी रईस, मण्डी बांस मुरादाबाद के पते पर भेजे जावें ।" ३० मई, सन् १८८३ । लेखक खेमकरन[४], मंत्री आर्यसमाज मुरादाबाद । ('देश हितैषी' खंड २, संख्या ३, पृष्ठ १, आषाढ़ मास, संवत् १९४० तथा वार्षिक रिपोर्ट से उद्धृत)

आर्यसमाज से निकल कर मुंशी जी ने अपने शिष्य' की सम्मति से 'इन्द्रसभा' नामक एक दूसरी सभा बनाई। जैसे किसी ने कहा है—

"कूये-जाना[1] से खाक[2] लावेंगे। अपना काबा[3] जुदा[4] बनावेंगे॥"

परन्तु वह उपासना गृह एक मास से अधिक न रहा और अन्ततः वह भी अपने जादूगरों की भांति नतमस्तक हो गया।

इस विषय में लाहौर आर्यसमाज का विशेष पत्र

ओ३म् लाहौर २१ जुलाई, सन् १८८३ (संख्या २२७)

महाशय, मन्त्री जी आर्यसमाज मुरादाबाद, नमस्ते।

आपका कृपापत्र आया जिसमें मुंशी इन्द्रमणि और मुंशी जगन्नाथदास का समाज से निकाला जाना लिखा था। यह इस अवसर पर आपने वीरता का काम किया और यह ऐसा काम किया जो इतिहास में लिखे जाने के योग्य है। आर्यों को वास्तव में ऐसा ही होना चाहिये कि जहां किसी व्यक्ति ने अपने कर्म से यह प्रकट किया कि वह समाज में रहने के योग्य नहीं है, उसको चाहे वह कैसा ही बड़ा मनुष्य क्यों न हो, हटा देना ही उचित है। शक्ति और साहस ऐसे ही अवसर पर देखा जाता है। आपने अच्छी प्रकार से दिखला दिया है कि किसी एक व्यक्ति को यह न समझ लेना चाहिये कि समाज का जीवन मेरे ऊपर निर्भर है। मुंशी जी के मन में यह विचार था कि सारी आर्यसमाजें हमारी सहायता से स्थित हैं और वे जब चाहेंगे इनको बन्द कर देंगे। मुंशी इन्द्रमणि जी ने जब स्वामी जी महाराज और ला० रामशरणदास के विरुद्ध एक पत्रिका प्रकाशित की और उसमें वे कठोर शब्द प्रयोग किये जो कोई सभ्य पुरुष नहीं कर सकता। मुंशी जी को भरोसा था कि सारी आर्यसमाजें उनकी अनुयायिनी हो जावेंगी और उनकी व्यर्थ बातों पर विश्वास कर लेवेंगी। जब मुंशी इन्द्रमणि जी पर मुकद्दमा हुआ और स्वामी जी महाराज के प्रयत्न से देश ने उनके साथ सहानुभूति की तो मुंशी जी को विचार आया कि देश तो मेरे साथ है, मुझे स्वामी जी से क्या प्रयोजन! यह न सोचा की यह सहानुभूति किसके प्रयत्न से है। जैसे किसी ने कहा है कि लालच बुद्धिमान की भी आंखें बन्द कर देता है। और अधिक क्या लिखूं, मुंशी इन्द्रमणि विचित्र प्रकार के मनुष्य निकले। ऐसे व्यक्ति का समाज में रहना अत्यन्त हानिकारक था और आप सज्जनों ने अच्छा किया कि उनको हटा दिया। अब आशा है कि आप परिश्रम और धैर्य से समाज को ऐसा चला कर दिखलावेंगे कि मुंशी इन्द्रमणि भी समझें कि यह समाज मुझ पर ही निर्भर न था प्रत्युत प्रत्येक कार्यकर्ता इसका मुझसे बढ़ कर है। स्वामी जी महाराज आजकल जोधपुर में हैं और आशा है कि वह रियासत भी निकट भविष्य में आर्यधर्म को ग्रहण करेगी। संख्या इस समाज के सदस्यों की पांच सौ है।" मदन सिंह बी०ए०, मंत्री आर्य समाज, लाहौर।

इस विषय में स्वामी जी का पत्र—मुरादाबाद समाज ने मुंशी इन्द्रमणि और जगन्नाथदास को जब समाज से निकाल दिया और उसकी सूचना स्वामी जी को भेजी तब स्वामी जी ने उन्हें निम्न पत्र लिखा—"श्रीयुत प्रधान दुर्गाचरण आदि तथा श्रीयुत साहू श्यामसुन्दर जी आनन्दित रहो। कार्ड आपका आया, समाचार विदित हुआ। वह प्रधान और पुस्तकाध्यक्ष जो कि आर्यसमाजों के विरुद्ध थे—पृथक कर दिये गये, बहुत अच्छी बात हुई। अब आपका समाज उन्नतिशील होगा और यही बात सामाजिक पत्रों **"देश हितैषी"** और **"भारतसुदशाप्रवर्तक"** तथा मेरठ और लाहौर के सामाजिक पत्रों

1-प्रियतम की गली   2-धूल, मिट्टी।   3- उपासना गृह।   4-पृथक।

में छपवा दीजिये । आगे को जो कोई समाज के उद्देश्यों के विरुद्ध आचरण या भाषण करे, उसको एक दो बार समझा दीजिये और न समझे तो इसी प्रकार पृथक् करते रहिये ।" दयानन्द सरस्वती । जोधपुर । मिति ज्येष्ठ सुदि, संवत् १९४०, बुधवार ।

इस झगड़े से पहले जब कि लोंभ ने अपना जाल नहीं बिछाया था, मुंशी इन्द्रमणिं और लाला जगन्नाथदास स्वामी जी की प्रशंसा में भजन बनाया और 'सत्यासत्य निर्णय' में इस प्रकार के भजन लिखे हैं, परन्तु अब लोभ के वश में आकर स्वामी जी के विरुद्ध हो गये । सत्य है कि लालच बुद्धिमान् की भी आंखें बन्द कर देता है ।

अब हे पाठको ! आर्यसमाज और श्री स्वामी जी महाराज ने जो कुछ इनके साथ भलाई की और कठिन समय पर सहायता दी, उसका अनुमान लगाना आपका काम है और जिस प्रकार उन्होंने "बन्दद[1] तमा दीदये होशमन्द" वाली कहावत के अनुसार आंखें बन्द कर अपने पालक और पथप्रदर्शक के विषय में झूठमूठ का आरोप लगाया और एक परोपकारी काम की चलती गाड़ी में रोड़ा अटकाया, वह भी विचारना आप ही लोगों का काम है । समाज ने पाई-पाई का हिसाब मांगा परन्तु मुंशी साहब ने समस्त लोगों के लज्जित करने पर भी मरणकाल तक व्यय आदि का विवरण प्रकाशित नहीं किया । करते भी कैसे ? जब कि नीयत में अन्तर, हिसाब में अन्तर, और बही में भी अन्तर था । जब समाजों ने बार-बार हिसाब मांगा तो मुंशी साहब इन्द्रवज्र के समान सब पर कोप-प्रहार करने, क्रोध से गाली-गलौज निकालने लगे और आपे से बाहर होकर सत्य से खुल्लमखुल्ला विमुख हो गये ।

द्वितीय -परिच्छेद

थियोसोफिकल सोसायटी और आर्यसमाज

भूमिका—जिन दिनों सन् १८७५-१८७६ में स्वामी जी बम्बई में व्याख्यान दे रहे थे उन दिनों प्रायः अंमरीकन लोग वहां आया करते थे और उन लोगों से प्रायः प्रश्नोत्तर भी हुआ करते थे और यही कारण है कि जब वे लोग अमरीका पहुंच गये तो बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि प्रधान, आर्यसमाज बम्बई का उनसे पत्रव्यवहार हुआ और तत्पश्चात् स्वामी जी से भी होता रहा । ('विद्या-प्रकाशक', जनवरी, सन् १८७९, पृष्ठ ७५) ।

यह एक संयोग की बात है कि उसी वर्ष अमरीका में थियोसोफिकल सोसाइटी स्थापित[१] हुई जिस वर्ष बम्बई में 'आर्यसमाज' स्थापित हुआ । स्वामी जी और थियोसोफिकल सोसाइटी' के संचालकों के मध्य जो पत्रव्यवहार हुआ वह हम जैसे का तैसा यहां लिखते हैं ।

पत्रव्यवहार

पहला पत्र—मिति १८ फरवरी सन् १८७८: इसका उत्तर स्वामीजी ने २१ अप्रैल, सन् १८७८ को दिया था ।

दूसरा पत्र—२१ मई, सन् १८७८ का मैडेम ब्लैवेत्स्की का और उसी तिथि का एक पत्र कर्नल आल्काट साहब का भी हरिश्चन्द्र के नाम था ।

तीसरा पत्र—२२ मई, सन् १८७८ का आगस्टस गस्टम, रिकार्डिंग सैक्रेटरी का स्वामी जी के नाम था ।

चौथा पत्र— मिति २३ मई, सन् १८७८ हरिश्चन्द्र जी के नाम कर्नल साहब की ओर से था ।

---

1. अर्थात् लोभ बुद्धिमान की भी आंखे बन्द कर देता है ।—अनुवादक

पांचवा पत्र—२९ मई, सन् १८७८ का था और हरिश्चन्द्र जी के नाम स्वामी जी के डिप्लोमा स्वीकार करने के उत्तर में आया था ।

छठा पत्र—३० मई, सन् १८७८ का हरिश्चन्द्र जी के नाम पर था ।

सातवां पत्र—मिति ५ जून, सन् १८७८ स्वामी जी के नाम था । इसका उत्तर स्वामी जी ने २६ जुलाई, सन् १८७८ को दिया था, जिसके पहुंचने पर वह अमरीका से १७ दिसम्बर, सन् १८७८ को चले ।

अमरीका वालों का दर्शनीय उत्साह—अमरीका वालों की ये चिट्ठियां सन् १८७८ में ही अंग्रेजी में विक्टोरिया प्रेस, लाहौर और नागरी लिपि में आगरा और उर्दू में ज्वालाप्रकाश प्रेस, मेरठ में छपवा कर प्रकाशित कर दी गई ।

इन चिट्ठियों के अध्ययन से प्रत्येक मनुष्य जान सकता है कि इन लोगों में इस देश में आने और स्वामी जी महाराज के चरणचुम्बन करने का कितना उत्साह था । इन चिट्ठियों से स्पष्ट प्रकट होता है कि वे ईश्वर को मानने और वैदिक सत्यविद्या को सीखने के लिये यहां आना चाहते थे । सारांश यह कि इन लोगों की उत्साहपूर्ण चिट्ठियों ने हम लोगों के हृदयों पर यह प्रभाव डाला कि ये लोग सब प्रकार पवित्र वेद के अनुयायी हैं और समस्त भूमंडल पर तन, मन, धन से उसका प्रचार चाहते हैं ।

चार हजार वर्ष के पश्चात् भारत का अमरीका से सम्बन्ध जानकर स्वामी जी की परम प्रसन्नता— इन चिट्ठियों के प्राप्त होने पर स्वामी जी ने आर्यसमाज के अधिकारियों और कार्यकर्ताओं के नाम निम्नलिखित पत्र जारी किये । १—"लाला मोहनलाल, प्रधान और लाला सांईदास, मंत्री आनन्दित रहो । विदित हो कि परसों कई चिट्ठियां अमरीका की आई हैं जिनमें ६ चिट्ठियां पढ़ी गई एक दाखिला (प्रवेशपत्र) एक नमूना, एक डिप्लोमा है । इसलिये जितने समाजों में प्रधान, मंत्री आदि हैं सब की संख्या लिखी जावे । नं० ४ की चिट्ठी आर्य लोगों के नाम है; जिसका आशय यह है कि आर्यसमाज थियोसोफिकल सोसाइटी के साथ लगाया गया और यह नाम नियत हुआ है कि "थियोसोफिकल सोसाइटी आफ आर्यसमाज आफ इण्डिया" और यहां यह नाम रखा जावे कि "आर्यावर्तीय आर्यसमाज और थियोसोफिकल सोसाइटी" और मुहर भी समाज की खुदवानी चाहिये और अच्छे होशियार मंत्री और प्रधान का नाम डिप्लोमा में लिखना चाहिये । सोसाइटी के नियम आदि भी आते हैं और सब समाजों को पत्र लिख भेजो कि सब अच्छे-अच्छे बुद्धिमान प्रधान और मंत्री की संख्या लिख भेजें और यदि कोई अंग्रेजी वाला बाबू कमलनयन साहब अब के शनिवार को आवें तो सब की प्रतिलिपि कर ली जावें । हम १५ ता० तक और ठहरेंगे और लाला मूलराज पर यह भी प्रकट हो कि परीक्षा के दिन समीप हैं; इस ओर बहुत ध्यान दें, परीक्षा में प्रयत्न करें । चार हजार वर्ष के पश्चात् अमरीका से आज सम्बन्ध हुआ है, इसको बड़ी बात समझो और धन्यवाद है और भली-भांति प्रयत्न करो जिससे समाज में विघ्न हो उसको रखने से कुछ लाभ नहीं है ।

दयानन्द सरस्वती । ९ जुलाई, सन् १८७८, तदनुसार आषाढ़ सुदि १० संवत् १९३५, अमृतसर ।

थियोसोफिकल सोसायटी अमरीका से प्राप्त चिट्ठियां

जो चिट्ठियां स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज को थियोसोफिकल सोसाइटी न्यूयार्क (अमरीका) के सज्जनों ने भेजी हैं उनका हम जैसे का तैसा अनुवाद करके छापते हैं । एक चिट्ठी में थियोसोफिकल सोसाइटी (ईश्वरान्वेषकों की सभा) के नियम आदि का विवरण इस प्रकार दिया है—

प्रथम पत्र

ईश्वरोन्वेषकों की सभा (थियोसोफिकल सोसाइटी), उसकी स्थापना, प्रबन्ध, योजना और उद्देश्य ।

१—यह सभा न्यूयार्क नगर में सन् १८७५ में स्थापित हुई ।

२—इसके अधिकारी इस प्रकार हैं—एक सभापति, दो उपसभापति, एक पत्रव्यवहार करने वाला, एक मुन्शी, एक कोषाध्यक्ष, एक कार्यालय का अध्यक्ष, एक परामर्शदाता ।

३—पहले वह एक सर्वसाधारण या सार्वजनिक संस्था थी परन्तु पीछे से चूंकि अनुभव उचित सिद्ध हुआ कि परिवर्तन किया जावे; इसलिये उसको एक रहस्यात्मक संस्था के रूप में पुनः व्यवस्थित किया गया ।

४—इसके सदस्य, कार्यकर्ता, पत्रव्यवहार करने वाले और विशिष्ट-इन नामों से प्रसिद्ध हैं । केवल वही लोग इसमें प्रवेश पाते हैं, जो इसके उद्देश्यों से सहानुभूति रखते हैं और उनकी उन्नति करने में हृदय से सहायता देना चाहते हैं ।

५—इसके सदस्य तीन वर्गों में विभक्त हैं और प्रत्येक वर्ग में तीन कोटियां हैं । समस्त प्रार्थी कार्यकर्त्ता, सदस्य, परीक्षार्थी तीसरे वर्ग की तीसरी कोटि में प्रवेश पाते हैं और नये सदस्य की निम्नकोटि से उच्चकोटि में उन्नति प्राप्त करने की कोई अवधि निश्चित नहीं है । यह बात योग्यता पर निर्भर करती है । उच्च वर्ग की प्रथम कोटि में प्रविष्ट होने के लिये यह आवश्यक है कि ईश्वरोपासक इस बात के बन्धन में नहीं हों कि वह किसी एक प्रकार के मत से अपना अनुराग उसके दूसरे मत की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ समझ करके करे । वह उन समस्त कर्त्तव्यों के भी बंधन में न हों जो किसी जाति, समुदाय या देश या कुल के मामलों के भय से आवश्यक हो जाते हैं । वह मनुष्य के और अपने सदस्य बन्धु की भलाई के लिये चाहे वह किसी प्रजाति, रंग या मत का क्यों न हो, यदि आवश्यकता पड़े तो अपना जीवन बलिदान करने के लिये उद्यत हो । वह मद्य और प्रत्येक प्रकार के मादक पेय का त्याग कर दे और अत्यंत पवित्र जीवनयापन करना स्वीकार करे । वे लोग जो अभी तक पूर्णरूप से स्वार्थ मतसम्बन्धी पक्षपात और अन्य प्रकार के स्वार्थ की दासता से नही निकले हैं परन्तु जिन्होंने अपनी आत्मा और इन्द्रियों पर नियन्त्रण करने और ज्ञान प्राप्त करने की दिशा में कुछ उन्नति की है, वे दूसरे वर्ग में आते हैं । तीसरा वर्ग परीक्षा के लिये है । उसके सदस्यों को अधिकार है कि सभा से जब चाहें पृथक् हो जायें । परन्तु यह कर्त्तव्य जो प्रवेश के समय उन्होंने स्वीकार कर लिया था कि जो रहस्य की बातें उन्हें किसी सीमा तक बतलाई जायें उन्हें गुप्त रखें, पूर्णतया पालन करें ।

६—सभा के उद्देश्य बहुत हैं । वह चाहती हैं कि उसके सदस्य प्रकृति के नियमों का पूर्ण ज्ञान, विशेषकर उनके चमत्कारों का जो बुद्धिगम्य नहीं होते हैं, प्राप्त करें । चूंकि पृथ्वी पर उत्पन्न करने वाले कारण का अत्यन्त श्रेष्ठ चमत्कार शरीर और आत्मा वाला मनुष्य है; इसलिये मनुष्य को चाहिये कि पहले अपने अस्तित्व के रहस्य को जानने का संकल्प करें; क्योंकि वह शरीर द्वारा अपनी जाति का भविष्य में उत्पादक है और चूंकि अज्ञात गुणों का उत्तराधिकारी है परन्तु अपनी उत्पत्ति का स्वयं प्रकट कारण है; इसलिये आवश्यक है कि वह अपनी भीतरी आत्मिक सत्ता उत्पन्न करने वाली इस शक्ति को रखे । इसलिये उसको चाहिये कि अपनी गुप्त शक्तियों का बढ़ाना सीखे और अपने आपको, चुम्बकीय और विद्युत की और अन्य प्रकार की शक्तियों के नियमों से चाहे वे अप्रत्यक्ष हों अथवा प्रत्यक्ष हों, परिचित करे । सभा बतलाती है और आशा रखती है कि उसके सदस्य अपने आपको उच्च कोटि की सभ्यता और धार्मिक साहस के उदाहरण के रूप में प्रकट करेंगे और नास्तिकों के इस मत को कि आत्मा कोई वस्तु नहीं है और प्रत्येक प्रकार के विश्वासों को विशेषतया ईसाईमत को, जिसको सभा के प्रधान व्यक्ति विशेषरूप से हानिकारक समझते हैं, रोकें । पूर्वी धार्मिक तत्त्वज्ञान की चिरकाल से दबी

हुई घटनाओं और उसकी सभ्यता और उसके इतिहास को साधारण लोगों की समझ से बाहर जानें और उसके संकेतों को पाश्चात्य जातियों में फैलावें और जहां तक सम्भव हो उन ईसाई उपदेशकों के प्रयत्नों को निष्फल करें जो कि उन लोगों का, जिनको वह काफिर और मूर्तिपूजक कहते हैं, ईसाई मत के सिद्धांतों को प्रकट करने के नाम पर बहकाते हैं और उन प्रकट लक्षणों के विषय में जो साधारण और विशेष लोगों के स्वभावों में ऐसे देशों में होते हैं जिनको वे सभ्य कहते हैं, धोखा देते हैं और उस श्रेप्ठ, पवित्र, साधारण लोगों की बुद्धि से अगम्य, प्राचीन काल के मनुष्यों की अमूल्य शिक्षाओं की विद्या को जो सनातन वेदों में, गौतम बुद्ध, जरदुश्त और कन्फ्यूशस की फिलासफी में चमकती है, फैलावें । अन्त में विशेष रूप से मानवी भ्रातृभाव स्थापित करने में सहायता दें जिससे कि प्रत्येक जाति के समस्त पवित्र मनुष्य एक दूसरे को पहचानें कि हम इस पृथ्वी रूपी नक्षत्र पर एक अजन्मा, सर्वव्यापक, सीमारहित, अनादि और अनन्त कारण के निरन्तर आधीन हैं ।

७—स्त्री और पुरुष दोनों इस सभा में प्रविष्ट हो सकते हैं ।

८—मूलसभा की शाखायें पूर्व और पश्चिम के बहुत से देशों में हैं ।

९—कुछ फीस नहीं ली जाती परन्तु जो चाहें वे खर्च में सहायता करें । कोई प्रार्थी केवल इस कारण कि वह धनवान और अधिकार वाला है, भरती नहीं हो जाता और कोई इस कारण कि वह निर्धन और अप्रसिद्ध है, निकाल नहीं दिया जाता । मूलसभा के साथ पत्रव्यवहार इस पते पर करना चाहिये—

थियोसोफिकल सोसाइटी, न्यूयार्क ।

दूसरा पत्र: हम बड़ी नम्रता से कुछ सीखने के लिये आपके सम्मुख नतशिर हैं

ब्राडवे नं० ७१, न्यूयार्क,
अमरीका.

सेवा में—

अत्यन्त सम्मानित पंडित स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज (देश आर्यावर्त), अमेरिका तथा दूसरे स्थानों के कुछ विद्यार्थी आत्मिक ज्ञान के ग्रहण की जिनकी हार्दिक अभिलाषा है, अपने आपको आपके चरणों में रखकर यह प्रार्थना करते हैं कि आप उनके मन में ज्ञान का प्रकाश प्रदान करें । वे बहुत से विभिन्न देशों और विभिन्न नौकरियों तथा व्यवसायों के करने वाले मनुष्य हैं; परन्तु सभी इस बात पर सहमत हैं कि हमारा उद्देश्य बुद्धिमान् बनना और श्रेष्ठ कहलाना है । तीन वर्ष हुये कि उन्होंने अपनी एक संस्था बनाई थी और नाम 'थियोसोफिकल सोसाइटी' अर्थात् 'ईश्वर के अन्वेषकों की सभा' रखा । चूंकि उन्होंने ईसाईमत में कोई ऐसा बात न देखी कि जो उनकी सब ओर बुद्धि अथवा उनकी निसर्ग प्रवृत्ति को सन्तोष दे और उसके बिगाड़ने वाले सिद्धांतों के बुरे प्रभाव देखे और ऐसे लोग पाये जो कि दिखावटी बातों के उपासक, घाऊ घप्प और प्राणानाशक हैं और ऐसे उपासना करने वाले देखे कि बुरा और अपवित्र जीवन व्यतीत करते हैं और देखा कि पापों को छिपाते हैं और क्षमा कर देते हैं और भलाई और बुद्धिमत्ता को पृथक् रख देते हैं और चूंकि ये सब बातें वर्तमान परिस्थिति में, सर्वसाधारण जनता के लिये ईसाई देशों में हानिकारक हैं इसलिये हम उनकी टोली से पृथक हो गये हैं और ज्ञान के प्रकाश के लिये पूर्व की ओर मुड़ते हैं और हमने अपने आपको ईसाई मत का प्रकट शत्रु प्रसिद्ध किया है । हमारे इस आचरण के साहस से जनता का ध्यान स्वयंमेव हमारी ओर आकृष्ट हुआ और समस्त अधिकारी, कार्यकर्ता, समाचारपत्र और वे लोग जिनके सांसारिक स्वार्थ अथवा व्यक्तिगत पक्षपात, मजहब आदि की नियत कार्यवाही से मिले हुये हैं, हमारी निन्दा करते हैं और हमे धर्महीन, काफिर और गंवार कहते हैं । अठारह मास व्यतीत हुये, दस लाख से अधिक ईसाई आबादी

वाले इस बड़े नगर में हमने अपनी संस्था के व्यक्ति को उन गंवारी प्रथाओं सहित दफन किया (पृथ्वी में गाड़ा) और अग्नि, प्रकाश तथा बिरानी छाल (जो कि सांप के साथ गई थी) के चिन्ह के साथ-साथ प्रयोग किया। ६ महीने के पश्चात् हमने शव को उसके स्थायी विश्राम करने के स्थान से निकाल कर उसको, अपनी आर्यजाति के पूर्वजों की प्रथा के अनुसार, जलाकर भस्म कर दिया। हम केवल नवयुवक और उत्साही पुरुषों की ही सहायता नहीं चाहते, प्रत्युत उनकी भी सहायता चाहते हैं जो बुद्धिमान और स्वामी हैं। इसलिये हम आपके चरणों में सिर झुकाते हैं जैसे कि बच्चे माता-पिता के चरणों में पड़ते हैं और कहते हैं 'हे हमारे गुरु ! हमारी ओर देख और हमका बतला कि हम क्या करें ?' हमको अपनी शिक्षा और सहायता दे। यहां लाखों मनुष्य हैं जो आत्मिक प्रकाश से वंचित हैं और विषयभोग की इच्छाओं और नास्तिकमत के अन्धकार में पड़े हुये हैं और वे पथभ्रष्ट, पक्षपाती और अशान्त रहने पर भी सन्तुष्ट नहीं हैं प्रत्युत अपने धन, अपनी तीव्रबुद्धि और न कम होने वाले जोश को पूर्व की प्राचीन धार्मिक विद्याओं और फिलासफी से धार्मिक युद्ध जारी रखने तथा विद्याहीन मनुष्यों को अपना मिथ्या ईश्वरीय मार्ग स्वीकार कराने में व्यय करते हैं। हमारी संस्था के समाचारदाताओं की पहुंच केवल समाचारपत्रों तक है। हम चाहते हैं कि समस्त ईसाई देशों में पूर्वीय विचारों के वास्तविक स्वरूप का प्रचार करें और उन जातियों में, जिनको ईसाई मूर्तिपूजक और गंवार कहते हैं, उस मत का वास्तविक स्वरूप, जिसको झूठे पादरी उनके स्वीकार करने के लिये उपस्थित करते हैं, प्रकट कर दें। जिनको पूर्वी मनुष्य कहते हैं और जो संस्कृत तथा अन्य प्राचीन भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करते हैं वे वेदों और अन्य पवित्र पुस्तकों का भाष्य करने में कांट-छांट और जालसाजी करते हैं। हमारा अभिप्राय यह है कि हम ठीक अनुवाद जिसका कि विद्वान् पंडित करें उनकी व्याख्याओं सहित छपवा कर प्रकाशित कर दें। यदि आप इस संस्था के डिप्लोमा अर्थात् धर्मपत्र लेख (Epistolary correspondant) – सदस्य के प्रमाणपत्र को स्वीकार कर लें तो हम अत्यंत सम्मानित और कृतार्थ होंगे। आपकी कृपा और सहायता से हमको बड़ा लाभ होगा। हम अपने आपको आपकी शिक्षा के अधीन रखते हैं। कदाचित् हम सीधे रूप में और प्रकार से आपको उस पवित्र काम के पूरा करने में जिसमें आप अब संलग्न हैं, सहायता दें क्योंकि हमारा युद्ध क्षेत्र (कार्यक्षेत्र) भारतवर्ष तक है। हिमालय से लेकर रासकुमारी[२] तक ऐसा काम है जिसको कि हम कर सकते हैं। स्वामी जी ! आप अपने समान प्रकार वालों के वेश और बहि:रूप से हमारे हृदयों को भली-भांति जानते हैं। हमारे हृदयों की ओर ध्यान दीजिये और देखिये कि हम सत्य कहते हैं। विचार कीजिये कि हम आपके पास नम्रता से, न कि अभिमान से आते हैं और सच जानिये कि हम आपकी शिक्षा मानने के लिया और उस कर्त्तव्य का पालन करने के लिये जो आप हमको बतलावें, उद्यत हैं। यदि हम आपको एक पत्र लिखें तो आप जान जायेंगे कि ठीक-ठीक हम क्या जानना चाहते हैं और वह वस्तु जिसकी हमको आवश्यकता है, हमको देंगे। हे सम्मानित सज्जन ! संस्था की ओर से मैं अपने आपको बड़ी नम्रता के साथ 'ईश्वर के अन्वेषकों की सभा' का सभापति हेनरी एस० आल्काट लिखता हूं।"

तीसरा पत्र : आर्यावर्त मेरी शुभ जन्मभूमि

२१ मई, सन् १८७८

हे प्रिय भ्राता,

चूंकि मैं न्यूयार्क नगर से चलने को ही हूं, ताकि समुद्र पर इच्छित विश्राम पाऊं और यह सम्भव नहीं है कि मैं यूरोप ओर आर्यावर्त को जाकर वापिस आ जाऊं। मैं लन्दन में एक मास या एक वर्ष ठहरूंगी, यह ईश्वर को विदित है। इसलिये मैंने अपनी कुछ पुस्तकें बम्बई भेजने का विचार कर लिया है। कोई ढाई सौ प्रतियां सजिल्द हैं और इतनी ही बिना जिल्द हैं। सभापति ने कुछ अपनी ओर से दी हैं। यदि मैं किसी संयोग से वहां न आ सकी तो आप कृपा करके आर्यसमाज

के किसी पुस्तकालय को भेंट कर दीजिये । संयोग से मेरा अभिप्राय मृत्यु से है क्योंकि मृत्यु के अतिरिक्त और कोई चीज हमको आर्यावर्त में उचित समय पर पहुंचने से रोक नहीं सकती । मैंने यह निश्चय कर लिया है कि जब मैं अपनी जन्मभूमि (आर्यावर्त) में पहुंचूंगी तो ऐसी बहुत सी पुस्तकें उस समाज को भेंट करूंगी जिसको आप बतलावेंगे । मुझे आशा है कि मैं बहुत सी पुस्तकें इंगलिस्तान से लाऊंगी, आल्काट साहब भी लावेंगे । मैं आशा करती हूं कि आप मेरे लिखने पर और इतना कष्ट देने पर अप्रसन्न न होंगे परन्तु मैं आपको विश्वास दिलाती हूं कि मैं इतनी प्रसन्नता का श्वास कभी नहीं लेती हूं जैसे कि इस समय जब कि मैं आर्यावर्त को लिखती हूं या आर्यावर्त की चिट्ठियां मेरे पास आती हैं । मुझे ऐसा प्रतीत होता है मानो मैं अपने मन और प्राणों का एक भाग शुभ जन्मभूमि (अर्थात् आर्यावर्त) को प्रत्येक समय भेज रही हूं ।'

—-(हस्ताक्षर) एच० पी० ब्लैवेत्स्की[3] ।

चौथा पत्र— 'आप मुझको भाई समझें हमारी सोसाइटी आर्यसमाज की एक शाखा बने'

न्यूयार्क, २१ मई, सन् १८७८ । मेरे प्रिय भ्राता, मैं अपनी बहन की चिट्ठी में कुछ पंक्तियां अपनी ओर से अधिक करके सूचना देता हूं कि मैंने चिट्ठी के लेख को पढ़ा और उसके उचित विभिन्न सुझावों को मैं भली-भांति पसन्द करता हूं । इस बात को सुझाते समय कि हमारी सोसाइटी आपके आर्यसमाज की एक शाखा के रूप में प्रसिद्ध हो जावे और पंडित दयानन्द सरस्वती के और मेरी आज्ञाओं के आधीन रहे । ऐसे गुरु और पथप्रदर्शक के प्रति जैसे कि वे बुद्धिमान् और पवित्र मनुष्य हैं, सेवकभाव प्रकट करता हूं । हमको बहुत, बहुत कुछ करना है इससे पहले कि हम बड़े बड़े परिणामों की आशा करें और इस प्रकार हम बड़ी-बड़ी बातों का चमत्कार दिखला सकेंगे । आप मुझको अपना भाई समझें ।

(हस्ताक्षर) एच० एस० आल्काट ।

पांचवां पत्र : आर्यसमाज के साथ मिल जाने का सुझाव मान्य है

ईश्वर-परिचायक समाज
न्यूयार्क, २२ मई, १८७८

सेवा में, श्री हरिश्चन्द्र चिन्तामणि द्वारा

आर्यसमाज के नेताओं के नाम ।

माननीय सज्जन वृन्द ! मैं आपको आदर के साथ सूचना देता हूं कि ईश्वर-परिचायक समाज[1] के अधिवेशन में जो न्यूयार्क में २२ मई, सन् १८७८ को सभापति ने ई० वल्डर साहब उपसभापति की प्रेरणा और पत्रव्यवहार की कार्यकर्त्री एच० पी० ब्लैवैत्स्की के समर्थन से सहमत होकर यह प्रस्ताव किया है कि सभा आर्यसमाज के उस सुझाव को कि उसके साथ मिल जाये और उस सभा का नाम 'ईश्वरपरिचायक सभा आर्यसमाज-आर्यावर्त' हो जाये, स्वीकार करती है । यह भी निश्चय हुआ कि ईश्वरपरिचायक सभा अपनी और अपनी शाखाओं, अमरीका, यूरोप तथा अन्य स्थानों के लिये स्वामी

1. थियोसोफिकल सोसाइटी—सम्पा०

दयानन्द सरस्वती पंडित को आर्यसमाज का संस्थापक और उसका प्रवर्तक पथप्रदर्शक तथा नेता मानती है । आपकी स्वीकृति और शिक्षाओं का, जो कि आप कृपा करके दें, मैं प्रतीक्षक हूं ।

(हस्ताक्षर) अगस्टस गस्टम रिकार्डिंग सेक्रेटरी ।

छठा पत्र : डिप्लोमा के लिये स्वामी जी के हस्ताक्षरों की मांग

न्यूयार्क
२३ मई, १८७८

सेवा में—

श्री हरिश्चन्द्र चिन्तामणि !

प्रिय भ्राता, आपकी चिट्ठी पिछले मास की २१ ता० की लिखी हुई आई, जिसका आशय यह प्रतीत होता है कि हम आपके उत्तर के प्रतीक्षक न रहें कि आप हमारी ईश्वर परिचायक समाज का अपने आर्यसमाज की शाखा हो जाना पसन्द करते हैं या नहीं । सभा की कल एक बैठक हुई और चूंकि बहुत से सदस्य उपस्थित थे इसलिये सर्वसम्मति से यह निश्चय हुआ कि दोनों सभाओं के मिल जाने और उस सभा का नाम बदल जाने का आपका सुझाव स्वीकार किया जाये । नियमानुसार आवश्यक प्रमाणपत्र इस पत्र के साथ भेजा जाता है और आपसे प्रार्थना की जाती है कि आप उस को अभीष्ट स्थान पर पहुंचा दें । मैं एक रूपरेखा नये प्रकार के डिप्लोमा की जिसको हम प्रचलित करना चाहते हैं (परन्तु इस शर्त पर कि आप और कोई अच्छा सुझाव न निकालें) भेजता हूं । इस नये प्रकार के डिप्लोमा का छपवा देना इस अभिप्राय से कि देखने का कष्ट दूर हो जाये, उचित समझता हूं और चूंकि आर्यसमाज का प्रतिष्ठित नेता हमसे इतनी दूर है कि प्रत्येक डिप्लोमा को उसके हस्ताक्षरों के लिये नहीं भेज सकते इसलिये हम विनयपूर्वक यह प्रार्थना करते हैं कि वह विशेष स्थान पर संस्कृत या किसी और भाषा में जैसा कि उनका नियम है, हस्ताक्षर कर दें ताकि वह भी डिप्लोमा के साथ छप जावे । यदि वह अपनी या आर्यसमाज की मुहर प्रयुक्त करते हों तो कृपा करके उस पर लगा दें और हम उसको भी छपवा लेंगे । हमारा यह निश्चय है कि संसार भर में अपने सदस्यों में प्रत्येक के पास नया डिप्लोमा भेजें कि उसको पुराने के स्थान पर रखें । मैं अपनी ईश्वर-परिचायक सभा के साथियों के इस बात पर सहमत होने से कि दोनों मिल जायें, अत्यंत प्रसन्न हूं । विशेषकर प्रोफेसर वल्डर की स्वीकृति से, जो कि हमारे विद्वान् और श्रेष्ठ उपसभापति हैं । यदि आप उनको जानते होते तो मुझे विश्वास है कि आप भी उनका बड़ा सम्मान करते । (हस्ताक्षर) एच०एस० आल्काट सभापति ।

सातवां पत्र : आर्यसमाज के साथ भ्रातृत्व संम्बन्ध से वर्णनातीत प्रसन्नता

न्यूयार्क,
२९ मई, १८७८

सेवा में—

श्री हरिश्चन्द्र चिन्तामणि !

प्रिय भ्राता, हम आज अपनी नियमानुसार भेजी हुई चिट्ठी के उत्तर में स्वामी दयानन्द सरस्वती का कृपापत्र पाने से अत्यंत प्रसन्न हुये । हमारा बड़ा सम्मान केवल इस बात से ही न हुआ कि उन्होंने हमारे डिप्लोमा को स्वीकार कर लिया

प्रत्युत इस बात से भी हुआ कि उन्होंने अपनी सम्मति को हमारे पास कृपापूर्ण शब्दों में प्रकट कर भेजा। मैं आपसे भली प्रकार उस प्रसन्नता का जो कि हमारे और आर्यसमाज के मध्य भ्रातृत्व सम्बन्ध स्थापित होने से हुई, वर्णन नहीं कर सकता। जैसे कि पथिक को जंगल के बीचों बीच जहां कि वन्य पशु उसके चारों ओर हों, अपने बचाने वाले का शब्द सुनकर प्रसन्नता होती है, वैसे ही आपकी बधाई का उत्तर समुद्रों से पार उतर कर हमारे पास आया क्योंकि इन ईसाइयों से बढ़ कर जो हमें काफिर और मूर्तिपूजक कहते हैं, हमारे शत्रु और कौन पशु हैं। जब आपकी कृपा का हाथ हमारे ऊपर है तो हम शत्रुओं से तनिक भी भय नहीं करते। मेरा प्रणाम।

(हस्ताक्षर) एच० एस० आल्काट।

आठवां पत्र : दोनों सभाओं के मिलने के सम्बन्ध में स्वामी जी के उत्तर की प्रतीक्षा

न्यूयार्क, ३० मई, १८७८

सेवा में—

हरिश्चन्द्र चिन्तामणि

प्रिय भ्राता, प्रत्येक सदस्य के पास नये डिप्लोमा भी भेज दिये जाते यदि प्रतिष्ठित स्वामी जी हमारे नाम परिवर्तन और आर्यसमाज के साथ हो जाने को पसंन्द कर लेते। अब जब वह पसन्द कर लेंगे तो पुराने के स्थान पर नये डिप्लोमा भेज दिये जावेंगे। मैं दोनों सभाओं के मिल जाने के सम्बन्ध में प्रतिष्ठित और प्रसिद्ध नेता के उत्तर का प्रतीक्षक हूं।

—(हस्ताक्षर) आल्काट, सभापति।

नवम पत्र : स्वामी जी को धन्यवाद; ईसाईमत छोड़ने के कारण; संस्कृत शिक्षा के लिये भारत आगमन की अभिलाषा आदि का वर्णन

ब्राडवे नं ७१,
न्यूयार्क, ५ जून, १८७८

१—सेवा में अत्यंत प्रतिष्ठित और प्रख्यात पण्डित दयानन्द सरस्वती स्वामी। हे प्रतिष्ठित गुरु, वह कृपापत्र जो आपने कृपा करके हमारे भाई हरिश्चन्द्र चिन्तामणि के कहने से भेजा, हमारे पास सकुशल पहुंचा। आपने जो आशीर्वाद हमको और हमारे प्रयत्नों को दिया और आपकी इस इच्छा से कि हम फलें फूलें ओर स्वस्थ रहें, ईश्वर परिचायक सभा के समस्त सदस्यों और उसके अधिकारियों को बड़ी प्रसन्नता हुई। इसके बदले में यह आवश्यक है कि हम अपनी उत्साह से भरी हुई यह आशा प्रकट करें कि पृथ्वी पर आपका निवास जब तक कि आपका शुभकार्य पूरा न हो जाये, रहे और मनुष्य जाति आपकी युक्तियुक्त शिक्षाओं को सुनने और उनका लाभ उठाने के लिये उद्यत रहे।

२—हे प्रतिष्ठित महोदय! सर्वकल्याणमय (परमेश्वर) की प्रकृति तथा उसके गुणों की जो परिभाषा आपने की है, उसको देख कर, पश्चिम के हम छात्रों को यह बात समझ में आ गई है कि हमने अपने आर्य-पूर्वजों की शिक्षा का अभिप्राय ठीक ही समझा है। वह परमपिता परमात्मा जिसका ध्यान व भरोसा करने के लिये तुम अपने शिष्यों को कहते हो, वही

एक शाश्वत पवित्रात्मा है, जिसको हमने इन ईसाइयों को बतलाया है कि नृशंस, निर्दय और चंचल चित्त मोलोक (Molok) अर्थात् जेहोवा (Jehova) के स्थान पर, वही तुम्हारी उपासना की विशेष वस्तु है । परन्तु (हमारे लिये) औरों को बतलाना कठिन है जब कि हमको स्वयं ही सीखने की इतनी आवश्यकता है । दिन प्रतिदिन हमको अपनी अयोग्यता अधिक प्रतीत होती जाती है और यदि हमको इस बात की सत्यता का विश्वास न होता कि जिस मनुष्य ने तनिक भी सत्य सीखा है, वह उसको अपने आवश्यकता रखने वाले भाई से छिपा न रखे, तो हम सर्वथा जनता की दृष्टि से पृथक् रहने की ओर आकृष्ट होते, जब तक कि हम पर्याप्त समय उस बहुमूल्य विद्या की प्राप्ति में जिसकी आपने प्रतिज्ञा की है कि हम तुम को सिखला देंगे, व्यय न कर देते ।

३—मैंने उचित रूप से अपने भाई हरिश्चन्द्र चिन्तामणि के पास वह प्रस्ताव भेज दिया जो कि इस सभा में सर्वसम्मति से पास हुआ अर्थात् यह सभा आर्यसमाज की शाखा हो जावे और उसका नाम उसी ढंग पर बदला जाये परन्तु शर्त यह है कि आप हमारी कार्यवाही को पसन्द करें । चूंकि हम जानते हैं कि हम लोग आर्यों की सन्तान हैं और हमारा लौकिक और पारलौकिक ज्ञान आर्यों के यहां से आया है । हम ईश्वर प्रेमियों को अपने ऊपर गर्व होगा यदि आप इस बात की आज्ञा दे दें तो हम अपने आपको आपका शिष्य बतलावें और पश्चिम में आर्यसमाज और उसके सिद्धांतों के वास्तविक स्वरूप का प्रचार करें । हमको आज्ञा दीजिये कि हम आपका नाम अपना गुरु, पिता और नेता धरें । हमें सिखलाइये कि हम लोगों से क्या कहें और उसे किस प्रकार वर्णन करें । हम आपकी आज्ञाओं के प्रतीक्षक हैं और उनका पालन करेंगे ।

४—जो कुछ आपकी समझ में हमारे लिये करना या किये जाना आवश्यक या उचित प्रतीत हो, बताइये । हम प्रतिज्ञा करते हैं कि यथाशक्ति किया जायेगा । यहां के मनुष्य नीच, पक्षपातपूर्ण और अज्ञानी हैं । उनकी मजहबी पूजा शारीरिक एन्द्रिय भावों अर्थात भय, अभिमान, लोभ, कायरता और द्वेष की ओर प्रवृत्त है । उनके मन्दिर और गिरजा एक दूसरे से भड़क में बात करते हैं । पाप और बुराई, मखमल रेशमी वस्त्रों और कोमल तकियों के पलंग के कोनों में सुरक्षित बैठे हैं । उनके महन्त और पुजारी पापियों ओर असभ्य मनुष्यों के अधीन है और ऐसों को, जो बहुत देते हैं और बहुत कुछ प्रतिज्ञा करते हैं, स्वर्ग में ईश्वर और फरिश्तों के साथ सदा रहने का विश्वास दिलाते हैं । परन्तु फिर भी प्रत्येक नगर और ग्राम में बहुत से अभिलाषी और सोचसमझ के स्त्री-पुरुष हैं जो प्रसन्नता से आर्यसमाज में सम्मिलित हो जाते यदि उनको उसके अस्तित्व का और उस सत्य का जो वह बतलाने के लिये उत्पन्न हुये हैं, ज्ञान होता । चूंकि यहां पर कोई स्वामी या पंडित नहीं है, जो मंच पर से उपदेश दे । इसलिये ऐसे मनुष्यों के हृदयों पर हमको चाहिये कि समाचारपत्रों के द्वारा प्रभाव डालें । जो कुछ हम अपनी तुच्छ योग्यता से कर सकते हैं, करने के लिये उद्यत और इच्छुक बैठे हैं जब कि आपकी आज्ञायें हमारे पास आवें । हम प्रार्थना करते हैं कि हमको वे आज्ञायें शीघ्र दीजिये, जितना शीघ्र आपको अपने बहुत आवश्यक कामों के दबाव से अवकाश मिले ।

५—आप आर्यावर्त की समस्त समाजों को यह विश्वास दिला दीजिये कि दूर संसार के परली ओर ऐसे स्त्री और पुरुषों की एक संस्था विद्यमान है कि जिनका तुम्हारे जैसा श्रेष्ठ धार्मिक ज्ञान है, जो तुम्हारे जैसे ही सिद्धांत सिखलाते हैं, भावी जन्म के विषय में जिनके तुम्हारे से ही विचार हैं और जिनका साहस भी तुम्हारे ही समान है । हम उस सहानुभूति के सम्बन्ध द्वारा जो कि इन हृदयों से उन हृदयों तक फैलता है, जो एक विचारधारा में स्थित हैं अर्थात् आर्य भाइयों को भ्रातृप्रेम और शान्ति का संदेश देते हैं ।

६—हम आपसे पूछते हैं कि आर्यसमाज के नियम क्या हैं और उसकी कार्यवाही किस प्रकार होती है ? कौन भरती होते हैं और विशेष रूप से कौन भरती (सम्मिलित) नहीं होते । विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के साथ और मनुष्यजाति

के साथ इस देश में और यूरोप में हमारी व्यावहारिक नीति क्या होनी चाहिये। ईश्वर सम्बन्धी वास्तविक विचारों को पढ़ने के लिये पश्चिमी भाषा की कौन सी पुस्तकें हमें पूछने वालों को बतलानी चाहियें ? मनुष्य, उसका आदि-अन्त और शक्तियां क्या हैं ? प्रकृति क्या चीज है। वह विधान जो कि आर्यावर्त में प्रचलित किये गये हैं कितने परिवर्तित किये जावें कि पश्चिमी देशों की विभिन्न अवस्थाओं के अनुकूल हो जावें ? हमको यह विशेष रूप से जानना आवश्यक है कि हमें वर्तमान काल के उन लाखों लोगों को, जो केवल आत्मा को ही मानते हैं (अर्थात संसार की किसी वस्तु की वास्तविक सत्ता नहीं है; सभी वस्तुयें केवल मन की बनावट है) पदार्थों के उद्भव, उनके कारण और प्रभावों, उनके सम्बन्ध और गुणों, उनकी हानि और लाभ के विषय में क्या बतावें ? जीवित मनुष्य सदा इस बात का यत्न करते हुये देखे गये हैं कि उस आवरण को, जो कब्र के किनारे और चिता के ऊपर पड़ा हुआ है, फाड़ दें। मनुष्य का मन सदा इस बात का विश्वास चाहने वाला प्रतीत होता है कि मृत पुरुष हमारी सहानुभूतियों की पहुंच से बाहर नहीं चले गये हैं। न माता अपने बच्चों के विषय में ऐसा विचार कर सकती हैं कि मृत बच्चे सदा के लिये मेरी गोद से पृथक् हो गये, न पत्नी अपने पति का, न प्रेमी अपने प्रेम पात्र को। यह ऐसी तीव्र और प्रबल इच्छा है कि जिसके कारण ऐसे लोगों के जो आत्मा ही को मानते हैं, वर्तमान पश्चिमी विचार इतनी उन्नति कर गये हैं और उनके मानने वालों ने हमारा सबसे अधिक सामना किया है। माध्यम अर्थात् आत्मा और शरीर से निर्मित वस्तु की शक्तियां अनगिनत हैं जिनकी बनावट और चुम्बकीय शक्तियों की सहायता से बुद्धिमान् पीछे इन बहुत से उद्भवों के प्रश्न पूछने वालों से लेख, बातचीत कड़की आवाजों, भूतनियों और इसी प्रकार के साधनों द्वारा बातचीत करते हैं। लाखों विश्वास करते हैं कि हमारे मृत सम्बन्धी ही हमसे बातें कर रहे हैं और अपनी स्थूल आकृतियां दिखला रहे हैं। हम पूछते हैं कि उन लोगों और उनकी ऐसी बातों के साथ हम कौन सा व्यवहार बरतें ? उनके सन्तोष के लिये हमको विशेष सत्य और विश्वास दिलाने वाली बातें करनी चाहियें। आपकी चिट्ठी से अर्थात् उस भाग से जहां पर कि आप एक मृत को जीवन देने, कुष्ठियों को अच्छा कर देने, पर्वत के उठाने और चांद के तोड़ने, इन सब बातों को मिथ्या बतलाते हैं—इससे धर्महीनता की विशेषता सिद्ध होती है अरि बहुत सी विपत्तियां इन बातों से अवश्य उत्पन्न होती हैं। मैं स्पष्ट रूप से यह समझता हूं कि आप चमत्कारों को झूठा समझते हैं। आप उसको दर्शन्-विज्ञान की शिक्षा और मनुष्य की अपनी आत्मिक शक्तियों की एक अत्यन्त निम्न कोटि मानते हैं। यह बुद्धिमत्ता की बात है और हम इस बुद्धिमत्ता को समझते हैं परन्तु यहां के साधारण मनुष्यों, सब स्थानों के साधारण मनुष्य की भांति दार्शनिकता के विरुद्ध हैं और चमत्कार के 'अभिलाषी' हैं। हम केवल उनके वहम और इन्द्रियों के द्वारा ही केवल उनके हृदयों पर प्रभाव डाल सकते हैं। माध्यम आत्मा और प्रकृति से मिलकर बनी हुई वस्तु हैं; जो उनको चमत्कार प्रतीत होती हैं और दार्शनिकता की युक्तियां वे स्वीकार नहीं करते। कदाचित् हमने अत्यंत श्रेष्ठ उपायों का प्रयोग नहीं किया। इस विचार से कि कदाचित् यही बात है कि हम शिक्षा और निर्देश लेने के लिये आपके चरणों में पड़ते हैं।

७—मेरा विचार है कि तब बहुत उन्नति हो जायेगी जबकि हम पश्चिमी जनता के सामने वेद के दर्शन विज्ञान का बिना कटा-छंटा उज्ज्वल और रोचक वृत्तांत प्रकट करेंगे। अमरीका का एक अत्यंत योग्य समाचारपत्र का सम्पादक जो कि हमारी सभा का एक सदस्य है और जिसके पत्र की पचास हजार प्रतियां बिकती हैं, कहता है कि वर्तमान युग में पूर्वीय महजबों के वृत्तांत की अत्यंत आवश्यकता है और इससे यह प्रकट हो जायेगा कि ईसाई धार्मिक विश्वास और गाथायें और प्रथायें कहां से निकली हैं और आर्यों के मजहब से नया मजहब किधर और किस प्रकार बन गया। एक सदस्य जो कि भाषाओं के शब्दों की वास्तविकता (भाषाविज्ञान) से भली भांति परिचित है, अंग्रेजी भाषा के निकास और परिणाम पर एक पुस्तक प्रकाशित करने को है। वह शिकायत के रूप में कहता है कि ईसाई बिशप हेअर ने 'जिन्दावस्था'[1] के अनुवादों

---

१. पारसियों की धर्मपुस्तक का नाम है।

को बहुत बिगाड़ा और उसने कहा है कि जब तुम आर्यावर्त को जाओ तो पश्चिमी भाषा वालों के लिये, स्थानीय मनुष्यों के आरम्भ तथा उनकी उत्पत्ति और भाषाओं की उत्पत्ति का स्पष्ट वृत्तांत भेजना। परन्तु पश्चिमी देशों के मनुष्यों को पूर्व वालों से वास्तव में इतना सीखना है कि मैं नहीं जानता कि क्योंकर अपनी लेखनी को आपसे वह प्रश्न पूछने से रोकूं। मैंने अभी इतने प्रश्न लिख दिये कि यदि आप अपने बहुमूल्य समय का आधा भाग उनके उत्तर में व्यय करें तो पर्याप्त हो। परन्तु आपके साथ बहुत से विद्वान् पंडित और विद्वान् आर्य लोग रहते होंगे जो हमको अपने देश का और सहधर्मी समझकर अपनी कुछ बहुमूल्य सहायता देने के लिये सहमत होंगे। हम आपसे इतनी दूर हैं और चिट्ठी लिखना अध्यापक और विद्यार्थियों की बातचीत का ऐसा तुच्छ और असन्तोषप्रद साधन हैं कि हम में से कछ व्यक्ति पूर्ण आवश्यकता इस बात की अनुभव करते हैं कि शिक्षा प्राप्त्यर्थ बहुत शीघ्र आर्यावर्त को जायें और अपने आपको अपने सजातीयों में उपदेश करने के योग्य बनायें। हम समझते हैं कि वहां दो या तीन वर्ष में हम इतना सीख जायेंगे जितना कि हम यहां बीस वर्ष पढ़ने में व्यतीत करने से न सीखते। चूंकि मनुष्य के जीवन की अवधि स्वल्प है; इसलिये उन मनुष्यों को जो हम में से युवावस्था में हैं या युवावस्था को पार कर गये हैं, वहां आने की बड़ी अभिलाषा है। यदि हम भलाई कर सकते हैं तो कोई समय नष्ट न करना चाहिये, परन्तु जब तक हम अमरीका से चलें, हम अत्यंत उत्सुकता और नम्रता के साथ चाहते हैं कि आप हमको उपर्युक्त बातों का ज्ञान देवें जिसके हम इच्छुक हैं।

८—प्रणाम करके और आपके स्वास्थ्य और प्रसन्नता की प्रार्थना करता हुआ समस्त सभा की ओर से मैं हेनरी एस० आल्काट, सभापति ईश्वर परिचायिका सभा, अपने आपको आपकी आज्ञा से आपका तुच्छ सेवक और अनुयायी लिखता हूं।

इस पत्र का उत्तर स्वामी जी ने २६ जुलाई, सन्१८७८ को लिखा जिसके पहुंचने पर वे अमरीका से चले। ये सारे पत्र संवत् १९३५, तदनुसार २२ जनवरी, सन् १८७८ को आगरा में देवनागरी में प्रकाशित कराये और यही अंग्रेजी में विक्टोरिया प्रेस, लाहौर में मुद्रित कराकर सन् १८७८ में प्रकाशित कराये गये।

थियोसोफिस्ट सोसाइटी के सम्बन्ध में कुछ आर्यसमाजी भद्र पुरुषों को लिखे गये स्वामी जी के पत्रों की प्रतिलिपि

१—बाबू दयाराम के नाम—आनन्दित रहो, अमरीकन चिट्ठी की प्रतिलिपि कराकर भेजेंगे और यह भी आपको विदित होगा कि अमरीका थियोसोफिकल सोसाइटी आर्यसमाज की शाखा बन गई है और अमरीका वाले बराबर वेद को मानते हैं और उसकी शिक्षा के इच्छुक हैं और हम बहुत स्वस्थ और प्रसन्न हैं। दयानन्द सरस्वती। रुड़की। २७ जुलाई, सन् १८७८ तदनुसार सावन बदि १२, संवत् १९३५।

२—ला० मूलराज जी एम० ए०[४] के नाम—"आनन्दित रहो, विदित हो कि कल आपके पास एक पारसल अमरीका की चिट्ठियों का भी पहुंचा होगा। सो उन में से डिप्लोमा और छपी हुई चिट्ठी, जो उनके साथ है सो हमारे पास भेज दीजिये और लाहौर में अथवा ट्रिब्यून में शीघ्र छपवा दीजिये क्योंकि इनकी बहुत आवश्यकता है और सब स्थानों से उनकी मांग आती है। इसलिये दो सौ कापी शीघ्र छपवा लीजिये। डिप्लोमा और छपी चिट्ठी जो असल है वह हमारे पास भेजें और जो नकल करके दी गई है सो छपने के लिये प्रेस में दीजिये। यहां पर व्याख्यान नित्य होते हैं और लोगों के विचार बहुत अच्छे हैं। हम बहुत आनन्द में हैं। सब सभासदों को नमस्ते।" दयानन्द सरस्वती, रुड़की। ५ अगस्त, सन् १८७८।

३—ला० मूलराज एम० ए०, आनन्दित रहो । विदित हो कि इससे पहले एक चिट्ठी सं० २५ लिखी ५ अगस्त की आपके पास भेजी गई है सो पहुंची होगी । अब फिर लिखते हैं, आपके पास जो चिट्ठी भेजी गई है सो उनमें से दो असली छपी हुई चिट्ठियां और डिप्लोमा बहुत शीघ्र हमारे पास भेज दो क्योंकि उनकी नकल बाबू कमलनयन जी कर ले गये थे । वह समाज में विद्यमान हैं और आधा खर्च छपाई का आपके जिम्मे रहेगा । शेष रुड़की निवासी पंडित उमरावसिंह और शंकरलाल आदि देवेंगे । परन्तु लाहौर प्रेस या 'ट्रिब्यून' प्रेस जहां छपवाने की इच्छा हो, शीघ्र छपवा लीजिये क्योंकि २४ ता० को यहां टामसन कालिज की परीक्षा गवर्नमेंट लेवेगी, फिर दो महीने की छुट्टी में सब अपने-अपने घर चले जावेंगे। फिर कभी तीसरे मास में आवेंगे जो पास या फेल हो जावेंगे । इसलिये आपको लिखा जाता है कि २८ ता० से पहले छपवा लीजिये ।"

दयानन्द सरस्वती । रुड़की । ९ अगस्त, सन् १८७८ ।

४—ला० मूलराज जी एम० ए०, आनन्दित रहो । विदित हो कि चिट्ठी आपकी लिखी हुई १४ अगस्त को पहुंची और एक पारसल डिप्लोमा और दो छपी हुई चिट्ठियों से युक्त पहुंचा । आपको चाहिये कि इन चिट्ठियों के छापने में जो कुछ खर्च हुआ है सो लिख भेजें क्योंकि खर्च रुड़की वाले देवेंगे और आशा है कि यहां पर आर्यसमाज अवश्य बन जावेगा। १७ अगस्त, सन १८७८ । दयानन्द सरस्वती । रुड़की ।

५-ला० मूलराज जी एम० ए०, आनन्दित रहो । आपने लिखा था कि ता० २४ को छपी हुई चिट्ठी भेज देंगे सो अब तक वह न भेजी हो तो मेरठ भेजना । दयानन्द सरस्वती । २७ अगस्त, सन् १८७८ । मेरठ ।

थियोसोफिस्ट सोसाइटी के सम्बन्ध में 'विद्याप्रकाशक' पत्रिका का लेख इस प्रकार है—"जिस का परिणाम यह हुआ कि एक "ब्रह्मपूजनी" (थियोसोफिकल) सभा ने अपने लेखों से प्रकट किया कि हम लाखों मनुष्य इच्छुक हैं कि हम आर्यसमाज में प्रविष्ट हो जावें और वेदों का अनुकरण करें और ईसाई मत से हमारी बड़ी हानि और विनाश हुआ है। उसको हमने सर्वथा छोड़ दिया, क्योंकि प्रथम तो पहले-पहल अज्ञानता को स्वीकार किया था परन्तु ध्यान देने पर यह पोलाभूक प्रकट हो गया । चूंकि समस्त सच्चाई और सारा ज्ञान आर्यावर्त से प्रकट हुआ है; इसलिसे सच्चा धर्म भी हमको आर्यावर्त से प्राप्त होगा ।"

अमरीकनों के पत्रों की प्रतिक्रिया—इन चिट्ठियों को प्रायः ईसाई लोगों ने भी देखा और विष को घोला । परिणाम यह हुआ कि मैनपुरी निवासी एक सज्जन 'सफीरे हिन्द' नवम्बर व दिसम्बर, सन् १८७८ में अपना वृत्तांत अच्छी प्रकार प्रकट करते हैं, जिसका उत्तर मैं फिर कभी लिखूंगा । थोड़ा सा वृत्तांत मैं लिखता हूं—

१—खेद है कि उनको बड़ा पक्षपात हुआ परन्तु परमेश्वर का धन्यवाद है कि वे अमरीकन लोग आर्यावर्त वासियों को असभ्य कहते थे, स्वामी जी की कृपा से आर्यावर्तवासियों को गुरुवत् देखकर अपने आपको उनका शिष्य कहने लगे।

२—अमरीकन जो आजकल संसार में विद्वान् और बुद्धिमान् गिने जाते हैं, उनका अब मैनपुरी वाले मूर्ख और नास्तिक समझने लगे ।

३—जो लोग महजबी विचारों पर ध्यान दें वे तो उनको बुरे प्रतीत हुये और जो अन्धाधुन्ध चलें वे बुद्धिमान् ।

४—इंग्लैंड आदि देशों के वो बुद्धिमान लोग उचित बातों को मानते हैं और अनुचित बातों पर ध्यान न देकर ईसाई मत के रहस्य खोलते हैं, उनको निन्दनीय कहकर आर्य लोगों को उनका समानधर्म प्रकट करते हैं ।

५—आर्यसमाज की अपेक्षा ईसाइयों की दिन प्रतिदिन उन्नति प्रकट करके अभिमान करते हैं। यद्यपि हम यह भी जानते हैं कि आर्यावर्त से दो सौ वर्ष में दस लाख असभ्य लोगों को धन, पत्नी आदि के लोभ से फंसाया परन्तु आर्यसमाज ने एक साथ लाखों को अमरीका से एक-दो वर्ष की शिक्षा से निकाल लिया।" 'विद्याप्रकाशक' पत्रिका, जनवरी मास, सन् १८७९; पृष्ठ ७५, ७६।

भारत में आगमन—सारांश यह कि स्वामी जी की पत्रिका के पहुंचने पर १७ दिसम्बर, सन् १८७८ को न्यूयार्क से चलकर लन्दन होते हुये १६ फरवरी, सन् १८७९ को बम्बई में प्रविष्ट हुये[५] और बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि, भूतपूर्व प्रधान आर्यसमाज बम्बई के मकान पर उतरे और वहां उनका सब आदर सत्कार होता रहा।

थियोसोफिस्टों का बम्बई में रहन-सहन—'आर्यवर्धिनी' पत्रिका में लिखा है—'ये लोग ईसाइयों की भांति नहीं रहते। इन लोगों का खाने-पीने का वही नियम है जैसा कि हम लोगों का। मांस और मद्य आदि किसी वस्तु को बिलकुल नहीं छूते। एक-दूसरे का झूठा नहीं खाते प्रत्युत अत्यंत सीधे-सादे ढंग से रहते हैं।" (पृष्ठ १७१)

'इण्डियन मिरर' कलकत्ता में लिखा है—'एक खुले विचार वाले वकीलों की टोली अमरीका की राजधानी न्यूयार्क से बम्बई में आई और उसके आने का हेतु सुनकर भारतवासी आश्चर्यान्वित हैं कि ये लोग, जिनमें यूरोपियन भी हैं और अमरीका के निवासी भी हैं, भारतवर्ष में केवल इस विचार से आये हैं कि पंडित दयानन्द सरस्वती से वेद ज्ञान की प्राप्ति करें।"

('आफताबे पंजाब' से)

बम्बई में उनके कार्य— बम्बई में उन लोगों ने निरन्तर व्याख्यान देने आरम्भ कर दिये जिसको सुनने को हजारों मनुष्य एकत्रित होते रहे। व्याख्यान बम्बई में प्रकाशित होते रहे जो उस समय पाठकों के देखने में प्राय: आये होंगे। चूंकि स्वामी जी उन दिनों हरिद्वार के मेले में उपदेश कर रहे थे, उन लोगों ने वहां पहुंचना चाहा परन्तु स्वामी जी ने रोक दिया कि मेले में उनको कष्ट होगा। मेले में से स्वामी जी १० मार्च, सन् १८७९ की चिट्ठी में समर्थदान को लिखते हैं—

"बम्बई जाकर अमरीका वालों से मिलना और वृत्तांत लिखना"। चैत बदि २, संवत् १९३५, सोमवार।

हरिद्वार से स्वामी जी रोगी होकर देहरादून चले गये। इतने में तीनों सज्जन (उनके) चरणचुम्बन की अभिलाषा लिये हुये बम्बई से चलकर सहारनपुर पहुंचे और स्वामी जी को तार दिया कि हम वहां आवें, आपकी क्या आज्ञा है! स्वामी जी ने उत्तर दिया कि आप लोग पर्वत पर आने का कष्ट न उठावें, हम स्वयं आते हैं।

२९ अप्रैल, सन् १८७९ को कर्नल साहब और लेडी साहिबा वहां पहुंचे और सहारनपुर समाज के समस्त सदस्य उनसे मिलने गये। वे अत्यंत प्रेम से मिले। ३ अप्रैल, सन् १८७९ को शाम को ४ बजे के समय उनका व्याख्यान हुआ जिसका विषय यह था कि "अमरीका में किस प्रकार व्यवहार किये जाते हैं" और वह इस देश में किसलिये आये हैं। उसी सायंकाल आर्यसमाज सहारनपुर ने उनको भोज दिया। इस भोज में खाना निरा भारतीय ढंग पर था जिसको खाकर वे अत्यंत प्रसन्न हुये। 'विद्या प्रकाशक' में लिखा है कि अमरीका के ऋषि-दो मास से आर्यसमाज के अमरीका निवासी सदस्य कुछ काल बम्बई में रहकर अब स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के दर्शनों के लिये देहरादून पहुंचे हैं। जिन सज्जनों को उनके दर्शन करने हों वे देहरादून जा सकते हैं। आर्यसमाज अमृतसर और लाहौर के ६ सदस्य उनके दर्शनों को जायेंगे।

(पृष्ठ २२, मार्च मास, सन् १८७९)

सहारनपुर में—वैशाख सुदि १० संवत् १९३६, बृहस्पतिवार तदनुसार १ मई, सन् १८७९ को स्वामी जी देहरादून से सहारनपुर आये और उन सज्जनों से भेंट की। २ मई अर्थात् शुक्रवार को वहीं रहे।

मेरठ में स्वागत—१२ वैशाख तदनुसार ३ मई, सन् १८७९ शनिवार को प्रात: ९ बजे की रेल में स्वामी जी महाराज कर्नल, मैडम और भाई मूलराज जी के साथ मेरठ पधारे। समाज के प्राय: सभी सदस्य रेलवे स्टेशन पर उनके स्वागत के लिये उपस्थित थे। उनको वहां से सवार करा कर पृथक्-पृथक् कोठियों में, जो इसी काम के लिये पहले से सुसज्जित कराई हुई थीं, उतारा गया। तत्पश्चात् अपने देश की प्रथा के अनुसार समाज की ओर से उनकी दावत बड़े आयोजन और उत्तमता के साथ बाबू छेदीलाल की कोठी पर की गई; इस समय उपस्थापित भोजन को अमरीका वालों ने बहुत पसन्द किया और बड़ी रुचि से खाया। प्रत्येक सदस्य से वे दोनों सज्जन बड़ी सभ्यता के साथ नमस्ते कहकर रेलवे स्टेशन और अपने निवासस्थान पर समय-समय पर मिलते रहे।

१३ वैशाख तदनुसार ४ मई, सन् १८७९ रविवार को स्वामी जी महाराज ने स्वयं परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना के विषय में व्याख्यान दिया जिसके समाप्त होते ही कर्नल आल्काट साहब ने अंग्रेजी भाषा में कहा कि यदि सब सज्जन कल पधारें तो मैं अपने कुछ विचार प्रकट करूंगा। तत्पश्चात् आर्यसमाज के प्रधान ने अमरीका वालों के समाज में पधारने का धन्यवाद किया और जलसा समाप्त हुआ।

थियोसोफिस्टों का व्याख्यान, अपने देशवासियों को मजहब के विषय में निर्बल बताया—१४ वैशाख तदनुसार ५ मई, सन १८७९ सोमवार को व्याख्यान के विज्ञापन उर्दू, अंग्रेजी, देवनागरी में छपवा कर बंटवा दिये गये। सांयकाल ६ बजे व्याख्यान प्रारम्भ हुआ। कर्नल साहब ने प्रथम अमरीका का वृत्तांत वर्णन किया कि वह देश कैसा है, किस ओर और यहां से कितनी दूरी पर है। सारांश यह कि सब बातों में वहां की बड़ी प्रशंसा की परन्तु यह कहा कि धार्मिक विषयों पर वहां और विशेषतया समस्त यूरोप में ईसाई मत और पादरियों के कारण अन्धकार फैल रहा है। इसलिये हमने पांच वर्ष से न्यूयार्क में थियोसोफिकल सोसाइटी स्थापित की है और स्वामी जी को अपना गुरु अर्थात् पथप्रदर्शक मान कर आपकी सेवा में उपस्थित हुये हैं। आशा है कि उनके चरणों की कृपा से हमारी अभिलाषा पूर्ण होगी। उसके पश्चात् दो घण्टे तक विभिन्न बातों का वर्णन करके व्याख्यान समाप्त किया। फिर भाई मूलराज जी ने खड़े होकर कर्नल साहब के व्याख्यान का अनुवाद उर्दू में सब श्रोताओं को सुनाया और अन्त में कुछ थोड़ा-सा वर्णन अपनी ओर से भी किया। तत्पश्चात् स्वामी जी ने केवल दस-बारह मिनट तक कुछ वर्णन किया। क्योंकि विज्ञापन में दिया हुआ समय व्यतीत हो चुका था इसलिये सभा समाप्त हुई और श्रोता लोग चले गये। केवल समाज के सदस्य, दस ईसाई और चार यूरोपियन उपस्थित थे। लेडी ब्लैवेत्स्की ने ईसाइयों को सम्बोधन करके कहा कि यदि किसी सज्जन को हमसे कुछ प्रश्न करना हो तो कीजिये और यह भी पूछ लीजिये कि हम लोग किस विशेष कारण से स्वामी जी महाराज के अनुयायी हुये हैं; परन्तु किसी सज्जन ने चूं तक न की, सब मौन बैठे थे। यूरोपियन मिस्टर केस्पन साहब, हेडमास्टर मेरठ ने कुछ बातें मेम साहब से पूछीं जिनके सन्तोषजनक उत्तर उसी समय पाये। तत्पश्चात् भोजन का समय आ गया, ये सब सज्जन चले गये। अगले दिन अमरीका वालों के निवासस्थान पर श्रोताओं और उत्सुक जनों की भीड़ रही। विभिन्न प्रकार की चर्चायें और वादानुवाद लेडी साहिबा, मिस्टर केस्पन साहब तथा स्वामी जी महाराज और अन्य सज्जनों से होता रहा। लेडी साहिबा ने ईसाई मत, इस्लाम और अन्य मतों का खंडन किया और आर्यधर्म का बड़ा समर्थन कारणों सहित किया। अमरीका वालों की योग्यता और उनके अनुसन्धान में सन्देह का कोई स्थान नहीं है, विशेषतया लेडी साहिबा बड़ी ही विदुषी हैं। एक पुस्तक दो भागों में लेडी साहिबा ने लिखी है जिसमें ईसाई मत का भली-भांति खंडन है और अन्य नवीन मतों का भी।" (**'आर्यदर्पण'), अगस्त मास,** सन् १८७९, पृष्ठ २३३ से २३४ तक।)

इन विषयों में स्वामी जी का पत्र। स्वामी जी का सरल विश्वासी हृदय उन्हें नहीं पहचान सका—स्वयं स्वामी जी ने मंत्री आर्यसमाज शाहजहांपुर को पत्र लिखा है—

"ओ३म् तत्सत्। मंत्री आर्यसमाज शाहजहांपुर आनन्दित रहो। विदित हो कि सब सज्जनों के लिये एक आनन्द का समाचार प्रकट किया जाता है, वह यह है कि कर्नल एच० एस० आल्काट साहब और मैडम एच० पी० ब्लैवेत्स्की जिनके पत्र पहले अमरीका से अपनी समाजों में आये हुये थे, उनसे हमारा पहली मई, सन् १८७९ को सहारनपुर में समागम हुआ और विदित हुआ कि जैसी उनके पत्रों से उनकी बुद्धि प्रकट होती है, उनके मिलने से सौ-गुनी अधिक योग्यता प्रकट हुई और अत्यंत सज्जनता उनकी हमको प्रकट हुई। उनसे दो दिन सहारनपुर में समागम रहा और समाज के सब मनुष्यों ने यथावत् सत्कार किया और उनके उपदेश सुनने से लोगों के चित्त अत्यंत प्रसन्न हुये। पश्चात् वे हमारे साथ मेरठ आ गये। सब समाज के लोगों ने उनका सुन्दर रीति के सत्कार किया और उपदेश का ऐसा सुन्दर समाचार रहा कि जिससे सबको आनन्द हुआ और उपदेश में सब धनी मानी सज्जन, अहलकार और अंग्रेज लोग ५ दिन तक निरन्तर आते रहे। जिस किसी ने सत्यशास्त्रों में, जो कुछ शंका की, उसका उत्तर यथार्थ मिलता रहा अर्थात् अमरीका के सज्जनों ने सबके चित्त पर निश्चय करा लिया कि जितनी भलाई और विद्या है वह सब वेदों से निकली है और जितने वेद विरुद्ध मत हैं वे सब पाखंडी हैं। पश्चात् उक्त सज्जन ७मई, सन् १९७९ को बम्बई चले गये और हम कुछ दिन तक यहां पर ठहरेंगे। फिर जो उक्त सज्जनों से हमारा समागम हुआ है यह इस आर्यावर्त आदि देशों के मनुष्यों की उन्नति का कारण है जैसे कि एक परमौषधि के साथ किसी सुपथ्य का मेल होने से शीघ्र ही रोग का नाश हो जाता है इसी प्रकार के समागम से आर्यावर्त आदि देशों में वेदमत का प्रकाश होने से असत्यरूपी रोग का नाश शीघ्र ही हो जावेगा और उक्त सज्जनों का आचरण और स्वभाव अत्यन्त शुद्ध प्रतीत होता है क्योंकि ये लोग तन, धन से सब प्रकार वेदमत की सहायता करने में अद्वितीय हैं। जो बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि ने उक्त सज्जन लोगों के विषय में यह बात उड़ा दी थी कि ये लोग जादू जानते हैं और जालसाजों के समान छल-कपट की बातें करते हैं, यह सब बात उनकी मिथ्या ही है क्योंकि जिसको जादू कहते हैं वह यथार्थ में पदार्थविद्या है। उस विद्या को उन्होंने मूर्ख लोगों के भ्रम दूर करने और सत्यमार्ग में चलाने के लिये धारण किया है; सो कुछ दोष नहीं है परन्तु हरिश्चन्द्र जैसे लोगों को भूषण भी दूषण दीख पड़ता है। इस हरिश्चन्द्र ने इन सज्जनों के चित्त में ऐसा भ्रम डाला था कि जिसका हम वर्णन नहीं कर सकते परन्तु वे सब हमारे मिलने से दूर हो गये। देखो हरिश्चन्द्र की बेईमानी कि बहुत-सा विघ्न वेदभाष्य के काम में कर चुका है और अब तक भी करता ही चला जाता है। इसलिये सब आर्य भाइयों को उचित है कि इसको आर्यसमाजों से बहिष्कृत ही समझें और आगे को किसी प्रकार का विश्वास न करें। देखो पूर्व काल में हमारे ऋषि-मुनि लोगों को कैसी पदार्थ विद्या आती थीं कि जिससे आत्मा के बल से सब के अन्तःकरण के भेद को शीघ्र ही जान लिया करते थे। जैसे बाहर के पदार्थ विद्या से रेल, तार आदि सिद्ध किये जाते हैं, अब तार आदि विद्या को मूर्ख लोग जादू समझते हैं वैसे ही भीतर के पदार्थों के योग से योगी लोग अदभुत कर्म कर सकते हैं। इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है क्योंकि मनुष्य लोग जिस विद्या को बाहर के पदार्थों से सिद्ध कर सकते हैं उससे कई गुना अधिक भीतर के पदार्थों से सिद्ध कर सकते हैं। जैसे स्थूल पदार्थों की क्रिया से आंखों से बाहर दीखता है ऐसे सूक्ष्म पदार्थों की क्रिया आंखों से नहीं दीख पड़ती। इसलिये लोग आश्चर्य मानते हैं। हां, यह कह सकते हैं कि बहुत से धूर्त लोग इस विद्या को नहीं जानते हैं, झूठे जाल रचकर सत्य विद्या को बदनाम कर देते हैं। इस कारण से झूठों का तिरस्कार और सच्चों का सत्कार सर्वदा उचित है। परन्तु जिस समय किसी का असत्य प्रकट हो जावे उस समय उसे परित्याग करना चाहिये। बहुत दिनों पीछे हरिश्चन्द्र का कपट प्रकट हुआ। इसलिये अपनी आर्यसमाजों से बाहर किया गया। इसी प्रकार जिस-किसी मनुष्य का झूठ प्रकट हो जावे तो उसको तत्काल अपनी समाजों से अलग कर दो, चाहे कोई क्यों न हो। असत्यवादी की सर्वदा

परीक्षा करते रहो; इसी का नाम सुधार है और यही सत्पुरुषों का लक्षण है । तब उसको ज्ञान हुआ जानो जब अपने निश्चय किये हुये मन से भी असत्य जाने और उसको उस समय त्याग दे तो उसके सामने दूसरे का झूठ छोड़ देना क्या आश्चर्य है । ऐसे काम के बिना न अपना सुधार हो सकता है न दूसरे का सुधार कर सकता है । अब इस पत्र को इस वृत्तांत पर पूर्ण करता हूं कि इन सज्जनों के पूर्व पत्रों से और सात दिन की बातचीत करने से निश्चय हो गया है कि उनका तन, मन और धन सत्य का प्रकाश ओर असत्य नाश करने और सब मनुष्यों का हित करने में हैं जैसा कि अपने लोगों का सर्वथा निश्चय से उद्योग है ।" ८ मई, सन् १८७९ । स्थान मेरठ आर्य दर्पण अगस्त १८७९ पृ. २३१ से २३३ विद्या प्रकाशक पत्रिका अगस्त १८७९ पृ. ५४ से ५६ तक और 'आर्यसमाचार' पत्रिका मेरठ, ज्येष्ठ मास, संवत् १९३६, खंड १, संख्या२, पृष्ठ ९ से १३ तक)

बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि के व्यवहार की शिकायत—मुंशी समर्थदान बम्बई से एक पत्र मुंशी नारायणकृष्ण को लिखते हैं—

"पत्र आप का १९ मार्च का लिखा बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि के द्वारा पहुंचा । अब वेदभाष्य का काम उक्त बाबू से लेने मैं यहां आया और सब काम बाबू से मांगा तो डेढ़ मास हुआ कि "हां देते हैं, हां देते हैं"—ऐसा कहता रहा । अब मेरा विचार है कि जो एक दो-दिन में न देगा तो नालिश करनी पड़ेगी । अमरीका वाले यहां आये सो उनके साथ बाबू ने बुरा ही व्यवहार किया और समाज में गड़बड़ कर दी । इसलिये मिति चैत सुदि, संवत् १९३६ के दिन बाबू प्रधानत्व से दूर किये गये और समाज से निकाल दिये गये । भाष्य के पीछे के सब पुस्तक और रजिस्टर आदि सब उसने दबा रखे हैं परन्तु पांचवां अंक मैंने छापने के लिये दे दिया है । तैयार होने के पश्चात् आप लोगों के पास भेजा जावेगा । इतना विलम्ब इस अङ्क में बाबू के कारण हुआ है । अब आप कृपा करके और लोगों को भी सूचना दे दें कि समाज सम्बन्धी और भाष्य सम्बन्धी पत्र ओर रुपया कोई भी बाबू के पास न भेजे । किन्तु भाष्य का रुपया निम्नलिखित ठिकानों पर भेजना चाहिये—१."मुंशी समर्थदान, मारवाड़ी बाजार, बम्बई ।" २."पण्डित उमरावसिंह, मंत्री आर्यसमाज, रुड़की ।" इन दोनों ठिकानों से ही पुस्तक आदि भी मिलेंगे । २ अप्रैल, सन् १८७९ ।

स्वामी जी के एक पत्र का अंश, थियोसोफिस्टों से स्वामी जी की भेंट और उनका वृत्तांत

"बम्बई जाकर अमरीका वालों से मिलना और हाल लिखना-हम देहरादून से चलकर सहारनपुर आये और वहां पर आल्काट साहब और लेडी ब्लैवेत्स्की और मूल जी ठाकरे[६] जो कि अमरीका से आये हैं, भेंट हुई । दो दिन वहां ठहर कर हम मेरठ आ गये हैं । यहां पर पांच छः दिन ठहरेंगे । पश्चात् साहब बम्बई आवेंगे और हम कुछ दिन यहीं वास करेंगे । परन्तु आजकल कुछ अवकाश नहीं है । साहब की और हमारी सम्मति मिल गई है, किसी प्रकार का भेद नहीं है और जो कुछ हरिश्चन्द्र ने उनके चित्त में शंङ्का डाली थी वह सब निवृत्त हो गई है । साहब अत्यंत शुद्ध अन्तःकरण सज्जन पुरुष हैं, उनमें किसी प्रकार का छलछिद्र नहीं है परन्तु हरिश्चन्द्र ने ऐसा कपट किया जिसको हम कथन नहीं कर सकते हैं परन्तु अब सावधान रहना चाहिये ।" वैशाख सुदि १४, संवत् १९३६ । दयानन्द सरस्वती ।

दूसरे पत्र का अंश—"कर्नल आल्काट साहब और लेडी ब्लैवेत्स्की समाज में गये थे और आज उक्त साहब सदर मेरठ में उपदेश करेंगे और कल-परसों यहां से बम्बई जाने वाले हैं । उक्त साहबों की अपनी समाज से कोई बात विरुद्ध नहीं है अर्थात् अनुकूल आचरण स्वभाव है क्योंकि चार-पांच दिन से जो हम इनके साथ बात करते हैं तो ये लोग बिलकुल शुद्ध-अन्तःकरण प्रतीत होते हैं । थियोसोफिकल सोसाइटी में जो हमारा नाम लिखा गया है यदि तुम उस पत्र को भेज देते तो हम साहब को दिखला देते परन्तु मौखिक जो साहब से कहा गया तो उन्होंने उत्तर दिया कि हमारी थियोसोफिकल-

सोसाइटी का अभी तक यह प्रयोजन था कि सब मतों के लोग इसमें सम्मिलित हों और अपनी -अपनी सम्मति देवें । अब आर्यसमाज के नियमों को समझ कर जिस प्रकार आपकी आज्ञा होगी उसी प्रकार किया जावेगा । भविष्य में ऐसा न होगा और जो आर्यसमाज के नियमों को पसन्द नहीं करता है वह थियोसोफिकल सोसाइटी में नहीं रहेगा । इस वृत्तांत को जब मूल जी भाई आवेंगे; तब तुमको समझा देंगे ।; ५ मई, सन् १८७९ । मेरठ । दयानन्द सरस्वती ।

एक अन्य पत्र का अंश—"पाताल देशस्थों का पत्र तुम्हारे द्वारा अब तक नहीं पहुंचा है । उनको हमारा नमस्ते कहके कुशल पूछना और अब वे क्या काम करते हैं, सो लिखते रहना । जिन बाबू छेदीलाल और शिवनारायण गुमाश्ता कमसरिया, मेरठ की कोठी पर वे उतरे थे उनसे व्याख्यान छपवाकर भेजने को कह गये थे; सो अब तक नहीं भेजा, कदाचित् भूल गया, याद दिला देना । हम यहां से परसों अलीगढ़ जावेंगे । २० मई, सन् १८७९ । मेरठ । दयानन्द सरस्वती । जेठ बदि १४, मंगलवार ।

अपनी ओर से हस्ताक्षर करने का अधिकार दे दिया—स्वामी जी २७ मई, सन् १८७९ की चिट्ठी में कर्नल साहब को अपनी ओर से पत्रों पर हस्ताक्षर करने का अधिकार देते हैं ।" ('थियोसोफिस्ट' से) ।

सीलोन की चिट्ठी हमने उनके पास वापस की हैं । उनको हमारा नमस्ते । २८ मई, सन् १८७९ । हस्ताक्षर—दयानन्द सरस्वती ।

एक अन्य पत्रांश—"अमरीका वालों से हमारी नमस्ते कह देना । वेदभाष्य के अंग्रेजी करने के विषय में अमरीका वालों के पत्र का उत्तर हमने भेज दिया है । उसका उत्तर अभी तक हमारे पास नहीं पहुंचा । उनके पास जाओ तो प्रसंग से कह देना कि अब तक हमारा शरीर अच्छा नहीं था; इसलिये विलायत की चिट्ठियों का उत्तर नहीं भेजा है । अब कुछ शरीर अच्छा है, अब भेजेंगे । वहां बम्बई में इस समय हम नहीं जा सकते किन्तु पटना से दानापुर जावेंगे ।" ३१ जुलाई, सन् १८७९ । मुरादाबाद ।

"आज मुरादाबाद से बदायूं जाते हैं ।"

हमारा शरीर बहुत दिनों से रोगी है, अति दुर्बल हो गया है सो तुम जाकर अमरीका वालों से कहना कि और कुछ न समझें । हमारा शरीर दो-दिन से कुछ अच्छा है; जो ऐसा ही रहेगा तो हम उनके पत्र का उत्तर शीघ्र भेजेंगे और अपने जन्म से लेकर दिनचर्या[७] अभी कुछ संक्षेप से देवनागरी और अंग्रेजी में करवा कर हम उनके पास भेज देंगे और विलायत के पत्रों का उत्तर भी शीघ्र भेजेंगे । अमरीका वाले लोग समाचारपत्र छापेंगे सो उनको भूमिका आदि से बातें समझा देना ।" २१ अगस्त, सन् १८७९ दयानन्द सरस्वती । बरेली ।

अमरीका वालों ने स्वामी जी को सुनकर कही हुई बातों से अपनी लीला की पुष्टि की—"अमरीका वालों के पास हम एक पत्र भेजेंगे तो उसमें सब बातें लिखेंगे । आबू में कोई विष खाता था, यह बात हमने सुनी हुई कही थी; इसको हम ठीक नहीं समझते । इसलिये जन्म चरित्र में नहीं लिखी और एक साधु समुद्र पर चलता था ऐसी असम्भव बातें मैंने कदापि न लिखी होंगी ।" १७ सितम्बर, सन् १८७९ । दयानंद सरस्वती । शाहजहांपुर ।

स्वामी जी के एक पत्र का अंश—"और कर्नल आल्काट साहब के पत्र आये । उसका उत्तर पीछे से तुमको नागरी में भेजेंगे । उनकी प्रतिलिपि अंग्रेजी में करके दे देना तो हम सीधा भेज दिया करें ।" ११ अक्तूबर, सन् १८७९ । कानपुर । दयानन्द सरस्वती ।

६ नवम्बर, सन् १८७९ को स्वामी जी मैनेजर वेदभाष्य को लिखते हैं— "कर्नल आल्काट साहब को मेरे शरीर का हाल विदित नहीं है कि दस मास तक तो दस्तों का रोग रहा; पश्चात् एक बड़ा ज्वर आने लगा; सो तीन बार आकर छूट गया है। अब दोनों रोग नहीं है परन्तु विचार करो कि इतने रोग के पश्चात् निर्बलता और सुस्ती कितनी हो सकती है। इसमें भी हमको कितने काम आवश्यक हैं जिनसे क्षण भर अवकाश नहीं मिल सकता। जो एक जन्म चरित्र के लिखने-लिखाने का काम ही होता तो एक बार लिख-लिखवा के भेज दिया होता।" ६ नवम्बर, सन् १८७९। दानापुर। दयानन्द सरस्वती।

स्वामी जी की कर्नल और मैडम से बनारस में दूसरी भेंट

(१५ दिसम्बर, सन् १८७९)

स्वामी जी जब १९ नवम्बर[८], सन् १८७९ को दानापुर से बनारस पहुंचे तो स्वामी जी के दर्शन निमित्त कर्नल साहब, समाचारपत्र 'पायनियर', के सम्पादक सेंट साहब[९], मैडेम ब्लैवेत्स्की और एक मेम साहब—ये चारों सज्जन १५ दिसम्बर, सन् १८७९ को बनारस में पधारे और वहां बहुत समय तक रहे। परस्पर बहुत वार्तालाप होता रहा। स्वयं स्वामी जी १७ दिसम्बर के पत्र में मैनेजर वेदभाष्य को लिखते हैं-

"कर्नल आल्काट आदि सब अंग्रेज १५ दिसम्बर, सन् १८७९ को मेरे पास आ गये और मेरा संवाद उनसे प्रारम्भ हो गया।" बनारस। दयानन्द सरस्वती।

कई स्थानों पर कर्नल साहब ने व्याख्यान दिये और प्राय: प्रत्येक स्थान पर स्वामी जी की प्रशंसा करते रहे और अपने आपको वेदमतानुयायी प्रकट करते रहे। स्वामी जी अपने एक पत्र में बाबू माधोलाल जी को लिखते हैं कि-"ता० १५ दिसम्बर, सन् १८७९ को निम्नलिखित अंग्रेज सज्जन बनारस पधारकर मेरे पास राजा विजयनगर के बाग में जो महमूदगंज के समीप है, उतरेंगे। इसलिये आपको लिखा जाता है कि आपको इन अंग्रेजों से भेंट करनी हो तो १९ ता० तक मेरे पास उपर्युक्त बाग में चले आइये और कृपया तनिक छपरा में महावीरप्रसाद आदि को भी इस बात से सूचित कीजिये।" १२ दिसम्बर, सन् १८७९।

नाम उन अंग्रेज सज्जनों के जो बनारस में १५ (दिसम्बर) को आवेंगे-कर्नल एच० एस० आल्काट साहब बहादुर अमरीकन; मैडम एच० पी० ब्लैवेत्स्की, ई० एफ० सेण्ट साहब प्रबन्धक-'पायनियर' समाचारपत्र-इलाहाबाद। इन अंग्रेजों के अतिरिक्त उनके साथी और भी दो तीन अंग्रेज आवेंगे।" दयानन्द सरस्वती।

वहां अच्छी प्रकार कई विषयों पर कई दिन तक वादानुवाद होकर सब बातों का निर्णय करके स्वामीजी ने विशिष्ट विज्ञापन के नाम से निम्नलिखित विज्ञापन प्रकाशित किया—

विशिष्ट विज्ञापन

आर्यसमाज थियोसोफिकल सोसाइटी की शाखा नहीं है

सब सज्जनों को विदित हो कि आर्यसमाज और थियोसोफिकल सोसाइटी का जैसा सम्बन्ध है वैसा प्रकाशित कर देना मुझको अत्यंत उचित इसलिये हुआ कि इस विषय में मुझसे बहुत मनुष्य पूछने लगे और इसका टीक अभिप्राय न जान उलटा निश्चय कर कहने लगे कि "आर्यसमाज थियोसोफिकल सोसाइटी की शाखा है"— इत्यादि भ्रम की निवृत्ति कर देनी आवश्यक हुई। जो ऐसी-ऐसी बातों के प्रसिद्ध रीति से उत्तर न दिये जायें तो बहुत मनुष्यों को भ्रम अत्यन्त बढ़कर

विपरीत फल होने का सम्भव हो जाये । इसलिये सब आर्यों और अनार्यों को उसका सत्य-सत्य वृत्तान्त विदित करता हूं कि जिससे सत्य दृढ़ता और भ्रमोच्छेद हो कर सबका आनन्द ही सदा बढ़ता जाये । बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि जो किसी समय बम्बई आर्यसमाज के प्रधान थे, उनसे न्यूयार्क नगर अमरीका की थियोसोफिकल सोसाइटी के प्रधान एच० एस० कर्नल आल्काट साहब और मैडम एच०पी० ब्लैवेत्स्की आदि से कुछ दिन आगे, पत्र द्वारा एक-दूसरी सभा के नियम आदि जान के संवत् १९३५ चैत्र में मेरे पास भी पत्र न्यूयार्क से आया था कि हमको भी आर्यावर्ती प्राचीन वेदोक्त धर्मोपदेश, विद्यादान कीजिए । मैंने उसके उत्तर में अत्यन्त प्रसन्नता से लिखा कि मुझसे जितना उपदेश बन सकेगा यथावत करूंगा । इसके पश्चात् उन्होंने एक डिप्लोमा मेरे पास इसलिए भेजा कि थियोसोफिकल सोसाइटी आर्यावर्तीय आर्यसमाज की शाखा करने के विचार का निमित्त था । जब यह डिप्लोमा फिर यहां से वहां गया, सभा करके सभासदों को सुनाया । तब बहुत से सभासदों ने इस बात में प्रसन्न होकर उसको स्वीकार किया और बहुतों ने कहा कि हम ठीक-ठीक जानने के पश्चात् इस बात को स्वीकर करेंगे ।

अमरीका में सभी थियोसोफिस्ट आर्यसमाज के सभासद बनने को तैयार नहीं हुए इस पर स्वामी जी का सुझाव—जब वहां ऐसा विरोध पक्ष हुआ फिर मेरे पास वहां से पत्र आया कि अब हम क्या करें ? इस पर मैंने पत्र लिखा कि यहां आर्यावर्त में अब तक भी बहुत मनुष्य आर्यसमाज के नियमों को स्वीकार नहीं करते,थोड़े से करते हैं, तो वहां वैसी बात के होने में क्या आश्चर्य है । इसलिए जो मनुष्य आर्यसमाज के नियमों को अपनी प्रसन्नता से मानें वे वेदमतानुयायी और जो न मानें वे केवल सोसाइटी के सभासद् रहें । उनका अलग होना अच्छा नहीं इत्यादि विषय लिखके मैंने बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि के पास पत्र भेजा और उनको लिखा कि इस पत्र की अंग्रेजी कर शीघ्र वहां भेज दीजिये परन्तु उन्होंने वह पत्र न्यूयार्क न भेजा । जब समय पर पत्र का उत्तर वहां न पहुंचा तब जैसा मैंने उत्तर लिखा था वैसे ही वहां दिया गया कि जो वेदों को पवित्र सनातन ईश्वरोक्त मानें वे वेद की शाखा से गिने जायें और आर्यसमाज की शाखा रहें परन्तु वह सोसाइटी की भी शाखा रहें क्योंकि वह सोसाइटी के भी अंगवत् हैं, अर्थात् न आर्य समाज थियोसोफिकल सोसाइटी की शाखा और न थियासोफिकल सोसाइटी आर्यसमाज की शाखा है । ऐसा सब सज्जनों को जानना उचित है, इससे विपरीत समझना किसी को योग्य नहीं ।

सांयोगिक घटना परमेश्वर की कृपा से—देखिये यह बड़े आश्चर्य की बात है कि जिस समय बम्बई में आर्यसमाज का स्थापन हुआ उसी समय न्यूयार्क में थियोसोफिकल सोसाइटी का आरम्भ हुआ । जैसे आर्यसमाज के (उद्देश्य) नियम लिख के माने गये वैसे ही (उद्देश्य) नियम थियोसोफिकल सोसाइटी के निश्चित हुये । और जैसा उत्तर मैंने तीसरे पत्र में बाहर लिख कर वेद की शाखा और सोसाइटी के लिये भेजा था उसके पहुंचने के पूर्व ही न्ययार्क में वैसा ही कार्य किया गया । क्या यह सब कार्य ईश्वरीय नियम के अनुसार नहीं हैं ? क्या ऐसे कार्य अल्पज्ञ जीव के सामर्थ्य से बाहर नहीं हैं कि जैसे कार्य पृथ्वी के ऊपर जिस समय में हों वैसे ही भूमि के तले (पाताल) अर्थात् अमरीका में उसी समय हो जायें । ये बड़ी अदभुत बातें जिसकी सत्ता से हुई हैं अर्थात् अमरीका निवासी मनुष्यों का वेदोक्त सनातन, सुपरीक्षित धर्म व्यवहारों में बान्धवीय प्रेम प्रकट किया है, उस सर्वशक्तिमान् परमात्मा को कोटि-कोटि धन्यवाद देता हूं कि हे सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक, दयालु, न्यायकारिन् परमात्मन् ! जैसा आपने कृपा से यह कृत्य किया है वैसे भूगोलस्थ सब धर्मात्मा और विद्वान मनुष्यों को उसी वेदोक्त सत्यमार्ग में स्थिर शीघ्र कीजिये जिससे परस्पर विरोध छूट मित्रता हो के सब मनुष्य एक-दूसरे की हानि करने से पृथक् हो अन्यों का सदा उपकार किया करें । वैसा ही हे मनुष्यो ! आप लोग भी उस परब्रह्म की प्रार्थनापूर्वक पुरुषार्थ करें कि जिससे हम सब लोग एक दूसरे को दु:खों से छुड़ाते और आनन्द से युक्त रहें । हे बन्धुवर्ग ! जैसा आनंद मनुष्यों को छ: हजार वर्ष पूर्व था वैसा समय हम लोग कब देखेंगे ? धन्य हैं वे मनुष्य जो जैसा अपना हित चाहते और

अहित नहीं चाहते थे और वैसा ही वर्तमान सबके साथ सदा करते थे । क्या यह छोटी बात है ? इसे लिखने में मेरा अभिप्राय यह है कि जो बातें सब मनुष्यों के सामने सत्य हैं, जिनके मिथ्या होने के लिये कोई भी मनुष्य साक्षी नहीं दे सकता है; उन बातों को धर्म, उनसे विरुद्ध बातों को अधर्म जान मान के भूगोलस्थ मनुष्यों को धर्म की बातों को ग्रहण करना और अधर्म की बातों को छोड़ देना क्या कठिन और असम्भव है ? इसलिये ऐसा ही वर्तमान छः हजार वर्षों से पूर्व था इसलिये कोई दूसरा मत प्रचरित नहीं होता था । जैसे अज्ञान से आजकल सब मनुष्य एक-एक अपनी-अपनी जाति और एक-एक अपने-अपने मत की बढ़ती और सब की हानि करने में प्रवृत्त हो रहे हैं वैसा वेदमत के प्रचार समय में न था किन्तु सब मनुष्य सबकी बढ़ती करने में प्रवृत्त होकर किसी की हानि करना कभी नहीं चाहते थे । सब को अपने समान समझ दुःखी किसी को न करते और सबको सुखी किया करते थे वैसे ही अब भी होना अवश्य चाहिये । क्या जब सब धार्मिक विद्वान् मनुष्य पुरुषार्थ से सत्य-सत्य बातों में एक सम्मति और मिथ्या बातों में एक विमति कर एकमत किया चाहें तो असम्भव और कठिन है ? कभी नहीं, किन्तु संभव और अति सुगम है । जितना अविद्वानों के विरोध और मेल से मनुष्यों को हानि और लाभ नहीं होता उतने से हजार गुना हानि और लाभ विद्वानों के विरोध और मेल से होता है । इसलिये सब सज्जन विद्वान् मनुष्यों को अत्यन्त उचित है कि शीघ्र विरोध मतों को छोड़ उनसे विरुद्ध बातों को अधर्म मान के, एक (तथा) अविरुद्ध मत का ग्रहण कर परस्पर आनन्दित हों । यही वेद आदि शास्त्र, प्राचीन सब ऋषि-मुनि और मेरा भी सिद्धांत और निश्चय है । बुद्धिमानों के सामने अधिक लिखना आवश्यक नहीं क्योंकि वे थोड़े ही लेख से सब कुछ जान लेते हैं । ओ३म् । मिति श्रावण बदि ५, संवत् १९३७ सोमवार ।"

(हस्ताक्षर) स्वामी दयानन्द सरस्वती ।

कर्नल साहब से मेरठ में स्वामी जी की तीसरी भेंट (९ सितम्बर, सन् १८८० से १२ सितम्बर, सन् १८८० तक)

मतभेद का आभास मिलने लगा—मेरठ निवास के समय स्वामी जी ने एक विशिष्ट विज्ञापन मिति श्रावण बदि ५, संवत् १९३७ सोमवार तदनुसार २९ जुलाई, सन् १८८० को छपवा कर प्रकाशित किया जो इस प्रकार है । मिति १० सितम्बर, सन् १८८०, बृहस्पतिवार को कर्नल साहब, लेडी ब्लैवेत्स्की सहित शिमला जाते हुये स्वामी जी महाराज की भेंट के लिये यहां पधारे और बाबू छेदीलाल साहब गुमाश्ता कमसरियट की कोठी पर उतरे ।

यों तो कर्नल साहब और लेडी साहिबा से बहुत-सी बातों पर चर्चा हुई और उन्होंने ही योगविद्या आदि के विषय में, पंडित बलदेवप्रसाद साहब हेडमास्टर नार्मल स्कूल, मेरठ द्वारा बहुत सी व्याख्यायें स्वामी जी की सुनीं और प्रश्न पूछे परन्तु कुछ बातों में जैसे समाज के एक दो नियमों और ईश्वर विषय आदि चर्चाओं में बहुत कुछ उनमें और स्वामी जी में मतभेद रहा । परन्तु जैसे कि किसी ने कहा है—"आं[1] रा कि हिसाब पाक अस्त अज महसिबा च बाक" सब प्रकार से उन का सन्तोष करा दिया गया, परन्तु ईश्वर विषय में उनका भ्रम दूर न हुआ । परन्तु मुझको विश्वास है कि यदि वह स्वामी जी के वचनों को इस बारे में सुनते तो निःसन्देह सत्यासत्य को समझ पाते परन्तु वे तो ऐसे हठ पर आये कि ईश्वरविषय में अपना विश्वास प्रकट करते हुये घबरा गये और स्वामी जी के अनुरोध करने पर भी बातचीत करने या सुनने को फिर बिलकुल सहमत न हुये ।

---

1. अर्थात् जिनका हिसाब साफ है उसको हिसाब लेने वाले से क्या भय ? —अनुवादक

कर्नल साहब ने दो दिन समाज में जाकर थोड़ी-थोड़ी देर तक अंग्रेजी में अपने मीलों की यात्रा के वृत्तान्त को कह सुनाया। कुछ इस देश वालों को प्राचीनकाल की बातें सुनाकर उत्साह दिलाया और एक दिन बाबू छेदीलाल साहब की कोठी पर व्याख्यान भी दिया जिसमें उन्होंने प्रथम आर्यसमाज के नियमों को जिसका अनुवाद अंग्रेजी में हमारे प्रधान जी ने उनको कर दिया था, सभा में उपस्थित लोगों को पढ़कर सुनाया। तत्पश्चात् अपनी सोसाइटी के नियमों को पढ़ा और एक दूसरे की तुलना करके दिखाई फिर मीलों की यात्रा की वास्तविकता और वहां के पादरियों से शास्त्रार्थ का वृत्तान्त वर्णन किया और स्वामी जी महाराज से जो कुछ इस बार बातचीत हुई थी, जिसका वर्णन मैं संक्षेप में कर चुका हूं, उसका भी और थियोसोफिकल सोसाइटी और आर्यसमाज के सम्बन्ध का वर्णन किया जिसको स्वामी जी ने भी इससे पहले भाषा के विज्ञापन द्वारा प्रकाशित किया था। इसके पश्चात् वे अगले दिन शिमला चले गये। 'आर्यसमाचार' मेरठ, कार्तिक मास, संवत् १९३७, खंड २ संख्या १९, पृष्ठ २२१, २२२)।

इसके पश्चात् स्वामी जी १२ मई, सन् १८८१ को अजमेर से भाई जवाहरसिंह[१०] को एक पत्र में लिखते हैं—"मैडम ब्लैवेत्स्की के पत्र का उल्था तुमने भेजा था सो आ गया और उसका उत्तर भी हमने बम्बई भेज दिया।"

फिर दूसरे पत्र में जो २२ जुलाई, सन् १८८१ का है, लिखते हैं- 'लैडी ब्लैवेत्स्की के पत्र का उत्तर हमने दे दिया है। इसमें विशेष बात यही है कि हम उपदेश से तुम्हारी सब प्रकार से सहायता करते रहेंगे और तुम्हारी सोसाइटी के सभासद हैं।"

स्वामी जी और कर्नल साहब की बम्बई में चौथी या अन्तिम भेंट (सन् १८८२)

कर्नल आल्काट की वास्तविकता खुलने लगी—दिसम्बर, सन् १८८१[११] के अन्त में स्वामीजी रेलवे स्टेशन बम्बई पर पहुंचे। चूंकि उनके आने की सूचना पहले ही पहुंच चुकी थी इसलिये कर्नल एच०एस० आल्काट साहब, प्रधान-थियोसोफिकल सोसाइटी, आर्यसमाज बम्बई के कई सम्मानित सदस्यों सहित सवारी लेकर उपस्थित थे। गाड़ी के पहुंचते ही सब अत्यन्त प्रेमोत्साह से बड़ी नम्रता के साथ नमस्ते कह कर मिले। स्वामी जी ने सब के आनन्द कुशल पूछ, घोड़े गाड़ी पर चढ़कर बालकेश्वर गोशाला पर आकर सब की सम्मति से (जो नियत मकान था) उसमें निवास किया। यह एक अत्यंत मनोहर और उत्तम स्थान है, समुद्र तट पर स्थित है। इस मकान के नीचे अरब का समुद्र टकराता है। स्वामी जी इस स्थान पर ७ मास तक बम्बई में विराजमान रहे।

बाबू जनकधारीलाल साहब वर्णन करते हैं—"बाबू रामनारायणलाल, पंडित आदित्यनारायण और मैं-तीनों जब चैत्रमास, संवत् १९३९ में स्वामी जी के दर्शन और बम्बई समाज के उत्सव के निमित्त दानापुर से बम्बई गये तो वहां पर २१ मार्च, सन् १८८२ मंगलवार को स्वामी जी ने मुझे कुछ चिट्ठियां दिखलाई जो उनके और कर्नल आल्काट के मध्य लिखी गई थीं। तब स्वामी जी ने एक चिट्ठी इस आशय की मैडम ब्लैवेत्स्की और कर्नल आल्काट के नाम बम्बई से लिखवाई कि मेरठ में आपने एक व्याख्यान दिया था जिससे विदित हुआ कि आप लोगों को ईश्वर की विद्यमानता में सन्देह है और आप लोगों ने जो अमरीका से चिट्ठी पहले लिखी थी, अपने मत का नाम उसमें "थियोसोफिस्ट" लिखा था। हमने 'थियोसोफिस्ट' शब्द का अर्थ अंग्रेजी जानने वालों से पूछे। उन लोगों ने कोष का अध्ययन करने के पश्चात् उत्तर दिया था कि 'थियोसोफी' शब्द का वास्तविक अर्थ 'ईश्वर की बुद्धिमत्ता' है। इसलिये इससे हमने यह समझा था कि तुम लोग ईश्वरोपासक हो, इसलिये तुमसे मित्रता करने में मेरे लिये रुकावट नहीं रही थी। अब तुम्हारे व्याख्यान इसके विरुद्ध दीखते हैं और हमसे तुमसे मित्रता हो चुकी है। इसलिये कल के दिन या जितना शीघ्र हो सके तुम मेरे पास चले आओ या हमको अपने पास बुला लो या कोई और स्थान नियत करो जहां हम दोनों मिलकर इस विषय में शास्त्रार्थ करें।

यदि तुम से हो सके तो हमारे मन से ईश्वर का विचार उठा दो और अपने जैसा बना लो अन्यथा हमसे हो सकेगा तो हम तुमको ईश्वर का प्रमाण दे देंगे और अपने जैसा बना देंगे ।

मैं नास्तिकों का खण्डन करने में आलस्य करना पाप समझता हूं—इस पत्र को स्वामी जी ने बम्बई रहने वाले एक रईस को सौंपा कि जाओ इसका उत्तर ले आओ । "हमको आये कई दिन हो गये और जिस दिन हम बम्बई उतरे थे, स्टेशन पर मिलने के लिये कर्नल साहब आल्काट और ब्लैवेत्स्की भी आये थे और उसी समय हमने उनसे कहा था कि ईश्वर के विषय में जो विचार हैं उसका हमारे-तुम्हारे बीच में एक हो जाना बहुत आवश्यक है । उन लोगों ने कहा कि इस में शीघ्रता क्या पड़ी है, किसी न किसी दिन हो रहेगा । हमने उत्तर दिया कि यह सबसे आवश्यक बात है, इसमें विलम्ब करना अनुचित है परन्तु अभी तक न आल्काट साहब और न मैडम ब्लैवेत्स्की ने इसका कोई प्रबन्ध किया । तुम जाकर मौखिक भी समझा देना कि हमको इस बात की बड़ी इच्छा है । यदि वह इस बात को अस्वीकार करेंगे तो हम लोगों के मध्य मित्रता रहनी कठिन हो जायेगी क्योंकि मैं नास्तिकों को खंडन करने में आलस्य करना पाप समझता हूं ।"

परिणामत: वह मनुष्य गया और दूसरे समय में यह उत्तर लाया कि "आल्काट साहब दिसौर[१२] चले गये और कहा कि हमको अवकाश नहीं है कि हम आपसे इस सम्बन्ध में शास्त्रार्थ करें ।

थियोसोफिस्टों के विरुद्ध स्वामी जी का बम्बई में पहला व्याख्यान— २२ मार्च, सन् १८८२को स्वामी जी ने दूसरा पत्र एक पारसी से लिखवाया कि आल्काट साहब ने हमको वचन दिया था कि हम शीघ्र इस बारे में शास्त्रार्थ करेंगे और उस प्रतिज्ञा को बिना पूरा किये दूसरे स्थान को चले गये । सो यदि तीन-चार दिन में आप अकेली या आल्काट साहब के साथ आकर इस बखेड़े को न निपटा लोगी तो मैं मंगलवार २८ मार्च, सन् १८८२ को तुम्हारे विरुद्ध व्याख्यान काऊस जी हाल[१३] में दूंगा । ऐसा ही हुआ अर्थात् जब उसका कोई उत्तर न आया तो नियत तिथि के दिन जिसका नोटिस वहां के दो गुजराती और मराठी समाचारपत्रों में छप गया था, स्वामी जी काऊस जी हाल में सन्ध्या के ६ बजे हम तीन[१४] मनुष्यों के साथ पहुंचे । लगभग सात आठ सौ मनुष्यों की सभा में वहां थियोसोफिस्टों के विरुद्ध व्याख्यान दिया और बीच-बीच में जहां आवश्यक होता था वहां से उन चिट्ठियों को सभा में पढ़वाया कि जो आल्काट साहब ने अमरीका से स्वामी जी के पास भेजी थी और जहां-जहां ईश्वर के विषय में चर्चा थी । दो घण्टे तक व्याख्यान हुआ । अन्त में स्वामी जी के कहने के अनुसार पांच मिनट हमने भी भाषय दिया ।

थियोसोफिस्टों से आर्यसमाज का सम्बन्ध-विच्छेद और विज्ञापन द्वारा सूचना

फिर निम्नलिखित पत्र थियोसोफिस्टों से सम्बन्धविच्छेद के रूप में स्वामी जी ने लिखकर बम्बई में प्रकाशित कराया और इस चिट्ठी के साथ समाजों में भेजा—"मंत्री आर्यसमाज आनन्दित रहो । थियोसोफिकल सोसाइटी के सम्बन्ध में हमने इस स्थान पर पत्र छपवाया है, तुमको भेजते हैं । तुम उनको छोटी-छोटी समाजों में भेज देना और जब यह पत्र पहुंचे तो इसका एक व्याख्यान दे दो कि स्वामी जी ने थियोसोफिस्टों से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया है ।" मार्च, सन् १८८२ । बम्बई ।

थियोसोफिस्टों की गोलमाल पोलपाल-दसियों उदाहरण—श्री स्वामी जी ने और आर्य समाज के लोगों ने उनके पहले के पत्रों और व्यवहारों से यह अनुमान किया था कि उनसे आर्यावर्त देश का कुछ उपकार होगा परन्तु वह अनुमान व्यर्थ हो गया ।

(१)—क्योंकि जो-जो उन्होंने प्रथम अपनी चिट्ठियों में प्रसिद्ध लिखा था कि हमारी थियोसोफिकल सोसाइटी आर्यसमाज की शाखा हुई, उससे ये लोग बदल गये हैं।

(२)—उन्होंने कहा था कि वेदोक्त सनातनधर्म के ग्रहण और संस्कृत विद्या पढ़ने को विद्यार्थी होने के लिये आते हैं; वह तो न किया किन्तु अब किसी धर्म को नहीं मानते और न कुछ किसी धर्म की जिज्ञासा की, न आज तक संस्कृत विद्या पढ़ने का आरम्भ किया और न करने की आशा है।

(३)—उन्होंने कहा था कि जो इस सोसाइटी के सभासदों से फीस आवेगी, वह आर्यसमाज के लिये होगी और बहुत-सी पुस्तकें भेंट की जायेंगी। वह तो कुछ भी न किया परन्तु जो हरिश्चन्द्र चिन्तामणि के पास सात सौ रुपये भेजे थे वे भी निगल के बैठे रहे। पुस्तकों का दान करना तो दूर रहा किन्तु जिन बाबू छेदीलाल और शिवनारायण आर्यसमाज मेरठ के सभासदों ने उनके सत्कार के स्थान, मान, सवारी ओर खान-पान आदि में सैंकड़ों रुपये व्यय किये इतने पर भी मैडम एच०पी० ब्लैवेत्स्की और एच०एस० कर्नल आल्काट साहब ने जो एक पुस्तक उनको दिया था, उसके तीस रुपये झट ले लिये और लज्जित भी न हुये। इसके अतिरिक्त सहारनपुर, अमृतसर और लाहौर आदि के आर्यसमाजों ने बहुत सा सत्कार किया, यह भी उन्होंने नहीं समझा और स्वामी जी ने भी जब तक बना उनका उपकार किया। उनको न मानकर व्यर्थ लिखते हैं कि हमने स्वामी जी का बहुत सहाय किया परन्तु स्वामी जी कहते हैं कि कुछ भी नहीं किया तो प्रसिद्ध क्यों नही करते। सो कुछ भी प्रकट नहीं करते फिर कौन मान सकता है?

(४) —प्रथम उन्होंने अपने पत्रों में और यहां आके स्वामी जी और सब के सामने ईश्वर को स्वीकार किया। फिर उसके विरुद्ध मेरठ में स्वामी जी और अनेक भद्रपुरुषों के सामने दोनों ने कहा कि हम दोनों ईश्वर को नहीं मानते। क्या यह पूर्वापर विरुद्ध नहीं है? तब स्वामी जी ने कहा कि तुम ईश्वर के मानने का खंडन करो और हम मंडन करें, जो सच हो उसको मान लीजिये। उन्होंने इस बात को भी स्वीकार नहीं किया।

(५)— जब वे आर्यावर्त देश में आने लगे तब एक समाचार इण्डियन स्पैक्टेटर (Indian Spectator) पत्र में मिति २४ जुलाई, सन् १८७८ को छपवाया था कि न हम बौद्ध हैं; न हम क्रिश्चियन और न हम ब्राह्मण अर्थात् पुराण मत के मानने वाले हैं; किन्तु हम आर्यसमाजी हैं। अब इसके विरुद्ध स्पष्ट छपवाया कि हम बहुत वर्षों से बौद्ध थे और अब भी हैं। क्या यह कपट और छल की बात नहीं है? जनवरी, सन् १८८० की चिट्ठी से सिद्ध होता है कि वे ईश्वर को मानते थे और आठ महीने के पश्चात् उसी सन् के अक्तूबर महीने में मेरठ में कहा कि हम दोनों ईश्वर को नहीं मानते। यह उनका छल नहीं तो क्या है?

(६)—यहां आके आर्यसमाज की शाखा थियोसोफिकल सोसाइटी प्रथम स्वीकार करके पश्चात् कहा कि मुख्य सोसाइटी न आर्यसमाज की शाखा और न आर्यसमाज मुख्य सोसाइटी की शाखा है किन्तु जो एक दूसरे वेद की शाखा दोनों के सांझे की है। इससे विरुद्ध अब छाप के प्रकट किया कि हमारी सोसाइटी अभी आर्यसमाज की शाखा नहीं हुई थी और हम आर्यसमाज के बाहर हैं। क्या यह भी उनकी विपरीत लीला नहीं है कि जब उन्होंने बम्बई में सोसाइटी बनाई थी उसमें स्वामी जी के कहने सुनने ओर सीखने बिना उनका नाम अपने मन से सभासदों में लिख लिया था। जब यह प्रथम मेरठ में मूल जी के साथ मिले तब स्वामी जी ने कहा था कि बिना हमारे कहे सुने तुमने सोसाइटी में नाम क्यों लिखा; जहां लिखा हो काट दें। तब कर्नल आल्काट साहब ने कहा कि हम इसके आगे ऐसा काम कभी न करेंगे। जहां लिखा है वहां से निकाल भी देंगे। फिर जब काशी में मिले तब तक उन्होंने सोसाइटी से स्वामी जी का नाम नहीं निकाला। तब स्वामी जी ने कड़ा पत्र लिखा कि जहां हमारा नाम लिखा हो वहां से शीघ्र निकाल दो। जब उन्होंने तार भेजा कि अब हम क्या

लिखें, तब स्वामी जी ने तार में उत्तर दिया कि जैसा हमने प्रथम वैदिक धर्मोपदेशक लिखा था, वैसा ही लिखो । न मैं तुम्हारी व अन्य किसी सभा का सभासद् हूं किन्तु एक वेदमार्ग को छोड़ के किसी का संगी मैं नहीं हूं । इस पर भी जब वे शिमला में थे तब ब्लैवेत्स्की ने ऐसी असभ्यता की चिट्ठी लिखी कि जिसको कोई सभ्य स्वीकार न करे । क्या यह उनके योग्य था कि स्वामी जी ने कभी उनको न लिखा था और न कहा था, उस पर भी उन्होंने स्वयं स्वामी जी का नाम लिखा था । क्या यह लज्जा की बात नहीं है ?

(७)—जो उन्होंने मेरठ में प्रतिज्ञा की थी कि आज पीछे आर्यसमाज के सभासद् को अपनी सोसाइटी के साथ होने को कभी न कहेंगे । उसीके दो दिन पीछे जब बाबू छेदीलाल जी अम्बाला तक उनके साथ गये तब मार्ग में बहुत समझाते गये कि आप हमारी सोसाइटी के साथ हूज़िये और पत्र शिमला से बाबू जी के पास भेजा कि आप सोसाइटी के सभासद हूजिये ।

ऐसी-ऐसी छल कपट की बातें देखकर स्वामी जी ने आर्यसमाज मेरठ के वार्षिकोत्सव में व्याख्यान दिया था कि इनकी सोसाइटी में किसी वेदानुयायी को सभासद होने की कुछ आवश्यकता नहीं । क्योंकि जैसे नियम आर्यसमाज के हैं वैसे उनकी सोसाइटी के नहीं । इस पर शिमला से मैडम ब्लैवेत्स्की ने असभ्यता और झूठ से भरी हुई यह चिट्ठी लिखी और स्वामी जी ने भी उसका उत्तर यथायोग्य दिया । उसके पश्चात् स्वामी जी ने विचारा था कि जब हम बम्बई जावेंगे तब उनसे सब बातों की सफाई कर लेंगे । ऐसा ही आर्यसमाज बम्बई चाहती थी । जब स्वामी जी बम्बई पहुंचे तब बहुत सभासद और कर्नल आल्काट साहब भी स्टेशन पर आये थे । जब स्वामी जी स्थान पर आ पहुंचे, पश्चात् उनसे स्वामी जी की बहुत-सी बातें हुईं और स्वामी जी ने विदित कर दिया कि आपसे और भी बहुत विषयों में बातें करनी हैं । तब उक्त साहब ने स्पष्ट उत्तर न दिया । जब फादर कुक[१५] के विषय में बातचीत करने के लिये स्वामी जी के पास आये, तब भी कहा कि आपका और हमारा विचार हो जाना चाहिये था । तब कर्नल आल्काट साहब ने कहा कि हां करेंगे । इस पर भी स्वामी जी ने पानाचन्द आनन्द जी[१६] और राव बहादुर पंडित गोपालराव हरि देशमुख द्वारा कहलाया कि आप लोग मुझसे बातचीत करने को आवें; नही तो हमको सार्वजनिक भाषण देना होगा । तब पानाचन्द आनन्द जी से उन्होंने पूछ के स्वामी जी से कहा कि २७ मार्च, सन् १८८२ को कर्नल आल्काट साहब बातचीत करने आवेंगे । फिर भी न आये और बम्बई से जयपुर पहुंचकर पत्र लिखा कि मैं नहीं आ सका परन्तु मैडम ब्लैवेत्स्की आपसे बातचीत कर लेगी । वे भी नहीं आईं ।

(८)—तब स्वामी जी का भाषण आर्यसमाज और थियोसोफिकल सोसाइटी के पूर्वापर विरोध अर्थात् उनकी थियोसोफिकल सोसाइटी का पूर्व क्या सम्बन्ध था, अब क्या है, इस विषय पर व्याख्यान कराने के अर्थ आर्यसमाज बम्बई ने एक दिन पूर्व नोटिस छपवाकर प्रसिद्ध कर दिया, फिर भी मैडम ब्लैवेत्स्की ने स्वामी जी के पास आके बातचीत न की । तब स्वामी जी ने भाषण दिया ।

इस पर अपने 'थियोसोफिकल'[१७] पत्र में लिखते हैं कि 'हमसे बिना कहे सुने स्वामी जी ने व्याख्यान दिया ।' क्या यह बात उनकी झूठ नहीं थी ? इसमें उनको चिट्ठियां पढ़-पढ़ाकर सुनाई कि जिसमें उनका पूर्वापर विरोधी व्यवहार प्रकाश किया और यह कहा कि ये लोग कहते हैं कुछ और करते हैं कुछ । अनेक ऐसा कहते हैं कि हम आर्यावर्त देश की उन्नति करने के लिये आये हैं परन्तु उन्नति करने के बदले उनके काम अवनतिकारक विदित होते हैं । देखो, स्वामी जी ने अनेक बार इस बात के करने से रोका कि तुम थियोसोफिस्ट समाचारपत्र में भूत, प्रेत, पिशाच आदि का होना लिखते हो, यह विद्या के विरुद्ध व असंभव है और जो बातें विद्या के विरुद्ध हैं उनको मत लिखो क्योंकि समाचारपत्र इस देश में और यूरोप में भी जाता है । सब लोग जान जायेंगे कि आर्यावर्त देश में ऐसी ही व्यर्थ बातों के मानने वाले हैं; इस बातको अब

तक नहीं माना ओर पूर्वपत्रों में लिखा था कि जो आप उपदेश करेंगे सो हम मानेंगे । क्या इस बात को भी कोई सत्य मान सकता है ?

(९)—जो पत्र पादरी कुक[१८] को लिखा था वह कर्नल आल्काट साहब ने अपने हाथ से लिखा था और स्वामी जी ने लिखवाया । इस में (Most divine) अर्थात् कौन-सा धर्म ईश्वर से अधिक सम्बन्ध रखता है, यह स्वामी जी के अभिप्राय से विरुद्ध लिखा था । जब उनके गये पश्चात् स्वामी जी ने उस पत्र की प्रतिलिपि बंचवाई तो अशुद्ध विदित हुआ । फिर इस पर स्वामी जी के पास कर्नल आल्काट साहब आये और तब वह शब्द कटवा दिया अर्थात् उसके स्थान में ऐसा लिखवाया था कि जब आप और मुझ में संवाद होगा तब विदित हो जायेगा कि कौन सा धर्म ईश्वरप्रणीत है और कौन सा नहीं । इतने पर भी उन्होंने वैसा ही अशुद्ध छपवाया; क्या ऐसी बात उनको कर्तव्य थी ? देखो यह उनकी सोसाइटी के नियमों में थियोसोफिस्ट अर्थात् ईश्वर को मानने वाले, इस सोसाइटी में फीस नहीं ली जाती, इस धर्म से कोई धर्म न उत्तम कहना न जानना और सदा क्रिश्चियन धर्म के विरुद्ध रहना चाहिये; जो अजन्मा किसी का बनाया नहीं, जिसने यह सब बनाया है उस ईश्वर को मानना, दस-दस रुपया फीस लेना और जिस धर्म का व्याख्यान देते हैं उसी को सब से उत्तम कहने लग जाते हैं ? क्या यह खुशामदी और भाटों की लीला से कम है ?

अब विशेष लिखना बुद्धिमानों के सामने आवश्यक नहीं, इतने नमूने ही से सब कोई समझ लेंगे परन्तु इस पत्र के लिखने का यही प्रयोजन है कि इनकी सोसाइटी और इनके साथ सम्बन्ध रखने से आर्यावर्त देश को और आर्यसमाजों को हानि के अतिरिक्त कुछ भी लाभ नहीं क्योंकि इन लोगों का आन्तरिक अभिप्राय क्या है इसको वे ही जानते होंगे । जो उनका अन्तर ही निष्कपटी होता तो ऐसा पूर्वापर विरुद्ध व्यवहार क्यों करते ? जब ये भयंकर नास्तिक, वाक्चपल और स्वार्थी मनुष्य हैं तो आर्यावर्त देश और आर्यसमाजस्थ आर्यों आदि को उचित है कि इनसे सम्बन्ध बनाये रखने की व देशोन्नति की आशा न रखें । देखो, और भी थोड़ा सा उनके प्रपंच का नमूना-प्रथम स्वामी जी का नाम लेते थे, जब स्वामी जी उनके जाल में न फंसे तो अब उस कूट होमीलाल का नाम लेते कि जिसको न किसी ने देखा और न पूर्व सुना था । जो कभी उसके नाम से भी स्वार्थ सिद्ध न होगा तो कदाचित् कूट होमीसिंह का नाम लेने लगेंगे । अब कहते हैं कि "वह हमारे पास आता है; बातें और चमत्कार दिखलाता है । देखो, इनका यह फोटोग्राफ है, चिट्ठियां और पुष्प ऊपर से गिरते हैं; खोई हुई चीज निकलती है" इत्यादि सब बातें उनकी ठीक नहीं ? क्योंकि दूसरों को तो जाने दो परन्तु जब प्रथम कर्नल आल्काट मैडम ब्लैवेत्स्की के साथ बम्बई आये तब कुछ वस्त्र आदि की चोरी हुई थी, उसके लिये बहुत सा यत्न पुलिस आदि से कराया था । उनको क्यों नहीं मंगवा लिया था ? जब अपने पदार्थ न मंगवा सके तो शिमला की बात को सच्ची कौन विद्वान् मानेगा ? जब स्वामी जी और मैडम से मेरठ में योगविषय में बात हुई थी तब कहा था कि योगशास्त्र और सांख्य की रीति से मैं योग करती हूं । तब स्वामी जी ने उससे उस शास्त्रोक्त योग की रीति पूछी तब कुछ उत्तर न दे सकी अर्थात् जैसे मैस्मेरेजम, जैसे बाजीगर तमाशा करते हैं—उसी प्रकार की इनकी भी बातें हैं । जो योग को थोड़ा भी करते हैं वे भीतर और बाहर से शीतलता भरा हुआ एक व्यवहार करते हैं, झूठ और छल से पृथक्, सो वैसा व्यवहार उनका नही है । जो योग विद्या को कुछ भी जानते तो ईश्वर को न मानकर भयंकर नास्तिक क्यों बन जाते ? इनके योगविद्या के न जानने में ईश्वर का न मानना ही प्रमाण है । इसलिये यही निश्चय है कि यह सोसाइटी और इनकी पूर्वापर विरुद्ध बातें विश्वास के योग्य नहीं हैं । इसलिये इनसे पृथक् रहना अत्युत्तम है—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु, लक्ष्मीःसमाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।

अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा, न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥

लन्दन नगर में थियोसोफिस्टों का छल

आज कल लन्दन नगर में थियोसोफिकल सोसाइटी के प्रतिष्ठित पदाधिकारियों में बड़ा झगड़ा फैल रहा है। मिस्टर सीसीमिसी[१९] साहब ने लन्दन की थियोसोफिकल सोसाइटी से त्यागपत्र दे दिया। इसका यह कारण हुआ कि थियोसोफिस्टों के गुरु कूट होमीलालसिंह (जिसको वे इन महात्माओं में से जानते हैं जो कि अपने सूक्ष्म आत्मिक शरीर से सदा आकाश में भ्रमण करते रहते हैं और बिना तार और डाक के अपने शिष्यों से बातचीत और पत्रव्यवहार कर सकते हैं) ने थोड़े दिन हुये एक सन्देश भिजवाया था जिसमें उसने दर्शनशास्त्र का एक भारी विषय प्रकाशित किया था। उसके साथ अफलातून[२०] हकीम का भी दृष्टांत था। इसमें एक यह बड़ी आश्चर्य की बात थी कि उक्त सन्देश में ऐसे-ऐसे कठिन शब्द थे जिनको कोई बड़ा भारी पंडित ही समझ सके। उसको देखकर मनुष्यों को चमत्कार का प्राचीन समय फिर आता हुआ प्रतीत होता था परन्तु इसके पश्चात् यह प्रकट हुआ कि कूट होमीलाल का यह सन्देश जिसके भेजने में कुछ व्यय न हुआ था, केवल मिस्टर कीरल साहब की उस बिगड़ी हुई स्पीच की कापी (नकल) थी जो उन्होंने न्यूयार्क में दी थी। कूट होमीलालसिंह ने तिब्बत से उन बातों के भेजने का वृथा परिश्रम उठाया जो कि अमरीका के समाचारपत्रों में प्रकाशित हो चुकी थीं। इसके विषय में इस महात्मा से जो अधिक पूछा गया तो उत्तर गोलमोल और मिथ्या मिला और अन्त में चेले जी को किसी प्रकार भी न समझा सके। इस पर मिसी साहब इस मंडली में प्रविष्ट होने से लज्जित होकर बड़े मलिन मन हुये और थियोसोफिस्टों से, जिसका आन्तरिक अभिप्राय मूर्खतापूर्ण मत के फैलाने का है, पृथक् हो गये।

थियोसोफिस्टों की शरीरों में लीला ('रिलीजन आफ दी आर्य' पृष्ठ ५, सन् १८८४)

'स्टेट्समैन' समाचारपत्र में जम्मू का वृत्तांत[२१] इस प्रकार लिखा है—"तिब्बत से कर्नल आल्काट साहब को उनके एक योगी बन्धु ने महाराजा काश्मीर के रोगनिवारणार्थ जम्मू जाने की आज्ञा दी थी। उनकी आज्ञा के अनुसार कर्नल साहब जम्मू पहुंचे और श्री महाराजा साहब को सात दिन तक मैसमैरिज्म किया और प्रतिदिन कुछ फूंक-फूंक जल पिलाते रहे परन्तु शोक है कि उपर्युक्त तिब्बती योगी महात्मा की कार्यवाही सफल न हुई, जिसका परिणाम यह हुआ कि श्री महाराजा साहब आगे से भी अधिक निर्बल और रोगी हो गये। अब कर्नल साहब कहते हैं कि रोग-निवृत्ति न होने का कारण महाराजा साहब का विश्वास न लाना है।

महाराजा साहब ने तो अपने विचारानुसार सात दिन तक बड़ी अच्छी प्रकार से चिकित्सा की और कुछ भी न हुआ; तिस पर कर्नल साहब का यह कहना कि महाराजा साहब को विश्वास नहीं, महाराजा साहब को बुरा लगा।

कहते हैं कि इन्हीं सात दिनों में कर्नल साहब ने अफ्रीका से दो बार बातचीत की और उत्तर प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त एक उनके साथ का मनुष्य तिब्बत गया और दो दिन में लौट गया। (देशहितैषी, मार्च, सन् १८८४, खंड २, संख्या ११, पृष्ठ ६ से)।

थियोसोफिस्टों की अन्तिम लीला लाहौर में चमत्कार क्या ढकोसला है (२ अप्रैल, १८८३)

समाचार पत्र 'आफताबे पंजाब' लाहौर में लिखा है—"गत सोमवार को लाहौर में एक विज्ञापन दिया गया था कि राय बिशनलाल साहब एम०ए० 'आर्यन फिलासफी' पर परीक्षा भवन में व्याख्यान देंगे और कूट होमीलालसिंह साहब का एक चेला, जिसकी देखरेख में थियोसोफिकल सोसाइटी स्थापित हुई है, चमत्कार करेगा। जिसके निरीक्षण से यहां के शिक्षित लोगों को उन्नीसवीं शताब्दी में चमत्कार की अत्यन्त उत्सुकता उत्पन्न हुई और नियत समय पर उक्त मकान में समस्त मतों और सम्प्रदायों के तमाशा देखने वालों की इतनी भीड़ थी जो अब तक कभी-कभी ही देखने में आई है।

व्याख्यानदाता ने वर्णन किया कि पहले मेरा यह विचार था कि 'आर्यसमाज' समस्त भारतवर्ष को एकता के सूत्र में बांध देगा परन्तु जब मैंने देखा कि मुसलमान और ईसाई इसमें सम्मिलत नहीं हो सकते; तब मेरा विचार बदल गया और अब मैं विश्वास करता हूं कि केवल एक थियोसोफिकल सोसाइटी ही है जो समस्त भारत को प्राचीन आर्यन फिलासफी के अर्थ बताये और यह योगियों को क्या-क्या शक्ति दे सकती है और इसके पश्चात् हीर-रांझा की गाथा को वास्तविक घटना के रूप में वर्णन किया। एक घण्टा अल्लम-गल्लम कहकर अन्त में कहा कि चमत्कार दिखाने की मुझे देहली में पूरी सामर्थ्य हो गई है, जहां विशाल जनसमूह के सामने मैंने कहा कि कोई व्यक्ति मुझे बन्दूक से नहीं मार सकता और ऐसा ही हुआ। वाह ! क्या अदभुत चमत्कार है। बन्दूक का छोड़ना तो कहां, हम कहते हैं कि सभ्यता के इस युग में किसकी शक्ति है कि आपकी ओर खाली बन्दूक भी झुकाये। यदि महाशय आपका यही विश्वास था तो आप अपने घर बैठे लेख द्वारा अपने विचार प्रकट कर सकते थे। इतना यात्रा का कष्ट उठाने की क्या आवश्यकता थी ? चूंकि सारी भीड़ चमत्कार देखने को अत्यंत उत्सुक थी, इसलिये इतना कोलाहल हुआ कि आपको विवश होकर अपना भाषण समाप्त करना पड़ा और पण्डित शिवनारायण साहब अग्निहोत्री ने, जो थियोसोफिकल सोसाइटी के सदस्य हैं, वर्णन किया कि अंगुली काटने का क्या चमत्कार है। यदि चमत्कार दिखाना अभीष्ट है तो अच्छा है कि चेले साहब अपने सिर को आज्ञा दें कि वायु से उड़कर फिर वहीं आ जावे। इसके पश्चात् चेले साहब चमत्कार दिखाने को खड़े हुये ओर अपना हाथ आगे करके कहा कि उपस्थित लोगों में कोई व्यक्ति मेरी अंगुली नहीं काट सकेगा। यदि कोई काट भी ले तो फिर थोड़े समय में ठीक हो जावेगी परन्तु उपस्थित लोगों में से किसी ने निर्दयता की बात करने को स्वीकार न किया। इस पर ब्रह्मसमाज के एक सदस्य ला० रामसहाय ने आवेश में आकर अपनी अंगुली काट डाली और चेले को कहा कि अब इसको फिर लगावें। उस समय कोलाहल होकर भीड़ छंट गई। फिर उसी रात को कुछ लोग मिलकर आये और चेले साहब के निवास-स्थान पर गये जहां चेले साहब ने अपनी जादुई शक्ति पर अभिमान करना आरम्भ किया। उस पर श्रोताओं में से जो लोग इस शक्ति की यथार्थता को जानने के इच्छुक थे, उन्होंने रायसाहब से निम्नलिखित बात लिखवाई—"एक तिहाई या अधिक अंगुली काट कर आर्यसमाजियों के लिये ले जाओ, यदि यह कट गई तो मैं कहता हूं कि थियोसोफिकल सोसाइटी का कोई महात्मा नहीं, क्योंकि मैं भलीभांति जानता हूं कि यह बिलकुल नहीं कट सकेगी, जो व्यक्ति काटेगा उस पर हम किसी प्रकार का दावा दायर नहीं करेंगे।" इस पर गवर्नमेण्ट कालिज के एक विद्यार्थी ठाकुरसिंह ने तत्काल चेले की अंगुली काट डाली, जिस पर थियोसोफिकल सोसाइटी की सारी पोल खुल गई। खेद है ऐसे पाखंडियों पर जिनको झूठ बोलने में कोई झिझक नहीं। हम कहते हैं कि यदि अंगुली न भी कटती तो भी चमत्कार नहीं हो सकता यद्यपि कुछ अज्ञानी मनुष्य इसको ऐसा समझ सकते हैं परन्तु वास्तव में यह मदारी का खेल है, जिसकी वास्तविकता यह है कि प्रत्येक प्राणधारी के शरीर में विद्युत है जिसको कुछ नियमों पर व्यवहार में लाने से एक मनुष्य अपनी विद्युत शक्ति से दूसरे को वश में कर सकता है और उस अवस्था में जिसके वश में हो जाता है, वह जो चाहे दूसरे से करा सकता है परन्तु दूसरे को शक्ति नहीं होती कि उसको छू भी सके। जिसकी परीक्षा यूं हो सकती है कि मुर्गे या मोर के दो पर लेकर उनको किसी विशेष वस्तु पर रखकर उस पर कुछ सैंकंड हाथ का पृष्ठ भाग फेर दीजिये ताकि उनकी विद्युत शक्ति क्रियान्वित होने लगे। उन दोनों परों में जब तक विद्युत शक्ति का प्रभाव रहेगा, एकदूसरे से कभी नहीं टकरायेंगे। बस इसी प्रकार मैसमेरिजम से दो मनुष्यों के शरीर की विद्युत शक्ति चेष्टा में लाई जाती है तो वे एक दूसरे के शरीर से स्पर्श भी नहीं कर सकती, प्रत्युत बन्दूक और तलवार आदि से भी चोट नहीं लगा सकते।" (११ अप्रैल, सन् १८८३, खंड ११, संख्या ३२, पृष्ठ ३६१, ३६२)।

'देश हितैषी' अजमेर, वैशाख मास, संवत् १९४०, खंड २, संख्या १, पृष्ठ १२, १३ में भी ऐसा ही लिखा है। इसके अतिरिक्त इतना बढ़कर है कि "लोगों को यही आश्चर्य था कि कर्नल आल्काट साहब और मैडम ब्लैवेत्स्की ने तो

कहने पर भी कोई चमत्कार नहीं दिखाया था किन्तु यह गुरुमार चेले कहां से उठ खड़े हुये जो चमत्कार दिखावेंगे और अन्त में कहा कि शोक है थियोसोफिस्ट ऐसे-ऐसे विचारों से आर्यों को सत्यमार्ग से हटा कर कपोलकल्पित चमत्कार और भूतों में विश्वास दिला कर कलंकी अवतार बनना चाहते हैं । यह नहीं जानते कि हजरत ईसा और मुहम्मद साहब का युग नहीं है ।

एक अन्य मिथ्या लीला का वृत्तांत— इसके उपरान्त इनकी एक मिथ्या लीला ओर सुनिये । उक्त सभा के नोटिसों को जो उक्त राय बिशनलाल महाशय की ओर से थे, यह प्रकट किया कि यह नोटिस ला० रतनचन्द्र जी[२२] और बाबू श्रीचन्द्र के लिखे हुये हैं, परन्तु जब उक्त दोनों महाशयों ने उक्त सभा में खड़े होकर स्पष्ट कह दिया कि हे भ्रातगण ! हम नहीं चाहते कि इतना झूठ हो । जो नोटिस दिये गये हैं केवल राय बिशनलाल महाशय की ओर से हैं, हमारी इसमें कुछ सम्मति नहीं । तब लाला रामकिशन जी मूल नोटिस को ले आये जिससे भली भांति निश्चय हो गया कि यह केवल उक्त राय साहब का मिथ्या प्रपंच है । धन्य रे थियोसोफिस्ट, तुम्हारी लीला को !

स्वामी जी के इस २२ मार्च, सन् १८८२ के व्याख्यान और अन्तिम मार्च, सन् १८८२ के नोटिस 'थियोसोफिस्ट की गोलमाल पोलपाल' से उनका रहा—सहा भेद भी खुल गया और सब स्थानों पर आर्यसमाज का थियोसोफिकल सोसाइटी से सम्बन्ध विच्छेद हो गया क्योंकि सब लोगों ने अच्छी प्रकार निश्चय कर लिया कि ये लोग ईश्वर की सत्ता को अस्वीकार करने वाले, बौद्धमत के अनुयायी, यन्त्र, मन्त्र, जिन्नों और भूत के ढकोसले घड़ने वाले हैं । फिर उन्होंने अत्यंत परिश्रम से जुलाई, सन् १८८२ के 'थियोसोफिस्ट' के परिशिष्ट[२३] में स्वामी जी के आक्षेपों के उत्तर देने का प्रयत्न किया । बहुत सोच-विचार किया और अपने चित्त की विचारधारा का चमत्कार दिखाया परन्तु सत्य बात का मिथ्या होना अत्यंत कठिन प्रत्युत असम्भव है । इसी कारण वे अपने प्रत्येक प्रमाण में स्वामी जी की सम्मति की पुष्टि करते रहे । सच कहा है—

"क्या लुत्फ जो गैर पर्दा खोले, जादू वह जो सिर चढ़कर बोले" इस परिशिष्ट का उत्तर प्रथम तो ला० रतनचन्द्र बेरी सम्पादक 'आर्य' पत्रिका ने उसी समय दे दिया । फिर कुछ लोगों की प्रार्थना पर पण्डित उमरावसिंह जी मंत्री आर्यसमाज रुड़की ने ३ अक्तूबर, सन १८८२ को दूसरा उत्तर तैयार करके पत्रिका के रूप में प्रकाशित किया[२४] जिस पर वे अभी तक कोई उत्तर नहीं दे सके ।

कर्नल साहब के उत्तर की मीमांसा में पण्डित उमरावसिंह का प्रत्युत्तर— कर्नल साहब कहते हैं कि क्या हम २२ फरवरी, सन् १८७८ की चिट्ठी में नहीं लिख चुके थे कि ब्रह्मसमाज 'पर्सनल गाड' (Personal God) को मानती है और आर्यसमाज ऐसे गाड (ईश्वर) को मानता है जो पर्सनल (व्यक्तिगत) होने से परे हैं (पर्सनल नहीं है) ।

आर्य्य—निस्सन्देह उक्त चिट्ठी में ईश्वर के गुणों के सम्बन्ध में आर्यसमाज और ब्रह्मसमाज के भेद की कुछ चर्चा थी परन्तु उस भेद का इस भेद से कुछ सम्बन्ध नहीं जो थियोसोफिकल सोसाइटी के निर्माताओं और आर्यसमाज के सिद्धांतों के बीच में है । इसलिये यदि वह पूर्ववर्णित भेद स्वीकार किया गया तो इसके ये अर्थ कदापि नहीं हो सकते कि अन्त में वर्णन किये हुये भेद का स्वीकार करना भी आवश्यक है । वास्तविकता यह है कि तौबा (पश्चाताप) करने से पाप क्षमा करना और थोड़ा बहुत स्वार्थ के लक्षणों का प्रकट करना आदि ब्रह्मसमाज के ईश्वर का गुण है । आर्यसमाज का परमेश्वर विकारों से रहित और निस्सन्देह कर्नल आल्काट के कथनानुसार अनादि, अनन्त, अविनाशी, बुद्धि से अगम्य और शरीर रहित है । इतना कर्नल आल्काट का कहना सत्य था और ब्रह्मसमाज ओर आर्यसमाज का भेद वास्तव में प्रकट करता था और चूंकि कर्नल साहब भी अपने आप को उसी विश्वास का बताते थे इसलिये हम उन्हें अपनी संस्था का एक माननीय सदस्य समझने के अतिरिक्त और क्या समझ सकते थे । कारण यह कि ऐसे गुणों वाले ईश्वर से अर्थात् शरीरधारी ईश्वर से जिसका

लक्षण दिसम्बर मास, सन् १८८२ की 'थियोसोफिस्ट' पत्रिका में किया गया है और जिसके लिये 'पर्सनल' शब्द अत्यन्त उपयुक्त था, हमें स्वयं भी इनकार है परन्तु हमारे और थियोसोफिकल सोसाइटी के उस समय प्रकट किये हुये विश्वास का कोई प्रभाव ईश्वर की सत्ता पर नहीं पहुंचता था और न कोई प्रकट किया गया था। चूंकि हमको गुप्त बातों का ज्ञान भी न था, इसलिये हम भला यह विचार तक भी क्यों कर सकते थे कि थियोसोफिकल सोसाइटी के निर्माता शरीरधारी की आड़ में (ईश्वर की) सत्ता से ही इन्कार कर रहे हैं और गुप्त रूप से ईश्वर के अभाव और भाव को समान मानते हैं। यह बात तो बहुत दिनों के पश्चात् जाकर खुली कि उक्त सोसाइटी के निर्माताओं को ईश्वर की सत्ता और उसके अपनी सत्ता से परिचित होने तथा सर्वज्ञ होने से इन्कार है और मैडम ब्लैवेत्स्की ने भी मेरठ में नास्तिकता का स्वीकार बहुत समय पश्चात् किया अर्थात् सितम्बर, सन् १८८२ में। इसलिये उपर्युक्त अवस्थाओं में २२ फरवरी, सन् १८८९ की चिट्ठी का हवाला आपके लिये कदापि लाभदायक नहीं हो सकता।

यद्यपि इसके पश्चात् ही आर्यसमाज के नियमों का अनुवाद अंग्रेजी में पंडित श्याम जी कृष्ण वर्मा से कराकर भेजा गया था जिसका कर्नल साहब स्वयं स्वीकार करते हैं (देखो उक्त परिशिष्ट)।

कर्नल साहब कहते हैं —हमने २९ मई, सन् १८७८ को एक चिट्ठी 'इण्डियन स्पैक्टेटर' (Indian Spectator) के सम्पादक को लिखी थी कि हम बौद्ध हैं। यही चिट्ठी हिन्द रतन सरीलों को, जो बौद्धमत का एक महन्त है, भेजी थी कि हम बौद्धमत के मानने वाले हैं। चूंकि स्वामी दयानन्द सरस्वती के कथनानुसार वही नियम वेदों में लिखे हुये हैं इसलिये हमने अपनी सोसाइटी को आर्यसमाज का अनुयायी बनाया।

आर्य—इसका हवाला देना सर्वथा व्यर्थ है क्योंकि यदि कर्नल साहब ने अमरीका, यूरोप, अफ्रीका और एशिया के कुछ लोगों से अपना कोई विशेष विश्वास प्रकट कर रखा हो तो हम उसके उत्तरदायी नहीं हो सकते। किसी प्रमाण के रूप में उपस्थित होने के बदले इस चिट्ठी से यदि इसका कोई अस्तित्व था, जैसाकि कर्नल साहब कहते हैं कि है तो कर्नल साहब का व्यवहार स्वयं आक्षेप के योग्य ठहरता है और लोगों को उनके लक्ष्य पर पूरा सन्देह हो सकता है। आप किसी ऐसी चिट्ठी का पता बताइये जो स्वामी जी या आर्यसमाज के नाम आई हो और जिसमें थियोसोफिकल सोसाइटी के निर्माताओं ने बौद्धमत का अनुयायी होना वर्णन किया हो या आर्यसमाज की ओर से कोई ऐसा लेख उपस्थित कीजिये जिसमें यह बात प्रकट की गई हो कि वेदों में वही सिद्धांत हैं जो बौद्धमत के हैं। यदि अन्त में कही हुई बात कोई सिद्ध कर दे जो सर्वथा असंभव है, तब कर्नल साहब के **'इण्डियन स्पैक्टेटर'** में लिखे हुये इस वाक्य में जान पड़ सकती है अन्यथा तब तक यह वाक्य मृत और सर्वथा मिथ्या है।

कर्नल साहब— जो २१ अप्रैल, सन् १८७८ को चिट्ठी श्याम जी कृष्ण वर्मा से अनुवाद करवा कर भेजी वह 'पर्सनल गाड (Personal god)' की प्रशंसा में थी। उस पर कर्नल साहब ने आक्षेप किया और २४ सितम्बर, सन् १८७८ को चिट्ठी भेजी कि या तो स्वामी दयानन्द जी के ईश्वर का लक्षण हमको ठीक नहीं पहुंचा या उनके सिद्धांत ईश्वर के विषय में ऐसे हैं जिनसे थियोसोफिकल सोसाइटी और उसके सदस्य विरोध करते हैं। हमको प्रतीत होता है कि स्वामी जी महाराज पर्सनल ईश्वर को मानते हैं, मैं ऐसे ईश्वर को नहीं मान सकता। आप स्वामी जी से पूछकर मुझे साफ-साफ बतलायें कि आर्यसमाज कैसे ईश्वर को मानती है।"

इसका उत्तर न तो स्वामी जी ने दिया और न हरिश्चन्द्र ने। केवल हरिश्चन्द्र ने ३० सितम्बर सन् १८७८ के पत्र में यह लिखा कि जब आप बम्बई आवेंगे तो सब बातों का निर्णय हो जावेगा जिससे स्पष्ट प्रकट है कि बम्बई आने से पहले हमारा मत बौद्ध था।

आर्य—क्या कोई मुसलमान अपना मत फैलाने के लिये उन सिद्धांतों से सहमति प्रकट करेगा जो इस्लाम के विरुद्ध हैं या कोई ईसाई अपना ध्येय पूरा करने के अभिप्राय से रामचन्द्र और कृष्णचन्द्र जी को ईसा मसीह के स्थान पर ईश्वर का पुत्र वर्णन करेगा ? यदि नहीं, तो आप क्यों कर स्वीकार कर बैठे कि स्वामी दयानन्द सरस्वती का मत तो पर्सनल ईश्वर का विश्वास है । थियोसोफिकल सोसाइटी के निर्माताओं के कथनानुसार और उसीका उपदेश वे आज तक करते चले आये हैं और उन्होंने अमरीका वालों से कह दिया कि मैं पर्सनल ईश्वर को मानता हूं और यदि विश्वास का परिवर्तन स्वीकार न था तो उसका प्रकटीकरण अमरीका वालों के यहां आने पर क्यों न हुआ । सारांश यह कि उसकी कल्पना करना भी विरुद्ध था । कारण यह है कि औचित्य के सर्वथा विपरीत है ।

(१) हम पूछते हैं कि इस विषय में वास्तविक प्रमाण अर्थात् प्रकट साक्षी को छोड़कर कल्पनाओं पर सन्तोष करने के क्या अर्थ हैं ? खेद की बात है कि कर्नल आल्काट साहब ने इसी झगड़े की व्याख्या में १८ पृष्ठ की पुस्तक तो बना दी परन्तु उस चिट्ठी से एक पंक्ति भी उपस्थित न की जिसमें कर्नल साहब के कथनानुसार 'इमपर्सनल गाड' (Impersonal God) का लक्षण था न पर्सनल का । यह मिथ्या है कि कर्नल साहब की २४ सितम्बर, सन् १८७८ की चिट्ठी श्याम जी की अनुवाद की हुई चिट्ठी के उत्तर में थी । ईश्वर जाने आपको स्मरण नहीं रहा अन्यथा इससे तो स्वयं आपको भी इन्कार है (देखो थियोसोफिस्ट सन् १८८२ का परिशिष्ट, पृष्ठ ५, पंक्ति ७२-७५) । चूंकि यही सब से बड़ी युक्ति है जिससे आपने लोगों को भ्रान्ति में डालने का यत्न किया है इसलिये हम इसकी अच्छी प्रकार जांच कर सकते हैं ('आर्यसमाचार' २७४-२८६ खंड ४, संख्या ९, संवत् १९३९) । आपके विचार में २४ सितम्बर, सन् १८७८ की चिट्ठी छपकर अधिक सम्मान के योग्य हैं इसलिये हम आप से पूछते हैं कि जुलाई, सन् १८८२ से पहले इस चिट्ठी का अस्तित्व कहां था और आपके इस परिशिष्ट के छपने से पहले कभी किसी स्थान पर आपने इसकी चर्चा की थी ।

(२) यदि यह सच है यद्यपि हम विश्वास से कहते हैं कि ऐसी कोई चिट्ठी नही भेजी गई तो उसका कोई उत्तर स्वामी जी ने आपको भेजा या नहीं ? यदि नहीं भेजा तो आप क्यों चल पड़े ? यदि लिखा था तो वह क्या है, और कहां है ? आपने आज १५ वर्ष तक इसको क्यों प्रकट नहीं किया ?

यदि आपके पास सचाई है तो वह किस समय के लिये छुपाई हुई है ?

(३) कदाचित् आप कहें कि हरिश्चन्द्र जी की ३० सितम्बर, सन् १८७८ की चिट्ठी इसका उत्तर है तो आपका कहना सर्वथा मिथ्या है; क्योंकि अमरीका से चली हुई २४ सितम्बर की चिट्ठी का ३० सितम्बर की लिखी हुई चिट्ठी उत्तर नहीं हो सकती । आपकी इस चमत्कार पूर्ण या जादूमिश्रित युक्ति को कोई बुद्धिमान् नहीं मान सकता । इसलिये निम्नलिखित बातों में से कोई न कोई आपको स्वीकार करनी पड़ेगी ।

(१) या तो स्वामी जी का कोई ऐसा लेख जिससे आपको सन्देह हुआ और सन्देह होने पर आपने अपने कथनानुसार २४ सितम्बर को पत्र भेजा, दिखलावें ।

(२) या हमको सिद्ध कर दें कि २४ सितम्बर, सन् १८७८ को लिखी हुई चिट्ठी अमरीका से आकर किस प्रकार और किसी शीघ्र गति वाले जहाज से ३० सितम्बर, सन् १८७८ को यहां से अपना उत्तर ले जाकर आपको पहुंच सकती है ।

(३) या वह अपूर्ण उत्तर, बशर्ते कि वह इसीका उत्तर हो, आपको किस प्रकार इतनी लम्बी यात्रा के लिये उद्यत कर सकता है । यदि उत्तर नहीं पहुंचा था तो दूसरी चिट्ठी लिखते; क्योंकि सिद्धांतों की सहमति का प्रमाण यही होता और

इसी को आपने जुलाई, सन् १८८२ से पहले कभी प्रकट नहीं किया। सचाई तो यह प्रतीत होती है कि यह चिट्ठी या तो लिखी ही नहीं गई और यदि लिखी गई भी है तो भेजी नहीं गई और यदि भेजी गई थी तो भी समुद्री-यात्रा के समय महात्मा कुट होमीलाल सिंह या कोई अन्य कश्मीरी महात्मा, भूटानी महात्मा या मद्रासी महात्मा की आत्मा थैले में से उड़ाकर लौटाकर कर्नल साहब के पास पहुंचा आई जिससे अवसर आने पर काम आये और थियोसोफिकल सोसाइटी का विनाश न हो, बस, उसकी विद्यमानता का इससे अधिक कोई अन्य प्रमाण नही है।

सूचना—पण्डित दयानन्द सरस्वती स्वामी के विरोधियों को पहले ही सूचित कर देते हैं कि 'थियोसोफिस्ट' अखबार में कोई भी लेख, किसी का भी स्वामी जी या आर्यसमाज के विरुद्ध जो बिना सोचे समझे होगा, नहीं छापा जावेगा, हमारे और उनके मध्य वियोग हो जाना इस बात का कोई कारण नहीं है कि हम व्यक्तिगत आक्रमणों को अपनी पत्रिका में छापें। जबकि हम अपने ही झगड़ों को छापना पसन्द नहीं करते तो औरों के झगड़ों का छापना हमारा कर्त्तव्य नहीं। विशेषतया जबकि कोई लाभ सामने न हो। स्वामी जी की वैदिक विद्वत्ता का प्रश्न ऐसा है जो भारत और यूरोप के पण्डितों के निर्णय के लिये छोड़ देना उचित है। यद्यपि हमको इस बात का दु:ख है कि ऐसा बड़ा विद्वान् व्यक्ति हमारे सम्बन्ध में बड़ी भ्रान्ति में पड़कर हमसे विरक्त हो जाये परन्तु कोई मनुष्य इस बात से इन्कार नही कर सकता कि वह आर्यन कल्चर (आर्यसभ्यता) का एक 'लायल चैम्पियन' (भक्त योद्धा) है और अपने देश पर प्राण न्यौछावर करने वाला, हितचिन्तक है। उसको हमारे सम्बन्ध की चिन्ता करना इतना आवश्यक नहीं है जितना कि इण्डिया के हितचिन्तन की।" — एच० एस० आल्काट, प्रधान, थियोसोफिकल सोसाइटी कलकत्ता। ('थियोसोफिस्ट' मई मास, सन् १८८२, पृष्ठ ७ से)।

स्वामी जी तथा आर्यसमाज के विषय में मैडम ब्लैवेत्स्की के उद्गार

मैडम ब्लैवेत्स्की निर्मात्री, थियोसोफिकल सोसाइटी-अपनी पुस्तक 'फ्राम दी कैव्स एंड जंगल्स आफ इण्डिया' (From the Caves and Jungles of India) में लिखता हैं—

सब से बड़ा विद्वान् और योगी दयानन्द—"अमरीका से चलने से पूर्व दो वर्ष से अधिक मैं एक बड़े भारी विद्वान् ब्राह्मण के साथ लगातार पत्रव्यवहार करती रही, जिसका तेज इस समय सारे भारतवर्ष में छाया हुआ है। हम उसके पथप्रदर्शन के द्वारा आर्यों के पुराने देश, वेदों और उनकी कठिन भाषा का अध्ययन करने के लिये भारतवर्ष आये। उसका नाम दयानन्द सरस्वती स्वामी है। स्वामी उन विद्वान् योगियों का नाम है जो उन रहस्यों को भेद पा जाते हैं, जिन तक साधारण मनुष्य नहीं पहुंच सकता। वह एक ऐसा सम्प्रदाय है जो विवाह नहीं करता परन्तु उस भिक्षुक वर्ग से सर्वथा भिन्न है जो कि नाममात्र संन्यासी या हसन[1] (परमहंस) कहलाते हैं। यह पण्डित, जो कि भारतवर्ष में सब से अधिक संस्कृत विद्या का जानने वाला समझा जाता है और प्रत्येक मनुष्य के लिये एक पहेली है—केवल पांच ही वर्ष हुये हैं कि बड़े-बड़े सुधारों के क्षेत्र में आ निकला है। परन्तु पांच वर्ष से पूर्व वह एक जंगल में सर्वथा पृथक् रहा है और वहां पुराने जमनासोफिस्ट[2] सम्प्रदाय की भांति जिनका वर्णन यूनानियों और रोम वालों ने किया है, आर्यावर्त के बड़े-बडे दर्शनशास्त्रों का अध्ययन

---

1. वास्तविक शब्द संस्कृत का 'हंस' (या परमहंस) प्रतीत होता है जिसको रूसी भाषा से अंग्रेजी में अनुवाद करने वाले ने भूल से 'हसन' लिख दिया।—संकलनकर्ता।

2. यह दार्शनिकों के उस सम्प्रदाय का नाम है जिसको महान् सिकन्दर ने भारतवर्ष में पाया जो लगभग सर्वथा नग्न रहते थे; मांस नहीं खाते थे, शारीरिक वासनाओं से घृणा करते थे और सदा प्रकृति पर विचार करने में संलग्न रहते थे। (वेबस्टर कृत डिक्शनरी से)।

करने और वेदों के गूढ़ अर्थों को उन योगियों और तपस्या करने वालों की सहायता से जानने में संलग्न था। समस्त हिन्दू विश्वास करते हैं बद्रीनाथ के पर्वतों पर, जो समुद्रतल से बाईस सौ फुट ऊंचे हैं बड़ी-बड़ी विशाल गुफायें हैं जिनमें कई हजार वर्षों से ऐसे तपस्वी बसते हैं। बद्रीनाथ, भारतवर्ष के उत्तर में, गंगा विष्णु नदी पर स्थित है और विष्णु के मन्दिर के लिये प्रसिद्ध है, जो ठीक नगर के बीच स्थित हैं। मन्दिर के बीच ऊष्णजल का धात्वीय लवण-मिश्रित जल का स्रोत है जिसको प्रति वर्ष लगभग पचास हजार यात्रा देखने और शुचितालब्धि के लिये जाते हैं।

भारतीय 'लूथर' तथा शास्त्रार्थजयी— अपने प्रादुर्भाव के दिन से ही दयानन्द सरस्वती ने बड़ा भारी प्रभाव डाला और भारतीय 'लूथर' का पद प्राप्त किया। एक नगर से दूसरे नगर में घूमते हुये, आज दक्षिण में तो कल उत्तर में, देश के एक सिरे से दूसरे तक, अविश्वसनीय चाल से फिरते हुये उसने भारत के प्रत्येक भाग का रासकुमारी से लेकर हिमालय[२५] तक और कलकत्ते से लेकर बम्बई तक निरीक्षण किया। वह एक ईश्वर का प्रचार करता है और वेदों को हाथ में लिये हुए यह सिद्ध करता है कि इन प्राचीन काल की पुस्तकों में एक शब्द भी ऐसा नहीं है जिससे देवताओं की उपासना उचित ठहराई जा सके। मूर्तिपूजा के विरुद्ध गरजता हुआ वह उच्च कोटि का स्पष्टभाषी मनुष्य अपनी समस्त शक्ति के साथ जातपात, बाल्यावस्था विवाह और अन्य भ्रान्त धारणाओं के विरुद्ध युद्ध करता है। उन समस्त बुराइयों को, जो कि शताब्दियों से झूठी युक्तियों और वेदों के अशुद्ध अर्थों से भारतवर्ष में प्रचलित हो गई हैं, बुरा कहते हुये, वह इनका सब अपराध ब्राह्मणों के सिर पर लगाता है; और यह बात वह साधारण जनता की भीड़ के सामने खुले रूप में कहता है कि यही लोग देश की दुर्दशा करने के अपराधी हैं। जो देश किसी समय में बड़ा उन्नतिशील और स्वतन्त्र था, अब गिरा हुआ और पराधीन बना हुआ है तथापि ब्रिटिश शासन को उसे अपना शत्रु नहीं, प्रत्युत सहायक समझना चाहिये। वह घोषणा करता है कि यदि तुम अंग्रेजों को निकाल दोगे तो कल ही तुम भी और वे सब जो मूर्तिपूजा के विरुद्ध हैं, जान से मार दिये जायेंगे। मुसलमान मूर्तिपूजकों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली हैं परन्तु मूर्तिपूजक हमारी अपेक्षा अधिक बलवान हैं। उक्त पण्डित के बहुत से उत्तेजनापूर्ण शास्त्रार्थ उन ब्राह्मणों के साथ हुये जो लोगों को धोखा देने वाले शत्रु हैं और लगभग सदा ही वह इन शास्त्रार्थों में विजयी रहा। बनारस में गुप्त हत्यारे उसकी हत्या करने के लिये छोड़े गये परन्तु उनका यह प्रयत्न निष्फल रहा। बंगाल के एक छोटे से ग्राम में जब उसने मूर्तिपूजा का असाधारण उत्साह से खंडन किया तो किसी पक्षपाती मनुष्य ने उसके नंगे पांव पर एक फनियर सांप फेंका।[२६] ब्राह्मणों की बनाई हुई देवमाला में दो नागों को देवता माना हुआ है, एक वह जो शिव के गले में लटकता है जिसको वासुकि कहते हैं। और दूसरा अनन्त, जो विष्णु की शय्या समझा जाता है। इसलिये शिव के पुजारी ने विश्वास करके कि फनियर सांप जो शिव के मन्दिर में, जिसको निश्चय ही धार्मिक रहस्य सिखाये जाते हैं, तत्काल इस शत्रु के प्राण ले लेगा। फनियर सांप को फेंक कर वह मनुष्य बड़े उच्च स्वर में चिल्लाया कि अब देवता वासुकि स्वयं ही प्रकट कर देगा कि हममें से कौन सचाई पर है। दयानन्द ने उस सर्प को झटके से फेंक दिया जो कि उसकी टांग के चारों ओर लिपट रहा था, एक ही प्रबल झपट्टे से उसके सिर को कुचल डाला और बड़ी शान्ति से उत्तर दिया कि अच्छा, उसे निर्णय करने दो। तुम्हारा देवता तो बहुत ढीला रहा परन्तु मैंने ही इस झगड़े का निर्णय कर दिया और भीड़ की ओर मुख करके कहा कि अब जाओ और प्रत्येक मनुष्य से कहो कि कैसी सरलता से झूठे देवता नष्ट हो जाते हैं।

उत्कृष्ट संस्कृत ज्ञाता— पंडित जी के अत्यंत उत्कृष्ट संस्कृत ज्ञान का हमें भी धन्यवाद करना चाहिये जिससे न केवल साधारण लोगों को ही बड़ा लाभ पहुंचता है और वेदों को तथा एक ईश्वर को मानने के विषय में उनकी अज्ञानता दूर होती है प्रत्युत साथ ही जिससे पदार्थ विद्या को भी लाभ पहुंचता है क्योंकि वह बताती है कि कौन-कौन वास्तविक ब्राह्मण हैं जो भारतवर्ष की जातियों में केवल एक ही जाति थी जिसने शताब्दियों तक संस्कृत साहित्य के अध्ययन करने

का अधिकार केवल अपने लिये सुरक्षित कर रखा था तथा वेदों पर व्याख्या लिखने का अधिकार भी उन्होंने केवल अपने लाभ के लिये सुरक्षित कर लिया था।

बर्नोफ, कोलबुक और मैक्समूलर जैसे औरियण्टलिस्टों (प्राच्यविद्या विशारद) के समय से बहुत पहले भारतवर्ष में ऐसे बहुत से सुधारक हुये हैं जिन्होंने वैदिक सिद्धांतों की पवित्र अनुपमता को सिद्ध करने का प्रयत्न किया था तथा नवीन मतों के संस्थापक भी ऐसे हुये हैं जिन्होंने पवित्र पुस्तकों के ईश्वरीय ज्ञान होने से इन्कार किया था जैसे राजा राममोहन राय; और उसके पश्चात् बाबू केशवचन्द्र सेन, दोनों कलकत्ते के बंगाली थे। परन्तु इन दोनों में से किसी को बहुत सफलता प्राप्त नहीं हुई। उन्होंने इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं किया कि भारतवर्ष के असंख्य सम्प्रदायों की संख्या में वृद्धि की। राममोहनराय इंग्लैंड में मरा[२७] और लगभग कुछ काम नहीं किया और केशवचन्द्र सेन ने ब्रह्मसमाज बनाया,[२८] जो उस धर्म को मानता है जो इस बाबू की अपनी ही मिथ्या धारणा का फल है। वह स्वयं ही बड़ा पक्का सिद्ध सन्त और महोद्यम बन बैठा और अब वह, जैसा कि रूस में कहा जाता है, उसी खेत का फल है जिस खेत के 'हाजिरात' वाले (भूतप्रेतों को बुलाने वाले) हैं और वह उसको एक मामूल (जिस पर भूत प्रेतों को बुलाने वाले अपना प्रयोग करते हैं) और कलकत्ते का स्वीडनबर्ग समझते हैं। वह अब अपना समय एक अपवित्र तालाब में व्यतीत करता है जहां कि वह चीन, कुरआन, बुद्ध[२९] और अपने आपके ही गुण गाता रहता है और अपने आपको उनका रसूल (सन्देशवाहक) कहता है, स्त्रियों के वस्त्र पहन कर ईश्वरीय प्रेम का नाच नाचता है[३०] जिसको वह अपने लिये एक देवी की पूजा समझता है जिसको बाबू अपनी माता, पिता और बड़ा भाई कहता है।

दयानन्द के प्रादुर्भाव से पूर्व कोई सुधारक आर्यावर्त की अनुपमता पुनः स्थापित न कर सका—सारांश यह कि आर्यावर्त की पवित्र, प्राचीन अनुपमता को पुनः स्थापित करने के समस्त प्रयत्न असफल रहे हैं और सदा ब्राह्मण धर्म और शताब्दियों की पुरानी भ्रान्त धारणाओं की डबल चट्टान पर वे प्रयत्न नष्ट होते रहे हैं परन्तु वह देखिये कि अकस्मात् ही पंडित दयानन्द प्रकट होते हैं। उसके अत्यंत प्रिय शिष्यों में से भी कोई नहीं जानता कि वह कौन है, कहां से आया। वह खुल्लमखुल्ला लोगों की साधारण भीड़ के सामने इस बात को स्वीकार करता है कि वह नाम, जिससे वह प्रसिद्ध है उसका वास्तविक नहीं है परन्तु योगविद्या में प्रविष्ट होते समय उसे दिया गया है।

भारत में योगियों का सम्प्रदाय— योगियों के इस गुप्त सम्प्रदाय[३१] का संस्थापक पतंजलि हुआ है, जो कि प्राचीन भारतवर्ष में छः दर्शनों के रचयिताओं में से एक था। यह कल्पना की जाती है कि सिकन्दरिया के दूसरे और तीसरे सम्प्रदायों के नये प्लेटोवादी भारतवर्ष के योगियों के अनुयायी थे। विशेषतया योगसिद्धि की विद्या को फीसागोरस[३२] भारतवर्ष से ले गया था। भारतवर्ष में अब भी सैंकड़ों योगी हैं जो कि पतंजलि के अनुयायी हैं और वे यह वर्णन करते हैं कि हम ब्रह्म के साथ मिलाप (सायुज्य) रखते हैं तथापि उनमें से बहुत से तो निकम्मे ही हैं। भिक्षा मांगना उनका व्यवसाय है और वे बड़े छली हैं। इस बात का उत्तरदायित्व देशवासियों की चमत्कारों के लिये न बुझने वाली और न तृप्त होने वाली इच्छा पर ही समझना चाहिये। सच्चे और वास्तविक योगी लोगों में आने से बचते हैं और अपना जीवन एकान्त सेवन तथा अध्ययन में व्यतीत करते हैं; परन्तु ऐसी अवस्थाओं को छोड़कर जैसा कि दयानन्द का उदाहरण है। (ऐसा अवस्थाओं में तो वास्तविक योगी भी) समय की आवश्यकतानुसार देश की सहायता के लिये प्रकट होते हैं। यह मानी हुई बात है कि भारतवर्ष में दयानन्द से बढ़कर विद्वान्, संस्कृत पंडित, अधिक गहरा तत्त्वज्ञानी, अधिक आश्चर्यजनक स्पष्टवक्ता तथा अधिक निर्भीकतापूर्वक बुराईयों का खंडन करने वाला शंकर के समय से लेकर आज तक नहीं हुआ। शंकर उस वेदांत दर्शन का प्रसिद्ध संस्थापक हुआ है जो भारतवर्ष के समस्त सिद्धांतों में सबसे अधिक गहरा है, और जो वास्तव में 'सर्वंखल्विदं ब्रह्म'[३३] के सिद्धांत का पोषक है।

दयानन्द का आकर्षक व्यक्तित्व—फिर दयानन्द का शारीरिक आकार प्रकार भी बड़ा ही चित्ताकर्षक है । उसका कद बहुत ही लम्बा और रंग यूरोपियन जैसा श्वेत है । उसकी बड़ी और चमकती हुई आंखें, उसके भूरे से लम्बे बाल[३४] (योगी और दीक्षित न अपनी दाढ़ी काटते हैं और न बाल) उसका स्वर स्पष्ट और ऊंचा है जो प्रत्येक प्रकार के विचारों को प्रकट करने के लिये अत्यंत उपयुक्त है । वह अत्यंत मधुर और बच्चों के समान धीमे स्वर से भी बोलता है और पुरोहितों के झूठ और कुकर्मों का विरोध करते समय बिजली के समान गरजता है ।

दयानन्द की शिक्षा—ये सब बातें मिलकर भावुक हिन्दू के मन पर ऐसा प्रभाव करती हैं कि शब्दों में वर्णन नहीं हो सकता । जहां-कहीं दयानन्द आ निकलता है, झुंड के झुंड भागकर उसके चरणों में दंडवत प्रणाम करते हैं । वह बाबू केशवचन्द्र सेन के समान उन्हें नया धर्म नहीं सिखलाता और न नये सिद्धांतों का आविष्कार करता है वह केवल उन्हें यही कहता है कि तुम अपनी लगभग भूली हुई संस्कृति को फिर जीवित करो, अपने पूर्वजों के सिद्धांतों की तुलना उन सिद्धान्तों के साथ करो जो कि ब्राह्मणों के हाथ में आकर बिगड़ गये हैं, ईश्वर का वही पवित्र ध्यान फिर से धारण करना सीखो जो पुराने ऋषियों-अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा ने सिखाया था और उन प्रारम्भिक पूर्वज ऋषियों[३५] ने मनुष्यों को वेदों का जो उपदेश पहले-पहल दिया था । न वह इस बात का दावा करता है कि वेद आकाश से उतरा हुआ ईश्वरीय ज्ञान है परन्तु वह यह प्रचार करता है कि वेदों का प्रत्येक शब्द उस उच्च कोटि के ईश्वरीय ज्ञानका परिणाम है जो मनुष्य के लिये इस संसार में सम्भव हो सकता है । ऐसा ईश्वरीय ज्ञान जो मनुष्य जाति के इतिहास में होता रहता है और जब आवश्यकता पड़े प्रत्येक जाति में हो सकता है ।

दयानन्द के अनुयायी—पांच वर्ष के समय में स्वामी जी ने लगभग बीस लाख अनुयायी कर लिये हैं जो कि विशेषतया उच्च जातियों के हैं । प्रकट अवस्थाओं पर यदि विचार किया जाये तो वे सब तन, मन, धन उसके लिये न्यौछावर करने को तैयार हैं । वह धन भी प्राय: उनको अपने जीवन से अधिक प्रिय होता है परन्तु दयानन्द सरस्वती योगी हैं, वह रुपये को हाथ नहीं लगाता और आर्थिक विषयों को घृणा की दृष्टि से देखता है और कुछ मुट्ठी चावलों पर ही निर्वाह करता है । उसे देखकर मनुष्य को विचार आता है कि इस विचित्र हिन्दू का जीवन चमत्कारिक है क्योंकि वह बुरे से बुरे मानवी भावों को भड़काते समय (लोगों को आवेश दिलाते समय) तनिक भी चिन्ता नहीं करता और ये आवेश भारतवर्ष में विशेष रूप से भयदायक हैं । परन्तु जनसमूह की आक्रोशाग्नि जितना प्रभाव संगमरमर की मूर्ति पर डाल सकती है उससे अधिक स्वामी जी पर प्रभाव नहीं डाल सकती । हमने उसे एक बार यह काम करते देखा । उसने अपने समस्त प्राण निछावर करने वाले शिष्यों को विदा कर दिया और उन्हें कहा कि तुम मेरी रक्षा न करो और न मुझे बचाने का यत्न करो । वह एक उत्तेजित भीड़ के सामने अकेला ही खड़ा रहा और बड़ी दृढ़ता और गम्भीरता से उस क्रुद्ध भीड़ का सामना किया, जोकि उस पर प्रत्येक समय आक्रमण करने और खंड-खंड कर देने को उद्यत थी । (पृष्ठ १५ से २० तक) ।

आर्यसमाज व थियोसोफिकल सोसाइटी का सम्बन्ध—आर्यसमाज को जिसका कि स्वामी दयानन्द संस्थापक है और थियोसोफिकल सोसाइटी को बहुत से पत्रव्यवहार के पश्चात् मिलाया गया । जब हमारे प्रतिनिधि भारत के स्थल[३६] पर उतरे तो दयानन्द को तार दिया गया, चूंकि हममें से प्रत्येक उसके साथ निजी परिचय प्राप्त करने का इच्छुक था । उत्तर में उसने लिखा कि मुझे शीघ्र हरिद्वार जाना है जहां कि लाखों यात्री इकट्ठे होते हैं, तुम वहीं (बम्बई में) रहो क्योंकि वहां यात्रियों में विशूचिका होने की आशंका है । उसने हिमालय पर्वत के समीप पंजाब में एक स्थान नियत किया, जहां कि हम उसे एक मास पश्चात मिलें ।

---

1. क्या स्वामी जी कभी लम्बे बाल रखते थे ?—सम्पा०

हरिद्वार का कुम्भ—हम यह सुनकर बड़े प्रसन्न हुये कि हरिद्वार का मेला जिसको देखने के लिये अब स्वामी जाता था, प्रत्येक बारहवें वर्ष हुआ करता है और एक प्रकार का धार्मिक मेला है। इसको देखने के लिये भारतवर्ष के समस्त सम्प्रदायों के मनुष्य आते हैं। प्रत्येक सम्प्रदाय अपने-अपने सिद्धांतों के मंडन में बड़े-बड़े विद्वतापूर्ण लेख पढ़ता है और प्रकट रूप से जनता में सार्वजनिक सभाओं में शास्त्रार्थ होते हैं। इस वर्ष हरिद्वार का मेला बहुत भारी है। संन्यासी जो हिन्दुओं के मांगने वाले ही साधु हैं, संख्या में ३५००० थे और विशूचिका, जैसी कि स्वामी जी ने भविष्यवाणी की थी, वास्तव में फूट पड़ी थी।" (पृष्ठ २३ से २५ तक)।

पाताल और अमरीका के सम्बन्ध में स्वामी जी के विचार—पाताल शब्द के विषय में (जिसका कोषानुसारी अर्थ दूसरी ओर है) स्वामी दयानन्द सरस्वती (जिनके विषय में मैं पहले पत्रों में चर्चा कर चुकी हूं) की वर्तमान खोज रोचकता से रहित नहीं, विशेषतया तब, जब कि भाषाविज्ञानी इस अनुसन्धान को स्वीकार कर लें। जैसा कि घटनाओं से विदित होता है दयानन्द यह प्रकट करने का यत्न करता है कि प्राचीन आर्य अमरीका को जानते थे और वह वहां गये थे जो कि प्राचीन-काल की पुस्तकों में पाताल के नाम से लिखा गया है, जिसको कि समय व्यतीत होने पर लोगों ने कुछ ऐसा समझ लिया है जैसा कि यूनानी हैल्नर[1] को (समझते है)। वह अपनी सम्मति के समर्थन में प्राचीन लिखित पुस्तकों के प्रमाण देता है विशेषतया कृष्ण और उसके प्रिय शिष्य अर्जुन की गाथाओं से। अर्जुन के इतिहास में लिखा है कि वह पांडवों में से एक हुआ है और चन्द्रवंशी कुल में से था। उसने अपनी यात्रा में पाताल देखा और राजा नागवाल (नागपाल ?) की उलोपी नामक विधवा पुत्री से विवाह किया।[३७] बाप और बेटी, के नामों की समानता करके हम निम्नलिखित परिणामों पर पहुंचते हैं जो दयानन्द के विचार का बहुत समर्थन करते हैं। नागवाल वह नाम है, ज़िससे मैक्सिको के जादूगर, अमरीका के मूल निवासी और इण्डियन अभी तक पुकारे जाते हैं। असीरिया और चाल्डिया के नारकल लोग अर्थात् महगी के सरदारों के समान मैक्सिको के नागवाल भी अपनी जाति में जादूगर और पुरोहित दोनों कामों को मिलाते हैं। जादूगर होने की अवस्था में वे किसी भूत की सहायता लेते हैं जो किसी प्राणी के रूप में होता है, प्राय: सर्प या संसार के रूप में। ऐसा समझा जाता है कि यह नागोविस नागवाल की सन्तान हैं जो कि सर्पों का राजा था। अबी बीयर एसर्डी बोरबोर्ग अपनी मैक्सिको सम्बन्धी पुस्तक के बड़े भाग में इनकी चर्चा करता है और कहता है कि नागोवाल लोग शैतान के अनुयायी हैं जो कि उनके बदले में उनकी कुछ अस्थायी सहायता देता है। संस्कृत में भी सर्प को नाग कहते हैं और बुद्ध के इतिहास में नागों की अर्चा का बहुत ही वर्णन है और पुराणों में भी यह कथा है कि अर्जुन ने ही पाताल में नागपूजा प्रचलित की थी। वर्णनों की यह पारस्परिक अनुरूपता और नामों की समानता ऐसी विचित्र है कि हमारे भाषाविदों को वास्तव में नई बातों की ओर ध्यान देना चाहिये।

अर्जुन की स्त्री उलोपी का नाम भी मैक्सिको की पुरानी भाषा का शुद्ध नाम है। यदि हम स्वामी दयानन्द के विचार को न मानें तब तो इस बात का वर्णन करना सर्वथा असम्भव है कि मसीह के युग से पहले संस्कृत पुस्तकों में यह नाम कहां से आया। समस्त पुरानी भाषाओं और बोलियों में से अमरीका के प्राचीन निवासियों की भाषाओं में यह बात पाई जाती है कि हम प-ल और ट-ल आदि दीर्घ अक्षरों को आपस में मिला हुआ पाते हैं। ऐसे मिलाप टोल्टक लोगों की भाषा में विशेषतया अधिकता से हैं। संस्कृत में और न ही पुरानी यूनानी में ये शब्द, शब्द के अन्त में आते हैं और 'अटलस' और 'अटन्लटस' शब्द भी यूरोपियन भाषा के अक्षरों से भिन्न प्रतीत होते हैं। 'अफलातून' (प्लेटो) को चाहे ये कहीं से मिले हों, परन्तु ये उसके आविष्कार नहीं हैं। टोल्टक भाषा में हमें एक धातु 'अटल' मिलता है जिसका अर्थ है पानी और युद्ध। और

---

1. हैल्लर निचली सृष्टि का नाम है जहां कि भूतप्रेत रहते हैं, अनुत्पन्न सृष्टि, इसलिये कब्र के अर्थ भी हो जाते हैं (वेब्स्टर-शब्दकोष)।

कोलम्बस के अमरीका का ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् ही एक 'अटलन्टड' नाम ग्राम वहां ज्ञात हुआ जो औरागा खाड़ी के मुहाने पर था और वह एक छोटा-सा मछली पकड़ने का ग्राम है जिसको 'अक्लो' कहते हैं। केवल अमरीका में ही ऐसे नाम मिलते हैं जैसे कि 'इण्टर-को-अटल', 'जमसा-अल्टी कटल', 'पोपीकेटीटल'। इन अनुरूपताओं को अन्धाधुन्ध रूप में केवल संयोग समझकर ही वर्णन करने का यत्न करना बहुत ही कठिन है। इसलिये जब तक विज्ञान दयानन्द के विचार का खंडन नहीं करता जैसा कि अब तक नहीं कर सका है, तब तक तो वह सर्वथा युक्तियुक्त ही है कि हम इसे स्वीकार करें। ऐसा करना भले ही इस कहावत का अनुकरण करना हो कि कर्त्तव्य दूसरे कर्त्तव्य के समान है और बातों के अतिरिक्त दयानन्द यह भी कहता है कि वह मार्ग जिससे अर्जुन पांच हजार वर्ष पूर्व अमरीका को गया था साइबेरिया और नहर बेरंग के बीच से था।" (पृष्ठ ६३, ६४ से)।

प्रोफेसर मैक्समूलर, जिसका वर्णन मैं पहले कर आई हूं, कभी भारतवर्ष में नहीं आया परन्तु वह स्वयं निर्णय देने वाला बन बैठा है और अपने स्वभाव के अनुसार ऐतिहासिक वंशावलियों को ठीक करता है। यूरोप उसके शब्दों को मानो ईश्वरीय वाक्य समझ कर उसके निर्णयों का समर्थन करता है। उस प्रतिष्ठित जर्मन संस्कृतज्ञ की तिथियों की गणना का उल्लेख करते हुये मैं यह बताने की अपनी इच्छा का दमन नहीं कर पाती (भले ही यह केवल रूस के लिये ही हो) कि उसके विज्ञान से भरे हुये तर्क कितने निर्बल आधार पर स्थित हैं और उस पर कितना कम विश्वास करना चाहिये। जहां कि वह इस पुस्तक (वेद) या इस पुस्तक के प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में अपना निर्णय देता है। वे पृष्ठ ऊपर की बातों से और वर्णनों से भरे हुये हैं। मैं अपनी योग्यता की इस दशा में अधिक जानने का तो दावा नहीं करती इसलिये जो कुछ नीचे लिखा हुआ है, वह कुछ प्रकरण-विरुद्ध प्रतीत हो परन्तु इस बात को स्मरण रखना चाहये कि यूरोप के अन्य स्थानों की भांति रूस में भी भाषाविज्ञानी उन बातों से अनुमान लगाते हैं जो कि उस पर उसके प्रशंसक अनुयायियों ने कही हों, और स्वामी दयानन्द के वेदभाष्य को कोई नहीं पढ़ता। मैं सचाई से बहुत दूर नहीं हूं यदि यह भी कह दूं कि इस पुस्तक की सत्ता की ही उपेक्षा करते हैं और यह बात प्रोफेसर मैक्समूलर की कीर्ति के लिये एक बड़े भारी सौभाग्य की बात है। अब मैं संक्षेप में वर्णन करूंगी।

जब प्रोफेसर मैक्समूलर अपने साहित्य ग्रन्थ में वर्णन करता है कि आर्यजाति ने भारतवर्ष में ईश्वर के विचार को थोड़ा-थोड़ा करके क्रमशः प्राप्त किया तो वह प्रकट रूप में यह सिद्ध करना चाहता है कि वेद उतने प्राचीन नहीं हैं जितने उसके और साथी समझते हैं। अपने इस नवीन विचार की सचाई को सिद्ध करने के लिये कुछ थोड़ी बहुत बहुमूल्य साक्षी उपस्थित करके वह उस बात पर समाप्त करता है जो उसके विचार से अखंडनीय है। वह 'हिरण्यगर्भ' शब्द का और मन्त्रों में संकेत करता है और उसका अनुवाद स्वर्ण करता है और वह यह भी कहता है कि वेदों का भाग जिसको छंद कहते हैं, ३१०० वर्ष हुये बनाया गया है और वह भाग कि जिसको मन्त्र कहते हैं २९०० वर्ष से पहले नहीं लिखा जा सकता था।

पढ़ने वालों को यह ध्यान रखना चाहिये कि वेदों के दो भाग हैं: पहला-छन्द, श्लोक, गद्य आदि, दूसरा—मन्त्र अर्थात् प्रार्थनायें और तुक वाले भजन जो कि प्रार्थनाओं के अतिरिक्त विवाह आदि में पढ़े जाते हैं। प्रोफेसर मैक्समूलर, 'अग्निःपूर्वेभिः' (आदि) [३८] मन्त्रों को भी भाषा और तिथि की दृष्टि से विभक्त करते हैं और उसमें 'हिरण्यगर्भ' शब्द को पाकर उस पर ऐतिहासिक भूल का आरोप लगाते हैं। वे कहते हैं कि पुराने लोग स्वर्ण का ज्ञान नहीं रखते थे और चूंकि इस मन्त्र में स्वर्ण आया है, इसलिये इसका अर्थ यह है कि यह मन्त्र अपेक्षाकृत पिछले काल में बनाया गया आदि आदि।

परन्तु यहां यह प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ बहुत भूल पर है। स्वामी दयानन्द और अन्य पंडित भी, जो कई बार दयानन्द के साथ सहमत नहीं, इस बात में सहमत हैं कि प्रोफेसर मैक्समूलर 'हिरण्य' शब्द के सर्वथा अशुद्ध अर्थ समझा है। धात्विक

अर्थ इसका सुवर्ण नहीं है और जब 'गर्भ' शब्द के साथ मिलता है तो इसका अर्थ सुवर्ण नहीं होता । इसलिये प्रोफेसर साहब के समस्त बड़े-बड़े प्रमाण सर्वथा व्यर्थ हैं । इस मन्त्र में 'हिरण्य' शब्द का अर्थ 'महान् ईश्वर' है जो सूक्ष्म रूप से (गूढ़ अर्थों में) विद्या (ज्ञान) का प्रतीक है । इसी व्याख्या के अनुसार रसायन विद्या वाले प्रकाश के लिये 'सुवर्णवाष्प' शब्द का प्रयोग है और प्रकाश की किरणों में से वास्तविक धातु को निकालने की आशा रखते हैं । 'हिरण्य' और 'गर्भ' दोनों शब्दों को मिलाकर इसका अर्थ प्रकाशमय गर्भ के हो जाते हैं और जब वेदों में प्रयोग किये जायेंगे तो उस वास्तविक सिद्धांत को प्रकट करते हैं कि जिसके गर्भ में प्रकाशमय पदार्थ; वैसे ही विद्यमान हैं जैसे सुवर्ण पृथिवी के गर्भ में है । सत्यविद्या और सत्य का प्रकाश स्थायी है अर्थात् वह प्रकाश जो संसार के पापों से छूटी हुई आत्माओं का वास्तविक गुण है । मन्त्रों और छन्दों में मनुष्यों को सदा दोहरे अर्थ देने चाहियें, प्रथम गूढ़ और अति सूक्ष्म अर्थात् आत्मिक । दूसरे केवल शारीरिक अर्थात् प्रकट क्योंकि प्रत्येक वस्तु जो ऐन्द्रियिक जगत् में है, आत्मिक जगत् के साथ गूढ़ सम्बन्ध रखती है । वहां से ही यह निकलती है और उसी में फिर समा जाती है, जैसे इन्द्र मेघ का देवता, सूर्य, सूर्य का देवता; वायु, पवन का देवता; अग्नि, आग का देवता । ये चारों वास्तविक सिद्धांतों पर निर्भर रहते हुये मन्त्र के अनुसार 'हिरण्यगर्भ' अर्थात् प्रकाशमय गर्भ से फैलते हैं । इस अवस्था में यह देवता प्रकृति की दशा में मानों शरीरधारी नमूने हैं परन्तु भारतवर्ष में इन भेदों के विशेषज्ञ विद्वान् लोग इस बात को अच्छी प्रकार समझते हैं कि इन्द्र देवता शब्द के अतिरिक्त और कुछ नहीं जो विद्युत की शक्तियों के आघात से उत्पन्न होता है या केवल स्वयं विद्युत ही है । सूर्य सूरज का देवता नहीं है प्रत्युत हमारे सूर्यमंडल में अग्नि का एक केन्द्र है अर्थात् वह एक सत्ता है जहां से अग्नि, ऊष्णता, प्रकाश आदि निकलते हैं । यह वह चीज है जिसकी किसी यूरोपियन वैज्ञानिक ने टण्डल साहब और शरापफर साहब की सम्मतियों का विरोध न करते हुये आज तक प्रशंसा नहीं की । ये गूढ़ अर्थ मैक्समूलर साहब के ध्यान में बिलकुल नही आये और यही कारण है कि वह निर्जीव अक्षरों से चिमटा रहकर इस सिद्धांत को सुलझाने से पूर्व, कभी विचार नहीं करता । फिर यह किस प्रकार से हो सकता है कि उसको वेदों के अर्थ बदलने पर सम्मति देने की आज्ञा दी जा सके, जबकि वह स्वयं उन प्राचीन पुस्तकों की भाषा ठीक-ठीक समझने से इतनी दूर है ।

उपर्युक्त वर्णन दयानन्द की युक्ति का सार है । और अधिक व्याख्या के लिये संस्कृत विद्या वाले उसकी ओर आकृष्ट हों जो निश्चित रूप से उसकी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में पायेंगे ।" (पृष्ठ ९१ से ९४ तक) ।

संस्कृत सब भाषाओं की जननी—भाषाविज्ञान वालों ने अन्ततः जान लिया कि संस्कृत भाषा यदि समस्त प्राचीन भाषाओं का पिता नहीं तो कम से कम मैक्समूलर के कथनानुसार बड़ा भाई अवश्य है । हमको 'अलक्जैण्डर सोमा डी कोर्स' (संस्कृत भाषा के एक अन्वेषक) के साधारण उत्साह का धन्यवाद करना चाहिये जिसके कारण तिब्बत में एक नई भाषा का पता चला है जिसका साहित्य सर्वथा अज्ञात था । उसने उस भाषा के कुछ अंशों का अनुवाद किया और कुछ की जांच-पड़ताल करके उनका अर्थ वर्णन किया । उसके अनुवादों ने वैज्ञानिक जगत् पर प्रकट कर दिया है कि—

१—सूर्य के उपासकों की पवित्र पुस्तकें, जिन्दावस्था, बौद्धों की त्रिपिटक और ब्राह्मणों के ऐतरेय ब्राह्मण की मूल पुस्तक एक ही संस्कृत भाषा में लिखे गये थे ।

२—ये तीनों भाषायें अर्थात् जिन्द,[३९] न्यापी [४०] और वर्तमान ब्राह्मणी[४१] संस्कृत न्यूनाधिक प्रथम (संस्कृत भाषा) से ही निकली हुई हैं ।

३—पुरानी संस्कृत ही समस्त इण्डोयूरोपियन भाषाओं और यूरोप की वर्तमान बोलियों का उद्‌गमस्थान है ।[४२]

४—काफिरस्तान[1] के तीन विशेष मत (ज़रदश्ती,[2] बौद्ध और ब्राह्मणी) वेद की एकता की शिक्षा के केवल गिरे हुये नमूने हैं। जिसके कारण उनके वास्तविक प्राचीन मत होने में कुछ अन्तर नहीं आता और वह वर्तमान काल के बनावटी मत भी सिद्ध हो सकते हैं। १०८, १०९ प्रकाशित सन् १८८२ (रूस में प्रकाशित अजास की वैस्ट बुक रशियन मैनेजर बाबत सन् ७९ व ८०)।

समय-समय पर थियोसोफिस्टों को भेजे गये स्वामी जी के संस्कृत भाषा में लिखे गये पत्रों का अनुवाद

उनके नाम लिखे गये प्रथम संस्कृत-पत्र का अनुवाद[3]— "श्रेष्ठ गुणों से युक्त, सत्य सनातन धर्म के प्रेमी, मिथ्या मत को छोड़ने पर उद्यत, एकेश्वर की उपासना के इच्छुक, बन्धुवर्ग, महाशय हैनरी एस० आल्काट, प्रधान, मैडम एच०पी० ब्लैवेत्स्की और थियोसोफिकल सोसाइटी के अन्य समस्त सम्मानित सदस्यों को दयानन्द सरस्वती की कल्याणदायक आशीष हो।

यहां आनन्द है और आपके आनन्द के इच्छुक हैं। आपने महाशय मूलजी ठकर[४३] और हरिश्चन्द्र चिन्तामणि के द्वारा हमारे पास जो पत्र भेजा है, उसे देखकर हमें बहुत आनन्द हुआ। सर्वशक्तिमान, सर्वत्र एकरस व्यापक, सच्चिदानन्द, अनन्त, अखंड, अजन्मा, निर्विकार, अविनाशी, न्यायकारी, दयालु, विज्ञानी, सृष्टि, स्थिति, प्रलय के मुख्य निमित्त कारण और सत्य गुण, कर्म, स्वभाव वाले, निर्भ्रम, अखिलविद्यायुक्त जगदीश्वर को असंख्य धन्यवाद है कि उसकी कृपा से लगभग पांच हजार वर्ष के पश्चात् महाभाग्य के उदय होने से, हमारे प्रिय पातालदेश निवासी आपका (जिनका आपसी व्यवहार छुटा हुआ है) और हम आर्यावर्त निवासियों के, फिर से आपसी प्रीति, उपकार, पत्रव्यवहार और प्रश्नोत्तर करने का समय आ गया।[४४] मैं आपसे जुड़े प्रेम से पत्रव्यवहार करना स्वीकार करता हूं। इसके पश्चात आपकी जैसी इच्छा हो पत्र लिखकर मूल जी और हरिश्चन्द्र जी के द्वारा भेज दें। मैं भी उन्हीं के द्वारा आप सज्जनों के पास पत्र भेजता रहूंगा। जहां तक मेरी सामर्थ्य होगी, वहां तक मैं सहायता भी दूंगा। आपकी जैसी ईसाइयत आदि मतों के विषय में सम्मति है वैसी ही मेरी भी सम्मति है। जैसे ईश्वर एक है, वैसे ही सब मनुष्यों का एक ही मत होना चाहिये। और वह यह है कि एक ईश्वर की उपासना करना, उसकी आज्ञा का पालन, सब का उपकार करना, सनातन वेदविद्या से प्रतिपादित ओर आप्त विद्वानों द्वारा आचरित, प्रत्यक्ष आदि प्रमाण के अनुकूल, सृष्टिक्रम के अनुकूल, न्याययुक्त तथा पक्षपात से रहित, धर्म से युक्त, आत्मा के लिये प्रीतिकर और सब मतों द्वारा मान्य सत्य बोलना आदि लक्षण वाला, सबको सुख देने वाला है और उसका पालन करना सब मनुष्यों के लिये आवश्यक है। इससे भिन्न क्षुद्र हृदयता, छल, अविद्या, स्वार्थसाधन तथा अधर्म से युक्त, मनुष्यों के द्वारा ईश्वर का जन्म लेना (अवतार होना), मृतकों को जिलाना, कोढ़ियों को चंगा करना,[४५] पर्वत उठाना, चन्द्रमा के टुकड़े का खेल[४६] आदि बातें प्रचलित कर रखी हैं, वे सब अधर्म हैं। उनसे परस्पर शत्रुता होती है, विरोध उत्पन्न होता है, सब प्रकार के सुख का नाश होता है और सब प्रकार के दुःख उत्पन्न होते हैं, यह हमने अच्छी प्रकार निश्चय कर लिया है। कब परमेश्वर की कृपा और मनुष्यों के प्रयत्न से इन बातों का नाश होकर सनातन आर्यों से सेवने योग्य एक सत्य-धर्म सब मनुष्यमात्र में

---

1. काफिरों का देश।

2. अग्नि की पूजा करने वाले पारसी —अनुवादक।

3. हैनरी एस० आल्काट के प्रथमपत्र दिनांक १८ फरवरी १८७८ के उत्तर में लिखा गया पत्र।—सम्पा०

प्रचलित होगा, हम ऐसा परमात्मा से प्रार्थना करते हैं। जब आप सज्जनों का पत्र आया था तब मैं पंजाब देश के लाहौर नगर में था। उस स्थान पर भी आर्यसमाज के बहुत विद्वानों को आप सज्जनों के पत्र का अध्ययन करके अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ। मैं सदा एक स्थान पर नहीं रहता हूं, इसलिये उसी पते से पत्र भेजना अच्छा होगा। यदि काम की अधिकता के कारण मुझे अवकाश नहीं मिला, तो भी आप जैसे सत्यधर्म के बढ़ाने में प्रवृत्त, तन मन धन से सबकी भलाई में कमर बांधे हुये, सत्यधर्म की उन्नति और सब मनुष्यों को प्रेम करने में दृढ़ उत्साह से युक्त सज्जनों की इच्छा को पूर्ण करने के लिये हमने अवश्य समय निकाल लिया है। ऐसा निश्चय जान कर परोपकार के लिये हम आपकी सहायता और श्रीमानों के साथ पत्रव्यवहार सुख से करेंगे। बुद्धिमानों के लिये यही पर्याप्त है।" मिति वैशाख, कृष्ण ५, संवत् १९३५ विक्रमी; आदित्यवार तदनुसार २१ अप्रैल, सन् १८७८। दयानन्द सरस्वती।

स्वामी जी के दूसरे संस्कृत-पत्र का अनुवाद—प्रशंसनीय गुणों, कल्याणकारी विचारों और विद्वानों के आचार से युक्त; एक ईश्वर की उपासना में तत्पर; उसके ज्ञानरूप उपदेश वेद में प्रीति रखने वाले प्रिय पाताल-देशस्थो और हमारे बन्धुजनो! आर्यसमाज के ही सिद्धांतों का प्रकाश करने वाली, थियोसोफिकल सोसाइटी के सभापति श्रीयुत् हैनरी एस०आल्काट आदि सज्जनों को दयानन्द सरस्वती स्वामी की आशीष कल्याणदायी हो।

ईश्वर के अनुग्रह से यहां कल्याण है और ऐसे ही मैं वहां पर आपका कल्याण चाहता हूं। आपके भेजे हुये पत्र आर्यसमाज के प्रधान बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि के द्वारा मुझे प्राप्त हुये। उनमें लिखा हुआ वृत्तान्त जानकर मुझे और अन्यों-समाज के प्रधानमंत्री और सभासदों को बहुत ही प्रसन्नता हुई। इस उत्तम कार्य के चालू होने पर, ईश्वर का हजार बार धन्यवाद करना चाहिये। कारण कि अद्वितीय, सर्वशक्तिमान, समस्त जगत् के स्वामी और समस्त जगत् के उत्पादक तथा धारक परमात्मा ने बहुत समय पश्चात् पाखंड मत के बुरे उपदेशों द्वारा उत्पादित परस्पर विरोध-भावना से भावित मनों वाले आप लोगों तथा हम सभी भूगोल-निवासी समस्त मनुष्यों पर पूर्ण कृपा और न्याय करके उन दुःखनिमित्तक, कपट से युक्त मतों को नष्ट करने के लिये स्वरचित सब सत्यविद्या के कोष, वेद में हम सबकी प्रीति उत्पन्न की। इस कारण 'हम सब सौभाग्यशाली हैं'-ऐसा निश्चय जानकर हमको इस सबका हितसम्पादन करने वाले कार्य की प्रगति के लिये प्रार्थना करनी चाहिये।

१—आपके भेजे सभा-प्रतिष्ठापत्र (डिप्लोमा) पर हमने अपने हस्ताक्षर करके आज उस पर मुहर लगा कर फिर आपके पास भेज दिया है: वह शीघ्र आपको मिल जावेगा। जो आपने लिखा है कि 'आर्यावर्त के आर्यसमाज की शाखा थियोसोफिकल सोसाइटी' नाम रखा है, वह हमने भी स्वीकार कर लिया, यह आपको विदित हो।

२—सब मनुष्यों को जैसे ईश्वर की उपासना करनी चाहिये वह हमने चारों वेदों की भाष्यभूमिका में लिख दिया है उसी का सार इस प्रकार है-सब मनुष्यों को शुद्ध देश में स्थित होकर आत्मा, मन, प्राण और इन्द्रियों को ठीक करके सगुण निर्गुण की विधि से ईश्वर की उपासना करनी चाहिये।

उपासना के तीन अंश हैं—१. स्तुति, २. प्रार्थना और ३. उपासना। इन तीनों के प्रत्येक के फिर दो-दो भेद हैं।

सगुण स्तुति का उदाहरण—ईश्वर के गुणों का कीर्तन करते हुये जो उसकी स्तुति की जाती है, वह सगुण स्तुति कहाती है; जैसे यजुर्वेद के ४०वें अध्याय का ८वां मंत्र। सपर्य्यगाच्छुक्रमकायम व्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ यजुः० अ० ४। मं० ८।।

अर्थ—जो सर्वत्र व्यापक है, सदा सब जगत् का कर्ता और अनन्त वीर्य वाला, न्याय, समस्त विद्या आदि सत्य गुणों से युक्त होने के कारण पवित्र है, सब कुछ जानता अर्थात् सर्वज्ञ है, सबके आत्माओं की साक्षी, सब स्थानों पर अपनी सामर्थ्य

से सबके ऊपर विराजमान, सदा अपनी सामर्थ्य रोग से एकरस वर्तमान, अपनी जीवरूप प्रजा को वेद के उपदेश द्वारा सब पदार्थों का अच्छी प्रकार ठीक-ठीक ज्ञान देता है, इस विधि से उसकी सगुण स्तुति करनी चाहिये । जहां-जहां रचना में उस रचयिता के गुणों की प्रशंसा की जाती है । वहां-वहां सगुण उपासना जानना ।

निर्गुण स्तुति का उदाहरण—अब निर्गुण कहते हैं । वह अकाय हैं अर्थात् कभी जन्म धारण करने से सावयव नहीं होता है; उसमें न कोई छिद्र होता है और न वह कोई पाप करने से अन्यायी बना है । इसी प्रकार अथर्ववेद, कांड १३, अनुवाक ४ मंत्र १६,१७,१८,२० ।

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते ॥ १ ॥ न पंचमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते ॥ २ ॥ नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते ॥ ३ ॥ तमिदं निगतं सहः स एष एक एक वृदेक एव ॥ ४ ॥

यहां दो से नौ तक नौ बार नकारों से दुहराते हुये परमेश्वर के अनेक होने का निषेध करके वेदों में एक ही ईश्वर की उपासना का वर्णन है, ऐसे बतलाया है । जैसे सब पदार्थ अपने गुणों से सगुण और विपरीत गुणों के न होने से निर्गुण हैं, इस प्रकार जो गुण ईश्वर में नहीं है, उनके निषेध के साथ स्तुति जानना ।

अब प्रार्थना का वर्णन करते हैं । **यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते । तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा** ॥ यजु० अ० ३२, मं० १८ ॥

अर्थ—हे सर्वप्रकाशक ईश्वर ! जिस बुद्धि की देवगण अर्थात् समस्त विद्वान् और ज्ञानी उपासना करते हैं उसी बुद्धि को कृपया मुझे प्रदान कीजिये । विद्या, बुद्धि की याचना करना और समस्त गुणों की याचना करना यह सगुण रीति की प्रार्थना है ।

अब निर्गुण प्रार्थना देखिये-मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा मा नः प्रिया भोजनानि प्रमोषीः । **आण्डा मा नो मघवन्छक्र निर्भेन्मा नः पात्रा भेत् सहजानुषाणी** ॥ ऋ० १ । १०४ । ८ ॥

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् । मा नो वधीः पितरं मोत मातरं **मा नः प्रयास्तन्वो रुद्र रीरिषः** ॥ २ ॥

मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अम्बेषु रीरिषः । **वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे** ॥ ऋ० १ । ११४ । ७-८ ॥

हे रुद्र अर्थात् दुष्टरोग, दोष तथा पापी जनों के निवारक, ईश्वर ! आप अपनी करुणा से हमको बचाइये; मारिये नहीं । अपने स्वरूप के आनन्द, विज्ञान, प्रेम, अपने आज्ञापालन और शुद्ध स्वभाव से हमको कभी दूर मत कीजिये और न आपका विचार हमसे कभी दूर हो और हमारे इष्ट भोग अर्थात् भोजन, अन्न आदि श्रेष्ठ वस्तुयें हमसे पृथक् न कीजिये । हे सर्वशक्तिमन् ! आप हमको गर्भ में भययुक्त कभी न करें और सुख के साधन भी हमसे वियुक्त न हों ॥ १ ॥ हे सब दुष्ट जीवों का उनके कर्मानुसार फल देने वाले रुद्र ! आप हमको हमसे विद्या तथा आयु में वृद्ध जनों की अच्छी संगति से पृथक् न कीजिये और हमारे शिशुओं को हमसे वियोग न कीजिये । हमें हमारे धर्मोपदेष्टाओं और वीरों से रहित न कीजिये और विद्या और वीर्य के युक्त जनों और अच्छे गुणी पुरुषों से और पालने वालों और आचार्यों तथा मान करने वाली विद्या से हमें दूर मत कीजिये । हमारे शारीरिक स्वास्थ्य को भी स्थिर रखिये ताकि हम आपकी आज्ञा का पालन करने में तत्पर रहें ॥

२ ॥ हे सब रोग के दूर करनेवाले ईश्वर ! श्रेष्ठ स्वस्थ शरीर, गायें,घोड़े, अच्छे शीघ्र चलने वाले यान और हमारे शुभचिन्तकों और भला चाहने वालों को मत विभेद कर, हम सदा आप ज्ञानस्वरूप की, आपकी आज्ञापालन से पूजा करते हैं ।

अब सगुण-उपासना की विधि लिखते हैं—न्याय, कृपा, ज्ञान, सर्व प्रकाशकत्व आदि गुणों-सहित वर्तमान, सर्वत्र विद्यमान, अन्तर्यामी की उपासना करना और उसकी आज्ञा पर चलना सगुण-उपासना है । सब क्लेश, दोष, नाश, निरोध, जन्म, मरण, शीत, ऊष्ण, क्षुधा, तृषा, शोक, मोह, मद, मात्सर्य, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि से रहित परमेश्वर को जानकर यह समझना कि वह सर्वज्ञता से हमारे सब कर्मों को देखता है और उससे डर कर सदा पापानुष्ठान आदि से बचना ऐसी निर्गुण उपासना करनी चाहिये । इस प्रकार स्तुति, प्रार्थना, उपासना के भेद से तीन प्रकार की सगुण-निर्गुण लक्षण वाली, मानसी क्रिया का नाम उपासना है ।

आर्य शब्द का अर्थ—जो विद्या, शिक्षा, सर्वोपकार, धर्माचरण से युक्त हो वह आर्य है । आर्यो ब्राह्मणकुमारयोः (अष्टाध्यायी ६ । २ । ५८) । वेद और ईश्वर को जानकर उनकी आज्ञा का अनुष्ठान करने वाले का नाम ब्राह्मण है । आठवें वर्ष से आरम्भ करके ४८वें वर्ष तक नियमपूर्वक जितेन्द्रिय और विद्वानों के संग से वेदों का अर्थ का सुनना, मनन करना और ध्यान करते हुये सब विद्याओं की प्राप्ति के लिये ब्रह्मचर्य-सेवन करना चाहिये । तत्पश्चात् ऋतुकाल में अपनी स्त्री से संगम करना, परायी स्त्री का त्याग आदि उत्तम गुणों से आर्य होता है । विजानीह्यार्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् । (ऋग्वेद ५ । ५१ । ८) जब आरम्भिक सृष्टि में वेदों का प्रकाश हुआ तब ईश्वर ने सब चीजों के नाम रक्खे । फिर उसी के अनुसार ऋषियों ने श्रेष्ठ और दुष्ट इन दो प्रकार के नाम क्रमशः आर्य और दस्यु रखे । इस मंत्र में ईश्वर ने मनुष्यों को आज्ञा दी है कि हे मनुष्य ! संसार में श्रेष्ठ गुण, कर्म, स्वभाव से युक्त परोपकारी को आर्य और उसके विरुद्ध दूसरों की हानि करने वाले को दस्यु जान । दुष्टों को विद्या और शिक्षा देकर ठीक करने की आज्ञा है ।

यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा । अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय ॥ ऋ० १ । ११७ । २१ ॥

इस मन्त्र से भी यही सिद्ध है । हिमालय के प्रान्त में आदिसृष्टि हुई थी । जब वहां मनुष्यों की संख्या बहुत बढ़ गई तब श्रेष्ठ मनुष्यों का एक पक्ष और दुष्टों का दूसरा पक्ष हुआ । तब स्वभाव के भेद से कुछ विरोध हुआ । जो आर्य थे वे इस देश में चले आये; इसी कारण इस देश का नाम 'आर्यावर्त' पड़ा ।

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् । तं देवनिर्मितं देशमार्यावर्तं प्रचक्षते ॥ १ ॥

आऽसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात् । तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः ॥ २ ॥

अर्थात्—सरस्वती और दृषद्वती दो बड़ी नदियों (अटक, ब्रह्मपुत्र) के मध्य देश का नाम आर्यावर्त है । पूर्वी समुद्र से पश्चिमी समुद्र तक हिमालय और विन्ध्याचल से लेकर यह सब आर्यावर्त है । आर्यों की जो समाज है उसका नाम 'आर्यसमाज' और दस्युगणों को छोड़कर जो आर्यगुणों को ग्रहण करते हैं उनकी जो समाज है उसका नाम आर्यसमाज है । इसलिये समस्त अच्छी सभाओं का 'आर्यसमाज' नाम रखने में कोई हानि नहीं है; प्रत्युत यह उनका परम भूषण है ।

४—आप सत्यशिक्षा, विद्या, न्याय, पुरुषार्थ, सज्जनता से परोपकार का आचरण कीजिये और यत्न करके अपने बन्धु जनों से ऐसा ही आचरण करवाइये । यह आपके प्रश्न का स्पष्ट उत्तर है । इसका विस्तृत वृत्तांत वेद आदि शास्त्र के पढ़ने से विदित हो सकता है और जो मैंने वेदभाष्य, सन्ध्योपासन, आर्याभिविनय, वेदविरुद्धमतखंडन, वेदान्तध्वान्तिनिवारण,

सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि, आर्योद्देश्यरत्नमाला आदि ग्रन्थ बनाये हैं उनके अध्ययन से भी वेद का ज्ञान हो सकता है, ऐसा आप जानें ।

५-जीव का स्वभाव, धर्म आदि-जो चेतन है वह जीव है और जीव का चेतन ही स्वभाव है । उसके इच्छा आदि धर्म हैं, तथा वह भी निराकार और नाश से रहित रहता है । जीव न कभी उत्पन्न हुआ और न नष्ट होता है । इसका विचार वेदों और आर्यों के बनाये हुये ग्रन्थों में बहुत अच्छी प्रकार से किया हुआ है । यहां विस्तारभय से थोड़ा लिखा जाता है ।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ॥ यजु० अ० ४० । मं० २ ॥ **सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु । दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः** ॥ यजु० ३१ ॥ १८ ॥ इन मंत्रों से सिद्ध है कि जीव सुखेच्छा करता है; अतएव सुख धर्म है । वह दुःख त्याग करने की इच्छा करता है; इसलिये दुःख उसका धर्म है । इसी प्रकार 'ज्ञान' भी धर्म है और यजुर्वेद अध्याय ३१, मन्त्र १८ से जीव का ज्ञान धर्म जाना जाता है । जीव सदा सुख की इच्छा और दुःख को दूर करने का प्रयत्न करता है । इन दोनों के अवान्तर भेद रूप जीव के और भी बहुत से सूक्ष्म धर्म हैं । इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख तथा ज्ञान जीव के लक्षण (न्यायशास्त्र अ० १ । सूत्र १० के अनुसार) हैं । प्राण, अपान, निमेष, उन्मेष, जीवन, मन, गति, इन्द्रिय, अन्तर्विकार, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, आत्मा के लिंग (वैशेषिक ३ । २ । ४ ॥) हैं । कोष्ठान्तर्गत वायु को भीतर से बाहर निकालना, यह प्राण है । बाहर की वायु को भीतर ले जाना यह अपान है । आंखों का बन्द करना निमेष और खोलना उन्मेष है । प्राण का धारण करना **जीवन** है और ज्ञान मनन है । संकल्पसहित चेष्टा का नाम **गति** है । इन्द्रियों को जोड़ना और भीतर ही व्यवहार करना; ज्वर आदिक रोगों से युक्त होना इसका नाम **विकार** है । धर्म और अधर्म का अनुष्ठान और जाति के दृष्टिकोण से वे एक हैं । पर व्यक्ति के अभिप्राय से बहुत हैं । भूले हुये का ज्ञान और पढ़े का स्मरण आना संस्कार है । परमाणु परम सूक्ष्म और पृथक्-पृथक् होने से उनका भेद है । संयोग मेल का नाम है, वियोग जुदाई का नाम है । महाभारत के मोक्षधर्म के अन्तर्गत भरद्वाज ने लिखा है कि जो मन और अन्तःकरण में होकर इच्छा आदि से ले ज्ञान तक सब प्रकाश को जानने वाला पदार्थ है, वह जीव है । यह देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण से पृथक् है । इसलिये बहुत अर्थों को एक समय धारण करने से जैसे कि मैंने जो कुछ कान से सुना, वही आंख से देखा और जो आंख से देखा, उसी को हाथ से छूता हूं, जिसको हाथ से छुआ उसीको रसना से चखता हूं, जिसका रसना से स्वाद लिया उसी को नाक से सूंघता हूं, जिसे नाक से सूंघता हूं उसीको मन से जानता हूं, जिसको मन से जाना उसी को चित्त से चिन्तन करता हूं, जिसका चित्त से चिन्तन किया उसीको बुद्धि से निश्चय करता हूं । जिसको बुद्धि से निश्चय किया उसीको अंहकार से मानकर जो बर्ताव करता है वह जीवात्मा सबसे पृथक् है ऐसा ही जानना चाहिये । किसलिये कि जो अपने-अपने विषय में वर्तमान और दूसरे के विषय से पृथक् हैं मार्ग में बरतने वाले कान आदि से पृथक्-पृथक् लिये हुये शब्द आदिक विषयों को वर्तमान काल में एकत्रित करता है वही जीव है; क्योंकि दूसरे का देखा हुआ दूसरे को स्मरण नहीं होता । न कान को स्पर्श ग्रहण होता है; न त्वचा से शब्द ग्रहण होता है । परन्तु कान से सुनकर घड़ी को मैं हाथ से स्पर्श करता हूं जिसका पूर्व काल में देखे हुये अनुसन्धान से फिर उसको ठीक वैसा ही जानकर वर्तमान काल में देखना है-वह दोनों-समय सर्व साधनों से व्यापक और सर्व का अधिष्ठाता और ज्ञानस्वरूप जीव का ही धर्म पाया जाता है, ऐसा मानना चाहिये ।

इसी प्रकार अनेक विधियों से आर्यों को वेद शास्त्र से जाने हुये साधन योग के विचार से जीव के स्वरूप का ज्ञान हुआ, होता है और होगा ।

---

1. सभी मनुष्य जाति की दृष्टि से 'मनुष्य' नाम की एक ही जाति के हैं । —सम्पा०

जीव अविनाशी है—जब जीव यह शरीर छोड़ देता है तब मर गया, ऐसा कहा जाता है; परन्तु देह के वियोग के अतिरिक्त उसका शेष कुछ भी मरण नहीं होता। शरीर के त्यागने पर सर्वव्यापक आकाश के द्वारा ईश्वर की व्यवस्था के अनुरूप अपने किये हुये पाप और पुण्य के अनुसार दूसरे शरीर को प्राप्त होता है। दूसरे शरीर को प्राप्त करने तक शरीर का त्याग कर आकाश में और गर्भवास में, बालकपन की अवस्था में रहता है; उस समय तक उसको विशेष ज्ञान नहीं होता परन्तु यह अवस्था, निद्रा और मूर्छा के समान है। जैसे उन (निद्रा व मूर्छा) में रहता है वैसे ही वहां (आकाश आदि में रहता है)।

प्रश्न—यदि जीव बातचीत कर सकता है, द्वार खटखटा सकता है और दूसरे के शरीर में प्रविष्ट हो सकता तो वह फिर से अपने प्यारे स्थान, धन, शरीर, वस्त्र, भोजन आदि और प्यारे स्त्री, पुत्र, पिता, भाई, मित्र, सेवक, पशु, यान आदि को क्यों नही प्राप्त हो जाता है ? यदि कोई इस प्रसंग में यह कहे कि अच्छी प्रकार से ध्यान करके उसको बुलाया जाये तो वह आ सकता है। आ जावे। इस पर हम पूछते हैं कि जब कोई किसी का प्यारा मर जाता है तो वह उसका रात दिन ध्यान करता रहता है तो फिर वह क्यों नही आ जाता ? यदि कोई यह कहे कि जो उसके पहले सम्बन्धी थे, उनके पास नही आता और अन्यों के पास आता है तो यह उसका कहना ठीक नहीं, क्योंकि पहले सम्बन्धियों में तो प्रीति होती है (उनके पास आना चाहिये) और अन्य लोगों से प्रीति नहीं होती। अधिष्ठाता ईश्वर के बिना जगत् स्वयमेव नहीं हो सकता, सब का स्वामी, न्यायकारी, सर्वज्ञ, सब जीवों के पाप-पुण्य का फल देने वाला ईश्वर सदा जागरूक रहता है।

६—मृतक का फोटो कपट व्यवहार है—आपने जो मृतक का फोटो मेरे पास भेजा उसमें कपट और धूर्तता का व्यवहार है, यह निश्चय होता है। जैसे इन्द्रजाल वाला चालाकी से अद्‌भुत और विपरीत व्यवहार सत्य के समान दिखलाता है, यह भी प्रतीत होता है। जैसे कोई सूर्य-चन्द्र के प्रकाश में, अपने कंठ तथा शिर से ऊपर, अपनी छाया को निष्पलक दृष्टि से कुछ समय तक देखता रहे और फिर कुछ काल के पश्चात् उसी प्रकार निष्पलक दृष्टि बांध कर शुद्ध आकाश को ऊपर देखे तो वह अपने से पृथक् अपनी छाया की फोटो रूप बड़ी मूर्ति को देखता है, यह ऐसा ही व्यवहार होगा।

भूत प्रेत की व्याख्या—संस्कृत साहित्य में भूत उस शरीरधारी को कहते हैं जो होकर न रहे। निर्जीव शरीर का जब तक दाह न हो, तब तक उसका प्रेत नाम है।

गुरोःप्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन्। प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुद्ध्यति।

मनु० अ० ५। ३५॥

इस श्लोक में भूत और प्रेत शब्द आये हैं। वहां भूत से हो चुके हुये का और प्रेत से निर्जीव शरीर का ग्रहण है कि शिष्य गुरु के शरीर को पिता के 'नरमेधयज्ञ' अर्थात् 'मृतक संस्कार' के समान फूंक दे। यह हमने प्रसंग में कह दिया, जिसको आप भूत-प्रेत समझते हैं उसका शास्त्र में कोई अर्थ नहीं है क्योंकि यह मूल से मिथ्या है और भ्रान्तिरूप है। इसमें कुछ सन्देह नहीं, इनका होना या न होना सब कुछ केवल कपट-जाल है, ऐसा जानना मानना चाहिये। इस संक्षेप का आप अच्छी प्रकार विस्तार करके जान लें।

७—शिक्षा अपार है—आप जो हमसे शिक्षा लेने की इच्छा करते हैं वह, परमार्थ और व्यवहार विषय भेद से बहुत विस्तृत है। वह मैं पत्र द्वारा लिखने में असमर्थ हूं, वह संक्षेपतया मेरी बनाई हुई पुस्तकों में लिखे हैं और विस्तारपूर्वक वेद

आदिक शास्त्रों में है परन्तु इसके लिये मैंने श्रीयुत् हरिश्चन्द्र को लिख दिया है वह 'आर्योद्देश्यरत्नमाला' का अंग्रेजी में अनुवाद करके आपको भेज देवेगा, उससे आपको कई बातें प्राप्त हो जावेंगी ।

८—मृतक की संस्कार विधि—वेदोक्त विधि से मृतकक्रिया करनी चाहिये जो 'संस्कारविधि' ग्रन्थ में लिख दी है, यहां भी संक्षेप में लिखते हैं । जब कोई मनुष्य मरे तब मृत शरीर को नहला कर अच्छे सुंगधित पदार्थ उस पर लेपकर, अच्छे नये वस्त्र में लपेट कर, मैले कपड़े पृथक् करके, जलाने के स्थान पर ले जाकर, मनुष्य के हाथ खड़ा करने के बराबर लम्बी, मृतक की छाती के बराबर चौड़ी, जानु तक गहरी और नीचे से १२ अंगुली मात्र वेदी रचकर जल से पवित्र करके मृतक के शरीर के भार के बराबर घृत छानकर उसमें एक रत्ती कस्तूरी, एक माशा केशर मिलाकर चन्दन, पलाश, आम्र आदि की लकड़ियों को लेकर उनको काटकर आधी वेदी चुनकर उसके मध्य शव को रखकर थोड़ा-थोड़ा कर्पूर, गुग्गुल, चन्दन आदि के चूर्ण को मृतकदेह के पास फैलाकर उसके पश्चात् शेष लकड़ियां उसके ऊपर फैलाकर चुन दें और फिर आग लगा दें और धीरे-धीरे घृत की आहुति यजुर्वेद अध्याय ३९ के अनुसार एक-एक मन्त्र पढ़कर देते हुये उसे जलावें । फिर वहां से चलकर किसी जलाशय अर्थात् तालाब, पम्प, कूप या घर आकर नहाकर शोक को दूर करके अपने काम को करें ।

फिर जलने के तीसरे दिन जाकर अस्थियों सहित सब भस्म इकट्ठी करके किसी अच्छे स्थान पर गाड़ दें । यह वेदोक्त विधि से मृतकसंस्कार है, इससे न्यूनाधिक कुछ भी नहीं । वे जो अपने मित्र की अस्थियां आपके पास हैं वे भी किसी पवित्र स्थान पर जाकर खोदकर मिट्टी से ढंक देनी चाहिये ।

९—आपके वे दोनों पत्र हमने जैसा आपने लिखा, इंग्लैंड भेज दिये ।

१०—जब आपका निश्चय होवे तब सभा का नाम बदलना चाहिये । विद्वानों की सभा का यह नियम है, जब कोई नया काम करना योग्य हो तब सब अच्छे विद्वानों, सभासदों को कहकर उनकी सम्मति से काम करना चाहिये । जो सबकी भलाई के विरुद्ध हो वह काम सभा को कभी न करना चाहिये । भविष्य में जो परिणाम में आनन्ददायक कार्य हो उसके लिये शीघ्र ही प्रयत्न करना चाहिये और जब अवसर मिले तब इस सभा का नाम **'आर्यसमाज'** रखने में हानि की कोई बात नहीं है; यह मेरी सम्मति है ।

११— इसके पश्चात् आप जो पत्र मेरे पास भेजें वह मेरे नाम पर भेजें परन्तु वह पूर्वलिखित ठिकाने से बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि के द्वारा भेजना । इसका नियम इस प्रकार है कि पत्र के ऊपर मेरा नाम और लिफाफे की पीठ पर हरिश्चन्द्र चिन्तामणि का नाम हो ।

सच्चिदानन्द आदि लक्षण वाले सर्वशक्तिमान् विद्यासागर, सब के न्यायकारी, परब्रह्म को असंख्य धन्यवाद हो, जिसकी कृपा से आपके साथ हमारी और हमारे साथ आपकी भली प्रकार मित्रता और उपकार का अवसर आया है । ऐसा अमूल्य अवसर पाकर हम और आप ऐसे प्रयत्न करें जिससे सारे संसार के मनुष्यों में मूर्तिपूजा-रूप पापाचरण, अविद्या, दुराग्रह आदि दोषों के निवारण से एक सनातन वेदप्रमाण सृष्टिक्रमानुकूल सच्चा धर्म प्रचलित हो । पत्र के द्वारा अत्यन्त थोड़ा अर्थ प्राप्त होता है । जब तक सामने परस्पर बातचीत न हो, तब तक पूरा लाभ नहीं हो सकता परन्तु जिस ईश्वर के अनुग्रह से पत्र द्वारा वार्ता प्रवृत्त हुई उसीकी कृपा से आपका हमारा किसी दिन परस्पर मेल हो जावेगा । बुद्धिमानों को संकेत पर्याप्त है ।" श्रावण बदि ११, संवत् १९३५ तदनुसार २६ जुलाई, सन् १८७८ शुक्रवार । दयानन्द सरस्वती ।

कर्नल आल्काट साहब और मैडम ब्लैवेत्स्की का लाहौर में प्रथम बार आगमन

लाला जीवनदास जी, प्रधान, आर्यसमाज लाहौर ने वर्णन किया—"जब वे पहले पहल लाहौर में हमारे अतिथि हुये तो उनके निवास के लिये हमने समाज की ओर से एक होटल चिड़ियाघर की ओर किराये पर लिया और सब प्रकार से उनके आतिथ्य सत्कार में संलग्न हुये। वहां प्रतिदिन प्रातः मैं, लाला सांईदास और लाला मूलराज अर्थात् हम तीनों उन से मिलने के लिये जाया करते थे और फिर सायंकाल जाकर आधी-आधी रात तक उनके पास बातचीत करने के लिये ठहरे रहते थे। एक विशेष एकान्त में हमारी मैडम से जो बातचीत हुई वह वर्णन करने योग्य हैं जो निम्नलिखित हैं—

मैडम द्वारा अपनी सोसाइटी के लिये प्रेरणा— मैडम साहिबा ने लाला मूलराज एम०ए० से प्रार्थना की कि वह उनकी सोसाइटी के सदस्य बन जावें और सदस्य बनने की आवश्यकता वर्णन करते हुये कहा कि हम आर्यावर्त के सुधार के लिये साहस की कमर बांध कर यहां आये हैं और आपको यह विदित है कि अंग्रेज जाति जो बड़ी बुद्धिमान् है जब तक उनकी सहानुभूति आर्यावर्त के सुधार के लिये न प्राप्त की जाये तब तक पूर्णरूप से आपका सुधार नहीं हो सकता और हमने बहुत सोचा है कि उनकी सहानुभूति प्राप्त करने का इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है कि उनको इस बात का विश्वास दिलाया जावे कि वेदविद्या से सम्बन्धित योगविद्या एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा बड़ी-बड़ी असाध्य बातों पर मनुष्य विजय प्राप्त प्राप्त कर सकता है और कैसे ही कठिन से कठिन प्रश्न आत्मिक या जिस प्रकार के हों, उनका उत्तर योग विद्या के विशेषज्ञों से सन्तोषप्रद रूप में मिल सकता है। हम जिन-जिन अंग्रेज सज्जनों से मिलते रहे हैं उनको भी यह बात हृदयंगम कराते रहे हैं। यहां तक कि उनको विश्वास दिला दिया गया है कि अंग्रेजों की वर्तमान जाति योगविद्या के प्राप्त करने की योग्यता नहीं रखती क्योंकि ये लोग मांसभक्षियों की सन्तान और मांसभक्षी हैं और मांसों में भी निषिद्ध से निषिद्ध मांस खाने से बचाव नहीं करते। यह भी उनको समझाया गया है कि यद्यपि वे स्वयं इस विद्या को प्राप्त नहीं कर सकते परन्तु जो लोग इस विद्या को जानने वाले हैं, उनसे अपने कठिन प्रश्नों का उत्तर पा सकते हैं, परन्तु यह भी सीधे रूप से नहीं, केवल हमारे अर्थात् मैडम ब्लैवेत्स्की के द्वारा हो सकता है और इस विद्या के विशेषज्ञों का नाम हमने महात्मा रखा हुआ है। इसलिये हम चाहते हैं कि आप हमारी सोसाइटी के सदस्य बन जायें ताकि सदस्य बनने के पश्चात् आपको हम महात्मा की पदवी दें और जो महात्माओं से काम लेना हमारा उद्देश्य है जिसका कुछ वर्णन ऊपर आ चुका है, वह हम आप से लें अर्थात् यह कि यदि कोई अंग्रेज या कोई उत्सुक सज्जन किसी विशेष मत के महात्माओं से हमारे द्वारा पूछना चाहे तो उनके पूछने पर चिट्ठी लेकर आपके पास भेजी जावे और आपसे उत्तर प्राप्त करके हम उनके पास भेज दें।

मूलराज जी द्वारा अस्वीकार—इस पर मूलराज जी ने कहा कि प्रथम तो मैं आपकी सोसाइटी का सदस्य बनना नहीं चाहता और न आप लोगों का मैं पूरा विश्वास करता हूं। भाग्य से यदि मैं आपकी सोसाइटी का सदस्य बनकर महात्मा की पदवी प्राप्त कर लूं और कोई ऐसी उत्तर मांगने वाली चिट्ठी मेरे पास भेज दें जिसका मैं सन्तोषजनक उत्तर न दे सकूं तो फिर क्या होगा? इसके उत्तर में मैडम साहिबा ने कहा कि इस बात की तुम कुछ चिन्ता न करो क्योंकि जब कोई उत्तर मांगने वाली चिट्ठी तुम्हारे पास पहुंचेगी, साथ ही उसके उत्तर में तैयार की हुई रूपरेखा भी पहुंच जाया करेगी और आपको केवल प्रतिलिपि करने का ही काम शेष रहेगा। इस पर मूलराज साहब ने सदस्य बनने से सर्वथा इन्कार किया। तब मैडम साहिबा ने अत्यन्त निराश होकर आल्काट साहब की ओर देखकर कहा कि लो! जिन भाइयों के भरोसे हम इस आर्यावर्त देश के सुधार के लिये इतनी लम्बी यात्रा के कष्ट उठाकर आये थे वही हमको जबाव देते हैं और हमारा विश्वास नहीं करते। उनके इस कहने पर भी राय मूलराज साहब सदस्य नहीं हुये। फिर साधारण बातचीत दो दिन तक होती रही।

अध्याय ८

जोधपुर में निर्भयतापूर्वक धर्मोपदेश और परलोकगमन, विषाक्त भोजन और विशेष वृत्तांत

स्वामी जी का जोधपुर में पधारना—(३१ मई, सन् १८८३ से १६ अक्तूबर, सन् १८८३ तक) चारण नवलदान सेवक राव राजा तेजसिंह ने वर्णन किया—"स्वामी जी के यहां पधारने से एक वर्ष पहले मेरे भाई अमरदान चारण[1] ने कर्नल प्रतापसिंह से निवेदन किया कि महाराज को यहां बुलाना चाहिये। उन्होंने बड़े महाराज से चिट्ठी भिजवाई परन्तु स्वामी जी उस समय न आये और कहला भेजा कि जब मैं उधर आऊंगा, जोधपुर को भी न भुलाऊंगा।

फिर जब स्वामी जी उदयपुर विराजमान थे तब भी राव राजा तेजसिंह और महाराज प्रतापसिंह ने चिट्ठी भिजवाई कि आप अवश्य यहां पधारें और धर्म का प्रचार करें। स्वामी जी उदयपुर से शाहपुरा आये; उधर जोधपुर में तैयारी आरम्भ हुई। वैशाख सुदि दशमी को कर्नल प्रतापसिंह जी का पत्र आया कि हमने सवारी आदि का यथायोग्य प्रबन्ध कर दिया है, आप अवश्य पधारें। इस सम्बन्ध में **'देशहितैषी'** पत्रिका अजमेर में लिखा है- 'तब वहां तीन मास रहने के पश्चात् वैशाख सुदि दशमी को जोधपुर से महाराज प्रतापसिंह जी का पत्र स्वामी जी को लिवा लाने के सम्बन्ध में आया और साथ ही उन्होंने रथ, हाथी, घोड़े, पालकी आदि सवारियां जोधपुर जंक्शन[2] पर नियत कर दीं और चारण अमरदान जी उनके लिवाने को शाहपुरा भेजे। उनके पहुंचने पर स्वामी जी ने शीघ्र चलने की आज्ञा दी और श्री स्वामी जी महाराज २७ मई, सन् १८८३ को अजमेर में आ विराजमान हुये और एक दिन बैठकर श्री महाराजा साहब जोधपुर के यहां पधारे। उक्त महाराजा साहब की ओर से पहले ही पाली[3] नामक स्थान पर हाथी, घोड़े, रथ, पालकी, सवार आदि उपस्थित थे। अब आशा होती है कि वह राज्य भी प्रजा से अपना सम्बन्ध पिता पुत्रवत् समझकर प्रतिदिन उन्नतिशील रहेगा।"

श्रीयुत आनरेबिल रावबहादुर गोपालराव हरि देशमुख के योग्य पुत्र लक्ष्मणराव देशमुख, सी०एस०आई०-जिला खानदेश के असिस्टैण्ट कलक्टर २६ मई, सन् १८८३ को अजमेर आर्यसमाज में उपस्थित हुये। आप योगविद्या सीखने के लिये श्री स्वामी जी के साथ जोधपुर पधारे।" (**'देशहितैषी'** आषाढ़, संवत् १९४०, खंड २, संख्या ३, पृष्ठ ११)।

जोधपुर यात्रा का पहला ही दिन दुःखदायी रहा—'देशहितैषी' में लिखा है—"इस यात्रा का पहला ही दिन स्वामी जी को दुःखदायी सिद्ध हुआ अर्थात् मार्ग में प्रबल वर्षा हुई और उस समय कोई आश्रय स्थान नहीं मिला। छाया के अभाव में सब मनुष्य भीगते रहे, पवन के वेग से गाड़ियों की छतें उड़ गईं, ज्यों-त्यों करके बड़ी कठिनता से अजमेर पहुंचे। यहां सभासदों ने मारवाड़ के मनुष्यों के गुण स्वभाव पहले ही से सुन रखे थे। स्वामी जी की इस देश में यात्रा देखकर सब का माथा ठनका। उस समय स्वामी जी को सब ऊंच-नीच सुझा दिया था। यहां एक दिन निवास करके जोधपुर पधारे।" (खंड २, संख्या ८, पृष्ठ ११)।

जेठ वदि ५, संवत् १९४०, रविवार, २७ मई[4] को स्वामीजी पाली स्टेशन पर पहुंचे। उस समय जोधपुर तक रेलवे नहीं थी। चारण नवलदान, लाला दामोदरदास जी, सादूल जी जीत मारूत राज[5] की ओर से एक हाथी, तीन ऊंट, तीन रथ, एक सेजगाड़ी और चार सवारों सहित वहां उपस्थित थे। यह स्टेशन जोधपुर से १८ कोस दूर है। स्वामी जी अगरवालों के बगीचे में[6] उतरे और वहां का शासक सेड़ामल कायस्थ[7] दो घड़ी दिन रहे स्वामी जी के दर्शन को आया था।

दूसरे दिन, २८ मई,[8] सन् १८८३ को पहर के तड़के वहां से चलकर ग्राम रोहट[9] आये। वहां के जागीरदार गिरधारीसिंह ने सब रसोई आदि का प्रबन्ध कराया और तालाब की छत्रियों पर स्वामी जी ने निवास किया। जागीरदार साहब ने स्वामी जी के उपदेश को स्वीकार किया और कुछ पुस्तक भी मोल लिये।

यात्रा में प्रातःकाल की पैदल सैर—वहां से दस बजे रात के चलकर २९ मई, सन् १८८३ मंगलवार तदनुसार जेठ बदि ८, संवत् १९४० को जोधपुर से दो ढाई कोस के अन्तर पर पहुंचे[१०] तो प्रातःकाल की शुद्ध वायु से लाभ उठाने के अभिप्राय से स्वामी जी ने अपने स्वभाव के अनुसार पैदल चलना आरम्भ किया। उसके कारण और भी पैदल ही गये। रियासत की ओर से राव राजा जवानसिंह जी स्वागत को आये। स्वामी जी के साथ चलकर भैय्या फैजउल्ला खां के बड़े बंगले[११] में उतरवाया। उनके पहुंचते ही कर्नल प्रतापसिंह और राव राजा तेजसिंह भी पधार गये और कर्नल साहब ने २५ रुपये नकद और एक मुहर भेंट की और परस्पर सत्कारपूर्वक नमस्ते होकर चारण नवलदान चार अन्य मनुष्यों सहित सेवा के लिये नियत हुये और दुग्ध के लिये एक गाय रखी गई और ६ सिपाही और एक हवलदार रक्षा के लिये नियत किये गये।

जोधपुर नरेश दर्शनार्थ पधारे—स्वामी जी के पहुंचने के १७ दिन पश्चात् जोधपुर नरेश श्रीयुत् महाराजा जसवन्तसिंह जी दर्शनार्थ पधारे[१२] और एक सौ रुपये और पांच मुहरें भेंट कीं और फर्श पर बैठने लगे परन्तु स्वामी जी ने उनसे कुर्सी पर बैठने के लिये अनुरोध किया। तब महाराजा ने कहा कि आप हमारे स्वामी हैं; हम आपके सेवक हैं, आप कुर्सी पर बैठें। परन्तु स्वामीं जी ने सभ्यतापूर्वक उनका हाथ पकड़कर कुर्सी पर बिठला लिया। महाराज साहब तीन घण्टे विराजमान रहे। स्वामी जी उनको मनुस्मृति के अनुकूल राजधर्म का उपदेश करते रहे। इस पर महाराजा बहुत प्रसन्न हुये और दिल्ली दरबार के विषय में कुछ चर्चा की। फिर महाराजा ने पधारते समय कहा कि महाराज ! आपका पधारना यहां दुर्लभ है, जब तक आप रहें प्रतिदिन व्याख्यान और उपदेश हुआ करे। उसके दूसरे दिन से स्वामी जी ने व्याख्यान देना आरम्भ किया। प्रतिदिन यह नियम रखा कि ४ बजे से ६ बजे तक तो नीचे मैदान[१३] में व्याख्यान होते थे और तत्पश्चात् आधा घण्टा वहां ठहरकर ऊपर चले जाते और ८ बजे तक वहां लोगों का शंकासमाधान किया करते थे।

सन्ध्या शब्द की व्युत्पत्ति पर चर्चा— पंडित हर्षलाल बनारस निवासी (जो महाराज किशोरसिंह जी के कुमार अर्जुनसिंह को पढ़ाते थे) से स्वामी जी का सन्ध्या विषय पर तीन दिन तक वार्तालाप हुआ। यह बातचीत व्याकरणानुसार सन्ध्या की शब्दसिद्धि पर थी। अन्तिम दिन पंडित जी ने मान लिया और कहा कि महाराज ! जो आप कहते हैं वही ठीक है।

गणेशपुरी जी द्वारा शास्त्रार्थ से इन्कार—राव राजा जवानसिंह ने कहा कि यहां गणेशपुरी[१४] एक प्रसिद्ध पंडित हैं, उनसे आपकी चर्चा करायेंगे और उन्हें बुरौन्दा[१५] ग्राम (जो बीस कोस की दूरी पर है) से बुलाया। जब वे यहां आये तो उन्हें बहुत उद्यत किया कि आप विद्वान् हैं, स्वामी जी से शास्त्रार्थ करें। वे प्रथम दो दिन तक टालते रहे और अन्त को स्पष्ट कह दिया कि मैं उनसे परिचित हूं और उनके ग्रन्थ भी देखें हैं, मै उनसे शास्त्रार्थ करने के योग्य नहीं हूं, वे जो कुछ कहते हैं सब सत्य हैं, शास्त्रार्थ के लिये सामने नहीं आऊंगा।

देखो ! तुम्हारे पूर्व पुरुष ऐसे होते थे-एक दिन स्वामी जी दुर्ग[१६] देखने के लिये गये। लौटकर वहां से महाराणा प्रतापसिंह[१७] का हस्तनिर्मित चित्र लाये जो अत्यंत पराक्रमी और शूरवीर राजा हुये हैं। वे दाढ़ी नहीं रखते थे, केवल मूंछें रखते थे। महाराज प्रतापसिंह को स्वामी जी ने वह चित्र दिखलाया कि देखो तुम्हारे पूर्वपुरुष ऐसे होते थे।

पंडित श्रीराम का साहस नहीं हुआ कि शास्त्रार्थ करे— पंडित श्रीराम, पहाड़ी, चक्रांकित, (जो मेहता विजयसिंह के मन्दिर[१८] में उतरे हुये थे) पत्र द्वारा नियम निश्चित करते रहे, किसी बात पर न जमे, कहते रहे कि मेरे शिष्य मेहता विजयसिंह को मध्यस्थ करो। स्वामी जी ने कहला भेजा कि जिस दिन शास्त्रार्थ करना हो यहां आ जाओ, अन्यथा हमें

लिखो, हम आ सकते हैं । मेहता साहब मध्यस्थ नहीं हो सकते क्योंकि एक तो वे तुम्हारे शिष्य और तुम्हारे मत के हैं, दूसरे वे संस्कृत नहीं पढ़े हुये हैं । कोई विद्वान् पंडित मध्यस्थ होना चाहिये परन्तु उसने स्वीकार न किया और न सामने आया ।

मेहता विजयसिंह के साथ एक और पंडित चक्रांकित था । मेहता जी और वे एक ही प्रकार का टीका लगाया करते थे । एक दिन स्वामी जी ने व्याख्यान में चक्रांकित मत और उनके तिलक का खंडन किया और 'नायमतनु'[१९] यह मन्त्र पढ़कर इसके अर्थ किये कि इससे किसी प्रकार शरीर पर दाग सिद्ध नहीं होता । जिस पर वह चक्रांकित पंडित मन ही मन ही कुढ़ता रहा; कुछ उत्तर न दे सका ।

यदि प्रजापालन न्याय से ही करोगे तो मुक्त हो जाओगे—महाराज प्रतापसिंह जी बहुत आया करते थे । उन्होंने पूछा कि कोई ऐसा काम बतलावें जिससे हमारा मोक्ष हो । स्वामी जी ने कहा कि और काम तो तुम्हारे मोक्ष के नहीं हैं, परन्तु एक न्याय तुम्हारे हाथ में है । यदि प्रजापालन न्याय से करोगे तो तुम्हारा मोक्ष हो सकता है ।

ब्रह्मचर्यव्रत के प्रति निरन्तर जागरूक रहते थे—राव राजा सोहनसिंह जीव ब्रह्म की एकता पर दो तीन प्रश्न करते रहे । एक दिन वह निश्चलदास[२०] का बनाया हुआ 'वृत्तिप्रभाकर' भी लाये थे । उससे उन्होंनें कहा कि ये चार महावाक्य वेद के हैं-'अहं ब्रह्मास्मि',[२१] 'तत्त्वमसि',[२२] 'अयमात्मा ब्रह्म',[२३] 'प्रज्ञानं ब्रह्म' ।[२४] स्वामी जी ने कहा कि ये तो ठीक हैं परन्तु इनके अर्थ ऐसे नहीं है । तब स्वामी जी ने इनके अर्थ करके बतलाये कि देखो ये इनके अर्थ हैं । इनसे जीव ब्रह्म की एकता कहां सिद्ध होती है ?

आषाढ़ की अमावस्या या एकादशी (जुलाई का आरम्भ) की बात है कि उस बाग में जीने के समीप दालान में एक पंडित शिवदान जी नारलाई[२५] मारवाड़ के उतरे हुये थे । उनके लिये बड़ी महारानी ने कुछ आम, केले आदि चार पांच बांदियों के हाथ भेजे । जब वे पहुंची, उस समय स्वामी जी भोजन करके करवट ले रहे थे । वे स्त्रियां पंडित जी को पूछते-पूछते वहां आईं । किसी ने नीचे से कह दिया कि पंडित जी बीच के बंगले में हैं अर्थात स्वामी दयानन्द । नीचे पहरे वाले ने भी ऐसा ही बताया और न रोका, वे ऊपर आ गईं अर्थात् स्वामी जी के बिलकुल सामने बरांडे में । संयोग से स्वामी जी ने जब करवट बदली तो उनको देख लिया । देखते ही घबरा कर जोर से आवाज दी और उठ खड़े हुये । चारण नवलदान साथ के कमरे की कोठरी में लेट रहा था; कोलाहल सुनकर घबराहट में नंगे सिर दौड़ता हुआ आया क्योंकि उसने विचारा कि कोई स्वामी जी पर तलवार लेकर आया है, जैसा कि पहले कई बार हुआ था । स्वामी जी ने उससे कहा कि क्या अत्याचार है, हमारे सामने स्त्रियां आ गईं, यह तुम्हारे प्रबन्ध का दोष है, शीघ्र इनको निकाल दो । उसने शीघ्र उन्हें बाहर कर दिया, जब उनसे पूछा तो विदित हुआ कि वे पंडित जी के पास आई हैं । उनको उनके पंडित का पता बतला दिया और स्वामी जी से निवेदन किया कि पहरे वालों के प्रमाद से ऊपर आ गईं हैं । स्वामी जी बहुत क्रुद्ध हुये और कहा कि इन पहरे वालों को बदलवा दो और वे बदलवा दिये गये और जो नये आये उनको समझा दिया कि कोई स्त्री बड़ी हो या छोटी, इस बंगले के ऊपर न आने पावे । इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे ब्रह्मचर्य व्रत के बड़े पक्के थे ।

मुसलमान अभ्यागतों से चर्चा—१—मुसलमानों में से नवाब मुहम्मद खां विलायती, कर्नल मुहीउद्दीन और इलाही बख्श कामदार प्राय: आया करते थे । ये नवाब साहब शिया मत के थे । कभी कोई शास्त्रार्थ उन्होंने नहीं किया और जब कोई बात होती तो कहते कि आप तार्किक व्यक्ति हैं ।

२—महामन्त्री भैय्या फैजउल्ला खां[२६] दो -तीन बार आये । एक बार उन्होंने यह भी कहा कि स्वामी जी ! यदि मुसलमानों का राज्य होता तो आपको लोग जीवित न छोड़ते और उस समय आप ऐसा भाषण न कर सकते । स्वामी जी

ने उत्तर दिया कि मैं भी उस समय ऐसी ही कार्यवाही करता अर्थात् दो राजपूतों की गर्दन थाप देता, वे उनकी अच्छी प्रकार खबर ले लेते।

३—एक दिन स्वामी जी ने नवाब साहब से कहा कि कुरआन में लिखा है कि खुदा अर्श आकाश पर बैठेगा ? अपने पांव की पिंडली दिखलावेगा; यह बात कैसी है ? नवाब साहब बोले कि हम ऐसी बातों को नहीं मानते। स्वामी जी ने कहा कि आप सुन्नी नहीं हैं ? कहा कि नहीं, हम शिया हैं।

ब्रह्म से बातें—स्वर्गीय राव राजा शिवनाथ जी, जो संस्कृत के योग्य पंडित थे—दो-चार बार आये और उन्होंने शाक्त मत के विषय में कुछ पूछा। स्वामी जी ने उसका उत्तर न दिया परन्तु उत्तर में इसके अतिरिक्त और कुछ न बोले कि आप पंडित हैं। इनके भाई राव राजा मोहन सिंह जी[२७] जो संस्कृतज्ञ थे, कई बार आये और जीव ब्रह्म की एकता के विषय में स्वामी जी से प्रश्न किया कि आप जीव हैं या ब्रह्म ? स्वामी जी ने कहा हम जीव हैं। उसने कहा कि मैं तो ब्रह्म हूं क्योंकि पण्डित का यही कथन है कि वह समदर्शी हो और चराचर में उसको देखे।[२८] इस पर स्वामी जी ने कहा कि यदि ब्रह्म हो तो ब्रह्म के गुण होने चाहियें, जो कि आपमें नहीं दीखते। इस पर कई मन्त्र पढ़कर सुनाये, जिस पर कहा कि यदि मैं चाहूं तो सब जान सकता हूं परन्तु जब मैं शुद्ध हो जाऊं तभी ब्रह्म बनूंगा। स्वामी जी ने कहा कि ब्रह्म में अशुद्धता कहां से आई ? शुद्ध क्यों नहीं होते ? इसी प्रकार की बातें एक दो दिन हुईं परन्तु उन्होंने फिर कभी ऐसे प्रश्न नहीं पूछे प्रत्युत स्वामी जी से प्रीति युक्त बातें करते और प्रेम रखते रहे। स्वामी जी भी उनकी योग्यता की प्रशंसा करते रहे।

स्वामी जी अप्रतिम हैं—राव राजा जवानसिंह एक दो बार और महाराज के समीप बैठने वालों में से पण्डित शिवनारायण जी[२९] प्राइवेट सेक्रेटरी महाराजा जोधपुर और मेहता कुन्दनलाल जी आये थे। पण्डित शिवनारायण चार-पांच बार आये परन्तु कोई प्रश्न नहीं किया क्योंकि उनका स्वभाव कम बोलने का था। परन्तु स्वामी जी की प्रशंसा किया करते थे कि ये दार्शनिक और बुद्धिमान् हैं, भारतवर्ष में कोई ऐसा मनुष्य नहीं है जो इनकी समता कर सके, इनकी बातों का समझना भी हम जीवों के लिये कठिन है और यह भी कहते थे कि हमारे मित्र पादरी रामचन्द्र देहलवी,[३०] सितारये हिन्द भी इनकी प्रशंसा करते थे।

मद्य मांस न सेवन करने वालों की ओर कृपादृष्टि—स्वर्गीय मेहता कुन्दनलाल जी और मेहता गणेशचन्द्र भी आये थे। पांच-पांच रुपये उन्होंने स्वामी जी को भेंट किये। उनके साथ एक पण्डित जी भी आये थे जिन्होंने प्रश्नों की एक सूची पढ़कर सुनाई,इन सब प्रश्नों का उचित उत्तर स्वामी जी ने दे दिया। वे सुनकर बहुत प्रसन्न हुये। उनमें से कुन्दनलाल तो जैनी थे और गणेशचन्द्र कुछ-कुछ वेदांती थे। जोशी आसकरण मुसाहिब एक बार और बख्शी बच्छराज जी कई बार अपने सन्देह निवृत्त करने आये। सरदारों में से कुचामन[३१] कुंवर शेरसिंह भी पधारे। स्वामी जी उनसे बहुत प्रसन्न हुये क्योंकि वे मद्य मांस की ओर कम आकर्षित थे और उनको अब तक भी स्वामी जी से प्रीति है।

साधु ने प्रश्न पूछा पर तर्क नहीं किया—एक साधु दयालदास, गरीबदास जो गणेश[३२] के मन्दिर में उतरे थे, दस बीस मनुष्यों सहित आये और जीव ब्रह्म के बारे में प्रश्न किया। स्वामी जी ने जब उत्तर दिया तो बोले कि आपका अधिकार है, चाहे ऐसे मानो चाहे वैसे। स्वामी जी ने कहा कि शंका समाधान कर लो। उन्होंने कहा कि हम साधु हैं, हमें इससे क्या ! स्वामी जी ने उसका साधन जान लिया। पंडित लाल जी महाराज कुंवर शेरसिंह जी के गुरु (जो उस समय मूर्तिपूजक थे) शास्त्रार्थ के लिये उद्यत हुये परन्तु सामने न आये, केवल नियमों में ही समय व्यतीत हुआ। आजकल ये आर्यसमाज के सदस्य हैं।

राजाओं के वेश्यागमन से भारी क्षोभ—एक बार महाराजा किशोरसिंह जी ने स्वामी जी के पलंग पर सोने और इक्के पर सवार होने के विषय में कुछ आक्षेप किया था। स्वामी जी ने उसका उत्तर दे दिया। फिर स्वामी जी ने आजकल क्षत्रियों के धर्म और राजाओं की वर्तमान दुर्दशा का वर्णन किया, यह कहते हुये कि आजकल के राजा लोग सिंहवत् होकर वेश्या, जो कि कुतिया के तुल्य है, ऐसे को अपने संग रखना पसन्द करते हैं। यह अत्यन्त लज्जा और घृणा की बात है। भारतवर्ष के अगले राजा लोग पराक्रमी, शूरवीर और जितन्द्रिय होते थे। यहां एक दिन चमत्कार के खंडन पर व्याख्यान दिया जिसमें मुहम्मद साहब के चन्द्रमा के टुकड़े करना, कृष्ण जी का पर्वत उठाना, ईसा का मृतकों को जीवित करना और अन्धों को आंखें देना, इन सब का खंडन किया था।

मूर्तिपूजा ईश्वर की निन्दा है—मैंने स्वामी जी से नया सत्यार्थप्रकाश जो उस समय ३६४ पृष्ठ तक छप चुका था—ठाकुर गिरधारीसिंह जी रईस के लिये मोल लिया था और पांच रुपया उसका मूल्य दिया था। तेजरूप नाजर एक ड्योढ़ीदार[३३] एक गुसांई को निजी रूप में लाया था, गुसांई जी ने स्वामी जी की बहुत बातों को पसन्द किया परन्तु जब उस के सहधर्मी उसकी बुराई करने लगे तब वह दूसरी बार न आया। डाक्टर सूरजमल कहते थे कि स्वामी जी यह कहा करते थे कि तुम लोग सदा शक्तिमान् ईश्वर को पीठ करके मूर्ति को पूजते हो, वास्तव में तुम ईश्वर को कुछ नहीं समझते, प्रत्युत उसकी निन्दा करते हो।

स्वामी जी की दिनचर्या:समय पालन में दृढ़ता—प्रातः ४ बजे उठते। उठकर कुल्ला और दातुन कर थोड़ी सी सौंफ और दो चार घूंट पानी पीते थे और जल पीकर ५-७ मिनट करवट लेते थे। ५ बजे घूमने चले जाते थे। कई दिन अमरदान[३४] साथ जाया करता था, एक दिन मैं भी साथ गया था। जंगल में एक वृक्ष के नीचे बैठकर आधा घंटा योगाभ्यास का साधन किया, वह समय सूर्य निकलने का था। दो कोस पैदल चले जाते, फिर वहां से मकान चले आते। जाते समय तनिक धीरे और आते समय बहुत तेज चाल से आते जिससे पसीने से लथपथ हो जाते थे। पसीने को कपड़े से नहीं पोंछते प्रत्युत उस पर रेत लगा लेते थे। सारे शरीर पर जहां पसीना आता; रेत लगाते। भ्रमण के समय एक लंगोट और उसके ऊपर एक छोटी सी धोती रखते थे। बड़ा मजबूत जूता पहनते थे। भ्रमण के समय सिर और समस्त शरीर से नंगे होते। एक मजबूत सोंटा हाथ में होता था। सात बजे लौट कर आते और आकर पन्द्रह या बीस मिनट कुर्सी पर बैठकर वायु-सेवन करते। वायु सेवन के पश्चात् एक गिलास के लगभग दुग्ध और जल मिलाकर पीते थे। आठ बजे वेदभाष्य का लिखाना आरम्भ कर देते। दो पंडित पास होते थे, स्वयं बोलते जाते और पंडित लिखते जाते। पण्डितों के नाम रामचन्द्र और देवदत्त थे। ११ बजे तक, अर्थात् तीन घंटे वेदभाष्य का काम करते। ११ बजे उठकर स्नान करते और स्नान करने के पश्चात् आधा घंटा कोटरी बन्द कर अकेले बैठ जाते थे। किसी से कुछ न कहते थे। परन्तु एक दिन जो मैंने द्वार के दर्पण से देखा तो विदित हुआ कि व्यायाम करते थे। बारह बजे भोजन करते थे। दूध, सब्जी, दाल, चावल, कभी-कभी खिचड़ी और फुल्के, यह सदा का भोजन था। भोजन एक समय करते, जब तक गर्मी की ऋतु रही तब तक नित्य दही का शिखरन[३५] (दही, इलायची, मिश्री, केशर, धनिया कुटा हुआ) बनवाते थे। शीतकाल या चातुर्मास में नहीं। कभी-कभी हलुवा भी बनवाते थे। कभी-कभी आम का अमरस बनवाते थे। भोजन के पश्चात् एक पान खाते और फिर आधा घंटा या पौन घंटा लेट जाते; सोते तो नहीं, परन्तु करवटें लेते थे। फिर उठकर जल पीते, रोटी के साथ थोड़ा सा जल पीते थे। भोजन उनका डेढ़ पाव अंग्रेजी[३६] होता था। जल पीकर दो चार मिनट बैठे रहते, फिर एक बजे सत्यार्थप्रकाश और संस्कारविधि की कापियां जो छपी हुई आतीं, उनको शोधते थे[३७] और लोगों की चिट्ठियों के उत्तर भी उसी समय लिखाते थे। बीच में यदि कोई आवश्यक काम के लिये आ जाता तो उससे बातें भी कर लेते। तीन बजे फिर स्नान करते, मुलतानी अर्थात् पीली मिट्टी सारे शरीर पर, मुख से लेकर सिर तक लगाते और छाती, माथे और भुजाओं पर चन्दन घिसा हुआ लगाते थे। फिर चार

बजे व्याख्यान के लिये आते थे। आते हुये एक रेशमी धोती कमर में, साफा सिर पर और चादर पीठ पर डाल लेते थे। इसके अतिरिक्त और कपड़े शरीर पर नहीं पहनते थे। छः बजे तक व्याख्यान, ६ बजे से ८ बजे तक शंका समाधान और नौ बजे तक बैठे रहते। आमों की ऋतु में दो तीन आम खा कर ऊपर से दूध एक सेर के लगभग मिश्री डालकर पीते थे। आम चूसने की बड़ी रुचि थी, हम लोगों को भी आम खिलाते और ऊपर से दूध पिलाते थे। रात को नित्य दूध जो गर्म किया हुआ होता था उसको ठंडा कर लेते थे, फिर उसी समय समाचारपत्र सुनते और दस बजे के पश्चात् अवश्य सो जाते, चाहे कुछ ही क्यों न हो। समय के बड़े पक्के थे। कभी-कभी महाराजा साहब रात के सात बजे आते और बातें करते-करते जब दस बज जाते तब स्वामी जी बात समाप्त कर देते और कहते कि महाराज, शेष फिर कहूंगा। महाराजा साहब और बातें करना चाहते परन्तु स्वामी जी कहते कि अब नहीं, मेरे सोने का समय हो गया, इस समय नहीं। नियम का बहुत दृढ़ता से पालन करते थे।

राजपुरुष सिंह के समान है और वेश्या कुतिया—सारांश यह कि स्वामी जी वहां अपने सत्योपदेश में संलग्न और सब प्रकार धर्म-प्रचार में व्यस्त थे और निर्भय होकर वैदिक धर्म का प्रकाश करते रहे। कुल तीन बार महाराजा साहब ने स्वामी जी के डेरे पर और तीन बार स्वामी जी को अपने महल पर बुलवा कर उनसे बातचीत की। इसी बीच में स्वामी जी को विदित हो गया कि महाराजा साहब ने एक नन्हीं जान[३८] नामक वेश्या रखी हुई है और जो कामकाज राज्य का होता है, प्रायः उसकी सम्मति से होता है। प्रत्युत एक दिन स्वामी जी ने जब कि वे महाराजा साहब की भेंट के लिये गये, उसे अपनी आंख से देख लिया। स्वामी जी के आने पर महाराज ने उसका चौपान[३९] उठवा दिया परन्तु एक ओर का कन्धा झुकने पर महाराजा ने अपना कन्धा या हाथ लगा दिया।[४०] स्वामी जी को यह दशा देखकर बहुत क्रोध आया और अपने देश के राजाओं की यह अवस्था अपनी आंख से देखकर सच्ची देशहितैषिता के कारण उपदेश के समय बड़े स्पष्ट शब्दों में उपदेश किया—"राजपुरुष सिंह के समान हैं और वेश्या कुतिया के समान। सिंहों को कदापि नहीं चाहिये कि वह कुतियाओं से समागम करें। ऐसी कुतियाओं पर आसक्त होना कुत्तों का ही काम है न कि अच्छे मनुष्यों का, लड़कों पर मोहित होने वाले तो शूकर और कव्वे ही होते हैं, हजारों धिक्कार हैं ऐसे जीवों पर।

हिन्दू राजाओं की सत्ता केवल उनकी रानियों के पतिव्रत धर्म पर आधारित है— एक और आर्य महाशय से स्वामी जी ने वर्णन किया कि हिन्दू रियासतों की राजाओं के दुराचार से ऐसी बुरी दशा है कि वह कब की नष्ट हो जातीं परन्तु जितनी भी अवशिष्ट हैं, केवल उनकी रानियों के पतिव्रतधर्म की सत्ता है, अन्यथा यदि राजाओं के कुकर्म पर होता तो बेड़ा कब का डूब जाता। डाक्टर सूरजमल जी का कथन है कि स्वामी जी ने राजाओं के व्यभिचार का बहुत खंडन किया कि ये लोग वेश्याओं के पीछे कुत्तों के सामान फिरते हैं, यह बहुत बुरी बात है। मैंने यह शब्द स्वयं उनके मुख से सुने हैं, किसी का भय नहीं करते थे। केवल यही नहीं कि मौखिक कहा, प्रत्युत एक पत्र में महाराज प्रतापसिंह जी को ऐसा लिखा है[४१] और इस बात का स्पष्ट संकेत किया है।

राजाओं की दुर्दशा की निरन्तर चिन्ता

महाराजा कर्नल सर प्रतापसिंह जी सी०एस०आई० के नाम भेजा हुआ स्वामी जी का एक पत्र—श्रीयुत मान्यवर शूरवीर महाराजा श्री प्रतापसिंह जी, आनंदित रहो। यह पत्र बाभा साहब[1] को भी दृष्टिगोचर करा दीजियेगा।

मुझको इस बात का बहुत शोक होता है कि श्रीमान् जोधपुराधीश आलस्य आदि में वर्तमान, आप और बाभा साहब दोनों रोगयुक्त शरीर वाले हैं। अब कहिये इस राज्य का कि जिसमें १६ लाख से कुछ ऊपर मनुष्य बसते हैं, उनकी

1. बाभा साहब का सम्बोधन राव राजा तेजसिंह के लिये है।

रक्षा और कल्याण का बड़ा भार आप लोग उठा रहे हैं, सुधार और बिगाड़ भी आप तीनों महाशयों पर निर्भर है तथापि आप लोग अपने शरीर का आरोग्य संरक्षण और आयु बढ़ाने के काम पर बहुत कम ध्यान देते हैं । यह कितनी बड़ी शोचनीय बात है । मैं चाहता हूं कि आप लोग अपनी दिनचर्या मुझसे सुनकर सुधार लेवें जिससे मारवाड़ का ही नहीं; अपने आर्यावर्त देश भर का कल्याण करने में आप लोग प्रसिद्ध होवें । आप जैसे योग्य पुरुष जगत् में बहुत कम जन्मते हैं और जन्म के भी बहुत कम चिरायु होते हैं; ऐसा हुये बिना देश का सुधार कभी नहीं होता । उत्तम पुरुष जितना अधिक जीवे उतनी ही देश की उन्नति होती है । इस पर ध्यान आप लोगों को अवश्य देना चाहिये । आगे जैसी आप लोगों की इच्छा हो वैसा कीजियेगा ।"

हस्ताक्षर—दयानन्द सरस्वती, जोधपुर । आश्विन बदि ३, शनिवार, संवत् १९४० । २२ सितम्बर, सन् १८८३ ।

स्वामी जी के शत्रु उत्पन्न हो गये

शत्रु उत्पन्न हो गये, षड्यन्त्र का आरम्भ—उस व्याख्यान और इस उपदेश से नन्हीं जान[४३] बहुत भड़की, उधर चक्रांकितों के खंडन से मेहता विजयसिह जी बहुत अप्रसन्न हुये । भैय्या फैजउल्ला खां की सम्मति तो ऊपर ही लिख चुके हैं । मेहता विजयसिंह ने नन्हीं जान को और भी भड़काया तो और ब्राह्मणों का खंडन और भी विपत्ति ढाने वाला हुआ । एक करेला दूसरा नीम चढ़ा और फिर कीड़े पड़ गये । सारांश यह कि सब प्रकार विपत्ति का समय आ गया ।

स्वामी जी के विरुद्ध इन सबके षड्यन्त्र होने लगे क्योंकि वह वेश्या ब्राह्मणों को अधिक मानती थी और बड़ी मूर्तिपूजक थी । 'देशहितैषी' समाचारपत्र में लिखा है कि उस राज्य में स्वामी जी महाराज चार मास तक आनन्दपूर्वक रहे । इस अवधि में श्री महाराजाधिराज और उनके भाई बन्धु, ठाकुर और अमीर लोग भी आते और उपदेश पाते रहे परन्तु स्वामी जी महाराज अपने सत्य-संकल्पानुसार जो जो राज्य के अनाचार, कुचाल दृष्टि पड़ते थे, उनका सबके सामने निर्भयता से खंडन करते थे ओर वेश्यागमन के दोषों पर अधिक बल देके कहते थे कि राजपुरुष सिंह के समान हैं और वेश्या कुतिया के तुल्य, तो क्या यह योग्य है कि सिंहवत् होकर कुतिया का संग करे । अनेक प्रकार के उपदेश, अनेक भांति के इतिहास सुना, इस राजधानी को प्राचीन आर्य राजाओं के ढंग पर लाते थे ओर महाराजाधिराज, ठाकुर, अमीर लोग भी प्रसन्नतापूर्वक सुन धन्यवाद देते थे, प्रत्युत यह भी सुना गया कि उनके सत्योपदेशों से महाराजा ने उस वेश्या से कुछ घृणा करनी आरम्भ कर दी थी । इस राजधानी में पांचवा मास ऐसा निकृष्ट निकला कि ईश्वर किसी शत्रु को न दिखावे ।

विश्वस्त सेवक भी सब निकम्मे निकले— स्वामी जी के पास जितने मनुष्य भरोसे के थे, सब निकम्मे निकले । प्रथम तो उनके साथ एक कल्लू कहार भरतपुर का रहने वाला, जिस पर स्वामी जी का बड़ा प्रेम और भरोसा था, वह कहार भी बड़ी प्रीति से चाकरी करता था, छः सात सौ रुपये का माल लेकर खिड़की के मार्ग से भाग गया ।[४४] दूसरे जिस स्थान पर यह माल था, उस स्थान के द्वार पर रामानन्द ब्रह्मचारी को सोने की आज्ञा थी । उस दिन वह भी वहां न सोया था । तीसरे प्रातःकाल होते ही उस चोरी का कोलाहल सर्वत्र हो गया । इतनी देर में एक विदेशी कहार जो इस राज्य के कठिन मार्ग और घाटियों से सर्वथा अज्ञात था, उस पर महाराजा की ऐसी आज्ञा कि उस कहार को पृथिवी पर से ढूंढ कर लाओ । तिस पर मेरे-तेरे बीच में से अन्तर्धान हो जाना, इससे अधिक आश्चर्य की बात क्या होगी ! हमने सुना है कि स्वामी जी पहरे वालों और दारोगा आदि पर जब ताड़ना करते थे तो ये स्वामी जी के सामने हाथ जोड़ 'जो आज्ञा'[४५] ऐसा कहते थे, पश्चात् परस्पर हंसते थे । स्वामी जी का उन सब पर से विश्वास उठ गया ।

अचानक उदर-शूल आरम्भ—माल के चुराये जाने के विषय में रामानन्द, बिहारी, रामचन्द्र, देवदत्त आदि पर सन्देह था । उनके बयान अधिकारियों द्वारा लिये गये, परन्तु वे जेलखाने नही भिजवाये गये । ऐसी-ऐसी कार्यवाहियों के होने पर स्वामी का इन लोगों से नहीं प्रत्युत इस रियासत के मनुष्यों पर से विश्वास उठ गया और उस नगर से चले जाने का विचार

किया। इतने में आश्विन बदि एकादशी (तदनुसार २७ सितम्बर, सन् १८८३) गुरुवार को कुछ क्लेश अर्थात् प्रतिश्याय हुआ। २९ सितम्बर अर्थात् चतुर्दशी की रात्रि को धोड़ मिश्र[४६] रसोइये से (जो शाहपुरा का रहने वाला था) दूध पीकर सोये। उसी रात्रि को उदरशूल और जी मिचलाने का कठिन और नवीन कष्ट उत्पन्न हुआ और वमन करने पर विवश हुये। इसी समय में तीन वमन हुये परन्तु स्वामी जी ने किसी को नहीं जगाया और आप ही जल से कुल्ला करके सो गये। स्वामी जी का प्रतिदिन यह नियम था कि प्रातःकाल उठकर वन में शुद्ध वायु के ग्रहणार्थ जाते परन्तु आज ३० सितम्बर को बहुत दिन चढ़े उठे और उठते ही एक वमन फिर हुआ। इस पर स्वामी जी को कुछ सन्देह हुआ तो दूसरा वमन जल पीकर स्वयं कर डाला और कहने लगे कि हमारा जी उल्टा आता है। तुम लोग शीघ्र अग्नि कुण्ड में धूप डाल सुगन्ध को फैला कर कोठी से दुर्गन्ध निकाल बाहर करो। वैसा ही किया गया, पश्चात उदर में शूल चला तब स्वामी जी ने कुछ अजवायन आदि का जुशांदा पिया, जिससे कुछ छेड़छाड़ दस्तों की हो गई। 'आर्यसमाचार' में लिखा है कि इस जुशांदे के कारण या किसी बिगाड़ करने वाले दोषों के कारण दस्तों की छेड़ आरम्भ हो गई परन्तु शूल में कुछ कमी न हुई। तब डाक्टर सूरजमल जी को बुलाया। उन्होंने वमन बन्द करने की औषधि दी और पूछा कि आपका चित्त कैसा है? स्वामी जी ने कहा कि सारे पेट में अत्यन्त शूल हो रहा है, अब प्यास भी लगी है। (संकलनकर्त्ता ने विश्वसनीय सूत्र से खोज करके जाना है कि दूध में चीनी के साथ कांच बारीक पीस कर दिया गया था)।[४७] तब डाक्टर साहब ने प्यास बन्द होने की औषधि दी और कहा कि इस रोग का कारण यही है कि इस निर्जल भयंकर प्रदेश के जोधपुर नगर में ऐसे महात्मा का निवास हुआ, नहीं तो यह शूल काहे को जमता। पुनः शूल वृद्धि पाकर शरीर के सब अवयवों में प्रविष्ट हुआ और स्वामी जी को सताने लगा और श्वास के साथ बड़े वेग से शूल चलता था। परन्तु धन्य हैं स्वामी जी को, ऐसे दुःख में भी ईश्वर के ध्यान के उपरान्त कभी हाय नहीं की। डाक्टर सूरजमल जी ने हमसे वर्णन किया कि मैंने केवल आवश्यकता पूर्ण करने की औषधि दी थी।

स्वामी जी का रोग बढ़ता ही गया

डा० अलीमर्दान खां की चिकित्सा से रोगवृद्धि—तत्पश्चात डाक्टर अलीमर्दान खां[४८] की चिकित्सा आरम्भ हो गई जिससे रोग दिन-प्रतिदिन बढ़ता गया। चिकित्सा उनकी इच्छानुसार नहीं हुई, उनको शीघ्र यहां से ले जाना चाहिये था, परन्तु लोगों ने शीघ्र जाने न दिया। फिर उनको तीस-तीस चालीस-चालीस दस्त नित्य आते थे जिससे वह दिन प्रतिदिन निर्बल होते गये। ३० सितम्बर को शाम को ४ बजे भाट अमरदान[४९] के द्वारा इस रोग की सूचना महाराजा साहब प्रतापसिंह जी को मिली ओर उन्होंने तत्काल डाक्टर अलीमर्दान खां को स्वामी जी की चिकित्सा के लिये नियत किया, उन्होंने एक पट्टी पेट पर बंधवाई। डाक्टर सूरजमल तब वहां उपस्थित थे।

महाराजा साहब को चिन्ता—उसी दिन रात के आठ बजे श्रीयुत राव राजा तेजसिंह जी और उनके मुंशी ने अमरदान और दामोदरदास जी[५०] को बुलाया। तत्पश्चात् फर्रूखाबाद निवासी कप्तान साहब और कई योग्य पुरुष भी आये। उपर्युक्त सज्जन नमस्ते करके बैठ गये और कहा कि हमने तो पेट में साधारण शूल जाना था, अब देखा तो अत्यन्त ही दुःख हुआ। अलीमर्दान साहब! स्वामी जी को गिलास लगा दो, अब तो रात्रि हो गई, कल अवश्य लगा देना। ये लोग एक घंटे तक वार्ता करके चले गये।

अक्तूबर मास में रोग की दशा का दैनिक विवरण

सोमवार, १ अक्तूबर सन १८८३—आसौज अमावस को उक्त डाक्टर साहब आये और गिलास लगाये जिससे खांसी के साथ जो शूल उठता था, वह बन्द हो गया, परन्तु शूल वैसे ही बना रहा।

मंगलवार, २ अक्तूबर सन् १८८३—असौज सुदि प्रतिपदा को प्रातः काल ७ बजे स्वामी जी ने डा० साहब से कहा कि हम विरेचन लिया चाहते हैं परन्तु प्रथम कफ फूले, तत्पश्चात् दस्त आवें तो अति उत्तम है। स्वामी जी ने कहा कि

जिससे रोग निवृत्त हो वैसा कीजिये । तब डाक्टर साहब ने घर पर जाकर गोलियां बना कर भेज दीं और जिस प्रकार उन्होंने कहा था वैसे ही स्वामी जी ने लीं । आसौज सुदि २ को विरेचन किया जिससे ९ बजे तक कोई दस्त नहीं आया । तब डाक्टर साहब ने कहा कि महाराज ! यह हलका विरेचन है, जब मल पेट में ऊष्णता करेगा तब बहुत दस्त होंगे । ऐसा कहकर चले गये । दस बजे दस्तों का आरम्भ हुआ, रात्रि भर में तीस से अधिक दस्त पतले पानी से हुये । प्रातःकाल ४ बजे अक्तूबर को फिर डाक्टर जी आये; तब स्वामी जी ने कहा कि तुम तो कहते थे कि छःसात दस्त होंगे पर दस्त तो तीस से भी अधिक हुये, हमारा जी घबराता है । उस दिन और भी अधिक दस्त हुये और सांयकाल को जो दस्त हुये, उसके पश्चात् स्वामी जी को मूर्छा आ गई, आंखे निकाल दीं, सब मनुष्य डर गये । फिर तो यह नियमपूर्वक दस्त के साथ मूर्छा आने लगी ।

५ अक्तूबर को भी यही दशा रही—यही नहीं इसके प्रभाव या उक्त प्रभाव से रोग के दोषों या किसी और कुपथ्य के कारण श्री महाराज के श्वास इतने बढ़ गये कि प्रतिक्षण हिचकियां आने लगीं । ६ अक्तूबर को स्वामी जी ने डाक्टर को कहा कि भाई अब तो दस्त बन्द होने चाहियें क्योंकि मुझको बिना मूर्छा और एक दस्त नहीं होता और मेरा जी घबराता है; शरीर में अग्नि लग रही है । तब डाक्टर साहब ने कहा कि महाराज, दस्त बन्द होने से रोग बढ़ने का भय है, यदि स्वयमेव बन्द हो जायें तो अच्छा है, ऐसा कहकर चले गये । उनके जाने के पश्चात् डाक्टर सूरजमल आये ओर कहा कि इस विरेचन के देने में तो मेरी कदापि सम्मति न थी परन्तु किया क्या जावे, बड़े तो बड़े ही होते हैं ।

डा० अलीमर्दान खां की चिकित्सा का कुपरिणाम—इसी प्रकार डाक्टर अलीमर्दान खां की १६ अक्तूबर तक चिकित्सा चलती रही अर्थात् १ अक्तूबर, सन् १८८३ से १६ तक निरन्तर सोलह दिन चिकित्सा होती रही । पहले दिन पचीस-तीस के बीच और फिर दस-पन्द्रह दस्त प्रतिदिन आते, उनके कारण निर्बलता बढ़ने लगी और स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया । मुख, कंठ, जिह्वा, तालु, शिर और माथे पर बहुत छाले पड़ गये, बातचीत करने में भी अत्यंत कष्ट होने लगा, यहां तक कि बोलने में सर्वथा असमर्थ हो गये और निर्बलता इतनी हो गई कि बिना दो-चार मनुष्यों की सहायता के करवट लेना या उठना असम्भव था । चिकित्सा से लाभ होना तो एक ओर, इसके विपरीत हिचकियां बहुत अधिक बढ़ गईं । इन हिचकियों ने शक्ति को बिलकुल नष्ट कर दिया । हिचकी, उदरशूल, छालों और दस्तों के कारण स्वामी जी ने अत्यंत तीव्र कष्ट पाया परन्तु धन्य है ! स्वामी जी ने इतनी पीड़ा पर भी हाय तक नहीं की और जब हिचकियों ने अधिक सताया तब उनके निवारणार्थ दो-दो घंटे तक प्राणायाम चढ़ा निवृत्त होते थे ।

डाक्टर अलीमर्दान खां के निदान और चिकित्सा-विधि पर बहुत से उत्तेजनापूर्ण चित्त वालों को जिस ढंग पर हमने प्रश्न करते हुये सुना है,[५१] उसका वर्णन करना हम अपना कर्त्तव्य नहीं समझते । हम तो केवल वास्तविक वृत्तान्त का वर्णन करना उचित समझते हैं । यह घटना कि एक साथ ऐसे कठिन और संहारक रोग का उत्पन्न हो जाना और चतुर चिकित्सकों के पर्याप्त ध्यान देने पर भी चिकित्सा काल में उसका क्षण प्रतिक्षण बढ़ते रहना किसी बिगाड़ उत्पन्न करने वाले पदार्थ का काम था और वह किस संयोग से श्री महाराज के शरीर में, जो पूर्ण ब्रह्मचर्य से पूरे सुधारों और सावधानताओं से बना था, प्रविष्ट हुआ अपने प्रतिष्ठित पाठकों की साधारण सम्मति के परिणाम पर छोड़ते हैं ।"

('आर्यसमाचार' पृष्ठ २०९)

विरेचन-औषधि के विषय में संदेह—"भ्रातृगण ! यह विचारने का स्थान है, न जाने यह किस प्रकार का विरेचन और औषधि थी, इस पर बहुधा मनुष्य कई प्रकार की शंका करते हैं[५२] और कहते हैं कि स्वामी जी ने भी कई पुरुषों और महाराजा प्रतापसिंह जी से इस विषय में स्पष्ट कह दिया था । परंतु अब क्या हो सकता है, लाख यत्न करो, स्वामी जी महाराज अब नहीं आ सकते । जो हुआ, सो हुआ परन्तु हमको इतना ही शोक है कि स्वामी जी महाराज ने किसी

आर्यसमाज को सूचित न किया, यदि यह वृत्तान्त उसी समय जाना जाता तो यह रोग इतनी प्रबलता को प्राप्त न होता।" ('देशहितैषी' से)

रोग के समाचार पर आर्यों को विश्वास नहीं हुआ—आसौज सुदि ११, संवत् १९४० तदनुसार १२ अक्तूबर, १८८३ को आर्यसमाज अजमेर के एक सभासद ने 'राजपुताना गजट' में स्वामी जी के रोग का समाचार पढ़कर अन्य सामाजिक पुरुषों को इससे सूचित किया परन्तु उन्होंने यह समझकर कि शत्रुओं ने यह समाचार उड़ाने को छपवा दिया होगा, विशेष ध्यान न दिया और पुराने अनुभव से यह सोचने लगे कि यदि स्वामी जी रोगी होते तो इस समय तक तारों की भरमार हो जाती, यह विचार कर चुप ही रहे। परन्तु मन भी अद्भुत पदार्थ है, उसको चुप होने के लिये कहा परन्तु उसने अपनी सन्देह रूपी वाणी सुनानी आरम्भ कर दी। मन को चुप कराना कठिन दिखाई पड़ा, विवश हो एक सभासद राय जेठमल[५३] जी को स्वामी जी के पास दौड़ा दिया। उसने स्वामी जी की दशा देख चकित हो निवेदन किया कि भगवन् यह क्या हुआ और अधिक शोक यह है कि आपने किसी समाज को सूचित नहीं किया। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि यह रोग की दशा को क्या लिखते, यह तो शरीर का धर्म ही है, कुछ अन्य वार्ता होती तो कहते, उसके उपरान्त तुम लोगों को भी क्लेश होता।

आर्यजगत् में कोलाहल मच गया—जब उस सभासद् ने आकर अजमेर समाज को सूचित किया तब उस समय बम्बई, फर्रूखाबाद, मेरठ, लाहौर इत्यादि समाजों को तार दिये गये। फिर तो सर्वत्र कोलाहल मच गया और चारों ओर से सैंकडों तार और कई समाज के लोग महाराज का वृत्तान्त जानने के लिये दौड़े। जोधपुर में जब रोग से निवृत्ति न देखी तो एक दिन रात्रि को पंडित देवदत्त लेखक और लाला पन्नालाल अध्यापक जोधपुर ने स्वामी जी से कहा कि महाराज, यह नगर शीघ्र छोड़ने योग्य है। स्वामी जी ने प्रातःकाल ही महाराजा जोधपुराधीश को पत्र लिखा कि हम आबू जायेंगे। श्रीमान् ने उत्तर दिया कि इस दशा में मेरे राज्य से जाना अपकीर्ति का कारण होगा परन्तु जब स्वामी जी का विचार ठहरने को न देखा, तब चुप हो गये।

आबू जाना निश्चित हुआ—१५ अक्तूबर के दिन जब स्वामी जी की दशा पूर्णतया निराशाजनक हो गई। तब डाक्टर एडम साहब बहादुर सिविल सर्जन चिकित्सा में सम्मिलित किये गये परन्तु उनकी सम्मति से भी यही निश्चय हुआ कि स्वामी जी के लिये आबू का निवास उचित है।

विष दिये जाने के सन्देह का आधार—इस स्थान पर दो प्रबल सन्देह और उत्पन्न होते हैं। ये सन्देह, 'स्वामी जी को विष दिया गया' यह मान कर ही निवृत्त हो सकते हैं। प्रथम सन्देह यह है कि इस रोग की सूचना किसी सामाजिक पुरुष को नहीं दी गई। यही नहीं इसलिये अन्त तक रियासत से बाहर उनका जाना भी उचित नहीं समझा गया। दूसरा सन्देह यह है कि जब एक डाक्टर की चिकित्सा से कोई लाभ नहीं हुआ था, प्रत्युत रोग दिन-प्रतिदिन बढ़ता जाता था तो क्यों उसकी चिकित्सा पूर्णतया बन्द करके दूसरे योग्य डाक्टर की चिकित्सा आरम्भ नहीं की गई और फिर उसी को सम्मिलित क्यों किया? परन्तु क्या किया जावे शुश्रूषा करने वाले वही जो रोगी का मरना ईश्वर से चाहते हों। खेद है, लाख बार खेद है, यदि जेठमल उस दिन न जाता तो बस समाप्ति जोधपुर में होनी थी। समाजों को तब सूचना मिलती जब दाहसंस्कार हो जाता। किसी ने ठीक ही कहा है—**"ऐ[1] रौशनीये तबअ नो वर मन बुला शुदी"।**

आबू की यात्रा—अन्त में स्वामी जी के आग्रह पर आबू पर्वत पर जाने के लिये तैयारी की आज्ञा हो गई और १६ अक्तूबर, सन् १८८३ का दिन इसके लिये निश्चित हुआ। १५ अक्तूबर सन्ध्या के समय श्रीमान् महाराजा जोधपुर अपने

---

1. अर्थात् हे मन के प्रकाश, तू मेरे लिये बला (विपत्ति) हो गया। सम्पा०

बन्धुओं और धनिकपुत्रों समेत स्वामी जी के पास आये और विनती करने लगे कि महाराज ! आप ऐसी दशा में मेरे राज्य से पधारते हैं, यह बात कुछ अच्छी न रहेगी; इसमें मेरी अपकीर्ति है परन्तु आपकी यह दशा देखकर कुछ नहीं कह सकता हूं । पश्चात् ढाई हजार रुपये[५४] और दो दुशाले स्वामी जी की भेंट किये ।

जोधपुर जाने से रोकने वालों के आग्रह का उत्तर, जो कुछ करना था कर चुके—लाला जेठमल जी वर्णन करते हैं "जब स्वामी जी जोधपुर जाने लगे थे तो हम लोगों ने रोका था कि वह गंवार देश है और लोग वहां के दुष्ट हैं, आप मत जाइये परन्तु स्वामी जी ने न माना और कहा यदि लोग हमारी अंगुलियों के बुत्ते[५५] बनाकर जला देवें तो भी कुछ चिंता नहीं, अवश्य जाकर उपदेश करेंगे और यह भी कहा कि अब किसी प्रकार की चिन्ता नहीं, सत्यार्थप्रकाश भी ठीक हो गया; जो कुछ करने को था हम कर चुके; अब कोई बात शेष नहीं रही ।

जोधपुर के राजा की व्यवस्था पर सन्देह—जोधपुर जाते हुये स्वामी जी ने योजनापूर्वक रावसाहब को लिखा था कि हमने बीच के स्टेशन पर पुकारा परन्तु कोई सवारी या मनुष्य आपका नहीं था । यदि ऐसे ही मनुष्य तुम्हारे हैं तो राजकार्य में हानि पहुंचती होगी । इस चिट्ठी के लिखते समय चारण अमरदान साथ थे ।

मृत्यु का पूर्वाभास; अन्तिम अभिलाषा, पुनर्जन्म में भी वेदभाष्य करूंगा—पंडित कमलनयन[५६] जी का कथन है कि जोधपुर जाते समय स्वामी जी कहते थे कि शरीर का अब कुछ भरोसा नहीं, न जाने किस समय छूट जाये और मैं इस काम के लिये फिर दूसरी बार भी जन्म लूंगा और इस समय जो मेरे विरुद्ध हुये हैं वे सब शान्त हो जायेंगे । आर्यसमाजों की उन्नति से बड़ी सहायता मिलेगी । मैं उस समय वेद का अवशिष्ट भाष्य करूंगा ।

पाप के विशाल वृक्षों को कुल्हाड़ी से काटूंगा; नहरने से नहीं—कहते हैं कि जोधपुर जाते समय किसी प्रतिष्ठित पुरुष ने उनको कहा था कि महाराज ! वहां तनिक नरमी से उपदेश करना क्योंकि वह क्रूर देश है । उत्तर में स्वामी जी कहने लगे कि मैं पाप के जंगी (बड़े) वृक्षों को जड़ से काटने के लिये कुल्हाड़ी से काम लूंगा न कि नापितों के नहरने से उनको काटूंगा, मुझे किसी का भी भय नहीं है ।

१६ ता० को जब जेठमल जोधपुर में थे तो उनके सामने नौ बजे से पांच बजे शाम तक स्वामी जी को ६ दस्त हुये और साथ ही मूर्छा आती रही । कभी ऐसा भी होता था कि हम लोग कुर्सी से उठाकर शौच के लिये पत्थरों पर बिठलाते और कभी वह स्वयं बैठते । उसी दिन स्वामी जी ने राजकर्मचारियों को कहना आरम्भ कर दिया कि आबू जाने की तैयारी करो । तीसरे पहर को श्री महाराजा साहब जसवन्तसिंह जी और महाराज प्रतापसिंह जी आ गये । स्वामी जी उस समय पलंग पर सो रहे थे, महाराजा साहब कुर्सी पर बैठे थे और कर्नल प्रतापसिंह जी फर्श पर । ये सब वास्तव में विदा करने आये थे । सवारी के सामान तैयार कराने लगे, एक पालकी स्वामी जी के लिये, सोलह कहार, दो खसखस के डेरे और सिपाही आदि साथ कर दिये । आबू को तार दिया गया ।

महाराजा द्वारा विदाई—चूंकि स्वामी जी को गर्मी बहुत अनुभव होती थी इसलिये एक पंखा कुली साथ कर दिया । स्वामी जी को शनैःशनैः हाथों के सहारे से नीचे लाकर महाराजा साहब के सामने पालकी में बिठा दिया और महाराजा साहब ने अपनी फलालेन की विशेष पेटी अपने हाथों से स्वामी जी को बांध दी ताकि लेटने और यात्रा करने में कष्ट न हो और स्वयं पैदल चलकर बाग के द्वार तक विदा करने आये और वहां पालकी खड़ी करवा कर कहा कि आप इस समय ऐसे जाते हैं तो मुझे कलंक है, यदि आरोग्य होकर जाते तो अच्छा था, मुझे बड़ा दुःख है । सूरजमल जी डाक्टर साथ कर दिये जो स्थान खारची तक साथ रहे ।

वेदपाठियों द्वारा मंगलकामना— जब चले, सायं समय हो गया था। प्रातःकाल रोहट[५७] पहुंचे और सारे दिन और रात रोहट[५८] में रहे। स्वामी जी लेटे हुये थे और रामानन्द हवनकुंड में हवन कर रहा था, वहां दो वेदपाठी ब्राह्मण आये और दो वेद मंत्र पढ़े और कहा कि आनन्द रहो और कल्याण हो। स्वामी जी ने रामानन्द को कहा कि इनको एक मुद्रा दे दो और वह दे दी गई। परन्तु इस बात को जान कर वहां के कुछ ब्राह्मण एकादशी-माहात्म्य पढ़ने वालों के समान पत्रा लिये हुये आये। तब स्वामी जी ने कहा कि ये धूर्त हैं, इनको दूर कर दो। जब मैं गया था तो हिचकी जारी हुई थी। हिचकी के शब्द के पश्चात् मितली थी। सम्भवतः मूर्छा उन्हें धूप से आती थी। यात्रा में एक कपड़ा आठ तह किया हुआ, भीगा हुआ स्वामी जी के सिर पर रखते और मार्ग में और रात को वह पंखा सिर पर होता था। रात को चौकीदार से पूछा करते कि पहरे पर कौन है? मार्ग में रोहट तक और रोहट में भी कुल चार-पांच दस्त आये और भूख लगने पर अरारोट खाया करते थे। यहां से दो-तीन बजे चले और १८ अक्तूबर को पाली नामक स्थान पर आये। वहां पहले तालाब के किनारे जहां सन्यासियों का मन्दिर है, उतरे। वहां के संन्यासी लोग उनके पांव छूने लगे। तब स्वामी जी ने कहा कि यहां दस्त आदि पड़ने से उनको कष्ट होगा, किसी दूसरे स्थान पर चलो और वहां से दूसरे स्थान पर गये। उस रात का वृत्तांत ठीक विदित नहीं क्योंकि कभी मैं आगे और कभी वे आगे हो जाते थे। मैं पाली से खारची आया और स्वामी जी की आज्ञानुसार हरनामसिंह ओवरसियर के नाम तार दे दिया कि स्वामी जी रोगी होकर आबू आते हैं, महाराजा साहब की कोठी में उतरेंगे, पालकी तैयार रखना और मैं स्वयं वहां से औषधि लेने अजमेर आया। यहां आ कर समस्त वृत्तांत समाज के सदस्यों से कहा।

पीर जी की औषधि से लाभ—यहां पर समाज के सदस्यों की सम्मति से पीर जी[५९] नामक एक प्रसिद्ध हकीम से जाकर सब वृत्तांत कहा तो उन्होंने अत्यंत दुःख प्रकट किया और औषधि दी। बंसलोचन और अनार के पाव भर पानी का प्रयोग बताया। बंसलोचन खरल में घुटवा दिया और उसी में थोड़ा सा शर्बत अनार डालकर कहा कि प्यास लगने पर इसीको चमचा भर देना। पीर जी ने इस रोग का नाम भी बतला दिया और कहा इससे शुष्कता मिट जावेगी।

मैं यह औषधि लेकर अजमेर से खारची[६०] स्टेशन पर पहुंचा—उधर से स्वामी जी पाली से आ गये। मैं दूसरे दिन स्वामी जी से जा मिला और दो दिन पाली में रहे थे। स्वामी जी पाली से खार्ची तक रेल में आये, जब उतरने लगे, प्रथम तो साहस किया परन्तु जब सूर्य की धूप मुख पर पड़ी तो तत्काल मूर्छा आ गई। फिर लोग हाथों-हाथ रेलगाड़ी से उठाकर ले आये और स्टेशन के बरांडे में पलंग बिछाकर लिटा दिया।

अन्तिम हस्ताक्षर—वहां स्टेशन पर घनश्याम रेलवे गार्ड[६१] था, उसके द्वारा चीनी के बर्तन शौचनिवृत्ति के लिये मंगा लिये। खारची से पीर जी की औषधि प्यास बुझाने की आरम्भ की, प्यास लगने पर मैं देता था जिससे लाभ रहा। वे स्वयं भी कहते थे कि इससे कुछ लाभ है। खारची तक स्वामी जी अपने हाथ से कागजों पर हस्ताक्षर करते थे। मेरे सामने वैदिक यन्त्रालय के पोस्टकार्ड पर हस्ताक्षर किये थे, हाथ कांपता था परन्तु दयानन्द सरस्वती लिख दिया। इसके पश्चात् फिर हस्ताक्षर नहीं किये। मूर्छावस्था में भी बिस्तर पर लेटे रहते, प्रायः होंठ भी कांप जाते थे और हिचकी पीर जी की औषधि से कम रही। मैं औषधि देकर वापिस चला आया। स्वामी जी के कथनानुसार खारची से ६ रुपये रामानन्द को देकर विदा कर दिया कि अब तुम हमारे पास पढ़ने योग्य नहीं, काशी जाकर पढ़ो। हम इकट्ठे अजमेर आये। २१ अक्तूबर तदनुसार कार्तिक बदि ६ पांच बजे प्रातः आबूरोड के स्टेशन पर और पांच बजे सायंकाल आबू पर्वत पर पहुंचे। मार्ग में जब कि स्वामी जी पर्वत पर चढ़ रहे थे तो डाक्टर लछमनदास[६२] साहब जिला जालन्धर निवासी[६३] से भेंट हो गई। डाक्टर साहब पंडित भागराम[६४] जी के सम्बन्धी हैं, वे यद्यपि उस समय अपने अफसर की आज्ञानुसार पर्वत से नीचे अजमेर को जा रहे थे, परन्तु स्वामी जी को अधिक रोगी देख कर अत्यन्त हित में स्वामी जी के साथ वापस चले आये।

आबू में आर्यपुरुषों का आगमन—मेरठ से मुंशी लक्ष्मणस्वरूप, जयपुर के पंडित लक्ष्मणदत्त, फर्रूखाबाद के लाला शिवदयाल और बम्बई के सेवकलाल कृष्णदास सब आबू २३ ता० को पहुंच गये । डाक्टर लछमनदास जी की चिकित्सा से उसी दो दिन के भीतर इतना लाभ हो गया कि हिचकियां बन्द हो गईं और दस्त भी बन्द रहे परन्तु खेद है कि २३ अक्तूबर को उनके अफसर ने उनको अत्यंत कठोरता के साथ अजमेर भेज दिया । यद्यपि उन्होंने स्वामी जी की चिकित्सा के विचार से कुछ हीले बहाने किये और अन्त में त्यागपत्र तक दे दिया परन्तु जब कुछ वश न चला तो विवश होकर अजमेर चले गये । मार्ग में जाते हुये ये डाक्टर साहब हम लोगों से रोते हुये कहते थे कि—'मैं क्या करूं, विवश हूं, अब दो-तीन दिन तक की चिकित्सा के समस्त उपाय, औषधि और भोजन स्वामी जी के लिये बता आया हूं और अत्यंत बलपूर्वक कहा कि आप लोग जिस प्रकार हो सके, स्वामी जी को अजमेर ले आओ । इस समय स्वामी जी को ये कष्ट हैं एक तो निर्बलता है, दूसरे बोला अत्यन्त कम जाता है, मुख, जिह्वा, कंठ, मस्तिष्क, सिर तथा माथे पर छाले हैं, दो-चार मनुष्यों की सहायता के बिना उठने-बैठने या करवट लेने की बिलकुल सामर्थ्य नहीं, हाथ-पांव और समस्त शरीर अत्यंत शीतल है परन्तु विचारशक्ति और अनुभवशक्ति ठीक है । पानी तक कंठ से कठिनाई से उतरता है । अत्यन्त दुर्बल हो रहे हैं । इस बार के रोग से छुटकारा पाना नये सिरे से नवजीवन का पाना है । परन्तु ईश्वर की कृपा से आरोग्य हो जायेगा । आप लोग विश्वास रखें ।' अब एक बड़ी कठिनाई यह है कि बहुत कहा जाता है परन्तु स्वामी जी अजमेर जाने पर सहमत नहीं होते और भविष्य में जो वृत्तांत होगा निवेदन किया जायेगा । स्वामी जी महाराजा जोधपुर की कोठी पर ठहरे हुये हैं और उसी पते के लिये उनका नाम लिख देना पर्याप्त होता है । महाराजा जोधपुर के सम्मानित अधिकारी और महाराजा शाहपुरा के दो अधिकारी और कुछ सेवक, दो संन्यासी तथा एक ठाकुर भोलानाथ साहब उनके पास पहले मौजूद हैं और कल परसों तक जिस प्रकार सम्भव होगा, स्वामी जी को अवश्य अजमेर ले जाया जावेगा । आबू पर्वत से चलने के समय ठाकुर भोपालसिंह रईस ग्राम रेख जिला अलीगढ़, जो स्वामी जी के भेंट के लिये मसूदा, शाहपुरा आदि से फिरते हुये मार्ग में सम्मिलित हो गये थे, उन्होंने और डाक्टर लछमनदास जी ने अत्यन्त परिश्रम और यत्न से महाराज की चिकित्सा की, उसका धन्यवाद करना वास्तव में हमारी शक्ति से बाहर है । सारांश यह कि २५ अक्तूबर तक स्वामी जी आबू पर्वत पर रहे और महाराजा जोधपुराधीश की आज्ञानुसार डाक्टर एडम साहब और बाबू गुरचरणदास साहब असिस्टैण्ट सर्जन दो तीन बार आबू पर्वत पर स्वामी जी को देखने को आया करते थे । आबू में स्वामी जी का स्वास्थ्य कुछ ठीक हो गया था परन्तु आर्य सभासदों के अनुरोध और डाक्टर लछमनदास जी के अन्तिम कथन तथा भरोसे पर स्वामी जी २६ अक्तूबर तदनुसार कार्तिक बदि ११ को आबू से अजमेर चल पड़े । उसी दिन महाराजा कर्नल प्रतापसिंह जी स्वामी जी के दर्शनों के लिये आबू पधारे और आवश्यक वृत्तांत पूछने के पश्चात चले गये ।

स्वामी जी को विष दिये जाने का सन्देह

लाला दामोदरदास ने इस रोग का वृत्तांत इस प्रकार वर्णन किया—"एक दिन जोधपुर में स्वामी जी को अपना पेट भारी जान पड़ा । डाक्टर साहब ने कहा कि दस्त की दवाई लो और राई बांधो । इसके बाद दिन प्रतिदिन उनका रोग बढ़ता गया और चालीस-चालीस दस्त की नौबत आ गई । डाक्टर अलीमर्दान खां चिकित्सक, जब उनसे स्वामी जी कहते कि रोग बढ़ रहा है, वे कहते थे कि कुछ ऐसी ही चीज दी गई है, दस्त की औषधि से जब वह भीतर से निकल जावेगी तब आरोग्य हो जावेगा । परन्तु विरेचन से दिन प्रतिदिन दशा बिगड़ती रही । स्वामी जी को आशंका थी कि मुझको कुछ दिया गया है ।

अजमेर में पहली रात—

पंडित मुन्नालाल जी ने[६५] 'भारतमित्र' में आबू का वृत्तांत इस प्रकार लिखा है—"डाक्टर लछमनदास के कथनानुसार स्वामी जी से अजमेर चलने को कहा गया तो इन्कार करने लगे और कहा कि हमको अजमेर मत ले जाओ, हम नहीं जायेंगे। जब लोगों ने बहुत ही कहा तब स्वामी जी कहने लगे कि अच्छा २० दिन के पश्चात् हम चलेंगे, अभी नहीं। परन्तु पंडित मुखेश्वरदत्त आदि ने ज्यों-त्यों करके श्रीयुत को अजमेर चलने पर सहमत किया और प्रातःकाल २६ अक्तूबर सन् १८८३ को आबू गिरि से चल कर रेलवे स्टेशन आबू रोड़ आये और प्रथम श्रेणी का एक और डिब्बा जोड़कर स्वामी जी को उसमें बिठाया। तीन बजे रात को अजमेर स्टेशन पर आ उपस्थित हुये। बहुत से लोग स्वामी जी का आगमन सुनकर दर्शन के लिये पहुंचे, क्या देखते हैं कि स्वामी जी गाड़ी में पड़े हुये हैं और दो-तीन आर्य पुरुष पास बैठे हैं। यह देखकर हम घबरा गये। अन्त में जब स्वामी जी को गाड़ी से चार मनुष्यों ने बड़ी सावधानी से उतारा तो उतरते ही मूर्छा आ गई। जब मूर्छा जगी तब महाराज को पालकी में लिटा दिया और धीरे-धीरे कहारों को चलाते हुये उस कोठी[६६] में जो पहले से तैयार कर रखी थी, लाकर पलंग पर लिटा दिया। तब स्वामी जी ने कहा कि विशेष ऊष्णता अनुभव होती है। हम लोगों ने कमरे के किवाड़ खोल दिये तो स्वामी जी गरमी ही गरमी पुकारते रहे किन्तु हम लोगों को उस समय शीत अनुभव होता था। इस प्रकार से यह रात्रि व्यतीत हुई।

रोग बढ़ता ही गया, 'दो दिन में पूर्ण स्वास्थ्य-लाभ होगा'—२६ ता० (कार्तिक बदि १२) से फिर डाक्टर लछमनदास जी की चिकित्सा वहां पर होनी आरम्भ हुई और हम लोगों ने स्वामी जी से प्रश्न किया—कहिये महाराज, अब चित्त कैसा है तो हाथ का संकेत करके कहा कि अच्छा है। उस समय तक स्वामी जी को लेशमात्र भी लाभ नहीं था, वही दशा थी जो आबूगिरि पर थी। उक्त डाक्टर निरन्तर रात-दिन स्वामी जी के पास उपस्थित रहते थे और बराबर लौट-पौट कर औषधि देते थे परन्तु तनिक भी लाभ नहीं होता था। कहां तक कहें, एक औषधि ने भी उस स्थान पर अपना प्रभाव नहीं दिखलाया और दिन-प्रतिदिन रोग बढ़ता ही जाता था। २८ ता० प्रातः काल होते ही हम लोगों ने स्वामी जी से निवेदन किया कि आपके चित्त की आज क्या दशा है? कहने लगे कि अच्छा है। इसी अवसर पर पंडित भागराम जी स्वामी जी को देखने आये। स्वामी जी ने उनको देखकर धीमे स्वर में कहा कि आप अच्छे हैं? जज साहब ने कहा कि आपकी कृपा से, परन्तु आपको इस अवस्था में देखकर महाशोक होता है। स्वामी जी ने उसका कुछ भी उत्तर न दिया और पंडित भागराम की ओर दखते रहे। अन्त में पंडित जी थोड़ी देर बैठे नमस्ते कहकर कचहरी चले गये। तत्पश्चात् स्वामी जी ने कहा कि हमको मसूदा ले चलो।[६७] हम लोगों ने कहा कि महाराज! इस अवस्था में आपको कैसे ले चलें जब आपको तनिक भी लाभ होगा तब अवश्य ले चलेंगे। स्वामी जी ने उस समय कहा कि दो दिन में हमको आराम पड़ जायेगा। ऐसा कह कर चुप हो गये और फिर न बोले। बस इसी प्रकार से यह दिन भी व्यतीत हो गया।

आशा की अन्तिम किरण—२९ अक्तूबर, (कार्तिक बदि १४) सोमवार के दिन प्रातःकाल होते ही हम लोगों ने स्वामी जी से पूछा, कहिये इस समय आपके चित्त की क्या दशा है तो कहा कि अच्छा है। दिन-प्रतिदिन रोग की प्रबलता थी,अब हाथ-पांव प्रत्युत संर्वांग पर फफोले पड़ गये। स्वामी जी का चित्त घबराने लगा। स्वामी जी ने कहा कि हमको बिठा दो, हम लोगों ने बिठा दिया। जब बैठे तब कहा छोड़ दो, हम बैठे रहेंगे। सो स्वामी जी बिना सहारे के अच्छी प्रकार से बैठे रहे। हम अभागों ने समझा कि अब स्वामी जी को कुछ लाभ है क्योंकि बिना सहायता और सहारे अच्छी प्रकार से बैठै हुये हैं परन्तु श्वास शीघ्र-शीघ्र चलता था जिसको स्वामी जी रोक-रोक कर फिर शीघ्र वेग से निकाल देते थे और कुछ ईश्वर का ध्यान भी करते थे। इतने में सन्ध्या हो गई, हम लोगों ने समझा कि आज अपने आप बैठे रहे अब तो लाभ होता

दृष्टि पड़ता है जिससे सब के मन में प्रसन्नता होने लगी परन्तु प्रसन्नता हमारी निर्मूल थी । जब अर्धरात्रि का समय आया तब स्वामी जी को बहुत घबराहट होने लगी, ज्यों-त्यों करके यह रात्रि भी समाप्त हुई ।

अन्तिम दिन का वृत्तांत—३० अक्तूबर, सन् १८८३ तदनुसार अमावस्या संवत् १९४० मंगलवार, दिवाली के दिन जब प्रातःकाल हुआ तो विचार किया किसी दूसरे डाक्टर को बुलाना चाहिये । उसी दिन पीर इमाम अली साहब, जो पीर जी हकीमे सादिक अजमेर के नाम से प्रसिद्ध थे, बुलाये गये ।

पीर इमाम अली का वक्तव्य 'विष दिया गया'—उनका वर्णन है कि 'मुझको स्वामी जी ने जोधपुर से तार दिया या कोई मनुष्य भेजा था[६८] जिस पर पंडित कमलनयन जी मेरे पास आये । मैंने बंसलोचन और एक औषधि और शर्बत अनार भेजा था और कुछ साबुत अनार थे । हमने कहला भेजा था कि आप आबू न जायें, यहां आइये, हम संखिया निकाल देंगे । जो पहला तार या मनुष्य आया था उसने भी प्रकट किया अर्थात् स्वामी जी ने कहला भेजा था कि मुझको संखिया दिया गया है परन्तु जब स्वामी जी यहां आये तो उनके शिष्य लोगों ने जो परदेशी थे, कहा कि पीर जी मुसलमान हैं, ऐसा न हो कि पक्षपात करके मार डालें परन्तु यहां के लोग जो परिचित थे, उन्होंने कहा कि पीर जी ऐसे नहीं हैं, चिकित्सा होने दो । परन्तु अन्त में उन्होंने डाक्टर की चिकित्सा जारी रखी अर्थात् डाक्टर न्यूटन साहब की । मेरे विचार में उनको विष दिया गया था, मैंने उनको जाकर देखा था, उनकी जिह्वा और मुख पक गया था । मैं उनके बाईं और कुर्सी पर बैठा था, उन्होंने संकेत से मुझको कहा कि आप सामने की ओर आइये । संकेत से बात करते थे, घबराहट होती थी परन्तु वह प्रकट नहीं होती थी, नियन्त्रण किये हुये थे, मुख से उफ नहीं करते थे । मेरे सामने पचास-साठ बार श्वास लिया परन्तु रोक कर फूंक दिया, बिलकुल घबराये हुये नहीं थे, वीर पुरुष और दृढ़ हृदय थे ।"

डाक्टर न्यूटन आश्चर्यचकित रह गये—तत्पश्चात् यहां के बड़े डाक्टर को बुलाया । जिस समय न्यूटन साहब ने स्वामी जी को देखा तो बड़े आश्चर्य से कहने लगे कि यह मनुष्य बड़े कद वाला दृढ़, वीर और रोग को सहने वाला है । इसकी आकृति से ही प्रतीत होता है कि यह ऐसे असह्य रोग में है परन्तु अपने को दुःखी नही मानता । यही मनुष्य है कि इतना बड़ा रोग होने पर भी अपने को संभाल रहा है और अभी तक जीवित है । डाक्टर लछमनदास ने कहा कि इनका नाम दयानन्द सरस्वती है, कदाचित् आपने सुना होगा । यह सुनकर साहब बहादुर ने बड़ा दुःख प्रकट किया और उनके साहस की प्रशंसा की । जिस समय ये डाक्टर साहब स्वामी जी को देख रहे थे, उस समय स्वामी जी उक्त डाक्टर के उत्तर संकेतों से देते जाते थे परन्तु बोलने में अशक्त थे । सुनने-समझने की शक्ति पूर्ववत् अच्छी थी । उस समय स्वामी जी के कंठ में कफ की प्रबलता थी जिससे बिलकुल नहीं बोल सकते थे । जब डाक्टर साहब ने देखा कि इनको कफ बहुत सता रहा है तो उनके मुख में कुछ गाय का दूध डाला परन्तु उससे कुछ लाभ न हुआ । तब डाक्टर ने यह उपाय बताया कि तीन चार सेर अलसी दूध में पका कर इनकी छाती और पीठ में बांधों, इससे कफ पतला पड़ जायेगा । पुल्टिस बांधा गया परन्तु उसे एक आध घड़ी रखकर स्वामी जी ने उतरवा डाला कि इससे क्या होता है ?

अन्त समय भी चार मनुष्यों ने उठाया—अब तो ११ बजे दिन से स्वामी जी का श्वास विशेष बढ़ने लगा और कहा कि हम शौच जायेंगे । उस समय स्वामी जी को चार मनुष्यों ने उठाया और शौच करने की चौकी पर बिठा दिया, वे शौच गये ।

मूत्र कोयले के समान हो गया था—लाला जेठमल के कथनानुसार उनका मूत्र कोयले के समान था । स्वामी जी ने अपने आप पानी लिया, हाथ धोये, दातुन की और कहा कि अब हमको पलंग पर ले चलो । आज्ञानुसार पलंग पर ला

बिठाया, कुछ देर बैठ कर फिर लेट गये । परन्तु श्वास बड़े वेग से चलता था और ऐसा प्रतीत होता था कि स्वामी जी श्वास को रोक कर ईश्वर का ध्यान करते हैं ।

'एक मास के पश्चात् आज का दिवस आराम का आया'— उस समय स्वामी जी से पूछा कि महाराज ! कहिये, इस समय आपका चित्त कैसा है ? कहने लगे कि अच्छा है । एक मास के पश्चात् आज का दिवस आराम का है, इत्यादि बातें करते चार बजे का समय आ गया । उसी दिन एक बार लाला जीवन दास जी ने पूछा कि स्वामी जी आप कहां हैं ? कहने लगे ईश्वरेच्छा में ।

शिष्यों को आशीर्वाद व अन्तिम विदाई—सामाजिक पुरुषों ने आगरा से डाक्टर मुकन्दलाल जी को बुलाने के लिये तार दिया । उनका उत्तर आया कि क्या रंग है, हम आते हैं । स्वामी जी ने ४ बजे आत्मानन्द[६९] को बुलाया, वे आकर सम्मुख खड़े हो गये तो स्वामी जी ने कहा कि हमारे पीछे की ओर आकर खड़े हो जाओ या बैठ जाओ । आत्मानन्द जी उनके सिरहाने आकर बैठ गये । तब स्वामी जी ने कहा कि आत्मानन्द ! क्या चाहते हो ? आत्मानन्द जी ने कहा कि ईश्वर से यही चाहते हैं कि आप अच्छे हो जायें । स्वामी जी ठहरकर बोले कि यह देह है, इसका क्या अच्छा होगा और हाथ बढ़ाकर उनके सिर पर धरा और कहा कि आनन्द से रहना । फिर स्वामी जी ने गोपालगिरि को बुलाया । ये एक संन्यासी काशी से श्रीयुत को मिलने आये थे । स्वामी जी ने कहा कि तुम क्या चाहते हो ? गोपालगिरि ने भी वही उत्तर दिया कि आपका अच्छा होना चाहता हूं । उत्तर में महाराज ने कहा कि भई, अच्छी प्रकार से रहना ।

अन्तिम कृपादृष्टि से सब निहाल हो गये—जब यह व्यवस्था देखी तो सब लोग जो अलीगढ़, मेरठ, लाहौर, कानपुर आदि स्थानों से आये हुये थे, श्री स्वामी जी के पास आये और सामने खड़े हो गये । तब स्वामी जी ने सब लोगों को उस समय ऐसी कृपादृष्टि से देखा कि उसके वर्णन करने को जिह्वा और लिखने को लेखनी असमर्थ है । वह समय वही था, मानो स्वामी जी हमसे कहते थे कि तुम क्यों उदास हो, धीरज धरना चाहिये । दो दुशाले और दो सौ रुपये महाराज ने मांगे, जब लाये गये तो कहा कि आधा-आधा भीमसेन और आत्मानन्द को दे दो । तदनुसार उन लोगों को दिये गये परन्तु उन्होंने लौटा दिये ।

उस समय श्रीयुत के मुख पर किसी प्रकार का शोक और घबराहट प्रतीत नहीं होती थी । ऐसी वीरता के साथ दु:ख को सहन करते थे कि मुख से कभी हाय या शोक न निकला । इसी प्रकार स्वामी जी को बातचीत करते पांच बज गये और बड़ी सावधानी से रहे । उस समय हम लोगों ने श्रीयुत से पूछा कि कहिये, अब आपके चित्त की दशा क्या है तो कहने लगे कि अच्छा है, तेज और अन्धकार का भाव है । इस बात को हम कुछ न समझ सके क्योंकि स्वामी जी उस समय सब की समझ में आने वाली बातें कर रहे थे ।

अन्तिम दृश्य तथा विदाई—साढ़े पांच बजे का समय आया तो हम लोगों से स्वामी जी ने कहा कि अब सब आर्यजनों को जो हमारे साथ और दूर-दूर देशों से आये हैं, बुला लो और हमारे पीछे खड़ा कर दो, कोई सम्मुख खड़ा न हो । बस आज्ञा मिलनी थी कि यही किया गया । जब सब लोग स्वामी जी के पास आ गये तब श्रीयुत ने कहा कि चारों ओर के द्वारा खोल दो और ऊपर की छत के दो छोटे द्वार भी खुलवा दिये । उस समय पांडे रामलाल जी भी आ गये । फिर स्वामी जी ने पूछा कि कौन सा पक्ष, क्या तिथि और क्या वार है ? किसी ने उत्तर दिया कि कृष्णपक्ष का अन्त और शुक्लपक्ष की आदि अमावस, मंगलवार है । यह सुनकर कोठे की छत और दीवारों की ओर दृष्टि की, फिर प्रथम ही प्रथम वेदमन्त्र पढ़े, तत्पश्चात् संस्कृत में कुछ ईश्वर की उपासना की । फिर भाषा में ईश्वर के गुणों का थोड़ा सा कथन कर बड़ी प्रसन्नता और हर्ष सहित गायत्री मंत्र का पाठ करने लगे और गायत्री मन्त्र के पाठ के पश्चात् हर्ष और प्रफुल्लित चित्त सहित कुछ

समय तक समाधियुक्त रह नयन खोल यों कहने लगे—**'हे दयामय, हे सर्वशक्तिमान् ईश्वर, तेरी यही इच्छा है, तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो, अहा ![1] तैंने अच्छी लीला की।'** बस इतना कह स्वामी जी महाराज ने जो सीधे लेट रहे थे, स्वयं करवट ली और एक प्रकार से श्वास को रोक कर एक साथ ही बाहर निकाल दिया।" ('भारतमित्र' से)

उस समय सन्ध्या के ६ बजे थे और दीपावली का दिन था। विक्रम का संवत् १९४० और कार्तिक बदि अमावस की तिथि थी। कृष्णपक्ष का अन्त और शुक्लपक्ष का आरम्भ था। ईसवी सन् १८८३ तारीख ३० अक्तूबर और दिन मंगल का था। संक्रांति के हिसाब से कार्तिक की १५ तारीख थी।

स्वामी जी की वसीयत के अनुसार शरीर-संस्कार—उनके परलोकगमन का समाचार सुनकर दो संन्यासी वहां आये और कहने लगे कि हम तुम को महाराज का शरीर जलाने नहीं देंगे। प्रत्युत गाड़ेंगे जैसी कि वर्तमान अवस्था में संन्यासियों की प्रथा बन रही है परन्तु सामाजिक पुरुषों ने कहा कि महाराज ऐसी बातों को पहले से ही विचार कर अपना वसीयतनामा लिख चुके हैं; उसके अनुसार ही किया जायेगा। सारांश यह कि उन संन्यासियों ने बहुत जोर मारा और कहा कि चाहे महाराज हमारे विरोधी ही थे परन्तु फिर भी हमारे ही थे। यदि हमारी मंडली होती तो हम बलात् छीन ले जाते परन्तु क्या करें, हम केवल दो मनुष्य हैं।

अन्तिम यात्रा—३१ अक्तूबर को अर्थात् दूसरे दिन प्रातःकाल ही स्वामी जी के मृतक शरीर के लिये बैकुण्ठी तैयार की गई और मृतक शरीर को स्नान करा, उस पर चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों का लेप कर, वस्त्र पहना बैकुण्ठी में जिस प्रकार स्वामी जी ने लेट कर प्राण छोड़े थे, उसी प्रकार से धर दिया।

मृत्यु के समय शरीर चारपाई पर ही रहा—विदित हो कि स्वामी जी का शरीर चारपाई से नीचे नहीं उतारा गया प्रत्युत मरने के पश्चात् पूर्ववत पलंग पर रहा। जिस समय मृत शरीर को बैकुण्ठी पर धरा तो सैकड़ों मनुष्य उनका मुख देखने को दौड़े और अनेक प्रकार के संकल्प कर आंसुओं की नदियां बहा रहे थे।

पंडित कमलनयन जी कहते हैं कि मरने से कुछ समय पहले स्वामी जी ने यह कहा कि सुन्दरलाल को बुलाओ। लोगों ने कहा कि वे नहीं आये। कहने लगे कि वे आ गये हैं परन्तु स्वामी जी के मरने की देर थी कि सायंकाल वे आ गये। रोग के दिनों में प्रातःकाल पलंग से उठा करते और बैठकर उपासना किया करते थे। प्रायः वेदमन्त्र पढ़ते थे और "ईश्वर तेरी इच्छा" यही कहा करते थे और पंडित भीमसेन जी के कथनानुसार **'अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्'** वाला यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय का मंत्रोच्चारण किया करते थे।

श्रीमान् महाराणा सज्जनसिंह जी उदयपुर नरेश की स्वामी जी से अत्यंत प्रीति थी, जब स्वामी जी की अत्यन्त रुग्णता का समाचार सुना तो पंड्या मोहनलाल जी को भेजा और कहला भेजा कि यदि उनका शरीर छूट जाये तो मृत शरीर को किसी प्रकार से चार-पांच दिन रखा जावे तो अति उत्तम हो क्योंकि उस समय हम और अन्य रईसों को स्वामी जी के दर्शन हो जावें तो अहोभाग्य है। परन्तु समाज ने इस भय से कि यदि इस मृत शरीर को इतनी अवधि तक रखा जायेगा तो डाक्टर पेट चीरेगा, स्वीकार न किया और उस दिन ही दाह करने की सम्मति हो गई। अन्त को जब बैकुण्ठी

---

1. यह "अहा" का शब्द उन्होंने ऐसा कहा था कि जैसे कि कोई व्यक्ति कई वर्षों से बिछड़े हुये प्यारे मित्र से मिलने पर प्रसन्नता प्रकट करता है और उस समय की दशा उनकी प्रसन्नता की दशा थी और यही कारण है कि उनकी इस विचित्र प्रसन्नता की दशा ने महान् विद्वान् पंडित गुरुदत्त को ईश्वरसत्ता का अत्यन्त ही प्रबल प्रत्यक्ष प्रमाण बिन बोले दे दिया। विदित रहे कि उस समय पंडित गुरुदत्त जी एम० ए० चुपचाप खड़े हुये दत्तचित्त होकर उस दशा का अध्ययन कर रहे थे और योगसिद्धि का फल देख रहे थे। (आत्माराम)

तैयार हो गई तो उसके चारों ओर केले के पत्ते और पुष्प आदि रख दिये । तब सब लोगों ने मिल कर उनके चारों ओर खड़े हो वेदमन्त्रों का पाठ बड़े उच्च स्वर से, अनुमानतः आधे घण्टे तक किया । जब वेदमन्त्र पढ़ चुके तब बैकुण्ठी उठाई गई । उस समय लोग छाती पीटते थे और अश्रुपात रूपी नदी का प्रवाह हो रहा था । अर्थी के साथ-साथ बहुत बड़ी भीड़भाड़ हो गई । उस समय दिन के दस बजे होंगे । उस समय सबसे आगे रामानन्द जी, गोपालगिरि जी, वृद्धिचन्द जी और मुन्नालाल जी वेदमन्त्रों का पाठ उच्च स्वर से पढ़ते जाते थे । पंडित भागराम जी जज अजमेर और पंडित सुन्दरलाल जी सुपरिण्टैण्डेण्ट आफिस वर्कशाप अलीगढ़ तथा अन्य सम्मानित आर्य सज्जन बड़ी सावधानी से प्रबन्ध करते जाते थे । इसी प्रकार से अजमेर के आगरा दरवाजा से होते हुये, आगरा बाजार के चौक में वैदिक ध्वनि करते, वहां की मंडी दुर्गा बाजार[७०] में पग-पग पर ठहरते हुये, डिग्गी बाजार से ऊसरी[७१] दरवाजे तक पहुंचे । वहां से चलकर श्मशान[७२] में स्वामी जी की बैकुण्ठी जा उतारी । यह स्थान अजमेर नगर के दक्षिण कोण में है और स्वामी जी की आज्ञा ऐसी ही थी कि नगर के दक्षिण भाग में हमारा शरीर दग्ध किया जावे । जब सब लोग महाराज की बैकुण्ठी को रखकर बैठ गये और वेदी बनाना, जैसा कि 'संस्कारविधि' में लिखा है, आरम्भ हुआ तो उस समय पंडित भागराम जी ने देखा कि इस समय सब लोग शोकसमुद्र में डूब रहे हैं, इसके उपाय के लिये अपनी व्याख्यान रूपी नौका को डाल स्वयं केवट बन इन लोगों को धीरज बंधाऊं । ऐसा विचार ठान, उक्त पंडित जी ने स्वामी जी की विद्या, परोपकारिता, देशहितैषिता की प्रशंसा में ऐसा उत्तम व्याख्यान दिया कि लोगों को चित्रवत् कर दिया । उनके पश्चात् रायबहादुर पंडित सुन्दरलाल जी ने हृदय को कठोर कर व्याख्यान देना चाहा परन्तु थोड़ा-सा कथन करने के पश्चात् मौन साध लिया और कुछ कहते न बना । इसी अवधि में वेदी भी तैयार हो गई । सज्जन पुरुष वेदी के चारों ओर जम गये और दो मन चन्दन, दस मन पीपल का काष्ठ, चार मन घृत, पांच सेर कपूर, एक सेर केशर, दो तोला कस्तूरी आदि सामग्री, जो कि दग्ध करने के लिये मंगा रखी थी, वेदी के पास लाई गई ।

शव संस्कार—प्रथम चन्दन आदि काष्ठ वेदी में चुन उसके ऊपर स्वामी जी का शरीर रखा । तत्पश्चात् ऊपर से कपूर और चन्दन आदि काष्ठ चुन दिया । फिर रामानन्द जी, आत्मानन्द जी ने उक्त वेदी के काष्ठों में अग्नि प्रदीप्त की और 'संस्कारविधि' के अनुसार वेदमन्त्रों का पाठ कर आहुति देना आरम्भ किया । इस प्रकार से ६ बजे तक आहुति द्वारा महाराज का शरीर जो कि पंच तत्त्वों का बना हुआ था, छिन्न-भिन्न होकर आकाश मार्ग को प्राप्त हुआ तो सब लोग शोकसागर में डूबे हुये सरोवर पर आये और स्नान करके घर चले गये ।

दूसरे दिन १ नवम्बर को पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, मन्त्री महाराणा उदयपुराधीश ने स्वामी जी के वसीयतनामे के अनुसार स्वामी जी की सर्व वस्तु, पुस्तक आदि अपने अधिकार में ले ली और वे वस्तुयें उदयपुर भेज दीं । ('भारतमित्र' से) ।

स्वामी जी का व्यक्तित्व

स्वामी जी का कद ६ फुट लम्बा था । उनका शरीर दृढ़, बहुत मोटा तथा समस्त बाल मुंडे हुये थे । एक चादर उनका ऊपर का पहनावा था और एक अर्ध धोती नीचे का वेश । वे एक कम्बल पर बैठा करते थे, बहुत काल तक उनके साथ बातचीत में संलग्न रहने से विदित हुआ कि वे और साधुओं के समान किसी प्रकार के मादक द्रव्य का प्रयोग नहीं करते थे ।[७३] उनके शरीर का रंग गेहुंआ श्वेतता को लिये हुये थे । उनकी आंखें बीच की, शान्त और रहस्य भेदी थीं । उनका मुख गम्भीर था । वे पृथ्वी पर पद्मासन से बैठना पसन्द करते थे । उनका मुख कुछ खुला था, वाणी सुरीली, उच्चारण शुद्ध स्वर स्पष्ट तथा भाषण शैली ऊंची, स्पष्ट और धीमी थी । उनका भाषण परिमार्जित, नपा तुला और प्रभावोत्पादक होता था । उनकी सिखलाने की शैली अत्यन्त प्रेरणा देने वाली, उनकी युक्ति मनवाने वाली, खण्डनशील, संक्षिप्त तथा उचित होती

थी। उनकी बुद्धि तीव, शीघ्रता से बात की तह में पहुंचने वाली और निश्चित होती थी। गद्य और पद्य के लम्बे प्रमाण आवश्यकतानुसार कहने से उनकी स्मरणशक्ति की अद्भुत शक्ति का बोध होता था। विरोधियों के क्रोध से उनका चित्त कभी क्षुब्ध नहीं होता था। उनका मुख प्रत्येक अवस्था में गम्भीर रहता था। गालियों के बदले में वे कभी प्रच्छन्न रूप से या संकेत से भी गाली नहीं देते थे। उनकी मधुरभाषिता के कारण उनके विरोधी भी प्रशंसा करने पर विवश होते थे। उनके गहरे संस्कृतज्ञान पर विद्वान् लोग चकित होते थे और सूक्ष्म युक्तियों से ईसाई और मुसलमान भी घबरा जाते थे। समस्त सुधार की बातों पर उनकी सम्मति सर्वथा निश्चित और सार्वजनिक हित से पूर्ण थी। समस्त आक्षेपकों का पहले ही से मुख बन्द कर दिया जाता था। उनकी भाषा सरल, स्वाभाविक और अपने विचारों के प्रकट करने वाली तथा साधारण और विशेष सुनने वालों की समझ के अनुकूल थी। उनकी व्याख्यान शैली ऐसी अद्वितीय, अद्भुत और चित्त तथा स्वभाव के अनुकूल थी कि श्रोतागण सांस रोक कर बड़े ध्यान से सुनते थे; यद्यपि उनकी व्याख्या से कभी-कभी सुनने वाले हंस पड़ते थे परन्तु तो भी उनके मुख से किसी प्रकार का अभिमान प्रकट नहीं होता था। गम्भीरता और उद्यम सदा विचारों को प्रकट करने में दिखलाया जाता था और किसी प्रकार का स्वार्थ, चाहे कैसा ही आवश्यक क्यों न हो, उनको सत्य से नहीं हटा सकता था। पूरा ध्यान देने के कारण वे बोलने वाले के अभिप्राय को शीघ्र और ठीक-ठीक समझ जाते थे। उनकी सर्वप्रियता के कारण अत्यन्त कम बोलने वाले मनुष्य भी उनके साथ बोलने को उद्यत हो जाते थे। उनकी मेलजोल की योग्यता बहुत अधिक थी। समस्त कामों में अत्यन्त सावधानचित्त थे। उनकी आकृति शिष्ट तथा सुसंस्कृत थी। उनका मन भौतिक आकर्षण से शून्य था। जब कभी उनको अंग्रेजी पढ़ने की सम्मति दी जाती थी वे अच्छा संकल्प रखने वाले सम्मतिदाताओं से कहते थे कि जो कुछ मुझमें कमी है, उसको आप पूरा करें और कहते थे कि मैं उनमें से नहीं हूं जिन्हें विद्या का अभिमान होता है और मैं कभी नबी (ईश्वर का सन्देश लानेवाला) बनने के लिए उद्यत नहीं हूंगा जैसा कि बुद्धिमान् मनुष्यों ने किया है। जब उनकी भेंट बाबू केशवचन्द्र से हुई थी तब उन्होनें संस्कृत पर ही अपना सन्तोष प्रकट किया था।

एक बार स्वामी जी के एक विद्यार्थी ने आकर कहा कि महाराज ! आज अमुक स्थान पर अमुक पंडित मुझसे उलझ कर इस प्रकार आपकी निन्दा करने लगा, तब मैंने भी उसे ऐसे-ऐसे उत्तर दिये। यह सुन आपने क्रोधित होकर कहा कि तेरा यह काम तो कभी प्रशंसा के योग्य नहीं, जब यह जगत् ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि की निन्दा से भी नहीं चूका तो मैं क्या चीज हूं, जिसकी निन्दा तू न सुन सका। कुछ तुझ जैसे पुरुष से जगत् में भलाई की आशा नहीं हो सकती, इससे तुझे सावधान रहना चाहिये।

इसी प्रकार संवत् १९३७ की बात है कि आपने फर्रूखाबाद में आकर यहां के आर्यसमाज के सदस्यों से अपनी यह अप्रसन्नता जतलाई कि तुम लोगों ने अपने समाज के विरोधियों को जो न्यायालय से दण्ड दिलाया है, वह तुम्हारा काम बहुत बुरा हुआ समझो। एक बार स्वामी जी ने देखा कि फर्रूखाबाद की अन्तरंग सभा न्याय से काम नहीं करती। प्रत्येक अवसर पर किसी विशेष मनुष्य का मुख देखा करती है इसलिये जब देखा कि समाज के सभासद पंडित गोपालराव हरि को उनके साथ काम करना स्वीकार नही है तो आपने उस पर एक मीमांसक सभा[७५] नियत करके निम्नलिखित एक पत्र पंडित गोपालराव जी के नाम लिख भेजा कि इसके अनुसार काम होता रहे।

अन्तरंग सभा को अन्याय करते अनुभव, कर मीमांसक सभा की नियुक्ति— "ओ३म् पंडित गोपालराव हरि, आनन्दित रहो। मैं आशा करता हूं कि जो-जो बातें करनी आपके लिये नीचे लिखता हूं सो सो आप यथावत् स्वीकार करेंगे।" १—जो मीमांसक उपसभा नियत की गई उसके पांच सभासद निश्चित किये गये हैं— एक आप, दूसरे बाबू जी, तीसरे लाला जगन्नाथप्रसाद, चौथे ला० रामचरण, पांचवे ला० निर्भयराम और इनकी अनुपस्थिति में क्रमशः ला० रामनारायण

दास मुख्तार, ला० हरनारायण, ला० हितमणि लाल, लाला कालीचरण और लाला निर्भयराम के कोई पुत्र अर्थात् तीनों में से एक जो उपस्थित हो, नियत किये गये हैं।

२––जहां तक बने अवश्य आप उपस्थित हों और व्याख्यान भी समाज में दिया करें।

३––जो मासिक पत्र निकलता है वह भी आपके हाथ से बनेगा अथवा बनने पर शुद्ध कर देंगे। इसी प्रकार प्रबन्ध करना अच्छा होगा। इति आषाढ़ कृष्णा ८, संवत् १८३७"। दयानन्द सरस्वती।

स्वामी जी जब कभी देखते कि अमुक मनुष्य या मनुष्यों ने कई बार समझाने पर भी निन्दनीय काम करना नहीं छोड़ा तो आप बेधड़क उनको उनके कर्मानुसार (जैसे आइये वेश्याविलास जी आदि) विशेषणों से हजारों मनुष्यों की सभा में पुकारने लगते परन्तु उनके प्रसिद्ध महत्त्व पर आपने कभी थोड़ी सी भी चोट नहीं की। इसी प्रकार अपने व्याख्यानों के बीच में स्पष्ट पुकार कर सर्वत्र राजसभा तक के बीच भी कह दिया कि वेश्या कुतिया के समान स्त्री है। उस पर आसक्त होना कुत्तों का ही काम है, न कि अच्छे मनुष्यों का। लड़कों पर मोहित होने वाले तो निरे शूकरे और कव्वे होते हैं, धिक्कार है ऐसे कुकर्मियों पर।

जब कभी कहीं आप सुनते कि हमारा अमुक पंडित गया में मूंछ मुंडवा कर पिंडप्रदान कर आया है तो उसी घड़ी सहारनपुर, मेरठ आदि की समाजों को लिख भेजते कि वह पूरा पोप है, उसका उपदेश न सुनना, कोई प्रभाव न करेगा।

आप भली-भांति जानते थे कि मुंशी (इन्द्रमणि) जी और उनके चेले सर्पप्रकृति के मनुष्य हैं, छेड़ते ही काटने को दौड़ेंगे परन्तु इसका कुछ भी भय न करके स्पष्ट सर्वत्र सबको लिख भेजा कि उनका लेख असम्मत और दोषप्रद है इसलिये किसी को उनका विश्वास न करना चाहिये।

पंडित गोपालराव हरि ने दयानन्द दिग्विजय आदिक में कुछ अशुद्ध लिख दिया था और उनके एक विरोधी ने उस पर आक्षेप पकड़ कर स्वामी जी को लिख भेजा। स्वामी जी ने उसे स्पष्ट रूप से कह दिया और गोपालराव जी पर कुपित हुये और यह पत्र लिखा––"पंडित गोपालराव हरि जी, आनन्दित रहो। आज एक साधु[७६] का पत्र मेरे पास आया वह आपके पास भेजता हूं। साधु का लेख सत्य है परन्तु आपने मेरा चितौड़ सम्बन्धी इतिहास न जाने कहां से क्या सुन-सुनाकर लिख दिया। इस काल, इस स्थान पर मेरा उदयपुराधीश से केवल तीन ही बार समागम हुआ। आपने प्रतिदिन दो बार होता रहा, लिखा है। आप जानते हैं कि मुझे ऐसी भूलों के परिशोधन का अवकाश नहीं। यद्यपि आप सत्यप्रिय और शुद्धभावभावित ही हैं और इसी हित-चित्त से उपकारक काम कर रहे हैं परन्तु जब आपको मेरा इतिहास ठीक-ठीक विदित नहीं तो उसके लिखने में कभी साहस मत करो क्योंकि थोड़ा सा भी असत्य हो जाने से सम्पूर्ण निर्दोष कृत्य बिगड़ जाता है, ऐसा निश्चय रखो और इस पत्र का उत्तर शीघ्र भेजो। वैशाख शुक्ला २, संवत् १९३९ स्थान शाहपुरा"। (दयानन्द सरस्वती)।

एक बार काशी में महाराज ने कितने ढेले खाये परन्तु असभ्यता से काम न लिया और अपने पक्ष पर दृढ़ता से जमे रहे। उनके योग के सम्बन्ध में रायबहादुर पंडित सुन्दरलाल जी, सुपरिण्टैण्डेण्ट वर्कशाप इलाहाबाद ने वर्णन किया कि एक दिन इलाहाबाद में कई-एक मित्रों के साथ मैं स्वामी जी की भेंट को गया था। उस समय स्वामी जी भीतर कुछ ध्यान कर रहे थे। हम लोग अलग बैठ गये। एक आध घंटे के पश्चात् स्वामी जी ध्यान से उठे और हम लोगों की ओर देखकर कुछ हंसे। मैंने पूछा कि स्वामी जी ! आप क्यों हंसते हैं ? उत्तर दिया कि मेरी ओर एक मनुष्य चला आता है; बड़े तमाशे की बात है, तनिक ठहर जाओ। एक आध घंटे के पश्चात् हमने कहा कि महाराज कोई मनुष्य नहीं आया। स्वामी

जी ने कहा उस समय वह दूर था, अब समीप है, तुरन्त आवेगा । पांच-सात मिनट के पश्चात् एक ब्राह्मण कुछ मिष्ठान लिये वहां आ पहुंचा । उसे देखकर स्वामी जी ने हमारी और संकेत किया जिससे विदित हुआ कि वे इस मनुष्य के विषय में कहते थे । वह मनुष्य आया और मिष्ठान आगे रखकर स्वामी जी को नमोनारायण की और कहा कि यह मैं आपकी भेंट लाया हूं, इसको स्वीकार कर अनुग्रह कीजिये । स्वामी जी ने कहा कि इसमें से थोड़ा-सा तू खा । उसने इन्कार किया । स्वामी जी ने बलपूर्वक उसे डांटा कि अवश्य खाओ, वह हिचका । तब स्वामी जी ने हमसे कहा कि देखो, यह मनुष्य हमारे लिये विष मिला हुआ मिष्ठान लाया है । इस पर हमने एक मनुष्य से कहा कि जा, पुलिस को ले आ । स्वामी जी ने हमको पकड़ लिया और उस ब्राह्मण की ओर मुस्करा कर कहा कि देखो, इसकी आकृति कैसी हो गई, भय के मारे इसके आधे प्राण निकल गये, बस इसको बहुत दंड हो चुका, पुलिस मत बुलाओ और उस ब्राह्मण को बहुत ललकार कर समझाकर अपने पास से अलग कर दिया । पण्डित सुन्दरलाल जी कहते हैं हमने इस मिष्ठान में से थोड़ा सा लेकर एक कुत्ते को दिया, उसने खाया और बेचैन होकर मर गया ।

पंडित सुन्दरलाल जी यह भी कहते थे कि हमने स्वामी जी को १२-१३ घंटे की समाधि लगाते हुये देखा था (बाबू जनकधारीलाल जी प्रधान आर्यसमाज दानापुर के मुख से) ।

शारीरिक शिक्षा पर बल भी देते थे—चूंकि स्वामी जी स्वयं बालब्रह्मचारी थे इसलिये उनका आत्मिक शिक्षा के साथ ही शारीरिक शिक्षा पर भी बहुत ध्यान रहता था । वह वर्तमान काल के मर जीवड़े मनुष्यों को छोकरों के छोकरे कहा करते थे । शारीरिक स्वास्थ्य का वह स्वयं नमूना थे । इसलिये उन्होंने आर्यसमाज के नियमों में एक नियम सम्मिलित किया कि संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ।

वे सदा चार बजे प्रातःकाल से पहले उठकर शौच से निवृत्त होकर वायुसेवन के लिये जंगल में जाया करते थे और तीन-चार मील फिर कर लौट आते थे, मानो छः या आठ मील प्रतिदिन पैदल यात्रा करते थे और जंगल में ही नित्य एक घंटे के लगभग योग क्रिया करते थे । उपदेश करने के पश्चात् वे प्रायः जंगल में शौच जाया करते थे । वे शारीरिक व्यायाम भी करते और अत्यंत शूरवीर ब्रह्मचारी थे । विवाहिता स्त्री से भी ऋतुगामी होने के अतिरक्त सम्बन्ध को वे उचित नहीं समझते थे ।

स्वास्थ्य रक्षा के लिये उनके कुछ नियम—वह वीर्यरक्षा के बड़े समर्थक, स्वास्थ्य फैलाने के बड़े सहायक और स्वास्थ्यरक्षा के नियमों का पूरा मान करने वाले थे । वे हृदय से चाहते थे कि शारीरिक और आत्मिक स्वास्थ्य से सब लोग पूरा लाभ उठावें । वे भोजन में रोटी के साथ प्रायः एक भाजी पसन्द करते थे । वह घृत को आयुष्यवर्धक जानते थे । वह स्वयं एक बार भोजन किया करते थे । वे प्रतिदिन प्रातःकाल जंगल से लौटकर आने के पश्चात् हथेली पर पानी रखकर नासिका में कुछ बूंदे चढ़ाया करते थे (जिसकी विधि प्रत्येक वैद्यक जानने वालों से छिपी हुई नहीं है) । इनके विषय में उनका विचार था कि इससे दृष्टिशक्ति बढ़ती और दांत दृढ़ होते हैं । वह खुली वायु, खुला जल, खुला जंगल, खुला मकान और खुला वातावरण अधिक पसन्द करते थे और इसीलिये वे संकुचित हृदय, संकुचित ललाट और संकुचित स्वभाव के नहीं थे । क्रोध करना उनसे दूर था और सार्वजनिक हित में उनका चित्त लगता था । कदापि किसी से विरोध या शत्रुता न थी ।

आयुर्वेदीय चिकित्सा के समर्थक—आत्मिक विचार अधिक रहने के कारण आयुर्वेद के प्रचार करने का यद्यपि पर्याप्त अवकाश नहीं था, परन्तु फिर भी संन्यासी होने के कारण जहां अवसर मिलता किसी को लाभ पहुंचानें और किसी लाभदायक बात को सीखने से कभी न चूकते । सन् १८७३ में जब वे कलकत्ता गये तो वहां आयुर्वेद के प्रचार की ओर अधिक दृष्टि थी और इस सम्बन्ध में उन्होंने डाक्टर महेन्द्र लाल सरकार से कई बार बहुत बातचीत की । चूंकि योगशास्त्र

का शारीरिक दशा से ही अधिक सम्बन्ध है और उनको आरम्भ से ही योग में रुचि थी इसीलिये आरम्भ में इस ओर उनका अधिक ध्यान रहा और यह कहावत जो संसार में प्रसिद्ध है कि जो योगी है वह रोगी नहीं होता, इसको सिद्ध कर दिखाया। जब तक काल नियमानुसार योग करते रहे तब तक कभी रोगी नहीं हुये परन्तु जब से कालनियम छोड़ दिया, (फिर भी नियम से प्रातः एक घंटे और कुछ समय दोपहर की करना कभी न छोड़ा इस विचार से कि हम जगत् की भलाई में संलग्न हैं) कभी-कभी यात्रा की अधिकता, कार्याधिक्य या मेलों की दूषित वायु के कारण रोगी हो जाते रहे परन्तु फिर प्रतिपदा के चन्द्रमा के समान झटपट स्वस्थ हो जाया करते थे।

सेवकों से सहानुभूति—मृत्यु से लगभग एक दिन पहले जब नापित से क्षौरकर्म कराया तो स्वामी जी ने कहा कि नापित को पांच रुपया दे दो।[७७] लोगों ने उसको एक रुपया दिया। नापित ने जाकर महाराज से कहा कि मुझको एक रुपया मिला है। सामाजिक पुरुषों को कहा कि इसको पांच रुपये दे दो और प्रसन्न कर दो।

एक दिन मृत्यु के समीप एक आर्य ने पूछा कि महाराज! आपका गला बैठ जाने का क्या कारण है तो मुख खोल कर बतलाया कि यहां से नाभि तक सब पक गया है और धीमे स्वर से कहा कि नाभि तक छाले पड़ गये हैं।

मृत्यु के दिन जब महाराज ने क्षौरकर्म करवाया तो गीले कपड़े से शिर पोंछा क्योंकि उनको स्नान की इच्छा थी परन्तु लोगों ने न नहाने दिया। फिर स्वामी जी ने कहा कि आज खाना बनाओ, जो तुम्हारा जी चाहे। सब प्रकार का खाना पकाया गया और सजा कर उनके सामने मेज पर लाकर रखा गया। स्वामी जी ने एक दृष्टि से देखकर कहा कि बस सब ले जाओ। अन्त में बहुत कहने से एक चमचा चनों का पानी पी लिया।

आबू पर्वत पर रहने के पक्ष में डाक्टर एडम साहब और उनके असिस्टैण्ट की सम्मति थी। डाक्टर साहब समुद्र तट पर रहना भी उत्तम बतलाते थे परन्तु अजमेर जाना ठीक नहीं समझते थे। अन्त में आर्य लोगों के बार-बार कहने से स्वामी जी ने कहा कि हम सोचकर उत्तर देंगे क्योंकि उनकी इच्छा आबू पर रहने की थी। दो दिन सोच में लगा दिये, अन्त में बड़ी कठिनाई से अजमेर जाना स्वीकार किया और कहा कि तुम्हारी इच्छा से जाता हूं अन्यथा मेरा मन तो नहीं चाहता। वहां आबू में ही एक दिन दही खाना चाहा परन्तु जब सब ने रोका तो रुक गये परन्तु मार्ग में आबू से लौटते समय स्टेशन[७८] पर उतार दिया गया और वहां दही खाया। जब तक स्वामी जी आबू रहे तो इस अधिकता से तार आते थे कि वहां के क्लर्क चकित थे कि इतने तार कभी किसी गवर्नर जनरल के यहां आने पर भी नहीं आये।

मृत्यु के दिन उन्होंने एक छाले को जो कदाचित् उनके माथे पर था, हाथ से रगड़ डाला। लोग चकित थे कि पीड़ा की इनको तनिक भी परवाह नहीं।

गोरक्षा के सम्बन्ध में स्वामी जी की सराहनीय कार्यवाही

गोरक्षा के बारे में उन्होंने जो प्रशंसनीय कार्यवाही अपने जीवन में की, वह उनके निम्नलिखित पत्रों से विदित हो सकती है—

सही करने का पत्र

ओ३म्—ऐसा कौन मनुष्य जगत् में है जो सुख के लाभ होने से प्रसन्न और दुःख की प्राप्ति में अप्रसन्न न होता हो। जैसे दूसरे के किये गये अपने उपकार में स्वयं आनन्दित होता है वैसे ही परोपकार करने में सुखी अवश्य होना चाहिये। क्या ऐसा कोई भी विद्वान् भूगोल में था, है और होगा जो परोपकार रूप धर्म और परहानिस्वरूप अधर्म के अतिरिक्त

धर्माधर्म की सिद्धि कर सके। धन्य वे महाशय जन हैं जो अपने तन,मन और धन से संसार का अधिक उपकार सिद्ध करते हैं। निन्दनीय मनुष्य वे हैं जो अपनी अज्ञानता से स्वार्थवश होकर अपने तन, मन और धन से जगत् में परहानि करके बड़े लाभ का नाश करते हैं। सृष्टिक्रम से ठीक-ठीक यही निश्चय होता है कि परमेश्वर ने जो-जो वस्तु बनाया है, वह-वह पूर्ण उपकार लेने के लिये है, अल्पलाभ से महाहानि करने के अर्थ नहीं। किंतु दो ही जीवन के मूल हैं, एक अन्न और दूसरा पान। इसी अभिप्राय से आर्यवरशिरोमणि राजेमहाराजे और प्रजाजन महोपकारक गाय आदि पशुओं को न आप मारते और न किसी को मारने देते थे। अब भी वे इन गाय, बैल और भैंस को मारने मरवाने देना नहीं चाहते क्योंकि अन्न और पान की बहुतायत इन्हीं से होती है। इससे सब का जीवन सुख से हो सकता है। जितनी राजा और प्रजा की बड़ी हानि इनके मारने या मरवाने से होती है उतनी अन्य किसी कर्म से नहीं। इसका निर्णय 'गोकरुणानिधि' पुस्तक में अच्छे प्रकार प्रकट कर दिया है अर्थात् एक गाय के मारने और मरवाने से चार लाख बीस हजार मनुष्यों के सुख की हानि होती है। इसलिये हम सब लोग स्वप्रजा की हितैषिणी श्रीमती राजराजेश्वरी क्वीन विक्टोरिया की न्यायप्रणाली में जो यह अन्यायरूप बड़े-बड़े उपकारक गाय आदि पशुओं की हत्या होती है, इसको इनके राज्य में से प्रार्थना से छुड़वा के अति प्रसन्न होना चाहते हैं यह हमको पूरा निश्चय है कि विद्या, धर्म, प्रजाहितप्रिय श्रीमती राजराजेश्वरी क्वीन विक्टोरिया, पार्लीमेंट सभा और सर्वोपरि प्रधान आर्यावर्तीय श्रीमान् गवर्नर जनरल साहब बहादुर सम्प्रति इस बड़ी हानिकारक गाय, बैल तथा भैंस की हत्या को हटा, उत्साह और प्रसन्नतापूर्वक शीघ्र बन्द करके हम सबको परम आनन्दित करें। देखिये कि उक्त गुणयुक्त गाय आदि पशुओं के मारने और मरवाने से दूध, घी और किसानों की कितनी बड़ी हानि होकर राजा प्रजा दोनों की बड़ी हानि हो रही है और नित्यप्रति अधिकाधिक होती जाती है। पक्षपात छोड़ के जो कोई देखता है तो वह परोपकार ही को धर्म और परहानि ही को अधर्म निश्चित जानता है। क्या विद्या का यह फल और सिद्धांत नहीं है कि जिस-जिससे अधिक उपकार हो उसका पालन, वर्धन करना और नाश कभी न करना। परमदयालु, न्यायकारी, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान् परमात्मा इस जगदुपकारक काम करने में समस्त राजा प्रजा को एक सम्मति करे।

...........(हस्ताक्षर)

इस सही पत्र पर हस्ताक्षर करने का अनुरोध के लिये विज्ञापन

चैत्र कृष्ण ९, संवत् १९३९ तदनुसार १४ मार्च, सन् १८८२ को स्वामी जी ने बम्बई से यह विज्ञापन भी दिया था जिसकी प्रतिलिपि निम्नलिखित है—

विज्ञापन पत्रमिदम्—सब आर्य पुरुषों को विदित किया जाता है कि जिस पत्र[1] के ऊपर (ओ३म्) और नीचे (हस्ताक्षर) ऐसा चिन्ह लिखा है वही सही करने का है। उस पर सही (हस्ताक्षर) इस प्रकार करनी होगी कि जिसके स्वराज्य वा देश में ब्राह्मण आदि मनुष्यों की जितनी संख्या हो उतनी संख्या लिख के अर्थात् उतने सौ, हजार, लाख वा करोड़ मनुष्यों की ओर से मैं अमुकनामा पुरुष सही करता हूं। इस प्रकार एक श्रीयुत महाशय प्रधान पुरुष की सही में सर्वसाधारण आर्य पुरुषों की सही आ जायेगी परन्तु जितने मनुष्यों की ओर से एक मुख्य पुरुष सही करे वह उनसे सही लेके अपने पास अवश्य रखे और जो मुसलमान व ईसाई लोग इस महोपकारक विषय में दृढ़ता और प्रसन्नता से सही करना चाहें तो कर दें। मुझको दृढ़ निश्चय है कि आप परम उदार महात्माओं के पुरुषार्थ, उत्साह और प्रीति से यह सर्वोपकारक महापुण्य कीर्तिप्रदायक कार्य यथावत् सिद्ध हो जायेगा। (दयानन्द सरस्वती) बम्बई।

---

1. अभिप्राय ऊपर के ही पत्र से है जिसे शीर्षक पर 'सही करने का पत्र' लिखा है।

गोवधबन्दी के लिये पार्लियामेंट में प्रार्थनापत्र भेजने की योजना— ८ अप्रैल, सन् १८८२ को बम्बई से स्वामी जी ने अंग्रेजी पत्र मान्यवर श्रीमान् नन्दकिशोरसिंह[७९] जी के नाम से भेजा था। इसका अनुवाद इस प्रकार है—"आपका पत्र ४ ता० का मिला, आनन्द हुआ। मुझे प्रसन्नता है कि पंडित कालूराम वहां सफल हुये। मुझे यह भी सुनकर आनन्द हुआ है कि जयपुर में गोवध को बन्द कराने के लिये कार्यवाही हो रही है। मैं चाहता हूं कि यह काम किसी महाराजा द्वारा सफलता को प्राप्त हो। आपने वास्तव में यह बहुत उत्तम प्रबन्ध किया है कि कोई गाय, बैल या भैंस आपके राज से बाहर न बेचा जावे। इसके अतिरिक्त जो उपाय सबसे उत्तम मैं सुझाना चाहता हूं वह यह है कि गायों की गणना[८०] की जाये जिसमें राज्य की समस्त गायें, भैंस, बैल आदि की संख्या लिखी जाये और उस कार्यालय में, जो उससे सम्बन्ध हो प्रत्येक पशु का जन्म और मृत्यु लिखी जावे। यह गायों की गणना प्रत्येक ६ महीनों के पश्चात् होनी चाहिये। कारण यह है कि इससे रात्रि में पशुओं का चुराया जाना बन्द हो सके।

आर्यधर्म सभा की स्थापना पर हर्ष— और यह कि आपने एक 'आर्यधर्मसभा' स्थापित की है, वास्तव में अत्यंत प्रशंसा के योग्य काम किया है। मैं आशा करता हूं कि इसका उद्देश्य आर्यों का उपकार और ईश्वरोक्त सत्य वैदिक धर्म की उन्नति करना होगा। आपकी इस सभा से देश को बड़ा लाभ पहुंचने की आशा है।

गोरक्षा की कार्यवाही बड़ी उन्नति कर रही है और बहुत सफल हो रही है। बम्बई में हमने दो हजार हस्ताक्षर गोरक्षा के लिये करा लिये हैं। हम गोवध को केवल रजवाड़ों से ही बन्द कराना नहीं चाहते प्रत्युत हम पार्लियामेंट की सेवा में प्रार्थनापत्र भेजेंगे। इस अभिप्राय से हमें दो करोड़ हस्ताक्षर की आवश्यकता है। हम आशा करते हैं कि राजे महाराजे परस्पर एक दूसरे को इसकी प्रेरणा करेंगे। पंडित कालूराम जी इस कार्यवाही के सम्बन्ध में बहुत धन्यवाद के योग्य हैं।

हम सब आनन्द पूर्वक हैं। वेदभाष्य का काम निर्विघ्नता से हो रहा है। बम्बई के आर्य लोगों ने भूमि का एक टुकड़ा समाज मन्दिर के लिये मोल (६५०० रु० में) लिया है और बारह या अठारह सौ रुपये के लगभग चन्दा भवन निर्माणार्थ भी हो चुका है।

इस पत्र के अतिरिक्त हमने आपको पांच छपे हुये पत्र गोरक्षा सम्बन्धी भेजे हैं, जो कि आपको शीघ्र पहुंच जायेंगे।

आर्यसमाज के नियम-उपनियम उस समाज में, जो कि आपने सफलता से स्थापित की है, रख छोड़ने चाहियें।[1] अन्त में हम आप सबको आशीर्बाद देते हैं। यथावसर पत्रव्यवहार करते रहना।

जो पांच पत्र हमने आपको भेजे हैं उससे आप हमारे अभिप्राय को भली-भांति समझ लेंगे। कृपा करके अपने राज्य में जितने मनुष्यों के हस्ताक्षर इकट्ठे कर सकें, कीजिये और उन हस्ताक्षरों को अपने पास रखिये। हमको उनकी शीघ्र ही आवश्यकता पड़ेगी। हस्ताक्षर (दयानन्द सरस्वती)

एक बार की बात है कि अजमेर में अंग्रेजी के किसी देसी विद्वान् ने स्वामी जी से योग और उसकी सिद्धियों के विषय में प्रश्न किया। प्रश्नकर्ता योगसिद्धि को बिलकुल नहीं मानते थे। उत्तर में स्वामी जी ने कहा कि तुम समझते हो कि हम ऐसा भारी काम बिना योग के ही कर रहे हैं? उत्तर सुनते ही उसके संशय निवृत्त हो गये और आर्यसमाज का प्रेमी बन गया।

द्वितीय भाग समाप्त

---

1. मानो स्वामी जी स्वयं स्पष्ट रूप से उनकी स्थापित की हुई आर्यधर्मसभा का दूसरा नाम आर्यसमाज लिख रहे हैं और उसमें भी आर्यसमाज के नियमोपनियम रखने की प्रेरणा करते हैं। (आत्माराम)

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के गुरु

स्वामी विरजानन्द जी

यौगिक शब्दों की पारसमणि की खोज करने वाला ऋषि स्वामी विरजानन्द सरस्वती

जन्म, कुल व माता-पिता—पंजाब देश के करतारपुर[१] नगर के एक छोटे से गंगापुर नामक ग्राम में बई[1] नदी के तट पर महाराजा रणजीतसिंह के शासन काल में एक नारायणदत्त नामक ब्राह्मण सारस्वत भारद्वाजी गोत्र और शारद शाखा का रहता था। किसको ज्ञात था कि इसके घर में वह रतन उत्पन्न होगा जो पृथिवी की काया पलटने के लिये बीज का काम कर दिखायेगा। कौन कह सकता था कि नाराणदत्त का नाम संसार के इतिहास में लिखा जायेगा और किसको ज्ञान था कि आर्यों के लुप्त हुये विद्या-भण्डार और मनुष्यमात्र की वास्तविक सम्पत्ति वेद की समस्याओं को सुलझाने की विधि की पारसमणि इसके सुपुत्र के हाथ पड़ेगी। सौ वर्ष हुये कि नारायणदत्त के यहां संवत् १८५४[2] विक्रमी में एक बालक ने जन्म लिया।

बचपन—ढाई वर्ष या पांच वर्ष की अवस्था में यह बालक शीतला रोग से ग्रस्त हुआ। इस भयानक रोग के कारण बालक की आंखें जाती रहीं। आठ वर्ष की आयु तक पिता इसको सारस्वत और संस्कृत पढ़ाता रहा। ११ वर्ष की आयु तक बालक माता-पिता के संरक्षण में बराबर पलता रहा परन्तु बारहवें वर्ष में उसके अपने माता-पिता के मर जाने के कारण उसे भाई की शरण में आना पड़ा। दु:ख है कि इस अधोगति के काल में साधारणतया भाई का शब्द शत्रु से बदल चुका था और भावज के अर्थ कष्टदात्री के बन गये थे। बारह वर्ष के अन्धे अनाथ बालक को भाई और भावज रोटी के स्थान पर गालियां देने लगे और कष्ट के मारे उस बेबस अनाथ का नाक में दम कर दिया।

घर से भाग कर जंगल की शरण में, तीन वर्ष तक गंगा में खड़े-खड़े गायत्री का जाप करना— भाई और भावज के दुर्व्यवहार से तंग आकर विवश हो उस बारह वर्ष के लड़के ने उनसे विदा ली ओर जंगल की और चल पड़ा। विपत्तियों पर विपत्तियां झेलता और कर्मफल भोगता हुआ बड़ी कठिनाई से यह बालक हृषीकेश पहुंचा। उस समय उसकी आयु सम्भवत: १५ वर्ष की थी। समय की दशा और अपने तथा परायों की अनुकूलता से उदास और निराश होकर जगत्पिता की उपासना में संलग्न होकर अपने दग्ध-हृदय को शान्ति देने लगा और कहते हैं कि तीन वर्ष गंगा में खड़े होकर गायत्री का परमजाप उत्तम रीति से करते हुये उसने अपने मन और अन्त:करण रूपी चक्षु को ज्ञानरूपी अंजन से प्रकाशित कर लिया। खाने-पीने को जो कुछ फल-फूल मिल जाता तो खा लेता; अन्यथा भूखा रहकर व्यतीत करता, भिक्षा कभी किसी मनुष्य से न मांगता था परन्तु अत्यन्त आवश्यकता की दशा में किसी सेठ से अन्न ले लेता।

बचपन से उपासक दशा में—नवयुवक बालकपन की अवस्था को पार करके एक उपासक की अवस्था में पहुंच गया था। ऋषिकेश उस समय आजकल की भांति बहुत बसा हुआ और निरापद स्थान नहीं था। बस्ती के न होने के कारण मांसभक्षी पशु चारों ओर रात को गरजते और शांति भंग करते रहते थे। परन्तु वह शूरवीर ईश्वर आश्रित हो ऐसे भयानक स्थान पर तपस्या द्वारा प्रज्ञा की आंखें प्राप्त करने का यत्न कर रहा था।

---

1. 'बोई' (श्री देवेन्द्रनाथ)—सम्पा०

2. संवत् १८३५-१८३६ (श्री देवेन्द्रनाथ) —सम्पा०

देववाणी का आदेश—जब तीन वर्ष निरन्तर साधन और तपस्या करते व्यतीत हो गये तो एक दिन रात को स्वप्न में उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि तुमको जो कुछ होना था वह हो गया; अब यहां से चले जाओ।

अठारह वर्ष की आयु में स्वामी पूर्णानन्द से संन्यास ग्रहण तथा व्याकरण का अध्ययन—फलतः वह नवयुवक तपस्वी वीरता से उस भयानक वन को पार करता हुआ अठारह वर्ष की आयु में हरिद्वार आ पहुंचा और यहां उसकी एक विद्वान् गौड़ स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती[२] जी से भेंट हुई, यहीं उनसे विरक्त वीर ने संन्यास ग्रहण किया और अपना नाम विरजानन्द रखा। ये स्वामी उत्तर देशी पर्वत के निवासी थे। इनसे संन्यास लेने के पश्चात् विरजानन्द जी ने विद्योपार्जन का विचार किया। तपस्या करने के पश्चात् उनकी कवित्व शक्ति जागृत हो गई थी और उन्होने रामचरित्र के सम्बन्ध में श्लोक रचे।

कुछ समय हरिद्वार में ठहरकर एक ब्राह्मण से षड्लिंग पर्य्यन्त मध्यकौमुदी पढ़ी और इसके पश्चात् स्वयं विद्यार्थियों को पढ़ाना आरम्भ किया। यहां तक कि स्वयं मध्यकौमुदी पढ़ाने लग गये। वहां से चलकर कुछ काल कनखल ग्राम में रहे और यहां किसी की सहायता से सिद्धांतकौमुदी विचारते[३] और विद्यार्थियों को पढ़ाते रहे। कनखल से गंगा के किनारे चलते हुये काशी पधारे।

काशी में न्याय, मीमांसा व वेदान्त का अध्ययन—वहां एक वर्ष से कुछ अधिक ठहर कर मनोरमा, शेखर, न्याय, मीमांसा और वेदान्त के ग्रंथ पढ़े। अपने अध्ययन के साथ-साथ सब विद्यार्थियों को भी निरन्तर पढ़ाते रहे। वहां अपनी विद्वता के कारण 'प्रज्ञाचक्षु-स्वामी' के नाम से प्रसिद्ध हुये।

गया के मार्ग में चोरों ने घेरा—२२ वर्ष की आयु में वहां से पैदल चलकर गया नगर की ओर चल पड़े। मार्ग में उनको एक स्थान पर दुष्ट चोरों ने चारों ओर से घेर कर पकड़ लिया। संयोगवश उस समय वहां दक्षिण देशस्थ ग्वालियर के सरदार एक पंडित सहित उतरे हुये थे। उनके कोलाहल करने पर सरदार के सेवकों ने पुकारा। इतने में विरजानन्द जी ने सारा वृत्तांत संस्कृत में सुना दिया, जिसके सुनते ही पंडित झटपट सहायता को पहुंच गया और चोरों से महात्मा को बचा लिया। कायर चोर भाग गये और सरदार के सेवक स्वामी जी को डेरे पर ले आये। बड़े आदर-सत्कार से प्रज्ञाचक्षु स्वामी[४] का पांच दिन तक इन्होंने आतिथ्य किया। छठे दिन स्वामी जी यहां से विदा होकर गया पधारे। चिरकाल तक गया में वेदान्तशास्त्र पढ़ने-पढ़ाने से ज्ञान बढ़ाने के पश्चात् बंगाल की राजधानी कलकत्ता पधारे। वहां से लौटते हुये ग्राम सोरों में गंगा के तट पर बहुत दिन तक विचार में निमग्न रहे।

अलवर में अध्यापन—उन्हीं दिनों अलवर के महाराजा विनयसिंह जी सोरों में गंगास्नान को आये थे। ठीक उन के आने के समय यह गंगा में खड़े हुये उच्च और मीठे स्वर से शंकराचार्य के विष्णुस्तोत्र का पाठ कर रहे थे। महाराजा उनकी सुरीली, रसीली, मनोरंजक वाणी को सुनकर मोहित हो गये और मूर्तिवत् होकर सुनते रहे। जब ये समाप्त करके जल से बाहर निकले तब महाराजा ने निवेदन किया कि भगवन्! आप मेरे साथ अलवर चलें। स्वामी जी ने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि आप राजा और हम त्यागी, हमारा आपका क्या सम्बन्ध है! तत्पश्चात् महाराजा विनयसिंह जी स्वामी जी के पास बगीचे में स्वयं गये और बहुत कुछ अनुरोध के पश्चात् विद्या पढ़ने की प्रतिज्ञा पर स्वामी जी को अपने साथ अलवर ले गये। महाराजा ने उस समय प्रतिज्ञा कर ली थी कि मैं प्रतिदिन तीन घंटे पढ़ा करूंगा। यदि मैं किसी दिन प्रतिज्ञानुसार न पढ़ूंगा तो आप बेशक चले आइये। इस शर्त पर प्रज्ञाचक्षु जी उनके साथ अलवर चले गये और वहां तीन-चार वर्ष तक महाराजा को पढ़ाते और स्वयं ज्ञान ध्यान में विशेष उन्नति करते रहे। धीरता और सत्यवादिता के कारण उस रियासत में स्वामी जी का धर्मात्मा लोग सम्मान करते थे। परन्तु स्वार्थी और चाटुकार ब्राह्मण उनसे घृणा करते थे और

सदा इसी लीला में व्यस्त रहते थे कि येन केन प्रकारेण विरजानन्द जी को महाराजा की दृष्टि से गिरा दें परन्तु महाराजा उनकी सत्यवादिता और परले सिरे के बेधड़क स्वभाव को जानते हुये सदा उनका पूरा सम्मान करते थे। यद्यपि महात्मा को पता लग चुका था कि पेट के दास गुप्त रूप से ईर्ष्या की आग में जलते हुये महाराजा के कानों में मेरी निन्दा पहुंचा रहे हैं परन्तु सिंह के समान निर्भीक महात्मा अपने काम में संलग्न रहे और कभी सिद्धांत से गिरने का नाम तक न लिया। महाराजा ने स्वामी जी को रहने के लिये एक भव्य भवन दे रखा था, पुस्तकें और सब प्रकार की आवश्यक सामग्री जुटा दी थी मानों कई सहस्र की सम्पत्ति स्वामी जी के अधिकार में थी। महाराजा प्रतिज्ञानुसार स्वामी जी से प्रतिदिन पढ़ने आते थे परन्तु एक दिन नाच-तमाशे में व्यस्त होने को कारण बिना सूचना दियो बेपढ़े अपने घर बैठे रहे। स्वामी जी निरन्तर प्रतीक्षा में बैठे हुये महाराजा की बाट जोहते रहे। परन्तु न तो महाराजा स्वयं आये और न कोई सन्देश पहुंचा। अन्त में जब बहुत समय के पश्चात् महाराजा साहब आये तब व्रतधारी तपस्वी ने, जो स्वयं-नियम में चलना और दूसरों को नियम में चलाना चाहता था, प्रतिज्ञा न पालने के विषय में महाराजा से अपनी अप्रसन्नता प्रकट की और सरल वाणी में कहने लगे कि आपने प्रतिज्ञा को भंग किया है; परन्तु मैं प्रतिज्ञा भंग नहीं कर सकता। इसलिये अब मैं यहां नहीं रह सकता। महाराजा उनको रखना चाहते थे परन्तु व्रतधारी प्रतिज्ञा तोड़कर भला कब रह सकता। एक दिन बिना सूचना दिये स्वामी जी वहां से चल पड़े और हजारों की सम्पत्ति और पुस्तकों को वहीं छोड़ा। केवल भविष्य में व्यय करने के लिये ढाई हजार रुपये अपने संग लिये और भरतपुर में पहुंचे।

भरतपुर में छः मास रहे—यहां महाराजा बलवन्तसिंह जी के यहां ६ मास तक निवास किया और विदा होते समय महाराजा ने आदर-सत्कार के रूप में चार सौ रुपया और एक दुशाला भेंट किया। वहां से मुरसान[५] नामक ग्राम में आये और मुरसान के रईस टीकमसिंह जी के अतिथि बने। फिर सोरों चले गये जहां रोग ने घेर लिया, और रोग इतना संहारक हो गया कि जीवन की आशा टूटने लगी परन्तु विरजानन्द को तो संसार के सामने किसी गुप्त कोष की अप्राप्य कुंजी उपस्थित करनी थी। यदि उस समय यह महात्मा मर जाते तो कौन कह सकता है कि संसार कभी विरजानन्द का नाम सुनता। धीरे-धीरे रोग कटने लगा और स्वामी पुनः संसार में विचरने लगा।

मथुरा में आगमन—वहां से चलकर संवत् १८६९[1] विक्रमी में स्वामी जी यमुना नदी के तट पर मथुरा नगर में पधारे। यहां आकर गतश्रम नारायण[६] के मन्दिर में कई दिन विद्यार्थियों को पढ़ाते रहे। तत्पश्चात् अपना विशेष मकान किराये[७] पर लेकर नियमपूर्वक पाठशाला चालू करके सिद्धांत कौमुदी, मनोरमा, न्यायमुक्तावली, न्याय, कोष और कई वैदिक ग्रन्थ पढ़ाने लगे।

कृष्णशास्त्री से व्याकरण में शास्त्रार्थ का झमेला—कुछ समय पश्चात् ऐसी घटना हुई कि वैष्णव सम्प्रदाय के प्रसिद्ध आचार्य जिनका नाम रंगाचारी (चार्य) था, मथुरा आये और उन्होंने सेठ राधाकृष्ण को अपना चेला बनाया। जिन दिनों रंगाचार्य मथुरा में थे, उन्हीं दिनों की बात है कि उनके गुरु कृष्णशास्त्री दक्षिण से पधारे थे। कृष्णशास्त्री न्याय और व्याकरण के प्रसिद्ध पंडित थे। एक दिन शास्त्री जी के दो विद्यार्थियों अर्थात् लक्ष्मण ज्योतिषी और मुड़मुड़िया पंड्या का विरजानन्द जी के दो विद्यार्थियों अर्थात् चौबे गंगादत्त और रंगदत्त से शास्त्रार्थ हो पड़ा। कृष्णशास्त्री के विद्यार्थियों ने पूछा कि 'अजाद्युक्तिः' इस वाक्य में कौन-सा समास है ? स्वामी जी के विद्यार्थियों ने कहा कि षष्ठी तत्पुरुष है और कृष्ण शास्त्री के विद्यार्थियों ने कहा कि नहीं सप्तमी तत्पुरुष है। इस झगड़े को दोनों ने अपने गुरुओं से जाकर कहा। कृष्णशास्त्री ने विद्यार्थियों से कहा कि इसमें सप्तमी तत्पुरुष हो सकता है षष्ठी तत्पुरुष नहीं बन सकता। दंडी विरजानन्द जी ने कहा कि

---

1. संवत. १९०१ वि. (श्री देवेन्द्रनाथ)—सम्पादक

षष्ठी तत्पुरुष है, सप्तमी नहीं । इस बात पर परस्पर दोनों पक्षों का शास्त्रार्थ ठहरा और दो-दो सौ रुपये दोनों ओर से हारजीत के रखे गये । सेठ राधाकृष्ण जी इसमें मध्यस्थ बने जिन्होंने एक सौ रुपये अपनी ओर से भी रख दिया । इन ५०० रुपये की निधि सेठ जी की दुकान पर निक्षेप रूप में रखी गई और गतश्रम नारायण का मन्दिर शास्त्रार्थ के लिये ठहराया गया । नगर में इस शास्त्रार्थ की चर्चा जंगल की आग की भांति जन-जन में फैल गई और मथुरा के लोग जो पहलवानों और चौबों के दंगल देखने के अभ्यस्त थे, अब विद्वान् पहलवानों की कुश्ती देखने को सचमुच इच्छुक बने हुये थे, सन्ध्या के समय नियत तिथि को सब लोग इस विद्या-सम्बन्धी अखाड़े को देखने के लिये एकत्र हुये ।

सेठ का अन्याय—नियत समय पर दंडी जी ने अपने विद्यार्थी भेजे कि यदि कृष्णशास्त्री जी आये हों तो हम चलें परन्तु कृष्णशास्त्री जी बिलकुल न आये । जब दंडी जी के विद्यार्थी गये तो सेठ जी ने दोनों ओर के विद्यार्थियों में शास्त्रार्थ आरम्भ करा दिया और शास्त्रार्थ कराने के थोड़ी देर के पश्चात् प्रसिद्ध कर दिया कि दण्डी जी हार गये और 'यमुना मैया की जय' का घोष करने वाले लठमारों को रुपये बांटना आरम्भ कर दिया । सत्यप्रिय लोग चकित और दुःखित थे कि यह क्या हुआ और दंडी जी क्योंकर हार गये तथा कृष्णशास्त्री क्योंकर जीत गये जब कि दोनों का शास्त्रार्थ ही नहीं हुआ । विदित होता है कि कृष्णशास्त्री ने डूबते को तिनके का सहारा समझकर यह ढोंग बनाया था परन्तु दंडी जी की वीर आत्मा कब इस बात का निर्णय किये बिना रह सकती थी । यह कब हो सकता था कि दण्डी जी अन्याय और अधर्म की कार्यवाही की पोल न खोलें । दंडी जी महाराज ने मथुरा के कलैक्टर ऐलेक्जेण्डर साहब बहादुर से मिलकर कहा कि या तो हमारा रुपया सेठ जी से दिलवा दीजिये या कृष्णशास्त्री से शास्त्रार्थ कराइये ।[८]

कलैक्टर से न्याय की मांग, पर उसने हस्तक्षेप नहीं किया—कलैक्टर साहब बहादुर ने उत्तर दिया कि हम इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकते । सेठ धनवान है, आप उससे झगड़ा न करें,जहां आप एक रुपया व्यय करोगे वह हजार रुपये व्यय कर सकता है ।

सेठ ने पंडितों को भी धन से खरीद लिया— सेठ साहब ने इस बीच में शास्त्रार्थ का पत्र व्यवस्था बेचने वाले पंडितों के पास भेजा और उनका निर्णय मांगा कि किसका पक्ष सच्चा है और किसका झूठा । उस समय पंडित काकाराम शास्त्री, गौड़ स्वामी,[९] काशीनाथ शास्त्री आदि पंडित काशी में जीवित थे । उन पंडितों को घूस देकर सेठ ने इन धर्मविक्रेताओं; जीवितमूर्तियों और मृतआत्माओं से अपने पक्ष में हस्ताक्षर करा लिये । जब दंडी जी ने अपना पत्र उनके पास भेजा तो उन्होंने उत्तर दिया कि यद्यपि आपका पक्ष सत्य है परन्तु हम पहले सेठ जी के कागज पर हस्ताक्षर कर चुके हैं, आपको उत्तर नहीं दे सकते । पंडितों की ओर से यह उत्तर देखकर दंडी जी के मन में क्या-क्या विचार धर्म और आचार से रहित विद्वानों के विषय में आये होंगे ? क्या उस समय दंडी जी के शुद्ध मन ने अनुभव नहीं किया होगा कि भारतवर्ष के शिरोमणि पंडित आत्मघात करते हुये ऋषिसंतान (शब्द) को कलंकित कर रहे हैं । क्या उनके सरल हृदय में शोक नहीं हुआ होगा कि टके के बदले धर्म बिक रहा है । इस महापापाचार को देखकर दंडी जी के मन में क्रोध (मन्यु) उत्पन्न हुआ और धन्य है वह मन्यु (उचित क्रोध) जो पाप नष्ट करने के लिये सरल आत्मा में उत्पन्न हो । उनके मन में विचार आया कि यह आवश्यक नहीं कि और नगरों के पंडितों ने भी टके को धर्म मान रखा हो इसलिये आगरा आदि स्थानों के पंडितों की सम्मति लेना आवश्यक है । सम्भव है कि वे निष्पक्ष होकर सच्ची सम्मति दे दें । उसी धुन में वे आगरा गये और सदर बोर्ड में साहब बहादुर से मिले । उन दिनों में वहां चिरंजीव शास्त्री धर्मशास्त्र की व्यवस्था देने वाले थे जिनको तीन सौ रुपया मासिक सरकार से मिलता था । दंडी जी उनसे मिले और कहा कि या तो तुम हमारे रुपये दिला दो या हमारे पत्र पर हस्ताक्षर कर दो । उन्होंने भी वही उत्तर दिया कि हम भी हस्ताक्षर कर चुके हैं, आप झगड़ा न करें आपको रुपया कदापि नहीं मिलेगा । कहते हैं कि उनको तीन सौ रुपये सेठ जी ने प्रयोजनसिद्धि के लिये दिये थे । जब दंडी जी ने देखा कि इस समय पाप प्रबल हो रहा है

और सत्य की कोई नहीं सुनता तो विवश होकर घर में जा बैठे । किसको ज्ञात था कि यह दुर्घटना उनके जीवन में, नहीं-नहीं, संसार के इतिहास में,एक अद्‌भुत पलटा देने वाली होगी । कौन कह सकता था कि सेब का गिरना 'न्यूटन'[१०] को पुनः आर्यसिद्धांत का दर्शन करायेगा । किसको विदित था कि ढकने का खड़कना स्टीम इंजन का मौलिक आधार बनेगा । कौन जानता था कि 'कोलम्बस'[११] का मार्ग भूल जाना शताब्दियों से भूली हुई सृष्टि का फिर से दर्शन करायेगा । महापुरुषों के इतिहासों में साधारण घटनायें ही उनके भविष्य में असाधारण होने के लिये मौलिक आधार प्रमाणित हुई हैं और सचमुच यही दशा विरजानन्द के साथ इस प्रकट पराजय से हुई । 'एमर्सन' का कहना ठीक है कि हमारी शक्ति हमारी निर्बलता से उत्पन्न होती है और मनुष्य जब दुःखित और पीड़ित हो तो वह श्रेष्ठ और बढ़कर काम करने के योग्य बन जाता है । मानो निर्बलता और पराजय जीवित आत्मा में शक्ति उत्पन्न करने की सामर्थ्य रखती है और ठीक यही प्रभाव इस प्रकट पराजय ने विरजानन्द की जीवित आत्मा पर पहुंचाया । यद्यपि वह जानता था कि मैं सत्य पर हूं उसके पास और कोई भारी साक्षी न थी जो कि उसकी स्पष्ट पुष्टि करे और काशी और आगरा के धर्मविक्रेता पंडितों के विरुद्ध सबके सामने सत्य की गवाही दे सके । इस साक्षी को ढूंढने के लिये वह इधर-उधर संस्कृत के ग्रंथों की पड़ताल करने लगा । वह चाहता था कि किसी ऋषि की साक्षी मिले ताकि ऋषिसिद्धांत—'सत्य की जय होती है' सत्य ही प्रमाणित हो ।

अपने कथन के प्रमाण की खोज के लिये अष्टाध्यायी का पाठ सुना—इस खोज में ही थे कि एक दिन प्रातःकाल एक दक्षिणी ब्राह्मण को दंडी जी ने अष्टाध्यायी का पाठ करते सुना । यह ब्राह्मण प्रतिदिन नियमानुसार पाठ करता था परन्तु दीवारों पर पाठ का क्या प्रभाव हो सकता है ? किन्तु जब इस पाठ की ध्वनि विरजानन्द की धर्मप्रिय अन्वेषण करने वाली आत्मा के निष्पक्ष कान में पहुंची तो आत्मा मानो समाधिस्थ होकर महर्षि पाणिनि के अनमोल सूत्रों को सुनने लगी । जब तक उसने अष्टाध्यायी का समस्त पाठ समाप्त न किया तब तक एकचित्त होकर विरजानन्द की वृत्ति उसी में दत्तचित्त रही और तत्पश्चात् सुने हुये पाठ को विचारा । उनकी उस समय की आत्मा की प्रसन्नता का अनुमान कौन लगा सकता है जब उनको निश्चय हो गया कि अष्टाध्यायी ही वास्तव में ऋषिकृत ग्रन्थ है और पांच हजार वर्षों से लुप्त, संस्कृत विद्या के अनमोल कोषों की यही (अष्टाध्यायी ही) एक अप्राप्य कुंजी का महान् भाग है ।

अष्टाध्यायी की रचना विरजानन्द ने नहीं की, परन्तु उसकी महिमा को अनुभव किया—कोलम्बस ने अमरीका की भूमि को बनाया नहीं, प्रत्युत उसका ज्ञान प्राप्त किया था । इंजन बनाने वाले ने वाष्प, हां, साधारण वाष्प के गुण जाने परन्तु वाष्प को उत्पन्न नहीं किया । अष्टाध्यायी को ठीक इसी प्रकार विरजानन्द ने बनाया नहीं प्रत्युत पहले की बनी हुई अष्टाध्यायी की महिमा का अनुभव किया । साधारण पंडित तो उसका नाम ऐसे ही जानते थे जैसे कि लोगों ने भाप का नाम सुन रखा था । भाप की महिमा अनुभव करने वाले ने संसार में क्या कर दिखाया और ऋषिकृत अष्टाध्यायी के गुणों और महिमा को अनुभव करने वाला विरजानन्द अब क्या कुछ नहीं करेगा ।

अष्टाध्यायी के पश्चात् महाभाष्य, निरुक्त और निघण्टु भी मिले, वेद का मार्ग मिल गया—अष्टाध्यायी ने अन्वेषक को निश्चय करा दिया और साक्षी दे दी कि तू सत्य पर है और कृष्ण शास्त्री झूठा है । अष्टाध्यायी पश्चिमी भारत के एक टापू के समान थी जो कि ऋषियों की पांच हजार वर्ष से छिपी हुई सृष्टि की खोज करनेवाले विरजानन्द के हाथ आई । परन्तु ब्राजील और मैक्सिको के देश विदित हुये बिना कब रह सकते थे । ठीक इसी प्रकार अष्टाध्यायी के मिल जाने पर उसका व्याख्या-ग्रन्थ, महाभाष्य[१२] जो कि अष्टाध्यायी से गहरा सम्बन्ध रखता है, विरजानन्द के हाथ लगा और उन्हीं दो पुस्तकों के विचार ने उसको दो और ज्योतिःस्तम्भ जिनका नाम निघण्टु और निरुक्त है, दिखला दिये । अब वह संसार के सामने आर्यों की सभ्यता, आर्यों के शास्त्र, आर्यों की विद्या और समस्त उन्नतियों तथा विद्याओं और कलाओं के वास्तविक स्रोत वेद तक पहुंचने का मार्ग और राजपथ अष्टाध्यायी, महाभाष्य, निघण्टु और निरुक्त को बतला रहा है । उसका परोपकारी,

परिश्रमी, सत्यप्रिय आत्मा इस अमूल्य सम्पत्ति को सर्वसाधारण जनता तक पहुंचाने का विचार कर रहा है और इसी कारण विरजानन्द ने सं० १९१४ से लेकर अपनी आयु का शेष सारा भाग ऋषिकृत ग्रन्थों के प्रचार में अर्पित कर दिया।

वेद ज्ञान के लिये आर्ष ग्रन्थों की कुंजी के अन्वेषक विरजानन्द—मिस्र की प्राचीन सभ्यता और महानता को पश्चिमी देशों ने तब स्वीकार किया जब रोजीटा स्टोन उनके हाथ लगा। कहते हैं कि जब नेपोलियन के सैनिक मिस्र में जा रहे थे तो एक बूशर नामक सैनिक ने यह पत्थर, जिसका नाम अब ऐतहासिक संसार में रोजीटा का पत्थर है, रोजीटा के स्थान पर प्राप्त किया था। इस पर अनोखी भाषा और चिन्हों में कुछ लिखा हुआ था और साथ ही यूनानी भाषा में कुछ लेख था। डाक्टर टामस यंग और फेन फ्रांसिस ने लगातार प्रयत्नों से उसको पढ़ा। उस लिखित का पढ़ना ही था कि यूरोप को पुराने मिश्र की भाषा का पता चल गया जिसको सिखलाने वाला अब कोई गुरु जीवित नहीं। इस पत्र की लिखत ने जादू का काम किया और समस्त पश्चिमी संसार के मुख से स्वयमेव एक स्वर से कहला दिया कि मिस्र का देश उच्च कोटि का सभ्य और विद्याओं और कलाओं की अद्वितीय खान था। यदि यह पत्थर अन्वेषण करने वाले पश्चिमी देशों के हाथ न आता तो फिर मिस्र के विषय में लोगों का इसके अतिरिक्त और कोई विचार न होता कि वे आधे जंगली और नितान्त विद्याहीन थे। इस पत्थर का मूल्य पश्चिमी संसार ही जानता है और अब इंग्लैंड को अभिमान है कि अन्ततः यह पत्थर उनके सम्राट तृतीय जार्ज के अधिकार में आ गया। सुन्दर मीनारों के देश का प्राचीन इतिहास, जैसे इस पत्थर की सहायता के बिना जानना कठिन था, उससे हजार गुना कठिन, अन्वेषक को सुनहरी आर्यावर्त के पुराने विश्वसनीय इतिहास और मनुष्य की वास्तविक सम्पत्ति, 'वेद' को जानना था। ऋषि-मुनियों के प्राचीन संसार और उस पुराने संसार के वास्तविक स्रोत वेद की वास्तविकता लोग कैसे जान सकते यदि विरजानन्द पारस पत्थर सदृश अष्टाध्यायी, माहभाष्य, निघण्टु और निरुक्त की खोज न करता। इस पारसमणि का ज्ञान प्राप्त करने वाले विरजानन्द का नाम संसार के इतिहास में सम्मानपूर्वक लिया जायेगा।

इस पारसमणि के कारण ही संसार को पता लग गया कि वेद में मूर्तिपूजा, मनुष्यपूजा, अग्नि और अन्य महाभूतों की पूजा नहीं है। वह वेद जो कि अन्धकार में टटोलने वाले पुरुषों को केवल प्रार्थनाओं का व्यर्थ संग्रह प्रतीत होते थे, अब इस पारसमणि की सहायता से विद्या की ज्योति के अद्वितीय प्राकृतिक सूर्य प्रतीत होने लगे हैं जिसने तमोमय संसार को सचमुच सुनहरे संसार में बदल दिया और इसी कारण हम अष्टाध्यायी, महाभाष्य, निघण्टु और निरुक्त का नाम पारसमणि रखते हुये विरजानन्द के आभारी होते हैं। ऋषियों की भाषा और वेदों के अर्थ समझने के लिये प्रत्येक अन्वेषक को इस पारसमणि की आवश्यकता है और जितने भाष्य मैक्समूलर, विलसन आदि सज्जनों ने इस पारसमणि की सहायता के बिना किये हैं वे सभी मनुष्य को किसी सुनहरी काल का पता देने के स्थान पर एक अन्धकारमय लौहकाल की ओर ले जाते हैं। संसार की प्राचीन अवस्था को जानने के लिये इस पारसमणि की प्रत्येक प्रकाश प्रेमी को आवश्यकता है। मनुष्य की सच्ची प्राकृतिक भाषा समझने के लिये इसका सहारा अपेक्षित है और इस पारसमणि का ज्ञात होना संसार के इतिहास में एक महान् स्मृति बनकर रहेगा।

जब मथुरा में यह घटना हो चुकी, तो इसके छः मास पश्चात् लक्ष्मण ज्योतिषी, कृष्णशास्त्री के विद्यार्थी अत्यंत रोगी हो गये और उनका पाप उनको डराने लगा। कहते हैं कि जब मरणासन्न थे तब उन्होंने सेठ जी से कहा कि कदाचित् दण्डी ने मुझ पर कोई मारण, मोहन का मन्त्र चलाया है; उनको प्रसन्न करना चाहिये। इस पर सेठ जी ने दण्डी जी को कहला भेजा कि आप पांच सौ के स्थान पर हजार रुपये ले लें और क्षमा करें। दण्डी जी ने उत्तर दिया कि हमारा धर्म यह नहीं है; और किसी मनुष्य के करने से कुछ नहीं होता; तुमको केवल भ्रम है। यदि वह हमारे उपाय से बच जाये तो हम हजार रुपये अपने पास से देने को उद्यत हैं। अन्त में दूसरे दिन लक्ष्मण ज्योतिषी की मृत्यु हो गई।

विरजानन्द जी का रुख बदला—

अष्टाध्यायी और महाभाष्य के गुण जानने पर वे अपने पूर्वपरिश्रम को जो कि सिद्धांत-कौमुदी आदि तुच्छ ग्रन्थों के पढ़ाने में हुआ, व्यर्थ समझते थे । वह सूत्र जिससे पहले उनको शास्त्रार्थ के सम्बन्ध में सत्यसाक्षी दी थी, वह है 'कर्तृकर्म्मणोः कृति ।'[१३] सूर्य के दर्शन करने वाले का चित्त जिस प्रकार कृत्रिम धुयेंदार दीपकों से घृणा करने लगता है, वही अवस्था दण्डी जी की हुई । मनोरमा,[१४] शेखर,[१५] न्यायमुक्तावली,[१६] सारस्वत,[१७] चन्द्रिका[१८] पंचदशी[१९] आदि नवीन कृत्रिम दीपकों के तुच्छ प्रकाश को अष्टाध्यायी आदि ऋषिमुनिकृत सूर्य ग्रन्थों के सामने ये सर्वथा व्यर्थ ठहराने लगे । अपनी पाठशाला में ऋषिकृत ग्रन्थों को पढ़ाते और तुच्छ ग्रन्थों की ओर से मनुष्य का ध्यान पूर्णतया हटाते थे । उस समय उनके विद्यार्थी पुण्डरीक, गोपीनाथ, दक्षिणी सोमनाथ, चौबे गंगादत्त और रंगदत्त आदि थे । तत्पश्चात् संवत् १९१५ में जुगलकिशोर, चिरंजीवलाल, सोहनलाल, गोपाल ब्रह्मचारी, नन्दन जी चौबे हुये और ये सब अष्टाध्यायी और महाभाष्य पढ़ते थे । परन्तु ऋषि विरजानन्द की प्रबल इच्छा परोपकार की थी । वे इच्छुक थे कि जिस प्रकार हो सके संसार भर में ऋषिकृत ग्रन्थों और ईश्वरकृत वेदों का प्रचार हो ताकि भूला हुआ संसार सत्यमार्ग पा सके । उनको यह अच्छी प्रकार विदित हो चुका था कि मेरे अधिकार में सूर्य का प्रकाश है जिसके सामने कोई भी टिमटिमाता हुआ दीपक नहीं ठहर सकता । परन्तु सामग्री इस प्रकार की प्राप्त न थी कि वह अपनी उदात्त भावना को सफल कर सकते । यह विचार उन्होंने कई बार प्रकट किया । एक घटना उनके इस ऋषिभाव की साक्षी के लिये अत्यंत ही अद्‌भुत है ।

संवत् १९१७ के अन्त और संवत् १९१८ के आदि में आगरा में राजाओं का दरबार हुआ था जिसके उपलक्ष्य में महाराजा रामसिंह जी जयपुरनरेश भी आगरा पधारे थे । उन्होंने दण्डी जी महाराज को बुलाया और सत्कार से अपने यहां ठहराया । तीसरे दिन जब महाराजा जयपुर से दण्डी जी की भेंट हुई तो उस समय बूंदी के पण्डित केदारनाथ शास्त्री; रीवां के पण्डित पुरन्दरसिंह और तिरहुत के पंडित राजीव लोचन ओझा,[२०] नैयायिक महाराजा के पास विराजमान थे । जब दण्डी जी गये तो उन्हें देखकर महाराजा अपनी गद्दी से नीचे उतर द्वार तक आ स्वयं दण्डी जी का हाथ पकड़कर अपने साथ ले गये और राजसिंहासन पर उन्हें बिठलाया; स्वयं नम्रतापूर्वक नीचे बैठे । उस समय दण्डी जी के साथ दो विद्यार्थी जुगलकिशोर और जगन्नाथ चौबे थे । विद्यार्थियों ने जाकर महाराजा की सेवा में दण्डी जी की ओर से एक यज्ञोपवीत, एक नारियल और कुछ मथुरा के पेड़े उपस्थित किये । स्वीकार करने के पश्चात् महाराजा साहब ने दण्डी जी से बातें आरम्भ कीं । बातचीत के बीच में कहा कि किसी प्रकार आप हमको व्याकरण विद्या पढ़ा दो जिससे हमें वेदार्थ का यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो और आधुनिक सम्प्रदाय का विषय हमारे मन से दूर हो । दण्डी जी ने कहा कि आप नहीं पढ़ सकते; हां यदि तीन घण्टे नित्य परिश्रम करें, तब पढ़ सकते हैं । यदि आप ऐसी प्रतिज्ञा करें तो हम पढ़ाने की प्रतिज्ञा कर सकते हैं जिस पर महाराजा रामसिंह जी मौन ही रहे और कुछ उत्तर न दिया ।

अष्टाध्यायी व महाभाष्य का बदल नहीं बन सकता—फिर महाराजा बोले कि अष्टाध्यायी और महाभाष्य मुझे नहीं आ सकते परन्तु आप कोई और ग्रन्थ बनाकर उसके बदले मुझे पढ़ा दीजिये । तब दण्डी जी ने कहा कि उनका बदल कोई और ग्रन्थ नहीं बन सकता । जैसे सूर्य के बिम्ब को कोई तोड़ कर बना नहीं सकता; ठीक यही दशा इन ग्रन्थों की है ।

आर्ष-अनार्ष ग्रन्थों के विषय में विद्वत् सभा करने की अभिलाषा—तब महाराजा रामसिंह जी ने कहा कि कोई ऐसा उपाय बतलावें जिससे मेरी कीर्ति हो । दण्डी जी ने उत्तर दिया कि आप सार्वभौम सभा करें, तीन लाख रुपया आपका व्यय होगा । गवर्नर जनरल से पहले आज्ञा प्राप्त कर लें, फिर जब पृथिवी भर के पण्डित इकट्ठे हों तो पण्डितों के लिये उचित भेंट नियत करनी चाहिये और शास्त्रार्थ का विषय यह हो कि अष्टाध्यायी, महाभाष्य व्याकरण के मुख्य ग्रन्थ हैं और कौमुदी,

मनोरमा आदि ग्रन्थ मनुष्यकृत और अशुद्ध हैं तथा न्यायमुक्तावली आदि, भागवत आदि पुराण, रघुवंश आदि काव्य, वेदान्त में पंचदशी आदि और जितने नवीन सम्प्रदायी ग्रन्थ हैं, सब अशुद्ध हैं। जब सब विद्वान् एकत्र होंगे तब सब के सामने हम दो घण्टे में सबको निश्चय करा देंगे और आपको विजयपत्र दिलवा देंगे। ऐसे शास्त्रार्थ की सफलता में विक्रमादित्य के समान हम आपके नाम का शक (संवत्) प्रवृत्त करा देंगे। तब राजा ने प्रतिज्ञा की, मैं सार्वभौम सभा करूंगा। उस समय महाराजा के दीवान पण्डित शिवदीनसिंह जी बोले कि आप जयपुर पधारें। दण्डी जी ने उत्तर दिया कि आप मत कहें, यदि राजा रामसिंह जी कहें तो हम चलें परन्तु महाराजा रामसिंह जी ने कुछ उत्तर न दिया, चुप होकर सुनते रहे। उस समय दण्डी जी ने यह भी कहा कि तुम इस काम को करोगे तो तुम्हारी कीर्ति होगी अन्यथा जिस प्रकार कुत्ते और गधे मर जाते हैं, ऐसे ही तुम्हारे मरने के पश्चात तुम्हें कोई भी स्मरण न करेगा। इतना कहकर दण्डी जी वहां से उठ खड़े हुये। चलते समय महाराजा रामसिंह जी ने दो सौ रुपये, दो अशर्फी और एक दुशाला भेंट किया परन्तु आपने नहीं लिया और यह कहकर चल दिये कि हम रुपया लेने नहीं आये; इसकी हमें कुछ चिन्ता नहीं है। ६ मास के पश्चात् महाराजा रामसिंह जी ने दो सौ रुपये और दुशाला आदि सब वस्तुयें मथुरा भेज दीं और आठ आने नित्य आपके व्यय के लिये नियत कर दिये। इसी प्रकार चार आने नित्य महाराजा विनयसिंह जी भी दिया करते थे। दण्डी जी इससे अपना निर्वाह कर लेते थे।

निःस्वार्थ पितृतुल्य अध्यापक-परोपकारी विरजानन्द जी विद्यार्थियों को पिता के समान पढ़ाया करते थे। उनके सुधारने के लिये उनको दंड देते और शुभाचरण की ओर नित्य रुचि दिलाते परन्तु उनकी प्रबल इच्छा यह थी कि कोई विद्यार्थी मेरा ऐसा निकल आये जो परोपकार के लिये अपना जीवन लगाता हुआ मनुष्यजाति और प्राणिमात्र के कल्याण का मार्ग विस्तृत कर सके।

सच्चे शिष्य दयानन्द का आगमन—संवत् १९१७ के चैत्रमास में एक सत्य का अन्वेषक विद्यार्थी स्वामी दयानन्द नामक उनके पास आ निकला। जिस प्रकार अंकगणित का न जानने वाला 'अफलातून' का शिष्य नहीं हो सकता उसी प्रकार संस्कृत-व्याकरण का न जानने वाला विरजानन्द का शिष्य नहीं बन सकता था। व्याकरण जानने के कारण ही पहले ऋषि[२१] विरजानन्द ने विद्यार्थी दयानन्द को अपनी शिष्यता में स्वीकार किया, फिर दयानन्द से सचमुच कौमुदी आदि मनुष्यकृत ग्रन्थ, जो उस समय उनके पास थे, यमुना नदी में फिंकवा दिये और दयानन्द जी वास्तव में यमुना में ग्रन्थ बहाकर आ गये तो ऋषि ने कहा कि अपने मस्तिष्क से भी इन ग्रन्थों के विचार निकाल दो तब अष्टाध्यायी पढ़ाऊंगा। दण्डी जी ने इस बात का निश्चय कर लिया था कि भागवत आदि पुराणों और सिद्धांतकौमुदी आदि अनार्ष ग्रन्थों ने संसार में अविद्या का बवण्डर और स्वार्थ का राज्य फैला रखा है इसलिये वे इन भ्रष्ट ग्रन्थों के लेखकों से अपने विद्यार्थियों को पूर्ण और प्रबल घृणा दिलाना चाहते थे। इसकी पूर्ति के लिये उन्होंने एक जूता रख छोड़ा था और 'सिद्धांतकौमुदी' के रचयिता भट्टोजि दीक्षित के चित्र पर वे सब विद्यार्थियों से जूते लगवाया करते थे कि इसी नीच ने संस्कृत विद्या की कुंजी अष्टाध्यायी के प्रचार को रोकने के लिये यह क्षुद्र ग्रंथ बना रखा है। कभी भागवत पुराण की पुस्तक को यह कहते हुये अपने पांव लगा देते कि इन पुराणों ने ही भ्रमजाल फैलाकर लोगों को विद्या, बुद्धि और पुरुषार्थ से हीन कर दिया है। सब से बढ़कर ऊंचे दर्जे का सम्मान वे वेदों का करते थे और उन्हीं को सूर्यवत् स्वतःप्रमाण कहते थे।

संसार का एक महान् आश्चर्य विरजानन्द—अष्टाध्यायी-महाभाष्य व्याकरण में दंडी जी ने वह योग्यता प्राप्त की कि भारतवर्ष में कोई भी उनकी समानता का दावा नहीं कर सकता। उनकी बुद्धिमत्ता और स्मरणशक्ति उच्चकोटि की थी। नियमपालन के ऐसे पक्के थे मानो साक्षात् यम थे। सत्य से प्रेम और झूठ से अत्यंत घृणा उनके स्वभाव में बसी हुई थी। उनकी विद्या की कीर्ति दूर-दूर तक फैली हुई थी और मथुरा की अद्‌भुत वस्तुओं में यात्री लोग दंडी जी को संसार का एक

महान् आश्चर्य गिनते थे। उनकी विद्या सम्बन्धी योग्यता की प्रशंसा से आकर्षित होकर ही स्वामी दयानन्द ने उनको अपना गुरु धारण किया था और वास्तव में दयानन्द से महात्मा की तृप्ति ऐसे ही विद्या के सूर्य से हो सकती थी।

निर्भय सत्यवक्ता विरजानन्द—एक बार प्रिंस आफ वेल्ज[1] मथुरा आये और उन्होंने यहां के पंडितों को अपने सम्मुख बुलाया। दंडी जी अपने विद्यार्थियों सहित गये। वहां अंग्रेजी में उनसे कुछ पूछा और एक अंग्रेज ने जो कि सम्भवत: एक उच्च अधिकारी था, वेद की श्रुति अत्यन्त भद्दे और अशुद्ध उच्चारण से पढ़ी। सुनते ही दंडी जी ने कहा कि विदित नहीं ऐसे अशुद्ध उच्चारण पढ़ने वाले को वेद पढ़ने का अधिकार किसने दे दिया। दंडी जी का कथन सुनकर वह अंग्रेज अप्रसन्न नहीं हुआ प्रत्युत उसने उनकी वीरता की प्रशंसा की और कहा कि हमने ऐसा वीर पुरुष नहीं देखा।

गट्टूलाल को पराजित किया—संवत् १९२० में गोपाललाल गोस्वामी गोकुल वाले ने दंडी जी को बुलाया क्योंकि उनके यहां बम्बई के प्रसिद्ध पंडित गट्टूलाल[२२] जी अष्टावधानी ठहरे हुये थे। दंडी जी गया प्रसाद और दामोदरदत्त विद्यार्थियों के साथ वहां गये। उस समय उन्होंने गट्टूलाल जी से दंडी जी का सम्भाषण कराया और विचाराधीन विषय 'एधितव्यम्', वाला श्लोक चौबे दामोदरदत्त से लिखवाया और स्वयं अनुवाद किया, जिस पर गट्टू जी को परास्त किया। इस पर गुसांई जी ने उनका बहुत आदर-सत्कार किया और कहा कि मथुरा जी दूर हैं अन्यथा हम प्रतिदिन आकर दर्शन करें और पढ़ा करें।

काशी में उनकी विद्वता की धाक फैली—काशी में जो कि पंडितों की राजधानी थी, दंडी जी की अदभुत विद्या और शास्त्रबल की चर्चा फैल गई और वह विद्यार्थी जिनकी विद्या सम्बन्धी कठिनाइयों का समाधान काशी में नहीं हो सकता, वे काशी को छोड़कर मथुरा में विरजानन्द जी की शरण लेने लगे और देश के विभिन्न स्थानों से पंडित और विद्यार्थी उनसे लाभान्वित होने के लिये आने लगे। बृजकिशोर विद्यार्थी जो निरन्तर सात वर्ष काशी में पढ़ा था, उसने काशी छोड़कर दंडी जी से मथुरा में अष्टाध्यायी का आरम्भ किया। तत्पश्चात् पंडित उदयप्रकाश, पंडित हरिकृष्ण, पंडित दीनबन्धु, पंडित गणेशीलाल सब दंडी जी के विद्यार्थी बने।

प्रसिद्ध वैयाकरण पराजित और ऋषिकृत ग्रन्थों में महाराज की आस्था की वृद्धि—उन्हीं दिनों की बात है कि ग्वालियर के प्रसिद्ध वैयाकरण पंडित गोपालाचार्य महाराज मथुरा पधारे। सेठ गुरसहायमल ने उन्हें श्रेष्ठ वैयाकरण जानकर एक सौ रुपये भेंट किया। स्वामी विरजानन्द जी ने सेठ जी से कहा कि पंडित जानकर आप जितना चाहें उन्हें दान दें, परन्तु यदि आप 'वैयाकरण' समझकर देते हैं तो हमें भी उनके वैयाकरण होने का निश्चय करा दें। गुरसहाय ने इसका कुछ उचित उत्तर न दिया परन्तु विश्वेश्वर शास्त्री जो काशी के पंडित थे, उस समय मथुरा में विद्यमान थे, उन्होंने इसको उचित समझा और गोपालाचार्य जी से दंडी जी का शास्त्रार्थ ठहराया। इस प्रसिद्ध शास्त्रार्थ के मध्यस्थ रंगाचार्य हुये और वृन्दावन में स्थित रंगाचार्य के मन्दिर में दोनों पक्ष एकत्र हुये। विषय यह था कि दो प्रकार के भाव महाभाष्य में लिखा है—आभ्यन्तर और बाह्य। गोपालाचार्य कहते थे कि महाभाष्य में नहीं हैं दंडी जी कह रहे थे कि महाभाष्य में हैं। दंडी जी ने रंगाचार्य को सब पंडितों के सम्मुख दोनों भाव आभ्यन्तर और ब्राह्य महाभाष्य के 'सार्वधातुके यक्'[२३] इस सूत्र में बतला दिया जिस पर दंडी जी की विद्वता की कीर्ति समस्त पंडितों के मध्य फैल गई और इस पर रंगाचार्य ने दंडी जी महाराज की बहुत प्रशंसा की। इस महान् विजय से दंडी जी का और भी दृढ़ निश्चय हो गया कि ऋषिकृत ग्रन्थों के आगे कोई मनुष्यकृत ग्रंथ नहीं ठहर सकता और जहां तक बन सके, संसार में वेद, वेदांग और उपांग का प्रचार करना चाहिये।

---

1. प्रिंस आफ वेल्स-जो बाद में सप्तम एडवर्ड के नाम से प्रसिद्ध हुये-केवल एक बार सन् १८७५, नवम्बर में भारत पधारे थे। स्वामी विरजानन्द जी की मृत्यु इससे पूर्व सितम्बर १८६८ में हो चुकी थी। यह भूल प्रतीत होती है।—सम्पा०

पुराणों का खंडन और सम्प्रदायवादियों में खलबली—जिस प्रबलता से दण्डी जी कौमुदी आदि व्याकरण के तुच्छ ग्रन्थों का खण्डन करते थे उतने ही बल से मथुरा में जो हिन्दुओं का प्रसिद्ध मूर्तिपूजा का स्थान है, रहते हुये भी मूर्तियों, पंथों, सम्प्रदायों और इन सब बुराइयों के उद्गमस्थान पुराणों का खंडन करते थे । जब कहीं किसी सम्प्रदाय का झगड़ा होता था तो लोग सम्प्रदाय की वास्तविकता जानने के लिये दंडी जी की सहायता लेते थे । महाराजा रामसिंह जी के यहां से कई अवसरों पर दंडी जी की सेवा में लिखित प्रश्न आया करते थे और दंडी जी सम्प्रदायों के खण्डन के विषय में पत्र लिखा करते थे । उनके पत्रों का वह प्रभाव हुआ कि कई सम्प्रदायी लोग राज्य की ओर से नगर से बाहर निकाल दिये गये ।

अनेक दिग्गज पंडित पराजित—बड़े-बड़े प्रसिद्ध पंडित, शास्त्री, नैयायिक महाराज के पास विभिन्न स्थानों से अपनी बल-परीक्षा के लिये आते, परन्तु मनुष्यकृत कृत्रिम ग्रन्थों की गोद में पले वे पंडित नैसर्गिक और ऋषिकृत ग्रन्थों के भोजन से पुष्ट स्वस्थ वीर के सामने कब ठहर सकते थे । आदित्यगिरि, पंडित धरणीधर नैयायिक और गंगाधर शास्त्री सब अपनी बल परीक्षा के लिये आये और शास्त्रार्थ में पराजय को प्राप्त हुये ।

वैदिक शब्दों को धूर्त पंडित नहीं दुहरा सका—एक बार की बात है कि कोई बुद्धिमान् पंडित दंडी जी की बुद्धिमत्ता सुनकर ईर्ष्या से विवश होकर दंडी जी को पराजित करने के लिये आया और बातचीत ऐसे ढंग से छेड़ी कि अपने आपको थोड़ा कहना पड़े और दंडी जी को बहुत । जब दंडी जी कह चुकते तो यह बुद्धिमान् पंडित कह देता कि महाराज ! आपने कौन सी बढ़िया बात कही है यह तो दास को भी विदित है और शब्द प्रति शब्द दंडी जी के भाषण को दुहरा देता । कुछ मिनट में ही दंडी जी ताड़ गये कि यह कोई धूर्त पंडित है । फिर जो भाषण किया तो उसमें दंडी जी ने साधारण संस्कृत के शब्दों के स्थान पर अधिकतर उनके ही समानार्थक, गणपाठ के वैदिक शब्द प्रयुक्त किये और चुप हो गये । गणपाठ की संस्कृत उस धूर्त पंडित ने पहले नहीं सुनी थी, इसलिये बुद्धिमान होने पर भी सारा भाषण तो क्या, आधे को भी स्मरण न रख सका और कहने लगा कि महाराज ! वास्तव में आप विद्या के सूर्य हैं, मैंने कई ऊंचे से ऊंचे पंडितों को इस विधि से हरा दिया था; परन्तु आपकी प्राचीन संस्कृत और वैदिक शब्दों का ज्ञान मुझको अब एक पग भी नहीं चलने देते और मेरी स्मरण शक्ति क्यों कर इन शब्दों को, जिनका कि मुझे संस्कार ही नहीं और न जिनके अर्थ मैं समझ सकता हूं, वश में रख सकती है ।

अनन्ताचार्य से तीन महीने तक शास्त्रार्थ—मुरसान में रंगाचार्य के गुरु अनन्ताचार्य से दंडी जी का एक अत्यंत प्रबल शास्त्रार्थ हुआ जो कि तीन मास तक चलता रहा परन्तु अन्त में अनन्ताचार्य रणक्षेत्र से भाग गया और आमने-सामने लिखित शास्त्रार्थ में असमर्थ होकर कहने लगा कि अब घर पर जाकर पत्र द्वारा करूंगा ।

मस्तिष्क क्या था पुस्तकालय ही था, विलक्षण स्मरणशक्ति के धनी—बालब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय होने के कारण उनका मस्तिष्क एक पुस्तकालय का काम देता था । जिस ग्रन्थ को ध्यान से एक बार सुना बस उनका हो गया । वे अपनी सारी विद्या कंठ रखते थे ।

अपनी अनार्ष रचना भी छोड़कर नहीं जाना चाहते थे; प्रतिभाशाली कवि होते हुये भी कोई रचना नहीं की—वे एक प्रतिभाशाली कवि थे और उत्तमोत्तम श्लोकों की रचना कर लेते थे; परन्तु उनकी अभिलाषा केवल ऋषिकृत ग्रन्थों के प्रचार की ही थी । इसीलिये अपनी प्रसिद्धि के लिये भी अपनी कोई नवीन रचना कदापि छोड़ना नहीं चाहते थे । विपत्तियों और शारीरिक कष्टों को उन्होंने अखंड ब्रह्मचर्य के कारण केवल सहा ही नहीं, प्रत्युत जीता था; और यह अखंड ब्रह्मचर्य की ही महिमा थी कि उन्होंने संसार की काया पलटने के लिये ऋषियों की भांति वैदिक प्रकाश के दर्शन कराये ।

सादा भोजन और रहन-सहन—दंडी जी का भोजन सदा सादा रहा है । पहले-पहले वह कई बार दूध या खरबूजा या केवल पूरी या केवल नारंगी, और कई बार सौंफ दूध में पकाकर कुछ दिन तक ही नहीं, प्रत्युत एक-एक मास तक खाया करते थे । दंडी जी मालकंगनी और लौंग अधिक खाया करते और कहते कि यह बुद्धिवर्धक वस्तुयें हैं । भिन्न-भिन्न ऋतुओं में वैद्यकशास्त्र के अनुसार विशेष-विशेष पदार्थ खाने छोड़ देते थे । एक बार गंगा के तट पर जब कि उनका समस्त शरीर सूज गया था, तो वैद्यकशास्त्र में लिखी एक औषधि[1] का प्रयोग करते रहे । यहां तक कि शरीर के बहुत से भाग की खोल उत्तर गई और फिर नये सिरे से कंचन काया हो गई । वे कभी-कभी मेथी का शाक आधपाव घी डालकर खाते और कभी-कभी सवा सेर दूध और छटांक भर सौंठ प्रयोग में लाते । छुआरे की गुठली कटवाकर दूध में डालकर उस दूध को पीते थे । एक बार सन्दूक में संखिया पड़ा हुआ था, सैंधव लवण के धोखे में (तोला भर ? सम्पा०) संखिया खा गये । खाने के थोड़ी देर पश्चात् विष चढ़ने लगा । मकान पर चार बड़े मटके पानी के भरे हुये थे; शनैःशनै उन चार मटकों में से लोटे से पानी निकालकर शिर पर डालते रहे । सायंकाल तक यही प्रयोग जारी रखा, जिससे पूर्णतया ठीक हो गये ।

सिद्धांतकौमुदी से गहरी वितृष्णा—एक बार मिस्टर प्रीस्टली साहब, मथुरा के स्थानापन्न क्लैक्टर नियत होकर आये ! एक दिन वे भ्रमण करते हुये विरजानन्द जी के मकान के नीचे से निकले । साथी ने दंडी जी की विद्वता की बहुत प्रशंसा की । इस प्रशंसा को सुनकर वे दंडी जी से मिलने गये और दंडी जी से कहने लगे कि यदि कोई हमारे योग्य सेवा हो तो कहिये । दंडी जी ने कहा कि यदि हमारी सेवा कर सकते हो तो भट्टोजी दीक्षित के जितने बनाये हुये कौमुदी के ग्रन्थ हैं, उन को भारतवर्ष से या केवल मथुरा से लेकर आग में फूंक दो या यमुना में प्रवाहित कर दो ।

'पा लिया, पा लिया' सूत्र के समाधान की प्राप्ति में आधी रात को ही बताने पहुंचे—एक बार विचारते-विचारते आधी रात के लगभग किसी सूत्र का समाधान मन में ठीक हो गया । प्रसन्नता के मारे घर से उठे और विद्यार्थी उदयप्रकाश के घर के द्वार पर जाकर द्वार खटखटाया । गुरु जी का शब्द सुन कर वह जागा और पूछने लगा कि महाराज ! आज्ञा कीजिये । कहने लगे कि इस समय मुझे अमुक सूत्र का समाधान स्मरण आया है जो शेष जी से भी न हो सका है ।[२४] यह शुभ सूचना देने आया हूं; ऐसा न हो कि भूल जाऊं, इसलिये अच्छा है कि लिख ले । उसने लिख लिया ।

मृत्यु का पूर्वाभयास और मृत्यु—उनका कद बीच का, और रंगत में श्वेतिमा थी । जब ७१ वर्ष के हुये तब अपनी समस्त पुस्तकें, बर्तन, कपड़े और तीन सौ रुपये नकद अर्थात् कुल ५२५ रुपये के मूल्य की रजिस्ट्री अपने विद्यार्थी जुगलकिशोर के नाम करा दी । कहते हैं कि मरने से पहले दो वर्ष योगी विरजानन्द ने विद्यार्थियों से कह दिया था कि मैं शूल की पीड़ा से अमुक दिन मरूंगा और जो एक-दो सेठ लोग मरने से कुछ दिन पहले मिलने आये, उनको कहा कि भविष्य में तुम यहां मत आना । ऋषियों की छोड़ी हुई ग्रन्थरूपी सम्पत्ति का प्यारा, वेदों की निष्कलंक ज्योति को ऋषिकृत ग्रन्थों के सहारे से वर्षाने वाला ब्रह्मचारी, यौगिक शब्दों की सच्ची पारसमणि से काले-कलूटे लोहे को चमकते हुये सोने में परिवर्तित करने वाले ऋषि, मूर्तिपूजा के गढ़ में रहकर मूर्तिपूजा की जड़ पर कुल्हाड़ा मारने वाला वीर, योगसमाधि से आत्मशक्ति बढ़ाने वाले महात्मा, परोपकार की इच्छा से विद्यार्थियों के मन में वैदिक ज्योति पहुंचाने वाला गुरु, बिना शोक के परलोकगमन को उद्यत होता है और क्वार के कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी को सोमवार दिन विक्रम संवत् १९२५ में अपने पंचभौतिक शरीर को छोड़कर सज्जनों के हृदय को अपने वियोग से सदैव के लिये बींधकर चला जाता है ।

आज व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया—इस ऋषि का विद्यारूपी प्रकाश उसके सब विद्यार्थियों के लिये समान था परन्तु मिट्टी और कांच पर एक ही प्रकाश का भिन्न-भिन्न प्रभाव प्रकट होता है । ऋषि के अनेक विद्यार्थियों में से केवल

---

1. इस औषधि का नाम सम्भवतः भिलावा प्रतीत होता है, स्पष्ट रूप से पढ़ा नहीं जाता । (आत्माराम)

एक दयानन्द सरस्वती ने उस प्रकाश को खींच कर फिर अपने में से उस प्रकाश को निकाल जगत में फैला दिया। ऋषि विरजानन्द का गौरव और विद्वता उन वचनों से प्रकट हो सकती है जो उनकी मृत्यु का समाचार सुनने पर उनके योग्य विद्यार्थी स्वामी दयानन्द जी ने अपने मुख से इस प्रकार निकाले थे "आज व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया"। हीरे का मूल्य जौहरी से पूछिये; सुकरात का गौरव अफलातून जानता है; ऋषि विरजानन्द की महिमा ऋषि दयानन्द पहचानता है। यदि किसी चाटुकार के यह वचन होते तो हम उसको अत्युक्ति कह सकते थे, परन्तु ऋषि दयानन्द का उनको सूर्य कहना कुछ अर्थ रखता है। योगी विरजानन्द का गौरव इससे भी बढ़कर हमको तब प्रतीत होता है जब हम पाते हैं कि परोपकारी, बालब्रह्मचारी, आर्यसमाज का संस्थापक, वैदिकधर्म का वर्षक महर्षि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश के अन्त और वेदभाष्य के अंक-अंक की समाप्ति में अपने आपको अभिमान से स्वामी विरजानन्द सरस्वती का शिष्य कहता है।[२५] खोज करने वाला संसार स्वामी दयानन्द के गुरु परम विद्वान्[1] ऋषि विरजानन्द के परोपकार को नहीं भूल सकता और सत्याभिलाषियों के ज्ञाननेत्रों के सम्मुख महात्मा विरजानन्द वैदिक निष्कलंक ज्योति का प्रकाश करने के लिये पुराण आदि मिथ्या कपोलकल्पित और कौमुदी आदि अनार्ष ग्रन्थों के विघ्नों को शूरवीर की भांति आर्ष ग्रन्थों की खड्ग के बल से एक हाथ से काटता और दूसरे हाथ से वेदशास्त्रों के गुप्त कोषों की यौगिक कुन्जी जो कि महाभारत के भीषण युद्ध के पश्चात् खो गई थी, मनुष्य मात्र के हाथ में देने के लिये एक अद्भुत परोपकारी विद्यार्थी, स्वामी दयानन्द को सौंपता हुआ सचमुच ऋषि के रूप में दिखाई देगा।

अध्याय २

अज्ञानान्धकार से पीड़ित भूगोल को स्वस्ति और शान्ति की वैदिक ज्योति दर्शाने वाला महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

प्रथम परिच्छेद

संसार के प्रारम्भिक इतिहास पर एक दृष्टि

परमोन्नत आदि आर्यजाति—एक अरब, छियानवे करोड़, आठ लाख, बावन हजार, नौ सौ छियानवे वर्ष व्यतीत हुये जब भूगोल की सबसे प्रथम निर्मित पृथ्वी पर, जिसको आज तिब्बत का हरा-भरा टुकड़ा या संसार की छत कहते हैं, अनेक मनुष्य और ऋषिजन जिनके कर्म इस आदिसृष्टि में उत्पन्न होने के थे, ईश्वरीय नियमानुसार मनुष्य देह को धारण किये हुये तिब्बत के प्राकृतिक उद्यानों में विराजमान हुये। जिस जगदीश्वर ने पितावत् अपनी अनादि सन्तान के सुख भोग के लिये पर्वत, नदी, चन्द्र और सूर्य आदि भौतिक पदार्थ अपनी निजशक्ति और क्रिया से रचे थे, उसी परमपिता ने अपनी सन्तान को निज ज्ञान के वेदसूर्य के दर्शन चार अद्भुत परम योगीश्वरों के द्वारा जीवन-यात्रा की सफलता के हेतु करा दिये। मनुष्यता के पूर्ण नमूने ऋषियों ने उस अनुभव की हुई वैदिक ज्योति को जीवन में चरितार्थ करते हुये अपनी सन्तानों को ऐसा ही करने का उपदेश दिया। उस समय मनुष्य जाति का सबसे उत्तम और गर्वसूचक नाम 'आर्य' था।

तिब्बत की भूमि पर इधर आर्यसन्तान वृद्धि को प्राप्त होने लगी, उधर जगत्पिता के प्रबन्ध के अनुसार भूगोल के विभिन्न भाग, जो अब द्वीपों के नाम से प्रसिद्ध हैं, इस आर्यसन्तान के घर बनने के लिये तैयार हो गये। आर्यसन्तान ने पृथिवी

1. सत्यार्थप्रकाश के अन्त में यह शब्द स्वामी दयानन्द जी ने उनके लिये प्रयुक्त किये हैं।

के नाना भागों को बसाना आरम्भ किया । समय आया कि पृथिवी के हरे-भरे क्षेत्र आर्यसन्तान से पूरित हो गये और एक इंच भूमि ऐसी न रही जिस पर ऋषिसन्तान ने बैठकर वैदिक ध्वनि न की हो । इस समय पृथिवी आर्यसन्तान का एक गृह दिखाई देने लगी और पृथिवी के भिन्न-भिन्न भागों पर रहने वाले अपने तईं बन्धु और मित्र समझने लगे । न्याय अथवा धर्माचरण पृथिवी पर बसी हुई आर्यसन्तान का पथप्रदर्शक बना और वैदिक वर्णाश्रम की पूर्ण व्यवस्था का राज्य सब द्वीपों पर दिखाई देने लगा । उस समय पृथिवी पर बसने वालों की एक भाषा थी जिसका नाम वेदवाणी या संस्कृत था । वेदोक्त आज्ञा के पालन करने के लिये प्रत्येक मनुष्य पूर्ण पुरुषार्थ करता था । यजुर्वेद का मर्म जानने वाले शिल्पीजनों ने अश्वयान, विमान, नौका, अश्वतरी, यन्त्रकला आदि अनेक रचना व्यावहारिक सुख के लिये सिद्ध की थी और पृथिवी की राजधानी आर्यावर्त से लेकर सब द्वीप-द्वीपान्तरों के रहने वाले धनधान्य से पूरित हो रहे थे । वेदसूर्य ने उस समय पृथिवी को स्वर्णिम बना रखा था और कोई स्थान ऐसा न था जहां कि ऋग्, यजु, साम और अथर्व का प्रचार न हो । उस समय पृथिवी पर आर्यश्रेणी के मनुष्य अधिक थे परन्तु आर्यश्रेणी से पतित होने वाले नीच और कुकर्म, अनाचार के करने वाले दस्यु, राक्षस आदि आर्यों के न्यायशासन से दंड पाते थे और दंडरूपी क्रिया उस समय धर्मयुद्ध के नाम से प्रसिद्ध थी । पृथिवी ने उस समय आर्यावर्त देश को वेदविद्या और चक्रवर्ती राज्य का केन्द्र बना रखा था और आर्यावर्तीय ऋषिसन्तान भूगोल पर रहने वाले भाइयों की सेवा विद्या और कला के सिखाने और चक्रवर्ती राज्य के प्रबन्ध द्वारा करती थी ।

करोड़ों वर्षों तक यह भूगोल ओंकार की उपासक, वेदधर्म की प्रचारक आर्यजाति का स्वर्गधाम बना रहा । मनुष्यजाति इस समय भय, विघ्नों और ठोकरों से सुरक्षित थी क्योंकि उसकी पथप्रदर्शक वैदिकज्योति थी । प्रकाश ही के कारण मनुष्यजाति सचाई की सीधी सड़क पर चलती और शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करती हुई आनन्द का भोग करती थी । उस काल की साक्षी महर्षि अत्रि के यात्रालेख से मिल सकती है । निम्नलिखित श्लोक इसके समर्थन के लिये पर्याप्त है—

बाल्हीका:[1] पल्लवाश्चीना: शूलीका यवना: शका: ।
माषगोधूममाध्वीकशस्त्रवैश्वानरोचिता: ॥

अर्थ—बलख, पल्लव (ईरान), चीन, शूलीक (रोम और यूरोप का पूर्वी भाग), यवन (यूनान), शक (डैन्यूब के उत्तर का देश) इन देशों के रहने वालों का माष, गोधूम और अंगूर आहार हैं । वे पुरुष वेदशास्त्र के बड़े विद्वान् और शिल्पकला आदि के श्रेष्ठ बनाने और प्रयोग करने वाले हैं । इससे अगले श्लोंको में वे प्राच्य (ब्रह्मा) और मलाया आदि देशों का वर्णन करते हैं । इससे स्पष्ट प्रकट है कि समस्त एशिया और यूरोप के शिरोमणि देशों के रहने वाले सात्विक भोजन करने वाले, वेदशास्त्र के विद्वान् उच्चकोटि के शिल्पी, कलों के बनाने और चलाने वाले थे । मनुस्मृति भी इनका समर्थन करती है । इससे स्पष्ट प्रकट है कि उस समय मनुष्यजाति केवल वेदशास्त्र के आश्रित होकर सर्वप्रकार की उन्नति कर रही थी, जिसका कि आज चिन्तन करना भी हमारे लिये कठिन हो रहा है । मनुष्यजाति जिस ऊंचाई पर पहुंच चुकी है, उसकी और मन से देखते हुये बुद्धि चकरा जाती है ।

अध:पतनकाल—परमात्मा की सृष्टि में उसके रचे पदार्थ एक से अधिक प्रयोजन पूरे करते हुये दिखाई देते हैं और सचमुच यह पृथिवी अनेक प्रयोजनों की सिद्धि के लिये है । एक ओर हमें यह पृथिवी धर्मात्माओं के लिये स्वर्ग दिखाई देती है तो दूसरी ओर यह पृथिवी पापी जीवों के लिये नरक बन रही है । ऋषि श्रेणी और पिशाच श्रेणी के पुरुष इसी पृथिवी

---

1. चरकशास्त्र के चिकित्सा स्थान के तीसवें अध्याय का यह २९९ वां श्लोक है ।

पर रह सकते हैं। जहां इस पृथिवी ने धर्मात्माओं के लिये आदिसृष्टि से लेकर करोड़ो वर्षों तक स्वर्ग का काम दिया था, वहां यही पृथिवी पापात्माओं के लिये आवश्यकतानुसार नरककुंड बनने लगी। अब हम मनुष्यजाति के इतिहास के उस भाग में आते हैं जब कि मनुष्यजाति इन्द्रियाराम होने के कारण अपने दुःखभोग की सामग्री को कर्म द्वारा एकत्र करती हुई इस पृथिवी को नरक बनाती है। एक अरब छियानवे करोड़ आठ लाख छियालीस हजार नौ सौ छियानवे वर्षों तक भूगोल पर वेद का पूर्ण प्रकाश रहा और इस गौरव और शान्ति के भारी काल को हम संसार के इतिहास में वैदिकप्रकाश का काल कहेंगे। इस प्रकाश के काल की विशेषता यह रही कि लोग वैदिक प्रकाश की सहायता से सत्य की सड़क पर चलते हुये वैदिक वर्णाश्रम के धर्म को पालते हुये पूर्ण उन्नति करते रहे। परन्तु आज से छः हजार वर्ष पहले की बात है कि आर्यों की सन्तान धर्म-कर्म से गिरने लगी और वह वैदिक ज्योति जो पुत्र पिता से और शिष्य गुरु से अपने शुद्ध हृदय में धारण करता था, अब लुप्त होने लगी। हृदय अपस्वार्थ और अधर्म से मलिन होते गये और प्रकाश के स्थान पर संसार में अन्धकार बढ़ने लगा। यद्यपि इस समय तक प्रकाश के प्रचार करने वाले कई ऋषि भी पृथिवी पर उपस्थित थे परन्तु अधर्म के वेग द्वारा अज्ञानान्धकारकारी बादल बढ़ते गये। यहां तक कि एक हजार वर्ष की अधोगति के पश्चात् दुर्योधन पृथिवी की राजधानी आर्यावर्त देश में मनुष्यजाति के कुकर्मों के कारण उसको पीड़ा पहुंचाने का निमित्त बनने के लिये उत्पन्न हुआ औ महाभारत के घोर संग्राम ने मनुष्यजाति के लाखों पुरुषों का रक्त बहाकर आने वाले कई हजार वर्षों तक पृथिवी को नरककुंड बनाये रखने का बीज बो दिया। इस युद्ध में जहां क्षत्रिय वीर धर्म के लिये मरे वहां ऋषि लोग भी धर्म की रक्षा करते हुये काम आये और परलोकगमन से पृथिवी को अन्धकार में छोड़ गये। सूर्य के प्रकाश के प्रचारकों का क्रम अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा के शिष्य ब्रह्मा से लेकर जैमिनि तक महाभारत के युद्ध के साथ समाप्त होता है। महाभारत के युद्ध से पृथिवी के अन्धकार का काल धीरे-धीरे आरम्भ होता है, और अब हम मनुष्यजाति के इतिहास में उसकी अन्धकार से आच्छादित दशा को देखते हैं।

अन्धकारयुग के कर्म—प्रकाश का विपरीत पक्ष अन्धकार है; इसलिये इस काल के कर्म प्रकाश के विरुद्ध समझने चाहियें। प्रकाश के काल में जितेन्द्रिय, वेदानुयायी, आस्तिक, आर्य और धर्मात्मा पुरुष जहां इस पृथिवी पर बसते थे वहां इस अन्धकार के समय में पृथिवी के नानाभागों और देशों में इन्द्रियाराम, वाममार्गी मनुष्य, कल्पनाओं के विश्वासी, मन्दमति, नास्तिक, पुराणी, जैनी, किरानी, कुरानी और उनकी शाखायें जो कि एक हजार तक संख्या में पहुंचती हैं, पृथिवी के तल को ढांपते हुये मनुष्यजाति के अपने आर्यनाम, वैदिकज्योति, वर्णाश्रम और परमात्मा की उपासना से विमुख करा, नरककुण्ड में गिराकर दुःखों को भुगवा रही है। वह मैत्री का राज्य आज मनुष्यजाति में ढूंढे नहीं मिलता, धर्मयुद्ध, वह न्यायाचरण आज मानों पृथिवी पर से उठ गये। प्रेम के स्थान पर फूट, उपकार के स्थान पर हानि, परस्पर सहायता के स्थान पर ईर्ष्या और द्वेष भर रहा है। क्या कोई आज इस पृथिवी को देखकर कह सकता है कि इस नरककुण्ड में रहने वाले कभी स्वर्गधाम के बसने वाले आर्यों के कुल से चले आ रहे हैं परन्तु कर्मगति को जानने वाले सूक्ष्मदर्शी जानते हैं कि ऋषिसन्तान अपने कुकर्मों के कारण ही इस समय पृथिवी पर दुःख और अन्धकार की भागी बन रही है। यह नहीं कि इस समय एक हजार के लगभग मनुष्यजाति में पंथ प्रचलित हों, प्रत्युत मनुष्य जाति की एक संस्कृत भाषा के स्थान पर ९०० के लगभग भ्रष्ट भाषाओं में आर्यसन्तान बोलती हुई अपनी अधोगति का रूप दर्शा रही है। भय और ठोकरें अन्धकर में रहने वालों की सम्पत्ति होती है और आज मनुष्य जाति पग-पग पर ठोकरें खाती हुई तीनों तापों और पांचों क्लेशों से युक्त होने के कारण भयभीत हो रही है।

द्वितीय परिच्छेद

अन्धकार के काल में दीपकों का प्रकाश

सूर्य के स्थान पर दीपकों का टिमटिमाना—अन्धकार को दूर करने के लिये पृथिवी के विभिन्न देशों में विभिन्न पुरुषों ने समय-समय पर दीपक जलाये परन्तु दीपक सूर्य का काम नहीं दे सकते और इसलिये मनुष्य जाति दीपक रखने पर भी अन्धकार से नहीं निकली, यद्यपि दीपकों ने कुछ अस्थायी आराम की सामग्री जुटी दी। अब संसार दीपकों की सहायता से काली रात में अपना काम करता हुआ हमारे सामने आता है। दीपकों में प्रकाश सूर्य के प्रकाश का ही भाग होता है परन्तु यह प्रकाश बिना धुयें के नहीं मिल सकता, इसलिये दीपक जहां मार्ग दिखाने का काम करते हैं वहां अपने दुर्गन्धित सड़े हुये धुंये से शरीर के भीतर क्षयरोग के बीज बो देते और देखने की शक्ति को ही निर्बल कर देते हैं। सूर्य के अभाव में दीपक ही हैं परन्तु वास्तव में दीपकों का प्रकाश स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है। यही नहीं कि दीपकों का प्रकाश स्वास्थ्य के लिये हानिकारक हो, प्रत्युत यह परिमित प्रकाश अत्यन्त ही संकुचित स्थान में काम कर सकता है। यही कारण है कि इस समय हजार के लगभग पन्थों के दीपक और ९०० के लगभग भाषाओं के फानूस जगमगा रहे हैं परन्तु संसार उस सुख को प्राप्त था जब कि एक वेद का सूर्य आत्मा को प्रकाश दे रहा था और एक संस्कृत देववाणी हृदयों को जोड़ रही थी। परन्तु डूबते को तिनके का सहारा समझकर अन्धकार में दीपक ही पथप्रदर्शक मानने पड़ते हैं।

दीपकों के प्रकाश का अभ्यस्त संसार—कोई पुरुष बन्दी होना नहीं चाहता और स्वतन्त्रता की सम्पत्ति छोड़ नहीं सकता परन्तु जब बन्दी हो जाये तो वह उसका स्वभाव बन जाता है और फिर बन्दीगृह को खुले जंगल से बढ़कर समझ बैठता है। ठीक यही दशा आज पृथिवी के लोगों की हो रही है जो कि पांच हजार वर्षों से दीपकों के व्यसनी बन गये हैं। अब भ्रान्ति से लोग अपने संकुचित घेरे और जातिरूप चारदीवारियों के भीतर बन्दी होने से संकुचित विचारों को सार्वभौम सिद्धांतों से बढ़कर समझ रहे हैं और ठीक बन्दी की भांति कोठरी को खुले जंगल से श्रेष्ठ मान रहे हैं। अब हम अत्यन्त ही संक्षिप्त रूप से इन दीपकों का वर्णन करते हुये दर्शायेंगे कि लोग इन दीपकों के प्रकाश को निकम्मा और अपर्याप्त समझते हुये किसी श्रेष्ठ प्रकाश के लिये प्रयत्न करते हुये किस प्रकार हाथ-पांव मार रहे हैं।

महाभारत के पश्चात् आये दीपप्रकाशक—महाभारत के काल के पश्चात् जब संसार में वाममार्ग बढ़ता गया और लोग मांस, मद्य और व्यभिचार की अन्धेरी गुफा में टकराने से चकनाचूर होने लगे तो पृथिवी पर बुद्ध ने वाममार्ग को रोकने के लिये पवित्रता और अहिंसा का दीपक जलाया और कुछ काल के लिये लोगों को सीधा मार्ग दिखाया परन्तु साधनों की शिक्षा देते हुये बुद्ध ने ईश्वर का नाम तक न लिया। उसकी उस मौनवृत्ति को अनुयायियों ने नास्तिकपन के रूप में वर्णन करके प्रकृति-पूजा का मूर्खतापूर्ण तूफान खड़ा कर दिया। मनुष्यजाति साधारणतया और आर्यावर्तीय विशेषतया, फिर नास्तिकता के गहरे भंवर में डुबकियां खाने लगे। नास्तिकपन से व्याकुल पृथिवी प्रकाश की इच्छा कर रही थी कि शंकराचार्य ने नवीन वेदान्त का दीपक लेकर अन्धकार को भगाना आरम्भ किया। अन्धकार कुछ भाग गया परन्तु वह कुकर्म जो कि नास्तिकपन और बौद्धमत ने फैलाये थे, उन्हीं कुकर्मों का बीज इस दीपक के धुयें ने फैला दिया। इस दीपक में त्याग का अंश प्रकाश का था परन्तु जीव को ब्रह्म बतलाना विषैला धुंआ था। परिणाम यह हुआ कि दीपक के बुझने पर आलस्य और कुकर्म की अन्धेरी गुफा में फिर आर्य सन्तान गिर गई। कनफ्यूशस चीन में, पीथागोरस,[1] सुकरात और अफलातून[2] आदि यूरोप में प्रकाश के दीपक जलाते रहे परन्तु प्रकाश के भण्डार वेद और वेद की वाणी संस्कृत की न्यूनता के कारण उनके दीपक भी अपना-अपना उद्देश्य पूर्ण करके बुझ गये और संसार को प्रकाश के भण्डार वेद का अन्वेषक छोड़ गये। संसार के सामने दो और दीपक भी उपस्थित हुये जिन्होंने अन्धकार को स्थायी रूप से भगाना चाहा और लाखों पुरुषों को

क्षयरोग के रोगी बनाकर जीवन से निराश कर दिया । एक दीपक ईसाई मत का है । जिसने प्रेम के प्रकाश के अंश को लेकर लोगों को मार्ग दिखाया परन्तु अविद्या के धूम्र ने उन लोगों को मनुष्यपूजा और भ्रान्त धारणाओं की उपासना का मोल लिया हुआ दास बना लिया और फिर पूर्ववत् अन्धकार में टकराने लगा । दूसरा दीपक इस्लाम मत का है जिसने अद्वैत के प्रकाश[3] के अंश से अन्धकार को तो कुछ-कुछ भगा दिया परन्तु धर्मयुद्ध अविद्या के विषैले धुयें से रक्त की नदियां बहाकर लोगों को मनुष्यपूजा और भ्रान्त धारणाओं की उपासना रूपी गुफा में फेंक दिया । इस प्रकार के छोटे-छोटे दीपकों की संख्या जो पृथिवी पर प्रकाशित हुये, एक हजार के लगभग पहुंचती है ।

विज्ञान -दीपक भी जले—इस प्रकार के दीपक पांच हजार वर्ष से निरन्तर जलाये जा रहे थे परन्तु वर्तमान शताब्दी में पृथिवी के विभिन्न भागों में जो दीपक जले उनका प्रकाश इन दीपकों से बढ़िया समझा गया है । परन्तु दीपक होने के कारण उन बुराइयों और दोषों से रहित नहीं हो सकते जो कि इस शताब्दी से पहले के दीपकों में पाये जाते थे । जिन देशों में ये दीपक जलाये गये हैं उन्हीं देशों के लोग उनके विषैले धुयें की साक्षी दे रहे हैं इसलिये यह दीपक मानवीय मार्ग दिखलाने के स्थान पर पथभ्रष्टता की अन्धेरी गुफा में मनुष्यों को गिरा रहे हैं । ये विज्ञान के दीपक हैं और कई बार उन्नीसवीं शताब्दी का दीपक भी इन्हें कहते हैं । इनमें जड़ पदार्थों से काम लेना प्रकाश का अंश है और नास्तिकपन इसका विषैला धुआं हैं जिसके कारण जहां-जहां ये दीपक जलाये गये हैं; वहां-वहां प्रकृति की उपासना के क्षयरोग ने मानवीय सुखों के स्वास्थ्य को चूसकर युद्ध, दरिद्रता, अन्याय और भय की गहरी गुफा में मनुष्य को गिरा दिया है ।

विकासवाद

'एवोल्यूशन' (विकासवाद) का फानूस—क्या उन्नीसवीं शताब्दी के फानूस और दीपक पर्याप्त नहीं? यह प्रश्न हमारे कानों में सुनाई दे रहा है । इसके सम्बन्ध में कुछ लेख करना आवश्यक है जिससे सिद्ध हो जाये कि ये केवल फड़कते हुये फानूस ही हैं । सूर्य के प्रकाश का काम यह विज्ञान के दीपक और उन दीपकों का राजा 'एवोल्यूशन' का दीपक कदापि नहीं दे सकता । विज्ञान के एक-एक पृथक्-पृथक् दीपक का वर्णन करते हुये हम दीपकों के राजा का वर्णन करना पर्याप्त समझते हैं क्योंकि यह एवोल्यूशन (Evolution) का दीपक विज्ञान के कई छोटे दीपकों से मिलकर बना है ।

विकासवाद के उदभव का कारण—सबसे पहले यह जान लेना चाहिये कि ईसाई मत जो कि चमत्कारों और आश्चर्यों से भ्रान्तियों का मानने वाला है उसने ही एवोल्यूशन (Evolution) के सिद्धांत की उत्पत्ति का बीज बोया है । यूरोप में लोगों ने जब देखा कि प्रकृति के कामों का बिना काल्पनिक बातों के वर्णन नहीं हो सकता तो ईसाई मत की भ्रान्तियों को तिलांजलि देकर इस बात की नींव डाली कि प्रकृति के काम बिना रुकावट के एक ही ढंग पर हो रहे हैं और इसका नाम उन्होंने एवोल्यूशन (Evolution) रखा । इस नवाविष्कृत सिद्धांत के अनुसार प्रकृति और गतिशक्ति ही सब कुछ हैं । इसकी शिक्षा सबकी समझ में आने वाली भाषा में बतला रही है कि जीवन एक[1] प्रकार की गति का ही नाम है । इस सिद्धांत के प्रचारक बतला रहे हैं कि प्रकृति और गति दोनों नाश से रहित हैं और साथ ही दोनों उत्पन्न नहीं होते । इसके अनुसार समस्त प्राकृतिक दृश्य वास्तव में एक ही हैं और इस नियम के प्रसिद्ध प्रचारक डारविन का सिद्धांत है कि मनुष्य निम्न कोटि के प्राणियों से पृथक् नहीं और समस्त जातियों, प्राणियों और वनस्पतियों का कृत्रिम समूह हैं जो एक-दूसरे में घुल-मिल सकती हैं और इसी प्रकार एक -दूसरे से मिलकर वर्तमान रूप में आई हैं । इन पश्चिमी लोगों का दृढ़ विश्वास है कि वनस्पतियों और प्राणियों के माता-पिता एक ही थे, जीवित पदार्थ निर्जीव पदार्थ से उत्पन्न हुआ है और प्रकृति के काम मं कहीं भी रुकावट नहीं आई । इसके विश्वासी यह कहते हैं कि "हम जानते हैं कि हम क्या हैं परन्तु हम यह नहीं जानते कि

---

1. ऐडवर्ड बी० ए० विलिंग डी० एस० सी० द्वारा लिखित 'दी गौस्पल आफ एवोल्यूशन ।'

हम कल क्या होंगे, फिर भी हम यह जानते हैं कि मनुष्य जाति भविष्यकाल देखेगी जो वर्तमान से बढ़कर सिद्ध होगा" और 'एवोल्यूशन' का शुभ समाचार ईसाई मत का स्थान ले रहा है।

डारविन का सिद्धांत—मनुष्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में डारविन का सिद्धांत यह है कि मनुष्य के पहले बाप-दादा[1] अवश्य ही न्यूनाधिक बन्दरों जैसे प्राणी होंगे जो कि लंगूरों के कुल से सम्बन्धित और बनमानुस, चिम्पांजी, बन्दर और गुरीला के बाप दादा के सगे होंगे। वे अवश्य बालों से ढंपे हुये और स्त्री-पुरुष दोनों दाढ़ियां रखते होंगे। उनके कान[2] नोकदार और हिलने वाले थे और उनके शरीरों पर हिलने वाली दुम लगी हुई थी। इससे भी पहले के काल में जायें तो मनुष्य के पूर्वज जलजन्तु होंगे जो कि कीचड़ की मछली के समान होंगे। डारविन के इस सिद्धांत के विरुद्ध बहुत से यूरोप के मस्तिष्क ही युद्ध कर रहे हैं और उनमें से कारलाइल, कारपेण्टर और क्रूजी के नाम प्रसिद्ध हैं। क्रूजी का कथन इसके खण्डन में इस प्रकार हैं—"एवोल्यूशन का नियम जो कि छोटे[3] प्राणियों से बड़े प्राणियों की उत्पत्ति मानता है ऐसे चक्र में, जिसमें कि क्रम निरन्तर जारी रहे, अन्त में विवश होकर मानता है कि प्रकृति और आत्मा के भेद के सिद्धांत का समाधान नहीं कर सकता और पूर्ण व्याख्या करने का दावा करते हुये अपने आपको मूर्ख सिद्ध करता है। इस अवस्था में सनातन का नियम उसके विरुद्ध बतलाता है कि सृष्टि किसी ढंग पर बनी हुई है। एवोल्यूशन का नियम आत्मा के उत्तम गुणों को प्रकृति के गुण बतलाता हुआ वास्तव में आत्मा और प्रकृति को एक ही बना देता है और ऐसा करने से मनुष्य की विवेकबुद्धि और प्रकृति के विरुद्ध चलता है। समानता का नियम इनको वास्तव में पृथक्-पृथक् बतलाता हुआ प्रकृति के प्रबन्ध को स्थिर रखता है और ऐसा करने से मानवीय प्रकृति और विवेकबुद्धि के विरुद्ध नहीं चलता परन्तु एक बात है जो कि प्रकृति के नियमों को पूरा ज्ञान भी नहीं बतला सकता और वह यह है कि हमें क्योंकर विश्वास आवे कि नियमों का धागा जो कि प्राकृतिक और सामाजिक संसार का बनाया हुआ है, हमको बुनकर ऐसा बना देगा जिससे कि हम श्रेष्ठ से श्रेष्ठ भले पुरुष बन जायें।

विकासवाद की त्रुटियां—एवोल्यूशन के नियम में वह कौन सी चीज है जो इस बात का विश्वास दिलावे कि मनुष्य की अच्छी इच्छा और आशा कभी पूर्ण होगी और यह कि मनुष्य प्रेम और सभ्यता के ऊंचे से ऊंचे पदों पर चढ़ता हुआ पहुंचेगा। भला एवोल्यूशन में वह क्या चीज है जिससे हम भविष्यवाणी के रूप में यह कह सकें कि बन्दरों के रक्तपात और लड़ने के स्वभाव से उच्च कोटि के भले मनुष्य हो जायेंगे। क्यों न यह कहें कि निम्न कोटि के जंगली मनुष्य बन जायेंगे ? और भला यह कैसे हो सकता है कि लड़ाई की भावना और जंगली शक्तियां बढ़ने पर हमको भला बनायेंगी। इसके स्थान पर कि नीचे गिरा दें और किस प्रकार जंगली मनुष्य से सभ्य मनुष्य बन जायेगा। 'एवोल्यूशन' के नियम में वह क्या बात है जिससे हम जांच कर सकें कि जंगलीपन का नियम अर्थात् जीवन के लिये मार काट करना जो कि पशुओं की दशा में घटता है, उन्नति करता हुआ उस न्यायाचरण (धर्म) का रूप धारण कर ले जो कि मनुष्य मात्र पर लागू होने वाला नियम और वह गन्तव्य स्थान है जिसकी ओर सभ्य जातियां अधिक और अधिक समीप आ रही हैं। सारांश यह है हमें कोई बतलाये कि एवोल्यूशन के नियम में वह क्या चीज है जिसके कारण अवश्य ही रक्तपात और अत्याचार में से

---

1. हम्बोल्ट लाइब्रेरी द्वारा प्रकाशित, 'चार्ल्स डार्विन, हिज लाइफ एंड वर्क' (Charles Darvin, His life and work), पृष्ठ ६३०।

2. चार्ल्स डार्विन द्वारा लिखित 'दी डीसेंट आफ मैन।'

3. लन्दन से १८५२ में प्रकाशित जान बीरी क्रूजी लिखित 'सिविलिजेशन एण्ड प्राग्रैस' (Civilisation and Progress) पृष्ठ २४२-२६०।

स्वतन्त्रता, दासता से मुक्ति, स्वार्थ से परोपकार, अन्याय से न्याय, भय से सम्मान, कामवासना से प्रेम, स्वार्थसिद्धि के दावपेंच से धर्म और भलाई निकल सकेगी ? एवोल्यूशन का नियम कदापि इन बुराइयों से इन गुणों को उत्पन्न करने की सामर्थ्य नहीं रखता ।

धर्म बनाम विकासवाद—इसके विपरीत बुद्धि दूसरी ओर संकेत कर रही है । यह बात कि ऐसा हो चुका है हमें कोई साक्षी नहीं दे सकती कि भविष्य में भी कल्याण के क्षेत्र में उन्नति होगी । केवल उस अवस्था में हम कह सकते हैं कि भविष्य में भी हमारा कल्याण होगा जब कि हम एवोल्यूशन के स्थान पर धर्म को स्थापित कर लें अर्थात् इस बात का निश्चय कर लें कि समस्त वस्तुयें एक विज्ञानमयी शक्ति के अधीन हैं और वह शक्ति इन सब वस्तुओं में ऐसी परिपूर्ण हो रही है कि वह अवश्य न्याय की वृद्धि पुण्य की उन्नति और सत्य की विजय करायेगी । यह धर्म ही है जो हमें निश्चय कराता है कि परमाणुओं में जगदीश्वर व्यापक हो रहा है और सृष्टि उसकी मंगल-इच्छा को पूरी कर रही है । यही धर्म हमको निश्चय दिलाता है कि मनुष्य अवश्य उन्नत से उन्नत योनियों को प्राप्त होगा और यह निश्चय सर्व प्रकार के महान् कार्यों के लिये कैसा आवश्यक और प्रत्येक आत्मा को आश्वासन और शान्ति देने वाला है । यह धर्म है, न कि एवोल्यूशन का नियम, जिससे कि विपत्तिकाल में धैर्य मिलता है । यद्यपि जीवन में विघ्न आना भी अनिवार्य है, उसमें भी उत्तम प्रबन्ध और परोपकार हो रहा है और सब वस्तुयें हमारे कल्याण के लिये काम कर रही हैं । केवल समय अपेक्षित है ताकि सत्य की जय हो सके । हम कह सकते हैं कि धर्म हमारे मस्तिष्क सम्बन्धी, सामाजिक-परोपकारी स्वभाव की सम उन्नति करा सकता है जो कि नियमपूर्वक सर्वांग पुरुषार्थ के लिये अपेक्षित है । धर्म अशान्त हृदय को शान्ति देता है । यह प्रत्येक मनुष्य और जाति को अपनी योग्यतानुसार वस्तुओं का कारण और उनकी वास्तविकता बतलाता हुआ शान्ति प्रदान करता है ।"

विकासवाद के खण्डन में युक्तियां—हमें इस समय विस्तारपूर्वक वर्णन करने की आवश्यकता नहीं कि एवोल्यूशन का सिद्धांत किस प्रकार के भद्दे जंगली परिणामों से भरा होने के अतिरिक्त युक्ति की चोट को सहार नही सकता । केवल इस सिद्धांत के खंडन में आर्यावर्त के एक प्रसिद्ध आर्य विद्वान्[1] के सारगर्भित भाषण का सार अत्यन्त ही संक्षिप्त रूप में लिखते हैं—

१—"यह मान लेना कि डारविन के सिद्धांतानुसार बाह्य दशायें किसी वस्तु के स्वभाव को पूर्णतया बदल दें, ठीक नहीं; क्योंकि नीम का वृक्ष कभी आम नहीं बन सकता चाहे बाह्य दशाओं का कितना ही प्रभाव उस पर क्यों न पड़े ।

२—डारविन के सिद्धांतानुसार कहा जाता है कि विभिन्न पशु-प्राणी एक ही योनि से उत्पन्न हुये हैं परन्तु इस प्रकार की युक्ति देने में वे कूद कर उन नियमों का उल्लंघन कर जाते हैं जिन पर इस सिद्धांत का आधार है । यह सम्भव है कि एक कुत्ता अपना रंग बदल ले, या बाल खो दे परन्तु यह कल्पना करना भी असम्भव है कि विशेष समय के पश्चात् यह अपने से बढ़िया प्राणी के रूप में बदल जाये । विभिन्न जातियों का मेल कर देने से भी कठिनाई दूर नहीं होती क्योंकि यह वास्तविकता है कि जब दो भिन्न-भिन्न जातियां आपस में मिलें तो उनकी उत्पत्ति यद्यपि उनसे भिन्न होगी परन्तु भविष्य में सन्तान उत्पन्न करने के वे अयोग्य हो जाती हैं ।

३—बन्दर अपनी दुम और पांव से बहुत काम लेते हैं और सिद्धांत के अनुसार यह भाग तब लुप्त नहीं होने चाहियें जब कि बन्दर मनुष्य बने । परन्तु तमाशा यह है कि मनुष्य के दुम (पूंछ) होती ही नहीं; इसलिये यह सिद्धांत असत्य ठहरता है ।

---

१. आर्यावर्त के गौरव और आर्यसमाज के भूषण विद्यारत्न पंडित गुरुदत्त जी विद्यार्थी एम० ए० । ('आर्यपत्रिका' ११ मई, सन् १८८६ से)

४—पूर्वोक्त कारणों से डारविन के सिद्धांत पर कठोर आक्षेप हो सकते हैं और यह कभी भी सत्य सिद्धांत कहलाने का अधिकारी नहीं हैं ।"

क्या 'एवोल्यूशन' का सिद्धांत मनुष्य को शान्ति दे सकता है ? क्या इसके मानने वाले विचारक सचमुच भय और अज्ञान के अथाह समुद्र में नहीं गिर रहे ? क्या विज्ञान के दीपक में काम करने वाले किसी अधिक श्रेष्ठ प्रकाश को टटोलने के लिये हाथ-पांव मारते हुये दिखाई नहीं देते ? आत्मज्ञान से शून्य, ईश्वर-सत्ता से विमुख, मनुष्य को पशु बनाते हुये भी जीवन और मृत्यु के भेद ये खोल नही सकते । विचारशील पुरुष इस एवोल्यूशन के फानूस में लट्ठबाजी, नास्तिकपन, अज्ञान और भय का विषैला धुआं उठता हुआ प्रतीत कर रहे हैं ।

आधुनिक युग में विभिन्न देशों की दशा—हम मानवी इतिहास के आरम्भ से चलकर अपने काल में पहुंच गये और इस अन्तिम स्थान पर हम पृथिवी के विभिन्न भागों पर एक दृष्टि डालते हैं ।

एशिया—मूर्तिपूजा, मनुष्यपूजा, भ्रान्ति और आलस्य के घटाटोप अन्धकार में पड़ा हुआ बुद्धि से रहित मृत दिखाई पड़ रहा है ।

अफ्रीका— एशिया से भी बढ़कर घोर अन्धकार में तड़प रहा है ।

यूरोप और अमरीका—ये देश विज्ञान के दीपक में, वैदिक प्रकाश के उस अंश को धारण किये हुये पदार्थों से काम लेना सिखाते हैं, गतिशील दिखाई देते हैं; परन्तु इनके इस दीपक का प्रकाश सीमित है । ईश्वर, जीव, वर्णाश्रम, धर्म-कर्म से विमुख यूरोप और अमरीका सीधी सीधी राह पर नहीं चल रहे और इसी कारण से पग-पग पर ठोकरें खा रहे हैं । दीपक से निकलता हुआ काला धुंआ चलने वालों को दरिद्रता, अज्ञान और भय के समुद्र में मूर्छित कर गिरा रहा है । इसीलिये पृथिवी पर कहीं भी हम सूर्य के दर्शन नहीं पाते । सब स्थानों पर अन्धकार, कहीं बहुत, कहीं थोड़ा । परमाणुओं का पुजारी यूरोप और अमरीका मूर्तिपूजक और पदार्थपूजक एशिया और अफ्रीका से कम अन्धकार में हैं परन्तु अन्धकार सर्वत्र है। जहां अन्धकार होता है वहां भय अवश्य है । जिस प्रकार कोई ऊष्णता को अग्नि से पृथक नहीं कर सकता, उसी प्रकार भय को भी आत्मिक अन्धकार से पृथक नहीं कर सकता । सीधा संसार अन्धकार में उलटा दिखाई देता है । फल और पत्ते अन्धेरे में सर्प और अजगर दिखाई देते हैं और प्रत्येक चीज निराशा, भय और मृत्यु का ही रूप बन जाती है । श्रुति[1] सत्य कहती है कि अन्धकार रूपी दुःख में वे गिरते हैं जो परमाणुओं की उपासना, उनको सृष्टि का आदि मूल समझकर, करते हैं और उनसे बढ़कर परम अन्धकार रूपी दुःख में वे पड़ते हैं जो परमाणुओं से बनी हुई वस्तुओं की उपासना उपास्य समझ कर करें ।

वेद-सूर्य को दिखाने वाला महर्षि दयानन्द--पांच हजार वर्ष से लगातार न्यूनाधिक अन्धकार में रहने से पृथिवी विकराल और भयभीत बन रही थी । शताब्दियों के अन्धकार की उत्तराधिकारी आत्मायें वर्तमान काल में दीपकों के धुयें से विरक्त होरक उन्मत्तवत् होकर आत्मिक सूर्य के दर्शन के लिये बुद्धिरूपी आंख उठा-उठा कर देखती थीं । उनके भीतर से आवाज आती थी कि जिसका आरम्भ है उसका अन्त अवश्य होगा और सान्त कर्मों का फल असीमित नहीं हो सकता। जब इस निराशा की दशा में भूगोल पर मनुष्यजाति दुखित थी तो जगत्पिता के नियमानुसार जीवों के दुःखों की रात्रि घटने का समय आ रहा था और अविद्यान्धकार के बादल को हटा कर वेदसूर्य के दर्शन कराने वाला महर्षि संसार में उत्पन्न होने वाला था । भूगोल की पुरानी राजधानी आर्यावर्त ने महाभारत युद्ध के कलंक को धोकर जगद्गुरु की पदवी फिर प्राप्त

---

1. यजुर्वेद अध्याय ४० , मंत्र ९ ।

करनी थी और संसार के सच्चे इतिहास ने पांच हजार वर्ष के दीपकों की एकाकी रेखा को उड़ा कर महर्षि जैमिनि के पश्चात् फिर ऋषि[1] और महर्षि के नाम लिखने से प्रकाश का क्रम स्थापित करना था। नास्तिकपन, अविद्या और अधर्म के द्वारा फिर वैदिक सिद्धांतों के पांव चूमना और मतमतान्तरों को सत्य को राजतिलक देकर स्वयं वनवास जाना था। पृथिवी को श्मशानभूमि का नाम तजकर स्वर्गधाम कहलाना और अपनी काया पलटा कर सचमुच नवजीवन धारण करना था। ज्ञान और प्रेम की वर्षा द्वारा दुर्भिक्ष को दूर करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की वसन्त ऋतु दिखानी थी। निराशा आशा से बदल गई और आंखों से प्रसन्नता के आंसू टपकने लगे जब कि सूर्य दर्शन की अभिलाषी आत्मा ने सचमुच अपनी आंखों के सामने पृथिवी की पुरानी राजधानी आर्यावर्त के भीतर वेदसूर्य को दर्शाने वाले महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के दर्शन किये।

अध्याय ३

महर्षि के जीवन पर एक दृष्टि

महापुरुषों के जीवन के दो भाग, संकल्प तथा पुरुषार्थ—महान पुरुषों के जीवन दो भागों में विभक्त होते हैं। पहला भाग वह जिसमें वे शुभ संकल्प धारण करते हैं और दूसरा वह, जिसमें पुरुषार्थ द्वारा धारण की हुई संकल्प इच्छा की पूर्ति करके दिखाते हैं। या यों कहिये कि महान पुरुषों का जीवन प्रश्नोत्तर के रूप में होता है। साधारण पुरुषों के जीवन केवल इच्छाओं और प्रश्नों की समष्टि होते हैं; परन्तु महापुरुषों के जीवन प्रश्न और उनके उत्तर साथ-साथ लिये होते हैं। यदि हम्बोल्ट ने नदियों, पर्वतों और प्राकृतिक दृश्यों की वास्तविकता जानने का प्रश्न उठाया तो उसका समाधान करने के लिये उसने दो बार संसार का चक्कर भी लगाया और इसी कारण उसकी महानता की प्रशंसा करने वाले उसको न्यूटन से बढ़कर सम्मान देते हुये 'अरस्तू' से उसकी उपमा देते हैं। प्रश्न की महत्ता से उसका उत्तर देने वाले की महत्ता का पता लगता है। साधारण प्रश्न का समाधान करने वाले को संसार कोई सम्मान नहीं दे सकता, कठिन प्रश्न का उत्तर देने वाले को संसार ऊंचे से ऊंचा सम्मान देने को तैयार है। पक्की सड़क पर चलने वाला कंटकाकीर्ण मार्ग पर चलने वाले की अपेक्षा वीर नहीं कहला सकता। कच्ची सड़क पर चलने वाले की अपेक्षा छुरी की धार पर चलने वाला और अधिक सम्मान पाता है। अब हम उस प्रश्न की ओर ध्यान करते हैं जिसका सामाधान करने के लिये स्वामी दयानन्द ने अपने जीवन को लगाया तो निस्सन्देह हमें स्वीकार करना पड़ता है कि वह प्रश्न बहुत ही जटिल है। उस प्रश्न को सुनकर ही वीरों के हृदय दहल जाते हैं; फिर उस प्रश्न का उत्तर देने और समाधान करने की तो बात ही क्या है। नेपोलियन के लिये सुगम था कि अपनी प्रबल इच्छा शक्ति के सहारे यूरोप के मुकुटधारियों को खिलौना बनाकर खेलता और आल्प्स की चोटियों पर डेरे लगा देता परन्तु वह अन्तिम समय में उस प्रश्न का समाधान के लिये अपने आपको नितान्त असमर्थ पाता है,जिसका समाधान करने के लिये स्वामी दयानन्द ने बीड़ा उठाया था। सिकन्दर और महमूद सरीखे सम्राट् संसार को तलवार के बल पर जीतकर भी उस प्रश्न के आगे हाथ बांधे दास के रूप में खड़े हुये दिखाई दे रहे हैं। जिस पशु को वीर छेड़ना नहीं चाहता उस पशु पर दयानन्द जीन डालकर सवार होना चाहता है। जिस सिंह की गर्जना से संसार कांप उठाता है उस विकराल सिंह को पालतू और अधीन बनाने के लिये वीर दयानन्द उद्यत होता है। उसकी बहन की मृत्यु ने उसके हृदय को ठोकर लगाई और मृत्यु से छुटकारा पाने का विचित्र, कठिन प्रश्न समाधान करनें के लिये उसको सौंप दिया। मृत्यु क्या है ? उससे मनुष्य किस प्रकार बच सकता है, यह समस्या उसके मन में बस गई। उसका सारा पुरुषार्थ इस समस्या का समाधान करने और

---

1. ऋषि अर्थात् स्वामी विरजानन्द सरस्वती।

अपने उदाहरण से संसार को इस बात की जीवित-साक्षी देने के लिये था कि मनुष्य मृत्यु पर इस प्रकार विजय पाते हैं। मृत्यु और उसका समाधान-यह महर्षि के जीवन का सारांश है।

संकल्प की अटलता—इस समस्या का महत्व और इसकी गम्भीरता उसकी नस-नस में रम गई। पृथ्वी पर कोई भी ऐसी शक्ति न थी, जो उसकी अटल इच्छा और दृढ़ता की ऊर्ध्वगामी ज्वाला को अधोमुख करने के लिये पृथिवी के आकर्षण का काम कर सके। आकाश में उड़ने वाले उकाब को क्या कोई पृथिवी पर रेंगना सिखा सकता है? माता का प्रेम और पिता की सम्पत्ति उसकी आंखों में आती ही नहीं। उसका उद्देश्य महान् है और ये वस्तुयें उस उद्देश्य को पूर्ण करने में कोई सहायता नहीं दे सकती। विवाह की कोमल और सुन्दर श्रृंखलाओं से उसके माता-पिता उसको बांधने का बहुत प्रयत्न करते रहे परन्तु जब विवाह मृत्यु के प्रश्न का समाधान नहीं कर सकता तो वह भला वह क्योंकर कर सकता था? जब उसने देखा कि पिता की चारदीवारी के भीतर इस महान् प्रश्न का समाधान ढूंढने का कोई साधन नहीं है, तो उसने घर छोड़कर खुले जंगल का मार्ग लिया। जिस प्रकार जल की धारा सागर में पहुंचने के लिये पृथिवी के आकर्षण को अपना अभ्रांत पथप्रदर्शक बना अपने मार्ग में आने वाली चट्टानों के विघ्नों को काटती और उनमें से अपना मार्ग बनाती हुई समुद्र में जा मिलने से पहले कभी कहीं नहीं थमती, ठीक इसी प्रकार, दयानन्द की आत्मा रूपी धारा, माता-पिता के गृह को छोड़ अकेली, सत्य के सूचक आकर्षण को अपना पथप्रदर्शक बनाये हुये पग-पग पर प्रलोभनों, पदार्थपूजा, झूठे कलंक, कुप्रथाओं, अज्ञान और ईर्ष्या द्वेष की कठोर चट्टानों को स्वयं ही काटती और उनमें से अपना मार्ग बनाती हुई, कहीं भी तब तक ठहरती हुई दिखाई नहीं दी, जब तक कि उसने परमानन्द के सागर को नहीं पा लिया। सत्य ज्ञान की खोज करने वाले वीरों ने अपनी समाहित बुद्धि के उदाहरण संसार में समय-समय पर दिये हैं। प्रश्नों के समाधान में रत ज्ञानियों के पास से सचमुच सेनायें चली जाती हैं और अन्तर्धान होने के कारण उनको इसकी सूचना तक नहीं होती। सत्तावन के भयंकर विद्रोह का कोलाहल दयानन्द के समीप होता रहा परन्तु उसकी अन्तर्धानवृत्ति ने कभी आंखें उठाकर उसकी ओर देखा तक नहीं।[१]

दयानन्द का प्रमुख साधन, ब्रह्मचर्य—उस समय उसने जन्म से ही वह साधन धारण किया हुआ था, जिससे बढ़िया साधन संसार के इतिहास में कहीं नहीं मिल सकता। बाल-ब्रह्मचर्य का यह साधन दृढ़, श्रेष्ठ और कठिनाइयों को सरल करने वाला, विचित्र साधन था, जिसकी महत्ता का वर्णन मानवजाति के एक अनुभवी, प्रतिष्ठित वृद्ध ऋषि भीष्म पितामह, महाराजा युधिष्ठर से करते हैं "जो जन्म से लेकर मरण पर्यन्त बालब्रह्मचारी रहता है, उसके लिये कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसको वह प्राप्त न कर सके।" जिसने अखंड ब्रह्मचर्य धारण किया हो उसके सामने शारीरिक, आत्मिक उन्नति सम अवस्था में अपना स्वरूप प्रकाशित कर देती है। उनके शरीर की ओर दृष्टि करें तो ६ फुट लम्बा कद, पुराने ब्राह्मणों के कद का पुन: दर्शन कराने वाला, सुन्दर और सुडौल पहलवानी शरीर, वीर्यरक्षा और मांस-मदिरा से रहित पुष्टिकारक दुग्ध, अन्न आदि शुद्ध भोजन की उत्तमता की पूर्ण साक्षी दे रहा है। शिर के मध्य भाग के ऊपर को उभरी हुई खोपड़ी को यदि सामुद्रिक विद्या की सहायता से देखें तो पूर्ण और विज्ञान से भरे हुये मस्तिष्क का बोधन करा रही है। आंखों से बुद्धिमत्ता टपकती हुई और मुख पर ब्रह्मजेत चमकता हुआ सबके[1] मनों को वश में कर रहा है। काशी के प्रसिद्ध पंडित छिप-छिप कर उनके संस्कृत के शुद्ध भाषण को सुनते जाते थे ताकि वे स्वर शब्दोच्चारण को सीखें जो कि ठीक-ठीक वैदिक है। उनकी वेदमन्त्रों

---

1. हमने उनका दर्शन किया और उनसे बातचीत की। उनके दर्शन से हम प्रभावित हो गये थे जिसका तेज राजाओं के तेज से कम न था। सचमुच उनका समाज जिस अवस्था में है, उस अवस्था में न होता यदि उनका व्यक्तित्व राजाओं जैसा न होता। ब्रह्मसमाजी लोग महान् स्वामी का हृदय से सम्मान करते थे।" ब्राह्मसमाचारपत्र 'यूनिटी एण्ड मिनिस्टर' ('आर्यपत्रिका' १४ दिसम्बर, सन् १८९७ से)।

को गानविद्या के उत्तम नियमों के[1] अनुसार गाने वाली सुरीली मीठी वाणी बताती है कि वे किसी रागविद्या के गुरु से पूर्णता को बांट लाये हैं। स्वामी विरजानन्द के समान उसकी स्मरणशति अदभुत पूर्णता का उदाहरण थी।[2]

योगसाधन का सही उपयोग—पूर्णता के नमूने स्वामी दयानन्द को विद्रोह के समय कई प्रकार के गुप्त चमत्कार दिखाने और गारफील्ड के समान सम्मान प्राप्त करने का श्रेष्ठ अवसर प्राप्त था परन्तु सांसारिक शासकों को रिझाने और नाम के पीछे मरने के लिये वह उत्पन्न नहीं हुआ था। उसको जगत् के शासक की आज्ञा का पालन करना और अपनी आत्मा का मूक आशीर्वाद अपेक्षित था। अखंड ब्रह्मचर्य की दृढ़ टांगों पर न थकने वाला यात्री कठिन और अगम्य स्थानों को योगियों और ऋषियों की खोज में उल्लंघन कर रहा है।

हिमालय की हिमाच्छादित चट्टानें, जो रक्त को जमा देती हैं उन पर सुकरात के समान नंगे पांव और सुकरात से बढ़कर नंगे शरीर एक कौपीन धारण किये हुये, ब्रह्मचर्य की ऊष्णता के बल से चल कर महान् वेगवान इच्छा का प्रमाण दे रहा है। कांटों और झाड़ियों के अगम्य मार्ग सचमुच अपने शरीर से काट-काटकर रक्तबिन्दुओं से अपने मार्ग को सींचता हुआ हम्बौल्ट की भांति नर्मदा नदी के उद्‌गम स्थान को खोजने जाता और इस यात्रा में उससे बढ़कर अपनी महानता और वीरता दिखाता है। हम्बोल्ट इण्डीज के पर्वतों में सुख की सामग्री और खच्चर लेकर जाता है और कहीं अपनी खोज के लिये स्पेन के राजा की सहायता पाता है, परन्तु स्वामी दयानन्द इन यात्राओं में किसी राजे महाराजे की सहायता नहीं लेता और न ही सुख की सामग्री लिये हुये है। उसको अकेले ही सूर्य के समान समस्त विघ्नों को दूर करना है और ऐसा करने में वह अपने कर्म से आदित्य ब्रह्मचारी के शब्द को सार्थक बना रहा है।

दूसरा साधन योग—दूसरा पूर्ण साधन जो इससे भी बढ़कर संसार को आश्चर्य में डालने वाला और जिसका ब्रह्मचर्य स्वयं साधन है, जिसका आरम्भ ब्रह्मचर्य की पूर्ति के साथ-साथ होता है और जो मनुष्य को ऊंचे से ऊंचे धार्मिक जीवन के बिना प्राप्त नहीं हो सकता, जिसकी भट्टी में ब्रह्मचर्य से इकट्ठा किया हुआ वीर्य जलाना पड़ता है, जो कि आत्मा को अपनी निज शक्ति से इन आंखों की सहायता के बिना देखने में सहायता देता और प्रकृति की गुप्त बातों और मृत्यु के कठिन प्रश्नों का समाधान करा सकता है; जिसकी खोज में ही स्वामी दयानन्द को जंगल, पर्वत और नदियां पार करनी पड़ीं, जिसकी प्राप्ति पर ही मनुष्य मनुष्य श्रेणी को छोड़ ऋषिश्रेणी में प्रविष्ट हो जाता है, जिसके समान कृष्णदेव कहते हैं कि, कोई बल नहीं, वह ऋषि मुनियों का परमसाधन योग ही है।

अमरजीवन का लाभ करने के लिये स्वामी दयानन्द आबू और हिमालय के योगिराजों से इस महान् विद्या को धारण करता रहा। उसको श्रुति बतला रही थी कि ईश्वर-दर्शन के बिना मृत्यु पर विजय नहीं पा सकते और योगदृष्टि के बिना आत्मा ईश्वर दर्शन नहीं कर सकता इसलिये उसके प्रश्न का अन्तिम समाधान उसकी योगसमाधि पर निर्भर था। उसकी मेधाबुद्धि, अद्‌भुत स्मृति, योगसमाधि, वेदविद्या, परोपकार, शूरवीरता, दृढ़ इच्छा, बालब्रह्मचर्य, धार्मिक जीवन, कठिन-यात्रा, साधन शीलता, संन्यास, निष्काम कर्म और पूर्ण आत्मबल से पाखंड का खंडन करते हुये निष्पक्ष होकर वेदोक्त

---

1. "आं भूः ओं भुवः ओं स्वः ओं महः' वाले मन्त्र, जो भूमिका के पृष्ठ १६१ पर हैं, स्वामी जी गजल के रूप में गाया करते थे। इस के अतिरिक्त उनमें भी कई मन्त्र जो वेदसंगीत नामक लघु पुस्तक में दिये हुये हैं, विरजानन्द प्रेस लाहौर से मिल सकती है स्वामी जी गानविद्या के अनुसार प्रायः गाया करते थे। इस बात का निश्चय पंडित गुरुदत्त जी ने पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या तथा अन्य महाशयों से पूछ कर किया था।

2. उनकी स्मृति के विषय में मैक्समूलर का यह कथन है कि 'उनको समस्त वेद कण्ठस्थ थे, उनका सारा हृदय वेदों से हरा भरा था।'

सत्य का मंडन करना और अन्त को मृत्यु पर विजय पाते हुये भय और क्लेश की जड़ को योगबल से काटकर दिखा देना, ये सब बातें दर्शा रही हैं कि वह मनुष्य श्रेणी से नहीं किन्तु ऋषिश्रेणी से सम्बन्ध रखता था। उसके पवित्र धार्मिक समुन्नत जीवन में हमें ऋषि-मुनियों के जीवन का दृष्टांत मिलता है। उसका आचार एक शब्द में यह कह देने से वर्णन हो सकता है कि वह महर्षि था।

सच्चा साधक दम्भरहित होता है—मनुष्य अपनी निर्बलताओं को गुणों से बदलने का प्रयत्न करते हैं। वे अपनी विद्या को अपनी निर्बलताओं के छुपाने का साधन बनाना चाहते हैं और अपनी भूल को सरलता से स्वीकार करने के स्थान पर अपना गुण बताने का प्रयत्न करते हैं। यूरोप के कई फिलास्फर और विद्वान् इतिहासकार थ्योरी (Theory) और सिद्धांत अपने पक्ष की सिद्धि के लिये घड़ते हुये लज्जित नहीं होते। काशी में पंडित मुख से निकले हुये झूठे वाक्य की सिद्धि के लिये अपना सारा विद्याबल व्यय करते हुये अधर्म से नहीं रुकते। मान और महानता के लिये हाथ-पांव मारने वाले आत्मसाक्षी की मौन वाणी का गला घोंटते हुये विद्वान् और पंडित ऐसे विचित्र दम्भ करते हैं कि जिससे उनके बाहरी सम्मान में अन्तर न आये परन्तु ऋषियों के इतिहास दम्भ से रहित रहे हैं हमें स्वामी दयानन्द के ऋषि होने का श्रेष्ठ प्रमाण इससे बढ़कर क्या मिल सकता है कि उन्होंने जगत् प्रसिद्ध होने पर भी अपनी पुरानी बचपन की निर्बलताओं को अपने मुख से पूना नगर में अपना जीवन-चरित्र सुनाते हुये, बिना किसी असमंजस के स्वयं वर्णन किया है। यही नहीं प्रत्युत जब मुरादाबाद में वेदधर्म का उपदेश कर रहे थे तो भूल से एक शब्द मुख से अशुद्ध निकल गया। एक लड़के ने उनको कहा कि स्वामी जी! आपने भूल की है। क्या और कोई मनुष्य ऐसा सम्मान रखता हुआ लड़के की बताई हुई अशुद्धि को स्वीकार करने का साहस कर सकता है? परन्तु महर्षि दयानन्द ने निस्संकोच सरल वाणी में कहा, हां मैंने भूल की। उस लड़के ने पुनः कई मनुष्यों के सामने दूसरे दिन उनको फिर कहा कि स्वामी जी ! आपने कल भूल की थी उस समय भी कहने लगे कि हां, हमने भूल की थी और जब देखा कि यह लड़का बार-बार प्रहसन की दृष्टि से इसी बात को दुहराये जाता है तो कहा कि हमने भूल स्वीकार कर ली, परन्तु तुम तो बाललीला किये जाते हो।

अपनी निर्बलताओं को दूर करने तथा दूसरों से गुणग्रहण करने में तत्परता—आजकल पंडित और विद्वान् शब्द का व्यावहारिक लक्षण यह है कि जो अपने बराबर के पंडित को मूर्ख और अपने से बढ़िया पंडित को उन्मत्त बतलाये। विद्वानों के हृदय फट जाते हैं और पंडितों की आंखें लाल हो जाती हैं जब वे अपने सामने किसी और पंडित के सम्बन्ध में प्रशंसा के शब्द सुनें परन्तु ऋषिजीवन ईर्ष्या, द्वेष से रहित होते हैं। वे किसी का गौरव सुनकर जलते नहीं प्रत्युत प्रसन्न होकर गुणीजन के पास उसके गुण की भिक्षा लेने को जाते हैं। महर्षि दयानन्द की यात्रा बतला रही है कि उन्होंने इस बात को क्रियात्मक रूप से सिद्ध किया था। जहां जिस पंडित और योगी की प्रशंसा उनके कान में पहुंची, तत्काल श्रद्धा की भेंट लेकर उस पंडित या योगी से अपनी न्यूनता को पूर्ण करने का प्रयत्न किया और फिर जीवनभर अपने सिखाने वाले गुरुओं के प्रशंसक रहे। स्वामी जी[1] आबू के भवानीगिरि जैसे योगिराजों और हिमालय की केदारघाट के गंगागिरि[2] की, जिन्होंने उनको योगविद्या के सूक्ष्म रहस्य बताये थे और मथुरा के स्वामी विरजानन्द जी की प्रशंसा करते हुये नहीं थकते। वे जिसमें

---

1. पंडित गुरुदत्त जी कहा करते थे कि स्वामी जी के रोग के दिनों में आबू पर रहने के लिये बल देने के सूक्ष्म अर्थ थे। सम्भवतः उनको योगविद्या के सिखाने वाले योगिराज वहां होंगे और कदाचित् उनसे मिलना चाहते हों।

2. आज तक भी पर्वतों में योगिराज विद्यमान हैं परन्तु चूंकि हमारा उनसे सम्बन्ध नहीं हुआ इसलिये हम उन्हें नहीं जानते। सन् १८८९ में पंडित गुरुदत्त जी ने एक सच्चिदानन्द नामक योगीराज की सूचना दी थी कि वे पूर्ण आर्य हैं और नेपाल के पर्वतों में विचर रहे हैं। सच है बीज नाश किसी विद्या का नहीं होता।

गुण देखते थे, उसकी सदा प्रशंसा करते थे, चाहे वह मनुष्य विद्या आदि गुणों में उनसे छोटा ही क्यों न हो। एक बार की बात है कि मुरादाबाद में वे रोग की दशा में पलंग पर लेटे हुये थे। एक वैद्य चरक-सुश्रुत के जानने वाले शाहजहांपुर से वहां आये और आकर फर्श पर बैठ गये। जब स्वामी जी से वैद्य जी ने बातचीत की तो बातचीत के बीच में वैद्यराज ने एक श्रेष्ठ बात कही। यह सुनते ही स्वामी जी रोगी होने पर भी तत्काल पलंग से उठे और साथ ही कमरे से स्वयं कुर्सी उठाकर ले आये और आदर-सत्कार से वैद्य जी को कहा कि आप यहां पधारिये, यह कहते हुये कि हमें विदित न था कि आप ऐसे विद्वान हैं।[1]

सच्चे पंडित की प्रशंसा— एक बार स्वामी जी कन्नौज गये, वहां पंडित हरिशंकर जी से शास्त्रार्थ हुआ। एक स्थान पर शास्त्री जी ने कहा का मीमांसा में ऐसा लिखा है। स्वामी जी ने कहा कि ऐसा कदापि नहीं है। इस पर शास्त्री जी के मुख से निकला कि यदि ऐसा न हो तो हम शिखा, सूत्र त्याग कर संन्यास ग्रहण कर लेंगे अन्यथा आपको संन्यास त्यागना होगा। स्वामी जी ने स्वीकार कर लिया। पंडित जी घर आये और पुस्तक देखी तो वास्तव में जो स्वामी जी कहते थे वही उसमें निकला। इस पर पंडित जी ने सब पंडितों और प्रतिष्ठित लोगों को बुलाकर कहा कि हम स्वामी जी से हार गये, अब हम संन्यास धारण करते हैं। लोगों ने परामर्श करके कहा कि ऐसा न करना चाहिये प्रत्युत स्वामी जी के पास जाकर कहिये कि जो हम कहते थे वही पुस्तक में है, इस पर हम कोलाहल मचा कर आपकी जय बोल देंगे। यह पंडित जी ने स्वीकार न किया और कहा कि हमसे झूठ कदापि न कहा जायेगा और परिणामतः आपने स्वामी जी के पास जाकर अपनी भूल स्वीकार की और कहा कि हमको सन्यास दीजिये, हम हार गये। उस पर स्वामी जी ने सब लोगों के समूह में कहा कि मैंने आज तक ऐसा सत्यवादी और धार्मिक विद्वान् पंडित नहीं देखा। यह प्राचीन समय के पंडितों का नमूना है।[2]

महर्षि की ये बातें वर्णन करते हुये हम सहसा उपनिषदों के काल में भ्रमण कर रहे हैं जहां कि हम देखते हैं कि ऋषि लोग विद्या और तप से युक्त होने पर स्पष्ट शब्दों में अपनी निर्बलता स्वीकार करते हैं और प्रश्नकर्ता को उसके प्रश्न का उत्तर न दे सकने की दशा में स्पष्ट कह देते हैं कि हमें यह नहीं आता और फिर स्वयं ऋषि होने पर उस प्रश्न का समाधान करने के लिये और ऋषि की शरण ढूंढते हैं। जहां हमें जाबाल से ब्राह्मण लोग लज्जा की चिंता न करते हुये सच-सच कहते दिखाई देते हैं।

दयानन्द की ऋष्युचित निर्लोभिता—उस समय जब कि लोग उनको कृष्णावतार की पदवी की घूस देने को गंगा पर तैयार होते थे, जब कि थियोसोफिस्ट उनको परम सहायक पद से विभूषित कर रहे थे, जब कि साधारण विद्वान् अपने ग्रंथ और मत चलाने से गुरु बनकर राजाओं के समान अपनी गद्दियां छोड़ने का नमूना दिखा रहे थे, जब कि राजपूताने के एक महाराजा ने उनको शिवलिंग के मंदिर की विपुल सम्पत्ति का लालच दिया था; उस समय इन सब गद्दियों और पदवियों को लात मार कर परे फेंकते हुये क्या वे सचमुच अपने ऋषिपन का बोध नहीं करा रहे ?

विद्वता के दम्भ व गर्व से विमुख— एक बार जब उनसे किसी सज्जन ने प्रश्न किया कि आप इतने विद्वान् होने पर क्यों नहीं एक शास्त्र अपना रचकर संसार में नाम छोड़ते तो ऋषिश्रेणी का आत्मा उत्तर में कहता है कि आगे जो शास्त्र बने हुये हैं उनमें कौन सी कमी है जिसको पूरा करने के लिये मैं अपना नया शास्त्र बनाऊं और केवल नाम छोड़ने की आशा से पुस्तक बनाने में समय व्यर्थ गवाऊं।

---

1. साहू श्यामसुन्दर जी, रईस-मुरादाबाद इस वैद्य को ले गये थे (लाला वृन्दावन जी मंत्री आर्यसमाज काशीपुर के मुख से)।

2. समाचारपत्र 'सत्यधर्मप्रचारक' जालन्धर, २१ आषाढ़, संवत् १९५४ विक्रमी पृष्ठ ६

तीनों एषणाओं से रहित—मान की तरंग संसार में ऐसी प्रबल बह रही है कि बड़े-बड़े राजा-महाराजा, विद्वान् और पंडित इसमें मूर्छित हो बहते हुये दिखाई दे रहे हैं। कहीं-कहीं सुकरात और न्यूटन से मान को लात मारने वाले और सचाई के साथ यह कहने वाले कि हम विद्या के अपार समुद्र के तट पर कंकर चुनने वाले बच्चे हैं, दिखाई पड़ते हैं। स्पैन्सर और ग्लैडस्टोन से मनुष्य जो प्रमाण-पत्रों और पदवियों को तिलांजलि दें, कहीं-कहीं मिलते हैं। परन्तु ऋषिश्रेणी में कोई सम्मिलित नहीं हो सकता जब तक कि वह लोकैषणा, वित्तैषणा और पुत्रैषणा को पहले छोड़ न दें। स्वामी दयानन्द कभी ऋषिश्रेणी में प्रविष्ट होने का अधिकारी न हो सकता यदि वह इन एषणाओं से रहित न होता।

ऋषियों के अभाव में मुझे भले ही ऋषि बना लो—एक बार उत्तर-पश्चिमी प्रदेश के एक प्रसिद्ध नगर में किसी सज्जन ने उन से कहा कि स्वामी जी ! आप तो ऋषि हैं। उत्तर में स्वामी जी कहने लगे की ऋषियों के अभाव में मुझे ऋषि कह रहे हो परन्तु सत्य जानो यदि मैं कणाद ऋषि के समय में उत्पन्न होता तो उस समय के विद्वानों में भी कठिनता से गिना जाता। अठारह घंटे[1] की समाधि लगाने वाला पूर्ण योगी दयानन्द जिसको 'धर्मदिवाकर'[2] के कथनानुसार लोग परमयोगी और 'जड़भरत'[3] का अवतार कहते हैं, कहीं भी अपने आपको लोगों में योगी प्रसिद्ध करने का यत्न नहीं करता। भला सच्चे गुलाब को बनावट की क्या आवश्यकता है। उसकी सुगन्ध ही उसके अस्तित्व को प्रकट कर देती है परन्तु कागज के बने हुये कृत्रिम गुलाब को गुलाबी रंगत और इत्र लगाने की आवश्यकता है ताकि वह धोखे से अपने आपको गुलाब सिद्ध कर सके। योग और योगसिद्धि के नाम पर भोगी पुरुषों ने संसार को लूट लिया। योग और योगसिद्धि का नाम लेते हुये ठगों ने लोगों को मनघड़ंत लीला दिखा कर निश्चय दिलाने का यत्न किया है कि ये चमत्कार हैं और हम प्रकृति के नियम को तोड़ सकते हैं।

योगसिद्धि की झलक दिखाने पर ही लोग गुरु बनकर मूर्खों से चरण पुजवाते हैं परन्तु चमत्कार, आश्चर्य, तमाशे, भूत-प्रेत, भ्रान्तियों को काटने वाला, विद्या की ठेकेदारी और ठगी को अन्धकार के समुद्र में धक्का देने वाला सच्चा योगी दयानन्द हठयोग, दम्भ और तमाशे के छलों से लोगों को सावधान करता हुआ राजयोग के सच्चे सिद्धांतों और श्रेष्ठ नियमों का प्रकाश करता है जिससे कि आत्मा की पूर्ण शक्तियां प्रकृति के नियम के अनुकूल न कि विरुद्ध प्रकट हो सकती हैं। महर्षि उस योगविद्या का प्रतिपादन करता है जो योग की अन्य विद्याओं के समान प्रत्येक धार्मिक समुन्नत पुरुष का अधिकार है और जिस योगबल से मनुष्य वेदसूर्य की ज्योति का अनुभव करने पर मन्त्रद्रष्टा ऋषि कहला सकता और उसी साधन से ईश्वरदर्शन करता हुआ मृत्यु पर विजय पा सकता है। एक अमरीकन[4] का कथन है कि सचाई मन से निकली हुई कहानी से भी बढ़कर विचित्र है। बिजली के गुण जिनसे पांच मिनट के भीतर सैंकड़ों मील का समाचार मिल सकता है,वास्तव में किसी उपन्यासकार के मन से निकले हुये वर्णन से बढ़कर विचित्र है परन्तु यदि इसी बिजली का गुण किसी पन्थाई और नाम के भूखे पुरुष को विदित हो जाता तो वह बिजली का मन्दिर बनवा कर स्वयं पुजारी बनने से लोगों को रोम के पोप की भांति लूटकर खा जाता और इस विद्या का वह प्रचार जो इस समय नियमित रूप से हो रहा है, कभी न होता। योगविद्या जिसमें बिजली से बढ़कर आत्मा की शक्तियां दिखाई देती हैं यद्यपि आश्चर्यजनक है परन्तु विद्युतविद्या की भांति नियत

---

1. देखो 'दयानन्द दिग्विजयार्क'।

2. समाचार पत्र 'धर्मदिवाकर' कलकत्ता, खंड १ ,संख्या ८, पृष्ठ १२४-१२७, मार्गशीर्ष मास,संवत् १९४०।

3. 'जड़भरत' एक पूर्ण योगी और महर्षि का नाम है।

4. एण्ड्रो जैक्सन डेविस।

सिद्धांतों पर आधारित है। यही योग यदि किसी थियोसोफिस्ट या पन्थाई को लेश मात्र भी आ जाये तो वह लोगों को तमाशे दिखाने का प्रयत्न करेगा और विद्या का ठेकेदार बनकर लोगों से किसी प्रकार धन छीनना चाहेगा। यही योग यदि किसी विद्याप्रेमी के पास हो तो वह ठेकेदार बनने के स्थान पर लोगों को उस विद्या के प्राप्त करने के नियम और व्यवहार सिखायेगा। इसके स्थान पर कि अपनी सिद्धियां तमाशे के रूप में उनको आश्चर्य में डालने के लिये करके दिखाये और केवल नाम के लिये एक सच्चे विज्ञान के प्रचार को रोक दे। तमाशे और अनुभव में वह भेद है जो कि खेल और साधन में हैं। अध्यापक विद्यार्थी को बिजली के प्रयोग करके दिखाते हैं परन्तु बाजार में पैसे या नाम के लिये निरर्थक या खेल के रूप में बिजली के प्रयोग करने वाला एक तमाशा दिखाने वाला ही होता है। अध्यापक को यदि अपने-ज्ञान पर अधिकार होता है तो तमाशा दिखाने वाला आवश्यकतावश वह काम करता है। अध्यापक विद्याबुद्धि के लिये योग्य पात्र में दान करता है परन्तु तमाशा दिखाने वाला स्वांग भर का समय व्यर्थ खो देता है। प्रयोग का दूसरा नाम साधन और तमाशे का दूसरा नाम खेल है। प्रयोग के अधिकारी विद्यार्थियों को विद्या सिखाते हैं परन्तु तमाशे मन-बहलाव और अकर्मण्यता का पेट भरते हैं। प्रयोग पात्र के सामने किया जाता है परन्तु तमाशे में यह बन्धन नहीं। क,ख पढ़ने वाले विद्यार्थी को प्राण और रयि (सत् और असत्), विद्युत के भेद प्रयोग से सिद्ध करके दिखाने निरर्थक हैं परन्तु बुद्धिमान् योग्य विद्यार्थी इस प्रयोग को समझ सकता है। तमाशे की दशा में योग्य, अयोग्य, पात्र-कुपात्र का विचार नहीं है। प्रयोग से विद्या की प्राप्ति अभीष्ट है परन्तु तमाशे से केवल वाह-वाह और प्रंशसा ही मिलती है। हिमालय या आबू के सच्चे योगी तमाशा दिखाते नहीं फिरते परन्तु विद्यार्थी उनके पास जाकर साधनों द्वारा योगविद्या सीख सकते हैं। स्वामी दयानन्द योगविद्या के आचार्य थे, न कि तमाशे दिखाने वाले।

योग के सम्बन्ध में स्वामी जी का मन्तव्य

योग सिखाने के सम्बन्ध में योगी दयानन्द का मन्तव्य—वह योगविद्या की वृद्धि चाहते थे और इसलिये अधिकारी विद्यार्थी मांगते थे। रुड़की में जब किसी आर्यसज्जन ने योगविद्या की महिमा सुनकर इस विद्या का सीखना चाहा तो उन्होंने जो उत्तर दिया उसके अर्थ यह थे कि पहले इस विद्या का अधिकारी बन लो, पीछे सीख लेना। रुड़की में तो उस आर्य सज्जन ने सीखने की रुचि प्रकट की थी परन्तु अन्य स्थानों पर सीखने की रुचि रखने वाले भी थोड़े और योगसिद्धि का तमाशा देखने वाले उन्हें अधिकता से मिलते थे। स्वामी जी कभी तमाशे के रूप में लोगों को केवल दिखाने के लिये इस विद्या का खेल करने वाले न थे। दो-चार पुरूषों को जिन्होंने साधनों द्वारा इस विद्या को सीखना चाहा था और जो अधिकारी थे, उनको उनकी योग्यतानुसार स्वामी जी ने योग क्रिया सिखाई थी परन्तु किसी की प्रार्थना पर योगविद्या का तमाशा नहीं किया। परिणामतः एक बार सेण्ट साहब ने स्वामी जी से कहा कि हमें कुछ योग का चमत्कार दिखाओ तो उन्होंने योग के दिखाने से इन्कार किया जैसाकि उनके निम्नलिखित पत्र से विदित हो रहा है।

स्वामी जी का पत्र[1]—"जो मैंने सेण्ट साहब[३] से कहा था वह ठीक है क्योंकि मैं इन तमाशे की बातों को देखना-दिखलाना उचित नहीं समझता, चाहे वे हाथ की चालाकी से हों, चाहे योग की रीति से हों क्योंकि योग के किये कराये बिना किसी को भी योग का महत्त्व व इसमें सत्य प्रेम कभी नहीं हो सकता। अपितु सन्देह और आश्चर्य में पड़कर उसी तमाशे दिखलाने वाले की परीक्षा और सब सुधार की बातों को छोड़ तमाशे देखने को सब मनुष्य चाहते हैं और उसके साधन करना स्वीकार नहीं करते। जैसे सेण्ट साहब को मैंने न दिखलाया और न दिखलाना चाहता हूं, चाहे वे प्रसन्न रहें चाहे अप्रसन्न हों क्योंकि जो मैं इसमें प्रवृत्त हो जाऊं तो सब मूर्ख और पंडित मुझसे यही कहेंगे कि हमको भी कुछ योग

1. १४ जुलाई, सन् १८८० को यह पत्र उन्होंने कर्नल आल्काट को लिखा था।

के आश्चर्य का काम दिखलाइये, जैसे उसको आपने दिखलाया। ऐसी संसार के तमाशे की लीला मेरे साथ भी लग जाती जैसी मैडम एच०पी० ब्लैवेत्स्की के पीछे लगी है। अब जो इनकी विद्या, धर्मात्मता की बातें हैं जिनसे मनुष्यों के आत्मा पवित्र हो आनन्द को प्राप्त हो सकते हैं, उनके पूछने और ग्रहण करने से दूर रहते हैं किन्तु जो कोई आता है (यही कहता आता है) 'मैडम साहिबा, आप हमको भी कोई तमाशा दिखलायें।'—इत्यादि कारणों से इन बातों में प्रवृत्ति नहीं करता न कराता हूं किन्तु कोई चाहे तो उसको योगरीति सिखला सकता हूं जिसके अनुष्ठान करने से वह स्वयं सिद्धि को प्राप्त हो जाये।"

योग एक आत्मिक शक्ति है—जिस प्रकार विद्या शक्ति है उसी प्रकार योग भी आत्मिक शक्ति है। यदि कोई बिजली की विद्या लोगों के ताले तोड़ने के लिये लगाये तो विद्या का कुछ दोष नहीं, दोष उसके अनुचित व्यवहार करने वाले का है, परन्तु पूरा वैज्ञानिक कभी बिजली की विद्या किसीकी हानि अथवा तुच्छ कार्य की सिद्धि के लिये नहीं लगाता। इसी प्रकार योगविद्या को योगी लोग ईश्वरदर्शन के महान कार्य में लगाते हैं, लोगों की तुच्छ बातों के सुनने पर महान् विद्या का अनुचित व्यवहार नहीं करते परन्तु जो विद्या का अनुचित व्यवहार करते हैं, समझना चाहिये कि वे पूरे विद्वान् नहीं। यूरोप और अमरीका में योगविद्या का एक तुच्छ अंश रखने वाले स्प्रिच्यूअलिस्ट (Spiritualist) लोगों ने पाखंड का तूफान खड़ा कर रखा है।[४] मूर्खों को बतलाते हैं कि मरे हुये जीव हमारी इच्छानुसार हमारे मन में प्रेरणा करने आते हैं और इस प्रकार के अनेक दम्भ रचकर लोगों को ठग कर खा गये हैं। इन स्प्रिच्यूअलिस्ट लोगों की ठग-लीला का उचित खंडन[1] अमरीका के एंड्रो जैक्सन डेविस ने भली प्रकार किया है। प्रत्येक बुद्धिमान् मैस्मेरेजम और स्प्रिच्यूअलिज्म के ठगों से सावधान हो सकता है, यदि वह अपनी बुद्धि को काम में लाये। योगविद्या के जितने तमाशा दिखाने वाले हैं, वे योगी नहीं किन्तु दुकानदार हैं। इन दुकानदारों से बचकर हमें सच्ची योगविद्या के सिखाने वाले योगियों की अधिकारी बनने पर खोज करनी चाहिये।

योगी भी सृष्टिनियम नहीं तोड़ सकता— संसार में यह बहुत प्रसिद्ध हो रहा है कि योगी जो चाहे सो कर सकते हैं, सृष्टि-नियमों को तोड़ना योगियों के लिये कोई बड़ी बात नहीं परन्तु महर्षि स्पष्ट शब्दों में योग की महानता दर्शाते हुये इस बात का इस प्रकार खंडन करते हैं—

"जो[2] अनादि ईश्वर जगत् का सृष्टा न हो तो साधनों से सिद्ध होने वाले जीवों का आधार जीवनरूप जगत् शरीर और इन्द्रियों के गोलक कैसे बनते? इनके बिना जीव साधन नहीं कर सकता। जब साधन न होते तो सिद्ध कहां से होता? जीव चाहे जैसा साधन कर सिद्ध होय तो भी ईश्वर की जो स्वयं सनातन अनादि सिद्धि है जिसमें अनन्त सिद्धि हैं उसके तुल्य कोई भी जीव नहीं हो सकता क्योंकि जीव का परम अवधि तक ज्ञान बढ़े तो भी परिमित ज्ञान और सामर्थ्य वाला होता है। अनन्त ज्ञान और सामर्थ्य वाला कभी नहीं हो सकता। देखो कोई भी आजतक ईश्वरकृत सृष्टि-क्रम को बदलने हारा नहीं हुआ और न होगा। जैसा अनादि सिद्ध परमेश्वर ने नेत्रों से देखने और कानों से सुनने का प्रबन्ध किया है। इसको कोई भी योगी बदल नहीं सकता। जीव ईश्वर कभी नहीं हो सकता।"

योगविद्या का उल्लेख—जहां स्वामी जी ने अपने लेख में अनेक विद्याओं का वर्णन किया है वहां उन्होंने योगविद्या का भी वर्णन किया है। योग से आत्मबल किस प्रकार बढ़ जाता है इसको निम्नलिखित वचन दर्शा रहे हैं—

---

1. देखो पुस्तक 'दी फाउण्टैन', पृष्ठ २०६ से २२० तक।

2. सत्यार्थ प्रकाश' आठवां समुल्लास, पृष्ठ २१९।

"हे जगदीश्वर ! जिससे सब योगी लोग इन सब भूत,भविष्यत्, वर्तमान व्यवहारों को जानते, जो नाशरहित जीवात्मा को परमात्मा के साथ मिल के सब प्रकार त्रिकालज्ञ करता है, जिसमें ज्ञान क्रिया है, पांच ज्ञानेन्द्रिय, बुद्धि और आत्मा युक्त रहता है उस योगरूप यज्ञ को जिससे बढ़ाते हैं, वह मेरा मन योग-विज्ञान युक्त होकर विघ्न आदि क्लेशों से पृथक रहे ।"[1]

वेदभाष्यभूमिका के उपासना विषय में योगशास्त्र के सूत्रों की व्याख्या करते हुये महर्षि योग के परमबल की आचार्यवत् उत्तमता दर्शा रहे हैं । 'प्रतिमापूजन विचार' नामक लघु पुस्तक में महर्षि ने योगशास्त्र के कई सूत्रों का आशय दिखाया है जो वास्तव में पढ़ने से ही सम्बन्ध रखता है । उदाहरण के रूप में हम उस पुस्तिका से निम्नलिखित लेख प्रकाशित करते हैं—

"इत्यादि[2] सूत्रों से यह प्रसिद्ध जाना जाता है कि धारणा आदि तीन अंग आभ्यन्तर के हैं । सो हृदय में ही योगी परमाणु पर्यन्त जो पदार्थ हैं उनको योगज्ञान से जानता है । बाहर के पदार्थों से किंचित्मात्र भी ध्यान में सम्बन्ध योगी नहीं रखता, किन्तु आत्मा से ही ध्यान का सम्बन्ध है, और से नहीं । इस विषय में कोई अन्यथा कहे तो उसका कहना सब सज्जन लोग मिथ्या ही जानें क्योंकि जब योगी चित्तवृत्तियों का निरोध करता है, बाहर और भीतर से उसी समय द्रष्टा तो आत्मा उस चेतनस्वरूप में ही स्थित हो जाता है, अन्यत्र नहीं ।"

इस समय भी योगविद्या भारत में हैं—निम्नलिखित वचन उनके एक पत्र में जो उन्होंने मैडम साहिबा को लिखा था, "जो सत्यधर्म, सत्यविद्या और ठीक-ठीक सुधार की और परमयोग आदि की बातें सदा से जैसी आर्यावर्तीय मनुष्यों और वेद आदि शास्त्रों में थीं और हैं, वैसा कहीं न थी और न हैं । अब विचारिये कि थियोसोफिस्टों का एतद्देशनिवासी मत में मिलना चाहिये किंवा आर्यावर्तीयों को थियोसोफिस्ट होना चाहिये ।"

निष्काम कर्म करने वाले—निम्नलिखित वचन उस पत्र में पाये जाते हैं जो उन्होंने कर्नल साहब को लिखा था; इससे विदित होता है कि वे ऋषियों के समान निष्काम-वृत्ति से कर्म करते थे ।[3]

"मैं अपनी सामर्थ्य के अनुसार वेद का उपदेश करता हूं । उपदेशक के अतिरिक्त और मैं कुछ अधिकार नहीं चाहता । तुम मुझको कहीं सभासद लिख देते हो कहीं कुछ लिख देते हो । मैं कुछ बड़ाई और प्रतिष्ठा नहीं चाहता हूं और जो मैं चाहता हूं वह बहुत बड़ा काम है । सो आशा है कि ईश्वर की दया और सज्जनों तथा विद्वानों की सहायता से कृतकृत्य हूंगा"...... "चाहे कोई हो जबतक मैं न्यायाचरण देखता हूं, मेल करता हूं और जब अन्यायाचरण प्रकट होता है, फिर उससे मेल नहीं करता । इसमें हरिश्चन्द्र हो व अन्य कोई हो ।"

अहिंसा की सिद्धि—गंगा के किनारे स्वामी जी का मगरमच्छ के पास निर्भय बैठे रहना बतला रहा है कि उन्होंने अहिंसा सिद्ध कर ली थी । उनके जीवनचरित्र में पर्याप्त प्रमाण इस बात के विद्यमान हैं कि वे पूर्ण योगी थे । मृत्यु के भय को योगबल से काटने का दृष्टांत अपनी मृत्यु से देना, पूर्ण योगी होने पर योग के तमाशे करने से बचना, सत्यार्थप्रकाश के सातवें समुल्लास में ईश्वर को प्रत्यक्ष प्रमाण से देखने की विधि को दर्शाना, इत्यादि अनेक बातें उनके परम योगी होने का बोध करा रही हैं ।

---

1. 'सत्यार्थप्रकाश' सप्तम समुल्लास, पृष्ठ १८४ ।

2. 'प्रतिमापूजन विचार' अर्थात् स्वामी जी और ताराचरण तर्करत्न का शास्त्रार्थ, पृष्ठ १५ से १८ तक ।

3. कर्नल आल्काट के नाम भेजा हुआ पत्र, मिति १९ मार्च, सन् १८७९ ।

पूर्णयोगी और शास्त्र पारंगत—पूर्ण ब्रह्मचारी और पूर्ण योगी होने के कारण ही वे समस्त विद्याओं में पूर्णतया निपुण थे । 'भ्रान्तिनिवारण' में उनके वचन कि "मैं अपने निश्चय और परीक्षा के अनुसार ऋग्वेद से लेकर पूर्वमीमांसा पर्यन्त अनुमान से तीन हजार ग्रन्थों के लगभग मानता हूं"—बतला रहे हैं कि उनका अध्ययन कहां तक विस्तृत था । जब वे तीन हजार के लगभग प्रमाणित ग्रन्थ मानते हैं तो आश्चर्य नहीं कि उन्होंने उससे दुगने ग्रन्थ पढ़े हों । यही नहीं कि वे व्याकरण के पंडित थे, प्रत्युत ज्योतिष, गणित, काव्य, पदार्थविद्या, वैद्यक आदि सर्वविद्याओं के श्रेष्ठ सिद्धांतों को भली-भांति जानते और उन विद्याओं की ऊंची से ऊचीं संस्कृत[1] की प्रामाणिक पुस्तकें पढ़े हुये थे । कोई मनुष्य ठीक रूप से पूर्ण विद्वान् हुये बिना वेदों का भाष्य करने को समर्थ नहीं हो सकता और जब उन्होंने ऋषियों के ढंग पर वेदों का भाष्य किया तो निस्सन्देह वह पृथिवी से लेकर ईश्वर पर्यन्त सर्वविद्याओं के मूलरूपी सिद्धांतों को योगदृष्टि से निर्भ्रान्त जानते थे । यदि मिस्टर हर्बर्ट स्पैन्सर फिलास्फर हैं तो क्या वह वर्तमान विज्ञान के सिद्धांतों से शून्य है । यदि मनुष्यश्रेणी के एक फिलास्फर के लिये समस्त विद्याओं के सिद्धांतों का जानना आवश्यक है तो क्या पूर्ण ब्रह्मचारी और पूर्ण योगी के लिये सर्व विद्याओं का निर्भ्रान्त जानना कठिन है ? हम उनको ज्ञान, कर्म और उपासना रूपी गुणों के हिमालय की चोटी पर बैठा हुआ पाते हैं। संसार उनके अस्तित्व में ऋषि शब्द का लक्षण पढ़ रहा है । पूर्ण उन्नत आत्मा, पूर्ण उन्नत शरीर के साधन से परोपकार करता हुआ उनके उदाहरण से दृष्टि पड़ रहा है । उनकी उच्च दशा को देखते हुये प्रश्न उठता है कि वे किन साधनों से ऐसी उच्च अवस्था को प्राप्त हुये, उनका जीवनचरित्र उत्तर देता है कि "पूर्ण ब्रह्मचर्य और पूर्ण योग ।"

अध्याय ४

मृत्युन्जय[2] की मृत्यु पर यूरोप और अमरीका के प्रतिनिधि का संशय मिटाना

मौन शिक्षा से मनीषी गुरुदत्त का कायाकल्प—स्वामी जी ने जिन सार्वभौम वैदिक सिद्धांतों का प्रचार और उपदेश किया, उस उपदेश ने जहां सर्वसाधारण और संस्कृत जानने वालों को आर्य बनाया वहां उसने कई अंग्रेजी के विद्वानों को भी आर्य बिना दिया । उनके जीवन में ही अनेक पुरुष आर्यधर्म के महत्त्व को समझ गये थे परन्तु मृत्युंजय की मृत्यु का पंडित गुरुदत्त सरीखे अंग्रेजी-विज्ञान के पूर्ण विद्वान् की संशयात्मक काया को न बोले पलटा देना अत्यंत आश्चर्यदायक बात है । यूरोप और अमरीका के वर्तमान श्रेष्ठ विचारों का प्रतिनिधि यदि हम पंडित गुरुदत्त एम०ए० को कहें तो उचित है । रात-दिन मिल, हक्सले, टिण्डल, डार्विन, स्पैन्सर आदि अनेक यूरोपियन विद्वानों के ग्रन्थों के पठन तथा मनन द्वारा जिसने उनके विचार मन में धारण किये हुये थे, उसको योगिराज की मृत्यु पर ही इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण मिला कि किस प्रकार एक सच्चा आस्तिक और पूर्ण योगी मृत्यु के भय से रहित होकर, ईश्वरोपासना के परम बल से क्लेश की जड़ को काटता हुआ, प्रसन्नतापूर्वक परलोक गमन करता है । इस विचित्र मृत्यु ने पंडित गुरुदत्त को ईश्वर की सत्ता का अत्यन्त ही प्रबल प्रमाण दे दिया । इस मृत्यु ने (पश्चिमी विचारों के) उस प्रतिनिधि को स्पष्ट जतला दिया कि योगी ही मृत्यु पर विजय पा सकते हैं । उस वेदसूर्य की महत्ता का जिसका उपदेश मृत्युंजय अपने जीवन में करता था, पंडित जी को विश्वासी बनाते हुये उनके मुख से कहला दिया कि वर्तमान पश्चिमी विज्ञान और दर्शनशास्त्र की जहां समाप्ति होती है वहां वेद-विद्या का आरम्भ होता है । इसी घटना ने संसार को क्रियात्मक रूप में दिखला दिया कि वेदों के महान् ज्ञान को ग्रहण करने के लिये

---

1. स्वामी जी अंग्रेजी, फारसी आदि बिलकुल नहीं पढ़े हुये थे ।

2. मृत्यु पर विजय प्राप्त करने वाला अर्थात् स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ।

किस प्रकार प्रथम श्रेणी के विद्वान् एम०ए० विद्यार्थी बनते हैं। हमें यह नहीं समझना चाहिये कि पंडित गुरुदत्त को ऋषि की मृत्यु ने पूर्ण आर्य बना दिया प्रत्युत गहरी दृष्टि से देखें तो यूरोप और अमरीका के विद्वानों के प्रतिनिधि के संशय मिटा दिये जिसके सूक्ष्म अर्थ यह हैं कि यूरोप और अमरीका के विज्ञान और दर्शन के सिद्धांतों ने वैदिक सूर्य की शरण ली। यदि ऋषि ने प्रकट किये हुये वैदिक सिद्धांत एक गुरुदत्त के संशय निवृत्त करते हुये उसको शान्ति दे सकते हैं तो इसके अर्थ ये हैं कि वैदिक सिद्धांत यूरोप और अमरीका की संशयात्मक काया को तत्काल पलटा देते हुये शान्ति प्रदान कर सकते हैं। यदि कोई भारतनिवासी जो पौराणिक मत का विश्वासी है अंग्रेजी दर्शन को पढ़कर पौराणिक भ्रान्तियों को अपने मन से दूर कर देता है तो उसके ये अर्थ हैं कि अंग्रेजी दर्शन पुराणों की शिक्षा पर विजयी होता है। यदि अंग्रेजी कालिजों के विद्यार्थी पौराणिक गप्पों को नहीं मानते तो इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि अंग्रेजी का प्रकृतिपूजक दर्शन पौराणिक गप्पों से कहीं बढ़कर है। इसी प्रकार यदि अंग्रेजी दर्शन शास्त्र के विशेषज्ञ सच्चे हृदय से वैदिक सिद्धांतों की शरण लेते हैं तो उससे यह परिणाम निकालना कि वैदिक सिद्धांत पश्चिमी सिद्धांतों पर विजय पाते हैं, कुछ कठिन नहीं। यदि पश्चिमी विज्ञान और दर्शन शास्त्रों के प्रकाण्ड पंडित गुरुदत्त ने वेदों की शरण ली तो इसके स्पष्ट अर्थ यह हैं कि यूरोप और अमरीका ने वेदों का आश्रय लिया।

अध्याय ५

महर्षि के उद्देश्य पर अमरीका के विद्वान् की निष्पक्ष सम्मति

शोक पत्रों की बाढ़ आ गई—प्रेम से मनों को वश में करने वाले परोपकारी की मृत्यु का समाचार सुनकर कौन पुरुष था जिसने सचमुच रक्त के आंसू न बहाये हों। जिन लोगों ने उनके दर्शन किये, उनका उपदेश सुना या उनकी लिखित पुस्तकें देखी थीं, वे उनकी मृत्यु का समाचार सुनने पर आश्चर्य और शोक के समुद्र में डूब रहे थे। पांच हजार वर्ष के पश्चात् पृथिवी की पुरानी राजधानी आर्यावर्त को महर्षि को उत्पन्न करने का सौभाग्य मिला था परन्तु कर्मगति ने इस सौभाग्य को छीन लिया। कहां वृद्ध आर्यावर्त अपने सपूत के यश को सुनकर प्रसन्न हो रहा था और कहां उसको उसके वियोग का दिन देखना पड़ा। महर्षि की मृत्यु कोई साधारण मृत्यु न थी। चारों ओर से हृदयों की उद्विग्नता से भरे तार और शोकपत्र अजमेर पहुंच रहे थे। इन तारों और पत्रों की भारी संख्या उस भारी दुःख को प्रकट करती है जो कि भारत सन्तान ने उनकी मृत्यु पर अनुभव किया था। समाचारपत्र **'देशहितैषी'** अजमेर में लिखा है कि —"हमारे[1] पास इतने शोकपत्र और तारों की भरमार हुई है कि यदि हम उनको वर्ष भर तक इस 'देशहितैषी' पत्र में मुद्रित किये जावें तो भी समाप्त न हों। यहां के तार बाबू बारम्बार यही कहते थे कि ऐसे कौन दयानन्द सरस्वती हैं जिसके इतने तारों के मारे हमको एक क्षण भी अवकाश नहीं मिलता। इतने तार तो कभी लाट साहब के समय में भी देखने में नहीं आये।"

योगी दयानन्द को अपनी मृत्यु का पूर्वाभास था—समाचारपत्र 'थियोसोफिस्ट' ने उनके परलोकगमन का समाचार सुनते ही अपना यह लेख प्रकाशित किया—"हमारे संवाददाता चकित हैं कि क्या स्वामी दयानन्द जैसे योगी को, जिसमें कि योगविद्या की शक्तियां विद्यमान थीं, इस बात की पहले सूचना न थी कि आपकी मृत्यु से भारतवर्ष को महान हानि पहुंचेगी। क्या वे योगी न थे, क्या वे ब्रह्मर्षि नहीं थे ? हम शपथ लेकर कहते हैं कि स्वामी जी को अपनी मृत्यु की सूचना दो वर्ष पहले ही से थी। उनके वसीयतनामे की दो प्रतिलिपियां, जो कि उन्होंने कर्नल आल्काट और मुझ पत्रिका के

1. 'देशहितैषी' अजमेर, खंड २, अंक ८, पृष्ठ १० से।

सम्पादक के पास भेजीं (यह दो प्रतिलिपियां हमारे पास उनकी पिछली मित्रता की स्मृतिस्वरूप विद्यमान है) इस बात का पूरा प्रमाण हैं। उन्होंने हमें मेरठ में कई बार कहा कि हम सन् १८८४ नहीं देखेंगे।"

सहानुभूति प्रकट करने वाले समाचारपत्र—विस्तार के भय से हम सब समाचारपत्रों के लेख यहां प्रकाशित नहीं कर सकते। केवल निम्नलिखित समाचारपत्रों के नाम जिन्होंने पूर्ण सहानुभूति उनकी मृत्यु पर प्रकट की, लिख देना ही पर्याप्त समझते हैं-'देशहितैषी' अजमेर, 'बंगवासी', 'हिन्दीप्रदीप' प्रयाग, 'भारतबन्धु' अलीगढ़, 'सारसुधानिधि' कलकत्ता, 'भारतमित्र' कलकत्ता, 'ज्ञानप्रदायिनी पत्रिका' लाहौर, 'धर्मदिवाकर' कलकत्ता, 'खत्री हितकारी' बनारस, 'भारतमित्र', 'आर्यदर्पण', 'आर्यसमाचार', 'पताका', ट्रिब्यून' लाहौर,[१] 'इण्डियन ऐम्पायर' कलकत्ता,[२] 'इण्डियन क्रानिकल' कलकत्ता, 'हिन्दू' मद्रास, 'टाइम्ज' पंजाब-रावलपिंडी,[३] 'बंगाली' कलकत्ता,[४] 'हिन्दू पैट्रियट कलकत्ता,'[५] 'पायनियर' इलाहाबाद, सिविल एंड मिलिटरी गजट' लाहौर, 'थियोसोफिस्ट',[६] 'इण्डियन मिरर' कलकत्ता, 'गुजरातमित्र'[७] सूरत, 'रीजैनरेटर आफ आर्यावर्त',[८] 'आर्य मैगजीन',[९] 'आर्यपत्रिका', 'गुजराती 'सौराष्ट्र दर्पण', 'राजपुताना गजट' अजमेर, 'अन्जुमन' पंजाब-लाहौर, 'कोहेनूर' लाहौर, 'विक्टोरिया पेपर' सियालकोट, 'केसरी' जालन्धर, 'आफताबे पंजाब, 'देशोपकारक।'

अनेक कवियों ने उनकी मृत्यु के सम्बन्ध में कसीदे (प्रशंसात्मक गीत) शेर, दोहे, छन्द, चौपाई, लावनी आदि लिखीं परन्तु सबमें प्रथम श्रेणी की आर्यकवि चौधरी नवलसिंह जी की यह प्रसिद्ध लावनी है जिसकी टेक निम्नलिखत है—

दयानन्द आनन्दकन्द भये पाखंडन के मत टारन।
हुये जगत् विख्यात चहुं दिशि परमार्थी तरन तारन॥[1]

विदेशियों की सम्मतियां— मोनियर विलियम्ज और मैक्समूलर आदि कई विदेशियों ने स्वामी जी और उनके उद्देश्य के सम्बन्ध में सम्मतियां प्रकट कीं परन्तु विदेशियों के लेखों में प्रथम श्रेणी का निष्पक्ष लेख अमरीका के प्रसिद्ध लेखक एंड्रो जैक्सन डेविस का है, जिसको लेखक ने अपनी पुस्तक[2] में लिखा है और जिसका अनुवाद निम्नलिखित है।

"मुझे एक अग्नि दिखाई देती है जो सार्वभौम है अर्थात् वह असीमित प्रेम की अग्नि, जो घृणा को जलाने वाली है और प्रत्येक वस्तु को जला कर साफ कर रही है। अमरीका के चुटियल क्षेत्रों, अफ्रीका के विस्तृत देशों, एशिया के प्राचीन पर्वतों और यूरोप के विस्तृत राज्यों पर मुझे इस पूर्णतया जलने वाली अग्नि की भड़कती हुई चिनगारियां दिखाई देती हैं। इसकी चर्चा समस्त पिछड़े हुये स्थानों से आरम्भ हुई है। अपने सुख और उन्नति के लिये इसे मनुष्य ने स्वयं प्रज्वलित किया है। पृथ्वी तल पर मनुष्य ही ऐसी सृष्टि है जो आग को जला कर उसे स्थिर रख सकता है। चूंकि पृथिवी की सृष्टि में बोलने वाला (समझदार, बुद्धिमान्) भी यही है इसलिये अपने निवासस्थान में नारकीय अग्नि भड़काने में सबसे प्रथम है। हां, परमहंस की भांति नारकीय मकानों को प्रेम से पवित्र और बुद्धि से प्रकाशित करने वाली आकाशीय अग्नि लाने के लिये भी यही सबसे आगे हैं। इस असीमित अग्नि को देखकर जो निश्चित रूप से राज्यों, राज्यसत्ताओं और संसार भर की राजनीतिक बुराइयों को पिघला डालेगी, मैं अत्यंत आनन्दित होकर एक उत्तेजित उत्साह का जीवन व्यतीत कर रहा हूं। सब ऊंचे-ऊंचे पर्वत जल उठेंगे, घाटियों के सुन्दर नगर भुन जायेंगे। प्यारे घर और प्रेम से भरे हुये चित्त साथ-साथ पिघलेंगे। अच्छे और बुरे मिलकर यों लुप्त होंगे जैसे सूर्य की सुनहरी किरणों में ओस के बिन्दु। असीमित उन्नति की विद्युत से

1. देखो चौधरी नवलसिंह जी द्वारा 'सभा प्रसन्न'

2. एण्ड्रो जैक्सन डेविस द्वारा लिखित 'बियांड दी वैली' (Beyond the Valley), पृष्ठ ३८२।

मानवी चित्त हिल रहा है, आज उसकी केवल चिन्गारियां आकाश की ओर उड़ती हैं। व्याख्यानदाताओं, कवियों और लेखकों की शिक्षाओं में इधर-उधर ज्वालायें दिखाई देती हैं।

यह अग्नि सनातन आर्यधर्म को वास्तविक पवित्र दशा में लाने के लिये एक भट्टी में थी जिसे 'आर्यसमाज' कहते हैं। यह अग्नि भारतवर्ष के परम योगी 'दयानन्द सरस्वती' के हृदय में प्रकाशमान हुई थी। हिन्दू और मुसलमान इस संसार को भस्म करने वाली अग्नि को बुझाने के लिये चारों ओर शीघ्रता से दौड़े परन्तु यह अग्नि ऐसे वेग से बढ़ती गई कि इस वेग का इसके संस्थापक दयानन्द को ध्यान भी न था और ईसाइयों ने भी, जिनके उपासना गृह की आग और पवित्र दीपक पूर्व में ही प्रकाशित हुये थे, एशिया के इस नये प्रकाश को बुझाने के लिये हिन्दू और मुसलमानों का साथ दिया परन्तु यह आकाशीय अग्नि और भी भड़क उठी और फैल गई।...... समस्त बुराइयों का समूह नित्य की शुद्ध करने वाली भट्टी में जल कर भस्म हो जायेगा। जब तक रोग के स्थान पर स्वास्थ्य, मूर्तियों के स्थान पर प्रकृति, पोप के स्थान पर युक्ति, पाप के स्थान पर पुण्य, अविद्या के स्थान पर विज्ञान, घृणा के स्थान पर प्रेम, वैर के स्थान पर समता, नरक के स्थान पर स्वर्ग, दुःख के स्थान में सुख, भूत-प्रेतों के स्थान पर परमेश्वर और प्रकृति का राज्य न हो जाये तब तक यह अग्नि जलती रहेगी। मैं इस अग्नि की दिशा को बधाई देता हूं। जब यह अग्नि सुन्दर पृथिवी को नवजीवन प्रदान करेगी तो सार्वभौम सुख, समृद्धि और आनन्द का युग आरम्भ होगा।"

अध्याय ६

आर्यसमाज ही महर्षि का स्मारक है

पांच हजार वर्ष पहले की बात है, उस समय पाताल देश के आर्य लोग आर्यावर्तीय आर्यों से विवाह सम्बन्ध करते थे, परन्तु जब अविद्यान्धकार के बढ़ने पर लोगों ने जलयात्रा करनी छोड़ दी तो अमरीका वाले आर्यावर्त और यूरोप आदि देशों को और इन देशों के निवासी अमरीका वालों को भूल गये और ऐसे अन्धकार में पड़े कि व्यवहार में एक दूसरे के अस्तित्व तक को अस्वीकार कर बैठे। परन्तु उस अन्ध युग में भी पुरुषार्थ करने वाले 'कोलम्बस' ने पुराने यूनानियों के सुझाव पर चलकर अमरीका की सूचना यूरोप को दी।'कोलम्बस' ने अमरीका को यद्यपि बनाया नहीं था केवल भूले हुओं को उसकी सूचना ही दी है, तो भी आज कोलम्बस के नाम के साथ अमरीका का नाम जुड़ा हुआ है और अमरीका कहते ही कोलम्बस का स्मरण हो आता है।

आर्यसमाज और दयानन्द का शाश्वत सम्बन्ध—पांच हजार वर्ष से पहले आर्यधर्म सभायें या आर्यसमाजें पृथिवी पर सर्वत्र थीं क्योंकि वेदों में आर्यधर्मसभा के स्थापित करने की शिक्षा है परन्तु समय आया जबकि लोग आर्य नाम के साथ आर्यसमाज को भूल गये। आज कैसा शुभ समय है कि महर्षि दयानंद के उपकार से मनुष्य अपने 'आर्य' नाम को प्राप्त कर आर्यसमाज का अस्तित्व देखता है। मुसलमान, ईसाई, नास्तिक, जैनी, पौराणिक आदि किसी भी पुरुष के सामने आप आर्यसमाज का नाम कह दो, वह सुनते ही तत्काल आपको दयानन्द का नाम सुना देगा। यदि कोई अमरीका से कोलम्बस के नाम को पृथक नहीं कर सकता तो क्या कोई आर्यसमाज से उसके संस्थापक स्वामी दयानन्द के नाम को पृथक् कर सकता है ? यदि आर्यसमाज का नाम लेते ही स्वामी दयानन्द सरस्वती का स्मरण हो जाता है तो वास्तव में आर्यसमाज से बढ़कर कोई स्वामी जी का स्मारक नहीं हो सकता।

दूरस्थ देशों में भी—अमरीका सरीखे दूर देशों में चले जाओ, वहां भी आर्यसमाज के साथ स्वामी दयानन्द और स्वामी दयानन्द के साथ आर्यसमाज का नाम बंधा हुआ पायेंगे। अमरीका के विद्वान डेविस[२] अपने लेख में स्वामी दयानन्द से आर्यसमाज को पृथक् नहीं कर सकते। जहां वे स्वामीजी को शुद्ध अग्नि में प्रज्ज्वलित करने वाला-यह गौरवपूर्ण नाम देते हैं, वहां वे 'आर्यसमाज को उस अग्नि की भट्टी बतलाते हैं। यदि अमरीका में बैठे हुये थियोसोफिस्ट स्वामी जी को अपना सहायक बनाते हैं तो वे थियोसोफिकल सोसाइटी को स्वामी दयानन्द के आर्यसमाज की शाखा साथ ही घोषित करते हैं। मैक्समूलर अपनी पुस्तक[1] में स्वयं यह प्रश्न उठाता है कि 'दयानन्द सरस्वती कौन था?' और फिर स्वयं ही उत्तर देता है कि 'दयानन्द सरस्वती' 'आर्यसमाज' का संस्थापक और नेता था।' संसार में बहुत लोग कूप, तालाब, सराय और मकान बनवाते हैं इसलिये कि ईंट और पत्थर उनके नाम का स्मरण कराते रहें। जो वस्तु किसी के नाम को स्मरण करा सके वह उसका स्मारक समझी जाती है और इन अर्थों में आर्यसमाज से बढ़कर स्वामी दयानन्द का कोई स्मारक नहीं हो सकता।

वास्तविक स्मारक स्मरणीय के उद्देश्य का प्रचारक होता है—परन्तु यह नियम नहीं है कि जो चीज किसी के नाम का किसी प्रकार स्मरण करा सके वह उसका स्मारक समझी जाती है। प्रत्युत वास्तव में स्मारक वह है जो किसी महान् आत्मा के उद्देश्य और सिद्धांत के प्रचार करने से उसका स्मरण करा सके। यह अभीष्ट नही है कि स्मारक से स्मरणीय का कोई साधारण काम ही स्मरण हो सके; अपितु स्मारक स्मरणीय के उस विशेष काम का प्रचारक समझा जाता है जिस काम को कोई (स्मरणीय) महापुरुष अपने जीवन में करता रहा हो। उदाहरणार्थ, यदि कोई प्रोफेसर डाण्टन के नाम पर एक प्याऊ चालू कर दे या लोगों को लड्डू बांटने आरम्भ कर दे तो वह कार्यालय, जिसमें लड्डू बनते या बंटते हों, सर्वसाधारण के लिये डाण्टन का स्मारक हो और कदाचित् उस कार्यालय के भीतर डाण्टन का चित्र भी विद्यमान हो परन्तु विचारशील उसको डाण्टन का स्मारक नहीं कह सकते। इसमें सन्देह नहीं कि लड्डू बांटना अच्छे काम में सम्मिलित है परन्तु यह काम विज्ञान के प्रचारक डाण्टन के उद्देश्य से सम्बन्ध न रखता हुआ उसका स्मारक नहीं कहला सकता। स्मारक वह वस्तु होनी चाहिये कि जो अपने उद्देश्य द्वारा उसका बोध करा सके जिस का वह स्मारक है। दूसरे शब्दों में स्मारक में उस महान् पुरुष का उद्देश्य पूर्ण होना चाहिये। यदि कोई ऐसी शाला हो जिसमें यह शिक्षा दी जाये कि मनुष्य क्रमश: लंगूर से मनुष्य के रूप में बदलता गया, तो निस्सन्देह लोग कहेंगे कि यह शाला डारविन का श्रेष्ठ स्मारक है। किसी महात्मा के उद्देश्य के विरुद्ध या उद्देश्य को पूर्ण न करने वाला स्मारक उस महात्मा के जीवन को कलंक लगा सकता है। उदाहरणार्थ, यदि कोई गिरजा ब्रैडला के नाम पर बनाया जाये, परन्तु ध्यान से देखें तो यह स्मारक जो ब्रैडला के उद्देश्य के विरुद्ध है उसको कलंकित करने वाला है। लोग उस शिक्षा को जो कि गिरजा में दी जाये, सुनकर भूल से कह सकते हैं कि ब्रैडला[२] भी इसी प्रकार जीवन में बाइबिल का प्रचार करता रहा होगा यद्यपि वह बाइबिल की शिक्षा का घोर विरोधी था। इसी प्रकार यदि कणाद या पतंजलि महर्षि के नाम पर कोई अंग्रेजी शाला चालू कर दे तो यह शाला कणाद और पतंजलि का स्मारक नहीं कहला सकती; भले ही इन महर्षियों का नाम उस शाला के साथ क्यों न लगा हो!

नाम जुड़ा होने पर भी स्मारक—किसी महात्मा के उद्देश्य को पूर्ण करता हुआ कोई कार्यालय उस महात्मा का स्मारक कहला सकता है, अन्यथा कदापि नहीं। यह आवश्यक नहीं कि उस कार्यालय के साथ महात्मा का नाम भी हो। यदि नाम नहीं और उद्देश्य पूर्ण हो रहा है तो संसार निस्संन्देह उसको स्मारक कहता है कि जैसे कि आर्यसमाज। यद्यपि उसके साथ महर्षि दयानन्द का नाम नहीं लगा हुआ, परन्तु महर्षि के उद्देश्य को पूर्ण करने से उनका स्मारक बन रहा है।

---

1. मैक्समूलर 'बायोग्राफिकल ऐसेज' (Biographical Essays) पृष्ठ १८३

परन्तु दयानन्द प्रेस,दयानन्द हस्पताल, दयानन्द बाजार, दयानन्द स्कूल, दयानन्द साबुन और ऐसी ही असंख्य वस्तुयें जो महर्षि के उद्देश्य को पूर्ण नहीं कर सकतीं, कभी महर्षि का स्मारक कहलाने की अधिकारिणी नहीं हो सकतीं चाहे, उनके साथ महर्षि का नाम क्यों न लगा हुआ है ।

स्थूल पदार्थ वास्तविक स्मारक नहीं है—स्थूलदर्शी पुरुषों ने संसार के इतिहास में स्थूल वस्तुयें स्मारक समझी हैं । जैसे मुसलमान लोग मदीने को अपने पूर्वजों का स्मारक समझते हैं । ईसाई लोग सलीब (सूली) के चिन्ह को अपने गुरु का स्मारक बतलाते हैं । बौद्ध लोग बुद्ध की मूर्ति को उसका स्मारक ठहराते हैं । संसार की असभ्य जातियों के आचार-व्यवहार को इकट्ठा किया जाये तो उसमें सार यह निकलता है कि वह किसी स्थूल पदार्थ को अपने किसी महात्मा का स्मारक बनाते हैं परन्तु वे स्थूल पदार्थ भी भिन्न-भिन्न हैं जो उनके विचार में स्मारक का काम देते हैं । यही नहीं कि संसार स्मारक के विषय में भूल कर रहा है । प्रत्युत साधारण बातों को भूल से कुछ का कुछ समझा हुआ है । उदाहरणार्थ, सुन्दरता को लीजिये और देखिये कि किस प्रकार एक दूसरे के विरुद्ध लोगों ने काल्पनिक सुन्दरता घड़ ली है जैसे चीनी लोग उस स्त्री को सुन्दर मानते हैं जिसके पांव बहुत ही छोटे हों और जिससे नियमित रूप से बिलकुल चला ही न जाये । यूरोपियन लोग उस स्त्री को सुन्दर मानते हैं, जिसकी कमर पतली हो । हब्शी लोग उसको सुन्दर मानते हैं जिसके होंठ उभरे हुये हों, परन्तु विद्वान और डाक्टर बतलाते हैं कि सन्तुलित शरीर का होना या पूर्ण आरोग्य का नाम सच्ची सुन्दरता है । ठीक इसी प्रकार संसार ने स्मारक के विभिन्न पैमाने घड़ लिये हैं परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि कोई स्थूल पदार्थ किसी चेतन महात्मा का स्मारक नहीं हो सकता । यदि मान भी लें कि कोई स्थूल पदार्थ किसी महात्मा का स्मारक हो सकता है तो यह स्मारक अत्यन्त थोड़ी प्रसन्नता और लाभ का देने वाला और उसके सामने वह स्मारक हो सकता है जिससे उसके उद्देश्य की पूर्ति हो बहुत प्रसन्नता और महान् लाभ देने वाला सिद्ध होता है । उदाहरणार्थ, दो मनुष्य स्वामी दयानन्द का स्मारक स्थापित करते हैं—एक तो चित्र बनाकर बेचता है और दूसरा लोगों के लिये गुरुकुल खोलकर ब्रह्मचर्याश्रम की नींव डालता है । यदि चित्र या फोटो लोगों को उनके स्मरण कराने से कोई लाभ पहुंचा सकता है तो यह लाभ उस लाभ के सामने जो कि गुरुकुल पहुंचा सकता है, बहुत ही तुच्छ समझना चाहिये । ध्यान से देखें तो महात्माजन अपनी आकृति, अपना नाम, अपना चित्र या अपने कुल की बड़ाई बेचने नहीं आते परन्तु वह श्रेष्ठ सिद्धांतों का प्रचार करते हुये अपने नाम तक की चिन्ता नहीं करते । वे चाहते हैं कि सच्चे, अखंड, अटल नियमों की महिमा जानकर लोग आनन्द उठायें । इसलिये उनका सच्चा स्मारक वही कहला सकता है जो उन नियमों का या उनके उद्देश्य रूपी सिद्धांतों की महानता का लोगों को उनके समान ही बोध कराता रहे ।

स्मारक और उद्देश्य—स्मारक किसी न किसी उद्देश्य की पूर्ति का साधन होता है, इसको हिन्दू पौराणिक लोग भी व्यावहारिक रूप में जानते हैं । पौराणिक लोग यदि यह समझते हैं कि उनकी काली देवी रक्त पीती थी तो वे उसके स्मारक में, जो कलकत्ता में उन्होंने एक मंदिर के रूप में स्थापित किया है, अब तक भी सैंकड़ों मूक पशुओं के गले काटकर लोगों को एक अपवित्र सिद्धांत की शिक्षा देते हैं और प्रकट कर रहे हैं कि हम काली के उद्देश्य को इस मन्दिर में, जो कि उसका स्मारक है, पूरा कर रहे हैं । उनके अतिरिक्त ठाकुरद्वारे विशेष भ्रमपूर्ण उद्देश्य को पूरा करते हुये स्मारक बन रहे हैं । वैष्णव लोग अपने मन्दिरों में कभी शाक्त मत की शिक्षा नहीं देते । चीनी अपने मन्दिरों में जिसको वे अपने पूर्वजों का स्मारक समझते हैं, कभी पुराणों की शिक्षा नहीं देते । बुद्ध के पैगोड़ों में कभी पौराणिक लोगों की मूर्तियां नहीं रखी जातीं । शंकराचार्य के मठों में कभी नवीन वेदांत के विरुद्ध प्रचार नहीं किया जाता । सारांश यह कि जो स्मारक किसी न किसी महात्मा का मान रखा है, वह उस स्मारकरूपी संस्था को उस महात्मा के उद्देश्य के विरुद्ध नहीं चलाता प्रत्युत उस स्मारक को उसके उद्देश्य की पूर्ति का चाहे वह उद्देश्य कैसा ही अपवित्र या भ्रमपूर्ण क्यों न हों, साधन बनाता है ।

स्वामी जी ने अपनी बनाई संस्थायें क्यों तोड़ दीं?—स्वामी जी उस संस्था के साथ सम्बन्ध रखते थे जिससे उनका उद्देश्य पूर्ण होता रहे। यदि वे देखते थे कि कोई संस्था हमारे उद्देश्य को पूर्ण नहीं करती तो वे स्वयं ही उसके विरोधी और उसको तोड़ने वाले हो जाते थे। फर्रूखाबाद आदि स्थानों की पाठशालायें इस बात को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त दृष्टांत हैं। यद्यपि इन पाठशालाओं में अष्टाध्यायी, महाभाष्य आदि आर्ष ग्रन्थ उत्तमता से पढ़ाये जाते थे परन्तु जब विद्यार्थी आर्ष ग्रन्थ पढ़ने पर भी पौराणिक ही बनकर निकलने लगे तो स्वामी जी ने इन शालाओं को स्वयं तोड़ देना ही उचित समझा। इससे हमें जानना चाहिये कि कोई संस्था जो स्वामी जी के उद्देश्य पूर्ण करने का साधन नहीं हैं वह उनका कभी स्मारक नहीं कहला सकती। सम्भव है मनुष्य किसी संस्था का नाम सुनकर उसको महर्षि का स्मारक समझ लें परन्तु इस बात का निश्चय करने के लिये कि यही स्मारक है, मनुष्य को उस संस्था के उद्देश्य और कार्यवाही की पड़ताल कर लेनी चाहिये। हम ब्राह्मण का नाम सुनकर किसी विशेष पुरुष के सम्मान के लिये उद्यत हो जाते हैं परन्तु उसके ब्राह्मण नाम को छोड़कर उसके काम की पड़ताल करें तो फिर निश्चय हो सकता है कि वास्तव में यह ब्राह्मण है या नहीं। इसी प्रकार किसी महात्मा के सच्चे स्मारक को जानने के लिये हमें उसके नाम को छोड़कर उस उपदेश-शिक्षा को देख लेना चाहिये जो उसमें दिया जाये। इस वर्णन से यह सिद्ध है कि सच्चा स्मारक किसी उद्देश्य की पूर्ति का साधन हुआ करता है और इस सिद्धांत को समझते हुये हम पाते हैं कि आर्यसमाज जहां महर्षि के नाम को स्मरण कराने वाला है, वहां उनके उद्देश्य की पूर्ति का निस्संदेह प्रबल और सबसे श्रेष्ठ साधन है।

ईंट-पत्थर किसी का स्मारक नहीं बन सकते—पंडित गुरुदत्त जी अपने व्याख्यानों में कहा करते थे कि 'ईंट-पत्थर पर किसी ऋषि का नाम खुदवा देने से ऋषि का स्मारक नहीं बन सकता; प्रत्युत यदि ऋषि का स्मारक स्थापित करना चाहते हो तो उन सिद्धांतों का प्रचार करके दिखाओ जिन सिद्धांतों का प्रचार स्वयं वे ऋषि करते रहे हैं। स्वामी दयानन्द का स्मारक यही है कि वेद के सिद्धांतों का संसार में प्रचार हो जाये।'

ऋषि का वसीयतनामा क्या कहता है—यदि स्वामी जी अपना वसीयतनामा न छोड़ते तो कदाचित् कोई कह सकता कि हमें स्वामी जी का उद्देश्य विदित नहीं, परन्तु जब उनका वसीयतनामा विद्यमान है तो कोई भी ऐसा कहने का साहस नहीं रखता। यह वसीयतनामा बतला रहा है कि यदि स्वामी जी कुछ काल और जीते तो निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति के लिये अपना समय लगाते।

स्वामी जी के वसीयतनामे में लिखा उनका उद्देश्य

(१) वेद और वेदांग आदि शास्त्रों के प्रचार अर्थात् उनकी व्याख्या करने-कराने, पढ़ने-पढ़ाने, सुनने-सुनाने, छापने-छपवाने आदि में।

(२) वैदिकधर्म के उपदेश और शिक्षा के लिये उपदेशक मंडली नियत करके देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में भेज कर सत्य का ग्रहण और असत्य के त्याग कराने आदि में।

(३) आर्यावर्त के अनाथ और दरिद्र मनुष्यों के पालन और शिक्षा में इस सभा का कोष प्रयुक्त किया जावे।

महर्षि के इस उद्देश्य को पूर्ण करने के लिये आर्यसमाज का अस्तित्व है। इसलिये आर्यसमाज के अतिरिक्त कोई भी अन्य उनका सच्चा स्मारक नहीं है। आर्यसमाज में सम्मिलित होने के लिये स्वयं महर्षि लोगों को बुला रहे हैं।[1] आर्यसमाज ऐसा शुभ स्मारक है कि इसकी नींव का पत्थर स्वयं महर्षि ने अपने हाथों से रखा है। इस स्मारक की कीर्ति

1. देखो 'सत्यार्थप्रकाश', पृष्ठ ३८६।

संसार भर में फैली हुई है। आर्यसमाज की वृद्धि से वेदधर्म की उन्नति हो सकती है। कभी वह दिन भी आयेगा जब कि भूगोल के सब द्वीपों में आर्यसमाजरूपी वृक्ष की शाखायें स्थापित होंगी। वह दिन आयेगा जबकि 'उपदेशक मंडली' की दृढ़ नींव स्थापित करने के लिये पुरुषार्थ करते हुये महर्षि की वसीयत को पूरा करने से ऋषिसन्तान कहलाने के अधिकारी हो सकेंगे। स्वामी जी का जीवन यदि साथ देता तो वे स्वयं इस 'उपदेशक मंडली' को अत्यन्त आकर्षक अवस्था में कर जाते परन्तु उन्होंने गौरीशंकर शर्मा को वैदिकधर्मसभा, जयपुर[3] का वैतनिक उपदेशक नियत करके इस महान् कार्य की दृढ़ नींव स्वयं डाली थी। अब इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये आर्यसमाजों ने वेदप्रचार फंड स्थापित किया है ताकि देश-देश और नगर-नगर में वैदिकधर्म का प्रकाश फैलाकर अविद्यान्धकार का नाश कर सके।

यदि कलकत्ते की एशियाटिक सोसाइटी के सदस्यों के कारण[1] यूरोप को प्राचीन शास्त्रों के महत्व का लेशमात्र बोध हुआ तो इस सोसाइटी से कई गुणा बढ़ाकर आर्यसमाज के सदस्यों के कारण यूरोप, अमरीका आदि सब देशों को वेद आदि सत्य शास्त्रों की महिमा का पूर्ण बोध न होगा? यदि आज पाश्चात्य लोग एशियाटिक सोसाइटी के आभारी हैं तो कल इससे बढ़कर आर्यसमाज और उसके संस्थापक महर्षि दयानन्द के आभारी होंगे।

अध्याय ७

महर्षि की रचनायें और वैदिक शिक्षा

ऋषियों के शिक्षा-साधन—स्वामी जी के जीवन के दो भाग हैं, एक वह काल जिसमें अमर जीवन का यह अन्वेषक अमृत के स्रोत की खोज में फिरता रहा और दूसरा वह भाग जिसमें अमृतपान कर लेने के पश्चात् मनुष्यमात्र को इस अमृत को देने का यत्न करता रहा। दोनों भागों में हम उन्हें पुरुषार्थ करते हुये पाते हैं। पहले भाग में अपने लिये और दूसरे में औरों के लिये। दोनों भागों में हम उन्हें यात्रा करता पाते हैं। दोनों भागों में हम उन्हें कष्टों की चट्टानों से घिरा हुआ पाते हैं। पहले भाग को यदि बीज कहें तो दूसरा भाग उसका फल है। दोनों में हम उन्हें सफल होता देखते हैं। पहले भाग में यदि उनके साधन ब्रह्मचर्य और योग थे तो दूसरे भाग में हम उनको वाणी और लेख के साधन काम में लाता पाते हैं। यदि पहले साधन उन्नति के साधन थे तो पिछले साधन प्रचार के साधन हैं। यदि कोई प्रश्न करे कि महर्षि ने अन्तिम भाग में लिखित या मौखिक उपदेश के काम को हाथ में क्यों लिया, क्यों इसके अतिरिक्त और कोई उत्तम साधन न थे तो हम कहेंगे कि जैसे उन्नति के ब्रह्मचर्य तथा योग अद्वितीय और पूर्ण साधन हैं वैसे ही संसार की काया पलटने के लिये मौखिक और लिखित उपदेश के साधन पूर्ण और अद्वितीय हैं। मौखिक उपदेश वह परम उत्तम साधन है जिसको प्राचीन समय में आश्रमियों के शिरोमणि संन्यासी लोग ग्रहण किया करते थे और इस उपदेश के बल पर सब मनुष्यों का कल्याण करते थे। ऋषि लोग जहां मौखिक उपदेश करते थे वहां आवश्यकतानुसार लिखित उपदेश भी करते रहे हैं। क्या महर्षि पाणिनि की अष्टाध्यायी, महर्षि पतंजलि का योगदर्शन, ब्रह्मवेत्ता ऋषियों की उपनिषदें, शतपथ आदि ब्राह्मण, निरुक्त, निघण्टु आदि पुस्तकें उनके लिखित उपदेश का फल नहीं हैं?

अन्धकारयुग में ज्ञान-प्रचार के साधन—ऋषियों के काल को छोड़कर हम अन्धकार-युग में भी दीपक का प्रकाश फैलाने वालों को इन दो ही साधनों को व्यवहार करते हुये पाते हैं। बुद्ध ने इसी उपदेश के बल से धर्म के साधनों का संसार

---

2. 'साइंस आफ लैंगवेज' (Science of Language) पृष्ठ २२०। सर विलियम जोन्स, विलकिन्स, केरी, फारस्टर, कोलबुक आदि ऐशियाटिक सोसाइटी के सदस्य हैं जिन्होंने संस्कृत के कोषों का संकेत पाश्चात्य संसार को दिया है।

में प्रचार किया और आज पचास करोड़ से अधिक मनुष्य इस उपदेश के महान् साधन के महत्त्व की जीवित साक्षी विद्यमान हैं। शंकर, ईसा, मुहम्मद, डारविन आदि अनेक पुरुषों ने मौखिक और लिखित उपदेश से ही काम लिया है। उपदेश के इस महत्त्व को स्वयं महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश[1] की भूमिका में इस प्रकार वर्णन किया है—'सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्यजाति की उन्नति का कारण नहीं है।'

मैडम साहिबा के नाम एक पत्र में उनके इस प्रकार वचन लिखे हैं जिनसे भी उपदेश के महत्व का बोध हो रहा है—'हम आर्यों और आर्यसमाजों की कदापि हानि नहीं है। हम लोग जब से सृष्टि और वेद का प्रकाश हुआ है, उसी समय से आज पर्यन्त उसी बात को मानते आते हैं। क्या हुआ कि अब थोड़े समय से अपनी अज्ञानता और उत्तम उपदेश के बिना बहुत से आर्य वेदोक्त मत से कुछ-कुछ विरुद्ध और बहुत से अनुकूल आचरण भी करते हैं। अब जिसकी प्रसन्नता हो अपनी और सबकी उन्नति के लिये इस आर्यसमाज में मिलें।'

सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में महर्षि लिखते हैं—'इस बिगाड़ के मूल महाभारत युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुये थे क्योंकि उस समय में ऋषि-मुनि भी थे तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते बढ़ गये। जब सच्चा उपदेश न रहा तब आर्यावर्त में अविद्या के फैलने से परस्पर लड़ने-झगड़ने लगे, क्योंकि जब-जब उत्तम उपदेशक होते हैं तब-तब अच्छे प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सिद्ध होते हैं और जब उत्तम उपदेशक और श्रोता नहीं रहते तब अन्ध परम्परा चलती है। जब सत्पुरुष उत्पन्न हो कर सत्योपदेश करते हैं तभी अन्ध परम्परा नष्ट होकर प्रकाश की परम्परा चलती है।'

'लीवर' के प्रयोग को दृष्टांत—'लीवर' का प्रयोग करने वाले बुद्धिमान् कारीगर बड़े भारी बोझों को सरलता से उठा सकते हैं और लीवर का यह सिद्धांत मनुष्य की भुजा में ही पाया जाता है। एक दार्शनिक ने लीवर को उठाने की अदभुत शक्ति को गौरव दिलाने के लिये कहा था कि 'मुझे पर्याप्त सामग्री और लीवर दे दो; मैं पृथिवी को उठा सकता हूं।' यह कथन तो अवश्य अत्युक्ति है परन्तु जब हम यह कहें कि सत्योपदेश मनुष्यजाति को ऊपर उठाने का एक अचूक और अत्यन्त शक्तिशाली लीवर है तो इसमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं। ऐसे शक्तिशाली उपदेश रूपी लीवर को लिये हुये महर्षि गिरी हुई मनुष्य जाति को उठाने का यत्न करता रहा और अन्त में सफल हुआ।

स्वामी जी के लिखित व मौखिक उपदेशों का फल— उनके मौखिक उपदेश का फल यदि आर्यसमाजें हैं तो लिखित उपदेश का फल उनकी रचनायें हैं। मौखिक उपदेश वे अपने जीवन में ही हमें सुना सकते थे परन्तु उनकी रचनायें आज उन मौखिक उपदेश के स्थान पर काम कर रही हैं। इस समय संसार उनके भाषण को नहीं सुन सकता परन्तु रचनाओं को पढ़ सकता है। सच पूछो तो उनकी पुस्तकें ही आज हमें उनकी ओर से उपदेश देती हुई स्वस्ति और शान्ति का वेदमार्ग दर्शा रही हैं।

सत्य सनातन सिद्धांत—इससे पूर्व कि हम उन सिद्धांतों का वर्णन करें जिनकी उन्होंने लिखित शिक्षा दी है, यह वर्णन करना आवश्यक है कि ये सिद्धांत उनके अपने मन से घड़े हुये या नवाविष्कृत नहीं हैं, अपितु प्रकृति के समकालीन हैं और उतने ही प्राचीन हैं। इन सिद्धांतों का आधार ईश्वरीय ज्ञान वेद है। इनका दूसरा नाम **'वैदिक-सत्य-सिद्धांत'** है। ये सब सच्चे सिद्धांत हैं जिनको मनुष्यजाति आदि सृष्टि से लेकर महाभारत के काल तक मानती रही है। ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि तक जितने ऋषि, महर्षि,मुनि, महामुनि पृथिवी पर हुये, सब एकमत होकर मानते रहे। यही नहीं, प्रत्युत ये वे सत्य सिद्धांत हैं जिनको अब भी बुद्धमान् लोग मान रहे हैं और भविष्यकाल में भी मानेंगे। इन सिद्धांतों की नींव केवल

---

1. 'सत्यार्थप्रकाश', पृष्ठ ३।

सत्य पर है । सृष्टिनियम इनकी सच्चाई का अचूक गवाह (साक्षी) है । ये किसी विशेष जाति या सम्प्रदाय के सिद्धांत नहीं हैं । ये ईरान, चीन, भारतवर्ष आदि किसी देश की चारदीवारी में बंधे रहने वाले सिद्धांत नहीं और न ही ये हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी, पारसी, जैनी आदि किसी मत या सम्प्रदाय के सिद्धांत हैं । जैसे संसार के लिये एक ही वायु, एक ही जल, एक ही सूर्य लाभ पहुंचाने वाला है, वैसे मनुष्यमात्र के लिये ये एक ही आत्मिक सूर्य के समान हैं । सचाई से समस्त संसार सहमत हो सकता है । दो और दो को चार समस्त संसार कहने को तैयार है । सब देशों में लोग सप्ताह के सात दिन और वर्ष के १२ महीने मानते हैं । सब स्थानों पर लोग शान्ति की इच्छा करते हैं । ठीक इसी प्रकार इन वैदिक सिद्धांतों के स्वीकार करने के लिये प्रत्येक मनुष्य प्रकृति की ओर से तैयार बनाया गया है । आंख सूर्य के प्रकाश के लिये तैयार है, आत्मा सचाई की इच्छुक है । वैदिक सचाई प्रकृति की जीवित पुस्तक की व्याख्या है । इन सिद्धांतों की वास्तविकता समझने के लिये प्रत्येक मनुष्य को विचार की दृष्टि से महर्षि के निम्नलिखित शब्दों का अध्ययन करना चाहिये—'सर्वतन्त्र सिद्धांत अर्थात् साम्राज्य सार्वजनिक धर्म जिसको सदा से सब मानते आये, मानते हैं ओर मानेंगे भी इसीलिये उसको सनातन नित्यधर्म कहते हैं कि जिसका विरोधी कोई भी न हो सके । यदि अविद्यायुक्त जन अथवा किसी मतवाले के भ्रमाये हुये जन, जिसको अन्यथा जानें वा मानें उसका स्वीकार कोई भी बुद्धिमान् नहीं करते किन्तु जिसको आप्त अर्थात् सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, परोपकारक, पक्षपातरहित विद्वान् मानते हैं वही सबको मन्तव्य और जिसको नहीं मानते वह अमन्तव्य होने से प्रमाण के योग्य नहीं होता । अब जो वेदादि सत्य शास्त्र और ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्तों के माने हुये ईश्वरादि पदार्थ हैं जिनको मैं भी मानता हूं सब सज्जन महाशयों के सामने प्रकाशित करता हूं । मैं अपना मन्तव्य उसी को जानता हूं जो तीन काल में सबको एक सा मानने योग्य हैं । मेरा कोई नवीन कल्पना व मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है किन्तु जो सत्य है उसका मानना मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझको अभीष्ट है । यदि मैं पक्षपात करता तो आर्यावर्त में प्रचरित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता किन्तु जो जो आर्यावर्त व अन्य देशों में अधर्मयुक्त चालचलन हैं उनका स्वीकार और जो धर्मयुक्त बाते हैं उनका त्याग नहीं करता, न करना चाहता हूं क्योंकि ऐसा करना मनुष्यधर्म से बहिः है । मनुष्य उसीको कहना कि जो मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख दुःख और हानि लाभ को समझे, अन्यायकारी बलवान से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे, इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं की चाहे वे महाअनाथ, निर्बल और गुणरहित क्यों न हों उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती, सनाथ, महाबलवान और गुणवान भी हों तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहां तक हो सके वहां तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारी के बल की उन्नति सर्वथा किया करे । इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भले ही जावें परन्तु इस मनुष्यपनरूप धर्म से पृथक् कभी न होवे ।'[1]

सार्वभौम सचाइयां—जिन सिद्धांतों की वे शिक्षा देते रहे उनका दूसरा नाम सार्वभौम सचाइयां हैं । इनको ही हम वेदोक्त सिद्धांत कहते हैं । इन्हीं को स्वामी जी स्वयं मानते और दूसरों को मनवाते थे । इन्हीं का उपदेश वे अपनी रचनाओं में कर गये हैं । यह जान लेने के पश्चात् कि वे सार्वभौम सिद्धांतों की शिक्षा देते रहे, अब हमें नमूने के रूप में उन सिद्धांतों से परिचय प्राप्त करना आवश्यक है ।

सबसे प्रथम उन्होंने पथभ्रष्ट संसार को ईश्वर के विषय में वेदोक्त शिक्षा दी—जिह्वा भोजन को चखती हुई उस को स्वीकार करती है परन्तु विष के चखने पर उसको कदापि स्वीकार नहीं करती । आमाशय जहां अन्न को पचा लेता है वहां विष को वमन या अतिसार के द्वारा निकालता हुआ अपनी घृणा प्रकट करता है । कान यदि राग की सुरीली वाणी को

---

1. 'सत्यार्थप्रकाश', पृष्ठ ५९९-६०० (तृतीयावृत्ति) ।

स्वीकार करते हैं तो चीख को स्वीकार करने से इन्कार करते हैं। नासिका यदि सुगन्ध को स्वीकार करती है तो दुर्गन्ध को कदापि स्वीकार करना नहीं चाहती। प्रत्येक इन्द्रिय स्वाभाविक अवस्था में अपने विषय को स्वीकार और विष को छोड़ने के लिये उद्यत है परन्तु इन साधारण इन्द्रियों से बढ़कर एक और सबकी राजा अनोखी अनुभवशक्ति है जिसका नाम बुद्धि है, जो आत्मा को आत्मिक भोजन स्वीकार करने या छोड़ने में सदा सहायता देती है। सिद्धांत और नियम इन्हीं अनुभवशक्तियों के राजा के सामने उपस्थित किये जाते हैं। उनमें से जो आत्मा का भोजन बनने के योग्य होते हैं उनको यह अनुभवशक्ति स्वीकार कर लेती और जो आत्मा के लिये विष का प्रभाव करने वाले हैं उनका त्याग कर देती है।

धर्म में बुद्धि का हस्तक्षेप उचित है— पांच हजार वर्ष से लगातार मनुष्य के इस अनुभवशक्तियों के राजा को घूस देने का मतमतान्तरों ने यत्न किया ताकि यह विष को भोजन और भोजन को विष कह दे। मतों के शिक्षकों ने इस श्रेष्ठ अनुभवशक्ति का गला घोंटने का यत्न किया। सैंकड़ों पन्थाइयों और सम्प्रदायवादियों ने आत्मा की इस देखने वाली सूक्ष्म आंख को फोड़ना चाहा ताकि वह अपने काल्पनिक मनघड़न्त सिद्धांतों के विष आत्मा को भोजन के रूप में दे सके। इस समय संसार में पुराणी, जैनी, किरानी, कुरानी मत एकमत होकर कह रहे हैं कि धर्म में बुद्धि को अधिकार नहीं। जिसके अर्थ ये हैं कि वह आत्मा को उसकी बुद्धि की आंख से अन्धा करके अपने मत का प्रकाश दिखाना चाहते हैं। वे युक्ति के आगे ठहर नहीं सकते। मनुष्य की बुद्धि इन मतों के सिद्धांतों को कदापि स्वीकार नहीं कर सकती। इसके विपरीत वेदधर्म युक्ति के अनुकूल है। वेदों में कोई बात ऐसी नहीं जिसको मनुष्य की बुद्धि स्वीकार न करे। संसार भर में एक वेदधर्म ही है जो आत्मा की आंख को फोड़ना नहीं चाहता। महर्षि दयानन्द लिखते हैं—'मैं[1] वेदों में कोई बात युक्तिविरुद्ध व दोष की नहीं देखता और उन्हीं पर मेरा मत है।

यह नहीं कि महर्षि दयानन्द की यह व्यक्तिगत सम्मति हो प्रत्युत समस्त ऋषि-मुनि वेदों को युक्ति-अनुसार ही पाते हैं। महर्षि कणाद कहते हैं कि—

बुद्धिपूर्वा[2] वाक्यकृतिर्वेदे।

अर्थात् वेद का कोई मन्त्र बुद्धि के विरुद्ध नहीं। महर्षि मनु जी कहते हैं कि—

यस्तर्केणानुसन्धत्ते तस धर्म वेद नेतरः।

अर्थात् जो युक्ति से सिद्ध हो वही वेद का धर्म है, और नहीं।

निरुक्त[3] के रचयिता महर्षि यास्क कहते हैं कि तर्क ही ऋषि है। स्वयं वेदों में कई मन्त्र विद्यमान हैं जिनमें मनुष्य को बुद्धि से काम लेने की शिक्षा दी गई है इसलिये वेदधर्म के सिद्धांत वे समझ सकते हैं जो अपनी बुद्धि का प्रयोग करते हैं, जो इस राजा और ऋषि का पद रखने वाली बुद्धि को आत्मा की आंख मानते हैं। जिनकी आत्मा की आंख फूट गई हो वे यदि वैदिक सिद्धांतों को न समझ सकें तो वेदों का दोष नहीं, प्रत्युत उनका दोष है।

वेदानुयायियों से भिन्न लोगों की तर्कहीन आस्था—किरानी और कुरानी लोग एक काल्पनिक ईश्वर के विश्वासी हैं जिसके गुणों को श्रेष्ठ बुद्धि कभी स्वीकार नहीं कर सकती। अपूर्ण बुद्धि रखने वाले नास्तिक और जैनी लोग अन्धकार

---

1. 'भ्रान्तिनिवारण' पृ० ५।

2. वैशेषिकदर्शन अध्याय ६, सूत्र १।

3. निरुक्त, अध्याय १३, खंड १२।

में पड़े हैं; वे ईश्वर की सत्ता को ही अस्वीकार कर बैठे हैं। पौराणिक लोगों ने अपने भ्रम और काल्पनिक गुणों का समूह ईश्वर को मान रखा है। नवीन वेदान्ती लोगों ने बुद्धि का अनुचित प्रयोग करके सबको ईश्वर ही ईश्वर बतला दिया। अब संसार सचमुच नास्तिक है। यदि जैनी, चार्वाक, बौद्ध, यूरोप के प्रकृति-पूजक, एवोल्यूशन के विश्वासी ईश्वर के गुणों और सत्ता को अस्वीकार करते हैं तो पुराणी, किरानी और नवीन वेदान्ती या थियोसोफिस्ट ईश्वर में मिथ्या गुणों की स्थापना करने वाले आस्तिक नहीं हो सकते। यदि किसी वस्तु को न जानना अविद्या है तो किसी वस्तु को उलटा जानना अविद्या से रहित नहीं हो सकता।

अन्धकार में आंखें भी काम नहीं देतीं—पाश्चात्य विज्ञान की पुकार मचाने वाले वर्तमान नास्तिक यद्यपि युक्ति की आंखों से देखना चाहते हैं परन्तु अन्धकार में आंखों से कौन देख सकता है? यदि पुराणी, किरानी और कुरानी आंखों को फोड़ना चाहते थे तो वर्तमान पाश्चात्य नास्तिक निश्चय ही आंखों को बचाना चाहते हैं परन्तु यदि वे अन्धे होने के कारण नहीं देख सकते थे तो ये अन्धकार के कारण देखने में असमर्थ हैं। विज्ञान के दीपक के प्रकाश में युक्ति काम करती हुई एक परिमित दूरी तक ही देख सकती है, उससे परे नहीं। पश्चिमी विज्ञान और नास्तिकपन प्रकृति और शक्ति को दो भिन्न-भिन्न अंगादि वस्तु मानकर आगे चलने में असमर्थ हैं और इससे परे दीपक के प्रकाश में देखने की उसमें सामर्थ्य नहीं। प्रोफेसर डाण्टन अपनी इस अवस्था को इस प्रकार वर्णन कर रहा है—'हम जहां प्रकृति की उत्पत्ति को नहीं समझते वहां शक्ति की उत्पत्ति को भी नहीं जानते। जहां प्रकृति है वहां शक्ति है क्योंकि हम केवल प्रकृतिं को उसकी गतियों से ही पहचानते हैं। हम प्रकृति में कोई चीज बढ़ा नहीं सकते और न ही उससे कुछ घटा सकते हैं।'

पाश्चात्य विज्ञान की सीमा— पाश्चात्य विज्ञान ईश्वर के एक गुण, गति (शक्ति) को जानकर थक गया है और इससे परे नहीं जा सकता। गति-शक्ति को प्रकृति से पृथक् अनादि मानकर अब विज्ञान इस गतिशक्ति के विषय में और अधिक जानने में असमर्थ है परन्तु वेदसूर्य की ज्योति हमें दिखला रही है कि प्रकृति में यह गतिशक्ति परमेश्वर की ही भरपूर हो रही है। जिस परमेश्वर के गुणों का पश्चिमी संसार को तो ज्ञान नहीं है और पूर्वी संसार को जिसके विषय में विपरीत ज्ञान हो रहा है, उसके विषय में वेद बतलाता है 'तदेजति'[1] तन्नैजति' अर्थात् वह परमेश्वर सब को गतिशील बना रहा है और स्वयं अचल है। उपनिषद् वेद के आशय का इस प्रकार समर्थन कर रहा है कि—

'स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च'। अर्थात् वह परमेश्वर ज्ञान, बल और क्रिया स्वरूप है।

नास्तिकों को उत्तर—कुछ नास्तिक इस प्रकार कहा करते हैं कि 'इस संसार का कर्त्ता न था, न है और न होगा; प्रत्युत अनादि काल से यह संसार ऐसा ही चला आ रहा है, न कभी यह बना और न कभी नष्ट होगा'। इसका उत्तर महर्षि इस प्रकार देते[2] हैं—

'बिना कर्त्ता के कोई भी क्रिया वा क्रियाजन्य पदार्थ नहीं बन सकता। जिन पृथिवी आदि पदार्थों में संयोग विशेष से रचना दीखती है, वे अनादि कभी नहीं हो सकते। और जो संयोग से बनता है वह संयोग के पूर्व नहीं होता और वियोग के अन्त में नहीं रहता। जो तुम इसको न मानो तो कठिन से कठिन पाषाण हीरा और फौलाद आदि तोड़, टुकड़े कर, गला वा भस्म कर देखो कि इनमें परमाणु पृथक्-पृथक् मिले हैं वा नहीं? जो मिले हैं तो समय पाकर अलग-अलग भी अवश्य होते हैं।'

---

1. यजुर्वेद अध्याय ४०, मंत्र ५।

2. सत्यार्थ प्रकाश, अष्टम समुल्लास, पृष्ठ २१८।

प्रश्न[1]—'स्वभाव से जगत् की उत्पत्ति होती है जैसे पानी, अन्न एकत्र हो सड़ने से कृमि उत्पन्न होते हैं। बीज पृथिवी, जल के मिलने से घास वृक्षादि और पाषाणादि उत्पन्न होते हैं जैसे समुद्र वायु के योग से तरंग ओर तरंगों से समुद्रफेन, हल्दी, चूना ओर नींबू के रस मिलने से रोरी बन जाती है वैसे सब जगत् तत्त्वों के स्वभाव गुणों से उत्पन्न हुआ है। इसका बनाने वाला कोई भी नहीं।'

उत्तर—'जो स्वभाव से जगत् की उत्पत्ति होवे तो विनाश कभी न होवे और जो विनाश भी स्वभाव से मानो तो उत्पत्ति न होगी और जो स्वभाव युगपत् द्रव्यों से मानोगे तो उत्पत्ति और विनाश की व्यवस्था कभी न हो सकेगी और जो निमित्त के होने से उत्पत्ति और नाश न मानोगे तो निमित्त उत्पन्न और विनष्ट होने वाले द्रव्यों से पृथक् मानना पड़ेगा। जो स्वभाव ही से उत्पत्ति और विनाश होता तो समय ही में उत्पत्ति और विनाश का होना सम्भव नहीं। जो स्वभाव से उत्पन्न होता हो तो इस भूगोल के निकट में दूसरा भूगोल चन्द्र, सूर्य आदि उत्पन्न क्यों नहीं होते ? और जिस-जिसके योग से जो उत्पन्न होता है वह-वह ईश्वर के उत्पन्न किये हुये बीज, अन्न,जलादि के संयोग से घास, वृक्ष और कृमि आदि उत्पन्न होते हैं, बिना उनके नहीं। जैसे हल्दी, चूना और नींबू का रस दूर-दूर देश से आकर आप नहीं मिलते; किसी के मिलाने से मिलते हैं। उसमें भी यथायोग्य मिलाने से रोरी होती है, अधिक न्यून वा अन्यथा करने से रोरी नहीं होती। वैसे ही प्रकृति, परमाणुओं का ज्ञान ओर युक्ति से परमेश्वर के मिलाये बिना जड़ पदार्थ स्वयं कुछ भी कार्यसिद्धि के लिये विशेष पदार्थ नहीं बन सकते। इसलिये स्वभावादि से सृष्टि नहीं होती, किन्तु परमेश्वर की रचना से होती है।'

सत्यार्थप्रकाश के बारहवें समुल्लास में ऋषि लिखते हैं—'बिना चेतन परमेश्वर द्वारा निर्माण किये जड़ पदार्थ स्वयं आपस में स्वभाव से नियमपूर्वक मिलकर उत्पन्न नहीं हो सकते। जो स्वभाव ही से होते हों तो द्वितीय सूर्य, चन्द्र, पृथिवी और नक्षत्रादि लोक आप से आप क्यों नहीं बन जाते हैं ?'

यही नहीं कि उन्होंने ईश्वर से इन्कार करने वाले सब प्रकार के नास्तिकों के आक्षेपों का उत्तर दिया हो प्रत्युत वे पौराणिक आदि[2] लोगों को भी, जिन्होंने ईश्वर के मिथ्या गुण घड़ लिये हैं, वेदों के प्रमाण देते हुये उचित रूप से ईश्वर के सच्चे गुणों के अर्थ बतलाते हैं और सत्यार्थप्रकाश के सातवें समुल्लास में उन्होंने निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनादि, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी की व्याख्या की है।

ईश्वर में विरोधी गुणों की समस्या का समाधान—इस व्याख्या में उन्होंने धार्मिक संसार की शताब्दियों की समस्याओं को सुलझा कर साफ कर दिया है। धार्मिक संसार दयालु और न्यायकारी ईश्वर के दो गुणों को परस्पर विरोधी मान रहा था परन्तु योगिराज की व्याख्या ने बतला दिया कि दयालु और न्यायकारी वास्तव में समानार्थक हैं, विरोधी नहीं। धार्मिक संसार सर्वशक्तिमान् के अर्थ अपने भ्रम अनुसार यहां तक समझ रहा था कि ईश्वर मनुष्य के शरीर में संसार में प्रकट होता है परन्तु महर्षि की सच्ची वेदोक्त व्याख्या ने ऐसे भ्रमजाल को काटकर लोगों को बतला दिया कि सर्वशक्तिमान् के अर्थ यह हैं कि वह अपने काम करने में किसी की सहायता नहीं लेता और यह नहीं कि वह अपने गुण, कर्म, स्वभाव बदल दे। ऐसे मिथ्या गुणों ने संसार में लोगों को ईश्वर से विमुख कराकर नास्तिक बना दिया था और शताब्दियों से धार्मिक संसार इस कठिनाई को दूर करने में असमर्थ दिखाई देता था परन्तु आज महर्षि के कारण धार्मिक संसार की ये समस्यायें सुलझ गईं।

---

1. सत्यार्थप्रकाश, पृष्ठ २१८।

2 आदि के भीतर बाइबिल और कुरआन के मानने वाले आ जाते हैं।

कारण का कारण क्यों नहीं ?—जो लोग कहा करते थे कि कारण का कारण होना चाहिये अर्थात् ईश्वर का भी ईश्वर होना चाहिये, उनका उत्तर महर्षि अत्यन्त सरल दृष्टांत द्वारा प्रकट करके देते हैं जिससे मनुष्य को फिर संदेह उत्पन्न ही न हो । वे आठवें समुल्लास में लिखते हैं—'क्या आंख की आंख, दीपक का दीपक और सूर्य का सूर्य कभी हो सकता है ? सूर्य सब वस्तुओं को दिखाता है परन्तु सूर्य को देखने के लिये कभी किसी ने दूसरे सूर्य की आवश्यकता अनुभव नहीं की । इसी प्रकार ईश्वर सब का निमित्त कारण है, उसके कारण का ढूंढना बुद्धिमत्ता में सम्मिलित नहीं । पाश्चात्य विज्ञान ने लोगों को इतना तो बता दिया कि प्रकृति और गतिशक्ति दोनों एक-दूसरे से पृथक् अनादि वस्तु हैं । इसके अर्थ यह हैं कि प्रकृति और गति (वास्तव में ईश्वर) दोनों अनादि और अपने आप में स्थित हैं । कोई मनुष्य कभी प्रश्न नहीं करेगा कि प्रकृति की प्रकृति क्या है या गति की गति क्या है ? अर्थात् कारण का कारण हो नहीं सकता इसलिये ईश्वर का भी ईश्वर पूछना भूल है ।

वेद के प्रमाणों, शास्त्रों के उद्धरणों और अद्वितीय युक्तियों से महर्षि अनादि आत्माओं के शासक, सृष्टि के कर्त्ता, जीवों के पाप-पुण्य के फलप्रदाता, अनादि सच्चिदानन्द ईश्वर की सत्ता सिद्ध करते और उसका आत्मा से प्रत्यक्ष होना बतलाते हुये ईश्वर के गुण आर्यसमाज के नियम संख्या २ में इस प्रकार लिखते हैं:—

"ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, नित्य, पवित्र ओर सृष्टिकर्त्ता है । उसी की उपासना करनी योग्य है ।"

इसी बात को सारगर्भित रीति से सत्यार्थप्रकाश के अन्त में भी लिखते हैं जिससे उनका अभिप्राय मतमतान्तरों और नास्तिकों के संसार को दिखलाने का है कि हम सृष्टि के कर्त्ता वेदोक्त ईश्वर को इस प्रकार मानने वाले हैं—'ईश्वर कि जिसके ब्रह्म, परमात्मादि नाम हैं, जो सच्चिदानन्दादि लक्षण युक्त है, जिसके गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं, जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्त्ता, धर्ता, हर्ता, सब जीवों को कर्मानुसार सत्य न्याय से फलदाता आदि लक्षणयुक्त है, उसी को परमेश्वर मानता हूं ।'

महर्षि सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास में शास्त्रोक्त प्रमाणों से बतलाते हैं —"सर्ववेद, शास्त्र, ब्रह्मचर्य आदि महासाधनों का उद्देश्य इसी ईश्वर की प्राप्ति कराना है" मुक्ति जो कि मनुष्य जन्म का अन्तिम सर्वोत्तम फल है वह परमेश्वर प्राप्ति ही का नाम है । समस्त शुभकर्म जो किये जाते हैं उनका फल आत्मा को शुद्ध करके ईश्वरदर्शन के योग्य बनाना है । वर्णाश्रम के धर्म विद्या और पुरुषार्थ सब ईश्वर प्राप्ति के मार्ग के साधन हैं । आत्मा कभी मृत्यु के भय से रहित होकर आनन्द नहीं पा सकता जब तक कि वह ईश्वरदर्शन न कर ले । आत्मिक, शारीरिक और सामाजिक उन्नति मनुष्य को ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में चलने की योग्यता देती है । वेदोक्त ईश्वर के भूलने और उसकी उपासना से रहित होने के कारण ही आज भूमंडल श्मशान का रूप बन रहा है । ईश्वर को न जानने और उसके मिथ्या गुणों को मानने के कारण ही आज मनुष्य जाति में वैर और शत्रुता फैल रही है, और हिंसा, अन्याय के कारण आज पृथिवी लहू-लुहान हो रही है । ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव को धारण करने का नाम धर्म है परन्तु आज इस धर्म के न होने के कारण अर्थ, काम और मोक्ष के स्थान पर अधर्म, अनर्थ, कुकाम और बन्ध के नरक में मनुष्य जाति व्याकुल हो रही है । नास्तिक, मन्दमति और पन्थाई लोगों ने संसार को ईश्वर से विमुख करा कर पाप और पीड़ा के समुद्र में गिरा दिया है । पांच हजार वर्ष के पश्चात् संसार ने परम हितकारी, शिरोमणि सिद्धांत के सच्चे अर्थ आज महर्षि दयानन्द के कारण समझे । सुखों की सिद्धि का आस्तिकपन रूपी बीज आज स्वामी दयानन्द सरस्वती ने मूर्तिपूजा, मनुष्यपूजा, पदार्थपूजा की जड़ काटते हुये मन्दिरों, मूर्तिस्थानों, गिरजों, मस्जिदों, पैगोड़ा

की युक्ति को प्रबल भूकम्प से गिराते हुये पूर्वी भ्रान्तियों और पश्चिमी प्रकृति-पूजा के अन्धकार को वेदसूर्य से छिन्न-भिन्न करते हुये बो दिया है । भूमंडल पर से क्लेश और मृत्यु के परम दुःख को जीतने वाला ईश्वरास्तित्व का परम सिद्धांत दिखा दिया है । आनन्द की इच्छा करने वाले आत्माओं के लिये इससे बढ़कर मंगल समाचार क्या हो सकता है कि महर्षि के ग्रंथ और वेदभाष्य इस परमात्मा के महत्त्व को निर्भ्रान्त रीति से प्रकाशित कर रहे हैं । महर्षि का यह परम उपकार भविष्य में आने वाली सन्तानें स्मरण करती हुई अपने जीवन से उनका धन्यवाद करेंगी ।

तीन पदार्थ अनादि हैं[१]—अनेक मतावलम्बी कह रहे थे कि केवल एक ईश्वर ही ईश्वर है; उससे भिन्न कोई वस्तु नहीं और इसके साथ ही वे यह मानते थे कि वह ईश्वर निर्दोष और पवित्र है । जब उनसे प्रश्न होता कि संसार में लोग पाप, व्यभिचार, रक्तपात करते हुये दिखाई देते हैं और यदि ईश्वर के अतिरिक्त वह आत्मा को भी अनादि मानते होते तो उत्तर दे सकते, परन्तु उस दशा में जब कि वह आत्मा का अनादि होना मानते ही न थे, तो क्या उत्तर दे सकते । यही नहीं कि वे आत्मा को ईश्वर से पृथक् नहीं मानते थे प्रत्युत प्रकृति को भी ईश्वर ही बतलाते थे और जब उन्हें कहा जाता कि प्रकृति में ज्ञान नहीं तो तुम्हारा ईश्वर भी ज्ञान से रहित होगा, तो फिर मौन रहने के अतिरिक्त कोई उत्तर न दे सकते थे ।

अभाव से भाव के सिद्धांत को वे अपने सहारे के लिये लेते थे परन्तु जब इस सिद्धांत का प्रमाण मांगा जाता और कहा जाता है कि रेत में से तेल क्यों नहीं निकलता तो विवश होकर चुप हो जाते । मतमतान्तरों का संसार समस्याओं के गोरखधन्धे को इस प्रकार सुलझाना चाहता था परन्तु सुलझाने का यत्न करते-करते वह अपने आपको अयोग्य सिद्ध कर रहा था ।

नास्तिक लोग आत्मा को प्राकृतिक परिणाम मान रहे थे और आजकल के एवोल्यूशन के विपुल राग में यह स्वर अलापते हुये सुनाई देते थे कि जीव मर कर नष्ट हो जाता है । मृत्यु के पश्चात् शरीर से पृथक् आत्मा कोई वस्तु रहने वाली नहीं है और न कोई संसार का शासक है जो आत्माओं को दण्ड और पुरस्कार देवे परन्तु जब उनसे प्रश्न होता कि यदि मृत्यु के साथ आत्मा की समाप्ति हो जायेगी तो संसार से सभ्यता और सदाचार को जड़ से काट देना चाहिये क्योंकि बुरे और भले कर्मों का फल न मिलता है और न कोई देने वाला है । निर्धनों को सताओ, माता-पिता को जूते लगाओ, न्याय का गला घोंटो, मद्य-मांस का सेवन करो । जो जी में आये सो करो; कर्मफल कोई वस्तु है नहीं, आत्मा कुछ नहीं है, ईश्वर कोई नहीं है । यह सुनकर कट्टर नास्तिक तक भी घबरा जाते और उत्तर देते कि ऐसे तो सभ्यता के बिना संसार रूपी यह संस्था आज नष्ट हो सकती है । सभ्यता और न्याय के बिना सोसाइटी (समाज) का एक पल भर भी विद्यमान रहना असम्भव है । नास्तिकों के मस्तिष्क डार्विन की इस मनगढन्त उक्ति जिसकी लाठी उसकी भैंस पर ध्यान देते थे परन्तु उनके हृदय उनके मस्तिष्क का विरोध करते हुए न्याय का समर्थन कर रहे थे । उनके हृदय और मस्तिष्क में परस्पर घरेलू युद्ध और अत्यन्त उद्विग्नता विद्यमान थी । उनकी उद्विग्नता द्विगुण हो जाती जब उनको कहा जाता कि ज्ञान प्रकृति का गुण नहीं फिर जीव में जिसको तुम प्रकृति, परमाणुओं का परिणाम कहते हो, यह कहां से आ गया और यदि ईश्वर कर्मफलप्रदाता नहीं तो सारे जीव एक-सी दशा में ही क्यों नहीं ? इन बातों का उत्तर देने में नास्तिक असमर्थ थे । विज्ञान के दीपक ने प्रकृति के सनातनत्व और अनादित्व को मनवाते हुये 'भाव से भाव' के सिद्धांत का अनुयायी बना रखा था परन्तु उलझनों का सुलझाना दीपक के बस का काम न था ।

महर्षि दयानन्द का उपदेश—धार्मिक, नास्तिक और वैज्ञानिक संसार इस प्रकार अन्धेरे में टटोल रहा था कि महर्षि दयानन्द ने वेदमंत्र[1] सुनाते हुये युक्तियों की प्रबल चुम्बकीय शक्ति के प्रभाव में भटकती हुई अशांत आत्माओं को स्थिर

---

1. ऋग्वेद मंडल १, सूक्त १६४, मंत्र २० (सत्यार्थप्रकाश, अष्टम समुल्लास)।

करके बतला दिया कि ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनों अनादि हैं जिस प्रकार अग्नि लोहे में सूक्ष्म होने के कारण रह सकती है उसी प्रकार प्रकृति और आत्मा में परमसूक्ष्म परमेश्वर व्यापक होकर अनादि काल से जगत् का स्वामी बन रहा है। जीव प्राकृतिक साधनों द्वारा कर्म करता हुआ ईश्वर के न्याय से फल को प्राप्त होता है।

शब्द, अर्थ तथा उनके सम्बन्धरूप वेद ईश्वरोक्त हैं

जैसे सूर्य के प्रकाश से ऊष्णता को पृथक् नहीं कर सकते वैसे ही भाषा को ज्ञान से पृथक् नहीं कर सकते। जहां शब्द है वहां अर्थ है, जहां भाषा है वहां ज्ञान विद्यमान है। सोचना यह है कि क्या ज्ञान और भाषा मनुष्य के अपने आविष्कार हैं या ईश्वर की ओर से उसको पुरस्कार रूप में मिले हैं। मिश्र के सम्राट सामी टीकम ने इस बात को जानने के लिये कि मनुष्य कहां तक भाषा बनाने में सफल हो सकता है, दो दूध पीते बच्चों को एक गडरिये को सौंप दिया और आज्ञा दी कि इनको केवल बकरी का दूध पीने को दिया जाये और इनके सामने कोई शब्द किसी प्रकार का जिह्वा से न निकाला जाये। गडरिये ने इस आज्ञा का पालन किया और जब बच्चे बड़े हो गये तो देखा कि वे कोई भी भाषा नहीं जानते। स्वाबीन, फ्रैडरिक द्वितीय, जेम्स चतुर्थ और अकबर सरीखे सम्राटों ने भी मनुष्य की भाषा (का मूल्य) जानने के लिये यही प्रयोग किये और उसी असफलता का मुख देखा। इन प्रयोगों ने दार्शनिकों को सिखला दिया कि भाषा मनुष्य के लिये बनी-बनाई तैयार होती है। बच्चों का काम भाषा बनाना नहीं प्रत्युत बनी-बनाई भाषा का प्रयोग सीखना है।[1]

डारविन और उससे सहमत हैस्ले वेजवुड और केननफार ने इस बात के प्रकट करने का यत्न किया कि भाषा ईश्वर का प्रसाद नहीं, प्रत्युत शनैःशनै चीखों और पशुओं के शब्द की नकल करने से विकसित होकर वर्तमान अवस्था को पहुंची है। डारविन की इस बात का प्रबल खंडन प्रोफेसर नायर ने किया और प्रोफेसर नायर के समान, मैक्समूलर भी इस बात में डारविन का खंडन कर रहा है। मैक्समूलर हमें बतलाता है कि भाषा चीखों ओर पशुओं के शब्द की नकल से नहीं बनी है। प्रोफेसर पाट भी डारविन के सिद्धांत का खंडन भली भांति करता हुआ बतलाता है कि—"भाषा में वस्तुतः किसी ने कभी वृद्धि नही की। परिवर्तन केवल रूप में ही होते रहे हैं। किसी भी पिछली पीढ़ी ने किसी भी नई एक भी धातु का आविष्कार नहीं किया, जैसे कि प्राकृतिक संसार में किसी ने कोई नया तत्व नहीं बढ़ाया। हम कह सकते हैं कि एक रूप में हम उन्हीं शब्दों को बोल रहे हैं जो आरम्भ में ही मनुष्य के मुख से निकले थे[2]।"

आदि मनुष्य की भाषा—लॉक, एडम स्मिथ, डेवगल्ड स्टुआर्ट आदि के कथनानुसार मनुष्य बहुत काल तक गूंगा रहा। संकेतों और भवें चढ़ाने से काम चलाता रहा और जब काम न चला तो फिर भाषा का आविष्कार कर लिया और फिर शास्त्रार्थ करने से शब्दों के अर्थ नियत कर लिये परन्तु इन तीनों का खंडन मैक्समूलर ने यह कहते हुये कर दिया है कि "मैं नहीं समझता कि भाषा के बिना उनके मध्य शास्त्रार्थ तब तक कैसे चालू रह सका होगा और वे परस्पर एकमत हो सके होंगे।"

आगे चलकर मैक्समूलर हमें बतलाता है "मेरा विशेष काम इस बात को सिद्ध करना है कि भाषा मनुष्य का आविष्कार नहीं"। "हम अफलातून से सहमत रहते हुये कह सकते हैं कि शब्द प्रकृति से बने बनाये मिले हैं और अफलातून के शब्दों में इतनी वृद्धि कर देनी चाहिये कि प्रकृति का अर्थ 'ईश्वर की ओर से' है।"

---

1. एफ० मैक्समूलर द्वारा लिखित 'साइंस आफ लैंग्वेज', पृष्ठ ४८१।

2. आर० सी० ट्रैंच डी० डी० द्वारा रचित 'स्टडी आफ वर्डस'(Study of Words)।

"मनुष्य को अपनी आरम्भिक और पूर्ण अवस्था में जंगली पशु की भांति केवल इच्छाओं और संवेदना को प्रकट करने की शक्ति नहीं दी गई थी परन्तु उसको अपने मन के विचारों को वाणी द्वारा प्रकट करने की शक्ति दी गई थी और यह शक्ति मनुष्य ने स्वयं नहीं बनाई, यह आत्मिक शक्ति थी ।"

भाषा का ज्ञान हमें इस बात को सिद्ध कर दिखाता है कि "समस्त संसार में एक ही भाषा बोली जाती थी ।"

कोलरिज का कथन है "भाषा मनुष्य की आत्मा का हथियार है ।" ट्रेंच कहता है "मैं अत्युक्ति नहीं करता जब कि यह कहूं कि जो नवयुवक यह जान लेता है कि शब्द जीवित शक्तियां हैं, वह ज्ञान से मानों नई गति प्राप्त करता हुआ एक नये संसार में प्रविष्ट हो जाता है ।"

भाषा का तात्त्विक स्वरूप—भाषा के विषय में वर्णन करता हुआ वह इस बात का खंडन करता है कि यह चीत्कारों की नकल करने से शनैःशनै बनी है । वह बतलाता है कि ऐसी अवस्था में भाषा एक घटना के रूप में हो जाती है और साथ ही कहता है कि यदि यह मनुष्य का आविष्कार है तो अत्यंत जंगली जातियों में भाषा न होनी चाहिये क्योंकि जो रोटी तक नहीं पका सकते, उनमें भाषा क्यों पाई जाये ? परन्तु भाषा की हम यह अवस्था नहीं पाते क्योंकि दक्षिणी अफ्रीका के जंगली यापापान प्रदेश के मनुष्यभक्षी पुरुष जो कि जंगलीपन की चरमसीमा पर हैं—वे भी भाषा रखते हैं और उसी के द्वारा व्यवहार करते हैं परन्तु इस बात का सच्चा उत्तर कि भाषा किस प्रकार से उत्पन्न हुई, यह है कि ईश्वर ने मनुष्य को वाणी दी; ठीक वैसे ही जैसे उसने उसको बुद्धि दी; क्योंकि मनुष्य का शब्द विचार ही है जो कि बाहर प्रकाशित होता है ।

ईश्वर ने मनुष्य को तोते के समान शब्द बाहर से पढ़ाये नहीं परन्तु मनुष्य को शक्ति दी और फिर उसकी शक्ति को उत्तेजित किया ।

जंगली मनुष्यों की भाषायें प्रत्येक अवस्था में इस बात को सिद्ध कर रही हैं कि वह किसी गौरव पूर्ण और उत्तम वाणी के ध्वंसावशेष हैं । जंगलियों की भाषा उनकी आकृति के समान कुरूप बन गई । चिरकाल तक आत्मघात करने से ये लोग अधोगति को प्राप्त हुये और किसी भारी क्रान्ति के कारण संसार के उन प्रदेशों से, जो उन्नति के केन्द्र थे, निकाले जाकर कोनों ओर टापुओं में शरणागत हुये । तब प्रत्येक उत्तम भाव नष्ट हुआ और साथ ही शब्द जो कि उन भावों को प्रकट करते थे, नष्ट हो गये । भाषा के तर्कशास्त्र का नाम व्याकरण है और शब्द अनियमित चिन्ह नहीं हैं ।

आगे चलकर ट्रेंच बतलाता है कि बच्चे स्वभावतः ही यौगिक शब्द पसन्द करते हैं और शब्दों के यथार्थ अर्थ जानने के लिये हमें उन शब्दों के धात्विक अर्थ अवश्य जान लेने चाहियें; अन्यथा शब्द स्मरण नहीं रहेंगे । जैसे कविता की आत्मा होमर की रचनाओं में झलकती है; वैसे एक-एक शब्द के भीतर कविता विद्यमान है ।"

भाषा मनुष्य कृत नहीं है

अधिक विस्तार न करके हम यही कहना चाहते हैं कि 'एवोल्यूशन' के अनुयायियों का यह निरा भ्रम है कि भाषा क्रमशः चीखों से बनी है । यह बात वैसी ही मिथ्या और व्यर्थ है जैसा कि बन्दर से मनुष्य बनना । राजाओं ने प्रयोगों से सिद्ध किया और इसी परिणाम पर पहुंचे कि वाणी को मनुष्य स्वयं नहीं बना सकता । अफलातून सरीखे विद्वानों ने भी वाणी को मनुष्यकृत नही बतलाया था । आजकल भाषा विज्ञान के जानने वालों ने अन्धेरे में टटोलते हुये भी इस बात का पता लगाया है कि भाषा मनुष्यकृत नहीं है । संसार में इस समय ९०० के लगभग भाषायें प्रचलित हैं । इतनी भाषाओं में धातुओं की बनावट एक ही प्रकार की ज्ञात होने पर ही मैक्समूलर सरीखे विदेशी विद्वान् इस बात को स्वीकार कर रहे हैं कि संसार की भाषा कभी एक ही थी । हम उन नियमों और विधियों को जिनका कि मैक्समूलर और अन्य जर्मन दार्शनिकों ने प्रयोग

किया है, ठीक नहीं मानते । इन विचारकों ने मध्य में इबरानी आदि बोलियों को आर्यन बोलियों के कुल से पृथक प्रकट किया है परन्तु एक सामान्य दीपक के प्रकाश में जितना काम उन्होंने किया है, उससे अधिक उत्तम काम की उनसे आशा करनी ही भूल है । एक स्थान पर मैक्समूलर बतलाता है कि शब्द के बिगाड़ का कारण मनुष्य का आलस्य होता है । इसी बात को अधिक विस्तार के साथ हम इस प्रकार वर्णन कर सकते हैं कि शुद्ध वाणी मनुष्य के अज्ञान और (प्रयोग की) स्वच्छन्दता के कारण स्वाभाविक दशा से बिगड़ कर अवनत होती गई । परन्तु स्वच्छन्दता का उचित प्रयोग करने पर मनुष्य स्वाभाविक दशा से आगे नहीं बढ़ सकता; क्योंकि मनुष्य स्वभाव से आगे नही बढ़ सकता; हां उसके अनुकूल चल सकता है ।

उदाहरण से इस बात को यों समझना चाहिये कि गंगोत्री का जल प्रकृति के उदर से निकलने के समय पवित्र होता है । मनुष्य की अपवित्रता और बनावट के कारण वह गंदला ओर मटमैला होता चला जाता है । परन्तु मनुष्य यदि पूरी सावधानी रखे तो गंगोत्री के जल को उसी दशा में रख सकता है । उसको अधिक श्रेष्ठ बनाना तो उसकी शक्ति से बाहर है क्योंकि मनुष्य प्रकृति के अनुकूल चल सकता है न कि उसको उन्नत कर सकता है । इसके अर्थ हैं कि मनुष्य अपनी अविद्या और स्वच्छन्दता द्वारा प्राकृतिक वस्तुओं का अनुचित प्रयोग करके उन प्राकृतिक पवित्र वस्तुओं को दूषित बना देता है परन्तु किसी दशा में भी वह प्रकृति को अधिक उत्कृष्ट नहीं बना सकता । नैसर्गिक अवस्था में वस्तु का एक ही रूप हो सकता है परन्तु कृत्रिम ओर विकृत दशा में उसके उस एक रूप के हजारों रूप बन सकते हैं । इसलिये विभिन्न कृत्रिमतायें एक ही वास्तविकता का संकेत देती हैं । मेज, कुर्सी, चारपाई, लेखनी यद्यपि आकार-प्रकार में भिन्न-भिन्न हैं परन्तु सब एक ही प्राकृतिक लकड़ी की बनी हुई हैं । इसी प्रकार यूनानी, लातीनी, इबरानी, अरबी, फारसी आदि भाषायें यद्यपि आकार प्रकार में एक-दूसरे से भिन्न हैं, परन्तु वस्तुतः सबकी सब एक ही मनुष्य का एक ही स्वाभाविक, सनातन ओर पूर्ण भाषा की बिगड़ी हुई या कृत्रिम दशायें हैं ।

मैक्समूलर के इस लेख में दोष यह है कि वह सैमिटिक भाषाओं को आर्यन भाषाओं से पृथक् समूह में रखता है क्योंकि इस लेख के अर्थ यह हो सकते हैं कि सैमिटिक भाषायें मनुष्य की आविष्कृत हैं यदि वे आर्यन भाषाओं के बिगाड़ से नहीं बनीं और इस बात को मैक्समूलर आदि कदापि स्वीकार नहीं कर सकते कि कोई मनुष्य भाषा आविष्कृत कर सकता है । जब यह बात है तो यही मानना पड़ता है कि सैमिटिक भाषायें उन भाषाओं का कृत्रिम रूप हैं जो भाषायें पहले प्रचलित होंगी । हम इस बात को विस्तारपूर्वक सिद्ध कर सकते हैं कि सैमिटिक भाषायें निस्सन्देह आर्य भाषाओं के समूह से ही सम्बन्ध रखती हैं परन्तु विस्तार का भय हमें ऐसा करने की आज्ञा नहीं देता । इस प्रकार के कई दोषों के होने पर भी अन्त में मैक्समूलर स्वयं यह कहता है—"यह सच हो सकता है कि आर्यन भाषाओं के धातु, आकृति और अर्थ में सैमिटिक, अराल, आल्टिक, बण्टो और औशीनिया की भाषाओं से मिलते हैं ।" और फिर इस भारी और आवश्यक प्रश्न का कि मनुष्य की एक ही भाषा थी, यह उत्तर देता है "निस्सन्देह एक थी ।"

परन्तु यह भाषा कौन-सी एक थी या है, इसका निश्चित उत्तर देना मैक्समूलर की शक्ति से बाहर है ।

संसार की भाषाओं की जननी

यूरोप में एक काल था जब लोग मानते थे कि इबरानी भाषा से संसार की सब भाषायें निकली हैं परन्तु लेबनिज ने लोगों को इस बात से हटा दिया और हर्विस ने इस बात का सर्वथा खंडन किया । हर्विस ने यह भी कहा कि जैसा यूनानियों ने भारतवासियों से दर्शन आदि सीखे हैं वैसे ही संभवतः शब्द या भाषा भी उधार ली होगी । हर्विस के विचारों की पूर्ति करने वाला ऐगलिंग था । इसके पश्चात् यूरोप के इतिहास में भाषा-विज्ञान के विषय में एक विचित्र काल आता है । इस

काल को 'संस्कृत की खोज' का काल कहते हैं। जैसे अमरीका की खोज ने यूरोप को नये संसार का पता बतला दिया। 'संस्कृत जो कि हिन्दुओं की प्राचीन भाषा है उसका ज्ञात होना बिजली की चमक के बराबर रहा।' संस्कृत के महाद्वीप की हरी भरी पृथ्वी का साक्षी देने वाले बढ़ने लगे और यूरोप में इसके अध्ययन में रुचि उत्पन्न हो गई। सर विलियम जोन्स जब भारतवर्ष में आया तो संस्कृत का अध्ययन कर कह उठा कि 'यह भाषा अत्यन्त विचित्र बनावट की है, यूनानी से भी अधिक पूर्ण, लातीनी (Latin) से अधिक विस्तृत, दोनों से बढ़कर मूल्यवान और दोनों से बहुत सम्बन्ध रखती है।' इन शब्दों को सुनकर लोग सर्वथा दंग रह गये। पादरियों ने सिर हिलाये, विद्वानों को संदेह हो गया, और विचारक घबरा उठे और मन में डरने लगे कि यह खोज संसार के इतिहास के क्रमों को उलट पुलट कर देगी।

इस खोज से लार्ड मानबाडो, जो मिस्री भाषा को सब भाषाओं का उद्गमस्थान बतला रहा था, ऐसा घबराया मानो संस्कृत की खोज की बिजली उस पर टूट पड़ी और आज संस्कृत ने जो सम्मान और कीर्ति यूरोप में प्राप्त की है, उसका अनुमान निम्नलिखित लेख से लग सकता है—

"तब[1] श्रीयुत पंडित श्यामजी कृष्ण वर्मा ने देशदशा पर अति उत्तम प्रकार से व्याख्यान दिया। इस देश के प्राचीन सौभाग्य का वर्णन कर वर्तमान के अभाग्य को बताया और कहा कि वह समय ऐसा था कि देश-देश के मनुष्य इस देश में विद्या ग्रहण करते थे, इसमें कुछ सन्देह नहीं कि संस्कृत-विद्या सब विद्याओं का मुकुटमणि है। उसकी प्रशंसा, उसका आदर भाव जैसा कुछ यूरोप, अमरीका, जर्मनी इत्यादि देशों मे होता है, हमारे देश में लेश मात्र भी नहीं। आक्सफोर्ड में सरकार के अतिरिक्त केवल रईस व साहूकार लोग ही चालीस लाख रुपया वार्षिक इसी विद्या की शिक्षा के लिये देते हैं। अब कहो उस नगर की उपमा इस देश के कौन से नगर को देवें। इसके उपरांत संस्कृतविद्या का प्रत्यक्ष प्रमाण यह देख लो, यदि मुझको संस्कृत न आती तो मैं ग्रीक (यूनानी), लैटिन (लातीनी) भाषा ऐसी शीघ्र न सीख सकता। लन्दन नगर में मिस्टर ग्लैडस्टोन से मेरी भेंट हुई। उस समय मैंने संस्कृत की योग्यता दिखलाई तब वे मुझसे कहने लगे कि मैं इस बात का बड़ा शोक करता हूं कि मेरी आयु अधिक हो गई, यदि मैं दस वर्ष भी कम होता तो संस्कृत अध्ययन आरम्भ कर देता। हे आर्य भ्रातृगण! देखो अन्यदेशीय पुरुषों के मन में संस्कृत का कैसा आदरभाव है ?"

भाषा-विज्ञान का स्रोत, संस्कृत भाषा—यूरोप के विद्वान 'साइन्स आफ लैंग्वेज (भाषा विज्ञान) की उत्पत्ति का कारण संस्कृत के अध्ययन को बतला रहे हैं और दिन रात संस्कृत के रत्नों को खोजने में संलग्न हैं। संस्कृत की महत्ता के कारण उनकी दृष्टि में भारतवर्ष की महत्ता है और भारतवर्ष के दर्शन करने की इसी कारण से उनको बड़ी इच्छा है। विद्वान् हम्बोल्ट "मरते दिन तक सभ्यता की प्राचीन भूमि भारतवर्ष के दर्शनों को तड़पता रहा" और आज यूरोप और अमरीका में संस्कृत के लिये विद्वानों के हृदय में आश्चर्यजनक सम्मान उत्पन्न हो रहा है परन्तु संस्कृत की पूर्ण महत्ता का जानना और उसकी गुप्त शानदार शक्तियों को अनुभव करना, उसकी अत्यंन्त पवित्र, मूल्यवान, पूर्ण और स्वाभाविक वेद शब्दरूपी मूर्ति के दर्शन करना पश्चिम के विद्वानों की शक्ति के बाहर था। उसका दर्शन कराना महर्षि दयानन्द के हाथ में था। महर्षि ने बतला दिया कि संसार भर की भाषाओं की सच्ची माता वैदिक शब्दों के रूप में विराजमान हो रही है। महर्षि के 'वेदभाष्यभूमिका' आदि ग्रन्थों ने विचारकों और विद्वानों को उस माता का यथार्थ स्वरूप बतलाते हुये निर्भ्रान्त रीति से उसके मनोहर दर्शनों से खोज करने वालों को तृप्ति दी। भूगोल की सर्व भाषाओं की परम जननी का नाम वैदिक शब्द या वेदवाणी है जिसका आज सब पर महर्षि ने प्रकाश कर दिया। यदि संस्कृत की खोज ने विद्युत की चमक के समान सीमित विचारों के दुर्ग तोड़ने से विद्वानों को आश्चर्य में डाला था तो वैदिक शब्दों का तेजोमय पुंज भाषा-विज्ञान के दीपक को

---

1. 'देशहितैषी' अजमेर, खंड २, अंक १०, माघ मास, संवत् १९४० से।

मात करता हुआ खोज करने वालों को पांच हजार वर्ष के पश्चात् मनुष्य की आरम्भिक, वास्तविक, पूर्ण और स्वाभाविक एक भाषा पर अधिकार दिलायेगा। जिस भाषा को अफलातून से बुद्धिमान् स्वाभाविक बतलाते थे, जिस एक स्वाभाविक भाषा की शताब्दियों से संसार को आवश्यकता और खोज लग रही थी, आज उस जीती जागती स्वाभाविक वेदवाणी के दर्शन महर्षि दयानन्द ने करा दिये। सब प्रकार के संशय, भ्रम मिटाते हुये पाणिनि, पतंजलि, जैमिनि आदि महर्षियों की युक्ति और प्रमाण बल से स्वामी दयानन्द सरस्वती ने शब्द को नित्य सिद्ध करके दर्शा दिया।

महर्षि का यह उपकार पश्चिमी और पूर्वी संसार का तख्ता पलट देगा। भ्रष्ट कृत्रिम भाषाओं को लोग तिलांजलि देते हुये एक वेदवाणी की शरण लेंगे और फिर नये सिरे से एशिया, यूरोप, अफ्रीका, अमरीका, ओशीना आदि सर्व पृथिवी के स्थलों पर वैदिक शब्दों की ध्वनि सुनाई देगी और अंग्रेजी, फारसी, अरबी, ईरानी, मिश्री, यूनानी, लातानी, फ्रांसीसी, जर्मन, हिन्दुस्तानी आदि ९०० के लगभग भाषायें मृत्यु को प्राप्त होती हुई वेदवाणी को राजसिंहासन सौपेंगी। महर्षि का यह उपकार मनुष्य जाति को वैदिक वाणी से सुशोभित करने में दिखाई देगा। चाहे शताब्दियों के निरन्तर प्रयत्न के पश्चात् पृथिवी पर यह समय आये, परन्तु इसके आने में सन्देह नहीं हो सकता क्योंकि अन्त में स्वभाव बनावट पर अवश्य विजय पायेगा और पांच हजार वर्ष की कृत्रिम भाषाओं के दीपक ईश्वरोक्त वैदिक शब्दों के सामने अन्त में अवश्य बुझेंगे।

विश्वजनीन ज्ञान के स्रोत वेदज्ञान

हम पहले कह चुके हैं कि प्रकाश को ऊष्णता से कोई पृथक् नहीं कर सकता। जहां भाषा है वहां ज्ञान है। यदि संसार की भाषाओं की वास्तविक माता वेदवाणी है तो संसार भर के ज्ञान का स्वाभाविक स्रोत वैदिक ज्ञान को कहना चाहिये। यदि वेदवाणी ईश्वरोक्त है तो वैदिकज्ञान भी ईश्वरोक्त, इसलिये हम ज्ञान की उत्पत्ति के सम्बन्ध में आन्दोलन करना चाहते हैं। हमने सिद्ध कर दिया कि भाषा को मनुष्य स्वयं नहीं बना सकता प्रत्युत ईश्वर की ओर से बनी बनाई भाषा सृष्टि के आदि में मनुष्य को वेदवाणी के रूप में दी गई थी। अब हम इस प्रश्न पर विचार करना चाहते हैं कि क्या मनुष्य ज्ञान को स्वयं, बिना किसी के सिखाये प्राप्त कर सकता है या नहीं? संसार भर का अनुभव इस बात का जीवित साक्षी है कि मनुष्य सिखाये बिना, विद्वान् नहीं बन सकता। जिस प्रकार भाषा को एक से दूसरा सीखता चला आया है, वैसे ही ज्ञान को एक से दूसरा मनुष्य ग्रहण करता आया है और करता जायेगा। जहां मनुष्य में किसी भी नवीन भाषा का आविष्कार करने की शक्ति नहीं है, वहां उसमें किसी भी नये ज्ञान को आविष्कृत करने की भी सामर्थ्य नहीं है। कोई 'थ्योरी' (Theory), कोई सिद्धांन्त संसार में मनुष्य नया नहीं बना सकता और न उसमें बनाने की शक्ति है। एक पश्चिमी विद्वान् यह कह रहा है कि—"जो व्यक्ति किसी विज्ञान या ज्ञान के इतिहास का अध्ययन करे या स्वयं कई वर्ष निरन्तर किसी विज्ञान की उन्नति को ध्यानपूर्वक देखता रहे तो वह भली-भांति जान सकता है कि उसकी मात्रा (इस दृष्टि से) कितनी हल्की हुआ करती है कि उसको वस्तुतः नवीनपन या मौलिकता का नाम दिया जाये।" "मनुष्य के ज्ञान का विकास घड़ी की लटकन के समान है या यों कहिये कि मनुष्य का ज्ञान एक चक्र में घूमता हुआ बार-बार उसी स्थान पर आ जाता है और इस अवस्था के होने पर हम आशा किया करते हैं कि कदाचित् पहले की अपेक्षा आगे बढ़ जाये।

कोई मनुष्य मौलिक नहीं है— सच तो यह है कि कोई भी मनुष्य ओरिजनल (original) मौलिक नही कहला सकता और न ही ओरिजनैलिटी (मौलिकता) मनुष्य का गुण है। मौलिकता एक निरर्थक भ्रम है जिससे कि विद्वान् घबरा रहे हैं परन्तु वास्तव में भ्रम से बढ़कर कोई मनुष्य का गुण नहीं। इस बात को सुनकर कोई कह सकता है कि भला यह कैसे हो सकता है कि मनुष्य ज्ञान-सम्बन्धी कोई नई खोज नहीं करता। क्या हम सुनते नहीं कि न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण के नये सिद्धांत की खोज की? क्या इससे कोई इन्कार कर सकता है? परन्तु इससे पूर्व कि हम इस बात का उत्तर दें—हमें पहले

यह जान लेना चाहिये कि न्यूटन ने जिस सिद्धांत की खोज की, वह वही सिद्धांत है कि जिसका वर्णन 'सिद्धान्तशिरोमणि' के रचयिता भास्कराचार्य ने न्यूटन की उत्पत्ति से कई हजार वर्ष पूर्व अपनी पुस्तक में किया था। भास्कराचार्य जी कहते हैं कि पृथिवी में आकर्षण का गुण स्वाभाविक है। इसी आकर्षण के कारण पृथिवी किसी भारी निराश्रय वस्तु को अपनी ओर खींचती है। जो वस्तु गिरती हुई प्रतीत होती है वह वास्तव में पृथिवी की ओर उसके आकर्षण के कारण ही जा रही है।

यह भी नहीं कि भास्कराचार्य जी ने सिद्धांत स्वयं नया खोज किया हो; प्रत्युत प्रत्येक ऋषि-मुनि इस सिद्धांत से परिचित थे और ऋषि-मुनियों ने इस सिद्धांत को ज्ञान के स्वाभाविक स्रोत से प्राप्त किया था वास्तव में बात यह है कि समस्त आत्माएं योग्यता एवं गुण दृष्टि से एक सी हैं परन्तु कुछ आत्मायें तो प्रकृति की स्थूलता के वस्त्र पहने हुई होने के कारण मलिन दर्पण की भांति हो जाती हैं, जब कि कुछ शुद्ध रहती हैं। प्रकृति की जीवित पुस्तक अपना प्रभाव शुद्ध साधन रखने वाली आत्माओं पर पहुंचा सकती है और शुद्ध बुद्धि को रखने वाली आत्मायें प्रकृति के कार्य और ढंग को समझ सकती हैं। उनका पदार्थों की वास्तविकता समझ लेना उनकी बड़ाई और संसार के लिये नवीनता या मौलिकता हुआ करती है। न्यूटन के देश में सेव को गिरते हुये कौन नही देखता था; परन्तु उदरसेवी तो सेव को गिरता देखकर खाने को दौड़ते होंगे ओर साधारण लोगों में गिरने की क्रिया को समझने की रुचि ही नहीं और वे अन्तःकरण की मलिनता के कारण उस क्रिया को समझ भी नहीं सकते थे। इसलिये गिरने की क्रिया के कारण को समझना न्यूटन का काम था और यह काम उसने नया नहीं किया, प्रत्युत प्रत्येक बुद्धिमान् आत्मा सृष्टि के नियमों को इससे भी अधिक अच्छी प्रकार समझता और प्रकाश करता रहा है। जिनको आज का पश्चिमी संसार 'मौलिक' बतलाता है हम उनको शब्दों के गूढ़ अर्थ समझने की योग्यता या बुद्धि रखने वाला कहते हैं। आकर्षण शब्द के गूढ़ अर्थ समझने वाला यूरोप में न्यूटन था परन्तु जिस बुद्धि के होने पर न्यूटन ने इस शब्द के अर्थ को अनुभव किया उसी और उससे कई गुना अधिक श्रेष्ठ बुद्धि वाले लाखों ऋषि मुनि आकर्षण के अर्थ अनुभव कर चुके थे और भविष्य में भी करेंगे। सृष्टि में शब्दों के अर्थ को अनुभव करने वाले इस प्रकार के व्यक्ति कभी तो महान् पुरुष कहलाते हैं और कभी ऐसा होता है कि ज्ञान के बीज को विस्तृत वृक्ष और शाखा का रूप देने वाले, 'ओरिजनल मैन' (मौलिक मनुष्य) कहलाये हैं। विद्याहीन से विद्याहीन बुढ़िया खिचड़ी पकाती हुई भाप को नित्य देखती है और इतना भी जानती है कि जब पानी उबलने लगता है तो ढकना गिर जाता है परन्तु उसकी स्थूल बुद्धि ढकना गिरने के तत्त्व की खोज करना नहीं चाहती और यदि खोज कर भी ले तो इस भाप का किसी और प्रकार से प्रयोग नहीं कर सकती। परन्तु जेम्स वाट ने खड़कते हुये ढकने का कारण वाष्प जान लिया, यद्यपि उस समय उसको एक घराने की वृद्धा व्यर्थ समय खोने के लिये कोस रही थी। वाष्प के गुण जानने पर भी वह स्टीम इंजन तब तक न बना सका जब तक उसको न्यू कोमन के बनाये हुये इंजन की मरम्मत का अवसर न मिला।

कोई बुद्धिमान् किसी सिद्धांत की वास्तविकता जानता या शब्द का गूढ़ अर्थ अनुभव करता हुआ अपनी मेधा बुद्धि (मौलिकता) का प्रमाण देता है और कोई उसी के द्वारा पदार्थों के गुणों को जानकर उनकी संगति करने से कलायन्त्र बनाता हुआ संसार को लाभ पहुंचाता है। विषय-भोग की मलिनता से मलिन हुई बुद्धि मनुष्य को पशुतुल्य बना देती है और शुद्ध सात्विक बुद्धि उसको उच्च श्रेणी में दिखाती है। एण्ड्रो जैक्सन डेविस सरीखे विद्वान इस बात को स्वीकार करते हैं कि वास्तव में कोई भी मनुष्य 'ओरिजनल' नहीं कहला सकता क्योंकि ज्ञान-सम्बन्धी सिद्धांतों या आइडिया (Idea) में उन्नति या अवनति हो ही नहीं सकती। उदाहरणार्थ-आदर या सत्कार का सिद्धांत प्रत्येक समय से समान है। भाषा भी जो कि भीतरी और सार्वभौम सिद्धांत है, वह भी नैसर्गिक और अनादि है। भाषा के वास्तविक सिद्धांतों में कभी उन्नति का होना सम्भव नहीं क्योंकि सिद्धांत चरम पूर्ण होते हैं और किसी प्रकार भी उनमें परिवर्तन नहीं हो सकता, वे सदैव अखण्ड एकरस रहते हैं।[1]

---

१. देखो, एण्ड्रो जैक्सन डेविस द्वारा लिखित 'हारमोनिया' खंड ५, पृष्ठ ७३।

सर्वथा पावन सृष्टि अमैथुनी सृष्टि—प्रकृति में कहीं भी मलिनता नहीं है । पूर्ण में त्रुटि या कमी नहीं हो सकती और यही अफलातून का उपदेश था । प्राकृतिक परिस्थितियों में रहने वाला माता के पेट से निकला हुआ बच्चा कृत्रिम परिस्थितियों में रहने वाले माता के बच्चे से अधिक पवित्र होता है । वे आत्मायें जिन्होंने सृष्टि के आदि में अमैथुनी-शुद्ध शरीर धारण किये थे, पूर्ण बुद्धि से उनसे अधिक श्रेष्ठता रखने वाली कोई आने वाली आत्मा नहीं हो सकती । वे आत्मायें प्रकृति के बच्चे कहलाने की अधिकारिणी थीं क्योंकि उस समय प्रकृति कृत्रिमता और मानवीय निर्बलता के कलंक से रहित, शुद्ध और पवित्र थी । वे ऋषि जिस ज्ञान को अपनी मेधाबुद्धि में धारण कर सकते थे, शब्दों के गूढ़ अर्थ अनुभव करने की जो शक्ति उनमें थी, वह शक्ति और किसी (बाद में) उत्पन्न होने वाले ऋषि-मुनि में कदापि नहीं होसकती । आदिसृष्टि के समय ऋषियों के आत्मा अपनी पूर्ण उन्नत अवस्था में थे और अमैथुनी शुद्ध शरीर रूप साधनों से युक्त थे । मैथुनी सृष्टि से शरीर धारण करने वाले आत्मा आदि सृष्टि के आत्माओं से अधिक शुद्ध मेधा बुद्धि नहीं धारण कर सकते, इसलिये जो शब्द अर्थ का ज्ञान आदि सृष्टि की आत्माओं ने अनुभव किया था, उसका नाम 'आदर्शज्ञान' और उसी को पूर्ण ज्ञान कह सकते हैं । इस आदर्श और पूर्ण ज्ञान में वे समस्त विद्वान् विद्यमान थे जिनको ऊंची से ऊंची अवस्था में ग्रहण करके विस्तार कर सकता था । जिस प्रकार शब्दों की गंगा गंगोत्री से निकल कर अशुद्ध और मलिन होती गई, ठीक इसी प्रकार ज्ञान की गंगा अमैथुनी सृष्टि के परम महर्षियों के हृदयों से, पूर्णावस्था में निकली थी और उसके पश्चात् वह जीवों की अविद्या के कारण मलिन दशा में दिखाई देने लगी । प्रकृति और पूर्णता को उन्नततर बनाना असम्भव है । इसलिये उस समय से लेकर भावी प्रलय पर्यन्त, कोई भी ऋषि इस आदर्शज्ञान को अधिक उन्नत नहीं कर सकेगा । जहां तक दौड़कर टांगों वाला पहुंच चुका है, वहां रेंगने वाले का पहुंचना असम्भव है । मैथुनी सृष्टि शुद्ध और पूर्णदशा का दूसरा नाम है । दिन-रात के चौबीस घंटों में दूसरा कोई समय प्रातःकाल सरीखा नहीं हो सकता । मनुष्य का आत्मा प्रातःकाल के समय में जितने गूढ़ विचार कर सकता है उतने गूढ़ विचार वह दोपहर या तीसरे पहर में कभी नहीं कर सकता । संसार के वैज्ञानिक और विचारक प्रातःकाल के इस महत्त्व को स्वीकार करते हैं । कवि और योगी इसी प्रातःकाल के समय में अपनी अदभुत रचनायें और सिद्धियां प्राप्त किया करते हैं । जिन महर्षियों को सृष्टि के प्रातःकाल में काम करने का अवसर मिला था, उनके समान वे महर्षि कब हो सकते थे जिनको कि सृष्टि के दोपहर या सायं समय काम करने का अवसर मिला हो । सृष्टि के प्रातःकाल में आत्मायें जितनी ऊंची उड़ान कर सकती थीं, दोपहर और सायं समय उतनी ऊंची उड़ानें कब कर सकती हैं ? प्रातःकाल का समय दिन भर के लिये आदर्श हैं । वसन्त ऋतु सब ऋतुओं की शिरोमणि है । अमैथुनी सृष्टि के ऋषि शेष ऋषियों के मुखिया हैं और दिन का शेष भाग प्रातःकाल का एक परिशिष्ट ही होता है । प्रातःकाल यदि पूर्णरूप से ज्ञान धारण करने के लिये है तो शेष दिन उस ज्ञान को क्रियात्मक रूप देने के लिये समझना चाहिये परन्तु असम्भव कल्पना के रूप में यदि हम मान भी लें कि दोपहर को भी आत्मा उतना ही गूढ़ विचार कर सकता है जितना कि प्रातःकाल करता था, तो भी क्या प्रातःकाल से उत्तमता में बढ़कर दोपहर हो सकती है ? कदापि नहीं । पानी अपने तल से ऊंचा नहीं चढ़ सकता और पानी जितनी ऊंचाई तक पहुंचता है उससे उसके तल का पता लगता है । आत्मा के तात्विक गुणों और उसकी तात्विक योग्यता में कभी न्यूनाधिक्य नहीं हो सकता । इसलिये वह ज्ञान जो आदि सृष्टि में मनुष्य को ईश्वरीय प्रेरणा द्वारा शुद्ध हृदय में मिला था उसमें वृद्धि करना मानो, प्रकृति और ईश्वर रूप संस्थाओं में तुच्छ मनुष्य द्वारा सुधार करना और मिटाना है; और यह कभी सम्भव नहीं है । मैथुनी सृष्टि के ऋषि यदि पूरा प्रयत्न करें तो उस ज्ञान के तल तक पहुंच सकते हैं । उससे ऊपर जाना तो सर्वथा असम्भव है और इस तल तक भी पहुंचने के लिये मैथुनी सृष्टि के ऋषियों को बस आदिज्ञान का सहारा लेना पड़ता है । धुंधले शीशे प्रकाश को बिलकुल नहीं खींच सकते । शीशा जितना अधिक शुद्ध होगा वह उतने ही अधिक प्रकाश को खींच सकेगा । मलिन आत्मा यदि आज वेदसूर्य के ज्ञानरूपी प्रकाश को धारण नहीं कर सकती तो यह उसकी मलिनता का दोष है, न कि प्रकाश का । यदि कहीं कोई बुद्धिमान् उस प्रकाश के अंश को अपनी शुद्धता के कारण खींच कर संसार को प्रकाश दिखाता हुआ मौलिकता (Originality) का प्रमाण दे तो हमें यह कदापि नहीं कहना चाहिये कि उसने प्रकाश नया बनाया है प्रत्युत यह कहना चाहिये कि वेद के प्रकाश को धारण करने या खींचने की बुद्धि उसमें हैं।

इसलिये 'ओरिजनल मैन' (मौलिक मनुष्य) अपने साधनों की उत्तमता का दृष्टांत देते हैं न कि प्राकृतिक ज्ञान रूपी सूर्य को बनाया करते हैं । ज्ञान सूर्य को न तो कोई घटा सकता है न बढ़ा सकता है । जीव शुद्ध साधनों की दशा में उसके तेज को अनुभव कर सकता है और अशुद्ध साधनों की दशा के अनुभव करने पर अन्धकार में रहता है ।

ज्ञान मनुष्य निर्मित नहीं है—यदि मनुष्य ज्ञान या प्रकाश को नया बना सकते तो आज तक संसार में नये से नये सिद्धांत निकलते आते परन्तु संसार का,विद्यासम्बन्धी इतिहास,चक्र में घूमता हुआ इस बात को सिद्ध कर रहा है कि एक सिद्धान्त का अनुभव करने वाले मनुष्यों ने उत्तम साधनों की दशा में विद्या का प्रचार किया था तो मलिन साधनों की अवस्था में लोग उसी सिद्धान्त को अनुभव न कर सकने पर विद्याहीन हो गये और फिर अवसर आते रहे कि कोई साधनशील उसी सिद्धान्त को पुनरपि अनुभव करने पर खड़ा हुआ और संसार उसको भूल से नया सिद्धान्त, नई थ्योरी (Theory) और नया प्रकाश कहने लगा । इसलिए संसार से इस भारी भूल को दूर करना कि सिद्धान्त, थ्योरी और प्रकाश नये नहीं होते, बहुत आवश्यक है । सत्य वह है जो तीन काल में समान(अबाधित) रहे; दो और दो मिलकर चार होते हैं, कौन सा विज्ञान है जो इस सच्चे सिद्धान्त में घटा-बढ़ी करके दो और दो पांच बतलाये या घटा कर तीन कर सके । सच्चे नियमों में घटा बढ़ी करना कदापि सम्भव नहीं होता । सचाई की ओर बढ़ने का नाम उन्नति है परन्तु, सचाई को घटाया-बढाया नहीं जा सकता । वैदिक सिद्धान्त या वैदिक सत्य ज्ञान में कोई नया सिद्धान्त या थ्योरी जोड़ी नहीं जा सकती । प्रत्युत उसका समर्थन करते हुए उसके समीप पहुंच सकती है । यूरोप में आज एक सिद्धान्त निकलता है और कल उसका खंडन होता है । इसके अर्थ यह हैं कि वह सिद्धान्त सत्य नहीं था अन्यथा सत्य का खण्डन कौन कर सकता है और यह कहना कि ज्ञान के नये-नये सिद्धान्त निकलते हैं ऐसा ही अशुद्ध है जैसा कि कहा जावे कि प्रकाश नया बनाया जाता है । पानी का गुण जो सृष्टि के आदि में था वही आज है । यदि उस समय के लोग पानी को शीतल कहते हुए चले आये हैं तो आज उसका कोई खंडन नहीं कर सकता ।

ज्ञान की तात्विकता का इतिहास दो सिद्धान्तों को प्रकट कर रहा है । प्रथम यह कि ज्ञान को मनुष्य स्वयं आविष्कृत या उत्पन्न नहीं कर सकता, प्रत्युत किसी दूसरे के सिखाने से सीखता है । दूसरे यह कि बार-बार प्राचीन सिद्धान्तों का ही विद्वानों के द्वारा प्रचार होता रहा है और एक भी नया सिद्धान्त या ज्ञान का नियम, कभी संसार पर प्रकट नही हुआ है । यदि आर्यावर्त और मिश्र के शिष्य 'पैथोगोरस'ने पश्चिमी संसार को पृथिवी गोलाकार होने और घूमने का ज्ञान दिया तो सिकन्दरिया के 'टालमी' ने अपने अशुद्ध साधनों के कारण इस ज्योति का अनुभव न कर सकने पर लोगों को पृथिवी के चौरस और पत्थर होने का उपदेश दिया । पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में एक साधनशील 'कोपरनीकस'नामक पुरुष ने फिर 'पैथोगोरस'के सिद्धान्त की उत्तमता अनुभव की और 'पैथोगोरस'का मंडन और टालमी का खंडन किया । 'कोपरनीकस'के पश्चात् डैनमार्क के ज्योतिषी 'टिची बरहीही'ने इस सत्य सिद्धान्त की पुष्टि की और सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में जर्मनी के 'कपलर' और इटली के 'गेलिलियो' ने उसी सत्य का मंडन किया परन्तु 'कोपरनीकस'और 'कपलर'के समयों में संसार भूल से समझता रहा कि हमें कोई नया सिद्धांत बताया जा रहा है और इसी भूल के कारण वीर 'गेलिलियो' का कठोर विरोध उन पादरियों के पूर्वजों ने किया था जो आज अपने मिशन स्कूलों में पृथिवी के गोल होने की शिक्षा देते हुए उन्हीं पूवर्जों के अज्ञान का स्वयं खंडन कर रहे हैं ।

विज्ञान के सिद्धांत भी मनुष्य-निर्मित नहीं है—आजकल का विज्ञान-जगत् भूगर्भविद्या (Geology)के प्रचारक 'लायल'के सिद्धांत को नया बतला रहा है परन्तु सत्यप्रिय[1] लोग स्वीकार करते हैं कि लायल का यह भूगर्भ विद्या सम्बन्धी

---

1. जान फेमस एफ० एस० ए० द्वारा संकलित 'थिंग्स टू बी रिमैम्बर्ड इन डेली लाइफ' (Things to be remembered in daily life), पृष्ठ १३५ ।

यह सिद्धान्त कि वह कारण जिनसे भूगर्भ पर सदैव प्रभाव पड़ रहा है, अपना काम नित्यप्रति कर रहे हैं । यही प्राचीन सिद्धांत अरस्तू का था और 'जान रे'के द्वारा यह सिद्धांत वर्तमान दशा को पहुंचा, और अब 'लायल' ने इसके प्रचार से पुरानी भूगर्भविद्या का लेशमात्र बोधन कराया है । 'पैथागोरस' ने आहार के सम्बन्ध में ऋषियों के सिद्धांत का प्रचार करते हुए कहा था कि मनुष्य को मांस नहीं खाना चाहिये । इसी सिद्धांत का पश्चिम में अफलातून, सेनका, प्लूटार्क,ट्रेटोलीन, पोरफ्री, कोरनारो, रेवाल्टेयर, रूसो, शेली, लामार्टिनक, शोपनहार आदि कई विद्वानों ने प्रचार किया और सदा संसार इनको नया सिद्धांत समझ कर इसका विरोध करता रहा परन्तु वीर जन विरोध को काटते हुए बढ़ते गये । फिर यही नहीं कि मनुष्य किसी एक सत्य सिद्धांत को ही दूसरों से सीखता हुआ चला आ रहा , प्रत्युत साहित्य की श्रेष्ठ रचनाएं भी किसी दूसरे साहित्य का सार हुआ करती है ।'दार्शनिक 'मिल'का यह कथन सत्य है कि 'रोम[1] निवासियों का साहित्य यूनानियों के साहित्य की नक्ल है ।'जिन्होनें भ्रान्ति और अविद्या का प्रचार किया है वे यदि आपस में मेल न कर सके तो आश्चर्य नहीं, क्योंकि दस और दस को बीस कहने वाले सौ मनुष्य एकमत हो सकते हैं परन्तु उसको १८,१७,१५,१३ आदि कहने वाले मनुष्य एक सम्मति के नहीं हो सकते । इस लिए हम डारविन, मालथस आदि के मिथ्या सिद्धांतों का इस स्थान पर वर्णन नहीं कर सकते । यदि उनके सिद्धांत सत्य होते तो हम दिखा सकते थे कि यह पहले भी विद्यमान थे परन्तु भ्रान्ति, अशुद्धि और अन्धकार वर्णन करना हमारा प्रयोजन नहीं ।

विद्या और कला की परिणामभूत यूरोप और अमरीका की वर्तमान सभ्यता नई नहीं है, प्रत्युत संसार का इतिहास बतलाता है कि इस प्रकार की सभ्यता प्रत्येक काल में किसी न किसी जाति में रही है । अब हम सभ्यता के विषय में इतिहास के प्रमाण संक्षिप्त रूप में वर्णन करेंगे जिनको पढ़ते ही बुद्धिमान् जान लेंगे कि संसार के विभिन्न देशों की प्राचीन सभ्यता आजकल की सभ्यता से बढ़कर थी ।

प्राचीन सभ्यताएं—चीन और बाबुल की सभ्यता मिलती है'और 'कन्फ्यूशस'की शिक्षा ने चीन में लोगों को एक परमेश्वर का विश्वासी बनाया, उसने पितृयज्ञ, परोपकारी, न्याय आदि की शिक्षा दी । कागज बनाने और छापने के काम में बहुत पुराने काल में चीनी आगे बढ़ गये थे । रेशमी और रुई के श्रेष्ठ वस्त्र बनाने में ये उच्च कोटि के शिल्पी थे । पुराने चीन के पश्चात् यदि पुराने मिस्र पर एक दृष्टि डालें तो पता लगता है कि उस पुराने काल में वहां वर्तमान सभ्यता से बढ़ी-चढ़ी सभ्यता विद्यमान थी । मिस्र के प्राचीन राजा का नाम 'मेनीज'है । मिस्र वह देश था जहां अफलातून जैसे विद्वान् उसके विद्याधन के भिक्षुक बनकर यूनान से आया करते थे । प्राचीन मिस्र के राज पुरोहितों की सम्मति पर चला करते थे । राजा के लिए सन्ध्या आदि के समय नियत थे । राज्य प्रबन्ध की उत्तमता के कारण कभी विद्रोह नहीं हुआ करता था, और यहां की वर्णव्यवस्था भारतवर्ष जैसी थी । सब से प्रथम पुरोहितों का स्थान था, फिर सैनिक का, उनसे उतर कर कृषिकारों और व्यापारियों का, सबसे अन्तिम सेवकों का स्थान था । मिस्र के रथ और घोड़े अत्यन्त श्रेष्ठ जाति के थे । जीवन और मृत्यु के प्रश्न का अत्यन्त गम्भीरता से समाधान किया करते थे । राजाओं ने सार्वजनिक हित के लिए नहरें खुदवाई थीं और जलयान बनवाये थे । लिखने, व्याकरण, ज्योतिष, मापने, राग और वैद्यक में लोगों ने विशेष योग्यता प्राप्त की थी और निस्संदेह मानते थे कि मनुष्य की आत्मा अजर, अमर है । वे आवागमन और मुक्ति को हिन्दुओं के समान मानते थे । मिट्टी और शीशे के बर्तन और जलयान बनाने आदि कलाओं में बड़े कारीगर थे । वे तुला का प्रयोग करते थे और लीवर से भारी बोझ उठाया करते थे । आरे, छेनी,उत्कृष्ट चिमटे, पिचकारी और उस्तरे आदि बनाया करते थे । सुवर्ण और धातुओं को गला कर काम में लाते थे । नील नदी पर रंग-बिरंगे लंगरों से लहराते हुये जलयान उनकी गरिमा को जताते थे । घंटे,

---

1. जे० एस० मिल द्वारा लिखित 'सबजैक्शन आफ वूमन' (Subjection of Women), पृष्ठ १३२ ।

कोठारी और चीर-फाड़ के समस्त यंत्र उनके यहां प्रयुक्त होते थे । अत्यन्त श्रेष्ठ कागज बना कर रंग बिरंगी स्याहियों से लिखा करते थे । वस्त्र रंगने में बड़े कुशल थे । प्राचीन मिस्री लोग उच्च कोटि के बुद्धिमान, शिल्पी और परिश्रमी थे । उनकी स्त्रियां चूड़ियों और अंगूठियों से सुभूषित रहा करती थीं । सिर के केश लम्बे और गुंथे हुये रखती थीं । शीशे, कंघे, इत्र-सब उनको प्राप्त थे । चांदी, मिट्टी तथा पीतल के बर्तनों में खाना खाते थे और खाने के समय भजन गाये जाते थे । चंग, तंबूरा, सारंगी पर बड़े आनन्द से गाते थे और शवों को जिस मसाले से भरकर सुरक्षित रख छोड़ते थे, उसका ज्ञान आज तक पश्चिमी लोगों को प्राप्त नहीं हुआ । मिश्र के मीनार उनकी निर्माणकला के अद्वितीय प्रमाण हैं । चाल्डिया, असीरिया और बाबल वालों की सभ्यता भी अत्यंत पुरानी है और मिस्र से कम नहीं । चाल्डिया विद्या, कला और उसकी परिणाम-भूत सभ्यता का घर था । गणित और ज्योतिष में विशेष योग्यता उन्होंने प्राप्त की थी । तोल के बाट ऐसे श्रेष्ठ बनाये जाते थे कि आज तक यूरोप में उनके ही आधार पर बाट बनाये जाते हैं और जल की घड़ी से समय का अनुमान लगाया करते थे । मिस्रियों ने यूनान को, यूनान ने रोम को और रोम ने वर्तमान यूरोप को सभ्यता सिखलाई । हम पाते हैं कि मिस्रियों ने भारतवर्ष से सभ्यता प्राप्त की थी । भारतवर्ष की सभ्यता मिस्र से बढ़कर थी । यद्यपि महाभारत के युद्ध ने पृथिवी को साधारणतया और भारतवर्ष को विशेषतया उलट-पुलट डाला था तो भी हम भारतवर्ष को सभ्यता का श्रेष्ठ से श्रेष्ठ घर इतिहास के अनुसार पाते हैं । भारतवर्ष के दो सौ जलयान उसके तटों पर उपस्थित रहते थे । ब्राह्मण और वैश्य लोग इन जलयानों में सुमात्रा, जावा और चीन को जाया करते थे । वाणिज्य व्यापार में व्यापारी बिना छल-कपट के कार्यसिद्धि किया करते थे । धोखा देने और प्रतिज्ञा भंग करने से कोसों भागते थे । ह्यूनसांग के काल तक लोग चारों वेदों को परम-प्रमाण मानते और ३० वर्ष की आयु तक ब्रह्मचारी रहा करते थे । उस समय शब्दविद्या, शिल्पविद्या, चिकित्सा शास्त्र, हेतुविद्या और अध्यात्मविद्या प्रचलित थी । अरब के लेखकों ने भारत से अंकगणित और बीजगणित सीखा और यह बीजगणित पाइया के 'ल्योनारडो' के द्वारा वर्तमान यूरोप में प्रविष्ट हुआ । रेखागणित में भी हिन्दू ही संसार के प्रथम गुरु हैं । गणित और दशमलव का प्रयोग इनसे ही संसार ने प्राप्त किया है । डाक्टर वाइज का कथन है कि भारतवासियों ने ही हमें वैद्यकविद्या सिखाई । 'नियारकस' का कथन है कि यूनानियों को सांप के काटे की चिकित्सा का ज्ञान नहीं था और ब्राह्मण चिकित्सा करना जानते थे । मृतक शरीर की चीरफाड़ के लिये बहुत यन्त्र प्रयोग में लाये जाते थे और १२७ यंत्र तो ऐसे श्रेष्ठ थे जो बाल को बीच में से दो भागों में विभक्त कर दें ।

सभ्यताओं की जननी भारतीय सभ्यता—भारत के विषय में 'जैकालियट' कहता है कि मैं अपने ज्ञाननेत्रों से भारत को अपना विधान, अपने संस्कार, अपनी सभ्यता और अपना धर्म मिस्र, ईरान, यूनान और रोम को सौंपते हुये देख रहा हूं । मैं जैमिनि और वेदव्यास को सुकरात और अफलातून से पहले पाता हूं । "पुराने भारतवर्ष के गौरव का अनुमान लगाने के लिये यूरोप में प्राप्त की हुई विद्या किसी काम नहीं आती और पुराने भारतवर्ष को जानने के लिये हमें ऐसा प्रयत्न करना चाहिये जैसे एक बच्चा नये सिरे से पाठ सीखता है ।" आगे चलकर जैकालियट संसार के कुछ देशों के नाम इस प्रकार बतलाता है और कहता है कि ये संस्कृत के नाम हैं—

नाम	संस्कृत
स्पार्टन	स्पर्धा से, जिसके अर्थ प्रतियोगिता के हैं ।
स्कैण्डेनेविया	स्कन्धनिवासी
ओडन	योधिन् से (लड़ाका)
स्वीडन	सुयोद्धा से (सैनिक)

नारवे　　　　　　　　　　　　　　　　　　　नारावाज (नाविकों का देश)

बाल्टिक　　　　　　　　　　　　　　　　　　बाला टिक (वीरों का समुद्र)

हम[1] अन्त में मिस्टर बाईराण्ट से सहमत हैं कि मिस्री, भारतीय, यूनानी और इटली वाले वास्तव में एक ही केन्द्र से बिखर कर इधर-उधर गये और यही लोग अपना धर्म और समस्त विज्ञान या विद्यायें चीन और जापान में ले गये होंगे। क्या हम यह नहीं कह सकते कि मैक्सिको[2] और पीरू[3] में भी।

मैं विश्वास करता हूं कि मिश्र के पुरोहित वास्तव में नील नदी से गंगा और यमुना को आते होंगे और यह सम्भव प्रतीत होता है कि वे भारत के शर्मनों[4] (ब्राह्मणों) से भेंट के लिये आते होंगे। ठीक वैसे ही जैसे कि यूनान के विद्वान् उनकी भेंट को जाया करते थे अर्थात् विद्याग्रहण करने के अभिप्राय से।

ईरानियों के पूर्वज— दबिस्तां[5] का लेखक वर्णन करता है कि पुराने ईरानियों के पूर्वज हिन्दू थे और वह कहता है कि इसमें सन्देह नहीं कि महाबाद या मनु की पुस्तक जो देववाणी में लिखी गई है, उससे अभिप्राय वेद का है इसलिये 'जरदुश्त' केवल सुधारक था। हम भारत में ईरान के पुराने मत की जड़ पाते हैं।

बृहत्तर भारत—"यह अत्यन्त ही विचित्र[6] बात है कि पीरू निवासी (दक्षिणी अमरीका के एक देश के रहने वाले) जिनका पूर्वज 'इन्कस' सूर्यवंशी कहलाने का अभिमान करता था, अपने बड़े त्यौहार को 'राम-उत्सव' के नाम से पुकारते हैं, जिससे हम परिणाम निकाल सकते हैं कि दक्षिणी अमरीका में वही जाति बसती थी जो कि एशिया के सुदूर कोनों में राम चरित्र और कथा ले गई है।"

भारत के भवन और ध्वंसावशेष बतलाते हैं कि अफ्रीका और भारत का निकट सम्बन्ध था। मिस्र के मीनारों और बुद्ध के मन्दिरों के बनाने वाले एक ही शिल्पी[7] होंगे। उन भवनों पर अक्षर कुछ हिन्दुस्तानी और कुछ ऐबीसीनिया या इथियोपिया के प्रतीत होते हैं। इससे विदित होता है कि इथियोपिया और भारतवर्ष एक ही विचित्र जाति से बसे हुये होंगे। इसके समर्थन में यह भी कहा जा सकता है कि बंगाल और बिहार के पहाड़ी लोग अपने आकार प्रकार में, विशेषतया ओष्ठ और नासिका की समानता में, वर्तमान[8] ऐबीसीनिया वालों से कुछ विपरीतता नहीं रखते। हिन्दू बहुत प्राचीन काल से पुराने फारस निवासियों, इथियोपिया, मिस्र, फोनीशिया, यूनान, टर्की, सीथिया, ओरगाथ, कैल्ट, चीनी, जापानी और पीरू निवासियों से सम्बन्ध रखते हैं, जिससे हम कह सकते हैं कि या तो ये जातियां हिन्दुओं की बस्तियां होंगी या उनमें से किसी ने सब को बसाया होगा। यह हम स्पष्ट[9] रूप से कह सकते हैं कि वे सब एक ही केन्द्र से आये होंगे। 'एशियाटिक रिसर्चेज' के

---

1. 'एशियाटिक रिसर्चेज' (Asiatic Researches), प्रथम खंड, पृष्ठ २६८।

2. मैक्सिको उत्तरी अमरीका के एक देश का नाम है।

3. पीरू दक्षिण अमरीका के एक देश का नाम है।

4. 'एशियाटिक रिसर्चेज', पृष्ठ २७१। ५. पृष्ठ २४९।

6. प्रथम खंड, पृष्ठ ४२६।

7. प्रथम खंड, पृष्ठ ४२७।　　　　8. पृष्ठ ४३८।

9. पृष्ठ ४३१।

दूसरे खंड में विलियम जोन्स कहता है—"मैं जिन्दावस्था के शब्दों को देख कर आश्चर्यचकित रह गया। दस शब्दों में छः या सात शुद्ध संस्कृत के हैं, यहां तक कि विभक्तियां भी व्याकरण के नियमों के अनुसार हैं; जैसे-युष्माकम् का युष्मद्। फिर वर्णन किया गया है कि ईरान और संसार का पहला राजा महाबाद था जिसने लोगों को चार भागों में बांटा था अर्थात् पुरोहित, सैनिक, व्यापारी और सेवक।

मिस्र की सभ्यता का उद्गम स्थान भी भारत—"मिस्र[1] में दो प्रकार के अक्षर थे, एक लौकिक जो भारतवर्ष के प्रान्तों के अक्षरों से मिलते हैं और दूसरे वैदिक जो देवनागरी जैसे और विशेषतया वेद के अक्षरों जैसे हैं।" "मिस्र के मीनार,[2] बाबल का बुर्ज महादेव की मूर्ति के लिये बनाये गये थे।" "ब्राह्मण[3] और द्रविड़[4] एक ही हैं।"

"समस्त वृत्तान्त मिलकर सिद्ध करते हैं कि **भारतवासी और चीनी वास्तव में एक ही हैं**।" (खंड २, पृष्ठ ३७९)।

शुक्रनीति ओर महाभारत आदि के देखने से उस काल की सभ्यता अर्थात् विद्या और कला का ज्ञान होता है जिस काल को यूरोप के इतिहासकारों के बनाये हुये इतिहास पहुंच नहीं सकते। मिस्र और यूनान की सभ्यता उस श्रेष्ठ सभ्यता के आगे जो ६००० वर्ष से पहले संसार में साधारणतया और आर्यावर्त में विशेष रूप से थी, सचमुच अधूरी प्रतीत होती है। इस पूर्ण सभ्यता पर दृष्टि करने से चारों ओर से पूर्णता ही दिखाई पड़ती है। यदि आजकल मनुष्य को रेल वर्तमान सभ्यता की एक श्रेष्ठ सवारी दिखाई देती है तो उससे बढ़कर विमान (बैलून), अश्वयान (रेल से बढ़कर शीघ्र चलने वाली गाड़ियां) आदि का उस समय प्रचार होना वर्तमान संसार को आश्चर्य में डाल देता है। यदि आजकल सैनिक लोग डाइनामाइट (Dynamite) से यन्त्रों के गीत गाते हैं तो उस समय के आग्नेयास्त्र, वारुणास्त्र इससे बढ़कर पूर्णता को प्रकट कर रहे हैं। शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक पूर्णोन्नति के पूर्णसाधन निस्सन्देह बतला रहे हैं कि मनुष्य प्राचीन समय में पूर्ण विद्वान् हुआ करते थे। यूरोप और अमरीका की वर्तमान सभ्यता और उन्नति के भवनों को देखकर स्थूलदर्शी यह समझते हैं कि यह भवन नया यूरोप या अमरीका ने स्वयं बनाया है परन्तु बुद्धिमान् और अन्वेषक विद्या का इतिहास जानने वाले बतला रहे हैं कि इस भवन में एक-एक ज्ञान की एक-एक ईंट पुरानी लगी हुई है। बीसियों विश्वसनीय इतिहास और साक्षियां विद्यमान हैं जिनको विस्तार के भय से हम लिख नहीं सकते परन्तु उन सबका सार यही है कि संसार भर की विद्याओं और कलाओं के गुरु और आविष्कारक पुराने ब्राह्मण लोग **और संसार को श्रेष्ठ सभ्यता के सिखलाने वाले भारतवर्षीय हैं।** ये साक्षियां कह रही हैं कि कोई भी विद्या या कला कभी किसी सभ्य जाति ने ऐसी नहीं निकाली जो उससे पहले किसी और सभ्य जाति में न हो और एक जाति दूसरी से सभ्यता सीखती चली आई है। इन साक्षियों से बढ़कर अत्यन्त ही प्राचीन काल की एक और विश्वसनीय साक्षी मनुस्मृति से मिलती है जिसमें लिखा है कि संसार भर के लोग विद्याओं और कलाओं का पाठ सीखने के लिये आर्यावर्त देश में आते थे। इस स्थान पर पहुंच कर वही प्रश्न फिर सामने आ जाता है कि मनु आदि महर्षियों ने जो कि जगदगुरु थे, विद्या कहां से प्राप्त की? इसका उत्तर निर्भ्रान्त रीति से स्वयं महर्षि देते हैं कि सब प्रकार की विद्या ऋषियों ने वेद से सीखी है। अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि वेद क्या वस्तु हैं? इसका उत्तर ऋषि देते हैं कि **वेद ईश्वरीय ज्ञान है** और वास्तव में यह सत्य है क्योंकि हमने साधारण रूप में देख लिया कि मनुष्य विद्या का आविष्कार

---

1. दूसरा खंड, पृष्ठ ३७३।

2. खंड, पृष्ठ ४७७।

3. खंड २, पृष्ठ ४८०।

4. इंग्लैंड में पुराने पुरोहित द्रविड़ कहलाते थे।

नहीं कर सकता प्रत्युत किसी दूसरे विद्वान् से प्राप्त करता चला आया है । यहां तक कि हम आदि सृष्टि के विद्वानों के पास पहुंचते हैं और पाते हैं कि उन्होंने ज्ञान अवश्य ईश्वर से ही प्राप्त किया होगा क्योंकि जड़ प्रकृति स्वयं ज्ञान से रहित है और जब अभाव से भाव हो नहीं सकता तो प्रकृति चेतन जीव को ज्ञान सिखा नहीं सकती । प्रकृति के अतिरिक्त दूसरी वस्तु आत्मायें हैं परन्तु संसार का इतिहास स्पष्ट शब्दों में और अनुभव निस्सन्देह साक्षी दे रहा है कि एक आत्मा स्वयं विद्वान् होने पर दूसरों को ज्ञान का प्रकाश दे सकती है परन्तु स्वयमेव कोई आत्मा विद्वान् नहीं हो सकती । इसलिये आरम्भिक सृष्टि में प्रथम मनुष्य न जड़ जगत् से और न अन्य आत्माओं से ज्ञान प्राप्त कर सकते थे प्रत्युत निस्सन्देह उसी से उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया जो कि ज्ञान स्वरूप है और जिस प्रकार मनुष्य से मनुष्य की उत्पत्ति का क्रम जारी हुआ, उसी प्रकार एक मनुष्य दूसरे को ज्ञान सिखाता रहा ।

ज्ञान का स्रोत वेद ही हैं— मनुष्य की भाषा की खोज करते हुये हमने वेदशब्दों को मनुष्य की वास्तविक भाषा सिद्ध किया था और मानवीय ज्ञान की खोज ने भी हमें बता दिया कि ज्ञान का स्रोत वही ज्ञान है जिसको वेद के शब्द प्रकट कर रहे हैं अर्थात् वैदिक शब्द मनुष्य का वास्तविक ज्ञान है । जिस प्रकार शरीर का आत्मा से सम्बन्ध है उसी प्रकार शब्द का अर्थ से लगाव है । जैसे ऊष्णता का प्रकाश से मेल है वैसे शब्द का अर्थ से सम्बन्ध है । शब्द का परिणाम भाषा और अर्थ का परिणाम ज्ञान है । वेद का पूर्ण लक्षण यह है कि वह शब्द-अर्थ के सम्बन्ध का रूप हैं ।

वेद ईश्वरीय ज्ञान है—वेदोत्पत्ति के विषय में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेदभाष्यभूमिका में सारगर्भित रीति से लेख किया है जिसके पढ़ने से मनुष्य के सब सन्देह निवृत्त हो जाते हैं ओर अन्वेषक को वेदों के ईश्वरोक्त होने का पूरा विश्वास हो जाता है । कोई ऐसा बड़ा आक्षेप नहीं जिसका उचित उत्तर महर्षि ने उस पुस्तक में श्रेष्ठता से सन्तोषजनक रूप में न दिया हो । जो लोग कहा करते थे कि ईश्वर निराकार है, उससे शब्दरूप वेद कैसे उत्पन्न हो सकते हैं ? उनके उत्तर में महर्षि लिखते हैं—"मन[1] में मुख आदि अवयव नहीं हैं तथापि जैसे उसके भीतर प्रश्नोत्तर आदि शब्दों का उच्चारण मानस व्यवहार में होता है वैसे ही परमेश्वर में जानना चाहिये और सम्पूर्ण सामर्थ्य वाला है सो किसी कार्य के करने में किसी का सहाय ग्रहण नहीं करता । जैसे देखो कि जब जगत् उत्पन्न नहीं हुआ था उस समय निराकार ईश्वर ने सम्पूर्ण जगत् को बनाया, तब वेदों के रचने में क्या शंका रही । जैसे वेदों में अत्यंन्त सूक्ष्म विद्या का रचन ईश्वर ने किया है वैसे ही जगत् में भी नेत्र आदि पदार्थों का अत्यन्त आश्चर्यरूप रचन किया है तो क्या वेदों की रचना निराकार ईश्वर नहीं कर सकता ?"

ईश्वर ने अग्नि आदि में अपना ज्ञान प्रेरित किया—फिर महर्षि दर्शाते हैं कि वेदों को पुस्तकों में लिख के सृष्टि के आदि में ईश्वर ने प्रकाशित नहीं किया था; प्रत्युत अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा महर्षियों के ज्ञान में प्रेरणा द्वारा प्रकाशित किया था "जैसे बाजे को कोई बजाये या काठ की पुतली को चेष्टा कराये, उसी प्रकार ईश्वर ने उनको निमित्त मात्र किया था; क्योंकि उनके ज्ञान से वेदों की उत्पत्ति नहीं हुई किन्तु इससे यह जानना कि वेदों में जितने शब्द, अर्थ और सम्बन्ध हैं वे सब ईश्वर ने अपने ही ज्ञान से उनके द्वारा प्रकट किये हैं ।"

पाणिनि, पतंजलि,जैमिनि, कणाद, गोतम, वात्स्यायन और कपिल से महर्षियों के सत्य-वचन वेदों के अनादि होने में उपस्थित करते हुये महर्षि लिखते हैं—"जब-जब परमेश्वर सृष्टि को रचता है तब-तब प्रजा के हित के लिये सृष्टि के आदि में सब विद्याओं से युक्त वेदों का भी उपदेश करता है और जब-जब सृष्टि का प्रलय होता है तब-तब वेद उसके ज्ञान में सदा बने रहते हैं इसलिये इनको सदैव नित्य मानना चाहिये ।"

---

1. देखो महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा रचित 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका', पृष्ठ १२ ।

वेद यदि ईश्वरोक्त ज्ञान है तो सृष्टि ईश्वरोक्त कर्म—वेद यदि ईश्वर का वचन है तो सृष्टि उसकी क्रिया है इसलिये वेद शब्दों के अर्थ सृष्टि नियमों के अनुकूल होने पर सत्य और उनके विरुद्ध होने पर मिथ्या कहलाते हैं। **वेद का सच्चा कोष सृष्टि के नियम हैं** और सृष्टिनियमों के बोधक वेद हैं। **सृष्टिनियमों का दूसरा नाम वेदार्थ है।** सृष्टि की जीवित पुस्तक को देखने वाली मनुष्य की बुद्धि है और वेद उस बुद्धि के लिये पथप्रदर्शक और सहायक सूर्य का काम देता है। जैसे सूर्य के प्रकाश में आंख प्राकृतिक वस्तुओं को निर्भ्रम देख सकती है वैसे ही सृष्टि की विद्या को बुद्धि वेदसूर्य के सहारे से ही निर्भ्रान्त रीति से प्राप्त कर सकती है। इस वेदसूर्य के लुप्त होने से ५००० वर्ष से पृथिवी पर अन्धकार था और इस अन्धकार की अवस्था में जो मतमतान्तर और भिन्न-भिन्न भाषायें उत्पन्न हो गईं; इनका वर्णन हम पहले कर चुके हैं। सूर्य के अभाव में दीपकों ने जिस प्रकार से काम किया, उसका भी कुछ वर्णन दर्शा चुके हैं। परन्तु मनुष्य जाति के उत्तम भाग्य उदय हुये और वेद का सूर्य बुद्धि की आंख को सत्य का निर्भ्रान्त मार्ग दर्शाने के लिये चिरकाल के पश्चात् महर्षि दयानन्द के उपकार से उदय हो गया है। काली रात के स्थान पर अब उजाला है। दीपकों के स्थान पर एक शुद्ध, स्वाभाविक सूर्य का प्रकाश है। अन्धकार के भय के स्थान पर प्रकाश की स्वस्ति और शान्ति है। इस वेद की ज्योति को सर्वत्र फैलाने के लिये आर्यसमाज का अस्तित्व है। वेदमार्ग पर पृथिवी के सब मनुष्यों को लाने के लिये आर्यसमाज का उपदेश है। वैदिक-सिद्धांत का प्रतिपादन करने के लिये महर्षि दयानन्द के सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थ हैं। वेदमंत्रों के अर्थों को अष्टाध्यायी, महाभाष्य, निघण्टु, निरुक्त, शतपथ आदि ऋषिकृत ग्रन्थों के बल से सृष्टि में दर्शाने के लिये महर्षि दयानन्द का वेदभाष्य है। ईश्वर के वचन और कर्म में अनुकूलता दिखाना सदैव से ऋषियों का सिद्धांत रहा है और उसी सिद्धांत का महर्षि ने आज संसार को उपदेश किया है। सायण, महीधर आदि मनुष्य अपनी मिथ्या कल्पना को अन्धकार के समय में भ्रम से वेदार्थ बतला रहे थे। अब उनके भाष्य तथा उनके पश्चिमी मैक्समूलर आदि शिष्यों के भ्रान्तियुक्त मिथ्या अर्थ मृत्यु को निश्चित प्राप्त हो गये हैं। वह समय आयेगा जब योगी लोग बुद्धि के उत्तम साधन को लेकर वैदिक शब्दों के अर्थ ऋषिकृत ग्रन्थों की सहायता लेते हुये सृष्टि में ढूंढ लेंगे और शेष वेदभाष्य अर्थात् जिसको महर्षि दयानन्द नहीं कर गये, उसको कोई ऋषिश्रेणी का मेधावी योगी और व्याकरण आदि शास्त्रों का पूर्ण पंडित सृष्टि में वैदिक शब्दों का अर्थ दर्शाने वाला ही पूर्ण करेगा। सृष्टि में वेदमंत्रों के अर्थों का समाधिस्थ मेधाबुद्धि से दर्शन करने वाले ही ऋषि कहलाते हैं और ऋषि का सचमुच दूसरा नाम मन्त्रद्रष्टा है। मन्त्रद्रष्टा होने के कारण ही स्वामी विरजानन्द और स्वामी दयानन्द ऋषि और महर्षि कहलाये हैं।

वेद क्यों लिखे गये ?—शब्द-अर्थ-सम्बन्ध रूप वेद-श्रुतियों को आदि सृष्टि से लेकर अनेक वर्ष पर्यन्त लोग श्रवण द्वारा ग्रहण करते और स्मृति-रूप पुस्तकालय में सुरक्षित रखते हुये जीवन में वेद के एक-एक शब्द के अर्थ को व्यवहार में प्रयुक्त कर दिखाते रहे। परन्तु समय आया जबकि लोगों ने अपने हीन कर्मों के द्वारा अपने साधनों को कुछ निर्बल कर लिया और जब यह श्रुतिरूपी वेद को श्रुति की पूर्ण दशा में न रख सके तब ऋषियों ने वेद को उस श्रुति का बोध कराने वाले अक्षरों में लिखकर चार पुस्तकों का रूप दिया और यह चार पुस्तकें ऋगु, यजु, साम, अथर्व विषयों के क्रम की दृष्टि से वेद के चार अध्याय समझने चाहियें। यदि अमैथुनी सृष्टि में पुस्तक की आवश्यकता न थी तो मैथुनी सृष्टि में आवश्यकता होने के कारण पुस्तक रचे गये। इसकें सम्बन्ध में स्वामीजी ने एक व्याख्यान पूना में दिया था; उसकी संक्षिप्त-सी रिपोर्ट में यह वचन लिखे हैं "इक्ष्वाकु[1] के समय में लोग अक्षर-स्याही आदि लिखने की रीति को प्रचार में लाये, ऐसा प्रतीत होता है क्योंकि इक्ष्वाकु के समय में वेद को पूर्णतया कंठस्थ करने की रीति कुछ-कुछ बन्द होने लगी। जिस लिपि में वेद लिखे जाते थे उसी का नाम देवनागरी ऐसा है।"

---

1. मिति २५ जुलाई १८७८ को एक व्याख्यान स्वामीजी ने पूना नगर में दिया था। उसके संक्षिप्त से नोट एक रिपोर्ट के रूप में आर्य पुस्तकप्रचारिणी सभा की ओर से ला० रामविलास जी ने मुद्रित कराये हैं। देखो व्याख्यान नं० ८।

सर्वविद्याओं के मूल, धर्म के वर्षक, मनुष्यमात्र के लिये सूर्यवत् ज्ञानरूपी प्रकाश के फैलाने वाले ईश्वरोक्त वेदों की शिक्षा महर्षि दयानन्द ने लिखित और मौखिक उपदेश द्वारा सबको दी और सारा बल उनके ही सत्यार्थप्रकाश करने और भाष्य रचने में अर्पण कर दिया । **आर्यसमाज का सर्वस्व और मूल धन वेद है ।** आर्यसमाज का नियम बतला रहा है कि वेद का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना आर्यों का परम धर्म है । आर्यों के निरन्तर पुरुषार्थ से अन्त में वह दिन आयेगा जब भूगोल पर रहने वाले मनुष्य सब सत्य विद्याओं के मूल वेद की शरण लेते हुये अन्धकार से आच्छादित पृथिवी को वेद के तेज से स्वर्णमयी बनाते हुये अपने मनुष्य-जीवन को सफल करेंगे ।

अध्याय ८

सत्यार्थप्रकाश पर एक दृष्टि

उदाहरण के रूप में तीन सिद्धांतों का वर्णन करते हुये हमने दिखा दिया कि महर्षि ने किस उत्तम सारगर्भित रीति से सूत्रवत् वैदिक सिद्धांतों के समझाने के लिये पर्याप्त विषय अपनी पुस्तकों में भर दिया है—जिसके समर्थन में संसार भर के श्रेष्ठ विद्वानों की सम्मतियां और साक्षियां इकट्ठी की जा सकती हैं । यदि एक-एक वैदिक सिद्धांत को पूर्णरूप से मनुष्य जानना चाहे तो उसके लिये महर्षि के पुस्तक पर्याप्त हैं । अब हम दर्शाना चाहते हैं कि किन-किन विषयों का उनकी रचनायें प्रतिपादन कर रही हैं ।

सत्यार्थप्रकाश की रचना का प्रयोजन—अन्धेरे में सोये हुये लोगों को जगाने की आवश्यकता है, इससे पहले कि वह सूर्य के प्रकाश को देख सकें । भूले हुये पथिक को सीधे मार्ग में चलाने से पहले आवश्यक है कि उसको उच्च स्वर में बतलाया जाये कि तू उलटे मार्ग में जा रहा है, वहां से लौटकर इधर सीधे मार्ग पर चला आ । 'सत्यार्थप्रकाश' मतमतान्तरों की अविद्या में सोये हुये पुरुषों को जगाने का काम देता हुआ उनको मतमतान्तरों के आलस्य का त्याग कराकर वेदसूर्य के दर्शन के लिये पुरुषार्थी बना देता है । यह विपरीत मार्ग में जाने वाले पथिकों को उच्च स्वर से वेद के सत्यमार्ग में जाने के लिये कह रहा है । जब मनुष्य सत्यार्थप्रकाश को आदि से अन्त तक पढ़ जाये तो वह संसार भर के मतमतान्तरों को तिलान्जलि देता हुआ वेदसूर्य की महत्ता को स्वीकार करने वाला हो जाता है । 'सत्यार्थप्रकाश' प्रभाती तारे के सदृश है जो अपने अस्तित्व से रात्रि को समाप्त करता हुआ सूर्योदय की शुभसूचना गा रहा है । 'सत्यार्थप्रकाश' उस मनुष्य के समान है जो सोये हुये लोगों के सामने अपनी एक अंगुली ऊपर उठाकर सूर्योदय को बतला रहा हो और दूसरे हाथ से उनको आलस्य के त्यागने के लिये बांह से पकड़कर झटका देता जाये । 'सत्यार्थप्रकाश' के दो भाग हैं., एक पूर्वार्द्ध और दूसरा उत्तरार्द्ध । पहला भाग वेदसूर्य की ओर अंगुली का संकेत कर रहा है और दूसरा मानो दूसरे हाथ से मतमतान्तरों के आलस्य को त्यागने के लिये मनुष्य को गति दे रहा है । यदि मनुष्य को केवल गति ही देते जाओ कि उठो, उठो तो सोने वाला करवट बदल कर कहता है कि कहीं सूर्य दिखाई नहीं देता, अभी रात है, मैं नहीं उठता परन्तु जब उठाने वाले की एक अंगुली सूर्योदय को दर्शा रही हो और दूसरा हाथ उसको हिला रहा हो तो सोने वाले आंख खोलते ही सिर पर सूर्य को देखते हुये उठने का यत्न करते हैं ।

'सत्यार्थप्रकाश' एक ही व्यक्ति के दो हाथ—सत्यार्थप्रकाश उस मनुष्य के समान है जो एक हाथ में औषधि की बोतल ओर दूसरे हाथ में रोगी के लिये आरोग्यदायक भोजन लिये खड़ा हो । यदि उत्तरार्द्ध औषधि है तो पूर्वार्द्ध आरोग्यदायक भोजन हैं । यदि उत्तरार्द्ध मतमतान्तरों के रोगों का खंडन करता है तो पूर्वार्द्ध वेद रूपी स्वास्थ्य का मंडन कर

रहा है । जागते हुये पुरुषों के लिये केवल मंडन हुआ करता है परन्तु सोये हुये लोगों के लिये मंडन और खंडन दोनों की आवश्यकता है । मंडन रूपी संकेत वह देख सकते हैं जिनकी आंखें खुली हैं परन्तु आंख खुलाने की अवस्था लाने के लिये खंडनरूपी हिलाना काम करता है । कुछ लोग यह कहा करते हैं कि "किसी का खंडन नहीं करना चाहिये, केवल अपना मंडन कर दिया, लोग स्वयं ही लाभ-हानि को सोच लेंगे, हम काहे को किसी का मन दुखायें ।" यह कथन प्रत्येक अवस्था में ठीक नहीं ठहरता, हम मानते हैं कि जागते हुये पुरुष को मंडन की आवश्यकता है परन्तु सोये हुये को, जिसकी आंखे देख नहीं सकतीं, पहले जगाने की आवश्यकता है । सोये हुये पुरुष कभी-कभी चेष्टा अनुभव करने पर बड़बड़ाया करते हैं परन्तु जगाने वाले इस बड़बड़ाने की कब परवाह करते हैं । हानि-लाभ को जो सोच सकता है वह जाग रहा है, उसके लिये निस्सन्देह मंडन की आवश्यकता है परन्तु सोया हुआ आलस्य के मद में हानि-लाभ को नहीं जान सकता, उसको जगाने की आवश्यकता है । डाक्टर या वैद्य यदि रोगी को चिरायता, कुनैन, कड़वी औषधि देता है; इस अभिप्राय से कि उसको संहारक ज्वर से छुटकारा मिले तो रोगी का कभी-कभी औषधि के कड़वेपन को अनुभव करते हुये मुंह बनाना या डाक्टर को गाली निकालना, कभी डाक्टर को अपने शुभ कार्य को छोड़ने की प्रेरणा नहीं दे सकता । औषधि पिलाते हुये रोगी का पिलाने वालों को लातें मारना उनको उस शुभ कार्य का त्याग करने की प्रेरणा नहीं दे सकता । स्वस्थ व्यक्ति नित्य भोजन किया करते हैं जबकि रोगी भोजन के अतिरिक्त औषधि का भी प्रयोग करते हैं । मंडनरूपी भोजन स्वस्थों के लिये है परन्तु खंडनरूपी औषधि और मंडनरूपी आहार रोगियों के लिये आवश्यक है ।

रोगी की गालियों की उपेक्षा करने वाला डाक्टर—श्रेष्ठ उपदेशक डाक्टर के समान रोगियों को औषधि और भोजन दोनों दिया करते हैं । वह रोगियों की गालियों की परवाह न करते हुये उनको स्वस्थ बनाने की चिन्ता में रहते हैं । महाभारत की विदुरनीति के उद्योगपर्व में लिखा है—"हे धृतराष्ट्र ! मीठी बातें करने वाले चाटुकार बहुत हैं और पथ्यरूपी कल्याणकारी कटुवचन के बोलने और सुनने वाला दुर्लभ है ।"[१] इसलिये हमें चाटुकारिता और उपदेश में विवेक कर लेना चाहिये । उपदेश चाटुकारिता का नाम नहीं । उपदेशक का काम अविद्या के बोदे भवन को खंडन के यंत्र से गिराकर मंडन के मसाले से नये भवन का निर्माण करता है । संसार भर के विद्वानों को देखिये, उपदेशकों के लेखों को पढ़िये, वे सदा इसी खंडन-मंडन के श्रेष्ठ सिद्धांत पर काम करते रहे हैं । विद्वान् सुकरात का उपदेश हमारे सामने इस सिद्धांत को दर्शाता हुआ दिखाई पड़ रहा है । निम्नलिखित शब्दों में सुकरात अपने देशनिवासियों को सम्बोधन कर रहा है—

"हे एथेन्स निवासियो ! मैं तुम्हारा उच्चकोटि का सम्मान करता हुआ तुमको प्यार करता हूं परन्तु मैं तुम्हारे विषय में ईश्वर की आज्ञापालन करूंगा । जब तक मुझमें प्राण और शक्ति है, मैं ज्ञान की चर्चा बन्द नहीं कर सकता और तुम में से प्रत्येक को सत्योपदेश करने से रुक नहीं सकता । इसलिये हे मेरे देशनिवासियो ! मैं कहता हूं कि चाहे मुझे छोड़ो या मारो, परन्तु इस बात का विश्वास रखो कि मैं जीवनोद्देश्य को पलट नहीं सकता । एक बार तो क्या, कई बार चाहे मुझे इस उपदेश के लिये मरना पड़े तो भी तैयार हूं ।"

सुकरात का उदाहरण—उपदेशक सुकरात को विष का प्याला दिया गया, उसने प्रसन्नतापूर्वक पीते हुये प्राण त्याग दिये परन्तु अन्त समय में सत्योपदेश से न रुका । वह आत्मा को अजर, अमर बतलाता हुआ यूनान के मतमतान्तरों और कुरीतियों का खंडन करता था । धनवान और शासक लोग उसकी खंडन रूपी कटुऔषधि को बुरा बतलाते हुये उसके शत्रु हो गये । यहां तक कि उसको मरवा डाला परन्तु आज पश्चिमी संसार से पूछो तो वह सुकरात को यूनान का भूषण मान रहा है ।

ईश्वराज्ञा का पालक उपदेशक-दयानन्द— महर्षि दयानन्द ने अपने जीवन में ईश्वराज्ञा पालते हुये मनुष्यजाति के उद्धार के लिये उपदेश किया । चारों ओर से ईंट और पत्थर खाता हुआ महर्षि वेदोपदेश से नहीं रुकता । पान और

मिठाई में विष दिया गया, परन्तु परम वीर अपेन उद्देश्य से एक इंच भी नहीं सरकता । परोपकारी लोगों को यहां तक प्यार करता है कि उनकी रोगनिवृत्ति के लिये उनकी विरोधरूपी लातें खाने पर भी औषधि दिये जाने से नहीं थमता परन्तु सुकरात के समान देशनिवासियों से बढ़कर ईश्वराज्ञा पालने में तत्पर है । कोई वस्तु भी उसको सत्य से हटा कर झूठ की ओर नहीं लगा सकती । विष खाकर प्राण दे दिये, परन्तु आयु भर चाटुकारिता की बात को छोड़ पथ्यरूपी उपदेश ही किया और मरने पर भी सत्यार्थप्रकाश के रूप में आने वाली सन्तानों के लिये वह पथ्य और पान दोनों छोड़ गया । महर्षि ने संसार को अन्धकार में सोये हुये अनुभव कर लिया था इसलिये वह खंडन से जगाना चाहता था । महर्षि ने संसार में मनुष्यजाति को रोग में फंसा हुआ अनुभव कर लिया था इसलिये वह खंडन की कटु औषधि से काम लेना चाहता था । पूर्ण योगी होने पर वह रोगियों के रोग का विचार करके उपदेश रूपी औषधि दिया करता था । जब वह जोधपुर गया तो कई लोगों ने कहा कि महाराज ! यहां नम्रता से काम लेना तो उस समय महर्षि के यह वचन कि पाप के वृक्ष की जड़ों को नहेरनों से नहीं काटता प्रत्युत कुल्हाड़ी से काटता हूं—उसकी परम बुद्धिमत्ता और पूर्ण हित को दर्शा रहे हैं । संहारक रोग के रोगी को यदि अत्यन्त कड़वी औषिधि दीजिये तो उससे डाक्टर की परमबुद्धिमत्ता और पूर्ण हित प्रकट होता है । रोग की दशा में औषधि कड़वी लगती है परन्तु आरोग्यप्राप्ति पर रोगी आयुभर के लिये डाक्टर का प्रशंसक बन जाता है । मूर्खता से लोग स्वामी जी को कहें कि उन्होंने खंडन से मन को दुखाया परन्तु वह रोगी, जो इस औषधि के द्वारा आरोग्य पा चुके हैं—आयुभर उनके हित को नहीं भूल सकते । संसार भर के लिये सत्यार्थप्रकाश ऋषि के उपदेश को लिये हुये विराजमान है । इसका उद्देश्य अन्धकार के भंयकर रोग से निकाल कर मनुष्यजाति को वेदसूर्य के दर्शन कराना है ।

'सत्यार्थप्रकाश' लिखते समय महर्षि ने क्या विचार किया—'सत्यार्थप्रकाश' के लिखते समय महर्षि के मन में जो विचार आये होंगे उनका अनुमान पंडित गुरुदत्त जी के कथनानुसार उनकी प्रतिज्ञा से प्रकट हो सकता है जिसमें वह महान इच्छा अथवा प्रार्थना का हमें दर्शन करा रहे हैं । योगिराज के अतिरिक्त और कोई मनुष्य इस मन्त्र का उच्चारण अपनी दशा पर कर सकता है ? इसमें वह परमेश्वर से प्रतिज्ञा करते हैं "हे परमेश्वर ! आप ही अन्तर्यामी रूप से प्रत्यक्ष ब्रह्म हो, मैं आपको ही प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूंगा क्योंकि आप सब स्थानों में व्याप्त होके सबको नित्य ही प्राप्त हैं । जो आपकी वेदस्थ यथार्थ आज्ञा है, उसी को मैं सबके लिये उपदेश और आचरण भी करूंगा । सत्य बोलूं, सत्य मानूं और सत्य ही करूंगा; सो आप मेरी रक्षा कीजिये, सो आप मुझ आप्त सत्यवक्ता की रक्षा कीजिये जिससे आपकी आज्ञा में मेरी बुद्धि स्थिर होकर विरोध कभी न हो, क्योंकि जो आपकी आज्ञा है वही धर्म और जो उससे विरुद्ध वही अधर्म है । धर्म से सुनिश्चित और अधर्म से घृणा सदा करूं, ऐसी कृपा मुझ पर कीजिये, मैं आपका बड़ा उपकार मानूंगा ।"

ईश्वर को प्रत्यक्ष करने के अधिकारी योगिराज की इस प्रतिज्ञा के सम्बन्ध में हमारा लेख करना ऐसा है जैसे सूर्य के प्रकाश को दीपक दिखाना, इसलिये हम सत्यवक्ता योगी की प्रतिज्ञा के सम्बन्ध में कुछ अधिक लेख न करते हुये केवल यही कहेंगे कि **महर्षि ने ईश्वराज्ञा पालन के लिये सत्योपदेश के काम को धारण किया था ।**

प्रथम समुल्लास में ईश्वर के ओंकारादि नामों की व्याख्या ।

ईश्वर के नामों की व्याख्या—'सत्यार्थप्रकाश' के प्रथम समुल्लास में महर्षि ईश्वर के नामों की व्याख्या करते हैं, जिसकी आज्ञापालन के लिये उन्होंने अपने आपको अर्पण कर दिया था । 'ओ३म्" परमात्मा का सर्वोत्तम नाम बतलाते हुये वह ओ३म् की **'अ'** कार-मात्रा को विराट्, अग्नि, विश्व; **'उकार'** को हिरण्यगर्भ, वायु, तैजस: **'मकार'** को ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञ का वाचक बतलाते हैं । देव, कुबेर, पृथिवी,आकाश, वसु, रुद्र, जल, चन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा, यज्ञ, गुरु, अज, देवी, निरंजन आदि नाम व्याकरण की रीति से ईश्वर के ही बतलाते हुये वह पौराणिक लोगों के मंगलाचरण के मनमाने ढंग का खंडन करते हुये वेद, उपनिषद् और दर्शनशास्त्रों के प्राचीन ढंग को इन शब्दों में बतलाते हैं—

"वेद और ऋषियों के ग्रन्थों में कहीं ऐसा मंगलाचरण देखने में नहीं आता और आर्ष ग्रन्थों में ओ३म् तथा अथ शब्द तो देखने में आते हैं ।"

"श्री गणेशाय नम:"इत्यादि शब्द पुस्तक के आरम्भ में लिखने की विधि प्राचीन काल में न थी । "हरि ओ३म्" का प्रयोग भी ग्रन्थ के आरम्भ में पौराणिक और तांत्रिक लोगों की मिथ्या कल्पना से ही प्रचलित हुआ है इसलिये 'ओ३म्' या 'अथ' शब्द ही ग्रन्थ के आदि में लिखना चाहिये ।"

दूसरे समुल्लास में सन्तान की शिक्षा और पालन का वर्णन

मनुष्य के तीन शिक्षक-माता-पिता और गुरु—प्राचीन शतपथ ब्राह्मण नामक पुस्तक के प्रमाण से वह इस समुल्लास में सिद्ध करते हैं कि मनुष्य के तीन शिक्षक हैं—प्रथम माता, दूसरा पिता, तीसरा गुरु । चूंकि बचपन के समय में डाले हुये संस्कार चिरकाल तक स्थिर रहते हैं इसलिये वह प्रेरणा देते हैं कि सन्तान को उत्तम शिक्षायें आरम्भ में ही माता-पिता देते रहें ओर भूत-प्रेत आदि भ्रान्त धारणाओं से बच्चों को न डरायें और ऐसा यत्न करें कि बच्चे ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय बनें । जन्मपत्री का मूर्खतापन दर्शाते हुये सूर्य आदि ग्रहपीड़ा के भ्रम से बचने की शिक्षा देते हैं और लिखते हैं—

"माता-पिता-आचार्य अपने संतान और शिष्यों को सदा सत्योपदेश करें और यह भी कहें कि जो-जो हमारे धर्मयुक्त कर्म हैं उन-उन को ग्रहण करो और जो-जो दुष्ट कर्म हों, उनका त्याग कर दिया करो ।"

"जिस प्रकार आरोग्य, विद्या और बल प्राप्त हो उसी प्रकार भोजन, छादन और व्यवहार करें-करावें अर्थात् जितनी क्षुधा हो उससे कुछ न्यून भोजन करें । मद्य, मांस आदि के सेवन से अलग रहें, अज्ञात गम्भीर जल में प्रवेश न करें ।" इत्यादि बहुत सी उत्तम शिक्षा रूप रत्नों से यह समुल्लास जड़ा[1] हुआ है ।

तीसरे समुल्लास में ब्रह्मचर्य, पठनपाठन-व्यवस्था, सत्यासत्य ग्रन्थों के नाम और पढ़ने की रीति है ।

ब्रह्मचर्य का स्वरूप—आठ प्रकार के मैथुनों से लड़के-लड़कियों को बचा कर पूर्ण ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणी होने की वेदोक्त शिक्षा देते हुये महर्षि मनु के वचनों में वह लड़के-लड़कियों को वेदविद्या से युक्त करना दर्शाते हैं । फिर गायत्री मंत्र के उपदेश की प्रेरणा करते हुये स्नान, आचमन, प्राणायाम की विधि वर्णन की है । प्राणायाम के सम्बन्ध में लिखते हैं—

प्राणायाम की विधि—"प्राण अपने वश में होने से मन और इन्द्रिय भी स्वाधीन होते हैं । **पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र सूक्ष्मरूप हो जाती है, जो बहुत कठिन और सूक्ष्म विषय को भी शीघ्र ग्रहण करती है । इससे मनुष्य के शरीर में वीर्य वृद्धि को प्राप्त होकर स्थिर बल, पराक्रम, जितेन्द्रियता, सब शास्त्रों को थोड़े से काल में समझकर उपस्थित कर लेगा । स्त्री भी इसी प्रकार योगाभ्यास करे ।**

फिर सन्ध्या-उपासना के सम्बन्ध में लिखते हैं—"न्यून से न्यून एक घंटा ध्यान अवश्य करे । जैसे समाधिस्थ होकर योगी लोग परमात्मा का ध्यान करते हैं वैसे ही सन्ध्योपासन भी किया करे ।"

---

1. दूसरे समुल्लास में जो निर्बल स्त्रियों को दूध पिलाने का निषेध किया है उससे यह नहीं समझना चाहिये कि वह नीरोग और बलवती स्त्रियों को दूध पिलाने से रोकते हैं क्योंकि वह लिखते हैं कि धाय आदि स्त्रियां दूध पिलायें इसलिये ग्रन्थकर्त्ता का आशय निर्बल स्त्रियों को,जो कि प्रसूत समय और भी निर्बल हो जाती है, दूध पिलाने से रोकने का है, न कि नीरोग और बलवती स्त्रियों को ।

होम की विधि और होम के लाभों पर युक्तियों से बल देते हुये महर्षि लिखते हैं—

दैनिक हवन—"प्रत्येक मनुष्य को सोलह-सोलह आहुति और छ:छ: माशे घृत आदिक एक-एक आहुति का परिमाण न्यून से न्यून चाहिये और जो इससे अधिक करे तो बहुत अच्छा है। इसीलिये आर्यवर शिरोमणि महाशय, ऋषि,महर्षि, राजे महाराजे लोग बहुत-सा होम करते और कराते थे। जब तक होम करने का प्रचार रहा तब तक आर्यावर्त देश रोगों से रहित और सुखों से पूरित था। अब भी प्रचार हो तो वैसा ही हो जाये।" फिर बतलाया है कि ब्रह्मचर्याश्रम में केवल ब्रह्मयज्ञ ओर अग्निहोत्र का ही करना होता है।

तीन प्रकार का ब्रह्मचर्य—छान्दोग्योपनिषद् के लेखानुसार ब्रह्मचर्य तीन प्रकार का वर्णन किया है। प्रथम कनिष्ठ जो २४ वर्ष तक का ब्रह्मचर्य है। २४ वर्ष के ब्रह्मचर्य रखने वाले की आयु का अनुमान सत्तर या अस्सी वर्ष बतलाते हैं। दूसरा मध्यम ब्रह्मचर्य जो कि ४४ वर्ष का है और तीसरा उत्तम ब्रह्मचर्य जो कि ४८ वर्ष तक धारण किया जाता है। उत्तम ब्रह्मचर्य को पूर्ण रीति से करने वाला आयु को ४०० वर्ष तक बढ़ा सकता है। कई लेखक बतलाते हैं[1] कि पुराने अरब निवासी, ब्राजील निवासी और ब्राह्मण लोग दो सौ या तीन सौ वर्ष तक जीते थे। प्रोफेसर ह्यूफलैंड का कथन है—"जिसको युवा होने में देर लगे उसकी आयु भी लम्बी होगी।"

डाक्टर ऐलनसन[2] का कथन है "प्राय: प्राणी उससे छ: गुना जिया करते हैं जितनी देर उनको युवा होने में लगती है।" योगदर्शन भाष्य में लिखा है "श्वास ही के आश्रय से प्राणियों का जीवन है। उसीका निरोध करने से मनुष्य की आयु दुगनी, तिगुनी, चौगुनी हो सकती[3] है।" निम्नलिखित नक्शे से दर्शाया है कि जो प्राणी कम श्वास लेता है वह अधिक जीता है—

नाम प्राणी	श्वाससंख्या	आयुसंख्या वर्षों में।
खरगोश	३८	८
बन्दर	३२	२१
कुत्ता	२९	१४
घोड़ा	१८	५०
साधारण मनुष्य	१३	१००
सर्प	८	१२०
कछुआ	५	१५०

उपर्युक्त बातों पर विचार करके हम कह सकते हैं कि ४८ वर्ष तक अखंड ब्रह्मचर्य के धारण करने वाला परमयोगी योगबल से १०० वर्ष की आयु को ४०० वर्ष तक बढ़ा सकता है। किस आयु का ब्रह्मचारी किस आयु की ब्रह्मचारिणी

1. पुस्तक फ्रूट्स एण्ड फारन एशिया, १ पृष्ठ ९१।

2. मैडिकल ऐस्से (Medical Essay) नं. पृष्ठ २२।

3. पंडित रुद्रदत्त जी सम्पादक समाचारपत्र 'आर्यावर्त' दानापुर द्वारा लिखित योगदर्शन भाष्य, पृष्ठ ६,७

से विवाह करे, इसके सम्बन्ध में महर्षि दर्शाते हैं कि विवाह की आयु स्त्री-पुरुष दोनों की समान न होनी चाहिये और जिस अन्तर से हो, उसका निम्नलिखित नक्शा प्रकट कर रहा है—

ब्रह्मचारी की आयु	ब्रह्मचारिणी की आयु
२५	१६
३०	१७
३६	१८
४०	२०
४४	२२
४८	२४

स्त्री को प्राय: १३ वर्ष की आयु से मासिक धर्म आरम्भ हो जाता है और वह १६ वर्ष की आयु में सन्तानोत्पत्ति के योग्य हो जाती है, वहां लड़का २५ वर्ष में विवाह के योग्य होता है। स्त्री जहां पुरुष से पहले युवती हो जाती है वहां उससे पहले ही सन्तानोत्पत्ति के योग्य नहीं रहती। डाक्टर होलब्रुक एम० डी० का कथन है कि स्वस्थ स्त्रियां सन्तानोत्पत्ति की शक्ति ४० और ४५ वर्ष के भीतर खो बैठती हैं। उपर्युक्त अन्तर अत्यन्त उचित और गहरी विद्या का परिणाम है। विज्ञान दिन-प्रतिदिन उनका समर्थन करता हुआ दिखाई दे रहा है और अनुभव उसकी श्रेष्ठता की त्रिर्भान्त साक्षी दे रहा है।

ब्रह्मचर्य में निषिद्ध कर्म—जिन बातों से ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी को बचना चाहिए उनका वर्णन इस प्रकार करते हैं—"ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी मद्य, मांस,गन्ध,माला,रस,स्त्री और पुरुष का संग, सब खटाई, प्राणियों की हिंसा, अंगों का मर्दन,बिना निमित्त उपस्थेन्द्रिय का स्पर्श, आंखों में अंजन,जूते और छत्र का धारण, काम,क्रोध, लोभ,मोह, भय,शोक, ईर्ष्या,द्वेष, नाच,गान और बाजा बजाना, द्यूत, जिस किसी की कथा,निन्दा,मिथ्याभाषण, स्त्रियों का दर्शन, आश्रय, दूसरे की हानि आदि कुकर्मो को सदा छोड़ दें। सर्वत्र एकाकी सोवें, वीर्य स्खलित न करें। जो कामना से वीर्य स्खलित कर दे तो जानो अपने ब्रह्मचर्य व्रत का नाश कर दिया।"

सत्य की परीक्षा की कसौटी—सत्य की पांच प्रकार की परीक्षा का वर्णन करते हुए महर्षि प्रत्यक्ष आदि आठ प्रमाणों की विशेष व्याख्या दार्शनिक रीति से करते हैं जिसको पढ़कर मनुष्य शास्त्रों की महत्ता और ऋषियों की मेधाबुद्धि को स्वीकार करने लगता है।

तत्त्व ६४ नहीं, पांच हैं—पश्चिमी विज्ञान का यह कथन कि तत्त्व ६४ हैं, तब मिथ्या प्रतीत होता है जब कणाद महर्षि के सूत्र पाठक के दृष्टिगोचर होते हैं। वास्तव में भूत केवल पांच ही हैं। एक अमरीकन[1] विद्वान् इसी बात को अनुभव करता हुआ प्रतीत होता है कि भूत पांच ही होने चाहिएं और उनके पांच ही नाम वह अपनी पुस्तक में लिखता है। अंग्रेजी भाषा की अपूर्णता के कारण यद्यपि उसका लेख इतना स्पष्ट नहीं जितना कि शास्त्रकारों का होता है तथापि वह लेख पश्चिमी लोगों को ६४तत्त्वों के स्थान से हटाने वाला है। इसी विषय के एक और पुस्तक में विचार किया गया है[2] जिसका सारांश

1. ए० जे० डेवस द्वारा लिखित 'सैटलर की' पृष्ठ ५७,८७।

2. बानू रामप्रसाद एम० ए० मेरठ द्वारा लिखित 'नेचर्स फाइव फोर्सस', पृष्ठ ३।

यह है कि पश्चिमी विज्ञान ने आज तक केवल एक तेज, भूत का ही पता लगाया है शेष भूतों का उसको ज्ञान नहीं । इनके वास्तविक सूक्ष्म अर्थ समझने के लिए प्रत्येक पुरुष को इस समुल्लास का ध्यानपूर्वक अध्ययन करना चाहिए । वर्तमान पश्चिमी विज्ञान यह भी निश्चित नहीं कर सकता कि तत्त्व ६४ हैं , इससे बढ़कर नहीं । उसकी यह अनिश्चित दशा बतला रही है कि वह दीपक के प्रकाश में टटोल रहा है । हम जहां यूरोप के विचारकों को प्रकृति के समीप आते देखते हैं वहां उनकी दशा को देखकर यह कह सकते हैं कि उनको यह सत्य सिद्धांत कि, भूत पांच ही हैं—अन्ततः स्वीकार करना पड़ेगा । पंडित गुरुदत्त जी कहा करते थे "मनुष्य की पांच ज्ञानेन्द्रियां इस बात का अत्यधिक समर्थन कर रही हैं कि भूत पांच ही हैं ।" इसी स्थान पर महर्षि सूक्ष्म दार्शनिक सिद्धांत का वर्णन करते हुए, मन, आत्मा आदि का पूर्ण लक्षण देते हैं और इस प्रकार एक-एक शब्द से, वैदिक सिद्धांतों के महत्व का निश्चयात्मक बोध करा रहे हैं । जिसने पश्चिमी विज्ञान और फिलासफी को समाप्त कर लिया हो वह इन सूत्रों के समझने में अपने आपको असमर्थ पाता हुआ पंडित गुरुदत्त जी के शब्दों में सहसा कह उठता है, "जहां पश्चिमी विज्ञान और फिलासफी की समाप्ति होती है वहां वैदिक फिलासफी और विज्ञान का आरम्भ है ।" कौनसा सूक्ष्म विषय है जिसको ऋषियों ने इन सूत्रों के भीतर बंद नहीं कर दिया । सागर को गागर में बन्द करने की उपमा यहां पर ही चरितार्थ होती है । महाभारत युद्ध से पहले की विद्या को जानने के लिए यह सूत्र दृष्टान्त का काम दे रहे हैं । इसके पश्चात् महर्षि निम्नलिखित पठन-पाठन विधि का वर्णन करते हैं, जिससे भली-भांति पता लग सकता है कि हमें अपनी सन्तानों को ब्रह्मचर्य काल में कौन-कौन से ग्रन्थ पढ़ाने चाहियें—

पठन-पाठन विधि—अब हम पढ़ने-पढ़ाने का प्रकार लिखते हैं । "प्रथम पाणिनि मुनिकृत शिक्षा जो कि सूत्रपाठ है, माता-पिता सिखलावें । तदनन्तर व्याकरण अर्थात् प्रथम अष्टाध्यायी के सूत्रों का पाठ, फिर पदच्छेद, फिर समास और अर्थ, उदाहरण- जो-जो सूत्र आगे पीछे के प्रयोग में लगें अनका कार्य सब बतलाया जाये..... एक बार इसी प्रकार अष्टाध्यायी पढ़ा के धातुपाठ अर्थ सहित और दश लकारों के रूप..... पाणिनि महर्षि ने एक सहस्र श्लोकों के बीच में अखिल शब्द, अर्थ और सम्बन्धों की विद्या प्रतिपादित कर दी है ।धातु के पश्चात् उणादि गण..... पढ़ा के पुनः दूसरी बार शंका समाधान..... पूर्वक अष्टाध्यायी की द्वितीय अनुवृत्ति पढ़ावे । तदनन्तर महाभाष्य पढ़ावे । डेढ़ वर्ष में अष्टाध्यायी और डेढ़ वर्ष में महाभाष्य पढ़कर तीन वर्ष में पूर्ण वैयाकरण होकर..... अन्य शास्त्रों को शीघ्र सहज में पढ़-पढ़ा सकते हैं..... जितना बोध कुग्रन्थ अर्थात् सारस्वत, चन्द्रिका, मनोरमादि के पढ़ने से पचास वर्षों में भी नहीं हो सकता है..... महर्षि लोगों का आशय जहां तक हो सके वहां तक सुगम और जिसके ग्रहण में समय थोड़ा लगे इस प्रकार का होता है । क्षुद्राशय लोगों की मनसा ऐसी होती है कि जहां तक बने वहां तक कठिन रचना करनी । जैसे पहाड़ का खोदना कौड़ी का लाभ होना और आर्ष ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना बहुमूल्य मोतियों का पाना ।

व्याकरण को पढ़कर यास्कमुनि कृत निघण्टु और निरुक्त छः या आठ महीने में सार्थक पढ़ें और पढ़ावें । अन्य नास्तिककृत अमरकोषादि में अनेक वर्ष व्यर्थ न खोवें । तदनन्तर पिंगलाचार्यकृत छन्दो ग्रन्थ..... सीखें । इस ग्रन्थ और श्लोकों की रचना तथा प्रस्तार को चार महीने में सीख पढ़-पढ़ा सकते हैं और वृत्तरत्नाकर आदि अल्पबुद्धिप्रकल्पित ग्रन्थों में अनेक वर्ष न खोवें । तत्पश्चात् मनुस्मृति, वाल्मीकि रामायण और महाभारत के उद्योगपर्वान्तिर्गत विदुरनीति आदि अच्छे-अच्छे प्रकरण जिनसे दुष्ट व्यसन दूर हों..... उसको वर्ष के भीतर पढ़ लें । तदनन्तर पूर्व मीमांसा, वैशेषिक, न्याय,योग, सांख्य और वेदांत अर्थात् जहां तक बन सके वहां तक ऋषिकृत व्याख्या सहित अथवा उत्तम विद्धानों की सरल व्याख्यायुक्त, छः शास्त्रों को पढ़ें-पढ़ावें परन्तु वेदान्त सूत्रों के पढ़ने से पूर्व ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक इन दश उपनिषदों को पढ़कर छः शास्त्रों के भाष्य वृत्तिसहित सूत्रों को दो वर्ष के भीतर..... पढ़ लेवें । पश्चात् छः वर्षों के भीतर चारों ब्राह्मण अर्थात ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ ब्राह्मणें के सहित चारों वेदों को स्वर,

शब्द, अर्थ सम्बन्ध तथा क्रिया सहित पढ़ना योग्य है ।.....इस प्रकार सब वेदों को पढ़के आयुर्वेद अर्थात जो चरक, सुश्रुत आदि ऋषि-मुनि प्रणीत वैद्यक शास्त्र है, उसको अर्थ, क्रिया, शस्त्र, छेदन, भेदन, लेप, चिकित्सा, निदान औषधि, पथ्य, शरीर, देश,काल और वस्तु के गुण व ज्ञान-पूर्वक चार वर्ष के भीतर पढ़े-पढ़ावे । तदनन्तर धनुर्वेद अर्थात् जो राजसम्बन्धी काम करना है, उसके दो भेद एक निज राजपुरुष सम्बन्धी और दूसरा प्रजासम्बन्धी होता है । राजकार्य में सब सेना के अध्यक्ष, शस्त्रास्त्रविद्या, नानाप्रकार के व्यूहों का अभ्यास अर्थात् जिसको कि आजकल कवायद कहते हैं जो कि शत्रुओं से लड़ाई के समय में क्रिया करनी होती है उनको यथावत् सीखें इस राजविद्या को दो-दो वर्ष में सीखकर गान्धर्ववेद कि जिसको गान विद्या कहते हैं उसमें स्वर, राग, रागणी, समय, ताल, ग्राम, तान, वादित्र-वादन पूर्वक सीखें और नारद संहिता आदि जो-जो आर्ष ग्रन्थ हैं उनको पढ़ें परन्तु भड़वे, वेश्या और विषयासक्तिकारक वैरागियों के गर्दभशब्दवत् आलाप कभी न करें । अर्थवेद कि जिसको शिल्प विद्या कहते हैं उसको पदार्थ, गुण, विज्ञान, क्रियाकौशल, नानाविध पदार्थों का निर्माण,पृथिवी से लेकर आकाश पर्यन्त को यथावत् सीख के अर्थात् जो ऐश्वर्य को बढाने वाला है उस विद्या को सीख के दो वर्ष में ज्योतिष शास्त्र, सूर्य सिद्धांत आदि जिसमें बीजगणित,अंक, भूगोल, खगोल और भूगर्भ विद्या है उसको यथावत् सीखें । तत्पश्चात् सब प्रकार की हस्तक्रिया,यन्त्रकला आदि को सीखें परन्तु जितने ग्रह, नक्षत्र, जन्मपत्र, राशि,मुहूर्त आदि के फल के विधायक ग्रन्थ हैं उनको झूठ समझकर कभी न पढ़े और पढ़ावे । ऐसा प्रयत्न पढ़ने-पढ़ाने वाले करें जिससे बीस व इक्कीस वर्ष के भीतर समग्र विद्या उत्तम शिक्षा प्राप्त होकर मनुष्य लोग कृतकृत्य होकर सदा आनन्द में रहें । जितनी समग्र विद्या इस रीति से बीस वा इक्कीस वर्षों में हो सकती है, उतनी अन्य प्रकार से शतवर्ष में भी नहीं हो सकती ।"

चौथे समुल्लास में विवाह और गृहाश्रम का विषय

स्वयंवर की प्राचीन मर्यादानुसार दूर देशों में विवाह करने के लाभ दर्शाते हुए आठ[1] प्रकार के विवाह का वर्णन महर्षि मनु के वचनानुसार अत्यन्त श्रेष्ठता से करते हैं । बीच में ही वर्णव्यवस्था का गुणकर्मानुसार होना दर्शाते हुए ब्राह्मण के पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना-कराना, दान देना-लेना, कर्म बतलाने और व्यवस्था करने के पश्चात् लिखते हैं—

ब्राह्मण आदि के गुण तथा कर्म—यह पन्द्रह कर्म और गुण ब्राह्मण वर्णस्थ मनुष्यों में अवश्य होने चाहियें ।

प्रजारक्षा, दान, धृति आदि ग्यारह क्षत्रियवर्ण के कर्म और गुण बतलाये हैं । इसी प्रकार वैश्य और शूद्र के पृथक्-पृथक् गुण कर्म का कथन किया है । कई अच्छे विद्वान् विशेष आवेग में आकर प्रत्येक मनुष्य के लिए हल चलाना, जो कि वैश्य का कर्म है, आवश्यक बतलाते हुए भूल कर रहे हैं । प्रोफेसर विन्क[2] का कथन है कि विद्वानों को जीविकोपार्जन की चिन्ता से मुक्त रहना चाहिए । डार्विन के विषय में लिखा है उसको जीविकोपार्जन की चिन्ता न थी । वह अपने प्रयोगों में निश्चिन्त होकर लगा रहता था । 'जियोलोजी' (भूगर्भविद्या) का प्रचारक 'लायल' भी रोटी कमाने की चिन्ता से मुक्त होकर

1. मानवी स्वभाव का पूर्ण अध्ययन करने पर महर्षियों ने आठ प्रकार के विवाह नियत किये थे । विद्वान् ऐण्ड्रो जैक्सन डेविस ने 'हारमोनिया' चतुर्थ खण्ड में सात प्रकार के विवाह का वर्णन आर्य सिद्धान्तानुकूल किया है । यद्यपि उसने आठवीं प्रकार के विवाह का वर्णन नहीं किया परन्तु आठवीं प्रकार का विवाह सातवें से बहुत समानता रखता है । विषय में लिखा है कि उसको जीविकोपार्जन की चिन्ता न थी । वह अपने प्रयोगों में निश्चिन्त होकर लगा रहता था । 'जियोलोजी' (भूगर्भविद्या) का प्रचारक 'लायल' भी रोटी कमाने की चिन्ता से मुक्त होकर अपनी विद्या सम्बन्धी खोज में संलग्न रहता था । आज संसार वर्णो के पृथक्-पृथक् गुण,कर्म का प्रशंसक दिखाई पड़ रहा है और आचरण से उनकी भूल का अनुभव करा रहा है जो एक ही वर्ण में मनुष्य जाति को बांटना चाहते हैं ।

2. हम्बोल्ट लाइब्रेरी द्वारा प्रकाशित 'चार्ल्स डार्विन : हिज लाइफ ऐण्ड दर्क' (Charles Darwin, His life and Work) पृष्ठ २६ ।

अपनी विद्या सम्बन्धी खोज में संलग्न रहता था। आज संसार वर्णों के पृथक्-पृथक् गुण, कर्म का प्रशंसक दिखाई पड़ रहा है और आचरण से उनकी भूल का अनुभव करा रहा है जो एक ही वर्ण में मनुष्य जाति को बांटना चाहते हैं।

पति-पत्नी का पारस्परिक व्यवहार—महर्षि ने इस समुल्लास में स्त्री-पुरुष के परस्पर व्यवहार की रीति का वर्णन करते हुए प्राचीन आर्य परिवार का उत्कर्ष दिखा दिया है। साथ ही गृहस्थ के पांच दैनिक कर्त्तव्यों का, जिनको पंचमहायज्ञ कहते हैं, वर्णन किया है। ठगों-पाखंडियों से सावधान रहने की शिक्षा देते हुए गृहस्थियों को शुभ गुणों के धारण करने की आवश्यकता जतलाई है।

आपत्काल में नियोग—जहां उन्होंने गृहाश्रम के मूल विवाह का आदर्श संसार के सामने रखा है, वहां आपत्काल में द्विजों के लिए नियोग का वर्णन किया है। नियोग की आज्ञा वेदमन्त्रों से दिखाते हुए उसकी विधि का वर्णन किया है। जो लोग वर्तमान वर्णाश्रम से रहित अवस्था में नियोग का प्रचलित होना समझे हुए हैं, उनको अनेक प्रकार के संशय उत्पन्न हो रहे हैं परन्तु उनका आधार किसी युक्ति पर नहीं है प्रत्युत उनका भ्रमपूर्ण स्वभाव ही है, और जो लोग समझते हैं कि वर्णाश्रम के पुन: स्थापित होने पर नियोग को प्रचलित करना चाहिए उनको यह आपत्काल का धर्म, जिसका अभिप्राय पाप को दूर करने का है, अत्यन्त ही उचित और ठीक प्रतीत होता है। सत्य तो यह है कि लोग आज विवाह का उद्देश्य केवल सन्तानोत्पत्ति है, इसको ही नहीं समझ सकते। उनके फैशनेबिल (Fashionable) मस्तिष्कों में विवाह व्यभिचार है। जब वह विवाह को व्यभिचार का कर्म बता रहे हैं तो उनसे आशा करना कि वह नियोग की उत्तमता की सराहना करें हमारी भूल है। पाण्डुरोग वाले की आंखों को संसार ही पीला दिखाई देता है। पापी हृदय शुद्ध नियमों को पाप युक्त ही अनुभव करते हैं। आपत्काल की दशा में आर्य लोग नियोग किया करते थे। इतिहास बतलाता है कि पाण्डु राजा की स्त्री कुन्ती और माद्री ने नियोग किया था। यही नहीं, प्रत्युत महर्षि व्यास जी ने चित्रांगद और विचित्रवीर्य के मर जाने के पश्चात् अपने भाइयों की स्त्रियों से नियोग किया था। जैसे निद्रा से स्वास्थ्य का अनुमान लग सकता है, स्वप्न से मन की दशा को जांच सकते हैं वैसे नियोग सोसाइटी (समाज) की पवित्रता को प्रकट करता है। नियोग का महत्त्व वही समझ सकते हैं जो निष्पक्ष होकर वर्तमान विवाह के वेष में व्यभिचार को अनुभव कर सकते हैं। केवल सन्तानोत्पत्ति के लिए ऋतुकाल में स्त्रीसंग करना विवाह और इसके विपरीत सर्व कुचेष्टा व्यभिचार है, चाहे वह विवाह के वेष में क्यों न की जाये। ब्रह्मचर्य की जड़ पर कुल्हाड़ा रखने वाले फैशन के गहरे अन्धकार में पड़े हुए लोग यदि ऋषियों के उन वेदोक्त व्यवहारों को, जो पापनिवृत्ति के लिए हैं, उल्टा न समझें तो और कौन समझे? जब संसार फैशन से मुक्त होकर विवाह के उच्च आदर्श को धारण करेगा, जब संसार आचरण से विवाह को केवल सन्तानोत्पत्ति[1] का महान् साधन निश्चित करेगा उसी दिन उसको आपत्काल की दशा में नियोग पर आचरण करने की सूझेगी और फिर प्रतीत होगा कि ऋषियों के व्यवहार सृष्टिक्रम पर आधारित होने के कारण छिद्र से रहित हैं।

पांचवें समुल्लास में वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम का वर्णन है।

वर्णाश्रमधर्म का महत्त्व—वेदोक्त पूर्ण वर्णाश्रम के अभाव से जो दुर्गति इस समय यूरोप, अमरीका आदि सभ्य देशों की हो रही है, उसका वर्णन करने के लिए एक पृथक् पुस्तक चाहिए। उसका वर्णन करने की अपेक्षा हम विचारक हैनरी जार्ज से लेकर एडवर्ड बिल एमी से कई लेखकों के लेखों से भली भांति जान सकते हैं। सोशलिज्म के प्रचारक

---

1. डाक्टर ट्राल एम० डी० और लूई कुइने से अनेक डाक्टर इस बात को स्वीकार करते हैं कि विवाह का उद्देश्य केवल सन्तानोत्पत्ति है।

अपने लगातार प्रयत्नों से अच्छी सोसाइटी की अवस्था के लिए हाथ पांव मार रहे हैं । 'रिची' सरीखे विद्वान् वीरता से बतला रहे हैं कि सोसाइटी की अवस्था को अच्छा[1] बनाने के लिए डारविन का सिद्धान्त सर्वथा निकम्मा है । वर्तमान पश्चिमी सभ्यता के साथ दरिद्रता ऐसी लगी है जैसे वृक्ष के साथ पत्ते लगे हुए हैं । पश्चिम में वर्णाश्रम का स्वप्न लेने वाले आये दिन लोगों को आशाएं दिला रहे हैं कि पृथिवी पर वह दिन आयेगा जबकि बाहरी वस्तुओं या धन के स्थान पर मनुष्य के निजी गुण अर्थात् आत्मिक उन्नति की दृष्टि से पूर्वकाल के ऋषियों के समान श्रेणियां स्थापित की जायेंगी और प्रत्येक अपने योग्य काम को करने से एक-दूसरे की क्रियात्मक रूप में सहायता करता हुआ दिखाई देगा और मनुष्य इस भूमि को सुख-विशेष के कारण स्वर्ग कहेंगे परन्तु इन स्वप्नों को देखने वालों को ऋषियों के वर्णाश्रम का पता तक नहीं ।

निर्लेप जीवन की व्यवस्था—पश्चिमी सोशलिज्म के गुणों को पूर्णरूप देने, उनके दोषों और स्वप्न की बातों को दूर करने वाला यूरोप और अमरीका की सोसाइटी के अच्छा बनाने वालों को मंगलसमाचार का बोधक, आर्यावर्त के मनुष्यों को गुणकर्मानुसार वर्ण की महिमा दिखाने और ऋषियों के जीवन के निर्भ्रान्त समयविभाग को आश्रम के रूप में दर्शाने वाला वर्णाश्रमरूपी सिद्धान्त महर्षि दयानन्द के उपकार से आज प्रकट हो गया है । महर्षि ने तीसरे समुल्लास में ब्रह्मचर्य और चौथे में गृहाश्रम का वर्णन किया था । इस पांचवें समुल्लास में जीवन के शेष दो भागों का वर्णन, जिनको वानप्रस्थ और संन्यास कहते हैं, किया है । जल में रहकर कमल के समान जल से निर्लेप रहने के प्रश्न का ऋषियों ने ही इस आश्रम-व्यवस्था के बल से समाधान किया था । संसार में रहकर संसार को परमात्मदर्शन का साधन बनाना ऋषियों का ही काम था । आज जहां मनुष्य को मरते समय तक प्रायः जीविकोपार्जन की चिन्ता लगी रहती है वहां सर्व प्रकार के भय को दूर करते हुए वर्णाश्रमव्यवस्था के कारण ही सोसाइटी से उचित पेंशन (Pension) पाये हुए प्राचीन आर्य लोग आधी आयु ईश्वरदर्शन के लिये लगाते थे । लौकेषणा को छोड़ने वाले वानप्रस्थ के भीतर पांव धर सकते हैं और वानप्रस्थ में तप आदि उत्तम साधनों द्वारा आत्मिक शक्तियों को बढ़ाते हुए संन्यास के महान् आश्रम में निष्कामरीति से वेदोपदेश करने के लिये प्रविष्ट होते हैं । इस समुल्लास को पढ़ते हुए मनुष्य के ज्ञाननेत्रों के सम्मुख ऋषियों का वह काल आ जाता है जिस काल में लोग ब्रह्मचर्य और गृहस्थ को पालते हुए वानप्रस्थ और संन्यास के आश्रमों में मुक्ति को सिद्ध करने के लिए प्रविष्ट होते थे ।

छठे समुल्लास में राजधर्म का वर्णन है ।

राजार्यसभा का सभापति राजा—इस समुल्लास के आरम्भ में महर्षि विद्यार्यसभा, धर्मार्यसभा, राजार्यसभा का वर्णन करते हुए राजार्यसभा के सभापति का नाम राजा बतलाते हैं । प्राचीन समय के अनुसार जब शूद्र गुणकर्म से ब्राह्मण और ब्राह्मण का लड़का गुणकर्म से क्रियात्मक रूप में शूद्र निश्चित किया जाता था-यह विचार करना कि सभापति या राजा का पुत्र ही राजा बनाया जाता होगा-सर्वथा अशुद्ध है । "इक्ष्वाकु[2] राजा हुआ तो इसलिए नहीं कि वह राजकुल में उत्पन्न हुआ था अथवा उसने बलात्कार से राज्य उत्पन्न किया हो किन्तु सारे लोगों ने उसे उसकी योग्यतानुकूल राजसभा में अध्यक्ष स्थान पर बिठाया ।" "सगर राजा सुशील और नीतिमान् था । इस राजा का मूर्ख और दुष्ट ऐसा **"असमंजस"** नाम का पुत्र

---

1. हम्बोल्ट लाइब्रेरी द्वारा प्रकाशित डैविड जी० रिची० एम० ए० की लिखी हुई "डार्विनिज्म ऐंड पोलिटिक्स" (Darwinism and Politics) ।

2. पुस्तक प्रचारिणी सभा राजस्थान से सम्बन्धित व्याख्यान नं० ८ ।

उत्पन्न हुआ । उसने एक निर्धन के बालक को जल में फेंक दिया । उसके अपराध का न्याय राजार्यसभा के सम्मुख होने पर राजा ने उसे दण्ड दिया और एक महा भयंकर जंगल के बीच बन्दी कर रखा । इसी का नाम 'न्याय'[1] है ।

इस समुल्लास में दण्ड, राजकर्त्तव्य, राजाओं के व्यसन, मंत्री, दूत आदि राजपुरुषों के लक्षण, युद्ध, कर, न्याय, साक्षी, अपराधियों का ताड़न आदि अनेक विषयों को महर्षि मनु के वचनों में अति उत्तमता से वर्णन करते हुए पृथिवी को प्राचीन पूर्ण राज्य का आदर्श दिखा दिया है । ईरान, मिस्र, यूनान और रोम ने राजधर्म की वेदोक्त शिक्षा मनुस्मृति से ही ग्रहण की थी जिसका वर्णन इस समुल्लास में भर रहा है । इस समुल्लास की समाप्ति पर महर्षि निम्नलिखित प्रश्नोत्तर लिखते हैं—(प्रश्न) संस्कृत विद्या में पूरी राजनीति है वा अधूरी ?

(उत्तर) पूरी है क्योंकि जो-जो भूगोल में राजनीति चली और चलेगी वह सब संस्कृत-विद्या से ली है ।"

सातवें समुल्लास में ईश्वर और वेद का विषय

प्रार्थना का अर्थ है शुभ संकल्प—एक सच्चिदानन्द ईश्वर को वेदोक्त प्रमाणों से सिद्ध करते हुए, उसके गुणों की विस्तारपूर्वक अति उत्तम व्याख्या करने से लोगों के संशय निवारण करने के पश्चात् महर्षि स्तुति, प्रार्थना और उपासना को उसकी भक्ति के पूर्ण उपाय बतलाते हैं । ईसाई, ब्रह्मसमाजी आदि लोग पाठमयी प्रार्थना से ईश्वरप्राप्ति भ्रम से मान रहे हैं परन्तु महर्षि ने दर्शा दिया है कि सच्ची प्रार्थना का वेदमन्त्रों ने संकल्प के नाम से बोधन कराया है और संकल्प या वैदिक प्रार्थना शुभ गुणों के धारण करने की इच्छा का नाम है । केवल मुख से बोलते चले जाने का नाम प्रार्थना नहीं, इस बात को दर्शाने के लिए वे लिखते हैं—"मनुष्य जिस बात की प्रार्थना करता है उसको वैसा ही वर्तमान (व्यवहार में आचरण) करना चाहिये ।"

उपासना और नवीन वेदान्त का खण्डन—प्रार्थना के पश्चात् अष्टांगयोग की रीति से उपासना का वर्णन किया है । इसी समुल्लास में नवीन वेदान्त का प्रबल खण्डन करते हुए यह निरूपण किया है कि जीव और ब्रह्म स्वरूप से पृथक्-पृथक् हैं । इसको पढ़कर मनुष्य इस योग्य हो जाता है कि वह शंकराचार्य और उनके शिष्यों की भ्रान्त युक्तियों के दुर्ग तोड़ सके । अन्त में शब्द, अर्थ सम्बन्ध रूपी अनादि वेद के ईश्वरोक्त होने के विषय में युक्ति और प्रमाण देते हुए वेदोत्पत्ति का वर्णन किया है । निर्भ्रान्त वचनों के बहुमूल्य रत्न युक्ति और प्रमाण के रूप में यहां भी चमकते हुए मनुष्य के मन को वेदज्योति से सुशोभित करते हुए आनन्द का मार्ग दर्शा रहे हैं । पुराणों की मिथ्या कल्पना और नवीन वेदान्त के भ्रमरूपी दुर्ग इस समुल्लास के वज्रप्रहार से छिन्न-भिन्न होते हुए वेदोक्त सत्य की जय को दर्शा रहे हैं ।

आठवें समुल्लास में जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का विषय है ।

नास्तिकों का खण्डन—वेदोक्त प्रमाणों से ईश्वर को उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयकर्ता सिद्ध करते और ईश्वर, जीव और प्रकृति तीन पदार्थों को अनादि दर्शाते हुए अनेक प्रकार के नास्तिकों की युक्तियों का अद्वितीय खण्डन करते हैं । आदिसृष्टि में मनुष्य की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए वैज्ञानिक संसार की विद्या सम्बन्धी समस्याओं का समाधान करके रख दिया है । एवोल्यूशन का पश्चिमी अन्धकार इस समुल्लास के सामने काफूर होता हुआ दिखाई दे रहा है । यूरोप के विद्वान् सृष्टि-उत्पत्ति के विषय को जानने के लिए अन्धेरे में हाथ-पांव मार रहे हैं परन्तु यह समुल्लास अन्धकार का निवारण करता

1. देखो व्याख्यान नं० ८, पृष्ठ ८ ।

हुआ बुद्धि को वैदिक ज्योति का निर्भ्रान्त तेज दर्शा रहा है। तिब्बत को मनुष्यजाति का पहला[1] निवासस्थान बतलाते हुए महर्षि "आर्य" शब्द का निरूपण करते हैं। आर्यावर्त की सीमाएं मनुस्मृति से बतलाते हुए वह पृथिवी के घूमने और गुरुत्वाकर्षण का वेद से वर्णन करते हैं। ईश्वर को ब्रह्मांड का आधार दर्शाने के पश्चात् वे सूर्य, चन्द्र आदि में मनुष्य आदि सृष्टि का होना बतलाते हुए ईश्वर की रचना का प्रयोजन दर्शा रहे और ऊंचे से ऊंचे, सूक्ष्म प्रश्न इन गूढ़ विषयों के सम्बन्ध में स्वयं उठाकर उनका पर्याप्त और सन्तोषजनक उत्तर देते हुए वेदशास्त्रों की महिमा का बोधन करा रहे हैं।

नवें समुल्लास में विद्या, अविद्या, बन्ध और मोक्ष का वर्णन है।

सत्यार्थप्रकाश अमूल्य रत्न है-गुरुदत्त जी ने ११ बार सत्यार्थप्रकाश पढ़ा—पण्डित गुरुदत्त जी कहा करते थे कि "यदि 'सत्यार्थप्रकाश' का मूल्य हजार रुपया होता तो भी मैं उसको अपनी जायदाद बेचकर मोल लेता। जिधर देखता हूं उधर ही सत्यार्थप्रकाश में वह-वह विद्या की बातें भरी पड़ी हैं जिनका वर्णन करते हुए मनुष्य की बुद्धि चक्कर खा जाती है। मैंने ग्यारह बार सत्यार्थप्रकाश को विचारपूर्वक पढ़ा है और जब-जब पढ़ा, नये से नये अर्थों का भान मेरे मन में हुआ है।"

यह समुल्लास पूर्णयोगी ही लिख सकता था—पण्डित गुरुदत्त जी इस समुल्लास को पढ़ते हुए सदा महर्षि के योगबल की प्रशंसा किया करते थे और कहा करते थे "बिना पूर्ण योगी के कौन निर्भ्रान्त रीति से ऐसा गूढ़ कठिन और अत्यन्त सूक्ष्म विषय लिख सकता है?"

इस समुल्लास में विद्या-अविद्या की व्याख्या करते हुए महर्षि मनुष्यजन्म के परम उद्देश्य मुक्ति का वर्णन करते हैं। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोषों की विवेचना को जिस योगबल से महर्षि ने दर्शाया है, उसको समझना और उसके अनुसार बर्ताव करना भी योगियों का ही काम है। मुक्ति का वर्णन करते हुए योगिराज ऋग्वेद के एक मन्त्र के प्रमाण से लिखते हैं कि मुक्तजीव महाकल्प के पश्चात् मुक्ति से लौटकर संसार में आते हैं और प्रबल युक्तियां इसकी पुष्टि में देते हुए पूर्ण रीति से इसका निश्चय कराते हैं। यह बात कई मतमतान्तरों के अनुयायियों को चकित करने वाली है परन्तु बुद्धिमान्[2] पुरुष इस बात के औचित्य की प्रशंसा किया बिना नहीं रह सकते। इस समुल्लास में आवागमन का वर्णन प्रबल युक्तियों द्वारा करते हुए निश्चय करा दिया है कि जन्म अनेक हैं और अन्त में अति उत्तमता से वृक्ष, कृमि, कीट, पशु, मनुष्य आदि उन नाना योनियों का वर्णन किया है; जिनको जीव कर्मफल भोग के लिये प्राप्त होता है।

दसवें समुल्लास में आचार-अनाचार और भक्ष्याभक्ष्य का वर्णन है।

मुख्य आचार—"मनुष्य का यही मुख्य आचार है जो इन्द्रियां चित्त को हरण करने वाले विषयों में प्रवृत्त कराती हैं, उनको रोकने में प्रयत्न करे। जैसे घोड़े को सारथी रोककर शुद्ध मार्ग में चलाता है इसी प्रकार इनको अपने वश में करके अधर्म मार्ग से हटाकर धर्ममार्ग में सदा चलाया करे।"

---

1. "हारमोनिया" खंड ५, पृष्ठ ३२८। प्रोफेसर ओकन मानता है कि पहले सृष्टि वहां हुई थी जहां अब सबसे ऊंचा पर्वत है और स्वीकार करता है कि निस्सन्देह हिमालय के समीप।

2. गार्नट एल० एल० डी० टामस कारलायल के जीवनचरित्र पृष्ठ १७३ पर लिखता है कि कारलायल उन्नति को चक्कर में घूमती हुई मानता था न कि एक सीधी रेखा के आगे बढ़ने के समान।

"माता-पिता, आचार्य और अतिथि की सेवा करना पूजा कहाती है और जिस-जिस कर्म से जगत् का उपकार हो वह कर्म करना और हानिकारक छोड़ देना ही मनुष्य का मुख्य कर्त्तव्य कर्म है। कभी नास्तिक, लम्पट, विश्वासघाती, मिथ्यावादी, स्वार्थी, कपटी, छली आदि दुष्ट मनुष्यों का संग न करे। आप्त जो सत्यवादी, धर्मात्मा, परोपकारप्रिय जन हैं उनका सदा संग करने ही का नाम श्रेष्ठाचार है।"

"(प्रश्न) आर्यावर्त देशवासियों का आर्यावर्त देश से भिन्न-भिन्न देशों में जाने से आचार नष्ट हो जाता है वा नहीं ?

(उत्तर) यह बात मिथ्या है क्योंकि जो बाहर-भीतर की पवित्रता करनी, सत्यभाषण आदि आचरण करना है वह जहां कहीं करेगा आचार और धर्मभ्रष्ट कभी न होगा और जो आर्यावर्त में रहकर भी दुष्टाचार करेगा वही धर्म और आचार से भ्रष्ट कहावेगा।"

"पाखंडी लोग यह समझते हैं कि जो हम इनको.....देशदेशान्तर में जाने की आज्ञा देवेंगे तो यह बुद्धिमान् होकर हमारे पाखंडजाल में न फंसने से हमारी प्रतिष्ठा और जीविका नष्ट हो जावेगी। इसलिए भोजन छादन में बखेड़ा डालते हैं कि वे दूसरे देश में न जा सकें। हां, इतना अवश्य चाहिए कि मद्य-मांस का ग्रहण कदापि भूल कर न करें।" एक स्थान पर महर्षि लिखते हैं "मद्यमांसाहारी म्लेच्छ कि जिनका शरीर मद्य-मांस के परमाणुओं से ही पूरित है उनके हाथ का न खावें।"

गाय, बकरी आदि पशुओं के पालने के लाभ श्रेष्ठता से वर्णन करते हुए लिखते हैं "इससे मुख्योपकारक आर्यों ने गाय को गिना है और जो कोई अन्य विद्वान् होगा वह भी इसी प्रकार समझेगा। बकरी के दूध से.....पालन होता है वैसे हाथी, घोड़े, ऊंट, भेड़, गधा आदि से भी बड़े उपकार होते हैं। इन पशुओं के मारने वालों को सब मनुष्यों की हत्या करने वाले जानियेगा।"

"जितना हिंसा और चोरी, विश्वासघात, छल, कपट आदि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोग करना है वह अभक्ष्य और अहिंसा, धर्म आदि कर्मों से प्राप्त होकर भोजन आदि करना भक्ष्य है।"

उत्तरार्द्ध—सत्यार्थप्रकाश के उत्तरार्द्ध में वेदविरुद्ध पुराणी, जैनी, किरानी और कुरानी, जो कि संसारभर के मतमतान्तरों के मूल हैं, उनके खण्डन का विषय है।

ग्यारहवें समुल्लास में आर्यावर्तीय पौराणिक मतमतान्तरों का विषय है।

पौराणिक मतमतान्तर और महर्षि दयानन्द-वाममार्ग, नवीनवेदान्त, भस्म, रुद्राक्ष, तिलक, वैष्णवमत, मूर्तिपूजा, गयाश्राद्ध, जगन्नाथ तीर्थ, रामेश्वर, कालियाकन्त, सोमनाथ, द्वारका, ज्वालामुखी, हरिद्वार, बद्रीनारायण, गंगास्नान, नामस्मरण, गुरु माहात्म्य, अठारह पुराण, सूर्यादि ग्रहपूजा, एकादशी आदि व्रत, शैवमत, शाक्तमत, कबीरपंथ, नानकपंथ, दादूपंथ, रामस्नेही पंथ, गोकुलिये गुसांई, स्वामीनारायण मत, ब्रह्मसमाज, प्रार्थनासमाज आदि अनेक विषयों सम्बन्धी लेख करते हुए महर्षि ने युक्ति और प्रमाण के अद्‌भुत बल से सब मतमतान्तरों का जिस श्रेष्ठता से खण्डन किया है वह गिरी हुई भारतसन्तान के पढ़ने के योग्य हैं। जिन रोगों ने आर्यावर्त को गिराते-गिराते वर्तमान दुर्दशा को पहुंचा दिया है उन रोगों की पूर्ण व्याख्या इस समुल्लास में करते हुए महर्षि गिरे हुए आर्यावर्त को वैदिक सत्य सिद्धान्तों के परम बल से उठने का मार्ग दर्शा रहे हैं।

---

1. मांस मनुष्य का स्वाभाविक और लाभदायक भोजन नहीं इस बात को डाक्टर "अनाकिंग्स फोर्ड" एम० डी० ने पुस्तक "पर्फेक्ट वे इन डाइट" (Perfect way in diet) में सिद्ध किया है। ऐलन्सन, ट्राल, निकलसन आद अनेक पश्चिमी डाक्टर इस बात का समर्थन करते हैं कि मांस शूरता और बल देने वाला भोजन नहीं है।

बारहवें समुल्लास में चार्वाक, बौद्ध और जैनमत का विषय है।

आस्तिक नास्तिक के मध्य अद्‌भुत संवाद—प्रकृतिपूजन चार्वाकों की युक्तियों का खंडन करते हुए सृष्टिकर्त्ता परमात्मा की सत्ता को सिद्ध करने के पश्चात् बौद्धमत का खंडन किया है। फिर जैनमत की पोल दर्शाते हुए आस्तिक और नास्तिक के मध्य एक विचित्र संवाद लिखा है। इस संवाद को पढ़कर भला कौन पुरुष हैं जो ईश्वर से विमुख रह सकता है ? जैनियों की मुक्ति, उनके साधुओं के लक्षण और उनकी विद्यारहित बातों को उनके ग्रन्थों के प्रमाणों से ही दर्शाया है। यूरोप के वर्तमान प्रकृतिपूजन और प्रसिद्ध नास्तिकों की समस्त युक्तियों का उचित उत्तर इसी समुल्लास में व्याख्यापूर्वक आ जाता है। चीन आदि में बौद्धमत, भारतवर्ष में जैनमत और यूरोप आदि में चार्वाक और नास्तिकपन पाया जाता है। गहरी दृष्टि से देखें तो यह सब एक नास्तिकपन के ही नानारूप हैं और इस भयंकर नास्तिकपन से बचाने के लिए महर्षि का पुरुषार्थ इस समुल्लास में विद्यमान है।

तेरहवें समुल्लास में ईसाई मत का विषय है।

बाइबिल की परीक्षा युक्तिबल से करते हुए महर्षि इस परीक्षा के अन्त में लिखते हैं—"अब कहां तक लिखें इनकी बाईबिल में लाखों बातें खण्डनीय हैं।यह तो थोड़ा सा चिन्ह-मात्र ईसाइयों की बाइबिल पुस्तक का दिखलाया है। इतने ही से बुद्धिमान लोग बहुत समझ लेंगे। थोड़ी सी बातों को छोड़ शेष सब झूठ के संग से सत्य भी शुद्ध नहीं रहता वैसा ही बाईबिल पुस्तक भी माननीय नहीं हो सकता किन्तु वह सत्य तो वेदों के स्वीकार में गृहीत होता है।

चौदहवें समुल्लास में मुसलमानों के मत का विषय है।

इस समुल्लास में महर्षि कुरआन की शिक्षा की युक्तियों से परीक्षा करते हुए समाप्ति पर यह लिखते हैं—"अब इस कुरआन के विषय को लिखकर बुद्धिमानों के सम्मुख स्थापित करता हूं कि यह पुस्तक कैसा है ? मुझसे पूछो तो यह किताब न ईश्वर, न विद्वान की बनाई और न विद्या की हो सकती हैं। यह तो बहुत थोड़ा सा प्रकट किया इसलिये कि लोग धोखे में पड़कर अपना जन्म व्यर्थ न गवायें। जो कुछ इसमें थोड़ा सा सत्य है वह वेदादि विद्या पुस्तकों के अनुकूल होने से जैसे मुझको ग्राह्य है वैसे अन्य भी मजहब के हठ और पक्षपातरहित विद्वानों और बुद्धिमानों को ग्राह्य है। इसके बिना जो कुछ इसमें है वह अविद्या,भ्रमजाल और मनुष्य के आत्मा को पशुवत् बनाकर शान्तिभंग कराके उपद्रव मचा मनुष्यों में विरोध फैला परस्पर दुखोन्नति करने वाला विषय है और पुनरुक्त दोष का तो कुरान जानो भण्डार ही है। परमात्मा सब मनुष्यों पर कृपा करें कि सबसे सब प्रीति,परस्पर मेल और एक दूसरे के सुख की उन्नति करने में प्रवृत्त हों। जैसे मैं अपना वा दूसरे मतमतान्तरों का दोष पक्षपातरहित होकर प्रकाशित करता हूं इसी प्रकार यदि सब विद्वान लोग करें तो क्या कठिनता हे कि परस्पर का विरोध छूट मेल होकर आनन्द में एकमत होके सत्य की प्राप्ति सिद्ध हो।"

स्वमन्तव्यामन्तव्य-विषय

मुद्रण तथा प्रूफशोधकों की भूलों का निराकरण—पहली बार के छपे हुए सत्यार्थप्रकाश मे वैदिक सिद्धांत के विरुद्ध जो लेख, शोधन वालों की भूल से छप गया था वह स्वामी जी का सिद्धांत नहीं था क्योकिं स्वामी जी ने उसका खण्डन संवत्१९३५ में प्रकाशित होने वाले ऋग्वेद और यजुर्वेद दोनों के भाष्यों के मुखपृष्ठों पर निम्नलिखित विज्ञापन देकर किया है—

"**विज्ञापन**—सबको विदित हो जो-जो बातें वेदों की हैं और उनके अनुकूल हैं उनको मैं मानता हूं और विरुद्ध बातों को नहीं। इससे जो-जो मेरे बनाये 'सत्यार्थप्रकाश' वा 'संस्कार-विधि' आदि ग्रन्थों में गृह्यसूत्र वा मनुस्मृति आदि पुस्तकों के वचन बहुत से लिखे हैं वे उन-उन ग्रन्थों के मतों को जानने के लिये लिखे हैं। उनमें से वेदार्थ के अनुकूल का साक्षीवत् प्रमाण और विरुद्ध का अप्रमाण मानता हूं। जो-जो बात वेदार्थ से निकलती हैं उन सबको प्रमाण करता हूं क्योंकि वेद ईश्वरीय वाक्य होने से सर्वथा मुझको मान्य हैं और जो-जो ब्रह्माजी से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्त महात्माओं के बनाये वेदार्थानुकूल ग्रन्थ हैं उनको भी मैं साक्षी के समान मानता हूं और **जो सत्यार्थप्रकाश ४२ पृ० और २५ पंक्ति में-पितृ आदिकों में से जो कोई जीता हो उसका तर्पण न करे और जितने मर गए हैं उनका तो अवश्य करे 'तथा पृ० ४७ पंक्ति २१—"मरे भये पितृ-आदिकों का तर्पण करे और श्राद्ध करता है" इत्यादि तर्पण और श्राद्ध के विषय में जो छापा गया है। सो लिखने और शोधने वालों की भूल से छप गया है। इसके स्थान में ऐसा समझना चाहिये कि 'जीवितों की श्रद्धा से सेवा** करके नित्य तृप्त करते रहना, यह पुत्र आदि का परम धर्म है और जो-जो मर गये हों उनका नहीं करना क्योंकि न तो कोई मनुष्य मरे हुए जीव के पास किसी पदार्थ को पहुंचा सकता है और न मरा हुआ जीव पुत्र आदि के दिये पदार्थों को ग्रहण कर सकता है।

इससे स्पष्ट हुआ कि जीते पिता आदि की प्रीति से सेवा करने का नाम तर्पण और श्राद्ध है, अन्य नहीं। इस विषय में वेदमन्त्र आदि का प्रमाण भूमिका के ११ अङ्क के पृ० २५१ से लेकर १२ अङ्क के २२७ पृ० तक छपा है, वहां देख लेना।"

'जीवित पितरों का श्राद्ध करें'—यही स्वामी जी का मत है। इसमें अन्य प्रमाण-उपर्युक्त विज्ञापन के कुछ शब्द हमने मोटे कर दिए हैं ताकि पाठकगण विशेष ध्यान देकर उनको पढ़ें। यह भी विदित रहे कि भूमिका का ग्यारहवां अङ्क संवत् १९३४ में अर्थात् इस विज्ञापन देने से पहले छप चुका था और उसके पृष्ठ २५१ पर प्रमाणों के अतिरिक्त स्वामी जी ने मृतकश्राद्ध का सर्वथा खंडन और जीवित पितरों के श्राद्ध का मंडन किया है। महर्षि की समस्त रचनाएं स्पष्ट शब्दों में पुकार कर कह रही हैं कि वह कोई भी वेद और युक्ति-विरुद्ध सिद्धान्त नहीं मानते थे परन्तु विशेष सावधानी के रूप में जिनको कि वह स्वयं भी मानते थे, लिख गये हैं।

इन सिद्धान्तों के लिखने के पश्चात् स्वामी जी इन शब्दों में 'सत्यार्थप्रकाश' की समाप्ति करते हैं—

"सबसे सबको सुख लाभ पहुंचाने के लिए मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है। सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की कृपा सहाय और आप्तजनों की सहानुभूति से यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जावे, जिससे सब लोग सहज से धर्मार्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि करके सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें, यही मेरा मुख्य प्रयोजन है।"

अध्याय ९

वेदभाष्य पर एक दृष्टि

'सत्यार्थप्रकाश' के अध्ययन से 'वेदभाष्य' जानने की प्रेरणा मिलती है—जैसे साधन का साध्य से सम्बन्ध है, जैसे सीढ़ी मकान की छत पर पहुंचाने वाली है ऐसे 'सत्यार्थप्रकाश' वेदभाष्य तक पहुंचने का साधन है। वेदभाष्य की आवश्यकता का दर्शाना 'सत्यार्थप्रकाश' का काम है। वह पुरुष जो मतमतान्तरों के भ्रमजाल से निकल कर वैदिकज्योति की महिमा 'सत्यार्थप्रकाश' में अनुभव कर लेता है वह वेदभाष्य के सूर्य का अन्वेषक दिखाई देता है। 'सत्यार्थप्रकाश' के अध्ययन से भूख की तृप्ति करना वेदभाष्य का काम है। 'सत्यार्थप्रकाश' यदि मार्ग है तो 'वेदभाष्य' अभीष्ट गन्तव्य स्थान है। जिस प्रकार प्रत्येक पुस्तक की भूमिका होती है उसी प्रकार चारों वेदों के भाष्य की एक भूमिका, ३७६ पृष्ठों की, पृथक् पुस्तक के रूप में महर्षि ने तैयार करके छपवायी और उसका नाम 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' रखा। इस भूमिका में जो-जो संस्कृत में लेख है वह महर्षि का और जो उसका भाष्य है वह अनुवादकों का किया हुआ है।[१] अनुवादकों के इस भाष्य (अनुवाद) में कई स्थानों पर दोष पाए जाते हैं "सत्यधर्मप्रचारक" जालन्धर के सम्पादक के कथनानुसार पृष्ठ २०५ पर जो संस्कृत महर्षि ने लिखी है उसका अनुवाद २०६ पृष्ठ पर जो भाष्य में किया गया वह लेखक के संस्कृत लेख का यथार्थ अनुवाद नहीं है।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के विषय—महर्षि ने इस भूमिका में पहले इस प्रश्न का उत्तर दिया है कि वेद क्या है? और वेदोत्पत्ति का अत्यन्त सूक्ष्म विषय, सारगर्भित रीति से, निरूपण करने के पश्चात् वेदमन्त्रों के प्रमाणों से वेदों के विषयों को दर्शाते हुए वेदों के सच्चे महत्त्व का बोधन कराया है। ब्रह्मविद्या, धर्म, सृष्टि-उत्पत्ति, विराट्-उत्पत्ति, पृथिवी आदि लोकभ्रमण, आकर्षणानुकर्षण, प्रकाश्यप्रकाशक, गणित विद्या, स्तुति, प्रार्थना, याचना, समर्पण, उपासना, योग, मुक्ति, नौका-विमान आदि विद्या, तार-विद्या, वैद्यक शास्त्र, पुनर्जन्म, विवाह, नियोग, राजप्रजाधर्म, वर्णाश्रम, पंचमहायज्ञ का मूल वेद में दर्शाने के पश्चात् वे प्रामाणिक व अप्रामाणिक ग्रन्थों का विषय लिखते हुए केवल वेदों को सूर्यवत् स्वतःप्रमाण और शेष समस्त ग्रन्थों को परतःप्रमाण ठहराते हैं। इसका अर्थ यह है कि वेदसूर्य को जानने के लिए किसी और ग्रन्थरूपी दीपक की आवश्यकता नहीं; परन्तु अन्य ग्रन्थों को प्रामाणिक मानने के लिए उनका वेदानुकूल होना आवश्यक है और जिस प्रकार विषमिश्रित अन्न को कोई नहीं खाता उसी प्रकार अप्रामाणिक ग्रन्थों को, जिनमें असत्य विष मिला हुआ है, अवश्य त्यागने के लिए महर्षि बतलाते हैं। फिर नमूने के रूप में उन वैदिक अलंकारों का वर्णन करते हैं, जिनको न समझकर और उन अलंकारयुक्त मंत्रों के रूढ़ि कल्पित अर्थ लेने वाले पौराणिक लोगों ने मिथ्या कथाएं रच ली हैं। इसके पश्चात् वेदों के पढ़ने-सुनने का अधिकार मनुष्यमात्र अर्थात् ब्राह्मण से लेकर अतिशूद्र पर्यन्त बतलाते हुए निम्नलिखित प्रश्नोत्तर वेदभाष्य सम्बन्धी लिखते हैं-

प्रश्नोत्तर—"(प्राचीन) क्यों जी! जो तुम यह वेदों का भाष्य बनाते हो सो पूर्व आचार्यों के भाष्य के समान बनाते हो वा नवीन? जो पूर्वरचित भाष्यों के समान है तब तो बनाना व्यर्थ है क्योंकि वे तो पहले ही से बने बनाये हैं और जो नया बनाते हो उसको कोई भी न मानेगा; क्योंकि जो बिना प्रमाण के केवल अपनी ही कल्पना से बनाना है यह बात कब ठीक हो सकती है?

(उत्तर) यह भाष्य प्राचीन आर्यों के भाष्यों के अनुकूल बनाया जाता है परन्तु जो रावण, उव्वट, सायण और महीधर आदि ने भाष्य बनाये हैं, वे सब मूलमन्त्र और ऋषिकृत व्याख्यानों से विरुद्ध हैं। मैं वैसा भाष्य नहीं बनाता क्योंकि उन्होंने

वेदों की सत्यार्थता और अपूर्वता कुछ भी नहीं जानी और जो यह मेरा भाष्य बनता है सो तो वेद, वेदांग, ऐतरेय, शतपथ ब्राह्मण आदि ग्रन्थों के अनुसार होता है; क्योंकि जो-जो वेद के सनातन व्याख्यान हैं उनके प्रमाणों से युक्त बनाया जाता है, यही इसमें अपूर्वता है; क्योंकि जो-जो प्रामाण्याप्रामाण्य विषय में वेदों से भिन्न शास्त्र गिन आये हैं, वे सब वेदों के ही व्याख्यान हैं। वैसे ही ग्यारह सौ सत्ताईस (११२७) वेदों की शाखा भी उनके व्याख्यान ही हैं। उन सब ग्रन्थों के प्रमाणयुक्त यह भाष्य बनाया जाता है और इसके अपूर्व होने का दूसरा कारण यह भी है कि इसमें कोई बात अप्रमाणित वा अपनी रीति से नहीं लिखी जाती और जो-जो भाष्य उव्वट, सायण, महीधर आदि ने बनाए हैं वे सब मूलार्थ और सनातन वेद व्याख्यानों से विरुद्ध हैं तथा जो-जो इन नवीन भाष्यों के अनुसार अंग्रेजी, जर्मनी, दक्षिणी और बंगाली आदि भाषाओं में वेदव्याख्यान बने हैं वे भी अशुद्ध हैं। जैसे देखो, सायणाचार्य ने वेदों के श्रेष्ठ अर्थों को न जान कर कहा है कि सब वेद क्रियाकांड का ही प्रतिपादन करते हैं। यह उनकी बात मिथ्या है। इसके उत्तर में जैसा कुछ इसी भूमिका के पूर्व प्रकरणों में संक्षेप से लिख चुके हैं सो देख लेना.....ऐसा ही सायणाचार्य ने और भी बहुत मंत्रों के व्याख्यानों में शब्दों के अर्थ उल्टे किए हैं".....“उसी प्रकार महीधर ने भी यजुर्वेद पर मूल से अत्यन्त विरुद्ध व्याख्यान किया है।

जब इन्हीं लोगों के व्याख्यान अशुद्ध हैं तब यूरोपखंड निवासी लोगों ने जो, उन्हीं की सहायता लेकर अपनी देशभाषा में वेदों के व्याख्यान किये हैं, उनके अनर्थ का तो क्या ही कहना है तथा जिन्होंने उन्हीं के अनुसारी व्याख्यान किए हैं उन विरुद्ध व्याख्यानों से कुछ लाभ तो नहीं दीख पड़ता किन्तु वेदों के सत्यार्थ की हानि प्रत्यक्ष ही होती है परन्तु जिस समय चारों वेदों का भाष्य बन और छपकर सब बुद्धिमानों के ज्ञानगोचर होगा तब सब किसी को उत्तम विद्यापुस्तक वेद का परमेश्वररचित होना भूगोल भर में विदित हो जावेगा और यह भी प्रकट हो जावेगा कि ईश्वरकृत सत्यपुस्तक वेद ही है वा कोई दूसरा भी हो सकता है, ऐसा निश्चय जान के सब मनुष्यों की वेदों में परम प्रीति होगी इत्यादि अनेक उत्तम प्रयोजन इस वेदभाष्य के बनाने में जान लेना।"

भाषा की शैली—"इस भाष्य में पद-पद का अर्थ पृथक्-पृथक् क्रम से लिखा जायेगा कि जिससे नवीन टीकाकारों के लेख से जो वेदों में अनेक दोषों की कल्पना की गई है उन सबकी निवृत्ति होकर उनके सत्य अर्थों का प्रकाश हो जायेगा तथा जो-जो सायण, माधव, महीधर और अंग्रेजी का अन्य भाषा में उल्थे वा भाष्य किये जाते वा गए हैं तथा जो-जो देशान्तर भाषाओं में टीका हैं, उन अनर्थ व्याख्यानों का निवारण होकर मनुष्यों को वेदों के सत्य अर्थों के देखने से अत्यन्त सुख लाभ पहुंचेगा क्योंकि बिना सत्यार्थ के देखे मनुष्य की भ्रमनिवृत्ति कभी नहीं हो सकती। जैसे प्रामाण्याप्रामाण्य विषय में सत्य और असत्य कथाओं के देखने से भ्रम की निवृत्ति हो सकती है ऐसे ही यहां भी समझ लेना चाहिये। इत्यादि प्रयोजनों के लिए इस वेदभाष्य के बनाने का आरम्भ किया है।"

विविध ज्ञान की दृष्टि से वेदों के चार भाग—फिर महर्षि बतलाते हैं 'भिन्न-भिन्न ज्ञान की दृष्टि से वेदों के चार भाग हैं। ऋग्वेद में सब पदार्थों के गुणों का प्रकाश किया है जिससे उनमें (पदार्थों मे) प्रीति बढ़कर (उनसे) उपकार लेने का ज्ञान प्राप्त हो सके तथा यजुर्वेद में क्रियाकांड का विधान लिखा है सो ज्ञान के पश्चात् ही कर्त्ता की प्रवृत्ति यथावत् हो सकता है तथा सामवेद से ज्ञान और आनन्द की उन्नति और अथर्ववेद से सर्व संशयों की निवृत्ति होती है इसलिए इनके चार भाग किये हैं।'

वेदमन्त्रों की प्रयोगशैली—निरुक्त के प्रमाणों से वेदमंत्रों की प्रयोगशैली को बतलाते हुए गायनविद्या सम्बन्धी वैदिक स्वर का वर्णन किया है। फिर वैदिक व्याकरण के उन सिद्धान्तों को, जिनसे कि वेदमंत्रों के अर्थ जानने में विशेष

रूप से सहायता मिलती है, प्रमाणपूर्वक दर्शाते हैं । इसके आगे वैदिक अलङ्कारों का वर्णन है । फिर चार वेदों की इस श्रेष्ठ भूमिका की समाप्ति करते हुए अन्त में यह वचन लिखते हैं—

"यह भूमिका जो वेदों के प्रयोजन अर्थात् वेद किस लिये और किसने बनाए, उनमें क्या-क्या विषय हैं इत्यादि बातों की अच्छी प्रकार प्राप्ति कराने वाली है । इसको जो लोग ठीक-ठीक परिश्रम से पढ़ें और विचारेंगे उनको व्यवहार और परमार्थ का प्रकाश, संसार में मान और कामनासिद्धि अवश्य होगी । इस प्रकार जो निर्मल विषयों के विधान का कोष और सत्यशास्त्रों के प्रमाणों से युक्त भूमिका है, उसको मैंने संक्षेप में पूर्ण किया । अब इसके आगे उत्तम बुद्धि देने वाले परमात्मा की भक्ति में अपनी बुद्धि को दृढ़ करके प्रीति के बढ़ाने वाले मंत्रभाष्य का प्रमाणपूर्वक विस्तार करता हूं ।

आगे मैं सब प्रकार से ज्ञानानन्द को देने वाली चारों वेदों की भूमिका को समाप्त और जगदीश्वर को अच्छी प्रकार प्रणाम करके संवत् १९३४ मार्गशीर्ष शुक्ल ६ सोमवार के दिन सम्पूर्ण ज्ञान के देने वाले ऋग्वेद के भाष्य का आरम्भ करता हूं । इस ऋग्वेद से सब पदार्थों की स्तुति होती है......ऋग्वेद शब्द का अर्थ यह है कि जिससे सब पदार्थों के गुणों और स्वभावों का वर्णन किया जाये वह ऋग् और वेद अर्थात् जो यह सत्य-सत्य ज्ञान का हेतु,-इन दो शब्दों से ऋग्वेद बनता है ।......ऋग्वेद में आठ अष्टक और एक-एक अष्टक में आठ-आठ अध्याय हैं । सब अध्याय मिलकर चौंसठ (६४) होते हैं ।.....आठों अष्टक के सब वर्ग दो हजार चौबीस (२०२४) होते हैं तथा इसमें दस मंडल हैं ।

नाम मंडल	अनुवाक संख्या	सूक्त-संख्या	मंत्र संख्या
पहला मंडल	२४	१९१	१९७६
दूसरा मंडल	४	४३	४२९
तीसरा मंडल	५	६२	६१७
चौथा मंडल	५	५८	५८९
पांचवां मंडल	६	८७	७२७
छठा मंडल	६	७५	७६५
सातवां मंडल	६	१०४	८४१
आठवां मंडल	१०	१०३	१७२६
नवां मंडल	७	११४	१०९७
दसवां मंडल	१२	१९१	१७५४

दसों मंडलों में १८५ अनुवाक, एक हजार अट्ठाईस सूक्त और दस हजार पांच सौ नवासी (१०५८९) मंत्र हैं ।"

ऋग्वेद भाष्य के आरम्भ के एक मास पश्चात् अर्थात् संवत् १९३४ पौष सुदी १३ गुरुवार के दिन महर्षि ने यजुर्वेद भाष्य आरम्भ किया । यजुर्वेद में चालीस अध्याय हैं और सब अध्यायों के समस्त मन्त्रों की संख्या एक हजार नौ सौ पिचहत्तर (१९७५) है ।

भाष्य का क्रम—दोनों भाष्यों में सबसे पहले मन्त्र का विषय, फिर मूलमन्त्र, उसका पदच्छेद, प्रमाणसहित मन्त्र के पदार्थों का सारगर्भित अर्थ, अन्यव अर्थात् पदों की सम्बन्धपूर्वक योजना और अन्त में भावार्थ अर्थात् मंत्र का जो मुख्य प्रयोजन है, वर्णन किया गया है । दोनों वेदों के भाष्य में संस्कृत और भाषा दोनों प्रकार का लेख वर्तमान है । संस्कृत लेख तो महर्षि की ओर से है परन्तु भाषा अनुवादकों की बनाई हुई है ।[२] कुछ अनुवादक महर्षि की संस्कृत का अर्थ भली-भांति वर्णन नहीं कर सके और बहुत स्थानों पर भाषा संस्कृत के अर्थ को सर्वथा समाप्त कर देती है इसलिए मंत्रों के भाष्य को जानने के लिए हमें महर्षि के संस्कृत लेख को ही विश्वसनीय समझना चाहिए । पंडित गुरुदत्त जी सदा मन्त्रों के अर्थ जानने के लिए महर्षि की संस्कृत को विश्वसनीय कहा करते थे परन्तु अनुवादकों की भाषा को वह प्रमाणित नहीं मानते थे ।

स्वामी जी द्वारा किया हुआ भाष्य कितना है—संवत् १९३९ में वैदिक यन्त्रालय[1] की ओर से एक विज्ञापन निम्नलिखित छपा था—"सब सज्जनों को विदित हो कि श्री स्वामी जी महाराज ने यजुर्वेद भाष्य बनाकर पूरा कर लिया है और ईश्वर की कृपा से ऋग्वेदभाष्य भी इसी प्रकार शीघ्र ही पूरा होगा ।"

परन्तु हमारे भाग्य में यह कहां था कि महर्षि ऋग्वेदभाष्य को अन्त तक समाप्त कर लें । उनकी मृत्यु ने इस काम को पूरा न होने दिया और संवत्[2] १९४१ के चैत्रमास में यन्त्रालय ने विज्ञापन दिया कि महर्षि दयानन्द यजुर्वेद का सम्पूर्ण और ऋग्वेद के पांच[3] अष्टक का भाष्य छोड़ परम धाम पधार गए हैं । आज यजुर्वेदभाष्य सम्पूर्ण छपा हुआ प्राप्त हो सकता है परन्तु ऋग्वेदभाष्य अभी तक उतना नहीं छपा जितना कि महर्षि तैयार कर गए थे ।

ऋषिकृत वेदभाष्य का महत्त्व-उनका लिखा संस्कृत भाष्य ही वास्तविक है—सर्वविद्याओं के मूल का दर्शक, निरुक्त, निघण्टु, शतपथ आदि ऋषिकृत ग्रन्थों के आशय का प्रचारक, सृष्टि के अखंड अटल नियमों में वेदार्थ को जानने वाला महर्षि का वेदभाष्यरूपी अद्भुत ग्रन्थ आज अन्धकार से पीड़ित भूमंडल को निर्भ्रान्त, निष्कलंक वेदसूर्य के दर्शनों का मंगल समाचार दे रहा है । अन्धेरे में यदि लोग मार्ग नहीं देख सकते तो प्रकाश मार्ग दिखाता है परन्तु जो प्रकाश में मार्ग देखता हुआ भी मार्ग में चलने का पुरुषार्थ नहीं करता उससे बढ़कर मन्दभागी कौन हो सकता है ? सत्यासत्य मार्ग के दिखाने में सहायता देना सूर्य का काम है परन्तु असत्य से बचकर सत्यमार्ग में पुरुषार्थ से चलना मनुष्यों का अपना पुरुषार्थ है । महर्षि के वेदभाष्य के होने पर भी लोग यदि दुःख में रहें तो वेदभाष्यरूपी सूर्य का दोष नहीं किन्तु उन मनुष्यों के अपने आलस्य या कर्मों का फलरूपी दोष है । दिन के प्रकाश में भी जो पथिक साधनशील होकर अपने मार्ग पर चलना नहीं चाहता तो वह अपराधी है न कि सूर्य । वेद[4] स्वयं उपदेश दे रहा है कि जो मनुष्य वेदों के मुख्य तात्पर्य-परमात्मा को नहीं जानता वह ऋग्वेद से भी सुख को प्राप्त नहीं हो सकता । वास्तव में सूर्य से पुरुषार्थ करने वाले ही लाभ उठा सकते हैं । साधन और पुरुषार्थरहित अन्धे और आलसी पुरुष नहीं । जिसकी बुद्धि की आंख फूट गई हो उसके लिए शास्त्र[5] का

---

1. देखो ऋग्वेदभाष्य अंक ४६,४७ ।

2. यजुर्वेदभाष्य अंक ५२,५३ ।

3. कई सज्जनों के मुख से विदित हुआ कि स्वामी जी छः अष्टक का भाष्य कर गये थे । (नोट) विदित रहे कि सम्पूर्ण यजुर्वेद का मूल्य २० रुपये और आज तक जितना ऋग्वेद भाष्य छप चुका है उसका मूल्य लगभग ८४ रुपया है । यदि परोपकारिणी सभा लागत पर दोनों भाष्यों को बेचना आरम्भ कर दे तो इन भाष्यों का बड़ा भारी प्रचार हो सकता है ।

4. ऋग्वेद मंडल १, सूक्त १६४, मंत्र ३९ । देखो सत्यार्थप्रकाश, पृष्ठ ६९ ।

5. "यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्" (चाणक्यनीति)

सूर्य भी क्या कर सकता है । आजकल कई अंग्रेजी जानने वाले जो वेदमन्त्रों का स्वरसहित पाठमात्र भी नहीं कर सकते, वह हंसी के रूप में महर्षि के सारगर्भित वेदभाष्य को समाचारपत्र की भांति देखते हैं और महर्षि के सरल संस्कृतयुक्त लेख को छोड़कर अनुवादकों के अप्रमाणित भाषालेख में से भी केवल भाषार्थ को दो मिनट में पढ़कर निर्णय दे देते हैं कि इसमें कोई नई विद्या की बात प्रतीत नहीं होती, यह भाष्य साधारण पुस्तक ही है । सूर्य के गुण और पूर्णता की साक्षी वही मनुष्य दे सकता है जो स्वस्थ होने पर सत्यमार्ग में पुरुषार्थ से चलना चाहे । परन्तु साधनरहित आलसी पुरुष सूर्य की महिमा को कब अनुभव कर सकता है ! वेदभाष्य के श्रेष्ठ गुण पूर्वोक्त प्रकार के अंग्रेजी जानने वाले, जो उसके समझने के साधनों से रहित हैं और जिनके फैशनेबिल हृदय में विद्यामृत के पान की इच्छा तक नहीं है, जो रातदिन पश्चिमी अनुकरण और फैशन की पूजा में निमग्न और तामसी आहार-व्यवहार में लम्पट हैं, जो अपने विचार और अपनी सात्त्विक बुद्धि से काम लेना नहीं चाहते, प्रत्युत जो कहने के लिए मनुष्य को भूल करने वाला बतलाते हुए स्वयं साधारण पश्चिमी मनुष्यों के भ्रमों को निर्भ्रान्त ईश्वरीय ज्ञान से बढ़कर मान रहे हैं, वे इस प्रकार के फैशनेबिल (Fashionable) साधनरहित, यदि वेदभाष्य के रत्नों की उत्तमता और महानता को न समझ सकें, तो हमें आश्चर्य नहीं करना चाहिये । क्योंकि वे उसके समझने के यथार्थ उपाय ही नहीं करते ।

वेदभाषा का यथार्थ अर्थ या अनुवाद नहीं हो सकता—हमें स्मरण रखना चाहिये कि वेद का भाष्य या वेद का अनुवाद वैदिक आशय को एक और भाषा के वेश में प्रकट कर सकता है परन्तु वैदिक आशय के वास्तविक रूप को कोई भाष्यरूपी वेष सुगम नहीं बना सकता । किसी पुस्तक का भाष्य या अनुवाद करने से उस पुस्तक का विषय सरल नहीं हो जाता और विषय की गहराई को पहुंचने के लिये हमें साधनों से छुटकारा नहीं मिल सकता । हां, यह ठीक है कि अंग्रेजी आदि किसी पुस्तक की व्याख्या किसी और भाषा में उसके विषय को पूर्णरूप से वर्णन कर सके परन्तु स्वाभाविक वेदवाणी के विषय में यह बात घट नहीं सकती क्योंकि वेदवाणी ईश्वरोक्त और पूर्ण, और अन्य सब भाषायें इसका बिगाड़ और इससे गिरी हुई अपूर्ण दशा में हैं । यदि कोई वेदमन्त्रों का ऐसा भाष्य कर दे कि मंत्रों के पढ़ने और समझने की आवश्यकता न रहे, तो इसके अर्थ यह हैं कि मनुष्य ऐसा दीपक बना सकता है जो सूर्य को व्यर्थ करके सूर्य का काम संसार को दे । क्या कृत्रिमता कभी प्राकृतिकता का काम दे सकती है ? कदापि नहीं । उत्तम कृत्रिम रचना की विशेषता यह है कि नैसर्गिक रचना के प्राय: समीप हो । यदि कोई अत्यन्त श्रेष्ठ कृत्रिम दांत बना सकता है, तो इसके यह अर्थ हैं कि यह दांत अधिकतर स्वाभाविक दांत से मिलता है; यह कभी नहीं कि प्राकृतिक का स्थान कृत्रिम रचना ले सकती है । नैसर्गिक (असली) वेद के गूढ़ आशय को जानने के लिए महर्षि का भाष्य साधनवत् सहायता का काम दे सकता है, न कि स्वयं वेद का स्थान ले सकता है । दूरवीक्षणयंत्र सूर्य के दर्शन कराने का साधन है, न कि स्वयं सूर्य है । वेदरूपी सूर्य की महानता और उत्तमता दर्शाने के लिये महर्षि का भाष्य एक अत्यन्त श्रेष्ठ दूरवीक्षणयंत्र है । भाष्यरूपी महान् साधन का परम उद्देश्य वेदार्थ में सहायता देना है और यह महान् सहायता भी उनको ही मिल सकती है, जो वेद समझने की इच्छा रखे हुए निष्पक्ष सात्त्विक बुद्धि से युक्त, विद्या आदि साधनों को लिए हुए अमृतपान के लिए अत्यन्त पुरुषार्थी हों । पूर्वोक्त प्रकार के आलसी लोग जो वेदसूर्य के प्रकाश के ग्रहण कराने में सहायता नहीं दे सकता । जैसे वेद का आशय समझने के लिए वेदांग, उपांग और ऋषिकृत ग्रन्थों के आशय से युक्त है, वेदार्थ समझने के लिए एक साधन है । साधन की महिमा साधनशील ही जानते हैं। उत्तम साधन की आवश्यकता पुरुषार्थी और सत्य का अन्वेषक ही जानता है ।

पंडित गुरुदत्त जी द्वारा वेदभाष्य के महत्त्व की अनुभूति—महर्षि के वेदभाष्यरूपी महान् साधन की महत्ता पंडित गुरुदत्त जी ने अनुभव की थी । जहां पश्चिमी विज्ञान और फिलासफी उनको निर्भ्रान्त सत्य का मार्ग दर्शाने के लिए साधन का काम नहीं दे सकती थी, वहां महर्षि के वेदभाष्य ने उनकी वेदार्थ जानने के लिए साधनवत् अपूर्व सहायता की । वेदभाष्य

रूपी साधन की सहायता लेकर वे वेदमन्त्रों के गूढ़ अर्थों का विचार करते थे । एक मन्त्र के आशय को समझने के लिए वेदभाष्य तथा वेदांग, उपांग की सहायता लेकर पंडित गुरुदत्त जी कम से कम दो घण्टे लगाते थे और फिर यह कहते थे कि आज हमने दो घण्टों में एक मन्त्र के अर्थ समझे हैं । पंडित गुरुदत जी कहा करते थे कि वेदभाष्य भी सूत्रों के समान संक्षिप्त शब्दों में महान् विषय का प्रतिपादन कर रहा है ।

यदि गुरुदत्त सरीखे सात्त्विक, सूक्ष्म बुद्धि से युक्त, धर्मात्मा विद्वान् को वेदार्थ जानने के लिए वेदभाष्य अपूर्व सहायता देता था तो कोई कारण नहीं कि वैसे ही साधनशील धर्मात्मा पुरुषों को वेदभाष्य वेदार्थ समझने के लिये अपूर्व सहायता न दे । सायण, महीधर आदि टीकाकारों के भाष्य वेदार्थ समझने के लिए साधन बन रहे हैं । वेदों की स्वच्छ ज्योति को इन मिथ्या भाष्यों के कलंक से बचाकर निर्मल, शुद्ध दशा में दर्शाने के लिए महर्षि दयानन्द का भाष्य महान् साधन का काम दे रहा है । यह कल्पनाओं के विघ्नों को वेदार्थ समझने के मार्ग से हटाता हुआ वेदों के सूर्यवत् निर्भ्रान्त अर्थों का प्रकाश कर रहा है । महर्षि के वेदभाष्यरूपी परम उपकार को आने वाली सन्तान संसार भर में सम्मान की दृष्टि से देखती हुई उसके महत्त्व को अनुभव करेगी । अन्धकार से पीड़ित मनुष्यजाति को पांच हजार वर्ष के पश्चात् ऐसा उत्तम और महान् वेदभाष्य रूपी साधन वेदार्थ जानने के लिए महर्षि के उपकार से मिला है । मिश्र के मीनार आज लोगों को आश्चर्य में डालते हुए शिल्पियों की महानता का बोधन करा रहे हैं वैसे ही महर्षि का भाष्य बुद्धिमानों को आश्चर्यमूर्ति प्रतीत होता हुआ महर्षि के परम योगबल का, जिससे उन्होंने वेदों की सर्वविद्यायें साक्षात् की थीं, बोधन करायेगा ।

इस वेदभाष्यरूपी साधन के द्वारा हम सर्वविद्याओं के आदिमूल वेद पर पहुंच जाते हैं । पूर्णज्ञान, पूर्ण कर्म और पूर्णोपासना के शान्तिदायक अमृत से वेद पूरित हो रहा है । यह भाष्य बतला रहा है कि एक ऐसा गम्भीर अथाह सागर है जिसके भीतर बहुमूल्य रत्न भरे पड़े हैं । वेदभाष्य के साधन से वेदसागर में सूक्ष्मबुद्धि एक गोता लगाकर अनेक विद्यारूपी रत्नों की वह अटूट खान प्राप्त कर सकते हैं, जिसको खोदने से ऋषि-मुनि अनेक विद्यारत्नों को प्राप्त हुए थे । संसार भर में कोई विद्यारत्न नहीं, जो कि इस स्वाभाविक खान से न निकला हो और अनेक रत्न इसमें ऐसे गुप्त धरे हैं यदि कोई महर्षि के वेदभाष्य को साधन बनाकर उन रत्नों को निकालना चाहे तो पृथिवी को आश्चर्यमय जगमग-जगमग करने वाले स्वच्छ रत्नों से सुभूषित कर सकता है । तृण से लेकर सूर्य पर्यन्त, कीट से लेकर ईश्वर पर्यन्त कोई भी विद्या नहीं है जिसका वेद में वर्णन न हो । कोई भी कलायन्त्र न है और न होगा जिसका नियमरूपी मूल वेदमन्त्रों ने न दर्शाया हो । अन्धकार का अभ्यासी संसार, रेल तार जो वैदिकज्ञान के अंश से बने हैं, देखकर फूला नहीं समाता, परन्तु जब बुद्धिमान् शिल्पीजन वेदमन्त्रों को विचारेंगे तो वह ऐसे विमान सिद्ध कर सकेंगे जो ६००० वर्ष पहले पृथिवी पर उपस्थित थे । पश्चिमी पदार्थविद्या या विज्ञान ने जो उन्नति की है वह उस पदार्थविद्या के सम्मुख जो कि वेद में भर रही है, तुच्छ प्रतीत होती है । वर्तमान समय की समग्र शिल्पविद्या-उस महान् शिल्पविद्या के सम्मुख-जो कि यजुर्वेद में मूलरूप से पूरित हो रही है, वास्तव में तुच्छ है । जगद्गुरु आर्यावर्त ने वेद के बल से ही सर्वप्रकार की ऐसी उत्तम विद्या सिद्ध की थी जिनका वर्णन करते हुए मनुष्य की बुद्धि आज चक्कर खा जाती है । भविष्यकाल में वेद का आश्रय लेकर ही मनुष्य विद्याओं और कलाओं में वह-वह अद्वितीय चमत्कार करके दिखायेगा जिनको देखकर छः हजार (६०००) वर्षों से भूले हुए काल का चित्र आंखों के सामने आ जायेगा । आज पुरुषार्थी बुद्धिमानों की आवश्यकता है कि वह ऋषियों के अथाह प्रयत्नों और रत्नों की इस अटूट खान से सच्चे रत्न निकाल कर लोगों को दर्शा सकें । पंडित गुरुदत्त जी ने इस खान से हीरे निकालते हुए जीवन अर्पित कर दिया । अहा ! कैसा शुभ समय है कि महर्षि ने भाष्यरूपी साधन हमें इस खान को खोदने के लिए दे दिया है । अब केवल रत्नों के धारण करने वाले बुद्धि रूपी पात्र की आवश्यकता है । बुद्धि को पात्र बनाते हुए यदि हम केवल पुरुषार्थ करें तो सन्देह नहीं कि संसार को उन गुप्त रत्नों का फिर तेज दिखा सकें । सांसारिक भोग को लात मारकर ऋषि-मुनि इन रत्नों के पाने के लिए

एक-एक मन्त्र को आयु भर विचारा करते थे । वेद के एक-एक शब्द के गूढ़ अर्थ सृष्टि में पढ़ने के लिए ऋषि लोग अपना जीवन समर्पण करते थे । वेदों की महानता दर्शाने, उनकी रक्षा या प्रचार करने के लिए ऋषियों के जीवन व्यतीत होते थे । प्राचीन ऋषियों के पदचिह्नों पर चलते हुए महर्षि दयानन्द ने भाष्यरूपी साधन से वेदों की महिमा दर्शाने, उनकी रक्षा और प्रचार करने के लिए अपने आपको अर्पण कर दिया और उनके वियोग के पश्चात् उनका वेदभाष्य अन्धकार से पीड़ित मनुष्यजाति के लिए वेदसूर्य के दर्शन कराने को परम साधन का काम दे रहा है ।

अध्याय १०

शेष रचनाएं

१-वेदांगप्रकाश

अष्टाध्यायी एक अपूर्व रचना-वेदांगप्रकाश की आवश्यकता—महर्षि पाणिनि ने वैदिक शब्दों के नियमों को दर्शाने और वेद की रक्षा करने के लिए वेदरूपी मूलमंत्र से उस वृक्षरूपी व्याकरण-शास्त्र को रचा था जो आज अष्टाध्यायी के नाम से प्रसिद्ध है । गणित की रचना पश्चिमी संसार में विचित्र मानी जाती है; परन्तु गणितज्ञ भी गणित की महानता को तब भूल जाता है जब वह अष्टाध्यायी के सूत्रों की रचना का दर्शन करता है । योगीश्वर पाणिनि ने शब्दविद्या के सागर को सचमुच गागर में बन्द करके दिखाते हुए अपने परम योगबल का दृष्टान्त दिया है । अष्टाध्यायी की महानता इससे बढ़कर क्या हो सकती है कि योगिराज पतंजलि का महाभाष्य ग्रन्थ उसकी ही व्याख्या हो । यदि आजकल संस्कृत का सन्तोषप्रद सार्वजनिक प्रचार होता तो अष्टाध्यायी के आशय को जानने के लिए महाभाष्य पर्याप्त था परन्तु वैदिक संस्कृत का विशेष प्रचार न होने के कारण महर्षि दयानन्द को भी, जो अष्टाध्यायी जैसे ऋषिकृत ग्रन्थों का प्रचार करना चाहता था, इस "वेदांगप्रकाश" के रचने की आवश्यकता पड़ी । जिस प्रकार वेदभाष्य वेदों के अर्थ दर्शाने का साधन है उसी प्रकार यह वेदांगप्रकाश अष्टाध्यायी के अर्थ दर्शाने का साधन है । अष्टाध्यायी की उत्तमता दर्शाना और उसके पढ़ने के लिए रुचि दिलाना, इस वेदांगप्रकाश का मुख्य उद्देश्य है । वेदार्थ जानने के लिए अष्टाध्यायी और निघण्टु आदि प्रधान साधन हैं और इन प्रधान साधनों में रुचि दिलाने वाला वेदांगप्रकाश है ।

वेदांगप्रकाश का विवरण—इसके १६ भाग[१] हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं १—वर्णोच्चारण शिक्षा २—संस्कृतवाक्यप्रबोध ३—व्यवहारभानु[२] ४—सन्धिविषय ५—नामिक ६—कारक ७—सामासिक ८—तद्धित ९—अव्ययार्थ १०—आख्यातिक ११—सौवर १२—पारिभाषिक १३—धातुपाठ १४—गणपाठ १५—उणादिकोष १६—निघण्टु ।

इनमें से संस्कृतवाक्यप्रबोध और व्यवहारभानु स्वामी जी के रचे हुए हैं और निघण्टु जो वेदों का प्राचीन कोष है, महर्षि यास्क का बनाया हुआ है । शेष महर्षि पाणिनि की अष्टाध्यायी के भाग और रचनायें हैं । वैदिक शब्दों के अर्थ जानने के लिए निघण्टु अत्यन्त प्राचीन और प्रमाणित कोष है । निघण्टु की भूमिका में महर्षि इस प्रकार स्वयं लिखते हैं—"यह ग्रन्थ सर्वत्र उपलब्ध नहीं था, अब छपने से प्राप्त होने लगा है । इससे बड़ा उपकार यह होगा कि जो पुराण वालों ने अर्थ का अनर्थ किया है सो इन आर्ष ग्रन्थों से निवृत्त होकर सबके आत्मा में सत्य का प्रकाश होगा ।" उदाहरण के रूप में महर्षि वर्णन करते हैं कि पौराणिक लोगों ने वृत्र, शम्बर और असुर के अर्थ दैत्य मान रखे हैं परन्तु निघण्टु में इन शब्दों के अर्थ मेघ अर्थात् बादल के हैं । निम्नलिखित नक्शा इस बात को और भी प्रकट करता है—

शब्द	पौराणिक लोग क्या अनर्थ मान रहे हैं ।	निघण्टु में सच्चा अर्थ क्या लिखा है ।
अहि	सर्प	मेघ
अद्रि, गिरि, पर्वत	केवल पहाड़	मेघ
अश्म, ग्रावन्	पाषाण	मेघ
वराह	सूअर	मेष
धारा	जलप्रवाह	वाणी
गौरी	महादेव की स्त्री	वाणी
स्वाहा	अग्नि की स्त्री	वाणी
स्वधा	पितृ की स्त्री	अन्न
शची	इन्द्र की स्त्री	वाणी, कर्म और प्रज्ञा
शचीपति	राजा इन्द्र	वाणी, कर्म और प्रज्ञा का पालन करने वाला ।
गया	मृतकों के पिंड देने का स्थान	अपत्य, धन और गृह
घृताची	वेश्या	रात्रि
विप्र	ब्राह्मण	बुद्धिमान्
श्राद्ध	मृतकों की तृप्ति का कर्म	जिस क्रिया से सत्य का ग्रहण हो

आगे महर्षि लिखते हैं "अब कहां तक लिखें । मनुष्य लोग जब इस कोष को पढ़ेंगे तभी नवीन पुराण आदि ग्रन्थों का मिथ्यापन और वेदों का सत्य तथा वेदों के अर्थ करने में प्रवृत्ति अपने आप हो जायेगी ।"

प्रूफ-संशोधकों की असावधानता—सन्धिविषय और संस्कृत वाक्यप्रबोध आदि में शोधने वालों की शीघ्रता और असावधानता के कारण कई अशुद्धियां छप गई थीं परन्तु पुनः छपने पर ये पुस्तकें शुद्ध छपी हैं । वेदांगप्रकाश के उन भागों में, जो पुनः नहीं छपे, अभी तक अशुद्धियां विद्यमान हैं जो मुद्रणालय के कार्यकर्त्ताओं तथा शोधने वालों की असावधानता प्रकट कर रही हैं । वेदांगप्रकाश स्वामी जी के कहने से अधिकतर पंडित लोगों ने तैयार किया है ।[3] इसी कारण कई प्रकार की अशुद्धियां रह गई हैं जो आशा है पुनः छपने पर निवृत्त हो जायेंगी । वेदांगप्रकाश की मोटाई सत्यार्थप्रकाश से दुगुनी है ।

इसके पढ़ने से जहां अष्टाध्यायी, महाभाष्य और निघण्टु के पढ़ने में दृढ़ प्रीति उपजती है, वहां साथ ही पश्चिमी भाषाविज्ञान की वास्तविकता की पोल खुल जाती है । वर्तमान भाषाविज्ञान की कल्पनाएं इसके आगे विनष्ट होकर अन्वेषक को ऋषिकृत ग्रन्थों की महानता को स्वीकार करने वाला बना देती हैं । अष्टाध्यायी का पढ़ने वाला व्याकरण-शास्त्र को अच्छी प्रकार समझने के लिये वेदांगप्रकाश से अपूर्व सहायता ले सकता है और व्याकरणशास्त्र के प्रधान साधन द्वारा मनुष्य सुगमता

से वेदार्थ जान सकता है । सन्धिविषय में महर्षि का इस प्रकार लेख है, जिससे इस प्रधान साधन का प्रयोजन विदित हो रहा है—

"व्याकरण आदि शास्त्रों की प्रवृत्ति नित्य शब्द, नित्य अर्थ और नित्य सम्बन्धों के जानने ही के लिये है ।"

व्याकरण शास्त्र के प्रयोजन—व्याकरणशास्त्र के पढ़ने के अठारह प्रयोजन आगे इसी लेख में महर्षि दर्शाते हैं। सबसे पहला प्रयोजन रक्षा है जिसके विषय में वह इस प्रकार लिखते हैं—

"**रक्षा**—मनुष्य लोगों को वेदों की रक्षा के लिए व्याकरण आदि शास्त्र अवश्य पढ़ने चाहिएं क्योंकि पढ़ने ही से लोप, आगम और वर्णविकार आदि का यथावत् बोध होकर वेदों की रक्षा कर सकते हैं ।"....२. **आगम**—सब मनुष्यों को अवश्य उचित है कि सांगोपांग वेदों को पढ़कर यथोक्त क्रिया करके सुखलाभ को प्राप्त हों सो व्याकरण आदि के पढ़े बिना कभी नहीं हो सकता क्योंकि सब विद्याओं की प्राप्ति करने में व्याकरण ही प्रधान है । प्रधान में किया हुआ पुरुषार्थ सर्वत्र महालाभकारी होता है ।"......"**उत त्वः**—जो मनुष्य व्याकरण आदि विद्या को नहीं पढ़ता वह विद्यायुक्त वाणी के दर्शन से रहित होकर देखता हुआ भी अन्धे के समान और सुनता हुआ बहरे के समान होता है और जो इस विद्या के स्वरूप को प्राप्त होता है उसी को विद्या परमेश्वर से लेकर पृथिवी पर्यन्त पदार्थों का स्वरूप, यथावत् जना देती है ।"[४]

२—एक और अपूर्व ग्रन्थ महर्षि का रचा हुआ यन्त्रालय में पड़ा है जो कि अभी तक नहीं छपा[५]

अष्टाध्यायी का भाष्य भी लिखा होगा—वेदांगप्रकाश के सन्धि-विषय में महर्षि का यह लेख है "यह अठारह प्रयोजन यहां संक्षेप से लिखे हैं किन्तु इनको प्रमाण और विस्तारपूर्वक '**अष्टाध्यायी की भूमिका**' में लिखेंगे ।" इस लेख के संकेत को लेकर हम अनुमान करते हैं कि महर्षि ने वेदांगप्रकाश के अतिरिक्त अष्टाध्यायी का भाष्य भी रचा होगा । यही नहीं हमारा अनुमान ही यह नहीं कह रहा है, प्रत्युत निम्नलखित लेख इस बात की निर्भ्रान्त पुष्टि करता है कि वे अष्टाध्यायी का भाष्य सम्पूर्ण छोड़ गये हैं ।

"अष्टाध्यायी की टीका धरी हुई है । संस्कृत और भाषाटीका सहित छपायी जावे ।"

महर्षिकृत[1] अष्टाध्यायी की इस टीका की जितनी आवश्यकता है उसको संसार जानता है । ऐसे अपूर्व और परमोपयोगी ग्रन्थ का आजतक न छपना हमको विस्मित कर रहा है । हम आशा करते हैं कि परोपकारिणी सभा के मंत्री तथा यन्त्रालय के अध्यक्ष बहुत शीघ्र इस ग्रन्थ तथा महर्षि के अन्य लेखों और नोटों को, जो कि आजतक यन्त्रालय में धरे पड़े हैं, शीघ्र ही छपवा कर आर्यों के धन्यवाद के पात्र बनेंगे ।

३—पंचमहायज्ञविधि अर्थात् नित्यकर्मविधि

यह पुस्तक नित्यकर्मविधि का है । इसमें पंचमहायज्ञ का विधान है जिनके नाम ये हैं—ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ और नृयज्ञ ।........इन नित्यकर्मों का फल यह हैं-ज्ञानप्राप्ति से आत्मा की उन्नति और अरोगता होने से शरीर के सुख से व्यवहार और परमार्थकार्यों की सिद्धि होना । उससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष यह सिद्ध होते हैं । इनको प्राप्त होकर मनुष्य को सुखी होना उचित है ।

पंचमहायज्ञों के प्रयोजन—ब्रह्मयज्ञ का दूसरा नाम सन्ध्योपासना, देवयज्ञ का अग्निहोत्र, पितृयज्ञ का तर्पण और श्राद्ध, भूतयज्ञ का बलिवैश्वदेव और नृयज्ञ का अतिथियज्ञ है । ब्रह्मयज्ञ मनुष्य को ज्ञान, कर्म और उपासना के बल से युक्त

---

१. ऋग्वेदभाष्य अंक ११४,११५ प्रकाशित संवत् १९४६ पर मैनेजर वैदिक यन्त्रालय की ओर से विज्ञापन दिया गया है ।

करता हुआ, उसको अपनी और दूसरों की भलाई के लिए अन्य चार यज्ञ रचने का सामर्थ्य देता है । इन पांच यज्ञों का करने वाला अपनी उन्नति के साथ-साथ औरों की उन्नति और दूसरों की उन्नति में अपनी उन्नति करता है । यदि ब्रह्मयज्ञ में ईश्वर का ध्यान करने से (ध्यान करने वाले का अपना) आत्मा उन्नति करता हैं तो उसके साथ-साथ ब्रह्मयज्ञ मनुष्य की व्यक्तिगत उन्नति और सामाजिक उन्नति का मूल है । हवन करने से जहां मनुष्य बलपुष्टि देने वाले सुगन्धित पदार्थों का सार स्वयं खींच लेता है, वहां वह प्राणिमात्र की रोगनिवृत्ति[1] के लिए सुगन्धि[2] का विस्तार करता है । इसलिए देवयज्ञ मनुष्य की निज अरोगता और सामाजिक अरोगता का कारण है । पितृयज्ञ करने से मनुष्य जहां अपने आत्मा के प्रेमगुण की उन्नति करता हैं, वहां औरों के सेवा-सत्कार से मनुष्यसमाज को लाभ पहुंचाता है । इसी प्रकार भूतयज्ञ और अतिथियज्ञ करने से मनुष्य अपने प्रेम की उन्नति करता हुआ दूसरों की बराबर उन्नति करता है ।

परोपकार से आत्मोन्नति का मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त—कई लोग इन पांच यज्ञों को केवल निजोन्नति का साधन मानते हैं । यदि वे विचार से काम लें तो उनको प्रतीत होगा कि ये अपनी और दूसरों की उन्नति के साधन हैं । जो लोग इन महायज्ञों को केवल दूसरों की उन्नति का साधन कहते हैं वे भी इस बात को नहीं समझते कि किस प्रकार दूसरों की उन्नति करते हुए अपनी उन्नति करते हैं । औरो का उपकार करने से निज प्रेम की शक्ति उन्नति होती है । निष्काम कर्म के कर्त्ता इसी सिद्धान्त को दृष्टि के सामने रखते हुए मन में सन्तोष रखते हैं कि यद्यपि लोग हमारे उपकार की प्रशंसा न करें तो भी अपनी उन्नति परोपकार करने से अवश्य कर रहे हैं । मन में दूसरे की हानि का विचार तक लाने से निश्चित हम अपनी हानि करते हैं । औरों पर क्रोध करने से हम स्वयं अशान्त होते हैं । जैसे मनुष्य ज्ञान या विद्यादान से अपनी विद्या की उन्नति करता है, वैसे ही प्रेम के दान से निजप्रेमरूपी स्वभाव की उन्नति करता है । यदि कोई अतिथि आदि की सेवा प्रेमपूर्वक करता है तो ऐसा करने के साथ ही वह अपनी प्रेमशक्ति की उन्नति करता है । फ्रेनालोजिस्ट अर्थात् सामुद्रिक विद्या के वेत्ता मानवीय मस्तिष्क के तीन बड़े भाग करते हैं । ललाट के भाग को वह ज्ञान[3] का साधन, मध्य के ऊपर के भाग को उपासना का साधन और पीठ की ओर से पिछले भाग को प्रेम या कर्म का साधन बताते हैं और इन तीनों भागों की उन्नति मनुष्य के लिए आवश्यक है । जो ज्ञान के साथ-साथ उपासना, कर्म या प्रेम की उन्नति नहीं करता वह स्वस्थ कहलाने का अधिकारी नहीं । पूर्ण स्वास्थ्य समोन्नति या हारमनी (Harmony) का नाम है और वह स्वास्थ्य, ज्ञान, कर्म और उपासना में यथार्थ उन्नति करने से प्राप्त होता है । फ्रेनोलोजिस्ट बतलाते हैं कि मनुष्य, स्त्री, बच्चे, भाई, पिता और प्राणिमात्र से जो प्रेम करता है तो इसलिए कि इस प्रेम का तत्त्व उसके आत्मा में भर रहा है और मस्तिष्क का पिछला भाग इस प्रेम का साधन बनाया गया है । इसलिए इस बात को भली प्रकार जान लेना चाहिये कि जो मनुष्य प्रेमपूर्वक किसी की सेवा करता है तो ऐसा करने से जहां वह दूसरे को सुख पहुंचाता है, वहां साथ ही अपनी प्रेमशक्ति की उन्नति करता है । या यों कहो कि दूसरों से प्रेम करना, अपनी प्रेमशक्ति को दृढ़ करने के लिए व्यायाम का काम देता है ।

---

1. सब प्रकार के 'डिस इन्फैक्टैण्ट' (Disinfectant) चूर्ण या छिड़कने वाली औषधियां जैसे फिनाइल आदि दुर्गन्ध को दूर नहीं करते 'प्रत्युत वायु को दुर्गन्धित और दूषित बनाने में सहायता देते हैं ।' (देखो लुई कूइने द्वारा रचित 'दी न्यू साइन्स आफ हीलिंग')।

2. कुछ लोग कहा करते हैं कि गन्धक जलाने से वायु शुद्ध हो जाती है, परन्तु अनुभव बतला रहा है कि जब दियासलाई रगड़ते समय गन्धक की दुर्गन्ध नाक में पहुंचती है तो सहन नहीं हो सकती, इसलिए गन्धक के जलाने से कभी वायु शुद्ध नहीं होती । इसी विषय को प्रोफेसर ऐलेग्जैण्डर बेन एल० एल० डी० ने 'इण्टलैक्ट ऐंड दी सैन्सिज' (Intellect and the senses) में लिखा है जहां वह वर्णन करता है कि गन्धक की दुर्गन्ध स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है ।

3. देखो ए० जे० डैविस द्वारा रचित 'हारमोनिया' खंड ५ ।

व्यक्ति और समष्टि की साथ-साथ उन्नति—यदि आस्तिक अन्याय का आचरण नहीं करता तो क्या इससे उसकी और मनुष्यसमाज दोनों की उन्नति नहीं होती ? यदि भूतयज्ञ का करने वाला रोगियों की सेवा करता है तो क्या इस क्रम सेवह अपनी और दूसरों की उन्नति नहीं करता ? सत्य तो यह है कि अपनी उन्नति के साथ दूसरों की उन्नति बंधी हुई है। एक को दूसरे से कोई पृथक् नहीं कर सकता। कोई कह सकता है कि महर्षि दयानन्द अठारह घंटे की समाधि द्वारा निज आत्मोन्नति करते थे परन्तु हम कहेंगे कि अपनी सच्ची उन्नति करने से वे अपने आपको मनुष्यसमाज की उन्नति करने के योग्य बना रहे थे। विचार से सिद्ध होता है कि मनुष्य अपनी सच्ची उन्नति में सामाजिक उन्नति का बीज बोता है। ब्रह्मचर्याश्रम, जो कि एक मनुष्य की सच्ची उन्नति करता है वह संन्यासाश्रम का जिसमें कि औरों की उन्नति की जाती है-मूल है। जिस सीमा तक कोई अपनी उन्नति करता है उस सीमा तक ही मनुष्यसमाज का उपकार कर सकता है। जो लोग कहते हैं कि सामाजिक उन्नति करो या सोसाइटी को अच्छा बनाने की चिन्ता करो और साथ ही बतलाते हैं कि जो समय पंचमहायज्ञों के करने में लगाना है उसको देशसेवा के अर्पण कर दो-वे लोग सामाजिक उन्नति के अर्थ ही नहीं जानते। हिंसक मनुष्य यदि अपने दुर्गुण को ईश्वरोपासना से नष्ट करना नहीं चाहता तो हम नहीं जानते कि इसके अतिरिक्त वह मनुष्यसमाज या सोसाइटी की हानि करके क्या लाभ पहुंचा सकता है ? ब्रह्मयज्ञ आदि कर्म मनुष्य की अपनी और सामाजिक उन्नति के समान साधन हैं। इसलिए महर्षि मनु की आज्ञा है कि जो नित्य सन्ध्योपासन नहीं करता उसको द्विजपदवी से पतित कर देना चाहिये परन्तु आज पश्चिमी दीपक के प्रकाश में काम करने वाले कहते हैं कि हम चाहे सन्ध्या करें या न करें हम चाहे शुद्धाचरणी बनें या न बनें तो हम सामाजिक उन्नति के लिए काम कर सकते हें जो कि नितान्त मिथ्या बात है।

राजनीति और आत्मिक उन्नति—राजनीतिक नेता भी अपनी आत्मिक उन्नति के अंश को जीवन में ढालते हुए ही सोसाइटी को अपने से जोड़ सकते हैं। यदि सदाचारी पारनल आयरलैंड का लीडर बना रहा था तो दूसरी अवस्था में (असदाचारी की अवस्था में) वह आयरलैंड का लीडर न रह सका। सामाजिक उन्नति को यदि फल कहें जो नित्य आत्मिक उन्नति उसका बीज है। बीज की रक्षा करने से फल की आशा हो सकती है। सोसाइटी की काया पलटाने के लिए अपनी काया पलटाने की पहले आवश्यकता है। पंचमहायज्ञ आदि नित्य कर्मों का पालन करने वाला मानो नित्य अपनी और मनुष्यसमाज दोनों की उन्नति कर रहा है।

४—संस्कार-विधि

संस्कार निरी प्रथाएं नहीं हैं—कर्म दो प्रकार के हैं, नित्य और नैमित्तिक। नित्य कर्मो का विधान 'संस्कारविधि' में है। महर्षि लिखते हैं "संस्कारों में केवल क्रिया करनी ही मुख्य है जिसके करने से शरीर और आत्मा सुसंस्कृत होने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त हो सकते हैं और सन्तान अत्यन्त योग्य होते हैं, इसलिये संस्कारों का करना सब मनुष्यों को अति उचित है।"

कई लोग भूल से संस्कारों को केवल प्रथाएं समझते हुए कहा करते हैं कि केवल सोसाइटी के लिए हमें इनका करना आवश्यक है अन्यथा निजी उन्नति इनसे नहीं हो सकती। हम इसके उत्तर में कहेंगे कि संस्कार शुद्ध क्रिया का नाम है; न कि, निरर्थक प्रथाओं का। शुद्ध क्रिया सदा वैयक्तिक संस्कार का करने वाला सदा अपना और दूसरों का कल्याण करता है। उदाहरणार्थ, यदि कोई ऋतुगमन के श्रेष्ठ सिद्धान्त का अनुकरण करता हुआ गर्भाधान संस्कार करता है तो ऐसा करने से जहां वह मनुष्य अपनी पत्नी को ही दुःख नहीं करता, वहां अपने भी स्वास्थ्य को नहीं बिगाड़ता। व्यभिचारी मनुष्य अपनी पत्नी को ही दुःख नहीं देता प्रत्युत वीर्यनाश करने से अपने बलबुद्धि का भी नाश कर बैठता है। सन्तान को अच्छा

और भला उत्पन्न करने में ही हमारा कल्याण और भलाई है। यदि शाहजहां ने बिना संस्कार या शुद्ध क्रिया के औरंगजेब को उत्पन्न किया तो उसके हाथ से दुःख भी आप ही भुगता। यदि राजा शान्तनु की धर्मपत्नी ने गर्भाधान की शुद्धक्रिया से भीष्म को गर्भ में धारण किया था तो सपूत भीष्म ने माता-पिता की आज्ञापालन में तत्पर रहकर पिता को प्रसन्नता प्राप्त कराने के लिए आयु भर ब्रह्मचारी रहना स्वीकार किया था। इन संस्कारों के करने से जहां हम सन्तान को उत्तम और सदाचारी बनाते हैं, वहां, अपने कल्याण और भलाई का बीज बो देते हैं। यदि कोई केवल सार्वजनिक हित के लिए हवन करने से वर्षा कराता है तो क्या बरसती हुई वर्षा उसके खेत को हरा-भरा नहीं बनाती ? औरों की भलाई में मनुष्य की अपनी भलाई विद्यमान रहती है।

'संस्कारविधि' में निम्नलिखित सोलह संस्कारों का वर्णन है—गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन, विवाह, गृहाश्रम, वानप्रस्थ, संन्यास और अन्त्येष्टि।

मुसलमान और ईसाई मतों की पुस्तकों में सोलह संस्कारों का वर्णन नहीं और न ये लोग विद्या के सिद्धान्त पर कोई संस्कार करते हैं। इनके विवाह को हम प्रथा कह सकते हैं न कि संस्कार। गर्भाधान, जो कि पहला संस्कार है इसकी आवश्यकता, आज विज्ञान दीपक के प्रकाश में काम करने वाले भी अनुभव करते हुए दिखाई देते हैं। एक प्रसिद्ध पाश्चात्य डाक्टर के निम्नलिखित वचन हमारे कथन का समर्थन कर रहे हैं—

"श्रेष्ठ[1] सन्तान का उत्पन्न करना और सन्तान को भला बनाना ऐसा उत्तम काम है जैसा कि आज तक इस पृथिवी पर नहीं हुआ.....हम उस पुरुष और स्त्री की कहां तक प्रशंसा करें जो संसार में श्रेष्ठ संतान को उत्पन्न करते हैं।" दीपक के प्रकाश-जितने अल्पज्ञानी इस पाश्चात्य डाक्टर को क्या पता है कि सोलह संस्कारों के बल से हमारे पूर्वज सन्तान को जन्म से मृत्यु तक निरन्तर श्रेष्ठ और भला बनाते थे। इसके विचार में गर्भाधानसंस्कार 'आजतक इस पृथिवी पर नहीं हुआ।' परन्तु आज महर्षि दयानन्द ने 'संस्कारविधि' रचकर प्राचीन प्रमाणों से प्रकट कर दिया है कि एक गर्भाधान तो क्या, प्रत्युत पन्द्रह अन्य संस्कार भी सन्तान को उत्तम और भला बनाने के लिए प्रत्येक को करने चाहियें।

संस्कार के समय मंत्रपाठ का प्रयोजन—प्रत्येक संस्कार के अवसर पर आत्मशान्ति के देने वाले वेदमन्त्रों का पाठ और सामवेद का गान आत्मिक स्वास्थ्य के लिए और हवनयज्ञ का करना शारीरिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। गायन (राग) और हवन, संस्कारों के दो परम साधन हैं। राग आत्मा का भोजन है। जिस प्रकार हवन का धूम्र शरीर को शक्ति और स्फूर्ति देता है उसी प्रकार विद्या के सिद्धान्तों और ईश्वर के गुणों से भरा हुआ वेदरूपी राग आत्मा को शक्ति और स्फूर्ति देता है। ठीक युद्ध के अवसर पर लड़ते हुए वीरों में वीरता की आग भड़काने के लिए उत्साहपूर्ण गाने गाये जाते हैं। गीत के शब्द जितने उत्साहपूर्ण, अर्थपूर्ण और प्रभावशाली होते हैं, वीर सैनिक भी युद्धक्षेत्र में उतनी ही शीघ्रता से पग बढ़ाते हैं। सर्प जैसे हानिकारक जन्तु भी राग के बल से मोहित हो जाते हैं। राग का जो प्रभाव आत्मा पर होता है, इससे कोई भी बुद्धिमान्[2] इन्कार नहीं कर सकता। नियमपूर्वक गाने वालों की छाती और फुप्फुस[3] बलवान् हो जाते हैं। फुप्फुसों के व्यायाम के लिए बोलना और गाना भारी साधन है।

---

1. डाक्टर होलबुक एम० डी० की पुस्तक पार्टियोरीशन विदाउट पेन', पृष्ठ १०९।

2. मुसलमान लोग रागविद्या के विरुद्ध हैं।

3. डाक्टर अनाकिंग्स फोर्ड एम० डी० का कथन है कि प्रातः-सायं का गाना छाती के लिए अत्यन्त श्रेष्ठ व्यायाम है। देखो पुस्तक 'रायल रोड टू ब्यूटी' (Royal Road to Beauty)।

संस्कारों को शास्त्रवचन से प्रमाणित किया—प्रत्येक संस्कार के विषय में महर्षि ने प्रमाण एकत्र करके रख दिये हैं। संस्कारविधि के अध्ययन से प्रकट है कि सब प्रकार के अपव्यय जो लोग आतिशबाजी, बाग बहारी आदि के रूप में विवाह के अवसर पर या अन्य संस्कारों के सम्बन्ध में करते हैं, उनकी आज्ञा कहीं शास्त्रों ने नहीं दी। सोलह संस्कारों के अतिरिक्त मृतक को जलाने के लिए अन्त में अन्त्येष्टि कर्म की विधि लिखी है। मुसलमान, ईसाई आदि लोग जिनके मजहब में बुद्धि का प्रवेश नहीं है, मृतक को पृथिवी में गाड़ कर जलवायु को दूषित कर रहे हैं परन्तु वेद बतला रहा है कि मृतक का शरीर जला कर भस्म कर देना चाहिए।

संस्कार सामाजिक कर्म है—ब्रह्मयज्ञ आदि कर्मों को करने वाले को अपनी जाति के स्त्री-पुरुष एकत्र करने की आवश्यकता नहीं परन्तु इन संस्कारों के अवसर पर जाति के पुरुष-स्त्रियों का एकत्र होकर संस्कार की साधारण क्रिया में सहायता देना आवश्यक है। पितृयज्ञ में जिनकी सेवा करनी अभीष्ट है, उनके अतिरिक्त अन्य लोगों को निमन्त्रण देने की आवश्यकता नहीं। परन्तु इन संस्कारों में जाति के लोगों तथा इष्टमित्रों की उपस्थिति आवश्यक है। इन्हीं वेदोक्त संस्कारों के बल से ऋषि-मुनि और महात्माजन पृथिवी पर जन्म लेते थे और आज इन्हीं के अभाव से दीन, मलिन, बलहीन सन्तान रोगों से पूरित पृथिवी का भार बन रही है। संस्कारों का मूल गर्भाधान है और गर्भाधान पुरुष-स्त्री के पूर्ण ब्रह्मचर्य के बिना हो नहीं सकता। इसलिए संस्कारों की प्रणाली को पुन: प्रचलित करने के लिए हमें ब्रह्मचर्य की दृढ़ नींव डालनी चाहिए।

५—गोकरुणानिधि

प्रयोजन—'यह ग्रन्थ इसी अभिप्राय से रचा गया है जिससे गो आदि पशु यथाशक्ति बचाये जावें और उनके बचाने से दूध, घी और खेती के बढ़ने से सबका सुख बढ़ता रहे।.....'

विषय-विभाग—इस ग्रन्थ में तीन प्रकरण हैं एक समीक्षा, दूसरा नियम और तीसरा उपनियम।

गाय, बैल, भैंस, ऊंट, बकरी, घोड़ा, हाथी, सूअर, कुत्ता, मुर्गा, मोर आदि से जो लाभ मिल सकते हैं उनको अत्यन्त उचित रूप में दिखाते हुए महर्षि लिखते हैं कि—**पशुहिंसा से पाप होता है**—"इत्यादि शुभगुणयुक्त सुखकारक पशुओं के गले छुरों से काटकर जो अपना पेट भर, सब संसार की हानि करते हैं, क्या संसार में उनसे भी अधिक कोई विश्वासघाती, अनुपकारी, दु:ख देने वाले और पापीजन होंगे। इसीलिये यजुर्वेद के प्रथम ही मंत्र में परमात्मा की आज्ञा है कि ....हे पुरुष ! तू इन पशुओं को कभी न मार.....इसीलिये ब्रह्मा से लेकर आज पर्यन्त आर्य लोग पशुओं की हिंसा में पाप और अधर्म समझते थे और अब भी समझते हैं।"

मांसाहारियों से अपील—मूक पशुओं का वकील आगे चलकर मांसभक्षियों से इन शब्दों में अपील कर रहा है—

"हे मांसाहारियो ! तुम लोग जब कुछ काल के पश्चात् पशु न मिलेंगे तब मनुष्यों का मांस भी छोड़ोगे वा नहीं ?"

आक्षेपों के उत्तर—इसके पश्चात् महर्षि प्रश्नोत्तर में मांसभक्षियों के भारी आक्षेपों का ऐसा युक्तिपूर्ण और ठीक उत्तर देते हैं कि वह मनुष्य जिसने यूरोप और अमरीका की वैजीटेरियन सोसाइटी (Vegetarian Society) की श्रेष्ठ से श्रेष्ठ पुस्तकें पढ़ी हैं, वह भी वास्तव में महर्षि के उत्तर पढ़कर दंग रह जाता है। हम निम्नलिखित कुछ संक्षिप्त शब्द महर्षि के लेख से लेकर लिखते हैं ताकि लोग मांसभक्षण के सम्बन्ध में वेदों का सिद्धान्त जान सकें।

'मांस का खाना किसी मनुष्य को उचित नहीं' (पृष्ठ १०)। 'किसी अवस्था में मांस न खाना चाहिये' (पृष्ठ ११)। 'इस कारण मांसाहार का सर्वथा निषेध होना चाहिये' (पृष्ठ ११)। 'इसीलिये दयालु परमेश्वर ने वेदों में मांस खाने वा पशु आदि को मारने की विधि नहीं लिखी' (पृष्ठ १२)।

गोकृष्यादिरक्षिणी सभा के सात नियम और कई उपनियम लिखकर, जिनमें निर्धनता, दुर्भिक्ष के हटाने और निश्चिन्तता तथा शान्ति के बढ़ाने के उपाय हैं, महर्षि इस महोपकारी ग्रन्थ की समाप्ति करते हैं।

६—आर्योद्देश्यरत्नमाला

केवल भाषा जानने वालों के लिए सुबोध सिद्धान्त की पुस्तक—सरल और संक्षिप्त रीति से कठिन और महान् विषयों को केवल भाषा जानने वालों के कान तक पहुंचाने के लिए महर्षि ने यह पुस्तक आर्यभाषा में रचा है। ईश्वर, धर्म, अधर्म, पुण्य, सत्यभाषण, मिथ्याभाषण, विश्वास, अविश्वास, परलोक, अपरलोक, जन्म, मरण, स्वर्ग, नरक, विद्या, अविद्या, सत्पुरुष, सत्संग, कुसंग, तीर्थ, स्तुति, स्तुति का फल, निन्दा, प्रार्थना, प्रार्थना का फल, उपासना, निर्गुणोपासना, सगुणोपासना, मुक्ति, मुक्ति के साधन, कर्त्ता, कारण, उपादानकारण, निमित्तकारण, साधारणकारण, कार्य, सृष्टि, जाति, मनुष्य, आर्य, आर्यावर्त देश, दस्यु, वर्ण, वर्ण के भेद, आश्रम आदि सौ (१००) रत्न इस माला में महर्षि ने अत्यन्त श्रेष्ठता से परोपकारार्थ पिरोये हैं। प्रत्येक मनुष्य को यह सिद्धान्तरूपी रत्नों की माला मन में धारण करने की आवश्यकता है। माता-पिता जो सन्तान को सोने-चांदी की माला पहनाते हैं, जिससे उनके प्राण जाने का भय है उसके स्थान पर यदि वह उनके आत्मा को यह रत्नमाला पहना दें, तो वास्तव में सन्तान सच्चे अर्थों में सुन्दर और विद्यारत्न से सुभूषित दिखाई दें।

७—भ्रमोच्छेदन

पुस्तक लिखने का प्रयोजन—महर्षि दयानन्द दिग्विजय करते हुए कई बार काशी गये और जाकर वहां के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पौराणिक पंडितों से शास्त्रार्थ किये और विजय पायी, परन्तु कभी राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द[६] महर्षि के सामने शास्त्रार्थ के लिए न आये। संवत् १९३६ में एक बार उक्त राजा साहब की स्वामी जी से साधारण भेंट हुई और इस भेंट के पश्चात् सवा चार महीने तक स्वामी जी काशी में वैदिक धर्म का उपदेश करने के लिए ठहरे रहे परन्तु इस लम्बे काल में भी राजा साहब अपने सन्देह निवृत्त करने के लिए कभी न आये। परन्तु जब राजासाहब ने सुना कि महर्षि काशी से जाने वाले हैं तो एक पुस्तक बना स्वामी विशुद्धानन्द जी की सम्मति उस पर लिखा कर प्रकाशित कर दी। इस पुस्तक में राजा जी ने कई आक्षेप जो उनके पौराणिक गुरु विशुद्धानन्द ने उनको बताये थे, लिखे हैं। यद्यपि यह पुस्तक राजा शिवप्रसाद साहब के नाम से प्रकाशित हुई है परन्तु वास्तव में स्वामी विशुद्धानन्द जी की ओर से समझनी चाहिये क्योंकि राजासाहब संस्कृतविद्या के पंडित नहीं और ना ही बिचारे इस प्रकार के विद्या सम्बन्धी आक्षेप करने की योग्यता रखते हैं। महर्षि दयानन्द इस पुस्तक के उत्तर में '**भ्रमोच्छेदन**' नामक पुस्तक कभी न लिखते, यदि स्वामी विशुद्धानन्द जी की सम्मति उस पर न लिखी होती। निम्नलिखित शब्द महर्षि के इस अभिप्राय को स्पष्ट कर रहे हैं—

"जो राजा जी स्वामी विशुद्धानन्द जी की सम्मति न लिखाते तो मैं इस पत्र के उत्तर में एक अक्षर भी न लिखता क्योंकि उनको[1] तो जैसा अपने पत्र में लिख चुका हूं वैसा ही निश्चत जानता हूं।"

महर्षि के 'भ्रमोच्छेदन' के पढ़ने से प्रकट होता है कि किस प्रकार काशी के प्रसिद्ध संन्यासी स्वामी विशुद्धानन्द सत्य के बल से पराजित होते हुए इस बात का भारी प्रमाण देते हैं कि सत्यरूपी हीरे के आगे पाखण्ड रूपी चट्टान किस प्रकार खंड-खंड होती है।

---

1. अर्थात् राजा जी को।

८—भ्रान्तिनिवारण

महर्षि के वेदभाष्य पर कई आक्षेप पंडित महेशचन्द्र न्यायरत्न, स्थानापन्न प्रिंसिपल, संस्कृत कालिज, कलकत्ता ने 'वेदभाष्यपरक प्रश्न पुस्तक' में लिखकर छपवाये थे। उस पुस्तक के उत्तर में महर्षि ने 'भ्रान्तिनिवारण' पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में जिस विद्वत्ता और गौरव से महर्षि ने प्रसिद्ध पंडित के आक्षेपों का सन्तोषजनक और उचित उत्तर दिया है, उसका अनुमान वही लगा सकता है जिसको उस पुस्तक के पढ़ने का अवसर मिला हो। 'भ्रान्तिनिवारण' की भूमिका भी अत्यन्त ही रोचक और शिक्षादायक है। उसमें से कुछ शब्द नीचे लिखते हैं ताकि पाठकगण महर्षि के आत्मबल का अनुमान लगा सकें और जान लें कि महर्षि किसकी सहायता पर निर्भर हुए बिना ही, चारों ओर के विरोध पर विजय पा रहे थे—

"विदित हो कि जो मैंने संसार के उपकारार्थ वेदभाष्य के बनाने का आरम्भ किया है जो कि सब प्राचीन ऋषियों की की हुई व्याख्या और अन्य सत्यग्रन्थों के प्रमाणयुक्त बनाया जाता जिससे इस बात की साक्षी वे सब ग्रन्थ आज पर्यन्त वर्तमान हैं.....जो मैं निरा संसार ही का भय करता और सर्वज्ञ परमात्मा का कुछ भी नहीं कि जिसके अधीन मनुष्य के जीवन, मृत्यु और सुख दुःख हैं, तो मैं भी ऐसे ही अनर्थक वाद-विवादों में मन देता। परन्तु क्या करूं, मैं तो अपना तन-मन-धन सब सत्य के ही प्रकाशार्थ समर्पण कर चुका। मुझे खुशामद करके अब स्वार्थ का व्यवहार नहीं चला सकता किन्तु संसार का लाभ पहुंचाना ही मुझको[2] चक्रवर्ती राज्य के तुल्य है। मैं इस बात को प्रथम ही अच्छे प्रकार जानता था कि नियारिये के समान बालू से स्वर्ण निकालने वाले चतुर कम होंगे किन्तु मलिन मच्छी की न्याई निर्मल जल को गंदला करने और बिगाड़ने वाले बहुत हैं। परन्तु मैंने इस धर्मकार्य का सर्वशक्तिमान्, सर्वसहायक, न्यायकारी परमात्मा के शरण में शीश धर के उसी के सहाय के अवलम्बन से आरम्भ किया है[2]।"[3]

---

1. जहां-जहां मोटे शब्द तीसरे भाग के पहले और दूसरे अध्याय में हैं वह हमारी ओर से समझने चाहियें। पाठकों को विशेष ध्यान दिलाने के लिये हमने उनको मोटा कर दिया है।

2. इसके अतिरिक्त 'आर्याभिविनय', 'वेदान्तध्वान्तनिवारण' आदि कई पुस्तक महर्षि की रचनाओं में और हैं परन्तु विस्तार के भय से हम उनके विषय में अधिक लेख करना आवश्यक नहीं समझते। (आत्माराम)

3. पृष्ठ ९४८ से यहां तक सारा लेख उर्दू जीवन चरित्र के सम्पादक पं० आत्माराम जी का लिखा है।

—सम्पादक

परिशिष्ट

(लेखक—पं० लेखराम जी)

उन नगरों, ग्रामों व स्थानों के नाम, जहां महर्षि पधारे—

पंजाब—रावलपिंडी, जेहलम, गुजरात, वजीराबाद, गुजरांवाला, लाहौर, मुलतान, फिरोजपुर, अमृतसर, गुरुदासपुर, जालन्धर, देहली ।

पश्चिमी व उत्तरीय-प्रदेश[1] **और बंगाल**—मुजफ्फरनगर, मेरठ, सहारनपुर, हरिद्वार, ज्वालापुर, रुड़की, गढ़मुक्तेश्वर, सिरसा, अहार, चासी, ताहरपुर, अनूपशहर, कर्णवास, राजघाट, रामघाट, अतरौली, अलीगढ़, सोरों, कासगंज, कायमगंज, कन्नौज, फर्रूखाबाद, मैनपुरी, फतहगढ़, बिठूर, कानपुर, अशनी, शिवराजपुर, इलाहाबाद, मिर्जापुर, बनारस, डुमरांव, आरा, छपरा, दानापुर, बांकीपुर, पटना, मुंगेर, भागलपुर[2], हुगली, कलकत्ता, मथुरा, वृन्दावन, हाथरस, छलेसर, आगरा, भरतपुर, करौली, ग्वालियर[3] ।

बम्बई प्रदेश[4]—बम्बई, पूना, राजकोट, अहमदाबाद, खंडवा, रतलाम, इन्दौर, जावरा ।

राजस्थान—अजमेर, पुष्कर, मसूदा, किशनगढ़, जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, शाहपुरा, रायपुर, आबू, चित्तौड़ ।

स्वामी जी के द्वारा लोगों को बतलाये हुए औषधि-योग

(१) **हृदय धड़कने की औषधि**—पंडित हृदयनारायण जी, वकील कानपुर ने वर्णन किया, कि हमारे छोटे भाई पंडित प्यारेलाल जी को हृदय धड़कने का रोग था । स्वामी जी ने उसे सेवती का गुलकन्द बताया था ।

(२) **बुद्धिवर्धक योग**—पंडित बिहारीदत्त शर्मा, दानापुर निवासी ने वर्णन किया कि स्वामी जी बुद्धि बढ़ाने के लिए शीतकाल में मालकंगनी बताया करते थे; इस विधि से कि मालकंगनी एक छदाम, चीनी एक छदाम ।

(३) **वाक्शक्ति सुधारने की औषधि**—कुलींजन के टुकड़े करके एक-एक विद्यार्थी को पाठशाला में खिलाया करते थे ।

(४) **पाचक चूर्ण**—ठाकुर जगन्नाथ जी[१] शासक चित्तौड़ राज्य, उदयपुर ने वर्णन किया कि स्वामी जी ने पाचक चूर्ण मुझको बतलाया था—जीरा सफेद, जीरा काला, सोंठ, छोटी पीपर, अजवायन, काली मिर्च, सेंधा नमक-यह सब वस्तुएं समान भाग लेना, एक औषधि से चौथाई हींग लेना और जीरे और हींग को कोरे बर्तन पर भून लेना, फिर सबको पीस कर चूर्ण कर लेना और रोटी खाने के समय तीन माशे पहले कौर में खाकर ऊपर से रोटी खाना ।

(५) दांतों का हिलना रोकना और बादी रोग दूर करने का योग—ला० रामजीलाल मुरादाबाद निवासी को स्वामी जी ने निम्नलिखित औषधियां २ अगस्त सन् १८७९ को बदायूं नगर में लाला गंगाराम रस्तोगी के बाग में बतलाई थीं—

---

1. वर्तमान उत्तरप्रदेश को पश्चिमोत्तर प्रदेश कहा जाता था ।

2. डुमरांव से भागलपुर पर्यन्त स्थान वर्तमान बिहार में है ।

3. भरतपुर तथा करौली राजस्थान तथा ग्वालियर मध्यप्रदेश में है ।

4. बम्बई प्रदेश में वर्तमान महाराष्ट्र तथा गुजरात थे, खण्डवा, रतलाम, इन्दौर और जावरा मध्यप्रदेश में हैं ।

मस्तगी रूमी २ तोला, नीलाथोथा दो तोला, माजूफल २ तोला, मुलहटी २ तोला, पपड़िया कत्था २ तोला। प्रथम नीले थोथे को आग पर खौल करके उसको गर्म ही गर्म इतने पानी में जिसमें सब औषधियां भीग जावें, बुझाकर अलग कर ले। फिर पांचों वस्तुओं को समान तोलकर अलग-अलग सबको पीसकर उस पानी में मिला लेवें। तत्पश्चात् उन सबके बराबर रेतीले स्थान में उगे आकवृक्ष की जड़ की छाल पानी में धो कर लें; सबको कढ़ाई में पत्थर की मूसली से अंजन के समान सूक्ष्म पीस लेवें और नित्य प्रातःकाल दन्तधावन आदि से निवृत्त होने के पश्चात् मला करें और मलने के पश्चात् एक घण्टे तक दांतों में पानी न लगाया जावे।

(६) **दाद की दवा**—गंधक १ छटांक, चौकिया सुहागा १ छटांक, सीप का चूना १ छटांक, राल १ छटांक, नीलाथोथा १/२ छटांक-इन पांचों वस्तुओं को पीस कर भैंस के ताजा घी में मिलाकर लगावे। यदि भार न्यूनाधिक करना हो तो चार वस्तुएं बराबर-बराबर हों और नीलाथोथा आधा।

(७) **प्लीहा (तिल्ली) की चिकित्सा**—प्लीहा निर्बलता से होती है। भोजन करने के समय हाथ से तिल्ली उठा लेवे। जब तक भोजन करता रहे, ऊपर दबाये रखें। दस-पन्दह दिन के पश्चात् अपने स्थान पर आ जायेगी।

(८) **दादनाशक**—नीचे लिखी विधि से बनायी गोली रगड़ कर लगाने से तीन चार दिन में आराम हो जाता है; चिकने पत्थर पर जल से घिसकर लगाओ। गोली बनाने की विधि-तोलिया सुहागा कच्चा जो छोटा-छोटा हो, राई श्वेत जो अचार में डाली जाती है, राल, गन्धक-सब समानभाग लेकर बारह पहर तक खरल में पहले अलग-अलग पीसो, फिर इकट्ठे मिलाकर पानी से पीसो। गोली बांधकर छाया में सुखा लो। दाद के स्थान पर खुजलाकर औषधि लगानी चाहिये। यही योग लाला गोपालसहाय की स्मृति में है।

(९) **सर्पदंश की चिकित्सा**—जब सर्प काटे तो पहले थोड़ा सा रक्त निकाल कर तनिक ऊपर से बांध देना। साधारण सर्प के लिए चूने में थोड़ा सा नमक पीस कर लगा दो। निम्नलिखित औषधि पहले तैयार करके उपस्थित रखनी चाहिये, आवश्यकता के समय काम आ सकती है। औषधि की विधि यह है—जमालगोटे की साबुत गिरी को सात दिन तक नींबू के रस में भिगोकर छाया में सुखा लो। जिसको सर्प के काटने से मूर्छा आ गई हो उस रोगी की आंख में यह औषधि सलाई से लगा दो। आंख दुखेगी, जिसकी चिकित्सा पृथक् हो सकती है। तत्काल आरोग्य हो जायेगा। अपामार्ग जिसको पंजाब में पुटकंठा और पूर्व में चिरचिटा कहते हैं—मूल समेत दो माशे कालीमिर्च के साथ रगड़कर पिलाओ। पांच-सात बार पानी कंठ तक पीलो, पीकर वमन कर डालो। तनिक रक्त निकाल कर नमक को जल में घिस कर काटे हुए स्थान पर लगा दो, फिर कपड़ा पानी में भिगोकर व्रण के ऊपर लगा दो और ऊपर थोड़ा सा नमक डाल दो। बिच्छू के लिये भी यही चिकित्सा है।

(१०) **कृष्णाभ्रक को मारने की विधि**—कृष्णाभ्रक को काट-कूट कर बथुए का रस निकाल कर घड़ा भर लो। दो-तीन दिन तक खरल करो। अरने उपले एक-एक बिछा दो।

(११) **भिलावा**—उसका पातालयन्त्र से तैल निकालना अर्थात् हांडी भर कर तेल के बराबर आमलासार गंधक लेकर किसी शीशी में डालकर बारह पहर तक अग्नि दो।

(१२) **किसी ने कोई विष खा लिया हो तो उसकी चिकित्सा यह है**—जल में तनिक नमक मिलाकर गले तक पिला दो। यह कई बार, जब तक शुष्कता प्रतीत हो, पिलाओ। प्रत्येक बार वमन करा देना।

(१३) **कास और श्वास की चिकित्सा**—बायबिंड़ग ३ माशे और पांच-सात काली मिर्च और थोड़ी सी सोंठ पीसकर पानी में उष्ण करो। फिर ठंडा करके पिला दो। पांच मिनट तक कंठ में रखो, फिर दबाकर निकाल दो। खटाई, लाल मिर्च आदि का पथ्य कराओ। फिर तीसरे दिन ऐसा ही प्रयोग करो जब तक कि आरोग्य न हो।

(१४) **हिंगुलभस्म की विधि**—हिंगुल (शिंगरफ) की एक तोले की एक डली लो और छटांक भर भिलावा काटकर मिट्टी के प्याले में डालकर उसमें हिंगुल की डली रख देना, फिर उसे दो तीन बार कोयले की आंच देना।

(१५) **संखिया श्वेत** या काली दो तोला, सिन्दूर सेर भर, हांडी को किनारा फोड़कर आध सेर सिन्दूर नीचे भली-भांति दबा दो, उस पर पीछे संखिया डाल दो, ऊपर फिर सिन्दूर डाल दो, दबा दो। थोड़ी-थोड़ी आंच दो, जब ऊपर का सिन्दूर जल जायेगा और संखिया फटेगा, उस पर और सिन्दूर डाल देना। ठंडा करके निकालना, बताशे के समान फूल हो जावेगा। काला अलग कर रखो और श्वेत संखिया अलग कर रखो। चावल भर से भी कम मात्रा तुलसी के रस या पत्ते के साथ लें। चौथिया ज्वर के लिए लाभदायक है।

(१६) **अर्श** (बवासीर) खूनी हो या बादी-उसकी चिकित्सा-नीम की निंबोली वृक्ष से पांच-सात तोड़कर दांतन करने के पश्चात् प्रातःकाल के समय निगल जाना। तेल, नमक, खटाई, लाल मिर्च का पथ्य रखना। जब तक आरोग्य न हो, ऐसा ही करो। यदि निंबोली सूखी हों तो कपड़े में चार-पांच बांधकर रातभर भिगो रखो। नमक कम खाओ।

(१७) **पाचक गोलियां**—आक के फूल के डोडे पावभर, गोलमिर्च पौन तोला, काला नमक पौन तोला, तीनों को पीस कर गोली बांध लो, धूप में शुष्क करो।

(१८) **दन्तशूल चिकित्सा**—तम्बाकू का गुल पीस लो, उससे और नसवार से दांतन करो।

(१९) कत्था पीसकर दांतों पर मलने से दांत दृढ़ होते हैं।

(२०) कुटकी-उसको पीसकर तीन-चार माशे पानी से रात को तीन-चार दिन तक खाओ।

(२१) **ज्वरनाशक योग**—(ला० गोपालसहाय जी कायस्थ के मुख से) सत गिलोय, बंसलोचन, छोटी इलायची, मधु, पीपल-चारों को समान भाग लेकर मधु में गोली बनावें।

॥ समाप्तम् ॥

मुद्रक आर्य ऑफसैट प्रैस दया बस्ती, दिल्ली-११००३५

परिशिष्ट – 1

पं. लेखराम को ऋषि दयानन्द के जीवन वृत्तान्त बताने वाले पुरुषों की नामावली

वर्ष	*स्थान*	*जहाँ ठहरे*	*जीवन वृत्तान्त बताने वाले*
1921 वि. 1864 ई.	ग्वालियर	मोटेश्वर महादेव का मंदिर	पं. गंगाप्रसाद शुक्ल, पं. यमुनाप्रसाद शुक्ल
1922 वि. 1865 ई.	जयपुर	1. भवानीराम बोहरे का बाग	पं. शिवदत्त दाधीच
		2. धूलेश्वर महादेव का मंदिर	
		3. रामपुण्य दारोगा का बाग	
1923 वि. 1866 ई.	पुष्कर	ब्रह्मा का मंदिर	शिवदयाल (भूतपूर्व पुजारी ब्रह्मा मंदिर)
1923 वि. 1866 ई.	अजमेर	बंशीधर सरिश्तेदार का बाग	पादरी जेम्स ग्रे, लाला मूलचंद, पं. वृद्धिचन्द्र
1923 वि. 1867 ई.	मेरठ	सूर्यकुण्ड, देवी मंदिर	पं. गंगाराम
1923 वि. 1867 ई.	हरिद्वार	(कुम्भ मेला) सप्त सरोवर	पं. माधवराम गौड (जयपुर), आत्माराम शुक्ल (रेवाड़ी), पं. दयाराम सनाढ्य (आगरा), पं. बलदेवप्रसाद शुक्ल (फर्रुखाबाद), सन्त अमरसिंह निर्मला साधु, स्वामी महानन्द (दादूपन्थी), पं. बस्तीराम (कनखल), पं. दयाराम, पं. रूपराम जोशी (अचरोल), स्वामी रत्नगिरी।
1924 वि. 1867 ई.	कर्णवास (जिला बुलंदशहर)	गंगा तट	ठा. शेरसिंह
1924 वि. 1867 ई.	कर्णवास (दूसरी बार)	गंगा तट	पं. भूमित्र शर्मा, पं. कृष्णवल्लभ पुजारी, मास्टर गोपालसिंह रईस, हकीम रामप्रसाद (उर्फ रामोजी), राजा उदितनारायण रईस (मथुरा), पं. बलदेव गौड़ (पिलखनी), पं. टीकाराम
1924 वि. 1867 ई.	कर्णवास (जिला बुलंदशहर)	तीसरी बार	कुं. लक्ष्मणसिंह, ठा. कृष्णसिंह, शिवलाल वैश्य
1924 वि. 1867 ई.	चासी (जिला बुलंदशहर)	कुटिया में	छीतरसिंह जाट

वर्ष	स्थान	जहाँ ठहरे	जीवन वृत्तान्त बताने वाले
1924 वि. 1867 ई.	कर्णवास (चौथी बार)		झन्नालाल वैश्य (डिबाई), सदासुख वैश्य
1924 वि. 1867 ई.	कर्णवास (पाँचवी बार)	गंगा तट	लाल रामप्रसाद वैश्य (अहार), सियाराम जाट (नम्बरदार शफी नगर), लाल भोलानाथ वैश्य (अहार), ठा. मुकुन्दसिंह
1924 वि. 1867 ई.	अनूपशहर (बुलंदशहर)	बांस की टाल	हकीम मौलाबख्श, लाला केसरीलाल कायस्थ (अनूपशहर), पं. बिहारी दत्त शर्मा
1924 वि. 1868 ई.	अनूपशहर (चौथी बार)	बनखण्डी महोदव, सती की मढ़ी	पं. छोटेलाल गौड़, पं. कर्णानन्द गौड़, लाला शालिग्राम वैश्य, लाला गौरीशंकर श्रीवास्तव (टाल वाले)
1928 वि. 1861 ई.	अनूपशहर (छठी बार)	लाला बाबू की कोठी	अंगनलाल शर्मा, रामसहाय शर्मा (डिबाई), पं. शिवलाल (डिबाई), अयोध्याप्रसाद अग्रवाल
1928 वि. 1871 ई.	कर्णवास (नवीं बार)	गंगा तट	श्रीकृष्ण शर्मा (दानपुर)
1924 वि. 1867 ई.	बेलोन (जिला बुलन्दशहर)	पीपल के नीचे	श्रीकृष्ण शर्मा (दानपुर), पं. इन्द्रमणि रईस
1924 वि. 1867 ई.	रामघाट (जिला बुलंदशहर)	गंगा तट - पर्णकुटी में	क्षेमकरण ब्रह्मचारी, नारायणप्रसाद वैश्य, शम्भूगिरी संन्यासी, पं. भैरवनाथ सारस्वत
1924 वि. 1867 ई.	अतरौली (जिला अलीगढ़)	भैरव का मंदिर, नारायणदास का बाग	मु. श्यामलाल मुख्तार (अतरौली)
1925 वि. 1868 ई.	गढियाघाट	गंगा तट पर	गुसांई बलदेव गिरि
1925 वि. 1868 ई.	सोरों (शूकरक्षेत्र)		पं. अंगदराम, रामदयाल चौबे, स्वामी कैलाश पर्वत, ठा. मुकुन्दसिंह रईस (छलेसर), पं. कामताप्रसाद, पं. वेणीमाधव, साधु मायाराम उदासीन
1925 वि. 1867 ई.	शाहबाजपुर		पं. चैनसिंह
1925 वि. 1867 ई.	ककोड़ा (मेले में) (जिला बदायूं)	ब्राह्मणों का डेरा	गुसांई बलदेवगिरि, पं. श्यामलाल कान्यकुब्ज

वर्ष	स्थान	जहाँ ठहरे	जीवन वृत्तान्त बताने वाले
1925 वि. 1867 ई.	कायमगंज (फर्रुखाबाद)	हरिशंकर पाण्डे का शिवालय	पं. गंगाप्रसाद कान्यकुब्ज, पं. बलदेवप्रसाद कान्यकुब्ज, लाला प्रसादीलाल वैश्य, बलदेव तंबोली, लाला गोविन्दलाल वैश्य वकील।
1925 वि. 1867 ई.	फर्रुखाबाद (तीसरी बार)	गंगा तट पर विश्रान्त घाट	पं. गोपालराव हरि (महाराष्ट्र निवासी), पं. मुन्नीलाल, पं. ज्वालादत्त, लाला जगन्नाथप्रसाद रईस।
1926 वि. 1869 ई.	जलालाबाद (फर्रुखाबाद)	प्रयागदत्त का बाग	गयाप्रसाद शुक्ल
1926 वि. 1869 ई.	कन्नौज (फर्रुखाबाद)	गौरीशंकर महादेव का चबूतरा	बख्शी रामप्रसाद वैश्य, पं. हरिशंकर
1926 वि. 1869 ई.	कानपुर	गंगा तट पर वकील दरगाहीलाल का घाट	पं. हृदयनारायण कौल, पं.शिवराम गौड़, पं. सूर्यप्रकाश शर्मा, पं. गंगासहाय कान्यकुन्ज, रा.ब. दरगाहीलाल वकील, बाबू दुर्गाप्रसाद रईस
1926 वि. 1869 ई.	रामनगर (काशी की राजधानी)	राजमहल के सामने वृक्ष के नीचे	अविनाशीलाल मल्होत्रा, साधु जवाहरदास, पं. बलदेवप्रसाद शुक्ल
1926 वि. 1869 ई.	काशी (वाराणसी तब बनारस)	1. गोसांई जी का बाग 2. आनन्द बाग (दुर्गाकुण्ड)	साधु जवाहरदास, बलदेवप्रसाद शुक्ल, पं. शालिग्राम शास्त्री, पं. ज्योतिस्वरूप उदासीन, लाला माधवदास रईस (डा. भगवानदास के पिता), पं. हृदयनारायण कौल, स्वामी कैलाश पर्वत, साधु मायाराम उदासीन, गोस्वामी घनश्याम (मुलतान), पं. रामप्रकाश मिर्जापुर ने महाराज के 7वीं वार के काशी प्रवास की जानकारी दी। पं. मोतीराम गौड़ (मिर्जापुर) तथा माजी बडनगरी (गुजराती संन्यासिनी) ने भी 7वीं बार के काशी प्रवास के बारे में बताया।
1926 वि. 1870 ई.	प्रयाग (इलाहाबाद)	वासुकि मंदिर	माजी बडनगरी, पं. रामाधीन तिवारी, पं. मोतीराम गौड़
1926 वि. 1870 ई.	मिर्जापुर	रामरतन लड्ढा का बाग	पं. मोतीराम गौड़, पं. रामप्रकाश, सैयद अहमद खां (बाद में 'सर')

वर्ष	स्थान	जहाँ ठहरे	जीवन वृत्तान्त बताने वाले
1929 वि. 1872 ई.	पटना	महाराजा भूपसिंह का रोशन बाग	पं. छोटेलाल सारस्वत, गुरुप्रसाद सेन वकील, बाबू अमृतलाल, पं. राजनाथ शर्मा तिवारी
1929 वि. 1872 ई.	मुंगेर	एक साधु की कुटिया	पं. राजनाथ शर्मा, तिवारी
1929 वि. 1872 ई.	भागलपुर	1. बूढ़ेश्वर महादेव 2. छपटिया तालाब का तट	पं. राजनाथ शर्मा, तिवारी
1929 वि. 1872 ई.	कलकत्ता (भारत की तत्कालीन राजधानी)	राजा सौरीन्द्रमोहन टैगोर का प्रमोद कानन	पं. हेमचन्द्र चक्रवर्ती, पं. बलदेव शर्मा, साधु जवाहरदास, ठाकुरदास वैश्य, पं. मोतीराम गौड़, लाला कृपाराम
1930 वि. 1873 ई.	पटना	गुलाब बाग	पं. राजनाथ तिवारी
1930 वि. 1873 ई.	डुमरांव	महाराजा की कोठी	साधु जवाहरदास, पं. दुर्गादत्त शैव
1930 वि. 1873 ई.	कानपुर (चौथी बार)	टूकाघाट	पं. हेमचन्द्र चक्रवर्ती, पं. हृदयनारायण कौल, पं. शिवसहाय
1930 वि. 1873 ई.	फर्रूखाबाद (छठी बार)	स्वस्थापित वैदिक पाठशाला	पं. हेमचन्द्र चक्रवर्ती
1930 वि. 1873 ई.	वृन्दावन	मलूकदास का बाग (राधाबाग)	पं. गंगादत्त (स्वामीजी का सहपाठी), बख्शी महबूब मसीह (चुंगी का दरोगा), बलदेवसिंह, राजा उदितनारायण, जयगोविन्द गिरि संन्यासी, पं. हरिकृष्ण, पं. राधाचरण गोस्वामी-मध्व सम्प्रदाय के आचार्य
1930 वि. 1873 ई.	मथुरा	गोस्वामी पुरुषोत्तमदास का बलदेव बाग	पं. गंगादत्त (सहपाठी), पं. बालकृष्ण हकीम, रईस।
1931 वि. 1874 ई.	राजकोट	कैम्प की धर्मशाला	पं. जीवनराम शास्त्री
1932 वि. 1875 ई.	पुणे (पूर्व नाम पूना)	विट्ठलपेठ में शंकरसेठ का मकान	सेवकलाल कृष्णदास, बलदेवसिंह कान्यकुब्ज
1932 वि. 1876 ई.	मुम्बई (बम्बई)	बालकेश्वर की गौशाला	पं. रामलाल (रानी का रायपुर ने मुन्शी समर्थदान (मैनेजर वैदिक यंत्रालय) को 1940 वि. में स्वामीजी से मुम्बई में हुए अपने शास्त्रार्थ का वृत्तान्त सुनाया)

वर्ष	स्थान	जहाँ ठहरे	जीवन वृत्तान्त बताने वाले
1933 वि. 1877 ई.	दिल्ली (शाही दरबार के के अवसर पर)	कुतुबरोड पर शेरमल का अनार बाग	पं. हृदयनारायण(सरायसिद्ध मुलतान), ठाकुर गोपालसिंह (कर्णवास), हकीम रामप्रसाद (अलीगढ़), मुन्शी कन्हैया लाल अलखधारी
1933 वि. 1877 ई.	मेरठ	सूर्यकुण्ड पर डिप्टी महताबसिंह की कोठी	लाला ज्वालाप्रसाद वैश्य
1934 वि. 1877 ई.	लुधियाना (पंजाब)	लाला बंशीधर खत्री का बाग	लाला रामजीदास खजांची, लखपतराय सारस्वत, लाला रामदयालपुरी, पं. भीमसेन शर्मा, पं. रामशरण गौड़
1934 वि. 1877 ई.	लाहौर(पंजाब की राजधानी)	1. रतनचंद दाढीवाले का बाग 2. डा. रहीम खां की कोठी 3. नवाब रजाअली का बाग	लाला मदनसिंह, लाला जीवनदास तथा लाला सांईदास ने लाहौर वृत्तान्त आर्यसमाज लाहौर की वार्षिक रिपोर्ट के रूप में लिख कर पं. लेखराम को दिया। मास्टर मुरलीधर, पं. मथुरादास (अमृतसर) डा. नत्थूराम, पं. नन्दलाल (गुजरात), पं. ताराचंद (लिखित वृत्तान्त)
1934 वि. 1877 ई.	अमृतसर (दो बार)	मियां मोहम्मद जान की कोठी	भाई अतरसिंह आढती, पं. सर्वसुख वैद्य, पं. भीमसेन शर्मा, लाला मुरलीधर, लाला जीवनदास, पं. हृदयनारायण, बाबू ज्ञानसिंह
1934 वि. 1877 ई.	गुरदासपुर	डा. बिहारीलाल का मकान	लाला मंगलसेन
1934 वि. 1877 ई.	जालंधर	सरदार सुचेतसिंह की कोठी	लाला सूरजमल मल्होत्रा, रामनाथ मल्होत्रा, पं. भीमसेन शर्मा, कन्हैयालाल ब्राह्मण
1934 वि. 1877 ई.	फिरोजपुर छावनी	नगर के बाहर की कोठी	चौधरी शिवसहाय, मुन्शी मिट्ठनलाल, मुन्शी गोपालसहाय, भगत स्वरूपसिंह।
1934 वि. 1877 ई.	रावलपिंडी	पारसी जामास्पजी की कोठी	भाई अतरसिंह, पं. भीमसेन शर्मा, लाला मैयादास सेठी।
1934 वि.1877-78 ई.	जेहलम	नदी तट का बंगला	मास्टर लक्ष्मणप्रसाद, लाला गंगाराम, पं. द्वारकानाथ, लाला लद्धाराम
1934 वि. 1878 ई.	गुजरात (पंजाब)	फतहसर उद्यान	पं. नन्दलाल, डा. बिशनदास (पत्र में), बाबू मंगोमल (पोस्ट मास्टर), बाबू रामरतन, लाला गंगाराम।

वर्ष	स्थान	जहाँ ठहरे	जीवन वृत्तान्त बताने वाले
1934 वि. 1878 ई.	वजीराबाद	राजा फकीरूल्ला का बाग	पं. भीमसेन शर्मा, स्वामी शहजादानन्द (पत्र में)
1934 वि. 1878 ई.	गुजरांवाला	सरदार महासिंह की समाधि	मुन्शी नारायणकृष्ण, पं. भगवदत्त (हरभगवान)
1934 वि. 1878 ई.	मुलतान	बेनीबाग	बाबा ब्रह्मानन्द ब्रह्मचारी, पं. ठाकुरदत्त रईस, पं. बरातीलाल, पं. हवालाल, मुन्शी सफदरहसन, पं. चांदमल, देसीराम सारस्वत, पं. देवीदास, लाला भोलानाथ खत्री, मोहनलाल।
1935 वि. 1878 ई.	रुड़की	लाला शम्भुनाथ का बंगला	पं. उमरावसिंह
1935 वि. 1878 ई.	दिल्ली	लाला बालमुकुन्द केसरीचंद का बाग (सब्जीमण्डी)	जोशी रामरूप (अचरोल {जयपुर} के ठाकुर रणजीतसिंहजी के कामदार), लाला मक्खनलाल व लाला भोलानाथ (दानापुर निवासी)
1935 वि. 1878 ई.	अजमेर	रामप्रसाद का बाग	लाला शिवप्रसाद कायस्थ (माथुर) की डायरी में, मौलवी मोहम्मद मुराद अली (राजपुताना ग़जट के सम्पादक) ने लिख कर वृत्तान्त भेजा
1935 वि. 1878 ई.	नसीराबाद (छावनी)	भूताखेड़ी का बगीचा	पं. सुखदेवप्रसाद अध्यापक (लिखित वृत्तान्त)
1935 वि. 1878 ई.	रेवाड़ी	लाला की बारादरी	राम मानसिंह, पं. रामसहाय आदिगौड़, गंगाप्रसाद ढूसर (भार्गव), गोस्वामी दुर्गाप्रसाद
1936 वि. 1878 ई.	देहरादून	किराये का बंगला	पं. कृपाराम गौड़ (पं. बुद्धदेव विद्यालंकार (स्वामी समर्पणानन्दजी) के नाना)
1936 वि. 1878 ई.	मुरादाबाद	राजा जयकृष्णदास की कोठी	लाला क्षेमकरणदास (बाद में पं. क्षेमकरणदास त्रिवेदी (अथर्ववेद भाष्यकार), बाबू रूपकिशोर, साहू श्यामसुन्दर, साहू ब्रजरत्न, रामजीलाल यदुवंशी।
1936 वि. 1878 ई.	बदायूं	साहू गंगाराम का बाग	रामजीलाल अहीर (यदुवंशी)

वर्ष	स्थान	जहाँ ठहरे	जीवन वृत्तान्त बताने वाले
1936 वि. 1878 ई.	बरेली	बेगम बाग कोठी	लाला मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) ने अपनी आत्मकथा में विवरण दिया) लाला लक्ष्मीनारायण खजांची।
1936 वि. 1878 ई.	फर्रूखाबाद (आठवीं बार)		रामजीलाल यदुवंशी
1936 वि. 1878 ई.	दानापुर (बिहार)	मि. जोन्स का बंगला(दीघा लोज)	बाबू माधोलाल, बाबू रामनारायण, बाबू जनकधारीलाल, ठाकुरदास घड़ीसाज, बाबू मणिलाल।
1936 वि. 1880 ई.	लखनऊ	मोती महल	पं. यज्ञदत्त शास्त्री
1936 वि. 1880 ई.	फर्रूखाबाद (नवीं बार)	लाला कालीचरण रामचरण का बाग	लाला जगन्नाथप्रसाद रईस, लाला नारायणदास मुख्तार
1936 वि. 1880 ई.	मैनपुरी	थानसिंह लोहिया का बाग	चौबो हरदयाल, पं. तोताराम
1937 वि. 1880 ई.	मुजफ्फरनगर	रा.ब.लाला निहालचंद का बाग	लाला निहालचंद वैश्य, जीवनलाल कायस्थ, पं. भगवानसहाय मुख्तार
1937 वि. 1880 ई.	आगरा (तीसरी बार)	गिरधरलाल भार्गव का मकान	पं. काशीनारायण मुन्सिफ, मुन्शी गिरधरलाल वकील, पं. जुगलजी सनाढ्य
1938 वि. 1881 ई.	अजमेर	सेठ फतहमल का बाग	लाला शिवप्रसाद कायस्थ (डायरी में)
1938 वि. 1881 ई.	जयपुर	गंगापोल बाहर अचरोल ठाकुर का बाग	जोशी रामरूप
1938 वि. 1881 ई.	मसूदा (जिला अजमेर)	रामबाग की बारादरी	जोशी जगन्नाथ, चांदमल कोठारी
1938 वि. 1881 ई.	रायपुर (जिला पाली)	माधोदास की वाटिका	पं. रामप्रताप
1938 वि. 1881 ई.	बनेड़ा (जिला भीलवाड़ा)	झालरा मंदिर के पास	राजा गोविंदसिंह
1938 वि. 1881 ई.	मुम्बई	बालकेश्वर की गौशाला	बाबू रामनारायणलाल, बाबू जनकधारीलाल, पं. आदित्यनारायण (तीनों दानापुर निवासी), पं. शंकर लाल शास्त्री (मौरवी)
1938 वि. 1882 ई.	उदयपुर	नवलखा बाग (सज्जन निवास)	कविराजा श्यामलदास, महाराणा स्कूल के द्वितीय अध्यापक (नाम ज्ञात नहीं), ठाकुर जगन्नाथ, पं. ब्रजनाथ, पं. मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या, मौलवी अब्दुल रहमान (पुलिस अधीक्षक)

वर्ष	स्थान	जहाँ ठहरे	जीवन वृत्तान्त बताने वाले
1939 वि. 1883 ई.	शाहपुरा	रैतिया राजमहल में कुटिया	बाबू सूरजनारायण (महाराजा नाहरसिंह के निजी सचिव) ने महाराजा साहब से ज्ञात कर लेखबद्ध किया तथा पं. लेखराम को भेजा
1940 वि. 1883 ई.	जोधपुर	मियां फैजुल्लाखां का बाग	चारण नवलदान, लक्ष्मणराव देशमुख
1940 वि. 1883 ई.	आबूपर्वत	जोधपुर का बंगला	पं. मुन्नालाल ने भारतमित्र में वृत्तान्त प्रकाशित कराया।
1940 वि. 1883 ई.	अजमेर	भिनाय राजा की कोठी	पं. मुन्नालाल ने भारतमित्र में वृत्तान्त प्रकाशित कराया।

परिशिष्ट – 2

समसामयिक पत्रों में ऋषि दयानन्द विषयक संदर्भ

	नाम पत्र	*प्रकाशन तिथि*	*संदर्भ विषय*
1.	शोलए तूर-कानपुर	जिल्द 10-सं. 31	कानपुर शास्त्रार्थ का विवरण-पौराणिक पक्ष के अनुसार
	शोलए तूर-कानपुर	3 अगस्त 1869	मूर्तियां गंगा में प्रवाहित न करने विषयक हलधर ओझा की अपील
2.	तत्वबोधिनी पत्रिका, कलकत्ता	सं. 325 आश्विन 1792 शक पृ. 95	काशी शास्त्रार्थ विषयक पुस्तक 'शास्त्रार्थ व सत्यधर्म विचार' की समीक्षा
3.	सहीफ-ए-आलम, मेरठ	2 दिसम्बर 1869	'शास्त्रार्थ' पर सम्पादक के नाम पत्र
4.	पायोनियर - इलाहाबाद	24 नवम्बर 1869 तथा 8 जनवरी 1880	'शास्त्रार्थ' पर सम्पादक के नाम पत्र
5.	रोहेलखण्ड समाचार	नवम्बर 1869	काशी शास्त्रार्थ का समाचार
6.	ज्ञान प्रदायिनी पत्रिका, लाहौर	सं. 4, खण्ड 5, अप्रेल 1870, चैत्र सं.	काशी शास्त्रार्थ पर टिप्पणी
	सम्पादक नवीनचन्द्र राय	1927 वि. पृ. 60-62	
7.	प्रत्नकम्रनन्दिनी-संस्कृत पत्र, काशी	अंक 28, दिसम्बर 1869	पं. सत्यव्रत सामश्रमी द्वारा काशी शास्त्रार्थ का आँखों देखा विवरण
8.	हिन्दू पैट्रियट - कलकत्ता	17 जनवरी 1870 तथा 14 फरवरी 1870	काशी शास्त्रार्थ पर टिप्पणी।
9.	क्रिश्चियन इन्टैलिजेंसर (टामस स्मिथ सिटी प्रेस कलकत्ता से प्रकाशित)	मार्च 1870 पृ. 79-87	'एक हिन्दू सुधारक' शीर्षक लेख लेखक- ए.एफ.आर.एच. (जर्मन विद्वान् रूडोल्फ हार्नले)
10.	इण्डियन मिरर, कलकत्ता	30 दिसम्बर 1872	ऋषि दयानन्द का कलकत्ता आगमन
11.	सोमप्रकाश, कलकत्ता	2 मार्च 1873 (फाल्गुन शु. 11 1929 वि.-21 फाल्गुन 1794 शक)	'कस्यचित् वराहनगर वासिनः' नामक अज्ञात नामा व्यक्ति ने आक्षेपात्मक टिप्पणी लिखी।
12.	हिन्दू हितैषी, ढाका		सोमप्रकाश की टिप्पणी का उत्तर

	नाम पत्र	प्रकाशन तिथि	संदर्भ विषय
13.	इण्डियन मिरर, कलकत्ता	12 जनवरी 1873	ऋषि के एशियाटिक म्युजियम जाने का समाचार
13(अ)	इण्डियन मिरर, कलकत्ता	15 मार्च 1873	स्वामीजी के 9 मार्च 1873 के व्याख्यान का विवरण
14.	इण्डियन मिरर, कलकत्ता	22 फरवरी 1873	23 फरवरी 1873 को संस्कृत में प्रदत्त व्याख्यान की सूचना।
15.	ब्रह्मसमाज की पत्रिका - (पं. घासीराम ने नाम नहीं दिया)		ऋषि का कलकत्ता प्रवास
16.	धर्म तत्व (बंगला), कलकत्ता (ब्रह्मसमाज बंगाल का पत्र)	1 चैत्र 1794 शक	'दयानन्द सरस्वती' शीर्षक लेख
17.	तत्वबोधिनी पत्रिका, कलकत्ता	फाल्गुन 1794 शक	कलकत्ता प्रवास पर संक्षिप्त टिप्पणी ब्राह्म-समारोह में भाग लेना
18.	इण्डियन मिरर, कलकत्ता	9 मार्च 1873	वैदिक पाठशाला स्थापना विषयक् योजना पर टिप्पणी।
19.	पताका-कलकत्ता सम्पादक - ज्ञानेन्द्रलाल राय		कलकत्ता आगमन
20.	नेशनल (अंग्रेजी पत्र कलकत्ता) सम्पादक-नवगोपाल मित्र		संस्कृत विद्यालय स्थापना हेतु स्वामीजी ने सम्पादक को पत्र लिखा।
21.	बिहार दर्पण (बिहार बन्धु ?) (पं. घासीराम सम्पादित जीवनचरित में)	मई 1873	शास्त्रार्थ विषयक सम्पादकीय टिप्पणी।
22.	'फ्रेण्ड आफ इण्डिया', लखनऊ	13 नवम्बर 1873	वैदिक पाठशाला का उल्लेख
23.	नीतिप्रकाश, लुधियाना मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी का उर्दू पत्र	1874 ई. (पृ. 41)	स्वामीजी विषयक प्रशस्तिमूलक टिप्पणी।
24.	कविवचन सुधा-काशी से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा सम्पादित मासिक	खण्ड 1, संख्य 14,15 (दो अंक) ज्येष्ठ तथा आषाढ़, (1927 वि.) तदनुसार 13 जून, 12 जुलाई 1870 ई. पृ. 87 से 90 तथा 92 - 96)	स्वामीजी द्वारा लिखित अद्वैत मत खण्डन दो अंकों में छपी। (सम्प्रति नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता में)
25.	कविवचनसुधा, काशी	20 जून 1870	काशी में स्वामीजी द्वारा स्थापित वैदिक पाठशाला विषयक विज्ञापन

	नाम पत्र	प्रकाशन तिथि	संदर्भ विषय
26.	बिहारबंधु, कलकत्ता	आषाढ़ शु. 14, 1931 वि. 8 जुलाई 1874	काशी में स्वामीजी द्वारा स्थापित वैदिक पाठशाला विषयक विज्ञापन
27.	इन्दुप्रकाश, बम्बई		स्वामीजी के व्यक्तित्व तथा विचारों पर प्रशस्तिपूर्ण लेख
28.	इन्दुप्रकाश, बम्बई	30 नवम्बर 1874	बम्बई में 28 नवम्बर 1874 को दिए व्याख्यान की चर्चा
29.	गुजरात मित्र, बम्बई	18 दिसम्बर 1874	व्याख्यानों पर टिप्पणी
30.	सुबोध पत्रिका, बम्बई	21 दिसम्बर 1874	स्वामीजी के विचारों पर टिप्पणी
31.	बाम्बे ग़जट तथा टाइम्स आफ इण्डिया में स्वामीजी के पक्ष में गिरधारीलाल दयालदास कोठारी ने अनेक लेख छपवाये जो भाई शंकर नाना भाई ने स्वामीजी की आलोचना में लिखे थे।		
32.	नेशनल, कलकत्ता	लेपज़िग (जर्मनी) के एक व्यक्ति ने स्वामीजी के बारे में एक लेख छपाया।	
33.	बम्बई समाचार, बम्बई	2 दिसम्बर 1874	पं. गट्टूलाल से शास्त्रार्थ कराये जाने की सूचना।
34.	बम्बई ग़जट, बम्बई	4 दिसम्बर 1874	पं. गट्टूलाल की सभा का विवरण जो स्वामीजी के विरोध में हुई।
35.	गुजरात मित्र, बम्बई	12 दिसम्बर 1874	स्वामीजी के व्याख्यानों की आलोचना
36.	टाइम्स आफ इण्डिया, बम्बई	4 जनवरी 1875	स्वामीजी का अहमदाबाद आगमन
37.	हितेच्छु-बम्बई	7 जनवरी 1875	स्वामीजी के अहमदाबाद प्रवास पर प्रशंसामूलक लेख।
38.	हितेच्छु - बम्बई	21 जनवरी 1875	राजकोट में स्वामीजी का प्रचार कार्य।
39.	हितेच्छु - बम्बई	11 मार्च 1875	स्वामीजी का द्वितीय बार अहमदाबाद में आगमन।
40.	आर्यधर्मप्रकाश (राजकृष्ण महाराज के पत्र हृदय चक्षु का परिवर्तित नाम)	फाल्गुन कृ. 12 सं. 1931 वि.	स्वामीजी के मन्तव्यों के विरोध में लेखन।
41.	इन्दुप्रकाश - बम्बई	16 अगस्त 1875	पूना में स्वामीजी।
42.	हितेच्छु - बम्बई	18 अगस्त 1875	पूना में स्वामीजी।
43.	बंगदर्शन - कलकत्ता		बम्बई में स्वामीजी के कार्य की समीक्षा।

	नाम पत्र	प्रकाशन तिथि	संदर्भ विषय
44.	टाइम्स आफ इण्डिया - बम्बई	3 मई 1876	स्वामीजी के इन्दौर प्रवास की चर्चा।
45.	बिहार बंधु	18 अक्टूबर 1876	स्वामीजी का अंग्रेजी सीखने का प्रयास।
46.	इण्डियन मिरर, कलकत्ता		वेदभाष्य विषयक विज्ञापन।
47.	हिन्दू बांधव, लाहौर		आर्यसमाज के नियम विषयक विज्ञापन।
48.	नूर अफशां, लुधियाना (ईसाइयों का उर्दू पत्र)	5 अप्रेल 1877	स्वामीजी का लुधियाना प्रवास।
49.	नूर अफशां, लुधियाना	12 अप्रेल 1877	लुधियाना में स्वामीजी का व्याख्यान।
50.	नूर अफशां, लुधियाना	19 अप्रेल 1877	लुधियाना में स्वामीजी के कार्य पर टिप्पणी।
51.	बिरादरे हिन्द, लाहौर (लाहौर ब्रह्मसमाज का पत्र)		स्वामीजी का लाहौर आगमन
52.	कोहेनूर, लाहौर-मुन्शी हरसुखराय भटनागर का उर्दू पत्र	28 अप्रेल 1877, खण्ड 29, संख्या 17, पृ. 369 - 370	लाहौर प्रवास
53.	अखबारे आम उर्दू, लाहौर	2 मई 1877	लाहौर प्रवास
54.	नीतिप्रकाश उर्दू लुधियाना	24 मई 1877, सं. 20 (पृ.312-319)	मुन्शी अलखधारी का स्वामीजी पर लेख।
55.	कोहेनूर लाहौर	5 मई 1877, खण्ड 29, सं. 18, पृ. 392	लाहौर प्रवास
56.	कोहेनूर लाहौर	12 मई 1877 तथा 19 मई 1877	लाहौर प्रवास
57.	बिरादरे हिन्द, लाहौर	जून 1877	शारदा प्रसाद भट्टाचार्य का लेख, 'हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे' मंत्र पर मैक्समूलर के अर्थ की चर्चा के प्रसंग में।
58.	ब्राह्मो लाहौर	खण्ड-3, पृ. 182-186	लाहौर प्रवास।
59.	कोहेनूर, लाहौर	18 जून 1877, खण्ड 29, सं. 24, पृ. 509	स्वामीजी की शिक्षा का लाहौरवासियों पर प्रभाव।
60.	खैरख्वाह उर्दू-स्यालकोट	8 सितम्बर 1877	आर्यसमाज के 10 नियम छपे।
61.	स्टार आफ इण्डिया-स्यालकोट	खण्ड 12, सं. 17, पृ. 8	"
62.	कोहेनूर लाहौर	28 जुलाई 1877	नियाज एम.ए. का स्वामीजी विषयक लेख।

नाम पत्र	प्रकाशन तिथि	संदर्भ विषय
63. नूर अफशां, लुधियाना	1 नवम्बर 1877, पृ. 341, खण्ड 5 सं. 43	पादरी पी.एम. मुकर्जी के लेख में स्वामीजी की चर्चा।
64. कोहेनूर लाहौर	3 नवम्बर 1877, पृ. 983	लाहौर में दुबारा आने का उल्लेख।
65. इण्डियन मिरर, कलकत्ता	अक्टूबर 1877 का एक रविवारीय अंक, खण्ड 16, सं. 155	स्वामीजी के लाहौर के ब्रह्म मंदिर में जाने का समाचार।
66. बिरादरे हिन्द, लाहौर	नवम्बर 1866, पृ. 322-326	स्वामीजी के लाहौर के ब्रह्म मंदिर में जाने का समाचार।
67. कोहेनूर, लाहौर	3 नवम्बर 1877, खण्ड 29, सं. 63	फिरोजपुर गमन।
68. कोहेनूर, लाहौर	10 नवम्बर 1877, खण्ड 29, सं. 64	रावलपिंडी गमन।
69. कोहेनूर, लाहौर	9 मार्च 1878, पृ. 202	स्वामीजी का लाहौर में चौथी बार आना।
70. कोहेनूर, लाहौर	14 नवम्बर 1877, पृ. 1018, ख. 29 संख्या 65	रावलपिंडी आगमन।
71. बिहारबंधु, कलकत्ता	5 दिसम्बर 1877, खण्ड 5, सं. 48	रावलपिंडी प्रवास।
72. कोहेनूर, लाहौर	23 फरवरी 1878	गुजरांवाला प्रवास।
73. कोहेनूर, लाहौर	23 मार्च 1878	मुलतान आगमन।
74. बिरादरे हिन्द, लाहौर	भाग 3, अंक6, पृ. 182-186	पं. भानुदत्त और स्वामी दयानन्द।
75. बिरादरे हिन्द, लाहौर	1 जुलाई 1877	स्वामीजी के विचार।
76. ब्राह्मो, लाहौर		स्वामीजी के विचार।
77. धर्मतत्व, कलकत्ता	आग्रहायण 1799 शक	स्वामीजी की वेशभूषा।
78. इण्डियन मिरर, कलकत्ता	22 तथा 23 जून 1877 31 अगस्त 1879 28 जुलाई 1877	लाहौर प्रवास की उपलब्धियां स्वामीजी का अजमेर प्रवास लाहौर प्रवास।
79. थियोसोफिस्ट, बम्बई	जनवरी 1880 (भाग 1 अंक 2)	अजमेर में पादरी ग्रे तथा पादरी हजूबैण्ड से शास्त्रार्थ
80. थियोसोफिस्ट, बम्बई	अक्टूबर 1879, दिसम्बर 1879 तथा नवम्बर 1880	ऋषि का अपूर्ण आत्मवृत्तान्त
81. इण्डियन मिरर, कलकत्ता	28 दिसम्बर 1879	कानपुर प्रवास

	नाम पत्र	प्रकाशन तिथि	संदर्भ विषय
82.	पायोनियर, इलाहाबाद	1 जनवरी 1880	काशी में ऋषि के व्याख्यानों पर प्रतिबंध की आलोचना।
83.	थियोसोफिस्ट, बम्बई	फरवरी तथा अप्रैल 1880	काशी में ऋषि के व्याख्यानों पर प्रतिबंध की आलोचना।
84.	स्टार (अंग्रेजी पत्र) बनारस		काशी में ऋषि के व्याख्यानों पर प्रतिबंध की आलोचना।
85.	एथिनियम (अंग्रेजी) लंदन	23 अक्टूबर 1880 पृ. 532-533	मोनियर विलियम्स के श्यामजी कृष्ण वर्मा विषयक लेख में स्वामीजी का उल्लेख।
86.	इण्डियन मिरर, कलकत्ता		उपर्युक्त को उद्धृत किया।
87.	नसीम उर्दू, आगरा	20 दिसम्बर 1880, पृ. 274	उपर्युक्त को उद्धृत किया।
88.	नसीम उर्दू, आगरा	20, 28, 30 नवम्बर 1880 10, 20, 23, 30 दिसम्बर 1880, 22, 23, 30 जनवरी, 28 फरवरी, 7 मार्च 1881	आगरा प्रवास का वर्णन
89.	कविवचन सुधा, काशी	31 जनवरी 1881, खण्ड 12, सं. 26	आगरा निवास।
90.	भारती विलास, आगरा	25 फरवरी 1881	आगरा निवास।
91.	हिन्दी प्रदीप प्रयाग सम्पादक - पं. बालकृष्ण भट्ट	फरवरी 1883, खण्ड 5, सं. 6 पृ. 20-21	पं. चतुर्भुज और स्वामी दयानन्द
92.	भारतमित्र, कलकत्ता	8 मार्च 1883 खण्ड 6, सं. 10	सम्पादक के नाम पाठक का पत्र।
93.	नसीम, आगरा	15 मार्च 1881, पृ. 79, खण्ड 4, सं. 10	आगरा से विदाई।
94.	भारती विलास, आगरा	खण्ड 1, सं. 8, पृ. 62	आगरा से विदाई।
95.	भारती विलास, आगरा	25 फरवरी तथा 15 अप्रैल 5 जुलाई 1881	अजमेर के समाचार।
96.	हिन्दी प्रदीप, प्रयाग	आश्विन शु. सं. 1938 वि. अक्टूबर 1881	स्वामीजी की प्रशंसा
97.	नसीम आगरा	23 दिसम्बर 1881, पृ. 385	स्वामीजी की प्रशंसा
98.	उचित वक्ता कलकत्ता		स्वामीजी की प्रशंसा।
99.	मोहनचन्द्रिका, नाथद्वारा	अगस्त, सितम्बर, अक्टूबर, नवम्बर 1882 तथा जनवरी 1883	उदयपुर प्रवास का विवरण
100.	भारत मित्र, कलकत्ता	31 मई 1883	स्वामीजी के स्वीकार पत्र का पंजीकरण।

नाम पत्र	प्रकाशन तिथि	संदर्भ विषय
101. भारत मित्र, कलकत्ता	6 अप्रेल 883	महाराणा उदयपुर प्रदत्त मानपत्र
102. भारत मित्र, कलकत्ता	19 जुलाई 1883, खण्ड 6, सं. 28	शाहपुरा नरेश द्वारा स्वामीजी को प्रदत्त मानपत्र।
103. कोहेनूर, लाहौर	19 अप्रेल 1879, पृ. 391, खण्ड 31 खण्ड 31, सं. 32	पं. श्रद्धाराम फिल्लौरी का स्वामीजी विषयक पत्र।
104. विधा प्रकाशक		पं. श्रद्धाराम की आलोचना।
105. सारसुधा निधि, कलकत्ता	24 व 31 जनवरी 1881 पृ. 482-486	आर्य सन्मार्ग सन्दर्शिनी सभा का विवरण (पूर्वपक्ष)
106. हिन्दू पैट्रियट, कलकत्ता	जनवरी 1881	आर्य सन्मार्ग सन्दर्शिनी सभा का विवरण (पूर्वपक्ष)
107. इण्डियन डेली न्यूज	25 जनवरी 1881	आर्य सन्मार्ग सन्दर्शिनी सभा का विवरण (पूर्वपक्ष)
108. इंग्लिश मैन	26 जनवरी 1881	आर्य सन्मार्ग सन्दर्शिनी सभा का विवरण (पूर्वपक्ष)
109. विहार बंधु	27 जनवरी 1881	आर्य सन्मार्ग सन्दर्शिनी सभा का विवरण (पूर्वपक्ष)
110. दिल्ली गज़ट	19 फरवरी 1881	आर्य सन्मार्ग सन्दर्शिनी सभा का विवरण (पूर्वपक्ष)
111. भारतमित्र, कलकत्ता		आर्य सन्मार्ग सदर्शिनी सभा का विवरण (पूर्वपक्ष)
112. सार सुधानिधि, कलकत्ता	माघ वि.सं. 1937, खण्ड 2, सं. 41, पृ. 482	आर्य सन्मार्ग सन्दर्शिनी सभा का विवरण (पूर्वपक्ष)
113. भारत मित्र, कलकत्ता	10 फरवरी 1881, खण्ड 4, सं. 6	पं. भानुमित्र द्वारा उक्त 'सभा' की आलोचना।
114. भारती विलास, आगरा	15 फरवरी 1881, खण्ड 1, सं. 5	उक्त 'सभा' की एक पाठक द्वारा आलोचना।
115. थियोसोफिस्ट, बम्बई	फरवरी 1882	पादरी जोसफ कुक से स्वामीजी के शास्त्रार्थ का विवरण।
116. तत्वबोधिनी पत्रिका, कलकत्ता	ज्येष्ठ 1796 शक	हेमचन्द्र चक्रवर्ती के यात्रा वर्णन में स्वामीजी की चर्चा।
117. इण्डियन मिरर, कलकत्ता	25 जून 1976 (खण्ड 15 सं. 149)	संस्कारविधि की समीक्षा।

नाम पत्र	प्रकाशन तिथि	संदर्भ विषय
118. भारत मित्र, कलकत्ता	5 मई 1881 (खण्ड 4 सं. 18)	गोकरुणानिधि की समीक्षा।
119. हिन्दी प्रदीप प्रयाग	सितम्बर 1880 (खण्ड 4 सं. 1)	संस्कृतवाक्यप्रबोध के खण्डन में पं. अम्बिकादत्त व्यास रचित अबोध निवारण की आलोचना।
120. भारतमित्र, कलकत्ता	26 अगस्त 1880, खण्ड 3, सं. 35	अबोध निवारण की आलोचना पं. भानुदत्त लिखित।
121. वकीले हिन्द, लाहौर		ऋषि के वेद भाष्य की पण्डितों (ग्रिफिथ, टानी, गुरुप्रसाद, हृषीकेश भट्टाचार्य तथा भगवानदास) द्वारा की गई समीक्षा का स्वामी प्रदत्त उत्तर।
122. इण्डियन मिरर, कलकत्ता	4 नवम्बर 1877, खण्ड 16, सं. 161	वेदभाष्य विषयक टिप्पणी।
123. थियोसोफिस्ट, बम्बई	मार्च 1883	ए.ओ. ह्यूम का ऋषिकृत वेदभाष्य पर आलोचनात्मक पत्र।
124. भारतमित्र, कलकत्ता	14 जुलाई 1883, खण्ड 6, सं. 27, आषाढ़ शु. 8 सं. 1940 वि.	ह्यूम के लेख का उल्लेख।
125. भारतमित्र, कलकत्ता	2 अगस्त 1883, पृ. 6	स्वामीजी द्वारा ह्यूम के आक्षेप का उत्तर।
126. राजपुताना गज़ट उर्दू, अजमेर		स्वामीजी के जोधपुर में अस्वस्थ होने का समाचार।
127. विज्ञान विलास गुजराती मासिक	अप्रैल 1875	पं. दयानन्द सरस्वती स्वामी शीर्षक लेख।

नोट :-

1. उपर्युक्त सार्वजनिक पत्रों के अतिरिक्त आर्यसमाज द्वारा प्रकाशित निम्न पत्रों में ऋषि दयानन्द विषयक लेख, सूचनाएं, समाचार, शास्त्रार्थ आदि प्रकाशित हुए थे - आर्यदर्पण (शाहजहांपुर), भारत सुदशा प्रवर्तक (फर्रूखाबाद), आर्य समाचार (मेरठ), देशहितैषी (अजमेर), The Arya लाहौर आदि।
2. स्वामी दयानन्द विषयक उल्लेख हिन्दी, उर्दू, मराठी, गुजराती, बंगला तथा अंग्रेजी पत्रों में प्रकाशित हुए।
3. ईसाई पत्रों ने भी समय-समय पर अपने विचार ऋषि दयानन्द तथा उनके कार्य पर प्रकट किये थे।
4. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका जब मासिक अंकों के रूपमें सं. 1934 वि. में प्रकाशित होनी आरम्भ हुई, तब प्रत्येक अंक के मुखपृष्ठ के नीचे स्वामीजी के प्रवास (किस नगर में रहेंगे) विषयक सूचना छपती थी।

परिशिष्ट – 3

दयानन्द सरस्वती को श्रद्धांजलियाँ

दयानन्द सरस्वती के निधन पर निम्न पत्र-पत्रिकाओं ने इस दुखद समाचार को प्रकाशित कर उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की -

पश्चिमोत्तर प्रदेश के पत्र

हिन्दी प्रदीप मासिक, प्रयाग, भारतबंधु साप्ताहिक, अलीगढ़, शुभचिंतक मासिक, शाहजहांपुर, बनारस गजट साप्ताहिक, बनारस, बदायूं समाचार, हिन्दुस्तानी, नसीमहिंद, बुन्देल केसरी, क्षत्रियहितकारी, बनारस, अवध अखबार लखनऊ, (उर्दू दैनिक-8 नवम्बर 1883)

मध्यप्रदेश

बिलासपुर समाचार

पंजाब के पत्र

देशोपकारक, (उर्दू) लाहौर, ट्रिब्यून दैनिक, लाहौर (3 नवम्बर 1883) विक्टोरिया-पेपर स्यालकोट, पंजाबटाइम्स रावलपिण्डी, (10 नवम्बर 1883) कोहिनूर लाहौर, आफताब पंजाब लाहौर, ज्ञानप्रदायिनीपत्रिका, लाहौर (नवीनचन्द्र राय द्वारा सम्पादित) अंजुमन, लाहौर।

बम्बई प्रदेश के पत्र

इण्डियन स्पीकर बम्बई-सम्पादक बहरामजी मालाबारी (18 नवम्बर 1883), दैनिक समाचार बम्बई (2 नवम्बर 1883), सुबोध पत्रिका बम्बई, यजदानपरस्त बम्बई, सन्मार्ग दीपिका बम्बई, जामे जमशेद दैनिक, बम्बई (2 नवम्बर 1883) रास्त गुफ्तार (सत्यवक्ता) बम्बई (4 नवम्बर 1883), गुजरातमित्र सूरत (11 नवम्बर 1883), वर्तमानसार, सूरत, सूर्यप्रकाश, सूरत, विज्ञान विलास (गुजराती मासिक) राजकोट; (दिसम्बर 1883) केसरी पूना (सम्पादक - बाल गंगाधर तिलक)

मद्रास प्रदेश के पत्र

हिन्दू आब्जर्वर मद्रास (8 नवम्बर 1883), थिंकर, मद्रास (11 नवम्बर 1883) हिन्दू, मद्रास।

बिहार व बंगाल के पत्र

बंगाली कलकत्ता (3 नवम्बर 1883) सुरेन्द्रनाथ बनर्जी द्वारा सम्पादित, इण्डियन एम्पायर कलकत्ता (4 नवम्बर 1883), हिन्दू पेट्रियट कलकत्ता (8 नवम्बर 1883), इण्डियन क्रानिकल कलकत्ता, बंगाल पब्लिक ओपिनियन कलकत्ता (8 नवम्बर 1883), लिबरल, कलकत्ता (11 नवम्बर 1883), इण्डियन मैसेंजर कलकत्ता (11 नवम्बर 1883), एज्यूकेशन गजट कलकत्ता, बंगवासी कलकत्ता, संजीवनी कलकत्ता, इंग्लिश क्रानिकल बांकीपुर, पटना (5 नवम्बर 1883)।

आर्यसामाजिक पत्र

1. आर्यदर्पण मासिक, शाहजहांपुर
2. आर्यसमाचार (उर्दू) मेरठ
3. भारतसुदशाप्रवर्त्तक मासिक, फर्रूखाबाद (अक्टूबर-नवम्बर, 1883)
4. देशहितैषी, अजमेर
5. The Arya Magazine लाहौर नवम्बर 1883 आर.सी.बेरी द्वारा सम्पादित।
6. Regenerator of Aryavarta - लाहौर पं. गुरुदत्त द्वारा सम्पादित।

परिशिष्ट -4
दयानन्द सरस्वती द्वारा रचित (मुद्रित) ग्रन्थों का विवरण

क्र.सं.	नाम ग्रन्थ	मुद्रक-प्रकाशक	प्रकाशन संवत्
1.	संध्या	ज्वालाप्रकाश प्रेस, आगरा	1920 वि. 1863 ई.
2.	भागवतखण्डन अपर नाम पाखण्डखण्डन	ज्वालाप्रकाश प्रेस, आगरा	1923 वि. 1866 ई.
3.	अद्वैतमतखण्डन	लाइट प्रेस, बनारस	1927 वि. 1870 ई.
4.	सत्यार्थ प्रकाश (प्रथम संस्करण)	स्टार प्रेस, बनारस	1931 वि. 1875 ई.
5.	सत्यार्थ प्रकाश (द्वितीय संस्करण)	वैदिक यंत्रालय, प्रयाग	1941 वि. 1884 ई.
6.	संध्योपासनादि पञ्चमहायज्ञविधिः	आर्य प्रेस, बम्बई	1931 वि. 1796 शकाब्द
7.	पञ्चमहायज्ञविधिः (संशोधित)	लाजरस प्रेस, बम्बई	1934 वि. 1877 ई.
8.	वेदान्तिध्वान्तनिवारण	ओरियन्टल प्रेस, बम्बई	1932 वि. 1876 ई.
9.	वेदविरुद्धमतखण्डन	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई	1931 वि. 1875 ई.
10.	शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण	बम्बई	1931 वि. 1875 ई.
11.	आर्याभिविनयः	आर्यमण्डल प्रेस, बम्बई	1932 वि. 1876 ई.
12.	संस्कार विधिः	एशियाटिक प्रेस, बम्बई	1933 वि. 1877 ई.
13.	संस्कारविधिः (द्वितीय संस्करण)	वैदिक यंत्रालय, प्रयाग	1941 वि. 1884 ई.
14.	वेदभाष्यम् (नमूने का अंक)	लाजरस प्रेस, बनारस	1933 वि. 1876 ई.
15.	ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका	लाजरस प्रेस, बनारस	वैशाख 1934 वि. 1935 वि. (1-14 खण्ड)
		निर्णयसागर प्रेस, बम्बई	1935 वि. 1878 ई. (15, 16 खण्ड)
16.	ऋग्वेद भाष्य (7/62/2 तक)	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई	1935 वि. 1877 ई. से
		वैदिक यंत्रालय, काशी,प्रयाग,अजमेर	1956 वि. 1899 ई.पर्यन्त
17.	यजुर्वेद भाष्य	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई	1935 वि. 1878 ई. से
		वैदिक यंत्रालय, काशी, प्रयाग	1946 वि. 1889 ई.पर्यन्त
18.	आर्योद्देश्यरत्नमाला	चश्मएनूर प्रेस, अमृतसर	1934 वि. 1877 ई.
19.	भ्रान्तिनिवारण	आर्यभूषण प्रेस, शाहजहांपुर	1937 वि. 1880 ई.
20.	अष्टाध्यायी भाष्य (2 भाग)	वैदिक यंत्रालय, अजमेर	लेखन काल 1935-36 वि. प्रकाशनकाल : प्रथम भाग-1984 वि. 1927 ई. द्वि. भा. 1997 वि. 1940 ई.
21.	संस्कृतवाक्यप्रबोधः	वैदिक यंत्रालय, काशी	1936 वि. 1879 ई.
22.	व्यवहारभानु	वैदिक यंत्रालय, काशी	1936 वि. 1879 ई.
23.	गोतम अहल्या की कथा	वैदिक यंत्रालय, काशी	1937 वि. 1879 ई. (अनुपलब्ध)
24.	भ्रमोच्छेदन	वैदिक यंत्रालय, काशी	1937 वि. 1880 ई.
25.	गोकरुणानिधि	वैदिक यंत्रालय, काशी	1937 वि. 1880 ई.
26.	वेदांगप्रकाश (14 भाग)	वैदिक यंत्रालय, काशी	1936 वि. 1879 ई. से 1940 वि. 1883 ई. पर्यन्त
27.	काशीशास्त्रार्थ	वैदिक यंत्रालय, काशी	1937 वि. 1880 ई.
28.	हुगलीशास्त्रार्थ (प्रतिमापूजन विचार)	लाइट प्रेस, बनारस	1930 वि. 1873 ई.
29.	सत्यधर्मविचार (मेला चांदापुर)	वैदिक यंत्रालय, काशी	1937 वि. 1880 ई.
30.	जालंधर शास्त्रार्थ	पंजाबी प्रेस, लाहौर	1934 वि. 1877 ई.
31.	सत्यासत्यविवेक (बरेली शास्त्रार्थ)	आर्यभूषण प्रेस, शाहजहांपुर	1936 वि. 1879 ई.(उर्दू)
32.	चतुर्वेदविषयसूची	वैदिक यंत्रालय, अजमेर	2028 वि. 1971 ई.

परिशिष्ट – 5

स्वामी दयानन्द के कुछ प्रसिद्ध शास्त्रार्थ

क्रम	तिथि	स्थान	प्रतिवादी पण्डित, वक्ता	विषय
1.	1922 वि. 1865 ई.	जयपुर	पं. हरिश्चन्द्र, राजीवलोचन ओझा आदि	व्याकरण
2.	ज्येष्ठ द्वितीय 1923 वि. 1866 ई. (3 दिन तक)	अजमेर	रेवरेण्ड ग्रे, पादरी रॉबसन	ईश्वर, जीव, सृष्टि क्रम, वेद आदि
3.	आश्विन 1924 वि., अक्टूबर 1867 ई.	कर्णवास	पं. अम्बादत्त पर्वती	मूर्तिपूजा
4.	मार्गशीर्ष 1924 वि., दिसम्बर 1867 ई.	रामघाट	स्वामी कृष्णानन्द	अवतारवाद
5.	पौष कृष्णा 11, 1924 वि. से पौष शुक्ला 1, 1924 वि. तक जनवरी 1868 ई. (छः दिन तक)	कर्णवास	पं. हीरावल्लभ	मूर्तिपूजा
6.	चैत्र शुक्ल पक्ष 1925 वि.,अप्रैल 1868 ई.	सोरों (शूकर क्षेत्र)	पं. अंगदराम शास्त्री	मूर्तिपूजा
7.	कार्तिक 1925 वि.,नवम्बर 1868 ई.	ककोड़ा	पं. उमादत्त	मूर्तिपूजा
8.	1926 वि. 1869 ई.	फर्रूखाबाद	पं. श्रीगोपाल	मूर्तिपूजा
9.	ज्येष्ठ शुक्ला 10.11.1926 वि. 19,20 जून 1869 ई.	फर्रूखाबाद	पं. हलधर ओझा	मूर्तिपूजा
10.	आषाढ़ 1926 वि.,जुलाई 1869 ई.	कन्नौज	पं. हरिशंकर शास्त्री	मूर्तिपूजा
11.	आषाढ़ 1826 वि. 31 जुलाई 1869 ई.	कानपुर	पं. हलधर ओझा पं. लक्ष्मण शास्त्री	मूर्तिपूजा मूर्तिपूजा
12.	कार्तिक शुक्ला 12, 1926 वि. 16 नवम्बर 1869 ई.	काशी	स्वामी विशुद्धानन्द आदि 40 प्रमुख पण्डित	मूर्तिपूजा
13.	1926 वि. 1870 ई.	मिर्जापुर	पं. गोविन्दभट्ट, पं. जयश्री	भागवत और मूर्तिपूजा
14.	1929 वि. 1872 ई.	डुमरांव	पं. दुर्गादत्त	अद्वैतवाद, मूर्तिपूजा
15.	भाद्रपद 1929 वि. अगस्त 1872 ई.	आरा	पं. रुद्रदत्त, पं. चन्द्रदत्त	मूर्तिपूजा
16.	भाद्रपद शुक्ल पक्ष 1929 वि. सितम्बर 1872 ई.	पटना	पं. रामजीवन भट्ट	मूर्तिपूजा
17.	चैत्र शुक्ला 11, 1930 वि. 8 अप्रैल 1873 ई.	हुगली	पं. ताराचरण तर्करत्न	प्रतिमापूजन
18.	ज्येष्ठ 1930 वि. जून 1873 ई.	छपरा	पं. जगन्नाथ	मूर्तिपूजा
19.	आषाढ़ 1930 वि. जून 1873 ई.	आरा	पं. रुद्रदत्त	मूर्तिपूजा
20.	मार्गशीर्ष अमावस्या 1930 वि. 11 नवम्बर 1873 ई.	लखनऊ	पं. गंगाधर शास्त्री	मूर्तिपूजा
21.	आषाढ़ 1931 वि.,जुलाई 1874 ई.	प्रयाग	पं. नीलकण्ठ शास्त्री गोरे (धर्मान्तरित ईसाई)	वेद में देवतावाद
22.	मार्गशीर्ष 1931 वि., दिसम्बर 1874 ई.	सूरत	पं. इच्छाशंकर शास्त्री	अद्वैतवाद
23.	मार्गशीर्ष 1931 वि., दिसम्बर 1874 ई.	भड़ौंच	पं. माधवराव त्र्यम्बकराव	मूर्तिपूजा
24.	पौष 1931 वि., जनवरी 1875 ई.	राजकोट	पं. महीधर, पं. जीवनराम शास्त्री	मूर्तिपूजा और अवतारवाद
25.	माघ कृष्णा 6,1931 वि., 27 जनवरी 1875 ई.	अहमदाबाद	पं. सेवकराम रामनाथ शास्त्री पं. लल्लूभाई बापूभाई शास्त्री पं. भोलानाथ भगवान आदि	मूर्तिपूजा और अवतारवाद

क्रम	तिथि	स्थान	प्रतिवादी पण्डित, वक्ता	विषय
26.	फाल्गुन शुक्ला 5, 1931 वि. 10 मार्च 1875 ई.	बम्बई	पं. खेमजी बालजी जोशी पं. इच्छाशंकर शुक्ल	व्याकरण
27.	ज्येष्ठ 1932 वि., 12 जून 1875 ई.	बम्बई	पं. कमलनयनाचार्य	मूर्तिपूजा
28.	पौष 1932 वि., दिसम्बर 1875 ई.	बड़ौदा	पं. यज्ञेश्वर शास्त्री पं. अप्पय शास्त्री	व्याकरण और न्याय
29.	चैत्र 1932 वि., 27 मार्च 1876 ई.	बम्बई	पं. रामलाल	मूर्तिपूजा
30.	ज्येष्ठ अमावस्या 1933 वि., 23 मई 1876 ई.	फर्रूखाबाद	पादरी जे.जे.लूकस	मोक्ष
31.	मार्गशीर्ष 1933 वि., नवम्बर 1876 ई.	बरेली	पं. लक्ष्मणशास्त्री	
32.	मार्गशीर्ष 1933 वि., नवम्बर 1876 ई.	मुरादाबाद	ई.डब्लू.पार्कर, पादरी बेली, देशी ईसाई रामचन्द्र बोस	ईश्वर मुक्तिदाता ? सृष्टि उत्पत्ति
33.	फाल्गुन 1933 वि., फरवरी 1877 ई.	सहारनपुर	पं. बलदेव व्यास, साधु दीवानदास	
34.	चैत्र शुक्ला 4, 5, 1934 वि., 19, 20 मार्च 1877 ई.	चांदापुर (शाहजहांपुर)	मौलवी मोहम्मद कासिम, पादरी डा. टी. जे. स्काट पादरी नोबिल	सृष्टि रचना का प्रयोजन तथा मुक्ति का स्वरूप
35.	श्रावण 1934 वि., अगस्त 1877 ई.	गुरदासपुर	पं. लक्ष्मीधर, पं. दौलतराम	मूर्तिपूजा
36.	आश्विन कृष्णा 1, 1934 वि. 24 सितम्बर 1877 ई.	जालंधर	मौलवी अहमदहसन	पुनर्जन्म और करामात
37.	पौष 1934 वि., जनवरी 1878 ई.	जेहलम	शिवचरण घोष (ईसाई)	अज्ञात
38.	पौष 1934 वि., जनवरी 1878 ई.	गुजरात	जम्मू का एक पण्डित	अज्ञात
39.	माघ शुक्ला 1,2,1934 वि., 3,4, फरवरी 1877 ई.	वज़ीराबाद	पं. वासुदेव	मूर्तिपूजा
40.	फाल्गुन कृष्णा 2, 1934 वि.	गुज़रांवाला	पादरी सोलफीट (स्विफ्ट)	क्या जीव और ईश्वर दोनों अनादि हैं।
41.	मार्गशीर्ष शुक्ला 4, 1935 वि. 28 नवम्बर 1878 ई.	अजमेर	पादरी ग्रे और डा. हसबैण्ड	बाइबिल वर्णित सृष्टि उत्पत्ति
42.	भाद्रपद कृष्णा 2, 1936 वि. अगस्त 1879 ई	बदायूं	पं. रामप्रसाद, पं. वृन्दावन, पं. टीकाराम	ईश्वर साकार है या निराकार
43.	भाद्रपद शुक्ला 7, 8, 9, 1936 वि. 25, 26, 27 अगस्त 1879 ई.	बरेली	डा. टी.जे.स्कॉट	1. आवागमन (पुनर्जन्म) का सिद्धान्त 2. ईश्वर देहधारण करता है या नहीं? 3. ईश्वर अपराध क्षमा करता है या नहीं?
44.	आश्विन कृष्ण पक्ष 1936 वि., सितम्बर 1879 ई.	शाहजहांपुर	पं. लक्ष्मण शास्त्री	मूर्तिपूजा
45.	श्रावण कृष्णा 2, 1938 वि. 13 जुलाई 1881 ई.	मसूदा (राजस्थान)	साधु सिद्धकरण	जैनमत विषयक
46.	भाद्रपद कृष्णा 14 से भाद्रपद शुक्ला 5, 1939 वि., 11 सितम्बर से 17 सितम्बर 1882 ई. तक	उदयपुर	मौलवी अब्दुलरहमान	7 विभिन्न प्रश्न

परिशिष्ट – 6

सहायक तथा सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. दयानन्द सरस्वती : जीवन चरित विषयक उपादान (आधार रूप में प्रयुक्त होने वाली) सामग्री

	नाम ग्रन्थ	लेखक	स्थान/प्रकाशक	प्रकाशन काल
1.	वैदिक धर्म विजय	दयाराम तहसीलदार	मेरठ	1902 ई.
2.	स्वामी दयानन्द सरस्वती जन्म स्थानादि निर्णय (बंगला)	देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय	कलकत्ता	1916 ई.
3.	स्वामी दयानन्द सरस्वती नां जन्म स्थानादि नो निर्णय(गुजराती)	देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय अनु.त्रिभुवनदास दामोदरदास गढ़िया	राजकोट	1920 ई.
4.	दयानन्द जन्म स्थान निर्णय	विजयशंकर मूलशंकर	बम्बई	1930 ई.
5.	फर्रूखाबाद का इतिहास	गणेशप्रसाद शर्मा	फर्रूखाबाद	1931 ई.
6.	महर्षि दयानन्द सरस्वती	महेशप्रदसाद मौलवी	इलाहाबाद	1998 वि.
7.	महर्षि कहाँ और कब?	महेशप्रसाद मौलवी	इलाहाबाद	2000 वि.
8.	महर्षि जीवनदर्शक	महेशप्रसाद मौलवी	इलाहाबाद	2001 वि.
9.	दयानन्द काल में रेल मार्ग	महेशप्रसाद मौलवी	इलाहाबाद	
10.	महर्षि का अपूर्व भ्रमण	महेशप्रसाद मौलवी	इलाहाबाद	
11.	अजमेर और ऋषि दयानन्द	ब्रह्मदत्त सोढ़ा	अजमेर	2015 वि.
12.	महर्षि दयानन्द का भ्रातृवंश और स्वसृवंश	युधिष्ठिर मीमांसक	दिल्ली	2016 वि.
13.	उत्तराखण्ड के वन पर्वतों ऋषि दयानंद	विश्वम्भरसहाय प्रेमी	सा.सभा, दिल्ली	1959 ई.
14.	आदर्श गुरु शिष्य	रघुनाथप्रसाद पाठक	सा.प्र.सभा, दिल्ली	2016 वि.
15.	मथुरा में स्वामी दयानन्द का विद्यालय	प्रभुदयाल मीतल	मथुरा	1959 ई.
16.	महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज को समझने में पौराणिक धर्मो का भ्रम	शिवपूजनसिंह कुशवाह	बड़ौदा	1966 ई.
17.	दयानन्द जीवनी साहित्य	विश्वनाथ शास्त्री	अजमेर	2018 वि.
18.	महर्षि दयानन्द का वंश परिचय	श्रीकृष्ण शर्मा	राजकोट	2020 वि.
19.	महर्षि दयानन्द स्मारक का इतिहास	श्रीकृष्ण शर्मा	राजकोट	2020 वि.
20.	टंकारा	श्रीकृष्ण शर्मा	राजकोट	
21.	ऋषि दयानन्द की जन्मतिथि	भीमसेन शास्त्री	दिल्ली	
22.	ऋषि दयानन्द की जन्मतिथि	इन्द्रदेव	पीलीभीत	1965 ई.
23.	दयानन्द का जन्म दिवस	गिरधारीलाल शर्मा	छुटमलपुर	2025 वि.
24.	महर्षि दयानन्द सरस्वती की जन्मतिथि	वैद्यनाशास्त्री	सा.प्र.सभा,दिल्ली	
25.	दयानन्दरचित का ऐतिहासिक अनुशीलन	जयचन्द्र विद्यालंकार	जालंधर	2023 वि.
26.	सत्य निरूपण (उर्दू)	जगत्प्रकाश शर्मा	अजमेर	1969 ई.

27.	महर्षि का विषपान-अमर बलिदान	राजेन्द्र जिज्ञासु	दीनानगर	2029 वि.
28.	महर्षि दयानन्द के अमृतसर में 127 दिवस	पिण्डीदास ज्ञानी	अमृतसर	1973 ई.
29.	ऐतिहासिक नगर मेरठ में महर्षि दयानन्द	विश्वम्भरसहाय प्रेमी	मेरठ	1973 ई.
30.	विष - ऋषि मृत्यु का कारण	शिवराजसिंह सं.	बम्बई	1974 ई.
31.	कर्णवास में महर्षि दयानन्द के ऐतिहासिक संस्करण	मू. ले. शेरसिंह वर्मा, सं. भवानीलाल भारतीय	दिल्ली	2032 वि.
32.	दानापुर में ऋषि दयानन्द का पदार्पण और प्रभाव	विभुमित्र शास्त्री	दानापुर	1977 ई.
33.	योगी का आत्मचरित एक षड्यन्त्र है	पूर्णानन्द सरस्वती	बड़ौत	2038 वि.
34.	ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण अभिलेख	सं. युधिष्ठिर मीमांसक	बहालगढ़	2038 वि.
35.	महर्षि दयानन्द का सर्वप्रथम जीवनवृत्त	मू. ले. कन्हैयालाल अलखधारी अनु. राजेन्द्र जिज्ञासु	अबोहर	2038 वि.
36.	दयानन्द प्रसंग (बंगला)	हेमचन्द्र चक्रवर्ती	कलकत्ता	1954 ई.
37.	बंगे दयानन्द (बंगला)	दीनबंधु वेदशास्त्री	कलकत्ता	
38.	स्वामी दयानन्द गुजरात मां (गुजराती)	श्रीकान्त भगतजी	सूरत	
39.	ऋषि का बोलबाला-सचाई की फ़तह (उर्दू)	अनूपचंद आफताब		
40.	The meeting of Swami Dayanand and Dr. T.J. Scott at Bareilly	दुर्गाप्रसाद, लाहौर		
41.	Dayanand Saraswati and the Sepoy Revolt of 1857	Richard Thwaytes	कैनबरा	1973 ई.
42.	कर्नल आल्काट लिखित ओल्ड डायरी लीव्ज में स्वामी दयानन्द विषयक अध्याय			
43.	मैडम एच.पी. ब्लैवेट्स्की लिखित फ्राम दि केव्ज एण्ड जंगल्स ऑफ हिन्दुस्तान के ऋषि विषयक अंश			
44.	ऋषि दयानन्द का साढ़े चार मास का जोधपुर प्रवास	डा. भवानीलाल भारतीय	जोधपुर	2047 वि.
45.	ऋषि दयानन्द का उदयपुर प्रवास	डा. भवानीलाल भारतीय	उदयपुर	2052 वि.
46.	काशी में महर्षि दयानन्द	डा. भवानीलाल भारतीय	वाराणसी	2055 वि.
47.	पाखण्ड तिमिर नाशक पत्र चन्द्रिका		आगरा	1935 वि.
48.	दयानन्द जीवन काल पंचांग	आदित्यपालसिंह आर्य	भोपाल	2047 वि.
49.	दयानन्दोपनिषद् का प्राक्कथन	पं. भीमसेन विद्यालंकार	लाहौर	1946 ई.
50.	सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का 27 वर्षीय इतिहास	पृ. 35 से 99	दिल्ली	1996 वि.

2. दयानन्द सरस्वती : आत्मकथा (विभिन्न संस्करण)

1.	श्रीयुत स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी की कुछ दिन चर्चा	गणेशप्रसाद शर्मा	मुन्शी चुन्नीलाल यंत्रालय, फतहगढ़	द्वि. संस्करण 1887 ई.
2.	दयानन्दचरितामृत	मुन्शी दयाराम	आर्य पुस्तकालय, लाहौर	तृ. संस्करण 1923 ई.

3.	ऋषि दयानन्द स्वरचित (लिखित वा कथित) जन्मचरित	भगवद्दत्त	रामलाल कपूर ट्रस्ट, लाहौर अमृतसर	च. संस्करण 1951 ई. पं. संस्करण 2015 वि. ष. संस्करण 2016 वि. स. संस्करण 2026 वि.
4.	महर्षि दयानन्द सरस्वती की आत्मकथा	जगत्कुमार शास्त्री	गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली	2010 वि., 1953 ई.
5.	महर्षि दयानन्द सरस्वती की आत्मकथा		आर्यप्रतिनिधि, उत्तरप्रदेश, लखनऊ	2010 वि.
6.	महर्षि दयानन्द सरस्वती की आत्मकथा		वेद प्रचारक मण्डल, दिल्ली	
7.	महर्षि दयानन्द की आत्मकथा	भवानीलाल भारतीय	वैदिक यंत्रालय, अजमेर	2032 वि., 2040 वि.
8.	महर्षि दयानन्द की आंत्मकथा	सुदर्शनदेव शास्त्री	सर्वहितकारी का विशेषांक	1981 ई.
9.	महर्षि दयानन्द की आत्मकथा	राजवीर शास्त्री	दयानन्द संदेश का विशेषांक	नवम्बर 1981 ई.

आत्मकथा-उर्दू अनुवाद

1.	खुदनविशत स्वानेह ऊमरी	दलपतराय विद्यार्थी	मुद्रक-इस्लामी प्रेस, लाहौर	1945 वि.
2.	स्वानेह ऊमरी मय नोट्स	भाई जवाहरसिंह		1889 ई.
	आत्मकथा - बंगला अनुवाद	देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय	कलकत्ता	1908 ई.
	आत्मकथा-गुजराती अनुवाद	देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय की बंगला पुस्तक से अनूदित	हिन्दू सुधारक ग्रन्थमाला 2	
1.	दयानन्द स्वामी नुं स्वरचित जीवन वृत्तान्त	अनुवादक बलवन्तराय कल्याणराय ठाकुर	मकनलाल मथुरभाई गुप्त आर्य सुधारक प्रेस, बड़ौदा	1914 ई.

English Translations

1.	A Triumph of Truth or a Short Autobiography of the Great Rishee Swami Dayanand Saraswati.	Durga Prasad	Virjanand Press, Lahore	1908
2.	Autobiography of Pandit Dayanand Saraswati.	H.P.Blavatsky	The Theosophical Publishing House Adyar Madras	1952
3.	Autobiography of Dayanand Saraswati.	K.C.Yadav	Manohar Book Service, Delhi	1976-1978

3. दयानन्द सरस्वती : प्रमुख जीवनचरित-हिन्दी

1.	दयानन्द दिग्विजयर्क खण्ड 1	गोपालशास्त्री शर्मा	फतहगढ़ यंत्रालय में मुद्रित	1881 ई.
	दयानन्द दिग्विजयार्क खण्ड 2	गोपालशास्त्री शर्मा	सत्यप्रकाश यंत्रालय, आगरा	1881 ई.
	दयानन्द दिग्विजयार्क खण्ड 3	गोपालशास्त्री शर्मा	फतहगढ़ यंत्रालय, फतहगढ़	1887 ई.
2.	दयानन्द दिग्विजयार्क (संक्षिप्त सम्पादित संस्करण)	डा. भवानीलाल भारतीय	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली	2031 वि.

3.	महर्षि दयानन्द सरस्वती और उनका काम	लाला लाजपतराय अनु. गोपालदास देवगणशर्मा	दुनिया के महापुरुषों के जीवन ग्रन्थमाला-4, लाहौर	1898 ई. 1955 वि.
4.	श्री 108 महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का जीवनचरितम्	सत्यव्रत शर्मा, द्विवेदी	वेदप्रकाश यंत्रालय, इटावा	1903 ई.
5.	आर्य धर्मेन्द्र जीवन	रामविलास शारदा	वैदिक यंत्रालय, अजमेर	1904 ई. 1961 वि., 2051 वि.
6.	सरस्वतीन्द्र जीवन	चिम्मनलाल वैश्य	तिलहर	1907 ई.
7.	दयानन्द चरित्र	देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय अनु. घासीराम	भास्कर प्रेस, मेरठ	1912 ई.
8.	श्रीमद्दयानन्द प्रकाश	सत्यानन्द सरस्वती	आर्य पुस्तकालय, लाहौर	1975 वि.
9.	महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित- 2 भाग	देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय द्वारा संगृहीत सामग्री के आधार पर पं. घासीराम द्वारा लिखित	आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर	1933 ई. 2015 वि., 2050 वि.
10.	महर्षि दयानन्द	इन्द्र विद्यावाचस्पति	विजय पुस्तक भंडार, दिल्ली	1945 ई.
11.	महर्षि जीवन दर्पण	महेशप्रसाद मौलवी	आलिम फाजिल बुक डिपो, इलाहाबाद	
12.	भारत की एक विभूति महर्षि दयानन्द सरस्वती	वेदानन्द वेदवागीश	हरयाणा साहित्य संस्थान, गुरुकुल, झज्जर	2925 वि.
13.	स्वामी दयानन्द	बी.के.सिंह, अनु. सुमंगलप्रकाश	नेशलनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली	1970 ई.
14.	महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र	मू. ले. लेखराम आर्य पथिक अनु. रघुनन्दनसिंह 'निमल'	आर्य समाज, नया बास, दिल्ली	2028 वि.
15.	नवजागरण के पुरोधा : दयानन्द सरस्वती	भवानीलाल भारतीय	वैदिक पुस्तकालय, अजमेर	2040 वि.
16.	महर्षि दयानन्द चरितामृत	मुन्शी दयाराम	मेरठ	1904 ई.
17.	महर्षि दयानन्द	रामस्वरूप कौशल	लाहौर	1928 ई.
18.	महर्षि की जीवनी	मेहरसिंह यमेताल	दिल्ली	
19.	स्वामी दयानन्द की जीवनयात्रा	जगतराम आर्य	दिल्ली	1997 ई.
20.	दिव्य दयानन्द	क्षितीश वेदालंकार	दिल्ली	

4. दयानन्द सरस्वती : अन्य भारतीय भाषाओं में लिखित प्रमुख जीवनचरित

बंगला -

1.	दयानन्द सरस्वतीर संक्षिप्त जीवनी	नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय	कलकत्ता	1886 ई.
2.	दयानन्द चरित प्रथम खण्ड	देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय	कलकत्ता	1302 बंगाब्द 1896 ई.
3.	दयानन्द चरित द्वितीय खण्ड	देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय	कलकत्ता	
4.	ऋषीन्द्रजीवन	शंकरनाथ पण्डित	कलकत्ता	1333 बंगाब्द, 1927 ई.

ओडिया

1.	स्वामी दयानन्द	यज्ञप्रकाश दास		1977 ई.

मराठी

1.	महर्षि दयानन्द यांचे चरित्र व कामगिरि	हरि सखाराम तुंगार	अहमदनगर	1920 ई.
2.	स्वामी दयानन्द चे चरित	सत्यवीर शास्त्री	अमरावती	1982 ई.

गुजराती

1.	स्वामी दयानन्द सरस्वती नुं जीवनचरित	बालाभाई जमनादास वैश्य	अहमदाबाद	1897 ई.
2.	स्वामी दयानन्द सरस्वती नुं जीवनचरित	रत्नसिंह दीपसिंह परमार		1916 ई.
3.	झण्डाधारी	ककल भाई कोठारी, झवेरचंद मेघाणी	बम्बई	1926 ई.
4.	महर्षि दयानन्द	रमणलाल वसन्तलाल देसाई	बड़ौदा	1937 ई.
5.	दयानन्द सरस्वती	धनवन्त ओझा	अहमदाबाद	1962 ई.

तमिल

1.	मकरिषि स्वामी दयानन्द सरस्वती यारिन वाजक्कैयूम	कन्नयूया	आर्यसमाज, मद्रास	1934 ई.
2.	ऋषि दयानन्द	शुद्धानन्द भारती	अम्बुनिलयम् रामचन्द्रपुरम्	1947 ई.

तेलुगू

1.	दयानन्दचरित	आर. सत्यनारायण		1958 ई.

कन्नड़

1.	श्री दयानन्द सरस्वती' मवरचरिते	केशवयूय	डी. शेषगिरिराम, मैसूर	1910 ई.
2.	महर्षि दयानन्द सरस्वती	केशवयूय	सर्वमंगल ग्रन्थमाला, बैंगलोर	1943 ई.
3.	श्रीमद्दयानन्दर्षिजीवनचरितम्	सुधाकर चतुर्वेदी		1943 ई.
4.	महर्षि दयानन्द सरस्वती	सुधाकर चतुर्वेदी	वैदिक साहित्य प्रचार समिति, उडुपि (कर्नाटक)	1977 ई.

मलयालम

1.	महर्षि दयानन्द सरस्वती	नारायणदत्त	वैदिक साहित्य परिषद् चेंगनूर (केरल)	1971 ई.

जीवनचरित : सिंधी

1.	महर्षि स्वामी दयानन्द जो मुख्तसर जीवनचरित	माधवदास प्रेमचन्द आर्य	अहमदाबाद	1958 ई.
2.	जगत् गुरु दयानन्द	ताराचन्द डी. गाजरा	आर्यसमाज, हैदराबाद सिंध	

पंजाबी

1.	जन्मसाखी	पिन्डीदास ज्ञानी		
2.	महर्षि दयानन्द दा जीवनचरित	स्वतन्त्रानन्द (स्वामी)		अप्रकाशित

जीवनचरित - फारसी

1.	स्वानेह ऊमरी आरिफ कामिल दयानन्द सरस्वती	कालीचरण शर्मा		

उर्दू

1.	महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र यानी स्वानेह ऊमरी	मू. ले. लेखराम आर्यपथिक सं. आत्माराम अमृतसरी	आर्यप्रतिनिधि सभा, पंजाब	1897 ई.
2.	महर्षि दयानन्द सरस्वती और उनका काम	(लाला) लाजपतराय	लाहौर	

3.	महर्षि दयानन्द सरस्वती और उनकी तालीम	राधाकृष्ण मेहता		
4.	मुकम्मल जीवनचरित्र महर्षि दयानन्द	लक्ष्मण आर्योपदेशक		

KI - Swahili (स्वाहिली भाषा)

1.	Suffi Dayanand Mundi	Kaji Vasant Rai J. Joshi	Indo-African Literary Society, Mombasa.	1953

5. Dayanand Saraswati : Important Biographies in English

1.	Maharshi Swami Dayanand Saraswati	Durga Prasad	1. Virjanand Press, Lahore 1892 I Edition
2.	Dayanand Saraswati : Founder of the Arya Samaj	Bawa Arjun Singh	1. Punjab Printing Works, 1901 I Edition Lahore 2. Ess Ess Publications, 1979 II Edition Delhi
3.	Life and Teachings of Swami Dayanand	Bawa Chhaju Singh	1. Addision Press, Lahore 1903 I Edition 2. Jan Gyan Prakashan, New Delhi 1971 II Edition
4.	Swami Dayanand : A Sketch of his life and teachings		G. A. Nateson & Co., 1912, 1921 III Ed. Madras
5.	The Luther of India	Gokul Chand Narang	1. Youngmen's Arya Samaj Tract Society, Lahore Vol II, Part V, Tract. 15 1912 2. Ishwar Chandra Arya Tract Society, Lahore 1913 3. Arya Samaj Calicut 1924
6.	The Life of Swami Dayanand Saraswati	Tarachand D. Gajra	1915
7.	Swami Dayanand : His Life and Teachings	B.M. Sharma	Upper India Publishing House, Lucknow
8.	Dayanand : His life and Works	Suraj Bhan	1. Indian Press Allahabad 1934 I Ed. 2. Arya Pradeshik Pratinidhi 1954, 1973 Sabha, Jullundur, New Delhi 1978
9.	The Life and Teachings of Swami Dayanad	Vishwa Prakash	Kala Press, Allahabad 1935
10.	Swami Dayanand Saraswati	Diwanchand Sharma	Macmillon & Co. London 1935 Makers of the Arya Samaj. Vol. III
11.	Swami Dayanand : His Life and Teachings	Shivnandan Prasad Kulyar	Arya Pratinidhi Sabha, Bihar, Patna 1938. Reprinted from the Vedic Magazine
12.	Life of Dayanand Saraswati : World Teacher	Harvilas Sarda	1. Vedic Yantalaya, Ajmer 1946 2. Paropkarini Sabha, Ajmer 1968
13.	Swami Dayanad	B.K. Singh	National Book Trust, Delhi 1970 National Biography Series
14.	Dayanand Saraswati : His life and Ideas	J.T.F. Jordens	Oxford University Press, Delhi 1978

15.	Life of Shreeman Dayanand Saraswati	Becha Ram Chatterjee	Arya Pratinidhi Sabha. Punjab, Lahore	N.D.
16.	Swami Dayanand : A Brief Life Sketch	Gokul Chand Narang		N.D.
17.	Swami Dayanand	A.C. Bose		N.D.
18.	The Sage of Modern India - Swami Dayanand	Ganga Prasad Upadhyaya	Kala Press, Allahabad	N.D. Vishwa Prachar Series - 2
19.	Swami Dayanand Saraswati	Dhanpati Pandey	New Delhi	1985
20.	Swami Dayananda Saraswati A Study of his life and work	K.S. Arya & P.D. Shastri	NewDelhi	1987
21.	Swami Dayananda Saraswati	Lala Lajpat Rai	New Delhi	1991
22.	Swami Dayanand Ṣaraswati	Premlata	New Delhi	1990
23.	Swami Dayanand	J.M. Sharma	New Delhi	1998

6. स्वामी दयानन्द के जीवनपरक संस्कृत काव्य

1.	महर्षि वियोग शोक	ज्वालादत्त शर्मा	सरस्वती प्रेस, इटावा	1955 वि.
2.	दयानन्ददिग्विजयम्	अखिलानन्द शर्मा	मुद्रक-इण्डियन प्रेस, इटावा	1910 ई.
3.	दयानन्ददिग्विजयम्	अखिलानन्द शर्मा	आर्यधर्म प्रकाशन, शामली	2027 वि., 1970 ई
4.	दयानन्ददिग्विजयम् पूर्वार्द्ध	मेधाव्रताचार्य	सत्यवती स्नातिका	1994 वि.
5.	दयानन्ददिग्विजयम् उत्तरार्द्ध	मेधाव्रताचार्य	सुबोधचन्द्र, सूपा	2003 वि., 1947
6.	मुनिचरितामृतम्	दिलीपदत्त शर्मोपाध्याय	महाविद्यालय दर्शन प्रेस, ज्वालापुर	1971 वि.
7.	श्री दयानन्द लहरी (शान्तिदायिनी संस्कृत, मनोमोदिनी हिन्दी टीका)	अखिलानन्द शर्मा	1. स्वामी प्रेस, मेरठ	1964 वि., 1907 1913 ई. द्वि सं., ग्रन्थकार
8.	श्री दयानन्द लहरी (शान्तिदायिनी संस्कृत, मनोमोदिनी हिन्दी टीका)	अखिलानन्द शर्मा	2. आर्यकुमार परिषद् पंजाब	1964 द्वि.सं.
9.	श्री दयानन्द लहरी (शान्तिदायिनी संस्कृत, मनोमोदिनी हिन्दी टीका)	अखिलानन्द शर्मा	3. आर्यसमाज नयाबांस, दिल्ली	1976 ई.
10.	श्री दयानन्द लहरी	मेधाव्रताचार्य	1. दयानन्द जन्म-शताब्दी समिति, मथुरा	1925 ई.
	श्री दयानन्द लहरी	मेधाव्रताचार्य	2. शरच्चन्द्र सत्यव्रत आर्य, येवला (महाराष्ट्र)	2000 वि.
	श्री दयानन्द लहरी : ज्योतिष्मती टीका	टीकाकार-वेदानन्द वेदवागीश	3. हरयाणा साहित्य संस्थान, गुरुकुल झज्जर 2025 वि.,	1968 ई.
11.	आर्योदयकाव्यम् उत्तरार्द्ध	गंगाप्रसाद उपाध्याय	कला प्रेस, प्रयाग	
12.	महर्षिदयानन्दचरितम्	वल्लभदास भगवानजी गणात्रा		1988 वि.
13.	यतीन्द्रशतकम्	केवलानन्द शर्मा	रामगोपाल आर्य मऊनाथ-भंजन (उ.प्र.)	1938 ई.
14.	जगज्ज्योतिः	सन्तोष श्रीवास्तव	अवधबिहारीलाल सर्राफ, फतहपुर	2018 वि.
15.	दयानन्द सूक्ति सप्तशती	शिवकुमार मिश्र	नई दिल्ली	1988 ई.
16.	महर्षि माल्यापर्णम्	धर्मवीरकुमार शास्त्री	दिल्ली	1992 ई.
17.	स्वामीदयानन्दचरितम्	श्रीधर शास्त्री	अजमेर	2050 वि.

संस्कृत नाटक

18. महर्षिचरितामृतम्	सत्यव्रत स्नातक	सत्यव्रत बी. कामदार, बम्बई - 19	2021 वि.

संस्कृत जीवनचरित (गद्य)

19. दयानन्दर्षिचरितम्	विद्यानिधि शास्त्री	हरयाणा साहित्य संस्थान, गुरुकुल झज्जर	2030 वि.
20. महर्षिदयानन्दचरितम्	विष्णुमित्र विद्यामार्तण्ड	खानपुर (हरियाणा)	
21. देवर्षिदयानन्दचरितम्	रविदत्त गौतम	दिल्ली	2048 वि.

7. स्वामी दयानन्द के जीवनपरक हिन्दी काव्य

1. धर्मदिवाकरोदय काव्य	शेरसिंह वर्मा 'कविकुमार'	कर्णवास	
2. दयानन्द जीवनकाव्य	लाला रामबुझारथलाल कायस्थ, (हरिदत्त वर्मा)	सरस्वती पुस्तकालय, बम्बई	1913 ई.
3. दयानन्दचरितामृत	कविराज जयगोपाल	लाहौर	
4. दयानन्द महाकाव्य (दयानन्दचरितमानस)	म.म.आर्यमुनि	मु. हितचिंतक प्रेस, काशी प्र. देवदत्त शर्मा, कर्णवास	1981 वि. जन्मकाण्ड
5. श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती का जीवनचरित्र (भाषा कविता में)	कृष्ण अमृतसरी	श्रीमती विद्यावती, लाहौर	1924 ई.
6. दयानन्दचरितामृत	विद्यानन्द 'आनन्द' विदेह	1. प्र. रामस्वरूप 'स्वाधीन' 2. वेद संस्थान, अजमेर	1984 वि., 1927 ई. 1983 ई.
7. दयानन्ददयाप्रकाश	लाला शम्भुनाथ	आगरा	1981 वि.
8. बोधरात्रि	विज्ञानमार्तण्ड वात्स्यायन टी. रामचन्द्र भारती	सरस्वती प्रकाशन मंदिर माण्डले (बर्मा)	1939 ई.
बोधरात्रि	विज्ञानमार्तण्ड वात्स्यायन टी. रामचन्द्र भारती	जनज्ञान प्रकाशन, दिल्ली	
बोधरात्रि	विज्ञानमार्तण्ड वात्स्यायन टी. रामचन्द्र भारती	ओमप्रकाश आर्य, जालंधर	आंशिक
9. दयानन्दचरितगान (तर्ज राधेश्याम)	सुशीलापुरी	अम्बाला छावनी	1946 ई.
10. महर्षि चरित-चार भाग (तर्ज राधेश्याम)	मदनमोहनलाल शर्मा	श्रीराधेश्याम पुस्तकालय, बरेली	1951 ई.
11. दयानन्दचरितामृत	ठाकुर गदाधरसिंह	डा. सूबाबहादुरसिंह, लखनऊ	2011 वि.
12. ऋषि दयानन्द चरित	महाशय रामावतार	मुलतान	
13. महर्षि दयानन्द जीवनकथा	बस्तीराम आर्योपदेशक	1. विश्वम्भर वैदिक पुस्तकालय, गुरुकुल, झज्जर	1960 ई., 2016 वि.
महर्षि दयानन्द जीवन कथा	बस्तीराम आर्योपदेशक	2. आर्य प्रकाशन, रोहतक	2032 वि.
14. महारथी	लक्ष्मण शर्मा 'ललित'	आर्यसमाज लहेरियासराय (बिहार)	
15. संगीत दयानन्द	यशवन्तसिंह (टोहानवी)	देवीदयाल गुप्ता, टोहाना	5 संस्करण
16. दयानन्द प्रकाश खण्ड-1	प्रकाशचन्द्र कविरत्न	प्रकाश साहित्य प्रकाशन, अजमेर	1972 ई.
17. दिग्विजयी दयानन्द	जेठमल सोढा	अजमेर	
18. महर्षि महिमा	लोकनाथ तर्कवाचस्पति	दिल्ली	
19. महर्षि दयानन्द का संक्षिप्त जीवनचरित	कस्तूरचंद घनसार	दिल्ली	1992 ई.
20. महर्षि महिमा	हरिशंकर शर्मा	आगरा	2010 वि.

क्र.	ग्रन्थ	लेखक	स्थान	वर्ष
21.	दयानन्द बावनी	दुलेराय काराणी	सोनगढ़	2011 वि.
22.	महर्षि दयानन्द	अनिरुद्ध शर्मा	बिजनौर	2022 वि.
23.	दयानन्दायन	पुरुषोत्तमदास	मथुरा	1984 ई.
24.	दयानन्द दिग्विजय काव्य	ब्रह्मानन्द सरस्वती		1965 ई.
25.	ऋषि गाथा	रमेशचन्द्र वर्मा	मैनपुरी	1975 ई.
26.	महर्षि दयानन्द जीवनगाथा	सत्यपाल पथिक	अमृतसर	1978 ई.
27.	महर्षि महिमा	कृष्णलाल कुसुमाकर	फीरोजाबाद	
28.	वंदना के स्वर	क्षेमचन्द्र सुमन (सं.)	दिल्ली	2032 वि.
29.	महर्षि दयानन्द क	जगदेव शांत	मेरठ	1991 ई.
30.	महर्षि दयानन्द सरस्वती	चन्द्रपालसिंह यादव मयंक	दिल्ली	1991 ई.
31.	दयानन्द चरित	मुन्नालाल मिश्र	हैदराबाद	1988 ई.
32.	दयानन्द गौरवगाथा	अभयराम शर्मा	गाजियाबाद	1995 ई.
33.	दयानन्द शतक	सत्यव्रत शर्मा अजेय	हरिद्वार	2052 वि.
34.	दयानन्द बयालीसा	स्वरूपानन्द सरस्वती	दिल्ली	2053 वि.
35.	दयानन्द सागर	रामचरण चूड़ामणि	आगरा	1997, 1999 ई.
36.	ऋषि दयानन्द कीर्तिगान नारायणप्रसाद बेताब	डा. भवानीलाल भारतीय	दिल्ली	1996

8. प्रमुख संदर्भ ग्रन्थ (स्वामी दयानन्द विषयक)

क्र.	ग्रन्थ	लेखक	स्थान	वर्ष
1.	उपदेश मंजरी (पूना प्रवचन)	युधिष्ठिर मीमांसक	बहालगढ़	2026 वि.
2.	उपदेश मंजरी (पूना प्रवचन)	भवानीलाल भारतीय	अजमेर	1976 ई.
3.	दयानन्द प्रवचन संग्रह अर्थात् पूना-बम्बई प्रवचन	युधिष्ठिर मीमांसक	बहालगढ़	2039 वि.
4.	ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार	मुन्शीराम जिज्ञासु	जालंधर	1966 वि.
5.	ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन	भगवद्दत्त	अमृतसर	2012 वि.
6.	ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापनों के परिशिष्ट	युधिष्ठिर मीमांसक	अमृतसर	2014 वि.
7.	ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन (4 भाग)	युधिष्ठिर मीमांसक	बहालगढ़	2037 वि. 2039 वि.
8.	स्वीकारपत्र	दयानन्द सरस्वती	अजमेर	1949 वि.
9.	ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास	युधिष्ठिर मीमांसक	अजमेर	2006 वि.
10.	दयानन्दशास्त्रार्थ संग्रह	रघुनन्दनसिंह निर्मल	दिल्ली	1969 ई.
11.	दयानन्दशास्त्रार्थ संग्रह	भवानीलाल भारतीय	बहालगढ़	1970 वि.
12.	ऋषि दयानन्द सरस्वती के शास्त्रार्थ और प्रवचन	भवानीलाल भारतीय व युधिष्ठिर मीमांसक	बहालगढ़	1982 ई.
13.	काशीशास्त्रार्थ का इतिवृत्त	आचार्य विश्वश्रवाः	लखनऊ	1969 ई.
14.	दयानन्द साहित्य सर्वस्व	भवानीलाल भारतीय	चण्डीगढ़	1983 ई.

9. संदर्भ ग्रन्थ (स्फुट जीवनचरित)

क्र.	ग्रन्थ	लेखक	स्थान	वर्ष
1.	विरजानन्द चरित	देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय	लखनऊ	1919 ई.
2.	विरजानन्दप्रकाश	भीमसेन शास्त्री	अमृतसर	1959 ई.
3.	कल्याणमार्ग का पथिक	श्रद्धानन्द संन्यासी	काशी	1981 वि.

4.	अमीरस सार	चमूपति सं.	लाहौर	1925 ई.
5.	पण्डिता रमाबाई का जीवनचरित्र	नार्थ इण्डिया क्रिश्चियन ट्रैक्ट एण्ड बुक सोसाइटी	इलाहाबाद	1965 ई.
6.	जीवनचरित श्री स्वामी कालूरामजी शर्मा	जयनारायण पोद्दार		1968 वि.
7.	योगिराज महात्मा कालूराम	भवानीलाल भारतीय		2031 वि.
8.	वीरवंशवर्णनम्	नगजीराज शर्मा	बनेड़ा	1985 वि.
10.	नवयुग निर्माता (विजयानन्द सूरि)	हंसराज शास्त्री	अम्बाला	2013 वि.
11.	कर्नल महाराजाधिराज सर प्रतापसिंह का जीवनचरित्र	जगदीशनारायणसिंह गहलोत	प्रयाग	1975 वि.
12.	महर्षि दयानन्द (भूमिका : डा. रघुवंश-पुनरुत्थान युग का द्रष्टा)	यदुवंशसहाय लोकभारती प्रकाशन	इलाहाबाद	1971 ई.

10. Reference Books (English)

1.	An Address by Col. H.S. Olcott.	Thompson C.E. College Press.	Roorki	1879
2.	Reply to the Extra Supplement to the Theosophist.	Pt. Umrao Singh	Roorki	1882
3.	Reflections and Reminiscences.		N.N. Gupta	
4.	The Life of Ramakrishna.	Romain Rolland	Almora	1954
5.	History of the Brahmo-Samaj.	Shivnath Shashtri	Calcutta	1974
6.	Arya Dharma.	K.W.Jones	Delhi	1976
7.	A free Translation in English of Swami Dayanand's answer to the objections made by certain reviewers of his Veda Bhashya.	Albert Press	Lahore	
8.	A Treatise on the Arya Samaj and the Theosophical Society.	Shyam Sunderlal	Mainpuri	1925
9.	Swami Dayanand and the Theosophical Society.	Shri Ram Sharma (Punjab-University Research - Bulletin)		1973
10.	Dayanand Commemoration Volume.	Harvilas Sarda, Paropkarini Sabha.	Ajmer	1933
11.	Shyamaji Krishna Varma. Life and Times of an Indian Revolutionary.	Indulal Yajnik	Bombay	1950
12.	Shyamji Krishna Varma.	Harvilas Sarda	Ajmer	1959
13.	Biographical Essays	Prof. Maxmuller.		
14.	English Works of Raja Ram Mohan Roy.	Panini Office	Allahabad	
15.	Political Thoughts of Swami Dayanand.	S. Malhotra	Delhi	1980

11. मराठी ग्रन्थ

1.	आमच्या आयुष्यांतील कांही आठवणी	रमाबाई रानाडे	पुणे	1953 ई.
2.	निबन्ध माला	विष्णु शास्त्री चिपलूणकर		1875 ई.
3	पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वती	गोपाल हरि देशमुख लोकहितवादी		1884 ई.

पाद टिप्पणियां

भूमिका

१. पंच कन्या विषयक श्लोक यह है—

अहिल्या द्रौपदी तारा कुन्ती मन्दोदरी तथा ।
पंच कन्या: स्मरेन्नित्यं महापातक नाशनम् ॥

२. लालमोहन घोष- १९०३ के मद्रास में सम्पन्न कांग्रेस अधिवेशन के सभापति ।

३. सुरेन्द्रनाथ बनर्जी- १८९५ के पूना में हुए कांग्रेस अधिवेशन के सभापति, प्रसिद्ध वक्ता तथा देश-भक्त ।

४. ऐनी बेसेन्ट (श्रीमती) १९१७ के कलकत्ता में सम्पन्न कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षा तथा थियोसोफी आन्दोलन की नेत्री ।

५. यह वाक्य कठोपनिपद् का था—

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चिद् ।
अजो नित्य: शाश्वतोऽयम्पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

६. उपनिषद् का यह वाक्य निम्न था—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमे वैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनूं स्वाम् ॥

कठ.उ. २/२३

७. पूरा नाम मोनियर विलियम्स- आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्रोफेसर तथा स्वामी दयानन्द के समकालीन ।

८. बिशननारायण दर-१९११ में कलकत्ता में सम्पन्न कांग्रेस अधिवेशन के सभापति ।

९. ब्रह्मसमाज से अभिप्राय है ।

१०. महारानी विक्टोरिया

११. ईस्ट इण्डिया कम्पनी से अभिप्राय है, जिसका मुख्य उद्देश्य व्यापार ही था ।

पाद टिप्पणियां-

प्रथम भाग- अध्याय-१

१. यह समय मथुरा में दण्डी विरजानन्द के निकट पहुंचने से कुछ पहले का है।

२. इसी अवधि में उन्होंने हरिद्वार में कुम्भ के मेले में पाखण्ड खण्डिनी पताका का उत्तोलन किया था।

३. काशी का यह प्रसिद्ध शास्त्रार्थ १६ नवम्बर १८६९ को हुआ था।

४. पूरा नाम गणेश रामचन्द्र शर्मा, ये जोधपुर (मारवाड़) राज्य में वैतनिक रूप से वैदिक धर्म प्रचारक थे।

५. पं. नरदेव शास्त्री के पिता पं. श्रीनिवासराव की प्रेरणा से कलम्ब (महाराष्ट्र) निवासी पं. भगवतीप्रसाद शुक्ल ने यह अनुवाद किया था।

६. स्वामी दयानन्द से कर्नल ऑल्काट की प्रथम भेंट मई १८७९ के आरम्भ में सहारनपुर में हुई थी।

७. थियोसोफिस्ट के जिन तीन अंकों में आत्म वृत्तान्त की ये तीन किस्तें छपीं वे अक्टूबर १८७९ दिसम्बर १८७९ तथा नवम्बर १८८० के थे।

८. पूरा नाम- श्रीयुत स्वामी दयानन्द सरस्वती महाराज की कुछ दिनचर्या।

इसका प्रकाशन पं. गणेशप्रसाद शर्मा ने १८८७ ई. में फर्रूखाबाद से किया था।

९. इस पत्र का नाम 'आर्यप्रकाश' था।

१०. उर्दू अनुवाद का नाम 'खुदनविशत स्वानेह ऊमरी' था तथा वह १८८८ ई. में लाहौर से प्रकाशित हुआ।

११. यह पत्र पं. गुरुदत्त के सम्पादन में लाहौर से प्रकाशित होता था।

१२. 'इस संवाददाता' से पं. लेखराम स्वयं को निर्दिष्ट करते हैं।

१३. स्वामी गोविन्दानन्द सरस्वती के स्वामी दयानन्द के भाई होने की पुष्टि अभी तक नहीं हो सकी है। यह उल्लेख संशयास्पद है। सम्भवत: किसी व्यक्ति ने पं. लेखराम के समक्ष स्वयं को स्वामी दयानन्द का भाई कहकर प्रस्तुत किया होगा।

१४. नवीन अनुसंधान से स्वामी दयानन्द के पिता का नाम श्री करसनजी लालजी तिवारी (त्रीवाड़ी) सिद्ध हुआ है।

१५.अ पं. ज्वालादत्त रचित निम्न श्लोक से इस तथ्य की पुष्टि होती है—

> क्षोणी भाहीन्दुभिरभियुते वैक्रमे वत्सरे यः।
> प्रादुर्भूतो द्विजकुले दक्षिणे देशवर्ये॥
>
> मूलेनासौ जननविषये शंकरेण परेण।
> ख्यातिं प्रापत् प्रथम वयसि प्रीतिदां सज्जनानाम्॥

१५.ब रामदास छबीलदास स्वामी दयानन्द के शिष्य पं. श्यामजी कृष्ण वर्मा के साले तथा सेठ छबीलदास लल्लूभाई के पुत्र थे।

१६. दिल्ली का यह दरबार एक जनवरी १८७७ को ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया द्वारा भारत की साम्राज्ञी की पदवी ग्रहण करने के उपलक्ष्य में वायसराय और गवर्नर जनरल लार्ड लिटन द्वारा आयोजित किया गया था।

१७. स्वामी दयानन्द के जीवनचरित के विख्यात गवेषक पं. देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने टंकारा को ही श्री महाराज का जन्म स्थान सिद्ध किया है।

१८. शुद्ध नाम औदीच्यपत्रिका।

पाद टिप्पणियां

द्वितीय भाग- अध्याय-१

१. देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय के अनुसार स्वामीजी का मथुरा आगमन १९१६ वि. में हुआ था।

२. गुजराती में वास्तविक शब्द है- अमारूं, तुमारूं।

३. विशेष द्रष्टव्य-देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय रचित विरजानन्दचरित का अनार्ष ग्रन्थ-खण्डन प्रकरण।

४. दुर्भिक्ष का प्रकोप सरकारी सूचना के अनुसार नवम्बर १८६० से अक्टूबर १८६१ तक रहा था।

५. ब्रजप्रदेश के इतिहासकार स्व. प्रभुदयाल मीतल के अनुसार इस सर्राफ का नाम खेतामल पुत्र नन्नूमल था।

६. देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय की सम्मति भिन्न है। स्वलिखित दण्डीजी के जीवनचरित में उन्होंने इस बात का प्रतिवाद किया है कि दण्डीजी ने स्वामी दयानन्द को कभी शारीरिक दण्ड दिया था।

७. अर्थात् पाठ ग्रहण करते समय।

८. श्रीमद्भगवद्गीता अ. १८ श्लोक ६६

९. कालान्तर में स्वामी दयानन्द ने ओम् के उच्चारण से पूर्व 'हरि' शब्द के प्रयोग का निषेध किया है। द्रष्टव्य-सत्यार्थप्रकाश: प्रथम समुल्लास।

१०. इस समय तक स्वामी दयानन्द वैष्णव भागवत के ही विरोधी थे। द्रष्टव्य-दयानन्द रचित 'भागवत खण्डन' का प्रारम्भिक अंश, जिसमें उन्होंने देवी-भागवत को व्यास कृत माना है और वैष्णव भागवत को प्रमत्तगीतवत् अशुद्ध कहा है।

११. संन्ध्या की यह पुस्तक ज्वालाप्रकाश प्रेस, आगरा से १९३० वि. (१८६३ ई.) में मुद्रित हुई थी।

१२. लक्ष्मीसूक्त ऋग्वेद के परिशिष्ट रूप में संकलित है, किन्तु इसे संहिता का भाग नहीं माना जाता।

१३. इसे सातारा (महाराष्ट्र) पढ़ें।

१४. धौलपुर से ग्वालियर आने के बीच में स्वामीजी का आबू जाना संदिग्ध है। धौलपुर से ग्वालियर सन्निकट है, जब कि आबू जाकर पुन: ग्वालियर पहुंचना सम्भव प्रतीत नहीं होता।

१५. देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय के अनुसार ग्वालियर में स्वामीजी रामकुई के निकट महारुद्र मोटेश्वर महादेव के मंदिर में ठहरे थे। इसके समीप ही गंगा मंदिर है।

१६. जोधपुर के उपनगर महामंदिर नामक मोहल्ले में नाथ सम्प्रदाय की प्रमुख पीठ स्थापित है।

१७. राजस्थान में दाधीच (दधीचि ऋषि की सन्तान) ब्राह्मणों को 'दायमा' कहा जाता है।

१८. यह मंदिर राजराजेश्वर महादेव का है।

१९. मैथिल पण्डित का नाम था राजीवलोचन ओझा। ये महामहोपाध्याय पं. मधुसूदन ओझा के चाचा थे।

२०. इनका राज्यारोहण १८३४ ई. में तथा निधन १८७९ ई. में हुआ।

२१. यह भागवत खण्डन के नाम से प्रसिद्ध स्वामी दयानन्द की प्रथम संस्कृत रचना है । इसका मुद्रण १९२३ वि. में ज्वालाप्रकाश प्रेस आगरा में हुआ । इस समय तक यह पुस्तक सम्भवतः पाण्डुलिपि के रूप में ही थी ।

२२. अजमेर का प्रसिद्ध दौलतबाग । इसे आज कल सुभाष उद्यान का नाम दे दिया गया है ।

२३. अघोरी के लिये प्रयुक्त शब्द ।

२४. चक्रांकितों ने यह अभिप्राय ऋग्वेद (९.८३.१.) के निम्न मंत्र का वास्तविक अर्थ न समझ कर लिया है—

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत्समासत ॥

२५. पुष्कर के अधिकांश पण्डे स्वयं को 'पाराशर' गोत्रोत्पन्न मानते हैं ।

२६. मारवाड़ (जोधपुर) राज्य के राजपूत जागीरदारों के प्रधान कर्मचारी को 'कामदार' नाम से पुकारा जाता था ।

२७. वास्तविक नाम जोशी रूपराम ।

२८. शुद्ध नाम मोरीजा

२९. शुद्ध नाम मूंडवा (जिला नागौर)

३०. अजमेर जिले के अन्तर्गत ब्यावर के समीप का प्रदेश मेरवाड़ा कहलाता है । यहां मेर जाति के लोग रहते हैं ।

३१. अजमेर का एक प्रसिद्ध स्थान ।

३२. राजस्थान के दिगम्बर जैन 'सरावगी' कहलाते हैं । यह श्रावक का अपभ्रंश है ।

३३. शाहपुरा (जिला भलवाड़ा) में रामस्नेही मत की प्रधान पीठ है ।

३४. अजमेर के अन्तर्गत एक जमींदारी ।

३५. शुद्ध नाम सुख सागर- यह एक कुंआ है । इसके समीप साधु संन्यासियों के निवासार्थ कुछ मकान बने हैं ।

पाद टिप्पणियां

अध्याय-१

१. यजुर्वेद का रुद्रदेवता विषयक १६वां अध्याय तथा तदन्तर्गत रुद्र देवता वाले मंत्र ।

२. उत्तर भारत में शिवरात्रि फाल्गुन मास के कृष्ण पक्ष में मनाई जाती है किन्तु गुजरात में यह माघ मास में मनाया जाती है ।

३. सर सैयद ने 'इल्हाम' शब्द का प्रयोग किया था ।

४. इस भाई का नाम वल्लभजी था ।

५. इस बहिन का नाम प्रेम बाई था ।

६. गुजरात प्रान्त में गरबा नृत्य बहुप्रचलित मनोरंजन है । यह न तो कत्थकों का नृत्य था और न भांडों का नाच ।

७. स्वामीजी की माता का वास्तविक नाम अज्ञात है । कहीं पर इन्हें अमृत बेन कहा गया है ।

८. पं. भीमसेन शास्त्री (कोटा) ने अपने अनुसंधान द्वारा स्वामीजी की जन्म तिथि फाल्गुन कृष्णा १० सं. १८८१ वि. निर्धारित की थी । डा० ज्वलन्तकुमार शास्त्री भी इसकी पुष्टि करते हैं । स्व. मामराजसिंह ने पं. केशवराम विष्णुलाल पण्डया के किसी हस्तलेख (स्वामीजी की जीवनी) के आधार पर जन्म तिथि भाद्रपद शुक्ला ९ सं. १८८१ वि. बताई है ।

९. सायला-जिला सुरेन्द्रनगर, यहां लाला भक्त योगी का आश्रम था ।

१०. वास्तविक नाम सिनोर । इसे राजस्थान का चित्तौड़ समझना भूल होगी ।

११. अर्बुदा भवानी आबू पर्वत की एक चोटी का ही नाम है, जहां देवी का मंदिर है । आबू में स्वामी जी की भेंट भवानीगिरि नामक एक संन्यासी से हुई थी । इस प्रकार अर्बुदा भवानी पर्वत शिखर तथा भवानीगिरि योगी का नाम है ।

१२. शुद्ध नाम माणा या माना । आत्मकथा के अनेक संस्करणों में इसे 'मंग्रम' के रूप में उल्लिखित किया गया है । इस त्रुटि का कारण यह रहा कि थियोसोफिस्ट में छपे अंग्रेजी अनुवाद में इसे Mana Gram, (माना ग्राम) के रूप में लिखा गया था । इस 'मानाग्राम' को अंग्रेजी में लिखित सामासिक शब्द मान कर हिन्दी अनुवादकों ने इसे "मंग्रम" मान लिया ।

१३ शुद्ध नाम वसुधारा । उर्दू लिपि की भ्रष्टता के कारण हुई त्रुटि ।

१४. शुद्ध नाम शिवसंहिता ।

१५. शुद्ध नाम घेरण्ड संहिता ।

१६. शुद्ध नाम श्रृंगीरामपुर ।

१७. शुद्धनाम विन्ध्याचलेश्वर ।

१८. शुद्ध नाम आसौज (आश्विन) असौज या अस्सूज पंजाबी उच्चारण है ।

१९. अंग्रेजी अनुवाद में इसे भूमानन्द सरस्वती लिखा है ।

१९.ए चांण्डालगढ़ नाम चुनार (जिला मिर्जापुर) के लिये प्रयुक्त हुआ है ।

२०. थियोसोफिस्ट में छपा वृतान्त यहीं तक है । आगे के दो वाक्य लेखक ने घटनाओं के तारतम्य के लिये लिखे हैं, जो सर्वथा उचित हैं ।

२१. दण्डी विरजानन्द का जन्म १८३५ वि. (१७७८ ई.) में हुआ था ।

२२. जोशी अमरलाल स्वामी दयानन्द के सजातीय औदीच्य ब्राह्मण थे । विशेष परिचय के लिये द्रष्टव्य-सम्पादक लिखित महर्षि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी ।

२३. इसे यों पढ़ें- माध्व (पण्डित) हनुमन्ताचार्य ।

२४. हनुमन्ताचार्य

२५. पूना प्रवचन में पाठ इस प्रकार है- उसने एक बार वीर के अर्थ कबीर किये थे ।

२६. पूना प्रवचन में इस प्रकार का पाठ मिलता है- "और एक दिन मेरी पर्णकुटी के द्वार पर 'निगम कल्पतरोर्गलितं फलम्' भागवत की अपेक्षा कुछ अधिक नहीं, वेद भी भागवत से नीचे (घटिया) है, ऐसा बकने लगा ।"

२७. शुद्ध नाम- रामघाट ।

२८. स्वामी दयानन्द अपने प्रतिद्वन्द्वी की पुराण प्रतिपादित बातों को 'गप्पाष्टकम् मनुष्याणां कोलाहलः' कह दिया करते थे ।

२९. शुद्ध नाम माधवचन्द्र चक्रवर्ती । स्वामीजी से इनकी भेंट प्रयाग के तीसरे प्रवास के समय हुई थी ।

३०. वेद संहिताओं में प्रतिमा शब्द निम्न स्थलों पर मिलते हैं—

यजुर्वेद १४-१८, १५-६५ तथा ३३-३ ऋग्वेद मं. १० सूक्त- १३० मंत्र-३, अथर्ववेद काण्ड ८-९-६ तथा ९-४-२

३१. वस्तुतः पूना में यह प्रवचन देने से पूर्व तक स्वामीजी पांच बार काशी गये थे ।

उनका यह काशी आगमन काल निम्न वर्षों में हुआ था ।

प्रथम बार- आश्विन १९१३ वि. सितम्बर १८५६
द्वितीय बार- कार्तिक १९२६ वि. अक्टूबर १८६९
तृतीय बार- चैत्र १९२७ वि. अप्रैल १८७०
चतुर्थ बार- फाल्गुन १९२८ वि. फरवरी-मार्च १८७२
पंचम बार- ज्येष्ठ १९३१ वि. मई १८७४

३२. स्वामीजी २० अक्टूबर १८७४ को बम्बई आये ।

३३. अभिप्राय वल्लभाचार्य प्रवर्तित पुष्टिमार्ग से है ।

३४. पूना में आत्मकथा-प्रवचन ४ अगस्त १८६५ को ही दिया था । इस समय स्वामीजी ने अपनी आयु के ५० वर्ष पूरे किये थे ।

पाद टिप्पणियां

अध्याय २

१. कुम्भ के समय स्वामी दयानन्द ने सप्तसरोवर मार्ग पर जहां अपना डेरा लगाया था वह स्थान आजकल 'मोहन-आश्रम' के नाम से प्रसिद्ध है।

२. अभिप्राय यह है कि रुद्राक्ष धारण से स्वामी दयानन्द पुण्य प्राप्ति नहीं मानते थे, किन्तु तब तक संन्यासियों में प्रचलित मर्यादा के अनुसार ही इसे धारण करते थे। कालान्तर में तो उन्होंने इसका सर्वथा त्याग ही कर दिया था।

३. वि. सं. १९२४ का कुम्भ (सन् १८६७ ई.)

४. दसनामी संज्ञा से प्रसिद्ध संन्यासियों का यह विभाजन शंकराचार्य से परवर्ती काल में हुआ। यह इस प्रकार है- गिरि, पुरी, भारती, सरस्वती, वन, पर्वत, अरण्य, आश्रम, तीर्थ, सागर।

५. मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत दुर्गासप्तशती।

६. कविकुमार के नाम से प्रसिद्ध ठाकुर शेरसिंह ने स्वामी दयानन्द विषयक अपने संस्मरणों को लिपिबद्ध किया था। प्रस्तुत जीवनचरित के सम्पादक ने उनका सम्पादन कर 'कर्णवास में ऋषि दयानन्द के ऐतिहासिक संस्मरण' शीर्षक से पुस्तकाकार प्रकाशित कराया है।

७. बनखण्डी महादेव का मंदिर।

८ उत्तराखण्ड के अल्मोड़ा, गढ़वाल आदि जिलों के ब्राह्मण 'पर्वती' कहलाते हैं।

९. ठाकुर भोमसिंह, कुं. सुखलाल आर्यमुसाफिर के पिता थे।

१०. मनुस्मृति में प्रचलित पाठ इस प्रकार है—

धर्म एवं हतो हन्ति धर्मोरक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ॥ ८.१५.

११. शुद्ध नाम पचौरी

१२. शुद्धनाम चासी (जिला अलीगढ़)

१३. मनुस्मृति- अ. ४-१३८

१४. सती की मढ़ी (स्मारक)

१५. अष्टाध्यायी १.१.२७

१६. गढ़मुक्तेश्वर।

१७. पं. भूमित्र शर्मा कालान्तर में आर्यसमाज के उपदेशक बने। उन्होंने उपनिषदों तथा गीता पर टीकायें लिखी हैं।

१८. आर्यसमाज के प्रसिद्ध उपदेशक कुं. सुखलाल आर्य मुसाफिर के पिता।

१९. रामानुज मतानुयायी अपने ललाट पर जो तिलक लगाते हैं, वह ऊर्ध्वपुण्ड्र कहलाता है। त्रिपुण्ड्र शैव लगाते हैं।

२०. रंगाचार्य के लिये प्रयुक्त व्यंग्यात्मक शब्द।

२१. कम्पनी से अभिप्राय 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' से है जो १८५८ तक भारत का शासन करती रही।

२२. 'सिंधिया' से अभिप्राय है। ग्वालियर नरेश सिंधिया ने १८५७ में अंग्रेजों का साथ दिया था।

२३. पूरा श्लोक इस प्रकार है—

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्र रुद्र मरुत: स्तुन्वन्ति दिव्यै: स्तवै:।
वेंदै: सांग पदक्रमोपनिषदै: गायन्ति यं सामगा:।
ध्यानावस्थित तद्‌गतेनमनसा पश्यन्ति यं योगिनो।
यस्यान्तन्न विदु:सुरासुरगणा: देवाय तस्मै नम:॥ भागवत

२४. प्रामाणिक ग्रन्थों से अभिप्राय है।

२५. तुलसी कृत 'रामचरितमानस'।

२६. सारस्वत सूत्रों पर सिद्धान्तचन्द्रिका नामक व्याख्या का लेखक रामाश्रम, कुछ विद्वानों के मत से भट्टोजि दीक्षित का ही पुत्र था।

२७. पं. टीकाराम सुप्रसिद्ध पं. अखिलानन्द शर्मा के पिता थे। कर्णवास के ठाकुरों से स्वामीजी का परिचय इन्होंने ही कराया था।

२८. स्वामीजी का अतरौली आगमन अगहन (मार्गशीर्ष) १९२४ वि. में हुआ था।

२९. छलेसर में दूसरी बार का यह आगमन २० दिसम्बर १८७३ को हुआ था।

३०. उर्दू लिपि की भ्रष्टता के कारण यह नाम त्रुटित प्रतीत होता है।

३१. 'अखाड़े के मल्ल' अर्थात् स्वयं को पहलवान मानने वाले।

३२. भागवत स्कन्ध १० अध्याय।

३३. लखना के इन्हीं रावसाहब उल्लेख सत्यार्थप्रकाश के ११वें समुल्लास में निम्न प्रकार से आता है—"राजा भोज के राज्य में व्यासजी के नाम से मार्कण्डेय और शिवपुराण किसी ने बनाकर खड़ा किया था। उसका समाचार राजा भोज को (विदित) होने से उन पण्डितों को हस्तछेदनादि दण्ड दिया, और उनसे कहा कि जो काव्यादि ग्रन्थ बनावे, तो अपने नाम से बनावे ऋषि मुनियों के नाम से नहीं। यह बात राजा भोज के बनाये "संजीवनी" नामक इतिहास में लिखी है जो कि ग्वालियर राज के "भिण्ड" नामक नगर के तिवारी ब्राह्मणों के घर में है। जिसको लखुना के रावसाहब और उनके गुमाश्ते रामदयाल चौबे जी ने अपनी आंख से देखा है।"

३४. बदरिया-जिला एटा का एक ग्राम।

३५. स्वामी दयानन्द को लोग 'कोलाहल स्वामी' के नाम से पुकारते थे ।

३६. मनुस्मृति अ. २.३९

३७. उपलब्ध मनुस्मृति में यह श्लोक का इस प्रकार है—

स्वाध्यायं भावयेत् पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि ।
आख्यानानानीतिहासाश्च पुराणानि खिलानि च ॥
मनु. ३. २३२

३८. मध्व सम्प्रदाय से अभिप्राय है ।

३९. देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय के अनुसार इस स्थान का नाम सरदोल है । पं. महेशप्रसाद ने इसे सरावल कहा है ।

४०. प्रामाणिकता ।

४१. पं. लेखराम ने स्वामी कैलाशपर्वत रचित 'सत्यधर्म संरक्षिणी' नामक इस ग्रन्थ को स्वयं देखा था । काश, इस पुस्तक की मूल प्रति सुरक्षित रह पाती, तो दयानन्द-जीवन के अध्येताओं के लिये वह विशेष उपयोगी सिद्ध होती ।

४२. स्वामीजी का द्वितीय बार का सोरों आगमन १९२५ वि. में हुआ था । इसी समय उनकी स्वामी कैलाशपर्वत से भेंट हुई थी ।

४३. ये विरजानन्द स्वामी दयानन्द के गुरु दण्डी विरजानन्द से भिन्न थे ।

४४. शुद्ध नाम नरदौली ।

४५. कायमगंज की दोनों यात्रायें १८६७ ई. तथा १८६८ ई. में हुई थीं ।

४६. वस्तुतः यह स्वामी जी का द्वितीय बार का आगमन था ।

४७. तैत्तिरीयोपनिषद् भृगुवल्ली-७

४८. रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य आदि आचार्यान्त नामक वैष्णव मत के लोगों को प्रायः लोग "आचारी" कह कर पुकारते हैं ।

४९. वास्तविक नाम शुकरुल्लापुर ।

५०. उर्दू लिपि के कारण त्रुटित और अस्पष्ट ।

५१. वास्तविक नाम शुकरुल्लापुर ।

५२. स्वामी दयानन्द के प्रथम जीवनचरित 'दयानन्द दिग्विजयार्क' (भाग-३) के लेखक तथा फर्रूखाबाद में स्कूलों के सब डिप्टी इन्सपेक्टर । मूलतः महाराष्ट्र के निवासी थे ।

५३. वस्तुतः यह फर्रूखाबाद की तीसरी यात्रा थी ।

५४. इस व्यवस्था पत्र का मूल पाठ आगे शास्त्रार्थ प्रकरण में देखें ।

५५. यह महाराज की फर्रूखाबाद की द्वितीय यात्रा थी ।

५६. गीता अ. १३ श्लोक २

५७. पं. लेखराम ने स्वामी कैलाशपर्वत लिखित 'सत्यधर्म संरक्षिणी' पुस्तक की प्रति, जो स्वामी दयानन्द के मन्तव्यों के खण्डन में लिखी गई थी, इन्हीं के पास देखी थी ।

५८. द्रष्टव्य- फर्रूखाबाद का इतिहास- पं. गणेशप्रसाद शर्मा लिखित ।

५९. वस्तुतः जून जुलाई १८६९ में किसी समय स्वामीजी कन्नौज पहुंचे थे ।

६०. मनुस्मृति अ. ९.२८५.

६१. गीता अ. ३-१३.

६२. मनुस्मृति में पाठ इस प्रकार है- वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः । १२-१२

६३. कानपुर का निकटवर्ती बिठूर जो नाना साहब् पेशवा की राजधानी थी ।

६४. शुद्ध नाम लक्ष्मण शास्त्री ।

६५. मनुस्मृति का यह प्रासंगिक श्लोक निम्न है—

संक्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकः ।
प्रतिकुर्याच्च तत्सर्वं पंच दद्याच्छतानि च ॥

६६. स्वामी दयानन्द प्रोक्त आठ गप्पें निम्न हैं—

१. मनुष्यकृताः सर्वे ब्रह्मवैवर्तपुराणादयो ग्रन्थाः प्रथमम् गप्पम् ।

२. पाषाणादि पूजनं देव बुद्ध्या द्वितीयं गप्पम् ।

३. शैव शाक्तवैष्णव गाणपत्यादयः सम्प्रदायास्तृतीयं गप्पम् ।

४. तन्त्र ग्रन्थोक्तो वाममार्गश्चतुर्थ गप्पम् ।

५. भंगादि नशाकरणम् पंचम् गप्पम् ।

६. परस्त्रीगमनं षष्ठं गप्पम् ।

७. चौरीति सप्तम् गप्पम् ।

८. कपटच्छलाभिमानानृतभाषणमष्टमं गप्पम् ।
एतान्यष्टौ गप्पानि त्यक्तव्यानि ।

६७. स्वामी दयानन्द प्रतिपादित अष्ट सत्य निम्न हैं ।

१. ऋग्वेदादीन्येकविंशति शास्त्राणि परमेश्वरर्षिरचितानि प्रथमं सत्यम् ।

२. ब्रह्मचर्याश्रमेण गुरुसेवास्वधर्मानुष्ठानपूर्वकं वेदानां पठनं द्वितीयं सत्यम् ।

३. वेदोक्त वर्णाश्रमस्वधर्म संध्यावंदनाग्निहोत्राद्यनुष्ठानं तृतीयं सत्यम् ।

४. यथोक्तदारादिगमनम् पंचमहायज्ञानुष्ठानमृतुकालस्वदारोपगमनं श्रौतस्मार्ताचाराद्यनुष्ठानं चतुर्थं सत्यम् ।

५. शमदमतपश्चरणयमादिसमाध्यन्तोपासना सत्संगपूर्वकं वानप्रस्थाश्रमानुष्ठानं पंचमं सत्यम् ।

६. विचारविवेकवैराग्यपराविद्याभ्याससंन्यासग्रहणपूर्वकं सर्वकर्मफलत्यागाद्यनुष्ठानं षष्ठं सत्यम् ।

७. ज्ञानविज्ञानाभ्यां सर्वानर्थजन्ममरणहर्षशोककामक्रोधलोभमोहसंगदोषत्यागानुष्ठानं सप्तमं सत्यम् ।

८. अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशतमोरजः सत्त्वसर्व क्लेशनिवृत्तिः पंचमहाभूतातीतमोक्षस्वरूप-स्वाराज्यप्राप्तिः अष्टमं सत्यम् । एतान्याष्टौ सत्यानि गृहीतव्यानि ।

६८. वस्तुतः उस समय महाराज की आयु ४५ वर्ष की थी ।

६९. कोतवाल रघुनाथप्रसाद बुन्देलखण्ड के निवासी सनाढ्य ब्राह्मण थे ।

७०. उत्तर भारत में दशहरा से पूर्व रामलीला मनाई जाती है । इस प्रकार रामलीला में रामजन्म प्रदर्शित करने वाला दिन राम-नवमी कहलाता है ।

७१. महाभाष्य १.१.१.

७२. पं. शालिग्राम, शास्त्री-पं. राजाराम शास्त्री के शिष्य थे । कालान्तर में स्वामी दयानन्द के प्रशंसक और अनुयायी बन गये थे । परवर्ती काल में गवर्नमेंट कालेज अजमेर में संस्कृत के हैडपण्डित बने । न्याय दर्शन पर इनकी न्यायतत्त्वप्रबोधिनी संस्कृत टीका १९५० वि. में छपी थी ।

७३. शुद्ध नाम ढुंढिराज शास्त्री धर्माधिकारी ।

७४. दामोदर शास्त्री, भारद्वाज (१८४७-१९०९ ई.) महाराष्ट्र ब्राह्मण पं. बालकृष्ण भट्ट के पुत्र थे । १८७९ ई. में काशी के राजकीय संस्कृत कालेज में अध्यापक नियुक्त हुए ।

७५. पं रामकृष्ण शास्त्री (अपर नाम तात्या) (१८४५-१९१९ ई.) नागपुर निवासी कोंकणी ब्राह्मण महादेव भट्ट के पुत्र थे । पं. बालशास्त्री इनके गुरु थे । १८८० से १९१९ तक काशी के राजकीय संस्कृत कालेज में व्याकरण के अध्यापक रहे ।

७६. काशी नरेश महाराजा ईश्वरीनारायण सिंह (१८२१-१८८९ ई.) काशी नरेश महाराजा उदितनारायण सिंह के ज्येष्ठ पुत्र थे । १८३५ में ये काशी राज्य की गद्दी पर बैठे । काशी के राजा गौतम गोत्रीय भूमिहार ब्राह्मण हैं ।

७७. स्वामी विशुद्धानन्द (१८२०-१८९८ ई.) उत्तरप्रदेश के सीतापुर जनपद के बाड़ी ग्राम में जन्मे स्वामी विशुद्धानन्द का जन्म नाम वंशीधर था । काशी में अहिल्याबाई घाट पर निवास करने वाले गौड़ स्वामी नामक संन्यासी से इन्होंने चतुर्थाश्रम की दीक्षा ली और १८५९ में उनकी मृत्यु के पश्चात् उन्हीं की गद्दी पर बैठे । मीमांसा तथा वेदान्त के अच्छे पण्डित थे । स्वामी दयानन्द उन्हें अपना प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी मानते थे ।

७८. पं. बालशास्त्री (१८३९-१८८२ ई.) महाराष्ट्रीय चित्तपावन ब्राह्मण थे। इनके पिता पं. गोविन्द भट्ट कोंकण से आकर काशी में रहने लगे थे। इनका वास्तविक नाम विश्वनाथ था, किन्तु ये बालशास्त्री नाम से ही विख्यात हुए। १८६४ में काशी के राजकीय संस्कृत कालेज में सांख्य दर्शन के प्राध्यापक के पद पर इन्हें प्रिंसिपल ग्रिफिथ ने नियुक्त किया। पं. राजाराम शास्त्री इनके गुरु थे। स्वामी दयानन्द इनकी विद्या का आदर करते थे।

७९. पं. जयनारायण तर्क वाचस्पति-पं. सत्यव्रत सामश्रमी ने अपने काशी शास्त्रार्थ-विवरण में इनका उल्लेख जयनारायण तर्क-पंचानन के रूप में किया है। काशी नरेश की सभा में जयनारायण तर्क-रत्न नामक एक विद्वान् विद्यमान थे। यही शास्त्रार्थ में विद्यमान रहे होंगे, ऐसी धारणा डा० ज्वलन्तकुमार शास्त्री ने व्यक्त की है।

८०. पं. कैलाशचन्द्र शिरोमणि- (१८३०-१९०८ ई.) बंगाल के वर्धमान जनपदान्तर्गत धात्री ग्राम में पं. घनश्याम सार्वभौम के यहां उत्पन्न हुए। नवद्वीप (नदिया) में रहकर न्यायशास्त्र का विशद् अध्ययन किया। काशी में प्रिंसिपल ग्रिफिथ ने इन्हें बनारस संस्कृत कालेज में न्याय का अध्यापक नियुक्त किया जहां ये ३९ वर्ष तक कार्य करते रहे।

८१. पं. गणेश श्रोत्रिय-कालान्तर में इन्हें स्वामीजी ने काशी की स्वस्थापित संस्कृत पाठशाला में अध्यापक नियुक्त किया था। स्वामी विशुद्धानन्द भी इनके वैदिक वैदुष्य का लोहा मानते थे।

८२. उदासीन सम्प्रदाय के पं. जवाहरदास उदासीन आचार्य आत्माराम के शिष्य तथा स्वामी दयानन्द के सुहृद थे।

८३. भरतपुर के युवराज थे, जो काशी में निर्वासित जीवन व्यतीत कर रहे थे। शास्त्रार्थ के बाद ये पादरी रुडोल्फ हॉर्नले के साथ स्वामीजी से मिलने गये।

८४. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को ही यहां बाबू हरीचन्द गुप्त के नाम से उल्लिखित किया गया। बाबू गोपालचन्द्र उर्फ गिरिधरदास के पुत्र हरिश्चन्द्र का जन्म १८५० ई. में तथा निधन १८८५ ई. में हुआ। ये हिन्दी के प्रसिद्ध कवि, लेखक, नाटककार, पत्रकार तथा गद्य-निर्माता के रूप में जाने जाते हैं। प्रारम्भ में स्वामी दयानन्द के विरोधी रहे, किन्तु कालान्तर में उनके समाज और देश के प्रति समर्पण भाव को देखकर प्रशंसक बन गये। स्व. सम्पादित 'कविवचन-सुधा' मासिक के सम्पादक-मण्डल में स्वामी दयानन्द को रखा तथा इसमें स्वामीजी लिखित अद्वैतमतखण्डन ग्रन्थ को प्रकाशित किया।

८५. बाबू गोकुलचन्द्र भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के छोटे भाई थे।

८६. सुप्रसिद्ध दार्शनिक डा० भगवानदास के पिता तथा प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ बाबू श्रीप्रकाश के पितामह।

८७. काशी शास्त्रार्थ के समय कितने लोग उपस्थित थे, इस पर प्रत्यक्ष-दर्शियों में मतभेद था जो स्वाभाविक ही है। पं. शालिग्राम के अनुसार उपस्थिति लगभग ५० हजार थी। लाला माधोदास २०-२५ हजार लोगों का उपस्थित रहना मानते हैं। पं. हृदयनारायण कौल, वकील कानपुर ने भी उपस्थित लोगों की संख्या इतनी ही बताई थी। पं. केशव शास्त्री के अनुसार उपस्थिति लगभग ४० हजार थी।

८८. वास्तविक नाम प्रमदादास मित्र, काशी निवासी प्रसिद्ध बंगाली संस्कृत विद्वान्। काशी संस्कृत कालेज में अंग्रेजी पढ़ाते थे। १९०० ई. में मृत्यु हुई।

८९. स्वामीजी के हाथ में ये पत्रे पं. माधवाचार्य ने दिये थे।

९०. पं. ताराचरण भट्टाचार्य तर्क रत्न, काशी नरेश के सभापण्डित थे। ये मूलतः हुगली जिले के भाटपाड़ा (भट्ट पल्ली) ग्राम के निवासी थे। न्यायशास्त्र के विद्वान् के रूप में उनकी ख्याति थी। १८७३ ई. में हुगली में प्रतिमापूजन पर उनका स्वामी दयानन्द से शास्त्रार्थ भी हुआ था।

९१. प्रासंगिक मन्त्र निम्न है—

न तस्य प्रतिमाऽस्ति यस्य नाम महद्यशः।
हिरण्यगर्भ इत्येष मा मा हिंसीदित्येषा यस्मान्न जात इत्येषः॥

(यजुः ३२.३.)

९२. यज्ञसमाप्तौ दशमेऽहनि किंचित पुराणपाठमाचक्षीत॥

९३. गृह्य सूत्र के ये पन्ने पं. माधवाचार्य ने स्वामीजी को दिये थे।

९४. इस दुर्लभ पुस्तक की एक प्रति महाराजा जयपुर के व्यक्तिगत पुस्तक संग्रह पोथीखाने में उपलब्ध है। पं. युधिष्ठिर मीमांसक ने इसे वेदवाणी के जनवरी १९८८ के दयानन्द विशेषांक में यथावत् छाप दिया है। अब यह ग्रन्थाकार में भी उपलब्ध है।

९५. स्वामी दयानन्द से अभिप्राय है।

९६. यह कहना सत्य नहीं है कि महाराजा काशी ने कोलाहल करने वालों को रोका था।

९७. पं. नवीनचन्द्र राय (पंजाब ब्रह्मसमाज के नेता) द्वारा सम्पादित ज्ञानप्रदायिनी-पत्रिका के इस मत को लाहौर के सनातनी पत्र मित्रविलास ने उद्धृत किया था।

९८. यह पत्रिका पं. सत्यव्रत सामश्रमी द्वारा सम्पादित की जाती थी। इस पत्रिका में प्रकाशित काशी शास्त्रार्थ का विवरण एवं उसकी आलोचना के लिये देखें- दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह परिशिष्ट-२ (डा० भवानीलाल भारतीय द्वारा सम्पादित)

९९. स्वामी दयानन्द ने अद्वैतमतखण्डन के नाम से इसी पुस्तक को लिखा था, जो १९२७ वि. (१८७० ई.) में काशी से ही छपी थी। सम्प्रति यह पुस्तक उपलब्ध नहीं है।

१००. पादरी एथरिंगटन लिखित हिन्दी के व्याकरण ग्रन्थ भाषा भास्कर में अपादान कारक के उदाहरण रूप में लेखक ने स्वामी दयानन्द का उल्लेख किया था।

१०१. वेदान्त दर्शन को ही शारीरक सूत्र कहा जाता है। कोष्ठक में "भाष्य" का प्रयोग अनावश्यक है।

१०२. यह मन्त्र निम्न है—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय॥

यजु. २६.२.

१०३. स्वामी दयानन्द उपर्युक्त मन्त्र द्वारा मनुष्य मात्र का वेदों के पठन पाठन में अधिकार मानते हैं, जब कि यजुर्वेद की कर्मकाण्डीय याज्ञिक व्याख्या करने वाले भाष्यकारों के अनुसार यह मन्त्र यजमान द्वारा यज्ञान्त में बोलने में विनियुक्त किया जाता है । उनका विनियोग मन्त्रार्थ से संगत नहीं है ।

१०४. पं. सत्यव्रत सामश्रमी (१८४६-१९११) पं. सामश्रमी के पिता श्रीराम भट्टाचार्य काशी में रहते थे । इनका अध्ययन पं. गौड़ स्वामी के शिष्य पं. विश्वरूप से हुआ । काशी शास्त्रार्थ के समय ये अन्नपूर्णा मंदिर के पीछे के एक मकान में छात्रों को वेद और व्याकरण पढ़ाते थे । कालान्तर में ये कलकत्ता चले गये और बंगाल ऐशियाटिक सोसाइटी में काम किया ।

१०५. 'दयानन्द पराभूति' तथा 'दुर्जन मुख मर्दन' नामक दो पुस्तकें काशी नरेश के यंत्रालय से छपी थीं । ये १९२६ वि. में ही प्रकाशित हुई थीं । सम्प्रति दोनों उपलब्ध नहीं होतीं । दुर्जनमुखमर्दन १९ पृष्ठों की थी । इसे पं. लेखराम ने देखा था ।

१०६. ज्ञानप्रदायिनी पत्रिका लाहौर से प्रकाशित होती थी ।

१०७. दुर्गा कुण्ड से अभिप्राय है ।

१०८. हिन्दू पैट्रियट- १७ जनवरी १८७० ई.

१०९. दण्डी विरजानन्द नेत्रहीन होने के कारण मथुरा और उसके निकटवर्ती ब्रज प्रदेश में सूरदास स्वामी के नाम से जाने जाते थे ।

११०. स्वामीजी के पिता उन्हें सिद्धपुर से लौटाने के लिये यत्नशील हुए थे किन्तु वे अपने उद्देश्य में कृतकार्य नहीं हो सके । क्रिश्चियन इन्टेलिजेंसर नामक पत्र में उद्धृत इस प्रसंग से यह अनुमान होता है कि मार्च १८७० तक स्वामीजी के जीवन के आरम्भिक काल की अनेक घटनायें लोगों को ज्ञात हो गई थीं ।

१११. क्रिश्चियन इन्टेलिजेंसर की यह टिप्पणी रुडोल्फ हॉर्नले ने लिखी थी ।

११२. लाला पन्नालाल के आर्थिक सहयोग से यह पाठशाला स्थापित की गई थी ।

११३. काशी शास्त्रार्थ १६ नवम्बर १८६९ को हुआ था ।

११४. प्रयाग के माघी कुम्भ (१९२६ वि.) में सम्मिलित होने के लिये स्वामीजी काशी से मिर्जापुर होकर वहां पहुंचे थे ।

११५. ईसाई पादरी का यह कथन मिथ्या है कि स्वामीजी ६ दर्शनों को १८ पुराणों के तुल्य झूठा मानते थे । वह स्वयं इसके पूर्व ही स्वामीजी द्वारा परिगणित प्रामाणिक शास्त्रों में वेदान्त, योग तथा न्याय (वाकोवाक्य) की चर्चा कर चुका है ।

११६. काशी शास्त्रार्थ की वास्तविक तिथि १६ नवम्बर १८६९ थी ।

११७. विशुद्धानन्द द्वारा प्रस्तुत यह सूत्र निम्न था ।

रचनानुपपत्तेश्च नानुमानम् । वेदान्त २.२.१.

११८. यह तिथि सौर गणना के अनुसार है ।

११९. यह पुस्तक सम्प्रति अनुपलब्ध है ।

१२०. इससे पूर्व काशी के द्वितीय आगमन के प्रसंग पं. लेखराम स्वामीजी का काशी में आना कार्तिक कृष्णा २ या ३ (२२ या २३ अक्टूबर १८६९) को साधु जवाहरदास की साक्षी से बता चुके हैं । वस्तुतः आसौज बदि को स्वामीजी काशी राज्य की राजधानी रामनगर में आये थे ।

१२१. काशी का यह निवास चैत्र १८२७ वि. से ज्येष्ठ १८२७ वि. तक रहा ।

१२२. पं. महेशप्रसाद ने इस अवधि की पुष्टि की है ।

१२३. मि. शेक्सपियर बनारस के जिलाधीश थे ।

१२४. काशी आगमन की यह तिथि ज्येष्ठ शु. ४ सं. १९३३ वि. थी ।

१२५. काशी का यह अन्तिम आगमन कार्तिक शु. ७ सं. १९३६ वि. को हुआ ।

१२६. सारसुधानिधि हिन्दी दैनिक पत्र कलकत्ता से प्रकाशित होता था ।

१२७. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के 'भारतदुर्दशा' शीर्षक नाटक की ओर संकेत है ।

१२८. यह आर्यमित्र १९वीं शताब्दी का एक अन्य पत्र था । आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का पत्र आर्य मित्र १८९८ में प्रकाशित हुआ ।

१२९. थियोसोफिकल सोसाइटी से अभिप्राय है ।

१३०. कर्नल ऑल्काट यद्यपि अमेरिकन थे किन्तु गत शताब्दी में प्राय: समस्त पश्चिमी गौरांग लोग भारतीयों द्वारा अंग्रेज नाम से ही पुकारे जाते थे ।

१३१. पूर्वीय या पौरस्त्य ।

१३२. सुप्रसिद्ध ईसाई सुधारक मार्टिन लूथर ।

१३३. पं. सत्यव्रत सामश्रमी- विशेष परिचय के लिये देखें-'ऋषि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी'- डा० भवानीलाल भारतीय

१३४. मुन्शी समर्थदान स्वामी दयानन्द के अत्यन्त विश्वसनीय कर्मचारी थे । वे सीकर (राजस्थान) जिले के नेठवा ग्राम निवासी चारण जाति के सुपठित व्यक्ति थे ।

१३५. मुन्शी बख्तावरसिंह वैदिक यंत्रालय के प्रथम प्रबन्धक थे । कालान्तर में इनके द्वारा किये गये आर्थिक घोटालों के कारण इन्हें इस पद से हटना पड़ा था ।

१३६. शारीरक से वेदान्त-दर्शन का अभिप्राय है ।

१३७. इस विदुषी गुर्जर ब्राह्मणी का नाम हरिकुंवरी (१८२६ वि.-१९५५ वि.) था । यह गुजरात की नागर ब्राह्मण (गोत्र बडनगरी) परिवार की लड़की थी । विस्तृत जानकारी के लिये देखें- 'ऋषि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी' (ले. डा० भवानीलाल भारतीय) का प्रासंगिक १०वां अध्याय ।

१३८. वास्तविक नाम ई.एफ. सिनेट, ये पायोनियर के सम्पादक थे ।

१३९. यह व्यक्ति कर्नल ऑल्काट और मैडम ब्लैवेट्स्की के साथ बम्बई से आया था। इसका उल्लेख कर्नल ने अपनी ग्रन्थमाला 'ओल्ड डायरी लीव्ज' में विस्तार से किया है।

१४०. अभिप्राय यह है कि सात बार तो स्वामीजी का काशी में आगमन हुआ था। किन्तु उन्होंने पौराणिक समुदाय को अपने ६ बार के काशी निवास में ललकारा था। प्रथम बार का आगमन उपदेशक पूर्व अवस्था का सामान्य भ्रमण था।

१४१. यह स्वामीजी के १८५६ ई. के प्रथम बार के काशी गमन की ओर संकेत है।

१४२. सौर तिथि।

१४३. चैत्र १९२७ वि. से ज्येष्ठ १९२७ वि. तक

१४४. यह यात्रा फाल्गुन-चैत्र १९२८-१९२९ वि. में हुई।

१४५. यह यात्रा ज्येष्ठ-आषाढ़ १९३१ वि. में हुई।

१४६. मैडम ब्लैवेट्स्की, मि. सिनेट तथा महाराष्ट्र के दामोदर।

१४७. पं. सुन्दरलाल से स्वामीजी की प्रथम भेंट १८६३ ई. में आगरा में हुई थी।

१४८. हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पं. बालकृष्ण भट्ट हिन्दी प्रदीप के सम्पादक थे।

१४९. पं. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर।

१५०. पं. तारानाथ तर्क वाचस्पति।

१५१. प्रेमचन्द रायचन्द- जिनके नाम से कलकत्ता विश्वविद्यालय प्रतिभाशाली छात्रों को छात्रवृत्ति देता था।

१५२. प्रयाग आगमन ५ फरवरी १८७० को हुआ।

१५३. माजी या बाजी के परिचय के लिये पृ. २१० की पादटिप्पणी संख्या १३७ देखें।

१५४. वासुकी- इलाहाबाद का एक विशेष्ट तीर्थस्थल।

१५५. यजुर्वेद ३२.३.

१५६. मनुस्मृति का प्रसिद्ध टीकाकार

१५७. स्वामीजी चैत्र शुक्ल पक्ष में तृतीय बार काशी आये।

१५८. स्वामीजी काशी से प्रथम सोरों गये और वहां से कासगंज होकर पुनः फर्रूखाबाद आये।

१५९. शुद्ध नाम हरनोट

१६०. प्रस्तुत जीवनचरित में यह प्रसंग पृ. ११३-११७ तक वर्णित है।

१६१. प्रस्तुत जीवचरित का पृष्ठ ११२ देखें।

१६२. मार्कण्डेय-पुराणान्तर्गत दुर्गा सप्तशती को चण्डी पाठ कहा जाता है।

१६३. स्वामीजी भाद्रपद शुक्ला ३ को पटना आये ।

१६४. २ अक्टूबर १८७२ को पटना छोड़ा ।

१६५. सूर्य का स्तुतिपरक ग्रन्थ । यह महाभारत से पृथक् किया गया है ।

१६६. मुंगेर से भागलपुर का मार्ग बहुत लम्बा नहीं है । अत: १८ अक्टूबर को मुंगेर से चलकर २० अक्टूबर को यदि स्वामीजी भागलपुर पहुंचे तो निश्चय ही वे मार्ग में कहीं रुके होंगे ।

१६७. रामानुजाचार्य के मतानुयायी प्राय: 'आचारी' कहलाते हैं ।

१६८. पूरा नाम राजा सौरेन्द्रमोहन ठाकुर- ये भी ठाकुर (टैगोर) परिवार से ही सम्बन्धित थे ।

१६९. स्वामीजी नगरों की बस्ती से दूर उद्यानों में रहना पसन्द करते थे ।

१७०. सांख्य दर्शन २.९२.

१७१. राजनारायण वसु (१८२६-१८९९) ब्रह्मसमाज के नेता और कार्यकर्ता । योगी अरविन्द के नाना थे ।

१७२. देवेन्द्रनाथ ठाकुर के पुत्र ।

१७३. पूरा नाम तारानाथ तर्कवाचस्पति

१७४. शुद्ध नाम कृष्णचन्द्र मित्र ।

१७५. बंगला में लिखित महात्मा दयानन्द सरस्वती की संक्षिप्त जीवनी- १८८६ ई. में प्रकाशित । इसका हिन्दी अनुवाद वेदवाणी जनवरी १९८८ में प्रकाशित हुआ है ।

१७६. बंगाल में उत्तरप्रदेश, बिहार आदि हिन्दी भाषी प्रान्तों के निवासियों को 'हिन्दुस्तानी' कहा जाता है । इस प्रकार के प्रयोग में तिरस्कार की व्यंजना है ।

१७७. कलकत्ता के जोड़ासांको मुहल्ले में ठाकुरबाड़ी नाम से प्रसिद्ध टैगोर परिवार का भव्य प्रासाद । बंगला में घर के लिये 'बाड़ी' शब्द प्रयुक्त होता है ।

१७८. देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय के अनुसार इस पत्रिका का नाम हिन्दू-हितैषिणी था ।

१७८. अ शुद्ध नाम वाराहनगर

१७९. शुद्ध नाम कैम्पबैल ।

१८०. सुप्रसिद्ध चिकित्सक तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय के फैलो ।

१८१. शुद्ध नाम ज्योतीन्द्रमोहन ठाकुर ।

१८२. कलकत्ता से लौटते हुए स्वामीजी का मिर्जापुर आगमन श्रावण १९३० वि. में हुआ था ।

१८३. केशवचन्द्र सेन ब्रह्मसमाज के नेता तथा स्वामी दयानन्द के प्रशंसक थे ।

१८४. पूरा नाम लाल बिहारी दे (Dey)

१८५. इनका वास्तविक नाम अक्षयचन्द्र सरकार था । पं. घासीराम सम्पादित जीवनचरित में इन्हें अक्षयकुमार घोष लिखा गया है ।

१८६. देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय के इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि पं. लेखराम ने १८९६ ई. में प्रकाशित मुखोपाध्याय महाशय द्वारा लिखित 'दयानन्दचरित' का अवलोकन किया था । यह उद्धरण दयानन्दचरित के षष्ठ परिच्छेद का है । किन्तु यह जानना कठिन है कि क्या पं. लेखराम और देवेन्द्रनाथ की भेंट भी हुई थी या नहीं ।

१८७. हुगली शास्त्रार्थ (प्रतिमा पूजनविचार) १८७३ ई. (१९३० वि.) में लाइट प्रेस बनारस से छपा । इसका प्रकाशन भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया था । १८८८ ई. में खड्गविलास प्रेस पटना से यह पुनः प्रकाशित किया गया ।

१८८. बंगाल, बिहार भ्रमण की सब तिथियां प्रामणिक हैं ।

१८९. पं. लेखराम के अनुसार स्वामी दयानन्द और पं. दुर्गादत्त का शास्त्रार्थ कलकत्ता से लौटते समय डुमरांव में हुआ था, जब कि देवेन्द्रनाथ के अनुसार शास्त्रार्थ कलकत्ता जाते समय हुआ । पं. घासीराम ने देवेन्द्रनाथ के मत को ही समीचीन माना किन्तु पं. लेखराम ने इस प्रसंग को स्वयं पं. दुर्गादत्त की साक्षी के आधार पर ही लेखबद्ध किया है । अतः अधिक सम्भव यही है कि पं. दुर्गादत्त से स्वामीजी का शास्त्रार्थ कलकत्ता से लौटते समय हुआ हो ।

१९०. डुमरांव से प्रस्थान की तिथि ८ अगस्त थी । ८ जनवरी को तो स्वामीजी कलकत्ता में थे । यह स्पष्ट ही लिखने की भूल है ।

१९१. पं. गुरुप्रसाद शुक्ल कानपुर के एक सम्पन्न व्यक्ति थे जिन्होंने इस नगर में एक भव्य मंदिर 'कैलाश' नामक बनवाया था ।

१९२. कानपुर के एक अन्य धनी व्यक्ति । इनकी ख्याति भी इस नगर में एक मंदिर बनवाने के कारण थी, जिसका नाम इन्होंने 'वैकुण्ठ' रखा था ।

१९३. ईसाई सम्प्रदाय के लिये प्रयुक्त शब्द ।

१९४. इस सभा की स्थापना पंजाब के प्रसिद्ध समाज सुधारक मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी ने की थी । वे इस संस्था की ओर से 'नीतिप्रकाश' नामक एक पत्र भी निकालते थे ।

१९५. २१ नवम्बर १८७३ से १० दिसम्बर १८७३ तक

१९६. वस्तुतः मार्गशीर्ष शु. प्रतिपदा को ।

१९७. पौष शुक्ला ७ सं. १९३० विः को अलीगढ़ आये ।

१९८. फलित ज्योतिष के ग्रन्थ शीघ्रबोध को जानने वाला ।

१९९. हाथरस माघ शु. ५ को आये ।

२००. हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक तथा भारतेन्दु कालीन साहित्यकार । ये वृन्दावन निवासी वैष्णव थे तथा स्वामीजी के प्रशंसक थे ।

२०१. इस बार मथुरा में १४ मार्च १८७४ से २० मार्च १८७४ तक रहे ।

२०२. अष्टाध्यायी अ. ६.१.७८.

२०३. वस्तुत: महीधर भाष्य के अनुसार । शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन संहिता पर सायण ने भाष्य रचना नहीं की ।

२०४. प्रयाग निवास अक्टूबर १८७४ तक रहा ।

२०५. वास्तविक नाम निहेमिया नीलकण्ठ गोरे । प्राय: इन्हें नीलकण्ठ शास्त्री के नाम से जाना जाता है ।

२०६. यह सत्यार्थप्रकाश का प्रथम संस्करण था जो स्वामीजी ने राजा जयकृष्णदास की प्रेरणा से लिखवाया था ।

२०७. नासिक के निकट त्रयम्बेश्वर महादेव का प्रसिद्ध मंदिर है ।

२०८. स्वामीजी का बम्बई आगमन २० अक्टूबर १८७४ को हुआ । इस दिन कार्तिक कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा तथा सोमवार था ।

पाद टिप्पणियाँ

अध्याय-३

१. स्वामीजी का बम्बई का प्रथम आगमन २० अक्टूबर १८७४ को हुआ था।

२. स्वामीजी को बम्बई आमंत्रित करने वालों में मुख्य थे- खीमजी धरम सी नामक एक भाटिया सज्जन तथा जयकृष्ण जीवनराम व्यास नामक एक अन्य महानुभाव। प्रथम व्यक्ति वल्लभ मतानुयायी तथा द्वितीय शांकर वेदान्त के मानने वाले थे।

३. परनामी मत के साधु रेवागर कुंवरगर के मठ में स्वामीजी को ठहराया गया था।

४. ब्रह्म सम्बन्ध का मंत्र यह है- "श्रीकृष्ण: शरणं मम..... दारागासूत्राप्तवित्तेहपराण्यात्मना यह समर्पयामि दासोऽहं कृष्णतवास्मि ॥"

५. सम्भवत: यह प्रश्नावली वल्लभमतानुयायी शतावधानी पं. गट्टूलाल ने तैयार की होगी।

६. अष्टाध्यायी ३.३.११५

७. पं. गट्टूलाल- (१९०२ वि. १९४५ वि.) मूलत: तैलंग भट्ट ब्राह्मण थे। पिता पं. घनश्याम नाथद्वारा से बम्बई आये। शीतला के कारण इनकी नेत्र ज्योति नष्ट हो गई थी। अत्यन्त तीव्र धारणा शक्ति के कारण ये शतावधानी थे। संस्कृत में आशु कविता लिखते थे। वल्लभ सम्प्रदाय में इन्हें प्रतिष्ठा प्राप्त थी।

८. वेदविरुद्धमतखण्डन के नाम से यह पुस्तक प्रथम बार १९३१ वि. में निर्णयसागर प्रेस बम्बई से प्रकाशित हुई थी।

९. वेदान्तिध्वान्तनिवारण का प्रथम संस्करण ओरियंटल प्रेस से मुद्रित होकर १९३१ वि. में बम्बई से ही प्रकाशित हुआ।

१०. इन नियमों की संख्या २८ थी।

११. स्वामीजी ११ दिसम्बर १८७४ को अहमदाबाद पहुंचे थे।

१२. बड़ौदा नरेश मल्हारराव गायकवाड़।

१३. भोलानाथ साराभाई गुजरात प्रार्थनासमाज के प्रसिद्ध नेता थे।

१४. अहमदाबाद से चल कर राजकोट पहुंचने के पूर्व स्वामीजी स्वल्प काल के लिये नड़ियाद आये थे।

१५. यह औदीच्य शब्द है। स्वामी दयानन्द स्वयं औदीच्य ब्राह्मण थे।

१६. 'देशभाषा' शब्द का प्रयोग हिन्दी के लिये हुआ है!

१७. इस प्रसंग को सत्यार्थप्रकाश के १०वें समुल्लास में भी लिखा गया है।

१८. राजकोट से प्रस्थान कर चोटीला तथा बढवाण में रुकते हुए अहमदाबाद आये।

१९. 'शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण' नाम से प्रसिद्ध यह पुस्तक १९३१ वि. में बम्बई से प्रकाशित हुई।

२०. आर्यसमाज स्थापना की तिथि चैत्र शुक्ला ५ शनिवार है । यही तिथि स्वामी दयानन्द के सभी प्रामाणिक जीवनचरित लेखकों, आर्यसमाज के इतिहासज्ञों तथा तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं द्वारा मान्य की गई है ।

२१. पूरा नाम मानेक जी अदेर जी- ये पारसी सज्जन थे ।

२२. स्वामीजी का यह अहमदाबाद प्रवास तो मार्च १८७६ के आसपास का है क्योंकि बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना करने के पश्चात् वे पूना आये और पर्याप्त समय तक वहां रहने के पश्चात् वे सातारा होकर फिर बम्बई आये । पुन: बम्बई से बड़ौदा होकर वे फरवरी या मार्च १८७६ में अहमदाबाद आये । मई १८७५ में तो वे बम्बई में ही थे ।

२३. फ्रामजी कावसजी इन्स्टीट्यूट बम्बई के धोबी तालाब मोहल्ले में है ।

२४. शुद्ध नाम मथुरादास लव जी ।

२५. फ्राम जी कावस जी इन्स्टीट्यूट पारसी वर्ग का था । उसे यवनों का मानना पौराणिकों की भूल थी ।

२६. ठाकुर नहीं अपितु ठक्कर ।

२७. मथुरादास लवजी-भाटिया कुलोत्पन्न मथुरादास लवजी स्वामी दयानन्द के प्रसिद्ध भक्त तथा आर्यसमाज बम्बई के प्रारम्भिक कार्यकर्ता थे ।

२८. बंगाल का नवद्वीप प्रान्त यहां पुराकाल में न्यायशास्त्रवेत्ता अनेक प्रसिद्ध विद्वान् हुए हैं ।

२९. शास्त्रार्थ का विज्ञापन ४ जून १८७५ शुक्रवार को प्रकाशित हुआ, जब कि प्रतिज्ञापत्र ५ जून १८७५ शनिवार को लिखा गया ।

३०. बम्बई के एक धनी साहूकार और प्रसिद्ध विद्वान् पं. श्यामजी कृष्ण वर्मा के ससुर ।

३१. शुद्ध नाम मूलजी ठाकरसी

३२. यजुर्वेद अ. ३२.३.

३३. स्वामीजी का पूना आगमन महादेव गोविन्द रानडे (पूना में न्यायाधीश के पद पर स्थापित) तथा महादेव मोरेश्वर कुण्टे के आग्रह पर हुआ था ।

३४. षड्विंश ब्राह्मण ५.९.

३५. उपलब्ध पूना-प्रवचन में व्याख्यान का शीर्षक ईश्वर-सिद्धि है ।

३६. उपलब्ध पूना प्रवचन में व्याख्यान का शीर्षक धर्माधर्म है ।

३७. उपलब्ध पूना प्रवचन में व्याख्यान का शीर्षक जन्म विषयक है ।

३८. उपलब्ध पूना प्रवचन में व्याख्यान का शीर्षक और प्रतिपाद्य 'इतिहास' है ।

३९. मराठी में मुद्रित पूना प्रवचनों में से १४ प्रवचन (प्रथम दो को छोड़कर) पूना के भण्डारकर शोध संस्थान पुणे में उपलब्ध हैं । अब इनका प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद रामलाल कपूर ट्रस्ट से प्रकाशित हो चुका है ।

४०. 'लोकहितवादी' के नाम से यह विवरण लिखने वाले स्वामी दयानन्द के भक्त और शिष्य श्री गोपालराव हरि देशमुख थे।

४०. अ लोकहितवादी का यह अंक फरवरी १८८४ में प्रकाशित हुआ था।

४१. मराठी ग्रन्थ 'निबन्धमाला' के लेखक विष्णु शास्त्री चिपलूणकर स्वामीजी के प्रसिद्ध आलोचक थे।

४२. इस प्रसंग में लेखक ने एक ही नाम 'विष्णु शास्त्री' वाले दो विद्वानों की चर्चा की है। प्रथम विष्णु शास्त्री चिपलूणकर स्वामीजी के घोर विरोधी थे। दूसरे विष्णु शास्त्री पण्डित स्वामीजी के प्रशंसक थे।

४३. एडम स्मिथ इंग्लैण्ड का प्रसिद्ध अर्थशास्त्री था।

४४. सर फ्रांसिस बेकन- अंग्रेजी का प्रसिद्ध लेखक और विचारक।

४५. जेम्स स्टुअर्ट मिल- प्रसिद्ध अंग्रेज दार्शनिक, लेखक और विचारक।

४६. स्वामीजी पूना से तुरन्त बम्बई नहीं लौटे थे। सितम्बर १८७५ की किसी तिथि को वे पूना से सातारा गये और कुछ दिन वहां रहकर पुनः पूना आये। यहीं से वे बम्बई आये।

४७. नवीनचन्द्र राय लाहौर (पंजाब) के ब्रह्मसमाज के नेता थे। कार्यवश उस समय बम्बई आये हुए थे।

४८. प्रतापचन्द्र मजूमदार-ब्रह्मसमाज के नेता, केशवचन्द्र सेन के शिष्य और सहयोगी थे।

४९. रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ तथा प्राच्यविद्याविशारद।

५०. इस प्रसंग में नवीनचन्द्र राय ने अपनी पत्रिका ज्ञानप्रदायिनी (खण्ड ४ संख्या ३१-३२) में लिखा था—"स्वामी दयानन्द सरस्वती जब बम्बई गये थे, हमारे साथ भी उनकी मुलाकात हुई थी। हम लोगों से उन्होंने यह इच्छा प्रकाशित की कि वे वेदों की नई टीका करना चाहते हैं जिसमें वे यह सिद्ध करेंगे कि अग्नि, वायु, इन्द्र प्रभृति शब्द ईश्वर वाची हैं और वेदों में केवल ईश्वर से ही प्रार्थना की है, और हम लोगों से भी इस प्रकार के अर्थ करने में सहायता चाही।"

५१. अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानिदेव वयुयानि विद्वान्। यजुर्वेद ४०.१६.

५२. सत्यव्रत सामश्रमी लिखित निरुक्तालोचन।

५३. अंधन्तमः प्रविशन्ति ये संभूतिमुपासते ॥ (यजुर्वेद ४०.९.)

५४. पूरा नाम डा० जॉन विल्सन।

५५. प्रो. मैक्समूलर के पत्र तथा स्वामीजी के उत्तर का अभी तक अनुसंधान नहीं हो सका है।

५६. शुद्ध नाम जुझाऊ शास्त्री।

५७. मनु. अ. ९ श्लोक २८५.

५.८ मनुस्मृति २-१७६ आदि।

५९. मुन्शी समर्थदान से अभिप्राय है।

६०. स्वामी दयानन्द का प्रथम बम्बई आगमन अक्तूबर १८७४ के अन्तिम सप्ताह में हुआ था। इस प्रकार ४ अप्रैल १८७६ को प्रकाशित इस विज्ञापन में उनके १८ मास पूर्व बम्बई आने का यह उल्लेख नितान्त समीचीन है।

६१. 'ज्ञानप्रदायिनी पत्रिका' का प्रकाशन लाहौर से होता था तथा नवीनचन्द्र राय इसके सम्पादक थे।

६२. वस्तुत: यह स्वामीजी की ७वीं बार की यात्रा थी।

६३. इस पादरी का नाम जे.जे. ल्यूकस था।

६४. फर्रूखाबाद निवासी पं. ज्वालादत्त शर्मा कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। बहुत व्युत्पन्न न होने पर भी वे स्वामीजी के अनुयायी रहे और ग्रन्थरचना में उनकी सहायता करते थे। पं. भीमसेन के साथ उनकी गणना भी स्वामीजी के प्रमुख शिष्यों में होती है।

६५. पं. भीमसेन शर्मा (१९११ वि.-१९७४ वि.) स्वामी दयानन्द के प्रमुख विद्या शिष्य थे। लेखन कार्य में स्वामी जी की सहायता करते थे। ये कालान्तर में पौराणिक हो गये।

६६. यदि स्वामीजी अयोध्या में एक मास ९ दिन रहे तो उनका अयोध्या निवास २७ सितम्बर तक मानना होगा।

६७. लखनऊ में स्वामीजी का आगमन २७ सितम्बर १८७६ आसौज सुदि ९ बुधवार को हुआ।

६८. इन बंगाली सज्जन का नाम बनमाली बाबू था।

६९. इस रईस का नाम लाला ब्रजवासीलाल था जो मूलत: हिन्डौन (जयपुर) के निवासी कायस्थ थे।

७०. पं. गोपालराव हरि देशमुख की ओर संकेत है।

७१. बम्बई से लौटते हुए स्वामीजी मई १८७६ ई. में इन्दौर होकर ही फर्रूखाबाद आये थे।

७२. सम्भवत: यह उद्धरण 'ज्ञानप्रदायिनी पत्रिका' का है जो राय महाशय द्वारा सम्पादित होती थी।

७३. 'बिरादरे हिन्द' का सम्पादन शिवनारायण अग्निहोत्री करते थे, जो उस समय ब्रह्मसमाजी थे। कालान्तर में उन्होंने सत्यानन्द अग्निहोत्री बन कर देवसमाज की स्थापना की थी।

७४. स्वयं केशवचन्द्र सेन उस समय तक स्वयं को ईश्वर प्रेरित मसीहा मानने लगे थे। उन्होंने अपने अनुयायियों में यह प्रसिद्ध कर रखा था कि वे जो कुछ कहते या करते हैं वह ईश्वर की प्रेरणा से ही होता है।

७५. मेरठ आगमन १६ जनवरी १८७७ तथा सहारनपुर आगमन १५ फरवरी १८७७

७६. यही दृष्टान्त सत्यार्थप्रकाश (११वां समुल्लास) में भी उल्लिखित है।

७७. इस अमेरिकन पादरी का सही नाम टी.जे. (टामस जैफरसन) स्काट था। परिचय के लिये देखें- ऋषि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी।

७८. पादरी नोबेल।

पाद टिप्पणियां

परिच्छेद-२ (पंजाब की यात्रा)

१. स्वामीजी का लुधियाना आगमन ३१ मार्च १८७७ को हुआ। २१ मार्च को तो वे चांदापुर में ही थे।

२. यह ईसाइयों का समाचारपत्र था।

३. इस उक्ति में बाइबिल के एक कथन की ओर संकेत है।

४. स्वामीजी सहारनपुर में १५ फरवरी १८७७ से ११ मार्च १८७७ तक रहे थे। मई १८७७ में तो वे लाहौर में थे।

५. कारस्टीफेन- ज्यूड़िशियल सहायक कमिश्नर।

६ लुधियाने के समीपवर्ती फिल्लौर कस्बे का निवासी, सनातनधर्म का प्रसिद्ध प्रवक्ता।

७. मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत दुर्गा-सप्तशती।

८. स्वामीजी का लुध्रियाना आगमन मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी के अनुरोध पर हुआ था।

९. आगे लिखा विवरण पं. लेखराम ने आर्यसमाज लाहौर की वार्षिक रिपोर्टों से संकलित किया है।

१०. शुद्ध नाम दीवान रतनचन्द दाढ़ीवाले (मृत्यु १८७२ ई.) पंजाब के महाराजा रणजीतसिंह के कृपापात्र थे। उनका यह बाग लाहौर में शाहआलमी दरवाजे के बाहर था। महाराजा रणजीत सिंह के दरबार में रतनचन्द नाम वाले दो दरबारी थे। इसलिए दाढ़ी रखने वाले रतनचन्द इस नाम से पुकारे जाते थे।

११. इन विवादास्पद कथानकों का स्पष्टीकरण स्वामी दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के 'ग्रन्थ प्रामाण्याप्रामाण्य प्रकरण' में किया है।

१२. जैमिनि प्रणीत द्वादश अध्याय वाला पूर्वमीमांसा दर्शन।

१३. यथेमां वाचं कल्याणीमावदानिजनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय। यजु. २६.२.

१४. पं. मुकुन्दराम काश्मीरी लाहौर से प्रकाशित हाने वाले हिन्दी साप्ताहिक मित्रविलास के सम्पादक थे। कालान्तर में वे और उनका पत्र स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज के कट्टर विरोधी बन गये थे।

१५. शारदाप्रसाद भट्टाचार्य, आर्यसमाज लाहौर के प्रारम्भिक सदस्य।

१६. यजुर्वेद १३.४.

१७. तत्त्वबोधिनी पत्रिका ब्रह्मसमाज की प्रतिनिधि पत्रिका थी।

१८. टकसाल-सामान्यतया 'टकसाल' शब्द सिक्के बनाने के कारखाने के लिये प्रयुक्त होता है, किन्तु यहां इसका प्रयोग वैचारिक कट्टरता या दृढ़ता के लिये हुआ है। उदाहरण के लिये-सिखों की दमदमी टकसाल।

१९. बृहदारण्यक. उ. १.४.१०.

२०. भाई दित्तसिंह- जन्मना मज़हबी सिख (गुलाबदासी सम्प्रदाय के अनुयायी) थे। स्वामी दयानन्द के सम्पर्क में आकर आर्यसमाजी बने। लाहौर आर्यसमाज में उपदेशक के रूप में भी कार्य किया किन्तु कालान्तर में वे आर्यसमाज से पृथक् हो गये।

२१. यजुर्वेद १९.५८.

२२. लाला बालकराम आर्यसमाज लाहौर के प्रारम्भिक सदस्य थे।

२३. सौर तिथि।

२४. अब प्रचलित पाठ इस प्रकार है- सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

२५. इमं में गंगेयमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमंसचता परुष्णया।
असिकन्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये ऋणुह्या सुषोमयो: ॥

ऋग्वेद १०.७५.५.

२६. पश्चिमी पंजाब (पाकिस्तान) का एक नगर।

२७. अष्टाध्यायी ३.३.११३.

२८. पश्चिमी पंजाब (पाकिस्तान) का एक नगर।

२९. यदि २४ जून १८७७ (लाहौर आर्यसमाज की स्थापना तिथि) को रविवार था, तो उसके बाद का तीसरा रविवार १५ जुलाई को पड़ा था।

३०. शाक्यमुनि गौतमबुद्ध का पर्यायवाची है। वे शाक्य वंशीय क्षत्रिय थे, अत: शाक्यमुनि कहलाये।

३१. मनुस्मृति में इस सिद्धान्त का समर्थन निम्न प्रकार से मिलता है।

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ॥ (१.२१)

३२. यजुर्वेद १३.४.

३३. स्वामीजी को 'दुर्वासा' कहने का अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि पुराणों में दुर्वासा महर्षि का अपने सैकड़ों अनुयायी ऋषियों के साथ यत्र तत्र एक साथ तथा अप्रत्याशित रूप में जाने का उल्लेख मिलता है। अन्यथा ऋषि दुर्वासा अपने क्रोध के लिये चर्चित रहे, जब कि ऋषि में क्रोध का लेशमात्र भी नहीं था।

३४. पं. लेखराम ने एक ही स्थान पर अनेक बार स्वामीजी के आगमन के सारे विवरण एकत्र ही दिये हैं।

३५. ऋषि दयानन्द के पत्र व्यवहार (पूर्ण संख्या ३९. पृ. ५३) से जाना जाता है कि वे १२ जुलाई १८७७ को अमृतसर पहुंचे थे।

३६. सरदार दयालसिंह मजीठिया (१८४९-१८९८) सिखों के एक सम्पन्न परिवार में जन्मे सरदार मजीठिया विचारों से ब्रह्मसमाजी थे। कलकत्ता में वे केशवचन्द्र सेन, प्रतापचन्द्र मजूमदार तथा शिवनाथ शास्त्री जैसे

ब्राह्म नेताओं से मिले भी थे। ट्रिब्यून पत्र के वे संस्थापक थे। विस्तृत परिचय के लिये देखें- ऋषि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी।

३७. मलोई बुंगा- अमृतसर में सिख तीर्थ यात्रियों के लिये बनाये गये धर्मार्थ स्थानों को बुंगा कहते हैं। धर्मशाला की भांति इनका उपयोग होता है।

३८. जीवनी लेखक पं. लेखराम ने स्वयं के लिये सर्वत्र "संवाददाता" शब्द का प्रयोग किया है।

३९. स्वामी दयानन्द के मुख से यहां हिन्दू धर्म का जो प्रशस्ति पाठ कराया गया है वह हमें विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता। कारण कि स्वामी दयानन्द "हिन्दूधर्म" शब्द का प्रयोग तो कभी करते ही नहीं थे। पुन: प्रत्यक्षतया परस्पर विरोधी विचारों, सिद्धान्तों तथा आचारों के पुंज तुल्य हिन्दू धर्म की इन्हीं वदतोव्याघात युक्त बातों का वे प्रशस्ति पाठ करें, यह असम्भव प्रतीत होता है। सम्भवत: ईसाई शासक द्वारा हिन्दू धर्म की आलोचना में कही गई कुछ बातों का स्वामीजी ने अपने ढंग से निराकरण किया हो, अथवा उस विवरण को प्रस्तुत करने में ही कोई गड़बड़ हुई होगी- सम्पादक।

४०. वस्तुत: चौथी बार

४१. वस्तुत: स्वामीजी का यह अमृतसर आगमन चौथी बार का था। सर्वप्रथम वे १२ जुलाई को इस नगर में आये। इसके पश्चात् बीच-बीच में गुरदासपुर और जालंधर जाकर पुन: अमृतसर लौटे। इस बार का उनका अमृतसर आगमन रावलपिण्डी और मुलतान के प्रवास को समाप्त करके हुआ था।

४२. कवि वचन-सुधा नामक पत्र भारतेन्दु हरिश्चन्द्र काशी से निकालते थे। १८६९ में काशी शास्त्रार्थ के समय स्वामीजी का विरोध करने वाले भारतेन्दु धीरे-धीरे यह मानने लगे थे कि दयानन्द के सभी विचार और कार्य स्वदेश हित के लिये ही हैं तथा सनातनधर्मियों द्वारा उनका विरोध किया जाना दुर्भाग्यपूर्ण है।

४३. १७ अगस्त १८७७ को गुरदासपुर आगमन।

४४. यजुर्वेद २३.१९.

४५. जालंधर आगमन १३ सितम्वर १८७७ को।

४६. बम्बई प्रदेश में स्वामीजी का आगमन २० अक्टूबर १८७४ को हुआ और वे अप्रैल १८७६ तक इस प्रदेश में रहे थे।

४७. जालंधर के रईस सरदार विक्रमसिंह अहलूवालिया।

४८. सरदार सुचेतसिंह कपूरथला राजपरिवार के थे।

४९. दिल्ली दरबार जनवरी १८७७ में हुआ था।

५०. १८ अप्रैल १८७७ की रात को स्वामीजी जालंधर आये और १९ अप्रैल को प्रात: लाहौर चले गये।

५१. बैंगन का यह उदाहरण व्यवहारभानु में भी आया है।

५२. अंधेरनगरी का दृष्टान्त भी व्यवहारभानु में वर्णित है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इसी कथानक को लेकर एक प्रहसन लिखा था।

५३. १८५७ के विद्रोह के समय अंग्रेजों द्वारा भारतीयों से किये गये क्रूर और निर्मम बदले की ओर संकेत है।

५४. राजा विक्रमसिंह के नाम से जालंधर में विक्रमपुरा मोहल्ला प्रसिद्ध है।

५५. तुलनीय- सत्यार्थप्रकाश के ११वें समुल्लास में नारायणदर्शी (नकटा) सम्प्रदाय का उपाख्यान।

५६. घोड़ा गाड़ी का एक प्रकार।

५७. तुलनीय- वेदविरुद्धमत खण्डन में पूजारी शब्द की व्युत्पत्ति-पूजा नाम सत्कार सज्जनानां तस्या अर्रिनाम शत्रुर्यम्पूजारि शब्दार्थो वेद्यः।

५८. लाला मथुरादास सहारनपुर जिले के निवासी थे, किन्तु सेना की सेवा में होने के कारण वे पंजाब के अनेक स्थानों में रहे। उन्होंने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का संक्षिप्त उर्दू अनुवाद किया जो १८८२ में छपा।

५९. लाला मथुरादास से अभिप्राय है।

६०. काशी शास्त्रार्थ में उपस्थित स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती।

६१. यह हिन्दू सभा इस शताब्दी में स्थापित हिन्दू महासभा से भिन्न थी।

६२. यहां ऐसा लिखना अधिक समीचीन है- १ नवम्बर १८७७ की रात को फिरोजपुर से चलकर ५ नवम्बर १८७७ को लाहौर पहुंच गये।

६३. स्वामीजी ने ७ नवम्बर को रावलपिंडी के लिये प्रस्थान किया और ८ नवम्बर को वहां पहुंचे। उनका निवास २६ दिसम्बर १८७७ तक रहा।

६४. लगता है कि इन पारसी सज्जन का सही नाम अंकित नहीं किया गया। स्वामी सत्यानन्द ने इनका नाम जामसनजी बताया है, जो ठीक लगता है।

६५. स्वामीजी का जेहलम में आगमन २७ दिसम्बर १८७७ को हुआ।

६६. मेहता अमीचन्द की स्वामी दयानन्द से भेंट के पश्चात् ही उनके जीवन में महान् परिवर्तन आया। मेहताजी ने अपने सभी व्यसनों का परित्याग किया और निष्ठावान् आर्य बन गये। उन्हें कीचड़ में पड़ा हीरा बता कर स्वामीजी ने उनके जीवन को ही बदल डाला। पं. चमूपति के अनुसार अमीचन्द तहसील में वासिल बाकीनवीस के पद पर कार्यरत थे। उनका देहान्त २९ जुलाई १८९३ को हुआ। इन्हें कहीं-कहीं अमीरचंद भी कहा गया है। मेहता अमीचंद के विषय में द्रष्टव्य- भक्त अमीचंद मेहता और उनका काव्य (सं. भवानीलाल भारतीय)

६७. महमूद गजनवी के सोमनाथ पर आक्रमण का विस्तृत और रोमांचक वर्णन सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण (११वां समुल्लास) में भी उपलब्ध होता है।

६८. पंजाबी में "कुड़ी" लड़की के अर्थ में आता है।

६९. सत्यार्थप्रकाश (१०वां समुल्लास) में भी अमेरिका को 'पाताल देश' कहा है।

७०. नवीन न्याय का एक ग्रन्थ।

७१. प्रो. मोनियर विलियम्स लिखित।

७२. यह जयपुर के प्रथम प्रवास (१८६५ ई.) का प्रसंग है।

७३. पंजाबी शब्द 'जीविका' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

७४. अथर्ववेद का० १८ सूक्त २ मंत्र ३४

७५. स्वामीजी दुबारा बंगाल नहीं जा पाये।

७६. २ फरवरी १८७८ को माघ अमावस्या (१८३४ वि.) थी।

७७. सन् १८७८ में स्वामीजी की आयु ५४ वर्ष की थी।

७८. स्वामीजी ने गुजरांवाला से ३ मार्च १८७९ को प्रस्थान किया। उस दिन शनिवार था।

७९. मुन्शी हरसुखराय भटनागर का उर्दू पत्र।

८०. स्वामीजी ३ मार्च से १२ मार्च १८७८ तक लाहौर रहे।

८१. तुलनीय सत्यार्थप्रकाश: अष्टमसमुल्लास में आदि सृष्टि की उत्पत्ति का प्रसंग।

८२. वल्लभ सम्प्रदाय के आचार्य गोसांई कहलाते हैं।

८३. पारसी सज्जन

८४. पारसी थे।

८५. पारसी व्यवसायी।

८५. अ अहं ब्रह्मास्मि (बृहदारण्यक उ. १.४.४०.) तत्त्वमसि (छान्दोग्य उ. ६.८.७) अयमात्माब्रह्म (माण्डूक्य उ. २) तथा प्रज्ञानमानन्द ब्रह्म (ऐतरेय उ. ५.३) ये चारों उपनिषद् वाक्य अद्वैत वेदान्त सम्प्रदाय में 'महावाक्य' माने जाते हैं।

८६. तुलनीय- सत्यार्थप्रकाश (११वां समुल्लास) में भोज प्रबन्ध के आधार पर।

८७. हजरत मोहम्मद द्वारा इस्लाम की स्थापना के समय उनकी प्रथम पत्नी खदीजा ने ही सर्वप्रथम इस्लाम को स्वीकार किया था।

८८. स्वामी दयानन्द को योग सिखाने वाले ये स्वामी ब्रह्मानन्द कौन थे, यह ज्ञात नहीं होता। उन्होंने तो अपनी आत्मकथा में स्वामी शिवानन्द गिरि, स्वामी ज्वालानन्द पुरी तथा स्वामी भवानीगिरि को ही अपने योग-शिक्षकों के रूप में स्वीकार किया है। बड़ौदा के चेतन मठ में एक स्वामी ब्रह्मानन्द से उनकी भेंट हुई थी जो वेदान्ती थे।

८९. भागवत की श्रीधरी टीका से अभिप्राय है।

९०. यह संकेत स्वामी विशुद्धानन्द के लिये है। स्वामी दयानन्द स्वामी विशुद्धानन्द की विद्वता के कायल थे किन्तु उन्हें खेद था कि धर्म सुधार का कार्य हाथ में लेने में उक्त स्वामीजी को संकोच हो रहा है।

९१. तुलनीय- सत्यार्थप्रकाश के ११वें समुल्लास में प्रो. मैक्समूलर कृत वेदार्थ की आलोचना।